लाल बहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी
Lal Bahadur Shastri Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~45~~ 118244
वर्ग संख्या
Class No. R 039.914
पुस्तक संख्या
Book No. Enc
V.8

हिन्दी विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

अष्टम भाग

[जन्द-अवस्ता—ज्यान्त]

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. VIII.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.
ıta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.
of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sāhitya Parishad.
Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by H. C. Mitra, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1924.

हिन्दी

विश्वकोष

(षष्ठम भाग)

ज़न्द-अवस्ता—पारसियोंका आदि धर्मग्रन्थ। पारसी लोग इसे वेदवत् पूज्य मानते हैं। इस ग्रन्थमें पारसियोंके ईश्वर तुल्य पूज्य जरथुस्त्र वा जरथुश्तके उपदेशोंका संग्रह किया गया है। वर्तमान समयमें भारतवर्षके पारसी और फारसके 'गबार' जातिके लोग इस ग्रन्थके अनुशासनानुसार अपना जीवन बिताते हैं। फिलहाल यह ग्रन्थ पूर्ण नहीं मिलता, उसके कुछ अंशमात्र एकत्र संयोजित किये गये हैं। परन्तु वे अंश पृथिवीके धार्मिक इतिहासके लिए अमूल्य हैं। जगत्‌के प्राचीनतम धर्मोंमें पारसी धर्म अन्यतम है। यह धर्म किसी समय अत्यन्त विस्तृत था। यदि ग्रीक लोग माराथन, प्लेटिया और सालामिसके युद्धमें पारसियोंको पराजित न कर देते तो सम्भव है यही धर्म समग्र जगत्‌में फैल जाता। हिन्दुओंके लिये यह ग्रन्थ विशेष शिक्षाप्रद है; क्योंकि इसमें वर्णित देव-देवियोंके नाम और उपासना-पद्धति वैदिक धर्मके साथ मिलती जुलती है।

नामकी निरुक्ति—ज़न्द-भाषाके "अवस्ता" और पह्लवी भाषाके "अविस्ताक" वा 'अपिस्ताक' शब्दसे 'अवस्ता' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। सम्भवतः अवस्ता शब्द वेदकी भांति "ज्ञान" इस अर्थको सूचित करता है। किसी किसी विद्वान्‌का कहना है कि, अपस्ता शब्दसे अवस्ता शब्द गृहीत हुआ जिसका अर्थ 'मूलग्रन्थ' वा 'शास्त्र' है और इस शब्दके द्वारा "ज़न्द" अर्थात् टीकासे इसको विभक्त किया गया है। पारसियोंके मध्ययुगके ग्रन्थोंमें प्रायः 'अविस्ताक' वा 'ज़न्द' शब्द देखनेमें आता है जिसका अर्थ है मूल अवस्ता-ग्रन्थ और उसका पह्लवी भाषामें अनुवाद। यूरोपीय विद्वानोंने इस प्रकारके शब्दोंको देख कर यह समझ लिया था कि मूल अवस्ताका नाम ही ज़न्द अवस्ता है। १७० ई०में हाइडने तथा १७७१ ई०में आंकताईल-दु-पेरोंने ज़न्द-अवस्ता शब्दका व्यवहार किया था। पेरोंके परवर्ती यूरोपीय ग्रन्थकर्ताओंने इसका ज़न्द-अवस्ताके नामसे ही उल्लेख किया है।

अवस्ताका आदिम आकार—पह्लवी प्रवादसे मालूम होता है कि मूल अवस्ता बारह सौ अध्यायोंमें विभक्त था। तबारी और मासूदी नामक अरब जातिके ऐतिहासिकोंने बारह हजार गोचर्ममें अवस्ता-ग्रन्थ लिखा हुआ देखा था। प्लिनि (Pliny the elder)-ने लिखा है कि जरथुस्त्र बीस लाख श्लोकोंमें अपनी उपदेशावली लिपिबद्ध कर गये हैं। पह्लवी ग्रन्थोंमें बार बार कहा गया है कि, महावीर सिकन्दरशाहके बाद जिस समय फारसको भीषण दुर्दशा हुई थी, उस समय अवस्ताके अनेक अंश खो गये थे। अवस्ताके वर्तमान आकारको देखनेसे भी यही प्रतीत होता है कि यह किसी विराट् ग्रन्थका अंशमात्र है। पह्लवी भाषाके दीनकार्द और फारसी भाषाके रिवायत् नामक ग्रन्थोंमें अवस्ताके प्रथमांशको विस्तृत वर्णना और सूची दी गई है। उक्त दोनों ग्रन्थोंके पढ़नेसे यही

मालूम होता है कि अवस्ता पहले एक विराट् ग्रन्थ था।

उक्त ग्रन्थोंमें दिये हुए अवस्ताके विवरणके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि, अवस्ता सिर्फ धर्मग्रन्थ ही नहीं था बल्कि उसमें पृथिवीके सभी विषयोंका कुछ कुछ समावेश था। सम्पूर्ण अवस्ता २१ नस्कोंमें विभक्त था और सात नस्कोंका एक एक विभाग था। संक्षेपतः २१ नस्कोंमें निम्नलिखित विषय थे—

१ धर्म, २ धर्मानुष्ठान, ३ तीन प्रधान प्रार्थनाओं की व्याख्या, ४ सृष्टितत्त्व, ५ फलित और गणित ज्योतिष ६ अनुष्ठान और उसका फल, ७ पुरोहितोंके गुण और कर्तव्य, ८ मानव-जीवनमें नीतिशास्त्रकी उपयोगिता, ९ धर्मानुष्ठान सम्पादनकी नियमावली, १० राजा गुस्ताश्पकी दीक्षा शिक्षा और आर्यास्पके सहित उनका युद्ध. ११ संसार और धर्मके नाना कर्तव्य, १२ जरथुस्त्रके आविर्भावके समय तक मानव-जातिका इतिहास, १३ जरथुस्त्रके आविर्भावके सम्बन्धमें भविष्यद्वाणी, १४ अहिंमन और देवदूतोंकी पूजा-पद्धति १५ धर्माधिकरण और व्यवहारशास्त्र १६ दीवानी, फौजदारी और युद्धसम्बन्धी कानून, १७ साधारण धर्मके नियम, १८ दाय भाग, १९ प्रायश्चित्ततत्त्व, २० पुण्य और धर्म, २१ देवदूतोंकी स्तुति।

इतिहास—प्रवाद है कि, पारसियोंके प्रथम युगमें अखमनीय वंशके सम्राटोंने बड़े यत्नके साथ अवस्ताकी रक्षा की थी। तवारीका कहना है कि सम्राट् विस्तास्पने जरदुस्तके धर्मप्रचारके कार्यमें बहुत कुछ सहायता पहुंचाई थी और अवस्ताग्रन्थको सुवर्णाक्षरमें लिखवा कर पोथियोंके किलेमें रक्खा था। इस प्रवादकी पुष्टि दीनकर्दग्रन्थके इस विवरणसे होती है कि शापीगानके रत्नागारमें एक बहुमूल्य अवस्ता रक्खा है। "शात्रीहायी ऐरान" नामक पह्लवी ग्रन्थमें लिखा है कि अवस्ताकी दूसरी एक प्रति समरकन्दके अग्नि-मन्दिरके धनागारमें सुवर्णाक्षरोंमें खोदी गयी थी; उसमें १२०० अध्याय हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ ईसाकी ३३० पूर्व शताब्दीमें "अभिशप्त इस्कन्दार" (अलेकसन्दर) के द्वारा अखमनीयोंके पारसी-पोलिसका प्रासादमें आग लगाई गई थी; उस समय तथा उनके समरकन्द विजयके समय नष्ट हो गये थे।

सिकन्दरशाहके विजय करने पर जरथुस्त्र-धर्मका प्रभाव बहुत कुछ घट गया था। परवर्ती ५०० वर्ष तक जब सेलुकिडवंशीय और पार्थियान् सम्राट् राज्य करते थे, उस समय अवस्ता-ग्रन्थके अन्यान्य खण्ड भी विलुप्त होने लगे। कई स्थानोंमें इसका कुछ कुछ अंश रक्खा गया और कुछ अंश धर्मके पुरोहितोंने भी कण्ठस्थ कर लिया। ईसाकी ३री शताब्दीके प्रारम्भमें अवस्ताके जो जो अंश रक्खे गये थे, उन्हें ही आर्सकिडवंशके शेष सम्राट्ने संगृहीत किया। खुसरू नोशिरवानकी (५३१-५७९ ई०) एक घोषणासे ज्ञात होता है कि सम्राट् बालखासने, जिनको साधारणतः १म भोलोगेसेस समझा जाता है, पवित्र ग्रन्थ जन्द-अवस्ताके अनुसन्धान करनेमें जीजानसे कोशिश की और जितना अंश लोगोंको कण्ठस्थ था, उसको लिपिबद्ध कराया। शासानियवंशके प्रतिष्ठाता सम्राट् अर्दशीर पपकान (२२६-२४० ई०) और उनके पुत्र बालखासने इस कार्यको बड़ी खुशीके साथ चलाया और महापुरोहित तानसारको अवस्ताके विच्छिन्न अंशोंके संग्रह करनेके लिए आदेश दिया। २य शाहपुरके राजत्वकाल (३०९-३८० ई०) में उनके प्रधान मन्त्री अदरपाद-मारसपेन्दानने जन्दअवस्ताका संशोधन किया और यह घोषित हुआ कि उन्हींके द्वारा संगृहीत और संशोधित ग्रन्थ ही धर्मपुस्तक है।

सिकन्दरशाहके आक्रमण वा उनके परवर्ती युगकी लापरवाहीसे जन्दअवस्ताकी जो दुर्दशा हुई थी, उससे भी कहीं अधिक क्षति हुई थी मुसलमानोंके आक्रमण और कुरानके धर्म-प्रचारसे। जरथुस्त्र-धर्मावलम्बियोंको मुसलमानोंने देश-निकाला दे दिया था और उनके धर्म-ग्रन्थोंको जला डाला था। फारस और भारतवर्षके कुछ पारसियोंको इसका जितना अंश प्राप्त हुआ, उतना उन्होंने यत्नपूर्वक रख लिया। वर्तमानमें उतना ही अंश देखनेमें आता है।

वर्तमान ग्रन्थका विषय—वर्तमान समयमें जन्दअवस्ता चार भागोंमें विभक्त है—(१) यस्न—इसमें गाथा, विस्परद और यश्त नामसे तीन भाग हैं, (२) न्यायिङ्, गाह् आदि

कुछ ग्रन्थ, (३) वन्दीदाद, (४) खण्डित अंशसमूह।

(क) यश्न—पारसियोंके उपासना-ग्रन्थोंमें यही अंश सर्वप्रधान है। यश्न नामक धर्मानुष्ठानमें यह ग्रन्थ पूरा पढ़ा जाता है। यश्नके अनुष्ठानमें नाना प्रकारके धर्मकार्य किये जाते हैं, जिनमें हओम-वृक्षका रस, दूध और अन्यान्य कुछ द्रव्य मिला कर उसकी आहुति बनाना ही प्रधान है। यश्नमें १७ अध्याय हैं, इसीलिए पारसी लोग अपनी मेखलामें १७ अंश रखते हैं। कुछ अध्याय ऐसे भी हैं जिनमें पूर्व अध्यायोंकी अनुवृत्ति मात्र है। यश्नको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भागका आरम्भ अहुरमज़्द और अन्यान्य देवताओंका स्तव करनेके बाद हुआ है। स्तवके बाद उनको यथोचित अनुष्ठानके साथ अर्घ्य दिया गया है। एक छोटीसी प्रार्थनाके बाद "हओमयश्त"का प्रारम्भ हुआ है। उसमें हिन्दुओंके सोमवृक्षकी तरह हओम पर व्यक्तित्वका आरोप किया गया है और उस वृक्षको देवता समझ कर पूजा की गई है। चौदहवें अध्यायसे "स्पेन्ता यस्ती"का प्रारम्भ हुआ है। इसके पहले दिन और प्रहरोंकी अधिष्ठात्री देवियों तथा अग्निकी विभिन्न मूर्तियोंका आवाहन किया गया है। उन्नीसवें, बीसवें और इक्कीसवें अध्यायमें "अहुनवैर्य" "आषेम वोहु" और "येङ्हे हातम" नामक तीन पवित्रतम प्रार्थनाओंकी व्याख्या की गई है। इसके बाद पांच गाथाएं हैं। फिर 'स्रोषयश्त' नामके एक स्तोत्रमें स्राओष नामक देवताकी विस्तृत स्तुति की गई है। अनन्तर कुछ देवताओंका पुनः आवाहन कर यश्नकी समाप्ति की गई है।

(ख) गाथा—सम्पूर्ण ज़न्द-अवस्तामें छन्दोबद्ध गाथाएं ही सबसे प्राचीन और मूल्यवान् हैं। इनकी भाषा, छन्द और लेखनशैली ग्रन्थके अन्यान्य अंशोंसे सम्पूर्ण भिन्न है। इनकी संख्या ५ है। इनमें धर्मप्रचारक जरथुस्त्रकी शिक्षा, प्रेरणा और वक्तृता आदि वर्णित हैं। इसके पढ़नेसे उनके विषयमें एक सुस्पष्ट धारणा होती है जो अन्य किसी अंशके पढ़नेसे नहीं होती। इन गाथाओंमें पुनरुक्ति दोष बिल्कुल भी नहीं है और कविता भी उत्तम है। इनमें धर्मके बाह्य आचार-अनुष्ठानोंके विषयमें विशेष कुछ नहीं लिखा है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि, उस प्राचीन समय तक इस धर्ममें अनुष्ठानादिका प्रवेश न हुआ होगा। अथवा सम्भवतः इनमें प्रधानतः धर्मप्रचारके लिये अहुरमज़्द और अहिमनके साथ युद्धके विषयमें उपदेशादि लिखा रहनेके कारण अनुष्ठानादिका उल्लेख करना प्रयोजनीय न समझा गया हो। गाथाओं या कविताओंकी विच्छिन्न अवस्था देख कर बहुतसे लोग अनुमान करते हैं कि, बौद्धधर्मकी कविताओंमें निबद्ध बुद्धके उपदेशोंकी भाँति ये भी लोगोंके मुंहसे सुन कर लिखी गई हैं।

गाथाओंमें सप्ताध्यायी यश्न निहित है। यह गाथाओंके साथ सम-भाषामें लिखे जाने पर भी गद्यमें वर्णित हुआ है। इसमें बहुतसी प्रार्थनाएं और अहुरमज़्द, अमेषस्पेन्त, धर्मात्मा, अग्नि, जल और पृथिवी पर बहुत स्तुतिवाद विद्यमान हैं।

(ग) विस्पुरद (अर्थात् समस्त प्रभु)—ये परस्पर संश्लिष्ट ग्रन्थ नहीं हैं। इसे यश्नका परिशिष्ट कहा जा सकता है, क्योंकि इसकी भाषा, लेखनशैली और विषयका यश्नके साथ सामञ्जस्य है। धर्मानुष्ठानोंको जगह जगह यश्नके अनुष्ठान ही उद्धृत कर दिये गये हैं। समस्त देवताओंका आह्वान कर अर्घ्य दिये जानेके कारण इसका नाम विस्पुरद पड़ा है।

(घ) यश्त—२१ स्तोत्रोंमें यह अंश समाप्त हुआ है। अधिकांश स्तोत्र कवितामें लिखे गये हैं। इसमें पारसीधर्मके देवदूत और धर्मवीरोंके कार्यादिकी प्रशंसा की गई है। जिस प्रकार ईरान-वासियोंने मासके दिनोंके नाम क्रमानुसार सजाये हैं, उसी प्रकार इसमें इन देवताओंकी क्रमसे पूजा की गई है। यश्तोंकी भूमिका और उपसंहारके पढ़नेसे मालूम होता है कि, वे सब एक ही से होते हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे भिन्न भिन्न समयमें रचे गये थे। उनके विषय और आकारमें भी परस्पर पार्थक्य है। पहलेके चार यश्त परवर्तीकालके व्याकरण-दुष्ट छन्दमें रचे गये हैं और शेष दो खास यश्तकी प्रणालीमें लिखे गये हैं। किन्तु मध्यवर्ती यश्त कविताओंमें लिखे गये हैं। उनमें कवित्वशक्तिका भी यथेष्ट परिचय मिलता है एक स्तवमें सत्य और आलोकके देवता मिथ्रदेवका इस तरहसे वर्णन किया गया है कि,

मानो वे विराट् समारोहसे अश्वारोहणपूर्वक सेनाके साथ प्रतिज्ञाभङ्ग करनेवालोंको दण्ड देने जा रहे हैं। ये कविताएं पौराणिक रीतिसे लिखी गई हैं। कुछ उपदेश शायद जरथुस्त्रके पूर्ववर्ती ऋषियोंसे लिया गया है। फार्दुशिके "शाहनामा" के साथ मिला कर पढ़नेसे उसका वास्तविक अर्थ ज्ञात होता है, क्योंकि "शाहनामा" में उक्त विषयका बहुत कुछ वर्णन है।

(ङ) गौणांश—इनमें न्यायोशका नाम उल्लेखयोग्य है। इनमें सूर्य, चन्द्र, जल, अग्नि, खुरशेद, मित्र, मा, अर्द्विसूर, और अतसको स्तुतियां हैं। ये खोरदाद अवस्ताके अन्तर्भुक्त हैं।

(च) वन्दिदाद—अर्थात् असुरोंके विरुद्ध धर्मनीति। प्रथमतः ज़न्दअवस्ताके उन्नीसवें नस्कमें इनको स्थान मिला था। इनमें बहुतसी रचना परवर्ती कालकी हैं।

(छ) उपरोक्त ग्रन्थोंके सिवा कुछ विच्छिन्नांश भी हैं; पह्लवी भाषाके बहुतसे ग्रन्थोंमें इसकी कविताएं उद्धृत की गई हैं।

ज़न्दअवस्ताका जितना अंश प्राप्त हुआ है, उनमें धर्मानुष्ठानका ही उपदेश अधिक है। धर्मानुष्ठान पर लोगोंकी अधिक श्रद्धा होनेके कारण यह अंश बड़ी हिफाजतसे रक्खा गया था।

अवस्ताका समय—ऊपर जो इतिहास लिखा गया है, उसीसे मालूम हो जाता है कि अवस्ताके एक एक अंश भिन्न भिन्न समयमें रचे गये थे। ईसाके पूर्व २८०० से ३७५ वर्षके भीतर अर्थात् तीन हजार वर्ष तक अवस्ताके अंश आदि लिखे गये हैं, यही वर्त्तमान विद्वानोंका सिद्धान्त है।

भाषा—अवस्ता जिस भाषामें लिखा गया है, उसे "अवस्तीय" भाषा कहते हैं। इसके साथ संस्कृत भाषाका निकट सम्बन्ध है। संस्कृतके साथ इसके सौसादृश्य आविष्कृत होनेके बादसे तुलनात्मक भाषातत्त्वकी आलोचना करनेका मार्ग सुगम हो गया है। अवस्ताकी भाषामें दो प्रकारका भेद देखनेमें आता है। प्राचीन गाथाओंकी भाषा दूसरे ही ढंगकी है और परवर्ती भाषा दूसरे ढंगकी। पूर्वोक्त अंश पद्यमें और शेषोक्त गद्यमें लिखे गये हैं। अवस्ताकी लिखावट दहिनी ओरसे पढ़ी जाती है। यह पहले पहल किन अक्षरोंमें लिखा गया था, इसका कुछ भी पता नहीं चलता।

वेद और अवस्ता—पृथिवी पर वेद और अवस्ता इन दो महाग्रन्थोंने आर्य जातिकी दो शाखाओंके धर्म-निरूपण कर महागौरवमय स्थान पाया है। इन दोनों ग्रंथोंका एक साथ मनन करनेसे मालूम हो जाता है कि दोनोंमें बहुत कुछ सादृश्य है। इस सादृश्यसे यह भी अनुमान होता है कि किसी समय—जब पारसी लोग और हमारे पुरखा एक साथ रहते थे—इन दोनों ग्रंथोंका प्रारम्भ एक साथ ही हुआ होगा। अब हम उक्त दोनों ग्रंथोंके उस सादृश्यको दिखलाते हैं जिसने सबसे पहले इस ओर दृष्टि आकर्षित की है।

१। देवताओंके नाम—वेद और अवस्ता दोनों ग्रंथोंमें "देव" और "असुर" शब्द व्यवहृत हुआ है। यह तो सभी जानते हैं कि वेदमें देव शब्द द्वारा अमरलोकवासियोंका निर्देश किया गया है। किन्तु आश्चर्यका विषय है कि अवस्तामें प्रारम्भसे अन्त पर्यन्त दुष्ट प्राणियोंको देव कहा गया है और आधुनिक फारसी साहित्यमें भी देवका वही अर्थ समझा जाता है। यूरोपीय लोग जिसको Devil वा शैतान कहते हैं और हम जिसको असुर कहते हैं, अवस्तामें उसीको देव कहा गया है। अवस्ताके देव सम्पूर्ण अनिष्टोंके मूल कारण हैं, वे ही पृथिवी पर अपवित्रता और मृत्यु संघटन करा रहे हैं। वे सर्वदा इसी चिन्तामें मग्न रहते हैं शस्यक्षेत्र, फलवान् वृक्ष, धर्मात्माके निवासस्थान आदिका नाश किस तरह हो। हमारे यहां जिस प्रकार प्रेतोंका निवास दुर्गन्धपूरित स्थानोंमें कहा गया है, उसी प्रकार ज़न्दअवस्तामें देवोंका वासस्थान कदर्यस्थानमें बतलाया गया है।

हमारे वैदिक धर्मका नाम देव-धर्म है और पारसियोंके ज़न्दअवस्तीय धर्मका नाम अहुर-धर्म। अहुर शब्द उनके प्रधान देवता अहुर-मज़्दा नामका प्रथमांश है। इस शब्दसे वे अपने भगवान् और उनके अंशादिका निर्देश करते हैं। हमारे पौराणिक साहित्यमें असुर शब्दका प्रयोग बुरेके लिए किया गया है, किन्तु ऋग्वेद-

संहितामें असुर शब्द प्रशंसा-वाचककी भांति व्यवहृत हुआ है। इसमें इन्द्र (ऋक् १।५४।२) वरुण, (ऋक् १।२४।१४), अग्नि (ऋक् १।५४।३ और ७।२।३), सावित्री (ऋक् १।३५।७), रुद्र (ऋक् ५।४२।११) आदि हिन्दुओंके परम पूजनीय देवताओंका असुर नामसे उल्लेख कर उनका बहुत कुछ सम्मान किया गया है। ऋग्वेदके प्रथमांशमें सिर्फ दो जगह असुर शब्द निन्दावाची भावसे व्यवहृत हुआ है। (ऋक् २।३२।४ और ७।९९।५) ऐसी दशामें यह प्रतीत होता है कि अति प्राचीन कालमें दोनों ही जातियाँ असुर शब्दका प्रयोग सदर्थमें करती थीं।

वेद और ज़न्दअवस्ता दोनों ही ग्रन्थोंमें देवोंके साथ असुरोंके युद्धका विवरण पाया जाता है। हां, इतना अवश्य है कि ऋग्वेदके सिवा अन्य तीनों वेदोंमें देवोंको ही पूज्य और असुरोंको मानवजातिका शत्रु माना गया है। यजुर्वेदमें कुछ आसुरी छन्द हैं, जैसे—गायत्री आसुरी, उष्णिग् आसुरी और पंक्ति आसुरी। इस प्रकारके आसुरी छन्द वेदोंमें अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं परन्तु ज़न्दअवस्ताकी गाथाएं आसुरी छन्दमें ही रची गई हैं। अतएव अनुमान किया जा सकता है कि अतिप्राचीन-कालमें आर्यजातिमें असुर शब्द पूज्यार्थमें व्यवहृत होता था।

इन्द्र—वैदिक देवोंमें ये शीर्षस्थानीय हैं। किन्तु ज़न्दअवस्ताके वन्दिदाद (१९।४३)-में उन्होंने शैतान अहिंमनका परवर्ती स्थान अधिकार किया था। इन्द्रको दुष्टोंमें दुष्टतम कहा गया है।

शिवके लिए भी ज़न्दअवस्तामें ऐसी ही व्याख्या की गई है। किन्तु कुछ वैदिक देवताओंके नाम अवस्ताके देवदूतोंमें गृहीत हुए हैं। इनमें मित्रका नाम सविशेष उल्लेखयोग्य है। वेदमें मित्र और वरुणका एक साथ आह्वान किया गया है, किन्तु ज़न्दअवस्तामें मित्र एकाकी ही आहूत हुए हैं। इसी प्रकार अन्य देवताओंका नाम अर्यमन् है जो दोनों ग्रन्थोंमें दो अर्थोंमें व्यवहृत हुआ है। जैसे—(१) बन्धु वा सङ्ग, (२) विवाहके अधिष्ठाता देवता। ब्राह्मण तथा पारसी लोग विवाहमें इनका आह्वान करते हैं। भगवद्गीतामें 'अर्यमा' को पितरोंका प्रधान बतलाया गया है।

वैदिक देव भागका ज़न्दअवस्तामें बघ नामसे उल्लेख किया गया है, ऐसा अनुमान किया जाता है। वेदमें अरमती नामकी एक देवीका उल्लेख है (ऋक् ७।१।६, ३४।२१ और १०।९२।४५) ज़न्दअवस्तामें वर्णित अरमैती सम्भवतः वे ही देवी होंगी। वेदमें लिखा है कि वायुने सबसे पहले सोम पिया था। ज़न्दअवस्तामें वयु नामक देवदूतको सर्वत्र भ्रमण करनेवाला बतलाया है। वैदिक "वृत्रहा" शब्दसे इन्द्रका निर्देश होता है। उक्त शब्दका रूप आवस्तिक "वेरेथ्रघ्न" शब्दमें पाया जाता है जो पारसी धर्मके भगवान्‌के अनुचर हैं। वेदमें ३३ देवताओंका उल्लेख है, इसी प्रकार ज़न्दअवस्तामें भी भगवान्‌के ३३ अनुचरों पर मज़्द-प्रवर्तित सत्यधर्मकी रक्षाका भार दिया गया है।

वेद और ज़न्दअवस्तामें सिर्फ देवोंके नामोंमें ही सदृशता हो, ऐसा नहीं। कुछ उपाख्यानोंमें भी सादृश्य पाया जाता है। वैदिक 'यम' और ज़न्दअवस्ताके 'यिम' की आख्यायिकामें इतनी सदृशता पाई जाती है कि उसे देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। ज़न्दअवस्ताके यिमने मानव और पशु आदिका संग्रह कर उनको पृथिवी पर छोड़ दिया था। परन्तु शीघ्र ही उनके राज्यमें भीषण शीत-कष्ट उपस्थित हुआ। उस समय उन्होंने कुछ साधु व्यक्तियोंको एक निर्जन मनोरम स्थानमें ले जा कर उनकी रक्षा की। वहां वे बड़े आनन्दसे रहने लगे। ऋग्वेदके सूक्त पढ़नेसे ज्ञात होता है कि यम मानव-जातिके पिता थे; उन्होंने सबसे पहले मृत्यु-कष्ट पाया था और मर कर स्वर्गमें गये थे। वहां उन्होंने अधिवासियोंको ऐसा एक स्थान बनाया कि फिर वहांसे कोई हटा न सके। वहां पितृगण जाया करते हैं और पुत्रगण भी वहीं जायेंगे (ऋक् १०।१४।१२)। उस सुखमय स्थानके वैदिक राजाका पौराणिक हिन्दूधर्ममें कराल-भीषण मृत्युके अधिपति यमदेवकी भांति वर्णन किया गया है।

ज़न्दअवस्तामें यह भी देखनेमें आता है कि साम-वंशीय थ्रित अहिंमनने मरलोकमें जिस व्याधिकी सृष्टि की थी, उसकी चिकित्सा कर रहे हैं। वैदिक त्रित

भी मनुष्योंकी व्याधि दूर कर रहे हैं। (अथर्व० ६।१२१।१।)

ईरानके धर्ममें कव-उशने एक प्रधान स्थान अधिकार किया है। उनका विश्वास है कि ये पहले ईरानके राजा थे। हिन्दूधर्मके उशनस् वा शुक्रके साथ इनके नामका सादृश्य है। ऋग्वेदमें इन्द्रका काव्य उशनाके नामसे उल्लेख किया गया है। (ऋक् ४।२६।१) जुन्दअवस्तामें लिखा है कि कव-उश अत्यन्त उपकारी होने पर भी बड़े अभिमानी थे। उन्होंने एकबार स्वर्गको उड़ना चाहा था और इसी लिए उन्हें कठोर दण्ड मिला था। वैदिक काव्य-उशना मानवजातिके महापुरोहित थे। ये स्वर्गकी गायोंको मैदानमें ले गये थे और इन्द्रकी गदा बनाई थी

वेद और जुन्दअवस्ता दोनों ही ग्रन्थोंमें, जिनके साथ युद्ध करना पड़ता था उनको दानव कहा गया है।

जुन्दअवस्ताके तिष्ट्रयका उपाख्यान वैदिक इन्द्र और बृहस्पति-सम्बन्धी कुछ उपाख्यानोंसे सादृश्य रखता है।

वेद और जन्दअवस्ताकी यज्ञविधि—वर्तमान समयमें पारसियोंकी यज्ञविधि अत्यन्त संक्षिप्त होने पर भी उसमें वैदिक यज्ञके साथ सादृश्य पाया जाता है। पहले ही दोनों ग्रन्थोंमें, तुलना करनेवाले पाठकोंकी दृष्टि पुरोहितके नामकी समानता पर पड़ती है। जुन्दअवस्तामें पुरोहित शब्दके अभिप्रायमें 'आथ्रव' शब्दका प्रयोग किया गया है जो वैदिक नाम अथर्वन् शब्दका ही रूपान्तर है। वैदिक शब्द इष्टि (कुछ देवताओंका पुरोडस सहित आवाहन) और आहुति जुन्द-अवस्तामें इष्टि और आ-जुइतिके रूपमें व्यवहृत है। परन्तु जुन्दअवस्तामें उक्त दोनों शब्दोंका अर्थ 'दान' वा 'स्तुति' बतलाया गया है। यज्ञके पुरोहितोंमें वैदिक होता और अध्वर्युके स्थान पर इसमें जाओता और रथ्वि शब्दका उल्लेख मिलता है।

वैदिक ज्योतिष्टोम यज्ञमें जिन कार्योंका अनुष्ठान होता, उनमेंसे अधिकांश पारसियोंके यजिश्न वा इजिश्न यज्ञमें सम्पन्न होते हैं। अग्निहोत्रीमें आवश्यकीय अग्निष्टोम यज्ञके साथ जुन्दअवस्ताके इजिश्न यज्ञका विशेष सादृश्य है। किन्तु पारसियोंमें प्रचलित यजिश्न यज्ञके सम्पादन करनेमें अग्निष्टोमकी अपेक्षा बहुत थोड़ा समय लगता है। अग्निष्टोम यज्ञमें चार छागोंकी बलि दी जाती है, मांसका कुछ अंश अग्निमें डाला जाता है, कुछ अंश यजमान और पुरोहित भक्षण करते हैं। किन्तु इजिश्न यज्ञमें सिर्फ एक सांड़की देहसे कुछ रोम उखाड़ कर अग्निको दिखाते हैं। पूर्वकालमें पारसी लोग भी इस उपलक्षमें मांसका व्यवहार करते थे। वैदिक पुरोडास जुन्दअवस्तामें द्रुण हुआ है। इस प्रकार वेदके उपसद् समयकी दुग्धव्यवहारविधि जुन्दअवस्तामें गाउश-जीव्य व्यवहारविधिमें परिणत हो गई है। हिन्दूगण जिस प्रकार द्रव्यादिको पवित्र करनेके लिए पञ्चगव्य व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार पारसी लोग भी गोमूत्र काममें लाते हैं, इसके सिवा वे हिन्दुओंकी भांति यज्ञोपवीत ग्रहण करना भी कर्तव्य कार्य समझते हैं। उपवीतके बिना दोनों ही समाजमें कोई भी व्यक्ति यथार्थ स्थान को नहीं पाता। हिन्दुओंमें उपवीत ग्रहणका समय आठ वर्षसे सोलह वर्ष निर्णीत हुआ है और पारसियोंमें उसका काल सातवें वर्षमें ही कहा गया है। दोनों जातिओंकी लौकिक क्रियाओंके विषयमें भी थोड़ा बहुत सादृश्य देख पड़ता है। पारसी लोग मृत्युके बाद तीसरे दिन मृत आत्माकी सद्गतिके लिए प्रार्थना करते हैं और ब्राह्मणोंकी भांति उनके यहां भी दसवें दिन अनुष्ठान आदि सम्पन्न होता है।

हिन्दुओंकी तरह पारसियोंने भी पृथिवीको सात भागोंमें विभक्त किया है और सबके बीचमें एक पर्वत (मेरु)-का अस्तित्व माना है।

वेद और जन्दअवस्ताका परस्पर विरोध—वेदमें देव पूज्य माने गये हैं और अवस्तामें असुर। इससे स्वतः इस बातका पता लग जाता है कि उपरोक्त सादृश्य रहने पर भी दोनोंमें यथेष्ट विरोध था। विद्वानोंका अनुमान है कि किसी समय हिन्दू और पारसी दोनों एक ही स्थानमें रहते थे और एक धर्मके आश्रयमें जीवन बिताते थे। हिन्दू पहले खेती-बारी न करते थे, पशुपालन द्वारा जीविका निर्वाह करते थे। जब एक जगह तृणादि घट जाते थे तो वे दूसरी जगह चले जाते थे। पण्डितप्रवर मि० होगका अनुमान है कि पारसियोंके पुरखा बहुत जल्दी इस तरहकी जीवनयात्रासे विरत हो गये। वे

एक अलग घर-द्वार बना कर रहने लगे। परन्तु हिन्दू लोग उनके अधिकृतस्थानमें आकर उपद्रव मचाने लगे। इस तरह दोनों समाजोंमें विरोध उत्पन्न हुआ। पारसियोंने हिन्दुओंके व्यवहारसे रुष्ट हो कर उनसे समस्त सम्बन्ध तोड़ दिये। पहले पहल उन लोगोंने देव-पूजा छोड़ दी पहले कहा जा चुका है कि अति प्राचीनकालमें असुर शब्द सदर्थमें व्यवहृत होता था। उन लोगोंने देव-पूजा छोड़ कर असुर-पूजा करनी शुरू कर दी।

मि० हौगका यह मत कहां तक समीचीन है, इस बातका निर्णय विद्वान् ही कर सकते हैं। कुछ भी हो यह बात तो निश्चित है कि हिन्दू-धर्म और पारसी-धर्म दोनों एक ही प्रस्रवणसे उद्भूत हुए हैं।

जन्दअवस्तामें एकेश्वरवाद—अवस्ताकी प्राचीनतम गाथाओंसे मालूम होता है कि पारसी लोग एकेश्वरवादी हैं। जरथुस्त्रसे पहले जिन्होंने धर्मप्रचार किया था, वे बहुदेववादमें विश्वास रखते थे। जरथुस्त्र इस मतसे सहमत न थे। उन्होंने समस्त भ्रान्तमतोंका परिहार करके एकेश्वरवादका प्रचार किया। ईश्वरको उन्होंने असुर-मजदाओ नामसे प्रसिद्ध किया था। मजदाओ हो रहा है, असुर उनका विशेषण है।

यहूदी लोग जिस तरह जिहोवाको ही एकमात्र ईश्वर मानते हैं, उसी प्रकार पारसी भी असुर-मजदाओको एकमात्र भगवान् मानते हैं। वे ही स्वर्ग और मर्त्यके समस्त जीवोंके स्रष्टा हैं, जगत्के एकमात्र अधीश्वर हैं, उन्हींके ऊपर समस्त जीवोंका भार है। वे ही एकमात्र ज्योति हैं और समस्त आलोकोंके आधार हैं। बुद्धिमें वे ही बुद्धिशक्ति हैं।

जरथुस्त्रने देवतत्त्व वा Theology की दृष्टिसे इस प्रकार एकेश्वरवादका प्रचार करने पर भी, दार्शनिक-दृष्टिसे उन्होंने द्वैतवाद माना है। युग युगमें मनुष्योंके मनमें यह समस्या उत्पन्न हुई है कि भगवान् यदि सर्व-मङ्गलके कारण और मनुष्योंके करुणामय पिता हैं, तो पृथिवीमें इतना दुःख, कष्ट, यन्त्रणा कौन लाया? अति प्राचीनकालमें महामति जरथुस्त्रने इसके उत्तरमें कहा था कि, मङ्गलमय हूके एक निदानकर्त्ता हैं और एक वे भी हैं जो पृथिवी पर अमङ्गल लाते हैं। इन दोनोंमें अनादि-कालसे विवाद चल रहा है। परन्तु ये दोनों ही तत्त्व अहुरमज्दके अंशस्वरूप हैं। अनिष्टकारी देव उनका विद्वेषी नहीं है। इष्ट और अनिष्ट इन दोनोंके अधिष्ठाता उनके भीतर विद्यमान हैं। जन्दअवस्ताकी प्राचीन गाथाओंमें उक्त मत स्पष्टतया परिलक्षित होने पर भी, परवर्त्ती ग्रंथोंमें अनिष्टका अधिपति पृथक् माना गया है।

सत् और असत् देवदूत एवं उनकी सभाका उल्लेख जन्दअवस्तामें मिलता है।

जन्न—एक दिगम्बर जैनकवि। ये कर्णाटक देशके रहने-वाले थे।

जन्म (जन्मन्) (सं० क्ली०) जायते इति जन्-औणादिक, मनिन्। १ उत्पत्ति, उद्भव, पैदायश। २ [illegible] सम्बन्ध। ३ जीवन, जिन्दगी। ४ फलितज्योतिषके मतसे जन्मकुण्डलीका एक लग्न, जिसमें कुण्डलीवाला जन्म लेता हो। ५ अपूर्व देहग्रहण, गर्भमेंसे निकल कर नई देह पानेका काम, पैदायश। (न्याय) इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—जनुः, जन, जनि, उद्भव, जन्म, जनी, प्रभव, भाव, भव, संभव, जन, प्रजनन और जाति।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके पढ़नेसे मालूम होता है कि, प्राणी मात्रको स्व स्व उपार्जित शुभ या अशुभ कर्मोंके अनुसार उत्कृष्ट या अपकृष्टरूपसे जन्म लेना पड़ता है।

जैनमतानुसार—संसारका प्रत्येक जीव या प्राणी अपने उपार्जन किये हुए गति नाम कर्मके अनुसार एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर धारण करनेके लिए जन्म लिया करता है। गर्भ अवस्थामें भी उनमें चेतनत्व रहता है वे कष्टोंका पूरी तौरसे अनुभव करते हैं।

वैद्यकमतानुसार—ऋतु होनेके उपरान्त जिस समय योनिक्षेत्र पद्मकी तरह विकसित रहता है, उस समय ही शोणितविशिष्ट गर्भाशय वीर्य धारण करनेके उपयुक्त होता है। दूसरे समय योनिक्षेत्र सदा ढका रहता है। परन्तु, ऋतुके समय भी वात, पित्त और श्लेष्मासे आवृत होनेसे यदि वह विकसित न हो, तो गर्भ नहीं रहता। ऋतु-काल उपस्थित होने पर यदि अविकृत वीर्य निक्षिप्त हो, तभी वह वायुगतिसे चालित हो कर स्त्रीके रजके साथ मिल सकता है। उस समय ही निक्षिप्त वीर्यमें आरम्भ-

संवृत जीव आ कर सम्पृक्त होता है। एकदिन बाद उसमें कलल जन्मता है। पाँच रात्रिमें वह कलल बुद्बुदाका आकार धारण कर लेता है। वह वीर्य शोणितमय बुद्बुदमें सात रातमें मांसपेशी और दो सप्ताह बाद रक्तमांससे व्याप्त हो कर दृढ़ हो जाता है। पचीस रातमें पेशीबीज अङ्कुरित और एक मास पीछे पाँच भागोंमें विभक्त हो जाता है। इसके बाद एक भागसे कण्ठ, ग्रीवा और मस्तक ; दूसरे भागसे पीठ, मेरुदण्ड और उदर, तीसरे भागसे दोनों पैर, चौथे भागसे दोनों हाथ तथा पाँचवें भागसे पार्श्व और कटिदेश बनता है। पीछे दो मास होने पर क्रमशः समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग बनते रहते हैं। तीन महीनेमें सर्वाङ्गके सन्धिस्थान बनते हैं। चार मासमें अङ्गुलि और अङ्गकी स्थिरता होती है। पाँच मासमें रक्त, मुख, नासिका और दोनों कान ; छठे महीनेमें वर्ण, बल, रोमावली, दन्तपंक्ति, गुह्य और नख ; छठा मास बीत जाने पर कानोंके छेद, पायु, उपस्थ, मेढ्र, नाभि और सन्धियाँ उत्पन्न होती हैं। इस समय मन अभिभूत होता है। जीव भी चैतन्ययुक्त हो जाता है। स्नायु और सिराएं भी इसी समय उत्पन्न होती हैं। सातवें या आठवें मासके भीतर मांस उत्पन्न हो कर वह चमड़े से ढक जाता है। इस समय जीवमें स्मरणशक्ति आ जाती है, अङ्ग प्रत्यङ्ग परिपूर्ण और सुव्यक्त हो जाते हैं। नौवें या दसवें महीनेमें प्राणी ज्वराक्रान्त हो कर प्रबल प्रसववायु द्वारा चालित होता है और योनिच्छिद्र द्वारा बाणवेगसे बाहर निकल आता है।

चञ्चलचित्तसे गर्भसञ्चार करनेसे प्राणीका आकार विकृत हो जाता है। माताका रज अधिक हो तो कन्या और पिताका वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है, तथा दोनोंका रज-वीर्य समान होनेसे नपुंसक सन्तान होती है।

किसी किसी विद्वान्का कहना है कि, विषम तिथिमें गर्भोत्पादन होनेसे कन्या, और सम तिथिमें गर्भोत्पादन होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। गर्भ बाईं तरफ रहनेसे कन्या और दाहिनी तरफ होनेसे पुत्र होता है। गर्भके समय रजका अंश अधिक होनेसे गर्भस्थ शिशु माताकी आकृति और शुक्रका अंश अधिक होनेसे पिताकी आकृति धारण करता है। मिश्रित रजोवीर्यमय गर्भ वायु द्वारा यदि दो भागोंमें विभक्त न हो तो एक सन्तान उत्पन्न होती है। दो भागोंमें विभक्त होने पर दो बच्चे पैदा होते हैं। अनेक भागोंमें विभक्त होनेसे वामन, कुब्ज आदि नाना प्रकार विकृत अथवा सर्पमण्डूक इत्यादि जन्मते हैं।

सारावलिमें लिखा है—योनियन्त्रका पीड़न-दुःख गर्भयन्त्रणासे भी करोड़ गुना है। पेटसे निकलते समय बच्चेको मूर्छा आ जाती है। बच्चेका मुंह मल, मूत्र, शुक्र और रजसे आच्छादित रहता है। अस्थिबन्धन प्राजापत्य वातसे जकड़े रहते हैं। प्रबल सूतिका वायु बच्चेको उल्टा कर देती है। बच्चेको जन्मकी यन्त्रणा बहुत ज्यादा होती है।। बच्चेके होनेके साथ ही पूर्व दुःख भूल कर वैष्णवीमायामें मोहित हो जाता है। कभी कभी भूख और प्याससे रोने भी लगता है। इस समय—"कहां था, कहां आया, क्या किया, क्या करता हूं, क्या धर्म है, क्या अधर्म है" इत्यादि कुछ भी नहीं समझता।

वर्त्तमानके वैज्ञानिकोंने निश्चय किया है कि, जीवजगत्के अति निम्न श्रेणीके जीव सबल जीवों द्वारा भक्षित वा निहत न होनेसे, वे कभी भी मरते नहीं थे अर्थात् उनके भाग्यमें सिर्फ अपमृत्यु ही बदी रहती है, उसकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होने पाती। इसका कारण यह है कि, मोनर (Moner), एमिबस् (Amaebas) इत्यादि अति क्षुद्र कीटाणु समूह माताके गर्भमें नहीं जन्मते, किन्तु प्रत्येक अपना अपना शरीर विभक्त कर दो स्वतन्त्र जीवमूर्ति धारण करते हैं और ये ही फिर भिन्न भिन्न जीवरूपमें परिणत होते हैं। इस प्रकार असंख्य जीवोंका आविर्भाव होता है। इनमेंसे प्रत्येक ही, यदि दूसरोंसे मारे न जाते, तो वे चिरकाल तक जीवित रहते। अब प्रश्न यह है कि, यदि इतने छोटे छोटे कीटाणु स्वाभाविक मृत्युके अधीन नहीं होते, तो जीवजगत्के शीर्षवर्त्ती मानव आदि उच्चश्रेणीके जीवोंको ऐसी मृत्यु क्यों होती है? विवर्त्तनवादी वैज्ञानिकोंके मतसे मनुष्य आदि जीव, अति क्षुद्र कीटाणुका पूर्ण विकाशमात्र है। कीटाणुका अमरत्व यदि स्वाभाविक धर्म है, तो उच्चश्रेणीके जीवोंका नश्वरत्व स्वाभाविक धर्म कैसे हुआ?

इसके कारणकी खोज कर हम लोगोंने स्थिर किया है कि, जन्म ही मृत्युका कारण है। जन्मनेसे ही मरना पड़ता है। कीटाणुओंका जन्म नहीं होता; एक जीवका शरीर विभक्त हो कर भिन्न भिन्न जीवोंका आविर्भाव हुआ करता है, इसी तरह उनकी संख्या बढ़ती है। उच्चश्रेणीके जीव माताके गर्भसे उत्पन्न होते हैं, इसीलिए उनकी मृत्यु होती है। अब यह देखना चाहिये कि, जीव जगत्में जन्मका आविर्भाव कैसे हुआ?

मोनर (Moner)-के पिता माता नहीं हैं, एक मोनर विभक्त हो कर दो स्वतन्त्र जीवरूपमें परिणत होता है।

एमिबा-स्फिरोकोकास् (amaeba sphaerococus) नामक और एक प्रकारके अति क्षुद्र जीव हैं, उनकी संख्या वृद्धिका क्रम मोनरकी अपेक्षा कुछ जटिल है।

इस तरह एक शरीर विभक्त हो कर भिन्न भिन्न जीवोंका आविर्भाव होता है और वे एकबारगी पूर्णावस्थामें विच्छिन्न हो जाते हैं। इनको शैशवावस्था नहीं भोगनी पड़ती। शरीरविभाग-प्रणालीके बाद मुकुलोद्गमप्रणाली (Gemmation)-का क्रम है। यह प्रणाली और भी जटिल है, इससे पुष्पका उद्गम तथा प्रवालादि कीटोंकी वृद्धि इसी नियमके अनुसार हुआ करती है। इसके बाद बीजोद्गमप्रणाली होती है। इस प्रणालीके अनुसार माताके शरीरमें जो बीजाङ्कुर विद्यमान रहते हैं वे ही उद्भिन्न हो कर भिन्न शरीर धारण करते हैं। यहां तक जीव सिर्फ एक ही जीवके शरीरसे आविर्भूत हैं।

इसके बाद ऊर्ध्वक्रमसे जीव-जगत्में जिन जीवोंका विकाश हुआ करता है उनमें स्त्री-पुरुषकी आवश्यकता होती है, बहुतसे प्राणी ऐसे भी हैं, जो उद्भिद् श्रेणी या जीवश्रेणीके अन्तर्गत हैं इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। ऐसा प्रमाण मिला है कि, दो अंकुरों (Cells)-के एकत्र समावेशसे इन लोगोंकी उत्पत्ति होती है। ये विभिन्न अङ्कुरद्वय समधर्मी (Homogeneous) होने पर भी कभी कभी भिन्न प्राकृतिक हो जाया करते हैं, जीव-जगत्में इस प्रकारका क्रमिक विकाश होते होते कालान्तरमें दो अङ्कुर विभिन्न धर्म अवलम्बन करते हैं और परस्परके अभावपूरक (Sporogony) भावको धारण कर दो स्वतन्त्र जीवमूर्त्तिमें परिणत हो जाते हैं। इनमें परस्परकी स्वाभाविक मिलनेच्छा अत्यन्त प्रबल होती है। जिस समयसे जीव-जगत्में इस तरहके दो परस्परमें मिलनेच्छु विभिन्न प्राकृतिक जीवोंका आविर्भाव हुआ है, तभीसे स्त्री-पुरुषका भेद देखा गया है, तथा परस्परके समागमके बिना नवीन जीवका उद्भव होना असम्भव हो गया है। इसके बादसे क्रमिक विकाशमार्गमें एक जीवसे और नये जीव उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकारके समागमसे जितने भी जीवोंका आविर्भाव होता है, उन सबको कुछ दिन माताके गर्भमें रह कर पीछे जन्म लेना पड़ता है। जीव-जगत्में इस तरहसे जन्म-प्रकरणका आविर्भाव हुआ है।

पहले कहा जा चुका है कि, मोनर आदि कीटाणुगण पहलेहीसे पूर्णावस्थाको प्राप्त हो कर आविर्भूत होते हैं, किन्तु जीव-जगत् क्रमशः उन्नति लाभ कर जितना ही स्त्री-पुरुषभेदके समीपवर्त्ती होता जाता है, उतना ही जीवको शैशवमें निःसहाय अवस्थामें पड़ना पड़ता है। इस प्रकार उन्नतिपथके पूर्ण सीमामें पदार्पण करते ही जीव संपूर्ण निःसहाय हो जाता है। इसीलिए मनुष्य आदि उच्चश्रेणीके जीव शैशवकालमें संपूर्ण रूपसे असहाय रहते हैं। जीव, परजन्म, अंतःसत्वा, गर्भ, मृत्यु आदि शब्द देखो।

जैनोंने जीवोंकी उत्पत्ति नहीं मानी है, जीव संसारमें अनादिकालसे हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। इनकी संख्या अनन्त है, बराबर मुक्त होते रहने पर भी जीवोंका अन्त नहीं हो सकता। जीव अमर है, सिर्फ आयुकर्मके अनुसार शरीर बदलता रहता है। जीव देखो।

जन्मकाल (सं० पु०) जन्मनः कालः, ६-तत्। जन्म समय, पैदा होनेका वक्त।

जन्मकील (सं० पु०) जन्मनः कील इव रोधक इव। विष्णु। पुराणके अनुसार मनुष्य विष्णुकी उपासना कर मोक्ष प्राप्त करता है, उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इसीसे विष्णुका नाम जन्मकील पड़ा है।

जन्मकुण्डली (सं० स्त्री०) एक प्रकारका चक्र जिससे किसीके जन्मके समयमें ग्रहोंकी स्थितिका पता चले।

जन्मकृत् (सं० पु०) जन्म-कृ-क्विप् पित्वात् तुगागमः। पिता, जन्मदाता।

जन्मक्रिया (जन्मसंस्कार)—जैनोंके षोडश-संस्कारोंमेंसे एक संस्कार। इसका द्वितीय नाम प्रियोद्भवसंस्कार है। यह संस्कार बालकके जन्मग्रहणके दिन किया जाता है। इस दिन गृहस्थाचार्य वा कोई द्विज घरमें देवशास्त्र गुरुकी पूजा करते हैं। अनन्तर सात पीठिकाके मन्त्र पर्यन्त होम होनेके बाद इस मन्त्रको पढ़ कर आहुति दी जाती है।

"दिव्यनेमिजयाय स्वाहा। परमनेमिविजयाय स्वाहा। आर्हन्त्य नेमिविजयाय स्वाहा॥"

अनन्तर नवजात शिशुके शरीर पर अर्हत्-मूर्तिका गन्धोदक छिड़क देवें और बालकका पिता इस प्रकार कहता हुआ आशीर्वाद दे—

"कुलजातिवयोरूपगुणैः शीलप्रजान्वयैः।
भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वैः समधिष्ठिता॥
सम्यग्दृष्टिस्तवाम्बेयमतस्त्वमपि पुत्रकः।
सम्प्रीतिमाप्नुहि त्रीणि प्राप्य चक्राण्यनुक्रमात्।"

इसके बाद दुग्ध और घृतसे बने हुए अमृतसे शिशुकी नाभिको सींचना चाहिये। नाल काटते समय यह मन्त्र बोला जाता है—"घातिजयो भव श्रीदेव्यः तेजातक्रिया कुर्वन्तु।" अनन्तर बालकको स्नान करावें, मन्त्र इस प्रकार है—"मंदराभिषेकार्हो भव।" फिर पिताको उस पर तण्डुल निक्षेप करना चाहिये, मन्त्र—"चिरञ्जीवयात्" इसके बाद पितामाता और कुटुम्बियोंको मिल बालकके मुंहमें औषधिविशिष्ट घृत लगाना चाहिये, मंत्र—"नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नं।" फिर बालकका मुंह माताके स्तनसे लगाना चाहिये, मन्त्र—

"विश्वेश्वरास्तन्यभागीभूयात्।" उस दिन यथाशक्ति दान देना चाहिये और बालकके नालको किसी धान्य-शाली पवित्र भूमिमें गाड़ देना चाहिये। भूमि खोदनेका मन्त्र—"सम्यग्दृष्टे सर्वमात वसुन्धरे स्वाहा।" गड्ढेमें पांचो रंगके पांच रत्न निक्षेप कर एवं यह मंत्र पढ़ते हुए कि, "त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयास्युश्चिरजीविनः।" नाल गाड़ देवें। इधर बालककी माताको उष्ण जलसे स्नान कराना चाहिये। मंत्र यह है—"सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्ये आसन्नभव्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिनमाता जिनमाता स्वाहा।" (जैन आदिपुराण)

जातकर्म देखो।

जन्मक्षेत्र (सं० क्ली०) जन्मनः क्षेत्रं। जन्मभूमि, जन्मस्थान।

जन्मग्रहण (सं० पु०) उत्पत्ति।

जन्मज्येष्ठ (सं० त्रि०) जन्मना ज्येष्ठः। प्रथमजात, जो सबसे पहले पैदा हुआ हो।

जन्मतिथि (सं० पु० स्त्री०) जन्मन उत्पत्तेस्तिथिः कालविशेषः ६-तत्। १ वह तिथि जिसमें जन्म हुआ हो, जन्मदिन। २ उसकी सजातीय तिथि। स्त्रीलिङ्गमें-विकल्पसे ङीप् होता है। जन्मतिथी, वर्षगांठ।

प्रतिवर्ष जन्मतिथिके दिन जन्मतिथिकृत्य करना चाहिये। तिथितत्त्वमें जन्मतिथिकृत्य और उसकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

जहां पहले दिन नक्षत्रयुक्त तिथिका लाभ हुआ हो, और दूसरे दिन सिर्फ तिथि ही रहती हो, वहां पहले दिन, तथा जहां दोनों ही दिन नक्षत्रवर्जित तिथि हो, वहां दूसरे दिन जन्मतिथि मानी जाती है।

जिस वर्ष जन्ममासमें जन्मतिथि जन्मनक्षत्रयुक्त हो, उस वर्ष सम्मान, सुख और सुस्थता लाभ होता है।

शनिवार या मङ्गलवारमें यदि जन्मतिथि पड़े, और उसमें यदि जन्मनक्षत्रका योग न हो; तो उस वर्ष पद पदमें विघ्न आया करते हैं। ऐसा होने पर सर्वौषधि मिश्रित जलमें स्नान, देवता, नवग्रह और ब्राह्मणोंकी अर्चना करनेसे शान्ति होती है। वार दोषकी शान्तिके लिए मोती तथा जन्मनक्षत्रका योग न होने पर उसकी शान्तिके लिए काञ्चन दान करना पड़ता है।

जन्मतिथिकृत्यमें गौण चान्द्रमासका उल्लेख हुआ करता है। यदि किसी वर्ष लौंदके महीनेमें जन्ममास पड़ जाय, तो उस मासको त्याग कर चान्द्रमासमें जन्मतिथिका अनुष्ठान करना चाहिये।

जन्मतिथिके दिन तिलका तेल या तिलको पीस कर शरीरमें लगाना चाहिये और तिलयुक्त जलसे स्नान कर तिलदान, तिलहोम, तिलवपन और तिल भक्षण करना चाहिये। इस प्रकारसे तिल व्यवहार करनेसे किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं आती।

गुग्गुल, नीमके पत्ते, सफेद सरसों, दूब और गोरोचना, इनका एकत्र पुट बना कर—

"त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥"

इस मन्त्रको पढ़ कर दक्षिण भुजामें जन्मग्रन्थि वा रक्षाग्रन्थि धारण करना चाहिये।

जन्मतिथिके दिन नित्यक्रियासे निवृत्त हो कर स्वस्तिवाचनादि पूर्वक "अद्येत्यादि जन्मदिवसनिमित्तकगुर्वादिपूजनमहं करिष्ये।" अथवा "अद्येत्यादि शुभवर्षवृद्धौ सकलमंगलसम्वलितदीर्घायुष्यकामो मार्कण्डेयादिपूजनमहं करिष्ये" इत्यादि रूपसे संकल्प कर गणेशादि देवताओंकी पूजा करनेके उपरान्त, गुरु देव, अग्नि, विप्र, जन्मनक्षत्र, पिता, माता और प्रजापतिकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये।

"द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धं चिरजीविनम्।
दण्डाक्षसूत्रहस्तं च मार्कण्डेयं विचिन्तयेत्॥" (मार्कण्डेयध्यान)

उक्त प्रकारसे मार्कण्डेयका ध्यान कर "ॐ मां मार्कण्डेयाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये, फिर

"ओं आयुःप्रद महाभाग सोमवंशसमुद्भव।
महातप मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते॥"

इस मंत्रसे पुष्पाञ्जलि दे कर—

"चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने।
रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा।
मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरिष्टार्थसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव॥"

इस मन्त्र द्वारा प्रार्थना करना उचित है। इसके उपरान्त व्यास, परशुराम अश्वत्थामा, कृपाचार्य, वलि, प्रह्लाद, हनूमान और विभीषणकी पूजा कर "ओं षां षष्ठ्यै नमः" इस मन्त्रसे दधि और अक्षत द्वारा षष्ठीदेवीकी पूजा तथा "मातृभूतासि भूतानां ब्रह्मणा निर्मिता पुरा, तन्मनाः पुत्रवत्कृत्वा पालयित्वा नमोस्तु ते" इस मन्त्रसे प्रणाम कर त्रिशरणादिकी पूजा करनी चाहिये। बादमें पूजित देवताओंको लक्ष्य कर तिलहोम करनेके उपरान्त दधिपान्न और विष्णुस्मरण करना चाहिये।

स्कन्दपुराणके मतसे जन्मतिथिके दिन नख केशादिका कटवाना, मैथुन, दूर गमन, आमिष भक्षण, कलह और हिंसा नहीं करना चाहिये।

ज्योतिषके मतसे—स्त्रीसंसर्ग परित्याग और यथाविधि स्नान करनेसे अभीष्ट सम्पद् प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको मत्स्यदान करने और जीवित मत्स्य पानीमें छोड़ देनेसे आयुकी वृद्धि होती है। इस दिन जो सत्तू खाता है, उसके शत्रुओंका क्षय, तथा जो निरामिष भोजन करता है वह दूसरे जन्ममें पण्डित होता है।

हिन्दुओंकी तरह संसारको अन्यान्य प्रधान जातियोंमें भी देशमें प्रचलित प्रथाके अनुसार जन्मदिनमें उत्सव हुआ करता है, जिसे वर्षगांठ मनाना कहते हैं।

जन्मद (सं० पु०) जन्म ददातीति जन्म-दा-क। पिता।

जन्मदिन (सं० क्ली०) जन्मनो दिनं दिवसं। जन्मदिवस, वह दिन जिसमें किसीका जन्म हुआ हो, वर्षगांठ। जन्मतिथि देखो।

जन्मनक्षत्र (सं० क्ली०) जन्मनो नक्षत्रं। जन्म समयका नक्षत्र। "गोपयेज्जन्मनक्षत्रं धनसारं गृहे मलं।" (विष्णुध०) जन्मनक्षत्र किसीको कहना नहीं चाहिये। ज्योतिषके मतसे जन्मनक्षत्रमें यात्रा और क्षौरकर्म निषिद्ध है। विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि प्रतिमास जन्मनक्षत्रके दिन यथाविधि स्नान कर चन्द्र, जन्मनक्षत्र, अग्नि, विष्णु प्रभृति देवों और ब्राह्मणोंको अर्चना करनी चाहिये।

जन्मना (हिं० क्रि०) १ जन्मग्रहण करना, पैदा होना, जन्म लेना। २ आविर्भूत होना, अस्तित्वमें आना।

जन्मप (सं० पु०) जन्म जन्मलग्नं पाति पा-क। १ जन्मलग्नपति। २ जन्मराशिके अधिपति।

जन्मपति (सं० पु०) १ जन्मलग्नके स्वामी। २ जन्मराशिके अधिपति।

जन्मपत्र (सं० क्ली०) १ जन्म-विवरण, जीवनचरित्र। २ कोष्ठी, जन्मपत्री। ३ किसी वस्तुका आदिसे अन्त तक विवरण।

जन्मपत्रिका (सं० स्त्री०) जन्मसूचकं पत्रं कन्-टाप्। कोष्ठी, जन्मपत्री।

जन्मपत्री (सं० स्त्री०) वह पत्र जिसमें किसीकी उत्पत्तिके समयके ग्रहोंकी स्थिति, उनकी दशा, अन्तर्दशा आदि दिये हों।

जन्मपादप (सं० पु०) जन्मनः पादप। वह वृक्ष जिसके नीचे किसीका जन्म हो।

जन्मप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) जन्मना प्रतिष्ठा। १ जन्मस्थान। २ माता।

जन्मभ (सं० क्ली०) १ जन्मनक्षत्र। २ जन्मलग्न। ३ जन्मराशि। ४ जन्मनक्षत्रादि, सजातीय नक्षत्रादि।

जन्मभाज् (सं० पु०) जीव, प्राणी, जानवर।

जन्मभाषा (सं० स्त्री०) मातृभाषा, स्वदेशकी बोली।

जन्मभू (सं० स्त्री०) जन्मभूमि।

जन्मभूमि (सं० स्त्री०) १ जन्मस्थान, वह स्थान जहां किसीका जन्म हुआ हो। २ स्वदेश, वह देश जहां किसीका जन्म हुआ हो।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" अयोध्यामाहात्म्यमें रामचन्द्रका जन्मस्थान भी जन्मभूमि नामसे वर्णित है। यहां आ कर स्नान दान करनेसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञके फल होते हैं।

जन्मभृत् (सं० त्रि०) जन्म बिभर्ति जन्म-भृ-क्विप्। प्राणी, जीव।

जन्ममास (सं० पु०) १ वह मास जिसमें किसीका जन्म हुआ हो। २ जन्ममासके सजातीय मास। ज्योतिषके मतसे जन्ममासमें क्षौरकर्म, विवाह, कर्णवेध और यात्रा निषिद्ध है। वशिष्ठके मतानुसार जन्ममासमें जन्मदिन मात्र, गर्गके मतसे ८ दिन मात्र, यवनाचार्यके मतसे १० दिन मात्र तथा भागुरिके मतसे समस्त मास ही उक्त कार्य वर्जनीय हैं।

जन्मयोग (सं० पु०) कोष्ठी, जन्मपत्री।

जन्मराशि (सं० पु०) वह राशि (लग्न) जिसमें किसीका जन्म हो।

जन्मरोगी (सं० पु०) वह जो जन्मकालसे ही रोगका भोग करता आ रहा हो।

जन्मर्क्ष (सं० पु०) जन्म-ऋक्ष। १ वह नक्षत्र जिसमें किसीका जन्म हुआ हो। २ प्रथम नक्षत्रका नाम

जन्मलग्न (सं० क्ली०) वह लग्न जिसमें किसीका जन्म हो। लग्न देखो।

जन्मवत् (सं० त्रि०) जन्मन्-मतुप्। प्राणी, जीव।

जन्मवर्त्म (सं० क्ली०) जन्मनः वर्त्म पन्थाः। योनि, भग।

जन्मवसुधा (सं० स्त्री०) जन्मस्थान, जन्मभूमि।

जन्मविधवा (सं० स्त्री०) अक्षतयोनि, वह स्त्री जिसका पति उसके बचपनमें ही मर गया हो, वह विधवा जिसका अपने पतिसे सम्पर्क न हुआ हो।

जन्मवैलक्षण्य (सं० क्ली०) पैतृक पद्धतिका विपरीत आचरण।

जन्मशय्या (सं० स्त्री०) जन्मनिमित्त शय्या, प्रसवार्थ शय्या, वह शय्या जिस पर किसीका जन्म होता हो।

जन्मशोध (सं० पु०) वह जो जन्म भरके लिए किया गया हो।

जन्मसाफल्य (सं० क्ली०) जन्मनः साफल्यं। जन्मोद्देश्यकी सफलता।

जन्मस्थान (सं० क्ली०) १ जन्मभूमि। २ मातृगर्भ, माताका गर्भ। ३ कुण्डलिमें वह स्थान जिसमें जन्म समयके ग्रह रहते हैं।

जन्म (सं० पु०) १ जन्मवाला, वह जिसका जन्म हो। (त्रि०) २ उत्पन्न।

जन्माधिप (सं० पु०) १ शिवका एक नाम। २ जन्मराशिका स्वामी। ३ जन्मलग्नका स्वामी। जन्मर देखो।

जन्मना (हिं० क्रि०) जनमा देना, उत्पन्न कराना।

जन्मान्तर (सं० क्ली०) अन्यत् जन्म जन्मान्तरं। १ अन्यजन्म, दूसरा जन्म। जन्मनः अन्तरं। २ लोकान्तर।

जन्मान्तरकृत (सं० क्ली०) अन्य जन्मका अनुष्ठित कर्म, दूसरे जन्मका किया हुआ काम।

जन्मान्तरीण (सं० त्रि०) जो जन्मान्तरमें हो गया हो या होनेवाला हो।

जन्मान्तरीय (सं० त्रि०) १ जन्मान्तर सम्बन्धीय, दूसरे जन्मका। २ जो जन्मान्तरमें हो गया हो या होनेवाला हो।

जन्मान्ध (सं० त्रि०) आजन्म दृष्टिहीन, जन्मका अन्धा।

जन्मावच्छिन्न (सं० त्रि०) यावज्जीवन, जन्म भर।

जन्माशौच (सं० क्ली०) जन्मसम्बन्धी अशौच, सूतक।

जैनमतानुसार—जब कोई जनम ग्रहण करता है तब उसके कुटुम्बीजन १० दिन तक देव शास्त्र गुरु पूजा वा मुनि आदिको आहार नहीं दे सकते।

इसको सूतक भी कहते हैं। स्राव, पात और प्रसूत के भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। जो गर्भ ३रे वा ४थे मास पर्यन्त गिर जाय उसे स्राव और जो ५वें वा ६ठे मासमें गिरे, उसे पात कहते हैं एवं ७वें मासके बादकी अवस्थामें वह प्रसूत कहलाता है। गर्भस्राव और गर्भपातमें सिर्फ माताके लिए उतने दिनोंका अशौच है. जितने मासका गर्भ गिरा हो तथा पिता आदि अन्य कुटुम्बीजन स्नान मात्रसे शुद्ध हो जाते हैं।

प्रसव होने पर वंशके लोगोंको १० दिनका अशौच होता है। किन्तु यदि बालक जीवित उत्पन्न हो कर नाल काटनेसे पहले ही मर जावे तो माताको १० दिनका तथा पिता आदिको ३ दिनका अशौच होता है। यदि बालक मृत उत्पन्न हो वा नाल काटनेके बाद मर जाय, तो माता पिता आदि समस्त कुटुम्बके लोगोंको १० दिनका सूतक लगता है। अशौच देखो।

जन्माष्टमी (सं० स्त्री०) जन्मनः श्रीकृष्णाविर्भावस्य अष्टमी, ६-तत्। श्रीकृष्णके जन्मकी अष्टमी तिथि। ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

"अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे।
अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः।

२८वें कलियुगमें भाद्रमासकी कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथिको देवकीके गर्भसे श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए। विष्णुपुराणके मतानुसार महामायासे भगवान्ने कहा था—

"प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहंनिशि।
उत्पत्स्यामि नवम्याञ्च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि॥"

वर्षाकालमें श्रावण मासकी कृष्णाष्टमी तिथिको निशीथ समय पर मैं आविर्भूत हूंगा, तुम दूसरे दिन नवमीको अवतीर्ण होगी।

उपरोक्त दोनों वचनोंमें श्रावण और भाद्र उभय मासको श्रीकृष्णका जन्ममास जैसा कहा है। सुतरां मुख्यचान्द्र और गौणचान्द्र भेदसे उसका समाधान होगा।

अब मुख्यचान्द्र श्रावणकी कृष्णाष्टमी ही गौणचन्द्र भाद्रपदकी कृष्णाष्टमी होती है, तो भिन्न भिन्न वचनमें महीनेका अलग अलग उल्लेख असङ्गत नहीं समझ सकते। जन्माष्टमी तिथि किसी वर्ष सौर श्रावण मास और कभी सौर भाद्रमासमें होती है, उस रोज उपवास, यथानियम श्रीकृष्णकी पूजा, चन्द्रको अर्घ्यदान और रात्रिजागरण आदि कर व्रती रहना पड़ता है। जन्माष्टमीका फल भविष्यके मतसे यह है कि केवलमात्र उपवाससे ही सात जन्मका किया हुआ पाप विनष्ट होता है। मन्वन्तर प्रभृति पुण्य दिनोंमें स्नान पूजा आदि करनेसे जो फल मिलता, जन्माष्टमीके दिन उसका कोटिगुण फल निकलता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि उस दिन केवल तर्पण करनेसे भी सौ वर्षके गयाश्राद्धकी तरह पितृलोक तृप्त होता है। स्कन्दपुराणके मतानुसार जन्माष्टमीका व्रत स्त्री और पुरुष सबको करना चाहिये। यह व्रत करनेसे इस लोकमें सन्तान, सौभाग्य, आरोग्य, अतुल आनन्द तथा धार्मिकता आदि पाते और परकालमें वैकुण्ठ जाते हैं। स्कन्दपुराणके मतानुसार जन्माष्टमीके व्रतसे चतुर्वर्ग फल मिलता है।

भविष्योत्तरमें लिखा है—प्रतिवर्ष श्रावण मासके कृष्ण पक्षमें जो मनुष्य जन्माष्टमीका व्रत न करेगा, क्रूरकर्मा राक्षसका जन्म लेगा और जो स्त्री जन्माष्टमीके व्रतसे विमुख रहेगी, अरण्यकी सर्पिणी बनेगी। श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये भक्तोंके साथ एकाग्रचित्तसे भक्तिपूर्वक जयन्ती व्रत करना पड़ता है। इसको न करनेसे चौदह इन्द्रोंके भोग्य समय तक नरक भोग करते हैं। जन्माष्टमी व्रत छोड़ कर दूसरा व्रत करनेसे कोई भी फललाभ नहीं होता। यही जन्माष्टमी तिथि निशीथ समयके पूर्वदण्ड अथवा परदण्डमें कलामात्र और रोहिणी नक्षत्रके साथ आती, जयन्ती जैसी कहलाती है। इसीका नाम जयन्ती योग है। (वराहसंहिता) जयन्ती योगमें उपवास प्रभृतिसे अधिक फल होता है। वह सोमवार वा बुधवारको पड़नेसे और भी प्रशस्त है। कालमाधवीयके मतसे जन्माष्टमीव्रत तथा जयन्तीव्रत पृथक् है। उपवास, जागरण, अर्चना, दान एवं ब्राह्मण भोजन इन कार्योंका नाम जयन्तीव्रत है। केवल उपवासको जन्माष्टमी व्रत कहा जाता है।

ब्रह्माण्डपुराणमें इसी जन्माष्टमी वा जयन्तीव्रतको

रोहिणीव्रत कहा है। सो एकादशी व्रतकी अपेक्षा भी उसका फल अधिक है।

स्मार्तों और वैष्णवोंके मतभेदसे जन्माष्टमीके व्रतकी व्यवस्था अलग अलग है। स्मार्तोंमें रघुनन्दन भट्टाचार्य और माधवाचार्यकी व्यवस्था एक जैसी नहीं होती। रघुनन्दनके मतसे वशिष्ठ प्रभृतिके वचनानुसार जिस दिन जयन्तीयोग आता, जन्माष्टमी व्रत किया जाता है। किन्तु दोनों दिन वह योग पड़नेसे दूसरे दिन व्रत होता है। जयन्तीयोग न मिलनेसे रोहिणीयुक्त अष्टमीमें व्रत करनेकी व्यवस्था है। यदि दोनों दिन रोहिणीयुक्त अष्टमी हो, तो दूसरे दिन व्रत करना चाहिये। रोहिणी योग न होनेसे जिस रोज निशीथ समयमें अष्टमी रहे, जन्माष्टमीका व्रत करना चाहिये। दोनों दिन निशीथ समयमें अष्टमी मिलने या किसी भी दिन न रहनेसे परदिन ही कर्तव्य है। वैष्णवोंके मतसे जिस रोज पलमात्र भी सप्तमी होती, जन्माष्टमी व्रत नहीं करते। नक्षत्रयोगके अभावमें नवमीयुक्त अष्टमी ग्राह्य है, किन्तु सप्तमीविद्धा अष्टमी नक्षत्रयुक्त होते भी छोड़ देना चाहिये। (हरिभक्तिविलास)

भविष्यपुराण और भविष्योत्तरमें लिखा है—उपवासके पूर्व दिन हविष्य बना कर खाना चाहिये। इस दिन प्रातःकृत्य आदिके समापनान्तमें उपवासका सङ्कल्प करते हैं। सप्तमी तिथि रहनेसे उसमें "अद्यतम्यान्तियावारभ्य" जैसा तिथिका उल्लेख होगा। सङ्कल्पके बाद "धर्माय नमः धर्मेश्वराय नमः धर्मपतये नमः, धर्मसम्भवाय नमः गोविन्दाय नमः" आदि उच्चारणपूर्वक प्रणाम कर निम्न लिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

> वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये।
> उपवासं करिष्यामि कृष्ण तुभ्यं नमाम्यहम्॥
> अद्य कृष्णाष्टमीदेवीं नभःस्चन्द्रं सरोहिणीम्।
> अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि॥
> एनसो मोक्षकामोऽस्मि यद्गोविन्दत्रियोनिजम्।
> तन्मे मुंच मां त्राहि पतितं शोकसागरे॥
> आजन्ममरणं यावत् यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
> तत्प्रणाशाय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम॥"

फिर आधी रातको प्रणव आदि नमः अन्तान्त अपने अपने नामरूप मन्त्रसे वासुदेव, देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द, रोहिणी, चण्डिका, वामदेव, दक्ष, गर्ग तथा ब्रह्माकी पूजा कर 'श्रीवत्सवक्षः पूर्णाङ्गं नीलोत्पलदलच्छवि' इत्यादि भविष्योत्तरीय ध्यानपूर्वक "ओं श्रीकृष्णाय नमः" मन्त्रसे श्रीकृष्णकी पूजा करनी पड़ती है। अर्घ्य, स्नान, नैवेद्य घृत तिल होम और शयनके विशेष विशेष मन्त्र हैं। श्रीकृष्णकी पूजाके बाद श्रीपूजा और उसके पीछे देवकी पूजा कर्तव्य है। कृष्ण यशोदा प्रभृतिकी स्वर्ण आदि निर्मित प्रतिमूर्ति स्थापन करते हैं। पूजाके अन्तमें गुड़ और घीसे वसुधारा दी जाती है। उसके बाद नाड़ीछेदन, षष्ठीपूजा और नामकरण आदि संस्कार करना चाहिये। इन सब कार्योंके पीछे चन्द्रोदयके समय चन्द्रके उद्देश हरिस्मरणपूर्वक शङ्खपात्रमें जल पुष्प, चन्दन तथा कुश ले "क्षीरोदार्णवसम्भूत" इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य दे "ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं" इत्यादि मन्त्रसे चन्द्रको प्रणाम करते हैं। चन्द्रप्रणामके बाद "अनघं वामनं" इत्यादि मन्त्रद्वारा नामकीर्तन एवं "प्रणमामि सदा देवं" इत्यादि मन्त्र द्वारा श्रीकृष्णको प्रणाम कर "त्राहि मां" इत्यादि मन्त्रसे प्रार्थना की जाती है। फिर स्तवपाठ और श्रीकृष्णका जन्मवृत्तान्त जो अष्टमीकी कथामें उल्लिखित है, श्रवण कर नाचते गाते रात्रि बिता देना चाहिये। (कृष्ण देखो।) दूसरे दिन सवेरे विधिपूर्वक श्रीकृष्णकी पूजा कर दुर्गामहोत्सव करते हैं। उसके बाद ब्राह्मणभोजन करा और उनको सुवर्ण आदि दक्षिणासे सन्तुष्ट कर "सर्वाय सर्वेश्वराय" इत्यादि मन्त्रसे पारण तथा 'भूताय' इत्यादि मन्त्रसे उत्सव समापन किया जाता है। स्त्रियों और शूद्रोंको पूजा आदिमें मन्त्र पढ़ना नहीं पड़ता। (तिथितत्त्व)

स्मार्त रघुनन्दनने ब्रह्मवैवर्त प्रभृति पुराणोंके वचनानुसार पारण सम्बन्धमें ऐसी व्यवस्था बतलायी है—उपवासके दूसरे दिन तिथि और नक्षत्र दोनोंका अवसान होनेसे पारण करना पड़ता है। जिस काल पर महानिशासे पहले तिथि और नक्षत्रमें किसी एकका अवसान आता और दूसरेका अवसान महानिशाको अथवा उसके बाद दिखलाता, एकके अवसानसे ही पारणका काम चल जाता है। जब महानिशाके समय तिथि और नक्षत्र दोनों रहते हैं तब उत्सवके पीछे प्रातःकालमें पारण करते हैं।

जन्मास्पद (सं० क्ली०) जन्मस्थान, जन्मभूमि।

जन्मिन् (सं० पु०) १ प्राणी, जीव। (त्रि०) २ जो उत्पन्न हुआ हो।

जन्मेजय (सं० पु०) जनमेजय राजा। देवीभागवतके २।११।३६ श्लोकको टीकामें लिखा है—

"जन्मनैवातिदुष्टेन शत्रून् नेजितवान् यतः।
एजृङ् कम्पने धातोर्हि जन्मेजय इति श्रुतः॥"

जनमेजय देखो।

जन्मेश (सं० पु०) जन्मराशिका स्वामी। जन्मप देखो।

जन्य (सं० क्ली०) जन-यत्। १ हट्ट, हाट, बाजार। २ परिवाद, निन्दा। ३ संग्राम, युद्ध, लड़ाई। (पु०) ४ उत्पादक, जनक, पिता। ५ महादेव, शिव। "उग्रतेजा महातेजा जन्यो विजयकालवित्।" (भारत १३।१७।५६)। ६ देह, शरीर। ७ जनजल्प। जल्प देखो। ८ किंवदन्ती, अफवाह। (त्रि०) ९ उत्पाद्य, उत्पन्न करनेके योग्य। १० जनयिता, उत्पादक, जन्म देनेवाला। ११ जातीय, देशिक, राष्ट्रीय। १२ जनहित, मनुष्योंका हितकर। १३ जनसम्बन्धी। १४ उद्भूत, जो उत्पन्न हुआ हो। (पु०) १५ नवोढ़ाके भृत्य, नवविवाहिताके नौकर। १६ नवविवाहिताके ज्ञाति, भाईबन्धु, बांधव। १७ नवविवाहिताके मित्र। १८ नवविवाहिताके प्रिय जन। १९ जामाता, दामाद। २० इतर लोक, जनसाधारण, साधारण मनुष्य। २१ जनन, जन्म, पैदाइश। २२ बराती। २३ वरके प्रिय जन, वरपक्षके लोग। २४ जाति। २५ वर, दूलह। २६ पुत्र, बेटा।

जन्यता (सं० स्त्री०) जन्य-तल्-टाप्। उत्पाद्यता, जन्म होनेका भाव।

जन्या (सं० स्त्री०) जन्य-टाप्। १ माताकी सखी। २ प्रीति, स्नेह, प्रेम। ३ वधूकी सहेली। ४ वधू।

जन्यु (सं० पु०) जन-युच् बाहुलकात् न अनादेशः। १ अग्नि। २ ब्रह्मा, विधाता। ३ प्राणी, जन्तु, जीव। ४ जन्म, उत्पत्ति। ५ हरिवंशके अनुसार चौथे मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम।

जप (सं० त्रि०) जप-कर्तरि अच्। १ जपकारक, जप करनेवाला। (भट्टि) (पु०) भावे अप्। २ पाठ, अध्ययन। ३ मन्त्र आदिकी आवृत्ति, मन्त्रादिका पुनः पुनः उच्चारण। अग्निपुराण और तन्त्रसारमें लिखा है—निर्जन स्थानमें समाहित चित्तसे देवताकी चिन्ता कर जप करना पड़ता है। जपकालमें विण्मूत्र त्याग करने किंवा भयविह्वल होनेसे वह बिगड़ जाता है। मलिन वेश अथवा दुर्गन्धियुक्त मुखसे जप करने पर देवताकी प्रीति नहीं होती। जपकालमें आलस्य, जृम्भा, निद्रा, कास, निष्ठीवन त्याग, कोप और नीच अङ्गका स्पर्श सम्पूर्ण रूपसे परिहार करना चाहिये।

जप तीन प्रकारका है—मानस जप, उपांशु जप और वाचिक जप। मन्त्रार्थ सोच कर मन ही मन उसको उच्चारण करनेका नाम मानस जप है। देवताका चिन्तवन कर जिह्वा और दोनों ओष्ठोंको सूक्ष्मतया हिलाते हुए किञ्चित् श्रवणयोग्य जो जप किया जाता है वह उपांशु कहलाता है। वाक्य द्वारा मन्त्र उच्चारण पूर्वक जप करनेको वाचिक कहते हैं। सिवा इसके दूसरा भी एक जप है। उसको जिह्वाजप कहा जाता है। यह जप केवल जीभसे ही करना पड़ता है। वाचिकसे उपांशु दशगुण, जिह्वाजप शतगुण और मानस सहस्रगुण श्रेष्ठ है। जप करते करते इसकी गणना करना उचित है, कितना जप हो गया। इसीके लिये जपमालाका प्रयोजन पड़ता है। जपमाला देखो। अक्षत, हस्तपर्व, धान्य, पुष्प, चन्दन किंवा मृत्तिकासे जपकी संख्या ठहराना निषिद्ध है। लाक्षा या गोमय द्वारा जप गिननेका विधान है। (तन्त्रसार)

कुलार्णवतन्त्रके मतसे उच्चैःस्वरका जप अधम, उपांशु मध्यम और मानस उत्तम-जैसा होता है। जप अति ह्रस्व होनेसे रोग बढ़ता और बहुत दीर्घ पढ़नेसे तपः घटता है। मन्त्रका अर्थ, मन्त्रचैतन्य और योनिमुद्रा न समझनेसे शतकोटि जपसे भी क्या कोई फल मिलता है। सिवा इसके गुप्तवीर्य अथवा अचैतन्य मन्त्र भी निष्फल है, चैतन्ययुक्त मन्त्र ही सर्वसिद्धिकर होता है। चैतन्ययुक्त मन्त्र एकबार जप करनेसे जो फल मिलता, अचैतन्य मन्त्रके शत सहस्र अथवा लक्ष जपमें भी वह दुर्लभ है। चैतन्ययुक्त मन्त्र सर्वसिद्धकर है। चैतन्ययुक्त मन्त्रका एक बार जप करनेसे जो फल मिलता है, अचैतन्य मन्त्रका हजार या लाख बार जप करनेसे

भी वैसा फल नहीं मिलता। चैतन्ययुक्त मन्त्र एक बार पीछे जप करते ही जपकर्ताको ग्रन्थिभेद सर्वाङ्ग वृद्धि, आनन्द, अश्रु, पुलक, देहावेश और सहसा गद्गद भाषा हो जाती है।

पद्म, स्वस्तिक वा वीरासन आदिमें बैठ जप करना चाहिये, अन्यथा वह निष्फल हुआ करता है।

पुण्यक्षेत्र, नदीतीर, गिरिगुहा, गिरिशृङ्ग, तीर्थस्थान, सिन्धुसङ्गम, वन, उपवन, बिल्ववृक्षके मूल, गिरितट देवमन्दिर, समुद्रतीर अथवा जहां चित्त प्रसन्न हो सके, वहां जप करना उचित है। निर्जन गृहमें सौ गुना, गोष्ठमें लाख गुना, देवालयमें करोड़ गुना और शिवके सन्निधानमें अनन्त पुण्य लाभ होता है। गुरुके मुखसे प्राप्त मन्त्र ही सर्वसिद्धिदायक है। इच्छाक्रमसे सुन अथवा कौशलसे देख किंवा पत्र पर लिखित मन्त्र अभ्यास पूर्वक जप करनेसे कोई अनर्थ नहीं उठता। किन्तु पुस्तकमें लिखा है, मन्त्र देख जो जप करता, ब्रह्महत्या जैसा उसको पाप पड़ता है।

जपजी (हिं॰ पु॰) सिखोंका एक पवित्र धर्मग्रन्थ। इस ग्रंथका नित्य पाठ करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं

जपतप (हिं॰ पु॰) पूजापाठ।

जपता (सं॰ स्त्री॰) जपस्य जपकारकस्य भावः तल्-टाप्। १ जप करनेका काम। २ जप करनेका भाव।

जपन (सं॰ क्ली॰) जप भावे ल्युट्। जप। जप देखो।
"सन्न्यास एव वेदान्ते वर्त्तते जपनं प्रति।"

(भारत शांति ११६ अ॰)

जपना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी वाक्य वा वाक्यांशको धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना। २ खा जाना, जल्दी जल्दी निगल जाना। ३ किसी मन्त्रका सन्ध्या, यज्ञ वा पूजा आदिके समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना।

जपनी (हिं॰ स्त्री॰) १ माला। २ गोमुखी, गुप्ती।

जपनीय (सं॰ त्रि॰) जप-अनीयर्। जप करने योग्य, जो जपने लायक हो।

जपपरायण (सं॰ त्रि॰) जप एव परमयनं आश्रयो यस्य बहुव्री॰। जपासक्त, जपनशील, जो जप करता हो।

जपमाला (सं॰ स्त्री॰) जपस्य जपार्था माला। जपके निमित्त व्यवहृत होनेवाली माला, जिस मालाको अवलम्बन कर जप किया जावे काम्यभेदसे जपमाला नाना प्रकार बन सकती है।

प्रधानतः जपमाला तीन प्रकारकी है—करमाला, वर्णमाला और अक्षमाला। (मत्स्यसूक्त) तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा इन चार अङ्गुलियां द्वारा मालाकी कल्पना करना पड़ती है। कनिष्ठाङ्गुलिके तीन पर्व, अनामिकाके तीन पर्व, मध्यमाका एक पर्व और तर्जनीके तीन पर्व सब मिला कर दश पर्वकी एक माला बनती है। इस मालाके मेरु जैसे मध्यमाङ्गुलीके ऊपर दो पर्व समझना चाहिये। (सनत्कुमार॰) इसीका नाम करमाला है। उसमें जप करनेका क्रम इस प्रकार है—अनामिकाके मध्य पर्वसे आरम्भ कर कनिष्ठाके ३ पर्व ले क्रममें तर्जनीके मूलपर्व पर्यन्त १० पर्व पर जप करना पड़ता है। ऐसे ही नियमसे दश बार जप करने पर एक शत संख्या हो जाती है। अष्टादश, अष्टाविंशति, अष्टोत्तर शत प्रभृति अष्टाधिक्य जपके स्थल पर अनामिकाके मूलपर्वसे आरम्भ कर कनिष्ठाके ३ पर्व ले क्रमशः तर्जनीके मध्यपर्व पर्यन्त ८ पर्वमें आठ बार जप करते हैं। (सनत्कुमारीय)

शक्तिमन्त्रके जपमें करमाला अन्य प्रकार है। उसमें अनामिकाके ३ पर्व, मध्यमाके ३ पर्व, कनिष्ठाके ३ पर्व और तर्जनीका मूलपर्व १० पर्व ले कर एक माला बनती है। तर्जनीका मध्य पर्व और अग्र पर्व उस मालाका मेरु जैसा कल्पित होता है। मेरुके स्थानमें जप निषिद्ध है। इसमें अनामिकाके मध्य पर्वसे आरम्भ कर कनिष्ठाङ्गुलीके ३ पर्व ले क्रममें मध्यमाके ३ पर्वसे तर्जनीके मूल पर्यन्त १० पर्वमें जप करते हैं। उस प्रकारकी मालामें आठ बार जपनेके स्थल पर अनामिका अङ्गुलीकी जड़से आरम्भ करके कनिष्ठाके ३ पोर ले कर क्रमशः मध्यमाके मूल पर्व पर्यन्त ८ पर्वमें आठ बार जप करना पड़ता है।

त्रिपुरासुन्दरीके मंत्र जपमें और ही करमाला होती है। उसमें मध्यमाका मूल एवं अग्र, अनामिकाका मूल तथा अग्र, कनिष्ठा और तर्जनीका मूल, मध्य तथा अग्र पर्व १० पर्वकी माला बनाते हैं। अनामिकाका

मध्य पर्व और मध्यमाका मध्यपर्व २ पर्व उस मालाके मेरु जैसे गिने जाते हैं।

जपके नियम—मध्यमाके मूलपर्वसे आरम्भ कर अनामिकाका मूलपर्व ले कनिष्ठाके मूल, मध्य तथा अग्र पर्वसे क्रममें तर्जनीके मूल पर्यन्त जप करनेका नियम है। इसमें दश बार जप होता है। आठ बार जपके स्थल पर कनिष्ठाके मूल पर्वसे क्रममें तर्जनीके मूल पर्व पर्यन्त जप किया जाता है।

(श्रीक्रम, हंसपारमेश्वर यामल, मुण्डमालातन्त्र)

सब प्रकार करमालामें करतल किञ्चित् आकुञ्चित कर उंगली परस्पर संलग्न भावसे रखते और जप करते हैं। इससे अन्यथा करने पर जप निष्फल होता है। सब उंगलियोंके आगे आगे और पर्वसन्धिमें जप करना और मेरु लांघना बहुत निषिद्ध है। गणनाका नियम तोड़ जप करनेसे उसका फल राक्षस ले जाते हैं। अतएव अङ्गुष्ठ द्वारा पूर्वोक्त नियममें अपरापर अङ्गुलीके सब पर्व स्पर्श कर संख्या रखते और जप करते हैं।

(सनत्कुमार)

विश्वसारतन्त्रमें लिखा है कि जपकी संख्या और उपसंख्या दोनोंको रखना पड़ता है।

तन्त्रके मतानुसार हृदय पर हाथ रख कर उंगलियां कुछ झुका वस्त्र द्वारा आच्छादनपूर्वक जप किया जाता है।

तण्डुल, धान्य, पुष्प, चन्दन, मृत्तिका और अङ्गुलीपर्व इनसे जपकी संख्या रखना निषिद्ध है। रक्तचन्दन, लाक्षा, सिन्दूर, गोमय और कण्डा इनको एकत्र मिलाकर गोलियां बनानी चाहिये और उससे माला गूंथ कर जपसंख्या करनी चाहिए।

वर्णमाला—'अ'से 'क्ष' पर्यन्त सब वर्णोंको एक माला कल्पना करना वर्णमाला कहलाता है। 'क्ष'के पहले भी एक 'ल' लगाना पड़ता है। सुतरां समष्टिमें ५१ वर्ण हो जाते हैं। 'क्ष' वर्णमालाका मेरु साक्षी जैसा कल्पना करते हैं। उसके पीछे एक बार मन्त्र चिन्ता कर फिर वर्णमालाके सर्वप्रथम "अ" विन्दुयुक्त वर्णको भी चिन्तन किया जाता है। इसी प्रकार एकबार मन्त्र चिन्ता और पीछे पीछे एक एकविन्दुयुक्त वर्णकी चिन्ता करनेसे 'ल' पर्यन्त पचास बार चिन्ता होती है। ऐसे ही अनुलोमकी चिन्ताके पीछे फिर एक बार विलोम अर्थात् विपरीत क्रममें 'ल' से 'अ' तक एक एक वर्णको चिन्ता करनेसे सब मिला कर एक शतबार जप हो जाता है। इसके बाद और आठ बार जप वा चिन्ता करनेमें अष्टवर्गके आद्य आद्य ८ वर्णको चिन्ता करनी पड़ती है। तन्त्रके मतानुसार अकारसे 'अः' पर्यन्त १६ स्वरमें एक वर्ग, 'म' तक २५ वर्णमें ५ वर्ग; 'य र ल व' चार वर्णमें एक वर्ग और 'श ष स ह ल्' ५ वर्णमें एक वर्ग होता है। सुतरां अ, क, च, ट, त, प, य और श नामसे सब आठ वर्ग हैं। आठ बार जप वा चिन्ताके स्थल पर भिन्न भिन्न तंत्रमें अलग अलग मत दिया हुआ है। कोई कोई कहता है कि उक्त अष्टवर्गके अन्त्यवर्ण द्वारा भी आठ बार जप करनेका विधान है। (सनत्कुमार, नारद, विशुद्धेश्वरतन्त्र)

अक्षमाला—तन्त्रसारमें लिखित है कि रुद्राक्ष, शङ्ख, पद्माक्ष, पुत्रजीव, मुक्ता, स्फटिक, मणि, सुवर्ण, विद्रुम, रौप्य और कुशमूल इन द्रव्योंसे गृहस्थोंको अक्षमाला प्रस्तुत होती है। इसमें अङ्गुली द्वारा एक गुण, पर्व द्वारा अष्ट गुण, पुत्रजीवकी मालासे दश गुण, शङ्खमालासे सहस्र गुण, प्रवाल तथा मणि रत्नादि निर्मित एवं स्फटिक मालासे दश सहस्र गुण, मौक्तिक मालासे लक्षगुण, पद्मबीज मालासे दशलक्ष गुण, सुवर्ण मालासे कोटि गुण कुशग्रन्थिकी मालासे शतकोटि गुण और रुद्राक्षमालासे जप करने पर अनन्तगुण फल मिलता है। असलमें सब प्रकारकी माला मानवके लिये मुक्तिप्रद है।

कालिकापुराणके मतानुसार रुद्राक्ष वा स्फटिककी मालामें पुत्रजीव आदि मिलाना न चाहिये, उससे काम और मोक्ष बिगड़ जाता है।

रुद्राक्षकी मालासे शत्रुनाश, कुशग्रन्थियुक्त मालासे सब पापों विनाश, पुत्रजीवफलकी मालासे पुत्रसम्पद्, रौप्य तथा मणि रत्नादिकी मालासे अभीष्टसिद्धि और प्रवालकी मालासे जप करने पर विपुल धनलाभ होता है। वाराहीतन्त्रमें लिखा है—भैरवी विद्यामें सुवर्ण, मणि, स्फटिक, शङ्ख और प्रवालकी मालाकी व्यवहार

करना चाहिये। इसमें पुत्रजीव, पद्माक्ष, रुद्राक्ष और इन्द्राक्ष मालासे जप नहीं करते।

तन्त्रराज तथा कुमारीकल्पमें कहा है—त्रिपुराके जपमें रक्तचन्दन एवं रुद्राक्ष माला, गणेशके जपमें गज दन्तनिर्मित माला, वैष्णव जपमें तुलसी माला और कालिका, छिन्नमस्ता, त्रिपुरा एवं तारिणीके जपमें रुद्राक्षमालासे काम ले सकते हैं। (किन्तु पुरश्चरणके सिवा दिवसमें रुद्राक्षमाला व्यवहार नहीं करते।) नीलसरस्वती और ताराके जपमें महाशङ्खमयी मालाके व्यवहारका विधान है। उपर्युक्त शक्तियोंको छोड़ दूसरी शक्तिका मन्त्रजप करनेमें रुद्राक्ष नहीं चलता। कर्ण और नेत्रान्तरालके मध्यस्थ ललाटास्थि द्वारा जो माला बनायी जाती, महाशङ्खमयी कहलाती है।

मुण्डमालातन्त्रके मतानुसार महातान्त्रिकोंके लिये धूमावतीके जप विषयमें श्मशानजात धुस्तूरमाला प्रशस्त है। नाड़ी तथा रक्तवान द्वारा ग्रथित नराङ्गुलिकी अस्थिमाला भी सर्वकामप्रद होती है।

हरिभक्तिविलासमें लिखा है कि गोपालमन्त्रके जपमें पद्मबीजकी मालासे सिद्धि, आमलकीकी मालासे सकल अभीष्टपूर्ति और तुलसी मालासे अचिरात् मुक्ति होती है।

तंत्रमें इसकी भी व्यवस्था है कि, किस प्रकारके सूत्रमें जपमाला पिरोयी जाती है। गौतमीयतंत्रके मतानुसार ब्राह्मण-कन्याका हस्तनिर्मित कार्पाससूत्र ही धर्मार्थकाममोक्षप्रद होता है। शान्ति, वशीकरण, अभिचार, मोक्ष ऐश्वर्य तथा जयलाभके लिये शुक्ल, रक्त और कृष्णवर्ण पट्टसूत्र व्यवहार्य है। किन्तु दूसरे सब रंगोंसे लालसूत ही प्रशस्त है। सूतके तीन डोरे एकमें मिला एक एक बार प्रणव जप कर मणि ले सूतके बीच बीच गूंथना और ब्रह्मग्रन्थि देना चाहिये। माला बन जाने पर उसका संस्कार करना पड़ता है। नव अश्वत्थपत्र पद्माकारमें रख कर बीज उच्चारणपूर्वक उसमें माला स्थापन करते हैं। फिर परिष्कृत जल और पञ्चगव्य द्वारा शोधन किया जाता है। उस समय पढ़नेका मन्त्र यह है—

"ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवेऽभवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥"

वामदेव मन्त्रपाठ पूर्वक जपमालाको चन्दन, अगुरु और कर्पूरसे लेपन करना चाहिये। फिर प्रत्येक मणि शतवार जप कर शुद्धकी जाती है। उसके बाद जपमालाकी प्राणप्रतिष्ठा कर स्व स्व इष्टदेवताकी पूजा करते हैं।

रुद्रयामलके मतसे विष्णुके लिये जपमाला बनानी हो तो, वाग्भव तथा लक्ष्मीबीज उच्चारणपूर्वक "अक्षादि मालिकायै नमः" रूपसे मालाकी पूजा करनी चाहिये।

योगिनीतन्त्रमें लिखा है—मालासंस्कार कर देवता भावके सिद्धार्थ १०८ बार होम किया जाता है। होम करनेमें अपारक होने पर द्विगुण अर्थात् प्रत्येक मणिमें दो सौ बार जप करते हैं। जपके समय कम्पन होनेसे सिद्धि हानि, करभ्रष्ट होनेसे विनाश और सूत्र टूटनेसे मृत्यु होती है। जप करनेके बाद मालाको कर्णदेश वा उससे ऊंची जगह रखना चाहिये।

निम्नलिखित मंत्रसे मालाकी पूजा कर यत्नपूर्वक छिपा रखते हैं—

"त्वं माले सर्वभूतानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते॥"

रुद्रयामलके मतानुसार जिस मालाकी मन्त्र द्वारा यथाविधि प्रतिष्ठा नहीं होती, वह कोई भी फल नहीं देती। उस प्रकारकी अप्रतिष्ठित मालासे जप करने पर देवताको भी क्रोध आता है।

आजकल बहुतसे पण्डित नीलतन्त्रका वचन उद्धृत कर कहते हैं—विषयी गृहस्थ भोजन, गमन, दान और गृहकर्ममें लगे रहते भी सर्वदा सर्वस्थान पर माला फेर सकते हैं। वैसे स्थल पर स्फाटिकी वा अस्थिमयी माला धारण करना न चाहिये—रुद्राक्ष, पुत्रजीव, रक्तचन्दनबीज, प्रवाल, शङ्ख और तुलसीकी माला ही प्रशस्त है। किन्तु यह प्रमाण नीलतन्त्र वा बृहन्नीलतन्त्र प्रभृति ग्रंथोंमें नहीं मिलता। वरं गायत्रीतंत्रमें लिखा है—राह चलते चलते माला द्वारा जप करना न चाहिये, उससे हानि होती और जपकारी सर्पयोनि पाता है। किन्तु राहमें करमालाका जप कर सकते हैं। इस प्रकारके विरोधसे मालूम पड़ता है कि जप करनेवाले गमन कालमें भी करमाला वा पर्वसन्धि द्वारा मंत्र जप

कर सकते थे, किन्तु अक्ष मालासे वैसा करनेका विधान न था। परवर्त्ती कालमें रुद्राक्ष आदिकी बनी माला ही करमाला मानी गयी। तदवधि सर्वत्र जपमालाकी व्यवस्था हुई है।

(नीलतन्त्र ७म पटल, मातृकाभेदतन्त्र १४श पटल, बृहन्नीलतन्त्र ४र्थ पटल, फेत्कारिणीतन्त्र साधारण पटल और कुलार्णव प्रभृति तन्त्रमें भी जपमालाका विवरण दिया हुआ है)

हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध और ईसाई सभी जपमालाका व्यवहार करते हैं। मुसलमानोंकी तसबीमें १०० गुरिया होती है। जपकालमें वह अल्ला (परमेश्वर) के १०० नाम लेते हैं। जैनोंकी जपमालामें कुल १११ मोती होते हैं जिनमें १०८ पर तो "णमो अरहन्ताण" आदि मन्त्र जपा जाता है और अवशिष्ट ३ पर "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रेभ्यो नमः" जपते हैं। ब्रह्मदेशके बौद्धोंकी मालामें १०८ गुटिका रहती हैं। हिन्दू लोग जपकालमें कभी कभी गोमुखी व्यवहार करते हैं। इसका प्रमाणाभाव है। यहूदी और पुराने ईसाई माला फेरते थे या नहीं ईसाइयोंमें सिर्फ रोमन कथलिक तसबी इस्तेमाल करते हैं। उनकी तसबो घुंघचीसे बनती है। मुसलमान फ़ीरोज़ेकी तस्बी रखते हैं। वह कन्दाहारमें बहुत अच्छी बनायी जाती है।

भारतवासियोंमें अष्टोत्तर शत जप करनेमें १०८ गुटिकाकी माला प्रस्तुत करते हैं। किन्तु उससे अधिक वा न्यून संख्यक जपमें ५० गुटिकाकी ही माला प्रशस्त है। मालाको वस्त्र आदिसे गोपन कर जप करना चाहिये। कारण उसको खोल कर जप करनेसे मन्त्रसिद्धि नहीं होती।

जपयज्ञ (सं० पु०) जप एव यज्ञः। जपरूप यज्ञ। इसके तीन भेद हैं—वाचिक, उपांशु और मानस। जप देखो।

जपस्थान (सं० क्लो०) जपसाधन स्थान, वह स्थान जहां यज्ञ किया जाता हो। जप देखो।

जपहोम (सं० पु०) जपयज्ञ।

"जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यानैः कृतम्।" (मनु १०।१११)

जपा (सं० स्त्री०) जप-अच्-टाप्। १ जवापुष्प वृक्ष, अड़हुलका पेड़। २ जवापुष्प, जवा, अड़हुल।

जपाकुसुमसन्निभ (सं० क्लो०) हिङ्गुल।

जपापुष्प (सं० क्लो०) जवा, अड़हुल।

जपारक्त (सं० क्लो०) जवापुष्प, अड़हुलका फूल।

जपिन् (सं० त्रि०) जप-णिनि। जपकारी, जप करनेवाला।

जप्त (सं० त्रि०) जप-क्त। जो जप किया गया हो।

जप्त (हिं० पु०) जब्त देखो।

जप्तव्य (सं० त्रि०) जप-तव्य। जपनीय, जो जपने योग्य हो।

जप्य (सं० पु०) जप-यत्। १ मन्त्रका जप। (त्रि०) २ जपनीय, जपने योग्य।

जप्येश्वर (सं० क्लो०) एक प्रसिद्ध सिद्धपीठ।

(बृहन्नीलतन्त्र)

जफा (फा० स्त्री०) सख्ती, अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार।

जफाकश (फा० वि०) १ सहिष्णु, सहनशील। २ परिश्रमी, मेहनती।

जफीर (हिं० स्त्री०) जफील देखो।

जफीरो (अ० स्त्री०) मिस्र देशमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास।

जफील (अ० स्त्री०) १ सीटीका शब्द। यह शब्द कबूतरबाज कबूतर उड़ानेके समय अपनी दो अंगुलियोंको मुंहमें रख कर करते हैं। २ सीटी, वह जिससे सीटी बजाई जाय।

जब (हिं० क्रि० वि०) जिस समय, जिस वक्त।

जबड़ा (हिं० पु०) गालके भीतरका अंश, कल्ला।

जबदी (हिं० स्त्री०) रुहेलखण्डमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

जबर (फा० वि०) १ शक्तिमान्, बली, ताकतवर। २ दृढ़, मजबूत।

जबरजद्द (अ० पु०) पोले रंगका एक प्रकारका पन्ना।

जबरदस्त (फा० वि०) शक्तिमान्।

जबरदस्ती (फा० स्त्री०) १ अत्याचार, सीनाजोरी। (क्रि० वि०) २ बलपूर्वक, दबाव डाल कर।

जबरन् (फा० क्रि० वि०) बलपूर्वक, इच्छाके विरुद्ध, बलात्।

जबरा (हिं० वि०) १ शक्तिमान्, बली, जबरदस्त। (पु०)

२ एक प्रकारका अनाज रखनेका बड़ा बरतन। ३ एक प्रकारका मटमैले रंगका जानवर। यह घोड़े और गदहेके जैसा होता है। इसके सारे शरीर पर लंबी लंबी सुन्दर और काली धारियां होती हैं। इसके कान बड़े गरदन छोटी और पूंछ गुच्छेदार होती है यह एक चपल, जङ्गली और तेज दौड़नेवाला जन्तु है। दक्षिण अफ्रिकाके जंगलोंमें और पहाड़ोंमें इसके झुंडके झुंड पाये जाते हैं। यह बहुत कठिनतासे पकड़ा या पाला जाता है। यह प्रायः एकान्त स्थानमें ही रहना पसन्द करता है। मनुष्यों आदिकी आहट पा कर यह शीघ्र भाग जाता है। जेब्रा देखो।

जबरिया भोल—मध्यभारतके अन्तर्गत भूपाल एजेन्सीके अधीन एक जागीर। जिस समय मालव प्रदेशका बन्दोबस्त हुआ था, उस समय पिण्डारी-सर्दार चीतूके भाई राजनखांको पिपलियानगर, काजूरी और जबरियाभोल इन तीन गांवोंकी जागीर मिली थी। राजनखांकी मृत्युके बाद, अंग्रेजोंने उनके पांच पुत्रोंको उक्त जागीर बांट दी थी। राजा बख्तको जबरियाभील और जबरी प्राप्त हुआ था। १८७४ ई०में राजा बख्तकी मृत्युके बाद उनके पुत्र जमाल बख्त इसके उत्तराधिकारी हुए थे।

जबरेस बन्दीजन—हिन्दीके एक कवि। ये रीवा नरेशकी सभामें रहते थे।

जबलपुर—१ मध्यप्रान्तका उत्तर डिविजन। यह अक्षा० २१° ३६´ एवं २४° २७´ उ० और देशा० ७८° ४´ तथा ८१° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १८९५० वर्गमील है। इसमें ५ जिले लगते हैं। सागर, दमोह, जबलपुर, मण्डला और सिवनी। भूमि पार्वत्य और जलवायु अनुकूल है। लोकसंख्या कोई २०८१४८६ होगी। इस विभाग ११ नगर और ८५६१ गांव बसे हैं।

२ मध्यप्रान्तके जबलपुर डिविजनका जिला। यह अक्षा० २२° ४८´ एवं २३° ८´ उ० और देशा० ७८° २१´ तथा ८०° ५८ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३९१२ वर्गमील है। इसके उत्तर तथा पूर्व मैहर, पन्ना एवं रीवां राज्य, पश्चिम दमोह जिला और दक्षिण नरसिंहपुर, सिवनी तथा मण्डला पड़ता है। दक्षिण-पूर्वमें नर्मदा नदी आ गई है। खुले मैदानके उत्तर-पश्चिम विन्ध्य पर्वत और दक्षिण-पश्चिम सातपुरा पर्वतश्रेणी है। कङ्कर बहुत मिलता है। पत्थर भी कई प्रकारका होता है। म्यांगानीज, तांबा और लोहाकी खानि है। नासपाती और अननास अच्छे लगते हैं। जलवायु सुखद है।

पहले यहां कलचुरि राजपुत्रोंका राज्य था। सम्भवतः १२वीं शताब्दीसे रीवां या बघेलखण्डका अभ्युदय होने पर उनका बल घटा। कोई १५वीं शताब्दीके समय गोंड़ (गढ़मण्डल) वंशका राजत्व हुआ। १७८१ ई०में गोंड़ वंशके पराभूत होने पर जबलपुर मराठोंके सागर प्रान्तमें लगता था। १७९८ ई०में यह नागपुरके भोंसला राजाओंको दिया गया और १८१८ ई०में ब्रटिश गवर्मेण्टने पाया।

जबलपुर जिलेकी लोकसंख्या प्रायः ६८०५८५ है। इसमें ३ नगर और २२९८ ग्राम बसे हैं। ब्राह्मणोंकी जमीन्दारी ज्यादा है। पशु बहुत अच्छे नहीं होते। कच्चे लोहेकी कई जगह खान हैं। इसे भट्ठियोंमें गला गला कर २॥) मन बेचते हैं। चूनेका पत्थर भी मिलता है। पत्थरके गहने बनाते हैं। पहले सूती कपड़ा हाथसे खूब बुना जाता था। औरतोंकी रङ्गीन साड़ियां आज भी हाथसे बुनते हैं। गेहूं और तेलहनकी बड़ी रपतनी है। सन, घी और जङ्गली चीजें भी बाहर भेजी जाती हैं। बम्बईसे कलकत्ताको जानेवाली बड़ी रेलवे लाइन जिलेके बीचसे निकलती और ८३ मील लम्बी पड़ती है। सिवा इसके ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे और बङ्गाल नागपुर रेलवे भी है। १०८ मील पक्की और ३०१ मील कच्ची सड़क लगी है। मालगुजारी कोई ८७७०००) रु० है।

३ मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलेकी दक्षिण तहसील। यह अक्षा० २२° ४९´ उ० तथा २३° ३२´ और देशा० ७९° २१´ एवं २०° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १५१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३३२४८९ है। इसमें एक नगर और १०७६ गांव बसे हैं। मालगुजारी ४५४०००) और सेस ५१०००) रु० हैं।

४ मध्यप्रदेशके जबलपुर डिविजन, जिले और तहसीलका सदर। यह अक्षा० २३° १०´ उ० और देशा० ७९°

५७°पू०में अवस्थित है। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला और इष्ट इण्डियन दोनों रेलें यहां आ कर मिली हैं। नगरकी चारों ओर छोटे छोटे पहाड़ हैं। नर्मदा ६ मील दूर पड़ती है। सड़कें चौड़ी और अच्छी हैं। आस पास बहुतसे तालाब और बाग बन गये हैं। यह नगर समुद्रपृष्ठसे १३०६ फुट ऊंचा है। जलवायु शीतल है। जनसंख्या कोई ८०३१६ होगी। १७८१ ई० को मराठोंने जबलपुर अपना सदर बनाया। किसी प्राचीन ताम्रफलकमें इसका नाम जबालिपत्तन लिखा है। १८६४ ई०में मुनिसपालिटी हुई और १८८३ ई०को पानीकी कल लगी। १८६१ ई०में यह सदर बना था। छावनीकी आबादी १३१५७ है। १८०५ ई०में तोपगाड़ीका कारखाना खुली (Gun-carriage factory)

यहां व्यवसाय और वाणिज्यका प्राधान्य है। कपास ओटने, कपड़ा बुनने आदिके मिल हैं। मशीके वर्तनों, बर्फ, तेल और आटेकी कलें चलती हैं। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेका कारखाना है। कपड़ा बुनने, पीतलका सामान बनाने और पत्थर काटनेका काम हाथसे भी होता है। पत्थरकी कई चीजें, जैसे मूर्तियां, बटन दूसरे गहने आदि बनती हैं। अंगरेजी, हिन्दी और उर्दूके छापेखाने हैं। अंगरेजी और हिन्दी अखबार निकलते हैं।

यह केवल जिलेका ही नहीं, वरन् कमिश्नर, डिविजनल जज, जंगलोंके कनजरवेटर सुपरिण्टेण्डिङ्ग इञ्जीनियर आबपाशीके इञ्जीनियर, टेलीग्राफके सुपरिण्टेण्डेण्ट, और स्कूलोंके इन्सपेक्टरका भी सदर है।

ज़बह (फा० पु०) हिंसा, कतल।

जबड़ा (हिं० पु०) साहस, हिम्मत, जीवट।

ज़बां (फा० स्त्री०) जबान देखो।

ज़बान (फा० स्त्री०) १ जिह्वा, जीभ। २ शब्द, बात, बोल। ३ प्रतिज्ञा, वादा, कौल। ४ भाषा, बोल चाल।

ज़बानदराज (फा० वि०) १ जो बहुत धृष्टतासे अनुचित बातें करता हो। २ जो अपनी झूठी बड़ाई करता हो, शेखी या डींग हांकनेवाला।

ज़बानदराजी (फा० स्त्री०) धृष्टता, ढिठाई, गुस्ताखी।

ज़बानबन्दी (फा० स्त्री०) १ लिखा जानेवाला इजहार। २ मौन, चुप्पी।

ज़बानी (हिं० वि०) मौखिक, जो सिर्फ जबानसे कहा जाय।

जबाला (सं० स्त्री०) सत्यकाम ऋषिकी माता। "सत्यकामोह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति।" (छान्दोग्यउप०) सत्य कामने ब्रह्मचर्य व्रत अवलम्बन करनेके लिए मातासे अपना गोत्र पूछा। जबालाने उत्तर दिया— 'मैंने यौवन अवस्थामें बहुतोंकी परिचर्या कर तुम्हें पाया है, इसलिए तुम किस गोत्रके हो, सो मुझे नहीं मालूम—तुम्हें मेरे नामानुसार 'जाबाला' नाम ग्रहण करना चाहिये।"

जबून (तु० वि०) निकृष्ट, बुरा, खराब, निकम्मा।

ज़ब्त (अ० पु०) १ अधिकारी या राज्य द्वारा दंड स्वरूप किसी अपराधीकी संपत्तिका हरण। २ कोई वस्तु किसी दूसरेके अधिकारसे ले लेना।

ज़ब्ती (अ० स्त्री०) ज़ब्त।

जब्बरखाद—विपाशाकी शाखा चक्किननदीकी एक उपनदी। इसके किनारे नूरपुर नगर अवस्थित है।

जब्र (अ० पु०) कठोर व्यवहार, सख्ती, ज्यादती।

जब्रन (अ० क्रि० वि०) बलात्, बलपूर्वक, जबरदस्तीसे।

जभन (सं० क्ली०) जभ-ल्युट्। १ मैथुन, स्त्रीप्रसङ्ग। २ मैथुन द्वारा घर्षण।

जभ्य (सं० पु०) जभ-यत्। शस्यका अनिष्टकारी कीट, एक प्रकारका कीड़ा जो धानको नुकसान पहुंचाता है।

जम (हिं० पु०) यम देखो।

जमई (फा० वि०) जमा संबंधी, जो जमा हो, नगद।

जमक (हिं० पु०) यमक देखो।

जमक—बम्बई प्रान्तमें काठियावाड़का एक छोटा देशी राज्य। लोकसंख्या छ सौसे ज्यादा है। सालाना आमदनी १५०००) रु० है, जिनमेंसे १८५) रु० गायकवाड़को करस्वरूप देना पड़ता है।

जमखण्डी—१ बम्बई प्रान्तके कोल्हापुर तथा दक्षिण मराठा देशकी पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० १६°२६´ तथा १६°४७´ उ० और देशा ७५°७´ एवं ७५°३७´ पू०के मध्य अवस्थित है। पेशवाने पटवर्धन वंशके किसी व्यक्तिको उक्त राज्य प्रदान किया था। १८०८ ई०को यह दो भागोंमें विभक्त हुआ। उसमें एक

भाग उत्तराधिकारोके अभावसे अंगरेजी राज्यमें मिल गया। इसका वर्तमान क्षेत्रफल ५२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०५३४७ है। इसमें ८ नगर और ७८ ग्राम हैं। यहां एक मृदु प्रस्तर पाया जाता है। मोटा सूती कपड़ा और कम्बल बनाते हैं। राजा ब्राह्मण हैं और दक्षिण महाराष्ट्र प्रदेशमें प्रथम श्रेणीके सरदार समझे जाते हैं उन्हें गोद लेनेको सनद मिली है। आय प्रायः ५॥ लाख है। इसमें ६ म्युनिसपालिटियां हैं।

२ बम्बई प्रान्तके जमखण्डी राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० १६° ३०´ उ० और देशा० ७५° २२´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १३०२९ है। यहां ५०० करघे चलते हैं। रेशमी कपड़ेकी भी बड़ी तिजारत है। प्रति वर्ष ६ दिन तक उमारामेश्वरका मेला लगा रहता है।

जमघट (हिं० पु०) मनुष्योंकी भीड़, ठट्ट, जमावड़ा।

जमज (सं० त्रि०) यमज-जुड़वां। यमज, यमजात।

जमजोहरा (हिं० पु०) जाड़ेके दिनोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पक्षी। यह उत्तरपश्चिममें पाया जाता है। गरम ऋतु आने पर यह फारस और तुर्किस्तानको चला जाता है। इसकी लम्बाई लगभग एक बालिश्तकी होती है। जैसे जैसे ऋतु बदलती जाती है वैसे वैसे इसके शरीरका रंग भी बदला जाता है।

जमडाढ (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका अस्त्र। यह कटारीकी तरह होता है। इसकी नोक बहुत तेज और आगेकी ओर झुकी रहती है। समय आने पर इसे शत्रुके शरीरमें भोंकते हैं, जमधर।

जमदग्नि (सं० पु०) एक वैदिक ऋषि। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व आदि सभी वेदोंमें इसका परिचय मिलता है। (ऋक् ३।६२।१८, शुक्लयजुः ३।६२, अथर्व ४।२९।३) सर्वानुक्रमणिकाके मतसे—इन्होंने बहुतसे ऋक् प्रकट किये थे। आश्वलायनश्रौतसूत्रमें भृगुवंशीय बतलाये गये हैं। (आश्व० श्रौ० १२।१०) ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें विश्वामित्रके साथ ये भी वशिष्ठके विपक्षरूपमें वर्णित हुए हैं। (ऋक १०।१६७।४,७।१०१।३) और ऐतरेय ब्राह्मणमें (७।१६) यह लिखा है कि, नरमेध यज्ञके समय विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु और वशिष्ठ ब्रह्म पद पर नियुक्त थे। महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण आदिसे जमदग्निका इस प्रकार परिचय मिला है—

ये महर्षि ऋचीकके पुत्र थे। ऋचीक देखो। ये कान्यकुब्जराजकी कन्या सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। सत्यवती पतिव्रता थीं उनके प्रति सन्तुष्ट हो कर महर्षि ऋचीकने सत्यवती और उनकी माताके लिये दो चरु बना कर कहा—"तुम ऋतुस्नान करनेके उपरान्त उदुम्बर वृक्षको आलिङ्गन कर इस चरुको, तथा तुम्हारी माता अश्वत्थ वृक्षको आलिङ्गन कर दूसरे चरुको ग्रहण करें; तो निश्चयसे तुम दोनों पुत्रवती हो जाओगी।" इस पर सत्यवती चरु ले कर माताके पास गईं और उनसे उन्होंने सब बात खोल कर कह दी। उनकी माताने उत्कृष्ट पुत्र पानेके लिए सत्यवतीको वृक्ष और चरु बदलनेके लिए अनुरोध किया, सत्यवती माके अनुरोधको टाल न सकीं और वे भी इस बातसे सहमत हो गईं। यथासमय दोनों गर्भवती हुईं। ऋचीकने पत्नीके गर्भलक्षण देख कर कहा—"मुझे मालूम होता है कि, तुम लोगोंने चरु और वृक्ष बदल लिए हैं। मैंने चरु बनाते समय इस बातका ध्यान रक्खा था कि, जिससे तुम्हारे गर्भसे विश्वविख्यात ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण और तुम्हारी माताके गर्भसे महाबल पराक्रान्त क्षत्रिय जन्मग्रहण करे। अब उसका विपर्यय होनेसे मालूम होता है कि, तुम्हारे गर्भसे उग्रकर्मा क्षत्रिय और तुम्हारी माताके गर्भसे श्रेष्ठतम ब्राह्मणका जन्म होगा।" यह सुन कर सत्यवती बहुतही लज्जित हुईं और पतिके पैरों पड़ कहने लगी—"मेरे प्रति प्रसन्न हों, मैं चाहती हूं कि मेरा पुत्र उग्र क्षत्रिय न हो, वरन् पौत्र क्षत्रिय हो तो कुछ क्षति नहीं।" ऋचीकने ऐसा ही मञ्जूर कर लिया। यथासमय सत्यवतीने जमदग्निको और उनकी माता (गाधिराजपत्नी)ने विश्वामित्रको प्रसव किया। पिताके प्रभावसे यद्यपि जमदग्नि क्षत्रिय न हुए, किन्तु तो भी वे सर्वदा क्षत्रियोचित शर-क्रीड़ामें अनुरक्त रहते थे। छत्र देखो। इन्होंने प्रसेनजित्-राजकन्या रेणुकाके साथ विवाह किया था, रेणुकाके गर्भसे इनके रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम ये पांच पुत्र जन्मे। ऋचीकके कथनानुसार परशुराम क्षत्रियधर्मा हुए थे।

एक दिन महर्षि जमदग्नि रेणुकाको व्यभिचार दोषसे दूषित जान कर रुमण्वान् आदिको मातृवध करनेके लिए आज्ञा दी, किन्तु परशुरामके सिवा कोई भी मातृवध करनेके लिए राजी न हुए, इस पर रुमण्वान् आदि पितृकोपसे जड़त्वको प्राप्त हुए। परशुरामने पिताका आदेश पाते ही कुठाराघातसे माताको मार डाला। इससे जमदग्निने राम पर सन्तुष्ट हो कर उनको वर मांगनेके लिए कहा। परशुरामने वर मांगा कि—"मेरी माता पापमुक्त और पुनर्जीवित हो तथा मैं सबका अजेय होऊं।" इस पर जमदग्निकी कृपासे रेणुका फिर जी गई और रुमण्वान् आदिका भी जड़त्व दूर हो गया।

किसी समय हैहयराज कार्त्तवीर्यार्जुन जमदग्निके आश्रममें आये, उस समय आश्रममें जमदग्निके सिवा और कोई भी न था। इसी मौके पर हैहयराज इनकी गाय चुरा कर चलते बने। पीछे परशुराम पितासे कार्त्त-वीर्यके आचरणकी बात सुन कर बहुत ही क्रुद्ध हुए और परशु द्वारा उन्होंने कार्त्तवीर्यकी सहस्र बाहु काट दीं। कार्त्तवीर्यके पुत्रोंने इसका बदला लेनेके लिए परशुरामकी अनुपस्थितिमें आश्रममें जा कर जमदग्निको मार डाला। इसीलिए परशुरामने २१ बार पृथिवीको निःक्षत्रिय किया था।

जमदग्नि भी गोत्रकारक ऋषियोंमेंसे एक हैं।

"जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगोतमाः।
वशिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः॥" (मनु)

रेणुका और परशुराम देखो।

जमधर (हिं॰ पु॰) १ जमडाढ़ नामका हथियार। २ एक प्रकारका बादामी कागज।

जमन (सं॰ क्ली॰) १ भोजन। २ खाद्यद्रव्य।

जमन (हिं॰ पु॰) यवन देखो।

जमना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी तरल पदार्थका गाढ़ा होना। २ एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें दृढ़तापूर्वक बैठ जाना। ३ एकत्र होना, इकट्ठा होना, जमा होना। ४ अच्छा प्रहार होना, खूब चोट पड़ना। ५ घोड़ेका बहुत ठमक ठमक कर चलना। ६ हाथसे होनेवाले कामका पूरा पूरा अभ्यास होना। जैसे—अब तो तुम्हारा हाथ ठीक जम गया है। ७ बहुतसे आदमियोंके सामने किसी कामका उत्तमतापूर्वक होना। ८ सर्वसाधारणसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी कामका अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। ९ उत्पन्न होना, उपजना, उगना। (पु॰) १० वह घास जो पहली वर्षाके बाद खेतोंमें उपजती है।

जमनिका (हिं॰ स्त्री॰) १ जवनिका, परदा। २ मेवार, काई।

जमनोत्री (यमुनोत्तरी)–युक्तप्रदेशके टेहरी राज्यका मन्दिर। यह अक्षा॰ ३१° १´ उ॰ और देशा॰ ७८° २८´ पू॰में यमुना नदीके उद्गमस्थलसे ४ मील नीचे अवस्थित है। जमनोत्री बन्दरपुंछ पर्वतके पश्चिम पार्श्वमें समुद्रपृष्ठसे १०७३१ फुट ऊंचे है। मन्दिर छोटा और काठका बना है। इसमें यमुनाकी मूर्ति प्रतिष्ठित है पास ही उष्ण जलके निर्झर हैं। प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतुमें तीर्थयात्री जमनोत्री जाते हैं।

जमनौता (हिं॰ पु॰) किसी मनुष्यकी जमानत करनेके बदलेमें दी जानेवाली रकम जो जमानत करनेवालेको दी जाती है। मुसलमानी राज्यके समय इस तरहकी रकम देनेकी रिवाज चालू थी। यह रकम करीब ५) रु॰ सैकड़ेके हिसाबसे दी जाती थी।

जमपाल चण्डाल—एक अहिंसाणुव्रतका पालन करने-वाला दृढ़प्रतिज्ञ चाण्डाल। जैन पुराणग्रन्थोंमें इसकी कथा इस प्रकार लिखी है –

सुरम्य देशके अन्तर्गत पोदनपुर नगरमें राजा महा-बल राज्य करते थे। किसी समय वहां हैजेकी बीमारी फैली और प्रजा अत्यन्त कष्ट पाने लगी। राजाको मालूम होते ही उन्होंने शहरमें मनादी करवा दी कि, अष्टाह्निका (कार्त्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ शुक्ला अष्टमीसे पूर्णिमा तक पाला जानेवाला एक व्रत)-के दिनोंमें कोई भी जीवहिंसा न करे। परन्तु राजपुत्र बल-कुमारको मांस खानेकी इतनी चाट पड़ गई थी कि वह अष्टाह्निकाके दिनों भी न रह सका। एक बगीचेमें जा कर गुप्त रीतिसे उसने अपना काम किया, पर तो भी एक सिपाहीने उसकी कार्रवाई देख ली। जब राजा को मालूम हुआ कि मेरे ही पुत्रने राजाज्ञाकी परवाह न कर एक मेढ़ेकी हत्या की है, तब कोतवालको बुला

कर उन्होंने कहा—"उस पापीने एक तो जीवहत्या की और दूसरे मेरी आज्ञा नहीं मानी, इसलिए उसको फांसीका दण्ड दिया जाय।" बलकुमार तुरन्त ही पकड़ा गया। उस दिन चतुर्दशी थी, तो भी वह फांसीके स्थान पर पहुंचाया गया। उधर जमपालको बुलानेके लिए सिपाही दौड़ा गया।

जमपालने चण्डाल हो कर भी मुनिके समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि, "चतुर्दशीके दिन मैं जीव हिंसा न करूंगा।" इसलिए वह दूसरे ही सिपाहीको आते देख घरमें छिप गया और स्त्रीसे उसने कह दिया कि "सिपाही अगर मुझे ढूंढ़े तो कह देना कि वे दूसरे गांव गये हैं।" स्त्रीने ऐसा ही किया। सिपाही कहने लगा—"यदि आज वह घर होता तो उसे राजपुत्रके सब गहने और कपड़े मिलते।" चाण्डालकी स्त्री ठहरी, उससे अपना लोभ न सम्हलाया गया। वह हाथसे तो पतिकी ओर इशारा करती रही और मुंहसे कहती गई कि 'वे तो गांवको गये हैं।' सिपाही समझ गया। उसने घरमें घुस कर चण्डालको पकड़ लिया। जमपालने कहा, "आज चतुर्दशी है, मैं जीवहिंसा नहीं करूंगा।" आखिर सिपाही उसे राजके पास ले गया।

राजा तो बलकुमार पर क्रुद्ध थे ही, दूसरे चण्डालका उत्तर सुन कर और भी आगबबूला हो उठे। उन्होंने आदेश दिया कि, "इन दोनोंको समुद्रमें डाल दो, जिससे मगर मच्छोंका पेट भरे।" राजाज्ञा कार्यमें परिणत हुई। दोनोंको एकत्र बांध कर समुद्रमें डाल दिया गया। परन्तु जमपालके पुण्यके प्रभावसे जलदेवताने उसकी रक्षा की, साथ ही राजपुत्रकी जान बच गई। जलदेवताने मणिमण्डित नौकामें रत्नजड़ित सिंहासन पर जमपाल चाण्डालको बिठाया और राजपुत्रके द्वारा उस पर चमर ढराया। ऊपरसे अन्य देवगण "अहिंसाव्रतको धन्य है" कहते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। यह देख सब चकित हुए और राजा भी चाण्डालकी प्रशंसा करने लगे। चाण्डालका हृदय भी धर्मरसमें गोते लगाने लगा। उसने अपना पेशा छोड़ दिया। वह सम्यक्त्व सहित पञ्चअणुव्रत और सप्तशीलव्रत धारणके श्रावक हो गया। अहिंसाव्रतका प्रभाव देख कर नगरवासी स्त्री पुरुषोंने भी अहिंसा आदि पांच अणुव्रत धारण किये। जैन शास्त्रोंमें अहिंसाव्रतके प्रभाव दिखानेके लिए यत्र तत्र जमपाल चाण्डालकी कथाका उल्लेख मिलता है।

जमर—बम्बई प्रान्तमें काठियावाड़का एक क्षुद्र राज्य। लोकसंख्या प्रायः तीन सौ है और वार्षिक आमदनी ३८९०) रु० है। इसमेंसे वृटिश गवर्मेण्टको ४६४) रु० कर स्वरूप देना पड़ता है।

जमरूद (हिं० पु०) एक प्रकारका फल।

जमरूद—उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशके पेशावर जिलेके उस ओर एक किला और छावनी। यह अक्षा० ३४° ६' उ० और देशा० ७१° २३' पू०में खैबर घाटीके मुहाने पर पेशावरसे १०½ मील पश्चिम पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः १८४८ है। १८३६ ई०में पेशावरके सिख सरदार हरिसिंहने यहां किलाबन्दी की थी। आजकल यहां खैबर राइफल्स फौज रहती है और चुङ्गी वसूल होती है। जमरूदमें एक बड़ी सराय है। पेशावरको नार्थ वेष्टर्न रेलवेकी एक शाखा लगी है।

जमवट (हिं० स्त्री०) लकड़ीका गोल चक्कर। यह पहिएके आकारका होता है और कुआं बनानेमें भगाड़में रखा जाता है। इसके ऊपर कोठीकी जोड़ाई होती है।

जमशेद—१ पारस्य देशके प्रसिद्ध पिशदादवंशीय ४र्थ नरपति। वेलि आदिके मतसे ये ईसाके जन्मसे तीन हजार वर्ष पहले जन्मे थे, किन्तु वर्त्तमान ऐतिहासिकोंका विश्वास है कि, ये ईसासे ८०० वर्ष पहले मौजूद थे। इन्होंने प्रसिद्ध पार्सिपोलिस नगरीकी स्थापना की थी, जो अब भी इस्तर और तख्त जमशेदके नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन्हीं जमशेदसे पारस्यमें सौर वर्ष प्रारम्भ हुआ है। सूर्य मेषराशिमें जिस दिन प्रवेश करता है, उसी दिनसे यह वर्ष प्रारम्भ होता है। इस नव वर्षके उपलक्षमें महा उत्सव होता था।

फर्दोसिके शाहनामेमें लिखा है—इन्हीं जमशेदके समयसे ही मानव जातिमें सभ्यताका प्रचार हुआ है। सिरीयराज जुहाकने इनका राज्य आक्रमण किया था। दुर्भाग्यवश जमशेद रणमें पीठ दिखा कर सीसस्तान,

भारत, चीन आदि नाना देशोंमें भागते फिरे। जुहाकके कर्मचारियोंने भी इनका पीछा न छोड़ा, आखिरकार ये कैद कर लिए गये। कैदी अवस्थामें इनको सिरीयराजके पास भेजा गया। अन्तमें सिरीयराजके आदेशानुसार इन्हें दो नावोंके बीच रख कर आरेसे चीर दिया गया। विध्वस्त पार्शिपोलिस् नगरमें पत्थरके ऊपर जो राजसभाका चित्र खुदा हुआ है, वह बहुतोंके मतसे जमशेदके नौरोज उत्सवका ज्ञापक है। जमशेदके विषयमें पारस्यमें नाना प्रकारके अलौकिक उपाख्यान प्रचलित हैं।

२ मुसलमान लोग डेभिदके पुत्र सलोमनको भी जमशेद कहा करते हैं।

जमशेद-कुतुब-शाह—गोलकुण्डाधिपति कुलि-कुतुबशाहके पुत्र। पिताकी मृत्युके उपरान्त १५४७ ई०के सेप्टेम्बर मासमें ये सिंहासन पर बैठे थे। १५५० ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

जमशेदी—भारतके पश्चिम प्रान्तमें सुर्घव नदीके किनारे रहनेवाली पारसियोंकी एक जाति। ये लोग अपनेको पारस्यराज जमशेदसे उत्पन्न बताते हैं। इनका आचार-व्यवहार और रीति-नीति तुर्कियोंके समान है। ये एक जगह रहना पसन्द नहीं करते। अब्बाकुली खाँने इन लोगोंको पारस्यसे भगा दिया था। ये खिवामें आ कर १२ वर्ष रहे, पीछे तुर्कियोंके अभ्युदयके समय ये फिर अपनी पैत्रिक जन्मभूमि सुर्घवमें चले आये।

ये लोग तातारोंकी तरह सरकण्डेके ऊपर कम्बल घेर कर तिरछा तंबू बना कर रहते हैं। इनका पहनावा और खान पान सब तुर्कियों जैसा है। ये घोड़े पर सवार होने और युद्ध करनेमें बड़े चतुर होते हैं। ये आदमी पकड़नेके काममें बड़े निपुण हैं। अब भी ये लोग प्राचीन पारसियोंकी तरह अग्निपूजा करते और पूर्वद्वारी बनाते हैं।

जमा (अ० वि०) १ एकत्र, इकट्ठा। २ जो जमानतको तौर पर वा किसी खातेमें रक्खा गया हो। (स्त्री०) ३ मूलधन, पूंजी। ४ धन, रुपया पैसा। ५ भूमिकर, मालगुजारी, लगान। ६ सङ्कलन, जोड़। ७ बही आदिका वह हिस्सा जिसमें आए हुए माल वा धन आदिका ब्योरा लिखा हो।

जमाई (हिं० पु०) १ जामाता, दामाद, जँवाई। (स्त्री०) २ जमनेकी क्रिया। ३ जमनेका भाव। ४ जमानेकी क्रिया। ५ जमानेका भाव। ६ जमानेकी मजदूरी।

जमाखर्च (फा० पु०) आय और व्यय, आमद और खर्च।

जमाजथा (हिं० स्त्री०) धनसंपत्ति, नगदी और माल।

जमात (जमाअत, अ० स्त्री०) १ श्रेणी, कक्षा, दरजा। २ बहुतसे मनुष्योंका समूह या गरोह।

जमात—बहुतसे संन्यासी मिल कर जो एक जगह रहते या तीर्थ पर्यटन करते हैं, उस दलको जमात कहते हैं। इनमें कार्यनिर्वाहके लिए महन्त, पुजारी, कोठारी, भण्डारी, कारबारी, हिसाबी, कोतवाल, चौकीदार और तुरीवाला आदि कर्मचारी नियुक्त रहते हैं। इनमेंसे महन्त समस्त विषयोंमें अध्यक्षका काम करते हैं। पुजारी विधिके अनुसार दत्तात्रेयकी चरण-पादुकाकी पूजा करते हैं। कोठारी खाने-पीनेकी चीजोंको सम्हालते हैं। पाचकको भण्डारी कहते हैं, उनके ऊपर राँधने और परोसनेका भार रहता है। कारबारी अर्थात् कोषाध्यक्ष, ये जमातके धनकी रक्षा करते हैं तथा आवश्यकतानुसार खर्चके लिए रुपया पैसा दिया करते हैं। हिसाबी रुपयोंका हिसाब रखते हैं। कोतवाल महन्तकी आज्ञाके अनुसार कर्मचारियोंको नियुक्त करते और उनके कामकी देखभाल रखते हैं। चौकीदार जमातके तैजस, निसान, डङ्का आदि चीजोंकी रखवाली करते हैं। तुरीवाले तुरी बजा कर जमातका गौरव बढ़ाते हैं। इन समस्त कार्योंमें सिर्फ संन्यासी ही नियुक्त किये जाते हैं। कभी कभी योगी परमहंस आदि अन्यान्य शैव उदासीन भी इस दलमें शामिल हो दलकी पुष्टि किया करते हैं।

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी, गोदावरी आदि तीर्थ-स्थानोंमें कभी कभी बहुतसे जमात इकट्ठे हुआ करते हैं। बड़ोदा, नागर आदि स्थानोंमें बड़े बड़े जमात हैं। उस जगहके हिन्दू राजा उनसे आनुकूल्य रखते हैं।

जमातके किसी भी संन्यासीकी मृत्यु होने पर, वे उनकी दाह क्रिया नहीं करते; बल्कि मिट्टीमें गाड़ देते या पानीमें बहा देते हैं। इसको मृत्समाधि या जल-समाधि कहते हैं। इसके उपरान्त तीसरे दिन उसके उद्देश्यसे रोटभोग (घी, आटा और चीनी मिश्रित एक

प्रकारका चूर्ण पदार्थ) दिया जाता है तथा तेरहवें दिन पङ्गत और शङ्कढाल नामकी क्रिया की जाती है। रोठ-भोग और पङ्गत दिनमें, तथा शङ्कढाल रातमें किया जाता है। शङ्कढालमें खर्च ज्यादा होता है, इसलिए शङ्कढाल-क्रिया सबके लिए नहीं होती। सिर्फ ज्योतमार्गानुसारी संन्यासियोंके लिए ही शङ्कढाल-क्रिया की जाती है, दूसरोंके लिए नहीं। मृत व्यक्तिके कोई शिष्य या अनुशिष्य कुशपुत्तल बना कर शङ्कढाल-क्रियाका अनुष्ठान करते हैं तथा क्रिया-भूमिस्थ अन्यान्य संन्यासी मंत्रोच्चारण पूर्वक उस पुत्तलके ऊपर जलसेचन करते हैं।

जमातखाना—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पूना शहरमें अदीतवारी-पेंठमें इस्माइली मतावलम्बी शिया मुसल-मानोंका एक सुबृहत् उपासना-गृह। १७३० ई०में यह चन्दा उगाहकर बनवाया गया।

जमादार—१ विहार प्रान्तकी नुनिया जातिके चोभान विभागकी एक श्रेणी। २ देशीय सेनाविभागका एक कर्मचारी, इसका पद सूबेदारसे नीचे होता है। ३ पुलिसका एक कर्मचारी, इसका पद दरोगासे नीचे और हेड कानष्टेबलके ऊपर होता है। ४ शुल्क और अन्यान्य विभागका कोई एक कर्मचारी। ५ किसी किसी धनी गृहस्थके घरका कोई एक कर्मचारी, जो निम्नश्रेणी-के नौकरों पर कर्तृत्व चलाता और अस्तबलकी देख रेख करता है। ६ कुछ लोगोंका अधिनायक। ७ प्रेस या छापेखानेका वह कर्मचारी, जो फर्मा कसने और कागज छापने आदिका काम करता है।

जमादारी (अ० स्त्री०) १ जमादारका पद। १ जमा-दारका काम।

जमानत (अ० स्त्री०) जामिनी, वह उत्तरदायित्व जो किसी अपराधी मनुष्यके ठीक समय पर अदालतमें हाजिर होने, किसी कर्जदारके कर्ज अदा करने अथवा इसी तरहके किसी और कामके लिए अपने ऊपर ली जाती है, वह जिम्मेदारी जो जबानी किसी कागज़ पर लिख कर वा कुछ रुपये जमा करके ली जाती है।

जमानतनामा (हिं० पु०) वह कागज जो जमानत करनेवाला जमानतके प्रमाण-स्वरूप लिख देता है।

जमानती (हिं० पु०) वह जो जमानत करता हो, जमानत करनेवाला।

जमाना (हिं० क्रि०) १ किसी तरल पदार्थको गाढ़ा करना। २ एक पदार्थको दूसरे पदार्थमें मजबूतीसे बैठा देना। ३ प्रहार करना, चोट लगाना। ४ घोड़ेको ठुमक ठुमककी चालसे चलाना। ५ हाथसे होनेवाले कामका अभ्यास करना। ६ बहुतसे आदमियोंके सामने होनेवाला किसी कामका बहुत उत्तमतापूर्वक करना। ७ सर्वसाधारणसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी कामको उत्तमता पूर्वक चलाने योग्य बनाना। ८ उत्पन्न करना, उपजाना।

ज़माना (फा० पु०) १ काल, समय, वक्त। २ बहुत अधिक समय, मुद्दत। ३ सौभाग्यका समय, एकबालके दिन। ४ संसार, दुनिया, जगत्।

ज़मानासाज़ (फ़ा० वि०) जो अपना मतलब साधनेके लिये दूसरोंको प्रसन्न रखता हो।

ज़मानासाज़ी (फा० स्त्री०) अपना मतलब साधनेके लिये दूसरोंको प्रसन्न रखनेका काम।

जमाबन्दी—पटवारीके वह कागजात जिन पर आसा-मियोंके नाम और उनसे आई हुई लगानकी रकमें लिखी जाती हैं। मध्यप्रदेशमें—गवर्मेंटके प्राप्य राजस्व अथवा प्रजाओंकी मालगुजारीको तथा जुती हुई जमीनकी विवरण-तालिकाको जमाबन्दी कहते हैं। मन्द्राज और महिसुर प्रान्तमें प्रजाके साथ राजस्वके वार्षिक बन्दोवस्त करनेको जमाबन्दी कहते हैं।

कोड़ग प्रदेशमें जमीनका कर निर्द्धारित करके जो वार्षिक बन्दोवस्त किया जाता है, उसे जमाबन्दी कहते हैं। बम्बई प्रान्तमें—किसी जमींदारी, ग्राम वा जिलेका निर्द्धारित राजस्वका बन्दोवस्त, उसकी मालगुजारी और जुती हुई जमीनकी विवरण-तालिका अथवा प्रजाके साथ गवर्मेंटके प्राप्य राजस्वके बन्दोवस्तको जमाबन्दी कहते हैं।

जमामस्जिद—जुम्मामसजिद देखो।

जमामार (हिं० वि०) जो अनुचित रूपसे दूसरोंका धन दबा रखता है।

जमाल—हिन्दीके एक कवि।

जमाल उद्दीन्—हिन्दीके एक कवि। १५६८ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जमालखाँ—बादशाह शाहजहाँके एक सेनापति। दिल्लीमें हर साल खुशरोज नामका एक स्त्रियोंका मेला लगता था। इस मेलेमें बादशाहका परिवार तो खरीददार और शहरको तमाम उच्च महिलाएं बेचनेवालीं होती थीं। स्वयं बादशाह भी इस मेलेमें उपस्थित हो कर महिलाओंके पाससे चीजें खरीदते थे।

एकबार इस मेलेमें सम्राट् जहाँगीरके पुत्र शाहजहांने एक परमसुन्दरी महिलाके पास जा कर पूछा—"आपके पास कोई और चीज बेचनेको रही है या नहीं?" इस पर उस सुन्दरीने इन्हें एक साफ मिसरीकी डली दिखा कर कहा—"यह चीज बेचनेके लिए बची है, इसकी कीमत एक लाख रुपये है।" शाहजहांने उसी समय एक लाख रुपये दे कर उस मिसरीको डलीको खरीद लिया और उनकी बात-चीतसे खुश हो कर उन्हें नैश-भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। युवराजके निमन्त्रणकी वह उपेक्षा न कर सकीं। अनुरोध करनेसे उन्हें राजभवनमें तीन दिन लग गये। इसके उपरान्त जब वह घर गईं, तो उनके स्वामी जमालखाँने उन्हें पत्नी रूपसे ग्रहण नहीं किया। यह सुन शाहजहांने क्रुद्ध हो कर उन्हें हाथीके पैरतले दबानेका हुक्म दिया। जमालखांने पकड़े जानेके बाद अपनी प्रत्युत्पन्नमतित्वके प्रभावसे शाहजहांसे मिलनेकी प्रार्थना की। प्रार्थना मञ्जूर हुई। शाहजहांके सामने जा कर जमालखांने कहा-"युवराजने अनुग्रह कर आलिङ्गनपूर्वक जिस नारीका सम्मान बढ़ाया है, मैं किस तरह उनके साथ सहवास कर सकता हूं?" इस पर युवराजने खुश हो कर उन्हें आलिङ्गनपूर्वक दश हजार अश्वारोही सेनाका अधिनायक बना दिया। उक्त महिलाका नाम अर्जमन्द बानू था, येही शाहजहांकी अङ्कलक्ष्मी हो कर ममताज नामसे प्रसिद्ध हुई थीं।

ताजमहल देखो।

जमालगोटा (हिं० पु०) एक पौधा या पौधेका फल (Croton Tiglium)। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—जयपाल, सारक, रेचक, तिन्तिड़ीफल, दन्तीबीज, घण्टाबीज, मलद्रावि, बीजरेचन, जैपाल, कुम्भीबीज, कुम्भिनीबीज, घण्टाबीज निकुम्भबीज, शोधिनीबीज और चक्रदन्तीबीज। मराठी, नेपाली और गुजराती भाषामें भी इसे जमालगोटा कहते हैं। तामिल और मलयमें निवलम्, तैलगूमें नेपालबितुया, ब्रह्ममें कनको और अरबमें इसे बतू या हब्बुसूसलातीन कहते हैं। इसका अंग्रेजी नाम Purging Croton है।

इसका पेड़ १५से २० फुट तक ऊंचा होता है। यह भारतमें सर्वत्र और मलक्का ब्रह्म सिंहल आदि देशोंमें भी उपजता है। इसका फल देखनेमें नारङ्गीको तरहका और आकारमें सुपारी जैसा होता है। इस फलसे जुल्लाबकी भाँतिका कड़ुआ और कषाययुक्त एक प्रकारका तेल भी निकालता है। यह तेल बहुत ही तीक्ष्ण और दस्तावर होता है। इसकी कुछ बूंदें पेटमें पहुंचते ही पेट धुल कर साफ हो जाता है। इससे कठिन कोष्ठबद्ध, उदरी, संन्यास, पक्षाघात और तो क्या रोगी एक बूंद दवा भी नहीं लील सकता, उसके भी लगा देनेसे थोड़ी देर पीछे फायदा मालूम पड़ने लगता है। पहले यहांसे जमालगोटेका तेल विलायत भेजा जाता था। यहां आधा सेर तेल बनानेमें कुल ॥) आने पैसे खर्च होते थे; किन्तु विलायत जा कर यही तेल ५) में आधी छटाक बिकता था। इतने पर भी लोग जुआ चोरीसे मिलावटी तेल बेचते थे, आखिरकार विलायतमें इसका प्रचार बिलकुल बन्द हो गया। किसीके मतसे—इस पौधेकी नई लकड़ी और पत्तियोंसे भी थोड़ा बहुत तेल निकाला जा सकता है।

जमालगोटेका बीज या तेल बड़ी सावधानीसे व्यवहार किया जाता है, इसका रस चमड़े पर लगते ही वहाँ फलक पड़ जाते हैं। ठण्डसे कफ जमने पर छाती पर बाह्यप्रयोग करनेसे उसी समय यह ब्लिष्टरका काम करता है। बाह्यप्रयोगमें यह चर्मदाहकारी और अति उत्तेजक होता है। इसके तेलमें जलनिःसारक गुण विशेष है। जमालगोटे (फल)का छिलका किसीके मतसे जहरीला है। पहले हिन्दूचिकित्सक जमालगोटेका तेल व्यवहार करते थे या नहीं, इसका कुछ विशेष प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु यह निश्चित है कि, इसका फल दूधके साथ उबाल कर या कण्डे पर सुलगा कर व्यवहृत होता था।

जमालगोटा बहुत ही थोड़ा काममें लाना चाहिये।

क्यों कि, बहुतोंको नीम-हकीमों द्वारा ज्यादा जमालगोटा खा कर मरते देखा गया है।

वैद्यक मतसे इसके गुण—यह कटु, उष्ण, विरेचन, दीपन, क्रमि, कफ, आम और जठरामयनाशक है। (राजनि०) वर्त्तमानके किसी किसी चिकित्सकोंके मतसे ध्वजभङ्गरोगमें पुरुषाङ्ग पर जमालगोटेका प्रलेप लगानेसे बहुत समय उससे सुफल पाया जाता है। भयानक दमेकी बीमारीमें जमालगोटेका बीज दीपशिखामें सुलगा कर उसका धुआं नाकमें लेनेसे श्वास घटने लगता है। सिर दर्द या चक्षुरोगके प्रबल होने पर ललाट पर इसका प्रलेप देनेसे विशेष फायदा पड़ता है।

जमालगोपाल—हिन्दीके एक कवि। इनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। नीचे एक कविता उद्धृत की जाती है—

'ऐडत कहां नंदके ढोटा खोल गांठ कछु दे रे दे।
बाट घाटमें बोली ठोली रार न कीजे प्रात, कन्हैया
गरज पर तो दे रे दे॥
बिना बोहनी तोहे जान न देहौं मोल तोल कछु हे रे हे।
बिने जमाल गोपालजीके प्रभुको तिहारे दर्श मोहे जे रे जे॥

जमालपुर—१ बङ्गालके मैमनसिंह जिलेका उत्तर-पश्चिम सबडिविजन। यह अक्षा० २५° ४३´ एवं २५° २६´ उ० और देशा० ८९° ३६´ तथा ९०° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १२८९ वर्गमील है। भूमि पुलिनमयी और बहुसंख्यक नदी नालाओंसे छिन्न विच्छिन्न है। लोकसंख्या कोई ६७३३१८ होगी। इसमें २ नगर और १७४७ गांव हैं।

२ बङ्गाल मैमनसिंह जिलेके जमालपुर सबडिविजनका सदर। यह अक्षा० २४° ५६´ उ० और देशा० ८९° ५६´ पू०में प्राचीन ब्रह्मपुत्रके पश्चिम तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७८६५ है। १८६९ ई०में म्युनिसपालिटी हुई।

जमालपुर—बिहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका नगर। यह अक्षा० २५° १९´ उ० और देशा० ८६° ३०´ पू०में ईष्ट इण्डियन रेलवेकी लूप लाइन पर पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः १६३०२ है। जमालपुर ईष्ट इण्डियन रेलवेके लोकोमोटिव विभागका प्रधान स्थान है। इसमें बहुत बड़े बड़े कारखाने चलते हैं। १८८३ ई०में म्युनिसपालिटी हुई।

जमालाबाद—मन्द्राजके दक्षिण कनाड़ा जिलेकी एक टालू चटाना। यह अक्षा० १३° २´ उ० और देशा० ७५° १८´ पू०में अवस्थित है। १७८४ ई०में टीपू सुलतानने मङ्गलोरसे लौटने पर अपनी माता जमालबाईके नाम पर यहां किला बनवाया था और उसमें फौज रखी थी। १७९९ ई०में अंगरेजोंने उक्त दुर्ग अधिकार किया, फिर निकल भी गया। परन्तु १८०० ई०के जून मास किलेकी फौज आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुई। पुराना शहर नरसिंहअङ्गड़ी था।

जमाली—सेख जमाली मौलाना। दिल्ली-निवासी एक सुप्रसिद्ध पारसी कवि। सायर-उल्-आरिफिन् अर्थात् धार्मिक जीवनी नामक ग्रन्थ इन्होंका रचा हुआ है। पहले इनकी उपाधि जलाली थी, पीछे इन्होंने जमाली उपाधि ग्रहण की थी। बादशाह हुमायुनके शासनसमय १५३५ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी। प्राचीन दिल्लीमें इनका समाधिस्थान अब भी मौजूद है। सेख गदाई काम्बो नामके इनके पुत्र बैरामखांके अधीन बहुत दिनों तक युद्धकार्य किया था, आखिर ये भी १५६४ ई०में परलोक सिधारे।

जमाव (सं० स्त्री०) १ जमनेका भाव। २ जमानेका भाव।

जमावट (हिं० स्त्री०) जमनेका भाव।

जमावड़ा (हिं० पु०) भीड़, जत्था।

जमिकुन्त—हैदराबाद राज्यके करीमनगर जिलेका तालुक। इसका क्षेत्रफल ६२६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२१५१८ है। इसमें १५८ गांव हैं। जमिकुन्त सदर है। उसकी आबादी २६८७ है। मालगुजारी कोई ४ लाख होगी। पश्चिममें बहुत पहाड़ है। जङ्गल कहीं भी नहीं। चावलकी खेती बहुत होती है।

जमीकन्द (फा० पु०) सूरन, ओल।

जमींदार (अरबी जमीन्=भूमि, पारसी दार=अधिकारी) भूस्वधिकारी, भूमिका स्वामी, जमीनका मालिक।

भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें जमींदार शब्दका भिन्न भिन्न अर्थ होता है। जमींदार शब्दसे कहीं

भूस्वाधिकारी (Land-Lord), और कहीं सरकारी कर (टैक्स) वसूल करनेवाले किसी कर्मचारीका भी बोध होता है।

जमींदार शब्दका अर्थ भली भाँति समझना हो तो भूमि और उसके स्वत्वके सम्बन्धमें भी कुछ जानना आवश्यक है। भूमि किसकी सम्पत्ति है और उसका वास्तविक अधिकारी कौन है ?—पहले इसी प्रश्नकी मीमांसा करनी चाहिये। मनुका कहना है कि—

"पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः।"

(मनु ९।४४)

इससे तो यही बोध होता है कि, राजा ही भूमिका स्वत्वाधिकारी है, क्योंकि वह पृथिवीपति है। मनु फिर कहते हैं—

"स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्।" (मनुसं०९।४४)

शिकारियोंमें जो पहले मृगको शरविद्ध करता है, वह जिस तरह मृगको पाता है उसी तरह जो जङ्गल काट कर भूमिका उद्धार कर उसमें हल आदि जोतता है, भूमि उसीकी होती है। इस तरह राजा और किसान दोनों ही भूमिके अधिकारी हुए, प्रत्युत राजाको पैदा हुए अन्नमेंसे छठा अंश ही मिलता है और किसान अवशिष्ट सभी अनाजके अधिकारी होते हैं। पुरोहित, विद्यालयके शिक्षक, सूत्रधार, कुम्हार, धोबी, नाई, आदिको भी इसमेंसे यथायोग्य हिस्सा मिलता था इस तरह वास्तवमें देखा जाय, तो राजा, किसान और समिति इन सभीका भूमि पर थोड़ा बहुत अधिकार है।

समीपवर्त्ती ग्रामोंका कर तो राजधानीसे भी वसूल हो सकता था, किन्तु दूरवर्त्ती ग्रामोंके लिए राजा ग्रामाधिपति, दशग्रामाधिपति आदिको नियुक्त करते थे।

"ग्रामस्याधिपतिं कुर्यात् दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशंच सहस्रपतिमेव च।" (मनु ७।१५)

ग्रामाधिपति उस ग्रामकी भूमिको प्रजाओंमें विभक्त कर, फसलकी कटाईके समय उसका परिमाणका निश्चय करके राजाका प्राप्य अंश वसूल कर राजकोषमें भेज दिया करते थे। प्रजाओंमें किसी तरहका झगड़ा फिसाद होने पर उन्हें उसकी मीमांसा करनी पड़ती थी। इस कार्यके लिए उन्हें राजासे फसलका कुछ अंश मिलता था अथवा थोड़ी लाग दे कर वे भूमिका भोग कर सकते थे।

इस प्रकारसे भूमि विभक्त किये जानेके उपरान्त प्रजाओंका वह अंश कालान्तरमें उन्हींकी घरकी सम्पत्ति हो जाती थी। प्रजा उसके चारों ओर बाड़ लगा सकती थी, तथा दूसरेके खेतसे कोई कुछ चीज चुराता, तो वह दण्डनीय होता था।

"गृहं तड़ागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन्।
शतानि पंच दण्ड्यः स्यादज्ञानात् द्विशतो दमः॥"

(मनु० ८।२६४)

उस समय किसानोंके पास ज्यादा जमीन रहनेके कारण, वे खुद उसे जोत नहीं सकते थे। अपने लायक जमीन रख कर बाकी दूसरोंके जिम्मे बाँट दिया करते थे। दूसरे लोग लगान और भूस्वाधिकारीके प्राप्य अंशको देनेके लिए राजी हो कर जमीनका बन्दोबस्त कर लिया करते थे। इस तरह रैयतोंकी उत्पत्ति और समितिके रैयतों पर भूमिका स्वत्वाधिकार हुआ।

इसके पीछे भारतवर्ष जब मुसलमानोंके हस्तगत हुआ, तब प्राचीन प्रथाओंका बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया। हिन्दूगण पैत्रिक प्रथाओंको छोड़नेके लिए तयार न थे; किन्तु मुसलमानोंके उक्त प्रथाओंको जड़मूलसे उखाड़ कर फेंकनेके लिए, जीजानसे कोशिश करने पर उनका लोप हो गया।

मुसलमान शास्त्रोंके अनुसार शासनकर्त्ता ही भूमिका एकमात्र स्वत्वाधिकारी है। भारतवर्षके जिन जिन स्थानों पर मुसलमानोंने अपना अधिकार जमाया, उन प्रदेशोंकी भूमि पर शासनकर्त्ताका ही सत्व स्थापित हुआ। किसानोंसे जो कुछ वसूल किया जाता था, वह सब राजाका होता था और राजकोषमें भेज दिया जाता था। राजाके सिवा दूसरे किसीको भी उसमेंसे अंश नहीं मिलता था।

राजस्व या कर वसूल करनेके लिए बहुत तरहके कर्मचारी नियुक्त किये गये, जैसे—आमिल, जमींदार, तालुकदार इत्यादि। दूरके प्रदेशों पर शासन करनेके लिए एक एक सूबेदार नियुक्त किये गये। सूबेदार अपने अपने सूबामें लगान वसूल करने और छोटे छोटे मुकदमोंका फैसला करनेका काम करते थे। सूबेदारके

अधीनस्थ जमींदारगण रैयतोंसे लगान वसूल कर सूबेदारके पास और सूबेदार उसको राजाके पास भेज दिया करते थे। अपनी अपनी जमींदारीके प्रजाओंमें अगर कोई झगड़ा-टंटा होता, तो जमींदार उसका निबटेरा कर देते थे। इस तरह प्रजाकी रक्षा, जमींदारोंकी देखभाल और कर वसूल करनेका भार जमींदार पर ही रहता था। परन्तु भूमि पर उनका कोई भी अधिकार नहीं था।

अब प्रश्न यह है कि, किस पर इन सब कामोंका भार दिया जाता था, अर्थात् जमींदार पदका अधिकारी कौन होता था? बिहार, उड़ीसा और बङ्गालमें बहुत दिनों से मुसलमानोंका आधिपत्य विस्तृत था, इसलिए उक्त तीनों प्रान्तोंमें प्राचीन हिन्दू-प्रथाका सम्पूर्ण लोप हो गया है।

१७६५ ई०में १२ अगस्तको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी अंग्रेजोंके हाथ पहुंचने पर उन्हें कर वसूल करनेमें प्रवृत्त होना पड़ा। उन्होंने निश्चय किया कि राज्यकी उन्नति करनेके लिए भूमि पर जिनका स्वत्व और स्वार्थ है, उन्हींके साथ राजस्वका बन्दोबस्त कर लेना उचित है; क्योंकि इससे वे अपनी सम्पत्तिको उन्नति करनेकी कोशिश करेंगे। उस समय उक्त तीनों प्रदेशोंमें एक श्रेणीके व्यक्ति रहते थे जो 'जमींदार' नामसे मशहूर थे। उनकी उत्पत्ति और स्वार्थके विषयमें बड़ा वादानुवाद खड़ा हो गया। इस पर सर जर्ज कैम्बेलने उन लोगोंकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसी राय दी—

"मुसलमानोंके प्रबल आधिपत्यके समय राजा और प्रजामें कोई भी किसी तरहका मध्यस्वत्वाधिकारी नहीं था। परन्तु राज-शक्तिके क्रमिक ह्रासके साथ साथ बहुतसे क्षमताशाली हो गये। इस तरह प्राचीन हिन्दू-प्रथाकी भांति पुन: छोटे छोटे सामन्तराजोंका उदय हुआ। तभीसे आधुनिक 'जमींदार'-श्रेणीका अभ्युदय हुआ है। उनकी उत्पत्तिके निम्नलिखित कुछ कारण पेश किये जाते हैं—

(क) अति प्राचीन कुछ करद राजाओंकी मुसलमानी राज्यके समय क्रमशः रायतकी अवस्था प्राप्त हो गई, किन्तु वे अपने महालके शासन-कर्तृत्वसे सम्पूर्ण-तया वञ्चित न हुए। इस प्रकार वे स्वत्वाधिकारसे वञ्चित होने पर भी महालका शासन करते थे। सीमान्त प्रदेश और अर्द्धसभ्य वन्यप्रदेशोंमें इसी तरहकी जमींदारी देखनेमें आती है।

(ख) कुछ देशीय दलपति और अधिनायकोंने लूट मचाते हुए कालान्तरमें राज-सरकारके साथ बन्दोबस्त करके किसीने किसी प्रदेशमें और किसीने किसी प्रदेशमें, इस तरह स्थितिलाभ किया था। उन उन प्रदेशोंके ये जमींदार पलीगार आदि नामोंसे पुकारे गये। पीछे क्रमश: राजशक्तिके ह्रास होते रहनेसे इन लोगोंने भी प्रजा पर पूरा प्रभुत्व प्राप्त किया।

(ग) कभी कभी तहसीलदार, आमिल आदि कर वसूल करनेवालोंको उच्च क्षमता प्राप्त होने पर, वे अपने कार्यका किसी प्रकारका हिसाब न समझते थे और कालान्तरमें क्षमता प्राप्त होने पर वे राजाके साथ करका बन्दोबस्त करके जमींदार पदवी प्राप्त कर लेते थे।

(घ) कभी कभी इजारदार पुरुषानुक्रमसे इजारा महलको भोगते थे और कालान्तरमें वे जमींदार हो जाया करते थे।

इस तरह कर वसूल करनेवाले कर्मचारी धीरे धीरे जमींदार हो गये और हिन्दुओंके प्राय: सभी पद वंशानुगत होनेके कारण यह जमींदारीका पद भी कालक्रमसे वंशानुगत हो गया। (Cobden Club Essay 141, 142)

मुसलमानोंके अधिकारके समय बङ्गालके जमींदारोंके विषयमें फिल्ड साहबने इस प्रकार लिखा है—

"जिस समय बङ्गाल आदिकी दिवानी अंग्रेजोंके हाथ लगी, उस समय यहांके जमींदार कर वसूल करते थे और उसके लिए उन्हें जिम्मेदार होना पड़ता था। जहां जहां प्रभुत्वशाली गण्यमान्य व्यक्ति रहते थे, मुसलमान राजा और सूबेदार वहांके कर वसूल करनेका भार उन्हीं पर छोड़ दिया करते थे तथा जहां जहां इस प्रकारके प्रभुत्वशाली व्यक्तियोंका वास नहीं था, वहांके कर वसूल करनेका भार उन्हें मिलता था जो सम्राट्को सबसे ज्यादा नजर भेंट करते थे। किसी समय ऐसी

रीति प्रचलित थी कि, जमींदार पदवी पानेके लिए सम्राट्को नज़र भेंट करनी ही पड़ती थी ; और तो क्या, जो वंशानुक्रमसे जमींदार थे, उन्हें भी नज़र भेंट करनी पड़ती थी। कारण शासनकर्त्ताकी इच्छाके अनुसार कार्य न करनेसे जमींदारी छिन जानेका डर था और दूसरे लोग नज़र भेंट करके जमींदारी लेनेके लिए तैयार रहते थे। इसलिए लाभकी आशासे उन्हें नज़र भेंट करनी ही पड़ती थी।

उस समयके बङ्गालके युरोपीय राजस्व कर्मचारियोंके उपर्युक्त दोनों श्रेणियों पर लक्ष्य न देकर सब जमींदारोंको एक श्रेणीमें मिला देनेके कारण, वे जमींदार शब्दके यथार्थ अर्थके समझनेमें अक्षम थे। इसलिए जमींदारके स्वत्वके विषयमें नाना प्रकारके तर्क वितर्क होने लगे। जो प्रधानतः प्रथम श्रेणीके जमींदारों पर लक्ष्य देते थे, वे समझते थे कि जमींदारीका स्वत्व वंशानुगत है, पिताकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी उस पद पर अभिषिक्त होते हैं। परन्तु जो दूसरी श्रेणी पर लक्ष्य देते थे, वे सोचते थे कि जमींदारी पद राजकीय पदवी मात्र है, नकि वंशानुगत। किसी किसी जमींदारको पुरुषानुक्रमसे जमींदारीका भोग करते हुए देख कर, वे कहने लगते थे कि मुसलमानोंके समयमें भारत वर्षके सभी पद कालान्तरमें वंशानुगत हो जाया करते थे। (Field's Introduction to the Regulations 29, 30)

दोनोंही पक्षने अपने अपने मतकी पुष्टि करनेके लिए नाना प्रकारकी युक्तियां दिखाई हैं। परन्तु कोई भी युक्ति सम्पूर्ण भ्रमशून्य नहीं है। हारिङ्टन साहबने उस समयके जमींदारोंकी अवस्थाका इस प्रकार वर्णन किया है—

"जमींदार प्रजासे कर वसूल करते थे। जमींदारी स्वत्व वंशानुगत था, किन्तु सम्राट्की पेशकार और सूबेदारको नज़र देकर ही जमींदारी पद पर अधिष्ठित होना पड़ता था। जमींदार दान वा विक्रय करके अपनी जमींदारी दूसरेको दे सकते थे, पर इसके लिए उन्हें कभी कभी आज्ञा लेनी पड़ती थी। कर वसूल करनेका बन्दोबस्त जमींदारके साथ ही होता था, पर कभी कभी सरकार बहादुरकी इच्छाके अनुसार दूसरेसे भी बन्दोबस्त किया जाता था और जमींदारको कुछ समय वा हमेशाके लिए जागीर अथवा अल्तमघा दिया जाता था। निर्द्धारित राजस्वके अनुसार सूबेदारके किसी बाब वा सेस निरूपण करने पर जमींदारके भिन्न भिन्न परगना वा मौजा आदिमें उसका विभाग कर देनेकी क्षमता बङ्गालके जमींदारोंको (१८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें) दी जाती थी ; किन्तु कभी कभी, कौनसे परगनेका कैसा विभाग किया गया है, इस बातकी जांचके लिए और उनके ऊपर किये गये अत्याचारोंको दूर करनेके लिए सरकारकी तरफसे कर्मचारी भेजे जाते थे। राजस्वका बन्दोबस्त जितने दिनके लिए होता था, उतने दिनके भीतर निर्द्धारित राजस्वके सिवा जितनी ऊपरी आमदनी होती थी, वह जमींदारको मिलती थी ; परन्तु निर्द्धारित राजस्वका हिसाब उन्हें पूरा पूरा देना पड़ता था। जमींदारीके भीतर शान्तिभङ्ग न होने पावे, इस बातकी जिम्मेवारी जमींदार पर थी ; वे अपराधीको पकड़ कर किसी मुसलमान विचारकको सौंप सकते थे।" *

जमींदार शब्दका अर्थ पञ्चम रिपोर्टके ग्लसारीमें इस प्रकार लिखा है—

"मुसलमानोंके राजत्वकालमें राजस्व महालकी देख रेख, प्रजाकी सम्हाल और उत्पन्न शस्यसे मालगुजारी वसूल करनेका भार जमींदारों पर रहता था। उन्हें राजस्वमेंसे १०) रु० सैकड़ा कमीशन मिलता था ; कभी कभी भरणपोषणके लिए ननकार स्वरूप कुछ मौजोंके उत्पन्न शस्यमेंसे भी सरकारके हकका उन्हें दिया जाता था। कभी कभी नवीन व्यक्तिको जमींदारका पद दिया जाता था ; किन्तु सन्तोषजनक कार्य करनेसे एक ही व्यक्ति पर उसका भार रहता था और वह वंशानुगत हो जाता था। कालान्तरमें मुसलमानोंके आधिपत्यका ह्रास होनेके कारण जमींदार लोग अपनी जमींदारीका स्वत्व वंशानुगत ठहराने लगे और शासनकर्त्ताओंने भी उस पर हिरुक्ति न की। आखिरकार बङ्गालके जमींदार महालके तत्त्वावधायक पदसे क्रमशः महालके वंशानुगत स्वत्वके अधिकारी हो गये और अब

* Harington's Analysis.

तक जो राजस्व निर्दिष्ट न था, वह भी हमेशाके लिए निर्धारित हो गया।" (5 th Report)

इस तरह नाना प्रकारके वादानुवादके बाद सुचारु रूपसे कुछ भी मीमांसा न होनेके कारण अंग्रेजी राजस्व-कर्मचारियोंने यह निश्चय कर लिया है कि, मुसलमानोंके समयमें जमींदार शब्दका चाहे कुछ भी अर्थ क्यों न होता हो, जमींदारोंको इंग्लैण्डके भूम्यधिकारियोंकी तरह भूमिका स्वत्वाधिकारी बना देना चाहिये। इस निर्णयके अनुसार १७९० ई०में बङ्गालके तथा १७९१ ई०में बिहार और उड़ीसाके जमींदारोंके साथ दश वर्षके लिए राजस्वका बन्दोबस्त हो गया। इसको 'दशसाला-बन्दोबस्त' कहते हैं। इस बन्दोबस्तके अनुसार जमींदारोंको भूम्यधिकारी बनाया गया।

१७९३ ई०में २२ मार्चको यह बन्दोबस्त जब चिरस्थायी हो गया, तब कोर्ट आफ् डिरेक्टरोंके आदेशानुसार भारतवर्षके गवर्नर जनरल मार्कुइस आफ् कर्नवालिसने एक घोषणापत्र प्रकट कर दिया।

चिरस्थायी बन्दोबस्तके अनुसार जमींदारोंका कैसा स्वत्व और स्वार्थ कायम रहा, इस विषयमें हारिङ्टन साहबने ऐसा लिखा है—

"जमींदार जमींदारी महालके स्वत्वाधिकारी हैं जमींदारीका स्वत्व पुरुषानुक्रमसे उत्तराधिकारियोंको मिलेगा। जमींदार दान, विक्रय, उईल आदिके द्वारा अपनी जमींदारीको हस्तान्तरित कर सकेंगे। जमींदार महाल पर निर्धारित राजस्व नियमानुसार सरकारको देनेके लिए बाध्य होंगे। जमींदारीके अन्तर्गत प्रजावर्गसे अथवा भूमिके उत्कर्ष साधनके लिए कानूनके अनुसार जो कुछ उन्हें मिलेगा, उसमेंसे राजस्वके सिवा बाकीका हिस्सा उन्हींका रहेगा। भविष्यमें सरकार रायत वा अन्य प्रजाके स्वत्व और स्वार्थको रक्षा तथा अन्याना अत्याचार और उत्पीड़नसे उनकी रक्षाके लिए जो कानून बनेगा, वह जमींदारोंको मान्य होगा।

जमींदारी (फा० स्त्री०) जमींदारकी वह जमीन जिसका वह अधिकारी हो। २ जमींदार होनेकी अवस्था। ३ जमींदारका स्वत्व।

जमींदोज़ (फा० वि०) नष्ट भ्रष्ट, जो तहस नहस कर दिया गया हो।

जमीन (फा० स्त्री०) १ पृथिवी। २ पृथिवीके ऊपरका कठिन भाग, भूमि, धरती। ३ सतह, फर्श। ४ भूमिका, आयोजन, पेशबंदी।

जमीमा (अ० पु०) क्रोड़पत्र, अतिरिक्त पत्र, पूरक।

जमीरापात—मध्यप्रदेशके सरगुजा जिलेका एक पहाड़। यह अक्षा० २३° २२' एवं २३° २६' उ० और देशा० ८३° ३३' तथा ८३° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ३५०० फुट है। जमीरापात सरगुजा राज्यकी पूर्व सीमा है।

जमुई—१ बिहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका दक्षिण सबडिविजन। यह अक्षा० २४° २२' एवं २५° ७' उ० और देशा० ८५° ४६' तथा ८६° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १२७६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३७४८८८ है। इसमें ४६८ गांव बसे हैं। जङ्गल बहुत है।

२ बिहार प्रान्तके मुङ्गेरजिलेमें जमुई सबडिविजनका सदर। यह अक्षा० २४° ५५' उ० और देशा० ८६° १३' पू०में क्यूलनदीके वाम तट पर पड़ता है। ईष्ट इण्डियन रेलवेका जमुई ष्टेशन ४ मील दक्षिण पश्चिम है। लोकसंख्या कोई ४७४४ होगी। महुवा, तेल, घी, लाह, तेलहन, अनाज और गुड़की रफ्तनी होती है। गांवसे दक्षिणको इन्द्रपेगढ़ नामक एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष है।

जमुना (हिं० स्त्री०) यमुना देखो।

जमुना—१ पूर्व बङ्गाल और आसामकी एक नदी। (अक्षा० २५° ३८' उ० और देशा० ८८° ५४' पू०) यह दीनाजपुर जिलेसे (अक्षा० २५° ३८' उ० और देशा० ८८° ५४' पू०) से बगुड़ा जिलेकी दक्षिण सीमासे बहती हुई भवानीपुर ग्रामके निकट (अक्षा० २४° ३८' उ० और देशा० ८८° ५७' पू०) आतराईमें जा गिरती है। लंबाई ८८ मील है। नीचेकी बारहों मास और ऊपरकी वर्षा ऋतुमें ही नावें चलती हैं।

२ बङ्गालमें गङ्गाकी एक नदी। जसोर जिलेसे बालियाघाटीमें यह चौबीस परगना पहुंचती और दक्षिण-पूर्वको बहती हुई रायमङ्गलमें अपने आपको खाली करती है। इसमें बारहों महीने नावें चलती हैं। चौड़ाई १५०से ३००।४०० गज तक है।

२ पूर्व बङ्गाल और आसाममें ब्रह्मपुत्रनदका निम्न भाग। इसकी मुहाना अक्षा० २५° २४´ उ० तथा देशा० ८८° ४१´ पू० और गङ्गाके साथ सङ्गम अक्षा० २३° ५०´ उ० एवं देशा० ८६° ४५´ पू० में है। यह दक्षिणकी १२१ मील तक गयी है। वर्षा ऋतुमें चौड़ाई ४।५ मील रहती है। बारहों महीने नावें और जहाज चला करते हैं।

जमुनादास—जमुनालहरी नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जमुनियां (हिं० पु०) १ जामुनी, जामुनका रंग। (वि०) २ जामुनके रंगका।

जमूरो (फा० स्त्री०) १ नालबन्दोंका एक औजार। यह चिमटीके आकारका होता है इससे घोड़ोंके नाखून काटे जाते हैं। २ सँड़सी।

जमुर्द (हिं० पु०) पन्ना नामका रत्न।

जमुर्दी (फा० वि०) १ जिसका रंग पन्नाके जैसा हो। (पु०) २ पन्नाका रंग, वह रंग जो नीलापन लिए हुए हरा दीख पड़ता हो।

जमेसाबाद—सिन्धु प्रदेशके थर और पारकर जिलेका तालुक। यह अक्षा० २४° ५०´ एवं २५° २८´ उ० और देशा० ६८° १४´ तथा ६८° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २४०३८ और क्षेत्रफल ५०१ वर्गमील है। इसमें १८४ गांव हैं। मालगुजारी और सेस प्रायः ३ लाख ७० हजार पड़ती है।

जम्पती (सं० पु०) जाया च पतिश्च। दम्पती, जायापती, स्त्रीपुरुष।

जम्ब (सं० पु०) जम्बीरवृक्ष, जंबीरी नीबूका पेड़।

जम्बा (सं० स्त्री०) जम्बूफल, जामुनका फल।

जम्बाद्यतैल—वैद्यकोक्त औषध तैलविशेष, एक दवाईका तेल। जामुनकी नई पत्तियां, कैथ, कपासके फूल, अदरक इन सबके साथ नीम, करञ्ज और सरसोंका तेल उबालना चाहिये। इसीको जम्बाद्यतैल कहते हैं। इसे कानमें डालनेसे कर्णस्राव अच्छा हो जाता है।

जम्बाल (सं० पु०) १ पङ्क, कीचड़, कादो। २ शैवाल, सेवार। ३ केतकवृक्ष, केतकीका पेड़। (क्ली०) ४ सुगन्धतृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास।

जम्बाली (सं० स्त्री०) केतकीका वृक्ष।

जम्बालिनी (सं० स्त्री०) जम्बाल अस्त्यर्थे इनि। १ नदी। २ शैवलिनी। ३ पद्मिनी।

जम्बिर (सं० पु०) जम्बीर निपातनात् ह्रस्वः। जम्बीर, जंबीरी नीबूका पेड़। जम्बीर देखो।

जम्बीर (सं० पु०) जम्भ भक्षे निपातनात् ईरन् बुक् च। (गम्भीरादयश्च) १ मरुवकवृक्ष, मरुवाका पेड़। २ अर्जकवृक्ष, छोटा तुलसीका पौधा। ३ सितार्जकवृक्ष, सफेद या फीके रंगका तुलसीका पौधा। (राजनि०)। ४ (किसी किसीके मतसे) पुदीनाका शाक।

५ जम्बीरी नीबूका वृक्ष। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—दन्तशठ, जम्भ, जम्भीर, जम्भल, जम्भक, जम्भर, दन्तहर्षण, दन्तकर्षण, दन्तहर्षक, जम्भिर, गम्भीर, रेवत, रक्तशोधी, जम्भी, रोचनक, शोधक और जद्यारि।

इसे मराठी और गुजरातीमें इड़, कनाड़ीमें कञ्चिले, तेलगूमें निम्मचेट्टु, निम्बपण्डु, मलयमें चेरुनारक्षा, तामिलमें चम्पभम्, अरबीमें नीबू-ए-शामिज, पारसीमें और सिन्धमें नीबू तथा दक्षिणी भाषामें लिमुन कहते हैं। इसी लिमुनसे अंग्रेजीमें Lemon हुआ है। इसका वैज्ञानिक नाम Citrus Bergamia, The Bargamot orange है। भारतमें इस श्रेणीके बहुतसे नीबू देखनेमें आते हैं, जैसे रङ्गपुरी नीबू, चीना, जम्बीरी नीबू, कागजी नीबू, बिजौरा नीबू इत्यादि।

सारे भारतवर्षमें, सुन्दा और मलक्का उपद्वीपोंमें तथा यूरोपके नाना स्थानोंमें जम्बीरी नीबू उत्पन्न होते हैं। फ्रान्स, सिसिली और कालाब्रियामें इसकी खेती होती है। इस जातिके नीबूओंमें -कोई गोल, कोई छोटा, कोई कोमल, कोई चिकना, कोई खरखरा वा मोटे छिलकेका और कोई पीलेपनको लिए ज्यादा रसवाला पाया जाता है। इसके सिवा कोई कोई ऐसे भी हैं, जो पकने पर भी हरे बने रहते हैं।

इस नीबूके छिलकेको निचोड़ कर रस निकालनेसे, उससे एक तरहका तेल बनता है, जिसे अंग्रेजीमें Bergamot oil कहते हैं। यह तेल सुगन्धिके लिए काममें लाया जाता है। यह तेल वाह्य प्रयोगकी किसी किसी औषधमें सुगन्धि लानेके लिए डाला जाता है। इसके फूलसे भी थोड़ा-बहुत तेल निकाला जा सकता

है। इस नीबूके रसका गुण बीजपूर या बिजौरा नीबूके समान है। बीजपूर या बिजौरा देखो। खसरा, चेचक और उत्तापजनक अन्यान्य ज्वरमें इसका रस शान्तिकर होता है। कण्ठनली, उदर, जरायु, वृक्क इत्यादि आभ्यन्तरिक यन्त्रसे रक्तस्राव होने पर इस नीबूका व्यवहार किया जा सकता है।

जम्बीरो नीबूके गुण—अम्ल, मधुररस, वातनाशक, पथ्य, पाचन, रुचिकर, पित्त, बल और अग्निवर्द्धक। (राजनि०) पका हुआ नीबू मधुर, कफरोग, रक्त और पित्तदोषनाशक, वर्णवीर्य, रुचिकर, पुष्टिकर और तृप्तिकर होता है।

(राजवल्लभ)

जम्बीरक (सं० पु०) जम्बीर स्वार्थे कन्। जंबीरी नीबू।

जम्बीरिकी (सं० स्त्री०) जम्बीरभेद, एक प्रकारका जंबीरी नीबू।

जम्बु (सं० स्त्री०) जमु भक्षणे निपातनात् कु बाहुलकात् ह्रस्वः। १ वृक्षभेद, जामुन। जम्बू देखो। २ सुमेरु पर्वतसे निकली हुई एक नदीका नाम, जम्बु नदी।

जम्बूनदी देखो।

३ जम्बुवृक्ष फल, जामुनका फल। ४ जम्बूद्वीप।

जम्बूद्वीप देखो

जम्बूक (सं० पु०) जम्, भक्षणे कु निपातनात् वुक् स्वार्थे-कन्। १ जम्बुवृक्षभेद, बड़ा जामुन, फरेंदा। २ श्योनाकवृक्ष, सोनापाठा। ३ सुवर्णकेतकी, केवड़ा। ४ शृगाल, गीदड़। ५ वरुण। ६ वरुणवृक्ष, बरुनका पेड़। ७ स्कन्दका अनुचरभेद, स्कंदका एक अनुचर। ८ नीच, अधम।

जम्बुकतृण (सं० क्ली०) भूतृण, एक प्रकारको सुगन्धित घास।

जम्बुकेश्वर—एक प्रसिद्ध शैवतीर्थ। शिवपुराणके रेवा-माहात्म्य तथा श्रीरङ्गमाहात्म्यके मतानुसार वह ६ शैव तीर्थोंमेंसे एक होता है। यहां महादेवकी जलमूर्ति विराजमान है। स्थलपुराणमें लिखा है कि वहां जा कर देवादिदेवकी जलमूर्तिका दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीरङ्ग-महामन्दिरसे आध मील दूर जम्बुकेश्वरका विख्यात मन्दिर अवस्थित है। इस देवालयके वहिर्भागमें एक छोटे कूपसे सर्वदा अल्प अल्प जल निकला करता है। मन्दिरका चत्वर कुंएके पानीसे एक फुट नीचा है। सुतरां उसके भीतर हमेशा एक फुट पानी भरा रहता है। अपने आप हमेशा पानी निकलता देख कर बहुतोंको विश्वास है कि वहां महादेव जलमूर्तिमें प्रवाहित हुए हैं। देवालयको बगलमें एक पुरातन जम्बुवृक्ष है। श्रीरङ्गमाहात्म्यके मतानुसार महादेवने उसी जामुनके नीचे बहुकाल तपस्या की थी।

मि० फर्गुसन कहते हैं कि १६०० ई०के आरम्भमें जम्बुकेश्वरका वर्तमान मन्दिर निर्मित हुआ। किन्तु यहां उत्कीर्ण शिलालिपिमें लिखा है कि १४० शकको देवालयके व्ययनिर्वाहार्थ भूमि दी गयी। इससे अनुमान होता है कि वह मन्दिर उससे भी पहले बना होगा। परन्तु रामानुजकी जीवनी और सह्याद्रिखण्ड प्रभृति पढ़नेसे समझ पड़ता है कि यह उससे भी बहुत प्राचीन है।

इस मन्दिरमें चार उच्च प्राकार हैं। द्वितीय प्राकारमें ६५ फुट ऊंचा एक गोपुर और कई एक मण्डप हैं। तीसरे प्राकारमें दो प्रवेशद्वार लगे हैं। इनमें एक ७३ और दूसरा १०० फुट ऊंचा गोपुर हैं। फिर इसके प्राङ्गणमें एक पुष्करिणी और नारिकेलका एक बाग है। चतुर्थ प्राकार सर्वापेक्षा वृहत् है। यह दैर्घ्यमें २४३६ और प्रस्थमें १४८३ फुट पड़ता है। इसमें सहस्र स्तम्भ-मण्डप बना है। आजकल हजार खम्भे न रहते भी नौ सौ अड़तीस लगे हुए हैं। इन सब स्तम्भोंमें विस्तर अनुशासन-लिपि खोदित है। पहले मन्दिरके खर्चको बहुत भूसम्पत्ति थी। वृटिश गवर्नमेण्ट वह सब अधिकारकर देवसेवाके लिये हर साल ८०५०) रु० देती है। यहां बहुत तीर्थयात्री आते हैं। वह जो दक्षिणा देते, पूजक ही ले लेते हैं।

जम्बुकोल—सिंहलके नागद्वीपका एक प्राचीन नगर। यह महावंशमें वर्णित हुआ है। बहुतसे लोग वर्तमान जाफना प्रदेशके कलम्ब गांवको ही जम्बुकोल नामसे उल्लेख करते हैं।

जम्बुखण्ड (सं० पु०) जम्बुद्वीप।

जम्बुद्वीप—जम्बूद्वीप देखो।

जम्बुध्वज (सं० पु०) १ जम्बुद्वीप। २ एक नागका नाम।

जम्बुनदी (सं० स्त्री०) जम्बूनदी देखो।

जम्बुपर्वत (सं० पु०) जम्बुद्वीप।

जम्बुप्रस्थ (सं० पु०) किसी नगरका नाम। यह काश्मीर राज्यका वर्तमान जम्मू शहर है। राजा दशरथके मरने पर भरत मातुलालयसे अयोध्या इसी नगर हो कर गये थे। (रामायण २।७१।११)

जम्बुमत् (सं० पु०) १ एक पर्वतका नाम। २ एक बानरका नाम।

जम्बुमती (सं० स्त्री०) एक अप्सरा।

जम्बुमाली (सं० पु०) एक राक्षसका नाम। इसके पिताका नाम प्रहस्त था। यह लाल वस्त्र पहनता था, इसके दांत बड़े बड़े थे। रावणके आदेशानुसार यह हनुमानसे लड़ने गया था और इसी युद्धमें इसकी मृत्यु हुई।

जम्बुमार्ग (सं० क्ली०) पुष्करस्थ तीर्थभेद, पुष्करके एक तीर्थका नाम।

जम्बुरुद्र (सं० पु०) पातालवासी एक नागराज, पातालमें रहनेवाला सर्पोंका एक राजा।

जम्बुल (सं० पु०) १ जम्बुवृक्ष, जामुनका पेड़। २ केतकी पुष्प वृक्ष, केतकीका पेड़। ३ कर्णपाली नामक रोग। इसमें कानकी लौ पक जाती है, सुप कनवा।

जम्बुवनज (सं० क्ली०) श्वेतजवापुष्प, सफेद अड़ोल।

जम्बुसर—१ बम्बई प्रान्तके भरोंच जिलेका उत्तर तालुक। यह अक्षा० २१° ५४′ एवं २२° १५′ उ० और देशा० ७२° ११′ तथा ७२° ५६′ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३८७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६१८४६ है। इसमें १ नगर और ८१ गांव है। भूमि समान है। पश्चिमकी उजाड़ मैदान और पूर्वकी जङ्गली जमीन हैं।

जम्बुसर—बम्बई प्रान्तके भड़ोंच जिलेमें जम्बुसर तालुकका सदर। यह अक्षा० २२°३′ उ० और देशा० ७२° ४८′ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०१८१ है। प्रथमतः १७७५ ई०में अङ्गरेजोंने इसको अधिकार किया था। १७८३ ई० तक यह उन्हींके अधीन रहा, फिर मराठोंको सौंप दिया गया। आखिर १८१७ ई०में पुनाकी सन्धिके अनुसार जम्बुसर अङ्गरेजोंको मिला। नगरसे उत्तर नागेश्वर ह्रद है। ह्रदके बीचमें आम तथा और भी नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित एक छोटासा द्वीप है। इसके किनारे पर भी बहुतसे देवमन्दिर हैं। यहां अङ्गरेजोंका बनाया हुआ एक सुदृढ़ दुर्ग है। १८५६ ई०में म्युनिसिपालिटी हुई। पहले यहां बड़ा व्यापार था। कपास ओटनेके कई कारखाने हैं। चमड़े की रङ्गाई भी होती है। हाथी दांतके तावीज और खिलौने अच्छे बनते हैं।

जम्बू (सं० स्त्री०) १ नागदमनी, नागदौना। (राजनि०) नागदमनी देखो। २ जामुनका पेड़। इसका फल पकने पर काला हो जाता है। पर्याय—सुरभिपत्रा, नीलफला, श्यामला, महास्कन्धा, राजार्हा, राजफला, शुकप्रिया मेदमोदिनी, जम्बु, और जम्बुल।

जम्बू शब्द हिन्दीमें पुंलिङ्ग माना गया है।

वर्त्तमानके उद्भिद् तत्त्वविदोंके मतसे—दुनियामें करीब ७०० प्रकारके जम्बूवृक्ष पाये जाते हैं। इनमेंसे भारतमें करीब १५० प्रकारके जंबूवृक्ष देखे जाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि, पहले जिस जातिके वृक्ष जम्बू जातीय समझे जाते थे, उनमेंसे बहुतसे तो भिन्न जातीय हैं। किसी किसीके मतसे लवङ्ग आदिके वृक्ष भी इसी जातिके हैं। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ब्रह्म, मलय, सिंहल, अमेरिका देशके ब्रेजिल और वेष्टइण्डिज द्वीपपुञ्ज इत्यादि ग्रीष्मप्रधान स्थानोंमें जम्बूवृक्ष बहुत उत्पन्न होते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम इउजिनिया (Eugenia) है। कहा जाता है कि [साभयराज इउजिनके सम्मानार्थ उक्त नाम रक्खा गया था।

जंबूजातीय वृक्षोंमें निम्नलिखित वृक्ष ही प्रधान हैं—

जामुन—(Eugenia Jambolana), अङ्गरेजीमें ब्लेक प्लम् (Black plum), बर्मामें थब्येब्यू, तैलगूमें नसोदू, उड़ियामें जामकुलि, आसाममें जमु और बङ्गालमें जाम कहते हैं।

यह जामुन ज्येष्ठ आषाढ़ मासमें पकता है। इस जातिका वृक्ष मझौला होता है। यह भारतके प्रायः सर्वत्र होता है। पञ्जाब और हिमालय प्रदेशमें ३००० फुट ऊंचो जगहमें भी यह अपने आप पैदा होता है। आसामकी तरफ तथा छोटे नागपुर और अन्यान्य स्थानों इसकी छालके साथ दूसरे पदार्थ मिला कर (जाम आदि) बहुतसी चीजें रंगी जाती हैं।

नील बनाते समय इसकी छालका क्वाथ व्यवहृत होता

है। जंबू बहुतसी ओषधियोंमें भी काममें आता है। इसका वल्कल सङ्कोचक, अजीर्णनिवारक, आमाशयनाशक और मुखक्षतनिवारक है। अपक्व फलका रस वायुनाशक और जीर्णकारक होता है। आमाशय (पेचिश) रोग तथा बिच्छूके काटने पर इसके पत्तेका रस फायदा पहुंचाता है। इसके बीजोंका चूर्ण बहुमूत्रनिवारक है। पथरी, अजीर्ण, उदरामय आदि रोगोंमें इसका पका हुआ फल फायदेमन्द होता है।

जामुन कहीं कहीं कबूतरके अण्डेके बराबर बड़े और पकने पर बिलकुल स्याह हो जाते हैं। यह खानेमें कसैले और खट्टापनको लिए मीठे होते हैं। नमक डाल कर खानेसे और भी स्वादिष्ट लगते हैं। गोया प्रान्तमें इससे एक प्रकारकी शराब बनती है, जो खानेमें पोर्ट जैसी लगती है। मद्य देखो। ज्यादा जामुन खानेसे ज्वर होनेकी सम्भावना रहती है।

जामुनकी लकड़ी कुछ ललाई लिए हुए धूसर-वर्णकी होती है। यह न बहुत कड़ी और न ज्यादा नरम ही होती है। इसके काण्डमें एक प्रकारके कीड़े लग जाते हैं। जामुनकी लकड़ी किवाड़, चौखट, हल इत्यादि बनानेके काममें आती है। वैद्यकमतसे इसके फलके गुण—यह कषाय, मधुर तथा श्रम, पित्तदाह, कण्ठरोग, शोष, कृमिदोष, श्वास, कास और अतीसार रोगनाशक, विष्टम्भी, रुचिकर और परिपाकजनक होता है। (राजनि०) राजवल्लभके मतसे यह गुरु, स्वादु, शीतल, अग्निमन्दीपन, रूक्ष और वातकर है।

वैद्यक मतानुसार यह तीन प्रकारका होता है—बृहत्, क्षुद्र और जङ्गली। बृहत् फलके पर्याय हैं—महा-जम्बू, महापत्ता, राजजंबू, बृहत्फला, फलेन्द्र, नन्द, महाफला और सुरभिपत्ता। क्षुद्रजंबूके पर्याय ये हैं—सूक्ष्मा, कृष्णफला, दीर्घपत्ता और मध्यमा। इसको हिन्दीमें छोटी जमुनी कहते हैं। जङ्गली जामुनके पर्याय ये हैं—भूमिजंबू, काकजंबू, नादेयी, शीतपल्लवा, सूक्ष्म-पत्रा और जलजंबुका। भूमिजंबूका वृक्ष छोटा और प्रायः नदियोंके किनारे उत्पन्न होता है। भावप्रकाशके मतसे इसके गुण ये हैं--विष्टम्भी, गुरु और रुचिकर। वनजंबूफलके गुण—यह ग्राही, रूक्ष; कफ, पित्त और दाहनाशक होता है। (भावप्र०) इसकी लकड़ी पानीमें रहनेसे अच्छी और टिकाऊ होती है। इसीलिए इसकी नावें बनाई जाती हैं।

क्षुद्रजम्बू—इसका वैज्ञानिक नाम (Eugenia caryophyllaca) है। इसे बंगाल भाषामें बटजनिया कहते हैं। यह भारतवर्षके प्रायः सर्वत्र ही पैदा होता है। फल बहुत ही छोटा होता है। इसकी पत्तियां नुकीली और औषध बनानेके काममें आती हैं। इसकी लकड़ी सफेद, मजबूत और टिकाऊ होती हैं।

गुलाब जामुन—इसका वैज्ञानिक नाम Eugenia jambos हैं। इसे अंग्रेजीमें रोज ऐप्ल (Rose Apple) और अरबीमें तोफाह कहते हैं।

गुलाबजामुनका पेड़ छोटा और फल फूलोंसे भूषित होने पर अति मनोहर लगता है। भारतवर्ष और अन्यान्य ग्रीष्मप्रधान देशोंके बगीचोंमें इसका पेड़ लगाया जाता है। गुलाबजामुनका पेड़ बेरके बराबर होता है। यह देखनेमें बहुत ही सुन्दर और कोई कोई सेवसा बड़ा होता है। गर्मियोंमें यह पकता है पकने पर इसका रंग चम्पई, सुगन्ध गुलाबके फूलके समान और खानेमें सुस्वादु होता है, किन्तु रस इसमें ज्यादा नहीं होता। इसका फूल ललाईको लिए और खुशबूदार होता है। साल भरमें ३।४ बार फूल लगते हैं।

गुलाबजामुनके विशेष गुण—प्रत्येक बार फलोंके समयमें, जिस तरफ फल लगते हैं, उस तरफके पत्ते झर जाते हैं; किन्तु जिस ओर फल न लगें उस तरफके पत्ते भी नहीं झरते। इसकी लकड़ीका रंग लोहिताभ धूसर होता है। गुलाबजामुनकी पत्तियोंसे एक प्रकारकी चक्षुरोगकी औषध बनती है।

जमरूल या अमरूल—इसका वैज्ञानिक नाम है Eugenia Javanica। मलका, आन्दामन, निकोबर आदि द्वीप जमरूलके आदि-वासस्थान हैं। अब तो हिन्दुस्तानमें जगह जगह जमरूल पैदा होता है। ग्रीष्म ऋतुमें इसके फल पकते हैं। फल सफेद, चिकने और उजले होते हैं। स्निग्ध और रसदार होने पर भी इसमें कोई स्वाद नहीं पाया जाता। इसका काष्ठ धूसर वर्ण और मजबूत होता है; किन्तु किसी काममें नहीं

जाता। और भी एक तरहका जमरूल होता है, जिसका वैज्ञानिक नाम इउजिनिया मलक्केन्सिस् (Eugenia Malaccensis) है, अंग्रेजीमें मालय ऐप्ल (Malay apple) और बङ्गालमें 'मलाक जामरूल' कहते हैं।

यह पहले पहल मलयद्वीपपुञ्जसे लाया गया था। इस समय बङ्गाल और ब्रह्मदेशमें (बगीचोंमें) उत्पन्न होता है। इसका फूल लाल और फल रसदार अमरूद जैसा होता है। यह पेड़ भी दो तरहका है।

बृहत् जामुन—इसका वैज्ञानिक नाम है, Eugenia operculata. इसे हिन्दीमें रायजम, पयमान और जमवा कहते हैं। यह हिमालय पर्वतको तराईमें तथा चट्टग्राम, ब्रह्म, पश्चिमघाट और सिंहलको वनभूमिमें पैदा होता है। इसका पेड़ बड़ा होता है। ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें इसका फल पकता है। यह खानेमें सुस्वादु और वातरोगमें उपकारी है। इसकी जड़, पत्तियां तथा बल्कल आदि भी औषधार्थ व्यवहृत होते हैं।

३ जम्बूफल, जामुन। (अमर०) ४ स्वनामप्रसिद्ध नदी, जम्बूनदी। (मत्स्यपु० ११०।६७) ५ जम्बूद्वीप।

जम्बूद्वीप देखो।

जम्बू—काश्मीरी ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। काश्मीरमें जम्बू नामका एक नगर है, वहांसे इनका निकास हुआ है।

जम्बू—कर्णाटक देशकी एक नीच जाति। यह साधारणतः होलया और महार नामसे भी प्रसिद्ध है। इस जातिके लोग अधिकतर धारवारमें ही रहते हैं।

इन लोगोंका कहना है कि, इनके आदि पुरुषका नाम जम्बू था। उनके समयमें यह पृथिवी पानी पर तैरती थी, इसलिए लोग सुखी या निश्चिन्त नहीं रह पाते थे। जम्बूने अपने पुत्रको जीवितावस्थामें ही जमीनमें गाड़ कर पृथिवीकी बुनियाद मजबूत की थी। तभीसे इस पृथिवीका जम्बू नाम पड़ा है।

ये कहते हैं कि, "पहले हमारे पूर्वपुरुष ही इस पृथिवी पर आधिपत्य करते थे, बादमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि आ गये और उन्होंने उनको भगा कर अपना आधिपत्य जमा लिया।"

इनमें होलया और पोतराज ये दो श्रेणियां हैं। दयमव, उड़चव और येल्लव, ये तीन इनकी उपास्य देवियां हैं।

पोतराजका अर्थ है—महिषका राजा। पोतराजोंका कहना है कि किसी समय उनके एक पूर्वपुरुषने ब्राह्मण-के वेशमें लक्ष्मीके अवतार दयमवके साथ विवाह किया था। कुछ दिनों तक ये दोनों सुखसे रहे थे।

एक दिन दयमवने सासको देखनेकी इच्छा प्रगट की। होलया अपनी माताको ले आया। दयमवने मिष्टान्न बना कर सासको खिलाया। सासने खुश हो कर पुत्रसे कहा—"बेटा! भोजन तो बहुत अच्छा बना है, यह खानेमें ठीक महिषके दांतके समान लगता है।" इससे दयमव समझ गई कि, वे जघन्य होलयाके चक्करमें पड़ गई हैं। अन्तमें उन्होंने गुस्सेमें आ कर स्वामीको मार डाला। इसी उपलक्षसे अब भी दयमवके उत्सवमें महिष-की बलि हुआ करती है। दयमव देखो। होलयासे उत्पन्न दयमवके पुत्रगण तभीसे पोतराज कहाते हैं।

ये ग्राम वा नगरके किनारे रहते हैं, दूसरोंसे कोई भी संसर्ग नहीं रखते। अन्य जातियां भी इनसे घृणा करती हैं। मरे हुए जानवरोंको उठाना, चन्दन बनाना और बोझ ढोना यही इन लोगोंका नित्यकर्म या उप-जीविका है। ये मरी हुई गाय और भैंसोंको ला कर उस-का मांस खाते हैं। इसीलिए साधारण लोग इन्हें 'होलया' अर्थात् गन्दे कह कर पुकारते हैं, ये लोग मांसके सिवा शराब पीना भी खूब पसन्द करते हैं।

ये कठिन परिश्रमी और आतिथेय होते हैं। इनकी पोशाक निम्नश्रेणीके मराठियों जैसी है। सभी लोग कानमें कुण्डल और हाथमें अंगुरी पहनते हैं। ये कनाड़ी भाषामें बातचीत करते हैं।

ये किसी ब्राह्मणकी भक्ति श्रद्धा वा ब्राह्मण्य देव देवियोंकी पूजा नहीं करते। परन्तु होली, नागपञ्चमी, दशहरा और दीवाली पर्वको मानते हैं। इन लोगोंमें बलवसाप्प नामक स्वजातीय गुरु हैं, जो बेल्गारोमें रहते हैं।

सन्तान उत्पन्न होते ही ये उसका नार काट कर घरके सामने गाड़ देते हैं। उसके ऊपर एक पत्थर बिछा देते हैं; जिस पर बैठ कर बच्चेके साथ प्रसूति स्नान करती है।

पांचवें दिन ओबरमें एक शिलाके ऊपर पांच पात्रों-

में उबाली हुई कँगनी (काङ् नामक अन्न) और चीनी रख दी जाती है, बादमें पाँच सुहागिन स्त्रियां आ कर उसे खाती हैं। नौवें दिन भी कँगनी, अरहर, मूंग, गेहूं और जौ इनको एक साथ उबाल कर तथा थोड़े तेलमें भूंज कर उसे चीनीके साथ पाँच सुहागिन स्त्रियोंको खिलाते हैं। उस दिन बच्चेको झूलनेमें बिठा कर झुलाते और नृत्य गीत करते हैं। २१वें दिन बच्चेको उड़चव देवीके मन्दिरमें ले जा कर उसे देवीके चरणों पर रख देते हैं। पुजारी एक पानको कैंचीकी तरह बना कर उसे बच्चेके सिर पर घुमाता है, फिर ध्यानस्थ हो कुछ देर तक बैठ कर बच्चेका नाम बता देता है। इसके उपरान्त सब मिल कर फूल, हल्दी और सिन्दूर चढ़ा कर घर लौट आते हैं। इसके बाद किसी दिन बच्चेके बाल कटा देते हैं।

विवाह स्थिर होने पर लड़कीवाला लड़केको २०) रुपये देता है। विवाहके दिन कन्यापक्षके लोग कन्याको ले कर लड़केके घर पहुंचते हैं। लड़की यदि समर्थ हो तो पैदल नहीं तो बैल पर चढ़ कर जाती है।

कन्यापक्षवाले जब लड़केके घरके पास पहुंचते हैं; तब वरपक्षके लोग एक पात्रमें धूप और दूसरेमें दीपक जला कर उनकी आरती उतारते हैं। पीछे लड़कीवाले भी वरपक्षवालोंकी आरती उतारते और फिर घरमें प्रवेश करते हैं।

इसके उपरान्त वर और कन्या दोनों माड़के नीचे कम्बल बिछा कर बैठते हैं। इस समय एक लिङ्गायत चेलवाड़ी मन्त्र पढ़ता रहता है। पीछे वह वर-कन्याको धान्य देते हुए आशीर्वाद कर कन्याके गलेमें मङ्गलसूत्र बाँध देता है। इसके उपरान्त भोजनादि कर चुकने पर विवाह-कार्य समाप्त हो जाता है।

इनमें स्त्रियोंके पहले पहल ऋतुमती होने पर उन्हें तीन दिन तक एक जगह बैठना पड़ता है। इस समय वे सिर्फ भात, गुड़ और नारियल खाती हैं। चौथे दिन बबूलके पेड़के तले जा कर दाहिने हाथसे आलिङ्गन करतीं और घरमें आ स्नान कर शुद्ध होती हैं।

पुत्र और कन्या ज्यादा होने पर ये कन्याका विवाह करते हैं, किन्तु यदि पुत्र न हो तो एक कन्याको घर ही रखते हैं। ऐसी लड़कीको बासवी कहते हैं, यह ब्याह नहीं कर सकती। शुभ दिनमें वह कन्या पान, सुपारी, फूल और नारियल ले कर उड़चव देवीके मन्दिरमें पहुंचती है। यहां पुजारी देवीकी पूजा कर लड़कीके कण्ठमें स्वर्ण वा काँचकी माला और मस्तक पर कण्डेकी राख लगा कर कहते हैं—"आजसे तुम बासवी हुई।" बासवी हो कर वह इच्छानुसार वेश्यावृत्ति कर सकती है, इसमें किसीको कुछ उज्र नहीं; किन्तु उस दिनसे उसे रोज देवीके मन्दिरमें जा कर देवी पर पङ्खेकी हवा करनी पड़ती है, जिससे देवीके शरीर पर एक भी मक्खी न बैठ सके। पिता-माताके मरे पीछे वही सम्पत्तिकी मालकिन होती है। उसकी लड़की हो तो वह अच्छे घरमें ब्याही जा सकती है।

इनमें भी एक समाज है। सामाजिक झगड़ा होने पर चेलवाड़ी उसका निबटेरा कर देते हैं। कोई अगर उनकी बातको न माने, तो वह उसी समय जातिसे छेक दिया जाता है। जन्म और मृत्युमें ये ११ दिन तक अशौच मानते हैं। विवाहित जम्बूकी मृत्यु होने पर उसे समाधिस्थानमें ले जा कर चेलवाड़ी द्वारा उसके सिर पर विभूति और मुंहमें सोनेका एक टुकड़ा रखवा दिया जाता है। इसके बाद उसे जमीनमें गाड़ देते हैं। बासवी औरतोंके लिए भी यही नियम है। परन्तु अविवाहितकी मृत्यु होने पर उसे ला कर सिर्फ गाड़ देते हैं, भस्म आदि कुछ नहीं लगाते।

जम्बु—उड़ीसाके अन्तर्गत कटक जिलेकी एक छोटी शाखा नदी। यह फलस् अन्तरीपके पास बङ्गोपसागरमें जा मिली है। इसमें नावका चलाना बड़ी जोखमका काम है। सागरसङ्गमके पास एक चर पड़ गया है, वहां भाटाके वक्त १ फुट पानी रहता है। कभी कभी इसमें भाटाके समय १८ फुट पानी रहता है। समुद्रके किनारेसे १२ मील दूरी पर टेलपाड़ा नामक स्थान तक इसमें बड़ी नाव जा सकती है। अब यह वर्द्धमान महाराजके अधिकारमें है।

जम्बूक (सं० पु०) १ शृगाल, गीदड़। २ वाराहीकन्द। ३ ब्राह्मी। ४ मत्स्याक्षी। ५ पीत लोध्र।

जम्बूका (सं० स्त्री०) काकलीद्राक्षा, किसमिस।

जम्बूकी (सं० स्त्री०) शृगाली, मादा गीदड़।

जम्बूखण्ड (सं॰ पु॰) जम्बुखण्ड देखो।

जम्बूद्वीप (सं॰ पु॰) पृथिवीके सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। इसको लवणसमुद्र चारों ओरसे घेरे हुए हैं। जम्बूद्वीप पृथिवीके बीचमें और अन्य छह द्वीप चारों ओर कमल-दलोंकी तरह अवस्थित हैं। भागवतके मतसे—जम्बूद्वीप लाख योजन विस्तीर्ण और पद्ममध्यस्थित कोषकी तरह अवस्थित है। यह पद्मपत्रको भांति गोल और लाख-योजन विस्तीर्ण लवणसमुद्र द्वारा वेष्टित है। यह द्वीप नौ खण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक खण्ड नौ हजार योजन विस्तीर्ण और सीमापर्वतों द्वारा भलीभांति विभक्त है। इन नौ खण्डोंके नाम इस प्रकार हैं—इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, हरिवर्ष, किम्पुरुष भारत, केतुमाल और भद्राश्व। इनमेंसे इलावृत जम्बूद्वीपके बीचमें है। इसके उत्तरमें क्रमशः नीलपर्वत, रम्यक, श्वेतपर्वत, हिरण्मयवर्ष, शृङ्गवान् पर्वत और उसके उत्तरमें कुरुवर्ष है तथा उसके बाद समुद्र पड़ता है। इलावृतसे दक्षिणमें क्रमशः निषध पर्वत, हरिवर्ष हेमकूट, किम्पुरुषवर्ष, हिमालय और भारतवर्ष है, फिर उसके बाद समुद्र पड़ता है। इलावृत वर्षके पूर्वमें क्रमशः गन्धमादन पर्वत, भद्राश्ववर्ष और फिर समुद्र है, तथा पश्चिम दिशामें माल्यवान् पर्वत, केतुमालवर्ष और फिर समुद्र पड़ता है।

इलावृतके बीचमें सुमेरु नामका एक ८४ योजन ऊंचा कुलपर्वत है। सुमेरुके निम्नदेशमें पद्मकिञ्जल्ककी तरह २० पर्वत और भी हैं; जैसे—कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिखर, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शितिवास, कपिल, शङ्ख, वैदुर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद। इलावृतकी पूर्वको तरफ मन्दर, दक्षिणमें मेरुमन्दर, पश्चिममें सुपार्श्व और उत्तरको तरफ कुमुदपर्वत है। मन्दर पर्वत पर बहुयोजन विस्तृत एक महान् चूतवृक्ष है। निपतित आम्रसमूह विशीर्ण हो कर अरुणोदा नामक एक नदी मन्दरपर्वतसे प्रवाहित हो कर इलावृतकी पूर्वदिशाको प्लावित कर रही है। इस प्रकारके मेरु मन्दर पर्वत पर बहु योजन विस्तृत एक विशाल जंबूवृक्ष भी है। इसी जंबूवृक्षके कारण इस द्वीपका नाम जंबू हुआ है। वहां हस्तिप्रमाण पतित जंबूफलके रससे एक नदीको सृष्टि हुई है, जो इलावृतके दक्षिण भागको प्लावित कर रही है। इस नदीका नाम जंबू नदी है। इसके किनारेकी मिट्टीमें 'जांबूनद' नामका सुवर्ण उत्पन्न होता है। इलावृतसे पश्चिममें सुपार्श्व पर्वत पर एक अद्भुत बड़ा कदम्बवृक्ष है। इस वृक्षके पांच कोटरोंसे मधुको धारा बह कर उस स्थानको आमोदित करती है। उत्तर दिशामें कुमुद पर्वत पर एक सुवृहत् वटवृक्ष है। यह वृक्ष कल्पतरुके समान है। लगातार उसमेंसे दूध, दही, घो, मधु, गुड़, अन्न, वस्त्र, अलङ्कार आदि निकलते रहते हैं, जिससे वहांके अधिवासियोंको किसी प्रकारका अभाव नहीं रहता। इलावृतवर्ष पर दूध, मधु, इक्षुरस और जलसे परिपूर्ण चार ह्रद तथा नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नामके चार देवकानन हैं, जो नाना शोभाओं-से सुशोभित हो वहांके लोगोंको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं। सुमेरु पर्वतके पूर्वमें जठर और देवकूट, दक्षिणमें कैलास और करवीर, पश्चिममें यवन और पारियात्र तथा उत्तरमें मकर और त्रिशृङ्ग नामके आठ पर्वतों पर देव गण सर्वदा क्रीड़ा करते रहते हैं। (भाग॰ ५।१६ अ॰)

इसी प्रकार अन्यान्य खण्डोंमें भी बहुतसे नद, नदियों और पर्वतोंका वर्णन है।

उनका विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

सभी पुराणोंमें जंबूद्वीपका ऊपर लिखे अनुसार वर्षभेदादिका विवरण मिलता है, सिर्फ कहीं कहीं वर्षादिके नामसे थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। (भारत भीष्मपर्व, विष्णुपु॰, लिंगपु॰ ४६ अ॰, वामनपु॰ १३, अ॰, कूर्मपु॰ ४५ अ॰, वराहपु॰ ७७ अ॰, अग्निपु॰ ११९ अ॰, नृसिंहपु॰ ३५ अ॰, कुमारिकाखण्ड इत्यादि ग्रन्थोंमें जम्बू-द्वीपका विवरण लिखा हुआ है।) पौराणिक ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि, इस समय जिसको हम एशिया महाद्वीप कहते हैं, वही पुराणोंमें जंबूद्वीपके नामसे वर्णित है। पहले इसका कोई कोई अंश पानीमें डूबा हुआ था तथा कोई कोई अंश अब डूब गया होगा।

शाकद्वीप और लंका देखो।

बौद्ध मतसे—जंबूद्वीपसे भारतवर्षका बोध होता है।

जैनमतानुसार—मध्य लोकके अन्तर्गत असंख्यात द्वीप और समुद्रोंमेंसे एक द्वीप। यह जंबूद्वीप सबके बीचमें है। इसके चारों ओर लवणसमुद्र, उसके चारों तरफ धातुकीखण्ड द्वीप, उसके चारों ओर कालोदधि समुद्र, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप और उसके चारों ओर पुष्करवर समुद्र है, इसी प्रकार एक दूसरेको (क्रमशः एक द्वीप और एक समुद्र) वेष्टित किये हुए अन्तके स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्य द्वीप और समुद्र हैं।

जम्बूद्वीप एक लाख योजन (एक योजन २००० कोसका माना गया है) विस्तृत है, इसका आकार थालीके समान गोल है। इसकी परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष (३॥ हाथका एक नाप) १३ अङ्गुलसे कुछ अधिक है। इसके चारों तरफ जो लवणसमुद्र है, वह इससे दूना अर्थात् २ लाख योजनका है, इसी तरह आगेके द्वीप और समुद्र दूने दूने विस्तारवाले समझना चाहिये।

इस जम्बूद्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र या खण्ड हैं।

"भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।"

(तत्त्वार्थसूत्र ३ अ०)

उक्त सातों वर्ष या खण्डोंको विभाग करनेवाले पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छह पर्वत हैं, जिनको वर्षधर (क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले) कहते हैं। इन सातों पर्वतोंके समूहको षट्कुलाचल कहते हैं। इन पर्वतोंका रंग क्रमशः पीला, सफेद, तपाये हुए सोने जैसा, मयूरकण्ठी (नीला), चाँदी जैसा शुक्ल सोने और जैसा पीला है। इसके सिवा हिमवन्पर्वत पर पद्म, महाहिमवान् पर महापद्म, निषिध पर तिगिञ्छ, नील पर केशरी, रुक्मी पर महापुण्डरीक और शिखरीपर्वत पर पुण्डरीक नामके छह ह्रद हैं। इन छह ह्रदोंमेंसे पहले ह्रदकी (पूर्वसे पश्चिम तक) लम्बाई १००० योजन, चौड़ाई (उत्तरसे दक्षिण तक) ५०० योजन और गहराई दश योजनकी है। दूसरा महापद्म ह्रद इससे दूना और उससे दूना तीसरा तिगिञ्छ ह्रद है। शेष उत्तरके तीन पर्वतों पर भी इसी परिमाणके ह्रद हैं। इन छहों ह्रदोंमें कमलके आकारके रत्नमय छह उपद्वीप हैं, जिनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्त्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी सात देवियां वास करती हैं। ये देवियां आजन्म ब्रह्मचारिणी रहती हैं। श्री, ह्री आदि शब्द देखो।

उक्त छह वर्षधर पर्वतोंके ह्रदमेंसे गङ्गा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियां निकली हैं, जो क्रमशः पूर्व और पश्चिमकी ओर बहती हुई लवणसमुद्रमें जा मिली हैं। गंगा, सिन्धु आदि शब्द देखो। प्रत्येक क्षेत्रमें दो दो नदियां हैं, जैसे—भरतक्षेत्रमें गङ्गा और सिन्धु, हैमवत्क्षेत्रमें रोहित और रोहितास्या, इत्यादि।

भरतक्षेत्र, जिसमें कि हम रहते हैं, दक्षिण उत्तरमें ५२६ ६/१९ योजन विस्तृत है। हैमवत्क्षेत्र इससे दूना, उससे दूना हरि और उससे दूना विदेहक्षेत्र है। विदेहसे उत्तरके तीन क्षेत्र (पर्वत भी) दक्षिणके बराबर हैं। इनमेंसे भरत और ऐरावतक्षेत्रके अधिवासियोंकी आयु आदि उत्सर्पिणी (वृद्धि) और अवसर्पिणी (हानि) कालके प्रभावसे बढ़ती और घटती रहती है। विदेह क्षेत्रमें सदा ४र्थ काल (जिसमें जीव मुक्ति पा सकें) रहता है। बाकीके चार क्षेत्रोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता, वहां कल्पवृक्ष होते हैं, जिससे अधिवासियोंको अपने आप वाञ्छित वस्तुएं प्राप्त होती रहती हैं। अन्यान्य द्वीपोंका विस्तार आदि सब कुछ दूना दूना समझना चाहिये। परन्तु ३रे पुष्करद्वीपके बीचमें मानुषोत्तर पर्वत होनेके कारण उसके आगे मनुष्योंका गमन नहीं हो सकता। उसके आगे विद्याधर, ऋद्धिप्राप्त ऋषि भी नहीं जा सकते और न उसके आगे मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं। (क्षेत्रसमास)

भरतक्षेत्र छह भागोंमें विभक्त है, जिसमें पांच म्लेच्छ खण्डोंमें म्लेच्छ और एक आर्य क्षेत्रमें आर्य रहते हैं। भारतवर्षके सिवा चीन, जापान आदि सब आर्य क्षेत्रमें ही अवस्थित हैं।

भरतक्षेत्र देखो।

जम्बूनदप्रभ (सं० पु०) भावि बुद्धका नाम।

जम्बूनदी (सं० स्त्री०) १ जम्बुद्वीपस्थ विशाल जम्बुवृक्षसे पतित जम्बुफल-रसजात नदी, जम्बुद्वीपके विशाल जामुनके पेड़के रससे निकली हुई नदी।

"जम्बुद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महामुने ।
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै ॥
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्य्यमाणानि सर्वतः ।
रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ॥"

(विष्णुपु० २।२।१९-२०)

२ ब्रह्मलोकसे प्रवाहित सप्तनदीके अन्तर्गत एक नदी, ब्रह्मलोकसे निकली हुई सात प्रधान नदियोंमेंसे एक नदी।

"ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ।
वस्वोकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ॥
जम्बूनदी च सीता च गंगा सिन्धुश्च सप्तमी ॥"

(भारत ६।६ अध्याय)

जम्बूमार्ग (सं० पु०) पुष्करस्थ तीर्थभेद, पुष्करके एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें जो भ्रमण करता है उसे अश्वमेध यज्ञ करनेका फल होता है और वहां पांच रात वास करनेसे वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो कर अन्तमें मोक्ष पाता है।

"जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गे वसाम्यहम् ।
एवं संकल्पमानोऽपि रुद्रलोके महीयते ॥"

(हरिवंश १५१ अ०)

जम्बूर (फा० पु०) १ जंबूरक, पुरानी छोटी तोप जो अकसर करके ऊंटों पर लादी जाती थी। २ जमुरका, जंबूरा। ३ तोपका चरख।

जम्बूर—दाक्षिणात्यके कोड़ग प्रदेशमें नञ्जराजपत्तन तालुकका एक मध्यस्थित ग्राम। यह अक्षा० १२° ३४' उ० और देशा० ७५° ५३' पू०में अवस्थित है। प्रत्येक वृहस्पतिवारमें बाजार लगता है। यहां कोड़गाधिप सिंहराजका समाधि-मन्दिर बना है।

जम्बूरक (फा० पु०) १ तोपका चरख। २ पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊंटों पर लादी जाती थी। ३ भंवरकली।

जम्बूरची (फा० पु०) १ सिपाही, बर्कन्दाज, तुपकची। २ जम्बूरक नामक छोटी तोपका चलानेवाला, तोपची।

जम्बूरा (फा० पु०) १ भंवरकली, भंवर कड़ी। २ तोप चढ़ानेका चरख। ३ मस्तूल पर आड़ा लगा रहनेवाला लकड़ीका बल्ला जिस पर पालका ढांचा रहता है। ४ सुनारों वा लुहारोंका एक बारीक काम करनेका औजार जिससे वे तार आदि पकड़ कर रेतते, ऐंठते वा घुमाते हैं। इसका आकार कामके अनुसार छोटा बड़ा भी होता है और अकसर करके यह लकड़ीके टुकड़ेमें जुड़ा हुआ रहता है। इसमें चिमटेकी भांति चिपक कर बैठ जानेवाले दो चिपटे पल्ले होते हैं। उन पल्लोंके पार्श्वमें एक पेंच होता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं। इसको बांक भी कहते हैं।

जम्बूराज (सं० पु०) राजजम्बू, गुलाब जामुन जातिका एक फल।

जम्बूल (सं० पु०) १ जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़। २ केतक-वृक्ष, केतकी। (क्ली०) ३ वरपक्षीय स्त्रियोंके परिहास वचन, वर और कन्यापक्षका परस्पर हास्य परिहास।

जम्बूलमालिका (सं० स्त्री०) १ वर और कन्यापक्षका परिहास वचनसमूह। २ कन्या और वरकी मुखचंद्रिका। ३ जम्बूलपुष्पकी माला, केतकी फूलकी माला।

जम्बूवनज (सं० क्ली०) श्वेतजवापुष्प, सफेद अड़ौल। जम्बुवनज देखो।

जम्बूवृक्ष (सं० पु०) जम्बू नामका एक वृक्ष, जामुनका पेड़। जम्बू देखो।

जम्बूस्वामी—जैनियोंके अन्तिम श्रुतकेवली, इनका जन्म राजा श्रेणिकके राजत्वकालमें अर्हद्दास सेठकी स्त्री जिनदासीके गर्भसे हुआ था।

प्रसिद्ध जैनाचार्य गुणभद्र स्वामी अपने उत्तरपुराणमें लिखते हैं—पाटलीपुत्रके अन्तर्गत राजगृह नगरमें विपुलाचल पर्वत पर सुधर्माचार्य गणधरके उपदेशसे जंबूस्वामीको यौवन अवस्थामें ही वैराग्य आ गया। इन्होंने पिता माता आदि घरके लोगोंसे दीक्षा ग्रहण करनेके लिए आज्ञा मांगी, किन्तु उन्होंने आज्ञा न दी, प्रत्युत कहा कि—"हम भी थोड़े वर्ष बाद तुम्हारे साथ दीक्षा धारण करेंगे।" इसके उपरान्त इनके पिता माताने इन्हें मोहजालमें फंसानेके लिए बहुत कुछ प्रयत्न किये। किन्तु उनके मनकी गतिको किसी तरह भी फिरा न सके।

इनके पिता सागरदत्त, कुबेरदत्त आदि चार सेठोंसे यह कह चुके थे कि, वे अपने पुत्रके साथ उनकी चार कन्याओंका विवाह करेंगे। पिता माताने उक्त बातको पुत्रसे कहा। जंबूकुमारको इच्छा न होते हुए भी माता पिताकी बात माननी पड़ी। जंबूकुमारका पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्रीके साथ विवाह हो गया। विवाह करने पर भी ये उदासीन रहते थे।

एकदिन रातको इनकी माता जिनदासी अपने पुत्रके मनको जांच करनेके लिए उनके शयनागारके पास कहीं छिप गई। उन्होंने देखा कि, जंबूकुमार अपनी स्त्रियोंमें इस प्रकार बैठे हैं, मानो उन्हें जबरन किसीने कैद कर रक्खा हो। इसी समय पोदनपुरके राजा विद्युद्राजके पुत्र विद्युत्प्रभ जो बड़े भाईसे लड़ कर घरसे निकल चोरी, डकैती आदि दुर्व्यसनोंमें फंस गये थे—वे भी यहां डकैती करनेके अभिप्रायसे आ पहुंचे। यहां आ कर उन्होंने जिनदासीको जगती हुई देख उनसे जगनेका कारण पूछा। जिनदासीने कहा—"मेरे एक ही पुत्र है, वह भी सङ्कल्प कर बैठा है कि, मैं सुबह ही दीक्षा लेनेके लिए तपोवनमें जाऊंगा। यदि तुम मेरे पुत्रको समझा बुझा कर रोक सको, तो मैं तुम्हें मुंह मांगा धन दूंगी।" यह सुन कर विद्युत्प्रभ सोचने लगे कि "हाय! जिसका धन है, वह तो उसे छोड़ना चाहता है और मैं उसे चुरानेके लिए यहां आया हूं! धिक्कार है मुझे!" इसके बाद विद्युत्प्रभ जंबूकुमारके पास गये। जंबूकुमारसे उनका अनेक प्रश्नोत्तर हुआ। आखिर जंबूकुमारके मनोमुग्धकर पवित्र धर्मोपदेशसे विद्युत्प्रभके मनने पलटा खाया। उनके उपदेशका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनकी माता और चारों स्त्रियोंको भी संसारसे वैराग्य हो गया।

जम्बूकुमार संसारसे विरक्त हो कर तपोवन (विपुलाचल)-को चले। वहां जा कर इन्होंने सुधर्माचार्यके समीप दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षाका नाम जम्बूस्वामी हुआ। इनके साथ विद्युत्प्रभ (जो पहले चोर थे)-के सिवा और भी पांच सौ योद्धाओंने दीक्षा ग्रहण की थी।

सुधर्माचार्यको मोक्ष प्राप्त होनेके उपरान्त इन्हें केवलज्ञान हुआ था। इनके भव नामके एक शिष्य थे; जिनके साथ चालीस वर्ष तक विहार (भ्रमण) करते हुए इन्होंने धर्मोपदेश दिया था। इनके बाद जैनोंमें फिर केवलज्ञानके धारक, सर्वज्ञ या अर्हन्त नहीं हुए हैं। इनका जीव (आत्मा) ब्रह्मस्वर्गके ब्रह्महृदय नामक विमानसे चय कर आया था। ये पूर्व जन्ममें उक्त स्वर्गमें विद्युन्माली नामके इन्द्र थे; इनकी प्रियदर्शना, सुदर्शना, विद्युत्प्रभा और विद्युद्वेगा ये चार देवियां थीं।

(जैन उत्तरपुराण पर्व ७६)

श्वेताम्बर जैन-सम्प्रदायके ऋषिमण्डलप्रकरणवृत्ति नामक ग्रन्थमें इनके पिताका नाम ऋषभदत्त और माताका नाम धारिणी पाया जाता है। इसके सिवा उक्त सम्प्रदायके स्थविरावलीचरित नामक ग्रन्थमें इनकी आठ स्त्रियोंका उल्लेख मिलता है—पद्मश्री, कनकश्री, जयश्री, समुद्रश्री, पद्मसेना, नभःसेना, कनकसेना और कनकावती। और सब विषयमें दोनोंका प्राय: एक मत है।

जम्बोष्ठ (सं० क्ली०) वैद्योंके अस्त्रचिकित्सार्थ शलाकाविशेष। जाम्बवौष्ठ देखो।

जम्भ (सं० पु०) जभते जृम्भते इति जभ गात्रविनामे अच्। १ एक दैत्य, महिषासुरका पिता। किसी समय जम्भ इन्द्रसे पराजित हुआ था। बाद इसने शिवजीको तपस्या की। शिवने इसको घोर तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर वर दिया—"तुम! त्रिभुवनविजयी पुत्र लाभ करोगे।" दैत्य यह वर पा कर जब घरको लौटा आ रहा था तो इन्द्रने नारदसे यह सम्वाद पा कर रास्तेमें ही युद्ध करनेके लिये उसे ललकारा। जम्भ स्नान करनेका बहाना लगा कर किसी एक सरोवरके पास चला गया। वहां पर उसने अपनी स्त्रीको देखा। इसके बाद उसका गर्भोत्पादन कर वह इन्द्रके साथ लड़नेके लिये पहुंचा। इसी युद्धमें इन्द्रसे वह दैत्य मारा गया। (मार्कण्डेयपुराण)

२ प्रह्लादके तीन पुत्रोंमेंसे एक पुत्रका नाम। (हरिवंश २१८।३५) ३ हिरण्यकशिपुका एक पुत्र, प्रह्लादका भाई। (हरिवंश २२१।८०) ४ हिरण्यकशिपुके श्वशुर और कयाधूके पिता। (भागवत ६।१८।१२) जभते भक्षयते अनेनेति जम्भ करने घञ्। ५ दन्त, दांत। जभ-णिच्-बहुल्। ६ जंबीर, जंबीरी नीबू। जम्भ भावे घञ्। ७ भक्षण,

भोजन, खाना। ८ अंश, हिस्सा। ९ हनु, दाढ़, चौभड़। १० तूण, तरकश, तीर रखनेका चोंगा। ११ बलिका एक सखा दैत्य। इन्द्रने इसे लड़ाईमें मारा था। (भागवत) १२ सुन्दरका पिता। (रामायण १।२७) १३ दन्तस्थानीय ज्वाला। १४ रम्भा नामक एक असुर। यह युद्धमें विष्णुसे मारा गया था। (कालिकापु० ६१ अ०) १५ जृम्भा, जम्हाई। १६ जबड़ा। १७ कन्धा और हंसली। १८ मुक्कमरुवक।

जम्भक (सं० पु०) जम्भयति जभ णिच् ण्वुल् स्वार्थे-कन्। १ जम्बीर, जंबीरी नीबू। २ एक राजाका नाम। (पु०-स्त्री०) जभतीति, जभ जभने कर्त्तरि ण्वुल्। ३ कामुक। (त्रि०) जंभ-ण्वुल्। ४ भक्षक, खानेवाला। ५ हिंसक, वध करनेवाला। ६ जंभाई या नींद लेनेवाला। (पु०) ७ अस्त्रदेवता। 'ददौ मन्त्रं जम्भकानां वशीकरणमुत्तमम्।" (रामायण १।३।१४) ८ शिव, महादेव। (हरि० १६८ अ०) ९ पीत लोध्र।

जम्भका (सं० स्त्री०) जम्भा एव स्वार्थे-कन्-टाप्। जृम्भा, जँभाई।

जम्भकुण्ड (सं० क्ली०) विरजाक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ। (कपिलसं०)

जम्भग (सं० पु०) जम्भाय भक्षणाय गच्छति भ्रमतीति, जम्भ-गम-ड। अत्यन्त भोजनलोलुप एक राक्षस, एक बहुत खानेवाला राक्षस। (आह्निकतत्त्वधृत पद्मपु०)

जम्भद्विट् (सं० पु०) जम्भमसुरं द्वेष्टि दम्भ-द्विष-क्विप्, जम्भस्य द्विट् इति वा। १ इन्द्र। (हेम) २ विष्णु। (भारत)

जम्भन (सं० क्ली०) १ रति, संभोग। २ भक्षण, भोजन। ३ जृम्भा, जँभाई। ४ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़। ५ मरुवकवृक्ष, एक तुलसीका पेड़।

जम्भभेदी (सं० पु०) जम्भं भेत्तुं शीलमस्य, भिद्-णिनि। इन्द्र।

जम्भर (सं० पु०) जम्भं भक्षण-रुचिं राति ददाति रा-क। जम्बीर जँबीरी, नीबू।

जम्भल (सं० पु०) जंभर रस्य लत्वं। १ जम्बीर, जँबीरी नीबू। २ बुद्धभेद।

जम्भलदत्त—वेतालपञ्चविंशति नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

जम्भला (सं० स्त्री०) जम्भं भक्षणं लाति आददातीति ला-क। १ एक राक्षसीका। नाम समुद्रके उत्तर किनारे जम्भला नामकी एक राक्षसी रहती थी। इसका नाम वटपत्र पर लिख कर गर्भिणीके मस्तक पर रख देनेसे गर्भिणीके शीघ्र प्रसव हो जाता है। (ज्योतिस्तत्व) गोदावरीके किनारे इसका वास था, ऐसा निर्दिष्ट है। (पंजिका) २ तूलकी, तूला।

जम्भलिका (वै० स्त्री०) सङ्गीतविशेष।

जम्भसुप (सं० त्रि०) दन्तद्वारा अभिषूत, दाँतसे निचोड़ा हुआ।

जम्भा (सं० स्त्री०) जभि जृम्भायां जम्भते इति स्वार्थे णिच् भावे अ-टाप्। जृम्भा, जँभाई।

जम्भारि (सं० पु०) जंभस्य असुरभेदस्य अरिः, ६-तत्। १ इन्द्र। २ अग्नि। ३ वज्र। ४ विष्णु।

जम्भी (सं० पु०-क्ली०) जंभयति क्षुधामान्द्यादिकं नाशयति, जभ णिच्-णिनि। १ जम्बीर, जंबीरी नीबू। (त्रि०) २ जृंभायुक्त, जंभाई लेनेवाला।

जम्भीर (सं० पु०) जंभ्यते अग्निवृध्यार्थं भक्ष्यते जभ-ईरन्। १ जंबीर, जंबीरी नीबू। २ मरुवक।

जम्भ्य (सं० पु०) जंभ एव स्वार्थे यत् जंभ्यते इति कर्मणि ण्यत् वा। दन्त, दाँत।

जम्मलमदुगु—१ मन्द्राज प्रान्तके कडप्पा जिलेका उत्तर पश्चिम तालुक यह अक्षा० १४° ३७' एवं १५° ५' उ० और देशा० ७८° ४' तथा ७८° ३०' पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ६१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०३७०७ है। इसमें एक नगर और १२६ गांव हैं। मालगुजारी और सेस लगभग २७२०००) रु० लगती है। दक्षिण अञ्चलमें पूर्वसे पश्चिम तक पर्वतश्रेणी है। पश्चिममें दो नदियां आ कर मिली हैं। उत्तर और पश्चिमकी भूमि उर्वरा है।

२ मन्द्राज प्रान्तके कडप्पा जिलेमें जम्मलमदुगु तालुकका सदर। यह अक्षा० १४° ५१' उ० और देशा० ७८° १४' पू०में पेन्नेर नदीके पश्चिम तट पर बसा है। जनसंख्या १३८८२ है। यहां नील और रुईकी बड़ी रफ़्तनी होती है। करघोंसे कपड़े भी तैयार किये जाते हैं। नरपुरस्वामीकी रथयात्रा खूब धूमधामसे होती है। है। यह मेला १० दिन तक लगा रहता है। आसपासके बहुतसे लोग देखने आते हैं।

जम्बू—काश्मीर राज्यकी जम्मू प्रान्तकी राजधानी। यह अक्षा० ३२° ४४´ उ० और देशा० ७४° ५५´ पू०में अवस्थित है। यहां शीत ऋतुमें महाराजका सदर रहता है। जनसंख्या प्रायः ३६१३० लोगो। रावी नदीके दक्षिण तटमें जम्बू समुद्रपृष्ठसे १२०० फुट ऊंचा बसा है। मण्डीमें महाराजका राजप्रासाद है। दूरसे इसके धवलमन्दिर देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं। श्रीरघुनाथजीका मन्दिर सबसे बड़ा है। सियालकोट रेलवे गयी है। राजा रणजित्‌देवके समय इसकी आबादी १५०००० थी। स्वर्गीय महाराज रघुवीर सिंहके राजत्वकालमें यहां बड़ा व्यवसाय रहा। १८७१ ई०में अजायब घर बना। मुबारक महल और पास ही रामनगर पर्वत पर राजा अमरसिंहका प्रासाद देखने योग्य है। काश्मीर देखो।

जय (सं० पु०) जि जये अच्। १ युद्धादि स्थलमें शत्रुपराजय, विरोधियोंको दमन कर स्वत्व या महत्त्व स्थापन, जीत। २ उत्कर्षलाभ, बड़ाई या प्रशंसा हासिल करना। ३ अयन। ४ वशीकरण। ५ वह जो विजयी हो। ६ युधिष्ठिर। इन्होंने विराट्‌राजके घरमें छद्मवेशीको अवस्थितिके समय यह कृत्रिम नाम धारण किया था। ७ इक्ष्वाकुवंशीय एकादश राजचक्रवर्ती। ८ नारायणके एक पार्श्वचर, विष्णुके एक पार्षदका नाम। जय और उसके भाई विजय वैकुण्ठमें विष्णुको द्वार रक्षा करते थे। किसी समय उन दोनोंने शनकादि ऋषियोंको हरि दर्शन करनेसे रोका था। इस पर ऋषियोंने क्रुद्ध हो कर उन्हें शाप दिया। उस शापसे जयको संसारमें तीन बार हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपालका अवतार तथा विजयको हिरण्यकशिपु, कुम्भकर्ण और कंसका जन्म ग्रहण करना पड़ा था। अन्तमें नारायणके हाथसे निहत हो कर उनकी मुक्ति हुई थी। सर्वाणि भूतानि जयतीति जीयते संसारः अनेन वा। ८ विष्णु। १० नागविशेष। (भारत ५।१३।१६) ११ दानवके राजा। १२ दशम मन्वन्तरीय एक ऋषि। १३ ध्रुववंशीय वत्सर राजाके पुत्र। १४ विश्वामित्र ऋषिके एक पुत्र। १५ एक राजर्षि। १६ उर्वशी गर्भजात पुरूरवाके एक पुत्र। १७ धृतराष्ट्रके एक पुत्र। १८ सञ्जय राजाके पुत्र। १८ युयुधान राजाके पुत्र। २० भारतादि शास्त्रविशेष।

"अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा।
विष्णुधर्मादिशास्त्राणि शिवधर्माश्च भारत ॥
कार्ष्णंच पंचमो वेदो यन्महाभारतं स्मृतम्।
शौराश्च धर्मा राजेन्द्र! मानवोक्ता महीपते ॥
जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः।" (भविष्यपु०)

२१ दक्षिणद्वारिगृह, वह मकान जिसका दरवाजा दक्षिणकी तरफ हो। २२ बार्हस्पत्य सम्वत्सरके प्रोष्ठपद नामक षष्ठयुगका तृतीय वत्सर, ज्योतिषके अनुसार वृहस्पतिके प्रोष्ठपद नामक छठे युगका तीसरा वर्ष। इस वर्षमें अत्यन्त उद्वेग और वृष्टिपात होता है और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और नटनर्त्तक सबको बहुत पीड़ा होती है। २३ अग्निमन्थवृक्ष, अरणी नामका पेड़। २४ पीतमुद्ग, हरी मूंग। २५ सूर्य। २६ इन्द्र। २७ इन्द्रके पुत्र जयन्त। २८ विदेहराजवंशीय सुश्रुतके पुत्र। २८ श्रुतके एक पुत्र। ३० संकृतिके एक पुत्र। ३१ मञ्जुके एक पुत्रका नाम। ३२ कङ्कके पुत्र अशोक। ३३ लाभ। ३४ जयन्तीवृक्ष, जैतका पेड़।

जयक (सं० त्रि०) जय-कन्। जययुक्त।

जयकङ्कण (सं० पु०) एक प्रकारका कङ्कण जो प्राचीन कालमें वार वा योद्धाओंको युद्धमें विजय प्राप्त करने पर सम्मानार्थ प्रदान किया जाता था।

जयकण्ठ—सूक्तिकर्णामृतधृत एक प्राचीन कवि।

जयकरण—पंचानन देखो।

जयकवि (बन्दीजन)—हिन्दीके एक कवि। ये लखनऊके रहनेवाले थे। १८४४ ई०में इनका जन्म हुआ था। उर्दूमें भी इनकी कविता अच्छी उतरती थी और सबको प्रिय होती थी। कुछ दिनों तक इनका मुसलमानोंसे झगड़ा चला था।

जयकरी (सं० स्त्री०) चौपाई नामका छन्दका एक नाम।

जयकुमार—जैनमतानुसार हस्तिनापुरके राजा। ये राजा सोमप्रभके पुत्र और मोक्षगामी महापुरुष थे। इनका दूसरा नाम मेघेश्वर भी था। आदिपुराण वा महापुराण आदि जैन-पुराणग्रन्थोंमें इनकी जीवनी बहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण लिखी है। यहां उसका संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है—

श्रीऋषभनाथ भगवान्‌के पुत्र छह खण्डके अधिकारी

भरत चक्रवर्तीके साम्राज्यमें थोड़े ही दिनके बाद स्वयंवर (कन्या द्वारा पतिका स्वयं वरण करना) विधिका प्रचलन हुआ। प्रथम ही काशीके राजा अकम्पनने अपनी पुत्री सुलोचनाका स्वयंवर कराया। स्वयंवर-मण्डपमें बड़े बड़े विद्याधर और राजा महाराज एवं अनेक राजपुत्रोंके उपस्थित होते हुए भी सुलोचनाने हस्तिनापुरके स्वामी राजा जयकुमारके गलेमें वरमाला डाल दी। राजराजेश्वर भरत चक्रवर्तीके ज्येष्ठपुत्र अर्ककीर्ति भी स्वयंवरमें उपस्थित थे। सुलोचनाने जब जयकुमारके गलेमें माला पहना दी, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उसी समय वे जयकुमारसे युद्ध करनेके लिए तैयार हो गये। दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। अर्ककीर्तिको अभिमान था कि, मैं चक्रवर्तीका पुत्र हूं, मुझे कौन जीत सकता है! किन्तु यह नियम है कि घमण्डियोंका ही घमण्ड चूर होता है। राजा जयकुमार असीम पराक्रमी और उदारचेता महापुरुष थे। इन्होंने जीवित अवस्थामें ही अर्ककीर्तिको पकड़ लिया और पीछे बन्धनसे मुक्त कर सम्मानपूर्वक उन्हें छोड़ दिया। चक्रवर्तिपुत्र अर्ककीर्ति लज्जित हो अपने घर पहुंचे। जब सुलोचनाके साथ जयकुमार अयोध्या आये, तो भरतचक्रवर्ती उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बार बार उनकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर जयकुमारने हस्तिनापुर जानेकी आज्ञा मांगी। भरतचक्रवर्तीने इन्हें सम्मानपूर्वक विदा कर दिया। (जैन हरिवंशपुराण १२।०-१ अ०)

एक दिन सन्ध्याके समय हस्तिनापुरके स्वामी राजा जयकुमार अपनी अनेक रानियों सहित महलकी छत पर बैठे थे, कि इतनेमें एक विद्याधर (आकाशगमन आदि ऋद्धियोंके धारक मनुष्य वा राजा) अपनी स्त्रीके साथ उनके सामनेसे निकल गये। विद्याधरोंको देखते ही ये मूर्छित हो गये। उनकी मूर्छित अवस्थाको देख कर रानियां घबरा गईं और अनेक उपचार करने लगीं। जब कुछ होश हुआ तो वे "हाय! प्रभावती तू कहां चली गई इत्यादि कह कर दुःखित होने लगे।" उसी समय उन्हें पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। उधर रानी सुलोचनाको भी महलके छज्जे पर कबूतर कबूतरीको क्रीड़ा करते देख मूर्छा आ गई। उन्हें भी पूर्व-जन्मकी बातें स्मरण हुआ और 'हिरण्यवर्मा'को पुकारने लगीं। 'हिरण्यवर्मा'का नाम सुनते ही जयकुमारने कहा— "प्रिये! मेरा ही नाम हिरण्यवर्मा था।" सुलोचनाने गद्‌गद्‌कण्ठसे कहा—"नाथ! मैं भी पहले जन्ममें प्रभावती थी।" इस प्रकार अपनेको पूर्वभवके विद्याधर जान जयकुमार और सुलोचनाको परम आनन्द हुआ। दोनों सुखसे काल यापन करने लगे। अन्तःपुरकी अन्य रानियोंको इनके पूर्व-जन्मका यह चरित्र देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सुलोचनासे पूर्व-जन्मकी कथा सुनानेके लिये अनुरोध करने लगी। सुलोचना कहने लगी—

"इसी पृथिवी पर किसी जगह सुकान्त नामक एक व्यक्ति अपनी स्त्री रतिवेगाके साथ सुखसे रहते थे। किसी कारणसे उद्दिपिटकारि नामक एक व्यक्तिसे सुकान्तकी शत्रुता हो गई। उद्दिपटकारिका दूसरा नाम भवदेव था। उसने सुकान्त और रतिवेगाको अग्निमें डाल कर मार डाला। दम्पतीमें परस्पर खूब प्रेम था। मर कर ये दोनों अपने मनके भावानुसार कबूतर कबूतरी हुए। उद्दिपिटकारिको भी राजदण्ड हुआ। राजा शक्तिषेणने उसको अग्नि निक्षिप्त करनेका आदेश दिया। वह मर कर मार्जार हुआ। वहां भी उसने अपना वैर न छोड़ा और कबूतर कबूतरीको खा गया। कबूतर और कबूतरीके जीवने किसी समय मुनि महाराजके लिये किसीको आहार दान करते देख उसका अनुमोदन किया था, अतः उस पुण्यके प्रभावसे कबूतर तो मर कर हिरण्यवर्मा नामक विद्याधर हुआ और कबूतरी उसकी स्त्री (प्रभावती) हुई। वह मार्जार भी, कुछ दिन बाद मर कर विद्युद्वेग नामका चोर हुआ। राजा हिरण्यवर्मा और प्रभावतीको किसी कारणवश संसारसे वैराग्य हो गया, दोनोंने राज्य-सुखको छोड़ कर मुनि और आर्यिकाकी दीक्षा ले ली। वनमें भी उन्हें शान्ति न मिली। घूमता फिरता विद्युद्वेग भी वहां आ पहुंचा। मुनि एवं आर्यिकाको देख कर उसे पूर्व जन्मकी प्रबल शत्रुताके कारण क्रोध आ गया और दोनोंको उसने प्राणरहित कर दिया। दोनों मर कर सौधर्म नामक प्रथम स्वर्गमें देव और देवांगना हुए। विद्युद्वेगको राजाने कारावासका दण्ड

दिया। वहां उसे एक चाण्डालके उपदेशसे ज्ञानकी प्राप्ति तो हो गई थी, पर मुनि-हत्याके पापसे पीछे उसे मर कर नरकके कष्ट सहने पड़े। नरकसे निकल कर ज्ञान-की महिमासे वह भीम नामका वणिक्-पुत्र हुआ और संसारसे विरक्त हो उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली। किसी समय उपरोक्त देव अपनी देवाङ्गनाके साथ मर्त्यलोकमें आये और उन्हें मुनि भीमदेवके दर्शन हुए। भीम-देवसे धर्मका स्वरूप पूछने पर उन्होंने धर्मकी व्याख्या-के साथ साथ उनके पूर्व-जन्मका वर्णन भी सब कह सुनाया। भीमदेव और देव एवं देवाङ्गनाकी शत्रुता-का यहीं अन्त हो गया और सब परस्पर प्रेम करने लगे। मुनि भीमदेवको तपस्याके प्रभावसे मोक्षकी प्राप्ति हो गई और इस दोनोंने स्वर्गसे च्यवन कर यहां जयकुमार और सुलोचनाके रूपमें जन्मग्रहण किया।"

(जैनहरिवंश १२।१०-२२)

पूर्व-जन्मका स्मरण होने पर जयकुमार और सुलोचनाको पहलेकी विद्याएं (ऋद्धियां भी) प्राप्त हो गई। दोनों तीर्थ दर्शनार्थ कैलास पर्वत पर पहुंचे, जहांसे श्री ऋषभनाथ भगवान्‌को मोक्षकी प्राप्ति हुई है। इसी समय सौधर्म स्वर्गमें इन्द्र अपनी सभामें जयकुमारके परिग्रहपरिमाण-व्रतकी प्रशंसा कर रहे थे। रतिप्रभ नामक एक देव भी वहीं बैठे थे। इन्द्रके मुखसे जयकुमार-की प्रशंसा सुन कर रतिप्रभदेव उनकी परीक्षा करनेके अभिप्रायसे कैलास पर्वत पर पहुंचे और एक पीनोन्नत-पयोधरा सुन्दरी युवतीका रूप धारण कर चार सखियों-के साथ जयकुमारके पास गये। हाव-भाव दिखाते हुए उक्त छद्मवेशधारी रतिप्रभ जयकुमारके सामने जा कर कहने लगे-"हे जयकुमार! सुलोचनाके स्वयंवरके समय जिस नमि विद्याधरके साथ आपका युद्ध हुआ था, मैं उसी की स्त्री हूं। सुरूपा मेरा नाम है। आपके रूप और बल-की प्रशंसा सुन कर मुझसे रहा न गया, मैं नमिसे विरक्त हो कर आपको अपना सर्वस्व सौंपनेके लिए यहां आई हूं, मैं सब तरहसे आप पर मोहित हूं। मुझ पर कृपा कीजिये, मुझे अङ्गीकार कर अपनी दासी बनाइये और मेरे तमाम राज्यको ग्रहण कर भोग कीजिये।" यह सुन कर जयकुमारने उत्तर दिया—"हे सुन्दरी! आप ऐसे वचन न कहें। आप स्त्री-रत्न हैं और मेरे लिए आप पर-स्त्री होनेके कारण माताके समान हैं। ऐसे राज्यकी मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं, जिसके लिए मैं अपना और आपका धर्म नष्ट करूं। परस्त्री और पर-सम्पत्तिको मैं कदापि ग्रहण नहीं कर सकता, चाहे प्राण रहें वा जाय। बहन! आप जैसी रूपवती हैं, वैसी ही यदि शीलवती होतीं तो, आप मानवी नहीं देवी थीं। मुझे अत्यन्त दुःख है कि, आप इतनी सुन्दरी हो कर भी पतिव्रता न हुईं। आपको उचित है कि, पतिकी पदसेवा कर इस शरीरका सदुपयोग करें।"

इसके बाद जयकुमारने सामायिक वा आत्मध्यानमें मन लगा कर ध्यानमें लीन हो गये। परन्तु छद्मवेशी रतिप्रभने उनका पीछा न छोड़ा। उन्हें ध्यान-च्युत करनेके लिए नाना तरहके शृङ्गारोनादि करने लगे। अन्तमें झक मार कर उन्होंने विकराल रूप धारण कर जयकुमारको डरानेका भी प्रयत्न किया, परन्तु धीर-वीर जयकुमारका हृदय जरा भी चञ्चल न हुआ। जब वे किसी तरह भी जयकुमारको ध्यान-च्युत न कर सके तब उन्हें इन्द्रकी प्रशंसा सत्य जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ। अपना यथार्थ रूप धारण कर कहने लगे— "हे धीरश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपके सन्तोष और हृदय की स्थिरताको देख कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। मैं सुन्दरी युवती नहीं किन्तु स्वर्गका देव हूं, मेरा नाम है रतिप्रभ। स्वर्गमें इन्द्रके मुंहसे आपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी, आप सर्वथा उसके योग्य हैं।" इस प्रकार जयकुमारकी प्रशंसा करते हुए रतिप्रभदेवने उन्हें वस्त्राभूषण आदि उपहारमें दिये और उनको नमस्कार कर वहांसे प्रस्थान किया।

इसके बाद ये कई दिन तक कैलास पर्वत पर भगवान्‌की पूजा करते रहे। फिर अपने राज्यमें आ कर कुछ दिन राज्य किया। अन्तमें संसारसे विरक्त हो राज्यसुखको त्याग कर ये मुनि हो गये और कठिन तपस्याके फलसे इन्हें मोक्ष प्राप्त हुई। रानी सुलोचनाने भी आर्यिकाके व्रत धारण किये और समाधिपूर्वक मरण होनेसे उनकी आत्मा स्वर्गमें गई। (महापुराणान्तर्गत आदिपुराण)

जयकृष्ण—१ एक संस्कृत-ग्रन्थकार। इन्होंने बदरिकाश्रम-यात्रापद्धति, भक्तिरत्नावली, हरिभक्तिसमागम आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

२ रूपदीपकपिङ्गलके रचयिता।

३ एक प्रसिद्ध संस्कृतके कवि, बालकृष्णके पुत्र। इन्होंने प्रजामिलोपाख्यान, कृष्णस्तोत्र, कृष्णचरित्र, ध्रुवचरित, प्रह्लादचरित, वामनचरित आदि संस्कृत ग्रन्थोंका प्रणयन किया है।

४ कविचन्द्रोक्त एक कवि।

५ हिन्दीके एक कवि, भवानीदासके पुत्र। इन्होंने छन्दसार नामक एक हिन्दी ग्रन्थ रचा है।

जयकृष्ण तर्कवागीश-बङ्गालके एक स्मार्तपण्डित। इन्होंने श्राद्धदर्पण नामका एक स्मृतिसंग्रह, दायाधिकारक्रमसंग्रह और जीमूतवाहनरचित दायभागकी दायभागदीप नामका टीका रची थी।

जयकृष्ण मौनी—एक प्रसिद्ध शाब्दिक। ये रघुनाथभट्टके पुत्र और गोवर्द्धनभट्टके पौत्र थे। इन्होंने कारकवाद, लघुकौमुदी-टीका, विभक्त्यर्थनिर्णय, वृत्तिदीपिका, शब्दार्थतर्कामृत, शब्दार्थसारमञ्जरी, शुद्धिचन्द्रिका, स्फोटचन्द्रिका, सिद्धान्तकौमुदीकी वैदिक-प्रक्रियाकी-सुबोधिनी नामसे टीका लिखी थी।

जयकेतु—काण्यकुब्जके एक राजा।

जयकेशि—१ गोआके एक कादम्ब राजा। ये १०५२ ई०में राज्य करते थे। २ उक्त जयकेशिके पौत्र। ३ कादम्बवंशके एक दूसरे राजाका नाम। इन्होंने ११७५ ई०से ११८८ ई० तक राज्य किया था।

जयकेसरी—दुर्गश्लोकार्थ नामक दुर्गामाहात्म्यके टीकाकार।

जयकोलाहल (सं० पु०) जयस्य कोलाहलो यत्र, बहुव्री०, जयस्य कोलाहलः ६-तत्। १ कलकलध्वनि, जयध्वनि, वह शब्द जो लड़ाई जीतने पर आनन्दसे किया जाता है। २ जयपुत्रक, प्राचीन कालका जुआ खेलनेका एक प्रकारका पासा।

जयक्षेत्र (सं० क्ली०) पुण्यस्थानविशेष।

जयखाता (हिं० पु०) बनियोंकी आय और व्यय लिखनेकी बही।

जयगढ़—बम्बई प्रान्तके रत्नगिरि जिलेका एक बन्दर। यह अक्षा० १७° १७' उ० और देशा० ७३° १२' पू०में सङ्गमेश्वर नदीके दक्षिण मुहाने पर अवस्थित है। इसकी खाड़ी २ मील लंबी और ५ मील चौड़ी है। जलानेकी लकड़ी और गुड़की रपतनी होती है। समुद्र किनारे ४ एकरका एक किला खड़ा है। परन्तु वह धीरे धीरे गिरने जाता है। इस दुर्गके प्रकृत निर्माता बीजापुर-नरेश थे। फिर मशहूर डाकू सङ्गमेश्वर नायक यहां आ कर रहे। इन्होंने १५८३ और १५८५ ई०में पोर्तगोज और बीजापुरके सम्मिलित सैन्यको सफलतापूर्वक रोका था। १७१३ ई०में विख्यात महाराष्ट्र डाकू आंग्रियाने उसे अधिकार किया और १८१८ ई०में जून मास अंगरेजोंको मिला। आलोकगृह १३ मिल दूर तक देख पड़ता है।

जयगुप्त—शार्ङ्गधरधृत एक कविका नाम।

जयगोपाल—सेवाफलविवरण-टीकाके प्रणेता।

जयगोपाल तर्कालङ्कार—एक प्रसिद्ध बङ्गाली विद्वान्। १७७५ ई०में नदीया जिलेके बजरापुर ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके पिता केवलराम तर्कपञ्चानन नाटोर-राजके सभापण्डित थे। ये अपने पांच भाइयोंमें सबसे छोटे थे और कौलिक इनकी उपाधि थी। ये अपने पिताके साथ काशी रहते थे और वहीं इन्होंने विद्याभ्यास किया था। साहित्यशास्त्रमें इनकी असाधारण व्युत्पत्ति थी। ये अद्वितीय शाब्दिक भी थे। १७९४ ई०में इनका विवाह हुआ था। १८०३ में इनके पिता मर गये। इसके बाद इनको श्रीरामपुरमें केरी साहबका काम करना पड़ा था। ४६ वर्षकी उम्रमें इन्होंने दूसरा विवाह किया था। १८१३ ई०में ये संस्कृत कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुए। १६ वर्ष ये कालेजहीमें काम करते रहे। विद्यासागर, ताराशङ्कर आदि इनके छात्र थे। ये सुकवि भी थे। इन्होंने कृत्तिवासकी बङ्गला रामायण छपाई थी। उसकी कवितामें भी इन्होंने भाषाका बहुत फेर फार किया था जिससे प्राचीन बङ्गला भाषासे लोगोंको वञ्चित रहना पड़ा और प्राचीन बङ्गला भाषाका भी अनिष्ट हुआ।

दूसरा विवाह करने पर भी इन्हें सन्तानसे वञ्चित

रहना पड़ा था। शक सं० १७६६ वा ई० १८४४में इनकी मृत्यु हुई।

जयगोपालदास—भक्तिभावप्रदोप नामक भक्तिग्रन्थके रचयिता।

जयघोषण (सं० क्लो०) जयशब्दोच्चार, जयकी घोषणा, जीतकी आवाज़।

जयचन्द्र—१ कन्नौजके राठोरवंशीय शेष राजा। १२२५ सम्वत्‌में उत्कीर्ण शिलालेखमें ये जयच्चन्द्र नामसे अभिहित हुए हैं। कन्नौज देखो। इनके पिताका नाम विजयचन्द्र था, उन्होंने दिल्लीश्वर अनङ्गपालकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया था। जयचन्द्र इन्हींके गर्भसे पैदा हुए थे। किसी समय सार्वभौमपदके कारण राठोर-राजके साथ अनङ्गपालका तुमुल संग्राम हुआ था। इस युद्धमें चौहानवंशीय अजमेरके राजा सोमेश्वरने अनङ्गपालको यथेष्ट सहायता की थी। दिल्लीश्वर अनङ्ग-पालने इस उपकारके प्रतिदान स्वरूप उनके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया था। इस कन्याके गर्भमें पृथ्वीराजका जन्म हुआ था। अनङ्गपाल दो दौहित्रोंमें पृथ्वीराज पर हो अधिक स्नेह करते थे। अनङ्गपालके कोई पुत्र न था। वे मरते समय अपने केवल पृथ्वीराजको राजसिंहासन दे गये थे। नानाका ऐसा पक्षपात देख कर कुटिलमति जयचन्द्रके हृदयमें ईर्ष्यानल जल उठा। उन्होंने इसका बदला लेनेके लिए कमर कस ली। राठोरराज महा पराक्रमी थे, उनकी चिरशत्रु चौहान जाति भी उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकती थी। इन्होंने सिन्धुके पश्चिम प्रान्त वर्ती राजाको पराजित कर अनहलवाड़के अधिपति सिद्धराजको दो बार युद्धमें पराभूत किया था। इनका राज्य नर्मदा नदी तक विस्तृत था। ये राजचक्रवर्तीको उपाधि पानेके लिए गर्वित चित्तसे राजसूययज्ञानुष्ठानमें प्रवृत्त हुए।

यह यज्ञ बड़ा कष्टसाध्य होता है। इसमें भोजन-पात्रोंका प्रक्षालन करना इत्यादि समस्त कार्य राजाओं-को ही करना पड़ता है। यज्ञके सम्वादसे समस्त भारतवर्षमें हलचल मच गई। यज्ञसमाप्तिके उपरान्त निमन्त्रणपत्रोंमें यह सम्वाद भी लिखा गया कि, जयचन्द्रकी कन्या संयुक्ता (संयोगिता)-का स्वयम्बर होगा। यज्ञ-स्थानमें समस्त नृपति हो उपस्थित हुए, किन्तु पृथ्वीराज और उनके बहनोई समरसिंह नहीं आये। जयचन्द्रने उनको नीचा दिखानेके लिए उनकी दोस्वर्ण मूर्तियां बनवाईं और उनको द्वारपालकी पोशाक पहना कर यज्ञशालाके द्वार पर रखवा दिया। यज्ञान्तमें जयचन्द्रकी कन्या संयोगिताने अन्यान्य राजा-ओंकी उपेक्षा कर पृथ्वीराजकी सुवर्णमूर्तिके गलेमें वर-माल्य पहना दी इस सम्वादको सुन कर पृथ्वीराज सेना सहित यज्ञशालामें आये और अपने बाहुबलसे जयचन्द्र-की पुत्रीको हरण कर ले गये। क्षोभ और लज्जासे जय-चन्द्रकी ईर्ष्यावह्नि और भी जल उठी। उन्होंने गजनी-पति साहब-उद्दीन् गोरीको सहायतार्थ बुलाया। मौका देख गोरीने भी इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। दृषद्वती नदीके किनारे ११८३ ई०में मुसलमान सेनाके साथ पृथ्वीराजका शेष युद्ध हुआ। पृथ्वीराज कैद कर लिए गये। अन्तमें वे निहत हुए। अब मुसलमान लोग विजयोन्मत्त हो कर भीमदर्पसे भारतके वक्षस्थल पर विचरण करने लगे। इधर जयचन्द्रने भी अपने कियेका फल जल्द पाया। कुछ दिन बाद मुसलमानोंने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी, कन्नौज भी शत्रुओंके हस्तगत हुआ। जयचन्द्रने जान बचानेके लिए भागना चाहा; किन्तु राहमें नाव डूब जानेसे उनकी भी मृत्यु हो गई। इन्हीं-की कुटिलता, स्वार्थपरता और विश्वासघातकताके कारण भारतका गौरवरवि हमेशाके लिए अस्त हो गया। राजपूतानाके भाटोंने जयचन्द्रके विषयमें ऐसा लिखा है।

परन्तु मुसलमान ऐतिहासिकोंके मतसे—जयचन्द्रने रणक्षेत्रमें ही वीरोंकी भांति शरीर छोड़ा था। मिन्‌हाजकी तवकात-ए-नासिरोके मतसे—कुतुबउद्दीनने ५८० हिजिरामें सिपहसालार इज़्उद्दीनके साथ बनारसके राजा जयचन्द्र पर आक्रमण किया था। चन्द-वाल नामक स्थानमें जयचन्द्र परास्त हुए थे। कामिल्-उत् तवारीख पारसी इतिहासमें लिखा है कि साहब-उद्-दीन गोरीने जमुनाके किनारे जयचन्द्र पर आक्रमण किया था। उस समय जयचन्द्रका अधिकार मालवसे चीन तक

विस्तृत था। इसके अंर्मे जयचन्दके साथ सात सौ निषादी और प्रायः १ लाखसे ज्यादा सेना थी। इसी युद्धमें जयचन्द्र निहत हुए थे।

२ नागरकोट या काङ्गड़ाके राजा, सम्राट् अकबरके समय इनका प्रादुर्भाव हुआ था।

३ जयपुरनिवासी एक ग्रन्थकार।

जयचन्द्राय छाबड़ा देखो।

४ मिथ्यात्वखण्डन नामक जैन ग्रन्थके रचयिता।

जयचन्द्राय छाबड़ा-जयपुर-निवासी एक हिन्दीके प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार। इनकी जाति खण्डेलवाल और छाबड़ा गोत्र था। आपने हिन्दी भाषामें निम्नलिखित धर्म ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

१ सर्वार्थसिद्धि	विक्रम सम्वत् १८६१में
२ परीक्षामुख (न्याय)	१८६३में
३ द्रव्यसंग्रह	१८६३में
४ स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा	१८६६में
५ आत्मख्याति-समयसार	१८६४में
६ देवागम (न्याय)	१८६६में
७ अष्टपाहुड़	१८६७में
८ ज्ञानार्णव	१८६७में
९ भक्तामरचरित्र	१८७०में
१० सामायिक पाठ	
११ चन्द्रप्रभकाव्यके २य सर्गका न्याय भाग	समय मालूम नहीं।
१२ मतसमुच्चय (न्याय)	
१३ पत्रपरीक्षा (न्याय)	

इन सब ग्रन्थोंमें सिवा भक्तामरचरित्रके सभी उच्च कोटिके तात्त्विक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंकी हिन्दी भाषा प्राचीन ढूंढारी होने पर भी अति सरल है।

जयजयवन्ती (हिं॰ स्त्री॰) सम्पूर्ण जातिकी एक सङ्कर रागिणी। यह धूलश्री, बिलावल और सोरठके योगसे बनती है। इसमें समस्त स्वर शुद्ध लगते हैं। यह वर्षा ऋतुमें तथा रातको ६ दण्डसे १० दण्ड तक गाई जाती है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह मालकोषकी सहचरी अथवा मेघराजकी भार्या है।

जयढक्का (सं॰ स्त्री॰) जयार्थं ढक्का, मध्यपदलो॰। वाद्य-विशेष, प्राचीनकालका एक प्रकारका बड़ा ढोल। जय-ध्वनि करनेके लिये ढोल बजाया जाता था।

जयत कवि—हिन्दीके एक कवि। ये अकबर बादशाहके दरबारमें रहते थे। १५४४ ई॰में इनका जन्म हुआ था।

जयतरु (सं॰ पु॰) नन्दीवृक्ष।

जयताल (सं॰ पु॰) तालके साठ प्रधान भेदोंमेंसे एक। इसमें क्रमसे एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो गुरु, दो द्रुत और एक लुप्त होता है। यह ताल सातमात्रा कहलाता है।

जयति, जयत् (हिं॰ पु॰) गौरी और ललितके मेलसे बननेवाला एक सङ्कर राग।

जयतिश्री (सं॰ स्त्री॰) एक रागिणी। यह दीपक राग-की भार्या मानी जाती है।

जयती (हिं॰ स्त्री॰) श्रीरागके अन्तर्गत एक रागिणीका नाम। यह सम्पूर्ण जातिकी रागिणी है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। किसी किसीका कहना है कि पूरिया-ललित और बसन्तके योगसे बनी है। बहुतसे लोग इसे टोड़ी, विभास और बदानाके मेलसे बनी मानते हैं। संस्कृत पर्याय—जयेती।

जयतीर्थ (सं॰ स्त्री॰) १ तीर्थविशेष, एक तीर्थस्थान। (शिवपु॰)

२ एक प्रसिद्ध दार्शनिक। पद्मनाभ और अक्षोभ्यतीर्थ-के शिष्य। इनका पूर्वनाम ढुंढ रघुनाथ था, संन्यास ग्रहण-के पीछे ये जयतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने संस्कृत भाषामें अनेक ग्रन्थ रचे हैं। इन्होंने आनन्दतीर्थ कृत प्रायः समस्त ग्रन्थोंकी टीकाएं लिखी हैं। उनमेंसे निम्नलिखित टीकाएं मिलती हैं—ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तत्त्वप्रकाशिका नामक टीका, उपाधिखण्डनकी तत्त्वप्रकाशिकाविवरण नामकी टीका, ब्रह्मसूत्रव्याख्यानकी न्यायसुधा नामक टीका, अनुव्याख्यानान्वयविवरणकी पञ्जिका, प्रमाण-लक्षणकी न्यायकल्पलता नामक टीका ईशोपनिषद्भाष्य-की टीका, ऋग्वेदभाष्यकी टीका, मायालक्षणकी टीका, कार्यनिर्णयकी टीका, तत्त्वविवेक टीका, तत्त्वसंख्यानकी टीका, तत्त्वोद्योतकी टीका, मायावादखण्डनकी टीका, प्रश्नोपनिषद्भाष्यकी टीका, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डन की टीका, भगवद्गीताभाष्यकी प्रमेयदीपिका नामक

टीका, गीतातात्पर्य्यनिर्णयकी न्यायदीपिका नामक टीका, विष्णुतत्त्वनिर्णयकी टीका और ऋग्भाष्यकी टीका इसके सिवा जयतीर्थ षट्पञ्चाशिका, वेदान्तवादावलि, प्रमाणपद्धति आदि न्याय और वेदान्त सम्बन्धी कई-एक ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। १२६८ ई०में जयतीर्थका तिरोभाव हुआ था। नृसिंहस्मृत्यर्थसागरमें इनका मत उद्धृत किया गया है।

जयतुङ्गनाड़—मन्द्राज प्रान्तके त्रिवाङ्कुड़ राजाका एक पुराना उपविभाग। सुचीन्द्रम् मन्दिरमें राजा आदित्य-वर्माके समयकी जो शिलालिपि मिली, उसमें लिखा है कि त्रिवाङ्कुड़ राज्य १८ विभागोंमें बंटा हुआ था। जय-तुङ्गनाड़ उसकी राजधानी था। इसका अपर नाम जय-सिंहनाड़ है। किन्तु आजकल जयतुङ्गनाड़की सीमाका निर्धारण अनुमानसापेक्ष है। मालूम होता है कि वह घाट पर्वतकी पूर्व दिक्में अवस्थित था।

जयतोड़ा—बङ्गालके अन्तर्गत मानभूम जिलेका एक परगना। इसका रकबा करीब २२५० मील होगा। यह पञ्चकोटके राजाकी जमींदारीके अन्तर्भुक्त है।

जयत्कल्याण (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक सङ्कर राग। यह कल्याण और जयन्तिश्रीको मिलानेसे बनता है। यह रात्रिके प्रथम प्रहरमें गाया जाता है।

जयत्सेन-१ विराटनगरमें गुप्तावस्थानके समयका नकुलका एक नाम। २ मगधके एक राजा। ३ पुरुवंशीय सार्व-भौम राजाके पुत्र। सार्वभौमके औरस और कैकयराज-कन्याके गर्भसे इनकी उत्पत्ति है। ४ सोमवंशीय अहीन-राजके एक पुत्रका नाम।

जयद (सं० त्रि०) जयं ददाति जय दा-क्विप्। जयदाता, जितानेवाला।

जयदत्त (सं० पु०) जयेन विजयेन दत्तएव। १ इन्द्रपुत्र। २ एक राजा। इनके पुत्रका नाम देवदत्त था।

३ एक प्रसिद्ध आयुर्वेदविद्, विजयदत्तके पुत्र। इन्होंने संस्कृत भाषामें अश्ववैद्यक नामक अश्वचिकित्सा सम्बन्धी एक ग्रन्थ प्रणयन किया था।

जयदुर्गा (सं० स्त्री०) दुर्गाकी एक मूर्ति। तन्त्रसारमें जयदुर्गाकी मूर्त्तिका इस प्रकार विवरण पाया जाता है—

'कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढ़ां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धकामैः॥"

दुर्गा देखो।

जयदेव-संस्कृत साहित्यमें इस नामके बहुतसे कवियोंका उल्लेख मिलता है, जिनमें बङ्गालके गीतगोविन्द-प्रणेता जयदेवकी हो सर्वत्र प्रसिद्ध है।

१ गीतगोविन्द-प्रणेता जयदेवके पिताका नाम था भोजदेव और माताका नाम रामादेवी। वीरभूम जिलेके केन्दुविल्व (केन्दुली) ग्राममें इनका जन्म हुआ था। जय-देवचरितके लेखकका कहना है कि ये १५वीं शताब्दी-में विद्यमान थे। परन्तु हम इन्हें उससे भी प्राचीन समझते हैं, क्योंकि श्रीधरदासके सूक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत है। गीतगोविन्दकी एक प्राचीन प्रतिमें "—लक्ष्मणसेन नाम नृपतिसमये श्रीजयदेवस्य कविराजप्रतिष्ठा" लिखा है। इससे भी प्रमाणित होता है कि महाकवि जयदेव गौड़ाधिप लक्ष्मणसेनकी सभामें थे। 'अलङ्कारशेखर'में लिखा है, जयदेव उत्कलराजके सभाकवि थे।

भक्तिमाहात्म्य आदि संस्कृत ग्रन्थोंमें जयदेवका परिचय इस प्रकार मिलता है—

थोड़ी उम्रमें ही जयदेवको वैराग्य हो गया और वे पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चले गये। वहां ये सर्वदा पुरुषोत्तमकी सेवा करते रहते थे। जगन्नाथ भी इनके गुणों पर मुग्ध हो गये थे। इसी समय एक ब्राह्मण जगन्नाथकी कृपासे एक कन्या प्राप्त कर उसे उन्हींके श्रीचरणोंमें अर्पण करनेके लिए आया। पुरुषोत्तमने प्रत्यादेश दिया—'जयदेव नामका एक मेरा सेवक है, तुम उसे हो यह कन्या अर्पण करो।" इस पर ब्राह्मण अपनी कन्या पद्मावतीको लेकर जयदेवके पास पहुंचा और उनसे सब हाल कहा। जयदेव किसी तरह भी राजी न हुए। आखिर वह पद्मावतीको इनके पास छोड़ कर चला गया। जय-देवने पद्मावतीसे घर पहुंचा आनेके लिए कहा, पर वे राजी न हुई और कहने लगीं—"पिताने जगन्नाथके आदेशानुसार मुझे तुम्हारे हाथ सौंपा है, तुम्हें ही मैं

मनवचनकायसे पति बना चुकी हूं ; मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं भी न जाऊंगी—तुम्हारी ही पदसेवा किया करूंगी।" जयदेव क्या करते, वे पद्मावतीको त्याग न सके, उन्हें पुनः गृहस्थाश्रममें फंसना ही पड़ा।

जयदेवने अपने घरमें नारायणविग्रहकी प्रतिष्ठा की, उनका हृदय कृष्णप्रेमसे गद्‌गद् हो गया। इसी समय इन्होंने गीतगोविन्दका प्रचार किया था। कहा जाता है—ये गीतगोविन्दमें यह बात न लिख सके थे, कि, जो श्रीकृष्ण जगत्पिता परमगुरु हैं वे ही श्रीकृष्ण स्त्री राधिकाके पैर पड़ेंगे। दैववश एक दिन ये समुद्र नहाने गये थे, इतनेमें जगन्नाथ जयदेवका भेष धारण कर उनके घर पहुंचे और पुस्तकको खोल कर उसमें 'देहि पद-पल्लवमुदारं' यह लिख आये।

जब जयदेव घर आये, तो पद्मावती कहने लगी—"अभी तो तुम पुस्तकमें कुछ लिख कर गये थे, इतनी जल्दी समुद्रसे लौट आये!" जयदेवको पद्मावतीने सब हाल कह सुनाया। उन्होंने कहा—"तुम्हीं धन्य हो, तुम्हारे भाग्यमें महाप्रभुके दर्शन बदे थे; मैं अभागा हूं, इसीलिए मुझे दर्शन न मिले।"

जयदेवके गीतगोविन्दकी महिमा चारों तरफ फैल गई। भक्त और भावुकगण गीतगोविन्दके गीत सुन कर आपा भूल जाते थे। प्रवाद है कि, एक मालिनी खेतमें आ कर गीतगोविन्द गा रही थी। स्वयं जगन्नाथ उसे सुनने गये थे जिससे उनके श्रीअङ्ग पर धूलि और कांटे लग गये थे। राजाने मन्दिरमें जा कर जब जगन्नाथके अङ्ग पर धूलि और कांटे देखे, तो वे उसका कारण पूछने लगे। इस पर प्रत्यादेश हुआ कि, अमुक स्थान पर एक मालिनी गीतगोविन्द गा रही थी, उसका गीत सुनने गये थे, इसलिए शरीर पर धूलि और कांटे लग गये हैं। तबसे जगन्नाथ-मन्दिरमें बराबर गीतगोविन्दका गान किया जाता है।

राधामाधवकी इन पर बड़ी कृपा थी। एक दिन ये अपना छप्पर छा रहे थे; धूप लगते देख राधामाधवको दया आई। वे इन्हें फूंस उठा कर देने लगे। जयदेवने समझा था कि पद्मावती यह काम कर रही है, पर उतर कर देखा तो वहां, किसीको भी न पाया। राधा-माधवके हाथोंमें कालिख लगी देख कर उन्होंने निश्चय कर दिया कि, यह काम राधामाधवका ही है। इन्हें बड़ा दुःख हुआ। ये राधामाधवके उत्सव करनेकी इच्छा से अर्थोपार्जनके लिए परदेश चले। रास्तेमें डकैतोंने इनका सर्वस्व छीन लिया और हाथ-पैर काट कर इन्हें एक कुएंमें डाल दिया। इसी समय उस स्थानसे एक राजा जा रहे थे। उन्होंने 'कृष्ण कृष्ण' की आवाज सुन कर कुएंसे इनको निकाला और अपने महलमें ले गये। जयदेव राजप्रासादमें ही रहने लगे। एक दिन वैष्णवका भेष धारण कर वे ही डकैत राज-भवनमें भोजन करने आये। जयदेवने उन्हें पहचान लिया और उनके साथ अच्छा सलूक किया।

उधर रानीके साथ भी पद्मावतीकी खूब मुहब्बत हो गई। एक दिन रानी अपने भाईकी मृत्युके कारण भावजका सहगमन सुनकर रो रही थीं। पद्मावतीने कहा, "यह तो स्वाभाविक बात है, पतिके मरने पर पतिप्राणा स्त्रीके प्राण ठहर ही नहीं सकते।" रानीने पद्मावतीकी परीक्षा करनेके लिए एक दिन उनको जय-देवकी मृत्यु हो जानेकी खबर सुना दी। पद्मावतीके तुरंत ही प्राण छूट गये। पीछे जयदेवने आ कर उन्हें पुनर्जीवित किया। इसके उपरान्त ये अपने इष्टदेव राधामाधवको झोलीमें डाल कर वृन्दावन चल दिये। वहांके काशीघाट पर एक महाजनने सन्तुष्ट हो कर राधामाधवका एक मन्दिर बनवा दिया। जयदेवके अप्रकट होनेके बाद जयपुरके राजा उस मूर्तिको जय-पुर ले गये और घाटी नामक स्थानमें उसकी स्थापना कर दी।

जयदेवने अपना शेष-जीवन जन्मभूमि केन्दूलीमें ही बिताया था। कहा जाता है कि ये १८ कोस चल कर रोज गङ्गास्नान किया करते थे। एक दिनकी जिक्र है कि ये गङ्गा न जा सके, इतनेमें गङ्गाने कृपा कर केन्दू-लीमें ही पदार्पण किया और इनकी मनस्कामना पूर्ण की। यहीं इनकी मृत्यु हुई थी। अभी तक इनके स्मरणार्थ माघ-संक्रान्तिको यहां मेला लगता है।

जयदेव गीतगोविन्द ग्रन्थका एक अपार्थिव पदार्थ है। इसका हिन्दी, बङ्गला, आसामी, उड़िया आदि

भारतीय नाना भाषाओंमें अनुवाद हो कर प्रकाशित हुआ है। गीतगोविन्द देखो।

२ प्रसन्नराघव और चन्द्रालोकके रचयिता। ये नैयायिक भी थे इन्होंने अपने "प्रसन्नराघव"की प्रस्तावनामें एक शङ्का उठाई है कि सुकवि कैसे नैयायिक हो सकता है? इसका समाधान अपने विलक्षण रीतिसे किया है। नीचे वे श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

"येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेपि किं हीयते।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहः सानन्दमारोपिता
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः॥

श्लोकका तात्पर्य यह है कि, जिन लोगोंकी वाणी कोमल काव्यरचनाके चातुर्यकी कलासे भरी और चमत्कार उपजानेवाली है, क्या उनकी वही वाणी न्यायशास्त्रके कर्कश और कुटिल शब्दोंके उच्चारणसे हीन हो सकती है? भला जिन विलासियोंने आनन्दमें आ कर अपनी प्रियतमाओंके गोल गोल स्तनों पर नखोंके चिह्न किये हैं। वे क्या मदोन्मत्त हस्तीके समुच्च गण्डस्थलों पर अपने बाणोंका घाव नहीं करते?

उन्होंने अपने पिताका नाम महादेव, माताका नाम सुमित्रा और अपने आपको कुण्डिनपुरवासी बतलाया है। इन्होंने अपने ग्रन्थमें चोर, मयूर, भास, कालिदास, हर्ष और बाण कविका नामोल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि ये सातवीं शताब्दीके पीछे हुए हैं। 'प्रसन्नराघवके सिवा' इन्होंने 'चन्द्रालोक' नामका एक आलङ्कारिक ग्रन्थ भी रचा है।

३ त्रिपुरासुन्दरीस्तोत्रके कर्ता। ४ न्यायमञ्जरीसारके कर्त्ता और नृसिंहके पुत्र। ये नैयायिक थे। ५ रसामृत नामक वैद्यकशास्त्रके रचयिता।

६ मिथिलावासी एक प्रसिद्ध नैयायिक, हरिमिश्रके शिष्य और भ्रातुष्पुत्र। इनको पक्षधर उपाधि थी। ये नवद्वीपके प्रसिद्ध नैयायिक रघुनाथशिरोमणिके समसामयिक थे। इन्होंने तत्त्वचिन्तामण्यालोक वा चिन्तामणि-प्रकाश, न्यायपदार्थमाला और न्यायलीलावतीविवेक नामक प्रसिद्ध न्याय ग्रन्थ और द्रव्यपदार्थ नामक वैशेषिक ग्रन्थकी रचना की है। इन ग्रन्थोंमें तत्त्वचिन्तामण्यालोक ही बड़ा और आदरणीय है।

रघुनाथ शिरोमणि देखो।

७ एक छन्दःशास्त्रकार।

८ गङ्गाष्टपदी नामक संस्कृत काव्यके रचयिता।

९ ईशानन्द नामक व्याकरणके कर्त्ता।

१० एक मैथिल कवि। ये कवि विद्यापतिके समसामयिक थे और सुगौनाके राजा शिवसिंहकी सभामें रहते थे।

जयदेव—इस नामके नेपालके दो राजा हो गये हैं। एक तो अति प्राचीन हैं उनका यह भी पता नहीं कि उन्होंने किस समय राजत्व किया था। हां, २य जयदेवके समयका शिलालेख अवश्य मिलता है। उसमें लिखा है—महाराज शिवदेवने मोखरि-राज भोगवर्माकी कन्या और मगध राज आदित्यसेनकी दौहित्री वत्सदेवीका पाणिग्रहण किया था। इन्हीं वत्सदेवीके गर्भसे (२य) जयदेवका जन्म हुआ जिनका दूसरा नाम परचक्रकाम था। इन्होंने गौड़, उड़, कलिङ्ग और कोशलाधिपति श्रीहर्षदेवकी कन्या एवं भगदत्तवंशीय राजदौहित्री राज्यमतीके साथ विवाह किया था (१)। ये राजकुमार होने पर भी कवि थे। उक्त शिलालेखके पांच श्लोक इन्होंने स्वयं बनाये थे। इन २य जयदेवके समय और वंशनिर्णयके विषयमें यहांके प्रधान प्रधान पुराविदोंने नया मत प्रकट किया है। ये कौनसे हर्षदेवके जामाता हैं, इस बातका कोई भी निश्चय नहीं कर सके हैं। प्रधान प्रत्नतत्त्वविद् डा॰ बुहर (Buhler)-ने लिखा है—उक्त भगदत्त और श्रीहर्षदेव सम्भवतः प्राग्ज्योतिष-राजवंशीय हैं, जिस वंशमें हर्षवर्द्धनके समसामयिक कुमारराजने जन्मग्रहण किया था। (२)

प्रत्नतत्त्वविद् मि॰ फ्लीटने बहुत विचारनेके बाद कहा है कि, जयदेव (२य) ठाकुरीय वंशके राजा थे, ये १५२ हर्ष सम्वत् अर्थात् ७५८ ई॰में राज्य करते

(१) पशुपति-मन्दिरके शिलालेखकी १३वीं और १४वीं पंक्ति-में ऐसा लिखा है।

(२) Note 57 by Dr. Buhler in Twenty-three Inscriptions from Nepal, p. 58.

थे। (३) डा० हौर्नलीने भी फ्लीटके मतको माना है। अतएव स्वीकार करना पड़ता है कि, जयदेवके श्वशुर श्रीहर्षदेव, सम्राट् हर्षवर्द्धनसे पृथक् थे। उक्त हर्षदेव और जयदेवके ननिया ससुर दोनों ही प्राग्ज्योतिष-राजवंशीय थे एवं नेपालके राजा जयदेव सम्राट् हर्षवर्द्धनसे १५३ वर्ष पीछे हुए हैं।

हम पहले ही प्रमाणित कर चुके हैं कि, गुप्तराजवंश शब्द देखो। २य जयदेव लिच्छविवंशीय थे। लिच्छविवंशीय राजाओंके शिलालेखोंमें शक सं० और गुप्त सं० लिखा है। डा० बुह्लर आदिके मतसे, सम्राट् हर्षवर्द्धनने ही नेपाल जीत कर वहां अपना संवत् चलाया था। परन्तु हमें इसका विशेष प्रमाण नहीं मिलता जिससे उक्त मतको अभ्रान्त कह सकें। अलविरूनीने दो हर्ष संवतोंका उल्लेख किया है, उनमेंसे एक तो ईसासे ४५७ वर्ष पहलेका था और दूसरा ६०७ ई०से प्रारम्भ हुआ था। उनके मतसे शिलादित्य हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद जो गड़बड़ी हुई थी, उसी समयसे हर्ष-संवत्का प्रारंभ हुआ था। (४) परन्तु चीन-परिव्राजक युएनचुआंगकी जीवनीमें लिखा है कि शिलादित्य हर्षवर्द्धन ६४८ ई० तक जीवित थे। इसलिए उनकी मृत्युसे हर्ष संवत्का प्रारम्भ बिलकुल असम्भव है। विशेषतः ईसासे ४५७ वर्ष पहले जो हर्ष संवत्का उल्लेख है, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

आजतक प्राचीन ग्रन्थों वा शिलालेखोंमें ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है कि काश्मीरके सिवा और भी कहीं हर्ष संवत् प्रचलित था। बाणभट्ट और युएनचुआंगने हर्षवर्द्धनके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं, परन्तु संवत्-प्रचलनके विषयमें उन्होंने कहीं भी कुछ नहीं लिखा। ऐसी दशामें हर्षवर्द्धनके साथ हर्ष-संवत्का सम्बन्ध है या नहीं, इसमें सन्देह ही है। अतएव जयदेव आदिके शिलालेखमें उत्कीर्ण संवत्के अङ्कोंको हम निःसन्देह हर्ष संवत् नहीं कह सकते। हर्ष शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। नेपालकी पार्वतीय वंशावलीमें लिखा है कि, विक्रमादित्य ठाकुरीवंशीय प्रथम राजा अंशुवर्माके ससुरके समयमें नेपालमें आये थे और वे ही यहां वि० संवत् प्रचलित कर गये थे। (५)

गुप्त-सम्राटोंके समय ही नेपालमें प्रबल पराक्रमी लिच्छविवंशीय राजा राज्य करते थे। गुप्तसंवत् प्रवर्तक महाराजाधिराज १म चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य)ने लिच्छवि-राजकन्याका पाणिग्रहण किया था, और उन्हींके गर्भसे महावीर समुद्रगुप्तका जन्म हुआ था। जिस तरह सम्राट् हर्षवर्द्धनके पितामह आदित्यवर्द्धनने महासेनगुप्तकी भगिनी महासेनगुप्ताका पाणिग्रहण किया था (६) और जैसे मौखरिराज आदित्यवर्माने हर्षगुप्तकी भगिनी हर्षगुप्ताके साथ विवाह किया था, उसी तरह महाराजाधिराज समुद्रगुप्तके पुत्र विक्रमादित्य-उपाधिधारी २य चन्द्रगुप्तने नेपालके लिच्छविराज ध्रुवदेवकी भगिनी ध्रुवदेवीका पाणिग्रहण किया था। महाराज ध्रुवदेव और ठाकुरीवंशीय महाअंशुवर्मा दोनों एक ही समयमें हुए हैं। नेपालसे आविष्कृत ४८ संवत्-ज्ञापक शिलालेखमें महाराजाधिराज ध्रुवदेवके राजत्वकालमें महाराज अंशुवर्मा द्वारा 'तिलमक' निर्माणका प्रसङ्ग है। डा० बुह्लर आदि प्रत्नतत्वविदोंने एक स्वरसे उस ४८के अङ्कको हर्ष-संवत्ज्ञापक कहा है। परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि, नेपालमें कभी हर्षसंवत् प्रचलित हुआ था, इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। यह भी कह चुके हैं कि नेपालमें विक्रमादित्यके द्वारा गुप्तसंवत् प्रचलित हुआ था। ऐसी दशामें नेपालके राजा ध्रुवदेवकी भगिनी ध्रुवदेवीके साथ २य चन्द्रगुप्तके विवाह होनेसे पहले और सम्भवतः विक्रमादित्य-उपाधिधारी गुप्त-संवत् प्रवर्तक १म चन्द्रगुप्तके साथ लिच्छवि-राजकन्या कुमारदेवीके विवाहके समय समागत १म चन्द्रगुप्तके द्वारा नेपालमें गुप्त-संवत्का प्रचार हुआ होगा। ऐसी हालतमें अंशुवर्मा और ध्रुवदेवके शिलालेखके अङ्क गुप्त-सम्वत्ज्ञापक ठहरते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

अब २य जयदेवके शिलालेखमें उत्कीर्ण २८८के

(३) Fleet's Corp, Ineriptionum Indicarum, p. 189.

(४) Journal Roy. As. Soc. Vol. XII, p. 44, (O. S.)

(५) Inscriptions from Nepal, p. 38.

(६) Epigraphia Indica, vol. I

आदिको भी गुप्त-संवत्-स्थापक कहा जा सकता है। गुप्तराजवंश देखो। यदि यह ठीक है, तो प्रमाणित होता है कि लिच्छविराज २य जयदेव (२८८×३।८।२०=) ६।८।।८ ई०में नेपालके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। इस समय सम्राट् हर्षवर्धन शिलादित्य कन्नौजके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। बाणभट्ट और युएनचुयांगको वर्णनामें मालूम होता है कि, सम्राट् हर्षदेवने समस्त उत्तर भारत और गौड़, उड्र, कलिङ्ग आदि अनेक स्थानोंमें अपना आधिपत्य विस्तृत किया था। ऐसी अवस्थामें सन्देह नहीं कि २य जयदेवके ससुर गौड़-उड्र-कलिङ्ग-कोशलाधिप श्रीहर्षदेव और शिलादित्य हर्षवर्द्धन दोनों एक ही व्यक्ति थे।

यहां एक प्रश्न हो सकता है। प्रत्नतत्त्वविद् फ्लीटने लिखा है, 'हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद कन्नौजराज्यके विशृङ्खल हो जाने पर मगधराज आदित्यसेनने महाराजाधिराज अर्थात् सम्राट् उपाधि प्राप्त की थी। शाहपुरके शिलालेखानुसार ये ६७२-७३ ई०में विद्यमान थे (७)।' इसलिए आदित्यसेनकी दौहित्रीके पुत्र २य जयदेवका ६१८ ई०में विद्यमान रहना असम्भव है।

परन्तु हम प्रमाणित कर चुके हैं कि, 'शाहपुरकी सूर्यप्रतिमा पर उत्कीर्ण शिलालेखमें ६६६ संवत्में राजा आदित्यसेनका उल्लेख है।" गुप्तराजवंश देखो। ऐसी दशामें यही निर्णीत होता है कि ६०८ ई०में आदित्यसेन मगधके सिंहासन पर बैठे थे। उस समय भी श्रीहर्षदेवका आधिपत्य विद्यमान था। मगधराज आदित्यसेनके पिता माधवगुप्त हर्षदेवके सहचर थे तथा सम्बन्धमें भी आदित्यसेन सम्राट् हर्षवर्द्धनके किसी नातेसे भाई लगते थे। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि, आदित्यसेन और हर्षदेव दोनों समसामयिक ही थे।

इसमें यह आपत्ति हो सकती है कि, जब माधवगुप्त हर्षके मित्र थे, तब उनके पुत्र आदित्यसेन हर्षदेवकी अपेक्षा उम्रमें छोटे होंगे। वर्तमानके प्रत्नतत्त्वविदोंने निर्णय किया है कि, सम्राट् हर्षवर्द्धन ६०६-७ ई०में सिंहासन पर बैठे थे। ऐसी हालतमें आदित्यसेनके ६०८ ई०में राज्याभिषिक्त होने पर भी ६१८ ई०में उनके दौहित्रीपुत्रका राज्य ग्रहण करना नितान्त असम्भव है। इसका उत्तर इस प्रकार है—चीन-परिव्राजक युएनचुयांगकी जीवनीमें लिखा है कि, ६४० ई०में (८) उन्होंने वलभीराज्यमें जा कर वहांके राजा ध्रुवभट्टको देखा था। सम्राट् हर्षवर्द्धनकी पौत्रीके साथ इन ध्रुवभट्टका विवाह हुआ था। ये (६४७ ई०में) प्रयागकी धर्मसभामें श्रीहर्षदेवके पास मौजूद थे (८)।

बाणभट्टके हर्षचरितमें श्रीहर्षदेवके विवाहका प्रसङ्ग नहीं है, किन्तु उनके द्वारा दिग्विजयका प्रसङ्ग है। ऐसी दशामें यही अनुमान किया जा सकता है कि, उन्होंने सम्राट् होनेके बाद अपना विवाह किया था, पहले (अपनी इच्छासे) नहीं।

अतएव इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने ज्यादा उम्रमें विवाह किया था। ६०६ ई०के पहले राजपदके मिलने पर भी शायद उसी समय ये सम्राट् पद पर अभिषिक्त हुए थे। सम्भवतः विवाहके दूसरे वर्ष इनकी कन्या राज्यमतीका जन्म हुआ था। राज्यमतीकी अवस्था जब १० वर्षकी थी, तब (सम्भवतः ६१६-१७ ई०में) लिच्छविराजकुमार २य जयदेवके साथ उनका विवाह हुआ था जो उनके समवयस्क थे।

श्रीहर्षचरितमें बाणभट्ट और हर्षका परिचय पढ़नेसे यह अनुमान नहीं होता कि श्रीहर्ष अल्प-वयस्क युवक थे। बाणभट्ट बहुत दिन तक हर्षकी सभामें थे। सम्भवतः बाणभट्टकी मृत्युके बाद प्रौढ़ावस्थामें हर्षका विवाह हुआ होगा। यदि यह ठीक है, तो हर्षदेवने ४० या ४१ वर्षकी उम्रमें (ई० सन् ६०६-७में) विवाह किया था। ऐसा होनेसे प्रायः ५६६ ई०में हर्षदेवका जन्म हुआ था। पहले ही लिख चुके हैं कि, माधवगुप्त हर्षदेवके सहचर होने पर भी उनके पुत्र आदित्यसेनके किसी नातेसे हर्षदेवके भाई लगते थे। इस प्रकारसे आदित्यसेनको हर्षकी अपेक्षा ७-८ वर्ष छोटा समझना चाहिये। ऐसी दशामें प्रायः ५७०-७१ ई०में आदित्य-

(७) Fleet's Inscriptionum Indicarum, Vol. III. p. 14.

(८) Cunningham's Ancient Geography of India p. 566.

(९) La Vie de Hiouen-Thsang par Stanislas Julien, p. 254.

सेनका जन्म हुआ होगा। शायद आदित्यसेन एवं उनके दामादके अल्पवयसमें हो पुत्र पैदा हुए थे।

जैसे श्रीहर्षने ६१० ई०से ६४० ई०के भीतर अर्थात् ३०।२८ वर्षमें ही पुत्र, पौत्री और पुत्रके दामादका मुंह देख लिया था, उसी प्रकार आदित्यसेनके भी (५७०से ६१८ ई०के भीतर) ४८।४८ वर्षके भीतर कन्या, दौहित्री और दौहित्रीके पुत्रका होना असम्भव नहीं।

महाराज आदित्यसेनके शिला-लेखमें महाराजाधिराजको उपाधि दिखा कर ही फ्लीट साहबने उन्हें सम्राट् समझ लिया है, परन्तु केवल महाराजाधिराज नाम देखकर किसीको सम्राट् नहीं माना जा सकता। राढ़ और वरेन्द्रमें मुसलमानोंका आधिपत्य विस्तृत होने पर भी जैसे वङ्गाधिप लक्ष्मणसेनके पुत्र विश्वरूपदेव सुवर्णराज्यके अधीश्वर हो कर भी महाराजाधिराज परमभट्टारककी उपाधिसे भूषित हुए हैं (१०)। उसी प्रकार आदित्यसेन भी केवल मगधके राजा हो कर महाराजाधिराजको उपाधिसे विभूषित थे, न कि सम्राट् थे।

गुप्तराजवंश देखो।

व्युहर साहबने नेपालराज २य जयदेवके ससुर और नानिया ससुर दोनोंहीको एक वंशीय बतलाया है, किन्तु ससुर एवं सासके पिता कभी भी एक वंशके नहीं हो सकते। सम्भवतः महावीर हर्षदेवने कामरूप-पति भगदत्तवंशीय कुमारराज भास्करवर्माको कन्या अथवा भगिनीका पाणिग्रहण किया था और उनके गर्भसे ही २य जयदेवकी पत्नी राज्यमतीका जन्म हुआ था। इसी लिए शिलालेखमें राजामतीको 'भगदत्तराजकुलजा' कहा गया है।

२य जयदेवके शिलालेखमें लिखा है—जयदेवको माता वत्सदेवीने मृत स्वामीके लिए पशुपतिको एक रजतपद्म उत्सर्ग किया था। शायद इस शिलालेखके खुदनेसे कुछ ही पहले शिवदेवको मृत्यु हुई थी। विवाह होने पर भी उस समय जयदेव बालक थे।

जयदेव कवि—१ हिन्दीके कवि। इनकी कविता उत्तम होती थी। सं० १८१५में इनका जन्म हुआ था।

२ मैनपुरी जिलेके अन्तर्गत कम्पिलाके रहनेवाले एक हिन्दीके कवि। इनके गुरुका नाम सुखदेव मिश्र था। ये नवाब फाजिलअलीखाँके पास रहते थे। सं० १७२८ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जयदेवपुर—ढाका जिलेके अन्तर्गत भावाल राजाकी राजधानी। भावाल देखो।

जयबल (सं० पु०) विराटभवनमें छद्मवेशी सहदेव, महदेवका उस समयका बनावटी नाम, जब वे विराटके यहां अज्ञातवास करते थे।

जयद्रथ (सं० पु०) जयत् रथो यस्य, बहुव्री०। १ सिन्धुसौवीर देशके एक राजा, वृद्धक्षत्रके पुत्र। ये दुर्योधनके बहनोई और दुःशलाके स्वामी थे; ये किसी समय काम्यकवनके भीतरसे जा रहे थे। इस समय पाण्डवगण भी उसी वनमें थे।

द्रौपदीको अकेली वनमें देख कर उनको पानेके लिए इनका मन ललचाया। इन्होंने पारिषद कोटीकास्यको दूतको तरह द्रौपदीके पास भेजा। कोटीकास्यने द्रौपदीके पास जा कर कहा—"मैं सुरथ राजाका पुत्र हूं, मेरा नाम है कोटीकास्य। सिन्धुदेशाधिपति राजा जयद्रथने मुझे आपके पास यह पूछनेके लिए भेजा है कि, आप कौन हैं, किनको पुत्री और किनको भार्या हैं?" द्रौपदीने अपना परिचय दे दिया। जयद्रथको परिचय मालूम होते ही वे उन्हें हरण करनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु भीम और अर्जुन द्वारा वे अत्यन्त अपमानित किये गये। दोनों भाईयोंने मिल कर जयद्रथका मस्तक मूंड़ दिया। जयद्रथने इस अपमानका बदला लेनेकी इच्छासे गङ्गाद्वारको प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर वे शङ्करको तपस्या करने लगे। महादेवने सन्तुष्ट हो कर उन्हें वर मांगनेको कहा। जयद्रथने कहा—"भगवन्! मैं पांचों पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करूं।" महादेवने उत्तर दिया—"नहीं, तुम अर्जुनके सिवा चार पाण्डवोंको पराजित कर सकोगे। श्रीकृष्ण अर्जुनकी सर्वदा रक्षा करते हैं, इसलिए अर्जुन देवोंके भी अजेय हैं। इसलिए मैं वर देता हूं कि, एक दिन तुम अर्जुनके सिवा युद्धमें ससैन्य पाण्डवोंको परास्त कर सकोगे।" इसके अनुसार इन्होंने द्रोणाचार्यके बनाये हुए चक्रव्यूहके द्वाररक्षक बन कर चारों पाण्डवोंको परास्त किया था। इसी चक्रव्यूहमें

(१०) Vide the Sena kings of Bengal, by N. Vasu.

असहाय-प्रविष्ट अभिमन्यु निहत हुए थे। इसलिए अर्जुनने जयद्रथको अभिमन्युकी मृत्युका कारण समझ कर मार डाला। जयद्रथके पिताने पुत्र (जयद्रथ)-को वर दिया था कि, जो कोई उनका मस्तक भूमि पर गिरायेगा, उसका मस्तक उसी समय शतधा चूर्ण हो जायगा। अर्जुनने कृष्णके मुंहसे यह बात सुन रक्खी थी, इसलिए उन्होंने जयद्रथका मस्तक भूमि पर न गिरा कर कुरुक्षेत्र सन्निहित समन्तपञ्चकस्थ तपोपरायण वृद्धक्षत्रकी गोदमें रख दिया। तपस्या पूर्ण कर ज्यों वृद्धक्षत्र उठे त्यों ही मस्तक भूमि पर गिर पड़ा। फिर क्या था, उन्हींका मस्तक शतधा चूर्ण हो गया। (भारत वन और द्रोण) इनके पुत्रका नाम सुरथ था।

२ काश्मीरके एक प्रसिद्ध कवि। सुभटदत्त, शिव और सङ्खधर इनके गुरु थे। इनके पूर्वपुरुषगण प्रायः सभी सुपण्डित और काश्मीरराज यशस्कर, अनन्त, उच्छल आदिके सचिव थे। इनके पिताका नाम शृङ्गाररथ था ये भी राजराजके सचिव थे। इनके ज्येष्ठ सहोदर जयरथकृत तन्त्रालोकविवेक नामक ग्रन्थमें इनके पूर्वपुरुषोंका परिचय दिया गया है। जयद्रथको महामाहेश्वर और राजानक ये दो उपाधियां थीं। इन्होंने हरशिवचिन्तामणि, अलङ्कारविमर्शिनी, अलङ्कारोदाहरण आदि संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की थी।

३ वामकेश्वरतन्त्रविवरण नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

४ एक यामलका नाम।

जयधर्म (सं॰ पु॰) एक कुरुसेनापतिका नाम।

जयध्वज (सं॰ पु॰) १ कार्तवीर्यार्जुनके पुत्र, अवन्तीके राजा। इनके पुत्रका नाम तालजङ्घ था। (लिङ्गपुराण ६८।१९ अः) २ जयन्ती, जयपताका।

जयन (सं॰ क्ली॰) जीयते ऽनेन करणे ल्युट्। १ अश्वादिकी रक्षा, घोड़ेकी साज। २ जय।

जयनगर- विहारमें दरभङ्गा राज्यके मधुबनी सबडिविजनका गांव। यह अक्षा॰ २६° ३५´ उ॰ और देशा॰ ८६° ८´ पू॰में कमला नदीसे कुछ पूर्वको अवस्थित है। जनसंख्या ३५५१ है। नदीका एक किला बना है।

जयनगर—बङ्गालके चौबीसपरगना जिलेका नगर। यह अक्षा॰ २२° ११´ उ॰ और देशा॰ ८८°२५´ पू॰में अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८८१० होगी। १८३८ ई॰में म्युनिसपालिटी हुई।

जयनन्दी—सूक्तिकर्णामृतधृत एक प्राचीन कवि।

जयनरेन्द्रसिंह—पातियालाके एक महाराज। ये एक सुकवि भी थे। १८४५ ई॰में इनके पिता करमसिंहकी मृत्यु होने पर ये राजसिंहासन पर बैठे थे। सिखयुद्धके समय इन्होंने वृटिश गवर्मेण्टको यथेष्ट सहायता की थी, जिसके लिए गवर्मेण्टने इन्हें १८४६ ई॰में तीस हजार रुपये आयकी एक जागीर दी थी। इन्होंने अपने राज्यमें अन्य समस्त प्रकारकी पण्यद्रव्योंका महसूल उठा दिया था, इसलिए वृटिश गवर्मेण्टने दूसरे वर्ष लाहोरराजकी अधीनस्थ कुछ सम्पत्ति छीन कर राजा नरेन्द्रसिंहको प्रदान की थी। सिपाहीविद्रोहमें इन्होंने अंग्रेजोंकी यथेष्ट सहायता की थी, जिसके लिए इन्हें दो लाख रुपये आयकी झज्जररियासत और पुरुषानुक्रमसे दत्तक ग्रहण करनेका अधिकार प्राप्त हुआ था। १८६१ ई॰ १ली जनवरीको इन्हें G. C. S. I. की उपाधि मिली थी। १८६२ ई॰में १४ नवम्बरको इनकी मृत्यु हुई, मरते समय ये अपने द्वादशवर्षीय पुत्र महेन्द्रसिंहको राज्य दे गये थे।

जयनाथ—तमसानदी-प्रवाहित प्रदेशके एक महाराज। उच्चकल्पमें इनकी राजधानी थी, इसलिए ये उच्चकल्पके राजा, इस नामसे प्रसिद्ध हैं। ये व्याघ्र महाराजके औरस और अज्झितदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये १७४-१७७ (गुप्त या कलचुरि) सम्वत्में राज्य करते थे। इनके पुत्रका नाम था महाराज सर्वनाथ।

जयनारायन—१ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम कृष्णचन्द्र था। इन्होंने शङ्करसङ्गीतकी रचना की थी।

२ सप्तशती चण्डीके एक टीकाकार।

जयनारायण तर्कपञ्चानन—एक बङ्गाली आलङ्कारिक और नैयायिक विद्वान्। १८६१ संवत्में कलकत्तेसे दक्षिण चौबीस परगनेके अन्तर्गत सुवादिपुर ग्राममें, पाश्चात्य वैदिक वंशमें इनका जन्म हुआ था। बचपनमें ही इनकी माता मर गई थी। इनके पिता हरिश्चन्द्र विद्यासागर एक प्रसिद्ध अध्यापक थे। इन्होंने न्याय व्याकरण

आदि सभी विषयोंमें व्युत्पत्ति लाभ की थी। कभी कभी ये अध्यापकोंके साथ पण्डित-सभाओंमें भी जाया करते थे और वहां शास्त्रार्थमें अच्छे अच्छे पण्डितोंको परास्त करते थे। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें इनको खूब प्रसिद्धि हो गई। इन्होंने चतुष्पाठी स्थापन की और किसी समय "ला-कमिटि" की परीक्षा दे कर जज-पण्डित होनेका प्रशंसापत्र प्राप्त किया। किन्तु अध्यापनामें व्याघात होगा जान, इन्होंने उस पदको स्वीकार नहीं किया। १८४० ई०में ये संस्कृत-कालेजमें दर्शन-शास्त्रके अध्यापक नियुक्त हुए।

१८६८ ई०में ये पेन्सन प्राप्त कर बनारस रहने लगे। वि० संवत् १८३०में काशीमें ही इनकी मृत्यु हुई।

जयनी (सं० स्त्री०) जयन स्त्रीलिङ्गमें ङीप्। इन्द्रकी कन्या

जयन्त (सं० पु०) जयतीति जि-झच्। १ इन्द्रके पुत्र। २ विष्णु। ३ शिव, महादेव। ४ चन्द्र, चन्द्रमा। ५ विराट गृहमें छद्मवेशी भीम, भीमका बनावटी नाम जब वे विराटके यहां गुप्तरूपसे रहते थे। जय देखो। ६ मरुत्वती गर्भजात धर्मके एक पुत्रका नाम। ये उपेन्द्र नामसे विख्यात हैं। ७ राजा दशरथके एक मन्त्रीका नाम। ८ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। ९ यात्रिक योगविशेष, यात्राका एक योग। यह योग उस समय पड़ता है जब चन्द्रमा उच्च हो कर यात्रीकी राशिसे ग्यारहवें स्थानमें पहुंच जाता है। यह युद्धादि यात्राका उपयुक्त समय माना गया है क्योंकि इस योगका फल शत्रुपक्षका नाश है। १० ध्रुवको जातिका एक तारा। ११ जैनमतानुसार-विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तर-स्वर्गोंमेंसे एक। इस स्वर्गके देव सम्यक् दृष्टि होते हैं और दो बार मनुष्य जन्म धारण कर मोक्ष पाते हैं। इनकी आयु बत्तीस सागरकी होती है। ये आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करते हैं और सर्वदा धर्मशास्त्रकी चर्चा करते रहते हैं। (त्रि०) १२ विजयी, विजेता। (पु०)१३ एक रुद्रका नाम। १४ कार्त्तिकेय, स्कन्द। १५ धर्मके एक पुत्रका नाम। १६ अक्रूरके पिताका नाम।

जयन्त—१ काव्यप्रकाशकी जयन्ती वा दीपिका नामक टीकाके कर्त्ता। इनके पिताका नाम भारद्वाज था, वे गुजरातके बघेलराज सारङ्गदेवके मन्त्रीपुरोहित थे। सारङ्गदेव भी उनकी विशेष भक्ति-श्रद्धा करते थे। संवत् १३५० ज्येष्ठ मास कृष्णपक्षीय तृतीयाके दिन काव्यप्रकाशदीपिकाकी रचना की था।

२ एक प्रसिद्ध नैयायिक, इन्होंने न्यायकलिका और न्यायमञ्जरी इन दो ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। काश्मीरमें ये ग्रन्थ प्रचलित हैं।

३ सारस्वतव्याकरणको "वादिघटमुद्गर" नामक टीकाके रचयिता।

४ प्रकाशपुरीके मधुसूदनके पुत्र, इन्होंने तत्त्वचन्द्रके नामसे प्रक्रियाकी मुदीको टीका रची है।

५ पद्यावलीधृत एक प्राचीन कवि।

६ जयन्तस्वामीके नामसे प्रसिद्ध एक ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम कान्त, पितामहका नाम कल्याणस्वामी और पुत्रका नाम अभिनन्दि था। इन्होंने विमलोदयमालाके नामसे आश्वलायनगृह्यसूत्रका भाष्य, आश्वलायन-कारिका और ऋग्वेदके स्वरनिर्णयके विषयमें स्वराङ्कुश नामक एक संस्कृत ग्रन्थ रचा है। हरिहर, कमलाकर, नीलकण्ठ, आदि बड़े बड़े विद्वानोंने जयन्तीस्वामीका ग्रन्थ उद्धृत किया है।

जयन्तपुर -निमिराजाका स्थापित किया हुआ एक नगर। यह गौतमाश्रमके निकट है।

जयन्तिका (सं० स्त्री०) जयन्तीव कायतीति कै-क, ततो ह्रस्वो निपातनात्। १ हरिद्रा, हलदी। (राजनि०) २ दुर्गाकी सखी। (काशीखण्ड ४७।४६) ३ एक प्राचीन राष्ट्र। (बृहत्सं० १४।१६)

जयन्तिया-बङ्गाल और आसामके श्रीहट्ट जिलेका एक परगना। यह अक्षा० २४° ५२' से २५° ११' उ० और देशा० ९१° ४५' से ९२° २५' पू० पर जयन्तिया पहाड़ तथा सुरमा नदीके बीचमें अवस्थित है। भूपरिमाण ४८४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२११४७ है। यहां बहुतसी छोटी छोटी नदियां हैं जो सबकी सब सुरमा नदीमें जा गिरी हैं। नदीका किनारा बहुत ऊंचा दीख पड़ता है। यहांके भूतपूर्व जयन्तिया राजा सिनते गया खासी वंशके थे। इस वंशके बाईस राजाओंने यहां राज्य किया। प्रवाद है, कि अठारहवीं शताब्दीमें ये अहोमके सरदारोंसे परास्त किये गये और पकड़े गये। किन्तु इन्होंने

विजेताकी अधीनता स्वीकार न की। १८२४ ई०में बर्मा लोगोंने जब कछाड़ पर चढ़ाई की, तब जयन्तियाके राजाने वृटिश गवर्मेण्टसे सन्धि कर ली। १८३२ ई०में राजा सिलहटसे चार वृटिश प्रजाको चुरा कर ले गये जिनमेंसे तीनका उन्होंने फालजोरमें कालीके सामने बलिदान किया। इस तरह कई बार राजाका दुर्व्यवहार देख वृटिश गवर्मेण्टसे रहा न गया, अन्तमें उन्होंने १८३५ ई०में जयन्तियाको वृटिशराज्यमें मिला लिया। तभीसे यह वृटिश गवर्मेण्टके अधीन चला आ रहा है। यहाँ वर्षा अधिक होती हैं, इस कारण सभी चीजें यथेष्ट उपजती हैं। शस्यद्रव्योंमें धान ही प्रधान है। इस परगनेका अधिकांश जङ्गलमय है। जलवायु उतनी स्वास्थ्यकर नहीं है।

जयन्तिया पहाड़—आसाम प्रदेशका एक विभाग। सर्वसाधारण इसे जोवाई कहते हैं। इसका परिमाणफल २००० वर्गमील है। इसकी उत्तर-सीमामें नौगांव, पूर्वमें कछाड़, दक्षिणमें श्रीहट्ट और पश्चिम सीमामें खासी पहाड़ है।

इसके जोवाई नामक सदरमें सरकारी कमिश्नरकी कचहरी है। १८३५ ई०से यह स्थान वृटिश गवर्मेण्टके अधिकारमें है। पहले यहांके प्रत्येक ग्रामसे वर्षमें एक बकरी वसूल होती थी। १८६० ई०में यहां घर पीछे १) रु॰ महसूल जारी हुआ। पहले पहल महसूल उगानेमें बड़ी दिक्कत हुई थी। पहाड़ी लोग राजाके सिवा अन्य किसीको भी महसूल देनेके लिए राजी न हुए। इस पर उनके साथ एक छोटासा युद्ध हुआ और उनके अस्त्र छीन लिये गये। पीछे यहां मछली पकड़ने और लकड़ी काटने पर महसूल लगाया गया। परन्तु इससे पहाड़ी लोग असन्तुष्ट हो गये। १८६२ ई०के जनवरी महीनेमें पूजाके उपलक्षमें सबने मिल कर अंग्रेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। पुलिसकी कोठी जला दी। पहाड़ पर वृटिशका कोई भी चिह्न न रहा। आखिर इनके दमनके लिए सिपाहियोंकी सेना भेजी गई। पहले तो सिपाही कुछ भी न कर सके थे, किन्तु पीछेसे गजारोही और दो दल सेना भेज कर इनको दमन किया गया।

वर्तमानमें जयन्तिया पहाड़ २३ परगनोंमें विभक्त है जिनमेंसे दोमें कुकी और टोमें मिकिर जातिका वास है। यहां करस्वरूप करीब पचीस हजार रुपये वसूल होते हैं। यहां 'झुम' नामक कृषिप्रथा प्रचलित है। यहां नदीके किनारेसे अच्छा पत्थरका चूना पाया जाता है जो बङ्गालमें श्रीहट्टका चूना'के नामसे प्रसिद्ध है।

जयन्तियापुर—आसामके सिलहट जिलेमें नार्थ सिलहट सबडिविजनका एक गांव। यह अक्षा० २५° ८' उ० और देशा० ९२° ८' पू०में अवस्थित है। पहले यह जयन्तिया राजकी प्रधान नगरी था। यहां कई हिन्दू-मन्दिर बने थे, परन्तु उनका ध्वंसावशेष १८९७ ई०के भूकम्पमें जाता रहा। सप्ताहमें एक बार बाजार लगता है।

जयन्ती (सं० स्त्री०) जयतीति जि-झच्। १ दुर्गा। २ इन्द्रकी कन्या। ३ पताका, ध्वजा। ४ अग्निमन्थवृक्ष, अरणी नामका पेड़। ५ वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम इसके पर्याय—जया, तर्कारी, नादेयी, वैजयन्तिका, बला, मोटा, हरिता, विजया, सूक्ष्ममूला, विक्रान्ता और अपराजिता है। इसके गुण—मदगन्धयुक्त, तिक्त, कटु, उष्ण, क्रिमिनाशक और कण्ठविशोधन है। इसके पत्तेका गुण—विषदोषनाशक, चक्षुका हितकर, मधुर और शीतल है। यह नवपत्रिकामें व्यवहृत होता है।

"कदली दाडिमी धान्यं हरिद्रामानकं कचु।
बिल्वोऽशोको जयन्ती च विज्ञेया नव पत्रिकाः।" (तिथितत्त्व)

वैद्यकके मतसे रविवारके दिन श्वेतजयन्तीका मूल दूधके साथ पीस कर खानेसे श्वित्ररोग आरोग्य होता है। ६ वैद्यकोक्त औषधविशेष। विष, पाठा, अश्वगन्धा, वच, तालीशपत्र, मिर्च, पीपर, नीम और जयन्ती, प्रत्येकका बराबर बराबर भाग ले कर बकरीके मूत्रमें पीस कर चणक प्रमाणका गोली प्रस्तुत करनी पड़ती हैं। ७ योगविशेष, ज्योतिषका एक योग। जब श्रावण मासकी कृष्णपक्षकी अष्टमीकी आधीरातके प्रथम और शेष दण्डमें रोहिणी नक्षत्र पड़े तब यह योग होता है। ८ द्वादशीविशेष। ९ जौके छोटे पौधे। विजया दशमीके दिन ब्राह्मण लोग इन्हें यजमानोंको मङ्गल द्रव्यके रूपमें भेंट करते हैं। यजमान यथाशक्ति ब्राह्मणोंको इस मङ्गलकामनाके लिये दक्षिणा देते हैं। १० जयाष्टमी। ११

पार्वतीका एक नाम। १२ किसी महात्माकी जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव, वर्षगांठका उत्सव। १३ हल्दी। १४ कपिकच्छु। १५ वच। १६ मञ्जिष्ठा, मजीठ। १७ काञ्जिक। १८ हरीतकी। १९ श्वेतनिर्गुण्डी २० वृक्षभेद एक बड़ा पेड़ जैंता वा जैंत भी कहलाता है। इसकी डालियां पतली, पत्ते अगस्तके पत्तोंकी भांति पर उससे कुछ छोटे और फूल अरहरकी तरह पीले होते हैं। इस पर फूलोंके झड़ जानेके बाद एक बिलस्त वा सवा बिलस्त लम्बी फलियां लगती हैं। फलियोंके बीजोंमें लुआबकी मरहम बनती है। बीज उत्तेजक और सङ्कोच कारक होते हैं तथा दस्तकी बीमारियोंमें काम आते हैं। पत्ता सूजन वा फोड़े पर बांधा जाता है और गिलटी गलानेके काम आता है। इसकी जड़ पीस कर लगानेसे बिच्छूके काटनेकी यन्त्रणा जाती रहती है। यह जेठ असाढ़में बोया जाता है तथा अपने आप भी होता है। इसकी छोटी जाति भी है, उसे चक्रभेद कहते हैं। इसके रेशेसे जाल बुना जाता है। पानके भीटो पर भी यह पेड़ लगता है। बङ्गालमें यह वैशाख जेठ और क्वार कातिकमें बोया जाता है।

जयन्ती—कदम्ब राजाओंकी राजधानी बनवासीका दूसरा नाम। बनवासी देखो।

जयन्तीव्रत—जन्माष्टमीका दूसरा नाम। जन्माष्टमी देखो।

जयपताका (सं० स्त्री०) जयसूचका पताका अथवा जयस्य पताका, मध्यपदलो०। वह पताका जो जयलाभ करनेके बाद फहराई जाती हैं।

जयपत्र (सं० क्ली०) जयज्ञापकं पत्रं, मध्यपदलो०। १ वह जिसके ऊपर किसी भी विवादके बाद राजकीय मन्तव्य लिखा जाता है।

वीरमित्रोदयमें जयपत्रके लक्षण और भेदोंका वर्णन है। व्यासके मतसे—किसी स्थावर वा अस्थावर सम्पत्ति-विषयक विवादमें अथवा किसी विभागके विवादमें वा किसी वाग्विरोध आदिमें राजाको चाहिये कि, वे स्वयं देख भाल कर या प्राड्विवाकोंसे सुन कर प्रमाणानुसार जिसकी जय होती हो, उसे जयपत्र लिख दें। (वीरमित्रोदय) जयपत्र राजा और सभासदोंके हस्ताक्षरयुक्त तथा राज मुद्रासे अङ्कित होना चाहिये। जयपत्रमें दोनों प्रकार मन्तव्य, प्रमाणप्रमाण, धर्मशास्त्रकी सम्मति और सभासदों-का मन्तव्य यह सब लिख देना चाहिये। किसी किसी विषयके जयपत्रका पश्चात्कार नामसे भी उल्लेख किया जाता है।

राजाको चाहिये कि, वास्तविक विषयका निर्णय करके पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षका समस्त वृत्तान्त ज्यों का-त्यों जयपत्रमें लिख कर वे जयी व्यक्तिको उस पत्रको दे दें।

२ अश्वमेधयज्ञीय अश्वके कपाल पर लिखित लिपि-विशेष।

जयपाल (सं० पु०) जयं पालयतीति, पालि-अण्। कर्मण्यण्। पा ३।२।१। १ विधि। २ विष्णु। ३ भूपाल। (शब्दरत्ना०)

जयपाल—१ लाहोरके एक प्रसिद्ध हिन्दू राजा। इनके पिताका नाम था हितपाल। जयपालका राज्य सरहिन्द-से लमघन और काश्मीरसे मुलतान तक विस्तृत था। पहिले पहल भारतमें मुसलमानोंका प्रवेश जयपालके समयमें ही हुआ था।

९७७ ई०में गजनीपति सवक्तगीनने भारतमें आ कर जयपालके राज्य पर आक्रमण कर कुछ दुर्ग हस्तगत कर लिए और देशमें लूट मार मचा दी, तथा जगह जगह मसजिदें बनवा कर वे पुनः अपने देशको लौट गये। जयपालको बहुत गुस्सा आई और वे मुसलमानोंको शासनदण्ड देनेके लिए सेना सहित निकल पड़े।

सवक्तगीनके साथ उनकी लमघनमें भेंट हो गई। परन्तु युद्धसे पहले ही रात्रिमें प्रचण्ड आंधी आई और उसने जयपालकी सेनाको तितर बितर कर उनके उत्साह-को तोड़ दिया। इसलिए उन्हें सन्धि करनी पड़ी।

५० हस्ती और १० लाख दिर्हाम उपढौकन देनेके लिए सहमत हो कर जयपाल अपने राज्यमें लौट आये। किन्तु उनके ब्राह्मण मन्त्रियोंने उन्हें मुसलमानोंको उपढौकन दे कर हिन्दुओंका गौरव घटानेके लिए मना किया।

तदनुसार उपढौकन न दे कर सवक्तगीनके दूतोंको कैद कर लिया गया। इस सम्वादको सुन कर सवक्त-गीनने क्रोधसे अधीर हो जयपालके राज्य पर पुनः आक्र मण किया। युद्धमें जयपालकी हार हुई। सवक्तगीन

स्वीकृत उपढौकनको ग्रहण कर तथा पेशावर और लमघन अधिकार कर अपने देशको लौट गये। इसी समयसे पेशावर हिन्दू और मुसलमान राज्यका सीमा स्थान हो गया। १००१ ई०में २७ नवम्बरको सवक्तगोनके पुत्र सुलतान महमूदने १२००० अश्वारोही और ३०००० पदातिके साथ जयपाल पर आक्रमण किया। जयपाल पराजित हुए और कैद कर लिए गये। परन्तु वास्तविक कर देना मञ्जूर करने पर महमूदने उन्हें छोड़ दिया। उस समयकी प्रथाके अनुसार कोई राजा युद्धमें यदि दो बार पराजित हो जाय; तो वह राजा चलानेमें अक्षम समझा जाता था और राजा नहीं कर सकता था। इसलिए जयपाल अपने पुत्र अनङ्गपालको राजसिंहासन पर बिठा कर खुद प्रज्वलित अग्निकुण्डमें कूद पड़े। इस प्रकारसे जयपालकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

२ लाहोरके राजा अनङ्गपालके पुत्र और १म जयपालके पौत्र। १०१३ ई०में ये पितृसिंहासन पर बैठे थे। इरावती नदीके किनारे १०२२ ई०में गजनीपति सुलतान महमूदके साथ इनका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें जयपालकी पराजय हुई। इसी युद्धके उपरान्त लाहोर मुसलमानोंके हाथ चला गया। भार-वर्षमें मुसलमान राजाकी यही बुनियाद थी।

३ हमीर महाकाव्यके मतसे चौहानवंशीय पाँचवें और सत्ताईसवें राजा। पाँचवें राजा जयपाल चक्री महाराज चन्द्रराजके पुत्र तथा सत्ताईसवें राजा जयपाल महाराज विग्रहके पुत्र थे। चौहान देखो।

जयपुत्रक (सं० पु०) प्राचीन कालका जुआ खेलनेका एक प्रकारका पासा।

जयपुर—१ राजपूतानेकी एक रेसीडेन्सी। यह अक्षा० २५° ४१' एवं २८° ३४' उ० तथा देशा० ७४° ४०' तथा ७७° १३' पू०में अवस्थित है। इसमें जयपुर, कृष्णगढ़ और लाव राज्य लगता है। जयपुर रेसीडेन्सीसे उत्तरमें बीकानेर और पञ्जाब, पश्चि०में जोधपुर एवं अजमेर, दक्षिणमें शाहपुर, उदयपुर, बूंदी, टौंक, कोटा और ग्वालियर तथा पूर्वमें करौली, भरतपुर और अलवर है। रेसीडेण्टका सदर जयपुर है। लोकसंख्या कोई २७५२३०७ और क्षेत्रफल १६४५६ वर्गमील है। इसमें ४१ नगर और ५९५८ ग्राम बसे हैं।

२ राजपूतानाका उत्तर-पूर्व और पूर्व राज्य। यह अक्षा० २५° ४१' एवं २८° ३४' उ० और देशा० ७४° ४१' तथा ७७° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १५५७९ वर्गमील है। जयपुरसे उत्तर बीकानेर, लोहारू एवं पातियाला, पश्चिम बीकानेर, जोधपुर, कृष्णगढ़ तथा अजमेर, दक्षिण उदयपुर, बूंदी, टौंक कोटा एवं ग्वालियर और पूर्वमें करौली, भरतपुर तथा अलवर है। इस देशमें बहुतसे पहाड़ होने पर भी यहांकी जमीन समतल है। किन्तु मध्यभागकी जमीन त्रिकोणाकार है जो समुद्रपृष्ठसे लगभग १४००से १६०० फुट ऊंची है। यह त्रिकोणाकार जयपुर शहरसे पश्चिमकी ओर विस्तृत है और इसके पूर्व भागमें बहुतसे पहाड़ हैं जो उत्तर दक्षिण अलवर तक फैले हुए हैं। रघुनाथगढ़ पर्वतशिखर समुद्रपृष्ठसे ३४५० फुट ऊंचो है। राजमहलके पास बनास नदीका दृश्य निराला है। यह राज्यकी सीमाके साथ साथ ११० मील तक बहते चली जाती है। ग्रीष्मऋतुमें प्रायः सब छोटी छोटी नदियां सूखी देख पड़ती हैं। झीलोंमें सांभर ही बड़ी है। खेतड़ी और सङ्घानमें तांबा और बबईमें निकल निकलता है। जयपुर राज्यमें लौहखनि भी है। जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है।

जयपुर महाराज श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुशवंशीय कच्छवाह राजपूतोंके सर्दार हैं। कहते हैं प्रथमतः उनके पूर्वपुरुष रोहतासमें बसे थे, फिर खृष्टीय ३री शताब्दीके अन्तमें ग्वालियर और नरवर चले गये। वहां कच्छवाहोंने कोई ८०० वर्ष राजत्व किया, परन्तु उनका शासन स्वाधीन और अप्रतिहत न था। प्रथम कच्छवाह नृपति वज्रदाम ९७७ ई०में कन्नौजके राजाओंसे ग्वालियर छीन कर स्वाधीन हुए। उनके अष्टम वंशधर तेजकरण (दूल्हाराय)-ने ११२८ ई०में ग्वालियर छोड़ा। इन्होंने अपने श्वशुरसे देवासा दहेजमें पाया था। उसी समयसे पूर्व राजपूतानेमें कच्छवाह राज्य प्रतिष्ठित हुआ। यह दिल्लीवाले राजपूत राजाओंके अधीन था। कोई ११५० ई०में दूल्हारायके किसी उत्तराधिकारीने सुसावत मीनाओंसे अम्बर ले लिया और उसको अपनी राजधानी बना दिया। छह सौ वर्ष तक अम्बर इसी-तरह राज-

धानीके रूपमें रखा। कहा जाता है, कि दूल्हारायके उत्तराधिकारी चौथे पजून (किसीके मतसे पांचवें) ने दिल्लीके शेष हिन्दूराजा पृथ्वीराज चौहानकी लड़कीके साथ विवाह किया था। ११९२ ई०में ये अपने श्वशुरके साथ महम्मद गोरीके हाथसे मारे गये। चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें उदयकरण अम्बरके प्रधान थे। इस समय जो जिला आजकल शेखावाटी कहलाता है वह कच्छवाहोंके हाथ लगा।

मुगलोंके आने पर बाहरमल (१५४८से १५७४ई०) राजा मुसलमानोंके अधीन हुए। इन्होंने अपनी लड़कीको अकबरसे व्याहा। बाहरमलके पुत्र भगवान्दास अकबरके मित्र थे, क्योंकि इन्होंने सरनालकी लड़ाईमें अकबरकी जान बचाई थी। इस कारण वे ५००० अश्वारोहीके अध्यक्ष तथा पञ्जाबके गवर्नर बनाये गये। १५८५ या १५८६ ई०में इन्होंने अपनी लड़कीको सलीमसे, जो पीछे जहांगीरके नामसे प्रसिद्ध हुए, व्याहा। १५९० ई०में भगवान्दासके मरने पर उनके दत्तकपुत्र मानसिंह उत्तराधिकारी हुए, किन्तु १६१४ ई०में इनका देहान्त हो गया। मानसिंह बड़े सूरवीर थे। तथा मुगलराजके विश्वासपात्र भी थे। हिन्दू होने पर भी उस समय इन्हींकी चलती बनती थी। इन्होंने उड़ीसा, बङ्गाल तथा आसाम देशको जीता था और कुछ काल ये काबुल, बङ्गाल, विहार तथा दक्षिण प्रदेशके शासक थे। मानसिंहके बाद प्रथम जयसिंह राजाके उत्तराधिकारी हुए। राजा होने पर इन्होंने अपना नाम मिरजा राजा रखा। दक्षिण प्रदेशमें औरङ्गजेबकी जितनी लड़ाइयां हुईं सभीमें इनका नाम पाया जाता है। ये ६००० अश्वारोहीके अध्यक्ष थे। इन्होंने महाराष्ट्र वीर शिवाजीको परास्त किया था। बाद औरङ्गजेब इनसे डाह करने लगे और १६६७ ई०में इन्हें विष खिला कर मार डाला। इनकी मृत्युके बाद द्वितीय जयसिंह १६९९ ई०में सिंहासनारूढ़ हुए। मुगलबादशाहसे इन्हें सवाईकी उपाधि मिली थी। इस कारण ये सवाई जयसिंह नामसे प्रसिद्ध थे। कुछ काल राज्य कर १७४३ ई०में इनका प्राणान्त हुआ। ये शिल्पकार्य तथा वैज्ञानिक शास्त्रमें बड़े ही निपुण थे। इन्होंने गणितके कई ग्रन्थ संस्कृत भाषामें अनुवाद किये। इन्होंने जयपुर, दिल्ली, बनारस, मथुरा और उज्जैनमें वेधशालाएं बनायीं। अम्बरसे राजधानी उठा कर १७२८ ई०में इन्होंने जयपुरनगर बसाया था। जयपुरके सभी राजाओंमें जयसिंह ही सबसे प्रसिद्ध थे। उस समय उनकी तूती चारों ओर बोल रही थी। उन्होंने अनेक विपत्तियोंका सामना कर अपना राज्य विस्तृत किया था। जबसे जयपुर और जोधपुरके प्रधान अपनी लड़की मुगल बादशाहको देने लगे, तबसे उदयपुरके साथ इनका सद्भाव नहीं था। किन्तु द्वितीय जयसिंहने मुसलमानोंके विरुद्ध उदयपुरसे मेल कर लिया और तभीसे वे अपनी लड़कीको उदयपुर-परिवारमें व्याहने लगे। इनके मरने पर भरतपुरके जाटोंने राज्यका कुछ अंश ले लिया और १७९० ई०को माचेरी (वर्त्तमान अलवर)के राजाओंने और भी उसकी सीमा घटा दी। १८०३ ई०को ब्रटिश गवर्नमेण्ट और जयपुर नरेश जगत्सिंहमें मराठोंके विरुद्ध एक मत्र बनानेके लिए सन्धि हुई, परन्तु १८०५ ई०में इस कारण वह टूट गयी कि राज्यने होलकरसे लड़नेमें अंगरेजोंकी सहकारिता न की थी। १८१८ ई०की सन्धिके अनुसार अंगरेजोंने राज्यरक्षाका भार अपने ऊपर लिया और कर लगा दिया।

जगत्सिंहकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारके विषयमें फिर झगड़ा खड़ा हुआ। राजपूतोंमें ऐसी प्रथा प्रचलित है कि, निःसन्तान अवस्थामें राजाकी मृत्यु होने पर, मृत्युके अव्यवहित काल पीछे ही किसी भी शिशु वा युवकको दत्तकपुत्र ग्रहण कर उससे मृत राजाकी अन्त्येष्टिक्रिया कराई जाती है।

पहले नरवरमें कच्छवह राजाओंका राज्य था। नरवरके शेष राजाकी अपुत्रकावस्थामें मृत्यु होने पर, वहांके सामन्तोंने आमेरके राजा १म पृथ्वीराजके एक पुत्रको ला कर उन्हींको राजाभिषिक्त किया था। उनके १४श पुरुष मनोहरसिंह थे। इस समय उन्हीं मनोहरसिंहके पुत्र मोहनसिंहको ही जयपुरके राजसिंहासन पर बिठाया गया। इसके कुछ दिन बाद ही प्रगट हुआ कि मृत जगत्सिंहकी महिषी भटियानी गर्भवती हैं, शीघ्र ही उनके सन्तान होनेवाली है।

सामन्तोंने पहले तो विश्वास न किया ; पोछे जब अपनी पत्नियोंको अन्तःपुरमें भेज कर खबर मंगाई, तो बात ठीक निकली। यथासमय रानी भट्टियानीके गर्भ से ३य जयसिंहका जन्म हुआ और मोहनसिंह गद्दीसे उतार दिये गये। सामन्तों और बृटिश गवर्मेण्टको सम्मतिके अनुसार ३य जयसिंह हो राजा हुए। इस समय भी २य पृथ्वीसिंहका पुत्र ग्वालियरमें सिन्धियाके आश्रमसे राजा पानेको कोशिश कर रहा था। पहले तो बहुतसे सामन्त उसे राजगद्दी देनेके लिए राजी हो गये थे, पर पोछेसे उसको मूर्खता और असच्चरित्रताकी बात सुन कर किसीने भी उसे राजा न बनाया।

३य जयसिंहके राजा होने पर, उनकी माता रानी भट्टियानी हो राजा-शासन करने लगीं। राजाके स्वार्थके लिए बृटिश गवर्मेण्टने रावल बैरिलालको जयपुरके मन्त्रिपद पर नियुक्त किया। जगत्सिंहको शेषावस्थामें उनके अधीनस्थ सामन्तोंने जयपुरराजाकी बहुतसी जमीन अपने अधिकारमें कर ली थी। परन्तु बृटिश गवर्मेण्टके साथ सन्धि होने पर जगत्सिंहको उक्त जमीन पुनः मिल गई। सामन्तगण फिर जमीन न ले लें, इसके लिए भट्टियानीने उनके हस्ताक्षर ले लिए। पहले रानी भट्टियानीने राज्यकी उन्नतिके लिए विशेष मनोयोग लगाया था ; किन्तु जटाराम नामक एक व्यक्तिसे गुप्तप्रेममें फंस जानेके कारण पुनः अनर्थका सूत्रपात हुआ। भट्टियानीने सदाशय बैरिलालको निकाल कर धूर्त जटारामको प्रधान मन्त्रित्वका पद दे दिया। यह जटाराम ही धीरे धीरे राजाका हर्त्ताकर्ता हो गया। १८३३ ई०में भट्टियानी रानीकी मृत्यु हो गई। उनके सम्मानरक्षार्थ अब तक गवर्मेण्टने जयपुर पर दृष्टिपात नहीं किया था। किन्तु अब 'प्राप्य कर नहीं चुकाया' इस बहानेसे जयपुरराजा पर हस्तक्षेप किया। इसी समय जयपुर राजधानीमें महा विभ्राट् उपस्थित हुआ। ३य जयसिंहके बड़े होने पर शीघ्र ही वे शासन-भार ग्रहण करेंगे, यह धूर्त जटारामको सह्य न हुआ। उसे मालूम थी कि जयसिंहके शासन-भार ग्रहण करने पर, फिर उसका अधिकार कुछ भी न रहेगा। यह विचार कर उस दुष्टने १७ वर्षके बालक जयसिंहको विष दे कर मार डाला। उस समय ३य जयसिंहके २य रामसिंह नामक एक पुत्र हुए थे। ये २ वर्षके बालक रामसिंह ही राजा हुए। इनके राजारोहणके समय जटारामके षड़यन्त्रसे राजधानीमें बड़ी गड़बड़ी मच गई।

१८२० ई०को बलवा होने पर राजाने अंगरेज अफसरको जयपुरमें रहनेके लिये बुलाया था। १८३५ ई०को राजधानीमें जो उपद्रव उठा, गवर्नर जनरलके राजपूतानास्थ एजेण्ट आहत हुए और उनके सहकारी मारे गये। इसके बाद बृटिश गवर्नमेण्टने शान्ति-रक्षाका उपाय किया। पोलिटिकल एजेण्टकी देखभालमें ५ सरदारोंकी एक रिजेन्सी कौंसिल बनी, जो सब जरूरी काम करने लगी, सेना घटायी गयी और प्रबन्धके सब विभागोंका संस्कार हुआ। १८४२ ई०को ८ लाख वार्षिक कर घटा कर ४ लाख रखा गया। १८५१ ई०को अंगरेजोंने जयपुरके नरेश महाराज रामसिंहको पूर्ण अधिकार दिया। सिपाही विद्रोहके समय अंगरेजोंको सहायता देनेसे उन्होंने कोट कासिम परगना पुरस्कारमें पाया। १८६२ ई०को उन्हें गोद लेनेका अधिकार भी मिला था। १८६४ ई० में राजपूतानेमें जो घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, उसमें इन्होंने बृटिश गवर्मेण्टको ओर अनेक प्रशंसनीय कार्य किए थे, इस कारण इन्हें G. C. S. I. की उपाधि मिली थी एवं २१ तोपोंके अतिरिक्त दो और सम्मानसूचक तोपें मिलने लगीं। १८७८ ई०में G. C. I. E. बनाये गये। १८८० ई०को निःसन्तानावस्थामें इनकी मृत्यु हुई। महाराज रामसिंह एक विज्ञ शासक थे। विद्याकी उन्नति तथा अपने राज्य भरमें सड़क बनवानेकी ओर इनका विशेष लक्ष्य था। इन्होंने अपने जीतेजी महाराज जगत्सिंहके द्वितीय पुत्रके वंशज इसारदके ठाकुरके छोटे भाई कायमसिंहको अपना उत्तराधिकारी बना रखा था। १८८० ई०को कायमसिंह २य सवाई माधवसिंह नाम धारण कर गद्दी पर बैठे। इनका जन्म १८६२ ई०में हुआ था। इनको नाबालिगीमें एक सभा द्वारा राजकार्य चलाया जाता था। १८८२ ई०में इन्हें राजाका पूरा अधिकार दे दिया गया। पहले इन्हें १७ तोपें दी जाती थीं, बाद १८८७ ई०में दो

तोपें और बढ़ा कर १८ तोपें दी जाने लगीं। १८८७ ई०में इन्हें G. C. S. I. १९०१ ई०में G. C. I. E. और १९०३ ई०में G. C. V. O. की उपाधि मिली। इनके समयमें कई एक सिंचाईके काम, अस्पताल तथा दातव्य चिकित्सालय खोले गये। १९०२ ई०में ये सप्तम एडवर्डके साथ विलायत गये थे।

इनके पुत्रका नाम महाराज मानसिंह है। जयपुरके राजाओंमें किसीके पुत्र न होने पर राजावत् कुलके किसी बालकको सिंहासन पर बिठाया जाता है। १म पृथ्वीराजके बारह पुत्रोंसे यह राजावत् वंश उत्पन्न हुआ है।* उन बारह पुत्रोंके नाम क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—१ चतुर्भुज, २ कल्याण, ३ नाथ, ४ बलभद्र, ५ जगमल्ल। (इनके पुत्रका नाम था खङ्गार), ६ सुलतान, पचायेन, ८ गूंगा, ९ कायम, १० कुम्भ, ११ सूरत और १२ बनबोर। इन बारह पुत्रोंसे यथाक्रमसे १ चतुर्भुति, २ कल्याणोत्, ३ नाथावत्, ४ बलभद्रोत्, ५ खङ्गारोत्, ६ सुलतानोत्, ७ पचायेनोत्, ८ गूंगावत्, ९ कुम्भानो, १० कुम्भावत्, ११ सुवर्णपोता और १२ बनबोरपोता इन बारह घरोंकी उत्पत्ति हुई है। इन बारह घरोंको राजपूतगण "बारह कोठरी" कहते हैं। ये लोग ही जयपुरके प्रधान बारह सामन्तके नामसे प्रसिद्ध थे। इन बारह घरोंसे अब करीब १०० घर हो गये हैं। इनके पास अब पहले जैसा ऐश्वर्य तो नहीं रहा, पर इनका सम्मान अच्छा होता है।

इनके सिवा कुछ दिन पहले राजावत्, नारुक, भानुवत् पूर्णमल्लोत् आदि कच्छवह जातीय कुछ सामन्तोंके घर थे। अब भी उनमेंसे दो एक घरका पूर्ववत् सम्मान है, पर अधिकांशकी अवस्था बदल गई है। इनके अतिरिक्त जयपुर राजके अधीन भट्टि, चौहान, वीरगूजर, चन्द्रावत्, शिकारवार, गूजर, मुसलमान आदि जातीय सामन्तोंके ४०-४५ घर हैं। उपरोक्त सामन्तोंमें गूंगावत् सामन्त ही प्रधान हैं; उनकी आय ४ लाख रुपयेसे अधिक है। कुछ ब्राह्मण सामन्त भी हैं; इनकी आय भी कम नहीं है।

जयपुर राज्यकी लोकसंख्या प्रायः २६५८६६६ है। यह राज्य १० निजामतों या जिलोंमें बटा है।

जयपुरके राजा बहुत दिनोंसे ही जागीर और ब्रह्मोत्तर दान कर चुके हैं। वर्तमानमें उन जागीरों और ब्रह्मोत्तरोंकी आमदनी करीब ७० ला० रुपये होगी। इसमें एक शहर और ३७ कसबे हैं। यह राजपूतानेमें सबसे अधिक आबाद राज्य है। हिन्दुओंमें वैष्णव-सम्प्रदायका प्राबल्य है। इसमें बैलोंकी जगह प्रायः ऊंट

* नीचे जयपुरके राजाओंके नाम दिये जाते हैं—

(१) दुल्हाराव *, अभिषेक सं० १०२३।
(२) कंकाल (धून्धरराज्यके उद्धारकर्त्ता)
(३) मादलराव*।
(४) हनूदेव।
(५) कुंतल।
(६) पूजन *।
(७) मलसिंह* (मालसिंह)
(८) विजली।
(९) राजदेव।
(१०) कल्याण।
(११) कुन्तल।
(१२) जवानसिंह।
(१३) उदयकरण।
(१४) नरसिंह।
(१५) बनवीर।
(१६) उद्धरण।
(१७) चन्द्रसेन।
(१८) पृथ्वीराज * १म, (इनके १२ पुत्रोंसे १२ घर राजावत सामन्त उत्पन्न हुए हैं।
(१९) भीम (पितृघाती)।
(२०) अहीशकर्ण (पितृहन्ता)।
(२१) बाहारमल*(१म पृथ्वीराजके पुत्र)।
(२२) भगवानदास*।
(२३) मानसिंह*।
(२४) भवासिंह (भाऊसिंह) * अभिषेक सं० १६७१।
(२५) महासिंह, अभिषेक सं० १६
(२६) जयसिंह * मीर्जाराजा (मानसिंहके भतीजे)
(२७) रामसिंह *।
(२८) विष्णुसिंह *।
(२९) सवाई जयसिंह* अभिषेक सं० १७५५।
(३०) ईश्वरीसिंह, अभिषेक सं० १८००।
(३१) मधुसिंह * (ईश्वरी सिंहके वैमात्रेय भाई) अभिषेक सं० १८१७।
(३२) पृथ्वीसिंह २य अभिषेक सं० १८२३।
(३३) प्रतापसिंह (मधुसिंहके २य पुत्र) अभिषेक सं० १८३३।
(३४) जगत्सिंह २य, अभिषेक सं० १८६०।
(३५) मोहनसिंह* (मनोहर सिंहके पुत्र) अभिषेक सं० १८५७।
(३६) जयसिंह ३य * (जगत् सिंहके पुत्र) अभिषेक सं० १८७६
(३७) रामसिंह २य *, अभिषेक सं० १८९२।
(३८) माधवसिंह (दत्तकपुत्र) अभिषेक सं० १९१७।

* चिह्नित राजाओंका विवरण उन्हीं शब्दमें देखना चाहिए।

लगते हैं। लोगोंका प्रधान खाद्य बाजरा और जुआर है। इस राज्यमें कई बड़े बड़े तालाब हैं। जङ्गलोंमें हकदार मुफ्त और दूसरे लोग महसूल दे कर मवेशी चराते हैं। सिवा नमकके दूसरा धातु बहुत कम निकलता है। लोहेका काम बन्द है। सङ्गमरमर बहुत मिलता है। अबरकका भी खान है। कङ्कर और चूनेकी कोई कमी नहीं। यहां ऊनी और सूती कपड़ा बनता है। सङ्गमरमर पर नक्काशी और मट्टी तथा पीतलके बर्तन तैयार करते हैं। जयपुरके रंगे और छपे कपड़े बहुत अच्छे होते हैं। सोने, चांदी और तांबेकी मीनाकारी मशहूर है। राज्यमें रूईकी कई कलें भी हैं। प्रधानतः नमक रूई, घी, तेलहन, छपे कपड़े, ऊनी पोशाक, सङ्गमरमरी मूर्तियां, पीतलके सामान और चूड़ियोंकी रफ्तनी होती है। राजपूताना मालवा रेलवेसे सब माल आता जाता है। ऊंट भी चीजें ले जानेमें व्यवहृत होता है।

जयपुर राज्यमें कोई २८३ मील पक्की और २३६ मील कच्ची सड़क है। महाराज १० सदस्योंकी कौंसिलसे राज्य प्रबन्ध करते हैं। इसमें अर्थ, न्याय और पर राष्ट्र आदि तीन विभाग सम्मिलित हैं। तहसीलदारी सबसे छोटी अदालत है। इसके ऊपर निजामत है। महाराज अपनी प्रजाको फांसी दे सकते हैं। राज्यका साधारण आय प्रायः ६५ लाख है। यहां झाड़शाही सिक्का चलता है। टकशालमें अशर्फी, रुपया और पैसा ढालते हैं। पढ़नेकी फीस नहीं लगती।

२ राजपूतानाके जयपुर राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २६° ५५' उ० और देशा० ७५° ५०' पू०में राजपूताना मालवा रेलवे पर अवस्थित है। यह राजपूतानेका सबसे बड़ा शहर है। लोकसंख्या कोई १६०१६७ होगी। सुप्रसिद्ध महाराज सवाई जयसिंहके नाम पर ही जयपुरका नामकरण हुआ है। दक्षिण दिक् भिन्न सब ओर पहाड़ों पर किले बने हैं। नाहरगढ़ दुर्ग अभेद्य है। नगरको चारों ओर प्राचीर है। सड़कें बहुत उम्दा हैं। प्रधान पथ १११ फुट चौड़ा है। बीचमें राजप्रासाद देखते ही बनता है। तालकटोरा तालाब चारों ओर दीवारसे घिरा है। राजामालके तालाबमें घड़ियाल बहुत हैं। पुरातत्त्व सम्बन्धीय ग्रहशाला देखनेकी चीज है। रातको गैसकी रोशनी होती है। १८७४ ई०से अमानशाह नदीका पानी नलोंके सहारे आता है। १८६८ ई०को म्युनिसपालिटी हुई। सरकारी कोषसे उसका सब खर्च दिया जाता है। शहरका कूड़ा ढोनेकी भैंसोंकी ट्राम चलती है। प्रधान व्यवसाय रंगाई, सङ्गमरमरकी नक्काशी, सोनेकी मीनाकारी, मट्टीके बर्तन और पीतलका सामान है। १८६८ ई०को यहां कलाविद्यालय खुला। उसमें चित्रविद्या, रंगसाजी, नक्काशी, आदि उपयोगी विषयोंकी शिक्षा दी जाती है। महाजनी और हुण्डीवालोंका खूब काम होता है। १८८५ ई०को नगरके बाहर रूईके २ पुतलीघर खुले थे। यहां शिक्षण-संस्थाएं बहुत हैं। महाराज कालेज उल्लेखयोग्य है। अस्पतालोंकी भी कोई कमी नहीं। शहरसे बाहर २ जेल हैं। रामनिवासबागमें अजायब घर है।

जयपुर—आसामके लखीमपुर जिलेमें डिबरूगढ़ सबडिविजनका गांव। यह अक्षा० २७° १६' उ० और देशा० ८४° २३' पू०में बूढ़ी दिहिङ्ग नदीके वाम तटपर अवस्थित है। इसके निकट ही कोयले और मट्टीके तेलकी खान हैं। यह स्थान स्थानीय व्यापारका केन्द्र है।

जयपुर—१मन्द्राज प्रान्तके विशाखपत्तन जिलेकी एक जमींदारी। यह उक्त जिलेके समग्र उत्तर भागमें विस्तृत है। बङ्गालके कालाहण्डी राजाने उसको दो भागोंमें बांट दिया है। १८६१ में कानून बना करके नरबलि रोका गया।। जयपुर घरानेके पूर्वपुरुष उत्कलस्थ गजपति राजाओंके सहगामी थे। १५वीं शताब्दीकी चन्द्रवंशीय राजपूत विनायकदेवने गजपति राजाकी कन्यासे विवाह किया। उन्होंने ही इन्हें जयपुर जमींदारी दी थी। फिर यह विशाखपत्तनके अधीन हुआ। परन्तु १७९४ ई०में मन्द्राज सरकारने जयपुरके शासकको एक निराली सनद दी। कारण इन्होंने विजयनगरम्-युद्धके समय वफादारी की। १८०३ ई०को इसकी मालगुजारी (पेशकश) १६००० रु० थी। १८४८ ई०में गवर्नमेण्टने राजपरिवारके गृह-कलहसे उसकी कुछ तहसीलें ले लीं। १८५५ ई०में फिर बखेड़ा हुआ और सरकारकी दीवानी और फौजदारी

कानून जारी करना पड़ा। उसके बाद यहां कोई झगड़ा नहीं लगा, केवल १८६५—६ ई०को सावरोंने कुछ उपद्रव किया था। १८८६ ई० श्री विक्रमदेवको 'महाराजा" उपाधि मिली। इस राजको वन-विभागसे बड़ी आय है। इस जमींदारीका अधिकांश राजा एवं सहकारी वृटिश-एजेण्टके कर्तृत्वाधीन है तथा कुछ (गुनुपुर और रायगढ़ जिला) सिनियर असिष्टेण्ट कलक्टरके अधीनमें है। पार्वतीपुरमें उनकी कचहरी है।

इस जमींदारीके मध्यभागमें पांच हजार फुट ऊंची नोमगिरि नामक गिरिमाला है। यहांसे स्रोतस्वती है, जो दक्षिण-पूर्वकी ओर वंशधारा नामसे कलिङ्ग-पत्तनमें तथा चिकाकोलको धारा होती हुई नागावलि नामसे समुद्रमें जा मिली है। वंशधारा नदीके दोनों किनारे बांसके पेड़ बहुत उपजा करते हैं। पूर्व एवं उत्तर-पूर्वांशमें घोरा पहाड़ है जिसकी उपत्यका प्रायः दो सौ वर्गमील विस्तृत है।

जमींदारीके अधिकांश स्थानमें अर्द्धस्वाधीन कन्ध-जातिका वास है। उत्तरांशमें गोदेरी, विषमकटक और अल्पापुर ये तीन स्थान तीन प्रधान सामन्तोंके अधीन हैं। जमींदारीके प्रधान नगर जयपुर नवरङ्गपुर और कोटिपाद हैं।

यहां कन्ध और शबर जातिका वास ही अधिक है। अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। इनका चेहरा गोंड़-द्राविड़ और कोलभावमिश्रित होता है। यहां प्रकृत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि आर्यजाति बहुत कम हैं। यहांकी प्रजा करीब बारह आना आर्यभावापन्न है। नगर आदिकी प्रजाकी अपेक्षा पहाड़ी प्रजा बहुत कुछ स्वाधीन है। उनमें एक एक गोष्ठीपति होता है; सबको उन्हींके आदेशानुसार आचरण करना पड़ता है। जमींदारीके दक्षिणांशमें जङ्गल काटने और खेती करनेके बाबत हमेशा झगड़ा हुआ करता है।

इस जमींदारीका बन्दोबस्त प्राचीन हिन्दू-प्रथाके अनुसार होता है। यहां गोष्ठीपतिके ऊपर ग्रामपति और उनके ऊपर राजा होते हैं। राजा ही जमीनके यथार्थ स्वत्वाधिकारी हैं; गोष्ठीपति भी इच्छानुसार किसी जमीनको हस्तान्तरित वा विक्रय कर सकते हैं, इसके लिए राजा वा राजपुरुषोंसे अनुमति नहीं लेनी पड़ती।

२ मन्द्राज प्रान्तके विशाखपत्तन जिलेकी एजेन्सी तहसील। यह घाट पर्वत पर अवस्थित है। क्षेत्रफल १०१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १३३८३१ है। लोग १२१३ गांवोंमें रहते हैं। प्रधान नगर जयपुर है। इसकी जनसंख्या कोई ६३८८ होगी। इसी नगरमें जयपुर राजाके महाराज रहते हैं। समग्र राजाकी मालगुजारी लगभग २६०००) रु० है। इसके मध्य कोलव नदी प्रवाहित है।

जयपुरदुर्ग—अजयगढ़का एक प्राचीन नाम। हहयोल-तन्त्रके मतसे जयपुर एक पीठस्थान है।

जयप्रिय (सं० पु०) १ विराट-राजाके भाईका नाम। २ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक। इसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है।

जयभट—इस नामके कई-एक गुर्जरराजोंका उल्लेख मिलता है, जो भरुकच्छमें राजा करते थे। कावी, उमेटा, बगुमड़ा और इलाउसे आविष्कृत ताम्रलेख द्वारा जयभटोंका इस प्रकारसे सम्बन्ध निर्णय किया जाता है—

१म दद्द
|
१म जयभट वीतराग
(४८६ सम्वत्)
|
२य दद्द—प्रशान्तराग
(शक सं० ४००—४१७)
|
°
|
३य दद्द
|
२य जयभट—वीतराग
|
४र्थ दद्द—प्रशान्तराग
|
(चेदिसं० ३८०—३८५)
|
३य जयभट
|
५म दद्द—बाहुसहाय
|
४र्थ जयभट
(चेदिसं० ४५६-४८६)

उक्त राजाओंके ताम्रलेखमें लिखा है कि, पहले इस वंशके महासामन्त मात्र थे। १म जयभटने समुद्र-कुलवर्ती गुजरात और काठियावाड़में घोरतर युद्ध किया था। मालूम होता है कि, इन्होंने पहिले पहल यथार्थ राजपद पाया था, क्योंकि इनके पुत्र २य दद्दने अपनेको महाराजाधिराज उपाधि द्वारा विभूषित किया है। खेड़ासे प्राप्त अनुशासनपत्रके पढ़नेसे मालूम होता है कि, २य जयभटके पिता ३य दद्दने नागवंशीय राजाओं पर आक्रमण कर बहुतसे स्थान अधिकार किये थे। परन्तु ये भी सामंत मात्र थे। खेड़ा और नौसारीसे प्राप्त ताम्रलेखमें लिखा है कि, ३य जयभटके पिता ४र्थ दद्दने वलभी राजाको, सम्राट् श्रीहर्षदेवके हाथसे बचा कर महासुख्याति अर्जन की थी। इन्होंने चेदि-सम्वत् ३८०से ३८५ तक अर्थात् ६२८से ६३३ ई० तक राज्य किया था। इस समयसे कुछ पहले हर्षदेवने वलभीराज्य पर आक्रमण किया था, ऐसा मालूम होता है। कुछ भी हो, भरुकच्छाधिपतिके साथ वलभीराजको मित्रता बहुत दिनों तक नहीं रहने पाई थी। क्योंकि, ६४८ ई०में भरुकच्छको वलभीराज ध्रुवसेनके अधिकृत होते और यहांके जयस्कन्धावारसे वलभीराजोंके शासनपत्र मिलते दिखाई देते हैं।

जयमङ्गल (सं० पु०) जय एव मङ्गलं यस्य, जयेन मङ्गलं यस्मादिति वा। १ राजवाहन योग्य हस्ती राजाके सवार होने योग्य हाथी। २ वह हाथी जिस पर राजा विजय करनेके उपरान्त सवार हो कर निकले। ३ ध्रुवक जातीय तालविशेष, तालके साठ भेदोंमेंसे एक।

जयमङ्गल—१ जयसिंहको सभाके एक पण्डित। इन्होंने जयसिंहके आदेशानुसार (१०९४से ११४३के भीतर) कविशिक्षा नामक एक संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थ रचा था।

२ एक प्रसिद्ध टीकाकार। इनको रचित भट्टिकाव्य और सूर्यशतकको टीका मिलती है। भट्टोजीदीक्षित, हेमाद्रि, पुरुषोत्तम आदिने इनका उल्लेख किया है।

जयमङ्गलरस (सं० पु०) जयेन रोगजयेन मङ्गलं यस्मात्, तादृशो रसः। ज्वरनाशक औषध। इनके बनानेकी विधि—हिंगुलका रस, गन्धक, सुहागेको भस्म, तांबा, रांगा, स्वर्णमाक्षिक, सैन्धव और मरिच, प्रत्येकका ४ मासा, स्वर्ण १ तोला, लौह ४ मासा, रौप्य ४ मासा, इनको एकत्र घोंट कर धतूरे और शेफालि (सिहरू के पत्तेके रसमें, दशमूल और चिरायतेके क्वाथमें क्रमसे तीन बार भावना दे कर दो रत्तोके बराबर गोलियां बनानी चाहिये। अनुपान—जीरेका बुकनी और मधु। इसका सेवन करनेसे नाना प्रकारका धातुस्थ ज्वर नष्ट हो जाता है। यह विषम और जीर्णज्वरको उत्कृष्ट औषध है।

(भैषज्यर०)

चिकित्सासारसंग्रहके मतानुसार इसको प्रस्तुत-प्रणाली—हड़, बहेड़ा, आंवला, पीपल, प्रत्येक २ मासा, लौह ४ मासा, अभ्र २ मासा, ताम्र २ मासा, रौप्य ५ रत्ती, स्वर्ण ५ रत्ती। रस और गन्धकको कज्जलो कर इनका पर्पटी पाक कर लेना चाहिये। फिर उसमें ४ मासे पर्पटी डाल कर निम्नलिखित औषधोंमें भावना दे कर मूंगके बराबर गोलियां बनानी चाहिये। अनुपान—तुलसीके पत्तेका रस और मधु। भावनाके लिए—जयन्तीपत्रका रस, विजयाका रस, चीतेका रस, तुलसीका रस, अदरकका रस, केशराज (भँगरिया) का रस, भृङ्गराजका रस, निर्गुण्डीका रस, प्रत्येकका परिमाण दो तोला है। यह औषध शोथज्वर और सर्वदा विषम ज्वरमें प्रयोज्य है। (चिकित्सासारसंग्रह)

जयमङ्गली—महिसुर राज्यमें बहनेवाली एक नदी। यह देवरायदुर्ग नामक पर्वतसे निकल कर उत्तरकी ओर तुमकुड़ जिलेके कोत्तगिरि तालुकके भीतरसे बेल्लारी जिलेके उत्तरमें पिनाकिनी नदीमें जा मिली है। इसके वालुकामय गर्भमें स्थित कपिली नामक कूपके पानीसे खेतोंमें पानी भेजा जाता है।

जयमल—१ एक प्रसिद्ध राजपूतवीर और बेदनोरके अधिपति। ये मेवारमें एक प्रधान सामन्त समझे जाते थे। जिस समय सङ्गराणाके पुत्र कायर उदयसिंह अकबरके भयसे चितौर छोड़ कर चले गये थे, उस समय बेदनोरके जयमल और केलवाके पुत्तने चितौरको रक्षाके लिए बादशाहके विरुद्ध असिधारण की थी।

उक्त दोनों महावीरोंको असाधारण वीर्यवत्ताको देख कर मुगलसेनापतियोंके भी छक्के छूट गये थे।

अन्तमें जयमल अपनी जन्मभूमिके लिए १५६८ ई०में

अकबरके हाथ निहत हुए। अकबर बादशाहने यद्यपि नीचतासे इनको मारा था ; किन्तु तो भी वे उनको अनुपम तेजोवीर्यको महिमा न भूल सके थे। उन्होंने उक्त दोनों राजपूतोंको प्रस्तरमूर्त्तियां बनवा कर दिल्लीमें अपने प्रासादके सामने स्थापित करवाई थीं।

उक्त घटनासे प्रायः सौ वर्ष पीछे प्रसिद्ध भ्रमणकारी वर्णियारने दिल्लीके सिंहद्वारमें प्रवेश करते समय उक्त मूर्तियोंको देख कर दोनों वीरोंकी तथा उनकी वीर्य्यवती माताओंकी बहुत प्रशंसा की थी।

२ एक धर्मशील राजा। ये परम विष्णुभक्त थे, इनके प्रासादमें श्यामसुन्दर नामको एक देव-मूर्त्ति थीं। आप कमसे कम दशदण्ड समय लगा कर नित्य उनकी पूजा किया करते थे। इस दशदण्ड समयके भीतर यदि उनका राजा भी नष्ट हो जाय तो भी वे कृष्णपूजा छोड़ कर नहीं उठते थे। इनका ऐसा नियम जान कर एक राजाने उसी अवसरमें उनके राजा पर आक्रमण किया। शत्रुओंके हाथसे जब इनका राजा नष्ट होने लगा, तब इनकी माता रोती हुई देवगृहमें पहुँची और बोलीं—"वत्स! सर्वनाश उपस्थित है, शत्रु आ कर तुम्हारे राजाको लूट रहे हैं, राजा नष्ट हुआ जा रहा है, इतने पर भी तुम निश्चिन्त बैठे हो कैसे? तुम्हारी आज्ञाके बिना सेना युद्ध नहीं करना चाहती, प्रत्युत खड़ी खड़ी पराजित हो रही है।" परन्तु जयमलको जरा भी घबड़ाहट नहीं, प्रत्युत वे कहने लगे—"माता! क्यों आप उद्विग्न हो रही हैं? जिन्होंने हमें यह विपुल सम्पत्ति दी है, वे ही जब उसे ले रहे हैं, तो किसकी मजाल है जो उन्हें रोक सके। सामान्य राजाकी बात तो दूर रही, इस समय यदि शत्रु आ कर मेरे मस्तकको उतार लें, तो भी मैं नियमित पूजा नहीं छोड़ूंगा।" इसी समय जयमलके इष्टदेव श्यामसुन्दर अपने भक्तके हितसाधनार्थ वीरवेशसे निकल पड़े, और शत्रुमण्डलीमें प्रवेश कर उन्होंने राजाके सिवा और समस्त शत्रुओंका विनाश कर दिया। इसके उपरान्त राजा भी नियमित पूजाको समाप्त कर योद्धृवेशमें समर भूमिमें पहुंचे, वहां उन्हें राजाके सिवा और समस्त शत्रुओंको धराशायी देख बड़ा आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे, कौनसे हितैषी मित्रने हमारे शत्रुओंको इस प्रकार निहत किया? इतनेमें वह पराजित राजा भी उनके सामने आ गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"महाराज! मैं बिना जाने जैसा अन्याय कार्य करने आया था, उसका प्रतिफल मुझे अच्छी तरह मिल गया। आपके कोई एक श्याममूर्त्तिधारी वीरपुरुष घोड़े पर सवार हो कर आये और क्षणमात्रमें मेरी समस्त सेनाको धराशायी कर विद्युद्वेगसे न मालूम कहां चले गये। अब मैं आपसे शत्रुता नहीं करना चाहता, आप मेरा समस्त राजाधन ग्रहण करें। मैं आपकी सम्पूर्ण वश्यता स्वीकार करता हूं। किन्तु उन श्यामल सुन्दर पुरुषको देखनेके लिए मेरा मन चंचल हो रहा है, यदि आप उन्हें पुनः एकबार दिखा दें, तो मैं अपनेको कृतकृतार्थ समझूंगा। मेरा सर्वस्व गया है, जाने दो मुझे जरा भी दुःख नहीं, किन्तु उस महावीर मूर्तिके भीतर न मालूम कैसी एक अनिर्वचनीय मधुर मूर्त्ति थी; जिसको देख कर मेरा हृदय पिघल गया है। मैं फिर उन्हें देखना चाहता हूं।" अब जयमल समझ गये कि, वह वीरपुरुष इष्टदेव श्यामसुन्दर ही थे। तदनन्तर जयमल अपने शत्रु राजाको साथ ले कर श्यामलसुन्दरके मन्दिरमें पहुंचे, वहां जा कर उन्होंने कहा 'महाराज! आप जिन वीरपुरुषको देखना चाहते हैं, देखिये, ये ही वे वीर पुरुष हैं।" पीछे शत्रु राजा भी हरिभक्त वैष्णव हो कर दिन बिताने लगे। (भक्तमाल)

जयमाधव—सूक्तिकर्णामृतधृत एक कविका नाम।

जयमाल (हिं० स्त्री०) १ विजयीको विजय पाने पर पहनाई जानेवाली माला। २ वह माला जिसे स्वयंवरके समय कन्या अपने वरे हुए पुरुषके गलेमें डालती है।

जययज्ञ (सं० पु०) जयार्थ यज्ञ। अश्वमेध यज्ञ।

जयरथ—काश्मीरके सुप्रसिद्ध कवि जयद्रथके भ्राता। इन्होंने अभिनवगुप्तरचित तन्त्रालोकको तन्त्रालोकविवेक नामसे टीका लिखी है। जयद्रथ देखो।

जयराज—शरभपुरके एक प्रसिद्ध राजा।

जयरात (सं० पु०) कलिङ्गराजके पुत्र, कौरव पक्षके एक योद्धा। ये कुरुक्षेत्रके युद्धमें भीमके हाथसे मारे गये थे। (भारत ७।१५५।२८)

जयराम—इस नामके बहुतसे ग्रन्थकारोंका पता चलता है। १ एक प्रसिद्ध संस्कृत ज्योतिर्विद्। इन्होंने कामधेनु पद्धति, खेचरकौमुदी, ग्रहगोचर, मुहूर्तालङ्कार, रमलामृत आदि कई एक ज्योतिर्ग्रन्थ रचे हैं।

२ कामन्दकीय नीतिसारसंग्रहके प्रणेता।

३ काशीखण्डके एक टीकाकार।

४ दानचन्द्रिका नामके स्मृतिके एक संग्रहकर्त्ता।

५ एक वेदान्तिक। जयरामाचार्य और विजयरामाचार्यके नामसे भी इसका परिचय मिलता है। इन्होंने माध्वसम्प्रदायके मतके विरुद्ध पाषण्डचपेटिका नामक एक युक्तिपूर्ण शास्त्रीय संस्कृत ग्रन्थ लिखा है।

६ राधामाधवविलास नामक काव्यके रचयिता।

७ शिवराजचरित नामक संस्कृत ग्रन्थके कर्त्ता।

८ देशोद्धार नामक सप्तशतीके एक टीकाकार।

९ एक वैदिक पण्डित, बलभद्रके पुत्र, दामोदरके पौत्र और केशवके शिष्य। आपने पारस्करगृह्यसूत्रकी सज्जनवल्लभा नामक टीका लिखी है।

१० पद्यामृततरङ्गिणीकी सोपानार्चना नामक टीकाके रचयिता।

११ हिन्दीके एक कवि। इनकी एक कविता उद्धृत की जाती है।

"रघुवर जानकी रसमाते।
वन-प्रमोदमें विहरत दोउ हँस हँस करत रसीली बातें॥
कहुं कहुं ठाढ़े होत नवल प्रिय झुक झुक गहत द्रुमनकी पातें।
लै सुमनन सियकों सिंगारत बिच बिच श्याम श्वेत पितरातें॥
श्रुति कीर्ति विमलादि नागरी सिखवत कोक कलाकी घातें।
जयराम हित मृदु मुसुक्याते गहि लीन्हो मिथुलाके नाते॥"

जयराम तर्कवागीश—बङ्गालके एक प्रसिद्ध पण्डित। आपने भगवद्गीतार्थसंग्रह और भागवतपुराण—प्रथम श्लोकव्याख्या नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

जयराम तर्कालङ्कार—पावना जिलेके एक बङ्गाली नैयायिक। आप वारेन्द्रश्रेणीके ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम जयदेव और गुरुका नाम गदाधर था। ये गदाधरकृत शक्तिवादकी विशद टीका लिख कर अपनी विद्वत्ताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं।

जयराम न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य—एक प्रसिद्ध बङ्गाली नैयायिक, रामभद्र भट्टाचार्यके छात्र और जनार्दन व्यासके गुरु। इन्होंने जयरामीय नामक न्यायग्रन्थ शिरोमणिकृत तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी टीका, न्यायकुसुमाञ्जलीकी टीका, अन्यथाख्यातितत्त्व, आकाङ्क्षावाद, उद्देश्यविधेयबोधस्थलीविचार, जातिपक्षवाद, प्रतियोगितावाद, विशिष्टवैशिष्ट्यवाद, विषयतावाद, व्याप्तिवादटीका, समासवाद, सामग्रीवाद, पदार्थमणिमाला, गौतमसूत्रका न्यायसिद्धान्तमाला नामके भाष्य (सम्वत् १७५०में) इत्यादि संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की थी।

जयरामा—काकन्दीपुराधिपति इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुग्रीवकी प्रधान महिषी और नवम तीर्थङ्कर भगवान् पुष्पदन्तकी माता। गर्भावस्थामें इनकी सेवाके लिए स्वर्गकी देवियां नियुक्त थीं। (जैन-आदिपुराण)

जयलेख (सं० पु०) जयपत्र, वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजयके प्रमाणमें विजयीको लिख देता है।

जयवत् (सं० त्रि०) जयी, विजयी, जीतनेवाला।

जयवन-काश्मीर राज्यकी एक पुरानी जगह। यह तक्षककुण्डके लिये विख्यात था। (विक्रमांकच०) आजकल इसे जेवन कहते हैं। वह श्रीनगरसे ३ कोस दूर है।

जयवन्त—तत्त्वार्थसूत्र नामक जैन-ग्रन्थके एक टीकाकार।

जयवन्धनन्दन—एक कवि। ये दिगम्बर जैन और कर्नाटकके रहनेवाले थे।

जयवर्मदेव—१ धाराके एक महाराज। ये यशोवर्मदेवके पुत्र। भोपालसे प्राप्त ताम्रलेखमें इनका परिचय है। ये ११४३ ई०में राजगद्दी पर बैठे थे।

२ चन्द्रात्रेयवंशके एक राजा। चन्द्रात्रेय देखो।

जयवराहतीर्थ (सं० क्लो०) नर्मदातीरस्थ तीर्थविशेष, नर्मदा किनारेके एक तीर्थका नाम।

जयवाहिनी (सं० स्त्री०) जयस्य जयन्तस्य वाहिनी यद्वा स्वयंवरसभायां संग्रामे वा जयं वहतीति वहणिनि, ततो ङीप्। १ शची, इन्द्राणी। २ जययुक्त सैन्य, विजयी सेना।

जयशब्द (सं० पु०) जयसूचकः शब्दः। जयध्वनि।

जयविलास—ज्ञानार्णव नामक जैन-ग्रन्थके टीकाकार।

जयशलमेर (जैसलमेर)—१ राजपूतानेका पश्चिम राज्य। यह अक्षा० २६° ४' एवं २८° २३' उ० और देशा० ६९° ३० तथा ७२° ४२' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १६०६२ वर्गमील है। जयशलमेरके उत्तरमें बहावलपुर, पश्चिममें सिन्धु, दक्षिण तथा पुर्वमें जोधपुर और उत्तरपूर्वमें बीकानेर राज्य पड़ता है। यह भारतीय विशाल मरुभूमिका एक भाग है। जलवायु शुष्क और स्वास्थ्यकर है। परन्तु ग्रीष्म ऋतुमें उत्ताप अधिक होता है। पानी ज्यादा नहीं बरसता।

जयशलमेरमें सर्वत्र ही यदुभट्टि राजपूतोंका वास है। ये लोग अपनेको प्रसिद्ध यदुवंशीय बतलाते हैं। यहांके अधिपति भी अपनेको श्रीकृष्णके वंशधर कहते हैं उनके पूर्वपुरुष पञ्जाब और अफगानिस्तानमें प्रबल प्रतापसे राज्य करते थे। महात्मा टड साहबने राजपूत भाटके मुंहसे सुन कर इस प्रकार लिखा है—

यदुवंशध्वंसके समय श्रीकृष्णके पौत्र* वज्रने मथुरासे २० कोश चल कर मार्गमें यदुवंशध्वंस और पिताकी मृत्युका संवाद सुना। इस दुःसंवादके सुनते ही शोक न सह सकनेके कारण उनकी मृत्यु हो गई। इनके पुत्र नव मथुरामें आ कर राजा हुए। वृजके द्वितीय पुत्र खीर द्वारका चले गये। इनके दो पुत्र थे, जाड़ेजा और युद्धभानु। राजा नवने विरक्त हो मरुस्थलोंमें जा कर राज्य स्थापन किया। उनके पुत्र मरुस्थलोंके राजा पृथ्वीबाहुको श्रीकृष्णका राजछत्र मिला था। उनके पुत्र बाहुबलका मालवराज विजयसिंहकी कन्याके साथ विवाह हुआ था। राजा बाहुबलके पुत्रका नाम था सुबाहु। इन पर एकबार म्लेच्छराजाने आक्रमण किया था। अजमेरके राजा मुकुन्दकी कन्याके साथ सुबाहुका विवाह हुआ था। इन्हीं राजपुत्रीने विषप्रयोग कर अपने स्वामी सुबाहुको मार डाला था। उनके पुत्र ऋजुने १२ वर्षकी अवस्थामें ही राजत्वका ग्रहण किया। मालवराज वीरसिंहकी कन्या सौभाग्यसुन्दरीके साथ इनका विवाह हुआ था। गर्भावस्थामें सौभाग्यसुन्दरीने स्वप्नमें श्वेतगज देखा था, इसलिए उनके पुत्रका नाम "गज" रक्खा गया। गजके यौवनसीमा पर पदार्पण करने पर, पूर्व देशाधिपति युद्धभानु अपनी कन्याके साथ उनका विवाह सम्बन्ध स्थिर करनेके लिए मरुस्थलोके राजाके पास नारियल भेजा। इसी समय संवाद आया कि, मुसलमानोंने पुनः समुद्रतट आक्रमण किया है। राजा ऋजु सेनासहित मुसलमानोंके विरुद्ध लड़नेके लिए रवाने हुए। इस युद्धमें आहत होनेके कारण उनको मृत्यु हो गई। गजने युद्धभानुकी कन्या हंसवतीके साथ विवाह कर लिया। इन्होंने खुरासानके राजाको दो बार परास्त किया। इस पर यवनराज रोमके राजासे सहायता ले कर पुनः अग्रसर हुए। दूतने आ कर संवाद सुनाया—

'रूमिपत खुरासानपत हय गय पोखरा पाय।
चिन्ता तेरा चित लेगी सुन यदुपत राय॥"

राजा गजपतिने इससे कुछ दिन पहले अपने नामसे गजनी-दुर्ग बनवाया था। अब यवनोंके आगमनका समाचार सुन कर उन्होंने धौलपुर जा कर स्कन्धावार स्थापित किया। दोनों राजाओंका सामना हुआ। रात्रिको खुरासानके राजाको अजीर्णरोग हो गया और आखिर उनकी मृत्यु हो गई। सिकन्दरशाहने सेनासहित स्वयं युद्धक्षेत्रमें पदार्पण किया। दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। इस युद्धमें यादवोंको ही जयलक्ष्मी प्राप्त हुई। ३००८ यौधिष्ठिराब्दके वैशाखमासमें रविवारके दिन यदुपति गजनीके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। उन्होंने काश्मीरके राजाको युद्धमें परास्त कर उनकी कन्याका पाणिग्रहण किया। उनके गर्भसे गजके शालिवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शालिवाहनकी अवस्था जब बारह वर्षकी हुई, तब खुरासानसे आ कर मुसलमानोंने पुनः यादवराज्य पर आक्रमण किया। इस समय भावी फल जाननेके लिए गजने तीन दिन तक कुलदेवीके मन्दिरमें अवस्थान किया। चौथे दिन कुलदेवीने दर्शन दिये और कहा—'इस युद्धमें गजनी तुम्हारे हाथसे जाता रहेगा, परन्तु भविष्यमें तुम्हारे ही वंशधर म्लेच्छधर्म ग्रहण कर इस स्थानमें आधिपत्य करेंगे। तुम अपने पुत्र शालिवाहनको शीघ्र ही पूर्वके हिन्दूराज्यमें भेज दो।' तदनुसार राजाने शालिवाहनको भेज दिया। वे

* टाड साहबने भ्रमसे इनको कृष्णका पुत्र लिखा है।

पितृव्य शिवदेवको राजधानीमें छोड़ कर यवनोंके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए रवाने हुए। युद्धमें गज मारे गये। यवनराजके गजनी अधिकार करनेके समय भी ३० दिन तक शिवदेवने युद्ध किया और अन्तमें उन्होंने शाक-यज्ञका अनुष्ठान किया। इस युद्धमें नौ हजार यादवों ने प्राण विसर्जन किये थे। शालिवाहन इस दुर्घटनाके बाद पञ्जाब चले गये। यहांके भूमियाओंने उन्हें राजा समझ कर रक्खा। उन्होंने वि० सं० ७२में शालिवाहन-पुरकी स्थापना की। उनके बारह पुत्र थे-बलन्द, रसाल, धर्माङ्गद, वत्स, रूप, सुन्दर, लेख, यशस्कर्ण, निमा, मत, गङ्गायु और यन्नायु। सभीने एक एक स्वाधीन राज्य स्थापन किया।

बलन्दके साथ तोमरवंशीय जयपालकी कन्याका विवाह हुआ। दिल्लीपति जयपालकी सहायतासे शालि-वाहनने गजनीका उद्धार किया और वहां ज्येष्ठपुत्र बलन्ददेवको रख छोड़ा।

शालिवाहनके बाद बलन्दको पितृ-अधिकार प्राप्त हुआ। उनके अन्य भ्राताओंने पहाड़के पार्वत्यप्रदेशमें आधिपत्य विस्तार किया। बलन्द स्वयं ही राजकार्य देखते थे। उनके समयमें यवनोंने पुनः गजनी पर अधि-कार जमा लिया बलन्दके सात पुत्र थे—भट्टि, भूपति, कल्लर, जिञ्ज, सरमोर, मङ्गलराव और मङ्गराव। भूपतिके पुत्र चकितसे ही चकताई जातिकी उत्पत्ति हुई। चकि-तोंके आठ पुत्र थे। देवसिंह, भैरवसिंह, खेमकर्ण, नाहर, जयपाल धरसिंह, विजलीखां और शाह समन्द। बलन्दने चकितको गजनीका आधिपत्य प्रदान किया। यवनोंने गजनी अधिकार कर चकितसे कहा—'यदि तुम हमारा धर्म ग्रहण करो, तो तुम्हें बलिच् बुखाराका राजा दे दें।' इस पर चकितने म्लेच्छधर्म ग्रहण कर बलिच् बुखा-राकी एक कन्याका पाणिग्रहण किया और उस विस्तीर्ण राज्यको ग्रहण किया। उन्हींके वंशधर अब चकितो-मोगल वा चगताई मुगलके नामसे प्रसिद्ध हैं। चकित-के मतसे कल्लरने भी म्लेच्छधर्म अवलम्बन किया था।

भट्टिको पितृ-अधिकार प्राप्त हुआ। इन्हींसे इनके वंशधर अपनेको यदुभट्ट राजपूत कहने लगे।

भट्टिराजके दो पुत्र थे, मङ्गलराव और मसूरराव। मङ्गलरावके समयमें गजनीपतिने लाहोर पर आक्रमण किया। इसी समय शालिवाहनपुर (सियालकोट) यदुपतिके हाथसे निकल गया। मङ्गलरावके मध्यम-राव, कल्लरसिंह, मण्डराज, शिवराज, फूल और केवल ये छः पुत्र थे। गजनीपतिके आक्रमणके समय मङ्गलराव अपने ज्येष्ठ पुत्रको साथ ले कर जङ्गलकी तरफ भाग गये थे।

उनके अन्य पुत्र शालिवाहनपुरमें एक वणिक्के घर गुप्तरीतिसे रक्खे गये। पत्तोदास नामक तक (तक्षक) जातीय एक भूमियाने जा कर विजयी यवनराजको यह खबर सुनाई। इस भूमियाके पूर्वपुरुषोंसे भट्टि-राजके पूर्वपुरुषोंने धन-सम्पत्ति छीन ली थी; इस समय पत्तोदासने उसीका बदला लिया।

गजनीपतिने वणिक्को आज्ञा दी कि, शीघ्र ही राज पुत्रोंको वे उनके पास भेज दें। महाशय वणिक्ने उनको प्राणरक्षाके लिए कहला भेजा कि, 'मेरे घरमें कोई भी राजकुमार नहीं है; एक भूमिया देश छोड़ कर भाग गया है, उसीके लड़के मेरे घर रहते हैं।' परन्तु यवन-राजने उन्हें उपस्थित होनेका आदेश दिया। वणिक् उन लड़कोंको दीन कृषकके भेषमें राजदरबारमें ले गये। धूर्त यवनराजने भी जाट जातीय कृषकोंकी लड़कियोंसे उनका विवाह कर दिया। इस तरह कल्लोरके पुत्र कल्लोरिया जाट, मण्डराज और शिवराजके वंशधर मण्ड-जाट और शिवराजाट कहलाये। फूलने नापित और केवलने अपनेको कुम्भकार कहा था, इसलिए उनके वंशधर नापित और कुम्भकार हुए।

मङ्गलरावने गड़ा जङ्गलमें जा कर नदी पार हो एक नवराज्य अधिकार किया। उस समय यहां नदीके किनारे वराह, भूतवनमें भूत, पूगलमें परमार, धातमें सोद और लटोर्वा नामक स्थानमें लोदरा राजपूतोंका वास था। यहां सोदा राजकुमारोंके साथ मिल कर मङ्गलरावने निर्विघ्न राज्य किया।

उनके पुत्र मध्यमराव (मझमराव) ने सोदा-राज-कन्याका पाणिग्रहण किया। इनके तीन पुत्र थे—केयूर, मूलराज और गोगली। केयूरने बहुत जगह मचा लूट

और बहुतसा धन सञ्चय किया था। पञ्चनदकी एक राजकन्याके साथ इनका विवाह हुआ था।

केयूरने तूण देवीके स्मरणार्थ तर्णोतगढ़ बनवाया था। यह गढ़ पूरा बन भी न पाया था कि, मध्यमरावकी मृत्यु हो गई।

तर्णोतगढ़ वराह-सम्प्रदायके अधिकारकी सीमा पर बना था, इसीलिए वराह सर्दार तर्णोतने उस पर आक्रमण किया। किन्तु राजा केयूरके प्रयत्नसे उन्हें पीठ दिखा कर भाग जाना पड़ा।

वि० सं० ७८७ माघमासमें मङ्गलवारके दिन राजा केयूरने तर्ण माताके उपलक्षमें एक मन्दिर बनवाया। फिर वराह* राजपूतोंके साथ सन्धि हुई। इसी समय मूलराजकी कन्याके साथ वराह-सर्दारका विवाह हो गया।

भट्टिजातिके इतिहासमें केयूरका सबसे अधिक सम्मान है। बहुतोंके मतसे केयूरका पूर्ववर्ती इतिहास अधिकांश उपाख्यानमूलक है, इन केयूरसे ही यथार्थ इतिहासका प्रारम्भ है।

केयूरके पांच पुत्र थे - तर्ण, उतिराव, चत्र, काफरी और दायम। इन पांचोंके वंशधरोंके नामानुसार भट्टिजातिकी प्रधान शाखाओंका नामकरण हुआ है।

केयूरके बाद तर्ण राजा हुए। उन्होंने वराह और मुलतानका लङ्गहा राज्य अधिकार किया। किन्तु शीघ्र ही हुसेनशाह म्लेच्छधर्मावलम्बी लङ्गहाराजपूत, दूदि, मिति, कुकुर, मोगल, जोहिया, योध और मैयद सेनाओंके साथ तर्णके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए आ पहुंचे। उस समय वराह-सर्दार भी म्लेच्छ राजाके साथ मिल गये। तर्णके पुत्र विजयरायके पराक्रमसे सभी परास्त हुए और पीठ दिखा कर भाग गये। तर्णके विजयराय, मकर, जयतुङ्ग, अल्लन और राखम ये पांच पुत्र थे।

मकरके पुत्र देशावने अपने नामसे एक बड़ा हृद खुदाया था। मकरके वंशधर सभी सूत्रधार थे, जो इस समय "मकर सूतार" कहलाते हैं। जयतुङ्गके रतनसिंह और चोहिर ये दो पुत्र थे। रतनसिंहने विध्वस्त विक्रमपुरका पुनः संस्कार कराया था। चोहिरके दो पुत्र थे कोला और गिरिराज। इन दोनोंने कोलागिर और गिराजगिर नामसे दो नगरोंकी स्थापना की थी। अल्लनके चार पुत्र थे—देवसिंह, तिवलि, भवानी और रकेची। देवसिंहके वंशधर "रेवरी" अर्थात् उष्ट्रपालक और रकेचीके वंशधर इस समय ओसवाल नामसे प्रसिद्ध हैं।

* इस राजपूतशाखाका इस समय चिन्हमात्र भी नहीं है। बहुत दिनोंसे ये मुसलमान हो गये हैं।

राजा तर्णको विजयसेनी देवीकी सहायतासे गुप्तधन प्राप्त हुआ, जिससे उन्होंने विजयनोत् नामका एक बहुत उमदा किला बनवाया और ८१० संवत्‌के मार्गशीर्ष मासमें, रोहिणी नक्षत्रमें उस दुर्गमें विजयवासिनी नामक देवीकी मूर्ति स्थापित की। इन्होंने ८० वर्ष राज्य किया था।

८७० संवत्‌में विजयराय सिंहासन पर बैठे। उन्होंने राजपद प्राप्त कर अपने चिरशत्रु वराहोंको पूर्णरूपसे परास्त किया।

भूतवनकी राजकन्याके साथ विजयरायका विवाह हुआ था। ८९३ संवत्‌में उनके गर्भसे देवराज नामक एक पुत्रने जन्म लिया। कुछ दिन बाद वराह और लङ्गहा जातिने फिर भट्टिराजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। किन्तु इस बार भी उन्हें परास्त हो कर लौट जाना पड़ा। थोड़े दिन बाद वराहपतिने विजयरायके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके बहानेसे नारियल भेजा। विजयराय अपने प्रियपुत्र देवराजका विवाह करनेके लिए वराहराज्यमें आये। यहां वराहपतिके षड्यन्त्रसे राजा विजयराज और उनके आठ सौ ज्ञातिकुटुम्ब मारे गये। देवराजने वराहपतिके पुरोहितके घर भाग कर अपने प्राण बचाये। यहां उनके चिरशत्रु वराहगण उन्हींके अनुवर्ती हुए थे। धार्मिक पुरोहितने जब देखा कि राजकुमारकी रक्षा करना अब मुश्किल है, तब उन्होंने अपना यज्ञसूत्र उन्हें दे दिया और उनके साथ एक पात्रमें भोजन करने लगे। इस तरह देवराजके प्राण बचे।

वराहोंने तर्णोत अधिकार कर लिया। कुछ दिनोंके लिए भट्टिजातिका नाम तक इतिहाससे विलुप्त हो गया।

देवराजने कुछ दिन छद्मवेशसे एक योगीके आश्रममें वराहमें ही बिताये और फिर वे भूतवनमें मामाके यहां

पहुंचे। यहां उनको दुःखिनो मातासे भेंट हुई। दोनों के आसुओंसे दोनोंकी छाती भीग गई, इस पर उनकी माताने कहा—

"जिस तरह यह अश्रुनीर विगलित हुआ है, उसी तरह तुम्हारे शत्रुकुलका विलगित होगा।"

मामाके घर भी वीरवर देवराजको अधीनता अच्छी न लगी, उन्होंने एक ग्राम मांगा। परन्तु उन्हें मरुभूमिके बीच एक बहुत छोटा स्थान मिला। वहां ६०८ संवत्‌में भाटन-दुर्ग निर्माता केकय नामक शिल्पीकी सहायतासे उन्होंने अपने नामसे एक दुर्ग बनवाया, जिसका नाम रक्खा देवगढ़ वा देवरावल।

दुर्ग निर्माणका समाचार पाते ही भूतराजने भानजेके विरुद्ध सेना भेज दी। परन्तु देवराजने कौशलसे सेनानायकोंको दुर्गमें ले जा कर मार डाला।

ऐसा प्रवाद है कि, जब देवराज वारहराजामें योगीके आश्रममें रहते थे तब एक दिन योगीकी अनुपस्थितिमें उनके रसकुम्भसे एक बूंद रस तलवारमें पड़ जानेसे वह सोनेकी हो गई। यह देख कर देवराजने उस रसको ले लिया। उसीकी सहायतासे उन्होंने दुर्ग बनवाया था। एक दिन उस योगीने आ कर देवराजसे कहा—"तुमने मेरे योगसाधनका धन चुराया है। यदि तुम मेरे चेला हो जाओ, तो तुम बच जाओगे, नहीं तो जानसे भी हाथ धोना पड़ेगा। देवराज उसी समय योगीके शिष्य बन गये और गेरुआ वसन, कानमें मुद्रा, कटि पर कौपीन एवं हाथमें कुम्हड़ेका खोपड़ ले कर 'अलख' 'अलख' कहते हुए अपने ज्ञाति-कुटुम्बोंके द्वारों पर फिरने लगे। उनके हाथका खोपड़ा सोने और मोतियोंसे भर गया था।

देवराजने राव उपाधि छोड़ कर 'रावल' उपाधि ग्रहण की। योगीके आदेशानुसार अब भी जयशलमेरके अधिपति "रावल" उपाधि ग्रहण करते हैं और राजाभिषेकके समय देवराजकी तरह भेष धारण करते हैं।

देवराजके अधस्तन षष्ठ पुरुषका नाम था जयशाल। इन्होंने अपने नामानुसार जयशलमेर दुर्ग और नगर स्थापित कर वहां राजधानी नियत की थी। तभीसे इस मरुराज्यका नाम जयशलमेर पड़ा है। जयशालके बाद इस वंशमें और भी बहुतसे वीर पुरुषोंने जन्म लिया था जो सर्वदा युद्धविग्रह और लूट करनेमें मत्त रहते थे। इसी कारण १२९४ ई०में भट्टिगण दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनके विरागभाजन हो गये थे। बादशाहने बहुत सी सेना भेज कर जयशलमेर दुर्ग और नगर पर कब्जा कर लिया। इसके बाद कुछ दिन यह नगर मनुष्य-हीन हो गया था। यदुवंशीय राजाओंने बार बार पराजित होने पर भी मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार न की थी। रावल सबलसिंहने ही सबसे पहले शाहजहांकी अधीनता स्वीकार की और वे दिल्लीके एक सामन्तराज कहलाये। उस समय भी जयशलमेर राज्य शतद्रु नदी तक विस्तृत था। १७६२ ई०में जब मूलराजका राज्याभिषेक हुआ, तभीसे जयशलमेरका सुखसूर्य अस्ताचलगामी हो गया। इसके बहुतसे स्थान जोधपुर और बीकानेर राज्यके अन्तर्भुक्त हो गये।

मरुमय होनेके कारण ही इस राज्य पर दुर्दान्त महाराष्ट्र-दस्युओंकी दृष्टि नहीं पड़ी थी।

१८१८ ई० १२ दिसम्बरको जो सन्धि हुई, वृटिश गवर्नमेण्टने राजाको वंशपरम्परानुगत राजा करनेका अधिकार दिया। १८२० ई०में मूलराजकी मृत्युके पश्चात् आज तक जयशलमेरमें कोई गड़बड़ नहीं हुई। १८२९ ई०में बीकानेरकी फौजने जयशलमेर आक्रमण किया, परन्तु वृटिश गवर्नमेण्ट और उदयपुर महाराणाके बीचमें पड़नेसे झगड़ा मिट गया। १८४४ ई०में इसके कई किले अङ्गरेजोंने वापस दे दिये। मूलराजके बाद उनके पुत्र गजसिंह राजा हुए और १८४६ ई०में उनका देहान्त हो गया। उनकी विधवा महिषीने गजसिंहके भतीजे रणजित्‌सिंहको गोद रक्खा। १८६४ ई०में रणजित्‌सिंहकी मृत्यु होने पर उनके छोटे भाई वैरिशालको और उनके पीछे जवाहिरसिंहको महारावलका पद मिला (१)।

(१) रावल देवराजसे लगा कर जिन जिन व्यक्तियोंने जयशलमेरका राज्य किया है, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं,—

१ देवराज*।

२ मण्ड वा चामुण्ड।

जयशलमेरके महारावलको १५ तोपोंकी सलामी मिलती है।

---

३ वशीर*—अभिषेक सं० १०३५।

४ दुसाज*—अभिषेक सं० ११००।

५ लंजविजयराय (दुसाजके २य पुत्र)

६ भोजदेव*(लंजविजयके पुत्र)

७ जयशाल* (दुसाजके ज्येष्ठ पुत्र) इन्होंने १२१२ संवत्‌में जयशलमेर स्थापन किया था।

८ शालिवाहन* (जयशलके एक पुत्र) अभिषेक सं० १२२४।

९ विजली (शालिवाहनके पुत्र)

१० कल्याण (जयशालके ज्येष्ठ पुत्र) अभिषेक सं० १२४७।

११ काचिकदेव (कल्याणके पुत्र) अभिषेक सं० १२७५।

१२ करण (काचिकराजके पौत्र और तेजसिंहके कनिष्ठ पुत्र)

१३ लक्ष्मणसेन* (करणके पुत्र) अभिषेक सं० १३२७।

१४ पुण्यपाल* (लक्ष्मणके पुत्र)

१५ जयतसिंह वा जयसिंह (काचिकदेवके पौत्र और तेजसिंहके ज्येष्ठ पुत्र) अभिषेक सं० १३३२।

१६ मूलराज* (जयतसिंहके पुत्र) अभिषेक सं० १३५०।
[सं० १३५१में और एक बार यदुवंशका ध्वंस हुआ था; प्रायः १३५७ सम्वत् तक यदुवंशीय किसी व्यक्तिने जयशलमेरका राज्य नहीं किया।]

१७ रावलदूध* (भिन्न वंशीय जयशालके पुत्र) मृत्यु सं० १३६२।

१८ गुरसिंह (१४वें राजा पुण्यपालके प्रपौत्र, लक्ष्मणसिंहके पौत्र और रत्नसिंहके पुत्र) इन्हें दिल्लीके बादशाहसे जयशलमेरका राज्य मिला था।

१९ केयूर (गुरसिंहके दत्तकपुत्र। इन्हें गुरसिंहकी मृत्युके बाद रानी विमलादेवीसे सिंहासन प्राप्त हुआ था। इनके पुत्र कल्याणने भिन्न स्थानमें राज्य किया था।

२० जयतसिंह (हमीरके पुत्र और केयूरके दत्तकपुत्र)

२१ नूनकर्ण* (जयतसिंहके छोटे भाई)

२२ भीम* (नूनकर्णके पौत्र और हरराजके पुत्र)

२३ मनोहरदास* (नूनकर्णके पौत्र और कल्याणदासके पुत्र)

२४ सुवलसिंह (नूनकर्णके मध्यम पुत्र और महदेवके प्रपौत्र)

२५ अमरसिंह (सुवलसिंहके पुत्र) मृत्यु सं० १७५८।

२६ यशोवन्तसिंह (अमरके पुत्र) अभिषेक सं० १७५८।

२७ अक्षयसिंह (यशोवन्तके ज्येष्ठपुत्र)

२८ तेजसिंह* (यशोवन्तके पुत्र। इन्होंने बलपूर्वक सिंहासन अधिकार किया था)

२९ सवाईसिंह (तेजसिंहके शिशुपुत्र)

३० पूर्वोक्त अक्षयसिंह (पुनः)

३१ मूलराज* (अक्षयसिंहके पुत्र) अभिषेक सं० १८१८।

३२ गजसिंह (मूलराजके पौत्र और मानसिंहके पुत्र)

३३ रणजित्‌सिंह (गजसिंहके भतीजे)

३४ वैरिशाल (रणजीतसिंहके सहोदर)

३५ जवाहिरसिंह।

* चिह्नित राजाओंका विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखना चाहिए।

जयशलमेरमें ४७२ नगर तथा ग्राम बसे हैं। इसकी जनसंख्या प्रायः ७३३३० है। यह राज्य १६ हुकूमतोंमें बँटा हुआ है। लोग मारवाड़ी और सिंधी भाषा बोलते हैं। जमीनके सूख जानेसे थोड़ा पानी ही कृषिके लिये काफी होता है। कूएं २५० हाथ गहरे हैं। नमक कई जगह मिलता है। दश हाथ नीचे खारी पानी है। इसको कड़ाहमें रख कर सुखानेसे छोटे दानेका सफेद नमक निकलता है। १८७१ ई०की सन्धिके अनुसार वार्षिक १५००० मनसे ज्यादा नमक जयशलमेरमें नहीं बनाया जा सकता। चूनेका पत्थर बहुत अच्छा होता है। और भी कई प्रकारके पत्थर और मट्टियां यहां मिलती हैं। ऊनी कम्बल, थैले और पत्थरके प्याले आदि बनाये जाते हैं। ऊन, घी, ऊंट्, मवेशी, भेड़ और मट्टीकी रफ्तनी होती हैं। यहां रेलवे और सड़कका अभाव है। रेसी-डेण्टकी अदालत सबसे बड़ी है। राजाका आय प्रायः १ लाख है। १७५६ ई०में अखईसिंहने 'अखईशाही' सिक्का राजधानीमें टकसाल खोल कर चलाया था। पाठ-शालाओंमें छात्रोंको पढ़नेके लिये कोई शुल्क देना नहीं पड़ता।

२ राजपूतानाके जयशालमेर राजाकी राजधानी। यह अक्षा० २६° ५५' उ० और देशा० ७०° ५५' पू०में अव-स्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७१३७ है। जयशलमेर (राज्य) देखो। इसके चारों ओर ३ मील लम्बा, १०।१५ फुट ऊंचा

और ५ फुट मोटो प्रस्तर-प्राचोर है। पूर्व और पश्चिममें दो द्वार बने हैं। ध्वंसावशेष देखनेसे विदित होता है कि किसो समय वह नगर बहुत समृद्ध रहा। दक्षिणमें एक पहाड़ पर किला है। इस पहाड़में बहुतसे घर और बचाव बने हैं। नगरको ओर एक दरवाजा लगाया गया है। दुर्गके भीतर महारावलका महल खड़ा है। किलेके जैन मन्दिर बहुत अच्छे और १४०० वर्षके पुराने हैं। नगरमें हिन्दो भाषाको पाठशाला भो है।

जयशाल—जयशालमेर नगर और दुर्गके प्रतिष्ठाता, यदुपति दुसाजके ज्येष्ठपुत्र। ज्येष्ठपुत्र होने पर भो इन्हें पिताको मृत्युके बाद राजसिंहासन नहीं मिला था। दुसाजको मृत्युके उपरान्त सामन्तोंने मेवाड़राजनन्दिनोके गर्भसे उत्पन्न, दुसाजके ३य पुत्र लञ्जविजयको सिंहासन पर बिठाया था। महावोर जयशाल अपने स्वत्वसे वञ्चित होनेके कारण जन्मभूमि छोड़ कर चले गये। वे पितृसिंहासन अधिकार करनेके लिए तरकीवें सोचने लगे। थोड़े दिन पीछे राजा लञ्जविजयको मृत्यु होने पर उनके पुत्र भोजदेव राजगद्दो पर बैठे। इन भोजदेवको ५०० सोलङ्की राजपूतों द्वारा सर्वदा रक्षा की जातो थो, इसलिए जयशाल इनका कुछ भो न कर सके। इस समय गजनोपति साहबउद्दोन ठट्टप्रदेश अधिकार कर पाटनको तरफ जानेका उद्योग कर रहे थे। जयशालने दूसरा कोई उपाय न देख आखिरको दो सौ असमसाहसो अश्वारोहियोंके साथ पञ्चनदराजमें आ कर साहब उद्दोन् गोरोसे साक्षात को। जयशाल जानते थे कि, अनहिलवाडपत्तन मुसलमानों द्वारा आक्रान्त होने पर भोजदेवका शरीररक्षक सोलङ्कोगण अवश्य हो उन्हें छोड़ कर अपनो जन्मभूमिको रक्षार्थ गमन करेंगे और वे भो उसो मौके पर मरुस्थलो अधिकार कर बैठेंगे। यहां आ कर जयशालने अपने मनका भाव गजनीपतिसे कहा। साहब-उद्दोन्ने उन्हें आदरके साथ ग्रहण किया और सहायताके लिए कई हजार सेना प्रदान की। उस यवन सहायतासे जयशालने लदोर्वा आक्रमण किया। भोषण समरमें भोजदेव निहत हुए। आखिरको भट्टिसेनाओंको जयशालको वश्यता स्वोकार करनो पड़ो। जयशालके सहगामो मुसलमान सेनापति करोमखां लदोर्वा लूट कर विखार प्रदेशको तरफ चल दिये।

वोरवर जयशाल महासमारोहसे यादवराजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उन्होंने राजा होनेके बाद देखा कि लदोर्वा नगर सुरक्षित नहीं है, सहजहोमें शत्रु उस पर आक्रमण कर सकते हैं। इसलिए १२१२ सम्वत्‌में लदोर्वासे ५ कोस दूरो पर उन्होंने अपने नामका दुर्ग और नगर स्थापित किया और खुद भो वहीं रहने लगे। उनके समयमें भट्टिजातिके प्रधान शत्रु, चन्नराजपूतोंने खादाल प्रदेश आक्रमण किया था। परन्तु महावोर जयशालने इसका यथेष्ट प्रतिफल दिया था। उक्त घटनाके पांच वर्ष बाद १२२४ सम्वत्‌में इनका देहान्त हुआ था। दो पुत्र थे—एक कल्याण और दूसरे शालिवाहन।

जयशाल प्रवल पराक्रमो पाहुजातिमेंसे मन्त्री चुनते थे। ज्येष्ठपुत्र कल्याण उन मन्त्रियोंके विरागभाजन होनेके कारण उन्हें भो राजा न मिला, आखिर वे भो मन्त्रियों द्वारा निर्वासित किये गये थे। जयशालको मृत्युके उपरान्त उनके कनिष्ठपुत्र शालिवाहन राजा हुए थे।

जयश्री (सं० स्त्रो०) १ विजयलक्ष्मी, विजय। २ तालके मुख्य साठ भेदोंमेंसे एक। ३ देशकार रागसे मिलतो जुलतो सम्पूर्ण जातिको एक रागिणो। यह सन्ध्याके समय गायो जातो है। बहुतसे इसे देशकारको रागिणो मानते हैं।

जयसमन्द—राजपूतानाके उदयपुर राजाका एक झील। इसका दूसरा नाम ढेबर है।

जयसिंह—१ मेवाड़के प्रसिद्ध राणा राजसिंहके पुत्र। इनके जन्मसे कई एक घण्टे पहले भोम नामका एक सहोदर हुआ था। समय पर दोनों भाईयोंमें राजगद्दोको ले कर झगड़ा होगा, यह सोच कर एक दिन राणा राजसिंहने अपने ज्येष्ठपुत्र भोमको बुलाया और उसके हाथमें तलवार दे कर कहा—"यदि तुम्हें निष्कण्टक राजा करना हो, तो इस तलवारसे तुम अपने भाई जयसिंहका मस्तक धड़से अलग कर दो।" सदाशय भोमने उसो समय उत्तर दिया-"सामान्य राजाके लिए मैं अपने प्राणाधिक सहोदरका अनुमात्र भो अनिष्ट नहो कर

सकता। जयसिंह ही राज्य ग्रहण करे। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, यदि मैं दीवारोंकी सीमाके भीतर चुल्लू भर भी पानी पीऊं, तो मैं आपका पुत्र ही नहीं।" यह कहते हुए भीम अपनी जन्मभूमिकी मोहको विसर्जन कर मेवाड़-राज्यसे बाहर चले गये और बहादुर शाहसे मिल कर उनके सेनापति हो गये।

सम्वत् १७३७में महावीर राजसिंहकी मृत्युके बाद जयसिंह निर्विघ्नतासे राजगद्दी पर बैठे। जिस समय बाद शाह औरङ्गजेबके साथ राणा राजसिंहका घमसान युद्ध हुआ था, उस समय जयसिंहने अशेष वीरता दिखलाई थी। किन्तु सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने औरङ्गजेबके साथ सन्धि कर ली। कुमार आजिम और दिलावरखांने सम्राट्के प्रतिनिधि स्वरूप उक्त सन्धिसूत्रको बांधा था। राजा होनेके उपरान्त जयसिंहने "जयसमुद्र" नामक पन्द्रह कोसके बीच एक सरोवर खुदवाया था। इस सरोवरके किनारे पर उन्होंने "रूठारानी" नामसे प्रसिद्ध कमलादेवीके लिए भी एक सुन्दर प्रासाद बनवाया था।

जयसिंहकी दो पट्टरानियां थीं- एक बूंदी राजकन्या, अमरसिंहकी माता और दूसरी कमलादेवी। राणा कमलादेवी पर ही अधिक स्नेह करते थे, परन्तु कमला देवीको उससे सन्तोष न होता था, क्योंकि वे जानती थीं कि, उनके सपत्नीपुत्र अमरसिंहको ही राज्य मिलेगा, इसलिए राणाका प्यार होना न होना बराबर है, ऐसा समझ कर वे सपत्नीके साथ हमेशा झगड़ा किया करती थीं। बूंदी-राजकन्याने इस व्यवहारसे अत्यन्त दुःखित हो कर एक दिन अमरसिंहको बहुत फटकारा। इससे अमरसिंहने उत्तेजित हो कर बूंदी राज्यमें पहुंच पिताके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इधर मेवाड़के बहुतसे प्रधान सामन्त भी उनकी सहायता करनेको राजी हो गये। अमरसिंह पहिले पहल कमलमेरके राजकोषागार अधिकार करनेको अग्रसर हुए। परन्तु राणाकी तरफसे कई-एक प्रधान सर्दार झीलवाड़ा गिरिसङ्कटकी रक्षा कर रहे थे, यह सुन कर उन्हें पिताके साथ सन्धि करनी पड़ी। एकलिङ्गदेवके मन्दिरमें पिता पुत्रका मिलन हुआ। जयसिंह १७५६ सम्वत्में, पुत्रको राज्य दे कर परलोक सिधारे।

२ सिद्धराजके नामसे प्रसिद्ध गुजरातपत्तनके चौलुक्य-वंशीय एक राजा। ये कर्णके औरस और जयकेशीकी कन्या मैणालदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। द्वयाश्रय-काव्य प्रबन्धचिन्तामणि, कुमारपालचरित आदि बहुतसे ग्रन्थोंमें इन जयसिंह सिद्धराजका विवरण मिलता है। इन्होंने थोड़ा ही उम्रमें शास्त्र और शास्त्रकी पारदर्शिता प्राप्त की थी। इनकी बुद्धिमत्ता और वीर्यवत्ता अत्यन्त प्रबल हो कर वृद्ध राज कर्णने इन पर राज्यका भार सौंप (१०९३ ई०में) वैराग्य अवलम्बन किया था। कर्णकी मृत्युके पीछे उनके सहोदर देवप्रसाद भी अपने पुत्र त्रिभुवनपालको जयसिंहके हाथ सौंप परलोक सिधारे। सुप्रसिद्ध जैनराजा कुमारपाल उक्त त्रिभुवनपाल-के ही पुत्र थे।

जयसिंहके राजत्वकालमें बर्बरक नामक एक मुसलमानराज। सिद्धपुरमें आ कर द्विज ब्राह्मणोंके ऊपर अनेक अत्याचार कर रहा था. अन्तर्धान देशके राजाके छोटे भाई भी यवन-राजाके पृष्ठपोषक थे। महावीर सिद्धराज इस अत्याचारकी खबर सुनते ही सेना सहित श्रीस्थल-तीर्थमें उपस्थित हुए और बर्बरकको पराजित कर कैद कर लिया।

एक दिन एक योगिनीने आ कर सिद्धराजसे कहा- "उज्जयिनी नगरीमें प्रसिद्ध महाकालीका मन्दिर है उनकी पूजा करनेसे महायशका लाभ होता है। आप उज्जयिनीके राजाके साथ मित्रता कीजिये और वहां जा कर महाकाली-की पूजा कीजिये।" यह सुन कर सिद्धराज या जयसिंहने सेना सहित जा कर मालवराज पर आक्रमण किया। अवन्तिनाथ यशोवर्मा जयसिंहके हाथ बन्दी हुए। अवन्ति और धारराज्य जयसिंहके हस्तगत हुआ। इन्होंने इस समय उज्जयिनीके पार्श्ववर्ती सिंधराजको भी पराजित और कैद कर लिया था। मालवराज्य जय करके लौटते समय मार्गमें बहुतसे राजाओंने इन्हें अपनी अपनी कन्याएं परणाई थीं और वे कुटुम्बितासूत्रसे आबद्ध हुए थे।

इसके उपरान्त कुछ दिनों तक ये सिद्धपुरमें आ कर रहे। वहां आपने सरस्वती नदीके किनारे रुद्रमाल और महावीरस्वामी (वर्द्धमान)-का मन्दिर बनवाया।

पीछे इन्होंने सोमनाथ और गिरनार पर्वतके नेमिनाथ मन्दिरके दर्शन, ब्राह्मण और याचकोंको दान, सहस्र लिङ्गसरोवरका खनन, नानास्थानोंमें देवमन्दिर, सदाव्रत और शास्त्रचर्चाके लिए विद्यालय बनवाया था।

११४३ ई०में महावीर सिद्धराजने इष्टदेवके पाद पद्मोंमें मन लगा कर तथा अनशनव्रत (समाधिमरण) अवलम्बनपूर्वक इस नश्वर शरीरको छोड़ा। प्रसिद्ध वीर जगदेव परमार इनके सेनापति थे। जयमङ्गल आदि बहुतसे कवि उनकी सभामें रहते थे। प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र भी पहले इनकी सभामें रहते थे।

३ काश्मीरके एक प्रसिद्ध राजा, सुस्सलदेवके पुत्र। आपने ११२८से ११५० ई० तक राज्य किया था। कविवर मङ्खने इन्होंके आश्रयमें रह कर ख्यातिलाभ की थी। काश्मीर देखो।

४ बाबेरीके एक राजा। आप सिद्धान्ततत्त्वसर्वस्व-रचयिता गोपीनाथ मौनीके प्रतिपालक थे।

५ सम्राट् महम्मदशाहके समयके आगरेके एक सूबेदार। इन्होंने आगरेके चारों तरफ सहरपना अर्थात् ऊँची भीत बनवाई थी, जिसमें बहुतसे तोरण थे, अब सिर्फ दो ही तोरण रह गये हैं।

जयसिंह ३य—जयपुरके एक कच्छवाह राजा। इनके पिता जगत्सिंहकी मृत्युके बाद ये पैदा हुए थे। १८९१ सम्वत् (१८३४ ई०) में कामदार जटाराम द्वारा विष प्रयोगसे इनकी मृत्यु हुई थी। जयपुर देखो।

जयसिंह कवि—हिन्दी भाषाके एक कवि। इनकी शृङ्गारसकी कविता अच्छी होती थी।

जयसिंहदेव—जयमाधवमानसोल्लास नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

जयसिंहनगर—मध्यप्रदेशके सागर जिलेका एक ग्राम यह अक्षा० २३° ३८´ उ० और देशा० ७८° ३७´ पू०में सागरसे २१ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या तीन हजार होगी।

करीब १६९० ई०में सागरके शासनकर्ता जयसिंहने यह ग्राम बसाया था। उन्होंने सामन्तोंके आक्रमणसे इस ग्रामकी रक्षाके लिए यहां एक किला बनवाया था, जिसका खण्डहर अब भी मौजूद है। १८१८ ई०में सागरके साथ साथ यह ग्राम भी वृटिशके अधिकारमें आ गया। इसके बाद १८२६ ई०में अप्पा साहबकी विधवा महिषीने रुक्माबाईको रहनेके लिए यह गांव दे दिया। यहां थाना, डाकघर, मदरसा और हाट लगती है।

जयसिंह मिश्र—चण्डोस्तवके एक टीकाकार।

जयसिंह मौर्जा—अम्बर (आमेर)के एक प्रसिद्ध राजा, राजा महासिंहके पुत्र। महासिंहकी मृत्युके उपरान्त आमेरराज्यके उत्तराधिकारीके विषयमें आन्दोलन चल रहा था। उस समय जगत्सिंहके पौत्र महावीर जयसिंहने योधाबाईके पास राज्य पानेकी आशा व्यक्त की। योधाबाईके अनुरोधसे सम्राट् जहांगीरने जयसिंहको ही आमेरका सिंहासन दिया। परन्तु इससे नूरजहां अत्यन्त असन्तुष्ट हो गईं।

वीरवर जयसिंह सिंहासन पर बैठ कर अपना तीक्ष्ण बुद्धि और वीर्यबलसे राज्य विस्तार करनेमें प्रवृत्त हुए। बादशाहने उनके प्रति सन्तुष्ट हो कर उन्हें 'मौर्जा' उपाधि दी।

जब दिल्लीके मयूरासन पानेके लिए दारा और औरङ्गजेबमें झगड़ा हुआ था, तब पहले इन्होंने दाराका पक्ष लिया था, किन्तु पीछे विश्वासघातकता कर औरङ्गजेबकी तरफ मिल जानेके कारण दाराकी साम्राज्यप्राप्तिकी आशा पर पानी फिर गया।

जयसिंहने औरङ्गजेबका वास्तविक उपकार किया था। बादशाहने उन्हें छः हजारी सेनाओंका अधिनायक बनाया था। जिस समय महावीर शिवाजीके अभ्युदयसे मुगल साम्राज्य एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक कांपने लगा था, जिनके प्रतापसे मुगल-सेनापति पुनः पुनः परास्त हुए थे, जिनके भयसे सम्राट् औरङ्गजेब तक सर्वदा सशङ्कित रहते थे, उन वीरकुलतिलक शिवाजीको एकमात्र अम्बरराज जयसिंहने ही परास्त करके बन्दी कर पाया था। परन्तु जयसिंहने महावीर शिवाजीका कभी भी अपमान नहीं किया था, शिवाजीको कैद कर दिल्ली लाते समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि, बादशाह उनका केशाग्र भी स्पर्श नहीं कर सकेंगे। किन्तु जब देखा कि, औरङ्गजेब शिवाजीको मुट्ठीमें पा कर उन्हें मारनेकी चेष्टा कर रहे हैं, तब जयसिंहने उन्हें भागनेका सुभीता दे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा की। शिवाजी देखो।

जयसिंहको अपनी वीरताका कुछ गर्व था। वे दरबारमें सबके सामने स्पर्धाके साथ कहा करते थे कि, "मैं चाहूं तो सतारा या दिल्लीका अधःपतन कर सकता हूं।" बादशाह औरङ्गजेबने उनकी यह बात सुनी थी, किन्तु वे भी जयसिंहको डरते थे, इसलिए प्रकाश्यमें वे इनका कुछ न कर सकते थे। उन्होंने जयसिंहके पुत्र चीरोदसिंहको आमेर राज्यका लोभ दिखा कर उनको पितृहत्याके लिए उत्तेजित किया। निर्बोध चीरोदसिंहने धूर्त्तकी बातमें आ कर अफीमके साथ जहर मिला कर पिताको मार डाला। किन्तु चीरोदसिंहको पापका फल हाथों हाथ मिल गया, उनके ज्येष्ठ भ्राता रामसिंह ही पितृसिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

जयसिंह सवाई—जयपुरके एक प्रसिद्ध राजा और भारतके एक अद्वितीय ज्योतिर्विद्। ये अम्बरके राजा जयसिंह मीर्जाके प्रपौत्र और विष्णुसिंहके पुत्र थे। बचपनसे ही ये विद्यानुरागी थे। सम्वत् १७५५में ये राजसिंहासन पर बैठे थे। राज्याधिरोहणके बाद ही ये दाक्षिणात्यकी तरफ युद्ध करने गये। उस युद्धमें जय प्राप्त कर ये बादशाहके प्रशंसाभाजन हुए थे। सम्राट्ने इन्हें पहले डेढ़ हजारी और पीछे दो हजार सवारका मनसबदार बनाया था।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद जिस समय साम्राज्यको ले कर बादशाह-कुमारोंमें समरानल जल उठा था, उस समय जयसिंहने आजिमशाहके पुत्र कुमार वेदारबख्तका पक्ष अवलम्बन कर बहादुरशाहके विरुद्ध युद्ध किया था। इसलिए बहादुरशाहने दिल्लीके तख्त पर बैठते ही अम्बरराज्य जब्त कर लिया। पीछे अम्बरका शासन करनेके लिए एक शासनकर्त्ताको भी भेजा था। इस समय जयसिंहके छोटे भाई विजयसिंहने भी राज्य पानेकी कोशिश की। जिस समय जयसिंहने आजिमशाहका पक्ष लिया था, उस समय विजयसिंह बहादुरशाहकी तरफसे लड़े थे। इसलिए बहादुरशाहने उन्हें ही तीन हजारीका मनसबदारी प्रदान की।

विजयसिंहकी माता जयसिंहकी विमाता थीं। इसलिए वे चाहती थीं कि, जयसिंह किसी भी तरह राज्य न कर सकें इसलिए, उन्होंने मौका देख कर विजयसिंहको मणि, माणिक्य, हीरा आदि जवाहरात दे कर बादशाहके पास भेज दिया। किन्तु सम्राट्ने उन्हें मीठी बातोंसे सन्तुष्ट कर सैयद हुसेनअलीखांको अम्बरराज्यका फौजदार बना कर भेज दिया।

इस समय जयसिंह कुछ दिनोंके लिए भी सिंहासन पर न बैठ पाये थे, इसलिए उनके हृदयमें मुसलमानोंके ऊपर दारुण विद्वेषवह्नि जलने लगा। रात-दिन वे इसी चिन्ता में रहते थे कि, किस तरह वे राज्य कर सकेंगे।

जिस समय (१७०८ ई०में) बहादुरशाहने भाई कामबख्शको दमन करनेके लिए दाक्षिणात्यकी तरफ यात्रा की, उस समय जयसिंहने मारवाड़के राजा अजितसिंहके साथ मिल कर मुसलमान फौजदारको भगा दिया और खुद सिंहासन पर बैठ गये। अजितसिंहकी कन्या सूर्यकुमारीके साथ जयसिंहका विवाह हुआ था। इन्होंने वैमात्रेय भाई विजयसिंहको सन्तुष्ट रखनेके लिए उनकी प्रार्थनानुसार उन्हें अम्बरराज्यके भीतर अतीव उर्वरा बसवा प्रदेश दे दिया। परन्तु इससे विजयकी माताको सन्तोष न हुआ। उन्होंने विजयको राज्यलाभका लोभ दिखाकर पुनः उत्तेजित किया। विजयसिंहने दिल्ली जा कर प्रधान प्रधान अमीरोंको अर्थ द्वारा वशीभूत किया और ज्येष्ठ भ्राता जयसिंहके विरुद्ध बहुतसे अभियोग लगा कर वे पुनः राज्य पानेके लिए कोशिश करने लगे। रिशवत खा कर सम्राट्के प्रधान मन्त्री कमर-उद्‌दीनखांने भी विजयसिंहके पक्षका समर्थन किया।

कमर-उद्दीनने बादशाहके पास जा कर कहा—"विजयसिंह बराबर हम लोगोंके साथ सद्व्यवहार करते आये हैं। परन्तु चतुर जयसिंह हमेशा हम लोगोंके विरुद्ध रहते हैं। ऐसी दशामें अम्बरका राज्य विजयसिंहको ही देना ठीक है। विजयसिंहको राजा करनेसे वे पांच करोड़ रुपये देनेको तयार हैं। इसके सिवा जरूरत पड़ने पर पांच हजार तक अश्वारोही सेना भेजते रहेंगे।" मन्त्रीकी बात सुन कर सम्राट्ने पूछा—"विजयसिंह अपने वचनके अनुसार ही कार्य करेंगे, इसका क्या ठीक है? कोई जामिन है?" मन्त्रीने उत्तर दिया—"मुझे ही उनका प्रतिभू समझिये।" इस पर

बादशाहने विजयसिंहके पक्षको मनंद बनानेके लिए आज्ञा दे दी।

खाँ दौरान् नामक एक प्रधान अमीरके साथ जयसिंहने पगड़ी बदल कर उन्हें अपना मित्र बना लिया था। अब उन्हीं अमीरने गुपचुप उक्त वृत्तान्तको सुन कर जयसिंहके दरबारस्थ वकील कृपारामसे कहा और कृपाराम द्वारा शीघ्र ही वह सम्वाद जयसिंहके पास भेजा गया।

कृपारामका पत्र पा कर जयसिंह भी चिन्तित हुए। उनके भाई भी मुगल सेनाके साथ उनके विरुद्ध आवेंगे, इसीलिए उन्हें चिन्तामें पड़ना पड़ा था। दूसरा कोई होता तो उन्हें कुछ भी पर्वाह नहीं होती। उन्होंने शीघ्र ही अम्बरके समस्त सामन्तोंको बुला कर शीघ्र ही आनेवाली विपत्तिकी बात कही। सामन्तोंने उनको अभयदान दिया और विजयसिंहके पास अपने अपने मन्त्रियोंको भेजा तथा यह कहला भेजा कि, "आपको बसवा प्रदेश ले कर ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। ज्येष्ठ भ्राताके साथ आपका झगड़ा करना न्यायतः और धर्मतः उचित नहीं। आप जिससे सम्मानके साथ बसवा प्रदेशका भोग कर सकें, उसके लिए हम सभी प्रतिज्ञावद्ध रहेंगे।"

बहुत अनुनय विनय करनेके उपरान्त विजयसिंहने इस बातको मंजूर किया। सामन्तगण यह भी कोशिश करने लगे कि, जिससे दोनों भाईयोंमें मेल-मुलाकात हो कर सौहार्द उत्पन्न हो जाय। निश्चय हुआ कि, प्रधान सामन्तकी राजधानीमें दोनों भाईयोंका मिलन होगा। इस पर दोनों पक्षके लोग चूमू नगरमें उपस्थित हुए। इसी समय खबर आई कि, "महाराणी दोनों भाईयोंके नयनानन्ददायक मिलनको देखना चाहती हैं"। सामन्तगण भी महाराणीकी इच्छाके विरुद्ध कुछ न कह सके। सबोंकी अनुमतिके अनुसार उसी समय महाराणीका महादोला और पुरमहिलाओंके लिए तीन सौ रथ सजाये गये। परन्तु महादोलामें राजमाताके बदले सामन्तवीर उग्रसेन और वस्त्रावृत प्रत्येक रथमें स्त्रियोंके बदले दो दो सशस्त्र सैनिक बठाये गये। सामन्तगण पहले ही जयसिंहके साथ चल दिये थे, वे इस षड़यन्त्र का बिन्दु विसर्ग तक नहीं जानते थे।

जयसिंह और सामन्तगण पहलेहीसे सांगानेर आ कर राजमाताके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दूतने आ कर उनके आनेका समाचार सुनाया तो सभी प्रासादकी तरफ दौड़ गये। प्रासादमें जयसिंह और विजयसिंह दोनों भाईयोंका मिलन हुआ। जयसिंहने विजयके हाथ पर बसवाको सनंद रख कर स्नेहसे कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा अम्बरराजा लेनेके लिए हो, तो वह भी मैं दे सकता हूं।" जयसिंहके स्नेह भरे वाक्यसे दुष्टमति विजयसिंहका मन भी पघल गया, उन्होंने जवाब दिया—"भाई! मेरी सब आशाएं पूरी हो गईं।"

इसके कुछ देर बाद एक नौकरने आ कर कहा कि, "राजमाता आप दोनोंसे मिलना चाहती हैं।" इस पर सामन्तोंसे अनुमति ले कर दोनों भाई अन्तःपुरमें घुसे। प्रवेशद्वार पर एक खोजा खड़ा था, जयसिंहने उसको हाथमें तलवार दे कर कहा—'माताके पास भस्त्र जानेकी क्या जरूरत?" विजयसिंहनेभी ज्येष्ठ भ्राताकी देखादेखी तलवार वहीं छोड़ दी और भीतर चले गये।

भीतर घुसते ही माताके आलिङ्गनके बदले विजयसिंह पर भट्टि सामन्त उग्रसेनका कठोर आक्रमण हुआ और वे बन्दी हो गये। मुंह और हाथ पैर आदि बांध कर उन्हें महादोलामें डाल गुप्त रीतिसे अम्बर राज्यकी राजधानीमें लाया गया। सभीने समझा कि, राजमाता प्रासादको लौटी जा रही हैं। इधर जयसिंह करीब एक घण्टा बाद कई एक शस्त्रधारी सैनिकोंके साथ बाहर निकले। उन्हें अकेले आते देख सभी पूछने लगे—"विजयसिंह कहां हैं?" चतुर नीतिज्ञ जयसिंहने उत्तर दिया—"मेरे पेटमें। अगर आप लोगोंका यह अभिप्राय हो कि, विजयसिंह ही राजा हों; तो मुझे मार कर उसे निकाल लें। यह निश्चय समझिये कि, विजय मेरा और आप लोगोंका शत्रु है। कभी न कभी वह शत्रुओंको अम्बरमें ला कर हम सभोंका सरवा डालता इसमें सन्देह नहीं।" सभी सामन्त आश्चर्यसे दंग रह गये। दूसरा कुछ उपाय न देख वे चुपचाप चल गये। जब विजयसिंह अम्बर आये थे, तब कमर उद्-दीनखांने उनके साथ एकदल मुगल अश्वारोही

सैन्य भेजी थी। विजयसिंहके लौटनेमें देरी होते देख उस सेनाके नायक उनके विलम्बका कारण पूछा। जयसिंहने उत्तर दिया—"तुम्हें कारण जाननेकी कोई जरूरत नहीं; यहांसे अभी कूच कर दो, नहीं तो तुम लोगोंके घोड़े छीन लिए जायेंगे।" यह सुन कर तमाम मुगल सेना भाग गई। इस प्रकारसे चतुर राजनीतिज्ञ महाराज जयसिंहने अपनी और जन्मभूमिकी रक्षा की। विजयसिंह अम्बरके किलेमें कैद रहे।

बादशाह अम्बरराज जयसिंहके इस व्यवहारसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। किन्तु अकस्मात् लाहौरमें उनकी मृत्यु हो जानेसे उस समय जयसिंह दिल्लीश्वरके प्रबल आक्रमणसे साफ बच गये।

बहादुरशाहकी मृत्युके बाद फरुखशियर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। उनके साथ जयसिंहका विशेष सद्भाव था। उन्होंने जयसिंह पर सन्तुष्ट हो कर उन्हें 'महाराजाधिराज'की उपाधि प्रदान की थी।

सम्राट् फरुखशियर भी बहुत दिन राज्य नहीं कर सके। वे धूर्त सैयद भ्रातृद्वयकी क्रीड़ापुत्तली बन गये। परन्तु वे इनके कबलसे निकलनेके लिए चेष्टा भी कर रहे थे। उनके इस अभिप्रायको सैयद हुसेन अलीने ताड़ लिया और वे दाक्षिणात्यसे बालाजी विश्वनाथकी अधीनस्थ बहुत सी महाराष्ट्र सेना ले आये। उस समय महाराज जयसिंह भी बादशाहकी रक्षाके लिए दिल्ली उपस्थित हुए थे, किन्तु कायर फरुखशियार सैयद द्वारा परिचालित महाराष्ट्र सेनाओंका डरसे अन्तःपुरमें जा छिपे। इस विपत्तिकालमें जयसिंहने बारबार बादशाहको कहलवा भेजा कि "आप बाहर निकल कर अपनी सेनाओंके सामने खोल कर कहिये कि, दोनों सैयद राजद्रोही हैं इससे आप पर किसी तरहकी विपत्ति न आयेगी, सभी आपकी सहायता करनेको तयार हैं, मैं भी आपकी जा जानसे सहायता दूंगा।" किन्तु भीरु फरुखशियारने हितैषी जयसिंहकी बात पर जरा भी ध्यान न दिया, आखिर वे अन्तःपुरमें ही कैद कर लिए गये।

इसके उपरान्त महम्मदशाह बादशाह हुए। उनके राजत्वकालमें पहले जयसिंहने राजनैतिक संस्रव त्याग कर ज्योतिषकी चर्चा प्रारम्भ की। उन्होंने क्या यूरोपीय और क्या देशीय समस्त प्राचीन और अप्राचीन वैज्ञानिक ज्योतिर्ग्रन्थोंका संग्रह कर उन्हें पढ़ना प्रारम्भ किया। उनकी मैनुएल् नामक एक पोर्त्तगीज पादरीकी भेंट हुई। यूरोपमें ज्योतिर्विद्याकी कहां तक उन्नति हुई है यह जाननेके लिए जयसिंहने उक्त पादरीके साथ कई-एक विश्वस्त आदमियोंको पोर्त्तुगल-के अधीश्वर एमानुएलकी सभामें भेज दिया। पोर्त्तुगलके राजाने आमिरपतिके पास जेभियर डि॰ सिलभा नामक एक सम्भ्रान्त ज्योतिर्विदको भेजा था। डि॰ सिलभाने यहां आकर जयसिंहको पोर्त्तुगलमें डो॰ लोहायर द्वारा आविष्कृत कई-एक यन्त्र दिये थे। इसके सिवा जयसिंहने तुर्कोंके ज्योतिर्विदों द्वारा व्यवहृत और समरकन्द पर स्थापित कई-एक यन्त्रों तथा बहुतसे वैज्ञानिक शास्त्रोंका संग्रह किया था। वास्तवमें उन्होंने उस समयके प्रचलित प्रायः सम्पूर्ण ज्योतिष-समुद्र मन्थन कर प्रकृत ज्योतिषामृत पान किया था। दुनियाके तमाम इतिहास पढ़ डालिये, किन्तु राजाओंमें जयसिंह जैसे ज्योतिर्विद् दूसरे न मिलेंगे। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि, जयसिंहने भारतमें वास्तविक ज्योतिषशास्त्रोंके उद्धार करनेके लिए भरपूर प्रयत्न किया था और उन्होंने अनेक अंशोंमें सफलता भी पाई थी।

जयसिंहने अपने बनाये हुए "जीज महम्मदशाही" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, उन्होंने लगातार सात वर्ष तक ज्योतिषशास्त्रोंका अध्ययन किया था। इनके ज्योतिष शास्त्रमें असाधारण पाण्डित्यको देख कर ही बादशाह महम्मदशाहने इनसे उस समयमें प्रचलित पञ्जिकाका संशोधन कराया था और इसीलिए बादशाहने इनको "सवाई" अर्थात् समस्त राजकुमारोंसे श्रेष्ठ, यह उपाधि दी थी। इसी समय (१७२८ ई॰में) जयसिंहने अपने मन्त्री और ज्योतिर्विद् विद्याधरके परामर्शानुसार वर्त्तमान जयपुर नगर बसाया था।

जयपुर देखो।

धीरे धीरे सवाई जयसिंहकी प्रसिद्धि तमाम हिन्दुस्तानमें फैल गई। इनकी सभामें नाना स्थानोंसे प्रधान प्रधान ज्योतिर्विद् और शास्त्रविद् पण्डितगण आने

लगी ज्योतिर्विद् कृपाराम और कवि कृष्णराम इन्हींको सभामें रहते थे।

सम्राट् महम्मदशाहने जब इन पर पञ्जिका संस्कारका भार दिया था, उस समय ग्रहनक्षत्रादिकी गति विधि, चन्द्रसूर्यका उदयास्त, राशिस्फुट, ग्रहण आदिकी विशुद्ध गणना, परिदर्शन और अभिनव नक्षत्रके आविष्कारके लिए उन्होंने अपनी बुद्धिसे जिन जिन यन्त्रोंका आविष्कार किया था, उन सबको उन्होंने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, आगरा और मथुरामें बड़े बड़े मान मन्दिर बनवा कर उनमें स्थापित किया था।

पाश्चात्य और आधुनिक ज्योतिर्विद्गण सृष्टितत्त्व परिदर्शन कर एक प्रकारसे नास्तिक हो गये थे। परन्तु पण्डितप्रवर जयसिंह सूक्ष्मानुसूक्ष्म गभीर वैज्ञानिक तत्त्वालोचना करते हुए भी सर्वत्र भगवान्का ऐश्वर्य देखते थे। इन्होंने स्वरचित "जीज महम्मदशाही" नामक पारसिक ग्रन्थके प्रारम्भमें लिखा है—

"भगवान्की सर्वमङ्गलमय अनन्तशक्तिका तत्त्व न जान कर हो हिपार्कसने निर्वोध कृषककी तरह केवल विरक्ति दिखाई है। विश्वस्रष्टाकी महान् शक्तिकल्पनामें टलेमी चमगादड़की तरह सत्यरूप सूर्यके पास तक नहीं पहुंच सके हैं। इउक्लिडके स (उस विश्वरूपी पर्सेके) अनन्त सृष्टिके असम्पूर्ण आलेख्यको कल्पित रेखामात्र है। जमशेद दसो अथवा नासिरतुसी इसी तरहके व्यर्थ परिश्रम कर गये हैं।"

पोर्तुगलाधिपतिने इनके पास जो यन्त्र भेजे थे, उनके विषयमें जयसिंहने इसप्रकार लिखा है—"वास्तविक परीक्षा और समालोचना करनेसे मालूम होता है कि, इस यन्त्रमें चन्द्रका जो अवस्थान स्थिर किया गया है वह आधा अंश कम है, इसलिए यह ठीक नहीं, अन्यान्य ग्रहोंके अवस्थानके विषयमें यद्यपि इसमें कोई गड़बड़ नहीं, परन्तु ग्रहणसम्बन्धी गणनामें ४ मिनटका अन्तर पाया जाता है।" ऐसे अविशुद्ध यन्त्रोंके कारण ही हिपार्कस, टलेमी, डिलाहायर आदिकी गणनामें भूलें हुई हैं, यह भी जयसिंह स्पष्ट लिख गये हैं। इनके बनाये हुए अक्षय और अपूर्व कीर्तिस्वरूप मानमन्दिर अब भी भारतमें विद्यमान हैं। मानमन्दिर देखो

इन्होंने प्रसिद्ध 'जीज महम्मदशाही" ग्रन्थके बनानेसे पहले अपने सभास्थ जगन्नाथ पण्डित द्वारा सम्राट् सिद्धान्त तथा रेखागणित नामक इउक्लिड और नेपियारकृत गणित पुस्तकका संस्कृत अनुवाद प्रकाशित कराया था।

जयपुरस्थापयिता जयसिंह पञ्जिका-संस्कारके विषयमें जो कुछ अपना मत प्रसिद्ध कर गये हैं, राजपूतसमाजमें अब भी उसी मतके अनुसार पञ्जिका बनाई जाती है। किसी समय समस्त मुगल साम्राज्यमें इन्हींकी पञ्जिका प्रचलित थी।

जयसिंह सिर्फ प्रधान ज्योतिर्विद् ही थे ऐसा नहीं, किन्तु वे एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक भी थे। इन्हींके प्रयत्न और नामानुसार 'जयसिंह कल्पद्रुम" नामक एक सुवृहत् स्मृतिसंग्रह सङ्कलित हुआ था।

जयसिंहमें सिर्फ इतना ही दोष था कि, उन्होंने बुढ़ापेमें अफीमको खुराक बहुत ही बढ़ा दी थी। इस अफीमके दोषसे ही वे मारवाड़पति अभयसिंह और भक्तसिंहके साथ युद्ध कर पराजित हो गये थे। अन्तमें इन्होंने बीकानेरपतिको मारवाड़की अधीनतापाशसे मुक्त किया था। मारवाड़ और बीकानेर देखो।

१७३३ ई०में बादशाह महम्मदशाहने इनको मालवराज्यका शासनभार दिया था। उस समय महाराष्ट्रोंका बल क्रमशः बढ़ ही रहा था। ये समझ गये थे कि, धीरे धीरे ये महाराष्ट्रदस्युगण समस्त हिन्दुस्तान ही अधिकार कर बैठेंगे, इसलिए इन्होंने महाराष्ट्रवीर बाजीरावके साथ मित्रता कर उन्हें मालवका शासनकर्तृत्व प्रदान किया। इससे जयसिंह पर अन्य राजपूतोंके विरक्त होने पर भी बादशाह उनसे सन्तुष्ट हुए थे।

बूंदीके राजा कविवर बुधराव जयसिंहके बहनोई थे; उन्होंने किसी विशेष कारणसे जयसिंहकी दिल्लगी उड़ाई थी, इस पर वीर जयसिंहको क्रोध आ गया और उन्होंने १७४० ई०में भगिनीपतिका राज्य अधिकार कर लिया।

वृद्धावस्थामें इन्होंने समाज-संस्कारके विषयमें विशेष मनोयोग दिया था। राजपूत-समाजमें कन्याके विवाह और श्राद्ध आदिमें सभीको साध्यातीत खर्च करना पड़ता

था। इसीलिए राजपूतानामें शिशुहत्या प्रचलित थी। किन्तु जयसिंहने राज्यके सभी प्रधान प्रधान व्यक्तियोंको बुला कर नियम बना दिया कि, विवाहके समय कोई भी दहेजके लिए दावा न कर सकेगा, जितना खर्च करने पर श्राद्ध हो सके उतनेहोमें श्राद्ध कार्य करना होगा, फिजूलमें कोई ज्यादा खर्च न कर सकेगा और जो करेगा, वह दण्डनीय होगा। यह कहना व्यर्थ है कि, इससे समाजका बहुत कुछ उपकार हुआ था। इसके सिवा इन्होंने पथिकोंके लिए जगह जगह धर्मशालाएं, घाट और अच्छी सड़कें बनवा दी थीं। "एकत्र नयगुण जयसिंहका" नामक एक ग्रन्थमें जयसिंहको गुणगरिमाका काफी वर्णन किया गया है।

जगत्प्रसिद्ध राजज्योतिर्विद् ऐतिहासिक और समाज-संस्कारक महाराजाधिराज सवाई जयसिंहने १७४१ ई०के सेप्टेम्बर मासमें इहलोक त्यागा था। इनकी मृत्युसे सिर्फ जयपुरका ही नहीं, किन्तु समस्त भारतका एक अमूल्य रत्न खो गया। इनकी तीन प्रधान महिषी भी इनके साथ एक चिता पर सदाके लिए सोयी थीं। इनकी मृत्युके उपरान्त इन्हींके पुत्र ईश्वरीसिंह जयपुरकी राजगद्दी पर बैठे थे।

जयसिंहसूरि—एक विख्यात नैयायिक, महेन्द्रके शिष्य। इन्होंने न्यायसारदीपिका रचना की है।

जयसेन (सं० पु०) जययुक्ता सेना यस्य। १ मगधके एक राजाका नाम। २ आयुन्नप वंशके अहीन राजाके पुत्र। ३ सार्वभौम राजाके एक पुत्र। ४ एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने प्रतिष्ठापाठ और धर्मरत्नाकर नामके दो ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

जयसेन—१ एक जैन राजा। ये पूर्वविदेहको सीता नदीके दक्षिण तट पर स्थित वत्सकावती नामक स्थानके अन्तर्गत पृथ्वीनगरके अधिपति थे। इनकी पटरानीका नाम जयसेना था। इनके दो पुत्र थे, रतिषेण और धृतिषेण। किसी कारणवश रतिषेणकी मृत्यु हो गई, जिससे इन्हें अत्यन्त शोक हुआ। उन्होंने धृतिषेणको राज्याभिषिक्त कर यशोधर मुनिके निकट जा दीक्षा ले ली। साथ ही इनके साले महारुतने भी दीक्षा ग्रहण की थी। आयुके समाप्त होने पर जयसेन मुनि अच्युत नामक सोलहवें स्वर्गमें महाबल नामक देव हुए। महारुत भी कालान्तरमें उसी स्वर्गमें मणिकेतु नामक देव हुए। स्वर्गमें दोनोंने यह निश्चय किया कि, "दोनोंमेंसे जो कोई पहले च्युत होगा, उसको यहां रहने वाला दूसरा देव उपदेश दे कर संसारसे विरक्त करेगा।"

अनुक्रमसे काल बीतने पर महाबल (जयसेनका जीव) स्वर्गसे च्युत कर अयोध्या नगरमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा समुद्रविजयके (रानी सुबालाके गर्भसे) सगर नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ३६ लाख पूर्व व्यतीत होने पर इन्होंने भारतवर्षके छहों खण्ड पर विजय प्राप्त की अर्थात् चक्रवर्ती हो गये। मणिकेतु देवने आ कर इन्हें कई बार समझाया, पर इन्होंने राज्य छोड़ कर दीक्षा न ली। अन्तमें इनके पुत्रोंके उक्त देव द्वारा अकस्मात् मारे जाने पर इन्होंने मुनि दीक्षा ले ली। सगरचक्रवर्ती देखो। (जैन उत्तरपुराण, पर्व ४८)

२ आराधनासार-कथाकोष नामक जैनग्रन्थमें वर्णित एक जैन राजा।

३ अङ्कलेश्वर नामक नगरके राजा। ये जैनधर्मावलम्बी थे। इनकी रानीका नाम जयसेना था।

जयसेना देखो।

जयसेन आचार्य—एक दिगम्बर आचार्य। इन्होंने नाटकसमयसार, प्रवचनसार और पञ्चास्तिकाय इन तीन ग्रन्थोंकी टीका रची है।

जयसेना—अङ्कलेश्वरपति राजा जयसेनकी प्रधान महिषी। भक्तामरकथा नामक जैन ग्रन्थमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है—

राजा जयसेन जैन धर्मावलम्बी थे और उनकी महिषी जयसेना जैनधर्मसे प्रतिकूल आचरण करती थीं। एक दिन ज्ञानभूषण नामक मुनिराज उनके घर आहारके लिए आये। तपश्चर्या करनेसे उनका शरीर अत्यन्त क्षश हो गया था। राजाने उन्हें आह्वान पूर्वक अतिशय श्रद्धा भक्तिके साथ आहार कराया। परन्तु महारानी जयसेना को यह अच्छा न लगा। वे ज्ञानभूषण मुनिराजकी निन्दा करने लगीं और मन ही मन ऐसा विचारने लगीं—"महाराजकी कैसी अन्धभक्ति है, वे सभ्य गुरुओंको छोड़ कर निर्लज्ज नग्न असभ्य साधुओंकी पूजा

करते और उन्हें आदर पूर्वक आहार कराते हैं। यदि मेरा वश होता तो मैं ऐसे साधुओंको राज्यसे निकाल बाहर करती।" रानी क्रुद्ध गई थीं, उन्होंने मुनिराज को सुना सुना कर दो चार बातें कहीं किन्तु मुनिराजने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया।

कुछ ही दिन बाद, मुनिनिन्दाके महापापसे रानीको कुष्ठव्याधि हो गई। उनका अनुपम सौन्दर्य घृणाका स्थान बन गया। शरीरसे दुर्गन्ध निकलने लगी; पीप, खून आदि बहने लगा। महारानीको थोड़े ही दिनोंमें ऐसी दुर्दशा देख कर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ; उन्होंने रानीसे पूछा—"सच तो कहो, एकाएक तुम्हारा शरीर ऐसा क्यों हो गया?" महारानी जयसेनाको सचमुच ही बड़ा पश्चात्ताप हुआ था। उन्होंने कहा—"नाथ! उस दिन जो मुनिराज आहारके लिए आये थे; उनकी मैंने खूब निन्दा की थी, उन्हें बुरे वचन भी कहे थे। शायद उसी महापापका यह फल है।" जयसेनको बड़ा दुःख हुआ; उन्होंने कहा—"पापिनी! यह तूने क्या किया? मुनिनिन्दाके महापापसे तुझे नरकोंके घोर दुःख सहने पड़ेंगे; यह तो कुछ भी नहीं है।" रानी नरकका नाम सुनते ही कांप उठीं। वे उसी समय पालकीमें बैठ कर मुनिराजके पास वनमें पहुंचीं और बड़ी भक्तिसे प्रणाम कर मुनिराजसे कहने लगीं—"कृपासिन्धो! मेरा अपराध क्षमा कीजिये; मैंने अज्ञानतासे मुनिनिन्दा की है। कृपा कर नरक-दुःखसे मेरा उद्धार कीजिये।" मुनिराजको महारानीके परिवर्तनसे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उन्हें धर्मका उपदेश दिया। रानीको मुनि महाराजके व्यवहारसे जैनधर्म पर और भी श्रद्धा हो गई। उन्होंने सम्यग्दर्शनपूर्वक गृहस्थधर्म (आठ मूलगुण पांच अनुव्रत आदि) अवलम्बन किया।

इसके बाद भक्तामरस्तोत्रके २८वें श्लोकके मन्त्रका जल छिड़कते रहनेसे कुछ दिनोंमें उनका कुष्ठरोग भी जाता रहा। इससे महारानी जयसेनाको जैनधर्म पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। (भक्तामरकथा श्लो० २९)

जयसीम गणि—एक विख्यात जैनपण्डित। इन्होंने खण्डप्रशस्तिवृत्तिकी रचना की है।

जयस्कन्धावार (सं० क्लो०) वह शिविर जिसे विजयी राजा जीते हुए स्थान पर स्थापित करते हैं।

जयस्तम्भ (सं० पु०) जयसूचकः स्तम्भः। जयसूचक स्तम्भ, वह स्तम्भ जो विजयी राजासे किसी देशको विजय करनेके उपरान्त विजयके स्मारक स्वरूप बनाया जाता है।

जयस्वामी (सं० पु०) कात्यायन-कल्पसूत्रके भाष्यकार।

जयश्यामा (सं० स्त्री०) जैनोंके १२वें तीर्थङ्कर विमलनाथ भगवानकी माता।

जया (सं० स्त्री०) जीयतेऽनया जि करणे अच् ततष्टाप्। १ दुर्गा। २ जयन्तीवृक्ष, जैंतका पेड़। जयन्ती देखो। ३ तिथिविशेष, त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथिका नाम जया है। ४ पुण्यदायिनी द्वादशी तिथिका नाम। ५ हरीतकी, हड़। ६ दुर्गाकी एक सहचरीका नाम। ७ दुर्गा। वराहशैलके पीठस्थान पर भगवती जयादेवीकी मूर्ति विराजमान हैं। (देवीभा० ७।७०।५२) ८ शान्ता शाशमी वृक्ष छौंकर। ८ नीलदूर्वा, हरी दूब। १० अग्निमन्थवृक्ष, अरणीका पेड़। ११ पताका, ध्वजा। १२ ज्वरघ्न औषधविशेष, बुखार हटानेवाली एक प्रकारकी दवा। १३ भङ्गा, भाँग। १४ जवापुष्प, गुड़हलका फूल, अड़हुल। १५ सोलह मातृकाओंमेंसे एक। १६ एक प्रकारका पुराना बाजा। इसमें बजानेके लिए तार लगे होते थे। १७ पार्वतीका एक नाम। १८ माघमासकी शुक्ल एकादशी। १८ जवापुष्पवृक्ष, अड़हुलका पेड़। २० महादन्तीवृक्ष, केवांच वा कौंकका पेड़। २१ अपराजिता, विष्णुक्रान्तालता, कौवाठोठी। २२ शाल्मलीवृक्ष, सेमका पेड़।

जयाञ्जन (सं० क्लो०) स्रोतोञ्जनभेद, सुरमा।

जयादित्य (सं० पु०) काश्मीरके एक विख्यात राजा और काशिकावृत्तिके प्रणेता। कायस्थ, काश्मीर और जयापीड़ देखो।

जयाह्वय (सं० स्त्री०) जयन्ती और हड़।

जयानन्द—१ एक मैथिल कवि। ये करण कायस्थ थे। २ चैतन्यमङ्गल प्रणेता।

जयानीक (सं० पु०) १ द्रुपदराजाके एक पुत्रका नाम। विराट् राजाके एक भाईका नाम। जयप्रिय देखो।

जयापीड़ (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। संग्रामा-

पीड़की मृत्यु के बाद ७५१ ई०में ये राजगद्दी पर बैठे थे। ये जब राजा हो कर दिग्विजय करनेके लिए सेना सहित बाहर गये, तब इनके श्यालक राजसिंहासन अधिकार कर बैठे। इन्होंने कई एक दिन बाद कुछ दूर जा कर देखा कि, उनकी बहुतसी सेना रातको दल छोड़ कर भाग गई है। यह देख कर इन्होंने अपने करद राजाओंको अपने अपने देश लौट जानेके लिए कहा और खुद कई एक अनुचरों और भागे हुए सैनिकोंके घोड़े ले कर प्रयागधाममें उपस्थित हुए। इस जगह इन्होंने एक स्तम्भ बनवाया और ब्राह्मणोंको ८८८८९ अश्व दान दिये। इस स्तम्भ पर लिखा है कि, "मैंने एकोनलक्ष अश्व ब्राह्मणोंको दानमें दिये हैं। यदि कोई १ लाख अश्व दान कर सकें तो इस स्तम्भको तोड़ दें'।"

अनन्तर ये पुन: अपनी समस्त सेनाको लौट जानेका आदेश दे कर रात्रिके समय यहांसे चल दिये। घूमते फिरते ये गौड़ राज्यमें पहुंचे, जहां जयन्त नामक राजा राज्य करते थे। गौड़की राजधानी पौण्ड्रवर्द्धन नगरमें पहुंचने पर कमला नामक एक वेश्याने राजा समझ कर इनका स्वागत किया। ये उसीके घर ठहर गये। वेश्याने इनसे अपनी इच्छा प्रगट की, इस पर जयापीड़ने उत्तर दिया—"जब तक मेरी दिग्विजययात्रा समाप्त न होगी; तब तक स्त्रियोंसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं।" एक दिन उस नगरमें एक सिंह घुस पड़ा और प्रजाका विनाश करने लगा। जयापीड़को मालूम होते ही उन्होंने बड़ी वीरतासे उसे मार डाला। दूसरे दिन जब राजाने मार्गमें सिंहको मरा पाया, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सिंहको उठवाया तो उसके नीचे एक आभूषण पड़ा मिला, जिस पर "जयापीड़" लिखा था। राजाको बड़ी खुशी हुई, उन्होंने घोषणा की कि, 'जो जयापीड़को ढूंढ कर ला देगा, उसे आशातीत पुरस्कार दिया जायगा।" जयापीड़का पता लग गया। राजाने उन्हें निमन्त्रण दे कर घर बुलाया और अपनी पुत्री कल्याणदेवीका उनके साथ विवाह कर दिया।

जयापुष्प (सं० स्त्री०) जवापुष्प।

जयावती (सं० स्त्री०) जय: विद्यते ऽस्या: अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व, संज्ञायां दीर्घ:, ततो ङीप्। १ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। २ रागिणीविशेष, एक संकर रागिणी। यह धवलश्री, और सरस्वतीके योगसे बनती है।

जयावती—१ पोदनपुराधिपति राजा प्रजापतिकी प्रधान महिषी और प्रथम बलदेव विजयकी माता। ये भगवान् श्रेयांसनाथके समयमें हुई थीं।

२ चम्पापुराधिपति इक्ष्वाकुवंशीय राजा वसुपूज्यकी प्रधान महिषी और बारहवें तीर्थङ्कर भगवान् वासुपूज्यकी माता। (जैन-आदिपुराण)

जयावहा (सं० स्त्री०) जयं आवहतीति आ-वह-अच्। १ भद्रदन्तीवृक्ष। २ नीलदूर्वा, हरीदूब।

जयाशिस् (सं० स्त्री०) जयका आशीर्वाद।

जयाश्रया (सं० स्त्री०) जयं आश्रयति आ-श्रि-अच टाप्। जड़रीतृण, जड़ही घास।

जयाश्व (सं० पु०) विराट-राजाके एक भाईका नाम।

जयाह्वा (सं० स्त्री०) जयस्य आह्वा आख्या यस्या:। भद्रदन्तीका वृक्ष।

जयिन (सं० त्रि०) जेतुं शीलमस्य जि-इनि। जयशील, विजयी, फतहमंद।

जयिष्णु (सं० त्रि०) जि-शीलार्थे इष्णुच्। जयशील, जो जीतता हो।

जयुस (सं० त्रि०) जि-उसि। जयशील, जीतनेवाला।

जयेत् (सं० पु०) पुरिया और कल्याण योगसे उत्पन्न एक संकर रागिणी। इसमें पंचम स्वर नहीं लगता। यथा—"ग म ० ध नि सा ऋ।" (संगीतर०)

जयेती (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, एक प्रकारकी संकर रागिणी। यह गौरी और जयतश्रीयोगसे उत्पन्न होती है। यह सामन्त, ललित और पुरिया अथवा तोड़ी साहाना और विभास योगसे भी उत्पन्न हो सकती है।

(संगीतर०)

जयेन्द्र (सं० पु०) काश्मीर-राज विजयके पुत्र। इनकी बाहें इतनी बड़ी थीं कि वे घुटने तक पहुंच जाती थीं। इनके मन्त्रीका नाम सन्धिमति था। इन्होंने ३७ वर्ष तक राज्य किया था। काश्मीर देखो।

जयेश्वर (सं० पु०) एक प्राचीन शिवलिङ्ग।

जय्य (सं० त्रि०) जि जेतुं शक्यः। जयकरणयोग्य, जो जीतने योग्य हो, फतह करने काबिल।

जर (सं० पु०) जृ भावे अप्। १ जरा, वृद्धावस्था। जरा देखो। २ नाश वा जीर्ण होनेकी क्रिया। ३ एक तरहका समुद्री सेवार, कचरा। ४ जैन मतानुसार वह कर्म जिससे पाप पुण्य, राग द्वेष आदि शुभाशुभ कर्मोंका क्षय होता है।

ज़र (फा० पु०) १ स्वर्ण, सोना। २ धन, दौलत, रुपया।

जरई (हिं० स्त्री०) १ अन्नविशेष, जई नामका अनाज। २ धान आदिके वे बीज जिनमें अङ्कुर निकले हों। धानको दो दिन तक दिनमें दो बार पानीमें भिगो कर तीसरे दिन उसे पयालसे ढक देते हैं और ऊपरसे पत्थर दबा देते हैं। इसको मारना कहते हैं। दो एक दिन ढके रहनेके बाद पयाल उठा देना चाहिए। फिर उसमें सफेद सफेद अङ्कुर निकल आते हैं। कभी कभी इन बीजोंको फैला कर सुखाते हैं। ऐसे बीजोंको जरई कहते हैं। यह जरई खेतमें बोनेके काम आती है और जल्दी जमती है। कभी कभी धानको मुजारीको भी बन्द पानीमें डाल देते हैं और तीन चार दिन बाद उसे खोलते हैं। उस समय तक वे बीज जरई हो जाते हैं।

जरक (सं० क्ली०) हिङ्गु, हींग।

जरकटी (हिं० पु०) एक शिकारी पक्षी।

ज़रकस (फा० पु०) जिस पर सोनेके तार लगे हों।

ज़रखेज़ (फा० वि०) उर्वरा, उपजाऊ।

जरगह (फा० स्त्री०) राजपूतानेमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। चौपाये इसे बड़े चावसे खाते हैं। यह खेतोंमें कियारियां बना कर बोई जाती है छठें या सातवें दिन इसमें जलकी आवश्यकता पड़ती है। यह पन्द्रहवें दिनमें काटी जा सकती है। इसी तरह एक बार बोने पर यह कई महीनों तक चलती है। इसके खानेसे बैल बहुत जल्द बलवान् हो जाते हैं।

जरज (हिं० पु०) एक प्रकारका कन्द। यह तरकारीके काममें आता है। इसके दो भेद हैं। एकको जड़ गाजर या मूलीकी तरह और दूसरेकी जड़ शलगमकी तरह होती है।

जरजर (हिं० वि०) जर्जर देखो।

जरठ (सं० त्रि०) जीर्य्यत्यनेनेति जृ-अठ। १ कर्कश, कठोर। २ पाण्डु, पीलापन लिये सफेद रंगका। ३ कठिन, कड़ा, सख्त। ४ वृद्ध, बुड्ढा। ५ जीर्ण, पुराना (पु०) ६ जरा, बुढ़ापा।

जरड़ी (सं० स्त्री०) जृ-बाहुलकात् अड़ ततो गौरादित्वात् ङीष्। तृणविशेष, जरड़ी नामकी घास। इसके संस्कृत पर्याय—गर्मोटिका, सुनाला और जयाश्वा। इसके गुण—मधुर, शीतल, सारक, दाहनाशक, रक्तदोषनाशक और रुचिकर। इसके खानेसे गाय भैंस अधिक दूध देती है।

जरण (सं० क्ली०) जरयतीति जृ-णिच्-ल्यु। १ हिङ्गु, हींग। २ कृष्णौषध। ३ श्वेतजीरक, सफेद जीरा। ४ जीरक, जीरा। ५ कृष्णजीरक, काला जीरा। ६ सौवर्चल लवण, काला नमक। ७ कासमर्द, कसौंजा। ८ जरा, बुढ़ापा। ९ दश प्रकारके ग्रहणोंमेंसे एक। इसमें पश्चिम ओरसे मोक्ष होना प्रारंभ होता है। (त्रि०) १० जीर्ण, पुराना।

जरणद्रुम (सं० पु०) जरणो जीर्णः द्रुमः। अश्वकर्ण वृक्ष, साखूका पेड़। २ सागौनका पेड़।

जरणा (सं० स्त्री०) जरण-टाप्। १ कृष्णजीरक, काला जीरा। २ जीर्ण। ३ वृद्धत्व, बुढ़ापा। ४ जरा, वृद्धावस्था। ५ मोक्ष, मुक्ति। ६ स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

जरणि (सं० त्रि०) स्तुतिकारक, प्रशंसा करनेवाला।

जरणिप्रिया (सं० त्रि०) स्तुतिकारक, तारीफ करनेवाला।

जरण्ड (सं० त्रि०) जीर्ण, पुराना।

जरण्या (सं० स्त्री०) जरा, वृद्धावस्था, बुढ़ापा।

जरण्यु (सं० त्रि०) आत्मनः जरणं स्तुतिं इच्छति क्यच् उन्। जो अपना प्रशंसा चाहता हो।

जरत् (सं० त्रि०) जृ-अतृन्। १ वृद्ध, बुड्ढा। २ पुरातन, पुराना। (पु०) जरतीति जृ-शतृ। वृद्ध, बुड्ढा मनुष्य।

जरती (सं० स्त्री०) जरत् ङीप्। वृद्धा, बुड्ढी औरत।

जरत्कर्ण (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

जरत्कारु (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम, यायावर।

"जरेति क्षयमाहुर्वै दारुणं कारुसंज्ञितम्।
शरीरं कारु तस्यासीत्तत् स धीमाञ्छनैः शनैः॥

क्षपयामास तीव्रेण तपसेत्यत उच्यते ।
जरत्कारुरिति ब्रह्मन् वासुकेर्भगिनी तथा ॥"

(भारत १।४०।३-४)

जरा शब्दका अर्थ है क्षय, और कारु शब्दका अर्थ दारुण। इन महर्षिका शरीर अतिशय दारुण था, इन्होंने कठोर तपस्याके द्वारा शरीर क्षय किया था, इसी लिए इनका नाम जरत्कारु पड़ गया था।

जरत्कारु ऋषि प्रजापतिके समान ब्रह्मचारी और तपःपरायण थे। ये सर्वदा व्रत अनुष्ठान और उग्र तपस्यामें लगे रहते थे, ये किसी समय अवनीमण्डल परिभ्रमणके लिए निकले। जहां शाम होती थी, वहीं ये ठहर जाते थे। इस तरह बहुत दिनों तक आहार-निद्रा परित्याग और इधर उधर पर्यटन करते रहनेसे इनका शरीर अत्यन्त शीर्ण हो गया था। तो भी ये वायुमात्र भक्षण कर कठोर व्रतानुष्ठान करते थे। एकदिन भ्रमण करते करते इन्होंने कहीं पर देखा कि, कुछ लोग उलटे जमीनमें गड़े हुए हैं। इन्हें दया आ गई। इन्होंने उनसे पूछा—"आप लोग कौन हैं? क्यों आप लोग मूषिकच्छिन्नमूल उशीरस्तम्ब मात्र अवलम्बन कर अधोमुख हो इस गड्ढेमें पड़े हो?" उत्तर मिला—"हम लोग यायावर नामक ऋषिके वंशधर हैं। सन्तान क्षय होनेके कारण अधःपतित होते हैं। हम लोगोंके दुर्भाग्यकी सीमा नहीं है। हम लोगोंका जरत्कारु नामक एक अभागा पुत्र है, जो बिना दारपरिग्रह किये ही दिन-रात सिर्फ तपस्यामें ही लीन रहता है। इसीलिए कुलक्षय होते देख हम लोग औंधेमुंह गड्ढेमें पड़े हैं। हमारे वंशवर्द्धन जरत्कारुके रहते हुए भी हमलोग अनाथ और दुष्कृतोंकी तरह पड़े हैं। तुम कौन हो; और किस लिए तुम बान्धवोंकी तरह अनुशोचना कर रहे हो?" जरत्कारुने उत्तर दिया—"मैं ही आपलोगोंका अभागा पुत्र जरत्कारु हूं। अब क्या करूं, आप लोग आज्ञा दीजिये।" यह सुन कर लोगोंको बड़ी खुशी हुई, वे बोले—"वत्स! दारपरिग्रह कर सन्तानोत्पादनपूर्वक हम लोगोंकी रक्षा करो।" जरत्कारुने कहा-"मैं प्रतिज्ञा करता हूं-यदि कन्याके नामसे मेरा नाम मिल जाय और उसके बन्धुबान्धवगण उसे स्वेच्छापूर्वक मुझे भिक्षा-स्वरूप दान दें, तो मैं उसके साथ यथाविधि विवाह कर उसके गर्भसे सन्तानोत्पादन करूंगा।" इतना कह कर वे अभीष्ट स्थान पर चले गये। एकदिन वनमें प्रवेश कर उन्होंने तीन बार उच्च स्वरसे भिक्षा स्वरूप कन्या मांगी। इनके उक्त भिक्षावाक्यको सुन कर नागराज वासुकिने अपनी बहन जरत्कारुको ला कर महर्षिके सुपुर्द की। इन्होंने भी स्वनाम्नी जान कर विधिपूर्वक उनसे विवाह कर लिया। विवाह करते समय यह निश्चित हो गया कि, महर्षि पर इनके भरणपोषणका भार नहीं रहेगा और पत्नी यदि इनके प्रति अप्रिय आचरण करेगी, तो वे उन्हें तत्क्षणात् त्याग देंगे। कुछ दिन पीछे नागकन्या जरत्कारु महर्षिके संयोगसे गर्भिनी हुई। एकदिन ये पत्नीकी गोदमें मस्तक रखकर सो रहे थे, ऐसे समयमें सूर्यको अस्त होते देख, स्वामीकी क्रियालोप होनेकी आशङ्कासे इनकी पत्नीने इन्हें जगा दिया। इससे महर्षि जरत्कारुने कुपित हो कर कहा—"तुमने आज मेरा अपमान किया है, इसलिए मैं तुम्हें जन्म भरके लिए परित्याग करता हूं। तुम अपने भाईसे कह देना कि, वे मुनि चले गये हैं। इसके सिवा यह भी कह देना कि, तुम्हारे जो गर्भ रह गया है, उससे प्रदीप्ततेजा एक पुत्र उत्पन्न होगा। इतना कह कर मुनि चल दिये। पत्नीने बहुत कुछ अनुनय विनय किया; किन्तु इन्होंने ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। (भारत आदि)

(स्त्री०) २ जरत्कारुकी पत्नी, आस्तिककी माता, वासुकिकी बहन, मनसादेवी। मनसा देखो।

"आस्तिकस्य मुनेर्माता भगिनीवासुकिस्तथा।
जरत्कारुमुनेः पत्नी मनसादेवी नमोऽस्तु ते।"

जरत्कारुप्रिया (सं० स्त्री०) जरत्कारोः स्वनामख्यातस्य मुनेः प्रिया, ६-तत्। मनसा देवी।

जरथस्त्र—प्राचीन पारसिक धर्मप्रचारक। ये ग्रीकोंके पास ज़रस्त्रदेस (Zarastrades) या जोरोअस्त्रेस् (Zoroastres), रोमकोंके यहां जोरोअस्तार (Zoroaster) (यूरोपमें भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं) और वर्तमान पारसियोंके यहां जरदोस्त नामसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु पारसी

जातिके प्राचीनतम ग्रन्थोंमें "जरथुस्त्र" नाम ही पाया जाता है।

इस समय जरथुस्त्र या जरदोस्त कहनेसे सिर्फ एक आवस्तिक-धर्मप्रचारकका ही बोध होता है। किन्तु पूर्वकालमें कई-एक जरथुस्त्र थे, अवस्ता ग्रन्थमें उनका उल्लेख है। उक्त ग्रन्थके देखनेसे ज्ञात होता है कि, उस और ग्राममें जो सबसे प्रधान और वृद्ध होते थे, उन्हींको जरथुस्त्र कहा जाता था। वैदिक जरदष्टि शब्दके साथ इस जरथुस्त्र शब्दका बहुत कुछ सादृश्य है।

इस समय जैसे "दस्तूर" कहनेसे अग्न्युपासक पारसिक पुरोहितोंका बोध होता है, पहले जरथुस्त्र कहनेसे भी ऐसा ही बोध होता था।

धर्मप्रचारक जरथुस्त्र भी पहले इसी तरहके एक "दस्तूर" थे। इनके पिताका नाम था पोरुषस्प।

स्पितमवंशमें इनका जन्म हुआ था, इसलिए प्राचीन ग्रन्थोंमें इनका स्पितमजरथुस्त्र नामसे उल्लेख है। स्पितम-वंश "हएचदस्प" नामसे भी प्रसिद्ध है। इसीलिए धर्मवीर स्पितम जरथुस्त्रको अन्याका यस्न नामक ग्रन्थमें 'पौरुचिष्ट हएचदस्पाना स्पितामो' नामसे वर्णन किया गया है।

किसी किसी ग्रन्थमें "जरथुस्त्रतेमो" अर्थात् श्रेष्ठतम और सर्वोच्च जरथुस्त्र, इस नामसे भी अभिहित हैं। इससे जाना जाता है कि, ये वर्तमान 'दस्तुर ए दस्तुरान्'की तरह सबसे प्रधान आचार्य थे।

अन्यान्य प्राचीन धर्मवीरोंकी तरह जरथुस्त्रका वास्तविक इतिहास नहीं मिलता है।

ग्रीकोंमें लिदियावासी जन्थोस् (४७० ई०से पहले)ने सबसे पहले लिखा था कि, जरदोस्त ट्रययुद्धके सात सौ वर्ष पहले जीवित थे। आरिष्टटल और इउडोक्सस् प्लेटोसे छह हजार वर्ष पहले इनका आविर्भाव हुआ था। प्लिनिके मतसे-ट्रय-युद्धसे ५ हजार वर्ष पहले जरदोस्तका आविर्भाव हुआ था। इधर अग्न्युपासक पारसीगण कहा करते हैं कि, "जन्दअवस्तामें जिनका कव-वीस्ताम्प नामसे वर्णन है, वे ही पारस्यराज दरायसके पिता ह्यस्तास्पेस् थे। उन्हींके समयमें जरदोस्त आविर्भूत हुए थे।" ऐसी दशामें जरथुस्त्र ख्रुष्टसे ५५० वर्ष पहिलेके मालूम होते हैं। किन्तु प्रसिद्ध पारसिक धर्मशास्त्रविद् मार्टिन हौग लिखते हैं कि,-"ईरानीके प्रवादमूलक वीस्तास्प और ग्रीकवर्णित ह्यस्तस्पेस् दोनों एक व्यक्ति नहीं थे। वीस्तास्प किस समय हुए हैं, इसका अभी तक कुछ निर्णय नहीं हुआ। पारसिक धर्मशास्त्रोंकी पर्यालोचना करनेसे जरथुस्त्रको ईसासे १००० वर्ष पहलेके सिवा बादका नहीं कहा जा सकता।"

पारसिकोंके धर्मग्रन्थोंमें जरथुस्त्रके विषयमें बहुतसी अलौकिक घटनाओंका उल्लेख है, उनमें जरथुस्त्रको असाधारण देवातीत गुणसम्पन्न ईश्वरतुल्य व्यक्ति बतलाया गया है। किन्तु प्राचीनतम ग्रन्थोंमें इन्हें मन्त्रपाठक, वक्ता, अहुरमज्दका दूत और उन्होंके आदिष्ट उपदेशादिका प्रचारक कहा गया है। नवम यस्नमें इन्हें ऐर्यनवएजो अर्थात् आर्यनिवासमें प्रसिद्ध और वन्दिदादमें इनको बाखधी (वाह्लीक) वर्त्तमान बाल्ख नामक स्थानके रहनेवाला बतलाया गया है।

जरथुस्त्र एकेश्वरवादी थे। जिस समय देवधर्मावलम्बी भारतीय आर्यों और असुरमतावलम्बी पारसिकोंका परस्परमें विवाद हुआ था, तथा जिस समय अधिकांश पारसिक विविध देवियोंकी उपासना और कुसंस्कारोंके जालमें फँस गये थे, उस समय जरथुस्त्रने एकेश्वरवादका प्रचार किया था। पारसियोंके प्राचीनतम गाथा और यस्नग्रन्थसे इनके द्वारा प्रवर्तित ज्ञान और धर्मतत्त्वोंको जान सकते हैं। ये द्वैतवादी अर्थात् आध्यात्मिक और प्राकृत जगत्के दो मूलकारणोंको स्वीकार करते थे। वाक्, मन और कर्म इन तीनों योगों पर इनकी धर्मनीति स्थापित थी। जिस समय ग्रीकोंने वास्तविक ज्ञानमार्ग पर विचरण करना नहीं सीखा था, महात्मा प्लेटो भी जब गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वको नहीं समझ सके थे, उससे बहुत पहले जरथुस्त्रने ज्ञान और धर्मके विषयमें सुयुक्तिपूर्ण तत्त्वोंको प्रगट किया था। अहुनवैति गाथामें जरथुस्त्रका मत उद्धृत है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, उस समयके तथा उससे भी बहुत शताब्दी बादके भावुक ज्ञानियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक अनेक गभीर तत्त्व उनके हृदयमें उदित हुए थे। इन्हींके प्रभावसे अब भी पारसिकगण उस प्राचीन आवस्तिक धर्मकी

रक्षा करनेमें समर्थ हैं। पारसिक और ज़न्दअवस्ता शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

जरद (फा० वि०) पीत पीला, ज़र्द।

जरदक (फा० पु०) जरदा या पीलू नामका पक्षी।

जरदष्टि (सं० त्रि०) १ अतिवृद्ध, बहुत बुड्ढा। २ दीर्घजीवी, बहुत दिनों तक जीनेवाला। (स्त्री०) ३ दीर्घजीवन, वह जो बहुत दिनों तक जीता हो। ४ वृद्धावस्था, बुढ़ापा।

ज़रदा (फा० पु०) १ मुसलमानोंका एक प्रकारका व्यञ्जन। इसके बनानेकी तरकीब यह है कि पहले चावलमें हलदी डाल कर उसे पानीमें उबालते हैं। थोड़ी देरके बाद उसमेंसे जल निकाल कर उसे दूसरे बरतनमें घी डाल कर शक्करके शर्बतमें पकाते हैं। इसको स्वादिष्ट तथा सुगन्धित बनानेके लिये उसमें पीछेसे लोग इलायची और मसाले छोड़ दिये जाते हैं। २ पानमें खानेकी एक प्रकारकी सुगन्धित काले रंगकी सुरती। ३ एक प्रकारका घोड़ा जिसका रंग पीला होता है। ४ पीले रंगको एक प्रकारको कीट। ५ एक प्रकारका पक्षी। इसकी कनपटी पीली, पीठ खाकी, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होते हैं। कोई कोई इसे पीलू भी कहता है।

जरदालू (फा० पु०) खूबानी नामका मेवा। खूबानी देखो।

जरदी (फा० स्त्री०) १ पीलापन, पीलाई। २ अण्डेका भीतरका वह चेप जो पीले रंगका होता है।

जरदुश्त (फा० पु०) एक प्राचीन पारसी आचार्य। ये ईसासे बहु वर्ष पहले हुए थे। पारसियोंके प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ ज़न्द-अवस्ता इन्हींका बनाया है। इन्होंने सूर्य और अग्निकी पूजाकी प्रथा चलाई थी। शाहनामेमें लिखा है कि इनकी मृत्यु तूरानियोंके हाथसे हुई थी। जरथुस्त्र देखो।

जरदोज (फा० पु०) वह जो कपड़ों पर कालबत्तू इत्यादि करता हो।

जरदोजी (फा० पु०) एक प्रकारकी हाथकी कारीगरी। यह कपड़ों पर सुनहले कलाबत्तू आदिसे की जाती है।

जरद्गव (सं० पु०) जरन्नासौ गौश्चेति। १ जीर्णवृष, बुड्ढा बैल। २ विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रोंकी एक वीथि। यह चन्द्रमाकी वीथि मानी जाती है। ३ एक गिद्धका नाम। (स्त्री०) ४ एक बुड्ढी गाय।

जरद्गववीथि (सं० स्त्री०) चन्द्रमाकी वीथि। इसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र रहते हैं।

जरद्विष (सं० त्रि०) जरती जलम् वेवेष्टि विष-क्विप्। यद्वा जरत् विषं जलं यस्मात्। उदक जीर्णकारी, अग्नि।

जरनल (अं० पु०) सामयिक पत्र। इसमें क्रमसे किसी प्रकारकी घटनाएं आदि लिखी रहती हैं।

जरना (हिं० क्रि०) जलना देखो।

ज़रनिगार (फा० पु०) एक प्रकारका कोफ्त। इसमें कलई करनेके पहले गुलबूटे उभाड़े जाते हैं।

जरन्त (सं० पु०) जीर्य्यतीति-झच्। १ महिष, भैंसा। २ वृद्ध, बुड्ढा मनुष्य।

ज़रब (अ० स्त्री०) १ आघात, चोट। २ तबले मृदंग आदि परकी थाप। ३ गुणन, गुणा। ४ वह बेल जो कपड़े पर छपी या काढ़ी जाती है।

ज़रबफ्त (फा० पु०) एक प्रकारका रेशमी वस्त्र। इसकी बुनावटमें कलाबत्तू दे कर कुछ बेल बूटे बनाए जाते हैं।

ज़रबाफ (फा० पु०) एक कारीगर जो कपड़े पर बेल बूटे बनाता है, ज़रदोज।

ज़रबाफी (फा० वि०) १ जिस पर जरबाफका काम बना हो। (स्त्री०) २ जरदोजी।

जरबुलन्द (फा० पु०) कोफ्तका एक भेद। इसके गुलबूटे बहुत उभड़े रहते हैं।

जरमन (अं० पु०) १ जरमनी देशके लोग। २ जरमनी देशकी भाषा। (वि०) ३ जरमनी देश सम्बन्धी, जरमनीका। जर्मनी देखो।

जरमनसिलभर (अं० पु०) जस्ते, तांबे और निकलके योगसे बनी हुई एक प्रकारकी सफेद चमकीली धातु। इसमें आठ भाग तांबा, दो भाग निकल और तीनसे पांच भाग तक जस्ता दिया जाता है। यदि इसमें निकल अधिक दी जाय तो इसका रंग ज्यादे सफेद और अच्छा हो जाता है। यह धातु बरतन और गहने आदि बनानेके काममें आती है।

जरमनी (अं० पु०) मध्ययूरोपका एक प्रसिद्ध देश। जर्मनी देखो।

जरमान (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

जरमुआ (हिं० वि०) १ बहुत ईर्ष्या करनेवाला, जल मरनेवाला। (पु०) २ एक गाली जिसे अकसर स्त्रियां कहती है।

जरमुई (हिं० वि०) जरमुआका स्त्रीलिङ्ग।

जरमुआ देखो।

जरयिष्ट (सं० वि०) जरणकारी, निगलने या खानेवाला।

जरयु (सं० त्रि०) जो वृद्ध होता जा रहा हो।

ज़रर (अ० पु०) १ हानि, नुकसान। २ आघात, चोट। ३ विपत्ति, आफ़त, मुसीबत।

जरल (हिं० स्त्री०) मध्यप्रदेश और बुंदेलखंडमें होनेवाली एक प्रकारकी घास, यह बारहों महीने होती है।

जरस (सं० क्लो०) १ जरा, वृद्धावस्था। (पु०) २ श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम।

जरमान (सं० पु०) जीर्यति जराग्रस्तो भवतीति जृ वयोहानौ असानच्। पुरुष, मनुष्य।

जरांकुश (हिं० पु०) एक प्रकारकी सुगन्धित घास। यह मुंजीकी तरह होती है। इसमें नीबूकीसी सुगन्ध आती है। इससे एक प्रकारका तेल निकलता है। साबुन या किसी दूसरी चीजमें इसका तेल देनेसे नीबूसी महक आती है।

जरा (सं० स्त्री०) जीर्यत्यनयाजृ-अङ्। षिद्भिदादिभ्यो ऽङ्। पा ३।३।१०४। ऋदृशोऽङि गुणः। पा ७।४।१६। इति गुणः। १ वृद्धावस्था, वार्द्धक्य, बुढ़ापा। २ कालकी कन्याका नाम। पर्याय विस्रसा। (भागवत)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे—कालकी कन्या जरादेवी चतुःषष्ठी रोग इत्यादि भ्राताओंके साथ पृथिवी पर सर्वदा परिभ्रमण करती रहती हैं। यह मौका पाते ही लोगों पर आक्रमण करती रहती हैं। जो व्यक्ति प्रतिदिन आंखोंमें पानी देते, व्यायाम करते, पैरके अधोभाग, कान और मस्तक पर तेल लगाते, वसन्त ऋतुमें सुबह-शाम भ्रमण करते, यथासमय बाला स्त्रीसे सम्भोग करते, ठण्डे पानीसे नहाते, चन्दनका तेल लगाते, गन्दे पानीका व्यवहार नहीं करते, समय पर भोजन करते, शरत्‌ऋतुमें घामसे बचते, गरमियोंमें वायुसेवन करते, बरसातमें गरम पानीसे नहाते और वृष्टिके जलसे बचते हैं; तथा जो सद्यमांस, दुग्ध और घृत भोजन करते, भूखके समय आहार, प्यासके समय पानी और नित्य ताम्बूल भक्षण करते, हैयङ्गवीन (ढालका बना हुआ घी) और नवनीत नियमित भोजन करते हैं तथा जो शुष्कमांस, वृद्धा स्त्री, नवोदित रौद्र, तरुण दधि और रात्रिमें दही, रजःस्वला, पुंश्चली, ऋतुहीना वा अरजस्का नारीका सेवन नहीं करते, ऐसे लोगों पर जरा अपने भाइयों सहित आक्रमण नहीं कर सकती। जो लोग उक्त नियमोंसे विरुद्ध आचरण करते हैं, उनके शरीरमें जरा सर्वदा वास करती है। (ब्रह्मवैवर्तपुराण १६।३३ ४४)

३ एक कामरूपा राक्षसी, जो मगध देशके एक श्मशानमें रहती थी। इस राक्षसीने जरासन्धका आधे आधे शरीरको जोड़ कर उन्हें जिलाया था। जरासन्ध देखो। यह राक्षसी प्रत्येकके घरमें जाती थी, इसलिए ब्रह्माने इसका नाम गृहदेवी रक्खा था। जो व्यक्ति इसकी नवयौवनसम्पन्न सपुत्र मूर्त्तिको अपने घरमें लिख रखेगा, उसका घर सदा धनधान्य और पुत्रपौत्रादिसे परिपूर्ण रहेगा। इसी राक्षसीका नाम षष्ठीदेवी है। (भारत आदि०)

(पु०) ४ एक व्याधका नाम। श्रीकृष्ण जब यदुवंश ध्वंसके उपरान्त वृक्षकी नीचे मौन भावसे तिष्ठते थे, उस समय इस व्याधने मृगके भ्रमसे उन्हें तीर मारा था, जिससे उनका वध हो गया। कहा जाता है कि, यह व्याध द्वापरमें अङ्गदके अवतार थे। (भाग०) जैन हरिवंशपुराणमें उक्त व्याधका जरत्कुमार नाम लिखा है। ५ खीरिका वृक्ष खिरनीका पेड़। (शब्दर०) (स्त्री०) ६ स्तुति, प्रशंसा (ऋक् १।१८।१२७) ७ अप्रियवादिनी स्त्री, दुर्वचन कहनेवाली औरत (चाणक्य)

ज़रा (अ० वि०) १ कम, थोड़ा। (क्रि० वि०) २ थोड़ा, कम।

जराकुमार (सं० पु०) जरासन्ध।

जराग्रस्त (सं० त्रि०) जरया ग्रस्तः। जराभिभूत, वृद्ध, बुड्ढा

जराती ((हिं० पु०) चार बार उड़ाया हुआ शोरा।

जरातुर (सं० त्रि०) जरया आतुरः। १ जीर्ण, पुराना, जो बहुत दिनोंका हो। २ जरारोगग्रस्त, जिसे वृद्धावस्थाका रोग हुआ हो।

जराट (सं० पु०) टिड्ड।

जरापुष्ट (सं० पु०) जरया राक्षस्या पुष्टः ३ तत्। जरासन्धका एक नाम।

जराबोध (सं० पु०) जरया स्तुत्या बुध्यते बुध-अच्। स्तुति द्वारा बोधमान अग्नि, वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो।

जराबोधीय (सं० पु०) जराबोधित्यस्यामृचि भावः। सामभेद।

जराभीरु (सं० पु०) जरातः भीरुः। १ कामदेव। (त्रि०) २ जरासे भयशील, जो वृद्धावस्थासे डरता हो।

जराभीम (सं० पु०) कामदेव।

जरामृत्यु (सं० पु०) जरा और मृत्यु, बुढ़ापा और मरण।

जरायणि (सं० पु०) जराया राक्षस्या अपत्यं जरा बाहुलकात् फिञ्। जरासन्धका एक नाम।

जरायु (सं० पु०) जरामितीति जरा-इण-ञुण्। १ गर्भवेष्टन चर्म, गर्भको भिल्ली जिसमें बच्चा बंधा हुआ उत्पन्न होता है। इसके पर्याय—गर्भाशय, उल्ब और कलल है। २ योनि, भग। ३ अग्निजार वृक्ष, समुद्रफल नामका पेड़। ४ जटायु पक्षी ५ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

जरायुज (सं० त्रि०) जरायो जायते जन-ड। गर्भाशयजात, जिसने गर्भाशयमें जन्मग्रहण किया हो, मनुष्य, गो प्रभृति। विशुद्ध शुक्र शोणितके संयोगसे जरायुमें गर्भ उत्पन्न होता है। गर्भके परिपुष्ट होने पर निर्दिष्ट समयमें अर्थात् १० ८।६।३ मासमें गर्भ प्रसूत होता है। उसी प्रसूत जीवका नाम जरायुज है।

"पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः।

रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः॥" (मनु० १।४३)

जरायुदोष (सं० पु०) गर्भजरोगभेद, गर्भका एक प्रकारका रोग।

जरालक्ष्म (सं० क्ली०) पलित, सिरके बालोंका उजला होना, बाल पकना।

जराशोष (सं० पु०) एक प्रकारका शोष रोग। यह रोग खास कर बुढ़ापामें होता है। इसमें रोगी कमजोर हो जाता है, भूख नहीं लगती और बलवीर्य्य तथा बुद्धिका क्षय होता है।

जरासन्ध (सं० पु०) जरया तदाख्यया प्रसिद्धया राक्षस्या कृता सन्धा देहसंयोजनमस्य। मगधके एक प्रसिद्ध राजा, चन्द्रवंशीय राजा बृहद्रथके पुत्र। राजा बृहद्रथने पुत्रकी इच्छासे चण्डकौशिकको आराधना की थी। भगवान् चण्डकौशिकने इनको कठोर तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर इन्हें एक फल दे कर कहा—'यह फल तुम अपनी महिषीको खिला देना, इससे तुम्हें एक अभिलषित पुत्रकी प्राप्ति होगी।" राजा बृहद्रथकी दो महिषी थीं, इस लिए उन्होंने उस फलके दो टुकड़े कर दोनोंको खिला दिया। देव प्रदत्त उस फलसे एकदिन दोनों महिषी गर्भिणी हुईं और समय पर दोनोंके गर्भसे आधा आधा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा इस समाचारको सुन कर बहुत ही क्षुब्ध हुए, आखिरकार उन्होंने दोनों अर्द्ध पुत्रोंको श्मशानमें पटक आनेका आदेश दिया। राजाके आदेशानुसार दोनोंको श्मशानमें पहुंचा दिया गया। उस श्मशानमे जरा नामकी कामरूपा एक राक्षसी रहती थी। जराने उक्त दोनों धड़ोंको जोड़ कर बालकको जिला दिया, इसलिए इनका नाम जरासन्ध हो गया। यह मातृरूपा राक्षसी उक्त बालकको जिला करके राजा बृहद्रथके पास गई और बालकको दे कर बोली—"महाराज! यह बालक अत्यन्त पराक्रमी होगा और इसके सन्निवेश बिना छिन्न हुए इसकी मृत्यु भी नहीं होगी।" धीरे धीरे जरासन्ध पराक्रमशाली हो उठे। इन जरासन्धको अस्ति और प्राप्ति नामकी दो कन्याएं थीं, जिनका विवाह कंसके साथ हुआ था। धनुर्यज्ञमें श्रीकृष्णके हाथसे कंसके मारे जानेके कारण, जरासन्धने जामाताके वधसे अत्यन्त दुःखित हो कर शत्रु-निर्यातनके लिए इन्होंने १८ बार मथुरा पर आक्रमण किया था; और मथुरावासियोंको अत्यन्त उत्पीड़ित किया था। किन्तु वे नगरका ध्वंस नहीं कर सके थे। इन्होंने कंस-वधका सम्वाद सुनते ही क्रोधोन्मत्त हो कर गिरिव्रजसे कृष्णको वध करनेकी इच्छासे एक गदा ९९ (एकोनशत) बार घुमा कर फेंका, जो मथुराके पास ही गिरी थी। यह गदा जहां पड़ी, उस स्थानका नाम गदावसान पड़ गया। जरासन्धने राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छासे अनेक राजाओंको जीत कर उन्हें कैद किया था। युधिष्ठिरने राज-

सूय यज्ञ करते समय जरासन्धको पराजित न कर सकनेके कारण यज्ञको होते न देख श्रीकृष्णको शरण ली थी। श्रीकृष्ण भीम और अर्जुनके साथ स्नातक ब्राह्मणके वेश धारण कर जरासन्धको वध करनेके लिए मगध देशमें आये। यहां आ कर नारायणने कहा कि—"देखो अर्जुन! यह गिरिव्रज अत्यन्त भयसङ्कुल है। वह देखो! वैहार, वराह, ऋषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक, ये पांचों पर्वत नगरोके चारों ओर कैसे शोभा दे रहे हैं, ये पर्वत इस तरह हैं कि, जिससे अकस्मात् कोई शत्रु आ कर नगरी पर आक्रमण नहीं कर सकता। इसके सिवा न्याय-युद्धमें भी जरासन्धको परास्त करना अत्यन्त कठिन है। इसीलिए आज हम सब अपने अपने वेशको छोड़ कर ब्रह्मचारी वेश धारण कर यहां आये हैं। वह जो तीन भेरियां देख रहे हो, उनको राजा बृहद्रथने वृष-रूपधारी दैत्यको मार कर उसीके चमड़ेसे बनवाया था। इन तीनों भेरियों पर एक बार आघात करनेसे उनमेंसे एक मास तक गभीर ध्वनि निकलती रहती है। अब तुम लोग शीघ्र हो उन भेरियोंको तोड़ डालो।" भीम और अर्जुनने श्रीकृष्णको बात सुन तुरन्त हो भेरियोंको तोड़ डाला। पीछे कृष्णके आदेशसे चैत्यप्राकारके पास जा कर उन्होंने सुप्रतिष्ठित पुरातन चैत्यशृङ्गको तोड़ दिया और हृष्टचित्तसे वे मगधपुरमें घुस गये। धीरे धीरे ये तीनों जरासन्धके पास पहुंच गये। स्नातक ब्राह्मणका वेश देख किसीने भी उन्हें न रोका।

जरासन्धने उन लोगोंको स्नातक ब्राह्मण समझ मधु-पर्कादि दे कर कुशल पूछा। इस पर श्रीकृष्णने कहा—"ये दोनों इस समय नियमस्थ हैं, पूर्वरात्रके व्यतीत होनेसे पहले ये लोग न बोलेंगे।" जरासन्ध कृष्णकी बात सुन उन लोगोंको यज्ञागारमें छोड़ कर खुद अपने घरको चले गये। पीछे इन्होंने आधी रातके समय आ कर स्नातक ब्राह्मणोचित उन लोगोंकी पूजा की। भीम और अर्जुनने पूजा ग्रहण कर ब्राह्मणोचित स्वस्तिवाक्योंका प्रयोग कर आशीर्वाद दिया। जरासन्धको उन लोगोंके वेश पर सन्देह हुआ, इन्होंने पूछा—"हे विप्रगण! मैं जानता हूं कि, स्नातकगण सभामें जाते समय हो माला वा चन्दन धारण करते हैं, अन्य समय नहीं; किन्तु आप लोगोंके वस्त्र रक्तवर्ण, सर्वाङ्ग चन्दनानुलिप्त और भुजाओं पर ज्याचिह्न देख रहा हूं। शरीरकी आकृति भी क्षात्रतेजका प्रमाण दे रही है, तथापि आप लोग ब्राह्मण रूप कर अपना परिचय दे रहे हैं। अब सत्य कहिये कि आप लोग कौन हैं?" इस पर कृष्ण जलद गम्भीर स्वरसे कहने लगे —"नराधिप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनोंही जातियां स्नातक व्रत ग्रहण कर सकती हैं। इसके विशेष और अविशेष दोनों ही नियम हैं। क्षत्रिय जाति विशेष नियमी होने पर धनशाली होती है और पुष्पधारी तो अवश्य ही श्रीमान् होती है। इसीलिए हम लोगोंने पुष्प धारण किये हैं। क्षत्रिय बाहु-बलसे बलवान् अवश्य हैं, किन्तु वाग्वीर्यशाली नहीं हैं। क्षत्रियका बाहुबल ही प्रधान है, इसलिए हम लोग यहां युद्धार्थी हो कर उपस्थित हुए हैं, शीघ्रही हम लोगोंसे युद्ध कर आप क्षत्रियधर्मकी रक्षा कीजिये। राजन्! वेदाध्ययन, तपोनुष्ठान और युद्धमें मृत्यु होना स्वर्गप्राप्ति-में कारण अवश्य है; किन्तु नियमपूर्वक वेदाध्ययनादि नहीं करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती। परन्तु यह निश्चित है कि, युद्धमें प्राणत्याग करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी। इसलिए देरी न कर शीघ्र ही युद्धमें प्रवृत्त होओ। मैं वासुदेवतनय कृष्ण हूं और ये दोनों वीरपुरुष पाण्डुतनय भीम और अर्जुन हैं। तुम्हें वध करनेके अभिप्रायसे ही हम लोग इस वेशसे यहां आये हैं, अब समय नहीं है, शीघ्र ही तुम अपने दुष्कर्तोंके फल भोगने-के लिए तयार हो जाओ।" जरासन्ध कृष्णकी इस बातको सुन कर बहुत ही कुपित हुए और उसी समय वे योद्धृ-वेश धारण कर भीमके साथ बाहु-युद्धमें प्रवृत्त हो गये। दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। क्रमशः प्रकर्षण, आकर्षण, अनुकर्षण और विकर्षण द्वारा एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। युद्धमें जरासन्धको अत्यन्त क्लान्त देख श्री-कृष्णने जरासन्धको मारनेके अभिप्रायसे भीमको इशारा कर कहा—"हे भीम! अब तुम्हें जरासन्धको अपना दैवबल और बाहुबल दिखाना चाहिये।" कृष्णका इशारा पा कर भीमने जरासन्धको उठा लिया और उन्हें घुमाने लगे, सौ बार घुमानेके बाद उन्होंने जानुद्वारा आकुञ्चनपूर्वक जरासन्धकी पीठ तोड़ दी तथा निष्पेषण-

पूर्वक दोनों पैर करकवलित कर उनका सन्धिस्थान दो भागोंमें विभक्त कर दिया। पिसते हुए जरासन्धके आर्त-नाद और भीमको गर्जनको सुन कर समस्त मगधवासी घबड़ा उठे। इस तरह भीमके हाथ जरासन्धका वध हुआ। इसके उपरान्त कृष्ण, भीम और अर्जुनने जरा-सन्धके पुत्रको राज्याभिषिक्त कर राजन्यवर्गको मुक्ति प्रदान की। (भारत सभा० जरासन्धवधपर्व अध्याय)

जैनमतानुसार—ये अन्तिम (९वें) प्रतिनारायण और अर्द्धचक्रवर्त्ती थे। आठवें प्रतिनारायण राव के पीछे इनका आविर्भाव हुआ था। इनके अपराजित आदि कई एक भाई और कालिन्दसेना नामको एक प्रधान महिषी थीं। यादवोंके साथ इनका घोर युद्ध हुआ था। इनके पक्षमें कौरववंश तथा विपक्षमें पाण्डव और यादव वंश था। बहुत युद्ध होनेके उपरान्त इन्होंने क्रोधमें अन्धे हो कर नारायण कृष्ण पर चक्र चलाया, किन्तु प्रतिनारा-यणका चक्र नारायण पर चलता नहीं और छूटने पर वह वार अवश्य ही करता है, इसलिए चक्र कृष्णको तीन प्रद-क्षिणा दे कर उनके हाथमें आ गया, पीछे श्रीकृष्णने उस चक्र द्वारा जरासन्धका विनाश किया। जरासन्धने बहुरू-पिणी विद्याके बलसे कृष्णको कई बार धोखेमें डाला था किन्तु चक्र तो असली शत्रुको पकड़ता है, इस प्रकारसे चक्रद्वारा इनकी मृत्यु हुई थी। (जैन पाण्डवपुराण।)

जरासुत (सं० पु०) जरासन्ध।

जरित (सं० त्रि०) जरा जाताऽस्य तारकादित्वादितच्। जरायुक्त, बुड्ढा।

जरिता (सं० स्त्री०) १ मन्दपाल ऋषिकी स्त्री। २ पक्षिणी विशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

जरितारि (सं० पु०) जरितागर्भजात मन्दपाल ऋषिके ज्येष्ठपुत्र, जरिताके गर्भसे उत्पन्न मन्दपाल ऋषिके बड़े लड़केका नाम।

जरितृ (सं० त्रि०) जॄ-तृच्। १ स्तुतिकारक, प्रशंसा करने वाला। (स्त्री०) २ जीर्णा स्त्री, बुड्ढी औरत।

जरिन् (सं० त्रि०) जराऽस्त्यस्येति इनि। १ वृद्ध, बुड्ढा २ ज्वर युक्त।

जरिमन् (सं० पु०) जॄ भावे इमनिच्। १ जरा, बुढ़ापा १ वृद्धावस्थाकी मृत्यु।

जरिया (अ० पु०) १ सम्बन्ध लगाव, द्वार। २ हेतु, कारण, सबब।

जरिश्क (फा० पु०) दारुहल्दी।

जरी (फा० स्त्री०) १ वादलेसे बुने जानेका ताश नामका कपड़ा। २ सोनेके तारों आदिसे बना हुआ काम।

जरीनाल (हिं० स्त्री०) कहारोंकी एक बोली। यह उसी समयमें कही जाती है जब रास्तेमें ईंटें और रोड़े पड़े रहते हैं।

जरीब (फा० स्त्री०) १ भूमि मापनेकी नाप। भारतीय जरीब ५५ गजकी और अंगरेजी जरीब ६० गजकी होती है। एक जरीब बीस गट्ठेके बराबर मानी गई है। क्षेत्रव्यवहार देखो। २ लाठी, छड़ी।

जरीबकश (फा० पु०) वह मनुष्य जो जमीन नापनेके समय जरीब खींचता है।

जरीबाना (हिं० पु०) जुरमाना देखो।

जरूथ (सं० पु०) जीर्यतीति जॄ-ऊथन्। १ माँस, गोश्त। २ जारणीय। ३ परुषभाषी, कटुभाषी।

जरूर (अ० क्रि० वि०) अवश्य, निःसंदेह।

जरूरत (अ० स्त्री०) आवश्यकता, प्रयोजन।

जरूरी (फा० वि०) १ प्रयोजनीय, जिसकी जरूरत हो। सापेक्ष, आवश्यक।

जरोल (हिं० पु०) बङ्गाल, चट्टग्राम और उत्तरीय नीलगिरिमें होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत, जहाज और तोपोंके पहिये बनानेके काममें आती है।

जर्कबर्क (फा० वि०) चमकीला, भड़कदार।

जर्जर (सं० पु०) जर्जति स्वगुणेनापरान् निन्दति जर्ज बाहुलकात् अरः। १ शैलज, पत्थरफूल। २ शक्रध्वज, इन्द्रकी ध्वजाका नाम। जर्ज्यते निन्द्यते कर्म्मणि बहुल-वचनादरः। ३ उजरातुर। ४ शैवाल, सिवार। ५ रक्तासीन। (त्रि०) ६ जीर्ण, जो बहुत पुराना होनेके कारण बेकाम हो गया हो। ७ विदीर्ण, फूटा, टूटा। ८ वृद्ध, बुड्ढा।

जर्जरानना (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्ति-केयकी अनुचरी एक मातृकाका नाम।

जर्जरित (सं० त्रि०) जर्जरं करोति जर्जर णिच्-कर्मणि क्त। १ जीर्णीकृत, जो पुराना हो गया हो। २ खण्डित, टूटा फूटा।

जर्जरीक (सं० त्रि०) जर्जति जीर्णो भवति जर्ज-ईकन्। १ बहुछिद्रविशिष्ट द्रव्य, जिसमें बहुतसे छेद हो गये हों। २ जरातुर, बहुत वृद्ध, बुड्ढा।

जर्जी—अंगरेज लोग जिनको George or St George कहते हैं, वे ही मुसलमानों द्वारा जर्जी कहाते हैं। मुसलमानोंके मतसे ये भी एक पैगम्बर हैं।

जर्डन—तुर्कस्थानको एक नदी। हर्मान् पहाड़के नीचे जहां कई एक शिलालिपियां लगीं, यह निकली और मेरोम झील, जूलिया शहर, टाइवेरिया झील, घलगोर उपत्यका आदि जगहों होती हुई बहरेलात या मृत समुद्रमें जा गिरी है। इसका पानी ईसाइयोंके लिये बहुत पवित्र है।

जर्णि (सं० पु०) जीर्य्यति क्षीणो भवति जृ-नन्। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ वृक्ष, पेड़। (त्रि०) ३ जीर्ण, पुराना।

जर्त (सं० पु०) जायतेऽस्मात् जन बाहुलकात् त प्रत्ययेन साधुः। १ योनि, भग। २ हस्ती, हाथी।

जर्त्तिक (सं० पु०) जृ-बाहुलकात् तिकन्। १ वाहीकदेश, प्राचीन वाहीक देशका एक नाम। २ उक्त देशका निवासी।

जर्त्तिल (सं० पु०) वनजात तिल, जङ्गली तिल।

जर्त्तु (सं० पु०) जायतेऽस्मात् जन तु। १ योनि, भग। २ हस्ती, हाथी।

जर्द (फा० त्रि०) पीत, पीला।

जर्दा (फा० पु०) जरदा देखो।

जर्दालु (फा० पु०) खूबानी नामकी मेवा।

जर्दी (फा० स्त्री०) पीलापन, पीलाई।

जर्दोज (हिं० पु०) जरदोज देखो।

जर्दोजी (हिं० स्त्री०) जरदोजी देखो।

जर्नल (हिं० पु०) जरनल देखो।

जर्भरि (सं० त्रि०) जृभ-गात्रविनामे अरिः। १ गात्रविनाशकर्त्ता, जंभाई लेनेवाला। २ स्तुतिकारक, प्रशंसा करनेवाला।

जर्मनी—मध्य यूरोपका एक प्रसिद्ध देश। १८७१ ई०में १८वीं जनवरीको उत्तर-जर्मन सङ्घ, दक्षिण जर्मनीके छोटे छोटे राज्य-समूह और फरासीसियोंसे जीते हुए आलसक एवं लोरेन इन सबको मिला कर जर्मन साम्राज्यका संगठन हुआ था। गत महासमरके कारण इसका विस्तार और पराक्रम सङ्कुचित हो गया है। १८१८ ई०को भार्सेलिसकी सन्धिके फलसे वर्त्तमान जर्मनी राजा संगठित हुआ है। परन्तु जर्मनीको अब आलसक और लोरेन प्रदेश फरासीसियोंको लौटा देना पड़ा है। इसका पूर्वकी तरफका कुछ हिस्सा पोलोंके स्वाधीन राज्यके साथ जड़ दिया गया है। उत्तरके स्लिज उइग हलष्टियानका बहुतसा अंश डेनमार्कको देना पड़ा है। दक्षिणका हल्टेजिन नामक छोटा जिला जेकोस्लोभाकिया नामक नवगठित राजाके हाथमें चला गया है। पश्चिमके इउपाल और मेलमिडो नामक दो स्थान बेलजियमको मिले हैं। इस प्रकार विभाग हो जानेके कारण अब पश्चिमकी राइन नदीने फरासीसी और जर्मनियोंको विभक्त कर रक्खा है। पूर्वमें पोलैण्ड राजाके गठित होने और वहांके कुछ प्रान्तदेशोंके स्वाधीन राजोंके संस्थापित होनेसे जर्मनीके साथ रुसियाका साक्षात् संस्रव कुछ भी नहीं रहा और न हो सकता है। वर्त्तमान समयमें जर्मनीके पश्चिममें हालैण्ड, बेलजियम, लक्सेमबर्ग, और फ्रान्स, दक्षिणमें सुइजरलैण्ड, अष्ट्रिया और जेकोस्लोभाकिया तथा पूर्वमें पोलैण्ड अवस्थित है।

नवगठित जर्मनराज्यका क्षेत्रफल ४७२०१४·६ वर्गमील है, परन्तु १८७१ ई०में इसका रकवा ५४०८५७·५ वर्गमील था। भार्सेलिसकी सन्धिका परिणाम यह हुआ कि जर्मनीको बड़े बड़े दस शहरोंसे हाथ धोना पड़ा, जिनमें पचीस पचीस हजार लोगोंका वास था। सन्धि होके कारण उसकी जनसंख्या ५५,७६८१२ घट गई है।

१८७१ ई०से जर्मनीकी लोकसंख्या क्रमशः बढ़ रही थी। १९१४ ई०में महासमरके प्रारम्भसे पहले जो गणना हुई थी, उससे मालूम हुआ है कि वहां ६,७,७६०,००० मनुष्योंका वास था। परन्तु महायुद्धमें १९१४ ई०से १९१८ ई० तक करीब १८०,००० मनुष्य मारे जानेके कारण जर्मनीकी बड़ी हानि हुई। १९१८ ई०के नवगठित जर्मनीमें ६०,८,२७,५७८ मनुष्य गिने गये थे, जिनमें २८,८८२,१३७ पुरुष और ३१,८५५,४४२ स्त्रियां हैं। इस तरह जर्मनीमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां हजार

पीछे ८८ ज्यादा हैं। पिछले युद्धमें बहुसंख्यक पुरुषोंके मर जानेसे स्त्री-पुरुषोंकी संख्यामें इस तरहका वैषम्य उपस्थित हुआ है। किन्तु यह तो निश्चित है कि युद्धसे पहले भी जर्मनीमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक थी; क्योंकि १८१० ई०की गणनाके अनुसार भी स्त्रियां हजार पीछे २६ अधिक थीं।

१८१० ई०की गणनाके अनुसार प्रतिशत ६१.६ मनुष्य प्रोटेष्टाष्ट वा एभेन् जेल्किल मतवादी, ३३.७ रोमन् कैथोलिक धर्मावलम्बी और ०.४४ ईसाई धर्मकी अन्यान्य शाखाओंके अनुयायी थे। इसके सिवा फी-सदी ०.८५ मनुष्य यहूदी धर्मके माननेवाले थे। १८१८ ई० की गणनामें इस विषयका विशेष विवरण नहीं मिलता। कारण, नवीन नियमके अनुसार वर्तमानमें जर्मनीका कोई भी व्यक्ति अपना धर्ममत बतलानेके लिए बाध्य नहीं है।

वर्तमानमें जर्मनीके अधिकांश लोग शिल्प और व्यवसायके कार्यमें नियुक्त हैं बाकीके लोग खेती करते हैं। १९१९ ई०की गणनाके अनुसार जर्मनीमें ४७,६४,०२८ आदमी बेकार बैठे हैं।

नव्य जर्मनीकी शासनपद्धति—१८७१ ई०में जब फ्रांस विजयके बाद नव्यजर्मन-साम्राज्य गठित हुआ था, उस समय उसकी शासनपद्धतिमें तीन प्रधान शक्तियां थीं; जैसे—कैसर उपाधिधारी सम्राट्, युक्तसाम्राज्य सभा (Federal council) और प्रतिनिधि-सभा। महामति बिस्मार्कने उस समय जिस पद्धतिकी सृष्टि की थी, उसमें गणतन्त्रवादका प्राधान्य नहीं था। हां, उन्होंने चतुराईके साथ, १८४८ ई०में जर्मनीके तरुण सम्प्रदायने जो प्रतिनिधि सभाके लिए जोर दिया था, उसकी स्थापना कर दी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि युक्तसाम्राज्य-सभाकी प्रतिनिधि-सभाकी अपेक्षा अधिक क्षमता दे कर उन्होंने गणतन्त्रकी गति मन्द करनेका प्रयास किया था। उक्त पद्धतिसे प्रूसियाको ही सबसे अधिक क्षमता प्राप्त हुई थी। उसके मतके विरुद्ध किसी कानूनका चलाना या किसी नवीन कार्यमें हस्तक्षेप करना असम्भव था। इसका कारण यह था कि उस समय प्रूसियामें समग्र जर्मन साम्राज्यके ⅔ अंश लोगोंका वास था और उसके समान सैन्यबल एवं सुशासन अन्यत्र कहीं भी न था। इसलिए प्रूसियाका राजा ही जर्मनीके सम्राट् पद पर अधिष्ठित किया गया था।

साम्राज्य-स्थापनके उपरान्त जर्मनीमें असाधारण आर्थिक और अन्य प्रकारकी विविध उन्नतियां होने लगीं, जिससे उक्त साम्राज्य पर लोगोंकी धारणा अच्छी हो गई। जितने भी छोटे छोटे राज्योंको ले कर यह साम्राज्य संगठित हुआ था, वे सभी मिल कर साम्राज्यकी उन्नतिके लिए कोशिश करने लगे।

गत महासमरके बाद जर्मनीने ऐसा पलटा खाया कि जर्मनीको अपने उद्धारके लिए नाना उपायोंका अवलम्बन करना पड़ा। एक पक्षवाले कहने लगे कि जर्मनीको युक्तत्व छोड़ देना चाहिए; प्रत्येक प्रदेशको स्वतन्त्रतासे शत्रुके विरुद्ध खड़े हो कर स्वाधीनताकी रक्षाके लिए प्रयत्न करना चाहिए। दूसरे पक्षवाले कहने लगे कि रूसियामें जैसे समस्त क्षमतापन्न व्यक्तियोंको मार कर समग्र जनसाधारणके हाथमें शासनका भार दिया गया है, उसी प्रकार जर्मनीमें भी बोलशेविक-प्रणालीसे राष्ट्रका संगठन होना चाहिए। इन दोनों ही मतोंमें आपत्ति थी। इससे यथार्थ मार्गपर आनेके लिए एक मात्र जातीय गणतन्त्र द्वारा शासित राष्ट्र स्थापन करनेके सिवा दूसरा कोई उपाय ही नहीं था। गणतन्त्रके लिए जर्मन लोग बहुत दिनोंसे आशा लगाये हुए थे। बिस्मार्कने अपनी कूटनीतिके द्वारा गणतन्त्रकी गति रोकनेके लिए काफी प्रयास किया; किन्तु वह समय ऐसी विपत्तिका था कि स्वतन्त्र राष्ट्रकी क्षमताको कायम रख कर किसीने भी उनकी पद्धतिका अनुसरण नहीं किया। वे समझ गये थे कि समग्र जर्मन जातिको एक राष्ट्रमें बिना बांधे उनकी शक्ति कभी भी केन्द्रीभूत हो कर शत्रुका सामना नहीं कर सकती। प्रूसिया पर बहुत समयसे जर्मनीके नेतृत्वका भार था, किन्तु अब जातिय कर्तव्यके सामने उसका वह सम्मान भी जाता रहा।

१९१८ ई०में ३० नवम्बरको जर्मनीमें नव-शासन-परिषद्‌के संगठनके लिए एक सभा संगठित हुई। बीस वर्षसे ज्यादा उम्रवाले प्रत्येक पुरुष और स्त्रीने अपनी सम्मति देकर उस सभामें प्रतिनिधि भेजे। शासनपद्धतिके

संगठनके लिए ६ फरवरी १९१९ ई०को सभा बुलाई गई। उसी साल ११ अगस्तको उइमार नामक स्थानमें जो शासनपद्धति संगठित हुई, उसे ही कार्यरूपमें परिणत करनेका निश्चय किया गया। 'जर्मन-साम्राज्य' यह नाम उठा कर अब उसे 'जर्मनरीक्' यह नवीन नाम दिया गया।

१८७१ ई०की शासनपद्धतिके प्रारम्भमें ही लिखा था कि, वह प्रूसियाके राजाके नेतृत्वाधीनमें राजन्यमन्डली के द्वारा गठित हुआ। और नव-पद्धतिमें, इस बातको समझानेके लिए कि यह राजाओंको नहीं बल्कि जनसाधारणकी है, यह घोषित किया गया—जर्मन जातिने एकत्र हो कर अपने राष्ट्र वा रिकमें न्याय और स्वाधीनताके प्रवर्तनकी इच्छासे अन्तर्भाग और बहिर्भाग शान्ति-स्थापन एवं सामाजिक उन्नतिके लिए यह पद्धति संगठित की।

जर्मनीने इस बार किसी भी राजाकी अधीनता स्वीकार न की : अपना शासन स्वयं करेंगे, ऐसा निश्चय किया। उन्हें आन्तर्जातिक सम्मिलनीमें अभी तक स्थान नहीं मिला, किन्तु उनकी शासन-पद्धतिमें पहले ही लिखा है कि वे अन्तर्जातिक विधिको पूर्णतया मानते हैं।

गणतन्त्रनीति स्थापित करनेके लिए उन लोगोंने दो रीतियां ग्रहण की है ; प्रथमतः रिकष्टेग और रिक्स्प्रेसिडेण्ट नामक दो प्रतिष्ठान और द्वितीयतः समस्त विषयोंमें और सब समय जनसाधारणका मतामत जाननेके लिए Referendum Initiation (जो सुइजरलैण्डमें बहुत दिनोंसे प्रचलित था) का प्रवर्तन किया।

नव-पद्धतिके अनुसार बीस वर्षसे ज्यादा उम्रवाले पुरुष और स्त्री सभी भोट देनेके अधिकारी हो सकते हैं और पचीस वर्षसे ज्यादा उम्रवाला कोई भी व्यक्ति प्रतिनिधिपदका प्रार्थी हो सकता है। जर्मन-राष्ट्रके सभापतिका चुनाव भी सर्वसाधारणकी भोटके अनुसार होगा। यहां Proportional Representation रीतिका प्रवर्तन होनेसे जिन लोगोंकी शक्ति अल्प है, वे भी भोट-युद्धमें न्याय विचार पाते हैं।

जर्मनीकी प्रतिनिधि-सभा फिलहाल ४ वर्षके लिए चुनी जाती है। प्रतिनिधिकी संख्याकी कोई हद नहीं हैं, जनसंख्याके अनुसार उसकी संख्या हुआ करती है। प्रतिनिधिसभा अन्य किसी प्रतिष्ठान वा Political body के आह्वान पर निर्भर नहीं है। यह अपनी इच्छाके अनुसार एकत्र हो कर जातीय कार्य सम्पादन कर सकती है। जर्मन रिकके सभापति ७ वर्षके लिए चुने जाते हैं। ३५ वर्षसे ज्यादा उम्रके पुरुष वा स्त्री हर एक व्यक्ति इस पदका प्रार्थी हो सकता है। सभापति-निर्वाचन जनसाधारणके द्वारा ही होता है, उसमें प्रतिनिधिसभा कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करती, परन्तु उसका प्रत्येक कार्य प्रतिनिधि-सभाके अनुमोदनानुसार होना चाहिये। वे चाहे प्रतिनिधि-सभाके सभ्य हों वा न हों, हर एक व्यक्तिको मंत्रित्व दे सकते हैं। परन्तु वह मन्त्री प्रतिनिधि-सभाका विश्वासभाजन होना चाहिए। प्रतिनिधि-सभाका विश्वास उठ जाने पर प्रत्येक मन्त्रीको अपने कार्यसे अवसर ग्रहण करना पड़ता है। सभापति पर वे ही भार दिये जाते हैं, जो साधारणतः राष्ट्रपति पर न्यस्त किये जाते हैं।

नव्य जर्मनी एकमात्र महासभाके द्वारा परिचालित है। जैसे इंग्लैण्डमें हाउस् आफ लार्डस् है, फ्रान्स और इटलीमें सिनेट है, सुइजरलैण्ड और अमेरिकामें सिनेट वा Federal council है, उस प्रकार जर्मनीमें कुछ भी नहीं है। स्वतन्त्र प्रदेशके प्रतिनिधियोंने यहां कोई स्वतन्त्र प्रतिष्ठानका संगठन नहीं किया। हां, जनसंख्याके अनुसार कुछ प्रदेशोंमें उनके प्रतिनिधि अवश्य भेजे जाते हैं। इन प्रतिनिधियोंकी सभा जनसाधारणकी प्रतिनिधि सभा वा Reichstag के अधीन है। इसको Reichsrat कहते हैं। फिलहाल इसमें ६५ भोट हैं, जिनमें २६ भोट प्रूसियाके हैं। हरएक कानूनका कच्चा चिट्ठा इसीमें पेश किया जाता है। परन्तु Reichsrat के बिना अनुमोदन किये ही वह चिट्ठा Reichstag में पेश किया जा सकता है। Reichstag द्वारा अनुमोदित कानूनको अगर Reichsrat पसन्द न करे, तो उस पर प्रथमोक्त सभा पुनः विचार करती है। उस पर यदि ⅔ अंश सभ्य सम्मति दें, तो वह आइन रूपसे ग्रहण किया जाता है। सभापति महाशय चाहें तो प्रतिनिधिसभाके आइनको अस्वीकार नहीं कर सकते।

जर्मनीकी वर्तमान अवस्था—महायुद्धके कारण जर्मनीकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई है। खाद्य और शिल्पद्रव्यके यथेष्ट उत्पन्न न होनेसे जर्मनीकी दुर्दशाकी सीमा नहीं रही है। इसके सिवा वार्साईकी सन्धिके अनुसार जर्मनीको युद्धकी क्षतिपूर्तिके लिए जिम्मेवार होना पड़ा है। उसके लिए रुपये संग्रह करनेमें जर्मनीको काफी कोशिश करनी पड़ रही है। प्रथमतः नये ढंगसे बहुत ज्यादा कर लगा कर रुपये उगानेकी व्यवस्था हुई है। शिल्पी, महाजन, व्यवसायी और धनाढ्य सम्प्रदायसे बहुत कर वसूल किया जा रहा है। छोटे छोटे कारखानेवाले ज्यादा मालगुजारी देनेमें असमर्थ हैं। सब मिल कर कम्पनी बना लें और फिर व्यवसाय करें, तो अधिक लाभ होगा एवं साथ ही गवर्मेण्टको ज्यादा मालगुजारी भी दे सकेंगे; इस अभिप्रायसे जर्मन लोग अब कम्पनी बना कर व्यवसाय करते हैं।

जर्मन-समाजमें युद्धके समय तक "ट्रष्ट" वा जातीय यौथ-व्यवसाय प्रचलित नहीं था कहनेसे अत्युक्ति न होगी। जर्मन लोग साधारणतः छोटे छोटे व्यक्तिगत कारोबार करना पसन्द करते थे। परन्तु फिलहाल वे यौथ-व्यवसाय करनेके लिए बाध्य हुए हैं। यह देख इङ्गलैण्ड, अमेरिका और फ्रान्सके धनी लोग डर गये हैं।

एशिया और अफरीकासे जर्मन-राष्ट्र अब निर्वासित है। जर्मनीके अधीन फिलहाल कोई भी उपनिवेश शासित वा पोषित नहीं हो रहा है। इसलिए 'कुदरती माल'के विषयमें जर्मनी अब अन्यान्य देशोंका मुंहताज है। विशेष कर राइन और सिलेशिया इन दो प्रदेशों पर जर्मनीका तनिक भी कब्जा नहीं है। इसलिए उक्त प्रदेशोंकी शिल्प-सम्पत्ति जर्मनीके हाथ नहीं लगती। ऐसी दशामें जर्मन महाजन लोग परस्परका ईर्ष्या द्वेष भूल कर जातीय उन्नतिके लिए सङ्घबद्ध होंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है? सस्ते दाममें माल न बेचनेसे जर्मनीको अन्य देशोंसे शिल्प-संग्राममें हार जाना पड़ेगा और बड़े कारखानोंके बिना माल सस्ता बन नहीं सकता; इसलिए आजकल जर्मनीने कुदरती मालसे ले कर फैक्टरीमें माल बनाने और उसे जहाज पर रख कर दक्षिण अमेरिकाके ग्रामों और शहरोंमें भेजने तकके सभी काम बड़े बड़े सङ्घों पर सौंप दिये हैं। बिजली, चीनी, रासायनिक और लोहेके कारखानोंमें 'ट्रष्ट' संगठित हो गये हैं।

रूसियाके साथ जर्मनीका व्यवसाय क्रमशः उन्नति कर रहा है। लाखों आदमी रूसियासे भाग कर जर्मनीमें रोजगार करने लगे हैं। बार्लिन उन भागे हुए रूसियोंका एक प्रधान केन्द्र है। रूसियाके किसान तक अपने देशमें जिस शिल्पका व्यवहार करते हैं, उसमें भी यथेष्ट निपुणता पाई जाती है। युद्धसे पहले यूरोपके लोग उन चीजोंका काफी आदर करते थे। फिलहाल जर्मनीने अपने देशमें ही रूस-शिल्पका बाजार लगा दिया है। अब जर्मनीमें घर घर रूसके किसानोंके हाथकी बनी हुई चीजें नित्य व्यवहारमें आती हैं। विशेषतः जर्मनीसे यह रूसका शिल्प यूरोपके अन्यान्य देशों तथा अमेरिकामें भी पहुंच रहा है।

जर्मनी ही इस समय रूसकी सभ्यता और उत्कर्षका संरक्षक है। जर्मनीमें पहुंचनेसे रूसियाकी सरहदमें पहुंचना बहुत सहज है। जर्मनीमें रूस-साहित्यका खूब प्रचार है। रूस-भाषाके कई एक दैनिक संवादपत्र भी बार्लिनसे प्रकाशित होने लगे हैं।

जर्मनीमें सिक्केका बाजार डमाडोल है। एक विलायती पाउण्डके बदले एक वा डेढ़ हजार मार्क तो हरवक्त मिलते हैं। इसके सिवा किसी किसी सप्ताहमें एक पाउण्ड पर दश हजार मार्क तक लग जाते हैं। विदेशी लोग जो पाउण्ड भुना कर एक बारगी मार्क ले लेते हैं, उन्हें पीछेसे पछताना पड़ता है। सिक्कोंके साथ साथ चीजें भी मंहगी होती जाती हैं, जिससे वहांके अधिवासियोंके कष्टकी सीमा नहीं है। यहां विदेशी सिक्के नहीं आते और इसीलिए दूसरा कोई उपाय न होनेके कारण सबको मंहगीमें ही गुजर करनी पड़ती है।

मध्यवित्त जर्मन-परिवारकी आर्थिक अवस्था यत्परोनास्ति शोचनीय है। उक्त श्रेणीका जीवन वा सौजन्य शिष्टाचार इत्यादिकी ओर दृष्टि डालनेका फिलहाल उनको अवसर ही नहीं है। जर्मनीसे श्रीयुक्त विनयकुमार सरकारने जो विवरण भेजा है, उसे यहां उद्धृत

कर देनेसे ही जर्मनीकी वर्तमान परिस्थितिका पता लग जायगा—

"एक सम्भ्रान्त जर्मन महिला यह कहते हुए रोने लगी कि, युवा अवस्थामें मैं फरासीसी, इटाली, रूस और अंग्रेजी भाषा सीख रही थी, सङ्गीत सिखानेके लिए भी एक शिक्षक नियुक्त था, मेरी बहन चित्र बनानेमें निपुण है; सुकुमार शिल्पमें उसका खूब यश था, बार्लिनके उच्चपदस्थ समाजमें हमारे कुटुम्बस्वजन हैं, कहना फिजूल है कि दासदासियोंकी भी मेरे घर कमी न थी। पीछे वह फिर कहने लगी—'अब मेरी ऐसी अवस्था है कि, विदेशी लोगोंके लिए अपने रहनेका मकान तक खाली कर दिया है। उनकी सेवा करना यही मेरा एकमात्र कार्य है। उन लोगोंको मकानमें ठहरा कर मैं जो रोजगार करती हूं, उसके बिना मेरी गृहस्थीका खर्च नहीं चल सकता। इसलिए मुझे उनकी मरजीके मुताबिक काम करना पड़ता है। एक मुहूर्तके लिए भी मैं स्वाधीन नहीं हूं। मैं साहित्य, शिल्प, सङ्गीत, देश सेवा, सामाजिकता सब कुछ भूल गई हूं। युद्धके पहले जिन विदेशियोंको चोर, बदमाश, धोखेबाज समझ कर उनकी छायासे दूर रहती थी, आज उन्हींकी सेवा कर रही हूं।" वास्तवमें बार्लिनके प्रतीक मध्यवित्त परिवारको ही आज विदेशी अतिथियोंकी चाकरी बजानी पड़ रही है।"

गत युद्धमें ब्रिटिश-साम्राज्य ही जर्मनीका सर्वप्रधान और एक ही शत्रु था। किन्तु जर्मनीकी वर्तमान अवस्थाको देख कर इस बातको बिलकुल भूल जाना पड़ता है। आजकल अङ्गरेजोंको जर्मन परम मित्र समझते हैं। बहुतसे जर्मन राष्ट्र-नायक इस मतका पोषण करते हैं कि, ब्रिटिश-साम्राज्यकी क्षमताके ह्रास होनेसे जर्मनीकी हानि होगी। भारतीय स्वराज और महात्मा गान्धीकी अपूर्व कृतकार्यताका संवाद सुन कर बहुतसे उच्चपदस्थ जर्मन डर गये हैं। मिश्र, भारतवर्ष आदि देशोंकी स्वाधीनता मिलनेसे ब्रिटिश-जाति दुर्बल हो जायगी यह विचार कर बहुतसे जर्मन जननायक दुःखित हो रहे हैं। जर्मनी-प्रवासी उक्त बंगाली महाशयका कहना है—"यह सहजमें ही समझ सकते हैं कि एशियावासियोंमें विद्रोह उपस्थित होने पर उसके निवारणके लिए ब्रिटिश साम्राज्य अवश्य ही जर्मनीकी सहायता प्राप्त करेगा।"

जर्मनीमें फिलहाल विद्या, व्यवसाय, संवादपत्र-परिचालन आदि नाना विभागोंमें यहूदियोंने ही प्रधान स्थान अधिकार किया है। इसलिए जर्मन लोग उन पर बहुत नाराज रहते हैं। सुना जाता है कि इस समय जर्मन-राष्ट्रमें भी यहूदियोंका प्रभाव अधिक है। असली ईसाई जर्मनीमें बहुत कम लोग ही गणतान्त्रिक वा रिपब्लिक पन्थी हैं। जर्मनके लोग प्रायः सभी राजभक्त हैं। ये लोग कैसरको पुनः राजा बनानेके लिए उत्सुक हैं। कमसे कम रिपब्लिककी जगह राजतन्त्रको पुनः कायम करनेके लिए इन लोगोंका छिपी तौरसे आन्दोलन जारी है। कैलनके "जाइटुङ्ग" और बार्लिनके "क्राइटुङ्ग" आदि संवादपत्रोंका सुर एकसा ही मालूम पड़ता है। इन पत्रोंकी खपत अच्छी है, प्रत्येककी पचास हजार प्रतियां बिक जाया करती हैं।

इतिहास हम लोग जहां तक अनुमान करते हैं कि जर्मनीका ऐतिहासिक विवरण तभीसे आरम्भ है, जबसे जूलियस सीजर ई० सन्के ५८ वर्ष पहले गौलके शासक नियुक्त हुए थे। इससे कुछ पहले जर्मनीका विशेष सम्बन्ध दक्षिण प्रदेशोंसे था और भूमध्यसागरसे अनेक यात्री समय समय पर यहां आते थे, किन्तु उनके भ्रमण-वृत्तान्तका पूरा पता नहीं चलता है। पहले पहल टिउटोनिक लोगोंने दूसरी शताब्दीके अन्तमें इलिरिया, गौल और इटली पर आक्रमण किया था। जब सीजर गौल पहुंचे, तब वह समग्र पश्चिमी भाग जो अब जर्मनी कहलाता है गौलिश वंशके अधिकारमें था। सीजरके आनेके पहले जर्मनीको एकदल सेनाने राइन पर जो जर्मन और गौल लोगोंकी उत्तरीसीमाके रूपमें अवस्थित था चढ़ाई कर दी और उसे अधिकृत कर वहां वे रहने लगे। इस समय गौल लोग जर्मनसे बहुत उत्पीड़ित किये जा रहे थे, तब सीजरने पहले पहल जर्मनीके राजा आरियोविसतसके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। ई०सन्के ५५ वर्ष पहले उन्होंने उसीपेट और टेनकेटेरीको जो निम्न राइनसे आये हुए थे

मार भगाया। सीजरने अपने शासनकालमें समस्त गौल तथा राइन पर अपना अधिकार जमा लिया।

राइनके पश्चिममें जो गौलिश वंशके लोग रहते थे, उनमेंसे ट्रीवेरी प्रधान थे। इनका वास विशेष कर मोसेलीमें था। इन्हीं लोगोंके रहनेके कारण शहरका नाम ट्रायर पड़ा है। अलसेसके दक्षिणमें रौरसी ट्रेवेरीके दक्षिणमें संडिग्रोमेट्रिसी और पश्चिममें सेक्केनी वंशके लोग रहते थे। ट्रेवेरी लोग और बेलजियमवासी अपनेको प्रधान जर्मन बतलाते थे। उनमेंसे बेलजियमके नेरवी श्रेष्ठ और बलिष्ठ थे। किन्तु सीजर कहते हैं कि बेलजियमके कोनड्रूसी, इबुरोन केरेसी और पेलनी वंश ही यथार्थ जर्मन हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि ये सबके सब केलटिक थे।

औगस्तसके समयमें मरकोमनीके राजा मरोवोदुश्रस जर्मनीके पराक्रमी शासक थे। उनका आधिपत्य सुएविक तथा पूर्वी जर्मनीके लोगों पर अच्छी तरह विस्तृत था। किन्तु थोड़े समयके बाद चेरुसीके राजकुमार आरमिनियसके साथ इनकी लड़ाई छिड़ी, जिसमें ये परास्त हो गये और राजसिंहासनसे च्युत कर दिये गये। पहली शताब्दीकी पश्चिमी जर्मनीमें चौसी और चत्ती नामके दो वंश बहुत प्रभावशाली निकले। तीसरी शताब्दीके आरम्भमें जर्मनीके दक्षिण-पश्चिम भागमें अलमनी नामक एक पराक्रमी वंशने प्रवेश किया। इसी समय दक्षिण-पूर्वमें गोथ लोग भी आ गये। आनेके साथ ही उनका प्रभाव उक्त स्थानोंमें खूब फैल गया। बाद तीसरी शताब्दीके मध्य भागमें फ्रैंक लोग यहां आये।

४थी शताब्दी तक पश्चिम जर्मनीमें फ्रैंक और अलमनीका अधिकार खूब बढ़ा चढ़ा था। इसी समय सैक्सनने भी आ कर उत्तरी और पश्चिमी जर्मनी पर चढ़ाई कर दी और फ्रैंकको मार भगाया। चौथी शताब्दीके मध्यभागमें गोथ लोगोंका ही पूर्व जर्मनीमें एकाधिपत्य था। उन लोगोंके राजाका नाम हरमनरिक था जिनका राज्य कृष्णसागर (Black sea)से ले कर होलस्टीन तक विस्तृत था। उनकी मृत्युके पश्चात् पूर्व जर्मनी हूनोंके हाथ लगा। पांचवीं शताब्दीमें पश्चिमसे अलमनी और मरकोमनीके वंशजोंने रोम प्रदेश पर धावा किया और पूर्वसे वनदलने सुएवी और नव-ब्युटोनिक अलनीको साथ ले कर गौल पर चढ़ाई कर दी। ४३५-४४० ई०में बरगनडियन अट्टिलासे परास्त किये गये और उन लोगोंके राजा गुन्थकरियस मार डाले गये। इसी समय फ्रैंकने प्राचीन बेलजियम पर आक्रमण किया और उसे ले लिया। ४५३ ई०में अट्टिलाके मरने पर हूनोंकी शक्ति बहुत ह्रास हो गई।

६ठी शताब्दीमें यहां फ्रैंकोंकी खूब चलती थी। उन्होंने उत्तर बभेरियाको जीत लिया और उन लोगोंके राजा क्लोविसने ४८५ ई०में अलमनीको पराजय किया था। इस तरह भिन्न भिन्न वंशके राजाओंने जर्मनीमें यथाक्रम राज्य किया।

४८१ ई०को क्लोवियोंके शासनकालमें जर्मनी पांच प्रधान जिलोंमें विभक्त था और हर एक जिला तीन सौ वर्ष तक भिन्न भिन्न वंशके राजाओंके अधीन रहा। उत्तर-पूर्वमें सैक्सनका दक्षिण पश्चिममें अलमनीका और दक्षिण-पूर्वमें बभेरियोंका आधिपत्य था। अब क्लोभियोंका ध्यान पूर्व जर्मनकी ओर आकर्षित हुआ। वहां जा कर उन्होंने अलमनीसे लड़ाई ठान दी जिसमें अलमनीकी हार हुई। ५११ ई०में क्लोभियोके मरने पर उनका लड़का थ्युडेरिच राजा हुआ। पीछे पिपलिन और उनके लड़के चार्लस मारटलने जर्मनोंको युद्धमें परास्त कर अपना आधिपत्य मध्य जर्मनीमें फैलाया। इन्हींके समयमें समस्त जर्मनीमें ईसाई धर्म प्रचलित हुआ। इस धर्मके प्रचारके लिये अनेक पादरी नियुक्त किये गये और बहुतसे गिरजे बनावाये गये।

चार्लस मारटलके बाद उनके लड़के चार्लमैन राजा हुए। इनके समयमें समस्त जर्मनीमें एक जातीय सङ्गठन हुआ जिससे सभी लोगोंमें उन्नतिकी आभा झलकने लगी। इनके बाद प्रथम लुइ जर्मनीके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समयमें कोई विशेष घटना न हुई। बाद प्रथम कोनार्ड राजा हुए। इनके समयमें ड्युकका प्रभाव खूब बढ़ा चढ़ा था। वे अपनेको स्वतन्त्र समझते थे। किन्तु प्रथम हेनरी दो फौलरमें वे परास्त कर दिये गये और उनका सभी अधिकार छीन लिया

गया। जर्मनोमें जितने राजा हो गये हैं, सभोमें ये हो शूरवीर थे। इनके समयमें सामरिक विभागको खूब उन्नति हुई जिससे विदेशो राजा लोग इस देश पर आक्रमण करनेका साहस नहीं कर सकते थे। इनको मृत्यु ८३६ ई०के जुलाईमफ्लोनेमें हुई। बाद प्रथम ओटो जर्मनो के राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उस समय उनको उमर केवल चोबीस वर्षको थो। ठनकमर नामके इनके एक सौतेला भाई था जिसने राजाके यथार्थ अधिकारीका दावा करते हुए उनसे लड़ाई ठान दी। ओटोको जीत हुई और वे निष्कण्टक राज्य करने लगे। थोड़े समयके बाद इन्हें फ्रांसके राजा ४र्थ लुइसे लड़ना पड़ा था। ये कट्टर ईसाई थे। इनके समयमें भी ईसाई धर्मका खूब प्रचार हुआ। ८७३ ई०में २य ओटो जर्मनोके राजा और रोमके सम्राट्के पद पर सुशोभित हुए। ८७४ ई०में बहुतसी सेनाको साथ ले वे फ्रांसकी राजधानी पेरिसको ओर अग्रसर हुए, किन्तु बाध्य हो कर इन्हें लौट आना पड़ा। ८८० ई०में दोनोंमें सन्धि हो गई। ८८० ई०में ये इटलोको गये और वहांसे फिर कभी लौट कर नहीं आये। ८८३ ई०में इनके लड़के ३य ओटो राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समयमें राज्य भरमें बहुत गोलमाल मचा। इनके मरने पर १००८ ई०में २य हेनरी राजा हुए। सिंहासन पर बैठनेके साथही इनका ध्यान सबसे पहले राजशासनको ओर आकर्षित हुआ। इन्हींके समयमें लोरीनमें दश बड़ो बड़ो लड़ाइयां लड़ो गईं जिनमें बहुतोंको खूनखराबो हुई। इनको मृत्युके पश्चात् कम्बमें एक सभा हुई जिसमें २य कोनराड राजा चुने गये। १०२४ ई०में ये राज्यसिंहासन पर बैठे। इनके सौतेले लड़के २य अरनेस्टने इनके राज्यकार्यमें बहुत बाधा डालो और कई बार भावी उत्तराधिकारो होनेके लिये इनसे लड़ भी पड़े। किन्तु उसकी सब चेष्टाएं निष्फल हुईं। कनाडने जीतेजो अपने लड़के ३य हेनरीको राज्यभार सौंपा। ये शान्तिप्रिय राजा थे। इनके समयमें समस्त जर्मनोमें शान्ति विराजती थी, लड़ाई दंगे बहुत कम होते थे। इनके राजत्वकालके प्रारम्भमें सम्पूर्ण यूरोपका गिरजोंकी दशा शोचनीय हो गई थी। लेकिन इनके यत्नसे उनका पुनरुद्धार किया गया। १०४६ ई०में एकदल सेनाके साथ ये इटली गये थे। १०५६ ई०में इनको मृत्यु हुई थी। पीछे इनके लड़के ४र्थ हेनरीके नामसे राजसिंहासन पर बैठे। नाबालिग अवस्थामें इनकी माता महारानी आगनस राजकार्य चलाती थी। इन्होंने कईएक दुर्ग बनवाये थे। राज्य शासनकी ओर इनका अच्छा ध्यान था। १०८४ ई०में इन्होंने इटलीसे लड़ाई ठान दी और उसी साल ये वोबर्टसे रोमके सम्राट् बनाये गये। इनके मरने पर इनके लड़के ५म हेनरीके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका सारा समय लड़ाईमें ही व्यतीत हो गया, क्योंकि इन्हें कई बार फ्लाण्डर, बोहेमिया, हङ्गरी और पोलेण्डसे लड़ना पड़ा था।

५म हेनरीकी मृत्युके साथ साथ फ्रनकोनियन वंशका भी लोप हो गया। उसी साल ११२५ ई०में सैक्सनोके ड्यूक लोथैर जर्मनीके राजा निर्वाचित हुए। पहले पहल इन्हें बोहेमियासे युद्ध करना पड़ा था। ११३३ ई०में इटली जाकर इन्होंने २य इनोसेण्ट नामक पोपसे राज्यमुकुट प्राप्त किया था। ११३७ ई०में इटलीसे लौट आने पर इनका प्राणान्त हुआ। पीछे ११३८ ई०में फ्रैङ्कोनियाके ड्यूक कोनरद सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समयमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई। ११५२ ई०में बम्बर्गमें ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे स्वावियाके भूतपूर्व ड्यूक फ्रेडरिकके पोते बरबरोस १म फ्रेडरिक नाम धारण कर जर्मनोके राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। तीनवर्ष राज्य करने बाद ये रोमका सम्राट् बननेके लिये आल्पस पर्वत पार कर गये। इनका अधिकांश समय इटलीमें ही व्यतीत होता था। रावन लैण्ड आदि स्थानोंमें शान्ति स्थापन करनेके बाद ये ११५७ ई०में पोलेण्ड गये थे। इनके समयमें शहरोंकी उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी। हेनरी-दी-लायनके जानी दुश्मन थे। जो कुछ हो इनके समय प्रजा आनन्दसे समय बिताती थी। इनकी मृत्युके बाद ११६८ ई०में इनके लड़के ६ष्ठ हेनरी राजा हुए। इस समय सब जगह शान्ति विराजती थी, अतः किसीसे इन्हें लड़ाई न करनी पड़ी, तथा इनके समय और कोई विशेष घटना न हुई। अब ४र्थ ओटो

पुनः जर्मनीके राजा निर्वाचित हुए। सभी राजाओं तथा पोपोंने इन्हें स्वीकार किया। समस्त जर्मनीमें कोई गड़बड़ी न थी, सब कोई चैनसे रहते थे। लेकिन ऐसा सब दिन न रहा। १२०८ ई०में रोममें सम्राट्का पद पा कर ये पोपोंके विरुद्ध अपने इच्छानुसार आचरण करने लगे। इस पर उन्होंने राजाको दण्ड देनेके लिये ६ष्ठ हेनरीके लड़के फ्रेडरिकको जो उस समय सिसिलीमें रहते थे राजा बनाया। ओटो भाग कर इटली चले गये। फ्रेडरिक अधिक दिन राज्य न करने पाया था कि १२१८ ई०में उनका देहान्त हो गया। पीछे २य फ्रेडरिक राजा हुए। ये कमजोर राजा थे सही किन्तु साहित्य, शिल्प तथा वैज्ञानिक शास्त्रमें इनका अच्छा प्रवेश था। पिताकी मृत्युके बाद ४र्थ कोनरद राजसिंहासन पर बैठे, किन्तु १२५१ ई०में वे इटलीमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये। पीछे जर्मनीका कौन राजा होगा, इसके लिये बहुत गड़बड़ी मची। अन्तमें होलेण्डके विलियम बहुतोंकी सलाहसे राजा बनाये गये। उन्होंने बहुत दिन राज्य करने नहीं पाया था, कि १२५६ ई०में वे विपक्षियोंसे मार डाले गये। अब वहां दो दल तैयार हो गये। एक दल स्वावियाके फिलिपके पोते १०म अलफोनसो (कासटाइलके राजा) को जर्मनीके राजसिंहासन पर बैठाना चाहता और दूसरा ३य हेनरीके भाई रिचार्डको जो कोर्नवालके आर्ल थे। किन्तु रिचार्डके पक्षको ही संख्या अधिक थी, इसलिये वे ही १२५७ ई०में जर्मनीके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इस समय आपसमें मतभेद रहनेके कारण जर्मनीमें अशान्ति फैल गई। सभी कर्मचारी अपने इच्छानुसार कार्य करने लगे। प्रजाकी भलाईकी ओर किसीका लक्ष्य न था। कई एक देश भी स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकारकी अराजकता जर्मनीमें और कभी नहीं हुई थी। १२७२ ई०के एप्रिल मासमें रिचार्डकी मृत्यु होने पर १०म पोप गेगरीने राजनिर्वाचक-कमिटीसे कहा कि "यदि आप लोग जर्मनीके लिये एक उपयुक्त राजा न चुनेंगे, तो मैं स्वयं ही अपनी इच्छासे किसी योग्य पात्रको राजसिंहासन पर बैठाऊंगा।' यह सुन कर सब कोई डर गये। अन्तमें सभीकी सम्मतिसे हैप्सबुर्गके काउण्ट रुडोलफ राजा बनाये गये। ये बड़े शूरवीर निकले उन्होंने अपने बाहुबलसे राज्यका जो उस समय प्रायः अधःपतनसा हो गया था उद्धार किया। इस कारण उन्हें सब कोई जर्मनी राजाका सुधारक कहा करते थे। अपने जीतेजी ये राजसिंहासन पर अपने लड़के एलवर्टको बैठाना चाहते थे, किन्तु ऐसा न हुआ। १२९१ ई०के जुलाई मासमें इनके मरने पर इनके लड़के एलवर्टको राजा न बनाकर पोपोंने नसौके काउण्ट अडोल्फको ही राजा बनाया। किन्तु ये बहुत कायर थे, राजकार्य अच्छी तरह चला नहीं सकते थे। फिर भी अशान्ति फैल जानेकी सम्भावना थी, किन्तु उसी साल १२९८ ई०में ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। इसी अवसरमें १२८८ ई०को रुडोलफके सुयोग्य पुत्र प्रथम एलवर्ट राजा निर्वाचित हुए। इन्होंने अपने पिताके नियम अनुसरण कर राज्यकी बहुत कुछ उन्नति की। अच्छा राजा होने पर भी इनके अनेक विपक्षी हो गये जिन्होंने उन्हें १३०८ ई०में मार डाला। पीछे लक्समबुर्गके काउण्ट हेनरी ७म हेनरीके नामसे राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने अपने लड़के जोनको बोहेमियाका राजा बनाया। १३१० ई०में ये थोड़ी सेनाको साथ ले इटली गये और वहीं लड़ते लड़ते १३१३ ई०में मारे गये।

हेनरीको मृत्युके बाद निर्वाचकोंने सोचा कि यदि इस समय इनके लड़के जोन राजसिंहासन पर बिठाये जांय तो जर्मनी राज्य उनका पैतृक हो जायगा, इस डरसे उन्होंने किसी दूसरेको राजा बनाना चाहा। इस बार भी दो दल हो गये। बहुमतसे अपर बवेरियाके ड्यूक ४र्थ लुइ और अल्पमतसे प्रथम एलवर्टके लड़के फ्रेडरिक दी-फेयर राजा निर्वाचित हुए। इस कारण ९ वर्ष तक दोनोंमें लड़ाई होती रही। अन्तमें १३२२ ई०के सितम्बर मासमें फ्रेडरिक म्यूहलडोर्फकी लड़ाईमें सम्पूर्णरूपसे पराजित हुए। इस समय भी आपसमें मतभेद हो जानेसे जर्मनीकी दशा शोचनीय हो गई। लुई अयोग्य तथा अभिमानी राजा थे। इस कारण पोप भी इनसे बहुत विरक्त हो गये और इन्हें पदच्युत करनेकी इच्छा ठानी। इधर लुईने भी पोपकी अधीनता स्वीकार नहीं करनेकी इच्छासे १३२७ ई०में इटली गये। १३२८ ई०में उन्होंने इटलीका राज

मुकुट धारण किया और उन्हीं लोगोंकी सहायतासे पोप जोनको पदच्युत कर उनके स्थान पर कोरवाराके पीटरको पोपके पद पर नियुक्त किया। १३४८ ई०में इनकी मृत्यु हुई। पीछे १३४६ ई०के जनवरी महीनेमें ४र्थ चार्लस जर्मनीके राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने अच्छी तरहसे राज्य चलाया। आपसका मतभेद जाता रहा। ये थोड़े ही समयमें जर्मनी, बोहेमिया, लोमबरडी और बरगण्डीके भी राजा थे। इन्होंने निम्न लुसातिया और साइलेसियाके कुछ भाग बोहेमियाके अन्तर्गत कर लिये थे। इनके मरने पर इनके लड़के वेनसेसलस १३७८ ई०में राजा बनाये गये। इनके समयमें स्वीसका घोरतर युद्ध हुआ था। इनकी मृत्युके पश्चात् रुपर्ट कुछ काल तक जर्मनीके राजा था। निःसन्तान अवस्थामें इनकी मृत्यु हो जाने पर इनके चचेरे भाई जोवस्त और सिगिसमुण्डमें राजा पानेके लिये विवाद आरम्भ हुआ। किन्तु १४११ ई०में जोवस्तके मर जाने पर सिगिसमुण्ड ही राजा बनाये गये। इन्होंने दूसरे दूसरे राजाओंसे चौथ वसूल कर अपने राजाकी आय बढ़ानेकी खूब चेष्टा की थी, लेकिन वे इसमें कृतकार्य न हो सके। १४३७ ई०में इनका देहान्त हुआ। पीछे इनके जमाई अष्ट्रियाके एलबर्ट राजसिंहासन पर बैठे। ये केवल जर्मनीके ही राजा न थे वरन हंगरी और बोहेमिया भी इन्हींके अधिकारमें था। राज्यशासनकी ओर इनका अच्छा लक्ष्य था। १४३८ ई०में इनका देहान्त हो जाने पर इनके आत्मीय ष्टीरीयाके ड्यूक फ्रेडरिक ४र्थ फ्रेडरिक नामसे जर्मनीके राजसिंहासन पर बैठे। १४५२ ई०में जब इन्हें रोमकी गद्दी मिली तब ये ३य फ्रेडरिक नामसे प्रसिद्ध हुए। अष्ट्रियाके इतिहासमें इनका नाम बहुत मशहूर हो गया है सही किन्तु जर्मनी देशकी दशा इनके समयमें बहुत खराब हो गई। चारों ओर लड़ाई छिड़ी हुई थी, शत्रुओंको ये दमन नहीं कर सकते थे। इटलीमें इनका कुछ भी प्रभाव नहीं था। फ्रांसके राजाने इनके कई एक अधिकृत भूभाग दखल कर लिये।

अनन्तर १४८६ ई०में मक्सीमिलियन राजा बनाये गये। १४९० ई०में इन्होंने भीयनासे हंगेरीयनको मार भगाया और उनकी पैतृक सम्पत्ति ले ली। पीछे वे इटलीको गये। इनके समयमें सर्वोच्च विचारालय स्थापित हुआ जिसमें १६ सदस्य नियुक्त किये गये। १५१९ ई०में इनका देहान्त हुआ। बाद राजगद्दीके लिए इनके पोते स्पेनके राजा चार्लस और १म फ्रेंकिस आपसमें झगड़ने लगे। किन्तु उसी सालके जून मासमें चार्लस राजा बनाये गये। उस समय इनकी गिनती अच्छे राजाओंमें होती थी केवल जर्मनीमें ही इनका आधिपत्य नहीं था, वरन स्पेन, सिसली, नेपल्स और सरडीनियाके लोग भी इन्हें अपना राजा मानते थे। इन्होंने इसाई धर्मका पुनरुद्धार किया। इस समय जर्मन कृषकगण कई एक कारणोंसे बहुत अप्रसन्न हो गये और उन्होंने मिल कर चार्लससे लड़ाई ठान दी। यह लड़ाई बहुत दिनों तक चलती रही जो इतिहासमें कृषककी लड़ाई कह कर मशहूर है। फ्रांस और टर्कीसे भी इन्हें कई बार लड़ना पड़ा था। इनके बाद १म फरडीनन्द पोपकी सम्मतिके बिना राजा बनाये गये। तुर्कोंने इन्हें बहुत उत्पीड़न किया इसलिये १५६८ ई०में दोनोंमें एक सन्धि स्थापित की गई। १५६४ ई०में ये कराल कालके गालमें फँसे। इनके समयमें राजकार्यमें बहुत परिवर्तन किया गया। इनके पश्चात् इनके लड़के २य मक्सिमिलियन राजा हुए। ये शान्तप्रकृतिके थे। इस समय कोई विशेष घटना न हुई। पीछे इनके लड़के २य रुडोलफ राज्याधिकारी बनाये गये। १५७५ ई०के अक्तूबर मासमें रोममें भी इनका आधिपत्य स्वीकार किया गया। इनके राजशासनसे प्रजा खुश नहीं थी। इनकी मृत्युके बाद इनका लड़का ४र्थ फ्रेडरिक उत्तराधिकारी ठहराया गया। किन्तु ये नाबालिग थे इसलिये इनका चचा जौन कासीमीर ही राजकार्य देखते थे। ये बहुत दयालु तथा युद्धप्रिय राजा थे। इस समय भी तुर्क लोग पूर्व जर्मनीमें बहुत ऊधम मचा रहे थे। इसलिये १५९३ ई०में दोनोंमें लड़ाई छिड़ी और १६०६ ई०के नवम्बर मासमें समाप्त हुई। तुर्कोंने हार मान कर राजासे सन्धि कर ली जिससे उन्हें राजासे जा कर मिला करता था वह बन्द कर दिया गया। रुडोलफके बाद २य फरडीनन्द राजा हुए। ये कट्टर ईसाई थे तथा अपने धर्मके प्रचारकी

लिये इन्होंने खूब चेष्टा की थी। इन्हींके समयमें १६१८ ई०को प्रसिद्ध तीस वर्षका युद्ध आरम्भ हुआ था। जिससे जर्मनी प्रायः तहस नहस हो गई थी। इनके मरने पर इंगरीके राजा ३य फ्रेडरिक जर्मनीके राज-सिंहासन पर बैठे। इन्होंने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। बाद इनके लड़के १म लिउपोल्ड राजा हुए। ये बहुत कमजोर राजा थे। इस समय फ्रांसके राजा १४वें लुइने अच्छा मौका देख जर्मनी पर चढ़ाई कर दी। फ्रेडरिक उन्हें रोकनेमें बिलकुल असमर्थ थे। अन्तमें १६७८ ई०को निजिमवेगेनमें एक सन्धि स्थापित हुई जिससे फरासीसियोंने अधिकृत प्रदेश लौटा दिये। बाद जोसेफके भाई ६म चार्ल्स राजा बनाये गये। इस समय जर्मनी जो ३० वर्षके युद्धसे अपना प्राचीन गौरव तथा समृद्धि खो बैठी थी, क्रमशः सुधरने लगी। चार्ल्सने कई एक प्रदेश जीत कर अपने राज्यमें मिला लिये। १७४० ई०में इनका देहान्त हुआ। इनके कोई लड़के नहीं थे, इसलिए इनकी लड़की मेरिया थरेसाने अपने लड़केको जो पीछे २य जोसेफ नामसे प्रसिद्ध हुआ उत्तराधिकार बनानेकी खूब चेष्टा की। किन्तु फरासीसियोंकी सहाय तासे ७म चार्ल्स राजा बनाये गये। दोनोंमें कुछ काल तक लड़ाई होती रही। बाद १७४८ ई०को एक्स-ला चापलेमें सन्धि हुई जिसमें मेरिया थरेसाने साईलेसिया देश चार्ल्सको प्रदान किया।

चार्ल्सके बाद मेरिया थरेसाके स्वामी टसकनीके प्रधान ड्यूक फ्रेन्सीस जर्मनीकी राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने १७४५से १७६५ ई० तक राज्य किया था। इन्हींके समयमें (१७५६-६३) सात वर्षका युद्ध (Seven years' war) जो जर्मनके इतिहासमें प्रसिद्ध है आरम्भ हुआ था। पीछे २य जोसेफ जर्मनीके सिंहासन पर बैठे। इन्होंने अष्ट्रिया और प्रूसियाके साथ मिल कर फरासीसियोंसे लड़ाई ठान दी। कई वर्षके बाद १७९५ ई०में दोनोंमें सन्धि हो गई जिससे राइन नदीका दक्षिण तीरवर्ती भूभाग फरासीसियोंके हाथ लगा। जोसेफके बाद २य फ्रान्सिस राजा बनाये गये। इस समय नेपोलियन बोना-पार्टका प्रभाव फ्रांसमें खूब बढ़ा चढ़ा था। जर्मनी भी इनके भयसे कांपने लगी थी। नेपोलियन १८१० ई०में एलबे तथा समुद्रके उत्तरी किनारेका भूभाग अपने राज्यमें मिला कर जर्मनीकी ओर अग्रसर हुए थे, लेकिन फ्रान्सिसने १८१४ ई०की पहली मार्चको चौमोण्ट-में उनसे सन्धि कर ली। पीछे १८७१ ई०की ८वीं जन-वरीको प्रूसियाके राजा १म विलियम बहुत समारोहके साथ जर्मनीके सिंहासन पर अभिषिक्त किये गये।

नेपोलियनके युद्धके बाद जर्मनोंकी 'एकता' प्राप्त करनेकी तीव्र आकांक्षा हुई। वह आकांक्षा फरासी-सियोंके साथ युद्ध करनेमें चरितार्थ हुई। जिस जर्मन जातिने फ्रान्सके सम्राट्के पैरों पड़ कर प्राणभिक्षा मांगी थी, भाग्यचक्रके परिवर्तनसे कुछ अधिक साठ वर्षमें वही जाति फिर फ्रान्स जय करके उन पर प्रभुत्व करने लगी। फरासीसियोंको परास्त कर जर्मनोंने अलसेक और लोरेन ये दो प्रदेश हस्तगत किये। इन प्रदेशोंमें बहुत दिनोंसे फरासीसियोंका शासन रहने पर भी, जर्मनोंका काफी वास था। इसलिए सब तरहसे जर्मनोंने एकता करनेकी ठानी। इसके बाद हो १८ जनवरी १८७१ ई०को जर्मनोंने साम्राज्य स्थापनकी घोषणा कर दी। प्रूसियाके राजा ही सम्राट् बनाये गये। इस साम्राज्यवादके महापुरोहित थे बिसमार्क। नवीन साम्राज्यमें गणतन्त्रनीति अवलम्बित होने पर भी, सम्राट् और प्रधान मन्त्रीको मुख्य शक्ति अर्पित की गई। इस साम्राज्यके सिंहासन पर कुल तीन व्यक्ति अधिष्ठित हुए थे—

सम्राट् १म विलियम—१८७१—८८ ई०।

सम्राट् ३य फ्रेडरिक्—१८८८ ई०, ८ मार्चसे १५ जून तक।

सम्राट् २य विलियम—१८८८ ई०से महायुद्धके बाद तक।

इनमेंसे आदिके दो सम्राटोंके समय राज्यकालमें तथा द्वितीय विलियमके राज्यके प्रारम्भिक कालमें बिस-मार्क ही हर्त्ताकर्त्ता नेता थे।

जर्मन-साम्राज्यके प्रारम्भिक समयमें घोरतर धर्म-विवादसे महा अशान्ति फैल गई थी। इस युद्धको कुलटूरकैम्प वा सभ्यता-रक्षार्थ युद्ध कहते हैं। इसके एक पक्षमें जर्मन राष्ट्र वा बिसमार्क थे और दूसरे

पक्षमें रोमन कैथलिक चाचे। बिसमार्कका मत यह था कि धर्म-सम्प्रदाय राजनैतिक स्रोतसे बाहर अवस्थान करे। इसीलिए जब रिकष्टैग सभाके निर्वाचनमें ६३ प्रतिनिधि रोमन कैथलिकोंमेंसे चुने गये, तब वे उनके विरुद्ध खड़े हुए। इस युद्धका आपात प्रतीयमान कारण यह है कि १८७० ई०में जब "पोप भूल नहीं कर सकते" यह नीति घोषित हुई, तब कुछ कैथलिक विश्‌पोंने पुरातन कैथलिकका नाम ग्रहण कर उक्त नीतिको अस्वीकार किया। कैथलिक सम्प्रदाय पुरातन कैथलिकोंको विश्वविद्यालय और धर्ममन्दिरादिसे बहिष्कृत करने पर उतारू हो गया। परन्तु प्रुसियाके राष्ट्रने उन लोगोंको दूरीभूत करना नहीं चाहा। बस, इसीसे विवाद की उत्पत्ति हो गई। १८७२ ई०में साम्राज्यकी महासभाने जेसुइट नामके कैथलिक धर्मसम्प्रदायको ही जर्मनीसे निकाल दिया। बिसमार्कने समझा कि जर्मनीकी एकताके विरोधियोंने इस धर्म-युद्धकी अवतारणा की है; इसलिये उन्होंने सारी शक्तिको उसके निवारणके लिए लगा दी। उन्होंने कानून बना दिया कि कैथलिक लोग किसी तरह भी राष्ट्रके कार्यमें हस्तक्षेप न कर सकेंगे। विवाह-कार्य भी उन्होंने पुरोहित-सम्प्रदायके हाथसे ले कर राष्ट्रके अधीन कर दिया। इसके विरुद्ध कैथलिकोंने तीव्र प्रतिवाद किया। परिणाम यह हुआ कि भीषण विवादकी सृष्टि हो गई। १८७७ ई०में जब देखा कि कैथलिक लोग रिकष्टैग सभामें सिर्फ ८२ प्रतिनिधि ही भेज पाये हैं, तब बिसमार्कने उनके साथ वृथा युद्ध न कर अन्य कार्यमें मन लगाया। उन्होंने फिर धर्म-सम्बन्धीय नीतिमें परिवर्तन कर कैथलिकोंकी सहानुभूति प्राप्त की। जर्मनी मुख्यतः प्रोटेष्टाण्ट धर्मावलम्बियों द्वारा अध्युषित होने पर भी कैथलिकोंने ही वहांकी महासभामें प्राधान्य प्राप्त किया था।

१८७८ ई०में बिसमार्कने जर्मनीके समाजतन्त्रवादियोंके विरुद्ध आन्दोलन उठाया। जर्मनीमें समाजतन्त्रवादियोंका एक दल १८४८ ई०से ही चला आ रहा था। उक्त दलके लोग स्वाधीनताके उपासक थे; सर्वतोभावसे स्त्री और पुरुषोंकी स्वाधीनता मिले, यही उनका उद्देश्य था। वे यह भी चाहते थे कि धनाढ्य व्यक्ति प्रचुर धनको सिर्फ अपने ही काममें खर्च न कर पावें। किन्तु इससे जर्मनीका शासक-सम्प्रदाय डर गया। बिसमार्कको समाजतन्त्रवादियों पर यथार्थमें बड़ी घृणा थी। वे एक ओर तो विविध कठिन-दण्डमूलक आईन बना कर उनके आन्दोलनको दबानेकी चेष्टा करते थे और दूसरी ओर श्रमजीवी सम्प्रदायकी अवस्थाकी उन्नति कर उनकी सहानुभूति राष्ट्रके लिए आकर्षित करनेका प्रयास करते थे। परन्तु कुछ भी फल न हुआ। समाजतन्त्रवादियोंमें दिनों दिन नवीन शक्तिका आविर्भाव होने लगा। १८८० ई०में उन लोगोंने रिकष्टैग महासभामें ३५ प्रतिनिधि भेजे फिर क्या था, बिसमार्क स्वयं राष्ट्रके अधीन समाजतन्त्र नीतिके प्रवर्तनकी चेष्टा करने लगे। State Socialism को एक प्रकारकी विधि हम अपने देशके कौटिल्य अर्थशास्त्रमें पाते हैं। परन्तु यूरोपमें ऐसी नीतिके प्रवर्तक पहले पहल बिसमार्क ही हुए हैं। इन्होंने नाना प्रकारकी बीमाकम्पनियोंका प्रचलन कर श्रमजीवियोंकी अवस्थाकी उन्नति की थी।

१८७८ ई०में बिसमार्कने वाणिज्यनीतिमें संरक्षणशीलता अवलम्बन कर यूरोपमें एक विराट् परिवर्तनकी सृष्टि की। उनके दो उद्देश्य थे, एक साम्राज्यकी आय बढ़ाना और दूसरा देशीय शिल्पियोंको उत्साहित करना। इस विषयमें, इंगलैण्डके विरुद्ध खड़े होने पर भी वे कृतकार्य हुए थे। बिसमार्ककी नीतिके कारण ही जर्मनी धन एकत्र करनेमें समर्थ हुआ था।

बिसमार्कने अपने कर्ममय जीवनके शेषभागमें जर्मन सम्प्रदायकी बहुल विस्तृतिके लिए औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापन करनेका प्रयास किया। जब उन्होंने वाणिज्यमें संरक्षणनीतिका अवलम्बन किया था, तब उन्हें जर्मनीके बाहर प्रस्तुतद्रव्यके बेचनेके लिए बाध्यतासे उपनिवेश स्थापित करना पड़ा। क्योंकि यदि वे बाहरकी चीजें अपने देशमें न आने देते, तो औरोंको क्या पड़ी थी जो वे जर्मनी चीजोंको अपने देशमें आने देते? इस लिए १८८४ ई०में वे वणिकों और भ्रमणकारियोंको उपनिवेश-स्थापनके कार्यमें यथोचित उत्साह देने लगे। उसी वर्ष जर्मनीने अफरीकाके दक्षिण व पश्चिम भागमें

तथा पश्चिम और पूर्वके बहुतसे स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद उससे इंगलैण्ड आदि शक्तिशाली देशोंके साथ सन्धि कर अपने अधिकारकी नींव मजबूत कर ली। इस तरह जर्मनीने अफरीकाके कामेरुन, टोगोलैण्ड तथा जर्मन-दक्षिण पश्चिम अफरीका जर्मन पूर्व अफरीका और निउगिनियाके कुछ अंश पर अधिकार जमा लिया। १८९८ ई०में जर्मनीने स्पेनसे कारोलाइन और लेड्रोन द्वीप खरीद लिया।

बिसमार्ककी दृष्टि सिर्फ जर्मनीके अन्तर्भागमें ही निबद्ध न थी, जिससे बहिर्भागमें भी जर्मनीकी मित्र-शक्ति रहे, उस विषयमें भी वे यथेष्ट प्रयत्न करते थे। उन्होंने फ्रान्सको एक बारगी एक करनेके लिए पूर्व यूरोपके तीनों सम्राटोंमें अर्थात् जर्मनी, अष्ट्रिया और रूसियामें एक सन्धि कर डाली, जो Tripple Alliance-के नामसे मशहूर है। १८८२ ई०में इटली भी इन तीनों शक्तियोंमें शामिल हो गया।

२९ वर्षकी उम्रमें २य विलियम सम्राट् पद पर अभिषिक्त हुए। ये ही गत महासमरके प्रधानतम नायक थे। इनके चरित्रमें उस समय कार्यदक्षता, कल्पनाकी उज्ज्वलता, नाना विद्याओंमें पारगामित्व और उच्चाकांक्षा दिखलाई दी थी। ऐसी दशामें यह आशा नहीं की जा सकती कि, ये बिसमार्कके इशारे पर चले होंगे। बिसमार्कने पहलेसे ही कह दिया था कि, नवीन सम्राट् स्वयं ही अपने प्रधान मन्त्रीका कार्य करेंगे। किन्तु क्षमतामें ऐसी ही मोहिनी शक्ति है कि उन्होंने ऐसा समझ कर भी नवीन सम्राट्के राज्यारोहणके समय अपना पद न छोड़ा। प्रारम्भसे ही दोनोंमें वैमनस्य चलने लगा। १८९० ई०में नवीन सम्राट्ने प्रधान मन्त्रीसे त्यागपत्र या इस्तीफा मांगा। बिसमार्कने देशके लिए जी-जानसे परिश्रम किया था, किन्तु बुढ़ापेमें उन्हें इस तरहके अपमानके साथ पदत्याग करना पड़ा।

१८९० ई०से सम्राट् २य विलियम ही जर्मनीके भाग्यविधाता समझे जाने लगे। उन्होंने समाजतन्त्रवादके विरुद्ध आन्दोलन करना छोड़ दिया। उनके राजत्वमें जर्मन-शिल्पवाणिज्यका अद्भुत प्रसार हुआ। देखते देखते जर्मन-वाणिज्य इंगलैण्ड और अमेरिकाका प्रतिद्वन्द्वी हो गया। साथ ही जर्मनका नौबल भी यथेष्ट बढ़ गया।

इसके बाद समाजतन्त्रवादका प्रभाव और भी बढ़ने लगा। धीरे धीरे महासभामें उन्हींकी संख्या अधिक हो गई। जर्मनीकी राष्ट्रपद्धति (Constitution)-में परिवर्तन कर जनसाधारणके हाथमें अधिकतर भार सौंपनेके लिए भी इस समय विपुल आन्दोलन होने लगा।

बीसवीं शताब्दीमें जर्मनी किस तरह अपूर्व उत्साहके साथ यूरोपकी प्रधानतम शक्तियोंके रूपमें परिणत हो गया, इसका कारण बतलाते हुए प्रिन्स भन् बुलोने, बिसमार्कके बाद ही जिनका नाम लिया जा सकता है, प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे अपने १८१४ ई०में लिखित आत्मचरितमें लिखा है—

"Prussia attained her greatness as a country of soldiers and officials, and as such she was able to accomplish the work of German union; to this day she is still, in all essentials, a state of soldiers and officials." अर्थात् 'प्रुसियाने सैनिक और कर्मचारीकी जातिकी हैसियतसे ऐश्वर्य प्राप्त किया था और उसी गुणके कारण वह जर्मनीकी एकता-सम्पादनमें कृतकार्य हुआ था। अब भी वह प्रायः सब विषयोंमें सैनिक और कर्मचारीकी जातिके रूपमें ही विद्यमान है।' इस कथनका यथार्थ आशय यह है कि, जर्मनीके प्रत्येक व्यक्तिने स्वदेशानुरागमें प्रणोदित हो कर शरीर या लेखनीसे देशकी सेवा करनेके लिए आत्मोत्सर्ग किया था।

१९०८ ई०में राजकीय अर्थनीतिके विषयमें मतभेद हो जानेसे प्रिन्स बुलोने अपना पद छोड़ दिया। १९१० ई०में रिकष्टैग महासभामें सम्राट्की असीम शक्तिके विरुद्ध कुछ आन्दोलन हुआ था। एक प्रतिनिधिने कहा था सम्राट्को ऐसी क्षमता प्राप्त है कि वे चाहें तो कह सकते हैं कि, "आठ दश आदमी ले कर इस सभाको बन्द कर दो!" इससे मालूम होता है कि, १९१८ ई०में जब सम्राट् जर्मनीसे निकाल दिये गये थे, तब वह कार्य सहसा नहीं हुआ था, बल्कि बहुत पहलेसे ही यह अग्नि प्रधमित हो रही थी।

१८११ ई०में अलमक और लोरेन प्रदेशको कुछ स्वाधीनता दी गई थी।

युद्धके पहले लगातार ४० वर्ष तक जर्मनीमें जो उन्नतिका स्रोत बहा था, उससे जर्मन-जाति अर्थनीति और राजनीतिमें शक्तिशाली हो गई थी। उस शक्तिकी उन्मत्ततासे नवजाग्रत जाति फूली न समाई; वह पृथिवीको मिट्टीका सरवा समझने लगी। उन लोगोंका यह मूलमन्त्र था कि, जर्मनकी शिक्षा और सभ्यता ही जगत्में उत्कृष्ट वस्तु है, जैसे बने विश्वमें उसका प्रचार करना ही होगा। जिस प्रकार मुसलमानोंने अपने धर्मप्रचारके लिए तत्कालीन समग्र परिचित जगत् जय करनेकी चेष्टा की थी, जर्मनोंने भी मानो उसी प्रकार सभ्यताके प्रचारके लिए विश्व-विजय करनेका निश्चय कर लिया। यही गत महायुद्धका यथार्थ कारण था।

१८१४ ई०में जर्मनीने साराजिभोके हत्याकाण्डके बाद युद्धकी घोषणा की। उनमें जो दलबन्दी थी, उसे मिटानेके लिए सम्राट्ने कहा—"I no longer know any parties among my people, there are only Germans." अर्थात् 'मैं नहीं जानता कि मेरी प्रजामें किस प्रकारकी दलबन्दी है, मैं सिर्फ इतना जानता हूं कि सभी जर्मन हैं।' इसके बाद सब एक हो गये और युद्ध करनेके लिए रणक्षेत्रमें कूद पड़े।

बेलजियमको पददलित करनेके बाद जब महावीर हिन्डेनबर्गने ऐलेंष्टाइनके युद्धक्षेत्रमें रूसियाको पराजित कर दिया, तब जर्मन-जातिके आनन्दकी सीमा न रही। जर्मन-जाति इस महायुद्धमें विजयी होगी ही, ऐसी धारणा प्रत्येक जर्मनके हृदयमें बद्धमूल हो गई। जर्मनी मार्नके पास युद्धमें विजयी न हो सका, सिंटाउरका पतन हुआ और फकलैण्डके पास उसका जंगी जहाज डूब गया, पर किसी तरह भी जर्मनीकी आशा और उत्साहका ह्रास नहीं हुआ। १८१४ ई०के अन्तमें इङ्गलैण्ड भी जर्मनीके विरुद्ध खड़ा हुआ, किन्तु जर्मनोंने उसकी कुछ भी परवाह न की।

१८१५ ई०के प्रारम्भमें भी जर्मनोंकी अवस्थामें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। १९१५ ई०के मई मासमें जब इटली राजा भी जर्मनोंके विरुद्ध खड़ा हुआ, तब कोई कोई कहने लगे कि शत्रुओंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ती ही जाती है, अतः जर्मनोंकी विजयाभिलाषा कुछ घट रही है। इस धारणाको बेजड़ सिद्ध करनेके लिए जर्मनीके अधिकारीवर्ग विशेष प्रयत्न करने लगे।

१९१६ ई०के प्रारम्भमें ही जर्मनीमें युद्धजनित क्लान्ति और अवसन्नताका भाव दिखलाई देने लगा। आहार आदिके विषयमें जर्मन-गवर्मेण्टने ऐसे कड़े कानून बनाये थे कि जिससे जर्मनजाति विलासिता तो भूल ही गई थी, प्रत्युत उपयुक्त आहारसे भी वञ्चित रहती थी।

इस युद्धके लिए जर्मनोंने जब (१ अगस्त १९१४ई०) पहले पहल रणक्षेत्रमें पदार्पण किया था, तब उसने सिर्फ रूसियाके विरुद्ध ही अस्त्रधारण किया था। उसके बाद उसने ३ अगस्तको फ्रान्सके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। इसके दूसरे ही दिन (४ अगस्तको) जर्मनोंने बेलजियमसे युद्ध ठान दिया और उसी दिन ग्रेटब्रिटेन भी इसका शत्रु हो गया। तदनन्तर ६ अगस्तको सर्भिया और ८ अगस्तको मोण्टो-निग्रो जर्मनोंसे युद्ध करनेके लिए तयार हो गया। २३ अगस्तको प्राच्य शक्ति जापानने मित्रशक्तिपुञ्जके साथ मिल कर जर्मनोंसे शत्रुता करना प्रारम्भ कर दिया। इन शक्तियोंके अतिरिक्त इटली भी समराङ्गणमें अवतीर्ण हो जर्मनोंकी विजयाशाको क्षीण करने लगा। ९ मार्च १८१६ ई०को जर्मनोंने पोर्तगालके विरुद्ध भी अस्त्रधारण किया। २८ अगस्तको रूमेनियाको भी उसने शत्रुओंकी श्रेणीमें समझा। १८१७ ई०को ६ठी अप्रेलको अमेरिकाके युक्तराज्यने भी नाना कारणोंसे जर्मनोंसे असन्तुष्ट हो अपनी सनातन नीति छोड़ दी और जर्मनोंसे युद्ध करनेके लिए उतारू हो गया। अब सचमुच ही जर्मनी कुछ हताश हो गया। युक्तराज्यके साथ साथ ७ अप्रैलको पानामा और क्यूबा राज्य भी जर्मनीका शत्रु हो गया। २६ अक्टोबरको ब्रेजिलने भी जर्मनीके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। महासमरने सचमुच ही विश्वसमरका रूप धारण कर लिया। यही कारण है कि सुदूरवर्ती श्याम राज्यने भी २२

जुलाई १८१७ ई०को समरक्षेत्रमें जर्मनीके विरुद्ध पदार्पण किया। काफिरोंके अफरीकाका स्वाधीन और सुसभ्य राज्य लिबेरिया भी अपनी क्षुद्र शक्ति ले कर ४ अगस्त १९१७ ई०को जर्मनीके विरुद्ध मित्रशक्तिके साथ मिल गया। १४ अगस्त १८१७को चीन देशने भी जर्मनीके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। उसके बाद १९१८ ई०में २१ अप्रेलको गुवाटेमाला ६ मईको निकारागुआ, २४ मईको कोष्टारिका, १५ जुलाईको हायटी और १८ जुलाईको हण्डोरसने जर्मनीके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस तरह समग्र पृथिवी ही जर्मनीके विरुद्ध लड़नेके लिए तैयार हो गई थी। ऐसी दशामें जर्मनीको पराजय स्वीकार करनेके लिए बाध्य होना पड़ेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या था ?

जर्मनीके पराजय स्वीकार करने पर मित्रशक्तियोंने उसका औपनिवेशिक साम्राज्य छीन लिया। जर्मनीकी अन्यान्य क्षमताओंका किस तरह ह्रास किया गया, यह हम प्रारम्भमें ही कह चुके हैं।

इसके बाद जर्मनीमें एक अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि कैसरको जर्मनीसे भाग जाना पड़ा और वहां गणतन्त्र घोषित हुआ।

फरासीसियोंको बहुत दिनोंसे जर्मनी पर जलन थी मौका पड़ते ही उसने युद्धकी क्षतिपूर्तिके बहानेसे रूढ़ प्रदेश पर कब्जा कर लिया।

जर्मनका साहित्य—यूरोपकी अन्यान्य जातियोंके साहित्यके विकाशमें जैसा क्रमोन्नतिका भाव परिलक्षित होता है, जर्मन साहित्यमें वैसा देखनेमें नहीं आता। जर्मन-साहित्य कभी तो उन्नतिको शिखर पर चढ़ गया है और कभी अवनतिकी चरम सीमामें पतित हुआ है। इसका कारण जर्मनके इतिहास पढ़नेसे मालूम हो जाता है। उन्नीसवीं शताब्दीके पहले जर्मनीमें जातीय एकताका भाव भी परिस्फुट नहीं हुआ था। यही कारण है कि फरासीसियों और इटालियनोंके लिए जर्मन पर आक्रमण वा अधिकार करना विशेष कठिन न था। इस तरह जर्मनी प्रायः इटली और फरासीसी साहित्यके संस्पर्शमें आता था। किन्तु जर्मनको साहित्य-प्रतिभा कभी भी अनुकरणके स्रोतमें बही नहीं है। युग युगमें उसने विदेशीय प्रभावसे अपनेको मुक्त कर स्वातन्त्र्यके रक्षाकी चेष्टा की है। इस प्रकार विदेशीय साहित्यके अनुकरणसे आत्मरक्षा करनेकी सर्वदा चेष्टा करते रहनेसे जर्मनोंने अपने साहित्यकी धारावाहिक उन्नति नहीं कर पाई। किसी किसी युगमें ऐसा भी हुआ है कि अपनी भाव-सम्पद्-हीनताके कारण जर्मनोंने अपने प्रतिवासियोंके साहित्यका अनुकरण किया, किन्तु जब फिर उनके साहित्यकी उन्नति प्रारम्भ हुई, तभी उस विदेशी प्रभावको दूर कर दिया।

जर्मनके साहित्यको साधारणतः हम छ भागोंमें विभक्त करते हैं।

१। पुरातन हाइ जर्मन युग—१लो शताब्दीसे ११वीं शताब्दी तक।

२। मध्य हाइ जर्मन युग—११वीं शताब्दीके मध्य भागसे १४वीं शताब्दीके अर्द्धांश पर्यन्त।

३। युग-सन्धिकाल—१४वीं शताब्दीके मध्यभागसे १६वीं शताब्दीके नवजागरण-युग पर्यन्त।

४। नवजागरण और तथाकथित प्राचीन साहित्यका युग—१६वीं शताब्दीके शेष भागसे १८वीं शताब्दीके मध्यभाग तक।

५। आधुनिक जर्मन-साहित्यकी चरम उन्नतिका युग—१८वीं शताब्दीके मध्यभागसे १८३२ ई०में गेटकी मृत्यु तक।

६। गेटके मृत्युकालसे वर्त्तमान समय पर्यन्त।

१म युग।—जर्मन-जातिकी गथ, ऐंग्लोसैक्सन आदि शाखाओंने जिस समय साहित्यके विकाशकार्यमें मन लगाया था, उस समय भी जर्मनीके अधिवासियोंने साहित्यचर्चा प्रारम्भ नहीं की थी।

जर्मन-साहित्यका प्रथम परिचय हमें ईसाकी ८वीं शताब्दीसे मिलता है। हम जर्मनके महाकाव्यमें ग्राम्यगीति वा Saga का प्रभाव देख कर, उसके पहले भी जर्मन साहित्य था, इस बातका अनुमान कर सकते हैं। उक्त Saga ओंकी उत्पत्ति ईसाकी ५वीं शताब्दीमें जर्मन-जातिके विराट आन्दोलनके समय हुई होगी। प्रथम अवस्थाका जर्मन-साहित्य धर्म-मन्दिरके भावों द्वारा प्रभावान्वित है। कभी कभी (जैसे Monsee Frag-

ments आदिमें) इस प्रकारकी रचनामें परिणत रसका परिचय मिलता है। परन्तु इस युगमें हाइ-जर्मनकी अपेक्षा लो-जर्मन-साहित्यकी ही इस जातीय प्रतिभाका सम्यक् विकाश देखते हैं।

इसी युगमें हिलडारवैण्डलो गीतिका, हैलियण्ड आदि उत्तम ग्रन्थोंके ग्रन्थ रचे गये थे। इस युगमें नाटक वा गीतिकाव्यकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। इसके सिवा इस युगमें जर्मनोंने प्रायः लाटिन भाषामें साहित्य रचना की थी, इस कारण जर्मन-साहित्यकी उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिए थी।

२। मध्य हाई जर्मन युग (१०५०—१३५० ई०) ईसाकी १०वीं शताब्दीमें क्लूनिके विहार करनेमें जो तपश्चर्या और कृच्छ्र साधनाका भाव जागरित हुआ था, उसके द्वारा जर्मनी सबसे अधिक आक्रान्त हुआ था। परन्तु यह प्रभाव शीघ्र ही दूरीभूत हुआ था, इसके प्रमाण उस युगके जर्मन-गीतिकाव्योंमें पाये जाते हैं। ये गीतिकविताएं ईसाकी माताके विषयमें तथा अन्यान्य साधुपुरुषोंकी जीवनीके आधार पर लिखी गई थीं। किन्तु उनमें एक प्रकारको रहस्यानुभूतिका रस पाया जाता है। बादमें जब धर्म-युद्धके उपलक्षमें जर्मन वीरोंने प्राच्यदेशमें पदार्पण किया, तब इस देशकी जीवन यात्रा प्रणालीको देख कर वे मुग्ध हो गये। उनकी कल्पना नयी रागिनी गाने लगी। यही कारण है कि Alexanderlied और Herzog Ernst में हम उपन्यासका आस्वाद पाते हैं। राजसभामें काव्य और साहित्यका हमेशासे ही विकाश होता आ रहा है। जर्मनीमें भी इस नियमका व्यतिक्रम नहीं हुआ। इलहर्ट भन-वार्ग नामक एक कविने अपने Tristant नामक काव्यमें राजसभाके लिए उपयोगी विषयोंका वर्णन किया है।

इसके बाद फरासीसी कविताके भावसे जर्मन-साहित्य कुछ प्रभावान्वित हुआ। किन्तु कुछ समयके पश्चात् जर्मन-साहित्यने पुनः स्वाधीन मार्ग पर चलना शुरू कर दिया। इसके बाद जर्मनीमें मध्ययुगके गौरवमय साहित्यकी सृष्टिका काल उपस्थित हुआ। होहेनष्टफेनवंशके प्रतापी राजाओंके अधीन जर्मनजातिकी जिस नवशक्तिकी प्राप्ति हुई थी, उसका विकाश साहित्यमें दिखलाई दिया। इस युगमें सुप्रसिद्ध Nibelungenlied नामक महाकाव्यकी रचना हुई। इसमें जर्मनोंकी जातीय गीतिकविता, गल्प, प्रवाद आदि सभीको स्थान दिया गया। मध्य युगके जर्मनोंका जीवन-वृत्तान्त इसमें बड़ी खूबीके साथ दरसाया गया है। इसके नाटकीय भावका वर्णन और साहित्यिक सौन्दर्य को देख कर सभीको विस्मित होना पड़ता है।

इस महाकाव्यके बाद हार्टमन, ओलफ्रम और गटफ्राइड इन तीन कवियोंने जर्मन-साहित्य पर अपना प्रभाव फैलाया था। किन्तु इस युगमें जर्मन गद्य-साहित्यका उद्भव नहीं हुआ था।

३। युग सन्धिका साहित्य (१३५०—१६००)— ईसकी १४वीं शताब्दीके मध्यभागमें जो यूरोपीय समाजमें Chivalry भावका ह्रास हो रहा था। इसलिए उस भावके उदित होनेसे जो साहित्य बन रहा था, वह धीरे धीरे विलुप्त होने लगा। अब भावपर्णनामूलक साहित्यका कुछ परिचय दिया जाता है। इस युगमें हुगोभन मण्ट फोर्ट (१३५७—१४२३ ई०) और ओसवाल्ड भन ओल्केनष्टाइन कवियोंने जर्मन-साहित्यकी प्रतिभाके गौरवकी रक्षा की थी। किन्तु गीतिकविता इस समय बिलकुल हीनप्रभ हो गई थी। पशुओंकी जीवन यात्रा सम्बन्धी नाना प्रकारकी कहानियोंको इस समयके लोग बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ते थे।

इसी समय जर्मनीमें नाट्य साहित्यकी उत्पत्ति हुई थी। १५वीं शताब्दीके पहले धर्मविषयक किस्से कहानियोंके आधारसे छोटे छोटे नाटक रचे जाने लगे थे। परन्तु १५वीं शताब्दीमें साधारण जीवनयात्रा सम्बन्धी उत्कृष्ट नाटकादिकी भी उत्पत्ति होने लगी। Hans Rosenplut और Hans Folz ये दो साहित्यिक इसमें अग्रणी थे।

इसके बाद जर्मनीमें धर्मसंस्कारका आन्दोलन उठा, इसमें मार्टिन लूथर आदि महापुरुषोंने एक नवीन शक्ति और प्रेरणाकी सृष्टि की। प्रोटेष्टण्टोंकी खिल्ली उड़ानेके लिए कैथलिकोंने जो हंसी मजाक की थी, उसने जर्मनीके हास्यरसके साहित्यमें स्थायी आसन ग्रहण कर लिया।

उपन्यासका आविर्भाव भी इसी समय हुआ था। Fischart, Torg Wickram आदि लेखकगण जर्मन उपन्यासके सृष्टिकर्त्ता हैं।

४। नवजागरण युग (१६०० १७४० ई०)—ईसाकी १७वीं शताब्दीमें लगातार धर्मयुद्धके होते रहनेसे जर्मनीमें ज्ञानचर्चा भलीभांति न हो सकी। रोमन्स-साहित्यके अनुकरणसे कई एक ग्रन्थ रचे जाने पर भी उनसे जातीय हृदय आकृष्ट नहीं हुआ। किन्तु धर्म-मन्दिरके सङ्गीतोंने अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा की थी। इस युगमें Paul Gerhardt (१६०७-१६७६ ई०) जर्मन प्रार्थनासङ्गीतोंके सर्वश्रेष्ठ लेखक अवतीर्ण हुए थे। प्रोटेष्टण्ट और कैथलिक दोनों ही सम्प्रदायोंने शिष्टिक साहित्य वा अलीकपन्थाका अनुवर्तन कर काव्यादिकी रचना की थी।

Opitz जर्मन-साहित्यके नवयुगके अग्रदूत थे। इन्होंने काव्यसम्बन्धी सभी प्रकारकी रीतियोंका अवलम्बन कर लेखनी चलाई थी। उनका लिखा हुआ Buch von der deutschen Peterey (१६२४ ई०) हमारे देशके "साहित्यदर्पण"के समान व्यवहृत होता था। ये प्राचीन रीतिके अनुसार कई एक वियोगान्त नाटक भी लिख गये हैं। इस शताब्दीमें उपन्यासोंकी भी कुछ उन्नति हुई थी।

इसके बाद भी कुछ साहित्यिक धुरन्धरोंने आविर्भूत हो कर जर्मन साहित्यको गौरवान्वित किया था: जिनमेंसे- Samuel Pufendorf Christian Thomaslus (१६३२—१६८४ ई०Christian von Wolff, Leibnitz (१६४६—१७१६ई०) आदि लेखकोंके नाम अब भी प्रसिद्ध हैं। इनके बाद Johann Christop Gottsched ने (१७००—१७६६ ई०) जर्मन-भाषाका संस्कार कर साहित्यका महत् उपकार किया है।

५। आधुनिक जर्मनीकी उन्नतिका युग (१७४०—१८३२ ई०) इस युगमें जर्मन-साहित्यने भावोच्छ्वास प्रबल हो कर ऐसे विराट् जलप्लावनकी सृष्टि की कि उसके स्रोतमें समग्र यूरोपके बह जानेका डर हुआ। इस युगके साहित्यका प्रभाव इतना बढ़ा चढ़ा था, और उनकी पुस्तकोंकी कीमत इतनी ज्यादा थी, कि उसका संक्षिप्त सार लिखनेसे उन पर अन्याय करना होगा। अतएव यहां हम सिर्फ उन ग्रन्थकारोंके नाम लिख कर ही शान्त होते हैं। C. F. Gellert ने (१७१५—१७६८ ई०) कवितामें कुछ उत्कृष्ट उपकथाएं प्रकाशित की थीं। G. W. Rabener (१७१४—१७७१ ई०) हास्यरसकी अवतारणा कर यशस्वी हुए थे। Schelgel ने (१७१८—१७४६ ई०) अनेक प्रकारसे युग-प्रवर्तक लेसिङ्गके आविर्भावकी सूचना दी थी। इसके बाद जर्मन-महाकाव्यके लेखक F. G. Klopstock का (१७२४—१८०३ ई०) आविर्भाव हुआ। लेसिङ्गने (१७२८—१७८१ ई०) जर्मन साहित्यको यूरोपमें सम्मानका आसन दिया। जर्मन जातिके कल्पनाविवेके प्रसार कार्यमें C. M. Wielandने (१७३३—१८१३) यथेष्ट सहायता दी थी। J. G. Herder ने (१७४४—१८०० ई०) अपनी लेखनी द्वारा चिन्ताजगत्में एक विप्लव उपस्थित कर दिया।

इसके बाद ही महाकवि Goethe (१७४८—१८३२ ई०) Romantic आन्दोलनका सूत्रपात कर समग्र विश्वमें एक नवीन भावका प्रवर्तन किया था।

६। आधुनिक युग—गेटकी मृत्युके बाद जर्मन-साहित्य कुछ समयके लिए हीनप्रभ हो गया। किन्तु उसके बाद "नवीन जर्मनी" नामसे एक नवीन सम्प्रदायका उद्भव हुआ। इनमें हाइन, गुजकाउ, इउनवर्ग, मुण्ट और लाउरका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है।

आधुनिक युगमें ज्ञानके नाना विभागोंका अनुशीलन करनेके कारण जर्मन जातिका पृथिवीमें सर्वश्रेष्ठ विद्वान-जातिके समान सम्मान हुआ है। किन्तु बीसवीं सदीमें उसमें किसी अद्वितीय प्रतिभावान् साहित्यिकका आविर्भाव नहीं हुआ। युद्धके बादसे जर्मनीकी ऐसी अवस्था हो गई है कि उसे साहित्यचर्चा करनेका अवसर ही नहीं है।

जर्मन-जाति—ऐतिहासिक प्रवर ष्टावस साहबके मतसे जर्मनकी जातियोंमें अति प्राचीन कालमें कोई साधारण नाम प्रचलित न था। पीछे जब वे समस्त जातियां एक ही भाषामें कथोपकथन करने लगीं, तब भी उस भाषाका नाम जर्मनी-भाषा न कह कर लिन्दुयाथियोटिका

कहा करते थे। रोमन लोग इन्हें जर्मन कहते थे; इस का कारण यह था कि उनके प्रतिवादी गलोंने उनका उक्त नाम रक्खा था।

रोमनोंके भ्रमणकारी ऐतिहासिक टसिटस जर्मन नामका एक इतिहास लिख गये हैं। उनका कहना है कि, जर्मन लोग स्वयं कहा करते हैं कि उनका वह नाम नया है। टसिटस इस बातको ईसाके जन्मसे पहले ही लिख गये हैं। उनका और भी कहना है कि, टंग्रियन (Tungrians) नामक जिस जातिने गलोंको भगा दिया था, पहले उन्हीं लोगोंका नाम जर्मन था। पीछे उस शाखाविशेषके नामको समग्र जर्मन जातिने अपना लिया। जर्मन नाम भीति उत्पादक है, इसीलिए विजयियोंने पहले पहल उस नामको ग्रहण किया था।

यूरोपके प्रसिद्ध विद्वान लाथाम केम्बलने अपने "Horae Ferales" नामक ग्रन्थकी भूमिकामें लिखा है—प्रथम अवस्थामें जर्मनोंको शाखाजातियोंके भिन्न भिन्न नाम थे; यदि कोई उस समय उन्हें जर्मन कहता था, तो वे उसे समझ न पाते थे। क्योंकि वह नाम सिर्फ लाटिन भाषामें और रोमनोंमें ही प्रचलित था। इसके सिवा उनका ऐसा सिद्धान्त है कि—"जर्मन जाति कभी भी प्राचीन कालमें अपनेको जर्मन कहती थी, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हां यह असम्भव नहीं हो सकता कि कोई नगण्य शाखा उस नामसे परिचित थी। टलेमीके कथनानुसार यह नाम 'सक्सनोंका था और अन्यान्य जातिके सहयोगमें एलब और भाडर नदीके किनारे एक छोटेसे स्थानमें तथा उपकूलके पास तीन द्वीपोंमें इनका वास था।"

उपरोक्त मतोंसे प्रमाणित होता है कि बहुत समयसे विदेशियों द्वारा बारम्बार जर्मन नामसे पुकारे जानेके बाद, उन लोगोंने जर्मन नाम ग्रहण कर लिया।

जर्थ (सं० वि०) जराक्रान्त, वृद्ध, बुड्ढा।

जर्जरा (अ० पु०) १ अणु। २ छोटे छोटे कण जो सूर्यके प्रकाशमें उड़ते हुए दीख पड़ते हैं। ३ जोके सौ भागोंमें से एक भाग। ४ बहुत छोटा टुकड़ा।

जर्रार (अ० वि०) १ बलिष्ठ, प्रबल। २ वीर, बहादुर, लड़का।

जर्रारी (हिं० स्त्री०) वीरता, बहादुरी, सूरमापन।

जर्राह (अ० पु०) शास्त्रचिकित्सक, वह जो चीर फाड़का काम करता हो।

जर्राही (अ० स्त्री०) शास्त्रचिकित्सा, चीर फाड़का काम।

जर्वर (सं० पु०) एक नागपुरोहित। इन्होंने यज्ञ करके सर्पोंको मरनेसे बचाया था।

जर्हिल (सं० पु०) अरण्यतिल, जङ्गली तिल।

जल (सं० क्ली०) जलति जीवयति लोकान्, जलति आच्छादयति, भूम्यादीन् वा जल पचाद्यच्। १ वह तरल पदार्थ जो प्यास लगने पर पीने और स्नान करने आदिके काममें आता है, पानीय, पानी, आब। जलके संस्कृत पर्याय ये—हैं अप्, वाः, वारि, सलिल, कमल, पय, कीलाल अमृत, जीवन, वन, भुवन, कबन्ध, उदक, पयः, पुष्कर, सर्वतोमुख, अम्भः, अर्णः, तोय, पानीय, क्षीर, नीर, अम्बु, सम्बर, मेघपुष्प, घनरस, आप, सरिल, सल, जड़, क, अन्ध, कपन्ध, उद, दक, नार, शम्बर, अभ्रपुष्प, घृत, पीप्पल, कुश, विष, काण्ड, सवर, सर, कृपीट, चन्द्रोरस, सदन, कर्बुर, व्योम, सम्ब, सरस्, इरा, वाज, तामर कम्बल, स्यन्दन, सम्बल, जलपीथ, ऋत, ऊर्ज, कोमल सोम। वेदोक्त पर्याय अप् शब्दमें देखो। दार्शनिक मतसे यह पञ्चभूतमेंसे एक हैं। जलमें रूप, द्रवत्व प्रत्यक्षयोगित्व और गुरु रस है। इसमें चौदह गुण हैं—स्पर्श, संख्या, परिमित, पृथक्क, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, गुरुत्व, द्रवत्व, रूप, रस और स्नेह। जलका वर्ण शुक्ल, रस मधुर और स्पर्श शीतल है। स्नेह और द्रवत्व इसका स्वाभाविक गुण है। परमाणुरूप जल तो नित्य है और अवयवविशिष्ट अनित्य। अनित्य जल शरीर, इन्द्रिय और विषय इन तीन भेदोंमें विभक्त है। अयोनिजको शरीर, रसग्रहणकारी रसन को इन्द्रिय और सरित्समुद्रादिके जलको विषय कहते हैं। (भाषापरि०)

शब्दतन्मात्रसे शब्दगुण आकाश, शब्द तन्मात्र सहित स्पर्श तन्मात्रसे शब्द और स्पर्श गुण वायु, शब्द और स्पर्श तन्मात्र सहित रूप तन्मात्रसे शब्द, स्पर्श और रूपगुणविशिष्ट तेजः, शब्द, स्पर्श और रूप तन्मात्र सहित रस तन्मात्रसे शब्द स्पर्श रूप और रसगुणविशिष्ट जल उत्पन्न हुआ है। (सांख्यतत्त्वकौमुदी)

जैनमतानुसार—जल स्थावर वा एकेन्द्रिय जीव है। इसे अप्कायिक भी कहते हैं।

'पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय: स्थावरा:।" (तत्वार्थसूत्र २ अ०)

इसमें रूप, रस, गन्ध और वर्ण ये चारो गुण मौजूद हैं। इसके एक स्पर्श इन्द्रिय और दश प्राणोंमेंसे सिर्फ इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयु:प्राण ये चार ही प्राण होते हैं।

वैद्यकशास्त्रानुसार जलके गुण ये हैं—आकाशसे जो जल गिरता है, वह अमृततुल्य जीवनदायी, तृप्तिकर, धारक, श्रमघ्न तथा क्लान्ति तृष्णा, मद, मूर्च्छा, तन्द्रा, निद्रा और दाहको प्रशम करता है। पृथिवी पर जो जल गिरता है उसे भौम जल—कहा जा सकता है। भौमजल वर्षा ऋतुमें गुरुपाक, मधुर और मारक, शरत्‌ऋतुमें लघुपाक, हेमन्तमें स्निग्ध, बलकर धातुपोषक और गुरुपाक, शिशिर ऋतुमें कफ और वायुनाशक, हेमन्तकी अपेक्षा लघुपाक तथा वसन्तमें कषाय, मधुर और रूक्ष होता है। ग्रीष्मऋतुमें सभी जल पीया जा सकता है। हेमन्तकालमें सरोवर और पुष्करिणीका जल पीना चाहिये। वसन्त और ग्रीष्मऋतुमें कूपोदक और प्रस्रवण जलका सेवन करना चाहिये। वर्षा ऋतुमें उद्भिद् और अन्तरीक्ष जलका पीना लाभदायक है। जो नदी पश्चिमकी तरफ बहती है, उसका पानी हलका, जो नदी पूर्वकी ओर बहती है, उसका पानी भारी और दक्षिणको बहनेवाली नदीका पानी समगुणसम्पन्न होता है। सह्याद्रि उत्पन्न नदीका जल कुष्ठजनक, विन्ध्योत्पन्न नदीका जल पाण्डु,कुष्ठजनक, मलयोत्पन्न नदीका जल क्रिमिरोगजनक और महेन्द्रपर्वतोत्पन्न नदीका जल श्लीपद और उदररोगजनक होता है। हिमवत्‌के पासकी नदीका जल पीनेसे हृद्रोग, शिरोरोग श्लीपद (पैरोंका फूल जाना और गलगण्ड हो जाता है। वेगवती नदीका पानी लघुपाक और मन्दगामी नदीका पानी गुरुपाक होता है। मरुदेशकी नदियोंका जल प्रायः तिक्त और लवणरसयुक्त, ईषत् कषाय, मधुर, लघु और बलकर होता है। सब तरहका भौम जल प्रातःकालमें ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उस समय जल निर्मल और शीतल रहता है। जिस जलमें सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश पड़ता है, वह जल रूक्ष या नेत्ररोगकर नहीं होता। वृष्टिका जल त्रिदोषशान्तिकर, बलप्रद, रसायण, मेधाजनक, रूक्षघ्न, शीतल, प्रफुल्लकर और ज्वरदाह तथा विषरोगमें शान्तिकारक है। इसे पवित्र पात्रमें ग्रहण करना चाहिये। चन्द्रकान्तमणिका जल विशुद्ध और विमल; तथा मूर्च्छा, पित्त, दाह, विषरोग, मुखरोग, उन्मादरोग, भ्रम, क्लान्ति, वमनरोग और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तका नाशक है। नदीका जल वायुवर्द्धक, रूक्ष, अग्निकर और हलका है। सरोवरका जल पिपासानाशक, बलकर, कषाय और कटुपाक होता है। बावड़ीका पानी वात श्लेष्माके लिए शान्तिकर, सक्षार, कटु और पित्तवर्द्धक है। कुएँका पानी सक्षार, पित्तवर्द्धक, कफघ्न, अग्निदीपिकर और लघु है। छोटे कुएँका पानी अग्निकर, रूक्ष, मधुर, किन्तु श्लेष्मकर नहीं होता। झरनेका पानी कफघ्न, अग्निकर, दीपक, हृद्य और लघु है। उद्भिद्‌जल मधुर, पित्तघ्न और अविदाही तथा चैत्र और छोटे तालाबका पानी मधुर, गुरु और दोषवर्द्धक होता है। समुद्रका जल आमिषगन्धी, लवणरससंयुक्त और सर्वविधदोषवर्द्धक है। तलैया (जो खेतोंके आस पास होती है) का पानी बहुदोषाकर है। जङ्गल प्रदेशका जल मध्यमगुणविशिष्ट, विदाही, प्रीतिकर, दीपक, स्वादु, शीतल और लघु होता है। उष्ण जल एक सेरका तीन पाव रह जानेसे वायुनष्टकर, आध सेर रह जाय तो पित्तनाशक और एक पाव रहनेसे कफनाशक, लघुपाक और अग्निकर होता है। शिशिर ऋतुमें पाव कम, वसन्तमें पाव बचा हुआ; शरत्, वर्षा और ग्रीष्मऋतुमें आधासेर बचा हुआ गरम पानी प्रशस्त है। दिनमें गरम किया हुआ दिनमें ही और रात्रिका गरम किया हुआ पानी रात्रिमें ही उपकारप्रद है; अन्य समयमें अनिष्टजनक है। गरम पानी सब ऋतुओंमें ही पथ्य है। यह कास, ज्वर, कोष्ठबद्ध, कफ, वायु और आमदोषनाशक तथा पाचक, श्लेष्मा-नाशक और वायुप्रशमकर है। रात्रिमें गरम पानी पीनेसे कोष्ठशुद्धि हो कर अजीर्ण रोग नष्ट हो जाता है। नारियलका जल स्निग्ध, शीतल, सुखप्रिय, अग्निकर, वस्तिशोधक, वृष्य, तेजस्कर, पित्तज, पिपासाके लिए शान्तिकर और गुरु होता है।

कोमल नारियलका पानी पित्तघ्न और भेदक, पके नारियल का पानी गुरुपाक, पित्तकर और कोष्ठवर्द्धक होता है। भोजनके उपरान्त आधी रात बीतने पर नारियलका जल पीना उचित नहीं। ताड़का जल गुरुपाक, पित्तघ्न, शुक्र जनक और स्तन्यवृद्धिकर है। पानीको दिन भर सूर्यकी किरणसे गरम और रात भर चन्द्रमाकी चाँदनी द्वारा शीतल करनेसे इसमें वृष्टिके जलके समान गुण आ जाते हैं। ओलोंका पानी अमृतके समान है। सुगन्धित जल तृष्णानाशक, लघु और मनोहर है। रात्रिके अन्तमें जल पीना काश, श्वास, अतीसार, ज्वर, वमन, कटिरोग, कुष्ठ, मूत्राघात, उदररोग, अर्श श्वयथु, गल, शिरः, कर्ण, नासा और चक्षुःरोगनाशक है। आकाशमें मेघ न रहने पर रात्रिके अन्तमें नासिका द्वारा जल पान करना बुद्धिकारक, चक्षुहितजनक और सर्व रोग नाशक है। तुषार, मेघ, समुद्र आदि शब्द देखो।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मतसे—पहले जल प्राकृत जगत्‌के चार महाभूतोंमें गिना जाता था। किन्तु अब हाइड्रोजन और अक्सिजनके संयोगसे जलकी उत्पत्ति स्थिर की गई है। इसलिए जल एक यौगिक पदार्थ हुआ, इसमें सन्देह नहीं। जल तरल, वाष्पीय और घन इन अवस्थाओंमें देखा जाता है। यह वर्णहीन, स्वच्छ, गन्धहीन और स्वादहीन है; तथा ताप और विद्युत्‌का असम्पूर्ण परिचालक है। वायुमण्डलके प्रभावसे इसका अति सामान्य ही सङ्कुचित होता है; किसीके मतसे ४६ लाख भागका एक भाग मात्र सङ्कुचित होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १ है। इसी १ संख्याके अनुसार ही अन्य समस्त तरल और घन द्रव्योंका आपेक्षिक गुरुत्व निर्णीत होता है। सम आयतन वायुकी अपेक्षा जल ८१५ गुना भारी है। अन्यान्य तरल पदार्थोंकी भाँति यह भी वायुकी अधिकतासे प्रसारित होता है। ४०° डिग्री फारेनहिटसे जल शीतलीभूत और ३२° डिग्रीसे अति घनीभूत हो जाता है। इस तरहके जलमें जितना उत्ताप दिया जाता है, उतना ही वह विस्फारित होता रहता है। इसके विपरीत अधिक शीतल होते रहनेसे, अन्तमें कठिन हो जाता है। जल इतनी तेजीसे कठिन आकार धारण करता है कि, उस समय लोहेकी चीज भी उसके वेगसे चकनाचूर हो जाता है। बर्फ जलकी अपेक्षा हलकी होती है। इसका घनत्व ०.८४ मात्र है, इसीलिए यह पानीमें तैरती है। यूरोपीय लोग जलको साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त करते हैं जैसे—अन्तरीक्ष जल, भौमजल और खनिज जल। ओस आदिका जल जो कि आकाशसे गिरता है, उसे अन्तरीक्ष कहते हैं। समुद्र, नदी और जलाशय आदिका पानी भौम और खानसे निकला हुआ जल खनिज कहलाता है। जल सम्पूर्ण विशुद्धावस्थामें नहीं मिलता; उसमें लावणिक, वाष्पीय, पचायमान जान्तव और उद्भिज्ज पदार्थ मिश्रित रहते हैं। इनके तारतम्यानुसार जलमें विभिन्न गुण उत्पन्न होते हैं तथा एक तरहका स्वाद और गन्ध भी होती है। मनुष्यकी घ्राणेन्द्रिय इतनी प्रबल नहीं कि जिससे वह जलकी गन्धका अनुभव कर सके; आस्वाद न पानेका भी यही कारण है। किन्तु ऊँट मरुभूमिमें बहुत दूरसे जलकी गन्धका अनुभव कर सकता है। समुद्र और खनिज जलमें लावणिक उपादान अधिक है, इसीलिए इन दोनोंका आपेक्षिक गुरुत्व अधिक है। किसी किसी महानदीमें भी कर्दम तथा और और पदार्थोंके अधिक जम जानेसे उसके जलका आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ जाता है।

साधारण लोगोंका विश्वास है कि, वर्षाका जल सबसे विशुद्ध होता है, किन्तु यह भी सम्पूर्ण अविमिश्र नहीं है। वायुमण्डलमें जो कुछ विभिन्न पदार्थ रहते हैं, वर्षा होते समय जलके साथ पहले ही वह गिर जाते हैं, इस तरहसे वृष्टिके जलमें भी यवक्षाराम्ल, अङ्गाराम्ल और क्लोरिन, इसके सिवा अणुके बराबर लोह, निकेल और मैङ्गानिस तथा एक प्रकारका अपूर्व जान्तव पदार्थ मिश्रित रहता है। उत्तरपश्चिमकी तरफ वायु चलनेसे वृष्टिके जलमें दीपकाम्ल (Phosphoric acid) भी दिखलाई देता है। प्रसिद्ध रासायनिक लिबिगके मतसे— सभी बरसाती पानीमें एमोनिया (नौसादर) रहता है, जो वृक्षस्थ नाइट्रोजनका मूल कारण है।

हाँ, अन्यान्य जलकी अपेक्षा वृष्टिका जल विशुद्ध अवश्य हैं, इसमें द्रावकशक्ति भी अधिक है, इसलिए रासायनिक परीक्षाओंसे यही जल विशेष उपयोगी

समझा जाता है। ऐसी जगह वृष्टिका जल, फिल्टर द्वारा शोधित जलके समान है । नगर आदिके निकटवर्ती स्थानका बरसाती पानी छान कर अथवा उबाल कर काममें लाया जाता है। विशेषतः इस पानीको किसी सीसेके पात्रमें रखनेसे वह द्रवणीय भीषण सीसक-लवण (Salt of lead) द्वारा कलुषित हो जाता है।

शिशिर और वृष्टिके जलमें विशेष कुछ पार्थक्य नहीं है। शिशिरजलमें सिर्फ वायुका भाग कुछ अधिक है। प्रथम अवस्थामें बर्फके पानी और वृष्टिके पानीमें प्रभेद रहता है, बर्फ में बिलकुल वायु नहीं रहता, इसलिए उसमें मछली आदि सांस नहीं ले सकती हैं। यही कारण है कि बर्फके पानीमें स्वाद और गन्ध नहीं रहता। किन्तु वायुसंयोग होनेसे ही वह यथापरिमाण शोषण करती रहती है। तुषारका जल भी बर्फके समान है।

वृष्टिसे ही उत्स वा प्रस्रवणकी उत्पत्ति है। पृथिवीके किसी पोले परतसे वृष्टिका जल भीतर घुसता है, और अन्तमें रुकावट पाते ही वह ऊपरको चढ़ता रहता है। इसीको प्रस्रवण कहते हैं। इससे प्रस्रवणके जलमें भी वृष्टिके समुदाय उपादान रहते हैं। उत्पत्ति-स्थान और स्तरके अनुसार ही,प्रस्रवण-जलके गुण न्यूनाधिक विशुद्ध होते हैं। छोटोंकी अपेक्षा बड़े बड़े प्रस्रवणका जल ही समधिक परिष्कार होता है। आदिम अश्मरयुगके स्तर अथवा अग्निप्रस्तर और कङ्कड़ोंमेंसे जो प्रस्रवण होता है, उसका जल अत्यन्त विशुद्ध है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व शोधित जलके समान है।

सभी प्रस्रवण-जलमें थोड़ी बहुत अङ्गारकाम्ल वाष्प मिश्रित रहती है। अङ्गारकाम्ल संलग्न होनेके कारण ये हैं—निःश्वास, दाहन आदिके जरिये वायुमण्डलमें अङ्गारकाम्ल जाता है और सभी जलमें अङ्गारकाम्ल चूस लेनेकी शक्ति होती है, इसलिए वायुमण्डलमें पहुंचते ही वह वृष्टिके जलके साथ मिल जाता है। इसी तरह जहां मृत जन्तु वा उद्भिज्ज पदार्थ पड़े रहते हैं, उसके ऊपरसे भी जल जानेसे उसमें अङ्गारकाम्ल संयुक्त होता है। इसके सिवा पृथिवीके अभ्यन्तर प्रदेशमें अङ्गारकाम्ल चनाके साथ मिल कर आभ्यन्तरिक उत्ताप द्वारा स्तरकी तरफ जाता रहता है, इस तरहसे प्रस्रवणके निकट उपस्थित होते ही जल उसे खींच लेता है।

स्तरके अनुसार प्रस्रवणके जलमें भी लवणांश रहता है। आवर्जनायुक्त स्थानसे निकले हुए जलमें (जैसे शहरों के कुएं आदिमें) क्लोराइड अफ सोडा मिश्रित रहता है। जिस स्थानमें खड़िया-मट्टी रहती है वहांके जलमें कार्बोनेट् अफ लाइम् देखा जाता है। किसी किसी लवण-खानसे निकले हुए प्रस्रवणके जलमें अइयोडिन (आयोडाइन) और ब्रोमाइन् मिश्रित रहते हैं। और तो क्या, प्रस्रवणका जल यदि किसी भी खनिजपदार्थमें हो कर जाय, तो प्रायः उसमें थोड़ा बहुत खनिज पदार्थ संयुक्त हो जाता है। इस प्रकारके जलको खनिज वा खनिजप्रस्रवण जल कहते हैं।

कभी कभी जिस गिरिशिलामें अम्ल, लावणिक और पार्थिव पदार्थ संयुक्त रहते हैं, उस गिरिशिलाके ऊपरसे लवणसंयुक्त खनिजल प्रवाहित होने पर भी उसमें अम्लादि नहीं पाये जाते। और आदिमस्तरसे जो खनिज जल निकलता है, उसका उत्ताप अधिक है तथा प्रधानतः उसमें गन्धकित उदजान वाष्प, अङ्गारकाम्ल वाष्प, वज्रक्षार (carbonate of soda) के सिवा सोडा, सिकता और अविशुद्ध क्षार रहता है, थोड़ा बहुत लोहा भी पाया जाता है, किन्तु कहीं कहीं कार्बोनेट् आफ लाइम् बिलकुल नहीं रहता। प्राचीनतर द्वितीय युगस्तर (Older Secondary formations)-से जो जल निकलता है उसका अधिकांश शीतोक्त जलके समान है, ऊपरसे गरम मालूम पड़ने पर भी उसका आभ्यन्तरिक उत्ताप कम होता है। इसमें अङ्गारकाम्ल वाष्प थोड़ा बहुत रहती भी है, किन्तु गन्धकित अम्लजान बिलकुल नहीं रहता। इसमें क्षारलवण थोड़ा है किन्तु सल्फेट अफ् लाइम् ज्यादा पाया जाता है। किसी किसी स्थानमें किञ्चित् शिकता (Silica) भी पायी जाती है। पृथिवीके अभिनव द्वितीय वा तृतीय युग-स्तरका (the newer secondary and tertiary formations) जल शीतल होता है, उसमें अङ्गारकाम्ल वाष्प नहीं है। कार्बोनेट और सल्फेट् अफ् लाइम, सल्फेट् अफ् मेगनेसिया और अक्साइड् अफ् आयरन् इस जलके उपादान हैं।

आधुनिक आग्नेयगिरिशिलामें दानेदार या अन्य आदिम शिलाखण्डमें हो कर बहनेवाले जलमें गन्धकित हाइड्रोजन, अङ्गारकाम्ल कार्बनेट् अफ् सोडा, कार्बनेट् अफ लाइम, शिकता सुलफ्युरिक एसिड और मिउरियटिक एसिड पाये जाते हैं, किन्तु इसमें सलफेट् अफ् लाइम्, मेग्नेसियासे उत्पन्न लवण, और सक् साइड अफ् आयरन् नहीं रहते। और जलीय शिला (Sedimentary rocks) में हो कर निकलनेवाले बहुतसे प्रस्रवण पास पास रहने पर भी परस्परके जलमें तारतम्य और भिन्न द्रव्यादिका संयोग देखा जाता है।

इस प्रकारसे स्तरोंकी विभिन्नताके कारण प्रस्रवणके जलके गुणोंमें न्यूनाधिकता होती है, सभी जलसे समान फल नहीं होता। प्रस्रवणके जलकी गरमीको देख कर स्वतः ही ज्ञात होता है कि, उसे औषधके काममें लानेसे फल होगा ; किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। इस जलकी अपेक्षा कृत्रिम उपायोंसे जो जल गरम किया जाता है, वही अधिक उपयोगी है। उष्णप्रस्रवणमें आग्नेयगिरिकी प्रक्रियाका सम्बन्ध है। उक्त प्रक्रियाका सम्बन्ध जहां जितना प्रबल है, वहांका जल उतना ही ज्यादा गरम होता है।

सभी प्रकारके जलमें जान्तव पदार्थ रहते हैं। अणुवीक्षण द्वारा जलमें जीवित कीट और वृक्षलता इत्यादि देखे जाते हैं। ये वृक्ष और कीटादि यथासमय प्राण त्यागते हैं, जो जान्तव पदार्थमें द्रव होनेसे पहले सड़े पचेके रूपमें दिखलाई देते हैं। इसलिए यह पानीके साथ जीव-शरीरमें प्रविष्ट हो कर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। प्रस्रवणके जलकी अपेक्षा नदीके जलमें ऐसे पदार्थ अधिक पाये जाते हैं। इसलिए नदीके पानीसे प्रस्रवणका पानी विशुद्ध होता है। जो प्रस्रवण वृष्टिके जलसे वर्द्धित हो कर नदी रूपमें परिणत होता है, वह यदि बालू या दानेदार पत्थरके (granite) ऊपरसे प्रवाहित हो, तो उसका जल अति पवित्र होता है ; इसमें प्रायः अङ्गारकाम्ल नहीं मिल पाता। परन्तु यह जल अत्यन्त निर्मल होने पर भी प्रस्रवणके जलके समान स्वादु नहीं होता। इस जलमें अम्लजान शोषण और ग्रहण करनेकी शक्ति होती है। यही कारण है कि, नदी और सागरके जलके ऊपरी हिस्सेमें अन्तरीक्ष जलकी अपेक्षा अम्लजानका भाग अधिक रहता है। प्रसिद्ध रासायनिक डेविके मतसे—अन्तरीक्ष जलकी अपेक्षा समुद्र, नदी आदिके जलमें फी सदी २८०१ भाग अक्सिजन अधिक है। ज्यादा अक्सिजनके रहनेसे ही मछली आदि जानवर गहरे पानीमें आसानीसे निःश्वास प्रश्वास ले सकते हैं तथा जलीय उद्भिदसमूह भी वर्द्धित होते रहते हैं।

झरके जलके उपादान इससे भिन्न ही होते हैं। जिस झरमें पानीके निकलनेका मार्ग है, उसका जल बहुत अंशोंमें नदीके जलके समान है, नदीकी अपेक्षा बहुत थोड़ा स्रोत बहता है, इसलिए इसमें जीव और उद्भिदोंका वृद्धि होनेकी सम्भावना अधिक है। किन्तु जिस झरमें पानी निकलनेका रास्ता नहीं, उसका जल अधिकांश नुनखरा और उसके उपादान भी समुद्र-जलके समान हैं। किसी किसी झरमें तो सुहागाही भरा रहता है। आनूप (तर जमीनका जलाशय जो बहुधा खेतोंमें होता है) का जल स्थिर है, इ... जान्तव और उद्भिज्ज पदार्थ परिपूर्ण रहते हैं। इ... कारण है कि, इसका जल अधिकांश ही अस्वास्थ्यकर होता है। इसमेंसे एक प्रकारकी तीव्र गन्धयुक्त वाष्प निकलती है। इस जलके पीनेसे नाना तरहके रोग उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु इस जलमें कट और कषाययुक्त शाक दाना आदि उत्पन्न होनेसे उसके दोष बहुत कुछ घट जाते हैं, तब वह गाय भैंस आदि जानवरोंके पीने लायक हो जाता है। ऐसा पानी यदि मनुष्यको पीना पड़े, तो वह उसमें कटु और तिक्त आस्वादयुक्त लता पत्ता आदि डाल कर पी सकता है। ऐसा करनेसे जल परिशुद्ध न होने पर भी उसके दोष बहुत कुछ दूर हो जाते हैं।

अपरिष्कृत जलको बालू और कोयलाके जरिये अथवा घाममें एक पात्रसे दूसरे पात्रमें बार बार उड़ेल कर शुद्ध किया जा सकता है।

समुद्रके जलमें बहुत ज्यादा लावणिक पदार्थ रहनेसे वह मनुष्यके निकट अपेय है। समुद्रके जलको उ... कर, फिल्टर द्वारा शोधन अथवा ताप द्वारा वनी...

करके काममें लाया जा सकता है। सोडा, बर्फ, वृष्टि आदि शब्द देखो।

वर्त्तमान वैज्ञानिक मतसे— अक्सिजन और हाइड्रोजनके संयोगसे जलकी उत्पत्ति है। हाइड्रोजनको अक्सिजनसे दग्ध करनेसे जल उत्पन्न होता है। मिश्रित हाइड्रोजनको वायु द्वारा दग्ध करने पर उसमेंसे जलीय वाष्प निकला करती है। किसी शीतल पात्रको दीप-शिखा पर थामनेसे उस पर ओस जैसी बुँदकियां दिखाई देती हैं, वे बुँदकियां जलके सिवा दूसरी कोई चीज नहीं। इसी तरह परीक्षाके द्वारा जलसे भी इसके उपादान पृथक् किये जा सकते हैं। जिस उत्ताप से प्लाटिना धातु गलाई जा सकती है उस उत्तापके प्रयोगसे जलके उपादान भी तत्क्षणात् पृथक् किये जा सकते हैं। अत्यन्त उत्तप्त लाल लोहेके ऊपर जल डालनेसे, उसका अक्सिजन धातुके साथ मिल जाता है और हाइड्रोजन भाफ बन कर उड़ जाता है। इसी तरहसे यूरोपीय रासायनिकोंने यह भी स्थिर किया है कि, जलमें फी-सदी ८८८८८ भाग अक्सिजन और ११·१११ भाग हाइड्रोजन रहता है। २ उशीर, खस। ३ सुगन्धवाला, नेत्रवाला। ४ ज्योतिषके अनुसार जन्मकुण्डलीमें चौथा स्थान। जन्मकुण्डली देखो। ५ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जल-अलि (सं० पु०) १ पानीका भँवर। २ जलमें तैरनेवाला एक प्रकारका काला कीड़ा। यह खटमलसे मिलता जुलता है, किन्तु आकारमें खटमलसे कुछ बड़ा होता है, पंरीव, भौंतुआ।

जलई (हिं० स्त्री०) दो अंकुड़ेदार काँटा। यह दो तख्तोंके जोड़ पर जड़ा जाता है। नावके तख्ते प्रायः इसीसे जड़े जाते हैं।

जलकंदरा (हिं० पु०) तालोंके किनारे होनेवाला एक प्रकारका गुल्म।

जलक (सं० क्ली०) १ शङ्ख, संख। २ कपर्दक, कौड़ी।

जलकण्टक (सं० पु०) जले जातः कण्टकः कण्टकान्वितत्वादेवास्य तथात्वं। १ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। २ कुम्भीर, कुंभी।

जलकण्डु (सं० पु०) एक प्रकारकी खुजली जो बहुत काल तक पानीमें रहनेसे पैरोंमें होती है।

जलकन्द (सं० पु०) १ कदली, केला। २ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

जलकपि (सं० पु०) जले कपिरिव। शिशुमार, सूंस नामक जलजन्तु।

जलकपोत (सं० पु०) जलजातः कपोतः। जलपारावत, एक प्रकारका कबूतर जो सदा पानीके किनारे रहता है।

जलकर (हिं० पु०) १ जलसे नाना प्रकारकी जो आमदनी होती है; उसे जलकर कहते हैं। पश्चिममें—किसीके अधिकृत तालाब या झीलोंमें मछली डालनेसे दूसरेका जो स्वत्व जमता है, उसे भी जलकर कहते हैं। बङ्गालमें नदी, कूप, तड़ाग और मछलियोंसे जो आमद होती है उसे जलकर कहते हैं। कहीं कहीं जलकर कहनेसे सिर्फ जलाशय आदिका ही बोध होता है।

जलकरङ्क (सं० पु०) जलपूर्णः करङ्कः। १ नारिकेल, नारियल। २ पद्म, कमल। ३ शङ्ख, संख। ४ जललता। ५ मेघ।

जलकर्ण (सं० स्त्री०) कणमोटा।

जलकल्क (सं० पु०) जलस्य कल्कइव। १ जम्बाला, सेवार। २ कर्दम, कीचड़। ३ काई।

जलकाक (सं० पु०) जले जलस्य वा काक इव। जलचर पक्षिविशेष, जलकौआ नामक पक्षी। इसके पर्याय— दात्यूह और कालकण्टक है। इसके मांसका गुण— स्निग्ध, गुरु, शीतल, बलकर और वातनाशक है।

जलकाङ्क (सं० पु०-स्त्री०) जलं काङ्क्षति अभिलषति जलकाङ्क्ष-अण्। १ हस्ती, हाथी। (त्रि०) २ जलाभिलाषी, जिसे जलकी चाह हो, प्यासा।

जलकाङ्क्षिन् (सं० पु० स्त्री०) जलंकाङ्क्षति अभिलषति काङ्क्षणिनि। १ हस्ती, हाथी। (त्रि०) जलाभिलाषी, जिसे जलकी चाह हो, प्यासा।

जलकान्त (सं० पु०) जलस्य कान्तः, ६-तत्। जलाधिष्ठाता, वरुण।

जलकान्तार (सं० पु०) जलमेव कान्तारं दुर्गमपथो यस्य। वरुण।

जलकाम (सं० पु०) जलवेतस।

जलकामा (सं० स्त्री०) अन्धाहुली।

जलकामुक (सं० पु०) जलस्य कामुकः अभिलाषुकः,

६-तत्। १ क्षुटम्बिनीवृक्ष, सूर्यमुखी। (त्रि०) २ जला-भिलाषी।

जलकाय (सं० पु०) जैनमतानुसार वह प्राणी जिसका जल ही शरीर हो। पृथिवी, अप, तेज, वायु और वनस्पति इन पांच स्थावर जीवोंमेंसे एक। अपकाय अर्थात् जलकायके जीवोंमें सिर्फ एक ही स्पर्श इन्द्रिय होती है। इसमें रूप, रस, गन्ध और वर्ण चारों ही पाये जाते हैं। "पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।"(तत्त्वार्थसूत्र २ अ०)

जलकिनार (हिं० पु०) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा।

जलकिराट (सं० पु०) जले किरः शूकरः इव अटति गच्छति अट अच्। १ ग्राह, मगर, घड़ियाल। २ शिशुमार, सूंस नामक जलजन्तु।

जलकुंभी (हिं० पु०) कुंभी नामकी वनस्पति यह वनस्पति जलाशयोंमें पानीके ऊपर होती है।

जलकुक्कुट (सं० पु०) जले कुक्कुट इव। १ पक्षिभेद, मुरगाबी। २ उल्लूक।

जलकुक्कुभ (सं० पु०) जले कुक्कुभः पक्षिविशेष इव। जलचरपक्षिविशेष, कुक्कुड़ी, वनमुर्गी। इसके पर्याय—कोयष्टि और शिखरी है।

जलकुण्डल (सं० पु०) शैवाल, सेवार।

जलकुन्तल (सं० पु०) जलस्य कुन्तलः केश इव। शैवाल, सेवार।

जलकुब्जक (सं० पु०) जले कुब्ज इव कायति। १ जलजात वृक्षभेद कोई। २ शैवाल, सेवार।

जलकूपी (सं० स्त्री०) जलस्य कूपीव। १ कूपगर्त्त, कूआं। २ तड़ाग, तालाब।

जलकूर्म्म (सं० पु०) जले कूर्म इव। शिशुमार, सूंस नामक जलजन्तु।

जलकृत् (सं० त्रि०) जलकार, जल देनेवाला।

जलकेतु (सं० पु०) पताकाविशेष, एक प्रकारका पुच्छल तारा। यह पश्चिम दिशामें उदय होता है और इसकी शिखा पश्चिमकी ओर होती है। यह देखनेमें स्वच्छ होता है। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है कि इसके उदयसे नौ मास तक सुभिक्ष रहता है।

जलकेलि (सं० पु०) जलेन जले वा केलिः। जलक्रीड़ा, जलमें खेलने या उछलनेकी क्रिया।

जलकेश (सं० पु०) जलस्य केश इव। शैवाल, सेवार।

जलकौआ (हिं० पु०) यूरोप, एशिया, अफ्रिका और उत्तरीय अमेरिकामें मिलनेवाला एक प्रकारका जलपक्षी। इसकी गरदन सफेद, चोंच भूरी और शेष सारा शरीर काला होता है। नरके पैर मादेसे कुछ छोटे होते हैं। यह दोसे तीन हाथ तक लम्बा होता है। मादासे एक बारमें चारसे छह तक अंडे पैदा होते हैं। इसके मांसके गुण—स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और बलवर्द्धक।

जलक्रिया (सं० स्त्री०) जलसुहृद्या क्रिया। पितरादिका तर्पण।

जलक्रीड़ा (सं० स्त्री०) जलेन जले वा क्रीड़ा। जलमें सन्तरणादि रूप क्रीड़ा, जलविहार। इसके पर्याय—करपात, व्यत्युक्षी और करपत्रिका है।

जलखग (सं० पु०) जलस्य खगः, ६-तत्। जलचरपक्षिविशेष, पानीके किनारे रहनेवाला एक पक्षी।

जलखर (हिं० पु०) जलखरी।

जलखरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी थैली जो तागेकी बनी रहती है। मनुष्य इसमें फल आदि रख कर एक स्थानसे दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा (हिं० पु०) जलपान, कलेवा।

जलग (सं० पु०) जलं गच्छति। जल-गम ड। जलगत, वह जो पानीमें डूब गया हो।

जलगन्धभे (सं० पु०) जलहस्ती।

जलगर्भ (सं० पु०) जलसूवकी गर्भः। बुद्धके प्रधान शिष्य आनन्दका पूर्व जन्मका नाम उन्होंने उस जन्ममें जलवाहनके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया था।

जलगांव—१ बरार प्रान्तके बुलडाना जिलेका एक तालुका यह अक्षा० २०°५५´ एवं २१° ११´ उ० और देशा० ७६°२३´ तथा ७६°४८´ पू०के मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल ४१० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८७१६२ है। इसमें एक नगर और १५५ गांव आबाद हैं। मालगुजारी लगभग ३५४०००) और सेस २८००० रु० है। १८०५ ई०के अगस्त मास तक जलगांव अकोलाजिलेमें लगता था। २ बरारके बुलडाना जिलेमें जल-गांव तालुकका सदर। यह अक्षा० २१° ३´ उ० और देशा० ७६° ३५´

पू॰में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८४८७ है। आईन-अकबरीमें इसको नरनाल सरकारके परगनेका शहर लिखा है। यह कई रूईको कलें और रूईका बाजार है।

अलगांव—१ बम्बई प्रान्तके पूर्व खानदेश जिलेका तालुक। यह अक्षा॰ २०° ४७ तथा २१° ११´ ३० और देशा॰ ७५° २४´ एवं ७५° ४५´ पू॰में अवस्थित है। क्षेत्रफल ३१८ वर्गमील है। इसमें २ नगर और ८६ ग्राम बसे हैं। लोकसंख्या प्रायः ८५१५१ है। मालगुजारी कोई २ लाख ८ हजार और सेस १८०००) रु॰ पड़ती है। जलवायु सचराचर स्वास्थ्यकर हैं।

२ बम्बई प्रान्तके पूर्व खानदेश जिलेमें जलगांव ताम्लुकका सदर। यह अक्षा॰ २१° १´ ३० और देशा॰ ७५° ३५´ पू॰में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे पर पड़ता है। जनसंख्या कोई १६२५१ है। ईसाकी १८वीं शताब्दीमें इसका व्यापार खूब बढ़ा चढ़ा था। १८६२-५ ई॰को अमेरिकन युद्धके समय खानदेशमें यह रूईका बड़ा बाजार था, किन्तु लड़ाईके बाद जब रूईकी दर घट गई तब शहरकी महती क्षति हुई थी। यहांका प्रधान वाणिज्य-द्रव्य रूई, अलसी और तिल है। १६०२ ई॰में यहां रूईके ६ पेच दो बिनौले निकालनेके कारखाने एक रूई कातनेकी कल और एक कपड़े बुननेकी कल थी। ये सब कलें वाष्पसे चलाई जाती थीं। उसी साल कई एक कारखे भी मंगाये गये थे। इस कारण यह शहर बहुत वर्द्धिष्णु हो गया है। २ मील दूर मेहरुनसे नलमें पानी आता है। नेरी तक पक्की सड़क है। १८६४ ई॰में म्युनिसपालिटी हुई। यहां एक अप्रधान जजकी अदालत, एक चिकित्सालय तथा पांच विद्यालय हैं। इनके सिवा अमेरिकन अलायन्स मीसन (American allance mission) की एक शाखा हालमें स्थापित हुई है।

अलगांव—मध्यप्रदेशके वर्धा जिलेकी आरवी तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम। यह आरवीसे करीब ३ कोस उत्तर पश्चिममें है। यहां खूबसूरत पानके बरौजे, कुछ मनोहर उद्यान और ८० कूप हैं। यहांकी जनसंख्या करीब २५०० होगी।

जलगांव—मध्यप्रदेशके बड़वानी राज्यका एक प्रधान परगना, इसका रकवा ६२७ वर्गमील है। इस परगनेमें ततिया और मेलम नामक दो बड़े ग्राम हैं।

अलगार—दाक्षिणात्यवासी एक नीच जाति। किसीका मत है कि, ये लोग नाविक जातिके हैं।

इस जातिकी संख्या बहुत थोड़ी है। धारवार जिलेमें पहले ये ही नदीकी बालू धो कर सोना निकाला करते थे। शीत ऋतुमें जब कि मजूरी सस्ती हो जाती है—ये लोग कपोति पर्वत पर जा कर नदी और झरनोंसे बालू धो धो कर सोना संग्रह किया करते हैं। अन्य समयमें सुनारोंके दूकानोंकी रेती धो कर सोनेकी चूर निकाला करते हैं।

इस जातिके सभी लोग दरिद्र हैं। इस समय इनका रोजगार बिल्कुल नष्ट हो गया है। इसलिए मजदूरोंका काम किये बिना इनकी गुजर नहीं होती।

ये लोग अशुद्ध कनाड़ी भाषा बोलते हैं। ये कुटीर या छोटे घरोंमें वास करते हैं। ये बैल, कुत्ते और मुर्ग पालते हैं। कंगनी और शाक-सब्जी इनका दैनिक आहार है। मद्य-मांस खाना भी इन्हें पसंद है। इनमें पुरुषगण कानमें कुण्डल पहनते हैं औरतोंकी तो बात ही क्या? ये अत्यन्त परिश्रमी, कष्टसहिष्णु और बहुत गन्दे होते हैं।

जेलवा, हुलिगेवा और हनमाप्पा, ये तीनों अलगारोंके कुलदेवता हैं। ये होली, दशहरा और दिवाली आदि हिन्दुओंके उत्सवोंको पालते हैं। देव और ब्राह्मणों पर इनको यथेष्ट भक्तिश्रद्धा है। ये सभी धार्मिक अनुष्ठान ब्राह्मणों द्वारा कराते हैं। ये दयमवा और दुर्गवा नामकी ग्राम्य देवियोंकी भी पूजा करते हैं। भूत, प्रेत, डाकिनी, दैववाणी आदिमें इनका विश्वास नहीं और न ये हिन्दू-संस्कारका ही पालन करते हैं।

सन्तान भूमिष्ठ होते ही ये शीघ्र ही उसकी नाड़ी काट डालते हैं। बादमें पांचवें दिन कालम्मा देवीकी पूजा और ज्ञातिभोज कराते हैं। धारवार जिलेमें इस दिन यमनूरके पीर राजा बगीवरकी कब्र पर एक भैंस चढ़ाई जाती है।

विवाहके दिन इनके तेल चढ़ता है। इसके दूसरे

दिन ज्ञातिकुटुम्बका भोजन और तीसरे दिन वरकन्याको घोड़े पर चढ़ा कर नगरकी प्रदक्षिणा कराई जाती है। किसीकी मृत्यु होने पर ये चिता पर लकड़ी अथवा बंडे सजा कर उस पर मुर्देको रखते और दाग देते हैं। इनमें बाल्यविवाह और पुरुषोंमें बहुविवाह प्रचलित है, परन्तु विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। इस जातिके लोग परस्पर एकतासूत्रसे आबद्ध हैं।

जलगालन—जैन-गृहस्थोंका एक आवश्यक कर्त्तव्य-कर्म। सुप्रसिद्ध जैन पण्डित आशाधरका जलगालनके विषयमें ऐसा मत है कि, दुहरे कपड़ेसे छना हुआ जल ही गृहस्थके लिए प्रशस्त है। छना हुआ जल भी चार घड़ी वा दो मुहूर्तके बाद पीने योग्य नहीं रहता। इसके सिवा छोटे, मलिन और पुरातन वस्त्रसे छाना हुआ पानी भी असेव्य है। वस्त्र (छन्ना) ३६ अङ्गुल लम्बा और २४ अंगुल चौड़ा एवं दुहरा होना चाहिये; अर्थात् पात्रके मुंहसे वस्त्र त्रिगुण बड़ा हो। जैन आचार ग्रन्थोंमें लिखा है कि, साधारणतः जलमें कीट रहते हैं जो दीखते नहीं किन्तु दूरवीक्षण आदि यन्त्रोंकी सहायतासे दृष्टिगोचर होते हैं। जल छाननेसे वे कीट तो पृथक् हो जाते हैं, किन्तु जलकायिक एकेन्द्रिय जीव विद्यमान रहते हैं जिनका कि गृहस्थोंके त्याग नहीं होता। परन्तु मुनि वा साधु प्रासुक (निर्जीव) जल ही पीते हैं। जलको गरम करनेसे १२ घंटे तक, खूब ज्यादा उबालनेसे २४ घण्टे तक और सिर्फ लवङ्ग, मरिच, इलायची आदि डालनेसे वह जल ६ घण्टे तक प्रासुक रहता है। श्रावक वा जैन-गृहस्थ जल छान कर पान करते हैं, जो बिना छना पानी पीते हैं, उन्हें श्रावक नहीं कहा जा सकता। (जैन गृहस्थधर्म)

जलगुल्म (सं० पु०) जलस्य गुल्म इव। १ जलावर्त्त, पानीका भँवर। २ कच्छप, कछुआ। ३ जलचत्वर, वह देश जिसमें जल कम हो। ४ चतुष्कोण पुष्करिणी, चौखूंटा तालाब।

जलङ्ग (सं० पु०) जलं गच्छति जल-गम ड ततो मुम्। महाकाल लता।

जलङ्गम (सं० पु०) जलं ग्रामान्तजलभूमिं गच्छति जल-गम-खच्। चाण्डाल।

जलङ्गी (खड़िया) बङ्गालके नदीया जिलेकी एक नदी। यह अक्षा० २४° ११´ उ० और ८८° ४३´ पू०में गङ्गासे निकल नदीया जिलेमें पहुंची है और जिलेके उत्तर-पश्चिम ५० मील तक बहती हुई उसे मुर्शिदाबादसे पृथक् करती है। नदीया नगरके समीप जलङ्गी भागीरथीसे मिलती है। इन्हीं दोनों मिलित नदियोंका नाम हुगली है। ग्रीष्मऋतुमें जलङ्गी सूख जाती है।

जलघड़ी (हिं० स्त्री०) समयका ज्ञान करनेका एक यन्त्र। इसमें एक कटोरा रहता है जिसके तलेमें छेद होता है। कटोरा पानीकी नांदमें रखा जाता है। पेंदीके छेदसे कटोरेमें पानी जाता है और वह एक घंटेमें डूब जाता है। जब कटोरा भर जाता है तो उससे जल निकाल कर जलमें फिर रख दिया जाता है और पूर्ववत् उसमें पानी भरने लगता है। इस तरह एक एक घंटे पर वह कटोरा पानीसे भर जाता और फिर उसे पानी निकाल कर पानीकी नांदमें छोड़ दिया जाता है।

जलचत्वर (सं० क्ली०) जलेन चत्वरं। अल्पजलयुक्त देश, वह देश जिसमें जल कम हो।

जलचर (सं० पु०) जले चरति जल चर-क। जलचारी ग्राहादि जलजन्तु, पानीमें रहनेवाले मछली, कछुआ मगर आदि।

जलचरजीव (सं० पु०) जलेचरः जलचरः यो जीवः। मत्स्यजीवी, वह जो मछली खा कर जीविका निर्वाह करता हो।

जलचारी (सं० पु०) जले चरति चर-णिनि। १ मत्स्य, मछली। (त्रि०) २ जलचर, जो जलमें रहता हो।

जलडिम्ब (सं० पु०) जले डिम्ब इव। शम्बूक, घोंघा।

जलतण्डुलीय (सं० पु०) जलजातस्तण्डुलीयः। कष्टट शाक, चौराईकी साग।

जलतरङ्ग (सं० पु०) १ जलकी तरंग, लहर, हिलोर। २ वाद्ययन्त्रविशेष, एक प्रकारका बाजा। यह धातुकी बहुतसी छोटी बड़ी कटोरियोंकी एक क्रमसे रख कर बनाया और बजाया जाता है। बजाते समय सब कटोरियोंमें पानी भर दिया जाता है और उन पर किसी

हलकी मुंगरीसे आघात कर तरह तरहके नीचे ऊंचे स्वर उत्पन्न किये जाते हैं।

जलतरोई (हिं० स्त्री०) मत्स्य, मछली।

जलतापिक (सं० पु०) जलतापिन् संज्ञायां कन्। १ हेल मछली। २ काकची मत्स्य, एक मछली। ३ जलताल, हिलसा मछली।

जलतापी (सं० पु०) जलतां स्वदेशरूपस्य हजलमयतां आप्नोति, जले तपति प्रकाशयति इति वा। जलताप् णिन वा जल-तप-णिनि। हेल नामक मछली।

जलताल (सं० पु०) जलतायै अलति पर्याप्नोति अल अच्। मत्स्यविशेष, हेल मछली।

जलतिक्तिका (सं० स्त्री०) स्वल्पा तिक्ता तिक्तिका, जल प्रधाना तिक्तिका। शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

जलत्रा (सं० स्त्री०) जलात् त्रायते त्रै-क। १ छत्र, छाता। २ जङ्गमकुटी, वह कुटी जो एक स्थानसे हटा कर दूसरे स्थान तक पहुंचाई जा सके।

जलत्रास (सं० पु०) जलात् तदस्मित् त्रासः सोऽस्य वा। जलसे भय, पानी देख कर डरजाना। कुत्ते, शृगाल आदिके काटनेके बाद जल देख कर अत्यन्त भय लगता है, उसको रिष्ट कहते हैं। ऐसी अवस्थामें काटे हुए मनुष्यका बचना शंकाजनक है। जलातंक देखो।

जलद (सं० पु०) जलं ददाति दा-क। १ मेघ बादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ कर्पूर, कपूर। ५ शाकद्वीपके अन्तर्गत वर्षविशेष, पुराणके अनुसार शाकद्वीपके अन्तर्गत एक वर्षका नाम। (भारत २।११।१२) (त्रि०) ६ जलदाता, जल देनेवाला। (पु०) ७ कारस्करवृक्ष, कुचलेका पेड़ ८ पोतबालक, छरीवाला।

जलदकाल (सं० पु०) जलदस्य कालः, ६-तत्। वर्षाकाल बरसात।

जलदक्षय (सं० पु०) जलदानां क्षयो यत्र। शरत्काल, शरद ऋतु।

जलदतिताला (हिं० पु०) द्रुततिताली रागिणी विशेष, एक साधारण तिताला ताल। इसकी गति साधारणसे कुछ तेज होती है कोई कोई कहते हैं कि यह कौवालीसे कुछ विलंबित होता है।

जलदर्दुर (सं० पु०) जलं दर्दुर इव। जलरूप दर्दुरादि वाद्यभेद, थापी द्वारा जलमें शब्द करना।

जलदागम (सं० पु०) जलदानां मेघानां आगमः आगमनं यत्र। वर्षाकाल, बरसात।

जलदाशन (सं० पु०) जलदैरश्नते भक्षयते अश कर्मणि ल्युट्। शालवृक्ष, शाखूका पेड़। प्रवाद है कि बादल शाखूकी पत्तियां खाते हैं, इसीसे शाखूका यह नाम पड़ा है।

जलदुर्ग (सं० क्ली०) जलवेष्टितं दुर्गं। दुर्गभेद, एक प्रकारका दुर्ग जो चारों ओर नदी झील आदिसे सुरक्षित हो। दुर्ग देखो।

जलदेव (सं० पु०) जलं देवो अधिष्ठातृदेवता यस्य। १ पूर्वाषाढ़ नक्षत्र। अश्लेषा देखो।

२ केतुग्रह युक्त नक्षत्रका नाम। जलदेवके केतु ग्रहके साथ मिलने पर कापोतिका नाश होता है। ३ जलस्थित देवता, वरुण।

जलदेवता (सं० स्त्री०) जलस्य अधिष्ठात्री देवता। जलस्थित देवता, वरुण।

जलदोही (हिं० पु०) काईकी तरहका एक पौधा। यह भी पानी पर फैलता है। इसके शरीरमें लगनेसे खुजली पैदा होती है।

जलद्रव्य (सं० क्ली०) जलस्थितं यत् द्रव्यं। मुक्ता, शंख प्रभृति समुद्रजात द्रव्य।

जलद्राक्षा (सं० स्त्री०) जले द्राक्षा इव। शालिञ्चो शाक, एक प्रकारका साग।

जलद्रोणी (सं० स्त्री०) जलस्य जलसेचनार्थं द्रोणीव। १ नौकाका जल फेंकनेका पात्र-विशेष, नावका पानी बाहर निकालनेका डोल। २ डोल, डोलची।

जलद्वीप (सं० पु०) जलप्रधानो द्वीपः। द्वीपभेद, एक द्वीपनाम।

जलधका—उत्तर बङ्गालकी एक नदी। यह नदी भूटानसे निकल कर भूटानराज्य और दार्जिलिङ्ग जिलेके सीमा प्रदेश होती हुई जलपाईगुड़ीमें गिरती है। फिर वहांसे पूर्वकी ओर कोचविहार हो कर बहती हुई धरला नदीसे मिल गई है। यह नदी अपने उत्पत्तिस्थानसे कुछ दूर तक डि-चु और उसके बाद सिङ्गीमारी नामसे पुकारी जाती है। परालचु, रंचु और माचु उपनदियां दार्जि-

लिङ्गमें, मूर्त्ति और दोना जलपाईगुड़ीमें और मुजनाई, सतङ्गा, दुदया, दोलङ्ग और दलखोया कोचविहार में प्रवाहित हैं। यह नदी बहुत चौड़ी है किन्तु गहरी कम है।

जलधर (सं पु०) धरतीति धरः धृ-अच् जलस्य धरः १ मेघ, बादल। २ मुस्तक मोथा। ३ समुद्र। ४ तिनिश वृक्ष, तिनसका पेड़ (त्रि०) ५ जलधारक, जल रखनेवाला।

जलधरकेदारा (सं० स्त्री०) मेघ और केदाराके योगसे उत्पन्न एक रागिणीका नाम।

जलधरमाला (सं० स्त्री०) जलधरस्य माला, ६-तत्। १ मेघश्रेणी, बादलोंकी पंक्ति। २छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर होते हैं। ४था और ८वां अक्षर यति होता है। ५, ६, ७ और ८वां वर्ण लघु होता है, बाकोके वर्ण दीर्घ होते हैं।

जलधरी (सं० स्त्री०) पत्थर या धातु आदिका बना हुआ अर्घा। इसमें शिवलिङ्ग स्थापित किया जाता है, जलहरी।

जलधार (सं० पु०) जलं धारयति धारि-अण्, उप०। शाकद्वीप स्थित पर्वत। (त्रि०) २ जलधारक। (स्त्री०) ३ जलसन्तति।

जलधारा (सं० स्त्री०) १ जलप्रवाह, पानीकी धारा। २ एक प्रकारकी तपस्या। इसमें कोई मनुष्य तपस्या करनेवाले पर बराबर धार बांध कर जल डालता रहता है।

जलधारा-तपस्वी—एक प्रकारके संन्यासी। ये बैठनेके योग्य किसी एक निर्दिष्ट स्थानमें गड़ा खोद कर उस पर मञ्च बनाते हैं, उस मञ्चके ऊपर एक बहु छिद्रयुक्त जलका पात्र रहता है। संन्यासी इस गड़हेके भीतर बैठ कर तपस्या करते हैं। और उनका कोई शिष्य उस पात्रमें बराबर जल भरता रहता है। इस प्रकारकी तपस्या ये रात्रिमें करते हैं। शीत ऋतुमें भी इनका यह नियम भङ्ग नहीं होता। परन्तु जब ये तपस्याभङ्ग कर उठते हैं, तब इनके शरीर पर कुछ भी नहीं रहता।

जलधारी (सं त्रि०) १ जलका धारण करनेवाला, जल धारक (पु०) २ मेघ, बादल।

जलधि (सं० पु०) जलानि धीयन्तेऽस्मिन् जल-धा-कि। १ समुद्र। २ दश शङ्कु संख्या, दश संख या एक सौ लाख करोड़की एक जलधि होती है।

जलधिगा (सं० स्त्री०) जलधिं समुद्रं गच्छति गम-ड स्त्रियां टाप्। १ नदी। २ लक्ष्मी।

जलधिज (सं० पु०) जलधौ जायते जन-ड। १ चन्द्र, चांद। (त्रि०) समुद्रजात द्रव्य, समुद्रमें मिलनेवाला पदार्थ

जलधेनु (सं० स्त्री०) जलकल्पिता धेनुः। वह धेनु या गाय जो दानके लिए कल्पित की गई हो। वराहपुराणमें दानका विधान इस प्रकार लिखा है—पुण्यके दिन यथाविधिसंयतचित्त हो कर जो जलधेनु दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और उसे अक्षय स्वर्गको प्राप्ति होती है। भूभागको गोमय द्वारा परिमार्जन कर चर्म कल्पना करो। उसके बीचमें एक कुम्भ रख कर उसे जलसे परिपूर्ण करो और उसमें चन्दन, अगुरु आदि गन्धद्रव्य डाल कर उसमें धेनुकी कल्पना करो। अनन्तर और एक घृत-पूर्ण कुम्भमें धीको दूर्वा पुष्पमाला आदिसे भूषित कर उसमें वत्सकी कल्पना करो। उस घड़े पर पञ्चरत्न निक्षेप कर मांसी, उशीर, कुष्ठ, शैलेय, शालुका, आंवल और सरसों निक्षेप करो। इसी तरह एकमें घृत, एकमें दधि, एकमें मधु और एकमें शर्करा भर कर रक्खे पीछे उनमें सुवर्ण द्वारा मुख और चक्षु, कृष्णागुरु द्वारा शृङ्ग, प्रशस्त पत्र द्वारा कर्ण, मुक्तादल द्वारा चक्षु, ताम्र द्वारा पृष्ठ, कांस्य द्वारा रोम, सूत्र द्वारा पुच्छ, शुक्ति द्वारा दन्त, शर्करा द्वारा जिह्वा, नवनीत द्वारा स्तन और इक्षुद्वारा पैरोंकी कल्पना कर गन्धपुष्प द्वारा शोभित करो इसके बाद उन्हें कृष्णाजिनके ऊपर स्थापन कर वस्त्र द्वारा आच्छादित करो। पीछे गन्धपुष्पसे अर्चना कर उन्हें वेदपारग ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। इस प्रकारकी जलधेनु दान करनेवाला ब्रह्महत्या, पितृहत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन इत्यादि महापातकोंसे विमुक्त हो जाता है और दान लेनेवाले ब्राह्मणका भी महापातक नष्ट होता है। (वराहपुराण)

जलन (हिं० स्त्री०) १ बहुत अधिक ईर्षा। २ जलनेकी पीड़ा या दुःख।

जलनकुल (सं० पु०) जलने कुल इव। जलजन्तुविशेष, ऊदबिलाव। इसके पर्याय—उद्र, जलमार्जार, जलाखु,

जलप्लव, जलविड़ाल, नीराखु, पानीयनकुल और वभ्री है।

जलना (हिं० क्रि०) १ दग्ध होना, भस्म होना। २ अधिक गरमी लगनेके कारण किसी पदार्थका भाफ या कोयले आदिके रूपमें हो जाना। ३ झुलसना, झौंसना। ४ बहुत अधिक डाहके कारण चिढ़ना।

जलनिधि (सं० पु०) जलानि निधीयन्ते ऽस्मिन्-धा-कि। जलानां निधिः वा। १ समुद्र। २ चारकी संख्या।

जलनिर्गम (सं० पु०) जलानां निर्गमः वहिर्गमनः यस्मात् भावे अप्। जलनिःसरणमार्ग, पानीका निकास। इसके पर्याय—भ्रम, वक्र और पुटभेद है।

जलनीम (हिं० स्त्री०) जलाशयोंके किनारे दलदली भूमिमें उत्पन्न होनेवाली एक प्रकारकी लोनिया। इसका स्वाद कड़ुवा होता है।

जलनीलिका (सं० स्त्री०) जलनीली स्वार्थे-कन, स्त्रियां टाप्। शैवाल, सेवार।

जलनीली (सं० स्त्री०) जलं नीलयति तत् करोति णिच् ततो अण् गौरादित्वात् ङीष्। शैवाल, सेवार।

जलनेत्र (सं० पु०) जलमधूक, जल-महुआ।

जलन्धम (सं० पु०) जलं धमति धा खश्। दानवभेद, एक राक्षसका नाम। २ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न कृष्णकी एक कन्याका नाम।

जलन्धर (सं० पु०) जलं ब्रह्मनेत्रच्युताश्रुजलं धरति धृ-खच् ततो मुम्। १ असुरविशेष, एक असुरका नाम। एक दिन इन्द्र शिवलोक दर्शन करनेकी इच्छासे वहाँ गये। वह उन्होंने एक भयानक आकृतिका मनुष्य देखा। इन्द्रने उसे देख कर पूछा—"भगवान् भूतभावन महेश्वर कहां हैं?" किन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर इन्द्रने गुस्सेमें आ कर वज्र द्वारा उन पर प्रहार किया। इससे उक्त पुरुषके ललाटसे अग्नि निकल कर इन्द्रको दग्ध करनेका उद्यम करने लगी। इन्द्रने उन्हें रुद्र समझ कर नाना प्रकारसे स्तुति कर उन्हें परितुष्ट किया। महादेवने इन्द्र पर सन्तुष्ट हो कर उस अग्निको सागरसङ्गममें निक्षेप किया। उस अग्निसे एक बालक जनमा और वह बड़े जोरसे रोने लगा। इसके रोनेसे दुनियां बहरी हो गई। इस रोदनसे अस्थिर हो कर ब्रह्मा देवों सहित समुद्रके किनारे गये और समुद्रसे पूछने लगे कि, "यह किसका पुत्र है?" समुद्रने कहा—"मेरा पुत्र है, आप ले जाइये और जातकर्मादि सम्पन्न कीजिये।" ब्रह्माकी गोदमें आते ही वह बालक उनकी दाढ़ी पकड़ कर खींचने लगा, जिसकी पीड़ासे ब्रह्माकी आँखोंसे आंसू टपकने लगे। ब्रह्माने उस बालकका जलन्धर नाम रख कर इस प्रकार वर दिया—"यह बालक सर्वशास्त्र-वेत्ता और रुद्रके सिवा सर्वभूतोंका अवध्य होगा।" इसके बाद यह ब्रह्माके द्वारा असुर राज्यमें अभिषिक्त हुए। इन्होंने कालनेमि-सुता वृन्दाके साथ विवाह किया। इसके उपरान्त इन्होंने इन्द्रको परास्त कर अमरावती पर अधिकार कर लिया। इन्द्रने राज्यच्युत हो कर महादेवकी शरण ली। शिव इन्द्रको पक्ष ले कर इनसे लड़ने लगे। वृन्दाने पतिकी रक्षाके लिए विष्णुकी पूजा प्रारम्भ कर दी। विष्णु जलन्धरके रूपसे वृन्दाके पास पहुंचे, जिससे वृन्दाने पतिको अक्षत लौटा जान विष्णुकी पूजा बिना पूर्ण किये ही छोड़ दी इससे जलन्धरकी मृत्यु ह मसे वृन्दा विष्णुके उक्त कपटको जान कर शाप देनेको समयमें हुईं। विष्णुने उन्हें अनेक सान्त्वना दे कर किया था। सहमृता होओ। तुम्हारी भस्मसे तुलसी, और अश्वत्थ ये चार वृक्ष उत्पन्न होंगे। (पद्मको पराहत

२ एक ऋषिका नाम। ३ योगाङ्ग बन्धभेद आसन पर एक बन्ध। (काशीखंड ४१ अ०)

जलपक्षी (सं० पु०) जलस्थितः पक्षी। जल पक्षमोल जलके आसपास रहनेवाली चिड़िया। न न था,

जलपति (सं० पु०) जलस्य पतिः, ६-तत्। १ वरुणने का तीर्थमें जा शिवमूर्त्ति स्थापन कर पन्द्रह हजार वर्ष शिवकी आराधना की। शिवने सन्तुष्ट हो कर उनसे कहा—"मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम वर मांगो।" वरुणने कहा—"यदि मुझ पर सन्तुष्ट हो हुए हैं, तो मुझे जलाधिपति बना दीजिये।" इस पर शिवने "आजसे तुम समस्त जलके अधिपति हुए" इतना कह कर प्रस्थान किया। (काशीखंड १२ अ०) २ समुद्र। ३ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलपथ (सं० पु०) जलमेव पन्था-अच्। १ जलमार्ग, जल बहनेका रास्ता। जलस्य पन्थाः, ६-तत्। २ प्रणाली, नाली।

जलपाई—एक प्रकारका वृक्ष। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ही यह पेड़ उपजता है। इसे कनाड़ीमें पेरिकट और सिंहलमें वेरल् कहते हैं। इसके फलमें गूदा बहुत होता है और उसकी तरकारी बना कर खाई जाती है। यह रुद्राक्षके पेड़से छोटा, पर उससे मिलता जुलता होता है। आसामके लोग इसके फलको खूब पसन्द करते हैं।

जलपाईगुड़ी—१ बङ्गाल प्रान्तका एक जिला। यह अक्षा० २६´ तथा २७´ उ० और देशा० ८८° २०´ एवं ८९° ५३´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २८३२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें दार्जिलिङ्ग एवं भूटान राज्य, दक्षिणमें दिनाजपुर, रङ्गपुर तथा कोचविहार, पश्चिममें दिनाजपुर, पुरनिया एवं दार्जिलिङ्ग और पूर्वमें सङ्कोस नदी है। भूटानकी ओर पर्वतके पाददेशमें प्राकृतिक दृश्य अतीव मनोहर है। कई नदियां पहाड़से निकल करके आयी हैं। यहां तांबा पाया जाता है। जङ्गली हाथी, भैंसे, गैंड़, चीते, सूअर, भालू और हरिण बहुत हैं। सरकारकी तर्फसे कुछ हाथी पकड़े जाते हैं।

यहां मलेरिया, प्लीहा, यकृत् और उदरामय ये रोग ... पार्वत्य प्रदेशमें गलगण्ड रोगकी प्रबलता ... सेनानिवासके देशीय सैनिक सर्वदा शीतादि ...न्त होते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि, दीर्घ-कालमें ताजे फलमूलादि न मिलनेके कारण ...रोग होता है। फिलहाल यहां हैजाका भी ...होने लगा है।

जलपाईगुड़ी जिलेमें सब जगह अब भी लवणका व्यवहार नहीं होता। प्रायः सभी लोग एक प्रकारका क्षारजल काममें लाते हैं, जिसको वहांके लोग "छेका" कहते हैं।

इतिहास—जलपाईगुड़ीके प्राचीनतम इतिहासके विषयमें विशेष वर्णन नहीं मिलता। कालिकापुराणके पढ़नेसे ज्ञात होता है यह स्थान पूर्वकालमें कामरूप राज्यके अन्तर्गत था। यहांके जल्पीश नामक महादेवका विवरण भी कालिकापुराणमें वर्णित है।

(कालिकापु० ७७ अ०)

जलपाईगुड़ी नाम कैसे पड़ा, यह भी मालूम नहीं हो सकता। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यहां जल्पीके अधिष्ठाताके रूपमें प्राचीनतम शिवलिङ्ग जल्पीश नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। जल्पीश देखो।

सम्भवतः यह स्थान भगदत्त वंशीय प्राग्ज्योतिष-राजाओंके अधिकारमें था। ईसाकी ७वीं सदीमें भी हम भगदत्तवंशीय कुमारराज भास्करवर्माको यहांके अधिपति पाते हैं; परन्तु उनके बाद इस प्रान्तका राज्य किसने किया, इसका कुछ पता नहीं चलता। सम्भव है परवर्ती कामरूप वा गौड़के राजाओंने जलपाईगुड़ीका शासन किया हो। किन्तु पहले यहां सिर्फ असभ्य लोग ही रहते थे और कभी कभी जल्पीश महादेवके दर्शनार्थ कुछ उच्च जातीय हिन्दुओंका आगमन होता था।

किसीका मत है कि, पहले यहां पृथ्वी राय नामक किसी राजाका राज्य था। कोचक जातिने आ कर उनकी राजधानी पर आक्रमण किया। राजाने असभ्यों-के अधीन रहनेकी अपेक्षा मृत्युको श्रेय समझा और राजप्रासादके मध्यस्थित एक दीर्घिकामें कूद कर अपने प्राण गमा दिये। इस समय उक्त राजधानीका कुछ अंश बोदा और कुछ अंश बैकुण्ठपुर परगनेके अन्तर्गत है। अब चार परिखा और चार प्राचीरें निदर्शन मात्र हैं। प्रथम परिखाकी प्राचीर मिट्टी की है, उसकी लम्बाई करीब ७००० गज और चौड़ाई ४००० गज है। जगह जगह टूटी हुई ईटें भी दीख पड़ती हैं। बहुतोंका अनुमान है कि ये ईटें देव-मन्दिरादिका ही भग्नावशेष है।

इसके सिवा संन्यासीकाटा नामक तालुकमें भी कुछ भग्न मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंके सम्बन्धमें प्रवाद है कि, वर्तमान रायकतवंशके आदिपुरुष शिशुदेव वा शिव-कुमारने यहां दो किलोंका बनवाना शुरू किया। किले-की नीव खोदनेके समय जमीनसे एक संन्यासी निकले। संन्यासी समाधिस्थ थे। खोदनेवालेने बिना जाने उनके शरीर पर अस्त्राघात किया था। परन्तु ध्यान भङ्ग होने संन्यासीने उनसे कुछ न कहा, कहने लगे कि "मुझे पुनः जमीनमें गाड़ दो" सबने उनका आदेश पालन किया। शिशुदेवने वहां एक मन्दिर बनवा दिया। तबसे उस स्थानका नाम 'संन्यासी काटा' पड़ गया।

कोचविहारके यथार्थ इतिहासके साथ ही जलपाई-गुड़ीके यथार्थ इतिहासका प्रारम्भ होता है।

वर्तमान कोचविहार-राजवंशके आदिपुरुष विश्वसिंहके शिशु नामक एक भ्राता थे। कोचविहार देखो। विश्वसिंहके कामरूपके राज-सिंहासन पर अभिषिक्त होने पर उनके ज्येष्ठ सहोदर शिशुने उनके मस्तक पर राजछत्र धारण किया था और "रायकत" * उपाधि प्राप्त की थी। ये ही शिशुसिंह वर्तमान जलपाईगुड़ीके राजवंशके आदिपुरुष थे। शिशु विश्वके मन्त्री थे और प्रधान संन्याधायकका भी कार्य करते थे। उस समय शिशुके बाहुबलसे ही कामरूप राज्यका विस्तार हुआ था। ये भूटानके देवराजको परास्त कर गौड़राज्य जय करने आये थे। गौड़की राजधानी पर आक्रमण न कर सकने पर भी उस समय रङ्गपुर और जलपाईगुड़ी जिलेका अधिकांश स्थान कामरूप राजाके अधिकारमें था। विश्वसिंहने ज्येष्ठ भ्राताको उक्त नवाधिकृत स्थान दे दिये थे। शिशुसिंहने वर्त्तमान जलपाईगुड़ीके अन्तर्गत वैकुण्ठपुर नामक स्थानमें राजधानी स्थापित की थी और वहीं वे रहते थे। इसी वैकुण्ठपुरके नामानुसार ही वैकुण्ठपुर परगनेका नाम हुआ है। बहुत दिनों तक जलपाईगुड़ीके राजा वैकुण्ठपुरके राजाके नामसे प्रसिद्ध थे।

शिशुदेव वैकुण्ठपुरके राजा वा रायकत नहीं कहलाते थे, वे कोचविहारके प्रधान मन्त्री और सेनापति ही समझे जाते थे।

शिशुदेवकी मृत्युके बाद उनके पुत्र मनोहरदेव रायकत हुए। मनोहरदेवके बाद उनके पुत्र माणिक्यदेवको और उसकी मृत्युके बाद उनके पुत्र शिवदेवको रायकत पद मिला। उक्त माणिक्यदेवके तीन पुत्र थे—ज्येष्ठ शिवदेव, मध्यम महीदेव और कनिष्ठ मारुतिदेव।

शिवदेवने कोचविहारराज लक्ष्मीनारायणके सहायतार्थ मुगलोंसे युद्ध किया था। उस समय दिल्लीके सिंहासन पर सम्राट् जहांगीर अधिष्ठित थे। राजा लक्ष्मीनारायण बंदी हो कर दिल्ली पहुंचे और बाध्यतासे उन्हें मुगलोंकी अधीनता माननी पड़ी। परन्तु वैकुण्ठपुराधिप शिवदेवने मुगलकी अधीनता स्वीकार न की थी। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र रत्नदेवके रायकत होनेकी बात थी; किन्तु महीदेवने भतीजेको मार कर राज्य अधिकार कर लिया।

१६२१ ई०में वीरनारायणके राज्याभिषेकके समय कुलप्रथाके अनुसार महीदेव कोच-राजसभामें आये थे। महीदेवके पूर्ववर्ती सभी रायकतोंने कोचराजके अभिषेकके समय राजछत्र धारण किया था, किन्तु महीदेवने कोच-राजको यथेष्ट सम्मान दिखा कर छत्र धारण करनेमें अनिच्छा प्रकट की। इसी समयसे रायकत द्वारा छत्र धारणकी प्रथा उठ गई। मोदनारायणके राजत्वकालमें कोचविहार राज्यमें बड़ी विशृङ्खलता हुई थी। महीदेवने उसके निवारणार्थ बहुत प्रयत्न किया था।

१६६७ ई०में ४६ वर्ष राजत्व करनेके बाद महीदेवकी मृत्यु हो गई। उनके दो पुत्र थे, ज्येष्ठका नाम था भुजदेव और कनिष्ठका यज्ञदेव।

पिताकी मृत्युके बाद भुजदेव रायकत हुए। इनका अपने छोटे भाई पर बड़ा स्नेह था। जरा जरासे काममें भी ये उनकी सम्मति लिया करते थे। उनके समयमें भूटानके देवराजने कोचविहार पर आक्रमण किया था। किन्तु भुजदेवने कौशलसे भूटानकी सेनाको परास्त कर वासुदेवनारायणको कोचविहारके सिंहासन पर बिठा दिया।

भुजदेव अपने राज्यकी उन्नतिके लिए विशेष यत्नशील थे। पहले उनके पितृराज्यमें कोई निर्दिष्ट सैन्यदल न था, सिर्फ राज-प्रासादकी रक्षाके लिए कुछ सिपाही नियुक्त थे। युद्धके समय मुसलमान और पार्वतीय असभ्योंको एकत्र किया जाता था। परन्तु भुजदेवने एक दल वेतनभोगी सेना नियुक्त की। उनको वे युद्धशिक्षा देने लगे। कोचराज वासुदेवनारायणके भूटानियोंके डरसे राज्य छोड़ कर भाग जाने पर भुजदेवने भाईके साथ आकर भूटानियोंको परास्त किया और महेन्द्रनारायणको कोचके सिंहासन पर बिठा दिया।

कोचविहारसे लौटनेके कुछ दिन बाद ही यज्ञदेवकी मृत्यु हो गई। प्रियतम सहोदरकी मृत्युसे भुजदेव अत्यन्त शोकाकुल हुए और कुछ दिन बीमार रह कर

* 'रायकत' शब्द किस भाषासे लिया गया है और उसका अर्थ क्या है इस बातका अभी तक निर्णय नहीं हुआ। सम्भवतः वह संस्कृत 'रायकूट' शब्दका अपभ्रंश रूप है।

१६८७ ई०में उनका शरीरान्त हो गया। उनके समयमें ही रायकत वंशकी चरम उन्नति हुई थी। किन्तु उनकी मृत्युके बाद ही मुगलोंके अत्याचारसे वैकुण्ठपुर राज्य कमज़ोर हो गया।

भुजदेवके कोई पुत्र नहीं था। उनके बाद यज्ञदेवके दो पुत्र विश्वदेव और धर्मदेवने यथाक्रमसे रायकत पद प्राप्त किया।

१६८७ ई०में विश्वदेव रायकत हुए। इनके कुछ दिन बाद ही ढाकाके सूबेदार इब्राहिमखाँके पुत्र जबरदस्तखाँने वैकुण्ठपुरके दक्षिणांश पर धावा किया। विश्वदेव विलासी और डरपोक थे, युद्ध बिना किये ही वे कर देनेके लिए राजी हो गये। कुछ दिन बाद भूटानके राजाने भी मुगलोंके आक्रमणके डरसे पूर्व शत्रुता भूल कर वैकुण्ठपुर और कोचविहार राज्यसे मेल कर लिया। फिर तीनों शक्तियोंने मिल कर मुगलोंसे युद्ध किया। मुगलोंने विपक्षके सैनिकोंके सिर काट कर एक जगह बांस पर लटका दिये। तबसे उस स्थानका "मुण्डमाला" नाम पड़ गया। और जहां मुगल-सेना मारी गई थी, उन स्थानोंका नाम "तुर्ककटा" और "मुगलकटा" हो गया। इस युद्धमें रायकतोंकी बहुत सेना मारी गई, जिससे वे दुर्बल हो गये। इसी समयमें मुगलोंने बोदा, पाटग्राम और पूर्वभाग पर दखल कर लिया।

१७०८ ई०में विश्वदेवकी मृत्यु हुई। उनके बाद ज्येष्ठपुत्र बालक मुकुन्ददेव राजाभिषिक्त हुए; किन्तु धर्मदेवने षड़यन्त्र रच कर भतीजेको मरवा डाला और स्वयं राजा अधिकार कर रायकत हो गये।

धर्मदेवके राजत्वकालमें मुसलमान लोग और भी अत्याचार करने लगे। इसी समय वैकुण्ठपुरका दक्षिणांश सम्पूर्णरूपसे मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया। धर्मदेवने १७११ ई०में जबरदस्तखाँके साथ एक सन्धि कर ली और मुगलोंके अधिकृत समस्त भूभागके लिए कर देनेको राजी हो गये। १७२४ ई०में धर्मदेवकी मृत्यु होने पर उनके ज्येष्ठपुत्र भूपदेव रायकत हुए। कुछ दिन बाद ही उनके साथ भूटानके देवराजका झगड़ा हो गया।

१७३६ ई०में भूपदेवकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्रके ही रायकत होनेकी बात थी, किन्तु पिताकी मृत्युके अव्यवहित काल पश्चात् उनका जन्म हुआ था; इसलिए राजपरिवारने भूपदेवके मध्यम सहोदर विक्रमदेवको रायकत बनाया। इनके समयमें भी भूटानियोंने बहुतसा स्थान अधिकार कर लिया और अत्याचार करते रहे। १७५८ ई०में विक्रमदेवकी मृत्यु हो गई। मरते समय वे एक पुत्र छोड़ गये थे। इनके साथ रायकतोंकी स्वाधीनता लुप्त हो गई। पूर्ववर्ती रायकतोंने नाम मात्रके लिए मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार की थी राज्य सम्बन्धी सभी बातोंमें उनको सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त थी; किन्तु ईष्ट इण्डिया कम्पनीके दिल्लीश्वरसे बङ्गालकी दीवानी प्राप्त करनेके बाद वैकुण्ठपुरके राजा भी ब्रिटिश गवर्मेन्टके अधीन हो गये।

विक्रमदेवके बाद उनके छोटे भाई दर्पदेव रायकत हुए। इनके समयमें राज्यके उत्तरांश पर देवराज और दक्षिणांश पर महम्मद अलीने आक्रमण किया। राज्यकी रक्षाके लिए दर्पसे बहुत लड़े, पर अन्तमें वे मुसलमानोंसे परास्त हो बन्दी हो गये। पीछे अधिक कर देनेकी स्वीकारता दे मुक्त हुए। इसके बाद ही वे सैन्य संस्कारमें प्रवृत्त हुए। देवराजने भी उनसे सन्धि कर ली और उन्हें पूर्वाधिकृत स्थान लौटा दिया। प्रवाद है कि, देवराजने दर्पराजकी सहायतासे कोचविहार पर आक्रमण किया था। १७७३ ई०में कोचविहारके नाजिरदेवने देवराज और ईष्टइण्डिया कम्पनीसे सन्धि कर ली। उसके अनुसार देवराजने कोचविहार छोड़ दिया; किन्तु दर्पदेव रायकत उस गड़बड़के मूलकारण थे, इसलिए तबसे सिर्फ जमींदार गिने जाने लगे। कोचविहारके राजकार्यमें हस्तक्षेप करनेका उनको अधिकार न रहा। सन्धिके बाद ही देवराजके साथ दर्पदेवका झगड़ा हो गया। देवराजको सन्तुष्ट करनेके लिए ईष्ट इण्डिया कम्पनीने वैकुण्ठपुरकी बहुतसी जगह उन्हें दे दी। इससे दर्पदेव अत्यन्त असन्तुष्ट हो गये; उन्होंने युद्ध कर भूटानियोंसे बहुतसी भूमि छीन ली। देवराजने यह बात बड़े लाटसे कह दी। अंग्रेज अध्यक्षने देवराजको सन्तुष्ट करनेके लिए, उनकी मांगी हुए स्थान उन्हें दे दिये। अनेक अभियोगोंके बाद

१७८० ई०में देवराजको पुनः आईनकाल काटा और जल्पेश मिल गया। इस तरह विस्तृत वैकुण्ठपुर राज्य धीरे धीरे क्षुद्रायतन हो गया। इस समय रायकतोंको २८३३४॥) रुपया करस्वरूप देना पड़ता था, किन्तु देवराजको कुछ स्थान दे देनेके कारण राजस्व घटा कर १८८८०॥।) कर दिया गया। पीछे १७८३ ई०में १८ ०१) निर्द्धारित हुआ, दूसरे वर्ष इसमेंसे भी ३२३८) रु घटा दिये गये। इसके बाद फिर गवर्मेण्टने ६२३३) रु० बढ़ा दिये। परन्तु इसका कुछ कारण नहीं मालूम पड़ा।

दर्पदेव सिर्फ युद्धविग्रह और राजनैतिक गड़बड़ोंमें ही व्यस्त थे, ऐसा नहीं। उससे पहले यहां कामरूपी ब्राह्मणोंके सिवा और किसी ब्राह्मणका वास न था। दर्पदेवने श्रीहट्टसे कुछ पण्डोंको ला कर अपने राज्यमें बसाया। जिस ग्राममें वे रहते थे उसका नाम "पण्डा पड़ा" पड़ा। उक्त पण्डोंके वंशधर अब भी उक्त गांवमें रहते हैं।

१७९३ ई०में दर्पदेवकी मृत्यु हो गई। उनके बाद ज्येष्ठ पुत्र जयन्तदेव रायकत हुए। जयन्त बहुत ही निष्ठावान धार्मिक थे, उनका अधिकांश समय देवपूजामें व्यतीत होता था। इनके समयमें देवराजने आसानीसे 'पाठाकाटा' आदि कई एक स्थानों पर कब्जा कर लिया। जयन्तदेवने उनके उद्धारके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। पहले वैकुण्ठपुर नामक स्थानमें ही राजधानी थी, जयन्तदेव वहांसे राजधानी उठा कर जलपाईगुड़ी ले आये। जलपाईगुड़ीमें जो राज-प्रासाद है, उसके पश्चिममें करला नदी और पूर्व, दक्षिण एवं उत्तरमें परिखा है। परिखाके उत्तर और दक्षिण बाहुद्वय करला नदीमें जा मिले हैं। राजधानीको देखनेसे यही कल्पना पड़ता है कि वह खूब सुरक्षित है।

१८०८ ई०में जयन्तदेवकी मृत्यु हो गई। उस समय उनके पुत्र सर्वदेवकी उमर पांच वर्षकी थी। इसलिए जयन्तके भाई प्रतापदेव ही राजकार्य चलाने लगे। उनके शासनसे अंग्रेज भी सन्तुष्ट हुए थे। किन्तु भतीजेको मार कर निर्विघ्न राज्यसुख भोगनेकी लिप्साने उनका हृदय अधिकार कर लिए। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए उन्होंने चण्डीका पूजा करना शुरू कर दिया। उसको इच्छा थी, भतीजेको ही देवीके सामने बलि दें, किन्तु उनकी दुरभिसन्धि प्रगट हो गई। धात्री कुमार सर्वदेवको गुप्तरीतिसे रङ्गपुर ले गई और वहां उसने कलक्टर साहबसे सब बात कह दी। कलक्टर साहबने शीघ्र ही प्रतापदेवको हाजिर होनेके लिये आदेश दिया। धूर्त प्रतापने कलक्टर साहबके पास पहुंच कर सब दोष अपने दीवान रामानन्द शर्माका बतलाया। रामानन्द कैद कर लिए गये।

१८१२ ई०में सर्वदेवने रायकत पद पाया। इसके कुछ दिन बाद ही प्रतापदेवने रायकत पद पानेके लिए दीवानी अदालतमें मुकदमा चलाया, पर वे हार गये। सर्वदेव बुद्धिमान् और बहुत चतुर थे। रायकत होनेके बाद जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके पितृराज्यका अधिकांश ही देवराजने हस्तगत कर लिया है, तब उन्हें उसके उद्धारकी सूझी। उन्होंने बहुतसी सेना इकट्ठी कर १८२४ ई०में देवराजसे युद्ध ठान दिया। एक वर्षमें ही उन्होंने देवराज द्वारा अधिकृत समस्त स्थानों पर अधिकार कर लिया। देवराजने ब्रटिश गवर्मेण्टके समक्ष इस विषयका अभियोग उपस्थित किया। गवर्मेण्टकी बिना आज्ञाके उनके मित्रराजसे युद्ध करनेके अपराधसे सर्वदेवको ७ वर्षकी सजा हुई। अपील हुई; अपीलमें उनके लिए ३ वर्षकी सजाका हुक्म हुआ। रङ्गपुरके एक पृथक् मकानमें उन्हें तीन वर्ष रहना पड़ा। मुक्ति पानेके बाद उन्होंने राजनैतिक चर्चा बिल्कुल ही छोड़ दी, सर्वदा धर्मचर्चा करने लगे। इस समय उनकी सभामें बहुतसे ब्राह्मण पण्डित उपस्थित रहते थे। जयन्तदेवने जलपाईगुड़ीमें परिखा आदि खुदवाई थी, किन्तु अट्टालिका, दीर्घिका और मन्दिर सर्वदेवके समयमें ही बने थे।

१८४७ ई०में सर्वदेवकी मृत्यु हो गई। इनके दश पुत्र थे, जिनमें मकरन्ददेव सबसे बड़े थे। सर्वदेवकी मृत्युके बाद मन्त्रियोंने षड़यन्त्र कर नाबालिग राजेन्द्रदेवको रायकत पद पर अभिषिक्त किया। कुमार मकरन्ददेव बेचारे मण्डलघाट पहुंचे और जमींदारी पानेके लिए उन्होंने नालिश की। मुकदमा जीत गये। १८४८

ई०में वे रायकत हुए। १८५५ ई०में इनकी मृत्यु होने पर उनके इच्छापत्रके अनुसार नाबालिग चन्द्रशेखर देव रायकत हुए।

१८५९ ई०में इनका शासनभार कोर्ट-आफ-वार्डके अधीन हो गया और विद्याभ्यासके लिए ये कलकत्ते लाये गये। १८६२ ई०में ये स्वदेश पहुंचे, किन्तु विलासिताके दोषसे कर्जदार हो गये। थोड़े दिन बाद १८६५ ई०में इनकी मृत्यु हो गई। इनके कोई पुत्र न था, इसलिए भाई योगेन्द्रदेव रायकत हुए। इसी समय उनके काका भोलासाहब उर्फ फणीन्द्रदेवने राजा प्राप्तिके लिए मुकदमा किया, पर वे परास्त हो गये। इस मुकदमाके कारण राजा और भी कर्जदार हो गया। नाना चिन्ताओंके कारण १८७७ ई०में इनकी मृत्यु हो गई।

मृत्युसे तीन महीने पहले उन्होंने एक लड़का गोदमें रक्खा था। उनका नाम था जगदिन्द्रदेव। कुछ दिनके लिए वे ही रायकत हुए। किन्तु उनके भाग्यमें राजसुख सदा न था। कुछ समय बाद फणीन्द्रदेव रायकत पद पर अभिषिक्त हुए। इनके समयमें राजाकी बहुत उन्नति हुई थी। इनके पुत्रादि अब भी जीवित हैं।

जलपाईगुड़ीकी लोकसंख्या प्रायः ७८७३८० है। उत्तर पश्चिम चायके बाग हैं। बहुतसे कुली दूसरे स्थानोंसे आ करके बस गये हैं। लोगोंकी भाषा रङ्गपुरी या राजवंशी हैं कुछ लोग हिन्दी बोलते हैं। दूसरी भी कई भाषाएं प्रचलित हैं। चावल प्रधान खाद्य है। यहां तम्बाकू खूब होती है। १८७४ ई०को युरोपियोंने चायके बाग लगाये थे। मवेशी छोटे और कमजोर हैं। उनकी बिक्रीका कई मेले लगा करते हैं। सरकारी जङ्गल बहुत है। खानसे निकलनेवाले द्रव्योंमें चूनेका कङ्कर प्रधान है। कोयला भी कुछ निकलता है। जिलेके पश्चिम अञ्चलमें बोराका मोटा कपड़ा बुना जाता है। रेशमी आरमारी और फोटा भी तैयार करते हैं। भूटानकी बिलायती कपड़े और रेशमकी रफ्तनी होती है। चाय, तम्बाकू और पाट बाहर भेजनेके लिये ही उत्पन्न करते हैं। रेलोंकी कोई कमी नहीं। ईष्टर्न बङ्गाल ष्टेट रेलवे और बङ्गाल और दुआर्स रेलवे फैली पड़ी है। ८७७ मील सड़क है। मालगुजारी कोई ७ लाख ७२ हजार होगी।

राज्यकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला जलपाईगुड़ी और अलीपुर नामक दो उपविभागोंमें विभक्त किया गया है। पहला विभाग डेपुटी-कमिश्नर और पांच डेपुटी-मजिष्ट्रेट कलेक्टरके और दूसरा युरोपियन डेपुटी मजिष्ट्रेट कलेक्टरके अधीन है। डिष्ट्रिक्ट और सेसन जज तथा दिनाजपुरके सब-जज विचारकार्य सम्पादन करते हैं। दीवानी अदालतका विचार जलपाईगुड़ीके दो मुन्सफ और अलीपुरके एक सब-डिभिजनल कर्मचारीके अधीन है।

२ बङ्गाल प्रान्तके जलपाईगुड़ी जिलेका सब डिविजन। यह अक्षा० २६° एवं २७° उ० और देशा० ८८° २०' तथा ८९° ७ पू०के मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल १८२० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६६८०२७ है। इसमें १ नगर और ५९८ ग्राम बसे हुए हैं।

३ बङ्गाल प्रान्तके जलपाईगुड़ी जिलेमें जलपाईगुड़ी सब डिविजनका सदर। यह अक्षा० २६° ३२' उ० और देशा० ८८° ४३' पू०में अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८७०८ है। १८२५ ई०को मुनिसपालिटी हुई।

जलपाटल (हिं० पु०) कज्जल, काजल।

जलपादप (सं० पु०) हंस।

जलपान (हिं० पु०) सुबह और शामका हलका भोजन, कलेवा, नाश्ता।

जलपारावत (सं० पु०) जले पारावत इव। पक्षिविशेष, जलकपोत। इसके पर्याय कोपी और जलजपोत है।

जलपिण्ड (सं० क्ली०) जलस्य पिण्डमिव। अग्नि, आग।

जलपिप्पलिका (सं० स्त्री०) जलपिप्पली, जलपीपल।

जलपिप्पली (सं० स्त्री०) जलजाता पिप्पली। पिप्पली विशेष, जलपीपल नामकी दवा। इसके पर्याय—महाराष्ट्री, शारदी, तपवल्लरी, मत्स्यादिनी, मत्स्यगन्धा, लाङ्गली, शकुलादनी अग्निज्वाला, चित्रपत्री, प्राणदा, तृणशीता और बहुशिखा हैं। इसके गुण कटु, तीक्ष्ण, कषाय मल शोधक, दीपका, व्रणकीटादिके दोष और रसदोषनाशक है। (भावप्र०)

जलपिप्पिका (सं० स्त्री०) मत्स्य, मछली।

जलपीपल (हिं० स्त्री०) जलपिप्पली देखो।

जलपुर (सं० पु०) जलस्य पुरः, ६-तत्। जलसमूह।

जलपुष्प (सं० क्लो०) जलजातं पुष्पं। १ पद्म प्रभृति जलजपुष्प, जलमें उत्पन्न होनेवाले कमल आदि फूल। २ दलदलो भूमिमें होनेवाला एक प्रकारका पौधा। यह लज्जावन्तीसे बहुत कुछ मिलता जुलता है।

जलपूर (सं० पु०) जलपूर्ण नदो, पानोसे भरो हुई नदो।

जलपृष्ठजा (सं० स्त्री०) जलस्य पृष्ठे उपरि प्रदेशे जायते, जन-ड स्त्रियां टाप्। शैवाल, सेवार।

जलप्रदान (सं० क्लो०) प्रेतादिभ्यः जलस्य प्रदानं। प्रेत या पितर आदिको उदकक्रिया, तर्पण।

जलप्रदानिक (सं० क्लो०) जलप्रदानं युद्धाहतानां उद्देशेन जलप्रदानं ठन्। स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिक पर्वाध्याय।

जलप्रपा (सं० स्त्री०) जलस्य जलदानार्थं प्रपा। जलदानका गृह, वह स्थान जहां सर्वसाधारणको पानो पिलाया जाता है, पौंसर, सबील।

जलप्रपात (सं० पु०) जलपतन। नदोका स्रोत गिरिशृङ्गमें रुद्ध हो कर जल प्रबलवेगसे ऊंचे स्थानसे नोचेको गिरता है, इसीको जलप्रपात कहते हैं। प्रपात शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

जलप्रान्त (सं० पु०) जलस्य प्रान्तः, ६-तत्। जलका समीप स्थान; जलाशयके आसपासको जगह।

जलप्राय (सं० क्लो०) जलस्य प्रायो बाहुल्यं यत्र। जलबहुलस्थान, अनुपदेश, जहां जल अधिकतासे हो।

जलप्रिय (सं० पु०) जलं प्रियं यस्य। १ चातकपक्षो, पपोहा। २ मत्स्य, मछलो। ३ धन्याक। ४ हिलमोचिका। (त्रि०) ५ जो जल बहुत चाहता हो।

जलप्लव (सं० पु०) जले प्लवते प्लु-अच्। जलनकुल, ऊद बिलाव।

जलप्लावन (सं० क्लो०) जलस्य प्लावनं, ६ तत्। १ बाढ़, पानोसे किसो एक देशका डूब जाना, जैसे—नदोको बाढ़। २ प्रलयविशेष, एक प्रकारका प्रलय जिससे महादेश आदि समस्त हो पानोमें डूब जाते हैं।

जगत्‌में कितने बार इस प्रकारका जलप्लावन हुआ है, इसका कोई ठीक नहीं। प्रायः सभी सभ्य जातियोंमें जलप्लावनका प्रवाद प्रचलित है। उनमेंसे हिन्दू शास्त्रीय वैवस्वत मनु, पारसिक शास्त्रीय नू और बाइबलके प्राचीन

प्रसंगमें मूसा वर्णित नोयाको जलप्लावनसे रक्षाको कथा सर्वजनप्रसिद्ध है।

हमारे शतपथब्राह्मण, महाभारत तथा मत्स्य, भागवत, अग्नि आदि पौराणिक ग्रन्थोंमें जलप्लावनको कथा वर्णित है। इनमेंसे शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मणका विवरण हो सबसे प्राचीन है।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है कि, एक दिन मनुने हाथ धोनेके जलमेंसे एक मछलो पकड़ो। वह मछलो बोलो—"मुझे यत्न पूर्वक रक्खो। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।" मनुने पूछा—"क्यों मेरो रक्षा करोगो?" मछलीने उत्तर दिया—"जलप्लावनसे सभी जीव-जन्तु बह जायेंगे, उस समय मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।"

इसके उपरान्त मछलीने पहले एक मिट्टीके बर्तनमें फिर सरोवरमें और उससे भी बड़ी होने पर समुद्रमें छोड़ देनेके लिए कह दिया। इसके बाद कुछ हो दिन पीछे वह मछली बड़ो हो गई और मनुको सम्बोधन कर कहने लगी—"इन कई वर्षोंके बीत जानेके उपरान्त महाप्लावन होगा। एक नौका बनाओ और मेरी पूजा करो। जब जल बढ़ने लगेगा, तब तुम उस पर बैठ जाना; मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।" मछलीके कथनानुसार मनुने नाव बनाई, मछलीको समुद्रमें छोड़ दिया और उसकी पूजा करने लगे। पृथ्वीमण्डल जलसे प्लावित हो गया। मनुने मछलोके सींगसे अपनी नावको रस्सी बांध दी। नाव उत्तरगिरि (हिमालय)के ऊपरसे बहने लगी। अन्तमें उन मत्स्यराजने एक वृक्षसे नौका बांधनेको कहा और खुद भी जलके साथ नीचे चली गई। मनुने वृक्षसे नावको बांध कर चारों ओर देखा, कि, सभी जीवजन्तु पानीके रेलेमें बह गये हैं; सिर्फ वे हो बचे हैं। प्रजाकी सृष्टिके लिए उन्होंने यज्ञ और तपस्यामें मन लगाया। पहले एक स्त्री उत्पन्न हुई, उसने मनुके पास आ कर कहा—"मैं आपको कन्या हूं।" उसके साथ मनुने सहवास किया, फिर वे प्रजाको इच्छासे याग-यज्ञ करने लगे। उस स्त्रीसे मनुको सन्तानको प्राप्ति हुई। यही पुत्र फिर मानव नामसे प्रसिद्ध हुआ।

महाभारतमें लिखा है—मनु एक दिन नदीके किनारे तपस्या कर रहे थे, इस समय एक मछलीने आ कर

कहा—"आपदासे मेरी रक्षा करो।" मनुने पहले उसे एक स्फटिकके पात्रमें रख दिया था; किन्तु पीछे वह मछली इतनी बड़ी हो गई कि, उसको रखनेके लिए समुद्रके सिवा कहीं जगह ही न मिली। समुद्रमें पहुंचनेके बाद उस मच्छने मनुसे कहा—"शीघ्र ही महाप्लावन होगा, एक नाव बना कर सप्तर्षि सहित तुम उसमें बैठ जाओ।" मनुने भी वैसा ही किया; नावकी रस्सी मत्स्यके सींगोंसे बांध दी। देखते देखते वह नाव महासमुद्रमें बह चली। चारों ओर पानी ही पानी दीखने लगा। इस तरह जब समस्त जगत् जलमें डूब गया, तब उस प्रबल तरङ्गमें मनु, सप्तर्षि और मत्स्यके सिवा और कुछ भी नजर नहीं आया। इस प्रकारसे वह मच्छ नावको लिए हुए वर्षों घूमते घामते हिमालय पर्वतकी चोटी पर पहुंचा और हंसते हंसते मनुसे कहने लगा—"इस ऊंची शिखरसे शीघ्र ही नावको बांध दो। मैं ही प्रजापति विधाता हूं, तुम लोगोंकी रक्षाके लिए ही मैंने यह मूर्ति धारण की है। इस मनुसे ही देवासुर नरकी उत्पत्ति होगी और उससे ही स्थावर जङ्गम समुदायकी सृष्टि होगी।"

अग्नि और मत्स्यपुराणमें लिखा है—एक दिन वैवस्वत मनु कृतमाला नामक नदीमें जा कर तर्पण कर रहे थे; इसी समय उनकी अञ्जलीमें एक छोटी मछली आ पड़ी। मछलीके कथनानुसार मनुने पहले उसे कलसमें, फिर जलाशयमें और अन्तको शरीर बढ़ने पर समुद्रमें छोड़ दिया। मछलीने समुद्रमें गिरते ही क्षणमात्रके भीतर अपना शरीर लाख योजन विस्तृत कर लिया। यह देख मनु कहने लगे—"भगवान्! आप कौन हैं? आप देव देव नारायण हैं, इसमें सन्देह नहीं। हे जनार्दन! मुझे क्यों मायाजालमें मुग्ध कर रहे हो?" इस पर मत्स्यरूपी भगवान्ने उत्तर दिया—"मैं दुष्टोंका दमन और साधुओंकी रक्षा करनेके लिए मत्स्यरूपमें अवतीर्ण हुआ हूं। आजसे सात दिनके भीतर भीतर यह निखिल जगत् समुद्रके जलसे प्लावित हो जायगा। उस समय एक नाव तुम्हारे पास आवेगी। तुम उस पर समस्त जीवोंके एक एक दम्पतीको स्थापन कर सप्तर्षिसे परिवृत हो उसीमें एक ब्राह्मी निशा अतिवाहित करना। उस समय मैं भी उपस्थित होऊंगा। तुम उस समय नौकाको नागपाश द्वारा मेरे सींगसे बांध देना।" यथा समय समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ी। नाव भी वहां आ पहुंची। मनुने उस पर बैठ कर एक ब्राह्मी निशा अतिवाहित की। आखिरकार एक शृङ्गधारी नियुत योजन विस्तृत काञ्चनमय एक मत्स्य भी उपस्थित हुआ। नावको उसके सींगसे बांध मनु मत्स्यका स्तव करने लगे।"

ईसाइयोंके धर्मग्रन्थ बाईबलके मतसे—सृष्टिके १६५६ वर्ष बाद और ईसाके जन्मसे २३८३ वर्ष पहले भीषण जलप्लावन हुआ था। उस समय महागभीर प्रस्रवणोंका चकनाचूर हो गया था, स्वर्गके गवाक्ष खुल गये थे और ४० दिन ४० रात तक लगातार मूसलधारसे पानी बरसा। क्रमशः पानी इतना बढ़ गया कि, समस्त पर्वतोंके शिखरोंसे भी १५ हाथ ऊंचा हो गया। इससे इस जगत्के अस्थिचर्मधारी समस्त जीवोंका ही विनाश हो गया। प्रत्यादेशके अनुसार नोआ समस्त प्राणियोंके एक एक जोड़ेको ले कर एक बहुत बड़ी नाव पर चढ़ गये। अब सिर्फ नोआ और उसको नावके प्राणी ही बच रहे। १५० दिन तक यह जल ज्योंका त्यों रहा, पीछे ईश्वरने पृथिवी पर हवा चलाई जिससे जल धीरे धीरे घटने लगा। समुद्र और प्रस्रवणका स्रोत तथा स्वर्गके गवाक्ष बन्द हो गये। वर्षा भी थम गई। नोआ २य मासके १७वें दिन नाव पर चढ़े थे। ७म मासके १७वें दिन नाव आराराट पर्वतकी चोटीसे जा लगी। दूसरे वर्षके पहले दिनसे जल सूखने लगा। दो मास बाद पृथिवी भी सूख गई। इस प्रकारसे महाजलप्लावनसे नोआने रक्षा पाई थी।

ग्रीक, पारसी, अमेरिकाके मेक्सिको और पेरुवासी भी जलप्लावनकी कथाका वर्णन किया करते हैं। पूर्वोक्त विवरणोंमें परस्पर थोड़ा बहुत विरोध रहने पर भी, नौकामें चढ़ कर रक्षा पानेकी कथाको सभी स्वीकार करते हैं। मनु देखो।

प्रसिद्ध चीन-ज्ञानी कनफ्युचिने अपने इतिहासमें लिखा है—"उस भीषण जलप्लावनके आकाशके समान ऊंचे पानीने समस्त भुवन और उच्च पर्वतोंको डूबो दिया था। चीन-सम्राट् जासकी आज्ञासे वह पानी हट गया था।"

युरोपके अनेक भूतत्त्वविद्गण कहा करते हैं कि—बाइबलमें जिस जलप्लावनकी कथा लिखी है, भूतत्त्व द्वारा

उसकी वास्तविकताकी परीक्षा की जा चुकी है। किन्तु बाइबेलमें जो समस्त विश्वप्लावित होनेकी बात लिखी है, वह ठीक नहीं जंचती। वास्तवमें समस्त विश्व प्लावित नहीं हुआ था, किन्तु उस जलप्लावनसे एशिया का अधिकांश और यूरोपका किञ्चिदंश मात्र प्लावित हुआ था। इसी प्रकार भूतत्त्वविदोंका यह भी कहना है कि, सार्वभौमिक जलप्लावन एक समयमें हो ही नहीं सकता; क्योंकि सार्वभौमिक जलप्लावन होनेसे समस्त जगत् एक तरहसे नष्ट हो हो जाता है। पुरातत्त्वविद्गण कहा करते हैं कि, पुराणादिमें जिस जलप्लावनकी कथाएं पाई जाती हैं वही आंशिक जलप्लावन है।

मालूम होता है इसीलिए भिन्न भिन्न देशवासी जलप्लावनके बादसे नाव बांधनेके भिन्न भिन्न स्थानोंका निर्देश किया करते हैं और इसी लिए पुराणोंमें हिमालय और बाइबलमें आराराट पर्वत निर्दिष्ट हुआ है। हिमालयके जिस स्थान पर मनुकी नाव बांधी गई थी, अब वह स्थान नौबन्धनतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। काश्मीरके नीलमतपुराणमें भी नौबन्धनतीर्थकी कथा वर्णित है। काश्मीरके कौसनाग नामक अति उच्च पर्वतशिखर पर यह नौबन्धन तीर्थ अवस्थित है। अब भी बहुतसे यात्री बर्फको भेद कर उस तीर्थके दर्शनके लिए जाया करते हैं।

जैनोंके तत्त्वार्थसूत्र, गोम्मटसार, त्रिलोकसारादि सभी प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें लिखा है कि, समस्त पृथिवीका कभी भी प्रलय नहीं होता, प्रत्युत भरतक्षेत्रमें (अवसर्पिणीकालके अन्तमें) ही, वह भी खण्ड-(असम्पूर्ण) प्रलय होता है। खण्डप्रलय शब्दमें जैनमतानुसार देखो।

जलप्लावित (सं० त्रि०) जलेन प्लावितं, ३-तत्। जलमें मग्न, पानीसे तर बतर।

जलफल (सं० क्ली०) जलजातं फलं। शृंगाटक, सिंघाड़ा।

जलबन्ध (सं० पु०) जलं बध्नाति जीवनहत्यै निर्बन्धेन परिकल्पयति बन्ध-अच्। मत्स्य, मछली।

जलबन्धक (सं० पु०) जलं बध्नाति बन्ध-ण्वुल्। जलस्रोतके प्रतिरोधक दारुशिलादि निर्मित सेतु, पत्थर मट्टी आदिका बांध जो किसी जलाशयका जल रखनेके लिए बनाया जाता है।

जलबन्धु (सं० पु० जलं बन्धुर्यस्य, बहुव्री०। मत्स्य, मछली।

जलबालक (सं० पु०) जलेन बलयति जीवयति स्वाश्रितवृक्षादीन्। जलं बाल इव यस्य वा, बल णिच्-ण्वुल्। विन्ध्य पर्वत, विन्ध्याचल पहाड़।

जलबालिका (सं० स्त्री०) जलस्य बालिकेव। विद्युत् बिजली।

जलबिन्दुजा (सं० स्त्री०) यावनाल शर्करा नामको हस्तावर। इसे फारसीमें शीरखिश्त कहते हैं।

जलबिम्ब (सं० पु० क्ली०) जलस्य बिम्बः। जलबुद्बुद, पानीका बुलबुला।

जलबिल्व (सं० पु०) जलप्रधानो बिल्व इव। १ कर्कट, केकड़ा। २ जलचत्वर, वह देश जहां जल कम हो।

जलबुद्बुद (सं० क्ली०) जलस्य बुद्बुदं, ६-तत्। जलबिम्ब, पानीका बुल्ला, बुलबुला।

जलबेंत (हिं० पु०) एक प्रकारका बेंत। यह जलाशयोंके निकटकी भूमिमें पैदा होता है। इसका पेड़ लतामा होता है। इसके पत्ते बांसके सदृश होते हैं। इसमें फल फूल नहीं लगते हैं। इसके छिलकेसे कुरसियां बेंच इत्यादि बनी जाती हैं।

जलब्राह्मी (सं० स्त्री०) जले ब्राह्मी इव। १ हिलमोचो शाक, हुरहुर साग। २ वाकुची।

जलभंगरा (हिं० पु०) पानी या जलाशयोंके किनारे होनेवाला एक प्रकारकका भंगरा।

जलभंवरा (हिं० पु०) कालेरंगका एक कीड़ा। यह पानीमें बहुत तेजीसे दौड़ता है। कोई कोई इसे भंवरा भी कहते हैं।

जलभाजन (सं० क्ली०) जलस्य भाजनं, ६-तत्। जलपात्र, पानी रखनेका बरतन।

जलभालू (हिं० पु०) आठ या नौ हाथ लम्बे आकारका एक जंतु। यह सीलकी जातिका होता है। इसका सारा शरीर लम्बे लम्बे बालोंसे ढका रहता है। यह झुंडोंमें रहता है। इसका सिर्फ एक नर ७०–८० मादाओंके झुण्डमें रहता है। यह पूर्व तथा उत्तर-पूर्व एशिया और प्रशान्त महासागरके उत्तरीय भागोंमें अधिकतासे पाया जाता है।

जलभीति (सं० स्त्री०) जलातङ्क रोग ।

जलभू (सं० पु०) जलस्य भूः भवत्यस्मात् अपादाने क्विप् । १ मेघ, बादल । जलं भूः उत्पत्तिर्यस्य । २ कच्चट शाक, जलचौराईका साग । ३ कपूर, कपूर । (स्त्री०) ३ जलकी आधारभूमि ।

जलभूषण (सं० क्ली०) वायु, हवा ।

जलभृत् (सं० पु०) जलं बिभर्ति भृ-क्विप् । मेघ, बादल । २ एक प्रकारका कपूर । ३ जल रखनेका पात्र ।

जलमक्षिका (सं० स्त्री०) जलजाता मक्षिका । जलकृमि, पानीका कीड़ा ।

जलमण्डपिका (सं० स्त्री०) शैवाल, सेवार ।

जलमण्डल (सं० पु०) एक प्रकारको बड़ी मकड़ी । इसके काटनेसे मनुष्य मर जा सकता है ।

जलमण्डूक (सं० क्ली०) जलं मण्डूकमिव । मण्डूकरव सदृश वाद्यकारक एक प्रकारका बाजा जो मेढ़कको बोली जैसा बजता है ।

जलमद्गु (सं० पु०) जलं मद्गुरिव । मत्स्यरङ्ग पक्षी, मछरंग, कौड़िल्ला ।

जलमधुक (सं० पु०) जलजातो मधुकः । मधुकवृक्ष, जल-महुआ । इसके पर्याय—मङ्गल्य, दीर्घपत्रक, मधुपुष्प, क्षौद्रप्रिय, पतङ्ग, कीरेष्ट गैरिकाख्य हैं । इसके गुण—मधुर, शीतल, गुरु, व्रण और वान्तिनाशक, शुक्र, बल कारक और रसायन है ।

जलमय (सं० त्रि०) जलात्मकः जल-मयट् । १ जलपूर्ण, पानीसे भरा हुआ । (पु०) २ जलमय चन्द्रादि । ३ शिवकी एक मूर्ति ।

जलमसि (सं० पु०) जलेन जलाकारेण मस्यति परिणमति मस-इन् । १ मेघ, बादल । २ कपूरभेद, एक प्रकार का कपूर ।

जलमहुआ (हिं० पु०) एक प्रकारका महुआ । इसके पत्ते उत्तरी भारतके महुएके पत्तोंसे बड़े होते हैं । इसमें बहुत छोटे फूल लगते हैं । जलमधुक देखो ।

जलमातृका (सं० स्त्री०) जलस्थिता मातृका । जलस्थिता मातृभेद, एक प्रकारकी देवियाँ जो जलमें रहती हैं । इनकी संख्या सात हैं—मत्स्यी, कूर्मी, वाराही, दर्दुरी, मकरी, जलुका और जन्तुका ।

"मत्स्यी कूर्मी वाराही च दर्दुरी मकरी तथा ।
जलुका जन्तुका चैव सप्तैते जलमातृकाः ।"

जलमानयन्त्र—जल मापनेका यन्त्र । (Hydrometer)

जलमानुष (सं० पु०) परीरनामक कल्पित जलजंतु । इसकी नाभिसे ऊपरका भाग मनुष्याकार और नीचेका मछलीकासा होता है ।

जलमार्ग (सं० पु०) जलस्य मार्गः निर्गमाश्रयः । १ प्रणाली, पानी बहनेकी नली । जलमेव मार्ग । जलपथ ।

जलमार्जार (सं० पु०) जलस्य मार्जारः । जलनकुल, ऊदबिलाव ।

जलमीन (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक मछली ।

जलमुच् (सं० पु०) जलं मुञ्चति मुच्-क्विप् । १ मेघ, बादल । २ कपूरभेद, एक प्रकारका कपूर । (त्रि०) ३ जलमोचनकर्त्ता, जल बरसानेवाला ।

जलमुठी (हिं० स्त्री०) वह मुलैठी जो जलाशयके तट पर पैदा होती है ।

जलमूर्त्ति (सं० पु०) जलं मूर्त्तिरस्य । शिव, महादेव ।

जलमूर्त्तिका (सं० स्त्री०) जलस्य मूर्त्तिः घनीभूताकृतिः संज्ञायां कन् टाप् । करका, ओला ।

करका देखो ।

जलमोद (सं० पु०) जलेन जलसंयोगेन मोदयति, सुगन्ध-अण् । उशीर, खस ।

जलम्बल (सं० क्ली०) नदी, दरिया । २ अञ्जन, काजल ।

जलयन्त्र (सं० क्ली०) २ जलानां उत्क्षेपणार्थं यन्त्रं । । १ धारायन्त्र, फौआरा । कूपसे जलनिकालनेका यन्त्र, वह यंत्र जिससे कुएं आदि नीचे स्थानोंसे पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है । ३ कालज्ञापक घटीयन्त्र-भेद, जलघड़ी । घटीयन्त्र देखो ।

जलयन्त्रगृह (सं० क्ली०) जलयन्त्रमिव कृतं गृहं । जल-मध्यस्थित गृह, वह घर जिसके चारों ओर जल हो । इसके पर्याय—समुद्रगृह, जलयन्त्रनिकेतन और जल-यन्त्रमन्दिर है ।

जलयन्त्रनिकेतन (सं० क्ली०) जलयन्त्रमिवकृतं निकेतनं । जलयन्त्रगृह ।

जलयन्त्रमन्दिर (सं० क्ली०) जलयन्त्रमिव कृतं मन्दिरं । जलयन्त्रगृह ।

जलयात्रा (सं० स्त्री०) जलस्य तदाहरणार्थं यात्रा। १ अभिषेक आदि शुभ कार्यके लिए जल लानेकी यात्रा। विद्वानोंका कहना है कि, जलयात्राके बिना जो कोई शुभ कार्य किया जाता है, वह निष्फल है।

जलयात्राका विधान वशिष्ठसंहितामें इस प्रकार लिखा है—यजमानको चाहिये कि, पत्नीके साथ जा कर आत्मीयस्वजन आदिको बुलावे और अश्व, गज या पैदल ग्रामकी पुष्करिणी, नदी,ह्रद वा समुद्रके तट पर जा कर उसकी गन्धमाल्यादि द्वारा अभ्यर्चना करे। पीछे उसके तटको गोमय द्वारा पोत कर उस स्थान पर यव-चूर्ण वा तण्डुलचूर्ण द्वारा स्वस्तिक और अष्टदलपद्म बनाना चाहिये। गीतवाद्यादि नानाविध मङ्गलसूचक ध्वनि करते हुए सौवर्ण, राजत, ताम्र वा मृण्मय पात्रमें जल भर कर घर लौटना चाहिये। उस जलसे अभिषेक आदि करना उचित है।

२ राजपूतों द्वारा अनुष्ठित एक व्रत। चार मास बाद विष्णुकी निद्रा भङ्ग होने पर शुक्ल चतुर्दशीको राणा आदि समस्त सम्भ्रान्त राजपूत ह्रदके किनारे जा कर जलदेवताकी पूजा करते हैं। इस दिन रातको जलके ऊपर नाना प्रकारकी रोशनी सजाई जाती है।

३ वैष्णवोंका ज्येष्ठमासकी पूर्णिमाको होनेवाला एक उत्सव, इसमें विष्णुमूर्त्तिको शीतल जलसे स्नान कराया जाता है।

जलयान (सं० क्ली०) जले यायते गम्यतेऽनेन करणे-या ल्युट्, ७-तत्। जलगमनसाधन नौका प्रभृति, वह सवारी जो जलमें काम आती हो। नाव, जहाज आदि।

जलरङ्क (सं० पु०) जले सरसि रङ्क इव। बकपक्षी, बगुला

जलरङ्कु (सं० पु०) जले रङ्कुरिव। १ दात्यूहपक्षी, वनमुर्गी। २ हरिण।

जलरञ्ज (सं० पु०) जले रजति अनुरक्तो भवति रञ्ज-अच्। बकपक्षी, बगुला।

जलरण्ड (सं० पु०) जलस्य रण्ड इव भयजनकत्वात्। १ जलावर्त्त, भँवर। २ जलरेणु, पानीका बूँद। ३ सर्प, साँप।

जलरस (सं० पु०) जलजातो रसः जलप्रधानो रसो वा। लवण, नमक। लवण देखो।

जलराक्षसी (सं० स्त्री०) जलस्थिता राक्षसी। लवण-समुद्रमें स्थित सिंहिका नामकी एक राक्षसी। रामायण-में लिखा है-लवणसमुद्रमें सिंहिका नामकी एक राक्षसी रहती थी। आकाशमार्गसे जो प्राणी जाता था, यह उसकी छायाको देख कर उसे मार डालती थी; इसलिए उसके भयसे कोई भी प्राणी लवणसमुद्रके उस पार नहीं जाता था। रावण द्वारा सीताका हरण किये जाने पर सीताकी वार्त्ता लानेके लिए हनुमान् लवणसमुद्रको पार कर रहे थे। सिंहिकाने हनुमानकी छायाको लक्ष्य कर आक्रमण किया। हनुमान कामरूपिणी राक्षसीकी मायाको समझ कर अत्यन्त खर्वाकृति हुए। राक्षसीने हनुमान्को सहज ही उदरसात् किया। महावीर हनु-मानने उदरस्थ हो कर बड़ा शरीर धारण किया और नखों द्वारा उसके उदरको विदीर्ण कर वे बाहर निकल आये इससे जलराक्षसीकी मृत्यु हुई। (रामा० सुन्द० १ अ०)

जलराशि (सं० पु०) जलानां राशिः, ६-तत्। १ जल-समूह। २ समुद्र। ३ ज्योतिषशास्त्रके अनुसार कर्कट, मकर, कुंभ और मीन राशि।

जलरुण्ड (सं० पु०) जलस्य रुण्डइव। जलरण्ड देखो।

जलरुह (सं० क्ली०) जले रोहति रुह-क। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ जलरोह प्राणी मात्र, पानीमें रहनेवाला जंतु।

जलरूप (सं० पु०) जलस्य रूपमिव रूपं यस्य। १ मकर राशि। २ जलका आकार।

जललता (सं० स्त्री०) जले लतेव तदाकारत्वात्। तरङ्ग, पानीकी लहर।

जललोहित (सं० पु०) राक्षस विशेष, एक राक्षसका नाम।

जलवरण्ट (सं० पु०) जलं रक्तवत् प्रधानो वरण्टः जलवसन्त रोग।

जलवर्त्त (सं० पु०) १ मेघका एक भेद। २ जलावर्त्त देखो।

जलवल्कल (सं० पु०) जलस्य वल्कल इव। कुम्भिका, जलकुंभी।

जलवल्ली (सं० स्त्री०) जलजाता जलप्रधाना वल्ली। शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

जलवादित (सं० क्लो०) जले वादितं। जलवाद्य, एक प्रकारका बाजा जो पानी दे कर बजाया जाता है।

जलवाद्य (सं० क्लो०) जलं वाद्यमिव। जलवाद्य, पानी का बाजा।

जलवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेसे जलानेका काम कराना।

जलवानीर (सं पु०) जलजातो वानीरः। जलवेतस, जलबेंत।

जलवायस (सं० पु०) जले वायसः काक इव। मद्गु पक्षी, कौड़िल्ला पक्षी।

जलवालक (सं० पु०) विन्ध्य पर्वत।

जलवास (सं० क्लो०) जलेन वासो गन्धः यस्य। १ उशोर, खस। (पु०) जलं वासयति वस-णिच-अण्। २ विष्णु-कन्द। ३ सलिल-निवास, जलमें रहना।

जलवाह (सं० पु०) जलं वहति वह-अण्। १ मेघ, बादल। (त्रि०) २ जलवाहक, पानी ले जानेवाला।

जलवाहक (सं० पु०) जलवहनकारी, वह जो पानी ढोता हो।

जलवाहन (सं पु०) जलवाहक।

जलविडाल (सं० पु०) जले विड़ाल इव। जलनकुल, ऊदबिलाव।

जलविन्दुजा (सं स्त्री०) जलविन्दुभ्यो जायते जन् ड-स्त्रियां टाप्। १ यावनाली शर्करा, यावनाल शर्करा नामकी दस्तावर औषध। इसे फारसीमें शीरखिश्त कहते हैं। २ मैना। (त्रि०) ३ जलविन्दुजात, जो पानीकी बूंदसे पैदा होता हो। (क्लो०) ४ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

जलविल्व (सं० पु०) जलप्रधानो विल्व इव। कर्कट, केकड़ा। २ पञ्चाङ्ग, कछुआ। ३ जलचत्वर, चौखूंटा तालाव। ४ जलवल्कल।

जलविषुव (सं० क्लो०) जलप्रधानं विषुवं। तुलासङ्क्रान्ति, आश्विन विष्णव। (शब्दर०) सूर्य जिस दिन कन्याराशिसे तुलाराशिमें जाता है, उस दिनका नाम जल-विषुव-सङ्क्रान्ति है। सूर्यके सञ्चार होते समय, नक्षत्रोंकी अवस्थितिके विषयमें ज्योतिष-शास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—मुखमें १८—२२, हृदयमें २३—२६, दक्षिण हस्तमें २७।१।२, दक्षिण पादमें ६—८, वाम पादमें ९—११, वाम हस्तमें ३—५, मस्तकमें १२—१७। सञ्चार होते समय नक्षत्रोंके अवस्थानका फल—मुखसे मान, हृदयसे सुखसम्भोग, दक्षिण हस्त और दक्षिणपादसे भोग, वाम हस्त और वामपादसे त्रास तथा मस्तकसे सुख होता है। जलविषुव सङ्क्रान्तिके अशुभ होने पर उसकी शान्तिके लिए कनकधुस्तूर बोज और सर्वौषधि जलमेंसे स्नान तथा विष्णुका जप करना आवश्यक है, इससे समस्त शुभ होता है। सङ्क्रान्तिमें कोई भी पुण्य कर्म करनेसे अधिक फल होता है। संक्रांति देखो। गृह पुष्करणी प्रतिष्ठादिके कार्य कालाशुद्धि होने पर भी जलविषुव-सङ्क्रान्तिमें किये जा सकते हैं। अयने विषुवे चैव तथा विष्णुपदी मता" प्रतिष्ठातत्व।

जलवीर्य (सं० पु०) भरतके एक पुत्रका नाम।

जलवृश्चिक (सं पु०) जले वृश्चिक इव। चिङ्गटमत्स्य, झींगा मछली।

जलवेतस (सं० पु०) जलजातो वेतसः। वानीर वृक्ष, जलबेंत। इसका पर्याय--निकुञ्जक, परिव्याध और नादेयी है। इसका गुण-शीतल कुष्ठनाशक और वातवृद्धिकर है।

जलवैकृत (सं० क्लो०) विकृतस्य भावः वैकृतं जलस्य वैकृतं, ६-तत्। नदी आदिके जलमें अमङ्गलको सूचित करनेवाले विकारोंका उत्पन्न होना। वराहमिहिरके मतसे—नगरके पाससे नदियोंके सरक जाने वा नगरस्थ अन्य कोई अशोष्य हृदादिके सूख जानेसे शीघ्र ही नगर शून्य हो जाता है। नदियोंमें यदि तेल, रक्त वा मांस बहता दिखाई दे; पानी यदि मैला हो और या उल्टा बहने लगे, तो उसे छह मासके भीतर परचक्रके आगमनको सूचना समझनी चाहिये। कुएंमें ज्वाला, धुआं आदिका दिखाई देना, उसके पानीका गरम होना या उसमें रोदन, गर्जन और गानेकी आवाज होना, यह सभी लोक-नाशके कारण हैं। आघातसे जलकी उत्पत्ति होने, जलके रूप, रस, गन्ध आदिका अकस्मात् बदल जाने या जलाशयके बिगड़ जानेसे महत् भय उपस्थित होता है। इस प्रकारके जलवैकृतोंके उपस्थित होने पर वारुण-मन्त्र द्वारा वारुणकी पूजा,

होम और जप करनेसे उक्त दोषोंकी शान्ति होती है।
(वृहत्स० ४६ अ०)

जलव्यथ (सं० पु०) मत्स्य विशेष, एक प्रकारकी मछली।

जलव्यध (सं० पु०) जलं विध्यति व्यध-अच्। कङ्कोतोट मत्स्य, कंकमोट या कौआ नामकी मछली।

जलव्याघ्र (सं० पु०) दक्षिण सागरमें सेटलैंड टापूके पास होनेवाला एक प्रकारका जन्तु। यह सीलकी जातिका होता है। यह बहुत कुछ जलभालूसे मिलता जुलता है, किन्तु इसके शरीर परके बाल जलभालूसे कुछ छोटे होते हैं। चीतेकी तरह इसके शरीर पर भी दाग या धारियां होती हैं। यह बड़ा क्रूर और हिंसक पशु है।

जलव्याल (सं० पु०) जलस्थितो व्यालः हिंस्र जन्तुः। १ अलगर्द सर्प, पानीमेंका सांप। २ क्रूरकर्मा जलजन्तु।

जलशय (हिं० पु०) जले शेते शी-अच्। विष्णु।

जलशयन (सं० पु०) जले क्षीरोदसलिले शेते शी-ल्युट् जलं शयनं यस्य वा। विष्णु।

जलशय्यी—एक प्रकारके संन्यासी। ये लोग सूर्योदयसे लगा कर सूर्यास्त पर्यन्त शरीरको पानीमें रख कर तपस्या करते हैं। ऐसी तपस्याको जलशय्या और उसके पालक तपस्वियों जलशय्यी कहते हैं।

जलधारा तपस्वी देखो।

जलशायी (सं० पु०) जले शेते शी-णिनि। विष्णु।

जलशिरीष (सं० पु०-स्त्री०) शिरीषभेद, ढिंढिणी।

जलशुक्ति (सं० स्त्री०) जलचरी: शुक्तिः। शम्बूक, घोंघा। इसके पर्याय—वारिशुक्ति, क्षमिशुक्ति, क्षुद्रशुक्तिका, शम्बूका, नखशुक्ति, पुष्टिका और तोयशुक्तिका है। इसके गुण—कटु, स्निग्ध, दीपन, गुल्मदोष और विषदोषनाशक, रुचिकर, पाचक तथा बलदायक है।

जलशुचि (सं० पु०) शृङ्गाटक, सिंघाड़ा।

जलशूक (सं० क्ली०) जले शूकं सूक्ष्माग्रमिव। शैवाल, सेवार।

जलशूकर (सं० पु०) जलस्य शूकर इव। कुम्भीर, कुंभीर या नाक नामक जलजन्तु।

जलश्यामाक (सं० पु०) तृणधान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

जलसंस्कार (सं० पु०) १ धोना, पखारना। २ मुरदेको पानीमें बहा देना। ३ स्नान करना, नहाना।

जलसन्ध (सं० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्र। इन्होंने सात्य-किके साथ भीषण युद्ध कर तोमरके आघातसे उनकी बाईं भुजा छेद दी थी। अन्तमें सात्यकिके हाथसे ही ये मारे गये थे। (भारत ११।७।२)

जलसमुद्र (सं० पु०) जलमयः समुद्रः। लवणादि सात समुद्रोंमेंसे अन्तिम समुद्र।

जलसरस (सं० क्ली०) जलमिव सरः। सरोवरविशेष, एक तालाब।

जलसर्पिणी (सं० स्त्री०) जले सर्पति गच्छति सृप-णिनि-ङीप्। जलौका, जोंक।

जलसा (अ० पु०) १ किसी उपलक्षमें बहुतसे मनुष्योंका एकत्र होना जिसमें खाना, पीना, गाना, बजाना, नाच रंग और अनेक तरहके आमोद प्रमोद किये जाते हैं। २ सभा समितिका बड़ा अधिवेशन इसमें सर्व साधारण सम्मिलित होते हैं।

जलसिंह (सं० पु०) अमेरिका और एशियाके बीच कमस-कटका प्रद्वीप तथा क्यूरायल आदि द्वीपोंके आस पास मिलनेवाला सीलकी जातिका एक प्रकारका जलजन्तु।

विशेष विवरण जलहस्ती शब्दमें देखो।

जलसिरस (हिं० पु०) एक प्रकारका सिरस वृक्ष। यह जलाशयके समीप पैदा होता है। कहीं कहीं इसे ढाढोन भी कहते हैं।

जलसीप (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सीप जिसमें मोती होता है।

जलसूकर (सं० पु०) १ कुंभीर। २ जंगली सूअर।

जलसूचि (सं० पु०) जले सूचिरिव अभिधानात् पुंस्त्वं। १ कङ्कमोट मत्स्य, कंकमोट या कौआ नामकी मछली। २ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। ३ शिशुमार, सूंस। ४ क्रौञ्च पक्षी। (स्त्री०) ५ जलौका, जोंक। ६ काक, कौआ। ७ कच्छप, कछुआ।

जलसूत (सं० पु०) नहरुआ रोग।

जलसेनी (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

जलस्तम्भ (सं० पु०) एक नैसर्गिक वा दैवी घटना, सूंड़ी। इसमें जलीय वाष्प स्तम्भाकारमें दिखाई देता

है, इसलिए इसका नाम जलस्तम्भ पड़ गया है। यह अपूर्व घटना नाना कारणोंसे हुआ करती है। कभी कभी देखा जाता है कि, घोर घनघटाके नीचे समुद्रका जल अति वेगसे १०० से १२० गज व्यास तक आन्दोलित हो रहा है, तरङ्गमाला कम्पित जलराशिके बीचमें जा कर लग रही है और वहांकी विस्तीर्ण जलराशिसे एक जलीय वाष्पयुक्त स्तम्भ उठ कर घूमता हुआ रणशृङ्गाके आकारमें मेघकी तरफ जा रहा है। ऊपरको मेघकी विपरीत दिशामें भी ऊर्ध्वगामी स्तम्भकी भांतिका और एक स्तम्भ उठते दिखाई देता है। देखते-देखते थोड़ी देरमें दोनों स्तम्भ एकत्र हो कर मिल जाते हैं, इस स्थानका व्यास दो-तीन फुट मात्र हो जाता है। इस समय "गुड़ गुड़" शब्द भी सुनाई पड़ता है। दोनोंके मिलने पर देखनेमें बहुत अच्छा लगता है। इस जलीय स्तम्भका बीचका भाग भूरे रंगका पर किनारेके दोनों हिस्से घने काले रंगके होते हैं। यह वायुकी गतिके अनुसार चलता रहता है; किन्तु वायुके न रहने पर किधर जायगा, इसका कोई ठीक नहीं। जलस्तम्भके ऊर्ध्व और अधोभागकी गति प्रायः विभिन्न हुआ करती है; पीछे जब समूचा तिरछा हो जाता है, तब यह भीषण शब्द करता हुआ विच्छिन्न हो जाता है। तत्पश्चात् वह वाष्पराशि वायुमें मिल जाती है और प्रबल धारासे समुद्रमें गिरती है। कभी तो यह जलस्तम्भ थोड़ी देरमें उठ कर ही अदृश्य हो जाता है और कभी एक घण्टे तक रहता भी है। कभी कभी यह बार बार अदृश्य और बार बार दृष्टिगोचर होता रहता है।

स्थल पर भी कभी कभी ऐसा जलस्तम्भ देखा गया है। ऐसी जगह नीचेसे कोई ऊर्ध्वगामी रणशृङ्गाकार जलराशि या जलीयवाष्प ऊपरको चढ़ कर नहीं मिलती; प्रत्युत शून्यमें बादामके आकारकी वाष्पराशिसे जलस्तम्भ निकलता है, उस समय जल्दी जल्दी बिजलीका गिरना, मुषलधारसे पानी बरसना और गन्धककी तीव्र गन्धका आना इत्यादि होता है। कभी कभी यह जलस्तम्भ अतिवेगसे उच्च भूमि, उपत्यका और नदीका स्रोत अतिक्रम कर पर्वतके पास जा कर उसके चारों तरफ फैल जाता है। १७१८ ई०में इस तरहका एक जलस्तम्भ विलायतके लङ्काशायरमें देखा गया था, उसके फटनेसे वहांकी जमीन करीब आधी मील पर्यन्त फट गई थी और वहां ७ फुट गहरा गड्ढा होगया, था। सभी जलस्तम्भोंका आकार प्रायः रणशृङ्गके समान नीचे चौड़ा और ऊपरको क्रमशः पतला होता है। परन्तु जो स्थलमें उत्पन्न होते हैं, उनमें नीचेका अंश नहीं होता। एक रणशृङ्गा (भेरी) को सीधी तरहसे रख कर उससे नीचेके हिस्सेको बाद देनेसे जैसा होता है, स्थलोत्पन्न जलस्तम्भका भी ठीक वैसा ही आकार होता है। सर-उइल्‌ साहबने स्थलोत्पन्न अनेक जलस्तम्भोंका विवरण लिखा है। कलकत्तेसे आठ मील उत्तर पूर्वमें दमदमा नामक स्थानमें १८५७ ई०को एक जलस्तम्भ देखा गया था। जिस सप्ताहमें यह जलस्तम्भ दीखा था, उस सप्ताह दक्षिणपश्चिम और उत्तरपूर्व दोनों तरफसे मौसमकी हवा चल रही थी ऐसी वायु दोनों तरफसे रुकावट पानेके कारण हिमालयके आस पास, वर्षाके जो मेघ थे, उन्हें हटा न सकी थी। इसी प्रकारकी रुकावटसे ही दमदमामें क्रमशः मेघ जमने लगे। धीरे धीरे मेघराशि वृत्ताकारसे आकाशमें घूमने लगी और वायुकी गति दिनमें दो तीन बार बदलने लगी। ७ अक्टोबरको दिनके ३ बजेसे ४ बजेके भीतर वायुकी गतिका परिवर्त्तन हुआ और बादलोंका वृत्ताकारमें घूमना क्रमशः बढ़ने लगा, साथ ही खूब जोरको वर्षा होने लगी। ४ बजेके बाद अकस्मात् सब शान्त हो गया। इस समय एक बड़ा भारी बादल पीछेकी तरफ धनुषकी तरह क्रमशः जमीनकी ओर झुकने लगा। उस बादलके ठीक बीचसे एक बहुत बड़ा जलस्तम्भ निकला और वह द्रुतवेगसे जमीनसे आ मिला। जमीनसे लगते ही उसका नीचेका भाग दो भागोंमें विभक्त हो गया। इसके बाद ही स्तम्भ फट गया और उसका पानी जमीन पर गिरने लगा। उस समय यह ठीक जलप्रपातकी तरह दीखने लगा इस तरह दूसरे वर्ष भी अक्टोबरको दिनके दिनमे ५ बजे दमदमामें १० हजार फुट लम्बा एक जलस्तम्भ दिखाई दिया। जलस्तम्भके उत्पन्न होनेका कारण क्या है, इस विषयमें बहुतोंने बहुत तरहको व्याख्याएं की हैं, किन्तु वास्तविक निगूढ़ कारण शायद

अभी तक निर्णीत नहीं हुआ है। साधारण मत यह है कि, विपरीत दिशाओंसे प्रवाहित वायुको ताड़नासे एक प्रकार घूर्णी वायु उत्पन्न होती है और उससे आकाश व्याप्त जलीयवाष्पके परमाणु इतस्ततः पार्श्वभागमें विक्षिप्त हो जानेसे बीचमें एक पोला स्तम्भ बन जाता है। सुतरां जब समुद्रमें ऐसा होता है, तब उक्त प्रदेशोंसे वायुका भार अपसारित होने पर जल ऊपरको चढ़ता रहता है। डाक्टर टेलर साहबने भी ऐसा ही कारण बतलाया है। वैद्युतिक क्रिया पर निर्भर कर बहुतोंने ऐसा भी अनुमान किया है कि, वैद्युतिक आकर्षणके कारण मेघ पृथिवीको ओर अग्रसर होते हैं और जब परस्परके संघर्षणसे मेघसे बिजली निकल कर पृथिवीमें आती है, तब उसके साथ साथ पानीके परमाणु भी पृथिवी पर गिरते हैं। पृथिवीको बिजली कम होने पर जलके परमाणु मेघ द्वारा आकृष्ट होते रहते हैं। वाष्पीयस्तम्भ स्वच्छ होनेके कारण ही जल जैसा दीखता है।

जलस्तम्भन (सं॰ क्ली॰) जलं स्तभ्यतेऽनेन, स्तम्भ-करणे ल्युट् जलस्य स्तम्भनं वा। मन्त्रादि द्वारा जलकी गतिका प्रतिरोध करना, पानीके बहावको मन्त्र-तन्त्रसे रोकना, पानी बांधना। जलस्तम्भनका मन्त्र इस प्रकार है--"ओं नमो भगवते जलस्तम्भय स्तम्भय संसंसके कके कचर" (गरुड़पु॰ १७१ अ॰)

दुर्योधनने जलस्तम्भन-विद्यामें सिद्धि प्राप्त की थी। कुरुपक्षीय सम्पूर्ण सेनाके निहत होने पर दुर्योधन जलस्तम्भन कर द्वैपायनह्रदमें छिप गये थे।

(भारत शल्प २७ अ॰)

जलस्था (सं॰ स्त्री॰) जले जलबहुल प्रदेशे तिष्ठति, स्था-क स्त्रियां टाप्। गण्ड दूर्वा, गांडर घास। (त्रि॰) जलस्थित।

जलस्थान (सं॰ क्ली॰) जलाशय।

जलस्थाय (सं॰ पु॰) जलस्थान, सरोवर, पोखरा।

जलह (सं॰ क्ली॰) जलेन हन्यते, हन-ड। क्षुद्रजलयन्त्रगृह।

जलहर (हिं॰ वि॰) १ जलमय, जलसे भरा हुआ। (पु॰) २ जलाशय।

जलहरण (सं॰ क्ली॰) जलस्य हरण, ६-तत्। जलका स्थानान्तरयन, एक स्थानसे दूसरे स्थानको जल ले जाना। २ छन्दोभेद, एक प्रकारकी वर्णवृत्ति इसके चार चरणोंमें बत्तीस अक्षर होते हैं और सोलहवें वर्ण पर यति होती है।

जलहरी (हिं॰ स्त्री॰) १ शिवलिङ्ग स्थापित करनेका अर्घा, यह पत्थर या धातुका बना रहता है। २ एक बरतन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है। ३ शिवलिङ्गके ऊपर टांगनेका मट्टीका घड़ा इसके नीचेके बारीक छेदसे गरमीके दिनोंमें दिन रात शिवलिङ्ग पर पानी टपका करता है।

जलहस्ती (सं॰ पु॰) जले हस्तीव, ७-तत्। जलस्थित हस्तीविशेष, वृहदाकार एक प्रकारका सामुद्रिक जीव, सीलकी जातिका जलजन्तु, जलहाथी। इस अद्भुत जीवकी नासिकाके अग्रभागमें सूंड़ रहनेके कारण इसे जलहस्ती कहते हैं। अंग्रेजोंमें इसे Sea-Elephant कहते हैं, इसका वैज्ञानिक नाम Macrorhinus-Proboscidens अटलाण्टिक महासागरमें, दक्षिण अक्षा॰ ३५° से ५५°के भीतर जलहस्ती दिखाई दिया करते हैं। इनके सब समेत ३० दांत होते हैं, ऊपर १६ और नीचे १४।

जलहस्ती

जब ये लोग सोते हैं, उस समय इनकी नाक और और सूंड़ संकुचित हो जाती है और मुंह बहुत बड़ा दीखता है। इसे उत्तेजित करनेसे, यह खूब जोरसे श्वास लेने लगता है, साथ ही इसकी सूंड़ बढ़ कर नलके समान १ फुट लम्बी हो जाती है। इसकी मादा अर्थात् जलहस्तिनीके सूंड़ नहीं होती। इस जन्तुको मांसाशी स्तन्यपायी जीवोंमें गिनती है।

जलहस्ती १८ से २५ फुट तक लम्बा होता है। जलहस्तिनीका आकार कुछ छोटा होता है। ज्यादा बड़ा होनेके कारण यह जल्दी नहीं चल सकता।

किसीके आक्रमण करने पर भी यह थप्-थप् कर चलता रहता है, और तेलके कुप्पेके समान पेट हिलाते हुए जाते थोड़ी दूर जाकर थक जाता है। इसकी आंखें स्वभावतः नीलाई लिए सब्ज होती हैं, किन्तु किसीके आक्रमण करने पर लाल सुर्ख हो जाती हैं।

जलहस्तिनी और उसके बच्चोंकी आवाज पेचक (उल्लू) के समान है; किन्तु बड़े जलहस्तीकी आवाज़ अत्यन्त भयानक (बुलन्द) होती है इसकी सूंड़के भीतरसे जब आवाज़ निकलती है, तब वह बहुत दूरसे सुनाई पड़ती है।

यह नदी, ह्रद और जलाशयोंमें रहना पसन्द करता है। यह सूर्यका उत्ताप नहीं सह सकता; इसलिए जब यह जलाशयके किनारे बैठता है, तब देहसे भीगी बालू लपेट लेता है।

ज्यादा ठण्ड या ज्यादा गरमी इनको अच्छी नहीं लगती। इसलिए ये झुण्ड बांधबांध कर शीतके प्रारम्भमें उष्णप्रधान उत्तर प्रदेशमें और ग्रीष्मके प्रारम्भमें दक्षिणकी तरफ चले जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतुके बाद ही जलहस्तिनी सन्तान प्रसव करती है। किसीके मतसे एक बारमें एक और किसीके मतसे एक बारमें दो बच्चे जनती है। इनके हालके जाये बच्चोंका वजन प्रायः एक मन होता है।

प्रसूत होनेके बाद जलहस्तिनी समुद्रके किनारे पर अपने अपने बच्चोंको बगलमें सुलाकर उन्हें दूध पिलाया करती हैं और जलहस्ती चारों तरफ रह कर इनकी रक्षा करते हैं। इनके बच्चे आठ दिनके अंदर दूने बढ़ जाते हैं। इसके उपरान्त नर-मादे दोनों मिल कर उन्हें तैरना सिखाते रहते हैं। दो तीन सप्ताहके बाद ये फिर बच्चोंको लेकर किनारे पर आ जाते हैं। जब तक बच्चे स्वयं अपनी रक्षा करनेको समर्थ न हो जांय, तब तक वे माके पास ही रहते हैं। २—३ वर्षमें ही वे पूर्णायतनको प्राप्त होते हैं इसी समय नर (जलहस्ती) के सूंड़ निकला करती है।

सूंड़ निकल आने पर फिर वे (बच्चे) जलहस्तीनीके पास नहीं रह पाते। सूंड़ निकल आने पर इनके यौवनका विकाश होता है। किन्तु निर्दिष्ट समयके सिवा ये दूसरे समयमें सङ्गम नहीं करते। सङ्गम-कालके उपस्थित होने पर नरोंमें खूब लड़ाई होती है। जो जलहस्ती अपने पराक्रमसे सबको पराजित कर देता है, वही स्त्री सहवास कर सकता है। इसीलिए बंदरियोंके समान इनमें भी १८।२० जलहस्तियोंमें एक एक नर जलहस्ती देखा जाता है। लड़ते समय ये कभी भी अपनी जातिको जानसे नहीं मारते; जो हार जाते हैं, वे किसी निर्जन स्थानमें जा कर मनका दुःख निकाला करते हैं।

यह जन्तु स्वभावतः शान्त प्रकृतिका होता है। अपनी और बच्चोंकी रक्षा करनेके सिवाये किसी दूसरे कारणसे किसी पर आक्रमण नहीं करता। पालनेसे यह हिलते हैं और पालकके बहुत दूरसे बुलाने पर भी ये उसी समय उसके पास पहुंच जाते हैं। नाविक लोग इस प्रकारके पालतू जलहस्ती पर चढ़ कर खेला करते हैं। ये ३०।३२ वर्षतक जीवित रहते हैं।

जलहस्तीका मांस काला चरबी मिला हुआ और अजीर्णकर होता है। नाविक (मल्लाह) लोग इनके दांतोंको नमकमें गला कर बड़ी रुचिके साथ खाते हैं। इसकी चमड़ी बहुत कड़ी, काले रंगकी और बिना बालोंकी होती है। इसके चमड़ेसे घोड़े और गाड़ीका साज बनता है। इसकी चरबीसे मोमबत्ती आदि अनेक चीजें बनती है, इसीलिए इसका शिकार किया जाता है।

जलभालू—जलहस्तीकी भांति समुद्रमें जलभल्लूक, जलव्याघ्र और जलसिंह आदि भी पाये जाते हैं। ये सभी एक जातिके हैं। सिर्फ मुंहकी आकृति और शरीरके परिमाणके अनुसार भिन्नता पाई जाती है। अमेरिका, कामसकाट्का और क्यूरायल आदि द्वीपोंमें जलभालू देखे जाते हैं। ये बसन्त ऋतुमें सिर्फ जलाशयके किनारे रहते हैं, यही इनके सङ्गम और गर्भधारणका समय है।

जलहस्तीकी तरह एक एक जलभालू ७०—८० स्त्रियोंका उपभोग करता है। मादा जलभालुओंमें बड़ो नर एकमात्र कर्ता है, वह जो चाहे कर सकता है। किन्तु जब वह अपनी प्रणयिनियोंसे परित्यक्त होकर अन्य

किसी दलके पास जाता है, तब दोनों दलोंमें बड़ी भारी लड़ाई होती है। स्वभावतः ये समुद्रके किनारे शान्त गायकी तरह आनन्दसे चरा करते हैं, परन्तु आहत होनेपर भयङ्कर शब्द करते हैं।

जलहस्तीकी अपेक्षा जलभालू बहुत छोटा होता है। वह ५—६ फुटसे ज्यादा बड़ा नहीं होता। इसके शरीर पर बड़े बड़े लोम होते हैं, जिनसे उत्कृष्ट कोई आदि शीतवस्त्र बनते हैं।

जलव्याघ्र—दक्षिण सागरमें सेटलैण्ड टापूके आस-पास जलव्याघ्र देखा जाता है। यह बड़ा क्रूर और हिंसक होता है, इसके शरीर पर चीताके समान धारियां होती हैं। इसका आकार जलभालूसे बड़ा और दांत बत्तीस होते हैं।

जलव्याघ्र।

जलव्याघ्रके शरीर परके बाल जलभालूसे कुछ छोटे होते हैं।

जलसिंह—एशिया, और रुसिया और अमेरिकाके आसपास शीतप्रधान समुद्रमें जलसिंह दिखाई देता है। यह कभी कमसकट्का और क्यूराइल दीपोंसे और कभी बेरिंगोनदरमें घूमनेको आता है। ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें वह अमेरिकाके उपकूलकी तरफ दौड़ता है। इनके शरीरका चमड़ा मोटा और बाल ललाईको लिए पीले, या काले अथवा भूरे होते हैं। बड़े बड़े बालोंके नीचे बहुत थोड़े पशमी लोम भी होते हैं। नर जातिके गर्दनसे लगा कर पीठ तक सिंह जैसे बाल होते हैं। इसका मस्तक औरोंकी अपेक्षा छोटा होता है, ऊपरके ओठों पर उसके अनुसार मूंछें निकलती हैं। यह १० से १५ फुट तक लम्बा होता है। मादा या जलसिंहिनी खर्व-आकृतिकी होती है।

ये सामुद्रिक जन्तु अति पराक्रमशाली होने पर भी स्वभावतः शान्तप्रकृतिके होते हैं। ये झुण्ड बांध कर समुद्रकी तरङ्गोंमें खेलते रहते हैं। परन्तु किसीके आक्रमण करने पर ये झुण्ड सहित भयानक गरजते हुए

जलसिंह।

उस पर आक्रमण करते हैं। इनमें एक एक जलसिंह बहुतसी स्त्रियों (जलसिंहिनियों) का उपभोग करता है। जो अधिक पराक्रमी होता है, वह दूसरोंको परास्त कर उनकी उपभुक्त स्त्रियोंको छीन लेता है। जलसिंह जब बुड्ढा हो जाता है, तब उसको कोई नहीं पूछता; प्रत्युत उसे मार कर झुण्डसे बाहर निकाल दिया जाता है। फिर वह बेचारा एकान्तमें पड़ा पड़ा कराहता हुआ किसी तरह दिन पूरे करता है।

जलहार (सं० त्रि०) जलं हरति हृ-अण्। १ जलहरण-कारी। २ जलवाहक, पानी भरनेवाला।

जलहारक (सं० त्रि०) जलं हरति हृ-ण्वुल्। जलवाहक, पनिहारा।

जलहारी (सं० त्रि०) जलं हरति हृ-णिनि। जलवाहक।

जलहास (सं० पु०) जलानां हास इव शुभ्रत्वात्। समुद्र-का फेन।

जलहोम (सं० पु०) जले क्षिप्तः होमः, ७-तत्। जलमें प्रक्षिप्त वैश्वदेवादिका होमभेद, एक प्रकारका होम जिस-में वैश्वदेवादिके उद्देश्यसे जलमें आहुति दी जाती है। होम देखो।

जलह्रद (सं० पु०) जलप्रचुरो ह्रदः। जलबहुल ह्रद, बहुत गहरा जलाशय।

जलाकर (सं० पु०) जलस्य आकरः। समुद्र, नदी जला-शय आदि।

जलाका (सं० स्त्री०) जले आकायति प्रकाशते आ-कै-क टाप्। जलौका, जोंक।

जलाह (सं० पु०) हस्ती, हाथी।

जलाकाश (सं० पु०) जलप्रतिविम्बितः जलावच्छिन्नः

आकाशः। जलप्रतिविम्बयुक्त जलविशिष्ट आकाश, पानीका अक्स और पानीदार आसमान।

"जलावच्छिन्नखे नीरं यत्तत्र प्रतिविम्बितः।
साभ्रनक्षत्र आकाशो जलाकाश उदीर्यते।" (शब्दार्थचि॰)

आकाशका रूप नहीं है जिस पदार्थका रूप नहीं उसका प्रतिविम्ब भी नहीं हो सकता। इसलिए नक्षत्र और मेघयुक्त होनेके कारण इसका जलाकाश नाम पड़ा है। आकाश देखो। मेघ और नक्षत्रयुक्त आकाश, बादल और ताराओं सहित आकाश।

जलाक्षी (सं॰ स्त्री॰) जलं अक्ष्णोति व्याप्नोति अक्ष-अच्। जलपिप्पली, जलपीपल।

जलाखु (सं॰ पु॰) जले आखुरिव। जलनकुल, उदबिलाव।

जलाजल (हिं॰ पु॰) गोटे आदिकी झालर।

जलाञ्चल (सं॰ क्ली॰) १ शैवाल, सेवार। २ पानीका नहर।

जलाञ्चल (सं॰ क्ली॰) जलं अञ्चति व्याप्नोति अञ्च-बाहुलकात् अलच्। १ शैवाल, सेवार। जले अञ्चलः वस्त्रप्रान्त इव। २ स्वभावतः जलनिर्गम, आपसे आप जलका बाहर होना।

जलाञ्जलि (सं॰ पु॰) जलपूर्णो अञ्जलिः। १ जलको अंजुली, पितरों वा प्रेतादिके उद्देश्यसे अंजुलीमें जल भर कर देना। २ तर्पण।

जलाटन (सं॰ पु॰) जले अटति भ्रमति अट-ल्यु। कङ्कपक्षी, बगला, बूटोमार। कंक देखो।

जलाटनी (सं॰ स्त्री॰) जले अटति भवति अट-ल्यु, स्त्रियां ङीप्। जलौका, जोंक।

जलाणुक (सं॰ क्ली॰) जले अणुरिव कायति कै-क छोटी छोटी मछलियोंका झुण्ड।

जलाण्टक (सं॰ पु॰) जलं अण्टते इतस्ततो भ्रमति अण्ठ-ण्वुल्। पृषोदरादित्वात् ठस्य-टः। मकरराज, ग्राह।

जलाण्डक (सं॰ क्ली॰) जले अण्ड मिव-कायति कै-क। छोटी छोटी मछलियोंका झुंड।

जलातङ्क (सं॰ पु॰) रोगविशेष, एक तरहकी बीमारी। (Hydrophopia) सुश्रुतमें इस रोगका जलत्रासके नामसे वर्णन किया गया है।* किसी क्षिप्त (पागल) पशुकी लार शरीरमें प्रवेश करने पर यह रोग होता है। इस रोगकी प्रथम दशामें पानी पीते समय गलेमें इस तरहकी वेदना और कँपकँपी होती है कि, कभी कभी श्वास तक रुक जाता है। धीरे धीरे इस रोगका प्रकोप इतना बढ़ जाता है कि, पानीकी याद आते ही इस रोगके सारे लक्षण प्रगट होने लगते हैं। पानीको देखते या पानीका नाम सुनते ही मनमें बड़ा भयका सञ्चार होता है, इसलिए इस रोगको जलातङ्क कहते हैं। मनुष्यके शरीरमें, किसी क्षिप्त पशुकी लारके बिना प्रवेश किये कभी भी यह रोग नहीं होता। प्रबल अपस्मार वायुरोगसे भी कभी कभी जलातङ्कके लक्षण दिखाई देते हैं; किन्तु वास्तवमें वह जलातङ्क नहीं है। अन्यान्य पशु नैसर्गिक कारणोंसे इस रोगसे पीड़ित होते हैं या नहीं, इसकी अभी तक निःसन्दिग्धरूपसे परीक्षा नहीं हुई है। किन्तु यह एक तरहसे निश्चित हो चुका है कि कुक्कुरकी अन्य किसी क्षिप्त प्राणीके बिना काटे यह रोग नहीं होता। जहां तक परीक्षा की गई है; उससे जाना गया है कि, सभी प्राणी इस रोगसे आक्रान्त हो सकते हैं, पर व्याघ्र, शृगाल, कुत्ता और बिल्लीके सिवा अन्य कोई भी प्राणी इस रोगको सङ्क्रामित (फैला) नहीं कर सकता। मनुष्यको यह रोग होने पर वह अन्य प्राणियोंकी तरह दूसरेको काटनेके लिए उत्तेजित नहीं होता।

मनुष्य शरीरके किसी क्षत स्थानमें किसी क्षिप्त प्राणीकी लार लग जानेसे भी इस रोगकी उत्पत्ति हो सकती है। क्षिप्त पशुके काटने पर चाहे थोड़ा ही स्थान विषाक्त

* सुश्रुतने "दंष्ट्रिणा येन दुष्टश्च—" इत्यादि कई एक श्लोकोंमें लिखा है कि,—जो उन्मत्त पशु (शृगाल, कुक्कुर, व्याघ्र आदि) किसीको काटता है, काटे हुए व्यक्तिको यदि उस तरहका पशु पानी या और किसी वस्तुमें दीखे तो वह अत्यन्त दुर्लक्षण है। पानीको देख कर या पानीका नाम सुनते ही जिस रोगीको डर लगता है, उस रोगको जलत्रास कहा जा सकता है। यह भी अति दुर्लक्षण है। पूर्वोक्त उन्मत्त पशुके न काटने पर भी जिसे जलत्रास रोग होता है, वह किसी तरह भी बच नहीं सकता। सुस्थ अवस्थामें सोते या जागतेके साथ ही सहसा जलत्रास उत्पन्न होने पर भी वह रोगी नहीं जीता।

क्यों न हुआ हो—थोड़े स्थानके विषाक्त होने पर भी यह रोग पैदा हो सकता है। सभी पशुकी लार एकसी विषैली नहीं होती। क्षिप्त कुक्कुरकी अपेक्षा क्षिप्त व्याघ्रकी लार कहीं अधिक विषाक्त होती है। एक कुत्तेने २१ आदमीको काटा था, जिनमेंसे एक आदमीको जलातङ्क रोग हुआ और एक व्याघ्रने १७ आदमीको काटा, तो १० आदमी जलातङ्क रोगसे यमराजके घर पहुंच गये।

यह रोग पशुओं पर ही अधिक आक्रमण करता मनुष्य बहुत थोड़े ही इस रोगसे आक्रान्त होते हैं।

शरीरके भीतर क्षिप्त प्राणीकी लार प्रविष्ट होनेके बाद सभीके एक समयमें जलातङ्क रोग प्रगट नहीं होता। क्षिप्त प्राणीके काटनेके उपरान्त किसीको सोलह दिनमें किसीको अठारह दिनमें और किसी किसी अठसठ दिनमें जलातङ्क रोग होता है। लालाके प्रवेश करनेके बाद कब यह रोग होगा इसका कुछ निश्चय नहीं। हां, साधारणतः यह देखनेमें आता है कि, ३० और ४० दिनके भीतर इस रोगके लक्षण दिखाई देने लगते हैं; किन्तु कहीं कहीं १८ मास बाद भी इसका प्रकोप होते देखा गया है। कोई कोई कहते हैं कि, क्षिप्त प्राणीके काटने पर यदि किसी तरहकी औषधिका प्रयोग न किया जाय; तो दो वर्ष बिना बीते इसका भय दूर नहीं होता। ऐसा सुना गया है कि, काटनेके उपरान्त बारह वर्ष पीछे कोई कोई व्यक्ति इस रोगसे आक्रान्त हुए हैं।

कोई क्षिप्त प्राणीद्वारा दंशित होने पर वह आरोग्य लाभ कर सकता है, यह कोई असाध्य रोग नहीं है। जलातङ्कके लक्षण प्रकट होनेसे पहले क्षत-स्थान फूल कर लाल हो जाता है, और बड़ी वेदना होती है। उस स्थानकी तमाम नसोंमें इस तरहका दर्द होता है कि, मानो सभी स्थान विषम क्षतमें परिणत हो गया हो। पीछे रोगीको सिरकी पीड़ा होती है, उसका शरीर हमेशा अस्वस्थ रहता है, भूख नहीं लगती और किसी भी तरल पदार्थ देखनेसे घृणा और भय उत्पन्न होता है। ऐसी दशामें समझना चाहिये कि, रोगी जलातङ्कसे पीड़ित है। ये लक्षण एक बार प्रकाशित होने पर शीघ्र ही बढ़ने लगते हैं। पहले पानी देखते ही उसकी सांस बन्द हो जाती है, पीछे पानीका नाम याद आनेसे या एक पात्रसे दूसरे पात्रमें पानी ढालनेका शब्द सुनते ही उसे मालूम होने लगता है कि उसकी दम बन्द हो जाती है। अन्तमें ऐसा होता है कि, वह पानीकी तरह चमकनेवाले किसी भी धातुके पात्रको देख कर मृत्यु-कालीन श्वासरोधकी यन्त्रणाका अनुभव करने लगता है। पहले किसी चीजके पीते या खाते समय शिरा-कर्षण होता है, धीरे धीरे वह स्वाभाविक उत्तेजनामें परिणत हो जाता है। रोगी सर्वदा अस्थिर और भयसे विह्वल रहता है उसकी आंखें चारों तरफ घूमती रहती हैं और वह बराबर अंटसंट बकता रहता है। रोगकी वृद्धिके साथ उसका शारीरिक आक्षेप (कंपकंपी) भी बढ़ता रहता है। अति मृदु शब्द, और तो क्या निश्वासके शब्दसे ही उसका शिरा-कर्षण उत्तेजित हो जाता है, नाड़ीकी गति द्रुत हो जाती है, शिरःपीड़ा और अश्लील भाषाकी मात्रा बढ़ जाती है। श्लेष्माधिक्य प्रयुक्त रोगीकी निश्वास-क्रिया रुक जाती है, इसलिए रोगी जो पहलेसे ही श्वासरोधका अनुभव कर रहा है, उसकी मात्रा भी बढ़ जाती है। इस कष्टसे परित्राण पाने और सुचारु रूपसे निश्वास ग्रहण करनेके लिए रोगी खांसना प्रारम्भ करता है, तथा कर्कश और उच्च शब्द करता है। इसीलिए लोगोंकी धारणा भी हो गई है कि, रोगीको जो जानवर काटता है वह उसी जानवरकी तरह भौंकने लगता है। बड़े भारी परिश्रम करनेके उपरान्त लोग जिस तरह निद्राभिभूत हो जाते हैं, जलातङ्क रोगी भी अन्तिम कई एक घण्टे तक उसी तरह सोता है और कोई कोई रोगी सोता भी नहीं, तो वह चुपचाप पड़ा रहता है। इस नींदसे उठते ही पहलेसे कुछ मृदु भावसे उसका कण्ठ अथवा सारा शरीर कांपता है। इसके बाद ही वह मर जाता है।

जलातङ्क रोगसे आक्रान्त होने पर रोगी ६ दिनसे अधिक नहीं जीता, साधारणतः २४ घण्टेके भीतर ही उसीको प्राणवायु निकल जाती है।

जलातङ्क रोगी कठिनसे कठिन पदार्थको भी सहजमें खा जाता है। बिल्लीके द्वारा काटे हुए जलातङ्क

रोगीको पानीसे घृणा कुछ कम होती है।

जलातङ्कका यथार्थ तत्त्व अभी तक अभ्रान्त रूपसे निर्णीत नहीं हुआ है। इसलिए किस प्रकारकी औषधसे यह शान्त होता है, उसका भी कुछ निर्णय नहीं हो पाया है। साधारणतः इसके लिए जिन औषधोंका व्यवहार किया जाता है, उनमें इस व्याधिको दूर करनेकी शक्ति नहीं है। हां, उनसे कभी कभी उपसर्गोंका ह्रास अवश्य हो जाता है। अफीमका व्यवहार कर कुछ उपसर्गोंको दूर अवश्य किया जा सकता, है; किन्तु उससे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती। रक्तमोक्षण करानेसे कंप कंपी घट सकती है और हाइड्रोसाइएनिक एसिड (Hydrocyanic-acid) के व्यवहार करनेसे उपसर्ग कई दिनों तक निश्चेष्ट रहते हैं। यदि कुफल उत्पादन करनेसे पहले ही उस विषाक्त लाला (लार) को क्षतस्थानसे निकाल दिया जा सके, तभी इस रोगसे छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा दैवाधीन है। क्षतस्थानका छेदन करना ही प्रशस्त उपाय है। विशेष सतर्कताके साथ क्षतस्थानके शेष अंश तकको काट देना चाहिये, क्यों कि, ज़रा भी अगर विषाक्त पदार्थ शरीरमें रह गया तो रोगीके जीवनकी अधिक आशा नहीं की जा सकती। यदि क्षतस्थान बहुत बड़ा हो अथवा ऐसा अङ्ग हो जिसके काटनेसे शरीरका आवश्यक अंग नष्ट होता हो, तो उसे काटना नहीं चाहिये, बल्कि उस पर नाइट्रिक एसिड (Nitric Acid) आदिकी भांतिकी किसी दाहक औषधका प्रयोग करना उचित है। अथवा जब तक किसी औषधका प्रयोग न किया जाय, तबतक उसे पूर्ण सावधानीके साथ बारबार धोते रहना चाहिये। ४ या ५ फुट ऊंचेसे ८० या १०० डिग्री गरम पानी २-३ घन्टे तक छोड़ कर क्षतस्थान धोया जाता है। किसी भी हिंस्र प्राणीके काटने पर जलातङ्क रोग उत्पन्न हो सकता है, किन्तु साधारणतः और अधिकांश ही कुत्तेके काटनेसे यह रोग होता है।

कुत्तेका काटा हुआ जलातङ्क-रोगी अत्यन्त उदास और कर्कशभाषी हो जाता है, घर छोड़ कर चारों तरफ दौड़ता रहता है और जिसे सामने पाता है, उसे ही काटनेकी चेष्टा करता है। परन्तु वह गन्तव्य पथको छोड़ दूसरी तरफ जाकर किसीको नहीं काटता। यह सर्वदा घास, तृण और लकड़ी चबाता रहता है। इस प्रकारका जलातङ्क-रोगी पहले जिसके साथ जैसा व्यवहार करता था, उस समय भी प्रायः वैसा ही व्यवहार करता है।

हिंस्र कुक्कुर पानीको देख कर डरता नहीं। यह पानी पीते और उसमें तैरते भी हैं। कुत्ता इस रोगसे आक्रान्त हो, जितना मृत्युके पास पहुंचता जाता है, दिनों दिन वह उतना ही भीषण होता जाता है। चारों तरफ जिसे पाता है, उसे ही काटने दौड़ता है। साथ ही मुंहसे लगातार फसकर निकलता रहता है। इस रोगसे आक्रान्त मनुष्य जितने दिन जीता है, कुत्ता भी उतने दिन जी सकता है।

कुत्तेके काटने पर कलकत्तेके आस पासके लोग गोन्दलपाड़ा और युक्तप्रान्त आदिके लोग सिनौली (सिमला) इलाज कराने जाते हैं।

सुश्रुतमें कल्पस्थानके ६ठे अध्यायमें जलातङ्ककी चिकित्सा लिखी है।

जलातन (हिं० वि०) १ क्रोधी, बदमिजाज। २ ईर्षालु, डाही।

जलात्मिका (सं० स्त्री०) जलमेव आत्मा यस्याः। १ जलौका, जोंक। २ कूप, कूआं।

जलात्यय (सं० पु०) जलस्यात्ययो यत्र, बहुव्री०। १ शरत्काल। जलानां अत्ययः, ६-तत्। जलका अपगम, जलका अलग अलग होना।

जलाधार (सं० पु०) जलानां आधारः, ६-तत्। जलाशय।

जलाधिदैवत (सं० पु० क्ली०) जलस्य अधिदैवतं अधिष्ठात्री देवता। १ वरुण। जलं आधिदैवतं यस्य। २ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलाधिप (सं० पु०) जलस्य अधिपः ६-तत्। १ जलके अधिपति, वरुण।

"नाशकोदमतः स्यात्तुविप्रचित्तेर्जलाधिपः।" (हरिवंश २५२ अ०)

२ फलित ज्योतिषके अनुसार रवि प्रभृति ग्रह संवत्सरमें जलके अधिपति होते हैं।

जलाना (हिं० क्रि०) १ प्रज्वलित करना, दहकाना।

२ किसी पदार्थको अधिक गरमी द्वारा भाप या कोयले आदिके रूपमें लाना। ३ गरमीसे पीड़ित करना, झुलसना। ४ किसीके मनमें डाह इत्यादि उत्पन्न करना।

जलान्तक (सं० पु०) जलमेवान्तो भूमण्डलस्य सीमा यत्र कप्। १ सात समुद्रोंमेंसे एक समुद्र। २ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न कृष्णके एक पुत्रके नाम।

जलापा (हिं० पु०) १ वह दुःख जो डाह या ईर्ष्या आदिके कारण होता हो। २ एक प्रकारकी अंग्रेजी दवा।

जलापात (सं० पु०) जलस्य आपातः। उच्चस्थानसे प्रबल वेगसे जलपतन बहुत ऊंचे स्थान परसे नदी आदिके जलका गिरना। प्रपात देखो।

जलाम्बर (सं० पु०) एक बोधिसत्व। इनके पूर्व जन्मका नाम राहुलभद्र था।

जलाम्बिका (सं० स्त्री०) जलस्य अम्बिका माता इव। कूप, कूआं।

जलाम्बुगर्भा (सं० स्त्री०) गोपाका दूसरे जन्मका नाम।

जलायुका (सं० स्त्री०) जलमायुरस्याः कप् पृषोदरादिदित्वात् सलोपः। जलौका, जोंक। जोंक देखो।

जलारपेट—मन्द्राजके सलेम जिलान्तर्गत तिरुप्पत्तूरका एक ग्राम। यह अक्षा० १२° ३५´ उ० और देशा० ७८° १४´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २०५१ है। मन्द्राज और बङ्गलोर रेलवेका जंकसन होनेके कारण यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। यह मन्द्राजसे १३२ मील और बङ्गलोरसे ८७ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

जलार्क (सं० पु०) जलप्रतिविम्बितोऽर्कः। जलप्रतिविम्बित सूर्य, पानीमें सूर्यकी परछाईं।

जलार्णव (सं० पु०) जलमयोऽर्णवः। १ जलसमुद्र। २ वर्षाकाल, बरसात।

जलार्थी (सं० त्रि०) जलं अर्थयति अर्थ-णिनि। जलाभिलाषी, प्यासा।

जलार्द्र (सं० पु०) जलेन आर्द्रः सिक्तः। १ आर्द्र वस्त्र, भीगा हुआ कपड़ा। (त्रि०) २ जलसिक्त, जो जलसे गीला हो गया हो।

जलार्द्रा (सं० स्त्री०) १ क्लिन्नवस्त्र, भीगा कपड़ा। २ आर्द्र तालवृन्त, भीगा पंखा।

जलाल (अ० पु०) १ प्रकाश, तेज। २ आतङ्क, प्रताप।

जलाल-उद्-दीन पूर्वा—बङ्गदेशके एक राजा। ये हिन्दु-राजा गणेशके पुत्र थे। इनका असली नाम था जीतमल और किसीके मतसे यदु। पिताकी मृत्युके उपरान्त मुसलमानधर्म ग्रहण कर ये १३८२ ई०में सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। किसीके मतसे—इन्होंने एक मुसलमान औरतके प्रेममें फंस कर मुसलमान धर्म अवलम्बन किया था। इनकी पहले पहल हिन्दूधर्म पर खूब श्रद्धा थी; किन्तु मुसलमान होने पर इन्होंने हिन्दुओं पर काफी अत्याचार किये थे। ये मुसलमान प्रजाओंको पुत्रके समान पालते थे, इसलिए मुसलमानों द्वारा ये "नौशेरवान्" कहाते थे। १७ वर्ष राज्य करनेके उपरान्त १४१० ई०में ये अपने पुत्र अहम्मदको राज्यप्रदान कर परलोक सिधारे थे।

जलाल उद्-दीन मजुती-मिस्र देशके एक प्रसिद्ध पण्डित। इनके पिताका नाम रहमन बिन अबूबकर था। प्रवाद है कि, इन्होंने कुल चार-सौ पुस्तकें लिखी थीं। उनमेंसे दुर्-अल मन्सूर, तफसीर जलालइन, लुब्ब, जामाउल्-वामा, कस्फुम्-सलसला-उन्-बस्-फुज जल्जला ये कई एक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। शेषोक्त पुस्तकमें—७१३ ई० से उनके समय तक जितने भूकम्प हुए हैं—उन सबका विवरण लिखा है। १५०५ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

जलाल उद्दीन् फिरोज खिलजी—फिरोजशाह खिलजी देखो।

जलालखेरा—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेका एक शहर। यह अक्षां २१° २३´ उ० और देशा ७८° २८´ पू०में तथा काटोलसे १४ मील पश्चिम जाम और वर्द्धान इन दो नदियोंके संगम स्थानपर अवस्थित है। यहांके रहनेवाले अधिकांश कृषक हैं। प्रवाद है, इस नगरमें एक समय ३० हजार मनुष्य रहते थे, बाद पठान सैन्यके अत्याचारसे यह शहर तहस नहस हो गया। अभी भी शहरके चारों ओर प्रायः २ वर्ग मील स्थानमें नगरका भग्नावशेष देखनेमें आता है। कोई कोई अनुमान करते हैं कि अमनेर और जलालखेरा एक बड़े नगर थे।

जलालदीन—हिन्दीके एक कवि।

जलाल दीन अकबर—हिन्दीके एक कवि।

जलाल उद्दीन महम्मद अकबर—अकबर देखो।

जलालदीन मुहम्मद—उर्दूके एक कवि। अकबर बादशाह-

की तारीफमें इन्होंने कई एक कविताएं बनाई हैं।

जलालदीन मुहम्मद गाजी—एक हिन्दीके कवि।

जलालपुर—बम्बई प्रान्तके सुरत जिलेका मध्य तालुक। यह अक्षा० २०° ४५' एवं २१° ३० और देशा० ७२° ४७' तथा ७३° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८११८२ है। इसके उत्तरमें पूर्णानदी, पूर्वमें बरोदा उपविभाग, दक्षिणमें अम्बिका नदी और पश्चिममें अरब समुद्र है। इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई १६ मील है। इसमें कुल ८१ गांव लगते हैं। इसकी भूमि समतल पंकमय है और समुद्रकी ओर कुछ नीची हो कर लवणमय दल-दलमें परिणत हो गई है। समुद्रके किनारेकी लवण-भूमि छोड़ कर सब जगहकी जमीन उर्वरा है और अच्छी तरह आबाद की जाती है। यहां तरह तरहके फलके बगीचे और जंगल हैं। समुद्रकूलके अतिरिक्त पूर्णा और अम्बिका नदीके किनारे बहुत लम्बी चौड़ी दलदल भूमि है। १८७५ ई०में जलाभूमिके प्रायः अर्ध भागमें खेती करनेकी चेष्टा की गई थी। तभीसे उसमें थोड़ा बहुत धान उपज जाता है। ज्वार, बाजरा और चावल ही यहांका प्रधान शस्य है। इसके सिवा उर्द, चना, सरसों, तिल, ईख, केला आदि उत्पन्न होता है। यहांकी जलवायु नातिशीतोष्ण और स्वास्थ्यकर है। प्रति वर्ष ५४ इञ्च पानी बर्षता है। यहां २ फौजदारी अदालत और १ थाना है। मालगुजारी और सेस कोई ३६००००) है।

जलालपुर—पञ्जाब प्रान्तके गुजरात जिलेका नगर। यह अक्षा० ३२° ३८' उ० और देशा० ७४° ११' पू०में गुजरात नगरसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या कई १०६४० होगी। यहां स्यालकोट, झेलम, जम्मू और गुजरातकी सड़कें मिल जानेसे अच्छा बाजार लगता है। कश्मीरी लोग शाल बनाते हैं। १८६७ ई०में म्युनिसिपालिटी हुई।

जलालपुर—पञ्जाब प्रान्तके झेलम् जिलेकी पिण्डदादनखाँ तहसीलका एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० ३२° ३९' उ० और देशा० ७३° २८' पू०में झेलम् नदीके दक्षिण तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३१६१ है। प्रत्नतत्त्वविद् कनिङ्गहम् साहबके कथनानुसार अलेकसन्दरने उसे अपने प्रधान सेनापतिके स्मरणार्थ बनाया, जो पोरस राजाके साथ युद्ध करनेमें मारा गया। जलालपुरका प्राचीन नाम बूकफला है। पहाड़की चोटी पर आज भी प्राचीन भित्तियोंका ध्वंसावशेष विद्यमान है। प्राचीन आविष्कृत मुद्राओंमें ग्रीक तथा बाकट्रियाके राजाओंका संवत् पड़ा है। अकबरके समय भी यह नगर चौगुना बड़ा था।

जलालपुर (पीरवाल) पञ्जाब प्रान्तके मुलतान जिलेकी शुजाबाद तहसीलका नगर। यह अक्षा० २९° ३२' उ० और देशा० ७१° १४' पू०में भाटरी नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५१४८ है। पीरकमाल नामक मुसलमान साधुके नाम पर ही उसको पीरवाल कहा जाता है। १७४५ ई०की उनकी यहां कब्र बनी। चैत मासमें प्रति शुक्रवारको बड़ा मेला लगता है। उसमें दिनको मुसलमान और रातको हिन्दू स्त्रियोंको सतानेवाली चुड़ैलें झाड़ी जाती हैं। १८७३ ई०में म्युनिसिपालिटी हुई। रेलवे खुल जानेसे स्थानीय व्यापार घट गया है।

जलालपुर—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलेकी अकबरपुर तहसीलका नगर। यह अक्षा० २६° १८' उ० और देशा० ८२° ४५' पू०में अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ७२६५ है। नगर तीन नदीके उच्च तट पर होनेसे बहुत अच्छा लगता है। नगरसे बाहर १२वीं शताब्दीमें जुलाहोंने चन्दा करके एक बड़ा इमामबाड़ा बनाया था। १८५६ ई०के कानूनसे इसका प्रबन्ध किया जाता है। आज भी यहां सूती कपड़ा बहुत बुना जाता है।

जलालपुर देहो—अयोध्याप्रदेशके अन्तर्गत रायबरेली जिलेकी दलमऊ तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° २' उ० और देशा० ८१° ६२' पू०में दलमऊसे ८ मील पूर्व और रायबरेलीसे १८ मील दक्षिण-पूर्वमें देहो नामक एक प्राचीन ध्वंसावशिष्ट नगरके पास अवस्थित है। यहां हर पखवाड़े शहरसे कुछ दूरमें हाट लगा करती है।

जलाल बुखारी सैयद—एक प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित। सैयद महम्मदकबीरके वंशधर और सैयद महम्मद

बुखारीके पुत्र। १५८४ ई०में इनका जन्म हुआ था। बादशाह शाहजहां इनकी अत्यन्त भक्तिश्रद्धा करते थे। बादशाहकी मेहरबानीसे इन्होंने तमाम हिन्दुस्तानको 'सदारत्' और छह हजारी मनसबदारका पद पाया था। ये बहुतसी कविताएं लिख गये हैं, जिनमें 'रजा" नामसे इन्होंने अपना उल्लेख किया है। १६४७ ई०में (१०५७ हिजिरामें) २५ मईको इनका देहान्त हुआ था।

जलालाबाद—१ अफगानिस्तानका एक बड़ा जिला। इसके उत्तरमें बदखशान्, पूर्व में चित्राल तथा अंगरेजी राज्य, दक्षिणमें अफरीदी तिराह, पश्चिममें काबुल प्रान्त है। समस्त देश पर्वतमय है। पूर्व सीमामें हिन्दूकुश पहाड़ है जिसकी कई एक बड़ी बड़ी चोटियां हैं। पश्चिमी सीमामें सफेदकोह है जो जलालाबाद उपत्यकासे ले कर अफरीदी तिराह तक विस्तृत है। सारा जिला काबुलकी नहरसे सींचा जाता है। इसके सिवा पंजसीरिटगी,, लिशंग, अलिनगार और कुनार नामके और कई एक सोते हैं जिनका जल सिंचाईके काममें आता है। यहां विभिन्न जातीय लोग रहते हैं। हिन्दुओंकी संख्या अधिक नहीं। खृष्टीय ५वीं शताब्दी तक इस उपत्यकामें बौद्ध धर्मका प्राबल्य रहा। हजारों वर्ष मुसलमानोंका प्रभुत्व रहते भी जलालाबादमें प्राचीन हिन्दू अधिवासियोंके बहुतसे निदर्शन आज भी देख पड़ते हैं। यहां पुराने पूर्वरोमक साम्राजाके और सासानीय तथा हिन्दू सिक्के मिले हैं।

२ अफगानिस्तानके जलालाबाद जिलेका एक मात्र नगर। यह अक्षा० ३४° २६′ उ० और देशा० ७०° २७′ पू०में पेशावरसे ७८ मील दूर और काबुलसे १०१ मील दूर अवस्थित है। नगरकी चारों ओर २१०० गज विस्तृत प्राचीर है। लोकसंख्या प्राय: २००० रहती, परन्तु शीत ऋतुमें पहाड़ियोंके आ बसनेसे चौगुनी पड़ती है। जलालाबादसे काबुल, पेशावर और गजनीको सड़क लगी है। पेशावरको मेवा और लकड़ी भेजी जाती है। पश्चिम द्वारसे २०० गज दूर अमीरका राजप्रासाद है। यह १८८२ ई०में बना था। गर्मीमें रहनेके लिए जमीनके नीचे कमरे हैं। खुले बरामदेसे उपत्यका और निकटस्थ पर्वतोंका दृश्य अच्छा लगता है। जलवायु पेशावर जैसा है।

१५७० ई०में अकबर बादशाहने जलालाबाद बसाया था। १८३४ ई०में अमीर दोस्त मुहम्मदने इसे तहस नहस कर डाला। १८३९-४२ के अफगानयुद्धमें सर रोबर्ट सेलने बहुतसी कठिनाइयोंको झेलते हुए १८४१ ई०के नवम्बर महीनेमें इस शहरको वृटिश शासनाधीन किया। किन्तु रसद घट जानेके कारण अंग्रेजी सेना वहां रह न सकी। अन्तमें १८४२ ई०को फरवरीको अफगान सरदार मुहम्मद अकबरखांने इसे पुन: हस्तगत किया। लेकिन १८७८-८० ई०को अफगान युद्धमें अंगरेजोंने जलालाबाद अधिकार किया। आजकल यहां अफगान सैन्य रहता है।

जलालाबाद—१ युक्त प्रदेशके शाहजहांपुर जिलेकी दक्षिण पश्चिम तहसील। यह अक्षा० २७° ३५′ तथा २७° ५१′ उ० और देशा० ७९° २०′ एवं ७९° ४४′ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: १७५६७४ है। इसमें एक शहर और ३६० गांव आबाद हैं। मालगुजारी कोई २१७०००) रु० है। दक्षिण-पश्चिम सीमा पर गङ्गा बहती और मध्यभागसे रामगङ्गा चलती है।

२ युक्तप्रदेशके शाहजहांपुर जिलेकी जलालाबाद तहसीलका सदर। यह अक्षा० २७° ४३′ उ० और देशा० ७९° ४०′ पू०में बरेली शाहजहांपुर सड़कोंको मोड़ पर बसा है। लोकसंख्या प्राय: ७०१७ होगी। जलालाबाद पठानोंका पुराना शहर है। कहते हैं कि-जलाल उद्दीन फिरोजशाहने उसे पत्तन किया था। एक पुराने किलेमें सरकारी दफतर है। रेलवे स्टेशनसे दूर होनेके कारण यहांका वाणिज्य व्यवसाय कुछ कम हो गया है। यहां एक भी अच्छा मन्दिर या मस्जिद नहीं है। यहां एक अस्पताल और American Methodist mision स्कूलको एक शाखा है।

जलालाबाद—युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगरकी कैरान तहसीलका नगर। यह अक्षा० २९° ३७′ उ० और देशा० ७७° २७′ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ६८२२ है। कहते हैं कि औरङ्गजेबके समय जलालखाँ पठानने उसको बसाया था। यहांसे आधमीलको दूरी पर रोहिलोंके प्रधान नाजिबखांके बनाये हुए प्रसिद्ध घौसगढ़ दुर्गका

भग्नावशेष विद्यमान है। मराठोंने इसे कई बार लूटा पीटा। बलवेके समय स्थानीय पठान शान्त रहे। यहां केवल १ स्कूल है।

जलाली—युक्त प्रदेशके अलीगढ़ जिलेका नगर। यह अक्षा० २७° ५२´ उ० और देशा० ७८° १६ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८८३० है। प्रधानतः यहां सैयद लोग रहते हैं। यह कमाल-उद्-दीनके वंशधर हैं जो १२८५ ई०को आ कर बसे थे। इन्होंने पठानोंको निकाल करके नगरका पूर्ण अधिकार पाया। जलालीमें कई इमामबाड़ा हैं। यहांकी सड़कें कच्ची और कम चौड़ी हैं और बाजार भी अच्छे नहीं हैं। व्यवसाय वाणिज्य भी प्रायः नहींके समान है। यहांके प्रायः सभी अधिवासी कृषिजीवी हैं। नगरसे आधमील दूर सेना ठहरनेकी एक मठी है।

जलाली—मुसलमान फकीरोंकी एक श्रेणी। ये लोग बुखाराके रहनेवाले सैयद जलाल-उद्दीनको अपना गुरु मानते हैं। खुदा या ईश्वरकी ओर इन लोगोंका कम ध्यान रहता है। भङ्ग इस श्रेणीके फकीरोंका प्रधान आहार है। ये लोग डाढ़ी, मूंछ और भौं मुड़वा डालते हैं, तथा सिर पर दाहिनी ओर एक छोटी चोटी रखते हैं। मध्य एशियामें इस श्रेणीके फकीर अधिक पाये जाते हैं।

जलालु (सं० पु०) जलजाता आलुः। पानीयालुक, जिमीं कंद, ओल।

जलालुक (सं० क्ली०) जलालुरिव कायति प्रकाशते कै-क। पद्मकन्द, कमलकी जड़, भसीड़।

जलालुका (सं० स्त्री०) जले अलति गच्छति अल-बाहुल-कात् उक-टाप्। जलौका, जोंक।

जलालुद्दीन कवि—हिन्दीके एक सुकवि। सं० १६१५में इनका जन्म हुआ था। हजारामें इनके बनाए हुए कवित्त मिलते हैं।

जलालोका (सं० स्त्री०) जले आलोक्यते दृश्यते आ-लोक कर्मणि घञ्। जलौका, जोंक।

जलाव (हिं० पु०) १ खमीर या आटे आदिका उठना। २ खमीर, गूंधे हुए आटेका सड़ाव। ३ शहदके समान गाढ़ा किया हुआ शरबत, किमाम।

जलावतन (अ० वि०) निर्वासित, जिसे देश निकालेकी सजा मिली हो।

जलावतनी (अ० स्त्री०) निर्वासन, देश निकाला।

जलावन (हिं० पु०) १ ईंधन, जलानेकी लकड़ी या कंडा। २ वह उत्सव जो कोल्हूके पहले पहल चलानेके दिन किया जाता है। इसमें गृहस्थ अपने अपने खेतोंसे ईख ला कर कोल्हूमें पेरते हैं, और सन्ध्या समय चूड़ा, दही और ईखका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदिको खिलाते पिलाते हैं, भंड़रव। ३ किसी वस्तुका वह अंश जो उसके तपाये, गलाये वा जलाए जाने पर जल जाता है।

जलावर्त्त (सं० पु०) जलस्य आवर्त्तः सम्भ्रमः। जल-गुल्म, जलभ्रम, समुद्र नदी आदिके जलकी घूर्णी पानीके भंवर। समुद्रनदी आदिमें जो भंवर पड़ता है, उसे जला-वर्त्त कहते हैं।

समुद्र और नदीके स्थानविशेषमें प्रायः समान वेगके दो स्रोत विपरीत दिशासे प्रवाहित हो कर यदि किसी कम चौड़े स्थान पर परस्पर टकरावें अथवा यदि चारों ओरसे स्रोत प्रवाहित हो कर समुद्रमें डूबे हुए पर्वत, तट या वायुगति द्वारा उनकी गति प्रतिरुद्ध हो जाय, तो उन स्रोतोंके परस्पर घात प्रतिघातसे जलराशि घूर्णाय मान हो कर ,जलावर्त्त उत्पन्न हो जाता है। जिस जगहका पानी हमेशा घुमता रहता है, उस स्थानको कोई कोई जलावर्त्त कहते हैं। समुद्रमें जगह जगह जलावर्त्तका प्रचण्ड वेग देखा जाता है। ग्रीसीय द्वीप-पुञ्जके निकटवर्ती यूरिपासका आवत, मिसिलो और इटालीके मध्यवर्त्ती 'सेरिबडिस' और नौरवेके निकट-वर्त्ती मेलष्ट्रम नामके आवर्त्त हो ज्यादा प्रसिद्ध हैं। भागीरथीके मध्यवर्त्ती विशालाक्षीका भौंरा इस देशमें विख्यात है।

पहले जिस सेरिबडिस् जलावर्त्तका उल्लेख किया गया है, उसका जल सर्वदा ही घूमता रहता है और एक साथ अधिकांश जगह मण्डलाकार आवर्त्त देखा जाता है। यह जलावर्त्त इतना बड़ा होता है कि, स्थानको कल्पना कर इसे नापा जाय तो इसका व्यास १०० फुट होगा। इसके सिवा वायुका वेग बढ़ने पर इसका व्यास और भी बढ़ जाता है। इस स्थानका स्रोत अति प्रबल होता है और बराबर वायुके आघातसे यह

घूर्णावर्त्त उत्पन्न होता है इसमें विशेषता यह है कि इसका स्रोत पर्यायक्रमसे ६ घण्टे तक उत्तर दिशासे प्रवाहित हो कर फिर ६ घण्टे दक्षिण दिशासे प्रवाहित होता है। चन्द्रके उदय और अस्तके साथ स्रोतकी गति भी पर्यायक्रमसे परिवर्त्तित होती है। जिस समय मन्द मन्द हवा चलती है उस समय जहाज आदि पर सवार हो कर इस जगह जानेसे विशेष कुछ अनिष्ट होनेकी तो सम्भावना नहीं, पर पानीके साथ साथ जहाजको घूमना अवश्य पड़ता है। जिस समय प्रबल वेगसे वायु चलती हो उस समय यदि कोई छोटे जहाज या नाव पर चढ़ कर वहां जाय तो वह डूबे बिना नहीं रह सकता और यदि जहाज खूब बड़ा हो, तो वह तरङ्ग और स्रोतके वेगसे इटली देशके उपकूलकी तरफ चला जाता है और वहां पहुंचते न पहुंचते सिफला नामक पर्वतमें टकरा कर उसका चकनाचूर हो जाता है।

घूमते हुए पानीके घात प्रतिघातसे तरह तरहके शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। पेलोरो अन्तरीपके पासके पर्वतसे टकरा कर वहांका पानी कुत्तेके भौंकनेके समान शब्द करता है। इसी लिए शायद यूरोपक लोगोंमें ऐसी कहावत प्रसिद्ध है कि, पेलोरो अन्तरीपके पास एक राक्षसी वहांसे जानेवाले मल्लाहोंको खानेके लिए—कुक्कुर और व्याघ्रोंसे परिवेष्टित हो कर सर्वदा वहां रहा करती है।

नौरवे उपकूलवर्त्ती जलराशि एक प्रबलवेगयुक्त प्रवाहके द्वारा पर्यायक्रमसे दक्षिण और उत्तरकी तरफ प्रवाहित होती है, वह प्रवाह वायु द्वारा प्रतिरुद्ध होने पर भीषण शब्द करता है, जो समुद्रसे बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है। इस घूर्णावर्त्तका नाम मेलष्ट्रम है। वायुका प्रकोप न रहने पर वहांसे जहाज आदि निरापदसे जा-आ सकते हैं। परन्तु प्रबल वायु रहने पर जहाज आदिको बचा कर ले जाना चाहिये; अन्यथा स्रोतके वेग या भंवरमें पड़ कर डूब जानेका पूरा पूरा भय है। उस स्थानके पानीका वेग इतना ज्यादा होता है कि, कभी कभी तिमि और अन्यान्य मच्छ मरे हुए उपकूलमें देखे गये हैं।

अर्कनी उपद्वीपोंके बीचके जलावर्त्त वायु और प्रवाहकी परस्परकी क्रिया द्वारा उत्पन्न होते हैं। परन्तु वहांके जलावर्त्त सङ्कटजनक नहीं होते। उक्त जलावर्त्तमें एक काष्ठका टुकड़ा या बहुतसे तृण डाल देनेसे जलकी घूर्णायमान गति रुक कर वहांका पानी सहज अवस्थापन्न हो जाता है। इसलिए यदि नौका पर चढ़ कर यहांसे जाना हो, तो पहले उस जगह काठका टुकड़ा या बहुतसे तृण डाल कर निर्विघ्नतासे जा सकते हैं।

नदीमें जो जलावर्त्त होता है, वह मण्डलाकार प्रवाहित होता रहता है। नदीजलके स्तरके किसी अंशके नत होने पर अथवा सङ्कीर्ण होने पर स्रोत नदी रेखाके साथ समान्तराल अवस्थामें नहीं जा सकता, प्रत्युत असरल भावसे मध्यकी ओर परिवर्त्तित हो कर मण्डलाकारमें प्रवाहित होता है और नदीके ऊपरी भागका पानी तटके द्वारा प्रक्षिप्त होता है। यह तट और असमान्तराल स्रोतका पानी भिन्न भिन्न जल द्वारा चालित होता है। इस वक्राविक्र गतिके कारण स्रोतमें मध्यापसारी गति उत्पन्न होती है, इसीलिए आवर्त्तके केन्द्रस्थलका पानी नदीके ऊपरी भागके पानीके समान समतल नहीं होता।

कल्पना करो कि, किसी नदीका निम्नस्तर क्रमश: सङ्कुचित हो रहा है, अब उस स्थानके एक पारमें क बिन्दु और दूसरे पारमें ख बिन्दुको और उसके आस पास जहां नदी अत्यन्त सूक्ष्मायतन हो वहां कं खं बिन्दुकी कल्पना करो। नदीकी आकृति और स्रोतकी गतिसे तटके क कं अंश द्वारा कुछ अंशोंमें जलका प्रवाह प्रतिरुद्ध होता है, निकटवर्ती जलकी अपेक्षा अधिक ऊंचा हो जाता है और वहां प्रतिक्षिप्त हो कर कं ग की तरफ चालित होता है। जलके साधारण धर्मानुसार क ख स्थानके पानीके वेगकी अपेक्षा सूक्ष्म खण्डके पानीका वेग ज्यादा होता है। क ग गं स्थानका पानी क कं ग की तरफ धावित होता है और घ स्थानसे पानी वहां आता है। इस तरह कं ग की तरफ एक स्रोत प्रवाहित होता है और घ बिन्दुसे ग कं और ग से क गं की तरफ पानी जाता आता रहता है। इस विभिन्न प्रसारी स्रोतके घात प्रतिघातसे जलराशि मण्डलाकार घूर्णायमान होती है। इस प्रकारसे नदीके

किसी स्थान पर सर्वदा ही जलावर्त्तका कार्य होता रहता है और यह जलावर्त्त केवलमात्र उसही जगह आबद्ध न रह कर नदीके स्वाभाविक स्रोतसे और भी कुछ दूर जाकर उत्पन्न होता है।

ऊपर लिखे निम्न मध्यवर्ती भूभागकी आकृति सदृश होने पर नदीके दूसरे पार भी घूर्णावर्त्त हो सकता है और विक्षिप्त स्थान यदि संकीर्णायतन हो, तो वहांसे कई प्रवाह—प्रतिक्षिप्त हो कर जलावर्त्त उत्पन्न कर सकता है। इसीलिए यदि नदीका फाट कम चौड़ा हो और वहां कोई पुल बना हो, तो उस पुलके स्तम्भके पास आवर्त्त उत्पन्न होते हैं। उक्त आवर्त्तोंके निम्न स्तर, उनके चारों ओरके स्तरोंकी अपेक्षा बहुत कम ही विरुद्ध बलकी गतिको रोक सकते हैं। इन स्तरोंके नीचे जो पानी है, वह अपने साधारण धर्मके अनुसार समतल अवस्थामें रहनेके लिए उठते समय मट्टी आदिको ऊपर उठाता है और कभी कभी तो पुलके स्तम्भों तकको ऊपर फेंक देता है।

नदीके निम्नस्तर सर्वत्र समान नहीं होते; कोई स्तर नीचा और कोई ऊंचा होता है। स्तरकी उच्चता और निम्नताकी तारतम्यताके अनुसार ऊंचे स्थानसे पानीकी गति प्रतिक्षिप्त हो कर जलावर्त्त उत्पन्न हो सकता है। यह प्रवाह पीछे वक्रभावसे ऊर्द्ध्वगामी होता है और तरङ्गके आकारसे ऊपरको आता रहता है। इसी तरह यदि कोई स्थान अचानक नीचा हो जाय तो उस स्थानमें भी जलावर्त्त उत्पन्न हो सकता है।

जलाशय (सं० पु०) जलस्य आशयः आधारः। १ जलाधार, वह स्थान जहां पानी जमा हो, समुद्र, नद, नदी, पुष्करिणी गड्ढा इत्यादि। पुष्करिणी देखो। (क्ली०) जले जलबहुलप्रदेशे आशेते शी अच्। २ उशीर, खस। ३ लामज्जक तृण। ४ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। (त्रि०) ५ जलशायी, जो जलमें शयन करता हो। (पु०) ६ मत्स्य विशेष, एक मछली।

जलाशया (सं० स्त्री०) गुण्डला तृण, गुंदला, नागरमोथा।

जलाश्रय (सं० पु०) जले जलप्रचुर प्रदेशे आश्रयो उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ वृत्तगुण्ड तृण। दीर्घनाल नामकी घास। २ शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। ३ ईहामृग, भेड़िया। ईहमृग देखो। ४ गर्मोटिका तृण, जड़बी। ५ लामज्जक तृण।

जलाश्रया (सं० स्त्री०) स्त्रियां टाप्। १ शूलीतृण, शूली घास। २ बलाका, एक प्रकारका बगुला पक्षी।

जलाष (सं० क्ली०) जायते जल ड जः लाषोऽभिलाषो यत्र अर्शादित्वादच्। १ सुख, आराम, चैन। २ सबके लिए सुखकर। जल, पानी।

जलाषाह (सं० त्रि०) जलं सहते सह शिव पूर्व्वपद दीर्घः, शस्य षत्वं। जलसोढ़, पानीको बरदाश्त करनेवाला।

जलाष्ठीला (सं० स्त्री०) जलेन अष्ठीला संहिता। पुष्करिणी।

जलासुका (सं० स्त्री०) जलमेव असवो यस्याः कप् टाप्। जलौका। जोंक देखो।

जलाहल (हिं० वि०) जलामय, पानीसे भराहुआ।

जलाह्वय (सं० क्ली०) जले आह्वयः स्पर्द्धा यस्य। १ उत्पल, कमल। २ कुमुद, कुई। ३ बालक, बाला।

जलिका (सं० स्त्री०) जलं उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्याः जल ठन्। जलौका जोंक देखो।

जलिकाट—जलीकाट देखो।

जलीकाट—मदूरा राज्यमें प्रचलित एक तरहका खेल। कुछ गाय-भैंसोंके सींगसे कपड़ा या अंगोछा बांध देते है, उस अंगोछेके छोरमें कुछ रुपये-पैसे भी बांधे रहते हैं। किसी लम्बे चौड़े मैदानमें उन सबको लेजाकर एक साथ छोड़ देते हैं। इस समय दर्शकवृन्द ताली बजाते हुए हल्ला मचाते हैं; जिससे वे जानवर उत्तेजित हो कर जी-जानसे दौड़ते हैं और साथ ही द्रुतगामी मनुष्य भी उनके साथ दौड़ते रहते हैं। जो अग्रगामी पशुको पहले पकड़ता है, उसीकी जय होती है और वही उक्त पशुके सींगसे बंधे हुए रुपये-पैसोंका अधिकारी होता है।

अंग्रेज लोग जिस तरह घुड़दौड़में मस्त हो जाते हैं, उसी तरह मदूर, त्रिशिरापल्ली, पदुकोटा और तञ्जोरके लोग भी इस खेलमें उन्मत्त हो जाते हैं। इस खेलको उनके जातीय उत्सवोंमें गिनती थी, इस लिए धनी दरिद्र सभी इस खेलमें शामिल होते थे। इसमें कभी कभी

बड़ी विपत्ति आती थी, इस वजहसे १८५५ ई०में गवर्मेण्टने इसे बन्द कर दिया।

जलील (अ० वि०) १ तुच्छ, बेकदर। २ अपमानित, जिसे नीचा दिखाया गया हो।

जलील—हिन्दीके एक कवि। इनका पूरा नाम अब्दुल जलील बिलग्रामी था। १७२८ संवत्‌में इनका जन्म हुआ था। हरिवंशमिश्रसे इन्होंने हिन्दी पढ़ी थी। औरङ्गजेब बादशाह इनका खूब सम्मान करते थे।

जलुका (सं० स्त्री०) जले तिष्ठति जल वाहुलकात्-उक। जलौका, जोंक।

जलूका (सं० स्त्री०) जलमोको यस्याः पृषोदरादित्वात् साधुः। जोंक, जलौका।

जलूस (अ० पु०) किसी उत्सवमें बहुतसे मनुष्योंका सजधज कर विशेषतः किसी सवारीके साथ किसी निर्दिष्ट स्थान पर जाना वा शहरके चारों ओर घूमना।

जलेचर (सं० पु०) जले चरति चर-ट। १ जलचर पक्षी, हंस, वक प्रभृति। इनके मांसके गुण-गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, वायुनाशक और शुक्रवृद्धिकर। (त्रि०) २ जलचारी, जो पानीमें चलता हो।

जलेजुबा (सं० स्त्री०) जलमेति जल-इ-क्विप् जलेन जलप्रचुरस्थानं तत्र शेते उद्भवति शी-अच् स्त्रियां टाप्। हस्तिशुण्डा वृक्ष, हाथी सूंड नामका पौधा। यह पानीमें उपजता है।

जलेज (सं० क्ली०) जले जायते जन-ड। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ जलजात, जो पानीमें उपजता हो।

जलेजात (सं० क्ली०) जले जातं सप्तम्या अलुक्। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ जलेजात, पानीमें होनेवाला।

जलेन्द्र (सं० पु०) जलस्य इन्द्र अधिपतिः। १ वरुण। २ महासमुद्र। ३ जम्भलाख्य महादेव। ४ पूर्व यक्ष। (मेदिनी)

जलेन्धन (सं० पु०) जलान्येवेन्धनानि यस्य। १ वाड़वाग्नि। २ सौर विद्युतादि तेज, वह पदार्थ जिसकी गरमीसे पानी सूखता है।

जलेतन (हिं० वि०) १ चिड़चिड़ा, जिसे बहुत जल्द क्रोध आ जाता हो। २ जो डाह, ईर्ष्या आदिके कारण बहुत जलता हो।

जलेबा (हिं० पु०) बड़ी जलेबी।

जलेबी (हिं० स्त्री०) १ इमरतीकी भांति एक प्रकारकी गोल मिठाई। इसकी प्रस्तुत प्रणाली नाना स्थानोंमें नाना प्रकार है। यहां एक प्रकारकी प्रक्रिया लिखी जाती है—चनाकी दाल भिगो कर उसे पीसते हैं और फिर उसमें चावलका बारीक आटा और थोड़ा पानी मिला कर फेंटते हैं। अच्छी तरह फेंटे जानेके बाद सछिद्र मोटे वस्त्रमें या किसी पात्रमें रख कर उस पात्रको घीकी कड़ाहीके ऊपर रख कर इस तरह घुमाते हैं कि उसकी धार निकल कर कुण्डलाकार होती जाती है। भली भांति सिक चुकने पर घीमेंसे निकाल कर रस वा सीरे में छोड़ देनेसे जलेबी बन जाती है। कहीं कहीं चावल के आटेके बदले मैदा भी काममें लाते हैं तथा कहीं कहीं खमीर उठाये हुए पतले मैदेसे भी जलेबी बनाते हैं। २ बिथारेकी भांतिका एक प्रकारका पौधा। यह चार पांच हाथ ऊंचा होता है। इसमें पीले रंगके फूल लगते हैं। इसके फूलके भीतर कुण्डलाकार बहुतसे छोटे छोटे बीज रहते हैं। ३ कुण्डली, गोलघेरा लपेट।

जलेभ (सं० पु०) जलजात-इभः। जलहस्ती। जलहस्ती देखो।

जलेयु (सं० पु०) पुरुवंशीय रौद्राश्व नृपतिके एक पुत्रका नाम। (भाग० ९।२०।५)

जलेरुह—उड़िसाके एक प्राचीन राजा। तारानाथ-प्रणीत मगधराजवंशावली-चरित्रमें इनको उड़िष्याका प्रबल पराक्रमी राजा बतलाया गया है।

जलेरुहा (सं० स्त्री०) जले रोहति उद्भवति रुह-क सप्तम्याः अलुक्। १ कुटुम्बिनी वृक्ष, सूरजमुखी नामक फूलका पौधा। (त्रि०) २ जलजात, पानीमें होनेवाला।

जलेला (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृका नाम।

जलेवाह (सं० पु०) जले जलमध्ये वाहते जलमग्न द्रव्यस्य लाभार्थं प्रयतते। १ वह मनुष्य जो पानीमें गोता लगा कर चीजें निकालता हो, गोताखोर। २ जलकुक्कुट, पानीका मुरगा।

जलेश (सं० पु०) जलस्य ईशः, ६-तत्। १ वरुण। २

समुद्र। ३ जलाधिपति। ४ वर्षभेद। जलाधिप देखो।

जलेशय (सं॰ पु॰) जले शेते शो-अच्-समस्याः अलुक्। १ मत्स्य, मछली। २ विष्णु। जिस समय सृष्टिका लय होता है, उस समय विष्णु जलमें शयन करते हैं इसीसे इनका नाम जलेशय पड़ा है।

'तुम्बरिणो महाक्रोध ऊर्द्धरेता जलेशयः।" (भारत १३।१७।९८)

(त्रि॰) ३ जलमें अवस्थानकारी, पानीमें रहनेवाला।

जलेश्वर (सं॰ पु॰) जलस्य ईश्वरः। १ वरुण। २ समुद्र। ३ हिमालयस्थ तीर्थविशेष, हिमालय पर्वत परका एक तीर्थ। ४ जलाधिपति।

जलेश्वर—जलेसर देखो।

जलेसर—युक्त प्रदेशके एटा जिलेकी दक्षिण-पश्चिम तहसील। यह अक्षा॰ २७° १८´ तथा २७° ३५´ उ॰ और देशा॰ ७८° ११´ एवं ७८° ३१´ पू॰ मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २२७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११३३८८ है। इसमें २ नगर और १५६ ग्राम आबाद हैं। मालगुजारी कोई २८८००० है। अपर गङ्गा नहरकी इटावा शाखासे खेत सींचे जाते हैं।

जलेसर—युक्तप्रदेशके एटा जिलेकी जलेसर तहसीलका सदर। यह अक्षा॰ २८° २७´ उ॰ और देशा॰ ७८° १८´ पू॰में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४३४८ है। यहां कई जैनमन्दिर हैं और बहुतसे जैन वास करते हैं। इसमें दुर्ग और निम्न नगर दो विभाग हैं। कहते हैं, खृष्टीय १५ वीं शताब्दीको मेवाड़के राणाने वह किला बनाया था। परन्तु अब उसके ध्वंसावशेषमें सिर्फ एक टीला ही रह गया है। १८६६ ई॰को मुनिसपालिटी हुई। सूती कपड़ा, शीशेकी चूड़िया और कांसेके गहने बनाते हैं। यहाँ शोरे-का बहुत बड़ा कारखाना है। रूईकी कल भी चलती है।

जलेसर—उड़ीसाप्रान्तके बालेश्वर जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा॰ २१° ४८´ उ॰ और देशा॰ ८७°१३´ पू॰में सुवर्णरेखा नदीके वाम तट पर अवस्थित है। यहां बङ्गाल-नागपुर-रेलवेका ष्टेशन और कलकत्ते जानेवाली बड़ी सड़क है। पहले जलेसरमें वर्तमान मेदिनीपुर जिलेकी मुसलमान सरकार और १८ वीं शताब्दीके समय ईष्ट इण्डिया कम्पनीका एक कारखाना था।

जलोक (सं॰ पु॰) काश्मीरराज अशोकके पुत्र। महादेव की आराधना करने पर इनका जन्म हुआ था। इन्होंने म्लेच्छोंको परास्त किया था। धनुर्विद्यामें ये अद्वितीय थे और जलस्थम्भनविद्या भी इन्हें याद थी। ज्येष्ठरुद्र, नन्दीश और विजयेश्वर नामकी तीन शिव मूर्तियां इन की आराध्य देवता थीं। म्लेच्छोंके साथ युद्ध करते समय ये उन्हें सागरतीर पर्यन्त भगा ले गये थे, वहां पर जिस स्थान पर इन्होंने विश्राम किया और पीछे अपने केश बाँधे थे, यह स्थान उज्जट्-डिम्ब नामसे प्रसिद्ध है। ये कान्यकुब्ज प्रदेश जीत कर वहांके चारों वर्णोंके कुछ अच्छे आदमियोंको काश्मीर ले गये थे। इन्होंने सामाजिक और राजनैतिक विषयमें काफी उन्नतिकी थी। इनकी पत्नी-का नाम ईशानदेवी था, ये भी अत्यन्त बुद्धिमान् थीं। महाराज जलोकको नन्दपुराण सुनना बहुत अच्छा लगता था। इन्होंने श्रीनगरमें ज्येष्ठरुद्रका एक मन्दिर बनवाया था। ऐसा कहा जाता है कि, एक दिन ये विजयेश्वरके मन्दिरको जा रहे थे, उस समय एक स्त्रीने आ कर उनसे खानेको मांगा। जलोकने उस स्त्रीसे पूछा—"आपको क्या खानेकी इच्छा है।" इस पर उस स्त्रीने विकृत आकार धारण कर उत्तर दिया—"महा-राज! मुझे नरमांस खानेकी इच्छा है।" जलोक इच्छा-नुसार दान देनेको प्रतिज्ञा तो कर ही चुके थे और दूसरे-का विनाश करना भी अन्याय समझते थे, इसलिए उन्होंने विचार कर उत्तर दिया—"आप मेरे शरीरमेंसे किसी भी स्थानसे जितना आवश्यक हो, उतना मांस निकाल कर भक्षण कर सकती हैं।" राजाके उत्तरसे सन्तुष्ट हो कर राक्षसीने कहा—"महाराज! आप द्वितीय बुद्ध हैं।" राजने कहा—बुद्ध कौन?" राक्षसीने उत्तर दिया—" लोकालोक पर्वतके उस पार जहां सूर्य-की किरण कभी प्रवेश नहीं करतीं, उस स्थानमें कृतीय नामकी एक जाति है। वे बुद्धकी उपासना करते हैं। क्रोध किसे कहते हैं, वे नहीं जानते। यदि कोई उनका अनिष्ट करे, तो भी वे उसका उपकार ही करते हैं। ये लोग पृथिवी पर सत्य और ज्ञानका प्रचार करनेके लिए व्यग्र रहते हैं। परन्तु आपने उनका महाअनिष्ट किया है। आपने दुष्टलोगोंकी सलाहसे उनका एक देवमन्दिर तुड़वा दिया है। अतः शीघ्र ही आप उसे बनवा दीजिये।"

राजाने इस बातको माना और शीघ्र ही उस मन्दिरको बनवा दिया। इसके उपरान्त इन्होंने नन्दीक्षेत्र-में भूतेश नामका एक शिव-मन्दिर बनवाया था इनका अन्तिम जीवन धर्म-कर्ममें व्यतीत हुआ था। इन्होंने कनकवाहिनीके किनारे चिरमोचक नामक स्थान पर पत्नीके साथ मानवलीला समाप्त की थी। (राजतरंगिणी)

कोई कोई पुराविद् कहते हैं कि, ग्रीकवीर सल्यूकस्का नाम ही संस्कृत जलौक रूपसे वर्णित हुआ है। (And. Ant. vol. 11. p 145)

जलौका (सं० स्त्री०) जलं ओकं आश्रयो यस्याः पृषोदरादित्वात् साधुः। जलौका, जोंक।

जलौकिका (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक।

जलोच्छ्वास (सं० पु०) जलानां उच्छ्वासः ६ तत्। १ जलकी स्फीति, पानीकी बाढ़। २ जलाशयोंमें उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमाको उलंघन करके बाहर गिरती हैं। ३ अधिक जल उपाय द्वारा वहिर्निष्कासन, वह प्रयत्न जो किसी स्थानसे अधिक जलको निकालनेके लिये किया जाय। ४ बांधके टूट जानेके भयसे अधिक जलका बाहर निकालना पुष्करिणी प्रभृतिमें जल प्रवेश करनेका उपाय।

जलोत्सर्ग (सं० पु०) पुराणानुसार ताल कुंआ या बावली आदिका विवाह।

जलोदर (सं० क्ली० जलप्रधानं उदरं यस्मात्। जठरामय, पेटका एक रोग। उदर देखो।

जलोदरारिरस—जलोदर रोगकी एक औषध इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रसगन्धक २ तोला, (अथवा गन्धक ४ तोला), मनःशिला, हलदी, जमालगोटा, त्रिफला, त्रिकटु, और चित्रकमूल प्रत्येकका १—१ तोला लेकर दन्तीरस, स्नुहीक्षीर और भृङ्गराजके रसमें ७ बार भावना द्वारा संशोधन कर २—२ रत्तीकी गोलियां बनानी चाहिए। इससे जलोदर रोग दूर होता है।

जलोद्धतगति (सं० स्त्री०) छन्दः विशेष, एक प्रकारकी वर्णवृत्ति। इसके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर होते हैं। २।४।८।१२ वर्ण गुरु और शेष लघु होते हैं। (त्रि०) जलेन उद्धतो गतिरस्य। २ जलद्वारा उद्धत गतियुक्त।

जलोद्भव (सं० त्रि०) जले उद्भवो यस्य। जलजात जन्तु। पानीमें पैदा होनेवाला जन्तु।

जलोद्भवा (सं० स्त्री०) १ गुण्डाला क्षुप, गुंदला। २ कालानुसारिवा, काली सतावर। ३ लघु ब्राह्मी, छोटी ब्राह्मी। ४ हिमालयस्थित स्थानविशेष, हिमालय पर्वत परके एक स्थानका नाम। (त्रि०) ५ जलजात, पानीमें उत्पन्न होनेवाला।

जलोद्भूता (सं० स्त्री०) जले उद्भूता गुण्डाला क्षुप, गुंदला नामकी घास।

जलोन्माद (सं० पु०) शिवानुचरभेद, महादेवके एक अनुचरका नाम।

जलोरगी (सं० पु०) जले उरगी सर्पिणीव। जलौका, जोंक।

जलोलुका (सं० स्त्री०) पद्मबीज, कमलगट्टा।

जलौक (सं० पु०) काश्मीरराज प्रतापादित्यके पुत्र। ये पिताकी मृत्युके उपरान्त राजगद्दी पर बैठे थे। इन्होंने ३२ वर्ष न्याय पूर्वक राज्य किया था। काश्मीर देखो।

जलौकस् (सं० स्त्री०) जले ओको वासस्थानं यस्य। १ जलौका, जोंक। (त्रि०) २ जलवासी, पानीमें रहनेवाला।

जलौकस (सं० पु०) जलमेव ओको वासस्थानं तदस्ति अस्य अर्श आदित्वादच्। जलौका, जोंक।

जलौका—जोंक देखो।

जलौकाविधि (सं० पु०) जोंक द्वारा रक्तमोक्षणकी विधि। जोंक देखो।

जलौदन (सं० क्ली०) सजल अन्न।

जलौन—जलौन देखो।

जल्द (अ० क्रि० वि०) १ शीघ्र, बिना विलम्ब, झटपट। २ शीघ्रतासे, तेजीसे।

जल्दबाज (फा० वि०) बहुत अधिक जल्दी करनेवाला, जो किसी काममें जरूरतसे ज्यादा जल्दी करता हो।

जल्दी (अ० स्त्री०) १ शीघ्रता, तेजी। (क्रि० वि०) २ जल्द।

जल्प (सं० पु०) जल्प-भावे घञ्। १ कथन, कहना। "इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः" (भाग० १०।३।१८, आर्ष-प्रयोगमें यह क्लीवलिङ्गमें व्यवहृत हुआ है।

"तूष्णीम्भव न ते जल्पमिदं कार्य्यं कथंचन।" (भारत १।११९ अ०)

२ षोड़श पदार्थवादी गौतमने सोलह पदार्थोंमें जल्पको भी एक पदार्थ माना है। उनके मतसे जल्प, विजिगीषु व्यक्तिका परमत निराकरण पूर्वक स्वमत प्रवस्थापक एक वाक्य है। वह वाक्य जिसके द्वारा विजिगीषु व्यक्ति, विवाद आदिके समय परमतका खण्डन कर अपने मतकी पुष्टि करते हैं। (गौतमसूत्र १।१।२) वाद देखो।

३ प्रलाप, व्यर्थकी बातचीत, बकवाद।

जल्पक (सं० त्रि०) जल्प स्वार्थे कन्। बकवादी, वाचाल, बातूनी।

जल्पन (सं० क्लो०) जल्प भावे ल्युट्। वाचालता, अनर्थक शब्द, बकवाद। २ डींग, बहुत बढ़ कर कही हुई बात।

जल्पना (हिं० क्रि०) व्यर्थकी बात करना, फिजूल बकवाद करना, डींग मारना।

जल्पाईगोड़ो जलपाईगुड़ी देखो।

जल्पाक (सं० त्रि०) जल्पति जल्प-याकन्। बहुकुत्सितभाषी, बहुतसी फिजूल बातें करनेवाला, बकवादी। इसके पर्याय—वाचाल, वाचाट़ और बहुगर्ह्य भाक्।

जल्पित (सं० त्रि०) जल्प-क्त। १ उक्त, कहा हुआ। २ मिथ्या, भूठ।

जल्पीश—कालिकापुराणमें वर्णित एक विख्यात शिवलिङ्ग। जल्पेश देखो।

जल्पेश—बङ्गाल प्रान्तके जलपाईगुड़ो जिलेका एक गांव। यह अक्षा० २६° ३१´ उ० और देशा० ८८° ५२´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २०८८ है। कोई ३ शताब्दी पूर्व कोच विहारके राजाओंने किसी प्राचीन मन्दिरकी जगह शिवमन्दिर निर्माण किया था यह जरदा (जटोदा) नदीके किनारे है। ईंट लाल लगी हैं। बड़े गुम्वटका बाहरी व्यासार्ध ३४ फुट है। शिवरात्रिको बड़ा मेला होता है। जलपाईगुडी देखो।

जल्ला (हिं० पु०) १ झील। २ हृद, होज। ३ ताल, तालाब।

जल्लाद (अ० पु०) घातक, बधुआ जिस दोषीको प्राणदण्डको आज्ञा होती है, वह जल्लादके हाथ मारा जाता है।

जल्ह (सं० पु०) दह बाहु' पृषोदरादित्वात् साधुः। अग्नि।

जव (सं० पु०) जु-अप्। १ वेग।

जव (हिं० पु०) यव, जौ।

जवन (सं० क्लो०) जु-भावे-ल्युट्। १ वेग। (त्रि०) जु कर्त्तरि ल्यु। २ वेगवान्, वेगयुक्त, तेजो। (पु०) ३ वेग युक्त-अश्व, तेज घोड़ा। ४ देशविशेष, अरब देश, पारस देश और यूनान देश। ५ उक्त देशोंका रहनेवाला। यवन देखो। ६ म्लेच्छ जातिविशेष, मुसलमानोंकी एक जाति। पहले ये यवनदेशोद्भव क्षत्रिय थे, बाद सगर राजाने इनके मस्तक मुण्डन कर इन्हें सब धर्मोंसे बहिष्कार कर दिया। (हरिवंश) ७ स्कन्दके सैनिकोंमेंसे एक सैनिकका नाम। (भा० ९।४५।६२) ८ शिकारी मृग। ९ घोटक, घोड़ा १० यवद्वीपके अधिवासी।

जवनाल—जुन्हरी देखो।

जवनिका (सं० स्त्री०) यवनिका देखो।

जवनिमन (सं० पु०) जव, वेग, तेजी।

जवनी (सं० स्त्री०) जूयते आच्छाद्यतेऽनया। जु करणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्। १ अपटी। अजवायन जवाइन। २ औषधिभेद, एक प्रकारकी दवा। ३ यवन स्त्री, मुसलमान औरत। (त्रि०) ३ वेगशीला, तेज।

जवर आमला—बङ्गालके अन्तर्गत बाखरगञ्ज जिलेका कचुआ नदीके किनारे पर अवस्थित एक ग्राम। यहांसे चावल और गुड़की रफ्तनी होती है।

जवस् (सं० पु०) जु-असुन्। वेग, तेजो।

जवस (सं० क्लो०) जुयते भक्षार्थं प्राप्यते बाहुलकात् जु कर्म्मणि अ च्। तृण, घास।

जवहरबाई—राणा संग्रामसिंहकी मृत्युके उपरान्त उनके पुत्र रत्न मेवाड़के सिंहासन पर बैठे। रत्नकी अकस्मात् मृत्यु हो गई। उनके भाई विक्रमजीतने १५८१ संवत्में चितोरके सिंहासन पर बैठ कर अपनी सेनाओंमें तोप चलानेकी प्रथा चलाई और वे पयादोंका खूब आदर करने लगे। इस नवीन घटनासे चित्तोरके सामन्त और सर्दारगण विक्रमजीतके प्रति अत्यन्त विरक्त हो गये। गुर्जरराज बहादुरके पूर्वपुरुष मजःफर चित्तोरके पृथ्वीराज द्वारा कैद किये गये थे। इसलिए बहादुरने

मेवाड़राज्यके इस अकर्विप्लवको देख कर अपना बदला लेनेके लिए कमर कस ली।

चित्तोर पर आक्रमण होने पर प्रधान प्रधान वीरोंने अद्भुत वीरत्वके साथ उनकी गतिको रोका। इनके वीर्यानलमें अनेक मुसलमान पतङ्गवत् दग्ध होने लगे। परन्तु इससे भी कुछ फल न हुआ। इसी समय राठोर-कुलमें उत्पन्न राजमहिषी जवहरबाई वर्म्म भी अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो कुछ सैनिकोंके साथ शत्रुसमुद्रमें कूद पड़ीं उसी मुहूर्त्तमें ही कई एक योद्धा जलबुदबुदकी तरह उस समरार्णवसे विलीन हो गये। राजमहिषी जवहरबाई भी स्वदेशकी रक्षाके लिए अपने जीवनको उत्सर्ग कर जगत्‌में अपना नाम अमर कर गई

जवहार- बम्बईके थाना जिलान्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० १९° ४०´ से २०° ४´ उ० और देशा० ७३° २´ से ७३° २१´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३१० वर्गमील है। इस राज्यमें दो असमान प्रदेश- खण्ड लगते हैं, बड़ा खण्ड थाना जिलेका उत्तर-पश्चिमी और छोटा दक्षिण-पश्चिमी भाग है। छोटे खण्डके पश्चिममें बम्बई, बरोदा और मध्य भारत रेलवे आकर मिली हैं।

इस राज्यमें कई एक अच्छी पक्की सड़कें हैं। इसके दक्षिण और पश्चिमका भाग समतल और अवशिष्ट असमतल है। यहांकी प्रधान नदियां देहरजी, सूर्य, विञ्जली और वाघ हैं।

१२९४ ई०में जब मुसलमानोंने दक्षिण प्रदेश पर आक्रमण किया था, उस समय जवहार वारलीके प्रधान के अधीन था न कि कोलोके जिस तरह डीडो राजा लीवरसे वृषचर्म परिमित भूमि मांग कर एक विस्तृत भू भागकी रानी हो गई थी, उसी तरह कोलेके प्रधान पौपेराने जो जयब नामसे प्रसिद्ध हो गये हैं जवाहारमें अपना अधिकार जमा लिया था। जयबके मरने पर उनका लड़का नीमशाह जिसे दिल्लीके सम्राट्‌से राजाकी उपाधि मिली थी जवहारके राजसिंहासन पर बैठा। १३४३ ई०की ५वीं जून जवहारके इतिहासमें बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि उस दिन इन्हें राजाकी उपाधि मिली थी और एक नवीन शाकका आरम्भ हुआ था। महाराष्ट्रोंने इस देश पर कई बार चढ़ाई की और इसका अधिकांश अधिकार कर लिया था।

यहांकी लोकसंख्या लगभग ४७५३८ है जिसमेंसे ४७००७ हिन्दू, और ४७१ मुसलमान हैं। यहांकी जमीन पथरीली है, इसलिये कोई अच्छी फसल नहीं लगती है। राज्यकी आमदनी एक लाख रुपयेसे अधिककी है। गवर्मेण्टको कर नहीं देना पड़ता है। राज्य भरमें दो स्कूल और एक चिकित्सालय है।

जवामर्द (फा० वि०) १ शूरवीर, बहादुर। २ वह सिपाही जो अपनी इच्छासे सेनामें भरती होता हो।

जवांमर्दी (फा० स्त्री०) वीरता, बहादुरी।

जवा (सं० स्त्री०) जवते रक्तवर्णत्वं गच्छति जु-अच ततः-टाप्। १ जवापुष्प, अड़हुल। Chinese rose इसका पर्याय—ओड्रपुष्प, जवा, ओड्रा, रक्तपुष्पी, अर्कपुष्पी, अर्कप्रिया, रागपुष्पी प्रतिका और हरिवल्लभा है। वैद्यक राजनिघण्टुके मतसे इसके गुण—कटु, उष्ण, इन्द्रलुप्तविनाशक, विच्छर्दि और जन्तुजनक तथा सूर्याराधनाके उपयुक्त है। राज वल्लभके मतसे यह मलमूत्रस्तम्भन तथा रञ्जन कारी है। वैद्यक चक्रपाणीका मत है कि जवापुष्प घृतमें भून कर खानेसे स्त्री ऋतुमती होती है।

जवा (हिं० पु०) १ लहसुनका एक दाना। २ एक तरह की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगते हैं और दर्जको चीर कर दोनो ओर तुरप देते हैं।

जवाई (हिं० स्त्री०) १ जानेकी क्रिया, गमन २ जानेका भाव। ३ वह धन जो जानेके लिए दिया जाय।

जवाइन (हिं० स्त्री०) अजवाइन।

जवाखार (हिं० पु०) जौके क्षारसे बनने वाला एक प्रकारका नमक। वैद्यकमें यह पाचक माना गया है।

जवाड़ी-मन्द्राज प्रान्तका एक पर्वत। यह अक्षा० १२° १८ तथा १२° ५४ उ० और देशा० ७८° ३५´ एवं ७९° ११´ पू० मध्य अवस्थित है। उत्तर अर्काटमें इसकी कुछ चोटियां ३००० फुट तक ऊंची हैं। तामिल भाषी मलयालियोंके झोंपड़े इधर उधर पड़े हैं। जलवायु बहुत बुरा नहीं है। दक्षिण-पश्चिम मन्द्राज रेलवे निकलते समय उसकी बहुत लकड़ी कटी। गांजाकी खेती होती है। हिन्दू मन्दिरोंका ध्वंसावशेष विद्यमान है।

जवादि (सं० क्लो०)सुगन्धि द्रव्य भेद, एक तरहकी खुश-बूदार चीज ।

"जवादि नीरसं स्निग्धमीषत् पिङ्गलसुगन्धिदं ।
आयते बहुलामोदं राज्ञां योग्यञ्च तन्मतम् ।"

यह एक प्रकारके मृगके पसीनेसे बनता है। इसके गुण-सुगन्ध, स्निग्ध, उष्ण, सुखावह, वातमें हितकर और राजाओंके लिए आल्हादजनक है। (राजनि०) इसके पर्याय ये हैं—गन्धराज, कृत्रिम, मृगधर्मज, गन्धाढ्य, स्निग्ध, मार्ज्जारिकर्द्दम, सुगन्धतैलनिर्यास और कटुमोद ।

जवाधिक (सं० त्रि०) १ अत्यन्त वेगयुक्त, बहुत तेज दौड़नेवाला । (पु०) १ अधिक वेगविशिष्ट घोटक, बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा ।

जवान (फा० वि०) १ युवा, तरुण । २ वीर बहादुर । (फा० पु०) ३ मनुष्य । ४ सिपाही । ५ वीर पुरुष ।

जवानसिंह—उदयपुरके महाराणा भीमसिंहके पुत्र । १८२८ ई० में इनका राज्याभिषेक हुए था। ये बड़े विलासी और आलसी थे। इनके समयमें भी गवर्मेण्टसे सन्धि-पत्र लिखा गया था। राज्यशासनमें इन्होंने तनिक भी योग न दिया था। इनकी फिजूल-खर्चीने इन्हें कर्ज़-दार बना दिया था।

जवानिल (सं० पु०) प्रचण्डवायु, तेज हवा ।

जवानी (सं० स्त्री) अजवाइन, जवाइन ।

जवानी (फा० स्त्री०) युवावस्था, तरुणाई ।

जवापुष्प (सं० पु०) जवा, अड़हुल । जवा देखो ।

जवाब (अ० पु०) १ प्रत्युत्तर, उत्तर । २ वह उत्तर जो कार्य रूपमें दिया गया हो, बदला । ३ जोड़, मुकाबले की चीज । ४ नौकरी छूटने की आज्ञा, मौकूफी ।

जवाब-तलब (फा० वि०) जिसके सम्बन्धमें समाधान कारक उत्तर मांगा गया है ।

जवाबदावा (अ० पु०) वह उत्तर जो प्रतिवादी वादीके निवेदनपत्रके उत्तरमें लिखकर अदालतमें देता है ।

जवाबदेह (फा० वि०) उत्तरदाता, जिससे किसी कार्य के बनने बिगड़ने पर पूछ ताछ की जाय, जिम्मेदार ।

जवाबदेही (फा० स्त्री०) १ उत्तर देनेकी क्रिया । २ उत्तरदायित्व, जिम्मेदारी ।

जवाब-सवाल (अ० पु०) १ प्रश्नोत्तर । २ वाद विवाद ।

जवाबी (फा० वि०) उत्तर सम्बन्धी, जिसका जवाब देना हो, जवाबका । जैसे जवाबी कार्ड ।

जवार (अ० पु०) १ पड़ोस । २ आस पासका प्रदेश । ३ अवनति, बुरे दिन । ४ झंझट ।

जवार (हिं० स्त्री०) जुआर ।

जवारा (हिं० पु०) विजयादशमीके दिन यह पवित्र माना गया है। स्त्रियां इसे अपने भाईके कानों पर खोंसती हैं और श्रावणीमें ब्राह्मण अपने यजमानोंको देते हैं।

जवारी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकार की माला । यह जौ, छुहारे, मोती आदि मिला कर गूँथी जाती है। २ तारवाले बाजोंमें षड्जका तार । ३ सारङ्गी, तम्बूरा आदि तारवाले बाजोंमें लकड़ी वा हड्डी आदिका वह छोटा टुकड़ा जो नीचेकी ओर विना जुड़ा हुआ रहता है तथा जिसके ऊपरसे सब तार खूटियोंकी ओर जाते हैं।

जवाल (अ० पु०) १ अवनति, उतार, घटाव । २ आफत, झंझट, बखेड़ा ।

जवाशीर (फा० पु०) एक प्रकारका गन्धविरोजा । यह कुछ पीला रंग लिए बहुत पतला होता है। इसमेंसे ताड़पीन की गंध आती है। यह सिर्फ औषधके काममें आता है।

जवास, जवासा (हिं० पु० एक कांटेदार क्षुप । पर्याय—यवासक, अनन्ता, कण्टकी । यवास देखो ।

जवासिया—मध्यभारतके अन्तर्गत मालवा प्रान्तकी एक ठाकुरात ।

जवाह (हिं० पु०) आँखका एक रोग, प्रवाल, परबल । इसमें पलकके भीतरकी ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। २ बैलोंको आंखका एक रोग । इसमें पलकके नीचे मांस जम जाता है।

जवाहड़ (हिं० स्त्री०) बहुत छोटी हड़ ।

जवाहर (अ० पु०) रत्न, मणि ।

जवाहरखाना (अ० पु०) बहुतसे रत्न और आभूषण रहनेका स्थान, रत्नकोष, तोशाखाना ।

जवाहरात—हीरा, पन्ना, मणि, मुक्तादि रत्न ।

जवाहिर (अ० पु०) रत्न, मणि ।

जवाहिरकवि—१ हिन्दीके एक कवि । ये हरदोई जिलेके

बिलग्रामके रहनेवाले और बन्दीजन थे। १७८८ ई०में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने जवाहिर-रत्नाकर नामक एक ग्रन्थ बनाया था।

२ वैद्यविद्या नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता। ये पन्नाके रहनेवाले और कायस्थ थे। १८४३ ई० में विद्यमान थे।

जवाहिरलाल—एक जैन-हिन्दी-ग्रन्थकार। इन्होंने सिद्धचेत्र-पूजा, सम्मेदशिखरमाहात्मा पूजाविधान, त्रैलोक्यसार पूजा और तीस-चौबीसी पूजा इन ग्रन्थोंकी रचना की है।

जवाहिरसिंह—जाट वंशके एक राजा। इनके पिताका नाम सूरजमल जाट था। १७६३ ई०के दिसम्बर मासमें सूरजमलकी मृत्युके बाद जवाहिरसिंह भरतपुर और दीगके सिंहासन पर बैठे। १७६८ ई०में जवाहिरसिंहकी गुप्तहत्याके बाद राव रतनसिंह राजगद्दी पर बैठे थे। बहुतोंको सन्देह हुआ कि, इन्हीं रतनसिंहने अपने भाईको मारनेके लिए षड्यन्त्र रचा था।

२ एक सिख-सर्दार। हीरासिंहकी मृत्युके बाद ये महाराज दिलीपसिंहके मन्त्री नियुक्त हुए थे। १८४५ ई०के २१ सेप्टेम्बरको ये लाहोरमें सेनाओंके हाथ मारे गये और इनके पद पर राजा लालसिंह नियुक्त हुए।

३ जौहर नामसे परिचित एक हिन्दू। ये मीरापुरके मुल्ला नातिकके शिष्य थे। इन्होंने फारसी और उर्दू भाषामें कई एक दीवान (गजलोंके संग्रह या काव्य) बनाये थे। १८५१ ई०में भी ये जीवित थे।

जवाहिरसिंह-१ वैद्यप्रिया नामक हिन्दी ग्रन्थके प्रणेता। ये पन्नानरेश अमानसिंहके दीवान थे। २ हिंदीके एक कवि। इन्होंने १८८६ संवत्में बाल्मीकीय रामायणका छन्दोबद्ध अनुवाद किया था और मङ्गलपचासा नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ रचा था।

जवाहिरसिंह महाराज—काश्मीरके एक शासनकर्त्ता। ये ध्यानसिंहके पुत्र और महाराज गुलाबसिंहके भतीजे थे।

जवाहिरात (अ० पु०) जवाहरात देखो।

जवाही (हिं० वि०) १ जिसकी आंखमें जवाह रोग हुआ हो। २ जवाहरोगयुक्त आंख।

जवाह्वा (सं० स्त्री०) अजवायन।

जविन (सं० पु०) कोकड़मृग।

जविन् (सं० त्रि०) जव अस्त्यर्थे इनि। १ वेगयुक्त, तेज। (पु०) जव बाहुलकात् इनन्। १ कोकड़, हिरन। २ उष्ट्र, ऊँट। ३ घोटक, घोड़ा।

जविलाराम नागर—एक हिन्दू शासनकर्त्ता, इलाहाबादमें इनकी राजधानी थी। १७२० ई० (११३२ हिजरा)में महम्मदशाहके शासनके प्रारम्भमें जविलाराम नागरकी मृत्यु हुई थी। इनके मरनेके उपरान्त इनके भतीजे गिरिधर अयोध्याके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। १७२४ ई० (११३६ हिजरा)में ये मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त किये गये और बुर्हान् उल्मुल्क सादतखाँ अयोध्याके सूबेदार हुए। १७२८ ई० (११४२ हि०)में महाराष्ट्र राजा साहूके सेनापति बाजीरावके मालव पर आक्रमण करने पर राजा गिरिधरकी मृत्यु हो गई और उनके ज्ञातिके राय बहादुर उनके पद पर नियुक्त हुए। रायबहादुरने शत्रुओंके साथ प्रबल पराक्रमसे युद्ध किया; किन्तु १७३० ई० (११४३ हि०) में वे भी मारे गये।

जविष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन जववान् जव इष्ठ। अत्यन्त वेगशाली, बहुत तेज दौड़नेवाला। (ऋक् ४।२।३)

जवीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन जववान् जव ईयसुन् वतोर्लुक्। अत्यन्त वेग युक्त, बहुत तेज।

जव्वरखाद—जब्बरखाद देखो।

जवरिया भील—जबरिया भील देखो।

जवैया (हिं० वि०) जानेवाला, गमनशील।

जशन (फा० पु०) १ धार्मिक उत्सव। २ उत्सव, जलसा। ३ आनन्द, हर्ष। ४ वह नाच वा गाना जिसमें कई वेश्याएं एक साथ सम्मिलित हों। अकसर कर यह नाच वा गाना महफिलकी समाप्ति पर होता है।

जशपुर—मध्यभारतका एक करद राज्य। यह अक्षा० २२° १७´ एवं २३° १५´ उ० और देशा० ८३° ३०´ तथा ८४° २४´ पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल १९४८ है। १८०५ ई० तक यह छोटा नागपुरमें सम्मिलित रहा। इसके उत्तर तथा पश्चिम सरगुजा राज्य, पूर्व रांची जिला और दक्षिणको गाङ्गपुर, उदयपुर एवं रायगढ़ है। जशपुरमें जितनी ही ऊंची, उतनी ही नीची जमीन भी है।

नदोसे सोना निकलता है। उसी जैसा जो लोहा मिलता है उसको गला करके बाहर भेज दिया जाता है। जङ्गली पैदावारमें लाह, टसर, और मोमको रफ्तनी होती है।

१८१६ ई०को माधव रावजो भोंसलाने यह राज्य अंगरेजोंको दे डाला था। १२५०) रु० सरगुजाको कर देना पड़ता है। लोकसंख्या १३२११४ है। ५६६ गांव बसे हैं। कुल वर्ष हुए कोरवाओंने विद्रोह करके बड़ा उत्पात मचाया। छत्तीसगढ़ कमिश्नरके अधीन यह राज्य है। वार्षिक आय १२६०००) रु० होता है। ११६ मील सड़क है। मालगुजारो ६००००) रु० आती है।

जयपुर नगर (जगदीशपुर) मद्रास प्रान्तके जयपुर राज्यको राजधानी। यह अक्षा० २२° ५२' उ० और देशा० ८४° ८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १६५४ है। यहां औषधालय, जेल और राजप्रासाद बना है।

जसकरण मंत्री—मल्लिनाथपुराण-छन्दोबद्ध नामक जैन-ग्रन्थके रचयिता।

जसद (सं० पु०) जस्ता नामको धातु। जस्ता देखो।

जसदान—बम्बई प्रान्तको काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका राज्य। यह अक्षा० २१° ५६' एवं २२° १७' उ० और देशा० ७१° ८' तथा ७१° ३१' पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २८३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २५७२७ है। क्षत्रिय वंशीय स्वामी यशनके नामानुसार इसका नाम रखा हुआ है। जूनागढ़के गोरी राजत्वकालको यहां एक सुदृढ़ दुर्ग बना। उस समय इसका नाम गोरीगढ़ था। फिर यह खेरडी खुमानोंके हाथ लगा और १६६५ ई० के समय विका खाचरने जम खुमानसे जीत लिया। विजयकर खाचरके समबभाज नागरने उसे अधिकार किया था। अन्तको जसदान नवानगरके जामने जीता और जामजसजोके विवाहोपलक्षमें विजयसूर खाचरको सौंपा। १८०७-८ ई० को विजयसूरने अंगरेजों और ग्वालियरके मराठोंसे सन्धि की। उन्हींके वंशधर आजकल राजा हैं। वंश परम्परागत उत्तराधिकारसे राजा होते हैं।

जसदान—काठियावाड़ प्रान्तके जसदान राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ५' उ० और देशा० ७१° २०' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ४६२८ होगी। यह नगर अतिप्राचीन है। एक सुदृढ़ दुर्ग खड़ा है। विनचियाको अच्छीसी सड़क लगी हुई है। कृषिके लाभार्थ एक कृषिसम्बन्धीय यन्त्र खुला है।

जसपुर—युक्त प्रदेशके नैनीताल जिलेकी काशीपुर तहसीलका नगर। यह अक्षा० २९° १७' उ० और देशा० ७८° ५०' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ६४८० होगी। १८५६ ई०को २०वीं धारासे इसका प्रबन्ध किया जाता है। सूती कपड़ा बहुत तैयार होता है। शक्कर और लकड़ीका भी थोड़ा कारबार है।

जसवन्तनगर—युक्तप्रदेशके इटावा जिला और तहसीलका नगर। यह अक्षा० २६° ५२' उ० और देशा० ७८° ५२' पू०में इष्टइण्डियन रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ५४०५ होगी। मैनपुरीके कायस्थ जसवन्त रायके नाम पर ही उसको यह आख्या दी गयी है। १८५७ ई० १८ मईको बागियोंने नगरका पश्चिमस्थ मन्दिर अधिकार किया था। घी और खाक वा कपड़ेको रफ्तनी होती है। पीतलको नक्काशीका भी माल बुनता है। सूत, पशु, देश जात द्रव्य और विलाती कपड़ेका भी बड़ा कारबार है।

जसवन्तसागर—बम्बई प्रान्तको बीजापुर पोलिटिकल एजेन्सीका देशी राज्य।

जसानि काठी—मालवप्रदेशकी एक जाति। कहा जाता है कि, रामकच्छके पञ्चम पुत्र जसके वंशधर होनेके कारण ये जसनिकाठी नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। प्रवाद है कि, कुन्तीके पुत्र कर्ण, और कौरवोंको सहायतार्थ गोहरणपटु कच्छजातीय काठियोंको लाये थे। कौरवों की पराजयके बाद वे मालव प्रदेशमें रहने लगे थे।

जसावर—मथुराके पास भरिन्नको रहनेवाली एक राजपूत जाति। इनकी संख्या बहुत कम हो है।

जसुरि (सं० पु०) जस्यते मुच्यते हन्यते अनेन जस-उरिन् असि बहोरुरिन्। उण् २।७३। १ वज्र। २ व्यथित। (त्रि०) ३ उपचययुक्त, नुकसान किया हुआ, बिगड़ा हुआ।

जसुस्वामी (सं० पु०) एक भक्त वैष्णव। ये अन्तर्वेदी (वर्तमान—दोआब) में रहते थे। ये अत्यन्त दरिद्र

होने पर भी साधुसेवाके लिए स्वयं कृषिकार्य करते थे। इनके दो बैल और एक हल था, उन्हींसे खेती-बारी करते थे। एक दिन एक चोर उनके बैलोंको चुरा ले गया। भगवान्‌ने भक्तके बैलोंकी चोरी होते देख उनकी जगह हूबहू वैसे ही दो बैल बना कर रख दिये। जसुको यह बात मालूम भी न पड़ी। भगवान्‌की कृपासे इनका अभाव दूर हुआ। किन्तु उस तस्करको खेतमें और अपने घर हूबहू एकसे बैलोंको देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। चोरने इन्हें असाधारण शक्तिमान् जान उनके पास आकर अपने दोषको मंजूर करते हुए क्षमा मांगी। धर्मात्मा जसुस्वामीने क्षमा प्रदान कर उसे अपना शिष्य बना लिया और सर्वदा वे उसको धर्मोपदेश देने लगे। पीछे वही चोर उनके प्रसादसे एक परम साधु बन गया। (भक्तमाल)

जसोर (यशोहर) बङ्गालका एक जिला। यह अक्षा० २२° ४७ एवं २३° ४७´ उ० और देशा० ८८° ४०´ तथा ८९° ५०´ पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २९२५ वर्गमील है। इसके उत्तर एवं पश्चिम नदीया जिला, दक्षिण खुलना और पूर्वको मधुमती तथा बारासिया नदी है। नदी नाले बहुत बहते हैं। जङ्गल कहीं भी नहीं है। जङ्गली कुत्ते दीख पड़ते हैं।

पहले यह प्राचीन वङ्ग राज्यका अञ्चल था। कहते हैं ४थी शताब्दी पूर्व खांजा अली वहां पहुंचे। दूसरोंका कहना है कि बङ्गाल नवाब दाऊद खांके एक प्रधान विक्रमादित्यने उसे जागीरमें पाया और एक नगर पत्तन करके अपना निवासस्थान बनाया। फिर तीन जमीन्दारियोंमें बंट गया। जसोरके अधिपति चांचड़ा राजा कहलाते थे। यह अपनेको सेनापति भवेश्वर रायका वंशधर बतलाते हैं। १८२३ ई० गवर्नमेण्टने जब्त किया साहोस परगना राजको लौटा दिया और राजाको बलवेमें साहाय्य करनेके उपलक्ष राजा बहादुर उपाधिसे विभूषित किया। १७८१ ई०को पूरा अंग्रेजी इन्तिजाम हुआ।

जसोरकी लोकसंख्या प्राय. १८१३१५५ है। पीनेका अच्छा पानी नहीं मिलता। ज्वर, विसूचिका आदि रोगोंका प्राबल्य है। पूर्वको भूमि उर्वरा है। लोग बङ्गला बोलते हैं। शक्करके लिए खजूरके बाग लगाये जाते हैं। पशु अच्छे नहीं होते। मोटा सूती कपड़ा दसूती करघासे तैयार किया जाता है। चटाइयां और टोकरियां भी बहुत बनती हैं। कलई और खानिका चूना शङ्खसे प्रस्तुत करते हैं। सोने चांदीके गहनों और पीतलके बर्तनोंका खूब काम है। धान, दाल, पाट, अलसी, इमली, नारियल, गुड़, खली, चमड़े, मट्टीके घड़े, गाड़ीके पहिये, बांस, हड्डी, सुपारी, लकड़ी और घीकी रफ्तनी होती है। ईष्टर्न बङ्गाल ष्टेट रेलवे लगी है। ५८१ मील सड़क है। उतारेके ४५ घाट चलते हैं। ५ सबडिविजन हैं। किसी समय डाकेके लिए यह जिला मशहूर था। मालगुजारी कोई ८ लाख ५४ हजार है।

जसोर—बङ्गालके जसोर जिलेका सदर सबडिविजन। यह अक्षा० २२° ४७´ तथा २३° २८´ उ० और देशा० ८८° ५८´ एवं ८९° २६´ पू० मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल ८८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५६१२४२ है। इसमें १ नगर और १४८८ गांव आबाद हैं।

जसोर—बङ्गाल प्रान्तके जसोर जिलेका सदर। यह अक्षा० २३° १०´ उ० और देशा० ८९° १३´ पू०में ईष्टर्न बङ्गाल ष्टेट रेलवे पर भैरव नदीके किनारे बसा है। लोकसंख्या प्रायः ८०५४ है। १८६४ ई० मुनिसपालिटी हुई। यहां ३ छापाखाना हैं और कई अखबार निकलते हैं। शहरमें कलका पानी पहुंचाया जाता है।

जसोल—राजपूतानाके जोधपुर राज्यमें मल्लानी जिलेके जसोल क्षुद्रराज्यका सदर। यह अक्षा० २५° ४६´ उ० और देशा० ७२° १३´ पू०में लूनी नदीके दक्षिण तट पर जोधपुर-बीकानेर रेलवेके बालोतरा ष्टेशनसे २ मील दूर पड़ता है। लोकसंख्या २५४३ है। इसमें ७२ गांव हैं। ठाकुर साहब जोधपुर दरबारको २१००) रु० कर देते हैं। इससे ५ मील उत्तर-पश्चिम मल्लानीको राजधानी खेड़ और दक्षिणको सुप्रसिद्ध नगर नामक स्थानका ध्वंसाव शेष है। यहां अति प्राचीन राठौर निवासियोंके वंशधर वर्तमान हैं।

जस् (सं० स्त्री०) क्लान्ति, थकावट।

जस्त (हिं० पु०) जस्ता देखो।

जस्तई (हिं० वि०) जस्तेके रंगका, खाकी।

जस्ता (हिं० पु०) मूल अष्ट धातुओंमेंसे एक धातु। इसका रंग कालापन लिए सफेद होता है। खानिमें निखालिस जस्ता नहीं निकलता। इसके साथ गन्धक, अक्सिजन आदि मिश्रित रहते हैं। भिन्न भिन्न देशोंमें इसके भिन्न भिन्न नाम हैं, जैसे—

देश	नाम
इंग्लैण्ड और फ्रान्स	जिङ्क (Zinc)
जर्मनी	जिङ्क (Zinc)
हलण्ड	स्पेल्टर
इटली और स्पेन	चिङ्क, जिङ्की
रूसिया	श्पाटेर (Schpater)
नेपाल	दस्त
फारस	कलखुबरी (Oxide of Zinc)
तामिल	मदल तुतम, तातानगम्, बुल्ले तुतम्
तेलगू	तुतम
मलय	तम्बग पुटी
ब्रह्म	थौट
दाक्षिणात्य	सङ्क् बुम्री, सफेद तूंत
[illegible]—बम्बई [illegible]	[illegible] (Sulphate Zinc)
पञ्जाब	[illegible] एवं सफेदमिश्री जस्त, जसद, [illegible]
बङ्गाल	दस्ता Impure Calamina)

संस्कृतमें इसको यशद और हिन्दी जस्ता वा जस्त कहते हैं। खानसे गन्धकयुक्त जो जस्ता निकलता है, वह अंग्रेजीमें Sulphide of Zinc अथवा Zinc blende नामसे परिचित है एवं जो अक्सिजन-मिश्रित निकलता है वह Zincite नामसे प्रसिद्ध है।

भारतवर्षके मद्राज, बङ्गाल, राजपूताना, हिमालय, पञ्जाब आदि प्रदेशों और अफगानिस्तान आदि देशोंमें जस्ता निकलता है।

हजारीबाग जिलेके महाबांक और बड़गुण्डको खानसे, तथा संथाल परगनेमें बेलको नामक स्थानमें जो गन्धक मिश्रित जस्ता (blende) निकलता है, उसमें भी सीसा और तांबा मिला रहता है।

राजपूतानामें उदयपुर राज्यके जवार नामक स्थानसे पहले जस्ता निकालता था। टाड साहबके राजस्थानके पढ़नेसे मालूम होता है कि, किसी समय उक्त स्थानकी खानसे २२००० रुपये राजाके वसूल होते थे। परन्तु 'राजपूताना-गजटियर' में यह बात नहीं लिखी है।

कप्तान बुक साहबका कहना है कि, खानमें ३-४ इञ्च मोटो धातु-शिराएं होती हैं। देशीय लोग उन्हें इकट्ठी करते हैं और चूरा करके आग पर रख कर जस्ता बनाते हैं। ८-८ इञ्च ऊंची घड़िया (मुषा) में उक्त चूराको रख कर उसका मुंह बंद कर देते हैं। २-३ घण्टेमें वह गल जाता है। १८१२-१३ ई०में दुर्भिक्षके समय इन खानोंका काम बंद हो गया था।

हिमालय और पञ्जाबके शिगरी नामक स्थानमें काफी जस्ता निकलता है। एण्टिमनि (अञ्जन)-की खानके पास ही जस्ता रहता है। गढ़वालके अन्तर्गत बैलाकी ताम्र-खनि और सिमलाके अन्तर्गत सवाथुको सीमाकी खानसे तथा काश्मीरमें भी जस्ता उत्पन्न होता है। जौनसार प्रदेशमें गन्धक मिश्रित जस्ताकी खान है।

अफगानिस्तानमें घोरबंद उपत्यकाके उत्तर प्रदेशमें इसकी काफी खानें हैं। स्थानीय लोग इसको जाक (Sulphate of zinc) कहते हैं। यह किसीमें व्यवहृत होता है या नहीं, इस बातका अभी तक पता नहीं लगा।

ब्रह्मदेशके अधीन टामर और मारगुइ द्वीपमें जस्ता पाया जाता है, परन्तु यह नहीं मालूम हुआ कि उत्तर-ब्रह्ममें मिलता है या नहीं।

सुश्रुतमें औषधके लिए जस्ताका व्यवहार नहीं दीख पड़ता। भावप्रकाशमें रङ्ग-शोधन-प्रणालीकी भांति जस्ता वा खर्पर-शोधन-प्रणालीका भी कथन है। मूत्र सम्बन्धी वा मूत्र यान्त्रिक पीड़ामें तथा श्वासपीड़ामें भावप्रकाशमें जस्ताका व्यवहार बतलाया है। युक्तप्रान्तमें हिन्दू हकीम लोग पुरातन ज्वर, गौण उपदंश, पुरातन मेह, प्रदर आदि रोगोंमें जस्ता काममें लाते हैं। मुसलमान हकीम घाव और दग्धके क्षतमें तथा दर्द और सूजनमें यूरोपीय डाक्टरोंकी तरह जस्ताका व्यवहार करते हैं। तामिलके वैद्यगण मिट्टीकी घड़ियामें मनसा-वृक्षकी जातिके एक वृक्ष (Euphorbia nerrifolia) के पत्तेके साथ जस्ताको गलाते हैं। दोनोंके गल जानेसे उसमें आग लग जाती है। उसकी भस्मको दो तीन बार अग्निमें शोधन करके मेह, शुक्रक्षय और अर्श रोगमें

उसका व्यवहार करते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है—

"यशदं रंग सदृशं मिति हेतुश्च तन्मतम्।
यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्।
चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डु श्वासं च नाशयेत्॥"

जस्ताकी आकृति और शोधनमारण आदि सब रांगके समान हैं। जारित जस्ताके गुण—कषाय, तिक्तरस, शीतवीर्य, चक्षुके लिए हितकर एवं कफ, पित्त, प्रमेह, पाण्डु और श्वासरोगनाशक।

डा० वाट अपने Dictionary of Economic products of India नामकी पुस्तकमें खर्परका अर्थ जस्ता Impure calamine लिखा है और यह भी लिखा है कि, भावप्रकाशमें उसका उल्लेख है। परन्तु भावप्रकाशमें 'खर्पर' धातुको उपधातु माना है खर्पर देखो। कविराज गिरीश्वर गुप्तके द्रव्यार्थचन्द्रिका नामक आयुर्वेदीय अभिधानमें इसको अंग्रेजीमें a collyrium extracted from the Amomum Anthorbiza कहा है। बङ्गालके वैद्यगण सत् नामक धातुको खर्पर कहते हैं। इस सत् धातुसे वहांकी मुसलमान औरतें 'खाड़ू' नामका गहना बनाती हैं। कसेरे लोग इसे सत् जस्ता कहते हैं और जस्ता धातुसे ही उत्पन्न बतलाते हैं। उनके मतसे जस्ता दो प्रकारका है, एक रूपजस्ता जो साफ और विशुद्ध होता है और दूसरा सत्‌जस्ता जो धात्वन्तरके संयोगसे बनता है। आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार यशद धातु विशुद्ध जस्ता है और खर्पर तन्मिश्रित कोई अन्य धातु है। खर्पर गन्धकके साथ मिश्रित होने पर 'खर्परीतुत्थ' होता है, जिसका दूसरा नाम है 'रसक'। इस 'रसक' वा 'खर्परीतुत्थ' को अंग्रेजीमें Sulphate of Zinc और हिन्दीबोलचालकी भाषामें खपरिया कहते हैं। काश्मीरके सौदागर लोग यहां खपरिया बेचा करते हैं, जो देखनेमें पिण्डवत्, सरसोंकी खलीकी भांति धूसरवर्ण और कठिन होता है और तोड़नेसे चूरा हो जाता है। रसक देखो। रसकका चूरा किया जा सकता है, पर खर्परका चूर्ण नहीं होता। "खर्पं पत्तलीकृत्वा" अर्थात् "खर्परकी पत्ती बना कर"—इससे खर्परको सत्‌जस्ता कहनेमें आपत्ति नहीं। जो धातु आघातसह अर्थात् पीटने पर जिसकी पत्ती बन जाय, वही मृदु और मूल धातु है। भावप्रकाशके मतसे—

"स्वर्णं रूप्यंच ताम्रं च रंगं यशदमेव च।
सीसं लौहंच सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः।"

स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, रंग, यशद (जस्ता) सीसा और लोहा, ये सात गिरिसम्भव मूलधातु हैं। इनके सिवा जो चोट न सह सकती हो पीटनेसे जिसका चूरा हो जाता हो, वे सब कठिन और उपधातु हैं।

जस्ता अंग्रेजी धातुशास्त्रानुसार भी मूलधातु है। यह देखनेमें नीलाभ श्वेतवर्ण है। इसका बहिर्भाग चांदीके समान उजला है। यह कठिन होता है, तोड़नेसे इसमें स्तरवत् संस्थान दीख पड़ते हैं। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ६.८ गुना है। सामान्य उत्तापसे यह टूट जाता है, पर २१२° डिग्री गरमीसे यह नरम हो कर घात सहने लायक हो जाता है और उससे तार वा पत्ती बन सकती है। परन्तु ४००° डिग्री उत्तापसे यह फिर भङ्गप्रवण हो जाता है, ७७३° डि० उत्तापसे गल कर तरल हो जाता है और ज्यादा उत्तापसे यह उद्वायु भी हो जाता है। जस्ता उद्वायु हो कर जो वाष्पराशिमें परिणत होता है, उसमें वायु लगनेसे वह जलता रहता; आलोक उज्ज्वल होता है और वह जलकर Oxide of zinc नामक मिश्रधातु उत्पन्न करता है। जस्ता यदि खुला पड़ा रहे, तो वायु लगनेसे उसकी उज्ज्वलता नष्ट हो जाती है और रंग सीसा जैसा हो जाता है। लोहा, पीतल वा तांबे पर जंग लगनेसे धातुकी हानि होती है, किन्तु जस्ता की कुछ भी हानि नहीं होती।

बाजारमें जो जस्ता बिकता है, उसमें सीसा, लोहा, अङ्गार, शृङ्गीविष और तांबा मिश्रित रहता है। जस्तासे अक्सिजनके संयोगसे पश्चम की तरह Protoxide of Zinc वा फूल-जस्ता (Flowers of Zinc), क्षार धातुके योगसे (देखनेमें कछुएकी पीठकी भांति) Hydrated Oxide of Zinc, Sulphate of Zinc (श्वेतधातु) Carbonate of Zinc, Chloride of Zinc (Butter of Zinc वा मक्खनसा जस्ता), गन्धकके संयोगसे Sulphate of Zinc blend तांबेके संयोगसे Brass वा पीतल जमनसिलवर (German silver) आदि बनते हैं।

इस धातुसे लोहेकी चद्दरों पर कलईकी जाती है,

जो छत बनानेके काममें आती हैं। पानीके नल और टेलिग्राफके तार आदि पर भी इस होकी कलई चढ़ती है। इसको गला कर नाना प्रकारके बरतन, जरूरी चीजें, मूर्ति पुतली आदि भी बनाई जाती हैं। इससे एक तरहका तैलाक्त सफेद रंग भी बनता है जो लोहे आदिकी चीजों पर चढ़ाया जाता है। इस देशमें मुसलमानोंके व्यवहारार्थ कम कोमतके बरतन भी इसीसे बनते हैं, जैसे रकाबी, गिलास, हुक्का आदि। स्पेलटर वा जस्ता की बड़ी बड़ी चद्दरोंसे पनालेके नल आदि भी बनते हैं। टीन की जगह भी ज्यादा टिकाऊ बनानेके लिए जस्ता व्यवहृत होता है। जहाजोंके नीचे जस्ताकी चद्दर लगाई जाती है। सांचेमें ढाल कर भी इससे नाना प्रकार की चीजें बनाई जाती हैं। अमेरिकाके युक्तराज्यमें सबसे अधिक जस्ता उत्पन्न होता है।

यूरोपमें १८वीं शताब्दीसे पहले जस्ता उत्पन्न नहीं होता था। स्ट्राबोके ग्रन्थमें False silver नामकी एक धातुका उल्लेख है। १८वीं शताब्दी तक पुर्त्तगीज लोग भारतवर्ष और चीनसे स्प्लेटर और तुतनाग नामक जस्ता ले जाकर यूरोपमें बेचते थे। उस समय पीतल बनानेके सिवा और किसी कार्यमें इसका व्यवहार न होता था। और न इस बातको कोई जानते ही थे कि जस्ता एक स्वतन्त्र धातु है। १८०५ ई०में सिलभिष्टर नामक एक व्यक्तिने पहले पहल जस्ताका पैटेण्ट प्राप्त किया। अमेरिकाके अन्तर्गत निउजारसी नामक स्थान की Red Zinc वा लाल-जस्तकी खान ही जगत्प्रसिद्ध थी।

जस्ताकी सहायतासे Zincograph नामक एक प्रकारकी चित्रप्रस्तुत-प्रणाली उद्भावित हुई है, जिससे कागज पर फोटोग्राफकी तरह तसवीर बन जाती है। लिथोग्राफमें जैसे पत्थर पर तसवीर बनाई जाती है, वैसे ही इसमें जिङ्कप्लेट पर तसवीर खींची जाती है। Zinc Ethyl नामक एक प्रकार की तरल धातु भी इसीसे उत्पन्न होती है। यह हवाके लगते ही जलने लगती है। और उसमेंसे बहुत कड़ी गन्ध निकला करती है। फाङ्कलैण्ड नामके किसी व्यक्तिने इसे पहले पहल बनाया था।

डाक्टर लोग जस्तासे नाना प्रकार तरल, चूर्ण और घृतवत् पदार्थ बना कर तरह तरहके रोगोंमें उनका व्यवहार करते हैं। प्रायः सब ही देशोंके चिकित्सा-शास्त्रोंमें जस्ता की रोगोपशमता शक्तिका उल्लेख पाया जाता है।

जस्वन् (सं० त्रि०) जस-वनिप्। उपक्षयकर्त्ता, बिगाड़ने या नाश करने वाला।

जस्सो—मध्यभारत एजेन्सीके बघेलखण्ड पोलिटिकल चार्जकी एक सनदयाफ्ता रियासत। यह अक्षा० २४° २०′ एवं २४° २८′ उ० और देशा० ८०° २८′ तथा ८०° ४०′ पू० मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ७२ वर्गमील है। इसके उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण नागोड़ राज्य और पश्चिम अजयगढ़ राज्य है। लोकसंख्या कोई ७२०८ है। जागीरदार बुंदेला राजपूत हैं। १८ वीं शताब्दीके आदि भागमें यह राज्य बांदाके अली बहादुरने अधिकार किया था। अंगरेजी अधिकार होने पर १८१६ ई० को मूर्त्तिसिंहको अलग सनद दी गयी। इसमें ६० गांव बसे हैं। कुल आमदनी २३००० रु० है।

राजधानी जस्सो अक्षा० २४° ३०′ उ० और देशा० ८०° ३० पू०में एक उम्दा झील किनारे विद्यमान है। कहते हैं, यह नाम यशोश्वरी नगर शब्दका संक्षिप्त रूप है। विभिन्न समयमें इसको महेन्द्री नगर, अधरपुरी और हरदौनगर कहा जाता रहा है। नगरमें एक छोटा मन्दिर, आश्चर्यमय लिङ्ग और कई एक सतीचौरा हैं। इसके चतुःपार्श्वमें जैन तथा हिन्दू कीर्तियोंका ध्वंसावशेष पड़ा है।

जह (हिं० क्रि० वि०) जहां देखो।

जहक (सं० पु०) जहाति-परित्यजति हा क हा-कन् द्वित्व। १ काल, समय। (त्रि०) २ त्यागकारक, छोड़नेवाला। ३ निर्मोह, जिसके मनमें मोह या ममता न हो। (स्त्री०) टाप्। ४ गात्रसङ्कोचनी, वह जो शरीरको सिकुड़ाती है।

जहतिया (हिं पु०) वह जो भूमिका कर वसूल करता हो, जगात (चंगो) उगानेवाला।

जहत्स्वार्था (सं० स्त्री०) जहत्स्वार्थोंयां। लक्षणाभेद, एक

प्रकारकी लक्षणा। इसमें पद वा वाक्य अपने वाच्यार्थको छोड़ कर अभिप्रेत अर्थको प्रकट करता है। यथा "आयुर्घृतं" आयु ही घृत है, ऐसा कहनेसे घृत ही एक मात्र आयुका कारण जान पड़ता है, घृत भोजन ही एक मात्र आयुवृद्धिकर है, घृतका परित्याग आयुःक्षयका कारण है, अर्थात् जिस लक्षणसे स्वार्थ ही एक मात्र परित्यक्त होता है, उसीको जहत्स्वार्था कहते हैं। लक्षण देखो।

जहदजहल्लक्षणा (सं० स्त्री०) जहत् अजहत् लक्षणा स्वार्थी या। लक्षणभेद, एक प्रकारकी लक्षणा। इसमें बोलनेवालेके शब्दके वाच्यार्थसे निकलनेवाले कई एक भावोंमें कुछका परित्याग कर केवल किसी एकका ग्रहण अभिप्रेत होता है।

जहदना (हिं० क्रि० अ०) १ कीचड़ होना, दलदल हो जाना। २ शिथिल पड़ना, थक जाना।

जहदा (हिं० पु०) अधिक कीचड़ दलदल।

जहन्नुम (सं० पु०) १ मुसलमानोंका नरक या दोजख। मुसल्मानोंके शास्त्रोंमें इन सात दोजखोंका वर्णन मिलता है—मुसलमानोंका जहन्नुम, इसाईयोंका लजवा, यहूदियोंका हुतमा, साबियोंनोंका शैर, पारसी अग्न्युपासकोंका सगर, पौत्तलिकोंका जलुम और कपटियोंके लिए हवीया निर्दिष्ट है। २ वह जगह जहां बहुत ज्यादह मुसीबत और दुःख हो।

जहन्नुमरसीद (फा० वि० जो नरकमें गया हो, दोजखी

जहन्नुमी (फा० वि०) नारकी, नरकमें जानेवाला।

जहमत (अ० स्त्री०) १ आपत्ति, मुसीबत, आफत। २ झंझट, बखेड़ा।

जहर (फा० पु०) १ विष, गरल वह चीज जो शरीरके भीतर पहुंच कर प्राण ले ले या किसी अङ्गमें पहुंच कर उसे रोगी बना दे। २ अप्रिय काम वह बात जो अच्छी न लगती हो। (वि०) ३ प्राणनाशक, मार डालनेवाला। ४ हानिकारक, नुकसान पहुंचानेवाला।

जहरगत (हिं० स्त्री०) घूंघट काढ़ कर नाचनेका एक तरीका।

जहरदार (फा० वि०) विषाक्त, जहरीला।

जहरमुहरीडाक—बङ्गालके अन्तर्गत मालदह जिलेकी एक नहर। यह गङ्गाकी पगला नामक एक शाखासे निकल कर काञ्चनघाटके पास महानन्दामें जा मिली है। इसे देख कर यही अनुमान होता है कि किसी वक्त यह एक नदी थी; पीछे नाव चलानेके लिए खोद कर गहरी की गई है। परन्तु किस समय ऐसा हुआ, यह नहीं मालूम।

जहरबाद (फा० पु०) एक प्रकारका भयंकर और विषाक्त फोड़ा। यह लोहूके बिगड़नेसे उत्पन्न होता है। इसके आरम्भमें शरीरके किसी अंगमें सूजन और जलन होती है। यह रोग सिर्फ मनुष्यको ही नहीं। बल्कि घोड़ों, बैलों और हाथियोंको भी हुआ करता है। ऐसा देखा गया है कि इस फोड़के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता।

जहरमोहरा (फा० पु०) एक प्रकारका काला पत्थर। यह सांप काटनेके कारण शरीरमें चढ़े विषको खींच लेता है। सांपके काटे हुए स्थान पर यह रख दिया जाता है। इसमें ऐसा गुण है कि यह रखे हुए स्थानसे जब तक शरीरका सम्पूर्ण विष खींच नहीं लेता तब तक उस स्थानको नहीं छोड़ता है। प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेंढकके सिरमेंसे निकलता है। २ अनेक तरहके विषोंको हरनेवाला एक प्रकारका हरे रंगका पत्थर। यह बड़ा ठण्डा होता है। लोग इसे गरमीके दिनोंमें शरबतके साथ घोर कर पीते हैं।

जहरीला (हिं० वि०) विषाक्त, जिसमें जहर हो।

जहल्लक्षणा (सं० स्त्री०) जहत् स्वार्थायां। लक्षणाभेद, एक प्रकारकी लक्षणा। लक्षण देखो।

जहां (हिं० क्रि० वि०) १ स्थानसूचक एक शब्द, जिस स्थान पर जिस जगह। २ सब स्थानों पर सब जगह। ३ जहान, दुनियां, संसार। इस शब्दका (इस रूपमें) व्यवहार सिर्फ कविता का यौगिक शब्दोंमें होता है। जैसे—जहांगीर, जहांपनाह।

जहांगीर (जहान्-गीर)—बादशाह अकबरके ज्येष्ठ पुत्र। १५७८ ई०में २ सेप्टेम्बरको, अकबरकी प्रिय महिषी जयपुरराजकी पुत्री मरियम जमानीके गर्भसे इनका जन्म हुआ। महारानीने मुसलमान साधु सलीम चिस्तुरके वरसे इनको पाया था, इसलिये इनका

नाम महम्मुद नूरउद्दीन सलीम मिर्जा रक्खा। बादशाह अकबरने इनके जन्मके उपलक्षमें विविध उत्सव आदि किये थे। यह पुत्र भी सम्राट्के अत्यन्त प्रिय थे।

१५८५ ई०में सलीमके साथ आमेरके राजा भगवान्दास की कन्या और प्रख्यात राजा मानसिंहकी भगिनी जोधाबाईका विवाह हुआ।

१५८७ ई० में रायसिंहने कुमार सलीमके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया।

बादशाहने, बचपनमें सलीमको विविध शिक्षाएँ दी थीं और उन्हें सच्चरित्र बनानेके लिए पूरी तौरसे कोशिश की थी। परन्तु बादशाह की कोशिश विशेष कार्यकारी नहीं हुई। सलीम तरह तरह की कुक्रियाओंमें आसक्त हो गये। इन्होंने युद्धविद्या सीख ली थी। बादशाहने इन्हें राजा मानसिंहके साथ वीरकेशरी महाराणा प्रताप सिंहके विरुद्ध प्रसिद्ध हलदीघाटके युद्धमें भेजा था। इस युद्धसे ये बड़ी मुशकिलसे लौट पाये थे।

अकबर शेष अवस्थामें अपने प्रियपुत्र सलीमके लिए मानसिक कष्टसे पीड़ित हुए थे; पर अन्तमें सलीमने भी अपने अपराधको समझ कर पिताके पास जा मुआफी मांगी थी। १६०५ ई० में मृत्युशय्या पर पड़े हुए अकबरने पुत्रको बुलाया और राज्यके प्रधान प्रधान अमीर उमरावोंके सामने सलीमको सम्राट्-पद पर मनोनीत कर उन्हें राजकीय परिच्छद, मुकुट और तलवारसे सुसज्जित करनेके लिए अनुमति दी।

१०१४ हिजरा, ८ जुमादसानी (१६०५ ई०, १२ अक्टोबर) बृहस्पतिवारको ३८ वर्ष की उम्रमें सलीमने आगरेके किलेमें पितृसिंहासन पर बैठ कर 'जहांगीर' अर्थात् 'विश्वविजयी' उपाधि पाई। आगरेके किलेमें देहली-दरवाजेके एक पत्थर पर जहांगीरकी अभिषेक-घटना लिखी हुई है। इसकी अन्तिम पंक्तिमें इस प्रकार लिखा है—"हमारे बादशाह जहांगीर दुनियांके बादशाह हों, १०१४।" जहांगीरके अभिषेकके उपलक्षमें जिन्होंने आनन्दसूचक कविताएँ बनाई थीं, उन कवियोंको तथा गरीबोंको बहुत धन दिया गया था।

जहांगीरने सिंहासन पर बैठ कर यह घोषणा की कि, वे निरपेक्ष भावसे और शान्तिमयी राजनीति पर राज्यशासन करेंगे। किन्तु उनके असत् चरित्रने इस विषयमें प्रधान अन्तरायका काम किया। आन्तरिक इच्छा रहने पर भी वे सुशृङ्खलतासे राज्य शासन न कर सके थे। परन्तु इतना होनेपर भी अकबर द्वारा प्रतिष्ठित राज्य की नीव उस समय तक खूब मजबूत थी। कुछ भी हो, जहांगीरने सम्राट् हो कर सुशासनका कुछ आभास दिया।

पहले हर एक की तकदीर इतनी जोरदार नहीं होती थी कि, जिससे वे बादशाहके दर्शन पासकें; कोई भी विचारका प्रार्थी सम्राट्के सामने नहीं पहुंच सकता था। कर्मचारियोंको डालियां या उत्कोच बिना दिये कोई भी अपनी फरियादको बादशाहके कानों तक न पहुंचा सकता था। इस दिक्कतको दूर करनेके लिए तथा जिससे सब कोई सहजमें सुविचारको पा सकें, इसलिए नवीन सम्राट् जहांगीरने एक सोने की जंजीर बनवाई। इसके एक छोरका सम्बन्ध राजप्रासादके प्राचीरके साथ और दूसरे छोरका जमुना किनारेके एक पत्थरसे था। यह जंजीर ३० गज लम्बी थी और इसमें सोनेके ६० घण्टे बंधे हुए थे। ये घण्टे बादशाहके घरके घण्टोंसे संयुक्त थे।

यदि कोई आदमी इस जंजीरको हिलाकर घण्टा बजाता, तो उसी समय बादशाहको मालूम हो जाता और वे सामने आ जाते थे। हर एक आदमी घण्टोंको हिलाकर बादशाहके पास विचार प्रार्थना कर सकता था। इसलिए कर्मचारी गण उत्पीड़ित व्यक्तियोंके पाससे किसी तरहका उत्कोच न ले सकते थे और उत्पीड़ित प्रजा कर्मचारियों की इच्छाके विरुद्ध भी सम्राट्के सामने उपस्थित हो सकते थे।

बादशाह जहांगीरने कर वसूल करनेके अनेक दोषोंका संस्कार किया। उन्होंने समघा और मीरबाड़ी नामके दो कर बिल्कुल ही उठा दिये। इसके सिवा जायगीरदार लोग प्रजासे जो अन्याय कर लिया करते थे, वे भी उठा दिये। लोकालयसे दूरवर्ती मार्गमें जहां कि चोर और डकैतोंका डर रहता था, उन स्थानोंमें सराय बनवाने और कुएँ खुदवानेके लिए जागीरदारोंको हुक्म दिया। और खालिसा जमीनके निकटवर्ती स्थानपर

सराय बनाने और कुएँ खुदवानेके लिए राजकर्मचारियोंको भी आदेश दिया। इसके अतिरिक्त यह नियम भी बना दिये कि वणिकोंकी बिना अनुमतिके कोई भी व्यक्ति उनके पण्यद्रव्यको न खोल सकेगा, कोई भी सैनिक या राजकर्मचारी घरमें न ठहर सकेगा, कोई भी व्यक्ति मादक वस्तु प्रस्तुत, व्यवहार और बेच न सकेगा, कोई भी जागीरदार किसी भी प्रजाकी सम्पत्ति को बलपूर्वक छीन न सकेगा, अथवा सम्राट् की अनुमतिके बिना प्रजासाधारणके साथ मिल न सकेंगे।

पहले बादशाहके हुक्मसे कभी कभी अपराधियोंकी नाक या कान काट लिये जाते थे। जहांगीरने इस प्रथाको भी बिल्कुल बन्द कर दिया।

इन्होंने प्रधान प्रधान शहरोंमें अस्पताल कायम किये और अच्छी चिकित्सा हो, इसलिए योग्य चिकित्सकोंका भी प्रबन्ध किया। सप्ताहमें दो दिन, वृहस्पतिवार (जहांगीरके राज्याभिषेकका दिन) और रविवार (अकबरका जन्म दिवस)को पशुहत्या बन्द की गई।

इन्होंने अपने पिताके रक्खे हुए कर्मचारियोंकी गुणके अनुसार—कुछ कुछ तनखा बढ़ा दी। बहुत दिनोंसे जो कैदमें सड़ रहे थे, उन्हें मुक्त कर दिया। इन्होंने अपने पिताके द्वारा रक्खे गये कर्मचारियोंमेंसे बहुतोंको ही अपने अपने पद पर रहने दिया, किन्तु जिन्होंने अकबर-प्रवर्त्तित धर्ममतका अवलम्बन किया था, उनको पदच्युत कर दिया। पहले जैसा इसलाम धर्मका आचार व्यवहार था, उसी नियमके अनुसार चलनेके लिए प्रजाको आज्ञा दी गई। इन्होंने अपने प्रिय मित्र सरीफखान्को प्रधान मन्त्री और सैयदखाँको पञ्जाबका शासनकर्त्ता नियुक्त किया।

बादशाह जहांगीरने हरिदास रायको विक्रमजितको उपाधि दे कर उन्हें गोलन्दाज सेनाका अध्यक्ष और राजा मानसिंहके पुत्र भाऊसिंहको एक मुनसबदार बना दिया। पीछे गफूरबेगके पुत्र जमानाबेग महबत खांकी उपाधिसे विभूषित हो एक मुनसबदार हुए।

राजा नरसिंहदेव नामक एक बूंदीके राजपूतने शेख अबुलफजलको मार दिया जिससे जहांगीरने उन्हें भी उच्च पद दिया।

राजा मानसिंहकी बहन जोधाबाईके गर्भसे सलीमका खुसरू नामका एक पुत्र हुआ। अकबरको शेष दशामें इन्हींको बादशाह बनानेकी कोशिशें की गई थीं, पर सब व्यर्थ हुईं। जहांगीरने सिंहासन पर बैठ कर खुसरूको कैद किया, पर छह मास पीछे एकदिन रात्रिके समय खुसरूने अकबरकी कब्र देखनेकी इच्छा प्रकट की। जहांगीरके आदेश देने पर खुसरूके साथ ५० अश्वारोही अनुचर जानेको तयार हुए। खुसरू उनके साथ पञ्जाबकी तरफ चल दिये। खुसरूके विद्रोही हो कर भाग जानेकी खबर सुनते ही बादशाहने शेख फरीद बुखारीको उनका अनुसरण करनेके लिए आदेश दिया और दूसरे दिन प्रातः काल ही उन्होंने खुद उनका अनुसरण किया। खुसरूने रास्तेमें हुसेन बेग खांके साथ मिल कर उन्हें सेनापति नियुक्त किया और रुपये इकट्ठे करनेके लिए वणिक् तथा राहगीरोंका सर्वस्व लूटना शुरू कर दिया।

जहांगीर आगरेसे चलते समय, तमाम राजकार्यका भार इतिमादउद्दौला पर छोड़ आये थे। हिन्दाल नामक स्थान पर पहुंच कर उन्होंने दोस्त महम्मदको अपना प्रतिनिधि बना कर आगरे भेज दिया। इधर दिलावरखांने खुसरूके आनेकी खबर सुन अपने पुत्रको यमुना पार हो कर बढ़नेके लिए कहला भेजा और वे खुद लाहोरकी तरफ चल दिये। दिलावर खाँ बहुत ही जल्दी लाहोरकी तरफ अग्रसर होने लगे और राहमें सबको खुसरूके विद्रोही होनेका सम्वाद देते हुए सावधान रहनेके लिए कहते चले।

२४ जिलहज्ज—खुसरूके पाँच अनुचर पकड़े और सम्राट्के सामने लाये गये। बादशाहने उनमेंसे दो को तो हाथीके पैर तले दबा कर मार देनेका और अन्य तीनोंको कैद कर रखनेका हुक्म दिया। दिलावरखांने अग्रसर हो कर लाहोर दुर्गमें प्रवेश किया और वे युद्धके लिए तयार हो गये। इसके दो दिन बाद ही खुसरू प्रायः १२०० सेनाके साथ लाहोर दुर्गके पास उपस्थित हुए। खुसरूने अपने अनुचरोंको नगरके द्वारमें आग लगा देनेकी अनुमति दी और कहा कि, नगर अधिकृत होने पर सेनाके लोग सात दिनों तक नगर लूट सकेंगे।

मीर्जा हुसेन दिलावर खेगखां, हुसेनबेग दीवान और नूरउद्दीन कुलिने नगरकी रक्षाके लिए सैन्यसमावेश किया था। इधर सैयद खांने चन्द्रभागा नदीके किनारे डेरे डाल दिये थे; किन्तु खुशरूके विद्रोही होनेका सम्वाद सुन कर वे भी तुरंत लाहोरकी तरफ चल दिये और शीघ्र ही बादशाहको सेनाके साथ जा मिले। उधर जहांगीरने आगरा कुलीके उद्यानमें डेरे डालनेके उपरान्त सुना कि उसी रातको खुसरू सम्राट्-सैन्य पर आक्रमण करेंगे। कुछ भी हो बादशाहने सेनो शेख फरीदखांको अधीनतामें लाहोरकी तरफ भेज दी।

इस सेनाके नगरके सामने पहुंचते ही खुशरूके साथ घमसान युद्ध होने लगा। आखिर खुशरू पराम्त हो कर भाग गये। बादशाह फरीदको पहले भेज कर दूसरे दिन जब खुद अग्रसर हो रहे थे, उस समय रास्तेमें उन्हें विजयवार्त्ता प्राप्त हुई।

गोविन्दवाल-सेतुको पार कर किञ्चित् अग्रसर होने पर शमशेर नामक तोशाखानाके एक नौकरने आ कर बादशाहको विजयसम्वाद सुनाया, इस पर बादशाहने उसको खुशखबरखांकी उपाधि प्रदान की।

जहांगीरने खुशरूको वशमें लानेके लिए पहले मीर-शुमान् उद्-दीन को भेजा था। उन्होंने इस समय आ कर कहा कि, खुशरूका सैनबल इतना अधिक और सेना इतनी साहसी है कि, फरीदकी थोड़ी सेना उनको किसी तरह भी परास्त न कर सकी। बादशाहको पहले तो शमशेरकी बात पर अविश्वास हुआ; किन्तु पीछे खुशरूकी सवारीके आ जानेसे उन्होंने विशेष आनन्द प्रकट किया। इस युद्धमें फरीदने विशेष विक्रमके साथ युद्ध किया था। सेफखांके शरीर अठारह जगह घायल हुआ था।

खुशरू पराजित हो कर काबुलकी तरफ भाग गये। बादशाहने उनको पकड़ लानेके लिए महावतखां और अलीबेगको भेजा। खुशरू जब वितस्तानदीके किनारे उपस्थित हुए, तब उनके अनुचरोंमें दो मत हो गये। कोई कोई तो यह कहने लगे कि, हिन्दुस्तानमें ही रह कर राज्यमें अधम मचाना ठीक है और कोई काबुलको चलनेको कहने लगे। खुशरूने हुसेनबेगके मतानुसार काबुल जाना ही पसन्द किया; जिससे हिन्दुस्तानी और अफगानिस्तानियोंने उनका साथ छोड़ दिया।

खुशरू शाहपुर नामक स्थानसे पार न हो सकनेके कारण शाहदराको चल दिये। इनके पराजित होनेसे पहले ही पञ्जाबके जागीरदारों और नौकाके रक्षकोंको खुशरूके विषयमें सावधान रहनेके लिए आदेश दे दिया गया था। रात्रिको जिस समय खुशरू पार हो रहे थे, उस समय शाहदराके एक चौधरीने उन्हें देख कर बादशाहके हुक्मको उन्हें याद दिलाई और नाव रोक ली। इस सम्वादको पाते ही उस घाटके अध्यक्ष अबुल कासिम खां कुछ अनुचरों और अश्वारोहियोंके साथ वहां आ पहुंचे। हुमायुन् बेगने चार नावोंको ले कर पार होने की कोशिश की, परन्तु एक नाव बालूमें अड़ गई।

बादशाह—कुमार जंजीरोंसे बांध लिए गये। इस संवादको सुनते ही जहांगीरने खुसरूको ले आनेके लिए अमीर जल् उमरावको भेज दिया। ये मीर्जा कमरानके उद्यानमें ठहरे हुए थे, खुसरूको भी वहीं पहुंचाया गया। वह दृश्य बहुत ही शोचनीय और अत्यन्त भयानक था। युवराजके हाथमें जंजीरें पड़ी हुई थीं, उनके दाहने हुमायुन बेग और बायें अबदुल अजीज खड़े हुए थे। कुमार खुसरू उन दोनोंके बीचमें खड़े हुए कांप रहे थे। खुसरूको काराबद्ध कर दिया तथा हुमायुन और अबदुल अजीजको गाय और गधेको खालों भर दिया गया। इसके बाद उन दोनोंको पोछेकी तरफ मुंह करके गधे पर चढ़ा तमाम शहरमें घुमाया गया। गायका चमड़ा जल्दी सूखता है, इस लिए हुमायुनने शीघ्रही अपने शरीरसे विदा ली। अबदुलके भी एक दिन और एक रात्रि बाद प्राण-पखेरू उड़ गये। इस दृश्यका अभी तक अन्त नहीं हुआ। सम्राट्को प्रतिहिंसा इतने पर भी दूर न हुई। उन्होंने लाहोरमें प्रवेश किया। नगरके द्वारसे लगा कर कमारनके उद्यान तक दोनों और शूलियोंकी दो पंक्तियां लगा दी गईं। बादशाहने ७०० कैदियोंको शूलियों पर चढ़ा दिया। अभागे कैदी मृत्युयन्त्रणासे तड़फने लगे। इस मर्मभेदी दृश्यको दिखानेके लिए खुसरूको

भी हाथी पर चढ़ा कर वहां लाया गया।*

शेख फरीदको पुरस्कार स्वरूप मुरताज खांकी उपाधि दी गई। विपासाके निकटवर्ती जिन जिन जागीरदारोंने खुसरूको पकड़नेमें सहायता दी थी, उन सबको फिर जागीरें प्राप्त हुईं। इन जमींदारोंमेंसे कमाल चौधरीके दामाद कनानने ही विशेष सहायता दी थी। सिखोंके चतुर्थ गुरु अर्जुन मल्ल (आदिग्रन्थ-संकलयिता) इस अभियोगसे कि—उन्होंने विद्रोही खुसरूको धर्मबलसे बलीयान् किया—अभियुक्त हुए। आखिर इनको भी निर्जन स्थानमें कैद कर विशेष यन्त्रणा द्वारा मार दिया गया। परन्तु अर्जुनमल्लकी मृत्युके विषयमें किम्बदन्ती इस प्रकार है कि, एक दिन वे चन्द्रभागा नदीमें स्नान करते करते अकस्मात् अदृश्य हो गये। सिखोंके मतसे अर्जुनमल्ल ही उनके श्रेष्ठ और प्रथम प्राणगुरु हैं तथा उनकी मृत्यु होनेके कारण ही यह शान्तिप्रिय सिख जाति संग्राम-प्रिय हो गई है।

खुसरूको दूरवर्ती किसी कारागारमें नहीं भेजा गया। बादशाहने उन्हें अपने साथ ही रक्खा।

जहांगीरने लाहोरमें ही सम्वाद पाया कि, फजल बासिमने कान्दाहार पर चढ़ाई की है। उन्होंने गाजीबेगको अधीनतामें एक दल सेना भेज दी। कुछ दिन बाद ये खिलजी खां, मिरन सदर और जहांगीर सरीफके ऊपर लाहोरकी रक्षाका भार दे कर खुद काबुलको तरफ चल दिये।

१६०६ ई०में (१०१५ हिजरा) में बादशाह काबुलको तरफ गये। जहांगीर दिलामेज स्थानमें चार दिन ठहर कर हरिपुरमें आकर ठहरे। वहांसे फिर जहांगीरपुरको आये। यहां जहांगीर पहले शिकार खेला करते थे। इस ग्रामके पास सम्राट्के आदेशसे मृगकी कब्रके उपर एक मसजिद बनी थी। इस मृगको जहांगीरने खुद पकड़ा था और इसी लिए वह उनका बहुत प्यार हो गया था। यह मृग अन्य मृगोंको बहका लाता था। मसजिदकी दोवार पर मुल्ला महम्मद हुसेनकी लिखी हुई एक इबारत मिलती है—"इस आनन्दमय स्थानमें बादशाह नूर-उद्-दीन महम्मद द्वारा एक मृग पकड़ा गया था और वह एक महिनेमें खूब हिल गया था वह बादशाहका बहुत प्यारा था। जहांगीर प्यारसे उसको राजा कह कर पुकारते थे।" कुछ भी हो बादशाहने अबकी बार यहां आकर मरे हुये मृगके स्मरणार्थ शिकार न किया। इन्होंने धीरे धीरे अग्रसर होकर जयन खां कोकाके पुत्र जाफर खां को आमरादि और आटकके सरकार प्रदेशका शासनकर्त्ता बना दिया और यह हुक्म दिया कि, बादशाही फौजके लाहोर लौटनेसे पहलेही खातुरके सर्दारोंको मुसल्लावद्ध कर कैद कर दिया जाय। सिन्धुनदके किनारे पहुंचने पर महावतखांको २५०० सेनाका अधिनायक बना दिया। बादशाह पेशावर

* पञ्जाबके इतिहासलेखक सैयद महम्मद लतीफ कहते हैं कि, खुशरूकी माता अपने बेटेकी दुर्दशा देख न सकी और इसी दुःखमें उन्होंने जहर खा कर अपने प्राण गमा दिये। अकबर-नामाके लेखक यह लिखते हैं कि, मानसिंहकी बहन और खुशरूकी माता जोधाबाई सलीम (जहांगीर) की प्रियतमा भार्या थीं। वे अन्तपुरस्थ किसी भी स्त्रीकी प्रधानता नहीं सह सकती थीं। एक दिन सलीमके शिकार खेलनेके लिए चले जाने पीछे अन्तःपुरकी किसी स्त्रीके साथ जोधाबाईकी कलह हो गई। जोधाबाई इस अपमानको सह न सकीं और अफीम खा कर उन्होंने आत्म हत्या कर ली। जहांगीर शिकारसे लौटे तो उन्हें जोधाबाई जीवित न मिलीं। इनके शोकसे जहांगीर बहुत दिनों तक उदास रहे थे। आखिर अकबरने आ कर पुत्रको सान्त्वना दी थी। किन्तु जहांगीर स्वरचित जीवनवृत्तान्तमें जोधाबाईकी मृत्युका कारण दूसरा ही बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि, मेरे बादशाह होनेसे पहले खुशरूकी माता अपने पुत्र (खुशरू)के असद् व्यवहारसे अत्यन्त मर्माहत हुई और इसी कारण उन्होंने अफीम खा कर आत्मघात कर लिया। वह मुझे (जहांगीरको) प्राणोंसे भी ज्यादा प्यार करती थीं। और तो क्या, वह मेरे एक केशके लिए सैकड़ों पुत्रों और भ्राताओंको छोड़नेमें जरा भी आनाकानी न करती थीं। वह हमेशा खुशरूको मेरे अनुग्रहकी बात कहती थीं; परन्तु खुशरू उनकी बात पर जरा भी ध्यान न देता था। जब देखा कि, पुत्रका चरित्र किसी तरह भी परिवर्तित न होगा। तब उन्होंने यह सोच कर कि—शायद मेरे मरने पर खुशरू अपनी भूलोंको पकड़ सके और सुधर जाय—मेरी अनुपस्थितिमें अपरिमित अफीम खा कर अपनी हत्या कर डाली। (१०१३ हिजरा, २६ जेलहज्ज)

पहुंच कर सरदारखांके उद्यानमें ठहरे। इस स्थान पर युसफजाई अफगानोंने आ कर जहांगीरको वश्यता स्वीकार की। शेरखां नामके एक अफगानको उक्त प्रदेशका शासनकर्त्ता बना दिया गया। ३री सफर तारीखको राज विक्रमजितके पुत्र कल्याण गुजरातसे बादशाहके पास आये। इनके विरुद्ध बहुतसे अभियोग लगाये गये थे। इन्होंने एक मुसलमीन वेश्याको अपने घर रख लिया था तथा उसके पिता और माताको हत्या कर, उन्हें अपने घरमें गाड़ दिया था। इसलिए जहांगीरने उनकी जीभ काट कर जन्म भर उन्हें कैद कर रखनेका हुक्म दिया। बादशाह खुसरूको शृङ्खलाबद्ध कर काबुलमें लेते आये थे। यहां आकर उन्होंने खुसरूकी जंजीरें खोल दी। खुसरूने फतेउल्ला, नूर उद्दीन, आसफ खां और सरीफ खां आदि प्राय ५०० आदमियोंकी सहायतासे बादशाहको मार डालनेकी कोशिश की। परन्तु उनमेंसे एकने कुमार खुर्रम (पीछे शाहजहां) के दीवान खोजा कुरा-गोने यह बात कह दी। खुर्रमने बादशाहसे कहा। उन्होंने फतेउल्लाको कैद कर दिया और प्रधान प्रधान ३ ४ षड़यन्त्रकारियोंको मार डालनेके लिए हुक्म दिया।

१६०८ ई०में बादशाहने राजा मानसिंहके ज्येष्ठपुत्र जगत्‌सिंहकी कन्याके साथ अपना विवाह करनेके अभिप्रायसे खर्चके लिए ८००००) रुपये भेज दिये। ४थी रबि-उल अव्वल तारीखको जगत्‌सिंहकी कन्या बादशाहके अन्तःपुरमें भजी गई। इसी समय जहांगीरने चित्तौरके राना अमरसिंहके विरुद्ध महावतखांको भेज दिया।

दिल्लीश्वरने सोचा कि, भारतके हिन्दू और मुसलमान सब ही जब उनके वशीभूत हो गये हैं तब राना ही क्यों मस्तक उठाये रहें ? का पुरुष अमरसिंहने जब युद्धके लिए अनिच्छा प्रकट की, तब सर्दार कुलतिलक चन्दावत् और शालुम्बा वीरोंने जबरन उनके द्वारा युद्ध घोषणा करवा दी। इस युद्धमें बादशाह जहांगीरका मनोरथ सफल न हुआ। कुछ भी हो, युवराज खुर्रमके कनिष्ठ मातुलने इस युद्धमें बादशाह की तरफसे विशेष साहसिकताका परिचय दिया था।

दाक्षिणात्यमें ज्यादा गड़बड़ी फैल जानेके कारण (१६०८ ई० में) सम्राट्‌-कुमार पारविज वहां भेजनेके लिए मनोनीत हुए। इसी समय इङ्गलैण्डके वणिक् सम्प्रदायने भारतमें वाणिज्य करनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए हकीनस्‌को जहांगीरके दरबारमें दूतस्वरूप भेजा।

हकीनस् १६०८ ई० में १६ अप्रेलको सूरत आ पहुंचे। व्यवसायके सुभीताके लिए उन्होंने जैसी २ प्रार्थनाएँ की, बादशाहने उन सबमें अपनी स्वीकारता दी और हकिनस्‌को वार्षिक ३२०००) रुपये वेतन दे कर अंग्रेजोंका दूतस्वरूप उन्हें दरबारमें रखनेकी इच्छा प्रकट की। हकिनस्‌ने अर्थके लोभसे कार्य ग्रहण कर लिया। हकीनस् सम्राटके इतने प्रियपात्र हो गये कि, बादशाहने दिल्लीके अन्तःपुर की एक आर्मनी महिलाके साथ उनका विवाह कर दिया। कुछ भी हो, सम्राट्‌के साथ अंग्रेजोंकी जो सन्धि हुई, भारतके पर्त्तुगीज लोग उसे तुड़वानेकी कोशिश करने लगे और कर्मचारियोंको घूस दे कर वे इस विषयमें कृतकार्य भी हुए। कर्मचारियोंने सम्राट्‌को समझा दिया कि, अंग्रेजोंके साथ सन्धि होने पर जितने सुफलकी सम्भावना है, उससे कहीं अधिक अनिष्ट होनेकी सम्भावना पोर्त्तुगीजोंसे मेल न होनेसे है। जहांगीरने इस बातको ठीक मान कर हकीनस्‌को शीघ्र ही भारत छोड़ कर चले जानेकी आज्ञा दी।

१६१० ई०में कुतुब नामका एक फकीर पटनाके पास उज्जयनीमें आकर रहने लगा। उसने वहांके बहुतसे असत् लोगोंके साथ मिल कर अपना खुशरू नामसे परिचय दिया। उसने कहा कि, "हम कैदखानेसे भाग आये हैं," और वहां रहते समय हमारी आंखों पर गरम कटोरी बांध दी जाती थीं, इसलिए आंखों पर दाग पड़ गये हैं"।

इस प्रकार परिचय देनेसे कुछ लोगोंने आकर उसका साथ दिया। इन लोगोंके साथ कुतुबने पटनामें प्रवेश कर वहांके दुर्ग पर अधिकार किया। उस समय पटनाके शासनकर्त्ता अफज़ल खां, शेख बनारसी और गयास जेलखानी पर नगररक्षाका भार देकर गोरखपुरमें अपनी नयी जागीरमें गये हुए थे। विद्रोहियोंके दुर्गमें प्रवेश करने पर दुर्गरक्षकोंने भाग कर अफजलखांके पास

आनेका प्रयत्न किया। उधरसे अफ़ज़लखां भी इस सम्बादको पाकर बहुत जल्द पटना की तरफ रवाना हुए। बार बार लोगोंको चेतावनी दी गई कि, यह असली खुसरू नहीं है। धोखेबाज कुतुबने जब अफजलखांके आनेकी खबर सुनी, तब वह दुर्ग छोड़कर युद्ध करनेको अग्रसर हुए; किन्तु अन्तमें उसे परास्त हो कर भागना पड़ा। पीछे फिर उन लोगोंने अफजलखांके मकान पर कब्जा किया। आखिरकार कुतुब अपने साथियोंके क्रमशः मरते देख अफजलके सामने आ खड़ा हुआ। अफजलने उसी समय उसको मार डाला। सम्राट् के पास सम्बाद पहुंचने पर उन्होंने शेख बनारसी, गयासरिहानी तथा अन्यान्य कर्मचारियोंको बुला भेजा। उन विद्रोहियोंको फटे-पुराने कपड़े पहना कर तथा दाढ़ी-मूछ मुड़ा कर शहरके चारों तरफ घुमाया गया।

१६१० ई०में अहमदनगरमें विद्रोह उपस्थित हुआ। खानखानान्‌को कुमार पारविजका सहकारी बना कर दाक्षिणात्यकी तरफ भेजा गया। उन्होंने बुरहानपुर पहुंच कर सेनाको बालाघाट भेज दिया। वहां पहुंचने पर कर्मचारियोंमें परस्पर झगड़ा हो गया। सेना बहुत थक गई। चावल और खाद्य-सामग्रीका भी अभाव हो गया। इसलिए सेना फिर बुरहानपुर भेजी गई। इस सब असुविधाओंके कारण शत्रुओंसे कुछ दिनोंके लिए सन्धि कर ली गई। खानखानान्‌के विरुद्ध नाना रूप अभियोग होने लगे। इस पर बादशाहने खानखानान्‌को वहांसे स्थानान्तरित कर दिया और उनकी जगह खाँजहान्‌को भेज दिया।

१६११ ई०में जहांगीरके साथ मिर्जा गयासबेगकी कन्या नूरमहल (नूरजहान्) का विवाह हुआ।

इयाजाबादके वज़ीर खोजामहम्मद सरीफकी मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्र मिर्जा गयासबेग अत्यन्त दारिद्र्य-पीड़ित हो कर दो पुत्र और एक कन्याको लेकर हिन्दुस्थानकी तरफ आ रहे थे। इस समय उनकी स्त्री गर्भवती थी; इस गर्भसे भारतकी भावी सम्राज्ञीका जन्म हुआ। ये लोग जिन पथिकोंके साथ आ रहे थे उस दलमें मालिक मसूद नामके एक उदार व्यक्ति भी थे। वे उस बालिकाके असाधारण सौन्दर्यको देख कर तथा उनकी दरिद्र-दशासे दुःखित हो कर उन्हें साथ लेते गये।

बादशाह अकबर उक्त व्यक्तिका बहुत सम्मान करते थे। मसूदने मिर्जा गयासका अकबरसे परिचय करा दिया। सम्राट को यह मालूम होने पर कि—गयासके पिताने हुमायुनकी दुरवस्थाके समय उनका बहुत उपकार किया था तथा गयासके आचरणसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो अकबरने उन्हें दीवानके पद पर नियुक्त कर दिया। पीछे गयासकी स्त्रीसे अकबरकी महिषी या सलीमकी माता मरियम जमानीकी गाढ़ी मित्रता हो गई। गयासकी स्त्री प्रायः सलीमकी माताके साथ मुलाकातके लिए जाते समय अपनी कन्या मेहेरउन्निसाको भी साथ ले जाया करती थी। मेहेरउन्निसा नाचने गाने और नाना प्रकारकी कलाओंमें चतुर और अत्यन्त रूपवती थीं। इनके समान रूपवती कामिनी पृथिवी पर बहुत कम ही पैदा हुई हैं, इनका शरीर ऊंचा और तमाम खूबसूरतीको लिए हुए तसवीर जैसा मालूम होता था। इनके रूप और गुणसे सभी मोहित होते थे। एक दिन मेहेरउन्निसा अपनी माताके साथ सलीमकी माताके घर आकर सम्राज्ञीके मनोविनोदके लिए नाच रही थी, कि इतनेमें सलीम भी वहां आ पहुंचे। दोनोंकी चार आंखें हो गईं, सलीम मेहेरउन्निसाके रूपमें मशगुल हो गये। दोनों ही की यह दशा हुई। सलीमने उनसे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु अलीकुलिखां नामक ईराक प्रदेशके एक सज्जनसे उनका विवाह सम्बन्ध पहले ही स्थिर हो चुका था। अबदुल रहीम (बादमें खानखानान्) ने मुलतानके युद्धके समय अलीकुलिके वीरत्व पर सन्तुष्ट हो कर बादशाह अकबरसे उनका परिचय करा दिया था। जो हो, सलीम मेहेरउन्निसाको पानेके लिए बहुत ही व्याकुल हुए; वे समय समय पर उनसे प्रेमसम्भाषण भी करने लगे। मेहेरकी माताने इस व्यवहारसे विरक्त हो कर सब हाल महारानीसे कहा और उन्होंने सब बात खोल कर अकबरसे कह दी। बादशाहने इस तरहके अन्यायको प्रश्रय न देकर अलीकुलीखांके साथ शीघ्र ही मेहेरका विवाह करनेके लिए गयाससे कहा। मेहेरउन्निसाको सलीमके

साथ विवाह करनेकी इच्छा होने पर भी उनका विवाह अलीकुलिके साथ हो गया। बादशाहने अलीकुलिको ग्रामसकर्त्ता बना कर बङ्गाल भेज दिया।

जहांगीर मेहेरउन्निसाको भूल न सके। वे बादशाह होकर उन्हें पानेके लिए सुभीता ढूंढ़ने लगे। अलीकुलि अत्यन्त साहसी और धनाढ्य अमीर थे, उनकी हत्या करानेके लिए सम्राट्‌का साहस न हुआ; वे कौशलजाल फैलाने लगे। अलीकुलिको मारनेके लिए जहांगीरने इतने घृणित और भीषण उपायोंका अवलम्बन किया था कि, इतिहास न मिलनेसे कोई भी उस बात पर विश्वास न कर सकता था। सम्राट्‌के आदेशसे एक व्याघ्र लाया गया। अलीकुलिको आज्ञा दी गई कि, "तुम्हें इस व्याघ्रके साथ युद्ध करना पड़ेगा। सम्राट् स्वयं उनकी मृत्यु देखनेके लिए दर्शक बन बैठे। प्रकाण्ड व्याघ्रके साथ युद्ध सम्भव नहीं; परन्तु अस्वीकार करनेसे उस बातको सुनता कौन है? ऐसी दशामें अपनी मृत्यु अनिवार्य समझ कर ही अलीकुलि नंगी तलवार हाथमें ले आगे बढ़े थे; किन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने अपने अतुल साहस और अदम्य विक्रमके साथ व्याघ्र पर आक्रमण कर उसे प्राण-रहित कर दिया। सभी लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। बादशाहने लोगोंको दिखानेके लिये उन्हें 'शेर अफगान'की उपाधि दी। कोई कोई कहते हैं कि, यह उपाधि उन्हें अकबर द्वारा प्राप्त हुई थी। कुछ भी हो, जहांगीरने मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध हो कर उनको मार डालनेके लिए एक मदोन्मत्त हाथी मंगाया। अकस्मात् उनके शरीरके ऊपरसे उस हाथीको चलाया गया। वीरवर अलीकुलिने एक आघातसे उस हाथीकी सूड़ जमीन पर गिरा दी। नराधम नृशंस सम्राट्‌ने अन्य कोई उपाय न देख एक दिन रात्रिके समय अलीकुलिके शयनगृहमें चालीस गुप्त घातकोंको भेज दिया। किन्तु वे भी कार्यसिद्धि न कर सके। तमाम प्रयत्नोंको व्यर्थ होते देख जहांगीरने कुतुबउद्दीन्को बङ्गदेशमें भेजा और उनसे यह कह दिया कि "अलीकुलि अगर सीधी तरहसे मेहेरउन्निसाको न दे, तो तुम उसका मस्तक काट डालना।" कुतुबउद्दीन्के बादशाहका अभिप्राय जाहिर करने पर अलीकुलिने घृणाके साथ उसका प्रत्याख्यान किया। आखिरको राज्य देखनेके बहानेसे उन्हें बुलाया। शेर-अफगान इस मायाचारीको समझ कर एक तीक्ष्ण तलवार कपड़ोंमें छिपा ले गये। कुतुबके फिर मेहेरउन्निसाकी बात छेड़ने पर वादानुवादमें शेरअफगानने उनके वक्षस्थल पर तलवार भोंक दी। कुतब चिल्ला उठे। पीर महम्मदने आगे बढ़ कर शेर अफगानके मस्तक पर एक वार किया; परन्तु अव्यर्थ सन्धानसे उसे रोक कर शेरने पीरका मस्तक चूर्ण कर दिया। प्रहरियोंके आगे बढ़ने पर शेरने देखते देखते चार आदमियोंको जमीन पर गिरा दिया। परन्तु वे अकेले क्या कर सकते थे? तब भी वीरका उत्साह नहीं घटा था। आखिर प्रहरियोंके दूरहीसे गोलियोंकी वर्षा करने पर उन्हें भूतलशायी होना पड़ा। इस तरह असमवीर कायरों और घृणित व्यक्तियोंके हाथ निहत हुए। इसके उपरान्त जहांगीरने राजद्रोह और षड्यन्त्रका अपराध लगा कर मेहेरउन्निसाको आगरामें बुला लिया। कुतुबकी सारी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली गई। मेहेरउन्निसाके आगरा आ जानेपर जहांगीरने उनसे विवाहकी इच्छा प्रकट की, किन्तु मेहेरने अपने पतिहन्तारकके विवाह-प्रस्तावको घृणाके साथ अग्राह्य किया। जहांगीर इस व्यवहारसे बहुत ही चिढ़ गये। उन्होंने मेहेरको राजमाताकी किङ्करी नियत की और खर्चके लिए उन्हें रोज एक रुपया देनेके लिए हुक्म दिया। जहांगीर कुछ दिनोंके लिए मेहेरउन्निसाको भूल गये। पीछे नौरोजके दिन हरममें प्रवेश कर जहांगीरने देखा कि, मेहेरने सफेद पोशाक पहन ली है; उनकी खूबसूरती उछल रही है। बस, फिर क्या था; जहांगीरकी पूर्वपिपासा दूनी बढ़ गई। बादशाह इस बातको सह न सके उन्होंने उसी वख्त अपने गलेका हार मेहेरके गलेमें डाल दिया।

बड़ी शान-शौकतके साथ विवाह-कार्य समाप्त हुआ। बादशाह मेहेरके हाथोंकी पुतली बन गये। उन्होंने मेहेरको पहले नूरमहल (महलकी रोशनी) और पीछे नूरजहान् (पृथिवी-सुन्दरी) की उपाधि दी। बादशाह जहांगीर इनकी सलाह बिना लिए कोई भी काम न करते थे। सम्राट्‌के तमाम सुख और सान्त्वनाका आधार

नूरजहां थीं। धीरे धीरे नूरजहांने साम्राज्यको प्रधान प्रधान शक्तियोंको अपने अधिकारमें कर लिया। कोई भी सम्राज्ञी इनके समान शक्तिशालिनी नहीं हुई हैं। इनके नामके सिक्के भी चलने लगे। जहांगीर बचपन ही से अफीम और शराब पीनेमें अभ्यस्त थे; प्रायः सर्वदा ही वे शराब पीया करते थे। नूरजहांने उनकी शराबकी खुराक घटा दी और उन्हींके प्रयत्नसे उनका सबके सामने शराब पीना बन्द हो गया। नूरजहांने राजदरबारका बाह्य आडम्बर और अपव्यय बहुत कुछ घटा दिया। १६ वर्ष तक राजकार्य और अन्यान्य विषयोंमें नूरजहांकी असीम और अप्रतिहत क्षमताका परिचय मिलता है। नूरजहांका १६ वर्ष तकका जीवन-वृत्तान्त ही जहांगीरका इतिहास है। नूरजहांके पिताको प्रधान वजीर और उनके भाई अबुल-फजलको इतिमाद खांकी उपाधि दी गई।

महम्मद हादी (जहांगीरके इतिहास-लेखक)का कहना है कि, कई एक वर्षोंमें ऐसा हुआ कि, बादशाहने राजकीय समस्त भार नूरजहांको दे दिया। नूरजहान् जैसा चाहती थीं, वैसा ही होता था। जहांगीर प्रायः कहा करते थे—"मैंने अपना राज्य नूरजहांको दे दिया है। मुझे अपने लिए सिर्फ कुछ मद्य और मांस मिलना चाहिये, वही मेरे लिए यथेष्ट है।"

बादशाहोंका ऐसा नियम था कि, वे प्रति दिन सुबहके वख्त अपने झरोखेके सामने बैठते थे और राज्यके प्रधान प्रधान व्यक्ति आ कर उनके प्रति मान्यता प्रदर्शन किया करते थे। बादशाहने नूरजहांके लिए भी ऐसा ही नियम कायम किया। अमीर उमराव और नूरजहांकी आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते थे। नूरजहांके नामका जो सिक्का बनता था, उस पर इस प्रकार लिखा रहता था—"जहांगीरके हुक्मसे सिक्के पर नूरजहांका नाम लिख जानेसे इसकी खूबसूरती हजार गुनी बढ़ गई है।" सभी राजकीय आदेश पत्रों पर नूरजहांका नाम लिखा रहता था और उनको मुहरके नीचे यह बात लिखी रहती थी कि—"माननीय महारानी नूरजहान् बेगमके हुक्मसे।" बादशाह नूरजहांका विरह क्षण भरके लिए भी नहीं सह सकते थे। जब कभी वे राजदरबारमें बैठते थे, तब उनके बगलमें परदा डाल दिया जाता था और उसकी ओटमें नूरजहां बैठती थीं। नूरजहांके लिए जहांगीर सब कुछ कर सकते थे। कोई कोई इतिहास-लेखक कहते हैं कि, जहांगीर बादशाहने नूरजहांके लिए मुसलमानोंकी चिर-प्रचलित रीतिको भी छोड़ दिया था—वे नूरजहांके साथ खुली बग्घी पर बैठ कर आगराके राजपथ पर हवा खाते थे।

बादशाहने १६११ ई०में सीमान्त प्रदेशीय अमीरोंके लिए कुछ आज्ञाएं निकाली थीं जिनमेंसे ये प्रधान हैं—(१) कोई भी झरोखाके सामने न बैठ पावेगा, (२) अपराधीको सजा देते समय उसे अन्धा नहीं कर सकेंगे और न किसीको नाक या कान ही काटे जा सकेंगे, (३) अनुचरोंको किसी तरहकी उपाधि न दे सकेंगे। (४) वे अपने बाहर जानेके समय किसी तरहका ढाक न बजा सकेंगे। इन्होंने जो आज्ञाएं निकाली थीं, वे आइन-ए-जहांगीरीके नामसे प्रसिद्ध हैं।

बादशाह अकबरने बङ्गदेशमें ओसमानको दमन करनेके लिए कई बार प्रयत्न किया था; किन्तु कृतकार्य न हो सके थे। जहांगीरने इसलामखांको उनके विरुद्ध युद्ध करनेको भेजा। इसलामखांको अधीनतामें सुजातखां नामक एक साहसी सेनापति थे। उन्होंके साहस और युद्धकौशलसे इसलामखांने इस युद्ध विजयलक्ष्मीको प्राप्ति की। एक बेमालूम गोलीके लगनेसे ओसमानकी मृत्यु होने पर उनके पुत्रोंने बादशाहकी अधीनता स्वीकार कर ली।

१६१२ ई०में इसलामखांके बादशाहके पास विजय वार्त्ता भेजने पर जहांगीरने उन्हें छह हजारी मुनसफदारका ओहदा दिया और सुजातखांको रुस्तमकी पदवी दी।

इस वर्ष बादशाहने अपने हाथसे मृत रायसिंहके पुत्र दलपतसिंहके ललाट पर राजटीका लगाया।

पहले ही लिखा जा चुका है कि, १६१० ई०में अहमदनगरमें मालिक अम्बरने विद्रोही हो कर बादशाही फौजको परास्त कर दिया था। उस समय खुसरू भी विद्रोही थे और दिल्लीमें सेनाको परास्त कर अपने बलको

हद करनेको कोशिश कर रहे थे परन्तु मुगल लोग उस समय अहमदनगरमें थे। इस मौके पर मालिक अम्बर दौलताबादमें राजधानी स्थापित कर स्वाधीन भावसे राज्यकार्य चलाने लगे।

जहांगीरने मालिक अम्बरको दमन करनेके लिए खाँ जहान् लोदीके साहाय्यार्थ एक दल सेना अबदुल्लाखाँको अधीनतामें भेज दी। परन्तु अबदुल्लाखांके बिना किसीको सलाह लिए युद्ध करनेको अग्रसर होनेके कारण मालिक अम्बरने प्रचण्ड विक्रमसे सामना कर बादशाही फौजको परास्त कर दिया अबदुल्ला मरहटों द्वारा विशेष चतिग्रस्त हो कर भाग गये। खाँजहान्ने साहसी हो कर फिर उन पर आक्रमण नहीं किया।

१६१३ ई०में सूरत और अहमदनगरके शासनकर्त्ताओंके विशेष अनुरोध करने पर बादशाहने अंग्रेजोंको भारतमें रोजगार करनेका हक दे दिया। साथ ही उन लोगोंको सूरत, अहमदाबाद, काम्बो और गोग्रा इन चार नगरोंमें कोठी बनानेको भी इजाजत दे दी। इन्होंने अंग्रेजोंसे एक दूत मांगा, जिसके अनुसार १६१५ ई०में सर टमस-रो दूत बन कर जहांगीरके दरबारमें आये। ये जहांगीरके दरबार और चरित्रका वर्णन कर गये हैं। सर टमस-रो लिखते है कि, जहांगीरके दैनिक नियम इस प्रकार थे—पहले वे उपासना करते थे, फिर उनके पास ४ ५ तरहके सुस्वादु और सुपक्व मांस लाये जाते थे, जिनको वे अपनो इच्छाके अनुसार थोड़ा थोड़ा खा कर बीच बीचमें शराब पोते जाते थे। इसके बाद वे खास कमरेमें जाते थे, जहां बिना आज्ञाके दूसरा कोई भी नहीं जा सकता था। वहां बैठ ४ ५ प्याले शराबके पीते और फिर अफोम खाते थे। सबके चले जाने पर २ घण्टे सोते थे। २ घण्टे बाद उन्हें जगा कर भोजन करा देना पड़ता था ; बाकीको रात सो कर बिताते थे।" सर टमस-रो और भी कहते हैं कि, जब वे पहले पहल आये थे, राजकार्यका प्रत्येक विभागमें ही यथेच्छा और विशृङ्खला थी। सूरतमें आ कर देखा कि, वहांके शासनकर्त्ता वणिकोंसे खाद्य सामग्री छीन रहे हैं और उन्हें नाममात्र मूल्य दे कर उनसे सब चीजें जबरन् ले रहे हैं। राज्यके भीतर सब ही जगह ध्वंसके चिह्न वर्त्तमान थे। परन्तु जहांगीरके दरबारको देख कर वे अत्यन्त विस्मित हुए थे। जहांगीर सर टमस-रोके साथ निष्कपटताका व्यवहार करते थे। प्रायः सब जगह बादशाह उन्हें साथ रखते थे। १६१३ ई०में ६ फरवरीको अंग्रेजोंके साथ जो सन्धि हुई थी, सर टमस-रो उसे ही दृढ़तर कर गये थे। यह सन्धि वेष्टके साथ हुई थी और इसीके नियमानुसार अंग्रेजोंको सैकड़ा पीछे ३॥) रुपयेसे अधिक आमदनीका महसूल नहीं देना पड़ेगा, यह स्थिर हुआ था।

बादशाहने चित्तोर जय करनेके अभिप्रायसे १६१० ई०में जो सेना भेजी थी, उसके अकृतकार्य होने पर क्रुद्ध हो कर वे सेना संग्रह करने लगे। १६१२ ई०के शेष भागमें उन्होंने अपने पुत्र खुर्रम (पीछे शाहजहां) को अधीनतामें एक दल बहुती सेना भेजी।

जहांगीरने बार बार राणा अमरसिंह द्वारा पराजित हो कर १६१३ ई०में यह प्रतिज्ञा की कि, अजमेर पहुंचते ही वे अपने विजयी पुत्र खुर्रमको राणाके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए भेजेंगे। यह प्रतिज्ञाकार्यमें भी परिणत हुई। राणा निस्सहाय थे, क्योंकि, हिन्दुस्थानके क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी लोग बादशाहको पदधूलिके प्रार्थी हो चुके थे। एक मात्र शिशोदीयकुल जातीय गौरवसे उन्नतमस्तक था। ऐसी दशामें और कितने दिनों तक वे महाबल पराक्रान्त दिल्लीश्वरके साथ युद्ध कर सकते थे। लगातार मुसलमानोंके साथ युद्ध कर ये क्रमशः हीनबल हो रहे थे, इनको सैन्य संख्या क्रमशः घट रही थी। उधर दिल्लीके बादशाह जहांगीरने बार बार परास्त होनके उपरान्त असंख्य सेनाके साथ कुमार खुर्रमको मेवारगौरव ध्वंस करनेके लिए भेज दिया। राणा अमरसिंह इतने कष्टसहिष्णु न थे। कुछ भी हो, अतुलवीर प्रतापसिंहके वंशधर होनेके कारण ही वे अब तक दिल्लीके बादशाहके साथ युद्ध करते रहे थे। अबको बार उनसे युद्ध न हो सका। १६१४ ई०में राणा अमरसिंहने जहांगीरको अधीनता स्वीकार कर खुर्रमके पास शुभकर्ण और हरिदासको भेजा। जहांगीरको खुर्रमसे जब राणाके अधीनता स्वीकारका समाचार मिला, तब उन्होंने राणाको अभय देनेके लिए पत्र लिखा। इसके बाद

उन्हें दिल्लीके अधीन राजाओंमें शुमार कर राज्य पर अभिषिक्त किया गया। राणाने अपने पुत्र कर्णको खुर्रमके साथ बादशाह-के पास भेज दिया। जहांगीरने उन्हें पांच हजार सेनाका अधिनायक बना दिया।

१६१५ ई०में एक दिन बादशाहने खुर्रमके साथ बैठ कर एकत्र शराब पी। खुर्रम पहले शराब न पीते थे, जहांगीरके अनुरोधसे उन्हें यह पहिले पहल शराब पीनी पड़ी। इसी वर्षमें मालिक अम्बरका उन्होंके पारिषदोंके साथ कुछ मनोमालिन्य हो गया। इसलिए उन लोगोंने आ कर सम्राट्की अधीनता स्वीकार कर ली। लौटते समय मालिक अम्बरकी सेनासे उन लोगोंका युद्ध हुआ, जिसमें मालिक अम्बरकी सेना पराजित हो कर भाग गई। कुछ दिन बाद मालिक अम्बरने आगे बढ़ कर बादशाही सेना पर आक्रमण किया। दोनोंमें युद्ध हुआ, आखिर बादशाहकी विजय हुई।

जहाँगीरके राजत्वके दशवें वर्ष पञ्जाबमें प्लेग फैली, जिससे बहुतोंकी अकाल मृत्यु हुई। इसी समय नामल आदि सात डकैतोंने मिल कर कोतवालीके खजानेसे चोरी कर ली। इन्हें पकड़ कर कड़ी सजाएँ दी गईं। १६१६ ई०में कुमार खुर्रमको १०००० अश्वारोहियोंका अधिपति बनाया गया और शाहजहाँ (अर्थात् पृथिवीके राजा) की उपाधि दे कर सम्राट्ने उन्हें अपने राज्यका उत्तराधिकारी मनोनीत किया। अबकी बार जहाँगीरने शाहजहाँको सेनापति बना कर मालिक अम्बरको भली भाँति सजा देनेके लिए दाक्षिणात्यकी तरफ भेज दिया। बादशाह खुद माण्डु तक उनके साथ गये थे। मालिक अम्बर परास्त हुए और अहमदनगर छोड़ कर भाग गये। विजयपुरके आदिलशाहने दिल्लीकी अधीनता स्वीकार कर ली। शाहजहाँके पराक्रमसे दक्षिणदेशमें मुगल प्रभुत्व स्थायी हो गया। शाहजहाँके लौट आने पर बादशाहने खुश हो कर उन्हें अपने सिंहासनके पास भिन्न आसन पर बैठने और उनके अधीन २०००० अश्वारोही सेना रखनेका अधिकार दिया।

इस समय जहांगीरने प्रचलित स्वर्ण-मुद्रासे २० गुने भारी स्वर्ण और रौप्यके सिक्के बनानेका आदेश दिया। यह सिक्का इन्होंने पहिले पहल चलाया था, इस लिए इसका नाम जहांगीर सिक्का पड़ गया। उड़ीसाके शासनकर्त्ता मुअजिमखाँके पुत्र मकरमखाँने खुरदाके राजाको परास्त कर उनका राज्य दिल्लीके अधीन कर लिया। १६१७ ई०में बादशाहने गुजरात पर अधिकार किया।

पहले सिक्कों पर एक तरफ बादशाहका नाम और दूसरी ओर स्थान, मास और सम्वत् लिखा रहता था। १६१८ ई०में जहांगीरने मासके बदले उस मासकी राशिके चिह्न (मेष, वृष, आदि) छापनेके लिए आज्ञा दी। इसी साल जहांगीरने एक कैदीको प्राणदण्डकी आज्ञा दी थी। परन्तु आज्ञा देनेके कुछ देर बाद उन्होंने अपने एक प्रिय पारिषदके अनुरोधसे उस हुक्मको रद्द करके उसके पैर काट लेनेका हुक्म दिया। किन्तु हाय! इस आदेशके पहुंचते ही उस अभागेका सिर धड़से अलग कर दिया गया था। इसलिए सम्राट्ने ऐसा नियम कर दिया कि, 'आजसे किसीके लिए प्राणदण्डका आदेश दिये जाने पर भी सूर्यास्तसे पहिले उसका वध न किया जायगा और सूर्यास्तके समय तक दण्डका किसी प्रकारसे परिवर्तन न हो, तो उसके अनुसार कार्य किया जायगा।'

१६१८ ई०में प्रसिद्ध विद्वान् शेख अबदुल हक दिल्लीसे बादशाहके दरबारमें आ कर रहने लगे, जहांगीर इनके प्रति अत्यन्त सौजन्य दिखलाते थे।

१६२० ई०में कृष्णवारके जमींदारोंने विद्रोही हो कर वहांके शासनकर्त्ता नमरूखाँको पराजित कर दिया। बादशाहने खबर पाते ही वहां दिलावरखाँके पुत्र जलालको भेजा। खुर्रमने कांगड़ा-दुर्ग अवरोध कर उस पर कब्जा कर लिया; वह दुर्ग बहुत ही प्राचीन था और कोई भी बादशाह उसे अधिकार न कर सका था। इसी समय दाक्षिणात्यमें विद्रोह उपस्थित हुआ। मालिक अम्बरने बहुत सी सेना इकट्ठी कर देश लूटना शुरू कर दिया। कभी कभी अतर्कित अवस्थामें बादशाही सेना पर आक्रमण कर उन्हें दिक करने लगे। इस समय कुमार खुर्रम कांगड़ा अवरोध करनेमें व्याप्त थे। प्रधान प्रधान योद्धा भी उनके साथ थे। इस लिए जहांगीर विद्रोहियोंको दमन करनेके लिए कौनसी नीतिका अव-

लम्बन करें, कुछ निश्चय न कर सके। उधर विद्रोहियों-ने बालाघाट और माण्डू तक बढ़ कर अधिवासियोंको तंग करना शुरू कर दिया था। सौभाग्यवश कांगड़ाकी विजयवार्त्ता शीघ्रही जहांगीरके कर्णगोचर हुई। बादशाहने युवराज खुर्रमको दाक्षिणात्यमें विजयके लिए भेजा। खुर्रम योग्य कर्मचारियोंको साथ ले दाक्षिणात्यको चल दिये। इनके आगमनसे विद्रोही डर गये। खुर्रमने अटल उत्साह और अदम्य साहसके साथ आगे बढ़ कर विद्रोहियोंको पूरी तरह पराहत कर दिया। मालिक अम्बरने भी इनकी अधीनता स्वीकार की। युद्धके व्यय स्वरूप उन्हें ५० लाख रुपये बादशाहके खजानेमें भेजने पड़े। इसी समय खुर्रमके अनुरोधसे खुशरूको कारामुक्त किया गया ; किन्तु शीघ्र ही शूल वेदनासे उनकी मृत्यु हो गई। कोई कोई इतिहास-लेखक लिखते हैं कि, बादशाहने काश्मीरसे लौटते समय लाहोरमें तम्बू डाले थे और वहीं १६२२ ई०में खुसरूकी मृत्यु हुई थी।

नूरजहान्के पिता अत्यन्त दक्ष और राजनीतिज्ञ थे। नूरजहाँ पिताके परामर्शानुसार चल कर ही राजकार्यमें विशेष क्षमताशालिनी हुई थीं। १६२२ ई०में नूरजहान्के पिताकी मृत्यु हुई। नूरजहांने, पिताके उपदेशके न मिलनेसे अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करके जहांगीरकी शासन विधिको अत्यन्त शिथिल कर दिया। उन्होंने बादशाहके कनिष्ठ पुत्र शाहरयारके साथ पहले पति शेर अफगानके औरससे उत्पन्न अपनी कन्याका विवाह कर दिया। अब उनकी इच्छा हुई कि, शाहरयार ही भारतका भावी सम्राट् हो। परन्तु पहले उन्होंने ही उद्योग करके खुर्रमको भावी सम्राट् बनानेके लिए जहांगीरको सहमत किया था। कुछ भी हो, अब शाहजहांको स्थानान्तरित करनेका मौका देखने लगीं, क्योंकि उनको स्थानान्तरित किये बिना उनके उद्देश्य सिद्धिका दूसरा कोई मार्ग नहीं था। मौका भी जल्द हाथ लगा।

१६२१ ई०के शेष भागमें पारसके शाह अब्बासने कान्दाहार पर आक्रमण किया था। नूरजहान्की औरसे उत्तेजना पा कर बादशाहने उक्त प्रदेशको अधिकार करनेके लिए शाहजहांको शीघ्र ही जानेकी आज्ञा दी। शाहजहान् इस मायाचारको समझ गये। उन्होंने कहला भेजा कि, 'भविष्यतमें मुझे सिंहासनके मिलनेमें किसी तरहकी गड़बड़ी न होगी, इसका सन्तोषजनक निदर्शन मिले बिना मैं वहां नहीं जा सकता।" बादशाहने शाहजहान्की बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वरन् उनके अधीनस्थ प्रधान प्रधान कर्मचारियों और सेनाको भेज देनेका आदेश दिया। १६२२ ई०के प्रारम्भमें शाहजहान्ने शाहरयारकी कई एक जागीरें अधिकृत कर लीं और उनके कर्मचारी-अशरफ उल-मुल्कके साथ एक खण्ड युद्ध कर डाला। इस पर जहांगीरने विद्रोही कह कर उनको तिरस्कृत किया और उनकी सारी सेना शाहरयारकी सेनामें मिला देनेका आदेश दिया। शाहजहां आगरा अवरोध करनेको अग्रसर हुए। खान्खानान्ने शाहजहांके साथ मिल कर लूटना प्रारम्भ कर दिया। जहांगीरने विद्रोहियोंके विरुद्ध महावतखां और अबदुल्लाखांको भेजा। किन्तु अबदुल्लाने शत्रुओंसे सब रहस्य जान लिया।

पहले जब बादशाह अकबर जीवित थे और सलीम अजमेरके शासनकर्त्ता थे, उस समय उन्होंने एक बार दिल्लीके सिंहासनको प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। अकबर जब विद्रोह दमन करनेके लिए राजधानी छोड़ कर दक्षिण देशको गये थे, उस समय अकबरकी अनुपस्थितिमें जहांगीर दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए थे ; किन्तु रास्ते ही में अकबरने उन्हें परास्त कर इसका बदला चुका दिया था। उसी तरह अब जहांगीरके जीते जी ही साम्राज्यको ले कर उनके पुत्रोंमें युद्ध होने लगा। पहले जहांगीरने जिस तरह अपने वृद्ध पिताको लांछित किया था, उसी तरह उनके प्रिय पुत्र शाहजहान् विद्रोही हो कर उन्हें सताने लगे। १६२३ ई०में बादशाह खुद उनके विरुद्ध लड़ने चले। राजपूतानाके पास दोनों सेनाओंमें घमसान युद्ध हुआ। शाहजहां पराजित हो कर माण्डूकी तरफ भाग गये। बादशाहने अजमेर तक उनका पीछा किया और कुमार पारविजको प्रधान सेनापति नियुक्त कर महावतखां, महाराज गजसिंह, फज़लखां, राजा रामदास आदि सुदक्ष कर्मचारियोंके साथ एक दल

सेना भेजी। नर्मदा नदीके किनारे कालिया नामक स्थान पर दोनों पक्षके तम्बू तन गये और महाबतखाँके प्रयत्नसे युद्धके समय शाहजहांके विश्वस्त अनुचरवर्ग परविजकी तरफ आ मिले। उधर गुजरातके शासन-कर्त्ताने शाहजहांका पक्ष छोड़ दिया। इससे शाहजहान् डर कर बुरहानपुर भाग गये। यहां आने पर खानखानान्ने महाबतकी तरफ मिलनेके लिए उनके पास एक दूत भेजा। वह दूत शाहजहांके अनुचरों द्वारा पकड़ा गया। शाहजहांने क्रोधित हो कर खानखानान्को कैद कर रक्खा। परन्तु अन्तमें अत्यन्त दुर्दशामें पड़ कर उन्हें मुक्त कर दिया। खानखानान् दोनों पक्षमें सन्धि करानेकी चेष्टा करने लगे। एक रात्रिके समय कुछ साहसी बादशाही सैन्यने अकस्मात् विद्रोहियों पर आक्रमणपूर्वक उन्हें परास्त कर खानखानान्को महताबके सामने उपस्थित किया। शाहजहान् तैलिङ्गाको भाग गये। उस स्थानसे १६२४ ई०में वे बङ्गालमें आये। स्थानीय शासन-कर्त्ताओंने उनका साथ दिया; जिससे उन्होंने राज-महलके शासनकर्त्ताको परास्त कर उक्त प्रदेश पर कब्जा कर लिया। इधर परविज और महाबत उनके पीछे पीछे इलाहाबाद तक आने पर शाहजहान्के साथ युद्ध हुआ। किन्तु अन्तमें वे पराजित हो कर दाक्षिणात्यकी तरफ भाग गये। वहां जा कर वे मालिक अम्बरसे मिल गये। मालिक अम्बरके साथ उन्होंने बुरहानपुर घेर लिया। परन्तु सर-बुलन्दरायके वीरत्वसे वे उक्त प्रदेशको जीत न सके। इधर परविज और महाबतखाँ नर्मदा तक अग्रसर हुए। शाहजहां इस खबरको पा कर बहुत डर गये और १६२५ ई०में उन्होंने अपने पितासे क्षमा प्रार्थना की। बादशाहने उनके पुत्र दारा और औरङ्ग-जेबको प्रतिभूस्वरूप रख उनके तमाम दोष क्षमा कर दिये। शाहजहान्ने अपने अधिकृत प्रदेशको छोड़ दिया। बादशाहने बालाघाट प्रदेश उनको अर्पण किया।

इधर महाबतखाँ साम्राज्यके भीतर अत्यन्त क्षमता-शाली हो उठे। इससे नूरजहान्को अत्यन्त ईर्षा और आशङ्का हुई। बङ्गदेशमें रहते समय महाबतके विरुद्ध बहुतसे अभियोग उपस्थित हुए थे। उन्होंने बादशाहके धनका अपव्यय किया था और राजधानीमें बादशाहको प्रायः हस्ती नहीं भेजा था। १६२६ ई०में महाबतको आगरा बुलाया गया। महाबतखाँ समझ गये कि, बेगम नूरजहान् और आसफखाँके उत्तेजित करने पर बादशाहने उन्हें अपमानित करनेके लिए ही बुलाया है। इस लिए वे ५००० राजपूतोंके साथ आगराकी तरफ चल दिये। मुगलोंमें ऐसा नियम प्रचलित था उच्चपदस्थ कर्मचारियोंको अपनी कन्याके विवाह स्थिर करनेसे पहले बादशाहका हुक्म लेना पड़ता था। महाबतखाँने ऐसा न कर सरकारदारके साथ अपनी कन्याका विवाह स्थिर कर दिया था। कहावत राजाज्ञाके मिलने पर बादशाहके पास उपस्थित हुए। सम्राट् उस समय नूर-जहान्के साथ काबुल जा रहे थे। विपाशा नदीके किनारे उनके डेरे लगाये गये थे। महाबतने चिर-प्रचलित नियमको भङ्ग करनेके कारण अपने भावी जामाताको क्षमा प्रार्थनाके लिए बादशाहके पास भेज दिया। युवकको सम्राट् शिविरमें प्रवेश करने पर हाथीसे उतार दिया गया, पोशाक खोल कर भद्दी पोशाक पहनाई गई और सबके सामने उनके शरीरमें कांटे चुभाये जाने लगे। पीछे उन्हें एक दुबले घोड़े पर—पूंछकी तरफ मुंह चढ़ा कर चोरों तरफ घुमाया गया। बादशाहने उनकी सारी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली।

महाबतके आगे बढ़ने पर उन्हें शिविरके भीतर जानेसे रोक दिया गया। महाबतने इस तरह अपमानित हो कर और अपने प्राणनाशकी तय्यारियोंको देख कर बादशाहको वशमें लानेकी ठान ली। बादशाहने विपाशा नदीको पार करनेके लिए जो पुल बनवाया था महाबतने उस नष्ट कर देनेके लिए अपने अनुचरोंको आज्ञा दे दी और वे रात्रिके समय १०० अनुचरोंको साथ ले सम्राट्-शिविरमें घुस पड़े। बादशाह सो रहे थे, जगने पर उन्होंने अपनेको महाबतकी सेना द्वारा परिवेष्ठित पाया। उन्होंने महाबतसे पूछा—"विश्वासघातक तेरा अभिप्राय क्या है?" महाबतने उत्तर दिया—"मैंने अपने जीवनकी रक्षाके लिए ऐसा किया है।" कुछ भी हो, बादशाहको विशेषरूपसे सम्मान कर उन्हें हाथी पर बैठ कर अपने शिविरको ले चले। कुछ दूर अग्रसर होने

पर गजपतिसिंह सम्राट्का खास हाथी ले आये। बादशाहके उस पर सवार होने पर उनके पास गजपति भी बैठ गये। बादशाहने किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी, वे महावतके साथ चल दिये। उधर नूरजहान्ने छद्मवेश धारण कर जवाहिर खाँके साथ नदीके उस पार राजकीय सैन्य शिविरमें प्रवेश किया। नूरजहान् अपने भाईके साथ मिल कर सम्राट्के उद्धारार्थ युद्धके लिए आयोजना करने लगीं। उन्होंने कहा सेनापतिके दोषसे ही ऐसा हुआ; क्योंकि उन्होंने बादशाहकी रक्षाके लिए सेनाको शिविरमें न रख करके नदीके उस पार भेज दिया था, और इसीलिए महावत बिना बाधाके बादशाहको काबू करनेमें समर्थ हुआ।" जिस रातमें बादशाह महावतके हाथ बन्दी हुए, उसके दूसरे दिन प्रातःकाल ही नूरजहान् राजकीय सेनाके आगे आगे चलीं; किन्तु वे नदी पार न हो सकीं; क्योंकि पुल तो शत्रुओंने पहले हीसे तोड़ दिया था। नूरजहान्ने पैदल पार होनेके लिए आदेश दिया और वे ही पहले पानीमें उतरीं; पर उस पारसे शत्रुओं द्वारा तीरोंकी वर्षा होनेके कारण वे नदी पार न हो सकीं। फिदाई खाँने महावतकी सेना पर फिर एक बार आक्रमण किया, पर वह भी निष्फल हुआ। नूरजहान् बादशाहके उद्धारके लिए कोई भी उपाय न देख हताश हो गईं और अपनी इच्छासे वे बन्दी बादशाहके साथ मिल गईं।

जहांगीर।

महावत बन्दी सम्राट्को ले कर काबुल चल दिये। यहां आ कर जहांगीर महावतके साथ स्नेहसूचक व्यवहार करने लगे। नूरजहान् बादशाहके उद्धारके लिए उनको गुप्त भावसे जो कुछ कहती थीं, वे प्रायः उस बातको महावतसे कह दिया करते थे। जहांगीरने महावतसे यह बात भी कह दी थी कि, सायस्ता खाँको खाँ जब कभी मौका पावेंगे तभी वे उन्हें (महावतको) गोलीके आघातसे मार डालेंगे। इन सब कारणोंसे महावतने बादशाहका कारावास शिथिल कर दिया। इधर राजपूत विदेशमें उपस्थित थे और स्थानीय लोग बादशाहके प्रति सदय थे। इसी मौकेमें नूरजहान् अपने पक्षकी वृद्धि करने लगीं। होशियारखाँ नामक इनके एक अनुचर लाहोरसे २००० सेना लेकर काबुलकी तरफ अग्रसर हुए। काबुलमें बहुत सेना इकट्ठी की गई। बादशाहने एक दिन महावतके पास सम्वाद भेजा कि, वे नूरजहांकी सेना देखना चाहते हैं और उस दिन महावतकी सेना कूच-कवायद न करे; क्योंकि ऐसा होनेमें दोनों पक्षमें संघर्ष होनेकी सम्भावना है। नूरजहांकी सेना सम्राट्की तरफ इस तरह अग्रसर हुई कि, जिससे महावतके रजपूतरक्षक सम्राट्से अलग हट गये। नूरजहान्के भाई आसफ खाँ महावतके हाथ बन्दी हो गये थे, इसलिए उन पर आक्रमण न कर जहांगीरने उनके पास निम्न लिखित चार आदेश भेज दिये—

(१) महावत शाहजहान्के विरुद्ध यात्रा करें। (२) आसफखां और उनके पुत्रको बादशाहके पास पहुंचाया जाय। (३) युवराज दानियलके पुत्रोंको वापिस भेज दें। (४) अपनी जामिनके लिए लश्करीको राजदरबारमें भेज दें। इसके सिवा उन्हें यह भी जतला दिया कि, यदि वे आसफखांको भेजनेमें देर करेंगे, तो उनके विरुद्ध सेना भेजी जायगी। बादशाहने काबुलसे लौट कर आसफखांको पञ्जाबका शासनकर्त्ता नियुक्त किया।

शाहजहान्ने बादशाहकी अधीनता स्वीकार कर ली और कुछ अनुचरोंके साथ वे अजमेर चले गये। पारस्यराज शाह अब्बासके साथ शाहजहांकी मित्रता थी। उन्हें आशा थी कि, अब्बासके पास जानेसे उनकी कुछ दुर्दशा सुधर जायगी। इसी आशासे वे अजमेर गये थे। वहां पहुंचने पर शाहरयारके विश्वस्त अनुचर शरीफ उल्मुल्क उन पर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़े। परन्तु डर कर ही हो अथवा और किसी कारणसे वे

आक्रमण न कर किलेमें घुस गये। शाहजहान्‌की मुमानियत होने पर भी उनके एक अनुचरने किले पर चढ़ाई कर दी।

शाहजहान् वास्तवमें उस समय विद्रोही न थे उनके पास कुल १००० ही सेना थी। उनके मित्र राजा कृष्णचन्द्रकी भी उस समय मृत्यु हो चुकी थी। शाहजहान् मुसीबतके मारे अजमेर गये थे। अजमेरके दुर्ग पर आक्रमणका सम्वाद सुन बादशाहने महावतखाँको शाहजहांके विरुद्ध युद्धके लिए आदेश दिया। शाहजहान्‌की सेना जब दुर्गको जीत न सकी, तब वे पारस्यकी तरफ चल दिये। परन्तु रास्ते हीमें उन्हें भाई परविजकी मृत्यु-सम्वाद मिला, जिससे उनके मनकी गति पलट गई। इस दुरवस्थामें भी उनकी राज्य लाभकी पिपासा बलवती हो उठी। वे शीघ्र ही नासिक उपस्थित हुए। महावत सम्राट् द्वारा शाहजहान्‌के विरुद्ध भेजे गये थे; किन्तु शाहजहांके दाक्षिणात्यमें चले जानेसे महावतने उन्हींका साथ दिया।

ये दोनों मिल कर क्या करेंगे, इस बातका निश्चय होनेसे पहले ही उन्हें शाहरयारकी पीड़ा और बादशाहकी मृत्युका सम्वाद मिला। शाहजहान् सिंहासन अधिकार करनेके लिए शीघ्र ही राजधानीकी तरफ चल दिये।

काश्मीरमें रहते समय बादशाह बहुत ही अस्वस्थ हो गये थे। उस देशकी आब-हवा इनको सह्य न हुई। इसलिए वे १६२० ई०में लाहोर लौट आये।

जहांगीरको शिकार खेलनेका बड़ा शौक था, परन्तु इधर उन्होंने बहुत दिनोंसे शिकार न खेला था। लाहोर लौटते समय वैरामकाला नामक स्थानमें उन्होंने शिविर स्थापन किया था। एक दिन वे शिविरके द्वार पर बैठे थे, इतनेमें उन्होंने देखा कि, स्थानीय कुछ लोग एक हरिणको भगाये ले जा रहे हैं। बादशाहने हरिण पर गोली चलाई; गोलीके लगते ही वह मृग दौड़ा हुआ मृगीके पास पहुंचा और वहीं उसने प्राण गवां दिये। इसी समय एक आदमी भी मर गया था यह आदमी हरिणके पीछे था और बन्दूककी आवाजसे ऊंचे स्थानसे नीचे लुढ़क गया था। बादशाहने उसकी माको बहुत रुपये दिये, परन्तु इस आदमीकी मृत्युसे ये बहुत ही व्यथित हुए। वहांसे वे राजपुर गये। चलते समय उन्होंने शराब पीनेकी इच्छा प्रगट की; किन्तु शराबके आने पर वे उसे पी न सके। उनका शरीर क्रमशः अस्वस्थ होने लगा। उन्होंने अपने जीवनकी आशा छोड़ दी।

१०३१ हिजरामें २८ सफर तारीखके प्रातःकालके समय हिन्दुस्तानके बादशाह महम्मद नूरउद्दीन जहांगीरका दमाकी बीमारीसे शरीरान्त हो गया। यह बीमारी उन्हें बहुत दिनोंसे सता रही थी। दूसरे दिन उनका मृतशरीर लाहोर भेजा गया और नूरजहान्‌ने जो उद्यान बनवाया था, वहीं उन्हें समाधिस्थ किया गया। उन्होंने अपने लिए समाधिस्थान पहले हीसे बनवा लिया था। इस तरह बादशाह जहांगीर २२ वर्ष राज्य करके ५८ वर्षकी उम्रमें १६२७ ई०के २८ अक्टूबरको हमेशाके लिए सो गये।

जहांगीर अत्यन्त स्वेच्छाचारी और भ्रष्टचरित्र थे। उनके राजत्वकालमें अत्यन्त विशृङ्खलता फैल गई थी। इनके पिता (अकबर)को छोटेसे लगा कर बड़े तक सभी मानते और भक्ति करते थे, इसीलिए जहांगीर राजत्व करनेमें समर्थ हुए थे।

जहांगीर बचपनसे ही शराब आदि पीनेमें अभ्यस्त थे; किन्तु दूसरा कोई इस दोषसे दूषित न हो, इसके लिए उन्होंने कानूनकी व्यवस्था की थी। यूरोपके पर्यटकोंका कहना है कि, जहांगीर बड़े शिष्टाचारी और मिष्टभाषी सम्राट् थे। ये इङ्गलैण्डके राजा १म जेमसके समसामयिक थे। आश्चर्यका विषय है कि, इन दोनोंका राज्यकाल प्रायः समान था और चरित्रमें भी बहुत कम फर्क था। दोनों ही कौतुक और आमोदप्रिय थे। जहांगीरने १६१७ ई०में तम्बाकू न पीनेका हुक्म जारी किया, ठीक इसी समय इङ्गलैण्डमें भी ऐसा ही नियम जारी हुआ। जहांगीर क्षमाशाली थे, उन्होंने विद्रोही कुमार खुसरूको बहुत बार क्षमा किया था, तथा मानसिंह और खानखानान्‌के लिए भी यथेष्ट क्षमा दिखलाई थी। कभी कभी ये नृशंसमूर्ति भी धारण करते थे, जिस पर इनका क्रोध होता, उसे ये जिस तरह हो मारनेकी कोशिश करते थे। पहले इन्होंने अकबर-प्रवर्त्तित धर्म-

मतका अवलम्बन किया था ; किन्तु सिंहासन पर बैठ कर ये इस्लाम-धर्ममें कट्टर हो गये थे। अन्तिम समय फिर उनका यह भाव दूर हो गया था। उनके भजनालयमें बौद्ध और ईसाई धर्मकी तसवीरें मिलती थीं।

जहांगीर स्थापत्यविद्या और भास्करकार्यके अनुरागी थे। इन्होंने बादशाह अकबरका एक समाधि-मन्दिर बनवाया था। इनकी ऐसी इच्छा थी कि, यह मन्दिर पृथिवी पर सबसे उत्कृष्ट हो ; किन्तु खुशरूके विद्रोहसे चञ्चलचित्त होनेके कारण यह मन्दिर उनके आशानुरूप नहीं बन सका। कुछ भी हो, उन्होंने कई एक स्थान तोड़ कर फिरसे बनानेके लिए आदेश दिया था। जो बढ़िया तसवीरें बना सकते थे, बादशाह उन्हें काफी इनाम देते थे। उनका काव्य और संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवादमें विशेष अनुराग था। उनके बहुतसे सभासद् गजल बना कर इन्हें सुनाया करते थे। इनके राज्यमें फल-कर नहीं लया जाता था। इन्होंने इस प्रकारकी आज्ञा दी थी कि, 'अगर कोई आबादी ज़मीन पर फलोंके पेड़ लगावेगा तो उससे किसी तरहका महसूल न लिया जायगा।' जहांगीरने एक कहानीको सुन कर फलकर उठा दिया था। कहानी यह है—"एक दिन किसी राजाने सूर्यकिरणोंसे अत्यन्त उत्तप्त हो कर निकटवर्त्ती एक फलके उद्यानमें प्रवेश किया। वह उद्यानपालको देख कर राजाने कहा—यहां दाड़िम मिल सकता है या नहीं ! उद्यानपालने उन्हें दाड़िमका पेड़ दिखा दिया। राजाने एक कटोरी दाड़िमका रस मांगा। उद्यानपालकी लड़की पास ही खड़ी थी। उससे कहने पर उसने शीघ्र ही एक कटोरीमें दाड़िमका रस ला कर राजाको दिया। पीछे उक्त राजाके पूछने पर उद्यानपालने उत्तर दिया कि, 'मुझे फल बेच कर सालाना ३०० दीनारका लाभ होता है और इसके लिए मुझे किसी तरहका कर नहीं देना पड़ता।' इस बातको सुन कर राजाने मन ही मन सोचा कि, मेरे राज्यमें बहुतसे बाग हैं ; यदि प्रत्येक बागके लाभका दशमांश राजकरस्वरूप लिया जाय, तो राज्यकी आमदनी बहुत कुछ बढ़ जाय।' इसके बाद ही उन्होंने एक और कटोरी रस मांगा ; परन्तु अबकी बार रस लानेमें विलम्ब हुआ और मिला भी बहुत थोड़ा। राजाने इसका कारण पूछा, तो लड़कीने यह जवाब दिया 'पहले एक ही दाड़िमके रससे कटोरी भर गई थी, परन्तु इस बार बहुतसे दाड़िमोंके निचोड़ने पर भी कटोरी न भरी।' इस पर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उद्यानपालने कहा-'राजाकी इच्छा होने पर फसल अधिक होती है। महाशय शायद आप इस देशके राजा हैं। सम्भवतः इस उद्यानकी आमदनीकी बात सुन कर आपके मनकी गति पलट गई है। इसीलिए कटोरी भर रस नहीं निकला है।' राजाने लज्जित हो कर मन ही मन प्रतिज्ञा की कि—'यदि यह सत्य है, तो कभी भी फल-कर न लूंगा।' कुछ देर पीछे उन्होंने फिर कटोरी भर रस मंगाया। लड़कीने शीघ्र ही कटोरी भर कर रस ला कर राजाको दिया। सुल्तानने उद्यानपालकी बुद्धि और ज्ञानकी प्रशंसा कर उसको अपना परिचय दिया। उन्होंने लोगोंको शिक्षा देने और इस घटनाको चिरस्मरणीय बनानेके लिए उस कन्याके साथ विवाह कर लिया।" बादशाह जहांगीरने इसी आख्यायिकाको सुन कर फल-कर नहीं लगाया था।

जहांगीरके राजत्वकालमें नूरजहान् और उनकी माताने अतरका आविष्कार किया था।

जहांगीर देखनेमें सुडौल, सुपुरुष, और लम्बे कदके थे। इनका वक्षस्थल अत्यन्त प्रशस्त, बाहें लम्बी और रंग ललाईको लिए हुए था। ये कानोंमें सोनेके कुण्डल पहनते थे। इन्होंने काबुल, कान्दाहार और हिन्दुस्तानमें नाना प्रकारके सिक्के चलाये थे। इनके समयमें राजदरबारमें फारसी भाषा व्यवहृत होती थी। जनसाधारण हिन्दी भाषा बोलते थे। बादशाह और उनके कई एक वजीर तुर्की भाषामें वार्तालाप करते थे। जहांगीरका इतिहास बहुतोंने लिखा है ; इसके सिवा राजत्वके १८ वर्ष तकका इतिहास जहांगीर खुद लिख गये हैं। शेषके कई वर्षोंका इतिहास महम्मद हादी द्वारा लिखा गया है। जहांगीर चगताई तुर्की भाषामें लिखते थे।

जहांगीर कुलिखां—बादशाह अकबर और जहांगीरके एक कर्मचारी, ये खां आजिम मिर्जा अजीज कोकाके पुत्र थे। १६३१ ई०में शाहजहान्के राजत्वके ५वें वर्ष इनकी मौत हुई।

जहांगीर कुलीखां काबुली—बादशाह जहांगीरकी राजसभाके एक अमीर। ये पांच हजार सेनाके अधिनायक थे। १६०७ ई०में जहांगीर बादशाहने इन्हें बङ्गालका शासनकर्त्ता नियुक्त किया था। १६०८ ई०में बङ्गाल होमें इनकी मृत्यु हुई।

जहांगीर मिर्जा—१ दिल्लीश्वर २य अकबरके ज्येष्ठ पुत्र। इन्होंने दिल्लीके रेसीडेण्ट मि० सिटनको गोली मारी थी, इसलिए राजकीय कैदियोंको तरह ये इलाहाबाद लाये गये और वहां सुलतान खुशरूके उद्यानमें कई वर्ष कैदीको तरह रहे। १८२१ ई०में ३१ वर्षको उम्रमें उस उद्यान होमें इनको मृत्यु हुई। इनको समाधिस्थ करनेके समय इलाहाबादके किलेसे ३१ तोपें दागी गईं थीं। पहले तो उसी उद्यानमें उन्हें समाधिस्थ किया गया था, पीछे उनका अङ्काल दिल्लीमें ले जा कर निजामउद्दीन् आलीयाके कबरिस्तानमें गाड़ा गया था।

२ अमीर तैमूरके ज्येष्ठपुत्र। १५७४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके लड़केका नाम पीर महम्मद था।

जहांगीरा—विहारके भागलपुर जिलेमें गङ्गाका एक द्वीप यह अक्षा० २५ १५ उ० और देशा० ८३ ४४ पू०में अवस्थित है। इसमें एक लिङ्ग, एक मन्दिर और बहुतसी पत्थरकी खुदी हुई चीजें हैं।

जहांगीराबाद—युक्तप्रदेशमें बुलन्दशहर जिलेकी अनूपशहर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° २४' उ० और देशा० ७८° ४५' पू० बुलन्द शहरसे १५ मील पूर्वमें अवस्थित है। बड़गूजरके राजा अनुरायने इस नगरको स्थापना की थी और वे ही अपने प्रभु जहांगीरके नाम पर इसका नाम जहांगीराबाद रख कर गये हैं। यहां छींट, गाड़ी और रथ आदि तैयार होते हैं। यहांका वाणिज्य दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। यहां विद्यालय, सराय, थाना, और डाकघर हैं। नगरके चारों ओरको जमीन उर्वरा है। जिसमें तरह तरहके फल, तिल और सरसों पैदा होती है।

जहांगीराबाद—अयोध्याके सीतापुर जिलेका एक शहर। यह सीतापुरसे २८ मील पूर्व भड़ौचके उत्त पथ प्रान्तमें अवस्थित है। यहां बहुतसे जुलाहे और मुसलमान, तांती वास करते हैं और प्रति पक्षमें एक हाट लगती है

जहांगीरी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका जड़ाऊ गहना जो हाथमें पहना जाता है। २ एक प्रकारको चूड़ी जो लाखकी बनी होती है।

जहांदोद, जहांदीदा (फा० वि०) अनुभवी, जिसने दुनियांको देख कर बहुत कुछ तजरबा किया हो।

जहांपनाह (फा० पु०) संसारका रक्षक, जहानका मालिक। इस शब्दका प्रयोग बादशाह वा बड़े राजाके लिए किया जाता है।

जहा (सं० स्त्री०) जहातिहा वाहुलकात् श। मुण्डतिका, गोरखमुंडी।

जहाज (अ० पु०) जलयान, समुद्रयान, अर्णवपोत, वह सवारी या बहुत बड़ी नाव जो जलपथसे जानेके काम आती है और खूब गहरे पानी विशेषतः समुद्रमें चलती है। इसे अंग्रेजीमें Ship (शिप) कहते हैं। जलपथसे जाने आने वा द्रव्यादि एक देशसे दूसरे देशको ले जानेके लिए मानवजातिने जिस यानका आविष्कार किया था, उसीका नाम 'जहाज' है।

प्राचीन कालमें मानवजातिने असाधारण धैर्यके साथ, सैकड़ों कष्टोंका सामना करते हुए सर्वदा कुछ न कुछ प्रयत्न करते रहनेसे दिनों दिन इस यानके बनानेमें सफलता प्राप्त की थी। यह सहज ही बोधगम्य है कि वर्तमान समयमें जो बड़े बड़े जहाज दीख रहे हैं, वे एक ही समयमें उत्पन्न नहीं हुए, बल्कि कई युगोंके क्रमविकाशसे ही उनकी वर्तमान उन्नति हुई है।

जहाजके क्रमविकाशमें निम्न लिखित स्तर नियत किये जा सकते हैं। जैसे—१ प्रथम अवस्थामें पानीमें लकड़ी वा सूखी लता आदिको एक साथ बांध कर उन पर सवार हो पार हुआ करते थे। २ पीछे उसमें कुछ उन्नति हुई, लोग वृक्षके स्थूलभाग (काण्ड) में गड्ढा कर एक प्रकारकी डोंगी बना, उस पर बैठ कर पार होने लगे। (३) इसके बाद पशुचर्म वा वृक्षके वल्कलोंको इकट्ठा कर उससे एक प्रकारकी मजबुत नाव बनाई जाने लगी। पुरातत्त्वविद् ऐतिहासिकोंका कहना है कि अति प्राचीनकालमें भारतवर्षमें द्राविड़ जातिकी एक शाखा चर्म-निर्मित छोटी छोटी नावों पर चढ़ कर महासमुद्रको भीषण तरङ्गमालाओंको अतिक्रम करती

हुई थी लिया महादेशमें* पहुंची थी। (४) उसके बाद काष्ठ-निर्मित बहुत सी नावोंको पशुकी स्नायु या लताओंकी रस्सीसे बांध कर वृहत् जलयान बनानेकी प्रचेष्टा की गई। (५) उसको भी कुछ उन्नति करके भीतरसे रस्सी आदिके द्वारा तख्तोंको बांध कर बड़ी नाव बनाई गई। (६) उसके बाद, पहले जहाजके अवयवोंको बना कर फिर उसमें कीलोंसे तख्ता और दांड़ पतवार आदि बैठा कर जहाज बनानेकी रीति प्रचलित हुई।

उल्लिखित प्रत्येक प्रकार जलयान अब तक असभ्यों-के ही व्यवहारमें आया करता है। किन्तु उन्नतिशील देशोंने सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ जलयानकी भी यथेष्ट उन्नति कर वाणिज्य और भावविनिमयमें सुगमता कर ली है।

जहाजका इतिहास—पाश्चात्य विद्वानोंने जहाजकी क्रमोन्नतिका वर्णन करते हुए वा मानव द्वारा उसके व्यवहारकी प्राचीनता देखाते हुए, बतलाया है कि, मिसरदेशमें तीन हजार वर्ष पहले जहाज व्यवहृत होता था। किन्तु यदि उन्हें हमारे देशके वैदिक साहित्य और चित्रशिल्पादिके विषयमें कुछ परिज्ञान होता, तो सम्भव है उन्हें ऐसे भ्रममें न पड़ना पड़ता। हमारे देशमें ही सबसे पहले जहाज बनाये और काममें लाये जाते थे। इसलिए पहले हम अपने देशके अर्णवपोतका (अति प्राचीनकालसे वर्त्तमान समय तकका) इतिहास लिख कर, पीछे पाश्चात्य देशमें उसके क्रमविकाशके विषयका आलोचना करेंगे।

ऋग्वेदका प्रथमांश कितने समय पहले रचा गया था, इस विषयमें विद्वानोंका मतभेद है। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके मतसे हिन्दुओंका परम पवित्र ऋग्वेद आजसे तीस हजार वर्ष पहले रचा गया था। यद्यपि यह मत सबके लिए मान्य नहीं है, तथापि यह निश्चित है कि ऋग्वेदकी रचना अति प्राचीनकालमें हुई थी। इस ऋग्वेदमें हमें जहाज और समुद्र यात्राके अनेक उल्लेख मिलते हैं।

* वर्तमान अष्ट्रेलियाके आदिम अधिवासी सम्भवतः उन्हीं द्राविड़ोंकी सन्तान है।

"वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेदनावः समुद्रियः।" (ऋक् १।२५।७)

इस पदमें इस बातका उल्लेख है कि वरुणदेव समुद्रके उन मार्गोंसे परिचित थे जहांसे जहाज जाया आया करते थे। इस प्रथम मण्डलके सिवा हमें और भी एक सूक्तमें समुद्रयात्राकी उत्कृष्ट वर्णनामूलक एक प्रार्थना मिलती है—

"द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय।
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये॥"

अर्थात्—'हे विश्वदेव! जिनका चारों ओर ही मुख है, वे हमारे शत्रुओंको उसी प्रकार भगा दें, जिस प्रकार जहाज उस पार भेज दिया जाता है। तुम हम लोगोंको समुद्रमें जहाज पर चढ़ा कर ले जाओ, जिससे सबका मङ्गल हो।' और एक जगह, वणिकोंने धनकी लालसासे विदेशमें जहाज भेजे थे, इस बातका उल्लेख है—

"उवासोषा उच्छाच्चनु देवी जीरा रथानां।
ये अस्या आचरणेषु दधिरे समुद्रे न श्रवस्यवः॥"

(ऋक् १।४८।३)

इसके अलावा अन्यत्र एक जगह (ऋक् १।५६।२) ऐसे वणिकोंका उल्लेख आया है कि जिनका कर्मक्षेत्र किसी सीमाके द्वार आवद्ध नहीं है; लाभके लिए वे सर्वत्र जाया करते थे और प्रत्येक समुद्रमें उनके जहाज चलते थे। सातवें मण्डलके एक सूक्तमें लिखा है—वशिष्ठ और वरुणने बड़े कौशलसे एक जहाज बनवाया था और उस पर चढ़ कर भ्रमण किया था। (ऋक् ७।८८।३-४) समुद्रयात्राके विषयमें प्रथम मण्डलकी एक कहानीसे (१।११६।१) हम जान सकते हैं कि बहुत प्राचीन समय-में हमारे देशमें एकसौ डांड़ोंसे खेया जाने वाला जहाज भी मौजूद था। कहानी इस प्रकार है—ऋषिने तुग्र अपने पुत्र भुज्युको शत्रुके विनाशनार्थ किसी दूरदेशमें भेजा था; किन्तु मार्गमें जहाजके टूट जानेसे वे अनुचर सहित समुद्रमें गिर पड़े। इस विपत्तिमें अश्विनी-युगलने एकसौ डांड़ोंका जहाज ला कर उनकी रक्षा की।

रामायणके पढ़नेसे भी हमें इस बातका परिज्ञान हो जाता है कि प्राचीन भारतमें जहाज और समुद्रयात्रा-

की प्रथा विद्यमान थी। जिस समय सीताके उद्धारके लिए सुग्रीवने चारों तरफ वानर भेजे थे, उस समय एक बार उन्हें समुद्र तीरस्थ नगर और पर्वतादि पर जानेका आदेश दिया था तथा कोषकारोंके देशमें जानेके लिए कहा था। विद्वान् लोग इस "कोषकार" शब्दका अर्थ चीन समझते हैं। चीनके साथ हमारा वाणिज्य होता था, इस बातका प्रमाण इसीसे मिल जाता है कि रेशमी वस्त्रका नाम पहले 'चीनाशुक' था। इसके सिवा उन्हें यवद्वीप और सुवर्ण द्वीप जानेके लिए भी कहा गया था।

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णकरमंडितम्"
"ततो रक्तजलं भीमं लोहितं नाम सागरम्"

यवद्वीपको जावा और सुवर्णद्वीपको सुमात्रा एवं मलय प्रदेशको प्राय समझा जाता है। यह बड़े गौरव की बात है कि उस प्राचीन कालमें भी हिन्दूगण लोहितसागर वा Red Sea से गमनागमन करते थे।

अयोध्या काण्डमें जहाजों पर चढ़ कर जलयुद्ध करनेका उल्लेख मिलता है। (अयोध्याकांड, ८४।७८) महाभारतसे यह भी ज्ञात होता है कि पाण्डवोंको दिग्विजयके उपलक्षमें अनेक देशोंका भारतसे नौवाणिज्यका सम्बन्ध हुआ था। सभापर्वमें लिखा है—सहदेवने समुद्रतीरवर्ती कुछ द्वीपोंमें जा कर वहांके म्लेच्छ अधिवासियोंको पराजित किया था यथा—

"सागरद्वीपवासांश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान्।
निषादान् पुरुषादांश्च कर्णप्रावरणानपि।"

द्रोणपर्वमें कुछ वणिकोंका उल्लेख है; उनका जहाज टूट गया था एवं किसी द्वीपमें जा कर उन्होंने अपनी रक्षा की थी। उस जगह जो "विध्वगिवाहता ह्यना नौरिवासीमहार्णवे" यह वाक्य दिया गया है, उससे सूचित होता है कि महासमुद्रमें भी हिन्दुओंके जहाज चलते थे, उस समय हिन्दुओंमें समुद्रयात्रा प्रचलित थी, यह उनके साधारण वार्तालापसे स्पष्ट मालूम हो जाता है। शान्तिपर्वमें भीष्मदेव कहते हैं—"कर्म और ज्ञानके द्वारा मुक्ति प्राप्त करना उतना ही सुनिश्चित है, जितना कि वणिकोंके लिए समुद्रवाही वाणिज्यसे धन उपार्जन करना।" महाभारतके इस कथनसे भी हमें तत्कालीन जहाजके उत्कृष्टत्वकी स्पष्ट धारणा हो सकती है कि—'जतुगृहके जलने पर पाण्डव जहाज पर चढ़ कर भाग गये।

"ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा।
पार्थानां दर्शयामास मनोमारुत गामिनीम्॥
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्।
शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विस्रंसिभिः कृताम्॥"

(आदिपर्व १४९।४-५)

स्मृतिशास्त्रमें भी हम भारतीय जहाजके विषयमें नाना प्रकारका विवरण देख सकते हैं। मनुसंहितामें जहाजके यात्रियोंसे नाविकोंका कानूनके अनुसार सम्बन्ध निर्णीत हुआ है। यह कानून बहुत ही कौतुकावह है कि—यदि नाविकगण अपने दोषसे यात्रियोंकी चीज़ वस्तु नष्ट कर दें, तो उन्हें उसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी और यदि दैववश यात्रियोंको कुछ हानि उठानी पड़े, तो उसमें नाविकोंका कोई उत्तर दायित्व नहीं है। (मनु ८।४०९-१०)

याज्ञवल्क्यसंहिताके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि हिन्दूगण लाभकी आशासे समुद्रमें जहाजके जरिये अज्ञात देशमें जानेका साहस करते थे।

ज्योतिषशास्त्रमें भी प्राचीन भारतके अर्णवपोतके विषयमें नाना प्रकारका उल्लेख पाया जाता है। बृहत्संहितामें नाविकोंके स्वास्थ्य आदिके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं। उक्त ग्रन्थोंमें एक जगह समुद्रस्नान न करनेकी भी सलाह दी गई है। यथार्थमें बहुतसे जहाज विदेशमें द्रव्यादि ले कर गये हैं और धन रत्नसे पूरित हो कर बन्दरमें आ लगे हैं।

"अथवा समुद्रतीरे कुशलगतरत्नपोतसम्बाधे।
वननिचूललीनजलचरसितखगशवलीकृतोपान्ते॥" (४४।१२)

पुराणादिमें भी बहुत जगह जहाजका उल्लेख मिलता है। मार्कण्डेयपुराणमें घूर्णावर्तमें पतित जलयानके विपत्तिका उल्लेख उपमाके रूपमें किया गया है।

जैन-हरिवंशपुराण, श्रीपालचरित्र, चारुदत्तचरित, यशस्तिलकचम्पू, क्षत्रचूड़ामणि, जिनदत्तचरित्र आदि अनेक जैन पुराण और काव्य ग्रन्थोंमें जहाजका उल्लेख

है। कोटिभट्ट राजा श्रीपाल वाणिज्यके लिए विदेश गये थे; मार्गमें धवल सेठने उनकी रानी रैनमंजूषाके सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर श्रीपालको समुद्रमें डाल दिया था। जैन पुराणानुसार आजसे प्रायः बहुत हजार वर्ष पहले नेमिनाथके समयमें चारुदत्त वाणिज्यके लिये समुद्रयान द्वारा विदेश गये थे। जीवन्धरस्वामीने, जो श्रीमहावीरस्वामीके समयमें हुए थे, समुद्रयात्रा की थी तथा जिनदत्त सेठ जहाज पर चढ़ कर सिंहलद्वीप गये थे। इसके सिवा जैन-पुराणोंमें और भी बहुत जगह समुद्रयात्रा और जहाजका उल्लेख पाया जाता है।

वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्मग्रन्थोंके सिवा संस्कृत काव्य, नाटक आदिमें भी प्राचीन भारतके अर्णवपोतकी गौरव-वार्ताका अभाव नहीं है। कालिदासके रघुवंशमें लिखा है—राजा रघुने वङ्गाधिपतिकी सुदृढ़ रणतरीको पराजित कर गङ्गाके मध्यस्थित द्वीपमें विजयस्तम्भ स्थापित किया था।

"वङ्गान् उत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भं गंगास्रोतोऽन्तरेषु च॥"
(रघु० ४।३६)

श्रीहर्षराज-लिखित रत्नावली नामक सुप्रसिद्ध नाटकमें भी, सिंहलकी राजकुमारीके वत्सराजकी राजधानीमें आते समय मार्गमें जहाज फट जानेके कारण उनकी दुरवस्थाका वर्णन मिलता है।

दशकुमारचरितके रत्नोद्भव वणिक् किस तरह कालयवनद्वीपमें गये थे और वहांसे सुन्दरी पत्नीको ब्याह कर आते समय जहाजके फट जानेसे उन्हें कैसी विपत्तिमें पड़ना पड़ा था, यह किसीसे छिपा नहीं है। शिशुपालवधमें प्राचीन भारतके वाणिज्यके विषयमें एक जगह बड़ा अच्छा वर्णन आया है—'श्रीकृष्णने देखा, कि दूरदेशसे बहुतसे जहाज द्रव्यादि ले कर इस देशमें आये और उन्हें बेच बहुतसा अर्थसंग्रह कर इस देशकी चीजें ले पुनः अपने देशको चल दिये।'

संस्कृत कथासरित्सागरके ८वें लम्बककी १ली तरङ्गमें कहा गया है, कि पृथ्वीराज एक रूपदक्ष व्यक्तिके साथ अर्णवयानमें चढ़ कर मुक्तापोड़द्वीपमें उपस्थित हुए थे। उक्त ग्रंथमें और भी बहुत जगह समुद्रयात्राका विवरण लिखा है। हितोपदेशके कन्दर्पकेतु वणिक् अर्णवतरी पर सवार हो समुद्रयात्रा की थी, यह कौन नहीं जानता। इस प्रकार हम प्राचीन संस्कृत साहित्यके प्रायः सभी विभागोंमें भारतवर्षके जहाजोंका वर्णना पाते हैं।

जहाजका उल्लेख सिर्फ संस्कृतमें ही निबद्ध हो, ऐसा नहीं। पालि साहित्यके जातकों एवं प्राकृतभाषामें लिखित प्राचीन जैन-पुराणोंमें भी जहाज और समुद्रयात्राका बहुत कुछ विवरण पाया जाता है। जनक जातक, वालहस्स जातक आदिमें अर्णवयान फट जानेका जिक्र है। "समुद्र-वाणिज-जातक"का जहाज इतना बड़ा था कि एक ग्रामके १००० सूत्रधार उसमें बैठ कर भाग गये थे। "बवेरु-जातक"के पढ़नेसे अनुमान होता है, प्राचीन भारतवर्षके वणिक् बविलोनिया (Babylonia) के साथ व्यापार करते थे। उक्त देशके इतिहासके पढ़नेसे भी यह अनुमान दृढ़ होता है। "दीर्घनिकाय" (१।२२) के पढ़नेसे मालूम होता है कि जहाज पर चलते चलते भारतीय वणिकोंकी दृष्टि किनारे तक न पहुंचती थी।

पालि-साहित्यका भली भांति मनन करके Mrs. Rhys. Davids ने निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किया है—

प्राचीनकालमें भारतवर्षके साथ बविलोन और सम्भवतः अरब, फिनिसिया और मिसर देशका समुद्र पथसे वाणिज्य-सम्बन्ध प्रचलित था। पश्चिम देशीय वणिक् प्रायः बनारस वा चम्पासे जहाज लेते थे, इसका उल्लेख प्रायशः देखनेमें आता है।

भारतीय स्थापत्य, चित्रशिल्प और मुद्राकी सम्यक् आलोचना करनेसे भी हम प्राचीनकालके जहाजोंकी प्रतिकृतिका परिज्ञान हो सकता है।

ईसाके पूर्व द्वितीय शताब्दीके साञ्चीस्तूपसे प्राचीन भारतकी नौविद्याका कुछ परिचय मिलता है। पूर्व द्वारके १नं० स्तूप पर तथा पश्चिमद्वारके १नं० स्तूप पर जहाजकी प्रतिकृति है। शेषोक्त स्थापत्यमें सम्भवतः राजकीय प्रमोद अर्णव अङ्कित है।

बम्बई प्रदेशके कानड़ीकी गुफामें ईसाकी २य शताब्दीके खुदे हुए चित्रमें एक भग्न जलयानका विवरण लिखा है। उसमें यात्रिगण व्याकुलचित्त हो देव

पद्मपाणिसे प्रार्थना कर रहे हैं, ऐसा उल्लेख है। समुद्र-यात्राविषयक उत्कीर्ण चित्रोंमें, सम्भवत: ये चित्र पुराने हैं। कितने युग बीत गये, कितने तूफान हो गये, किन्तु उनका गौरव अब भी उज्ज्वल और अक्षुण्ण है। इनको ६ठी और ७वीं शताब्दीमें ये अङ्कित हुए थे। अजन्ता-गुहाकी २य गुहामें ही जहाजके चित्र अधिक हैं। उस युगमें भारतवर्षके जहाज अत्यन्त गौरवान्वित थे। ग्रिफिथका कहना है, कि वे प्राचीन भारतके वैदेशिक वाणिज्यके उज्ज्वल साक्षी हैं। एक चित्रमें विजयकी सिंहलयात्राका वर्णन अङ्कित है। चित्रोंके अधिकांश जहाज बहुतसे पालों और लम्बे लम्बे मस्तूलोंसे सुशोभित हैं। देखनेसे उनके सुवृहत् होनेमें जरा भी सन्देह नहीं रह जाता।

प्राचीन भारतवासी किस तरह जावामें उपनिवेश स्थापन करनेके लिए गये थे, एक चित्रमें यह भलीभांति अङ्कित किया गया है। इस चित्रमें मल्लाह लोग सीढ़ी लगा कर पाल चढ़ा रहे हैं, यह देख कर उनके साहस और वीरत्वका यथेष्ट परिचय मिलता है फिलाड़ेलफियाके म्युजियममें जावा-वासी हिन्दुओंके एक जहाजका नमूना रक्खा गया है, जिसकी लम्बाई ६० फुट और चौड़ाई १५ फुट है। मदूराके मन्दिरमें एक चित्र है, जिसमें पाल चढ़ा कर समुद्रमें जाता हुआ जहाज दिखाया गया है।

ईसाकी २य और ३य शताब्दीके अन्ध्र राजाओंकी कुछ मुद्राओंमें जहाजको प्रतिलिपि है। ऐतिहासिक भिनसेंट स्मिथका कहना है, कि जहाजके चित्रोंके रहनेसे ऐसा अनुमान होता है कि यज्ञश्रीका साम्राज्य सिर्फ भूमिभागमें ही आबद्ध नहीं था। जिस युगमें भारतवासियोंने अर्णवयानके मूल्यका स्मरण कर सिक्केमें भी उसका चित्र अङ्कित किया था, उस युगमें भारतवर्ष धनधान्यसे परिपूर्ण होगा, इसमें आश्चर्य ही क्या? आन्ध्र-मुद्रामें जहाजका चित्र देख कर सेवेलने कहा है, कि उस समय भारतवर्षका पश्चिम एशिया, ग्रीस, रोम, मिसर और चीनके साथ जलपथ और स्थलपथसे वाणिज्य प्रचलित था। * पल्लव-राजाओंके सिक्केमें भी जहाजका चित्र देखनेमें आता है।

मौर्य्युगमें भारतीय जहाजोंकी अवस्था—मौर्य-शासनके अव्यवहित पूर्वमें महावीर सिकन्दर शाहने पञ्जाब प्रदेशमें बहुतसे जहाज इकट्ठे किये थे। उसके बाद उनके सेनापति नियरकसने भारतवर्षसे स्वदेश लौटते समय जितने भी जहाज वा बड़ी नावें देखी थीं, सबको अपने काममें लगाया था। अरियन (Arrion) ने स्पष्टरूपसे कहा है, कि Xathroi नामक जाति तीस डाँड़वाले जहाज बना कर, उन्हें भाड़े पर दिया करती थी। इसके सिवा उन्होंने जहाज बांधनेके लिए बन्दर बनाये जानेका भी उल्लेख किया है।

मौर्य्युगमें जहाज बनानेके कार्यमें भारतवासी विशेष यत्नवान् थे। किन्तु ये कार्य राष्ट्रकी देख-रेखमें हुआ करते थे। ग्रीक-दूत मेगस्थिनिसने कहा है, कि एक जाति सिर्फ जहाज बनानेका ही काम करती थी; किन्तु वे साधारणके वेतनभोगी कर्मचारी न थे अर्थात् राजकार्यके सिवा अन्य किसीका भी कार्य न करते थे। स्ट्राबोका कहना है, कि ये जहाज व्यवसायी वणिकोंको भाड़े पर दिये जाते थे।

इन जहाजोंके लिये राष्ट्रमें एक स्वतन्त्र विभाग खोलना पड़ा था। स्ट्राबो और मेगस्थिनिसके सिवा कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें इस विभागके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं। इस विभागका सम्पूर्ण भार उसके अध्यक्षके ऊपर था। वे समुद्रयात्रा-विषयक समस्त कार्योंमें कर्तृत्व करते थे। इसके सिवा नदी, ह्रद, आदिका भार भी उन्हींके ऊपर था। वे बन्दरमें जिससे सब तरहको कर सुचारु रूपसे वसूल हो, इस पर भी दृष्टि रखते थे। वर्तमान समयमें पोर्ट-कमीशनर पर जिन कार्योंका भार है, उक्त विभागके अध्यक्ष पर भी उन्हीं कार्योंका भार था। समुद्र तीरवर्ती ग्रामोंसे एक प्रकारका विशेष कर वसूल किया जाता था। वणिक्गण बन्दरके नियमानुसार कर देते थे§। राजकीय जहाजों पर आनेवाले यात्रियोंसे काफी भाड़ा लिया जाता था‡।

* Imperial Gazetteer, New Edition, Vol. II, p. 825.

§ "पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः।"

‡ "यात्रावेतनं राजनौभिः सम्पतन्तः॥"

नौ-विभागके अध्यक्षको बन्दरमें शृङ्खलाको रक्षाके लिए नाना उपायोंका अवलम्बन करना पड़ता था। जब कभी कोई जहाज तूफानके कारण बहता हुआ बन्दरके पास उपस्थित होता था, तो उस समय उसे सबसे पहले आश्रय दिया जाता था। पानीसे यदि किसी जहाजका रफ्तनी किया हुआ माल बिगड़ जाता था, तो वे उस मालका महसूल माफ कर देते थे। यदि मल्लाह वा नाविकके अभावमें अथवा अच्छी तरह मरम्मत न होनेसे जहाज डूब या फट जाय, तो शासन-विभागसे वणिकोंकी क्षति-पूर्ति की जाती थी। जो उनके बनाये हुए नियमके प्रतिकूल चलते थे, उन्हें दण्ड भी दिया जाता था। उनको जलदस्युके जहाज, शत्रुदेशगामी जहाज तथा बन्दरके कानूनभङ्ग करनेवाले जहाजोंको नष्ट कर देने तकका अधिकार था। जहाज पर सवार हो, यदि निम्न प्रकारके व्यक्ति कहीं भागनेका प्रयत्न करते थे, तो वे उन्हें पकड़वा कर दण्ड दे सकते थे। जैसे—दूसरेकी स्त्री, कन्या वा धन चुरानेवाला एक व्यक्ति, दण्डित व्यक्ति, भारविहीन व्यक्ति, छद्मवेशी, अस्त्र वा विष ले जानेवाला व्यक्ति, इत्यादि। जो लोग बिना अनुमति (वा बिना टिकटके) भ्रमण करते थे, उनकी चीज-वस्तु वे जप्त कर सकते थे।

चन्द्रगुप्तके पौत्र प्रियदर्शी अशोकने भी पितामहके राजत्वका गौरव इस विषयमें अक्षुण्ण रक्खा था। सिंहल, मिसर, ग्रीक, सिरिया आदि देशोंमें उनका लेन-देन चलता था। समग्र भारतवर्षमें किस प्रकारका जहाजका व्यवसाय प्रचलित था, इसका परिचय मिल चुका। अब बङ्गदेशका विवरण लिखा जाता है, क्योंकि इस विषयमें इससे यथेष्ट ख्याति लाभ की थी।

बङ्गदेशके राजपुत्र विजयबाहु पिताके द्वारा निर्वासित होने पर किस तरह सिंहल गये थे, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। विजयबाहु अपने आदमियोंको तीन जहाजों पर चढ़ा कर सिंहलके लिए रवाना हुए थे। उन जहाजोंमें मस्तूल थे, पाल थे, अर्थात् ष्टीम और इंजन बननेके पहले जिन जिन चीजोंकी जरूरत थी, वे सब थीं। बहुतसे लोग विजयबाहुकी कथा पर अविश्वास करते हैं; किन्तु उनकी लङ्का-यात्राका चित्र अजन्ता-गुहामें अब भी मौजूद है और वह आजसे १४०० वर्ष पहले अङ्कित हुआ था। उस समय भी लोग समझते थे, कि विजय इस तरह और इस प्रकारकी नौका पर चढ़ कर लङ्का पहुंचे थे।

ईसाके ४००० वर्ष बाद फाहियान ताम्रलिप्तसे एक जहाज पर चढ़ कर चीन गये थे। उस जहाज पर नाना देशके लोग थे। चीन-समुद्रमें भयङ्कर तूफान उपस्थित होने पर जब जहाजके डूबनेमें कुछ कसर न रही, तब फाहियानने बुद्धदेवका स्तव करना प्रारम्भ कर दिया। तूफान शान्त हो गया और जहाज बच गया।

उसके बाद ताम्रलिप्तसे चीन और जापानको जहाज गया था, ऐसा सुननेमें आता है। कुछ दिन बाद भारतवासी सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीपोंमें जा कर बसने लगे और वहाँ शैव, वैष्णव और बौद्धधर्मका प्रचार करने लगे।

महाकवि कालिदासने कहा है, कि वङ्गदेशके राजा नौकाओं पर चढ़ कर युद्ध करते थे। पालराजागण युद्धके लिए बहुतसी नौकाएं रखते थे, इसमें सन्देह नहीं। खालिमपुरमें धर्मपालका जो ताम्रलेख मिला है, उसमें यह बात लिखी है कि युद्धके लिए धर्मपाल बहुत सी नावें रखते थे। रामपाल नौकाओंका पुल बना कर गङ्गा पार हुए थे, यह बात रामचरितमें स्पष्ट लिखी है। १२७६ ई०में ताम्रलिप्तसे कुछ बौद्ध-भिक्षु जहाज पर सवार हो पेगन गये थे और वहांके बौद्धधर्मका संस्कार किया था, यह बात कल्याणी नगरके शिलालेखमें स्पष्टतया कही गई है।

इसके अतिरिक्त मनसा और मङ्गलचण्डीकी पोथीमें भी हमें बङ्गालकी नौकायात्राका यथेष्ट विवरण मिलता है—एक एक सौदागर एक साथ पन्द्रह सोलह जहाज एक नाविकके अधीन समुद्रमें ले जाया करते थे और यथा समय सिंहल पहुंचा, वहां १५-१६ दिन ठहर कर व्यापार करते थे। फिर वहांसे महासमुद्रमें जाते थे और नाना द्वीप उपद्वीपोंमें वाणिज्य करते थे। बाद

सौदागरके प्रधान जहाजका नाम मधुकर था। किसी किसी पोथीमें लिखा है, कि मधुकर नामक जहाजमें १२०० डांड़ थे। द्विज वंशीदासके 'मनसार भासान'में लिखा है, कि सिंहलसे १३ दिन महासमुद्रमें चलनेके बाद भीषण तूफान उठा, तुलाराशिकी तरह फेनराशि नौकाके ऊपरसे जाने लगी, चाँदसौदागर 'मेरा सर्वस्व इन्हीं नावों पर है' कह कर रोने लगे; आखिर वे नाविक को पकड़ कर खींचातानी करने लगे, कहने लगे—'तुम इनका कुछ बन्दोबस्त करो।' नाविकने उन्हें बहुत समझाया, पर उन्होंने एक न मानी। आखिर नाविकने 'मधुकर'से कुछ तेलके पीपा निकाल कर समुद्रमें डाल दिये, जिससे तूफान कुछ कुछ मन्द हो गया। दूरमें सब जहाज दिखलाई देने लगे! चाँद सौदागर मारे खुशीके फूले न समाये।

इन पुस्तकोंके लिखे जानेके बाद भी, जिस समय केदारराय और प्रतापादित्य खूब प्रबल हो उठे थे, उस समय वे सर्वदा ही जहाज ले कर युद्ध किया करते थे और कभी कभी दूर देशको जाया करते थे; किन्तु उस समय पुर्तगीज जलदस्युओंका एक दल उनका सहायक था। इसके बाद भी, जब आराकानके राजा और पुर्तगीज जलदस्यु बङ्गालमें बहुत अत्याचार करने लगे थे, उस समय बङ्गाली नाविकको सहायतासे ही शायस्ताखाँने उनका दमन किया था।

समुद्रसेवा, जहाज-निर्माण और समुद्र तटपर वाणिज्य के लिए बङ्गालका चट्टग्राम आवहमान कालसे प्रसिद्ध है। अब भी इस देशके उपकूल विभागमें बहुतसे ऐसे मनुष्य हैं, जो जलपथसे पृथिवीके भ्रमण कर पृथ्वीके समस्त बड़े बड़े बन्दरोंका स्पर्श कर आये हैं। भारत महासमुद्रके मालद्वीप, लाक्षाद्वीप, आन्दामन, निकोबार-जावा, सुमात्रा, पिनाङ्, सिंहल, वर्म्मा आदि जाना तो साधारणके लिए 'ससुराल जाना' था। भारत-महासमुद्रके द्वीपपुञ्जसे ले कर चीन, ब्रह्मदेश और मिसर तक तो उनका वाणिज्य सम्पर्क अनिवार्य था। भारतवर्षके साथ जलपथसे वाणिज्य-सम्बन्ध स्थायी करनेके लिए १४०५ ई०में चीन-सम्राट ने चीङ्गहो नामक एक सचिव-को यहां भेजा था। उन्होंने इस शहरकी अवस्थानका विवरण लिखा है। उससे पहले १३४४ ई०में इब्नबतूता नामक एक मूर परिव्राजक मलवार उपकूलसे मालद्वीप स्पर्श करते हुए चट्टग्राम आये थे और देशीय जहाज पर चढ़ कर चीन पहुंचे थे। उस समयके अन्य एक चीनपरिव्राजक माहुन्द लिखते हैं, कि चट्टग्रामने उस समय ताम्रलिप्तको अतिक्रम कर चीन और मलयद्वीपपुञ्जके साथ वाणिज्य सम्बन्धका मानो ठेका कर लिया था। इस देशका अवस्थान और जहाज-निर्माण प्रणाली इतनी अच्छी थी कि रूमके सम्राट्ने अपने अलेकसन्द्रियाके जहाज और जहाजके कारखानेको नापसन्द कर इस चट्टग्राममें जहाज बनवाया था। तीन वर्ष पहले भी, कर्णफुली नदी समुद्र-हंसोंकी तरह श्रेणीबद्ध देशीय जहाजोंसे समाच्छन्न रहती थी। चट्टग्रामके दक्षिणमें हालिसहर, पतेङ्गा आदि ग्रामोंमें देशीय शिल्पियोंके बहुतसे जहाजके कारखाने थे। ये कारखाने रात दिन हथौड़ेकी आवाजसे गूंजा करते थे। इन शिल्पियोंके पूर्वपुरुष ईशान-मिस्त्री एक दक्ष और प्रसिद्ध कारीगर थे। प्रसिद्ध ऐतिहासिक हण्टर साहबका कहना है, "इस जहाजके कारखानेने १७७५ ई० तक अपना साहात्म्य अक्षुण्ण रक्खा था।" इसके कुछ पहले एक हिन्दू सौदागरका "बकनेगड" नामका जहाज इस देशके नाविक द्वारा परिचालित हो कर स्काटलेण्डके "दुण्डि" तक सफर कर आया था। अंग्रेजी राज्यके प्रारम्भमें, जब इस देशके जहाजने उत्तमाशा अन्तरीप वेष्टन करते हुए सबसे पहले इंगलेण्ड नगरके बन्दरमें पहुंच कर लंगर डाला था, तब इंगलेण्डके विस्मित नरनारीके कण्ठसे जो निराशा और ईर्षाकी आवाज निकली थी, उसका उल्लेख इष्ट इण्डिया कम्पनीके इतिहासमें पाया जाता है।

१८१५ ई०के मार्च मासमें भी चट्टग्रामके धनी श्रेष्ठ सौदागर अबदुल रहमन दुभाषी साहबका 'अमीना खातुन' नामक एक नया देशीय बड़ा जहाज पानीमें छोड़ा गया था। इस जहाजको देख कर गवर्नमेण्टके मेरिन सरभेयरने स्वयं कहा था कि, "यह किसी अंशमें विलायती जहाजकी अपेक्षा निर्माण कौशलमें हीन नहीं

है। गठन और सुन्दरतामें भी तदनुरूप है। इसमें मोटर वा इंजन लगा देनेसे ही 'ष्टीम-शिप' बन सकता है।'

ईसाको १२वीं शताब्दीके पहले चट्टग्रामको वाणिज्य ख्याति यूरोपमें प्रचारित हुई थी। ईसाको १४वीं शताब्दीमें वहां अरब और चीन देशके वणिकोंका समागम होता था। पाश्चात्य वणिकोंने "पोर्ट-ग्रंण्डो" नामसे इसका परिचय दिया है। भिन्नभिन्न देशके वणिक सोजर फ्रेडरिक ईसाको १६वीं शताब्दीमें यहां आये थे। उनका कहना है, कि पेगुसे बहुतसी चाँदी चट्टग्राममें आया करती थी। उस समय चट्टग्राम ही बङ्गालमें चाँदीका प्रधान बन्दर था। शक सं० १५५३में हवट साहब चट्टग्रामको बङ्गालका वाणिज्योन्नत और समृद्धि-सम्पन्न अन्यतम नगर बतला गये हैं। शक सं १५६१में मण्डलेस् लुई राजमहल, ढाका, फिलिपाटम और चट्टग्राम इन स्थानोंको बङ्गालके प्रधान नगर बतला गये हैं।

प्राचीन भारतमें जहाजकी निर्माणप्रणाली—भारतवर्षमें किस तरह जहाज बनाये जाते थे, इसका परिचय हः भोजके 'युक्तिकल्पतरु' नामक संस्कृत ग्रंथसे मिल सकता है। उनके मतसे क्षत्रियश्रेणीके काष्ठसे निर्मित जहाज द्वारा ही सुख और सम्पद प्राप्त होती है। इसी प्रकारके जहाज दुरवगम्य स्थानोंमें संवादादि भेजनेके लिए प्रशस्त हैं। विभिन्न श्रेणीके काष्ठसे बना हुआ जहाज मङ्गल वा सुखप्रद नहीं होता और न वह ज्यादा दिन ठहरता ही है। पानीमें सड़ जाता है और जरासा धक्का लगते ही टूट जाता है। काष्ठ संयोजनाके विषयमें भोजने बहुत मार्केका उपदेश दिया है—

"न सिन्धुगाद्यार्हति लौहबद्धं
तल्लोहकान्तैर्हियते हि लौहम्।
विपद्यते तेन जलेषु नौका
गुणेन बन्धं निजगाद भोजः॥"

जहाजके नीचे काठके साथ लोहा काममें न लाना चाहिए; क्योंकि इससे समुद्रमें चुम्बकके द्वारा जहाज आकृष्ट हो कर डूब सकता है। इससे मालूम होता है कि हिन्दू लोग पहले खूब गहरे और अज्ञात समुद्रमें भी जहाज ले जाया करते थे। इसके सिवा भोजने आकारके अनुसार जहाजके भेद भी बतलाये हैं। प्रधानतः जहाजके दो भेद किये हैं—एक साधारण जो नदी आदिमें चलते हैं और दूसरे विशेष जो सिर्फ समुद्र यात्राके लिए व्यवहृत होते हैं। यहां विशेषश्रेणीके जहाजोंका ही विवरण लिख रहे हैं। विशेषको उन्होंने दो भागोंमें विभक्त किया है—(१) दीर्घा और (२) उन्नता। दीर्घाके दश भेद हैं और उन्नताके पांच। नीचे उनके नाम, लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई लिखी जाती है—

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई
(१) दीर्घिका	३२ हाथ	४ हाथ	३$\frac{१}{५}$ हाथ
(२) तरणी	४८ ,,	६ ,,	४$\frac{४}{५}$,,
(३) लोला	६४ ,,	८ ,,	६$\frac{२}{५}$,,
(४) गत्वरा	८० ,,	१० ,,	८ ,,
(५) गामिनी	९६ ,,	१२ ,,	९$\frac{३}{५}$,,
(६) तरिः	११२ ,,	१४ ,,	११$\frac{१}{५}$,,
(७) जङ्घला	१२८,,	१६ ,,	१२$\frac{४}{५}$,,
(८) प्लाविनी	१४४,,	१८ ,,	१४$\frac{२}{५}$,,
(९) धारिणी	१६०,,	२० ,,	१६ ,,
(१०) वेगिनी	१७६ ,,	२२ ,,	१७$\frac{३}{५}$,,

इनमेंसे कुछके रखनेसे दुर्भाग्य होता है; जैसे—

"अत्र लोला गामिनी च प्लाविनी दुःखदा भवेत्।
लोलाया मारमारन्य यावद्भवति गत्वरा।
लोलायाः फलमाधत्ते एवं सर्वेषु निर्णयः॥"

उन्नता श्रेणीके भेद इस प्रकार हैं—

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊंचाई
(१) ऊर्ध्वा	३२ हाथ	१६ हाथ	१६ हाथ
(२) अनूर्ध्वा	४८ ,,	२४ ,,	२४० ,,
(३) स्वर्णमुखी	६४ ,,	३२ ,,	३२ ,,
(४) गर्भिनी	८० ,,	४० ,,	४० ,,
(५) मन्थरा	९६ ,,	४८ ,,	४८ ,,

इनमें भी अनूर्ध्वा, गर्भिनी और मन्थरा गर्हित हैं।

जहाजके यात्रियोंके सुभीतेके लिए भोजने कुछ नियम लिखे हैं। जहाजके सजानेके लिए स्वर्ण, रौप्य, ताम्र अथवा इन तीनोंकी मिश्रित धातु काममें लानी चाहिए। जिस जहाजमें चार मस्तूल हैं, उस पर सफेद रङ्ग, जिसमें तीन मस्तूल हैं उस पर लाल रंग, जिसमें दो मस्तूल हैं

उस पर पीला रङ्ग और जिसमें एक मस्तूल है उस पर नीला रङ्ग चढ़ाना चाहिए। जहाजका मुंह नाना आकारोंका हो सकता है। यथा—

"केशरी महिषी नागो द्विरदो व्याघ्र एव च।
पक्षी भेको मनुष्यश्च एतेषां वदनाष्टकम्॥"

इसके अलावा जहाजको और भी खूबसूरत बनानेके लिए मोती और सोनेके हार भी लटका दिये जाते थे। जहाजके भीतर कमरे (या केबिन) भी होते थे और उनके तीन भेद थे—(१) सर्वमन्दिरा, इसमें जहाजके इस छोरसे लगा कर उस छोर तक सर्वत्र कमरे होते थे, (२) मध्यमन्दिरा और (३) अग्रमन्दिरा। ये जहाज किस कामके लिए व्यवहृत होंगे इसका भोजोने नियम बनाया था—

"चिरप्रवासयात्रायां रणे काले घनात्यये।"

सुदीर्घ प्रवास करनेके लिए अथवा युद्धकार्यमें इन जहाजोंका व्यवहार होना चाहिये। हमारे देशमें जहाज पर चढ़ कर जलयुद्ध होता था, यह बात वैदिक साहित्यमें तुग्रऋषिके उपाख्यानसे तथा लौकिक साहित्यमें रघुकी दिग्विजय और रामायणमें कैवर्तोंकी कहानीसे भलीभांति मालूम हो सकती है। शिलालेख और ताम्रलिपिमें भी समुद्रमें जहाजके, "स्कन्धावार" स्थापनके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं।

जिस देशमें सभ्यताके प्रथम उदय कालसे ही जहाजका व्यवहार होता आया है, जहांके जहाज कितने ही समुद्र और महासमुद्रके उत्कट जलराशिको अतिक्रम कर अरब, फारस, बेबिलेन आदि दूर देशोंमें पहुंचे थे, जहांके जहाज पर चढ़ कर परिव्राजकगण चीन और सिंहल आया जाया करते थे; आज उसी देशमें क्वचित् कहीं दो एक छोटे जहाज भी बनते होंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। हमारे देशमें जो करोड़ों रुपयेकी चीज बस्तु आती हैं, वह अगर देशीय जहाजों पर आती तो देशका बहुतसा धन देशमें ही रह जाता और चीजें भी सस्ते दामोंमें मिलतीं। परन्तु भारतवासी आलस्य भरी निद्रासे मुंह नहीं मोड़ते दिनों दिन वे उसीको शरण लेते जा रहे हैं। प्राचीन भारतके जहाजोंकी गौरव-गाथा यहां इसी आशासे गाई गई है कि, अब भी भारतवासी अपनी आंखें खोलें और पुनः जहाजका व्यवसायमें प्रवृत्त हों।

पाश्चात्य जगत्में जहाजका क्रमविकाश—मिसरके प्राचीनतम चित्रोंमें जहाजकी आकृति देखनेमें आती है। उनमें भी, तख्तोंको जोड़ कर और पाल चढ़ा कर कुछ डांड़ोंसे जहाज-खेते दिखा जाता है। प्राचीन स्थापत्यशिल्पसे ग्रीक और रोमकोंके जहाजोंके सम्बन्धमें जो कुछ मालूम हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि उनके जहाज बिलकुल या मध्यभागमें खुले होते थे। वे जहाज बहुत छोटे होते थे और जाड़ेके मौसममें किनारे पर रख दिये जाते थे। रोमन लोग देवदार काठका जहाज बनाते थे, परन्तु युद्धके जहाज ओक काठसे ही बनाये जाते थे। कहा जाता है, कि रोमकोंने कार्थेजके फिनोशिय वणिकोंसे जहाज बनानेकी तरकीब सीखी थी। प्यूनिक युद्धके समय जब कार्थेजके जहाज इटलीके उपकूलभागको ध्वंस कर रहा था, उस समय उनको बाधा पहुंचानेके लिए रोमने रणतरी बनानेका निश्चय किया था। कार्थेजका एक टूटा जहाज वहांके समुद्रके किनारे पड़ा था, उसे देख कर इस असीम उद्यमशील जातिने पहले पहले रणतरी बना डाली। उस जहाजमें एक जंजीर लगाई गई थी, जिससे शत्रुओंके जहाज फंसा कर डुबा दिये जाते थे।

रोमको अवनतिके बाद नौरवेके दुःसाहसिक वीरपुरुषोंने जहाज बनानेके विषयमें बहुत कुछ उन्नति की। उनके छोटे छोटे जहाज अटलाण्टिक महासागरमें हो कर आसानीसे आया जाया करते थे। उनका समुद्र पर आधिपत्य देख कर लोग उनको "समुद्रका राजा" कहा करते थे। १८८० ई०में नौरवेके सैंडेफजोर्ड नामक स्थानमें उन्हें जमीन खोदते खोदते एक जहाज मिला था, जिसकी लम्बाई ७८ फुट, चौड़ाई १७ फुट और ऊंचाई ५½ फुट थी। इसमें तीन डांड़ और ४० फुट ऊंचा एक मस्तूल था, जिस पर सम्भवतः चौखूटा पाल चढ़ाया जाता था। इंगलैण्डके राजा अलफ्रेडने चालीससे ले कर साठ डांड़ वाले जहाजका प्रवर्तन कर नौरवेके दस्युभावापन्न 'समुद्र राजों'के हाथसे देशकी रक्षा की। कैन्युटने जिन जहाजोंके द्वारा इंगलैण्ड जीता था उनमें कुल ८० आदमीसे

ज्यादा न समाते थे—ऐसे जहाजको नौका कहनेसे अत्युक्ति न होगी। क्रुजेड नामक धर्मयुद्धके समय जहाजोंकी काफी उन्नति हुई थी। इस समय भेनिस और जनोआके लोग जहाज पर चढ़ कर तत्कालीन पृथिवीके समग्र परिचित स्थानोंमें वाणिज्यके लिये जाते थे। इङ्गलैण्डके वीर राजा सिंहहृदय रिचार्ड (११८९—११९९ ई०में) बड़े भारी जहाज पर चढ़ कर युद्ध करने गये थे। उनकी अधीनतामें २३० जहाज युद्ध करते थे उस समय मुसलमानोंके भी बड़े बड़े जहाज थे। कहा जाता है, कि उनके एक जहाजमें १५०० आदमी समाते थे। उस समय वाणिज्यके काम आनेवाले जहाजों ही में युद्धके समय अस्त्र-शस्त्र द्वारा सुसज्जित कर लिये जाते थे—युद्धके लिए पृथक् जहाजोंकी उत्पत्ति उस समय तक न हुई थी।

परन्तु धर्मयुद्धके बाद ही यूरोपकी जातियोंमें पाश्चात्य-देश सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धि हुई। उसके कुछ समय बाद, यूरोपमें नवजागरणका आन्दोलन हुआ। वहांके एक श्रेणीके लोगोंके हृदयमें पृथिवीके अपरिज्ञात सुदूर देशोंमें जानेकी आकांक्षा उत्पन्न हुई। उन्हीं लोगोंकी कोशिशसे जहाजकी निर्माण-प्रणालीमें जमीन आसमानका फेर हो गया। उसी समय बारूदका भी आविष्कार हुआ और साथ ही जहाजोंमें तोप बैठानेके स्थान निर्दिष्ट किये गये।

इंगलैण्डमें राजा ५म हेनरीने बहुत बड़े बड़े जहाज बनवाये, जिनमें एक एक हजार टन माल समाता था। कोलम्बसने जिस जहाज पर चढ़ कर अमेरिकाका आविष्कार किया था, उस श्रेणीका जहाज "Carvet" कहलाता है। यह देखनेमें छोटा होने पर भी बहुत तेजीसे जाता है और बड़ा मजबूत होता है।

पर्तुगीजोंने एक तरहका बड़ा जहाज आविष्कृत किया था, जिसका नाम था 'Barracks'। ईसाकी १६वीं शताब्दीमें जलयुद्ध अकसर हुआ करता था और इसीलिए इंगलैण्ड आदि देशोंमें एक प्रकारके युद्धके जहाजोंका बनना शुरू हो गया था।

ईसाकी १८वीं शताब्दीमें ६० तोपोंवाले जहाजोंकी साधारण लम्बाई थी. १६४ फुट और उनमें १५७० टन माल समाता था। इसी समयसे जहाजका आकार बदल कर उसमें उन्नति करनेकी कोशिश होने लगी। अब १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें पालसे चलनेवाले जहाजोंकी प्रथा उठा कर किस प्रकार ष्टीम वा वाष्पसे चलनेवाले जहाजोंका प्रवर्तन हुआ, उसकी आलोचना की जाती है।

१७७७ ई०में सबसे पहले एक लोहेकी नौका बनाई गई। पीछे उसीके आदर्श पर एक दो चार जहाज भी लोहेसे बनाये गये। कहा जाता है जब मस्कलैण्ड नहरमें "भालकान" नामका जहाज बन कर तयार हुआ, तभीसे लोहे के जहाज बनानेकी रिवाज पड़ गई। पहले पहल लौहपोतके विषयमें बहुतोंने बहुत प्रकारसे आपत्ति की थी, किन्तु पीछे उसका व्यवहार होनेसे वह उनका मुंह बन्द हो गया। १८६०से १८७५ ई० तक जहाजके लिए इस्पात काममें आता रहा। काठके जहाजोंकी अपेक्षा लोहे और इस्पातसे बने हुए जहाजमें तीन विशेषताएं पाई जातीं हैं—(१) इसका भार वजन कम होता है, (२) यह ज्यादा दिनों तक टिकाऊ होता है, (३) मरम्मत करनेमें बहुत सुभीता है। इस उन्नतिसे जानेसे जहाजके द्वारा मानवसमाजका इतना उपकार हुआ है कि लेखनीसे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

यद्यपि ई०की १८वीं शताब्दीके अन्तमें वाष्पद्वारा चालित जहाज दो एक हो चुके थे, तथापि उसका यथार्थ रूपसे व्यवहार १९वीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही हुआ है। पहले यह जहाज डाक ले जानेके लिए ही व्यवहृत होती थे, कारण पालके जहाजोंकी अपेक्षा यह जल्दी पहुंचता था। १८३३ ई०में इङ्गलैण्डमें डाकका काम राजाके हाथसे ले कर साधारण कम्पनीके हाथमें सौंपा गया। "सेभाना" नामक वाष्पीय जलयान सबसे पहले अटलाण्टिक महासागर पार हो गया। १८२५ ई०में "Enterprise" नामक एक वाष्पयान ४७० टन माल लाद कर लण्डनसे उत्तमाशा अन्तरीप होता हुआ १०दिनमें कलकत्ते आया था। भारतवर्षमें ष्टीम-जहाजका यही पहला आविर्भाव था।

ये जहाज 'पैडल हुइल' नामक यन्त्रसे चलते थे। इसके बाद अनेक वैज्ञानिकोंके बहुत दिनों तक कोशिश करते रहनेके बाद "Screnpropeller" द्वारा जहाज चलानेका उपाय आविष्कार किया। उसके बाद जहाजके इंजनकी उन्नति करनेकी कोशिश चलने लगी। बयलर और सेलेण्डरकी क्षमता बढ़ कर जहाजकी गति वृद्धि की गई। फिलहाल माल लादनेवाले जहाज प्रति इञ्चके लिए १०० से १८० पौण्ड तक और महासमुद्रगामी मुसाफिरी जहाजमें १४०से २२० पौण्ड तक। बाष्पको दाब दी जाती है।

२०वीं शताब्दीमें जहाजकी द्रुत उन्नति हुई है अब तक जहाज पानीके ऊपर ही तैरता था, किन्तु अब वैज्ञानिकगण कोशिश करने लगे कि किस तरह जहाजको पानीके नोचेसे चला कर शत्रुके जहाजोंका विनाश किया जाय। उनकी उद्भावन शक्तिके फलोज 'टर्पेडो' और 'सबमेरिन' नामक दो प्रकारके पानीके भीतरसे चलनेवाले जहाजका आविष्कार हुआ।

गत महासमरके समय प्रत्येक जातिने हो अपनी नौशक्ति वृद्धि करनेकी शक्ति भर प्रयत्न किया था। परिणाम हुआ कि १९२०-२१ ई०में जहाज-निर्माणके बहुतसे नये नये तरीके निकल गये। कोयलेकी जगह तेल-व्यवहारका इनमें विशेष उल्लेखयोग्य विषय है। इसमें खर्च भी कम पड़ता है और तेल जहाजमें ज्यादा रक्खा भी जा सकता है।

महायुद्धके पहले 'सबमेरिन' नामक पानीके भीतर से चलनेवाले जहाजके बारेमें लोगोंको कुछ मालूम न था। जर्मनोंने सिर्फ २८ सबमेरिन' के भरोसे ही युद्ध प्रारम्भ कर दिया था। ब्रटिश गवर्मेण्टने पहले ५६ 'सबमेरिन' इकट्ठे किये थे। इस प्रकारके जहाजोंने सिर्फ शत्रुके जहाज ही डुबोये हों, ऐसा नहीं; बल्कि बहुत से बणिकोंको वाणिज्य-सम्पद और अनेक निर्दोष व्यक्तियोंके प्राण भी इसने नष्ट किये हैं। पहले 'सबमेरिन' जहाजसे आत्मरक्षा करनेका कोई उपाय न था। पीछे १९१६ ई०में नाना प्रकारके प्रयत्न करने पर इस भीषण प्रकारके जहाजसे रक्षा पानेके लिए कथञ्चित् उपाय आविष्कृत हुए।

युद्धके बाद, १९२१ ई०में वाशिङ्टन नगरमें शान्ति स्थापक बैठक हुई थी, उसमें 'सबमेरिनों' की संख्या निर्देश कर, इस विपत्तिके उपशम करनेकी कोशिश की गई थी। मि० ह्यफन ह्यफसने प्रस्ताव किया कि युक्त राष्ट्र और ग्रेटब्रटेनने (प्रत्येक) सिर्फ ६०,००० टन, फ्रान्स सिर्फ ३१,५०० टन एवं जापान २१,००० टन जहाज अवशिष्ट रक्खें। किन्तु फ्रान्स इस प्रस्ताव पर राजी न हुआ, आखिर यही प्रथा प्रचलित रही कि जो जाति जितने 'सबमेरिन' बना सके, वह उतने ही रक्खें।

उक्त बैठकमें साधारण नौ-शक्तिके विषयमें एक नियम बनाया गया था। उसमें निश्चय किया गया कि यूनाईटेड ष्टेटस और ग्रेट ब्रटेन (प्रत्येक) ५,२५,००० टन जहाज रख सकेंगे। जिस अनुपातसे यह नियम बनाया गया था, वह यह है, ५: ५: ३। इस प्रकारसे मालूम होता है कि अधुना पृथिवीमें अमेरिका और इंगलैण्डके जहाज सबसे ज्यादा हैं।

जहाजगढ़—पंजाब प्रान्तके रोहतक जिलेके अन्तर्गत झाझरके नजदीक एक दुर्ग। यह अक्षा २८° ३८' उ० और देशा० ७६° ३४' पूर्वमें अवस्थित है। थर्नटन साहबका कथना है कि विगत शतब्दीके अन्तमें ज्ञर्ज टोमस नामक किसी व्यक्तिने इस प्रदेश पर कुछ समय तक शासन कर अपने नाम पर यह दुर्ग निर्माण किया। देशी लोगोंने जोर्जगढ़से जहाजगढ़ नाम रखा है। १८०१ ई०में महाराष्ट्रोंने इस दुर्ग पर आक्रमण किया। जोर्ज टोमस बहुत कष्टसे भागे, किन्तु हांसी नगरमें पूर्णरूपसे पराजित हुए।

जहाजपुर—राजपूतानाके उदयपुर राज्यका एक जिला और उसका सदर। यह नगर अक्षा० १५°३७' उ० और देशा० ७५°१७' पू०में देवली छावनीसे १२ मील दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। लोकसंख्या ३३९८ है। एक निराले पहाड़ पर नगर और घाटोंके पूर्व मार्गकी रक्षा करनेको किला बना हुआ है। यह दुर्ग दोहरा है और प्रत्येकमें खाई खुदी है। कहते हैं, १५८७ ई०को अकबरने राणासे जहाजपुर लिया था और ७ वर्ष पीछे जगमलको जागीरमें दे दिया। अपने बड़े भाई राणा

प्रताप सिंहसे कुछ अनबन होने पर वे दिल्ली-दरबार गये थे। खृष्टीय १८वीं शताब्दीके थोड़े समय तक यह नगर शाहपुर नरेशके अधिकारमें रहा और १८०८ ई०को कोटाके प्रसिद्ध दीवान जालिम सिंहने अधिकार किया। १८१८ ई०को वृटिश गवर्नमेण्टके मध्यस्थ होने पर उदयपुरने फिर जहाजपुर पाया। इस जिलेमें १ नगर और ३०६ गांव हैं।

जहाजी (अ० वि०) जहाजसे संबन्ध रखनेवाला।

जहान (फा० पु०) जगत्, संसार, दुनियां।

जहानक (सं० पु०) जहाति शीलार्थे हा-शानच् संसारां कन्। प्रलय, ब्रह्माण्डका नाश।

जहानआरा बेगम–बादशाह शाहजहांकी औरत और उस के वज़ीर आसफ खांकी पुत्री। मुमताज़महलके गर्भसे १६१४ ई०में २३ मार्च बुधवारके दिन जहानआराका जन्म हुआ था। उस समयकी स्त्रियोंमें यह राजकुमारी सच्चरित्रा, तीक्ष्णबुद्धिसम्पन्ना, लज्जाशीला, उदारहृदया, विदुषी और अत्यन्त रूपवती समझी जाती थीं। हिजरा १०५४ महरम २७ तारीखको रात्रिके समय, जब ये अपने पिताके पाससे अपने घर लौट रही थीं, उस समय एक जलते हुए प्रदीपसे लग कर उनकी पोशाक जल उठी। ये मसृलिनकी बनी हुई पोशाक पहने थीं। देखते देखते उनकी पोशाक तमाम जल गई, इनका जीवन सङ्कटमें पड़ गया। इतने पर भी इन्होंने किसी तरहकी आवाज न दी; क्योंकि वे समझती थीं कि चिल्लानेसे पासके युवकगण आकर उन्हें अनावृत अवस्थामें देखेंगे और आग बुझानेके बहाने, सम्भव है शरीर पर भी हाथ लगावेंगे। जल्दीसे वे अन्तःपुरकी तरफ बढ़ीं और वहां पहुंचते ही बेहोश होकर गिर पड़ीं। बहुत दिनों तक उनके जीवनकी कोई आशा नहीं थी। अनेक चिकित्सकोंको दिखा कर जब कुछ फल न हुआ तब शाहजहान्ने बाउटन नामक एक अंग्रेज चिकित्सकको बुलाया। इनसे राजकुमारीका स्वास्थ्य अच्छा हो गया। बादशाहने इस उपकारके पुरस्कारस्वरूप उन्नतहृदय डाक्टरको उनकी प्रार्थनाके अनुसार अंग्रेज वणिकोंको मुगल साम्राज्यमें बिना शुल्कके वाणिज्य करनेकी सनद प्रदान की।

१६४८ ई०में १०५८ (हिजरा) जहानआरा बेगमने कमसे कम ५ लाख रुपये लगा कर आगरा-दुर्गके पास एक लाल पत्थरकी मसजिद बनवाई थी इन्होंने अपने भाई आलमगीरके राजत्वकालमें १०८२ हिजरा ३री रमजान तारीखको (१६८० ई० ता० ५ सेप्तेम्बर) इस संसारसे विदा ले ली। जहाँनआराकी पिता पर विशेष भक्ति थी और वे अतिशय कर्तव्यपरायणा थीं। इनकी बहन रोशनआराका चरित्र इनसे बिल्कुल उलटा था। रोशनआरा अपने पिताको सिंहासनच्युत करानेके लिए औरङ्गजेबको उत्साहित करती थीं और इससे जहानआरा अपने वृद्ध पिताको कारावासमें भी सान्त्वना देती और उनकी सेवा सुश्रूषा करनेके लिए वद्ध रहती थीं। जहानआरा कब्रके ऊपर सफेद संगमरमर पत्थरकी एक मसजिद बनी है और उसके ऊपर फारसीमें एक इबारत लिखी है, जिसका अभिप्राय इस प्रकार है—"कोई भी मेरी कब्र पर हरे रंगके पत्तों आदिके सिवा और कुछ न बखेरें; क्योंकि निरभिमान व्यक्तियोंकी कब्र पर इसीकी शोभा है।" इसके बगलमें लिखा है—चिसतीके पुण्यात्माओंकी चेलिन और शाहजहांकी कन्या विलासिनी फकीर-जहानआरा बेगमने १०७२ हिजरामें मानव-लीला समाप्त की।

जहानखातून—एक प्रसिद्ध रमणी। प्रथम स्वामीके मर जाने पर इनका सिराजके शासनकर्त्ता शाह आबू इसहाकके सचिव अमीनउद्दीनके साथ द्वितीय परिणय हुआ था। यह बहुत खूबसूरत और कविता बना सकती थीं।

जहानदारशाह—दिल्लीके बादशाह बहादुरशाहके ज्येष्ठ पुत्र। बहादुरशाहकी मृत्युके उपरान्त १७१२ ई०में उनके जहानदार, आजिम उश्-शान, रफी उश्-शान और खोजास्ता, इन चार पुत्रोंमें परस्पर राज्यको ले कर झगड़ा होने लगा। आजिम् उश्-शान बहादुर शाहके २य पुत्र थे। इन्हीं पर बहादुर शाहका विशेष स्नेह था और उनके जीवित अवस्थामें ये बहुत समय राजकार्यमें व्यापृत रहते थे। बादशाहकी मृत्युके बाद आजिम उश्-शानने ही सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस पर तीनों भाइयोंने मिल कर उनसे विवाद

युद्ध करनेके लिए यात्रा की। उन लोगोंमें सन्धि हो गई कि, आजिम उश्‌ शानको पराजित कर तीनों भाई बराबर राज्य बाँट लेंगे। अमीर उल्‌ उमराव जुलफिकरखाँ उन लोगोंके प्रधान परामर्शदाता और सेनापति थे। उन लोगोंने लाहोरमें शिविर स्थापन किया। आजिम उश्‌-शान अत्यन्त वीर और साहसी थे। वे भी भाताओंको रोकनेके लिये आगे बढ़े। ५ दिन तक बन्दूकों और तोपोंसे युद्ध हुआ। ८ वें दिन आजिम उश्‌-शानकी सेना विपक्षियोंसे पराजित हो गई। मोहकमचन्द नामके एक क्षत्रिय राजा और राजसिंह नामके एक जाटराजाने उश्‌-शानकी तरफसे युद्ध करते करते असामान्य वीरताके साथ अपने प्राण गँवा दिये। सन्ध्याके समय आजिमकी सेनाने लाहोरमें जाकर आश्रय लिया।

दूसरे दिन सवेरा होते ही स्वयं आजिम-उश्‌-शानने एक हाथी पर सवार हो कर शत्रुओंका सामना किया, परन्तु बहुतसी सेनाने उनका साथ छोड़ दिया। ऐसे समयमें राजा जयसिंहने आकर उनका साथ दिया। परन्तु इसी समय एक बड़ी जोरकी आँधी आई, जिससे इनकी बहुत हानि हुई। युद्धमें तीन भाइयोंकी जय हुई। आजिम उश्‌-शान आहत हो कर हाथीके साथ पानीमें गिर गये, फिर उनका पता न चला।

पूर्व सन्धिके नियमानुसार दक्षिण राज्यको तीन भागोंमें विभक्त करनेके लिए चर्चा होने लगी। इस पर जुलफिकरखाँके कूटमन्त्रणाबलसे जहानदार शाह ही अंशको दबा कर बैठे। इससे तीनों भाइयोंमें झगड़ा हो गया।

खोजस्ता अखतरने अपनेको—जहानशाहकी उपाधिसे विभूषित कर—राजा प्रसिद्ध किया। जहान्दारशाहके साथ युद्ध हुआ। अखतर परास्त और निहत हुए। रफी-उश्‌-शान अब तक उदासीन थे। जुलफिकरके साथ उनकी मित्रता थी। उन्होंने सोचा था कि, उनके दो भाइयोंमें युद्ध करके जो विजयी होंगे, जुलफिकरकी सहायतासे उनको परास्त कर वे साम्राज्य अधिकार करेंगे। परन्तु जब देखा कि, वे जहानदारशाहकी सहायता कर रहे हैं, तब उन्होंने प्रबल पराक्रमसे उन लोगों पर आक्रमण किया; किन्तु अन्तमें वे भी परास्त हो कर निहत हुए।

जहानदार शाहका पहलेका नाम मौज-उद्‌-दीन था। इन्होंने सिंहासन पर बैठ कर अपनेको जहानदार शाहके नामसे प्रसिद्ध किया। ये सिंहासन पर बैठ कर पहले पहल राजवंशियोंकी हत्या करने लगे। आजिम-उश्‌-शानके पुत्र सुलतान करीम-उद्‌-दीन, आजिमशाहके पुत्र अली तबर, कामबक्सके दो पुत्र इत्यादि राजवंशियोंकी हत्या कर ये लाहोरसे दिल्ली आये।

जहानदार शाहने अपने भाइयोंकी लाशें दो दिन तक युद्धक्षेत्रमें रखवाईं, फिर उनको दिल्लीमें मंगा कर हुमायुनकी मसजिदमें गड़वा दिया।

जहानदारशाह अत्यन्त विलासी, आलसी, चरित्रहीन, व्यसनी और दुर्बल थे। इनमें सम्राट्‌ होनेकी योग्यता जरा भी न थी। ये एक वाराङ्गनाके आज्ञाधीन भृत्यस्वरूप थे। उस स्त्रीका नाम था लालकुमारी। जहानदार अपने कर्त्तव्यको भूल गये थे, हमेशा उस गणिकाके साथ रहते थे। लालकुमारी धीरे धीरे इतनी क्षमताशालिनी हो गई कि, बादशाह तक उसके खेलकी कठपुतली बन गये। बादशाहने लालकुमारीको 'इमतियाज महल बेगम' नाम दिया और उसके हाथखर्चके लिए वार्षिक २ करोड़ रुपयेका इन्तजाम कर दिया। राजवंशीयके सिवा दूसरा कोई भी हाथीके ऊपर बादशाहके पास न बैठ सकता था; किन्तु जहानदारने उस गणिकाको यह अधिकार भी दे दिया। इन्होंने कोकलतासखांको अमीर-उल्‌-उमरावका पद और खाँजहानकी उपाधि प्रदान की। लालकुमारीके भाई खुशालको ७००० अश्वारोही सेनाका अधिनायक और उसके चाचा नियामतको ५००० अश्वारोही सेनाका सेनापति बनाया गया और तो क्या, लालकुमारीकी प्रिय सखी जोराको भी एक जागीर दे दी गई। राज्यके प्रधान प्रधान व्यक्ति बादशाहका अनुग्रह पानेके लिए जोराकी खुशामद किया करते थे। बादशाह प्रायः सभी समय लालकुमारीके साथ एकत्र गाड़ीमें बैठ कर घूमा करते थे। एक दिन बादशाह अपनी सङ्गिनियोंके साथ शराब आदि पी कर इतने बेहोश हो गये कि, वे रातको प्रासादमें भी न लौट सके; उन्होंने जोराके साथ रात बिता दी। इनको शर्म तो जरा भी न थी।

ये इतने निर्लज्ज और भ्रष्टचरित्र हो गये कि, गरीब घरकी बहू-बेटियोंको इनके हाथसे छुटकारा मिलना मुश्किल हो गया। लालकुमारीको बादशाहकी प्रणयिनी होनेका इतना गुमान था, कि एक दिन उसने औरङ्गजेबकी विदुषी कन्या जेब-उल्-निशाका भी अपमान कर दिया।

जहानदारशाहके राजत्वकालमें जुलफिकरखाँ ही सर्वेसर्वा थे उन्हींके इच्छानुसार शासनकार्य सम्पन्न होता था। साम्राज्यकी इस गड़बड़ीके समय आजिम-उश-शानके पुत्र फरुखशियर, अबदुल्लाखां और हुसेन अली नामके सैयद भाइयोंकी सहायतासे पटनाके सम्राटके विरुद्ध तयारियां करने लगे तथा उन्होंने अपने नामके सिक्के भी चला दिये। सम्राट्ने आज-उद्दीन, खोजा आसनखाँ और खांदुरानके अधीन एक दल सेना भेजी। युद्धमें सम्राट्की सेना हार गई। इस पर जुलफिकर खांको सेनापति बना कर ७०००० अश्वारोही, बहुसंख्यक पदातिक और गोलन्दाज सैनिकोंको साथ ले कर बादशाह खुद अग्रसर हुए। १७१२ ई०में घोर युद्ध हुआ; किन्तु जयकी आशा न देख बादशाह लालकुमारीके साथ हाथी पर सवार हो कर आगरा भाग गये। वहां जा कर इन्होंने दाढ़ीमूंछ मुड़ा ली और वे छद्मवेशमें रहने लगे; छद्मवेशमें ये दिल्ली पहुंचे, वहां जाकर पहिले पहल ये पुराने वजीर आसद-उद्दौलाके घर गये। आसदने इन्हें कैद करके फरुख-शियरके हाथ सौंप दिया।

१७१३ ई०में फरुख-शियर सिंहासन पर बैठे। कुछ दिन बाद श्वासरोध कर जहानदारको हत्या की गई। इन्होंने कुल ११ मास ही राज्य कर पाया था।

जहानदारशाह (जवान बख्त)—बादशाह शाह आलमके ज्येष्ठ पुत्र। ये अपने पिताके कार्यासे तंग हो कर दिल्लीसे लखनऊ भाग आये। इसी समय आसफ उद्दौलाके साथ इष्ट-इण्डिया कम्पनीके कार्यनिर्वाहके लिये मि० हेष्टिंग्स भी लखनऊ ठहरे हुए थे। जहानदार मि० हेष्टिंग्सके साथ बनारस आये और वहीं रहने लगे। हेष्टिंग्सके अनुरोधसे लखनऊके नवाब-वजीरने इनके लिए वार्षिक ५ लाख रुपयेका इन्तजाम कर दिया। १७८८ ई०में ३१ली मईको जहानदारने बनारसमें अपना शरीर छोड़ दिया। उनको बनारसमें ही एक अच्छी मसजिदमें गाड़ दिया गया। कब्रके समय उनके सम्मानार्थ सभी मान्यगण्य व्यक्ति और अंग्रेज रेसीडेण्ट वहां उपस्थित थे। ये मरते समय अपने तीन पुत्रोंको अंग्रेजोंकी देखरेखमें छोड़ गये थे। अंग्रेज लोग अब भी इनके वंशधरोंको सहायता पहुंचाते रहते हैं।

जहानदार एक सुपण्डित व्यक्ति थे। इन्होंने "बयाज् इनायत मुर्शिदजादा" नामक एक अच्छा फारसी ग्रन्थ भी लिखा है। मि० हेष्टिंग्सने बङ्गालकी (अवस्थाकी) समालोचना कर जो ग्रन्थ प्रकाशित किया है, उसमें मि० स्काटका भी एक निबन्ध था, वह जहानदार कृत एक फारसी पुस्तकके कुछ अंशका अनुवाद है।

जहानी बानो बेगम—बादशाह अकबरके पुत्र मुरादकी कन्या। जहांगीरके पुत्र शाहजादा परवेजके साथ इनका विवाह हुआ था। परवेजके औरससे इनके नदीया बेगम नामकी एक कन्या हुई थी; जिसका विवाह शाहजहान्के ज्येष्ठ पुत्र दारा सिकोहके साथ हुआ था।

जहानशाह तुर्कमान—करा-युसफ तुर्कमानके पुत्र और सिकन्दर तुर्कमानके भाई। १४३७ ई० (८४१ हिजरा) में सिकन्दरकी मृत्यु होने पर जहानशाह अमीर तैमूरके पुत्र शाहरुक मिर्जा द्वारा अजर बेजानके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। १४४० ई०के बाद जहानशाहने पारस्यका बहुत अंश अपने राज्यमें मिला लिया था। ये दयारविकर तक अग्रसर हुए; किन्तु १४६७ ई०को १० नवम्बरको सत्तर वर्षकी उम्रमें हासनबेगके साथ युद्धमें निहत हुए।

जहानसज—सुलतान अलाउद्दीन हासनगोरीको एक उपाधि।

जहानाबाद—कोडा और कोडा-जहानाबाद देखो।

जहानाबाद—१ विहारके अन्तर्गत गया जिलेका एक उपविभाग। इसका भूपरिमाण ६०६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३८३८१७ है। यह अक्षा० २४°५९´ से २५° १८´ उ० और देशा० ८४° २७´ से ८५° १३´ पू०में अवस्थित है। यहां अरवाल और जहानाबाद नामके दो थाना-

और दो फौजदारी अदालत हैं।

२ गया जिलेके जहानाबाद उपविभागका सदर। यह अक्षा० २५° १३' उ० और देशा० ८५° ०' पू०, गयासे ३१ मील उत्तरमें मुरहर नदीके किनारे अवस्थित है, यहां लोकसंख्या प्रायः ७०१८ है। यहां डाकबङ्गला, डाकघर, अस्पताल, हाजत आदि हैं। यह नगर पहले वाणिज्यके लिए प्रसिद्ध था। अब भी ओलन्दाजोंकी तीन कोठियोंका भग्नावशेष इसके पूर्व समृद्धिका परिचय दे रहा है। १७६० ई०में यहां इष्ट इण्डिया कम्पनीका कपड़का कारखाना था। पहले यहांके अधिवासी सोरा बनाते थे। मञ्चस्टरकी प्रतिद्वन्दिता से यहांके वस्त्रका व्यवसाय प्रायः लोपसा हो गया है। अब भी इसके चारों ओर बहुतसे जुलाहे वास करते हैं।

जहानाबाद—१ बङ्गालके हुगली जिलेका एक उपविभाग। इसका भूपरिमाण ४३८ वर्गमील है। इसमें ग्राम और नगर कुल ६४८ लगते हैं। यहां जहानाबाद, गोघाट और खानाकुल नामके तीन थाना और २ फौजदारी तथा २ दिवानी अदालत हैं।

२ हुगली जिलेके जहानाबाद उपविभागका सदर। यह अक्षा० २२° ५३' उ० और देशा० ८७° ४८' ५०" पू० दारकेश्वर नदी किनारे अवस्थित है।

जहानाबाद—१ युक्त प्रदेशमें रोहिलखण्ड विभागके अन्तर्गत बिजनौर जिलेके दारानगर परगनेका एक शहर। यह बिजनौरसे १२ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां नवाब सैयद महम्मद सुजायत खाँ की सुन्दर पक्की बनी हुई एक कब्र है।

२ रोहिलखण्ड विभागके पिलिभित जिलेकी पिलिभीत तहसीलका एक शहर। यह सदरसे ४ई मील पश्चिममें अवस्थित है। जहानाबादके निकट बलिया या बलाइपशियापुर ग्राममें बलाइखेरा नामक प्राचीन मन्दिरका भग्नावशेष देखनेमें आता है। बलिया ग्राममें बहुतसी बड़ी बड़ी प्राचीन ईंटे बाहर निकाली गई हैं। जो पीछे जहानाबाद लाई गईं। अत एव बलियामें अभी विशेष कुछ भी नहीं है। कुछ भी हो, ईंटोंके देखनेसे बलिया एक प्राचीन ग्रामसा अनुमान किया जाता है। प्रवाद है, कि यह ग्राम दैत्यराज बलिका स्थापित किया हुआ है।

जहानाबाद—युक्त प्रदेशमें आजमगढ़ जिलेके सहमदाबाद तहसीलका एक प्राचीन शहर। इसका वर्तमान नाम मौनाटभञ्जन है। यह अक्षा० २८° ५७' और देशा० ८३° ३५' पू०में पड़ता है। यह शहर आजमगढ़से भी प्राचीन है। यह कब स्थापित हुआ है इसका पूरा पूरा पता नहीं चलता। प्रवाद है कि यहां एक दैत्य रहता था। बाद मालिक ताहिर नामक किसी फकीरने उस दैत्यको भगा कर अपना वास स्थापित किया। उसीके अनुसार इसका नाम मौनाटभञ्जन अर्थात् दैत्य दूरकारी नाम पड़ा है। आज भी यहां उस मालिक ताहिरकी कब्र मौजूद है। आइन-इ अकबरीमें इसका उल्लेख किया गया है सम्राट् शाहजहान्के समय यह स्थान सम्राट्की लड़की जहानारा बेगमको दिया गया था। उसीके अनुसार इसका नाम जहानाबाद हुआ है।

बेगमके आदेशसे यहां एक चान्दनी बनाई गई थी जिसका भग्नावशेष आज भी देखा जाता है। पहले यह नगर विशेष समृद्धिशाली था। कहा जाता है है कि एक समय इस नगरमें ८४ मुहल्ला और ३६० मसजिदें थीं।

जहालत (अ० स्त्री०) अज्ञानता, मूर्खता।

जह्निस्तम्भ (सं० त्रि०) जो सर्वदा स्तम्भमें आघात करता हो

जहीन (अ० वि०) १ बुद्धिमान, समझदार। २ जिसके स्मरणशक्ति हो, धारणा रखनेवाला।

जहु (सं० पु०) जहति हा-बाहुलकात् उण् द्वित्वञ्च। १ अपत्य, संतान। २ कुरुवंशीय राजा पुष्पवान्के पुत्र। (भाग० ९।२२।७)

जहूर (अ० पु०) प्रकाश, चमक, तेज।

जहेज (अ० पु०) दहेज देखो।

जह्नावी (सं० स्त्री०) जह्नोः सम्बन्धिनी तस्येदं इत्यण्। जह्नु-सम्बन्धिनी प्रजा। जाह्नवी, गङ्गा। २ जह्नु कुलजा, वे जो जह्नु ऋषिके वंशसे उत्पन्न हुए हों।

जह्नु (सं० पु०) जहाति-हा नु जहातेर्द्वे अन्तलोपश्च उण् ३।३६। १ विष्णु। २ भरतवंशीय अजमीढ़ राजाके

पुत्र। (भारत अनु० ४ अ०) ३ कुरुक्षेत्रपति कुरुके पुत्र। ४ राजा सुहोत्रके पुत्र। ये अत्यन्त तपःपरायण राजर्षि थे। ये जिस समय यज्ञ कर रहे थे, उस समय भागीरथी-ने आ कर इनके समस्त यज्ञद्रव्यको बहा दिया। इस पर जह्नुने भागीरथीको एक गण्डूषमें पान कर लिया। राजा भगीरथने जह्नुकी बहुत कुछ स्तुति की। जह्नुने उनकी स्तुतिसे सन्तुष्ट हो कर उसको कानसे निकाल दिया। इसलिए गङ्गाका नाम जाह्नवी पड़ गया। (भाग० विष्णुपु०) मतान्तरमें—जह्नुने उरुस्थलसे गङ्गाको निकाला था।

जह्नुकन्या (सं० स्त्री०) जह्नोः कन्या, ६-तत्। गङ्गा।

जह्नुतनया (सं० स्त्री०) जह्नोः तनया, ६-तत्। गङ्गा।

जह्नुसप्तमी (सं० स्त्री०) जह्नोः सप्तमी, ६-तत्। गङ्गा-सप्तमी वैशाख मासकी शुक्ला सप्तमी। वैशाखकी शुक्लसप्तमी तिथिमें जह्नु मुनिने गङ्गाको पी लिया था। तभीसे यह तिथि जह्नुसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन जो गङ्गामें स्नान करता और यथाविधि पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो कर अन्तमें अक्षय स्वर्गसुख भोगता है। (कामाख्यातन्त्र ११ प०)

जह्नुसुता (सं० स्त्री०) जह्नोः सुता, ६-तत्। जाह्नवी।

जह्मन् (सं० क्ली०) हा-मनिन् पृषोदरादित्वात् साधुः। उदक, जल, पानी। उदक देखो।

जा (सं० स्त्री०) जायते सम्बन्धिनो या, जन-ड टाप्। १ माता, मां। २ देवरपत्नी देवरकी स्त्री देवरानी। (त्रि०) ३ जायमान, उत्पन्न, सम्भूत।

जा (फा० वि०) उचित, वाजिब, मुनासिब।

जाई—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदनगर जिलेमें रहने-वाले एक प्रकारके ब्राह्मण। महाठी माताके गर्भ और ब्राह्मण पिताके औरससे इस जातिकी उत्पत्ति है, जारज दोषसे इनको समाजसे पतित ब्राह्मणोंमें गिनती है। अन्यान्य ब्राह्मण इनसे घृणा करते हैं और इनका छुआ हुआ अन्न-जलग्रहण नहीं करते। इनकी पोशाक प्रायः मराठी ब्राह्मणों जैसी है। पौरोहित्यके सिवा ये ब्राह्मणोंके सभी काम करते हैं। कृषि, वाणिज्य, मुनीमी, नौकरी, भिक्षावृत्ति ये सब इन लोगोंकी उपजीविकाएं हैं। ब्राह्मणोंकी तरह इनमें भी १०-१२ वर्षकी उम्रमें बालकों-को उपनयनक्रिया होती है, पर क्रियाकलापोंमें वेदोच्चारण नहीं होता, अन्यान्य मन्त्र पढ़े जाते हैं। इन लोगोंमें बाल्यविवाह, बहुविवाह और विधवाओंका विवाह प्रचलित है। इनमें स्वजातीय प्रेम बहुत ज्यादा पाया जाता है। किसी कठिन सामाजिक विषयकी मीमांसा करनी हो, तो विज्ञव्यक्तिगण एकत्र हो कर स्थानीय ब्राह्मण पण्डितोंकी सहायता ले कर उसकी मीमांसा कर लेते हैं।

जाइस—१ अयोध्याके रायबरेली जिलान्तर्गत सलोन तह-सीलका एक परगना। इसका भूपरिमाण १५४½ वर्ग-मील है। इसके उत्तरमें मोहनगञ्ज परगना, पूर्वमें अमेठी परगना, दक्षिणमें प्रतापगढ़ और अतेहा परगना और पश्चिममें रायबरेली परगना है। यहांकी जमीन उर्वरा है, किन्तु कहीं कहीं विस्तीर्ण ऊसरक्षेत्र भी देखनेमें आता है। निम्नभूमि प्रतिवर्ष बाढ़से डूब जाया करती है। इस परगनेमें पोस्तेकी खेती अधिक होती है। इसमें कुल ११० ग्राम लगते हैं। पांच पक्की सड़कें परगनेके बीच होकर गई हैं।

२ सलोन तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° १५′ ५५″ उ० और देशा० ८१° ३५′ ५४″ पू०में रायबरेली-से सुलतानपुरके रास्ते पर नासिराबादसे ४ मील पश्चिम तथा सलोनसे १६ मील दक्षिणपश्चिम नैया नदीके किनारे अवस्थित है। पहले इस नगरका नाम उभय नगर था, पीछे सैयद सालर मसौदने इसे अधिकार कर वर्त-मान नाम रखा। यह शहर एक उच्च भूमिखण्डके ऊपर अवस्थित है, जो चारों ओर सुदृश्य आम्रकाननसे परि-वेष्ठित है। लोकसंख्या प्रायः ११८२६ है, जिसमें हिन्दू ६३४५, मुसलमान ५५६१ और जैन २० हैं। शहरमें एक भी हिन्दू-देवालय नहीं है। जैनियोंका बनाया हुआ पार्श्वनाथका मन्दिर, मुसलमानोंकी दो मसजिदें और एक सुन्दर इमामबाड़ा है। इमामबाड़ेके खम्भे और दीवारमें कुरानके अच्छे अच्छे अंश खुदे हुए हैं। इस शहरसे मुसलमानोंके बुने हुए तांतकी तथा अन्यान्य कपड़ोंकी रफतनी होती है। यहां सामान्य सोरा तैयार होता है। शहरमें देशीय और अंग्रेजी भाषा सिखानेके विद्यालय हैं।

आंउरा—आंवरा देखो।

आंउली—आंवली देखो।

जांग (हिं० पु०) १ घोड़ोंकी एक जाति। २ उरु। जांघ देखो।

जांगड़ा (हिं० पु०) बन्दी, भाट, राजाओंका यश गानेवाला।

जांगर (हिं० पु०) १ शरीर, देह। २ हाथ पैर।

जांगरा (हिं० पु०) भाट। जँगड़ा देखो।

जांगलू (फा० वि०) जङ्गली, उजड्ड, गँवार।

जांगी (हिं० पु०) नगाड़ा।

जांघ (हिं० स्त्री०) उरु, जङ्घा, घुटने और कमरके बीचका अङ्ग।

जांघा (हिं० पु०) १ हल। (पु० हिं०) २ वह खंभा जो कुएंके ऊपर गड़ा हुआ रहता है। ३ लोहे या लकड़ीका वह धुरा जिसमें गड़ारी पिरोई हुई होती है।

जांघिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका सिला हुआ कपड़ा। यह पायजामेकी तरहका होता है और कमरमें पहना जाता है। इस तरहका प्रायः पहलवान और नट आदि पहनते हैं। २ एक प्रकारको कसरत।

जांघिल (हिं० पु०) १ वह बैल जिसका पिछला पैर चलनेसे लच खाता हो। २ लम्बी गरदनवाली एक प्रकारकी खाकी रंगकी चिड़िया। इसका मांस स्वादिष्ट होनेके कारण लोग इसका शिकार करते हैं। ३ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया जो लगभग एक बालिश्त लम्बी होती है। इसकी छाती और पीठ सफेद, पंख काले, चोंच और शिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंगकी होती है।

जांच (हिं० स्त्री०) १ परीक्षा, इम्तहान, परख, अजमाइश। २ गवेषणा, खोज, तहकीकात।

जांचना (हिं० क्रि०) १ सत्यासत्य या योग्यायोग्यका अनुसंधान करना, यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। २ मांगना।

जांट (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष, छीया नामका पेड़।

जांत (हिं० पु०) जांता, बड़ी चक्की जिससे आटा पीसा जाता है।

जांता (हिं० पु०) १ जमीनमें गड़ी हुई आटा पीसनेकी बड़ी चक्की। २ इसपात या फौलाद लोहेका बना हुआ एक औजार। यह सुनारों और तारकशों आदिके काममें आता है। इससे मोटा तार महीन बनाया जाता है। इसका दूसरा नाम जन्ती है।

जांद (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़।

जाइण्ट (अं० पु०) १ गिरह, गांठ। २ पैबंद, जोड़।

जाकड़ (हिं० पु०) १ दूकानदारके यहां कोई माल इस शर्त पर ले आवे कि यदि वह पसन्द न आवे तो लौटा दिया जायगा।

जाकड़बही (हिं० स्त्री०) जाकड़ दिये हुए मालका नाम और दाम आदि लिख लेनेका खाता।

जाकेट (अं० स्त्री०) एक प्रकारका अंग्रेजी पहनावा। यह कुर्त्ती या सदरीकी तरह होती है।

जाखर—वर्त्तमान दरभङ्गा जिलेका एक परगना। बाघमती और कराई नामकी दो नदियां इसके बीच हो कर बहती हैं। यहांका विचारकार्य दरभङ्गाको अदालतमें होता है। दरभङ्गासे ले कर पूसा, नागर, बस्ती और रुसेरा तककी सड़कें इसी परगनेमें हो कर गई हैं।

जाखो—काठियावाड़का छोटा राज्य।

जाखो—बम्बई प्रान्तके कच्छ राज्यका बन्दर। यह अक्षा० २३° १४´ उ० और देशा० ६८° ४५´ पू०में दक्षिण-पश्चिम तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५०५१ है। अनाजकी रफ्तनी बम्बईको होती है। म्युनिसपालिटीकी प्रायः ८००) रु० वार्षिक आय है।

जाग (हिं० पु०) १ यज्ञ, मख। २ गृह, घर। (हिं० स्त्री०) ३ जागरण, जागनेकी क्रिया। (पु०) ४ एक प्रकारका काला कबूतर।

जागत (सं० पु०) जगतीछन्दोऽस्य अण्। १ जगतीच्छन्दयुक्त मन्त्रादि, जगती छन्दका मन्त्र। २ जगती छन्द। ३ सोमलताभेद।

जागतीकला (हिं० स्त्री०) जागतीजोत देखो।

जागतीजोत (हिं० स्त्री०) १ किसी देवता या देवीका प्रत्यक्ष चमत्कार। २ दीपक, चिराग।

जागता (सं० त्रि०) पृथ्वीभव वस्तु, पृथ्वीसे पैदा हुई चीज।

जागना (हिं० क्रि०) १ निद्रा त्यागना, सो कर उठना।

२ जाग्रत अवस्थामें होना, निद्राशून्य होना। ३ सजग होना, सावधान होना। ४ समृद्ध होना, बढ़ चढ़ कर होना। ५ प्रज्वलित होना, जलना। ६ प्रादुर्भूत होना। ७ समुत्थित होना, जोर शोरसे उठना। ८ उदित होना, चमक उठना।

जागनील (हिं० स्त्री०) एक तरहका हथियार।

जागभाट—राजपूताना और युक्तप्रदेशके रहनेवाले भाटों की एक शाखा। ये लोग वहांके प्रधान प्रधान राजपूत और अन्यान्य लोगोंकी वंशावली तथा चरित्र लिखते रहते हैं। भाट देखो।

जागर (सं० पु०) जागृ जागरणे भावे-घञ् ततः गुणः। १ जागरण, जाग, जागनेकी क्रिया। २ अन्तःकरणको समस्त वृत्तिप्रकाशक वृत्ति। जिस अवस्थामें अन्तःकरण-को समस्त वृत्तियां प्रकाशित होती हैं। उस अवस्थाका नाम जागर है। ३ कवच।

जागरक (सं० त्रि०) जागृ ण्वुल् गुणः। निद्रारहित, जागरणावस्थ।

जागरण (सं० क्ली०) जागृ भावे ल्युट्। १ निद्राका अभाव, जागना। पर्याय जागर्य्या, जागरा, जागर, जाग्रिया और जागर्त्ति।

जागरलमूडो—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत कृष्णा जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह नागरूलासे २१ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन देवमन्दिर है।

जागरित (सं० क्ली०) जागृ भावे क्तः। १ जागरण, नींदका न होना। २ सांख्य और वेदान्तके मतसे वह अवस्था जिसमें मनुष्यको इन्द्रियों द्वारा सब प्रकारके व्यवहारों और कार्य्योंका अनुभव होता रहे।

जागरितस्थान (सं० पु०) जागरितं स्थानमस्य। वेदान्तमत प्रसिद्ध वैश्वानर (आत्मा ऐसी आत्मा जो जागरित स्थितिमें हो।) मुण्डकोपनिषद्के भाष्यमें इसका स्वरूपइस तरह लिखा है—

जागरितस्थान, बहिःप्रज्ञ, सप्ताङ्ग, एकोनविंशतिमुख, स्थूलभुक् और वैश्वानर ये प्रथम पाद हैं। उपाधियुक्त आत्मा, जो आत्मा अपनी उपाधिमें आपने आप स्वप्नमें देखे हुए अलीक पदार्थोंकी तरह अथवा रज्जुमें सर्पकी तरह अन्तःकरणमें इन्द्रिय द्वारा व्यवहारिक अनुमेय स्थूलविषयोंका अनुभव करती है उस आत्माको जागरितस्थान कहते हैं। भावार्थ यह कि, जिस समय आत्मा अपनी मायामें आप ही मोहित हो कर शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धका अनुभव करती है, उस समय यह जागरितस्थान कहलाती है।

जागरिता (सं० त्रि०) जागृ-तृच्-टाप्। जागरणशील, जिसे नींद न आती हो।

जागरितान्त (सं० पु०) जागरितस्य अन्तः तत्र विग्रहः। जागरितमध्य, जागरितस्थान, वह आत्मा जो जागरित स्थितिमें हो।

जागरिन् (सं० त्रि०) जागरो जागरणं अस्त्यस्य जागर-इनि। १ जागरूक, जो जाग्रत अवस्थामें हो। जागृ शीलार्थे णिनि। २ जागरणशील, जागनेवाला।

जागरिष्णु (सं० त्रि०) जागर-इष्णुच्। जागरणशील, जागनेवाला।

जागरूक (सं० त्रि०) जागर्त्ति जागृ-ऊक। १ जागरण-कर्त्ता, जो जाग्रत अवस्थामें हो। पर्याय—जागरिता और जागरी। २ कर्त्तव्य पालनादिके लिये अर्थके प्रति अप्रमत्त, जो कर्त्तव्यपालन करनेमें उचित रूपसे रुपये खर्च करता हो।

जागरूप (हिं० वि०) जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो।

जागर्त्ति (सं० स्त्री०) जागृ भावे क्तिन। जागरण, नींदका न होना।

जागर्य्या (सं० स्त्री०) जागृ-यक्। जागरण, जागना।

जागीत (फा० स्त्री०) सेवाके पुरस्कारमें मिली हुई भूमि, वह जमीन जो किसी राज्य या शासक आदिकी ओरसे किसीको उसकी सेवाके उपलक्षमें मिले।

जागीर—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत चेङ्गलपट जिलेका ऐतिहासिक नाम। मुसलमान राजाओंसे जो जमींदारी मिलती थी उसे जागीर कहते थे। उसीके अनुसार इसका नाम जागीर हुआ है। इष्टइण्डिया कम्पनीने अर्काटके नवाबको कई बार सहायता की थी, इस कारण नवाबने उन्हें १७६० ई०में सनद द्वारा यह जागीर दी थी। दक्षिण प्रदेशमें अंगरेजोंको जो स्थान मिले थे इनमेंसे जागीर एक प्रधान स्थान था। १७६३ ई०में

सम्राट् शाह आलमने भी उक्त सनद कायम रखी।

जागीरदार (फा० पु०) वह जिसे जागीर मिली हो।

जागुड़ (सं० पु०) जगुड़े तदाख्यया प्रसिद्धे देशे भव इत्यण्। १ देशविशेष, एक प्राचीन देशका नाम। २ कुङ्कुम, केसर। (त्रि०) ३ जागुड़ देशका निवासी।

जागृवि (सं० पु०) जागर्त्ति साक्षिस्वरूपतया जागृ-क्विन्। १ अग्नि, आग। २ नृप, राजा। (त्रि०) ३ जागरणशील, जागनेवाला। ४ सदा निज कार्यमें अप्रमत्त, जो हमेशा अपने काममें सावधान रहता हो।

जाग्रत (सं० त्रि०) १ जागरणशील, जो जागता हो। २ जिसमें सब बातोंका ज्ञान हो ऐसी अवस्था।

जाग्रति (सं० स्त्री०) जागरण, जागनेकी क्रिया।

जाग्रिया (सं० स्त्री०) जागृ भावे शः रिङादेशः। जागरण, निद्राका अभाव।

जावनी (सं० स्त्री०) जवनस्य समीपं जवन-अण् ततः स्त्रियां ङीप्। जरु, जंघा, जांघ। जवनस्यार्द्ध जवनैक-देशे भवः अण ङीप्। २ पुष्पकाण्ड।

जाघुरी—अफगानिस्तानकी एक जातिका नाम। यह हाजाराओंकी एकश्रेणी मात्र है। ये लोग इधर काबुल और गजनीकी सीमासे हिरात तक और दूसरी तरफ कान्दाहारसे बाल्ख तक, इस चतुःसीमाके भीतर रहते हैं।

जाङ्गल (सं० क्लो०) जङ्गलेषु स्थलजपशुविशेषेषु भवं। जङ्गल-अण्। १ मांस, गोस्त। (हेम०) (पु०) जङ्गले भवः जङ्गल-अण्। २ कपिञ्जल पक्षी, तीतर। ३ वारि-हीन देश, वह देश जहाँ पानी कम हो। जहां वृक्ष और पानी कम हो, शमी, करील बेल, मंदार, पोलु (झल), कर्कन्धु (बेर) आदि नाना प्रकार सुस्वादु फल उत्पन्न होते हों और हरिण, बारहसिंघा आदि जानवर रहते हों, उस स्थानको जाङ्गल* कहते हैं।

जहां पानी और घास कम, वायु और आतप अधिक, और बहुत धान्यादि उत्पन्न होते हैं, उस स्थानका नाम है जाङ्गल।

जिस स्थानमें चारों तरफ मृगतृष्णा (अर्थात् मरीचिका वालुकामय स्थान) हो, वृक्षोंका समूह अत्यर्थ शोल हो, सूर्यकी किरण अति प्रखर हो, पुष्करिणी जलसे शून्य हो, कुएँके पानीसे सब काम होते हों, जहांके लोगोंका शरीर सूखा हुआ हो, धान्यादि समस्त हिमपतनजात हों, ऐसे स्थानका नाम भी जाङ्गल है। इस स्थानके गुण—वातपित्तकारक, रूक्ष और उष्ण। यहांके जलके गुण—रूक्ष, लवणयुक्त, लघु, पथ्य, अग्नि और कफविकारकारक।

(त्रि० ४ उक्त स्थानमें रहनेवाले पशु। ये हिरन, बारहसिंघे आदिके भेदसे बहुत प्रकारके होते हैं। पशु देखो। हरिण, एण, कुरङ्ग, ऋष्य, पृषत, न्यङ्कु, राजीव इत्यादि। इनका मांस भावप्रकाशके मतसे मधुर, रूक्ष, कषाय, लघु, बल्य, वृंहण, वृष्य, दीपन, दोषहारक, मूक-गद्गदचित्त-बाधिर्यनाशक, रुचि, छर्दि, प्रमेह, मुखज रोग, श्लीपद, गलगण्ड और वायुनाशक माना गया है और राजवल्लभके मतसे यह शीतल और मनुष्यके लिए हितजनक है।

जाङ्गलपथिक (सं० त्रि०) जङ्गलस्थः पन्थाः अच् समासान्तः। १ जङ्गल पथ द्वारा आहृत, जङ्गलके रास्तेसे बुलाया हुआ। २ जङ्गल पथ-गमनकारक, जङ्गलके रास्तेसे जानेवाला।

जाङ्गलि (सं० पु०) १ वह जो साँप पकड़ता हो, सँपेरा। २ विष-वैद्य, वह जो साँपका जहर उतारता हो।

जाङ्गलिक (सं० पु०) जाङ्गली विषविद्या तामधीते इति ठन्। विषवैद्य, साँपका जहर उतारनेवाला।

जाङ्गली (सं० स्त्री०) क्रौञ्च, कौंछ, केंवाच।

जाङ्गीरपत्तन—ढाका नगरका प्राचीन नाम। कहा जाता है कि सम्राट् जहांगीरसे यह नाम रखा गया है। यहाँ ढाकेश्वरी नामकी देवी विराजमान हैं। ढाका देखो।

जाङ्गुड (सं० क्लो०) कुङ्कुम, केसर।

जाङ्गुलि (सं० पु०) जङ्गुलः जङ्गुलभवः सर्पादिग्राह्यतया अस्त्यस्य जाङ्गुल-इञ्। १ व्यालग्राही, सँपेरा। २ विष, जहर। ३ तरोई, तोरई।

जाङ्गुली (सं० स्त्री०) जङ्गुलस्य इयं इति अण् ततो ङीप्। विषविद्या, साँपके विष उतारनेकी क्रिया।

---

* "आकाश-शुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः।
शमीकरीरविल्वार्कपीलुकर्कन्धुसंकुलः॥
सुस्वादुः फलवान् देशो वातली जांगलः स्मृतः"
(सुश्रुत)

जाङ्घनी (सं० स्त्री०) जङ्घा, जाँघ ।

जाङ्घाप्रहतक (सं० त्रि०) जङ्घा द्वारा आघातजनक, जाँघसे चोट पहुंचानेवाला ।

जाङ्घलायन (सं० पु०) प्रवर ऋषिका नाम ।

जाङ्घि (सं० त्रि०) जङ्घायां भवः जङ्घा-इञ् । जङ्घाभूत, जाँघसे निकला हुआ ।

जाङ्घिक (सं० त्रि०) जङ्घाभिश्चरति इति ठन् । १ उष्ट्र, ऊँट । २ ओकारो वृक्ष । ३ ओकारो नामका मृग । ४ जङ्घाजीवी, वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदिसे चलती है, हरकरा । ५ प्रशस्त जङ्घाविशिष्ट, जिसकी जाघ अच्छी हो ।

जाङ्घिकाख्य (सं० पु०) ओकारो मृग, एक प्रकारका हिरन ।

जाचक (हिं० पु०) १ भिक्षुक, भिखारी । २ भिखमंगा, भीख मांगनेवाला ।

जाजगढ़—अजमेर राज्यका एक नगर । कोटा नगरके जालिमसिंहने १८०३ ई०में इस नगरको उदयपुरसे अलग कर दिया । इसमें कुल ८४ ग्राम लगते हैं, जिनमें से २२ ग्रामोंमें केवल मीना जातिके लोग रहते हैं । ये लोग रूपवान, बलवान् तथा बड़े शूरवीर होते हैं । ये रुपये दे कर राजस्व नहीं चुकाते, बल्कि परिश्रम करके । इन लोगोंकी गिनती हिन्दूमें होती है । ये सबके सब शिवोपासक हैं ।

जाजदेव-नयचन्द्रसूरि-प्रणीत "हम्मीर-महाकाव्य" नामक संस्कृत ग्रन्थमें वर्णित रणस्तम्भपुरराज हम्मीरके सेनापति ।

जाजन (सं० त्रि०) योधशील, युद्ध करनेका जिसका स्वभाव हो ।

जाजपुर—१ उड़ीसा प्रान्तके कटक जिलेका उत्तर-पश्चिम सब-डिविजन । यह अक्षा० २०° ३८´ तथा २१° १०´ उ० और देशा० ८५°४२´ एवं ८६° ३७´ पू०के मध्य अवस्थित है । इसका क्षेत्रफल ११११५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५६०४०२ है । इसमें १ नगर और १५८० ग्राम आबाद है ।

२ उड़ीसाके कटक जिलेमें जाजपुर सब-डिविजनका सदर । यह अक्षा० २०°५१´ उ० और देशा० ८६° २०´ पू०में वैतरणी नदीके दक्षिण तट पर अवस्थित पुण्यतीर्थ नाभि-गया है । लोकसंख्या प्रायः १२१११ है । प्राचीन केशरी राजाओंके अधीन यह उत्कलकी राजधानी रहा । ईसाकी १६वीं शताब्दीमें यहां हिन्दू और मुसलमानोंमें बड़ा बखेड़ा हुआ था, जिससे यह बरबाद हो गया । यहां वरदा-देवी तथा वराहावतार विष्णुका मन्दिर है और विशाल सूर्यस्तम्भ, जो नगरसे १ मील दूर है, देखने योग्य है । सिवा इनके हिन्दू देवदेवियोंकी बहुतसी ऐसी मूर्तियां भी हैं जिनकी नाक काला पहाड़ने काट डाली थी । १७ वीं शताब्दीमें नवाब आबू नसीरकी बनायी मसजिद भी अच्छी है । १८६८ ई०में जाजपुर म्युनिसपालिटी बन गई ।

जाजपुर—जह्नाजपुर देखो ।

जाजम (तु० स्त्री०) एक प्रकारकी चादर । इस पर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और यह फर्श पर बिछानेके काम आती है । वैतरणी, वराहक्षेत्र देखो ।

जाजमऊ—युक्त प्रदेशके कानपुर जिलेकी कानपुर तह-सीलका पुराना नाम ।

जाजमलार (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग । इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

जाजरूर (फा० पु०) पाखाना, टट्टी ।

जाजल (सं० पु०) अथर्ववेदकी एक शाखाका नाम ।

जाजलि (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम । ये अथर्ववेद-वेत्ता पथ्यके शिष्य थे । किसी समय इन्होंने समुद्रके किनारे घोरतर तपस्याका अनुष्ठान किया । क्रमशः तपके प्रभावसे त्रिभुवन भ्रमण कर इन्होंने मन ही मन सोचा कि, इस जगत्में मैं ही एक मात्र तपस्वी हूं । अन्तरीक्ष-स्थित राक्षसोंने उनके मनका भाव समझ कर कहा—'हे भद्र! तुम्हारा इस प्रकारका विचार करना सर्वथा अन्याय है । वाराणसीनिवासी वणिक् तुलाधार भी इस बातको कहनेके लिये साहस नहीं करता ।" इस बातको सुन कर ये तुलाधारसे मिलनेके लिए काशी गये वहाँ तुलाधारके मुखसे सनातन धर्मविषयक विविध उपदेश सुन कर इन्हें शान्ति लाभ हुई । (भारत शान्ति०) ये जाजलि ऋषि प्रवरप्रवर्त्तक थे । (हेमाद्रि व्र०)

२ ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें कथित एक वैद्य ।

जाजल्लदेव—दक्षिण देशके एक प्राचीन राजा। इनका जन्म चेदिराज कोक्कलके वंशमें पृथ्वीश या पृथ्वीदेवके औरससे हुआ था। बहुतसे शिलालेखोंमें इनका नाम मिलता है। वहांके ८६६ चेदिसम्वत्के एक शिलालेखके पढ़नेसे मालूम होता है कि इनकी माताका नाम राजल्ला था। उसमें यह भी लिखा है कि, चेदिराजके साथ इनका सौहार्द्य था, कान्यकुब्ज और जेजाभुक्तिके राजा इन्हें मानते थे। इन्होंने सोमेश्वर नामक एक राजाको पराजित कर कैद कर लिया था; पीछे उन्हें छोड़ भी दिया था। इन्हें दक्षिण कोशल, अन्ध्र, खिमिड़ी, वैरागढ़, लतिका, भानाड़ा, तलहारी, दण्डकपुर, नन्दावली और कुक्कुट आदि मण्डलपतियोंसे कर और उपढौकनादि प्राप्त होता था। हैहयराजवंश देखो।

जाजल्लपुर—दक्षिणदेशका एक प्राचीन नगर। जाजल्लदेवने इस नगरको स्थापना की थी।

जाजिम (तु० स्त्री०) बिछानेके काममें आनेवाली एक प्रकार छपी हुई चादर। जाजम देखो।

जाजी (सं० स्त्री०) जीरक, जीरा।

जाज्वल्य (सं० त्रि०) १ प्रज्वलित, प्रकाशयुक्त। २ तेजवान्।

जाज्वल्यमान (सं० त्रि०) भृशं ज्वलति ज्वल-यङ्-शानच्। १ अत्युज्ज्वल, दीप्तिमान्। २ तेजस्वी, तेजवान्।

जाझलि (सं० पु०) जझ सङ्घाते-घञ् तं लाति-ला-डि। वृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़।

जाट—१ भारतवर्षको एक प्रसिद्ध जाति। भारतवर्षके युक्तप्रदेश, पञ्जाब, राजपूताना और सिन्धमें अधिकांश अधिवासी जाट ही पाये जाते हैं। इन प्रदेशोंके सिवा अफगानिस्तान, बेलुचिस्तान आदि प्रदेशोंमें भी इनका वास है। जाट जातिकी संख्या बहुत ज्यादा है। ये भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं। मतलब यह कि, जुती जिती, जीत, जूट या जाट इनमेंसे कोई भी नाम क्यों न हो, भारतवर्षमें तीन शताब्दी पहले उनकी संख्या अन्यान्य जातियोंसे कहीं अधिक थी। जाट जातिकी उत्पत्तिके विषयमें सबोंका एक मत नहीं है। कोई कहते हैं, देवादिदेव महादेवकी जटासे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है, इसीलिए इसका जाट नाम पड़ा है। किसीका यह भी कहना है कि जाट जाति चन्द्रसूर्यवंशीय है। अध्यापक लासेन प्रमुख पण्डितोंका कहना है कि, महाभारतमें जो मद्र और जात्तिकोंका उल्लेख है, जाट जाति उन्हींमें शामिल है। इसके अतिरिक्त कोई कोई कहते हैं कि, जाटगण राजपूत हैं—किसी निम्नश्रेणीकी राजपूतशाखासे उत्पन्न होनेके कारण राजपूत-समाजमें इनका यथोचित सम्मान नहीं है। इस मतसे सहमत पण्डितगण कहते हैं कि, राजपूत और जाटोंमें जातिगत विशेष कुछ पार्थक्य नहीं है; किन्तु व्यवसायके तारतम्यानुसार इनमें सामाजिक प्रभेद पड़ गया है। राजपूतोंके ३६ वंशोंमें जाटोंका भी उल्लेख है। पहले राजपूतगण इन लोगोंसे वैवाहिक सम्बन्ध करनेमें किसी प्रकारकी लज्जा नहीं करते थे। यद्यपि इस समय इन लोगोंके साथ राजपूतोंको प्रकाश्य विवाह प्रचलित नहीं है, किन्तु तथापि राजपूतगण वैवाहिक सम्बन्धमें इनसे पूर्णतया विच्छिन्न नहीं हो सके हैं।

जाटोंकी उत्पत्तिके विषयमें एक प्रवाद है—एक दिन एक गुर्जर जातीय स्त्री सिर पर पानीसे भरी एक गागर ले जा रही थी। उसी समय एक भैंस रस्सी तोड़ कर भागी जा रही थी। उस स्त्रीने अपने पैरसे भैंसकी रस्सीको इस तरह दबाया कि, वह भैंस जहांकी तहां खड़ी रह गई। एक राजपूत राजा दूरसे यह दृश्य देख रहे थे, वे उक्त स्त्री पर बहुत ही सन्तुष्ट हुए और उसे अपने घर ले गये। राजपूत और इस गुर्जर जातीय स्त्रीके संमिश्रणसे एक नवीन जातिकी उत्पत्ति हुई, जो इस समय जाटके नामसे प्रसिद्ध है। अधिकांश जाट ही अपनी उत्पत्तिके विषयमें उक्त विवरणको सुनाया करते हैं।

यूरोपीय विद्वानोंका कहना है कि, जाटगण भारतके आदिम अधिवासी नहीं हैं। व्यक्तियाराज्यके अधःपतनके समय अक्सस् नदीके किनारे वह्लिया और खुरासानके मध्यवर्त्ती स्थानसे स्किदीय (शक)-गण भारतकी तरफ अग्रसर हुए थे। इन लोगोंने क्रमशः भारतमें प्रवेश किया। इन (शक)की एक शाखा सिन्धु देशमें आ कर स्थायी भावसे रहने लगी और मेद नामकी दूसरी एक

शाखा पञ्जाबमें घुस पड़ी। कास्पियान ह्रदके निकटवर्ती स्थानसे आ कर जो लोग सिन्धुनदके उस पार रहते थे, वे अत्यन्त बलशाली और साहसी थे। सुलतान महमूद सोमनाथके मन्दिरसे बहुत धनरत्न लूट कर जिस समय गजनी लौट रहे थे, उस समय मार्गमें एक दल जाटोंने उन्हें घेर लिया था; जिससे उनकी विशेष क्षति हुई थी। ४१६ हिजरी (१०२६ ई०)में सुलतान महमूदके साथ जाटोंका एक घमसान युद्ध हुआ था। इस युद्धमें बहुतसे जाट मारे गये और कुछ लोगोंने भाग कर बीकानेर राज्यका सूत्रपात किया। सम्राट् बाबरको भी जाटोंके द्वारा बहुत कुछ नुकसान उठाना पड़ा था।

ईसाकी चौथी शताब्दीमें पञ्जाबमें जुटी या जाट-राज्य प्रतिष्ठित था; किन्तु इस बातका निर्णय करना दुःसाध्य है कि, इससे कितने समय पहले जाट जातिने इस प्रदेशमें प्रथम उपनिवेश स्थापन किया था। इस जातिने भारतवर्षमें मुसलमान शासनके विस्तारमें विशेष बाधाएं पहुंचाई थीं। पहिले पहल कुछ लोगोंके एकत्र रहनेसे क्रमशः इनमें जातीय भाव उत्पन्न होनेके उपरान्त लोगोंमें एक राज्य स्थापन करनेकी इच्छा हुई। पीछे चूड़ामणके नेतृत्वमें ये लोग कुछ कृतकार्य भी हुए थे और सूर्यमलके अधीन इन लोगोंने वास्तवमें भरतपुरमें एक जाटराज्यकी स्थापना कर ली। (भरतपुर देखो।)

पाश्चात्य मतसे-स्किदीय जातिके जाटोंने बोलान गिरि-सङ्कटको पार कर सिन्धुनदको प्रान्तर भूमिके बीचसे सिन्धु और पञ्जाब प्रदेशमें उपनिवेश स्थापन किया है; ये लोग हिमालयके पार्वतीय प्रदेशके निम्नभागमें नहीं रहे हैं। सिन्धु प्रदेशके अर्द्धभागमें अधिकांश अधिवासी जाट ही हैं और उन्हीं लोगोंकी भाषा उस प्रदेशकी चलती भाषा है पहले सिन्धुमें जाटोंका ही प्रभुत्व था; किन्तु अब नहीं है। पञ्जाबके अधिकांश अधिवासी जाट हैं, जिनकी संख्या ४॥ लाख है। दोआबसे ले कर मुलतान तक समस्त भूमि जाटोंके अधिकारमें है।

पञ्जाबके अधिकांश जाट खेतीबारी करते हैं। आधुनिक सिक्खोंमेंसे बहुतोंकी उत्पत्ति जाटवंशसे है। पञ्जाबके बहुतसे जाट मुसलमान धर्मको पालते हैं। ये लोग धारैल, बागरी, मझवार, रंज आदि भिन्न भिन्न शाखाओंमें विभक्त हैं। पञ्जाबके पूर्वांशमें और जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर आदि प्रदेशोंमें हिन्दूधर्मावलम्बी जाट रहते हैं। बरेली, फर्रुखाबाद, ग्वालियर आदि प्रदेशोंमें भी जाटोंका फैलाव हो गया है। भरतपुर, दिल्ली, दोआब, रोहिलखण्ड आदि स्थानोंमें भी जाटोंका वास पाया जाता है। संयुक्त प्रदेशकी जाट जाति पच्छाद और हेले इन श्रेणियोंमें विभक्त है। पञ्जाबके पुराने वासिन्दा पच्छाद जाटोंको घृणासूचक शब्दोंमें 'पच्छादा' कहा करते हैं, काले सांप और बूढ़े गधेके विषयमें जो कहावत प्रसिद्ध है वह पच्छादाके ऊपर भी घटाई जाती है। कहावत यह है—

"बूढ़ी भैंस पुराना गाढ़ा।
काला सांप और सग पच्छादा।
कुछ लाभ हुआ तो हुआ;
नहीं तो खाद ही खादा।"

पहले सभी जाट एक साधारण नामसे प्रसिद्ध थे। ये आवर कहलाते थे। उस समय ये लोग पड़ोसी या दूसरों घरसे पालतू घोड़े आदि चुराया करते थे। प्रायः सभी लोग अपनेको राजपूतवंशसे उत्पन्न बतलाते हैं। बलन और नोहल जाट चौहान वंशसे तथा सरवत और सलफलान जाट अपनेको तुयार वंशसे उत्पन्न कहते हैं। कोई कोई यूरोपीय विद्वान् कहते हैं—भरतपुरके और सिन्धुप्रदेशके जाट भिन्न भिन्न शाखाओंसे उत्पन्न हैं। और किसी किसीका यह कहना है कि, सभी जाट एक ही वंशसे उत्पन्न हैं, जाटोंने पहले सिन्धुप्रदेशमें उपनिवेशकी स्थापना की थी, पीछे बल्खियासे बहुतसे जाट भारतमें आये और वे धीरे धीरे बढ़ते हुए राजपूतानामें पहुंच गये। समयका आगे पीछेका वंशज और आवासके परिवर्त्तन हो जानेसे वे लोग प्रधान शाखासे नहीं मिल सके हैं।

जाटोंमें कुछ लोग हिन्दू और कुछ मुसलमान हैं। मुसलमान जाटोंका कहना है कि, वे गजनीसे भारतमें आये हैं। युक्तप्रदेश और सिन्धुप्रदेशमें बहुतसे जाट ऐसे पाये जाते हैं, जिनका आचार व्यवहार मुसलमान-धर्मावलम्बी न होने पर भी—सम्पूर्ण हिन्दूधर्मानुयायी नहीं है। इन लोगोंका विश्वास है कि—'विश्वजननी भवानी एक जाट-

की कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थी। इस भवानीकी आराधना करनेके सिवा ये हिन्दू-धर्मके और किसी भी विधानको ग्राह्य नहीं करते। पौराणिक आख्यायिकाओंमें इनका बहुत कम विश्वास है। एकमात्र अनादि ईश्वरकी उपासना करनेमें इनका विशेष अनुराग पाया जाता है। इन जाटोंमें बहुतसी श्रेणियां हैं। किसी किसी श्रेणिमें बड़े भाईकी मृत्युके बाद उसकी स्त्रीसे विवाह करनेका नियम प्रचलित है। विवाहके समय पात्र और पात्रीके माथे पर सिर्फ एक चादर रख दी जाती है, इसलिए इस विवाहको 'चादर-चलन' कहते हैं। इन देशोंमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है; रुपये दे कर लड़की मोल लेनी पड़ती है, इसीलिए शायद उक्त प्रदेशोंमें भ्रातृपत्नीविवाह प्रचलित है। पञ्जाबके मुसलमान जाट भरैच और गण्डाल नामकी दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं। गुजरात और शाहपुरमें गण्डालोंकी संख्या अधिक है; ये अतिशय दृढ़काय, साहसी और बलिष्ठ होते हैं। ये लम्बी दाढ़ी रखते और उसे नीले रंगसे रंगते हैं। गुजरात और उसके आस-पासके जाट, वितस्ता नदीके तीरवर्ती उर्वरा प्रदेशको 'हिरात' कहते हैं। इसलिए और प्राचीन ग्रन्थोंमें इनका कुछ विवरण नहीं मिलनेके कारण यूरोपीय विद्वानोंने इन्हें मध्य एशियाके आदिम अधिवासी बतलाया है। परन्तु जाटोंकी भाषाके साथ आर्योंकी भाषाका अति निकट सम्बन्ध है और ये पञ्जाबी और हिन्दी भाषामें बात-चीत करते हैं; इसलिए ये यदि स्किदीय जातिसे उत्पन्न होते, तो इनकी भाषा किस तरह विलुप्त हुई ?

मुसलमानों द्वारा पराजित हो कर अन्यान्य राजपूतोंकी तरह जाटोंने भी राजपूतानामें प्रवेश किया है और वहां अधिकांश लोग खेती-बारी करते हैं। भरतपुर और ढोलपुर ये दोनों ही जाटराज्य हैं। पञ्जाब और राजपूतानामें बहुत जगहके हिन्दू और मुसलमान जाट एक साथ रहते हैं और इसलिए उनके आचार-व्यवहारमें किसी किसी अंशमें सादृश्य पाया जाता है। लाहोर और शतद्रुके उच्चभागस्थ जाटगण प्रायः सभी हिन्दू हैं। पञ्जाबके सभी जाटोंकी 'सिंह' उपाधि है और इनकी पोशाक अन्यान्य प्रदेशोंके जाटोंसे भिन्न है। इनमेंसे प्रायः सभी लोग सिख-धर्मावलम्बी हैं। दिल्ली, भरतपुर आदिके जाटोंमें सभी लोगोंकी उपाधि सिंह नहीं है; किसी किसीकी मल्ल भी है। सिन्ध प्रदेशके जाट कौम नामसे प्रसिद्ध और बहुतसी छोटी छोटी शाखाओंमें विभक्त हैं। ये लोग बड़े परिश्रमी होते हैं। पशु आदिको पाल कर तथा हल जोत कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। जिनके पास अपनी जमीन नहीं है, वे किसी जमींदारके अधीन रह कर हल जोतते हैं और वेतन स्वरूप उन्हें फसलमेंसे कुछ प्राप्त होता है। ये अत्यन्त शान्त प्रकृतिके होते हैं। इस प्रदेशकी जाटोंकी स्त्रियां सौन्दर्य और सतीत्वके लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। पुरुषोंकी तरह इनकी स्त्रियां भी कठिन परिश्रमी होती हैं। ये घर गृहस्थीका काम बहुत करती हैं। कच्छ प्रदेशके प्रायः सभी जाट ऊंटोंका रोजगार करते हैं। हिन्दू जाट साधारणतः एक ही विवाह करते हैं; किन्तु सन्तान न होनेसे दूसरा विवाह भी कर सकते हैं। मेरठकी तरफके जाट अत्यन्त कष्टसहिष्णु, धीर और परिश्रमी होते हैं। साधारणतः ये लोग शान्तिप्रिय होने पर भी प्रतिहिंसा-साधनके समय अत्यन्त उग्रप्रकृति धारण करते हैं। सर्दारकी आज्ञा पाने पर ये लोग कठिनसे कठिन काम तक कर डालते हैं, कभी मुंह नहीं मोड़ते। इनमें बहुतसे ऐसे भी हैं, जो मांस खाते हैं। युद्ध-विद्यामें प्रायः सभी निपुण होते हैं। ये लोग हिन्दू हैं; किन्तु ब्राह्मणोंकी बहुत अवज्ञा करते हैं। इनमें पञ्जाबके सिंह-उपाधिधारी जाट ही सबसे श्रेष्ठ हैं। ये लम्बे होते हैं; इनकी देह सुडौल, दाढ़ी लम्बी और बहुत होती है। इनकी मुखकी सुन्दरता अति शोभनीय है। पार्वतीय पठानोंकी अपेक्षा ये अत्यधिक साहसी, बलिष्ठ और संग्रामकुशल तथा कृषिव्यवसायी, कठिन परिश्रमी और परिमितव्ययी होते हैं। इनमें बहुतसी स्त्रियां पढ़ी लिखी भी हैं। ये गाय भैंस आदि पालते हैं; एक स्थानका अनाज गाड़ीमें रख कर दूसरे स्थानको ले जाते हैं। ये भूमिका स्वत्व हमेशा अक्षुण्ण रखना पसन्द करते हैं। जहां जाट रहते हैं, वहां प्रत्येककी भिन्न भिन्न आबादी जमीन भी रहती है। अभी

जमीनोंका स्वत्व भिन्न भिन्न व्यक्तियों पर है। पर्त्ती पतित और गाय भैंसोंको चरानेकी जमीन साधारण सम्पत्ति समझी जाती है। इनमें किसी एक व्यक्तिके कहनेके अनुसार कोई काम नहीं होता ; बल्कि गाँवके प्रधान प्रधान व्यक्ति मिल कर समस्त कार्योंका निर्वाह करते हैं। आधुनिक महाराजाओंकी तरह पहले राजपूतानेके जाटोंमें साधारण तन्त्र प्रचलित था। इन जाटोंमें विधवाओंको विवाह प्रचलित है। जाटगण भिन्न भिन्न शाखाओंमें विभक्त है; ये अपनी श्रेणीके सिवा अन्यान्य शाखाओंसे विवाह-सम्बन्ध करते हैं। कृषि-व्यवसायी जाटोंकी संख्या पञ्जाबमें ही अधिक पाई जाती है। पञ्जाबी भाषामें जाट, जमींदारी और कृषक ये तीनों शब्द एकार्थबोधक हैं। टाड आदि इतिहासवेत्ताओंके मतसे—महाराज रणजितसिंहने जाटवंशमें जन्म लिया था।

आर्योदीवंशके जाटगण पानीपत और सुनपत नामक स्थानोंमें रहते हैं, इनकी मालिक उपाधि है। इसीलिए ये लोग वंशगौरवसे अपनेको अन्य जाटोंसे श्रेष्ठ बतलाते हैं। पञ्जाब, काचगन्धव तथा गङ्गा और यमुनाके निकटवर्त्ती प्रान्तोंमें अनेक जाटोंका वास है, जिनकी भाषा अन्य जातियोंसे भिन्न है। जेल प्रदेशके जमींदार जाटवंशके हैं। ये कहीं जाते समय अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो कर बैल पर सवार होते हैं। बहुतसे जाटोंको आधी नंगी तलवार लिए बैल पर सवार हुए जाते देखा है। जाटगण काचगन्धव प्रदेशमें बहुत दिनोंसे रहते हैं, इसलिए बहुतोंने इन्हें यहांका आदिम अधिवासी बतलाया है। जाट गण कहीं भी रहें, वे भूमि कर्षणके लिए वहांकी सबसे ऊंची जमीन पर अधिकार जमाते हैं। अलीगढ़के जाटोंके साथ राजपूतानाके जाटोंका जातिगत विरोध देखनेमें आता है। इनमें विरोध इतना प्रबल है कि, ये दोनों जातियां कभी एक ग्राममें नहीं रहती। अमृतसरके सिख जाटगण बड़े साहसी और कार्यक्षम होते हैं। इन लोगोंके समान साहसी और योद्धा दुनियामें बहुत कम हो पाये जाते हैं। जाटोंकी वीरताका दो-एक विवरण सुननेमें आता है। १७५७ ई०में जाटोंने रामगढ़ अधिकार किया था, जिसका नाम बदल कर इन लोगोंने कोल रक्खा था। अलीगढ़में ग्रामनी नामक स्थानमें जाटोंने एक मृण्मय दुर्ग बनाया था। अफगानिस्तानमें भी जाटोंकी बस्ती है। वहाँ ये गुर्जर नामसे

जाट जाति।

परिचित हैं। जाटोंमें सभीका धर्म एक नहीं है,—कुछ हिन्दू कुछ मुसलमान और कुछ सिख धर्मको पालते हैं। पञ्जाबके जाटोंका धर्मसम्बन्धी नियमोंमें विशेष विश्वास नहीं था, इसीलिए महात्मा नानकने उन्हें सहजमें सिखधर्ममें दीक्षित कर लिया था।

२ एक तरहका गाना, जो रंगीन या चलता होता है। ३ जाठ देखो।

जाटलि (सं० पु०) १ पटोललता, परवलकी लता।

जाटालि (सं० स्त्री०) किंशुक वृक्षसदृश वृक्षभेद, पलासकी जातिका एक पेड़ जिसे मोखा कहते हैं।

जाटालिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

जाटासुरि (सं० पु०) जटासुरस्य अपत्यं इञ्। जटासुरके पुत्रका नाम।

जाटिकायन (सं० पु०) अथर्ववेदके एक ऋषिका नाम।

जाटिलिक (सं० पु० स्त्री०) जटिलिकायाः अपत्यं. शिवादित्वादण्। जटिलिकाके पुत्रका नाम।

जाठ (हिं० पु०) १ तालाब आदिके बीचमें गड़ा हुआ लकड़ीका ऊंचा और मोटा लट्ठा। २ लकड़ीका वह ऊंचा और मोटा लट्ठा जो कोल्हूकी कूंड़ीके बीचमें लगा रहता है। इसके घूमने तथा दाब पड़नेसे कोल्हूमें डाली हुई चीजें पेरी जाती हैं।

जाठ—१ बम्बईके अन्तर्गत बिजापुर पोलिटिकल एजेन्सीका एक देशीयराज्य। बिजापुर देखो।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १७° ३' उ० और देशा० ७५° १६' पू०के मध्य सतारा शहरसे ८२ मील दक्षिण-पूर्व, बेलगामसे ८५ मील उत्तर-पूर्व और पूनासे १५० मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५४०४ है।

जाठर (सं० पु०) जठरे भवः अण्। १ जठरस्थित पाचक अग्नि, पेटकी वह अग्नि जिसकी सहायतासे खाया हुआ अन्न आदि पचता है। २ कुमारानुचर मातृकाभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। ३ उदर, पेट। ४ क्षुधा, भूख।

जाठर (हिं० वि०) १ जठर संबन्धी। २ जो जठरसे उत्पन्न हो।

जाठराग्नि (हिं० स्त्री०) जठराग्नि देखो।

जाठर्य्य (सं० त्रि०) जठरे भवः जठर-ष्य। जठररोगविशेष पेटकी एक बीमारी।

जाडर (सं० पु०-स्त्री०) जड़स्यापत्यं जड़-आरक्। जड़का पुत्र।

जाड़ा (हिं० पु०) वह ऋतु जिसमें बहुत ठंड पड़ती हो, शीतकाल, सरदीका मौसम।

जाड़ा—१ कच्छप्रदेशके जाड़ेजा राजवंशके एक राजा। इनके नामके अनुसार इन्हींके पुत्र लाखने अपने वंशका नाम जाड़ेजा रक्खा था। कच्छ देखो।

२ ब्रह्मखण्डमें कथित पूर्ववङ्गके एक ग्रामका नाम।

जाड़ेजा—कच्छप्रदेशका सर्वप्रधान राजपूत वंश। ये लोग अभी तक कच्छप्रदेशके नाना स्थानोंमें राज्य कर रहे हैं। जाड़ेजा लोग अपनेको श्रीकृष्णके वंशधर बताते हैं। इनके पूर्वपुरुषगण अपनेको शम्मावंशके बतलाते थे। यह जाड़ेजा वंश प्रधान प्रधान व्यक्तियोंके नामानुसार देदा, हौथी गज्जन, अबड़ा, मोड़, हाला, बुभट्ट आदि बहुतसी शाखाओंमें विभक्त है। इनकी वंशावली और इतिहास कच्छ शब्दमें देखो।

जाड़राना—एक प्राचीन राजा। ईसाकी ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें पारसियोंने सबसे पहले सञ्जानमें आ कर संस्कृतके १५ श्लोकों द्वारा इन राजाके पास अपने धर्मकी व्याख्या की थी। पारसी ग्रन्थोंमें इनका नाम जाड़राना लिखा है। परन्तु डाक्टर जि० उइलसनका अनुमान है कि, ये जाड़राना सम्भवतः अणहिलवाड़पत्तनके अधीश्वर जयदेव वा वाणराजा होंगे। इन वाणराजाने ७४५ से ८०६ ईस्वी तक राज्य किया था।

जाड्य (सं० क्ली०) जड़स्य भावः जड़-ष्यञ्। १ जड़ता, जड़का भाव। २ मूर्खता, बेवकूफी। ३ आलस्य, सुस्ती। ४ अविवेक रूप दुःख, वह आनुष्ठानिक अर्थात् वेदविहित कर्मादि जो जाड्यविमोक अर्थात् दुःख द्वारा निवृत्ति नहीं हो सकते हैं उसीको जाड्य कहते हैं।

जाड्यारि (सं० पु०) जाड्यस्य अरिः, ६-तत्। जम्बीर, जम्बीरीनीबू।

जात (सं० वि०) जन कर्त्तरि क्त। १ उत्पन्न, जन्मा हुआ। २ व्यक्त, प्रकट। भावे क्त। ३ प्रशस्त, अच्छा। ४ जिसने जन्मग्रहण किया हो। (पु०) ५ जन्म। ६ पारिभाषिक पुत्र, जात, अनुजात, अतिजात और अपजात इन चार प्रकारके पारिभाषिक पुत्रोंमेंसे एक। ७ पुत्र, बेटा। ८ जीव, प्राणी।

जात (हिं० स्त्री०) जाति देखो।

जात (अ० स्त्री०) शरीर, देह, काया।

जातक (सं० क्ली०) जातं जन्म तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः इत्यण् ततः स्वार्थे कन् वा जातेन शिशोर्जन्मना कायति कै-क। १ जात या उत्पन्न हुए बालकके शुभाशुभका निर्णय करनेवाले ग्रन्थ। जातकदीपिका, जातकामृत, जातकतरङ्गिणी, जातककौमुदी, जातकरत्नाकर, जातकसार, जातकार्णव, जातकचन्द्रिका, लघुजातक, बृहज्जातक आदि ज्योतिषके ग्रन्थोंको जातक कहते हैं। इन ग्रन्थोंमें उत्पन्न हुए बालककी लग्नराशि, होरा, द्रेक्काण आदि तथा उनमें जनमनेसे बालकका शुभ होगा या

अशुभ इत्यादि विषय परिस्फुट रीतिसे लिखे हैं।

२ बौद्धोंके एक प्रकारके ग्रन्थ। जातक अर्थात् बुद्धदेवके एक एक जन्मका विवरण। बौद्धोंका कहना है कि, सम्पूर्ण जातकोंकी संख्या ५५० है। बुद्धदेवने स्वयं श्रावस्तीमें रहते समय अपने शिष्योंको मोक्षधर्मकी शिक्षा देनेके लिए ५५० पूर्व जन्मोंमें जो जो अलौकिक कार्य किये थे, उन्हींके वे इन ५५० जातकोंमें आख्यानके रूपसे कह गये हैं। ये ग्रन्थ बुद्धके मुखसे निकले हैं, ऐसा समझ कर बौद्धगण इनको परम पवित्र मानते हैं। इस समय बहुतसे जातक विलुप्त हो गये हैं। जो मौजूद हैं, उनमेंसे फिलहाल निम्नलिखित कुछ जातक प्रचलित हैं-अगस्त्य, अपुत्रक, अधिसद्य, श्रेष्ठी, आयो, भद्रवर्गीय, ब्रह्म, ब्राह्मण, बुद्धबोधि, चन्द्रसूर्य, दशरथ, गङ्गापाल, हंस, हस्ती, काक, कपि, क्षान्ति, कल्माषपिण्ड, कुम्भ, कुश, किन्नर, महाबोधि, महाकपि, महिष, मैत्रिबल, मत्स्य, मृग, मघादेवीय, पद्मावती, रुरु, शक्र, शरभ, शश, शतपत्र, शिवि, सुभास, सुपारग, सूतसोम, श्याम, उन्मादयन्ती, वानर, वर्त्तकपोत, विश्व, विश्वम्भर, वृषभ, व्याघ्री, यज्ञ, हृषहरणीय, लतुव, वितुर पुष्कर इत्यादि।

ये सब ग्रन्थ संस्कृत और पालि भाषामें रचित हैं। बहुतोंकी सिंहली भाषामें टीका भी है। बहुतोंका अनुमान है कि, ये जातक प्रायः २०३० वर्ष पहलेके रचे हुए हैं। इनमें कई एक आख्यायिकाएं ऐसी हैं, जिनकी शैली पञ्चतन्त्र या ईसपकी आख्यायिकाओंसे मिलती है। और बहुतसी ऐसी हैं जो हिन्दूपौराणिक गप्पोंको बिगाड़ कर बौद्धोंके मतानुसार लिखी गई हैं।

(पु०) ३ शिशु, बच्चा। ४ भिक्षु, भिखारी। ५ हींगका पेड़। ६ कारण्डी बत।

जातकर्म (सं० क्ली०) जातस्य जाते सति वा यत्कर्म। दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे चतुर्थ संस्कार, सन्तानकी उत्पत्तिके समयका एक कर्त्तव्य कर्म। जातकर्मका विधान भवदेवमें इस प्रकार लिखा है—

पुत्रके जन्मते ही उसके पिताके पास सम्वाद भेजना चाहिये। पिताको पुत्रका जन्म-वृत्तान्त सुनते ही "नाभिमाकृन्तत स्तनंच मादत" अर्थात् 'नार नहीं काटना स्तनोंका दूध न पिलाना'—यह कह कर वस्त्र सहित स्नान करना चाहिये। स्नानसे निवृत्त हो कर यथाविधि पञ्चो, मार्कण्डेय और षोड़शमातृका पूजा, वसुधारा और नान्दी मुख श्राद्धका अनुष्ठान करना उचित है। तदनन्तर एक शिलाको ब्रह्मचारी कुमारी, गर्भवती या श्रुतस्वाध्यायशील ब्राह्मण द्वारा अच्छी तरह धुला कर, औषि घव दाहिने हाथकी अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा "कुमारस्य जिह्वांनिमीष्टि इयमाज्ञा" इस मन्त्रका उच्चारणपूर्वक स्पर्श कराना चाहिये। इसके उपरान्त सुवर्ण द्वारा घृत ले कर यथाविधि मन्त्रोच्चारण कर बालकको जिह्वामें चुभाना चाहिये और "नाभि कृन्तत, स्तनंच दत्त" (नाभि छेद दो स्तन दुग्ध दो) इस प्रकारकी आज्ञा दे कर उस स्थानसे निकल जाना चाहिये। पुत्र जन्मते समय यदि अन्य अशौच रहे तो भी पुत्रका पिता जातकर्म कर सकते हैं।

"अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्।
कर्त्तव्या तौलिकी शुद्धिर शुद्धः पुनरेव सः॥" (संस्कारतत्त्व)

पुत्रके मुख देखनेसे पहिले पिताको चाहिये कि, वह ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान देवे। जातकर्म नाभिच्छेदसे पहले करना पड़ता है।

"प्राङ्नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।" (मनु)

ज्योतिष शास्त्र-विहित तिथि नक्षत्र न होने पर भी जातकर्म करना पड़ता है। आजकल इस बीसवीं शताब्दीके शिक्षास्रोतमें इस संस्कारका प्रायः लोप हो गया है। संस्कार देखो।

जातकध्वनि (सं० पु०) जलौका, जोंक।

जातकाम (सं० त्रि०) जातः कामः यस्य, बहुव्री०। जातकामना, जिसकी इच्छा उत्पन्न हुई हो।

जातकोप (सं० त्रि०) जातः कोपः यस्य, बहुव्री०। जातक्रोध, जो क्रोधित हो गया हो।

जातक्रिया (सं० स्त्री०) जातस्य क्रिया। जातकर्म देखो।

जातघातरोग (सं० पु०) वह रोग जो बच्चेको गर्भहीसे माताके कुपथ्य आदिके कारण हो।

जातना (हिं० स्त्री०) यातना देखो।

जातपांत (हिं० स्त्री०) जाति, बिरादरी।

जातपुत्र (सं० त्रि०) जातः पुत्रः यस्य, बहुव्री०। जिसके पुत्र हुआ हो।

जातपुत्रा (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसने पुत्र उत्पन्न किया हो।

जातबल (सं० वि०) जिसके बल हो, शक्तिवान् ताकत वर।

जातभी (सं० स्त्री०) एक स्त्रीका नाम।

जातमात्र (सं० त्रि०) सद्योजात, जो अभी पैदा हुआ हो।

जातरूप (सं० क्ली०) जातं प्रशस्तं प्राशस्त्ये जातः रूपप् प्रत्ययः। १ सुवर्ण, सोना। (पु०) २ धूस्तूरवृक्ष, धतूराका पेड़। (त्रि०) जातं रूपं यस्य, बहुव्री०। ३ उत्पन्न-रूप, उत्पन्न मूर्त्ति।

जातरूपप्रभ (सं० क्ली०) हरिताल।

जातरूपमय (सं० त्रि०) सुवर्णमय।

जातरूपशील (सं० पु०) एक सुवर्णमय जनपद।

जातवासगृह—जातवेश्मन देखो।

जातविद्या (सं० स्त्री०) जाते निष्पन्ने होमादौ विद्या विद्यतेऽनया विद्या। प्रायश्चित्तज्ञापिका वाक्, होमके बाद प्रायश्चित्तबोधक वाक्य।

जातवेदस् (सं० पु०) विद्यते लभ्यते विद् लाभे असुन् वा जातं वेदो धनं यस्मात्। १ अग्नि। महाभारतमें इस अग्निका स्वरूप इस प्रकार लिखा है - अग्नि लोगोंको पवित्र करती है, इसलिए पावक है; हव्य वहन करती है, इसलिए हव्यवाहन और वेदार्थके लिए उत्पन्न हुई है, इसलिए जातवेदस् है। (भारत २।३१।८०) (ऋक् ३।१।२०)

जात मात्र ही जठरानल स्वरूपमें अवस्थित है, इस अग्निका नाम जातवेद है। २ जिन्हें सम्पूर्ण जातविषय ज्ञात हों।

३ जातप्रज्ञ। ४ जातधन, ५ सूर्य। (ऋक् १।५०।१) पञ्चाग्निसाध्य तपस्यामें तपन भी एक अग्निस्वरूप है। ६ अन्तर्यामी, परमेश्वर। (भाग० ५।७।१४) ७ चित्रक-वृक्ष, चीतेका पेड़।

जातवेदस (सं० त्रि०) जातवेदसः इदं वासदेवता अस्य जातवेदस्-अण्। अग्नि सम्बन्धीय सामवेदके ऋक् मन्त्रभेद।

जातवेदसीय (सं० क्ली०) जातवेदसम्बन्धीय।

जातवेश्मन् (सं० क्ली०) वह घर जिसमें बालकका जन्म हो, सूतिकागार, सौरी।

जातश्रम (सं० त्रि०) क्लान्तियुक्त, थका हुआ।

जातस्नेह (सं० पु०) जातः स्नेहः यस्य, बहुव्री०। जिसको प्रेम हुआ हो।

जाता (सं० स्त्री०) १ पुत्री, कन्या बेटी। (त्रि०) २ उत्पन्न।

जातापत्य (सं० पु०) जातं अपत्यं यस्य, बहुव्री०। जिसके पुत्र हुआ हो।

जातापत्या (सं० स्त्री०) प्रसूता स्त्री, वह स्त्री जिसने बच्चा उत्पन्न किया हो।

जातामर्ष (सं० त्रि०) जिसको क्रोध आ गया हो।

जातायन (सं० पु०) जातस्य गोत्रापत्यं। जातगोत्रका अपत्य।

जातास्रु (सं० त्रि०) जिसकी आँखोंसे आँसू टपक रहा हो।

जाति (सं० स्त्री०) जन क्तिन्। १ जन्म। २ गोत्र। ३ अश्मन्तिका। ४ आमलकी, आँवला। ५ छन्दविशेष, एक प्रकारका छन्द। छन्द दो प्रकारका है, एक वृत्ति और दूसरा जाति। अक्षरोंके साथ मेल रहनेसे वृत्ति और मात्राके अनुसार जो छन्द होता है, उसे जाति कहते हैं। (छन्दोम०) ह्रस्व और दीर्घके अनुसार मात्रा होती है। ह्रस्वस्वरकी एक मात्रा, दीर्घस्वरकी दो मात्रा, प्लुत स्वरकी तीन मात्रा और व्यञ्जनकी आधी मात्रा होती है। जैसे—आर्याजाति आदि प्रथम और तृतीय पादमें बारह मात्रा, द्वितीय पादमें अठारह मात्रा और चतुर्थ पादमें पन्द्रह मात्रा होनेसे आर्याजाति छन्द होता है।

६ जातीफल, जायफल। ७ मालती, चमेली। (मेदनी) ८ वेदशाखाभेद, वेदकी कोई शाखा। ९ षड्जादि सप्तस्वर। १० अलङ्कारभेद। ११ चुल्ली, चूल्हा। (शब्दार्थचि०) १२ काम्पिल्ल। (विश्व)

१३ व्याकरणके मतसे किसी किसी शब्दके प्रतिपाद्य अर्थको जाति कहते हैं। वैयाकरणोंका कहना है कि शब्दके चार भेद हैं। जातिवाचक भी उन्हींमेंसे एक है। व्याकरणशास्त्रमें जातिका लक्षण इस प्रकार है—

"आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानांच न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रंच चरणैः सह॥"

आकृति द्वारा जिस पदार्थका ज्ञान हो, उसका नाम है जाति। मनुष्यत्व आदि और मनुष्य आदि एक ही बात है, ऐसा समझ लेनेसे जातिका अर्थ सहजहीमें समझा जा सकता है जातिके उदाहरण मनुष्य वा मनुष्यत्व आदि और हस्त, पाद आदि विशेष विशेष आकृतिके बिना जाने मनुष्य वा मनुष्यत्वका ज्ञान नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न आकृति द्वारा भिन्न जातिका ज्ञान होता है। मनुष्यको देख कर वृक्षका ज्ञान नहीं होता। क्योंकि, मनुष्य और वृक्षकी आकृति एकसी नहीं है। मान लो, किसीने कभी भी वृक्ष नहीं देखा, और न उसे यही मालूम है कि, वृक्ष कैसा होता है; तो उसे वृक्षका ज्ञान यह कह कर करना होगा कि—'जिन पर डालियां, पत्तियां और वल्कलादि हों, उसे वृक्ष कहते हैं।" इस तरह वह डालियां और पत्तियोंकी आकृतिसे ही वृक्ष वा वृक्षत्व जान सकता है।

आकृति देख कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व वैश्यत्व, शूद्रत्व आदिका ज्ञान नहीं हो सकता इसलिए दूसरा लक्षण लिखा जाता है—लिङ्गानांच च सर्वभाक्।"

जो सब लिङ्गोंको ग्रहण नहीं करते अर्थात् सभी लिङ्गोंमें जिनका शब्दरूप नहीं होता, वे भी जाति हैं। जैसे—ब्राह्मण वा ब्राह्मणजाति आदि। इन शब्दोंका रूप पुलिङ्ग या स्त्रीलिङ्गमें ही चल सकता है; क्लीबलिङ्गमें नहीं। इस लक्षणके अनुसार देवदत्त कृष्णदास आदि एक लिङ्गभागी संज्ञाशब्द भी जातिवाचक हो सकते हैं, इसलिए ऊपर कहे हुए दोनों लक्षणोंके ही विशेषण रूपसे कहा जाता है। "सकृदाख्यात निर्ग्राह्य।"

एकबार उपदेश देने पर निश्चय रूपसे किसी एक श्रेणीका ज्ञान होना जरूरी है। देवदत्त कृष्णदास आदि एक लिङ्गभागी होने पर भी केवल एक एक व्यक्ति कोई भी निर्दिष्ट श्रेणी नहीं है।

वेदैकदेश क्रियावाचक कठादि शब्द और गार्ग्य, गार्गी आदि अपत्य प्रत्ययान्त त्रिलिङ्गभागी शब्दोंको जातिवाचक करनेके लिए तीसरा लक्षण कहा जाता है—

"गोत्रंच चरणैः सह।"

वेदैकदेश कठादि शब्द और अपत्य प्रत्ययान्त शब्द भी जातिवाचक हो सकते हैं।

महाभाष्यमें जातिका लक्षणान्तर कहा है—

"प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्वस्य युगपद्गुणैः।
असर्वलिङ्गां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः।"

किसी पण्डितके मतसे समस्त जो एक अनुगत धर्म है वही जाति और ब्रह्म है।

गो आदि समस्त पदार्थोंके सम्बन्ध भेदसे जो 'सत्ता' रूप एक पदार्थ है, उसीका नाम जाति है। इसीमें सकल शब्द विद्यमान है। इसी जातिको धात्वर्थ और प्रातिपदिकार्थ समझना चाहिए। यह नित्य और आत्मस्वरूप है। त्व तल् आदि भावार्थक प्रत्ययोंमें इसी जातिका बोध होता है। सिर्फ जाति ही एक और नित्य है; व्यक्तिको अनेक और अनित्य समझना चाहिये।

'अनेकव्यक्त्यभिव्यंग्या जातिः स्फोट इति स्मृताः।'

अनेक व्यक्तियोंमें अभिव्यक्त जातिको स्फोट कहते हैं। शब्द दो प्रकारके हैं—नित्य और अनित्य। नित्य शब्द एकमात्र स्फोट है, इसके सिवा वर्णात्मक शब्दसमूह अनित्य हैं। वर्णके सिवा स्फोटात्मक जो एक नित्य शब्द है, उसके विषयमें बहुतसे ग्रन्थोंमें बहुतसी युक्तियां दिखाई गई हैं। उनमेंसे प्रधान युक्ति यह है कि, स्फोटके नहीं रहनेसे केवल वर्णात्मक शब्दोंसे अर्थका बोध नहीं हो सकता था। यह सभी स्वीकार करते हैं कि, अकार गकार, नकार, इकार, इन चार वर्णों द्वारा उत्पन्न जो अग्नि शब्द है, उससे वह्नि या आगका बोध होता है। परन्तु वह सिर्फ चारों अक्षरोंसे सम्पादित नहीं हो सकता। क्योंकि, यदि उक्त चारों वर्णोंमेंसे प्रत्येक वर्ण द्वारा वह्निका बोध होता, तो सिर्फ अकार वा गकार उच्चारण करनेसे भी अग्निका बोध हो सकता था। इस दोषके परिहारके लिए उक्त चारों वर्ण एक साथ मिल कर वह्निका बोध उत्पन्न कर देते हैं। यह कहना बड़ी भारी भूल है कि, समस्त वर्ण आशुविनाशी हैं (आगे आगे वर्णोंकी उत्पत्तिके समय पहलेके वर्णोंका नाश हो जाता है), अतएव अर्थबोधकी बात तो दूर रही; उनकी एकत्र स्थिति भी नहीं होती। इन चारों वर्णोंसे पहले तो स्फोटकी अभिव्यक्ति अर्थात

स्फुटता उत्पन्न होती हैं। फिर स्फुटता (स्फोट)-से वाक्यका बोध होता है।

"केचिद्व्यक्त्यएवास्याध्वनित्वेन प्रकल्पिताः।"

कोई कोई ऐसी भी कल्पना करते हैं कि, व्यक्तियां इसी जातिकी ध्वनि हैं। जातिको जो स्फोट कहा गया है, वह वाक्य वाचकका स्वीकार कर कहा गया है— ऐसा समझना चाहिये।

१४ नैयायिक मतसे षोड़श पदार्थके अन्तर्गत जाति भी एक प्रकार पदार्थ है। गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

'समाना प्रसवात्मिका' (गौ० २।१।२४)

जिस पदार्थसे समानताका ज्ञान हो, उसे जाति कहते हैं। जैसे—मनुष्यत्व, पशुत्व आदि।

मान लो, एक आदमी ब्राह्मण है और दूसरा शूद्र है, इन दोनोंको समान या एक कहना हो तो, किस तरहसे कहा जा सकता है? दोनोंका धर्म भी पृथक् पृथक् है। ब्राह्मण सन्ध्या-पूजा करता है, शूद्र उसकी सेवामें लगा रहता है। ब्राह्मणके गलेमें यज्ञोपवीत है और शूद्रके गलेमें माला। ऐसी दशामें दोनों मनुष्य हैं, इस आधार पर उन्हें समान कहा जा सकता है। मनुष्यत्व दोनोंमें है, इसलिए मनुष्यत्व जाति हुआ।

समानताका ज्ञान जिससे हो वह जाति है, इसीलिए उसका दूसरा नाम सामान्य है। जाति कहनेसे जिसका बोध हो, सामान्य कहनेसे भी उसीको समझना चाहिये।

इस जातिके अनेक प्रकार लक्षण और नाना प्रकार भेद है। व्याप्ति निरपेक्ष साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा जो दोषोंका कहना है, वही जाति है। छल आदि व्यतिरेकमें दोषके लिए जो अयोग्य है, उसका नाम जाति है। स्वप्रतिबन्धक उत्तरको भी जाति कहते हैं। (गौ० वृ १।५८)

वक्ता जिस अर्थके तात्पर्यसे जिस शब्दका प्रयोग करता है, उसका वह अर्थ ग्रहण कर, उसके विपरीत अर्थकी कल्पना पूर्वक मिथ्या दोषका लगाना छल कहलाता है। जैसे—'हरिप्रसादमहं भक्षयामि।—मैं हरिका प्रसाद भक्षण कर रहा हूं।' इस जगह हरि शब्दका विष्णु रूप तात्पर्यको छोड़ कर वानररूप कल्पना कर यह कहना कि—"क्या! तुम बन्दरका जूठा खाते हो; इत्यादि दोषारोप करना। छल देखो। इस प्रकारके वाक्छल, सामान्यछल और उपचारछलोंसे रहित जो सदुत्तर, अर्थात् वादिद्वारा संस्थापित मतमें दूषण लगानेमें असमर्थ अथवा अपने मतके लिए हानिजनक जो उत्तर, उसे जाति कहते हैं। यह जाति पदार्थ २४ प्रकारका है। जैसे—

साधर्म्यसम, वैधर्म्यसम, उत्कर्षसम, अपकर्षसम, वर्ण्यसम, अवर्ण्यसम, विकल्पसम, साध्यसम, प्राप्तिसम, अप्राप्तिसम, प्रसङ्गसम, प्रतिदृष्टान्तसम, अनुत्पत्तिसम, संशयसम, प्रकरणसम, हेतुसम, उपपत्तिसम, उपलब्धिसम, अनुपलब्धिसम, नित्यसम, अनित्यसम, कार्यसम, ये २४ प्रकारके जाति पदार्थ हैं।

प्रभाकरके मतसे—आकृति द्वारा व्यङ्ग पदार्थको ही जाति माना जा सकता है, गुणत्वादिका जातित्व नहीं।

नैयायिकोंके मतसे गुणत्व आदि भी जाति हो सकते हैं। तर्कप्रकाशिकामें जातिका लक्षण इस प्रकार लिखा है। —'नित्यानेऽकसमवेतम्।'

जो पदार्थ नित्य अर्थात् ध्वंस और प्रागभावरहित तथा समवाय सम्बन्धसे पदार्थमें विद्यमान है, उसे जाति कहते हैं। जैसे—द्रव्यत्व, गुणत्व घटत्व, कर्मत्व इत्यादि।

घटत्व अर्थात् घटगत जो एक विलक्षण धर्म है वह नित्य है; क्योंकि घटके नष्ट हो जाने पर भी घटत्व नष्ट नहीं होता। घटत्व सभी घटोंमें विद्यमान है, क्योंकि एक घटके देखनेसे, फिर दूसरे घटको देखते ही घटका ज्ञान हो जाता है। यह घटत्व समवाय सम्बन्धसे विद्यमान है, इसलिए घटत्व जाति हो गया। (भाषापरिच्छेद) सिद्धान्तमुक्तावलीमें भी ऐसा ही जातिका लक्षण लिखा है। भाषापरिच्छेदमें जाति व श्रेणियों विभक्त की गई है। 'सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परञ्चा परमेव च।"

सामान्य अर्थात् जाति दो प्रकारकी है—एक परजाति और दूसरी अपरजाति। व्यापक जातिको परजाति कहा गया है, और अव्याप्ति जातिके नामसे निर्दिष्ट जो द्रव्यगुण और कर्म इन तीनों पदार्थोंकी जो सत्ता है, उसे भी परजाति कहते हैं। सत्ताजति कभी भी

अपरजाति नहीं होती। घटत्व पटत्व आदि जो जाति हैं, वे अपर जाति कहलाती हैं; ये कभी भी परजाति नहीं होती। परन्तु द्रव्यत्व आदि जाति पर, अपर दोनों ही हो सकती हैं। द्रव्यत्व जाति सत्ता जातिकी अपेक्षा अव्यापक है अतएव वह अन्यान्य घटत्व जातिकी अपेक्षा व्यापक होनेके कारण परा है। (भाषापरि०)

वात्स्यायनके मतसे एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे पृथक् है, इस भेदके उत्थापनके कारण सामान्यविशेषका नाम जाति है। जैसे—गोत्व, मनुष्यत्व इत्यादि। (वात्स्या० २।२।७१) वैशेषिक दर्शनके मतसे—छह भावपदार्थोंका अन्यतम एक पदार्थ जाति है। (वैशेषिक)

अनुगत एकाकार बुद्धिजनक पदार्थका नाम जाति है। यह सामान्य और विशेषके भेदसे दो प्रकार है, जिसमें सामान्यके दो भेद हैं—एक पर और दूसरा अपर। जाति—जातिके कहनेसे इस देशमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंका बोध होता है। भारतवर्षके सिवा अन्य किसी भी देश पर दृष्टि डालनेसे यह मालूम होता है कि, उन देशोंके अधिवासी गण भिन्न भिन्न श्रेणी और भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त होने पर भी सभी एक जातिमें गण्य हैं। किन्तु इस भारतवर्षमें ऐसा नहीं है। यहां प्रधानतः चार वर्णोंका वास है, इन चार वर्णोंमेंसे असंख्य श्रेणियों, असंख्य शाखाओं और अनेक सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हुई है।

धर्म और नीतिकी भित्तिसे हिन्दू-समाजमें जातीयता संगठित हुई है। ऐहिक और पारलौकिक सभी विषयोंमें हिन्दूगण जातिधर्मकी रक्षा किया करते हैं। जातित्वकी रक्षा न करने पर हिन्दूका हिन्दुत्व नहीं रहता। इसप्रकारकी अनिवार्य जातिभेद-प्रथा किस तरह प्रवर्त्तित हुई; इस बातको कौन नहीं जानना चाहेगा?

उत्पत्ति—ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें चार जातिकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार पाई जाती है—

१। "यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ वाहू का ऊरूपादा उच्येते।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्वाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।"

(ऋक् १०।९०।११ १२)

जिस समय पुरुष विभक्त हुए थे, उस समय कितने भागोंमें उन्हें विभक्त किया गया था? उनके मुख, वाहु, ऊरु और दोनों पैरोंका क्या हुआ? इनके मुखसे ब्राह्मण, दोनों वाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्र जनमे। वाजसनेयसंहिता (३१।१६) और अथर्ववेद (१९।६।६)में भी उक्त पुरुषसूक्तका जिक्र है और मन्त्रोंके पाठ भी प्रायः एकसे हैं, सिर्फ अथर्ववेदमें "ऊरु"के स्थानमें "मध्य तदस्य यद्वैश्यः" इतना पाठान्तर पाया जाता है।

२—तैत्तिरीयसंहिता (कृष्णयजुर्वेद)में कुछ विशेष लिखा है—

"प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति समुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्निर्देवतान्वसृजत गायत्रीच्छन्दोरथन्तरं साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्यामुखतोह्यसृज्यन्तोरसो वाहुभ्यां पंचदशं निरमिमीत तमिन्द्रो देवतान्वसृज्यत त्रिष्टुप्छन्दो वृहत्साम राजन्यो मनुष्यामविः पशूनां तस्मात्ते वीर्यवन्तो वीर्याध्यसृज्यन्त मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वेदेवादेवता अन्वसृज्यन्त जगतीच्छन्दोवैरूपं साम वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनां तस्मात्त आद्या अन्नधानाध्य सृज्यन्त तस्माद्भूयां सोन्येभ्योभूयिष्ठाहि देवता अन्वसृज्यन्त पत्त एकविंशं निरमिमीततमनुष्टुप्छन्दः अन्वसृज्यत वैराजं साम शूद्रा मनुष्याणामश्वाः पशूनां तस्मातौ भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रश्च तस्माच्छूद्रो यज्ञेनवक्लप्तो न हि देवता अन्वसृज्यत तस्मात्पादावुपजीवतः पत्तोह्यसृज्येताम्।"

(७।१।१।४)

प्रजापतिको जन्मग्रहण करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने मुखसे त्रिवृत् बनाया, फिर अग्निदेवता, गायत्री छन्द, रथन्तरसाम, मनुष्योंमें ब्राह्मण और पशुओंमें अज (मुखसे) उत्पन्न हुए। मुखसे सृष्टि होनेके कारण ये मुख्य हैं। वक्ष और वाहुयुगलसे पञ्चदश (स्तोम) का निर्माण किया। इसके उपरान्त इन्द्रदेवता, त्रिष्टुप्छन्द, वृहत्साम; मनुष्योंमें क्षत्रिय और पशुओंमें मेषकी सृष्टि हुई वीर्यसे उत्पन्न होनेका कारण ये सब वीर्यवान् है। मध्यसे सप्तदश (स्तोम) का निर्माण किया। फिर विश्वेदेव देवता जगती छन्द, वैरूप साम; मनुष्योंमें वैश्य और पशुओंमें गौओंकी सृष्टि हुई। अन्नाधारसे उत्पन्न होनेके कारण ये अन्नवान् हैं। इनकी संख्या बहुत है,

क्योंकि वसुसमे देवता भी पीछेसे उत्पन्न हुए थे। प्रजापतिने अपने पैरोंसे एकविंश (स्तोम) निर्माण किया। पीछे अनुष्टुप्छन्द, वैराजसाम, मनुष्योंमें शूद्र और पशुओंमें अश्वोंकी सृष्टि हुई। ये अश्व और शूद्र ही भूतसंक्रामी हैं, (विशेषत:) शूद्र यज्ञमें अनुपयुक्त हैं; क्योंकि एकविंश (स्तोम)के बाद फिर किसी देवताकी सृष्टि नहीं हुई है। पैरोंसे उत्पन्न होनेके कारण दोनों (अश्व और शूद्र) ही पैरोंसे जीवनकी रक्षा करेंगे।

३।—वाजसनेयसंहितामें दूसरी जगह लिखा है—

"तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्" (१४।२८) पंचदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यते इन्द्रोऽधिपतिरासीत्। (१४।२९) नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्।" (१४।३०)

प्रजापतिके प्राण, उदान और व्यान इन तीनों द्वारा स्तव करने पर ब्राह्मणोंकी सृष्टि हुई, जिनके ब्रह्मणस्पति अधिपति हुए। एक रात और पैरकी अङ्गुलि दश, दोनों हाथ और दोनों बाहु तथा नाभिका ऊर्द्धभाग, इन पन्द्रहों द्वारा स्तव करने पर क्षत्रियोंकी सृष्टि हुई; जिनके इन्द्र अधिपति हुए। दशअङ्गुलि और शरीरके ऊपर नीचेके नव प्राण, इन उन्नीसों द्वारा स्तव करने पर वैश्यों तथा शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई; जिनके रात और दिन अधिपति हुए। (महीधर)

४—अथर्ववेदमें एक जगह लिखा है—

'तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत्। श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्तथा क्षत्रायना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते॥ अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं च चोदतिष्ठताम्।"(अथर्व० १५।१०।१-३)

यदि राजाके घर पर ऐसे विद्वान् व्रात्य अतिथिके रूपसे आवें, तो राजाको चाहिये कि, वे अपनेसे उनका ज्यादा सम्मान करें। ऐसा करनेसे उनके राजसम्मान वा राज्यको कुछ भी क्षति नहीं होती। इन्हीं (व्रात्य)-से ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं।

५—तैत्तिरीय ब्राह्मणके मतसे—

"सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टं ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः। यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिं सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः॥"

(३।१२।९।२)

यह समस्त विश्व ब्रह्मा द्वारा सृष्ट हुआ है। कोई कहते हैं, ऋक्‌से वैश्यवर्णकी उत्पत्ति है। इसके सिवा यजुर्वेदको भी क्षत्रियकी योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थान कहते हैं। सामवेद ब्राह्मणोंकी प्रसूति अर्थात् सामवेदसे ब्राह्मणोंको उत्पत्ति हुई है।

६—शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"भूरिति वै प्रजापतिर्ब्रह्म अजनयत भुवः इति क्षत्रं स्वरिति विशम्। एतावद्वै इदं सर्वं यावद्‌ब्रह्म क्षत्रं विट्।" (२।१।४।१३)

'भूः' इस शब्दको उच्चारण करके प्रजापतिने ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था। इसी प्रकार उन्होंने 'भुवः' शब्द उच्चारण कर क्षत्रियों और 'स्वः' शब्द उच्चारण कर वैश्योंकी सृष्टि की थी। यह समस्त विश्वमण्डल ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य है।

७—तैत्तिरीय ब्राह्मणमें एक जगह लिखा है—

'दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः असुर्यो शूद्रः।" (१।२।६।७)

देवोंसे ब्राह्मणवर्ण और असुरसे शूद्रवर्ण जनमा है। और एक जगह लिखा है—

"असतो वै एष सम्भूतो यत् शूद्रः।" (३।२।३।९)

असत्‌से शूद्र उत्पन्न हुए हैं।

यह तो हुआ वेदका कथन। मनुसंहिता, कूर्मपुराण और भागवतपुराणमें भी पुरुषसूक्तके अनुसार चार वर्णोंकी उत्पत्ति कथा वर्णित है। किन्तु अन्यान्य पौराणिक ग्रन्थोंमें मतभेद पाया जाता है।

८—ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

"ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धिन्तु कर्मजाम्।
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे॥
संसिद्धायान्तु वार्त्तायां ततस्तासां स्वयम्भुवः।
मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः* परस्परम्॥
ये वै परिगृहीतारस्तासामासन् विविधात्मकाः।
इतरेषां कृतत्राणान् स्थापयामास क्षत्रियान्॥
उपतिष्ठन्ति ये तान् वै यावन्तो निर्भयास्तथा।
सत्यं ब्रह्म यथा भूतं ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते॥
ये चान्येऽप्यबलास्तेषां वैश्यसंकर्मसंस्थिताः।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः॥
वैश्यानेव तु तानाहुः कीनाशान् वृत्तिसाधकान्।
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः॥

* मार्कण्डेयपुराणमें "यथा न्यायं" ऐसा पाठ है।

निस्तेजसोऽल्पवीर्यांश्च शूद्रांस्तानब्रवीत् तु सः।
तेषां कर्माणि धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभुः॥
संस्थितौ प्राकृतायान्तु चातुर्वर्णस्य सर्वशः।"

(८।१५४-१६०)

भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माने फलमूल मनुष्यादिके रूपमें सृष्टिकी रचना की। इसी तरह प्रजाओंकी वृत्ति स्थिर हो जानेके उपरान्त स्वयम्भूने उनमें मर्यादाकी व्यवस्था की। प्रजाओंमें जो परिग्रहीत और दूसरोंके रक्षक थे, उन्हें क्षत्रिय; जो क्षत्रियोंके आश्रयमें निर्भय हो कर केवलमात्र "सर्वभूतमें ब्रह्म विद्यमान है" इस प्रकारकी चिन्तामें मग्न रहते थे, उन्हें ब्राह्मण, जो इनकी अपेक्षा कुछ दुर्बल और कृषिकार्य द्वारा जीविका निर्वाह करते थे, उन्हें वैश्य तथा जो शोकदुःखपरायण, निस्तेज, अल्पवीर्य और अन्य तीनों जातियोंकी परिचर्यामें नियुक्त रहते थे, उन्हें शूद्र कह कर निर्दिष्ट किया।

८—विष्णु, मत्स्य और मार्कण्डेयपुराणमें भी प्रायः ऐसा ही वर्णन लिखा है। हरिवंशमें लिखा है—

"व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णु योगात्मा ब्रह्मसम्भवः।
दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः॥
अक्षराद्ब्राह्मणः सौम्याः क्षरात्क्षत्रियबान्धवाः।
वैश्या विकारतश्चैव शूद्राः धूमविकारतः॥
श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः।
अभिनिर्वर्तिताः वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना॥
ततो वर्णत्वमापन्नः प्रजाः लोके चतुर्विधाः।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते॥
ततो निर्वाणसम्भूतः शूद्रात कर्मविवर्जिताः।
तस्मादूनार्हन्ति संस्कारं न ह्यत्र ब्रह्म विद्यते॥"

१०—किन्तु महाभारतके शान्तिपर्वमें ऐसा लिखा है-

'ततः कृष्णो महाभागः पुनरेव युधिष्ठिर।
ब्राह्मणानां शतं श्रेष्ठं मुखादेवासृजत् प्रभुः।
बाहुभ्यां क्षत्रियशतं वैश्यानां ऊरुतः शतम्।
पद्भ्यां शूद्रशतं चैव केशवो भरतर्षभ॥"

हे युधिष्ठिर! उस समय फिर कृष्णने मुखसे शत श्रेष्ठ ब्राह्मण, बाहुयुगलसे शत क्षत्रिय, जङ्घसे शत वैश्य और दोनों पैरोंसे शत शूद्रोंकी सृष्टि की।

महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है कि, मनुसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों जातिकी उत्पत्ति हुई है।

ऊपर जितने भी मत उद्धृत किये गये हैं, उन सबमें प्रायः परस्पर विरोध पाया जाता है। ऐसी दशामें उपरोक्त प्रमाणों द्वारा निःसन्देह नहीं कहा जा सकता कि, किस प्रकारसे चातुवर्ण्यकी सृष्टि हुई। हां, केवल इतना ही माना जा सकता है कि, जब वेदके संहिता भागमें चारों जातियोंका प्रसङ्ग है, तब बहुत प्राचीनकालसे ही भारतमें जातिभेद-प्रथा प्रचलित है—इसमें सन्देह नहीं। भगवान्ने गीतामें कहा है—

"चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागसः।" गुण और कर्मके विभागानुसार ही मैंने चार वर्णोंकी सृष्टि की है।

वास्तवमें जब वैदिक आर्यगण सभ्यताके ऊंचे आसन पर विराजमान थे, उस समय—जिससे समाजमें किसी प्रकारकी विशृङ्खलता उपस्थित न हो—यह सोच कर ही मङ्गलाकांक्षी ऋषियोंने जातिभेदप्रथाका प्रवर्त्तन किया था। सभी पुराणोंमें, प्राचीनतम राजाओंकी वंशावलियोंके देखनेसे ही प्रतीत होता है कि, पूर्वकालमें व्यक्तिगत गुणकर्मानुसार ही जाति निर्णीत हुई थी।

इसी प्रकार अनेक पुराणोंमें ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णसे फिर भिन्न भिन्न जातियोंकी उत्पत्तिका हाल मिलता है। ब्राह्मणसे जो अन्यान्य जातियोंका जन्म हुआ है, इसके अनेक प्रमाण हैं, इसलिए इस विषयमें और दूसरे प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं है। परन्तु ब्राह्मणके सिवा क्षत्रिय, वैश्य आदिसे जिन विभिन्न जातियोंकी उत्पत्ति हुई है, उनके कुछ प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं।

क्षत्रियसे चार जातियोंकी उत्पत्ति है। भगवान् मनुके दौहित्र पुरुरवा थे। विष्णुपुराणके मतसे—पुरुरवाके पुत्रका नाम आयु था। आयुके ५ पुत्रोंमेंसे क्षत्रवृद्ध भी एक थे। क्षत्रवृद्धके पुत्र शुनहोत्र और शुनहोत्रके तीन पुत्र काश, लेश और गृत्समद थे। गृत्समद*से चातुर्वर्ण्य प्रवर्त्तयिता शौनक उत्पन्न हुए थे।

* ये गृत्समद ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके ऋषि थे। सायणाचार्यने द्वितीय मण्डलकी भूमिकामें लिखा है—

"मन्त्रद्रष्टा गृत्समदः ऋषिः। स च पूर्वमंगिरसकुले शुनहोत्रा-

"गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्य प्रवर्त्तयिताभूत् ।" (विष्णुपु० ४.८।१) हरिवंशके २९वें अध्यायमें लिखा है कि, शुनक गृत्समदेवके पुत्र थे। इन्हीं शुनकसे शौनक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार जातियोंकी उत्पत्ति हुई है।

"पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ॥"
(हरिवंश २९अ०)

ब्रह्माण्डपुराण आदिमें भी यह लिखा हुआ है। आगे हरिवंशके ३२वें अध्यायमें लिखा है—

"वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवात् ।
एते त्वंगिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ ।"

वत्ससे वत्सभूमि और भार्गवसे भर्गभूमि तथा भार्गवके वंशमें अङ्गिरसके पुत्रगण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।

पुराणोंके मतसे आयुके पुत्र राजा नहुष थे; इनके ययाति, ययातिके पुत्र अनु और अनुसे अधस्तन द्वादश-पुरुषमें बलि उत्पन्न हुए थे। विष्णुपुराणके मतसे इन्हीं बलिकी स्त्रीके गर्भसे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म और पुण्ड्र ये पांच पुत्र जनमे, जो वालेय क्षत्रिय थे। ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणके मतसे इन्हीं बलि राजाके समयसे ही चार वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है।

———

स्य पुत्र सन् यज्ञकालेऽसुरैर्गृहीतः इन्द्रेण मोचितः। पश्चात्तद्वचनेनव भृगुकुले शुनकपुत्रो गृत्समदनामाऽभूत्। तथा चानुक्रमणिका 'यः आंगिरस शौनहोत्रे भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यदिति। गृत्समदः शौनको भृगुतां गतः। शौनहोत्रो प्रकृत्या तु यः आंगीरस उच्यते।"

इस मंडलको गृत्समद ऋषिने दिखलाया था अर्थात् उन्होंने पहले उसे प्रकट किया था। ये पहले आंगीरसवंशीय शुनहोत्रके पुत्र थे। असुरगण इनको पकड ले गये, इन्द्रने इन्हें मुक्त किया। फिर उस देवताके कथनानुसार उनके भृगुकुलमें शुनकपुत्रका गृत्समद नाम हुआ। इसीलिए अनुक्रमणिकामें लिखा है कि,—गृत्समदके वास्तवमें आंगिरसकुलमें शुनहोत्रके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करने पर भी भार्गव और शुनकपुत्र हुए थे तथा द्वितीय मण्डल दिखाया था।

क्षत्रियसे पहले पहल तीन वर्णोंकी उत्पत्ति हुई। प्रधान प्रधान पुराणोंके मतसे वितथके पांच पुत्र थे—सुहोत्र, सुहोत्त्र, गय, गर्ग और महात्मा कपिल। सुहोत्रके दो पुत्र थे—काशक और राजा गृत्समति। इन गृत्समतिपुत्रगण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातीय थे।

"काशकश्च महासत्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः ।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रियाः विशः ।"
(हरिवंश ३२अ०)

क्षत्रियसे पहले पहल दो वर्णका उत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड पुराणमें लिखा है—

"वेनुहोत्रसुताश्चापि गार्ग्योनाम प्रजेश्वरः ।
गार्ग्यस्य गर्गभूमिस्तु वत्सस्य वत्सो धीमतः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव तयो पुत्राः सुधार्मिकाः ।"

वेनुहोत्रके पुत्र राजा गार्ग्य थे, गार्ग्यसे गर्गभूमि और वत्ससे धीमान् वत्स जनमे थे। इन दोनोंके ही पुत्र सुधार्मिक और क्षत्रिय थे।

क्षत्रोपेत ब्राह्मण वा क्षत्रियवंशमें ब्राह्मण। लिङ्गपुराणमें लिखा है—

"हरितो युवनाश्वस्य हारिता यत आत्मजाः ।
एतेह्यंगिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥"

क्षत्रियराज युवनाश्वके पुत्र हरित और हरितके पुत्रगण हारित थे। अङ्गिरसके पक्षमें ये क्षत्रोपेत ब्राह्मणके नामसे प्रसिद्ध हैं। विष्णुपुराणके (४।३।५) टीकाकारने इन्हीं हारितके विषयमें लिखा है।—

"यतो हरितादृहारिता अंगिरसो द्विजा हरितगोत्रप्रवराः ।"

हरितसे अङ्गिरस हारितगण उत्पन्न हुए हैं, ये ही हारित गोत्रप्रवर हैं।

भागवतमें लिखा है, पुरुरवाके पुत्र आयु, आयुके पुत्र राभ, राभके पुत्र रभस और इनके गभीर और अक्रिय उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नीसे ब्राह्मण जनमे थे।

"राभस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥
तद्गोत्रं ब्रह्मविज्जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ।" (९।१७।१०)

पुरुसे अधस्तन अधस्तन बारहवीं पीढ़ीमें महाराज अप्रतिरथ जनमे थे। विष्णुपुराणमें लिखा है—

"अप्रतिरथात् कण्वः तस्यापि मेधातिथिः। यतः काण्वायन द्विजा बभूवः ।" (४।१९।२)

अप्रतिरथके पुत्र कण्व और कण्वके पुत्र मेधातिथि थे। इन्हींसे काण्वायन ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई है। इस विषयमें भागवतमें भी कुछ लिखा है—

"सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथ: कण्वोऽप्रतिरथात्मज: ।
तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातय: ।
पुत्रोऽभूत्सुमतेरेभिर्दुष्मन्तस्तत्सुतोमत: ॥" (९।२०।७)

भागवतके मतसे अजमीढ़के वंशमें प्रियमेधादि ब्राह्मणोंने जन्म लिया था।

"अजमीढस्य वंश्या: स्यु: प्रियमेधादयो द्विजा: ।" (९।२१।२१)

विष्णु, भागवत और मत्स्यपुराणके मतानुसार क्षत्रियराज अजमीढ़के सप्तम पुरुषमें मुद्गल जन्मे थे और उनसे मौद्गल्य नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई थी।

"मुद्गलस्यापि मौद्गल्या: क्षत्रोपेता द्विजातय: ।
एते ह्यंगिरस: पक्षे संस्थिता: कण्व मुद्गला: ॥"(मत्स्य)

मत्स्यपुराणमें और भी लिखा है—

"काव्यानान्तु वरा ह्येते त्रय: प्रोक्ता: महर्षय: ।
गर्गा: संकृतय: काव्या: क्षत्रोपेता द्विजातय: ॥"

गर्ग, सङ्कृति और काव्य ये तीनों क्षत्रियवंशीय महर्षि क्षत्रोपेत ब्राह्मणोंमें शामिल हैं। भागवत, विष्णु, मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराणके मतसे—

"गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्य: क्षत्राद्ब्रह्मह्यवर्तत ।"

(भाग० ९।२१।१९)

गर्गसे शिनि और शिनिसे गार्ग्यगण उत्पन्न हुए। ये गार्ग्यगण क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण हुए थे।

सभी प्रधान प्रधान पुराणोंमें लिखा है कि, गर्गके भ्राता महावीर्य, उनके पुत्र उरुक्षय थे। इन उरुक्षयके तीन पुत्र जन्मे—त्र्यरुण, पुष्करी और कपि। इन तीनोंने क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

"उरुक्षयसुता: ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गता: ।" (मत्स्यपु०)

भागवत (८।२१।१८)के टीकाकार श्रीधरस्वामीने भी लिखा है—

"येऽत्र क्षत्रवंशे ब्राह्मणगतिं ब्राह्मणरूपतां गतास्ते ।"

इस प्रकार बहुतसे क्षत्रिय पहले ब्राह्मण हुए थे, जिनका क्षत्रिय शब्दमें विवरण दिया गया है। वर्त्तमानमें भारतवासी ब्राह्मणोंमें जो विश्वामित्र, कौशिक, काण्व, आङ्गिरस, मौद्गल्य, वात्स्य, काण्वायन, शुनक, हारित आदि बहुतसे गोत्र देखनेमें आते हैं, वे क्षत्रोपेतगोत्र अर्थात् उक्त ब्राह्मणोंके सभी आदिपुरुष क्षत्रिय थे।

इसके अतिरिक्त क्षत्रियके वैश्यत्व और वैश्यके ब्राह्मणत्वके पानेकी कथा भी बहुतसे पुराणोंमें पाई जाती है। सभी प्रधान प्रधान पुराणोंके मतसे क्षत्रियराज नेदिष्ट वा दिष्टके पुत्र नाभाग थे। विष्णु और भागवतपुराणके मतसे नाभागको वैश्यत्व हुआ था।

"नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्य: कर्मणा वैश्यतां गत: ।"

(भाग० ९।२।२३।)

मार्कण्डेयपुराणके मतसे नाभागने वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्व प्राप्त किया था। हरिवंश (११अ०)में लिखा है—

"नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।"

नाभारिष्टके दो पुत्र वैश्य थे, जिन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ था।

ब्राह्मणोंके सिवा बहुतसे क्षत्रिय और वैश्य भी वेदके ऋषि थे, ऐसा वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण (१३२ अ०) में लिखा है—भलन्द, वन्ध्य और संकृति इन तीन वैश्योंने वेदके मन्त्र बनाये थे। कुल ८१ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंसे अनेक वेद मन्त्र उत्पन्न हुए हैं।

"भलन्दश्चैव वन्ध्यश्च संकृतिश्चैव ते त्रय: ।
ते मन्त्रकृतो ज्ञेया: वैश्यानां प्रवरा: सदा ॥
इत्येकनवति: प्रोक्ता: मन्त्रा: यैश्च बहिष्कृता: ॥"

उपरोक्त प्रमाणोंके मनन करनेसे मालूम होता है कि, यथार्थमें गुण और कर्मके अनुसार ही जातिभेदकी प्रथा प्रवर्त्तित हुई है।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें लिखा है—

"ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप्यं निसर्गाद्ब्राह्मण: शुभे ।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मति: ।
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विज: ।
ज्येष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्माद् रक्षेत वै द्विज: ।
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥
यस्तु ब्रह्मत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते ।
ब्राह्मण्यात् स परिभ्रष्ट: क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥

वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ।
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ॥
स्वधर्मात् प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ...
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥'

महादेव कहते रहे हैं—"हे देवी ! सहजमें ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। मेरी रायमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण ही प्रकृतिसिद्ध हैं। दुष्कर्मके अनुसार द्विज अपने धर्मसे च्युत हो सकता है। इसलिए ब्राह्मणत्व प्राप्त कर, (बहुत प्रयत्नसे) उसकी रक्षा करना ही विधेय है। जो क्षत्रिय वा वैश्य ब्राह्मणधर्म अवलम्बन कर जीविका-निर्वाह करते हैं, वे ब्राह्मणत्वको प्राप्त होते हैं। किन्तु जो ब्राह्मणत्व पा कर क्षत्रधर्मको पालते हैं, वह फिर ब्राह्मण धर्मसे परिभ्रष्ट हो कर क्षत्रयोनिमें उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार जो अल्पमति ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पा कर लोभ और मोहके वशवर्ती हो वैश्यकर्मका आश्रय लेते हैं, वैश्यत्व प्राप्त करते हैं। वैश्य भी शूद्रत्वको प्राप्त हो सकते हैं। ब्राह्मण भी स्वधर्मसे च्युत हो कर शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं। परन्तु शुभकर्मके अनुष्ठान कर शूद्र भी ब्राह्मणत्व लाभ कर सकते हैं तथा वैश्य भी क्षत्रियत्व प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतके वनपर्वमें भी (१८० अ०) लिखा है—

"सर्प उवाच ।"
ब्राह्मणः को भवेत् राजन् वेद्यं किंच युधिष्ठिर ।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वाक्यैरनुमिमीमहे ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतिः ॥
वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत् ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति भवतः किं विवक्षितम् ॥
सर्प उवाच ।
चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ।
वेद्यं यच्चात्र निर्दुःखमसुखं च नराधिप ॥
ताभ्यां हीनं पदं चान्यन्नतदस्तीति लक्षये ।
युधिष्ठिर उवाच ।
शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो न च ब्राह्मणो ब्राह्मणः ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥
यत् पुनर्भवता प्रोक्तं न वेद्यं विद्यतीति च ।
ताभ्यां हीनमतोऽन्यत्र पदं नास्तीति चेदपि ॥
एवमेतन्मतं सर्प ताभ्यां हीनं न विद्यते ।
यथा शीतोष्णयोर्मध्ये भवेन्नोष्णं न शीतता ॥
एवं वै सुखदुःखाभ्यां हीनं नास्ति पदं क्वचित्
एषा मम मतिः सर्प यथा वा मन्यते भवान् ॥
सर्प उवाच ।
यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः ।
वृथा जातिस्तदायुष्मन् कृतिर्यावन्न विद्यते ॥
युधिष्ठिर उवाच ।
जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वांमिथुनमथो जन्म मरणंच समं नृणाम् ॥
तावच्छूद्रसमो ह्येष यावद्वेदे न जायते ॥"

सर्पने कहा—हे युधिष्ठिर ! तुम्हारी बातोंसे ही मैं समझ गया हूं कि, तुम बुद्धिमान हो ; मुझे बताओ कि, ब्राह्मण कौन हैं ? और जाननेकी बात कौनसी है ? युधिष्ठिरने उत्तर दिया—नागराज ! स्मृतिके मतसे सत्य, दान, क्षमा, शील, निर्दोष, तप और घृणा ये गुण जिसमें पाये जांय, वही ब्राह्मण है। दुःख सुखवर्जित ब्रह्म ही जाननेकी चीज है, जिसके पानेसे फिर शोक नहीं करना पड़ता, और आपको क्या कहना है ? सर्पने कहा—चारों वर्णके विषयमें वेद ही एकमात्र प्रमाण और सत्य माना जा सकता है। शूद्रमें भी सत्य, दान, अक्रोध, अनृशंस्य, अहिंसा और घृणा पाई जाती है। और जाननेके विषयमें जिसमें सुख दुःख नहीं है, इन दिनोंसे शून्य (ब्रह्मके सिवा) कुछ भी नहीं दिखाई देता। युधिष्ठिरने उत्तर दिया—किसी शूद्रमें जो जो

लक्षण हैं, वे वे लक्षण द्विजमें भी होते हैं। ऐसी अवस्थामें शूद्रवंश होनेसे ही वह शूद्र होगा और ब्राह्मणवंश होनेमें ही वह ब्राह्मण होगा ऐसा कोई नियम नहीं। जिस व्यक्तिमें वैदिक आचार आदि पाये जाय, वही ब्राह्मण है; जिसमें उक्त आचार नहीं, उसको शूद्र कह कर निर्देश किया जा सकता है। और आप जो कहते हैं कि, सुखदुःखहीन कुछ भी जाननेकी चीज नहीं, वह भी ठीक है। जैसे शीत और उष्णमें उष्ण और शीत नहीं हो सकता उसी तरह कोई भी पद सुख दुःख हीन नहीं हो सकता। मेरा भी ऐसा ही मत है। आप क्या उचित समझते हैं?

सर्पने कहा—राजन्! यदि वृत्तिके अनुसार ही ब्राह्मण हुए, तो उस वृत्तिके न होने पर उनकी जाति (जन्म) वृथा है।

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—हे महासर्प! इस मनुष्य-जन्ममें सभी वर्णके सङ्करत्वके कारण जातिका निर्णय करना बहुत कठिन है। सभी वर्णोंके लोग सभी वर्णों की स्त्रियोंके द्वारा सन्तान उत्पादन करते हैं। सबका भक्ष, सबका मैथुन, सबका जन्म और सबकी मृत्यु एक ही प्रकार है। वास्तवमें, जब तक मनुष्यको वेदाधिकार नहीं होता तब तक वे शूद्र ही रहते हैं।*

फिर शान्तिपर्वमें (१८८ और १८८ अध्यायमें) लिखा है—

"असृजद्‌ब्राह्मणानेवं पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्।
आत्मतेजोऽभिनिवृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान्॥
ततः सत्यं च धर्मच तपो ब्रह्म च शाश्वतम्।
आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः॥
देवदानवगन्धर्वा दैत्यासुरमहोरगाः।
यक्षराक्षसनागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम।
ये चान्ये भूतसङ्घानां वर्णांस्तांश्चापि निर्ममे॥

ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणाञ्च लोहितम्।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा॥

भरद्वाज उवाच।

चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते।
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसंकरः॥
कामः क्रोधोभयं लोभो शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः।
सर्वेषां न प्रभवति कस्माद्वर्णो विभिद्यते॥
स्वेदमात्रपुरीषाणि श्लेष्मापित्तं सशोणितम्।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभिद्यते॥
जंगमानामसंख्येयाः स्थावराणांच जातयः।
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः॥

भृगुरुवाच।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्ता स्वधर्मा रक्तांगास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः॥
ब्राह्मणा ब्रह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा॥
ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः।
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः॥
पिशाचा राक्षसा प्रेता विविधा म्लेच्छजातयः।
प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः स्वच्छन्दाचारचेष्टिताः॥

भरद्वाज उवाच।

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्‌ब्रूहि वदतां वर॥

भृगुरुवाच।

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः॥

---

* टीकाकार नीलकंठने ऐसा मत प्रकट किया है—"इतरस्तु ब्राह्मणपदेन ब्रह्मविदं विवक्षित्वा शूद्रादेरपि ब्राह्मणत्वमभ्युपगम्य परिहरति शूद्रेत्विति। शूद्रलक्ष्यकामादिकं न ब्राह्मणेऽस्ति न ब्राह्मणलक्ष्यकामादिकं शूद्रेऽस्ति इत्यर्थः। शूद्रोपि कामाद्युपेतो ब्राह्मणः। ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शूद्र एव इत्यर्थः।"

शौचाचारस्थित: सम्यग् ब्रह्मनिष्ठ: गुरुप्रिय: ।
नित्यव्रती सत्यपर: स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
सत्यं दानमथो द्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृत: ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंगत: ।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरति: शुचि: ।
वेदाध्ययनसम्पन्न: स वैश्य: इति संगित: ॥
सर्वभक्ष्यरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचि: ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचार: स वै शूद्र इति स्मृत: ॥
शूद्रे चेतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते ।
स वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥"

भगवान् ब्रह्माने पहले अपने तेजसे भास्कर और अनलके समान प्रतिभाशाली ब्रह्मनिष्ठ मरीचि आदि प्रजापतियोंको सृष्टि कर, स्वर्गप्राप्तिके उपाय स्वरूप सत्य, धर्म, तपस्या, शाश्वत वेद, आचार और शौचकी सृष्टि की। पीछे देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रकारकी मनुष्य जातिकी सृष्टि हुई। उस समय ब्राह्मणोंकी श्वेतवर्ण (अर्थात् सत्व गुण), क्षत्रियोंकी लोहितवर्ण (अर्थात् रजोगुण), वैश्योंको पीतवर्ण (अर्थात् रज और तमोगुण) और शूद्रोंको कृष्णवर्ण अर्थात् निरवच्छिन्न तमोगुण प्राप्त हुआ। भरद्वाजने कहा—राजन्! यों तो सभी मनुष्यों सब तरहके वर्ण विद्यमान हैं; इसलिए सिर्फ वर्ण (वा गुण) को देख कर ही मनुष्योंमें वर्णभेद नहीं किया जा सकता। देखिये, सभी लोग काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और परिश्रमसे व्याकुल होते हैं तथा सभीके शरीरसे मल, मूत्र, स्वेद, श्लेष्मा, पित्त और शोणित निकला करता है; ऐसी दशामें गुणके द्वारा किस प्रकार वर्णविभाग किया जा सकता है? भृगुने उत्तर दिया—इहलोकमें वस्तुत: वर्णका सामान्य विशेष नहीं है। समस्त जगत् ही ब्रह्ममय है। मनुष्यगण पहले ब्रह्मा द्वारा सृष्ट हो कर क्रमश: कार्यके अनुसार भिन्न भिन्न वर्णोंमें परिगणित हुए हैं। जिन ब्राह्मणोंने रजोगुणके प्रभावसे कामभोगप्रिय, क्रोधपरतन्त्र, साहसी और तीक्ष्ण हो कर अपना धर्म त्याग दिया है, वे क्षत्रिय हैं; जिन्होंने रज: और तमोगुणके प्रभावसे पशुपालन और कृषिकार्यका अवलम्बन किया है वे वैश्य हैं और तमोगुणके प्रभावसे हिंसा पर, लुब्ध, सर्वकर्मोपजीवी, मिथ्यावादी और शौचभ्रष्ट हो गये हैं, वे ही शूद्रत्वको प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मणोंने इस प्रकारके भिन्न भिन्न कार्योंके द्वारा ही पृथक् पृथक् वर्ण पाये हैं। अतएव सभी वर्णको नित्य धर्म और नित्य यज्ञ करनेका अधिकार है। पहले भगवान् ब्रह्माने जिनकी सृष्टि कर वेदमय वाक्य पर अधिकार दिया था, वे ही लोभके वशीभूत हो कर शूद्रत्वको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणगण सर्वदा वेदाध्ययन तथा व्रत और नियमानुष्ठानमें अनुरक्त रहते हैं, इसीलिए तपस्या नष्ट नहीं होती। ब्राह्मणोंमें जो परमार्थ ब्रह्मपदार्थको नहीं समझ पाते वे अति निकृष्ट गिने जाते हैं और ज्ञानविज्ञानहीन स्वेच्छाचारपरायण पिशाच, राक्षस, और प्रेत आदि विविध म्लेच्छजातित्वको प्राप्त होते हैं।

भरद्वाजने कहा—हे द्विजोत्तम! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंका लक्षण क्या है, सो हमें बतलाइये? भृगुने उत्तर दिया—जो जातकर्मादि संस्कारसे संस्कृत हैं, जो परम पवित्र और वेदाध्ययनमें अनुरक्त होकर प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन, स्नान, तप, होम, देवपूजा, अतिथिसत्कार इन षट्कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, जो शौचाचारपरायण, नित्यब्रह्मनिष्ठ, गुरुप्रिय और सत्यनिरत हो कर ब्राह्मणका भुक्तावशिष्ट अन्न भक्षण करते हैं, और जिन्हें दान, अद्रोह, अनृशंसता, क्षमा, घृणा और तपस्यामें अत्यन्त आसक्त पाया जाय, वे ही ब्राह्मण हैं। जो वेदाध्ययन, युद्धकार्यका अनुष्ठान, ब्राह्मणोंको धन दान और प्रजाओंके पाससे कर वसूल करते हैं, वे क्षत्रिय हैं, जो पवित्र हो कर वेदाध्ययन और कृषि वाणिज्य आदि करते हैं, वे वैश्य हैं, तथा जो वेदहीन और आचारभ्रष्ट हो कर सर्वदा समस्त कार्योंका अनुष्ठान और सर्व वस्तु भक्षण करते हैं, वे ही शूद्र हैं। यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मणकुलमें जन्म ले कर शूद्रोंकी भांति व्यवहार करे, तो उसे शूद्र और यदि कोई शूद्रवंशमें जन्म ले कर ब्राह्मणोंकी

भाँति नियमनिष्ठ हो, तो उसे ब्राह्मण कह कर निर्देश किया जा सकता है।

उपरोक्त महाभारतके प्रमाण और पौराणिक वंश विवरणोंमें तो स्पष्ट हो विदित होता है कि, पूर्व समय में इस समयको भाँति जातिभेद न था; प्रत्युत किसी व्यक्तिके गुण और कर्म द्वारा उसको जाति वा वर्णका निश्चय किया जाता था। पहलेके लोग पितृपुरुषोंके गुण और कर्मोंका सब तरहसे अनुकरण करते थे; इस प्रकारसे एक एक वंश बहुत पीढ़ियों तक एक ही प्रकार कर्म और गुणशाली हो कर एक एक जातिरूपमें परिणत हो गये हैं। इसी तरह चातुर्वर्ण्यको उत्पत्ति हुई है। किन्तु परवर्त्ति कालमें वैदेशिक आक्रमण और वास्तविक गुणकर्मके अभावसे नीच जातिका उच्चवंशीय कह कर परिचय देनेसे भी समाजमें विशृङ्खलता उपस्थित हुई, तभीसे भारतके जातिधर्ममें वैलक्षण्य दिखाई देने लगा। यही कारण है कि, अब चारों वर्णोंमें पूर्वकालके शास्त्र निर्दिष्ट आचार व्यवहारोंमें बहुत कुछ पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। कौण्डन्य और पुष्कर ब्राह्मण तथा पंचाल शब्द देखो।

"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।

चतुर्थः एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः॥" (१०।४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये हो चार वर्ण वा जातियाँ हैं; इनके सिवा पाँचवीं कोई जाति नहीं है। मनुके टोकाकार कुल्लुकभट्टने लिखा है—

"पंचमः पुनर्वर्णो नास्ति संकीर्णजातीनां त्वश्वतरवत् मातृपितृजातिव्यतिरिक्तजात्यन्तर त्वान्न वर्णत्वम्।"

पाँचवां कोई वर्ण नहीं है। सङ्कीर्ण अर्थात् दो भिन्न वर्णके मिश्रणसे उत्पन्न जाति जो अश्वतरादिको तरह माता पितासे होन अन्य जातित्व प्रयुक्त है, उसको वर्णोंमें गिनती नहीं हो सकती।

मनुके मतसे—

"द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।

तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्या इति विनिर्दिशेत्॥

(१०।२०)

सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न द्विजातिगण जब नियमादिहीन और सावित्रीपरिभ्रष्ट हो जाते हैं, तब उन्हें व्रात्य कहते हैं। शक, काम्बोज आदि पतित क्षत्रियको वृषल कहा जा सकता है। व्रात्य तथा वृषल शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

मनु फिर कहते हैं—

"मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो वहिः।

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥"

(१०।४५)

ब्राह्मण आदि चार वर्णोंमें क्रियाकलाप आदिके कारण जिनको गिनती वाह्य जातिमें है, वे चाहे साधु भाषी या म्लेच्छभाषी हों; वे दस्यु ही कहलाते हैं।

मनु आदि स्मृतिकारोंके मतसे—उच्च वर्णके पिता और नीच वर्णको मातासे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसको अनुलोम तथा नीच वर्णके पिता और उच्च वर्णको मातासे उत्पन्न हुई सन्तानको प्रतिलोम वर्णसङ्कर कहते हैं। अनुलोमको अपेक्षा प्रतिलोम सन्तान अत्यन्त हेय समझी जाती है। भगवान् मनुके मतसे—अनुलोम सन्तान माताके दोषसे दुष्ट होनेके कारण मातृजातिके संस्कारयोग्य होती है। शूद्रसे प्रतिलोमके क्रमसे उत्पन्न आयोगव, क्षत्ता, चण्डाल ये तीन जातियोंको और्द्धदेहिक आदि किसी प्रकार पितृकार्यमें अधिकार नहीं है। इसीलिए ये लोग नराधम हैं।

आश्वलायन स्मृति आदि ग्रन्थोंमें अनुलोमज और प्रतिलोमज अनेक प्रकारको जातियोंका उल्लेख है। उन सब सङ्कर जातियोंसे भी भारतमें असंख्य जातियोंका आविर्भाव हुआ है।

संकर और भारतवर्ष शब्दमें उक्त जातियोंके नाम और उन्हीं शब्दोंमें उनकी उत्पत्ति और आचार व्यवहार आदि देखना चाहिये।

पाश्चात्य मानवतत्त्वविद्गण वर्त्तमान भारतवासियोंके आर्य, द्राविड़ और मोङ्गलीय, इन तीन प्रधान वर्णोंमें विभक्त करते हैं। उनके मतसे—वैदिककालमें भारतमें आर्य और अनार्य इन दो जातियोंका वास था। आर्यगण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंमें विभक्त थे और अनार्य वा कृष्णवर्ण आदिम अधिवासिगण शूद्र कहलाते थे। परन्तु हमारी समझसे यह युक्ति समीचीन नहीं मालूम पड़ती। आर्योंके आर्यावर्त्त

अधिकार करने पर बहुतसे आदिम अधिवासी उनके साथ आ मिले थे। ये भी कर्मके अनुसार चातुर्वर्ण्यमें शामिल किये गये थे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु कृष्ण-वर्ण आदिम जातिके लोग जितने भी आर्यजातिके विरोधी हुए, वे सभी शूद्र कहलाये।

वर्ण शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

इसी प्रकार आर्योंसे भी बहुतसी अनार्य जातियोंकी उत्पत्तिकी कथा सुन पड़ती है। ऋग्वेदके ऐतरेय-ब्राह्मणमें (७।१८) लिखा है—

"तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पंचाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पंचाशत् कनीयांसः तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे। तानन्तु व्यजहारान्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति विश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः।"

उन विश्वामित्रके एक सौ पुत्र थे, उनमेंसे पचास तो मधुच्छन्दासे उम्रमें बड़े और पचास उनसे छोटे थे। ज्येष्ठ पुत्रोंको इससे (शुनःशेपके अभिषेकसे) अच्छा नहीं मालूम हुआ। इस पर विश्वामित्रने उन लोगोंको अभिशाप दिया—"तुम्हारा वंशजगण सभी नीच जातिके होंगे।" इस कारण विश्वामित्रके वंशके अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मूतिबगण भ्रष्ट हो गये और विश्वामित्रके पुत्रोंकी दस्युभूयिष्ठोंमें गिनती हुई।

पाश्चात्य लोग शबर आदिको द्राविड़ शाखासे उत्पन्न अनार्य जाति बतलाते हैं; किन्तु ये आर्यजातिसे ही उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि शब्दोंमें अन्यान्य विवरण देखना चाहिये।

जैनमतानुसार—वर्तमान कल्पके अवसर्पिणीकालके तृतीययुगके अन्त और चतुर्थकालके प्रारम्भमें आदि तीर्थङ्कर श्रीऋषभनाथ भगवान्‌ने पहले पहल क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंका प्रवर्तन किया। जिन्होंने शस्त्र धारण किये, वे क्षत्रिय कहलाये। जिन्होंने खेती, व्यापार और पशुपालनका कार्य किया, वे वैश्य कहलाये। और इन दोनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले शूद्र कहलाये। इसप्रकार श्रीऋषभदेवने तीन वर्णोंकी स्थापना की। इसके पहले वर्ण-व्यवहार नहीं था। यहींसे वर्ण-व्यवहार चला और उसकी कल्पना मनुष्योंकी आजीविकाके अनुसार कार्योंसे की गई। इसके बाद भगवान्‌ने शूद्रोंके दो भेद किये—एक कारु और दूसरा अकारु। धोबी, नाई आदि कारु कहलाये और इनसे भिन्न अकारु। कारु शूद्रोंको भी दो भागोंमें विभक्त किया—स्पृश्य और अस्पृश्य। इसके बाद भगवान्‌ने सम्राट् पदसे विभूषित हो क्षत्रियोंको युद्ध करने और वैश्योंको परदेश जानेकी शिक्षा दी। साथ ही स्थलयात्रा और जलयात्रा वा समुद्रयात्राका प्रचार किया।

विवाह आदि सम्बन्ध भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार किये जाते थे। इन्होंने विवाहके नियम इस प्रकार बनाये थे। शूद्र—शूद्रकी कन्यासे विवाह करे, वैश्य—वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे एवं क्षत्रिय—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे। इनके समयमें वर्णोचित जीविकाके सिवा कोई भी अन्य जीविका नहीं कर सकता था।

अनन्तर भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्तीने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके छलसे एक दिन समस्त प्रजाको निमन्त्रण दिया और राजप्रासादके मार्गमें घास आदि बो दी। इनका अभिप्राय यह था कि, जो व्यक्ति दयालु और उच्चाशय होंगे, वे जीवहिंसासे बचनेके लिए इस मार्गसे न आ कर अवश्य ही अन्य मार्गका अवलम्बन करेंगे और वे ही वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण होनेके योग्य होंगे। अनन्तर जो लोग उस मार्गसे न आये, उन्हें यज्ञोपवीत दिया गया और व्यापार, खेती, दान, स्वाध्याय आदिका उपदेश दिया गया। साथ ही यह भी कहा कि—"यद्यपि जातिनामकर्मके उदयसे मनुष्य-जाति एक ही है, तथापि जीविकाके पार्थक्यसे वह भिन्न भिन्न चार वर्णोंमें विभक्त हुई है। अतएव द्विज जातिका संस्कार तप और शास्त्रज्ञानसे ही कहा गया है। तप और ज्ञानसे जिसका संस्कार नहीं हुआ, वह सिर्फ जातिसे ही द्विज है। एक बार गर्भसे और दूसरी बार क्रियाओंसे, इस प्रकार दो जन्मोंसे जिसकी उत्पत्ति हुई हो, वह द्विज है एवं जो क्रिया और मन्त्र रहित है, वह केवल नाम धारण करनेवाला द्विज है, वास्तविक नहीं।" चक्रवर्ती द्वारा संस्कार किये जाने पर प्रजा भी इस वर्णका खूब आदर करने लगी। इस वर्णके

मनुष्य प्राय: गृहस्थाचार्य होते थे और शेष जीवनमें अधिकांश मुनिधर्म अवलम्बनपूर्वक अपनी यथार्थ आत्मोन्नति किया करते थे।

इसके कुछ-दिन बाद भारत चक्रवर्ती भगवान् ऋषभदेवके समवशरणमें गये और अपने स्वप्नों तथा ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाका वृत्तान्त कहा। भगवान्‌की दिव्यध्वनि द्वारा इस प्रकार उत्तर मिला—"यद्यपि इस समय ब्राह्मणोंकी आवश्यकता थी, किन्तु भविष्यमें १०वें तीर्थङ्कर श्रीशीतलनाथके समयसे ये जैनधर्मके द्रोही और हिंसक हो जायगे तथा यज्ञादिमें पशुहिंसा करेंगे।" (जैन आदिपुराण)

पाश्चात्य मानवतत्त्वविद्‌गण इस तरह जगत्‌का वर्णनिर्णय करते हैं—

इस पृथिवीस्थ मानवों पर दृष्टि डालनेसे उनकी मुखकी श्री, दैहिक उन्नति, मस्तक-गठन आदि वाह्य आकारमें बहुत कुछ विषमता पाई जाती है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय, तो स्थानके अनुसार (अनेक विषयोंमें) सभी सभी लोगोंमें सदृशता पाई जाती है। यह वैषम्य और सादृश्य उत्पत्ति-मूलक है। यही कारण है कि, जो मनुष्य जैसी आकृतिवालेसे जन्म लेता है, उसकी आकृति भी प्राय: वैसी ही होती है। वैषम्यप्रयुक्त मानवगण साधारणत: पाँच प्रधान जातियोंमें विभक्त किये जाते हैं; जैसे— ककेशीय, मोङ्गलीय, इथियोपीय वा काफ्रि जाति, आमेरिक और मलय। कोई कोई शेषोक्त दो जातियोंको मोङ्गलीय जातिके अन्तर्गत बतलाये हैं। वे कहते हैं, ककेसीय जातिके लोग पहले कास्पीय सागर और कृष्णसागरके मध्यवर्ती पर्वतसङ्कुल स्थानमें रहते थे। मोङ्गलीयगण आलताई पर्वतके भूभागमें और इथिओपीय अर्थात् निग्रोजाति आतलास पर्वत-शृङ्खलाकीर्ण भूभागमें रहती थी। इन सब जातिओंकी आदिम वासभूमिका यथार्थ निर्णय करना बहुत ही कठिन या दु:साध्य है। कुछ भी हो, पण्डितोंका तो यह कहना है कि, ककसीय जातिसे दो प्रधान (विभिन्न) शाखाओंकी उत्पत्ति हुई है। इनमेंसे एक शाखा आर्य नामसे और दूसरी समितिक (Semetic) नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दू, पारसिक, अफगान, जार्मनी और प्रधान प्रधान यूरोपीय जातियां आर्यशाखासे उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार सिरीय और अरबीय जाति समितिक शाखासे उत्पन्न है। आर्य और समितिक जातिके लोगोंमें शारीरिक उज्ज्वल वर्णका सादृश्य अवश्य है, किन्तु इनकी भाषाओंमें किसी तरहकी सदृशता नहीं पाई जाती। इस जातिके लोगोंका धर्मज्ञान बहुत ऊँचा है। इनके मस्तककी गठन यथासम्भव पूर्ण है। इनके शारीरिक आभ्यन्तरीन यन्त्र पूरी तरहसे कार्यकारी हैं। अरबी लोग अत्यन्त कार्यकुशल होते हैं। इनके शरीरका रंग भूरापन लिए पीला, ललाट ऊंचा, आंखें बड़ी, नासिकाका अग्रभाग सूक्ष्म और ओष्ठ पतले होते हैं। अरबी लोग साधारणत: अत्यन्त भ्रमणशील होते हैं। किसी किसीका कहना है कि, अरबीय कालदी-शाखासे यहूदियोंकी उत्पत्ति हुई है, तथा अफ्रिकाके मूर लोग और कैनानाइट (Cananite) नामक जाति भी अरबीय शाखासे उत्पन्न हुई है। आतलास पर्वतके दोनों तरफ तुयारिक नामकी एक जाति वास करती है। ये लोग यद्यपि अरबियोंकी अपेक्षा दुर्दान्त है और इनका रंग भी मैला है, तथापि अन्यान्य विषयोंकी तरफ दृष्टि डालनेसे ये अरबीय शाखासे उत्पन्न हुए हैं; ऐसा ही मालूम होता है।

आर्य शाखासे उत्पन्न मनुष्य पहले अक्सस नदीके किनारे रहते थे। फिर वे वहाँसे भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें चल गये। एक अंश पारस्य देशमें और दूसरा अंश यूरोपमें जा कर रहने लगा। जो काश्मीरके उत्तरमें मध्य-एशियाके भीतर रहते थे, उनमेंसे कुछ मनोमालिन्य हो जानेके कारण भारतवर्षमें चले आये। यूरोपीय विद्वानोंने शब्दविद्यानुशीलन द्वारा यह निश्चय किया है कि, हिन्दू, पारसी, ग्रीक आदि तथा प्रधान प्रधान यूरोपीयगण सभी एक आर्यवंशसे उत्पन्न हुए हैं। आर्य शाखाके जितने भी लोगोंने यूरोपखण्डमें प्रवेश किया है, उनमेंसे एक दल यूरोपके पश्चिम प्रान्तमें जा कर रहने लगा, जो केल्ट नामसे प्रसिद्ध हैं। आधुनिक आइरिस, स्कौट, वेल्स और अमेरिकाके लोग केल्ट जातिसे उत्पन्न हुए हैं। और एक दल उत्तरखण्डमें जा कर रहने लगा, जो अब जर्मनके नामसे प्रसिद्ध है। यह जर्मन जाति दो भागोंमें विभक्त है। एक भागसे नौरवे, सुइडेन और डेनमार्कके

अधिवासीगण उत्पन्न हुए और दूसरे भागसे टिउटन जातिकी उत्पत्ति हुई। आधुनिक जर्मनी अंग्रेज आदि जातियां टिउटन शाखासे उत्पन्न हुई हैं और एक दलने लाटिन नामसे प्रसिद्धि पा कर यूरोपमें उपनिवेश स्थापन किया। इस लाटिन जातिसे ही इटलियोंकी उत्पत्ति है। चौथी शाखा स्लाभोनीय नामसे प्रसिद्ध हो कर यूरोपके पूर्वप्रान्तमें रहने लगी है। यह शाखा भी दो भागोंमें विभक्त है—एक भागसे पोल, बोहीमीय आदिकी और दूसरीसे रूस और सरभियोंकी उत्पत्ति हुई। ऊपर कही हुई समस्त जातियोंकी उत्पत्ति एक ककेसीय जातिसे है। ककेसीय लोगोंका साधारण वर्ण भूरा, केश काले, मस्तक और मुखकी आकृति बड़ी, मुख अण्डेके समान, ललाट प्रशस्त और नासिका पतली होती है। इनका नैतिक ज्ञान और बुद्धि शक्ति अतिप्रखर है। अन्यान्य जातिके लोगोंकी अपेक्षा ये खूब उन्नत हैं।

ककेसीय जाति।

मोङ्गलीयगण भी पहले ककेसीय जातिके पास आलताई पर्वत पर रहते थे। इस जातिके लोग भी अति-भ्रमणशील हैं। तातार, मोङ्गलीया, एशियाका रूस इत्यादि देशोंके अधिवासीगण मोङ्गलीय जातिसे उत्पन्न हैं। तुर्की लोग भी इस जातिकी एक शाखासे उत्पन्न हुए हैं। चीन, जापान और उत्तर महासागरके उपकूलके अधिवासीगण भी मोङ्गलीय जातिके अन्तर्गत हैं। साधारणतः मोङ्गलीय लोगोंका रंग कच्ची जलपाई (जङ्गली जैतून) के समान और किसी किसीका रंग प्रायः पीला होता है; इनके बाल काले, सीधे और लम्बे होते हैं तथा दाढ़ी बहुत कम उपजती है। इनकी नाक मोटी, छोटी और चपटी होती। इनका मस्तक आयताकार, पार्श्वदेश किञ्चित चौरस और ललाट नीचा, चक्षु ईषत् असमान्तराल, कान बड़े और ओष्ठ मोटे होते हैं। यह जाति अत्यन्त अनुकरणप्रिय होती है; अपने बुद्धिबलसे कुछ नवीन कार्य करनेकी इनमें क्षमता नहीं। ये कृषिकार्यमें खूब पटु; पर नीतिज्ञानसे शून्य होते हैं। इस जातिकी भाषाका अनुशीलन करनेसे जाना जा सकता है कि, यह जाति भी ककेसीय जातिकी तरह दो शाखाओंमें विभक्त है। एक शाखासे चीनोंकी उत्पत्ति हुई है। चीनोंकी भाषामें विशेषता यह है कि, इनके सभी शब्द एकवर्णिक हैं।

मोंगलीय जाति।

इथिओपीय अर्थात् काफ्रिजाति—अफ्रिकाके सर्वत्र ही इस जातिका वास है; सिर्फ भूमध्यसागरके उपकूल प्रदेशमें इस जातिके लोग कुछ कम दिखाई देते हैं। अफ्रिका महादेशके उक्त अञ्चलमें ककेसीय जातिका वास देखनेमें आता है। काफ्रि जातिके लोगोंके वर्ण और चक्षु दोनों ही काले हैं। इनके बाल काले, मस्तकका पार्श्वदेश चपटा और सामना बढ़ा हुआ, ललाट अप्रशस्त और क्रमशः नीचा, कपोल स्फीत और निःसारित, नासिका स्थूल और चपटी, चक्षु कुटिल और ओष्ठ अत्यन्त मोटे होते हैं।

काफ्रि जाति।

पहले अफ्रिका इथिओपीय नामसे प्रसिद्ध था, इसलिए उस स्थानके लोग इथिओपीय कहाते थे। यह जाति निग्रो नामसे भी प्रसिद्ध है। दास-व्यवसायी निग्रो लोगोंकी आकृति और वर्ण आदिका जैसा वर्णन किया गया है, वैसे निग्रो गिनी-प्रदेशके सिवा और किसी जगह नहीं पाये जाते। अफ्रिकाके दक्षिण प्रान्तके निवासी हटेनटटोंकी आकृति बहुत अंशोंमें चीनोंसे मिलती-जुलती है। इनके मुखकी आकृति अत्यन्त कदर्य और शरीर अदृढ़ होता है। उत्तर प्रान्तके रहनेवाले काफ्रिगण लम्बे, बलिष्ठ और पिङ्गलवर्णके होते हैं। सिर्फ हटेनटट प्रदेशके सिवा अफ्रिकामें सर्वत्र ही भाषाका सादृश्य पाया जाता है। काफ्रियोंकी बुद्धि बहुत मोटी है, इनकी चलाये हुए किसी प्रकारके अक्षर नहीं; इनका धर्मज्ञान भी अत्यन्त निकृष्ट है। इस जातिके लोग क्रमशः उन्नतिमार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं।

आमेरिक जातियोंकी आवासभूमि पहले अत्यन्त विस्तृत थी। अब उनके अधिकांश स्थान ककेसीय जातिके अधिकारमें आ गये हैं। ये लोग अमेरिकाके लाल

आदिम अधिवासीके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इनका रंग ललाईको लिए काला, बाल काले, सीधे और मजबूत तथा थोड़ी और छोटी दाढ़ी भी उपजती है। कपाल-देशकी अस्थि उन्नत, नासिका नुकीली, मस्तक छोटा,

आमेरिक जाति।

अग्रभाग उन्नत, पश्चाद् भाग चपटा, मुख बड़ा और ओष्ठ मोटे होते हैं। इन लोगोंमें शिक्षा-शक्ति बहुत थोड़ी है और न इन्हें समुद्र-यात्राकरनेका साहस ही है। ये लोग प्रतिहिंसापरायण, चञ्चल और युद्धप्रिय होते हैं। कोई कोई इस जातिको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। मेक्सिको, पेरुवीय और असीट के आमेरिकगण (अपेक्षासे) उन्नत होते हैं। इनमें सब की आकृति एकसी नहीं होती, किन्तु गुण प्रायः एकसे होते हैं तथा भाषा भी एकसी है। इस जातिका क्रमशः क्षय ही होता जाता है।

मलय जाति सुमात्रा, बर्णियो, जावा, फिलिपाइन आदि द्वीपोंमें वास करती है। इनका शरीर ताम्रवर्ण, बाल काले, पर देखनेमें कदर्य, मुख बड़ा, नासिका स्थूल और छोटी, मुखदेश प्रशस्त और चपटा तथा दांत बड़े बड़े होते हैं। इनका मस्तक ऊंचा और गोल, ललाट

मलय जाति।

नीचा और प्रशस्त है। इनका नैतिकज्ञान अत्यन्त निकृष्ट। ये लोग आमेरिकोंकी तरह आलसी अथवा समुद्रसे डरते नहीं हैं। ये लोग समय समय पर कार्य-कालमें अपनी बुद्धिका परिचय दिया करते हैं।

पृथिवी पर प्रायः सर्वत्र ही देखा जाता है कि, प्रत्येक प्रदेश आदिम अधिवासियोंसे शून्य हो कर नये लोगों द्वारा आबाद हुआ है। यूरोपखण्ड पर दृष्टि डालनेसे इसका सम्यक् दृष्टान्त मिल सकता है। यूरोपके प्रत्येक प्रदेशमें केल्ट, जर्मन, लाटिन आदि जातिकी शाखाओंके घातप्रति घातसे एक एक नई जातिका सङ्गठन हुआ है। कोई कोई विद्वान् कहते हैं कि, केल्टजाति पृथिवी पर प्रायः सर्वत्र विस्तृत है। इस जातिने मध्य-एशियासे दो शाखाओंमें विभक्त हो कर यूरोपमें प्रवेश किया है। प्रत्यक्ष वा परोक्षभावसे यूरोपकी सभी जाति ककेसीय केल्ट शाखासे उत्पन्न हुई हैं। वास्तवमें—पृथिवी पर सर्वत्र ही ककेसीय जातिका आधिपत्य देखनेमें आता है। अमेरिकामें वहांके आदिम निवासियोंके साथ ककेसीय जातिके लोगोंका संमिश्रणसे नई नई जातियां उत्पन्न हो रही हैं।

इसी प्रकार युरोपीय और निग्रो जातिके संमिश्रणसे मूलाटो (Mulatto) निग्रो, और आमेरिक जातिके सम्बन्धसे जम्बो (Zamboe) आदि जातियोंकी उत्पत्ति होती है।

पहले ही लिख चुके हैं, कि पाश्चात्य मतसे मनुष्य पांच प्रधान जातियोंमें विभक्त हैं; उनमेंसे ककेसीयगण श्वेतवर्ण, मोङ्गलीय पीतवर्ण, इथिओपीय कृष्णवर्ण और आमेरिकगण ताम्रवर्ण होते हैं। परन्तु शारीरिक वर्णके के द्वारा सब समय जाति विशेषका निर्वाचन नहीं किया जा सकता। एक जातिके लोग भी भिन्न भिन्न वर्णके हो जा सकते हैं। हिन्दू लोग ककेसीय जातिके अन्तर्गत होने पर भी उनका वर्ण यूरोपियों जैसा सफेद नहीं होता। कृष्णवर्णवाले अधिक उत्ताप सह सकते हैं, इसीलिए निग्रो जातिका वास उष्णप्रधान देशोंमें पाया जाता है। इनका शरीर भी उत्तापको सह कर बना है। कृष्ण और श्वेतवर्णवाला लोगोंके शरीरसंस्थानके विषयमें इतना प्रभेद पाया जाता है कि, एक श्रेणीके लोगोंके चुपकने चमड़े पर ही रक्तके उपकरण मिश्रित रहते हैं और दूसरी श्रेणीवालोंके वह नहीं होते।

भिन्न भिन्न मनुष्यके भिन्न भिन्न प्रकारके केश देखनेमें आते हैं। कोई कोई कहते हैं—केशोंकी जड़में शारीरिक वर्णके उपादान विन्यस्त हैं। निग्रो लोगोंके केश पशमके समान और काले हैं तथा आमेरिकोंके खड़े और लाल रंगके बाल हैं; इससे मालूम होता है कि, शारीरिक वर्णके साथ भी केशोंका सम्बन्ध रहता है। इसी तरह आखोंके साथ भी इनका सम्बन्ध है। साधारणतः सुन्दर वर्णवाले लोगोंकी आँखें उज्ज्वल और केश भी सुहावने होते हैं। भिन्न भिन्न जातीय लोगोंके मस्तककी गठन विभिन्न प्रकारकी होती है, और इसीलिए उनकी

बुद्धिवृत्तिमें भी पार्थक्य हुआ करता है। साधारणतः ककेसीय लोगोंका मस्तक प्रायः गोल, ललाटदेश मध्याकार, कपोलकी अस्थियां छोटी, सामनेके दांत लम्बे होते हैं। मोङ्गलीय लोगोंका मस्तक आयताकार, कपोलकी अस्थियां निःसारित, नासिकाके छिद्र अप्रशस्त, और नासिका चिपटी होती है। इथिओपीय जातिके लोगोंका मस्तक छोटा और पार्श्वदेश चपटा, ललाट कुछ न्युब्ज, कपोलकी अस्थियां ऊर्द्ध्वप्रसारित और नासारन्ध्र विस्तृत होते हैं। आमेरिकोंकी गठन बहुत अंशोंमें मोङ्गलीयों जैसी है, सिर्फ इनका ऊर्द्ध्वदेश गोलाकार और पार्श्वदेश मोङ्गलीयोंकी तरह उतना दबा हुआ नहीं है। मलय जातिके लोगोंका तालुदेश क्षुद्र होता है। मुख और मस्तककी अस्थियोंकी दीर्घताके कारण ही ककेसीय लोगोंमें अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा विद्या, बुद्धि आदिकी उन्नति अधिक है। इस ककेसीय जातिकी भिन्न भिन्न शाखाओंसे उत्पन्न जाति विशेषमें मस्तककी अस्थियोंके तारतम्यके अनुसार बुद्धिवृत्तिमें न्यूनाधिकता पाई जाती है। यूरोपीय जाति-समूहमें मस्तककी अस्थियोंका विशेष वैषम्य दृष्टिगोचर होता है।

मानव जाति-विभागके विषयमें यूरोपीय पण्डितोंमें भी मतभेद पाया जाता है। लेबनिज और लेमपिड (Leibnitz and Lacepede)-ने मानवजातिको यूरोपीय, लापलैण्डीय, मोङ्गलीय और निग्रो, इन चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है। लिनियस (Linnæus) ने वर्णके भेदसे श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण, इन चार श्रेणियोंमें मनुष्य जातिको विभक्त किया है। कान्त (Kant) मानवसमूहको श्वेतवर्ण, ताम्रवर्ण, कृष्णवर्ण, और जलपाइफलका वर्ण, इन चार वर्णोंमें विभक्त करते हैं। ब्लूमेनबक (Blumenbach) मनुष्यजातिके पांच भेद बतलाये हैं—ककेसीय, मोङ्गलीय, इथिओपीय, आमेरिक और मलय। बाफून (Bffon) मनुष्य-जातिको उत्तर प्रदेशीय, तत्पर प्रदेशीय, दक्षिण एशीय, कृष्णवर्णीय, यूरोपीय और आमेरिक इन छह श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं। प्रिचार्डका कहना है—मनुष्य-जाति ईरान (ककेसीय), तूरान (मोङ्गलीय) आमेरिक, हटेन्टट, निग्रो, पापूय और अल्फोरा (अष्ट्रेलीय) इन छह श्रेणियोंमें विभक्त है। पिकारिङ् (Pickering) ने मानवजातिके ग्यारह भेद किये हैं—श्वेत, मोङ्गलीय, मलय, भारतीय, निग्रो, इथिओपीय, हबसी, पापुय, निग्रिती, अष्ट्रेलीय और हटेन्टट। पिशेल (Pischel)के मतसे मनुष्योंके सात भेद हैं, यथा—(१) अष्ट्रेलीय और तासमनीय, (२) पापूय, (३) मोङ्गलीय, (४) द्राविड़ीय * (भारतवर्षके पश्चिम प्रान्तमें रहनेवाले अनार्यगण इसी वंशसे उत्पन्न हुए हैं)। (५) हटेनटट और बूसमेन, (६) निग्रो और (७) भूमध्यसागर-प्रदेशीय। यह भूमध्यसागर-प्रदेशीय जाति ही ब्लूमेनबकके मतसे ककेसीय जाति है।

जाति—सिन्ध और बम्बईके कराची जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २३° ३५' से २४° ३८' उ० और देशा० ६८° १' से ६८° ४८' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २१४५ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ३१७५२ है। इसमें ११७ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। यहांकी आय एक लाख रुपयेकी है। तालुकका उत्तर-पूर्व अंश उर्वरा है। यहांकी प्रधान उपज धान, बाजरा, तिल, जौ और तेलहन है।

जातिकोश (सं० क्लो०) जातेः कोशमिव। जातीफल, जायफल।

जातिकोशी (सं० स्त्री०) जातिकोषी देखो।

जातिकोष (सं० क्लो०) जातेः कोषमिव। जातीफल, जायफल। इसके गुण—रस, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, रोचन, मधु, कटु, दीपन, श्लेष्मा और वायुनाशक, मुखको विरसताका नाशक, मलकारक, कृमि, कास, वमि, श्वास और शोषनाशक तथा स्थूलकारक।

---

* द्राविड़ जातिके लोगोंका मस्तक कुछ चपटा, नासिका नीची और प्रशस्त, मुखकोण ह्रस्व, ओष्ठाधर स्थूल, मस्तमंडल प्रशस्त और मांसल होता है। इनका चेहरा कदर्य और टेढ़ा होता है। इनकी भिन्न भिन्न शाखाओंकी उच्चता लगभग ६१·११ इंचसे ६३·८२ इंच तक होती है। शरीर स्थूल और अंग प्रत्यंग दृढ़ होते हैं। शरीरका वर्ण श्यामल धूम्रवर्णसे लगा कर प्रायः घोर कृष्णवर्ण तक होता है।

जातिकोषी (सं० स्त्री०) जातिकोषमस्या अस्तीति अच्-अर्श आदिभ्यो अच्। पा ५।२।१२७। ततः ङीप्। जातिपत्री।

जातिङ्गा—आसामकी एक नदी। यह उत्तर कछार पर्वतसे (हाफलङ्गके पास) निकल कर पश्चिम तथा दक्षिणको बहती हुई बराकमें जा मिली है। दक्षिण तटके साथ साथ आसाम बङ्गाल रेलवे है। इसकी पूरी लम्बाई ३६ मील है।

जातिच्युत (सं० त्रि०) जो जातसे अलग कर दिया गया हो।

जातिज (सं० क्ली०) जातीफल, जायफल।

जातित्व (सं० पु०) जातीयता, जातिका भाव।

जातिधर्म (सं० पु०) जातीनां धर्मः, ६ तत्। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका धर्म। (गीता)

महाभारतके शान्तिपर्वमें जातिधर्मका विषय लिखा है। युधिष्ठिरके भीष्मसे जातिधर्मका विषय पूछने पर उन्होंने बतलाया था—क्रोध परित्याग, सत्य वाक्यप्रयोग, उचित रूपसे धनविभाग, क्षमा, अपनी पत्नीमें पुत्रोत्पादन, पवित्रता, अहिंसा, सरलता और भृत्यका भरणपोषण ये नव चारों वर्णोंके साधारण धर्म हैं। ब्राह्मणका धर्म इन्द्रियदमन और वेदाध्ययन है। शान्तस्वभाव ज्ञानवान् ब्राह्मण यदि असत् कार्यका अनुष्ठान छोड़ भले काममें रह कर धनलाभ करे, तो दारपरिग्रह कर उसको अवश्य सन्तान उत्पादन, दान और यज्ञानुष्ठान करना चाहिये। वह दूसरा कोई काम करे या न करे, वेदाध्ययननिरत और सदाचारसम्पन्न होनेसे ही ब्राह्मण समझा जावेगा।

धनदान, यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और प्रजापालन ही क्षत्रियका प्रधान धर्म है। याच्ञा, याजन वा अध्यापन उसके लिये निषिद्ध है। नियत दस्युके वधको उद्यत होना और युद्धस्थलमें पराक्रम दिखलाना क्षत्रियका अवश्य कर्तव्य है। जो यज्ञशील, शास्त्रज्ञानसम्पन्न और समरविजयी रहते हैं। उन्हींको क्षत्रिय कहते हैं। जो क्षत्रिय युद्धसे अक्षत शरीर लौट आता है, वह अधम समझा जाता है। दान, अध्ययन और यज्ञ द्वारा ही वह मङ्गललाभ करते हैं। अतएव धर्मार्थी नरपतिको धनके लिये लड़ना अवश्य चाहिये। उनको ऐसी चेष्टा करना उचित है, जिसमें प्रजा अपने अपने धर्ममें रहती हुई शान्त भावसे इसका अनुष्ठान करे। क्षत्रिय दूसरा कोई कार्य करें या न करें, आचारनिष्ठ हो प्रजापालनमें उन्हें चूकना न चाहिये।

दान, अध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सदुपाय अवलम्बनपूर्वक धनसञ्चय वाणिज्यादि और पुत्रकी तरह पशुपालन वैश्यका नित्य धर्म है। सिवा इसके दूसरा कोई काम करनेसे वह अधर्ममें लिप्त हो जाता है। भगवान् ब्रह्माने जगत्की सृष्टि करके ब्राह्मण तथा क्षत्रियको मनुष्य और वैश्यको पशुको रक्षाका भार सौंपा था। सुतरां पशुपालनसे ही उनको मङ्गललाभ होता है। वैश्य छह तथा एक धेनुका रक्षक होनेसे दुग्ध, सौ धेनुका रक्षक होनेसे संवत् सरमें एक गोमिथुन, दूसरेका धन ले कर कारबारमें लगानेसे लब्ध धनका सप्तम भाग और कृषिकार्य करनेसे सात हिस्सोंमें एक हिस्सा वेतन स्वरूप लेता है। पशुपालनमें अनास्था उसको कभी भी दिखलाना न चाहिये। वैश्यके पशुपालनकी इच्छामें कौन हस्तक्षेप कर सकता है।

भगवान् प्रजापतिने शूद्रको ब्राह्मण आदि वर्णत्रयका दास जैसा बनाया है। इसलिए तीनों वर्णोंकी सेवा ही उसका सबसे बड़ा धर्म है। इस धर्मको पालन करनेसे ही वह परम सुख पाता है। यदि शूद्र धन सञ्चय करे, ब्राह्मण आदि बड़े आदमी उसके वशीभूत हो सकते हैं। इसमें उसको पापग्रस्त होना पड़ता है। इसलिए शूद्रके लिए भोगाभिलाषासे रुपया जोड़ना बहुत बुरा है। किन्तु राजाके आदेशसे धर्मकार्यानुष्ठानके लिए वह दौलत इकट्ठी कर सकता है। वर्णत्रय उसका भरणपोषण तथा छत्र वेष्टन करेंगे और शयन, आसन, पादुका चामर वस्त्र आदि देंगे। शूद्रका यही धर्मलब्ध धन है। शूद्रका परिचारक पुत्रहीन होनेसे उसका पिण्डदान और वृद्ध तथा दुर्बल रहनेसे उसको खिलाना पिलाना प्रभुका जरूरी फर्ज है। मालिक पर विपद् आने या उसका धन उड़ जाने पर शूद्रको अन्यत्र न जाना चाहिए। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी भांति शूद्रको यज्ञका अधिकार है, परन्तु स्वाहा, वषट् और वैदिक मन्त्रका व्यवहार नहीं कर सकता। सुतरां उसको स्वयं व्रती न हो ब्राह्मणसे यज्ञानुष्ठान कराना चाहिये। उस यज्ञकी दक्षिणा पूर्ण पात्र है।

भगवान् मनुने जातिधर्मका विषय इस प्रकार लिखा है—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह, ऐसे छह प्रकारका ब्राह्मणोंका जातिधर्म है। क्षत्रियका जातिधर्म प्रजापालन, दान, यज्ञ, अध्ययन और विषयमें अनासक्ति है। पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीद (सूद) और कृषि वैश्योंका जातिधर्म। इन्हीं तीनों वर्णोंकी शुश्रूषा और अनसूया करना शूद्रका जातिधर्म है।

जातिपत्र (सं० पु०) जावित्री।

जातिपत्री (सं० स्त्री०) जातेः पत्री ६-तत्, गौरादित्वात् ङीष्। गन्ध द्रव्यविशेष, जावित्री, जातिफलका त्वग्विशेष। गुण—लघु, स्वादु, कटु, उष्ण, रुचिकारक एवं कफ, काम, वमि, श्वास, तृष्णा, कृमि और विषनाशक होता है।

जातिप्रवाल (सं० पु०) जातिकिसलय, जायफलका पत्ता।

जातिपर्ण (सं० पु०) जावित्री।

जातिपांति (हिं० स्त्री०) जाति वर्ण, आदि।

जाति (ती) फल (सं० क्ली०) जात्याख्यं फलं मध्यपदलो०। कर्मधा। जातीफल, सुगन्ध फलविशेष, जायफल। संस्कृत पर्याय—जातीकोष, फलजाति, फलज्जाती, कोषक, कोश, जातिकोष, जराभोग्य, जातीकोश, जातिफल, जातिशस्य, शालूक, मालतीफल, मज्जसार, जातिसार, पपुट, सुमनःफल।

अंग्रेजोंमें इसको नाटमेग (Nutmeg) कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम माइरिष्टिका फ्रग्रान्स (Myristica Fragrans) है। इसके सिवा इसको M. Officinalis, M. Moschata, M. Aromatica आदि भी कहते हैं।

जातिफल या जायफल एक प्रकारके वृक्षका फल है। यह मनोहर वृक्ष हमेशा उज्ज्वल श्यामवर्ण, निविड़ पत्रावृत और ४०।५० फुट तक ऊंचा होता है। इस जातिके बहुत तरहके वृक्षोंके फल देखनेमें जातिफलके सम्पूर्ण अनुरूप मालूम पड़ते हैं; किन्तु उनके गुणोंमें जमीन आसमानका भेद है और वे यथार्थमें जायफल जैसे खुशबूदार भी नहीं होते। असली जायफल १२६° से १३५° पूर्व देशा० तक और ३०से ७० उत्तर अक्षा० तक इस चतुःसीमाके भीतर उत्पन्न होते हैं। मलक्कास द्वीपपुञ्ज, जिलोलो, सेराम, आम्बोयाना, दम्मा, निउगिनीका पश्चिमांश आदि कई स्थानोंमें यह वृक्ष जंगली तौर पर पाया जाता है। इन द्वीपोंके सिवा और कहीं भी यह वृक्ष नहीं उपजता। परन्तु मनुष्योंने जगह जगह इसके पौधे गाड़े हैं और जायफलके खानेवाले पक्षी भी बहुत दूर जा कर इसके बीज डालते हैं, जिससे अन्यत्र भी इसका प्रसार हो रहा है। जलवायु और मट्टीके उपयोगी होने पर यह वृक्ष सहजहीमें बढ़ता है। सिङ्गापुरके सम-अक्षान्तवर्त्ती तार्नेट द्वीपमें पहले जायफल पैदा होता था, ओलन्दाजोंने उसकी उन्नतिके लिए १६३२ ई०में तार्नेटसे बान्दा द्वीपपुञ्जमें इसका बगीचा बनाया। तभीसे आज तक बान्दासे प्रचुर जायफल नानादेशोंको रवाने हो रहे हैं।

ईसाकी १८वीं शताब्दीके अन्तमें अंग्रेजोंने बेङ्कुलेन, और प्रिन्स एडवार्ड द्वीपमें इसकी खूब आबादी की थी; उसके बाद क्रमशः मलय, सिङ्गापुर, पिनाङ् और वहांसे ब्रेजिल और भारतीय द्वीपपुञ्जमें इसकी खेती होने लगी। कलकत्तेके उद्भिद्-विज्ञानविषयक उद्यानमें भी इसके वृक्ष उत्पन्न हुए हैं। बेङ्कुलेन द्वीपमें अब भी प्रचुर जातिफल उत्पन्न होते हैं। इस समय प्रधानतः बान्दा और बेङ्कुलेन इन दोनों स्थानोंसे अधिकांश जातीफल नानादेशोंको जाते हैं। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भमें पिनाङ् और सिङ्गापुरमें ही अधिक जायफल उत्पन्न होते थे। बान्दामें भी बहुत जायफल उत्पन्न हुए थे, किन्तु १८६० ई०में वे सब उद्यान एकबारगी नष्ट हो गये। चीन देशमें भी इस समय इसकी आबादी की जा रही है। भारतवर्षके नीलगिरि पर्वत पर और सिंहलमें इसकी खेती हो रही है। बहुतोंकी आशा है कि, अंग्रेजी राज्यके भीतर जामेका द्वीपमें ही भविष्यमें प्रचुर जायफल उत्पन्न होने लगेंगे।

जन्मस्थानमें ये सब वृक्ष नवम वर्षमें पूर्ण अवस्थाको प्राप्त होते हैं, और करीब ७५ वर्ष तक जीवित रहते हैं। पका जायफल देखनेमें अखरोटके समान होता है। इसके उपरका छिलका पक कर सूख जाने पर यह बरा

कर हिस्सोंमें फट जाता है। छिलकेको उतारते ही भीतर कोमल पत्तियोंकी भांतिका स्तरवद्ध दल निकलता है; ताजा हो तो इसका रंग और लाल होता है इसीको जावित्री और जावित्रीके बाद जायफल कहते हैं। इसके ऊपर भी दो आवरण रहते हैं। ऊपरका आवरण चिकना और कठिन, तथा भीतरका पतला और धूमलवर्णका होता है। छिलका फलके भीतर तक भेद जाता है और इसीलिए फलको काटने पर उसमें मार्बिल जैसे चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। जावित्रीका परिमाण तमाम सूखे फलमें प्राय: एकपञ्चमांश है।

जावित्री और जायफल एक ही पेड़से उत्पन्न होते हैं। ये दोनों वस्तुएँ बहुत समयसे एसिया और यूरोपमें आदरके साथ मसालेके काममें लाई जाती हैं; किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि, जहां ये पैदा होती हैं, वहांके लोग इसको जरा भी कदर नहीं करते और न इसे मसालेके काममें ही लाते हैं।

बान्दाद्वीपमें जातिवृक्ष पर वर्षमें तीन बार फल लगते हैं। १म श्रावणके महीनेमें, २य कार्तिक और अगहनमें तथा अन्तिम बार चैत्र मासमें वे फल पक जाते हैं। फिर उसके छिलकेको उतारकर जावित्री निकालकर उसे अलग सुखा लेते हैं। जायफल छिलकेके भीतर दो मास तक लकड़ीके धुएँसे सुखा लेने पड़ते हैं; नहीं तो कोड़े लग कर नष्ट कर देते हैं। बान्दाके लोग पहले कुछ दिनों तक घाममें सुखा कर पीछे धुएँसे सुखाते हैं। जब भीतरसे हलने लगता है, तब उसे तोड़ कर जावित्री निकाल ली जाती है। कभी कभी कीड़ोंसे बचानेके लिए जायफल चूनेके पानीमें डाल दिये जाते हैं। परन्तु धुएँसे सुखाये हुए जातिफलही बहुतोंको अच्छे लगते हैं।

जातिफलसे दो प्रकारका तेल बनता है। १म उड़ायी तेल और २य स्थायी तेल। इनमेंसे पहला तेल शुभ्र और जायफलको अत्यन्त तीव्र सुगन्धियुक्त होता है। दूसरा तेल कठिन, पीताभ और मनोहर गन्धविशिष्ट है। शेषोक्त तेल बेकाम जायफलके चूरेको भाफके तापसे गरम करके और फिर उसे पेर कर निकाला जाता है। शीतल होने पर यह तेल कठिन, दानेदार और पाटलवर्णमें परिणत होता है।

पानीके साथ धुमाने कर जावित्री और जायफल दोनों हीसे सुगन्धित पदार्थ निकाल लिया जाता है। यह पदार्थ तैलवत् और अत्यन्त उड़ायी होता है। इस पदार्थको जावित्री या जायफलका अर्क कह सकते हैं। जावित्रीका अर्क कुछ पीलाईको लिए और जायफलका अर्क स्वच्छ होता है। दोनों तरहके अर्कसाबुन सुगन्धित करनेके काममें आते हैं। इसीलिए विलायती जावित्री और जायफलकी खपत ज्यादा है। पिस् (Piesse) साहबने अपने "आर्ट आफ् परफ्यूमरी" नामके ग्रन्थमें लिखा है कि, इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्डमें प्रति वर्ष १,४०,००० पौण्ड (प्राय: १७५०) मन जायफल खर्च होता है। और सिमोण्ड्स (Simmonds) साहब लिखते हैं कि, १८७० ई०से पहलेके पांच वर्षोंमें प्रतिवर्ष लगभग प्राय: ५,८२,७३६ पौण्ड जायफल सिर्फ इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्डमें खर्च हुआ था। यह पहलेकी तौलसे प्राय: चौगुनेसे भी ज्यादा है।

बहुत तरहके विलायती गन्धद्रव्योंमें जायफलका अर्क मिलाया जाता है। थोड़ा मिलानेसे इसके जरिये लभेण्डर वर्गामट आदिकी सुगन्धि और भी मनोरम हो जाती है।

पहले 'बान्दाका साबुन' इस नामका जायफलके स्थायी तैलसे एक तरहका साबुन बनाया जाता था। अब जायफलके अर्कसे साबुन सुगन्धित करनेकी प्रथा चल जानेके कारण उसकी चाल बन्द हो गई है।

बहुतसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें जातीफलका नामोल्लेख और उसके गुणोंका वर्णन मिलता है। अतएव इस बातका निर्णय करना बहुत ही मुश्किल है कि, भारतवर्षमें किस समयसे जातीफलका व्यवहार चला है। प्रमाण मिला है कि, ईसाकी १६वीं शताब्दीमें अरब देशके वणिक् पूर्वसे जायफल मंगाकर यूरोपको भेजा करते थे। उस समय पारस्य और अरब देशके वैद्य इसके गुण अवगुण जानते थे। हिन्दू वैद्य और मुसलमान हकीम उदरामय आदिके लिए जायफलको अति उत्कृष्ट औषध बताते हैं। हकीमोंके मतसे—जायफल उत्तेजक मादक, पाचक, बलकारक और उपदंशरोगके लिए हितकर है।

यूरोपीय चिकित्सकमण्डली भी बहुतायतसे जायफलके अर्क आदि काममें लाने लगी है। उनके मतसे—जायफल उत्तेजक, वायुनाशक और सब तरहके उदरामय रोगमें फायदेमन्द है। ज्यादा सेवन करनेसे निद्रा आती है। इसकी खुराक साधारणत: १०से २० ग्रेन तक है। जायफलका भिगोया हुआ पानी हैजेमें शान्ति करता है। जातिफलसे तीन प्रकारके द्रव्य औषधके लिए बनते हैं—१ उड़ायी तैल, २ अर्क और ३ स्थायी तैल। स्थायीतैल वात, पक्षाघात (लकवा) और अन्यान्य वेदनाओं पर प्रलेपकी तरह व्यवहृत होता है।

इस देशके वैद्यगण जायफलसे उदरामयकी एक दवा बनाते हैं, जिसकी तरकीब इस तरह है--एक जायफलमें एक छेद करके उसमें ज़रासी अफीम (रोगीकी अवस्था और उसके अनुसार उसकी मात्रा होती है) भर कर उसीके चूरसे छेदको बन्द कर देना चाहिये। बादमें उस जायफलको थोड़ीसी मैदाकी लेईमें भरकर गरम राखमें भूंजना चाहिये। इसके बाद उस जायफल और अफीमको चूर्ण कर रोगीको (उम्रके अनुसार) खुराक देनी चाहिये। यह बलकारक और वातनाशक होता है। पानीमें घोंट कर इसको फूले स्थान पर लगा देनेसे आराम पहुंचता है। बच्चोंको उदरामय रोगमें घी और चीनीके साथ जायफल दिया जाता है।

इसके अलावा जावित्री और जायफल दोनों ही रांधने और पान आदिमें मसालेकी तरह खाये जाते हैं।

वैद्यक मतमें जायफलके कषाय, कटु, उष्ण, गलरोगनाशक, रक्तातिसार और मेहनिवारक, वृष्य, दीपन, लघु। (राजनि०) रस, तिक्त, तीक्ष्ण, रोचन, ग्राहक, स्वरहितकर, श्लेष्मा, वायु और मुखकी विरसता-नाशक तथा मल, दौर्गन्ध्य, कृष्णता, क्रमि, कास, वमन, श्वास, शोष, पीनस और हृद्रोगनाशक माना गया है। (भावप्र०) यह तृष्णा-शूलको भी नष्ट करता है। (राजव०)

जातिफलत्वक् (सं० स्त्री०) जातीपत्री, जावित्री।

जातिफलादिचूर्ण—वैद्यकोक्त एक औषध। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—जायफल, विड़ङ्ग, चीतेकी जड़, तगरपादुका (तगरपत्की), तालिशपत्र, लालचन्दन, सोंठ, लवङ्ग, कालाजीरा, कपूर, हड़, आंवला, कालीमिर्च, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इनमेंसे प्रत्येकका २ तोला, सिद्धिचूर्ण ७ पल और सबके बराबर बराबर चीनी एकत्र करके अच्छी तरह घोंटना चाहिये। यह जातिफलादिचूर्ण ग्रहणी, बवासीर, अग्निमान्द्य और प्रतिश्याय (पीनस रोग) आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है।

जातिबाधक (सं० त्रि०) जातेर्बाधकः, ६-तत्। प्राचीन नैयायिकोंके मतसे व्यक्तिका अभेद। जाति देखो।

जातिब्राह्मण (सं० पु०) जात्या जन्मना ब्राह्मणः, ३ तत्। तपः स्वाध्यायादि रहित ब्राह्मण। तपस्या वेदाध्ययन और योनि-इन ब्राह्मणत्वके कारण तपस्या और वेदाध्ययन रहित ब्राह्मण जाति ब्राह्मण कहे जाते हैं।

"तपः श्रुतं च योनिश्च त्रयं ब्राह्मण कारणम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः।" (शब्दार्थ चि०)

जातिभ्रंश (सं० पु०) जातेः भ्रंशः, ६-तत्। जातिध्वंस जातिका नष्ट होना।

जातिभ्रंशकर (सं० क्ली०) जातिभ्रंशं करोति कृ-ट। नव प्रकारके पापोंमेंसे एक पाप जिसके करनेसे जाति नष्ट हो जाती है। भगवान् मनुके मतसे—ब्राह्मणको पीड़ा देना अघ्रेय, लहसुन, शराब आदि पीना मित्रके साथ कुटिलताका व्यवहार करना और पुरुषके साथ मैथुन सेवन करना जातिभ्रंशकर हैं। (मनु ११।६८)

यह पातक ज्ञानकृत होने पर सान्तपन प्रायश्चित और अज्ञानकृत होने पर प्राजापत्य प्रायश्चित करनेसे शुद्धि होती है। प्रायश्चित देखो।

जातिमत् (सं० त्रि०) उच्चपदाभिषिक्त, जिसने ऊंचा पद पाया हो।

जातिमन्त्र—जैनोंके गर्भाधान संस्कारके होममें पढ़ा जानेवाला एक मन्त्र। यह पीठिकामन्त्रके बाद पढ़ा जाता है और इसकी आहुति देनेके उपरान्त निस्तारकमन्त्र पढ़ा जाता है। जातिमन्त्र, यथा—

"ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥१॥ ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥ ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥ ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये ॥५॥ ॐ अनुपजन्मनः शरणं प्रपद्ये

॥ ६ ॥ ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति स्वाहा ॥८॥

जातिमह (सं० पु०) जन्मोत्सव,

जातिमात्र (सं० क्ली०) जातिरेव, एवार्थ जाति-मात्रच् स्वाध्यायादि हीन, जन्ममात्र।

जाति वचन (सं पु० जातिज्ञान।

जातिवैर (सं० क्ली०) ६-तत् जात्यास्वभावतो वैरं स्वाभाविक शत्रुता, सहज-वैर। महाभारतमें जातिवैर पांच प्रकारका माना गया है—१ स्त्रीकृत, २ वास्तुज, ३ वाग्ज ४ सापत्न और ५ अपराधज।

जातिव्यूहविधान (सं० क्ली०) जातिव्यूहस्य जातिसमूहस्य विधानं, ६-तत्। विभिन्न जातिके मनुष्योंके परस्पर व्यवहार विषयक नियम।

जातिशक्तिवाद (सं० पु०) शब्दका जातिशक्तिसमर्थक विषय। शक्तिवाद देखो।

जातिशब्द (सं० पु०) जातिवाचकः शब्द मध्यपदलो०। प्रकार विषयक, विशेषविषयक, जातिवाचक शब्द जैसे हंस, मृग आदि।

जातिशस्य (सं० क्ली०) जातेः शस्यं, ६-तत्। सुगन्धगन्ध द्रव्यविशेष, जायफल।

जातिसङ्कर (सं० पु०) जात्योः विरुद्धयो परस्पर विरुद्धयः परस्पराभाव समानाधिकरण योः सङ्करः, ६-तत्। वर्णसङ्कर, विभिन्न जातीय माता पितासे उत्पन्न, दोगला। संकर देखो।

जातिसम्पन्न (सं० वि०) सद्वंशजात, उच्चवंशका, अच्छे कुलका।

जातिसार (सं० क्ली०) जातेः सारं ६ तत् वा जात्या स्वभावतो सारोऽत्र। जातीफल, जायफल।

जातिसूत (सं०) जायफल।

जातिस्फोट (सं० पु०) वैयाकरणके मतसे प्रसिद्ध आठ प्रकारके स्फोटोंमेंसे एक। स्फोट देखो।

जातिस्मर (सं० पु०) जातिःस्मर्य्यतेऽत्र स्नानादिना स्मृ आधारे, वाहुलकात् अप्। १ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य पूर्व जन्मका वृत्तान्त स्मरण कर सकता है।

"ततो देवह्रदेऽरण्ये कृष्णवेण्वाजलोद्भवे।
जातिस्मरह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरोनरः॥" (भा० ३।८५।४०)

जातिं पूर्व्वजन्मवृत्तान्तं स्मरति, स्मृ-अच्। (त्रि०) २ पूर्वजन्मवृत्तान्तस्मारक, जो पूर्व जन्मकी बात याद करता हो। सर्वदा वेदाभ्यास, शौच, तपस्या और अहिंसा द्वारा पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण होता है।

"वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च।
अद्रोहेण च भूतानां जातिंस्मरति पौर्विकीम्॥" (मनु ४।१४८)

जातिस्मरण (सं० क्ली०) पूर्वजन्मका स्मरण होना।

जातिस्मरता (सं० स्त्री०) जातिस्मरस्य भावः तल्-स्त्रियाँ टाप्। पूर्वजन्मका स्मरण।

जातिस्मरत्व (सं० क्ली०) जातिस्मरस्य भावः भावे त्व। पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण।

जातिस्मरह्रद (सं० पु०) जातिस्मरो नाम ह्रदः। तीर्थ विशेष, एक तीर्थका नाम। जातिस्मर देखो।

जातिस्वभाव (सं० पु०) एक प्रकारका अलङ्कार। इसमें आकृति और गुणाका वर्णन किया जाता है।

जातिहीन (सं० वि०) जात्या हीनः ६-तत्। जाति-रहित, नीच जाति।

जाती (सं० स्त्री०) जन-क्तिच् ततो ङीप्। १ जातीपुष्प, चमेली। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—सुरभिगन्धा, सुमनस्, सुरप्रिया, चेतकी, सुकुमारा, सन्ध्यापुष्पी, मनोहरा, राजपुत्री, मनोज्ञा, मालती, तैलभाविनी और हृद्यगन्धा। यह पुष्प सब पुष्पोंसे श्रेष्ठ होता है। (उद्भट)

मल्लिका, मालती आदि बहुतसे फूलोंके पेड़ इसके समजातीय हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ जातीपुष्प ही है। इसका पेड़ गुल्मकी आकृतिका तथा भारतवर्षमें सर्वत्र ही देखनेमें आता है। हिमालयके उत्तरपश्चिमसीमामें दो हजारसे ले कर पांच हजार फुट तक ऊंचाई पर यह पौधा (जङ्गलकी अवस्थामें) उपजता है। ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें इस पौधे पर सफेद रंगके बड़े बड़े, अति सुगन्धि युक्त मनोहर फूल लगते हैं। सूख जाने पर भी इनकी सुगन्धि नहीं जाती, इसलिए लोग उन फूलोंको गन्धद्रव्य बनानेके लिए रख लेते हैं। जाती पुष्पसे एक प्रकारका बहुत बढ़िया अतर बनता है।

ताजे फूलोंके साथ तिल बखेर देनेसे, फूलोंकी सुगन्धि उन तिलोंमें आ जाती है। प्रतिदिन नये नये फलों द्वारा तिलोंको सुगन्धित करनेसे, उनमेंसे अच्छा चमेलीका तैल निकलता है।

युरोपका स्पानिस जैसमिन (Spanis Jasmine) नामक पुष्प इस जातीपुष्पके समान है; जो फ्रांसमें अधिकतर पैदा होता है। वहां एक परत सूअर वा गायकी चरबीके ऊपर लगातार नये नये फूल बखेर कर वह चरबी सुगन्धित की जाती है। इस चरबीके साथ थोड़ी बहुत स्पिरिट मिला कर कुछ दिन रख देनेसे सुगन्धित एसेंटम् बन जाता है। चरबीके बदले एक साफ कपड़े पर तेल पोत कर उसमें फूल बांध देनेसे भी तेल सुगन्धित हो जाता है। कुछ दिन ऐसा करके पीछे निचोड़ लेनेसे चमेलीका तेल बन जाता है। मनोहर सुगन्धिके कारण यह फूल युरोप और भारतवर्षमें सर्वत्र ही आदरणीय है।

वैद्यक मतसे—यह शीतल है। इसकी पत्तियोंका रस पीनेसे सब तरहका चर्मरोग, मुखक्षत, कर्णस्राव आदि जाता रहता है। महम्मदीय हकीमोंके मतसे जातीवृक्ष हलका, दस्तावर, कृमिनाशक, मूत्रकारक और रजोनिःसारक है। किसीका कहना है कि, इसके फूलका प्रलेप कामोद्दीपक है। युक्त प्रदेशमें इसके फल तथा तेल चर्मरोग, मस्तकवेदना और दृष्टिशक्तिके दौर्बल्यमें और पत्ते दन्तशूलमें दिये जाते हैं।

इसकी पत्तियोंको चबानेसे मुखकी श्लैष्मिक झिल्लीके क्षत आरोग्य हो जाते हैं। पत्तियोंको घीमें भिगो कर लगानेसे भी उक्तरोग अच्छा हो जाता है। सुस्थ शरीर पर इसका तेल लगानेसे चमड़ी कोमल और निरापद् हो जाती है। इसकी कली नेत्ररोग, व्रण, विस्फोटक और कुष्ठको नष्ट करनेवाली है। (राजनि०)

२ आमलकी, आंवला। ३ मालती। ४ जायफल। (हिं० पु०) ५ हाथी।

जाती (अ० वि०) १ व्यक्तिगत। २ निजका, अपना।

जातीकोश (सं० पु०) जातिफल, जायफल।

जातीपत्री (सं० स्त्री०) जावित्री, जायत्री।

जातीपूग (सं० पु०) जातिफल, जायफल।

जातीफल (सं० क्ली०) जात्याख्यं फलं। जातिफल, जायफल।

जातीफलतैल (सं० क्ली०) जातीफलस्य तैलं, ६-तत्। जातिफलस्नेह जायफलका तेल। इसका गुण—उत्तेजक, अग्निकारक, जीर्णातीसार, आध्मान, आक्षेप, शूल और आमवातनाशक, बल्य, दन्तवेष्ट, और व्रणरोगनाशक है।

जातीफला (सं० स्त्री०) आमलकी वृक्ष, आँवालाका पेड़।

जातीफलादीवटी (सं० स्त्री०) अजीर्ण वटी, एक प्रकारकी दवा जिसके खानेसे अजीर्ण रोग जाता है। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—जातीफल, लवङ्ग, पिप्पली, निर्गुण्डी, धुस्तूरबीज (धतुराका बीज), हिङ्गुल और हिङ्गुल चार इन सबोंको बराबर बराबर लेकर जम्बीर नीबूके रससे गोली बनानी पड़ती है। २ या ३ रत्ती परिमाणकी गोली प्रति दिन सेवन करनेसे अजीर्ण रोग जाता रहता है।

जातीय (सं० त्रि०) जाति भव-छ। १ जातिभव, जाति सम्बन्धीय, जातीयका, जातिवाला। २ तद्धित प्रत्यय विशेष तद्धितका एक प्रत्यय।

जातीयक (सं० त्रि०) जातीय स्वार्थे-कन्। जातीय, जाति वाला।

जातीयता (सं० स्त्री०) जातित्व, जातिका भाव।

जातीरस (सं० पु०) जात्या रस इव रसो यस्य। बोल नामक गन्ध द्रव्य।

जातु (अव्यय) जन्-क्तुन् पृषोदरात् साधुः। १ कदाचित्। २ सम्भाविनार्थ। ३ निन्दार्थ।

जातुक (सं० क्ली०) जातु गर्हितं निन्दितं कं जलं यस्मात्। हिङ्गु, हिंग।

जातुकपर्णिका (सं० स्त्री०) शाक जातीय वृक्ष भेद, शाक जातिके एक वृक्षका नाम।

जातुकपर्णी (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

जातुज (सं० पु०) जातु-जन्-ड। गर्भिणीका अभिलाष, गर्भवती स्त्रीकी इच्छा।

जातुधान (सं० पु०) धीयते सन्निधीयते इति धानं सन्निधानमस्य जातुगर्हितं धानमपि धानमस्य वा। राक्षस, निशाचर, असुर।

जातुष (सं० त्रि०) जतुनो विकार इति अण्, षुक् च। जतु निर्मित, लाखका बना हुआ।

जातू (सं० क्ली०) जानु तुदति छिनत्ति तुद-क्विप् पूर्व पद दीर्घः। वज्र।

जातूकर्ण (सं० पु०) ऋषिभेद, उपस्मृति बनानेवालोंमेंसे एक ऋषिका नाम। हरिवंशके अनुसार इनका जन्म अट्ठाइसवें द्वापरमें हुआ था।

जातूकर्णी (सं० पु०) महाकवि भवभूतिके पिताका नाम।

जातूकर्ण्य (सं० पु० स्त्री०) जातूकर्णस्य अपत्यं पुमान् अपत्ये यञ्। जातूकर्णके अपत्य, जातूकर्ण ऋषिके वंशज।

जातूभर्मा (सं० त्रि०) जातूरूपं भर्म आयुधं यस्य बहुव्री०। १ अशनि रूप अस्त्र, वज्रका बना हुआ हथियार। २ जात प्रजाका भर्त्ता, सृष्टिके पालन करनेवाला।

जातूष्ठिर (सं० त्रि०) जातु कदाचित् स्थिरः सस्य यत्वं दीर्घश्च। सर्वदा अस्थिर, चंचल।

जातेष्टि (सं० त्रि०) जाते पुत्रजनने इष्टिः, ६-तत्। वह तयाग जो पुत्रके उत्पन्न होने पर किया जाता है, जातकर्म। जातकर्म देखो।

जातेष्टिन्याय (सं० पु०) जैमिनि प्रदर्शित पित्रकृत यज्ञ द्वारा पुत्रगत फलसूचक नैमित्तिक रूप न्याय। न्याय देखो

जातोक्ष (सं० पु०) जातः प्राप्तदम्यावस्थः उक्षा टच् समा०। अचतुरेत्यादि पा। ५।४।७७। इति निपातनात् साधुः। युवा वृष, वह बैल जो छोटी अवस्थामें बधिया कर दिया गया हो।

जात्य (सं० त्रि०) जातौ भवः इति यत्। १ कुलीन, उत्तम कुलमें उत्पन्न। २ श्रेष्ठ। ३ सुन्दर, जो देखनेमें बहुत अच्छा हो। ४ कान्त। ५ त्रिकोण, जिसमें तीन कोने हों।

जात्यत्रिभुज (सं० पु०) वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक कोण समकोण हो। (Right-angled Triangle.)

जात्यन्ध (सं० त्रि०) जात्याजन्मन्येवान्धः। जन्मान्ध, जन्मका अन्धा।

जात्यासन (सं० क्ली०) जात्यं जातिस्मारकं आसनं। योगाङ्ग आसनविशेष, तांत्रिकोंका एक आसन। जिसमें हाथ और पैर जमीन पर रख कर गमनागमन किया जाता है, उसीको जात्यासन कहते हैं। इस जात्यासनके सिद्ध हो जानेसे पूर्व जन्मकी सब बातें स्मरण हो आती हैं।

जात्युत्तर (सं० क्ली०) जात्या व्याप्तिविधुरसाधर्म्यवैधर्म्यादिना उत्तरं। न्यायकथित असदुत्तरविशेष, न्यायमें वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर न हो। यह अठारह प्रकारका माना गया है। जाति देखो।

जात्युत्पल (सं० क्ली०) श्वेतरक्तकमल, सफेद रंग लिये लालकमल।

जादर—बम्बई प्रेसीडेन्सीके अन्तर्गत बेलगाँव जिलेकी एक जाति। ये लोग पाठशाली सोमेहार, कुरिनवार और हेलकर इन चार शाखाओंमें विभक्त हैं। इन शाखाओंमें परस्पर विवाह आदि सम्बन्ध नहीं होते और न ये गुरुके समक्ष वा मठके सिवा अन्यत्र कहीं एकत्र भोजन आदि ही करते हैं। ये लोग साफ-सुथरे, परिश्रमी, सरल, न्यायपरायण, मितव्ययी, शान्तप्रकृतिके तथा आतिथेय होते हैं। कपड़ा बुनना ही इनका प्रधान कार्य वा उपजीविका है; इसके सिवा ये लोग कपड़ाका रोजगार और गाय, भैंस, घोड़ों आदिके चरानेका काम भी करते हैं। इन लोगोंको स्त्रियां वयन-कार्यमें विशेष सहायता पहुंचाती हैं; इसलिए बहुतसे लोग गृहकार्यके सुभीताके लिए एकसे अधिक व्याह भी कर लेते हैं। लड़कियोंके विवाहके लिए इनमें कोई निर्दिष्ट समय नहीं है। बहुतोंका यौवन अवस्थामें भी विवाह होता है। वरको कभी कभी रुपये दे कर विवाह करना पड़ता है। इनमें विधवाओंका भी विवाह होता है। विधवाके विवाहके समय कन्याका पिता पहली बारमें दूने रुपये लेता है। विधवाके पहली बारके बाल-बच्चे अपने चचा-ताऊ आदिकी देख रेखमें रहते हैं। इनकी बोल चालकी भाषा कनाड़ी है।

ये हिन्दूधर्मको मानते हैं; जिनमें कुछ शैव हैं और बाकीके सब वैष्णव हैं। शैवगण मृतदेहको गाड़ देते हैं। किन्तु वैष्णव लोग उसे जलाते हैं। जादरोंके पुरोहित जङ्गम हैं। जंगम देखो। किसी जादरोंके मरने पर जङ्गम पुरोहित आ कर उसके मस्तक पर पैर रखता है। इसके बाद पुरोहितके पैरका धोवन उसके मुंहमें डाला जाता है। पीछे उस मुर्देको एक लकड़ीके सन्दूकमें रखते और बाजा बजाते हुए उसे गाड़ आते हैं। इनमें नई प्रथा है, जो भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं पाई

जाती। ये मुर्देके कपड़े लत्ते उतार लाते हैं और घरमें रख कर उनकी पूजा किया करते हैं। इनमें जो मुख्य व्यक्ति होता है, वह सेठजी कहलाता है। यह व्यक्ति अन्यान्य प्रौढ़ व्यक्तियोंके साथ मिल कर सामाजिक विषयोंकी मीमांसा करता है।

जादरगण, क्या शैव और क्या वैष्णव,सभी लोग बादामीके वाणशङ्कर ग्रामको वाणशङ्करी देवीकी पूजा करते हैं। उक्त देवीके मन्दिरके पास दो तालाब हैं। हर साल वहां एक मेला होता है। जादरोंको किसी प्रकारका रोग होने पर वे उक्त देवीके नाम पर कुछ चढ़ाना कबूल करते हैं और पीछे रोगसे छुटकारा पाने पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं। इस समय प्रत्येकको केलेके स्तम्भ पर चढ़ कर तालाबके पार उतरना पड़ता है। जङ्गम लोग इस देवीके पुरोहित हैं।

हालांकि, विलायत और बम्बईको प्रतिद्वंद्विताने जादरोंके रोजगारमें बहुत कुछ धक्का पहुंचा है, किन्तु तो भी ये लोग अन्न-वस्त्रसे दुखी नहीं हैं; वरन् बहुतसे लोग कुछ सञ्चय भी कर लेते हैं।

जादुकात—आसामकी एक नदी। यह खासी पर्वतसे निकली है। वहां इसका नाम किनचियङ्ग वा पनातीर्थ है। पश्चिम और दक्षिणमें बहती हुई जादुकात सिलहटके मैदानमें पहुंची है। वहां यह दो भागोंमें बंट जाती है। यह दोनों शाखाएं काङ्गसमें गिरी हैं। खासी पहाड़ियोंकी पैदावर इसी नदीकी राह बाहर पहुंचती है। वर्षा ऋतुमें यह बहुत बढ़ती है। जादुकातकी पूरी लम्बाई १२० मील है।

जादू (फा० पु०) १ अलौकिक और अमानवी कृत्य, इन्द्रजाल, तिलस्म। पूर्व समयको संसारको प्रायः सभी जातियां जादू पर विश्वास करती थीं। उन दिनों रोगोंकी चिकित्सा तथा दूसरी दूसरी कामनाओंकी सिद्धिमें अच्छे जादूगरोंकी ही सम्मति ली जाती थी। आजकल जादू परसे लोगोंका विश्वास बहुत कुछ उठता जा रहा है। २ एक प्रकारका खेल। यह दर्शकोंकी दृष्टि और बुद्धिको धोखा दे कर किया जाता है। ३ टोना, टोटका। ४ वह शक्ति जो दूसरेको मोहित कर लेती है, मोहिनी।

जादूगर (फा० पु०) जादू करनेवाला मनुष्य।

जादूगरी (फा० स्त्री०) जादूगरका काम।

जादूनजर (फा० पु०) वह जो दृष्टिमात्रसे मोहित कर लेता हो।

जान (हिं० स्त्री०) १ ज्ञान, जनकारी। २ अनुमान, समझ, ख्याल।

जान (फा० स्त्री०) १ प्राण, जीव। २ बल, शक्ति, ताकत। ३ तत्त्व, सार, सबसे उत्तम अंश। ४ वह वस्तु जो शोभा बढ़ाती हो।

जानक (सं० त्रि०) जनकस्य पितुः तन्नामनृपस्येदं जनक अण्। पितृसम्बन्धी, पिता सम्बन्धी।

जानकार (हिं० वि०) १ अभिज्ञ, जाननेवाला। २ विज्ञ, चतुर।

जानकारी (हिं० स्त्री०) १ अभिज्ञता, परिचय, वाकफियत। २ निपुणता, विज्ञता।

जानकि (सं० पु०) जनकस्य अपत्यं जनक इञ्। भारत प्रसिद्ध नृपभेद, एक प्रसिद्ध राजाका नाम।

जानकी (सं० स्त्री०) जनकस्य अपत्यं स्त्री, जनक-अण्, स्त्रियां ङीप्। सीता, जनककी लड़की, रामचन्द्रकी स्त्री।

जानकीकोट (गढ़)—सहारनपुर जिलेका एक प्राचीन गढ़ वा कोट। यह बेतिया, केसरिया और बेसर अर्थात् वैशालीसे नेपाल जानेके प्राचीन मार्गके पश्चिमकी तरफ पड़ता है। तराईको एक उपनदी इसके उत्तर और पूर्व पाददेशसे प्रवाहित है। फिलहाल यह गढ़ टूट गया है, सिर्फ कुछ टूटे मन्दिर और दुर्गप्राकार-के चिह्न दीख पड़ते हैं।

जानकीचरण—हिन्दीके एक कवि। इनका उपनाम 'प्रिया सखी' था। इन्होंने श्रीरामरत्नमञ्जरी, युगलमञ्जरी और भगवानमृतकादम्बिनी ये तीन ग्रन्थ रचे हैं। इन ग्रन्थोंमें श्रीरामचन्द्रका रसात्मक वर्णन है। सम्भवतः १८४३ ई०में विद्यमान थे। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

"नाना विधि लीला ललित गावत मधुरे रंग।
नृत्य करत सखि सुन्दरी बाजत ताल मृदंग॥
चन्दन चरचे अंग सब कुंकुम अतर कपूर।
रचि सुमननकी माल बहु पहिराईं भरपूर॥"

जानकी·जानि (सं० पु०) वह जिसकी स्त्री जानकी हैं, रामचन्द्र ।

जानकी जीवन (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र ।

जानकीतीर्थ—अयोध्या नगरके सन्निकट सरयू नदीका एक घाट। यह धर्महरिके ईशान कोणमें पड़ता है और भारतीयोंका एक तीर्थ है। श्रावण मासके शुक्ल पक्षमें वहां स्नान, दान, पूजा और ब्राह्मण भोजन आदि करानेसे अक्षय पुण्यसञ्चय होता है।

जानकीदास—अखण्डबोध नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जानकीदास कायस्थ—हिन्दीके एक कवि। ये लगभग १८१२ ई०में दतिया·नरेश महाराज परीक्षितके यहां रहते थे। इन्होंने नामबत्तीसी नामक एक पुस्तक तथा फुटकर कविताएं लिखी थीं।

जानकीनन्दन कवीन्द्र—वृत्तदर्पण नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। ये रामनन्दनके पुत्र और गोपालके पौत्र थे।

जानकीनाथ (सं० पु०) जानकीके स्वामी, श्रीराम।

जानकीनाथ भट्टाचार्य चूड़ामणि—न्यायसिद्धान्तमञ्जरी नामक न्याय ग्रन्थके रचयिता। ये बंगाली थे।

जानकीप्रसाद कवि—बनारसके एक हिन्दी कवि। इनका जन्म १८१४ ई०में हुआ था। आपने केशवदास·प्रणीत रामचन्द्रिका नामक ग्रन्थकी टीका और हिन्दी भाषामें सूक्ति-रामायण और रामभक्तिप्रकाशिका ये दो ग्रन्थ रचे हैं। इनकी बनाई हुई एक कविता नीचे उद्धृत की जाती है—

"कुंडलित सुण्ड गण्ड झुण्डत मलिन्द वृन्द
बन्दन बिराजै मुण्ड अद्‌भुत गतिको।
बाल ससि भाल तीनि लोचन बिसाल राजै
फनि गन माल सुभ सदन सुमतिको॥
ध्यावत बिना ही श्रम लावत न बार नर
पावत अपार भार मोद धनपतिको।
पापतरु कन्दनको बिघन निकन्दको
आठौ जाम बन्दन करत गनपतिनको।"

२ राय-बरेली जिलेके रहनेवाले एक हिन्दीके प्रसिद्ध कवि। ये पण्डित ठाकुरप्रसाद त्रिपाठीके पुत्र थे। १८८३ ई०में ये जीवित थे। फारसी और संस्कृत, दोनों भाषामें इनकी विलक्षण व्युत्पत्ति थी। इन्होंने उर्दूमें शाहनामा नामक हिन्दुस्तानका एक इतिहास लिखा है। इसके अलावा आपने हिन्दीभाषामें रघुवीरध्यानावली, रामनवरतन, भगवतीविनय, रामनिवास·रामायण, रामानन्दविहार और नीतिविलास, इन कई एक ग्रन्थोंकी रचना की है। इनकी रचना अति विशद और अच्छी है। उदाहरणार्थ एक छन्द उद्धृत करते हैं—

"बीर बली सरदार जहां तहं जीति बिजै नित नूतन छाजै।
दुर्ग कठोर सुठौर जहां तहं भूपति संग सो नाहर गाजै॥
पालै प्रजाहि महीपै जहां तहं सम्पति श्रीपति धामसी राजै।
है चतुरंग चमू असवार पंवार तहां छिति छत्र बिराजै॥"

३ नर्मदा-माहात्म्य और शृङ्गारतिलक नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जानकीमङ्गल (सं० पु०) गोस्वामी तुलसीदासकृत एक ग्रन्थ। इसमें श्रीरामजानकीके विवाहका वर्णन है।

जानकीरमण (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र।

जानकी रसिकशरण—१ रसिकसुबोधिनी नामक भक्तमालकी एक टीकाके रचयिता। ये लगभग १६६२ ई०में विद्यमान थे।

२ हिन्दीके एक उत्कृष्ट कवि। आप लगभग १७०३ ई०में विद्यमान थे। आपने 'अवधसागर' नामक एक बड़ा ग्रन्थ रचा है, जिसमें श्रीरामचन्द्रका यश गाया गया है, उदाहरणार्थ एक कविता उद्धृत की जाती है—

"रथ पर राजत रघुवर राम।
क्रीट मुकुट सिर धनुष बान कर शोभा कोटिन काम।
श्याम गात केसरिया बानो, सिर पर मौर ललाम।
बैजन्ती बनमाल लसै उर, पदिक मध्य अभिराम॥
मुख मयंक सरसीरुहलोचन हैं सबके सुख धाम।
कुटिल अलक अतरनमें भीनी, दुहुं दिसि छुटी श्याम॥
कम्बु कंठ मोतिनकी माला, किंकिनि कटि दुति दाम।
रस माधा यह रूप रसिक वर करहु हिये अभिराम॥"

जानगीर—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेकी पूर्व तहसील। यह अक्षा० २१° २७' तथा २२° ५०' उ० और देशा० ८२° १८' एवं ८३° ४०' पूर्वके मध्य बसा है। क्षेत्रफल २०३८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ४५१०२४ है। सदर जानगीर गांवमें कोई २२५७ आदमी रहते हैं।

इसमें १३३१ गांव है। मालगुजारी प्रायः १ लाख ४२ हजार है। यहां जङ्गल और पहाड़ बहुत है।

जानजी—आसाम प्रान्तके शिवसागर जिलेकी एक नदी। झांजी देखो।

जानजी निम्बलकर—करमोलाके एक महाराष्ट्र शासन-कर्त्ता। इन्होंने निजामके पक्षसे फरासिसियोंके साथ युद्ध किया था। इनके पिताका नाम धारम्भाजी बाबाजी; इन्होंने कर्मोला-नगर स्थापन किया था और वहां एक दुर्ग बनवाना प्रारम्भ किया था, जिसे वे पूरा न कर सके थे। जानजीने उस दुर्गको पूरा बनवा दिया था। वह दुर्ग अभी तक मौजूद है।

जानजी भौंसले—बरारके एक महाराष्ट्र शासनकर्त्ता। इनके पिताका नाम था रघुजी भौंसले, जिनकी 'सेना-साहब-सूबा' उपाधि थी। १७५३ ई०में रघुजी भौंसलेने पिताके सिंहासन पर आरोहण किया। फिर वे पेशवाके जरिये पितृपद पर प्रतिष्ठित होनेके अभिप्रायसे पूना गये। उन्होंने पेशवाको सतारा राज्यके बन्दोबस्तके लिए वार्षिक ८ लाख रुपये देने और महाराष्ट्र-राज्यकी रक्षाके लिए १० हजार अश्वारोहियोंसे सहायता करनेका वचन दिया। इसके बाद पेशवाने जानजीको 'सेना साहब सूबा'की उपाधि दे कर यथारीति अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। इससे पहले १७५१ ई०में जानजीने अलीवर्दी खांके साथ यह सन्धि कर ली थी कि, महाराष्ट्रोंको उड़ियाके राजस्वमेंसे एक निर्दिष्ट अंश मिलेगा। पेशवा बालाजीरावने उक्त सन्धिका अनुमोदन किया था।

१७६३ ई०में जानजीकी प्रतारणासे गोदावरीतीरके युद्धमें निजामको पराजित हो जानेके कारण जानजीके लिए बहुतसा स्थान छोड़ देना पड़ा था। परन्तु १७६६ ई०में निजामने पेशवाके साथ मिल कर उसका ३ अंश पुनः अधिकार कर लिया था।

१७६८ ई०में पेशवा माधवरावने रघुनाथरावको सहायता पहुंचानेके अपराधमें जानजीको दण्ड देनेके अभिप्रायसे यात्रा की। पेशवाके बरारकी तरफ पहुंचने पर जानजी पश्चिमकी तरफसे लूटते लूटते पूनाकी तरफ बढ़ने लगे। पूनामें उपस्थित होने पर अधिवासियोंने जानजीको समस्त अर्थ सम्पत्ति भेज दी। इसके बाद माधवरावने जब निजामकी सहायतासे जानजीको पराजित कर दिया, तब उनको सन्धिकी प्रार्थना करनी पड़ी। सन्धिके अनुसार उन्हें प्रतारणासे प्राप्त समस्त राज्य ही लौटा देना पड़ा। पीछे ये पेशवाकी अधीनतामें पूनाके राज-प्रतिनिधि नियुक्त हुए। १७७२ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

जानदार (फा० वि०) सजीव, जिसमें जान हो।

जानना (हिं० क्रि०) १ ज्ञान प्राप्त करना, अभिज्ञ होना, वाकिफ होना। २ सूचना पाना, अवगत होना, पता पाना। ३ अनुमान करना, सोचना।

जानन्तपि (सं० पु०) अत्यरातके वंशकी उपाधि।

जानन्ति (सं० पु०) ऋग्वेदियोंके तर्पणीय ऋषि।

जानपद (सं० पु०) १ जनपद सम्बन्धी वस्तु। २ देशस्थ, जनपदके निवासी, लोक, मनुष्य। ३ देश। ४ कर, मालगुजारी। ५ मिताक्षराके मतसे लेख्य या दस्तावेजके दो भेदोंमेंसे एक। इसमें प्रजावर्गके परस्पर व्यवहार सम्बन्धीय लेख रहता है। यह दो प्रकारका होता है—एक अपने हाथसे लिखा हुआ और दूसरा अन्य व्यक्तिके हाथका लिखा हुआ।

जानपदिक (सं० वि०) जनपद सम्बन्धी।

जानपदी (सं० स्त्री०) जनपदस्य इयं, जनपद-अण् स्त्रियां ङीप्। १ वृत्ति। २ अप्सराविशेष, एक अप्सराका नाम। देवराज इन्द्र गौतम शरद्वान्‌की कठोर तपस्यासे भयभीत हो गये थे; इसलिए उन्होंने ऋषिका तप भंग करनेके लिये इसी अप्सराको भेजा था। जानपदीको देख शरद्वान्‌ने मोहित हो कर जो शुक्रपात किया उससे कृप और कृपीकी उत्पत्ति हुई। (महाभारत आदि पर्व) कृप देखो।

जानबाज (फा० पु०) बलण्टेर, वालंटियर।

जानमाज (फा० पु०) मुसलमानोंके नमाज पढ़नेका एक पतला कालीन, नमाज पढ़नेका फर्श।

जानराज्य (सं० क्ली०) राजत्व, आधिपत्य, अधिकार।

जानराय (हिं० पु०) अत्यन्त ज्ञानी पुरुष, सुजान।

जानराय साधु—हिन्दीके एक कवि।

जानवर (फा० पु०) १ प्राणी, जीव। २ पशु, जंतु, हैवान। (वि०) ३ मूर्ख, जड़।

जानवादिक (सं० त्रि०) जनवादे भवः जनवादस्य इदं वा, जनवाद-ठक्। जनवाद सम्बन्धीय कथा इत्यादि।

जान विहारीलाल—विज्ञान-विभाकर नामक हिन्दी नाटकके प्रणेता।

जानशीन (फा० पु०) १ वह जो दूसरेकी स्वीकृतिके अनुसार उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो। २ उत्तराधिकारी।

जानश्रुति (सं० पु०) जनश्रुतेः ऋषेरपत्यं इति ढक्। जनश्रुति ऋषिके पुत्र।

जानश्रुतेय (सं० पु०) जनश्रुतेः ऋषेरपत्यं इति ढक्। जनश्रुतिके पुत्र औपवि नामक राजर्षि।

(शत० ब्रा० ५।१।१।५)

जानसथ—१ युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगर जिलेकी दक्षिण-पूर्व तहसील। यह अक्षा० २९° १०' एवं २९° ३६' उ० और देशा० ७७° ३६' तथा ७८° ६' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ४५१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २१६४११ है। इस तहसीलमें ४ नगर और २४४ ग्राम प्रतिष्ठित हैं। मालगुजारी लगभग ३६०१००) और सेस ४७०००) रु० है। पूर्व सीमा पर गङ्गा नदी प्रवाहित है।

२ युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगर जिलेमें जानसथ तहसीलका सदर। यह अक्षा० २९° १९' उ० और देशा० ७७° ५१' पू०में पड़ता है। जनसंख्या प्रायः ६५०७ है। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जानसथ सैयद यहां रहते थे। १७३७ ई०में वजीर कमर उद्दीनकी आज्ञासे रोहीलोंने जानसथ लूटमारा और सैयदोंको मार डाला या निकाल बाहर किया। इनके वंशधर अब भी इसी जिलेमें रहते हैं। १८५६ ई०की २० धाराके अनुसार इस नगरका प्रबन्ध होता है। हालमें सड़कें और मोरियां पक्की करके नगरकी बड़ी उन्नति की गई है।

जानसाहब—इनका प्रकृत नाम मि० जन खृष्टियन (Mr. John Christian) है। इन्होंने हिन्दी भाषामें कई एक ईसाई गीत रचे हैं। तिहुत जिलेमें आजकल भी उनके गीत गाये जाते हैं। वे मुक्तिमुक्तावली नामक छन्दोबन्धमें ईसाकी सुन्दर जीवनी लिख गये हैं।

जाना (हिं० क्रि०) १ प्रस्थान करना, गमन करना। २ अलग होना, दूर होना। ३ अधिकारसे जाना, हानि होना। ४ नष्ट करना, खोना। ५ व्यतीत होना, गुजरना। ६ सत्यानाश होना, बिगड़ना, बरबाद होना। ७ मृत्युको प्राप्त होना, मरना। ८ बहना, जारी होना।

जानायन (सं० पु० स्त्री०) जनस्य तन्नामकर्षेर्गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ्। जन नामक ऋषिके वंशज।

जानार्दन (सं०-पु०) जनार्दनके वंशज।

जानि (सं० स्त्री०) भार्य्या, स्त्री।

जानिब (अ० स्त्री०) ओर, तरफ, दिशा।

जानिबदार (फा० वि०) पक्षपाती, तरफदार।

जानिबदारी (फा० स्त्री०) पक्षपात, तरफदारी।

जानी (फा० वि०) जानसे सम्बन्ध रखनेवाला।

जानु (सं० क्ली०) जायते इति जन-ञुण्। ऊरुसन्धि, जाँघ और पिण्डलीके मध्यका भाग, घुटना। इसके पर्याय-अरुपर्व, अष्ठीवत्, अष्ठीवान् और चक्रिका।

जानू फा० पु०) जाँघ, रान।

जानुकारक (सं० पु०) सूर्यके पार्श्वगामीका नाम।

जानुजङ्घ (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम।

जानुपाणि (सं० क्रि०-वि०) घुटनों और हाथोंके बल, बैयां पैयां।

जानुप्रहृतिक (सं० क्ली०) जानुना प्रहृतं प्रहारस्तेन निर्वृत्तं अक्षद्यूतादित्वात् ठक्। मल्लयुद्धविशेष, वह मल्लयुद्ध जिसमें घुटनोंसे विशेष काम लिया जाता हो।

जानुवाँ (हिं० पु०) हाथोंके अगले और पीछले पैरोंमें होनेवाला एक प्रकारका रोग।

जानुविजानु (सं० क्ली०) खड्गयुद्धका प्रकारभेद, तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक। भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, प्रविद्ध, बहुनिःसृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्य्याद, प्रमाणुष, सङ्कुचित, कुलचित, सव्य, जानु, विजानु, आहित, विकर्ण छिन्न, कुद्रव, लवण, घूत सर्वबाहु, विनिर्बाहु, सव्येतर, उत्तर, त्रिबाहु, उत्तुङ्गबाहु, सव्योत्तर, उदासि, योधिक, पृष्ठप्रथित और प्रथित ये ३२ प्रकारके खड्गयुद्ध हैं।

जानुहित (सं० त्रि०) जनैः हितं परिकल्पितं पृषोदरादित्वात् साधुः। जनपरिकल्पित।

जानू (फा० पु०) जङ्घा, जाँघ।

जान्य (सं० पु०) ऋषिविशेष एक ऋषिका नाम।

जाप (सं० पु०) जप घञ् वा जपे मन्त्रोच्चारणे कर्म्म-ण्यु, पदे अण् । १ एक मन्त्रजपादि मन्त्रकी विधिपूर्वक आवृत्ति । २ मन्त्रजपकर्त्ता, जप करनेवाला । ३ जापानके अधिवासी । जापान देखो ।

१ जापक (सं० त्रि०) जपति जप-ण्वुल् । जपकर्त्ता, जपनेवाला । (त्रि०) २ जपजन्य, जप सम्बन्धी ।

जापन (सं० क्लो०) जप स्वार्थे णिच् भावे ल्युट् । निरसन, निराकरण, परिहार । २ निवर्त्तन । ३ जप ।

जापवो—आसाम प्रान्तका सर्वोच्च पर्वत । यह अक्षा० २५° ३६' उ० और देशा० ८४°४' पू०में कोहिमासे थोड़ी दूर दक्षिणको अवस्थित है। इसकी ऊंचाई ६८८० फुट है

जापान—एसिया महाद्वीपका एक विस्तीर्ण राज्य वा राष्ट्रशक्ति । एसिया महादेशने मानो प्रशान्त महासागरकी ओर दोनों हाथ पसार दिये हैं—एकका नाम है कामसकटका जो उत्तरको तरफ है और दूसरेका नाम है मलका जो दक्षिणको ओर है । इन दोनोंके बीचमें जितने भी द्वीप हैं उन सबको मिला कर जापान-साम्राज्य संगठित हुआ है। यह अक्षा० ५०° ५६' उ० और देशा० १५६° ३२' पू०में अवस्थित है।

"जापान" शब्द चीन देशके एक अद्भुत शब्दका अपभ्रंश रूप है। इसका असली रूप "निफन" है, जिसका अर्थ है उदीयमान सूर्यका देश। यह शब्द एसियाके पूर्वस्थ समुद्रतीरवर्ती स्थानोंका नामस्वरूप व्यवहृत होता है।

जापानी लोग जापानके आदिम अधिवासी नहीं हैं; वे इस जगह कांस्ययुगके अन्तमें वा लौह-युगके प्रारम्भमें आये थे। शब्दतत्त्वविदोंको इस बातके प्रकृष्ट प्रमाण मिल चुके हैं, कि जापानमें सबसे पहले 'ऐनुस' नामक जातिका वास था। किसी किसीका अनुमान है कि वे मङ्गोलीय जातिके थे; किन्तु यूरोपीय विद्वान् उन्हें ककेशीय जातिके बतलाते हैं। वर्त्तमानमें ऐनुस् जातिके १७००० मनुष्य एजो द्वीपमें वास कर रहे हैं। ये जापानियोंकी अपेक्षा मजबूत हैं।

जापानियोंके जातितत्त्व और उत्पत्तिके विषयमें यथेष्ट मतभेद पाया जाता है। यह निश्चित है कि कोरिया और मन्चूरिया जातिके साथ संश्लिष्ट किसी जातिने जिसने धातु-निर्मित अस्त्रादिका व्यवहार करना सीखा था, कोरियाके भीतरसे क्रमशः जापान जय किया था। सम्भवतः इन विजयियोंमें 'ऐनुस' जातिका रक्त और मलय जातिका वैशिष्ट्य विद्यमान है।

जापानमें १८२० ई०के १ अक्टूबरको सबसे पहले मर्दमशुमारी हुई थी, जिसमें नीचे लिखे अनुसार संख्या पाई गई थी—

स्थान	गृहस्थी	पुरुष	स्त्री
जापान	११२२२०५३	२८०४२८८५	२७८१८१३५
(प्रकृत)			
फर्मोसा	६८००००	१८८४१४१	१७६०२५७
काराफूतो	२२०८७	६२२४१	४३५२४
कोरिया	३२८७२८५	८८२३०६०	८३६१११४५

इससे मालूम होता है कि पृथिवीमें जनसंख्याके विषय जापानने ६ठा स्थान अधिकार किया है। जापानसे क्रमशः चीन, भारत, रूसिया, युक्तराष्ट्र और जर्मनीमें अधिक जनसंख्या है। जापानमें १००'४ पुरुष पीछे १०० स्त्रियां है।

जापानका उत्तरांश समतल तो है, परन्तु समुद्रके पासकी जमीन पथरीली हो गई है। यद्यपि जापानमें बड़े बड़े पर्वत नजर नहीं आते, तथापि छोटे मोटे पहाड़ यहां बहुत हैं। खूब छोटे छोटे पहाड़ोंके प्रायः उपरिभाग तक खेती की जाती है और जहां खेती नहीं होती, वह जमीन अनुर्वर समझ कर छोड़ दी जाती है। तोमिया उपसागरसे थोड़ी दूर फुदसी जम्मा नामक एक ऊँचा पर्वतशृङ्ग है। निफनद्वीपके उत्तर अंशमें पहाड़ोंकी लड़ी बंध गई है। जापानमें बहुतसे आग्नेयगिरि हैं। बहुतोंसे आग भी निकला करती है।

जापानके भूभाग पर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि वहां कोई बड़ी नदी नहीं है। परन्तु कुछ जापानी नदियां इतने वेगसे बहती हैं कि उन पर पुल नहीं बन सकते। जैदोगोया नदी सबसे बड़ी है। यह निफन द्वीपके मध्य ब्रायेतिज झीलसे निकली है, जिसकी लम्बाई ८७ मील है। उसमें सब जगह नाव चल सकती है। शौजिनगाभा, उमो और आफ्फागाभा, ये नदियां भी छोटी नहीं हैं।

जापानके दक्षिण भागमें कभी कभी बर्फ गिरती है। परन्तु शीघ्र ही वह गल जाती है। थोड़ा जाड़ा पड़नेसे तापमानयन्त्रका पारा ३५ं डिग्री नीचे उतरता है और गीष्मकालमें ८८ं डिग्री ऊपर चढ़ जाता है। यहां गर्मीकी शिद्दत ज्यादा नहीं रहती; क्योंकि दिनमें दक्षिणी और रातमें पूर्वी हवा चला करती है। जापानकी ऋतु अत्यन्त परिवर्तनशील है। बारहो महीने पानी बरसा करता है। वर्षा ऋतुमें अत्यधिक वर्षा होती है और साथ ही खूब आंधी चलती है।

जापान-साम्राज्यके निकटस्थ समुद्रमें जैसा जलस्तम्भ होता है वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं होता। भूमिकम्प और वज्रपतन तो वहांकी दैनिक-घटना है जापानमें ऐसा कोई भी महीना नहीं जाता, जिसमें भूकम्प न होता हो। भूकम्प अपेक्षाकृत अधिक समय तक ठहरता है और बहुत अनिष्ट करता है। जमीन हिलनेसे आलोकमञ्च तक गिर पड़ता है। इसलिए वैज्ञानिक उपायसे आलोकमञ्च इस प्रकार लगाया जाता है कि सब कुछ हिलने पर भी वह ज्योंका त्यों बना रहता है। जापानियोंको भूकम्पके जोरसे शरीरके सम्हालनेकी तरकीब वाध्य हो कर सीखनी पड़ती है कारण उसमें चोट लगनेका डर रहता है। पहली हिलोरमें ही घरसे बाहर निकल आते हैं। यदि उस समय किसी खास सबबसे ऐसा न कर सकें, तो छोटे छोटे बच्चोंके सिवा नौजवान और बुड्ढे लोग एक एक बालिदा मस्तक पर रख धीरे धीरे पासके शून्य स्थानमें पहुंचते हैं और उसे जमीन पर पटक कर उसके बीचमें बैठ जाते हैं। पहले जापानियोंका विश्वास था कि पृथिवीके नीचे कोई बड़ी तिमि है। उसके हिलते ही जमीन हिलने लगती है और जहां वैसा नहीं होता, वहां देवताओंका विशेष अनुग्रह है।

जापानमें आग्नेयगिरियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण ही जल्दी जल्दी भूकम्प हुआ करता है। मिकुफिन शहरमें पहले कोयलेकी एक खाम थी। कर्मचारियोंकी असावधानीसे एक दिन अचानक उसमें आग लग गई। उस दिनसे बराबर उसमें आग भवका करती है। 'फिमी' नामका पर्वतसे दुर्गन्धमय काला धुआँ निकलता है। 'उनसेम' पहाड़ भी सर्वदा धूआँ छोड़ता रहता है। यह इतनी बदबू फैलाता है कि चिड़िया तक उसके पास नहीं फटकती। वर्षा होनेके समय यह पहाड़ बहुत खतरनाक है। मालूम होता है, मानो सारा पहाड़ आगमें झुलस रहा है। इस पहाड़के पास एक स्नानकुण्ड है। इस उष्ण प्रस्रवणमें नहानेसे उपदंशकी प्राय: सब पीड़ा जाती रहती है।

उस झरनेमें नहानेसे पहले 'ओवामा' प्रस्रवणमें नहाना पड़ता है। स्नान करनेके बाद गरम चीज खा कर गरम कपड़ा ओढ़ सो जाना चाहिए, जिससे पसीना निकलने लगे।

जापानमें आलू, कद्दवा, मूली, तरबूज, तरह तरहकी खाने लायक सब्जी और घास वगैरह बहुत ज्यादा उपजती हैं। सन, ऊन, रूई, शहतूत, ओक, देवदारु आदिकी भी काफी उपज होती है। नीबू, नारङ्गी, अंगूर, दाड़िम, अखरोट, अमरूद, पिच, चेरी आदि सुस्वादु फल भी अधिक पाये जाते हैं। जापानी चायकी खेती अच्छी तरह करते हैं। प्राय: देखा जाता है कि परती जमीन तथा धानके खेतोंके चारों तरफ चायके खेत हैं। जापानियोंके घर पर किसी बन्धुके आते वा जाते समय वे उसे चाय पिलाते हैं।

जापानमें चायकी उपज होने पर भी चीनदेशसे ज्यादा नहीं होती। यहांकी चाय अन्य देशोंमें नहीं जाती। जापानमें शहतूत बहुत ज्यादा उपजता है और उससे तरह तरहके ऊनी कपड़े बनाये जाते हैं। यहां एक प्रकारका वारनिशका वृक्ष पाया जाता है जिससे दूधकी नाईं एक प्रकारका सफेद रस निकलता है। इस रससे वे अनेक तरहके पात्रोंमें पालिश करते हैं। जापानका कोई भी व्यक्ति वारनिशके काम करनेमें लजाता नहीं। दरिद्र वा भिक्षुकसे ले कर अत्यन्त धनी सम्राट् तक वारनिशका काम करते हैं। सम्राट्के प्रासादमें सोने और चांदीके पात्रकी अपेक्षा जापानी वारनिशसे पालिश किये हुये पात्रोंका ही अधिक आदर है। कृषि-कार्यका भी यहां यथेष्ट समादर है। कृषि-कार्यमें उत्साह बढ़ानेके लिये सम्राट्की ओरसे ऐसा आदेश था कि 'जो मनुष्य परती जमीनमें खेती करेगा दो वर्ष तक उस जमीनकी समूची फसल उसी मनुष्यकी होगी और जो मनुष्य

एक वर्ष किसी जमीनमें खेती नहीं करेगा, उस जमीनमें उसका कुछ भी स्वत्व नहीं रहेगा।"

जापानके घोड़े मध्यमाकारके होते हैं, किन्तु वे अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है। जापानके लोग प्रायः आरोहण करनेके लिये ही घोड़े पालते हैं। गाड़ी खींचने वा दलदल भूमिमें खेती करनेके लिये भैंसे और बैल आदिसे काम लेते हैं। जापानी उनका दूध या मांस नहीं खाते। जापानमें हंस, मुरगा, चकवा तथा डाक नामका एक प्रकारका पक्षी पाया जाता है। खरहा, हरिन, भालू, सूअर आदि जङ्गली जन्तु भी यहां अधिक पाये जाते हैं। पहले जापानमें कुत्तेका अत्यन्त आदर होता था। सम्राट्के आदेशानुसार प्रत्येक रास्ते पर बहुतसे कुत्ते रखे जाते थे और हर एक व्यक्तिको कुत्तोंके खानेके लिए आहार रखना पड़ता था। कहा जाता है कि एक जापानी मरे हुए कुत्तेको पहाड़के ऊपर गाड़नेके लिये ले जा रहा था, किन्तु बहुत थक जानेके कारण वह सम्राट्को अभिशाप देने लगा। उसके साथीने कहा—"भाई! चुप रहो, सम्राट्की निन्दा मत करो, वरन ईश्वरको धन्यवाद दो कि सम्राट्ने अश्व-चिह्नित समयमें जन्म नहीं लिया, नहीं तो हम लोगोंको और भी ज्यादा बोझा लादना पड़ता।" पहले जापानी वर्षको बारह चिह्नोंमें चिह्नित करते थे तथा उसके जिस चिह्नित अङ्कमें मनुष्यका जन्म होता था, वह उसीके अनुसार गिना जाता था।

जापानमें दीमक बहुत होती है, जिससे वहांके अधिवासियोंको बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। इनसे छुटकारा पानेके लिये किसी चीजके नीचे और इसके चारों ओर नमक छिड़क दिया जाता है। जापानी दीमकको 'टोतुम' कहते हैं। जापानमें सर्प बहुत कम पाये जाते हैं। कहीं कहीं 'तिताकाज्य' तथा 'फिनाकरो' नामक सर्प देखे जाते हैं। इस जातिके सर्प अत्यन्त भयानक होते हैं और इनके काटनेसे मनुष्य मर ही जाता है, सूर्योदयके समय काटनेसे वह मनुष्य सूर्यास्तके पहलेही मर जाता है। जापानके सैनिक इस सर्पका मांस खाते थे। उन लोगोंका विश्वास था कि इसका मांस खानेसे वे अत्यन्त साहसी और कष्टसहिष्णु हो जायंगे। इसके अलावा जापानमें और एक प्रकारका सांप है जिसे 'जामाका गाटो' या 'दोजा' कहते हैं। बहुतसे जापानी इस सांपको दिखा कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं।

जापानमें तरह तरहकी मछलियां पाई जाती हैं। जापानी लोग मछली खा कर ही जीवन धारण करते हैं। वहां 'इराकित' नामक एक प्रकारकी मछली बहुत विषाक्त होती है। सावधानीसे बिना धोये उस मछलीको खानेसे मृत्यु हो जाती है। यह मछली आत्महत्या करनेके लिए सहज उपाय है। इस मछलीको खा कर बहुतसे जापानी मर भी चुके हैं, तोभी वे इसका खाना नहीं छोड़ते। इस मछलीका मूल्य भी अधिक है। जापान-सागरमें और एक तरहकी आश्चर्यजनक मछली देखी जाती है, जो देखनेमें दश वर्षके लड़केकी नाईं है। इसका मस्तक बड़ा होता है, छाती और मुंह पर किसी तरहका छिलका नहीं होता, पेट बड़ा होता है, जिसमें बहुतसा पानी समाता है। इस मछलीके पैर होते हैं और बालककी तरह उसमें अंगुलियां होती हैं। इस तरहकी मछली जेडो उपसागरमें ही अधिक पाई जाती हैं। 'तेइ' नामकी एक तोमरी जातिकी मछली भी यहां मिलती है जो देखनेमें सफेद मालूम पड़ती है। पहले जापानी इस मछलीको अत्यन्त शुभ समझते थे। 'बक' तथा 'मुकि' नामके कछुएको भी ये शुभ समझते थे। जापानके अधिकांश लोग अपने आहारके लिये मछली पकड़ते और बेचते हैं।

जापानके समुद्रमें मोती पाया जाता है। जापानी उसे कैना-ताम्मा कहते हैं। पहले वे मोतीका व्यवहार तथा मूल्य नहीं जानते थे, पीछे उन्होंने यह चीनोंसे सीखा। मोती निकालनेके लिये उन्हें किसीको राजकर नहीं देना पड़ता। प्रत्येक जापानीको मोती निकालनेका अधिकार है। बड़े बड़े मोतीको जापानी भाषामें 'आकोजा' कहते हैं। पहले जापानी लोग कहते थे कि इस मोतीमें एक विशेष गुण यह है, कि एक जापानी चिकसे पालिश किये हुए बकसमें इसे रखने पर इसके दोनों बगल दो छोटे छोटे मोती हो जाते थे। यह पालिश 'तकारागे' नामक सीपसे बनती है। सामुद्रिक

मूंगा, पत्थर आदि जापानके समुद्रमें पाये जाते हैं। एक प्रकारका बड़ा सीप भी पाया जाता है जिसमें डांड़ी लगाकर चमचा बनाते हैं।

जापानमें सोना, चांदी, तांबा, लोहा और टीन उत्पन्न होती है, किन्तु तांबा ही अधिक परिमाणमें पाया जाता है। सम्राट्की सम्मतिके बिना सोनेकी खान नहीं खोदी जा सकती। जिस प्रदेशमें सोनेकी खान आविष्कृत होती है, उस प्रदेशके शासनकर्त्ता इसका कुछ अंश सम्राट्को देते हैं और शेष अपने दखलमें रखते हैं। बहुत वर्ष व्यतीत हुए, एक पर्वतके गिर जानेसे एक सोनेकी खान निकली है। पहले जापानी अत्यन्त असभ्य थे, कई एक सोनेकी खान खोदते समय वृष्टि हो जानेके कारण उन्होंने इसे ईश्वरका अनभिप्रेत समझ कर खानका खोदना छोड़ दिया था। बिङ्गो प्रदेश की टीन, चांदीसी सफेद होती है। जापानके लोग लोहे को बहुमूल्य समझ कर अस्त्रशस्त्र और बरतन आदि तांबेके बनाते हैं। यहां एक प्रकारकी सुन्दर मट्टी पायी जाती जिसे 'चीना मट्टी' कहते हैं। इस मट्टीसे अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं।

जापानके नगर और ग्रामोंमें बहुत मनुष्योंका वास है। यहांके छोटे छोटे शहरोंमें भी ५०० घर बसते हैं और बड़े शहरमें २००० से अधिक घर हैं। यहांके प्रायः सभी मकान दुमंजले हैं और प्रत्येकमें बहुत मनुष्योंका वास है।

जापान-साम्राज्यका 'किउसिउ' द्वीप अत्यन्त उर्वरा है और वहां कई जगह खेती होती है।

'निफन'का थोड़ा ही भाग अनुर्वर है। यहांका शिल्पकार्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। सिमनसेकि, ओसाका, मियाको, कोयानो और जेडो ये निफनके प्रधान शहर हैं। ओसाका वाणिज्यका प्रधान स्थान है। यहां बहुत-सी नदियां प्रवाहित हैं और प्रत्येक नदीके ऊपर अच्छे अच्छे पुल बंधे हैं। इस शहरकी सड़कें ज्यादा चौड़ी नहीं है, किन्तु हमेशा साफ रहती हैं। यहांके घर भी काठके हैं और उसमें चूने और मिट्टीका लेप है। यहांके लोग अधिक धनी हैं। जापानी ओसाका शहरको प्रमोद-भवन मानते हैं। इस शहरके पास ही एक स्थानमें चावलसे एक प्रकारकी अच्छी शराब बनाई जाती है, जिसका नाम 'शाकि' रक्खा गया है। मियाको शहरमें प्रधान धर्मयाजक रहते हैं, जो साधारणतः 'दैरि' नामसे ख्यात हैं। इस शहरके पश्चिम भागमें पत्थरका बना हुआ एक प्राचीन दुर्ग है। ईदसुसे जापानी एक प्रकारकी शराब तैयार करते जिसे "सय" कहते हैं।

जापानमें तरह तरहके उद्भिद् और फूल देखे जाते हैं; जो देखनेमें अत्यन्त मनोहर हैं। ओसाका शहरमें भिन्न भिन्न प्रकारके फल मिलते हैं। उद्यान और धर्म-मन्दिरके चारों ओर बहुत यत्नसे फूलके पौधे रोपे जाते हैं।

जापानी चरित्रका वैशिष्ट्य—जापानियोंके जोड़की खुशदिल जाति दुनियांमें दूसरी नहीं है। पृथिवीमें सर्वत्र ही ये अपनी हंसीको मुंहमें लिए फिरते हैं। जीवनके छोटे छोटे आघात उनके धैर्यको नष्ट नहीं कर सकते। हां, इतना अवश्य है कि किशोर जब पहले पहल यौवनमें पदार्पण करता है तब उसके हृदयमें सामयिक दुःखका कुछ अधिकार हो जाता है; किन्तु वह अधिक समय तक ठहर नहीं सकता, शीघ्र ही अपना रास्ता पकड़ता है। वे यह समझ कर कि, जीवनकी समस्याओंकी कोई पूर्ति नहीं कर सकता, निश्चिन्तचित्तसे अपना जीवन बिताते हैं।

उच्च विद्याशिक्षा और अपने जीवन निर्वाहके लिए अधिकांश जापानी युवक कायिक परिश्रम द्वारा अर्थ उपार्जन करते हैं। इनका धैर्य असाधारण है—किसी भी कार्यसे ये विरक्त नहीं होते। परन्तु यदि इन्हें हदसे ज्यादा तंग किया जाय, तो ये बहुत खफ़ा हो जाते हैं; फिर इनको शान्त करना कठिन हो जाता है। ये लोग अपने देशके लिए सर्वस्व लुटा सकते हैं—जीवन तक दे सकते हैं। यूरोपके स्टोइक नामक प्राचीन दार्शनिक जिस प्रकार अविचलितचित्तसे सब कष्टोंको सहते थे, जापानी भी उसी प्रकार कष्टोंको सह लेते हैं।

जापानी लोग इस तरह पेश आते हैं कि विदेशी लोग सहज ही उन पर मुग्ध हो जाते हैं। इन लोगोंकी सभ्यताका सर्वप्रधान आदर्श यह है, कि ये अपना दुखड़ा रो कर किसीके हृदय पर भार नहीं लादते।

माता अपनी एकमात्र सन्तानकी मृत्युशय्यासे उठ कर अतिथि विशेषतः विदेशीय अतिथिकी प्रसन्नचित्तसे अभ्यर्थना करती है। इस प्रकार आभ्यन्तरिक भावोंका दमन करना उनके जीवनका दैनिक कार्य है। युवक और युवतियोंका जब सम्मिलन होता है, तब वे किसी प्रकारका भाव प्रगट नहीं करते; इससे लोग समझ लेते हैं कि जापानमें प्रेम नहीं है। परन्तु यह बात सत्य नहीं है; क्योंकि हताश-प्रणयी और प्रणयिनियोंके आत्मघातकी संख्या सब देशोंसे जापानमें ही अधिक है। जापानके पुरुष यद्यपि स्त्री पर सर्वदा विश्वास नहीं करते, तथापि वहांकी स्त्रियां सतीस्वभावा होती हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो जापानकी लड़कियां अन्य देशोंकी लड़कियोंसे बहुत कुछ शान्त होती हैं। स्वार्थत्यागमें जापानकी लड़कियां अतुलनीय हैं; वे लज्जाशील होने पर भी वृथा लज्जाका आडम्बर नहीं करतीं, बुद्धिमती होने पर भी अहंभावको हृदयमें स्थान नहीं देतीं। वे जीवनमें अपने माता, पिता, स्वामी और सन्तानके प्रति समान भावसे कर्तव्य सम्पादन करती हैं।

जापानी-चरित्रमें पांच विशेषताएं पायी जाती हैं। प्रथमतः ये मितव्ययी होते हैं। स्मरणातीत कालसे ही बहुतसे लोग विलासिता किसे कहते हैं नहीं जानते। इस कारण वे थोड़ेमें ही सन्तुष्ट हो कर जीवन बिताते हैं। दूसरा गुण—कष्टसहिष्णुता है। जापानियोंने सबसे पहले 'रिक्सागाड़ी' (जिसे आदमी खींचते हैं) का आविष्कार किया था। ये आकारमें पांच फुटसे कम होने पर भी असाधारण परिश्रम कर सकते हैं। 'रिक्सा' खींचनेवाले घण्टेमें ७-८ मील चल सकते हैं और इस तरह ८ घंटे तक अपना काम बजा सकते हैं। जापानके लोग शीत और ग्रीष्मके प्रभावको, समान धैर्यके साथ किसी प्रकारके उत्तापप्रद वा शैत्यदायक वस्तुकी बिना सहायता लिए, सह लेते हैं। इनके चरित्रका तीसरा गुण है—आज्ञानुवर्तिता। उच्चपदस्थ व्यक्ति जैसा कह देते हैं ये उसीके अनुसार चलते हैं। चौथा गुण यह है कि ये अपने परिवारके लिए निजी स्वार्थको तिलाञ्जलि दे देते हैं। इनमें पांचवां वैशिष्ट्य है कि प्रत्येक पदार्थके विषयमें ये सूक्ष्मसे सूक्ष्म तथ्यको जाननेके लिए भरपूर कोशिश करते हैं और उसमें सफलता पाते हैं। इन गुणोंके रहने पर भी साधारण लोगोंको यह शिकायत रहती है कि जापानी सत्य पर विशेष ध्यान नहीं देते।

जापानका प्राचीन इतिहास—जापानमें इतिहास सम्बन्धी दो प्राचीन जापानी ग्रन्थ पाये जाते हैं। एकका नाम है "कोजिकी" वा प्राचीन कालकी घटनावली और दूसरेका "निहोन शोकी" वा जापानका लिखा हुआ इतिहास। पहले ग्रन्थमें सिर्फ राजाओंकी वंशावली दी गई है—समयके विषयमें कुछ नहीं लिखा। दूसरा ग्रन्थ चीन देशके इतिहासकी भांति लिखा गया है। इन दोनों ग्रन्थोंकी सहायतासे हम जापानका इतिहास जान सकते हैं। पहला ग्रन्थ ७१२ ई०में और दूसरा ७२० ई०में एक ही ग्रन्थकार द्वारा लिखा गया है। प्राचीनतम समय के वृत्तान्तोंके विषयमें इन ग्रन्थोंकी उक्ति निर्भरयोग्य नहीं है। क्योंकि सम्राट्की आज्ञासे लिखे जानेके कारण इनमें राजवंशकी बहुत सी मिथ्या प्रशंसा भी की गई है।

जापानके प्रवादानुसार 'ईजाङ्गि-नो-मिकोतो' और उसकी स्त्री 'ईजानिमि-नो-मकोतो'-ने जापानके द्वीपपुञ्जकी सृष्टि की है। सूर्यलोककी अधिष्ठात्री देवी 'तेनशो दैजिन'के पञ्चम अधस्तन पुरुष 'जिम्मू-तेन्नो'को ही जापान साम्राज्यका प्रतिष्ठाता कहा गया है। वे स्वयं देववंशसम्भूत थे, इसीलिए आज तक उनके वंशधर जापानके सम्राट् देवताओंकी भांति पूज्य माने जाते हैं। जापानमें यूरोपीय सभ्यताका प्रवेश होने पर भी, वहांका प्रत्येक व्यक्ति देवताकी तरह सम्राट्की भक्ति-श्रद्धा करता है। 'जिम्मू-तेन्नो'ने जिस राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी, वह लगातार ढाई हजार वर्षसे राजत्व करता आया है। जगत्के इतिहासमें सचमुच ही यह अनोखी बात है।

सम्राट् जिम्मू तेन्नो 'क्यूसिउ' द्वीपके 'हिउगा' प्रदेशमें रहते थे। कहा जाता है कि वे ईसासे ६६० वर्ष पहले सिंहासन पर बैठे थे। शत्रुओंको जीत कर उन्होंने 'उनेबी' पर्वतके नीचे एक सुबृहत् प्रासाद बनवाया था।

सम्राट् जिम्मूके बाद ५६० वर्ष तकका इतिहास विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है। इस वंशके दशम सम्राट् 'सुजिन तेन्नो'ने ८७से ३० खृष्ट पूर्वाब्द तक राज्य किया था। इन्हीं के समयमें जापानके साथ 'कोरिया' का सम्बन्ध स्थापित हुआ था। कोरियाके अधिवासियों द्वारा जब 'करक राज्यके लोग बहुत तंग होने लगे, तब उन्होंने सूजिनसे सहायता मांगी। इन्होंने ३३ खृष्टीय पूर्वाब्दमें 'करक' अधिकार कर लिया; तबसे यह राज्य जापानके अन्तर्भुक्त हो है। उस समय सम्राट्ने आदिम अधिवासियों को दमन किया था। पीछे ईसाकी २य शताब्दीमें कोरिया सम्राज्ञी 'जिङ्गो'के अधीन जापान द्वारा आक्रान्त हुआ था।

ग्यारहवें सम्राट् 'सुइनिन'ने (२८ खृष्ट पूर्वाब्दसे ७० खृष्टाब्द पर्यन्त) एक भीषण कुप्रथाको उठा कर इतिहासमें अच्छी प्रतिष्ठा पाई है। पहले, सम्राट्की मृत्यु होने पर उनके साथ कुछ जीवित भृत्योंको गाड़ दिया जाता था। इसका उद्देश यह था कि 'परलोकमें भी सम्राट्की वे सेवा करते रहेंगे।' सुइनिनने इस कुसंस्कारके विरुद्ध घोषणा कर दी, कि "मेरे बाद और कोई भी सम्राट् इस प्रकारका नृशंस कार्य न कर सकेगा।"

कोरियाका वृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होता है कि ईसाकी ३री शताब्दीमें प्रायः जापानके साथ उसका विवाद हुआ करता था और उसमें जापानकी ही जय होती थी। जापानके विरुद्ध कोरियाके बहुत बार विद्रोह उपस्थित करने पर भी साधारणतः ६६८ ई० तक जापानने कोरिया पर अपना अधिकार अक्षुण्ण रक्खा था। कोरिया विजय जापानके इतिहासमें एक प्रयोजनीय घटना है; क्योंकि जापान और चीनके संसर्गमें यही कारण है।

जापानमें चीनकी लेखनप्रणाली और साहित्य कोरियाके भीतर हो कर ही आया था। चीनके प्रभावसे जापानकी अधिक उन्नति हुई थी। चीन देशसे जुलाहों और दरजियोंने आ कर जापानियोंको शिल्प-विद्याकी शिक्षा दी थी। कहा जाता है कि सम्राट् 'जुरियाकी'ने (४५७—४७८ ई०) चीनके दक्षिणभागमें दूत भेजा था और वहांसे शिल्पियोंको बुलाया था। जापानकी सम्राज्ञी शिल्पकार्यमें उत्साह बढ़ानेके लिए स्वयं रेशमके कीड़े पालती थीं।

४६६ ई०में 'मिकिडो-जुरयाकू'ने 'सिरागी' पर आक्रमण किया था, किन्तु इसमें वे विशेष कृतकार्य न हो सके। ६६० ई०में चीनके 'टाङ्'-वंशीय सम्राट् 'कायो साङ्'ने जापानके द्वारा रक्षित 'कुदारा' राज्य पर धावा करनेके लिए जलपथसे बहुतसी सेना भेजी थी। जापानियोंने 'कुदारा' राज्यकी सहायताके लिए वहां जा कर चीनकी सेनाको भगा दिया। परन्तु ६६२ ई०में चीनोंने जापानियोंको परास्त कर 'कुदारा' और 'कोमा' जीत लिया। इस समयसे ई०की १६वीं शताब्दी तक नाना कारणोंसे जापानियोंने कोरिया पर हस्तक्षेप नहीं किया।

६५२ ई०में जापानकी शासन-प्रणालीका (चीनदेशके अनुकरणसे) संस्कार हुआ। ७०१ ई०में 'तैहो' नामक आईनकी किताब प्रचारित हुई और उसके सात वर्ष बाद 'नारा' नामक स्थानमें नवीन राजधानी स्थापित हुई। इसी समय जापान की कला और साहित्यने विशेष उन्नति की थी। 'नारा' नगरमें बुद्धदेवकी मूर्ति इसी समय बनी थी। जापानमें इतिहास लिखनेका सूत्रपात भी इसी समय हुआ था। ७८४ ई०में राजधानी नारासे पुनः 'कीयटो' लाई गई। राजधानीके इस परिवर्तनके बादसे ही जापान-साम्राज्यकी अवनति होने लगी।

प्रथम युगमें जापानकी सभ्यताने चीनसे बहुत कुछ ऋण लिया था। जापानमें बौद्धधर्म, चित्रविद्या, स्थापत्यविद्या आदिका प्रचार चीनसे ही हुआ था। चीनके दर्शनशास्त्रोंका अध्ययन करते रहनेसे जापानियोंके चरित्रमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। 'कनफुची' नामक चीनदेशीय धर्मप्रवर्तकके धर्ममें जो पाँच वैशिष्ट्य हैं, उनको जापानियोंने अपने चरित्रमें प्राप्त कर लिया था। वे वैशिष्ट्य ये हैं—(१) राजभक्ति, (२) पितृभक्ति, (३) संयम, (४) भ्रातृभाव और (५) विश्वमैत्री। इस विषयमें जापानके सुप्रसिद्ध अध्यापक Inouye Testsu Jiroका कहना है कि "चीनके महर्षिकी शिक्षा जापानमें इतनी अधिक विस्तृत और बद्धमूल है कि उसे जापानी सभ्यताका आदि कहा जा सकता है। इसके सिवा हमें यह भी न भूलना चाहिये कि

जापानियोंने अति पूर्वकालसे ही कनफ्यूसियनको अपना लिया था।" जापानियोंने आचार अनुष्ठानमें भी चीनका अनुकरण किया है। चीनकी तरह जापानमें भी मनुष्योंको भद्र, कृषक, वणिक् और शिल्पी इन चार श्रेणियोंमें विभक्त किया जाता था। किन्तु जापानमें भद्र श्रेणीके विद्वानोंकी अपेक्षा सैनिकोंका अधिक सम्मान होता था। आमोद-प्रमोदमें भी जापानने चीनके थियेटर, नाच और खेलोंका अनुकरण किया था।

जापानमें जब सामन्ततन्त्रशासन प्रचलित हुआ था, उस समय 'एनूवा डिमिसि' नामक आदिम जाति सम्पूर्ण रूपसे पराजय स्वीकार कर भारतियोंके आचार्योंकी तरह जङ्गलोंमें भाग गई थी।

८६६ ई०से लगा कर वर्त्तमान कालके कुछ पहले तक 'कुगि' नामक क्षत्रिय श्रेणीके लोगोंने चीनके प्रभावमें प्रभावान्वित हो 'मिकिडो'के प्रभावको आच्छादित कर रक्खा था। ८६६ ई०से ११५८ ई० तक फुजिवाओंने तथा ११५८ से ११८५ ई० तक 'इतरा' वंशीयोंने सम्राट्का आसन अधिकार कर रक्खा था। किन्तु शासन-केन्द्र 'कैयोतो' नामक स्थानमें ही था। सामन्ततन्त्र ई०की १२वीं शताब्दीके अन्त तक स्थापित नहीं हुआ था।

'कयोतो'के शासनकर्त्ताओंने क्षुद्र दृष्टिसम्पन्न होनेके कारण जमींदारों और क्षत्रियश्रेणीके लोगों पर विशेष शासन न किया था। राजकीय प्रतिनिधिगण शासनका कार्य स्वयं न कर अन्य लोगोंसे कराते थे इसलिए प्रादेशिक जमींदारगण नामसे नहीं तो कार्यतः स्वाधीन अवश्य हो गये थे। कुछ जमींदार वंश विवाह, क्रय वा दान सूत्रसे बहुतसे देशोंमें अधिकार कर अत्यन्त क्षमताशील हो गये थे। जापानके सम्राटोंने फरासियोंकी तरह एक दलसे दूसरे दलको भिड़ा कर खुद क्षमताशील होना चाहा था; किन्तु उनका उद्देश्य सफल नहीं हुआ। 'तैराओं'ने एकबार 'मिनामोतो'को पराजित कर साम्राज्य प्राप्त किया था। पीछे दोनों वंशोंमें भीषण द्वन्द्व चलता रहा। आखिर ११८५ ई०में 'योरितोमो'की अधीनतामें 'मिनामोतो'की जय हुई। 'योरितोमो'ने सबसे पहले "सोगुन" वा 'योद्धा' और शासनकर्त्ताकी उपाधि ग्रहण की और 'कामाकुरा'में राष्ट्रीय केन्द्र स्थापित किया। जिस तरह फ्रान्सके मेरोभिञ्जिन नरपतियोंके अन्तिम भागमें Mayors of the Palace उपाधिधारी राजकर्मचारी राजाको कठपुतली समझ कर स्वयं हर्त्ताकर्त्ता बन गये थे, उसी तरह जापानके "सोगुनों"-ने भी मध्ययुगमें कर्तृत्व किया था।

जापानके इतिहाससे मालूम होता है कि 'सोगुन' पदकी प्रतिष्ठा सिर्फ एक ऐतिहासिक दैव घटनासे नहीं हुई; बल्कि बहुत समयसे पुञ्जीभूत घटनाराशिके फलसे उक्त पदकी प्रतिष्ठा हुई थी। 'फुजिवारा' के समयसे ही जापानमें सामन्ततन्त्रका आभास पाया गया था; इतने दिन बाद उसका पूर्ण विकाश हुआ। 'योरितोमो'-ने अपने सामन्तोंकी विश्वस्त अनुवर्तिताके कारण ही राष्ट्रीय क्षमता प्राप्त की थी। सम्राट् और उनके कर्मचारियोंकी क्षमता इस युगमें बिलकुल लुप्त हो गई थी। यूरोपमें भी इस समय सामन्ततन्त्र प्रचलित था। मध्यके कुछ वर्षोंके सिवा आधुनिक काल पर्यन्त जापानमें सर्वदा ही 'सोगुन' द्वारा शासन होता रहा है। यूरोप जैसे सामन्ततन्त्रके प्रभावसे Chivalry वा वीरत्वव्यञ्जक भद्रताकी उत्पत्ति हुई थी, जापानमें भी उसी तरह 'बुसिदो' प्रथाका प्रचार हुआ था।

'योरितोमो'के बाद उनके वंशमें और भी दो व्यक्ति 'सोगुन' हुए थे। उसके बाद राजशक्ति 'होजो' परिवारके हाथमें चली गई। 'होजो' लोग सम्भ्रान्त परिवारके न थे। इसलिये बहुतसे लोग उनको 'सोगुन' माननेके लिए तैयार न थे। आखिर उन्होंने एक युद्धमें सम्राट्की सेना तकको विध्वस्त कर अपनी क्षमताको दृढ़ बना लिया। इन्होंने 'सिक्केन' उपाधि ग्रहण की थी।

इन लोगोंके शासनकालमें सर्वप्रधान घटना जापान पर मङ्गोलियोंका आक्रमण है। यूरोपविध्वस्ता सुविख्यात चङ्गेजखांके पौत्र मान्दखांनने अपने भाई खुबलाईखांको चीन अधिकार करनेको भेजा था। खुबलाईखांने चीनका अधिकांश भाग तथा कोरिया अपने अधिकारमें कर लिया। भाईकी मृत्युके बाद उन्होंने 'पिकिङ्' नगरमें राजधानी स्थापित की और अधीनता स्वीकार करानेके लिए जापानमें दूत

भेजा। 'मिकेन'के परामर्शसे दूत भगा दिया गया। फिर क्या था, खुबलाईखाँ ३० हजार सेनाके साथ जहाजमें चढ़ कर जापान पहुंच गये। किन्तु होजोटोकि मुनि'ने अपने पराक्रमसे उस सेनाको जमीन पर उतरने नहीं दिया। आखिर उन्हें लौटना पड़ा। लौटते समय आँधी चली, जिससे एक जहाज डूब गया। इस घटनाके बाद ही जापानने शत्रुके आक्रमणसे बचनेके लिए 'हाकता' बन्दर पर कड़ा पहरा लगा दिया। १२८१ ई०में खुबलाईखाँने पुनः जंगी जहाज भेजे, जिसमें एक लाख सेना थी। किन्तु 'होजोटोकिमुनि'ने कौशलसे उन्हें भगा दिया। इसके बाद फिर किसी भी विदेशीने जापान पर आक्रमण नहीं किया। इस युद्धके कारण, जापानका विवरण सबसे पहले पाश्चात्य जगत्को मालूम हुआ था।

१३३३ ई०में सम्राट् 'गो-दैगोतेनो' होजोंके कवलसे अपनी रक्षा कर राष्ट्रीय क्षमताके यथार्थ अधिकारी हुए और 'सोगुन'का पद हमेशाके लिए उठा दिया। किन्तु इसके बाद सम्राट् सिर्फ छः वर्ष ही राज्य कर पाये थे।

ई०की १६वीं शताब्दीके अन्त और १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जापानियोंने पोर्तुगाल, स्पेन, इङ्गलैण्ड और लण्डन आदिके वाणिज्य-जहाजोंको सादर अपने देशमें आने दिया था। इस समय विदेशियोंने जापानको शोषण करनेकी यथेष्ट चेष्टा की थी; तथा जेसुइट नामक रोमन कैथलिक-सम्प्रदायके ईसाई पादरियोंने पोर्तगाल और स्पेनके वणिकोंके साथ जापान पहुंच कर वहां ईसाई धर्मका प्रचार किया था। फलतः जापानमें प्रायः सभी श्रेणीके लोग, जिनकी संख्या १० लाखसे कम न होगी, ईसाई हो गये थे। परन्तु जापानके अधिकारियोंको सन्देह हुआ, कि सम्भव है वे धर्म-प्रचार करते करते राजनैतिक आन्दोलन उठावें और जापानकी स्वतन्त्रता छीन लें। इसलिए वे पादरियोंके विरुद्ध खड़े हुए। रोमनके सम्राट् नेरोकी तरह ये भी ईसाई धर्मके पादरियोंको तङ्ग करने लगे। आखिर पादरियों मार भगाया गया। यहां तक कि, विदेशी वणिकों तकको जापानमें स्थान न दिया गया; सिर्फ ओलन्दाजोंको एक क्षुद्र उपनिवेश स्थापन कर रहनेका अधिकार मिला। ओलन्दाजों पर नानाप्रकार कर लगाये जाने पर भी, जापानके साथ वाणिज्य करके अर्थोपार्जन किया था। जापानियोंने घोषणा कर दी थी कि "अन्य कोई यूरोपीय जाति यदि जापानमें पदार्पण करे, तो उसे मृत्युका दण्ड दिया जायगा।" साथ ही जापानियोंको भी विदेश जानेके लिए मुमानियत थी। मध्ययुगमें जापानियोंने एक वीर-हृदय—साहसी जातिके समान अज्ञात समुद्रोंमें जहाज चलाये थे। चीन, श्याम और तो क्या प्रशान्त महासागर-हो कर मैक्सिको तक पहुंच कर इन्होंने व्यवसाय किया था। किन्तु इस समय उन्हींके अधिकारियोंने उन्हें बाहर जानेके लिए रोक दिया। इतना ही नहीं, बल्कि ५० टनसे ज्यादा माल लादनेवाले जहाजोंका भी बनना बन्द कर दिया गया। विदेशियोंसे विशेष शत्रुता हो जानेके कारण ही, विपद्की आशङ्कासे जापानियोंने अपनेको इस तरह घरमें बन्द कर रक्खा था। यही कारण है, कि विदेशीय ऐतिहासिक जापानियोंकी विशेष निन्दा किया करते हैं। किन्तु इससे भारतवासियोंसे यह छिपा नहीं है कि विदेशियोंका आगमन कभी कभी कैसा भीषण रूप धारण करता है और अतिथिसत्कारके बदले जातिको कैसा कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ता है। सुतरां हम तो यही कहेंगे कि जापानियोंने उस समय बड़ी बुद्धिमानीका कार्य किया था; नहीं तो आज उनकी भी भारतवासियोंकी भांति शोचनीय दुर्दशा होती।

२२० वर्ष तक जापानियोंने बहिर्जगत्से कुछ भी सम्बन्ध न रक्खा था। इस बीचमें जापानको निज उच्च सामाजिक सभ्यता, कला और साहित्यका विकाश हुआ था और उसीमें वह सन्तुष्ट भी था। उस समय यूरोपने शिल्प-वाणिज्य, राजनीति और युद्धविद्याकी असाधारण उन्नति की थी; किन्तु जापानने उसका अनुसन्धान करना आवश्यकीय समझा।

आठवें 'सोगुन' जोशी मुनि'के शासनकाल (१७१६—१७४५ ई०)-में जापानको नाना प्रकारसे उन्नति हुई थी। इन्होंने फिजूल-खर्चीको हटा कर मितव्ययिताकी स्थापना की थी। इसके सिवा जमीनकी उपजाऊ बनानेके लिए भी इन्होंने काफी कोशिश की थी।

'की' प्रदेशमें नारङ्गी, 'सातसूमा' और 'हिङ्गानी' प्रदेशमें तम्बाकूकी खेती इन्होंने चलाई थी। समुद्रके पानीसे इन्होंने नमक भी बहुत बनवाया था। 'फै' प्रदेशमें द्राक्षा-क्षेत्र स्थापन कर वे उत्कृष्ट शराब बनानेकी व्यवस्था कर गये हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने आलू, ईख आदिकी खेतीका भी उचित प्रबन्ध किया था।

'जोशीमुनि' स्वयं एक विद्वान् व्यक्ति थे। ज्योतिषमें ये असाधारण पाण्डित्य रखते थे। इन्होंने ज्योतिषसम्बन्धी कुछ यन्त्रोंका भी आविष्कार किया था। इन्होंने 'सूरो क्यूमा' नामक चीनदेशीय एक सुप्रसिद्ध विद्वान्‌को जापान बुलाया था एवं यूरोपीय विद्या अर्जन करनेकी चेष्टा की थी। एक कर्मचारीको इन्होंने ओलन्दाजी भाषा सीखनेके लिए आदेश दिया था और जापानमें जो यूरोपीय ग्रन्थोंके प्रवेश न होने देनेका नियम था, उसे उठा दिया।

परन्तु इस समयकी शासन-प्रणाली इतनी कड़ी थी कि उसने प्रजाकी स्वतन्त्रता बिलकुल छीन ही ली थी। 'सोगुन' उपाधिधारी ही शासनदण्डके यथार्थ परिचालक थे—वे सम्राट्‌की अधीनता नाममात्रको स्वीकार करते थे। साम्राज्यकी तृतीयांश सम्पत्ति उनके हाथमें थी और उससे जो कुछ आमदनी होती थी, उसे वे अपने काममें खर्च करते थे। अवशिष्ट सम्पत्तिका उपस्वत्व २६० सामन्तोंमें विभक्त होता था। इन सामन्तोंमें भी सबकी क्षमता समान न थी—जिसके पास जितनी सम्पत्ति थी, उसका उतना ही प्रभाव था। किन्तु एक विषयमें सबका अधिकार समान था। अपने अपने प्रदेशमें सभी स्वाधीन थे—क़ानून बनाना वा तोड़ना उनके बायें हाथका खेल था। इस कार्यमें कोई भी हस्तक्षेप न करता था। सामन्तगण वंशानुक्रमिक सेना रखते थे। वह सेना अपने स्वामीके सिवा और किसीकी भी आज्ञा न मानती थी—सम्राट्‌की भी नहीं। यह सेना इतनी कट्टर थी कि अपने स्वामीके लिए प्राण तक देनेके लिए तैयार रहती थी। हर एक सामन्त 'सोगुन'की अधीनता स्वीकार करते थे। जमींदारी पाते वक्त 'सोगुन' द्वारा इन्हें मुकुट प्राप्त होता था। दत्तकपुत्र ग्रहण करनेके लिए भी इन्हें 'सोगुन'से अनुमति लेनी पड़ती थी। 'सोगुन' जब कभी इनसे सेना द्वारा सहायता चाहते थे, तभी इन्हें सेना ले कर उनके पास पहुंचना पड़ता था। सामन्त-गण खूब धनवान् होते थे और प्रत्येकके पृथक् पृथक् दुर्ग थे। सामन्त और उनके प्रधान कर्मचारियोंकी संख्या प्राय: २० लाख थी। ये ही सम्भ्रान्त-भद्र समझे जाते थे और सुखसे जिन्दगी बिताते थे। इनसे नीचेकी श्रेणी-में कृषक, शिल्पजीवी और वणिक् थे, जिनकी संख्या करीब ३ करोड़ थी। इनके जीवनका कार्य उक्त भद्र-श्रेणीके लिए विलास-उपकरणोंके संग्रह करनेके सिवा और कुछ भी न था। फरासीसी विप्लवसे पहले फ्रान्स, भारतवर्ष वा मिसरमें निम्नश्रेणीके लोग जिस तरह उच्च-श्रेणीके द्वारा पददलित होते थे, उसी तरह ये भी किसी प्रकारसे अपनी गुजर करते थे। जापानमें कानूनन दास-प्रथा प्रचलित न रहने पर भी, वहांके निम्नश्रेणीके लोग ७० वर्ष पहले भी निग्रोजातिकी तरह जीवन-यापन करते थे। वे किस कामको करके अपनी जीविका चलावें, कैसी पोशाक पहनें, किस ढङ्गसे घरमें रहें, इन सबकी व्यवस्था वे स्वयं न कर पाते थे; उनके मालिक जो कुछ कह देते थे, उसीके अनुसार उन्हें कार्य करना पड़ता था। यहां तक कि वे अपने मालिकोंके डरसे जोरसे बोल भी न पाते थे—मालिकके बुरी तरह मारने वा पीटने पर भी ये चुपचाप उसे सह लेते थे। अन्यान्य सभी अनुन्नत जातियोंने उच्चश्रेणीके लोगोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया है, किन्तु जापानमें ऐसा कभी भी नहीं हुआ।

सम्राट् 'कियोतो' उस समय नगरके एक कोनेमें काष्ठपुत्तलिकाकी भांति रहते थे और देवत्वके अभि-मानमें ही सन्तुष्टचित्तसे काल यापन करते थे। 'सोगुन' ही यथार्थमें कर्ताकर्ता वा शक्ति-परिचालक थे, इसलिए यूरोपीय लोग उन्हें ही सम्राट् कहते थे। वे सभी विद्वान् और बुद्धिमान थे, किन्तु इस विषयमें सभीको भ्रम था। 'सोगुन' जब राजप्रासादसे महासमारोहके साथ बाहर निक-लते थे, तब मार्गमें कोई भी अप्रिय वस्तु न रहने पाती थी, मकानोंके झरोखे तक बन्द कर दिये जाते थे, क्योंकि उनके खुले रहनेसे ऊपरसे उन पर अवज्ञाकी दृष्टि पड़नेकी सम्भावना रहती थी। निकलनेसे दो दिन पहले उस रास्तेमें कोई आग न जला पाता था, क्योंकि,

उससे वर्णांके परमाणु धूम्रमय हो जाते थे। यूरोपीयगण रोम, माद्रिद वा लिसबनके राज-ऐश्वर्यसे पराजित होने पर भी, 'सोगुन'की धन-समृद्धिको देख कर बड़ा आश्चर्य करते थे। सोगुन'की शासनप्रणालीसे असन्तुष्ट हो कर कुछ सामन्त भीतर भीतर विप्लववादी हो गये थे। किन्तु इनके शासनकालमें देशमें शान्ति रहनेके कारण विद्या-चर्चा और साहित्यकी आलोचना बढ़ गई थी। आठवें सोगुन 'कादा आजूमामारो'के समय (१७१६-१७४५ ई०)में लोग 'कोजिकी'के काव्य आदरके साथ पढ़ते थे। 'कोजिकी' जापानमें वाल्मीकि वा होमरके समान माने जाते हैं, उनके ग्रन्थमें सम्राट् पर अचल भक्ति रखनेकी शिक्षा दी गई है। यूरोपमें मध्ययुगके सामन्त-तन्त्रके समय जैसे रोमके कानूनोंको पढ़ कर लोग राजा पर भक्ति करना सीख गये, ये उसी प्रकार जापानमें भी 'कोजिकी'के ग्रन्थ पढ़ कर लोगोंमें राजभक्तिका स्रोत बहने लगा था। ऐतिहासिक आलोचना भी इस समय बढ़ गई थी, जिससे लोगोंने सिद्धान्त किया कि सम्राट्-की क्षमता पुनःस्थापित होनी चाहिए।

१७८६ ई०के पहले ही रूसियाने साइबिरियाका समग्र भाग अधिकार कर लिया था; अब उसने जापान-की उत्तरांशमें अवस्थित ऐजोद्वीप तथा और एक स्थान जीत लिया। इसके सिवा रूसने और भी स्थान जय करनेके लिए दूत भेजे थे। १८०८ ई०में अंग्रेजोंने 'क्यूसिउ' नामक स्थानमें उतर कर 'नागसाकी' नामक ग्राम जला दिया था। इस प्रकारके अत्याचारोंके कारण ही 'सोगुनों'ने विदेशियोंका जापानमें जाना बन्द कर दिया था। १८२५ ई०में जब एक दल यूरोपीय वणिक् 'नागसेकी'के पास पहुंचे, तो जापानके अधिकारियोंने उन्हें भगा देनेकी घोषणा कर दी।

उस समय जिन जापानियोंने ओलन्दाजी भाषा पढ़ कर उसकी सभ्यता ग्रहण की थी, वे इसका प्रतिवाद करने लगे। वे कहने लगे—"यदि यूरोपियोंसे अपनी रक्षा ही करनी है, तो वह उनसे मिल कर ही हो सकता है।" इस पर जापान-सरकारने उनकी दण्डनीति द्वारा दमन करनेकी कोशिश की, किन्तु उनके भावोंका वह दमन न कर सकी। कारण, विदेशियोंका देशमें जितना अधिक प्रवेश होने लगा, जापानियोंको यूरोपीय सभ्यता उतनी ही अधिक पसन्द आने लगी।

१८५३ ई०के जुलाई मासमें चार अमेरिकन जहाज जापानके 'सागामी' प्रदेशके 'उरागा' नामक स्थानमें आ लगे। जहाजोंके अध्यक्षने जापानके साथ वाणिज्य सम्बन्धीय सन्धि करनेके लिए 'सोगुन'के पास आवेदन-पत्र भेजा। 'सोगुन'ने इसके उत्तरमें कहला भेजा कि "एक वर्ष विचार कर उत्तर दिया जायगा।" इसके दो महीने बाद ही एक रूसियाका जहाज 'नागसेकी'में आ लगा और उसके अध्यक्षने जारका नाम ले कर जापानसे वाणिज्य सम्बन्धी सन्धि करनेकी प्रार्थना की। किन्तु उनकी प्रार्थना नामंजूर हुई। अन्तमें अमेरिकनोंको जापानके दो निकृष्ट बन्दरोंमें आनेकी आज्ञा मिली। १८५४ ई० १ली मार्चको पेरीके साथ जापानकी सन्धि हुई। इसके कुछ दिन बाद रूसिया इंग्लैण्ड और हलैण्डके साथ भी सन्धि हो गई और उक्त दोनों बन्दरोंमें आनेके लिए उन्हें आज्ञा मिल गई।

उस समय जनसाधारणमें बहुतसे लोग ऐसे थे जो सम्राट्के पक्षपाती और विदेशियोंको प्रवेशाधिकार देनेके कारण सोगुनोंके विरोधी थे। अन्तमें वे 'सोगुन'से लड़नेके लिए आमादा हो गये थे।

इसी बीचमें वे सामन्तोंके शासनसे भी असन्तुष्ट हो गये थे। उन लोगोंने 'कियोतो'में जा कर सम्राट्का पक्ष अवलम्बन किया। १८६२ ई०में उन लोगोंने सम्राट्का तरफसे 'सोगुनों'को आह्वान किया तथा विदेशियोंको भगा देने और कुछ नियमोंका संस्कार करनेके लिए उपदेश लिख भेजा। सोगुनोंने इस निमन्त्रणकी रक्षा न की। इधर सम्राट्पक्षके लोगोंने अंग्रेज और अमेरिक-नोंके दोत्यागार जला दिए। इसतरह विदेशियों पर प्रायः अत्याचार होने लगा। अंग्रेज जब युद्ध करनेके लिए तैयार हुए, तब 'सोगुन'ने बहुतसा धन दे कर उन्हें शान्त कर दिया। 'सोगुन'ने सम्राट्को यह बात समझाई कि विदेशियोंको तंग करनेसे बड़ी भारी आफत आ सकती है, जिससे सम्राट् भी उन्हींके पक्षमें हो गये। १८६५ ई०में उन्होंने १८५८ ई०की सन्धियोंकी

स्वीकार कर लिया। १८६६ ई०में इस 'सोगुन' और सम्राट् दोनोंकी मृत्यु हो गई। इधर सम्राट् पक्षीय लोग सोगुनके विरुद्ध भीषण षड़यन्त्र और आन्दोलन करने लगे। अन्तमें उपायान्तर न देख पन्द्रह सोगुनोंने १८६७ ई०के १८ नवम्बरको सम्राट्के पास पदत्यागपत्र भेज दिया। इसी पत्रने जापानके नवयुगकी घोषणा की थी, इसलिए यहां वह उद्धृत किया जाता है—"मध्य-युगसे ही 'फुजिवारा' वंशके कारण सम्राट्की क्षमता क्रमशः घटती आई थी। पीछे 'मिनोमोतो जोरितोमो' 'सोगुनगों'की क्षमताके अधिकारी हुए और सामन्त शासनाका भार भी उन्होंने ग्रहण किया। दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि शासन-परिचालनके विषयमें हमारे सामने अनेक बाधाएं उपस्थित हैं। वैदेशिक सम्बन्धके विषयमें बहुत ज्यादा गड़बड़ी मच गई है। और उनका सम्बन्ध भी क्रमशः घनिष्ठ होता जा रहा है। इसलिए अब जापानका उसके मङ्गलके लिए, एक शासनकर्ताके द्वारा शासित होना आवश्यकीय है। इसीलिए हम अपनी क्षमताको सम्राट्के करकमलोंमें अर्पण करते हैं। हमारी जाति वैदेशिकोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता तभी कर सकती है, जब सम्राट् उसका शासन करेंगे और सम्पूर्ण श्रेणियां एकत्र हो कर देशकी रक्षाके लिए कमर कस लेंगी। इस प्रकार हमने देश और सम्राट्के प्रति अपना कर्तव्यका पालन किया।"

इस तरह सम्राट् ६८३ वर्ष तक क्रीड़ापुत्तलिका वत् रहनेके बाद, अब यथार्थ क्षमताके अधिकारी हुए। इस विषयमें सोगुनोंके स्वार्थत्यागकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता।

जिस समय सम्राट्के हाथमें क्षमता अर्पित की गई थी, उस समय उनकी उमर कुल पन्द्रह वर्षकी थी। सुतरां शासनकार्य सम्राट्के नामसे उनके मन्त्रिगण ही चलाने लगे। मन्त्रियोंने वर्तमान परिस्थिति देख कर विदेशियोंसे मित्रता रखना ही उचित समझा। १८६८ ई०की ७वीं फरवरीको यह बात समस्त वैदेशिकोंका कह दी गई। इसी वर्ष ६ नवम्बरको सम्राट्ने जापानी प्रथानुसार इस नवयुगका नाम रक्खा—'मैजी' वा उज्ज्वल युग। सचमुच ही इनके राजत्वमें जापान सभ्यताके सूर्यालोकसे प्रदीप्त हो उठा था। इन्होंने 'जोदो' नगरीमें राजधानी स्थापित कर उसका 'तोकियो' नाम रख दिया।

१८६६ ई०की १७वीं जूनको कानूनके अनुसार सामन्त-तन्त्र रद्द कर दिया गया। कारण, नवीन यूरोपीय सभ्यता ग्रहणके लिए यह कार्य प्रशस्त और प्रयोजनीय था।

विप्लवके बाद जापानमें पुनः शान्ति स्थापित हो गई। इस समय वहांके राजनैतिकगण यह बात भलीभांति समझ गये थे, कि अब सामाजिक संस्कार कर जापानको अन्य सभ्यदेशोंके समान बनानेकी जरूरत है; जब तक साधारण लोगोंको शिक्षित और उन्नत न बनाया जायगा, तब तक जापानकी यथार्थ श्रीवृद्धि नहीं हो सकती। किन्तु इस नवयुगमें भी पहलेके सामन्तगण अपने जातिगत वैषम्य-भावको छोड़नेके लिए तैयार न थे।

जापान-गवर्नमेण्टके पास उस समय न तो सेना थी और न जहाज। इसके सिवा कोषागारमें धन भी पर्याप्त न था। देशमें जो शिल्पवस्तुएं बनती थीं, उसीसे किसी तरह देशका अभाव दूर किया जाता था। जापानमें एक जगहसे दूसरी जगह संवादादि भेजनेके लिए कोई सुव्यवस्था नहीं थी। रेल, टेलिग्राफ या जहाज उस समय तक कुछ भी आविष्कृत न हुए थे। वैदेशिक वाणिज्य भी उस समय तक विदेशियोंके हाथमें था; वे यहांका धन खूब ही लूटने लगे। आधुनिक विज्ञानकी चर्चासे भी जापानी लोग परिचित न थे। इन्होंने सिर्फ शस्त्र और चिकित्साविद्याके विषयमें ओलन्दाजोंसे कुछ सीखा था। इन समस्त अभावों और समस्याओंका समाधानका भार नवगठित मन्त्रियों पर पड़ा। उन्होंने इस कार्यके लिये नाना प्रकारकी बाधाओंका सामना करना पड़ा था और ऊपरसे देशीय कुसंस्कारोंके कारण भी कार्यमें अनेक कठिनाइयां आ पड़ी थीं।

इस समय मन्त्रि-सम्प्रदाय और जापानके सौभाग्यसे ग्रेट ब्रिटेनके एक सुदक्ष प्रतिनिधि जापानमें वास करते थे। वे जापानको, इस विप्लवके समय भी नाना प्रकारकी सहायता देते आ रहे थे। सेना, जहाज, आदमी

आदि द्वारा भी उन्होंने इस नवजाग्रत जातिकी काफी सहायता पहुंचाई थी।

नव्य जापानकी उन्नतिके लिए और एक दल खड़ा हुआ जो विदेशागत विशेषज्ञका दल था। ग्रेटब्रिटेनके विशेषज्ञोंने नौ-सेनाके गठनकार्यमें जापानियोंकी काफी सहायता दी थी। अमेरिकाके युक्तराज्यके प्रतिनिधियोंने जापानके डाक और शिक्षाविभागका पाश्चात्यदेशीय नव प्रणालीके अनुसार संगठन किया। भारतमें पहले पहल पादरियोंने जिस प्रकार देशीय भाषामें शिक्षा देनेके लिए उत्साह दिखाया था, उसी तरह जापानमें भी वे शिक्षा-प्रचारके लिए यथेष्ट चेष्टा करने लगे।

प्रथम ही गवर्नमेण्टके उन कानूनोंको रद्द किया गया, जो बर्वरोचित और अमानुषिक थे। जापानकी दण्डनीति और कारागार मनुष्योंके लिए हदसे ज्यादा कष्टदायक थे। समस्त सुसभ्य देशोंके कारागारोंके परिदर्शनार्थ चारों और विशेषज्ञ भेजे गये। उन लोगोंने लौट कर जापानके कारागारोंकी ऐसी उन्नति की कि जिसे देख कर लोग चकित हो गये। वर्तमानमें जापानके कारागारोंकी व्यवस्था अन्यान्य सभी सुसभ्य देशोंकी अपेक्षा उन्नत है। एक फरासीसी आईनज्ञने जापानके कानूनोंका संस्कार कर दिया। इस संस्कारके फलसे विचार और शासनकार्यके भार पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके अधीन हो गया। जगह जगह न्यायालय स्थापित हो गये, जिनमें विचारपति स्वाधीन भावसे, किसीका लिहाज न कर, विचारकार्य चलाने लगे। सुशिक्षित व्यक्तियोंको वकील बना दिया गया।'

१८७३ ई०में 'इयकोहामा'से 'तोकिओ' तक रेल खुल गई। बन्दरोंको आलोकमालासे सुशोभित कर उनमें डाक और तार विभागकी प्रतिष्ठा की गई। डाक्टरी और इञ्जिनियरीकी शिक्षा देनेके लिए बड़े बड़े कालेज खुल गये। इसी समय जापानमें संवादपत्र भी प्रकाशित होने लगे और व्यापारियोंके सुभीतेके लिए बैंक भी खुल गये। जापानमें पहले सिक्कोंमें लाख भरी जाती थी और भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके सिक्के बनते या चलते थे, अब वे निखालिस धातुके ही बनाये जाने लगे और सर्वत्र एक प्रकारके सिक्कोंका प्रचार जारी किया गया।

१८७१ ई०में इन संस्कारोंका सूत्रपात हुआ था; उसके बाद कुछ ही वर्षोंमें जापानी सभ्यतामें उनकी जड़ मजबूत हो गई। जापानी जाति बड़ी बुद्धिमान् और परिश्रमी होती है यही कारण है कि वह बड़ी तेजीके साथ नवीन सभ्यताके प्रकाशमें आगे बढ़ने लगी। चीनके आचार-व्यवहारके पक्षपाती बीच बीचमें कहीं कहीं विप्लव उठाने लगे, किन्तु उससे कुछ फल न हुआ।

जापानियोंके हृदयमें यह उच्चाकांक्षा उत्पन्न हुई कि, इङ्गलैण्डके पाश्चात्यभागकी तरह जापानके प्राच्यभागमें भी सर्वोत्कृष्ट नौ-शक्ति संगठित हो। इस विषयमें जापान सफल मनोरथ हुआ। १८७२ ई०में यहां बाध्यतामूलक सामरिक शिक्षाका प्रवर्तन हो गया, जिससे बहुत थोड़े समयमें ही प्रायः सभी जापानी योद्धा हो गये। योद्धा होनेके बाद इस जातिको आज तक रणक्षेत्रमें वीरता दिखानेके अवसर पांच बार प्राप्त हुए हैं।

१। १८११ ई०में अन्तर्विप्लवके दमनके लिए ४६००० योद्धा रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। २। १८८४ ई०में चीनके साथ युद्ध करनेके लिए (जापानकी सम्पूर्ण सामरिक शक्तिके दिखानेके लिए) २२०,००० सेनाने समराङ्गणमें पदार्पण किया था। ३। १९०० ई०में बक्सरके युद्धमें जापानियोंने सबसे पहले यूरोपीय सेनाके साथ अपने वीरत्वकी तुलना करनेका सुयोग पाया था। ४। रूसके साथ भीषण युद्ध करके जब जापानने विजय प्राप्त की तब वह संसारमें एक विजयी और वीर जाति समझी जाने लगी। क्षुद्र जापान-शक्तिने रूसियाके जारकी विपुलवाहिनीको किस प्रकार कठोरता और आत्मत्यागके साथ परास्त किया था यह बात इतिहासमें हमेशाके लिए सुनहरी अक्षरोंमें लिखी रहेगी। रूसियाके साथ युद्धमें विजय प्राप्त करनेके बाद जापानने भीतर भीतर एक नवीन बल पाया और अपनी उन्नतिके लिए वह और भी अधिक प्रयत्न करने लगा। संसारको भी मालूम हो गया कि पृथिवीमें सिर्फ ग्रेटब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, इटली और युक्तराष्ट्र ये पांच ही महाशक्ति नहीं हैं, किन्तु जापान भी पृथिवीमें अन्यतम महाशक्ति है।

इसके बाद गत महायुद्धके समय भी जापानी सेनाने ग्रेटब्रिटेन आदि मित्रशक्तियोंका साथ दिया था। इस

महायुद्धमें जापानियोंके साहस और वीरत्वको देख कर सबको चकित होना पड़ा था। युद्धके बाद १९२१ ई०में वाशिंगटनमें जो बैठक हुई थी, उसमें जापानका बहुत सम्मान किया गया था और नौ समताका अधिकार भी काफी दिया गया था।

जापानमें शिक्षा-प्रचारके लिए १८७१ ई०में एक नया विभाग खुल गया। जापानके लोग यह जानते थे कि जब तक स्त्री और पुरुष, धनी और निर्धन, सबको शिक्षा न दी जायगी, तब तक जापानकी स्थायी उन्नति किसी तरह भी नहीं हो सकती। इसीलिए उन्होंने वाध्यता-मूलक अवैतनिक प्राथमिक शिक्षाकी व्यवस्था की थी। इसी समय चीनदेशीय पञ्जिका गणनकी प्रथा उठा दी गई और उसके बदले अंगरेजों द्वारा प्रवर्तित यूरोपीय ढंगकी पञ्जिकागणना-प्रथा चलाई गई। कृषकोंको उन्नतिके लिए उन्हें वाध्यतामूलक परिश्रमसे मुक्त किया गया। इस समय सम्राट् बालक थे, तो भी प्रत्येक कार्यमें उनका नाम व्यवहृत होता था।

जापानके नवजागरणके प्रथम प्रभातमें ही यह घोषणा की गई कि जनसाधारणकी सम्मतिके अनुसार ही शासनकार्यका सम्पादन होगा। जापानी राजनैतिकों-के कथनमें यह बात भली भांति आ गई थी कि, इस गणतन्त्रके समयमें कोई भी जाति किसी एक स्वेच्छाचारी सम्राट्की इच्छाके अनुसार चल कर अपनी उन्नति नहीं कर सकती। यह नीति प्रारम्भ ही से काममें लाई गई हो ऐसा नहीं; बल्कि धीरे धीरे इसका व्यवहार हुआ था। १८६८ ई०में 'तोकियो' नगरमें एक व्यवस्थापक-सभाका संगठन हुआ था, जिसमें २७६ प्रतिनिधि थे। इनमें प्रायः सभी सम्भ्रान्तवंशीय थे। इस सभाको कानून बनाने या संस्कार करनेका अधिकार नहीं दिया गया था। आखिर १८७० ई०में यह सभा टूट गई। उसके बाद २० वर्ष तक जापानकी शासनप्रणाली नामसे साधारणकी होने पर भी कार्यतः वह राज-पुरुषोंकी ही थी। १८७३ ई०में जापानके साधारण लोगोंमें राजनैतिक जागरणका सूत्रपात दिखलाई दिया। छापेके प्रभावसे लोगोंमें राष्ट्र सम्बन्धी ज्ञानका भी खूब प्रचार होने लगा। इतनेमें वे भी लौट आये जो शिक्षा प्राप्त करनेके लिए इंगलैण्ड, अमेरिका आदि देशोंमें गये हुए थे और सब मिल कर गणतन्त्रको व्यवहारमें लानेके लिए जी जानसे कोशिश करने लगे। ये अपनी लेखनी एवं वक्तृताओं द्वारा शासनकर्ताओंकी स्वेच्छा-चारिताको दूर करनेको आन्दोलन करने लगे। यद्यपि इनमेंसे बहुतोंको इसके लिए जेल भी जाना पड़ा था, तथापि ये अपने उद्देश्यसे च्युत न हुए। यहां तक कि राजकीय उच्चपदस्थ कर्मचारियोंकी हत्या करनेमें भी इन्होंने सङ्कोच नहीं किया। १८७८ ई०में जब प्रभावशाली मन्त्री 'ओकुबो' मारे गये, तब गवर्नमेण्टने डर कर जनसाधारणको कुछ क्षमता देनेका वचन दिया, किन्तु वह नाममात्रके लिए। इस पर, सन्तुष्ट होना तो दूर रहा, लोगोंने और भी जोरसे आन्दोलन करना शुरू कर दिया। 'हिजेन' निवासी 'ओकुमा'ने नेतृत्व ग्रहण कर इस नवीन आन्दोलनको और भी शक्ति-शाली बना दिया। उन्होंने १८८१ ई०में गवर्नमेण्टके साथ असहयोग कर इङ्गलैण्डकी तरह शासन-प्रणाली प्रवर्तित करनेके लिए जापानमें घोरतर आन्दोलन उपस्थित किया।

आखिर इस आन्दोलनका फलोदय हुआ। १८९० ई०में सम्राट्की तरफसे यह घोषणा निकाली गई कि—सर्वसाधारणके मतानुसार शीघ्र ही पार्लामेण्ट स्थापित की जायगी। पहलेके मन्त्रियोंको पृथक् कर दस नवीन मन्त्री नियुक्त किये गये। ये मन्त्री सम्राट्की इच्छा पर निर्भर होने पर भी, बहुत अंशोंमें ग्रेटब्रिटेनकी तरह स्वाधीन वा क्षमताप्राप्त थे। १८८४ ई०में सम्राट्ने जापानके सम्भ्रान्त-वंशीयोंको पांच भागोंमें विभक्त कर यथोचित उपाधियोंसे विभूषित किया। इससे प्राचीन सामन्तोंके वंशधर गण अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सम्राट्के अनुरक्त हो गये। इसके सिवा सम्राट्ने और भी एक नियम बनाया कि, इङ्गलैण्डकी तरह जापानके सम्राट् भी चाहें जिसको सम्भ्रान्त-श्रेणीमें उन्नीत कर सकेंगे। इसका फल यह हुआ कि जापानमें अब भी ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं, जो अपनेको सम्भ्रान्त कहते हैं; किन्तु उनके पुरखा सामान्य कृषक थे।

साधारण श्रेणीके लोगोंमें सबसे पहले, १८८४ ई०में

महामति 'इतो'ने सम्भ्रान्त-पद पा कर साम्राज्यके प्रथम प्रधान मन्त्री एवं सभापतिका पद ग्रहण किया था।

१८९० ई०में साधारण महासभा आहूत हुई, जिसमें दो विभाग थे, एकमें ३०० सामन्त व्यक्ति प्रतिनिधि थे, जिनमें कुछ वंशानुक्रमिक सामन्त थे, कुछ साधारण द्वारा निर्वाचित और कुछ सम्राट् द्वारा मनोनीत हुए थे। दूसरे विभागमें पहले ३००, फिर ३७९ सभ्य निर्वाचित हुए। प्रथम विभागको इंगलैण्डके House of lords के समान क्षमता प्राप्त थी और कार्य करनेका अधिकार भी उसीके बराबर था। दूसरी सभामें गवर्नमेण्टकी क्षमताको और भी साधारणके हाथमें लानेके लिए घोरतर आन्दोलन चलने लगा। परिणाम स्वरूप साधारणने बहुत अंशोंमें क्षमता प्राप्त की और मन्त्रियोंको अपने हाथमें ले आये। किन्तु इंगलैण्डकी तरह ये इच्छानुसार मन्त्रियोंको पृथक् करनेमें समर्थ न हुए; प्रत्युत जर्मन साम्राज्यकी तरह मन्त्रियोंको सम्राट्के अधीन रहनेकी प्रथा प्रवर्तित हुई। जापानके सम्राट्ने आईन सम्बन्धी समस्त व्यवस्था करनेकी क्षमता अपने ही हाथमें रक्खी।

बीसवीं शताब्दीमें, जापानमें बहुतसे राजनैतिक दलोंकी सृष्टि हो गई, जिनमें 'सेयुके' नामक दल ही प्रधान है। १९१२ ई०में सम्राट् 'मुत्स् हितो' ४५ वर्ष तक गौरवके साथ राज्य करनेके बाद परलोक सिधारे। ये ही जापानकी उन्नतिके प्रतिष्ठाता थे। १९१७ ई०में जापानके प्रधान मन्त्रीने लायड जार्जकी तरह 'तेरायूचि'के समस्त दलोंका पारस्परिक मनोमालिन्य मिटा कर, युद्धके लिए सबसे सहायता ली थी।

१९१८ ई०के मार्च मासमें एक नवीन राजनैतिक संस्कार हुआ, जिसमें ऐसा नियम बनाया गया कि जो तीन 'इयन' मात्र कर देते हैं, वे भी भोटके अधिकारी होंगे। इससे १४,५०,००० की जगह ३०,००,००० व्यक्ति भोटके अधिकारी हुए। १९२० ई०में सबको भोट देनेका अधिकार होगा, ऐसा बिल पेश हुआ, किन्तु वह नामंजूर हो गया।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि, जापानमें प्राय: भूमिकम्प हुआ करता है। जापानके जिस आग्नेय गिरिकी वैज्ञानिकगण निर्वाविशाग्नि समझते थे, उनके छिद्रोंसे प्रायः वाष्प निकला करती है। उसी 'फूजी आमा' पर्वतके पास १९२३ ई०में भीषण भूमिकम्प हो गया है।

१ सितम्बरको समाचार मिला कि भूमिकम्पके बाद 'इयोकोहामा' शहरमें आग लग जानेसे नष्ट हो गया है और 'टोकियो' शहरका राजपथ मुर्दोंसे भर गया है। २ तारीखके संवादसे मालूम हुआ कि 'इयोकोहामा' और 'टोकियो'में प्रायः २ लाख आदमी मर गये, आग लग जानेसे बारूदखाना उड़ गया और रेलकी बड़ी सुरङ्ग टूट जानेसे ६ सौ आदमियोंकी जान गई। भूमिकम्पके समय आकाश मेघाच्छन्न था और आंधी भी खूब चल रही थी। भूकम्पके शुरू होते ही लोग डरके मारे भागने लगे; बहुतसे लोग उस भीड़में पिस कर मारे गये और शहर जल कर भस्म हो गया। इसके बादके समाचारसे ज्ञात हुआ कि इस दुर्घटनासे ५ लाखसे भी ज्यादा आदमी मारे गये हैं।

पृथिवीके इतिहासमें भूकम्पसे ऐसी भारी हानि होनेका विवरण कहीं भी नहीं मिलता। 'पम्पे' भी भूकम्पके कारण ध्वंस हुआ था, किन्तु सिर्फ एक ही नगर पर बीती थी। जापानके भूकम्पने एक विराट् साम्राज्यको ही ध्वंसोन्मुख बना डाला है। जापानके जिन प्रदेशोंमें जनसंख्या अधिक थी और जो व्यापारके बड़े केन्द्रस्थान थे, उन्हीं प्रदेशोंका अधिक सर्वनाश हुआ है। 'इयोकोहामा'के बड़े बन्दरमें पोताश्रय विलुप्त हो गये हैं, जहाज नष्ट हो गये हैं और टेलिग्राफ वा टेलीफोनके तार आदि ध्वंस प्राय हो गये हैं। किन्तु 'टोकियो'के बृहत् बौद्ध-मन्दिरने सम्पूर्ण ध्वंस हो जाने पर भी अपना अस्तित्व ज्योंका त्यों रक्खा है।

जापानी परिश्रमी, वीरप्रकृति और कर्मपटु हैं, इसलिए आशा की जाती है कि अवश्य और शीघ्र ही 'इयोकोहामा' बन्दर वाणिज्यके कलरवसे पुनः मुखरित होने लगेगा और 'टोकियो'के पुरपथ, पार्श्वस्थित सौध-श्रेणीकी शोभासे फिरसे लोगोंको मुग्ध करेंगे। परन्तु वर्तमानमें जापानकी जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति कितने दिनोंमें होगी, यह नहीं कहा जा सकता।

किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जापान अपनी क्षतिका यथार्थ परिमाण बतलाना नहीं चाहता।

जापानका शिल्प और वाणिज्य—वर्तमान समयमें जापानने वाणिज्यजगत्‌में श्रेष्ठस्थान अधिकार किया है। जापानमें उत्पन्न शिल्पद्रव्यने पृथिवीमें प्रायः सर्वत्र ही विशेषतः भारतवर्षमें खूब आदर पाया है। जापानने अपने अध्यवसाय और बुद्धिबलसे ७० वर्षके भीतर असाधारण उन्नति की है—पृथिवी पर जितने खिलौने बिकते हैं, उनमें करीब चौदह-आना माल जापानका ही है।

पहले पहल जापानने चाय और रेशमका व्यवसाय चलाया था। उस समय फ्रान्स और इटलीके रेशमके कीड़ोंमें बीमारी फैल जानेसे, जापानी रेशमकी खूब ही खपत हुई थी। पहलेके पन्द्रह वर्षोंमें जापानका रोजगार दूना हो गया। उसके बादके पन्द्रह वर्षोंमें उसका वाणिज्य दशगुणा बढ़ गया। इस तरह जापान दिन दिन समृद्धिशाली हो उठा—उसने अपनी राष्ट्रीय शक्ति खूब ही बढ़ा ली। १८६८ ई०में जापानकी आमदनी और रफ्तनी चीजोंका मूल्य था २ करोड़ ६० लाख 'इयेन' या २६,५०,००० पौण्ड ; १८८५ ई०में इससे दश गुना हो गया और १९१७ ई०में उससे भी नौ गुना बढ़ गया। इसके बाद १९२० ई०में उसका परिमाण १९१७ गुणा हो गया। जगत्‌के इतिहासमें वाणिज्य सम्बन्धी एताद्दश उन्नति अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं आती।

गत युद्धके समय जब यूरोप और अमेरिकाकी जातियां युद्धकार्यमें प्रवृत्त थीं, तब जापानने युद्धके उपकरणादि पहुंचा कर प्रचुर अर्थोपार्जन किया था। जापानमें १८८६ ई०से ही जहाजका रोजगार खूब तेजीसे चल रहा था। १९१३ ई०में जापानमें सिर्फ ६ जहाजके कारखाने थे, किन्तु १९१८ ई०के मार्च मासमें वहां ५७ जहाजके कारखाने बन गये थे और सबने यूरोप और अमेरिकाको जहाज बेचे थे।

जापानने पश्चिमी देशोंसे इतना लाभ उठाते हुए भी भारतका व्यवसाय शिथिल नहीं किया। उसने महात्मा गान्धिके असहयोग आन्दोलनमें भी कृत्रिम खद्दर (वा गाढ़ा) बना कर भारतमें भेजा और वह बहुत कम दामोंमें बिकने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि जापान हर एक चीजोंके बनाने और नकल करनेमें बहुत ही पटु है।

१९१८ ई०में जापानी लोग २७०० कारखानोंमें यन्त्रादि बनाते थे—रासायनिक पदार्थ भी यथेष्ट बनाते थे।

कृषिकार्यमें भी जापानने काफी उन्नति की है। १९०८ ई०में जापानमें जितनी खेतीबारी होती थी, १९१८ ई०में उससे दूनी हो गई थी, किन्तु धानकी खेती ज्यादा होने पर भी, व ां रूई और नीलकी खेती घट गई है।

जापानी भाषा—१८२० ई०में 'क्लेपरथ'ने निश्चय किया कि जापानी भाषा 'उरल-आलटायिक' जातियोंकी भाषाके अन्तर्गत है। तभीसे शब्दतत्त्वविद्‌गण जापानी भाषाकी उत्पत्तिके विषयमें गवेषणा कर रहे हैं। यदि जापानी लोग मङ्गोलीय जातिके हैं, तो उनकी भाषाके साथ 'कोरिय' और चीन भाषका सादृश्य होना सम्भव है। इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है कि ईसाकी १ली शताब्दीमें भी जापानी 'कोरिया'के लोगोंके साथ बहुभाषाविदोंकी बिना सहायताके वार्तालाप नहीं कर सकते थे। इसलिए कहना पड़ेगा कि उस प्राचीनकालसे ही 'कोरिया' और जापानकी भाषा भिन्न भिन्न थी। जापानके चीना अक्षर और साहित्यके ग्रहण करने पर भी, आज दो हजार वर्षसे दोनोंकी भाषा पृथक् ही रही है। के० हिरै साहबने प्रमाणित करना चाहा है कि जापानी आर्यजातिकी ही एक शाखा है। परन्तु यह मत अभी तक सर्वजनसम्मत नहीं हुआ है। प्रत्नतत्त्वविदोंका कहना है कि चीनके संस्पर्शसे पहले भी जापानमें एक प्रकारके अक्षर प्रचलित थे ; किन्तु यह मत फिलहाल सर्वमान्य नहीं हुआ।

सम्भव है, इस सिद्धान्तके निश्चित करनेसे कि प्राचीनतम समयमें जापानियोंने 'कोरिया'के अक्षर देख कर उसका अपने देशमें प्रचार करनेके लिए कोशिश की थी, उक्त समस्याओंका समाधान हो जायगा। उसके बाद जब जापानने चीनसे कनफूचिके धर्म और साहित्य ग्रहण किया, तब उसके साथ चीना अक्षरोंका भी अपने

देशमें प्रचार किया। परिणाम स्वरूप एक एक चित्रात्मक अक्षरकी दो प्रकार ध्वनि होने लगी, एक चीनमें और दूसरी जापानमें।

जापानी भाषाका सीखना, विदेशियोंके लिए टेढ़ोखोर है; क्योंकि इसके लिए उन्हें तीन प्रकारकी भाषा सीखनी पड़ती है—प्रथमतः जापानकी साधारण बोल चालकी भाषा, द्वितीयतः भद्र-समाजकी भाषा और तृतीयतः लिखित भाषा। इन तीनोंमें यथेष्ट पार्थक्य है। इसके सिवा यह भी एक बड़ी भारी दिक्कत है कि प्रत्येक शब्दके पृथक् पृथक् अक्षर सीखने पड़ते हैं।

जापानी साहित्य—सबसे पहले जापानी साहित्य-ग्रन्थ ७११ ई०में लिखा गया था। इसका विवरण (जापान शब्दके प्रारम्भ) में लिखा जा चुका है, कि सम्राट् तेम्मून (६७३ ६८६ ई०) सिंहासन पर अधिरोहण कर देखा कि सम्भ्रान्त परिवारोंका इतिहास इतस्ततः विच्छिन्न पड़ा हुआ है, जिसका ग्रन्थाकारमें प्रगट होना आवश्यकीय है। 'हियेदानोअारे' नामक किसी सम्भ्रान्त महिलाकी स्मृतिशक्ति अत्यन्त प्रखर थी, उन्हीं पर इसके लिखनेका भार सौंपा गया। सम्राट्की मृत्युके बाद सम्राज्ञी 'गेमो'के समय भी यह ग्रन्थ लिखा गया था। इसका नाम है "कोजिकी"।

जर्मनीके 'सागाओं' की भाँति इसमें भी पृथिवीकी सृष्टिका विवरण, राजाओंका सिंहासनाधिरोहण और उनके राज्यका वैशिष्ट्य लिखा है। उस समय चीनकी सभ्यता और साहित्य जापानमें इतना अधिक व्याप्त हो गया था, कि इसके परवर्ती ग्रन्थमें ही चीनका प्रभाव दीख पड़ता है। इसका नाम "निहोंगो' वा जापानका इतिहास है।

ईसाकी १७वीं शताब्दीमें जब जापानी साहित्यका नव उद्बोधन हुआ, तब लोगोंका मन पुनः "कोजिकी" पढ़ने और प्राचीन तथ्यके संग्रह करनेमें दौड़ा। इस समय जापानमें बहुतसी प्राचीन पोथियोंका संग्रह हुआ था। जापानी साहित्यमें प्रधान वैशिष्ट्य है तो वह एक मात्र इतिहास आलोचना है। १८२७ ई०में 'निहोन गेसी' नामक जो ग्रन्थ रचा गया था, उसमें राजकीय सभाकी घटनाओंके सिवा जातिका यथार्थ इतिहास नहीं मिलता इसके अलावा ये सब इतिहास सूखे और नीरस भी हैं।

हां, जापानी कविता चिरकालसे अपने भावोंकी रक्षा करती आई है। इसके छन्द और ताल एक ऐसी स्वतन्त्र वस्तु है कि जो अन्य किसी भी देशकी कविता वा काव्यमें नहीं मिलती। ईसाकी १०वीं शताब्दीके प्रारम्भमें 'सुरायुकि' और उनके तीन सहचरोंने कुछ प्राचीन और तदानीन्तन कविताओंका संग्रह किया है, उस ग्रन्थका नाम है "कोकिनसु"। ईसाकी १३वीं शताब्दीमें 'तियेका कियोने' एक सौ कवियोंकी एक सौ कविताओंका संग्रह किया था।

जापानी कविताओंमें वाक्‌संयम और भाव-संयम यथेष्ट समाविष्ट पाया जाता है इनके हृदयकी गम्भीरता भावके उच्छ्वासमें व्ययित नहीं होती और न वह झरनेके पानीकी तरह शब्द ही करती है। इनका हृदय सरोवरके जलकी तरह स्तब्ध है।'

जापानकी दो प्रसिद्ध और प्राचीन कविताओंका दृष्टान्त देना ही पर्याप्त होगा—

(१) "पुरानी पोखर
मेंढ़ककी कुदाई
पानीकी आहट।"

बस, अब जरूरत नहीं। जापानी पाठकोंका मन मानो आंखोंमें भरा है। पुरानी पोखर मनुष्यके द्वारा परित्यक्त हुई है और वहां अब निस्तब्ध अन्धकार है। उसमें एक मेंढ़कके कूदते ही शब्द सुन पड़ा। यहां एक मेंढ़कके कूदने पर शब्दका सुनाई देना पुरानी पोखरकी गम्भीर निस्तब्धताको प्रकट करता है। इस कवितामें पुरानी पोखरका चित्र किस खूबीके साथ खींचा गया है, इसका अनुमान पाठक ही करें; कविने सिर्फ इशारा कर दिया है। दूसरी कविता यह है—

(२) "सूखी डाल
एक काक
शरत् काल।"

बस, इतनेहीसे समझ लिया गया कि शरदृतुमें

(1) (१) यहां जापानी भाषाकी कविता उद्धृत न करके उसका हिन्दी अभिप्राय वा छायानुवाद प्रगट किया गया है।

पेड़की डालीमें पत्ते नहीं हैं, दो-एक डाली सूख या गल गई है और उस पर कौआ बैठा है। शीतप्रधान देशोंमें शरत्काल उपस्थित होने पर पेड़ोंके पत्ते झर जाते हैं, फूल गिर जाते हैं, श्रोदसे आकाश म्लान हो जाता है; यह ऋतु-हृदयमें मृत्युका भाव लाती है। सूखी डाल पर कौआ बैठा है, इतनेसे ही पाठक शरत् कालकी सम्पूर्ण रिक्तता और म्लानताका चित्र अपनी आंखोंके सामने देख सकते हैं। और भी एक कविताका दृष्टान्त दिया जाता है, जिससे जापानके आध्यात्मिक भावका परिचय मिलता है—

"स्वर्ग और मर्त्य देवता और बुद्ध फूल हैं; मनुष्यका हृदय है उन फूलोंका अन्तरात्मा।"

इस कवितासे जापानके साथ भारतके अन्तरका मिलन हुआ है। जापानने स्वर्ग और मर्त्यको विकसित फूलके समान सुन्दर देखा है। भारतवर्षने कहा है—"एक वृन्त पर दो फूल लगे हैं—स्वर्ग और मर्त्य, देवता और बुद्ध; मनुष्यके यदि हृदय न होता सो वह सिर्फ बाहरके लोगोंकी ही सम्पत्ति होती। इस सुन्दरका सौन्दर्य मनुष्यके हृदयमें है।"

जापानके साहित्य पर महिलाओंका प्रभाव बहुत अधिक है। पहले पहल सम्राज्ञी 'सुइको'के अधीन जापानमें पोथियोंका अनुसन्धान प्रारम्भ हुआ था। सम्राज्ञी 'गेम्मोई'की अधीनतामें प्रथम इतिहास लिखा गया था। ईसाकी ८वीं शताब्दीमें, ऐसा मालूम पड़ता है, मानो जापानकी स्त्रियों पर ही जापानी साहित्यकी रक्षाका भार सौंप दिया गया है। पुरुष जिस समय चीनका अनुकरण करनेमें मत्त थे, उस समय स्त्रियोंने घरमें बैठ कर जापानी भाषाकी उत्तमोत्तम कविताओं और साहित्यकी सृष्टि की थी। अब भी जब कि सभी लोग देशी पोशाक छोड़ कर विदेशी पोशाकको अपना रहे हैं, जापानी स्त्रियां अपने घरकी और देशकी पोशाक ही पहनती हैं। जापानी स्त्रियोंकी कथित भाषा अब भी पुरुषोंकी अपेक्षा कोमल और मधुर होती है। ईसाकी ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें 'मुरासाकि नो सिकबु' नामक एक महिलाने सबसे पहले जापानी उपन्यास लिखा था, जिसका नाम है "गेञ्जी मोनोगातारी"। यह उपन्यास क्या है, मानो एक गद्य-काव्य है। इसकी जैसी भाषा है, वैसे ही भाव हैं—दोनों ही मधुर और उत्तम हैं। उस समयके और एक उपन्यासका नाम है 'माकुरा नो जोशो" या तकियेकी कहानी। यह भी एक महिला-का लिखा हुआ है। इसमें दैनन्दिन जीवनकी घटनाओं और इतस्ततः विक्षिप्त चिन्ताराशिका चित्र खींचा गया है। इसके समान सरल और स्वाभाविक ग्रन्थ संसारमें बहुत कम देखनेमें आते हैं।

ईसाकी १४वीं शताब्दीके प्रारम्भसे ले कर १७वीं शताब्दी पर्यन्त जापानी साहित्यकी विशेष कुछ उन्नति नहीं हुई। इस बीचमें सर्वदा युद्ध होते रहनेसे साहित्य का विकाश बिलकुल रुक गया था। इतने बड़े समयमें सिर्फ दो ही ग्रन्थ रचे गये थे, जिनमें एक राजनैतिक और दूसरा ऐतिहासिक था। इनमें कुछ विशेषता न थी।

परन्तु इस तमसाच्छन्न युगमें ही जापानी नाटककी उत्पत्ति हुई थी। कहा जाता है कि जैसे ग्रीस या भारतवर्षमें धर्ममूलक नृत्यसे नाटककी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार जापानमें भी 'शिन्तोधर्म'के नृत्यसे नाटक उत्पन्न हुआ है। परन्तु यथार्थमें देखा जाय तो बौद्धधर्मके प्रभावसे ही जापानमें नाटकका विकाश हुआ है। प्रथम युगमें, नाटकमें भगवान्-प्रदत्त दण्ड, जीवनकी क्षणभङ्गुरता और पाप-तापसे मुक्ति होनेके उपायका विषय लिखा जाता था और कुछ नाटक ऐसे भी होते थे, जिनमें युद्धादि का विवरण रहता था। परवर्ती युगमें सैनिक और सामन्त-सम्प्रदायने नाटक-रचनाके लिए यथेष्ट उत्साह प्रदान किया था। १५वीं शताब्दीमें नाट्यकार 'कोयानामी कियोतो सिगू' और उनके पुत्र 'मोतोकियो'ने बहुतसे नाटक लिखे थे। पाश्चात्य सभ्यताके प्रथम प्रभावके समय जापानके नाटक लुप्तप्राय हो गये थे; किन्तु शीघ्र ही जातीय भावके जाग्रत होनेसे यह विपत्ति दूर हो गई।

जापानी लोग हास्यप्रिय होते हैं। इसलिए यह सहज ही अनुमान होता है कि उनके साहित्यमें प्रहसनोंकी संख्या अधिक होगी। जापानी प्रहसनोंको 'कियोजेन" पागलकी बात कहते हैं।

१६०३से १८६७ ई० तक जापानी साहित्यकी खूब ही उन्नति हुई। 'फुजिवारा-सैकोया'ने (१५६०-१६१८ ई०) जापानमें चीनके 'चू-हि' नामक दार्शनिकके ग्रन्थोंका प्रचार किया था। 'हयासि रासान'ने (१५८७ १६५७ ई०) दर्शन सम्बन्धी प्रायः ७० ग्रन्थ रचे थे। 'कैबरा-एकिन'ने (१६३०—१७१४ ई०) नीतिशास्त्रका प्रचार किया था। 'आराई हाकूसेकि' (१६४७—१७२५ ई०) जापानके प्रसिद्ध ऐतिहासिक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और अर्थनीतिज्ञ विद्वान् थे। इन विद्वानोंकी कोशिशसे जापानी साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। इस समय कथा-साहित्य वा उपन्यास आदिका काफी प्रचार था। जापानमें ईसाकी १७वीं शताब्दीमें बच्चोंके लिए नाना प्रकारके साहित्य ग्रन्थ रचे गये थे।

वर्तमानयुगमें जापान पर पाश्चात्य सभ्यता, विज्ञान और साहित्यका प्रभाव खूब ही पड़ा है। बहुतसे अंग्रेजी ग्रन्थोंका जापानी भाषामें अनुवाद हो चुका है और हो रहा है। 'रूसो' के Contract Social-के जापानी भाषामें अनुवाद होने पर, जापानमें सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनका सूत्रपात हुआ था। ब.लंडरन, लिटन, डिसरैली, रायकन, सेक्सपियर, मिल्टन, दुर्गनिभ, कार्लाइल, टोदत्, एमर्सन, ह्यगो, हाइन, डिकुइन्सि, डिकेन्स्, कोरनर, गेटे प्रभृति पाश्चात्य लेखकोंने जापान पर अपना यथेष्ट प्रभाव डाला है और उनके प्रायः सभी ग्रन्थ अनूदित हुए हैं। जापानमें मौलिक साहित्यका सूत्रपात भी फिलहाल ही चला है।

जापानमें चित्रकला—जापानियोंमें यह एक बड़ा भारी गुण है कि वे किसी भी चीजको छोटी समझ कर उसकी अवहेला नहीं करते, सभी चीजोंमें उन्हें एक प्रकारका सौन्दर्य नजर आता है। स्त्री और पुरुषमें स्रष्टाकी जो महिमा प्रकाशित हुई है, वह पशु और पक्षी वा कीट और पतङ्गोंमें भी विद्यमान है। क्या छोटा और क्या बड़ा क्या सुन्दर और क्या असुन्दर, जापानी चित्रकारके लिए सभी समान हैं। बङ्गालके शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ लिखते हैं—"जापानी शिल्पोंके लिए सुन्दर और असुन्दर, स्वर्ग और मर्त्य सब बराबर हैं। वे गोचर और अगोचर समस्त पदार्थोंका मर्म ग्रहण कर लेते हैं और उस मर्मको सहजमें साफ तौरसे प्रकट कर सकते हैं।"

जापानी चित्रकारोंकी रेखाङ्कणकी एक पृथक् भाषा है। पहाड़, नदी, समुद्र, वृक्ष, पत्थर आदि विभिन्न पदार्थोंकी विशेषता प्रकट करनेके लिए वे विभिन्न प्रथाओंका अवलम्बन करते हैं। वे दो एक बार कूंची फेर कर नितान्त नगण्य वस्तुमें भी, जो हमारी दृष्टि आकर्षित नहीं करती, अपूर्व सौन्दर्य भर देते हैं। यह बात अन्य देशोंके चित्रकारमें नहीं पाई जाती।

जापानमें एक ऐसा मैत्रीभाव है, जिससे उन लोगोंने विश्वके समस्त पदार्थोंको सुन्दर बना डाला है। जापानी लोग यथार्थमें सौन्दर्यके उपासक हैं। जापान देशने जापानियोंको सौन्दर्यप्रिय बना दिया है। जापान देश मानो एक तसवीरोंकी किताब है—इसके एक छोरसे दूसरे छोर तक चले जाओ, मालूम होगा, मानो तसवीरके पन्ने उलट रहे हैं।

जापानके प्राचीन चित्रकारोंमें, अधिकांश कोरियन शिल्पियोंके नाम देखनेमें आते हैं। उस समय राजकुमार 'शोटाकू'ने उन लोगोंको यथेष्ट उत्साहित किया था। उन्होंने अपनी तसवीर भी खींची थी। नारा-युगमें (७०८ से ७८४ ई० तक) अनेक सुन्दर चित्र बनाये गये थे। होरिउजि-मन्दिरमें भी उस समय बहुतसे चित्र खींचे गये थे। ये चित्र हमारे अजान्ताके चित्रके समान हैं। अजान्ताकी १ नं० कोठरीमें प्रवेश करते समय दरवाजेके बाईं ओर बोधिसत्वकी जो मूर्ति है, उसके साथ 'होरिउजि' मन्दिरकी बोधिसत्वकी मूर्तिका सादृश्य है।

नारा-युग वा बौद्धयुगके बाद 'असन इय मातो' चित्रकारोंका युग है। इनमें सबसे प्रसिद्ध चित्रकार 'हलकानोका' थे, जो ८वीं शताब्दीमें हो गये हैं। इनके श्रेष्ठ चित्रका नाम है "नाचिका जलप्रपात"। इसमें पर्वत-शिखरके ऊपर मेघाच्छन्न रात्रि है और झरनेका जल बहुत ऊंचेसे गिर रहा है, ऐसा दृश्य दिखलाया गया है।

इसके बाद 'टोसा'-चित्रकारोंका युग है। ये प्रधानतः दरबारका दृश्य और सम्राट्, उमरावोंका चित्र खींचते थे।

इसके बाद 'असल सेसु' और अन्यान्य चित्रकारों का युग है सेसु एक प्रतिभाशाली और उच्चकोटिके दृश्यचित्रकार थे ।

ईसाकी १६वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध 'कालो' चित्रकारों का युग प्रारम्भ हुआ। 'कालो' जापानके चित्तको मुग्ध कर दिया था। आज तक उनके चित्र सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। इनके चित्रोंमें रेखाकी दृढ़ता, वर्णकी उज्ज्वलता तथा आलोक और छायाकी विशेषता उल्लेखयोग्य है।

'कालो'-सम्प्रदायमेंसे 'कोरिन', 'ओकिओ' आदि और भी कुछ सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई थी। 'कोरिन' सम्प्रदायके चित्रकार लाख पर चित्र बनानेमें और 'ओकिओ'-चित्रकार स्वाभाविकताके लिए प्रसिद्ध थे। इनमें 'सोसेन'ने बन्दरकी और 'किशादो'ने शेरकी तसबीर बना कर अपना नाम कमाया था।

पहले जब जापानका यूरोपके साथ संस्पर्श था, उस समय जापानके लोग यूरोपके चारुचित्रको देख कर यहां तक मुग्ध हो गये थे कि उन्होंने अपने शिल्पकी अवहेला कर यूरोपीय शिल्पका आदर किया था। इनमें 'गाहो' प्रधान थे, ये दृश्य-चित्र बनाते थे।

ओकिओके समयमें जापानी तसबीर जनसाधारणकी सम्पत्ति हो गई थी। इसके स्थापयिताका नाम 'माता हेई' था। इन्होंने लकड़ीके ब्लाकसे तसबीर छाप कर पैसे पैसेमें बेची थीं। दैनन्दिन जीवनकी छोटी छोटी घटनाओंके तथा नाटकके अभिनेता और सुन्दरी रमणियोंकी तसबीरें खूब बिकती थीं। साधारण मजूर लोग भी इन तसबीरोंको खरीदते थे। 'ओकिओ'के प्रयत्नसे पश्चिममें भी जापानी चित्रोंका यथेष्ट प्रचार हो गया था। किन्तु जापानके शिल्पी सम्प्रदायमें 'ओकिओ'का विशेष आदर नहीं है। उनका कहना है कि, वह छापेकी चीज है, उसमें चित्रकलाकी असली चीज नहीं है।

इस समय जीवित शिल्पियोंमें श्रेष्ठ चित्रकार, 'टाइकमसन्' हैं। ये भारतवर्षमें एक बार घूमने आये थे। इन्हींके शिल्पने यूरोपके कवलसे जापानी शिल्पकलाकी रक्षा की है। इनके पास बहुतसे शिल्पी शिक्षा पाते हैं।

कुछ यूरोपीय चित्रकारों पर भी जापानी शिल्पका प्रभाव पड़ा है। उस सम्प्रदायको Impressionist कहते हैं। इस सम्प्रदायके प्रधान शिल्पीका नाम Whistlhr है।

जापानमें चित्रकलाका प्रादुर्भाव प्रधानतः बौद्धधर्मके प्रभावसे हुआ है, इसलिए उसका अन्तरतम लक्षण आध्यात्मिकता है। यही कारण है कि जापानी चित्रकलामें व्यङ्गचित्रको कम स्थान मिला है।

जापानके प्राचीनतम व्यङ्गचित्रकारका नाम था 'तोबा' इस समय वे व्यङ्गचित्रके जन्मदाता माने जाते हैं। 'कियोतो'के निकटस्थ 'ताकायामा'-मंदिरमें उनके बनाए हुए चार चित्र-ग्रन्थ संगृहीत हुए हैं। पहले और दूसरे ग्रन्थमें मेंढ़क, खरगोश, सियाल आदिके व्यङ्गचित्र हैं। तीसरेमें सांड़, घोड़ा, शेर आदिके तथा चौथे ग्रंथमें मनुष्यके व्यङ्गचित्र हैं। इनमें मेंढ़क और खरगोशकी लड़ाई, मेंढ़कोंकी कुश्ती वगैरह देखनेके लायक है। एक चित्रमें खरगोशको धर्मशास्त्र पढ़ते दिखलाया गया है, जिसे देख कर हंसे बिना रहा नहीं जाता।

जापानके वर्तमान प्रधान चित्रकारोंमें अन्यतम श्रीयुक्त 'नाकामुरा फुमितसु'का कहना है कि "जापानी चित्रोंमें एक प्रधान दोष यह है कि जीवजन्तुओंकी तसबीरोंमें वास्तविकता वा स्वाभाविकता नहीं आती। इसका कारण यह है कि चित्र जीवन्त जन्तुओंको देख कर नहीं, बल्कि मनकी कल्पनासे खींचे जाते हैं। परन्तु 'तोबा' ऐसा न करते थे ; वे असली चीजको देख कर ही उसका चित्र खींचते थे। यही कारण है कि वे जन्तुओंके हर्ष, विषाद, भय आदिकी हूबहू आकृति बना गये हैं, जिसमें व्यङ्गको तो और भी अच्छी तरह परिस्फुटित कर दिखाया है।"

आजकल जापानमें 'तोबा' द्वारा प्रवर्तित व्यङ्गचित्रोंका खूब प्रचार है। आधुनिक व्यङ्ग-चित्रकारोंमें सबसे ऊंचा स्थान 'कोवायसी कियोचिका'ने पाया है। इन्होंने जापानमें पाश्चात्य रीतिके अनुसार व्यङ्ग-चित्रका प्रवर्तन किया है।

जापानमें बौद्धधर्म --भारतवर्षमें बौद्धधर्मकी उत्पत्ति होने पर भी, जापानने भारतसे बौद्धधर्म ग्रहण नहीं

किया। प्राचीनकालसे ही जापानका चीनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह बात पहले कह चुके हैं। कहा जाता है कि जिस समय चीनमें बौद्धधर्मका घोरतर आन्दोलन हुआ था, उस समय जापान चीनसे सर्वशेष परिचित था और फिर ५५२ ई०में चीनदेशसे उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया।

बौद्धधर्म चीनकी अपेक्षा जापानमें अधिकतर बद्धमूल हुआ है; इसके कई एक कारण हैं। चीनमें कनफुचिका धर्म जातीय धर्मके रूपमें परिगणित हुआ था। राजाओंने उसी धर्मको राष्ट्रीय धर्म बतलाया था। इसलिए चीनमें बौद्धधर्मका उतना प्रचार नहीं हुआ, जितना कि जापानमें हुआ है। जापानमें बौद्धधर्मके आविर्भावसे पहले कनफुचि-धर्मका अधिक प्रचार नहीं हुआ था, इसलिए छोटेसे लगा कर बड़े तक, सबने बौद्धधर्मको खूब अपनाया।

बौद्धधर्मके साथ जापानकी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाके सिवा सैन्यव्यवस्थाका भी घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। यही कारण है कि जापानमें बौद्धधर्मकी अनेक शाखाएं हो गई हैं। भारतवर्ष अथवा चीनकी तरह यहांकी शाखाओंने सामान्य पार्थक्योंका अवलम्बन नहीं किया है। वहां एक शाखाका दूसरी शाखासे विभिन्न प्रकारका मतभेद पाया जाता है और उस पर प्रतिद्वन्द्विता होती है।

जापानमें बौद्धधर्मकी बारह शाखाएं हैं। परन्तु इनका नाम सर्वदा एकसा नहीं रहता। साधारणतः उनके नाम इस प्रकार है—१ कुशा, २ जो-जित्सु, ३ रिट्सु वा रिसु, ४ सनरन, ५ होसो, ६ केगोन, ७ टेण्डे, ८ सिङ्गन, ९ जोदो, १० जेन, ११ शिन और १२ निचेरेन।

ऐतिहासिक दृष्टिसे ये शाखायें सत्य प्रतीत होती हैं। परन्तु १ली, २री, ३री, और ४थी शाखा प्रायः निर्मूल हो गई है। सुतरां वर्तमानमें कोई कोई इस प्रकार भी बारह शाखा गिनाते हैं—१ होसो, २ केगोन, ३ टेण्डे, ४ सिङ्गन, ५ युजु वा नेम्बुत्सु, ६ जोदो, ७ रिञ्जे, ८ सोदो, ९ ओवाकु, १० शिन, ११ निचेरेन और १२ जो।

इनमें ७वीं, ८वीं और ९वीं शाखा जेनकी ही उपशाखाएं हैं तथा ५वीं और १२वीं शाखा अत्यन्त क्षुद्रकाय हैं। पहली तालिकामेंसे प्रारम्भकी ८ शाखाओंको जापानी लोग 'हास्' कहते हैं और वे चीनसे लाई गई हैं। उनमें चीनके 'नारा' और 'हे-यान' युगके बौद्धधर्मका वैशिष्ट्य अब भी विद्यमान है। शेष चार शाखाओंका आविर्भाव ११७० ई०के बाद हुआ है। जापानमें उनकी सृष्टि नहीं हुई, किन्तु नवीनतासे संगठन अवश्य हुआ है। समयानुसार श्रेणीभेद करनेसे प्रत्येक शाखाकी प्रतिष्ठाका समय इस प्रकार निरूपित होता है—

१। सप्तम शताब्दी—सान्रन ६२५ ई०
जोजित्सु ६२५ ई०
होसो ६५८ ई०
कुशा ६६० ई०

२। अष्टम शताब्दी—केगोन ७३५ ई०
रित्सु ७४५ ई०

३। नवम शताब्दी—टेण्डाई ८०५ ई०
सिङ्गन ८०६ ई०

४। द्वादश और त्रयोदश शताब्दी—
युजु नेम्बुत्सु ११२३ ई०
जेन १२०२ ई०
शिन १२२४ ई०
निचिरेन १२५३ ई०
जी १२७५ ई०

जापानी बौद्धधर्मकी प्रत्येक शाखा जो उल्लेखयोग्य हैं, महायान-सम्प्रदायके अन्तर्गत है। हीनयान सम्प्रदायके मतका सिर्फ कुस्, जोजित्सु और रिस् शाखा ही अनुवर्तन करती थी। परन्तु इनमेंसे पहलेकी दो शाखाएं तो विलुप्त हो गई हैं, तीसरीके कुछ अनुयायी मौजूद है और चौथी शाखा महायान सम्प्रदायकी विरोधी नहीं है—सिर्फ आचार-व्यवहारमें थोड़ासा भेद मानती आ रही है।

होसो और केगोन ये दो शाखाएं इस समय मौजूद तो हैं, पर उनका अस्तित्व धर्मभावकी रक्षाके लिए नहीं, बल्कि कुछ सम्प्रदायी जमींदारोंकी रक्षाके लिए है।

८वीं शताब्दीमें स्थापित 'टेण्डाई' और 'शिङ्गन' शाखा अब भी सम्पूर्ण भावसे विद्यमान है। प्रायः सात सौ वर्ष पहले भी विशेषतः फूजिवारा युगमें इनका प्रभाव सिर्फ कला और साहित्य पर ही निबद्ध न था, बल्कि राष्ट्रनैतिक और सेना-सम्बन्धी कार्यों में भी उनका प्रभाव देखा जाता था। कारण, ये अपने सम्प्रदायमें कुछ भिक्षुक सैनिक रखते थे और कभी कभ भाड़े पर भी सेना लाते थे। यही कारण है कि राष्ट्रशक्ति सर्वदा इनसे डरा करती थी। ईसाकी १६वीं शताब्दीमें यह आफत राष्ट्रके लिए इतनी हानिकारक हो गई कि 'नोबुन्गा' और 'हिदयओशि'ने 'हाईजान' और 'नेगोरो' इन दो स्थानोंके मठोंका ध्वंस कर डाला। इस प्रकार धर्मसम्प्रदायकी राष्ट्रीयशक्ति नष्ट हो गई।

ईसाकी १२वीं शताब्दीमें बौद्धधर्मकी नवीन नवीन शाखाएं अभ्युदित हुई और वे साधारण लोगोंकी धर्माकाङ्क्षाकी निवृत्ति करने लगी तथा जापानके धर्म-जीवनके अस्तित्वका परिचय देने लगी।

इन नवीन शाखाओंमें, 'जेदो' और 'शिनसू' नामक दो शाखाएँ यह शिक्षा देती हैं कि "निर्वाणप्राप्तिके लिए सबसे उत्कृष्ट उपाय 'आमिदा'से कृपा-भिक्षा करना है। 'आमिदा' अपने उपासकोंके लिए—उनकी मृत्युके बाद—स्वर्गमें वासस्थान नियुक्त कर देते हैं।" जेदो शाखाका मत प्राचीन रीतिके अनुसार है; चीनकी 'आमिदा'-उपासनासे इसका विशेष पार्थक्य नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'शिनसू'-शाखाकी उपमा संसारमें दूसरी नहीं है। इस शाखाके पुरोहित विवाह करते और मांस खाते हैं। इसकी कोई स्थायी आय नहीं है; साधारणके स्वेच्छाप्रदत्त दान ही इसका आधार है। इस शाखाके धर्म-मन्दिर जापानमें सबसे बड़े और विशिष्टताके लिए हुए हैं। इस शाखाके पुरोहितोंमें ऊँच नीचका भी भेद होता है।

बौद्धधर्मकी 'निचिरेन' शाखा जापानकी निज सम्पत्ति है। इस शाखाने 'आमिदा'-उपासनाके विरुद्ध 'शाक' वा ऐतिहासिक बुद्धकी पूजाका पुनः प्रचलन करना चाहा था। इसके प्रतिष्ठाता 'निचिरेन' जापानी इतिहासके एक भास्वर मूर्ति थे। उन्होंने धर्मप्रचारके साथ साथ राजनैतिक क्षेत्रमें भी यथेष्ट कार्य कर दिखाया था। 'आमिदा'के उपासकोंके समान बहुसंख्यक न होने पर भी, इस सम्प्रदायके शिष्य जापानमें बहुत हैं।

जापानी 'जेन' शब्द ध्यान शब्दका अपभ्रंश है। 'जेन' शाखा चीनके बोधिधर्म द्वारा प्रवर्तित हुई थी। कहा जाता है कि ईसाकी ७वीं शताब्दीमें यह धर्म प्रवर्तित हुआ था; किन्तु बादमें यह विलुप्त हो गया। इसके परवर्ती 'अशिकगा'-युगमें इसका प्रभाव खूब बढ़ गया था। इस सम्प्रदायके पुरोहितोंने फ्रान्सके कार्डिनालोंकी तरह राजनैतिक क्षेत्रमें नेतृत्व किया था। इस सम्प्रदायके विषयमें प्रधान उल्लेखयोग्य बात यह है कि, जापानके सैनिक-श्रेणीके लोगोंने भी इसे अपनाया था। इन शाखाओंके भी अनेक भेद-प्रभेद हैं।

जापानमें जिन्तो-धर्म—जापानमें गौतमबुद्ध, ईसा मसीह वा कनफुची, इन सबके उपासक मौजूद हैं। परन्तु जिन्तो-धर्म जापानका राजधर्म है और इसीलिए वह प्रत्येक स्त्री-पुरुषका धर्म हो गया था। इसके द्वारा उनके दैनिक जीवन और चिन्ताशक्तिका संगठन हुआ है। इसीने जापानी-हृदयमें अपूर्व स्वदेशहितैषिताका भाव पैदा किया है। यूरोप और अमेरिकाके धर्ममें वाह्याडम्बर और चाकचिक्य होने पर भी, जापानके सामने वह प्राणहीन निर्जीव है। जापानके निर्जन मन्दिरोंके साथ उनकी तुलना करनेसे ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो जापानमें प्रकृत धार्मिकोंका अभाव हो है; किन्तु गहरी निगाहसे देखने पर यह साफ मालूम हो जाता है कि जापानके जनहीन देवालयोंमें—वाह्याडम्बर न होने पर भी जड़ताका लेशमात्र नहीं है।

जिन्तो-धर्मके विषयमें 'ईफकाडियो हार्न' नामक सुविख्यात विद्वान्का कहना है—'जिन्तो धर्ममें ऐसी कोई निगूढ़ जीवनीशक्ति नहीं है, जो पूजाचार और जनश्रुतिसे भी गम्भीर हो। इसमें तीन विशेष गुण हैं—१ सन्तानोचित धर्म वा मातापिताके प्रति अनुराग, २ कर्तव्यकर्ममें आसक्ति और ३ कारणका अनुसन्धान बिना किये ही किसी एक विशेष तत्त्वके लिए प्राण-विसर्जन देना। यह धर्म अवश्य है, पर नैतिक शक्तिमें परिवर्तित है। यही जापानका हृदय है।"

इस धर्मका प्रधान गुण साम्यवाद है। इसमें किसी प्रकारका जाति-विचार नहीं है, तन्त्र मन्त्र भी नहीं है। यह न तो स्वर्ग पहुंचानेकी तसल्ली देता और न नरकमें पटकनेका भय। इसमें मूर्ति पूजा नहीं है, पुरोहितोंका अत्याचार नहीं है यहां तक कि धार्मिक वादविवाद और उससे मनोमालिन्य होनेका भी डर नहीं है। ऐसी दशामें यह कहना बाहुल्य न होगा कि इस देशके इतिहासमें धार्मिक वाग्‌वितण्डा, कलह वा युद्धादिका उल्लेख ही नहीं है। यहां सभी धर्मोंको स्थान मिल सकता है। शिन्तो धर्मका आदर्श महत् है, इसमें सन्देह नहीं।

जापानके अधिकारियोंने विदेशियोंको तभी दण्डित किया है, जब उन्होंने धर्म-प्रचारकी ओटमें राजनैतिक चाल चल कर साम्राज्यके अनिष्ट करनेकी चेष्टा की है। जापानी इतिहासके ज्ञाता इस बातको अवश्य जानते हैं, कि साम्राज्यकी विपदाशङ्कासे जापानकी तलवार अवश्य चमक उठी है, पर केवल धर्म-विश्वासके लिए उसने कभी किसी पर अत्याचार नहीं किया है। कोई कोई पाश्चात्य विद्वान् इस बात पर हंस देते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है।

इस धर्मका प्रधान अङ्ग है प्रकृतिकी पूजा करना और मृत व्यक्तिके लिए सम्मान दिखाना। जापान जैसी सौन्दर्यप्रिय जातिको स्वदेश प्रति और देशभक्तिमें दीक्षित करनेके लिए इससे उत्कृष्ट धर्म दूसरा नहीं हो सकता।

जापान पाश्चात्यका मोह अब भी नहीं छोड़ सका है। यही कारण है कि अब वह पार्थिव उन्नतिके लिए जी-जानसे कोशिश कर रहा है। पारमार्थिक विषयमें जापानका बिलकुल ही नहीं है। जापानके शिक्षित व्यक्ति इस समय धर्मसे सम्पूर्ण उदासीन हैं।

जापानकी सामाजिक-प्रथा—पुरुषोंकी तरह जापानकी स्त्रियां भी अत्यन्त परिश्रमशील और कर्तव्यपरायण होती है। छोटे छोटे बच्चोंको पीठसे बांध कर आसानी से सब काम किया करती हैं।

जापानी ऊपरसे जितने साफ सुथरे रहते हैं, भीतरसे उतने नहीं। शौचके लिए ये पानी काममें न ला कर कागजसे ही काम चलाते हैं। ये किसी बड़े पात्रमें पानी रख कर दोनों हाथोंसे मुंह धोते है और उस मैले पानी-को ज्योंका त्यों पड़ा रहने देते हैं। इनकी स्नान करने-की रीति बहुत ही भद्दी है। पहले स्त्री और पुरुष दोनों नंगे हो कर एक हौजमें नहाया करते थे, किन्तु अब नव-सभ्यताके प्रकाशमें उसका कुछ परिवर्तन हो गया है—स्त्री और पुरुष भिन्न भिन्न हौजोंमें नहाने लगे हैं। किन्तु एक साथ २०।२५ स्त्री वा पुरुषोंका नग्नावस्थामें नहाना अब भी नहीं जारी है। नहाते वक्त भद्र अभद्र-का वा बड़े छोटेका भेद नहीं रहता, सब एक ही हौजमें नहाते और मुंह आदि धोया करते हैं। एक ही हौजमें लगातार सौ दो सौ आदमी नहा जाते हैं, पर तो भी उसका पानी नहीं बदला जाता। इनके स्नानका कोई निर्दिष्ट समय नहीं है। 'फ़ूरो' नामके स्नाना-गार रातको १२ बजे तक खुले रहते हैं, उनमें जिसकी जब तबीयत हो नहा आते हैं। साधारणत: ये दिन भर परिश्रम करनेके बाद सोनेसे पहले रातको नहाते हैं।

जापानके लोग सामको ६।७ बजेके भीतर ही सन्ध्या भोजन कर लेते हैं। सुबह रसोई बनानेके लिए ज्यादा समय न मिलनेसे तथा दोपहरकी काममें लगे रहनेसे भोजनकी व्यवस्था ठीक नहीं होती; इसलिए सामको ही उनका असली 'गोसी' वा आहार बनता है। साम-को ये चार पांच तरहकी तरकारियां और कई तरहके तेमन बनाते हैं। किन्तु दोपहरको साधारण भोजन से ही काम चला लेते हैं।

कोई भी परिचित वा अपरिचित जापानी जब किसी घरमें प्रवेश करना चाहता है, तब वह असभ्योंकी तरह बाहरसे चिल्लाता वा दरवाजेमें धक्का नहीं लगाता; बल्कि "माफ कीजिये" कह कर उंगलीसे दरवाजा खटकाता है। पलक मारनेके साथही घरकी मालकिन द्वार पर आ जाती है और "पधारिये" कह कर आगन्तुक व्यक्तिको घरमें बुलाती है। आगन्तुक भी बार बार "धन्यवाद" देता हुआ घरमें प्रवेश करता है। इस 'धन्य-वाद'के लेन देनमें करिब २-३ मिनट समय चला जाता है। फिर घरमें जा कर वह एक प्याला चाय और कुछ 'बिस्कुट' खाता है।

जापानियोंके मृतदेह-संस्कारमें भी यथेष्ट वैचित्र्य पाया जाता है। जापानी रीतिके अनुसार मुर्देको २५ घण्टे तक घरहीमें रखना पड़ता है। इस समय मृत-व्यक्तिके परलोकमें मङ्गलके लिए पुरोहित फल, पिष्टक, धूप और प्रदीप द्वारा पूजा करते हैं। इस पूजामें फूलों आदिका व्यवहार नहीं होता। हां जिस डोली वा बक्समें मुरदा रहता है, उसे फूलोंसे अवश्य सजाते हैं। इस पूजामें बौद्धधर्मावलम्बी पुरोहित चीन भाषामें मन्त्र पाठ करते हैं। मुरदा पुरोहितके सामने, एक सुरम्य सन्दूक वा डोलीमें रक्खा जाता है और ऊपरसे एक बहुमूल्य वस्त्र ढक दिया जाता है। मृतव्यक्तिके आत्मीय स्वजन साफ सुथरे कपड़े पहन कर चारों तरफ बैठ जाते हैं। देखनेसे यही मालूम होता है, मानो किसी बृहत् पूजनका अनुष्ठान हो रहा है। किसीके मुखसे शोक वा दुःख प्रकट नहीं होता; सभी रोजकी तरह प्रसन्नचित्त रहते हैं। जापानियोंका सिद्धान्त है कि 'जिसने जन्म लिया है, वह मरेगा अवश्य हीं' फिर उसके लिए दुःख वा शोक करना वृथा है। ऐसी दशामें हृष्टचित्तसे उसके परलोक सुधारने वा मङ्गलके लिए कामना करना ही युक्तियुक्त है। साधारणतः जापानी लोग मृतव्यक्तिको उसके जन्म-स्थानमें समाधिस्थ करते हैं। यदि किसीको मृत्यु दूर देशमें हो, तो उसका दाह किया जाता है तथा उसके दांत और कुछ केश जन्मस्थानमें गाड़े जाते हैं। जन्म-भूमि जापानियोंके लिए कितनी प्रिय वस्तु है. यह बात ऊपरके दृष्टान्तसे सहज ही समझ सकते हैं।

समाधि शेष होने पर ४१ दिन तक अशौच रहता है और समाधिस्थानमें प्रति मास पिष्टक वा अन्यान्य खाद्यद्रव्य भेजे जाते हैं। माता अथवा पिताको मृत्यु होने पर एक काष्ठ पर पुत्र उसके नाम लिख कर घरके एक कोनेमें स्थापित करता है। प्रतिदिन सुबह साम उस स्थानमें कुछ खाद्यद्रव्य दिया जाता है। इस तरह जापानमें पूर्वपुरुषोंकी पूजा प्रचलित हुई। प्रत्येक जापानीके मकानमें पितृपुरुषोंकी पूजाके लिए एकान्त स्थान निर्दिष्ट है। वहां नाना उपकरणों द्वारा उनकी पूजा की जाती है। ये पूर्व पुरुषोंको देवताके समान पूजा करते हैं। वर्षमें एकबार उनकी पूजा की जाती है। किसीके पिता अथवा माताकी मृत्यु होने पर कई वर्ष तक उनकी प्रतिमास पूजा की जाती है। पीछे वर्षान्तमें एकबार पूजा की जाती है।

जापानियोंमें खास कर स्त्रियां खूब सुबह उठती हैं और अपना काम करने लग जाती हैं।

जापानकी तरह पादुकाओंके विविध और विचित्र विभाग और कहीं भी नहीं है। देशीय पादुकाएं प्रधानतः ६ भागोंमें विभक्त हैं—१ 'गेटा'—यह खड़ाऊं-की भांतिकी होती है, किन्तु इसमें खूंटी नहीं होती। वहां यही प्रधान समझी जाती है। इसे पहन कर लोग १५।२० मील तक चल सकते हैं। २ 'असीदा'—इसकी गठन 'गेटो'के समान ही है; फर्क सिर्फ इतना ही है कि, इसके नीचे ७।८ अंगुल लम्बे दो पाये लगे रहते हैं। इसका व्यवहार सिर्फ बरसातके दिनोंमें ही होता है। ३ 'ज्वोरी'—इसकी आकृति ठीक बर्मा-स्लीपर जैसी है। फर्क इतना ही है कि बर्मा-स्लीपर चमड़ेकी होती है और यह पुआल वा कमचियोंकी। ४ 'वाराजो'—इसको प्रायः 'ज्वोरी' जैसी ही है; सिर्फ इसमें थोड़ीसी रस्सी लगी रहती है, जिसे पैरसे बांध कर चलना पड़ता है। चलते समय इसमें स्लीपरकी तरह आवाज नहीं होती। इसे किसान लोग बनाते हैं। ५ 'फकागुट'—यह जाड़ेमें बर्फके ऊपरसे चलनेके लिए व्यवहृत होती है। ६ "सेट्टा" इनके सिवा जापानमें और भी बहुत तरहके विदेशी जूतोंका प्रचलन है, जो बनते वहीं है पर आदर्श विदेशका है।

जापानमें प्रतिवर्ष मृत्युसंख्याकी अपेक्षा जन्मसंख्या ५ लाख अधिक हुआ करती है। इसीसे मालूम हो सकता है कि जापानमें लोकसंख्या किस तरह बढ़ रही है। यह ठीक है कि दरिद्रके ज्यादा सन्तानका होना दुर्भाग्य-का चिह्न समझा जाता है, किन्तु जापानमें सन्तानको शिक्षा दीक्षाका भार सिर्फ पितामाता पर ही नहीं रहता, बल्कि सामाजिक सहायताकी भी वहां उत्तम व्यवस्था है। यही कारण है कि वहांकी भी दरिद्र-सन्तान खाद्यद्रव्य वा शिक्षा-दीक्षाके अभावसे अशिक्षित नहीं रहती। १८२१ ई०में मिसेस मार्गरेट सानगार

नामक एक मार्किनमहिला जापानमें जन्म-संरोध-प्रणालीके विषय वक्तृता देने गई थीं, किन्तु कलकत्ता विश्वविद्यालयके अध्यापक श्रीयुक्त आर० किमूराका कहना है कि उनकी बात पर किसीने भी ध्यान नहीं दिया था। इससे मिसेस मार्गरेट असन्तुष्ट हो कर प्रचारार्थ कोरिया और चीन चली गईं।

जापानियोंकी विवाह-प्रणाली भारतसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वहां भी पहले पुत्रकन्याओंका विवाह-सम्बन्ध मातापिता ही करते हैं और उनकी असम्मति न होने पर "नाचाद" भेज घटक द्वारा सम्बन्ध स्थिर करते हैं। यहां जैसे विवाह-कार्यको धर्मानुष्ठान समझ कर पुरोहितों द्वारा उसका कार्य सम्पादन होता है, वैसा जापानमें नहीं होता। जापानियोंके लिए विवाह कार्य एक सामाजिक अनुष्ठानके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसीलिए वहां विवाहके सब कार्य घटक द्वारा ही सम्पादित होते हैं।

जापानमें ऐसा कानून है कि पुरुषकी उमर १७ और स्त्रीकी उमर १५ वर्ष होने पर, उन्हें विवाह करनेका अधिकार हो जाता है। परन्तु इस कानूनको कोई मानता नहीं। सामाजिक व्यवहार-क्षेत्रमें स्त्रियां १८ से २५ और पुरुष २२ से ३५ वर्षके भीतर व्याह कर लेते हैं। कहीं कहीं इससे भी ज्यादा उम्रमें व्याह होता है। शिक्षालाभ और आर्थिक असामर्थ्य ही प्रधानतः इस विलम्बमें कारण है।

घटक और पितामाताके साथ मुलाकात होने पर लड़के और लड़कियां भी परस्पर मिल कर भावी स्त्री वा स्वामीको चुन लेती हैं। लड़कीको गोद भरते समय लड़केका बाप लड़कीवालेको रुपया देता है। धनी व्यक्ति पांच छः सौ रुपया तक दे डालता है। रुपयेके साथ एक लाल वृहत् सामुद्रिक भेटकी' मछली उपहारमें देता है, जो वहां शुभ समझी जाती है। इस दिन लड़कीवाला लड़केवालेको बड़े आदरके साथ जिमाता है। जिमानेमें पहले सामाजिक नियमानुसार शराब पिलाता है और साथ ही विवाहमङ्गलके गीत गाये जाते हैं। इसी दिन विवाहका मुहूर्त शोधा जाता है।

इसके प्रायः तीन चार माह बाद विवाह हो जाता है। जापानमें रुपये पैसेके लेन-देन नहीं होता, किन्तु लड़कीवाला लड़कीको पोशाक और गहना बहुत बनवा देता है।

जापानी लोग जमीन पर थाली रख कर नहीं खाते और न अङ्गरेजोंकी तरह टेबिल पर ही खाते हैं। उनके भोजनके कमरेमें १ फुट ऊंचा तख्त बिछा रहता है, जिस पर १ इञ्च मोटी चटाई रहती है।

उस पर स्त्रीपुरुष सब एकसाथ वीरासनसे बैठते हैं और अपने अपने सामने चौकी पर थाली रख कर भोजन करते हैं। किन्तु आजकल पाश्चात्यके अनुकरणसे कुछ लोग टेबिल पर भी खाने लगे हैं। ये ज्यादातर चीना-मिट्टीके बरतन ही काममें लाते हैं।

विशेष भोज उपस्थित होने पर भात ही खिलाया जाता है, किन्तु उसके साथ नाना प्रकारके व्यञ्जन और मिठाई भी परोसी जाती है और बड़े बड़े भोजोंमें 'गेसा' बालिकाएं परोसनेके लिए नियत की जाती हैं, जो नाट्य-गीतकलामें सुदक्ष होती हैं। हर एक 'गेसा' बालिकाको इस कामके लिए १०) रु० घण्टेके हिसाबसे मेहनताना दिया जाता है। इनमेंसे कुछ परोसती हैं, कुछ गाती हैं, कुछ बजाती हैं और कुछ हावभाव दिखा कर नाचतीं वा अभिनय करती हैं; सारांश यह है कि ये भोजन करनेवालोंको सब तरहसे खुशदिल रखती हैं। कभी कभी, यदि बन्दोबस्त ठीक हो तो, रात भर इसी तरह आनन्दभोज होता रहता है।

जापानमें एक प्रकारकी देशीय पोशाक प्रचलित है, जो 'किमोनो' कहलाती है। १८६८ ई०में जब पहले पहल जापानी पाश्चात्य सभ्यतासे परिचित हुए थे, तभीसे जापानके पुरुष काम काजके सुभीतेके लिए यूरोपीय पोशाकका व्यवहार करने लगे हैं। यही कारण है कि इस समय जापानमें क्या कर्मस्थल और क्या विद्यालय, सर्वत्र ही कोट पतलून नजर आने लगे हैं। इस लिए आजकल जापानके उच्च और मध्यम श्रेणीके लोगोंको बाध्य हो कर देशीय और पाश्चात्य दोनों प्रकारकी पोशाक रखनी पड़ती है।

'किमोनो' पोशाकके नीचे जापानी स्त्री और पुरुष भिन्न भिन्न पोशाक पहनते हैं। पुरुष गलेसे कमर तक

एक तरहकी गञ्जी और उसके नीचे 'हाफ्-पैण्ट'से छोटा 'पैण्ट' पहनते हैं तथा स्त्रियां लुंगी पहना करती हैं। भीतरकी इस पोशाकके ऊपर हर वक्त 'किमानो' पहना जाता है, जो अंगरखा सरीखा होता है। इसमें बटन नहीं होते; दोनों पल्लों को सम्हाल कर ऊपरसे कमर पर कपड़ेकी पट्टी बांध कर काम लिया जाता है। इस पट्टीको जापानी भाषामें 'ग्रबी' कहते हैं। पुरुषोंकी 'ग्रबी' लम्बाई चौड़ाईमें चद्दर जैसी होती है, किन्तु स्त्रियोंकी 'ग्रबी' लम्बाईमें आठ दश हाथ लम्बी होने पर भी चौड़ाईमें आध हाथसे ज्यादा नहीं होती। स्त्रियोंकी 'ग्रबी' बेशकीमती और देखनेमें खूबसूरत होती है। स्त्रियां इसे दो तीन फेरा कमरसे लपेट कर बाकीका हिस्सा पीछेकी तरफ लटकाती हैं।

कार्तिकसे चैत्र तक छ मास जापानमें शीत ऋतु रहती है। इन दिनों वहांके लोग रुईदार पोशाक पहनते हैं।

जापानी स्त्रियां नाचते समय सिर्फ जमीनसे पैर छुआती हुई इधर उधर घूमा करती हैं; पैरोंकी आवाज सुनाई नहीं पड़ती। नाचते वक्त ये तरह तरहकी शक्ल बनाती हैं; कभी प्रजापतिकी तरह पंख फैलाती है और कभी आपसमें एक दूसरेका हाथ पकड़ कर शैरका आकार बना लेती हैं। तात्पर्य यह है कि इनका नाच बड़ा विचित्र और मनोमुग्धकर होता है। नाच होते समय कुछ युवतियां 'सामिसेन' और डमरू द्वारा कनसार्ट (ऐक्यतान) बजाती हैं। नाचकी पोशाक इतनी नीची होती है कि नाचनेवालीके पैर तक नहीं दीखते। इसीलिए नाचते समय उनकी शोभा रंगीन बादलोंकी तुलना करने लगती है।

जापानकी शिक्षा-पद्धति—'मेइजी' (१६६८ ई०)के पहले जापानमें विद्याचर्चा बहुत कम थी। युवकगण विद्याचर्चाकी अपेक्षा शस्त्रचर्चाका अधिक आदर करते थे। वहांके राज-सभासदोंकी यह धारणा थी कि जिनमें शक्ति विद्यमान है, उनके लिए विद्याचर्चा शोभा नहीं देती, विद्याचर्चा दुर्बलोंका धर्म है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उस समय वहां विद्यालय थे ही नहीं।

मध्य जापानकी शिक्षा प्रणाली अमेरिकाके आदर्श पर संगठित हुई है। साधारण विद्यालयोंकी प्रतिष्ठा कर उनके द्वारा शिक्षाप्रचारका उपाय सबसे पहले डा० डेभिड मारे नामक एक अमेरिकन सज्जनने आविष्कृत किया था। ये १८७५ से १८८७ ई० तक जापानके शिक्षा-मन्त्रीके परामर्शदाता थे।

यहांके बालक वा बालिकाओंकी उम्र जब ६।७ वर्षकी हो जाती है, तब उन्हें स्कूलोंमें भेजा जाता है; उससे पहले वे घरहीमें शिक्षा पाते रहते हैं। माता उन बच्चोंकी शिक्षाप्राप्तिमें यथेष्ट सहायता पहुंचाती है। उनको कूंचो चलाना सिखाया जाता है और सङ्गीत द्वारा शहर एवं पृथिवीका साधारण भूगोल पढ़ाई जाती है। जापानी लड़कोंको बेढंगे चीना अक्षर सीखनेके लिए बहुत समय नष्ट करना पड़ता है। चीन अक्षरोंकी कोई तादाद नहीं कि वे कितने हैं। जिसे जितने अधिक अक्षरोंका ज्ञान है, वह उतनाही अधिक विद्वान् समझा जाता है। साधारणतः प्रत्येक जापानीको तीन चार हजार अक्षर सीखने पड़ते हैं। इन भाषामें एक एक शब्दके लिए एक एक अक्षर व्यवहृत होता है। जैसे—'घोड़ा' के लिए एक अक्षर, 'गाय' के लिए एक अक्षर, इत्यादि।

सरकारकी तरफसे हर एककी प्राथमिक शिक्षा दी जाती है। अत्यन्त दरिद्र होने पर वह प्राथमिक शिक्षासे वञ्चित नहीं रह सकता। प्राथमिक विद्यालय दो श्रेणीमें विभक्त हैं-१ निम्न प्राथमिक और २ उच्च प्राथमिक। निम्न प्राथमिक शिक्षा ६से लगा कर १४ वर्ष तक प्रत्येक बालक वा बालिकाको ग्रहण करनी ही पड़ती है। इस शिक्षाके समाप्त करनेमें कमसे कम ३।४ वर्ष लगते हैं। उच्चप्राथमिक शिक्षाके लिए और भी ३।४ वर्ष समयकी जरूरत पड़ती है। साधारणतः निम्न प्राथमिक विद्यालयोंमें नीति, जापानी भाषा, पाटीगणित और व्यायामकी शिक्षा दी जाती है। लड़कियोंको इसके अतिरिक्त सीना-पिरोना भी सिखाया जाता है। उच्च प्राथमिक विद्यालयमें इतिहास, भूगोल और सङ्गीतकी शिक्षा अधिकतर दी जाती है।

जिन छात्रोंने उच्च प्राथमिक विद्यालयमें कमसे कम

दो वर्ष शिक्षा पाई है वे ही माध्यमिक विद्यालयमें प्रविष्ट होनेके योग्य समझे जाते हैं। प्रतिवर्ष माध्यमिक विद्यालयमें प्रवेशेच्छुओंकी संख्या अधिक होनेके कारण, उनमेंसे परीक्षा द्वारा निर्दिष्ट संख्यक छात्र चुन लिये जाते हैं। माध्यमिक विद्यालयमें नीति, जापानी और चीना भाषा, अंग्रेजी-इतिहास, भूगोल, गणित, प्राकृत-विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान, रसायन, देश-शासन-प्रणाली और राष्ट्रनीति, चित्रकला, सङ्गीत, व्यायाम और फौजी कवायद सिखाई जाती है। जापानी और चीना भाषाके लिए जितना समय दिया जाता है, उतना ही समय अंग्रेजीशिक्षाके लिए भी व्ययित होता है।

माध्यमिक विद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर वे छात्र फिर उच्च विद्यालयमें प्रविष्ट होते हैं। इसमें भी परीक्षा ले कर विद्यार्थियोंकी भरती किया जाता है। उच्च विद्यालय छात्रोंको विश्वविद्यालयमें प्रविष्टके उपयुक्त बना देते हैं। इसकी शिक्षा तीन भागोंमें विभक्त है। जो विश्वविद्यालयमें कानून वा साहित्य अध्ययन करेंगे, उनके लिए प्रथम विभाग, जो औषध-प्रस्तुतप्रणाली इञ्जिनियरिङ्‌विज्ञान वा कृषिविद्या अध्ययन करेंगे, उनके लिए द्वितीय विभाग और जो चिकित्साशास्त्र अध्ययन करेंगे, उनके लिए तृतीय विभाग है। प्रथम विभागमें नीति, उच्चाङ्गका जापानी और चीना साहित्य, अंग्रेजी, जर्मनी और फरासीसी इनमेंसे कोई भी एक साहित्य, न्याय और मनोविज्ञान, कानूनका मूलतत्त्व, मिताचार और व्यायामकी शिक्षा दी जाती है।

बालिका-विद्यालयोंमें विद्याभ्यासका समय ४ वर्ष निर्दिष्ट है। बालिकाओंको जापानी और अंग्रेजी भाषा, इतिहास, भूगोल, गणित, धातु, उद्भिद् और प्राणियोंका वृत्तान्त, चित्रकला, गृहस्थीका काम, सीना-पिरोना, सङ्गीत और व्यायाम सिखाया जाता है।

जापानमें दो राजकीय विश्वविद्यालय हैं—एक 'टोकिओ'में और दूसरा 'कियोटो' में। 'टोकिओ'-विश्वविद्यालयके २० वर्ष बाद 'कियोटो'-विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई थी।

'टोकिओ' विश्वविद्यालयके अधीन छः कालेज हैं— आईन, चिकित्सा, इञ्जिनियरिङ्, साहित्य, विज्ञान और कृषि-कालेज। इसके सिवा जापानके उत्तरमें 'साप्पोरो'में एक कृषि-विद्यालय है। राजकीय विश्वविद्यालयके सिवा 'टोकिओ'में और भी दो उल्लेखयोग्य विश्वविद्यालय हैं। एकका नाम है 'कैयो' और दूसरेका 'वोयासेदा'। 'कैयो' विश्वविद्यालय १८६५ ई०में स्थापित हुआ था। इसके प्रतिष्ठाता 'फुकूजावा' स्वनामधन्य पुरुष थे। इन्होंने सबसे पहले जापानमें पाश्चात्य शिक्षा और संवादपत्रोंका प्रवर्तन किया था। जिस समय जापानमें अन्तर्विप्लव चल रहा था, उस समय इनके विद्यालयकी प्रतिष्ठा हुई थी। जिस समय जापानमें भीषण अन्तर्विप्लवके कारण अन्यान्य सभी विद्यालय बन्द हो गये थे, उस समय भी इनका विद्यालय अपना कार्य करता रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि इनका उत्साह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

समग्र जापानमें मूक और अन्धोंके २६ विद्यालय हैं। जिनमें सिर्फ एक सरकारी है।

लड़कोंको सिर्फ भाषा सिखानेके लिए एक सरकारी विद्यालयकी स्थापना हुई है। साधारणतः इसके विद्यार्थी व्यवसायी हो कर विदेश जाया करते हैं। इसमें निम्नलिखित देशोंकी भाषा सिखाई जाती है, जैसे— १ इङ्गलैण्ड, २ जर्मनी, ३ फ्रान्स, ४ इटली, ५ रूसिया, ६ स्पेन, ७ चीन और ८ कोरिया। फिलहाल इसमें तामिल और हिन्दी-भाषाकी भी शिक्षा दी जाने लगी है।

जापानमें प्रायः साढ़े तीन हजार शिल्प-विद्यालय हैं। जापानियोंकी जाति शिल्पीकी जाति है; प्रायः समग्र जगत्‌में उनकी शिल्प-वस्तुएं व्यवहृत होती हैं। इसलिए उनके देशमें शिल्प-विद्यालयोंकी संख्या ३५०० होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इन विद्यालयोंमें चीना मिट्टीसे बरतन बनाना, कांच बनाना, कपड़ा बुनना, फलित रसायन और इञ्जिनियरिङ् आदि नाना प्रकारकी शिल्पविद्या सिखाई जाती है।

जापानके छात्रोंमें एक विलक्षणता यह पाई जाती है, कि चाहे वे प्राथमिक विद्यालयके छात्र हों और चाहे विश्वविद्यालयके, विद्यालय जाते समय वे चाहे दावात जरूर लटका ले जाते हैं।

इन लोगोंकी कृषिविषयक शिक्षा इतनी उन्नत है कि जापानके माली पुराने पेड़ोंको एक जगहसे उखाड़ कर दूसरी जगह रोप सकते हैं। पहले पहल ये एक दल यूरोपीय शिक्षकोंको भाड़े पर लाये थे; पीछे इन्होंने सब काम अपने हाथमें ले कर उन्हें विदा कर दिया। एसियाके अन्दर एकमात्र जापानमें ही यूरोपके स्वाभाविक चलन धर्मका अस्तित्व है और इसीलिए उसने इतनी जल्दी अपनी असाधारण उन्नति कर ली। किन्तु दुर्दैव दुर्दमनीय है, एक भूकम्पने ही उसे पछाड़ दिया। परन्तु इससे क्या? जापान परिश्रमशील है, कर्मवीर है; वह शीघ्र ही अपनी क्षतिपूर्ति कर लेगा।

जापो (सं० त्रि०) जप शीलार्थं णिनि। जपकारक, जप करनेवाला।

जाप्य (सं० त्रि०) जप-ण्यत्। जपयोग्य।

जाफ़त (अ० स्त्री०) भोज, दावत।

जाफनापत्तन—सिंहलद्वीपके उत्तरांशका एक नगर। यह समुद्रकूलसे कुछ दूरी पर खाड़ीके किनारे अक्षा० ८° ३६´ ३० और देशा० ७८° ५´ पू०में अवस्थित है। इस खाड़ीसे वाणिज्य-पोत नगर तक पहुंचते हैं। यहां एक दुर्ग है, जिसका आकार पञ्चकोण है। इसके चारों ओर गहरी खाई है और बहुत दूर तक ढालू पत्थर बिछे हैं। इस दुर्गसे करीब आध मील पूर्वमें अंग्रेज, फरासीसी, ओलन्दाज, सिंहली आदि नाना जातीय और नाना धर्मावलम्बियोंका वास है। इस जगहकी आबहवा बहुत उमदा है और खाने-पीनेकी चीजें भी यहां सस्ती मिलती हैं; इसलिए बहुतसे ओलन्दाज यहां आ कर रहते हैं। यहां खेती-बारीकी अच्छी उन्नति हो रही है। तम्बाकूकी उपज भी अच्छी है। इसके सिवा यहांसे ताल और शङ्खकी रफ़्तनी भी है। जाफनाके पास समुद्रकूलमें बहुतसे छोटे छोटे द्वीप हैं। ओलन्दाजोंने हलैण्डके नगरोंके नामानुसार उक्त द्वीपोंका नाम रक्खा है। जैसे—डेल्फ, लीडेन, हार्लेम, आमष्टार्डम इत्यादि। इस प्रदेशमें सिंहलके समस्त प्रदेशोंकी अपेक्षा जनसंख्या अधिक है। बहुत पहले ईसाइयोंने यहां गिर्जाघर बनवाये थे, जिनके खण्डहर अब भी मौजूद हैं।

जाफरअलीखां—इनका साधारणतः मीरजाफरके नामसे परिचय मिलता है। १७५७ ई०में अंग्रेजोंने पलाशीके युद्धमें सिराजउद्दौलाको पराजित कर इनको बङ्गाल, बिहार और उड़िष्याका नवाब बनाया था। १७६० ई०में राजकार्यमें लापरवाही करनेके कारण अंग्रेजोंने इनकी वृत्ति दे कर पदच्युत कर दिया और इनके दामाद मीरकाशिमअलीखांको बङ्गालका नवाब बना दिया। मीरकाशिमने बङ्गालसे अंग्रेजोंको भगानेके लिए उद्योग किया, किन्तु १७३० ई०में ये भी उधुयानालाके युद्धमें पराजित और पदच्युत हुए। इसके बाद जाफरअलीखां (मीरजाफर) फिरसे नवाब हुए। १७६५ ई०में ५ फरवरीको इनकी मृत्यु हुई। मुर्शिदाबादमें इनकी कब्र है। मीरजाफर देखो।

जाफर खां—इनका असली नाम मुर्शिदकुलि खां था। ये एक ब्राह्मणके पुत्र थे। बचपनहीसे एक मुसलमानने इनका पालनपोषण किया था और उन्हींके जरिये इन्होंने शिक्षा पाई थी। बादशाह आलमगीरने १७०४ ई०में इनको बङ्गालका शासनकर्त्ता बनाया। इन्होंने अपने नामके अनुसार बङ्गालकी राजधानी मुर्शिदाबाद नगरकी स्थापना की। १७२६ ई०में इनकी मृत्यु हुई। मुर्शिदकुलि खां देखो।

जाफरगञ्ज—त्रिपुरा जिलेका गोमतीतीरस्थ एक शहर और व्यवसायका स्थान। एक सेतुविशिष्ट राजवर्त्म द्वारा यह शहर १२ मील दूरस्थ कुमिल्ला नगरसे संयुक्त किया गया है।

जाफरपीर—एक कवि। इनकी कविताका एक नमूना दिया जाता है—

"यललीय लायलाय ललेय लायलायललके।
जलबल मुदी बामा मुदी कुजाई ज़.कापीर।
सांई मन टेरैरे बिदेशीया बहोरी फिर मिलके।"

जाफ़रबेग (आसफ खान्)—बादशाह अकबरकी सभाके एक सभासद और कवि। इनके चचा अली आसफखां इनको बादशाहके पास ले आये थे। अकबरने इन्हें २० सैनिकोंके ऊपर जमादार बना दिया। कुछ दिन बाद ये उक्त अयोग्य पदसे असन्तुष्ट हो कर पदत्याग पूर्वक बङ्गालकी तरफ चल दिये। वहां नये शासनकर्त्ता मुसाफरखांके साथ रहने लगे। थोड़े दिन पीछे बङ्गालमें

विद्रोह उपस्थित हुआ और ये शत्रुओंके हाथ फंस गये। कुछ भी हो, जाफर अपनी चतुराईसे शत्रुओंके पञ्जेसे छुटकारा पा कर भाग गये। फतेपुर पहुंच कर इन्होंने दो हजार सेनाके अधिनायकका पद और आसफखान्‌की उपाधि पाई।

जलाल रोसानी, वराकजाई और आफ्रिदीके अफगानोंको उत्तेजित कर विद्रोह करने पर, आसफखान् उनके दमनके लिए भेजे गये। जैनखाँ कोकाकी सहायतासे इन्होंने जलालको परास्त कर दिया।

जहांगीरके बादशाह होने पर आसफखान् राजपुत्र पारविजके आतालिक अर्थात् वजीर बनाये गये। इसके बाद इन्होंने वकील उपाधि और पांच हजार सेनाका अधिनायकत्व प्राप्त किया।

इसके उपरान्त ये राजपुत्र पारविजके साथ दाक्षिणात्य जय करनेको गये थे, किन्तु पराजित हो कर लौट आये। बुर्हानपुरमें इनकी मृत्यु हो गई।

आसफखाँ जाफरबेग अत्यन्त बुद्धिमान थे। इनके समान सुदक्ष राजस्व-सचिव और हिसाब-रक्षक बहुत कम ही देखनेमें आते हैं। प्रवाद है, ये जिस हिसाबके चिट्ठे पर एक बार निगाह फेर लेते थे, उसका सब हिसाब इन्हें याद रहता था। बगीचेका इन्हें खूब शौक था। इनकी बहुतसी स्त्रियां थीं।

धर्मके विषयमें ये अकबरके शिष्य थे। कविता बनानेमें इनकी विलक्षण क्षमता थी। अकबरके समयमें इनकी श्रेष्ठ कवियोंमें गिनती थी।

जाफरवाल—१ पंजाबके सियालकोट जिलेके उत्तर पूर्वांशकी एक तहसील। यहांकी भूमि उर्वरा और पर्वतनिःसृत असंख्य निर्झरिणी-विशिष्ट है। इसका रकबा ३०२ वर्गमील है। यहां एक फौजदारी और दो दीवानी अदालत तथा दो थाने हैं।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह अक्षा० ३२° २२´ उ० और देशा० ७४° ५४´ पू०में देग नदीके पूर्व किनारे पर, सियालकोटसे २५ मील अग्निकोणमें अवस्थित है। प्रवाद है, कि बजवा जाट-वंशीय जाफरखाँ नामक एक व्यक्तिने प्रायः ४ शताब्दी पहले इस नगरकी स्थापना की थी। यहां चीनी और अनाजका रोजगार अच्छा है तथा तहसील, थाना, डाकघर, विद्यालय और राहगीरोंके ठहरनेके लिए डाक-बंगला है।

जाफ़र शादिक—मुसलमानोंके १२ इमामोंमेंसे छठे इमाम। मदिनानगरमें इनका जन्म हुआ था। ये महम्मद बैकारके पुत्र, अली जैनउल आबेदीनके पौत्र और इमाम हुसैनके प्रपौत्र थे। ये सभी इमाम थे। जाफ़र शादिक (अर्थात् साधु जाफर) मुसलमानोंमें एक तत्त्वज्ञानी मनीषी गिने जाते थे। कहा जाता है, एकदिन खलिफा अल्‌मनशूरने सदुपदेश सुननेके लिए इन्हें राजसभामें उपस्थित होनेके लिए आह्वान किया। इस पर जाफरने उत्तर दिया कि, "सांसारिक-विषयोंकी उन्नति चाहनेवाला व्यक्ति कभी असली उपदेश नहीं दे सकता और जिस व्यक्तिमें सांसारिक विषयोंकी स्पृहा नहीं और उस जन्मके लिए सुख चाहता है, वह बादशाहके पास आयगा ही क्यों?" १७६५ ई०में ६५ वर्षकी उम्रमें मदिनानगरमें इनकी मृत्यु हुई। मदिनाके अल्‌बकिया नामक कब्रस्तानमें इनकी तथा इनके पिता और पितामहकी कब्र अभी तक मौजूद है।

कोई कोई कहते हैं, जाफर शादिकने पांचसौसे अधिक मुसलमानी धर्मग्रन्थ रचे हैं। "फालनाम" नामक अदृष्टव्यापक ग्रन्थ इन्हींका रचा हुआ है।

ज़ाफ़रान (अ० पु०) कुङ्कुम, केसर। इसका पौधा प्याज लहसुन आदिकी भांति और छोटा होता है। पत्तियां घासकी तरह लम्बी और पतली होती है। इसका पौधा स्पेन, फारस, चीन और काश्मीरमें होता है। काश्मीरी केसर सबसे अच्छी समझी जाती है। इसका फूल बैंगनी रंगकी आभा लिए कई रंगका होता है। प्रत्येक फूलमें सिर्फ तीन ज़ाफ़रान निकलते हैं। इस हिसाबसे एक छटांक असली केसरके लिए करीब आठ हजार फूलोंकी जरूरत होती है। केसर निकाल लेनेके बाद उन फूलोंको घाममें सुखा कर कूटते हैं और फिर उन्हें पानीमें डाल देते हैं। उसमेंसे जो अंश नीचे बैठ जाता है उसे "मोंगला" कहते हैं, यह मध्यमश्रेणीका ज़ाफ़रान है। जो अंश ऊपर तैरता रहता है, उसे फिर सुखा कर कूटते और पानीमें डालते हैं। अबकी बार जो अंश

नीचे बैठ जाता है, वह निकृष्ट श्रेणीका 'नोबल-जाफ़रान" कहलाता है। जाफ़रानका पौधा विशेष प्रकारकी ढालुआं जमीनमें होता है और जमीन इसी कामके लिए आठ वर्ष पहलेसे बिलकुल परती छोड़ दी जाती है। जाफरानके पौधेकी गांठें जमीनमें गाड़ी जाती हैं और एक बारकी लगाई हुई गांठोंसे १४ वर्ष तक फूल लगते रहते हैं। कातिक मासमें इसके फूल लगते हैं और उसी समय वे संग्रह किये जाते हैं।

इंगलैण्ड आदि देशोंमें किसी समय जाफ़रानकी खेती बहुतायतसे होती थी और २य रिचार्डके राजत्व-कालमें यह खाद्यद्रव्यकी सुगन्ध और स्वादिष्ट बनानेके लिए व्यवहृत होती थी। यूरोपमें स्पेनके निकटवर्ती स्थानोंमें तथा कैम्ब्रिज-शायरके अन्तर्गत एसेक्समें अब भी बहुत जाफ़रान पैदा होता है। इसका रंग पीला, देखनेमें सुन्दर और सुगन्धि भी बहुत मीठी होती है। इसे पानीमें डालनेसे एक प्रकारका तैलाक्त पदार्थ बहने लगता है। औषधमें भी जाफ़रानका व्यवहार होता है; इससे रोगीको नींद आती है और पाकस्थलीकी शिराएं सबल हो जाती हैं।

भारतमें जाफ़रानकी आमदनी काश्मीर ग्रेटब्रिटेन और फारससे होती है। हमारे देशकी स्त्रियां कभी कभी देहसे जाफरान लगाती हैं, जिससे देह पीली हो जाती है। राजपूत योद्धा भी समय समय पर जाफ़रानसे रंगी हुई पोशाक पहना करते हैं। जैनगण चावल और नारियलकी गरीके टुकड़ोंको जाफ़रानसे रंग कर उनमें पुष्प और दीपकी कल्पना करते हैं और उससे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करते हैं। केसरिया भात आदि खाद्य पदार्थोंमें भी जाफ़रानका व्यवहार होता है।

कुंकुम देखो।

जाफ़रान—अफगानिस्तानकी एक तातारी जाति।

जाफ़रानी (अ० वि०) केसरिया, केसरके रंगका।

जाफ़रानीतांबा (हिं० पु०) पीले रङ्गका एक प्रकारका उत्कृष्ट तांबा। यह चांदी सोनेमें मेल देनेके काममें आता है।

जाफराबाद—१ बम्बईकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २०° ५२ एवं २०° ५८´ उ० और देशा० ७१° २४´ तथा ७१° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ४२ वर्गमील है। जाफराबाद कोङ्कण-तटस्थ जञ्जीरा नवाबके अधीन है।

१७३१ ई०में काठियावाड़में मुगलोंका जोर घटनेसे जाफराबादी थानेदार स्वाधीन राजत्व करते थे। उन्होंने मुसलमान फौज और स्थानीय कोलियोंके साथ बहुत डाके डाले। सूरतके कारोबार तथा जहाज को बड़ा नुकसान हुआ था। जंजीरा घरानेके सीदी हिलालने आक्रमण करके उनके जहाज तोड़ डाले और बहुतसे कोलियोंको गिरफ्तार करके जाफराबादसे भारी जुर्माना तलब किया। थानादारोंने जुर्माना न दे सकने पर जाफराबाद सीदी हिलालके हाथों बेच दिया। १६६२ ई०में उन्होंने इसे जंजीरा नवाबको सौंपा। लोकसंख्या प्राय: १२०८७ है। इसमें एक शहर और ११ गांव आबाद हैं। गृहनिर्माणार्थ प्रस्तर काट काट कर निकाला जाता है। मोटा सूती कपड़ा बुना करते हैं। वार्षिक आय प्राय: ६२०००) रु० है। बाजरा, रुई और गेहूं ज्यादा उपजती है।

२ काठियावाड़ प्रान्तके जाफराबाद राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २०° ५२´ उ० और देशा० ७१° २५ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ६०२८ होगी। इस बन्दरगाहसे माल खूब जाता आता है। गुजरातके सुलतान मुजफ्फरने यहां किलेबन्दी करायी थी। जंजीरा नवाबकी ओरसे एक मामलतदार प्रबन्ध करते हैं। यहां म्युनिसपालिटी भी है।

जाफराबाद—युक्तप्रदेशके फतेपुर जिलेकी कल्याणपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° ४४´ उ० और देशा० ४०° ३३´४ पू०में फतेपुरसे १० मील दूर ग्रेण्ड ट्रङ्क रोडके किनारे पर अवस्थित है। कुरमी यहांके प्रधान अधिवासी हैं।

जाफ्फू—नेपालकी नेवार जातिकी एक शाखा। ये लोग उपजीविकाके अनुसार कई सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। ये नेवार समाजमें अति माननीय और अन्य समस्त जातियोंकी अपेक्षा संख्यामें ज्यादा हैं। तमाम नेवार जातिमें प्राय: आधे जाफ्फू हैं। ये बौद्धमतको मानते हैं, पर बहुतसे लोग हिन्दू-देवदेवियोंको भी पूजते हैं।

पूजा और विवाह आदिके समय एक बौद्ध याजक और एक ब्राह्मण पुरोहित, दोनों मिल कर कार्य समाप्त करते हैं। नेपालमें जाफ़ु़ग्रोंकी छह सम्प्रदायोंकी तरह और भी प्रायः २४ सम्प्रदाय ऐसे हैं, बुद्धदेव और हिन्दू देवदेवीकी एकत्र उपासना करते हैं। धार्मिक विषयोंमें समान होने पर भी समाजमें ये लोग जाफ़ुग्रोंसे हीन समझे जाते हैं। जाफ़ुग्रोंके उक्त छह सम्प्रदायोंमें परस्पर विवाह और खान पान चलता है।

जावजा (फा० क्रि०-वि०) जगह जगह, इधर उधर।

जावता (अ० पु०) कायदा, नियम, जब्ता।

जावप्रेस (अं० पु०) वह छोटी कल जिसमें कोई विज्ञापन आदि छापे जाते हैं।

जावर (हिं० पु०) वह चावल जो घीएके महीन टुकड़ोंके साथ पकाया जाता है।

जाबाल (सं० पु०) जबालायाः अपत्यं पुमान् इति अण्। १ मुनिविशेष, सत्यकाम, जबालाके पुत्र। जबालाने बहुतसे पुरुषोंके साथ सहवास किया था। इनके पुत्र सत्यकाम जब वेदकी शिक्षा लेनेको गये, तब ऋषियोंने इनसे अपना परिचय देनेके लिए कहा। परन्तु इन्हें अपना गोत्र मालूम नहीं था। इसस माताके पास जा कर इन्होंने अपना गोत्र पूछा। माताने उत्तर दिया—"मैंने बहुतोंके साथ सहवास किया है, इसलिए मैं नहीं जानती कि, तुम किसके औरससे पैदा हुए हो। तुम गुरुके पास सत्यकाम जाबालके नामसे अपना परिचय देना।" इसके अनुसार ये सत्यकाम जाबालके नामसे प्रसिद्ध हुए। (शतपथब्रा०, ऐतब्रा० और छान्दोग्यउ०) ये एक स्मृतिकार थे। २ महाशालकी उपाधि। ३ एक वैद्यकग्रन्थ। ४ अजाजीव। (अमर २।१०।११) ५ एक उपनिषद्का नाम। (मौक्तिकोपनि०) ६ एक दर्शनशास्त्रका नाम। (रामदत्तशाप०)

जाबालयन (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य।

जाबालि (सं० पु०) जबालायाः अपत्य पुमान इति इञ्। कश्यप वंशके एक मुनि। ये दशरथके गुरु थे। इन्होंने चित्रकूटमें रामचन्द्रको राज्य ग्रहण करनेके लिए अनेक युक्तियां बतलाई थीं। (रामा०) ये व्यासकथित ब्रह्मपुराणके श्रोता थे। (ब्रह्मवै०)

जाबाली (सं० पु०) वेदकी एक शाखा।

जाबिर (फा० वि०) १ अत्याचार करनेवाला, जबरदस्ती करनेवाला। २ प्रचण्ड, जबरदस्त।

जाब्ता (अ० पु०) व्यवस्था, नियम कायदा, कानून।

जाम (हिं० पु०) १ जम्बू, जामुन। २ प्रहर, पहर, एक जाम ७॥ घड़ी या तीन घण्टेके बराबर होता है। ३ जहाजकी दौड़। (लश०) ४ जहाजके दो चट्टानोंके बीचमें अटकाव, फंसाव। (लश०)

जाम (फा० पु०) १ प्याला। २ प्यालेके आकारका कटोरा।

जामकी—पञ्जाब प्रान्तके सियालकोट जिलेकी डस्का तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२° २३' उ० और देशा० ७४° २५' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४२१६ है। इसका असली नाम पिण्डीजाम है क्योंकि पिण्डी नामक खत्री और चीभ नामक जाटने इसे बसाया था। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपालिटी स्थापित हुई थी।

जामखेड़—१ बम्बई प्रान्तके अहमदनगर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १८° ३३' एवं १८° ५२' उ० और देशा० ७५° ११' तथा ७५° ३५' पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ४६० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६४२५८ है। इसमें एक नगर और ७५ गांव हैं। मालगुजारी करीब एक लाख और सेस ७०००) रु० है। यहांकी जलवायु स्वास्थ्यकर है।

इस उपविभागके ग्राम कहीं तो एक दूसरेसे सटे हुए हैं और कहीं अलग अलग, किन्तु उनके चारो तरफ निजामका अधिकार है। इसका अधिकांश स्थान उच्च मालभूमि है। नागौर और बालाघाटकी पर्वतश्रेणी इसके बीचमें फैली हुई है। यहांका मट्टी कोमल और उपजाऊ है। निकटमें उच्च पर्वत होनेसे यहां वर्षा खूब होती है। यहां धान, गेहूं, बाजरा, ज्वार, मूंग, मसूड़, मटर, तिल, सरसों आदिकी पैदावार अच्छी है। इसके सिवा यहां तम्बाकू और सन भी पैदा होता है।

जामखेड़से अहमदनगर (४६ मील) तक पक्की सड़क गई है; जिसका कुछ अंश अङ्गरेजी राज्यमें और कुछ निजाम-राज्यमें है। इस सड़कके होनेसे यहांका

वाणिज्य अच्छा चलता है, किन्तु निजाम-राज्यके भीतर हो कर माल जानेसे कर लिया जाता है, यह बड़ी भारी असुविधा है। इसके सिवा जामखेड़से खरदा, काजरात और करमाला तक और भी ३ सड़कें गई हैं; किन्तु उनकी अवस्था ठीक नहीं है। यहां हर हफ्ते में पांच हाटें लगती हैं। आकोला और खेड़ा नगरमें रविवारको, खरदामें मङ्गलवारको तथा जामखेड़ और डङ्गरकिन्हो नगरमें शनिवारको हाट लगती है। दूर दूरके लोग यहां व्यापार करने आते हैं। यहां बकरी और भैंस आदि बहुत सस्ती बिकती हैं।

यहां कुछ कपड़े बुननेके कारखाने हैं, जिसका प्रधान स्थान खरदा है। कई जगह पीतल और कांसेके बरतन भी बनते हैं। डङ्गरकिन्हो नगरमें चूड़ीका कारखाना है।

पहले इनके अधिकांश ग्राम पेशवाके अधिकारमें थे। १८१८-१९ ई०में पेशवासे अङ्गरेजोंको कुछ ग्राम प्राप्त हुए। पीछे जामखेड़ तथा और और पांच गांव निजामसे लिये गये। इस तरह और भी बहुतसे गांव अङ्गरेजी राज्यमें मिलाये गये। यह उपविभाग कई बार करमालासे संयुक्त और वियुक्त हुआ है। आखिर १८३५-३६ ई०में सम्पूर्ण पृथक् हो कर यह अहमदनगरके अन्तर्गत हो गया।

२ उपरोक्त जामखेड़ उपविभागका सदर और नगर। यह अक्षा० १८° ४३´ उ० और देशा० ७५° २२´ पू०, अहमदनगरसे ४५ मील अग्निकोणमें अवस्थित है। यहां एक हेमाड़पन्थियोंके मल्लिकार्जुन महादेवका तथा दूसरा जटाशङ्कर महादेवका मन्दिर है। मल्लिकार्जुन महादेवके मन्दिरमें केवल लिङ्गमूर्ति और भग्नस्तम्भ इतस्ततः पड़े हैं। जटाशङ्करका मन्दिर बहुत दिनोंसे भूमिमें प्रोथित था। शनिवारको यहां हाट लगा करती है। जामखेड़के ईशानकोणमें ६ मीलकी दूरी पर निजामराज्यान्तर्गत सौतरा ग्रामके पास इन्चान नदी है। उसमें २१९ फुट गहरा एक जलप्रपात है, वर्षा कालमें यहांको प्राकृतिक शोभा दर्शकोंके लिए द्रष्टव्य है।

जामगिरी (हिं० पु०) बन्दूकका फलीता। (लश०)

जाम-जो-तन्दो—बम्बई प्रान्तके अन्तर्गत सिन्धु प्रदेशके हैदराबाद जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५° २५´ १०´´ उ० और देशा० ६८° ३४´ ३०´´ पू०में अवस्थित है। यहांके मुसलमान अधिवासियोंमें अधिकांश निजामानो, सैयद वा खास्केली सम्प्रदायभुक्त हैं। हिन्दुओंमें अधिकांश लोहानो हैं। तालपुरके मीरवंशीयोंने इस नगरको बसाया है। उनके खानदानी लोग अब भी यहां वास करते हैं। हैदराबादसे अलहियार-जो-तन्दो होतो हुई मीरपुरखास तक जो सड़क गई है, यह नगर उसीके किनारे पर अवस्थित है। 'तन्दो' शब्द बेलुची भाषाका है जिसका अर्थ नगर है।

जामताड़ा—१ सन्थाल परगनेका दक्षिण पश्चिम सबडिविजन। यह अक्षा० २३° ४८´ एवं २४° १० उ० और देशा० ८६° ३०´ तथा ८७° १८´ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ६८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १८७८८८ है। इसमें १०७३ गांव आबाद हैं। २ उक्त सब डिविजनका एक नगर और रेलवे ष्टेशन।

जामदग्न (सं० पु०) चतुरह यागभेद।

जामदग्निय (सं० पु०) जमदग्नि सम्बन्धीय।

जामदग्नेय (सं० पु०) जमदग्नेरपत्यं, प्रत्ययवधौ तदन्तग्रहणमा प्रतिषिद्धेऽपि आर्षत्वात् ढक्। परशुराम, भार्गव।

जामदग्न्य (सं० पु०) जमदग्नेरपत्यं पुमान् इति यञ्। जमदग्निके पुत्र, परशुराम।

जामदानी (फा० पु०) १ एक प्रकारका बेल-बूटेदार कढ़ा हुआ कपड़ा। साधारणतः सूती कपड़े पर हो तरह तरहके फूल और बेल-बूटे काढ़ कर यह कपड़ा बनाया जाता है। ढाका नगरमें बहुत बढ़िया जामदानी कपड़ा बनता है। लखनऊमें भी यह कपड़ा बनता है। चिकन शब्द देखो।

२ कपड़े आदि रखनेको टीन या चमड़ेकी पेटी। ३ अबरक या शीशेकी बनी हुई एक प्रकारकी सन्दूकची यह छोटी होती है और बच्चे इसमें अपनी खेलनेकी चीजें रक्खा करते हैं।

जामन (हिं० पु०) १ दूधको जमानेका थोड़ासा दही या कोई खट्टा पदार्थ। २ जामुन देखो। ३ पंजाबसे ले कर सिकिम और भूटान तक होनेवाला एक प्रकारका पेड़। यह आलू बुखारेको जातिका होता है। इसमेंसे एक

प्रकारका गोंद तथा विषयुक्त तेल निकलता है जो दवाके काममें बहुत उपयोगी है। मनुष्य इसके फल खाते हैं और पत्तियां चौपायोंके चारेके काममें आती हैं। इसका दूसरा नाम पारस है।

जामनगर -बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ जिलेका देशी राज्य और नगर। नवा-नगर देखो।

जामनिया (दबोर)—मध्य भारतकी मानपुर एजेन्सीकी एक ठाकुरात। यहांके सरदारोंकी उपाधि भूमिया है। ठाकुरोंमें प्रायः सभी भूलाल जातीय हैं। प्रवाद है कि भूलाल जाति राजपूतोंके संमिश्रणसे उत्पन्न हुई है। जामनियामें प्रसिद्ध भूमिया नादिरसिंहने प्रादुर्भूत हो कर चारों ओर अपनी क्षमताका विस्तार किया था। सिन्धियाके पांच गांवोंको मिला कर इन ठाकुरातका संगठन हुआ है। इसके सिवा खेरी, दाभर और ४७ भीलोंके मुहल्ले इसके अन्तर्गत हैं। इसका रकबा करीब ४६५७५ बीघा है। मानपुरसे धार नगरकी सड़क करीब ७ मील तक इसी जमींदारीके भीतरसे गई है। फिलहाल इसका सदर कुक्षरोड है।

जामनी —मध्यभारतके बुन्देलखण्ड प्रदेशकी एक नदी। यह नदी मध्यभारतसे उत्पन्न हो कर बुन्देलखण्ड और चन्देरी होती हुई प्रायः ७० मील चल कर बेतवामें जा मिली है।

जामनेर—१ बम्बईके पूर्व खानदेशका एक तालुक। यह अक्षा० २०° ३३' एवं २०° ५५' उ० और देशा० ७५° ३२' तथा ७६° १' पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ५२७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८१७३८ है। इसमें २ नगर और १५५ गांव बसे हैं। मालगुजारी कोई २ लाख ४० हजार और सेस (१७०००) रु० पड़ती है। भूमि नीची ऊंची है और नदियोंके तट पर बबूल खड़े हैं। उत्तर-दक्षिणके पर्वतों पर सागूके पेड़ हैं। पानी बहुत है। जलवायु साधारणतः अच्छी है। वर्षा ऋतुमें जूड़ी बुखार बढ़ जाता है। यहां करीब १८५० कूएं हैं। २ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० २०° ४८' उ० और देशा० ४५°४७' पू०में अवस्थित है। जनसंख्या ६४५७ है। पेशवाके समय एक बड़ा ग्राम था। रुईका कारबार बढ़ रहा है।

जामपुर—१ पञ्जाबके डेरागाजीखां जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° १६' एवं २८° ४६' उ० और देशा० ७०° ४' तथा ७०° ४३' पू०के मध्य पड़ता है। क्षेत्रफल ८४८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८७२४७ है। इसके पूर्वमें सिन्धु नदी और पश्चिममें स्वाधीन प्रदेश है। इसमें एक नगर और १४८ गांव हैं। मालगुजारी लगभग १ लाख ५० हजार है। नीची भूमिमें बाढ़ पानीका डर रहता है।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह अक्षा० २८° ३८' उ० और देशा० ७०° ३८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या कोई ५८२८ है। यहांसे नीलकी रफ्तनी बहुत होती है और लाहका भी कारखाना है। १८७१ ई०में यहां म्युनिसपालिटी हुई।

जाम वेतुआ (हिं० पु०) बरमा, आसाम और पूर्व बंगालमें होनेवाला एक प्रकारका बांस। यह टट्टर बनाने, छत पाटने आदिके काममें आता है।

जामराव—सिन्धु प्रदेशकी एक बड़ी नहर। यह सांभर तालुकके दक्षिण पश्चिम कोणमें जमेसाबाद तालुक होती हुई नार नदीमें जा गिरी है। मोंच १३० मील है। जामराव नहर और उसकी नालियां सब मिल करके ५८८ मील लम्बी हैं। पश्चिम शाखा बहुत बड़ी है। यह १८९८ ई०में खोली गयी थी।

जामरी—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत भण्डारा जिलेकी एक छोटी जमींदारी। यह अक्षा० २१° ११' ३०" उ० और देशा० ८०° ५' ३" पू०, ग्रेट इष्टर्न रोडके उत्तरमें साकोलीके निकट अवस्थित है। इसका रकबा १५ वर्गमील है, जिसमेंसे सिर्फ १ मील जमीनमें खेती होती है। यहांके जमींदार जङ्गलकी लकड़ी बेच कर बहुत लाभ उठाते हैं।

जामर्थ्य (सं० त्रि०) प्राणियोंको अमर करनेवाला।

जामल (सं० क्लो०) आगमशास्त्रविशेष, एक प्रकारका तन्त्र। जैसे—रुद्रजामल इत्यादि।

जामली—मध्यभारतकी भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत झाबुआ राज्यका एक शहर। यह सर्दारपुरसे २४ मील उत्तरमें तथा झाबुआ नगरसे २० मील ईशानकोणमें अवस्थित है। यहां ठाकुर उपाधिधारी एक उमराव रहते हैं।

आमवल्ल—जाम्बवान् देखो।

जाम मातोजी—कच्छ प्रदेशके जाड़ेजा वंशीय एक प्राचीन राजा। थान-पार्करके अधिपति सोढ़ाके साथ इनका झगड़ा चल रहा था। सूर्यवंशीय वीरबलके पुत्र काठिराज बालाजीकी सहायतासे इन्होंने पार्कर जीत कर लूट लिया। वहांसे लौटते समय एक दिन काठिकी सेनाने पहलेसे ही आ कर निगाला सरोवरके किनारे वृक्षोंके नीचे तम्बू तान दिये। सरोवरके किनारे थोड़े ही पेड़ थे। कुछ देर पीछे जब जाम मातोजीने आ कर देखा कि, काठि-सेनाने सभी वृक्षोंकी छाया दखल कर ली है, उनके लिए भी जगह नहीं रक्खी तब उन्होंने गुस्सा हो कर बालाजीसे तम्बू उठानेके लिये कहा। इससे बालाजीने अपना बड़ा अपमान समझा और वे इसका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा कर उसी समय अपनी सेनासहित वहांसे चल दिये। जाम मातोजीने आनेवाली विपत्तिका स्मरण कर बालाजीको शान्त करनेके लिए अनुनय विनय द्वारा बहुत कुछ कोशिश की, पर वे किसी तरह भी शान्त न हुए। कुछ दिन पीछे रात्रिके समय बालाजीने अचानक जाड़ेजाओं पर आक्रमण किया और पांच भाइयोंके साथ जाम मातोजीको मार डाला; सिर्फ छोटे भाई जाम आबड़ाजी किसी तरह जान बची। इन्होंने बालाजीको बहुतबार परास्त किया; किन्तु अन्तमें थानके युद्धमें ये भी पराजित हुए। प्रवाद है कि, इस युद्धमें स्वयं सूर्यदेवने श्वेत अश्व पर सवार हो कर बालाजीकी तरफसे युद्ध किया था।

जामसुता जाड़ेची श्रीप्रतापबाला—जामनगरके महाराज रिड़मलकी राजकुमारी तथा जोधपुरके भूतपूर्व महाराज श्रीतख्तसिंहकी महारानी। इनका जन्म १८३४ और विवाह १८५१ ई०में हुआ था। ये बड़ी विदुषी, उदार-हृदया और धर्मात्मा थीं। इन्होंने 'प्रतापकुंवर रत्नावली' नामक एक हिन्दी पद्य-ग्रन्थकी रचना की है। इनकी कविता सरस और भक्तिरसपूर्ण है। उदाहरण—

"वारी थारा मुखड़री श्याम सुजान (टेक)
मंद मंद मुख हास बिराजै कोटित काम लजान।
अनियारी अँखिया रसभीनी बांकी भौंह कमान॥
दाड़िम दसन अधर अरुनारे वचन सुधा सुखखान।
जामसुता प्रभुसों कर जोरे हौ मम जीवनप्रान॥"

जामा (सं० स्त्री०) जम-अदने अण् ततः स्त्रियां टाप्। दुहिता, कन्या, बेटी।

जामा (फा० पु०) १ वस्त्र, कपड़ा, पहरावा। २ एक प्रकारका पहरावा जो घुटने तक होता है। इसके नीचेका घेरा बहुत बड़ा और लहँगेकी तरह चुनटदार होता है। यह प्राचीनकालका पहरावा जान पड़ता है। हिन्दुओंमें अब भी विवाहके अवसर पर यह पहरावा वरको पहनाया जाता है।

जामात (हिं० पु०) जामातृ देखो।

जामाता (हिं० पु०) जामातृ देखो।

जामातृ (सं० पु०) जायां माति, मिमीते, मिनोति वा। १ दुहिताका पति, कन्याका पति, दामाद। २ सूर्य्यावर्त्त, सूर्यमुखी। ३ धवका पेड़। ४ वल्लभ, स्वामी।

जामातृक (सं० त्रि०) १ जामाता-सम्बन्धीय, दामादका। (पु०) २ कन्याका पति, दामाद।

जामातृत्व (सं० क्ली०) जामातुर्भावः जामातृ-त्व। जामाताका कार्य्य, दामादका काम।

जामि (सं० स्त्री०) जम-इञ्। इन् निपातनात् साधुरित्येके। १ भगिनी, बहिन। २ कुलस्त्री, घरकी बहू-बेटी। ३ दुहिता, कन्या, लड़की। ४ पुत्रवधू, पतोहू। ५ निकट सम्बन्ध सपिण्ड स्त्री, अपने सम्बन्ध या गोत्रकी स्त्री। ६ बन्धु।

"भगिनीगृहपतिसंबद्धनीयसन्निहितसपिण्डस्त्रियश्च पत्नीदुहितृस्नुषाद्याः।" (कुल्लूक)

भगिनी, गृहपति और सन्निहित सपिण्ड पत्नी, पत्नी, दुहिता और पुत्रवधू इन सबको जामि कहते हैं। जिस घरमें जामि अपमानित या लाञ्छित होती हैं, उस घरका कभी भी मङ्गल नहीं होता। जिस घरमें यह पूजित होती है उसमें सुखकी वृद्धि होती है। ७ उदक, जल, पानी। ८ अङ्गुलि, उँगली। (निघण्टु)

जामिकृत् (सं० त्रि०) जामिं करोति जामि-कृ-क्विप्। सम्बन्धकारी, सम्बन्ध करनेवाला।

जामित्र (सं० क्ली०) विवाहादि शुभकर्मके कालके लग्नसे सातवाँ स्थान। (ज्योतिष)

जामित्रवेध (सं० पु०) विध्-घञ्, जामित्रस्य वेधः, ६-तत्। शुभकर्म विषयक ज्योतिषका एक योग। यदि कर्म-कालीन नक्षत्र-घटित राशिसे सातवीं राशिमें सूर्य वा शनि अथवा मङ्गल रहे, तो जामित्रवेध होता है। किसी किसीके मतसे सातवें स्थानमें पापग्रह रहने पर ही जामित्रवेध होता है। इसमें विशेषता यह है कि, चंद्रमा यदि अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्रमें हो, अथवा पूर्णचन्द्र हो वा पूर्णचन्द्रमें शुभग्रह या निजग्रहके क्षेत्रमें हो, तो जामित्रवेधका जो दोष होता है, वह नष्ट हो जाता है। इससे अत्यन्त मङ्गल होता है।

जामित्र (सं० क्ली०) सम्बन्ध, रिश्ता।

जामिन (अ० पु०) १ प्रतिभू, जिम्मेदार, जमानत करनेवाला। २ दो अङ्गुल लम्बी एक लकड़ी जो नीचेकी दोनों नालियोंको अलग रखनेके लिए चिलमग है और चूल्हेके बीचमें बाँधी जाती है।

जामिनदार (फा० पु०) जमानत करनेवाला।

जामिनी (हिं० स्त्री०) १ यामिनी देखो। २ जमानत, जिम्मेदारी।

जामी—एक फारसी कवि। इनका असली नाम मौलाना नूर-उद्दीन अबदुल-रहमन था। १४०१ ई०में हीरातके निकटवर्त्ती जाम नामके एक ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इसीलिए लोग इन्हें जामी कहते थे। इनके समयमें इनके समान वैयाकरण, दार्शनिक और कवि दूसरा कोई भी न था। बचपनसे ही इन्होंने सूफीका दर्शनशास्त्र पढ़ा था। आपने जीवनके शेष भागमें समस्त गृहकार्योंसे अवसर ले लिया था।

जामुखा (जुमखा)—गुजरातके रेवाकांठाको एक छोटी जमींदारी। इसका रकबा १ वर्गमील है।

जामुन (हिं० पु०) जम्बू देखो।

जामुनी (हिं० वि०) जामुनके रङ्गका, जो जामुनकी तरह बैंगनी या काला हो।

जामेय (सं० पु०) भागिनेय, भानजा, बहिनका लड़का।

जामेवार (हिं० पु०) १ बेल बूटोंसे जड़ा हुआ एक प्रकारका दुशाला। २ एक प्रकारकी छींट जिसके बेल बूटे दुशालेकी भांतिके होते हैं।

जाम्पुई—बङ्गालके अन्तर्गत पार्वत्य त्रिपुराका एक पर्वत यह पहाड़ देव और लुङ्गाई इन नदियोंके बीच उत्तर-दक्षिणमें विस्तृत है। इसकी सर्वोच्च शिखरका नाम बेतलिङ्ग शिखर है, जो समुद्रपृष्ठसे ३२०० फुट तथा जाम्पुई शृङ्गसे १८६० फुट ऊंचा है।

जाम्बव (सं० क्ली०) जम्ब्वाः फलं अण्। जम्ब्वा वा। पा ४।३।१६५। इति अण् तस्याविधानात् न लुक्। १ जम्बूफल, जामुन। जम्बू देखो। २ सुवर्ण, सोना। ३ आसव, जामुनका अर्क।

जाम्बवक (सं० त्रि०) जाम्बवेन निर्वृत्तं अरीहणादित्वाद् वुञ्। जम्बूफल, जामुन।

जाम्बवती (सं० स्त्री०) श्रीकृष्णकी पत्नी और जाम्बवान्‌की कन्या। श्रीकृष्ण सामन्तक मणिके अन्वेषणके लिए वनमें प्रविष्ट हो कर जाम्बवान्‌के भवनमें पहुंच गये थे। वहाँ मणिका पता लगने पर जाम्बवानको युद्धमें परास्त कर मणिके साथ जाम्बवतीको ले आये थे। स्यमन्तक देखो। इनके गर्भसे साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण और केतुका जन्म हुआ था। (भागवत)

जैन-हरिवंशपुराणमें लिखा है कि, नारदने कृष्णको जाम्बवतीका समाचार सुनाया। नारदके मुखसे जाम्बवतीकी प्रशंसा सुन कृष्णसे न रहा गया। वे उसी समय कुमार अनावृष्णि और सेनाको साथ ले कर जम्बूपुरको चल दिये। वहाँ सखियोंके सहित जाम्बवतीको नहाते देख श्रीकृष्णने चटसे उन्हें हरण कर लिया। किन्तु इस समाचारको सुन कर जाम्बवतीके पिता जाम्बव बहुत ही क्रुद्ध हुए और वे श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये उनके सामने जा अड़े। कृष्णने युद्धमें उन्हें परास्त कर बाँध लिया। इस अपमानसे जाम्बवको वैराग्य हो गया और वे अपने पुत्र विश्वक्सेनको कृष्णके सुपुर्द कर मुनि हो गये। (जैन-हरिवंश ४४ सर्ग)

जाम्बवन्त—जाम्बवान् देखो।

जाम्बवान् (सं० पु०) १ जाम्ब-मतुप् मस्य वः। एक ऋक्षराज, सुग्रीवके मन्त्री। इन्होंने लङ्काके युद्धमें रामचन्द्रकी सहायता की थी। ये पितामह ब्रह्माके पुत्र थे। द्वापर युगमें सिंहको मार कर ये उसके पाससे स्यमन्तक मणि लाये थे। इसी कारण इनकी कन्या

जाम्बवतीका श्रीकृष्णके साथ विवाह हुआ था।

(भागवत)

२ जैन शास्त्रोंके अनुसार विजयार्धकी दक्षिणश्रेणीमें स्थित जम्बूपुरके एक विद्याधर राजा। इनकी प्रधान महिषीका नाम शिवचन्द्रा थी, इन्हींके गर्भसे जाम्बवती उत्पन्न हुई थीं। ये रामचन्द्रके समय नहीं; बल्कि उनसे बहुत पीछे हुए हैं। (हरिवंश ४४ सर्ग)

जाम्बवि (सं० पु०) जाम्बव-इञ्। वज्र, विजली।

जाम्बवी (सं० स्त्री०) जाम्बवं तदाकारोऽस्त्यस्याः अण् ङीप्। नागदमनीवृक्ष, नागदौनका पेड़।

जाम्बवौष्ठ (सं० क्ली०) जाम्बमिव ओष्ठोऽस्य। व्रणदग्ध करनेका सूक्ष्म शस्त्रभेद, एक प्रकारका छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाये जाते हैं। इसका दूसरा नाम जाम्बौष्ठ और जम्बोष्ठ है।

जाम्बीर (सं० क्ली०) जम्बीरस्य फलं जम्बीर-अण्। जम्बीर फल, जम्बीरी नीबू। जम्बीर देखो।

जाम्बुमाली—जम्बुमाली देखो।

जाम्बुवत् (सं० पु०) जाम्बवत् पृषोदरादित्वान्निपातः। ऋक्षराज। जाम्बवान् देखो।

जाम्बूनद (सं० क्ली० जम्बूनद्यां भवं इत्यण्। १ सुवर्ण। यह सुवर्ण जम्बूनदसे उत्पन्न होता है। मेरुमन्दर पर्वतस्थ जम्बू वृक्षके फलके रससे जो जम्बू नामका एक नद उत्पन्न हो कर इलावृतवर्षमें प्रवाहित हो रहा है, उसके दोनों किनारेकी मिट्टी जम्बूरसके संसर्गसे वायु और सूर्यकी किरणों द्वारा विपाचित हो कर स्वर्णरूपमें परिणत हो जानेके कारण स्वर्णका यह नाम पड़ा है। (भागवत) महाभारतमें लिखा है—उत्तरकुरु देशमें भद्राश्व नामक एक प्रधान वर्ष है तथा नील पर्वतके दक्षिण और निषधके उत्तरमें सुदर्शन नामका एक सनातन जम्बूवृक्ष है। इसलिए यह स्थान जम्बूद्वीपके नामसे प्रसिद्ध है। यह वृक्ष सभीको अभिलषित फल देता है और सिद्धचारण आदि सर्वदा इसकी सेवा किया करते हैं। यह वृक्ष शतसहस्र योजन ऊंचा है। इसके फलकी लम्बाई २५०० अरत्नि है। इस फलके गिरने पर बड़ा भारी शब्द होता है। इस फलमेंसे सुवर्ण जैसा रस निकलता है और वह नदी रूपमें परिणत हो कर सुमेरु-की प्रदक्षिणा देता हुआ उत्तरकुरुमें प्रवाहित होता है। जम्बूरसके पीनेसे जम्बूद्वीपवासियोंके अन्तःकरणमें शान्तिका सञ्चार होता है, पिपासा और बुढ़ापेका कष्ट दूर हो जाता है। इस जगह देवोंका भूषण जाम्बूनद नामक अति उत्तम कनक उत्पन्न होता है।

(भारत शान्ति)

२ धतूरेका पेड़, धतूरा।

जाम्बूनदेश्वरी (सं० स्त्री०) जाम्बूनदस्य ईश्वरी, ६-तत्। देवीभेद, जाम्बूनदकी अधिष्ठात्री देवी।

जाम्बोती—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत बेलगांव जिलेका एक पहाड़। यह पहाड़ बेलगांवसे करीब ६० मील दक्षिणमें अवस्थित और सह्याद्रिसे पूर्व तक विस्तृत है।

२ उक्त बेलगांव जिलेका एक छोटा शहर। यह बेलगांवसे १८ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यह शहर दो भागोंमें विभक्त है; एक भागका नाम है कसबा और दूसरेका पेठ अथवा बाजार। कसबा और पेठमें १ मीलका फासला है। यह पहले महाराष्ट्र सरदेशाइ-योंके अधिकारमें था। उस समय इसकी अवस्था आस-पासके नगरोंसे बहुत कुछ उन्नत थी। सरदेशाई अपनी दखली जमींदारी पर न्यायसङ्गत अधिकार सिद्ध न कर सके और इसीलिए गवर्नमेण्टने उनकी जमींदारी जब्त कर ली। गवर्नमेण्टने उन्हें दो ग्राम दिये और वार्षिक ६०००) रु०की वृत्तिका बन्दोबस्त कर दिया। यहां मंगलवारको हाट लगती है। जाम्बोतीके आस पासके जंगलोंमें शिकार बहुत हैं, शेर तो अकसर देखनेमें आते हैं।

जाम्बोष्ठ (सं० क्ली०) जाम्बमिव ओष्ठोऽस्य।

जाम्बवौष्ठ देखो।

जायक (सं० क्ली०) जयति अपरं गन्धं जि-ण्वुल्। कालीयक, पीला चन्दन।

ज़ायक़ा (फा० पु०) स्वाद, लज्जत, खाने पीनेकी चीजोंका मज़ा।

ज़ायक़ेदार (फा० वि०) स्वादिष्ट, मज़ेदार, जो खाने या पीनेमें उमदा हो।

ज़ायचा (फा० पु०) जन्मकुंडली, जन्मपत्री।

ज़ायज़ (अ० वि०) यथार्थ, उचित, मुनासिब, वाजिब।

जायज़रूर (फा० पु०) टट्टी, पाखाना।

जायज़ा (अ० पु०) १ पड़ताल, जाँच। २ हाज़िरी, गिनती।

ज़ायद (फा० वि०) अधिक, ज्यादा।

जायदाद (फा० स्त्री०) सम्पत्ति, किसीकी भूमि, धन या सामान आदि। कानूनके अनुसार जायदादके दो भेद हैं, मनक़ूला और गैर मनक़ूला। जो एक स्थानसे दूसरे स्थान पर हटाई जा सके उसे मनक़ूला जायदाद कहते हैं और जो स्थानान्तरित न की जा सके उसे गैर मनक़ूला जायदाद कहते हैं।

जायदाद गैरमनक़ूला (फा० स्त्री०) जायदाद देखो।

जायदाद ज़ौजियत (फा० स्त्री०) स्त्रीधन, वह संपत्ति जिस पर स्त्रीका अधिकार हो।

जायदाद मनक़ूला (सं० स्त्री०) जायदाद देखो।

जायदाद मुतनाज़िआ (फा० स्त्री०) विवादग्रस्त सम्पत्ति, वह सम्पत्ति जिसके अधिकार आदिके विषयमें कोई तकरार हो।

जायदाद शौहरी (फा० स्त्री०) स्त्रीको उसके पतिसे मिली हुई सम्पत्ति।

जायनमाज़ (फा० स्त्री०) मुसलमानोंके नमाज़ पढ़नेका एक बिछौना, मुसल्ला।

जायपत्री (हिं० स्त्री०) जावित्री देखो।

जायफर (हिं० पु०) जायफल देखो।

जायफल (हिं० पु०) जातिफल देखो।

जायल (फा० वि०) विनष्ट, जो नष्ट हो गया हो।

जायस—युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलेका एक विख्यात और ऐतिहासिक नगर। यहां बहुत दिनोंसे सूफी फकीरोंकी गद्दी है तथा मुसलमान विद्वान् होते आये हैं। बहुतसी जातियां अपना आदि स्थान इसी नगरको बताती हैं। पद्मावतीके रचयिता प्रसिद्ध कवि मालिक मुहम्मद यहींके निवासी थे।

जाया (सं० स्त्री०) जायते पुत्ररूपेणात्मा ऽस्यां जन-यक् अलचू। १ पत्नी, यथाविधि-परिणीता भार्या, विवाहिता स्त्री। पति शुक्ररूपसे भार्याके गर्भमें प्रविष्ट हो कर, फिरसे नवीन हो कर जन्म लेता है, इसलिए पत्नीका नाम जाया है। (मनुस्मृति, बह्वृच पुराण और कुल्लूक।) अथवा भार्याकी रक्षा करनेसे पुत्रकी रक्षा होती है, और पुत्रकी रक्षा करनेसे आत्माकी भी रक्षा होती है, क्योंकि आत्मा ही भार्याके गर्भमें जन्म लेती है। इसीलिए पण्डितोंने पत्नीका नाम जाया बतलाया है। अविवाहिता स्त्रीको जाया नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसके गर्भसे जो पुत्र होता है, उसमें पिण्डदान देनेकी योग्यता नहीं होती और वह जारज कहलाता है। एक पुरुषकी बहुतसी जाया हो सकती हैं।

"एकस्य पुंसो बह्व्यो जाया भवन्ति" (शतपथब्रा० ९।४।१।६)

उनमेंसे महिषी, वावाता, परिवृक्ता और पालागली ये चार अभिमत हैं। (शतपथब्रा० १३।४।१।८)

२ ज्योतिषोक्त लग्नसे सातवां स्थान। इस सप्तम स्थानसे पत्नीके सम्बन्धकी समस्त शुभाशुभकी गणना की जाती है। ३ उपजाति वृत्तका सातवां भेद। इसमें पहिलेके तीन चरणोंमें ISI SSI ISI SS और चतुर्थ चरणमें SSI SSI ISI SS होता है।

ज़ाया (फा० वि०) नष्ट, खराब, खोया हुआ।

जायाघ्न (सं० पु०) जायां हन्ति जाया हन्-टक्। १ पत्नीनाशक योगयुक्त पुरुष, वह पुरुष जिसमें पत्नीनाशक योग रहे। २ तिलकालक, शरीरका तिल। ३ ज्योतिषोक्त योगविशेष, ज्योतिषमें ग्रहोंका एक योग। यह योग उस समय होता है जब जन्म-कुण्डलीमें लग्नसे सातवें स्थान पर मंगल या राहु ग्रह रहता है। जिसमें यह योग पड़ता है उस मनुष्यकी स्त्री अवश्य ही नाश होती है।

जायाजीव (सं० पु०) जायया तन्नर्त्तनद्वारा जीवति, वा जाया आजीवः जीवनोपायः यस्य, जीव-अच्। १ नट, अपनी स्त्रीके द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला, वेश्यापति। २ बकपक्षी, बगला पक्षी।

जायात्व (सं० क्ली०) जायायाः भावः जाया-त्व। पत्नीत्व, स्त्रीका धर्म। जाया देखो।

जायानुजीवी (सं० पु०) जायया सङ्गीतनर्त्तनादिना अनुजीवति, अनु-जीव-णिनि। १ जायाजीव देखो। २ दरिद्र। ३ बक पक्षी, बगला।

जायापती (सं० पु०) जाया च पतिश्च तौ द्वन्द्व०। स्वामी और स्त्री। द्वन्द्व समासमें जाया और पतिका समास

होनेसे तीन पद होते हैं—जायापती, दम्पती और जम्पती। यह शब्द नित्य द्विवचनान्त है।

जायी (सं० वि०) जै-णिनि। १ जययुक्त। (पु०) २ ध्रुवक जातीय तालविशेष, सङ्गीतमें ध्रुपदकी जातिका एक प्रकारका ताल।

जायु (सं० पु०) जयति रोगान् जि-उण्। १ औषध, दवा। २ जायमान, वह जो पैदा हुआ हो। ३ जेता, वह जिसने विजय पाई हो। (वि०) ४ जयशील, जीतनेवाला।

जायेन्य (सं० पु०) जि-न्यण्। १ जायन्य, वह जिसने जय पाई हो। रोगविशेष, एक प्रकारकी बीमारी।

जार (सं० पु०) जीर्य्यति स्त्रियाः सतीत्वमनेन करणे जृ-घञ्। १ उपपति, पराई स्त्रीसे प्रेम करनेवाला पुरुष, यार, आशना। २ जरयिता। ३ पारदारिक, परस्त्रीगामी। (वि०) ४ नाश करनेवाला, मारनेवाला।

ज़ार—रूसके सम्राट्की उपाधि।

जारक (सं० वि०) जीर्य्यति, जृ-णवुल्। परिपाचक।

जारकर्म (सं० क्ली०) व्यभिचार, छिनाला।

जारगर्भा (सं० स्त्री०) क्षुद्ररोगविशेष।

जारज (सं० पु०-स्त्री०) जारात् उपपतेर्जायते जार-जन-ड। उपपतिजात पुत्र, किसी स्त्रीकी वह सन्तान जो उसके उपपतिसे उत्पन्न हुई हो। धर्मशास्त्रोंमें जारजके दो भेद बतलाये गये हैं—कुण्ड और गोलक। "कुण्ड" सन्तान उसे कहते हैं जो स्त्रीके विवाहित पतिके जीवनकालमें उसके उपपतिसे उत्पन्न हो और जो विवाहित पतिके मर जाने पर उत्पन्न हो उसे "गोलक" कहते हैं। जारज पुत्र किसी प्रकारके धर्म-कार्य या पिण्डदान आदिका अधिकारी नहीं होता।

जारजयोग (सं० पु०) जारजस्य सूचको योगः। फलित ज्योतिषमें कहा हुआ वह योग जो बालकके जन्म-समयमें पड़ता है। जन्मकालमें यदि लग्न और चन्द्रमामें वृहस्पतिकी दृष्टि न हो, अथवा रविके साथ चन्द्र संयुक्त न हो और पापयुक्त चन्द्रमाके साथ यदि रवि युक्त हो, तो उस बालकका जारजयोग होगा। द्वादशी, द्वितीया या सप्तमी तिथिमें, रवि, शनि वा मङ्गलवारमें और कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरफल्गुनी, चित्रा, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वभाद्रपद, इनमेंसे किसी भी एक नक्षत्रमें जन्म होनेसे उस बालकका जारजयोग होता है। (ज्योति०) इतना विशेष है कि, धनु वा मीनराशि होनेसे यदि अन्य किसी ग्रहमें चन्द्रके साथ वृहस्पतिका योग हो और चन्द्रमा वा वृहस्पतिके द्रेक्काण वा नवांशमें जन्म हो, तो उत्पन्न हुए बालकका जारजयोग होने पर भी वह जारज नहीं समझा जाता।

जारजात (सं० पु०) जारात् उपपतेः जातः जार-जन-क्त। उपपति-जात पुत्र, यार वा आशनासे पैदा हुआ लड़का, जारज।

जारजातक (सं० पु०) जारात् जातः स्वार्थे-कन्। उपपति वा जारसे उत्पन्न हुआ पुत्र, जारज। पिता माता आदि गुरुजनोंके आदेशके बिना यदि कोई स्त्री दूसरे किसीके ज़रिये सन्तान उत्पन्न करे अथवा पुत्रके होते हुए भी देवर द्वारा सन्तान उत्पन्न करावे, तो वह (दोनों प्रकारकी) सन्तान जारजातक होनेके कारण पिताके धनकी अधिकारी नहीं हो सकती।

(मनु ९।१४३)

जारण (सं० पु०) जारयति, जृ णिच्-ल्यु। १ जारकद्रव्यभेद, पारेका ग्यारहवां संस्कार। जार्य्यतेऽनेन जृ-णिच् करणे ल्युट्। २ जारणसाधन द्रव्यभेद। कर्त्तरि ल्यु। ३ जीरक, जीरा। (राजनि०) भावे ल्युट्। (क्ली०) ४ जीर्णता-सम्पादन, जलाना, भस्म करना।

॥ * ॥ वैद्यक मतसे—धातुओंको भस्मवत् वा चूर्ण करनेको जारण कहते हैं। वैद्य लोग पहले सोना, चाँदी, ताँबा, पारा, अभ्र, हीरा आदिको शोध कर, पीछे अनेक प्रकारके द्रव्योंके संयोग और प्रक्रियासे पुटपाक द्वारा उनको बार बार जलाते या फूंकते हैं। इस तरह बहुत बार करने पर उस नकली द्रव्यका रूपत्व नष्ट हो जाता है और वह भस्म रूपमें परिणत होता है। इस भस्मको द्रव्यके नामानुसार जारित स्वर्ण, जारित अभ्र आदि कहते हैं।

जारित धातु आदिको मारित भी कहते हैं और भस्म होने पर जीर्ण वा मृत कहते हैं। (इनकी विशेष विशेष प्रक्रियाएं और गुणागुण उन उन शब्दोंमें देखना चाहिये।

इस जारण-प्रक्रियाको अङ्गरेजीमें 'कैलसिनेशन'

(Calcination) वा 'ओक्सिडेशन' (Oxidation) कहा जा सकता है। धातुद्रवाको वायु द्वारा उत्तप्त करनेसे वह धातु वायुमें स्थित अक्सिजनको खींच कर उसी धातुके मोरचे (जंग)-के रूपमें परिणत हो जाती है। फिर अम्ल आदिके साथ मिलाये जाने और ऋतु आदिके परिवर्त्तन होने पर उससे एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है। फिर उसे देखनेसे यह नहीं मालूम होता कि, वह धातु है। यह ही धातु-जारणका मूल सूत्र है। प्रवाल आदि किसी किसी वस्तुको उत्तप्त करने पर उसमेंसे द्राम्ल अङ्गारक वाष्प निकल जाती है और कठिन प्रवाल आदि भस्म रूपमें परिणत होते हैं। वैद्यगण जिस प्रणालीसे जारण करते हैं, उसमें भी निःसन्देह ये सब मूल प्रक्रियाएँ होती हैं। हाँ, उसमें आनुषङ्गिक और अन्यान्य कुछ परिवतन अवश्य होता है। विलायतमें धातुका जारण आदि रासायनिक उपायसे सहजहीमें हो जाता है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि, वह वैद्यक जारणके समान गुणसम्पन्न होता है या नहीं।

जारणबीज (सं० क्लो०) १ रसजारणार्थ बीजद्रव्यभेद।

जारणी (सं० स्त्री०) जारणं स्त्रियां ङीष्। स्थूल जीरक, बड़ा जीरा, सफेद जीरा।

जारता (सं० स्त्री०) जारस्य भावः तल् टाप्। उपपतित्व, यार वा आशनाका नाम।

जारतिनेय (सं० पु०-स्त्री०) जरत्या अपत्यं ढक्। कल्याण्यादीनामिनङ् च। पा ४।१।१२६। इति इनङ्। जरतीका पुत्र।

जारत्कारव (सं० पु०) जरत्कारोरपत्यं शिवादित्वादण्। जरत्कारुका पुत्र।

जारद-बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत बरोदाका एक उपविभाग। इसके उत्तरमें रेवाकाण्ठा एजेन्सी, पश्चिममें बरोदा उपविभाग, दक्षिणमें दाभई उपविभाग और पूर्वमें हलोल जिला है। क्षेत्रफल २५० वर्गमील है। यहांकी जमीन समतल और चारों ओर जंगलसे घिरी है। विश्वामित्री, सूर्य और जाम्बु नदी यहां प्रवाहित हैं। यहांकी मिट्टी काली अथवा पीली होती है। कपास, बाजरा और ज्वार ही प्रधान उपज है। सावली नगर इस उपविभागका सदर है।

जारद्गवी (सं० स्त्री०) एक वीथि, ज्योतिषमें मध्यमार्गकी एक वीथिका नाम। इसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। (विष्णुपु० टी० २।८।८०) लेकिन वराहमिहिरके मतसे इसमें श्रवणा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र रहते हैं। (बृहत्सं० ९।३)

जारभर (सं० पु०) जारं बिभर्त्ति पोषयति, भृ-पचादित्वादच्। जारपोषक।

जारा (हिं० पु०) १ सोनार आदिकी भट्ठीका एक भाग। कोई चीज गलाने या तपानेके लिये इसमें आग रहती है। भाथीको हवा आनेके लिये इसके नीचे एक छोटा छेद होता है। २ जाला देखो।

जाराशङ्का (सं० स्त्री०) जारस्य आशङ्का, ६-तत्। उपपतिकी आशंका।

जारिणी (सं० स्त्री०) कामुकी, दुश्चरित्रा स्त्री, खराब चाल चलनकी औरत।

जारित (सं० त्रि०) जॄ णिच्-क्त। १ शोधित, शुद्ध किया हुआ। २ मारित, मारा हुआ, कतल किया हुआ।

जारी (सं० स्त्री०) जारयति जॄ णिच्-अच् गौरादित्वाद् ङीष्। औषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

जारी (अ० वि०) १ प्रवाहित, बहता हुआ। २ प्रचलित, चलता हुआ।

जारी (हिं० पु०) १ झरबेरीका पौधा। २ एक प्रकारका गीत। मुसलमानोंकी स्त्रियाँ इसे मुहर्रमके अवसर पर ताजियोंके सामने गाती हैं। ३ परस्त्री-गमन, जारकी क्रिया वा भाव।

जारु (सं० पु०) जॄ-उण्। १ जरायु, वह झिल्ली जिसमें बच्चा बंधा हुआ उत्पन्न होता है, आँवल, खेड़ी। (त्रि०) २ जारक।

जारुज (सं० त्रि०) जारो जरायो जातः जारु-जन-ड। जरायुजात, झिल्लीसे उत्पन्न, मनुष्य इत्यादि।

जारुधि (सं० पु०) जारुर्जारको द्रव्यभेदो धीयतेऽस्मिन् धा-आधारे कि, उपस०। सुमेरु कर्णिकाकेशरभूत पर्वतविशेष, भागवतके अनुसार एक पर्वतका नाम जो सुमेरु पर्वतके कर्णका केसर माना जाता है।

(भागवत ५।१६। ७)

जारुधी (सं० स्त्री०) जरुधेन असुर [?] हिंसा,

अण् ङीप्। नगरी विशेष, हरिवंशके अनुसार एक प्राचीन नगरीका नाम। (हरिवंश १६अ०)

जारूत्थ—जारूथ्य देखो।

जारूथ्य (सं० त्रि०) जरूथं मांसं स्तोत्रं वा तदर्हति यत्। १ मांसदानपुष्ट। २ स्तोत्रार्ह। ३ त्रिगुण दक्षिणायुक्त यज्ञ, वह अश्वमेध यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय

"ततो देवर्षिसहितः सरितं गोमतीमनु।
दशाश्वमेधानाजह्रे जारूथ्यान् स निरर्गलान्।"

(भारत १२।२९।७०)

कोई कोई पण्डित जारूत्थ शब्द कहा करते हैं, किन्तु यह प्रामादिक है, क्योंकि, "जॄवृभ्यामूथन्" इस उणादि सूत्रमें जॄधातुका उत्तर उथन् करके जरूथ शब्द होता है, बाद जरूथसे जारूथ्य हुआ है, तथा इसके साथ वैदिक प्रयोग भी मिलता है, यथा—'जरूथोऽसुरविशेषः,' (वेदभाष्य)

जारोब (फा० स्त्री०) झाड़ू, बुहारी, कूंचा।

जारोबकश (फा० पु०) झाड़ू देनेवाला, चमार।

जार्तिक (सं० त्रि०) जार्तिकदेश वा तन्नामक जाति सम्बन्धीय, जार्तिकदेशका रहनेवाला वा जार्तिक जातिका।

जार्य (सं० त्रि०) जॄ-ण्यत्। स्तुत्य, प्रशंसित, तारीफके लायक।

जार्यक (सं० पु०) जार्य्यः स्वार्थे कन्। मृगभेद, एक प्रकारका हरिण।

जाल (सं० पु०-क्ली०) जल घाते ज्वलादित्वात्-ण। १ मत्स्य वा पशुपक्षी आदिको फंसानेके लिए तार या सूत आदिका बहुत दूर दूर पर बुना हुआ एक पट या यन्त्र। (भारत १।१५० अ०)

२ गवाक्ष, झरोखा। ३ समूह, यथा—पद्मजाल। ४ क्षार, वनस्पति आदिको जला कर उसकी भस्मसे बना हुआ नमक। ५ दम्भ, अहंकार, घमंड। (मेदिनी) ६ इन्द्रजाल। ७ गवाक्षछिद्र। (भट्टि १।४) ८ पुष्पकलिका, फूलको कली। जालयति शाखाप्रशाखादिभिः संवृणोति जल-णिच्-अच्। नन्दिग्रहीति। पा ३।१।१३४। ९ कदम्बवृक्ष, कदमका पेड़। १० लोहेके तारोंकी बनी हुई वह जाली जो मकानके झरोखों आदिमें लगायी जाती है। जाली देखो। ११ एक तरहकी तोप। १२ मकड़ीका जाल। १३ वह युक्ति जिससे दूसरे व्यक्तियोंको फंसाया या वशमें किया जाता हो। १४ किसीको ठगने या धोखा देनेके अभिप्रायसे यदि कोई झूठा दस्तावेज बनाया जाय अथवा दस्तावेज या उसका कोई अंश बदल दिया जाय या किसीके हस्ताक्षरोंकी नकल की जाय; तो उसको जाल कहते हैं। अच्छी तरह मालूम होने पर भी झूठे दस्तावेजका असली बताना तो यह भी जाल है। दस्तावेजका तमाम हिस्सा ज्योंका त्यों रहने पर भी और तो क्या हस्ताक्षर तक असली लेखकके होने पर भी, यदि कोई एक सारवान् शब्दको परिवर्त्तित किया जाय या बुरे अभिप्रायसे यदि कुछ नया लिखा जाय अथवा यदि एक लब्जको काट कर दूसरा लब्ज बैठाया जाय, तो वह भी जाल कहलाता है। किसी जीवित व्यक्तिके नामसे झूठा दस्तावेज बनानेसे जैसा जाल होता है, मृत व्यक्तिके नाम बनानेसे भी वैसा ही जाल होता है। साधारणतः किसी व्यक्तिविशेषका स्वत्व नष्ट करनेके लिए यदि बुरे अभिप्रायसे उसकी मुहर या हस्ताक्षर आदिकी नकल या उसकी मुहरका कुछ परिवर्त्तन किया जाय; अथवा यदि किसीको नुकसान पहुंचानेके लिए उसके हस्ताक्षरोंका अनुकरण किया जाय, तो उसे भी जाल कहते हैं। जिसके नामसे जाल किया जाय, उसके हस्ताक्षरोंसे यदि उस जाल दस्तावेजकी लिखावटमें सादृश्य हो और साधारण बुद्धिवाले किसी अभिज्ञ व्यक्तिके मनमें 'दोनों दस्तावेजोंके दस्तखत एक ही आदमीके हैं' ऐसा सन्देह उत्पन्न हो; और यदि ठगनेकी मनसा हो, तो वह भी जाल करना हुआ।

यदि कोई व्यक्ति दूसरे पक्षवालेको धोखा देनेके लिए दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर लिख कर पहलेकी तारीख डाल दे, तो वह भी जालके अपराधसे अपराधी है। यदि कोई व्यक्ति किसीके इच्छा-पत्र (Will) बनाते समय, जैसा उसको कहा गया है वैसा न लिख कर वा लिख अपनी इच्छाके अनुसार दस्तावेजमें कुछ लिख दे, तो वह उसका जाल करना हुआ। अभिप्राय यह है कि धोखा देनेकी इच्छासे उक्त प्रकारके किसी भी कार्यके करनेको जाल कहते हैं।

पहले इंगलैण्डमें यदि कोई जाल दस्तावेज़ बनाता और व्यवहार करता वा जाल दानपत्र वा किसी अदालतके जाल दस्तावेज़ प्रमाण देनेके लिए हाजिर करता, तो उसको ५ एलिज़ाबेथ, सो१४ धाराके अनुसार प्रतिवादीको क्षतिपूर्त्ति करनी पड़ती थी और उसके खर्चसे दूने रुपये देने पड़ते थे। जालके अपराधीके दोनों कान काट कर नासारन्ध्र जला दिये जाते थे। इस प्रदेशमें व्यवसाय वाणिज्यकी वृद्धिके साथ साथ जब लिखित कागजातों पर ज्यादह काम होने लगा, तब जाल रोकनेके लिए कानूनोंमें नाना प्रकारका परिवर्त्तन होने लगा। २ आइन ४र्थ जर्ज और १ विलियम (४र्थ) सो६६ धाराके अनुसार, यदि कोई राजकीय मुहरका जाल करता था, तो उसे राजद्रोहके अपराधसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। बादमें सिर्फ इच्छापत्र और विनिमयपत्र (Bill of exchange)के जाल करने पर मृत्युदण्ड मिलता था। इस समय ७, ४र्थ विलियम और १ विक्टोरिया ८४ धाराके अनुसार जालसाज़ोंको मृत्युदण्डसे छुटकारा दिया गया। क्योंकि दोषको सुधारनेके लिए आइनका विधान है; न कि लोगोंकी फांसी देनेके लिए।

अब जालसाज़ोंको कैदमें रखा जाता है। जिसका अपराध जितना अधिक होता है, विचारकके विवेचनानुसार उसको उतने ही अधिक दिनोंके लिए कारादण्डसे दण्डित किया जाता है। किसी किसीको यावज्जीवन द्वीपान्तर या कालेपानीका दण्ड दिया जाता है और किसी किसीको एक वर्षकी कैदकी सजा दी जाती है।

बहुत पहले जिसका नाम जाल किया जाता था, वे हस्ताक्षर उसके हैं या नहीं, यह प्रमाणित करनेके लिए उसको गवाहियोंमें शामिल किया जाता था। परन्तु सब समय हस्ताक्षर देख कर जालका पता नहीं लगाया जा सकता। एक ही व्यक्तिके हाथकी लिखावट किसी समय दूसरी तरहकी हो सकती है। यदि कलम और कागज खराब हो, यदि उसे जल्दी जल्दी कुछ लिखना हो तथा यदि किसी कारणसे उसके हाथ कांपते हों; तो उसकी लिखावट दूसरी तरहकी हो जा सकती है। इसलिये हस्ताक्षरोंके सादृश्यकी परीक्षा विशेष मनोयोगके साथ करनी पड़ती है।

जो लोग जालमें सहायता पहुंचाते हैं, उनको दो वर्ष तक कारारुद्ध किया जा सकता है।

जाल बहुत तरहके होते हैं—दस्तावेज, तमस्सुक आदि जाल, रुपया जाल, आदमी जाल, ष्टाम्प जाल इत्यादि।

भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न प्रकारके सिक्के चलते हैं तथा राजाके आदेशानुसार सिक्के बनते और व्यवहृत होते हैं। जिस देशमें जैसे सिक्के चलते हैं, उस देशमें यदि कोई राजासे छिपा कर वैसे ही सिक्के बना कर चलावे, तो वह रुपया जाल होता है। नोट जाल करना भी ऐसा ही है। जो जाली रुपया बनाता है और जो जान बूझ कर उसको काममें लेता है, वर्तमान कानूनके अनुसार उसे ७ वर्षकी कैद भोगनी पड़ती है। यदि कोई किसीको जाली रुपये बनाने या चलानेके लिये प्रवर्त्तित करे, तो उसको भी जालसाज़ीके अपराधमें दण्डित किया जाता है।

राजस्वके लिए राजाकी आज्ञासे जैसे ष्टाम्प आदि व्यवहृत होते हैं, यदि कोई गवर्मेण्टको धोखा देनेके अभिप्रायसे हूबहू वैसा ही ष्टाम्प खुद बनावे या काममें लावे, तो उसे भी कैदकी सजा भोगनी पड़ती है।

किसी व्यवसायीकी क्षति पहुंचा कर अपने लाभके लिए यदि उसका व्यवसायचिह्न (Trade-mark) व्यवहृत किया जाय, तो जालके अपराधसे अपराधी होना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति, दूसरे किसी व्यक्तिके उस चिह्नका—जिसे कि वह अपनी सम्पत्तिको ठीक रखनेके लिए व्यवहृत करता है (अर्थात् Property Mark)—अपव्यवहार करे, तो वह उसका जाल करना हुआ। यदि कोई व्यक्ति अपने परिचयको छिपा कर दूसरे किसी व्यक्तिके नामसे अपना परिचय दे कर किसीको धोखा दे, अथवा जान बूझ कर अपनेको वा अन्य किसी व्यक्तिको दूसरे किसीके नामसे परिचय करावे, तो उसका यह आदमी जाल बनाना हुआ। जिसके नामसे परिचय दिया जाय, यदि वास्तवमें वह आदमी न भी हो, तो भी वह जाल ही कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति दीवानी या

फोजदारी मुकद्दमाके विचारके समय अपने असली परिचयको छिपा करके झूठा परिचय देता हुआ अन्य व्यक्तिका स्थानाभिषिक्त बन कर मुकद्दमामें शामिल हो और जिस व्यक्तिके नामसे अपना परिचय देता है, उसका कुछ वर्णन करे। तो उसको तीन वर्षकी सजा भोगनी पड़ती है।

जिस प्रदेशके लोग जितने अधार्मिक और चरित्रहीन हैं, उस प्रदेशके लोग उतने हो जालसाज़ या फरेब होते हैं। पहले भारतवर्षमें जालका कोई नाम भी नहीं जानता था। किन्तु अब धीरे धीरे वैदेशिक जातिकी सङ्गतिसे इस देशमें भी जालसाज़ोंकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जाती है।

जालसाज़ोंका भयङ्कर परिणाम होता है। बङ्गालके प्रसिद्ध व्यक्ति महाराज नन्दकुमारने वहांके गवर्नर हेष्टिंसको उत्कोचग्राहिताकी सह न सकनेके कारण उनकी दो एक कुकोर्त्तियां प्रकट कर दी थीं। इस जलनसे जल कर हेष्टिंसने अपनी विजातीय ईर्षाको चरितार्थ करनेके लिए महाराज नन्दकुमारके नामसे एक जाल दस्तावेज़ बनाया और उसके ज़रिये उन्होंने अपने मित्र सर इलाइजाइम्पोके न्यायालयसे उन्हें फांसीका हुक्म दिलाया था।

जालक (सं॰ क्लो॰) जलं संवरणे भावे घञ्, जालेन ईषदावरणेन कायति प्रकाशते इति कै-क स्वार्थे कन् वा। १ अस्फुटकलिका, फूलकी कटोरी। २ कुष्माण्डादि क्षुद्रफल, अचिरजातफल। इसका पर्याय जारक है। ३ कोरक, कली। ४ दम्भ, गर्व, अभिमान। ५ कुलाय, चिड़ियोंका घोंसला। ६ आनाय, जाल। ७ समूह। ८ वंशलोहादि निर्मित जालाकृति द्रव्यविशेष, जालके आकारका एक प्रकारका द्रव्य जो बांस और लोहेका बना होता है। ९ भूषणविशेष, एक प्रकारका गहना। १० मोचकफल, केला। (पु॰) ११ गवाक्ष, झरोखा।

जालकारक (सं॰ पु॰) जालं करोति कृ-ण्वुल्, जालस्य कारको वा। १ मर्कटक, मकड़ा। (त्रि॰) २ जालकारी, जाल बनानेवाला।

जालकि (सं॰ पु॰) आयुधजीविभेद, शस्त्रोंसे अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला मनुष्य।

जालकिनी (सं॰ स्त्री॰) जालकं लोमसमूहस्तदस्ति अस्याः इनि। अत इनिठनौ। पा ५।२।११५। ततो ङीप। मेषी, भेड़ी।

जालकिरच (हिं॰ स्त्री॰) परतला मिली हुई वह पेटी जिसके साथ तलवार भी हो।

जालकीट (सं॰ पु॰) जाले पतितः कीटोऽस्य। १ मर्कट, मकड़ा। २ मकड़ीके जालमें फंसा हुआ कीड़ा।

जालक्षीय (सं॰ पु॰) जालकि स्वार्थे छ। शस्त्रव्यवसाय।

जालक्षीर्य (सं॰ क्लो॰) जाले जालके चोरं तत्र साधुः यत्। क्षीरविषवृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ जिससे जहरीला दूध निकलता है।

जालगर्दभ (सं॰ पु॰) रोगविशेष, एक प्रकारका क्षुद्र रोग। इसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है। क्षुद्ररोग देखो।

जालगोणिका (सं॰ स्त्री॰) जालवत् गोण्याच्छिन्नवस्त्रेण कायति कै-क ततो ह्रस्वः। दधिमन्थन भाण्डविशेष, दही मथनेका घड़ा।

जालजीवी (सं॰ त्रि॰) जालेन जीवितुं शीलमस्य जाल-जीव-णिनि। धीवर, मछुआ।

जालदार (हिं॰ वि॰) जिसमें जालकी तरह बहुतसे छेद हों।

जालना—१ हैदराबाद राज्यके औरङ्गाबाद जिलेका पूर्व तालुक। इसका क्षेत्रफल ८०१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११३४०० है। इसमें २ नगर और २१८ गांव आबाद हैं। मालगुजारी कोई २ लाख ५० हजार है। यह व्यापारका केन्द्रस्थल है।

२ हैदराबाद राज्यके औरङ्गाबाद जिलेके अन्तर्गत इसी नामकी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ १९° ५१´ उ॰ और देशा॰ ७५° ५४´ पू॰में औरंगाबादसे ३८ मील पूर्व कुण्डलिका नदीके किनारे पर अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः २०२७० है। प्रवाद है कि श्रीरामचन्द्रजीने यह नगर स्थापित किया था। कुछ काल तक सीतादेवी यहां रहती थीं, उस समय इसका नाम जानकीपुर था, बाद किसी धनी मुसलमान तांतीके नाम पर इस शहरका नाम पड़ा है। प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास-लेखक अबुल-फजलने अकबरकी राजसभासे

निर्वासित हो कर कुछ समयके लिए इसी नगरमें वास किया था। तब जालना एक मुगल सेनापतिका जागीर था। १८०३ ई०में महाराष्ट्र युद्धके समय कर्नल स्टिभेन्सनकी सेना इसी नगरमें टिकी थी। यहां पत्थरकी बनी हुई सराय एक मसजिद, तीन हिन्दू देवमन्दिर और कई एक नगरकी प्रधान अट्टालिकायें हैं। यहांका वाणिज्य व्यवसाय दिनों दिन ह्रास होता जा रहा है। अभी सोने और चांदीका गोटा और कुछ कपड़े भी तैयार होते हैं। जालना दुर्ग १७२५ ई०में निर्माण किया गया था। यह अब बहुत तहस नहस दशामें है। इसके उत्तरमें एक विस्तृत उद्यान है। यहाँका फल बम्बई, हैदराबाद आदि देशोंमें भेजा जाता है। शहरसे आध मील पश्चिममें मतितलाव नामका एक बड़ा सरोवर है। इसीका जल नगरके काममें आता है। यहां डाकघर, डाकबङ्गला और दो गिरजा हैं।

जालना पहाड़—हैदराबाद राज्यकी पर्वतश्रेणी। यह दौलताबादसे औरङ्गाबाद जिलेको चला गया है। बरारकी सीमाके निकट जालनाका पर्वत आ मिलनेसे ही इसका यह नाम पड़ा है। फिर यह सह्याद्रि पर्वतमें मिल जाता है। जालना पर्वत २४०० फुट ऊँचा है। दौलताबाद चोटी समुद्रपृष्ठसे ३०२२ फुट ऊँची पड़ती है। इसकी पूरी लम्बाई १२० मील है।

जालन्धर—शतद्रु और चन्द्रभागा नदीके मध्यवर्त्ती दुआबका ऊर्ध्वांश। पहले इस प्रदेशका नाम त्रिगर्त था। इस प्रदेशका प्रधान शहर जालन्धर है। कोटकाङ्गड़ा (अथवा नागरकोट) नामक स्थानमें एक सुदृढ़ दुर्ग था, विपद कालमें जालन्धरवासी उस स्थानमें आ कर रहते थे।

पद्मपुराणमें जालन्धरके उत्पत्ति सम्बन्धमें एक सुन्दर गल्प है—किसी समय समुद्रके औरस और गङ्गाके गर्भसे जालन्धर नामका एक दानव उत्पन्न हुआ। उसके जनमते ही पृथिवी देवी कांप उठी। स्वर्ग, मर्त्य और रसातल उसके गर्जनसे प्रकम्पित हो गया। जब ब्रह्माका ध्यान टूटा तो वे तीनों लोकको व्याकुल देख भयभीत हो गये। बाद वे हंस पर चढ़ कर समुद्रके सामने उपस्थित हुए और समुद्रसे पूछा, 'हे सागर! तुम क्यों इस तरहका गम्भीर और भयङ्कर शब्द कर रहे हो!' समुद्रने उत्तर दिया, 'हे देवाधिदेव! यह मेरा गर्जन नहीं है, मेरे पुत्रके गरजनेसे ऐसा शब्द उत्पन्न होता है।" ब्रह्मा समुद्रके पुत्रको देख कर अत्यन्त विस्मित हो गये। जब ब्रह्माने उसे अपनी गोदमें बिठा लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोरसे खींची कि उनकी आंखोंसे आंसू निकल पड़े और वे किसी तरह दाढ़ी न छुड़ा सके। तब समुद्रने हंसते हंसते आगे बढ़ अपने पुत्रका हाथ छुड़ा दिया। ब्रह्मा सागर-पुत्रके पराक्रमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो कर बोले कि इस लड़केने मुझे अत्यन्त जोरसे आकर्षण किया है, इसीलिये यह संसारमें जालन्धर नामसे प्रसिद्ध होगा। ब्रह्माने उसे एक और भी वर दिया, कि यह बालक देवताओंसे भी अजेय होगा और मेरे अनुग्रहसे त्रिलोकका अधिपति कहलायेगा।

बड़े होने पर एकदिन दैत्यगुरु शुक्र समुद्रके समीप जा कर बोले, "हे सागर! तुम्हारा पुत्र अपने भुजबलसे त्रिलोकका राजा होगा, इसलिये तुम पुण्यात्माओंके वासस्थान जम्बूद्वीपसे कुछ दूर रह कर वास करो और अपने पुत्रके रहने योग्य कुछ स्थान दे कर वहां उसे एक छोटा राज्य प्रदान करो।" दैत्यगुरु शुक्रके कहने पर समुद्र ३०० योजन दूर हट गया। वही जल-निर्मुक्त स्थान पीछे जालन्धर नामसे मशहूर हो गया है।

(पद्मपुराण उत्तर०)

उक्त कथा काल्पनिक कह कर उड़ाई नहीं जा सकती। इसके साथ एक प्राकृतिक परिवर्त्तनका सम्बन्ध भी है। जालन्धर प्रदेश गङ्गा और सिन्धु नदके उपत्यका प्रदेशके अन्तर्गत पड़ता है। पहले उक्त प्रदेश सम्पूर्ण रूपसे समुद्रके मध्य था, बाद समुद्रके हट जानेसे वह मनुष्यकी आवासभूमि हो गया है।

जालन्धर दानवका मृत्यु, वृत्तान्त अत्यन्त शोचनीय है। उसे वर मिला था, कि जब तक उसकी स्त्री वृन्दाका चरित्र निष्कलङ्क रहेगा, तब तक उसे कोई जीत नहीं सकता। किन्तु विष्णुने जालन्धरका रूप धारण कर वृन्दाको ठगा था, इसीसे थोड़े समयके बाद शिवजीने जालन्धरको पराजित किया। आश्चर्यका विषय यह था कि परस्पर युद्धकालमें शिवजी जितनी बार जालन्धरके मस्तकको काटते जाते थे, उतनी बार फिर उसका मस्तक

जुड़ता जाता था। अन्तमें शिवजीने कोई दूसरा उपाय न देख कर उसके कटे हुए मुण्डको मट्टीमें गाड़ दिया। दानवका शरीर इतना प्रकाण्ड था कि, उसकी कब्रके लिये ३२ कोस जमीनकी जरूरत पड़ी थी। इसीसे आधुनिक जालन्धरतीर्थ भी ३२ कोस तक फैला हुआ है। जालन्धर जिलेके प्रधान शहरको हिन्दूगण जालन्धर-पीठ कहते हैं। जालन्धरवासी हिन्दुओंका कहना है कि जालन्धर दानवको गाड़ते समय उसका मस्तक विपासा नदीके उत्तरकी ओर ज्वालामुखी नामक स्थानमें रखा गया था। उसका शरीर शतद्रु और विपासा नदीके मध्यवर्ती भूभाग तक फैला था। उसकी पीठ जालन्धर जिलेके तलदेश और उसके पैर मुलतान तक पहुंचे थे। इस प्रदेशके मानचित्रके प्रति दृष्टिपात करनेसे मालूम हो जायगा कि इस कहानीके साथ इस प्रदेशकी आकृतिका सामञ्जस्य है। नदयोन नामक स्थानसे शतद्रु और विपासा नदी २४ मील आगे बढ़ कर दानवके पृष्ठाकारमें परिणत हो गई हैं। इसके बाद वे अलग अलग हो कर ६८ मील तक बही हैं और स्कन्धदेशकी सृष्टि हुई है। अभी वे दोनों नदियां फिरोजपुरमें एक दूसरेसे मिलती हैं। किन्तु कई एक शताब्दीके पहले उन नदियोंके १६ मीलसे कुछ अधिक दूरमें जा कर मिलनेसे कटिदेशकी सृष्टि और मुलतान तक समान्तर रेखामें प्रवाहित होनेसे पाददेशकी उत्पत्ति हुई थी।

जालन्धरके उत्पत्ति सम्बन्धमें एक दूसरी उत्तम कथा इस तरह है—जलन्धर नामका एक राक्षस था। जब भगवान्‌ने अन्तर्वेदी दृष्टि की, तब इस राक्षसने बहुत ऊधम मचाया। बाद भगवान् विष्णुने वामनरूप धारण कर इस राक्षसको मारा। राक्षस आहत हो कर औंधे मुंह गिर पड़ा और उसकी पीठके ऊपर एक नगर निर्माण किया गया। यही नगर जालन्धर नामसे प्रसिद्ध है। राक्षसकी लम्बाई उसके पृष्ठदेशके मध्यस्थलसे दोनों ओर १२ कोस विस्तृत थी। पहले इसी स्थान पर नगर बनाया गया; बाद अन्यान्य स्थान अधिकृत हो गये हैं। यह राक्षस कितनी दूर फैल गया था उसका निर्णय करना दुःसाध्य है। कोई कोई कहते हैं कि निग्वन नदीके ऊपर शिम्द्राङ्गल नामक स्थानमें नन्दिकेश्वर महादेवके मन्दिरके नीचे जालन्धर राक्षसका मस्तक रखा हुआ है। इस स्थानको तथा पालमपुरके मध्यवर्ती जङ्गलमय प्रदेशको जालन्धरकी स्त्री वृन्दाके नामानुसार वृन्दावन कहते हैं। इस राक्षसका मस्तक वैद्यनाथसे ५ मील उत्तर-पूर्व कोणमें सुनसोलके मुक्तेश्वर मन्दिरके नीचे रखा हुआ है। एक हाथ नन्दिकेश्वरमें और दूसरा हाथ वैद्यनाथमें स्थापित है। इसके दोनों पैर ज्वालामुखीके दक्षिण विपासा नदीके पश्चिम प्रान्त कानपुरमें अवस्थित हैं।

शतद्रु और चन्द्रभागा नदीका मध्यवर्ती प्रदेश त्रिगर्त्त अथवा त्रैगर्त्तदेश नामसे भी पुकारा जाता है। इस प्रदेशमें शतद्रु, विपाशा और चन्द्रभागा नामकी तीन नदियां प्रवाहित हैं, इसीसे इसको त्रिगर्त्त कहते हैं। महाभारत, पुराण और काश्मीरके इतिहास राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थमें इसका नाम त्रिगर्त्त देखा जाता है। हेमचन्द्रने भी 'त्रिगर्त्त'-को जालन्धरके प्रतिशब्द रूपमें व्यवहार किया है।

जालन्धरका राजवंश अत्यन्त प्राचीन है, राजवंशीयगण कहते हैं, कि उन्होंने चन्द्रवंशमें जन्मग्रहण किया है। इनके पूर्वपुरुष सुशर्मा आधुनिक मुलतानमें राज्य करते थे, और उन्होंने कौरव-पाण्डवकी लड़ाईमें दुर्योधनका पक्ष लिया था। लड़ाई समाप्त होने पर इन्होंने सुशर्माचन्द्रके अधीन जालन्धरमें आ कर अपनी राजधानी स्थापन की और कोटकाङ्गड़ामें एक दृढ़ दुर्ग बनाया। चन्द्रवंशीय होनेके कारण ये चन्द्र उपाधि धारण करते थे। उनका कहना है, कि उन लोगोंके पूर्वपुरुष सुशर्मा राजाके समयसे ही वे चन्द्र उपाधि धारण करते आ रहे हैं। ८०४ ई०में जालन्धरके राजाका नाम जयचन्द्र था। कह्लण पण्डितने लिखा है कि, ८वीं शताब्दीके अन्तमें त्रिगर्त्तराज पृथ्वीचन्द्र शङ्करवर्माके भयसे भाग गये थे। १०४० ई०में इन्दुचन्द्र जालन्धरके राजा हुए थे।

त्रिगर्त्त राजाओंके राज्यकी सीमाका पता लगाना बहुत कठिन है। किसी समय निकटवर्ती दक्षिण प्रदेशके राजाओंने त्रिगर्त्तके किसी भाग पर अपना अधिकार जमाया था, बाद वह फिर त्रिगर्त्त राजाओंके हाथ आ गया है। जब शक राजाने भारतवर्षमें प्रवेश

कर कई एक स्थान अधिकार कर लिये थे, तब त्रिगर्त्त-राजगण अपने समस्त अधिकारसे विच्युत न हुए थे। वे शकके अधीन करद राजा थे और जब कभी उन्होंने सुविधा पाई तभी अपने प्राचीन दुर्ग कोटकाङ्गड़ाको अधिकारमें लानेकी चेष्टा की। एक समय महम्मद तुगलकने इस दुर्ग पर अधिकार किया था, किन्तु वह फिर राजा रूपचन्द्रके हाथ आ गया। इसके बाद फिरोज शाहने इसे अपने अधिकारमें लाया। पीछे तैमुरके आक्रमणके समय त्रिगर्त्तराजाने इस दुर्गको पुनः अपने हाथमें कर लिया और सम्राट् अकबरके समय तक यह दुर्ग उन्हींके अधीन था। अकबरके समयमें राजा धर्मचन्द्रने दिल्लीकी अधीनता स्वीकार की। राजा त्रैलोक्यचन्द्र जहांगीरके समयमें विद्रोही हो गये थे, किन्तु उन्होंने पराजित हो कर अधीनता स्वीकार की। कालक्रमसे राजा संसारचन्द्रने कोटकाङ्गड़ा दुर्ग अपने हाथमें कर लिया और समस्त जालन्धर प्रदेशको अधिकारमें लानेकी चेष्टा की। किन्तु अन्तमें उन्होंने गोरखा सैन्यसे प्रतिहत हो कर रणजित्‌सिंहसे सहायता मांगी थी। उन्हें सहायता दी गई सही, किन्तु कोटकाङ्गड़ा दुर्ग उसी समय जालन्धर राजाओंके हाथसे सदाके लिये जाता रहा।

चीन-भ्रमणकारी युएनचुयाङ्गने भारतसे लौटते समय जालन्धर राज भवनमें आतिथ्य स्वीकार किया था। वे जालन्धरराजको उतितो नामसे अभिहित कर गये हैं। शायद राजा आदित्यका उन्होंने उतितो (उदित) नामसे उल्लेख किया है। ८०४ ई०में जयचन्द्र त्रिगर्त्तके राजा थे जयचन्द्रके बाद क्रमशः १८ राजाओंने राज्य किया बाद १०२८ ई०में इन्द्रचन्द्र जालन्धरके सिंहासन पर बैठे। उनके बादसे ले कर राजा रूपचन्द्रके समय तक ३४ राजा हुए। राजा रूपचन्द्रके बाद ४७ राजाओंने जालन्धर पर राज्य किया। १८४७ ई०में रणवीरचन्द्र राजा थे, थोड़े समयके बाद वे सिंहासनसे हटा दिये गये। रूपचन्द्रके वंशमें हरि और कर्म नामके दो भाइयोंने जन्मग्रहण किया। हरि बड़े होनेके कारण सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। एक समय वे हरसर नामक स्थान पर एक कूपमें अकस्मात् गिर पड़े, बहुत तलाश करने पर भी उनका पता न चला; इसलिये उनके भाई कर्म राजसिंहासन पर बैठे। २ या ३ दिन बाद किसी व्यापारीने उन्हें कुएंसे बाहर निकाला। किन्तु इसके पहले ही उनकी प्रेतक्रिया हो चुकी थी, अतः वे पुनः राज्यके अधिकारी न हो सके, उन्हें गुलार नामका एक छोटा राज्य दे दिया गया। उसी समयसे गुलारमें भी जालन्धर-राजका एक वंश राज्य करता आ रहा है।

प्राचीन त्रिगर्त्त राज्यमें जालन्धर, पाठानकोट, धरमेरि, कोटकाङ्गड़ा, वैद्यनाथ और ज्वालामुखीका देवमन्दिर ही प्रसिद्ध हैं।

१ अभी जालन्धर कहनेसे पञ्जाबका एक राजस्व विभाग समझा जाता है। इसके अधीन जालन्धर, होसियारपुर और काङ्गड़ा ये तीन जिला पड़ते हैं। यह अक्षा० २८° ५५´ ३०से ३२° ४८´ उ० और देशा० ७३° ५२´से ७८° ४२´ पू०में अवस्थित है। जालन्धरकी निम्न प्रान्तर भूमि मुसलमानों के हाथ आ जाने पर यहांके प्राचीन राजवंश पार्वतीय प्रदेशमें आ कर रहते हैं और प्रसिद्ध दुर्ग काङ्गड़ाके नामानुसार यह स्थान भी काङ्गड़ा नामसे मशहूर हो गया है। इस स्थानको कोई कोई कतोच कहते हैं।

वृटिश अधिकारभुक्त जालन्धर प्रदेशमें हिन्दू, जैन, सिख धर्मावलम्बी जाट, राजपूत, ब्राह्मण, गुर्जर, पाठान, सैयद आदिका वास है। जालन्धरके उच्च प्रदेशमें बहुतसे कूएं हैं जिनके जलमें खनिज पदार्थ मिश्रित है। इस स्थान पर मणिकर्ण नामक एक गरम झरना निकला है जिसका जल ५३८१ फुट ऊपर उछलता है। मणिकर्णके समीप पार्वतीय तुषार-स्रोत बहते हैं। यहां विसत् नामक गन्धकगर्भ उष्णप्रस्रवण है।

जालन्धरके कोहिस्थान, सुखेत और मन्दि उपत्यकामें तथा मन्दि नगरके निकटवर्त्ती छोटे छोटे ग्रामोंमें यदि कोई विदेशी मनुष्य पहुंच जाय, तो उन ग्रामोंकी स्त्रियां उसके सत्कारके लिये भिन्न भिन्न दलमें उसके समीप आ जाती हैं और अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर अभ्यर्थनासूचक गीत गाती हैं। इस उपलक्षमें उस आगन्तुकको प्रतिदलमें एक एक रुपया देना पड़ता है।

जालन्धर विभागका क्षेत्रफल १८४१० वर्गमील है। इस विभागमें ५ जिले, ३७ नगर और ६४१५ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ४३०७६६२ है।

७४०५५६४२ एकड़ जमीनमेंसे २०५८७८६ एकड़ जमीन आबाद होती है। ५०२८८०५ एकड़ जमीन परती रहती है। इस भूमिका प्रायः १० अंश पर्वतसङ्कुल है।

यहांकी उपज जौ, धान, गेहूं, तिल, ज्वार, चना, ईख, रुई, तमाकू, नील, पोस्ता और तरह तरहको साक सब्जी प्रधान है। जालन्धर विभाग एक कमिश्नरके अधीन है। विचारकार्यके लिये यहां एक सहकारी कमिश्नर रहते हैं। इस विभागमें ३ डिपुटी कमिश्नर और कार्य निर्वाहके लिये प्रत्येकके एक एक सहकारी हैं। इसके सिवा ३ सहकारी कमिश्नर, ८ अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर, १ सेनानिवासके मजिष्ट्रेट, २३ तहसीलदार, १२ मुन्सफ और बहुतसे अधीनस्थ कर्मचारी हैं।

२ वृटिश अधिकारभुक्त जालन्धर जिला पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन है। यह अक्षा० ३०° ५६' से ३१° ५७' उ० और देशा० ७५° ५' से ७६° १६' पू०के मध्य जालन्धर विभागके दक्षिण सीमा पर अवस्थित है। इसके उत्तर-पूर्व कोनमें होसियारपुर, उत्तर-पश्चिममें कपूरतला मित्रराज्य और दक्षिणमें शतद्रु नदी है। जालन्धर जिलेकी लोकसंख्या प्रायः ८१७५८७ है। यह जिला ४ तहसील अथवा महकमेमें विभक्त है। जालन्धर तहसीलके उत्तरमें नव शहर, फिल्लौर और दक्षिणमें नाकोदर है। इस जिलेका भूपरिमाण १४३१ वर्गमील है। राज्यसंक्रान्त प्रधान कर्मचारी जालन्धरमें रहते हैं। शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यकी त्रिकोणाकार भूमि जालन्धर अथवा विसत दुआब नामसे मशहूर है। इस भूखण्डके कई अंश कपूरतला राज्यके अन्तर्गत और कई अंश वृटिश अधिकारभुक्त हैं। पञ्जाबमें यही दुआब सबसे अधिक उर्वरा है। इसके थोड़े स्थानोंमें बालू भी देखो जाती है। यहां सब जगह तरह तरहके पौधे लगते हैं। इस दुआबके बीच एक भी पहाड़ नहीं है। इसकी रौखा मालभूमि समुद्रपृष्ठसे १०१२ फुट ऊंची है, किन्तु दिल्ली शहरकी ओर यह अत्यन्त नीची है। इस प्रदेशको नदियोंमें शीतकालके समय १५ फुटसे अधिक जल नहीं रहता है। हल्की नाव इस नदीमें बारहो मास आती जाती है। फिल्लौरके निकट शतद्रु नदीके ऊपर पञ्जाब और दिल्ली रेलका एक पुल है। ग्राण्डट्राङ्क रास्तेसे मालपत्रकी आमदनी और रफ्तनीके लिये शीतकालमें नदीके ऊपर नावका पुल तैयार होता है। होसियारपुर जिलेमें शिवालिक पहाड़से दो छोटे छोटे सोते निकले हैं और वे क्रमशः एक दूसरेसे मिल कर दो बड़ी नदियोंके रूपमें परिणत हो गये हैं। जिनमेंसे एकका नाम श्वेत अथवा पूर्व वेन और दूसरेका कृष्ण अथवा पश्चिम वेन रक्खा गया है। ये दोनों नदियां कपूरतला और जालन्धर प्रदेशमें प्रवाहित हैं। इस जिलेमें बहुतसी झीलें हैं जिनमें बरसाती जल जमा रहता है। ग्रीष्मकालमें भी उनका जल बिलकुल नहीं सूख जाता है। राहणके निकटकी झील ही सबसे बड़ी है जो ८६५० फुट लम्बी और ३००० फुट चौड़ी है। फिल्लौरके पासकी झील भी बहुत बड़ी है। इन सब झीलोंमें तरह तरहके जलचर पक्षी रहते हैं। जालन्धरमें कङ्कड़ बहुत देखे जाते हैं। यहां हिंसक पशु बहुत कम हैं।

सम्राट् अकबरके समय जालन्धर सरकार प्रदेशके अन्तर्गत किया गया था। इस प्रदेशके शासनकर्त्ता दिल्लीसम्राट्को कुछ कर दे कर स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। इस प्रदेशके अन्तिम मुसलमान शासनकर्त्ता अदोनाबेग इतिहासमें सुपरिचित हैं। मुसलमानोंको अवनतिके समय बहुतसे सिख सर्दार अस्त्रबलसे जालन्धरके थोड़े स्थानों पर स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। १७६६ ई०में यह प्रदेश फैजउल्लाह-पुरिया सिखदलके हाथ आ गया। उस समय खुसालसिंह इस मिशिल (दल)के सभापति थे। खुसालके पुत्र और उत्तराधिकारी बुधसिंहने इस शहरमें एक दुर्ग निर्माण किया था। १८११ ई०में रणजीतसिंहने दीवान फैजउल्ला पुरिया राज्य जीतनेके लिये भेजा। बुधसिंह डरसे भाग गया। उसी समय यह जिला रणजीत्सिंहके राज्यमें आ गया और वहांके सर्दार अपने अधिकारसे अलग किये गये। प्रथम सिख युद्धके बाद शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यका भूभाग वृटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया और एक कमिश्नर

इस प्रदेशके शासनकर्त्तारूपमें नियुक्त हुए। १८४८ ई०में यह प्रदेश पहले लाहोरके वृटिश रेसिडेण्टके शासनाधीन किया गया, बाद समस्त पञ्जाब प्रदेश अङ्गरेजोंके हाथ आ जाने पर इस प्रदेशका शासनकार्य साधारण नियमके अनुसार हो चलता था। जालन्धर कमिश्नरके वास स्थानके रूपमें परिणत हुआ और यह जालन्धर, होसियारपुर और काङ्गड़ा इन तीनों जिलोंमें विभक्त किया गया। जब यह प्रदेश लाहोर दरबारके अधीन था, तब गुलाम मोहिउद्दीनने अधिक राजस्व वसूल करके अधिवासियोंको जिस तरह तकलीफ दी थी, अङ्गरेजोंने उस तरहकी नीति अवलम्बन न की। पहले फजुउल्लाह पुरिया मिश्लिके अधीन अत्यन्त दयालु और न्यायवान् सिख शासनकर्त्ता रूपलाल जिस तरह कर वसूल करते थे, अङ्गरेज भी उसी तरह काम करते आ रहे हैं।

जालन्धर प्रदेशमें १४ प्रधान शहर हैं—जालन्धर, कर्त्तारपुर, अलवालपुर, आदमपुर, बङ्गा, नवशहर, राहण, फिल्लौर, नूरमहल, महतपुर, नाकोदर, बिलगा, जानदिवाला, करका और कलन। साधारणतः इस प्रदेशमें पञ्जाबी भाषा प्रचलित है। निम्न श्रेणीके लोग हिन्दी भाषामें बोलते हैं।

प्रदेशकी १३६६३२८३ एकड़ आबादी जमीनमें २२५७२२ एकड़ जमीनमें पानी सींचना पड़ती है। पानी सींचनेके लिये जगह जगह कुएँ हैं। इस प्रदेशमें ईख बहुत उपजती है और इसीको बेच कर गृहस्थ लोग मालगुजारी देते हैं। यहां गाय, बैल, घोड़े, खच्चर, गदहे, भेड़ें और बकरे बहुत पाये जाते हैं। खेती करनेके लिये जो नौकर नियुक्त किये जाते हैं उन्हें वेतन स्वरूप कुछ फसल दी जाती है।

व्यवसाय वाणिज्य—लुधियाना, फिरोजपुर और आस पासके स्थानोंसे जालन्धरमें अनाज आदि भेजा जाता है, किन्तु कभी कभी जालन्धरसे भी चावल आदिकी रफ़्तनी आगरा और बङ्गदेशमें होती है। यहांकी ईख ही प्रधान पण्यद्रव्य है। यहांकी चीनी और गुड़ बीकानेर, लाहोर, पञ्जाब और सिन्धुप्रदेशमें भेजा जाता है। अगहनसे माघ महीने तक यहां ईख पेरी जाती है। किसी किसी गाँवमें ५०से भी अधिक ईख पेरनेके कोल्हू हैं।

जालन्धरवासी ईखका रस निकाल लेते हैं और जो भाग फेंक दिया जाता है उससे वे रस्सी तैयार करते हैं। जालन्धर, राहण, कर्त्तारपुर और नूरमहलमें एक प्रकारका कपड़ा प्रस्तुत होता है। जालन्धरका घाटि नामक वस्त्र अत्यन्त सुन्दर और चमकीला होता है। यहांका सूसी नामक वस्त्र भी खराब नहीं होता है। यहां एकसौसे अधिक करघे चलते हैं जिनमें तरह तरहके रेशमी कपड़े तैयार होते। यहां प्रायः पगड़ीके लिये लुङ्गी व्यवहृत होती है। राहणमें एक प्रकारकी चादर और मोटा कपड़ा बनता जो जालन्धरके कपड़ोंमें बहुत प्रसिद्ध है।

जालन्धरका बढ़ईका काम अत्यन्त मनोहर लगता है। काठके ऊपर अच्छे अच्छे चित्र खोदे रहते हैं। वे इतने सुन्दर बने रहते हैं कि हर एक २०) रु०से कममें नहीं बिकता है। यहां एक तरहकी कुर्सी तैयार होती है। उसके हत्थे शीशम और तूणकाठके बने रहते हैं। खानखानेके काठका काम विशेष प्रसिद्ध है।

जालन्धरमें चाँदीकी पत्ती और एक प्रकारका सोनेका बढ़िया गोटा बनता है। यहाँका मृण्मय कार्य भी खराब नहीं है। तमाकू पीनेके लिये एक प्रकारकी चिलम और मत्तवान तैयार होता जिसका मूल्य भी अधिक होता है।

जालन्धर जिलेमें ४८ मील रेलपथ गया है। फिल्लौर, फगवारा, जालन्धरसैन्यनिवासके समीप और जालन्धर शहरमें सिन्धु-पञ्जाब और दिल्ली रेलवेके स्टेशन हैं। होसियारपुरसे काङ्गड़ा तक ८६ मीलकी एक पक्की सड़क चली गई है। रेलपथ तथा ग्राण्डट्रङ्क पथ पर तार बैठाया गया है।

जालन्धर जिलेमें एक डेपुटीकमिश्नर, एक या दो सहकारी तथा दो या उससे अधिक अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर रहते हैं। अतिरिक्त कमिश्नरोंमें एक युरोपियन रहनेका नियम है। इसके सिवा राजस्व और चिकित्साविभागके कर्मचारी भी वहां रहते हैं। पुलिसमें ३६४ स्थायी कर्मचारी रहते हैं। म्युनिसीपल पुलिसमें १०० और सेनानिवासकी पुलिसमें ५६ कानस्टेबु हैं। इस प्रदेशमें प्रायः ११७८ ग्राम्य चौकीदार रहते हैं। मर्क्सीपट

और साहाय्यप्राप्त विद्यालयोंकी संख्या १५७ है। इसके अतिरिक्त और कई एक छोटे छोटे विद्यालय हैं। राज-कर वसूल करनेके लिये प्रत्येक जिला ४ तहसील और ८ थानोंमें बँटा है।

जालन्धर प्रदेशकी जलवायु उतना स्वास्थ्यकर नहीं है। यहां प्रतिवर्ष कमसे कम २८' ४८ इञ्च वर्षा होती है। मलेरिया ज्वरका प्रकोप भी यहां अधिक है जिस-से प्रतिवर्ष बहुत मनुष्य मरते हैं। यहांके प्राय: अधिकांश अधिवासी ही पेटकी बीमारीसे पीड़ित रहते हैं।

३ जालन्धर जिलेके उत्तर तहसील। यह अक्षा० ३१° १२' से ३१° ३७ उ० और देशा० ७५° ४८' पू०में अवस्थित है। इस तहसीलमें करतारपुर और अला-वलपुर नामके दो शहर और ४०८ गांव लगते हैं। यहां मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। यहांका भूपरिमाण २८१ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: ३०५८७६ है। गेहूं, तेल, जौ, ज्वार, चना, रूई, सन, धान, ईख और तरह तरहके उद्भिद् उपजते हैं। इस तहसीलका शासन-कार्य चलानेके लिये एक छोटी अदालतके जज, एक तहसीलदार, २ मुन्सफ और अवैतनिक मजिष्ट्रेट हैं। इस तहसीलके अधीन ४ थाना हैं जिनमें १४४ स्थायी पुलिस कर्मचारी और ३७४ चौकीदार रखे जाते हैं।

४ पञ्जाब प्रदेशके जालन्धर जिलेका प्रधान सदर। यह अक्षा० ३१° २०' उ० और देशा० ७५° ३५' पू०। नार्थ वेष्टर्ण रेलवे और ग्राण्ड ट्रंक रोड पर अवस्थित है। रेलके रास्तेसे यह शहर कलकत्तेसे ११८० मील, बम्बईसे १२४७ मील और, करांचीसे ८१६ मील दूर पड़ता है।

जालन्धर पहले कतोचके राजपूत राजाओंकी राज-धानी था। चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्गने लिखा है, कि इस शहरकी परिधि प्राय: २ मील है। यहां दो अत्यन्त प्राचीन सरोवर हैं। गजनीके इब्राहिमशाहने यह स्थान मुसलमानोंके अधीन किया। मुगल राजाओंके शासन कालमें इस शहरमें शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यवर्त्ती दुआबकी राजधानी थी। यहां दीवारसे घेरे हुए कई एक भिन्न भिन्न महल हैं। शहरसे एक या दो मीलकी दूरी पर बहुतसी बस्तियां और एक सुन्दर सराय है।

कहा जाता है, कि इमामउद्दीनके प्रतिनिधि शेख करिम बक्सने उस सरायको निर्माण किया था।

जालन्धर शहरमें प्राय: ६७७३५ लोगोंका वास है। यहां अमेरिकाके प्रेसबिटेरियन सम्प्रदायका एक स्कूल और उक्त पादरीका एक बालिका-विद्यालय भी है। इस शहरमें एक दरिद्र आश्रम है जहां सब श्रेणीके दरिद्र सहायता पाते हैं। शहरसे ४ मील दूर सैन्यावास है जो १८४६ ई०में स्थापित हुआ था। इस सैन्यावासका भूपरिमाण ७½ वर्गमील है। जालन्धर दुर्गमें एक दल युरोपीय पदातिक, एक दल गोलन्दाज और एक दल देशीय पदातिक सैन्य है।

यह एक पीठस्थान है। यहां भगवतीका वामस्तन गिर पड़ा था। भगवतीकी त्रिशमुखी मूर्त्ति इसी स्थान पर विराजित है। (देवीभा० ७।३०।७२)

५ जालन्धर देशवासी, जालन्धरके रहनेवाले। ६ दैत्य-विशेष, एक दानवका नाम।

"पुरा जालन्धरं दैत्यं ममापि परिकम्पनं।
पादांगुष्ठस्य रेखातश्चक्रं सृष्ट्वा ह्यरोऽहरत्॥"
(काशीखण्ड २१।१०६)

७ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम।

जालन्धरायन (सं० पु०) जलन्धरका वंशज।

जालन्धरि (सं० पु०) एक प्राचीन वैद्यका नाम।

जालपाद (सं० पु०) जालमिव पादौ यस्य। हंस। इसका मांस खानेवाला महापातकी समझा जाता है, खाने पर यदि प्रायश्चित्त न किया जाय तो पातित्य दोष लगता है।

"हंसं पारावतं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।" (स्मृति)

जालपाद (सं० पु०) जालमिव पादोऽस्य। १ हंस। २ शरारिपक्षी। ३ वह पशु या पक्षी जिसके पैरकी उंगलियां जालदार झिल्लीसे ढँकी हों। यथा—सिन्धु-घोटक सील प्रभृति। ४ जनपदविशेष, एक प्राचीन देशका नाम। ५ जाबालि ऋषिके एक शिष्यका नाम।

जालप्राया (सं० स्त्री०) जालस्य प्रायो बाहुल्यं यत्र, बहुव्री०। लौहमय अङ्गरक्षिणी, कवच, सँजोया।

जालबंद (हिं० पु०) एक प्रकारका गलीचा। इसमें जालकी तरहकी बेलें बनी होती हैं।

जालभुज (सं० त्रि०) जिसको उँगलियोंके ऊपरका चमड़ा जालके समान हो।

जालमानि (सं० पु०) १ मत्स्य-व्यवसायिविशेष, मछलीसे अपनी जीविकानिर्वाह करनेवाला मनुष्य। २ त्रिगर्त्त-के अधिवासी। जालकि देखो।

जालव (सं० पु०) एक दैत्य। यह बलवलका पुत्र था। बलदेवके हाथसे इसकी मृत्यु हुई थी।

जालवत् (सं० त्रि०) १ तन्तुवत्, सूत या तागाके समान। २ कवचसे ढका हुआ। (क्ली०) ३ कपट, छल।

जालबर्बुरक (सं० पु०) जालाकारो बर्बुरकः। दृढ़ स्थूल कण्टकयुक्त शाखाविशिष्ट बर्बुर जातीय वृक्ष, बबूल-की जातिका एक प्रकारका पेड़ जिसमें बहुत कांटा और छोटी छोटी डालियां होती हैं। इसके पर्याय—छत्राक, स्थूलकण्टक, सूक्ष्मशाख, तनुच्छाय और वज्रकण्ट है। इसके गुण—शातामय और कफनाशक. पित्तदाहकारक, कषाय और उष्ण है।

जालवाल (सं० पु०) मत्स्यभेद, एक प्रकारको मछली।

जालविन्दुजा (सं० स्त्री०) यावनाली शर्करा।

जालसंज्ञक (सं० पु०) शुक्लगत नेत्ररोगविशेष, मोतिया-बिन्द।

जालसाज़ (अ० पु०) वह जो दूसरोंको धोखा देनेके लिये किसी प्रकारकी झूठी कारवाई करे।

जालसाजी (फा० स्त्री०) फरेब या जाल करनेका काम, दगाबाजी।

जालह्रद (सं० त्रि०) जलप्रचुरो ह्रदः तस्येदं वा, शिवा-दित्वादण्। जलप्रचुरह्रद सम्बन्धीय।

जाला (हिं० पु०) १ जाल देखो। २ नेत्ररोगविशेष, आँखका एक रोग। इसमें पुतलीके ऊपर एक सफेद झिल्लीसी पड़ जाती है और इसी कारण दिखाई कम पड़ता है। जब झिल्ली अधिक मोटी हो जाती है तो दृष्टि नष्ट होने लगती है। इसे माड़ा कहते हैं। ३ घास, भूसा आदि पदार्थ बांधनेका जाल। ४ चीनी परिष्कार करनेका एक प्रकारका सरपत। ५ पानी रखनेका एक मट्टीका बना हुआ बरतन।

जालाक्ष (सं० पु०) जालमिवाक्षि-अच्। गवाक्ष, झरोखा।

जालापहाड़—दार्जिलिंग सब डिवीजनका एक पहाड़। यह अक्षा० २७° १' उ० और देशा० ८८° १६' पू० पर अवस्थित है। १८४८ ई०में यहां छावनी बनी थी और अब वह बढ़ा कर ४०० फौजी रहनेलायक कर दी गई है। यह समुद्रपृष्ठसे ७५२० फीट ऊंचे पर है।

जालाब (सं० क्ली०) शान्तिकर औषधविशेष, एक प्रकार-की हितकर दवा।

जालि—धान्यविशेष, जारी नामका धान। यह नदिया जिलेमें वैशाख मासमें रोपा जाता और कार्तिक मासमें काट लिया जाता है।

जालिआ—जालिया देखो।

जालिक (सं० पु०) जालेन जीवति। वेतनादिभ्यो-जीवति। पा ४।४।१२। इति ठन्। १ जालजीवी, धीवर, मछुआ। जालिया देखो। २ मर्कट, मकड़ी। ३ कर्क-टक, वह जो जालमें मृगादि जन्तुओंको फँसाता हो। (त्रि०) ४ कूटलेखक, इन्द्रजालिक, मदारी, बाजीगर।

जालिका (सं० स्त्री०) जालं जालवदाकृतिरस्ति अस्याः। जाल-ठन् ततष्टाप्। १ स्त्रियोंके मुखावरक वस्त्रविशेष, स्त्रियोंके मुख ढाकनेका एक प्रकारका कपड़ा। २ गिरि-सार, लोहा। ३ जलौका, जोंक। ४ विधवा स्त्री। ५ अङ्गरक्षिणी, कवच, जिरहबकतर, सँजोया। ६ जारक, पक्षीका जाल, चिड़ियोंका फन्दा। ७ मकट, मकड़ी। ८ कोषातकी।

जालिनी (सं० स्त्री०) जालं चित्रकर्मवस्तुसमूहो विद्यतेऽस्यां जाल इनिस्ततो ङीप्। १ चित्रशाला, वह स्थान जहां चित्र बनते हों। २ कोषातकी, तरोई, घिया। ३ घोषातकी, लटजीरा। ४ पटोललता, परवलकी लता। ५ प्रमेहरोगीका पीडकभेद, पिड़िका रोगका एक भेद, जिसमें रोगीके शरीरके मांसल स्थानोंमें दाह युक्त फुन्सियां हो जाती हैं। प्रमेह देखो। ६ देवदाली। ७ दारुहरिद्रा, दारुहलदी।

जालिनीफल (सं० क्ली०) घोषाफल, तरोई, घिया।

जालिम (अ० वि०) अत्याचारी जुल्म, करनेवाला।

जालिमसिंह—झाला जातिके एक राजपूत। इनके पिताका नाम पृथ्वीसिंह था। इनके पूर्वपुरुष सौराष्ट्र देशके अन्तर्गत झाला प्रदेशके हलवड़ नामक स्थानमें रहते थे। इनके पूर्वपुरुष कोटा आये थे और वहांके राजाने उन्हें सेना-

पतिका पद दिया था। १७३८ ई०में इनका जन्म हुआ था। इनके चाचा हिम्मतसिंहने इन्हें दत्तक ग्रहण किया था। फिर ये कोटा राज्यके फौजदार नियुक्त हुए। किन्तु भटवाड़के रणक्षेत्रमें इनकी वीरता देख कर कोटाके राजा गुमानसिंहको खटका हुआ; उन्होंने अपने राज्यसे इन्हें निकाल दिया। अनन्तर ये उदयपुर चले गये। उदयपुरके राणा अड़सीने इन्हें "राजराणा" उपाधिसे विभूषित किया। इसके बाद फिर ये कोटा पहुंचे थे और गुमानसिंहको खुश कर लिया था।

जालिया (हिं० वि०) १ जालसाज़, फरेब या धोखा देनेवाला। (पु०) २ जालसे मछली पकड़नेवाला। धीवर देखो।

जालिया अमराजी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के उन्दसर्वीय जिलेका एक छोटा राज्य। यह पलितानासे प्राय: ८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इस राज्यमें केवल एक ग्राम लगता है। वहांके सामन्तराज सर्वीय राजपूतवंशसे उत्पन्न हैं।

जालियादेवानी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के हालार जिलेका एक छोटा राज्य। इसमें १० गांव लगते हैं।

जालिया-मनाजी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के उन्दसर्वीय जिलेका एक छोटा राज्य। इसके अन्तर्गत केवल एक गांव है।

जाली (सं० स्त्री०) जालमस्त्यस्याः अच् गौरादित्वात् ङीष्। १ ज्योत्स्नी, सफेद फूलकी तरोई। २ पटोल, परवल।

जाली (हिं० स्त्री०) १ बहुतसे छोटे छोटे छेदोंका समूह जो लकड़ी, पत्थर या धातुकी आदिमें बना रहता है। २ कसीदेका एक प्रकारका काम। इसमें किसी फूल या पत्ती या आदिके बीचमें बहुत छोटे छोटे छेद बनाये जाते हैं। ३ बहुत छोटे छोटे छेदवाला एक प्रकारका कपड़ा। ४ कच्चे आमके भीतर गुठलीके जपरके रेशे। इसके उत्पन्न होनेके बाद आमके फल पकने लगते हैं।

जाली (अ० वि०) बनावटी, नकली, झूठा।

जालीदार (हिं० वि०) जिसमें जाली बना हो।

जालीलेट (हिं० पु०) एक प्रकारका कपड़ा। इसकी सारी बुनावटमें बहुतसे छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालुवसन्तगड़—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सतारा जिलेका एक पहाड़। यह सह्याद्रिकी एक शाखा है और कराड़के निकट कोयना और कृष्णाके सङ्गमस्थानसे ४ मील उत्तर-पश्चिमसे आरम्भ हो कर १२ मील विस्तृत है।

जालेरुह—जालरुह देखो।

जालोर—राजपूतानेके अन्तर्गत जोधपुर या माड़वार राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° २१' उ० और देशा० ७२° ३७' पू०में जोधपुरसे ७५ मील दक्षिण तथा माड़वार मरुभूमिके दक्षिण प्रान्तमें अवस्थित है। यहांका जनसंख्या प्राय: ७४४३ है। परमारवंशके किसी राजाने बारहवीं शताब्दीमें यह नगर स्थापन किया। बाद चौहानराव कीर्त्तिपालने इसे अपनी राजधानी बनाई। इसके बाद १२१० ई०में शमसउद्दीन अलतमसने इस पर अपना अधिकार जमाया, किन्तु थोड़े समयके बाद हो यह फिर चौहान राजाके हाथ लग गया। प्राय: १८० वर्षके बाद अलाउद्दीनने इस नगरको कानरदेव चौहानसे जीता और यहां तीन सुन्दर मस्जिदें बनाई। १५४० ई०में यहांका दुर्ग और जिला जोधपुरके राजा मालदेवके अधिकारमें आ गया। इस शहरका प्राचीन नाम जालन्धर देश है। यहांके ठठेरे कांसेके बरतन बनाते हैं जिनमें अच्छे अच्छे फूल कटे रहते हैं। जालोरका दुर्ग बहुत प्राचीनकालसे प्रसिद्ध है और यह नगरके निकट प्राय: १२०० फुट ऊँचे स्थान पर बना है। इसकी लम्बाई ८०० फुट और चौड़ाई ४०० फुट है। किलेमें दो तालाब भी खोदे हुए हैं।

जालोरि—पञ्जाबके अन्तर्गत काङ्गड़ा जिलेका एक पर्वत। यह हिमालय पहाड़की एक शाखा है। पहाड़के ऊपर हो कर दो राहें गई हैं जिनमेंसे एक १०८८० फुट ऊपर जालोर घाटीसे सिमला तक और दूसरी १०८० फुट ऊपर रामपुरको ओर गई है।

जालौन—१ युक्तप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २५° ४६' एवं २६° २७' उ० और देशा० ७८° ५६' तथा ७९° ५२' पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल १४८० वर्गमील है। इसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्वमें यमुना नदी, दक्षिण-पूर्वमें

बघोली राज्य, दक्षिणमें बेतवा नदी एवं ममगर राजा, और पश्चिममें पहूज नदी है। जालौन बुंदेलखण्डके मैदानमें पड़ता है। यहां कड्डर बहुत निकलता है। कांसकी भी कोई कमी नहीं जलवायु उष्ण तथा शुष्क है, परन्तु अस्वास्थ्यकर नहीं। ओरछाके वीरसिंहदेवने जालौनका अधिकांश दबाया और जहांगीरने उन्हें इसका राजा बनाया था। शाहजहांन्के समय बलवा करने पर उनका प्रभाव यहां घट गया। फिर छत्रसालने जालौन अपने राज्यमें मिलाया। १७३४ ई०में उन्होंने यह जिला अपने मराठा मित्रोंको दे दिया। फिर यहां अत्याचार और उत्पात हुआ। १८३८ ई०में अंगरेजोंने जालौन अधिकार किया था। कानपुरमें बलवा होने पर १५ जूनको झांसीके विद्रोहियोंने यहां आ करके सभी यूरोपीय अफसरोंको जो उनके हाथ लगे, मार डाला। १८५८ ई०में फिर इसके पश्चिम भागमें अराजकता बढ़ी। १८८१ ई० तक यह विशृङ्खल जिला समझा जाता था।

जालौन जिलेमें ६ नगर और ८३७ गांव आबाद हैं। लोकसंख्या ३८६७२६ है। इसमें ४ तहसीलें लगती हैं बेतवाकी नहरसे खेत सींचे जाते हैं। पहले खूब सूती कपड़ा बनता था। थोड़ा बहुत सूती कपड़ा रंगते और छापते हैं। चना, तेलहन, रूई और घीकी रफ्तनी होती है। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे यहां चलती है। ६६८ मील सड़क है। कलेक्टर, डिपटी कलेक्टर और तहसीलदार प्रबन्धकर्त्ता हैं। डाके प्रायः पड़ जाते हैं। इसमें तीन बड़ी जमीन्दारियां हैं। मालगुजारी कोई ८ लाख ८० हजार है। इसमें ३ म्युनिसपालिटियां हैं। शिक्षाकी अवस्था अच्छी है।

२ युक्तप्रदेशके जालौन जिलेकी उत्तर तहसील। यह अक्षा० २६° एवं २६° २७' उ० और देशा० ७८° ३' तथा ७८° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ४२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १६०३८१ है। इसमें २ नगर और ३८१ गांव बसे हैं। मालगुजारी प्रायः ३१६०००) रु० है। पश्चिममें पहूज और उत्तरमें यमुना नदी प्रवाहित है।

३ युक्तप्रदेशके जालौन जिलेकी जालौन तहसीलका सदर। यह अक्षा० २६° ८' उ० और देशा० ७८° २१' पू०में अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८५७३ है। खृष्टीय १८वीं शताब्दीमें यह मराठा राजधानी था। प्रायः सभा सम्भ्रान्त पश्चिमी मराठा ब्राह्मण हैं। उनमें बहुतसे पेनशन पाते और निष्कर भूमि खाते हैं। व्यवसाय छोटा किन्तु बढ़ता हुआ है। १८८१ ई०में एक बढ़िया बाजार बना। कुछ मारवाड़ी महाजन यहां बस गये हैं।

जाल्म (सं० त्रि०) जालयति दूरीकरोति हिताहितज्ञानं जल-णिच् बाहुलकात् मः। १ नीच व्यक्ति, पामर, नीच। २ जो गुरुके सामने खाट पर बैठता हो, मूर्ख, बेवकूफ।

"नत्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि"

(भारत १२।१३२ अ०)

जाल्मक (सं० त्रि०) जाल्म स्वार्थे कन्। मित्र, ब्राह्मण और गुरुद्वेषी, जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मणके साथ द्वेष करे।

जाल्य (सं० पु०) जल-ण्यत्। १ शिव, महादेव।

"मत्स्यो जलचरो जाल्योऽकलः केलिकलः कलिः"

(भारत १।२८६ अ०)

(त्रि०) २ जलमें पकड़ने योग्य।

जावक (सं० पु०) अलक्तक महावर।

जावजी—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदनगर जिलेके एक कोलि सर्दार। इनके पिताका नाम था हीराजी। हीराजीकी मृत्युके उपरान्त जूनारस्थ पेशवाके कर्मचारीने जावजीको पिताके पद पर अधिष्ठित नहीं किया, इस पर जावजीने पेशवाके शासनकी कुछ भी परवाह न कर बहुतसे आदमी संग्रह किये और लूटना शुरू कर दिया। तब जावजीको पर्वत छोड़ कर पेशवाके सैन्यदलमें मिल जानेका आदेश मिला। परन्तु जावजीने इसको धोखा समझा और वे खानदेशको भाग गये। रामजी सामन्त नामका जूनारका एक कर्मचारी जावजीका शत्रु था। उसने जावजीको पकड़वा देनेके अभिप्रायसे कुछ सेनाको चारों ओर भेज दिया और खुद कुछ सेनाको साथ ले उनकी तलाशमें निकला। जावजीने अकस्मात् एक दिन रामजी और उनके पुत्रको मार डाला। इस पर पेशवाने घोषणा की कि "जो जावजीका मस्तक ला देगा, उसे उपयुक्त पुरस्कार दिया जायगा।" जावजीने रघुनाथरावके आश्रयमें रह कर युद्धमें उनकी भरपूर सहा-

यता दी। नाना फड़नवीसने दाजीकोकाते नामक एक कोलि-सर्दारको जावजीको पकड़नेके लिए भेजा। एक दिन जङ्गलमें दाजी और जावजीकी भेंट हो गई। दाजीने अपनेको जावजीका मित्र बताया। पीछे दोनों स्नान करने गये; मौका देख जावजीके एक आदमीने दाजीके वस्त्रोंका पोटला देखा, तो उसमें नानाफड़नवीसका घोषणापत्र पाया। यह बात जावजीको मालूम हुई। उन्होंने उसी रातको दाजी और उनके तीन पुत्रोंको मार डाला। इसके बाद जावजीको पकड़नेके लिए विशेष प्रयत्न किये जाने लगे। जावजीने नासिकके शासनकर्त्ता धुन्ध् गोपालके परामर्शसे समस्त दुर्ग आदि तकाजी होलकरको सौंप दिये। होलकरकी मध्यस्थतामें जावजीके सारे अपराध माफ कर दिये गये और उन्हें राजूरके ६० गाँवोंका सूबेदार बना दिया। जावजी इस पद पर १७९८ ई० तक रह कर अपने ही किसी अनुचरके आघातसे इहलोक त्याग गये जीवनके शेष भागमें जावजीने डकैतियां बन्द कर दी थीं।

जावजीकी युवा अवस्थाका विवरण इस प्रकार मिलता है कि, इनका शरीर दोहरा था काम करनेमें इनका बहुत उत्साह था और देखनेमें भी खूबसूरत थे ये बहुत ही चञ्चलप्रकृतिके और दुःमनीय थे।

जावद—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यमें मन्दसोर जिलेका नगर। यह अक्षा० २४° ३६′ उ० और देशा० ७५° ५२′ पू०में समुद्रपृष्ठसे १४१ फुट ऊंचेपर अवस्थित है। जनसंख्या कोई ८००५ होगी। प्रायः ५०० वर्ष पहले जावद बसा था। यहां मेवाड़के राणाओंका राज्य रहा। राणासंग्रामसिंह और उनके उत्तराधिकारी जगत्सिंहके समय चहारदीवारी बनी। १८१८ ई०में जनरल ब्राउनने उसे अधिकार किया, परन्तु पीछे सेंधियाको लौटा दिया। १८४४ ई०को जावद उन जिलोंमें लगा, जो ग्वालियर कण्टिनजेण्टके खर्चको थे। परन्तु १८६० ई०में यह सेंधियाको सौंपा गया। अनाज और कपड़ेका बड़ा काम है। पहले यह आलको रंगाईके लिये प्रसिद्ध था। आज भी जावदमें बहुत चूड़ियां बनायी, और राजपूताना पहुंचायी जाती हैं।

जावन्य (सं० क्ली०) जवनस्य भावः दृढ़ादि' वा ष्यञ्। द्रुतगति, तेज चाल।

जावरा—१ मध्य भारतकी मालवा एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २३° २०′ तथा २३° ५५′ उ० और देशा० ७५° ० एवं ७५° ३० पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ५६८ वर्गमील है। इसकी सीमा पर इन्दौर ग्वालियर, रतलाम, प्रतापगढ़ और ठकुरात है। आबादी कोई ८४२०२ है। इसमें २ नगर और ३३७ गांव बसे हैं। लोग राजस्थानीकी मालवीय भाषा रांगड़ी बोलते हैं। भूमि बहुत उर्वरा है। नीमच-मऊ तथा जावरापिपलोदा सड़क और राजपूताना मालवा रेलवे एवं बम्बई बड़ोदा सेण्ट्रल इण्डिया रेलवेकी रतलाम गोधरा बड़ोदा शाखासे आना जाना होता है। राज्य ७ तहसीलोंमें विभक्त है। आय ५ लाख ८० हजार है। अफीम पर प्रति मन कोई ७) रु० महसूल पड़ता है। १८९५ ई०से अङ्गरेजी रुपया चला है।

२ मध्यभारतके जावरा राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३° ३८′ उ० और देशा० ७५° ८′ पू०में राजपूताना मालवा रेलवेकी अजमेर खाण्डवा शाखा पर पड़ता है। गफूरखांने खटक्रियासे इसे अपनी राजधानी बसानेके लिये छीना था। यह विभिन्न वस्तु बेचनेके लिये २६ मुहल्लोंमें बंटा है। लोकसंख्या प्रायः २३८५४ है।

जावली बम्बई प्रान्तके सतारा जिलेका उत्तर तालुक। यह अक्षा० १७° ३२′ एवं १७° ५८′ उ० और देशा० ७३° ३६′ तथा ७३° ५८′ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ४२३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६५५८७ है। इसमें एक नगर और २४८ गांव बसते हैं। मालगुजारी कोई ८१०००) और सेस ८०००) रु० है। वर्ष भर बराबर ठण्डक रहती और हवा चला करती है।

जावा (यवद्वीप)—भारत महासागरस्थ मलयद्वीपपुञ्जका एक प्रसिद्ध और बड़ा द्वीप। यह अक्षा० ५° ५२′ ३४″ से ८° ४६′ ४६″ उ० और देशा० १०५° १२′ ४०″ से १४° २५′ ३८″ पू०में अवस्थित है। यह द्वीप पूर्वपश्चिममें ६२२ मील और उत्तरदक्षिणमें १२१ मील विस्तृत है। हलैण्डके ओलन्दाजोंका यह प्रधान वैदेशिक साम्राज्य है। जावा आकारमें बड़ा न होने पर भी अतीतकालको प्राचीन कीर्तियोंके गौरवमय स्तम्भोंको वक्षस्थल पर

धारण कर ऐतिहासिकोंको चमत्कृत कर रहा है। यहां हिन्दूराज्यकी गौरवसमाधि और बौद्धाविर्भावके पदचिह्न अब भी उज्ज्वल वर्णोंमें चित्रित हैं। भारतमहासागरीय अन्यान्य समस्त द्वीपोंकी अपेक्षा यहांकी जनसंख्या सबसे अधिक है। यहांकी शस्यसमृद्धिने हालैण्डको ऐश्वर्यशाली बनाया है। इसके १½ मील पूर्वांशमें अवस्थित बालिद्वीपको पाश्चात्य भौगोलिकगण जावाका ही अंश बतलाते हैं, और इसीलिए उसका नाम छोटा जावा (Little Javo पड़ा है। बालिद्वीप देखो।

जावा हालैण्डसे चौगुना बड़ा है; इसका रकबा ५०३८० वर्गमील है। जनसंख्या कुछ अधिक ३ करोड़ है।

वर्तमान समयमें मार्विक आदि ओलन्दाज भूतत्त्वविदोंने भूतत्त्वकी पर्यालोचना कर स्थिर किया है कि दक्षिणपूर्व एशियासे इस द्वीपका सर्वांशमें सौसादृश्य है। इस ओर लक्ष्य देनेसे अनुमान होता है कि अति प्राचीनकालमें जावा और बालिद्वीप एशियामें ही संयुक्त था। यहां टर्टिआरी (Tertiary) युगके शैलखण्ड बहुत देखनेमें आते हैं। जावामें आग्नेयगिरिकी अधिकता देख कर भूतत्त्वज्ञ विद्वानोंने स्थिर किया है कि यहांके भू-पञ्जरमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है और कई बार खण्ड प्रलय भी हुई हैं। अब भी प्रायः बीस सजीव आग्नेयगिरि समय समय पर भीषण उपद्रवके साथ अग्न्युद्गीरण किया करते हैं और कभी कभी भूकम्प भी हुआ करता है।

जावाकी भूगर्भस्थ अग्निशक्ति अब भी क्रियाशील अवस्थामें है। पर्वतमालाका अधिकांश भाग अग्निगिरिनिक्षिप्त भूगर्भस्थ पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। भूतत्त्वज्ञ विद्वानोंका कहना है कि जिस समय जावा मनुष्य वासके योग्य हुआ था, उस समय वह सुमात्रा, बोर्निओ आदि आठ द्वीपोंमें विभक्त था। रामायणमें भी जावाके विवरणमें 'सप्तराज्योपशोभित' ऐसा विशेषण पाया जाता है। यवद्वीप वा जावाके आग्नेयपर्वतोंमें सर्वोच्च और सर्वप्रधान सुमेरुपर्वत है। इसके सिवा और भी रावण, अर्जुन, लव, शम्भू, इत्यादि नामके अग्निशैल विद्यमान हैं। साधारणतः पर्वतोंकी ऊंचाई २०००से १८६०० फुट तक है।

जावा साधारणतः पूर्व और पश्चिम इन दो प्राकृतिक भागोंमें विभक्त है। पश्चिमांशकी नदियां प्रधानतः उत्तरवाहिनी हैं, जिनमेंसे 'जि-तारुङ्' और 'जि-मानुक' ये दो नदी ही सबसे बड़ी और विस्तृत हैं। नदियोंके नामके पहले प्रायः 'काली' शब्द जोड़ दिया जाता है। पूर्व जावाकी नदियां वाणिज्यके लिए विशेष उपयोगी हैं और दक्षिण जावाकी नदियोंसे खेतोंमें बहुत सहायता मिलती है। जावाके उत्तर-उपकूलमें वाणिज्यप्रधान बन्दर आदि हैं। यहांकी उपत्यका भूमि अत्यन्त उर्वरा और नाना प्रकार शस्यसमृद्धिपूर्ण है। यहां कई तरहके मिट्टी देखनेमें आती है, जिससे पण्यद्रव्य प्रस्तुत होते हैं। एक तरहकी मिट्टीसे 'पोर्सिलेन' बनती है। यहां 'अम्पे' नामक एक प्रकारकी स्वादिष्ट मिट्टी होती है, जिसे वहांके लोग खाया करते हैं। किसी किसी जगहकी मिट्टी और पीली भी होती है। इसके अलावा यहां संगमरमर, चूना खड़ियामिट्टी, गन्धक आदि नाना प्रकारके शैलखण्ड पाये जाते हैं।

समतल प्रदेशकी जमीन दरियाबरार (Alluvium) और संग शिकस्त (Diluvium) है। कोई कोई स्थान प्रवाल कीटके ध्वंसावशेषसे परिपूर्ण है। नदीके किनारे तथा दलदल जमीनमें बहुत धान्य उत्पन्न होता है। इसी लिए भारतके लोग जावाको भारतसागरीय द्वीपोंका शस्यभाण्डार कहते हैं।

चारों ओरसे समुद्रवेष्टित और विषुवरेखाके सन्निहित होनेके कारण यहांकी जलवायु उष्ण और मधुर है। यह द्वीप वाणिज्यवायुके प्रवाहपथ पर अवस्थित है। बाताबीयाके वेधालयमें आवहविद्याविषयक (Meteorological) परीक्षा द्वारा निर्णीत हुआ है कि वर्षमें औसत ७८·८० इञ्च वर्षा होती है। यहां वैशाखसे आश्विन तक दक्षिणपूर्वीय और कार्तिकसे चैत्र तक उत्तरपश्चिमीय वायु चलती होती है। पश्चिम और मध्य-जावाकी जलवायु पूर्व जावासे सम्पूर्ण भिन्न है। कारण यह है कि पूर्व-जावामें वर्षा अधिक नहीं होती। स्थानकी उच्चता और समुद्रके सान्निध्यके कारण उत्तापमें भी तारतम्य हुआ करता है। बाताबीयामें प्रायः बारहो महीने वर्षा होती है। वायुकी गरमी कभी कभी ८६° (फा०)

डिग्री तक हो जाती है। ग्रीष्म और वर्षा ये दो जावाकी प्रधान ऋतुएं हैं। कभी कभी यहां कार्तिक और अग्रहायण मासमें वज्राघात और विद्युत् सहित बड़े जोरका तूफान आता है, जिससे अधिवासियोंको विशेष विपद्ग्रस्त और उत्पीड़ित होना पड़ता है।

भूतात्त्विक परीक्षासे निर्णीत हुआ है कि जावामें खनिज धातुओंका बिलकुल अभाव है। सोना बहुत थोड़ा नज़र आता है। सीसा, जस्ता और तांबा दो एक जगहके सिवा अन्यत्र नहीं पाया जाता। कोयला बहुत जगह है पर अधिकतासे उठाया नहीं जाता। आइओडिन, गन्धक और नमक कहीं कहीं बहुतायतसे पाया जाता है।

जावा उद्भिज्ज-समृद्धिमें पृथिवीके समस्त देशोंको पराजित कर सकता है। भूमिकी उर्वरता ही इसका अन्यतम कारण है। छोटे छोटे गांवोंसे लगा कर जनाकीर्ण बड़े बड़े नगर भी वृक्षोंसे परिपूर्ण हैं। उद्भिद्विद्याविद् विद्वान् जावाको उद्भिज्जश्रेणीको चार भागोंमें विभक्त करते हैं समुद्रतीरसे २००० उच्च भूभागके वृक्षादि प्रथमश्रेणीके अन्तर्गत है। इस विभागका नाम 'उष्णप्रधान विभाग' है। २०००से ४००० फुट तक 'नातिउष्ण विभाग' और उस स्थानसे ७५०० फुट तक 'शीत विभाग' तथा इससे भी उच्चतर स्थानोंको 'शीतप्रधान उद्भिज्जविभाग' कहते हैं। इनमेंसे १म विभागने ⅘ अंश भूमि घेर ली है। समुद्रके किनारे पीपल, बड़ और नीपवृक्षोंका ही प्राचुर्य देखनेमें आता है। नीची जमीनमें धान, ईख, दारचीनी, ताड़ और कपास बड़ी कसरतसे पैदा होते है। समुद्रोपकूलमें नारियल और ताड़के वृक्ष ही अधिक देखनेमें आते हैं। वापी, तड़ागादि कुमुद, कह्लार और कमलोंसे अलङ्कृत दीख पड़ते हैं। कहीं कहीं बांसके भी जङ्गल हैं। मालभूमिमें कहवा और चाय बेहद पैदा होती है तथा मक्का और ज्वारकी भी उपज अच्छी होती है। इस भूभागके वन बड़े बड़े वृक्षोंसे परिपूर्ण और दीर्घ गुल्मोंसे समाच्छन्न हैं। तृतीय विभागमें नाना प्रकार भारतीय शस्य, गोभी, गोल-आलू और तम्बाकू पैदा होती है। चतुर्थ विभागमें जो उद्भिज्ज देखे जाते हैं, वे यूरोपीय शीतप्रधान स्थानोंके अनुरूप हैं।

पर्यटकगण एक स्वरसे कहते हैं कि जावामें ⅕ अंश भूमि अब भी दुर्भेद्य अरण्याकीर्ण है। दक्षिणांशमें बण्टमके पासका जंगल अब भी अनाविष्कृत है। इस जङ्गलमें १२० फुट तक ऊंचे पेड़ हैं। वासुकि और अर्जुन-पर्वत पर अब भी बहुतसे बड़े बड़े वृक्ष मौजूद हैं। रसमाला नामक वृक्षमें ६० हाथको ऊंचाई पर डालें निकलती हैं, उसके नीचे नहीं। यहां नाना स्थानोंमें रक्तवर्ण सुन्दरीकाष्ठ पाया जाता है। तगल, समरङ्, जापारा आदि प्रदेशोंमें २३०० वर्गमील-स्थान सागोनके पेड़ोंसे भरा हुआ है। यह लकड़ी सिर्फ बाहर भेजी जाती है। इसके सिवा यहां अन्यान्य काष्ठोंका वाणिज्य ठीक नहीं चलता।

फसल और खेतोंमें यहां धान्य ही लक्ष्मीका अनन्त भाण्डारस्वरूप है। यहां लक्ष्मीदेवी वा श्रीदेवी (धान्याधिष्ठात्रीके विषयमें अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। धान्याधिष्ठात्रीदेवीकी पूजा सर्वत्र ही प्रचलित है। जावामें मुसलमान धर्मको प्रचलित हुए, आज चार सौ वर्षसे भी अधिक समय हुआ होगा। वहांके अधिवासी शिव, विष्णु और बुद्धकी पूजा छोड़ कर कुरानका कलमा पढ़ने लगे हैं; किन्तु इतने पर भी वे धनधान्यकी अधिष्ठात्री लक्ष्मीकी पूजा नहीं छोड़ सके हैं। अब भी लक्ष्मीपूजाके पुरोहितोंका महम्मदको अपेक्षा उच्चपद है। शरत्कालमें (सम्भवतः कोजागरी लक्ष्मीपूजाके समय) जावाके अधिवासी धनधान्यदायिनी कमलवासिनी लक्ष्मीदेवीकी पूजा किया करते हैं। पूजाके समय उपासकगण युगपत् बिसमिल्लाका मन्त्र और लक्ष्मीका स्तव पढ़ते हैं। किसान लोग शुभ मुहूर्त देख कर हल जोतते और फसल काटते हैं। साधारणतः शुक्रवारको ही हल जोतना शुरू करते हैं। खेतके बीचमें जाना हो तो पहले दक्षिणसे उत्तरकी ओर हल जोत जाता है। इस समय नैवेद्य आदि द्वारा क्षेत्रकी पूजा की जाती है। जावामें फी सदी ४० बीघा जमीनमें खेती होती है। यहांका कृषिकार्य साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है। गवर्नमेण्ट सम्बन्धी कृषि, व्यवसायियों वा जमींदारों द्वारा अनुष्ठित कृषि, और साधारण प्रजाकी कृषि। गवर्नमेण्टके लिए कहवाकी खेती उतनी ही आदरणीय है,

जितनी कि साधारणके प्रयोगके लिए धान्य की।

फलोंमें यहां केला ही ज्यादा प्रसिद्ध है। यहां उत्कृष्ट केले और नारियलके पेड़ लगाये जाते हैं। वहां इनकी पैदावार भी खूब है।

पहले जावामें कहवा नहीं होता था। १६८६ ई०में मलवार उपकूलसे पहले पहल यहां कहवा लाया गया था, पर भूकम्प और बाढ़ आ जानेसे वह नष्ट हो गया। पीछे १६८८ ई०में हेण्ड्रिक जाजिकुल नामक एक व्यक्तिने यहां कहवाकी खेती की। तभीसे उसकी खेती लाभजनक समझी जाने लगी और प्रतिवर्ष यहांसे लाखों मन कहवा विदेश जाने लगा। यह शस्य-संग्रहके लिए ४००से भी अधिक कोठियां हैं। दूसरा नम्बर ईखका है; ईखकी भी यहां काफी उपज है। तीसरा नम्बर चायका है। 'हूसम' नामक एक व्यक्तिने पहले पहल यहां चायकी खेती की थी। यहां 'सिङ्कोना' की खेती भी खूब होती है। तम्बाकूकी खेती प्रायः सर्वत्र ही होती है। खदिर (केदिरि) और वासुकि नामक स्थान तम्बाकूके लिए प्रसिद्ध है।

इतना होने पर भी जावाके किसान उस सम्पदके अधिकारी वा जिम्मेदार नहीं होते; क्योंकि यूरोपीय प्रभुओंकी कृपासे वहां कुछ भी रहने नहीं पाता—वे सर्वस्व ही अपने देशको रवाना कर देते हैं। इसलिए किसान बेचारे भारतीय किसानोंकी तरह ही दुर्दशाग्रस्त रहते हैं। पहले यहां नीलकी खेती भी खूब होती थी; किन्तु वैज्ञानिकोंके अनुग्रहसे उत्पीड़ित कृषककुलको धीरे धीरे सर्वत्र ही नीलवालोंके कराल कवलसे छुटकारा मिल रहा है।

जावा द्वीप फल-मूलके लिए प्रसिद्ध है। नानाप्रकारके पुष्टिकर मूल यहां मिलते हैं। खीरा और ककड़ी यहां बेहद पैदा होती है। यहांके मसालेकी प्रसिद्धि सबसे बढ़ कर है। लौंग, जावित्री, जायफल, इलायची, दारचीनी, मिर्च आदि हदसे ज्यादा पैदा होती है और रफ़्तनी भी खूब होती है। तेलबीज और चावलकी भी फसल होती है। गेहूं और जौकी पैदावार थोड़ी है। पाश्चात्य विद्वानोंका अनुमान है, कि जौ वा यवकी खेती यहां अधिक होती थी, सम्भवतः इसीलिए इसका नाम यवद्वीप वा जावा पड़ा है। पूर्वोक्त शस्यादिके सिवा यहांसे साबूदाना, सुपारी, कत्था, अदरक, हलदी, चन्दन और आबनूसकी लकड़ी, चमड़ा, सींग, मोम, चिड़ियोंके पङ्ख, (Birds of Paradise) वा होमा पक्षी, मछली औरमांसकी रफ़्तनी भी बेहद होती है।

जावामें भारतवर्षके वृक्षोंकी जातिके वृक्षादि भी बहुत हैं। तुलसीका पेड़ यहां बड़े यत्नके साथ बढ़ाया जाता है। यहांके लोग ग्रामकी तुलसीवृक्षके चबूतरे पर चिराग जलाते हैं। पहले विष्णुपूजाके लिए यहां तुलसीका व्यवहार होता था। यहां पुष्पोद्यानोंमें चंपा और मालतीका प्राचुर्य दीख पड़ता है। जावा भाषामें पुष्पको सौन्दर्यकी प्रतिमा कहा गया है। मुसलमानोंके प्रादुर्भावसे देवता तो कूच कर गये, किन्तु तो भी पूजाके पुष्पोंने समुद्रशीकरवाही समीरणमें अपनी सुगन्धि फैलाना नहीं छोड़ा। जिन फल वा फूलोंको पुराकालमें ब्राह्मण औपनिवेशिकगण भारतवर्षसे ले गये थे, वे अब भी वहां संस्कृत नामसे परिचित हैं। दाड़िम वहांके अधिवासियोंके लिए उपादेय फल है और वहां इसी नामसे प्रसिद्ध है। इमलीका पेड़ भी सर्वत्र पाया जाता है। यहांके लोग अनन्नासको "मङ्गल" कहते हैं और बङ्गालका सन्तरा कह कर उसकी व्याख्या करते हैं। किन्तु वास्तवमें वह बङ्गालका फल नहीं है। जावामें आम बहुत कम पैदा होते हैं। अच्छे आम सिर्फ सुलतानके उद्यानमें पाये जाते हैं। अन्यान्य स्थानोंमें सिर्फ जङ्गली आम होते हैं। बङ्गालकी भांतिके यहां दो तरहके कटहर बेहद होते हैं। वहांके लोग इसे 'चम्पादक' कहते हैं। यहां बारहो महीने कटहर मिलते हैं और दाम भी बहुत कम है। यह भारतवर्षसे यहां लाया गया है; किन्तु इसका आकार बहुत बड़ा है। यहां तरह तरहके नीबू पाये जाते हैं। जावा-भाषामें नीबूको 'जारक' कहते हैं। बातावियाका नीबू पृथिवी भरमें प्रसिद्ध है; इसका स्वाद सन्तरासे भी बढ़ कर होता है। ओलन्दाज लोग इसे 'बातावि' (Batavia) कहते हैं। यूरोपके लोग इसे बड़े आनन्दसे खाते हैं।

जावामें अनेक प्रकारके जम्बु वा जामुन पाये जाते हैं और वे 'जम्बु' नामसे ही प्रसिद्ध हैं। साधारणतः

इसके दो भेद हैं—एक गुलाब-जामुन और दूसरा काला जामुन। यह भी भारतवर्षसे आया है। अमरूद भी काफी हैं। कोई कोई कहते हैं कि अमरूद स्पेन-वासियों द्वारा पेरू से लाया गया था। यहां सरीफ़ेकी जातिका रामफल बहुत कसरतसे होता है, 'अनेनिपेंपे' कहलाता है; इसे भी स्पेन-वासी लाये थे। लौकोको यहां "फिरङ्गी" लौकी कहते हैं।

अरबके लोग यहां दाख और अङ्गूर लाये थे। सेव, पीच आदि फल भी उन्हींके द्वारा यहां आये थे। ओलन्दाजोंने यहां गोल-आलूकी खेती की है। इसके सिवा जावाके असंख्य फलवृक्ष विविध उपायोंसे फल देते हैं।

जावाका प्राणी-विभाग अनेक विषयोंमें सन्निहित द्वीपोंसे विभिन्न है। बोर्निओ और सुमात्रा आदि द्वीपोंके साथ जावाके प्राणियोंका सादृश्य बहुत कम है। किन्तु हिमालय प्रदेशके जन्तुओंसे बहुधा सादृश्य पाया जाता है। एक जावामें ही ९० प्रकारके स्तन्यपायी प्राणी पाये जाते हैं, जिनमेंसे ५।६ प्रकारके प्राणी इस द्वीपके सिवा अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं आते। २७० प्रकारकी चिड़ियोंमेंसे ४० प्रकारकी चिड़ियां सिर्फ यहीं पाई जाती हैं, अन्यत्र नहीं। हाथी, भालू आदि १३ प्रकारके जन्तु अन्यान्य द्वीपोंमें हैं, किन्तु जावामें नहीं पाये जाते।

इस द्वीपमें स्तन्यपायी जन्तुओंमें गेंड़ा ही सबसे बड़ा है। आश्चर्यका विषय है कि यहांके सभी गेंड़ा एक सींगवाले हैं, किन्तु सुमात्रा आदि द्वीपोंमें दो सींगवाले गेंड़ा पाये जाते हैं। यहां दो तरहके जङ्गली सूअर पाये जाते हैं, जिनकी संख्या और उपद्रवके आधिक्यसे अधि-वासियोंको बड़ा तङ्ग होना पड़ता है। जापारा नामक स्थानमें दो महीनेके भीतर ५००० सूअर मारे गये थे। यहां कई तरहके हरिण भी देखे गये हैं यहांके शेर सुन्दरवनके 'रोयेल टाइगर'के समान होते हैं। शिकारी लोग शेरका शिकार करते हैं। कभी कभी भैंसा और शेरमें भीषण युद्ध होता है। बहुत जगह चीता भी पाया जाता है। एक प्रकारका बनबिलाव दीख पड़ता है, जो पेड़ों पर घूम घूम कर पक्षिकुलका ध्वंस करता रहता है। एक तरहके नाटे कदके कुत्ते जङ्गली पशुओंका शिकार करते हैं। पालतू पशुओंमें यहां भैंस ही अधिकतासे पाली जाती हैं। जावामें पहले पहल भैंस हिन्दू औपनिवेशिकगण ले गये थे। भारतमें जिस तरह गाय पूजी जाती है, उसी तरह जावामें भैंसकी पूजा होती है। यहांके अधिवासियोंमें भैंसके विषयमें एक अद्भुत कुसंस्कार पाया जाता है। मरी हुई भैंसका सिर टोकरीमें रख कर किसीके सिर पर चढ़ा देनेसे, जब तक वह बराबर उसे दूसरे किसीके सिर पर नहीं रख देता, तब तक वह दौड़ता रहता है। इस तरह भैंसका सिर हजारों कोसकी दूरी पर चला जाता है।

१८१४ ई०में यह प्रथा अनुष्ठित हुई थी। इस तरह एक व्यक्ति भैंसका सिर लिए हुए 'समरङ्ग' नगरमें पहुंचा वहांके शासनकर्त्ताने उसके सिरसे टोकरी उतरवा कर समुद्रमें डलवा दी। किन्तु इससे डालनेवाला मरा नहीं और इसीलिए बहुतोंने इस कुसंस्कारसे मुंह मोड़ लिया।

जावामें बैल और गायोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। गायें ज्यादा दूध नहीं देतीं और बैल हलमें नहीं जोते जा सकते। दो एक जगह सिर्फ हिन्दुस्तानी बैलोंसे खेती-बारी की जाती है। यहांकी भैंस हिन्दुस्तानी भैंससे बहुत बड़ी और मजबूत होती है। यहांकी भैंसें, सफेद और काली, इस तरह दो तरहकी होती हैं। जावाके लोग काली भैंसका अधिक आदर करते हैं। सफेद भैंस कदमें छोटी होती हैं। सण्ड-द्वीपमें फी-सदी ९० भैंस सफेद हैं। काली भैंस इतनी ताकतवर होती है कि शेरके साथ भी लड़ती और बाजी मारती है।

यहांके गधोंकी अवस्था भी अच्छी नहीं है। जावा सरकारने १८४१ ई०में भारतसे गधे और ऊँट मंगवाये थे, किन्तु उनकी औलाद बढ़ी नहीं। यहांके घोड़े छोटे होने पर भी काम खूब बजाते हैं। घुड़दौड़के घोड़े बड़े यत्नसे पाले जाते हैं। भेड़ोंकी दशा भी शोचनीय है। होल (Holle) साहब १८७२ ई०में यहां उत्कृष्ट मेरिनो लाये थे, किन्तु उससे कुछ फल नहीं हुआ।

जावामें असंख्य प्रकारके सुन्दर पक्षी देखे जाते हैं।

इस प्रकारके पक्षी पृथिवीमें और कहींभी दृष्टिगोचर नहीं होते। यहां छ सात प्रकारके सुनहरी पूंछवाले मयूर देखे जाते हैं। इस देशकी तितली (Calliper butterfly) भी सौन्दर्यचित्रकी चरम निदर्शन है।

जावामें 'कलङ्' नामक एक प्रकारका चमगादड़ पाया जाता है। इनके उपद्रवसे नारियल तथा अन्यान्य फलोंकी रक्षा करना कठिन हो जाता है। ये खेतमें घुस कर मक्का और ईख खूब खाते हैं। किसान लोग इन्हें जाल बिछा कर पकड़ते हैं। इसके अलावा हिन्दुस्तानी चमगादड़ भी बहुत हैं। ये बड़े बड़े पेड़ों और पहाड़ों पर लाखोंकी संख्यामें इकट्ठे हो कर लटके रहते हैं। पेड़ोंके नीचे जो चमगादड़ोंकी कीट पड़ी रहती है, उससे प्रतिवर्ष हजार मनसे भी ज्यादा सोरा बनता है। 'सुरकर्त्ता'के अधिवासियोंके लिए यह ही प्रधान पण्य है।

यहां बन्दर भी बहुत प्रकारके पाये जाते हैं। जावा-भाषामें बन्दरको 'कवि' (कपि) कहते हैं। इनमें घोर काले रङ्गका बन्दर अधिक प्रसिद्ध है। ये ७००० फुट ऊँचे पहाड़ों पर विचरण करते हैं। चूहा, खरगोश, सेही और गिलहरी यहां बहुत हैं। सर्पको यहांके लोग पूज्य मानते हैं। यहांके जुगनू रातको चिराग जैसे चमकते हैं। अर्जुनपत्तीके पत्तोंमें उज्ज्वल स्वर्णरेणुकी भांतिका पदार्थ लगा रहता है। इसके सिवा यहां Babirussa, Peri crocotus, Miniatus, Yellow Torgon, Anaclipus, Sanguinolentus, Stenopus, Javanicus, आदि नाना प्रकारके प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं।

यहांकी नदियां और ह्रद विविध मत्स्यपूर्ण हैं। अधिवासिगण नाना प्रकारके जालोंसे नदी और समुद्रमें मछली पकड़ा करते हैं तथा नाना प्रकारके सुनहरी जलचर पक्षियोंको भक्षण करते हैं। यहांके समुद्रमें एक प्रकारके अद्भुत कीट देखनेमें आते हैं; जिनकी पूंछ तैरते समय पंचदार पीले और हरे रङ्गके फीतेकी तरह चमकती है। ऐसे उज्ज्वलवर्णके कीट पृथिवीमें अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं—ये समुद्र मध्यस्थ प्रवालद्वीपमें वास करते हैं।

आधुनिक भूतत्त्वविद् विद्वानोंने स्थिर किया है कि पहले सिंहलसे जावा तक विस्तीर्ण महादेश था। यह भी प्रमाणित हुआ है कि भूगर्भस्थ अग्निशक्ति और आग्नेयगिरिके अग्न्युत्पातसे उस भूभागके समुद्रमें डूब जानेपर भी, अनति प्राचीनकालमें सुमात्रा, बोर्नियो, जावा आदि द्वीप एकतासम्बद्ध थे। सुमात्राके गभीर कूपके खोदे जानेके समय उसमेंसे हिन्दूदेवीकी मूर्ति निकली थी। अफरीकाके सोमाली तथा अमेरिकाके मेक्सिको प्रदेशसे मिली हुई हिन्दू-देवमूर्तिके साथ जावाके मूर्तिशिल्पका सम्पूर्ण सादृश्य है। सुतरां यह प्रमाणित होता है कि अति प्राचीनकालमें ही जावामें ब्राह्मणोप निवेश स्थापित हुआ था। अमेरिकामें हिन्दुओंका सजीव निदर्शन कुछ भी नहीं है किन्तु बालि और यवद्वीप (जावा)-में अब भी हिन्दुत्वका जीवित निदर्शन विद्य-मान है।

इतिहास—जावा नाम जहां तक सम्भव है, यवद्वीप शब्दका अपभ्रंश है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि 'जावा' कहनेसे वर्तमान समयमें जिस द्वीपका बोध होता है, प्राचीनकालमें भी ठीक उसी द्वीपका बोध होता हो। यह निश्चित है कि किसी समय भारत महासागरके द्वीपपुञ्ज विशेषतः सुमात्रा 'जावा' नामसे अभिहित होता था। इसका प्रमाण यह है कि 'इबन बाटूटा' नामक मुसलमान परिव्राजकने ईसाकी १०वीं शताब्दीमें सुमात्राको 'जावा' और वर्तमान जावाको 'मूल जावा' लिखा है। जावाकी राजसभाकी भाषामें इसे 'जावि' कहते हैं और साधारण भाषामें जावा। कुछ भी हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि यवद्वीप शब्द ही जावा-के रूपमें परिणत हुआ है। ग्रीक ऐतिहासिक टलेमिने इसे 'जाव-दिउ' एवं चीन-परिव्राजक फाहियानने 'जे-पो-थी' लिखा है। अरबी भाषामें इसका प्राचीनतम नाम 'जाविज' है। सबसे पहले जावा शब्दका उल्लेख १३४३ ई०के एक शिलालेखमें दृष्टिगोचर हुआ। अफ-रीकाके परिव्राजक मार्को पोलोने 'जावा' शब्दसे समस्त सुन्दर द्वीपका बोध किया था।

रामायण पढ़नेसे यह सहज ही प्रतीत हो जाता है कि यवद्वीप नामसे हिन्दूगण अतिप्राचीनकालसे ही

परिचित थे। सीता-हरणके बाद जब उन्हें खोजनेके लिए नाना स्थानोंमें चर भेजे गये थे, उस समय वे सप्तद्वीप द्वारा गठित एवं रौप्य और सुवर्णपरिपूर्ण यवद्वीपमें भी पहुंचे थे; जैसा कि लिखा है—

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितं।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णकरमण्डितम् ॥ ३० ॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।
दिवं स्पृशति शृङ्गेन देवदानवसेवितः ॥" ३१ ॥

(रामा॰ किष्किन्ध्या॰ ४० सर्ग)

"सुवर्णरूप्यकद्वीप" इस पदकी कोई कोई ऐसी व्याख्या करते हैं कि उस नामका दूसरा कोई द्वीप था। सम्भव है, रामायणके इस अंशके लेखकने सुमात्रासे जावाका पार्थक्य नहीं किया हो। उन्होंने लिखा है कि यवद्वीपके बाद, शिशिर पर्वत है। यह सम्भवतः भारतीय ज्योतिषकुलचूड़ामणि आर्यभट्ट द्वारा उल्लिखित यमकोटी होगा। आर्यभट्टने ४९८ ई॰में उक्त यमकोटीका उल्लेख किया है। रामायण महाकाव्यके सम्पूर्ण भाग किसी एक समयमें नहीं लिखे गये बहुत दिनोंके क्रमविकाशके फलस्वरूप उसने वर्तमान आकार धारण किया है। इस लिए यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि यवद्वीपसे हिन्दुओंका परिचय किस समय हुआ था। पाश्चात्य विद्वान्‌गण अनुमान लगाते हैं कि रामायणका उक्त अंश ईसाकी १ली शताब्दीमें लिखा गया होगा। किन्तु रामायणके उक्त अंशको इतना परवर्ती बतलानेका कोई हेतु या विशिष्ट प्रमाण नहीं है। अनुमानतः १३० ई॰में सेकेण्ड्रियाके भौगोलिक टलेमिने इसका 'जबदिउ" नामसे उल्लेख किया है, इससे अनुमान होता है कि हिन्दूगण उससे बहुत पहले जावासे परिचित थे और उन्हींका दिया हुआ नाम 'यवद्वीप' सर्वत्र प्रचलित था। चीनके ऐतिहासिकगण भी इस बातको पुष्टि करते हैं। 'लियङ्‌वंशका इतिहास ५०२-५५६ ई॰में रचा गया था। उसमें लिखा है कि सम्राट् 'सोयनचोर'के राजत्वकालमें (अर्थात् ७३-४८ खृष्टपूर्वाब्दके भीतर) रोमन और भारतवर्षीयोंने यवद्वीपके रास्तेसे चीनमें दूत भेजे थे। इससे प्रमाणित होता है कि ईसासे पहले भी भारतीयगण यवद्वीपसे परिचित थे। उक्त ग्रन्थमें यह भी लिखा है कि "लाङ्—इया-सिउ नामक देशमें बौद्धधर्म प्रचलित है और वहांके लोग संस्कृतमें वार्तालाप करते हैं। वहांके लोगोंका कहना है कि यह देश ४०० वर्ष से भी पहले स्थापित हुआ था।" बहुतोंकी धारणा है कि 'लाङ्‌इया-सिउ' जावाका ही नामान्तर है; किन्तु कोई कोई इसको मलयकी उपत्यका भी बतलाते हैं। परन्तु जावा कहना ही सङ्गत है; क्योंकि चीनके 'मिङ्'-इतिहाससे मालूम होता है कि १४३२ ई॰में जावावासियोंने, १३७६ वर्ष पहले उनका देश स्थापित हुआ था, ऐसा कहा था। इस उक्तिके साथ 'लाङ्-इ-या-सिउक'का कहना मिल जाता है। इस प्रसङ्गमें यह कहा जा सकता है कि अति प्राचीनकालसे ही हिन्दूगण यवद्वीपसे परिचित हैं। हां, यह हो सकता है कि ईसाकी १ली शताब्दीमें उन्होंने इस जगह उपनिवेश स्थापित किया हो और इसीलिए चीनके इतिहासमें वही समय जावाका स्थापनकाल निर्धारित हुआ हो।

४१८ ई॰में चीन-परिव्राजक फाहियान भारतवर्षसे चीन लौटते समय इस जगह उतरे थे। उन्होंने इसे "या-वा-दि" लिखा है। फाहियानने जावाके विवरणमें लिखा है कि "इस देशमें नास्तिक और ब्राह्मणोंका वास है; बौद्धधर्मावलम्बियोंकी संख्या उल्लेखयोग्य नहीं है।"

ब्रह्माण्डपुराणमें भी यवद्वीपका वर्णन है। परन्तु यह विवरण सम्भवतः अधिक प्राचीन नहीं हैं।

"यवद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकरान्वितं।
तत्रापि द्युतिमान्नाम पर्वतो धातुमण्डितः॥
समुद्रगाणां प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु।
तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतं॥
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च।
आकरं चन्दनानां च समुद्राणां तथाकरम्।
नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्वतमण्डितम्॥"

अर्थात् बहुविध रत्नोंके आकर यवद्वीपमें भी नाना-प्रकार धातुमण्डित द्युतिमान् नामक एक पर्वत है, जिससे अनेक नदनदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है और जहां सुवर्णकी खनि है। इसी प्रकार हिरण्यमणिरत्नादिका आकर अत्युच्च मलयद्वीप भी समुद्रपरिवेष्टित एवं नदी-

वन-पर्वत-परिशोभित है, जिसमें विविध जातिका वास है।

ग्रीक-ऐतिहासिक 'आरियन' से लगा कर आधुनिक पुरातत्त्वविद् पर्यन्त सभी कहते हैं, कि हिन्दुओंने कभी भी भारतके बाहर उपनिवेश स्थापन करनेको कोशिश नहीं की। किन्तु यह उनका कितना बड़ा भ्रम है, यह बात जावाके हिन्दु उपनिवेश स्थापनके इतिहाससे मालम होती है। ७५ ई०में कलिङ्गसे वीरपुरुषोंके एक समूहने जहाज पर चढ़ कर भारत-महासागरसे यात्रा की थी और रास्तेमें जावा उतर कर उन्होंने उपनिवेश स्थापित किया था। थोड़े ही दिनोंमें उनके प्रयत्नसे जावामें बड़े बड़े नगर और अट्टालिकाओंको प्रतिष्ठा हो गई। उन्होंने भारतके साथ जो वाणिज्य-सम्बन्ध स्थापित किया था, वह बहुत दिनों तक चलता रहा। इस विषयमें सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मि० एलफिनष्टोनने ऐसा लिखा है—"जावाके इतिहासमें स्पष्टरूपसे वर्णित है कि कलिङ्गसे चल कर बहुतसे लोग जावा उतरे थे और वहांके लोगोंको सुसभ्य बनाया था। वे जिस दिन यहां आये थे, उसे चिरस्मरणीय बनानेके लिए एक युगका प्रवर्तन कर गये हैं। वह युग ७५ ई०से प्रारम्भ हुआ है।" फाहियान द्वारा लिखित विवरणके पढ़नेसे ही इसकी सत्यता मालूम हो सकती है।

१८२० ई०में क्राफोर्डने जावाका इतिहास सङ्कलित किया था, उसमें भी हिन्दुओंका कलिङ्गसे आना लिखा है। फर्गुसन साहबने लिखा है—'अमरावतीमें जो विराट् ध्वंसावशेष पड़ा है, उसीसे ज्ञात होता है कि कृष्णा और गोदावरीके मुहानेसे उत्तर और उत्तरपश्चिम भारतके बौद्धोंने पेगु और कम्बोडिया होते हुए जावामें जा कर उपनिवेश स्थापन किया था। १६६६ ई०में टामारनियरने लिखा है कि "बङ्गोपसागरमें मछलिपत्तन ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहांसे जहाज बङ्गाल, आराकान, पेगु, श्याम, सुमात्रा, कोचीन, चीन, पश्चिम होरमुज, मक्का और मदागस्कार पहुंचते हैं।" शिलालेखोंके पढ़नेसे भी हमें जावाके साथ कलिङ्गका सम्बन्ध मालूम हो सकता है *। डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर लिखते हैं—"कुछ लिपियोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि सुमात्रामें मागधी प्रभाव बङ्ग और उड़ियासे आया था और सुमात्रासे वह जावामें फैला था।' और भी कहा है कि "सुमात्रामें हिन्दू उपनिवेश भारतवर्षके पूर्व उपकूलसे हुआ था। बङ्गदेश, उड़िया और मछलिपत्तनने जावा और कम्बोडियामें उपनिवेश-स्थापनकार्यमें प्रधान अंश ग्रहण किया था।" †

हिन्दुओंने कलिङ्गसे चल कर जावामें उपनिवेश स्थापन करनेके प्रायः ५०० वर्ष बाद पुनः उक्त द्वीप पर लक्ष्य किया था। ईसाकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें गुजरातके हिन्दुओंका झुण्डका झुण्ड जावा पहुंचा और उसे हिन्दू राजत्वके रूपमें परिणत कर दिया।

जावाके इतिहासमें लिखा है कि ६०३ ई०में गुजरातके राजा कुसुमचित्र वा वाल्यअचाके पुत्र भ्रुविजय सेवलचलने जावामें वासस्थान स्थापित किया था। ‡ इस इतिहासमें यह भी लिखा है कि गुजरातके राजा कुसुमचित्र अर्जुनके अधस्तन दशम पुरुष थे। उन्हें एक दिन मालूम हुआ कि उनका राज्य ध्वंस हो सकता है। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र भ्रुविजयको उपनिवेश स्थापनके लिए जावा भेजा। उनके साथ पांच हजार अनुचर गये थे, जिनमें कृषक, शिल्पी, योद्धा, चिकित्सक, लेखक आदि भी शामिल थे। इनके साथ छ बड़े और एक सौ छोटे जहाज थे। चार मास जलपथमें भ्रमण करनेके बाद वे एक द्वीपमें पहुंचे। पहले उसे ही उन्होंने जावा समझा, किन्तु पीछे नाविकोंको अपनी भूल मालूम पड़ गई और वहांसे चल दिये। थोड़े ही समयमें वे जावाके 'मातारेम' नामक स्थानमें पहुंचे। राजपुत्रने वहां 'मेताडाङ् कुमुलान नामक नगर स्थापित किया। उसके बाद उन्होंने पिताको और भी आदमी भेजनेके लिए लिख भेजा। इस बार दो हजार आदमी जावा पहुंचे, जिनमें बहुतसे अच्छे, अच्छे कसेरे और संगतराश थे। इसके बाद गुजरात और अन्यान्य देशोंसे जावाका वाणिज्य सम्बन्ध स्थापित हुआ। 'मातारेम' का बंदर वैदेशिक जहाजोंसे भी गया और राजधानीमें नाना प्रकारके मन्दिर बन गये। भ्रुविजयके पौत्र अद्रि-

* Indian Antiquary, Vol. V, p. 314 & VI, p. 356.

† Bombay Gazetteer, Vol. I pt. I. p 493.

‡ Sir Stamford Raffles, Java, Vol. II, p. 83.

विजयके समयमें केदूमें सुविख्यात वोरोबूदरका मन्दिर बना था।

गुजरात उस समय गुर्जरोंके अधीन था। गुर्जरोंके साथ सुप्रसिद्ध समुद्रगामी मिहिर वा मिद नामक जातिका घनिष्ट सम्बन्ध रहनेसे अनुमान होता है कि उसने सम्भवतः जावामें उपनिवेश स्थापन करनेके समय सहायता दी थी। यह भी सम्भव है कि उन लोगोंके सम्मानरक्षार्थ ही जावाकी राजधानीका नाम मेन्दान रक्खा गया था। पीछे जब वहां ब्राह्मण्य धर्मका प्रभाव खूब बढ़ गया, तब उसका नाम ब्रह्मवनम् वा ब्राह्मण नगर रख दिया।

जावा और कम्बोडियाके प्राचीन इतिहासमें गुजरातके सिवा हस्तिनापुर, तक्षशिला और रूमदेशका भी उल्लेख है। इन नामों तथा गान्धारका उल्लेख रहनेसे यह प्रश्न स्वतः ही उदित होता है कि, क्या उससे काबुल, पेशावर और पश्चिम पञ्जाबके साथ भी जावाका सम्बन्ध सूचित होता है? कम्बोज, गान्धार, तक्षशिला वा रूमदेशकी ख्याति अयोध्या वा इन्द्रप्रस्थके समान नहीं थी। सुतरां यह सम्भव नहीं कि जावा-वासियोंने वृथा ही उक्त नामों पर गर्व किया हो। प्रत्युत यही अनुमान होता है कि उक्त स्थानोंमें मलय और जावाका ऐतिहासिक सम्बन्ध था। दक्षिण मारवाड़में अब भी यह प्रवाद प्रचलित है कि मालवाके लोग जावामें जा कर बसे थे। १८८५ ई०में भीनमालके एक चारणने जैकसन साहबसे जा कर कहा था कि "उज्जैनके राजा भोजने असन्तुष्ट हो कर अपने पुत्र चन्द्रवनको देश-निकाला दिया था। चन्द्रवनने गुजरात जा कर जहाजोंका संग्रह किया और जावा पहुंचे। मारवाड़ और गुजरातमें एक कहावत प्रचलित है; उससे भी जावाके साथ भारतका सम्बन्ध प्रमाणित होता है। जैसे—

"जो जाय जावा तो कभी नहीं आवे।
आवे तो सात पीढ़ी बैठके खावे॥"

पहले जो रूमदेशका उल्लेख किया गया है, उससे बहुतसे लोग अनुमान करते हैं कि जावामें रोमनोंने उपनिवेश स्थापन किया था। परन्तु गवेषणापूर्वक देखनेसे अनुमान मिथ्या प्रतीत होता है। जैकसन साहबने सिद्ध किया है कि उक्त 'रूम' शब्दसे पञ्जाबके दक्षिण देशस्थ लवणस्थलीका बोध होता है।*

गुजराती लोग जावा जा कर क्रमशः हिन्दू हुए हैं, यह सुन कर बहुतसे लोग ईसाकी ७वीं शताब्दीमें जावा गये थे। 'हून' लोग भी सम्भवतः भारतसे विताड़ित हो कर जावा पहुंचे थे। ८५० ई०में सुलेमान और ८१५ ई०में मासुदी नामक अरबके भ्रमणकारियोंने जावाके हिन्दुओंके विषयमें निम्नलिखित विवरण लिखा है— "आग्नेयगिरिके आसपास रहनेवाले मनुष्योंका रंग सफेद, कान छिदे हुए और मस्तक घुटा हुआ होता है। वे हिन्दू एवं बौद्धधर्मके उपासक हैं और बेशकीमती चीजोंका रोजगार करते हैं।" §

फिलहाल फरासीसी प्रत्नतत्त्वविदोंने गवेषणापूर्वक भारतके साथ जावाका सम्बन्ध स्थिर किया है। बहुत दिन पहले कुसैनेपायरने एक चित्रित पोथीमें दो तसवीरोंके नीचे 'श्रीविजय' और 'कटाह' नामक दो देशोंका उल्लेख पाया था। परन्तु उस समय वे उक्त देशोंसे परिचित न थे। पीछे १८१० ई०में M. L. Finot की मलय उपत्यकाकी एक लिपिमें तथा १८१३ ई०में ओलन्दाजके प्रत्नतात्त्विक H. Kern की वन्दकद्वीपकी एक लिपिमें उक्त दोनों देशोंके नाम मिले थे। इधर दाक्षिणात्यके चोल वंशीय राजेन्द्रचोलके शिलालेखमें (१०१२—१०४२ ई०) लिखा है कि उन्होंने समुद्रके उस पार कटाह और श्रीविजय पर जय प्राप्त कर गर्व किया था। हलसने जिस समय इस लिपिको पहले पहल प्रकाशित किया था, उस समय वे उक्त देशोंको भारतवर्षके ही अन्तर्गत समझते थे। परन्तु वेङ्कय्य महाशयने लिखा है कि सामुद्रिक अभियानका उल्लेख होनेके कारण अनुमान होता है कि उक्त दोनों देश इन्दूचीनके किसी प्रदेशमें होंगे। फिलहाल फरासीसी विद्वान् M. G. Coedesने चीनके इतिहासके साथ उल्लिखित घटनाओंकी तुलना कर सिद्ध किया है कि मलय-उपत्यकाके वर्तमान केड़ा बन्दरका ही प्राचीन नाम कटाह था और सुमात्राके पैलेमबैङ्का प्राचीन नाम श्रीविजय। इससे मालूम

* Bombay Gazetteer, Vol. I pt 1

§ Reinaubs, Adulfeda, ccoxc.

होता है कि चोलवंशीयोंको जावासे सम्बन्ध था। श्रोल न्दाज प्रत्नतात्त्विकोंके प्रयत्नसे जावाके साथ भारतके सम्बन्धके विषयमें बहुतसे शिलालेख प्रकाशित हुए हैं। इस विषयमें महामति फूसेने १८२२ ई०में लिखा है कि "अब लिपियोंके द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि बङ्गोपसागरके उस पारसे भारतका सम्बन्ध था। आशा है, इस विषयमें और भी प्रमाण मिलेंगे।"

जावाके इतिहासके विषयमें ईसाकी ८वीं शताब्दीसे पहलेकी घटनाएं हम बहुत कम हो जान सकते हैं। ऐतिहासिकगण परवर्ती कालमें लिखे गये जावाके स्थानीय इतिहासमें वर्णित प्राचीन घटनाओं पर विश्वास नहीं करते। जावाके शिलालेखों और ताम्रलिपियोंसे वहांके प्राचीन इतिहासका कुछ विवरण प्राप्त हुआ है।

किदोईसे प्राप्त ७३२ ई०के शिलालेखमें राजा सन्नके पुत्र सञ्जयको विजयवार्ता वर्णित है। इससे मालूम होता है कि ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जावाके मध्यभागमें हिन्दू राजत्व स्थापित था। उनको राजनैतिक क्षमता भी कम न थी। पम्बनमके आस पास इसके बादकी कुछ बौद्ध लिपियां प्राप्त हुई हैं, जो नाना प्रकार धर्म प्रतिष्ठानके उपलक्षमें नागरी अक्षरोंमें लिखी गई थीं। 'दाइङ्ग' नामक स्थानमें ईसाकी ८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कुछ शिलालेख और हिन्दू मन्दिर आविष्कृत हुए हैं। पम्बनमके मन्दिर सम्भवत: १०वीं शताब्दीमें निर्मित हुए थे। इन मन्दिरोंसे यही प्रमाणित होता है कि ईसाकी ८वींसे १०वीं शताब्दीके भीतर जावा एक समृद्ध राज्य था। तथा मातारम्, कदोइ और डियेयङ्ग भी उसीमें शामिल था। अरबियोंके भूगोल सम्बन्धी ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि जावा ८वीं शताब्दीमें अत्यन्त क्षमताशाली था और उसने कोमामर (सम्भवतः कम्बोज) जय किया था। अरबके भौगोलिकोंका कहना है कि उस समय जावाकी राजधानी एक नदीके मुहाने पर थी और वह नदी सम्भवत: 'सोलो' वा 'ब्रैण्टास' होगी।

जिस समय भारतीयगण जावा-वासियोंको अपनी सभ्यतामें दीक्षित कर रहे थे, उस समय भी संस्कृतभाषा आदिम जावा-भाषाका अस्तित्व नहीं मिटा सकी थी। वर्तमानमें भी जावाके लोग खेती बारीके सम्बन्धमें जिन शब्दोंका व्यवहार करते हैं, वे आदिम जावा-भाषासे ही लिये हुए हैं। हिन्दू सभ्यताके प्रभावके युगमें भी जावा की आदिम भाषामें कविता और धर्मग्रन्थ रचे गये थे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-सभ्यताको उन्होंने खूब ही अपनाया था। जावाकी भाषा, साहित्य, धर्म और शासन-प्रणालीमें हिन्दू सभ्यताका प्रभाव स्पष्टरूपसे लक्षित होता है। सर चार्लस इलियटने अपने १८२१ ई०में प्रकाशित Hinduism and Buddhism नामक ग्रन्थमें प्रकट किया है कि जावामें जितने भी हिन्दू राजाओंने राज्य किया था, वे सब स्थानीय सम्भ्रान्त व्यक्ति थे तथा उन्होंने जावाकी ही हिन्दू सभ्यताको अपनाया था।

ईसाकी १०वीं शताब्दीसे जावाके इतिहासने सुस्पष्ट आकार धारण किया है। ताम्रलिपियां ८०० ई०से मातारमका उल्लेख करती हैं। ९१८ ई०में म्पोङ्ग-सिण्डोक नामक एक वजीर जावाका शासन करते थे; किन्तु उसके १० वर्ष बाद पूर्व-जावामें एक स्वाधीन राजा को राज्य करते हुए पाया जाता है। इन्होंने और भी २५ वर्ष राज्य किया था तथा पासोरियन, सेरामाजा और केदिरी उनके राज्यान्तर्गत था। इनके प्रपौत्र एर-लङ्ग जावाके इतिहासमें एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं; इनका बाल्यजीवन युद्धकार्यमें व्यतीत हुआ था। परन्तु १०३२ ई०में इन्होंने अपनेको समग्र जावाका अधीश्वर घोषित किया था।

जावाके जातीय वीरोंमें जजवाया वा जयवाय एक प्रसिद्ध व्यक्ति सम्भवत: १२वीं शताब्दीमें हो गये हैं। कहा जाता है कि इन्होंने केदिरीमें 'डाहा' राज्य स्थापित किया था। परन्तु इनकी लिपिसे सिर्फ इतना ही परिचय मिलता है कि ये विष्णुपूजक थे। इस समय पूर्व जावामें कला और साहित्य सम्बन्धी यथेष्ट उन्नति थी।

पश्चिम-जावाकी 'जिजिलो' नदीके किनारे १०३० ई०के एक शिलालेख मिला है। इसमें एक राजाका उल्लेख है। जिन्होंने पृथिवी जय की थी।

१२२२ ई०से हमें पुन: जावाका इतिहास मिलता है; क्योंकि उस वर्षसे पारारतन नामक जावाके राजा-

ग्रोंके इतिहासमें बहुतसी घटनाओंका विवरण पाया जाता है। उक्त ग्रन्थके प्रारम्भमें ही 'टाहारपत्तन' और 'तिमालपेल' राज्यके उद्भवका वर्णन है। इसमें पांच राजाओंके नामोंका उल्लेख है, जिनमेंसे राजा विष्णु वर्द्धन 'जान्दिजागो'के सुप्रसिद्ध मन्दिरमें समाहित हुए थे और वहां बुद्धके समान पूजे जाते हैं। उनके बाद राजा श्रीराजसनागर हुए, जिन्हें कवि प्रपञ्चजने 'कट्टर बौद्ध' बतलाया है। ये जयकीतन्दो नामक राजाके हाथसे निहत हुए थे और उनके साथ साथ 'सिंसिपोले'का राज्य ध्वंस हुआ था। 'यूयन' नामक चीनके इतिहासमें भी यह विषय विशेषरूपसे वर्णित है, अतः इसमें सन्देह करना व्यर्थ है। इन्होंने सबसे पहले "सिङ्गसारी" उपाधि प्राप्त की थी। इनकी मृत्युके बाद 'दाहा' प्रदेशने जावाके अन्दर प्राधान्य लाभ तो किया था; परन्तु वह प्राधान्य अधिक दिन तक रह न सका, शीघ्र ही मदजाफितके लोगोंने उनके लक्ष्मी छीन ली। इसी समय चीनने जावा पर आक्रमण किया था; इस विषयका विस्तृत विवरण 'युयान' नामक चीना इतिहासमें पाया जाता है।

हम उक्त दोनों वृत्तान्तोंको पढ़ कर समझ सकते हैं कि खुबलाईखांने चीन देश जय करनेके बाद निकटवर्ती राज्योंमें कर वसूल करनेके लिये दूत भेजे थे। जावाके लोग साधारणतः चीनदेशके दूतोंका स्वागत करते थे, किन्तु अबकी बार राजा जजकातोङ्गने उन्हें यत्परोनास्ति दण्ड दे कर लौटा दिया। इससे खुबलाईखां अत्यन्त क्रुद्ध हुए और १२८२ ई०में जावावासियोंको उपयुक्त शिक्षा देनेके अभिप्रायसे विराट् सेना भेज दी। इस समय केरतानागरके जामाता राद्देनविदजजने दजकातोङ्गकी अधीनता स्वीकार न की थी। ये मदजाफितके दुर्गमें स्वाधीनतापूर्वक रहते थे। इन्होंने दजकातोङ्गसे बदला लेनेके लिये चीनकी सेनाका जावामें स्वागत किया। हमारे देशके कलङ्कस्वरूप मीरजाफरने जिस तरह क्लाईवके साथ मिल कर भारतका अहित वा अङ्गरेजोंके राज्य स्थापनमें सुभीता कर दिया था, उसी तरह राद्देनविदजजने भी जावामें चीनका अधिकार सुदृढ़ करनेकी कोशिश की थी। दो महीने तक जावावासियोंके साथ चीनकी सेनाका घोरतर युद्ध हुआ। अन्तमें चीनने दाहा प्रदेश पर कब्जा कर ही लिया। जज कातोङ्ग भी इसी युद्धमें मारे गये। जिस तरह राजा संग्रामसिंहने पानीपतके युद्धके बाद मुगलोंको अपसारित कर स्वयं राज्यशासन करना चाहा था, उसी तरह राद्देनविदजजको भी चीनोंको भगा कर राजशासन करनेकी इच्छा हुई। इसके लिये उन्होंने कुछ सेनाको गुप्तभावसे मरवा डाला और कुछको सम्मुखसमरमें मारनेकी ठानी। परन्तु मुगल-सेना इस बातको जानती थी कि विदेशमें सहायहीन हो कर युद्ध करके वे जय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इसलिये उसने खुबलाईखांके पास जा कर कहा कि दाहा प्रदेश पर अधिकार हो गया और उस उद्धत राजाको मार कर अपमानका बदला भी ले लिया गया।

इस समय मदजाफित ही जावाका प्रधान राज्य समझा गया। 'पाराटन'में लिखा है कि इस राज्यमें इसके बाद नौ राजा और दो रानियोंने यहांका राज्य कियाथा। १४६८ ई० तक इस राज्यका प्रभाव अक्षुण्ण रहा था। इसमें चीनदेशीय 'मिङ्' इतिहास और अन्यान्य विवरणोंके पढ़नेसे मालूम होता है * कि इस समय इस राज्यके साथ चीनदेशका वाणिज्य सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ट था और दूतादि भी परस्पर भेजे जाते थे। 'पालेमबाङ्' राज्यने उस समय जावाकी अधीनता स्वीकार की थी। इन सब घटनाओंसे मालूम होता है कि जावा उस समय समृद्धिशाली था; किन्तु पारारतनके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि मदजफित राज्य अन्तर्विप्लवसे भरा हुआ था। बड़ी कठिनाईसे उसमें शान्ति और शृङ्खला स्थापित हुई थी। जावाके पूर्व और पश्चिम भागमें १४०३ ई०में घमसान लड़ाई छिड़ी थी। १५वीं शताब्दीमें मदजफित राज्य दो बारके लिए राजासे वञ्चित हुआ था। उस समय कला और साहित्य दोनों विलुप्त न होने पर भी क्रमशः हीन अवस्थाको प्राप्त होते थे। धीरे धीरे विप्लवके सभी स्थानों पर प्रकरण पड़ने लगा। १४६८ ई०की घटनाका उल्लेख करते हुए पाराटनने सिर्फ इतना ही कहा है कि राजा श्य पाण्डान-

* Groenrelt, p. 31-53.

शासने राजप्रासाद त्याग कर दिया था। इसीसे मालूम होता है कि जावामें उस समय घोरतर विप्लव उपस्थित हुआ था।

जावामें हिन्दूराजत्वका ध्वंस किस तरह हुआ, इस विषयमें वहांके लोगोंमें जो प्रवाद प्रचलित हैं, उनका सङ्कलन सर चार्लस् राफलस् साहब एक सौ वर्ष पहले अपने जावाके इतिहासमें कर चुके हैं *। परन्तु आधुनिक ऐतिहासिकगण उक्त प्रवादों पर विश्वास नहीं करते; उनका कहना है कि हिन्दू-राजत्व मुसलमानोंके लगातार आक्रमण होते रहनेसे विलुप्त हो गया था।

हिन्दू-राजत्वके शेष समयमें मुसलमान धर्मका प्रभाव क्रमशः बढ़ता हो गया था। अन्तमें अवस्था ऐसी हो गई कि हिन्दू नाममात्रके लिए राजा होते थे, किन्तु कार्यतः मुसलमान ही राज्यशासन करते थे। चीनदेशीय इतिहासमें उल्लेख है कि ईसाकी ७वीं शताब्दीमें ही जावामें अरबके लोग पहुंच गये थे। १४१६ ई०में चीनदेशमें यिन गाय शेङगेलो नामक जो भौगोलिक ग्रन्थ रचा गया था उसमें जावाके ग्रासे, सोदरावजा और मदजाफित नामक तीन प्रधान नगरोंका उल्लेख है तथा जावाके अधिवासियोंको तीन श्रेणीमें विभक्त किया गया है। जैसे—१ मुसलमान—ये पश्चिमसे आये थे और इनका खाना पीना तथा पोशाक साफ सुथरा होता था। २ चीनदेशीय—ये भी साफ-सुथर रहते थे और अधिकांश मुसलमान थे। ३ देशीय या जावाके आदिवासिगण—ये देखनेमें कुत्सित और अत्याचार व्यवहारमें गन्दे होते थे तथा प्रेतोंकी उपासना और जघन्य खाद्य भक्षण करते थे। चीन देशीय ऐतिहासिकगण साधारणतः जावाके हिन्दुओंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते आये हैं। किन्तु अब इस प्रकारके वर्णनसे मालूम होता है कि ईसाकी १५वीं शताब्दीके मध्यभागमें वहांके उच्चश्रेणीके लोगोंने सम्भवतः मुसलमान धर्म अवलम्बन किया था; हिन्दूधर्म सम्भवतः अत्यन्त नीचश्रेणीके लोगोंमें ही प्रचलित था, इसीलिए उन्होंने उक्त प्रकारका विवरण लिखा है। जिस तरह अरबके लोग अन्य देशोंमें सिर्फ राज्य विस्तार करके ही शान्त नहीं हुए, बल्कि धर्म-विस्तारके लिए भी काफी प्रयत्न करते रहे हैं, उसी प्रकार जावामें भी उन्होंने अपने धर्मप्रचारके लिए यथेष्ट चेष्टा न की हो, यह सम्भव नहीं, सम्भव है इसके लिए उन्होंने छल, बल और कौशल से भी काम लिया हो। जावामें हिन्दूधर्मके प्रभावका स्पष्ट प्रमाण इसीसे मिल सकता है कि इतना होने पर भी वहांकी उच्चश्रेणीकी जनताने हिन्दूधर्मको नहीं छोड़ा था

जावामें हिन्दुओंके राज्य और शासनप्रणालीका विवरण पढ़ते पढ़ते हमारे हृदयमें यही भाव उत्पन्न होता है कि, उस सुदूर अतीतकालमें हिन्दूगण गृह-कोणमें आबद्ध रह सिर्फ धर्मकामके अनुष्ठानादिमें ही व्यापृत न रहते थे; किन्तु वे वीरोंकी भांति अज्ञात समुद्रोंमें जहाज चला कर नये नये देशोंका आविष्कार एवं अधिकार करते थे और वहां हिन्दूधर्मका प्रभाव फैलाते थे। जिस समयसे हिन्दूजातिमें वैसे साहस और वीरत्वकी हीनताका प्रारम्भ हुआ है, तभीसे हिन्दूजातिकी अवनतिका सूत्रपात हुआ है।

जावामें मुसलमान धर्म प्रचारके लिए अरबियोंने पहले अपनी स्थानीय पत्नी और क्रीतदासको मुसलमान बनाया था। पीछे 'अम्पेल' नामक नगरमें मुसलमानोंने अपना प्रधान केन्द्र स्थापित किया। वहांके शासनकर्त्ताओंमें मालिक, इब्राहिम और राडेन रहमत् इन तीनोंका नाम पाया जाता है। मदजाफितके चतुष्पार्श्ववर्ती स्थानोंमें जो हिन्दू राजा थे, उन्होंने क्रमशः मुसलमानधर्म ग्रहण कर लिया और अन्तमें हिन्दू राजत्वका ध्वंस हो गया।

जावामें मुसलमानोंका अधिकार या शासन ईसाकी १२वीं शताब्दीसे ही प्रारम्भ हो गया था। पहले उन्होंने कुछ छोटे छोटे स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन किया। जिस समय हिन्दू राजा आपसमें विवाद खड़ा करके दुर्बल हो रहे थे, उस समय मुसलमानगण जावामें अपना अधिकार जमानेके लिए कोशिश कर रहे थे। आखिर १४७८ ई०में बहुसंख्यक मुसलमानोंके इकट्ठे हो जानेके कारण जावाका तत्कालीन प्रधान नगर 'मजपहित'का पतन हो गया। जो नगर शताब्दियोंसे हिन्दुओंकी समृद्धि और सभ्यताका केन्द्र होता था

* Raffles, Chapter X.

रहा था, वह मुसलमानोंके भीषण आक्रमणसे ध्वंसीभूत हो गया। वर्तमान समयमें उक्त नगरका ध्वंसावशेष कई कोसोंमें फैला हुआ है।

'मजपहित'के ध्वंसके बाद मुसलमानोंने डामक नामक स्थानमें जावाकी राजधानी स्थापित की। मुसलमानोंने १४८१ ई०से १७वीं शताब्दीके मध्यभाग पर्यन्त अप्रतिहतभावसे जावाका शासन किया था। धीरे धीरे मुसलमान राजा नाना भागोंमें विभक्त हो गया था, जिनमें डामक, चेरिबन, बण्टाल, जाकर्ता और पजङ्ग प्रधान हैं। इन विभागोंके शासनकर्त्ताओंमें प्रायः परस्पर गृहविवाद होता रहता था। इनके राजत्वकालमें जावाकी किसी विषयमें भी उन्नति नहीं हुई थी। नाना प्रकारके जातीय और ज्ञातियुद्धोंकी गड़बड़ीमें सुलतान लोग दुर्बल हो रहे थे और विलासितामें समय बिताते थे। इसी समय चीनके साथ सुलतानोंका युद्ध भी छिड़ गया था।

१६२० ई०से जावामें युरोपियों विशेषतः ओलन्दाजोंके आधिपत्यका सूत्रपात हुआ। युरोपियोंमें सबसे पहले जावाका विवरण शायद सुप्रसिद्ध पर्यटक मार्कोपोलोने ही लिखा है। उन्होंने १२९२ ई में सुमात्रामें पदार्पण किया था। जावाके विषयमें ये लिखते हैं कि, जावामें आठ राजा आठ विभागोंका शासन करते थे और वहांके लोग मूर्त्तिके उपासक थे। इनके बाद ओडोरिक डि पोरडेनोन नामक एक ईसाई भिक्षु १३३० ई० में कुछ पीछे जावा आये थे। इसके एक सौ वर्ष बाद विनिस देशीय पर्यटक निकोलो कोण्टि जावा पहुंचे। ये वहां नौ महीने रहे थे। उसके बाद इटलीके बोलोना प्रदेशके लूडिभिको-डि-वार्थेमो जावा परिदर्शनके लिए आये थे। इसी बीचमें पोर्त्तगीजोंने भी भारतमें आना शुरू कर दिया था किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि पोर्तगीज जैसी व्यवसायबुद्धिसम्पन्न जातिने, जावासे परिचित होने पर भी वहां उपनिवेश स्थापन नहीं किया। १५१० ई०में पोर्तगीजके शासनकर्त्ता अलब्युकुयरकिउ सुमात्रा आये थे और १५११ ई०में मलक्का अधिकार किया था। इसी समय उन्होंने अपने सहकारीको तीन जहाजोंके साथ जावा परिदर्शनके लिए भेजा था। इसी समय जावाके साथ पोर्त्तगालका वाणिज्य सम्बन्ध स्थापित हुआ था। ओलन्दाजोंको १६१२ ई०में पहले पहल जावामें रहनेके लिए अनुमति मिली थी। यहां ५।६ वर्ष वाणिज्य कर चुकनेके बाद उन लोगोंने जाताबिया जा कर कोठी और मकानात बनवाये। इससे जाकित्राके सुलतान नाराज हो गये और उन्हें भगानेके लिए कोशिश करने लगे। परिणाम स्वरूप तीन युद्ध हुए और उसमें ओलन्दाजोंकी जीत हुई; पर उनकी संख्या ज्यादा न थी। इसी समयसे ओलन्दाजोंने जावाके शासनकार्य और सुलतानके चुनावमें प्रभुत्व करना शुरू कर दिया। १६२८ ई०में सुलतानके साथ उन लोगोंकी सन्धि हो गई। तभीसे ओलन्दाजगण एक राजाको अन्य राजाके विरुद्ध सहायता दे कर अपनी क्षमताकी वृद्धि करने लगे। ईसाकी १६वीं शताब्दीके शेषभागमें अङ्गरेजोंने भी जावामें उपनिवेश स्थापन किया था; किन्तु एक शताब्दी बाद उसे उठा लिया। १७०५ ई०में मातारमके सुलतानके साथ सन्धि करके ओलन्दाज इष्ट-इण्डिया कम्पनीने प्रियाङ्गार नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। १७४५ ई०में यह अधिकार समग्र उत्तर-उपकूलमें—चेरिबनसे बैनियूयाङ्ग तक व्याप्त हो गया। १७५५ ई०में जब मातारमका राजा दो भागोंमें विभक्त हो गया था, तब ओलन्दाज ही यथार्थमें जावाके शासनकर्त्ता हुए। १८०८ ई०में उन लोगोंने बाण्टुम राज्य पर कब्जा कर लिया।

उसके बाद १८११ ई०में, जब कि युरोपमें फ्रान्सके सम्राट् नेपोलियन बोनापार्टके साथ अङ्गरेजोंका युद्ध चल रहा था, उस समय जावा ओलन्दाजोंके हाथसे निकल गया था। अङ्गरेजोंने यहां ७ वर्ष राज्य किया था। इस समय सुलतान-वंशीय कोई एक व्यक्ति नाममात्रके लिए सिंहासन पर बिठा दिया जाता था। अंग्रेज ही यथाक्रमसे शासनकार्य चलाते थे। १८१३ ई०में जावाके शासनकर्त्ता सर ष्टाम्फोर्ड-राफलस् नियुक्त हुए। इन्होंने पांच वर्ष तक शासनदण्ड परिचालित कर जावाकी हर तरहसे उन्नति की थी। इन्होंने उक्त द्वीपका पहले पहल इतिहास लिखा था। इनका इतिहास

पथप्रदर्शक होने पर भी, वह प्रवादोंकी निर्भरता पर लिखा गया है। राफलस् साहबने जावाकी स्वाधीन वाणिज्य-नीति अवलम्बन कर समस्त जातियोंको वहां व्यवसायके लिए आह्वान किया था, जिससे जावाकी बहुत श्रीवृद्धि हुई थी। जावाके अधिवासी उनकी स्मृतियों-को सादर वा सभक्ति पूजा करते हैं। आखिर १८१६ ई०में यूरोपमें सन्धिस्थापन होनेके उपरान्त अङ्गरेजोंने १८ अगस्तको जावा ओलन्दाजोंको सौंप दिया; तबसे वह उन्हींके हाथमें है। किन्तु १८२५से १८३० ई० तक देशीय स्वाधीनताके उद्धारके लिए दीपनागर (सुलतान वंशीय)-का ओलन्दाजोंसे जो युद्ध हुआ था, वह बहुत विस्मयकर था। दीपनागर जावाके अन्तिम सुलतान थे। उन्होंने स्वदेश-प्रेमके महामन्त्रसे प्रणोदित हो जो भयानक काम किया था, वह स्वदेश-प्रेमिकके लिए अनुशीलन करने योग्य है। इस युद्धमें ओलन्दाजोंकी १५,००० सेना निहत हुई तथा करोड़ों रुपये खर्च हुए थे। दीपनागरने १८५५ ई० तक स्वाधीनता संस्थापनके लिए जी-जानसे कोशिश की थी। वे १८वीं शताब्दीके मध्यसमाजमें स्वदेशवत्सल वीरपुरुष जैसे यशस्वी हुए हैं।* १८५५ ई०में निर्वासित अवस्थामें दीपनागर मासाकारद्वीपमें परलोक सिधारे; किन्तु अब भी जावावासी उनकी मृत्यु नहीं स्वीकार करते। वे मुक्तकण्ठसे निर्भीकतापूर्वक कहते हैं कि दीपनागर अब भी मरे नहीं हैं, वे हमारी दृष्टिके अन्तराल में रहते हैं और अचानक आविर्भूत हो वैदेशिक शासनके दासत्वरूप बेड़ीको तोड़ कर भारत महासागरके पानीमें डाल देंगे और फिर सुलतान लोग जावाके सिंहासन पर बैठेंगे। मध्य-जावामें दीपनागरके नाम पर बहुत दफे बलवा हुआ था। १८६५, १८७० और १८८८ ई०में दीपनागरके नाम पर वहां विद्रोह उपस्थित हुआ था।

इस समय ओलन्दाज-शासनकर्ता पाश्चात्य शिक्षा-सभ्यताका प्रचार कर जावावासियोंकी जातीयता लूटनेके लिए कोशिश कर रहे हैं; किन्तु जावावासी सभ्य हिन्दूके समान देशीय भावको नहीं छोड़ते। १८६६ ई०में ओलन्दाज गवर्नर जनरल Dr. Sloet van le Beele-ने जावाके शासनका बहुत कुछ संस्कार किया था। प्राथमिक शिक्षाके लिए सब स्थानोंमें विद्यालय खुल गये हैं; रेलवे, टेलिग्राफ, ट्रामगाड़ी, ष्टीमर आदि सब प्रकार सभ्यताकी यन्त्रावलियोंका भी प्रचलन हो गया है। परन्तु अभी तक वे पाश्चात्यभावमें नहीं डूबे हैं, कल्कि अवतारकी तरह वे सर्वदा यही सोचते रहते हैं कि दीपनागर आ कर श्वेतकाय मनुष्योंको कब खण्ड खण्ड करें।

इस समय ओलन्दाजगण शस्यश्यामल स्वर्णप्रसू यवद्वीपकी लक्ष्मीके अनन्तभाण्डारसे धनरत्न आहरण कर हलैण्डको वाणिज्य-गौरवसे भूषित कर रहे हैं। खनिज पदार्थोंके लिये जमीन खोद रहे हैं। जङ्गलोंसे लाखों रुपयेकी लकड़ी देश ले जा रहे हैं—विविध पण्य-परिपूर्ण वाणिज्य तरियां लक्ष्मीका भाण्डार ले कर हजारोंकी संख्यामें यूरोपकी ओर दौड़ी जा रही हैं, ओलन्दाज धनी वणिक्‌गण एलालतालिङ्गितचन्दनकुञ्जमें—द्वीपान्तराजित लवङ्गपुष्पमें चित्तविनोद कर रहे हैं।

पहले ओलन्दाजगण यहां बन्दर नहीं बना सके थे; किन्तु १८८५ ई०में इञ्जिनियरोंने ८ वर्ष तक अटूट परिश्रम करनेके बाद बातावियाके निकट एक बड़ा भारी बन्दर बन गया। इसके सिवा मिट्टीके तेलकी बड़ी भारी खनि आविष्कृत हुई तथा १८८० ई०के भीतर ११०६ मील तक रेलवे और ४१४ मील तक ट्रामकी लाइन बन गई। फिलहाल ष्टेट-रेलवेके सिवा अन्यान्य कम्पनियां भी रेल चलाती हैं; सर्वत्र जाने आनेका सुभीता हो गया है और ओलन्दाज ष्टीमर कम्पनीके असंख्य ष्टीमर वा जहाज प्रति दिन सागरद्वीपोंके चारों ओर चला करते हैं।

राज्य-शासनके लिए यहां एक ओलन्दाज गवर्नर जनरल रहते हैं, जो हलैण्ड राज्यके द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इसके अलावा समस्त यवद्वीप और मदूरा २२ भागोंमें विभक्त हैं, यथा—बण्टाम, बाताविया, क्रावङ्ग, प्रेङ्गार, चेरिवन, टेगल, पेकालङ्गान, बन्युमस, बजेलेन, यग्गकर्त्ता, सुरकर्त्ता, केटू, समराङ्ग, जापरा, रम्बङ्ग, मदियान, केदिरी, सुराभय, पसुरुआ, प्रभुलिङ्ग, मदूरा और

* Encyclopadia Britannica. 10th Ed.

वासुको। प्रत्येक विभागमें एक एक रेसिडेण्ट (स्थानीय शासनकर्त्ता) नियुक्त हैं। प्रत्येक विभाग ६।७ जिलोंमें विभक्त है और उन जिलोंमें एक एक सहकारी रेसीडेण्ट नियुक्त है।

स्थानीय वा देशीय लोग सुशिक्षित होने पर सहकारी रेसिडेण्टसे निम्नतम 'रिजेण्ट' वा अध्यक्षका पद पा सकते हैं; किन्तु जो प्राचीन राजवंशोद्भव नहीं हैं, उनको यह पद नहीं मिलता।

रेसिडेण्ट स्थानीय शासनकर्त्ता हैं; राजस्वसंग्रह और शासनकी व्यवस्था करना उनका कार्य है। अर्थात् विचार और शासन इन दोनों ही विभागोंके वे कर्त्ताधर्त्ता हैं।

इसके सिवा २१ करद राज्य भी हैं; किन्तु उन्हें ओलन्दाज गवर्नरके हाथकी कठपुतली समझना चाहिए बाताविया नगरमें एक सुप्रिमकोर्ट (बड़ी अदालत) है, जिसमें ओलन्दाज उपनिवेशस्थ समस्त द्वीपोंके मुकदमोंकी अपीलोंका विचार होता है। इसके अलावा शासनादि कार्यके लिये अनेक कर्मचारी नियुक्त हैं। अधिवासियोंकी स्वाधीनताका प्रसार क्रमशः घटता ही जाता है। ओलन्दाजोंकी शासनशृङ्खला क्रमशः दृढ़तर होती जाती है।

जावाका धर्म—जावाके लिपितत्त्व, स्थापत्य, साहित्य और चीन परिव्राजकोंके भ्रमण-वृत्तान्तसे वहांके धर्मका विवरण मिल सकता है। ४१८ ई०में जब फा-हियान जावामें पर्यटन करने गये थे, उस समय उन्होंने वहां ब्राह्मणधर्मका प्रबल प्रताप देखा था। इसकी सत्यता हमें महाराज पूर्णवर्माके शिलालेखसे मालूम हो सकती है। यदि उस समय वहां बौद्धधर्मका बहुत प्रचार होता, तो फा-हियान अवश्य ही उसका उल्लेख करते। इससे अनुमान किया जाता है कि उस समय जावामें बौद्धधर्मका विशेष प्रचार न था। 'नाञ्जिओ'-की तालिकामें लिखा है कि फा-हियानके कुछ समय पीछे अर्थात् ४२७ ई०में गुणवर्माने जावामें (शिन्पो नामसे उल्लिखित हुआ है) बौद्धधर्मका प्रचार किया था। गुणवर्मा काश्मीरसे गये थे, इसलिये विद्वानोंका अनुमान है कि वे सर्वास्तिवादी थे। उसके बाद और भी अनेक बौद्ध-भिक्षु धर्म प्रचारार्थ जावा गये थे*।

तिब्बतके लामा ऐतिहासिक तारानाथका कहना है कि वसुबन्धुके शिष्यने पूर्वदेशमें बौद्धधर्मका प्रचार किया था। इससे मालूम होता है कि इ-चोङ्ने वहां उन्हींके द्वारा प्रचारित बौद्धधर्म देखा था। ईसाकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें बौद्ध परिव्राजकगण चीन और भारतवर्षके मध्य यातायात करते थे और उनमेंसे बहुतसे मलयप्रदेशमें उतरते थे। चीनमें उस समय बौद्धधर्मका बहुत प्रचार था। पहले लिख चुके हैं कि ईसाकी ६ठी और ७वीं शताब्दीमें गुजरातसे मनुष्योंका एक सङ्घ जावा गया था। सर चार्लस इलियटका अनुमान है कि वे भी बौद्धधर्मावलम्बी थे†।

इस युगमें जावाका बौद्धधर्म किस प्रकृतिका था, इस विषयकी कुछ आलोचना की जाती है। इ-चोङ्का कहना है कि जावाके बौद्धगण हीनयानमतावलम्बी और मूलसर्वास्तिवादी थे। सम्भवतः गुणवर्माने वहां हीनयान मत प्रवर्तित किया था; किन्तु परवर्ती कालमें भारतवर्षसे अन्यान्य मत भी यहां प्रचारित हुए थे। क्योंकि ७७८ ई०को कालासन नामक स्थानमें जो मन्दिर बना था, वह तारादेवीके नाम पर उत्सर्ग हुआ है और उस मन्दिरमें महायानमतका आभास पाया जाता है। स्थापत्य शिल्पसे मालूम होता है कि परवर्तीकालका बौद्धधर्म भी महायानवादी ही था। बरबदरके मन्दिरमें पांच बड़ी बड़ी बौद्धमूर्त्तियां तथा बहुतसी बोधिसत्वकी मूर्त्तियां स्थापित हैं। इससे मालूम होता है कि वहांका बौद्धधर्म महायानवादी ही था। परन्तु अन्य पक्षमें यह भी कहा जा सकता है कि शाक्यमुनिका व्यक्तित्व यहां अधिकतासे परिस्फुटित किया गया है; उनको जीवनी और पूर्वजन्मके वृत्तान्तके आधार पर बहुतसी मूर्त्तियां निर्मित की गई हैं। उक्त मन्दिरमें मैत्रेयदेव भी अत्यन्त सम्मानके साथ पूजे जाते हैं। वर्मामें भी प्रायः उसी प्रकार बौद्धधर्म प्रचलित हुआ था। हां! इतना फर्क है कि वहां पांच की जगह चार बुद्ध मूर्तियां पूजी जाती थीं।

* Nanjio Catalogue, Nos 137, 138.

† Hinduism and Buddhism, Vol. III, p. 170.

जावा और काम्बोजमें जो महायानवाद प्रचलित था उसके साथ हिन्दूधर्मका यथेष्ट संमिश्रण था। बहुत जगह तो यह भी घोषित हो गया था कि बुद्धदेव ही शिव हैं अथवा यों कहिये कि बुद्ध और शिव एक ही मूल कारणके विभिन्न प्रकार विकाशमात्र हैं। धर्म शास्त्रोंमें उभय धर्मके उक्त प्रकारसे मिश्रणका परिचय मिलने पर भी बरबदरके मन्दिरादिमें उसका कोई प्रभाव देखनेमें नहीं आता। सम्भव है, उस समय एक ही स्थानमें हिन्दू और बौद्धधर्म प्रचलित रहने पर भी दोनोंमें संमिश्रण न हुआ हो। उस समयके इल्लोराके चित्र-शिल्पके देखनेसे यही प्रतीत होता है कि ईसाकी ८वीं शताब्दीमें पश्चिम भारतके धर्मकी दशा भी प्रायः वैसी ही थी।

जावाके यथार्थ इतिहासके विषयमें हमें इतना कम तथ्य मालूम हुआ है कि, उससे इस बातका निर्णय नहीं किया जा सकता कि हिन्दू और बौद्ध इन दो धर्मोंमें किसकी शक्ति कितनी वा कैसी थी।

जावामें जैनधर्म भी प्रवर्तित हुआ था। पुरातत्त्वविदोंका अनुमान है कि जावामें ईसाकी १०वीं और ११वीं शताब्दीमें जैनधर्म प्रचारित हुआ था। इसका प्रमाण यह है कि खजुराहोमें बहुतसे मन्दिरोंमें जैनधर्मके उपासकगण पूजादिके लिए जाते थे। उक्त स्थानमें शिव और विष्णुमन्दिर भी पाये जाते हैं।

जावाके हिन्दूधर्मका प्रथम परिचय हमें पूर्णवर्माके शिलालेखसे मिलता है। उसके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि जावामें ५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विष्णु-उपासकोंका ही प्राबल्य था। पीछे ८वीं और ९वीं शताब्दीमें वहां शैव-धर्मका प्रचार हुआ था। प्रमबानम् और दियेङ् इन दोनों ही स्थानोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्तियां पूजी जाती हैं। किन्तु गणेश, दुर्गा, नन्दी सह शिव ही प्रधान समझे जाते हैं। प्रमबानमके एक मन्दिरमें महागुरु शिवरूपमें पूजे जा रहे हैं। उनको प्रौढ़वयस्क श्मश्रुयुक्त व्यक्तिके रूपमें अङ्कित किया गया है, शरीर पर बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार भी दिये गये हैं। बहुतसे समझते हैं कि उक्त मूर्तिके निर्माण-चातुर्य और वेशमें चीनदेशका प्रभाव लक्षित होता है। चीनका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है कि उस देशके सम्राट्-गण प्रायः जावाके राजाओंको देवमूर्ति उपहारमें दिया करते थे। ईसाकी १०वीं शताब्दीके मध्यभाग पर्यन्त शिवका प्रभाव अक्षुण्ण था। पीछे ११५० ई०में जब पनातरनका मन्दिर बना था, तब शैवधर्मके साथ वैष्णवधर्मका कुछ संमिश्रण हुआ था। हेतु यह है कि वहांके मन्दिरोंमें यत्र तत्र रामायण और वैष्णवपुराणके आख्यानोंके आधार पर चित्र निर्मित किये गये हैं*। इसके बाद १३वीं शताब्दीमें जावाका बौद्धधर्म पुनः श्रीसम्पन्न हुआ था। इस समय काम्बोज और चम्पामें बौद्धधर्मका स्रोत प्रबलवेगसे चल रहा था। मदजापितके एक राजाने चम्पाकी राजकन्याके साथ विवाह किया था। इससे अनुमान किया जाता है कि इस युगमें चम्पासे बौद्धधर्म आया था। तारानाथका कहना है कि मुसलमानोंके आक्रमण और अत्याचारके भयसे बहुतसे बौद्ध भारतसे भाग गये थे; सम्भव है उन्हींमेंसे कुछ जावा पहुंच गये हों। ईसाकी १३वीं शताब्दीमें जावामें बौद्धधर्मका प्रभाव बढ़ अवश्य गया था किन्तु ब्राह्मणधर्मके साथ उसका सङ्घर्ष उपस्थित नहीं हुआ था। बुद्ध और शिव एक ही तत्त्व हैं, यही घोषित किया गया था। साधारण लोग हिन्दू देवदेवियोंकी ही उपासना करते थे। इतना होने पर भी वे अपनेको बौद्ध बतलाते थे। अब भी वहांके अधिवासियोंको इस बातका गर्व है कि वे बुद्धागमके धर्मका अनुसरण कर रहे हैं। जावाके साहित्यमें भी बौद्ध ग्रन्थोंकी संख्या अधिक पाई जाती है। जावामें रामायण, भारतयुद्ध आदि हिन्दू ग्रन्थोंका भी अस्तित्व था, किन्तु यहांके लोग उन्हें काव्यकी दृष्टिसे देखते थे। इसके विपरीत बौद्धोंके "कमहायानिकान" और "कुञ्जरकर्ण" आदि ग्रन्थोंको वे यथार्थ धर्मशास्त्र मानते थे। सुतरां मदझापितमें जिस बौद्धधर्मका अनुसरण होता था, उसे उदार प्रकृतिका कहा जा सकता है।

फिलहाल जावाके प्रायः सभी लोग मुसलमान लिखे वा समझे जाते हैं। परन्तु इन मुसलमानोंके धर्ममत-की यदि धीर भावसे पर्यालोचना की जाय, तो उनमें

* Recherches preparatoires Concernant Krishna et les bas reliefs des temples de Java by Kuebel in Tijdschrift LI p 97-174.

हिन्दू और बौद्धधर्मका प्रभाव परिलक्षित होगा। उत्सवके समय बरबदर और प्रमबानममें सैकड़ों हजारों लोग पुष्पार्घ्य दिया करते हैं। ये लोग हिन्दूओंके पुराणोंमें वर्णित राक्षस, भूत, विद्याधर आदि पर विश्वास करते हैं। कट्टरसे कट्टर मुसलमान भी धनधान्यकी आशासे लक्ष्मीदेवीकी पूजा किया करते हैं। जावाके लोगोंमें हिन्दूधर्मके अन्तर्निहित संन्यासवाद और धर्मप्राणता भी पाई जाती है। कुछ भी हो, फिलहाल जावामें हिन्दूधर्मका नामतः विलोप हो गया है ; किन्तु बालिद्वीपमें अब भी उसका प्रभाव विद्यमान है।

जावाकी सुकुमारकला—सम्प्रति फरासीसी विद्वान महामति फूसेने सिद्ध किया है कि, जावाकी चित्रकला और भास्कर्य भारतीय पद्धतिके अनुकरण वा आदर्श पर सङ्गठित हुआ था।* १८७६ ई०में मि० फर्गुसनने अपने Indian and Eastern Architecture नामक ग्रन्थमें लिखा है कि जावा-वासियोंने उक्त कलाविद्या चालुक्यवंशीयोंसे सीखी थी। किन्तु फिलहाल J. W. Fjzerman कहते हैं कि मि० फर्गुसनने मि० राफलस् द्वारा प्रदत्त शिलालेखका आधार ले कर भूल की है। उनका कहना है कि जावामें एकमात्र चण्डीविमाके सिवा अन्यान्य सभी मन्दिर द्राविड़ी प्रथाके आदर्श पर बने हैं।

प्राचीन भास्कर्यके ध्वंसावशेषको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक तो मातारमराज्य और उसके निकटवर्ती स्थानोंका और दूसरा सिराबाजारके दक्षिण प्रदेशका। पश्चिम-जावामें कुछ शिलालेखोंके सिवा कारुकार्यमण्डित ध्वंसका अन्य कोई चिह्न देखनेमें नहीं आता।

जावाकी प्राचीन कीर्त्तिओंमें चान्दिकालासनका बौद्धमन्दिर ईसवी सन् ७७८को प्रैमबानममें बना था। उक्त समयसे पहले अन्य किसी भी मन्दिरके निर्माणका निश्चित समय नहीं मिलता। उक्त मन्दिर तारादेवीके नाम पर उत्सर्ग किया गया है। इसके पास ही महायान मतावलम्बी बौद्धोंके रहनेके लिए एक दुमंजला 'सङ्घाराम' और चान्दिशेबूका मन्दिर है। यह मन्दिर देखनेमें प्रायः मण्डालाके पागोडाकी (Pagoda) भाँतिका है। इसके भीतर २४० पूजा मन्दिर हैं, जिनमें (प्रत्येकमें) एक एक ध्यानी बुद्धकी मूर्ति रहती थी। इसी प्रदेशके 'चान्दिमेन्दुत' नामक मन्दिरमें सुबृहत् आसन पर उपविष्ट बुद्धदेव, मञ्जुश्री और अवलोकितकी मूर्ति विद्यमान है। उल्लिखित अवलोकित-मूर्तिके समान सुन्दरमूर्ति आज तक कोई भी बौद्धशिल्पी बना नहीं सका है, ऐसा लोगोंका अनुमान है। सर चार्लस् इलियट भी इसका समर्थन करते हैं।

मेन्दुतसे कुछ दूरी पर पृथिवीमें अन्यतम आश्चर्यजनक बरबदरका मन्दिर है। साधारणतः अनुमान किया जाता है कि यह मन्दिर ८५० ई०में बना था। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इसके बनानेमें समय बहुत लगा होगा। मन्दिरके कारुकार्य पर लक्ष्य देनेसे ऐसा अनुमान होता है कि मन्दिर बनाते बनाते शिल्पियोंके मतमें भी परिवर्त्तन हो गया था। जिन अज्ञातनामा नृपतिने यह मन्दिर बनवाया था, वे अवश्य ही अत्यन्त क्षमताशाली और समृद्धिसम्पन्न थे। आधुनिक ऐतिहासिकोंका मत है कि इस स्तूप पर किसी प्रकारका ब्राह्मण्य प्रभाव नहीं है।‡

बौद्ध उपासकगण इस विराट् मन्दिरकी प्रदक्षिणा देते थे। परिक्रमा देते समय उन्हें प्रायः दो हजार मूर्तियोंके दर्शन होते थे। उक्त मूर्तियोंके द्वारा शाक्यमुनिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त, उनकी सिद्धिप्राप्ति और महायानमतवादके निगूढ़ रहस्योंकी व्याख्या की गई है। बुद्धदेवके जीवनकी घटनाएं 'ललित-विस्तर'से ग्रहण कर अङ्कित की गई हैं। जातकके चित्र 'दिव्यावदान'से लिये गये हैं। परन्तु किसी भी चित्रमें शाक्यमुनिकी निर्वाण-अवस्था अङ्कित नहीं है। बोधिसत्त्व, अवलोकित, मञ्जुश्री आदिकी मूर्तियां भी उक्त स्थानमें स्थापित हैं। स्वर्गीय दृश्य दिखलाते हुए स्त्री और पुरुष दोनों प्रकारकी बोधिसत्त्वकी मूर्तियां अङ्कित की गई हैं ; किन्तु उनमें किसी प्रकारका तान्त्रिक प्रभाव नहीं पड़ा, ऐसा विद्वानोंका अभिमत है।

इस मन्दिरकी भित्तिशिला समुद्रपृष्ठसे ८०० फुटकी ऊंचाई पर प्रतिष्ठित है। यह मन्दिर समचतुरस्राकार

* Sir Ashutosh commemoration Volume—Orientalia III

‡ Hinduism and Buddhism, Vol III 1921, p 166.

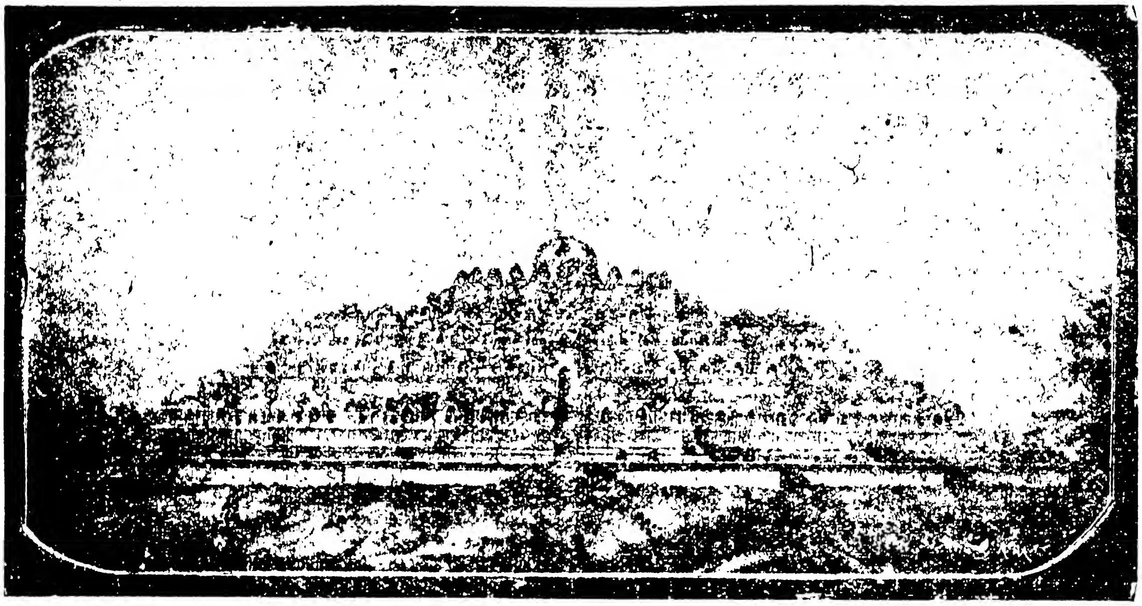

बरबदरका सप्ततल-मन्दिर।

और सात खण्डोंमें विभक्त है। १८८३ ई०के अग्न्युत्पातमें इसका कुछ अंश टूट गया है और मन्दिरके भीतर बहुतसे भस्मादिके ढेर लगे हुए हैं। भूमितलकी भित्तिशिलाकी लम्बाई-चौड़ाई ६२० फुट है। पहले खण्डका प्रत्येक पार्श्व ४८७ फुट लम्बा है और दूसरे खण्डका ३६५ फुट। इसी तरह क्रमशः घटता गया है। सातवें खण्डके ऊपर एक विराट् गुम्बज वा शिखर है, जिसका व्यास ५२ फुट है। इसके चारों तरफ अपेक्षाकृत छोटी गुमटियां हैं, जो शिल्पसौन्दर्यकी वृद्धि कर रही हैं। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए चारों तरफ चार विराट् सिंहद्वार हैं और अपूर्व कारुकार्य मण्डित ४ सोपानमालाएं हैं। प्रत्येक सिंहद्वारके दोनों ओर विराट्काय दो सिंह मानो प्रहरीका कार्य कर रहे हैं। भूमितलमें एक द्वारके पास बड़ी भारी ब्रह्माकी मूर्ति थी; अब वह भग्नावस्थामें कुछ दूरी पर पड़ी है।

इस सप्ततल विराट् मन्दिरमें बाहर और भीतर हजारों देवमूर्तियां हैं। बाहर प्रथम और द्वितीय सोपान-मञ्च (Gallery) पर प्रायः ५०० बुद्धमूर्तियां भित्तिसे ईषदुन्नत (Bas relief) हैं, जिनमेंसे ४३३ मूर्तियां उपविष्ट (प्रत्येककी ऊंचाई ३ फुट) हैं और ईषदुन्नत कोणके ऊपर कुछ बुद्धमूर्तियां महावल्लीपुरके सदृश निर्मित हैं। मि० फर्गूसनका कहना है कि पहले यह मन्दिर ८ खण्डोंमें विभक्त था। अब भी उक्त मन्दिरमें ७२ देहगोप विद्यमान हैं, जिनकी ऊंचाई तीन खण्डके बराबर है। सप्ततलके समस्त प्राचीरोंमें जितनी मूर्तियां हैं, उनको यदि श्रेणीबद्ध रक्खा जाय तो वे ३ मीलसे भी अधिक स्थान घेरेंगी। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि मन्दिरमें कितनी मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां अपूर्व शिल्पनैपुण्य-मण्डित हैं। सौभाग्यकी बात है कि यहां महमूद वा काला-पहाड़का अभ्युदय नहीं हुआ। मनुष्योंका उपद्रव न होने पर भी यहां बहुत बार विषम भूविप्लव और अग्निशैलका अग्न्युद्गम हो गया है। परन्तु इतना होने पर भी यह मन्दिर अपना मस्तक ऊँचा किये हिन्दू-सभ्यताके अपूर्व गौरवकी घोषणा कर रहा है।

मन्दिरका बहिर्भाग स्थापत्यालङ्कारसे विभूषित है: किन्तु यहां कोई विशेष ज्ञातव्य ऐतिहासिक रहस्य नहीं है। पांच प्रसिद्ध सोपानमञ्चोंमें २य सोपानमञ्च ही ऐतिहासिक रहस्यका अक्षय भण्डार है। इसका भीतरी भाग बुद्धदेवका लीलाचित्र है। गान्धारसे अमरावती पर्यन्त समस्त भूभागमें जितनी बौद्ध-मूर्तियां हैं, २य सोपानमञ्चमें उससे सौगुनी अधिक हैं, जिनमें १२० मूर्तियां तो विशेषतः उल्लेखयोग्य हैं। इनमेंसे २० दृश्योंमें बुद्धदेवके जन्मसे पहले तुषितस्वर्गका विवरण है

और २५ दृश्योंमें मायादेवीके स्वप्नका उज्ज्वल निदर्शन है। उसके बाद बुद्धकी बाल्यलीला, विवाह, दाम्पत्य-जीवन, गृहत्याग, संन्यास, आरण्य-जीवन, वाराणसीके मृगदाव उद्यानमें धर्मचक्र-प्रवर्तन, स्थूलतः ललित-विस्तरकी समस्त घटनाएं समुज्ज्वल शिल्पने पुष्पके साथ ग्रथित हैं।

उक्त बरबदूर-मन्दिरके प्रायः तीन मील उत्तरपूर्वमें शिल्पने पुष्प-भूषित दूसरा मन्दिर है। देखनेमें बड़ा न होने पर भी यह शिल्पकौशलकी अक्षय कीर्ति है। यह मन्दिर एला नदीके वामतट पर अवस्थित है। १८३४ ई०में हार्टमेन द्वारा यह लोक-समाजमें प्रकाशित हुआ था। इसका नाम है मान्दात (मान्धाता)। यह मैरापि आग्नेयगिरिके धातुनिःस्राव और भस्मराशिसे समाच्छन्न था। इसकी लम्बाई चौड़ाई ७० फुट है और वर्तमान उच्चता १६ फुट। इसके भीतर गुम्बजके नीचे विशालकाय ३ देवमूर्तियां हैं, जिनमें विष्णु और शिवकी मूर्ति आसानीसे पहचानी जा सकती हैं। जो मूर्ति बुद्धकी निश्चित की गई है, उसका मस्तक कुञ्चित-केशदामसे शोभित है किसी किसीका कहना है कि वह बुद्धमूर्ति नहीं, बल्कि किसी अन्य देवकी मूर्ति है।

विष्णु-मूर्तिके पास ही प्रफुल्लकमलासना अष्टभुजा लक्ष्मीदेवी सुशोभित हैं और उनके चारों ओर देव-कन्याएं कमलदलसे उन्हें व्यजन कर रही हैं। अन्यत्र प्रफुल्लकमलदल पर एक चतुर्भुज मूर्ति विराजमान है। उक्त कमलासनके मृणालदण्डकी सप्तफण-मण्डित फणीन्द्र थामे हुए है (शायद कालीयदमनका चित्र होगा); एक शैलखोदित वृक्षके नीचे वेणुवाद्यपरायण मूर्ति सुशोभित है, और एक मूर्ति अर्द्धभग्न है, वृक्ष सम्भवतः कदम्ब वा तमालका होगा। कदम्बवृक्ष बड़ी निपुणताके साथ अङ्कित किया गया है, समग्र भारतवर्षमें उसकी जोड़ीकी पादपप्रतिमूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। फर्गुसनसाहबने कुण्ठितभावसे इसकी हिन्दूकीर्ति बतलाया है।

ब्रह्मवनम्। पुण्यमय तपोवनका चित्रकल्पनाका विषय हो जाने पर भी, यवद्वीपके ब्रह्मवनमें उस अतीत गौरवकी विराट् कीर्ति अब भी विद्यमान है। अब भी ब्रह्मवनमें प्रस्तर-खोदित दीर्घश्मश्रु-शोभित निमीलितनेत्र शत शत ध्यानमग्न तपस्वियोंकी पवित्र प्रतिमूर्तियां तपस्याकी पुण्यनिकेतन-स्मृतिको सजीव बनाये हुए हैं।

फर्गुसन साहबका कहना है कि ब्रह्मवन ही हिन्दूकीर्तिका प्राचीनतम निदर्शन है। यह ईसाकी ५वीं शताब्दीमें बना था। इस जगह अब १० वर्गमील स्थानमें हिन्दुत्वकी विशाल स्थापत्यकीर्ति विराजित है। १८१२ ई०में भारतवर्षके 'सर्वेयर जेनरल' कर्नल कलिन मैकेञ्जीने ब्रह्मवनकी चोहद्दी माप कर उस स्थानके समस्त तत्त्वोंकी मीमांसा की है *।

ब्रह्मवन यग्यकर्ता और सुरकर्ता प्रदेशके बीचमें है। यहां पत्थरकी मूर्तियां इतनी हैं कि जिसकी कोई शुमार नहीं। ध्यानमग्न तपस्वियोंकी मूर्तियोंको देख कर पाश्चात्य विद्वानोंने पहले तो निश्चय किया कि वे बुद्धकी हैं, किन्तु पीछे सिद्धान्त हुआ कि वे ऋषियोंकी मूर्तियां हैं। पाश्चात्य विद्वान इस स्थानको यवद्वीपकी वाराणसी कहते हैं—"Which has been styled the Benares of central Java" यहां ६५०० फुट ऊंचे पर्वत पर असंख्य हिन्दू देवदेवियोंकी मूर्तियां हैं, जिनमें अधिकांश ही प्रस्तरमय हैं और कुछ धातुमय। इस पर चढ़नेके लिए ४००० सोपान-मण्डित एक पाषाणमयी अधिरोहणी है। अधिकांश मन्दिर प्रतिमूर्ति-शून्य हैं—अब वहां सिंह, शार्दूलोंका वास है। बहुतसे मन्दिरोंमें सुन्दर प्रतिमूर्तियां सुशोभित हैं। परन्तु अब वे मन्दिर पेड़ोंसे ढक गये हैं।

ब्रह्मवनके मन्दिर और देवमूर्तियां नाना श्रेणियोंमें विभक्त हैं; जिनमेंसे दो चारका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

१। चण्डीकीवन्दलम् -यह मन्दिर तथा इसकी अधिकांश प्रस्तरमूर्तियां भग्न हैं। मन्दिरकी ऊंचाई २० हाथ, इसकी भित्तिकी विस्तृति ८ हाथ और प्रवेश द्वारका उच्छ्राय भी ८ हाथ है। यहां शिव और दुर्गाकी भग्नमूर्तियां देखनेमें आती हैं। सिंहद्वार पर दो

* Transactions of The Batavia Society, Vol. III. देखो

विराट्काय द्वारपालकी मूर्तियां हैं। इस मन्दिरके पास एक स्थान है, जो 'बन्दारण' (वृन्दारण्य ?) कहलाता है। नरसिंह अवतार सदृश मूर्तियां भी यहां हैं और उनके गलेमें पद्मकी माला शोभित है। कुछ दूरी पर हनूमान् आदि ७ वानरोंकी मूर्तियां हैं। इसके सिवा जङ्गलमें सैकड़ों समाविष्ट तपस्वियोंकी प्रतिमूर्तियां विद्यमान हैं। निम्नभागके सामने अपूर्व कारुकार्य मण्डित गणेश मूर्ति विराजमान है।

२। लोरोजङ्गम् वा दुर्गा-मन्दिर—इस जगह प्रधानतः छ मन्दिर देखनेमें आते हैं; और सब टूट गये हैं। देवकुसुमके समयमें भारतीय भास्करोंने इन मन्दिरों-को बनाया था। पहले यहां २० बड़े बड़े मन्दिर थे; प्रत्येकको उच्चता १०० फुट थी। राफल साहबका कहना है कि उनके ब्राह्मण भृत्यने दुर्गाकी मूर्तिके दर्शन करके 'देवी भवानी जगदम्बा महामाया' आदि पढ़कर उनका स्तव किया था और भक्तिवश साष्टाङ्ग प्रणाम किया था।

दुर्गादेवीकी मूर्ति प्रायः वङ्गदेशीय महिषमर्दिनीका भांति है। यहां देवीके दोनों पैर महिषके ऊपर हैं; बायें हाथमें महिषासुरके केशोंका गुच्छा और दहिने हाथमें महिषका लाङ्गूल है। इसके सिवा पौराणिक ध्यानके साथ यहांकी महिषमर्दिनीका सादृश्य पाया जाता है।

सामने गणेश-मूर्ति है—इसका निर्माण-नैपुण्य देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। गणेश-मूर्तिके आठ नरमुण्ड तथा उनके अलङ्कारोंमें १२।१४ नरमुण्ड ग्रथित हैं। एक भीषण सर्प उनके शरीरको वेष्टित किये हुए है।

जावामें अब भी दुर्गा और गणेशको कुछ कुछ फूल और चन्दन मिल जाया करता है। यहां गणेशको राजदेमाङ्क, सिंहजय वा गणसिंह कहते हैं। इस स्थानके निकट एक २० हाथका शिवलिङ्ग भग्नावस्थामें पड़ा है। मन्दिरोंके सभी सिंहद्वार पूर्वमुखी हैं। मन्दिरके छज्जों पर असंख्य देव-मूर्तियां हैं, जिनमें ब्रह्माकी मूर्ति बड़ी रहस्यपूर्ण है। वे चतुर्मुख, अष्टभुज, हाथमें कमण्डलु लिए, और परों तले विपरीत दिशामें मस्तक रक्खे हुए सङ्गमबद्ध दम्पतीके वक्षःस्थल पर पैर रक्खे खड़े हैं—दहिने पैरके नीचे स्त्री हैं और बाएं पैरके नीचे पुरुष! प्रजापतिकी ऐसी मूर्ति सचमुच ही रहस्यजनक है; अन्यान्य बहुत स्थानोंमें ब्रह्ममूर्तिके नीचे ऐसा नरमिथुन नहीं है। किसी किसी स्थानमें ब्रह्मा चतुर्मुख, द्विभुज और अक्षसूत्रकमण्डलु हाथमें लिए हुए हैं। बहुत जगह शिवलिङ्गके सिवा शिवकी मूर्ति है। किसी जगह वे वृषभवाहन पर हैं, किसी जगह योगिवेशमें हैं और किसी जगह सर्पाभरणभूषित, नागयज्ञोपवीती एवं नूपुराङ्गदमण्डित हैं। उनके दक्षिण करमें रुद्राक्षमाला है और वाम करमें कमण्डलु, पार्श्वमें त्रिशूल गड़ा हुआ है। इसी प्रकार कहीं वे कैलास शिखरके अतुल कारुकार्य-मण्डित सिंहासन पर बैठे हुए हैं, हाथमें फुल्लकोकनद है और पास ही शायित पुङ्गव है। यहांका दृश्य देखनेसे काशीकी याद आ जाती है।

३। चण्डीशिव वा सहस्र-मन्दिर—अतीत मूर्ति शिल्प-का यह विराट् निदर्शन है। धर्मप्राण भारतवासियोंके लिए देखनेकी वस्तु है। स्थापत्यकीर्तिमें बरबदरमन्दिरके बाद ही सहस्र मन्दिरको स्थान दिया जा सकता है। राफल साहब भारतवर्ष और मिसरके पिरामिड आदि देख कर, फिर जावा गये थे; किन्तु तो भी उन्हें सहस्र-मन्दिर देख कर यह लिखना ही पड़ा कि—'मैंने पृथिवीके किसी भी अंशमें ऐसे मनुष्यका शिल्प-सौन्दर्य-मण्डित भुवनमोहन विराट् कीर्तिस्तम्भ नहीं देखा। जावाको यदि हिन्दुओंकी राजधानी कहा जाय, तो भी अत्युक्ति नहीं।''

दुर्गा-मन्दिरसे १३४५ गजकी दूरी पर वृन्दारण्यके पाससे सहस्रमन्दिर प्रारम्भ हुआ है; अधिकांश स्थान निविड़ जङ्गलाकीर्ण है, २८६ मन्दिर अब भी अविकृत रूपमें पड़े पड़े हिन्दूधर्मकी भूतकीर्तिको प्रगट कर रहे हैं। प्रायः सभी मन्दिर एक ही आदर्श पर निर्मित और विचित्र शिल्पसुषमासे शोभित हैं। इन मन्दिरोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्तियां विराजमान हैं। प्रत्येक मन्दिर २० हाथ ऊंचा है। इसके अतिरिक्त सर्वत्र असंख्य समाधिमग्न योगी, ऋषि और बुद्धोंकी मूर्तियां खोदित हैं। मन्दिरका प्राङ्गण ५४० फुट लम्बा और

५१० फुट चौड़ा है। इसके बीचमें एक प्रकाण्ड मन्दिर है जिसकी ऊंचाई ८० फुट है। तात्पर्य यह है कि हिन्दूपुराणोंके देवत्वघटित सभी दृश्य यहां अपूर्व कौशल से खोदे गये हैं, जिसका वर्णन सौ पृष्ठोंमें भी पूर्ण नहीं हो सकता।

४। सहस्र-मन्दिरके पास ही 'दिनाङ्गन' नामक स्थानमें असंख्य देवदेवियोंकी मूर्तियां और भग्न-मन्दिरका निदर्शन है। जावाके लोग इस मन्दिरकी देवमूर्तियोंको "वेगमिन्दा" कहते हैं।

५। उक्त मन्दिरके पास ही चण्डीकालीसारि वा कालीसारी-मन्दिरमाला है। यहां हिन्दू-राजधानीका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। मन्दिरका बहिर्भाग अतीव सुन्दर और अपूर्व कारुकार्य-विशिष्ट है। वर्तमान मन्दिर ५७ फुट लम्बा और ३० फुट चौड़ा है। यहां भी असंख्य प्रतिमूर्तियां पाई जाती हैं ; जिनमें शिव, दुर्गा, गणेश और विष्णुमूर्ति ही उल्लेखयोग्य हैं। विष्णुके निकट एक प्रकाण्ड गरुड़मूर्ति है।

६। इसके बाद ही चण्डीकाली-वेल्लिङ्गका मन्दिर है। इसका कारु-नैपुण्य भी अद्भुत है। इसकी लम्बाई चौड़ाई दोनों ओर ७२ फुट है और ३०की ऊंचाई पर छत है। मन्दिरके भीतर एक जगह सीतादेवी वा लक्ष्मीकी एक उल्लेखयोग्य मूर्ति है। इनके सिंहासनके नीचे ३२ पुतलियां हैं, जो उसे थामे हुए हैं और चारों ओर प्रफुल्लकमलदल हैं। यहांका दृश्य देख कर राफ्ल साहबका ब्राह्मण-भृत्य आनंद और भक्तिमें डूब गया था। बहुत जगह तो वह रोने लगा था। मंदिरके द्वार पर ८ हाथ ऊंचा एक विराट् द्वारपालकी मूर्ति मानो प्रहरीका काम बजा रही है। कालीसारीमें पहले हिंदू राजधानी थी, अब भी राजप्रासादका ध्वंसावशेष विद्यमान है। यह प्रासाद २३ विशाल प्रस्तरस्तम्भों पर अवस्थित है। यहां एक प्राचीन इष्टकालय है, जिसकी चुनाई देख कर विलायती इञ्जिनियरोंको भी चकित होना पड़ता है। वह चुनाई किस मसालेसे की गई थी, इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ ; क्योंकि ईंटोंके बीचमें बाल बराबर भी व्यवधान नहीं है—मालूम होता है पहले मिट्टीकी भीत खड़ी करके पीछे जलाई गई है।

यग्यराग, प्राणराग, कलिङ्ग, तेलङ्ग आदि जिले प्राचीन कीर्तियोंके ध्वंसावशेषसे भरे हुए हैं। इन स्थानोंमें प्राचीरोंके ऊपर बहुत जगह लिपि भी खुदी हुई है। कार्तसनमें भी बहुतसे शिलालेख मिले हैं।

७। सिंहसारीके निकट ही एक अपूर्व ब्रह्म-मूर्ति है। परन्तु मन्दिरका अधिकांश ही जङ्गलाकीर्ण है। लवङ्ग जिलेसे मालङ्ग जिलेमें जानेके रास्तेमें सिंहसारीको मंदिरमाला पड़ती है। मन्दिरमें सहस्राधिक हिंदू देव-मूर्तियां हैं, जिनमें अधिकांश शिव और दुर्गाकी हैं। इस मन्दिरमें बहुत जगह शिलालेख खुदे हुए हैं। शिव-मन्दिरके प्राङ्गणमें महाकाय वृषभ शयान है, किन्तु उसका एक सींग टूट गया है। पास ही वसन्त-पुष्पाभरणा गौरी हैं—मानो वे महादेवकी पूजा करनेके लिए पुष्पाञ्जलि ले कर अग्रसर हो रही हैं, लतागृहद्वार पर नन्दी बेंत हाथमें लिए खड़े हैं, महादेव समाधिमग्न हैं, बगलमें त्रिशूल गाड़ा हुआ है, देखते ही कुमारसम्भवमें वर्णित महादेवकी इस तपस्याका स्मरण हो आता है—"*लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी, वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः*!" नूतनत्व यह है कि यहां सूर्यदेव सप्ताश्वसंयोजित एकचक्र रथ पर चढ़ कर अनन्त आकाशको अतिक्रम कर रहे हैं। अश्वोंके मस्तक टूट गये हैं—मानो वे पूंछ उठा कर भीमवेगसे दौड़ रहे हैं। इसके १०० फुटकी दूरी पर एक प्रकाण्ड प्रस्तर-वेदिकामें विशाल गणेश-मूर्ति विराजमान है। सिंहासन और गणेशके सर्वाङ्गमें बहुतसे नरमुण्ड हैं। सिंहद्वार पर दो भीषण सिंह द्वाररक्षा कर रहे हैं ; दूसरे पार्श्वमें दो भीमकाय द्वारपाल कंधे पर गदा लिए खड़े हैं।

८। केदाल नामक स्थानमें २० हाथ ऊंचा एक मन्दिर मानो शिल्प-सौन्दर्यकी पराकाष्ठा दिखला रहा है। इस मन्दिरके नीचे दो बड़ी बड़ी सुरंगें हैं ; बहुतोंका विश्वास है कि उन सुरङ्गोंके नीचे दो उत्कृष्ट अट्टालिकाएं हैं। परन्तु कोई भी उतरनेका साहस नहीं करता। मन्दिरकी दीवारों पर मेष, वृषादिके चित्र तथा बहुतसे संस्कृत लेख खुदे हुए हैं। एक जगह दीवार पर राम-रावणके युद्धका चित्र अङ्कित है। इस मन्दिरमालामें देवतत्त्वके सिवा अनेक ऐतिहासिक चित्र तथा जातीय

चित्रादि भी अपूर्व निपुणताके साथ खोदे गये हैं। किसी जगह भयङ्कर युद्धका चित्र है, तो किसी जगह आनन्दका उच्छ्वास दिखलाया गया है; कहीं सैकड़ों प्रकारके युद्धास्त्र (महाभारतमें वर्णित) हैं, तो कहीं रङ्गभूमि पर मानो दृश्यकाव्यका अभिनय हो रहा है। इसके सिवा सैकड़ों वाद्ययन्त्र भी अङ्कित हैं, जिनमें मुरज, मुरली, रवाब और वीणा इनके नाम तो समझमें आते हैं औरोंके नाम अद्भुत हैं। ऐसे वाद्ययन्त्र सौसे भी अधिक होंगे कम नहीं। इस स्थानमें एक माणिक्यकी शिव-मूर्ति है।

८। सुकूकी मन्दिरमाला—यहां भी बड़े बड़े मन्दिर विद्यमान हैं। किसी जगह मिसरके पिरामिड और ओबेलिस्क वा स्मृतिस्तम्भकी भांतिके सैकड़ों प्रस्तरनिर्मित प्रासाद हैं। एक अट्टालिकाकी छत १५७ फुट लम्बी, १३० फुट चौड़ी और ८० फुट ऊंची है। द्वारोंके ऊपर सिंहोंके आकृति खचित है। कहीं स्फिंक्स् (Sphynx) वा विराट् नरमुण्ड हैं। किसी जगह एक राक्षस मुंह फाड़ कर मनुष्यको लील रहा है। किसी जगह एक भीषणकाय गरुड़पक्षी सर्प भक्षण कर रहा है। ये प्रतिमूर्तियां मिसरीय पुराणोंके आधार पर खोदित हैं। राक्षसके बगलमें एक कुत्ता है, जिसे देख कर टाइफन, यानुबिस् और साइबिलके उज्ज्वल चित्रकी याद आती है। मिसर देखो। इसके सिवा श्येनपक्षी, कबूतर, हृत्पत्र इत्यादिके विलिताक्षर आदि अनेक गूढ़तत्त्वोंका निर्देश कर रहे हैं। इस चित्रावलीके पास एक जगह व्याघ्र और गाय खुदी हुई है, उसके बाद एक दल अश्वारोही है, फिर कुछ हाथियोंकी प्रतिमूर्तियां हैं।

ये पिरामिड सोपानमालाओंमें शोभित है। उक्त प्रदेशमें एक आश्चर्यजनक जलोत्तोलनयन्त्र है, जिसके दो नल भीषण सर्पकी आकृतिके हैं। पिरामिडके भीतर प्रकोष्ठ हैं या नहीं, इसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ। पिरामिडके नीचे दो देव-मन्दिर है। उसके पास एक जलधारा है और वह ऐसे ढंगसे बनाई गई है कि उसका पानी कभी सूखता नहीं—उसमेंसे सर्वदा पानी गिरता रहता है। एक जगह अर्जुन गाण्डीव लिए हुए कपिध्वज रथ पर चढ़ कर कुरुक्षेत्रमें भीषण युद्ध कर रहे हैं और देवदत्त शङ्ख बजा रहे हैं। कपिध्वजके पास एक मूर्ति है, जिसका उत्तमाङ्ग मनुष्य-सदृश और निम्नाङ्ग पक्षीकी भांतिका है। सबके शरीर पर संस्कृत शिलालिपि खुदी हुई है। कहीं मीनावतार और कूर्मावतारकी दृश्यावली है, तो कहीं सुंदर राशिचक्र है, जिसमें चन्द्र और सूर्य अतीव निपुणताके साथ अङ्कित हैं। एक जगह विश्वकर्माकी कर्मशाला बनी है, जिसमें नाना प्रकारके यन्त्र और अस्त्रशस्त्र बन रहे हैं।

यहांसे कुछ दूरी पर एक ४० हाथ ऊंचा इष्टकालय है। वे परवर्ती कालमें बने थे, एकमें शकसं० १३६१ खुदा हुआ है।

इसके अतिरिक्त चेरवन और अङ्गरङ्ग पर्वत पर इतना प्रत्नतत्त्व है कि उसका यदि सिर्फ नामोल्लेख भी किया जाय तो एक ग्रन्थ बन जाय। एक मन्दिरमें १२ सूर्य-रथों पर द्वादश आदित्य विद्यमान हैं।

बान्युवङ्गी नामक स्थानमें हिन्दू-कीर्तिका विराट् निदर्शन देखनेमें आता है। अभ्रभेदी मन्दिरमाला और विराटकाय देवमूर्तियोंको देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

मजपहित राज्यके ध्वंसचिह्नमें भी प्रत्नकीर्तिकी अपूर्वता दिखलाई देती है। एक ध्वंसप्राय पुष्करिणीके चिह्नसे हम हिन्दू-साम्राज्यके अतीत गौरवका अनुमान कर सकते हैं। एक ईंटकी बनी हुई पक्की दीर्घिका अब भी विद्यमान है। दुर्भेद्य इष्टक-प्राचीर अब भी उसे वेष्टन किए हुए है। इसकी लम्बाई १२०० फुट, चौड़ाई ३०० फुट और ऊंचाई १२ फुट है। इस समय उसका अभ्यन्तर शस्यश्यामल धान्यक्षेत्र बन गया है। अब भी मजपहितका ध्वंसावशेष गोड़नगरसे १६ गुना स्थान अधिकार किये हुए पूर्व-गौरवकी साक्षी दे रहा है। यहांकी अधिकांश देव-मूर्तियां मुसलमानों द्वारा विध्वस्त हो गई हैं। मि० एञ्जेल हार्ड (Mr. Engel Hard) उस समय समरङ्गके शासनकर्त्ता थे; उन्होंने कुछ मूर्तियं मजपहितके ध्वंसावशेषसे संग्रह की थी, जिनमें शिव, दुर्गा और गणेश-मूर्ति ही उल्लेखयोग्य है।

इसके अलावा बहुत जगहसे धातुमयी प्रतिमूर्तियां संगृहीत हुई हैं। राफल् साहब एकसौ धातुमयी

मूर्तियां लाये थे, जिनमेंसे बहुतसी उनकी पुस्तकमें चित्रित हैं। इन मूर्तियोंमें पीतल और तांबेका अंश ही अधिक है। कुछ रौप्य-प्रतिमा भी मिली हैं। स्वर्ण-प्रतिमा भी बहुत थीं, किन्तु वे सब चोरी हो गईं। एक बड़ी स्वर्ण-प्रतिमा मिली थी, जिसको ओलन्दाजोंने गला कर सोना बना लिया। 'कालिवावर' नामक ग्राम-के लोगोंने स्वर्ण-प्रतिमाओंको गला कर इतना सोना इकट्ठा किया था कि, उन्नीसवीं शताब्दी तक वे अजस्र स्वर्णपत्रादि और स्वर्णमुद्रा अकिञ्चित्कर पदार्थकी तरह व्यवहार करते आये थे।

धातुमयी प्रतिमूर्तियोंमें पद्मयोनि ब्रह्माकी मूर्ति ही उल्लेखयोग्य है—अष्टभुज, अक्षसूत्र, कमल कमण्डलु-हाथमें लिए हुए नरमिथुनके ऊपर खड़े हैं। चारों ओर कमलदल और हंस सुशोभित हैं। इसके सिवा दुर्गा और गणेशकी भी धातुमयी मूर्तियां मिली हैं।

प्रस्तरस्तम्में उक्त मूर्तियोंके सिवा नाना प्रकारके धातुमय पात्र, ताम्रकुण्ड, घण्टा, पद्मपात्र, पद्मप्रदीप, स्रुक, स्रुवा आदि नाना स्थानोंमें दृष्टिगोचर होते हैं।

भाषा और साहित्य यवद्वीपमें बोली जानेवाली भाषा साधारणतः दो भागोंमें विभक्त है - एक षण्ड-भाषा और दूसरी यव-भाषा। षण्ड भाषा सिर्फ प्रेङ्गार, बाण्टाम, चेरिवन और क्रवङ्ग इन रेसिडेन्सियोंमें ही प्रचलित है। अन्यान्य सभी स्थानोंमें यव-भाषा बोली जाती है। इन दोनों भाषाओंमें अधिक विभिन्नता नहीं है। बहुतसे शब्द साधारण हैं। १२५ वर्ष पहले स्काच और अंग्रेजी भाषामें जैसा पार्थक्य था, षण्ड और यव-भाषामें भी उतनाही पार्थक्य देखनेमें आता है। उच्चश्रेणीकी यव-भाषका नाम "क्रम" भाषा है। शिक्षित सम्प्रदाय इसी भाषाका व्यवहार करता है। कविभाषाके साथ इसका बहुत कुछ सादृश्य है। जावाकी लिपिमाला संस्कृत वर्णमालाका रूपान्तर मात्र है। इस भाषामें संस्कृत शब्दोंका व्यवहार अधिकतासे होता है। अरबी अक्षर भी प्रचलित हैं। अरबी अक्षरोंमें लिखित यव-भाषाका नाम 'पगन' है। यहांकी वर्णमालामें २० व्यञ्जन और ६ स्वरवर्ण हैं। परन्तु लिखते समय स्वर-वर्णका व्यवहार नहीं होता। यहांकी संस्कृत वर्ण-मालामें १४ अक्षरोंका अस्तित्व ही नहीं है। 'फ' और 'भ' का कोई चिह्न नहीं है। युक्ताक्षरकी कठिनाइयां इसमें बहुत कम हैं। व्याकरणके नियम भी विशेष कठिन नहीं हैं। लिङ्ग और वचनके अनुसार विशेष्यपदमें भी प्रायः परिवर्तन नहीं होता। विशेषण और विशेष्यका लिङ्ग वचनके अनुसार नहीं होता। क्रियाकी रीति नाना भागोंमें विभक्त नहीं है। कर्तृवाच्यकी अपेक्षा कर्मवाच्यका प्रयोग ही अधिक होता है।

यवद्वीपकी प्राचीन भाषा कविभाषासे मिलती जुलती है। इसके अलावा बहुतसी हस्तलिखित विशुद्ध संस्कृत पोथियां यहांसे हलैण्ड पहुंचाई गई हैं। इन पोथियों-में ताड़पत्र पर लिखित पोथियोंकी संख्या ही अधिक है इसके सिवा बहुतसी भारतीय प्राचीन कागज पर लिखी हुई पुस्तकें भी मिली हैं।

ईसाकी ११वीं शताब्दीसे हिन्दू राज्यके अवसान-काल पर्यन्त जावामें बहुतसे साहित्यग्रन्थ रचे गये थे। परन्तु उस देशके लोगोंमें "नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा"-का अभाव है। जावाका साहित्य हिन्दू साहित्यके अनु-करणसे रचा गया है। किन्तु उस अनुकरणके भीतर यथेष्ट स्वाधीन चिन्ताका भी विकाश देखनेमें आता है।

जावाके प्राचीन ग्रन्थोंमें 'तान्तु-पदे-लारन' नामक सृष्टितत्त्वविषयक ग्रन्थ ही अन्यतम है। यह सम्भवतः १००० ई०में रचा गया था। मदर्फेनपतकी प्रतिष्ठाके पहले भी जावाके लोग हिन्दू और बौद्धशास्त्रोंसे परि-चित थे, यह बात बरबदर आदिके मन्दिरोंमें अङ्कित चित्र और मूर्तियोंसे मालूम होती है। एरलङ्गके समय में "अर्जुन-विवाह" नामसे महाभारतका कुछ अंश जावा-भाषामें लिखा गया था।

"भारत-युद्ध" नामक काव्यका उपजीव्य ग्रन्थ महा-भारत होने पर भी, उसमें स्वाधीनभावोंका यथेष्ट समा-वेश है। इसे म्पोए सेदा नामक कविने केदिरीके राजा जाजाबाजाके आदेशसे ११५७ ई०में लिखा गया था। किन्तु उससे पहले भी यवद्वीपकी भाषामें महाभारतका उपाख्यान लिखा गया था ऐसा विद्वानों-का अभिमत है।

कार्न साहबका कहना है कि १२०० ई०में जावामें

"कवि रामायण" रचा गया था। परन्तु इसके रचयिता संस्कृत नहीं जानते थे, उन्होंने रामायणका उपाख्यान लोगोंके मुंहसे सुना था। वे शिवके उपासक थे। साहित्यका विशेष विवरण बालिद्वीप और कविभाषा शब्दमें देखो।

जावाके स्थानीय साहित्यमें "मणिकमय" नामक प्रकाण्ड गद्यग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। इसमें सृष्टितत्त्वका विषय बड़ी विद्वत्ताके साथ वर्णित है। वर्तमान यवद्वीपवासियोंके लिए यही प्रधान लौकिक साहित्य है। इस पुस्तकका साधारण ज्ञान न होनेसे, यवद्वीपमें कोई भी शिक्षित नहीं कहला सकता। यही ग्रन्थ यवद्वीपका आदिपुराण है, साधारण भाषामें इसे "पेपाकम्" कहते हैं।

"सूर्यकेतु" नामक ग्रन्थमें कुरुवंशीय एक राजाकी कहानी है। "नीतिशास्त्र कवि" नामक ग्रन्थमें नीतिगर्भित १२३ श्लोक हैं। इस तरहकी सुललित नीतिकविता सभी भाषाओंके लिए अलङ्कार स्वरूप है।

आगम, आदिगम, पूर्वादिगम, सूर्य-कान्तार वा मानवशास्त्र (मनुसंहिता), देवागम, माहेश्वरी, तत्त्वविद्या, सात्मागम आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका आविष्कार हुआ है। इनमें मानवशास्त्रका कुछ अंश अङ्गरेजीमें अनुवादित हुआ है। यह मानवशास्त्र वा मनुसंहिता १६० भागोंमें विभक्त है।

प्राचीन साहित्यमें उपरोक्त ग्रन्थ ही उल्लेखयोग्य हैं ; इनके अलावा अन्यान्य ग्रन्थोंके नाम बालिद्वीप शब्दमें देखना चाहिए।

वर्तमान लौकिक साहित्यमें उपन्यास और नाटक आदिका अस्तित्व ही अधिक है।

"अङ्गाण वा अङ्गराणी"—इतिहासमूलक जयालङ्कारके राजत्वकालमें इसका प्रारम्भ है।

"पञ्जीमर्टनिङ्ग कुङ्ग"—यह पञ्जीके जीवनका, अद्भुत घटनावलीपूर्ण इतिहास है। पञ्जीमगदकुङ्ग, पञ्जी अङ्गरकुङ्ग, पञ्जीप्रियम्बदा, पञ्जी जयकुसुम, पञ्जी चेकेलवणिपति, पञ्जी नरवंश इत्यादि ग्रन्थोंमें पञ्जीका जीवनवृत्तान्त लिखा है। कहा जाता है ये ग्रन्थ १५वीं शताब्दीसे पहले रचे गये थे।

उत्थाङ्गकी रचनाएं 'पेपाकम्' वा 'बबद' नामसे प्रसिद्ध हैं।

"श्रुति" ग्रन्थ नीतिशास्त्रके अनुरूप है ; इसमें बहुतसी उपदेशपूर्ण कविताएं हैं। "नीतिप्रज्ञा" ग्रन्थमें राजधर्म और "अष्टप्रज्ञा" ग्रन्थमें राजनीतिका वर्णन है। "शिवक" ग्रन्थमें उच्च कोटिके व्यक्तियोंके साथ व्यवहारकी नीति लिखी है। "नागरक्रम"में नागरिक शासन-व्यवस्थाका उपदेश हैं। "युद्धनागर"में देशीय लोगोंके आचार व्यवहारका वर्णन है। "कामन्दक" नीतिशास्त्रविषयक ग्रन्थ है। "चन्द्रमङ्गल" ग्रन्थ शक सं० १३४० का रचा हुआ है। "जयालङ्कार" ग्रन्थमें विचारकार्य सम्बन्धी सर्वोत्तम विधि-व्यवस्थादिका वर्णन है। "युगलमुद"में मन्त्रियोंके कर्तव्याकर्त्तव्यका विचार किया गया है। इसके रचयिता काण्डियाचलके राजमन्त्री युगलमुद है।

"गजमर्द" (—मन्त्री गजमर्द-विरचित) मन्त्रिचर्या विषयक ग्रन्थ। "कापकाप"—विचारव्यवहार-विषयक ग्रन्थ। "सूर्य आलम"—(राजनपात वा आदिजिम्बुन रचित, ये मुसलमानोंमें सबसे पहले राजा हुए थे) राजनीति-मूलक ग्रन्थ। "जयालङ्कार" उपन्यास—(ससहानन आम्पेलके समयमें रचित) उच्चनीतिमूलक रूपक ग्रन्थ। "जवर मालिकम्"—वर्तमान समयका सर्वोत्कृष्ट उपन्यास। इस ग्रन्थको प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—"यथार्थ प्रेम चित्तको सर्वदा उद्विग्न रखता है" जैसाकि सेक्सपीयरने कहा है—"Where love is great the slighest doubts are fear" "जवरमालिकम्" (नायिकाका नाम)का चरित्र हर एक भाषा वा साहित्यके लिए उपादेय है।

४०० वर्ष तक राजत्व करते रहने पर भी मुसलमान जावामें अपने साहित्यका प्रचार नहीं कर सके। सिर्फ धर्म-विषयक कुछ ग्रन्थोंके सिवा साहित्यके अन्य विभागोंमें अरबी भाषाका प्रभाव बिलकुल भी दृष्टिगोचर नहीं होता। हां, वर्तमान समयमें इसकी संख्या अवश्य बढ़ रही है। प्रायः पौने दो सौ वर्ष पहले प्राणराग नाम एक अरबी विद्वानने जावा भाषामें कुरानका अनुवाद किया था। निम्नलिखित अरबी किताबें उल्लेखयोग्य हैं,—

ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता
उमुलहम्राहिम	शेख उमुफसानुसो
महारबार	इमाम आबूहनिफ
रनलोडालब	शेख इस्लाम जाफरिया
इनसामकमिल	शेख अब्दुलकरोमजिलो

यवद्दीपमें काव्यग्रन्थ शेखर (अर्थात् कुसुम) कहलाते हैं। एक कविताको पद कहते हैं, पंक्तिका नाम आखर है, लघु और गुरुके भेदसे उच्चारण होता है।

बहुतसे ग्रन्थोंमें निम्नलिखित छन्दोंमें कविताएं लिखो गई हैं, जैसे—शार्दूलविक्रोड़ित, जगतो, विराट्, वसन्ततिलका, वंशस्थविल, स्रग्धरा, शेखरिणो, सुवन्धन (?), चम्पकमाला, प्रवोरललित, वसन्ततिल, दण्ड। प्रत्येक छंदमें चार चरण हैं। इनके अतिरिक्त जावा-भाषामें और भी बहुतसे छन्द हैं।

जावाके प्राचीन इतिहास-ग्रन्थका नाम "उग्रन-यव" है। इस ग्रन्थसे हिन्दू राजाओंके विषयमें बहुतसी बातें जानी जा सकती हैं। सिवा इसके दाहराज्यके प्रवादपरम्परासे मालूम होता है कि यहांका प्रधान धर्म-ग्रन्थ पुलह मुनि-कृत ब्रह्माण्डपुराण है। 'उग्रन यव' ग्रन्थमें ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्य समाजका सुस्पष्ट परिचय मिलता है।

सामाजिक प्रथा—जावामें स्थापत्य और मूर्ति-शिल्प-का निर्माण-नैपुण्य देख कर जिस प्रकार ब्राह्मण्यधर्म और आर्यसभ्यताका उज्ज्वल निदर्शन अनुमित होता है, उसी प्रकार जावा-वासियोंके वर्तमान आचार-व्यवहार और प्रथा-पद्धतिको पर्यालोचना करनेसे प्राचीन हिंदू सभ्यताका पदचिह्न पाया जाता है। मुसलमान धर्म चार शताब्दोंमें भी प्राचीन सभ्यताका लोप नहीं कर सका। हां, उसने धर्मनीतिमें विप्लव अवश्य उपस्थित किया है। मुसलमान आधिपत्यके समयसे ही जावामें विवाह-बन्धन शिथिल हो गया है। किन्तु वाह्य प्रथा-पद्धति हिन्दू-मतानुसार ही निर्वाहित होती है। सम्बन्ध-निर्णयसे लगा कर विवाह, गर्भाधान आदि सभी क्रियाएं हिन्दू सभ्यताके अनुकूल साक्षी दे रही हैं। यहां साधारणतः कन्याका पिता ही पण ग्रहण करता है; यवद्वीपको मनुसंहितामें विवाह-बन्धनको दृढ़ता प्रतीत होती है; सिर्फ मुसलमान-सभ्यतामें ही 'तलाक' वा विवाह-विच्छेदको संख्या बढ़ी है। यहांके स्त्री-पुरुष दोनों ही कम उम्रमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होते हैं। साधारणतः १० १४ वर्षको कन्याका १६-२० वर्षके युवकके साथ व्याह हुआ करता है। यहां बाल्यविवाह और बहु-विवाहका प्रचार है। वरकन्या इच्छानुसार विवाह नहीं कर सकते; मातापिता ही विवाह-सम्बन्ध स्थापन करते हैं। सम्बन्ध स्थिर होने पर वरका पिता बरात ले कर कन्याके घर जाता है और शुभ मुहूर्तमें मन्त्रोच्चारण पूर्वक पुरोहित विवाह-क्रिया सम्पन्न करता है। वर जब कन्याके घर उपस्थित होता है, तब कन्या वरका हाथ पकड़ कर सम्भाषण करती और पैर धो देती है। मन्त्र इस प्रकार पढ़ा जाता है—"मैं तुमको (वरको) इस बह्नके साथ जोड़ देता हूं। तुम जब तक पृथिवी पर रहो, तब तक इसका पालन करना। तुम अपनी स्त्रीके शुभाशुभके लिए सम्पूर्ण दायी हो। तुम्हारा हृदय स्त्रीके हृदयमें मिल जावे।"

इसके बाद वर पुरोहितको दक्षिणा देता है। तद-नन्तर स्त्री-आचारके अनुसार क्रियाएं की जाती हैं और वर जिससे वधूके आंचरसे बंधा रहे वा वशमें रहे, ऐसी पद्धति अनुष्ठित होती है। फिर जब वधू वरके घर पहुंचती है, तब 'बह्न-भात' होता है।

कन्याको माता जिन गहनोंको पसन्द करती है, कन्याको वरको ओरसे वे ही गहने दिये जाते हैं। विवाहके बाद गुरुजन वर और कन्याको यह कह कर आशीर्वाद देते हैं कि "काम और रतिकी तरह सुखी होओ।" स्त्रीके गर्भवती होने पर तीसरे महीनेमें पुंस-वन, चौथे वा पांचवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन, सातवें महीने पञ्चामृत और नौवें महीने साधभक्षणक्रिया (हिन्दुओंके अनुकरणसे) सम्पन्न होती है। इन उत्सवोंमें आमोद-प्रमोद, गाना-बजाना और खाना-पीना वगैरह हुआ करता है तथा देवावतार ब्रह्माके वंशके किसी राजचरित्रका नाटककी तरह अभिनय होता है। पुत्र उत्पन्न होने पर ४० दिनके भीतर, एकदिन महासमा-रोह हुआ करता है। इस दिन दुर्गावतार और संयम-जगन्नाथ नाटक अभिनीत होता है। फिर नामकरण

और निष्क्रामणके समान क्रियाएं होती हैं तथा मानवें महीने अतीव समारोहके साथ अन्नप्राशन उत्सव होता है।

यवद्वीपकी मनुसंहितामें लिखा है कि यदि पति वाणिज्यके लिए समुद्रयात्रा करे, तो स्त्री १० वर्ष तक बाट देख कर द्वितीय पति ग्रहण कर सकती है। यदि अन्य किसी राज्यमें कार्यके लिए देशान्तर गया हो तो ४ वर्ष बाद, यदि धर्मोपदेश सुननेके लिए विदेश गया हो तो ६ वर्ष बाद तथा निरुद्दिष्ट हो तो चार वर्ष बाद दूसरा पति ग्रहण कर सकती है।

यवद्वीपके व्यवहारशास्त्रोंके पढ़नेसे स्वतः ही अनुमान होता है कि अब भी वहां हिन्दू-सभ्यताका सजीव निदर्शन विद्यमान है।

वर्तमानमें जावाके लोग गाने बजानेमें बड़े मशगुल रहते हैं। ये नाचने और गाने बजानेके लिए मशहूर है। नर्तकियोंकी संख्या अधिक नहीं हैं, पुरुष भी नाना प्रकारके नृत्य करते हैं। ये शेर, गैंड़ा, सांड़ बुलबुल, मुरगा आदिके लड़ाईमें बड़ा आनंद मानते हैं। कभी कभी इटलीके कलिभियमसेवकी तरह अस्त्रको डाका अभिनय होता है। इस उत्सवमें मृत्युदण्डके अपराधी तलवार हाथमें ले कर भीषण व्याघ्रके साथ युद्ध करते हैं; जो युद्धमें जीत जाता है, वह निरपराधी समझ कर छोड़ दिया जाता है।

यहां चौपड़ (चतुरङ्ग), ताश आदि खेल प्रचलित हैं। यहांके सम्भ्रान्त स्त्री पुरुष भी कपड़ेके साथ सर्वदा किरीच रखते हैं। आनंदोत्सवके समय ये शरीर पर हलदी पोता करते हैं।

वर्तमान सुलतान वंशीयगण हिंदू राजाओंसे ही अपनी उत्पत्ति मानते हैं। इसीलिए वे भारत युद्ध, रामायण और महाभारतका अभिनय कर अपनेको गौरवान्वित समझते हैं।

जावित्री (हिं० स्त्री०) जायफलके ऊपरका छिलका। यह बहुत सुगन्धित होती और औषधके काममें आती है। यह हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ खाँसी, वमन, श्वास, तृषा, कृमि तथा विषनाशक है।

जापक (सं० क्लो०) जस्यति मुञ्चति गन्धादिकं जस-ण्वुल्, पृषोदरादित्वात् सस्य पत्वं। कालीयक, पीला चन्दन।

जाष्कमद (सं० पु०-स्त्री०) पक्षिविशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

जासू (हिं० पु०) अफीममें मिलानेके लिये काटा हुआ पान जिससे मदक बनता है।

जासूस (अ० पु०) वह जो गुप्त रूपसे किसी बातका विशेषतः अपराध आदिका पता लगाता हो, भेदिया, मुखबिर।

जासूसी (हिं० स्त्री०) जासूसका काम।

जास्पति (सं० पु०) जायते जन-ड जायाः दुहितुः पतिः वेदे निपा०। जामाता, जंवाई, दामाद।

जास्पत्य (सं० क्लो०) जायाच पतिश्च जायापती तयोर्भावः कर्म वा पृषोदरादित्वात् ष्यञ्। जायापतीका कार्य, स्वामी स्त्रीका काम।

जाह—तद्धित प्रत्यय। अक्षि, ओष्ठ, कर्ण, केश, गुल्फ, दन्त, नख, पाद, पृष्ठ, भ्रू, मुख, शृङ्ग, इन शब्दोंके उत्तरमें जाह प्रत्यय लगता है। यथा—केशजाह प्रभृति।

जाहक (सं० पु०) दह ण्वुल्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ घोंघा, घोंघा। इसके पर्याय—गात्रसङ्कोची, मण्डली, वहुरूपक, कामरूपी, विरूपी और विलावास है। घोंग देखो। २ जलौका, जोंक। ३ बिस्तर, बिछौना। ४ गिरगिट। ५ गोनाससर्प। ६ विड़ाल।

ज़ाहिर (अ० वि०) प्रकट, प्रकाशित, जो छिपा न हो।

ज़ाहिरदारी (अ० स्त्री०) वह काम जिसमें सिर्फ ऊपरी बनावट हो।

ज़ाहिरा (अ० क्रि०-वि०) प्रत्यक्षमें, देखनेमें।

जाहिल (अ० वि०) अज्ञान, मूर्ख, अनाड़ी।

जाही (हिं० स्त्री०) १ चमेलीकी जातिका एक प्रकारका सुगन्धित फूल। २ एक प्रकारकी अतिशबाजी।

जाहुष (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

जाहुव—जनपदविशेष, एक देशका नाम।

जाह्नवी (सं० स्त्री०) जह्नोरपत्यं स्त्री जह्नु-अण्-ङीप्। जह्नुतनया, गङ्गा। पहले जह्नु मुनिने कुपित हो कर गङ्गाको पी गये थे, बाद भगीरथके स्तवसे संतुष्ट हो जाने पर उन्होंने अपने जानु (घुटने)से गङ्गाको बाहर निकाल

दिया, इसीलिये इनका नाम जाह्नवी पड़ा है। इसमें स्नान करनेसे सब प्रकारके पाप नाश होते हैं। गंगा देखो।

जाह्नवी—उत्तर-पश्चिम प्रदेशके गढ़वाल राज्यकी एक नदी और गङ्गाकी शाखा। यह अक्षा० ३०° ५५´ उ० और देशा० ७९° १८´ पू०से उत्पन्न हो कर पहले उत्तर और फिर पश्चिमकी ओर ३० मील चल कर भैरवघाटीके गङ्गामें मिल गई है।

जि (सं० त्रि०) जयति जि बाहुलकात् डि। १ जेता, जीतनेवाला। २ पिशाच।

जिंक (अं० स्त्री०) जस्तेका क्षार। इसका रंग उजला होता है। यह रंग रोगन और दवाके काममें आती है। क्लोराइड आफ जिंक, या सलफेट आफ जिंक कोसोडियम, बेरियम या कलसियम सलफाइडमें घोलनेसे यह तैयार की जाती है। सलफाइडके नीचे तलछठ बैठ जानेसे यह निकाल कर सुखाई जाती और तब लाल आंचमें तपा कर ठंढे पानीमें बुझा ली जाती है। इसके बाद यह खरलमें पीस कर बाजारोंमें बिकती है। गुलाब जलमें इसे घोल कर आँखों पर लगानेसे आंखकी जलन और दर्द दूर हो जाती है।

जिंद (अ० पु०) भूत, प्रेत, मुसलमान भूत।

जिंदगानी (फा० स्त्री०) जीवन, जिंदगी।

जिंदगी (फा० स्त्री०) १ जीवन। २ जीवनकाम, आयु।

जिंदा (फा० वि०) जीवित, जीता हुआ।

जिंदादिल (फा० वि०) विनोदप्रिय, हंसोड़।

जिंस (फा० स्त्री०) १ प्रकार, किस्म। २ वस्तु, द्रव्य। ३ सामग्री, सामान। ४ अनाज, गल्ला, रसद।

जिंसवार (फा० पु०) पटवारियोंका एक कागज। इसमें पटवारी अपने इलाकेके प्रत्येक खेतमें बोए हुए अन्नका नाम जांच करते समय लिखते हैं।

जिउकिया (हिं० पु०) १ रोजगारी, जीविका करनेवाला। २ पहाड़ी लोग। ये दुर्गम जङ्गलों और पर्वतोंसे भांति भांतिकी व्यापारकी वस्तुएँ ले आ कर नगरोंमें बेचते हैं। इनकी व्यापारकी वस्तुएँ विशेषतः चँवर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेरके बच्चे तथा जड़ी बूटी हैं।

जिउतिया (हिं० स्त्री०) आश्विन मासकी जन्माष्टमीके दिन होनेवाला एक व्रत। पुत्रवती स्त्रियां इस व्रतको करती हैं। इसमें अनन्तकी तरह धागेमें गांठें दे कर गलेमें पहनती हैं। कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्लाष्टमीके दिन किया जाता है। जिताष्टमी देखो।

जिकन (सं० पु०) एक प्राचीन स्मृतिकार। इन्होंने अन्त्येष्टिविधि, अनुमरणविवेक प्रभृति ग्रन्थ लिखे हैं।

जिक्र (अ० पु०) प्रसङ्ग, चर्चा, बातचित।

जिगत्नु (सं० पु०) १ उच्छ्वास। २ प्राणवायु।

जिगत्नु (सं० पु०) गच्छति गम-त्नु: सन्वच्च। गमेः सन्व च। उण् ३।३१ अनुदात्तोपदेशे इत्यादिना मलोपः। १ प्राण। (त्रि०) २ गमनशील, जानेवाला।

जिगनी—मध्य भारतके बुंदेलखण्ड एजेन्सीका सनदयाफ्ता छोटा राज्य। इसका क्षेत्रफल २२ वर्गमील और लोकसंख्या कोई ३८३८ है। इसके चारों ओर हमीरपुर और झांसी जिला है। जागीरदार बुंदेला राजपूत हैं। मराठा आक्रमणके समय इसका रकबा बहुत घट गया था। अंगरेजोंके अधिकारके समय सब गांव जब्त हुए, परन्तु १८१० ई०में ६ ग्राम एक सनदके साथ दिये गये। आय प्रायः १२०००) रु० है। प्रधान नगर जिगनी अक्षा० २५° ४५´ उ० और देशा० ७९° २५´ पू०में धसान नदीके वामतटमें बेतवाके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७११ है। यहांके राजाको दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका अधिकार है।

जिगमिषा (सं० स्त्री०) गन्तुमिच्छा गम-सन् ततः टाप्। गमनेच्छा, जानेकी इच्छा।

जिगमिषु (सं० त्रि०) गम सन् उः। गमनेच्छु, जानेके लिये तैयार।

जिगर (फा० पु०) १ कलेजा। २ चित्त, मन, जीव। ३ साहस, हिम्मत। ४ सार, सत्त, गूदा। ५ मध्य, सार भाग। ६ पुत्र, लड़का।

जिगरकीड़ा (फा० पु०) भेड़ोंका एक रोग। इस रोगके होनेसे उनके कलेजेमें कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा (हिं० पु०) साहस, हिम्मत।

जिगरी (फा० वि०) १ भीतरी, दिली। २ अत्यन्त घनिष्ट।

जिगत्नि (सं० पु०) ग बाहुलकात्-ति द्वित्वञ्च। आच्छादक, ढांकनेवाला।

जिगिन (हिं० स्त्री०) एक बहुत बड़ा जंगली पेड़। जिंगिनी देखो।

जिगीषा (सं० स्त्री०) जेतुमिच्छा जि-सन् भावे अ। १ जयेच्छा, विजय प्राप्त करनेकी कामना। २ प्रकर्ष, उत्तमता। ३ उद्यम, उद्योग।

जिगीषु (सं० त्रि०) जि-सन् तत उ। १ जयेच्छु, जो जीतनेकी इच्छा करता हो। २ उत्कर्ष लाभेच्छु, जो श्रेष्ठता या उत्तमता चाहता हो। ३ उद्यमशील, परिश्रमी, मेहनती।

जिगुरन (हिं० पु०) हिमालयमें गढ़वालसे हजारा तक मिलनेवाला एक प्रकारका चोटोदार चकोर। यह जधो, सिंगमोनाल और जेवर नामसे भी पुकारा जाता है। इसकी मादा बोदल कहलाती है।

जिग्यु (सं० त्रि०) जयशील, जीतनेवाला, फतहयाब।

जिघत्नु (सं० पु०) हन्‌पृषोदरादित्वात् साधुः। जिघांसा, मारनेकी इच्छा।

जिघत्सा (सं० स्त्री०) अत्तुमिच्छा अद्-सन घसादेशः भावे अ। भक्षणेच्छा, क्षुधा, भूख।

जिघांसक (सं० त्रि०) प्रतिहिंसक, मारनेवाला, कतल करनेवाला।

जिघांसा (सं० स्त्री०) १ हनन करनेकी इच्छा, कतल करनेका मन। २ प्रतिहिंसा, वध, कतल।

जिघांसी (सं० त्रि०) जिघांसाकारी, वध करनेवाला।

जिघांसु (सं० त्रि०) हन्तुमिच्छुः हन-सन्-तत उ। हननेच्छु, मारनेवाला।

जिघृक्षा (सं० स्त्री०) ग्रहीतुमिच्छा, ग्रह-सन्-भावे अ। ग्रहणेच्छा, पानेकी इच्छा।

जिघृक्षु (सं० त्रि०) ग्रह-सन् तत उ। ग्रहणेच्छु, पानेवाला।

जिघ्र (सं० त्रि०) जिघ्रति घ्रा कर्त्तरि श। १ घ्राणकर्त्ता, सूँघनेवाला। २ प्रत्ययविशेष, लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्‌में घ्रा धातुके स्थानमें जिघ्र आदेश होता है।

"स्वामी निश्वसितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः।"

(साहित्यद० ७।४५)

जिङ्गि (सं० स्त्री०) मञ्जिष्ठा, मजीठ।

जिङ्गिनी (सं० स्त्री०) जिगि गतौ णिनि। शाल्मली जातिके एक वृक्षका नाम। जिगिनका पेड़। इसके पत्ते महुएके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं। यह पहाड़ों और तराईके जंगलोंमें पाया जाता है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। इसके फल बेरके बराबर होते हैं। इसके पर्याय—झिङ्गिनी, झिङ्गी, सुनिर्य्यासा और प्रमोदिनी है। इसके गुण—मधुर, उष्ण, कषाय, योनिविशोधन, कटु, व्रण, हृद्रोग, वात और अतीसारनाशक है।

(भावप्रकाश)

जिङ्गी (सं० स्त्री०) जिगि गतौ अच् गौरा० ङीष्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

जिजहोती (जझौति)—बुंदेलखण्डका एक प्राचीन नाम। इसका प्रकृत नाम जेजाकभुक्ति है। अाबुरिहन और युएनचुयाङ्गके ग्रन्थोंमें जझौति प्रदेश और उसकी राजधानी खजुराहुका उल्लेख है।

जिजिया (फा० पु०) १ कर, महसूल। २ मुसलमान अधिकारियों द्वारा प्रवर्तित अधीनस्थ मुसलमानोंके सिवा अन्य धर्मावलम्बी व्यक्तिमात्र पर लगनेवाला एक कर, मुण्ड कर।

आइन-ए-अकबरीमें लिखा है कि, खलिफ ओमरने मुसलमानोंके सिवा अन्य समस्त जातियों पर एक कर लगाया था। यह कर उच्चश्रेणीके व्यक्तियों पर ४८ दर्हाम, मध्यवित्त व्यक्तियों पर २४ दर्हाम और उससे हीन व्यक्तियों पर १२ दर्हाम था।

भारतवर्षमें यह कर कबसे प्रवर्तित हुआ है, इसका कोई यथार्थ प्रमाण नहीं मिला। टाड साहबका अनुमान है कि, भारतवर्षमें पहले पहल बादशाह बाबरशाहने तमगा-करके बदले इसे लगाया था। किन्तु इससे भी बहुत पहले अलाउद्-दीनके समयसे इसका नामोल्लेख मिलता है। जीया-उद्-दीन बरनी और फिरिस्ता द्वारा लिखित पुस्तकोंमें अला-उद्-दीन और उनके काजी मूगिस उद्-दीनके कथोपकथनमें इस प्रकार लिखा है—अलाउद्दीनने कहा, "जिस तरह हिन्दुओंसे वसूल और कर वसूल करना धर्मसङ्गत है?" तुच्छहृदय काजीने उत्तर दिया "इमाम हानिफने कहा है कि, काफिरोंको मृत्युके बदले, मृत्युके सदृश भारी जिजिया करके भारसे प्रपीड़ित करना ही धर्मसङ्गत है। यह जिजिया

कर उनका खून सुखा कर जहां तक हो कठोरतापूर्वक वसूल करना होगा, क्योंकि यह दण्ड जिससे मृत्युदण्ड के समान हो, इनको विशेष चेष्टा करनी होगी।"

कुछ भी हो, इस समय शायद ब्राह्मणोंके सिवा अन्य सभी जातियों पर यह कर लगाया गया होगा। ब्राह्मण इनके बाद भी फिरोजशाहके समय तक इस करसे मुक्त थे। शामसी सिराज द्वारा लिखित पुस्तकमें इसका प्रमाण मिलता है। उसमें लिखा है—सम्राट् फिरोजशाहने निम्नलिखित बात कह कर ब्राह्मणों पर सबसे पहले जिजिया स्थापन किया। उन्होंने कहा था—"उपवीत-धारी ब्राह्मण अब तक जिजियासे मुक्त हैं। पहले मुसलमान बादशाहोंने सन्तो और दुष्ट गुरुओंकी उपेक्षा की है। किन्तु ये ब्राह्मण ही अधिवासियोंमें प्रधान हैं, इसलिए सबसे पहले जिजिया इन्होंसे वसूल करना चाहिये।" इससे प्रमाणित होता है कि, फिरोजशाहने ही पहले ब्राह्मणों पर जिजिया कर लगाया था। जो हो, ब्राह्मणोंको यह मालूम पड़ते ही वे राजप्रासादमें उपस्थित हुए और उन्होंने यह धमकी दिखाई कि, "यदि जिजियासे छुटकारा न मिलेगा, तो हम लोग यहीं अग्निमें जल कर भस्म हो जायंगे।" आखिरको दिल्लीके अन्यान्य हिन्दुओंने आ कर ब्राह्मणोंके करका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया और ब्राह्मणोंको जिजियासे छुटकारा दिया। उस समय सर्वोच्चश्रेणीके हिन्दुओंको आदमी पीछे ४०) रुपया जिजिया कर देना पड़ता था। मध्यमश्रेणीके लिए २०) और तृतीय श्रेणीके व्यक्तियोंके लिए १०) रुपया स्थिर था। ब्राह्मणोंको उक्त झगड़ेके पीछे सबसे कम देना पड़ता था।

अकबरने अपने राज्यके ९वें वर्षमें यह कर उठा दिया था। किन्तु भिन्नधर्मद्वेषी घोर पक्षपाती औरङ्गजेबने अकबरकी इस उदार नीतिका अनुसरण न कर अपने राज्यके २२वें वर्षमें यह कर पुनः जारी कर दिया। ये सिर्फ जिजिया स्थापन करके ही शान्त न हुए, बल्कि उन्होंने इस बातकी भी काफी कोशिश की थी कि, जिससे कर देनेवाले लाञ्छित और अपमानित हों। फुतुहात-उल-अखबारातमें एक जगह लिखा है—औरङ्गजेबने जिजिया वसूल करनेके लिए निम्नलिखित इन्तजाम किया था। कर देनेवाला खुद पैदल आ कर गुमास्ताके पास खड़ा होता था। गुमास्ता बैठा रहता था और करदाताके हाथसे कर उठा लेता था। नौकरोंके हाथ भेजनेसे नहीं लिया जाता था, खुद जा कर दे आना पड़ता था। धनी व्यक्तिको सम्पूर्ण कर एक मुश्त देना पड़ता था। मध्यम श्रेणीके लोगोंसे दो बारमें और उनसे हीन व्यक्तियोंसे चार बारमें भी लिया जाता था। मुसलमान धर्मको मानने या मृत्यु होने पर इस करसे छुटकारा मिलता था। इस समयसे जिजिया बदस्तूर अदा होने लगा था।

बादशाह फर्रुखशियारके समयमें भूतपूर्व औरङ्गजेबके पारिषद नोचहृदय इनायत-उल्ला राजस्व-सचिव थे, इसलिए यह कर काफी उत्पीड़न और अत्याचारके साथ वसूल होने लगा। पीछे रफी-उद्-दर्जातके समयमें सैयदोंने इस करको बन्द कर दिया। रतनचन्द नामक एक हिन्दूके राजस्व-सचिव होने पर हिन्दुओंको बहुतसे अधिकार पुनः प्राप्त हुए थे। रतनचन्दकी मृत्युके बाद फिर एकबार यह कर लगाया गया था। बादमें महम्मदशाहने महाराज जयसिंह और गिरिधर बहादुरके अनुरोधसे जिजिया कर उठा दिया। महम्मदके बाद फिर किसी बादशाहने जिजिया कर लगानेका साहस नहीं किया।

और भी मालूम हुआ है कि, बहलोल और सिकन्दर लोदीके समयमें यह कर बहुत ही कठोरतापूर्वक वसूल किया जाता था और इसीलिए मुगललोग पठानोंके हाथसे आसानीसे राज्य छीननेमें समर्थ हुए थे। पहले पहलके मुगलसम्राट्गण यथासाध्य अपक्षपात दिखा कर जनसाधारणका अनुराग आकर्षण करनेका प्रयत्न करते थे, और वे इस विषयमें कुछ कुछ कृतकार्य भी हुए थे। किन्तु किसी किसीने उस नीतिके गूढ़ मर्मको न समझ कर उसके विरुद्ध आचरण किया है। जब तक वे बादशाह तेजस्वी और महाबल थे, तब तक उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सका था—यह ठीक है, परन्तु उनकी शक्ति क्षीण होते ही, जिजिया कर ही इस देशसे मुसलमान राज्य विलोपका कारण हो गया है।

३ सागर जिलामें कृषिकार्य छोन नागरिकोंके घर पर लगनेवाला एक कर।

जिजिबाई—जीजीबाई देखो।

जिजिबेगम—जीजीबेगम देखो।

जिजीविषा (सं० स्त्री०) जीवितुमिच्छा जीव-सन् ततः भावे प्र। जीवनेच्छा, जीनेकी इच्छा।

जिजीविषु (सं० त्रि०) जीवितुमिच्छुः जीव-सन् तत उ। जीवनेच्छु, जो जीनेकी इच्छा करता हो।

जिजूरि—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पूना जिलेके पुरन्दरपुर उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० १८° १६' उ० और देशा० ७४° १२' पू०में अवस्थित है। यह हिन्दुओंका एक तीर्थस्थान है। प्रत्येक तीर्थयात्रीको ⌐) आने कर स्वरूप देने पड़ते हैं।

जिझौतिया—१ कनौजिया ब्राह्मणोंकी एक शाखा। किसीके मतसे, यह शब्द यजुर्होता शब्दका अपभ्रंश है। ये बुन्देलखण्डके नाना स्थानोंमें वास करते हैं। काशीमें भी कुछ दिखलाई देते हैं। जजहोति देखो।

किसीके मतसे, बनारसके जिझौतिया ब्राह्मण अपनी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार कहते हैं—बुन्देलखण्डमें जझन नामके बघेलवंशीय एक राजा थे। उन्होंने बहुत जगहसे ब्राह्मणोंको बुला बुला कर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने राज्यमें रक्खा और खर्चके लिए उनको बहुत धन-सम्पत्ति दान दी। कालान्तरमें वे ही ब्राह्मण एक पृथक् श्रेणीके हो गये और आश्रयदाताके नामानुसार जिझौतिया नामसे अपना परिचय देने लगे। यह उपाख्यान समीचीन नहीं मालूम होता।

चन्देरीमें एक प्रकारके वणिक् रहते हैं, जो अपनेको जिझौतिया वणिक् कहते हैं। इनका यह नाम यजुर्होता शब्दका अपभ्रंश नहीं हो सकता। इसीलिए अनुमान किया जा सकता है कि, जब जझौती या जिझौती नामका एक प्रदेश था और कनौजके नामानुसार कनौजिया मिथिलाके नामानुसार मैथिलो, गौड़के नामानुसार गौड़ीय इत्यादि नाम पड़े थे, उस समय इस जझौती प्रदेशके नामानुसार वहांके ब्राह्मण और वणिकोंको जिझौतिया उपाधि हुई होगी। और भी देखनेमें आता है कि, ये जिझौतिया ब्राह्मण गङ्गा और यमुनाके दक्षिणप्रदेशमें, पश्चिमको वेत्रवती नदीसे पूर्वमें, मिर्जापुरके पास विन्ध्यवासिनी देवीके मन्दिर तक, नाना स्थानोंमें रहते थे। ये यमुनाके उत्तरमें या वेत्रवती नदीके पश्चिममें नहीं रहते। यू.एन.च्युयाङ्ग आदिके विवरणोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि, यह प्रदेश अर्थात् वर्तमानका सारा बुन्देलखण्ड पहले जिझौती नामसे प्रसिद्ध था। यदि जिझौतिया उपाधि प्रादेशिक विभाग न हो कर आचारानुष्ठानगत कोई विभाग या श्रेणी होती, तो जिझौतिया लोग जिझौती प्रदेशके सिवा अन्यत्र भी पाये जाते। परन्तु ये लोग जब जिझौतीमें ही आबद्ध हैं, तब उक्त अनुमान और भी दृढ़तर होता है।

जिझौतियाओंके आचार-व्यवहार आदि कनौजिया ब्राह्मणोंके समान हैं। नीचे इन लोगोंके कुछ प्रधान प्रधान गाँव, गोत्र और उपाधियाँ लिखी जाती हैं।

गाँव	गोत्र	उपाधि।
रोरा	उपमन्यु	पाठक।
बिनबेर	उपमन्यु	वाजपेयी।
शायपुर	काश्यप	पतिरोय।
बहुव	काश्यप	पस्तोह।
कुपनौवल	गौतम	चौबे।
मरई	गौतम	गङ्गेल।
हमीरपुर	शाण्डिल्य	मिश्र।
कोल्के	शाण्डिल्य	अजैरोय।
कोरिया	गौतम	मिश्र।
ऐजोक	भरद्वाज	तिवारी।
उदासेन	भरद्वाज	दुबे।
पाडुली	वात्स्य	तिवारी।
पिपरी	वशिष्ठ	नायक।

२ बुन्देलखण्डवासी वणिकोंकी एक शाखाका नाम।

जिज्ञापयिषु (सं० त्रि०) ज्ञापयितुमिच्छुः ज्ञा-णिच् सन् तत उ। जनानेमें इच्छुक, जनानेवाला।

जिज्ञासन (सं० क्ली०) ज्ञा-सन् ततो ल्युट्। कथन, जाननेके लिये इच्छुक हो कर पूछना, पूछ ताँछ।

जिज्ञासमान (सं० त्रि०) जिज्ञास-शानच्। जिज्ञासु, जो पूछ ताँछ करता हो।

जिज्ञासा (सं० स्त्री०) ज्ञातुमिच्छा, ज्ञा-सन्-तत स्त्र। १ ज्ञान प्राप्त करनेकी कामना, जाननेकी इच्छा। २ प्रश्न, तहकीकात।

जिज्ञासित (सं० त्रि०) जिज्ञास-क्त। जिसे जिज्ञासा की गई हो, जिसको पूछा गया हो।

जिज्ञासु (सं० त्रि०) ज्ञातुमिच्छु ज्ञा-सन्-उ। ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इच्छुक, जाननेकी इच्छा रखनेवाला, खोजो।

जिज्ञास्थि (सं० क्लो०) अस्थ्नः जिज्ञासा राजदन्तादित्वात् परनिपातः सालोपश्च। अस्थिजिज्ञासा।

जिज्ञास्य (सं० त्रि०) जिज्ञास्यते, ज्ञा सन्-कर्मणि-यत्। जिज्ञासनीय, जिसको जिज्ञासा की जाय, जिसे जानना हो।

जिज्ञास्यमान (सं० त्रि०) जिज्ञास-शानच्। जो विषय पूछा जा रहा हो।

जिज्ञु (सं० त्रि०) जिज्ञासु, जाननेकी इच्छा रखनेवाला।

जिञ्जिराम—आसामकी एक नदी। यह ग्वालपाड़ा जिलेके उरपद बीलसे निकल १२० मील बहती हुई मानिकरचरके दक्षिण ब्रह्मपुत्रमें जा गिरी है। ग्वालपाड़ाके दक्षिण अञ्चल तथा गारो पर्वतमें इसकी राह व्यापार होता है।

जिञ्जोरा—बम्बई प्रदेशका एक छोटा राज्य। जञ्जीरा देखो।

जिठानी (हिं० स्त्री०) पतिके बड़े भाईकी स्त्री। जेठानी देखो।

जित् (सं० त्रि०) जि-क्विप्। जेता, जीतनेवाला।

जित (सं० त्रि०) जि कर्मणि-क्त। पराजित, जीता हुआ। (क्लो०) भावे क्त। २ जय, जीत।

जितज—हिन्दीके एक कवि। रागसागरोद्भवमें इनके पद पाये जाते हैं।

जितकर्ण—चौहान-वंशीय पृथ्वीराजके वंशके एक राजा। जयसिंहदेव द्वारा प्रतिष्ठित गुजरातके आपसी अम्मनुग्राम (वर्तमान निशानी ऊमरवान)-के शिलालेखमें इनका नामोल्लेख मिलता है।

जितकाशि (सं० पु०) जितेन जयोद्यमेन काशते प्रकाशते, काश-इन्, वा जितः अभ्यास-पटुतया दृढ़कृतः काशिः मुष्टिर्येन। दृढ़मुष्टि योद्धृभेद, वह जोद्धा जिसमें मुक्कोंसे लड़नेकी सामर्थ्य हो।

जितकाशी (सं० त्रि०) जितेन जयेन काशते काश-णिनि। जययुक्त। 'अनिरुद्धं रणे बाणो जितकाशी महाबले:।" (हरि० १७५।१४१)

जितक्रोध (सं० त्रि०) जितः क्रोधो येन, बहुव्री०। १ क्रोधशून्य, जिसे गुस्सा न हो। (पु०) २ विष्णु।

"मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः।" (विष्णुसह०)

जितना (हिं० वि०) जिस मात्राका, जिस परिमाणका।

जितनेमि (सं० पु०) जिता नेमिर्येन, बहुव्री०। १ अश्वत्थ निर्मित दण्ड। २ विष्णु। (त्रि०) ३ क्रोधशून्य, जिसे गुस्सा न हो।

जितपाल—तोमर वंशके स्थापयिता मालवके एक राजा। विक्रमादित्यके वंशधर परमार (पुंवार) वंशीय शेष राजा जयचन्द्रकी मृत्युके बाद ये मालवके सिंहासन पर बैठे थे। इनके वंशजोंने १४२ वर्ष राज्य किया था।

जितल—मुसलमान राजाओंके समयका प्रचलित मुद्रा। इसका मूल्य १०० रत्ती था।

जितलोक (सं० त्रि०) जितः आयत्तीकृतः कर्मादि द्वारा लोकः स्वर्गादिर्येन। १ जिसने पुण्य कर्मसे स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो। (त्रि०) २ अभिभूत लोक।

जितवत् (सं० त्रि०) जि-क्त मतुप् मस्य वः। कृतजय, जीता हुआ।

जितवती (सं० स्त्री०) जितवत्-स्त्रियां ङीप्। राजा उशीनरको लड़कीका नाम। यह नरदेवात्मजाकी प्रियसखी थीं। (भारत १।११ अ०)

जितवाना (हिं० क्रि०) जीतनेमें समर्थ करना, जीतने देना।

जितव्रत (सं० त्रि०) जितं आयत्तीकृतं व्रतं येन। १ आयत्तीकृत व्रत, जिसने व्रतको वशीभूत किया हो। (पु०) २ पृथु वंशके हविर्धान राजाके पुत्र। (भागवत ४।२४।८)

जितशत्रु (सं० पु०) जितः शत्रुर्येन, बहुव्री०। विजयी, वह जिसने शत्रुको पराजय किया हो।

जिताक्षर (सं० त्रि०) जितानि अक्षराणि शीघ्रं तद्वाचन-पाठनादिर्येन, बहुव्री०। उत्तम पाठक, जो अक्षर देखते ही पढ़ सकता हो।

जितात्मा (सं० त्रि०) जितः वशीकृत आत्मा इन्द्रियं मनो वा येन । १ जितेन्द्रिय । (पु०) २ श्राद्धभागार्ह देवभेद, एक देवता जिसे श्राद्धमें भाग दिया जाता है ।

जिताना (हिं० क्रि०) जीतनेमें उद्यत करना ।

जितामित्र (सं० त्रि०) जिता अमित्रो रागद्वेषादयो वाह्यावरणादयश्च येन, बहुव्रो० । १ शत्रु पराजयकर्त्ता, दुश्मनको जीतनेवाला । २ कामादि रिपुजेता, कामादि शत्रुओंको जीतनेवाला । (पु०) ३ विष्णु । (भारत १३।१४९।६९)

जितामित्रमल्ल—नेपालके ठाकुरोवंशीय एक राजा । ये जगत्प्रकाशमल्लके पुत्र थे । इन्होंने १६८२ ई०में हरिशङ्करदेवका एक मन्दिर और १६८३ ई०में एक धर्मशाला बनवायी थी । इसके अतिरिक्त और भी इन्होंने बहुतसे मन्दिर आदि बनवाये थे ।

जितारि (सं० पु०) जिता अरयो आभ्यन्तरा रागादयो वाह्याश्च रिपवो येन, बहुव्रो० । १ बुद्धदेवका नाम । २ वृत्ताहत्पिता । ३ अविचत राजाके पुत्रका नाम । (त्रि०) ४ शत्रुजित्, दुश्मनको जीतनेवाला । ५ कामादि रिपुजेता, कामादि शत्रुओंको जीतनेवाला ।

जिताष्टमी (सं० स्त्री०) जिता पुत्रसौभाग्यदानेन सर्वोत्कर्षेण स्थिता या अष्टमी, कर्मधा० । गौणाश्विन कृष्णाष्टमी, इसका दूसरा नाम जीमूताष्टमी है । इस व्रतमें स्त्रियां पुत्र-सौभाग्यकी कामना कर आंगनमें पुष्करिणी बना कर प्रदोषके समय शालिवाहनराजपुत्र जीमूतवाहनकी पूजा करती हैं । अष्टमी जिस दिन प्रदोषव्यापिनी होती है, उस दिन ही यह व्रत किया जाता है । यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी रहे, तो दूसरे दिन करना विधेय है । यदि कोई दिन प्रदोष न हो, तो जिस दिन उदय हो अर्थात् जिस दिनकी तिथिमें सूर्य उदित हो, उस दिन करना चाहिये । जो स्त्री इस जिताष्टमी तिथिमें अन्न खाती है, वह निश्चयसे मृतवत्सा होती है और उसे वैधव्य भोगना पड़ता है । (भविष्योत्तर) और जो इस अष्टमीके दिन शामको जीमूतवाहनकी पूजा करती हैं, उन्हें हर तरहका सौभाग्य लाभ होता है । कभी भी मृतवत्सा दोष नहीं होता और न वे वैधव्यदुःख ही भोगती हैं ।

जिताहव (सं० पु०) जितः शत्रु राहवे येन, बहुव्रो० । विजयी, वह जिसने लड़ाई जीती हो ।

जिताहार (सं० पु०) जितः आहारः येन, बहुव्रो० । आहारजेता, वह जिसने आहार जीत लिया हो, समाधिसे जिसे भूख न लगती हो ।

जिति (सं० स्त्री०) जि-क्तिन् । १ जय जीत । २ लाभ ।

जितुम (सं० पु०) मिथुनराशि ।

जितेन्द्रिय (सं० त्रि०) जितानि वशीकृतानीन्द्रियाणि श्रोत्रादिनि येन, बहुव्रो० । १ इन्द्रियजयकारी, जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये विषय जिनको विमोहित न कर सकें, वे ही जितेन्द्रिय हैं । (मनु १० अ०)

पातञ्जलमें इन्द्रियजयका विषय इस प्रकार लिखा है—आत्मामें विशुद्धता होने पर सत्त्वगुण प्रकाशित होता है, उस समय आत्मा विशुद्ध है अर्थात् सत्त्वगुणाक्रान्त होनेसे उसमें फिर रजः और तमोगुण नहीं आ सकते । कारणके सिवाय कार्य असम्भव है, इस न्यायसे चित्तशुद्धिके कारण रजः और तमः सत्त्वगुणाक्रान्त होने पर तमः और रजः चित्तचाञ्चल्य आदि अपने धर्मोंको प्रकट नहीं कर सकते, वास्तवमें सत्त्वगुणको ही सहायता करते हैं । उस समय सर्वदा मनमें प्रीतिका अनुभव होता है । कभी भी किसी तरहका खेद नहीं होता । नियत विषयमें चित्तको एकाग्रता होती है अर्थात् अन्तःकरण (बुद्धि, अहङ्कार और मन) सर्वदा विषयोंमें अनुरक्त रहता है । कभी भी विषयान्तरमें चित्तका अनुराग नहीं होता । उस समय इन्द्रियें पराजित हो जाती हैं ; इस जितेन्द्रिय अवस्थाके होने पर आत्मदर्शनकी शक्ति आ जाती है । इस प्रकारकी अवस्था ही यथार्थमें जितेन्द्रिय पदवाच्य है । (पात० सू० ।४१) २ शान्त, समवृत्तिवाला । (पु०) ३ कामवृद्धिवृक्ष । (वै०)

जितेन्द्रियता (सं० स्त्री०) जितेन्द्रियस्य भावः जितेन्द्रिय-तल्-टाप् । इन्द्रियजयका कार्य ।

जितेन्द्रियाह्व (सं० पु०) जितेन्द्रियं आह्वयते स्पर्द्धते आ-ह्वे-क । कामवृद्धिवृक्ष, एक बड़ा झाड़ । कर्णाटक देशमें इसे 'कामज' कहते हैं ।

जित्तम (सं॰ पु॰) जित्-तमप्। १ जितुम, मिथुन राशि।

जित्य (सं॰ पु॰) हलहल, बड़ा हल।

जित्या (सं॰ स्त्री॰) जि-क्यप्-टाप्। १ हलहल, बड़ा हल। २ हिंगुल, हींग।

जित्वन् (सं॰ त्रि॰) जि क्वनिप्। जयशील, जीतनेवाला, फतेउमंद।

जित्वर (सं॰ त्रि॰) जयति जि-क्वरप्। जेता, जीतनेवाला।

जित्वरी (सं॰ स्त्री॰) जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते जि क्वरप् ङीप्। काशी।

ज़िद (सं॰ स्त्री॰) १ विरुद्ध बात, उलटो बात। २ दुराग्रह, हठ, अड़।

जिद्दा—लोहित सागरके उपकूलस्थ अरब देशका एक नगर। यह अक्षा॰ २१° २७´ उ॰ और देशा॰ ३९° १०´ पू॰में अवस्थित है। मुसलमान लोग अपने प्रधान तीर्थ मक्का जाते समय पहले यहीं उतरते हैं, इसोलिए इसको प्रसिद्धि है। यहांसे मक्का ४६ मील दूर है। समुद्रके किनारे रेतीली जमीन पर यह नगर है। इसके चारों ओर दुर्ग और उत्तर भागमें कारागारादि हैं। नगरके तीनों तरफ तोरणद्वार हैं। पहले द्वारका नाम मदोना तोरण है जो उत्तरकी ओर है। पूर्वको ओर मक्कातोरण है और दक्षिणकी तरफ यमन तोरण। मक्कातोरणके सामने बाजार है। मदोना तोरणके पास हो जिद्दाका पवित्रतीर्थ ईभकी कब्र है।

यह कब्र २०० हाथ लम्बी और १५ फुट चौड़ी है। लोग कहते हैं कि इसके शरीरका आकार इतना ही बड़ा था! एदिंसी ईभका उल्लेख कर गये हैं, किन्तु काले पत्थरके सिवा और कोई चीज उतनी पुरानी नहीं जंचती।

समुद्रके किनारे कुछ अट्टालिकाओंके रहनेसे नगरकी शोभा बढ़ गई है। परन्तु सड़कें टेढ़ी मेढ़ी और चौड़ी हैं। यहां दो बड़ी बड़ी मसजिदें हैं। बाजारमें सब्जियोंकी कमी नहीं है। यहां पानीका बन्दोबस्त उतना अच्छा नहीं है जितना कि चाहिए।

कहा जाता है कि ब्रोटोमेमोंके समयमें फारसके वणिकोंने इस नगरको प्रतिष्ठा की थी। ईसाकी १५वीं शताब्दीसे इसकी उन्नति शुरू हुई है। १८१५ ई॰ तक सुएजके जहाज जिद्दा आते थे और फिर भारतीय जहाजों पर माल लाद कर अन्यत्र भेजा जाता था। उन्नीसवीं शताब्दीमें ही यहां यात्रियोंकी संख्या बढ़ी यहां प्रति वर्ष तीर्थ दर्शनके लिए औसत ७० हजार यात्री आया करते हैं। वाणिज्यके लिए जिद्दाके बन्दरमें बहुतसे जहाज आते हैं और लाभ उठाते हैं। गत महासमरके समय जिद्दाके अधिकारके विषयमें गड़बड़ी हुई थी; किन्तु फिलहाल वह तुर्कियोंके ही अधिकारमें है।

ज़िद्दी (फा॰ वि॰) १ हठी, जिद करनेवाला। २ दुराग्रही, जो दूसरेकी बात न मानता हो।

जिधर (हिं॰ क्रि॰ वि॰) १ जहां, जिस ओर। समन्वयसे इसके साथ 'उधर' प्रयुक्त होता है। जैसे—'जिधर देखो उधर' ही तुम्हारी बदनामी हो रही है।'

जिन (सं॰ पु॰) जि-नक्। १ जिनेन्द्र। ये अर्हत्, तीर्थङ्कर, सर्वज्ञ, जिनेश्वर, वोतराग, आप्त आदि नामसे प्रसिद्ध हैं। तीर्थंकर देखो। २ बुद्ध। ३ विष्णु। ४ सूर्य। (त्रि॰) ५ जित्वर, जीतनेवाला।

जिन (अ॰ पु॰) मुसलमान भूत जिन्द देखो।

ज़िन (हिं॰ वि॰) 'जिस' का बहुवचन।

जिनकीर्त्ति—सोमसुन्दरके एक शिष्य। इन्होंने चम्पकश्रेष्ठीकथानक, १४८७ सम्वत्में धन्यशालिचरित्र, दानकल्पद्रुम तथा श्रीगोपालकथा आदि कई एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थोंकी रचना की थी। इसके अतिरिक्त १४८७ सम्वत्में ये अपने ही द्वारा रचित नमस्कारस्तवको टीका लिख गये हैं।

जिनकुशल—एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकार। इन्होंने जिनवल्लभ, जिनदत्त और जिनचन्द्रके वंशमें तथा खरतरगच्छमें (सं॰ १३३७) जन्म लिया था। १३८९ सम्वत्में इनका देहान्त हुआ है। इन्होंने तरुणप्रभको आचार्य पद दिया था। चैत्यवन्दनकुलवृत्ति नामका एक ग्रन्थ मिलता है, जो इनका बनाया हुआ है।

जिनचन्द्र—१ एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने विक्रम सम्वत् १५०७में धर्मसंग्रहश्रावकाचार और सिद्धान्तसार (लघु) ये दो ग्रन्थ रचे थे।

२ उक्त सम्प्रदायके अन्य एक ग्रन्थकर्त्ता। विक्रम सम्वत् १४१में ये विद्यमान थे।

३ श्वेताम्बर, जैन खरतरगच्छ सम्प्रदायभुक्त जिनेश्वर के शिष्य, कोई इन्हें बुद्धिसागरका शिष्य बताते हैं। इन्होंने सम्वेगरङ्गशाला नामके एक ग्रन्थकी रचना की है।

४ खरतरगच्छ, जिनदत्तके शिष्य, इनका जन्म-सम्वत् ११८७ और मृत्यु सम्वत् १२२३ है। इन्होंने सं० १२०३ में दीक्षा और सं० १२११में आचार्यपद पाया था।

५ नेमिचन्द्रके शिष्य, आम्रदेवके गुरु।

६ खरतरगच्छ, जिनप्रबोधके शिष्य। जन्म सं० १३२६ मृत्यु सं० १३६७, दीक्षा सं० १३३२ और पदमहोत्सव सं० १३४१ है। इन्होंने चारराजाओंको जैन धर्मकी दीक्षा दी थी। इनका विरुद कलिकाल-केवलिन् है। इन्होंने तरुणप्रभको भी दीक्षित किया था।

जिनचन्द्रगणि—उकेशगच्छभुक्त कक्कसूरिके शिष्य और नवपदप्रकरण नामक श्वेताम्बर-जैन-ग्रन्थके प्रणेता। ये पीछे देवगुप्त सूरिके नामसे परिचित हुए हैं, इस नामसे १०१३ सम्वत्में इन्होंने अपने नवपदकी श्रावकानन्द नामकी एक टीका रची है। बादमें इन्होंने अपना नाम कुलचन्द्र भी रक्खा था।

जिनचन्द्र सूरि (५म)—खरतरगच्छसम्प्रदायके एक प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैनाचार्य। इन्होंने शास्त्रविचारमें सबको परास्त कर दिया था। इनकी ख्याति सुन कर एकदिन बादशाह अकबरने इनसे भेंट की और इनके सद्गुणोंसे मोहित हो कर इन्हें ७ 'सत्तमश्रीयुगप्रधान' यह उपाधि दी। इनकी प्रार्थनाके अनुसार अकबरने आषाढ़ मासमें ८ दिन तक प्राणिहत्या और काम्बे उपसागरमें (स्तम्भतीर्थ-समुद्रमें) मछली पकड़ना बन्द करवा दिया। अकबरके आदेशसे ये १६५२ सम्वत्में माघकी शुक्ला द्वादशीको योगबलसे पञ्चनद पार हुए थे तथा इन्होंने ५ पीरोंको आविर्भूत किया था। जिनसिंह सूरि नामके इनके एक शिष्य थे। उन्हींके परामर्शसे अणहिल्लवाड़-पत्तनमें बाड़ीपुर पार्श्वनाथका मन्दिर बनाया गया था।

जिनत्-उन्-निसा बेगम-१ बादशाह आलमगीरकी कन्या। १७१० ई०में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने दिल्लीके अन्तर्गत शाहजहानाबादके दरीयागञ्ज नामक स्थानमें जिनत्-उल्-मसजिद निर्माण कराई थी। उसी जगह इनकी कब्र है।

२ बङ्गालके नवाब मुर्शिदकुलिखाँकी एकमात्र कन्या। मुर्शिदकुलिखाँ जब हैद्राबादके दीवान थे, तब शुजाखाँके साथ जिनत्-उन् निसाका ब्याह हुआ था। शुजा दाक्षिणात्यके अन्तर्गत बुरहानपुरके रहनेवाले थे। मुर्शिदकुलिने उन्हें उड़ीसाका सहकारी सूबेदार बना दिया, किन्तु थोड़े दिन बाद ससुर जमाईमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

शुजाने जब विलासिताके नशेमें तर हो कर दुर्नीतिका आश्रय लिया, तब जिनत उन-निसाने स्वामीके उद्धार के लिए काफी कोशिश की, किन्तु वे सफलता न पा सकीं। आखिर वे स्वामीसे सम्बन्ध तोड़ कर अपने पुत्र सरफराजके साथ मुर्शिदाबाद चली आईं।

मुर्शिदकुलिखाँकी मृत्युके बाद शुजाने दिल्लीसे सनद ले कर ससैन्य मुर्शिबादमें प्रवेश करनेकी कोशिश की। यह संवाद पा कर सरफराज उन्हें बाधा देनेके लिए तैयार हुए, किन्तु माताके कहनेसे रुक गये और पिताको अभ्यर्थना पूर्वक घर ले आये। शुजाने जिनत-उन निसासे क्षमा मांगी। स्वामी स्त्रीमें पुनः मेल हो गया।

शुजाखाँकी मृत्युके बाद सरफराज नवाब हुए, किन्तु शीघ्र हो अलीवर्दीखाँने मुर्शिदाबाद अधिकार कर लिया। अलीवर्दीखाँ बड़े शिष्ट थे, वे स्वयं जिनत्-उन्-निसाके पास गये और सिर झुका कर कहने लगे—"जब तक आप जीवित हैं तब तक मेरा सिर आपके सामने झुका हो रहेगा।" अलीवर्दीखाँके जमाई नवाजिस महम्मदने नवाब हो कर जिनत-उन-निसाको धर्म-माता कहा और अपने प्रासादमें रक्खा। घसीटी बेगम सर्वदा उन्हें सुखी रखनेकी कोशिशमें रहती थीं। ये और कितने दिनों तक जीवित रहीं थी, इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

जिनतूर—हैदराबाद राज्यके परभानी जिलेका उत्तर ताल्लुक। इसका क्षेत्रफल ८५२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८७७८७ है। इसमें २८७ गांव बसते हैं। जिनतूर सदरकी आबादी कोई ३६९८ है। मालगुजारी लगभग ३ लाख २० हजार रुपया देनी पड़ती है। उत्तरमें पूरन और दक्षिणमें दूदन नदी है।

जिनदत्त—एक सद्गृहस्थ और धर्मनिष्ठ महापुरुष। ये अत्यन्त धनाढ्य और जैनधर्मावलम्बी थे। प्रसिद्ध जैनाचार्य गुणभद्रस्वामीने अपने "जिनदत्तचरित्र" नामक काव्यग्रन्थमें इनका वृत्तान्त विस्तृतरूपसे लिखा है।

वृद्धावस्थामें ये कुबेरतुल्य सम्पत्ति छोड़ कर मुनि हो गये थे। हजारीबाग जिलेके अन्तर्गत श्रीसम्मेद-शिखर पर्वत पर इनकी भव-लीला समाप्त हुई। इनका जीवात्मा स्वर्गमें जा कर देव हुआ। ये महावीरस्वामीके पीछे हुए हैं।

जिनदत्त सूरि—१ खरतरगच्छके एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकार। जिनवल्लभ खरतरगच्छके परवर्ती गुरु। इनका मूल नाम सोमचन्द्र था। ये ११३२ सम्वत्‌में जन्मे थे और ११४१में इन्होंने दीक्षा ली थी। इनका दीक्षाका नाम प्रबोधचन्द्रगणि था। ११६८ सम्वत्‌में इन्हें चित्रकूटमें देवभद्राचार्यके निकट सूरिपद प्राप्त हुआ था। पीछे इन्होंने नाना स्थानोंमें अद्भुत कार्यों द्वारा जैनधर्मका प्रचार किया था। इसके सिवा इन्होंने सन्देहदेवली आदि कई एक पुस्तकें भी रची थी। १२११ सम्वत्‌में अजमेरमें इनकी मृत्यु हो गई।

२ श्रीजिनेन्द्रचरित प्रणेता अमरचन्द्रके गुरु। आपने विवेकविलास नामका एक जैनतत्त्व ग्रन्थ प्रणयन किया है। १२७७ सम्वत्‌में वस्तुपालकी तीर्थयात्राके समय जिनदत्तसूरि वायड़गच्छमें उपस्थित थे।

जिनदास गणित-महत्तर—अनुयोगचूर्णिके रचयिता और निशीथवृहत्कल्पभाष्यावश्यकादिचूर्णिकार प्रद्युम्नक्षमाश्रमणके शिष्य।

जिनदास पाण्डेय—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता। ये सं० १६४२में विद्यमान थे। इन्होंने हिन्दी-भाषामें जम्बूचरित्र छन्दोबद्ध, ज्ञानसूर्योदयनाटक छन्दोबद्ध, सुगुरुशतक आदि कई एक जैन-ग्रन्थोंकी रचना की है।

जिनदास ब्रह्मचारी—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता विक्रम सम्वत् १५१०में ये विद्यमान थे। इन्होंने बहुतसे ग्रन्थोंको हिन्दी टीकाएं लिखी हैं तथा धर्मपञ्चासिका, बृहत्सिद्धचक्रपूजा, अनन्तव्रतोद्यापन, चतुर्विंशति उद्यापन, अनन्तव्रतपूजा, जम्बूद्वीपपूजा, रात्रिभोजनकथा, होलीचरित्र आदि अनेक पद्यग्रन्थ लिखे हैं।

जिनदेवकवि—दिगम्बर जैनोंके एक संस्कृत ग्रन्थकर्त्ता इन्होंने कारुण्यकलिका और मदनपराजय नाटक ये दो ग्रन्थ रचे हैं। ये ठक्कुर माई देवके पुत्र थे।

जिनधर्म (सं० पु०) १ जैनधर्म जैनधर्म देखो। २ दिगम्बर जैन सम्प्रदायके एक कर्णाटक कवि। इन्होंने कर्णाटक भाषामें अनन्तनाथपुराण लिखा है।

जिनपति—जिनचन्द्रके शिष्य, जिनेश्वर खरतरगच्छके गुरु और जिनेश्वर-प्रणीत पञ्चलिङ्गप्रकरण नामक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थके टीकाकार। इनका जन्म सं० १२१०, दीक्षा सं० १२१८ और मृत्यु सं० १२७७ है। १२२३ सम्वत्‌में जयदेव सूरि द्वारा इन्हें सूरिपद मिला था। ये चर्चरी समाचारपत्र और वृहट्टीकाके प्रणेता हैं। इन्होंने षष्टिशतकप्रणेता नेमिचन्द्रको जैनधर्मकी दीक्षा दी थी।

जिनपुत्र—श्वेताम्बर जैन यति और योगाचार्य, भूमिशास्त्र-कारिका नामक ग्रन्थके प्रणेता।

जिनप्रबोध—खरतरगच्छीय जिनेश्वरके शिष्य। इनका जन्म सं० १२८५, दीक्षा सं० ११८६, पदस्थापन सं० १३३१ और मृत्यु सं० १३४१ है। इनका दीक्षानाम प्रबोधमूर्त्ति था। इन्होंने त्रिलोचनदासकृत कातन्त्रवृत्ति-विवरणपञ्जिकाकी पञ्जिका दुर्गपदप्रबोध नामक एक टीका रची है।

जिनप्रबोध सूरि—इनका पूर्वनाम पर्वत था। ये श्रीचन्द्रके पुत्र और जिनेश्वरके शिष्य थे। इनका जन्म सं० १२२८ और मृत्यु सं० १२८७ है।

जिनप्रभ—रुद्रपल्लीयगच्छके एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकार। १४०० सम्वत्‌में इनका जन्म हुआ था। ये ग्रन्थप्रमलनिकाटीकाप्रणेता मङ्गतिलकके विद्यागुरु थे। इन्होंने दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकको जैनधर्मका उपदेश दिया था।

जिनप्रभ सूरि—जिनसिंह सूरिके शिष्य और न्यायकन्दलीपञ्जिका प्रणेता राजशेखरके गुरु। १३६५ सम्वत्‌में इन्होंने साकेतपुरमें रहते समय भयहरस्तोत्र और नन्दिषेणप्रणीत अजितशान्तिस्तवकी टीका बनायी है। इन्होंने सूरिमन्त्रप्रदेशविवरण, तीर्थकल्प और पञ्चपरमेष्टिस्तोत्र आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

जिनभक्ति सूरि—इनका जन्म १७७० में, दीक्षा १७७९ में

सूरिपद १७८० में और मृत्यु १८०४ सम्वत्में हुई थी। इनका दीक्षाका नाम भक्तिलेम था। ये जिनसौख्य सूरिके शिष्य और खरतरगच्छीय जिनलाभ सूरिके गुरु थे।

जिनभद्र—१ खरतरगच्छीय जिनेश्वरके शिष्य, सुरसुन्दरी काव्यके रचयिता। इनका मूल नाम ध्यानेश्वर मुनि था।
२ जिनदत्त खरतरगच्छके शिष्य, इनका जन्म जिनचन्द्रके वंशमें हुआ था।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण—इन्होंने महाश्रतमें संक्षिप्त जिनकल्प तथा सङ्ग्रहणी नामका एक ग्रन्थ लिखा है। ६४५ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई।

जिनभद्र मुनीन्द्र—१ शालिभद्रके शिष्य। इन्होंने सं० १२०४ में अर्द्धमागधी भाषामें 'मालाधरगणकथा' नामक एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ लिखा है। इनकी मुनीन्द्र उपाधि थी।

जिनभद्रसूरि—जिनराज सूरिके शिष्य, इनका सूर पद था।

जिनमुनि—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकार। इन्होंने प्राकृत भाषामें त्रिभङ्गी नामका एक ग्रन्थ रचा है। संस्कृतको नागकुमारषट्पदी, जिनको कान्यकुब्ज भाषामें टीका है—वह भी इन्हींकी बनाई हुई है।

जिनयोनि (सं० पु०) मृग, हरिण।

जिनरङ्ग सूरि—सौभाग्यपञ्चमी नामक जैन ग्रन्थके रचयिता।

जिनरत्न सूरि—एक श्वेताम्बर जैन आचार्य। जिनराज सूरिके शिष्य और जैनचन्द्र सूरि खरतरगच्छके गुरु। १६९८ सम्वत्में इन्होंने सूरिपद पाया था। १७१२ सम्वत्में इनका देहान्त हुआ। इनका पहलेका नाम रूपचन्द्र था, इनकी माताने भी इनके साथ दीक्षाली थी।

जिनराज सूरि—१ श्वेताम्बर जैनोंके एक आचार्य। १६४७ सम्वत्में जन्म और १६९८ सम्वत्में पटना नगरमें इनकी मृत्यु हुई। दीक्षाके समय राजसमुद्र नाम हुआ। ये जिनसिंहके शिष्य और जिनरत्नके गुरु थे। १६७५ सम्वत्में इन्होंने शत्रुञ्जयपर्वतमें ५०१ ऋषभ और अन्यान्य जिनोंकी मूर्तियां स्थापित की थीं। इन्होंने जैनराजी नामकी नैषधकाव्यकी एक वृत्ति तथा और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं।

२ जिनवर्द्धनके गुरु, सप्तपदार्थी टीकाके प्रणेता। १४७५ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई।

जिनरूपताक्रिया—जैनोंकी त्रेपन क्रियाओंमेंसे चौबीसवीं क्रिया। यह क्रिया दीक्षाद्यक्रियाके बाद और मौनाध्ययनक्रियासे पहले होती है। इसमें नग्न हो कर मुनिका रूप धारण किया जाता है।

"त्यक्तचेलादि संगस्य जैनीं दीक्षामुपेयुषः।
धारणं जातरूपस्य यत्तस्याज्जिनरूपता॥"

अर्थात्—वस्त्र आदि सम्पूर्ण परिग्रहको त्याग कर मुनि-दीक्षा धारणपूर्वक यथाजात (जिस रूपमें जन्म लिया था, नग्न) रूपको धारण करना ही जिनरूपताक्रिया है।

जिनलाभ—एक श्वेताम्बरजैनाचार्य। १७८४ सम्वत्में जन्म, १७९६में दीक्षा, १८०४में पदस्थापन और १८३५ सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई थी। इनका पहलेका नाम लालचन्द्र था और दीक्षासमयका लक्ष्मीलाभ। इनका जन्म बीकानेरमें हुआ था।

१८३३ सम्वत्में इन्होंने श्रीमनिराख्यविन्दिरमें आत्मबोध नामक ग्रन्थ लिखा है। ये १८१८ सम्वत्में ७५ यतियोंके साथ गौड़ी पार्श्वके मन्दिरमें तथा १८२१ में ८५ साधुओंके साथ अर्व्वुद तीर्थमें उपस्थित हुए थे।

जिनवर्द्धन सूरि—जिनराज सूरिके शिष्य। इन्होंने भागवतालङ्कार टीका और सप्तपदावली टीकाकी रचना की है।

जिनवल्लभ—अभयदेव सूरिके शिष्य और जिनदत्त सूरि (खरतरगच्छ)-के गुरु। इनके बनाये हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं, जिनमेंसे पिण्डविशुद्धिप्रकरण, षड़शीति, कर्मग्रन्थ, कर्मादिविचारसार और वर्द्धनामस्तव—ये प्रधान हैं। ११६७ सम्वत्में देवभद्राचार्य द्वारा इन्हें सूरिपद प्राप्त हुआ था। परन्तु इसके ६ माह बादही इनका शरीरान्त हो गया। इनके शिष्य रामदेव अपने (११७३ सम्वत्में) बनाये हुए षड़शीतिकचूर्णिमें लिखा है कि, जिनवल्लभने चित्रकूटके वीरचैत्यके प्रस्तर पर अपने चित्रकाव्य अङ्कित किये हैं तथा उस चैत्यके दरवाजों पर दोनों ओर धर्मशिक्षा और सङ्घपट्टक लिखे हैं। इनमें जिनवल्लभप्रशस्ति अथवा अष्टसप्ततिका भी खुदी हुई है।

शिषोक्त ग्रन्थ ११६४ सम्वत्में लिखा गया है।

जिनशेखर सूरि—जिनवल्लभके शिष्य और पद्मचन्द्रके गुरु। इन्होंने १२०४ सम्वत्में रुद्रपल्लीमें रुद्रपल्ली-खरतरगच्छ शाखाकी स्थापना की थी।

जिनश्री—एक प्रधान बौद्ध याजक। भद्रकल्पावदान, व्रतावदानमाला आदि बौद्ध ग्रन्थोंमें ये महाराज अशोकके गुरु उपगुप्त-वर्णित धर्मतत्त्व पूछ रहे हैं और बोधगयावासी जयश्री उसका यथायोग्य उत्तर दे रहे हैं।

जिनसागर—एक श्वेताम्बर जैनाचार्य, जिनचन्द्रके शिष्य। १४८२ सम्वत्में इन्होंने धर्मशिक्षा प्रदान की थी।

जिनसिंह सूरि—१ पूर्णिमागच्छीय मुनिरत्न सूरिके शिष्य। २ खरतरगच्छीय जिनराज सूरिके शिष्य। इनका जन्म सम्वत् १६१५, दीक्षा सं० १६२३, सूरिपदस्थापन सं० १६७१ और मृत्यु सं० १६७४ है। कहा जाता है, अकबरके परामर्शानुसार जिनचन्द्रने लाहोरमें प्रजाओंके धर्मशिक्षणका भार जिनसिंह पर दिया था, इस उपलक्षमें विशेष धर्मानुष्ठान हुआ था।

जिनसुन्दर—सोमसुन्दरके शिष्य और रत्नशेखरके गुरु। इन्होंने दीपालिकाकल्प और एकादशाङ्गीसूत्रार्थधारक नामक २ श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ लिखे हैं।

जिनसेन आचार्य—१ हरिवंशपुराणकर्त्ता प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य। इन्होंने स्वरचित हरिवंशपुराणके अन्तमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

"तपोमयीं कीर्तिमशेषदिक्षु यः क्षिपन् बभौ कीर्तितकीर्तिषेणः।
तदग्रशिष्येण शिवाग्रसौख्यभागरिष्टनेमीश्वरभक्तिभाविना ॥३३॥
स्वशक्तिभाजा जिनसेनसूरिणा धियाऽल्पयोक्ता हरिवंशपद्धतिः।
यदत्र किंचिद् रचितं प्रमादतः परस्परव्याहतिदोषदूषितं ॥३४॥
तदाऽप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजंतु जंतुस्थितिशक्तिवेदिनः।
प्रशान्तवंशो हरिवंशपर्वतः क्व मे मतिः क्वाल्पतराल्पशक्तिका: ॥
शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचोत्तरेषूत्तरां
पातींद्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणां।
पूर्वां श्रीमदवंतिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपरां।
सौर्याणामधिमंडलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ ५२ ॥
कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुलश्रीवर्द्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा।
पश्चाद् दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने
शांतेः शांतिगृहे जिनेश्वरचितो वंशो हरीणामयं ॥५४॥
व्युत्सृष्टापरसंघसंततिबृहत्पुन्नाटसंघान्वये
प्राप्तः श्रीजिनसेनसूरिकविना लाभाय बोधेः पुनः।
दृष्टोऽयं हरिवंशपुण्यचरितः श्रीपार्श्वतः सर्वतो
व्याप्ताशामुखमण्डलः स्थिरतरः स्थेयात् पृथिव्यां चिरं ॥"

(६६वां सर्ग)

जैन हरिवंशके इन उद्धृत श्लोकोंसे मालूम होता है कि ७०५ शताब्दमें अर्थात् हरिवंशपुराणकी रचनाके समाप्तिकालमें उत्तर-भारतमें इंद्रायुध, दक्षिणमें कृष्णराजपुत्र श्रीवल्लभ, पूर्वमें अवन्तिपति वत्सराज और पश्चिम सौर्यदेशमें वीर वराह राज्य करते थे। उसी समय वर्द्धमानपुरमें नन्नराजद्वारा निर्मापित श्रीपार्श्वनाथके मन्दिरमें पुन्नाटगणीय श्रीजिनसेनाचार्यने इस ग्रन्थको रच कर पूर्ण किया था।

प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर और डा० फ्लीट इन दोनोंके मतसे हरिवंशकार-जिनसेनने ही वृद्धवयसमें जयधवलटीका और आदिपुराणके प्रथमांश रचा है। आश्चर्य है कि जैनशास्त्रवित् के, बी, पाठकने भी यही बात प्रकाशित की है *। परन्तु हमें दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उक्त महानुभावोंने जिस सिद्धान्तको निश्चित ठहराया है, वह बिलकुल ठीक नहीं है। यह तो निश्चित है कि हरिवंशकार जिनसेन पुन्नाटगणके आचार्य थे; उन्होंने स्वयं हरिवंशपुराणके अन्तमें अपनेको कीर्तिषेणका शिष्य बतलाया है। दूसरे आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदयके पढ़नेसे मालूम होता है कि इन दो ग्रन्थोंके रचयिता जिनसेन सेनसंघीय वीरसेन आचार्यके शिष्य थे। इस तरह दोनों एक ही व्यक्ति थे, यह बात बिलकुल असङ्गत ठहरती है। हरिवंशकार जिनसेनने अपने ग्रन्थमें कहा है—

"वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलंकावभासते।
याऽमिताऽभ्युदये तस्य जिनेंद्रगुणसंस्तुतिः।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिं संकीर्त्तयत्यसौ ॥ ४० ॥"

(१ला सर्ग)

* Vide Bhandarkar's Early History of the Dekkan, Page 652-70 and Fleet's Dynasties of the Kanaries District in Bombay Gazetteer, Vol. I. p. 11. (1896, page 407)

इससे प्रमाणित होता है कि वीरसेनके शिष्य स्वामी जिनसेन हरिवंशकार जिनसेनसे पूर्व प्रसिद्ध हो चुके थे। इस सम्बन्ध नाथूराम प्रेमीने विद्वद्रत्नमाला ग्रन्थमें सविस्तर आलोचना की है, इसलिये हम यहां अधिक नहीं लिखते। श्रीयुक्त पं० लालाराम जैनने भी अपने द्वारा प्रकाशित आदिपुराणको प्रस्तावनामें हरिवंशकार और पार्श्वाभ्युदयके रचयिता जिनसेनको भिन्न भिन्न व्यक्ति स्वीकार किया है। उनके मतमें पार्श्वाभ्युदयकर्त्ता जिनसेनने हो ७५८ शकाब्दमें सिद्धान्तशास्त्रको जयधवला नामक टोका रची है और उसके बाद उन्होंने आदिपुराण रचना प्रारम्भ किया था, परन्तु वे उसे अधूरा ही छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये; इसलिये उसे उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने पूर्ण किया। गुणभद्राचार्य देखो। अत: उनका यह भी मत है कि "उसके रचयिता जिनसेन शकसं० ७७० तक जीवित थे; क्योंकि कीर्त्तिषेणके शिष्य जिनसेनने शकसं० ७०५में हरिवंशको रच कर पूरा किया था और अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें आदिपुराणकार स्वामी जिनसेनका उल्लेख विशेष सम्मानके साथ किया है, तथा शकसं० ७५८में उन्होंने जयधवल नामक टोका रची है। इस तरह आदिपुराण-कार स्वामी जिनसेन, हरिवंशकार जिनसेनको अपेक्षा अवश्य ही वयोवृद्ध थे। इसलिये यदि कमसे कम ३० वर्ष भी वयोवृद्ध हों तो अनुमानसे आदिपुराणकार जिनसेनका जन्म ६७५ शकमें हुआ होगा। इस तरह उन्होंने ८५ वर्षको अवस्थामें आदिपुराणको रचना की होगी, ऐसा मालूम होता है।" परन्तु आदिपुराणको पढ़नेसे मालूम होता है कि इस तरहकी रचना इतनी बड़ी उम्रमें की होगी, यह बात सम्भव नहीं। तो भी पूर्वोक्त पुराण-विद्गण और जैन पण्डितद्वय वीरसेनके शिष्य जिनसेनके इतनी बड़ी उमरके बतलानेमें प्रधान कारण हैं। उन्होंने जो जयधवला टोकाका समाप्तिज्ञापक ७५८ शकाङ्क अपने प्रमाणमें दिया है उसे हम नीचे उद्धृत कर कुछ विचार करते हैं।

> "एकाम्नषष्टिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य।
> समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या॥
> गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम्।
> टीका श्रीवीरसेनीयाऽशेषापद्धतिपंचिका॥
> श्रीवीरप्रभुभाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागमम्
> याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरैरादेशितार्थस्थिति:।
> टीका श्रीजयचिन्हितोरुधवला सूत्रार्थसम्बोधिनी
> स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतमा श्रीपालसम्पादिता॥"

इन श्लोकोंसे जाना जाता है कि श्रीपाल नामक किसी जैनाचार्यने शकसं० ७५८में कषायप्राभृत ग्रन्थ-की व्याख्यास्वरूप यह जयधवला नामको टोका समाप्त की है। यह गाथासूत्र, सूत्र, चूर्णिसूत्र, वार्तिक और वीरसेनीया टोका इस तरह पञ्चाङ्गीय टोका है। इसमें वीर भगवान् द्वारा उपदिष्ट आगमका विषय, मुनिवर जिनसेनका उपदेश और अन्यान्य मुनियोंकी रचना प्रभृति हैं तथा सूत्रार्थ ज्ञानके लिये इस जयधवला नामक टोकाकी रचना की गई है अर्थात् इससे किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता कि शक सं० ७५८में जिनसेन विद्यमान थे; क्योंकि उद्धृत श्लोकोंमें जो संवत् बतलाया है, वह श्रीपाल मुनिके ग्रंथ सम्पादनका समय है। वास्तवमें जिनसेनके गुरु वीरसेनने किस समय वीरसेनीय टोका रची और जिनसेनने वह विस्तृत टोका कब समाप्त की, इसका कोई भी उपयुक्त साधन अब तक देखनेमें नहीं आया है। ऐसी दशामें हम उनके विषयमें उपरोक्त श्लोकोंके आधारसे इतना ही कह सकते हैं कि वे पुन्नाटगणीय जिनसेनसे पहिले इस संसारमें विद्यमान थे एवं शकसं० ७०५से पहले उन्होंने अपनी रचना की थी।

आदिपुराणकार स्वामी जिनसेनाचार्य विरचित पार्श्वाभ्युदयको अन्तिम प्रशस्तिसे और गुणभद्राचार्य विरचित आदिपुराण तथा उत्तरपुराणकी प्रस्तावनासे यह बात भली भाँति सिद्ध होती है कि राष्ट्रकूट वंशीय अमोघवर्षने आदिपुराणकार जिनसेनाचार्यका शिष्य होना स्वीकार किया था।* बहुतसे इतिहासज्ञ अमोघवर्षको शकसं० ७३६में सिंहासनारूढ़ हुआ बतलाते हैं। परन्तु हमारी समझसे ये अमोघवर्ष वे नहीं

* "इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं। मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं, भुवन-भवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः॥" ४।७७॥

हैं जिनका कि स्वामी जिनसेनने उल्लेख किया है, वल्कि उनके पितामह श्रीवल्लभ-जिनका दूसरा नाम अमोघवर्ष भी था। उनके शिष्य थे। क्योंकि राष्ट्रकूटवंशीय राजगण कई नामोंसे प्रसिद्ध हुए हैं; उनमें कर्कराजके बाद जितने राजा सिंहासनारूढ़ हुए हैं; प्रायः सबकी 'वर्ष' उपाधि थी।*

राष्ट्रकूटवंशके नृपतिगण कितना और किस रूपमें जैनधर्मका समादर करते थे; यह बात जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्यके इतिहासको देखनेसे अच्छी तरह मालूम हो सकता है। 'विद्वद्रत्नमाला'के प्रथम भागमें सबसे पहिले इसी विषयकी यथोचित आलोचना हुई है। अतः इस जगह उसका वर्णन करना हम निष्प्रयोजन समझते हैं।

अब हम अपने आलोच्य हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनाचार्यने विशेष रीतिसे जिस जिस प्रचलित इतिवृत्तका कथन किया है, उसीका परिचय देते हैं। पहिले हम हरिवंशकी रचनासमयज्ञापक श्लोकोंको उद्धृत करते समय लिख आये हैं कि शकसं० ७०५में, (७८३-७८४ ई०में) उत्तर भारतमें इन्द्रायुध दक्षिणमें कृष्णराजका पुत्र (राष्ट्रकूटवंशीय) श्रीवल्लभ, पूर्वमें अवन्तिपति वत्सराज और पश्चिममें सौर्यदेशके अधिपति वीर-वराह राज्य करते थे, अर्थात् ये चार राजा ही उस समय समग्र भारतवर्षमें राजाधिराजके नामसे प्रसिद्ध थे। अब देखना चाहिये कि जिनसेनाचार्यका यह कथन कहाँ तक सङ्गत है।

वास्तवमें उत्तर-भारतके इतिहास और प्रभावकचरित प्रभृति जैनग्रंथोंके देखनेसे मालूम होता है कि इन्द्रायुधने चक्रायुधको राज्यच्युत कर कन्नौजका सिंहासन अधिकार किया था। इधर राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराजके पुत्र २य गोविन्द श्रीवल्लभ मान्यखेट नगरमें राजधानी स्थापन कर दक्षिणका शासन करते थे। २य गोविन्दके दो ताम्रशासनोंसे ज्ञात हुआ है कि वत्सराज गौड़देशके जीतनेसे अपने पराक्रममें मत्त थे और गौड़राजके श्वेतच्छत्रको ग्रहण कर बैठे थे। २य गोविन्दके पिता राष्ट्रकूटपति ध्रुवने वत्सराजको क्रीड़ामात्रमें पराजित कर दिया और उनके अहंकारको चूर्ण कर श्वेतच्छत्रके साथ साथ दिगन्तव्यापी यश भी छीन लिया, जिससे उन्हें मारवाड़में जा अपने प्राण बचाने पड़े। कर्णराजके (शकसं० ७३४) ताम्रलेखमें लिखा है कि उक्त राष्ट्रकूटवंशीय गोविन्दने तथा गौड़ेन्द्र और वङ्गपति-विजेता गुर्जरेन्द्रने वत्सराजको पराजित कर अपने छोटे भाई इन्द्रराजको मालवमें प्रतिष्ठित किया।

उक्त समसामयिकलिपिके प्रमाणसे जान पड़ता है कि शकसं० ७३४के पहिले मालव-पति वत्सराजने समस्त प्राच्य भारतमें अपना अधिकार कर लिया था एवं जिनसेनोक्त शकसं० ७०५में वे अवन्तिसे ले कर वङ्ग पर्यन्त समस्त पूर्व-भारतके अधीश्वर थे। जिनसेनाचार्यने जिन वीरवराहका उल्लेख किया है, वे कन्नौजके भावी गुर्जर राजवंशके प्रतिष्ठाता सुप्रसिद्ध गुर्जरपति ही हैं। जिनसेनके समय पश्चिम भारतमें उनका अभ्युदय हुआ था, इसलिये जिनसेनके हरिवंशमें हम जो चार सम्राटोंका अनुसन्धान पाते हैं, वह सत्य है।

इसके सिवा उन्होंने हरिवंशके अन्तिम भागमें भविष्य राज्यवंशके प्रसङ्गसे नीचे लिखे अनुसार कितने ही राजाओंका भी परिचय दिया है।

"वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिक्ष्यते।
लोकेऽवंतिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः॥
षष्टिवर्षाणि तद्राज्यं ततो विजयभूभुजां।
शतं च पंच पंचाशत् वर्षाणि तदुदीरितं॥
चत्वारिंशत् पुरुढानां भूमंडलमखंडितं।
त्रिंशत्तु पुष्पमित्राणां षष्टिर्वस्वग्निमित्रयोः॥
शतं रासभराजानां नरवाहनमप्यतः।
चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिंशच्छतद्वयं॥
भद्रवाणस्य तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयं।
एकविंशश्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतं॥
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता।
ततोऽजितंजयो राजा स्यादिंद्रपुरसंस्थितः॥" ॥८७-९२॥

उद्धृत श्लोकोंके अनुसार वीरनिर्वाणके समय अवन्तिके सिंहासन पर पालक राजाका अभिषेक हुआ था। इस वंशने ६० वर्ष, विजय (नन्द) वंशने १५५ वर्ष, पुरुढ़-

* कलकत्तासे प्रकाशित 'हरिवंशपुराण'की प्रस्तावनामें हम वंश-तालिका प्रगट कर चुके हैं।

वंशने ४० वर्ष, पुष्पमित्रने ३० वर्ष, वसुमित्र, अग्निमित्रने ६० वर्ष, रासभ (गर्दभिल्ल)-वंशने १०० वर्ष, नरवाहनने ४० वर्ष, भट्टवाणने २४२ वर्ष, गुप्तवंशने २२१ वर्ष और कल्किराजने ४२ वर्ष तक राज्य किया था।

उसके बाद जिनसेनाचार्य फिर लिखते हैं—

"वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रां मासपंचकं।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत्॥"

इस श्लोकसे जाना जाता है कि शक-संवत्से ६०५ पहिले (५२७ ई०से पूर्व) महावीरस्वामीने मोक्ष लाभ किया था, तथा भिन्न भिन्न राजवंशकी कालगणनासे मालूम होता है कि वीरनिर्वाणके (६० × १५५ × ४०) = २५५ वर्ष बाद और (६०५ – २५५ =) – ३५० वर्ष शकके पहिले पुष्पमित्रका अभ्युदय हुआ था। इधर श्वेताम्बर सम्प्रदायके "तित्थुगुलिय पयन्न" और "तीर्थोद्धारप्रकीर्ण" ग्रन्थोंके* देखनेसे मालूम होता है कि जिस रात्रिको महावीर स्वामी मोक्ष पधारे थे, उसी रात्रिको पालक राजा अवन्तिके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे। पालकवंशने ६० वर्ष, नन्दवंशने १५५ वर्ष, मौर्यवंशने १०८ वर्ष, पुष्पमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष, नरसेन वा नरवाहनने ४० वर्ष, गर्दभिल्लवंशने १३ वर्ष और शकराजने ४ वर्ष राज्य किया था, अर्थात् महावीर स्वामीके निर्वाणकालसे शकराजके अभ्युदय पर्यन्त ४७० वर्ष होते हैं। इधर सरस्वतीगच्छकी प्राचीन पट्टावलीमें लिखा है कि विक्रमने उक्त शकराजको पराजित तो किया, परन्तु वे १८ वर्ष पर्यन्त राज्याभिषिक्त नहीं हुये। उस सरस्वती गच्छकी गाथामें स्पष्ट लिखा है कि "वीरात् ४८२ विक्रम जन्मान्तवर्ष २२ राज्यान्तवर्ष ४"†। अर्थात् विक्रमाभिषेकाब्दसे (विक्रमसंवत्से) ४८८ वर्ष पहिले (४८८ – ५७ = ४३१ या खृष्टाब्दसे ४३१ वर्ष पहिले) महावीर स्वामीको मोक्ष हुई थी।

जिनसेनने जो शकाब्दसे ६०५ वर्ष पहिले वीर मोक्ष लिखा है, उसके अनुसार दिगम्बर संप्रदायी आजतक भी वीर मोक्षाब्दकी गणना करते आते हैं। परन्तु भविष्य राजवंशप्रसंगमें जिनसेनने जो गणना बतलाई है वह दूसरे किसी भी जैनग्रंथ, वा भारतीय अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थके साथ नहीं मिलती। 'तित्थुगुलियपयन्न' और 'तीर्थोद्धारप्रकीर्ण'के मतके साथ आधुनिक ऐतिहासिक सिद्धान्तका अधिक मतभेद नहीं है। ऐसी अवस्थामें जिनसेन जो भविष्यराजवंशका कालनिर्णय लिख गये हैं, वह उनका समसामयिक प्रवादमात्र है। उसे ऐतिहासिक रूपसे ग्रहण नहीं कर सकते।

२ जैन महापुराण वा आदिपुराणकर्त्ता प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य और गुणभद्राचार्यके गुरु। जिनसेन स्वामी देखो।

जिनसेन स्वामी—जैन-आदिपुराण कर्त्ता प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य। ये भगवज्जिनसेनाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। 'जिनसेन आचार्य' शब्दमें हम सिद्ध कर चुके हैं कि आदिपुराण-कार जिनसेन हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनसे सम्पूर्ण पृथक् हैं। ये वीरसेन स्वामीके शिष्य और गुणभद्राचार्यके गुरु थे। गुणभद्र आचार्य देखो।

जैनाचार्य प्रायः अपने वंशका परिचय न दे कर गुरु-परम्परासे परिचय दिया करते हैं। अतः यह नहीं जाना जा सकता कि ये किस वंशमें आविर्भूत हुए थे वा इनके पिता आदिका नाम क्या था। अनुमानसे इतना कहा जा सकता है कि या तो ये भट्ट अकलङ्कदेवके समान राजाश्रित किसी उच्च ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए होंगे अथवा जैन-ब्राह्मण (उपाध्याय) आदि जातियोंमेंसे किसी एकमें जन्म लिया होगा, कारण जिस प्रान्तमें इनका वास रहा है, वहां इन्हीं जातियोंमें जैन धर्म पाया जाता है।

स्वामी जिनसेनके गृहस्थावस्थाके वंशका परिचय भले ही न मिले, किन्तु उनके मुनिवंशका परिचय उनके ग्रन्थों एवं दूसरे उल्लेखोंसे मिल जाता है। महावीरस्वामीके निर्वाणके उपरान्त जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति नहीं हुई थी और जब आर्हत, जैन, अनेकान्त, स्याद्वाद आदि नामोंसे जैनधर्मकी प्रसिद्धि थी, तब जैनधर्म सम्प्रभेदसे रहित था। पीछे वि० सं० १३६में जब श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई, तब मूल सम्प्रदाय (जो कि 'दिगम्बर' नामसे प्रसिद्ध है) मूलसंघके नामसे प्रसिद्ध

* इस विषयका मूल प्रमाण 'हिंदीविश्वकोष' द्वितीय भाग १४० पृष्ठमें लिखा है।

† Indian Antiquary, Vol. XX. p 347.

हुआ। अनन्तर मूलसङ्घमें भी अर्हद्बलि आचार्यके समयमें (जो कि महावीरस्वामीसे लगभग ७०० वर्ष बाद हुए हैं) चार भेद हुए—नन्दिसङ्घ, देवसङ्घ, सेनसङ्घ और सिंहसङ्घ। इनमेंसे सेनसङ्घ नामक मुनिवंशमें जिनसेनस्वामीने दीक्षा ली थी। जैन कवि हस्तिमल्लने अपने 'विक्रान्तकौरवीय' नाटकमें जो प्रशस्ति लिखी है उससे जाना जाता है कि 'गन्धहस्तिमहाभाष्य'के रचयिता स्वामी समन्तभद्राचार्यके वंश (गुरु-परम्परा) में ही जिनसेनस्वामी और गुणभद्राचार्य हुए हैं। प्रत्नतत्त्वविदोंने गवेषणापूर्वक यह सिद्ध किया है कि जिनसेन स्वामी शकसं॰ ७५८ तक इस धराधाममें विद्यमान थे।

जिनसेन स्वामी द्वारा रचित आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदय ये दो ग्रन्थ प्राप्त एवं प्रसिद्ध हैं; जयधवला टीका भी श्रवणबेलगोलाके प्राचीन ग्रन्थागारमें विद्यमान है, किन्तु वह मुद्रित नहीं हुई। कुछ दिन हुए सहारनपुरनिवासी स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादने इसकी एक प्रतिलिपि लिपिबद्ध कराई थी; जो उनके द्वारा प्रतिष्ठित जैन मन्दिरमें विद्यमान है। हर्षका विषय है कि शोलापुर-वासी गान्धी हीराचन्द रामचन्द इसे प्रकाशित करानेके लिए उद्योग कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ जैन-साहित्यमें अद्वितीय और बृहत्काय होगा। इसके सिवा इनके बनाये हुए वर्द्धमानपुराण और पार्श्वस्तुति नामक दो ग्रन्थोंका हरिवंशपुराणमें उल्लेख है, किन्तु आज तक उनका कुछ पता नहीं लगा।

आदिपुराण—इसका यथार्थ नाम महापुराण है; किन्तु ये इस महाग्रन्थको अपनी उम्रमें पूर्ण न कर सके। अनन्तर इनके शिष्य स्वामी गुणभद्रने इसे पूर्ण किया और प्रथम खण्डका आदिपुराण तथा द्वितीय खण्डका उत्तरपुराण नाम रख दिया। आदिपुराणमें मुख्यतः प्रथम तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेव और प्रथम चक्रवर्ती भरतका चरित्र है और उत्तरपुराणमें शेष तेईस तीर्थङ्करोंकी जीवनियाँ हैं। सम्पूर्ण महापुराणमें चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण और नौ बलभद्र इन ६३ शलाका पुरुषोंका चरित्र है। यह दिगम्बर जैनसम्प्रदायमें प्रथमानुयोगका सबसे बड़ा ग्रन्थ है। महापुराणकी श्लोकसंख्या २०००० है, जिसमें १२००० श्लोक आदिपुराणमें हैं और ८००० उत्तरपुराणमें। आदिपुराणमें कुल ४७ पर्व वा अध्याय हैं, जिनमेंसे ४२ पर्व पूरे और ४३वें पर्वके ३ श्लोक जिनसेनस्वामीके बनाए हुए हैं और शेष भाग गुणभद्रने पूर्ण किया है।

आदिपुराण जैन-साहित्यका एक परमोत्तम ग्रन्थ है। इसकी कविता सरलता, गम्भीरता, अर्थसौष्ठव, पदलालित्य आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। जिनसेन स्वामीकी कविताकी प्रशंसा करते हुए एक कविने कहा है—

"यदि सकलकवीन्द्रप्रोक्तसूक्तप्रचारश्रवणसरसचेतास्तत्त्वमेवं सखे स्याः।
कविवरजिनसेनाचार्यवक्त्रारविन्दप्रणिगदितपुराणाकर्णनाभ्यर्णकर्णः॥"

अर्थात् हे मित्र! यदि तुम कवियोंकी सूक्तियोंको सुन कर सरस-हृदय बनना चाहते हो, तो कविवर जिनसेनाचार्यके मुखकमलसे उदित हुए आदिपुराणके सुननेके लिए अपने कानोंको समीप लाओ।

पार्श्वाभ्युदय—यह ३६४ मन्दाक्रान्ता वृत्तोंका एक खण्डकाव्य है। संस्कृत साहित्यमें यह अपने ढंगका एक ही काव्य है। इसमें महाकवि कालिदासके सुप्रसिद्ध 'मेघदूत" काव्यमें जितने श्लोक हैं और उन श्लोकोंके जितने चरण हैं वे सब एक एक वा दो दो करके इसके प्रत्येक श्लोकमें प्रविष्ट कर दिये गये हैं, अर्थात् मेघदूतके प्रत्येक चरणकी समस्यापूर्ति करके यह कौतुकावह ग्रन्थ रचा गया है। इसमें पार्श्वनाथ स्वामीकी पूर्वजन्मसे ले कर मोक्ष प्राप्ति तक विस्तृत जीवनी वर्णित है। मेघदूत और पार्श्वचरित्रके कथानकमें आकाश-पातालका पार्थक्य है, तथापि मेघदूतके चरणोंको ले कर पार्श्वनाथका चरित्र लिखना कितना कठिन है, इसका अनुमान काव्यरचनाके मर्मज्ञ ही कर सकते हैं। ऐसी रचनाओंमें क्लिष्टता और नीरसताका होना स्वाभाविक है; किन्तु 'पार्श्वाभ्युदय' इन दोनों दोषोंसे साफ बच गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इनकी रचना कविकुलगुरु कालिदासकी कविताके जोड़की है। अध्यापक के॰ बी॰ पाठकका कहना है—"......The first place among Indian poets is alloted to Kalidas by consent of all. Jinasena, however claims to be considered a higher genius than the auther of cloud Messenger (Meghaduta)" अर्थात् 'यद्यपि सब साधा-

रणको सम्मतिसे भारतीय कवियोंमें कालिदासको पहला स्थान दिया गया है, तथापि जिनसेन मेघदूतके कर्त्ताको अपेक्षा अधिकतर योग्य समझे जानेके अधिकारी हैं।"

जिनसौख्य सूरि—एक प्रधान श्वेताम्बर जैनाचार्य। ये जिनचन्द्रके शिष्य और जिनभक्तिके गुरु थे। जन्म सं० १७३९में, दीक्षा १७५१में, सूरिपद १७६३में और १७८० सम्वत्में इनकी मृत्यु हुई। चोपड़ गोत्रके पारिखसामीदासने इनके पद-महोत्सवमें ११०००) रुपये व्यय किये थे।

जिनस्तपन—अरहन्त-मूर्तिके अभिषेकको विधिविशेष। जैन सागारधर्मामृतकारका मत है कि मध्याह्न क्रियाके लिए श्रावकको पहले जिनस्तपन वा अभिषेक करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। तदनन्तर रत्न, जल, कुश और अग्निके द्वारा तर्पण आदिको विधि करके, अभिषेक करनेकी भूमिका शुद्ध करें। फिर वहां स्तपनपीठ (अभिषेक करनेका सिंहासन) स्थापन करें। स्तपनपीठके चार कोनोंमें चार जलपूर्ण कलश एवं कुश स्थापन करें और घिसे हुए चन्दनसे उस पर 'श्री' 'ह्रीं' ये दो वर्ण लिख दें। अनन्तर श्रीजिनेन्द्रदेवकी मूर्ति स्थापन कर उनका स्तपन वा अभिषेक करना उचित है। (सागारधर्मामृत ६।२२)

मतान्तरमें चन्दनके बदले रञ्जित तण्डुलसे भी 'श्री' 'ह्रीं' लिखा जा सकता है।

जिनहर्ष—१ एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकार। ये पाटनके रहनेवाले थे। इन्होंने सं० १७२४में श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्ध नामका एक हिन्दी पद्यग्रन्थ रचा है। २ एक श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकर्ता। इन्होंने आत्मपंचाशिकाकी बालाबोध नामकी एक टीका लिखी है।

जिना (अ० पु०) व्यभिचार, छिनाला।

जिनाधार (सं० पु०) एक बोधिसत्व।

जिनिस (अ० स्त्री०) जिंस देखो।

जिनिसवार (अ० पु०) जिंसवार देखो।

जिनेन्द्र (सं० पु०) जिनानामिन्द्रः जिन इन्द्र वा। १ बुद्ध। २ तीर्थंकर।

जिनेन्द्रबुद्धि—काशिकावृत्तिविवरणपञ्जिका वा काशिकावृत्तिन्यास नामक ग्रन्थके रचयिता। ये काश्मीरके वराहमूल (वर्त्तमान बारमूल) नामक स्थानके रहनेवाले थे।

जिनेन्द्रभक्त—जैन-पुराण ग्रन्थोंमें इनकी अचल भक्तिकी खूब प्रशंसा की है। ये ताम्रलिप्त नगरमें रहते थे और बहुत धनाढ्य सेठ थे। आराधना-कथाकोष नामक जैन ग्रन्थमें लिखा है—

पाटलीपुत्र नगरमें यशोध्वज नामक राजा राज्य करते थे जो बड़े धर्मात्मा और उदारचेता थे। किन्तु उनका पुत्र सुवीर बड़ा दुराचारी और चोरोंका सरदार था। एकदिन सुवीरको मालूम हुआ कि, ताम्रलिप्त नगरमें एक जिनेन्द्रभक्त नामक सेठ हैं और उनके मकानके सातवें मंजल पर जिन-चैत्यालयमें एक रत्नमयी जिन-प्रतिमा हैं। सुवीर अपने लोभको न सम्हाल सका, उसने अपनी मण्डलीके लोगोंको बुला कर सब हाल कहा। उनमेंसे सूर्य नामक एक चोर बोल उठा—"मैं उस रत्न-मूर्तिको ला सकता हूं।" सुवीरने उसे ताम्रलिप्त जानेकी आज्ञा दे दी। सूर्यने ब्रह्मचारीका भेष धारण किया और ताम्रलिप्त जा कर ढोंग फैलाना शुरू कर दिया। सबके मुखसे इनकी प्रशंसा सुन कर जिनेन्द्रभक्त भी अपनी मित्रमण्डलीके साथ ब्रह्मचारीके दर्शनार्थ गये और छद्मवेशधारी सूर्यको मन्दिरकी वन्दनाके लिए अपने घर ले गये।

कुछ दिन बाद जिनेन्द्रभक्त विदेश जानेकी तैयारियां करने लगे। उन्होंने उक्त छद्मवेशी ब्रह्मचारी पर चैत्यालयके पूजापाठ और रखवालोका भार अर्पण किया। सूर्यने अपने उद्देश्यकी पूर्ति होते देख उक्त प्रस्तावको मंजूर कर लिया।

एक दिन वह मौका पा कर आधी रातको रत्नमूर्ति ले कर वहांसे निकल पड़ा। मार्गमें थानेदारने चमचमाती हुई चीज ले जाते देख उसका पीछा किया। सूर्य चोर बहुत भागा, भागते भागते थक गया, पर थानेदारने उसके पीछा न छोड़ा। अन्तमें वह उन्हीं सेठके पास पहुंच कर "बचाओ! बचाओ!!" कह चिल्लाने लगा। जिनेन्द्रभक्तको उसकी दशा देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे विचारने लगे, 'यदि मैं सत्य बात कहे देता हूं, तो धर्मकी बड़ी निन्दा होगी और मेरा सम्यग्दर्शन भी दूषित होगा।' उन्होंने थानेदारसे कहा—'भाई! ये चोर नहीं हैं, मैंने ही इनसे प्रतिमाजी मंगवाई

थीं।" इस पर थानेदारने उसे छोड़ दिया। इसके बाद इन्होंने उसे धर्मोपदेश दे कर विदा किया।

(आराधनाकथाकोष)

जिनेश्वर (सं॰ पु॰) जिनानां ईश्वरः, ६-तत्। बुद्ध।

जिनेश्वर—१ मुनिरत्न सूरि (पूर्णिमागच्छ)के सहकारी गुरु। मुनिरत्न सूरि द्वारा १२५२ सम्वत्‌में ये सुरप्रभकी गद्दीके लिए चुने गये थे।

२ जिनपतिके शिष्य और जिनप्रबोधके गुरु। जन्म १२४५में, दीक्षा १२५५में, सूरिपद १२७८में और १३३१ सम्वत्‌में इनकी मृत्यु हुई। दीक्षानाम वीरप्रभ था। ये लघु खरतर शाखाके प्रधान व्यक्ति और चन्द्रप्रभस्वामि-चरित्रके कर्त्ता थे। इनके शिष्य जिनसिंहसूरिने उक्त शाखाकी (१३३१ सम्वत्‌में) स्थापना की थी।

जिनेश्वरदास—दिगम्बर जैन सम्प्रदायके एक विद्वान् और कवि। एटा जिलाके अन्तर्गत उम्मरगढ़ नामक स्थानमें वि॰ सं॰ १८९५के पौष मासमें इनका जन्म हुआ था। इनकी जाति पद्मावतीपुरवाल थी और पिताका नाम लक्ष्मणदास था। ये बड़े धर्मात्मा, शुद्धाचरणी और परोप-कारी व्यक्ति थे। आपने सुजानगढ़, कुचामन आदि मार-वाड़के नगरोंमें जैन धर्मका प्रचार और हजारों भूले-भटके जैनोंका उद्धार किया था। कुचामनमें इनके नामका एक विद्यालय स्थापित है। इन्होंने 'जैनधर्म-प्रचारिणी सभा"की स्थापना की थी, जो अब भी अपना कार्य कर रही है। आप एक हिन्दी भाषाके कवि भी थे। इनके बनाये हुए हजारों धार्मिक भजन, पद्य और गीत अब भी मारवाड़में प्रचलित हैं। इन्होंने कई एक पद्य-ग्रन्थ भी बनाये हैं, जैसे—नन्दीश्वरद्वीप-पूजा, त्रैलोक्यमण्डल-पाठ, दशलक्षण-पूजा, रत्नत्रयपूजा, चतु-र्विंशतिपूजा, बारह भावना नाटक, चेतनचरित्रनाटक, जिनेश्वरविलास (इसमें हजारों आध्यात्मिक सवैया दोहा इत्यादि हैं), जिनेश्वरपदसंग्रह आदि। वि॰ सं॰ १९७४में अग्रहायण कृष्णा ११शीको कुचामनमें इनकी मृत्यु हुई।

जिनेश्वर सूरि—१ चान्द्रकुलज वर्द्धमानके शिष्य तथा जिनचन्द्र, अभयदेव और जिनभद्रके गुरु। बुद्धिसागर इनके मित्र थे। खरतर-साधु-सन्तति इन्हींसे उद्भूत हुई थी। १०८० सम्वत्‌में इन्होंने जाबालपुरमें रहते समय अष्टकवृत्तिकी रचना की थी। ये चैत्यवासियोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिए बुद्धिसागरके साथ गुर्जर देशको गये थे। उक्त सम्वत्‌में अणहिलपुरके दुर्लभराजको सभामें सरस्वती भाण्डागारसे जो दशवैकालिकसूत्र लाया गया था, उसमेंसे साध्वाचार सम्बन्धी कई एक श्लोकोंके पढ़ने पर चैत्यवासियोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ; जिसमें जय प्राप्त करके इन्होंने राजासे खरतर विरुद प्राप्त किया था। इन्होंने उक्त गुजरात-राजके राजत्वकालमें पञ्चलिङ्गिप्रकरण तथा १०९२ संवत्‌में (आशापल्लीमें) लीलावतीकथा, डिण्डियानक ग्राममें कथानककोष और वीरचरित नामके श्वेताम्बर जैनग्रन्थ रचे थे। ये ब्राह्मण सोमके पुत्र थे। इनका आदि नाम शिवेश्वर था।

२ अभयदेव सूरिके शिष्य और अजितसेन सूरि राजगच्छ वज्रशाख कोटिकगणके गुरु। ये माणिकचन्द्रसे सात पीढ़ी पहलेके और राजा मुञ्जके समसामयिक (१०५० ई॰के) हैं। मि॰ क्लाटका कहना है, जिनेश्वर सूरि तथा अजितसिंह सूरिके गुरु मुञ्जराजकी सभाके धानेश्वर सूरि दोनों एक ही व्यक्ति हैं।

जिनोत्तम (सं॰ पु॰) जिनानां उत्तमः, ६-तत्। बुद्ध।

जिन्द—हिन्दीके एक कवि।

जिन्दपीर—एक मुसलमान फकीर। सिन्धुप्रदेशमें वाखर नगरसे कुछ उत्तरमें नदी मध्यस्थ एक द्वीपमें इनकी कब्र है। सिन्धु-प्रदेशके क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी इस पीरकी पूजा करते हैं। इनके पूजकोंने बहुव्यय करके कब्रके ऊपर एक बड़ा मठ बनवा दिया है। उस मठमें हिन्दू मुसलमान दोनों तरहके बहुत यात्री जाया करते हैं।

जिन्दुक—मङ्खके समसामयिक एक मीमांसक।

जिन्धर—गूजर राजपूतोंकी एक शाखा।

जिब्राल्टर (Gibraltar)-भूमध्य सागर पश्चिमभागके प्रवेश पथ पर अवस्थित ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत एक उपनिवेश और दुर्ग। समग्र भूखण्ड लम्बाईमें ३ मीलसे भी कम और चौड़ाईमें ½ मीलसे ¾ मील तक है। तारीक-बेन-जेद' नामक किसी विजयीका नाम अपभ्रंश हो कर 'जेबेल तारीक' हो गया था, उसीसे 'जिब्राल्टर' नामकी उत्पत्ति

हुई है। तारीकने ७११ ई०में ऐन्दुलिसिया पर आक्रमण किया था। जुलाई मासके अन्तमें इन्होंने गोथिक शक्ति नष्ट कर दी और उस स्थान पर अधिकार कर अफ्रीका के साथ सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए एक दुर्ग निर्माण किया। यह दुर्ग ७४२ ई०में बन कर तैयार हुआ था। अब भी वह मूर-दुर्गके नामसे प्रसिद्ध है।

जिब्राल्टरका पर्वत २½ मील लम्बा है; इसने स्पेनके प्रधान भूखण्डके साथ जिब्राल्टरको जोड़ा है।

यहांकी आब-हवा बहुत अच्छी है—न तो जाड़ोंमें जाड़ा ही ज्यादा पड़ता है और न गरमियोंमें गरमी। जून, जुलाई और अगस्त इन तीन महीनोंमें बिलकुल वर्षा नहीं होती। सितम्बर मासमें (शरत् ऋतुके प्रारम्भमें) खूब वर्षा होती है। यहां वर्षाके पानीको जमीनके नीचे हौज़ोंमें इकट्ठा करते और उसीको वर्ष भर पीते हैं। साधारणत: वर्षमें यहां ३४'४ इञ्च पानी बरसता है।

फिलहाल जिब्राल्टरमें जो शहर है, वह अपेक्षाकृत आधुनिक है। १७७९से १७८३ ई० तक जिब्राल्टरमें जो भीषण अवरोध हुआ था उस समय सभी पुरानी इमारतें तोड़ दी गई थीं। यहांकी सड़कें बहुत कम चौड़ी हैं, प्रायः सर्वत्र कंकड़ निकल पड़े हैं और अंधेरा रहता है।

यहां फ्रानसिस्का सम्प्रदायके एक सङ्घारामका ध्वंसावशेष पड़ा है, उसीके ऊपर एक छोटा प्रासाद बनाया गया है, जिसमें यहांके शासनकर्ता रहते हैं। यहां अङ्गरेजोंका एक उपासनागार है, किन्तु उसमें शिल्प-नैपुण्य नहीं है। हां, यहांका ग्रन्थागार खूब बड़ा है और उसमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ मिलते हैं। 'ट्रैफलगर'के प्रसिद्ध युद्धमें जिन्होंने प्राण विसर्जन किये थे, उनमेंसे बहुतोंकी यहां समाधि विद्यमान है।

जिब्राल्टरके अधिवासिगण सङ्कर जातीय हैं। अङ्गरेजोंके अधिकार करनेके बाद स्पेनके प्रायः सभी औपनिवेशिक 'सैन-रो-की' नामक स्थानमें चले गये थे। स्थानीय अधिवासियोंमें अधिकांश लोगोंकी उत्पत्ति इतली-वंशसे हुई है। तीन चार हजार यहूदी और कुछ माल्टाके लोग भी यहां रहते हैं। यहूदी लोग अन्यान्य जातिसे विवाह सम्बन्ध नहीं करते—स्वतन्त्र भावसे रहते हैं। यहांके लोग स्पेनकी अपभ्रंश भाषा व्यवहार करते हैं तथा काम-काजके लिए अङ्गरेजी भाषासे भी काम लेते हैं।

जिब्राल्टरका दूसरा नाम 'क्राउनकलोनि' भी है। ब्रिटिश सम्राट् एक शासनकर्त्ताके द्वारा यहांका शासन कार्य चलाते हैं। स्वायत्तशासनका यहां जिक्र भी नहीं है। यहांके अधिकांश लोग रोमन कैथलिक धर्मको मानते हैं।

इतिहास।—ग्रीक और रोमन भौगोलिकगण जिब्राल्टरको 'काल्पे' वा 'आलिवि' लिखते हैं। ७११ ई०में तारीकने यहांका पर्वत अधिकार कर एक किला बनवा दिया था। १३०८ ई०में ४र्थ फार्डिनण्डके एक कर्मचारीने इस पर कब्जा कर लिया। फार्डिनण्डने इसे आबाद करनेके लिए यहां चोर और घातक बसा दिये। साथ ही यह घोषित कर दिया कि यहांसे अधिवासियोंको वाणिज्य सम्बन्धी आमदनी और रफ़्तनीका महसूल माफ कर दिया गया। १३१५ ई०में इस्माइल बेन फिरोज़ने इस पर आक्रमण किया, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। इसके बाद १३३३ ई०में भास्को पैरेज डी मिराको बाध्य हो कर इसे ४र्थ महम्मदको देना पड़ा। १४६२ ई०में फिर यह ईसाई राजाओंके हाथमें गया। मदीना सिदोनियाके डिउककी ४र्थ हेनरी द्वारा जिब्राल्टरका दखल मिला था, जो उनके पीढ़ी दर पीढ़ी तक चला था। १४७९ ई०में स्पेनके फार्डिनण्ड और ईसाबेलाने डिउककी 'मर्कुइस'-की उपाधि दी। १४८२ ई०में उन्होंने उन जमीन नामक ३य डिउककी इच्छा न होने पर भी रहने दिया। १५४० ई०में अलजियर्सके अधिवासी जिब्राल्टरको पुन: मुसलमानोंके अधिकारमें लानेकी कोशिश करने लगे। किन्तु जिब्राल्टरके अधिवासियोंने उन्हें यथेष्ट बाधा दी थी। इसके बाद स्पेनके राजाओंने दुर्ग आदिसे जिब्राल्टरकी रक्षा की।

१७०४ ई०में जब स्पेनके उत्तराधिकारीके विषयमें विवाद हुआ, तब ब्रिटिश और ओलन्दाज शक्तिने मिल कर जिब्राल्टरको अपने कब्जेमें कर लिया। अनन्तर १७२१ ई०में स्पेनने सहसा इस पर आक्रमण किया,

किन्तु सफलता न हुई। १७७८-१७८२ ई०में जब अमेरिकाके उपनिवेशोंने इंग्लैण्डोंसे विद्रोह कर स्वाधीनताकी घोषणा की, तब मौका पा कर स्पेनने पुनः जिब्राल्टर अधिकार करनेकी कोशिश की। स्पेनने करीब चार वर्ष तक जिब्राल्टरमें भीषण अवरोध जारी रक्खा जिससे जिब्राल्टरके अधिवासियोंके नाकोंदम आ गई। आखिर १७८३ ई०के ३१ मार्चको अवरोधका अन्त हुआ। तबसे अब तक जिब्राल्टर ब्रिटिश-गवर्नमेण्टके अधिकारमें ही है। अंग्रेजोंने यहांकी उन्नतिके लिए हर तरहसे कोशिश की है और कर रहे हैं।

जिमनास्टिक (अं० पु०) एक प्रकारकी कसरत, अङ्गरेजी कसरत।

जिमाना (हिं० क्रि०) भोजन कराना, खाना खिलाना।

जिमींदार (हिं० पु०) जमींदार देखो।

जिम्भ (सं० स्त्री०) जोभका फूलना।

जिम्भमोहन (सं० पु०) भेक, मेंढ़क, बेंग।

जम्भशल्य (सं० पु०) खदिर, खैर, कत्था।

जिम्भा (सं० स्त्री०) जृम्भिका, जंभाई।

जिम्मा (अ० पु०) १ उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिज्ञा, जवाबदेही। २ संरक्षा, सुपुर्दगी, देख रेख।

जिम्मादार (अ० पु०) जिम्मावार देखो।

जिम्मादारी (अ० स्त्री०) जिम्मावारी देखो।

जिम्मावार (फा० पु०) उत्तरदाता, जवाबदेह।

जिम्मावारी (फा० पु०) १ उत्तरदायित्व, जवाबदेही। २ संरक्षा, सुपुर्दगी।

जिम्मेदार (फा० पु०) जिम्मावार देखो।

जिम्मेदारी (फा० पु०) जिम्मावारी देखो।

जिम्मेवार (फा० पु०) जिम्मावार देखो।

जिम्मेवारी (फा० पु०) जिम्मावारी देखो।

जिम्मु—अयोध्या प्रदेशमें प्रवाहित राप्ती नदीकी एक शाखाका नाम।

जियागञ्ज—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलेमें लालबाग सब-डिविजनका एक गांव। यह अक्षा० २४° १५' उ० और देशा० ८८° १६' पू०मे भागीरथीके वाम तट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८७२४ है। यहां रफ्तनीके लिये चावल, पाट, रेशम, शक्कर और कुछ रूई इकट्ठी की जाती है। जैनियोंके बड़े बड़े मकान हैं। इसके सामने नदीके उस पार आजीमगंजमें ईष्ट इण्डियन रेलवेका ष्टेशन है।

जियादती (फा० स्त्री०) ज्यादती देखो।

जियादा (फा० वि०) ज्यादा देखो।

जियाभरेली—आसामके दरङ्ग जिलेकी एक नदी। यह ब्रह्मपुत्र नदीकी उपनदी है। बारहो महीने इसमें नाव आ जा सकती है।

जियान (अ० पु०) क्षति, नुकसान, घाटा।

जियापोता (हिं० पु०) पुत्रजीव वृक्ष, पतजियका पेड़।

ज़ियाफत (अ० स्त्री०) १ आतिथ्य, मेहमानदारी। २ भोज, दावत।

ज़ियारत (अ० स्त्री०) १ दर्शन। २ तीर्थदर्शन।

ज़ियारतगाह (फा० पु०) १ तीर्थ, पवित्रस्थान। २ दरबार, दरगाह। ३ दर्शकोंकी भीड़।

ज़ियारती (फा० वि०) १ दर्शक। २ तीर्थयात्री।

जिरगा (फा० पु०) १ समूह, झुंड। २ मण्डली, जत्था।

जिरङ्ग—१ आसामके खासी पर्वतका एक छोटा राज्य। जनसंख्या प्रायः ७२३ है। यहां चावल, लाल मिर्च, रबर, काली मिर्च, कपास आदि उपजते हैं।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके रेवाकांठा जिलेके मध्यवर्त्ती एक छोटा राज्य। यहांके अधिकारी संखेरा मेहवा हैं।

जिरङ्गगढ़—जूनागढ़का प्राचीन नाम।

जिरलकाममोली—बंबईके रेवाकांठा जिलेकी एक छोटी रियासत।

जिरह (हिं० पु०) १ झुकाव, खुचुर। २ बातोंकी सत्यताकी जाँच करनेकी पूछ ताछ। ४ वह सूतली जो बेसरमें ऊपर नीचे बयके गाड़नेके लिए लगी रहती है।

ज़िरह (फा० स्त्री०) वर्म, कवच, बकतर।

ज़िरही (हिं० वि०) कवचधारी।

ज़िराअत (अ० स्त्री०) कृषिकर्म, खेती।

जिराफा—जुराफा देखो।

जिरिया (हिं० पु०) जीरेकी तरह पतला और लम्बा एक प्रकारका धान।

जिरौ—आसामको एक नदी। यह बरेलको दक्षिण ढालसे निकल ७५ मील दक्षिणको बहती हुई बाराक या सुरमामें जा गिरती है। जिरो कछाड़ जिले और मणिपुर राज्यके मध्य सीमा जैसी लगी है। अधिकांश भाग पहाड़ी है। जङ्गली पैदावार और चाय इसकी राह आती है।

जिरेमिया—बाइबिल वा इञ्जीलके धर्मवक्ता प्रसिद्ध पुरुष। इनके पिताका नाम था हिलकियरा अनुमानतः ये ईसासे ६२६ से ५८६ वर्ष पहले आविर्भूत हुए थे। इन्होंने एक छोटेसे गांवमें पुरोहितवंशमें जन्म लिया था। योशिया नामक यहूदी राजाके त्रयोदशाङ्क राज्यकालमें ये साधारणके सामने धर्मवक्ताके रूपमें प्रगट हुए थे। जिस समय योशिया अपने राज्यको समस्त आपत्तियोंसे मुक्त समझते थे, उस समय जिरेमियाको विपत्तिकी सूचना मालूम हो गई थी।

पहले जिरेमिया दुःखवादी न थे। उन्होंने विचारा था कि यहूदी जातिके चिन्ताशील व्यक्तियोंको वे जातीय मुक्तिका उपाय समझा सकेंगे। पीछे उन्हें यह आशा एक तरहसे छोड़ देनी पड़ी थी। इन्होंने Yahweh (V. 1) नामक बाइबिलके एक अंशमें कहा है, "क्या ऊंच और क्या नीच, क्या धनी और क्या निर्धन किसीमें भी हमें धर्मप्राणता नहीं दीखती।" उक्त श्रेणीके लोगोंमें अधिकांश ही इनके धर्म-संस्कारके विषयमें सहानुभूति रखते थे। जिरेमियाका यह मत था कि 'धर्म भावोंको जाग्रत रखनेके लिए धर्मग्रन्थोंका पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।"

योशियाकी मृत्युके बाद लोगोंने पुनः 'बल' नामक विदेशी देवताकी पूजा करना शुरू कर दी। जिरेमियाने इसके विरुद्ध आन्दोलन उठाया। आखिर वे प्रत्येक व्यक्तिसे अन्तमें कहने लगे—"बेबिलनका राजा इस देशको मिट्टीमें मिला देगा।" कुछ दिन बाद इनकी भविष्यद्वाणी सचमुच ही चरितार्थ हो गई।

परवर्ती राजाओंने जिरेमियाको बहुत तकलीफें दी थी, किन्तु ये अपने कर्तव्यपथसे विचलित नहीं हुए थे।

बाइबिलमें कई जगह इनका उपदेश लिखा मिलता है; किन्तु आधुनिक ऐतिहासिकगण कुछ भविष्यद्वाणियोंको ही खास इनके द्वारा लिखित मानते हैं।

जिरोमो—ईसाके धर्मके अन्यतम प्रचारक और महापुरुष दलमातिया और पैनोनियाके निकटवर्ती 'स्त्रीदो' नामक स्थानमें (३३१से ३५० ई०के भीतर किसी समयमें) इनका जन्म हुआ था। इनके माता-पिता ईसाई धर्मके माननेवाले और सम्पत्तिशाली थे। पहले पहल इन्होंने अपने ही ग्राममें विद्याभ्यास किया था; पीछे कुछ लिख पढ़ कर, ये अपने मित्र बोनोसासके साथ रोम चले गये और वहां सुप्रसिद्ध वैयाकरण दोनातासके पास व्याकरण और दर्शनशास्त्रका अध्ययन किया। 'सिसेरो' और 'भाजिल'के ग्रन्थोंमें इन्होंने अशेष पाण्डित्य अर्जन किया था।

३६६ ई०में बिशप लिबेरियसने इन्हें ईसाई धर्ममें दीक्षित किया। किन्तु कुछ दिन बाद इनके नैतिकचरित्रकी अवनति हो गई। पीछे बहुत साधना करके इन्होंने अपने पापोंका प्रायश्चित्त किया। अनन्तर ये विद्वान् व्यक्तिको तरह सिर्फ ज्ञानकी साधनामें ही जीवन बिताने लगे। उत्तरोत्तर इनकी ज्ञान-तृष्णा प्रबल होने लगी। स्त्रीदोसे ये ऐकुलियां गये और फिर वहांसे 'गॉल' देशको चले गये। बहुत दिनों तक देश भ्रमण करनेके बाद ये ऐकुलियामें आस करने लगे। इसी समय (३७०-३७३ ई०) इन्होंने अपना पहला ग्रन्थ रचा था। इस ग्रन्थ पर इतना विवाद चला कि इन्हें देश छोड़ कर पूर्वकी तरफ चला जाना पड़ा।

अन्तियक नगरमें ये बीमार पड़ गये। इस रुग्न अवस्थामें उनका मन श्रीभगवान्के समीप जानेके लिए और भी व्याकुल हो गया था। इन्हें रोमके साहित्यसे बड़ा प्रेम था। बीमारीमें इन्होंने स्वप्न देखा, जिसमें स्वयं ईसाने आ कर इन्हें भर्त्सना की। इन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि 'धर्मशास्त्रके सिवा मैं और कुछ भी न पढ़ूंगा।" फिर वे कालकिसकी मरुभूमिमें साधनाके लिए चल दिये। यहां ये पोथियोंका संग्रह कर उनकी प्रतिलिपि करते थे और हिब्रू भाषा पढ़ते थे। यहीं उन्होंने महापुरुष पलकी जीवनी लिखी थी। इसमें बहुतसी ऐसी घटनाओं का उल्लेख है, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे असङ्गत मालूम पड़ती हैं।

उस समय अन्तियक नगरमें मेलेसिया सम्प्रदायके धर्म-बहिर्भूत आचरणके सम्बन्धमें घोरतर आन्दोलन चल रहा था। जिरोमी आचार व्यवहारके विषयमें रोम के मतके पक्षपाती थे। इसलिए वे इस तर्क वितर्कके समय अपनी सम्पूर्ण शक्ति नियोजित कर पाश्चात्य व्यवहार स्थापन करनेके लिए उद्योग करने लगे।

३ ८ ई०में ये अन्तियक नगरमें एक प्रधान पुरोहित समझे गये। पीछे यहांसे ये कनस्तान्तिनोपल नामक स्थानमें चले गये। इस जगह नाजियनजुसके अधिवासी ग्रिगरी नामक महापण्डित और धर्मव्याख्याताके साथ इनकी मुलाकात हुई थी। ग्रिगरीसे इन्होंने ग्रीक भाषा पढ़ी थी। इन्होंने ग्रीक भाषामें बाइबिलके बहुत अंशोंका अनुवाद कर धर्म-प्रचारमें सहायता की थी।

३८२ ई०में ईसाई धर्म-जगत्के गुरु पोपने जिरोमीको रोम नगरमें बुला कर मेलेसिया सम्प्रदायके विवादको मिटानेकी कोशिश की थी। पोप जिरोमीके अगाध ज्ञानराशिको देख कर मुग्ध हो गये। पोपके उत्साहित करने पर इन्होंने बाइबिलके लाटिन अनुवादका संशोधन कर स्वयं ही एक संस्करण निकाल दिया। जिरोमी मठारामनें रहने और संन्यास जीवन-यापन करनेके पक्षपाती थे। ईसाकी ४थी शताब्दीमें ईसाई धर्मके अन्दर जो संन्यास धर्मका इतना प्रभाव बढ़ गया था, उसका कारण जिरोमीका अविश्रान्त परिश्रम ही है। इन्होंने रोमकी कुछ कुमारी और विधवाओंको ब्रह्मचर्यकी महिमा खूब अच्छी तरहसे समझा दी थी। इस पर कुछ लोग इनके शत्रु हो गये। पोप दमेसियस जितने दिन जीवित थे, तब तक अवश्य ही कोई इनका कुछ अनिष्ट न कर सका था; किन्तु उनके मरनेके बाद ही इन्हें रोम छोड़ कर भाग आना पड़ा था। इस समय इन्होंने जो पत्र लिखे थे, वे अब भी बाइबिलके 'निउ टेष्टामेण्ट'में संयुक्त हैं।

इसके बाद जिरोमी पालेष्टाइन गये। वहां यहूदी विद्वानोंकी सहायतासे ये 'ओल्ड टेष्टामेण्ट'के अनुवाद करनेमें लग गये। जिरोमी हिब्रू भाषामें तादृश अभिज्ञ न थे, किन्तु तो भी ये ओल्ड 'टेष्टामेण्ट'के मतवादका प्रचार करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सहकारियोंकी सहायतासे उस विराट् दुरूह कार्यका सम्पादन किया।

जिरोमीके असाधारण परिश्रमके फलसे ही बाइबिलका लाटिन-अनुवाद प्रकाशित हुआ था। उस समय तथा परवर्तीकालमें संरक्षणशील सम्प्रदायके उक्त अनुवादके विरुद्ध आन्दोलन करने पर भी, उसकी भाषा और भाव पर सबके मुग्ध होना पड़ा था। इसीलिए वह Vulgate वा 'सर्वसाधारण द्वारा अनुमोदित'के नामसे प्रसिद्ध है।

मध्ययुगमें 'वुलगेट' अशिक्षितोंके हाथमें चला गया था। उन लोगोंने इसकी नकल और व्याख्या करते समय उसमें नानाप्रकार अवान्तर पाठ मिला दिये थे। यही कारण है कि वर्तमान युगके मुद्रण तकके समय अथवा 'वुलगेट'में बहुतसी भूलें देखनेमें आती हैं। इस अनुवाद-कार्यमें व्याप्त रहने पर भी, जिरोमी तत्कालीन प्रायः सभी तर्क-वितर्कोंमें सम्मिलित होते थे। साहित्यालोचनाके लिए भी वे किसी तरह समय निकाल लिया करते थे। ये बहुसंख्यक ग्रन्थ लिख कर अपनी कीर्तिको चिरस्थायी कर गये हैं। ३८४ ई०में इनका अगष्टाइनके साथ परिचय हुआ था। ४१८ ई०में ये वेथेलहम लौट आये और ४२० ई०के ३० सितम्बरको इनकी मृत्यु हुई।

जिरोमीको महासाधु वा 'सेण्ट' उपाधि दी गई थी। यह उपाधि उन्हें व्यक्तिगत जीवनकी पवित्रताके लिए नहीं; बल्कि ईसाई सम्प्रदायके उपकारार्थ उन्होंने जो परिश्रम किया था, उसीके स्मरणार्थ दी गई थी। इन्होंने सबसे पहिले बाइबिलके असली और नकली अंश पर विचार कर उसे दो भागोंमें विभक्त किया था। मार्टिन लूथर जिरोमीके जीवनके कार्योंको व्यर्थ-परिश्रम समझते थे।

जिला (अ० स्त्री०) १ चमक दमक, पानी। २ किसी चीजको झलकानेकी क्रिया।

ज़िला (अ० पु०) १ प्रदेश, प्रान्त। २ कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नरके अधीन किसी प्रान्तका भाग। ३ किसी छोटा विभाग।

जिलाट (सं० पु०) चमड़ेसे मढ़ा हुआ एक प्रकारका बाजा जो थापसे बजाया जाता है।

ज़िलादार (फा० पु०) १ मजावल, सरबराहकार । २ जमींदारसे नियुक्त किये जानेवाला लगान वसूल करनेका अफसर । ३ नहर, अफीम आदि सम्बन्धी किसी हलकेमें काम करनेवाला छोटा अफसर ।

ज़िलादारी (फा० स्त्री०) जिलेदारका काम ।

जिलाना (हिं० क्रि०) १ जीवित करना, जीवन देना । २ प्राण रक्षा करना, मरने न देना । ३ मूर्छित धातुको पुनः जीवित करना ।

जिलासाज़ (फा० पु०) वह जो हथियारों पर ओप चढ़ाता हो, सिकलीगर ।

जिलिङ्ग सिरिङ्—छोटा नागपुरका एक शहर । यह लोहारडागा नगरसे ७१ मील दक्षिण-पूर्वमें अक्षा० २३´ ११´ उ० और देशा० ८५´ ६१´ पू०के मध्य अवस्थित है ।

जिलिङ्गा—छोटा नागपुरके अन्तर्गत हजारीबाग़ जिलेका एक पहाड़ । इसकी ऊंचाई समुद्रपृष्ठसे ३०५७ फुट और आस-पासकी भूमिसे १०५० फुट है । इसके दाहनी तरफ उपत्यका है, जिसमें चायकी खेती होती है ।

जिलेबी (हिं० स्त्री०) जलेबी देखो ।

जिल्लोपत्तन—राजपूतानाके अन्तर्गत जयपुर राज्यके तोरवती जिलेका एक शहर ।

जिल्का—अहमदाबाद जिलेकी एक छोटी नदी । इसके किनारे प्राचीन भीमनाथ महादेव तथा बहुतसे प्राचीन मन्दिरादि हैं ।

जिल्द (अ० स्त्री०) १ चमड़ा, खाल, खलड़ी । २ त्वचा, ऊपरका चमड़ा । ३ पुस्तककी एक प्रति । ४ भाग किसी पुस्तकका पृथक् सिला हुआ खण्ड । ५ वह पट्ठा या दफ़्ती जो किसी किताबको सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षाके लिए लगाई जाती है ।

जिल्दगर (फा० पु०) जिल्दबंद ।

जिल्दबंद (फा० पु०) जिल्द बांधनेवाला ।

जिल्दबंदी (फा० स्त्री०) पुस्तकोंकी जिल्द बांधनेका काम, जिल्दबंधाई ।

जिल्दसाज़ (फा० पु०) जिल्दबंद ।

जिल्दसाज़ी (फा० स्त्री०) किताबों पर जिल्द बांधनेका काम, जिल्दबंदी ।

जिल्दी (अ० वि०) त्वक् सम्बन्धी, चमड़ेसे सम्बन्ध रखनेवाला ।

जिल्पी अमनेर—बरार प्रदेशके अन्तर्गत अमरावती जिलेके मोरसी तालुकका एक ग्राम । यह गांव जाम और वर्धा नदीके सङ्गमस्थान पर जलालखेड़ शहरके दूसरे पारमें अवस्थित है । इसको अमनेर भी कहते हैं ।

जिल्लत (अ० स्त्री०) १ अनादर, तिरस्कार, बेइज्जती । २ दुर्दशा, दुर्गति, हीन दशा ।

जिल्लिक (सं० पु०) दक्षिणस्थित देशभेद, दक्षिणमें एक देशका नाम । (भारत ६।९ अ०)

जिल्ली (हिं० पु०) आसाममें होनेवाला एक प्रकारका बांस । यह घरको छाजन आदिके काममें आता है ।

जिल्लेल—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत कड़ापा जिलेके प्रोद्दातर तालुकका एक ग्राम । यहां खाड़ीके किनारे एक प्राचीन अस्पष्ट शिलालेख है ।

जिल्लेम—दक्षिणदेशके एक प्राचीन राजा । मन्द्राज प्रदेशके राबुतुंपल्ली, पामुलपाड़, आदि स्थानोंमें इनके खोदित दानपत्र मिलते हैं ।

जिल्लसुड्डी (जिलासुड्डी)—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत नेल्लूर जिलेके कान्दुकुड़ तालुकका एक ग्राम । गांवके उत्तर एक जनार्दनदेव और दूसरा आञ्जनेयदेवके प्राचीन मन्दिर हैं ।

जिल्होर (हिं० पु०) अगहनमें काटा जानेवाला एक प्रकारका धान ।

जिवाजिव (सं० पु०) चकोरपक्षी ।

जिष्णु (सं० पु०) जयति जिष्-गस्नु । ग्लाजिस्थश्चगस्नुः । पा ३।२।१३९ । १ विष्णु । २ इन्द्र । (भारत ५।७०।१३) ३ अर्जुन, युद्धस्थलमें साहस पूर्वक कोई अर्जुनके सामने नहीं आ सकते तथा वे अत्यन्त दुर्द्धर्ष शत्रु को जय करते थे इसीलिये अर्जुनका नाम जिष्णु हुआ हो । ४ सूर्य । ५ वसु । ६ भौत्य मनुके एक पुत्रका नाम । (हरिवंश ७।८८) (त्रि०) ७ जयशील, जीतनेवाला, फतेहमंद ।

जिष्णुगुप्त—नेपालके एक राजा । ये सम्भवतः अंशुवर्माके वंशधर और उनके बादके राजा हैं । इनके समयमें खोदित शिलालेख भी मिलते हैं । उनके पढ़नेसे मालूम होता है कि, जिष्णुगुप्त नेपालके स्वाधीन राजा नहीं थे । इन्होंने लिच्छविवंशीय मानगृहाधिपति ध्रुवदेव-

को अपना प्रभु स्वीकार किया है। बहुतोंका अनुमान है कि, इसी समय नेपाल राज्य दो भागोंमें विभक्त हुआ था। एक ओर लिच्छविवंशीय राजगण और दूसरी ओर अंशुवर्मा और जिष्णुगुप्त आदि उनके वंशधर राज्य करते थे।

जिस (हिं० वि०) 'जो'का वह रूप जो उसे विभक्ति-युक्त विशेष्यके साथ आनेसे प्राप्त होता है।

जिसिम (फा० पु०) जिस्म देखो।

जिस्ता (हिं० पु०) जस्ता देखो।

जिस्म (फा० पु०) शरीर, देह।

जिह (फा० स्त्री०) ज्या, धनुषकी डोरी।

ज़िहन (अ० पु०) बुद्धि, धारणा, समझ।

जिहाद (जहाद) (अ० पु०) वह युद्ध जो इस्लाम धर्मके विस्तारके लिए किया जाता है। मुसलमान शास्त्रके अनुसार जिस जातिके साथ धर्मयुद्धमें प्रवृत्त होना हो, पहले उस जातिको सत्यधर्ममें (मुसलमान धर्ममें) दीक्षित होनेके लिए आदेश देना कर्तव्य है। इस पर यदि वे मुसलमान धर्ममें दीक्षित होने वा जिजिया कर देना स्वीकार न करें, तो मुसलमान उन पर आक्रमण कर उनका सर्वस्व ले सकते हैं। पराजित अविश्वासी लोगोंके प्राण तक विजेता मुसलमानोंके इच्छाधीन हैं। वे चाहें तो धर्मानुसार विधर्मियोंके प्राण तक ले सकते हैं। इस धर्मयुद्धमें कोई मुसलमान मरे, तो उसको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

किस जगह जिहादकी घोषणा करनी चाहिये, इस विषयमें मतभेद पाया जाता है। सुन्नियोंका मत है कि, विधर्मी लोग यदि मुसलमान होना या जिजिया देना अस्वीकार करें और शत्रुको पराजित करनेके लायक उनके पास सेना रहे तथा यदि उनके साथ दूसरी कोई सन्धि न हो, तो शत्रुके साथ जिहाद करना चाहिये। किन्तु सियाओंका यह कहना है कि, उन सबके रहने पर भी यदि इमाम या उनके नियोजित कोई व्यक्ति उपस्थित न हों, तो जिहादकी घोषणा नहीं की जा सकती। वे इस समय अदृश्य हैं, इसलिए वर्त्तमान कालमें जिहाद असम्भव है। इमामोंहीने मुसलमान सेनाके साथ एक हाथमें शाणित असि ले कर बाहुबलसे मुसलमान धर्मका प्रचार किया था। इस तरहका बल पूर्वक धर्म विस्तार, दूसरे किसी भी धर्ममें नहीं पाया जाता।

मुसलमान लोग सम्पूर्ण पृथिवीको दो भागोंमें विभक्त करते हैं। मुसलमानों द्वारा अधिकृत भूमि दर-उल्-इस्लाम और बाकीको समस्त भूमि दर-उल्-हार्ब कहलाती है। जो पृथिवी किसी समय दर-उल् इस्लाम थी और अब वह विधर्मी राजाके हस्तगत है, तो उसके विरुद्ध जिहादकी घोषणा नहीं की जा सकती।

भारत गवर्मेण्टके साथ अरब, पारस्य, अफगानिस्तान आदि मुसलमान राज्यका परस्पर सन्धिबन्धन रहनेके कारण भारतमें मुसलमान राजाओंके लिए जिहादकी घोषणा करना निषिद्ध है। इसलिए जिहादके नियमानुसार समग्र मुसलमान जाति उसमें योगदान करनेको बाध्य नहीं। यह कहना फिजूल है कि, भारतवर्षीय मुसलमान अंग्रेजी राज्यमें सुरक्षित हो कर वास कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि वे जिहाद घोषणा करें, तो राजद्रोही समझे जायगे।

जिहान (सं० त्रि०) गमनीय, जाने योग्य।

जिहानक (सं० पु०) जहानक, जगत्का विनाश, प्रलय।

जिहालत (अ० स्त्री०) मूर्खता, अज्ञानता।

जिहासा (सं० स्त्री०) हा-सन्-भावे अ। त्याग करनेकी इच्छा।

जिहासु (सं० त्रि०) दातुमिच्छुः। हा-सन्-उ। त्याग करनेकी इच्छा करनेवाला।

जिहीर्षा (सं० स्त्री०) हर्त्तुमिच्छा सन् भावे अ। हरणेच्छा, हरनेकी इच्छा, लेनेकी इच्छा।

जिहीर्षु (सं० त्रि०) हर्त्तुमिच्छुः, सन् भावे उ। हरण करनेकी इच्छा करनेवाला।

जिहोनिया—एक राजचक्रवर्ती, मनिगलके पुत्र। ये कुदुलकर कदफिस नृपतिके अधीन थे। पञ्जाबके रावलपिण्डीके निकटस्थ माणिकेल नामक स्थानसे कुछ दूरी पर जिहोनियाके नामके सिक्के मिले हैं।

जिहोवा—बाईबिल वा इञ्जीलमें कहे गये हजरातके भगवान्। जिहोवा शब्दका अर्थ स्वयम्भू है। यह शब्द Joh (अर्थात् आत्मा) और Havah (अर्थात् विद्यमान

रहना) इन दो शब्दोंके संयोगसे उत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ सर्वदा जो मौजूद हैं अर्थात् सनातन हैं। इसीलिए इसके वर्णनकालमें (Rev. 1: 4: 11: 17) कहा गया है कि 'He who is, and who was and who is to come" अर्थात् जो हैं, जो थे और जो भविष्यत्में आ कर विद्यमान रहेंगे।

कहा जाता है, कि १५१८ ई०में पेट्रस गलाटिमसने पहले पहल इस शब्दका व्यवहार किया था। परन्तु यह बात विश्वासयोग्य नहीं क्योंकि १४वीं शताब्दीके पहले भागकी पोथियोंमें इस नामका उल्लेख दृष्टिगत होता है। टिण्डेलने जो १५३० ई०में Pentateuch का अङ्गरेजी अनुवाद प्रकाशित किया था, उसमें जिहोवा शब्द स्पष्टतः व्यवहृत हुआ है। आधुनिक विद्वानोंका कहना है कि जिहोवाका प्रकृत उच्चारण 'इयाह' है।

'ओल्ड टेष्टामेण्ट' में भगवान्का एकमात्र नाम 'जिहोवा' लिखा गया है विद्वानोंने गिन कर देखा है कि यह नाम 'बाइबिल'में छह हजार बार व्यवहृत हुआ है।

जिहोवा शब्दसे भगवान्की सत्ता मालूम होती है, किन्तु दार्शनिक प्रणालीसे सिर्फ वर्तमान सत्ताका और ऐतिहासिक प्रणालीसे सामयिक विश्वासमात्रका बोध होता है। विद्वानोंमें इस विषयका मतभेद पाया जाता है। 'प्रोटेष्टण्ट'-मतावलम्बी लेखकोंका कहना है कि जिहोवा नामको ऐतिहासिक रीतिसे ग्रहण करना चाहिए। इस विषयमें वे निम्नलिखित युक्तियोंसे काम लेते हैं। (क) प्राचीनकालके लोगोंमें दार्शनिक सत्ताको गूढ़ रहस्यको समझनेकी शक्ति नहीं थी। किन्तु हमें मिसरके इतिहासके पढ़नेसे मालूम हो सकता है कि अतिप्राचीनकालमें भी भगवान्के विषयमें मिसरके लोगोंकी उच्च धारणा थी। सम्भवतः मुसाके समयमें यह नाम दार्शनिक रूपमें व्यवहृत नहीं हुआ बादमें खृष्टीय-धर्म तत्त्वविदोंने उसकी सूक्ष्म व्याख्या होगी। (ख) हिब्रूका क्रियापद Havah वा Hayah गतिवाचक है, स्थिरत्व वा सनातनत्ववाचक नहीं है। किन्तु इस युक्तिके उत्तरमें हिब्रू भाषाके विशेषज्ञ कहते हैं कि उससे स्थायिभावत्व भी समझा जा सकता है।

सुतरां मध्ययुगके यूरोपीय नैयायिकगण जिहोवाके विषयमें जो युक्ति तर्ककी अवतारणा करते हैं, वह समीचीन नहीं मालूम होती। उन लोगोंका कहना है कि ससीम जीव ही गुणोंके द्वारा सीमाबद्ध है; किन्तु भगवान् सिर्फ उसकी सत्तासे ही प्रकट हो सकते हैं। वे पवित्र और सरल हैं—वे ही आदि और अन्त हैं। "Alpha and omega, the begining and the end……Who is, and who was, and who is to come, the Almighty" (Apoc. 1, 8)

नामकी उत्पत्ति—Von Bohlen, von der, Alm आदि विद्वानोंका कहना है कि यहूदियोंने जिहोवा नाम कनानाइट जातिसे ग्रहण किया था। किन्तु Kuenen और Baudissin आदि मनीषियोंने इसका प्रतिवाद किया है। 'ओल्ड टेष्टामेण्ट'के देखनेसे तो यही मालूम होता है कि जिहोवा सर्वदासे कनानाइट जातिके विरुद्ध आचरण करते आये हैं—उक्त जातिके शत्रु होते हुए भी वे उनके देवता थे यह बात कयासमें नहीं आती। एक श्रेणीके विद्वानोंका अभिमत है कि मिसर देशमें ही जिहोवा नामकी उत्पत्ति हुई है। मुसाने मिसरमें ही शिक्षा पाई थी; इसलिए यह मत यथार्थ भी हो सकता है। किन्तु इस विषयमें अधिक प्रमाण नहीं मिलते। पण्डितप्रवर 'रोथ'का कहना है कि जिहोवा नाम प्राचीन चन्द्रके देवता 'इओ'से उत्पन्न हुआ है। अन्य श्रेणीके विद्वानोंका सिद्धान्त है कि 'जाहु' नामक वविलनके देवतासे 'जिहोवा'की उत्पत्ति हुई है। किन्तु यह मत समीचीन नहीं समझा जाता।

आधुनिक प्रामाण्य मत यह है कि उक्त पवित्र नाम किसी प्रकार रूपान्तरित आकारमें मुसाके पहले यहूदियोंमें प्रचलित था। होरेब पर्वतके ऊपर भगवान्ने भक्तों के समक्ष उपस्थित हो कर अपना यथार्थ नाम 'जाहेव' वा 'जिहोवा' प्रकट किया था। बाइबिलके सबसे पुराना अंशमें जिहोवाका १५६ बार उल्लेख है। मुसाकी माताका नाम जोकावेद था; इसके प्रथम अंशमें जिहोवाका सादृश्य है। भगवान्ने पहले पहल मुसाको ही अपना नाम बतलाया था, इसमें सन्देह ही सकता

है ; किन्तु यह निश्चित है कि होरेब पर्वत पर प्रकट हो कर उन्होंने अपने नामकी व्याख्या की थी।

धर्मोंकी उत्पत्तिके विषयकी आलोचना करनेसे मालूम होता है कि पहले प्रकृतिकी किसी विशेष शक्तिको देवताका रूप दे दिया जाता है और फिर वही देवता स्वतन्त्रभावसे लोकसमाजमें पूजित होते हैं। जिहोवाके विषयमें भी ऐसा ही हुआ था। पहले ये दहनशील अग्निके अधिष्ठाता देवता थे। कोई इन्हें उज्ज्वल नील आकाशके रूपमें और कोई झटिकाके देवतारूपमें देखा करते थे। ओल्ड टेष्टामेण्टमें बहुत जगह इनके नामके साथ झटिका और अग्निका संयोग किया गया है। उसमें यह भी लिखा है कि वज्र उनका वाक्यस्वरूप है, विद्युत् वाणस्वरूप है और इन्द्रधनु धनुष है। सिनाई पर्वत पर भगवान्‌ने जब दर्शन दिये थे, तब भीषण झटिका हुई थी। जिहोवा जिस देवदूत पर आरोहण करते हैं, वह सम्भवतः मेघ और झटिकाकी कोई मूर्तिमान् शक्ति होगी। इजीकइलने जिहोवाके वाहनका जैसा वर्णन किया है, उससे मालूम होता है कि वह चलते समय वज्र जैसा शब्द किया करता है।

परन्तु जिहोवा हमारे इन्द्रदेवकी भांति प्रकृतिकी किसी शक्तिविशेषके देवता होने पर भी, वे अति प्राचीन कालसे सर्वश्रेष्ठ देवता समझे जाते हैं। जिहोवा यहूदियोंके जातीय देवता हैं, जो उन्हें विपत्ति विशेषतः युद्धके समय सहायता देते हैं।

यहूदियोंने जिहोवाकी पूजा करते हुए एकेश्वरवादका प्रचार किया था। उन लोगोंने बार बार कहा है कि 'Jahweh our God, Jahweh is one" (Dt. 64) पाश्चात्य जगत्‌में यह एकेश्वरवाद ही यहूदियोंका प्रधान दान है।

जिह्म (सं० त्रि०) जहाति हा-मन्, सन्वदालोपश्च। १ कुटिल, कपटी। २ वक्र, टेढ़ा। ३ अधर्म। ४ अप्रसन्न, खिन्न। ५ दुष्ट, क्रूर प्रकृतिवाला। ६ मन्द। (क्ली०) ७ तगरपुष्प, तगरका फूल। (पु०-स्त्री०) ८ जिह्वा, जीभ।

जिह्मग (सं० त्रि०) जिह्मं कुटिलं मन्दं वा गच्छति, जिह्म-गम ड। जातित्वात् ङीप्। १ मन्दगति, धीमा। २ कुटिल, कपटी, चालबाज। ३ कुटिल गतिवाला, टेढ़ी चाल चलनेवाला। (पु०) ४ सर्प, सांप।

जिह्मगति (सं० पु०) गम-क्तिन्। १ सर्प, सांप। जिह्मं कुटिलं गच्छति। २ वक्र गमन, टेढ़ी चाल।

जिह्मगामी (सं० त्रि०) जिह्मं गन्तुशीलमस्य गम-णिनि। १ वक्रगामी, टेढ़ा चलनेवाला। २ कुटिल, कपटी। ३ मन्दगामी, सुस्त, धीमा।

जिह्मता (सं० स्त्री०) जिह्मस्य भावः भावे तल स्त्रियां टाप्। १ कुटिलता, कपट, चालबाजी। २ सर्प, सांप। ३ वक्रता, टेढ़ापन। ४ मन्दता, धीमापन।

जिह्मद्वार (सं० त्रि०) १ अधस्तात् वर्त्तमान, नीचेकी ओर रखा हुआ। २ जिसके एक ओर सुराख या छेद हो। ३ निम्नद्वार, छिपा हुआ दरवाजा।

जिह्ममेहन (सं० पु० स्त्री०) जिह्मं मन्दं मेहति मिह-ल्यु। भेक, मेंढ़क।

जिह्ममोहन (सं० पु०) जिह्मं कुटिलं मुह्यति मुह-ल्यु। नन्दिग्रहीति। पा ३।१।१३४। अथवा, जिह्मस्य कुटिलस्य सर्पस्य मोहनश्चित्तमोहनः। भेक, मण्डूक, मेंढ़क।

जिह्मशल्य (सं० पु०) जिह्मं कुटिलं शल्यं यस्मात्, बहुव्री०। खदिरवृक्ष, खैर, कत्था।

जिह्मशी (सं० त्रि०) जिह्मं वक्रं शेते-शी-क्विप्। कुटिल शायित, टेढ़ा पड़ा हुआ।

जिह्माशी (सं० त्रि० जिह्मं मन्दं अश्नाति अश-णिनि। मन्दभोजी, धीरे धीरे खानेवाला।

जिह्मित (सं० त्रि०) जिह्म-इतच्। १ घूर्णित, घूमा हुआ, फिरा हुआ। २ चक्रीकृत, चकित, विस्मित।

जिह्मीकर (सं० त्रि०) वक्रकर, टेढ़ा करनेवाला।

जिह्मीकृत (सं० त्रि०) वक्रीकृत, झुकाया हुआ, टेढ़ा किया हुआ।

जिह्व (सं० पु०-स्त्री०) ह्वयते आह्वयतेऽनेन, बाहुलकात् ह्वे-ड द्वित्वादीचति साधुः। जिह्वा, जीभ।

जिह्वक (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात। इसमें जीभमें कांटे पड़ जाते हैं। यह रोग सिर्फ सोलह दिन तक रहता है। इसमें श्वास, कास आदि भी हो जाते हैं। रोगी प्रायः गूंगे या बहरे हो जाया करते हैं।

जिह्वल (सं॰ त्रि॰) जिह्वेन जिह्वया लाति गृह्णाति पर-द्रव्याणीति जिह्व-ला-क। भोजनलोलुप, चट्टू, चटोरा।

जिह्वा (सं॰ स्त्री॰) जयति वसमनया जि-वन्। शेवयह्व-जिह्वाग्रीवाप्वामीवाः। उण् १।१५४। वन् प्रत्ययेन हुगागमे निपातनात् साधुः। रसज्ञानेन्द्रिय अर्थात् वह इन्द्रिय जिसके द्वारा कटु, अम्ल, तिक्त, कषाय, मधुर आदि रसोंका आस्वादन हो। साधारण भाषामें इसको जीभ या ज़बान कहते हैं। इसके संस्कृत पर्याय—रसज्ञा, रसना, रसाल, मधुस्रवा, रसिका, रसाज्ञा, रसन, जिह्व, रसालोला, रसाला, रसला और ललना। इसका अधिष्ठाता देवता प्रचेता है। अग्निकी जिह्वा सात प्रकारकी होती है, जैसे—काली कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरूपी। (मुण्डकोपनि॰)

अधिकांश प्राणियोंको पांच प्रधान इन्द्रियां हैं; भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न भिन्न कार्य होता है। इन पांच इन्द्रियोंमें जिह्वा भी एक है; इसके द्वारा रसका स्वाद ग्रहण किया जाता है। मनुष्यकी जिह्वा मांसमय और मुख-विवरके बीचमें होती है; जिसको मनुष्य इच्छानुसार इधर उधर हिला डुला सकता है। किसी पदार्थके खाते समय अथवा मुंहमें किसी खाद्य पदार्थके रहने पर तथा बात कहते समय जिह्वा नाना दिशाओंमें चलती रहती है।

जिह्वाका काम अन्यान्य इन्द्रियोंसे कुछ जटिल है; इससे दो कार्य सम्पन्न होते हैं। इसके द्वारा हम आस्वाद ग्रहण, शब्दोंका उच्चारण और द्रव्य स्पर्श कर सकते हैं। जिह्वाका ऊपरी हिस्सा एक सूक्ष्म त्वक्से ढका है। इस स्थानसे किसी द्रव्यके आस्वाद ग्रहण अथवा स्पर्शन द्वारा उसके गुण अवगुण समझनेकी शक्ति उत्पन्न होती है तथा जिह्वाके मांसपिण्डके अभ्यन्तर प्रदेशसे इसकी चालना-शक्तिकी उत्पत्ति होती है।

चक्षु द्वारा देख कर जिह्वाकी वाह्य आकृति प्रकृतिकी परीक्षा की जा सकती है। जिह्वाके प्रायः समस्त अंश अत्यन्त सूक्ष्म मांस पेशी द्वारा बने हैं। ये मांसपेशियां विभिन्न दिशाओंमें संस्थापित और सब ओर समान मापसे तरतीबवार सजी हुई है। जिह्वा अधिकांश मांस पेशीके द्वारा शरीरके अन्यान्य अंगोंसे जा मिली है। इसका ऊपरी हिस्सा पृथक् चमड़ेसे और नीचेका हिस्सा मुख और गालोंके चमड़ेसे ढका है। यह एक बहुत ही सूक्ष्म झिल्लीसे ढकी है, यह झिल्ली रसनासे निकली हुई लारसे सर्वदा भीगी रहती है। नीचेकी झिल्ली बहुत ही पतली, चिकनी और स्वच्छ है। मध्यस्थानसे जिह्वाके अग्रभाग तक एक ऊंचीतह है। जिह्वाके ऊपरकी और आसपासकी चमड़ी मोटी तथा नीचेकी अपेक्षा अधिक छिद्रयुक्त या कोषमय है। इसी चमड़ी पर जीभके उभार या कांटे रहते हैं और इसी अंशसे हमको समस्त द्रव्योंका स्वाद मालूम पड़ता है। जिह्वाका निम्नभाग कुछ मांसपेशियों द्वारा अन्यान्य अंगके साथ संयुक्त होनेके कारण यह नियमित रूपसे हिल डोल सकती है और इच्छानुसार विभिन्न आकृतियोंमें परिणत की जा सकती है। मांसपेशियोंके विभिन्न स्तरोंमें यथेष्ट परिमाणमें चर्बीयुक्त अंश और श्वेत पीतवर्णकी पेशियां हैं, जो कुछ शिरा, स्नायु और धमनीके साथ संयुक्त हैं।

जिह्वाके शेषभागकी ओर जितने अग्रसर होते हैं, उतने ही कांटे कम दिखलाई देते हैं तथा अग्रभाग और आसपासमें कांटे बिल्कुल नहीं दीखते। यह कांटे तीन प्रकारके हैं। एक तरहके कांटे ऐसे हैं, जो साधारणतः ७ या ८ दिखलाई देते और २०से ज्यादा वा ३से कम नहीं होते। ये कोणाकोणी दो श्रेणियोंमें सिलसिलेवार होते हैं। झिल्लीपर ये जहां जहां होते हैं, वहां वहां झिल्ली कुछ नीची होती है। इस प्रकारके कांटोंको अंग्रेज विद्वान् मगनी (Magnee) कहते हैं।

द्वितीय प्रकारके कांटोंकी संख्या पहलेसे अधिक है, जो उनसे छोटे हैं। इन कांटोंकी आकृति एक प्रकारकी नहीं होती—कोई अर्द्धचन्द्राकार, कोई नलके आकारके और कोई बहुत बारीक नुकीले होते हैं। यह कुछ चिपटे होते हैं, अंग्रेजीमें इनको लेण्टिकुलर (Lenticular) कहते हैं। जिह्वाके और सब कांटोंको कोनिकल (Conical) अर्थात् शिखाकार कहते हैं।

जिह्वाके कुछ भिन्न भिन्न पेशियों और सूक्ष्म पेशी सूत्रोंके सिवा कुछ पेशीगुच्छ हैं। इस पर मांसपेशीकी क्रिया होनेसे जिह्वाके मूलदेशकी अस्थियां चलती हैं। जिह्वा भिन्न भिन्न तीन जोड़ी स्नायुओंके साथ जुड़ी हुई है।

१म, जोह्वा स्नायु—ये जिह्वाकी मांसपेशियों पर सर्वत्र फैली हैं। इसके द्वारा सञ्चालनशक्ति उत्पन्न होती है। इन स्नायुओंके सङ्कुचित अथवा विच्छिन्न हो जाने पर जीभ हिल डुल नहीं जा सकती किन्तु इसकी इन्द्रिय-शक्ति नष्ट नहीं होती।

२य, जोह्वा-शाखा-स्नायु (कभी कभी इसको स्पर्श-स्नायु भी कहते हैं)—इन स्नायुओंसे शीत उष्णताका ज्ञान और स्पर्शज्ञान होता है। ये जिह्वाके अग्रभागके पास ज्यादा हैं और इस अंशका इन्द्रिय-ज्ञान भी अन्यान्य अंशोंसे अधिक है।

३य. आस्वाद स्नायु—इसके कुछ अंश जीभके साथ मिले हैं। इस स्नायुसे जीभमें आस्वाद-शक्ति आती है।

द्रव्यके किस गुणसे आस्वादका ज्ञान होता है, इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ। स्वादेन्द्रियके साथ घ्राणेन्द्रियका कुछ मेल है। उत्तेजक द्रव्यके होने पर इन्द्रिय-शक्ति बढ़ती है। ज्यादा स्वाद पानेके अभिप्रायसे मनुष्य ओठोंके साथ जीभको दाबता और एक प्रकारका शब्द करता है। दो तरहकी दो चीजोंके खानेसे, अन्तमें जो खायी जाय, उसका स्वाद ज्यादा मालूम होता है। हमारी आंखोंको कार्य भी इसी तरहका है। पहले एक रंगको देख कर, पीछे यदि दूसरा एक रङ्ग देखा जाय, तो अन्तमें देखा हुआ रंग ही आंखोंमें ज्यादा असर डालेगा।

जिह्वाके ऊपर, आसपास और नीचेके पूर्ववर्त्ती अंश अन्य किसी अंशके साथ संयुक्त नहीं हैं; परन्तु अन्यान्य अंश श्लेषमय झिल्लियों द्वारा निकटवर्त्ती पेशियोंके साथ संयुक्त हैं। जो जो स्थान उक्त झिल्लियोंके द्वारा मुखमध्यस्थित अन्यान्य स्थानोंके साथ जुड़े हैं, उन उन स्थानोंमें कई एक तह हैं। इन तहोंमें सूक्ष्म पेशीसूत्र हैं जो जीभको अन्य स्थानके साथ संयुक्त करनेके लिए बन्धनस्वरूप हैं। प्रधान पटल वा तहको जीभकी लगाम (Frolnum bridle) कहते हैं। इसके रहनेसे ही जीभका आगेका हिस्सा मुंहके भीतर पीछेकी ओर ज्यादा फिराया नहीं जा सकता। किसी किसीका यह बन्धनसूत्र (टोंग्रा) जीभके अग्रभाग तक विस्तृत होता है। जिस लड़केके ऐसा होता है, वह बात नहीं कह सकता और दांतसे चबाना भी उसके लिए दुष्कर है। उक्त टोंग्रा या जीभकी लगामको काट देनेसे बालककी जिह्वा स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होती है। अन्यान्य पार्श्व उपजिह्वा तक विस्तृत हैं। उपजिह्वा एक बारीक सूत्रोपास्थिमय पत्र है। यह श्वासनालीका द्वार स्वरूप है तथा श्वास लेते समय कुछ हटती और फिर अपनी जगह पर आ जाती है। इसके बगलोंमें दो तह हैं, जिनको नलीद्वारका स्तम्भ कहते हैं; इस जगह मुखविवर कुछ अप्रशस्त है। जिह्वाकण्ठकके पीछेकी तरफ निम्नप्रदेशमें कई एक बड़ी बड़ी श्लैष्मिक ग्रन्थियां हैं, जो लम्बी और प्रशस्त नली तक विस्तृत हैं। इस स्थानसे लार निकल कर जीभको हर वक्त भिगोये रखती है। नीचेकी तरफ जीभके अग्रभागसे लगा कर लगाम तक जो एक लम्बी लकीर सी है, वह ऊपरकी अपेक्षा कुछ गहरी है; इसके दोनों बगल कुछ नर्म हैं और जीभके अग्रभागके नीचे ही एक श्लैष्मिक ग्रन्थि-गुच्छ है। यूरोपमें यह ग्रन्थि गुच्छ नाक-गुच्छ कहलाता है क्योंकि १६८० ई०में नाक (Nuck) साहबने इसका आविष्कार किया था। जीभके पीछेकी तरफका आखरी हिस्सा चिपटा और बगलमें मूलास्थिके पास कुछ विस्तृत है। जीभकी पेशियां दो तरहकी हैं। एक तो बाह्यपेशी, जिसके द्वारा जीभका अन्य स्थानके साथ सम्बन्ध है, और वह उस उस स्थान पर जा सकती है; तथा दूसरी अभ्यन्तर-पेशी मुख्यतः इसीसे जीभ बनी है और इसीके द्वारा जीभका एक अंश दूसरे अंश पर जा सकता है।

मनुष्योंकी जिह्वाके साथ पशुओंकी जिह्वाका कुछ सादृश्य है। जो पशु रोंथ (रोमन्थ) करके खाते हैं, उनकी जीभकी आकृति कामलाकी भाँति है। जुराफा और पिपीलिकाभक्षीकी जीभ बहुत लम्बी होती है। जुराफाओंकी जीभ उनके खाद्य-पदार्थ धारण करनेके लिए एक प्रधान और विशिष्ट उपाय है। पिपीलिका-भक्षियोंकी जीभ बहुत लसीली होती है, ये पीपिलिका-स्तूपके भीतर जीभ घुसेड़ देते हैं, जिससे पिपीलिकाएँ इनकी जीभसे सट कर मुखमें चली जाती हैं।

मार्जार-जातीय पशुओंकी जीभमें शिखाकार कांटे नहीं होते; इनके कांटे टेढ़े, बड़े और कड़े होते हैं।

इसके द्वारा उक्त जातीय पशु शरीरके लोमोंको साफ और हड्डियोंको तोड़ सकते हैं। स्तन्यपायी जीवोंके सिवा अन्य प्राणियोंकी जिह्वा स्वादेन्द्रिय नहीं है।

शम्बूक-जातीय प्राणियोंमें एक प्रकारका क्षुद्र स्थूल शम्बूक है, जिसकी जिह्वा एक पतले, लम्बे और अप्रशस्त चमड़ेसे बनी है इसका पूर्ववर्त्ती अग्रभाग नलकी भाँतिका है। इस चमड़ेके ऊपर छोटे छोटे दाँतोंकी तरह उभार देखनेमें आते हैं, जो भिन्न भिन्न श्रेणीके जीवोंके भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं।

जिह्वाके द्वारा स्वादग्रहण, चर्वण, भक्ष्यद्रव्यके साथ लाला-मिश्रण, गलाधःकरण और वाक्यकथन आदि कार्य होते हैं। मनुष्य और वानरोंके सिवा अन्यान्य प्राणी जीभसे द्रव्यादि धारण करते, थूकते और श्वास ग्रहण करते हैं। स्थलके शम्बूक जीभसे भक्ष्यद्रव्यको चूर्ण करते हैं।

जीभमें प्रदाह नामका एक रोग उत्पन्न हो सकता है। इस रोगके होने पर जीभ फूल जाती है। जीभसे किसी द्रव्यका छू जाना अत्यन्त असह्य मालूम होता है तथा बात कहते और कुछ खाते समय बड़ा कष्ट होता है। पहले किसी रोगके बिना हुए यह रोग हठात् नहीं होता। जिह्वा-प्रदाह रोग होने पर लार बहुत निकलती है। थोड़े खानेसे तथा अत्यन्त विरेचक और कुल्ली करनेकी औषध सेवन करनेसे यह रोग दब जाता है; जीभको चिरवा कर रक्त-मोक्षण करानेसे भी कभी कभी फायदा होता है। कभी कभी प्रदाहका कोई उपसर्ग न रहने पर भी जीभ बहुत ज्यादा फूल जाती है। इतनी फूलती है कि जिससे श्वासरोध होनेकी भी सम्भावना रहती है। कभी कभी जिह्वा-प्रदाह रोग पूरी तरह आरोग्य न होने पर उससे जिह्वा-विवृद्धि रोगकी उत्पत्ति होती है, परन्तु ज्यादातर यह रोग बच्चोंको जन्मकालमें होता है। किसी किसीको प्रथम २।१ वर्षके भीतर इस रोगकी किसी प्रकारकी सूचना नहीं मालूम पड़ती। एक प्रसिद्ध विद्वान्ने एक शिशुके विषयमें कहा है कि, जन्मकालसे ही एक बच्चेकी जीभ मुंहसे कुछ बाहर निकली हुई थी, उस बच्चेकी उम्र ज्यों ज्यों बढ़ने लगी जीभ भी उतनी ही बाहर लटकने लगी। आखिर वह जीभ गोवत्सके हृत्पिण्डके समान बड़ी हो गई। साधारणतः निम्नलिखित कारणोंसे जिह्वामें छाले हुआ करते हैं। १ एक पुराने दाँतके साथ किसी असमान स्थानकी उत्तेजना होने पर; २ उपदंश होने पर, ३ पाकयन्त्रकी विशृङ्खला होने पर। पहली दशामें दाँत उखाड़ देनेसे, दूसरी दशामें सारसापारिल्लाके साथ पोटेसियाम् आइयोडाइड (Iodide of Potassium) मिला कर सेवन करनेसे तथा तीसरी अवस्थामें नियमित परिमाण और नियमित समयमें आहार करनेसे तथा सोते समय सुस्थिर रहनेसे उक्त रोगकी यन्त्रणासे छुटकारा मिल सकता है। सारसापारिल्लाके क्वाथके साथ मुसब्बरका क्वाथ मिला कर दिनमें ३ बार सेवन करनेसे तथा रातको ४ रत्ती हायसयामस (Hyoscyamus)-के सेवनसे फायदा पहुंचता है। जीभके कड़ी अथवा बाहरकी झिल्ली पर छाले पड़ते हैं। लोगोंका यह विश्वास था कि, टूटे हुए दाँतकी उत्तेजनासे और मुखनलमें धूम्रपान किये जानेसे इस रोगकी वृद्धि होती है; परन्तु यह बिल्कुल झूठी बात है। उक्त प्रकारकी प्रक्रिया द्वारा जिह्वाके जिस स्थान पर घाव हुआ हो, उस स्थानका निर्णय किया जा सकता है। १८४७ ई०में ३८ वर्षकी उम्रमें अध्यापक रीड साहब (Prof. Reid of St. Andrews) क्षत रोगसे आक्रान्त हुए थे। १८८१में जुलाई मासमें उनकी जीभ फूल कर ५ शिलिंगके एक सिक्केके समान हो गई। क्षत अंशके काट देनेसे अध्यापकको आराम हो गया, परन्तु एक महीनेके भीतर फिर उस रोगसे आक्रान्त हो कर वे कालकवलमें कवलित हुए। इस रोगके प्रारम्भमें ही यदि क्षतस्थानकी पूरी तरह काट दिया जाय, तो उपशमकी आशा की जा सकती है।

जिह्वारोग देखो।

शारीरस्थानमें जिह्वाको तीन भागोंमें विभक्त किया गया है—(१) मूलप्रदेश, (२) मध्यप्रदेश, (३) अन्त्यप्रदेश। मुखविवरके अन्दर अग्रभागको अन्त्यप्रदेश कहते हैं। यह मुखमध्यस्थ किसी भी स्थानसे जुड़ी हुई नहीं है। मूलप्रदेश और अन्त्यप्रदेशके मध्यवर्ती अंशको मध्यप्रदेश कहते हैं। यह अंश मोटा और चौड़ा है। मुखविवरके भीतर पीछेके अंशको मूलप्रदेश कहते

है। यह प्रदेश जिह्वाकी मूल अस्थिके साथ संयुक्त है। जिह्वाको मूलास्थि घोड़की नालकी तरह टेढ़ी और जिह्वामूलमें अवस्थापित है। इसीलिए यूरोपीय भाषामें इसको लिङ्ग्याल अस्थि कहते हैं। जीभको देख कर मनुष्यके रोगका निर्णय किया जा सकता है और किस औषधके प्रयोगसे लाभ होगा, इसका भी आभास मिलता है।

जीभके ऊपर कांटे होनेके कारण ही यह खरखरी है। शरीरमें जिस प्रकारका असम्बन्ध उपलब्ध है, जिह्वामें भी वैसा है, पर बहुत कम।

जीभके किस स्थानसे आस्वाद ग्रहण किया जाता है और आस्वादनकी वास्तविक स्नायुएं किस स्थान पर हैं, इस विषयमें बहुत मतभेद है। जिह्वाके मूलदेशमें जहां मगनी (Magnee) नामक कांटे विन्यस्त हैं, उस केन्द्रके वृत्तपरिमित स्थानसे हम तीव्र स्वादविशिष्ट पदार्थका आस्वाद ग्रहण करते हैं। जिह्वाके अग्रभागसे कड़ुए, मीठे और तीव्र पदार्थका स्वाद आसानीसे मालूम हो सकता है; किन्तु पश्चाद्भागके मध्यस्थानमें किसी तरहका स्वादज्ञान नहीं होता। मि० बौमन (Mr. Bowman)-का कहना है कि, किसी किसी कोमल तालूमें स्वाद-ज्ञान है, किन्तु उनके गाल और दाढ़ आस्वादशक्तिसे शून्य हैं।

रासायनिक अथवा अन्य किसी प्रक्रियाके कारण स्नायुमण्डली द्वारा पदार्थके आस्वादका अनुभव होता है। उनके उत्तेजित होने पर हम आस्वादका ग्रहण करते हैं। जिह्वाके अग्रभागमें एकाएक धीरेसे उंगली छुआनेसे हमें भिन्न भिन्न समयमें विभिन्न प्रकारके स्वादका अनुभव होता है। जिह्वाके मूलदेशमें ऊपरकी ओर यदि कोई कांचका पदार्थ अथवा बुझाए हुए पानीकी बूंद रखी जाय, तो हमें एक तीव्र स्वादका अनुभव होता है। जीभमें ठण्डी हवाके लगनेसे कुछ नुनखरा स्वाद मालूम पड़ता है। जीभको १२५° डिग्री गरम पानीमें एक मिनट डुबो कर यदि चीनी आदि खाई जाय, तो किसी तरहका स्वाद नहीं मिलता। सुस्वादु द्रव्य गल करके उसका रस जीभके कांटोंको पार कर जब आस्वादग्रहणकारी स्नायुके साथ मिलता है, तब हम उसका स्वाद पाते हैं। और जो पदार्थ गलते नहीं हैं, उनका हम स्पर्श द्वारा अनुभव करते हैं। अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थ होने पर भी यदि वह सूखा हो और जिह्वाके किसी शुष्क अंशसे लगाया जाय, तो हम उसका कुछ भी स्वाद नहीं पाते। जीभके कांटों पर रखने वा उसके ऊपरसे हिलानेसे हम पदार्थका स्वाद शीघ्र पा सकते हैं। मुंहके अन्दर जहांसे हम आस्वाद पाते हैं उस स्थान पर तरल पदार्थके हिलानेसे उसका स्वाद मालूम हो सकता है। स्वादविशिष्ट द्रव्यको निगलते समय हमारी घ्राण-वहनकारी स्नायुमण्डली थोड़ी बहुत उत्तेजित होती है। किसी उत्तम पदार्थको खाते अथवा पीते समय हम उसके स्वाद और गन्ध दोनोंका ही अनुभव करते हैं और दोनोंके मिश्रणसे हमें एक नवीन ही स्वाद प्राप्त होता है। बच्चेको किसी तरहकी अरोचक वस्तु खिलाते समय, जिससे उसे किसी तरहका स्वाद मालूम न पड़े, इसके लिए उसके नासारन्ध्रोंको दाब कर बन्द कर देते हैं। किसी चीजको खानेके बाद जो आस्वादका अंश रहता है, वह साधारणतः तीव्र होता है, पर अम्ल और सङ्कोचक औषधविशेषका परवर्त्ती आस्वाद मधुर होता है।

पदार्थके आस्वादसे हम खाद्यद्रव्यको पसन्द कर लेते हैं। आस्वादके समय लार निकल कर वह परिपाककार्यमें सहायता पहुंचाती है। इसलिए सुस्वादु भोजन ही हमारे लिए फायदेमन्द है।

जिह्वाको वागेन्द्रिय भी कहा जा सकता है, क्योंकि जिह्वाके रहने पर ही हम बात कह कर दूसरेसे अपने मनका भाव प्रकट कर सकते हैं। यदि जीभ न होती, तो मनुष्य कभी भी इतनी उन्नति नहीं कर सकता था। यद्यपि जीभसे आस्वाद ग्रहण किया जाता है, किन्तु तो भी बात कहने निमित्तसे ही इन्द्रियोंमें जिह्वाको उच्चासन दिया जा सकता है। इस जिह्वाका सदुपयोग करना चाहिये। दुनियामें जबानसे ही कितने मनुष्य प्रिय और कितने ही अप्रिय होते हैं। इसलिए सबको विरक्तिजनक कटुवाक्य न कह कर प्रिय और मीठी जबान बोलनी चाहिये। धर्मनिष्ठोंके मतसे जो जिह्वा भगवद्गुण नहीं गाती, वह जीभ ही वृथा है। वस्तुतः

जिस जीभसे धर्मविषयक चर्चा न हो कर परनिन्दा और धर्मविगर्हित बात निकलती है, वह जबान मांसका पिण्ड मात्र है।

गोह आदिकी जीभ दूसरी ही भांतिकी होती है, जो दो भागोंमें विभक्त है। इसकी जीभ लम्बी है जिसे यह बार बार निकालता रहता है। जीभसे इसको स्पर्शज्ञान होता है। इसकी जीभ बहुत ही पतली है और उसका अग्रभाग दो नलियोंमें विभक्त है।

कफादि दोषोंसे दूषित जिह्वाका लक्षण इस प्रकार है—जिह्वा वायुदूषित होने पर शाकपत्रको तरह प्रभा विशिष्ट और रूक्ष हो जाती है, पित्तदूषित होने पर लाल और काली हो जाती है, कफदूषित होने पर सफेद, भीगी और चिकनी (पिच्छिल) होती है तथा त्रिदोषान्वित होने पर खरखरी, काली और परिदग्ध हो जाती है। (भावप्रकाश)

जिह्वाकी उत्पत्तिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—उदरमें पच्यमान कफ-शोणित-मांसके आधानके लिए रक्तसारवत् सारभाग ही जिह्वा रूपमें परिणत हुआ है। (सुश्रुत शा० ४ अ०)

जैनमतानुसार—जीवको पाँच इन्द्रियोंमेंसे दूसरी इन्द्रिय। इसके दो भेद हैं, एक भाव-जिह्वा-इन्द्रिय और दूसरी द्रव्य-जिह्वाइन्द्रिय। हम लोगोंको जो दीखती है, वह द्रव्य-इन्द्रिय है और उसमें व्याप्त आत्मप्रदेशोंसे बनी हुई इन्द्रिय जो देखनेमें नहीं आती है, वह भाव-इन्द्रिय है। स्वाद स्पर्श आदिका ज्ञान द्रव्य-इन्द्रियकी सहायतासे उस भाव इन्द्रियको ही होता है। इसी लिए आत्माके निकल जाने पर फिर उसके द्वारा स्वाद आदिका ज्ञान नहीं होता। यह जिह्वा-इन्द्रिय पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (उद्भिद्) इन पांचके सिवा अन्य संसारके समस्त प्राणियों वा जीवोंके होती है। (तत्त्वार्थसूत्र २ अ०)

जिह्वाग्र (सं० क्ली०) जिह्वायाः अग्रं, ६-तत्। जिह्वाका अग्रभाग, जीभकी नोक, टूंड़।

जिह्वाजप (सं० पु०) जिह्वया जपः, ३-तत्। तन्त्रसारोक्त जपभेद, तन्त्रसारमें कहा हुआ एक प्रकारका जप। इसमें केवल जिह्वा ही हिलनेका विधान है।

"जिह्वाजपः सविज्ञेयः केवलं जिह्वया बुधैः।" (तन्त्रसार)

जप देखो।

जिह्वातल (सं० क्ली०) जिह्वाया तलं, ६-तत्। जिह्वाका पृष्ठभाग।

जिह्वानिर्लेखन (सं० क्ली०) जिह्वा निर्लिख्यऽनेन जिह्वाया निर्लेखनं संस्कारं निर-लिख-ल्युट्। जिह्वामार्जन, जीभी। सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा लौह निर्मित दशाङ्गुल परिमित सूक्ष्म तथा कोमल मार्जनीसे जीभ साफ करनी चाहिए। जीभ साफ करनेसे मुखकी विरसता तथा जिह्वा और दन्ताश्रित क्लेद दूर हो कर आरोग्य, रुचि, और मुखकी विशुद्धता सम्पादित होती है।

जिह्वाप (सं० पु०) जिह्वया पिबति पा-क। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ व्याघ्र, बाघ। ३ बिड़ाल, बिल्ली। ४ भल्लूक, भालू। ५ चित्रकव्याघ्र, चिता बाघ।

जिह्वापरीक्षा (सं० स्त्री०) जिह्वायाः परीक्षा, ६-तत्। जिह्वा यदि पतली, रेतीकी तरह पैनी और स्फोटकयुक्त हो, तो वायुज रोग; जीभसे रक्तस्राव हो, तो पित्तज तथा उसका रङ्ग सफेद, आस्वाद खट्टा और पानी निकलता हो, तो उसे श्लेष्मज रोग समझना चाहिये। कुछ काली हो कर उपजिह्वा (हलकका कौवा)-की ओर झुकनेसे सान्निपातिक समझना चाहिये। उस अवस्थामें जीभ यदि मुखसे बाहर निकल कर उलट जाय तो रोगीकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

(सार० कौ०)

जिह्वाप्रबन्ध (सं० पु०) जिह्वामूल, जीभकी जड़।

जिह्वामल (सं० क्ली०) जिह्वायाः मलं, ६-तत्। जिह्वा-स्थित मल, जीभ परका मैल।

जिह्वामूल (सं० पु०) जीभकी जड़।

जिह्वामूलीय (सं० पु०) जिह्वामूले भवः जिह्वामूल-छ। जिह्वमूलांगुलेश्छः। पा ४।३।६२। १ वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वाके मूलसे होता हो, वर्णाकृतिवर्ण, अयोगवाहान्तर्गत वर्णभेद। क, ख, परे रहने पर विसर्गके स्थानमें जिह्वामूलीय हो जाता है। जिह्वामूलीयका चिह्न इस प्रकार है, जैसे—हरिः काम्यः हरि + काम्यः। इसका उच्चारण विसर्गके समान है। (पाणिनि०)

कं, ख, ग, घ, ङ, इनका उच्चारणस्थान जिह्वामूल है, इसलिए इनको जिह्वामूलीय कहते हैं।

(सुपद्मव्याकरण)

(त्रि०) २ जो जिह्वाके मूलसे सम्बन्ध रखता हो।

जिह्वारद (सं० पु०) जिह्वा एव रदो दन्त इव यस्य। पक्षी।

जिह्वारोग (सं० पु०) जिह्वाया रोगः, ६-तत्। मुखरोगके अन्तर्गत रसना सम्बन्धी व्याधि, जीभका रोग। सुश्रुतके मतसे जिह्वागत रोग पाँच प्रकारका होता है—त्रिदोषजन्य तीन प्रकारका कण्टक रोग तथा चौथा अलास और पांचवां उपजिह्विका। वायुज जिह्वारोगमें जीभ फट जाती है, रसज्ञानका अभाव और शाकपत्रके समान उसका रङ्ग हो जाता है। पित्तज रोगसे जीभका रङ्ग पीला हो जाता है, दाह होता है और जीभ लाल काँटोंसे वेष्टित हो जाती है। कफजन्य रोगसे जीभ भारी मालूम पड़ती है, उसका मांस ऊँचा हो जाता है और जीभ पर बहुतसे काँटेसे उभर आते हैं। अलास रोगसे जीभके नीचेका भाग सूज जाता है। यह कफरक्तसे उत्पन्न होता है। यह सूजन बढ़ते बढ़ते इतनी बढ़ जाती है कि, फिर जीभ हिलाई डुलाई भी नहीं जा सकती ; साथ ही जिह्वामूल पक जाता है। जिह्वाका अग्रभाग फूल कर ऊँचा हो जाता है और उससे लार टपका करती है, खुजली और जलन होती है ; जीभकी ऐसी अवस्था होने पर उपजिह्विका रोग समझना चाहिये। (सुश्रुत०) जिह्वा देखो।

जिह्वारोगोंमें अलास रोग असाध्य है। (भावप्रकाश) इस रोगमें बृहत्‌खदिरवटिका एक अच्छी औषध है। इस वटिकाको मुंहमें रखनेसे गाल, ओष्ठ, जीभ, दाँत और तालू सम्बन्धी रोग नष्ट हो कर मुख सुरस और सुगन्धित हो जाता है, तथा दाँत मजबूत हो जाते हैं। इस वटिकासे जीभकी जड़ता दूर होती और भोजनमें रुचि बढ़ती है। जिह्वारोगमें दतुवन, स्नान, खटाई, मत्स्य, दही, दूध, गुड़, मोठ, रूखा अन्न, कठिन भोजन अधोमुख-शयन, भारी और कफजनक द्रव्य तथा दिनमें सोना यह सब छोड़ देना चाहिये। मुखरोग देखो।

जिह्वागत रोगमें रक्त-मोचण कराना हो सबसे श्रेष्ठ उपाय है। गुलञ्च, पिप्पली, निम्ब और कुटकीके गरम गरम क्वाथसे कुल्ला करनेसे जिह्वारोग दूर हो जाता है। पित्तज जिह्वारोगमें पत्र द्वारा जीभ घिस कर दूषित रक्त निकाल देना चाहिये। काकोल्यादिगणकृत अतिसारण गण्डूष, नस्य और मधुर द्रव्योंका प्रयोग करना उचित है। कफज जिह्वारोगमें जीभको मण्डलादि अस्त्रों द्वारा निर्लेखन कर रक्तमोचण करना चाहिये। बादमें अङ्गुलियों द्वारा मधुसंयुक्त पिप्पल्यादिगण चूर्ण घिसना चाहिये। उपजिह्वारोगमें जीभ पर कर्कश पत्र घिस कर यवक्षारसे प्रतिसारण करना चाहिये। नस्य, गण्डूष और धूम्र प्रयोगसे भी उपजिह्वारोग प्रशमित होता है। त्रिकटु, यवक्षार, हर्रे और चीता, इनके चूर्णको बराबर बराबर मिला कर घोंटनेसे अथवा इनके छिलकोंको चौगुने पानीमें तेलके साथ पाक करके प्रयोग करनेसे उपजिह्वा रोग आराम होता है।

जिह्वालिह् (सं० पु०) जिह्वया लेढ़ि जिह्वा-लिह-क्विप्। कुक्कुर, कुत्ता।

जिह्वालौल्य (सं० स्त्री०) पेटूकता, भुक्खड़पना।

जिह्ववत् (सं० पु०) १ यजुर्वेदोय वंशके अन्तर्गत एक ऋषिका नाम। (त्रि०) २ जिह्वायुक्त।

जिह्वाशल्य (सं० पु०) जिह्वाया शल्यमिव। खदिरवृक्ष, खैर, कत्था।

जिह्वास्वाद (सं० पु०) जिह्वया स्वादः, ३-तत्। लेहन, चाट।

जिह्विका (सं० स्त्री०) जिह्वा, जीभी।

जिह्वोल्लेखन (सं० क्ली०) जीभ छील कर साफ करनेका काम।

जिह्वोल्लेखनिका (सं० स्त्री०) वह जिससे जीभ छील कर साफ की जाती है, जीभी।

जी (हिं० पु०) १ चित्त, मन, तबीयत, दिल। जैसे—अब तो लिखते लिखते जी उकता गया, अबतो जी नहीं लगता। २ हौसला, हिम्मत, जीवट, दम। जैसे—अरे उसका जी ही कितना है, जो वहां जायगा, जी बढ़ानेके लिए लड़कोंको इनाम दिया जाता है। ३ संकल्प, इच्छा, चाह। जैसे—ज्यादा जी मत चलाओ, क्या करें यार उसे देखते ही उस पर मेरा जी चलता है।

(अव्यय) (सं० जित्, प्रा० जिय=विजयी अथवा सं० (श्री) युत, प्रा० जुक, हिं० जू) ४ एक सम्मानसूचक शब्द, यह किसी व्यक्तिके नामके पीछे लगाया जाता है। जैसे—धनपतरायजी, पण्डितजी इत्यादि। इसके सिवा यह शब्द किसी बड़ेके प्रश्न, कथन वा सम्बोधन करने पर उसके उत्तर रूपमें व्यवहृत होता है। यह संक्षिप्त प्रतिसम्बोधन कहलाता है। उदाहरण (१) प्रश्न—तुम आज बाजार गये थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (२) कथन-अङ्गूर तो मीठे निकले। उत्तर-जी हां, निकले तो मीठे हैं। (३) सम्बोधन—भगवान्दास। उत्तर—जी हां कहिये, अथवा जी।

हामी भरने या स्वीकारता देनेमें भी इस शब्दका प्रयोग किया जाता है। जैसे—तुम आज जाओगे? उत्तर-जी! (अर्थात् हां जाऊंगा)

जीउ (हिं० पु०) जीव देखो।

जीग़ा (तु० पु०) सिरपेच, कलगी, तुर्रा।

जीजा (हिं० पु०) बड़ी बहिनका पति, बड़ा बहनोई।

जीजी (हिं० स्त्री०) बड़ी बहिन।

जीजीबाई—प्रसिद्ध महाराष्ट्रवीर शिवजीकी माता। इनके स्वामी शाहजीके मुगलोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त होने पर इन्हें एक दुर्गसे दूसरे दुर्गमें आश्रय लेना पड़ा था। इसी समय १६२७ ई०में जूनाके पास शिवनके दुर्गमें शिवजीका जन्म हुआ था। एक बार ये मुगलों द्वारा पकड़ ली गई थीं, किन्तु पीछे मुक्त हो कर ये सिंहगढ़ आ गई थीं। शिवजी देखो।

शाहजीके दाक्षिणात्य चले जाने पर जीजीबाई पुत्रको ले कर पूनामें रहने लगीं। दादाजी कोण्डदेव नामक एक ब्राह्मण कर्मचारीने उनके रहनेके लिए वहां रङ्गमहल नामका एक उत्तम प्रासाद बनवा दिया था।

जीजीबेगम—अकबरकी धात्री और मिर्जा-अजीज कोकाकी गर्भधारिणी। अकबरने कोकाको खांआजिमकी उपाधि दे कर उन्हें उच्च पद पर नियुक्त किया था। १५९८ ई०में जीजीबेगमकी मृत्यु हुई। अकबरने इन्हें अपने कन्धे पर रख कर कबरिस्तानको ले गये थे। और पुत्रकी तरह उन्होंने अपना मस्तक और दाढ़ी-मूछें मुड़ाई थीं।

जीजुराना (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

जिझनी—ग्वालियर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ३३´ उ० और देशा० ७८° १०´ पू०के मध्य कुमारी नदीके किनारे ग्वालियरसे २४ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है।

जीत (हिं० स्त्री०) १ जय, विजय, फ़तह। २ लाभ, फायदा। ३ जिसमें दो या उससे अधिक विरुद्ध पक्ष हों ऐसे किसी कार्यमें सफलता ४ जहाजमें पालका बुताम। (लश०) ५ जीति देखो।

जीतना (हिं० क्रि०) १ विजय प्राप्त करना, शत्रुको हराना। २ ऐसे किसी कार्यमें सफलता पाना जिसमें दो वा उससे अधिक विरुद्ध पक्ष हों।

जीतल—एक प्रकारकी प्राचीन ताम्रमुद्रा। जितल देखो।

जीतसिंह—विनयामृत नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता

जीता (हिं० वि०) १ जीवित, जिंदा। २ तौल या नापमें कुछ अधिक।

जीतालू (हिं० पु०) अरारोट।

जीतालोहा (हिं० पु०) चुम्बक, मेकनातीस।

जीति (सं० स्त्री०) जि-क्तिन् वेदे दीर्घः। १ जय, जीत, फ़तह। २ हानि, नुकसान।

जीति (हिं० स्त्री०) जमुनाके किनारेसे नेपाल तक तथा अवध, विहार और छोटा नागपुरमें होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसके मजबूत रेशेसे रस्सी इत्यादि बनाई जाती हैं। रेशोंको टोगुम कहते हैं। रेशोंसे धनुषकी डोरी भी बनती है।

जीन (सं० त्रि०) ज्या-क्त सम्प्रसारणञ्च दीर्घः। १ जीर्ण, पुराना। २ वृद्ध, बुड्ढा।

जीन (फा० पु०) १ वह गद्दी जो घोड़ेकी पीठ पर रखी जाती है, चारजामा, काठी। २ पलान, कजावा। ३ एक प्रकारका मोटी सूती कपड़ा।

जीनगर—जीन बनानेवाले। बंबई प्रदेशके अन्तर्गत पूना, बेलगाम, बीजापुर आदि जिलोंमें रहनेवाली एक जाति। ये जीन अर्थात् घोड़ेकी पीठ पर कसनेकी काठी या पलान बनाते हैं, इसलिए फारसीमें इनका नाम जीनगर पड़ गया है। ये लोग अपनेको भाव

और सोमवंशीय क्षत्रिय बतलाते हैं। जीनगरोंका कहना है कि, ब्रह्माण्डपुराणमें उनकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें एक दिन देव और ऋषियोंने वृहदारण्यकमें एक यज्ञ प्रारम्भ किया। वृत्रासुरका पौत्र, दुर्धर्ष जनुमण्डल नामका दानव ब्रह्माके पाससे अमरत्व और अजेयत्वका वर प्राप्त कर इस यज्ञको बिगाड़नेके लिए वहां आया। देव और ऋषियोंने भयभीत हो महादेवका स्मरण किया। दानवके इस अत्याचारको देख कर महादेवको क्रोध आ गया और उनके ललाटसे पसीनाको एक बूंद टपक कर उनके मुखमें जा पड़ी। उस बूंदसे मौक्तिक वा मुक्तादेव नामका एक वीर उत्पन्न हुआ। मुक्तादेवने जब जनुमण्डलको युद्धमें पराजित कर देव और ऋषियोंको अभयदान दिया, तब उन लोगोंने खुश हो कर मुक्तादेवको उस स्थानका राजा बना दिया। दुर्वासाकी कन्या प्रभावतीके साथ मुक्तादेवका विवाह हो गया। प्रभावतीके गर्भसे मुक्तादेवके ८० पुत्र हुए। उनके वयःप्राप्त होने पर मुक्तादेवने उन्हें राज्य दे कर पत्नीके साथ वानप्रस्थ अवलम्बन किया। किन्तु पुत्रोंने गौरवमदमें मत्त हो कर एक दिन लोमहर्षण ऋषिका अपमान कर डाला। ऋषिने क्रोधमें आ कर यह अभिसम्पात दिया—"तुम लोगोंने राज्यमदमें मत्त हो कर ब्राह्मणका अपमान किया है, इस अपराधसे तुम लोग राज्यभ्रष्ट और वेदविधिरहित हो कर महाकष्टसे दिन बिताते रहोगे।" मुक्तादेवने पुत्रों पर इस दारुण ब्रह्मशापको पड़ते देख, अत्यन्त दुःखित हो कर शिवसे सब वृत्तान्त कहा। शिवने कहा, ब्रह्मशाप अव्यर्थ है। हां, मैं कहता हूं कि, तुम्हारे पुत्र छिप कर वेदविधिका अनुष्ठान करेंगे तथा 'आर्यक्षत्री' उपाधि त्याग कर चित्रकार, स्वर्णकार, शिल्पकार, पटकार (तन्तुवाय), रेशमकर, लुहार, मृत्तिकाकर और धातुमृत्तिकाकार, इन आठ नामोंसे प्रसिद्ध होंगे और उन्हीं वृत्तियोंका अवलम्बन कर जीविका निर्वाह करेंगे।

इनमें श्रेणीविभाग नहीं है। सबमें परस्पर रोटी बेटी चलती है। इनकी प्रधान प्रधान उपाधि चवान घेड्ले, यादव मलीदकार, काम्बली, नवगीर, पोवर आदि हैं। इनमें आङ्गिरस, भारद्वाज, गौतम, कण्व, कौण्डिन्य, वशिष्ठ आदि आठ गोत्र हैं। पुरुषोंका शरीर गठीला और रंग काला है। स्त्रियां दुबली, गोरी और देखनेमें खूबसूरत हैं। पुरुष सिर पर चोटी रखते हैं तथा महीनेमें एकबार मस्तक मुड़ाते और ललाट पर चन्दन पोतते हैं। स्त्रियां ललाट पर सिन्दूर लगातीं और मस्तकके पीछेकी तरफ चोटी बांधती हैं। कुलाङ्गनाएं नकली बालों वा फूलोंसे मस्तक नहीं सजातीं, कहती हैं यह सब तो वेश्या और नाचनेवालियोंके ही लायक है।

इनकी भाषा मराठी है, पर कनाड़ी भी बोलते हैं। ये लोग परिश्रमी, बुद्धिमान्, सुदक्ष, स्वावलम्बी, शान्तप्रकृति आतिथेय और शिष्ट हैं। पेशवाओंने इनमेंसे बहुतोंको शिल्पकार्यके पुरस्कार स्वरूप भूमि और मकान आदि दिये हैं, जीन, घोड़ाके अन्यान्य साज इत्यादि बनाना ही इनकी पैतृक उपजीविका है। इस समय अधिकांश लोग सूत्रधर, स्वर्णकार, लौहकार, चित्रकर आदिका कार्य करते हैं। बहुतसे जिल्द और खिलौने बनाते हैं। कोई कोई घड़ी मरम्मत करने आदिका काम भी करते हैं। ये घरमें गाय, भैंस, घोड़े आदि पालते हैं। बकरी, भैंसा आदिके मांस खानेमें इनको कोई उज्र नहीं, छिपा कर देशी शराब भी पीते हैं।

ये लोग दाक्षिणात्यके ब्राह्मणोंके समान धोती, चद्दर, कुर्ता, पगड़ी और जूता इत्यादि पहनते हैं। पुरुष दूकानोंमें बैठ कर अपना अपना काम करते हैं और स्त्रियां घरका काम पूरा कर कभी कभी उनको सहायता पहुंचाती हैं। इनके लड़के ११।१२ वर्षकी उम्रसे बापके कार्यमें नियुक्त होते हैं और १७।१८ वर्षकी अवस्थामें वे पक्के कारीगर बन जाते हैं। ये वैष्णवधर्मको मानते हैं, किन्तु घरमें गणपति, विठोबा, भवानी आदिकी मूर्ति भी रखते हैं। ब्राह्मण पुरोहित इनकी याजकता करते हैं। इनके क्रियाकलाप तथा व्रत उपासनादि हिन्दूमतानुसार होते हैं। सन्तान उत्पन्न होने पर षष्ठीपूजा होती है। बालकका ११ माससे लगा कर ३ वर्षके भीतर चूड़ाकरण तथा ५वें, ७वें वा ८वें वर्षमें उपनयन होता है। ये लोग पुत्रको ३० वर्ष तक अविवाहित रख सकते हैं, किन्तु कन्याका विवाह १२ वर्षसे पहले ही कर देते हैं।

ये मुर्देको जलाते हैं। अग्निसत्कारके समय इनको तरह तरहका भोज्य उत्सर्ग करना पड़ता है। सामाजिक किसी विषयकी मीमांसा करनी हो, तो प्रधान प्रधान व्यक्ति एकत्र सभा करके उस कार्यको करते हैं। ये लोग अपनेको सोमवंशीय क्षत्रिय कहते हैं और उच्चश्रेणीके हिन्दुओंके समान आचारादि अनुष्ठान करते हैं। सब साफ-सुथरे रहते हैं, किन्तु हिन्दू समाजमें ये निम्नस्थानीय हैं। उच्चश्रेणीके इनसे हिन्दू घृणा करते हैं। एक बार पूनाके नाइयोंने अपवित्र जाति कह कर इनकी हजामत बनानेके लिए मनाई कर दी। इस पर इन लोगोंने नाइयोंके नाम इस अपवादके लिए अभियोग किया। यह कहना फिजूल है कि इनका आवेदन अग्राह्य हुआ था। पूना वासियोंका कहना है कि, जीनगर लोग चमड़ेसे घोड़का साज बनाते हैं, इसलिए वे अपवित्र हैं। और बहुतसे ऐसा भी कहते हैं कि, किसी लाभजनक वृत्तिके मिलने पर ये अपनी वृत्तिको छोड़नेमें नहीं हिचकते, इसीलिए इन लोगोंसे सब घृणा करते हैं।

ये लोग अपने लड़कोंको पढ़ानेके लिए पाठशालाओंमें भेजते जरूर हैं, पर शिक्षाकी तरफ इनका लक्ष कम है। साधारणतः ये लोग ११।१२ वर्षकी उम्र होते ही लड़कों को अपने अपने काममें लगा लेते हैं। इनका वासस्थान साफ-सुथरा और नाना प्रकारकी गृहसामग्रियोंसे परिपूर्ण रहता है।

जिनगरोंका और एक नाम पाँचचाल भी है। बहुतोंका यह कहना है कि, ये पाँच प्रकारकी चाल अर्थात् कार्य द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, इसलिए इनका नाम पाँचचाल पड़ा है। बहुतसे यह भी कहते हैं कि, पाँचचाल लोग पहले बौद्ध थे और अब भी छिप कर बौद्धकी उपासना करते हैं। यदि ऐसा ही है, तो यह अनुमान किया जा सकता है कि, पाँचचाल शब्द बौद्धोंकी प्राचीन उपाधि पञ्चशील अर्थात् पञ्च धर्मनीतिग्रन्थसे उत्पन्न हुआ है।

जीनत (फा० स्त्री०) १ शोभा, छवि, खूबसूरती। २ शृङ्गार, सजावट।

जीनपोश (फा० पु०) वह कपड़ा जो जीनके ऊपर ढका रहता है।

जीनसवारी (हिं० स्त्री०) घोड़े पर जीन रख कर चढ़नेका कार्य।

जीना (हिं० क्रि०) १ जीवित रहना, जिन्दा रहना। २ जीवनके दिन बिताना, जिन्दगी काटना। ३ प्रसन्न होना, प्रफुल्लित होना।

जीभ (हिं० स्त्री०) जिह्वा देखो।

जीभा (हिं० पु०) १ जीभके आकारकी कोई वस्तु। २ मवेशियोंकी जीभकी एक बीमारी, अवार। ३ बैलोंकी आँखकी एक बीमारी। इसमें उसकी आँखका मांस बैठ कर लटक जाता है।

जीभी (हिं० पु०) १ वह वस्तु जिससे जीभ छील कर साफ की जाती है। यह किसी एक धातुकी पतली लचीली और धनुषाकारमें बनी रहती है। २ मैल साफ करनेके लिये जीभ छीलनेकी क्रिया। ३ निब, लोहेकी चद्दरकी बनी हुई चोंच। ४ गलशुण्डी, छोटी जीभ। ५ मवेशियोंका एक रोग। ६ लगामका एक भाग।

जीभीसाभा (हिं० पु०) चौपायोंका एक रोग।

जीमट (हिं० पु०) पेड़ों और पौधोंके धड़, शाखा और टहनी आदिके भीतरका गूदा।

जीमना (हिं० क्रि०) आहार करना, भोजन करना, खाना।

जीमूत (सं० पु०) जयति आकाशमिति जि-क्त। १ पर्वत, पहाड़। २ मेघ, बादल। ३ मुस्ता, मोथा। ४ देवताड़ वृक्ष। ५ इन्द्र। ६ भृतिकर, पोषण करनेवाला, रोजी देनेवाला। ७ घोषालता, कड़ए तोरई। ८ सूर्य। ९ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम जिनका उल्लेख महाभारतमें है। १० मल्लविशेष, एक मल्लका नाम। ये विराट्‌की सभामें रहते थे। ये वल्लभवेशी भीमके हाथसे लड़ाईमें मारे गये थे। ११ हरिवंशके अनुसार ख्यातनामख्यात दशार्हके पौत्रका नाम। १२ वपुष्मत्‌के पुत्रका नाम। ये शाल्मली द्वीपके राजा थे। इनके सात पुत्र थे।

"शाल्मलस्येश्वराः सप्त सुतास्ते तु वपुष्मतः।"

(ब्रह्माण्डपु० १६)

१३ शाल्मलीद्वीपका एक वर्ष। १४ छन्दोविशेष,

एक प्रकारका छन्द। १५ दण्डकभेद, एक प्रकारका दण्डक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और ग्यारह रगण होते हैं। यह प्रचितके अन्तर्गत है।

जीमूतक (सं॰ पु॰) जीमूत स्वार्थे-कन्। जीमूत देखो।

जीमूतक तैल (सं॰ क्लो॰) कोशातकीतैल, तरोईका तेल।

जीमूतकूट (सं॰ पु॰) जीमूत: मेघ: कूटे शिखरे यस्य। क्षुद्रशैल, छोटा पहाड़, पहाड़ी।

जीमूतकेतु (सं॰ पु॰) हिमालयस्थित विद्याधर राजाका नाम। ये जीमूतवाहनके पिता थे। जीमूतवाहन देखो।

जीमूतमुक्ता (सं॰ स्त्री॰) जीमूत अर्थात् मेघसे उत्पन्न मुक्ता वा मोती। प्राचीन रत्नशास्त्रादिमें इस अद्भुत मुक्ता-का वर्णन मिलता है, पर मेघसे किस तरह मोती पैदा होता है, यह समझमें नहीं आता। क्या प्राचीन शास्त्र कारोंने मेघसे मेघान्तरगत तड़ित्प्रभाको अथवा सूर्यकी किरणोंसे विभाषित नानावर्णको दीप्तिमान् विमानस्थ जल-बिन्दु या करकाखण्डोंको देख कर मेघमुक्ताके अस्तित्वका अनुमान किया था? वा यह कविकी कल्पना मात्र है? अथवा मेघमुक्ता सचमुच हो कोई पदार्थ है, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, पृथिवी पर यह मोती मिलता नहीं। जिन्होंने मेघ-मुक्ताका वर्णन किया है, वे खुद हो कहते हैं कि, मेघसे मुक्ता उत्पन्न होते हो, देवगण उसे ले जाते हैं। ऐसी दशामें इसका होना न होना बराबर है।

कुछ भी हो, प्राचीन शास्त्रकारोंने शुक्ति, गज, सर्प आदिकी भाँति मेघमुक्ताका भी निर्देश किया है। जैसे - (क) "मत्स्य, सर्प, शङ्ख, वराह, वंश, मेघ और शुक्तिसे मोती उत्पन्न होते हैं, जिनमेंसे शुक्तिजात मुक्ता ही उत्तम और ज्यादा हैं।

(ख) हस्ती, सर्प, शुक्ति, शङ्ख, मेघ, बांस, तिमि-मत्स्य और शूकरसे मुक्ताकी उत्पत्ति होती है, जिसमें शुक्तिज मुक्ता ही उत्तम और प्रचुर हैं। (बृहत्संहिता)

इसके अतिरिक्त गरुड़पुराण, अग्निपुराण, युक्तिकल्पतरु आदि ग्रन्थोंमें मेघ-मुक्ताका वर्णन है। शास्त्रकारोंने इसके आकार और गुण-अवगुणके विषयका भी वर्णन किया है। बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है कि, मेघमें जिस प्रकार वर्षोपल अर्थात् ओले उत्पन्न होते हैं, उसी तरह मोती भी उत्पन्न होते हैं। ओले जिस प्रकार मेघोंसे गिरते हैं, यह मोती भी उसी तरह सप्तम वायुके स्कन्धसे भ्रष्ट हो कर गिरते हैं। परन्तु ये जमीन पर नहीं गिरते, देवता लोग इन्हें बीचहीसे उड़ा ले जाते हैं।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है कि, जलबिन्दुके विकार विशेषसे मेघ और मुक्ताका उत्पत्ति है, जो मनुष्यके लिए दुर्लभ है। देव इन्हें आकाशसे हो हरण कर लेते हैं। मेघसे उत्पन्न मणि मुरगीके अण्डेकी भाँति गोल, ठोस, वजनमें भारी और सूर्य-किरणकी भाँति दीप्तिशाली होती है। यह देवताओंके लिए भोग्य और मनुष्यकी अलभ्य है।

गरुड़पुराणमें लिखा है कि, मेघसे उत्पन्न मुक्ता या मोती पृथिवी पर नहीं गिरता, आकाशसे हो देवता उन्हें ले जाते हैं। इस मोतीके तेज और प्रभासे दिशाएं प्रकाशित हो जाती हैं। यह आदित्यकी तरह दुर्निरीक्ष्य है। इसकी ज्योति हुताशन, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह और ताराओंके तेजको भी मन्द कर देती है। यह मोती क्या दिन और क्या रात, सब समय समान दीप्ति-कर है। इसके मूल्यके विषयमें उक्त पुराणकर्त्ता ऐसा लिखते हैं—हमारा विश्वास है कि, भवनादियुक्त सुवर्ण-पूर्ण इस चतु:समुद्रा समग्र पृथिवीका भी मूल्य मेघमुक्ता-के समान होगा या नहीं, इसमें सन्देह है।

इन्होंने और भी लिखा है कि—'नीच व्यक्तिको भी यदि कभी पुण्यबलसे यह मिल जाय, तो वह भी शत्रु-हीन हो कर समग्र पृथिवीका राजा हो सकता है। यह सिर्फ राजाओंके लिए ही शुभकारी हो ऐसा नहीं, यह प्रजाको भी सौभाग्यका कारण है। यह मोती चारों और सौ योजन स्थान तक अनिष्टका निवारण करता है। जल, ज्योति: और वायुसे मेघोंकी उत्पत्ति है, इसलिए मेघ-मुक्ताके भी तीन भेद हैं। जलाधिक मेघजात होनेसे वह अत्यन्त स्वच्छ और अतिशय कान्तियुक्त होता है। ज्योति:प्रधान मेघसे उत्पन्न मोती गोल, अच्छी कान्ति-युक्त और सूर्य-किरणकी तरह किरणशाली होता है; इसलिए दुर्निरीक्ष्य है। वायुप्रधान मेघसे उत्पन्न मोती सबसे निर्मल और हलका होता है।

जीमूतमूल (सं० क्ली०) जीमूतस्य मुस्ताया मूलमिव मूलमस्य। शटी, कपूर कचरी।

जीमूतवाहन (सं० पु०) जीमूतो मेघो वाहनमस्य। १ मेघवाहन, इन्द्र। २ शालिवाहनके पुत्र। गौण आश्विन कृष्णा अष्टमीको स्त्रियां जीमूतवाहनकी पूजा करती हैं। जितष्टमी देखो। ३ विद्याधरराज जीमूतकेतुके पुत्र, प्रसिद्ध नागानन्दके नायक। जीमूतवाहनने यौवराज्य पद पर अभिषिक्त हो कर पिताकी अनुमतिसे राज्यकी सारी प्रजा और याचकोंको दारिद्रशून्य कर दिया तथा इनके आत्मीयोंके राज्यलोलुपी होने पर इन्होंने बिना युद्धके उनको राज्य दे दिया। पीछे ये पितामाताके साथ मलय पर्वतके पास सिद्धाश्रममें जा कर रहने लगे।

कुछ दिन बाद मलयपर्वतवासी सिद्धराज विश्वावसुके पुत्र मित्रावसुके साथ इनकी मित्रता हो गई। एकदिन इन्होंने मित्रावसुकी बहन मलयवतीको देख कर उन्हें अपनी पहले जन्मकी स्त्री जान पहिचान लिया और वे उनके प्रति प्रणयसे आसक्त हो गये। इसके उपरान्त एक दिन मित्रावसुने प्रस्ताव किया कि—"सखे! मैं अपनी बहन मलयवतीको तुम्हें अर्पण करना चाहता हूं।" जीमूतवाहनने कहा—"सखे! मैं पहले जन्ममें व्योमचारी विद्याधर था। एकदिन भ्रमण करते करते मैं हिमालयकी चोटी पर पहुंचा, वहां क्रीड़ारत हरगौरीने मुझे देख कर शाप दिया, उसी शापसे मैं मनुष्यजन्म धारण कर वल्लभी नगरवासी एक धनी वणिक्‌का पुत्र हो वसुदत्त नामसे प्रसिद्ध हुआ। एकदिन मेरे वाणिज्यार्थ बाहर जाने पर डकैतोंके एक झुण्डने मुझ पर आक्रमण कर मुझे बाँध लिया और वे मुझे चण्डीके मन्दिरमें बलि देनेके लिए ले गये। चण्डाल-राज पूजा कर रहे थे, उन्होंने मुझे देख कर मेरे बन्धन खोल दिये और मेरे बदले वे अपना शरीर बलि देनेको उतारू हो गये। इसी समय देववाणी हुई—'तुम शान्त होओ, मैं प्रसन्न हुई हूं, वर मांगो।' शवरराजने यह वर मांगा—'मैं जन्मान्तरमें इस वणिक्‌पुत्रका मित्र होऊं।' कुछ दिन बाद डकैतीके अपराधमें राजाने चण्डालराजको प्राणदण्डकी आज्ञा दी। मैंने राजासे मेरे प्रति उनके उपकारकी सब बातें कहीं और उनके प्राणोंकी भिक्षा मांगी। वे बहुत दिनों तक मेरे घर थे, पीछे अपनी स्त्रीको मेरे घर छोड़ कर वे अपने देश चले गये।

एकदिन उन्होंने मृगकी खोजमें घूमते हुए सिंह पर सवार एक लड़की देखी, कन्याको मेरे अनुरूप समझ कर मेरे साथ उनके विवाहका प्रस्ताव किया। कुमारीने मुझे देखना चाहा, तदनुसार वे मुझे ले गये। कुमारीने मुझे देख कर विवाह करना स्वीकार किया। फिर हम लोग सिंह पर सवार हो घर आये, मेरी भावी-पत्नी मित्रको भाई कहने लगीं। शुभदिनमें मेरा विवाह हो गया। उस सभामें सिंहने अपना शरीर छोड़ कर मनुष्य-शरीर धारण कर लिया और कहा—मैं चित्राङ्गद नामका विद्याधर हूं, यह मेरी कन्या है, मनोवती इसका नाम है। मैं इसको गोदमें ले कर जंगलमें घूमता था। एकदिन मैं इसे ले कर भागीरथीके ऊपरसे जा रहा था कि, इतनेमें मेरे मस्तककी माला पानीमें गिर गई। दैववश उस पानीमें देवर्षि नारद स्नान कर रहे थे। माला उनके मस्तक पर लगते ही उन्होंने शाप दिया। मुझे सिंहके रूपमें परिवर्तित कर दिया। मैं तभीसे इस कन्याको ले कर इस रूपमें था। मेरे शापकी सीमा यहीं तक थी। अब तुम लोग सुखसे रहो।" इतना कह कर वे अन्तर्हित हो गये। कालान्तरमें मेरे एक पुत्र हुआ जिसका नाम हिरण्यदत्त रक्खा गया। उस पुत्र पर सब भार दे कर मित्र और पत्नीके साथ मैं कालञ्जर पर्वतको चल दिया। वहां विद्याधरत्व प्राप्त होने पर मनुष्यदेह त्यागनेके समय मैंने महादेवसे प्रार्थना की कि, पीछे जिससे इनको बन्धुरूपमें और मनोवतीको पत्नीरूपमें प्राप्त कर सकूं। फिर ऊंचे स्थानसे गिर कर उस शरीरको त्याग दिया। सखे! तुम वही मित्र हो और तुम्हारी यह बहन मेरी पूर्वजन्मकी सहचरी है, इसलिए इनके साथ विवाह करनेमें मुझे क्या आपत्ति है?" इसके उपरान्त दोनोंका विवाह हो गया।

एकदिन ये मित्रके साथ भ्रमण कर रहे थे कि, इतनेमें कोई व्यक्ति एक युवकको बहुत ऊंची शिला पर रख कर चला गया। युवक भयसे रोने लगा। यह देख वे उसके पास गये और दयासे इन्होंने उनका परि-

चय पूछा। युवक उत्तर दिया—'मेरा नाम शङ्खचूड़ है। गरुड़ मुझे भक्षण करेगा, इसलिए मैं यहां लाया गया हूं।' इन्होंने कहा—'सखे! तुम घर जाओ, मैं तुम्हारे बदले गरुड़का भक्ष्य होऊंगा।' यह कह कर इन्होंने शङ्खचूड़को विदा किया और उसके बदले स्वयं बैठ गये। कुछ देर पीछे गरुड़ आ कर उनको भखने लगा। इस समय सहसा पुष्पवृष्टि होने लगी। गरुड़ने विस्मित हो कर इनका परिचय पूछा और इनके अनुरोधसे समस्त मृत जीवोंको जिला दिया। इसके उपरान्त ज्ञातिवर्गोंने इनका महत्त्व जान कर इनको राज्य लौटा दिया। ये सुखसे राज्य करने लगे (कथासरित्सागर)

४ धर्मरत्न नामक स्मृतिके संग्रहकर्त्ता।

५ एक प्रसिद्ध स्मार्त पण्डित। इन्होंने मनुसंहिता पर भाष्य बनाया था। ये ईसाकी ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुए थे।

जीमूतवाही (सं० पु०) जीमूतं मेघमुद्दिश्य वहति उर्द्धं गच्छति, वह णिनि। धूम, धुवां।

जीमूताष्टमी (सं० स्त्री०) गौण आश्विन मासकी अष्टमी। जिताष्टमी देखो।

जीमूता (सं० स्त्री०) १ देवदाली, एक प्रकारकी लता। देवदाली देखो। २ जलमुस्ता, जलमोथा।

जीयट (हिं० पु०) जीवट देखो।

जीयदान (हिं० पु०) प्राणदान, जीवनदान।

जीया-उद्-दीन् नकसबी—प्रसिद्ध तूतानामा अर्थात् शुक सारीका उपन्यास, गुलरेज आदि फारसी ग्रन्थोंके रचयिता।

जीया-उद्-दीन् बरनी—एक मुसलमान-इतिहासलेखक। ये सुलतान महम्मद तुगलक और फिरोजशाह तुगलकके समयमें आविर्भूत हुए थे। बरन अर्थात् वर्त्तमान बुलन्द शहरमें इनका जन्म हुआ था, तदनुसार इन्होंने जीया-ए-बरनी नामसे अपना परिचय दिया है। इन्होंने 'तवारीख-ए फिरोजशाही' नामक एक फारसी ग्रन्थ लिखा है, जिसमें सुलतान गियास-उद्-दीनसे ले कर फिरोज शाह तुगलक तक आठ बादशाहोंका इतिहास है।

जीर (सं० पु०) जवतीति जु-रक्। जीरी च। उण् २।२३। ईस्वान्तादेशः। १ जीरक, जीरा। २ खड्ग, तलवार। ३ अणु, परमाणुसे बड़ा कण। ४ केसर, फूलका जीरा। (त्रि०) ५ जवशील। ६ क्षिप्र, तेज, जल्दी चलनेवाला। ७ शत्रुका हानिकर, दुश्मनको नुकसान पहुंचानेवाला।

जीरक (सं० पु०) जीर संज्ञायां कन्। स्वनामप्रसिद्ध एक पदार्थ जो सौंफके आकारका और उससे कुछ छोटा होता है, जीरा। इसका पौधा डेढ़ दो हाथ ऊंचा होता है, और पत्तियां दूबकी तरह लम्बी और बहुत बारीक होती है। इसमें सौंफकी तरह लम्बी सींकों पर फूलोंके गुच्छे लगते हैं। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—जरण, जीर्ण, जीर, जीरण, अजाजी, अजाजिका, कणा, दीप्य, दीपक, मागध, वह्निशिखा। जीरकके गुण—यह कटु, उष्ण, दीपन तथा वात, गुल्म, आध्मान, अतीसार, ग्रहणी और क्रिमिको नाश करनेवाला (राजनि०), रुचि और स्वादकर, गन्धयुक्त, कफवातनाशक, पाकमें कटु, तीक्ष्ण, लघु और पित्तवर्द्धक है। (राजव०)

जीरक तीन प्रकारका होता है—श्वेतजीरक, कृष्णजीरक और वृहत् जीरा। सफेद जीराको जीरक, जरण, अजाजी, कणा और दीर्घ जीरक कहते हैं। काला जीराको सुगन्ध, उद्गारशोधन, कणा, अजाजी, सुसवी, कालिका, पृथ्विका, कारवी, पृथ्वी पृथु, कृष्णा और उपकुञ्चिका। उपजालिका तथा वृहत् जीराको उपकुञ्ची और कुञ्ची कहते हैं। जीरकको फारसीमें जीरः, अरबीमें कमून, अंग्रेजीमें कुमिन (Cumin) और ब्रह्म भाषामें जीय कहते हैं।

जीरा पेड़से पैदा होता है। इसके प्रधानतः दो भेद हैं—एक सफेद और दूसरा काला। हिन्दुस्तानमें कालेको काला जीरा और सफेदको सफेद जीरा कहते हैं। दाक्षिणात्यमें शाजीरा शब्दसे दोनों तरहके जीराका बोध होता है।

जीरा भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र थोड़ा बहुत पैदा होता है, पर बङ्गाल और आसाममें इसकी उपज बहुत कम है।

कोई कोई युरोपीय विद्वान् कहते हैं कि, पहले भारतवर्षमें जीराके वृक्ष न थे, किन्तु पारस्य देशसे यहां लाये गये हैं और फिर उनकी आबादी की गई है। और किसी किसी विद्वान्का यह कहना है कि, भूमध्यसागर-

के उत्तरीय प्रदेशमें यह बहुत आया है। इस जीरेका रंग धूसर और स्वाद उत्तम, पर सौंफ जैसा नहीं वल्कि कुछ तीव्र है। यूरोपमें तथा सिसिली और माल्टा द्वीपमें इसकी फसल हुआ करती है। शतद्रु नदीके निकटवर्त्ती प्रदेशमें जीरा बहुत उत्पन्न होता है। जीरासे एक प्रकारका तेल (अर्क) बनता है जो रोग उपशमकारी होता है। यह तेल कुछ पीला और साफ होता है; पर इसका स्वाद कड़ुआ, कषाय-गुणयुक्त और वह प्राणके लिए विरक्तिजनक होता है।

जीरा साधारणतः वातघ्न, वायुनाशक, सुगन्धयुक्त और उत्तेजक है। उदरामय और अजीर्णरोगमें इसका व्यवहार किया जा सकता है; यह सङ्कोचक भी है। भारतवर्षमें प्रत्येक स्थानके बाजारमें जीरा मिलता है, यह मसालेकी तरह खाया जाता है। इसका तेल वायुनाशक है। जीरा और उसके तेलमें धनियाँकी भाँति वायुनाशक गुण है, पर औषधके लिए भारतवर्षीय वैद्य इसको जितना काममें लाते हैं, यूरोपीय उतना नहीं लाते। इसमें शैत्यगुण अधिक है, इसलिए मेहरोगमें इसका प्रयोग होता है। इसको बाँट कर पुल्टिस लगानेसे उत्दाह और यन्त्रणा दूर हो जाती है। यहूदी लोग त्वक्छेदनके समय जीरेकी पुल्टिस लगाते हैं। मुसलमान लोग जीरेको खूब तारीफ करते हैं और उसको मिष्टान्नमें डाल कर खाते हैं। अरब और पारस्यदेशीय ग्रन्थोंमें ४ प्रकारके जीरेका उल्लेख है, जैसे--फारसी, नवती, किरमानी (स्याह जीरा) और शान, अर्थात् सिरीय जीरा।

वैद्यकके अनुसार बिच्छूके काटने पर मधु, नमक, और घीके साथ जीरा मिला कर प्रलेप लगानेसे यन्त्रणा दूर हो जाती है। डाक्टर रैटनका कहना है कि, गर्भवतीको पित्ताधिक्यके कारण वमन होने पर निम्बूके रसमें जीरा मिला कर उसका सेवन करनेसे वे बन्द हो जाती है। बच्चा पैदा होनेके उपरान्त प्रसूतिको दूध बढ़ानेके लिए स्याहजीरा खिलाया जाता है। थोड़ा घी मिला कर नलीमें भजा कर जीरेका धुआँ पीनेसे हिचकी बन्द होती है। जीरेके द्वारा बहुतसी रासायनिक प्रक्रियाएँ हुआ करती हैं। मि० डाइमक द्वारा रचित चिकित्सातत्त्वमें इसका विशेष विवरण है।

इसका आकार सौंफसे मिलता जुलता है। पर यह सौंफसे कुछ बड़ा और फीका होता है। पहले अंग्रेज लोग जीरा मसालेकी तरह खाते थे, पर अब वे सौंफ खाते हैं। भारतमें यह दाल, तरकारी आदिमें मसालेकी तरह खानेके काममें आता है, इससे अचार भी बनता है।

जीरा बहुत पूर्वकालसे प्रचलित है। बहुत प्राचीन पुस्तकोंमें इसका उल्लेख मिलता है। मध्ययुगमें यूरोपके लोग इस मसालाको बहुत पसन्द करते थे। १३ वीं शताब्दीमें इंग्लैण्डमें इसका मामूली तौरसे व्यवहार होता था। अब यूरोपमें सौंफ ज्यादा काममें आने लगा है। माल्टा, सिसिली और मरक्कोसे जीरा इंग्लैण्डको जाता है और कुछ कुछ भारतसे भी जाता रहता है। १८७१ ई०में भारतसे जीरेकी रफ्तनी उठा दी गई। इस समय पारस्य, तुर्किस्तान आदि देशोंसे जीरा भारतमें आता है और भारतसे भी जीरेको इंग्लैण्ड, फ्रान्स आदि देशोंको रफ्तनी होती रहती है।

भारतमें जीरेका प्रादेशिक वाणिज्य वैदेशिक वाणिज्यसे कहीं ४ गुना अधिक है, पर किस प्रदेशमें कितना जीरा खर्च होता है, इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ। जीरा युक्तप्रदेश और पञ्जाबमें ज्यादा उत्पन्न होता है। बम्बई प्रदेशमें जीरा जबलपुर, गुजरात, रतलाम और मस्कटसे आता है। पहले लोगोंका विश्वास था कि, जीरेका धुआँ पीनेसे मुख विवर्ण हो जाता है। कृष्णजीरक देखो।

इस देशके वैद्यक मतसे—तीनों प्रकारका जीरा रूक्ष, कटु, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, हलका, धारक, पित्तवर्द्धक, मेधाजनक, गर्भाशयशोधक, ज्वरनाशक, पाचक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक रुचिजनक, कफनाशक, चक्षुके लिए हितकारक तथा वायु, उदराध्मान, गुल्म, वमन और अतीसार नाशक है। (भावप्र०) इससे जो तेल बनता है, वह बहुत सुगन्धित, वायुनाशक और उष्णकारक है।

जीरकद्वय (सं० क्ली०) शुक्लपीत जीरक, सफेद रङ्ग लिये पीला जीरा।

जीरका (सं० स्त्री०) शालिधान्य, कार्त्तिक और अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

जीरकादिमोदक (सं० पु०) जीरक आदिर्येषां सः तादृशः मोदकः, कर्मधा० । वैद्यकोक्त मोदक औषधविशेष, एक दवाका नाम । इसके बनानेका तरीका इस प्रकार है— अच्छा चूर्णित जीरा ८ पल, घृतभर्जित और वस्त्रपूत सिद्धिबोजचूर्ण ४ पल, लौह, वङ्ग, अभ्र, सौंफ, तालीशपत्र, अयिवी, जायफल, धनिया, त्रिफला, गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर, लवङ्ग, शैलज (छरीला), श्वेतचन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, द्राचा, शठी (कचूर), सुहागा, कुन्दुरुखोटी, यष्टीमधु, वंशलोचन, काकोली, बाला (सफेद मिर्च), गोरचो, त्रिकटु, धातकीपुष्प, बिल्वपेशी, अञ्जनत्वक्, शुलुफा, देवदारु, कर्पूर, प्रियङ्गु, जीरक, मोचरस, कटुकी, पद्मकाष्ठ, नलिका इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २ तोला ; यह सब मिला कर जितना हो, उससे दूनी चीनी मिला कर पाक करना चाहिये। पाक हो जाने पर घी और मधु मिला कर मोदक बना लेना चाहिये। फिर इसकी १ तोलेकी खुराक बना कर खाना चाहिये। इसके सेवनसे सब तरहके ग्रहणी और अम्लपित्तादि नाना रोग नष्ट हो जाते हैं।

(भैषज्य-रत्नावली, ग्रहण्यधिकार)

और भी एक प्रकारका जीरकादिमोदक है, जिसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—जीरक, त्रिफला, मुस्त, गुडूचीत्वक्, अभ्र, नागकेशरपत्र, नागकेशरत्वक्, इलायची, लवङ्ग, खेतपर्पटी, इनका प्रत्येकका चूर्ण १ कर्ष (या २ तोला), इन सबसे दूनी चीनी मिला कर पाक करना चाहिये। पाक हो जाने पर थोड़ा घी और मधु डाल कर मोदक बनाना चाहिये । इसको १ तोला सुबह खा कर, पीछे ठण्ढा पानी पीना चाहिये। यह मोदक जीर्णज्वर, विषमज्वर, प्लीहा, अग्निमान्द्य, कामला और पाण्डुरोगको नष्ट करता है। इस मोदक को स्वयं महादेवने बनाया था।

(चिकित्सासारसं० ज्वराधिकार)

जीरकाद्यचूर्ण (सं० क्लो०) जीरकाद्यं चूर्णं, कर्मधा० । वैद्यकोक्त एक औषध । इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—जीरा, सुहागा, मोथा, पाठा (निमुका), बेलगरी धनिया, बाला, शतपुष्पा (सोंया), दाड़िमका छिलका, कुटजकी छाल, समङ्गा (वराहक्रान्ता), धातकी वा धवका फूल, त्रिकटु, गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, मोचरस, कलिङ्ग (इन्द्रयव), अभ्र, गन्धक, तथा पारद इनमेंसे प्रत्येकका समान चूर्ण और इन सबसे दूना जायफलका चूर्ण, इन सबको एक साथ मिला कर अच्छी तरह घोंटना चाहिये। इस चूर्णके सेवनसे ग्रहणी अतीसार आदि अनेक प्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

(भैषज्यरत्नावली, ग्रहण्यधिकार)

जीरकाद्यमोदक (सं० पु०) जीरकाद्यः मोदकः, कर्मधा० । वैद्यकोक्त मोदक औषधविशेष, एक दवाका नाम । प्रस्तुत प्रणाली—जीरा ८ पल, सोंठ ३ पल, धनिया ३ पल, शुलुफा, अजमायन, स्याह जीरा, प्रत्येकका १ पल ; दूध ८ सेर, चीनी ६॥ सेर, घी ८ पल, ऊपरसे डालनेके लिए त्रिकटु, गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, विड़ङ्ग, चव, चीतेकी जड़, मोथा, लवङ्ग प्रत्येकका १ तोला।

इसके सेवनसे सूतिका और ग्रहणीरोग नष्ट होता है। यह अत्यन्त अग्निवृद्धिकर है। (भैष०रत्ना०)

जीरण (सं० पु०) जीरकः पृषोदरादित्वात् कस्य णः । जीरक, जीरा।

जीरदानु (सं० पु०) जीरं क्षिप्रं जवशीलं वा ददाति । जीर-दा नु । १ शीघ्र दान । २ क्षिप्रदाता, जल्दी देनेवाला।

जीरा (हिं० पु०) जीरक देखो।

जीरा—१ आसामके अन्तर्गत ग्वालपाड़ा जिलेका एक ग्राम । यहां प्रति सप्ताह एक हाट लगती है। हाटमें गारोलोग लाह आदि पर्वतसे उत्पन्न द्रव्योंके बदले कपड़े, नमक, चावल और सूखी मछली ले जाते हैं। इस ग्राम के नामानुसार जीराद्वार नामक एक विस्तीर्ण भूभाग है, जहां बहुत अच्छी अच्छी शालकी लकड़ी पाई जाती है।

२ गुजरातका एक शहर। यह अक्षा० २१° १६' उ० और देशा० ७१° ४' पू०के मध्य राजकोटसे दक्षिण-पूर्व ७१ मील दूर तथा भड़ौंचसे दक्षिण-पश्चिम १३२ मील दूरमें अवस्थित है।

३ रेवा राज्यके अन्तर्गत बघेलखण्डका एक शहर। यह सत्तिरामसे १२८ मील दक्षिण-पश्चिम, अक्षा० २३° ५०' उ० और देशा० ८२° २७' पू०में पड़ता है।

४ पञ्जाबके अन्तर्गत फिरोजपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ५२' से ३१° ८' उ० और देशा० ७४° ४७' से ७५° २६' पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ४८५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शतद्रु नदी है, जिसने लाहोर और अमृतसर जिलेसे इसे अलग कर रक्खा है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः १७६४६२ है। इस तहसीलके भूमि सर्वत्र समान है। यह एक विस्तीर्ण प्रान्तर है, कहीं भी पर्वत आदि नहीं हैं। बाढ़का पानी खाड़ीमें आ कर गिरता है इसीसे यहां उपज अच्छी होती है। यहांके उत्पन्न द्रव्य धान, कपास, गेहूँ चना, जुन्हरी, तमाकू साग और फलमूलादि हैं। इस तहसीलमें जीरा, मखु और धरमकोट नामके शहर तथा ३४२ गाँव लगते हैं। एक तहसीलदार और एक मुन्सिफ, एक दीवानी और दो फौजदारी अदालतमें विचारकार्य करते हैं। यहां पांच थाना हैं।

५ पञ्जाबके फिरोजपुर जिलेकी जीरा तहसीलका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० ३०° ५८' उ० और देशा० ७४° ५८' पू०में फिरोजपुर शहरसे २६ मील दूर फिरोजपुरसे लुधियाना जानेके रास्ते पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ४००१ है। यह शहर छोटा होने पर भी इसके चारों ओर अच्छे अच्छे बगीचे लगे हैं। इसके पास हो कर एक खाड़ी गई है। यहां तहसीलदारकी कचहरी, थाना, विद्यालय, अस्पताल, मिउनिसिपल सराय, डाकबङ्गला आदि हैं।

जीरागुड़ (सं० क्ली०) जीरायुक्तं गुड़ं, मध्यपदलो०। वैद्यकोक्त एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली क्षेत्रपर्पटी, गुड़ूची और वासक (अडूसा)-का क्वाथ या त्रिफलाका रस, जीरा, गुड़, मधु इनको सेफाली-पत्रके रसके साथ मिलानेसे जीरागुड़ बनता है। इस औषधिके खानेसे श्लेष्मा-युक्त विषमज्वर और साधारण विषमज्वर वा सब तरहका बुखार जाता रहता है। यह अग्निवृद्धिकर और सर्व-प्रकार वातरोगनाशक है। (चिकित्सासारसं०, ज्वरा०)

और एक प्रकारका जीरागुड़ है जो जीरा, गुड़ और मरिचके मिलानेसे बनता है। यह जीरागुड़ ऐकाहिक ज्वर (इकतरा) में जल्दी फायदा पहुंचाता है। (चिकित्सासारसं)

जीराध्वर (वै० त्रि०) विघ्न या विपद्-रहित, जिसे किसी प्रकारका विपद न हो।

जीराश्व (वै० त्रि०) क्षिप्रगति अश्वयुक्त, जिसके तेज घोड़ा हो।

जीरि (सं० पु०) जीर्यति जॄ-बाहुलकात् रिक्। १ मनुष्य। (त्रि०) २ जारक। ३ अभिभावक, रक्षक, सरपरस्त।

जीरिका (सं० स्त्री०) जीर्यति जॄ-रिक् ईश्चान्तादेशः ततः स्वार्थे कन्। वंशपत्रीतृण, वंशपत्री नामको घास।

जीरी (हिं० पु०) अगहनमें तैयार होनेवाला एक प्रकारका धान। यह पञ्जाबके करनाल जिलेमें अधिक उपजता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रखने पर भी किसी तरहका नुकसान नहीं होता है। इसके दो भेद हैं—एक रमाली और दूसरा रामजमानी।

जीरीपटन (हिं० पु०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल।

जीर्ण (सं० त्रि०) जॄ-क्त तस्य निष्ठा नत्वं। गत्यर्थाकर्मकश्लिषेति पा।३।४।७२। १ वयःप्रकारभेद, जिसको बुढ़ापा आ गया हो, वृद्ध, जरायुक्त, बूढ़ा। २ पुरातन, पुराना। (गीता) (पु०) ३ जीरक, जीरा। ४ शैलज, छरीला। (राजनि०)

(त्रि०) ५ उदराग्निके द्वारा जिसका परिपाक हुआ हो, परिपक्व, पका हुआ। (चाणक्य)

किस किस द्रव्यके साथ किस किस द्रव्यके मिलने पर जीर्ण होता है, इसका वर्णन जीर्णमञ्जरीमें इस प्रकार लिखा है—नारियलके साथ चावल, खीरके साथ आम्र जम्बीरोत्थ रस और मोचकफलके साथ घी, गेहूंके साथ ककड़ी, मांसके साथ कांजिक, नारङ्गके साथ गुड़, पिण्डारकसे कोदो, पिष्टान्नसे सलिल, चिरौंजीसे हर्रे, क्षीरभवसे खांड़ और मठा, कोलम्बजसे ईषदुष्ण जल, तथा मत्स्यमें आम्रफल शीघ्र जीर्ण होता है। जल पीनेके बाद मधु, पौष्करजसे तैल, कटहरसे केला, केलासे घी घीसे जम्बूरस, नारियलके फल और ताड़के बीजसे चावल, दाड़िम, आंवला, ताड़, तेंदू, बिजौरा नीबू और हरफरी बकुलफलके साथ, मधुक, मालूर, तृणादन, परूष, खजूर और कपित्थ (कैथ) नीमके बीजके साथ, घीके साथ मठा, मातुलपत्रकके साथ गेंहू, माष (उड़द),

चना, मटर और मूंग; सिंघाड़ा और खिरनीके साथ मोथा, मांस और कटहरसे आम्रबीज, सैन्धवके साथ कृशर (तिल और चावल), महिष दुग्ध, पिप्पली और टिप्पकके साथ चिपिट; कपूर, सुपारी, नागवल्ली, काश्मोर (गनियारी), जायफल, जोतिकोश, कस्तूरिका; सिङ्घक और नारियलका पानी समुद्रफेनके साथ; श्यामाक, नोवार (तिन्नी), कुलत्थ, षष्ठी, चिञ्चा और कुलथी तिलके तेलके साथ ; कशेरू, शृङ्गाट, मृणाल और खजूर खण्ड नागरके साथ; अम्ल वा ईषदुष्ण अम्लके साथ घी, काञ्जिकके साथ तिलका तेल, कटहर और आंवला सर्जमज्जाके साथ, मत्स्य और मांस शुक्तके साथ तथा वह्निपक्व मांसके साथ मत्स्य जीर्ण होता है। कपोत, पारावत, नीलकण्ठ और कपिञ्जलका मांस खा कर काशके मूलको उष्ण करके खानेसे जीर्ण होता है। शङ्खचूर्णके साथ इयारि, नारी, घृत, दधि और दुग्ध जीर्ण होता है। मूंगके जलके साथ चावलकी खीर, तथा बेंगन, वंशांकुर, मूली, पोई, लौकी, और परवल मेघवरके साथ जीर्ण होता है। तिलके खारके साथ सब तरहके शाक जीर्ण होते हैं। चञ्चुक, सिद्धार्थक (सफेद सरसों) और वास्तुक (बथुआका शाक, गायत्रिसारके क्वाथके साथ शीघ्र जीर्ण होता है। अमजमें मृगमांस; सुरतावसानमें सुनिद्रा, अतिव्यवायमें छागाण्डा और तिलका तेल कर्णरोगमें हितकर है।

जीर्णक (सं० त्रि०) जीर्णप्रकार: स्थूलादित्वात् कन्। जीर्णप्रकार।

जीर्णज्वर (सं० पु०) जीर्ण: पुरातनो ज्वर:, कर्मधा०। पुरातन ज्वर, पुराना बुखार। १२ दिनसे अधिक होने पर ज्वर जीर्ण अर्थात् पुराना हो जाता है। इस ज्वरका वेग मन्दगामी है। किसीके मतानुसार प्रत्येक ज्वर अपने आरम्भके दिनसे ७ दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनोंके पीछे, जब रोगीका शरीर दुर्बल और रूखा हो जाय और उसे भूख न लगे तथा उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण' कहलाता है। पुरातन ज्वरमें उपवास करना अहितकर है। उपवाससे शरीर दुर्बल हो जाता और शरीरके दुर्बल होनेसे ज्वरका तेज बढ़ जाता है। ज्वर देखो।

जीर्णज्वराङ्कुशरस (सं० पु०) जीर्णज्वरे अङ्कुश-इव यो रस:, कर्मधा०। वैद्यकोक्त एक औषध। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—रस, रससे दूना गन्धक और सुहागा, रसके बराबर विष, विषसे पँचगुनी कालमिर्च, कालीमिर्चके बराबर कटफल और दन्तीबीजको मिला कर यह औषध बनाना चाहिये। जीर्णज्वरमें यह औषध बहुत फायदेमन्द है। यह जीर्णज्वराङ्कुशरस त्रिदोषज सब तरहके ज्वर, उत्कट ज्वर, विज्वर, ज्वर आदि सब तरहके ज्वरको शीघ्र नष्ट करता है। (चिकित्सासारसं०, ज्वराधि०)

जीर्णता (सं० स्त्री०) जीर्णस्य भाव: जीर्ण-तल्-टाप्। १ जीर्णत्व, पुरानापन। २ वृद्धत्व बुढ़ापा, बुढ़ाई।

जीर्णदारु (सं० पु०) जीर्णमिव दारुयस्य। वृद्धदारक वृक्ष, विधाराका पेड़। इसके पर्याय—जीर्णफञ्जी, सुपुष्पिका, अजरा और सूक्ष्मपर्णी है। इसके गुण—गौल्य, पिच्छिल, कफकास और वातदोषनाशक तथा बल्य है।

जीर्णदेह (सं० पु०) जीर्ण: देह: यस्य, बहुव्री०। जीर्णकलेवर, वृद्धशरीर, जिसका शरीर पुराना हो गया हो।

जीर्णपत्र (सं० पु०) जीर्णं पत्रमस्य, बहुव्री०। १ पट्टिका लोध्र, पठानी लोध। (त्रि०) २ जीर्णपत्रयुक्त, जिसके पत्ते पुराने हो गये हों।

जीर्णपत्रिका (सं० स्त्री०) जीर्णानि पत्राण्यस्या:, बहुव्री०, कप् ततष्टाप् अत इत्वं। वंशपत्रीतृण।

जीर्णपर्ण (सं० पु०) जीर्णानि पर्णानि यस्य, बहुव्री०। १ कदम्बका पेड़। (क्ली०) जीर्णं पर्णं, कर्मधा०। २ पुरातन पत्र, पुराना पत्र।

"पर्णमूले भवेत् व्याधि: पर्णाग्रे पापसम्भव:।
जीर्णपर्णं हरेदायु: शिरा बुद्धिविनाशिनी॥" (वैद्यक)

ताम्बूलका अग्रशिरा पृथक् कर भक्षण करना चाहिये। ३ पट्टिकालोध्र, पठानी लोध।

जीर्णफञ्जी (सं० स्त्री०) जीर्णा फञ्जी, कर्मधा०। वृद्धदारकवृक्ष, विधाराका पेड़।

जीर्णबुध्न (सं० पु०) जीर्णोऽदृढो बुध्नोमूलमस्य, बहुव्री०। पट्टिकालोध्र, पठानी लोध।

जीर्णबुध्नक (सं० पु०) जीर्णो बुध्नो मूलं यस्य, बहुव्री०, ततो कप्। १ पट्टिकालोध्र। २ परिपेल, केवटी मोथा।

जीर्णवज्र (सं० क्लो०) जीर्णं पुरातनं वज्रं हीरकमिव। वैक्रान्तमणि।

जीर्णवस्त्र (सं० क्लो०) जीर्णं वस्त्रं, कर्मधा०। पुरातन वस्त्र, पुराना कपड़ा। इसके पर्याय—पटच्चर।

जीर्णसंस्कार (सं० पु०) जीर्णस्य संस्कारः, ६ तत्। पुरानी वस्तुको सुधारना, मरम्मत।

जीर्णसंस्कृत (सं० त्रि०) जीर्णस्य संस्कृतः, ६-तत्। जो मरम्मत की गई हो।

जीर्णसीतापुर—मन्द्राज प्रदेशका एक प्राचीन नगर। किसी एक जैन राजाने यह नगर स्थापन किया है। वर्त्तमान बेलगाँव और शाहपुर जिस स्थान पर अवस्थित है उसी स्थान पर यह नगर भी अवस्थित था। आज भी इसके दुर्ग प्राचीर और सरोवर आदिका भग्नावशेष विद्यमान है।

जीर्णा (सं० स्त्री०) जॄ-क्त-टाप्। स्थूल जोरा, काली जोरी। (त्रि०) २ प्राचीना, वृद्धा, बुढ़िया।

जीर्णास्थिमृत्तिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी बनावटी मिट्टी, जो हड्डियोंको सड़ा गला कर बनायी जाती है। कृत्रिम मृत्तिकाका विषय शब्दार्थचिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है। जहाँसे शिलाजीत निकलता हो, ऐसे स्थान पर एक गहरा गड्ढा खोदना चाहिये। उस गड्ढेको द्विपद और चतुष्पद जन्तुओंकी हड्डियोंसे भर देना चाहिये। इसके बाद सर्जिक्षार, यवक्षार, मृत्क्षार, नमक, गन्धक, और गरम पानी छोड़ना चाहिये। इस प्रकार छह महीने तक जारी रख कर उसके बाद पाषाणमृत्तिका डालनी चाहिये। इस तरह तीन वर्षके भीतर सब पदार्थ एकत्र हो कर प्रस्तर सदृश हो जाते हैं। पीछे उसको गड्ढेसे निकाल कर चूर्ण करना चाहिये। इस चूर्णका पात्र बनता है, जो बहुत अच्छा होता है। इस पात्रमें दूषित भोजनको परीक्षा हो जाती है। भोजनमें यदि महाविष मिला हो, तो यह पात्र टूट जाता है। भोजनमें यदि दूषित विषादिका संयोग हो, तो उक्त पात्रमें दाग पड़ जाते हैं और क्षुद्र विष हो तो पात्र काला पड़ जाता है।

जीर्णि (सं० त्रि०) जॄ-क्तिन्। जीर्णता, पुरानापन।

जीर्णोद्धार (सं० पु०) जीर्णस्य पूर्वप्रतिष्ठापितलिङ्गादेरुद्धारः, ६-तत्। १ पूर्व-प्रतिष्ठापित देवमूर्ति लिङ्गादिका उद्धार, टूटे फूटे मन्दिर आदिका पुनःसंस्कार, जो वस्तु, जीर्ण हो कर अकर्मण्य हो गई है, मरम्मत करा कर उसको पूर्ववत् बनाना। पूर्वप्रतिष्ठापित लिङ्गादिके जीर्णोद्धारके विषयमें अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—मूर्ति अचल होने पर उसको घरमें रक्खें, अति जीर्ण होने पर परित्याग करें और भग्न वा विकलाङ्ग होने पर संहारविधिसे परित्याग करें। नारसिंहमन्त्रसे सहस्र होम कर गुरु उसकी रक्षा कर सकते हैं। लिङ्गादि काष्ठनिर्मित हों, तो उन्हें अग्निमें जला देना चाहिये। प्रस्तरनिर्मित होने पर पानीमें निक्षेप करना चाहिये और धातु वा रत्नज हो, तो समुद्रमें निक्षेप करना उचित है। जितनी बड़ी मूर्तिका परित्याग किया जाता है, उतनी ही बड़ी मूर्ति शुभ दिनमें स्थापित की जाती है। कूप, वापी और तड़ागादिका जीर्णोद्धार महाफलजनक है। कूप, वापी और तड़ागादिका जीर्णोद्धार महाफल जनक है।

अनादि सिद्धप्रतिष्ठित लिङ्गादिके (अर्थात् जिस लिङ्गको किसीने प्रतिष्ठा नहीं की हो) टूट जाने पर प्रतिष्ठादि जीर्णोद्धार करनेकी आवश्यकता नहीं; किन्तु उस मूर्तिका महाभिषेक करें। "जीर्णोद्धारं करिष्ये" ऐसा संकल्प करें। "ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहा" इस मन्त्रसे षड़ङ्गन्यास कर शत अघोर मन्त्र जप करना पड़ता है। पीछे अग्नि स्थापित कर घृत, सर्षप द्वारा सहस्र होम करें। फिर इन्द्रादि देवोंको वलि प्रदान करें। जीर्णदेवको प्रणव द्वारा पूजा करके ब्रह्मादि देवताओंका होम करें। इसके बाद कृताञ्जलि हो कर यह मन्त्र पढ़ कर प्रार्थना करनी पड़ती है—

"जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम्।
अस्योद्धारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया॥
जीर्णोद्धारविधानंच नृपराद्गृहिताद्धम्।
तदधितिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया॥"

होम आदि सम्पूर्ण कार्यांको समाप्त कर फिर इस मन्त्रसे प्रार्थना करें—

"लिंगरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम्।
यायास्त्वं वमिमतं स्थानं सम्यस्यैव शिवाज्ञया॥

अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता ।
शिवेन सह संतिष्ठ ।"

इस मन्त्रको कह कर मन्त्रित जलसे अभिषेक और विसर्जन करें । मूर्ति काठकी हो तो मधु पोत कर उसे दग्ध कर दें । हेम और रत्नादि द्वारा निर्मित हो, तो पूर्वोक्त विधिसे स्थापित करें, पीछे शान्तिके लिए अघोर मन्त्र द्वारा सहस्र तिलहोम कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करें—

"भगवान् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
जीर्णलिंगसमुद्धारः कृतस्तवाज्ञया मया ॥
अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले ।
प्रायश्चित्ताय देवेश ! अघोरास्त्रेण तर्पणम् ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि ।
तत् सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥"

इस मन्त्रसे प्रार्थना कर अच्छिद्रावधारण करें, फिर बद्धाञ्जलि हो कर इस मन्त्र द्वारा प्रार्थना करनी चाहिये—

"गोविप्रशिलिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः ।
शान्तिर्भवतु देवेश ! अच्छिद्रं जायतामिदम् ॥"

नवीन मूर्तिस्थापन करने पर इतना विशेष है—

"त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्मापयत्यसौ ।
वासं कुरु सुरश्रेष्ठ ! तावत्त्वं चालके गृहे ॥
वसन् कलेशं सहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् ।
यावत् कारयेत् भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥"

इस मन्त्र द्वारा प्रार्थना कर यथाविधि अच्छिद्रावधारण कर कार्य समाप्त करना चाहिये ।

२ जीर्ण अर्थात् टूटे फूटे मन्दिर आदिका संस्कार । जिस राजाके राज्यमें देवगृह आदि टूटें और वह राजा उसका संस्कार आदि न करावे, तो उसका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । जो लोग टूटे देवालयोंकी मरम्मत वगैरह करते या कराते हैं, उन्हें दूने फलकी प्राप्ति होती है । जो पतित और पतमान देवगृह आदिकी रक्षा करते हैं, वे अन्तमें अक्षय विष्णुलोकको गमन करते हैं । नवीन देवगृहकी प्रतिष्ठा आदिकी अपेक्षा जीर्णसंस्कार सौ गुना पुण्यदायक है । (विष्णुरहस्य)

वापी, कूप, तड़ाग, नदी आदिका संस्कार करने पर भी अशेष पुण्यलाभ होता है । (स्मृति)

जीर्वि (सं० पु०) जीर्य्यति क्रिवो भवत्यनेन जृ क्विन् । जॄ शॄ स्तॄ जागृभ्यः क्विन् । उण् ४।५४। १ कुठार कुल्हाड़ी । २ शकट, गाड़ी । ३ काय, शरीर, देह । ४ पशु ।

जील (फा० स्त्री०) १ मध्यम स्वर धीमा शब्द । २ तबले या ढोलका बाँया ।

जीलानी (अ० पु०) एक प्रकारका लाल रंग । यह बबूल, झरबेरी मजीठ, पतंग और लाहका बराबर भाग ले कर पानीमें उबालनेसे तैयार किया जाता है ।

जीव (सं० पु०) जीवनमिति जीव-घञ् । हलश्च । पा ३।३।१२१ अथवा जीवति-जीव-क । १ प्राणी, जीवधारी, इन्द्रियविशिष्ट शरीरी, जानदार । २ जीवन्तीवृक्ष । ३ बृहस्पति । ४ कर्ण । ५ शिवक्ष । इसके संस्कृत पर्याय — आत्मा, पुरुष, अन्तर्यामी, ईश्वर । (त्रिका०) ६ प्राण, जान, जीवनतत्त्व । ७ वृत्ति, आजीविका, जीवन । (मेदिनी) ऐसा कहा जाता है कि जीव जीवका जीवन है अर्थात् जीव सम्पूर्ण जीवों द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं । समस्त जीवोंका अहस्त-जीव जीविका है, चतुष्पद जीवोंका अपदयुक्त जीव जीविका हैं, अतएव जीव ही एकमात्र जीवका जीवन है । जीवके बिना जीवके जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती । जरा ध्यान दे कर विचारनेसे विशेषरूपसे हृदयङ्गम किया जा सकता है ।

(भाग० १।१३।४७)

जगत्में कोई भी जीवहिंसाके सिवा कोई कार्य करनेमें समर्थ नहीं । हल जोतने और व्रीहि आदि खानेसे भी कितने ही जीवोंकी हिंसा होती है । पानी पीने और वृक्षफल आदि खानेसे भी बहुत जीवोंकी हिंसा होती है । प्रत्येक पदार्थ ही जीवयुक्त हैं, प्रति पदविक्षेपमें कितने जीवोंकी हिंसा हुआ करती है, कौन इसकी शुमार रख सकता है ? इसी जीवहिंसाके कारण ही जीव मुक्त नहीं हो सकता । यह जगत् जीवोंसे परिपूर्ण है । (भारत वनपर्व २०७ अ०)

८ प्राणियोंके चेतनतत्त्व, आत्मा, जीवात्मा । ९ कार्य कारण समूह । केशाग्रको सौ भाग करके फिर उसका सहस्र भाग करनेसे जितना होता है, उतना सूक्ष्म जीवका परिमाण है । जीवात्मा देखो ।

१० जैन वा अनेकान्तवादियोंका पारिभाषिक जीवास्तिकाय पदार्थभेद। यह दो प्रकारका है—एक मुक्त और दूसरा बद्ध अर्थात् संसारी। जो कर्म-आवरणोंसे विमुक्त हैं जिनको जन्म जरा मृत्युका दुःख नहीं और जिनके आस्रव बन्धके कारणरूप मन वचन-कायकी क्रिया नष्ट हो गई है, ऐसे त्रैकालिक वा केवलज्ञानके धारक परम सिद्धोंको मुक्त जीव कहते हैं। और जो सर्वदा मोह आदि आवरणोंसे दूषित हो कर निरन्तर जन्म-जरा मृत्युके दुःखसे दुःखित हैं तथा जिनके सर्वदा कर्मोंका आस्रव, बन्ध आदि होता रहता है, उनको बद्ध अर्थात् संसारी जीव कहते हैं। जीवात्मा देखो।

११ उपाधिप्रविष्ट ब्रह्म अर्थात् वाक्-मन-अन्तःकरणसमूहके मध्य अनुप्रविष्ट ब्रह्मके वाक्मन अन्तःकरणआदिके भीतर सूक्ष्मभावसे प्रविष्ट होने पर वह जीवपदवाच्य होता है।

१२ घटावच्छिन्न आकाशकी भाँतिका शरीरत्रयावच्छिन्न चैतन्य। भूत मातृपितृज और लिङ्ग इन तीनोंका नाम जीव है। आकाशशरीर बहुत बड़ा है, पर घटावच्छिन्न घटप्रविष्ट होने पर वह घटके बराबर हो जाता है, इसी तरह ब्रह्म शरीरत्रयमें रहते समय जीव कहलाते हैं। जिस प्रकार घटके टूट जानेसे घटाकाश महाकाशमें विलीन हो जाता है, उसी तरह इस शरीरत्रयके नष्ट होने पर जीव भी ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

१३ दर्पणस्थित मुखके प्रतिबिम्बकी भाँति बुद्धिस्थित चैतन्य-प्रतिबिम्ब बुद्धि और चैतन्य जब प्रतिबिम्बित होता है, तभी वह जीवके नामसे पुकारा जाता है।

१४ प्राणादि कालका धारयिता। जितने दिन प्राण रहे उतने दिन उसको जीव कहा जा सकता है। (भागवत)

१५ लिङ्गदेह। (भागवत) पञ्चतन्मात्र—शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध, गुण—सत्त्व, रज, तम षोड़श विकृति—एकादश इन्द्रिय और पञ्चभूत इन चौबीस तत्त्वोंके साथ युक्त होने पर जीवपदवाच्य होता है। इस जीवका परिमाण केशाग्रके सहस्र भागका एक भाग है।

१६ विष्णु। (भारत १३।१४९।६८) १७ अश्लेषा नक्षत्र। (ज्योति०) १८ महानिम्बवृक्ष, बकायनका पेड़। (भावप्र० पूर्व०)

जीव—हिन्दीके एक कवि। ये लगभग १७५० सम्वत्में विद्यमान थे।

जीवक (सं० पु०) जीवयति आरोग्यं करोति जीव-णिच्-ण्वुल्। १ जीवकवृक्ष, अष्टवर्गान्तर्गत औषधविशेष एक जड़ी या पौधा। इसके संस्कृत पर्याय—कूर्चशीर्ष, मधुरक, शृङ्ग, ह्रस्वाङ्ग, जीवन, दीर्घायु, प्राणद, जीव्य, भृङ्गाह्व, प्रिय, चिरञ्जीवी, मधुर, मङ्गल्य, कूर्चशीर्षक, वृद्धिद, आयुष्मान्, जीवद और बलद। इसके गुण—यह मधुर, शीतल तथा रक्तपित्त, वायुरोग, क्षय, दाह और ज्वरनाशक (राजनि०) बलकारक, कफता और वातनाशक है। इसके सेवनसे जीवनकी वृद्धि होती है, इसलिए इसको जीवक कहते हैं। जीवक कन्द या कूर्चशीर्षकी जातिका ऋषभकसे छोटा है और इसके मस्तकसे कूर्चाकार शीर्ष (जैसा कि नारियल आदिके पेड़की चोटी पर निकला हुआ रहता है) निकलता है। जीवक और ऋषभ दोनों ही एक जातिके तथा दोनोंका ही कन्द लहसनकी भाँतिका होता है। इनके पत्ते बहुत बारीक होते हैं पर जीवकका शीर्ष कूर्चाकार (कूंचीके आकारका) और ऋषभकका शीर्ष बैलके सींगके समान होता है। इससे मालूम होता है कि, Ciplatus नामक एक प्रकारका कंटीला सींगकी आकृतिका वृक्ष है जो देखनेमें गोल उंगली जैसा लगता है, इसमें पत्तियाँ नहीं होतीं। इसके चारों तरफ लम्बी लम्बी धारियाँ होती हैं।

२ पीत शालवृक्ष। (भावप्र०) ३ क्षपणक दिगम्बर (जैन) मुनि। ४ अहितुण्डिक, संपेड़ा। ५ वृद्धिजीवी, ब्याज ले कर जीविका निर्वाह करनेवाला, सूदखोर। ६ सेवक। ७ प्राणधारक, प्राणोंको धारण करनेवाला जैन-राजा सत्यन्धरके पुत्र। जीवन्धरस्वामी देखो।

जीवग्राह (सं० पु०) जीवन्त अवस्थामें ग्रहण, जीतेजीमें पकड़ना।

जीवगोस्वामी—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके छह गोस्वामियोंमेंसे एक। वैष्णवदिग्दर्शनीमें इनके जन्म आदिका समय इस प्रकार लिखा है—

जन्म—१४५५ शक। (मतान्तरमें १४३५ शक) गृहवास—२० वर्ष, वृन्दावनवास—६५ वर्ष (८५ वर्ष प्रकट-स्थिति) अन्तर्द्धान—१५४० शक। आविर्भाव—पौष शुक्ला ३या। तिरोभाव—आश्विन शुक्ला ३या।

इनके पिताका नाम वल्लभ था। जीवके वासस्थान तीन थे—एक बाकला चन्द्रद्वीपमें दूसरा फतेहाबादमें और तीसरा रामकेली ग्राममें। रामकेलीमें ये ज्येष्ठतात रूप) सनातनके साथ अधिक रहते थे। हुसेनशाहके मन्त्री सुप्रसिद्ध रूप और सनातन इनके ताऊ थे।

महाप्रभु चैतन्य जिस समय रामकेली आये थे, उस समय ये बालक थे; इन्होंने छिप कर महाप्रभुको देखा था।

वस्तु-शक्ति समय वा अवस्थाकी बाट नहीं देखती। चैतन्यके दर्शनके प्रभावसे साधारण मनुष्यके जैसे भाव होते थे, बालकके भी वैसे ही हुए, चैतन्यमें अनुराग हुआ, बालकने खेल छोड़ कर धैर्यमें मन दिया।

इसके उपरान्त रूप, सनातन तथा इनके पिता वल्लभ चले गये। वृन्दावनसे इनके पिता और श्रीरूप नीला-चल जाते समय एकबार घर लौटे, इसी समय वल्लभकी मृत्यु हुई। इसके कुछ दिन बाद श्रीजीव वृन्दावन जानेके लिए व्याकुल हुए।

श्रीजीवकी इस प्रकार संसारमें विरागता देख कर अड़ोसी परोसी बहुत चिन्तित हुए। क्योंकि ये सर्वदा श्रीकृष्णका भजन किया करते थे।

जीवने एकदिन रातको स्वप्नमें भी श्रीमहाप्रभु तथा नित्यानन्दका दर्शन किया। इसके दूसरे ही दिन ये नवद्वीप चल दिये। नवद्वीपमें उस समय नित्यानन्द प्रभु विद्यमान थे। उन्होंने इन पर बहुत कृपा दिखलाई। यहांसे नित्यानन्द प्रभुके आदेशानुसार वेदान्त आदि सीखनेके लिए ये (तपनमिश्रके आवासमें) काशी गये। काशीमें इन्होंने मधुसूदन वाचस्पतिके पास वेदान्त, न्याय आदिकी शिक्षा पायी। इस प्रकारसे मधुसूदन इनके गुरु हुए।

काशीमें शिक्षा समाप्त कर ये वहांसे वृन्दावन चल दिये। वहां इनके दोनों ताऊ मौजूद थे, उन्हें बड़ी खुशी हुई। श्रीरूपने जीवको मन्त्र प्रदान किया।

वृन्दावनमें रह कर इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थोंकी रचना की।

१ षट्सन्दर्भ (दार्शनिक ग्रन्थ) २ गोपालचम्पू, ३ गोविन्दविरुदावली, ४ हरिनामामृत व्याकरण, ५ धातु-सूत्रमालिका, ६ माधवमहोत्सव ७ सङ्कल्पकल्पद्रुम, ८ श्रीराधाकृष्ण करपदचिह्नविनिर्णय ग्रन्थ, ९ उज्ज्वलनील-मणिटीका, १० भक्तिरसामृतसिन्धुटीका, ११ गोपाल-तापनी उपनिषद्-टीका, १२ ब्रह्मसंहितोपनिषत् टीका, १३ अग्निपुराणीय गायत्रीभाष्य, १४ वैष्णवतोषिणी, १५ भागवतसन्दर्भ, १६ सूत्रचरित्र और १७ सारसंग्रह।

इन्होंने वृन्दावनमें दो दिग्विजयी पण्डितोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था। इनमेंसे एककी कथा भक्त-मालमें है; दूसरेका नाम रूपनारायण था, प्रेमविलासमें उनकी दिग्विजयवार्त्ता लिखी है।

वल्लभभट्टके साथ श्रीजीवका और एक शास्त्रविचार हुआ था। ये वही वल्लभभट्ट थे जिन्होंने "वल्लभी" नामक एक वैष्णव-शाखा-सम्प्रदायकी सृष्टि की थी और उक्त सम्प्रदायमें जो अवतार स्वरूप माने जाते थे।

एकदिन श्रीरूप भक्तिरसामृतसिन्धु लिख रहे थे कि, इतनेमें वहां वल्लभ भी आ पहुंचे। उन्होंने उसका एक पत्र उठा कर पढ़ा और उसमें एक श्लोककी अशुद्धि निकाल कर वे चल दिये। यह बात श्रीजीवसे सही न गई! गुरु उनकी मान्यता करते थे, इसलिये इन्होंने गुरुके सामने उनसे कुछ न कहा। वे पानी भरनेके बहाने वहांसे चल दिये और मार्गमें इन्होंने उस श्लोकके विषयमें वल्लभसे शास्त्रार्थ किया। अन्तमें वल्लभको ही पराजित होना पड़ा। दूसरे दिन उन्होंने श्रीरूपसे पूछा—"वह लड़का कौन था, जो कल यहां बैठा था?" श्रीरूपने कहा—"वह मेरा ही भतीजा और शिष्य है।" वल्लभ श्रीजीवकी प्रशंसा कर चले गये।

वल्लभके चले जाने पर श्रीरूपने जीवको बुला कर कहा—"अभी तुम्हारा मन स्थिर नहीं हुआ, अभी कुछ अभिमान है। इसलिए तुम्हें जहां रुचे वहां जाओ, मन स्थिर होने पर यहां आना।"

गुरुके आदेशानुसार ये वृन्दावनके एक वनमें जा कर पड़े रहे, आहार स्नानादि सब छोड़ दिया। इनकी इच्छा हुई कि, इसी तरह प्राण त्याग दें।

७।८ दिनके अन्दर सनातन श्रीरूपके घर आये।

उन्होंने भक्तिरसामृतके समाप्त होनेके विषयमें पूछा। श्रीरूपने उत्तर दिया—"जीवके चले जानेसे देर हो रही है, वह रहता तो अब तक समाप्त हो जाता, उससे बड़ी सहायता मिलती थी।" सनातनने जीवका सब हाल पूछा। श्रीरूपने सब हाल कह सुनाया। इस पर सनातनने कहा—"आते समय मुझे वनसे एक बालक दिखाई दिया था, शायद वही जीव होगा। जाओ, उसे क्षमा कर दो, बहुत शिक्षा मिल चुकी, अब उसे ले आओ।"

सनातन श्रीरूपके गुरु थे; गुरुके आदेशानुसार उन्होंने जीवको क्षमा प्रदान की। गुरु-शिष्यका पुनर्मिलन हुआ।

जीवगोस्वामीकी वंशावली।

जगद्गुरु (कर्णाटके राजा १२०२ शक)
|
अनिरुद्ध (१२३८ शकमें राजा हुए)
|
रूपेश्वर — हरिहर
|
पद्मनाभ (१३०८ शकमें जन्म)
|
पुरुषोत्तम — जगन्नाथ — नारायण — मुरारि — मुकुन्द
|
कुमार
|
दोनोंका नाम मालूम नहीं — सनातन — रूप — वल्लभ
|
जीवगोस्वामी

जीवग्रह (वै० पु०) नवीन सोमपूर्ण।

जीवग्राह (सं० पु०) बन्दी, कैदी।

जीवघन (सं० पु०) जीव एव घनो मूर्त्तिरस्य, बहुव्री०। हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा।

"स एतस्माज्जीवघनात् परात्परम्।" (प्रश्नोपनि०)

जीवघोषस्वामी—एक संस्कृत वैयाकरणका नाम।

जीवज (सं० त्रि०) जीवजात, जिसने जीवन ग्रहण किया हो।

जीवजीव (सं० पु०) जीवेन भक्ष्य क्षुद्रकीटादिना जीवयति जीव अच यद्वा जीवञ्जीव पृषोदरादित्वात् साधुः। जीवञ्जीव पक्षी, चकोर पक्षी।

जीवजीवक (सं० पु०) जीवजीवः स्वार्थे कन्। चकोर पक्षी। "हृत्वा रक्तानि मांसानि जायते जीवजीवकः।" (मनु १२।६६)

जीवञ्जीव (सं० पु०-स्त्री०) जीवं जीवयति विषदोषं नाशयति, बाहुलकात् खच्। १ चकोर पक्षी। २ एक दूसरे प्रकारका पक्षी। ३ वृक्षविशेष एक पेड़का नाम।

जीवट (हिं० स्त्री०) साहस, हिम्मत, मरदानगी।

जीवतत्त्व (सं० क्ली०) जीवस्य तत्त्वं यत्र, बहुव्री०। वह शास्त्र जिसमें प्राणियोंकी जाति, स्वभाव, क्रिया तथा चरित्र आदि वर्णित हैं।

जीवत्तोका (सं० स्त्री०) जीवत् तोकं अपत्यं यस्याः, बहुव्री०। जीवत्पुत्रिका, वह स्त्री जिसकी सन्तति जीती हो।

जीवत्पति (सं० स्त्री०) जीवन् पतिर्यस्याः, बहुव्री०। सौभाग्यवती स्त्री, सधवा स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

जीवत्पिता (सं० त्रि०) जिसका पिता जीवित हो।

जीवत्पितृक (सं० पु०) जीवन् पिता यस्य, बहुव्री०। वह जिसका पिता जीवित हो। पिताके जीवित रहने पर अमास्नान, गयाश्राद्ध और दक्षिणकी ओर मुंह कर भोजन नहीं करना चाहिये, जो अमास्नानादि करता है वह पितृहन्ता होता है। (तिथितत्त्व)

जीवत्पितृक यदि साग्निक ब्राह्मण हो, तो उसको श्राद्धविशेषमें अधिकार है; न कि निरग्नि होने पर। (निर्णयसिन्धु) पितामहके जीवित होने पर भी श्राद्ध आदि कर सकता है, किन्तु प्रपितामह यदि जीवित हों, तो नहीं कर सकता।

प्रयोगपारिजात आदि स्मृतिनिबन्धकारोंके मतसे—साग्निक जीवत्पितृक हो श्राद्ध आदि पितृकार्य्य कर सकता है, निरग्निक नहीं। परन्तु यह मत विशुद्ध नहीं है। निरग्नि जीवत्पितृक होने पर भी वृद्धिश्राद्ध कर सकता है, पर अन्य श्राद्ध नहीं कर सकता। (हारीत)

और भी बहुतसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जीवत्पितृक निरग्निक होने पर भी वृद्धिश्राद्ध कर सकता है और साग्निक जीवत्पितृक सब श्राद्ध कर सकता है;

निरग्निक ब्राह्मणके सिवा अन्य श्राद्ध नहीं कर सकते।

जीवत्पुत्रिका (सं० स्त्री०) जीवन् पुत्रो यस्या, बहुव्री०, जीवत्पुत्रे स्वार्थे कन् टाप् इत्वञ्च। जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवत्व (सं० क्ली०) जीवस्य भावः। जीवका भाव।

जीवथ (सं० पु०) जीवत्यनेन जीव-अथ। १ प्राण। २ कूर्म, कच्छप, कछुआ। ३ मयूर, मोर। ४ मेघ, बादल। (त्रि०) ५ धार्मिक, पुण्यात्मा। ६ दीर्घायु, चिरजीवी।

जीवद (सं० पु०) जीवं जीवनं ददाति औषधादिसुप्रयोगेण, जीव-दा-क। १ वैद्य। २ जीवक वृक्ष। ३ जीवन्ती वृक्ष। जीव-दो-क। ४ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) ५ जीवनदाता।

जीवदा (सं० स्त्री०) जीवद-टाप्। १ जीवन्तीवृक्ष। २ ऋद्धि।

जीवदातृ (सं० त्रि०) जीवं जीवनं ददाति दा-तृच्। जीवनदायी, जीवन देनेवाला।

जीवदात्री (सं० स्त्री०) जीव-दातृ-ङीप्। १ ऋद्धि नामक औषध। २ जीवन्ती वृक्ष।

जीवदान (सं० क्ली०) जीवस्य दानं, ६-तत्। प्राणदान, प्राणरक्षा।

जीवदानु (सं० त्रि०) जीवं ददाति दा-बाहुलकात् नु। जो जीवको धारण करते हों।

जीवदास वाहिनीपति—एक कविका नाम। इन्होंने पद्यावली नामक एक संस्कृत कविता ग्रन्थ रचा है।

जीवदेव—आपदेवके पुत्रका नाम। इनको बनाई हुई निम्नलिखित पुस्तकें पाई जाती हैं—अशौचनिर्णय, गोत्रप्रवरनिर्णय और संस्कारकौस्तुभके अन्तर्गत श्राद्धभास्करी।

जीवद्दष्टा (सं० स्त्री०) जीवाय जीवनाय दष्टा। जीवन्ती वृक्ष।

जीवद्दशा (सं० स्त्री०) ६ तत्। जीवनकाल।

जीवधन (सं० क्ली०) जीव एव धनं, रूपककर्मधा०। १ जीवरूपधन, वह सम्पत्ति जो जीवों या पशुओंके रूपमें हो। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊंट आदि। २ जीवन धन, प्राणप्रिय, प्यारा।

जीवधानी (सं० स्त्री०) जीवा धीयन्ते ऽस्यां अधिकरणे धा-ल्युट्-ङीप्। सब जीवोंकी आधारस्वरूपा पृथिवी।

"ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त।"
(भागवत २।१३।२)

जीवधारी (सं० पु०) प्राणी, चेतन, जन्तु, जानवर।

जीवन (सं० क्ली०) जीव भावे ल्युट्। १ वृत्ति, जीविका। २ प्राणधारण। ३ जल, पानी। जलके बिना प्राणकी रक्षा नहीं होती, इसलिये जल जीवन जैसा अभिहित है। "अन्नमयं हि सौम्य! मनः आपोमयः प्राणः।" (छान्दोग्य) जल तीन भागोंमें विभक्त है, जलको स्थूल धातु मूत्र रूपमें, मध्यम धातु रक्त रूपमें और अणुधातु प्राण रूपमें परिणत होती है। "आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं भवति योऽणिष्ठः स प्राणः" "पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्द्धः समुदीषति स प्राणो भवति" "षोड़शकलः सौम्य! पुरुषः पंचदशाहानि माशीः काममयः पिवापोमयः प्राणो न पिवतो विच्छेत्स्यते" (छान्दोग्य उ०) ४ जीवनसाधन। ५ सद्यप्रस्तुत घी, ताजा घी। श्रुतिमें लिखा है, "आयुर्घृतं" घृत ही आयु है, घृत भोजन ही आयुवृद्धिकर है, इसलिये घृतको जीवन कहा गया है। ६ मज्जा। (पु०) ७ वात, वायु। ८ जीवकौषध, जीवक नामको औषध। ९ क्षुद्र फलवृक्ष। १० पुत्र, बेटा। जीवयति जीव णिच् कर्त्तरि ल्यु। ११ परमेश्वर। "सर्वाः प्रजाः प्राणरूपेण जीवयन् जीवनः।" (भागवत) १२ गङ्गा। "जीवनं जीवनप्राया जगज्ज्येष्ठा जगन्मयी।" (काशीख० २२।६५) १३ जीवनदाता।

जीवन—१ एक हिन्दीके कवि। इन्होंने १५५१ ई०में जन्मग्रहण किया था।

२ हिन्दीके एक कवि। ये मुहम्मद अलीशाहके यहां रहते थे। १७४६ ई०में इनका जन्म हुआ था।

जीवनक (सं० क्ली०) जीव्यतेऽनेन जीव करणे ल्युट्, ततः स्वार्थे कन्। १ अन्न, अनाज। २ हरीतकी, हड़।

जीवनचरित (सं० पु०) १ जीवनका वृत्तान्त, जिंदगीका हाल। २ जीवनवृत्तान्तयुक्त ग्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें किसीके जीवन भरका वृत्तान्त हो।

जीवनधन (सं० पु०) १ जीवनका सर्वस्व। २ प्राणाधार, प्राणप्रिय, प्यारा।

जीवनदास—'ककहरा' नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

जीवननाथ—१ एक हिन्दी कवि। अयोध्याके अन्तर्गत नवलगंजमें १८१५ ई०को अयोध्याके दीवान बालकृष्णके वंशमें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने 'वसन्तपचीसी' नामक हिन्दीकी एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी है।

२ अलङ्कारशेखरके रचयिता। ३ कई एक चिकित्सा ग्रन्थके प्रणेता। ४ तत्त्वोदयप्रणेता।

जीवन बाजार—दिनाजपुर जिलेका एक बन्दर। इसका दूसरा नाम गोराघाट है। यह करतोया नदीके ऊपर अवस्थित है। इस बन्दरसे दिनाजपुरका चावल दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजा जाता है।

जीवनबूटी (हिं० स्त्री०) सञ्जीवनी नामका पौधा।

जीवन मस्ताने—हिन्दीके एक कवि। ये प्राणनाथके शिष्य थे। इन्होंने १७०० ई०में पंचकदहाई नामक हिन्दी ग्रन्थ लिखा था।

जीवनमुल्ला—इनका असली नाम शेख अहमद था। ये बादशाह औरङ्गजेबके शिक्षक थे। इन्होंने तफसीरअहमदी नामको कुरानकी एक टीका बनाई है। ११३० हिजिरा (१७१८ ई०) में इनकी मृत्यु हुई। इनको मुल्लाजीवन जौनपुरी भी कहते थे।

जीवनमूरि (हिं० स्त्री०) १ सञ्जीवनी नामकी जड़ी। २ अत्यन्त प्रिय वस्तु, प्राणप्रिया, प्यारी।

जीवनयोनि (सं० स्त्री०) जीवनस्य योनिः कारणं, ६ तत्। न्यायोक्त देहमें प्राणसञ्चारकारण यत्न। यही यत्न अतीन्द्रिय है।

"यत्नो जीवनयोनिस्तु सर्वदातीन्द्रियो भवेत्।
शरीरे प्राणसञ्चारकारणं परिकीर्त्तितम्॥" (भाषाप०)

जीवनराम भाट—खजुरहरा (जिला हरदोई) निवासी एक हिन्दीके कवि। इन्होंने जगन्नाथ पण्डितराज कृत गङ्गालहरीका भाषा पद्यानुवाद किया था। करीब १४ वर्ष हुए इनका देहान्त हो गया है। इनकी कविताका एक उदाहरण दिया जाता है—

"देखी मैं बरात रामलीलाकी इटौंजा
मध्य शोभा रूपधाम राजा रामको विवाह है।
बोलैं चोपदार धूम धौंसाकी धुकार सुनि
चित्त नर नारिनके चौगुनो उछाह है।
भारी भीर भूधर गयन्दनकी सीम घटा
साजे गजराज पै विराजै सीता-नाह है।
जीवन सुकवि प्रेम अन्तर विचारि कहै
आप महाराज सीस कीन्हे छत्र छांह है॥"

जीवनलाल नागर—हिन्दीके एक कवि। ये बूंदीके रहने वाले और संस्कृत, फारसी और हिन्दीके अच्छे ज्ञाता थे। १८१३ ई०में इनका जन्म हुआ था। १८४१ ई०में ये बुंदी राज्यके प्रधान नियुक्त हुए थे। १८५७ ई०के गदरमें इन्होंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। १८६२ ई०में आगरेके दरबारमें इनको C. S. I. की उपाधि मिली थी। दस्तकारीमें भी इनकी अच्छी योग्यता थी। इनकी कविता सरस और प्रशंसनीय होती थी। उदाहरण—

"बदन मयंक पै चकोर ह्वै रहत नित,
पंकज नयन देखि भौंर लौं भयो फिरै।
अधर सुधारसके चखिबेको सुमनस,
पूतरी ह्वै नैननके तारन फयो फिरै॥
अंग अंग गहन अंगनको सुभट होत,
बानि गान सुनि ठगे मृग लौं ठयो फिरै।
तेरे रूप भूप आगे पियको अनूप मन,
धरि बहु रूप बहुरूप सो भयो फिरै॥"

जीवनवृत्त (सं० पु०) जीवनचरित, जीवनी।

जीवनवृत्तान्त (सं० पु०) जीवनचरित, जिंदगी भरका हाल, जीवनी।

जीवनवृत्ति (सं० त्रि०) जीविका, रोज़ी।

जीवनशर्मा—गोकुलोत्सवके पुत्र और बालकृष्ण चम्पूके प्रणेता।

जीवनसाधन (सं० क्ली०) जीवनस्य साधनं, ६-तत्। जीवनका साधन, जीविका, रोज़ी।

जीवनसिंह—हिन्दीके एक कवि। लगभग १८१८ ई०में ये करौली राज्यके दरबारमें रहते थे।

जीवनस्या (वै० स्त्री०) जीवनकी इच्छा, जीनेकी अभिलाषा।

जीवनहेतु (सं० पु०) जीवनस्य हेतु उपायः, ६-तत्। जीवन-साधन, जीविका, रोज़ी। गरुड़पुराणमें विद्या, शिल्प, भूमि, सेवा, गोरक्षा, विपणि, कृषि, वृत्ति, भिक्षा

और कुसीद ये दश प्रकारके जीवनके उपाय बतलाये गये हैं।

"विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षं विपणिः कृषिः।
वृत्तिर्भैक्ष्यं कुसीदञ्च दश जीवनहेतवः।"

(गरुड़पु० २१४ अ०)

जीवना (सं० स्त्री०) जीवयति जीव-णिच्-युच् वा ल्यु, ततष्टाप्। १ महौषध। २ जीवन्तीवृक्ष। ३ सिंहपिप्पली। ४ मेदा।

जीवनाघात (सं० क्ली०) जीवनं आहन्यतेऽनेन करणे आ-हन-घञ् वा जीवनस्याघातो यस्मात्। विष, जहर।

जीवनाथ—१ एक हिन्दीके कवि। इन्होंने अयोध्याके अन्तर्गत नवाबगञ्जमें १७५८ ई०को अयोध्याके दीवान बालकृष्णके वंशमें जन्मग्रहण किया था। इन्होंने वसन्त-पचीसी नामक एक उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकका प्रणयन किया है। २ अलङ्कारशेखरके प्रणेता। ३ एक चिकित्सा-ग्रन्थके रचयिता। ४ तत्त्वोदयके प्रणेता।

जीवनाई (सं० क्ली०) १ दुग्ध, दूध। २ धान्य, धान।

जीवनावास (सं० पु०) आवसत्यस्मिन् आ-वस-घञ् जीवनं जलं आवासोऽस्य वा। १ वरुण। (त्रि०) २ जलवासी, जलमें रहनेवाला। (पु०) ३ जीवनाय-तन, देह, शरीर।

जीवनि (हिं० स्त्री०) १ सञ्जीवनी बूटी। २ प्राणाधार। ३ अत्यन्त प्रिय वस्तु।

जीवनिका (सं० स्त्री०) जीवन-ठन् टाप् वा जीवनी संज्ञायाम् कन् ह्रस्वश्च। १ हरीतकी, हड़। हरीतकी देखो। २ काकोली। ३ जीवन्ती।

जीवनी (सं० स्त्री०) जीवत्यनेन जीव करणे ल्युट्-ङीप्। १ काकोली, एक प्रकारका औषध। २ डोड़ी, तिक्त जीवन्ती। ३ महामेदा। ४ मेद। ५ यूथी, जूही। ६ जीवन्ती। इसके पर्याय—जीवा, जीवनीया, मधुस्रवा, मङ्गल्या, शाकश्रेष्ठा और पयस्विनी है। (स्त्री०) ७ जीवनचरित, जिन्दगीका हाल।

जीवनीय (सं० क्ली०) जीव्यतेऽनेन अस्माद्वा करणे अपादाने वा जीव-अनीयर्। १ जल पानी। (स्त्री०) २ जयन्तीवृक्ष। कर्मणि अनीयर्। ३ उपजीव्य, आश्रय, सहारा। (त्रि०) भावे अनीयर्। ४ वर्त्तनीय, जीविका करने योग्य। ५ जीवनप्रद।

जीवनीयगण (सं० पु०) जीवनीयानां औषधीनां गणः, ६-तत्। बलकारक औषधविशेष, ताकतवर दवा, बहुतसे औषध वृक्षोंका समूह। अष्टवर्ग पर्णिनी, जीवन्ती, मधुक और जीवन ये जीवनीयगण कहलाते हैं; कोई कोई इसे मधुकगण भी कहते हैं। जीवन्ती, काकोली, मेद, मुद्ग, माषपर्णी, ऋषभक, जीवक और मधुक ये भी जीवनीयगण माने गये हैं।

(वाग्भट सूत्रस्थान १५ अ०)

इसके गुण—शुक्रकारक, बृंहण, शीतल, गुरुगर्भप्रद, स्तनदुग्धदायक, कफवर्द्धक, पित्त और रक्तशोधक, तृष्णा, शोष, ज्वर, दाह और रक्तपित्तनाशक है।

जीवनीया (सं० स्त्री०) जीव-अनीयर् स्त्रियां टाप्। जीवन्तीवृक्ष। जीवन्ती देखो।

जीवनेत्री (सं० स्त्री०) जीवं नयति जीव-नी-तृच्-ङीप्। सैंहलीवृक्ष, सैंहलीका पेड़।

जीवनोपाय (सं० पु०) जीवनस्य उपायः, ६-तत्। जीविका, रोज़ी।

जीवनौषध (सं० क्ली०) जीवनस्य, म्रियमाणप्राणस्य रक्षणार्थं औषधं, ६-तत्। १ औषधविशेष, वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय। २ अन्न।

जीवन्त (सं० पु०) जीवयति जीव्यतेऽनेन वा जीव-अच्। १ औषध, दवा। २ प्राण। ३ जीवशाक। (त्रि०) ४ आयुर्विशिष्ट, जीता जागता।

जीवन्तिक (सं० पु०) जीवान्तकः पृषोदरादित्वात् साधुः। जीवान्तक।

जीवन्तिका (सं० स्त्री०) जीवयति जीव-झच् कन् टाप्। कापि अत इत्वं। १ वन्दा। २ वृक्षोपरि जात वृक्ष, वह पौधा जो दूसरे पेड़के ऊपर उत्पन्न होता और उसी-के आहारसे बढ़ता है। ३ गुड़ूची, गुरुच। ४ जीवाख्य शाक, जीव शाक। ५ जीवन्ती। ६ हरीतकी, एक प्रकारकी हड़ जो पीले रङ्गकी होती है। ७ शमी।

जीवन्ती (सं० स्त्री०) जीव-झच् गौरादित्वात् ङीष्। १ लताविशेष, एक लता जिसके पत्ते दवाके काममें आते हैं। इसके पर्याय—जीवनी, जीवनीया, जीवा, मधु, जीवना, मधुस्रवा, स्रवा, पयस्विनी, जीव्या, जीवदा, जीवदात्री, शाकश्रेष्ठा, जीवभद्रा, भद्रा, मङ्गल्या, क्षुद्रजीवा, यशस्या,

शृङ्गाटी जीवदृष्टा, काञ्जिका, मधुस्रविका, सुपिङ्गला, मधुस्रावा, जीववृषा, सुखङ्करी, मृगराटिका, जीवपत्री और जीवपुष्पा है। इसके गुण—मधुर, शीतल, रक्तपित्त, वायु, क्षय, दाह, ज्वरनाशक, कफ और वीर्यवर्द्धक है। भावप्रकाशके मतसे इसके गुण—स्वादु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, बलकारक, चक्षुर्हितजनक, ग्राहक और लघु है। २ सुराष्ट्रदेशज स्वर्णवर्ण हरीतकी, गुजरात काठियावाड़में होनेवाली एक प्रकारकी पीली हड़। इसके गुण बहुत उत्तम माना जाता है। ३ शमी। ४ गुड़ची, गुरुच। ५ वन्दा, बाँदा। ६ डोड़ी, तिक्त जीवन्ती। शाकविशेष, एक प्रकारका साग। ८ शर्कराकी तरह मधुर पुष्पलता, एक लता जिसके फूलोंमें मीठा मधु या मकरन्द होता है। ९ मेद। १० काकोली। ११ हरिणी। १२ मधुकवृक्ष।

जीवन्त्याद्यघृत (सं० क्ली०) जीवन्त्याद्यं यत् घृतं। चक्रदत्तोक्त पक्व घृतभेद, एक प्रकारका पका हुआ घी। भैषज्यरत्नावलीमें घृतपाकप्रणाली इस प्रकार लिखी है। घी ४ सेर, जल १६ सेर, कल्कार्थ जीवन्ती, यष्टिमधु, द्राक्षा, त्रिफला, इन्द्रयव, शठी, कुड़, कण्टकारी, गोक्षुर, बला (गुलशकरी), नीलोत्पल, भूम्यामलकी, त्रायमाणा, दुरालभा (जवासा), पिप्पली सब मिला कर १ सेर। यह घी यक्ष्मारोगके लिए एक उत्कृष्ट औषध है। इसको सेवन करनेसे ११ प्रकारका यक्ष्मारोग आराम होता है। (भैषज्यर०)

जीवन्धर स्वामी—हरिवंशके एक प्रसिद्ध जैन राजा और जीवन्धरचम्पू, गद्यचिन्तामणि, क्षत्रचूड़ामणि आदि पौराणिक ग्रन्थोंके नायक। इन्होंने श्रीमहावीर भगवान्‌के समवसरणमें जा कर दीक्षा ग्रहण की थी; इसलिए ज्ञात होता है कि, ये आजसे लगभग २४५० वर्ष पहले विद्यमान थे। इनका चरित्र महाकवि वादीभसिंह सूरिविरचित क्षत्रचूड़ामणि और गद्यचिन्तामणि आदि ग्रन्थोंमें विस्तृत रूपसे लिखा है। ये राजपुरीके राजा सत्यन्धरके पुत्र थे। सत्यन्धरका काष्ठाङ्गार नामक बहुत ही कूटनीतिज्ञ मन्त्री था। जिस समय जीवन्धर माताके गर्भमें थे, उस समय उनके पिता सत्यन्धरने काष्ठाङ्गार पर समस्त राज-कार्यका भार सौंप दिया था। परन्तु क्रूरमति काष्ठाङ्गारने धीरे धीरे समस्त राज्यको हस्तगत कर लिया और वे सत्यन्धरको मारनेके लिए एक दल सेना भेज दी। सत्यन्धरको यह बात मालूम होते ही उन्होंने रात्रिके समय अपने पुत्रकी रक्षाके लिए रानी विजया (जीवन्धरकी माता)-को केकियन्त्र (आज कलके हवाई जहाजकी भांतिका एक यन्त्र)में बिठा कर उड़ा दिया। युद्ध हुआ, पर निःसहाय सत्यन्धर इस युद्धमें मारे गये।

वह केकियन्त्र उड़ता हुआ उसी राजधानीके किसी एक श्मशानभूमिके पास जा गिरा और गिरनेके साथ ही रानीने पुत्र प्रसव किया। इसी समय एक देवीने धात्रीके रूप धारण कर रानीको समझाया—"देवि! इस पुत्रको यहीं रख कर आप कहीं छिप जावें। इसको कोई भाग्यवान् आ कर ले जायगा और वही इसका लालन-पालन करेगा। इससे काष्ठाङ्गारको इसका कुछ पता न चलेगा, नहीं तो वह दुष्ट इसको जीवित न छोड़ेगा।" विजयाने ऐसा ही किया। उस समय गन्धोत्कट नामक एक प्रसिद्ध श्रेष्ठी (सेठ) अपने सद्यजात पुत्रकी अन्तिम क्रिया कर वहांसे लौट रहे थे, उन्हें यह बालक रोता हुआ मिला। उसे वे घर ले गये और जीवन्धर नाम रख कर उसका लालन पालन करने लगे।

रानी विजया जिनेन्द्रदेवका स्मरण करती हुई एक आश्रममें दिन बिताने लगीं।

जीवन्धरने प्रथम तो गन्धोत्कटके घर और फिर लोकपाल मुनिके पास रह कर विद्याभ्यास किया। इसी समय इन्हें अपने गुरु लोकपाल मुनिसे अपना यथार्थ परिचय ज्ञात हुआ। फिर क्या था, इनके हृदयमें राज्य पाने और क्रूरमति काष्ठाङ्गारसे बदला लेनेकी प्रबल इच्छा जग उठी।

अनन्तर जीवन्धर अपने मामा गोविन्दराजसे परामर्श करनेके लिए धरणीतिलक नगरी पहुंचे। इस समय गोविन्दराजका काष्ठाङ्गारके साथ सन्धि करनेकी लिखा पढ़ी चल रही थी। सन्धिके बहाने गोविन्दराज सेना सहित काष्ठाङ्गारके पास पहुंचे। साथमें जीवन्धर भी थे। राजसभामें काष्ठाङ्गारको जीवन्धर पर सन्देह हुआ। परिचय पूछने पर निर्भीक जीवन्धरने साफ साफ अपना

परिचय दे दिया। काष्ठाङ्गारने उपायान्तर न देख कर युद्ध करनेका निश्चय किया। युद्धमें जीवन्धरने काष्ठाङ्गारको मार कर पितृ सिंहासन अधिकार कर लिया। इनकी माता (विजया)-ने यह संवाद पा कर हृष्टचित्तसे पद्मा नाम्नी आर्यिकाके निकट दीचा ले ली। राज्यप्राप्तिसे पहले ही स्वयंवरोंमें इन्होंने अपनी वीरता दिखा कर गन्धर्वदत्ता, गुणमाला, क्षेमश्री, कनकमाला, सुरमञ्जरी, लक्षणा आदि राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया था। राजा होनेके बाद इन्होंने गन्धर्वदत्ताको पट्टरानीका पद और गन्धोत्कटके पुत्र नन्दाढ्यको युवराजका पद दिया।

वृद्धावस्थामें किसी कारणवश इन्हें वैराग्य हो गया। इन्होंने श्रीमहावीर स्वामीके समीप मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। अनन्तर कठिन तपश्चर्याके द्वारा ये संसारसे मुक्त (निर्वाणप्राप्त) हो गये।

जीवन्मुक्त (सं० त्रि०) जीवन्नेव मुक्तः आत्मज्ञानेन मायाबन्धरहितः, कर्मधा०। १ तत्त्वज्ञ, ज्ञानी, जो तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो जानेके कारण जीवद्दशामें ही संसारबन्धन तोड़ कर मुक्त हुआ हो। जो अज्ञानरूप तमको भेद कर सुखदुःखादिको पार कर गये हैं। जीवन्मुक्तका लक्षण वेदान्तसारमें इस प्रकार लिखा है—अखण्डचैतन्य इस प्रकारके ब्रह्मज्ञानके बाद अज्ञाननाशसे सर्वव्यापी स्वरूपचैतन्य ब्रह्मसाक्षात्कार होने पर अज्ञान और अज्ञानके कार्य पापपुण्य तथा संशयभ्रमादिकी निवृत्तिके कारण समुदय संसारबन्धनसे मुक्त होनेसे ही जीवन्मुक्त होता है। (वेदान्तसार)

"कारणके बिना कार्य नहीं हो सकता" इस न्यायके अनुसार जिनका सुखदुःखादि वा संसारका कारण अज्ञान दूर नहीं हुआ, वे किस तरह अज्ञानके कार्य संसारबन्धन आदि हो सकते हैं? इसमें इस प्रकार श्रुतिप्रमाण प्रदर्शित किया गया है—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥"

उस परब्रह्मका साक्षात्कार होने पर अन्तःकरणका भ्रम नष्ट होता, संशय दूर होता और सदसत् कर्म ध्वंस होते हैं। इस प्रकारकी अवस्था होने पर जीव जीवन्मुक्त होता है। इस प्रकारके जीवन्मुक्त पुरुष जाग्रत अवस्थामें रक्त, मांस, विष्ठा, मूत्रादिके आधाररूप षाट्कौषिक शरीरसे, आन्ध्य, मान्द्य, अपटुता आदिके आश्रयरूप इन्द्रियसमूहसे, बधिरता, कुण्ठता अन्धत्व, जड़ता, जिघ्रता, मूकता, कौण्य, पङ्गुत्व क्लैव्य, उदावर्त्त, मन्दता इन ११ इन्द्रिय और वध, अशन, पिपासा, शोक, मोह आदिके आकार रूप अन्तःकरणसे पूर्व पूर्व वासनाकृत संस्कार दूर होते हैं।

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटीशतैरपि।" (श्रुति)

सैकड़ों कल्प बीत जाने पर भी, यदि कर्मभोग न हुआ हो तो वे संस्कार नष्ट नहीं होते। इसीलिए शास्त्रोंमें निष्काम कर्मकी विशेष प्रशंसा की गई है। जो कामना-रहित हो सकता है, उसे फिर इस प्रकारके संस्कारोंका वशीभूत नहीं होना पड़ता। कर्मद्वारा यदि पूर्वसंस्कार क्षय होने लग जाय और सकामके बिना निष्काम कर्मसे नवीन संस्कार सञ्चित न हो सकें, तो वे ज्ञानके अविरोधी प्रारब्ध कर्मोंको भोग कर 'दृश्यमान यह जगत् यथार्थमें सत्य वस्तु नहीं है'—इस प्रकारका ज्ञान किया करते हैं। जैसे कि, किसी ऐन्द्रजालिकके इन्द्रजालको देख कर इन्द्रजालदर्शक यह स्थिर कर लेता है कि, वह सत्य नहीं है। जो अपनेको बाह्य विषयमें चक्षु रहते हुए भी चक्षुहीन, कान होते हुए भी कर्णहीन, मन होते हुए भी मनरहित, प्राण रहते हुए भी प्राणरहित समझते हैं और जाग्रत अवस्थामें भी जो अपनेको सोता हुआ मान कर बाह्य वस्तुको नहीं देखते तथा द्वैत वस्तुको भी जो अद्वितीय देखते और बाहरसे कर्म करते हुए भी जो अन्तःकरणसे निष्क्रिय हैं, वे ही जीवन्मुक्त हैं। इनके सिवा अन्य व्यक्ति जीवन्मुक्त नहीं है। जीवन्मुक्तिके उत्तरकालमें जीवन्मुक्त पुरुषके तत्त्वज्ञानसे पहले क्रियमाण आहारादिकी जिस तरह अनुवृत्ति होती है, उसी प्रकार शुभकर्मसे ही वासनाकी अनुवृत्ति होती है। फिर अशुभ कर्मोंकी वासनाएं नहीं होतीं और पीछे शुभाशुभ दोनों प्रकारके कर्मोंसे उदासीनता हो जाती है। अद्वैत तत्त्वज्ञान होने पर भी यथेच्छाचरणसे वासनाएं हों तो अशुचि भक्षणमें कुक्कुरके साथ तत्त्वज्ञानीकी क्या विशेषता रही? अतएव ज्ञान होने पर भी जिस व्यक्तिके

यथेच्छाचरणकी अनुवृत्ति होती है, वह जीवन्मुक्त नहीं; उसको आत्मज्ञ कह सकते हैं। जीवन्मुक्तिके समय अनभिमानित्व आदि ज्ञानसाधक गुण और अद्वेष्टृत्वादि शोभन गुण अलङ्कारकी भाँति उस जीवन्मुक्त पुरुषमें अनुवर्त्तित होते हैं। अद्वैत-तत्त्वज्ञानी पुरुषके असाधनरूप अद्वेष्टृत्वादि सद्गुण अयत्नसुलभसे अनुवर्त्तित होते हैं। यह जीवन्मुक्त पुरुष देहयात्रा निर्वाहके लिए इच्छा, अनिच्छा, परेच्छा इन तीन प्रकारसे प्रारब्ध कर्मजनित सुख और दुःखोंको भोगता हुआ साक्षिचैतन्यस्वरूप विद्यावृत्तिका अवभासक हो कर प्रारब्धकर्मके अवसानके उपरान्त आनन्दस्वरूप परब्रह्ममें लीन हो जाता है; पीछे अज्ञान और तत्कार्यरूप संस्कारोंका नाश होता है। इसके पश्चात् परमकैवल्यरूप परमानन्द अद्वैत अखण्ड ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थित हो कर कैवल्यानन्द भोगता है। देहावसान होने पर जीवन्मुक्त पुरुषके प्राण लोकान्तरको न जा कर परब्रह्ममें लीन होता और संसारबन्धनसे मुक्त हो कर परमब्रह्ममें कैवल्यसुखमें लीन हो जाया करता है। (वेदान्तदर्शन)

सांख्यपातञ्जलके मतसे—प्रकृतिपुरुषको विवेकज्ञान होने पर जीवन्मुक्ति होती है। "इयं प्रकृतिः जड़ा परिणामिनी त्रिगुणमयी" यह प्रकृति जड़ और परिणमनशील है, सत्त्वरजस्तमोगुणमयी, अर्थात् सुख दुःख मोहमयी है, मैं निर्जर और चेतन्यस्वरूप हूं—यह ज्ञान जब होता है, तब पुरुष जीवन्मुक्त होता है। निरन्तर दुःख भोगते भोगते पुरुषके लिए ऐसा समय आ उपस्थित होता है, जब वह उस दुःखको निवृत्तिके लिए कुछ उपाय सोचने लगता है; पीछे उसको शास्त्रज्ञान प्राप्त करनेको इच्छा होती है। फिर वह विवेकशास्त्रोंके अनुसार योग आदिका अवलम्बन कर संसारबन्धनसे मुक्त होता है, उस समय प्रकृति इसको छोड़ देती है। प्रकृति पुरुषके अपवर्गको साधित करके ही निवृत्त हो जाती है, फिर उसके साथ नहीं मिलती।

प्रकृतिसे बढ़ कर सुकुमारतर और कुछ भी नहीं है, पुरुषके द्वारा एक बार देखे जाने पर फिर वह दिखलाई नहीं देती। जब पुरुष अपने स्वरूपको समझ लेता है और उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब वह सुख दुःख-मोह को पार कर जीवन्मुक्त हो जाता है। जीवात्मा देखो।

जीवन्मुक्ति (सं० स्त्री०) जीवतो मुक्तिः, ६-तत्। तत्त्वज्ञान होने पर जीवदवस्थामें ही संसारबन्धनसे परित्राण। कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अखिलाभिमानका त्याग होने पर त्रिविध दुःखोंसे छुटकारा मिलता है और न पुनः जन्म-मृत्यु आदिका क्लेश भी नहीं सहना पड़ता। जीवन्मुक्तिका उपाय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन योग आदि। (तन्त्रसार) जीवनमुक्ति देखो।

जीवन्मृत (सं० त्रि०) जीवन्नेव मृतः मृततुल्यः। जीवित अवस्थामें मृतकल्प, जो जीवित दशामें ही मरेके समान हो, जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हो। जो कर्त्तव्य कार्यसे पराङ्मुख हो कर सर्वदा दुःखोंका अनुभव करते रहते हैं, वे भी जीवन्मृत हैं। जो आत्माभिमानी हैं और बड़ी कठिनतासे आत्माका पोषण करते हैं तथा जो वैश्वदेव अतिथि आदिका यथोचित सत्कार नहीं कर सकते हैं, हिन्दूधर्मशास्त्रानुसार वे भी जीवन्मृतके समान वास करते हैं। (दक्ष)

जीवन्यास (सं० पु०) जीवस्य न्यासः, ६-तत्। मूर्तियोंकी प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र।

जीवपति (सं० स्त्री०) जीवः जीवन्पतिरस्याः, बहुव्री०। १ सधवा स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। (पु०) २ धर्मराज।

जीवपत्नी (सं० स्त्री०) जीवः जीवन् पतिर्यस्याः बहुव्री०। जीवत्पतिका, सुहागिनी स्त्री, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

जीवपत्र प्रचायिका (सं० स्त्री०) जीवस्य जीवपुत्रकस्य पत्राणि प्रचीयन्तेऽस्यां। जीव-प्रचि भावे ण्वुल्। क्रीड़ा विशेष, एक प्रकारका खेल।

जीवपत्नी (सं० स्त्री०) जीवन्ती। जीवन्ती देखो।

जीवपुत्र (सं० पु०) जीवः जीवकः पुत्र इव हर्षहेतुत्वात्। इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोटाका पेड़।

जीवपुत्रक (सं० पु०) जीवपुत्रः स्वार्थे कन्। १ इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोटाका पेड़। २ पुत्रजीव वृक्ष।

जीवपुत्रा (सं० स्त्री०) जीवः जीवन् पुत्रो यस्याः, बहुव्री०। वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवपुष्प (सं० क्ली०) जीवः जन्तुः पुष्पमिव रूपक-

कर्मधा०। जन्तुरूप पुष्प, एक प्रकारका फूल।

जीवपुष्पा (सं० स्त्री०) जीवयति जीव णिच्-अच्, जीवं जीवकं पुष्पं यस्याः। वृहज्जीवन्ती, बड़ी जीवंती।

जीवप्रिया (सं० स्त्री०) जीवानां प्राणिनां प्रिया हित-कारित्वात् जीवं प्रीणाति प्री-क-टाप्। १ हरीतकी, हड़। २ जीववल्लभा, प्राणप्यारी।

जीवबन्धु (सं० पु०) बन्धुजीव, गुलदुपहरिया, बन्धूक।

जीवभद्रा (सं० स्त्री०) जीवानां प्राणिनां भद्रं मङ्गलं यस्याः, बहुव्री०। १ जीवन्ती लता। (क्ली०) २ जीवका कुशल, प्राणका कल्याण। ३ जीवशाक, मसना। ४ औषधविशेष एक प्रकारकी दवा।

जीवमन्दिर (सं० क्ली०) जीवस्य आत्मनो मन्दिरं गृह मिव। शरीर, देह।

जीवमातृका (सं० स्त्री०) जीवस्य मातृका, ६-तत्। कुमारी, धनदा, नन्दा, विमला, मङ्गला, बला और पद्मा ये ही सात जीवमातृका हैं। 'कुमारी धनदा नन्दा विमला मंगला बला। पद्मा चेति च विख्याताः सप्तैताः जीव मातृकाः॥" (विधानपारिजात) ये सात देवियां माताके समान जीवोंका पालन और कल्याण करती हैं, इसलिये ये जीवमातृका कहलाती हैं।

जीवयाज (सं० पु०) जीवैः पशुभिः याजः याजनं यज णिच् भावे अच्। पशु द्वारा याजन, पशुओंसे किया जाने-वाला यज्ञ।

जीवयोनि (सं० स्त्री०) जीवा जीवनवती योनिः, कर्मधा०। सजीव जन्तु, जानवर।

जीवरक्त (सं० क्ली०) जीवोत्पादकं रक्तं, शाकत०। स्त्रियोंके आर्त्तव-शोणित वा रजको जो गर्भधारणके उपयुक्त हुआ हो, उसको जीवरक्त कह सकते हैं। गर्भके अग्नी-षोमत्वके हेतु अर्थात् शीत उष्ण दोनों गुणोंके रहनेके कारण स्त्रियोंका रज आग्नेय है। जीवरक्त पाञ्चभौतिक है अर्थात् जिस पञ्चभूतसे शरीर उत्पन्न होता है, वह उसमें विद्यमान है। मांसगन्धविशिष्ट, तरल, लाल, चरणशील और लघु, शोणितके इन गुणोंको ही पञ्च-भूतोंके गुण कह सकते हैं। (सुश्रुत १४ अ०)

जीवरत्न (सं० क्ली०) पुष्पराग, एक मणि।

जीवराज दीक्षित—एक सङ्गीतशास्त्रकार। राघवके पनु-त्रोंसे इन्होंने रागमाला नामक एक सङ्गीत-विषयक पुस्तककी रचना की है।

जीवराज—१ लघुचित्रालङ्कारके प्रणेता। २ सेतुबन्धरम-तरङ्गिणीके टीकाकार। ३ एक कवि। इनके पिताका नाम व्रजराज और पितामहका नाम कामरूपसूरि था। इन्होंने गोपालचम्पूटीका तथा तर्ककारिका और उसकी तर्कमञ्जरी नामकी एक टीका प्रणयन की है। ४ परमा-त्मप्रकाश-वचनिका नामक जैन ग्रन्थके कर्त्ता। ये बड़-नगर (मालवा)-के रहनेवाले, खण्डेलवाल जातिके और १७६२ सम्वत्‌में विद्यमान थे।

जीवराम—१ सामग्रीवादके प्रणेता। २ स्वस्तिवाचन-पद्धतिके प्रणेता।

जीवला (सं० स्त्री०) जीवं उदरस्थ कृमिं लाति गृह्णाति नाशयति ला-क। आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३। १ सैंहली। २ सिंहपिप्पली।

जीवलोक (सं० पु०) जीवानां लोकः भोगसाधनं, ६-तत्। १ प्राण और चेतनविशिष्ट पदार्थोंका वासस्थान, मर्त्य-लोक भूलोक।

"विश्रामवृक्षसदृशः खलु जीवलोकः।" (उद्भट)

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।" (गीता)

२ जीवरूप मनुष्य।

"तदा वीरैः भवति जीवलोके।" (भारत वन ३४ अ०)

जीववती (सं० स्त्री०) १ क्षीरकाकोली, एक प्रकारकी जड़ी।

जीववत्सा (सं० त्रि०) जिसके बच्चे जीते हों।

जीववर्ग (सं० पु०) जीवानां वर्गः समूहः, ६-तत्। जीवसमूह।

जीववर्द्धिनी (सं० स्त्री०) ऋद्धि।

जीववल्ली (सं० स्त्री०) जीवयतीति जीवा प्राणदात्री सा चासौ वल्ली चेति, कर्मधा०। १ क्षीरकाकोली, एक प्रकारकी जड़ी। २ काकोली।

जीवविचार (सं० पु०) जैनोंके एक ग्रन्थका नाम।

जीवविचारप्रकरण (सं० पु०) शान्तिसूरि-रचित जैन ग्रन्थ।

जीवविबुध—नलानन्द नाटकके प्रणेता।

जीववृत्ति (सं० स्त्री०) जीव एव वृत्तिः, कर्मधा०।

१ पशुपालनेका व्यवसाय। २ जीवका गुण या व्यापार।

जीवशङ्ख (सं० पु०) कृमिशंख।

जीवशंस (सं० पु०) जीवैः प्राणिभिः शंसनीयः शंसुस्तुतौ कर्मणि घञ्। जीव कर्तृक कामना।

जीवशर्मा—एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्।

जीवशाक (सं० पु०) जीवो हितकरः शाकः, कर्मधा०। मालवदेशीय प्रसिद्ध शाकविशेष, मालवदेशमें होनेवाला एक प्रकारका शाक, सुसना। इसके संस्कृत पर्याय—जीवन्त, रक्तनाल, ताम्रपर्ण, प्रवाल, शाकवीर, सुमधुर और मेषक है। इसके गुण—सुमधुर, बृंहण, वस्तिशोधन, दीपन, पाचन, वल्य, वृष्य और पित्तापहारक है।

जीवशुक्ला (सं० स्त्री०) जीवा हितकारी शुक्ला शुभ्रवर्णा लता। जीवयति जीव णिच्-अच्। चीरकाकोली, एक प्रकारकी जड़ी।

जीवशून्य (सं० क्ली०) जीवैः शून्यं, ३-तत्। जीवरहित, वह जिसके प्राण न हो।

जीवशेष (सं० पु० स्त्री०) मुमुर्षु, वह जिसकी मृत्यु निकट आ गई हो, वह जो मरने पर हो।

जीवशोणित (सं० क्ली०) जीवोत्पादकं शोणितं, शाकत०। स्त्रियोंका आर्त्तव शोणित। यह गर्भधारणका उपयुक्त होनेके कारण जीवशोणित नामसे अभिहित हुआ है।

जीवश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) जीवाय जीवनाय श्रेष्ठा, ४-तत्। ऋद्धि नामकी औषध।

जीवसंक्रमण (सं० क्ली०) जीवानां संक्रमणं, ६-तत्। देहान्तरप्राप्ति, जीवका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें गमन।

जीवसंज्ञ (सं० पु०) जीव इति संज्ञा यस्य, बहुव्री०। कामवृद्धि वृक्ष।

जीवसाधन (सं० क्ली०) जीवस्य जीवनस्य साधनं, ६ तत्। धान्य, धान।

जीवसुन्दराय—ज्ञानसूर्योदय नाटक और वैराग्यशतक नामक जैन पद्यग्रन्थके रचयिता।

जीवसुता (सं० स्त्री०) जीवः सुतः यस्याः, बहुव्री०। जीवपुत्रा, वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो।

जीवसू (सं० स्त्री०) जीवं प्राणिनं सूते सू-क्विप्। जीवतोका, वह स्त्री जिसकी सन्तति जीती हो।

जीवस्थान (सं० क्ली०) जीवस्य जीवनस्य स्थानं, ६-तत्। मर्म, शरीरका वह स्थान जहां जीव रहता है, हृदय। जीवात्मा देखो।

जीवहत्या (सं० स्त्री०) १ प्राणियोंका वध। २ प्राणियोंके वधका दोष।

जीवहिंसा (सं० स्त्री०) १ जीवोंका वध, प्राणियोंकी हत्या। २ जैनमतानुसार पांच पापोंमेंसे पहला पाप।

जीवा (सं० स्त्री०) जीवयति जीव-णिच् अच् वा टाप् ज्या-क्विप्, संप्रसारणे दीर्घः सा अस्त्यस्य व। १ ज्या, धनुषकी डोरी। २ जीवन्तिका नामकी औषध। ३ वचा, बालवच। ४ शिञ्जित। ५ भूमि। ६ जीवनोपाय, जीविका। ७ जीव-भावे अ-टाप्। ८ जीवन, प्राण। ९ ऋद्धि। १० जीवक। ११ हरीतकी।

जीवागार (सं० क्ली०) मर्मस्थान।

जीवातु (सं० पु० क्ली०) जीवत्यनेन जीव आतु। जीवेरातु। उण् १।८०। १ भक्त, अन्न, अनाज। २ जीवनौषध।

"रे हस्त दक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।" (उत्तर चरित ३ अंक)

जीवातुमत् (सं० पु०) जीवातु मतुप्। आयुष्कामयज्ञके देवताविशेष, आयुष्कामयज्ञके एक देवता। इनसे आयुकी प्रार्थना की जाती है।

जीवात्मा (सं० पु०) जीवस्य जीवनस्य आत्मा अधिष्ठाता, ६-तत् वा जीवस्वामी आत्मा चेति, कर्मधा०। देही, आत्मा, चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—पुनर्भवी, जीव, असुमान्, सत्त्व, देहभृत्, जन्तु, जन्यु, प्राणी और चेतन। जिसके चैतन्य है, वही आत्मापदवाच्य है। आत्मा समस्त इन्द्रियों और शरीरका अधिष्ठाता है। आत्माके बिना किसी भी इन्द्रियसे कोई भी कार्य नहीं होता। जिस प्रकार रथके चलने पर सारथिका अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार जड़ात्मक देहकी चेष्टा आदिके देखनेसे आत्माका भी अनुमान किया जा सकता है। शरीर आदिमें चैतन्यशक्तिका होना सम्भव नहीं; क्योंकि यदि वह शक्ति शरीर और इन्द्रिय आदिमें होती, तो मृत व्यक्तिके शरीरमें भी वह निःसन्देह पायी जाती। हमारा शरीर क्षीण हुआ है, आंखें विकृत हुई हैं, हम सुखी और दुःखी हुए हैं जब

इस प्रकारकी प्रतीति सभी लोगोंको हो रही है, तब यह स्पष्ट ही मालूम हो रहा है कि, शरीर और इन्द्रियोंसे आत्मा भिन्न है। (भाषाप० ५०) आत्माके दो भेद हैं—एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। मनुष्य, कीट, पतङ्ग आदि जितने भी प्राणी देखनेमें आते हैं, वे सब ही जीवात्मा हैं। परमात्मा एकमात्र परमेश्वर हैं। जो सुख दुःख आदिका अनुभव करते हैं, वे ही जीवात्मा कहलाते हैं; इस जीवात्माके गुण १४ हैं—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, चिन्ता, धर्म और अधर्म।

(भाषाप० ३२)

जीवात्मामें जो जो गुण हैं, परमात्मामें भी प्रायः वे गुण मौजूद हैं; केवल द्वेष, सुख, दुःख, चिन्ता, धर्म और अधर्म नहीं हैं। परमात्माके ज्ञान, इच्छा, यत्न आदि कई एक गुण नित्य हैं।

जीवात्माके अतिरिक्त एक परमेश्वर भी हैं, इस विषयमें शास्त्रकारोंने बहुत प्रमाण दिये हैं। यहां कुछ प्रमाण लिखे जाते हैं।

इस जगत्में जितने भी पदार्थ देखनेमें आते हैं, उनके एक न एक कर्त्ता हैं। कर्त्ताके बिना कोई काम नहीं होता; जैसे—घटको देखते ही समझना होगा कि, इसका कर्त्ता एक कुम्भकार है। अगम्य अरण्यस्थ वृक्षादि भी कार्य है, उनका भी कर्त्ता है। परन्तु उस विषयमें हमारा कर्तृत्व नहीं मालूम होता, क्योंकि वहां हम लोगोंका जाना नहीं होता। इसलिए वहांके स्थावर आदिके कर्त्ता एक असाधारण शक्तिसम्पन्न परमेश्वर हैं, इसमें सन्देह नहीं हो सकता। (मुक्तावली)

परमेश्वरके भोगसाधन शरीरमें सुख, दुःख और द्वेष आदि कुछ भी नहीं है; केवल नित्यज्ञान, इच्छा और यत्न आदि कई एक गुण हैं। जीवात्मा बहुत हैं, अर्थात् एक एक शरीरमें अधिष्ठातास्वरूप एक एक जीवात्मा है। यदि सबकी आत्मा एक होती तो एक व्यक्तिके सुख या दुःखसे सारा जगत् सुखी वा दुःखी होता। जब कि सुख दुःख आदि आत्माके धर्म हैं, तब एक व्यक्तिकी आत्मामें सुख वा दुःखका सञ्चार होने पर सबकी आत्माओंमें सुख और दुःखका असद्भाव नहीं होता। नयन आदि स्वरूप इन्द्रियोंको आत्मा कहना नितान्त भ्रम है। क्योंकि यदि चक्षु आदि इन्द्रिय स्वरूप ही आत्मा होती, तो 'मैं चक्षु हूं' इत्यादिका व्यवहार होता और चक्षु आदि इन्द्रियोंके नष्ट होनेसे आत्माका भी नाश हो जाता। जिस तरह दूसरे आदमीकी देखी हुई चीजका दूसरा आदमी स्मरण नहीं कर सकता, उसी तरह चक्षुके नष्ट हो जाने पर पहलेके देखे हुए पदार्थोंका किसीको भी स्मरण नहीं रहता।

मैं गोरा हूं, मैं काला हूं, मैं मोटा हूं, मैं दुबला हूं इत्यादि व्यवहार हो रहा है, इसलिए शरीरको 'मैं आत्मा हूं' कहना स्थूलदर्शिताका कार्य समझना चाहिये। कारण यह है कि, यदि शरीर ही आत्मा होता, तो कोई भी व्यक्ति धर्म और अधर्मका फल स्वरूप स्वर्ग और नरक नहीं भोगता; क्योंकि शरीरके विनष्ट होते ही आत्माका भी नाश हो जाता, फिर स्वर्ग और नरक भोगता ही कौन? स्वर्ग वा नरक आदिकी बेबुनियाद ही कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो कोई भी व्यक्ति शारीरिक क्लेश और अर्थव्यय करके यज्ञादि रूप धर्मकर्म नहीं करता और न परदार आदि निषिद्ध कर्मोंसे निवृत्त ही होता; बल्कि ऐहिक सुखकी अभिलाषासे प्रवृत्त होनेकी ही सम्भावना थी। और भी जरा विचार कर देखिये, यदि शरीर ही आत्मा होता, तो सद्यप्रसूत बालकको हर्ष, शोक, भय आदि वा स्तन्यपानादिमें प्रवृत्ति नहीं होती। क्यों कि उस समय उस बालकको हर्ष विषादादिका कुछ कारण नहीं और न उसे यह ही मालूम है कि, स्तनोंके पीनेसे क्षुधाकी निवृत्ति हो जायगी। उसको किसीने उपदेश भी नहीं दिया; फिर कैसे वह स्तनोंको पीने लगता है? अतएव स्वीकार करना पड़ेगा कि, इहलोक और परलोकगामी सुखदुःखादि भोक्ता नित्य एक अतिरिक्त आत्मा है, क्योंकि उस बालकको पूर्वजन्मानुभूत हर्षादि कारणकी स्मृतिसे ही हर्षविषाद होता है और पूर्वानुभूत स्तन्यपानके संस्कारसे ही उस समय स्तन्यपानमें प्रवृत्त होता है। हां, मैं गोरा हूं, काला हूं इत्यादि व्यवहार जो शरीरभेदके अनुसार हुआ करता है, वह भ्रमके सिवा और कुछ नहीं है।

नास्तिक चार्वाक शरीरके अतिरिक्त आत्माको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि, पुरुष जितने दिनों तक जीवित रहे, उतने दिनों तक सुखके लिए ही कोशिश करे। जब सब ही व्यक्ति कालग्रासमें पतित हो रहे हैं और मृत्युके बाद जब बान्धवगण शवदेहको जला कर भस्म हो कर देते हैं, फिर उसमें कुछ बच नहीं रहता, तो जिससे सुखसे जीवन व्यतीत हो, उसकी कोशिश करना ही विधेय है। पारलौकिक सुखकी आशामें धर्मोपार्जन कर आत्माको कष्ट देना नितान्त मूढ़ताका कार्य है; क्योंकि भस्म हुई देहका पुनर्जन्म होना किसी हालतमें सम्भव नहीं। ये पञ्चभूतको नहीं मानते। इनके मतसे-क्षिति अप् तेज: और वायु इन चार भूतोंसे ही देहकी उत्पत्ति होती है। अचेतनसे चेतनका उत्पन्न होना किस तरह सम्भव हो सकता है? इसके उत्तरमें वे यह कहते हैं कि, यद्यपि भूत अचेतन हैं तथापि वे मिल कर जब शरीररूपमें परिणत होते हैं, तब उसमें चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार हल्दी और चूनाके मिलने पर लाल रंगकी उत्पत्ति हो जाती है तथा गुड़ और चावल आदि प्रत्येक द्रव्य मादक न होने पर भी, मिल जानेसे उसमें मादकताशक्ति आ जाती है, उसी प्रकार अचेतन पदार्थोंसे उत्पन्न होने पर भी इस देहमें चैतन्य स्वरूप व्यवहारिक आत्माकी उत्पत्ति होना सम्भव नहीं। मैं मोटा हूं, दुबला हूं, गोरा हूं, काला हूं इत्यादि लौकिक व्यवहारमें भी आत्माको ही स्थूल कृश आदि समझा जाता है, परन्तु स्थूलत्वादि धर्म सचेतन भौतिक देहमें ही पाया जाता है। इसलिए यह विलक्षणतासे प्रमाणित होता है कि, सचेतन देह ही आत्मा है, उसके सिवा दूसरा कोई पृथक् आत्मा नहीं है। ये और भी एक प्रमाण देते हैं कि, जिस तरह लोहा और चुम्बक इन दोनोंके अचेतन पदार्थ होने पर भी पारस्परिक आकर्षणसे दोनोंमें क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है; उसी तरह परस्पर भूतसमूह एकत्र होने पर उसमें चैतन्यस्वरूप एक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। चार्वाक देखो।

बौद्धमतमें प्रथम क्षणमें उत्पत्ति दूसरे क्षणमें विनाश इस तरह सभी वस्तुओंको क्षणिक माना है, इसलिए आत्मा भी क्षणिक है, ज्ञानस्वरूप क्षणिक है, ज्ञानके सिवा स्थिरतर आत्मा नहीं है। बौद्ध देखो।

बौद्धोंके माध्यमिक मतावलम्बी क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा भी नहीं मानते; वे कहते हैं—कुछ भी नहीं है, सब कुछ शून्य है, क्योंकि जो वस्तुएँ स्वप्नमें दीखती हैं, वे जाग्रत अवस्थामें नहीं दीखतीं और जो जाग्रतदशामें दीखती हैं, वे स्वप्नावस्थामें नहीं दीखतीं। इससे विलक्षण प्रतिपन्न होता है कि, यथार्थमें कोई भी वस्तु सत्य नहीं है, सत्य होनेसे अवश्य ही वह समस्त अवस्थाओंमें दिखलाई देती। योगाचार मतावलम्बी क्षणिक विज्ञानरूप आत्माको स्वीकार करते हैं। यह विज्ञान दो प्रकारका है—एक प्रवृत्तिविज्ञान और दूसरा आलयविज्ञान। जाग्रत और सुप्त अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसको प्रवृत्तिविज्ञान और सुषुप्ति अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसको आलयविज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान केवल आत्माके ही अवलम्बनसे हुआ करता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शनके मतसे—जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा और परमात्मा ही जीवात्मा है। जीवात्मा और परमात्मामें जो भेदज्ञान हुआ करता है, वह भ्रममात्र है। यह अनुमान सिद्ध है कि जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं है। अनुमान प्रणाली इस प्रकार है—जिसमें ज्ञान और क्रियाशक्ति है, वही परमेश्वर है तथा जिसमें उक्त दो शक्तियां नहीं हैं, वह परमेश्वर नहीं है; जैसे—गृह आदि। जब जीवात्मामें वह शक्ति पायी जाती है, तब जीवात्मा परमेश्वर और परमात्मासे अभिन्न है, इसमें सन्देह ही क्या? इस स्थान पर कोई कोई आपत्ति करते हैं कि, यदि जीवात्मामें ही ईश्वरता हो, तो ईश्वरतास्वरूप आत्मप्रत्यभिज्ञताकी क्या आवश्यकता है? जैसे जलका संयोग होने पर मिट्टीमें पड़ा हुआ बीज-ज्ञात हो या अज्ञात-अङ्कुर उत्पन्न करता है और जैसे विषको—जान कर या बिना जाने—खानेसे ही मृत्यु होती है, उसी तरह जीवात्मा भी ईश्वरकी भांति जगन्निर्माणादि कार्य क्यों नहीं कर सकता? इस तरहकी आपत्तियां की जा सकती हैं, किन्तु वे कुछ कामकी नहीं। किसी किसी स्थान पर कारण होनेसे ही कार्य होता है और कहीं कहीं कारण

ज्ञान होने पर भी कार्य होता है ; जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक उस कारणसे कार्य नहीं होता। जिस प्रकार इस घरमें भूत है—ऐसा जब तक मालूम नहीं होता, तब तक उस घरके भूतसे डरनेवाले व्यक्तियोंको भी भय नहीं होता; पर मालूम होते ही भय होता है ; उसी प्रकार आत्मामें परमात्मत्व रहने पर भी जब तक उसका ज्ञान नहीं होता, तब तक परमात्माकी भाँति जीवात्मामें भी शक्ति नहीं होती। जैसे—अपरिमित धन रहते हुए भी यदि वह अज्ञात है तो प्रीति नहीं होती, किन्तु मेरे पास अपरिमित धन है—ऐसा ज्ञान होने पर असीम आनन्द होता है। इसी तरह मैं ही ईश्वर अर्थात् परमात्मा हूं-इस प्रकारका जीवात्माको परमात्माका ज्ञान होने पर एक असाधारण प्रीति उत्पन्न होती है। इसलिए आत्मप्रत्यभिज्ञा अवश्य करनी चाहिये।

उक्त दर्शनके मतसे परमात्मा स्वतःप्रकाशमान अर्थात् अपने आप ही प्रकाशमान है। जिस तरह आलोकका संयोग न होने पर गृहस्थित वस्तु घट, पट आदिका प्रकाश नहीं होता, परमात्माके प्रकाशमें उस तरहके किसी कारणकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वे सर्वत्र सर्वदा प्रकाशमान हैं। यहां कोई यह आपत्ति करते हैं कि, जीवात्मा और परमात्मामें परस्पर अभेद है और परमात्मा सर्वदा परमात्माके रूपसे सर्वत्र प्रकाशमान हैं ऐसा स्वीकार करने पर यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जीवात्मा भी परमात्मरूपमें सर्वदा प्रकाशमान हैं, अन्यथा कभी कभी जीवात्मा और परमात्मामें परस्पर अभिन्नता नहीं हो सकती। कारण ऐसा नियम है कि, जो वस्तु जिस वस्तुसे अभिन्न है, उस वस्तुके प्रकाश-कालमें उस (दूसरी) वस्तुका भी अवश्य प्रकाशक होता है। परन्तु परमात्म-रूपमें जीवात्माका जो प्रकाश हो रहा है, यह माना नहीं जा सकता ; क्योंकि ऐसा होनेसे जीवात्माकी उस प्रकारके प्रकाशके लिए आत्म-प्रत्यभिज्ञाकी क्या आवश्यकता थी ? जीवात्माका उस प्रकारका प्रकाश तो सिद्ध ही था, सिद्ध विषयके साधनार्थ किसी भी बुद्धिमान् व्यक्तिकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकारकी आपत्ति करने पर यह उत्तर दिया जा सकता है - किसी कामातुर कामिनीको यह उपदेश मिलने पर कि, उस मकानमें एक सुरसिक नायक है जिसका स्वर अति मधुर, रूपलावण्य अनुपम और वदन हास्यपूर्ण है, जब तक वह वहां जा कर उसके गुण नहीं देख लेती, तब तक वह जिस प्रकार आल्हादित नहीं होती; उसी तरह परमात्मरूपमें जीवात्मामें प्रकाश रहने पर भी जब तक उसे यह नहीं मालूम होता कि, मेरे ही अन्दर परमात्मा आदि गुण हैं, तब तक जीवात्मा और परमात्माका एकभाव अर्थात् पूर्ण भाव नहीं होता। किन्तु जब गुरुवाक्यका श्रवण, मनन और निदिध्यासन किया जाता है, तब जीवात्माके सर्वज्ञतादिरूप परमात्माका धर्म मुझमें ही है'—ऐसे ज्ञानका उदय होता है। उस समय पूर्णभाव हो कर जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं। (प्रत्यभिज्ञादर्शन)

सांख्यदर्शनके मतसे आत्मा (पुरुष) नित्य है। सांख्यवादी आत्माको पुरुष कहते हैं। लिङ्गशरीरमें अवस्थान करनेके कारण आत्माका नाम पुरुष है। आत्मा में सत्व, रजः और तम ये तीन गुण नहीं हैं, आत्माको चेतनस्वरूप, साक्षी, कूटस्थ, द्रष्टा विवेकी, सुखदुःखादि शून्य, मध्यस्थ और उदासीन कह सकते हैं। आत्मा अकर्त्ता अर्थात् कोई भी कार्य नहीं करती, प्रकृति ही सब काम करती है। मैं करता हूं, मैं सुखी वा दुःखी हूं इत्यादि जो प्रतीति है, वह भ्रममात्र है। वास्तवमें सुख, दुःख वा कर्तृत्व आदि आत्मामें नहीं हैं, वे बुद्धिके धर्म हैं। कभी परम सुखजनक सामग्रीके मिलने पर भी सुख नहीं होता और कभी अति सामान्य विषयमें ही परम सुख होती है, किसी किसीको राज्यलाभ या पर्य्यङ्कशयनमें भी सुख नहीं होता और कोई भीख मांगता हुआ भी छिन्नशय्यामें सो कर अपनेको परम सुखी मानता है। इसलिए यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि, सुखकर वा दुःखकर नामका कोई अनुगत नहीं है। जब जिस वस्तुको सुखकर वा दुःखकर समझा जाता है, तभी उसके द्वारा यथाक्रमसे सुख और दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए सुख-दुःखादिको बुद्धिका धर्म समझना चाहिये।

न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे—सुख, दुःख,

भोक्तृत्व आदि जीवात्माके धर्म हैं अर्थात् जीवात्मा ही सुख-दुःखादिको भोगता है। सांख्य, पातञ्जल और वेदान्त दर्शनके साथ इस विषयमें मतभेद है। वेदान्त, सांख्य और पातञ्जलके मतसे—ये बुद्धिके धर्म हैं, बुद्धि ही सुख दुःखादिको भोगती है ; आत्मा बुद्धिप्रतिबिम्बित होने पर जो 'मैं सुखी हूं' 'मैं दुःखी हूं' इत्यादि अनुभव करती है, वह भ्रममात्र अर्थात् स्वप्नमें देखे हुए पदार्थकी भाँति बेबुनियाद है।

आत्मा माया नामक प्रकृतिकी उपाधिसे बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख आदि प्रतिबिम्बरूपमें अपना अनुभव करती है। (सांख्यभाष्य)

वास्तवमें यह आत्माका स्वरूप नहीं है। इस प्रकारकी अनेक युक्तियां प्रदर्शित की गई हैं। आत्मा अहङ्कारसे विमूढ़ हो कर अपनेको प्रकृतिसम्भूत गुणोंके द्वारा होते हुए कार्योंका कर्त्ता मान लेती है। वास्तवमें आत्माका ऐसा स्वरूप नहीं है। (सांख्यभाष्य)

आत्मा निर्वाणमय ज्ञानमय और अमल है। प्रकृतिके धर्म दुःखमय और अज्ञानमय हैं, जो आत्माके नहीं हैं। परन्तु न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्माको यदि प्रकृतिस्थानीय किया जाय, तो दोनों मतोंमें अच्छी तरह सामञ्जस्य हो सकता है। सांख्यमतमें प्रकृतिको संसारका आदि कारण कहा गया है।

प्रकृतिका परिमाण दो प्रकारका है—एक स्वरूप-परिणाम और दूसरा विरूप-परिणाम। स्वरूप-परिणाममें प्रकृतिको विकृति नहीं होती। जब विरूप-परिणाम होता है, तब पहले प्रकृतिकी ७ विकृति होती है। १६ विकार पदार्थ हैं, इनसे किसी प्रकारका विकार नहीं होता। पुरुष इनसे अतीत है। पुरुष वा आत्मा न तो प्रकृति है और न विकृति प्रकृति ही आत्माको नाना प्रकारसे विमोहित करती है। आत्मा प्रकृतिकी मायामें अपना स्वरूप नहीं जान सकती, प्रकृति ही समस्त सुख-दुःखादिका अनुभव करती है। इससे मालूम होता है कि, प्रकृतिका धर्म और जीवात्माका धर्म एक ही है। प्रकृति देखो। न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा तथा सांख्यादि मतसे प्रकृति दोनों एक ही वस्तु हैं।

आत्मा शरीरभेदसे नाना हैं, अर्थात् एक शरीरके अधिष्ठाता आत्मस्वरूप एक पुरुष हैं। यदि सब शरीरोंका एक ही अधिष्ठाता होता, तो एकके जन्म वा मरणसे सबका जन्म वा मरण होता और एकके सुख वा दुःखसे जगन्मण्डल सुखी वा दुःखी होता। जब सुख-दुःखका ऐसा नियम है, तब अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि, पुरुष वा आत्मा नाना हैं और जो जिस प्रकारके कार्य करता है, उसे उसी प्रकारके फल भोगने पड़ते हैं। यद्यपि आत्मामें सुख दुःखादि कुछ भी नहीं हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है, 'आत्मा अनेक हैं, यह साबित होने पर एकके सुखसे जगत् सुखी क्यों नहीं होता ?' इस प्रकारको आपत्ति हो ही नहीं सकती, परन्तु तो भी जिस तरह जवाकुसुमके पास अति शुभ्र स्फटिक भी लाल मालूम होने लगता है, उस तरह आत्मा अपनी बुद्धिमें स्थित सुख दुःखादिको आत्मगत मान कर मैं, सुखी हूं-मैं दुःखी हूं इस प्रकार समझती है। समस्त व्यक्तियोंके ऐकात्मपक्षसे एक व्यक्तिको वैसा होने पर सबहीको क्यों नहीं होता, इस प्रकारकी आपत्तिका खण्डन नहीं होता। मैं भोजन और शयन कर रहा हूं, इत्यादि जो व्यवहार होते हैं, उनका शरीरकी क्रियाके आधारसे ही समर्थन करना होगा, क्यों कि आत्मामें क्रिया वा कर्तृत्व कुछ भी नहीं है। आत्मामें जब कुछ भी नहीं है, तब बन्ध, मोक्षका होना भी असम्भव है, किन्तु ऐसा होनेसे प्रत्यक्षके साथ विरोध होता है। प्रत्येक शरीरका अधिष्ठाता जब एक एक आत्मा है, तब उसके बन्ध मोक्ष क्यों नहीं होंगे? किन्तु इसमें जरा विचार कर देखनेसे मालूम हो जायगा कि, यह आत्माके नहीं हैं।

आत्मा न तो बद्ध ही होती है और न मुक्त, प्रकृति ही नानारूप धारण कर बद्ध और मुक्त हुआ करती है। जितने दिनों तक प्रकृति-पुरुषका साक्षात्कार (अर्थात् प्रकृति और पुरुषका विवेकज्ञान) नहीं होता, तब तक पुरुष विरत नहीं होता। (सांख्यतत्त्वकौ० ६२ सू०)

नर्त्तकी जिस तरह नृत्य दिखा कर दर्शकोंको सन्तुष्ट कर नृत्यसे निवर्त्तित होती है, उसी तरह प्रकृति भी आत्माको प्रकाशित कर निवर्त्तित होती है अर्थात् फिर आत्मा मुक्त हो जाती है। आत्मा जिस शरीरका अव-

लम्बन कर सुख वा दुःखको प्रतिविम्बरूपसे भोगती है, वह शरीर दो प्रकारका है—स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल शरीर माता और पिताके द्वारा उत्पन्न होता है। मातासे लोम, शोणित और मांस तथा पितासे स्नायु, अस्थि और मज्जा उत्पन्न होती है। इन ६ वस्तुओंसे बने हुए शरीरको षाट्कौशिक वा उक्त रीतिके अनुसार माता-पिताके द्वारा सम्पादित होनेके कारण इसको माता पितृज भी कहा जा सकता है। इस शरीरकी उत्पत्ति तथा नाश होता है, यह भुक्त द्रव्यका परिणाममात्र है। जो वस्तु खायी जाती है, उसका सारभाग रस हो जाता है और असार-भाग मल और मूत्ररूपसे निकल जाता है। रससे शोणित, शोणितसे मांस, मांससे मेद, मेदसे मज्जा, मज्जासे शुक्र और शुक्रसे गर्भकी उत्पत्ति होती है। यह षाट्कौशिक शरीर तो अन्तमें मिट्टी या भस्म अथवा शृगाल-कुक्कुरादिके पुरीष रूपमें परिणत होगा। कोई भी—कितने हो प्रयत्न क्यों न करे—इस शरीरको अजर-अमर नहीं बना सकता। सब हो थोड़े दिनके लिए हैं, अन्तमें दूसरा कोई मार्ग नहीं है। पृथिवीश्वरके लिए जो गति है, गरीबके लिए भी वही गति है। इस स्थूल शरीरके सिवा दूसरा जो एक शरीर है, वही सूक्ष्म शरीर है।

बुद्धि, अहङ्कार, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन और पञ्च तन्मात्रा, इन अठारह तत्त्वोंका समष्टिरूप जो सूक्ष्म शरीर है, वह नित्य अर्थात् महाप्रलय तक स्थायी और अव्याहत अर्थात् अप्रतिहत गतियुक्त है। सूक्ष्म-शरीर शिलाके भीतर, अग्निके भीतर तथा इहलोक और परलोकमें जा सकता है। यह सूक्ष्म-शरीर कभी नर, पशु, पक्षी, शिला और वृक्षादि की भाँतिका स्थूल शरीर धारण करता है तथा कभी स्वर्गीय, कभी नारकीय और कभी पुनः मनुष्य आदिका स्थूल शरीर ग्रहण करता है। इस शरीरको सुख-दुःख भोगना पड़ता है। जीवात्मा मृत्युके बाद अर्थात् षाट्कौशिक देहके छोड़नेके उपरान्त अठारह तत्त्वोंका अवयव समष्टिरूप लिङ्गशरीरको ले कर स्वर्ग और नरक आदिको भोगता है, पीछे पाप वा पुण्यके ध्वंस होने पर फिर वह अपने कर्मोंके अनुसार जन्म-परिग्रह करता है। श्रुति आदिमें सूक्ष्मशरीरका परिमाण अङ्गुष्ठ मात्र बतलाया गया है। (सां०त०कौ० ३९)

जीवात्माका परिमाण अङ्गुष्ठ-परिमित है, इस विषयमें सांख्यदर्शनके भाष्यकार विज्ञान-भिक्षुने लिखा है—"अंगुष्ठमात्रेण सूक्ष्मतामुपपादयति।" (सांख्यद० भा०) जीवात्माका परिमाण अङ्गुष्ठमात्र होना असम्भव है। 'अङ्गुष्ठमात्र' यह कहनेसे सूक्ष्म प्रतिपन्न होता है। किसीके मतसे केशाग्रका शतभाग करने पर जितना सूक्ष्म होता है, इसका परिमाण उतना सूक्ष्म है। प्रकृतिने सृष्टिसे पहिले एक एक पुरुषका एक एक सूक्ष्म शरीर बनाया है, सूक्ष्म-शरीर इस समय उत्पन्न नहीं होता। सब हो पुरुष जीवात्मा हैं। सांख्यमतमें जीवात्माके अतिरिक्त परम-पुरुष हो परमात्मा है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मालूम होता। किन्तु कपिलदेवका अभिप्राय क्या है, इसका निर्णय करना दुरूह है। कपिलदेवने 'ईश्वरासिद्धेः' (सांख्यसू० १।९२) इस सूत्रके द्वारा निरीश्वरवाद व्यक्त किया है, इस विषयमें षड्दर्शनटीकाकार वाचस्पतिमिश्रने तत्त्वकौमुदी ग्रन्थमें अनेक युक्तियां दी हैं और परमात्मसाधक युक्तियोंका खण्डन किया है। सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्यने भी बहुत सी बातें लिखी हैं। परन्तु सांख्यभाष्यकार विज्ञानभिक्षुका कहना है—कपिलदेवके मतसे भी परमात्मा वा ईश्वर हैं, उनका "ईश्वरासिद्धेः" यह सूत्रवादीको जीतनेके लिए प्रौढ़िवाद मात्र है। इसीलिए "ईश्वराभावात्" ऐसा सूत्र न बना कर 'ईश्वरासिद्धेः' ऐसा सूत्र बनाया है। इसका तात्पर्य इस प्रकार है—

कपिलदेव वादीको कहते हैं—इतना हो न कि तुम युक्तियों द्वारा ईश्वरसिद्धि नहीं कर सके, फलतः ईश्वर हैं। परमात्मा वा ईश्वर नहीं हैं, यह कपिलदेवका अभिप्रेत नहीं है। घट, पट आदि जड़ात्मक वस्तुएं किसी चेतन पदार्थके अधिष्ठानके बिना स्वकार्यानुष्ठानमें प्रवृत्त और समर्थ नहीं होती, किन्तु जब सचेतन द्रव्य अधिष्ठाता हो कर उनका आनयन आदि करता है, तब ही उक्त घट पट आदि स्वकार्य करनेमें प्रवृत्त और समर्थ होते हैं। इसी तरह प्रकृति भी जड़ है, सुतरां किसी सचेतन अधिष्ठाताके बिना वह किस तरह कार्य करनेमें प्रवृत्त वा समर्थ हो सकती है? अतएव स्वीकार करना

पड़ेगा कि, प्रकृतिका भी एक सचेतन अधिष्ठाता होगा। किन्तु जीवात्माको प्रकृतिका अधिष्ठाता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जीव स्थूलदर्शी और असर्वज्ञत्व आदि दोषोंसे दूषित हैं, जीवोंमें ऐसी शक्ति ही कौनसी है, जिससे वे जगत्कारणमें प्रवृत्त प्रकृतिके अधिष्ठाता बन जाय। इसलिए तादृश शक्तिसम्पन्न सर्वाराध्य परमात्मा-की सत्ता माननी पड़ेगी और वे ही प्रकृतिके अधिष्ठाता हैं, इस युक्ति द्वारा परमात्मा वा ईश्वरसिद्धि हो सकती है।

जिस प्रकार 'तुम्हारे कान कौआ ले गया' इस वाक्य-को सुन कर अपने कानों पर बिना हाथ रक्खे ही काकके पीछे दौड़ना उपहसनीय है, उसी प्रकार कारण चेतनाके अधिष्ठानके बिना भी बहुतसी जड़ वस्तुओंमें कार्यकारणकी प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे—नवजात कुमारके जीवनधारणके लिए जड़ात्मक दुग्ध प्रवृत्ति होती है और मनुष्योंके उपकारार्थ समय समयमें अति जड़ मेघसे वृष्टिकी उत्पत्ति होती है। अतएव जीवोंके कल्याणार्थ जड़ात्मक प्रकृति भी जगन्निर्माणमें प्रवृत्त होगी, उसके लिए ईश्वर वा परमात्मा माननेकी क्या जरूरत? यदि परमात्म-संस्थापनकी आशासे यह कहा जाय कि, परमात्मा जीवों पर करुणा करके प्रकृतिको जगन्निर्माणमें प्रवृत्त करते हैं वा स्वयं ही प्रवृत्त होते हैं, तो विचार करके देखनेसे यह बात ईश्वरसाधक न हो कर परमात्मा की बाधक हो जाती है। देखिये, करुणा शब्दसे दूसरेकी दुःखनिवारणेच्छाका बोध होता है, सुतरां परमात्माने जीवों पर करुणा कर उनकी सृष्टि की है। इसका अर्थ यह हुआ कि, परमात्माने दुःखनिवारणकी इच्छासे जीवोंकी सृष्टि की है, किन्तु सृष्टिसे पहले किसीको भी दुःख नहीं था, दुःखकी भी परमात्माने सृष्टि की है इस बातको प्रतिवादी भी मानते हैं। अब बताइये कि परमात्मा पहले पहल किसके निवारणार्थ सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए और किस कारणसे उन सर्वज्ञ परमात्माको ऐसे असत् दुःखके निवारणकी इच्छा हुई? यदि रोग हो, तब ही उसके निवारणार्थ औषधका सेवन किया जाता है, अन्यथा कौन बुद्धिमान ऐसा है जो नीरोग अवस्थामें औषध सेवन करेगा? बल्कि उसके प्रति सब तरहसे द्वेष ही प्रगट करता है। और जिस तरह सुस्थ व्यक्तिके औषध सेवनसे रोग होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना है, यह जान कर भी यदि कोई सुस्थ व्यक्ति औषध सेवन करने लग जाय, तो सभी उसको अज्ञ, अविवेचक कहेंगे; उसी तरह यदि परमात्मा जीवोंको दुःख न होते हुए भी उस के निवारणार्थ सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हों, तो कौन व्यक्ति ऐसा है, जो उन्हें अज्ञ वा अविवेचक न बतलावेगा? और कौन यह नहीं कहेगा कि, परमात्माकी सर्वज्ञता और विवेकता आदि ईश्वर-शक्तियां कहां गई, बल्कि वे तो हम लोगोंसे भी अज्ञ हो गये। इस दोषके परि-हारके लिए जीवके दुःखसञ्चारके बाद परमात्माने करुणा करके सृष्टि की है, यह बात कहना भी नितान्त असङ्गत है। कारण ऐसा होनेसे जीवोंमें दुःखका आविर्भाव होने पर परमात्माने उसके निवारणार्थ सृष्टि की है, सृष्टि दुःखकी अपेक्षा करती है और सृष्टि होने पर दुःखका आविर्भाव होता है, इसलिए दुःख भी सृष्टि सापेक्ष है, इस तरह परस्पर सापेक्षतारूप अन्योन्याश्रय-दोष होता है। और भी देखिये, यदि परमात्मा करुणा करके ही सृष्टि करते, तो कभी भी कोई सुखी वा दुःखी नहीं होता, क्योंकि सब ही परमात्माके क्रिया-पात्र हैं और परमात्मा पक्षपात आदि दोषोंसे रहित हैं। अतएव इन सब प्रमाणोंसे यही सिद्ध हुआ कि, परमात्मा वा परमेश्वर नहीं हैं, केवल अचेतन प्रकृति ही जगन्निर्माण-में प्रवृत्त है।

जिस प्रकार निर्व्यापार अयस्कान्तमणिके पास जड़ा-त्मक लोहकी भी क्रिया होती है, उसी प्रकार जीवात्मक पुरुषके पास जड़स्वरूप प्रकृतिमें भी जगन्निर्माणार्थ क्रिया का होना असम्भव नहीं। जैसे अन्धा आदमी पङ्गुको अपने कन्धे पर चढ़ा कर गन्तव्य मार्गसे जा सकता है, वैसे ही अचेतना प्रकृति जीवात्माका अवलम्बन कर जग न्निर्माण करती है और जीवात्मा प्रकृतिकी मायामें मुग्ध हो कर जो अपना धर्म नहीं बल्कि प्रकृतिका धर्म है उसे ही अपना धर्म समझता है। इसलिए प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) परस्पर सापेक्ष हैं। इस जीवात्माके अदृष्ट (धर्म-अधर्म), ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य आदि कई एक धर्म हैं, जो वीजाङ्कुर

न्यायवत् अनादि हैं। जब तक पुरुषको आत्मख्याति न होगी, तब तक प्रकृति विरत नहीं होगी। इस आत्मख्यातिके लिए तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता है। तत्त्वज्ञान होनेसे ही मुक्ति होती है। "ज्ञानान्मुक्तिः" (सांख्यद०) इस ज्ञानके लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन आवश्यक है। श्रवण आदि साधित होने पर जीवात्माको मुक्ति होती है। जब तक वासनाओं (संस्कारों) का अन्त नहीं होगा, तब तक जीवात्माके उद्धारका कोई उपाय नहीं। (सांख्यद०) जीवात्माके विषयमें पातञ्जल-दर्शन और सांख्यदर्शन दोनोंका एक मत है।

योगसूत्रकार जीवात्माके अतिरिक्त परमात्माको स्वीकार करते हैं। उनके मतसे—अविद्या, अस्मिता, द्वेष, अविनिवेशाख्य आदि पञ्चविध क्लेश तथा कर्म और कर्मफलसे जिसकी वासनाएँ अछूत रह गई हों, उस पुरुष विशेषको परमात्मा वा ईश्वर कहा जा सकता है, अर्थात् जिन अनिर्वचनीय पुरुषको किसी तरहका क्लेश नहीं, जो सर्वदा परमानन्द स्वरूप सर्वत्र विद्यमान हैं, जो किसी प्रकारका विहित वा अविहित कार्य नहीं करते, जिनको किसी तरहकी वासना नहीं है और इसी तरह जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान, तीनों कालोंमें सर्व विषयोंसे पृथक् हैं, ऐसे अलौकिक शक्तिसम्पन्न परम पुरुष ही ईश्वर वा परमात्मा हैं। ये परमात्मा सर्वप्रकारके पुरुषोंमें विशेष गुणशाली है, इनके समान दूसरा कोई नहीं है; ये इच्छामात्रसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर सकते हैं। पातञ्जलके मतसे—परमात्मसाधक युक्तियां ऐसी ही हैं। समस्त वस्तुएँ सातिशय अर्थात् तारतम्यरूपमें अवस्थित हैं। वस्तुओंकी शेष सीमा है, जैसे अल्पत्व और अधिकत्व, परिमाणकी शेष सीमा यथाक्रमसे परमाणु और आकाश है। अतएव जब किसीको व्याकरणमात्रमें किसीको अलङ्कारमें और किसीको तत्तत् शास्त्र और दर्शनशास्त्रमें अभिज्ञ देख कर स्पष्ट मालूम होता है कि, ज्ञानादि भी सातिशय पदार्थ हैं। तब अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि, ज्ञानादिने कहीं पर शेष सीमा लाभ कर निरतिशयता प्राप्त की है। जो पदार्थ यादृश गुणोंके सद्भाव और अभावमें यथाक्रमसे उत्कृष्ट और अपकृष्ट रूपसे परिगणित होते हैं, उन पदार्थोंको सर्वतोभावसे तादृश गुणवत्तारूप अत्युत्कृष्टताको निरतिशयता कहते हैं। अणुकी परमाणुता, स्थूलकी परम स्थूलता, मूर्खकी अत्यन्त मूर्खता और विद्वान्‌की विद्वत्ताको ही अत्युत्कृष्टता कहना होगा; अन्यथा उनके विपरीत स्थूलत्वादि अणु प्रभृतिकी उत्कृष्टता नहीं हो सकती। ज्ञानकी उत्कृष्टता और अपकृष्टता पर विचार किया जाय तो अधिक विषयता और अल्पविषयता ही देखनेमें आती है इसी लिए किञ्चिन्मात्र शास्त्रज्ञानीको अपकृष्ट ज्ञानी और अधिक शास्त्रज्ञानीको उत्कृष्ट ज्ञानी कहा जाता है। इस प्रकारसे जब अधिक विषयता ही ज्ञानकी उत्कृष्टता सिद्ध हुई, तब अपरिच्छिन्न ब्रह्माण्डस्थ खेचर अरण्यचर और हमारे नयनोंके अगोचर सर्ववस्तु विषयता ही ज्ञानकी अत्युत्कृष्टता रूप नित्य निरतिशयता है, इसमें सन्देह ही क्या? वह नित्य निरतिशयज्ञानस्वरूप सर्वज्ञता जीवात्माके लिए सम्भव नहीं, क्योंकि बुद्धिवृत्ति, रजोगुण और तमोगुणसे कलुषित होनेके कारण उसकी दृक्‌शक्ति परिच्छिन्न है इस दृक्‌शक्तिके द्वारा सर्वगोचरज्ञानका होना कदापि सम्भव नहीं। इसलिये यह निःसन्देह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपरिच्छिन्न दृक्‌शक्तिमान ही तादृश सर्वज्ञताका एकमात्र आश्रय है। ऐसे अपरिच्छिन्न दृक्‌शक्तिमान् जो हैं, वे ही योगसूत्रकारके मतसे परमात्मा हैं। इस प्रकारसे जब परमात्माकी सत्ता सिद्ध हुई, तब 'परमात्मा वा परमेश्वर नहीं हैं' यह कहना सिर्फ वागाडम्बर या अज्ञानका विजृम्भ-प्रलापमात्र है। ये ही परमात्मा जगन्निर्माणार्थ स्वेच्छानुसार शरीरधारणपूर्वक संसारप्रवर्त्तक, संसारानलमें सन्तप्यमान व्यक्तियोंके अनुग्राहक, असीमकृपानिधान और अन्तर्यामिरूपसे सर्वत्र देदीप्यमान हैं, इन्हींकी कृपासे इन प्रकृति और पुरुषका संयोग होता है। योगसूत्रके अनुसार जीवात्मा और परमात्माके सिवा संसारकी सम्पूर्ण वस्तुएं परिणामी हैं।

"परिणामस्वभावा हि गुणाः ना परिणम्य क्षणमप्यवतिष्ठते।"
(तत्त्वकौ०)

गुण परिणामशील हैं, क्षण भर भी परिणत बिना हुए नहीं रह सकते। संसारके किसी भी पदार्थको क्यों न देखें, प्रतिक्षण ही उसका परिणाम हो रहा है, अपरिणामी सिर्फ आत्मा ही है।

"परिणामिनो हि भावा: ऋते चितिशक्तेः।" (सां०म०कौ०)

चित्शक्ति अर्थात् आत्माके सिवा सब ही परिणामी हैं। (पातंजलद०)

वेदान्तके मतसे—एकमात्र ब्रह्म वा आत्मा ही सत्य है और समस्त जगत् मिथ्या है। आत्मा वा ब्रह्मका ज्ञान होनेसे मुक्ति होती है। जीव (जीवात्मा, प्रत्यगात्मा वा उपाधियुक्त आत्मा)को ब्रह्मका साक्षात्कार होते ही वह ब्रह्म हो जाता है, आत्मज्ञ व्यक्ति संसार-दुःखको अतिक्रम करते हैं, इन सब श्रुति-प्रमाणके अनुसार ब्रह्मात्मज्ञानके बिना दुःखसे छुटकारा पानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। ब्रह्म ही मैं हूं इत्याकार असंदिग्ध अनुभवको ब्रह्मात्मज्ञान कहते हैं, इस ज्ञानको प्राप्त करनेके प्रधान उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासन हैं। शास्त्रकथा सुन लेनेसे भी श्रवण नहीं होता, गुरुके मुखसे शास्त्रीय उपदेश सुन कर मनमें उसके विचारित अर्थको धारण करना और साक्षात् अथवा परम्परासे ब्रह्ममें ही समुदाय शास्त्रका तात्पर्य है ऐसा विश्वास करना चाहिये, इन सबके एकत्रित होने पर तब कहीं वह श्रवण गिना जाता है। अपने ब्रह्मज्ञानका अपरोक्ष ज्ञान पर आरूढ़ होना ही तत्त्वज्ञान है। जिस प्रकार मरु-मरीचिकामें जलकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार ब्रह्ममें दृश्यकी भ्रान्ति है, अर्थात् यह जो जगत् दीख रहा है, वह रज्जुमें सर्प दर्शनकी भांति मिथ्या है। जो कुछ देख रहे हैं, वह ब्रह्म वा आत्मा है, हम अविद्यामें मोहित होनेसे आत्माका स्वरूप न देख कर परिदृश्यमान जगत् देख रहे हैं। इसलिए दृश्यप्रपञ्च मिथ्या है, ब्रह्म ही सत्य है पहले ऐसा ज्ञान अर्जन कर उसे दृढ़ करना चाहिये, पीछे मैं ही ज्ञान हूं और उसके आलम्बन शरीर, इन्द्रिय, मन, सब भ्रान्तिविशेषका विलास है, अतः 'मैं (आत्मा) ही ज्ञान और ज्ञानका आलम्बन हूं', सब कुछ ब्रह्ममें रज्जुसर्पकी तरह मिथ्या है, यह ज्ञान जब विचलित होता है, तब अपने आप 'अहम्' अर्थात् 'मैं' यह ज्ञान इन्द्रिय, मन आदिको त्याग करके ब्रह्ममें जा कर अवगाहन करता रहता है, अहंज्ञान ब्रह्मावगाही होने पर तत्त्वज्ञान ब्रह्मज्ञान वा आत्मज्ञान हुआ है, ऐसा अवधारण करना चाहिये। इस प्रकारका तत्त्वज्ञान होने पर मोक्ष अनिवार्य है। इसको मोक्ष, जीवत्वनाश, जीवन्मुक्ति, तुरीयप्राप्ति और ब्रह्मप्राप्ति, इनमेंसे जो चाहे सो कह सकते हैं, वह अवस्था सात्त्विक, राजसिक और तामसिक मनोवृत्तिके अतीत है। अब जिसे सुख-दुःख मानते हैं, वह अवस्था सुख दुःखके अतीत है, वह निर्भय, अद्वय, घन, आनन्द, एकरस और कूटस्थ नित्य है।

एक ही चैतन्य हममें, आपमें और अन्यान्य जीवोंमें विराजमान है। वह एक अखण्ड आत्मा चैतन्य) ही ब्रह्म है और वही अनादि अनन्त ब्रह्म चैतन्य उपाधिभेदसे अर्थात् देह आदि आधारके भेदसे विभिन्न भावसा की तरह विद्यमान है। वस्तुतः वह अभिन्नके सिवा विभिन्न नहीं है। आत्मा उपाधिके अन्तर्हित होने पर एक हैं, अन्यथा बहुत हैं। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल इन तीनों लोकमें वही ब्रह्मचैतन्य प्रतिभासित वा साक्षिरूपसे दिखलाई देता है। सर्वविषयक समस्त व्यक्तियोंका ज्ञान एक है, विभिन्न नहीं। इस ज्ञानका नामान्तर चैतन्य है। चेतना ज्ञानसे पृथक्भूत नहीं और ज्ञान-स्वरूप चेतना ही आत्मा है, आत्मा चैतन्यसे भिन्न नहीं है। अतएव जब ज्ञानका ऐक्य सिद्ध होता है, तब आत्माओंका परस्पर ऐक्य और पूर्ण चैतन्यस्वरूप ब्रह्मके साथ जीवात्माका भी ऐक्य सिद्ध होगा, इसमें कहना ही क्या? यही जीव ब्रह्मका ऐक्य "तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इत्यादि श्रुतिमें प्रतिपादित हुआ है। आत्मामें जन्म, स्थिति, परिणाम, वृद्धि, अपचय और विनाशरूप छह प्रकारके विकारोंमेंसे कोई भी विकार नहीं है।

आत्माके जन्म मृत्यु कुछ भी नहीं है, यह पुनः पुनः उत्पन्न वा वर्द्धित नहीं होता, यह अज, नित्य और पुरातन है, शरीर विनष्ट होने पर भी इसका नाश नहीं होता। आत्मा सर्वत्र सर्वदा ही देदीप्यमान और परम आनन्दस्वरूप है। क्योंकि, आत्मा ही सबकी निरतिशय स्नेहको पाती है। देखिये, आत्माकी प्रीतिके कारण ही पुत्रकलत्रादिमें मोह होता है। अन्यकी प्रीतिके लिये कोई भी कभी आत्मामें स्नेह नहीं करता। यदि आत्मामें आनन्दरूपताकी प्रतीति नहीं हुई और वह आनन्दरूपतासे अज्ञात रही, तो उसमें स्नेह होनेके

सम्भावना कैसी ? इस दोषके परिहारार्थ यदि आत्मामें आनन्दरूपताकी प्रतीति स्वीकार की जाय, तो आत्मस्वरूप पूर्णानन्दके रहते हुये कौन जीव ऐसा है जो तुच्छ विषयानन्द पानेको मनमासे स्रक्चन्दन आदिके उपभोगमें प्रवृत्त होगा ? क्या सिद्ध वस्तुकेलिए लोगोंकी प्रवृत्ति होती है ? अतएव आत्मामें आनन्दरूपताकी प्रतीति वा अप्रतीति दोनों ही सदोष हैं, किन्तु यह आपत्ति बद्धमूल तब हो सकती है जब आत्मामें आनन्दरूपताकी सम्पूर्ण प्रतीति वा सम्पूर्ण अप्रतीति स्वीकार की जाती। वास्तवमें देखा जाय तो आत्माकी आनन्दरूपता अज्ञानस्वरूप अविद्याकी प्रतिबन्धक है, इसलिए प्रतीति हो कर भी अप्रतीति होती अवश्य है, किन्तु विशेषतः प्रतीति नहीं होती। इसका स्वच्छ दृष्टान्त है—अध्ययनशील छात्रके मध्यस्थित चैत्र नामक व्यक्तिका अध्ययन शब्द यहां अन्यान्य बालककी अध्ययनरूप प्रतिबन्धकतावशतः 'यह चैत्रका अध्ययन शब्द है' ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होता, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि, इसमें चैत्रका अध्ययन शब्द है। परमात्माके प्रतिविम्बयुक्त सत्त्व, रजः और तमोगुणात्मक तथा सत् वा असत्‌रूप अनिर्णेय पदार्थविशेषको अज्ञान कहते हैं। यह अज्ञान संसारका कारण है, इसलिये इसको प्रकृति भी कहा जा सकता है। इस अज्ञानमें आवरण और विक्षेपके भेदसे दो शक्तियां हैं। जैसे मेघ परिमाणमें थोड़ा होने पर भी दर्शकोंके नयन आच्छन्न कर बहु योजन विस्तृत सूर्यमण्डलको भी आच्छादित करता है, उसी तरह अज्ञानने परिच्छिन्न होते हुए भी शक्तिके द्वारा दर्शकोंकी बुद्धि-वृत्ति को आच्छादित कर मानो अपरिच्छिन्न आत्माको ही तिरोहित कर रक्खा है। इस शक्तिको आवरणशक्ति कहते हैं। यह अज्ञान यथार्थमें एक होने पर भी अवस्थाके भेदसे दो प्रकारका है—माया और अविद्या। विशुद्ध अर्थात् रजो वा तमोगुण द्वारा अनभिभूत अज्ञानको माया और मलिन अर्थात् रजो वा तमोगुण द्वारा अभिभूत सत्त्वगुणप्रधानको अविद्या कहते हैं। इस मायामें परमात्माका जो प्रतिविम्ब होता है, वही प्रतिविम्ब उक्त मायाको अपने अधीन कर जगत्‌की सृष्टि करता है। इसलिए वह प्रतिविम्ब ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और अन्तर्यामिस्वरूप ईश्वर-पदवाच्य है। और अविद्यामें जो परब्रह्मका प्रतिविम्ब पड़ता है, वह प्रतिविम्ब उस अविद्याके वशीभूत हो कर मनुष्यादि समस्त जीव-पदवाच्य होता है। अविद्या अनेक हैं, इसलिए उसमें पतित प्रतिविम्ब भी अनेक हैं और इसीलिए जीव भी अनेक हैं। न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा, सांख्य और पातञ्जलके मतसे प्रकृति तथा वेदान्तके मतसे अविद्या वा माया, ये सब प्रायः एक ही पदार्थ हैं, किन्तु परस्पर इस विषयमें विशेष मतभेद और तर्क उठाया गया है। क्योंकि न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा जगत्‌का कारण है, सांख्य और पातञ्जलके मतसे प्रकृति जगत्‌का कारण है और वेदान्तके मतसे अविद्या वा माया जगत्‌का कारण है। इसलिए ये तीनों पदार्थोंको एक मानना असङ्गत नहीं। परन्तु प्रत्येक दर्शनकारने प्रत्येकके मतको खण्डन कर अपना मत संस्थापित किया है।

वास्तविक परमात्मा (ब्रह्म)-के सिवा सब मिथ्या है। इस जगत्‌में जो कुछ देखनेमें आता है, वह सब रज्जुमें सर्प भ्रमवत् कल्पनामात्र है। जीवात्मा ही परमात्मा है, और परमात्मा ही जीवात्मा है। अतएव इस जगत्‌के सृष्टिक्रम तथा जीवात्मा और परमात्माका विभाग करना बन्ध्यापुत्रके नाम रखनेके समान उपहासास्पद है।

यदि परमात्मा (ब्रह्म)-के साथ जीवका वास्तविक भेद नहीं है और जीव ही परमात्मस्वरूप है, तो जीवकी अनर्थक निवृत्ति तथा ब्रह्मभावप्राप्तिरूप परम मुक्ति स्वतः सिद्ध ही है, उसके लिए फिर तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता नहीं। सिद्धवस्तुको साधनेके लिए कौन प्रयत्न करता है ? परन्तु यह आपत्ति वा प्रश्न सिर्फ जिगीषा और स्थूलदर्शिता आदि दोषोंका कार्य है, ऐसा कहना चाहिये। क्योंकि सिद्ध वस्तुका भी असिद्धभ्रम होता है और उस भ्रमके निराकरणार्थ उपायान्तरका अवलम्बन करना पड़ेगा। दृष्टान्त दिया जाता है—दश आदमी, जो कि मूढ़ थे, नदी पार हो कर सबने अपनेको छोड़ कर गिना तो ८ निकले, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि, एकको शायद मगर खींच ले गया है। परन्तु जब उन्हें बुद्धिमान् व्यक्ति द्वारा "दशवें तुम" हो ऐसा उपदेश

मिला, तब उन्होंने अपनेको शामिल कर गिना तो १० निकले, जिससे वे अलब्ध वस्तुके लाभसे परम आनन्दित हुए। ऐसा प्रायः हुआ करता है, लोग अपने कन्धे पर अंगोछा रख कर इधर उधर खोजा करते हैं। अतएव जीव परमात्माका स्वरूप होने पर भी यदि अज्ञान निवृत्तिके लिए उपाय अवलम्बन करता है, तो उसमें हानि क्या? वरन् उपर्युक्त युक्तिके अनुसार आवश्यक कर्त्तव्य ही प्रतीत होता है।

बुद्धि ज्ञानेन्द्रिय-पञ्चक सहित विज्ञानमयकोष, मन कर्मेन्द्रिय सहित मनोमयकोष और कर्मेन्द्रिय सहित प्राण प्राणमयकोष गिना जाता है। इन तीनों कोषोंमें विज्ञानमयकोष ज्ञानशक्तिमान् और कर्त्तृत्व शक्तिसम्पन्न है, मनोमयकोष इच्छाशक्तिशील और करणस्वरूप है तथा प्राणमयकोष क्रियाशक्तिशाली और कार्यस्वरूप है। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, बुद्धि और मन, इन सबके मिलने पर सूक्ष्म शरीर होता है, जिस को कि लिङ्गशरीर कहते हैं। यह लिङ्गशरीर इहलोक और परलोकगामी तथा मुक्ति पर्यन्त स्थायी है। इस लिङ्ग शरीरका जब स्थूलशरीर परित्याग करनेका समय उपस्थित होता है, उस समय जैसे जलौका एक तृण अवलम्बन किये विना पूर्वाश्रित तृणादि नहीं त्याग सकती, वैसे ही आत्मा (अर्थात् लिङ्गशरीर)-को मृत्युके अव्यवहित पहले एक भावनामय शरीर होता है। उस शरीरके होने पर यावज्जीवनव्यापी कर्मराशि आ कर उपस्थित होती है, फिर कर्मके अनुसार कोई भी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट आदिके एक आश्रय लेने पर आत्मा लिङ्गशरीरके साथ उस देहका आश्रय ले कर पूर्व देह परित्याग करती है। ब्रह्म देखो। प्राण निकलते समय नव द्वारोंसे निकलते हैं।

जैनदर्शनके मतसे—प्रति शरीरमें एक एक आत्मा है। यदि सबकी आत्मा पृथक् पृथक् न हो कर एक ही होती, तो प्रत्येक प्राणीको एक समान सुख दुःख होता और परस्पर द्वेषादिकी प्रवृत्ति नहीं होती। आत्मा अनादिसे है और अनन्त काल तक विद्यमान रहेगी तथा इसकी संख्या भी अनन्त है। जब तक यह ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि अष्टकर्मोंके वशीभूत है, तब तक संसारी (अर्थात् जीवात्मा) है और जिस समय इसके उक्त आठों कर्म पृथक् हो जायेंगे उसी समय यह शुद्ध-चिद्रूप वा परमात्मा रूपमें परिणत हो जायगी। आत्मा चैतन्यस्वरूप है और कर्म जड़ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध अनादिकालसे चला आ रहा है। जीवात्माको मुक्ति वा मोक्षके बाद फिर संसारमें परिभ्रमण नहीं करना पड़ता। ईश्वर वा परमात्मा अरूपी हैं। वे अरूपी हो कर रूपी पदार्थकी सृष्टि नहीं कर सकते। परमात्मा संसारके झंझटोंसे बिलकुल अलग हैं और वे अपने अस्तित्व चैतन्य, अनन्तसुख, सम्यक्‌दर्शन, सर्वज्ञता, आत्मनिष्ठा आदि गुणोंमें ही तल्लीन हैं। जगत्‌का कोई भी कर्त्ता नहीं; जगत् अनादिकालसे ऐसा ही है और अनन्तकाल तक रहेगा। मन, वचन और कायकी चञ्चलतासे ही पाप वा पुण्य-कर्मोंका बन्ध होता है। ईश्वर वा परमात्मा मन-वचन काय इन तीनोंसे शून्य हैं, वे अपने त्रैकालिक ज्ञानमें तन्मय हैं। इसलिए उनका सृष्टि-कर्त्ता होना असम्भव है। जीवात्मा या संसारी आत्मा कर्मयुक्त रूपी है। इसके तैजस और कार्मण दो शरीर सर्वदा रहते हैं। आयुकर्मकी अवधिके अनुसार जन्ममृत्यु होती रहती है। किसी व्यक्ति वा पशु पक्षी आदिकी मृत्यु होते ही उसकी आत्मा तैजस और कार्मण शरीर सहित तीन समय (एक समय बहुत छोटा होता है, एक सेकेण्डके अन्दर असंख्य समय बीत जाते हैं) भीतर अन्य शरीर धारण कर लेती है। आत्मा अमर है। जब तक यह कर्मयुक्त है, तब तक सुख-दुःखादि भोगती है, कर्ममुक्त होते ही परमात्म पद पा कर अनन्त-सुखका अनुभव करती है। आत्मन् देखो।

जीवादान (सं० क्ली०) जीवानां आदानं, ६-तत्। वैद्य और रोगीकी अज्ञतासे वमन और विरेचनमें पन्द्रह प्रकार के व्यापद् होते हैं, उनमेंसे एकका नाम जीवादान है। सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है विरेचनके अतियोगसे पहले श्लेष्मयुक्त जल, पीछे मांसधोवनके समान जल फिर जीवशोणित, पीछे गुदस्थान तक निकल आता है तथा कँपकँपी और कै होती है। ऐसी दशामें अधो-भागमें गुदके निकल आने पर घी चुपड़ें और स्वेदप्रयोग कर उसे भीतर प्रविष्ट करा दें अथवा क्षुद्ररोगकी प्रणाली

के अनुसार चिकित्सा करानी चाहिये। क्षुद्ररोग देखो।

कँपकँपी हो, तो वातव्याधिकी प्रणालीके अनुसार चिकित्सा करें। वातव्याधि देखो। जीवशोणित अधिक निकले, तो गम्भारीका फल, बदरी और दुर्वाके डण्ठलों से दूध गरम कर, ठण्डा होने पर घृतमण्ड और अञ्जनके साथ आस्थापन करना (पिचकारी लगाना) चाहिये। न्यग्रोधादि गणका क्वाथ, दुग्ध, इक्षुरस और घृत इनको शोणितसंसृष्ट कर वस्तिमें लगाना चाहिये। अशुद्ध शोणित निकलने पर रक्तपित्त और रक्तातीसारकी भाँति प्रतीकार करना चाहिये। न्यग्रोधादिगणका क्वाथ भी दिया जा सकता है। जो शोणित निकलता है, वह जीवशोणित कहलाता है। रक्त है या पित्त, इस बातके जाननेके लिए उसमें कार्पासवस्त्र डुबो कर गरम जलमें धोना चाहिये। यदि रङ्ग जमा रहे, तो उसे जीवशोणित समझना चाहिये। अथवा उस रक्तको अन्नके साथ मिला कर कुत्तेको खिलावें, यदि खा ले तो उसे जीवशोणित समझना चाहिये। (सुश्रुत चिकि० ३८ अ०)

जीवाधान (सं० क्ली०) जीवस्य चेतनस्य आधानं ६-तत्। शरीर, देह।

जीवाधार (सं० पु०) जीवस्य चेतनस्य आधारं आश्रय-स्थानं, ६-तत्। १ हृदय, आत्माका स्थान। २ चेत।

जीवानुज—गर्गाचार्य मुनि। ये बृहस्पतिके वंशमें उत्पन्न हुए थे। किन्तु कोई कोई कहते हैं कि ये बृहस्पतिके लघु भ्राता थे।

जीवान्तक (सं० पु०) जीवं अन्तयति नाशयति जीव-णिच्-ण्वुल्। १ शाकुनिक, व्याध, बहेलिया। (त्रि०) २ जीवनाशक, जीवोंका वध करनेवाला।

जीवाराम शर्मा—अष्टाध्यायी, रघुवंश, कुमारसम्भव और तर्कसंग्रहके भाषाभाष्यकार।

जीवार्द्धपिण्डक (सं० पु०) चक्रस्थित राशिकलाके १८०० भागोंमेंसे अष्ट भाग।

जीवाला (सं० स्त्री०) जीवं उदरस्थकृमिं आलाति गृह्णाति नाशयतीत्यर्थः आ-ला-क टाप्। सैंहली।

जीवास्तिकाय (सं० पु०) अर्हन्मत प्रसिद्ध जीवभेद, पांच अस्तिकायोंमेंसे एक। यह तीन प्रकारका माना गया है, अनादिसिद्ध, मुक्त और बद्ध। अनादिसिद्ध अर्हत् हैं जो सब अवस्थाओंमें अविद्या आदिके दुःख और बन्धन ... व उत्पन्न

अणिमादि सिद्धियोंसे सम्पन्न रहते हैं ... जीवात् ... करणमें

जीविका (सं० स्त्री०) जीव्यते ऽनया। गुरोश्च हल ... गह

३।३।१०३ जीव अ-कन् अत इत्वं। १ जीवनोपाय, भरण पोषणका साधन। इसके पर्याय—आजीव, वार्त्ता, वृत्ति, वर्त्तन और जीवन है। २ जीव। ३ जीवन्ती।

जीवित (सं० क्ली०) जीव भावे क्त। १ जीवन, प्राण-धारण। कर्त्तरि क्त। (त्रि०) २ जीवनयुक्त जीता हुआ, जिंदा।

जीवितकाल (सं० पु०) जीवितस्य जीवनस्य कालः, ६-तत्। आयु, उमर।

जीवितघ्न (सं० त्रि०) जीवितं जीवनं हन्ति जीवित हन्-टक्। प्राणनाशक।

जीवितज्ञा (सं० स्त्री०) जीवितस्य जीवनस्य ज्ञा ज्ञानं यस्याः। नाड़ी देख कर प्राणका जीवनकाल जाना जाता है। इसीलिये इसका नाम जीवितज्ञा पड़ा है।

जीवितनाथ (सं० पु०) जीवितस्य नाथः ६-तत्। जीवितेश प्राणनाथ, प्यारा व्यक्ति, प्राणोंसे बढ़ कर प्रिय व्यक्ति। जीवितेश देखो।

जीविता (सं० स्त्री०) जलपिप्पली।

जीवितान्तक (सं० पु०) जीवितस्य अन्तकः, ६-तत्। १ जीवितान्तक, यम। जीवान्तक देखो। (त्रि०) २ प्राणी-हिंसाकारी, जो जीवोंका वध करता हो।

जीवितेश (सं० पु०) जीवितस्य ईशः प्रभुः, ६-तत्। १ प्राणनाथ, प्राणोंसे बढ़ कर प्रिय व्यक्ति। २ यम। ३ इन्द्र। ४ सूर्य। ५ देहमध्यस्थित चन्द्रसूर्यरूप इड़ा पिङ्गला नाड़ी, शरीरके भीतरकी चन्द्र और सूर्यके समान इड़ा और पिंगला नाड़ी। नाड़ी देखो। (त्रि०) ६ जीवितेश्वर, प्राणके मालिक।

जीवितेश्वर (सं० पु०) जीवितस्य ईश्वरः, ६-तत्। जीवितेश, प्राणेश्वर। जीवितेश देखो।

जीविनी (सं० स्त्री०) १ काकोली। २ ठोड़ी क्षुप।

जीवी (सं० त्रि०) जीव अस्यास्तीति जीव-इनि। १ प्राण-धारक, जीनेवाला। २ जीवनोपाययुक्त, जीविका करने-वाला।

जीवेन्धन (सं० क्लो०) जीवरूपं इन्धनं रूपक कर्मधा० जीवरूप काष्ठ।

जीवेश (सं० पु०) परमात्मा, ईश्वर।

जीवेष्टि (सं० स्त्री०) जीवोद्देशिका इष्टिः। बृहस्पतिसव, वह यज्ञ जो बृहस्पतिके लिए किया जाता है।

जीवोत्पत्तिवाद (सं० पु०) जीवस्य सङ्कर्षणाभिधस्य उत्पत्तौ उत्पत्तिविषये वादः प्रतिवादः ६-तत्। जीवकी उत्पत्तिके विषयका प्रतिवाद। पञ्चरात्र आदि वैष्णव ग्रन्थोंमें जीवकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है। भगवद्भक्तोंका कहना है कि, भगवान् वासुदेव एक ही हैं, वे निरञ्जन और ज्ञानवपुः हैं तथा वे ही परमार्थ तत्त्व हैं। वे अपनेको चार प्रकारोंमें विभक्त कर विराजमान हैं और इन चार प्रकारोंमें विभक्त करके ही जीवोंकी उत्पत्ति की है।

वासुदेवव्यूह, सङ्कर्षणव्यूह, प्रद्युम्नव्यूह और अनिरुद्धव्यूह ये चार प्रकारके व्यूह उन्हींके स्वरूप हैं।

वासुदेवका दूसरा नाम परमात्मा सङ्कर्षणका दूसरा नाम जीव, प्रद्युम्नका दूसरा नाम मन और अनिरुद्धका अन्य नाम अहङ्कार है। इन चार प्रकारके व्यूहोंमें वासुदेवव्यूह ही पराप्रकृति अर्थात् मूलकारण है, वासुदेवव्यूहसे समस्त जीवोंकी उत्पत्ति हुई है; उनसे सङ्कर्षण आदि उत्पन्न हुए हैं। इसलिए वह उस पराप्रकृतिका कार्य है। जीव दीर्घकाल पर्यन्त अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योगसाधनमें* रत रहे तो निष्पाप होता है, पीछे पापरहित हो कर पराप्रकृति भगवान् वासुदेवको प्राप्त होता है। "वासुदेव नामक परमात्मासे सङ्कर्षण संज्ञक जीवकी उत्पत्ति है"—भागवतोंका यह मत शारीरिक-सूत्रभाष्यसे खण्डित हुआ है। भगवद्भक्तोंका यह कहना है कि नारायण प्रकृतिके बाद, परमात्मा नामसे प्रसिद्ध हैं और सर्वात्मा हैं, श्रुतिविरुद्ध नहीं और यह भी श्रुतिविरुद्ध नहीं कि, वे स्वयं अनेक प्रकारसे वा व्यूह (समूह) रूपसे विराजित हैं। अत-एव भागवतमतावलम्बियोंका यह मत निराकरणीय नहीं है। क्योंकि परमात्मा एक प्रकार और बहु प्रकार होते हैं। "स एकधा वा त्रिधा भवति" (श्रुति) इत्यादि श्रुतिमें परमात्माको बहुभावसे अवस्थित कहा गया है। निरन्तर अनन्यचित्त हो कर अभिगमनादिरूप आराधनामें तत्पर होना चाहिये। इनके मतमें यह अंश भी निषिद्ध नहीं है। क्योंकि श्रुति और स्मृति दोनों शास्त्रोंमें ईश्वरप्रणिधानका विधान है। इसलिए पञ्चरात्रमत अविरुद्ध है, न कि श्रुतिविरुद्ध।

उन लोगोंका कहना है कि, वासुदेवसे सङ्कर्षणकी, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नकी और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति होती है। इस अंशके निराकरणके लिये शारीरकभाष्यकारने वक्ष्यमाण प्रमाणकी अवतारणा की है। जीव यदि उत्पत्तिमान हो तो, तो उसमें अनित्यत्व आदि दोष भी रहेंगे, क्योंकि संसारमें जितने भी पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब ही अनित्य हैं। उत्पत्तियोग्य पदार्थ अनित्यके सिवा नित्य नहीं हो सकते। जीव अनित्य अर्थात् नश्वरस्वभावी होने पर उसको भगवत्-प्राप्तिरूप मोक्ष होना सम्भव नहीं; क्योंकि कारणके विनाशसे कार्यका विनाश अवश्यम्भावी है।

आत्मा आकाश आदिकी तरह उत्पन्न पदार्थ नहीं है। क्योंकि श्रुतिके उत्पत्ति-प्रकरणमें आत्माकी उत्पत्ति निर्णीत नहीं हुई है। वरन् अज जन्मरहित इत्यादि वाक्योंसे उसकी नित्यता ही वर्णित हुई है। इन्द्रिययुक्त शरीरमें अध्यक्ष और कर्मफलभोक्ता जीव नामक आत्मा है। वह आकाशादिकी तरह ब्रह्मसे उत्पन्न है या ब्रह्मकी भांति नित्य है, ऐसा संशय हो सकता है। किसी किसी श्रुतिने अग्निस्फुलिङ्गका दृष्टान्त दे कर कहा है कि, जीवात्मा परब्रह्मसे उत्पन्न होता है और किसी किसी श्रुतिमें यह लिखा है कि, अविकृत परब्रह्म ही स्वसृष्ट शरीरमें प्रविष्ट हो कर जीवकी भांति विराजित हैं। संशय होने पर उसमें पूर्वपक्ष मिलता है, जीव भी उत्पन्न होता है; इस पक्षका पोषक प्रमाण श्रुत्युक्त प्रमाणका बाधक नहीं है*।

* अभिगमन अर्थात् तद्गतभाव और मनवचन कायसे भगवद्गृहमें जाना आदि उपादान अर्थात् पूजाकी सामग्रीका आहरण वा आयोजन। इज्या अर्थात् पूजा यज्ञ आदि। स्वाध्याय अर्थात् अष्टाक्षरादि मन्त्रोंका जप। योग अर्थात् ध्यान आदि।

* अर्थात् श्रुतिने एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा की है, एकके जाननेसे सबको जाना जा सकता है। जीव यदि ब्रह्म-

अविकृत परमात्मा ही शरीरमें जीवकी भाँति विराजित हैं, यह कैसे जाना गया ? यह सहजमें नहीं जाना जा सकता। क्योंकि परमात्मा और जीवात्मा समलक्षण नहीं हैं। परमात्मा ही जीव है, यह तत्त्व दुर्विज्ञेय है। परमात्मा निष्पाप, निधर्मक और निष्क्रिय है, जीव इससे सम्पूर्ण विपरीत है। जीवात्मा देखो। विभाग होने पर भी जीवका विकारत्व (जन्ममरण) मालूम होता है। आकाशादि जितने भी विभक्त पदार्थ हैं, सभी विकार हैं। जीव भी पुण्यपापकारी सुखदुःखभागी और प्रतिशरीरमें विभक्त हैं। इसलिए जीवकी भी जगदुत्पत्तिके समय उत्पत्ति हुई थी, यह बात सङ्गत है। और भी देखा जाता है कि, जिस प्रकार अग्निसे क्षुद्र विस्फुलिङ्ग निकलते हैं, उसी प्रकार परमात्मासे समस्त प्राणी जन्म लेते हैं। श्रुतिने इस प्रकार जीवभोग्य प्राणादिकी सृष्टिका उपदेश दिया है—"ये सब आत्माएँ उससे व्युच्चरित होती हैं।" श्रुतिकी इस उक्तिसे भोगात्मगणकी सृष्टि उपदिष्ट हुई है। जैसे प्रदीप्त पावकमेंसे पावकरूपी हजारों स्फुलिङ्ग निकलते हैं, उसी तरह इस अक्षर-ब्रह्ममेंसे अक्षर समानरूपी विविध पदार्थ उत्पन्न होते और उसीमें लय हो जाते हैं। श्रुतिके 'समानरूपी' इस शब्दसे जीवात्माका उत्पत्ति विनाश होता है, ऐसा समझना होगा। स्फुलिङ्ग और अग्नि समानरूपी हैं। जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही चेतन हैं, इसलिए समानरूपी हैं। एक श्रुतिमें उत्पत्तिकथन नहीं है, इसलिए अन्य श्रुत्युक्त उत्पत्तिका निषेध होगा, यह नहीं कहा जा सकता। अन्य श्रुतिस्थ अतिरिक्त पदार्थ सर्वत्र संगृहीत होता है। परमात्मा स्वसृष्ट शरीरमें अनुप्रविष्ट हुए हैं इत्यादि श्रुतिमें अनुप्रवेश शब्दका विकार अर्थ ग्रहण करना ही उचित है। अभिप्राय यह है कि, शरीरमें अविकृत ब्रह्मका प्रवेश नहीं, किन्तु वह ब्रह्मका विकार है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि, विकार और उत्पत्ति समानार्थक है। पूर्वपक्षका उपसंहार यह है—उल्लिखित युक्तिमें जीव भी ब्रह्मसे आकाशादिकी तरह उत्पन्न होता है। किन्तु आत्मा अर्थात् जीव उत्पन्न नहीं होता। कारण यह है कि, श्रुत्युक्त उत्पत्ति प्रकरणमें बहुत जगह जीवकी उत्पत्ति अश्रुत है। एक जगह अश्रवण होने पर उससे श्रुत्यन्तरकथित उत्पत्ति निवारित नहीं होती—यह ठीक है, पर जीवकी उत्पत्ति असम्भव है। क्योंकि जीव नित्य है। श्रुतिके अजत्वादि शब्दसे जीवकी नित्यता प्रतीत होती है। अजत्व है, अविकारित्व है, इसलिए अविकृत ब्रह्मका ही जीवरूपमें रहना और जीवका ब्रह्मत्व श्रुति द्वारा विनिश्चित होता है। आत्मनित्यत्ववादी श्रुतिनिचय यह है—"जीव मरते नहीं, वे ही ये हैं, ये महान् जन्मरहित हैं, आत्मा अजर, अमर, अभय और ब्रह्मविपश्चित् है अर्थात् आत्मा न जन्मती और न मरती ही है, यह आत्मा अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, वे सृष्टि कर उसमें अनुप्रविष्ट हैं" "जीव नामक आत्मा हो कर अनुप्रवेशपूर्वक नामरूप व्यक्त करूँगा" "वे परमात्मा इस शरीरमें नाखाग्र तक आविष्ट हैं" ये सब श्रुतियां जीवके नित्यत्वकी बाधक हैं। जीवको विभक्त कहा था, वह भी नहीं कह सकते। जीव विभक्त है, विभक्त होनेसे विकार (जन्मविशिष्ट) है, विकारत्वके कारण उत्पत्तिशील है, यह बात भी सङ्गत नहीं है, क्योंकि जीवोंमें स्वतः प्रविभाग (पार्थक्य) नहीं है।

वह सर्वव्यापी एक ही देव सर्वभूतकी गुहामें अवस्थित है। इसलिए वे समुदय भूतकी अन्तरात्मा हैं, यह श्रुति ही उसका प्रमाण है। जिस तरह आकाश घटादि सम्बन्धके कारण विभक्तरूपसे प्रतिभात होता है, उसी तरह परमात्मा भी बुद्ध्यादि उपाधि सम्बन्ध द्वारा विभक्तकी भाँति प्रतिभात होते हैं।

इस विषयमें शास्त्रप्रमाण है—"वही ब्रह्म आत्मा विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, चक्षुर्मय और श्रोत्रमय है" इत्यादि। इस शास्त्रद्वारा एक ही ब्रह्ममें बहुत्व और बुद्ध्यादिमयत्व कहा गया है। जीवका जो यथार्थ रूप है, उसका विस्पष्ट वा विज्ञानगोचर न होना बुद्ध्यादिके साथ एकीभाव प्राप्तिके कारण तद्भावापत्ति होती है। जैसे—स्त्रीमय इत्यादि। किसी किसी श्रुतिमें जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके विषयमें जो लिखा है, वह भी

प्रभव न हो कर पृथक् पदार्थ हो, तो ब्रह्मके जानने पर जीवका ज्ञान नहीं होगा। इसलिए सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा भंग हो जायगी।

औपाधिक अर्थात् शरीरादि उपाधि-निबन्धन है। उपाधि-यों की उत्पत्तिसे उपहितकी (उपाधियुक्त देहादि उपहित आत्माकी) उत्पत्ति और उपाधिके विनाशसे उपहितका विनाश कहा जाता है। उपाधिके विनाशसे विशेष-विज्ञान विनष्ट होता है, यह श्रुति प्रमाणसे प्रमाणित हुआ है। विज्ञानघन केवल विज्ञान इन समस्त भूतोंसे उत्थित हो कर फिर उन्हीं भूतोंके विनाशसे विनष्ट होता है और उपाधिके विनाश होनेसे संज्ञा अर्थात् विशेष विज्ञानका विनाश होता है। यह विनाश उपाधिका विनाश है, आत्माका विनाश नहीं। इसका भी इस श्रुति प्रमाणसे निराकरण हुआ है। "भगवन्! आत्मा विज्ञानघन केवल विज्ञान है, फिर भी संज्ञा नहीं रहती, आपकी यह बात मैं स्पष्ट रूपसे नहीं समझ सका हूं।" इसके उत्तरमें ऋषिने कहा—"मैंने भ्रमकी बात नहीं कही है। आत्मा अविनाशी है, आत्माका उच्छेद और परिणाम नहीं होता। हां, उसके साथ माया अर्थात् विषयका सम्बन्ध होता है। विषयसे सम्बन्ध होनेके समय विषयरूपी और विषयसे विच्छेद होते ही वह केवल हो जाता है।" अविकृत ब्रह्म ही शरीर-सम्बन्धसे जीव है, यह स्वीकार करने पर भी एक विज्ञानमें सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा नष्ट नहीं होती। उपाधिके कारण लक्षणमें प्रभेद हुआ है अर्थात् ब्रह्मलक्षण एक प्रकारका है और जीवलक्षण अन्य प्रकारका है। अब सहजहीमें अनुमान किया जा सकता है कि आत्माकी उत्पत्ति नहीं होती। पूर्वोक्त भागवतोंकी जो कल्पना थी, उसके प्रति और भी बहुत हेतु दिये गये हैं।

"न च कर्तुः करणं" (सां०सू०)

लोकमें देवदत्तादि कर्त्ता होते हुए दात्रादि करण-की (क्रिया निष्पादक पदार्थकी) उत्पत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। फिर भी भागवतगण वर्णन करते हैं कि सङ्कर्षण नामक कर्त्ता जीव प्रद्युम्न नामक करण मनकी उत्पन्न करता है और उस कर्तृजन्य प्रद्युम्न (मन) से अनिरुद्ध (अहङ्कार) की उत्पत्ति होती है। भागवतों-की इस बातको बिना दृष्टान्तके मान लेना किसीके लिए भी सङ्गत नहीं। भागवतोंका ऐसा अभिप्राय भी हो सकता है कि, उक्त सङ्कर्षण आदि जीवभावान्वित नहीं हैं। वे सभी ईश्वर हैं, सभी ज्ञानशक्ति और ऐश्वर्यशक्ति युक्त बल, वीर्य और तेजःसम्पन्न हैं, सभी वासुदेव निर-धिष्ठित और निरवद्य हैं*। इसलिए उनके विषयमें उत्पत्तिसम्भव दोष नहीं है। इस अभिप्रायके प्रति कहा जाता है कि, उनका उक्त अभिप्रायके होने पर भी उत्पत्ति-सम्भव दोष निवारित नहीं होता, अर्थात् वह दोष अन्य प्रकारसे आता है। उसका प्रकार ऐसा है—सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये परस्पर भिन्न हैं, एकात्मक नहीं; फिर भी सब समधर्मी और ईश्वर हैं यह अर्थ अभिप्रेत होने पर अनेक ईश्वर स्वीकार करना हुआ। किन्तु अनेक ईश्वर स्वीकार करना निष्प्रयोजन है। क्योंकि एक ईश्वरके माननेसे ही इष्ट-सिद्धि हो सकती है। भगवान् वासुदेव एक हैं अर्थात् अद्वितीय और परमार्थतत्त्व हैं, ऐसी प्रतिज्ञा होनेसे सिद्धान्तहानिदोष भी लगता है।

ये चार व्यूह भगवान् ही हैं और वे सभी समधर्मी हैं, ऐसा होने पर भी उत्पत्ति-सम्भव दोष ज्योंका त्यों रहता है। क्योंकि अतिशय (छोटा बड़ा, तरतम) न रहनेसे वासुदेवसे सङ्कर्षणकी, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नकी और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्यकारणके मध्य अतिशयका रहना नियमित है। जैसे मिट्टी और घड़ा। अतिशय बिना रहे कौनसा कार्य है और कौनसा कारण है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। और भी देखिये, पञ्चरात्र-सिद्धान्ती वासु-देवादिमें ज्ञानादि तारतम्यकृत भेदको नहीं मानते। वास्तवमें वे व्यूहचतुष्टयको अविशेषतया वासुदेव समझते हैं। भगवान्के व्यूह (भिन्न संस्थान) क्या चतुःसंख्यामें ही पर्याप्त हुए हैं? ऐसा नहीं है। ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त (स्तम्ब = तृणगुच्छ) सम्पूर्ण जगत् ही भगवद्व्यूह है। यह श्रुति, स्मृति आदि सब धर्मशास्त्रों-का मत है। भागवतोंके शास्त्रमें गुणगुणिभाव आदि अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पनाएं हैं। खुद ही गुण है और खुद ही गुणी, यह अवश्य ही विरुद्ध है। भागवत-गण कहते हैं कि, ज्ञानशक्ति, ऐश्वर्यशक्ति, बल, वीर्य,

* निरधिष्ठित या अप्राकृतिक, अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न नहीं। निरवद्य अर्थात् नाशादिरहित। निर्दोष रागादि रहित।

तेजः ये सब गुण और प्रद्युम्न आदि भिन्न होने पर भी आत्मा और भगवान् वासुदेव हैं। और भी देखिये, उनके शास्त्रमें वेदनिन्दा है "चतुर्षु वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा शाण्डिल्य इदं शास्त्रं अधिगतवान्" (शा०सू०भा०) शाण्डिल्यने चार वेदोंसे परम श्रेयोलाभ न कर आखिर यह शास्त्र प्राप्त किया। जिस धर्मग्रन्थमें वेदनिन्दा है, वह भी धर्मजिज्ञासुके लिए अग्रहणीय है। इस कारणसे भागवतमतावलम्बियोंकी जीवोत्पत्तिके विषयमें इस प्रकारकी कल्पना असङ्गत और अग्राह्य है।

कणादके मतसे—आत्मा आगन्तुक चैतन्य है अर्थात् स्वतःचेतन नहीं है। निमित्तवशतः उसमें चैतन्य नामक गुण उत्पन्न होता है। किन्तु सांख्यदर्शनके मतसे आत्मा नित्य चैतन्यरूपी है। इन दोनों विरुद्ध मतोंको देख कर यह संशय उत्पन्न होता है कि, आत्मा है क्या चीज और उसका स्वरूप क्या है? आत्मा क्या वैशेषिकोंके मतानुसार आगन्तुक चैतन्य है? अथवा सांख्यके मतानुसार नित्य चैतन्यरूपी है? साधारण युक्तिमें आगन्तुक चैतन्य पाया जाता है। जैसे अग्निके साथ घटका संबन्ध होने पर घटमें ललाई उत्पन्न होती है, उसी तरह मनके साथ आत्माका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें चैतन्यगुण उत्पन्न होता है। आत्मा नित्य चैतन्यरूपी होनेसे उसमें सुप्त मूर्छित और ग्रहाविष्ट अवस्थामें चैतन्य दर्शन रहता। इन अवस्थाओंमें चैतन्य नहीं रहता चैतन्यका अभाव हो जाता है। परन्तु उन अवस्थाओंके बाद वह व्यक्त होता है। आत्मा कभी चेतन है, कभी अचेतन है, यह देख कर स्थिर होता है कि, आत्मा नित्योदित चैतन्य नहीं किन्तु आगन्तुक चैतन्य है, यह पूर्वपक्षका सिद्धान्त हुआ। आत्मास्थ नित्योदित चैतन्य, पूर्वोक्त हेतु ही उसका हेतु है अर्थात् जब कि आत्मा उत्पन्न नहीं होती। अविच्छिन्न परब्रह्म ही देहादि उपाधिसम्पर्कसे जीवभावान्वित हैं, इसलिए जीव नित्य चैतन्यरूपी हैं, न कि आगन्तुक चैतन्य। पूर्वपक्षका जो यह कहना है कि, सुप्त पुरुषमें चैतन्य नहीं रहता, इसका श्रुतिने प्रतिवाद किया है। आत्मा सुषुप्तिकालमें देखती नहीं, ऐसा नहीं। देखती है और नहीं भी देखती है। द्रष्टव्य ही नहीं देखती। जो दृष्टिका द्रष्टा अर्थात् ज्ञानका ज्ञाता है, वह अविनाशी है। इसलिए उस अवस्थामें भी उसका विनाश नहीं होता। उस समय दूसरा कोई नहीं रहता सिर्फ वही (जीव) रहता है। अन्य समयमें उसमेंसे ये सब (द्रष्टव्य) विभक्त होते हैं। इसीलिए जीव उसका देखता नहीं। श्रुतिने यही कहा है। पुरुष सुषुप्तिकालमें अचेतन नहीं होता, किन्तु अचेतनप्राय होता है, अर्थात् वह अवस्था चैतन्याभाववशतः नहीं होती, बल्कि विषयाभाववशतः ही होती है। जैसे प्रकाश्य वस्तुके अभावमें प्रकाशक पदार्थकी अनभिव्यक्ति होती है, उसी तरह द्रष्टव्यके अभावमें द्रष्टाकी भी अनभिव्यक्ति होती है। अतएव उसके स्वरूपका अभाव नहीं होता। वैशेषिक, न्याय आदि दर्शनोंकी यह बात सुसङ्गत नहीं है। जीवात्मा देखो।

जीवोपाधि (सं० पु०) जीवस्य उपाधिः, ६ तत्। स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत अवस्था ये तीन जीवकी उपाधियां हैं। जब सुषुप्ति दशामें किसी वस्तुका ज्ञान ही नहीं होता, तब वह उपाधि कैसे हो सकती है? यह सत्य है, किन्तु सुषुप्ति अवस्थामें भी बुद्धि, मन, अहङ्कार, इन्द्रिय आदिमें संस्कारवासित अज्ञानरूप उपाधि रहती है। जिस प्रकार वस्त्रमें सुगन्धित पुष्पादि बाँध कर पीछे फेंक देने पर भी वस्त्र सम्पूर्ण सुगन्धिको नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार जीवकी बुध्यादि संस्कारवासित अज्ञानरूप उपाधि भी तिरोहित नहीं होती। अतएव सुषुप्ति अवस्थामें भी जीवकी उपाधि होती है। स्वप्नावस्थामें जाग्रत्वासना (संस्कार) रूप लिङ्ग शरीर (बुद्धि, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्र, इन अठारह अवयवों सहित लिङ्गशरीर) उपाधि है, अर्थात् स्वप्नावस्थामें भी लिङ्गशरीरसमूहमें वासनाएं (संस्कार) परिस्फुट रहती हैं। जाग्रदवस्थामें सूक्ष्मशरीरके साथ स्थूल शरीर उपाधि है, यही उपाधि जीवके दुःखका कारण है। जीव उपाधिरहित होने पर समस्त दुःखोंसे मुक्त होता है। स्थूल शरीरके नाश होनेसे इस उपाधिका नाश नहीं होता। इस उपाधिको दूर करनेके लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आवश्यक है, इससे धीरे धीरे अखिल संस्कारराशिका नाश हो जाता है। फिर जीव आसानीसे उपाधिरहित हो सकता है। यह उपाधि अज्ञानवा

मायासे होती है। जीवात्मा देखो।

जीवोर्णा (सं० स्त्री०) जीवस्य ऊर्णा, ६-तत्। जीवित मेषादिके रोम, जीते मेढ़ाके बाल।

जीव्या (सं० स्त्री०) जीवाय जीवनाय हिताय, जीव-यत्। १ हरीतकी, हड़। २ जीवन्ती। ३ गोरसदुग्ध, गायका खुपका दूध। (त्रि०) ४ जीवनोपाय, जीविका।

जीह (हिं० स्त्री०) जीभ देखो।

जुँई (हिं० स्त्री०) जुई देखो।

जुंदर (पु०) बन्दरका बच्चा।

जुंबली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पहाड़ी भेड़।

जुंबिश (फा० स्त्री०) चाल, गति, हिलना डोलना।

जुआ (हिं० पु०) १ द्यूत, हार जीतका खेल। यह खेल कौड़ी पैसे ताश आदि कई वस्तुओंसे खेला जाता है; किन्तु आजकल यह खेल कौड़ीसे भी खेला जाता है। इसमें चित्ती कौड़ियां फेंकी जाती हैं और चित्त पड़ी हुई कौड़ियोंकी संख्याके अनुसार दावोंकी हार जीत होती है। सोलह चित्ती कौड़ियोंके खेलको सोलही कहते हैं। २ वह लकड़ी जो गाड़ी, छकड़ा, हल आदिमें बैलोंके कंधों पर रहती है। ३ जाँते या चक्कीकी मूँठ।

जुआचोर (हिं० पु०) १ अपना दांव जीत कर खिसक जानेवाला जुआरी। २ वञ्चक, ठग, धोखेबाज।

जुआचोरी (हिं० स्त्री०) वञ्चकता, ठगी, धोखेबाजी।

जुआठा (हिं० पु०) हलमें बैलोंके कंधों परकी लकड़ीका ढांचा।

जुआर (हिं० स्त्री०) ज्वार देखो।

जुआरदासी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा जिसमें सुगन्धित फूल लगते हैं।

जुआरा (हिं० पु०) एक जोड़ी बैलसे एक दिनमें जोती जानेवाली धरती।

जुआरी (हिं० पु०) जुआ खेलनेवाला।

जुई (हिं० स्त्री०) १ छोटी जुआं। २ मटर, सेम इत्यादि फलियोंमें होनेवाला एक प्रकारका छोटा कीड़ा।

जुई (हिं० पु०) एक प्रकारका पात्र जिससे हवनमें घी छोड़ा जाता है। यह काठका बना हुआ बरछीके आकारका होता है।

जुकाम (हिं० पु०) सरदी लगनेसे होनेवाली बीमारी इसमें शरीरके अन्दर कफ उत्पन्न हो कर नाक और मुंहसे निकलने लगता है।

जुग (हिं० पु०) १ युग देखो। २ जोड़ा, दल, गोल। ३ चौसर खेलकी दो गोटियोंका एक ही कोठेमें इकट्ठा होना। ४ कपड़े बुननेके अवयवोंमेंसे एक प्रकारका डोरा। ५ पीढ़ी, पुश्त।

जुगजुगाना (हिं० क्रि०) १ मन्द ज्योतिसे चमकना, टिमटिमाना। २ उन्नति दशामें प्राप्त होना।

जुगजुगी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया, इसका दूसरा नाम शकरखोरा भी है।

जुगत (हिं० स्त्री०) १ युक्ति, उपाय, तदबीर। २ व्यवहारकुशलता, चतुराई। ३ चमत्कारपूर्ण उक्ति, चुटकुला।

जुगनी (हिं० स्त्री०) १ जुगनू देखो। २ पंजाबमें गाये जानेका एक प्रकारका गाना।

जुगनू (हिं० पु०) १ ज्योतिरिङ्गण, खद्योत, ज्योतिःशाली क्षुद्र कीटविशेष, एक उड़नेवाला छोटा कीड़ा जिसका पीछेका भाग आगकी चिनगारीकी तरह चमकता है (Lampyris noctiluca)। यह लम्बाईमें करीब आधे इञ्चका होता है। इसका मस्तक और गला छोटा और रंग कालेपनको लिए भूरा होता है। पंखों पर लोहित और कृष्णमिश्रित चिह्न होते हैं। स्त्री-जुगनूकी अपेक्षा पुं जुगनूकी आँखें बड़ी होती हैं। यह वृक्ष, लता, गुल्म, पुष्करिणी और नदीके किनारे रहता है। अंधेरी रातमें इनके झुण्डके झुण्ड छोटी छोटी दीपमालाओंकी तरह दीखते हैं। इनका यह प्रकाश वस्तिदेशके छोरसे निकलता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि, वह प्रकाश दीपकसम्भूत है। जुगनूकी पूँछमें दीपक (Phosphorus) विद्यमान है, यह इच्छानुसार प्रकाशको घटा बढ़ा सकता है। हमेशा देखनेमें आता है कि, यह एक बारगी खूब चमकने लगता है और फिर उसी समय प्रायः बुझ-सा जाता है। उस चमकनेवाले हिस्सेको अलग कर लेने पर भी वह बहुत देर तक प्रकाश देता है। बुझ जाने पर यदि उसको पानी दे कर कोमल किया जाय, तो फिर उसमेंसे प्रकाश निकलते हैं। गरम पानीमें छोड़ देने पर भी इस कीड़ेसे

प्रकाश निकलता है, पर ठंडे पानीमें छोड़नेसे बुझ जाता है।

पुं०-जुगनूकी अपेक्षा स्त्री जुगनू हो अधिक उज्ज्वल है। स्त्री-जुगनूके पर नहीं होते, इसलिए वह उड़ नहीं सकती, एक जगह बैठी हुई जरा जरा प्रकाश करती है। इस प्रकाशको देख कर पुं-जुगनू उसका पता लगा लेता है। सिंहलमें ऐसे कीड़े हैं, जिनकी स्त्री-जातिकी लम्बाई ३ इंचकी है। वैज्ञानिकोंने परीक्षा की है—यह वायुशून्य स्थानमें और वाष्पके भीतर बहुत देर तक जीवन धारण कर सकता है। हाइड्रोजन वाष्पके भीतर रखनेसे कभी कभी शब्द करके फट जाता है।

तितली, गुबरैले, रेशमके कीड़े आदिकी तरह ये भी पहले टोलेके रूपमें उत्पन्न होते हैं। टोलेकी अवस्थामें ये मिट्टीके घरमें रहते हैं और उसमेंसे दस दिनके उपरान्त रूपान्तरित हो कर छोटे छोटे क्रमिके आकारमें निकलते हैं और स्पष्ट होते ही चमकने वा प्रकाश फैलाने लगते हैं, परन्तु इनका प्रकाश पूर्णावस्था जुगनूकी तरह उजला नहीं होता। सबसे ज्यादा चमकीले जुगनू दक्षिण अमेरिकामें होते हैं। इनसे कहीं कहीं लोग घरमें दीपकका काम लेते हैं। इन्हें सामने रख कर लोग सूक्ष्मसे सूक्ष्म अक्षरोंकी पुस्तकें पढ़ सकते हैं।

२ पानके आकारका एक गहना जिसे स्त्रियां गलेमें पहनती हैं, रामनौमी।

जुगराज—हिन्दीके एक कवि।

जुगराजदास—एक हिन्दीके कवि। इनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। उदाहरण—

"लंबर मदमाती डोलै या फागुनमें अबीर गुलाल उड़ाय।
गारी गाय गाय तारी देय देय चलहिं लंक लचकाय।
गरजन बरखन रंग बुंदेरे घरमें रहो मानो छाय।
रस झूम झूम गत घूम घूम चितमन लेत जुगराज चुराय।"

जुगल (हिं० वि०) युगल देखो।

जुगल सखी—हिन्दीके एक कवि। इनकी कविता उत्कृष्ट होती थी। एक कविता नीचे उद्धृत की जाती है—

"आलीरी अति राजत अलकैं।
मैं चुक मृदुल मनोरथ मुख पर गोपदरज छबीली छबि छलकैं।
छटकन लटक रहे अधरन पर ताकी हिलन हिये बिच हलकैं।
जुगल सखी ऐसे प्रभु ही मिलनको निशदिन रहत हिए बिच ललकैं॥
अतिशय कान्त कनक कुंडलकी लगि लगि लोल कपोलन रलकैं।
देखत बनत बरण नहीं आवत तन मन हरत परत नहिं पलकैं॥

जुगलकिशोर—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने जुगल-माणिक नामका एक ग्रन्थ रचा है।

जुगलकिशोर भट्ट—हिन्दीके एक कवि। ये कैथलके (जिला करनाल) रहनेवाले और १७४६ ई०में विद्यमान थे। इन्होंने अलङ्कारनिधि और किशोरसंग्रह नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें पहला ग्रन्थ बड़े महत्त्वका है—उसमें अलङ्कारोंके विषयमें विशदरीतिसे लिखा गया है। ये महम्मदशाहके दरबारमें रहते थे। महम्मदशाहने उन्हें 'राजा' उपाधि प्रदान की थी।

जुगलदास—एक हिन्दीके कवि।

जुगलिया (हिं० पु०) जैन मतानुसार भगवन् ऋषभदेवसे पहलेके प्राचीन (भोगभूमिके मनुष्य। ये माताके गर्भसे स्त्री-पुरुष एकसाथ दम्पतीरूपमें जन्मग्रहण करते थे। इसीलिये इनको जुगलिया कहा जाता है। सन्तान उत्पन्न होने पर वे दोनों ही मर जाते थे और इनकी सन्तान भी युगल वा दम्पतीरूपमें जन्मग्रहण करती थी। इनको भोगभूमिया भी कहते हैं।

जुगवना (हिं० क्रि०) १ सञ्चित रखना एकत्र करना। २ सुरक्षित रखना, हिफाजतसे रखना।

जुगादरी (हिं० वि०) जीर्ण, बहुत पुराना।

जुगालना (हिं० क्रि०) पागुर करना।

जुगाली (हिं० स्त्री०) पागुर, रोमंथ।

जुगुत (हिं० स्त्री०) जुगत देखो।

जुगुप्सु (सं० त्रि०) गोपितुमिच्छुः। गुप-सन्-उः। १ निन्दक, निन्दा करनेवाला। २ जुगा कर रखनेवाला, यत्नपूर्वक रखनेवाला।

जुगुप्सक (सं० त्रि०) गुप-सन्-भावे अ-ण्वुल्। व्यर्थ दूसरेकी निन्दा करनेवाला।

जुगुप्सन (सं० क्ली०) गुप-सन् भावे ल्युट्। १ निन्दन, निन्दा करना, दूसरेकी बुराई करना। (त्रि०) कर्त्तरि युच्। २ निन्दाशील, निन्दक, निन्दा करनेवाला। ३ दोष प्रभृति अनुसन्धान कर जो निन्दा की जाती है।

जुगुप्सा (सं० स्त्री०) गुप सन् भावे अ-टाप् १ निन्दा, गर्हणा, बुराई ।

जुगुप्सा (सं० स्त्री०) गुप-सन् भावे अ-टाप् । १ निन्दा । (अमर) वीभत्सरसका स्थायिभाव, शान्तरसका व्यभिचार भाव । (साहित्यद० ३।२३६) वीभत्सरस देखो ।

देह जुगुप्साका विषय पातञ्जलदर्शनमें इस प्रकार लिखा है—

"शौचात् स्वांके जुगुप्सा परैरसंसर्गः ।" (पात० २।४०)

जिसने शौचको साध लिया है, कारणस्वरूप उसको अपने अङ्गप्रत्यङ्गोंसे भी घृणा हो जाती है। आत्माकी शुचि होने पर शरीरकी अशुचि समझ उसमें आग्रह वा ममत्व नहीं रहता और अपने शरीरके प्रति जुगुप्सा (घृणा) हो जाती है ; इसलिए अन्यान्य शरीरियोंसे मिलनेकी भी इच्छा नहीं होती । जिसको अपनी देहसे घृणा हो गई हो, उसे अन्य शरीरसे द्वेष हो, ऐसा संभव नहीं ; आत्मशौचवान् व्यक्ति दूसरोंके साथ पार्थक्य नहीं रखता। इसीलिए प्रायः साधुयोगियोंके लोकालयमें दर्शन नहीं मिलते। देहमें सर्वदा जुगुप्सा रखनी चाहिये। शरीरसे जुगुप्सा होने पर वैराग्य आता है। वास्तवमें यह शरीर अनित्य है, यह रसान्त, भस्मान्त वा विष्ठान्त हो जायगा। यह मातापितृज षाट्कौषिक शरीर भुक्त द्रव्यका परिणाम मात्र है, इसलिए इसमें विश्वास करना सङ्गत नहीं । इसके निमित्तसे सर्वदा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और दुःखके दोषोंका अनुसन्धान करना चाहिये ।

२ जैनमतानुसार चारित्रमोहिनीय कर्मोंके भेदोंमेंसे एक । इसके उदयसे आत्मामें ग्लानि उत्पन्न होती है ।

जुगुप्सित (सं० त्रि०) १ निन्दित घृणित । (क्ली०) २ श्वेत लहसुन, सफेद लहसुन ।

जुगुप्सु (सं० त्रि०) निन्दक, बुराई करनेवाला ।

जुगुर्वणि (सं० त्रि०) गृ-स्तुतौ गृणाति यङ् लुगन्तात् क्विप छान्दसो रूपसिद्धिः । स्तोत्रका संविभक्त, जो स्तवकारियोंको विभाग करता है ।

जुगुल—एक कविका नाम । १६९८ ई० में इनका जन्म हुआ था । इनकी कविता साधारण श्रेणीकी होती थी ।

जुगुलपरसाद चौबे—हिन्दीके एक कवि । इन्होंने 'दोहावली' नामक एक पुस्तक रची है ।

जुगुलानन्यशरण महन्त—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि । ये जातिके ब्राह्मण थे । इन्होंने सीतारामस्नेहवाटिका, रामनाममाहात्म्य, विनोद-विलास, प्रेमप्रकाश, हृदयहुलासिनी, मधुरमञ्जुमाला, रूपरहस्य पदावली, प्रेम परत्वप्रभा (दोहावली) आदि प्रायः ३०–४० ग्रन्थोंकी रचना की है । १८७६ ई०में इनकी मृत्यु हुई । इनकी कविता उत्कृष्ट होती थी—उनसे कविकी विद्वत्ता प्रगट होती है । नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

"ललित कंठ कमनीय लाल, मन मोल लेत बिन दामें ।
अरुन पीत सित अमित माल, मनि नूतन लसत ललामें ॥
क्या तारीफ सरीफ कीजिए रहिए हेरि हरामें ।
जुगुलानन्य नबीन बीन, पिक कायल सुनत कलामें ॥"

जुघ्न (सं० पु० क्ली०) यवनाल ।

जुङ्ग (सं० पु०) जुग-अच् । वृद्धदारक, विधाराका पेड़ ।

जुङ्गा (सं० स्त्री०) जुंग देखो ।

जुङ्गित (सं० त्रि०) जुङ्ग-क्त । १ परित्यक्त, छोड़ा हुआ । २ क्षतिग्रस्त, नुकसान किया हुआ ।

जुङ्गी—निकृष्ट जातिविशेष, एक नीच जाति ।

जुज़ (फा० पु०) एक फारम, कागजके ८ वा १६ पृष्ठोंका समूह ।

जुज़बन्दी (फा० स्त्री०) किताबकी सिलाई । इसमें आठ आठ पन्ने एक साथ सिए जाते हैं ।

जुज़वी (फा० वि०) १ बहुतोंमें कोई एक । २ बहुत छोटे अंशका ।

जुझाऊ (हिं० वि०) १ युद्धका, लड़ाईमें काम आनेवाला । २ युद्धके लिये उत्साहित करनेवाला ।

जुट (हिं० स्त्री०) १ दो वस्तुओंका समूह, जोड़ी, जुग । २ एकके साथ लगी हुई वस्तुओंका समूह, थोक । ३ दल, जत्था, मण्डली । ४ एक जोड़का आदमी या वस्तु ।

जुटक (सं० क्ली०) जुट संहतौ जुट-क । इगु धेति । पा ३।१।१३५ । ततः संज्ञायां कन् । जटा, सिरके उलझे हुए बाल ।

जुटना (हिं० क्रि०) १ संश्लिष्ट होना, जुड़ना । २ सटना, लगा रहना । ३ लिपटना, चिमटना । ४ सम्भोग करना,

प्रसङ्ग करना। ५ एकत्र होना, जमा होना। ६ किसी कार्यमें मदद देनेके लिये तैयार होना। ७ प्रवृत्त होना, तत्पर होना। ८ अभिसन्धि करना, सहमत होना।

जुटली (हिं० वि०) लम्बे लम्बे बालोंकी लट रखनेवाला, जूड़ेवाला।

जुटाना (हिं० क्रि०) १ दो या अधिक वस्तुओंके एक दूसरेके साथ दृढ़तापूर्वक लगा देना, जोड़ना। २ सटाना, भिड़ाना। एकत्र करना, इकट्ठा करना, जमा करना।

जुटिका (सं० स्त्री०) जुटक-टाप् अत इत्वं। १ शिखा, चुंदी, चुटैया। शिखाको बांधे बिना कोई धर्मकार्य करना निषिद्ध है।

"जुटिकाञ्च ततो बद्ध्वा ततः कर्मसमाचरेत्।" (आह्निकतत्त्व)

२ गुच्छ, लट, जूड़ी, जुट्टी। ३ कर्पूरविशेष एक प्रकारका कपूर।

जुट्टी (हिं० स्त्री०) घास, पूला आदिका बँधा हुआ मुट्ठा, अँटिया। २ सूरन आदिके नये कल्ले। ३ एक ही आकारकी ऐसी वस्तुओंका ढेर जो तले ऊपर रक्खी हों, गड्डी, गांज। (वि०) ४ संयुक्त, मिली हुई।

जुठारना (हिं० क्रि०) १ उच्छिष्ट करना, किसी खाने पीनेकी वस्तुको कुछ खा कर छोड़ देना। २ किसी वस्तुमें हाथ लगा कर उसे दूसरेके व्यवहारके अयोग्य कर देना।

जुठिहारा (हिं० पु०) जो जूठा खाता हो, जुठखोर।

जुड़ना (हिं० क्रि०) १ संश्लिष्ट होना, संयुक्त होना। २ सम्भोग करना, प्रसङ्ग करना। ३ एकत्र होना, इकट्ठा होना। ४ किसी काममें सहायता देनेके लिये तैयार हो जाना। ५ उपलब्ध होना, मिलना, हासिल होना। ६ जुतना।

जुड़पित्ती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रोग जो शीत और पित्तसे उत्पन्न होता है। इसके होनेसे शरीरमें खुजली उठती है और बड़े बड़े चकते पड़ जाते हैं।

जुड़वाँ (हिं० वि०) गर्भकालसे ही एकमें सटे हुए। यमल।

जुड़वाई (हिं० स्त्री०) जोड़वाई देखो।

जुड़ाई (हिं० स्त्री०) जोड़ाई देखो।

जुड़ाना (हिं० क्रि०) १ शीतल होना, ठण्डा होना। २ तृप्त करना, खुश करना।

जुड़ौवाँ (हिं० वि०) जुड़वां देखो।

जुडीशल (अं० वि०) न्यायसम्बन्धी।

जुतना (हिं० क्रि०) रस्सी या किसी दूसरी वस्तुके द्वारा बैल, घोड़े आदिका उस वस्तुके साथ बांधना जिसे उन्हें खींच कर ले जाना हो, नधना। २ किसी कार्य्यमें परिश्रमपूर्वक लगना। ३ लड़ाईमें लगना, गुथना, जुटना। ४ हल द्वारा जमीनको मुलायम करना।

जुतवाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेसे हल चलवाना। २ गाड़ी हल आदिके खींचनेके लिये उसमें बैलोंको लगवाना।

जुताई (हिं० स्त्री०) जोताई देखो।

जुताना (हिं० क्रि०) जोताना देखो।

जुतियाना (हिं० क्रि०) १ जूतोंसे मारना। २ अपमानित करना, तिरस्कार करना, नफरत करना।

जुतियौअल (हिं० स्त्री०) परस्पर जूतोंकी मार।

जुतोघ—पञ्जाबके शिमला जिलेकी एक पहाड़ी छावनी। यह अक्षा० ३१° ७´ उ० और देशा० ७७° ७ पू०में शिमला ष्टेशनसे कोई १ मील दूर पड़ता है। १८४३ ई०में पटियालासे जमीन ली गयी थी। लोकसंख्या प्रायः ३७५ है।

जुथौली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। इसकी छाती और गरदनका कुछ अंश सफेद और शेष अंश भूरा होता है।

जुदा (फा० वि०) १ पृथक्, अलग। २ निराला, भिन्न।

जुदाई (फा० स्त्री०) वियोग, विछोह।

जुदो (हिं० वि०) जुदा देखो।

जुनार (जुन्नर) १ बम्बई विभागके अन्तर्गत पूना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १८° ५८´ से १८° २४´ उ० और देशा० ७३° ३८´ से ७४° १८´ पू०में अवस्थित है। इसकी लोकसंख्या प्रायः ११७७५३ और भूपरिमाण ५८१ वर्ग मील है। इसमें जुनार नामका एक शहर और १५८ ग्राम लगते हैं। जुनार शहरसे १½ मील दक्षिण-पश्चिम कोनेमें शिवनेरी नामका एक दुर्ग है। इस दुर्गके नामानुसार प्राचीनकालमें जुनार "शिवनेरी" नामसे विख्यात था। पूनाकी कलक्टरीके अधीन बहुतसे तालुक हैं, जिनमेंसे जुन्नार तालुक सबकी उत्तरी सीमामें

अवस्थित है। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि भिन्न भिन्न जातियां वास करती हैं। हिन्दुकी संख्या ही सबसे अधिक है। इस उपविभागमें एक दीवानी और दो फौजदारी अदालत तथा एक थाना है।

यहां बहुतसी नदियां पर्वतसे निकल कर 'घोड़में' गिरी हैं। यह घोड़ देखनेमें काटेके सदृश है। इसका अग्रभाग सूक्ष्म और तीनों ओर विस्तृत है। सबसे दक्षिणमें जो नदी प्रवाहित है, उसका नाम है मीना। प्रतिवर्ष इस नदीका जल बढ़ कर १० मीलके मध्यवर्ती खेतोंका बहुत अनिष्ट करता है। इस स्थानकी मट्टी बहुत नरम है। जलका प्रवाह रोकनेका कोई उपाय नहीं है। अधिवासिगण नदी तथा मट्टीकी प्रकृति अच्छी तरह जानते हैं, किन्तु वे स्थान-परिवर्तन करनेकी जरा भी इच्छा नहीं रखते। माधोजी सिन्धियाके एक कर्मचारी हिन्दुस्तान लूटनेके समय सङ्गतिपन्न हो गये थे। उन्होंने (कुलकर्णीवंशीय) निगुड़ी ग्राममें एक सुन्दर मन्दिर बनवाया था। कई वर्ष हुये, मीना नदी उस ओर बढ़ती कर मन्दिरको नष्ट करने लगी है।

१६५७ ई०में शिवाजीने जिस जगह नदी पार हो जुनार दुर्ग पर आक्रमण किया था, वह प्रदेश मन्दिरके समीप ही है। निगुड़ीसे दो मील नीचेकी ओर एक प्रसिद्ध मुगलबांध है। पहले इस स्थानसे शिवनेरा दुर्गके 'बागलहोर' उद्यान तक एक खाड़ी प्रवाहित थी। अब वहां जलका चिह्न भी नहीं है। पूना और नासिकको सड़कके निकट नारायणग्राम अवस्थित है। यहां एक प्राचीनकालका बांध है। फिलहाल गवर्मेण्टने इसका जीर्णसंस्कार किया है। इस बांधके रहनेसे ८००० एकड़ भूमि बहुत आसानीसे सींची जाती है। नारायण ग्रामके समीप मीना नदीके ऊपर एक पुल बना हुआ है और यह नदी पिम्पलेखाके निकट घोड़में गिरी है। इसके बाईं ओर नारायणगढ़ है।

कुकरी नदी कालीपर्वतके निकटसे निकल नाना घाटोंकी उपत्यका तक प्रवाहित हुई है। यह स्थान कोङ्कण और दक्षिण प्रदेशकी प्राकृतिक सीमा स्वरूप है। कहा जाता है कि पहले घाटगढ़ और कोङ्कणके अधिवासियोंमें इस स्थानके लिये बहुत विवाद हुआ था। किसी समय दोनों पक्ष मिल कर सीमा स्थिर करनेके लिये बहुत वादानुवाद करने लगे। अन्तमें घाटगढ़के सीमान्त-रक्षक महारने कहा कि नीचे कूदनेसे वे जहां निश्चल अवस्थामें रहेंगे वही स्थान दोनों ग्रामोंकी सीमा मानी जायगी। दोनों पक्षोंने इसे स्वीकार कर लिया और जिस पहाड़के ऊपर दोनों पक्ष सम्मिलित हुये थे, वहींसे वे नीचे कूद पड़े! जिस स्थान पर उनकी देह चकना चूर हुई, वही स्थान घाटगढ़ और कोङ्कणकी सीमा ठहराई गई। पहले जुनारमें सात दुर्ग थे। वे इस तरह बने थे कि वे आकाशके सप्त नक्षत्र पुञ्जकी आकृतिके सदृश मालूम पड़ते थे।

उक्त सात दुर्गोंके नाम ये हैं—चावन्द, शिवनेरी, नारायणगढ़, हरिचन्द्रगढ़, जीवधन, नीमगढ़, और हर्षगढ़।

जुनारमें बौद्धोंकी बनाई हुई बहुतसी गुहाएं देखी जाती हैं, किन्तु अन्यान्य स्थानकी बौद्ध-गुहाकी भांति जुनारकी गुहाएं खोदी हुई मूर्त्तियोंसे सुशोभित नहीं हैं। गुहानिर्माण होनेके बहुत समय बाद यहां बुद्धदेवकी प्रतिमूर्त्ति तथा और दूसरी दूसरी बौद्धमूर्त्तियां स्थापित हुई हैं। जुनारकी गुहाओंका निर्माण-कौशल अत्यन्त विस्मयजनक है। इन गुहाओंमें जगह जगह शिलालेख पाये जाते हैं। ये लेख एक समयके नहीं हैं। इनमें बहुतसे महाराज अशोकके समयसे भी पहलेके हैं।

किसी किसी विद्वान्‌ने स्थिर किया है, कि प्राचीन तगर अब जुनारके नामसे मशहूर हो गया है। प्राचीन तगरके शिल्पकार तीन भागोंमें विभक्त हो भिन्न भिन्न स्थानोंमें फैल गये थे। पहले तगरपुरवराधीश्वर उपाधि विशेष प्रचलित थी।

इस प्रदेशमें मुसलमानोंके प्रथम आधिपत्यके समय उनकी राजधानी जुनारमें थी और कोङ्कणका कुछ भाग जुनार राज्यके अन्तर्गत था। जुनारसे नारायणग्राम तक जो रास्ता गया है, उसके कुछ दक्षिणमें मुसलमानोंका बनाया हुआ एक दुर्ग विद्यमान है।

२ बम्बई प्रदेशके पूना जिलेके अन्तर्गत इसी नामके तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १८° १२´ उ० और देशा० ७३° ५३´ पू०के मध्य पूना शहरसे ५६ मील

और पश्चिमघाटसे लगभग १६ मीलको दूरी पर अवस्थित है। इस शहरके उत्तरमें एक नदी और दक्षिणमें शिवनेरी दुर्ग है। यहांकी लोकसंख्या प्राय: ८६७५ है। जुनार उपविभागके राजकीय सभी कार्य इसी नगरमें होते हैं। यहां एक म्युनिसपालिटी, एक सबजज अदालत, एक डाकघर और एक दातव्य औषधालय है। मुसलमानोंके समयसे ही जुनार नगरका आयतन कम हो गया है तथा महाराष्ट्रगण प्रबल हो कर जब विचार और शासनालयको पूना उठा लाये थे, तभीसे जुनारको ख्याति बहुत न्यून हो गई है। कुछ भी हो अभी भी जुनारको प्रतिभा कम नहीं है—नाना घाटोंसे जो अनाज और वाणिज्य द्रव्यादि कोङ्कणमें भेजा जाता है वह पहले जुनारमें ही जमा होता है। पूर्व समयमें यहांका कागज बहुत प्रसिद्ध था, किन्तु आजकल युरोपीय कागजको प्रतिद्वन्द्विता से जुनारका कागज दिनों दिन विलुप्त होता जा रहा है। अब यहाँ बहुत थोड़ा कागज तैयार होता है।

महाराष्ट्र-इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है कि १४३६ ई०में मलिक-उल्-तिजारने जुनारदुर्ग बनाया था। १६५७ ई०में शिवाजीने यह दुर्ग लूटा था। १५८८ ई०में शिवाजीके पितामहने शिवनेर दुर्ग अधिकार किया और उसी दुर्गमें १६२७ ई०में शिवाजीका जन्म हुआ। महाराष्ट्रीय युद्धकालमें यह दुर्ग कई एक शत्रुओंके हाथ लगा था। यहां बहुतसे झरने हैं। औरङ्गजेबके शासनके समय यहां मुगल सैन्योंकी छावनी थी और समय समय राजप्रतिनिधि आ कर रहते थे।

पहले इस शहरका नाम जुनानगर था; इसका अपभ्रंश हो कर जुनार नामकी उत्पत्ति हुई है। जुनारके चारों ओर बहुतसी गुहाएं हैं जो बौद्धोंके समय बनी थीं। इनमेंसे गणेशगुहा सबसे प्रसिद्ध है। जिस पहाड़ पर यह गुहा निर्मित है उसका नाम गणेश पहाड़ और आस पासकी समतल भूमिका नाम गणेशमल है। जुनारमें गणेशदेव ही अधिक देखे जाते हैं। गणेशलेना और तुलसीलेना गुहाकी निर्माण-प्रणाली अन्यान्य गुहाकी निर्माण-प्रणालीसे पृथक् है। बारा-कोठरोमें १२ गुहाएं हैं। जुनारके पूर्व मानमोरी पहाड़ पर भी बहुतसी गुहा देखी जाती है। कहा जाता है कि भीमशङ्करगुहा भीमसे बनाई गई है।

मानमोरी पहाड़के ऊपर फकीरकी मस्जिदके समीप जो जलाशय निर्माण किया गया था, वह कभी नहीं सूखता है। जुनारके पहाड़ पर भी बहुतसी गुहाएं हैं। इस गुहामें बाज, चील, कबूतर, शहदकी मक्खी आदि रहती हैं। इस पहाड़के दक्षिणकी ओर ८ द्वार हैं जो परस्पर एक दूसरेसे मिले हुये हैं। पहाड़के ऊपर जितने हर्म्य हैं उनमें पीरजादाके सम्मानार्थ निर्मित ईदगाह और एक कब्र ये दो ही प्रधान हैं। इसके कुछ नीचे जलाशयके समीप जो मस्जिद है उसकी निर्माण-प्रणाली विस्मयजनक है। मसजिद चाँदबीबीके स्मरणार्थ बनाई गई थी। जुनार शहरमें मुसलमानोंके पूर्वकालीन जाँकजमकके कई चिह्न विद्यमान हैं। आठ भिन्न भिन्न स्थानोंसे इस नगरका जल संग्रहीत होता था। कहा जाता है कि इन आठ स्थानोंसे किसी भी स्थानसे जुनारके दुर्गको खाई जलसे परिपूर्ण की जा सकती थी और किसी दूसरे स्थानसे मट्टीके नीचेसे दुर्गमें जल प्रविष्ट कराया जाता था। जुनार शहरके हर्म्योंमें जुम्मामस्जिद और बावनचौरी विशेष उल्लेखयोग्य हैं। बावनचौरीके सामने एक अखिलिसखाँका गौरवार्थ उत्कीर्ण शिलालेख पाया जाता है।

जुनार पहले अच्छे नगरोंमें गिना जाता था। अभी यद्यपि दो एक प्राचीन धर्मशाला और सुन्दर उद्यान देखे जाते हैं सही किन्तु इस शहरको अवस्था शोचनीय और दरिद्र भावापन्न है। १६५७ ई०के गदरके बाद जुनार फिर अपने पूर्व सौन्दर्यमें भूषित नहीं हो सका।

यहाँके मुसलमान अधिवासियोंमें सैयद, पीरजादा और बेग ये ही तीनों वंश प्रधान हैं, मुहर्रमके समय यह अत्यन्त उद्धत हो उठते थे। कागजी नामक मुसलमान सम्प्रदाय इस शहरमें कागज तैयार करता है।

जुनारके मुसलमान अत्यन्त कलहप्रिय और दुर्दान्त हैं। यहां शीया और सुन्नी श्रेणीके मुसलमान वास करते हैं। दक्षिण प्रदेशमें जुनार इसलामधर्मका केन्द्रस्थल कह कर गिना जाता है। यहांके मुसलमान जो मत प्रचलित

करते हैं सभी मुसलमान उस मतको सादरसे ग्रहण करते हैं।

जुनारमें प्राचीन सिंहवंशके राजाओंकी अनेक मुद्रा पाई गई हैं।

यहां १४० पर्वतगुहा हैं जो ६ विभागमें बटी हैं।

शहरसे दो मील पूर्व आफिजाबाग नामक उद्यान है। युरोपीय पण्डितोंका कथन है, कि हबसीसे आफिज नामकी उत्पत्ति हुई है। जुनार थोड़े समयतक अहमदनगर राज्यकी राजधानी था, किन्तु असुविधा होनेके कारण अन्तमें अहमदनगरमें ही राजधानी स्थापित की गई।

जुनिद खाँ—बादशाह अकबरके राजत्वकालमें बङ्गदेश दायुदखाँ नामक एक पठान-वंशीय नरपतिके शासनाधीन था। इनके विद्रोही होने पर बादशाहने इनको दमन करनेके लिए मुनीमखाँके अधीन एकदल सेना भेजी। दायुद खाँ कई एक बार युद्ध करनेके बाद रिनकेसरी नामक स्थानको भाग गये। सम्राट्के सेनापति राजा टोडरमल्लने उनका पीछा किया। कुछ दूर अग्रसर हो कर सुना कि, दायुदखाँ युद्धके लिए तैयार हुए हैं और जुनिदखाँ* बहुतसे अनुचरोंको ले कर दायुदकी सहायताके लिए अग्रसर हो रहे हैं।

मुनीमखाँके पास इस सम्वादके पहुंचते ही उन्होंने टोडरमल्लके सहायतार्थ एकदल सेना भेजी। राजा टोडरमल्लने आबुलकासिमके अधीन एक छोटी सेना जुनिदखाँकी गति रोकनेके लिए भेज दी। जुनिदखाँ बड़े साहसी और वीरपुरुष थे। सामान्य युद्धके बाद ही सम्राट्की सेना तितर बितर हो कर भाग गई। राजा टोडरमल अपने अधीनस्थ सारी सेनाको ले कर जुनिद खाँके विरुद्ध अग्रसर हुए। जुनिदके अधीनस्थ पठानोंने टोडरमल्लकी बहुतसी सेनाको देख भयभीत हो जङ्गलमें प्रवेश किया और दूसरे दिन जुनिदके साथ दायुदखाँके पास पहुंच गये। परन्तु दायुदखाँ कई एक युद्धोंमें पराजित हो जानेसे डर गये और अन्तमें उन्होंने सम्राट्की वश्यता स्वीकार कर ली।

* टेलर-प्रमुख इतिहास-लेखकोंका कहना है कि, जुनिदखाँ दायुदखांके पुत्र थे; और ष्टुयर्ट साहबने अपने बंगालके इतिहासमें जुनिदखांको दायुदखांका भाई लिखा है।

मुनीमखाँकी मृत्युके बाद बादशाहने हुसेनकुलिखाँको बङ्गालका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। इधर दायुदखाँ फिर विद्रोही हो गये।

राजमहलके पास जो युद्ध हुआ, उसमें दायुदखाँ करारानी बन्दी हुए। इस युद्धमें जुनिदखाँने विशेष साहसिकताका परिचय दिया था। किन्तु मुगल-सैन्यके द्वारा निक्षिप्त एक गोलेके आघातसे इन्हें बड़ी भारी चोट लगी और उसीसे उनका १५७६ ई०में प्राणवियोग हुआ।

जुनून (फा० पु०) १ पागलपन।

जुन्हरी (हिं० स्त्री०) शस्यविशेष, ज्वार नामका एक अन्न। इसका वैज्ञानिक नाम Zea Mays है, अंग्रेजोमें इसको मेज़ वा इण्डियन कार्न (Maze, Indian Corn) तथा बङ्गालमें जनार, भुट्टा और जोनार (छोटानागपुर) कहते हैं। हिन्दीमें भी इसके कई नाम हैं, जैसे—मका, मकई, ज्वार, भुट्टा, बड़ी जुआर और कुकरी। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—यवनाल, योनाल, जूर्णाह्वय, देवधान्य, जोन्नाला और बीजपुष्पिका। (हेम०)

जुन्हरीका पेड़ करीब ६।७ हाथ लम्बा होता है। इसकी पत्तियां लम्बी और करीब १½ इञ्च चौड़ी होती हैं। तुषदण्ड ईखकी तरह ग्रन्थियुक्त होता है। वृन्तके मध्यस्थलसे लगा कर अग्रभाग पर्यन्त कुछ ग्रन्थियों पर फल लगा करते हैं। फल प्रायः आध हाथ लम्बे और सफेद होते हैं जिन पर सब्ज रंगका बारीक आवरण रहता है। फलका मूलदेश प्रायः १½ इञ्च मोटा और अग्रभाग पतला रहता है। आवरणको उठानेसे श्वेत वा पीताभ दाने दीख पड़ते हैं, जिन्हें लोग खाते हैं।

पृथिवी पर प्रायः सर्वत्र जुन्हरीकी खेती होती है। डि-कण्डोल नामक एक उद्भिदतत्त्वविद्ने स्थिर किया है कि, जुन्हरी सबसे पहले अमेरिकाके महादेशके निउग्रानेडा नामक देशमें उत्पन्न हुई थी। किस समय वह भारतमें लाई गई, इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। किसी किसी यूरोपीयके मतसे, १६वीं शताब्दीमें पोर्त्तुगीज लाल मिर्च, गोल मिर्च, अननास आदिके साथ जुन्हरी भी लाये थे। परन्तु सुश्रुतमें यवनाल शब्दका उल्लेख रहनेके कारण इस तरहका अनुमान

असङ्गत मालूम पड़ता है। भारतवर्षमें जुन्हरीकी बाहुल्यरूपसे होती आई है। क्या शीतप्रधान और क्या ग्रीष्मप्रधान, सभी देशोंमें जुन्हरीकी खेती हुआ करती है। परन्तु ऋतु और स्थानके भेदसे उसके पेड़की लम्बाई और पत्ते आदिके परिमाणमें कुछ न्यूनाधिक्य हो जाता है। चीन, जापान आदि देशोंमें भी ईसाकी १६वीं शताब्दीके अन्तमें और यूरोपमें उससे कुछ पहले जुन्हरीकी खेती शुरू हुई थी। जुन्हरी प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—एक तो वह जो कच्ची खाई जाती है और दूसरी वह जिसे पका कर खाते हैं। यों तो भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ही ज्वार पैदा होती है, पर युक्तप्रान्त और पञ्जाबकी तरफ ही यह अधिक होती है। वहांके लोगोंका यही प्रधान खाद्य है।

जो जुन्हरी कच्ची खाई जाती है, उसको खानेसे पहले आग पर रख कर जरा झुलसा लेते हैं। जुन्हरीसे सत्तू, आटा, सूजी आदि बहुतसी चीजें बनती हैं। इससे दक्षिण अमेरिकामें चिका नामक और पश्चिम अफ्रीकामें पिटो नामक एक प्रकारका मद्य बनता है। जुन्हरीके कच्चे पेड़ घोड़े आदिके खानेके काममें आते हैं। पके पेड़ोंके सूख जाने पर उनसे कच्चे मकानोंकी छत छायी जाती है।

अमेरिकाके युक्त राज्यमें जुन्हरीका तेल बनता है और उस तेलसे एक तरहका साबुन भी बनाया जाता है।

चिकित्सा कार्यमें भी जुन्हरीका व्यवहार हुआ करता है। मुसलमान हकीमोंके मतसे यह प्रदाहनिवारक, सङ्कोचक और पुष्टिकर है। यूरोपीय चिकित्सकोंके मतानुसार जुन्हरीसे बना हुआ पोलेण्टा (Polenta) अर्थात् जुन्हरीकी सूजी और मैज़िना (Maizena) अर्थात् जुन्हरीका आटा बालकों और कमजोरोंके लिए बलकारक खाद्यरूपसे व्यवहृत हो सकता है। स्फोटक, मूत्राशयके प्रदाह आदिमें इससे बहुत फायदा पहुंचता है।

पटाश सल्ट नामक एक तरहका नमक भी जुन्हरीसे बनता है। जर्मनी आदि देशोंमें जुन्हरीके फलके बारीक आवरणसे एक प्रकारका सुन्दर कागज बनता है।

जुन्हाई (हिं० स्त्री०) १ चन्द्रिका, चांदनी। २ चन्द्रमा।

जुब्बल—पञ्जाब प्रान्तके शिमला जिलेका एक पहाड़ी राज्य। यह अक्षा० ३०° ४६´ तथा ३१° ८´ उ० और देशा० ७७° २७´ एवं ७७° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २११७२ है। पहले जुब्बल सिरमूरको कर देता था, परन्तु गोरखा युद्धके बाद स्वाधीन हो गया। राजा राज्यका प्रबन्ध ठीक तौर पर न चला सके, इसलिए १८३२ ई०में ब्रटिश गवर्नमेण्टने उन्हें सिंहासनसे उतार दिया। राजाके अनुशोचना करने पर १८४० ई०में उन्हें राज्य लौटा दिया गया। उनके पौत्र पदमचंदने बड़ी योग्यताके साथ १८७७ ई०से १८९८ ई० तक राज्यका परिचालन किया था। १८९८ ई०में इनकी मृत्युके बाद ज्ञानचंद राजगद्दी पर बैठे। राजा राठौर राजपूत हैं। इसमें चौरासी गांव लगते हैं। आय प्रायः १५२०००) रु० है।

जुबली (अं० स्त्री० Jubilee) धार्मिक उत्सव, बड़ा जलसा।

जुबान (हिं० स्त्री०) जबान देखो।

जुबानी (हिं० वि०) जबानी देखो।

जुबो—सिन्धु प्रान्तके खैरपुर राज्यका नगर। यह अक्षा० २६° २२´ उ०और देशा० ६८° ३४´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६८२४ है। लोग प्रधानतः भेड़ बकरियोंका व्यवसाय करते हैं और मोटे कालीन वा गलीचा बुनते हैं। यहां भूतपूर्व मोरके बनाए हुए एक दुर्गका ध्वंसावशेष विद्यमान है।

जुमखा—बम्बई प्रदेशमें गुजरातके अन्तर्गत एक छोटा करद राज्य। इसका क्षेत्रफल एक वर्गमील है। यहांकी आय लगभग ११०० रु० है। बरोदाके गायकवाड़को कर देना पड़ता है।

जुमना (हिं० पु०) खेतमें खाद देनेका एक तरीका। इसमें कटी हुई झाड़ियों और पेड़ पौधोंको खेतमें फैला कर जलाया जाता है और बची हुई राख मट्टीमें मिला दी जाती है।

जुमरनन्दी—राढ़वासी एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने संक्षिप्तसारका संस्कार तथा धातुपारायण नामका एक व्याकरण-ग्रन्थ रचा है।

जुमला (फा० वि०) १ सब, कुल। (पु०) २ पूरा वाक्य।

जुमा (फा० पु०) शुक्रवार ।

जुमामसजिद (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंकी वह मसजिद जिसमें शुक्रवारके दिन दोपहरको नमाज पढ़ते हैं। २ दिल्ली शहरमें स्थित मुसलमानोंका एक प्रसिद्ध उपासनागृह। भारतवर्षमें मुसलमानोंकी जितनी मसजिदें हैं, उन सबसे यह देखनेमें सुन्दर और बड़ी है। बादशाह शाहजहान्‌ने यह मसजिद दश लाख रुपये खर्च करके ६ वर्षमें बनवाई थी। इस मसजिदके सामने और तीनों तरफ ऊंची प्रशस्त और सुदृश्य पत्थरसे बनी हुई तीन सोपानश्रेणियां हैं। इन तीनों सोपानश्रेणियों द्वारा मसजिदके सुवृहत् प्राङ्गणमें पहुंच सकते हैं। प्राङ्गणके ठीक बीचमें एक पानीका हौज़ भी है। इसके पानीसे सब हाथ पैर धो कर मसजिदमें जाते हैं। प्राङ्गणसे पश्चिमकी तरफ उपासनागृह (मसजिद) है और बाकी की तीनों दिशाएं सुदृश्य प्रकोष्ठमालासे अलंकृत हैं। उपासनागृह तीन प्रकाण्ड गुम्बजों और बहुतसे सुन्दर प्राकारोंसे सुशोभित है। इनमेंसे दो प्राकार तो बहुत बड़े और मनोहर हैं। इस स्थानसे उपासनाके लिए सबको बुलाया जाता है। मसजिदका भीतरी भाग बहुत बड़ा है, पर्वके दिन वा किसी उत्सवके दिन यहां असंख्य मुसलमान इकट्ठे होते हैं।

३ विजयपुर नगरकी एक मसजिद। दाक्षिणात्यभरमें यह मसजिद सबसे बड़ी है। कहा जाता है कि, १५३७ ई०में पहले अली आदिलशाहने इसे बनवाना शुरू किया था। परन्तु इनके परवर्त्ती राजा भी इसकी शिखर और अन्यान्य अंश नहीं बनवा सके। यह मसजिद चारों ओर ३० फुट ऊंची प्राचीर द्वारा वेष्टित और नगरसे पूर्वकी तरफ अवस्थित है। इसका प्रधान तोरणद्वार पूर्व दिशामें है, किन्तु उत्तरका द्वार ही अधिक व्यवहृत होता है। १६८६ ई०में सम्राट् औरङ्गजेबने विजयनगरको जीत कर इसका कुछ अंश बनवाया था। इस मसजिदमें एक शिलालेख भी है, जिसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, १६३६ ई०में सुलतान महम्मद आदिलशाहने इसके कुछ अंशमें नकाशीका काम कराया था। इसके भीतर चार हजार आदमी बैठ सकते हैं।

४ पूना नगरकी एक प्रसिद्ध मसजिद। यह आदिलशाही पंठमें (१८३८ ई०में) प्रायः १५००० रु०का चन्दा इकट्ठा कर बनाई गई है। पीछे इसके अनेक अंश बढ़ाये भी गये हैं। इस मसजिदका उपासनागृह ६० फुट लंबा और तीस फुट चौड़ा है। पूनाके मुसलमानोंकी धार्मिक वा सामाजिक सभायें इसी मसजिदमें होती हैं।

जुमिया मग—बङ्गालके अन्तर्गत चट्टग्रामके पर्वतों पर रहनेवाली मग जाति। इनको थिंग्या वा थंग्या कहते हैं। इनका और भी एक नाम खियोङ्ग्था (अर्थात् नदीतनय) है। यह जाति पन्द्रह सम्प्रदायोंमें विभक्त है, उन विभागोंके अधिकांश नाम इनके वासस्थानके पासकी नदियोंके नामानुसार हुए हैं।

ये सभी छोटे छोटे गांवोंमें रोजा अर्थात् ग्राममण्डलके अधीन रहते हैं। वह रोजा राजस्व आदि वसूल करता है। कर्णफूली नदीके दक्षिणस्थ जुमिया सङ्गोरवर्ती बन्दारवन निवासी बोह-मंग नामक एक सर्दारके अधीन हैं। उस नदीके उत्तरकी तरफ रहनेवाले मंगराजाको अपना अधिपति मानते हैं। नियमित राजस्वके अलावा बड़ी उम्रके जुमिया सर्दारके आदेशानुसार वर्षमें तीन दिन बिना वेतन लिए उनका काम कर देते हैं। इसके सिवा सर्दारको खेतमें उत्पन्न सबसे पहले फल वा अनाज आदिको भेंट दी जाती है। रोजागण सिर्फ कर वसूल करते हों, ऐसा नहीं, जुमिया समाजमें उनकी विशेष प्रतिष्ठा भी है।

इनकी शारीरिक आकृति रखेंग्‌ (रमाङ्ग) मगोंके सदृश है। दोनोंमें ही मोङ्गलीय आकृतिका आभास पाया जाता है। इनकी गठन खर्व, मुखमण्डल प्रशस्त और चपटा, गण्डास्थि ऊंची, नासिका चपटी और आंखें कुछ टेढ़ी हैं। इनकी दाढ़ी या मूंछें कुछ भी नहीं हैं।

इनकी पोशाक आड़म्बररहित है। पुरुष अपने अपने घरकी बुनी हुई धोती और एक कुर्ता पहनते हैं। धनी लोग रेशमी या बढ़िया सूती कपड़े पहनते हैं। ये सिर पर पगड़ी बांधते और जूता कम पहनते हैं। स्त्रियां छाती पर एक बित्तस्त चौड़ा कपड़ा बांधती और ऊपरसे एक अंगरखा पहनती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही सोने-चांदीकी बालियां, खड़ुएं और चूड़ियां पहनते हैं। इसके सिवा स्त्रियां धतूरेके फूलकी आकृतिका कर्णफूल

पहनती हैं, जिसमें फूल लगाये रहती हैं। मूंगेका हार इनकी विशेष आदरणीय वस्तु है।

कोई कोई कहते हैं, जुमियाओंमें दाम्पत्य-प्रेम बहुत बढ़ा-चढ़ा है। विवाहके बादसे स्वामी-स्त्रीका कभी विच्छेद नहीं होता, फिर भी प्रेम और आदर ज्योंका त्यों रहता है।

ये मरे हुएका अग्निसत्कार करते हैं। किसीके मरने पर आत्मीय व्यक्ति सब एकत्र हो कर कोई अन्त्येष्टिक्रियाका मन्त्र पढ़ते हैं और काष्ठादि ढोते वा अरथी बनाते हैं। इन सब कार्योंमें प्रायः २४ घण्टे बीत जाते हैं। पीछे आत्मीय लोग शवको श्मशानमें ले जाते हैं। आगे आगे याजक और अन्यान्य व्यक्ति जाते हैं तथा पीछे आत्मीय लोग शव और नूतन वस्त्रादि ले चलते हैं। मृत व्यक्ति धनाढ्य हो तो उसकी अरथी गाड़ी पर जाती है। पुरुषोंकी चिता तिहरी और स्त्रियोंको चौहरी चिता लगाई जाती है। ये शवदाह होनेके बाद उसकी भस्मको इकट्ठी करके गाड़ देते हैं और उस जगह बांस गाड़ कर उसमें पताका लगा देते हैं।

इनकी बोलनेकी भाषा आराकानी है और लिखनेके अक्षर बरमावासियोंके समान हैं।

ये हिन्दुओंकी दृष्टिमें बड़े नीच गिने जाते हैं। इनके खान पानका कोई ठीक नहीं—गज, सूअर, मुरगी, हर एक तरहकी मछली, चूहे, गिरगिट, सांप, अनेक प्रकारके कीड़े, इनमेंसे कोई छूटा नहीं—सब खाते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही शराब पीते हैं। इन्हें भी जात्यभिमान है, ये किसी मगधीवर वा माली धीवरके हुक्केको छूते तक नहीं। ये लोग उच्च श्रेणीके हिन्दुओंको पवित्र मानते हैं और उनके घरका पानी पीते हैं।

जुमिया लोग प्रधानतः खेती-बारी कर जीविका निर्वाह करते हैं। इनका कृषिकार्य बहुत ही विलक्षण और पार्वत्यप्रदेशके योग्य है। जूम देखो। खेती-बारीके सिवा इन्हें जङ्गली केले और अन्यान्य बहुत प्रकारके फल-फूल मिल जाते हैं। ये लोग नदीके किनारे तमाकूकी खेती भी करते हैं। इसके सिवा प्रत्येक जुमिया जङ्गलोंसे लकड़ी ला कर भी कुछ पैदावारी कर लेते हैं। इनकी अवस्था साधारणतः अच्छी है। सहजमें किसीको अन्नकष्ट नहीं होता, क्योंकि इनमें विलासिता नहीं है। बङ्गाली व्यापारीगण इनके पास जा कर पण्य-विनिमय करते हैं। खेयाँथा शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

जुमिल (फा० पु०) एक प्रकारका घोड़ा।

जुम्मा (फा० पु०) कपड़े बुननेकी लपेटनकी बाई ओरका खूंटा। इसमें लपेटन लगी रहती है।

जुमेरात (अ० स्त्री०) वृहस्पति, गुरुवार, बीफै।

जुयाङ्ग—(पतुआ) सिंहभूमके दक्षिणस्थ उड़िष्याके केंउभर और धेंकानलवासी एक असभ्य वन्यजाति। इनकी भाषासे अनुमान होता है कि, यह जाति कोलजातिकी ही कोई शाखा होगी। इनकी भाषा खरियाओंकी भाषासे बहुत कुछ मिलती जुलती है, पर इसमें बहुतसे उड़िया और अन्यान्य शब्दोंका प्रवेश हो गया।

इनका शरीरायतन ओरांओंकी तरह छोटा है। पुरुष लगभग ५ फुट और स्त्रियां ४ फुट ८ इञ्चसे ज्यादा ऊँची नहीं हैं। इनका मुंह चपटा, गण्डास्थि ऊँची, ललाट कम चौड़ा, नीचा और नासिकासे ऊँचा, नासिकाके छिद्र बड़े, मुखविवर बड़ा, ओष्ठाधर स्थूल, चिबुक (ठोढ़ी) और नीचेकी दन्तपंक्ति छोटी है। इनके बाल बदसूरत और साधारणतः कपिशवर्ण (मटमैले) हैं, शरीरका रंग उड़िष्याके कृषकों जैसा है। सिंहभूमवासी हो-रमणियां जुयाङ्ग-रमणियोंकी अपेक्षा बहुत बड़ी हैं। हो जातिके पुरुष भी जुयाङ्ग-पुरुषकी अपेक्षा बड़े हैं। जुयाङ्गोंके गट्ठ होनेका कारण यह हो सकता है कि, वे बहुत पीढ़ियोंसे बोझ ढोनेका कार्य करते आये हैं। हो लोग भार ढोना नहीं चाहते।

जुयाङ्ग-रमणियां मुण्डा और खरियोंकी तरह ललाट और नासिका पर तीन तीन गोदना गुदाती हैं। ये खरियाओंकी भांति वल्मीक (दीमकोंके बेमौट)-को देवता मानते हैं। इससे अनुमान होता है कि जुयाङ्ग लोग खरिया, मुण्डा आदिके समजातीय होंगे। परन्तु इनकी उत्पत्तिके विषयमें अभी तक कुछ मालूम नहीं हुआ।

जुयाङ्गोंका कहना है कि, केंउभर ही उनका आदिम वासस्थान था। एक दिन स्वर्गके देवोंने गुप्तगङ्गा नामक पर्वत पर पत्रपरिवृता मानवकुमारियोंके साथ विहार

किया। उन कुमारियोंके गर्भ और देवोंके औरससे जुयाङ्गोंकी उत्पत्ति हुई। गोनासिका ग्राम इनका प्रधान वासस्थान है, वहां बहुत जुयाङ्ग रहते हैं।

ये छोटी छोटी झोंपड़ियोंमें रहते हैं। यह झोंपड़ी साधारणतः ८ फुट लम्बी और ६ फुट चौड़ी होती है, इसमें भी रसोई घर और शयनगृह इस तरह दो विभाग होते हैं। गृहस्वामी स्त्री और कन्याओंके साथ शयनगृहमें सोता है और ग्रामके समस्त बालक इकट्ठे हो कर एक दूसरे ही घरमें सोते हैं जो ग्रामके एक तरफ होता है। इसी घरका एक अंश अभ्यागतादिके लिए निर्दिष्ट है।

बहुतोंका कहना है कि, जुयाङ्गोंके समान जङ्गली और असभ्य जाति भारतवर्षमें दूसरी नहीं है। थोड़े दिन पहले ये लौहादि किसी भी धातुका व्यवहार करना नहीं जानते थे और खेतीबारीमें विश्वास न करके शिकारसे प्राप्त मांस और अनायासलब्ध वन्य फलमूल खा कर जीवन धारण करते थे। ये पत्थरके हथियार काममें लाते थे। अब भी उनकी वासभूमिमें उन अस्त्रोंके नमूने मिलते हैं। कुछ भी हो, फिलहाल अङ्गरेजी राज्यमें इन लोगोंने लोहे आदिका व्यवहार करना सीख लिया है और खेतीबारीमें भी मन लगाया है।

इनमें कोई भी लोहा बनाना वा किसी तरहका मिट्टीका बर्त्तन बनाना नहीं जानते और न कपड़ा बुनना ही जानते हैं।

ये हमेशा एक ग्राममें नहीं रहते, प्रायः खेतीबारीके समय अपनी अपनी जमीनके पास जा कर रहते हैं। इनकी कृषि-पद्धति खरियाओंके समान है। वर्षका अधिक समय वन्य फलमूलादि पर निर्भर है। कृषिलब्ध शस्य (अनाज) बहुत थोड़े दिन चलता है। कर्णल डलटन कहते हैं कि, वास्तवमें इनकी अवस्था विशेष बुरी नहीं है। हदसे ज्यादा शराब पीनेके कारण ही इनकी ऐसी दुर्गति होती है। ये जमीनका महसूल नहीं देते, उसके बदले राजाके मकानातकी मरम्मत कर देते हैं। बोझ ढोते हैं और राजाके शिकारके लिये निकलने पर उनके साथ जङ्गलमें जा कर शिकारोंको निकालते हैं। धेंकानल राजाके आदेशानुसार ये गोहत्या नहीं करते। इसके सिवा और सब जानवरोंका मांस खाते हैं। और तो क्या चूहे, बन्दर, शेर, भालू, भेक और सर्प आदि भी इनके खाद्य हैं। जङ्गलमें तरह तरहकी सब्जियां पैदा होती हैं, उनमेंसे ये बड़ी आसानीके साथ स्वास्थ्यकर और पुष्टिकर खाद्य निकाल लेते हैं; विषाक्त अनिष्टकर गुल्म आदि भ्रमसे भी नहीं खाते। इनमें शिकारकी निपुणता आश्चर्यजनक है; किसी शिकारके भाग जाने पर, कई घण्टे पीछे भी सूखे पत्तों पर पड़े हुए चिह्नको देख कर वहां जा सकते हैं। इनके तीरका सन्धान अव्यर्थ है। ८० गज दूरके एक छोटे लक्ष्यको भी ये भेद सकते हैं। दौड़ते हुए खरगोस और उड़ते हुए पक्षीको मारना इनके लिए मामूली बात है। इनके बनाए हुए बांसके धनुष इतने तेज होते हैं कि, प्रक्षिप्त तीर जङ्गली हिरण वा शूकरको भेद कर पार निकल जाता है। शिकारमें इतने पटु होने पर भी ये बड़े श्वापदोंके पास नहीं जाते तथा व्याघ्रसे बहुत डरते हैं। इनका खाद्य देखनेमें अत्यन्त निकृष्ट मालूम होता है, पर ये बड़े हृष्टपुष्ट होते हैं। हां, इनकी स्त्रियां क्षीण और दुर्बल अवश्य हैं। ये तीव्र शराब पीना खूब पसंद करते हैं, ये आमदनीका अधिकांश शराबखोरीमें खो देते हैं। ये कोलोंकी तरह चावल या महुआसे शराब बनाना नहीं जानते, इसलिए इन्हें शराब खरीदनी पड़ती है।

जुयाङ्गजातिके पुरुष पार्श्ववर्त्ती अन्यान्य वन्यजातियोंकी भांति लंगोटी पहनते हैं। १८७१ ई०के पहले तक इनकी स्त्रियां कमरके सामने और पीछे सिर्फ पत्तोंके गुच्छे लटका कर लज्जा निवारण करती थीं। वल्कल-रज्जुसे गूंथी हुई मिट्टीकी गुटियोंकी मालाको २०।३० फेर लपेट कर उन पत्तोंको बांध लिया करती थीं। इसीके अनुसार इनका नाम पतुआ (अर्थात् पत्ते पहननेवाली जाति) पड़ गया है। यह पत्र-वसन हलका होनेके कारण नाचते समय सहजहीमें वह स्थानभ्रष्ट हो जाता है, जिससे दर्शकोंको नग्न जुयाङ्ग युवती मूर्त्तिके दर्शन होते थे। यह विजातियोंकी दृष्टिमें कुरुचिपूर्ण होने पर भी जुयाङ्ग लोग इसे बुरा नहीं समझते। नाचके समय पुरुष तो नगाड़ा आदि बजाते हैं और स्त्रियां अर्धगोलवद्ध हो कर सामने झुकती

हुई हाथ पकड़ कर तालके अनुसार नाचती रहती हैं। नाचते समय २०।२५ स्त्रियोंका एक साथ सफाईसे पत्रवसनको उठाना-गिराना बड़ा ही हास्योद्दीपक है। ये गलेमें कांचकी माला (कई फेर लगा कर) पहनती हैं, सामने झुक कर नाचते समय वह माला जमीनसे लग जाती है, उस समय ये बाएं हाथसे मालाका अग्रभाग पकड़े रहती हैं। पत्र-वसनके विषयमें ये कहती हैं कि किसी समयमें इनके बहुत ही बढ़िया कपड़े थे, उनके मैले हो जानेके भयसे ये उन्हें उतार कर इसी पोशाकसे गोशालाका काम करती थीं। एक दिन ठाकुरानी, किसी किसीके मतसे सीता ठाकुरानीने आ कर उनके इस वेशमें देखा, इस पर उन्होंने शाप दिया कि—"तुम लोग सर्वदा ऐसे ही पत्र-वसन पहनोगी, इसको छोड़ कर वस्त्र पहननेसे तुम्हारे प्राण जायंगे।"

कोई कोई यह कहती हैं कि, एक दिन वैतरिणी नदीको अधिष्ठात्री देवीने गोनासिका पर्वतसे सहसा आविर्भूत हो कर ताण्डवमग्न नग्न जुयाङ्गोंका एक झुण्ड देखा, उसी समय उन्होंने पत्तों द्वारा उनको लज्जाकी रक्षा करनेके लिए आज्ञा दी और शाप दिया कि—"तुम लोग चिरकाल पर्यन्त इसी परिच्छदको पहनना, अन्यथा करनेसे ही मृत्यु होगी।"

इसीशासे जुयाङ्गस्त्रियां इस आज्ञाका पालन करती आई थीं। पीछे १८७१ ई०में केंउभर राज्यके सुपरिण्टे-ण्डेण्ट एफ० जे० जनष्टनने स्वयं उन्हें वस्त्र दे कर पहननेका आदेश दिया और उस शापको तोड़ दिया। अब वे कपड़ा पहनना सीख गई हैं और पीतलके कड़े, चूड़ियां और कर्णफूल पहनने लगी हैं। ये गहने उनके बहुत प्रिय हैं।

जुयाङ्गोंमें जातिविभाग तो नहीं है, पर भिन्न भिन्न श्रेणी-विभाग अवश्य हैं। सबमें परस्पर विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं, परन्तु कोई अपनी श्रेणीमें विवाह नहीं कर सकता। अति निकट सम्बन्धी होनेसे विवाह निषिद्ध है। पशु, पक्षी और वृक्षादिके नामानुसार इनकी श्रेणियोंके नाम हुए हैं।

ये कन्याका विवाह पूरी उम्र होने पर करते हैं। विवाहसे पहले ही वर कन्याका सहवास हो जाय, तो उसमें विशेष कुछ आपत्ति नहीं। इनकी विवाह प्रथा बहुत ही सहज है। किसी युवकको किसी कामिनीके साथ विवाह करनेकी इच्छा होने पर, वह अपने यार दोस्तोंको कन्याके पिताके पास भेजता है। उनका प्रस्ताव ग्राह्य होने पर विवाहका दिन स्थिर होता है और वर पण-स्वरूप कन्याके पिताको एक गाड़ी धान भेज देता है। विवाहके दिन कन्या वरके घर लायी जाती है, वहां उसको नये पीतलके गहने और वस्त्रादि पहनाये जाते हैं, फिर यथारीतिसे विवाह होता है। विवाहमें पुरोहितकी आवश्यकता नहीं होती। हां कभी कभी ग्रामके ढेड़ो आ कर नवदम्पतीके मङ्गलार्थ उनके मस्तक पर तण्डुल और हरिद्रा लगा कर आशीर्वाद करते हैं। विवाहके बाद आत्मीय-कुटुम्बियोंका भोज होता है। दूसरे दिन प्रातःकालके समय प्रत्येकको चावल और धान दे कर बिदा करते हैं। बहुविवाह निषिद्ध तो नहीं है, पर ये पहली स्त्रीके अमती या वन्ध्या बिना हुए दूसरा विवाह नहीं करते। पतिके मरने पर विधवा देवरके साथ धरेजा कर सकती है, पर इसमें बाध्य बाध-कता नहीं है। दूसरे किसीके साथ धरेजा करना हो, तो एक वर्ष तक ठहरनेकी आवश्यकता है। ऐसे धरेजे-में वरको सिर्फ वधूके लिए पीतलकी चूड़ियां और नये कपड़े देने पड़ते हैं तथा बन्धु-बान्धवोंको खिलाना पड़ता है। स्त्री व्यभिचारिणी हो, तो पंचायत करके ये उसे त्याग सकते हैं। बहुतसे लोग बिना किसी दोष-के ही स्त्रीको छोड़ देते हैं, ऐसी हालतमें कन्याके पिताको एक गाय और कुछ रुपये देने पड़ते हैं। परि-त्यक्त स्त्री पिताके घर रहती है और वह विधवाओंकी तरह पुनः नवीन पतिको ग्रहण कर सकती है। फिल-हाल बहुतसे जुयाङ्ग हिन्दुओंका अनुकरण कर बाल्य-विवाह प्रचलित कर रहे हैं।

इनकी भाषामें ईश्वर, स्वर्ग और नरकके नाम नहीं हैं। ये बहुतसे कल्पित देवताओंकी उपासना करते हैं। यथा—बराम अर्थात् वनदेवता, खानपति ग्रामदेव, मासिमूली, कालापाट, बाशुली और वसुमती अर्थात् पृथिवी। इन देवताओंको ये छाग, महिष, मुरगी, दूध-

इत्यादिका नैवेद्य प्रदान करते हैं।

ये मरे हुएका अग्नि सत्कार करते हैं। शवको दक्षिण सिरहानेसे चिता पर सुलाते हैं। चिताको भस्म नदीमें डाल आते हैं। कार्तिक मासमें पितृपुरुषोंको पिण्ड देते हैं।

इनके नाचमें कुछ जातीय विशेषता पायी जाती है। यह नाच कुछ कुछ संथाल और कोल जातिसे मिलता जुलता है। इनकी औरतें कबूतर, कुत्ते, बिल्ली, शकुनि, भालू आदि जानवरोंका अनुकरण कर अनेक प्रकारकी अङ्ग-भङ्गिसहित नाचती हैं। इस तरहका नाच अत्यन्त कौतुकजनक होता है, किन्तु कई एक दृश्य अश्लील भी होते हैं।

भुँइया लोग जुयाङ्गोंसे घृणा करते हैं। ये भुँइ-याओंके घरको कच्ची वा पक्की रसोई खाते हैं, पर भुँइया इनका छुआ पानी तक नहीं पीते। फिलहाल ये हिन्दू देव-देवियोंकी पूजा करने लगे हैं, सम्भव है कुछ ही दिनोंमें ये जनसमाजमें अपेक्षाकृत ऊंचा स्थान पाने लगेंगे।

जुरअत (फा० स्त्री०) साहस, हिम्मत, जवरा।

जुरमाना (फा० पु०) अर्थदण्ड, धनदण्ड, वह दण्ड जिसके अनुसार अपराधीको कुछ धन देना पड़े।

जुराफा (अरबी)—रोमन्थक (पागुर वा जुगाली करनेवाले) पशुओंमें साधारणतः २ श्रेणियाँ पाई जाती हैं। एक श्रेणी शृङ्गयुक्त और दूसरी श्रेणी शृङ्गहीन। जुराफा प्रथम श्रेणीका है। इस पशुके सींग केशाच्छादित चर्मसे आवृत और उनके अग्रभाग केशगुच्छमण्डित है। अफरीकामें यह बहुतायतसे देखनेमें आता है। इसको अरबी भाषामें जुराफा, जुर्राफ, जिराफ या जिरा-फत कहते हैं। इसके अवयव ऊंटके समान और रंग व्याघ्रके सदृश है। इसलिए कोई कोई यूरोपीय विद्वान् इसको कमेलोपार्ड (Camelopard) अर्थात् उष्ट्र-व्याघ्र कहा करते हैं।

भूमण्डल पर जितने प्रकारके पशु हैं, उनमें जुराफा ही सबसे ऊंचा है। इसका ऊपरका ओष्ठ नीचा नहीं होता, किन्तु केशोंसे आवृत और नासारन्ध्रके सामने कुछ उभरा हुआ रहता है। इसकी जीभ बड़ी विलक्षण होती है, यह जब चाहे उसे फैला और सकुचा सकता है। इसकी गर्दन ऊंटकी-सी लम्बी, शरीर छोटा पीछे-की टाँगें छोटी, पूंछ लम्बी तथा उसके छोर पर गायकी पूंछकी तरह बालोंका गुच्छा रहता है।

इस पशुके अवयव-संस्थान अन्यान्य पशुओंके समान नहीं होते। इसकी गर्दन बहुत ही लम्बी है। गर्दनके ऊपर शरीरसे बहुत ऊंचाई पर इसका मस्तक है। इसके ग्रीवादेशका सन्धिस्थल गलदेशसे बहुत ऊंचा है। अन्य अङ्गप्रत्यङ्ग पतले और लम्बे हैं। इसके मस्तकको खोपड़ी बहुत पतली है। इसके सींगोंकी बनावट बड़ी आश्चर्यजनक है। कुछ भिन्न भिन्न अस्थियोंसे गठित है। एक करोटी (खोपड़ीकी हड्डी) द्वारा ये हड्डियां कपालके बगलकी हड्डियोंसे संयुक्त हैं। क्या नर और क्या मादा दोनों प्रकारके जुराफाओंमें ललाटकी हड्डी-के साथ उपर्युक्त प्रकारका एक अतिरिक्त अस्थि सम्बन्ध है। इस हड्डीकी जड़में एक नया सींगकी तरह दीखता है। इसके मस्तक पर बहुतसी परते हैं, इसीलिए इनके मस्तकका पिछला हिस्सा कुछ ऊंचा होता है। यह मस्तककी पीछेकी ओर घुमा सकता है और ग्रीवाके साथ एक रेखामें भी रख सकता है। इसके मेरुदण्डकी त्रिकोण अस्थिके पास एक हड्डी है, जो पीछेके मेरुदण्ड के साथ मिल कर ग्रीवादेशके मेरुदण्डसे जा मिली है। यह मस्तकके पिछले हिस्से तक विस्तृत है।

जीभके द्वारा यह दो काम करता है एक तो उससे आस्वाद लेता है और दूसरे हाथी सूंडसे जो काम करता है, उस कामको यह जीभसे करता है। इसकी जीभ काँटे उभरनेसे पहले खूब चिकनी रहती है। यह एक प्रकारके चमड़ेकी तहसे ढकी रहती है। इसलिए धूपमें इसकी जीभ पर किसी तरहके फफोले या छाले नहीं पड़ते। फैलानेसे इसकी जीभ १७ इञ्च तक बढ़ती है। कोई कोई कहते हैं कि, इसकी जीभके पास एक आधार या थैली है, जिसमें इसकी इच्छानुसार रक्त सञ्चित होता रहता है और इसीलिए यह बलप्रयोग करने पर जीभको सङ्कुचित या प्रसारित कर सकता है। किसी किसीका यह कहना है कि, इसकी जिह्वा एक रेखाके द्वारा लम्बाईको ओर दो भागोंमें विभक्त है। बीचमें कुछ

पेशियां हैं, जिसमें बगलकी रक्तप्रवाहक नाड़ीसे रक्त प्रवाहित होने पर जिह्वाका आयतन प्रसारित होता है। रक्ताधारोंके भरे रहने पर जुराफाओंकी जीभ उसकी इच्छानुसार बढ़ सकती है, परन्तु उनके रिक्त हो जाने पर फिर सङ्कुचित हो जाती है। यह जीभसे नासारन्ध्रोंको साफ करता है। इसकी जीभ इतनी महीन हो जाती है कि, वह एक छोटे छिद्रमें आसानीसे घुस सकती है।

उष्ट्र आदि पशुओंकी पाकस्थलीमें जिस प्रकार जलाधार होता है, जुराफाकी पाकस्थलीमें वैसा कोई जलाधार नहीं होता। इसकी नाड़ी बड़ी और मृग आदिकी नाड़ीकी तरह पेचीली होती है। और एक नाड़ी २ फुट २ इञ्च लम्बी है। इसका मूत्राशय गोल नहीं है। इसके नथनोंमें एक प्रकारका चमड़ा है, जिससे यह इच्छानुसार नासारन्ध्रोंको बन्द कर सकता है। यह मरुप्रदेशमें रहता है। वहां आँधीके समय बालू उड़ती रहती है, उस समय इसके नासारन्ध्रोंमें जिससे बालू न घुस पावे, इसीलिए शायद जगदीश्वरने उक्त चर्मावरणकी सृष्टि कर इसको नासारन्ध्र ढकनेकी शक्ति दी है। जुराफाकी आंखें बड़ी और इस तरह उभरी हुई होती हैं कि, जिससे वह अपने चारों तरफ क्या हो रहा है, यह जान सकता है। और क्या; वह माथेको बिना फेरे ही पीछेकी चीजोंको देख सकता है। बहुत सावधानीसे इनके पास जाना चाहिये; क्योंकि अकस्मात् इस पर आक्रमण होने या किसीके अनुसरण करने पर यह बड़ी जोरसे लातकी चोट मार कर अपनी रक्षा करता है। इसके खुर चिरे हुए हैं तथा रोमन्थक पशुओंके पैरोंके बगलमें जो छोटी छोटी दो अंगुलियों जैसी गुठली रहती है, वह नहीं है।

तुर्कीभाषामें इसको जुरनापा, जुरनेपा अथवा सुरनापा कहते हैं।

पहले अफरीकाके सिवा और कहीं भी जुराफा नहीं मिलता था। जुलियस सीजरके शासनकालसे पहले यह पशु इटली प्रदेशमें नहीं मिलता था।

काष्टाइलराज द्वारा प्रेरित दूत जिस समय पारस्यके राजदरबारमें जा रहा था, उस समय बेबिलनमें सुलतानके दूतके साथ उसकी मुलाकात हुई, उसके साथ एक जुराफा था। यूरोपीय दूतने उस जुराफाके विषयमें इस प्रकार वर्णन किया है—इसका शरीर घोड़ाका सा, गर्दन खूब लम्बी और सामनेकी टाँगें पीछेकी टांगोंसे ऊंची हैं। इसके खुर गवादिकी भाँति होती हैं। इसकी ऊँचाई सामनेके पैरोंके खुरसे ले कर गर्दन तक १६ हाथ और गर्दनसे मस्तक तक १६ हाथ है। इसकी गर्दन मृगके समान पतली है। इसके सामने और पीछेके पैरोंकी उच्चतामें इतना अधिक तारतम्य है कि, अकस्मात् देख कर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि, यह बैठा है या खड़ा। इसके नितम्ब क्रमशः नीचे हैं। रंग सोनेका सा और शरीर पर बड़ी बड़ी सफेद धारियां हैं। इसके मुखका नीचेका हिस्सा हिरणके समान; ललाटदेश ऊँचा, खूब बड़ा और गोल तथा कान घोड़ेके समान होते हैं। इसके सींगका अधिकांश केशयुक्त होता है। गर्दन इतनी ऊंची होती है कि, यह बड़ी आसानीसे बड़े बड़े वृक्षोंकी ऊँची शाखाओंकी पत्तियोंको खा सकता है। अन्यान्य पशु जिन जंगलों और मरुप्रदेशोंमें नहीं जाते, जुराफा [illegible] स्थलोंमें छिप कर रहते हैं। आदमी देखते ही [illegible]रसे भागते हैं।

शिकारी लोग इसे छोटी उम्रमें पकड़ सकते हैं; किन्तु बड़े होने पर इसका पकड़ना अत्यन्त दुष्कर है।

जुराफा बहुत ऊंचा होता है। कोई कोई तो इतना ऊंचा होता है कि एक आदमी घोड़े पर सवार हो कर उसके पेटके नीचेसे निकल सकता है। जुराफाके सींग हिरणके सींगोंके समान कठिन अवश्य हैं, पर गठन एकसी नहीं है। बड़े जुराफाके ललाटके बीचमें एक गाँठ होती है, जिसको देख कर ऐसा अनुमान होता है कि, वहांसे सींग निकलेगा।

यह पशु दौड़नेके समय लंगड़ा लंगड़ा कर नहीं चलता; बल्कि इतनी तेजीसे दौड़ता है कि, बहुत तेज घोड़ा भी हर समय इसका अनुसरण नहीं कर सकता। दौड़ते समय यह कभी साधारण गतिसे चलता और कभी कूद कूद कर चौकड़ी भरते हुए भागता है; सामनेके पैरोंको उठाते समय प्रत्येक बार गर्दनको पीछेकी ओर फेरता रहता है। जमीनकी घास खाते समय यह घोड़ेकी तरह एक घुटनेको कुछ टेढ़ा करता है और

छोटे छोटे पेड़ोंको डालियोंसे पत्तियाँ खाते समय सामनेके पैरको प्राय: २३ फुट पीछेको टाँगोंकी ओर ले जाता है। अफ्रीकाके हटेनटट लोग इसके चमड़ेको खूब पसन्द करते हैं और इसीलिए वे ज़हरीले तीरोंसे इसका शिकार करते हैं। वे जुराफाके चमड़ेसे पानी वगैरह तरल पदार्थ रखनेका पात्र बनाते हैं।

प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्ववित् ले भैलेन्ट (Le Vaillant) कहते हैं—जुराफाके वास्तविक सींग नहीं होते, इनके दोनों कानोंके बीच मस्तकके ऊर्द्ध भागमें दो मांसपेशियाँ क्रमश: बढ़ती हुई ८।८ इञ्च लम्बी हो जाती हैं। ये दोनों पेशियाँ परस्पर मिलती नहीं, उनका अग्रभाग कुछ गोल और बालोंसे आवृत होता है। लोग इन्हींको साधारणत: सींग कहते हैं। मादा जुराफा नरकी बराबर ऊँची नहीं होती। उक्त प्राणितत्त्वविद्का कहना है कि नर जुराफा साधारणत: १५।१६ फुट और मादा जुराफा १३।१४ फुट ऊँचे होते हैं। कोई कोई भ्रमणकारी कहते हैं कि, नर और मादा जुराफा देखनेसे ही पहिचाने जा सकते हैं। नरका शरीर धूसरवर्ण और उस पर पिङ्गलवर्णकी धारियाँ होती हैं तथा मादाका शरीर धूसरवर्ण और ऊपर ताम्रवर्णकी धारियाँ रहती हैं। जुराफाके बच्चोंका रंग पहले पहल माताके समान और पीछे अवस्थाके अनुसार पिङ्गलवर्ण होता जाता है। पूर्वोक्त फरासीसी भ्रमणकारीका कहना है कि, जुराफा साधारणत: पेड़की पत्तियाँ खा कर जीवन धारण करते हैं; ये तुलसी जातीय वृक्षोंके पत्ते खूब पसन्दके साथ खाते हैं और जिस जगह उक्त प्रकारके पेड़ ज्यादा उपजते हैं, उसी प्रदेशमें रहते हैं। यह जानवर घास भी खाता है। यह रोमन्थन करते और सोते समय लेट जाता है, इसलिए इसकी छातीकी हड्डियाँ मजबूत तथा घुटनोंका चमड़ा कड़ा है। यह बहुत ही शान्त और भीत होता है। यह बहुत तेजीसे दौड़ता और लातकी चोटसे सिंहको भी परास्त कर सकता है। मि० पेनण्टा (M. Pennanta) कहते हैं—दूरसे देख कर इसको पहिचाना नहीं जा सकता। यह इस तरह खड़ा होता है कि, दूरसे एक पुराना वृक्ष जैसा दीखता है। शिकारी लोग दूरसे इसे पहिचान नहीं पाते, इसीलिए यह बहुत समय मनुष्योंके कवलसे बच जाते हैं।

मि० ओगिलबि (Mr. Ogilby) ने रोमन्थक पशुओंको पाँच भागोंमें विभक्त किया है। जैसे १-कमेलिडि (Camelidoe), २—करभिडि (Cervidoe), ३—मोस्भिडि (Moshidoe), ४—कप्रिडि (Capridæ) और ५—बोभिडि (Bovidae) उनका कहना है कि, ऊपर कहे हुए २य विभागसे कमिलोपार्ड (जुराफा) की उत्पत्ति है। इस जातिके पशुओंमें नर और मादा दोनोंके सींग होते हैं जो सीधे तथा चमड़ेसे ढके हुए, और दो भागोंमें विभक्त हैं।

सबसे पहले जुलियस सीज़रके समय रोम देशमें जुराफा लाया गया था। इसके बहुत शताब्दी बाद इसमकसके राजाने सम्राट् (२य) फ्रेडरिकको एक जुराफा भेजा था। १५वीं शताब्दीके अन्तमें यह पशु इंग्लैण्ड और फ्रांसमें पहिले पहल पहुँचा।

१८३६ ई०में लण्डनकी प्राणितत्त्व-समितिने ४ जुराफा खरीदे थे। इन जुराफाओंको मि० एम० थिबो (M. Thibaut) पकड़ कर लाये थे।

एम० थिबो अगस्त मासमें डंगलामें जा कर अरबियोंके साथ जुराफाको शिकार करनेको निकले। पहले दिन कर्डफनमें जा कर बहुत खोज करनेके बाद उन्होंने दो जुराफा देखे, पर उन्हें पकड़ न सके। अरबियोंने तेजीके साथ पीछा किया और वे मादा जुराफाको मार कर ले आये। दूसरे दिन सवेरे वे फिर शिकारको गये और उन्होंने एक जुराफाको बाँध लिया। वे उसको पोस मनानेके लिए वहाँ ३।४ दिन तक ठहरे। इस समय एक अरबी आदमी जुराफाको गर्दनमें रस्सी बाँध कर उसे ले कर घूमा करता था। धीरे धीरे एकने पोस मान लिया और वह अपने आप आदमीके पास आने लगा। कभी कभी थिबो इसके मुँहमें उंगली डालते थे, इन लोगोंने और भी ४ जुराफा पकड़े थे; किन्तु १८३४ ई० के डिसेम्बर मासमें जाड़के मारे ५ मेंसे ४ जुराफा मर गये। सिर्फ एक ही बचा। इससे सन्तोष न होनेके कारण थिबोने बहुत परिश्रम और कष्ट सह कर और भी

जुराफा।

१ जुराफा पकड़े। वे ४ जुराफा ले कर लण्डन पहुंचे और वहां जा कर उन्होंने चारोंको पशुशालाके मालिकोंके हाथ बेच दिया। मि० ष्टाडमान (Mr. Studman) कहते हैं कि, जुराफा झुण्ड बांध कर रहते हैं और एक एक झुण्ड ६ से ले कर १० तकका होता है।

लिटाकोसे कुछ दूर (कई एक दिनका मार्ग है) उत्तरमें जुराफा देखनेमें आते हैं। ये जुराफा समतल स्थानमें रहते हैं। पहले उत्तमाशा अन्तरीपके पास बहुत जुराफा पाये जाते थे, किन्तु कुछ वर्षसे वहां ये देखनेमें नहीं आते।

जुराफाके सींग चमड़ेसे ढके हुए हैं और पाकस्थली जलाधारविहीन है तथा अन्यान्य अन्तरेन्द्रियां हरिणके समान हैं। इस कारण प्राणितत्त्वविद् विद्वान् इसको हरिण और कालसारके मध्य एक पृथक् श्रेणीका पशु बतलाते हैं।

पहले लिखा गया है कि, कोई कोई कहते हैं-इस पशुके पीछेके पैरोंसे सामनेके पैर लम्बे हैं। परन्तु यह भ्रममात्र है; अन्यान्य पशुओंकी भांति इनके पिछले पैर भी लम्बे होते हैं।

इसके कुल ३२ दांत होते हैं, जिसमें चबानेके दांत २४ और छेदन करनेके दांत ८ हैं। इसकी ऊपरकी दाढ़में दांत नहीं होते।

इस जानवरका शरीर देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि, मानो डालियोंके अग्रभागको तोड़ कर खानेके लिए ही इसकी सृष्टि हुई है। तृणक्षेत्रमें विचरण करते समय इसको कुछ कष्ट मालूम पड़ता है, क्योंकि सामनेके दोनों पैरोंके बिना फैलाये या कुछ घुटनोंको बिना झुकाये इसका मुंह जमीनको नहीं छू सकता।

यह पशु झुण्ड बांध कर रहता है। उस झुण्डके चारों ओर चार जुराफा मिल कर पहरा देते रहते हैं। यह जानवर स्वभावसे धीर होता है। एक एक बूढ़ा जुराफा १०३ हाथ ऊंचा होता है।

हिन्दी कवियोंने अपने काव्योंमें इनके पारस्परिक प्रेमका दृष्टान्त दिया है। परन्तु उन्होंने इसको पशु न समझ कर पक्षी समझा है।

जुरी (हिं० स्त्री०) अल्प-ज्वर, हरारत।

जुर्म (अ० पु०) अपराध।

जुर्रा (फा० पु०) नर बाज़।

जुर्राब (तु० स्त्री०) मोज़ा, पायताबा।

जुल (हिं० पु०) धोखा, दम, पट्टी।

जुलना (हिं० क्रि०) १ सम्मिलित होना। २ भेंट करना, मुलाकात करना।

जुलबाज़ (हिं० स्त्री०) धूर्त्त, चालाक।

जुलबाज़ी (हिं० स्त्री०) धूर्त्तता, चालाकी।

जुलाब (फा० पु०) १ रेचन, दस्त। २ रेचक औषध, दस्त लानेवाली दवा।

जुलाई—अंग्रेजी वर्षका सातवां मास, प्राचीन रोमकोंका पाँचवा महीना। पहले रोममें इस महीनेको कुइण्टिलिस् (Quintilis) कहते थे। केयास जुलियस सिजरने जिस समय पञ्जिकाका संशोधन और संस्कार किया था, उस समय आण्टनिके प्रस्तावके अनुसार कुइण्टिलिस् नाम बदल दिया गया। सिजरने इसी मासमें जन्म लिया था, इसलिए उनके उपनाम जूलियसके अनुसार इसका नामकरण हुआ।

यह मास ३१ दिनोंमें पूरा होता है। इस मासमें सूर्य सिंहराशिमें संक्रमित होता है। आषाढ़ मासके अन्त और श्रावणमासके प्रारम्भसे यह महीना चलता है।

जुलाहा—युक्तप्रदेश तथा विहार और बङ्गालका एक इसलामधर्मी तन्तुवायसम्प्रदाय। जातितत्त्वविद् विद्वानोंमेंसे बहुतोंका अनुमान है कि, ये पहले नीच श्रेणीके हिन्दू थे, पीछे उच्च-श्रेणीके हिन्दुओं द्वारा अत्यन्त घृणित हो जानेके कारण अभिमानसे सभी एक साथ मुसलमान हो गये। ये तन्तुवाय मुसलमान सभी एक कुलके हैं, इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। सम्भवतः नाना जातीय नीच लोगोंने मुसलमान हो कर कपड़े बुननेका रोजगार किया होगा और इसीलिये यह रोजगार निन्दनीय समझे जानेके कारण, ये अन्यान्य उच्च स्वधर्मावलम्बियों द्वारा घृणित और उनके साथ विवाहादिसूत्रसे वञ्चित हुए होंगे। ये साधारणतः अत्यन्त दरिद्र जनसमाजमें हेय हैं। इनमें प्रायः सभी लोग शिया-सम्प्रदायके हैं और अन्धविश्वाससे उक्त सम्प्रदायके आचार-व्यवहारादिका अत्यन्त यत्नके साथ पालन करते हैं। मुह-

रमके समय ये बाल नहीं बनवाते और न आमिष भोजन ही करते हैं। उस मासमें ५वें, ६ठे और ७वें दिनके सिवा अन्य समस्त दिन इमामोंके स्मृति चिह्नका स्मरण किया करते हैं। पहले जुलाहे अन्य मुसलमानोंकी तरह काबिन अर्थात् काजीके सामने विवाहकी रेजिष्टरी न करते थे; किन्तु अब कर निकले हैं। इनकी उपाधियाँ कारीगर, मण्डल और शिकदार हैं। प्रधान व्यक्तिको मातब्बर कहते हैं।

बिहार प्रान्तमें मुहर्रमके समय जुलाहोंकी स्त्रियां पान नहीं खातीं, बाल नहीं सम्हालतीं और न ललाट पर सिन्दूर वा बेंदी ही लगाती हैं। और तो क्या, वे इस समय पतिसहवास छोड़ कर विधवाओंकी तरह रहती हैं और मुहर्रमके ८वें दिन नीली साड़ी पहन बाल बखेर कर हुसेनके लिये विलाप करती हैं।

साधारण लोगोंका विश्वास है कि, जुलाहे बड़े मूढ़ वा निर्बोध होते हैं। बिहार आदि प्रदेशोंमें इनकी अक्ल नकरेकी अक्लके साथ तोली जाती है। वहांके रहनेवाले इनकी निर्बुद्धिताके विषयमें सैकड़ों किस्से कहा करते हैं। वे कहते हैं कि, ये चन्द्रालोकमें विभासित नीलपुष्पशोभित असिना-क्षेत्रमें जलके भ्रमसे तैरा करते हैं। एक दिन एक जुलाहा मुल्लाके पास कुरान सुनते सुनते रो उठा। इस पर मुल्लाने खुश हो कर पूछा कि, "कौनसी बात तेरे हृदयमें लगी है?" जुलाहेने उत्तर दिया—"कोई भी नहीं, आपकी हिलती हुई दाढ़ीको देख कर मुझे अपनी मरी हुई प्यारी बकरीकी याद आ गई, इससे आंखोंमें आंसू भर आये।" बारह आदमियोंके साथ एक जुलाहा रहने पर, वह प्रत्येक बार गिननेमें अपनेको भूल कर अपनी मृत्यु हो गई, ऐसा समझता है। हलकी एक कील पाने पर जुलाहा सोचता है कि, खेती करनेका सामान तो करीब करीब इकट्ठा हो गया, अब खेती करनी चाहिये। एकदिन रातको एक जुलाहेने लंगर बिना उठाये ही नाव खेना शुरू कर दिया। सुबह उसने देखा तो नावको उसी स्थान पर पाया। इस पर उसने मीमांसा कर ली कि, जन्मभूमि उसको छोड़ न सकनेके कारण स्वेच्छया उसके साथ चली आई है। आठ जुलाहे हों और नौ हुक्के हों, तो वे उस बचे हुए एक हुक्केके लिये मार-पीट मचा देंगे। "आठ जुलाहे नौ हुक्का, उसी पर ठुक्कमठुक्का।" किसी समय एक कौआ जुलाहेके लड़केके हाथसे रोटी छीन कर उसके छप्पर पर जा बैठा। जुलाहेने लड़केके हाथमें फिरसे रोटी देते समय पहले छप्परसे नसैनी हटा दी, जिससे कौआ छप्परसे उतरने न पावे! ये अपनी बेवकूफीके कारण बहुत समय वृथा मार खाया करते हैं। किसी समय एक जुलाहा भेड़ोंकी लड़ाई देखनेको गया तो वहां उसीने एक चोट खाई।

"करघा छोड़ तमाशा जाय
नाहक चोट जुलाहा खाय" *

और भी एक किस्सा है—एक दैवज्ञने एक जुलाहेसे कह दिया—तेरे अदृष्टमें लिखा है कि, कुल्हाड़ीसे तेरी नाक कट जायगी। जुलाहा इस बातको सहजमें क्यों मानने चला? वह कुल्हाड़ीको हाथमें ले कर कहने लगा—"यों करूंगा तो पैर कटेगा, यों करूंगा तो हाथ कटेगा और (नाक पर कुल्हाड़ी रख कर) यों करूंगा तो नहीं तब ना……" बात पूरी कहने भी न पाया कि, उसकी नाक कट गई।

एक प्रवचन है कि 'जुलाहा क्या जाने जौ काटना?" इसका एक किस्सा भी है एक जुलाहा अपना कर्ज न चुका सका, इसलिये उसने महाजनकी जमीन जोत कर कर्ज चुकानेकी ठानी। महाजनने उसे जौ काटनेको खेतमें भेजा, पर वह मूर्ख जौ न काट कर उसको सुकाने लगा। और भी इनकी बेवकूफीकी जाहिर करनेवाले बहुतसी कहावतें हैं। जैसे—१ "कौआ जाय बासको, जुलाहा जाय घासको।" २ "जुलाहेकी जूती सिपाहीकी जोय (स्त्री), धरी धरी पुरानी होय।" ३ "जुलाहा चुरावे नली नली, खुदा चुरावे एक बेरी।"

कहीं कहीं हिन्दू जुलाहे भी देखनेमें आते हैं, जिसको कोरी या कोली कहते हैं। परन्तु इनकी संख्या बहुत ही कम है। जुलाहा कहनेसे मुसलमान तांतीका ही बोध होता है।

२ निर्बोध, मूर्ख। ३ एक कीड़ा जो पानी पर तैरता है। ४ एक बरसाती कीड़ा।

* Behar Peasants' Life.

जुलू—दक्षिण अफ्रीकाकी काफिरजातिकी एक शाखा। यह जाति नेटाल और उसके उत्तर-पूर्व प्रदेशमें रहती है। इनके मुखकी श्री निग्रो और यूरोपीय जातिके बीचकी है। इनके बाल निग्रो लोगोंके समान हैं, किन्तु अनति उच्च मुख और सामान्य स्थूल ओष्ठाधर कुछ कुछ यूरोपियोंके सदृश हैं।

इनकी प्रकृति अति भीषण है, दलपतिके आदेश पाने पर ये नरहत्या, चोरी, लूट आदि किसी भी नृशंस कार्य करनेमें आगा-पीछा नहीं करते। इतने पर भी ये काफिजातिकी अन्यान्य शाखाओंसे शान्तिप्रिय हैं और खेतीबारी करना पसन्द करते हैं। साधारणत: जुलू लोग शान्त, अमायिक, सरल और प्रफुल्लचित्त होते हैं। ये कुछ कुछ आतिथेय और न्यायपर तो हैं, पर साथ ही अत्यन्त लोभी और कृपण भी हैं।

ये प्रधानत: ४ शाखाओंमें विभक्त हैं,—आमाजुलू, आमाहुट, आमाज्वाजी और आमाटेवेल। इनके बहुतसे छोटे छोटे दल उत्तर और दक्षिणकी ओर जा बसे हैं।

जुलूदेश—दक्षिण अफ्रिकाके नेटाल उपनिवेशके उत्तर-पूर्वका एक प्रदेश। इस प्रदेशमें स्वाधीन जुलुओंका वास है। इसके पूर्व अर्थात् उपकूल विभागमें निम्नप्रान्तर और पश्चिममें प्राय: ६।७ हजार फुट ऊंची मालभूमि है। अभी इन दो भागोंमें एक पर्वतश्रेणी विस्तृत है। उपकूलमें कहीं भी जङ्गल नहीं है, इसके चारों तरफ घास दीख पड़ती है। सेण्टलुसिया नदी और डेलगोया खाड़ीके मध्यस्थ भूभाग समतल दलदल और अस्वास्थ्यकर है। इसके सिवा उपकूल विभागका अधिकांश नेटालकी नाईं स्वास्थ्यकर और उर्वरा है। ईख, कपास, तथा गर्म देशोंके समस्त उत्पन्न फल मूलादि यहां उत्पन्न होते हैं। हाथीके दांत और गेंडाके सींग चमड़े आदि प्रधान वाणिज्य द्रव्य है। डेलगोआ खाड़ीमें जो नदियाँ गिरी हैं, उनमें वाणिज्यकी नाव बहुत दूर तक जाती आती हैं।

ईसाई मिशनरी इस देशमें बहुत दिनोंसे रहते आये हैं। उन्हींके यत्नसे जुलूगण सभ्य हो गये हैं।

१८३६ ई०में बहुतसे ओलन्दाज कृषक इस देशमें आ कर बस गये थे। जुलूके राजाने धोखा दे कर बहुतोंको मार डाला। अन्तमें ओलन्दाजोंकी जीत हुई। ये अभी इस देशके कई स्थानोंमें बस गये हैं।

जुलूम (हिं० पु०) जुल्म देखो।

जुल्फ (फा० स्त्री०) पुरुषोंके सिरके बाल जो पीछेकी ओर गिरे और बराबर कटे होते हैं, कुल्ले।

जुल्फिकर अली—मस्त नामसे परिचित एक मुसलमान विद्वान्। इन्होंने रयाज-उल्-विफाक नामक एक तजकीर लिखी है। इस पुस्तकमें कलकत्ते और बनारसके जितने कवि फारसी भाषामें कविता लिखते थे, उनकी जीवनी लिखी हैं। १८१४ ई०में बनारसमें इस पुस्तकका लिखना समाप्त हुआ था। इन्होंने और भी कई एक पुस्तकें लिखी हैं।

जुल्फिकार अलीखाँ—बन्दा प्रदेशके नवाब। ये बुन्देलखण्डके शासनकर्त्ता अली बहादुरके पुत्र थे। ये १८२७ ई०में ३० अगस्तको अपने भाई शमशेर बहादुरके सिंहासन पर बैठे थे। इनके बाद अली बहादुर खाँ नवाब हुए थे।

जुल्फिकारखाँ (अमीर-उल्-उमरा)—१ आसदखांके पुत्र। १६५७ ई०में (हिजरा १०६७) इनका जन्म हुआ था। इनका पूर्व नाम था नसरतजङ्ग और उपाधि यातकद खाँ। बादशाह आलमगीरके राज्य-कालमें ये भिन्न भिन्न पदों पर नियुक्त हुए थे। राजारामने जब तञ्जोरका गिञ्जी दुर्ग पर अधिकार कर लिया था, उस समय बादशाहने इनको (१६८१ ई०में) उक्त दुर्गको अवरोध करनेके लिए भेजा था। परन्तु ये पराजित हो कर भाग लौट आये। सम्राट् औरङ्गजेबने अन्यान्य सेनापतिको सहायतासे उक्त दुर्गको अधिकार करनेमें समर्थ हो कर पुन: इनको वहां भेजा। इस बार इन्होंने दुर्ग अधिकार कर लिया; राजाराम परिवार सहित (१६९८ ई०में) भाग गये। १६९८ ई०में जुल्फिकारने राजारामको परास्त कर सतारा-दुर्ग अधिकार कर लिया और सिंहगढ़ तक उनका पीछा किया। कुमार कमरबक्स, दाउदखाँ पनी आदि सेनापति बहुत दिनों तक वकिङ्गेके दुर्गको घेरे रहने पर भी उस पर कब्जा न कर सके थे, किन्तु जुल्फिकार खाँने उसे जीत कर अपनी वीरताका परिचय दिया था। बादशाह औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद

उनके पुत्रोंमें परस्पर राज्य सम्बन्धी विवाद उपस्थित हुआ। जुल्फिकार कुमार आजिमकी सहायता करने लगे।

मुयाजिम और आजिमकी सेना रणक्षेत्रमें उपस्थित हुई। युद्धके प्रारम्भमें ही दूसरी ओरसे बड़ी भारी आँधी आई, जिससे कुमार आजिमकी सेना घबड़ा गई, बहुदर्शी जुल्फिकारने आजिमको युद्धसे निवृत्त होनेकी सलाह दी। किन्तु आजिमने इनकी बात पर ध्यान न दिया, इससे जुल्फिकारने उनका पक्ष छोड़ दिया। मुयाजिम 'बहादुरशाह' उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर बैठ गये और उन्होंने जुल्फिकारखांके अपराधोंको माफ़ कर उन्हें 'अमीर-उल्-उमरा'की उपाधि प्रदान की (१११८ हिजरा, १७०७ ई०में)।

कुछ दिन पीछे बाहादुरशाहने इन्हें दक्षिण देशका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। परन्तु इनकी सलाहके बिना राजकार्य सुचारु रूपसे न चलेगा, यह सोच कर शीघ्र ही इन्हें राजधानीमें बुला लिया। दायुदखां पनीकी इनका प्रतिनिधि बना कर दाक्षिणात्य भेज दिया गया। बहादुरशाहकी मृत्युके बाद उन्हींके २य पुत्र आजिम उश्-शानके बादशाह होने पर जुल्फिकारने उनके विरुद्ध अन्य तीन भाइयोंको उत्तेजित किया।

युद्धमें दो भाइयोंकी मृत्यु होने पर मोजउद्दीन और रफी-उश्-शान इन दोनोंमें झगड़ा उपस्थित हुआ।

रफी-उश्-शानके साथ इनकी विशेष मित्रता थी। रफी-उश्-शान इनको मामा कहा करते थे तथा जुल्फिकारने भी कुमारकी सहायता देनेके लिए प्रतिज्ञा की थी। इनकी बात पर विश्वास करके ही रफी-उश्-शान मोजउद्दीनसे युद्ध करनेको साहसी हुए थे, किन्तु युद्धके प्रारम्भमें ही उन्होंने देखा कि, उनके मित्र और हितैषी अमीर-उल-उमरा मोजउद्दीनके साथ मिल गये हैं और मोजउद्दीन् सेनाको युद्धका उपदेश दे रहे हैं। जुल्फिकारखांने रफी-उश्-शानके एक विश्वस्त अनुचरके साथ षड़यन्त्र कर लिया था। युद्धके समय उस पापाशयने भी कुमारका साथ छोड़ कर उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। युद्धमें मोज-उद्-दीनकी विजय हुई; और जहान्दारशाह उपाधि धारण कर वे सिंहासन पर बैठ गये।

जहान्दारने जुल्फिकारको प्रधान वजीर बनाया। उनके राजत्वकालमें जुल्फिकारखां असीम क्षमताको परिचालना करते थे। ये अपनी इच्छाके अनुसार हर एक काम कर सकते थे। जुल्फिकारखां धीरे धीरे इतने गर्वित हो गये थे कि, कोई भी उनसे मिल न सकता था। राजकीय समस्त कार्य इनके अधीन थे। सबके वेतन आदिका भी ये ही निश्चय करते थे। कुछ समय पीछे लालकुमारीके भाईका वृत्ति निश्चित करनेके विषयमें जहान्दारके साथ इनका मनोमालिन्य हो गया।

एक दिन जुल्फिकारने लालकुमारीके भाईसे ५००० वीणा और ७००० मृदङ्ग मांगे बादशाहने अमीर-उल्-उमराको बुला कर इस अवमाननाका कारण पूछा। वजीरने उत्तर दिया—नर्त्तकों और गायकों द्वारा भद्र-पुरुषोंके अधिकार हड़प किये जानेसे उनकी आजीविका-के निर्वाहके लिए कोई उपाय करना उचित है। ये बाजे बादशाहके कर्मचारियोंको बाँटे जायँगे। जुल्फिकारखां बादशाह अथवा उनके प्रियपात्रोंसे किसी प्रकार डरते न थे।

१७१२ ई०के अन्तमें सम्वाद आया कि, फरुखशियार दिल्लीका सिंहासन अधिकार करनेके लिए अग्रसर हो रहे हैं। जहान्दार यह सम्वाद पा कर उनकी गतिको रोकने-के लिए जुल्फिकारके साथ आगराकी तरफ अग्रसर हुए। आगराके पास दोनोंमें युद्ध हुआ। जहान्दारशाह प्रथम युद्धके बाद डर कर भाग गये। जुल्फिकारने बहुत देर तक विशेष वीरताके साथ युद्ध किया। अन्तमें उन्होंने विजय-की कुछ आशा न देख कर सेनाके साथ सुशृङ्खलभावसे युद्धक्षेत्र छोड़ दिया और दिल्ली जा कर अपने पिता आसदखांके घर आश्रय लिया।

जुल्फिकारने देखा कि, जहान्दारशाह उनसे पहले ही वहां आ गये हैं। उन्होंने बादशाहको ले कर दाक्षिणात्यकी ओर भाग जानेकी इच्छा प्रकट की; किन्तु आसदखांने इस परामर्शमें बाधा दे कर फरुखशियारकी अधीनता स्वीकार करनेकी सलाह दी।

जुल्फिकारखां अपने पिताके परामर्शानुसार दोनों हाथोंको वस्त्र द्वारा बाँध कर फरुखशियारके पास पहुंचे।

आसदखाँने उनके साथ आ कर नवीन सम्राट्से क्षमा प्रार्थना की।

बादशाहने उन्हें क्षमा कर जुल्फिकारके बन्धनको खोल देनेका आदेश दिया। आसदखाँ और उनके पुत्र जुल्फिकार, दोनोंको सम्राट्ने नाना प्रकारके माणिक्य और परिच्छद उपहार दिये। परन्तु दरबारमें इनका शत्रुपक्ष मौजूद था। नये वजीर मीरजुमलाने इनको ध्वंस करनेका निश्चय कर लिया। उन्हींकी प्ररोचनासे बादशाहने आसदखाँको लौट जाने और जुल्फिकारखाँको बाहरके शिविरमें ठहरनेके लिए आदेश दिया। वहाँ जा कर कुछ लोगोंने अमीर-उल्-उमराके साथ व्यङ्ग करना शुरू किया और वे उन्हें आजिम-उश-शानकी मृत्युका कारण बतला कर उनकी हँसी उड़ाने लगे। जुल्फिकारने कर्कश स्वरसे उन लोगोंको उत्तर दिया। इससे वे बहुत क्रुद्ध हो गये. उन लोगोंने इनके गले पर एक चर्मबन्धनी डाल दी और उसे जोरसे खींच कर इनके श्वासको रोकनेकी चेष्टा करने लगे।

अमीर-उल्-उमराके उस ग्रन्थिको खोलनेकी चेष्टा करने पर वहां तलवार हाथमें लिए कुछ आदमी आ पहुंचे। उसी समय उन लोगोंने इनका मस्तक धड़से अलग कर दिया।

बादशाहने इनकी मृत-देहको हस्तीकी पूंछसे बाँध कर शहरके चारों ओर घुमानेका हुक्म दिया तथा यह भी कहा कि, इनके पैर ऊपरको और मस्तक नीचेको रक्खा जाय। जुल्फिकारखाँकी सारी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली गई।

१७१३ ई०में यह घटना हुई थी। इनकी माताका नाम था मेहेरउन्निसा बेगम, ये अमीन उद्दौला आसफखाँकी कन्या थीं। आसफखाँके पुत्र सायस्ताखाँ जुल्फिकारखाँके श्वसुर थे।

२ बादशाह शाहजहान्के समयके एक गण्यमान्य व्यक्ति। आसदखाँ इनके पुत्र थे। आसदखाँके पुत्रको भी 'जुल्फिकारखाँ'की उपाधि प्राप्त हुई थी। १०७० हिजरा मुहर्रमकी (१६५८ ई०में) इनकी मृत्यु हुई।

जुल्फिकार जङ्ग—सलाबत्खाँकी एक उपाधि।

जुल्फी (फा० स्त्री०) जुल्फ़, पट्टा।

जुल्फिकार—हिन्दीके एक कवि। १७२५ ई०में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने बिहारीसतसईकी एक विलक्षण टीका रची है।

जुल्म (अ० पु०) अत्याचार, अन्याय, अनीति।

जुलूस (अ० पु०) १ सिंहासन पर अभिषिक्त। २ किसी उत्सवका समारोह। ३ उत्सव और समारोहको यात्रा, धूमधामकी सवारी।

जुलाब (अ० पु०) १ रेचन, दस्त। २ रेचक औषध, दस्त लानेवाली दवा।

जुवा (हिं० पु०) जुआ देखो।

जुवारी (हिं० पु०) जुआरी देखो।

जुविष्क—एक प्रसिद्ध शकराज। ईसाकी १ली शताब्दीके पहले, ये पञ्जाब और काश्मीरकी तरफ राज्य करते थे। इनके समयके शिलालेख और सिक्के मिलते हैं। किसीका मत है कि, इन्हींका नाम जुष्क है।

जुषाण (सं० पु०) यज्ञीयमन्त्र-भेद, यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र।

जुष्क—काश्मीरके एक राजा। ये हुष्क और कनिष्कके साथ एकत्र काश्मीरके राजसिंहासन पर बैठे थे। इन तीनोंने अपने अपने नामका एक एक नगर बसाया था। ये तुरुष्क जातीय थे, किन्तु बौद्ध धर्मके पृष्ठपोषक भी थे। इन्होंने बहुतसी धर्मशालाएं बनवाई थीं।

काश्मीर देखो।

जुष्कक (सं० पु०) जुष-कक्, ततः संज्ञायां कन्। यूष, कढ़ी।

जुष्ट (सं० क्ली०) जुष्यते जुष-क्त। १ उच्छिष्ट, जूठा। (त्रि०) २ सेवित, सेवना किया हुआ। ३ प्रसन्न, खुश।

जुष्टि (सं० स्त्री०) जुष-क्तिन्। प्रीति, प्रेम, प्यार। (ऋक् १०।११८।१)

जुष्य (सं० त्रि०) जुष-कर्म्मणि क्यप्। १ सेव्य, उपास्य। भावे-क्यप् (क्ली०) २ अवश्य सेवन।

जुस्तजू (फा० स्त्री०) अनुसन्धान, खोज, तलाश।

जुहार (हिं० पु०) १ क्षत्रियों विशेषत: राजपूतोंमें प्रचलित एक प्रकारका प्रणाम, अभिवंदन, सलाम, बंदगी। २ जुहाड़ देखो।

जुहारना (हिं० क्रि०) किसीसे कुछ सहायता माँगना, किसीका एहसान लेना।

जुहार (सं० पु०) जैनोंमें प्रचलित एक प्रकारका अभिवन्दन। भद्रबाहुसंहितामें लिखा है—"श्राद्धाः परस्परं कुर्युर्जुहारुरिति संभ्रमम्" तात्पर्य यह है कि जैनधर्ममें श्रद्धा रखनेवाले सहधर्मिगण परस्पर 'जुहार' कह कर विनय करें। इस पर एक गाथा प्रचलित है—

"जउमा जिणवर होई हाहा हणंति अट्ठकम्माणि।
रुद्धो आसवद्दारा जुहारो जिणवरो भणिया॥"

आजकल बहुतसे लोग जुहार न कह कर जय जिनेन्द्र वा जियजिनेन्द्र कहने लगे हैं। किन्तु प्राचीन जुहार ही है।

जुही (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका घना और छोटा झाड़। इसके पत्ते छोटे और ऊपर नीचे नुकीले होते हैं। इसके फूल बहुत सुगन्धित और सफेद होते हैं; लोग इसे फुलवाड़ीमें लगाते हैं। वर्षा ऋतुमें इसमें फूल लगते हैं। जही देखो।

जुहू (सं० स्त्री०) १ जुहू देखो। २ प्राची दिशा, पूर्वदिशा।

जुहुराण (सं० पु०) हुर्च्छ-सन् शानच् सनोलुक् छलोपश्च। अर्त्तेर्गुणः शुट्‌च। उण् २।८८ १ चन्द्र। (त्रि०) १ कौटिल्यकारी, कपटका व्यवहार करनेवाला। (बृह० उ०)

जुहुवान (सं० पु०) ह्वयते हु-कर्मणि कानच्। १ अग्नि-आग। २ वृक्ष, पेड़। ३ कठिन हृदय। (संक्षिप्तसार उणादिवृत्ति) 'जुहवान' यह पाठ प्रामादिक मालूम पड़ता है। 'जुहुवान'को जगह 'जुहुवान' ही संगत है।

जुहू (सं० स्त्री०) जुहोत्यनया हु-क्विप्। हुवः श्लुवच्च। उण् २।६०। १ निपातनात् द्विलश्च। पलाश-काष्ठ निर्मित अर्धचन्द्राकृति यज्ञपात्र, पलाशकी लकड़ीका बना हुआ अर्धचन्द्राकार यज्ञपात्र। (कात्यायन श्रौ० १।१।१४) २ पूर्व दिशा।

जुहूराण (सं० पु०) जुहूं रणति इत्यण्। कर्मण्यण्। पा ३।२।१। १ अग्नि। २ अध्वर्यु, चार यज्ञ करानेवालोंमेंसे एक, यज्ञमें यजुर्वेदका मन्त्र पढ़नेवाला ब्राह्मण। ३ चन्द्रमा।

जुहूवत् (सं० पु०) जुहूः पात्रं होमक्रियोद्देश्यतयाऽस्त्यस्मिन् जुहू: मतुप् निपातनात् मस्य वः। अग्नि। (शब्द०)

जुहोता (हिं० पु०) यज्ञमें आहुति देनेवाला।

जुहोति (सं० स्त्री०) हु-धात्वर्थ-निर्देशे श्तिप्। होम-भेद, एक प्रकारका होम।

"यजति जुहोतीनां कोविशेषः" । कात्या० श्रौ० १।२।४)

जिन यज्ञोंमें (मध्यमें) स्वाहाकारका प्राधान्य है उसको जुहोति कहते हैं, इसमें स्वाहाकार द्वारा केवल होम किया जाता है।

"उपविष्टहोमाःस्वाहाकारप्रदानाः जुहोतयः।"

(कात्या० श्रौ० १।२।७)

जुह्वास्य (सं० पु०) जुह्वास्यमिवास्य। जुह्वरूप मुखयुक्त होमीय वह्नि, जुहू आकारको मुखयुक्त होमकी अग्नि।

जू (सं० स्त्री०) जु-गतौ यथायथं कर्त्तृ-भवादौ क्विप्। क्विब्वचि प्रच्छिश्रीति। उण् २।५७। १ आकाश। २ सरस्वती। ३ पिशाची। ४ जवन, वेग। ५ गमन, जाना। (त्रि०) ६ जवयुक्त, जिसमें गति हो। (स्त्री०) वायुमण्डल। ८ बैल या घोड़ेके मस्तक परका टोका।

जू (हिं० अव्य०) १ ब्रज, बुंदेलखण्ड, राजपूताना आदिमें अमीरोंके नामके साथ लगाये जानेका एक आदरसूचक शब्द। २ सम्बोधनका शब्द। ३ एक निरर्थक शब्द। यह बैलों या भैंसोंको खड़ा करनेके लिये कहा जाता है।

जूँ (हिं० स्त्री०) बालोंमें पड़नेवाला एक छोटा स्वेदज कीड़ा। यह काले रंगकी और दूसरे प्राणियोंके शरीरके आश्रयसे रहती है। इसके आगेकी तरफ छह पैर होते हैं और पिछला हिस्सा कई गण्डोंमें विभक्त होता है। इसके मुँहमें एक प्रकारकी झुकी हुई सूँड़ी होती है। जिसे अन्य प्राणियोंके शरीरमें चुभा कर उनका रक्त चूसती है। जूँ अण्डे खूब देती है। अण्डे बालोंसे चुपके रहते हैं और दो तीन दिनमें उसमेंसे कीड़े निकल पड़ते हैं। कपड़ोंमें पड़नेवाला चीलर नामका कीड़ा भी इसी जातिका है; फर्क इतना ही है कि वह सफेद होता है। भिन्न भिन्न जीवोंके शरीरमें भिन्न भिन्न आकृतिकी जूँ पड़ती है और उनका रंग भी विभिन्न प्रकारका होता है। यूका देखो।

जूँठ (हिं० वि०, पु०) जूठा देखो।

जूँठन (हिं० स्त्री०) जूठन देखो।

जूँड़िया (हिं० पु०) बैलोंके झुण्डके आगे आगे चलनेवाला बैल।

जूँदन (हिं० पु०) बन्दर। मदारी लोग इस शब्दका व्यवहार करते हैं।

जूँदनी (हिं० स्त्री०) जूँदनका स्त्रीलिङ्ग।

जूँमुहाँ (हिं० वि०) जो देखनेमें भोला वा सीधा-सादा किन्तु वास्तवमें बड़ा चालाक हो, ऊपरसे भोलापन दिखानेवाला धूर्त।

जूआ (हिं० पु०) इसको प्राकृत भाषामें जूअ और पालि भाषामें जूतम् वा जूतो कहते हैं। १ द्यूतक्रीड़ा। शर्त या बाजी लगा कर खेला जानेवाला खेल। कहा है—'जूआ बड़ा व्योहार जो इसमें हार न होतो।"

जूआ खेल कर लाभ उठाना अनिश्चित है, किन्तु इससे कोटिपति भी थोड़े दिनमें रास्तेके भिखारी हो जाते हैं—यह निश्चित है। इसमें ऐसी मोहिनी शक्ति है कि, जो एक बार इसमें फँस जाता है, इसके प्रलोभनसे उसका निकलना ही मुश्किल हो जाता है। इसमें हार जाने पर भी लोग जीत होनेकी आशासे बार बार फँसते रहते हैं, और इसी तरह अपना सर्वनाश कर डालते हैं। इसके जरिये लोग नियमित और न्यायसङ्गत उपार्जनसे मुँह मोड़ते तथा समाजमें तरह तरहकी विशृङ्खलाएँ फैलाते हैं। इन सब कारणोंसे अंग्रेज गवर्मेण्टने अंग्रेजी राज्यमें कानूनके जरिये सब तरहके जूआ खेलनेका निषेध कर दिया है। २ एक प्रकारका लम्बा और चिकना काष्ठ। यह रथ या गाड़ीके आगेके भागमें बँधा रहता है और बैल इसमें कंधे लगा कर गाड़ी खींचते हैं। ३ चक्की फिरानेकी, उसमें लगी हुई लकड़ी।

जूक (ग्रीक Jukos पु०) तुलाराशि।

जूकल—हैदराबाद राज्यके अतराफिबल्द जिलाका एक छोटा तालुक। यह निजामाबाद जिलेके दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। क्षेत्रफल ८७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १५७८८ है। इसमें २२ गाँव बसे हैं। मालगुजारी कोई ६६०००) रु० है।

जूजू (हिं० पु०) एक कल्पित भयङ्कर जीव। लोग लड़कोंको डरानेके लिये इसका नाम लेते हैं, हौआ।

जूझ (हिं० स्त्री०) युद्ध, लड़ाई, झगड़ा।

जूझना (हिं० क्रि०) १ लड़ना। २ रणक्षेत्रमें प्राणत्याग करना, लड़ कर मर जाना।

जूट (सं० पु०) जूट-संहती घञ् निपातनात् उत्वागमेंं साधुः। १ जटासंहतिबन्ध, जटाकी गाँठ, जूड़ा। २ जटा, लट। ३ शिवजटा। "भूतेशस्य भुजंगवल्लि वलय-स्रङ्नद्धजूटाजटाः।" (मालतीमा०) ४ पटसनका बना कपड़ा। ५ पटसन, पाट।

जूटक (सं० क्ली०) जूट स्वार्थे कन्। केशबन्ध, जटा, लट।

जूटिका (सं० स्त्री०) कर्पूरविशेष, एक कपूर।

जूठन (हिं० स्त्री०) १ उच्छिष्ट भोजन, वह भोजन जिसमेंसे कुछ अंश किसीने मुँह लगा कर खाया हो। २ भुक्तपदार्थ, वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसीने एक दो बार कर लिया हो।

जूठा (हिं० वि०) १ उच्छिष्ट, जिससे किसीने खाया हो। २ जो मुँह अथवा किसी जूठे पदार्थसे छुआ हो। ३ भुक्त, भोग करके अपवित्र किया हुआ पदार्थ। (पु०) ४ उच्छिष्ट भोजन, किसीके आगेका बचा हुआ भोजन।

जूठी (हिं० वि०) जूठा देखो।

जूड़ा (हिं० पु०) १ सिरके बालोंकी गाँठ। २ चोटी, कलगी। ३ मुंज आदिका पूला, मुंजारी। ४ पगड़ीके पीछेका भाग। ५ घास आदिको लपेट कर बनाई हुई गड़री जिस पर पानीके घड़े रखे जाते हैं। ६ छोटे बच्चोंका एक रोग। इसमें सरदीके कारण साँस बहुत वेगसे निकलती है और साँस लेते समय कोखमें गड्ढा पड़ जाता है।

जूड़ी (हिं० स्त्री०) जाड़ा दे कर आनेवाला एक प्रकारका ज्वर। इस ज्वरके कई भेद हैं। कोई रोज रोज आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। जो ज्वर रोज रोज आता है, उसको जूड़ी, दूसरे दिनवालेको अंतरा, तीसरे दिनवालेको तिजरा और चौथे दिनवालेको चौथिया कहते हैं। मलेरियासे यह रोग पैदा होता है। २ जूटी।

जूत (सं० त्रि०) जू-क्त। १ गत, गया हुआ, बीता हुआ। २ आकृष्ट, खींचा हुआ। ३ दत्त, दिया हुआ।

जूत (हिं० पु०) १ जूता। २ बड़ा जूता।

जूता (हिं० पु०) १ पादत्राण, उपानह, पनही, जोड़ा। पादुका देखो।

जूताखोर (हिं० वि०) १ जो जूता खाया करे। २ निर्लज्ज, बेहया।

जूति (सं० स्त्री०) जु वेगे-क्तिन्। ऊति यूति जूतीति। पा ३।३।९७ इति निपातनात् दीर्घत्वं। १ वेग, तेजी। २ चित्तके दुःखिताभाव।

जूतिका (सं० स्त्री०) जूत्या कायति कै-क, ततष्टाप्। कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर।

जूती (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंका जूता। २ जूता।

जूतीकारी (हिं० स्त्री०) जूतीकी मार।

जूतीखोर (हिं० वि०) १ जूतीकी मार खानेवाला। २ निर्लज्ज, मार और गालोकी परवाह न करनेवाला।

जूतीछुपाई (हिं० स्त्री०) विवाहमें एक रसम। इसमें जब वर कोहबरसे चलता है तो स्त्रियां वरका जूता छिपा देती हैं और जब तक जूतेके लिये वर कुछ नेग नहीं देता तब तक वे उसे नहीं देती हैं। जो नातेमें वधूकी बहिन होती हैं वे ही इस कार्यको करती हैं। २ जूतेकी छिपाईमें दिये जानेका नेग।

जूती पैजार (हिं० स्त्री०) १ जूतीकी मार पीट, धौल धप्पड़। २ कलह, झगड़ा, लड़ाई दंगा।

जून (June)—यूरोपीय एक मासका नाम, अङ्गरेजी वर्षका ६ठां महीना जो ज्येष्ठ मासके लगभग पड़ता है। यह प्राचीन रोमका चौथा मास है। कोई कोई कहते हैं कि, लाटिन जुनियरिस् (Junioris) अर्थात् युवक शब्दसे इस नामकी उत्पत्ति है। और किसी किसीका यह कहना है कि, स्वर्गकी ईश्वरी जूनोदेवी हैं, उनके नामका रूपान्तर लाटिनमें जुनियास है और इस शब्दसे इस नामकी उत्पत्ति हुई है। यह मास ३० दिनमें खतम होता है। इस महीनेमें सूर्य कर्कट-राशिमें संक्रमित होते हैं। ज्येष्ठ मासके अन्त और आषाढ़ मासके प्रारम्भको ले कर जून मास चलता है।

जून—सिन्धु और शतद्रु नदीके मध्यवर्ती कच्छदेशमें रहनेवाली एक जाति। उक्त प्रदेशमें भट्टी, शियाल, कच्छल और काठि जातिका भी वास है। काठियावाड़के काठि और ये जून दोनों ही देखनेमें दीर्घाकृति और सुन्दर तथा लम्बी चोटी रखते हैं। ये ऊंट और गाय भैंस आदि बहुत पालते हैं।

जूनखेड़ा—राजपूतानेके अन्तर्गत माड़वार राज्यका एक प्राचीन नगर। यह नदोलासे कुछ पूर्व एक ऊंचे स्थानमें अवस्थित है। बहुत दूर तक फैले हुए भग्न ईंटेके स्तूप देखनेसे मालूम पड़ता है कि यह प्राचीनकालमें एक समृद्धिशाली नगर था। अभी भी बहुतसे मन्दिरोंका भग्नावशेष पड़ा है जिनमेंसे ४ प्रधान है। जूनखेड़ाका अर्थ जीर्णनगर है। कहा जाता है कि नदोला नगरके पहले यह नगर स्थापित हुआ था और वहांके अधिवासियोंने गिरम नदोला स्थापन किया। वहांके साधारण लोगोंका विश्वास है कि इसके पहले यहांके अधिवासी किसी एक योगीके कोपसे नष्ट हो गये और उन्हींके शापसे यह नगर भग्न अवस्थामें परिणत हो गया है।

जूना (हिं० पु०) १ बोझ आदि बाँधनेकी रस्सी। २ उसकन।

जूनाखाँ तुग़लक—तुग़लकवंशीय एक बादशाह। महम्मदशाह तुगलक प्रथम देखो।

जूनागढ़—१ बम्बई विभागमें गुजरातके अन्तर्गत काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक देशीय करद राज्य। यह अक्षा० २०° ४४´ से २१° ५३´ उ० और देशा० ७०°से ७२° पू०में अवस्थित है। यहां वृटिश गवर्मेण्टका एक उच्च कर्मचारी (Political agent) रहते हैं। इसका क्षेत्रफल ३२८४ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बर्द और हालार, पूर्वमें गोहेलवाड़ और पश्चिम तथा दक्षिणमें अरब समुद्र है। भादर और सरस्वती नामका दो नदियां प्रधान हैं। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी, यहूदी आदि जातियां वास करती हैं। जूनागढ़में गिरनार नामकी एक ऊँची पर्वतश्रेणी है। जिसकी ऊंची चोटीका नाम गोरखनाथ है। यह चोटी समुद्रपृष्ठसे ३६६६ फुट ऊँची है। इस राज्यमें 'गिर' नामका एक विस्तीर्ण भूभाग है जिसका अधिकांश घने जङ्गलसे परिपूर्ण है। किसी किसी जगह छोटे छोटे पहाड़ हैं। फिर कोई कोई जगह इतनी नीची है कि वर्षाकालमें वह जलमग्न हो जाती है। इस राज्यकी मट्टी काली होती है; किन्तु कहीं कहीं दूसरे रङ्गकी भी पाई जाती है। यहां गृहस्थ लोग खेतके निकट तक खाड़ी काट कर जल जमा रखते हैं और समय आने पर आवश्यकतानुसार उसी जलसे

अथवा कुएँके जलसे मशक भर खेत सींचते हैं।

यहांकी जलवायु स्वास्थ्यजनक है; किन्तु गिरनार पहाड़के स्थानको छोड़ कर और सब जगह चैत्रमासके मध्यकालसे आवण मास तक बहुत गरमी पड़ती है।

इस राज्यमें बुखार और पेटका रोग अत्यन्त प्रबल है। यहां यथेष्ट पत्थर पाये जाते और यहांके रहनेवाले प्रायः इन्हीं पत्थरोंसे अपना मकान आदि बनाते हैं।

इस राज्यमें रुई, जौ और ईख बहुत उपजती है। वेरावल बन्दरसे रुई बम्बई भेजी जाती है। यहां तेल और मोटा कपड़ा तैयार होता है।

देशीय वाणिज्यके लिये उपकूल विभागमें बहुतसे बन्दर हैं। जब पानी नहीं पड़ता तब इन बन्दरोंमें नाव आदि निरापदसे रखी जाती हैं। वहां जितने बन्दर हैं उनमेंसे वेरावल, नवबन्दर और सूतरापाड़ा ये ही तीनों प्रधान हैं।

राज्यमें बहुतसी बड़ी बड़ी सड़कें हैं। जूनागढ़से जेतपुर, धोराजी तथा वेरावलको ओर जो सड़कें गई हैं, वे ही बड़ी और प्रधान हैं। शेष सड़कें उतनी बड़ी और प्रधान नहीं है। वर्षाके समयके भिन्न और दूसरे समयमें जिस सड़कसे गाड़ी घोड़ा जाता है उस सड़क हो कर सामान्य सामान्य खानेके पदार्थोंसे लदी हुई गाड़ी जाती है। जूनागढ़में ३४ विद्यालय है।

जूनागढ़ बहुत प्राचीन स्थान है। यहां बहुतसी प्राचीन कीर्त्तियां पड़ी हैं। गिरनार पहाड़के ऊपर बहुतसे जैन-मन्दिर हैं। वेरावल बन्दर और सोमनाथ तीर्थका भग्नमन्दिर विशेष विख्यात है।

काठियावाड़में बहुतसे छोटे छोटे देशी राज्य हैं, जिनमेंसे जूनागढ़ ही प्रधान है। १८०७ ई०में जूनागढ़के शासनकर्त्ता और अङ्गरेजोंमें पहले पहल सन्धि हुई। यहांके राजा मुसलमान हैं, उनकी उपाधि 'नवाब' है। इनके सम्मानके लिये सरकारकी तरफसे ११ तोपें दागी जाती हैं।

१८८२ ई०में बहादुर खांजी जूनागढ़के सिंहासन पर बैठे। इनके ऊपरकी नववीं पीढ़ीके शेरखाँ बाबी इस वंशके आदिपुरुष हैं। जूनागढ़के नवाब वृटिश गवर्मेण्ट और बरोदाके गायकवाड़को वार्षिक ६५६०४) रु० कर देते हैं। नवाबके २६८२ सैन्य हैं। नवाबके मरने पर उनके बड़े लड़के ही राज्य पाते हैं। दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका इन्हें अधिकार है। प्रजाका जीवन और मरण नवाबकी इच्छा पर निर्भर है। ये अङ्गरेज गवर्मेण्टके साथ सन्धिमें आबद्ध है, शर्त्त इस तरह है, कि उनके राज्यमें सतीदाहकी प्रथा न रहे और वर्षाकाल अथवा दूसरे किसी प्रकारकी विपत्तिके लिये जितने जहाज उनके बन्दरमें जांय उतनेके लिये किसी प्रकारका कर न लिया जाय।

मुसलमानोंके प्रभुत्वका पूर्व-निदर्शन अभी भी इस राज्यमें वर्तमान है। यद्यपि जूनागढ़के नवाब बरोदाके गायकवाड़ और वृटिश गवर्मेण्टके अधीन हैं, तथापि वे काठियावाड़के छोटे छोटे राज्योंके शासनकर्त्तासे जोर तलबी पाते हैं। यह जोर तलबी वे अपने कर्मचारीसे वसूल नहीं कराते हैं वरन् काठियावाड़स्थित बड़े लाटके अङ्गरेज प्रतिनिधि अपने कर्मचारियोंसे वसूल करा कर नवाबके पास भेज देते हैं।

पूर्वकालमें जूनागढ़ सुराष्ट्र या आनर्त्तके हिन्दुओंके अधीन था। चूड़ासमावंशके राजपूतोंने बहुत दिन तक इस प्रदेश पर राज्य किया था। १४७६ ई०में अहमदाबादके सुलतान महमूद बेगरने इस प्रदेशको अधिकार किया। सम्राट् अकबरके राजत्व कालमें उनके गुजरातके प्रतिनिधिने इस राज्यको दिल्ली साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया। खाँ आजम् सम्राट् अकबरसे गुजरातके शासनकर्त्ता नियुक्त होने पर जूनागढ़को अपने अधिकारमें लानेके लिये इच्छुक हुये। जूनागढ़का दुर्ग अत्यन्त प्रसिद्ध था। पहले कोई भी इस पर आक्रमण करनेका साहस नहीं करता था। खाँ आजमने इस पर आक्रमण किया सही, किन्तु दुर्गमें बहुतसा खाद्यद्रव्य जमा था, उन लोगोंको विश्वास था कि, दुर्ग अजेय है इसीसे दुर्गके रक्षकोंने पहले आक्रमण कारियोंकी अधीनता स्वीकार न की। उस समय दुर्गमें १०० तोपें थीं। प्रतिदिन अनेक बार वे गोला वर्षण करने लगी। खाँ आजमने कोई दूसरा उपाय न देख कर एक ऊँचे स्थान पर बहुतसी तोपें भेजी और वहींसे गोला वर्षण करनेकी आज्ञा दी। लगातार गोलाके बरसनेसे दुर्ग-

वासियोंको बहुत डर हो गया। तब उन्होंने आत्मसम-
र्पण किया। उसी समयसे जूनागढ़ मुगलोंके अधिकार-
में …।

१७३५ ई०के प्रारम्भमें गुजरातके मुगल-सम्राट्के
प्रतिनिधि अपना अधिकार खोने लगे। इस समय उनके
अधीनस्थ कई एक विश्वासघातक सैन्योंने क्षमताशाली
हो कर गुजरातसे इन्हें भगा दिया और वहां अपना
अधिकार जमाया। उन्हींके उत्तराधिकारी 'नवाब'को
उपाधि धारण कर जूनागढ़में राज्य कर रहे हैं।

प्रवाद है कि पहले जब जूनागढ़में हिन्दूराज्य था
उस समय गिरनारके उग्रसेनको कन्या और अरिष्टनेमि-
की स्त्री राजमतीका वासगृह दुर्गके निकट था। नेमि-
नाथने एक दिन अपने ज्ञातिभ्राता कृष्णका अत्यन्त
प्रकाण्ड शंख बजाया था। कृष्णने उसकी सामर्थ्यसे डर
कर उनका शारीरिक बल हरण करनेके लिए नेमिनाथ-
को १०० गोपियोंके साथ विवाह करने कहा और राज-
मतीके साथ नेमिनाथका विवाह सम्बन्ध स्थिर कर दिया।
कहा जाता है कि 'बाल' वंशीयगण पहले जूनागढ़में
राज्य करते थे। इस वंशके रामराज निःसन्तान थे।
… राजाके साथ उनकी बहिनका विवाह हुआ
था। वह राजा … वंशके थे। रामराजने अपने भानजे
रागारियाको अपना राज्य प्रदान किया। रागारियो
जूनागढ़के चूड़ासमा वंशके राजाओंके आदिपुरुष थे।

रागारियोकी मृत्युके बाद दो राजाओंने जूनागढ़में
राज्य किया। बाद रायदयास सिंहासन पर अभिषिक्त
हुए। इस समय पट्टनके राजाने एक बार जूनागढ़ पर
अधिकार किया। पट्टनकी राजकुमारी जब एक दिन
गिरनारके दर्शनके लिये आ रही थी। रायदयासने
उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर बलपूर्वक उससे विवाह
… चेष्टा की। पट्टन-राजने यह समाचार पा कर
… राजाको दमन करनेके लिये सेनाका एक दल
भेजा।

रायदयासने गिरनार दुर्गमें आश्रय लिया। पट्टन
… बहुत दिन तक इस दुर्गको घेर रखा था सही
… अधिकार … न सका। बाद भग्नमनोरथ
… वह अपनी राजधानीको लौट आनेका प्रयत्न
करने लगा। इतनेमें बिजल नामक एक चारण आ कर
उसके साथ षड़यन्त्रमें शामिल हो गया। बिजल पारि-
तोषिकके लोभसे रायदयासका मस्तक काट कर पट्टन
राजको ला देनेके लिये राजी हुआ। वह चारण जानता
था कि रायदयास कर्णके समान दाता है। वास्तवमें
प्रार्थना करते ही वे अपना सिर उसे अर्पण कर सकते थे।
जिस दिन चारणने राजाके पास प्रस्थान किया उसके एक
रात पहले सोरठको रानीने स्वप्नमें देखा कि एक मस्तकहीन
मनुष्य उसके सामने खड़ा है। इसका शुभाशुभ पूछने
पर ज्योतिषियोंने कहा कि शीघ्र ही उसका स्वामी
अपना मस्तक काट कर किसीको उपहार देगा। रानीने
भयभीत हो कर राजाको छिपा रखा। परन्तु
उस विश्वासघातक बिजलने राजाके गुप्त वासस्थानका
पता लगा कर उनके निकट आया और कुछ गान करने
लगा। राजाने रहस्य और लाठीके सहारे उसे अपने पास
बुलाया। उस पापाशयने राजासे मस्तकके लिये प्रार्थना
की और वे भी उसी समय उसे देनेके लिये राजी हो
गये। सोरठ-रानीने उस पापी चारणका मत बदलनेके
लिये बहुत अनुरोध किया किन्तु निष्फल हुआ। राजा
भी अपनी प्रतिज्ञासे विचलित न हुए। उन्होंने अपना
सिर काट कर उस चारणको देनेका आदेश किया।
राजाकी मृत्युके बाद पट्टनराजने सहजहीमें जूनागढ़
राज्य अपने अधिकारमें कर लिया और थानदारको वहां-
का प्रतिनिधि बना कर स्वराज्यको प्रस्थान किया।

राजा दयासकी पहली स्त्री अपने स्वामीके साथ सती
हो गईं। उनकी दूसरी स्त्री राजबाई अपने पुत्र नोवाण-
के साथ वान्थली नामक स्थानमें रहती थीं। उन्होंने
अपने पुत्रको देवैतबोदर नामक अलिदर-बोडीधारके किसी
अहीरके घरमें छिपा रखा। देवैतके भाईसे यह रहस्य
जान लेने पर थानदारने देवैतको बुला भेजा और नोवाण-
को दे देनेके लिये कहा। इस पर देवैतने जवाब दिया,
"मैं इस विषयमें कुछ भी नहीं जानता, अगर वह
मेरे घरमें होगा तो मैं उसे (नोवण) आपके पास भेज
देनेको लिख सकता हूँ।" देवैतका पत्र पा कर चारों
ओरसे अहीरगण जुट कर युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो
गये। इधर नोवाणको आनेमें विलम्ब देख थानदार

बहुतसी सेना और देवेतबोदरको साथ ले अलिदर-बोड्डिधरमें आ पहुंचा। देवेतने देखा कि अभी इसे रोकनेसे कोई फल नहीं होगा। उन्होंने कोई दूसरा उपाय न देख अपने पुत्र उगको ला कर थानदारके सामने उपस्थित किया। उग और नोघाण दोनों समान उम्रके थे। नरपिशाच थानदारने उगको उसी समय मार गिराया। देवतुल्य उदारहृदयवाले बोदरने एक बिन्दु भी अश्रुपात न को, वरन वे राजकुमार नोघाणको सुरक्षित समझ कर प्रफुल्ल हो गये। उन्होंने अपने जमाई संस्तियोंको बुला कर सब बात कह सुनाई और जूनागढ़के सिंहासन पर नोघाणको अभिषिक्त करनेका परामर्श किया। बोदरकी कन्याके विवाह-उपलक्षमें थानदारको निमन्त्रण दिया गया। उस रक्तपिपासु नरकुल-कलङ्क थानदारके आने पर गुप्तस्थानसे अहीरोंने निकल कर सैन्य समेत उसे मार डाला और इस तरह उन्होंने पापका उपयुक्त प्रतिफल प्रदान किया। ८७४ सम्वत्‌में नोघाण जूनागढ़के सिंहासन पर बैठे। जूनागढ़में राव-चूड़ाचन्द नामके एक राजा थे। उन्हींके समय इस वंशके राजागण "चूड़ासमा" नामसे चले आ रहे हैं। पूर्वोक्त रावगारि भी चूड़ावंशके दूसरे राजा थे।

चूड़ासमावंशके राजा समय समय पर आसपासके देशोंको जय करते थे सही, किन्तु साधारणतः जूनागढ़के अतिरिक्त और किसी दूसरे स्थानमें इनका अधिकार स्थायी न था।

चोर्वाड़ (जूनागढ़) पुरन्दर (कान्तेला) आदि स्थानोंमें संस्कृत भाषामें लिखे हुए बहुतसे शिलालेख पाये जाते हैं।

गप्तोट-इतिहासमें इस स्थानको असिलदुर्ग (असिलगढ़) बतलाया है। कहा जाता है कि कुमार असिलने चाचोकी आज्ञासे गिरनारके समीप एक दुर्ग निर्माण किया था। यही दुर्ग उनके नामानुसार असिलगढ़ नामसे विख्यात हुआ। इस स्थानसे २० मील पश्चिममें प्राचीन बलभीपुरका ध्वंसावशेष पड़ा है। जूनागढ़को राखेनगढ़ गुहामें प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्ग आये थे। उस समय यहां बौद्धोंके ५० मठ थे। जिनमें प्रायः ३००० श्रमण रहते थे।

२ बम्बई विभागमें काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्गत जूनागढ़ नामक करद राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २१° ३१' उ० और देशा० ७०° ३६' पू०में राजकोटसे ६० मील दक्षिण-पूर्व कोणमें अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ३४२५१ है।

जूनागढ़ गिरनार और दातार पर्वतके नीचे अवस्थित है। यह भारतवर्षमें एक परम रमणीय नगर गिना जाता है। यहां दूसरे दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें पुरातत्त्व और ऐतिहासिक रहस्य आविष्कृत होता है।

उपरकोट अर्थात् प्राचीन दुर्गके अनेक स्थानोंमें बौद्धोंसे खोदी हुई कृत्रिम कन्दरायें देखी जाती हैं और दुर्गको खाईके सब स्थानोंमें भी बहुतसी कन्दरायें हैं। खोदी हुई गुहासे वह स्थान मधुचक्रमें परिणत हो गया है। जगह-जगह प्राचीन गुहाका ध्वंसावशेष प्राचीन गौरवका परिचय देता है। राज्यका पूरा आय २६ ½ लाख रुपया है। १८ लाख मालगुजारी आती है। जूनागढ़ अपनी टकसालमें अपना ही रुपया ढालता है। १८ मुनिसपालिटियां हैं। खापराकोडियाकी गुहा अत्यन्त रमणीय है। देखनेहीसे मालूम पड़ता है कि यहां पहले दुतल्ला या तितल्ला एक मठ था। सम्पूर्ण रूपसे पहाड़ काट कर यह गुहा बनाई गई है, जो दुर्गकी रक्षाके लिये बहुत उपकारी है। पूर्व कालमें जब चूड़ासमावंशके राजा यहां राज्य करते थे, तब एक राजाकी बालिका दासियोंसे उपरकोट पर दो सरोवर खोदे गये थे। यहां सुलतान महमूद बेगराने एक मसजिद निर्माण की है। इस मसजिदके निकट १७ फुट लम्बी एक तोप रखी हुई है।

शत्रुओंने उपरकोटको कई बार घेरा और कई बार इसे अपने अधिकारमें किया था। उस विपत्तिके साथ राजा इस स्थानको छोड़ कर गिरनारके ऊपरके दुर्गमें आ कर आश्रय लेते थे। गिरनार दुर्ग अत्यन्त दुरारोह है। इसीसे शत्रुगण इसे सहजहीमें जीत न सकते।

अभी यहां अस्पताल कालेज, पुस्तकालय, हाइस्कूल तथा राज्यकार्यके लिए बहुतसे मकान बने हैं।

अनेक गण्यमान्य प्रधान व्यक्तिके अच्छे अच्छे घर नगरकी शोभाको बढ़ा रहे हैं।

नवाबके वास-भवनके सामने बहुतसी दूकाने हैं जिन्हें लोग महावत्चक्र कहते हैं। यहां एक बड़ा मन्दिर है जिसके ऊपर एक घड़ी लगी हुई है।

प्राचीन जूनागढ़ अभी उपरकोट नामसे मशहूर है। इस नगरको गुजरातके सुलतान महमूदने स्थापन किया था। वर्तमान शहरका प्रकृत नाम मुस्तफाबाद है।

जूनागढ़से प्रायः एक मीलकी पूर्वकी ओर दामोदर कुण्ड नामक एक पवित्र तीर्थ है। एक छोटी निर्झरिणी के जलसे यह कुण्ड सदा भरा रहता है। इस कुण्डके उत्तर और दक्षिणकी ओर बहुतसी घाटें हैं। उत्तर घाटके समीप सभ्रान्त नागर ब्राह्मणोंका श्मशान-मन्दिर और दक्षिण घाटके समीप दामोदरजीका मन्दिर विद्यमान है। यह मन्दिर बहुत पुराना होने पर भी नयासा दीख पड़ता है। कहा जाता है कि वज्रनाभने इस मन्दिरको बनाया था। उन्होंने कृष्णके तीन पुरुषके बाद जन्मग्रहण किया था। इस मन्दिरको ओर जो प्रान्तर है उसकी लम्बाई १०८ फुट और चौड़ाई १२५ फुट है। यहां धर्मशाला और बलदेवजीका एक मन्दिर है। उस मन्दिरके ऊपरमें बहुतसी मूर्तियां खोदी हुई हैं। दामोदरजीके मन्दिरका प्राङ्गण रेवतीकुण्ड तक विस्तृत है। यहां दो प्राचीन शिलालेख और बहुतसी मूर्तियां देखी जाती हैं। इस स्थानमें प्याराबावा मठके समीप ८ कृत्रिम पर्वतगुहा हैं। ये कन्दरायें अभी घाससे ढकी है। इसके सिवा इस पर्वतके दक्षिणकी ओर सात कन्दरायें हैं। यहांकी जुमामसजिद, आदि चड़ी-बाव और नोघाणकूप विशेष प्रसिद्ध है। इस गुहाके ऊपरका मंजला ३७ फुट लम्बा और ३ फुट चौड़ा है। इसमें ६ खम्भे लगे हैं। और खम्भेके ऊपरमें बहुतसी मूर्तियां खोदी हुई हैं। इसके नीचेके मंजलेकी लम्बाई चौड़ाई ४४ फुट है। यह गुहा २८ फुट गहरी हैं। इसके ऊपरमें एक छेद है, उस छेदसे प्रकाश भीतर प्रविष्ट होता है। अहमद खांजीकी मुकर्बा मुसलमान रीतिके अनुसार तरह तरहके भास्करकार्योंसे सुशोभित है। किन्तु इसका भास्करकार्य बहादुरखांजी और लाडली बीबीकी मुकर्बाकी गठनसे भिन्न है।

मृगीकुण्ड या भवनाथ सरोवर तथा उसीके किनारे भवनाथका पुराना मन्दिर विद्यमान है। इस मन्दिरके चौकठमें एक प्राचीन लेख है। गिरनार पहाड़के नीचे बोरदेवीका मन्दिर भी विख्यात है।

जूनागढ़से ६ मील पश्चिममें खेङ्गारबाव हैं। इसके नीचेका भाग दुर्गके-सा है। अभी यह बाव नष्ट हो गया है।

जूनागढ़ और दामोदरकुण्डके मध्यवर्ती पहाड़ पर अशोक, स्कन्दगुप्त और रुद्रदामाके तीन प्राचीन शिला-लेख उत्कीर्ण हैं। जूनागढ़के उत्तर माइबघेची नामक स्थानमें दातार नामकी एक छोटी गुहा है, जिसके समीप ३८ फुट लम्बी एक मसजिद है। इसके द्वारके भास्कर-कार्य तथा खम्भेकी आकृतिकी ओर दृष्टि डालनेसे मालूम पड़ता है कि पहले यहां महादेवका एक मन्दिर था। माइबघेची स्थानके निकट खांप्रा कोड़ियाकी पांच गुहाएं हैं जो दूसरी दूसरी गुहासे मिली हुई हैं। खांप्रा कोड़िया गुहाके विषयमें पहले ही लिखा जा चुका है। इस गुहामें ५८ स्तम्भ लगे हैं और स्तम्भोंके सामने सिंह प्रभृति पशुओंकी मूर्तियां खोदी हुई हैं। तीसरी गुहाकी दीवार पर कारसीका शिलालेख है।

बामनस्थली या बान्थलीमें सूर्यकुण्ड है। जूनागढ़ तथा इसके आसपासके अधिवासी हर एक पर्वको इस सूर्यकुण्डमें स्नान करने आते है। कुण्डकी लम्बाई और चौड़ाई ३२ फुट है।

ऊपरमें जिस जुमामसजिदके विषयमें लिखा गया है, वह पहले हिन्दुओंका एक मन्दिर था और कहा जाता है कि यह राजा बलिका सभाभवन था। इसका अधिकांश मुसलमानोंने छिन्न भिन्न कर इसे मसजिदमें परिणत कर लिया है। इस मसजिदके दक्षिण भागमें एक अन्धकारमय कक्ष है। उस कक्षके एक स्तम्भमें १४०८ सम्वत्का खुदा हुआ एक संस्कृत शिलालेख है।

जूनागढ़के मान्दोल नामक नगरमें भी एक जुमा मसजिद है। यह मकान पहले पहल १२०८ सम्वत्में जेठवाके राजाओंने बनवाया था। बाद १२६४ ई०में समसखांने उसे मसजिदमें परिणत किया। यहांके एक

प्राचीन देवमन्दिरने भी बावली मसजिद नाम धारण किया है। इस मसजिदमें १४५२ सम्वत्‌का एक उत्कीर्ण शिलालेख है। देलवाड़ और ऊनाके समीप गुप्तप्रयाग, ब्रह्मगया, रुद्रगया और विष्णुगया प्रभृति कई एक तीर्थ हैं।

तुलसीश्यामसे दो मील पूर्व भीमचास नामकी एक खाई है। १२फुट ऊंचे स्थानसे जामिरी नदीका जल इस खाईमें गिरता है। कहा जाता है कि एक दिन भीमकी माता कुन्तीदेवीने प्याससे आकुल हो कर भीमसे जल लानेको कहा। भीमने हलसे जमीन छेद कर यथेष्ट जल बाहर निकाला। इसी कारण इस खाईका नाम भीमचास पड़ा है। इसके निकट कुन्तीर नामक एक मन्दिर विद्यमान है। मूलापाड़ा ग्रामके चरणेश्वर कुण्डमें अनेक यात्री पर्वके उपलक्षमें स्नान करनेको आते हैं। इस कुण्डसे थोड़ी दूर पर एक सूर्यका मन्दिर है। इस मन्दिरके द्वार पर एक उत्कीर्ण शिलालेख है।

चक्रतीर्थ (विष्णुगया)में एक प्रस्तर-लिपि पाई जाती है। यह लिपि बालबोध अक्षरमें लिखी है। जनागढ़के पासका गिरनार पर्वत पहले उज्जयन्त नामसे विख्यात था। उज्जयन्त देखो। गिरनार पहाड़के २०००फुट ऊंचे स्थान पर बहुतसे प्राचीन जैनमन्दिर हैं।

गिरनारके भवनाथ-सङ्कटके निकट दो छोटी नदियां प्रवाहित हैं, जिनमेंसे एकका नाम सोनारेखा है। इस स्थानके निकट एक प्राचीन बांधकी रेखा देखी जाती है। यह बांध दामोदरकुण्डके समीप मुसलमान फकीर जरामाकी मसजिदके ठीक विपरीत ओर पड़ता है। रुद्रदामाका जो उत्कीर्ण शिलालेख पाया गया है, उसमें लिखा है, कि यह बांध राजा रुद्रदामाके राजत्व कालके बाईसवें वर्ष टूट फूट गया था। किन्तु कोई कोई प्रत्नतत्त्ववित् रुद्रदामाके राजत्वकालमें यह बांध था, इसके विषयमें सन्देह प्रगट करते हैं। उनका कहना है, कि यह बांध रुद्रदामाके बाद बनाया गया है और उत्कीर्ण शिलालेखमें जो समय वर्णित है, वह क्षत्रप-मुद्राका प्रचारकाल है।

पुष्यगुप्तने गिरनार पहाड़के नीचे सुदर्शन नामका एक सरोवर खुदवाया था। एकदिन अकस्मात् वृष्टि हो जानेसे इसका जल इतना बढ़ गया था कि जलकी धारासे एक बांधका बहुत भाग टूट फूट गया था। जूनागढ़में सुदर्शन कुंडका नाम अभी बिलुप्त हो गया है।

जूनापाडर—बम्बई प्रान्तकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक क्षुद्र राज्य।

जूनियर (अं० वि०=Junior) कालक्रमसे पिछला, छोटा, जो पीछेका हो।

जूनिर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पूना और नासिक नगरके बीचका एक नगर। इसके समीप बहुतसे बौद्ध-मठ और गुहाएँ हैं जो देखनेमें बहुत उमदा हैं।

जूनोना—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत चन्दा जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० १९° ५५' उ० और देशा० ७९° २६' पू०में बल्लालपुरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। मालूम होता है, जब बल्लालपुरमें चन्दाके गोंडको राजधानी थी, तब इसके साथ जूनोना संयुक्त था। इस ग्राममें एक पुराने तालाबके किनारे प्राचीन प्रासादका भग्नावशेष पड़ा है। इसके बगलहीमें ४ मील लम्बा एक प्राचीरका भग्नावशेष है। किसी समय इस तालाबमें बहुतसे जलके नाले जमीनके भीतरसे मिले थे।

जूप (हिं० पु०) १ द्यूत, जूआ। २ विवाहमें होनेवाली एक रिवाज। इसमें वर और वधू परस्पर जूआ खेलते हैं। इसको पासा भी कहते हैं।

जूबा—मध्यप्रदेशके छोटानागपुर विभागमें सरगुजा राज्यके अन्तर्गत एक परित्यक्त दुर्ग। यह अक्षा० २३° ४२' उ० और देशा० ८३° २६' पू०में मानपुरा ग्रामसे लगभग २ मील दक्षिण-पूर्व एक पहाड़के ऊपर अवस्थित है। दुर्गके नीचे एक गहरी खाई है। यहांके जङ्गलमें जगह जगह पुराने मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। खंडहरोंके ऊपर बहुतसे वृक्ष लगे हैं। मन्दिरमें अनेक प्रकारकी खोदी हुई मूर्तियां और लिङ्ग प्रतिष्ठित थे।

जूम—बङ्गालके अन्तर्गत चट्टग्रामके पार्वत्य प्रदेशका एक कृषिकार्य। जितनी भी पार्वत्य जाति प्रधानतः इस प्रकारका कृषिकार्य करती हैं, उन सबको 'जूमिया' कहते हैं तथा मध्यप्रदेश और छोटानागपुर आदि स्थानों-

में 'पोड़ा' और 'दाहन' वगैरह कहते हैं। पार्वत्य प्रदेशोंमें प्रायः सभी जाति इसी प्रणालीसे खेती करते हैं।

ग्रीष्मके प्रारम्भमें पर्वतके पासका कोई एक जङ्गल चुन लिया जाता है। फिर उसे काट कर कुछ दिन सुखाया जाता है। सूख जाने पर उसमें आग लगा दी जाती है, जिससे बड़े बड़े पेड़ोंके सिवा सब कुछ जल कर भस्म हो जाता है और तो क्या, जमीन भी ३।४ अङ्गुल नीचे तक जल जाती है। भस्मादि वहीं पड़ी रहती है। ऐसा करनेसे उस दग्ध भूमि की उर्वरता बहुत बढ़ जाती है, तिस पर भी यदि बाँसका जङ्गल हो तो कहना ही क्या है। कभी कभी इस आगसे ग्राम आदि भी जल जाते हैं।

जङ्गल जल चुकने पर अवशिष्ट अर्द्धदग्ध काष्ठादिको हटाकर उससे घिराव लगाया जाता है। इसके बाद किसान(वा जुमिया) लोग गाँवमें जाकर वर्षाकी बाट देखते रहते हैं और जब आकाशमें घने बादल दिखलाई देते हैं, तब स्त्री पुत्रोंके साथ खेतमें हाजिर होते हैं। हर एकके हाथमें एक एक खुरपी या दाँती तथा कमरसे धान, बाजरा, कपास, लोकिया, कुम्हड़ा, तरबूज आदिके बीज बंधे रहते हैं, जमीनमें हल जोतनेकी जरूरत नहीं और न कुदाली चलानेकी। खुरपासे ६।७ अंगुल गहरे गड्ढे करके उसमें बीज डाल कर मट्टी ढक देनेसे ही काम चल जाता है। इसके बाद ही यदि एक बार वर्षा हो जाय, तो बहुत ही जल्द पेड़ उपज आते हैं। यह कहना फिजूल है कि यदि अच्छी तरह फसल हो तो औरोंसे ये दूना तिगुना लाभ उठाते हैं।

बीजोंके अङ्कुरित होते ही जुमिया लोग घर छोड़ खेतोंके पास झोंपड़ी बना कर रहते हैं और जंगली जानवरोंके उपद्रवोंसे खेतकी रक्षा करते हैं। सबसे पहले श्रावणमासमें बाजरा काटा जाता है। इसके बाद तरह तरहकी शस्य पैदा होती है और अन्तमें धान तथा और और अनाज पकते हैं। कार्तिक मासमें कपास होती है। इस खेतीसे १२ बीघा जमीनमें ४५ मन धान, १२ मन कपास, तथा बाजरा, तरकारी आदिकी पैदावार होती है। जूम खेत साधारणतः बहुतसे मिले हुए रहते हैं। फिलहाल गवर्णमेण्टका ध्यान जङ्गलों की उन्नतिकी तरफ गया है, इसलिए यह प्रथा अब प्रायः उठ गई है।

जूरगढ़—बरारप्रदेशके अन्तर्गत बुलडाना जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह चिकनीके निकट अवस्थित है। यहां एक हेमाड़पन्थी मन्दिर विद्यमान है।

जूरा (हिं० पु०) जूड़ा देखो।

जूरी (हिं० स्त्री०) १ घास, पत्तों या टहनियोंका एकमें बंधा हुआ छोटा पूला, जुट्टी। २ एक प्रकारका पक्वान। यह पौधोंके नये बंधे हुए कल्लोंको गीले बेसनमें लपेट घीमें तल कर बनाया जाता है। ३ गुजरात कराची आदिके खारे दलदलमें होनेवाला एक तरहका झाड़ वा पौधा। इससे क्षार बनता है। ४ सूरन वगैरहके नये कल्ले जो बंधे होते हैं।

जूरी—(अंग्रेजी Jury, लाटिन 'जुरेटा' Jurata, अर्थात् शपथ शब्दसे जूरीकी शब्दकी उत्पत्ति हुई है।) वह पंच जो अदालतमें जजके साथ बैठ कर मुकदमोंके फैसलेमें सहायता करते हैं। जूरी कहनेसे, अभियोग सम्बन्धी किसी विषयकी सत्यताकी खोज करने अथवा किसी विषयकी मीमांसा करनेकी जिनकी सामर्थ्य है और जिन्होंने अपने कर्तव्यको न्यायपूर्वक पालनेकी प्रतिज्ञा (शपथ) की है, ऐसे निर्दिष्ट संख्यक कुछ व्यक्तियोंका बोध होता है।

विचारकार्यमें जूरी (सभ्य) विचारकके सहायक स्वरूप हैं। विचारक सम्पूर्ण विषयकी खोज न कर सकनेके कारण सम्भव है अन्यान्य फैसला कर दे। वादी प्रतिवादीकी पूरी बात पर लक्ष्य न रख सकनेके कारण मुमकिन है कि मुकदमाके सम्पूर्ण विषयकी आलोचना न कर सकें; सम्भव है कभी कभी विशेष कारणवशतः इच्छापूर्वक अन्याय विचार कर दें। इसलिए जिससे ये सब दोष न होने पावें और विचारक बारीकीसे विचार कर सकें, जूरी उनकी सहायता करते हैं।

इंगलैण्डमें पहिले पहल किस समय जूरी-प्रथा प्रवर्त्तित हुई, इसका पता लगाना दुःसाध्य है। कोई कोई कहते हैं—आंग्लो-साक्सनोंके (Anglo-saxon) समयसे यह प्रथा प्रारम्भ हुई है। और किसी

किसीका यह कहना है कि नर्मानोंने इंगलैण्डमें इस विचार-प्रथाकी सृष्टि की थी। कुछ भी हो, दूसरे हेनरीके राजत्वकालसे पहले इंगलैण्डमें जूरी विचारप्रथा सम्पूर्णरूपसे और सर्वाङ्गीनरूपसे प्रचलित नहीं हुई। शुरूआतमें जूरीके विचारके जरिये यथार्थ अभियोगका तथ्य निर्द्धारित होता था और सातवें हेनरीके राजत्वकाल तक जूरीका विचार साक्षी (गवाही)के विचारका नामान्तरस्वरूप था।

अभियोग सुननेसे पहले जूरियोंको शपथ या प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। सातवें हेनरीके समय तक जूरी सत्यवचन कहनेकी शपथ करते थे, किन्तु साक्ष्यके अनुसार उचित अभिमत (Verdict) प्रकट करेंगे, ऐसे किसी वाक्यका उल्लेख नहीं करते थे। विचारालयमें जूरी-प्रथा प्रवर्त्तित होनेके बहुत पहलेसे ही राजकार्य सम्बन्धी किसी विशेष अनुसन्धानके लिए जूरी-प्रथा प्रचलित थी। आजकल दीवानी और फौजदारी दोनों तरहके मुकदमोंमें जूरी बैठाई जाती है। प्रत्येक जूरीमें १२ सभ्य चुने जाते हैं और सभीको 'साक्ष्यके अनुसार मुकद्दमके तथ्य और मर्मको प्रकट करेंगे, ऐसी शपथ उठानी पड़ती है। साधारण विचारालयमें तीन प्रकारकी जूरी बैठती है, जैसे—ग्राण्ड (Grand) अर्थात् प्रधान जूरी, पेटी (Petty) अर्थात् छोटी जूरी इसको Common अर्थात् साधारण जूरी भी कहते हैं) और स्पेशल (Special) अर्थात् खास जूरी। साधारणतः फौजदारी मुकद्दमाके फैसलामें प्रधान जूरी संगठित की जाती है। २६ वर्षसे कम उम्रका कोई भी व्यक्ति जूरीके आसन पर नहीं बैठ सकता और ६० वर्षसे ज्यादा उम्रवालेको भी साधारणतः जूरीमें नहीं बैठाया जाता।

इंगलैण्डमें जिसकी वार्षिक १०० रु० आयकी कोई सम्पत्ति हो अथवा जिनके पास २०० रु० आयकी किसी सम्पत्तिके अधिकारका २१ वर्ष या उससे अधिक समय तकके लिए पट्टा लिखा हो, अथवा जिनका रहनेका मकान १५ या उससे अधिक वातायनविशिष्ट (झरोखेदार) हो, वे ही जूरीके सभ्य रूपमें चुने जा सकते हैं। लण्डन नगरमें मकान दूकान और व्यवसाय-स्थलके स्वत्वाधिकारी और जिसकी वार्षिक आय १००० रु० हो ऐसा कोई भी व्यक्ति जूरीका सभ्य हो सकता है। विचारक, पादरी, रोमन-काथलिक सम्प्रदायके याजक, वकील, औषधविक्रेता, नौसेनानी, भृत्य शरीफके कर्मचारी और पुलिसके सिपाही (कानष्टेबिल) आदि जूरीके सभ्य नहीं चुने जा सकते।

प्रत्येक गिर्जाके अध्यक्ष उस गिर्जाके अन्तर्भुक्त जूरी होनेके योग्य व्यक्तियोंके नामोंकी एक एक सूची बना कर उसे सेप्टेम्बर (भाद्र-आश्विन) मासके प्रथम तीन रविवारको अपने अपने गिर्जाके दरवाजों पर लटका देते हैं। इस सूचीमें किसीको कुछ आपत्ति होने पर शान्तिरक्षक विचारकगण (Justice of peace) उसकी मीमांसा करके सूची पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। सेप्टेम्बर मासके शेष सप्ताहमें यह कार्य समाप्त हो जाया करता है।

सूची पर हस्ताक्षर हो जानेके बाद कर्मचारिगण उसे डाकके जरिये शरीफ (Sheriff)के कर्मचारीके पास भेजते हैं और निर्दिष्ट पुस्तकमें लिखे जाने बाद वह शरीफके पास पहुंचती है। निर्दिष्ट पुस्तकमें जिनके नाम लिखे जाते हैं, दूसरे वर्ष वे ही जूरी नियुक्त होते हैं। १ली जनवरीसे इसी सूचीके अनुसार कार्य होता है।

जो उच्चपदस्थ व्यक्ति और गण्यमान्य व्यवसायी है, उनके नाम एक दूसरी सूचीमें लिखे जाते हैं। शरीफ इस सूचीके छांट छांट कर खास जूरी (Special Jury) की तालिका बनाते हैं। जब जूरीकी आवश्यकता होती है, तब विचारक शरीफको खबर देते हैं; शरीफ जूरियोंको उपस्थित होनेके लिए संवाद देते हैं। शरीफ प्रत्येक जूरीके पास अपनी मुहर सहित पत्र लिख कर डाकके जरिये (जूरी-बुकमें जो पता लिखा रहता है, उस पतेसे) भेजते हैं। मुकद्दमेके फैसलेसे ७ दिन पहले शरीफके कार्यालयमें जा कर जूरीकी सूची देखी जा सकती है और जिनके नाम उसमें दिये गये हैं, किसी कारणसे वादी प्रतिवादी उनसे सहमत न हों, तो कह सकते हैं। यदि उपयुक्त कारण हो तो जिन जूरियोंके लिए उनकी सम्मति नहीं हैं, उनके नाम काट कर

दूसरे नाम चुने जा सकते हैं। जब मुकदमेका विचार प्रारम्भ होता है, उस समय शरीफ जूरियोंकी सूची विचारकके पास भेज देते हैं। प्रायः साधारण जूरियोंके सूची ही बना करती है, परन्तु वादी या प्रतिवादी खास जूरीके लिए प्रार्थना कर सकते हैं। विचारक यदि उस मुकदमेमें खास-जूरीकी आवश्यकता है, ऐसा कोई मन्तव्य प्रकट न करें तो जो खास जूरीके लिए प्रार्थना करते हैं, उन्हें ही उसका अतिरिक्त व्यय झेलना पड़ता है।

खास जूरीको आह्वान करते समय खास-जूरीकी तालिकासे ४८ नाम चुने जाते हैं। इनमेंसे किसीके भी १२ नाम वादी प्रतिवादीकी इच्छाके अनुसार काटे जाते हैं। बाकीके २४ नाम एक एक टिकटों पर लिख कर एक बक्स अथवा कांचके पात्रविशेषमें रक्खे जाते हैं। पीछे उनमेंसे १२ टिकटें निकाली जाती हैं, उन टिकटोंमें जिनके नाम होते हैं, उन्हींको चुन कर आह्वान किया जाता है। इनमेंसे किसीके अनुपस्थित होने पर अथवा किसी कारणसे जूरी होनेके अनुपयुक्त होने पर उनकी जगह दूसरे व्यक्तिको चुन लिया जाता है।

मनोनीत जूरीकी तालिकामें दो प्रकारकी आपत्ति हो सकती हैं। एक तो यह कि मनोनीत समस्त जूरियोंके प्रति आपत्ति करना और दूसरी यह कि उपस्थित जूरियोंमेंसे एक वा कई जनोंके लिए उज्र करना। अंग्रेजी भाषामें पहलीको Challenge to the array और दूसरीको Challenge to the polls कहते हैं।

शरीफ अथवा उनके नीचेके कर्मचारीके दोषसे पहली आपत्ति हो सकती है। दूसरी आपत्ति ४ प्रकारसे हो सकती है—१म, किसीका उपयुक्त सम्मान करनेके लिए पार्लियामेण्टके किसी लार्डको सभ्य चुननेसे; २य, जूरी होनेके उपयुक्त न होनेसे; ३य, पक्षपात होनेकी आशङ्का होनेसे और ४र्थ, चरित्र-सम्बन्धी दोषके कारण चुने हुए जूरीकी बदनामी और उनकी न्यायपरता पर विश्वास न होनेसे। जूरी श्रेणीसे नाम निकल जानेसे या अन्य किसी कारणसे यदि विचारके समय उपयुक्त संख्यक जूरी उपस्थित न हों, तो संख्या पूर्तिके लिए दोनों पक्षकी सम्मतिके अनुसार पहलेकी बनी हुई सूचीसे किसी भी व्यक्तिको आह्वान किया जा सकता है। नियमित संख्याकी पूर्तिके लिए न्यायालयमें उपस्थित किसी भी व्यक्तिको आह्वान किया जा सकता है, यदि वे जूरीके आसन पर बैठें अथवा बुलाये जाने पर वे न्यायालयसे बिना अनुमतिके चले जांय, तो न्यायकर्ता इच्छानुसार उन्हें अर्थदण्डसे दण्डित कर सकते हैं। जूरी होनेके लिए किसीको आह्वानलिपि (Summons) भेजी जाने पर यदि वे उस पर ध्यान न दे कर उपस्थित न हों, तो उन पर अर्थदण्ड हो सकता है।

जूरियोंके उपस्थित होने पर उनको मुकदमेका तथ्य प्रकट करने और साक्षाके अनुसार उचित सम्मति देनेके लिए पृथक् पृथक् शपथ उठानी पड़ती है। इसके बाद वादीकी तरफका वकील जूरियोंके पास मुकदमा पेश करता है; आवश्यकता होने पर पहले जिसको विस्तृत भावसे आलोचना हो चुकी है, जूरियोंके पास फिर उसका संक्षेपसे वर्णन करता है। इसके बाद प्रतिवादीका वकील अपने पक्षका समर्थन करता है। प्रतिवादीके वकीलकी वक्तृता समाप्त होने पर वादीका वकील उसका उत्तर देता है। पीछे न्यायाध्यक्ष मुकदमेका मर्म जूरियोंसे कहते हैं और साक्षाके प्रति लक्ष्य रख कर अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं। फिर सब जूरी मिल कर एक निर्दिष्ट मन्त्र भवनमें जाते हैं और परस्पर तर्क-वितर्क करके उपस्थित विषयका एक सिद्धान्त निश्चित करते हैं। पीछे वे अपनी सम्मतिको प्रकट करनेके लिए फिर न्यायालयमें आ कर अपना अपना आसन ग्रहण करते हैं। जिससे वे शीघ्र ही सिद्धान्त स्थिर कर लें, इसलिए मन्त्रभवनमें वे कुछ खा-पी नहीं सकते। जिस समय जूरीगण अपना मन्तव्य प्रकट करेंगे, उस समय वादीकी उपस्थिति होनी आवश्यक है। जूरियोंमें एक प्रधान (Grand) रहते हैं, जो उनके मन्तव्यको प्रकट करते हैं। उनका मत विचारालयकी पुस्तकमें लिखे जाने पर ये अपने अपने आसनोंको छोड़ देते हैं।

दीवानी मुकदमेके फैसलेके लिए जूरी-प्रथाके जैसे नियम हैं, फौजदारी मुकदमेके लिए भी वैसे ही नियम

हैं। बड़े भारी अपराधमें अपराधीके फैसलेके समय उसको कुछ ज्यादा क्षमता दी जाती है, जिसको अंग्रेजीमें Peremptory Challenge कहते हैं। अपराध-सहित मुकदमेमें अपराधियोंके इच्छानुसार जूरियोंमेंसे किसी निर्दिष्ट संख्यक जूरियोंके नाम काटते समय, अपराधीने कोई कारण बतलाया या नहीं, इस पर किसी तरहका लक्ष्य नहीं रक्खा जाता। किसी विदेशीके फैसलेके समय आधे विदेशी जूरी नियत किये जाते हैं। यदि आधे न मिलें, तो जितने मिलें उतने ही चुन लिए जाते हैं। जूरी बनने योग्य आमदनी न होने पर भी उसका नाम नहीं काटा जा सकता; दूसरी कोई आपत्तिसे भले ही काटा जा सकता है।

पहले इंग्लैण्डमें ऐसा नियम प्रचलित था कि यदि जूरियोंका विचार अन्याय हुआ, तो उनको दण्डित होना होगा और उनकी सम्पत्ति राजकोषमें मिला ली जायगी।

जूरियोंके अपराधीको अपराधी कह देने पर ही उसको दण्ड दिया जाता है अन्यथा छोड़ दिया जाता है।

अदालतके आदेशानुसार यदि कोई जूरी उपस्थित न हो तो उन पर १००) रुपये तक जुर्माना हो सकता है; जुर्मानेके रुपये न देने पर १५ दिनके लिये उन्हें दीवानी जेलमें भेजा जाता है।

सेसन मुकदमाके फैसलेमें विचारक जूरियोंको सब नालिशें एक एक करके लिखा देते हैं।

हाईकोर्ट अथवा सेसन अदालतमें यूरोपीय ब्रुटिश-प्रजाके विचारके लिए जूरियोंके मनोनीत होनेसे पहले ही यदि अपराधी चाहे, तो यूरोपीय और अमेरिकन-मिश्र-जूरीके जरिये न्याय करा सकता है। जो जूरी चुने जाते हैं, इसलिए मिश्र-जूरीमें एक जातीय जूरी अवश्य ही अधिक होते हैं।

यूरोपीय या अमेरिकन होने पर अभियुक्त व्यक्तिके इच्छानुसार मिश्र-जूरीके द्वारा विचार हो सकता है।

स्थानीय गवर्मेण्ट कभी कभी सरकारी समाचार-पत्रोंके जरिये भी इस बातका निश्चय कर सकती है कि, कौन कौनसे मुकदमोंका विचार जूरीके द्वारा होगा और चाहे तो जिन मुकदमोंका फैसला जूरीकी सहायतासे होना निश्चित हो गया है, उस प्रस्तावको रद्द भी कर सकती है।

हाईकोर्टके तमाम सेसन-मुकदमोंका फैसला जूरीकी सहायतासे होता है। हाईकोर्टके आदेशानुसार कभी कभी खास खास मुकदमोंका विचार जूरीके सहाय्यसे किया जा सकता है।

अपराधी यदि अपराधको मंजूर करे, तो विचारक जूरीकी सम्मति बिना लिये भी मुकदमेका फैसला दे सकता है।

अपराधीके दोष स्वीकार करने पर भी यदि विचारकको ऐसा सन्देह हो जाय कि, उसके मनके विकारसे ऐसा हुआ है, तो उस मुकदमेका फैसला जूरीकी सहायतासे होता है।

अपराधी पहले दोष अस्वीकार करके यदि पीछेसे वह स्वीकार भी करे, तो भी विचारक जूरीके मतके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते।

जूरी विचारककी अनुमति लेकर गवाहियोंसे प्रश्न कर सकते हैं। विचारक यदि उचित समझें कि, जिस स्थान पर अभियोगका कारण उपस्थित हुआ है, उस स्थान पर या अन्य किसी स्थान पर जूरियोंका जाना आवश्यक है, तो अदालत किसी एक कर्मचारीके साथ उनको वहां भेज सकती है। अदालतकी तरफसे कोई एक निर्दिष्ट व्यक्ति जूरियोंको उक्त स्थान दिखाता है और अदालतकी अनुमतिके बिना कोई भी जूरी किसीसे बातचीत न कर सकें, इस बात पर उसे विशेष दृष्टि रखनी पड़ती है।

यदि किसी जूरीको अभियोगके विषयमें कुछ मालूम हो, तो वे उस बातको विचारकसे कहेंगे; उनसे भी गवाहियोंकी तरह प्रश्न किये जा सकते हैं।

मुकदमेका विचार स्थगित होने पर निश्चित दिनको जूरियोंके विचारालयमें उपस्थित होना पड़ता है।

वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षोंका वादानुवाद शेष होने पर विचारक जूरियोंसे अभियोगका मर्म और साक्ष्य साफ साफ प्रकट करेंगे। हाईकोर्टके आदेशानुसार विचारके अन्त तक जूरियोंको एकत्र रखना पड़ता है।

जूरियोंके जानने योग्य कुछ विषय—

१। कौनसी सत्य घटना है, इस पर खयाल कर विचारकके आभासके अनुसार यथार्थ मतको प्रकट करना।

२। दस्तावेज और अन्यान्य विषयमें कानूनके विषयको छोड़ कर अन्य विषयोंमें जो जो पारिभाषिक और प्रादेशिक शब्द व्यवहृत होते हैं, उनके अर्थका निर्णय करना।

३। घटनासम्बन्धी समस्त प्रश्नोंकी मीमांसा करना।

४। घटनाके विषयमें जो साधारण बातें प्रकट हुई हैं, वे विशेष घटनामें मिलाई जा सकती हैं या नहीं?

विचारक उचित समझे तो जूरियोंसे घटना, अथवा घटना और कानूनसे मिले हुए किसी विषयमें अपना अभिमत कह सकते हैं।

पहले लिखा जा चुका है कि, जजके पाससे अभियोगका मर्म अवगत हो कर जूरीगण आपसमें मीमांसा करनेके लिए एक निर्दिष्ट सभा भवनमें जाते हैं। यदि उनमें सबका मत एकसा न हो, तो विचारक उन्हें पुनः परामर्श करनेके लिये भेज सकते हैं। फिर भी यदि उनका एक मत न हो, तो वे भिन्न भिन्न मत प्रकट करते हैं।

विशेष कोई कारण न होने पर जूरी समस्त अभियोगोंमें एक मत प्रकट करते हैं। विचारक जूरियोंको उनके मतके विषयमें प्रश्न कर सकते हैं। विचारकको उन प्रश्नों और उनके उत्तरोंको लिख रखना पड़ता है।

भ्रम अथवा अकस्मात् किसी कारणसे जूरियोंका मत अन्यायपूर्ण हो, तो लिखे जानेसे कुछ देर बाद वे अपने मतका संशोधन करा सकते हैं।

हाईकोर्टमें विचारके समय यदि जूरियोंमेंसे कुछ जूरियोंका एक मत हो और विचारक यदि अधिकांशके साथ एक मत न हो कर भिन्न मतावलम्बी हों, तो वे उसी समय उस जूरीको छोड़ सकते हैं। एक जूरीको छोड़ कर यदि विचारककी इच्छा हो तो दूसरी जूरी कायम कर उसकी सहायतासे विचार कर सकते हैं। जूरियोंका मत यदि इतना अन्यायपूर्ण हो कि, जिसका सामान्य अनुधावन न करनेसे पता लग सकता है, तो सेसन जज भी उनके मतके विरुद्ध कार्य कर सकते हैं। हाईकोर्ट जूरियोंके किसी भी विचारमें हस्तक्षेप नहीं करता। सेसन-जज यदि हाईकोर्टमें उनके मतके विरुद्ध कार्य करनेमें अपना मत प्रकट कर लिखें तो हाईकोर्टके जज विचार कर कभी तो जूरियोंके साथ और कभी सेसन-जजके साथ एकमत प्रकट करते हैं।

जूरियोंकी सहायतासे विचार्य अभियोग यदि एससेसरकी सहायतासे विचारित हो और आदेश लिखे जानेसे पहले यदि उस विषयमें किसी तरहकी आपत्ति उपस्थित न हो, तो वह विचार (न्याय) अग्राह्य न होगा।

पहले भारतवर्षमें इस समयकी भाँति जूरीकी प्रथा नहीं थी। हाँ न्यायाधीशको सहायता देनेके लिए सभ्य वा एससेसर नियुक्त रहते थे। सभ्यगण प्रायः श्रेष्ठी वा व्यवसायी होते थे। सभ्य देखो।

इस समय भारतवर्षमें सब तरहके मुकदमोंके फैसलाके लिये जूरी प्रथा प्रचलित नहीं है। साधारणतः सेसन (Session) मुकद्दमोंके विचारके लिए जूरीको बुलाया जाता है।

जूर्ण (सं० पु०) जूर-क्त। तृणभेद, एक प्रकारकी घास। इसके पर्याय—उलूक और उलप है।

जूर्णाख्य (सं० पु०) जूर्ण इति आख्या यस्य, बहुव्री०। तृणविशेष, एक घास। इसके पर्याय—सूच्यग्र, स्थूलक, दर्भ और खरच्छद है।

जूर्णाह्वय (सं० पु०) जूर्ण इति आह्वयः आख्या यस्या, बहुव्री०। देवधान्य।

जूर्त्ति (सं० स्त्री०) ज्वर-क्तिन्। ज्वरत्वरेति। पा ६।४।२०। ज्वर, बुखार। → see below

जूर्णि (सं० स्त्री०) ज्वर-नि। वीज्याज्वरिभ्यो निः। उण् ४।४८। ज्वरत्वरेति। पा ३।४।२०। इत्यूट् च। १ वेग, तेजी। २ स्त्रीरोग, औरतोंका एक रोग। ३ आदित्य, सूर्य। ४ देह, शरीर। ५ ब्रह्मा। जूर कोपे नि। ६ क्रोध, गुस्सा। (त्रि०) ७ वेगयुक्त, वेगवान्, तेज़। ८ द्रवयुत, गला हुआ। ९ तापक, ताप देनेवाला। १० स्तुतिकुशल, जो स्तुति करनेमें निपुण हो।

जूर्णिन् (सं० त्रि०) वेगयुक्त, तेज़।

जूर्त्ति (सं० स्त्री०) ज्वर-भावे क्तिन्। ज्वरत्वरेति। पा ६।४।२०। ज्वर, बुखार।

जूर्य्य (सं० त्रि०) जूर कर्त्तरि-ण्यत्। १ जीर्ण, पुराना। २ वृद्ध, बुड्ढा।

जूष (सं० क्लो०) यूष-पृषोदरादित्वात् साधुः। १ यूष, झोल, कढ़ी, रसा। किसो उबालो वा पकाई हुई वस्तुका पानी। २ उबाली या पकाई हुई दालका पानी।

जूषण (सं० क्लो०) जूष्यते ऽनेन करणे जूष-ल्युट्। वृक्षविशेष, धाय नामक पेड़।

जूस (हिं० पु०) १ मूंग, अरहर आदिकी पकी हुई दालका पानी। यह प्रायः रोगियोंको पथ्य रूपमें दिया जाता है। २ किसी उबाली वा पकाई हुई वस्तुका पानी, रसा। ३ युग्म संख्या, सम संख्या।

जूसताक (हिं० पु०) छोटे छोटे लड़कोंके खेलनेका एक प्रकारका जुआ। इसमें एक लड़का अपनी मुट्ठीमें कुछ कोड़ी छिपा कर दूसरे लड़केका कोड़ियोंकी संख्या जाननेके लिये पूछता है। अगर वह ठीक ठीक कह देता है तो उसकी जीत होती है और अगर ठीक ठीक बता न सका तो उसको उतनी ही कौड़ियां देनी पड़तीं जितनी उस लड़केकी मुट्ठीमें रहती हैं।

जूसी (हिं० स्त्री०) चोटा ईखके रसका वह लसीला रस जो उसके पकते रसका गुड़के रूपमें ठोस होनेके पहले उतार कर रक्खा जाता है, खाँड़का पसेव।

जूहर (हिं० पु०) राजपूतोंकी प्राचीन प्रथा। इसके अनुसार जब स्त्रियां जानती थीं कि दुर्गमें शत्रुओंका प्रवेश किसी हालतसे रुक नहीं सकता तो वे चिता पर बैठ कर जल जाती थीं और पुरुष दुर्गके बाहर लड़नेके लिये निकल पड़ते थे।

जूही (हिं० स्त्री०) १ हिमालय पर्वतके अञ्चलमें आपसे आप होनेवाला एक प्रकारका झाड़ या पौधा। इसके फूल सुगन्धित होनेके कारण यह बगीचोंमें लगाई जाती है। इसके फूल सफेद चमेलीसे मिलते जुलते हैं पर चमेलीसे बहुत छोटे होते हैं। फूल बरसातमें लगते हैं। इसके फूल चमेलीसे मिलते हैं सही लेकिन दोनोंके पौधोंमें बहुत विभिन्नता है। इसका पौधा कुन्दसे मिलता है। एक प्रकारका अतर जूहीके फूलसे बनाया जाता है। २ एक प्रकारकी आतशबाजी। इसके छूटने पर छोटे छोटे फूलसे झड़ते दिखाई पड़ते हैं। ३ सेम, मटर आदिकी फलियोंमें लगनेवाला एक प्रकारकी कीड़ा।

जृम्भ (सं० पु०-क्लो०) जृभि भावे घञ्। १ मुखकी वह क्रिया जो आलस्य वा निद्राका आवेश होने पर अपने आप ही हो, जँभाई, जमुहाई, उबासी। इसके संस्कृत पर्याय ये हैं—जृम्भण, जृम्भा, जृम्भिका, जम्भा, जम्भका। जृम्भका लक्षण सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—मुखव्यादान मुंह फाड़ कर बाहरकी वायुको खींचने और फिर उसको नेत्र-जलके साथ निकाल देनेको जृम्भ वा जँभाई कहते हैं। (सुश्रुत शा० ४ अ०)

वायुके कारण भी जँभाई आती है, उस वायुका नाम देवदत्त (पञ्चवायुमेंसे एक वायुको देवदत्त कहते हैं)। निद्रा देखो।

छिपकली गिरने पर, छींक और जँभाई आने पर चुटकी बजानी चाहिये। किसी स्मृतिके मतसे—जो चुटकी नहीं बजाता, वह ब्रह्मघ्न होता है। (तिथितत्त्व)

जभाई आने पर उत्तम शय्या पर शयन अथवा कड़ुए तेलकी मालिश करें और स्वादिष्ट पदार्थ वा ताम्बूल खावें। इससे जृम्भवेग प्रशमित होता है। (वैद्यक) २ आलस्य, आलस, सुस्ती।

जृम्भक (सं० त्रि०) जृम्भ-ण्वुल्। १ जृम्भाकारक, जो जँभाई या उबासी लेता हो, जिसको हमेशा जँभाई आती हो, उबासी लेनेवाला। (पु०) २ रुद्रगणभेद, रुद्रगणोंमेंसे एक। (भारत० वन० २३० अ०)

जृम्भयति जृभि ण्वुल्। ३ अस्त्रविशेष, एक हथियार। रामके द्वारा ताड़का आदि राक्षसोंके मारे जानेके उपरान्त महर्षि विश्वामित्रने राम पर प्रसन्न हो कर उन्हें मन्त्रयुक्त यह अस्त्र दिया था। विश्वामित्रने यह अस्त्र कठोर तपस्या करके अग्निसे लिया था। इस अस्त्रके प्रयोग करनेसे सब लोग निद्रित हो जाते थे। विश्वामित्रके वरसे रामतनय लव और कुशको भी यह अस्त्र प्राप्त हुआ था। रामचन्द्रका अश्वमेधीय अश्व लव और कुशके द्वारा विनष्ट होने पर युद्धके समय लव कुशको इस अस्त्रका प्रयोग करते देख रामचन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ था। (रामायण)

जृम्भ-णिच् ण्वुल्। ४ जृम्भणकारक अस्त्रविशेष, उबासी दिलानेवाला एक हथियार। इन्द्रासुरके युद्धके

समय इन्द्रके वृत्र द्वारा आक्रान्त होने पर देवोंने अत्यन्त चिन्तित हो कर जृम्भिकाकी सृष्टि की, इस जृम्भिकासे वृत्रको अत्यन्त आलस्य आ गया, जिससे इन्द्रने उसका वध कर दिया। तबहीसे यह जृम्भिका देवदत्त नामक जीवोंको प्राणवायुका आश्रय ले कर अवस्थिति कर रही है। (भारत ५।१ अ०)

जृम्भण (सं० क्लो०) जृम्भि-भावे ल्युट्। १ मुखविकाश, जँभाई लेना। २ जृम्भणकारक, वह जो जँभाई लेता हो। ३ जृम्भकास्त्र। जृम्भक देखो।

जृम्भमान (सं० त्रि०) जृम्भ-शानच्। १ जँभाई लेता हुआ। २ प्रकाशमान।

जृम्भा (सं० स्त्री०) जृम्भ भावे घञ् ततष्टाप्। १ जृम्भ, जँभाई। जृम्भ देखो।

२ शक्तिविशेष, एक शक्तिका नाम।

'तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा जृम्भा तन्त्रा च शक्तयः।"

(देवीभा० ९।१५।६१)

३ आलस्य वा प्रमादसे उत्पन्न जड़ता।

जृम्भिका (सं० स्त्री०) जृम्भा स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं। १ जृम्भ जँभाई। २ निद्राविगधारणजनित रोगविशेष, निद्राके अवरोध करनेसे उत्पन्न एक रोग। निद्राके आ जाने पर यदि उसे रोक लिया जाय तो यह रोग पैदा होता है। इसमें मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार बार जँभाई लिया करता है। ३ आलस्य।

जृम्भिणी (सं० स्त्री०) जृभ-णिनि-ङीप्। एलापर्णी, एलापर्ण लता।

जृम्भित (सं० त्रि०) जृभि-क्त। १ चेष्टित, चेष्टा किया हुआ। २ प्रवृद्ध, खूब फैला हुआ। ३ स्फुटित, विकसित, खिला हुआ। (क्लो०) भावे-क्त। ४ जृम्भा, जँभाई। ५ स्फुटन, खिलना। ६ स्त्रियोंका करणभेद, स्त्रियोंकी ईहा या इच्छा।

जेंवना (हिं० क्रि०) भक्षण करना, खाना।

जेंवनार (हिं० स्त्री०) जेवनार देखो।

जेउर—अहमदनगर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १९° १८' उ० और देशा० ७४° ४८' पू०के मध्य अवस्थित है। अहमदनगरसे प्रायः १२ मील उत्तर-पूर्वमें पड़ता है। लोकसंख्या प्रायः ५००५ है। निकटके एक ऊँचे पहाड़के ऊपर तीन मन्दिर हैं, जिनमें १७८१ सम्वत्का ताम्रफलक है।

जेड़लाइ—वृन्दावनके अन्तर्गत अघवनके समीप एक ग्राम। कृष्णसे अघासुर मारे जानेके बाद गोपबालकोंने इस स्थान पर कृष्णका प्रशंसा गान किया था।

(वृ० ली० २८ अध्याय)

जेजुरी—बम्बई प्रदेशमें पूना जिलेके पुरन्धर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° १६' उ० और देशा० ७४° ८' पू०में पूना नगरसे ३० मील और मासवड़से १० मील दक्षिण-पूर्व पूनासे सतारा जानेके पुराने रास्ते पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २८७१ है। दूरसे इस नगरका दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है। गण्डशैलके चूड़ास्थित खण्डोवा देवका मन्दिर और उसके चारों ओरका प्रस्तरनिर्मित प्राचीर तथा सोपानश्रेणी दर्शकोंके प्रीतिकर हैं। यह हिन्दुओंका एक तीर्थस्थान है।

खण्डोवा या खण्डेराय देवताके मन्दिरके लिये यह शहर मशहूर है। देवताका पूरा नाम खण्डोवा मल्लारी मार्त्तण्ड-भैरव महालसाकान्त है। इन्होंने अपने हाथमें खण्ड अर्थात् खड्ग धारण किया है, इसीसे इनका नाम खण्डोवा पड़ा है। ये महाराष्ट्रोंके उपास्य हैं। वे खण्डोवाको विशेष भक्ति-श्रद्धासे पूजते हैं। इनके दो मन्दिर हैं, जिनमेंसे पहला बहुत बड़ा है और ग्रामसे २५० फुट ऊँचे पहाड़ पर बना हुआ है। पुराना मन्दिर प्रायः २ मील दूरमें ४०० फुट ऊँचो मालभूमि पर अवस्थित है। कड़े पाथर नामक पहाड़की चोटी पर यह मन्दिर निर्मित है। इसके सिवा चोटी पर बहुतसे देवमन्दिर और १२।१३ घर पुरोहितके वास हैं। यहां भी अनेक यात्री आते हैं।

अभी जिस स्थान पर नूतन मन्दिर है पहले प्राचीन जेजुरी ग्राम उसी स्थान पर था। वर्त्तमान शहर मन्दिरके उत्तरमें अवस्थित है। पुराने ग्रामके निकट पेशवा बाजीरावका बनाया हुआ एक बड़ा सरोवर है। उसके जलसे बहुत शस्यक्षेत्र सींचे जाते हैं। सरोवरमें स्नान करनेके वास्ते बहुतसे पत्थरके बने हुए कुंड या हौज हैं और गणपतिदेवकी एक मूर्त्ति है। इससे कुछ नीचे सरोवरसे निकली हुई एक झरना है जिसे लोग मलहर-

तीर्थ कहते हैं। नूतन शहरके उत्तर-पश्चिम एक ऊँचे स्थान पर तुकोजी होलकरका खुदवाया हुआ एक सरोवर है। म्युनिसपालिटीने मट्टीके नीचेसे नल द्वारा इसका जल ला कर शहरके काममें लाया है। इस पुष्करिणी और शहरके मध्यस्थानमें मलहरराव होलकरके स्मरणार्थ एक शिवालय स्थापित है। मन्दिरमें लिङ्गके पीछे मलहरराव तथा उनकी तीन स्त्रियाँ बनाबाई, द्वारकाबाई और गौतमबाईकी जयपुरके मर्मर पत्थरकी बनी हुई प्रतिमूर्त्तियाँ हैं।

पुराने और नये मन्दिरके मध्य बहुतसे छोटे छोटे मन्दिर और पवित्र स्थान हैं। एक जगह पर्वतके ऊपर एक गड्ढेको देख कर लोग कहते हैं कि यह खण्डोवाके घोड़ेके खुरका चिह्न है।

खण्डोवाके मन्दिर पर जानेके लिये पूव, पश्चिम और उत्तरकी ओर तीन सीढ़ियां हैं। पूर्व और पश्चिम ओरकी सीढ़ी अधिक काममें नहीं आती हैं। उत्तरकी सीढ़ी सबसे चौड़ी और सुन्दर है। इसके ऊपर जगह जगह छत और चँदवा है। सीढ़ीके नीचे और ऊपर खण्डोवाकी दो स्त्रियाँ बनाई और महालसाकी प्रतिमूर्त्तियां हैं। प्राचीरमें एक जगह गड्ढा है; प्रवाद है कि मुसलमानोंने जब इस मन्दिरको तोड़ डाला तब उस गड्ढेसे बहुतसे भौंरे निकले थे। इस पर वे भयभीत हो कर भाग चले। औरंगजेबने देवताके सम्मानार्थ एक लाख रुपयेका हीरक प्रदान किया था। वह हीरक मन्दिरमें हो था, बाद १८५०-५१ ई०में मन्दिरके सेवकोंने इसे चुरा लिया।

मन्दिरके नाना स्थानोंमें निर्माणकर्त्ताका नाम और निर्माणकालज्ञापक बहुतसे शिलालेख हैं। लेखके पढ़नेसे मालूम होता है कि मलहरराव खण्डोजी होलकरने १७३८ ई०से १८५६ ई०के बीच मन्दिरके चारों ओर दरदालान और दूसरे दूसरे अंश निर्माण किये। सासवड़के बीठलराव देवने १८५५ ई०में यहां पञ्चलिङ्ग मन्दिर बनाया है। हल्दीका चूर्ण छिड़कनेका मन्दिर अहमदाबादके श्रीगुण्डी निवासी देवजी चौधरीसे निर्माण किया गया है। १८७० ई०में तुकोजी मलहरराव होलकरने दरदालान पूरा किया।

खण्डोवा खड्गधारी अश्वारोहीमूर्त्ति हैं। मन्दिरमें इनकी और महालसाकी तीन युगलमूर्त्ति हैं। एक युगलमूर्त्ति सोनेकी बनी हैं। इसे पूवार वंशीय राजाओंने प्रदान किया है। दूसरी युगलमूर्त्ति चाँदीकी है। जिसे किसी एक पेशवाने दिया है। शेष मूर्त्ति पत्थरकी है और यह सभोंसे प्राचीन कही जाती है। विग्रह सेवाके लिये यहां बहुतसे हाथी घोड़े और रथ हैं।

प्रतिदिन देवदेवी गङ्गाजलसे स्नान, चन्दन, अतर, आदि सुगन्ध द्रव्यसे लेपी जाती और मणिरत्नसे भूषित की जाती हैं। मन्दिरका वार्षिक व्यय प्रायः ५० हजार रुपये हैं। इसकी आय विशेष कर यात्रियोंकी दर्शनी और मानसिकसे होती है। इसके सिवा अनेक निष्ठावान् भक्तोंने देवसेवाके बहुतसी जमीन चढ़ा दी हैं। मन्दिरमें दो सौसे अधिक 'मुरली' कुमारी वास करती हैं। शैशवावस्थामें कुमारीके मातापिता खण्डोवाके साथ इनका यथाशास्त्रविवाह कर देते और उन्हींकी सेवामें उन्हें समर्पण करते हैं। ये फिर दूसरा विवाह कर नहीं सकतीं। जो कुछ हो मन्दिरमें रहनेसे भी उन कुमारियोंके द्वारा यथेष्ट आय होती है। ये और वाघिया अर्थात् खण्डोवाके दासगण एकत्र हो कर खण्डोवाकी महिमा और अन्यान्य गीत गा कर अर्थ उपार्जन करते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरमें पुरोहित और अनेक भिक्षुक ब्राह्मणादि रहते हैं।

खण्डोवा देवकी उत्पत्तिके विषयमें प्रवाद है, कि एक दिन जेजुरीके निकटस्थ ब्राह्मणोंने मणिमालमल्ल या मल्लासुर नामक एक दैत्यसे पीड़ित हो कर महादेवकी स्तुति की। महादेवने खण्डोवाकी मूर्तिमें आविर्भूत हो कर उस दैत्यका बध किया। मृत्युके पहले दैत्यने शिवज्ञान प्राप्त किया था। इसी कारण अभी भी खण्डोवाके मन्दिरके प्राङ्गणमें स्थित प्रस्तरनिर्मित मल्लमूर्त्तिकी पूजा होती है। हल्दी और चम्पेका फूल खण्डोवाका प्रिय है।

यहां वर्षमें चार उत्सव होते हैं। पहला अगहनकी शुक्ल-चतुर्थीसे शुक्ल-सप्तमी तक और शेष तीन पौष, माघ और चैतकी शुक्ल द्वादशीसे पूर्णिमा तक हुआ करता है। इस उत्सवमें खान्देश, बरार, कोङ्कण

आदि दूर देशोंसे भी यात्री आते हैं। चैत मासके मेले-में कभी कभी लाखसे अधिक यात्री जुटते है।

इसके सिवा सोमवती अमावस्या तथा विजयादशमी-के दिन उससे छोटा मेला लगता है। इस समय केवल आस पासके ग्रामोंसे ही यात्री आते हैं। सोमवती अमा-वस्याके दिन जेजुरीके पुजारी मूर्त्तिको पालकीमें बैठा कर दो मील उत्तर-कड़ा तीरवर्ती ग्रामके धालेवाड़ीके देवमन्दिरमें ले जाते हैं और वहां नदीमें स्नानादि करा कर फिर लौट आते हैं। विजया दशमीके दिन वे दल बांध कर ठाकुरको पालकीमें बाहर ले जाते हैं; ठीक उसी समय कड़े-पाथर मन्दिरसे और दूसरा ठाकुर भज-धजके साथ बाहर निकलते हैं। दोनों दल दो तरफसे आ कर रास्तेमें मिल जाते और वहां कुछ काल परस्पर अभिवादनके बाद अपने अपने मन्दिरको प्रत्यावर्त्तन करते हैं।

पहले अगहन महीनेके उत्सवमें एक भक्त बाघिया अपने जंघेको तलवारसे छेद कर नगरमें घूमता था। उस समय इसके सिवा और भी दूसरा दूसरा कठिन व्रत प्रचलित था। अभी देवताके उद्देश्यसे मन्दिरका सोपान-निर्माण, ब्राह्मण-भोजन, अर्थदान, मेषबलि और कोई कोई अपनी सन्तानको आजीवन खण्डोबाकी सेवामें नियुक्त करते हैं। उसीका पुत्र बाघिया और कन्या मुरली नामसे पुकारी जाती है। भेंड़ोंका बलिदान यहां इतना अधिक होता है, कि किसी किसी वर्ष २०।३० हजार तक भी हो जाया करता है।

खण्डोबाके पण्डा गुरव हैं। यात्रिगण आ कर शहरमें पण्डाके घरमें टिकते हैं। यहां प्रायः दो दिन ठहर कर वे यथारीति समस्त पूजादि सम्पन्न करते हैं। दूसरे दिन मानत अर्थदान किया जाता है। ब्राह्मण भोजनका मानत रहनेसे वे पुरोहितके घरमें उन्हें खिला देते हैं। भेड़की बलि देनेसे उसका आधा मुण्ड काटने-वालेको और आधा म्युनिसपालिटीको मिलता है। बलिका मांस यात्री लोग अपने डेरे पर ला कर खाते हैं। इस समय उनके साथ २।४ बाघिया और मुरली रहती हैं। दूसरे दिन रातको वे मसाल बाल कर मन्दिर प्रदक्षिण करते हैं।

इसके बाद वे प्राङ्गणस्थ पीतलके प्रकाण्ड कूर्मपृष्ठ पर खड़ा हो कर नारियल, धान और हल्दी वितरण करते हैं और कुछ प्रसाद अपने पास भी रख लेते हैं। सब काम समाप्त होने पर जिसका गान मानत रहता है वह कई एक बाघिया और मुरली कुमारीको अपने डेरे पर ले जा कर गान कराता है। इन्हें सवा रुपया एक दलको देना पड़ता है।

मन्दिरमें प्रवेश करते समय प्रत्येक यात्रीको दो पैसेके हिसाबसे म्युनिसपालिटीको कर देना पड़ता है। यह कर अगहनसे चैत तक लिया जाता है। दूसरे समय यात्री बिना कर दिये मन्दिरमें प्रवेश कर सकते हैं। म्युनिसपालिटी यह अर्थ यात्रियोंकी सुविधाके लिये नगर और अन्यान्य स्थानोंके परिष्कार और स्वास्थ्यकर रखनेमें खर्च करती है।

मन्दिरकी और सारी आमदनी पुरोहित गुरवगण और मन्दिरके तत्त्वावधारकगण पाते हैं। उसमें कुछ कुछ गायक तथा मन्दिरके दूसरे दूसरे सेवकको मिलता है।

जो यात्री धनी होते हैं वे अपनी इच्छासे दो एक दिन और ठहर कर कड़ा-पाथरके पुराने मन्दिर तथा मलहर या मल्लार तीर्थ देखने जाते हैं। यात्रियोंका खाद्य और देवसेवाका उपकरण छोड़ कर मेलेमें जितनी चीजें बिकनेको आती हैं, उनमें कम्बल प्रधान है। दूसरे दूसरे द्रव्योंमें पीतलका बरतन और तरह तरहके रंगीन वस्त्र, छोटे छोटे लड़कोंका पोशाक, अनेक प्रकारके खिलौने, तसवीर आदि बिकनेको आती हैं। यात्रिगण स्त्री-पुत्र-कन्यादिके लिए साध्य और स्वेच्छामत दो चार अच्छी अच्छी चीजें और रास्तेका खाद्यपदार्थ खरीद कर अपने अपने घर लौट आते हैं।

मेलेके समय नगरकी सुव्यवस्थाके लिये १८६८ ई०को जेजुरीमें एक म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है। मेला समाप्त होने पर उसके कर्मचारी यात्रियोंकी संख्या और दूकानोंकी बिक्रीके अनुसार शहरके प्रत्येक घरसे टैक्स वसूल करते हैं। यह टैक्स १), ॥), ।) और ≤) आने तक होता है।

जेट (हिं० स्त्री०) १ समूह, यूथ, ढेर। २ रोटियोंको

नहो। ३ एक दूसरेके ऊपर रखा हुआ मट्टोके बरतनों-का समूह। ४ कोद, कोरा।

जेटी (अं॰ स्त्री॰) जहाजों परसे माल चढ़ाने या उतारनेका एक बड़ा चबूतरा जो नदी या समुद्रके किनारे बना रहता है।

जेट्टी—१ एक तेलगू जाति। ये वंशपरम्परासे मल्लयुद्ध तथा घूम घूम कर चिकित्सा करके जोविका निर्वाह करते हैं। तञ्जोरमें तामिल सभ्यताके अन्दर रहते हुए भी ये तेलगू भाषामें बातचीत करते हैं। इनके उपवीत है—ये अन्यान्य जातियोंको अपेक्षा अपनेको ऊंचा समझते हैं और इसोलिए नीच कार्य करना स्वीकार नहीं करते। तञ्जोरके राजा जब स्वाधीन थे, तब ये उनके यहां धनरत्नकका काम करते थे। फिलहाल इनमेंसे बहुतसे महिसुरमें रहने लगे हैं।

कहा जाता है कि किसी समय महिसुरके जेट्टी लोग घातकका कार्य करते थे।*

टीपू सुलतानके समयमें जेट्टियोंने अद्भुत नृशंसता और नैपुण्यके साथ जनरल म्याथूको हत्या को थी।†

जेट्टी लोग अब भी भग्नस्थानमें जोड़ लगानेमें समर्थ है वा लगाया करते हैं। उइल्किस साहबका कहना है, कि इनके जोड़को मल्लाकृति जाति पृथिवीमें दूसरी नहीं। जेम्स् स्कूरीने अपने "The Captivity, Sufferings and escape of James Scurry" नामक ग्रन्थमें इनके युद्धकौशलका वर्णन किया है।

महिसुरके जेट्टियोंका कहीं कहीं 'मुष्टिगा' नामसे भी उल्लेख किया जाता है। इनमें बहुतसे लोग 'मल्लभाषा' नामक एक प्रकार अपभ्रंश भाषाका व्यवहार करते हैं।

२ कभराई जातिको एक शाखाका नाम

जेठ (हिं॰ पु॰) १ वैशाख और आषाढ़के बीचमें पड़नेवाला एक चान्द्रमास। इस मासको पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है; इसीसे इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं। ज्येष्ठ देखो। २ पतिका बड़ा भाई, भसुर। (वि॰) ३ अग्रज, बड़ा।

जेठवा (हिं॰ पु॰) ज्येष्ठ मासमें होनेवाली एक प्रकारको कपास।

जेठवा—एक प्राचीन राजपूतवंश। पहले ये सौराष्ट्र (वर्त्तमान काठियावाड़) के उपकूलभागमें रहते थे। अति प्राचीनकालमें जेठवाओंने मियानी और नाभीके बीचका स्थान अधिकृत किया था। पीछे मुसलमानों द्वारा ये लोग वहांसे विताड़ित तो हुए थे, किन्तु शीघ्र ही इन लोगोंने उस स्थानका अधिकांश अधिकार कर लिया। बहुत पहले ये आबपुरके पार्वत्यप्रदेशमें रहते थे। मोर्वि इन लोगोंको एक प्राचीन राजधानी थी। पहले काठियावाड़में जेठवा, चूड़ासमा, सोलङ्की और वाला इन चार राजपूतजातियोंका प्राधान्य था। परन्तु झाला, जाड़ेजा आदिके आधिक्य और प्रभुत्वसे उक्त चारों जातियोंकी संख्या क्रमशः घट गई है। जेठवाओंने अपने पूर्व अधिकृत काठियावाड़के पश्चिम और उत्तर भागसे विताड़ित होने पर बुर्दके पार्वत्यप्रदेशमें अधिकार जमाया है। पुरंदरके राना पुञ्छेरिय जेठवा वंशके हैं। जेठवाओंके इतिहासमें लिखा है—जेठवा सङ्गजीने अनहिलवाड़पत्तनके राना कृष्णजीको युद्धमें पराजित कर कैद कर लिया। शिरोही और अन्यान्य प्रदेशके राजाओंके अनुरोधसे कृष्णजीके राना उपाधिका त्यागना स्वीकार करने पर सङ्गजीने उनको छोड़ दिया। तभीसे पुरंदरके राजाओंने 'राना'को उपाधि धारण करना छोड़ दिया है।

जेठशूर खाचर—सौराष्ट्रके अन्तर्गत आनंदपुरके एक राजा। चोटिलाको काठिजातिके खाचरवंशमें इनका जन्म हुआ था। बादशाह महम्मद तुगलकके अत्याचार और गुजरातके सुलतानोंके आक्रमणसे किसी समय आनन्दपुर जनशून्य अरण्य हो गया था। उस समय बुध नामका एक ग्रामवासी भैंस खोजते खोजते वहां पहुंचा, उसने आनन्दपुरको देख कर काठि-सर्दार जेठशूर खाचर और मियाजल खाचरको खबर दी। इस पर इन लोगोंने ठङ्गा पर्वतसे आ कर शून्य नगर आनन्दपुर पर कब्जा कर लिया। इस जगह इन लोगोंने २७ वर्ष राज्य किया। इसके बाद राजमातुलके भ्राता मुल नागा

* Rice—Mysore and Coorg Gazetteer.

† "General Matthews had his head wrung from his body by a tiger fangs of the Jetties, a set of slaves trained up to gratify their master with their infernal species of dexterity."

जन खाचर द्वारा दोनों विताड़ित किये गये। अब भी अनियालि आदि स्थानोंमें इनके वंशज रहते हैं।

मुलू नागा जन खाचर बीच बीचमें आनन्दपुर आ कर २०।२५ दिन रहा करते थे। नगरके तोरणद्वारका एक पत्थर जरा खसक गया था, इसलिए उसके गिरनेके भयसे जेठशूर और मियाजन द्वार पार होते समय घोड़ेको तेजीसे ले जाते थे। मुलू नागा जनने इनको प्राणभयसे भीत देख कर इनको कायर समझ लिया। एक दिन उन्होंने पांच सौ अश्वारोहियोंके साथ नगर पर आक्रमण किया। जेठशूर और मियाजन दोनों जब अपनी अपनी सम्पत्ति ले कर रातको भाग गये, तब खाचरमूलू और उनके भाई लाखोने (१६९१ सम्वत्‌की पौष शुक्ला २या रविवारको) आनन्दपुर अधिकार कर लिया।

जेठा (हिं० वि०) १ अग्रज, बड़ा। २ सबसे उत्तम, सबसे बढ़ियां।

जेठामल—नारदचरित्र नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता। ये संवत् १८४२के लगभग विद्यमान थे।

जेठाई (हिं० स्त्री०) जेठापन, बड़ाई।

जेठानी (हिं० स्त्री०) पतिके बड़े भाईकी पत्नी, जेठकी स्त्री।

जेठियान—विहार प्रदेशमें गया जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। इसका प्रकृत नाम यष्टिवन है। निकटस्थ पहाड़के ऊपर बांसका जंगल है। उसे अभी भी जखटी वन कहते हैं। वहांके मनुष्य बांसको काट कर गयामें जा बेचते हैं।

ग्रामसे १४ मील दूर तपोवन नामक स्थानमें दो गरम सोते निकले हैं। चीनपर्यटक युएनचुयाङ्ग इस ग्रामको तथा इसके निकटस्थ पहाड़के ऊपर बांसके वनको देख गये हैं। उन्होंने यहांके गरम सोतेका हाल भी लिखा है। उन्होंने इसे बुद्ध-वनसे ५ मील पूर्वमें अवस्थित बतलाया है।

जेठी (हिं० वि०) जो जेठ महीनेमें होता हो, जेठ सम्बन्धी। (पु०) २ नदियोंके किनारे पर होनेवाला एक प्रकारका धान। यह चैत्रमें बोया और ज्यैष्ठमें काटा जाता है। इसे बोरोधान भी कहते हैं।

(स्त्री०) ३ जेठमें पकने और फूटनेवाली एक प्रकारकी कपास। काठियावाड़में इसे मंगरो कहते हैं और बरारमें जूड़ी या टिकड़ी।

जेठीमधु (हिं० स्त्री०) यष्टिमधु, मुलेठी।

जेठीमल मोढ़—मोढ़ ब्राह्मणोंकी एक शाखा। मोढ़ ब्राह्मणोंमें इनका पद गिरा हुआ है। कहा जाता है कि चतुर्वेदी मोढ़ोंमेंसे २० ब्राह्मण हनूमानकी खोजमें गये थे, जो मार्गमें रह जानेके कारण आचारभ्रष्ट हो गये और कालान्तरमें वे जेठीमलमोढ़ कहलाने लगे। जेठीमलमोढ़ नीच जातियोंकी दक्षिणा ग्रहण करते हैं।

जेठौत (हिं० पु०) पतिके बड़े भाईका पुत्र, जेठका लड़का।

जेतपुर (देवली)—बम्बई प्रान्तकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २२° ३६´ तथा २२° ४८´ उ० और देशा० ७०° ३५´ एवं ७०° ५१ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ८४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११५६८ है। २१ गांव बसे हैं। आय कोई १२५०००) रु० है। यह राज्य २० तालुकदारोंके अधीन

जेतपुर (वदिया)—बम्बई प्रान्तकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २१° ४०´ उ० और देशा० ७१° ५२´ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ७२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०३३० है। आय कोई १३००००) रु० होती है। इसमें १७ गांव हैं।

जेतपुर (मुलू सुराग)-बम्बई प्रान्तमें काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २१° ३६´ तथा २१° ४८´ उ० और देशा० ७०° ३६´ एवं ७०° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६७२८ है। १७ गांवोंमें लोग रहते हैं। आय प्रायः ६००००) रु० है।

जेतपुर (नाजकाल या बिलख)—बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २१ एवं २१° २३´ उ० और देशा० ७०° ३५´ तथा० ७०° ५७ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ७२ वर्गमील और लोकसंख्या १०२६६ है। २४ गांव बसे हुए हैं। आय कोई १५०५०००) रु० है।

जेतपुर—बम्बईकी काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीमें

जेतपुर राज्यका सुरक्षित नगर। यह अक्षा० २१° ४५' उ० और देशा० ७०° ४८' पू०में भादर नदीके वाम तट पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १५८१८ है। भाव-नगर-गोंडाल-जूनागढ़-पोरबन्दर रेलवे इस समृद्ध नगरमें लगी है। सरकारी इमारतें खूब हैं। नगरसे १ मील उत्तर भादर नदी पर एक अच्छा पुल है।

जेतपुर – १ बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। इस राज्यमें १५० ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण १६५ वर्ग मील है। राजाके ६० अश्वारोही और ३०० पदातिक सैन्य हैं। १८१२ ई०में ब्रटिश गवर्मेण्टने बुन्देलखण्डके स्वाधीनता संस्थापक छत्रशालके वंशधर केशरीसिंहको यह राज्य प्रदान किया। १८४२ ई०में राजा विद्रोही हो कर अंग-रेजी राज्य पर लूटमार करने लगे। इसीसे अंगरेजोंने उन्हें पदच्युत कर छत्रशालके दूसरे वंशधर खेतसिंहको राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया। १८४९ ई०में खेत-सिंहकी मृत्यु होने पर यह राज्य अंगरेज साम्राज्यमें मिला लिया गया।

२ जेतपुर राज्यका एक प्रधान शहर। यह काल्पीसे ७२ मील दक्षिण और जमालपुरसे १८७ मील उत्तरमें अव-स्थित है। यहाँ एक बाजार है। सिहराज जयसिंहके आदेशसे यहां एक तालाब खोदा गया था।

जेतमल—राना जयमलके पुत्र। पिता पुत्र दोनों तुरमङ्गमसे शत्रुओं द्वारा विताड़ित हो कर दाँता भाग आये थे। यहां तक शत्रुओंने उनका पीछा न छोड़ा तो उन्होंने माताजीके मन्दिरमें आश्रय लिया। कुछ दिन बाद राना जयमलको मृत्यु हो गई। रानाकी मृत्युके बाद जेतमल माताजीके मन्दिरमें धन्ना दे कर बैठ गये। बहुत दिन बीत गये, पर उन्हें माताजीसे कुछ भी सुनाई न दिया। दूसरा उपाय न देख उन्होंने अपनी आँखें निकाल कर माताजीकी पूजा करनेको उद्यत हुए। उसी समय माताजीने उनकी बाँह पकड़ कर कहा—"वत्स! शान्त होओ; तुम अभी अपने घोड़े पर सवार हो कर शत्रुओंके विरुद्ध चलो, मैं तुम्हारी सहायता करूंगी। आज सूर्यास्तके पहले पहल जिस जिस राज्यके भीतरसे तुम घोड़े पर सवार हो कर निकल जाओगे, वे सब राज्य तुम्हारे हस्तगत हो जायंगे और जिस जगह तुम घोड़े से उतरोगे, वही स्थान तुम्हारे राज्यकी सीमा निश्चित हो जायगी।"

इस बातको सुन कर जेतमल घोड़े पर सवार हो कुछ अनुचरोंके साथ उसी समय निकल पड़े। ये पहले ही रेहुजुरोंके पास पहुंचे। उन लोगोंको दूरसे मालूम हुआ कि, बहुत संख्यक अश्वारोही सेना उनकी ओर अग्रसर हो रही है। इस वजहसे वे शीघ्र ही वहांसे भाग गये। इसके बाद जेतमल मंघा यादवोंके पास पहुंचे। माताजीकी क्षमतासे यहां यादवोंको पर्वतकी हर एक चोटमें एक एक घुड़सवार दीखने लगा। वे भी तुरन्त वहांसे भाग गये। सेवाके दलपतिको अचानक बन्दी कर उनकी हत्या की गई। पीछे जेतमलने बढ़ते हुए तुरमङ्गम, घोड़ार और हुड़ारसे शत्रुओंको दूरीभूत किया। लसानमें आ कर जेतमल बहुत थक गये और घोड़े से उतरनेकी तैयारी करने लगे। यह देख अनु-चरोंने उनको उतरनेके लिए मना किया, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया—"मैं इतना थक गया हूं कि, अब किसी हालतमें मुझसे घोड़े पर बैठा नहीं रहा जाता।" इस लिए वे वहीं उतर पड़े और वहीं तक उनके राज्यकी सीमा निर्धारित हो गई। जेतमलने 'राना'की उपाधि धारण की, दाँतानगरमें उनकी राजधानी स्थापित हुई। कुछ दिन पीछे ये दो पुत्रोंको छोड़ कर स्वर्ग सिधारे। इनके ज्येष्ठपुत्रका नाम राजसिंह था और कनिष्ठका पुञ्ज। जेतमल दाँताके एक सर्दार धुनालि बाघेलाकी कन्यासे विवाह किया था।

जेतमलपुर—दिनाजपुर जिलेके देवरा परगनेका एक प्रधान पल्लीग्राम। यह काँकड़ा और छोटी नदीके सङ्गम स्थान पर रङ्गपुर राजपथके समीप अवस्थित है। यहां एक बाजार है जिसमें तरह तरहके अन्न बिकते हैं।

जेतवन—प्राचीन अयोध्याके अन्तर्गत श्रावस्तीका एक उपवन। यहां बौद्धोंका एक विहार था। बौद्ध ग्रन्थोंमें यह स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहां बुद्धदेव बहुत समय तक रह कर अपने शिष्योंको अवदान प्रभृति शास्त्रादि-का उपदेश देते थे।

जेतव्य (सं० त्रि०) जि-कर्मणि तव्य। जेय, जो जीता जा सके।

जेताराम (सं० पु०) जेतवन देखो।

जेतालपुर—अहमदाबादसे १० मील दक्षिणमें अवस्थित एक ग्राम। यहां रानीका घर नामका एक प्रासाद है।

जेतृ (सं॰ त्रि॰) जि-तृच्। १ जयशील, जीतनेवाला। २ विष्णु। "अनघो विजयो जेता" (विष्णु सं॰)

जेत्व (सं॰ त्रि॰) जि-क्वनिप् वेदे नि॰ दीर्घस्यापि तुक्। जेतव्य, जीतने योग्य, फतह लायक।

जेटचेरल—हैदराबाद राज्यके महबूबनगर जिलेका पहला ताल्लुक। इसकी लोकसंख्या प्रायः ८६८८६ और क्षेत्रफल ८४६ वर्गमील था। १८०५ ई॰को यह दूसरे ताल्लुकोंमें जोड़ दिया गया।

जेनेभा—सुइजरलैण्डका एक नगर और क्याण्टन वा राजनैतिक विभाग। यह जेनेभा-ह्रदके दक्षिण-पश्चिम कोणमें अवस्थित है। इसका रकबा १०८.८ वर्गमील है, जिसमें ८८.५ वर्गमीलके भीतर नाना प्रकार द्रव्य उत्पन्न होते हैं। इसके चारों ओर फरासीसी राज्य है। इसके बीचमें पूर्वसे पश्चिमको 'रोन' नदी बहती है। यहां अनेक प्रकारके पशु पक्षी देखनेमें आते हैं।

जेनेभा-काण्टनमें तीन राजनैतिक शासनविभाग हैं। १८१५से १८४२ ई॰ तक नगर और काण्टन एक ही प्रथासे शासित होता था। किन्तु १८४२ ई॰में नगर स्वाधीन हो गया और तबसे शासन परिषद्के ४१ सभ्योंके मतानुसार उसका शासन होने लगा। यहांके शासन कार्यमें Referendum और Initiative नामक दो गणतन्त्रों द्वारा अनुमोदित प्रथा व्यवहृत होती है, जिससे यहांके लोकमतके विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

यहां प्रोटेष्टाण्ट और कायलिक दोनों सम्प्रदायोंके धर्ममन्दिरादि हैं। फिलहाल बहुतोंने कायलिक धर्म ग्रहण किया है और कर रहे हैं। जेनेभा प्राचीनकालसे ही नाना प्रकार व्यवसायका केन्द्रस्थान है। ईसाकी १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें इसके उत्कर्षकी सीमा न थी। वर्त्तमानमें जेनेभा घड़ीके लिए प्रसिद्ध है—यहांकी घड़ीका सर्वत्र आदर होता है।

जेनेभा आकारमें छोटा होने पर भी वहां बहुतसे प्रसिद्ध व्यक्तियोंने जन्मग्रहण और वास किया है। १६वीं शताब्दीमें कालभिन और वनिभार्डने धर्म जगत्में महाविप्लव उपस्थित किया था। उस समय आइजक कासाउवनको विद्याकी ख्याति यूरोपमें सुप्रतिष्ठित थी। १८वीं शताब्दीमें जे॰ जे॰ रूसो इस स्थानमें वास करके इसका गौरव बढ़ा गये हैं। इन्हीं रूसोको लेखनीसे निकले हुए ज्वालामयी सन्दर्भको पढ़ कर फरासीसियोंने विप्लवमें साथ दिया था। इसके सिवा साउसूर, काण्डोल, कैभियर, फेब्रे और नेकर आदि बहुतसे विद्वानोंने यहां जन्म लिया था। टपफार नामक एक विद्वान्‌ने सुइजरलैण्डके युवकोंमें पुंसत्वका माहात्म्य प्रगट किया था।

जेनेभामें मध्ययुगके बहुतसे प्राचीन गिर्जा हैं, जिनकी खूबसूरती तारीफके लायक है।

इतिहास—ईसाकी ७वीं शताब्दीमें इस स्थानका नाम था जेनुया वा जेनाभा। खृ॰ पू॰ प्रथम शताब्दीमें जूलियस सीजरने पहले पहल इसका उल्लेख किया था। पांचवीं शताब्दीमें यह बर्गण्डियनोंके हाथ लगा। उन लोगोंने यहां राजधानी स्थापित की थी। १०३२ ई॰में अन्यान्य देशोंके साथ यह भी जर्मन-सम्राट् २य कनरडके हाथ लगा। कनरडने जेनेभाके बिशपको उक्त स्थानका शासनभार अर्पण किया था। ३०० वर्षसे भी अधिक समय तक जेनेभा बिशपोंके शासनाधीन था। उस समय इसके भीतर और बाहरके शत्रुओंसे आत्मरक्षा करनेके लिए बिशपोंको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी थी।

१५२५ ई॰में जेनेभामें प्रोटेष्टाण्ट-धर्मका प्रचार हुआ, तभीसे इसके नवयुगकी सूचना हुई। इसी समय कालभिनने जेनेभा आ कर एकछत्र शासन किया था। धर्ममतके लिए उन्होंने स्वाधीनताकी घोषणा कर दी थी, किन्तु वे स्वयं वहां स्वेच्छाचारीकी तरह व्यवहार करते थे। १६३० ई॰में जेनेभा सामयके हाथसे सम्पूर्ण मुक्त हो गया।

खृष्टीय १७वीं और १८वीं शताब्दीमें अन्यान्य सुइस-काण्टनोंने जेनेभाको अपने दलमें शामिल करना स्वीकार नहीं किया। जेनेभामें भी नाना प्रकारका अन्तर्विप्लव हुआ था। १७९८ ई॰में फरासी-विप्लवके समय जेनेभा फरासीसियोंके हाथमें गया। १८१३ ई॰में नेपोलियनका पतन होने पर जेनेभाने स्वाधीनता प्राप्त की। १५३५ से १७९८ ई॰ तक रोमनिष्ट प्रथाकी उपासना बन्द कर दी गई थी, किन्तु १८०३ ई॰में सेण्ट जर्मनके

गिर्जा रोमनिष्ट सम्प्रदायको समर्पण कर दिये गये।

१८४२ ई०में जेनिभामें जो शासनप्रणाली स्थापित हुई थी, वही अब तक चालू है। १९०७ ई०में जेनिभाके गिर्जा और राष्ट्रको पृथक् कर दिया गया था।

जेनिभामें कर्नेगीने एक बड़ा भारी शान्ति मन्दिर बनवा दिया है, जिसमें बैठ कर संसारके श्रेष्ठ राष्ट्रनैतिक गण युद्धोंके ह्रासके विषयमें आलोचना करते हैं। हमारे देशके श्रीनिवास शास्त्री और लार्ड सिंह भी एक बार उक्त शान्ति-बैठकमें बुलाए गये थे।

जेनोग्रा—इटलीका एक प्रदेश और प्रधान बन्दर। समुद्रके बीचमें जेनोग्रा नगर बड़ा खूबसूरत लगता है। यहां मध्ययुगकी बहुतसी सुन्दर अट्टालिकाएं हैं।

इस बन्दरकी उत्कृष्टताको देख कर अनुमान होता है कि जिस समयसे टिरेनियन समुद्रमें गमनागमन प्रारम्भ हुआ था, उसी समयसे जनसाधारण इससे परिचित हैं। ग्रीकोंने इसके विषयमें कुछ उल्लेख नहीं किया; किन्तु खृ० पू० चतुर्थ शताब्दीकी एक समाधि यहां मिली है, जिससे अनुमान होता है कि ग्रीकोंसे भी यह बिलकुल छिपा नहीं था। जेनु वा जानुकी तरहका आकार होनेसे इसका नाम जेनोग्रा पड़ा है।

ईसासे २१६ वर्ष पहले यहां रोमन लोग आये थे और उसके ७ वर्ष बाद कर्थजवासियोंने इसका ध्वंस किया था। परन्तु कुछ दिन बाद रोमने पुनः इसकी प्रतिष्ठा की। ष्ट्राबोका कहना है, कि प्राचीनकालसे ही जेनोग्रासे लकड़ी, चमड़ा, शहद आदिकी रफ्तनी तथा अलिभ तैल और शराबकी आमदनी होती थी। रोमन साम्राज्यके ध्वंसके बाद इसकी अवस्था अन्यान्य देशोंकी भांति शोचनीय हो गई थी। कभी लम्बार्ड और कभी कारोलिंजियनोंके आक्रमणसे यह ध्वस्त होता था। जिस समय अरबको नवजाग्रत शक्तिने यूरोप अधिकार करना प्रारम्भ किया, उस समय जेनोग्राके देश-हितैषिगण उसमें बाधा पहुंचानेके लिए उद्यत हुए। ११वीं शताब्दीमें पीसाके साथ संयुक्त हो कर जेनोग्राने सार्डिनियासे मुसलमान-शक्तिको विताड़ित करना चाहा। सार्डिनिया पर कब्जा भी हो गया; किन्तु वह किसके अधीन रहे, इस बात पर दोनोंमें झगड़ा हो गया। उस समय भी भिनिसका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था—जेनोग्रा ही पाश्चात्य जगत्का सर्वश्रेष्ठ वाणिज्यकेन्द्र था। जेनोग्राने यूफ्रेटिस नदीके किनारे बहुतसे मजबूत बन्दर बनवाए थे। पीछे जब भिनिसका अभ्युदय हुआ, तब वह ईर्ष्यासे जेनोग्राकी शक्ति ह्रास करनेमें प्रवृत्त हुआ।

मध्ययुगमें जेनोग्राके साधारण लोगोंसे सम्भ्रान्त-वंशीयोंका झगड़ा हुआ करता था, जिससे दोनों ही पक्ष विदेशी सेनापतिको मध्यस्थ बनानेके लिए बाध्य होते थे। और उन विदेशियों पर नगरका शासनभार अर्पण करते थे। परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि इतना विवाद-विसम्वाद होने पर भी उसकी वाणिज्यशक्तिका ह्रास नहीं हुआ था।

१३८० ई०में शिगीयाके युद्धमें भिनिसके लोगोंने जेनोग्राको इस तरह पछाड़ा था कि फिर इटलीमें प्राधान्य लाभ न कर सका। १५वीं शताब्दीके अन्त और १६वीं शताब्दीके प्रारंभमें जेनोग्राके साहसी नाविक कोलम्बसकी प्रतिभासे अमेरिका आविष्कृत हुआ था। १५२८ ई०में आन्द्रिया डोरियाने जेनोग्रामें जो शासनप्रणाली प्रवर्तित की थी, वह फरासीसी विप्लवके समय तक अव्याहत थी।

१७४६ ई०में पियासेञ्जायमें पराजयके बाद जेनोग्राने अष्ट्रियाको आत्मसमर्पण किया। नेपोलियनने जेनोग्रामें 'लिगुरिया गणतन्त्र' नामसे एक नवराष्ट्रको प्रतिष्ठा की। किन्तु १८०० ई०के बाद उसका अस्तित्व नहीं रहा। १८१४ ई०में लार्ड विलियम बेण्टिङ्कको प्ररोचनामें आ कर जेनोग्राने फरासीसियोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। जोसेफ माटसिनीका जन्म जेनोग्रामें हुआ था, जो कि इटलीके नवयुगकी राष्ट्रीय एकताके प्रतिष्ठाता थे। उन्हींकी कोशिशसे जेनोग्रा इटली राजाके अन्तर्भुक्त हुआ है।

जेन्ताक (सं० पु०) स्वेदविशेष वा रोगीके शरीरका दूषित रक्त आदिको निकालनेके लिए उसके शरीरमें पसीना लानेकी एक क्रिया। इसको साधारणतः भफारा कहते हैं। इसका विषय चरकसंहितामें इस तरह लिखा है—

रोगीको शरीरमें जेन्ताक स्वेद लानेके लिए, पहले

भूमिकी परीक्षा करना उचित है। पूर्व वा उत्तरदिशामें विशुद्ध कृष्णवर्ण मृत्तिकाविशिष्ट प्रशस्त भूमिभाग ग्रहण करना जरूरी है और वह भूभाग नदी, दीर्घिका वा पुष्करिणी आदि जलाशयोंके दक्षिण वा पश्चिम उपकूल पर स्थित तथा समान भागसे विभक्त होना चाहिये। यह स्थान नदी आदिसे ७।८ हाथ दूर हो, उसके उत्तरमें पूर्वद्वारी अथवा उत्तर द्वारी एक घर बनवावें। उस घरकी उच्चता और विस्तार १६ हाथ हो तथा उसके भीतर चारों ओर एक हाथ विस्तृत उत्सेधसम्पन्न और एक हाथ उच्च वेदी बनावें। बीचमें ४ हाथ प्रशस्त और ७ हाथ ऊँचा कन्दू (पावरोटी बनानेकी भट्ठी जैसे चुल्ही) बनावें, उसमें कुछ छेद कर दें और उसकी एक ढकनी भी बना लें। पीछे उस चुल्हीमें खदिर वा पीपरकी लकड़ी जलावें। जब उस गृहका मध्यभाग स्वेदयोग्य उष्णतासे परिपूर्ण हो जाय, तब रोगीके शरीरसे वातघ्न तैल वा घृत लगा कर तथा उसकी देहको वस्त्रसे ढक कर उसे उस घरमें ले जांय। घरमें घुसते समय रोगीको सावधान करके कह देना चाहिये कि—"आरोग्यताके लिए इस घरमें घुस रहे हो, बहुत सावधानीसे उस (पूर्वोक्त) पिण्डिका पर चढ़ कर एक तरफ वा तुम्हें जैसे अच्छा लगे उस तरह सो जाओ। सावधान रहना! कहीं अत्यन्त पसेव वा मूर्च्छासे घबड़ा कर इस स्थानको छोड़ न देना। यदि छोड़ दोगे तो उसी समय स्वेदमूर्च्छा-ग्रस्त हो कर उसी समय प्राण गमा दोगे। अतएव किसी भी तरह इसको त्यागना नहीं।" इस प्रकारसे खूब सावधान कर देना चाहिये। इस तरह रोगी स्वेदगृहमें प्रवेश कर जब समुदय स्रोतविमुक्त हो कर घर्माक्रान्त हो जाय और उसके क्लेदकारी समस्त दोष निकल जाय तथा शरीर जब हलका, शून्य और वेदनारहित मालूम हो, उस समय पिण्डिकासे निकाल कर उसे द्वार पर लाना चाहिये। इसके बाद आंखोंमें—स्निग्ध हवाके लिए—शीतल जल डालना चाहिये। इस तरह रोगीकी क्लान्ति मिट जाने पर उसको गरम जलसे स्नान करा कर यथो-चित आहार देना चाहिये। इस तरह पसीना निकालने-का नाम जेन्ताक है। (चरक-सूत्रस्थान) स्वेद देखो।

जैन्य (सं० त्रि०) जि-जन-णिच् बाहु० डेन्य। १ जयशील, जीतनेवाला। २ उत्पाद्य, पैदा किये जानेके काबिल। ३ जेतव्य, जीतने योग्य, फतह किये जानेके काबिल।

जेन्यावसु (सं० त्रि०) १ जिसके पास यथार्थमें धन हो। (पु०) २ इन्द्र, अग्नि और अश्विनयुगलका नामान्तर।

जेप्लिन (ज० पु०) जर्मनीके काउँट जेप्लिन नामक साहब-का आविष्कृत एक बहुत बड़ा हवाई जहाज। इसके ऊपरका भाग सिगारके आकार का लम्बोतरा होता है और इसके खानोंमें गैससे भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलियां होती हैं। आदमीके बैठने और तोप रखनेके लिये लम्बोतरे चौखटेमें नीचेकी ओर एक या दो सन्दूक लट-कते हुए लगे रहते हैं। जितने प्रकारके आकाशयान हैं उनमेंसे जेप्लिनका आकार सबसे बड़ा होता है। विमान देखो।

जेब (फा० पु०) १ छोटी थैली या चकती जो पहननेके कपड़ोंमें बगल या सामने ो ओर लगी रहती है, खीसा, खलीता, पाकेट। २ सौन्दर्य, शोभा, फबन।

जेब-उन्-निशा बेगम—बादशाह आलमगीरकी कन्या। १०४८ हिजरामें, तारीख १० सवालको (५ फरवरी, १६३८ ई०को) इनका जन्म हुआ था। ये अरबी और फारसी भाषामें विज्ञ थीं। तमाम कुरान इनको कण्ठस्थ था। इन्होंने जेब-उल-तफशीर नामक कुरानकी एक टीका लिखी थी। इनके हस्ताक्षर बहुत ही उमदा और साफ थे। ये अच्छी कविताएं बनाती थीं, फारसीमें इन्होंने एक दीवान (काव्य) बनाया है। ये चिरकुमारी थीं। १११३ हिजरा (१७०२ ई०)-में इनकी मृत्यु हुई। दिल्लीके काबुल दरवाजेके पास इनकी कब्र बनी थी। राजपूतानामें लोहेका दरवाजा बनते समय इनकी कब्र तुड़वा दी गई। जेब-उन्-निशा बेगम मखफी नामसे ही प्रसिद्ध थीं।

जेबकट (फा० पु०) गिरहकट, जेबकतरा।

जेबकतरा (हिं० पु०) जेबकट देखो

जेबखर्च (फा० पु०) वह धन जो किसीको निजके खर्चके लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेनेका किसीको अधिकार न हो।

जेबघड़ी (हिं० स्त्री०) जेबमें रखी जानेकी छोटी घड़ी, वाच।

ज़ेबदार (फा० वि०) शोभायुक्त, सुन्दर।

जेबी (फ़ा० वि०) १ जो जेबमें रखा जा सके। २ बहुत छोटा।

ज़ेब्रा (Zebra) - यूरोपीय प्राणितत्त्वविदोंने जेब्राको इकुइडि (Equidae) जातिके अन्तर्गत बतलाया है। इस जातिके पशुओंको प्रत्येक टांगके नीचेके भागमें तीक्ष्ण खुरसे आच्छादित अंगुलिवत् एक पदार्थ है तथा करभ और पांवके नीचे दोनों तरफ दो छोटी छोटी अङ्गुलियोंके चिह्न हैं। इनके दांतोंकी संख्या इस प्रकार है—छेदनदन्त $\frac{६}{६}$, तीक्ष्णदन्त $\frac{१\,१}{१\,१}$, पेषणदन्त $\frac{७\,७}{६\,६}$=४२।

इकुइडि जातिके अन्तर्भुक्त पशु पृथिवी पर सर्वत्र नहीं मिलते। कोई कोई कहते हैं कि, इस जातिके अन्तर्गत घोड़े आदि जितने भी चौपाये जानवर वर्तमानमें दिखलाई देते हैं, पहले वे सब जेब्रा कोग्रागा आदिकी तरह किसी स्थानमें निवद्ध थे।

इकुइडि (Equidae) जाति दो श्रेणियोंमें विभक्त है, इकुयस (Equius) और असिनस (Asinus)।

असिनस श्रेणीके अन्तर्गत पशुओंकी पूंछका ऊर्द्ध्वभाग सूक्ष्म लोम और अधोभाग दीर्घ लोमोंसे ढका रहता है। लांगुलका प्रान्तदेश केशगुच्छयुक्त होता है। घोड़ोंके सामनेके पैरों पर जहां उपमांस रहता है, इनके भी उस स्थान पर तीक्ष्ण एवं कठिन मस्सा है, किन्तु पीछेकी टांगोंके नीचे नहीं है।

इनके शरीरका रंग सर्वत्र प्रायः एकसा है ; पीठ पर लम्बी काली धारियां हैं। स्थानानुसार इस श्रेणीके जन्तुओंकी आकृति कुछ छोटी बड़ी हुआ करती है। शीतप्रधान देशके जेब्रा उष्णप्रधान देशके जेब्राओंसे कुछ छोटे और अधिक लोमयुक्त होते हैं।

जेब्राको असिनस श्रेणीके अन्तर्गत समझना चाहिये। इनका रंग सफेद है ; मस्तक, शरीर और पैरोंके खुर तक सर्वत्र काली धारियां खिंची हुई हैं, नाक ललाईको लिये सफेद है, पेट और घुटनेके भीतरके हिस्सेमें किसी तरहकी धारियां नहीं हैं, पूंछका शेषभाग काला है। इनके खुर अप्रशस्त हैं और उनके नीचेका भाग पोला और कूर्मपृष्ठाकार है। इनके मस्तककी खोपड़ी किञ्चित् गोलाकार है। इनकी पूंछका शेषभाग दीर्घ केशविशिष्ट और पीछेकी टांगें उपमांसशून्य हैं। इनकी गरदन अर्द्धगोलाकार और गरदनके बाल खड़े होते हैं। इनकी पैरसे कंधे तककी ऊंचाई १२ हाथ है। ये मोटे नहीं होते और देखनेमें खूबसूरत लगते हैं। इनके कान लम्बे और फैले हुए होते हैं। इनकी गरदन और देह पर आड़ी धारियां हैं, मस्तक और पैरोंकी रेखा तिरछी आड़ी अनियमित रूपसे हैं। जेब्रा दक्षिण अफ्रिकाके पार्वत्य प्रदेशमें रहते हैं। ये छोटी छोटी टोली बना कर निर्जन स्थानमें रहना पसंद करते हैं। ये ऐसी जगह रहते हैं, जहां अन्य जीवोंका आना जाना नहीं होता।

इनकी दर्शन, आघ्राण और श्रवण-शक्ति अति आश्चर्यजनक है। जरासा शब्द सुनते ही ये चौंक कर भागने लगते हैं। ये अत्यन्त डरपोक जानवर हैं भागते वक्त कान और पूंछ उठा कर अत्यन्त द्रुतवेगसे दौड़ते और पर्वतके दुरारोह स्थान पर चले जाते हैं। ये ऐसी जगह पहुंच जाते हैं, जहां शिकारी लोग जा ही नहीं सकते। ये जब टोली बांध कर फिरते हैं, तब यदि कोई इन पर आक्रमण करे तो ये एक दूसरेसे सट कर खड़े हो जाते हैं ; सबका मुंह एक तरफ रहता है और आक्रमणकारी पर सब मिल कर लातें फेंकते हैं। ये शत्रु पर इतने साहस और वेगसे आक्रमण करते हैं कि उन्हें पराजित हो कर तुरन्त ही वहांसे भागना पड़ता है। ये लातोंकी चोटसे सिंह और व्याघ्र तकको दूर भगा देते हैं। बचपनसे पालनेसे यह जानवर मनुष्यकी वश्यता मान तो लेता है, पर स्वाभाविक वृत्तिको छोड़ कर गाय-भैंसोंकी तरह सम्पूर्णरूपसे मनुष्यके वशमें नहीं आता। कुछ भी हो, जेब्रासे भारवाही पशुओंका काम तो निकल ही आता है। दक्षिण अफ्रिकाके लोग इसका मांस भक्षण करते हैं।

जेब्रा।

जेब्राके साथ गर्दभ और घोड़ेके संमिश्रणसे एक प्रकारके नूतन जीवकी सृष्टि होती है। जेब्राओंकी प्रकृति गर्दभके समान है ; घोड़ों जैसी नहीं।

घोड़ेकी पूंछसे और जेब्राकी पूंछमें कुछ अन्तर है— घोड़ेकी पूंछ पर सर्वत्र बड़े बड़े बाल होते हैं, किन्तु जेब्राकी पूंछका शेषभाग ही दीर्घ रोमावृत होता है। इसके सिवा घोड़ेके अयाल लम्बे और दोदुल्यमान होते हैं, किन्तु जेब्राके अयाल छोटे और सीधे होते हैं। इनके वर्णमें भी पार्थक्य दिखलाई देता है। घोड़ेके शरीर पर चमड़ेके साधारण रंगसे भिन्न वर्णके गोलाकार चिह्नोंका क्रम है, किन्तु जेब्राके शरीर पर सर्वदा ही धारियोंका आभास पाया जाता है।

जेब्रा समतल भूमि पर विचरण करते और घास खा कर जीते हैं।

दक्षिण अफ़्रिकाकी प्रान्तरभूमि पर एक प्रकारका जेब्रा मिलता है। केपटाउन प्रदेशके लोग उस पर सवार हो कर बाजारमें बेचने लाते हैं। यहांके जेब्रा अत्यन्त दुष्ट और चञ्चल होते हैं।

प्रसिद्ध यूरोपीय प्राणितत्त्वविद् मि० बाफनका कहना है कि, चौपाये जानवरोंमें जेब्रा सबसे अधिक सुन्दर होता है। इसका आकार घोड़ेकी तरह सुहावना, गति मृगकी तरह क्षिप्र और चमड़ी साटिनकी भांति चिकनी होती है। नर जेब्राओंके शरीरकी धारियां काली और पीली किन्तु अत्यन्त उज्ज्वल होती हैं और मादा जेब्राकी रेखाएं काली और सफेद। जेब्रा तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं। पार्वत्य प्रदेशके जेब्रा सबसे सुन्दर होते हैं और उनके तमाम शरीर पर धारियां होती हैं। ये दक्षिण अफ़्रिकाके पर्वतों पर रहते हैं और अकसर करके समतल भूमि पर नहीं आते। ये जेब्रा बिलकुल जंगली और दुरारोह पर्वत पर विचरण करते हैं। ये जब दल बांध कर फिरते हैं, तब इनमेंसे एक जेब्रा किसी ऊंचे स्थान पर जा कर पहरा देता रहता है और शत्रुके आगमनका ज़रा भी सन्देह होते ही तुरंत एक आवाज करता है जिससे सबके सब खूब जोरसे भागने लगते हैं। फिर उन्हें कोई भी नहीं पकड़ सकता। अन्य श्रेणीके जेब्राको 'बर्चेल-जिब्रा (Burchell's Zebra) कहते हैं। ये केपटाउनके निकटवर्ती मालभूमि पर रहते हैं। इनके शरीरकी धारियां श्वेत और पिङ्गल वर्ण होती हैं। पिङ्गल वर्णकी धारियोंको देखनेसे ऐसा मालूम होने लगता है, मानो दोके बीचमें एक एक धूसर वर्णकी धारियां हैं। इनके पैर सफेद होते हैं। अन्यान्य अंशोंमें यह जेब्राके समान ही होता है।

जेब्रा सूर्यास्त और सूर्योदयके मध्यवर्ती समयमें झरनेका पानी पीने जाते हैं। इसी समय सिंह झरनेके आस पास छिपे रह कर इन पर आक्रमण करता है। कहा जाता है कि, ज्योत्स्ना रात्रिको सिंह जेब्राके शिकारके लिए नहीं निकलता, क्योंकि प्रकाशमें जेब्रा सिंहको देख कर दूरसे ही भाग जाते हैं।

जेमन् (सं० त्रि०) जि-मनिन। १ जयशील, विजयी, जीतनेवाला। (पु०) २ जेतुर्भावः। जय, जीत। ३ जय सामर्थ्य। "जेमा च महिमा च" (शुक्लयजुः १८।४)

जेमन (सं० क्ली०) जिम-भावे ल्युट्। भक्षण, जीमना, भोजन करना।

जेय (सं० त्रि०) जीयते इति। अचो यत्। पा ३।१।९७। जि कर्मणि यत्। जेतव्य, जीतनेयोग्य जो जीता जा सके।

जेर (हिं० पु०) १ वह झिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है। २ सुन्दरवनमें मिलनेवाला एक पेड़। इसकी लकड़ीसे मेज़, कुरसी, आलमारी इत्यादि बनती हैं।

जेर (फा० वि०) १ परास्त, पराजित २ जो बहुत तङ्ग किया जाय।

जेरदखाना—सुन्दरवनका एक अंश। शाह सुजाकी संशोधित राजस्वतालिकामें सुरादखाना वा जेरदखानाके नामसे इसका उल्लेख हुआ है। यह अंश वर्तमान बाखरगंज जिलेके अन्तर्गत था। शाह सुजाके समयमें इसकी मालगुजारी ८४५४) रुपये थी।

जेरपाई (फा० स्त्री०) १ स्त्रियोंके पहननेकी जूती, स्लीपर। २ साधारण जूता।

जेरबन्द (फा० पु०) कपड़े या चमड़ेका तस्मा जो घोड़ेकी मोहरीमें लगा रहता है।

जेरबार (फा० वि०) १ जो आपत्ति या दुःखसे घिरा हो, जो आपत्तिके कारण बहुत तङ्ग और दुःखी हो गया हो। २ क्षतिग्रस्त, जिसकी बहुत हानि हुई हो।

जेरबारी (फा० स्त्री०) १ आपत्ति या क्षतिके कारण बहुत दुःखी होनेकी क्रिया। २ हैरानी, परेशानी।

जेरी (हिं० स्त्री०) १ काँटोली झाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबानेके लिये चरवाहेकी लाठी। २ फरुईके आकारका खेतीका एक औजार।

जेरुसलेम (Jerusalem)—पालेष्टाइनका प्रधान नगर और ईसाइयोंका परम पवित्र तीर्थ। यह अक्षा० ३१° ४७' उ० और देशा० ३५° १५' पू०के मध्य भूमध्यसागर-पृष्ठसे २५०० फुटकी ऊँचाई पर एवं निकटस्थ उपकूलसे २८ मील पूर्व और मरुसागरमें मिलनेवाली जर्डन नदीके मुहानेसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित है। यह यहूदियोंके गौरवमय युगकी प्रधान कीर्ति होनेके कारण यूरोप और अमेरिकाके यहूदी लोग अब इसे अपने अधिकारमें लाना चाहते हैं। मुसलमानोंको भी बहुत समय तक इस पर अधिकार रहा है। इस तरह तीन प्रसिद्ध धर्मोंका केन्द्र स्वरूप हो कर जेरुसलेम अब भी जन-समाजमें पूजित है।

मिसरमें खृष्ट-पूर्व १५वीं शताब्दीकी जो तेल-एल-एमार्न लिपिमाला मिली है, उसमें जेरुसलेमका उरुसलीम (वा सलीमका नगर अर्थात् शान्ति-नगरी) के नामसे उल्लेख है। इससे प्रमाणित होता है कि यह नगर 'जोसुआ'के अधीन इजराइलोंके कानानदेशमें प्रवेश करनेसे बहुत पहले बसा था। 'जोसुआ'के ग्रन्थमें ही सबसे पहले जेरुसलेमका नाम पाया जाता (Jos. 10', 1563) है। उस जगह जेरुसलेमके अधिवासियोंको जेबुसाइत कहा गया है। रोमक-सम्राट् हाद्रियनने १३५ ई०में इस नगरीका पुनः संस्कार किया और 'कपितोलिना' नाम रख दिया। दामस्कसके खलीफाने भी इसी नामका व्यवहार कर गये हैं, क्योंकि उनके सिक्कोंमें 'ऐलिया' नाम पाया जाता है। ईसाकी १०वीं शताब्दी तक इसका यही नाम था, इस बातका प्रमाण यूटिकियसके विवरणसे मिल सकता है। ईसाकी १०वीं शताब्दीसे लगा कर १३वीं शताब्दी तक यह मुसलमानोंकी अधीनतामें 'बेत-एल-मुकद्दा' (अर्थात् 'पवित्र पुरी') नामसे परिचित था। इसका आधुनिक नाम एल-कुदस एस्-शरीफ अर्थात् "पवित्र पुरी और सुन्दर नगरी" है। साधारणतः यह 'एल कुदस' कहलाता है, किन्तु यहांके ईसाई और यहूदी अधिवासिगण अब भी इसे जेरुसलेम ही कहा करते हैं।

१२४४ ई०से जेरुसलेम मुसलमानोंके अधिकारमें आया और फिर १५१७ ई०में वह तुर्कियोंके हस्तगत हुआ। गत महायुद्धके समय ब्रिटिश शक्तिने इस पर कब्जा करनेका निश्चय किया; तदनुसार तुर्कियोंने बाध्य हो कर १९१७ ई०तारीख ८ दिसम्बरको इसे ब्रिटिश-गवर्नमेण्टको दे दिया। जेरुसलेमकी वर्तमान जनसंख्या ६२५७८ है। इसके पाँच मील दक्षिणमें बेथेलहम है, जहां राजा डेभिड् और ईसा मसीहका जन्म हुआ था। बेथेलहम पल्लीके पूर्वप्रान्तमें जो गिर्जा है, वह ईसाइयोंके उपासनागृहोंमें सबसे प्राचीन है। वर्तमान जेरुसलेममें Anglo-Egyption Bank-की एक बड़ी शाखा स्थापित है।

दर्शनीय स्थान—यह नगर प्राचीन कालमें जहां था, अब भी वहीं है, सिर्फ प्राचीन नगरीका दक्षिणप्रान्त रोमक-सम्राट् हाद्रियनकी दीवारके बाहर पड़ गया है। किन्तु आधुनिक प्रत्नतत्त्वविदोंके प्रयत्नसे अब पुरातन नगरीका सम्पूर्ण भाग हमारे दृष्टिगोचर होता है।

(क) सियन पर्वत—इसके चारों ओर नहर खोदी गई है। इसकी ऊँचाई करीब २६०० फुट है; जेरुसलेमके पर्वतोंमें यही सबसे ऊँचा है। (ख) मोरिया पर्वत। (ग) गरेब पर्वत।

इतिहास-पृथिवी पर जेरुसलेमके समान प्राचीन नगर बहुत कम हो नजर आते हैं। हमें इसकी सभ्यताका धारावाहिक इतिहास प्रायः ४००० वर्ष तकका मिल सकता है। बहुत प्राचीनकालसे ही इसने जगत्में गौरवका आसन अधिकार कर रक्खा है।

जेरुसलेम प्रथम अवस्थामें, कानानके नगरोंकी तरह, काल्दीयकी अधीनतामें था। अब्राहमके बाद जेरुसलेमने मिसरकी वश्यता स्वीकार की थी। ईसासे पूर्वकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें जब इजराइल स्वाधीनता प्राप्त करनेका स्वप्न देख रहे थे, उस समय खाबेरी नामक एक कोशिय जातिने हिटाइटोंकी सहायतासे जेरुसलेम अधिकार कर लिया। उ-रु-सा-लिमके अधिपति आद-

हिवाने विपद्की आशङ्कासे मिसरके सम्राट् एमोनोफिस-की सहायताके लिए तर-ऊपर छ पत्र भेजे। किन्तु मिसर उस समय अन्तर्विप्लवमें व्यस्त था—वह कुछ भी सहायता न दे सका। अतएव जेरुसलेमका भी पतन हुआ। सम्भवत: इसी समय जेरुसलेम पर जेबूसाइतों-का अधिकार हुआ था; उन्होंने इसे जेबू नामसे प्रसिद्ध किया था।

हिब्रू लोग जिस समय इस देशके निकटवर्ती हुए, उस समय जेबूके राजा एडोनिसेडेक थे। इजराइलके विरुद्ध कानानके पाँच राजाओंके एक साथ अभियान करने पर ये मारे गये। किन्तु जेरुसलेमका किला इतना मजबूत था कि राजाकी मृत्युके बाद भी उसने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा कर ली। पीछे जब इजराइलके लोगोंने इस देशका बटवारा कर लिया, तब जेरुसलेम बेञ्जामिनके वंशधरोंके हस्तगत हुआ। परन्तु वे वहां यथार्थ अधिकार न फैला सके। उन लोगोंने उक्त नगरोंके निम्नभागमें बड़ा अत्याचार किया था—आग लगा कर प्रजाको जलानेकी कोशिश की थी, परन्तु किसी तरह भी वे नगर पर कब्जा न कर सके।

डेभिडने इजराइलकी बारह शाखाओं पर आधिपत्य विस्तार कर जेरुसलेम अधिकार करनेका संकल्प किया। उनकी इच्छा थी, कि जेरुसलेमको ही अपनी जातिका राष्ट्रनैतिक और धर्मसम्बन्धीय केन्द्र बनावें। हेब्रनके पास उन्होंने अपनी शक्ति एकत्र की और जेबूकी तरफ चल दिये। वहांके लोगोंने सोच रक्खा था कि 'हमारा दुर्ग अभेद्य है, इसलिए बाधा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं।' किन्तु डेभिडने अपने अदम्य उत्साहके फलसे जेरुसलेम पर कब्जा कर लिया।* डेभिडने सियनका पर्वत अधिकार कर लिया और वहीं रहने लगे। उसका नाम रक्खा गया 'डेभिडका नगर'। (II kings v. 7. 1.) यह घटना ईसासे प्रायः १०५८ वर्ष पहले हुई थी। इसके बाद डेभिडने मोरिया पर्वत पर उपासना-मन्दिर बनवानेके लिए द्रव्यादिका संग्रह किया; किन्तु, इस कार्यको वे अपने सामने पूरा न कर सके थे।

उनके पुत्र सुलेमानने अपने राज्यके चौथे वर्षमें यह काम शुरू कराया। टायरके राजा हीरमने इसके लिए कुछ सुदक्ष शिल्पियोंको भेजा था, उनकी सहायतासे यह काम पूरा हुआ। इस मन्दिरके लिए ७० हजार लकड़ी ढोनेवाले और ८० हजार पत्थर ढोनेवाले मजदूर नियुक्त हुए थे। साढ़े सात वर्षके कठोर परिश्रमके बाद यह मन्दिर बन कर तयार हुआ था। इसके बाद जेरुसलेममें इन्होंने तेरह वर्ष तक "लेबननकी वनवाटिका" और प्रासाद आदिका काम जारी रक्खा। सुलेमान मन्दिर आदि बनानेके लिए इतना अधिक कर लेते थे, कि प्रजा उसे अपने ऊपर अत्याचार समझती थी।

सुलेमानके पुत्र रोबोयम जब राजगद्दी पर बैठे, (९८१—९६५ खृष्टपूर्वाब्द) तब उनके गर्वित व्यवहारसे प्रजा विरक्त हो गई और विद्रोह फैल गया। बारह शाखाओंको एकत्र कर डेभिडने राज्य स्थापन किया था, जिनमेंसे १० शाखाओंने जेरुसलेमसे अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। रोबोयम सिर्फ बेन्जामिन और जूदा शाखाके अधिपति बन कर जेरुसलेममें रहने लगे। नवगठित विद्रोही राज्यके राजा जेरोबोयमने अपने प्रतिद्वन्द्वीकी क्षमताका ह्रास करनेके लिए मिसरके फेरोआ (राजा) शेशङ्कको निमन्त्रण दिया। शेशङ्कने जूदा जीत कर जेरुसलेम पर अधिकार कर लिया और वहांके असंख्य मन्दिरोंको लूट कर मिसर लौट गये। उसके बाद जेरुसलेमके राजा आसा (९६१—९२१ पू० खृ०) और जोसफतने (९२०—८९४ पू० खृ०) निकटवर्ती स्थानोंको जीत कर जो अर्थ संग्रह किया था, उससे मन्दिरोंकी पुनः श्रीवृद्धि की। किन्तु, इसके बाद फिलिष्टाइनोंने दक्षिण प्रदेशके अरबियोंसे मिल कर पुनः मन्दिरोंका धनरत्न लूट लिया। इसके बाद रानी एटालियाने अपने पौत्रको मार कर जेरुसलेमका सिंहासन अधिकार किया। किन्तु, वहांके लोगोंने छ वर्ष बाद पत्थर फेंक कर उन्हें मार डाला और जोयसको राजा बनाया। जोयसने (८८६—४१ पू० खृ०) पुनः मन्दिर बनवाये और 'बाल' नामकवि देशीय देवताकी पूजा

* Maspero—The Struggle of The Nations, P. 725-727.

बन्द करा दी। बादमें इनकी बुद्धि ठिकाने न रही; इन्होंने अपने रक्षाकर्त्ता और भविष्यद्वक्ता पुत्र जाकारियाको मार डाला और खुद भी नौकरोंके हाथ मारे गये। अमेसियाके राजत्वकालमें उत्तरके इजराइलोंने दक्षिणके इजराइलोंको पराभूत किया और जेरूसलेमकी ४०० हाथ दीवार तोड़ दी। इसके बाद जेरूसलेमके राजा ओजियसने पुनः (८११—७६० ख० पू०) दीवारका संस्कार कराया और तोरण द्वारा उसके सुरक्षित करनेकी व्यवस्था की। इनके पुत्र जोथाथम (७५८—४४ ख० पू०) सुविज्ञ और माधुहृदय व्यक्ति थे और उन्होंने नगरकी शक्ति बढ़ानेके लिए यथासाध्य प्रयत्न भी किया था।

जिस समय सिरिया और इजराइलके राजाओंने मिल कर जेरूसलेमके विरुद्ध युद्धयात्रा की, उस समय भगवान्‌ने धर्मवीर महापुरुष इसायाको राजा आचाजके (७४२-२१ ख० पू०) पास भेजा। ईसायाने राजासे शत्रुओंसे सावधान होनेके लिए कहा और भविष्यद्वाणी की कि इमानुएल एक कुमारीके गर्भसे जन्मग्रहण करेंगे। आचाजने मन्दिरोंकी सम्पत्ति आसीरियाके राजा टिगलथ पाइलिसरको घूसमें दी; उन्हें उम्मेद थी कि आसीरिया उनकी सिरिया और इजराइलके आक्रमणसे रक्षा करेगा। किन्तु धर्मवीर ईसायाने उन्हें अपनी शक्ति पर भरोसा करनेके लिये कहा था। आचाज यहां तक विधर्मी हो गये कि उन्होंने जिहोवाकी पूजा बन्द करा कर बाल-मोलककी पूजा चला दी।

उसके बाद एजेकियाने (७२७-६८६ ख० पू०) मूर्त्तिपूजाको बन्द करनेके लिए जोरोंका आन्दोलन शुरू किया। इजराइलके ध्वंसको देख कर ये डर गये और वहां दूसरी दीवार बनवा दी। इन्होंने मिसरके राजा और बाबिलनके मेरोडक बालाडनके साथ सन्धि करके आसीरियाको कर देना बन्द कर दिया। इस पर आसीरियाके प्रबल पराक्रान्त राजा सेनाचिरिबने पालेष्टाइन पर आक्रमण किया और अपने प्रधान प्रधान सेनापतियोंको जेरूसलेम भेज दिया। ईसायाके परामर्शानुसार जेरूसलेमके राजा एजेकियाने आत्मसमर्पण करनेके लिए तैयार न हुए। इन्होंने शत्रुपक्षको जिससे पीनेके लिये पानी न मिले, इसका भी बन्दोबस्त किया। आसीरियाकी एक लिपिके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि सेनाचेरिबने जेरूसलेमके एजेकियाको चिड़ियाकी तरह सींकचोंमें कैद कर रक्खा था। इस लिपिके साथ बाइबिलमें वर्णित घटनाओंका भी समावेश है। पीछे महामारीके फैल जानेसे सेनाचेरिबकी फौज बरबाद हो गई। इस पर सेनाचेरिबने पुनः सेना भेजी और जेरूसलेमको वश किया। इसीलिये आसीरियाके शिलालेखमें एजेकियाके पुत्र मानासेसको अधीन नरपति कहा गया है। ६६६ ई०से कुछ पहले मानासेसने स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये कोशिश की थी; किन्तु ६६६ ई०में असुरवनिपालके सेनापतिने जेरूसलेममें आ कर राजाको शृङ्खलाबद्ध किया और उसी अवस्थामें उन्हें बाबिलन भेज दिया। पीछे मानासेस किसी तरह छुटकारा पा कर जेरूसलेम लौट आये और नगरकी दीवारको खूब मजबूत बना दिया (II. Par XXX III, 12—16)

एमनके पुत्र जोसियसने भविष्यद्वक्ता महापुरुष जेरेमियाके उपदेशानुसार पुनः मूर्त्तिपूजाका प्रचार बन्द किया और मन्दिरका जीर्णोद्धार (६२१ ई०में) कराया। ६०८ ई०में जब मिसरके फारोया २य नेचोने आसीरियाके विरुद्ध युद्धयात्रा कर रहे थे उस समय जोसियसने अपने प्रभुकी स्वार्थरक्षाके लिये उनको बाधा दी; किन्तु मिगिदोके युद्धमें वे मारे गये। ६०१ ई०में बाबिलनके नवीन युवराज नेबूकादनसर जेरूसलेम आये और वहां प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियोंको बन्दी कर बाबिलन ले गये; साथ ही युवक धर्मवक्ता दानियल भी बाबिलनको पहुंचाये गये। जोयसिमने आत्मसमर्पण किया था। किन्तु बाबिलनके दूरदर्शी सम्राट् इस बातको अच्छी तरह समझ गये थे कि जेरूसलेम बहुत जल्द शक्तिशाली हो जाता है, उसका ध्वंस बिना किये निश्चिन्त नहीं हो सकते। इसलिए उन्होंने जेरूसलेमको तहस नहस कर डाला और दश हजार आदमियोंको कैद करके बाबिलन पहुंचा दिया। परन्तु इतना निर्यातन होने पर भी उसकी स्वाधीनताकी स्पृहा न घटी, उसने पुनः विद्रोह खड़ा किया। इस पर नेबूकादनसरके सेनापति नाबूजारदनने एक बड़ी भारी सेनाके द्वारा जेरूसलेम घेर लिया। करीब

डेढ़ वर्ष तक यह घिराव जारी रहा। अन्तमें बाध्य हो कर जेरुसलेमको आत्म-समर्पण करना पड़ा। मन्दिर, प्रासाद और प्रधान प्रधान स्थानोंमें आग लगा दी गई—नगरको हर तरहसे बरबाद करनेकी कोशिश की गई। पूजाके पवित्र उपकरण और सर्व प्रकार बहुमूल्य पदार्थ बाबिलन भेज दिये गये। यहूदीगण सिर्फ अपने परम पवित्र Ark of the Covenantको छिपा सके। इस पराजयसे यहूदियोंकी बड़ी दुर्दशा हुई। जेरुसलेमके प्राय: सभी लोग मारे गये; सिर्फ कुछ कृषक और दरिद्र व्यक्ति एक यहूदी शासनकर्त्ताके अधीन अपना निर्वाह करने लगे। बाइबिलमें इसी घटनाके समयका 'बाबिलनका बन्दी युग' के नामसे उल्लेख किया गया है।

ईसासे ५३६ वर्ष पहले पारस्यके राजा काइरसने यहूदी बन्दियोंको पालेष्टाइन लौट जानेका आदेश दिया था। उन लोगोंने लौटतेके साथ ही पहले भगवान्का मन्दिर बनवाया था। पहली बार ४२००० यहूदी जेरुसलेम लौटे थे। पीछे आर्टाजरक्समके समयमें (४५८ खृ० पू०) और भी १५०० यहूदियोंने आ कर इजराइलके धर्म और राष्ट्रके स्वातन्त्र्यको रक्षाके लिए तन मन अर्पण किया।

इसके बाद, दो सौ वर्षसे भी अधिक समय तक जेरुसलेमने पारस्यको अधीनतामें शान्तिपूर्वक अवस्थान किया। पीछे ३३२ ई०में महावीर सिकन्दर शाह पारस्य साम्राज्य अधिकार करनेके बाद जेरुसलेम पर कब्जा करने पहुंचे। जेरुसलेमके पुरोहितोंने यह समझ कर कि बाधा देनेसे कोई लाभ नहीं, आत्मसमर्पण किया। सिकन्दरशाहने यहूदियोंको किसी तरहकी तकलीफ न दी थी। किन्तु इसके बाद जब उत्तराधिकारके विषयमें विवाद उपस्थित हुआ, तब फिर जेरुसलेमकी बुरी हालत हो गई। ३०५ ई०में टलेमी सोतारने कौशलसे नगरमें प्रवेश किया और कुछ यहूदियोंको कैद करके मिसर ले गये।* इसके एक सौ वर्ष बाद महावीर अन्तिओकसने इसे अपने अधिकारमें कर लिया। सलुकीद वंशके राजाओंने जेरुसलेममें ग्रीक सभ्यताका प्रचार करना चाहा था। किन्तु इसी समय वहांके पुरोहितोंमें परस्पर रक्तपात प्रारम्भ हो गया। उपद्रव दमन करनेके बहाने अन्तिओकस इपिफानिसने (१७० खृ० पू०में) नगरमें प्रवेश कर दुर्ग और प्राकार तोड़ डाला; मन्दिरके पवित्रतम उपकरणोंको हड़प कर गये; ४० हजार मनुष्योंको निहत किया और करीब ४ हजार लोगोंको कैद करके साथ लेते गये। दो वर्ष बाद उन्होंने फिर अपने सेनापतिको जेरुसलेम भेजा और आदेश दिया कि बल पूर्वक यहूदी धर्मका दमन करके किसी भी तरह ग्रीकोंके देव-धर्मका प्रचार होना चाहिये। फिर क्या था, यहूदी लोग अपने धर्मके लिए सर्वत्र निर्यातित होने लगे। भगवान्के पवित्र मन्दिरमें जूपितारकी मूर्त्ति स्थापित हुई।

मन्दिरके पुरोहित माथाथियस और उनके पांच पुत्रोंने इस अत्याचारके विरुद्ध खड़े होनेका संकल्प किया। जूदाने अपने पिताकी मृत्युके बाद सिरियाकी सेनाको चार बार पराजित किया और जेरुसलेममें अपना आधिपत्य विस्तार कर मन्दिरका पुन: निर्माण कराया। इन्होंने दीवार बनवाई तो सही, पर दुर्गका मध्यस्थल ये सिरियोंसे न ले सके। सिरियोंके साथ बदस्तूर लड़नेके लिए इन्होंने रोमके साथ मित्रता कर ली। इनके भाई जोनाथन भी अपूर्व वीरताके साथ युद्ध करने लगे; किन्तु अन्तमें वे विश्वासघातकके हाथसे मारे गये। इनके भाई सिमनने तीन वर्ष बाद आक्रासे सिरियोंको भगा दिया। उस दुर्गको भी जो पहाड़के ऊपर था, मिट्टीमें मिला दिया। इस विराट् कार्यके लिए जेरुसलेमके समस्त स्त्रीपुरुषोंको तीन वर्ष तक कठोर परिश्रम करना पड़ा था। द्वितीय डिमेत्रियस और उनके बाद अन्तिओकस् सिदेतिसने यहूदियोंकी स्वाधीनता स्वीकार किया था।

इसके बाद कुछ समय तक यहूदी लोग जेरुसलेममें शान्तिसे रहे थे। उनके राजा अरिष्टोबुलसने सबसे पहले राजा और पुरोहित इन दोनों पदोंको एक साथ ग्रहण किया था। ईसासे ६५ वर्ष पहले रोमन वीर पम्पेने जेरुसलेम जा कर सब तरहका गृहविवाद मिटा दिया। इसी समय मौका देख कर उन्होंने जेरुसलेमको रोमका करद राज्य बना लिया।

* Antiq. Jud, XII, II.

पम्पेने इस नगरकी जो दीवार तोड़ डाली थी, उसे पुन: बनवानेके लिए आदेश किया। किन्तु ४८ खृ० पू०में उनके अधीनस्थ एक कर्मचारीने उक्त स्थानका शासनभार पा कर अपने दो पुत्रोंको वहांका कर्त्ता बना दिया।

ईसासे २४ वर्ष पहले इतिहास-विश्रुत हेरोदने जेरुसलेम अधिकार कर एक बड़ा भारी दुर्ग बनवाया और रोमक सेनापति आण्टनीके सम्मानार्थ उसका नाम आन्तोनिया रख दिया। इन्होंने मल्लयुद्धके देखनेके लिए एक प्रेक्षागृह भी बनवाया था। हेरोद नाना कारणोंसे यहूदियोंके अत्यन्त अप्रिय हो गये। परन्तु १८ खृ०पू०में उनकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए इन्होंने जोरोबाबेलबके विराट् मन्दिरका पुनर्निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। ईसासे १० वर्ष पहले नव-मन्दिरका गृहप्रवेश उत्सव हुआ था। इन्होंने सियन पर्वतके उत्तर-पश्चिममें और एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। अर्थ-प्राप्तिकी आशासे इन्होंने प्राचीन राजाओंकी कब्रोंका खुदवाना शुरू कर दिया। किन्तु जब देखा कि यहूद लोग बहुत बिगड़ रहे हैं, तब उन कब्रोंको उन्होंने सफेद पत्थरसे बन्द करवा दिया। हेरोदके राजत्वके शेषभागमें बेथलहम ग्राममें ईसामसीहका जन्म हुआ। पूर्वदेशीय तीन विप्र व्यक्तियोंके परिदर्शन और निर्दोष शिशुओंकी हत्या करनेके बाद सर्वसाधारण द्वारा घृणित हो कर एक भीषण रोगसे हेरोदकी मृत्यु (ईसासे ४ वर्ष पहले) हुई।

हेरदके पुत्रकी क्षमताको पहले रोमने खर्व किया; पीछे जूदिया इस देशको रोमके एक अधीन प्रदेशके रूपमें परिणत कर दिया। रोमके अधीनस्थ प्रादेशिक शासनकर्त्ता पण्टियस् पिलेटके शासनकालमें ईसामसीह पकड़े गये और मृत्युदण्डसे दण्डित हुए। ईसामसीहके पुनराविर्भाव और उनके जीवनकी पवित्र घटनाओंने जेरुसलेमको पवित्रतर बना दिया। पेण्टकष्टके दूसरे दिन हजारों यहूदियोंने उत्साहके साथ नवप्रचारित ईसाईधर्म ग्रहण किया। किन्तु इससे शासकगण बड़े नाराज हुए और ईसाइयोंको नाना प्रकारसे निर्यातन करने लगे। उसके बाद रोमक सम्राट्गण कभी अपनी मौजसे और कभी यहूदियोंको सन्तुष्ट करनेकी इच्छासे ईसाइयोंको तंग करने लगे। उन लोगोंने सेण्टजेमस दी ग्रेटरकी हत्या की; सेण्ट पीटरको भी यही दण्ड दिया जाता, किन्तु देवदूतने आ कर उनकी रक्षा कर ली।

इसी समय आदियाबेनीकी रानी सल्डम जेरुसलेम आई थीं। इन्होंने बहुसंख्यक परिजन सहित ईसाई धर्म ग्रहण किया था—अब ये जेरुसलेममें आ कर दुर्भिक्षसे पीड़ित दीन दरिद्रोंको दान देने लगीं। इन्होंने, "राजाओंकी समाधि" नामसे प्रसिद्ध विराट् समाधि-स्थान बनवाया था। इसी समय ईसाकी माता "The Blessed Virgin"का स्वर्गवास हुआ और गेथसेमानीमें उनको समाधिस्थ किया गया। ६६ ई०में गेसियम फ्लोरसने यहूदियोंको इतना तङ्ग किया कि वे विद्रोही हो गये।

इसके बाद टीटस बहुत दिनों तक जेरुसलेमको घेरे रहे और यहूदियोंको बहुत तङ्ग किया। इन्होंने विजयी हो कर कहा था—"मैंने जय नहीं की। भगवान्ने यहूदियों पर क्रुद्ध हो मुझे निमित्त बना कर उनको दण्ड दिया है।"*

टिटसने जेरुसलेमके नगरों और मन्दिरोंकी दीवार तुड़वा दी। टासीटसका कहना है कि उक्त अवरोधके समय ६००००० लाख यहूदी मारे गये थे। जो कुछ जीवित थे, उन्हें क्रीतदासकी तरह बेच (७० ई०) दिया गया था।

रोमकी सेनाने जेरुसलेमका सब कुछ ध्वंस कर डाला, सिर्फ हेरोदके प्रासादके उत्तरकी तरफके तीन तोरण बच गये। उन लोगोंने शस्यक्षेत्रों पर भी अपना कब्जा कर लिया। ईसाई लोग 'जावने' नामक स्थानमें (जेरुसलेमसे दो घण्टेका रास्ता है) जा कर रहने लगे। जहां ईसाका अन्तिम भोजन हुआ था, वहीं गिर्जा बनाया गया। यही खृष्टान-जगत्का पहला गिर्जा है। पहले पहल जिन लोगोंने ईसाई धर्म स्वीकार किया था, वे सभी पहले जूदाधर्मके उपासक थे।

रोमनोंका अत्याचार, जेरुसलेममें रोमन उपनिवेशकी स्थापना, पवित्र मन्दिरमें जूपितरकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा आदि होते देख यहूदियोंने १३२ ई०में पुनः विद्रोह खड़ा

* Bill jnd. VIII. V. 2.

किया। सम्राट् हाड्रियनने इस विद्रोहका दमन किया। किन्तु विद्रोहके कारण जेरुसलेम और उसके पार्श्ववर्ती स्थान मरुभूमिमें परिणत हो गये। जेरुसलेमके ध्वंस स्तूपके ऊपर ईलिया कापिटोलिना नामक नवीन नगरी बनाई गई। साथ ही ईसाई धर्मसम्प्रदायमें भी एक तरहका परिवर्तन देखनेमें आया। इसके बादसे जेण्टाइल लोग जेरुसलेमके धर्ममन्दिरोंके रक्षक नियुक्त हुए।

ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें रोमन सम्राट् कनष्टान्टाइनने ईसाई धर्मको रोमन साम्राज्यका राजकीय धर्म बना डाला। यही कारण है कि ईसाई धर्मका बहुत प्रचार हो गया। धर्मके नव उत्साहके दिनोंमें लोगोंका मन जेरुसलेमकी पुण्यस्मृतिकी ओर गया और वहां पुनः मन्दिर आदि बनने लगे। जेरुसलेममें जो विशप रहते थे, वे ही खृष्टीय जगत्‌में सबसे अधिक सम्मानित होने लगे। बहुतसे तो जेरुसलेममें तीर्थयात्राके लिए उपस्थित हुए; जिससे पुरातन पवित्र स्थानोंका आविष्कार और पूजा होने लगी। ऐतिहासिक यूसिबियसका कहना है, कि ३२६ ई०में कालवारि नामक स्थान धूल और आवर्जनासे परिपूर्ण था और उसके ऊपरभी नासका मन्दिर था।* इस स्थानको देख कर सेण्ट हेलेनाने उसका संस्कार करना चाहा। किन्तु सम्राट् कनष्टानटाइनके आदेशसे उनकी सेनाने उसे खोद डाला। खोदते समय ईसाकी पवित्र समाधि आविष्कृत हुई। कनष्टानटाइनने विशप माकाराइसको लिखा—"उस पवित्र स्थानका अच्छी तरह आविष्कार किया जाना चाहिए;उससे बढ़ कर मेरे हृदयकी कामनाकी सामग्री और दूसरी नहीं है।" उस जगह दो बड़े बड़े मन्दिर बन गये। ईसाकी ५वीं शताब्दीके मध्यभागमें जेरुसलेम ईसाइयोंके पांच प्रधान विभागोंमें अन्यतम हो गया।

सम्राट् २य थियोडोसियसकी महिषी युडोसिया ४४४ ई०से जेरुसलेममें रहने लगीं। इन्होंने जीवनका शेषभाग धर्मकार्यमें बिताया था और जेरुसलेमकी एक दीवार तथा बहुतसे मन्दिर बनवाये थे।

६१४ ई०में जेरुसलेम पर बड़ी भारी विपत्ति आई; इस समय पारसियोंने इस पर अधिकार कर लिया। सम्राट् खुशरूके जामातासे नगर घेर लिया। कहा जाता है कि जेरुसलेमके पतनके समय ८० हजार ईसाई मारे गये थे। पाट्रिआर्क जाकरिया बन्दीरूपमें पारस्य पहुंचाये गये थे। सेन्टहेलेना पवित्र क्रासका जो स्मृतिचिह्न छोड़ गई थीं, उसे भी पारसी लोग ले गये। इस ध्वंसकार्यमें यहूदियोंने, ईसाइयोंके विरुद्ध हो कर पारसियोंका साथ दिया था। ६२२ ई०में रोमनवीर हेराक्लीयसने पारसियोंको परास्त किया था और ६२८ ई०में वे स्वयं तीर्थयात्राके लिए जेरुसलेम आये थे। इन्होंने कानून बना दिया था कि 'यहूदी जेरुसलेममें प्रवेश न कर सकेंगे'। इनसे पहले सम्राट् हाड्रियनने भी इस तरहका कानून बनाया था।

इसी बीचमें मुसलमान धर्मकी भी उत्पत्ति हुई। नव धर्मके नवीन उत्साहसे अरबियोंने एकके बाद दूसरा देश जीतना शुरू कर दिया। अलीके उपदेशानुसार उन्हें ओमरसे जेरुसलेम जय करनेका आदेश मिल गया। मुसलमान लोग चार महीने तक इस नगरको घेरे रहे। आखिर पाट्रिआर्क सोफोनियसको जब कहींसे कुछ सहायता न मिली, तब वे हताश हो कर मुसलमान सेनापतिसे मुलाकात करनेको राजी हो गये। उन्होंने शर्त रक्खी कि मुसलमान यदि ईसाई मन्दिरोंको न तोड़ें और ईसाइयोंको मुसलमान न बनावें, तो वे नगरमें प्रवेश कर सकते हैं। खलीफा ओमर इस शर्त पर राजी हो गये और सेनापतिको पत्र लिखा। ओमर स्वयं पाट्रिआर्कके साथ धर्मालोचना करते हुए नगरमें घुसे। मुसलमानोंने पहले पहल यहांके ईसाइयों पर कम अत्याचार किया था, क्योंकि ईसाई लोग एकेश्वरवादी थे, पौत्तलिक नहीं। मुसलमानोंके मतसे मक्का और मदीनाके बाद ही जेरुसलेम उनका पूजनीय स्थान है। क्योंकि यहां किसी दिन रातको मुहम्मद स्वयं पधारे थे।*

खालिफ आबदाल-मालिकके समयमें (६८४-७०५ ई०) जेरुसलेम मुसलमानोंके तीर्थरूपमें परिणत हुआ था। उन लोगोंने यहां बहुतसे मन्दिर बनवाये थे। क्रूजेड नामक धर्मयुद्धके समय ईसाइयोंको दो

* Vita Constantini III. xxvI.

* कुरान, सूरा १७।

एक मुसलमानोंको मसजिद देख कर उनमें यहूदियोंके मन्दिरका भ्रम हो गया था। इसलिए उसके अनुकरण पर बहुतसे गिर्जा बने थे। दामस्कसके खलीफोंके साथ ईसाइयोंका मेल था, बहुतसे ईसाई कर्मचारी उनके अधीन काम करते थे। सुप्रसिद्ध खलीफा हारुन अल-रशीदने ईसाके कबरिस्तानकी ताली चार्लम्-टी ग्रेटको भेज दी। चार्लसने उक्त समाधिके पास कई गिरजे बनवाये थे।

परवर्तीकालमें मुसलमानगण जेरुसलेमको जितना पवित्र समझने लगे, उतना ही ईसाइयोंको दूर रखने और निर्यातन करने लगे। मुसलमानोंमें भी बहुतसे वंशोंमें परस्पर राज्याधिकारके विषयमें विवाद शुरू हुआ—सिरिया ही उनका युद्धक्षेत्र हुआ। इसके कारण भी जेरुसलेमके ईसाई लोग तंग होने लगे।

तुर्कियोंने भी ईसाइयोंके बहुतसे धर्म-मन्दिर तोड़ डाले थे। सम्राट् ८म कनष्टानटाइनने (१०४२—१०५४ ई०) खलीफाकी अनुमति ले कर बहुतसे मन्दिरोंका संस्कार कराया था।

१०३० ई०में इटलीके आमालफी नगरके वणिकोंको जेरुसलेममें रह कर वाणिज्य करनेका आदेश मिल गया। १०७७ ई०में सेलजुक वंशके तुर्कियोंने पालेष्टाइन अधिकार कर लिया। इसी समयसे जेरुसलेमके ईसाइयोंकी अवस्था असहनीय हो उठी। तुर्कियोंने उनको उपासना करनेसे रोक दिया, गिर्जा तोड़ दिये और तीर्थयात्रियोंको बिना विचारे हत्या करने लगे। इस नृशंस अत्याचारका संवाद पा कर ईसाइयोंने क्लारमण्टकी सभामें प्रतिवाद किया और १०९८ ई०में प्रथम धर्मयुद्धके लिए यात्रा की।

इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि जेरुसलेममें ईसाइयों द्वारा लाटिन राज्यकी स्थापना हो गई। ११८७ ई०में सालादिनने उक्त राज्यका ध्वंस कर दिया था, किन्तु पीछे सेण्ट जिनडिभाक्षने उसकी पुनः स्थापना की। १२९२ ई० तक उक्त राज्य प्रतिष्ठित था। इन दो शताब्दियोंमें यहां अनेक यात्री तीर्थयात्राके लिए आये थे और बहुतसे मकान बना कर रहे थे। इस समय यूरोपकी सभी जातियोंका यहां वास था, जिसमें फरासीसियोंकी संख्या ही अधिक थी। किन्तु इटलीयगण ही सबसे अधिक धनवान् थे। ईसाकी १२वीं शताब्दीके मध्यभागमें जेरुसलेम राज्य अत्यन्त विस्तृत हो गया था—उत्तरके बेरुटसे लगा कर दक्षिणके राफिया तक समग्र सिरिया इसके अधीन था। दामस्कसमें मुसलमानी राज्य था, किन्तु ईसाई लोग उनके आगे हीनता स्वीकार न करते थे। यूरोप (सामन्त-तन्त्र) की तरह यहां भी बड़े बड़े जमींदारोंने प्राधान्य प्राप्त कर राजकीय क्षमताका दमन कर रक्खा था। इस समय जेरुसलेमके गिर्जाकी भी समृद्धि वर्द्धित हुई थी। इस राज्यके व्यवसायका भी बहुत प्रसार हुआ था, जिससे वहांके वणिकोंने बहुत धन पैदा किया था।

११८७ ई०में सालादिनकी सेनाने जेरुसलेममें प्रवेश कर ईसाई-राज्यका विलोप करनेका प्रयत्न किया था। सालादिनने ईसाइयोंको पवित्र समाधिमें गमनागमनके लिए आज्ञा तो दी थी, पर उसके लिए उन्होंने कर भी बहुत ज्यादा लगाया था।

इसके बाद जेरुसलेमके उद्धारके लिए यूरोपके धर्मप्राण व्यक्तियोंने बार बार युद्धयात्रा की। एक बार यूरोपके प्रायः एक लाख बालक धर्मार्थ प्राण विसर्जन देनेके लिए जेरुसलेमकी तरफ चल दिये। किन्तु दुर्भाग्यवश उनमेंसे बहुतसे तो रास्तेमें ही मर गये और बहुतसे क्रीतदासकी भांति मुसलमानोंके हाथ बिक गये। बार बार धर्मयुद्ध करने पर भी यूरोपके वीरप्रवरगण मुसलमानोंको अधिकारच्युत न कर सके।

ईसाकी १६वीं शताब्दी तक सिरिया मिसरके खलीफोंके अधीन था। इस बीचमें (१३वीं शताब्दीमें) मुगलोंने एक बार भीषण आक्रमण किया था। १४०० ई०में तैमूरकी अधीनतामें मुगल पुनः इस प्रदेशको ध्वंस करने आये थे।

१६वीं शताब्दीमें तुरकीके सुलतान उसमान अलीने जेरुसलेम पर कब्जा कर लिया। १७९९ ई०में महावीर नेपोलियन बोनापार्टने सिरिया पर अधिकार किया। १८३१ ई०में इब्राहिम पाशाने मिसरकी सेनाकी सहायतासे सिरिया और जेरुसलेम दखल कर लिया। पीछे १८४० ई०में इङ्गलैण्ड और अष्ट्रियाके मिल कर कोशिश

करने पर तुरुष्क-शक्तिको पुनः जेरुसलेम प्राप्त हो गया। उन्नीसवीं सदीमें तुरुष्क शक्ति द्वारा जेरुसलेममें अनेक प्रकारका संस्कार हुआ और ईसाइयोंके साथ अच्छा व्यवहार होने लगा। गत महायुद्धके फलसे जेरुसलेम अङ्गरेजोंके अधिकारमें आ गया है।

फिलहाल यहूदियोंने जेरुसलेम अधिकार कर वहां जातीय स्वाधीनता स्थापन करनेके लिए आन्दोलन शुरू कर दिया है। उसका नाम है Zionism. १८६२ ई०में मोसेस हेसने अपने Romund Jerusalem नामक ग्रन्थमें इस आन्दोलनका सूत्रपात किया था। यहूदियोंका मत यह है, कि "जातीय जीवनकी रक्षाके लिए जेरुसलेम आ कर अपने स्वतन्त्र वैशिष्ट्यको प्रस्फुटित करना पड़ेगा"। सेमेटिक जातिका विरुद्धभाव भी इस आन्दोलनमें प्रस्फुटित हुआ है। १८१८ ई०के सेप्टेम्बर महीनेमें तुर्की लोग पालेष्टाइनसे वहिष्कृत हुए थे। ब्रिटिश-शक्तिने उस समय यहूदियोंकी नालिश और अधिकार पर विचार किया था। १८२० ई०को पार्लामेण्टके कच्चे चिट्ठे Mandate-में लिखा है—"यहूदियोंका जो पालेष्टाइनके साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध है, उसे स्वीकार कर उस देशमें उन्हें जातीय आवास प्रतिष्ठित करनेका आदेश दिया जाता है।"

१८२१ ई०के अप्रील मासमें औपनिवेशिक मन्त्री मिष्टर उइन्ष्टन चार्चिलने सिरिया देश भ्रमण करते समय कहा था, कि ब्रिटिश-शक्ति यहूदियोंके जेरुसलेम आदि देशोंमें पुनः प्रतिष्ठा-कार्यमें सहायता पहुंचायेगी।

जेल (अं० पु०) कैदखाना, कारागार, बन्दीगृह। अति प्राचीन समयमें भारतमें इस समयकी भांति जेलकी प्रथा नहीं थी। रणजित्सिंहका राज्य अङ्गरेजोंके हस्तगत होते ही वहां जेल बनवानेकी जिक्र चली। भारतमें मुसलमानोंके राजत्वकालमें एक प्रकारके जेलखाने थे जरूर, किन्तु वे भी आधुनिक जेलखानोंके समान नहीं थे। एक समयमें कुछ अपराधियोंको कारागारमें रखनेकी प्रथा उस समय भी इस समयकी तरह प्रचलित न थी। महाभारतमें महाराज जरासन्धके जिस कारागारका उल्लेख है, वह साधारण अपराधियोंके लिए व्यवहृत नहीं होता था। वर्तमान जेल-प्रथा यूरोपीय है।

अपराधियोंके दोषोंको सुधारनेके लिए ही उनको दण्ड दिया जाता है और इसीलिए उनको जेलखानेमें रक्खा जाता है। पहले यूरोपमें बहुतसे अपराधियोंको निर्वासन-दण्ड दिया जाता था; परन्तु अब निर्वासित और स्थानान्तरित करनेके बदले कारादण्डसे दण्डित किया जाता है। प्राचीन समयमें अपराधीके दोष संशोधित हों वा नहीं हों उसके प्रति किसी तरहकी दृष्टि नहीं रख कर उसे भारीसे भारी दण्ड दिया जाता था; दण्ड देनेके लिए किसी तरहके नियम नहीं थे। कारागारप्रथा प्रचलित होनेके बाद भी यूरोपमें कैदियों पर विशेष अत्याचार किया जाता था। यूरोपके जेलखाने मानो एक एक नरक हो थे। कैदियोंकी पीड़ाका वर्णन करना लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। विश्वप्रेमिक जन हाउयार्डके अदम्य उत्साह और असीम कष्टसहिष्णुतासे ही वीभत्स नरकोंका संस्कार हुआ है। उक्त महात्माके अटल प्रयत्नसे १७७२ ई०में कारागारके सुधारके विषयका एक कानून बना। इसी समयसे कारागारमें अतिरिक्त दण्ड देनेकी प्रथा रद्द हो गई। पहले सब तरहके कैदी एक साथ रक्खे जाते थे और जेलके अध्यक्ष (जेलर) अर्थलोभसे जेलखानेमें हर एक तरहके वीभत्स कार्य करनेका प्रश्रय (सहारा) देते थे, जिससे अपराधियोंके दोष दूर न हो कर वल्कि बद्धमूल होते थे।

जेलखानोंमें वायुसञ्चालनके लिये प्रशस्त मार्गोंके न होनेसे तथा हर एक तरहकी अपरिच्छन्नता रहनेके कारण एक प्रकारके ज्वरकी उत्पत्ति होती थी, उस ज्वरसे बहुत समय कैदियोंकी अपमृत्यु भी होती रहती थी। धीरे धीरे ये सब कारण दूर होने लगे। अनेक महात्माओंने कैदखानोंके इन दोषोंको दूर करनेके लिये जी-जानसे कोशिशें की हैं, किन्तु अब तक भी सम्पूर्णरूपसे दोष दूर नहीं हुए हैं।

स्त्री और पुरुष कैदियोंको अलग अलग रक्खा जाता है। वे परस्पर मिल-जुल नहीं सकते और न बात चीत ही कर सकते हैं।

प्रत्येक कैदीका जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे और उसे शक्तिसे ज्यादा परिश्रम न करना पड़े, इस पर जेलर

दृष्टि रक्खेंगे। प्रत्येक जेलखानेमें एक एक चिकित्सक नियुक्त हैं।

गुरुतर अपराधियोंको कभी कभी निर्जन कारागारमें रक्खा जाता है। इस समय ये किसीके साथ बातचीत नहीं कर सकते और किसीके पास जा ही नहीं सकते। निर्जन कारावासके नियम-भङ्ग करने पर कैदियोंको शारीरिक दण्ड दिया जाता था और कानूनके अनुसार इस दण्डके विरुद्ध किसी तरहका आवेदन नहीं सुना जाता था।

कैदियोंसे नाना प्रकारके कार्य लिए जाते हैं—कोल्हू चलाना, ईंटें तोड़ना, रस्सी बटना इत्यादि। इससे गवर्मेण्टको बहुत आमदनी होती है।

भारतवर्षमें यूरोपीय कैदियोंके लिए पृथक् नियम हैं। उनको जिस तरहकी सुविधा दी जाती है, हिन्दुस्थानियोंको उससे आधा भी नहीं दी जाती। जेलखानोंमें यूरोपीय कैदियोंको नीतिशिक्षा देनेके लिये शिक्षक नियुक्त हैं, परन्तु हिन्दुस्थानियोंके लिये वैसा कोई इन्तजाम नहीं है।

थोड़ी उम्रवालोंके लिए दूसरी तरहका बन्दोबस्त है। जिन बालक वा बालिकाओंको कानूनके खिलाफ काम करनेके अपराधसे जेलमें रक्खा गया है, उनसे किसी प्रकारका कठिन परिश्रम नहीं कराया जाता। उनके लिए निर्धारित जेलको संशोधनागार (Reformatory Jail) कहते हैं।

उनको शिक्षा देनेके लिए जेलखानोंमें शिक्षक नियुक्त रहते हैं। संशोधनागारके बगीचेमें फलोंके पेड़ लगानेके लिए मिट्टी बनाने और उन पेड़ोंकी जड़में पानी देने इत्यादि कार्योंके लिए उन बालक-अपराधियोंको ही नियुक्त किया जाता है।

परन्तु अन्यान्य कैदियोंके लिए जैसे कानून बने हुए हैं, उनका प्रायः अपव्यवहार होता है। कैदियोंको जितना भोजन देनेका नियम है, वास्तवमें उतना उन्हें दिया नहीं जाता। इस देशमें विशेष एक कुत्सित नियम यह प्रचलित है कि, रातको उन्हें मलत्यागके लिए बाहर नहीं निकाला जाता—रातको वे उसी कोठरीमें मलत्याग करते हैं और सुबह उसको अपने हाथसे साफ करते हैं।

जिस उद्देश्यसे अपराधियोंको जेलमें रक्खा जाता है, वह सिद्ध नहीं होता। आज कल प्रायः देखा जाता है कि, जेलखानेसे छूटते ही दण्डित व्यक्ति शीघ्र ही कुकार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं।

भारतीय जेलखानोंमें स्वास्थ्यरक्षाके नियम अच्छी तरह नहीं पाले जाते। कैदियोंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिए जितना चाहिये उतना प्रयत्न नहीं किया जाता। यहांके जेलखानोंमें करीब करीब फी सदी ७५ कैदी रोगोंसे पीड़ित रहते हैं। अङ्गरेजी राज्यमें प्रत्येक विभाग और उपविभागोंमें एक एक जेलखाने बने हैं। उपविभागोंके जेलखानोंकी अपेक्षा विभागीय जेलोंमें ज्यादा कैदी रक्खे जाते हैं। भारतवर्षमें कानपुर, अलीगढ़, कलकत्ता, बम्बई, मन्द्राज, इलाहाबाद, नागपुर, जबलपुर इत्यादि स्थानोंमें जेलखाने बड़े हैं।

जेल (फा० पु०) जञ्जाल, हैरानी या परेशानीका काम।

जेलखाना (फा० पु०) कारागार।

जेलर (अं० पु०) कारागारका अध्यक्ष, जेलका अफसर।

जेलाटीन (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी बहुत साफ और बढ़िया सरेस। यह जानवरोंके विशेषतः कई प्रकारकी मछलियोंके मांस, हड्डी, खाल आदिको उबाल कर प्रस्तुत की जाती है। इसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्ठियों आदिकी नकल करनेके लिये पैड बनानेमें होता है।

जेली (हिं० स्त्री०) वह औजार जिससे घास या भूसा जमा किया जाता है।

जेलेप ला—हिमालयमें चोला पर्वत-श्रेणीकी घाटी। यह अक्षा० २७° २२´ उ० और देशा ८८° ५२´ पू०में सिक्किम राज्यसे तिब्बतकी चुम्बी उपत्यकाको गयी है। समुद्र-पृष्ठसे ऊँचाई १४३९० फुट है। इसी राह तिब्बतके साथ भारतका कारबार चलता है।

जेवड़ी (हिं० स्त्री०) जेवरी देखो।

जेवना (हिं० क्रि०) जीमना देखो।

जेवनार (हिं० स्त्री०) १ भोज, पङ्गत, जीमनवार। २ भोजन, रसोई।

जेवर (फा० पु०) आभूषण, अलंकार, गहना।

जेवर (हिं० पु०) शिमलामें मिलनेवाला एक प्रकारका महोखपक्षी। इसका दूसरा नाम जवी या सिंघमोनाल है।

जेवर युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेकी खुर्जा तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २८° ७' उ० और देशा० ७७° ३४' पू०में बसा है। लोकसंख्या प्रायः ७७१८ है। ई० ११वीं शताब्दीमें ब्राह्मणोंके बुलाने पर भरतपुरके यादव राजपूत यहां आ कर रहे और मेवांको उन्होंने निकाल बाहर किया। १८३६ ई०में जेवर गवर्नमेण्टके हाथ लगा। १८८१ ई०को बाजार फिर बनाया गया। १८५६ ई०को २०वीं धाराके अनुसार इसका प्रबन्ध होता है। कालीन और सूती नमदा कुछ कुछ बनता है। सप्ताहमें एक बार बाजार लगता है।

जेवर—मिथिलाके तिरहुत ब्राह्मणोंकी एक शाखा वा पूर्वा भेद।

जेवरा (हिं० पु०) ज्योरा देखो।

जेशलपीर—कच्छ प्रदेशका एक प्रसिद्ध दस्यु। इस व्यक्तिने शेष अवस्थामें तुरी नामक एक काठि रमणी द्वारा उपदेश पाने पर दस्युवृत्ति छोड़ दी थी। भुज नगरके २२ मील दक्षिणपूर्ववर्ती अञ्जार नगरमें जेशलपीरके स्मरणार्थ एक मन्दिर स्थापित है।

जेष्ठ (हिं० पु०) १ जेठ मास। २ पतिका बड़ा भाई, जेठ। (वि० ३ अग्रज, जेठा, बड़ा।

जेष्ठा (हिं० स्त्री०) ज्येष्ठा देखो।

जेसर—कच्छ प्रदेशकी धङ्गजाति। इनका प्रधानतः नाविनाल और बेरजाके चारों तरफ वास है।

जेसाई—बङ्गालके दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत देवग परगनेका एक ग्राम। यहां एक हाट लगता है।

जेह (फा० स्त्री०) १ कमानकी डोरीका मध्यका स्थान। यह स्थान आँखके पास लगाया जाता और इसीकी सीध-में निशान रहता है।

२ दीवार पर नीचेकी तरफ दो तीन हाथकी ऊंचाई तक पलस्तर वा मट्टी वगैरहका लेप। यह दीवारके शेष भागके पलस्तर वा लेपसे कुछ ज्यादा मोटा होता है और कुछ उभरा हुआ रहता है।

जेहड़ (हिं० स्त्री०) पानीसे भरे हुए बहुतसे घड़े जो एक पर एक रखे रहते हैं।

ज़ेहन (अ० पु०) धारणाशक्ति, बुद्धि।

जेहुली—विहारप्रदेशके चम्पारन जिलेका एक शहर।

जैगीषव्य (सं० पु०) जिगीषोरपत्यं गर्गादित्वात् यञ्। योगविदुमुनिविशेष, योगशास्त्रके वेत्ता एक मुनि।

"असितो देवलोव्यासः जैगीषव्यश्च तत्त्ववित्।"

(भारत शा० ११ अ०)

महाभारतके शल्यपर्वमें लिखा है—पूर्वकालमें असित देवल नामक एक तपोधन गार्हस्थ्यधर्मका अवलम्बन कर आदित्यतीर्थमें रहते थे। कुछ दिन पीछे जैगीषव्य नामक एक महर्षि उस तीर्थमें आ कर देवलके आश्रम-में रहने लगे और थोड़े ही दिनोंमें इन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। महात्मा देवलने महर्षि जैगीषव्यको सिद्धि होते देखी, किन्तु स्वयं सिद्धिप्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हुए। इस तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन महामति देवलने होम आदिके समयमें जैगीषव्यको नहीं देखा।

कुछ देर पीछे भिक्षाके समय जैगीषव्य भिक्षुकके रूपमें देवलके पास उपस्थित हुए। देवल उनको सामने उपस्थित देख परम आदरसे उनकी पूजा करने लगे। इसी तरह बहुत समय बीतने पर एक दिन देवल महर्षि जैगीषव्यको देख कर मन ही मन सोचने लगे—"मैं इतने दिनोंसे इनकी सेवा कर रहा हूं, पर ये इतने आलसी हैं कि इतने दिन हो गये एक दिन भी ये मुझसे बोले नहीं।" देवल इस तरहकी चिन्ता करते हुए स्नान करनेकी इच्छासे कलस ले कर सूनी सड़कसे समुद्रकी तरफ चल दिये। वहां जा कर देखा तो जैगीषव्य स्नान कर रहे हैं। यह देख कर देवल विस्मित हुए और स्नानाह्निक समाप्त कर चुकने पर इन्हें स्नान करते हुए देख आकाशमार्गसे आश्रमकी तरफ चल दिये। आश्रममें पहुंचे तो वहां भी इन्हें स्थाणुवत् तिष्ठते हुए देखा, इससे देवलका आश्चर्य और भी बढ़ गया। इसके बाद इसका वृत्तान्त जाननेके लिए वे अन्तरीक्षमें उपस्थित हुए, वहां देखा तो अन्तरीक्षचारी सभी सिद्ध एकत्र हो कर जैगीषव्यकी पूजा कर रहे हैं। यह देख कर वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए कुछ देर बाद उन्होंने जैगीषव्यको पितृलोकमें जाते देखा। इसके अनन्तर इन्हें यमलोकसे सोमलोक, सोमलोकसे अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास (अमा-वस्या, पूर्णिमा), पशुयज्ञ, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, अग्नि-ष्टुभ, वाजपेय, राजसूय, बहुसुवर्णक, पुण्डरीक, अश्व-

मेध, नरमेध, सर्वमेध, सौत्रामणि, द्वादशाह आदि विविध मखयाजियोंके लोकसमूहमें, फिर मित्रावरुणस्थान, रुद्र-स्थान, वसुस्थान, वृहस्पतिस्थान, गोलोक, ब्रह्मसत्री लोक, तदनन्तर अन्य तीन लोकोंको अतिक्रम कर पतिव्रताओंके लोकमें जाते देखा। वहांसे वे कहां चले गये, इसका कुछ पता नहीं चला। यह देख कर उन्होंने वहांके सिद्धोंसे इसका कारण पूछा। उन लोगोंने कहा—"जैगीषव्य सारस्वत-ब्रह्मलोकको गये हैं, तुम किसी तरह भी वहां जा नहीं सकते।" आखिर वे आश्रमको लौट आये। आश्रममें आ कर देखा तो वे पूर्ववत् स्थाणुकी भाँति बैठे हैं। यह सब देख कर देवल इनके शिष्य बन गये, इन्होंने देवलको मोक्षधर्म ग्रहणमें कृत निश्चय देख शास्त्रानुसार योगविधि और कर्तव्याकर्तव्यका उपदेश दे कर तत्कालोचित क्रियाकलाप समाप्त किये। महर्षि जैगीषव्यकी कृपासे देवलने शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त की थी। उस समय वृहस्पति आदि सुरगण देवलके आश्रममें उपस्थित हुए, मुनिवर गालवने देवलको विस्मयाविष्ट कर कहा—"महर्षि जैगीषव्यमें कुछ भी तपोबल नहीं है।" इस पर देवलोंने गालवको कहा—"हे मुनिवर! ऐसी बात न कहिये। महात्मा जैगीषव्यके समान प्रभाव, तेज, तपस्या वा योगबल और किसीमें भी नहीं है। महात्मा जैगीषव्यने आदित्यतीर्थका योगानुष्ठान कर इतना प्रभाव फैलाया है, उनको सामान्य न समझें। उनके समान योगबलसम्पन्न तपस्वी विरले ही हैं।" एक दिन महर्षि असित देवलने भगवान् जैगीषव्यको कहा—"महर्षे! आप न तो स्तुतिवाद द्वारा सन्तुष्ट होते हैं और न निन्दावाक्य द्वारा क्रुद्ध। इसलिए मैं पूछता हूं कि—आपकी प्रज्ञा कैसी है, कहांसे उसे प्राप्त किया है और उसका फल क्या है? भगवान् जैगीषव्यने असन्दिग्ध और पवित्र वाक्योंमें इसका उत्तर दिया—"महर्षे! ज्ञानवान् व्यक्ति शत्रुओं द्वारा निन्दित हो कर भी उनको निन्दामें प्रवृत्त नहीं होते, और तो क्या वे वधोद्यत व्यक्तिका भी विनाश नहीं करना चाहते। वे अनागत और अतीत विषयका शोक न कर उपस्थित कार्यका ही अनुष्ठान करते हैं। अतएव, जब कि मैंने इस समय धर्मपथ अवलम्बन कर लिया है, किस तरह मैं निन्दित हो कर निन्दुक व्यक्ति पर ईर्षा और प्रशंसित हो कर प्रशंसाकारीसे सन्तुष्ट हो सकता हूं?"

जैगीषव्यायणी (सं० स्त्री०) जैगीषव्य-लोहितादित्वात् नित्यं ष्फिलात् ङीप्। जैगीषव्य मुनिका स्त्री अपत्य।

जैगोपाल (जयगोपाल)—हिन्दीके एक कवि। ये काशी पुरीके रहनेवाले और राधाकृष्णके पुत्र थे। इनके गुरुका नाम था सन्त रामगुलाम। १८१७ ई०में इन्होंने तुलसीशब्दार्थप्रकाश नामक एक हिन्दीका कोष रचा था। इसमें तीन प्रकाश हैं—पहलेमें वसु संख्या-वर्णन, दूसरेमें शब्दार्थ-निर्णय और तीसरेमें गुणस्थलोंका अर्थ विवृत हुआ है। वसुसंख्याका वर्णन एकादिक्रमसे किया गया है। इस ग्रन्थकी भाषा साधारण है। एकादि वसुगणनाका एक उदाहरण दिया जाता है—

"स्वस्तिश्री गणपतिसदन रूप भूमि अरु चन्द।
शुक्रदृष्टि बुनि नक रवि एक सच्चिदानन्द॥"

जैजैकार (हिं० स्त्री०) जयजयकार देखो।

जैजैवन्ती (हिं० स्त्री०) प्रातःकालमें गाई जानेवाली भैरव रागकी एक रागिणी।

जैजों—पञ्जाबके होशियारपुर जिलेकी गढ़शङ्कर तहसीलका प्राचीन नगर। यह अक्षा० ३१° २१ उ० और देशा० ७६° १३ पू०में गढ़शङ्करसे १० मील उत्तर अवस्थित है। लोकसंख्या कोई २७०५ होगी। प्राचीन समयमें जैजों जैसवाल राजाओंका प्रधान स्थान था। पहले पहल राजा रामसिंह वहां जा करके रहे। कहते हैं कि, १७०१ ई०में घाटीका किला बना था। १८१५ ई०में रणजित् सिंहने उसे अधिकार किया। वृटिश गवर्नमेण्टने किला तोड़ा था। जैसवाल राजाओंके प्रासादोंका ध्वंसावशेष अभी विद्यमान है। जैजों स्थानीय व्यापारका केन्द्र है।

जैढक (हिं० पु०) विजय ढोल, जंगी ढोल।

जैत (हिं० पु०) अगस्तकी जातिका एक वृक्ष। इसमें पीले फूल और लम्बी लम्बी फलियाँ लगती हैं, जिसकी तरकारी बनती है। इसके बीज और पत्ते दवाके काममें आते हैं।

जैत (अ० पु०) १ जतूनका पेड़। २ जैतूनकी लकड़ी।

जैत हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। वे १५४४ ई०में विद्य-

मान थे। ये कुछ काल तक अकबर बादशाहके दरबारमें रहे थे। इन्होंने शान्तिरसकी अनेक कविताएं बनाई हैं।

जैतपुर—बुन्देलखण्डके अन्तर्गत कुलपहाड़के निकटवर्त्ती एक प्राचीन नगर। यहां बहुतसे आधुनिक मन्दिर और एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष है, जिसे देखनेसे अनुमान किया जाता है कि यह स्थान बहुत प्राचीन कालका है। नगरके निकटस्थ बड़े सरोवरके पश्चिम किनारे हो कर एक छोटी पर्वतश्रेणी गई है। इसके ऊपर एक चहार-दीवारी बनी है। मालूम पड़ता है कि यह स्थान पहले चन्देल राजाओंका दुर्ग था। प्रासादकी गठन-प्रणाली देखनेसे यह महाराष्ट्रोंका पूर्वस्थान प्रमाणित होता है। अंगरेज और महाराष्ट्रके युद्धमें यह दुर्ग शायद टूट फूट गया होगा।

जैतराम—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने १७३८ ई०में सदाचारप्रकाश नामक एक हिन्दीग्रन्थ रचा था।

जैतश्री (हिं० स्त्री०) एक रागिणी।

जैतसखी—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता साधारणतः अच्छी होती थी। एक उदाहरण दिया जाता है—

'दाऊ कृष्ण यशोदा मैया हरषित गोद खिलावै।
नाना भांति खिलौना ले ले गोबिन्द लाड़ लड़ावै॥
ब्रह्म जाको पार न पावै शिव सनकादिक ध्यावै।
वाको यशमति मेरो मेरो पलना मांहि झुलावै॥
* * *
जैतसखी रंग मोही मोहन बार बार बलजाई॥"

जैतसिंह—बीकानेरके प्रतिष्ठाता राजा बीकाके पौत्र और लूनकरणके पुत्र। १५१२ ई०में लूनकरणकी मृत्यु हुई। उनके बाद जैत संह राजगद्दी पर बैठे। जैतसिंहके बड़े भाईने जो कि सिंहासनके प्रकृत अधिकारी थे, स्वेच्छापूर्वक सिंहासन त्याग दिया था—वे कुछ जागीर ले कर ही सन्तुष्ट थे। जैतसिंह बड़े वीर थे; इन्होंने तारनोह प्रदेशके राजाको युद्धमें परास्त किया था। १५४६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

जैतापुर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदाबाद जिलेका समुद्रकूलस्थित एक बन्दर और दुर्ग। यह राजपुर खाड़ीके किनारे मुहानेसे २ मील दूरमें अवस्थित है। राजपुर जानेमें यह राजपुर खाड़ीका प्रवेशपथ है।

जैती (हिं० स्त्री०) रबीके खेतोंमें आपसे आप होनेवाली एक घास।

जैतुगि—प्राचीन देवगिरिके यादववंशीय एक राजा। शकसं० ११७१में खुदे हुए कन्हार राजाके ताम्रलेखमें इनका नाम पहले पहल आया है।

जैतून (अ० पु०) अरब, श्याम आदिसे ले कर युरोपके दक्षिणी भागों तकमें होनेवाला एक प्रकारका सदा बहार पेड़। यह ४० फुट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते नरकटके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं; लेकिन आकारमें उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसके फूल गुच्छोंमें लगते हैं। पश्चिमकी प्राचीन जातियां इसे पवित्र मानती हैं। पूर्व समय रोमन और यूनानी विजेता इसको पत्तियोंकी माला सिरमें पहनते थे। मुसलमान लोग आजकल भी इसकी लकड़ीकी माला बनाते हैं। पकने पर फलका रंग नीला और कुछ काला होता है। मुरब्बा और अचार इसके कच्चे फलोंसे बनाया जाता है। बीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है।

जैतो पञ्जाब प्रान्तके नाभा राज्यकी फूल निजामतका नगर। यह अक्षा० ३०° २६' उ० और देशा० ७४° ५६' पू०में नर्थ वेष्टन रेलवेकी फीरोजपुर भटिण्डा शाखा पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६८१५ है। यहां अनाजकी बड़ी मण्डी है। प्रति वर्ष फरवरी मासमें मवेशियोंका एक मेला लगता है।

जैत्र (सं० त्रि०) जेतैव जेतृ-प्रज्ञादित्वादण्। १ जेता, जीतनेवाला। (पु०) २ औषधविशेष, एक दवा। ३ पारद, पारा।

जैत्ररथ (सं० त्रि०) जैत्रो जयशीलो रथो यस्य, बहुव्री०। जयशील, जीतनेवाला, फतहमन्द।

जैत्री (सं० स्त्री०) जयति रोगादिनाशकतया सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते जेतृ-स्वार्थे-अण् स्त्रियां ङीप्। १ जयन्ती वृक्ष, जैतका पेड़। २ जातीकोष, जावित्री।

जैन (सं० पु०) जिन-अण्। १ जिनोपासक, जैनमतावलम्बी, जैनधर्मका अनुयायी, भारतवर्षका एक विख्यात धर्म-सम्प्रदाय। यह दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो प्रधान

श्रेणियोंमें विभक्त है। वर्तमानमें भारतके प्रायः सभी नगरोंमें इनका वास पाया जाता है।

२ जैनधर्म, अनेकान्तमत। विस्तृत विवरण जाननेके लिए "जैनधर्म" शब्द देखो।

जैन-उजियाल—बङ्गालके अन्तर्गत वीरभूम जिलेका एक परगना। इसका क्षेत्रफल ६८०२१ वर्गमील है। इसका अधिकांश अनुर्वर तथा कृषिके अयोग्य है। उत्तर-पश्चिमका भाग अरण्य और कङ्करमय है। दक्षिण और पूर्व भागमें उत्तम कृषिकार्य होता है। यहां धान, गेहूँ, ईख, सरसों, मसूर आदि उत्पन्न होते हैं। जगह जगह बड़े बड़े सरोवरके जलमें ही फसल होती है। वक्रेश्वर और शाल नदी इस परगनेमें प्रवाहित हैं। दुवराजपुरमें सब-जजकी अदालत है।

जैन-उद्-दीन अहमद—एक हिन्दीके कवि। ये १६७८ ई०के लगभग विद्यमान थे।

जैनधर्म (सं० पु०) भारतवर्षका एक विख्यात और सुप्राचीन धर्म। वर्तमानमें भारतवर्षके सर्वत्र ही प्रधान प्रधान नगरोंमें इस सम्प्रदायके लोगोंका वास है।

यह धर्म कबसे प्रचलित हुआ, इस विषयका निर्णय करना कठिन ही नहीं किन्तु दुःसाध्य है। विख्यात विद्वान् उइलसन साहब फरमाते हैं कि, ईसाकी ८वीं शताब्दीमें जैनधर्मका प्रचार हुआ (१)। फिर ये ही दूसरी जगह लिखते हैं कि, ईसाकी २य शताब्दीमें ही जैनधर्म दाक्षिणात्यमें दृष्टिगोचर हुआ था (२)। पुराविद् वेनफाई साहबका कहना है कि, ईसाकी १०वीं शताब्दीमें ब्राह्मण और बौद्धधर्मके संघर्षणसे जैनधर्मकी उत्पत्ति हुई (३)। डा० जोर्ज बुहलरका कहना है कि बौद्धधर्मावलम्बी स्वतः ही जैनियोंके तीर्थङ्कर सम्बन्धी कथनकी पुष्टि करते हैं (४)। प्रसिद्ध विद्वान् कोलब्रुकका मत है कि, शेष तीर्थङ्कर महावीर बौद्धधर्म-प्रचारकके गुरु थे (५)। जनरल जे० आर० फारलंगका मत है—ईसासे पूर्वके १५०० से ८०० वर्ष तक बल्कि अज्ञात समयसे पश्चिमीय और उत्तरीय भारतमें तूरानियोंका, जो आवश्यकतानुसार द्राविड़ कहलाते थे और जो वृक्ष, सर्प और लिङ्गकी पूजा करते थे, शासन सर्वोपरि था। उस ही समयमें सर्वोपरि भारतमें एक प्राचीन सभ्य, दार्शनिक और विशेषतासे नैतिक सदाचार एवं कठिन तपस्यावाला धर्म अर्थात् जैनधर्म भी विद्यमान था, जिसमेंसे स्पष्टतया ब्राह्मण और बौद्धधर्मके प्रारम्भिक संन्यास भावोंकी उत्पत्ति हुई। * * * आर्योंके गङ्गा या सरस्वती तक पहुंचनेसे भी बहुत समय पूर्व जैन अपने २२ बौद्धों, सन्तों अथवा तीर्थङ्करों द्वारा, जो ईसासे पूर्वकी ८वीं या ९वीं शताब्दीके ऐतिहासिक २३वें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथसे पहले हुए थे, शिक्षा पा चुके थे और श्रीपार्श्व अपने पूर्वके सब तीर्थङ्करोंसे, जो दीर्घ दीर्घ कालान्तरमें हुए थे, जानकारी रखते थे। उनको बहुतसे ग्रन्थ, जो उस समयमें भी 'पूर्वों' या पुराणों अर्थात् प्राचीनके तौर पर प्रसिद्ध थे और जो युगान्तरोंसे विख्यात एवं ध्यानस्थ द्वारा कण्ठस्थ चले आते थे, मालूम थे। यह विशेषतया एक जैन-सम्प्रदाय था, जिसको उनके समस्त बौद्धों और विशेष कर ईसाके पूर्वकी ६ठी शताब्दीके २४वें तीर्थङ्कर महावीरने, जो सन् ५९८-५२६ ईसाके पूर्व हुए हैं, नियमबद्ध रक्खा था। यह तपस्वियों (साधुओं)का मत दूरस्थ बाकट्रिया (Baktria) और डेसिया (Dacia)के ब्राह्मण और बौद्धधर्मोंमें जारी रहा, जैसा कि हम अपनी Study नं० १ और Sacred Books of the East, Vol. XXII और XLVमें कह चुके हैं (६)।

हमको जहां तक प्रमाण मिले हैं, उनसे हम जैनधर्मको आधुनिक नहीं कह सकते। विष्णुपुराण आदि कई एक पुराणोंमें जैनधर्मका उल्लेख है। जैनोंके बहुतसे ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम हुआ है कि, शकराजके ६०५ वर्ष पहले (अर्थात् ईसासे ५२७ वर्ष पहले)

(१) Wilson's Mackenzie Collection.

(२) Wilson's Sanskrit Dictionary, 1st ed, p. XXXIV.

(३) Altes Indian, p. 160

(४) The Jains, p. 22-23

(५) Miscellaneous Essays, Vol I, p. 380.

(६) Short Studies in the Science of Comparative religions, p. 243-244.

अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामी या वर्द्धमानको निर्वाणको प्राप्ति हुई थी (७)।

हमारे विवेचनमें यही आता है कि, जिस समय शाक्य बुद्धने जन्म भी नहीं लिया था, उससे भी बहुत पहले जैनधर्म प्रचलित था। प्राचीनतम जैनसूत्रमें बौद्ध या बुद्धदेवका प्रसङ्ग नहीं है, किन्तु ललितविस्तर आदि प्राचीनतम बौद्धग्रन्थोंमें 'निर्ग्रन्थ' नामसे जैनोंका उल्लेख मिलता है।

बौद्ध और जैनधर्मके किसी किसी विषयमें सौसादृश्य होनेके कारण जैनधर्मको परवर्ती नहीं कहा जा सकता। सादृश्य रहनेसे ही यदि परवर्ती हो, तो इस युक्तिसे बौद्धधर्म भी परवर्ती सिद्ध होता है। अतएव उपर्युक्त प्रमाणोंसे यही प्रमाणित होता है कि जैनधर्म बौद्धधर्मसे पहलेका है।

जैनमतानुसार जैनधर्मका इतिहास—जैन-ग्रन्थोंमें प्रायः इस बातका वर्णन देखनेमें आता है कि, जैनधर्म अनादि है और उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके चतुर्थ-कालोंमें २४ तीर्थङ्करोंका आविर्भाव हो कर धर्मका प्रकाश हुआ करता है। जैनधर्मका मत है कि, सृष्टि अनादि है इसका कोई हर्त्ता-कर्त्ता नहीं है। सृष्टिमें जो परिवर्तन हुआ करते हैं, वह स्वतः कालद्रव्यके प्रभावसे हुआ करते हैं। जैनमतानुसार जम्बूद्वीपके मध्य भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्रमें उन्नति और अवनतिरूप कालपरिवर्तन हुआ करता है। ऐरावतक्षेत्रकी बात जाने दीजिये क्योंकि उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐरावतक्षेत्रमें भरतक्षेत्रके समान ही तीर्थङ्कर आदिका आविर्भाव हुआ करता है; अन्यान्य सभी विषय भरतक्षेत्रके समान हैं। उन्नतिरूप कालको उत्सर्पिणी और अवनतिरूप कालको अवसर्पिणी कहते हैं। इन दोनों कालोंकी स्थिति १०।१० कोड़ाकोड़ी सागर* परिमित है। २० कोड़ाकोड़ी सागर परिमितकालको कल्प कहते हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल ६।६ भागोंमें विभक्त हैं, यथा—(१) सुःषमासुःषमा, (२) सुःषमा, (३) सुःषमादुःषमा, (४) दुःषमासुःषमा, (५) दुःषमा और ६) दुःषमादुःषमा। वर्तमानमें अवसर्पिणी कालका ५वाँ विभाग दुःषमा चल रहा है। इसी तरह यह कालचक्र अनादि कालसे चलता आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा अर्थात् सृष्टिका कभी भी नाश न होगा। जैनमतानुसार सिर्फ अवनतिकी सीमा शेष होने पर अर्थात् ६ठे काल (दुःषमादुःषमा) के बाद खण्डप्रलयमात्र होता है। १म सुःषमासुःषमा कालका समय ४ कोड़ाकोड़ी सागरका थी। इस समय मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु ३ पल्यकी और शरीरको ऊँचाई २४००० हाथकी होती थी। २य सुःषमाकालकी स्थिति ३ कोड़ाकोड़ी सागरकी थी। इसमें मनुष्योंकी आयु २ पल्यकी और शरीरकी ऊँचाई १६००० हाथको थी। ३य सुःषमादुःषमाकालकी स्थिति २ कोड़ाकोड़ी सागर, आयु १ पल्य और शरीरकी ऊँचाई एक कोश (४००० गज)-की होती थी। इन तीन विभागोंका विशेष कुछ इतिहास नहीं है; क्योंकि उस समय यहां भोगभूमि थी, अर्थात् उस समय सब सुखसे रहते थे, कोई किसीका स्वामी वा सेवक न था, राजा आदि भी न थे, किसीका शासन न था और न जीविका निर्वाहके लिए असि मसि कृषि आदि किसी प्रकारका कार्य ही करना पड़ता था—कल्पवृक्षोंसे सबकी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती थीं। उस समय विवाह आदिका कोई भी नियम प्रचलित नहीं था। माताके गर्भसे स्त्री पुरुष युगल ही उत्पन्न हुआ करते थे और उनके युगल सन्तान होते ही दोनोंको मृत्यु हो जाया करती थी। तात्पर्य यह है कि, उस समयके लोग स्वर्गके देवोंके समान बड़े आनन्दसे जीवन बिताते थे और मर कर स्वर्गमें ही जन्म लिया करते थे। उसके बाद चतुर्थ कालसे पहले और

(७) जैनग्रन्थ त्रिलोकसारमें लिखा है—

"पणछ० सयवस पणमासजुदं गमिय वीरनि० सुइदो सगराजो।"

इस विषयमें अन्यान्य ग्रन्थोंका मत जानना हो तो Indian Antiquary, Vol. XII. p. 21ff. देखना चाहिये।

* ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००० वर्षका एक पल्य होता है; पल्यकी संख्याको एक पद्म (१०००००००००००००००)-से गुणा करनेसे एक सागरकी संख्या होती है और एक करोड़का वर्ग एक कोड़ाकोड़ी कहलाता है।

तीसरे कालके अन्तमें (तीसरा काल पूर्ण होनेमें जब १ पल्यका आठवां हिस्सा बाकी रहा तब) आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाके दिन सायंकालको सूर्यका अस्त होना और चन्द्रका उदय होना दिखाई दिया। (यद्यपि चन्द्र और सूर्य अनादि कालसे बराबर उदय अस्त होते रहे थे, किन्तु ज्योतिराङ्ग जातिके कल्पवृक्षोंके प्रचण्ड प्रकाशसे लोगोंको सूर्य और चन्द्र दिखलाई नहीं देते थे।) लोग इनको देख कर डर गये और सृष्टि परिवर्तनके नियमोंके ज्ञाता प्रथम कुलकर (वा मनु) प्रतिश्रुतके पास पहुंचे। प्रतिश्रुतने सबको समझा दिया—सूर्य चन्द्रसे डरनेका कोई कारण नहीं है, अब धीरे धीरे कल्पवृक्षोंका नाश हो जायगा और सबको कर्म करके निर्वाह करना पड़ेगा। बस, यहींसे कर्मभूमिका प्रारम्भ होता है और यहींसे जैनधर्मके इतिहासका प्रारम्भ होता है।

(महापुराणान्तर्गत आदिपुराण)

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुतके असंख्य करोड़ों वर्ष बाद सन्मति नामक २य कुलकर हुए। इनके समय ज्योतिराङ्ग नामक कल्पतरुओंका प्रकाश इतना क्षीण हो गया कि, आकाशके तारे और नक्षत्र भी दिखाई देने लगे। लोग आश्चर्यान्वित हो कर सन्मति कुलकर (मनु)-के पास पहुंचे। उन्होंने ज्योतिश्चक्र (सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदिका समूह)-का एवं रात्रि, दिन, सूर्यग्रहण, चन्द्र-ग्रहण, सूर्यका उत्तरायण और दक्षिणायन होने आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर ज्योतिष-विद्याकी प्रवृत्ति की। इनके असंख्य करोड़ों वर्ष बाद ३य कुलकर क्षेमङ्कर हुए। सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर जन्तु, जो अब तक शान्त थे, सबने क्रूरता धारण की। इस पर ३य कुलकर क्षेमङ्करने इन जन्तुओंको मनुष्यावाससे पृथक् कर देने और उनका विश्वास न करनेकी आज्ञा दे कर जनसमूहको भयरहित किया। इनके बाद ४र्थ कुलकर (वा मनु) क्षेमन्धर हुए। इनके समयमें उक्त क्रूर जन्तुओंने और भी ज्यादा क्रूरता धारण की। इस पर उन्होंने लोगोंको लाठी आदि रखनेका उपदेश दिया। इनके असंख्य करोड़ों वर्ष बाद ५म कुलकर सीमन्धरका आविर्भाव हुआ। इनके समयमें कल्पवृक्ष घट गये और फल कम देने लगे, जिससे लोगोंमें परस्पर विवाद होने लगा। इन्होंने अपनी बुद्धिसे कल्पवृक्षोंकी हद बांध दी। लोग अपनी हदके अनुसार उनका उपयोग करने लगे। इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ६ठे मनु सीमन्धर हुए। इनके समयमें कल्पवृक्षोंके लिए विवाद और भी बढ़ गया। इन्होंने पुनः उनकी नई रीतिसे हद बांध दी। इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ७वें कुलकर विमलवाहनका आविर्भाव हुआ। इन्होंने हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि पर सवार होनेकी रीतिका प्रचार किया। इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ८वें कुलकर चक्षुष्मान् आविर्भूत हुए। पहले सन्तान (पुत्र-पुत्री, युगल) उत्पन्न होनेके साथ ही पितामाताकी मृत्यु हो जाती थी, किन्तु इनके समय पितामाता क्षण भर ठहर कर मरने लगे। इन्होंने लोगोंको समझाया कि, सन्तान क्यों होती है? इनके असंख्य करोड़ वर्ष बाद ९वें कुलकर यशस्वान् हुए। इन्होंने सन्तानको आशीर्वादादि देनेकी विधि बतलाई। इनके समयमें पिता-माता कुछ ज्यादा समय तक जीवित रहने लगे। सन्तानोंका नामकरण भी इनके समयमें प्रचलित हुआ। इनके असंख्य करोड़ वर्ष पश्चात् १०वें मनु अभिचन्द्र हुए। इनके समयमें प्रजा अपनी सन्तानके साथ क्रीड़ा करने लगी और सन्तान-पालनकी विधि प्रचलित हुई। इनके सैकड़ों वर्ष बाद ११वें कुलकर चन्द्राभका आविर्भाव हुआ। इनके समयमें सन्तानके साथ प्रजा और भी कुछ ज्यादा समय तक जीने लगी। इनके कुछ समय पश्चात् १२वें कुलकर मरुदेव हुए। इन्होंने जल-मार्गसे गमन करनेके लिए छोटी बड़ी नाव चलानेका उपाय बताया। इन्हींके समयमें उपसमुद्र और छोटी बड़ी कई नदियां उत्पन्न हुई थीं तथा मेघ भी थोड़ी बहुत वर्षा करने लगे थे। इनके समय तक स्त्री और पुरुष दोनों युगल उत्पन्न होते थे। इनके कुछ समय पश्चात् १३वें कुलकर प्रसेनजित् हुए। इनके समयमें सन्तान जरायुसे ढकी उत्पन्न होने लगी। इन्होंने उसके फाड़नेका उपाय बताया। प्रसेनजित् कुलकर अकेले ही उत्पन्न हुए थे, इनके पिताने इनका विवाह कर विवाहकी रीति प्रचलित की थी। इनके बाद अन्तिम (१४वें) कुलकर वा मनु श्रीनाभिराज आविर्भूत हुए जो आदि तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेवके पिता थे। इनके समयमें बड़ा हेर फेर हो गया अर्थात् भोगभूमिका

सर्वथा नाश हो कर कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ।

चौदहवें कुलकर नाभिराजके समयमें समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे। क्योंकि इन्होंके समयसे कर्मभूमिका प्रारम्भ था। भोगभूमिमें तो बिना किसी व्यापारके भोगोपभोगकी सामग्रियां स्वतः (कल्पवृक्षों द्वारा) प्राप्त हो जाया करती थीं, किन्तु अब जीविकाके लिए व्यापारादि कार्य करनेकी आवश्यकता हुई। यह समय युगके परिवर्तनका था। कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेके साथ ही जल, अग्नि, वायु, आकाश, पृथिवी आदिके संयोगसे धान्योंके वृक्षोंके अङ्कुर स्वयं उत्पन्न हुए और बढ़ कर फलयुक्त हो गये। किन्तु उस समयके मनुष्य इन वृक्षोंका उपयोग करना नहीं जानते थे। प्रजा बड़ी व्याकुल हो गई और महाराज नाभिके पास पहुंची। महाराज नाभिने उपयोगमें आनेवाले धान्य वृक्ष और फल वृक्षोंके धान्य और फलोंसे अपना निर्वाह करना सिखलाया। और हानिकर वृक्षोंसे दूर रहनेके लिए भी आज्ञा दी। बरतन आदि बनानेकी तरकीब भी सिखाई। इनके समयमें बालककी नाभिमें नाल दिखाई दी। इन्होंने नाल काटनेकी विधि प्रचलित की

इन कुलकरोंमेंसे किसीको अवधिज्ञान * और किसीको जातिस्मरण † होता था। इनमेंसे प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमङ्कर, क्षेमन्धर और सीमन्धर इन पांच कुलकरोंने अपराधी मनुष्योंको पश्चात्तापरूप "हा" शब्द कह देने मात्रका दण्ड दिया था। सीमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, और अभिचन्द्र इन पांच कुलकरोंने "हा, मा" इन दो शब्दोंका प्रयोग कर अपराधियोंको दण्डित किया था तथा अन्तके चार कुलकरोंने "हा, मा, धिक्" इन तीन शब्दों द्वारा दण्डका विधान किया था। (महापुराणान्तर्गत आदिपुराण) नाभिराजकी पत्नीका नाम था महारानी मरुदेवी। इनके गर्भसे युगादि पुरुष १म तीर्थङ्कर आदिनाथका जन्म हुआ। इन्होंने लोगोंको गणितशास्त्र, छन्दःशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र व्याकरणशास्त्र, चित्रकला तथा लेखन-प्रणालीका अभ्यास कराया। मनोरञ्जनके लिए गायनविद्या, नाटक और नृत्यकला आदिका भी कुछ कुछ प्रचलन हुआ। कच्छ और महाकच्छ नामक राजाओंकी कन्या यशस्वती और सुनन्दासे इनका विवाह हुआ था। यशस्वतीके गर्भसे भरत चक्रवर्ती, वृषभसेन, अनन्तविजय, महासेन, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर, वरवीर, श्रीषेण, गुणसेन, जयसेन आदि १०० पुत्र और ब्राह्मीसुन्दरी नामकी एक कन्या हुई। दूसरी रानी सुनन्दादेवीके गर्भसे बाहुबली नामक एक पुत्र और सुन्दरीदेवी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई।

शिक्षाका प्रारम्भ—एक दिन भगवान् ऋषभदेवने अपनी दोनों कन्याओंको गोदोंमें बिठाया और अ आ इ ई आदि पढ़ाने लगे। इसके बाद उन्हें व्याकरण, छन्द, न्याय, काव्य गणित आदिकी भी शिक्षा दी। बस, यहींसे शिक्षाका प्रचलन हुआ। इस समय भगवान्ने "स्वयंभुव" नामक व्याकरणकी रचना की थी तथा और भी छन्द, अलङ्कार आदि शास्त्र बनाये थे। पुत्रियोंके बाद पुत्रोंको पढ़ाया। यद्यपि शिक्षा सबको समान मिली थी, तथापि भरतने नीतिशास्त्रमें, वृषभसेनने सङ्गीत और वादनशास्त्रमें अनन्तविजयने चित्रकारी, नाट्यकला और वास्तुशास्त्रमें तथा बाहुबलीने कामशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेदविद्या, पशुओंके लक्षणोंको जाननेकी विद्या और रत्नपरीक्षाकी विद्यामें समधिक व्युत्पत्ति लाभ की थी। नाभिराजके समयमें जो धान्य और फलादि स्वयं उत्पन्न हुए थे, उनमें भी रस आदि कम होने लगा। प्रजाके हितके लिए श्रीऋषभदेवने कुछ आज्ञाएं दीं; तदनुसार इन्द्रने जिनमन्दिरोंकी तथा देश * उपप्रदेश, नगर

---

* परिमित देश, क्षेत्र, काल और भाव सम्बन्धी तीनों कालका जिससे ज्ञान होता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

† जातिस्मरण भी एक प्रकारका ज्ञान होता है जिससे पूर्वजन्म वा भूतकालका स्मरण हो आता है।

* निम्नलिखित ५२ देशोंकी रचना की थी, यथा—सुकोशल, अवन्ती, पुंड्र, उड्र, अश्मक, रम्यक्, कुरु, काशी, कलिंग, अंग (बिहार), वंग (बंगाल), सुह्म, (सुह्म), समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास,

आदिकी रचना की और खेती आदिका प्रचार किया। तदनन्तर भगवान् ऋषभने प्रत्येक देशके भिन्न भिन्न राजा नियुक्त किये। कई देश लुटेरे शूद्रोंके हाथ भी पड़ गये थे। नगर और गांवोंकी सीमा बांध दी गई। किसान और शूद्रोंके सौ सौ घरोंका गांव छोटा गाँव और ५०० घरोंका बड़ा गांव कहलाया। छोटे गांवोंकी सीमा एक कोशकी और बड़े गांवोंकी सीमा दो कोशकी रक्खी गई। गांवोंको बसाना, उनका उपयोग करना, गांवोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करना, गांवके अधिवासियोंके लिए नियम बनाना इत्यादि कार्य राज्यके अधीन रक्खे गये। जिन स्थानों पर पक्की हवेलियां बनाई गई थीं, उनमें प्रसिद्ध पुरुष बसाये गये और उनका नाम नगर पड़ा। नदियों और पर्वतोंसे घिरे हुए स्थानोंका 'खेड' नाम पड़ा। चारों ओर पर्वतोंसे घिरे हुए स्थान 'खर्वट', समुद्रके आस पासके स्थान 'पत्तन', नदीके निकटवर्ती ग्राम 'द्रोणमुख' और जिन ग्रामके आस पास ५०० घर थे, वे 'मंडल' कहलाये। राजधानियोंके अधीन ८०० गांव, द्रोणमुख ग्रामोंके अधीन ४०० और खर्वटोंके अधीन २०० ग्राम रक्खे गये। इसके सिवा भगवान् ऋषभदेवने प्रजाको शस्त्रधारण करना सिखाया और खेती, लेखन, व्यापार, विद्या और शिल्पकर्म आदिका ज्ञान कराया। (महापुराणान्तर्गत आदिपुराण)

वर्ण-स्थापना— जिन्होंने शस्त्र धारण किये, वे क्षत्रिय कहलाये। जिन्होंने खेती, व्यापार और पशुपालनका कार्य किया, वे वैश्य कहलाये। और इन दोनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले शूद्र कहलाये। इस प्रकार श्रीऋषभदेवने तीन वर्णोंकी स्थापना की। इसके पहले वर्ण-व्यवहार नहीं था। यहींसे वर्णव्यवहार चला और उसकी कल्पना मनुष्योंकी आजीविकाके कार्योंसे की गई। इसके बाद भगवान्ने शूद्रोंके दो भेद किये—एक कारु और दूसरा अकारु। धोबी, नाई आदि कारु कहलाये और इनसे भिन्न अकारु। कारु शूद्रोंको भी दो भागोंमें विभक्त किया—स्पृश्य और अस्पृश्य। इसके बाद भगवान्ने सम्राट् पदसे विभूषित हो क्षत्रियोंको युद्ध करने और वैश्योंको परदेश जानेकी शिक्षा दी। साथ ही स्थलयात्रा और जलयात्रा वा समुद्रयात्राका प्रचार किया। (आदिपुराण।)

विवाह आदि सम्बन्ध भगवान्की आज्ञाके अनुसार किये जाते थे। इन्होंने विवाहके नियम इस प्रकार बनाये थे। शूद्र शूद्रकी कन्यासे विवाह करे, वैश्य वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे एवं क्षत्रिय क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे। इनके समयमें वर्णोचित जीविकाके सिवा कोई भी अन्य जीविका नहीं कर सकता था। अनन्तर श्रीऋषभदेवने एक हजार राजाओंके ऊपर हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महामण्डलेश्वर राजाओंकी नियुक्ति की। इन चारों राजाओंसे चार वंशोंकी उत्पत्ति हुई, यथा-हरिसे हरिवंश अकम्पनसे नाथवंश, काश्यपसे उग्रवंश और सोमप्रभसे कुरुवंश वा चन्द्रवंश। इसके बाद महाराजाधिराज श्रीऋषभदेवने प्रजा पर उसको न अखरनेवाला बहुत कर लगा कर करग्रहणकी प्रथा चलाई। (आदिपुराण)

इसके बाद एक दिन राजसभामें नीलाञ्जना अप्सराको नृत्य करते करते नष्ट होते देख इनको वैराग्य हो गया। इन्होंने भरतको राज्याभिषिक्त किया और बाहुबलिको युवराज पद दे कर जिनदीक्षा ले ली। इनके साथ बहुतसे राजाओंने भक्तिवश बिना समझे ही दीक्षा ले ली थी जो पीछेसे भ्रष्ट हो गये और विपरीत मतोंका प्रचार करने लगे। भगवान्ने छ महीने तक मौन धारणपूर्वक कठोर तप किया और आहार ग्रहणार्थ नगरमें आये। किन्तु कोई भी आहार देनेकी विधि नहीं जानता था। लोग अभिप्राय न समझ कर उन्हें सुवर्ण रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थ देने लगे, किन्तु उन्हें उनसे क्या मतलब था। इससे उन्हें आहार न मिला और वनमें लौट जाना पड़ा। अन्तमें राजा सोमप्रभके कनिष्ठ भ्राता श्रेयांसने जातिस्मरण हो जानेसे भगवान्को विधिपूर्वक इक्षुरसका आहार दिया। एक हजार वर्ष महातप करनेके बाद पुरिमताल नगरके निकटवर्ती शकट नामक वनमें भगवान्को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

आन्ध्र, कर्णाट, कौशल, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, सूरसेन, अपरान्त, विदेह, सिन्धु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरट्ट, वाल्हीक, तरुष्क, शक और केकय। इनके सिवा और भी अनेक देशोंका विभाग किया था।

केवलज्ञान होते ही इन्द्रादि देवों द्वारा समवशरणकी रचना की गई। विशेष विवरणके लिए 'तीर्थंकर' शब्द देखो।

भगवान्‌के समवशरणमें भरतचक्रवर्त्तीने अनेक प्रश्न किये थे। इसी सभा (समवशरण)-में भगवान्‌ने आत्माके स्वाभाविक धर्म वा सार्वधर्मका प्रकाश किया। यहींसे जैनधर्मका—इस अवसर्पिणीकालमें—प्रथम विकाश हुआ, इसके बाद, परवर्ती २३ तीर्थङ्करोंने इस धर्मका प्रकाश किया, जिसका आज तक भी इस भारतवर्षके सर्वत्र प्रचार है। अनन्तर ऋषभदेवके पुत्र वृषभसेन, सोमप्रभ आदिने दीक्षा ले कर मुनिधर्मका तथा भगवान्‌की पुत्री ब्राह्मीदेवी और सुन्दरीदेवीने दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका-धर्मका प्रचार किया। १म तीर्थङ्कर ऋषभदेवके समयसे लगा कर अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामीके समय तक जैनधर्मका प्रकाश इसी तरह फैला रहा, जिसका संक्षिप्त विवरण आगे चल कर "जैनशास्त्र वा श्रुत" नामक शीर्षकमें लिखेंगे।

ब्राह्मणवर्णकी उत्पत्ति—इस अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजने, जिनके नामसे यह देश भारतवर्ष कहलाया, दिग्विजय-यात्रा करके अनेक सेना सहित दिग्विजयकी प्रथा प्रचलित की। ये भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंके* अधिपति थे। इन्होंने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके छलसे एक दिन समस्त प्रजाको निमन्त्रण दिया और राजप्रासादके मार्गमें घास आदि बो दी। इनका अभिप्राय यह था कि, जो व्यक्ति दयालु और उच्चाशय होंगे, वे जीवहिंसासे बचनेके लिए इस मार्गसे न आ कर अवश्य ही अन्य मार्गका अवलम्बन करेंगे और वे ही वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण होनेके योग्य होंगे। अनन्तर जो लोग उस मार्गसे न आये, उन्हें यज्ञोपवीत दिया गया और दान, स्वाध्यायादि ब्राह्मण्य कर्मका उपदेश दिया गया। साथ ही यह भी कहा कि "यद्यपि जातिनाम-कर्मके उदयसे मनुष्य जाति एक ही है, तथापि जीविकाके पार्थक्यसे वह भिन्न भिन्न चार वर्णोंमें विभक्त हुई है। अतएव द्विज जातिका संस्कार तप और शास्त्रज्ञानसे ही कहा गया है। तप और ज्ञानसे जिसका संस्कार नहीं हुआ, वह सिर्फ जातिसे ही द्विज है। एक बार गर्भसे और दूसरी बार क्रियाओंसे, इस प्रकार दो जन्मोंसे जिस-की उत्पत्ति हुई हो, वह द्विज है एवं जो क्रिया और मन्त्ररहित है, वह केवल नामधारण करनेवाला द्विज है, वास्तविक नहीं।" चक्रवर्ती द्वारा संस्कार किये जाने पर प्रजा भी इस वर्णका खूब आदर करने लगी। इस वर्णके मनुष्य प्रायः गृहस्थाचार्य होते थे और शेष जीवनमें अधिकांश मुनिधर्म अवलम्बनपूर्वक अपनी यथार्थ आत्मोन्नति किया करते थे। (आदिपुराण)

इसके कुछ दिन बाद भरतचक्रवर्ती भगवान् ऋषभ-देवके समवशरणमें गये और अपने स्वप्नों तथा ब्राह्मण-वर्णकी स्थापनाका वृत्तान्त कहा। भगवान्‌की दिव्यध्वनि द्वारा इस प्रकार उत्तर मिला—"यद्यपि इस समय ब्राह्मणोंकी आवश्यकता थी, किन्तु भविष्यमें १०वें तीर्थङ्कर श्रीशीतलनाथके समयसे ये धर्मद्रोही और हिंसक हो जायेंगे तथा यज्ञादिमें पशुहिंसा करेंगे।" स्वप्नोंका फल भरतचक्रवर्ती शब्दमें देखो। इस पर भरतचक्रवर्तीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ, किन्तु क्या करते? जो होना था सो हो गया, यह सोच कर सन्तोष धारण किया और संसारसे उदासीन हो कर राज्य करने लगे। भरतका वैराग्य गृहस्थावस्थामें ही इतना बढ़ गया था कि, दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया था और हजारों वर्ष तक सर्वज्ञावस्थामें संसारके जीवोंको धर्मोपदेश दे कर अन्तमें निर्वाण-प्राप्त हुए थे। भरत चक्रवर्ती देखो।

इनके बाद महावीरस्वामीके समय तक अनन्त केवलज्ञानके धारक हुए और उनके द्वारा जैनधर्मका प्रसार होता रहा। (आदिपुराण)

जैनशास्त्र वा श्रुत—तीर्थङ्कर जब सर्वज्ञ हो जाते हैं, तब उनके मुखसे जो वाणी वा उपदेश निःसृत होता है उसको श्रुत वा शास्त्र कहते हैं। चतुर्थ कालके प्रारम्भिक समयमें श्रीऋषभदेवके मोक्ष गये बाद पचास लाख कोटि सागर* वर्ष तक सम्पूर्ण श्रुतज्ञान अविच्छिन्न रूपसे

* जैनमतानुसार वर्तमानके जितने भी महाद्वीप हैं, वे सब एक ही आर्यखण्डमें शामिल हैं। ५ म्लेच्छखण्ड इनसे भिन्न हैं।

* जैन-ग्रन्थोक्त समय वा कालका एक प्रमाण।

दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौड़े गोल गड्ढेमें, कैंचीसे जिसका दुसरा भाग न हो सके ऐसे भेड़के बालों-को भरना; जितने बाल उसमें समावें, उनमेंसे एक एक बालको

प्रकाशित रहा। अनन्तर २य तीर्थङ्कर श्रीअजितनाथ भगवान्ने जन्मग्रहण किया। इनके मोक्ष जानेके बाद भी श्रुतज्ञान अस्खलित गतिसे प्रकाशित रहा। पश्चात् तीस लाख कोटिसागर बाद सम्भवनाथ, उनसे दश लाख कोटि सागर पीछे अभिनन्दननाथ, उनसे नव लाख कोटि सागर पीछे सुमतिनाथ, नव्वे हजार कोटि सागर पीछे पद्मप्रभ, नौ हजार कोटिसागर पीछे सुपार्श्वनाथ, नौ सौ कोटि सागर पीछे चन्द्रप्रभ और उनसे नव्वे कोटि सागर पीछे पुष्पदन्त भगवान्ने जन्मग्रहण किया। इन ८वें तीर्थङ्कर पुष्पदन्तके समय तक श्रुत अव्यवहित रूपसे प्रकाशित रहा। इसके बाद पुष्पदन्तके तीर्थके नौ कोटि सागर पूर्ण होनेमें जब चौथाई पल्य शेष रह गया उसके बाद ¼ पल्य तक श्रुतका विच्छेद रहा। अनन्तर १०वें तीर्थङ्कर श्रीशीतलनाथ अवतरित हुए। इन्होंने पुनः श्रुतका प्रकाश किया। इनके बाद अर्द्ध पल्य तक श्रुतका विच्छेद रहा। पश्चात् ११वें तीर्थङ्कर श्रेयांसने पुनः श्रुतका प्रकाश किया। इनके निर्वाणके पश्चात् ५४ सागरमें जब ¾ पल्य बाकी रह गया, तब फिर श्रुतविच्छेद हुआ जो ¾ पल्य तक रहा था। तदनन्तर १२वें तीर्थङ्कर वासुपूज्य हुए और उन्होंने श्रुतका प्रकाश किया। इनके निर्वाणके पीछे १ पल्य कम ३० सागर समय बीतने पर १ पल्य तक श्रुतिविच्छेद रहा। अनन्तर १३वें तीर्थंकर विमलनाथने अवतार लिया और उनसे श्रुतका प्रकाश हुआ। इनके निर्वाणानन्तर १ पल्य कम ८ सागर समय व्यतीत होने पर १ पल्य तक श्रुतिविच्छेद रहा। पश्चात् १४वें तीर्थंकर श्रीअनन्तनाथने पुनः श्रुतप्रकाश किया। इनके बाद ४ सागर पूर्ण होनेमें ¾ पल्य बाकी रहने पर ¾ पल्य तक श्रुतविच्छेद हुआ। फिर १५वें तीर्थङ्कर श्रीधर्मनाथने श्रुतका प्रकाश किया। इनके बाद पौन पल्य कम ३ सागरमें जब आधा पल्य बाकी रहा, तब फिर श्रुतका विच्छेद हुआ जो ½ पल्य तक रहा। अनन्तर १६वें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथने श्रुतप्रकाश किया। इनके उपरान्त ½ पल्य बीतने पर १७वें तीर्थङ्कर श्रीकुन्थुनाथ, हजार कोटि वर्ष कम ¼ पल्य बीतने पर १८वें तीर्थङ्कर श्रीअरनाथ, हजार कोटि वर्ष बीतने पर १९वें तीर्थङ्कर श्रीमल्लिनाथ, ५४ लाख वर्ष बीतने पर २०वें तीर्थङ्कर श्रीमुनिसुव्रतनाथ, ६ लाख वर्ष बीतने पर २१वें तीर्थङ्कर श्रीनमिनाथ, ५ लाख वर्ष बीतने पर २२वें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथ, ८३७५० वर्ष बीतने पर २३वें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथ और उनके पश्चात् २५० वर्ष व्यतीत होने पर २४वें (अन्तिम) तीर्थङ्कर श्रीवर्द्धमान वा महावीरस्वामी अवतरित हुए। १७वें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथसे लगा कर अन्तिम तीर्थङ्कर श्रीवर्द्धमान वा महावीरस्वामी पर्यन्त श्रुतका विच्छेद नहीं हुआ—कुशाग्रबुद्धि यतिवरों द्वारा ज्योंका त्यों प्रकाशित रहा। (श्रुतावतारकथा) पृष्ठ ४३६, ३७, ३८में प्रकाशित जिनमाला देखो।

तीर्थङ्कर महावीरस्वामीको केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी जब ६६ दिन तक दिव्यध्वनि निःसृत अथवा उनका उपदेश न हुआ, तो इन्द्रको अवधिज्ञान द्वारा गणधरका अभाव ही इसका कारण मालूम हुआ। दिव्यध्वनि देखो। शीघ्र ही उन्होंने इन्द्रभूति या गौतमको गणधर नियुक्त किया। गौतमगणधर देखो। गौतमगणधरने भगवान्की वाणीको तत्त्वपूर्वक जान कर उसी दिन सायंकालको अङ्ग और पूर्वोंकी युगपत् रचना की और फिर उसे अपने सहधर्मी सुधर्मास्वामीको पढ़ाया। इसके बाद सुधर्माचार्यने वह श्रुत अपने सहधर्मी जम्बूस्वामीको और उन्होंने अन्य मुनिवरोंको पढ़ाया। जम्बूस्वामीकी मुक्तिके बाद श्रीविष्णुमुनि सम्पूर्ण श्रुतके पारगामी श्रुतकेवली (द्वादश अङ्गके धारक) हुए और इसी प्रकार नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु* ये चार महामुनि भी अशेष श्रुतसागरके पारगामी हुए। महावीरस्वामीके निर्वाणान्तर ६२ वर्षमें ३ केवलज्ञानी हुये और फिर १०० वर्षमें ५ श्रुतकेवली हुये। बस, इसके पश्चात् श्रुतकेवली वा श्रुतके सम्पूर्ण पारगामियोंका अभाव हो गया। अनन्तर एकादश अङ्ग और दश पूर्वके ज्ञानी

सौ सौ वर्ष बाद निकालना; जितने वर्षोंमें वे सब बाल निकल जावें, उतने वर्षोंका जितना समय हो उसको व्यवहारपल्य कहते हैं। व्यवहारपल्यसे असंख्य गुणा उद्धारपल्य होता है। उद्धार पल्यसे असंख्य गुणा अद्धापल्य होता है। और दशकोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका एक सागर होता है।

* ये सुप्रसिद्ध ज्योतिषी और अष्टांग निमित्त-ज्ञानके ज्ञाता भद्रबाहुसे भिन्न हैं और इनसे बहुत पहले हो चुके हैं।

१ नाम-तीर्थंकर	२ तीर्थंकरोंका अन्तरकाल	३ पितृनाम	४ मातृनाम	५ वंश	६ च्यवन-स्वर्ग	७ च्यवनतिथि	८ जन्म तिथि	९ जन्म नगरी	१० शरीरका वर्ण	११ चिह्न
१। ऋषभदेव(१)	५० लाख कोड़िसागर	नाभिराय	मरुदेवी	इक्ष्वाकु	सर्वार्थसिद्धि	आषा क्र २	चै क्र ९	साकेत(२)	सुवर्णसम	वृषभ
२। अजितनाथ	३० ,, ,,	जितशत्रु	विजयसेना	,,	विजयविमान	ज्ये क्र ३०	मा शु १०	,,	,,	गज
३। सम्भवनाथ	१० ,, ,,	दृढ़रथराय	सुसेनादेवी	,,	ग्रैवेयकविमान	फा शु ८	का शु १५	श्रावस्ती(२)	,,	अश्व
४। अभिनन्दननाथ	९ ,, ,,	संवरराय	सिद्धार्थादेवी	,,	विजयविमान	वै शु ९	मा शु १२	विनीता(२)	,,	कपि
५। सुमतिनाथ	९० हजार कोड़िसा.	मेघरथ	सुमङ्गलादेवी	,,	वैजयन्तविमान	श्रा शु २	चै शु ११	साकेत(२)	,,	चातक
६। पद्मप्रभ	,, ,,	धरणराय	सुसीमादेवी	,,	ग्रैवेयकविमान	मा क्र ६	का क्र १३	कौशाम्बी(३)	अरुणवर्ण	पद्म
७। सुपार्श्वनाथ	,, ,,	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वीदेवी	,,	,,	भा शु ६	ज्ये शु १२	वाराणसी	हरितवर्ण	स्वस्तिक
८। चन्द्रप्रभ	,, ,,	महासेन	सुलक्षणादेवी	,,	वैजयन्तविमान	चै क्र ५	पौ क्र ११	चन्द्रपुरी(४)	शुक्लवर्ण	चन्द्र
९। पुष्पदन्त(५)	९ कोड़िसागर	सुग्रीवराय	रामादेवी	,,	आरणस्वर्ग	फा क्र ९	अग्र शु १	काकन्दी	,,	मकर
१०। शीतलनाथ	१००सा.६६ला.२०ह.व.कम१को.प.	दृढ़रथ	सुनन्दादेवी	,,	अच्युतस्वर्ग	चै क्र ८	मा क्र १२	भद्रिकापुरी	सुवर्णसम	श्रीवृक्ष
११। श्रेयांसनाथ	५४ सागर	विष्णुराय	विष्णुश्री	,,	,,	ज्ये क्र ८	फा क्र ११	सिंहपुरी(४)	,,	गैंडा
१२। वासुपूज्य	३० ,,	वसुपूज्य	विजयावती	,,	महाशुक्रस्वर्ग	आषा क्र ६	फा क्र १४	चम्पापुर	अरुणवर्ण	महिष
१३। विमलनाथ	९ ,,	कृतवर्मा	श्यामादेवी	,,	सहस्रारस्वर्ग	ज्ये क्र १०	मा शु ४	कम्पिला	स्वर्णसम	वराह
१४। अनन्तनाथ	४ ,,	सिंहसेन	सर्वयशा	,,	अच्युतस्वर्ग	का क्र १	ज्ये क्र १२	अयोध्या	,,	सेहो
१५। धर्मनाथ	३¾ पल्य कम ३ सागर	भानुराय	सुव्रतादेवी	चन्द्रवंश	सर्वार्थसिद्धि	वै शु ८	मा शु ३	रत्नपुरी(२)	,,	वज्र
१६। शान्तिनाथ	½ पल्य	विश्वसेन	ऐरादेवी	,,	,,	भा क्र ७	ज्ये क्र १४	हस्तिनापुर	,,	मृग
१७। कुन्थुनाथ	१६.कोटवर्ष कम ¼पल्य	सूर्यप्रभ	श्रीमतीदेवी	,,	,,	श्रा क्र १०	वै शु १	,,	,,	छाग
१८। अरनाथ	१ करोड़ वर्ष	सुदर्शन	सुमित्रादेवी	,,	अपराजितवि०	फा शु ३	अग्र शु १४	,,	,,	मत्स्य
१९। मल्लिनाथ	५४ लाख वर्ष	कुम्भराय	रक्षितादेवी	इक्ष्वाकु	,,	चै शु १	अग्र शु ११	मिथिलापुरी	,,	कलश
२०। मुनिसुव्रतनाथ	६ ,,	सुमित्रनाथ	पद्मावती	हरिवंश	प्राणतस्वर्ग	श्रा क्र २	वै क्र १०	राजगृह	श्यामवर्ण	कच्छप
२१। नमिनाथ	५ ,,	विजयरथ	वप्रादेवी	इक्ष्वाकु	अपराजितवि०	आश्वि क्र २	आषा क्र १०	मिथिलापुरी	सुवर्णसम	नीलकमल
२२। नेमिनाथ	८३७५० वर्ष	समुद्रविजय	शिवदेवी	हरिवंश	,,	का शु ६	श्रा शु ६	द्वारिकापुरी	श्यामवर्ण	शङ्ख
२३। पार्श्वनाथ	२५० वर्ष	अश्वसेन	वामादेवी	इक्ष्वाकु	प्राणतस्वर्ग	वै क्र २	पौ क्र ११	वाराणसी	हरितवर्ण	सर्प
२४। महावीरस्वामी(६)	......	सिद्धार्थ	त्रिशलादेवी	,,	अच्युतस्वर्ग	आषा शु ६	चै शु १३	कुण्डलपुर	सुवर्णसम	सिंह

(१) द्वितीय नाम ऋषभनाथ वा आदिनाथ। (२) अयोध्याके अन्तर्गत। ([illegible]यागके अन्तर्गत। (४) वाराणसी वा काशीके अन्तर्गत। (५) द्वितीयनाम सुविधिनाथ। (६) नामान्तर—वर्द्धमान, सन्मति, वीर और अतिवीर।

	१२ शरीरमान	१३ आयु मान	१४ कुमारकाल	१५ राज्यकाल	१६ पाणिग्रहण	१७ समकालीनराजा	१८ दीक्षातिथि	१९ दीक्षासंघ	२० दीक्षावृक्ष	२१ तपोवन	२२ वैराग्यका कारण	२३ प्रथम पारण
१	५०० धनु	८४लाखपूर्व	२०लाखपू०	६३ लाख पू०	किया	भरतचक्र०	चै०कृ०८	४०००	वटवृक्ष	सिद्धार्थ*	नीलाञ्जनामृत्यु	१वर्षबाद
२	४५० ,,	७२ ,,	१८लाखपू०	५३ला.पू०१पूर्वाङ्ग८४ला.व	,,	सागरच ०	मा०शु०१०	१०००	सप्तपर्ण	सहस्राम्र †	उल्कापातदर्शन	८दिनबाद
३	४०० ,,	६० ,,	१५ ,,	४४लाखपू० ४ पूर्वाङ्ग	,,	सत्यवीर्य	अग्र०शु०१५	,,	शाल्मली	,,	मित्रोंका विनाश	२दिनबाद
४	३५० ,,	५० ,,	१२½ ,,	३६लाखपू० ५०ला ,,	,,	मित्रभव	मा शु १२	,,	सरलजात	,,	,,	,,
५	३०० ,,	४० ,,	१० ,,	२९लाखपू० १२ला ,,	,,	मित्रवीर्य	चै शु ११	,,	प्रियङ्गु	,,	,,	,,
६	२५० ,,	३० ,,	७½ ,,	२१लाखपू० ५८ला ,,	,,	यज्ञदत्त	का कृ १३	,,	,,	सहस्राम्र*	स्त्रीका अन्नत्याग	,,
७	२०० ,,	२० ,,	५ ,,	१४लाखपू० २०पूर्वाङ्ग	,,	धर्मवीर्य	ज्ये शु १२	,,	शिरिश	सहस्राम्र‡	मित्रोंका विनाश	,,
८	१५० ,,	१० ,,	२½ ,,	६लाखपू० ६६ पूर्वाङ्ग	,,	दानवीर्य	पौ कृ ११	,,	नागवृक्ष	,,	दर्पणमेंमुखदर्शन	,,
९	१०० ,,	२ ,,	५०हजारपू०	१लाखपू० २८ पूर्वाङ्ग	,,	मेघव्रत	अग्र शु १	,,	शालिवृक्ष	पुष्पक॥	उल्कापातदर्शन	,,
१०	९० ,,	१ ,,	२५ ,,	५०हजारपूर्व	,,	सीमन्धर	मा कृ १२	,,	पीपल	सहेतुक॥	मेघोंका विनाश	,,
११	८० ,,	८४लाखवर्ष	२१ ,,	४२लाख वर्ष	,,	त्रिपृष्टवासुदेव	फा कृ ११	,,	तिन्दुक	मनोहर‡	वसंतऋतुपरिवर्तन	,,
१२	७० ,,	७२ ,,	१८ ,,	३६ ,,	नहींकिया	द्विपृष्ट ”	फा कृ १४	६००	पाण्डुवृक्ष	क्रीडोद्यान॥	मित्रोंका विनाश	७१दिनबाद
१३	६० ”	६० ”	१५ ”	३० ”	किया	स्वयंभू ”	मा शु ४	१०००	जम्बूवृक्ष	सहस्राम्र॥	,,	२दिनबाद
१४	५० ”	३० ”	७½ ”	१५ ”	”	पुरुषोत्तम ”	ज्ये कृ १२	”	पीपल	सहस्राम्र†	उल्कापात-दर्शन	,,
१५	४५ ”	१० ”	२½ ”	५ ”	,,	पुण्डरीक ”	मा शु १३	”	दधिपर्ण	शालिवन॥	,,	,,
१६	४० ”	१ ”	२५हजारवर्ष	५० हजारवर्ष	”	पुरुषदत्त ”	ज्ये कृ १४	”	नन्दिवृक्ष	सहस्राम्र§	,,	”
१७	३५ ,,	९५ह०वर्ष	२३७५०वर्ष	४७½ ”	”	नकुलराय	वै शु १	”	तिलक	,,	,,	,,
१८	३० ”	८४ह०वर्ष	२१ ह० वर्ष	४२ ”	”	गोविन्दराय	अग्र शु १०	”	आम्रवृक्ष	,,	,,	,,
१९	२५ ”	५५ ”	१० ,,	२९½ ,,	नहींकिया	सुलमराय	,, ११	६०६	अशोक	सहस्राम्र§§	,,	,,
२०	२० ,,	३० ,,	७½ ,	१५ ,,	किया	अजितराय	वै शु १०	१०००	चम्पक	नीलगुहा¶	,,	”
२१	१५ ,,	१० ,,	२½ ,,	५ ,,	”	विजयराय	आषाकृ १०	”	मौलसरी	सहस्राम्र§§	,,	,,
२२	१० ,,	१ ,,	३०० वर्ष	राज्यनहींकिया	नहींकिया	श्रीकृष्णवासु०	आशु ६	”	मेषशृंग	सहस्राम्र॥	पशुबन्धन दर्शन	”
२३	९ हाथ	१००वर्ष	३० ,,	..	,,	अजितराय	पौ कृ ११	६०६	भववृक्ष	मनोहरवन‡	धुनीमेंसर्पको मृत्यु	३दिनबाद
२४	७ हाथ	७२ ,,	३० ..	..	..	श्रेणिकराय	अग्रकृ १०	३००	शालिवृक्ष	मनोहरवन॥	जातिस्मरण होना	२दिनबाद

* प्रयागके अन्तर्गत । † अयोध्याके अन्तर्गत । ‡ काशीके अन्तर्गत । § हस्तिनापुरके अन्तर्गत । ॥स्थानीय । ¶ राजगृहके निकट । §§ मिथिलापुरके निकट ।

२४ पारण-स्थान	२५ तपश्चरण	२६ केवलज्ञान	२७ गणधरसं०	२८ मुख्यगणधर	२९ केवली	३० १४श पूर्वी	३१ मुनि	३२ आर्यिका	३३ व्रतीश्रावक	३४ व्रती श्राविका	३५ समवशरण-काल	३६ मोक्षतिथि	३७ मोक्षस्थान
१ श्रेयांस-गृह	१००० वर्ष	फा.कृ११	८४	वृषभसेन	२००००	४७५०	८४०००	३५००००	३लाख	५ लाख	१ह.व.कम १लापूर्व	मा.कृ.१४	कैलाश
२ ब्रह्मदत्त गृह	१२ ,,	पौ.शु.४	९०	सिंहसेन	२००००	३७५०	१ लाख	,,	,,	,,	१पूर्वा १२व. कम ,,	चै.शु.५	सम्मेदाचल
३ सुरेन्द्रदत्त-गृह	१४ ,,	का कृ४	१०५	चारुषेण	१५०००	२१५०	२ लाख	३३००००	,,	,,	४पूर्वा १४व कम ,,	चै शु६	,,
४ इन्द्रदत्त-गृह	१८ ,,	पौ शु१४	१०३	वज्रनाभि	१६०००	२५००	३ला.२४सौ	३३०६००	,,	,,	१२पूर्वा २०व कम ,,	वै शु६	,,
५ पद्मराय-गृह	२० ,,	चै शु११	११६	चमर	१३०००	२४००	३ला.२ह.	३३००००	,,	,,	१६पूर्वा ६मा कम ,,	चै शु११	,,
६ सोमदत्त-गृह	६ ,,	चै.पूर्णि०	१११	वज्रवली	१२०००	२३००	,,	४२००००	,,	,,	२०पूर्वा ८व कम ,,	फा कृ४	,,
७ महादत्त-गृह	९ ,,	फा कृ६	९५	चमरवली	११०००	२०३०	३ लाख	३३००००	,,	,,	२४पूर्वा ३मा कम ,,	फा कृ७	,,
८ सोमदेव-गृह	३ ,,	फा कृ७	९३	दत्तक	१००००	२०००	२½लाख	३८००००	,,	,,	२८पूर्वा ४मा कम ,,	फा शु७	,,
९ पुष्पक-गृह	४ ,,	का शु२	८८	विदर्भ	७५००	१५००	२ ,,	३८००००	२लाख	४लाख	३मा कम ५०ह पूर्व	भा शु८	,,
१० पुनर्वसु गृह	२ ,,	पौ शु१४	८१	अनागार	७०००	१४००	१ ,,	३८००००	,,	,,	२व कम २५ ,,	आश्वि शु८	,,
११ सुनन्दराय-गृह	२ ,,	मा कृ३०	७७	कुन्थु	६५००	१३००	८४ ह.	१२००००	,,	,,	२व कम २१ लाख वर्ष	श्रा.पूर्णिमा	,,
१२ नन्दभूप-गृह	१ ,,	मा शु२	६६	सुधर्म	६०००	१२००	७२ ,,	१०६०००	,,	,,	१ ,, १८ ,,	भा शु१४	चम्पापुरी
१३ विशाखदत्त-गृह	३ ,,	मा शु६	५५	नन्दिराय	५५००	११००	६८ ,,	१०३०००	,,	,,	३ ,, १५ ,,	आषा कृ६	सम्मेदाचल
१४ धर्मसिंह-गृह	२ ,,	चै कृ३०	५०	जयमुनि	५०००	१०००	६६ ,,	१०८०००	,,	,,	२ ,, ७½ ,,	चै कृ४	,,
१५ धन्यसेन-गृह	१ ,,	पौ पूर्णिमा	४३	अरिष्ट	४५००	९००	६४ ,,	६२४००	,,	,,	१ ,, २½ ,,	ज्ये शु४	,,
१६ धर्ममित्र-गृह	१ ,,	पौ शु११	३६	चक्रायुध	४०००	८००	६२ ,,	६०३००	,,	,,	१ व कम २५ह वर्ष	ज्ये कृ१४	,,
१७ अपराजित-गृह	१६ ,,	चै शु३	३५	स्वयम्भू	३२००	७००	६० ,,	६०३५०	१ला	३ला	२३७३४ वर्ष	वै शु१	,,
१८ नन्दसेन-गृह	११ ,,	का शु१२	३०	कुम्भार्य	२८००	६१०	५० ,,	६० हजा	,,	,,	२०९९८ ,,	चै शु११	,,
१९ वृषभदत्त-गृह	१६ ,,	पौ कृ२	२८	विशाखदत्त	२२००	५५०	४० ,,	५५ ,,	,,	,,	१९९८४ ,,	फा शु५	,,
२० राजदत्त गृह	११ ,,	वै कृ ९	१८	मल्लि	१८००	५००	३० ,,	५० ,,	,,	,,	२४९८ ,,	फा कृ१२	,,
२१ सुनयदत्त-गृह	९ मास	मा शु ११	१७	सोमनाथ	१६००	४५०	२० ,,	४५ ,,	,,	,,	९मा कम २५०० ,,	वै कृ१४	,,
२२ वरदत्त गृह	५६दिन	आश्विशु१	११	वरदत्त	१५००	४००	१८ ,,	४० ,,	,,	,,	५६ दि कम ७०० ,,	आषा० शु७	गिरनार
२३ धनदत्त-गृह	४ मास	चै कृ ४	१०	स्वयम्भू	१०००	३५०	१६ ,,	३८ ,,	,,	,,	४मा कम ७० वर्ष	श्रा० शु७	सम्मेदाचल
२४ नकुलराय-गृह	१२ वर्ष	वै शु१०	११	इन्द्रभूति	७००	३००	१४ ,,	३५ ,,	,,	,,	३० वर्ष	का० अमा	पावापुर

पू = पूर्व । पूर्वा = पूर्वांग । ला = लाख । ह = हजार । व = वर्ष । मा = मास । दि = दिन ।

ग्यारह हुये, यथा—विशाखदत्त*, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्गदेव और धर्मसेन वा धर्मदत्त। इतनेमें १८३ वर्ष बीत गये।

अनन्तर २२० वर्षके भीतर भीतर नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, द्रुमसेन (ध्रुवसेन) और कंसाचार्य ये पांच ऋषि ग्यारह अङ्गके ज्ञाता हुए। इनके बाद ११८ वर्षके भीतर समुद्र, अभयभद्र, जयबाहु † और लोहाचार्य ये चार ऋषि आचाराङ्ग शास्त्रके परम विद्वान् हुए। इनके समय तक (अर्थात् वीरनिर्वाणके ६८३ वर्ष बाद तक) अङ्ग-ज्ञानकी प्रवृत्ति रही। बस, इसके बाद कालदोषसे उसकी प्रवृत्ति विलुप्त हो गई।

लोहाचार्यके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त ये चार आरातीय मुनि अङ्गपूर्वज्ञानके कुछ भागके ज्ञाता हुए। इनके बाद पूर्वदेशके पौण्ड्रवर्द्धनपुरमें श्रीअर्हद्वलि महामुनि अवतीर्ण हुए जो अङ्गपूर्व ज्ञानके कुछ अंशोंके ज्ञाता थे। ये महामुनि प्रसारणा, धारणा, विशुद्धि आदि श्रेष्ठ क्रियाओंमें निरन्तर तत्पर, अष्टांग निमित्त-ज्ञानके ज्ञाता और मुनि-सङ्घके शासक थे। अर्हद्वलि आचार्यने एक दिन युगप्रतिक्रमणके समय मुनियोंसे पूछा—"सब मुनि आ गये?" मुनियोंने उत्तर दिया—"भगवन्! हम सब अपने अपने सङ्घ सहित आ गये।" इस वाक्यसे अपने सङ्घमें मुनियोंकी निजत्वबुद्धि प्रकट हुई; जिससे आचार्यप्रवरने निश्चय कर लिया कि इस कलिकालमें जैनधर्म भिन्न भिन्न गणोंके पक्षपातसे ठहर सकेगा, उदासीन भावसे नहीं। ऐसा विचार कर उन्होंने गुफासे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी नन्दि और किसीको वीर संज्ञा रक्खी; अशोकवाटिकासे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी संज्ञा अपराजित और किसीको देव; पञ्चस्तूपोंसे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीकी संज्ञा सेन और किसीकी भद्र; महाशाल्मलीवृक्षोंके नीचेसे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीको गुणधर और किसीको गुप्त तथा खण्डकेशर वृक्षोंके नीचेसे आये हुए मुनियोंमेंसे किसीको सिंह और किसीको चन्द्र संज्ञा रक्खी।

इस प्रकार उक्त समस्त मुनि सङ्घोंका प्रवर्त्तन करनेवाले श्रीअर्हद्वलि आचार्यके शिष्य हो गये। इनके पश्चात् श्रीमाघनन्दि मुनि अवतीर्ण हुए। इन्होंने भी अङ्गपूर्व ज्ञानका भली भाँति प्रकाश किया। तत्पश्चात् सौराष्ट्रदेशके गिरिनगरके निकट उर्ज्जयन्तगिरि वा गिरनार पर्वतकी चन्द्रगुफामें निवास करनेवाले श्रीधरसेन आचार्य हुए। इनको अग्रायणीपूर्वके अन्तर्भुक्त पञ्चम वस्तुके चतुर्थ महाकर्मप्राभृतका ज्ञान था। इन्हें मालूम हो गया था कि, "अब इस पञ्चमकालमें मुझसे अधिक शास्त्रज्ञ और कोई भी न होगा।" इन्होंने यह विचार कर कि यदि कोई प्रयत्न न किया गया तो श्रुतका विच्छेद होगा, एक ब्रह्मचारी द्वारा देशेन्द्रदेशके वेणातटाकपुरके निवासी महामहिमाशाली मुनियोंके निकट एक पत्र भेजा। पत्रानुसार दो तीक्ष्णबुद्धि मुनि श्रीधरसेनाचार्यके पास आये। आचार्यने भी उन्हें योग्य समझ कर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्त्तमें शास्त्रका व्याख्यान करना प्रारम्भ कर दिया। मुनिद्वय भी आलस्य त्याग कर अध्ययन करने लगे। कुछ दिन बाद आषाढ़ शुक्ला ११शीको विधिपूर्वक अध्ययन समाप्त हुआ। देवोंने प्रसन्न हो कर दोनों मुनियोंका पुष्पदन्त और भूतबलि नाम रख दिया। दूसरे दिन श्रीधरसेनाचार्यने अपनी मृत्यु निकटवर्ती जान उन दोनों शिष्योंको कुरीश्वर भेज दिया।

कुछ दिन पीछे ये दोनों मुनि करहाट नगरमें पहुंचे। वहां श्रीपुष्पदन्त मुनिने अपने भानजे जिनपालितको देखा। जिनपालितने जिनदीक्षा ले ली। जिनपालितको साथ ले श्रीपुष्पदन्त वनवास देशमें पहुंचे। उधर भूतबलि द्राविड़ देशके मथुरा नगरमें पहुंचे, दोनोंका साथ छूट गया। अनन्तर भूतबलिने पांच खण्डोंमें पूर्वसूत्रों सहित छह हजार श्लोकविशिष्ट द्रव्यप्ररूपाधिकारकी रचना की और फिर महाबन्ध नामक छठे खण्डकी तीस हजार सूत्रोंमें समाप्त किया। पहले पांच खण्डोंके नाम ये हैं—जीवस्थान, क्षुद्रकबन्ध, बन्धस्वामित्व, भाववेदना

* इनको किसी किसीने विशाखाचार्य भी लिखा है।

† पंचास्तिकायकी टीकामें अभयभद्रके स्थानमें यशोधर और जयबाहुके स्थानमें महायश लिखा है। सम्भवतः ये उनके नामान्तर होंगे।

और वर्ग था। इस प्रकार श्रीभूतबलि आचार्यने षट्खण्डागमकी रचना की।

इसी समय एक गुणधर नामके आचार्य हुए जिनको पूर्वी ज्ञानप्रवादपूर्वकी दशम वस्तुके तृतीय कषायप्राभृतके ज्ञाता थे। इन्होंने कषायप्राभृत (अथवा दोषप्राभृत) आगमको १८३ मूल गाथा और ५३ विवरणरूप गाथाओंमें विन्यस्त किया। तदनन्तर उन्होंने श्रीनागहस्ति और आर्यमंक्षु मुनिद्वयके लिए १५ महा अधिकारोंमें उसका व्याख्यान किया। पश्चात् इन दोनों मुनियोंसे श्रीयतिवृषभमुनिने दोषप्राभृतके उक्त सूत्रोंका अध्ययन करके उनकी चूर्णिवृत्ति (६००० श्लोकों प्रमाण) बनाई। इनके बाद श्रीउच्चारणाचार्यने उसकी १२००० श्लोक प्रमाण उच्चारणावृत्ति नामक टीकाकी रचना की।

इस प्रकार उक्त दोनों कषायप्राभृत और कर्मप्राभृत सिद्धान्तोंका ज्ञान गुरुपरम्परासे ग्रन्थपरिकर्म (चूलिका सूत्र)-के कर्ता श्रीपद्ममुनिको प्राप्त हुआ, जो कुण्डकुन्दपुरमें रहते थे। श्रीपद्ममुनिने भी छः खण्डोंमेंसे प्रथम तीन खण्डोंकी १२००० श्लोक-प्रमाण टीकाकी रचना की। इसके कुछ समय पीछे श्रीश्यामकुण्ड आचार्यने दोनों आगमोंको सम्पूर्णतया पढ़ा और सिर्फ एक छठे महाबन्ध खण्डको छोड़ कर शेष दोनों प्राभृतोंकी १२००० श्लोक परिमित टीका रची। इसके पश्चात् कर्णाटक देशके तुम्बुलूर ग्राममें तुम्बुलूर आचार्यका आविर्भाव हुआ। इन्होंने भी छठे खण्डको छोड़ कर शेष दोनों प्राभृतोंकी कर्णाटकी भाषामें ८४००० श्लोक परिमित 'चूड़ामणि' नामक व्याख्यानकी रचना की। अनन्तर उन्होंने छठे खण्ड (महाबन्ध)-की भी ७००० श्लोक परिमित पञ्चिका नामक टीका रची। इसके पश्चात् कालान्तरमें तार्किकसूर्य श्रीसमन्तभद्रस्वामीका उदय हुआ और उन्होंने भी प्राभृतद्वयका अध्ययन करके पाँच खण्डोंकी ४८००० श्लोक-प्रमाण टीका संस्कृत भाषामें रची। द्वितीयसिद्धान्तकी भी व्याख्या लिखने लगे, किन्तु किसी कारणवश वे उसे समाप्त न कर सके।

अनन्तर श्रीशुभनन्दि और रविनन्दिने उक्त सिद्धान्तोंका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया। ये दोनों मुनि भीमरथि और कृष्णवेणा नदियोंके मध्यस्थित रमणीय उत्कलिका ग्रामके निकटवर्ती मगणवल्ली नामक स्थानमें रहते थे। इनके निकट रह कर श्रीवप्पदेव गुरुने उक्त दोनों सिद्धान्तोंका अध्ययनपूर्वक महाबन्ध नामक छठे खण्डके सिवा शेष ५ खण्डोंपर व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक टीका रची, जिसमें महाबन्धका भी संक्षिप्त विवरण दे दिया। तत्पश्चात् इन्होंने कषायप्राभृतकी प्राकृतभाषामें ६०००० श्लोक प्रमाण और महाबन्ध खण्डकी ८००५ श्लोक परिमित टीकाओंकी रचना की। इनके कुछ समय बाद चित्रकूटपुर-निवासी एलाचार्य सिद्धान्त-तत्त्वोंके ज्ञाता हुए और उन्होंने वीरसेनाचार्यको उक्त सिद्धान्तोंका अध्ययन कराया। वीरसेनाचार्यने गुरुकी आज्ञासे चित्रकूट छोड़ कर वाट ग्रामको प्रस्थान किया वाट ग्रामस्थ आनतेन्द्र द्वारा निर्मित जिनमन्दिरमें अवस्थानपूर्वक वीरसेनाचार्यने व्याख्याप्रज्ञप्तिको देख कर प्रथमके बन्धनादि अठारह अधिकारोंमें सत्कर्म नामक ग्रन्थ और फिर उक्त छहों खण्डकी ७२००० श्लोक परिमित संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंमें 'धवल' नामकी टीकाकी रचना की। अनन्तर वे कषायप्राभृतकी चार विभागोंपर 'जयधवल' नामक २०००० श्लोक प्रमाण टीका लिख कर स्वर्गवासी हो गये। फिर उनके शिष्य श्रीजयसेन गुरुने ४०००० श्लोकोंकी रचना कर उक्त टीकाको पूर्ण किया। इस तरह जयधवलकी टीका ६०००० श्लोकोंमें पूर्ण हुई।*

(इन्द्रनन्दियतिकृतश्रुतावतार कथा)

यह तो हुआ श्रुतका इतिहास, अब श्रुतके भेद प्रभेद और लक्षणादिका वर्णन किया जाता है।

श्रुतके प्रधान भेद दो हैं, अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। अङ्गप्रविष्ट श्रुतके बारह अङ्ग हैं जिनको द्वादशाङ्ग कहते हैं। यथा—आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग,

* जैनहरिवंशपुराणमें अंगज्ञानकी प्रवृत्ति विलुप्त होनेके (अर्थात् वीरनिर्वाण-संवत् ६८३ के) बाद निम्नलिखित आचार्योंका उल्लेख है—नयन्धरऋषि, गुप्तऋषि, शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मन्दराचार्य, मित्रवीर, मित्रक, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ती, जितदंड, नन्दिषेण, दीपसेन, श्रीधरसेन, सुधर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिषेण, ईश्वरसेन (२य), सुनन्दिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन (२य), भीमसेन, जिनसेन, शांतिसेन। ये आचार्य छः प्रकारकी भाषाओंके जानकार थे।

सरस्वती गच्छकी पट्टावली।

पट्ट	नाम आचार्य	पट्टपर बैठनेका संवत् और तिथि	गृहस्थ अवस्थामें	दीक्षावस्थामें	कितने वर्ष पट्टपर रहे ? वर्ष	मास	दिन	विरह दिन	सर्वायु:-वर्ष वर्ष	मास	दिन	मंतव्य
१	भद्रबाहु २य	४। चै शु१४	२४वर्ष	३०वर्ष	२२	१०	२७	३	७६	११		ब्राह्मण।
२	गुप्तिगुप्त	२६। फा शु१४	२२वर्ष	३४वर्ष	९	६	२५	५	६५	७		पवार।
३	माघनन्दि १म	३६। आ शु१४	२०वर्ष	४४वर्ष	४	४	२६	४	६८	५		साह।
४	जिनचन्द्र १म	४०। फा शु१४	२४व९मा	३२व३मा	८	९	६	३	६५	९	१	
५	कुन्दकुन्द	४९। पौ कृ८	११वर्ष	३३वर्ष	५१	१०	१०	५	९५	१०	१५	
६	उमास्वामी	१०१। का शु८	१९वर्ष	२५वर्ष	४०	८	१	५	८४	८	६	
७	लोहाचार्य २य	१४२। आषा शु१४	११वर्ष	३८वर्ष	१०	१०	२०	६	६९	१०	१५	
८	यशःकीर्ति	१५३। ज्ये शु१०	१२वर्ष	२१वर्ष	५८	९	२१	५	९१	९	१५	जायसवाल जातीय।
९	यशोनन्दी	२११। फा कृ११	१६वर्ष	१७वर्ष	४६	४	९	४	७९	४	१३	
१०	देवनन्दी	२५८। आषा शु८	११व५मा	१५व७मा	४९	१०	२८	४	७६	१२	२	पौरवाल जातीय।
११	पूज्यपाद	३०८। ज्ये शु१०	१५वर्ष	११ ७	४४	११	२२	७	७१	६	२९	(पाठान्तर जयनन्दी)
१२	गुणनन्दी १म	३५३। ,, ९	११वर्ष	१३ ५	११	३	१	४	३८	×	५	
१३	वज्रनन्दी	३६४। भा शु१४	१९ व	१६ ३	१२	५	१	४	५७	९	५	
१४	कुमारनन्दी	३८६। फा कृ४	१६ व	१० २	४०	२	२०	९	६६	४	२९	
१५	लोकचन्द्र १म	४२७। ज्ये कृ३	१९ व	१६वर्ष	२६	३	१६	१०	६०	३	२६	(पाठान्तर लोकेन्द्र)
१६	प्रभाचन्द्र १म	४५३। भा शु१४	९ व	२४ व	२५	५	१५	११	५८	५	२६	(पाठान्तर प्रताप)
१७	नेमिचन्द्र १म	४७८। फा शु१०	१० व	२२ व	८	९	१	९	४०	९	१०	
१८	भानुनन्दी	४८७। पौ कृ५	९ व	१५ व	२२	०	२४	१२	४६	१	६	
१९	हरिनन्दी	५०८। मा शु११	९ व	१५ व	१६	७	१५	१४	४०	७	२९	(पाठान्तर सिंहनन्दी.)
२०	वसुनन्दी	५२५। आ शु१०	१० व	३० व	६	२	२२	९	४६	३	१	
२१	वीरनन्दी	५३१। पौ शु११	९ व	१३ व	३०	०	१४	१०	५२	०	२४	(मतान्तरमें पौ शु१२)
२२	रत्नकीर्ति	५६१। मा शु५	८ व	१२ व	२३	४	७	११	४७	४	१८	(पाठान्तर रत्ननन्दी)
२३	माणिक्यनन्दी	५८५। आषा कृ८	१० व	१९ व	१६	५	१०	१५	४५	५	२५	(पाठान्तर माणिक्य)
२४	मेघचन्द्र	६०१। पौ कृ३	२४ ३.२७	६,७,१३	२५	५	२०	१२	५६	६	२	(पाठान्तर मेघेन्द्र)
२५	शांतिकीर्ति	६२७। आषा कृ५	७वर्ष	१०वर्ष	१५	०	२५	२०	३२	१	१५	
२६	मेरुकीर्ति	६४२। आ शु५	८ व	११ व	४४	३	१६	१६	६३	३	२९	यहां तक भद्दिलपुरवासी
२७	महाकीर्ति	६८६ अग्र शु४	६ व	१२ व	१७	११	५	१५	३५	११	२०	उज्जयिनीमें पट्ट
२८	विष्णुनन्दी	७०४। " कृ९	७ व	१४ व	२१	४	०	१५	४२	४	१५	(पाठान्तर वीरनन्दी)
२९	श्रीभूषण	७२६। चैत्र शु९	१४ व	८ व	९	…	…	२६	३१	०	२६	
३०	शीलचन्द्र	७३५। वै शु५	६ व	१२ व	१४	३	४	३१	३२	४	५	(पाठान्तर शीलचन्द्र)
३१	नन्दिकीर्ति	७४९। भा शु१०	१५ व	२० व	१५	६	४	१३	५०	६	१७	(पाठान्तर श्रीनन्दी)
३२	देवभूषण	७६५। चै कृ१२	१८ व	२४ व	०	६	६	७	४२	६	१३	(मतान्तर सं० ७६४)

पट्ट	नाम आचार्य	पट्ट पर बैठनेका संवत और तिथि	गृहस्थावस्थामें	दीक्षावस्थामें	कितने वर्ष पट्ट पर रहे ?			विरह दिन	सर्वायु: वर्ष			मन्तव्य
					व	मा	दि		व	मा	दि	
३३	अनन्तकीर्ति	७६५।आ शु१०	११ व	१३ व	१८	९	२५	५	४३	१०	०	
३४	धर्मनन्दी	७८५ आ पूर्णि	१३ १८०	१८ व	२२	९	२५	५	५३	१०	०	(पाठान्तर धर्मादिनन्दी)
३५	वीरचन्द्र	८०८।ज्ये पूर्णि	१४ व	२५ व	३२	०	४	८	७०	०	१२	(पाठान्तर विद्यानन्दी)
३६	रामचन्द्र	८४०।आषा कृ१२	८ व	११ व	१६	१०	०	६	४५	१०	६	(पाठान्तर वीरचन्द्र)
३७	रामकीर्ति	८५७।वै शु३	१३ व	१६ व	२१	४	२६	११	५१	५	७	
३८	अभयचन्द्र	८७८।आ शु१०	१८ व	१० व	१७	०	२७	४	४५	१	१	(पाठान्तर अभयेन्द्र)
३९	नरनन्दी	८९७।आ शु७	१५ वर्ष	२१ वर्ष	१८	९	०	९	५४	९	९	(मतान्तरमें शुक्ला ११ थी, नाम नरचन्द्र
४०	नागचन्द्र	९१६।भा कृ५	२१ ,,	१३ ,,	२३	०	३	१०	५७	०	१३	
४१	नयनन्दी	९३९।भा शु३	८ ,,	१० ,,	८	९	११	९	२६	९	२०	पाठान्तर-नयनन्दी, हरिनन्दी
४२	हरिचन्द्र	९४८।आषा कृ८	८व ४मा	१४व८मा	२६	१	८	८	४९	१	१६	
४३	महीचन्द्र १म	९७४।आ शु९	१४ वर्ष	१०-११	१६	६	०	५	४१	५	५	(मतान्तरमें सं० ९७२)
४४	माघचन्द्र १म	९९०।मा शु१४	१३ "	२०व	३२	२	२४	९	६५	३	३	(पाठान्तर माघवेन्दु) यहां तक उज्जयिनीमें
४५	लक्ष्मीचन्द्र	१०२३।ज्ये कृ२	११ "	२५व	१४	४	३	११	५०	४	१४	चन्देरीमें पट्ट
४६	गुणनन्दी २य	१०३७।आश्वि शु१	१० "	२२व	१०	१०	२९	१४	४८	११	१३	(पाठान्तर गुणकीर्ति)
४७	गुणचन्द्र	१०४८।भा शु१४	१० "	२२व	१७	८	७	१०	४९	८	१७	(४६ और ४८वेंके बीचमें वासवेन्दु)
४८	लोकचन्द्र २य	१०६६।ज्ये शु१	१५ "	३०व	१३	३	३	४	५८	३	७	यहां तक चन्देरीमें पट्ट
४९	श्रुतकीर्ति	१०७९।भा शु८	१३ "	३२व	१५	६	६	६	६०	६	१२	भेलसामें पट्ट।
५०	भावचन्द्र	१०९४।चै कृ५	१२ "	२५व	२०	११	२५	५	५८	०	०	"
५१	महीचन्द्र २य	१११५।चै कृ५	१० "	२६व	२५	५	१९	५	६१	५	१५	"
५२	माघचन्द्र २य	११४०।भा शु५	१४ "	१३व	४	३	१७	७	३१	३	२४	बारानगरमें पट्ट।
५३	वृषभनन्दी	११४४।पौ कृ१४	७ "	३७व	३	४	१	४	४७	४	५	(पाठान्तर ब्रह्मनन्दी)
५४	शिवनन्दी	११४८।वै शु४	९ "	३९व	७	६	१७	१४	५५	७	१	
५५	वसुचन्द्र	११५५।अग्र शु५	११ "	४०व	०	७	२८	३	५१	८	१	(पाठान्तर विश्वचन्द्र)
५६	सहनन्दी	११५६।आ शु६	७ "	३२व	४	०	२४	५	४३	०	२९	(पाठान्तर हरिनन्दी)
५७	भावनन्दी	११६०।भा शु२	११ "	३०व	७	२	०	३	४८	२	३	
५८	देवनन्दी २य	११६७।का शु८	११ "	३०व	३	३	२	१०	४४	३	१२	(पाठान्तर शूरकीर्ति)
५९	विद्याचन्द्र	११७०।फा कृ५	१४ "	३८व	५	५	५	१४	५७	५	१९	
६०	शूरचन्द्र	११७६।आ शु९	१० "	३५व	८	१	२९	२	५३	२	१	
६१	माघनन्दी २य	११८४।आश्वि शु१०	१४व ३मा	३३व१मा	४	१	१६	५	५०	६	२१	
६२	ज्ञानकीर्ति	११८८।अग्र शु१	१० वर्ष	३४व	११	०	३	७	५५	०	१०	(पाठान्तर ज्ञाननन्दी)
६३	गङ्गाकीर्ति	११९९।अग्र शु११	१३ "	३३व	७	२	८	१०	५३	२	१८	यहां तक बारानगरमें पट्ट
६४	सिंहकीर्ति	१२०६।फा कृ१४	८ "	३७व	२	२	१५	१६	४७	३	१	ग्वालियरमें पट्ट।
६५	हेमकीर्ति	१२०९।ज्ये कृ१२	१३ "	२४व	७	३	२७	६	४४	४	३	चित्तौर (मेवाड़)में—

पट्ट	नाम आचार्य	पट्टपर बैठनेका संवत् और तिथि	गृहस्थावस्थामें	दीक्षावस्थामें	कितने वर्ष पट्ट पर बैठे रहे			विरह दिन	सर्वायु:-वर्ष			मन्तव्य ।
					व	मा	दि		व	मा	दि	
६६	सुन्दरकीर्ति	१२१६।आश्वि शु३	६व८मा	१८व३मा	६	६	२०	१०	३२	७	०	पाठान्तर चारुनन्दी)
६७	नेमिचन्द्र २य	१२२३।चै शु३	७ वर्ष	२१व	७	८	२९	९	३५	९	८	(पाठान्तर नेमिनन्दी)
६८	नाभिकीर्ति	१२३०।मा शु११	५ "	३५व	१	११	२६	४	४२	०	०	
६९	नरेन्द्रकीर्ति	१२३२ "	१४ "	१३व	९	०	१८	१२	३६	१	०	(पाठान्तर नरेन्द्रादियश:)
७०	श्रीचन्द्र २य	१२४१।फा शु११	७ "	२५व	६	३	२४	७	४८	४	१	
७१	पद्मकीर्ति	१२४८।आषा शु१२	१० "	२२व	४	११	२५	६	३७	०	१	
७२	वर्द्धमान	१२५३। " शु१३	१८ "	५व	२	११	२८	३	२६	०	१	
७३	अकलङ्कचन्द्र	१२५६।आ शु१४	१४वर्ष	३३वर्ष	६	३	४	७	४८	४	१	
७४	ललितकीर्ति	१२५७।का पूर्णि	१३ ,,	२४ ,,	४	५	४	१	५	०	२	
७५	केशवचन्द्र	१२६१।अग्र कृ५	११ ,,	३४ ,,	२		१५	६	४५	६	१	
७६	चारुकीर्ति	१२६२।ज्ये शु११	१३ ,,	३२ ,,	२	३	२	७	४७	३	९	
७७	अभयकीर्ति	१२६४।आश्वि कृ३	११व२मा	३०व४मा	०	४	११	७	४१	११	१८	यहांतक ग्वालियरमें पट्ट रहा*
७८	वसन्तकीर्ति	१२६४।मा शु५	१२ वर्ष	२० ,,	१	४	२२	८	३३	५	०	यहांसे अजमेरमें पट्टस्थ ।
७९	प्रख्यातकीर्ति	१२६६।आषा शु५	११ ,,	१५ ,,	२	३	१९	४	२८	६	२३	
८०	शुभशान्तिकीर्ति	१२६८।का कृ८	१८ ,,	२३ ,,	२	९	७	८	४३	९	१५	(पाठान्तर विशालकीर्ति)
८१	धर्मचन्द्र १म	१२७१।आ पूर्ण	१६ ,,	२४ ,,	२५	०	५	८	६५	०	१३	
८२	रत्नकीर्ति २य	१२९६ मा कृ१३	१९ ,,	२५ ,,	१४	४	१०	६	५८	४	१६	
८३	प्रभाचन्द्र २य	१३१०।पौ शु१४	१२ ,,	१२ ,,	७४	११	१५	८	९८	११	२३	यहां तक अजमेरमें ।
८४	पद्मनन्दी	१३८५।पौ शु७	१०व७मा	२३व५मा	६५	०	१८	१०	९९	०	२८	दिल्ली†
८५	शुभचन्द्र	१४५०।मा शु५	१६ ,,	२४ ,,	५६	३	४	११	९६	३	१५	दिल्ली
८६	प्रभाचन्द्र ३य	१५०७।ज्ये कृ५	१२ ,,	१५ ,,	६४	८	१७	१०	९१	८	२७	दिल्ली (पाठान्तर प्रताप)
८७	जिनचन्द्र २य	१५७१।फा कृ२	१५ ,,	३५ ,,	९	४	२५	८	५९	५	३	चित्तौर‡
८८	धर्मचन्द्र २य	१५८१।आ कृ५	९ ,,	३१ ,,	२१	८	१३	५	६१	८	१८	चित्तौर ।

इसके बाद गुजरातमें जो भट्टारक हुए हैं, उनकी नामावली दी जाती है—

पट्ट	नाम	पट्टबन्ध संवत्	पट्ट	नाम	पट्टबन्ध संवत्
८९	ललितकीर्ति	१६०३ चै शु८	९६	महेन्द्रकीर्ति १म	१७९२।पौ शु१०
९०	चन्द्रकीर्ति	१६२२।वै कृ	९७	क्षेमेन्द्रकीर्ति	१८१५।आश्वि शु११
९१	देवेन्द्रकीर्ति	१६६२ फा कृ	९८	सुरेन्द्रकीर्ति	१८२२।वै कृ
९२	नरेन्द्रकीर्ति	१६९१।का कृ८	९९	सुखेन्द्रकीर्ति	१८५२ ।
९३	सुरेन्द्रकीर्ति	१७२२ आ कृ५	१००	नयनकीर्ति	१८७९।आश्वि कृ१०
९४	जगत्कीर्ति	१७३३।आ कृ५	१०१	देवेन्द्रकीर्ति	१८८३। ,, शु१०
९५	देवेन्द्रकीर्ति	१७७०।मा कृ११	१०२	महेन्द्रकीर्ति	१९३८।फा शु११

* किसी किसीका कहना है कि ६५वें हेमकीर्तिसे ७८वें वसन्तकीर्ति तक १४ पट्ट चित्तौड़में थे। † कोई कोई इस पट्टको बागरव या सागवाड़ामें हुआ बतलाते हैं। ‡ संवत् १५७२में चित्तौरमें गच्छभेद हुआ। एक गच्छ चित्तौरमें ही रहा और दूसरेने नागौरमें जाकर पट्ट स्थापन किया।

व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग, ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, उपासकाध्ययनाङ्ग, अन्तःकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरणाङ्ग, विपाकसूत्राङ्ग और दृष्टिप्रवादाङ्ग। इनमें प्रथम आचाराङ्गमें साधु वा मुनियोंके सम्पूर्ण आचरणका निरूपण है; इसके अठारह पद* हैं। २य सूत्रकृताङ्गमें ज्ञानको विनय आदि और धर्मक्रियामें स्वपरमतकी क्रियाका विशेष निरूपण है; इसके छत्तीस हजार पद हैं। ३य स्थानाङ्गमें जीव (आत्मा), पुद्गल (अजीव) आदि द्रव्योंका एक आदि स्थानोंका निरूपण है। जैसे—जीव द्रव्य चैतन्यसामान्यकी अपेक्षा एक प्रकार है, सिद्ध और संसारीके भेदसे दो प्रकार है तथा संसारी जीव स्थावर विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रियके भेदसे तीन प्रकार है इत्यादि। इस प्रकार इसमें स्थान आदिका वर्णन है और इसके बियालीस हजार पद हैं। ४थ समवायाङ्गमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षा समानताका वर्णन है; इसके एक लाख चौंसठ हजार पद हैं। ५म व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्गमें जीवके अस्तिनास्ति इत्यादि साठ हजार प्रश्न जो गणधर देवने तीर्थङ्करके निकट किये थे, उनका वर्णन है; इसके दो लाख अट्ठाईस हजार पद हैं। ६ष्ठ ज्ञातृधर्मकथाङ्गमें तीर्थङ्करोंके धर्मोंकी कथा, जीवादि पदार्थोंका स्वभाव और गणधर द्वारा किये गये प्रश्नोंके उत्तरोंका वर्णन है। इसको धर्मकथाङ्ग भी कहते हैं, इसके पाँच लाख छप्पन हजार पद हैं। ७म उपासकाध्ययनाङ्गमें ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकों (जैन गृहस्थों) के व्रत, शील, आचार, क्रिया, मन्त्र, उपदेश आदिका वर्णन है; इसके ग्यारह लाख सत्तर हजार पद हैं। ८म अन्तःकृद्दशाङ्गमें एक एक तीर्थङ्करके बाद दश दश महामुनियोंके उपसर्ग जीत कर संसार परिभ्रमणके अन्त करनेका वर्णन है। इसके तेईस लाख अट्ठाईस हजार पद हैं। ९म अनुत्तरोपपादिकदशाङ्गमें एक एक तीर्थङ्करके बाद दश दश महामुनि जो घोर उपसर्ग सह कर विजय आदि पाँच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हुए हैं, उनका वर्णन है। इसके बानवे लाख चवालीस हजार पद हैं। १०म प्रश्नव्याकरण अङ्गमें भूत और भविष्यकाल सम्बन्धी लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, आदि शुभाशुभके प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देनेके उपायों तथा आक्षेपिणी (चार अनुयोग, लोकका आकार, यति और श्रावकके धर्मका जिसमें वर्णन हो), विक्षेपिणी (प्रमाणका स्वरूप, परमतनिराकरण जिसमें हो), संवेदिनी (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप धर्म तीर्थङ्करोंके प्रभाव, तेज, वीर्य, ज्ञान, सुखादिका जिसमें कथन हो) निर्वेदिनी (जिसमें वैराग्य बढ़ानेवाली कथाओंका वर्णन हो) इन चार प्रकारकी कथाओंका वर्णन है। इसके तिरानवे लाख सोलह हजार पद हैं। ११श अङ्ग विपाकसूत्रमें कर्मों (पाप-पुण्य आदि) के बन्ध, उदय, सत्ता और तीव्र, मन्द, अनुभागका द्रव्य क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा वर्णन है। इसके एक करोड़ चौरासी लाख पद हैं।

१२ दृष्टिवादाङ्गके एक सौ आठ करोड़ अरसठ लाख छप्पन हजार पाँच पद हैं। इसके पांच भेद हैं, यथा—(१) पञ्चप्रकार परिकर्म, (२) सूत्र नाम, (३) प्रथमानुयोग, (४) चतुर्दशपूर्वगत और (५) पञ्चप्रकार चूलिका। इनमें परिकर्मका पहला भेद चन्द्रप्रज्ञप्ति है, जिसमें चन्द्रका गमन आदि तथा उसके परिवार, आयु और कालकी हानिवृद्धि एवं देवी, विभव आदि ग्रहणादिका वर्णन है। इसके छत्तीस लाख पचास हजार पद हैं। दूसरा भेद सूर्यप्रज्ञप्ति है, जिसमें सूर्यकी ऋद्धि, विभव, देवी, परिवार आदिका वर्णन है। इसके पाँच लाख तीन हजार पद हैं। ३रा भेद जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति है, जिसमें जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरु, गिरि, नदी, ह्रद, क्षेत्र, कुलाचल आदिका वर्णन है। इसके तीन लाख पचीस हजार पद हैं। ४था भेद द्वीपसागर-

* सोलहसौ चौंतीस कोटि तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (१६३४८३०७८८८) अक्षरका १ एक पद होता है। उस पदके तीन भेद हैं, १ अर्थपद, २ प्रमाणपद, ३ मध्यमपद। इनमेंसे "सफेद गौको रस्सीसे बांधो" "जलको लाओ" इत्यादि अनियत अक्षरोंके समूहरूप किसी अर्थ विशेषके बोधक वाक्यको अर्थपद कहते हैं। आठ आदिक अक्षरोंके समूहको प्रमाणपद कहते हैं, जैसे श्लोकके एक पादमें आठ अक्षर होते हैं। इसी प्रकार दूसरे छन्दोंके पदोंमें भी अक्षरोंका न्यूनाधिक प्रमाण होता है, परन्तु कहे हुए पदके अक्षरोंका प्रमाण सर्वदाके लिये निश्चित है, इसीको मध्यम कहते हैं। (गोम्मटसार जी० का०)

प्रज्ञप्ति है जिसमें द्वीप और समुद्रोंका स्वरूप, वहांके भवनवासी, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवोंके आवासों तथा जिनमन्दिरोंका वर्णन है। इसके बावन लाख छत्तीस हजार पद हैं। ५वां भेद है व्याख्याप्रज्ञप्ति; इसमें जीव, अजीव पदार्थोंके प्रमाणोंका वर्णन है। इसके चौरासी लाख छत्तीस हजार पद हैं। १२वें अङ्गका दूसरा भेद सूत्र है, जिसमें मिथ्यादर्शन (विपरीत ज्ञान वा सर्वज्ञ-प्रणीत तत्त्वोंमें सन्देह) सम्बन्धी ३६३ कुवादोंका* वर्णन है; अर्थात् जीव स्वप्रकाशक ही है, परप्रकाशक ही है, अस्तिरूप ही है, नास्तिकरूप ही है इत्यादि एकान्तके पक्षपातको दूर कर यथार्थ स्वरूपका वर्णन है। सूत्रके अनेक भेद हैं। उनमें प्रथम भेदमें बन्धके अभावका वर्णन है, दूसरेमें श्रुति (केवलज्ञानीकी दिव्य-ध्वनि), स्मृति (गणधरोंकी वाणी) और पुराण (आचार्यों-के वचन)-के अर्थका प्रतिपादन है, तीसरेमें नियतिकी चर्चा है, तथा चौथेमें बहुतसे भेदोंके लिए स्वसमय और परसमयोंका विवरण है। (अर्थप्रकाशिका) इसके अठासी लाख पद हैं। १२वें अङ्गका तीसरा भेद प्रथमानुयोग है; इसमें चतुर्विंशति तीर्थङ्कर, द्वादश चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र इन त्रेसठ शलाकापुरुषोंका वर्णन है। इसके ५००० पद हैं।

इस दृष्टिवादाङ्गका चौथा भेद है पूर्वगत। इसके भी उत्पाद आदि चौदह भेद हैं जो 'चौदहपूर्व'के नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रथम उत्पादपूर्वमें दश वस्तु † और एक करोड़ पद हैं। इसमें जीव, पुद्गल, काल आदि द्रव्योंके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभावोंका विस्तारसे वर्णन है। २रे अग्रायणीय पूर्वमें १४ वस्तु ‡ और ९६ लाख पद हैं। इसमें सप्ततत्त्व, नव पदार्थ, षट् द्रव्य और सुनय, दुर्नयोंका वर्णन है। ३रे वीर्यानुवादपूर्वमें ८ वस्तु और ७० लाख पद हैं। इसमें आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्र-वीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्य और इन्द्रिय आदि ऋद्धि तथा नरेन्द्र, चक्रधर, बलदेव आदि अतिशय परा-क्रमी बड़े बड़े सत्पुरुषोंके वीर्य, लाभ, सम्पत्ति आदि-का वर्णन है। ४र्थ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वमें १८ वस्तु और साठ लाख पद हैं। इसमें स्वद्रव्य आदि चतुष्टयकी अपेक्षा जीवादि पदार्थ अस्तिस्वरूप हैं और परद्रव्य आदिकी अपेक्षा नास्तिस्वरूप हैं, इत्यादि वर्णन है। ५वें ज्ञानप्रवादपूर्वमें १२ वस्तु और एक कम एक करोड़ पद हैं इसमें मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इन पांच पांच ज्ञानोंका तथा कुमति, कुश्रुत और विभङ्ग (कुअवधि)के स्वरूप, विषय, संख्या फल आदिका वर्णन है। ६ठे सत्यप्रवादपूर्वकी पदसंख्या १,००,००,००६ और वस्तुसंख्या १२ है। इसमें बारह प्रकार वचनों* तथा दश प्रकार सत्योंका † अथवा वचनगुप्ति और उसके संस्कारोंमें कारण द्वादश प्रकार भाषा तथा वक्ताके भेद-असत्यके भेद और दश प्रकार सत्यके प्ररूपणका वर्णन है। ७वें आत्मप्रवादपूर्वकी वस्तुसंख्या १६ और पद-संख्या २६,००,००,००० है। इसमें आत्माके धर्म, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व आदिका तथा उनके भेद प्रभेदोंका युक्तिपूर्वक सविस्तर वर्णन है।

८वें कर्मप्रवादपूर्वकी पदसंख्या १,८०,००,००० और वस्तुसंख्या २० है। इसमें ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंकी मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति और उत्तरोत्तरप्रकृतिके भेद सहित बन्ध, सत्ता, उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अप-कर्षण, संक्रमण, उपशम, निधत्ति, निकाचित आदि

* ये मिथ्यादृष्टियोंके विशेष भेद हैं, किन्तु मूल भेद ४ ही हैं, यथा—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनय-वादी। इनमें क्रियावादी १८० प्रकार, अक्रियावादी ८४ प्रकार, अज्ञानवादी ६७ प्रकार और विनयवादी ३२ प्रकार हैं।

(जैन हरिवंशपु० १० सर्ग, ४७—४८)

† वस्तुविषयको कहते हैं।

‡ चौदह वस्तु; यथा—पूर्वान्त, अपरांत, ध्रुव, अध्रुव, अच्यवनलब्धि, अध्रुवसंप्रणधि, कल्प, अर्थ, भैमावय, सर्वार्थ-कल्पक, निर्वाण, अतीतानगत, सिद्ध और उपाध्याय।

* बारह प्रकारके वचन, यथा—अभ्याख्यानवचन, २ कलहवचन, ३ पैशून्यवचन, ४ अबद्धप्रलापवचन, ५ रत्यु-त्पादकवचन, ६ अरत्युत्पादकवचन, ७ वंचनासूचकवचन, ८ निकृतिवचन ९ अप्रणतिवचन, १० मोषवचन, ११ सम्यग्दर्शन और १२ मिथ्यादर्शन।

† सत्य दश प्रकार है, यथा—१ नामसत्य, २ रूपसत्य, ३ स्थापनसत्य, ४ प्रतीतिसत्य, ५ संवृतिसत्य, ६ संयोजनासत्य, ७ जनपदसत्य, ८ देशसत्य, ९ भावसत्य और १० समयसत्य।

अवस्थाओंका तथा चित्त आदि अवस्था, ईर्यापथ आदि क्रिया, तपस्या, अधःकर्म आदिका वर्णन है। ९वें प्रत्याख्यानपूर्वमें ३० वस्तु और ८४,००,००० पद हैं। इसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको आश्रय कर पुरुषकी संहनन, बल आदिके अनुसार प्रमाणोक्त काल पर्यन्त वा अप्रमाणोक्त काल पर्यन्त त्याग करना तथा सावद्य वस्तुका त्याग, उपवास-विधि, उसकी भावना, पांच समिति और तीन गुप्तिका वर्णन है। यह पूर्व मुनि-धर्मका बढ़ानेवाला है। १०वें विद्यानुवादपूर्वमें १५ वस्तु और १,१०,००००० पद हैं। इसमें अङ्गुष्ठ, प्रसेन आदि ७०० लघुविद्या और रोहिणी, ५०० महाविद्याओंके स्वरूप-सामर्थ्य साधनभूत मन्त्र यन्त्र आदिका, सिद्ध हुई विद्याओंके फलका तथा अष्टाङ्गनिमित्तज्ञानका वर्णन है। ११वें कल्याणवादपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या २६,०० ००,००० है। इसमें तीर्थङ्कर, चक्रधर, बलदेव, वासुदेव आदिके गर्भावतरणादि कल्याणकोंके महोत्सव और उनके कारण तीर्थङ्करत्व आदि पुण्य-विशेषके हेतु षोडशकारणभावना आदि तपश्चरण प्रभृतिका तथा सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्रादिके गमन, ग्रहण, शकुन आदिके फलका वर्णन है। १२वें प्राणवादपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या १३,००,००,००० है। इसमें काय-चिकित्सा आदि आठ प्रकारके आयुर्वेदका, भूत आदिकी व्याधि दूर करनेके कारण मन्त्र तन्त्रादि वा विष दूर करनेवाली गारुड़ आदि विद्याओंका तथा दश प्राणोंके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियोंके अनुसारसे वर्णन है। १३वें क्रियाविशालपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या ८,००,००,००० है। इसमें सङ्गीतशास्त्र, छन्द, अलङ्कार, पुरुषोंकी ७२ कला, स्त्रियोंके ६४ गुण, शिल्पादि विज्ञान, गर्भाधान आदि ८४ क्रिया, सम्यग्दर्शनादि १०८ क्रिया वा देववन्दना आदि २५ क्रिया और नित्यनैमित्तिक क्रिया आदिका वर्णन है। १४वें त्रिलोकविन्दुसारपूर्वकी वस्तुसंख्या १० और पदसंख्या १२,५०,००,००० है। इसमें तीन लोकका स्वरूप, २६ परिकर्म, आठ व्यवहार, चार बीज आदि गणित तथा मोक्षका स्वरूप, उसके गमनका कारण, क्रिया और मोक्षके सुखका स्वरूप वर्णित है। (गोम्मटसार सटीक जीवकांड)

बारहवें अङ्गका ५वां भेद चूलिका है जिसके ५ भेद हैं, यथा—१ जलगता, २ स्थलगता, ३ मायागता, ४ रूपगता और ५ आकाशगता। १म जलगता चूलिकामें जलका स्तम्भन, जलके ऊपरसे गमन, अग्निका स्तम्भन, अग्निमें प्रवेश करना, अग्निका भक्षण करना इत्यादिके कारणरूप मन्त्र, तन्त्र, तपश्चर्या आदिका निरूपण है। इसके २,०८,८८,२०० पद हैं। २य स्थलगता चूलिकामें मेरु, कुलाचल, भूमि आदिमें प्रवेश, शीघ्र गमन इत्यादि क्रियाके कारणभूत मन्त्रतन्त्रादिका वर्णन है; इसके भी २,०८,८८,२०० पद हैं। ३य माया-गताचूलिकामें इन्द्रजाल सम्बन्धी मन्त्र, तन्त्र, आचरणादिका निरूपण है। इसकी भी पदसंख्या २०८८८२०० है। ४र्थ रूपगताचूलिकामें सिंह, हस्ति, घोड़ा, बैल, हरिण आदि रूपके पलटनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र, तपश्चरणादिका प्ररूपण तथा चित्राम, काष्ठलेपन और धातु, रस, रसायनका वर्णन है। पदसंख्या पूर्ववत् है। ५म आकाशगता चूलिकामें आकाश-गमनके कारणभूत मन्त्र तन्त्रादिका वर्णन है; इसकी पदसंख्या २०८८८२०० है। यह तो हुआ अङ्गप्रविष्ट श्रुतका विषय; अब अङ्गबाह्य श्रुतका विवरण लिखते हैं।

अङ्गबाह्यश्रुतके चौदह भेद हैं,—१ सामायिक, २ चतुर्विंशस्तव, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ वैनयिक, ६ कृतिकर्म, ७ दशवैकालिक, ८ उत्तराध्ययन ९, कल्पव्यवहार, १० कल्पाकल्प, ११ महाकल्प, १२ पुण्डरीक, १३ महापुण्डरीक और १४ निषिद्धिका। इनको चतुर्दश प्रकीर्णक भी कहते हैं। इनके पदोंका प्रमाण मध्यमपदसे न ले कर प्रमाणपदसे लेना चाहिये। समस्त अङ्गबाह्य श्रुतको अक्षरसंख्या ८,०१,०८,१७५, पदसंख्या १,००,१३-५२१ और श्लोकसंख्या २५,०३,३८० और १५ अक्षर है। सामायिक नामक १म प्रकीर्णकमें शत्रु, मित्र, सुख, दुःख आदिमें राग-द्वेषको निवृत्तिपूर्वक समभावका वर्णन है। २य चतुर्विंशस्तव वा जिनस्तवमें तीर्थङ्करोंके चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्यदेह, समवसरण, धर्मोपदेश आदि माहात्म्य प्रकट करनेवाले स्तवनका वर्णन है। ३य वन्दना प्रकीर्णकमें पञ्चपरमेष्ठी, भगवानकी प्रतिमा, मन्दिर, तीर्थ और शास्त्रोंका

प्रतिपादन तथा वन्दना और वन्दनाकी विधिका वर्णन है। ४र्थ प्रतिक्रमण प्रकीर्णकमें द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिमें किये गए पापोंका शोधन वा प्रायश्चित्त आदिका वर्णन है। ५म वैनयिक प्रकीर्णकमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार, इन पांच प्रकार विनयोंका वर्णन है। ६ष्ठ कृतकर्म प्रकीर्णकमें जिनपूजनादिकी क्रियाओंके करनेके विधानोंका अथवा अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, जिन-वचन (वा शास्त्र) और जिनमन्दिर, इन नौ नौ देवताओंकी वन्दनाके लिए तीन प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार शिरोनति (वा मस्तक नवाना), बारह आवर्त्त इत्यादि तथा नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका प्ररूपण है। ७म दशवैकालिक प्रकीर्णकमें मुनियोंके आचारके गोचर शुद्धिका वर्णन है। ८म उत्तराध्ययन प्रकीर्णकमें चार प्रकार उपसर्ग और बाईस प्रकार परीषह सहनेका विधान तथा उनके फलका वर्णन है। ९म कल्पव्यवहार प्रकीर्णकमें मुनि वा साधुओंके योग्य आचरणका विधान और अयोग्य आचरण होने पर उनके प्रायश्चित्तका वर्णन है। १०म कल्प्याकल्प प्रकीर्णकमें विषय, कषाय आदि हेय और वैराग्य आदि उपादेयोंका वर्णन है। ११श महाकल्प प्रकीर्णकमें उत्कृष्ट संहनन आदि सहित जिन-कल्पी मुनियोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके योग्य त्रिकाल-योगादिके आचरणका तथा स्थविरकल्पी मुनियों-की दीक्षा, शिक्षा, गणपोषण, आत्मसंस्कारण, सल्लेखना, उत्तमार्थस्थानगत उत्कृष्ट आराधनाओंका वर्णन है। १२श पुण्डरीक प्रकीर्णकमें चार प्रकारके देवोंकी* उत्पत्तिके कारणभूत दान, पूजा, तपश्चरण, अकाम-निर्जरा†, सम्यक्त्व, संयम आदि और देवोंके उत्पादस्थानके विभवका वर्णन है। १३श महापुण्डरीक प्रकीर्णकमें इन्द्र, प्रतीन्द्र आदिकी उत्पत्तिके कारणभूत तपश्चरणादिका वर्णन है। १४श निषिद्धिका प्रकीर्णकमें प्रमादजनित दोषोंके दूर करनेके लिए दश प्रकार प्रायश्चित्त* आदिका वर्णन है। (गोम्मटसार जीवकांड)

ऊपर श्रुतका संक्षिप्त विवरण लिखा गया है। यह द्वादश अङ्ग और चतुर्दश प्रकीर्णककी अक्षरसंख्या दिगम्बर जैन शास्त्रोंके अनुसार लिखी गई है और वे इस समय लुप्त हो गये हैं जो कुछ भी जैन वाङ्मय इस समय उपलब्ध है वह उक्त अंगोंका संक्षिप्त सार मात्र है। श्वेताम्बर जैन इन ही नामोंके अंग मानते हैं और उनमेंसे कुछ मुद्रित भी हुये हैं परन्तु उनकी पद-संख्या बहुत ही कम है।

श्रुतका ज्ञान परोक्ष प्रमाण है। वचनरूप शब्दात्मक श्रुतको द्रव्यश्रुत कहते हैं जो भाव श्रुतका कारण है। सम्पूर्ण श्रुतके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्यायके विशेष सहित पदार्थोंका—केवलज्ञानकी भांति—सत्यार्थ ज्ञान होता है। जैसा केवलज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसी प्रकार श्रुतज्ञान द्वारा परोक्ष ज्ञान होता है।

आत्मामें अधिष्ठित श्रुत-ज्ञानके अतिरिक्त शास्त्र आदि समस्त श्रुत द्रव्यश्रुत कहलाता है। द्रव्यश्रुत अथवा आगमके चार भेद भी हैं, यथा---१म प्रथमानुयोग, २य करणानुयोग, ३य चरणानुयोग और ४र्थ द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंको जैनियोंके चार वेद समझना चाहिये। १म प्रथमानुयोगमें त्रिषष्ठिशलाकापुरुषोंका चरित्र रहता है। जितने भी जैन-पुराण और पौराणिक-कथाग्रन्थ हैं, वे सब प्रथमानुयोगमें गर्भित हैं। मुख्यतः पुराण चौबीस + और सामान्यतः बहुत हो सकते हैं। जैन-पुराणों और कथाग्रंथोंमें कुछ ये हैं—आदिपुराण, उत्तरपुराण, पद्म-पुराण, हरिवंशपुराण, पाण्डवपुराण, श्रीपालचरित, प्रद्युम्नचरित, यशस्तिलकचम्पू, पार्श्वाभ्युदय, इत्यादि। २य करणानुयोगमें ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक सम्बन्धी अर्थात् ऊर्ध्वलोकके विमानादि, मध्यलोकके क्षेत्र, पर्वत, समुद्र आदिकी संख्या, परिमाण आदि तथा अधो-

* चार प्रकारके देव ये हैं—१ भवनवासी, २ कल्पवासी, ३ ४ ज्योतिष्क और व्यन्तर।

† कायक्लेश तप अर्थात् तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान बिना हुए ही जो कठिन तपस्या की जाती है, उसे अकामनिर्जरा कहते हैं। इससे सांसारिक सुख ही प्राप्त हो सकता है, मोक्ष सुख नहीं।

* प्रायश्चित्तके ९ भेद इस प्रकार हैं—

१ आलोचन, २ प्रतिक्रमण, ३ आलोचनप्रतिक्रमण, ४ विवेक, ५ व्युत्सर्ग, ६ तप, ७ छेद, ८ परिहार और ९ उपस्थापन।

+ चौबीस तीर्थंकरोंके नामके; जैसे—आदिपुराण, विमल-पुराण, नेमिपुराण, पार्श्वपुराण, महावीरपुराण आदि।

लोकके बिले आदिका विस्तृत विवरण रहता है। इस विषयको वर्णन करनेवाले त्रिलोकसार सूर्यप्रज्ञप्ति चंद्रप्रज्ञप्ति आदि जितने भी ग्रंथ हैं, वे सब करणानुयोगमें गर्भित हैं। ३य चरणानुयोगमें मुनि और गृहस्थोंके आचारका वर्णन रहता है। जितने भी आचार ग्रंथ हैं, वे सब चरणानुयोगमें गर्भित हैं, जैसे—रत्नकरण्डश्रावकाचार, मूलाचार, अमितगतिश्रावकाचार, क्रियाकोष, आचारसार, वसुनन्दिश्रावकाचार, सागारधर्मामृत, अनगारधर्मामृत इत्यादि। ४र्थ द्रव्यानुयोगमें जीव (आत्मा), अजीव (जड़), आस्रव (कर्मोंका आगमन), बन्ध (कर्मोंका आत्माके साथ मिश्रण), संवर (कर्मोंका निरोध होना), निर्जरा (कर्मोंका क्षय) और मोक्ष (मुक्ति वा कर्मोंका सर्वथा नाश) इन सात तत्त्वोंका तथा अन्य आकाश आदि द्रव्योंका वर्णन रहता है। इस विषयको वर्णन करनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र द्रव्यानुयोगमें गर्भित हैं। द्रव्यानुयोगके शास्त्र सबसे अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। कुछ प्रधान शास्त्रोंके नाम ये हैं—गन्धहस्तिमहाभाष्य, जयधवल, महाधवल, गोम्मटसार, तत्त्वार्थश्लोकवार्त्तिक*, तत्त्वार्थराजवार्त्तिक+, द्रव्यसंग्रह, सर्वार्थसिद्धि‡, तत्त्वार्थसूत्र§, प्रवचनसार, समयसार पञ्चास्तिकाय इत्यादि इत्यादि।

उपरोक्त आगमोंके सिवा जैनोंमें और भी हजारों मूल प्राकृत और संस्कृतग्रंथ तथा उनके भाष्य और टीकायें आदि हैं।

तीर्थङ्करोंको केवलज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त होने पर ही वे उपदेश दिया करते हैं और वह उपदेश मेघकी गर्जनवत् अनक्षरात्मक अर्थात् कण्ठ, तालु आदि अंगोंको सहायताके बिना ही प्रकट होता है। उस ध्वनिको अर्धमागध नामक देवगण अर्धमागधी भाषा रूपमें परिणत कर देते हैं। जिससे उसका अर्थ देव, मनुष्य और तिर्यञ्च (पशु आदि) समस्त प्राणी अपनी अपनी भाषामें समझ लेते हैं। किन्तु समझ कर वे उसको धारण नहीं कर सकते, क्योंकि वह ध्वनि अनर्गल होती रहती है*। अतएव मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानके धारक गणधर उसको विशेष व्याख्या करते हैं। समवसरणमें आये हुए यदि किसी भव्यको किसी विषयमें प्रश्न हो वा और कोई नई बात पूछनी हो, तो वे गणधरसे प्रश्न करते हैं। गणधर भी उनके प्रश्नोंका विस्तार पूर्वक उत्तर दे कर उनके चित्तको निर्मल करते हैं।

तीर्थङ्कर भगवान् अपनी इच्छासे दिव्यध्वनि नहीं करते, बल्कि वह ध्वनि उन जीवोंके पुण्यप्रतापसे स्वयं उद्भूत होती है। गणधर दिव्यध्वनिकी व्याख्या करते हैं और उसीके अनुसार आचार्यगण शास्त्रोंकी रचना करते हैं।

जैनसिद्धान्त इसके बहुत समय पश्चात् लिपिबद्ध होने पर भी, इसमें सन्देह नहीं कि उनके मूल अङ्ग बहुत ही प्राचीन हैं। पाश्चात्य पुराविदोंका कहना है कि, ईसाकी १ली शताब्दीसे ले कर ३री शताब्दी तक ग्रीकोंके फलित और गणित ज्योतिष भारतमें प्रचारित हुआ था, किन्तु जैनोंके मूल अङ्गमें ग्रीक ज्योतिषका कुछ भी आभास नहीं पाया जाता (१)। ऐसी दशामें उक्त अङ्गोंको प्राचीनतामें सन्देह नहीं रह जाता। बौद्धोंके प्राचीनतम ग्रंथरचनासे भी पहले उक्त अङ्गोंकी सृष्टि हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। बौद्ध देखो।

तीर्थंकर वा परमात्मा—ब्राह्मणोंके भागवतमें जैसे २४ अवतारोंका उल्लेख है, उसी तरह जैन ग्रंथोंमें २४ तीर्थङ्करोंका वर्णन मिलता है। किन्तु जिस प्रकार ब्राह्मणोंके ईश्वर बार बार अवतार लेते हैं, वैसे तीर्थङ्कर बार बार जन्मग्रहण नहीं करते। तीर्थङ्कर अन्तिम बार जन्म ले कर मुक्त (अर्थात् जन्म-मरणसे मुक्त) हो जाते हैं, फिर वे जन्मग्रहण नहीं करते। जो आत्मा वा जीव दर्शन विशुद्धि आदि षोडश भावनाओंकी आराधना कर उसमें

* इसमें कुछ करणानुयोगका भी वर्णन है।

\+ इसके ३य और ४र्थ अध्यायमें करणानुयोगका भी वर्णन है।

‡ इसमें थोडासा करणानुयोगका भी वर्णन है।

§ करणानुयोगका वर्णन इसमें भी किंचित है। इसके १० अध्याय हैं, यह सूत्रग्रन्थ है। इसकी बहुतसी छोटी और बड़ी टीकाएं और भाष्य हैं।

* अनर्गलका अर्थ यह नहीं कि, रात दिन वह ध्वनि होती रहती है। दिव्यध्वनि तीन समय होती है और उन तीन समयोंमें अनर्गल होती रहती है।

(१) Weber's Indische Studien, Vol. XVI. p. 236.

पूर्ण उन्नति कर लेते हैं, वे ही जन्मान्तरमें तीर्थङ्कर होते हैं। इन षोड़श भावनाओंका नियमानुसार पालन करना अत्यन्त कठिन कार्य है; संसारमें विरले ही मनुष्य ऐसे हैं जो उनका पालन कर जन्मान्तरमें तीर्थङ्कर होते हैं। ये तीर्थङ्कर केवल चतुर्थकालमें ही होते हैं। ये ही २४ तीर्थङ्कर जैनोंके इष्टदेव हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीसमन्तभद्रस्वामीका कथन है —

"आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ ५॥

(रत्नकरण्डश्रावकाचार)

नियमसे राग-द्वेष आदि दोषरहित वीतराग, सर्वज्ञ (भूतभविष्यवर्तमानका ज्ञाता) और आगमका ईश (सर्व प्राणियोंको हितका उपदेश देनेवाले) ही आप्त अर्थात् प्रकृत देव है, और किसी प्रकार आप्तपन (देवत्व) नहीं हो सकता।

ऋषभदेव* आदि चौबीस तीर्थङ्करोंमें उक्त गुण होते हैं। उनके सिवा अन्य सम्पूर्ण केवलज्ञानी भी परमात्मा हैं। अन्यत्र मुद्रित "जिनमाला" और "तीर्थंकर" शब्द देखो।

वर्तमान जैनगण उक्त २४ तीर्थङ्करोंकी पूजादि करते हैं। इनमें अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर तथा पार्श्वनाथका उत्सव बड़े धूमधामसे होता है।

जैनमतानुसार परमात्मा अनन्त हैं और वे लोकके अन्तमें (सबसे ऊपर) निराकार शुद्ध चिद्रूप स्वरूप विराजित हैं। परमात्माओंके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य और अनन्तसुख होता है। परमात्माके विषयमें विशेष जानना हो तो समयसार, परमात्मप्रकाशादि ग्रंथ देखना चाहिये।

जैन-दर्शन।

जैनधर्ममें आत्मा – सामान्यत: जिसमें चेतनागुण पाया जाय, उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा अनन्तानन्त हैं और वे समस्त लोकाकाश (अथवा त्रिभुवन)-में भरे हुए हैं। आत्मा एक स्वतन्त्र पदार्थ है, वह नाना पर्याय वा शरीर धारण करती हुई भी अपने स्वरूप जीवन गुणको कभी नहीं छोड़ती। 'अमुक मरा' 'अमुक उत्पन्न हुआ' इत्यादि कथन पर्यायकी अपेक्षासे है, आत्मा न तो कभी मरती है और न कभी उत्पन्न होती है। किन्तु स्वकर्मानुसार नरकादि पर्यायोंको छोड़ कर मनुष्यादि पर्यायोंको, मनुष्य पर्यायको छोड़ कर नरकपर्यायको अथवा उस पर्यायको छोड़ कर देवादि पर्यायोंको धारण करती है। पहले कह चुके हैं कि, आत्माकी पहचान चेतनासे होती है; क्योंकि चेतना आत्माका गुण है। ज्ञानदर्शनात्मक गुणका नाम चेतना है। जिस प्रकार एक मकानके सर्वांशमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श विद्यमान है—ईंट, चूना आदि वा मकान उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चारित्र, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशत्व आदि गुणोंका पिण्ड आत्मा है—ज्ञान, दर्शन, सुखादिके सिवा आत्माका निजरूप कुछ भी नहीं है। आत्माकी भिन्न भिन्न नाना शक्तियोंका विकाश होता है। कभी कोई शक्ति प्रकट होती है, कभी कोई शक्ति अव्यक्त रहती है। जो शक्ति अव्यक्त है, उसे नष्ट हुई नहीं कह सकते किन्तु कर्मावरणसे आच्छादित मात्र कह सकते हैं; क्योंकि गुणके नाशसे गुणीका भी नाश माना गया है। जैसे मेघके आनेसे सूर्य आच्छादित मात्र हो जाता है, वह और उसका प्रकाश विनष्ट नहीं होता, उसी प्रकार आत्माके ज्ञान, सुख आदि गुण मुक्तावस्था (मोक्षावस्था)में भी नष्ट नहीं होते और न संसारावस्थामें ही विनष्ट होते हैं; किन्तु कर्मानुसार हीनाधिक रूपमें उनका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है।

आत्माके जो अशुद्ध होनेके कारण हैं, वे अनादिकालसे ही उसके साथ हैं। आत्माकी अशुद्धावस्थाका नाम ही संसार है। संसारका नाम संसरण वा परिभ्रमणका है; जिस पर्यायको पा कर आत्मा अपने सुखदुःखरूप कर्मोंके फलको भोगता है, उसको संसार कहते हैं। जिन आत्माओंके कर्म वा पापपुण्य नष्ट हो गये हैं, उनका संसार भी नष्ट हो गया है—वे मुक्त हो गये हैं। जगत्में सभी आत्मा वा जीव गुणोंकी अपेक्षा समान हैं। जिस प्रकार ज्ञान, दर्शन, सुख और शुद्धस्वभावप्राप्त परमात्मामें शुद्धता पाई जाती है, उसी प्रकार संसारी जीवोंमें भी उक्त गुण पाये जाते हैं। वृक्ष, वनस्पति आदिके जीव भी परमात्माके समान गुणयुक्त हैं; सिर्फ अन्तर इतना ही है कि परमात्माके गुण कर्मों (वा पाप

* श्रीमद्भागवतके मतसे ये ही विष्णुके प्रथम अवतार हैं।

पुण्य)-के नष्ट हो जानेसे व्यक्त हो चुके हैं और संसारी आत्माके वे गुण आच्छादित हैं। मुक्त आत्मामें तो परम शुद्धता और पूर्ण ज्ञानको प्राप्त कर लिया है, इसलिए उसके विषयमें ज्यादा कुछ कहना नहीं है। अब संसारी आत्मा (जिसको कि जीवात्मा कहते हैं)-का वर्णन करते हैं।

संसारी आत्माओंमें जो भेद दृष्टिगोचर होता है वह भी उन्हीं पुण्यपाप वा कर्मोंका परिपाक मात्र है। कर्म जड़ हैं और आत्मा चैतन्य स्वरूप है। अब इस विषयका विवेचन करना है कि जड़ पदार्थका चैतन्य पर इतना प्रभाव कैसे पड़ा? जड़ पदार्थोंका प्रभाव आत्मा पर पड़ता है, यह बात युक्ति द्वारा सिद्ध है। सङ्गीत, गायन आदि जड़ पदार्थोंका हम लोगों पर खासा असर पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। रणभेरी बजते ही सेनाको युद्ध करनेका उत्साह हो जाता है, इसका कारण क्या है? एक औषध खानेसे भीषणसे भीषण कष्ट भी जाता रहता है और उसी प्रकार एक विषके टुकड़ेको खानेसे आत्माको शरीरसे निकल जाना पड़ता है। यदि आत्मा पर जड़ पदार्थोंका प्रभाव न पड़ता तो शरीरमें नाना प्रकारकी पीड़ाओंके होते रहने पर भी हम सुखसे रह सकते थे। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि आत्मा पर जड़ पदार्थोंका प्रभाव पड़ता है। इसी सम्बन्धमें कर्म-सिद्धान्त शीर्षक विवरण देखो।

यह प्रभाव स्थूल एवं बाह्य सम्बन्धी पदार्थोंका है। इसके सिवा अत्यन्त सूक्ष्म ऐसी भी पुद्गल वर्गणाएँ हैं, जिनसे आत्माके ज्ञानादि गुणोंका साक्षात् सम्बन्ध है। उन्हींका नाम कर्म है। जिस समय आत्मा वा जीव मनमें बुरा या भला कोई विचार करता है, वचनसे कटु या मीठा बोलता है अथवा शरीरसे किसीको मारता या बचाता है, उस समय वह परमाणुओंको आकर्षण करता है। ये परमाणु ही कर्म हैं। मन, वचन और काय इन तीनोंके द्वारा जो क्रिया होती है, उसे वियोग कहते हैं। इन तीनोंकी जैसी (शुभ वा अशुभ) क्रिया होती है, उसीके अनुसार कर्मोंका आकर्षण होता है। साथही पहलेके उपार्जित कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुये क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय वा आत्माके विकार भी काम करते हैं। आत्मा जिस समय जैसा भाव धारण करती है, उस समय उन आकर्षित कर्मों पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। यदि कोई किसी प्राणीको मारना चाहता है तो उस समय उसकी आत्मा क्रोधसे संतप्त हो जाती है और बुरा फल देनेवाले कर्मोंका आकर्षण होता है। जिस प्रकार अग्निसे तपे हुये लोहेको पानीमें डालनेसे यह चारों तरफके पानीको खींचता है, उसी प्रकार क्रोध लोभ आदि कषायोंसे संतप्त आत्मा संसारमें भरे हुये जल रूप पुद्गल परमाणुओंको आकर्षित कर लेती है। इस प्रकार पहलेके कर्मोंके उदयसे (अर्थात् फल देनेसे) नवीन भावोंकी उत्पत्ति होती है और उन विकार वा कषाय-भावोंसे कर्मोंका नवीन बन्धन होता है। आत्माके साथ इन कर्मोंका सम्बन्ध अनादिकाल-से चला आ रहा है और जब तक मोक्ष न प्राप्त होगी, तब तक बना ही रहेगा। हां, इतना जरूर होता है कि जिन कर्मोंका फल आत्मा भोग चुकी है, उन्हें वह छोड़ती जाती है और वे कर्म उस पर्यायको छोड़ कर पुद्गल-वर्गणा रूपसे अवस्थान करते हैं।

यहां ऐसी शंका हो सकती है कि कर्म जब जड़ है, तो उसमें क्रिया कैसे होती है? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि, जैसे मेघ अपने आप बरसते हैं, जलके स्रोतसे पत्थर अपने आप गोल हो जाते हैं, बिजली अपने आप चमकती और नाना प्रकारकी क्रियायें करती है, उसी प्रकार कर्मोंमें भी अपने आप क्रिया उत्पन्न होती है। जिन कर्मोंका आत्मासे सम्बन्ध होता है, वे पांच प्रकार हैं। यथा—(१) आहारवर्गणा, (२) तैजसवर्गणा, (३) मनोवर्गणा, (४) भाषावर्गणा (५) कार्माण वर्गणा। १म आहारवर्गणासे मनुष्य, पशु, देव और नारकियोंके शरीरोंकी रचना होती है। यह शरीरभी कर्मका कार्य है और वह कर्म बाहरी सम्बन्ध रखनेवाला है। आत्मा जिस समय एक शरीरको छोड़ कर अन्य शरीर धारण करती है, उसी समय वह माता-के गर्भमें या जिस प्रकार उसे जन्म लेना होता है, वहां-के आहारवर्गणारूप पुद्गल परमाणुओंको ग्रहण कर लेती है जिससे उसका शरीर बनता है। इसके बाद जल वायु और भोजनादि पदार्थोंके मिलनेसे शरीरको

वृद्धि होती है, इसलिये ये पदार्थ भी आहारवर्गणामें शामिल हैं। २य तैजसवर्गणा औदारिक और वैक्रियिक शरीरोंमें कान्ति उत्पन्न करती है। किन्तु उक्त शरीरोंमेंसे आत्मा निकल जानेसे वह आत्माके साथ ही निकल जाती है; अत: निर्जीव शरीरमें तैजस-वर्गणा नहीं रहती। ३य मनोवर्गणासे द्रव्य-मन बनता है। इन्द्रिय दो प्रकारकी होती है—भाव-इन्द्रिय और द्रव्य-इन्द्रिय। भावेन्द्रिय तो जीवात्माके ज्ञानका क्षयोपशमविशेष है, अर्थात् जीवके ज्ञान-गुणके अंशकी अभिव्यक्ति ही भावेन्द्रिय है और वह अभिव्यक्ति शरीरके जिस अंश अथवा उपाङ्गमें होती है, वह अङ्ग द्रव्येन्द्रिय है। इसी प्रकार आत्माकी विचार करने रूप शक्तिको भाव-मन कहते हैं और वह विचार द्रव्य मन या हृदयमें होता है, अन्यत्र नहीं। हृदयस्थलमें मनोवर्गणा रूप पुद्गलका कमलाकार एक द्रव्य-मन है और उसीमें विचार-शक्ति उत्पन्न होती है। ४र्थ भाषावर्गणासे शब्दोंकी रचना होती है। किन्तु सभी शब्द भाषावर्गणासे उत्पन्न होते हों, ऐसा नहीं; क्योंकि शब्द तो किसी पदार्थके गिरने वा वाद्यादि बजनेसे भी होता है। भाषावर्गणाका शब्द वही है जिसको आत्मा वा जीव ग्रहण करता है। ५म कार्माणवर्गणासे आठ प्रकारके कर्म बनते हैं जो आत्माको सांसारिक सुख दुःख देते हैं। ये कर्म ही इस आत्माको मुक्त नहीं होने देते अर्थात् ये ही पापपुण्य रूप आठ कर्म आत्माको परमात्मा नहीं होने देते। आठ कर्म ये हैं—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय। इनका विशेष वर्णन हम आगे चल कर "कर्मसिद्धांत" शीर्षकमें करेंगे।

ज्ञानावरणकर्म आत्माके ज्ञानगुणका घात करता है। आत्मा इसी कर्मके कारण पूर्णज्ञानको प्राप्त नहीं कर सकती और इसी लिए सर्वज्ञ वा परमात्मा भी नहीं हो सकती। दर्शनावरण आत्माके दर्शनगुणका घात करता है और वेदनीय आत्माको सांसारिक सुख दुःख पहुंचाता है। इसी प्रकार आत्माके साथ एक कर्म ऐसा भी लग रहा है जो उसे वास्तविक पदार्थ-स्वरूपका बोध नहीं होने देता, प्रत्युत विपरीत बोध कराता है। इस कर्मका नाम है मोहनीयकर्म। यही कर्म आत्मामें उज्ज्वल चारित्र प्रकट नहीं होने देता, प्रत्युत मिथ्याचारित्र अथवा कुत्सित आचरण कराता है। ५वां आयु कर्म आत्माको मनुष्य, तिर्यक्, देव और नरक, इनमेंसे किसी गतिमें ले जा कर उसे वहां किसी नियत काल तक रोक रखता है। हम लोगोंकी आत्मा इस शरीरमें तभी तक ठहर सकती है, जब तक हमारा आयुकर्म ठहरावे अथवा जितनी उसकी स्थिति हो। आयुकर्मकी स्थितिके पूर्ण होते ही हमें यह शरीर छोड़ देना पड़ेगा और इस शरीरसे बांधे हुए आयुकर्म अनुसार अन्य शरीरमें रहना पड़ेगा। ६ठे नामकर्मसे आत्मा अच्छे वा बुरे शरीरको धारण करती है और धन, कीर्ति आदि प्राप्त करती है। इसी प्रकार गोत्र कर्मके अनुसार आत्मा उच्च वा नीच कुलमें जन्मग्रहण करती है। ८वां अन्तराय कर्म आत्माके कार्योंमें सिर्फ बाधा पहुंचाता रहता है। बस, इन्हीं अष्टकर्मोंको नाश कर लेनेसे ही आत्मा परमात्मा वा सर्वज्ञ हो जाती है और सर्वज्ञ वा परमात्माको ही जैनसिद्धान्तमें ईश्वर माना है। किन्तु इन अष्टकर्मोंका नाश करना सहज काम नहीं है, इसके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी आवश्यकता है जो करोड़ों वा परार्द्धोंमें एकको भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है।

जैनसिद्धान्तमें अनादि शुद्ध परमात्मा नहीं माना है, किन्तु ऐसा माना है कि संसारको (वा अष्ट कर्मोंको) नष्ट करके शुद्ध हुए जीवात्मा ही परमात्मा बने हैं और वे रागद्वेष-रहित सर्वज्ञ हैं। इसलिए उन्हें सर्वोपरि उच्चादर्श मान कर जैनगण उनकी पूजा करते हैं, उनके वीतरागादि गुणोंका स्तवन करते हैं और पाषाण-मूर्तिमें उनकी स्थापना करते हैं। परन्तु परमात्मा इच्छा, राग, द्वेष और शरीरादिसे रहित होनेके कारण कुछ कर नहीं सकते, वे सिर्फ जगत्‌के द्रष्टा एवं ज्ञाता हैं और संसार दुःखसे सर्वथा मुक्त हो चुके हैं। वह शक्ति प्रत्येक संसारी आत्मा (जीवात्मा)-में विद्यमान है, इसलिए उसी परमात्मत्व शक्तिकी प्राप्तिके लिए उनकी (परमात्माकी) पूजा की जाती है।

मनुष्य, देव, नारकी और तिर्यंच पशुपक्षी आदिके

सिवा संसारमें ऐसे भी जीव मौजूद हैं जिन पर कर्म-भार बहुत ज्यादा और तीव्र है। ऐसे जीवोंकी ज्ञान-मात्रा अत्यन्त मन्द है। उन जीवोंने ज्ञानकी अभिव्यक्ति भी नहीं पाई है और न उनका द्रव्य शरीर वा इन्द्रियां ही पूर्णताको प्राप्त हुई हैं। इन जीवोंको 'निगोदिया' कहते हैं। वनस्पतिकाय, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय और वायुकायके जीव केवल स्पर्श का बोध करते हैं और वह भी अव्यक्त रूपसे। वनस्पतिकायका जीव जल-वायुका आकर्षणमात्र करता है; इसके सिवा वह न तो बोल सकता है, न सूंघ सकता है, न देख सकता है, न सुन सकता है और न विचार ही सकता है। इसी प्रकार जलकाय, अग्निकाय आदि जीवोंके विषयमें समझना चाहिये। इनकी अपेक्षा जिन आत्माओं पर कुछ कम कर्मभार है, उन जीवोंने ज्ञानविकाश अथवा आत्मिक गुणविकाशकी कुछ अधिक योग्यता पाई है। जैसे—शङ्ख अथवा चावलमें उत्पन्न होनेवाले लट आदि द्वीन्द्रिय जीव स्पर्श कर सकते हैं और बोल सकते हैं; पिपीलिका आदि त्रीन्द्रिय जीव स्पर्श कर सकते हैं बोल सकते हैं और सूंघ सकते हैं; भ्रमर, मक्षिका आदि चतुरिन्द्रिय जीव स्पर्श कर सकते हैं, बोल सकते हैं, सूंघ सकते हैं और देख सकते हैं। इसी प्रकार क्रमशः जितनी जितनी कर्मोंकी न्यूनता होती गई है, उतनी ही आत्माके ज्ञानादि गुणोंमें वृद्धि हुई है। कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनका कर्मभार कुछ हलका है और इसी लिए वे पांचों इन्द्रियोंका विकाश पा चुके हैं; किन्तु मनकी योग्यता न होनेसे विचार करनेमें असमर्थ हैं। वे जीव 'असैनी' वा असंज्ञी (मन-रहित)के नामसे प्रसिद्ध हैं। इन जीवोंके पञ्चेन्द्रियोंसे उद्भूत ज्ञान भी मन्द रहता है। जिनका कर्मभार इनसे भी कुछ हलका है, उन्हें पांच इन्द्रियोंके सिवा मन भी प्राप्त है; जैसे हाथी, घोड़ा, बैल आदि। इनकी अपेक्षा मनुष्योंको मनका विषय अर्थात् श्रुतज्ञान बहुत कुछ अधिक प्राप्त होता है। मनुष्योंमें भी किसीका ज्ञान मन्द और किसीकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है। इन सबमें कारण कर्म ही हैं, इन्हींकी न्यूनाधिकतासे ज्ञानमें पार्थक्य होता है। इसी तरह आत्मा क्रमशः उन्नति करती हुई अपने ध्येय मोक्षसुखको प्राप्त करती है। गुणस्थान देखो।

यह आत्मा विभिन्न कर्मोदयसे चार गतियोंमें परिभ्रमण करती है। १म मनुष्यगति है जिसमें हम लोग हैं। २य देवगति है जिसमें संसार-सुखकी पराकाष्ठा है, किन्तु आत्म-सुखकी नहीं। ३य नारकगति है जिसमें दुःखकी पराकाष्ठा है और ४र्थ तिर्यञ्चगति है जहां अज्ञानता और कष्ट ही कष्ट है।

आत्मा यद्यपि अमूर्तिक पदार्थ है, तथापि उसे कर्मोंकी परतन्त्रता वश मूर्तिक शरीरमें रहना पड़ता है। आत्मा असंख्य प्रदेशी है अर्थात् यदि यह फैलना चाहे तो असंख्य प्रदेशयुक्त आकाशमें (अर्थात् लोकाकाशमें) व्याप्त हो सकती है। परन्तु कर्मोंकी परतन्त्रताके कारण उसे जैसा शरीर मिलता है, उसीमें रहना पड़ता है। जैसे—दीपकके प्रकाशके प्रदेश एक बड़े मकानमें भी फैल सकते हैं और यदि एक घड़ेमें दीपक रक्खा जाय तो उस घड़ेमें भी समा सकते हैं, किन्तु घड़ेमें न तो उसके प्रदेश घटते और न मकानमें बढ़ते ही हैं। यह दृष्टान्त मूर्तिक पदार्थके हैं; इसलिए इस सङ्कोच-विस्तारको अंशमात्रमें घटित करना चाहिये, न कि हीनाधिकतामें। इसी प्रकार चींटीकी आत्मा यदि हाथीके शरीर धारण करनेका कर्मबन्ध करे, तो उसके प्रदेश उतने बड़े शरीरमें फैल जायंगे और हाथीकी आत्मा यदि चींटीके शरीर धारण करनेका कर्मबन्ध करे, तो उसके प्रदेश उतने छोटे शरीरमें समा जायंगे। यह सङ्कोच-विस्तारमात्र है, इसमें प्रदेश घटते वा बढ़ते नहीं।

ऊपर जो इन्द्रिय और मनकी प्राप्ति और उसके अवलम्बनसे सोपयुक्त क्रमभावी ज्ञानका विकाश बतलाया है वह संसारी जीवोंके ही होता है। संसारी आत्मा ज्यादासे ज्यादा तीन समय* तक शरीर और इन्द्रियोंसे शून्य रह सकती है, इससे अधिक नहीं। जिस समय आत्मा एक शरीरको त्याग कर दूसरे शरीरको धारण करती है, उसी समय उसके दूसरे शरीरमें ले जानेवाले उन कर्मोंका उदय प्रारम्भ हो जाता है जिनको उसने

* कालके सबसे छोटे हिस्सेको १ समय कहते हैं; समयसे छोटा काल नहीं होता अर्थात् समयका टुकड़ा नहीं किया जा सकता।

पहले शरीरमें ही अपने भावोंके अनुसार प्राप्त किया था। यदि वर्तमान मनुष्य-पर्यायमें देवोचित कर्मोंका बन्ध हो, तो मनुष्य-पर्यायकी समाप्तिमें ही उसका मरण समझा जायगा, अर्थात् जिस समय मनुष्यायु समाप्त होगी, उसी समयसे देवायुका प्रारम्भ होगा।

इसी प्रकार यह आत्मा कर्मोदय वश संसारमें चतुर्गतिभ्रमण करता रहता है। जिस समय इस आत्मासे कषाय वासिनियोंका अंत होता है, उस समय वह कर्मका बंध नहीं करता है। जहां आत्मा कर्मबंधसे छूट जाता है वहीं उसके आत्मीय-निजो गुणोंको पूर्णरूपसे व्याप्ति हो जाती हैं। उसी अवस्थामें वह आत्मा परमात्म पदका धारी कहा जाता है। वह परमात्मा परम वीतराग, निर्विकार, ज्ञानद्रष्टा अशरीर एवं अमूर्तिक आदि गुणों द्वारा सिद्धलोक-लोकके अग्रभागमें ठहर जाता है, जैन-सिद्धान्तानुसार प्रत्येक संसारी आत्मा कर्मोंसे लड़ने पर परमात्मा बनने योग्य है। तथा उसके कर्मोंका छूटना, मन वचन काय इन तीनों योगोंको बद्ध रखने तथा कषायोंको सर्वथा जीतनेसे होता है। जब कि सभी आत्माओंमें कषायोंको जीतनेकी सामर्थ्य पायी जाती है तब सभी आत्माओंमें परमात्मा बननेकी शक्ति भी उपस्थित है। इसलिये जैनियोंके सिद्धान्तानुसार एक परमात्मा नहीं किन्तु अनंते हो गये हैं और होते रहेंगे। जैनियोंके सिद्धांतसे परमात्मा सृष्टिका कर्त्ता हर्त्ता भी नहीं है किन्तु लोक अनादि निधन है, जगत्में नाना कार्योंकी रचना स्वयं प्रकृतिके विकारसे होती रहती है।

सप्त तत्व।—जैन-सिद्धान्तमें तत्त्व सात माने हैं, यथा—(१) जीव, (२) अजीव, (३) आस्रव, (४) बन्ध, (५) संवर, (६) निर्जरा और (७) मोक्ष। यहां ऐसा प्रश्न किया जा सकता है कि, जीव और अजीव इन दो तत्त्वोंका उल्लेख कर देनेसे ही काम चल जाता; क्योंकि आस्रव बन्ध आदि शेष ५ तत्त्व अजीवके ही भेद हैं, इस लिए अजीव कह देनेमात्रसे उनका समावेश हो जाता। इसका उत्तर यह है कि, जीवका ध्येय मोक्ष है और इसलिए मोक्षका उल्लेख करना आवश्यक है। साथ ही मोक्षकी प्राप्तिका उपाय बतलाना भी जरूरी था, इसलिए निर्जरा और संवरको पृथक् कहना पड़ा। संवर और निर्जरा कर्मोंकी होती है, इसलिए कर्मोंके आने (आस्रव) और आत्मासे मिल जाने (बन्ध)-का भी उल्लेख किया गया। अब इन सात तत्त्वोंके लक्षणादि संक्षेपसे कहे जाते हैं।

(१) जीवतत्त्व—जिनके आधार पर जीवोंकी सत्ता निर्भर हो वे प्राण कहलाते हैं और वे भावप्राण और द्रव्यप्राणके भेदसे दो प्रकारके हैं। भावप्राण—आत्माकी जिस शक्तिके निमित्तसे इन्द्रियां आदि अपने कार्यमें प्रवृत्त हों उसे भावप्राण कहते हैं। भावप्राणके मुख्यतः भावेन्द्रिय और बलप्राण ये दो भेद हैं। भावेन्द्रिय स्पर्शन, रसना आदि पांच प्रकारकी होती है और बल भी मन, वचन और कायके भेदसे तीन प्रकारका है। इस प्रकार भावप्राणके आठ भेद भी हैं। द्रव्यप्राण – जिनके संयोगसे जीव जीवन अवस्थाको प्राप्त हो और उनके वियोगसे मरण (शरीर परिवर्तन) अवस्थाको प्राप्त हो, उनको द्रव्यप्राण कहते हैं। द्रव्यप्राण दश हैं; जैसे—एकेन्द्रिय जीवके स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये चार; द्वीन्द्रियके स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास, आयु, रसनेन्द्रिय और वचनबल ये छ, त्रीन्द्रियके एक घ्राणेन्द्रिय बढ़ जानेसे सात; चतुरिन्द्रियके एक चक्षुरिन्द्रिय बढ़ जानेसे आठ; असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके एक श्रोत्रेन्द्रिय बढ़ जानेसे नौ और संज्ञी पञ्चेन्द्रियके मनोबल बढ़ जानेसे दश द्रव्यप्राण हैं।

उपर्युक्त प्राणोंके आधार पर अपने जीवनका अनुभव करता हुआ जो जीता है, जीता था और जीवेगा उसको जीव कहते हैं। साधारणतः जीवका लक्षण यह भी है कि जो चैतन्यस्वरूप वा चेतनायुक्त हो वही जीव है। जीवके मुख्यतः दो भेद हैं—(१) संसारी जीव और (२) मुक्त-जीव। संसारी-जीव—जो संसारमें परिभ्रमण अथवा जन्म मरण करें, उसे संसारी-जीव कहते हैं। यह उपयोगमयी है, कर्मोंका कर्त्ता है, अपनी देहके बराबर रहनेवाला और कर्मफलोंको भोगनेवाला है; तथा स्वभावतः ऊर्ध्व गतिवाला है। जीव यथार्थमें तो वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शादिसे रहित अमूर्तिक है, किन्तु कर्मबन्ध सहित होनेके कारण संसारी जीव व्यवहार-

नयसे मूर्तिक भी माना गया है। संसारी-जीव द्रव्य कर्म आदिका और चैतन्यरूप राग आदि भाव-कर्मोंका कर्त्ता है तथा सुखदुःखरूप पौद्गलिक कर्मोंके फलोंका भोक्ता है। हम जितने भी जीवों वा प्राणियोंको देखते हैं, वे समस्त संसारी जीव हैं। संसारी जीवोंके साधारणतः दो भेद हैं—१ संज्ञी और २ असंज्ञी अथवा १ त्रसजीव और २ स्थावर जीव। संज्ञी—मन-सहित जीवको संज्ञी कहते हैं। संज्ञी जीव पञ्चेन्द्रिय ही होता है। असंज्ञी—मन-रहित जीवको असंज्ञी कहते हैं।

त्रसजीव—जो त्रस नामकर्मके उदयसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रियोंमें जन्म लेते हैं, उन्हें त्रसजीव कहते हैं। हम जितने भी प्राणियोंको देखते हैं, उनमेंसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति (वृक्षादि) इन पांच प्रकारके स्थावर जीवोंके सिवा बाक़ीके समस्त जीव त्रस हैं। त्रस जीवोंके कमसे कम स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां तो होती ही हैं।

स्थावरजीव—स्थावर-नामकर्मके उदयसे पृथिवी, अप, तेज, वायु और वनस्पतियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंको स्थावर जीव कहते हैं। स्थावर जीव पांच ही प्रकारके होते हैं।

मुक्तजीव—मुक्त-जीव उन्हें कहते हैं जो संसारमें जन्म-मरण नहीं करते अर्थात् जिनको संसारसे मुक्ति हो गई है। मुक्त-जीव कर्म-रहित हैं और सर्वदा अपने शुद्ध चिद्रूपमें लीन रहते हैं, उनके ज्ञानका पूर्ण विकाश हो चुका है अर्थात् वे केवलज्ञान द्वारा विश्वके त्रिकालवर्त्ती समस्त पदार्थोंको युगपत् जानते हैं। मुक्त-जीव कभी भी संसारमें लौटते नहीं; वे परमात्मा हैं और सिद्ध कहलाते हैं। ये मुक्त-जीव संसार-पूर्वक ही होते हैं, इसलिए संसारी जीवका उल्लेख पहले किया गया और मुक्त-जीवका पीछे।

(२) अजीवतत्त्व—जिसमें जीवके लक्षण न पाये जांय अर्थात् जो अचेतन अर्थात् प्राणरहित जड़ हो, उसे अजीव कहते हैं। अजीवद्रव्यके प्रधानतः पांच भेद हैं—१ पुद्गलद्रव्य, २ धर्मद्रव्य, ३ अधर्मद्रव्य, ४ आकाशद्रव्य और ५ कालद्रव्य। इन पाँच द्रव्योंमें जीवको शामिल करनेसे द्रव्यके छः भेद होते हैं। इनमें जीव और पुद्गलद्रव्य क्रिया सहित हैं और शेष चार द्रव्य क्रिया-रहित हैं। जीव और पुद्गलके स्वभावपर्याय और विभावपर्याय दोनों होती हैं; किन्तु शेष चार द्रव्योंके केवल स्वभावपर्याय ही होती है। जीव-द्रव्यका विवरण पहले कहा जा चुका है; अब पुद्गल आदिका वर्णन करेंगे।

पुद्गलद्रव्य—जैन शास्त्रोंमें पुद्गलद्रव्यका लक्षण इस प्रकार लिखा है, "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः" अर्थात् जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार गुण विद्यमान हों, वही पुद्गल है। यों तो पुद्गलद्रव्य अनन्त गुणोंका समुदाय है, किन्तु ऊपर कहे हुए चार गुण ऐसे हैं जो समस्त पुद्गलोंमें सर्वदा पाये जाते हैं एवं पुद्गलके सिवा और किसी भी द्रव्यमें नहीं पाये जाते। इसीलिये ये चारों गुण पुद्गलद्रव्यके आत्मभूतलक्षणमें गर्भित हैं। यद्यपि समस्त पुद्गलोंमें उक्त चार गुण नित्य पाये जाते हैं, तथापि वे सदा एक समान नहीं रहते। स्पर्श गुणका कदाचित् कोमल, कदाचित् कठिन, शीत, उष्ण, लघु, गुरु, स्निग्ध और रूक्षमें परिणमन होता है। ये स्पर्श-गुणकी अर्थ-पर्यायें हैं। इसी प्रकार तिक्त, कटु, अम्ल, मधुर और कषाय ये रसके मूल भेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध ये दो गन्धके भेद हैं तथा नील, पीत, श्वेत, श्याम और लाल ये पांच वर्णगुणके भेद हैं। इस प्रकार उक्त चार गुणोंके मूल भेद बीस और उत्तर-भेद यथा सम्भव संख्यात, असंख्यात और अनन्त हैं। पुद्गलद्रव्यकी अनन्त पर्यायें हैं, जिनमें दश पर्यायें मुख्य हैं। यथा—१ शब्द, २ बन्ध, ३ सौक्ष्म्य, ४ स्थौल्य, ५ संस्थान, ६ भेद, ७ तम, ८ छाया, ९ आतप और १० उद्योत। शब्द-शब्दके दो भेद हैं, एक भाषात्मक और दूसरा अभाषात्मक। भाषात्मक शब्द भी दो प्रकारका है, एक अक्षरात्मक और दूसरा अनक्षरात्मक। अक्षरात्मकके संस्कृत, प्राकृत, देशभाषा आदि अनेक भेद हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदिकी भाषा तथा केवलज्ञानके धारक अरहन्तदेवकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक होती है। दिव्यध्वनि पहले अरहन्तके सर्वाङ्गसे निकलती है और पीछे अक्षररूप होती है, इसलिए वह अनक्षरात्मक है। अभाषात्मक शब्दके दो भेद हैं,

१ स्वाभाविक और २ प्रायोगिक। मेघ आदिसे जो उत्पन्न हो, उसे स्वाभाविक और दूसरेके प्रयोगसे हो उसे, प्रायोगिक कहते हैं। प्रायोगिकके चार भेद हैं, १ तत, २ वितत, ३ घन और ४ शौषिर। चमड़ेसे मढ़े हुये नगाड़ा, मृदङ्ग आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको तत कहते हैं, सितार, तम्बूरा आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको वितत कहते हैं; घण्टा आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको घन कहते हैं और शङ्ख, बांसुरी आदिसे उत्पन्न हुए शब्दको शौषिर कहते हैं। जैन विद्वान् शब्दके मूर्तिक होनेमें ग्रामोफोनकी चूड़ी आदिका दृष्टान्त देते हैं। और भी अनेक प्रमाणों द्वारा उन्होंने शब्दको रूपी सिद्ध किया है।

पुद्गलकी दूसरी पर्याय बन्ध है। अनेक चीजोंमें एकपनेका ज्ञान करानेवाले सम्बन्धविशेषको बन्ध कहते हैं। बन्धके भी दो भेद हैं, १ स्वाभाविक और २ प्रायोगिक। स्वाभाविक बन्ध दो प्रकारका है, एक सादि और दूसरा अनादि। स्निग्ध गुणके निमित्तसे बिजली, मेघ, इन्द्रधनु आदिको सादि-स्वाभाविक-बन्ध कहते हैं। अनादि-स्वाभाविक-बन्ध (धर्म अधर्म और आकाशद्रव्यमें एक एक करके तीन तीन भेद होनेसे) ९ प्रकारका है—१ धर्मास्तिकायबन्ध, २ धर्मास्तिकाय-देशबन्ध, ३ धर्मास्तिकायप्रदेशबन्ध, ४ अधर्मास्तिकायबन्ध, ५ अधर्मास्तिकाय देशबन्ध, ६ अधर्मास्तिकाय प्रदेशबन्ध, ७ आकाशास्तिकाय बन्ध, ८ आकाशास्तिकाय देशबन्ध, और ९ आकाशास्तिकाय प्रदेशबन्ध। जहां सम्पूर्ण धर्मास्तिकायकी विवक्षा (विवेचनकी इच्छा) हो, वहां उसका नाम है धर्मास्तिकाय बन्ध तथा आधेको देश और चौथाईको प्रदेश कहते हैं। इसी प्रकार अधर्म, और आकाशके लिए समझना चाहिए। पुद्गल द्रव्योंमें भी महास्कन्ध आदिके सामान्यकी अपेक्षासे अनादिबन्ध है। इस प्रकार यद्यपि समस्त द्रव्योंमें बन्ध है, तथापि यहां प्रकरण वशात् पुद्गलका बन्ध ग्रहण किया गया है।

जो दूसरेके प्रयोगसे हो, उसे प्रायोगिक बन्ध कहते हैं। यह दो प्रकारका है, पुद्गल-विषयिक और २ जीव-पुद्गल-विषयिक। पुद्गल-विषयिक बन्ध लाखा काठ आदि समझना चाहिये। जीव-पुद्गलविषयिकके दो भेद हैं—कर्मबन्ध और नोकर्मबन्ध। इनका वर्णन 'कर्मसिद्धांत' शीर्षकमें किया गया है।

सौक्ष्म्य—सूक्ष्मत्व दो प्रकारका है एक आत्यन्तिक और दूसरा आपेक्षिक। जो सूक्ष्मत्व परमाणुओंमें होता है उसे आत्यन्तिक सूक्ष्मत्व कहते हैं। और जो सूक्ष्मत्व नारियल, आम, बेर आदिमें (उत्तरोत्तर) पाया जाता है, उसे आपेक्षिक सूक्ष्मत्व कहते हैं।

स्थौल्य—सौक्ष्म्यकी भांति स्थौल्यके भी दो भेद हैं, १ आत्यन्तिक और आपेक्षिक। जगद्व्यापी महास्कन्धमें जो स्थूलता है, उसे आत्यन्तिक स्थौल्य और बेर, आम, नारियल, कटहर आदिमें जो उत्तरोत्तर स्थूलता पाई जाती है उसे आपेक्षिक स्थौल्य कहते हैं। संस्थान—आकार या आकृतिको संस्थान कहते हैं। यह दो प्रकारका है, १ इत्थंलक्षण और २ अनित्थंलक्षण। गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदिको इत्थंलक्षण कहते हैं। और जहां 'यह आकार ऐसा है' इस प्रकार निरूपण न हो सके, ऐसे जो मेघ आदिके अनेक आकार हैं उनको अनित्थंलक्षण कहते हैं। भेद—यह ६ प्रकारका है, १ उत्कट, २ चूर्ण, ३ खण्ड, ४ चूर्णिका, ५ प्रतर और ६ अणुचटन। काष्ठ आदिके आरीसे किये गये टुकड़ोंको उत्कट कहते हैं। गेहूं, जौ आदिके आटे वा सत्तू आदिको चूर्ण कहते हैं तथा घटके सिरे आदिको खण्ड; उड़द, मूंग आदिकी दालको चूर्णिका; मेघ पटलादिको प्रतर और गरम लोहेको घनसे चोट करते वक्त जो स्फुलिंग निकलते हैं, उन्हें अणुचटन कहते हैं। तम—दृष्टि रोकनेवाले अन्धकारको तम कहते हैं। छाया—जो प्रकाशके आवरण करनेमें कारण हो उसे छाया कहते हैं। छाया दो प्रकारकी है; १ तद्वर्णादिविकारवती और २ प्रतिबिम्बमात्रग्राहिका। दर्पण आदि उज्ज्वल द्रव्यमें मुखादिकी वर्ण सहित परिणत छायाको तद्वर्णादि विकारवती कहते हैं और जिसमें वर्णादिकी परिणति न होकर सिर्फ प्रतिबिम्ब मात्र हो, उसे प्रतिबिम्बमात्रग्राहिका कहते हैं। ताप—उष्ण प्रकाशयुक्त सूर्यकी धूपको आतप कहते हैं। उद्योत—चन्द्रमा, चन्द्रकान्तमणि, अग्नि, खद्योत आदिके प्रकाशको उद्योत कहते हैं। ये सब पुद्गलकी पर्यायें हैं।

पुद्गल मुख्यत: दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है एक अणु और दूसरा स्कन्ध। अणु—एक प्रदेशमात्र-

में स्पर्शादि गुणोंसे निरन्तर परिणमन होने वालेको अणु कहते हैं और अणुका ही अपर नाम परमाणु है। प्रत्येक परमाणु षट्कोण आकारयुक्त, एक प्रदेशावगाही, स्पर्शादि गुणयुक्त और अखण्ड (जिसका खण्ड न हो सके) द्रव्य है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे आत्मा, आत्ममध्य और आत्मान्त है, तथा इन्द्रियोंसे अगोचर और अविभागी है। स्कन्ध—जो स्थूलताके कारण ग्रहण निक्षेपण आदि व्यापारको प्राप्त हो, उसे स्कन्ध कहते हैं। यद्यपि द्वाणुक आदि स्कन्धोंमें ग्रहण निक्षेपण आदि व्यापार नहीं हो सकता, तथापि रूढ़िवशात् जैसे गमनक्रियारहित (बैठी हुई) गायको "गौ" कहते हैं, उसी प्रकार द्वाणुक आदि स्कन्ध ग्रहण निक्षेपणादि व्यापारवान् न होने पर भी स्कन्ध कहलाते हैं। शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य आदि पर्यायें स्कन्धोंको ही होती हैं, न कि अणुकी। पुद्गल शब्दकी निरुक्ति जैनाचार्योंने इस प्रकार की है—"पूरयन्ति गलयन्तीति पुद्गलाः" अर्थात् जो पूरे और गले, उसको पुद्गल कहते हैं। यह अर्थ पुद्गलके अणु और स्कन्ध इन दोनों भेदोंमें व्यापक है। अर्थात् परमाणु स्कन्धोंसे मिलते और जुदे होते हैं, इसलिए उसमें पूरण और गलन दोनों धर्म मौजूद हैं। स्कन्ध अनेक पुद्गलोंका एक समूह हैं, अतः पुद्गलोंसे अभिन्न होनेसे उनमें भी पुद्गल शब्दका व्यवहार होता है।

धर्म और अधर्मद्रव्य—धर्म और अधर्म शब्दसे यहां पाप और पुण्य नहीं समझना चाहिये। परन्तु यहां धर्म और अधर्म शब्द द्रव्यवाचक हैं न कि गुणवाचक। पुण्य और पाप आत्माके परिणाम विशेष है, अथवा "जो जीवोंको संसार दुःखसे मुक्त करे, वह धर्म और जो इसके विपरीत कार्य करे, वह अधर्म" है ऐसा अर्थ भी यहां न लगाना चाहिये। यहां पर धर्म और अधर्म शब्द दो अचेतन द्रव्योंके वाचक है। ये दोनों ही द्रव्य 'तिलमें तेल'की भांति सम्पूर्ण लोक (विश्व)में व्यापक है। जैन ग्रन्थोंमें धर्मद्रव्यका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

धर्मास्तिकाय वा धर्मद्रव्यमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द नहीं हैं इसलिए वह अमूर्त्तिक है, समस्त लोकाकाशमें व्याप्त है, अखण्ड, विस्तृत और असंख्य प्रदेशयुक्त है। यह धर्मद्रव्य अपने स्वरूपसे च्युत न न होनेके कारण नित्य है; गतिक्रियामें परिणत जीव एवं पुद्गलकी उदासीन सहायक होनेसे कारणभूत है और किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए अकार्य है। जिस प्रकार जल स्वयं गमन न करता हुआ तथा दूसरोंको चलानेमें प्रेरक न होता हुआ भी अपनी इच्छासे गमन करनेवाले मत्स्य आदि जलचर जीवोंके गमनमें उदासीन सहकारी कारणमात्र है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य भी स्वयं गमन न करता हुआ और परके गमनमें प्रेरक न होता हुआ स्वयं गमन करते हुये जीव और पुद्गलोंको उदासीन अविनाभूत सहकारी मात्र है। तात्पर्य यह है कि, जीव और पुद्गलद्रव्यकी क्रियामें जो सहायक हो वह धर्मद्रव्य है।

जिस प्रकार धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलोंकी क्रियामें सहायक है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य उनके अवस्थानमें सहकारी है। जैसे पृथिवी स्वयं पहलेसे ही स्थितिरूप है और परकी स्थितिमें प्रेरकरूप नहीं हैं किन्तु स्वयं स्थितिरूपमें परिणत हुए अश्व आदिकी उदासीन अविनाभूत सहकारी कारण मात्र है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी स्वयं पहले होसे स्थितिरूप परके स्थितिपरिणाममें प्रेरक न होता हुआ भी स्वयमेव स्थितिरूपमें अवस्थित जीव और पुद्गलोंको सहकारी कारणमात्र है।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि, जिस प्रकार गतिपरिणामयुक्त पवन ध्वजाके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता है, उस प्रकार धर्मद्रव्यमें गति-हेतुत्व न समझना चाहिये। कारण धर्मद्रव्य निष्क्रिय होनेसे गतिरूपमें परिणमन नहीं करता; और जो स्वयं गति-रहित है; वह दूसरेके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता नहीं हो सकता। धर्मद्रव्य सिर्फ 'मत्स्यको जलकी भांति' जीव और पुद्गलके गमनेमें उदासीन सहकारी मात्र है। इसी प्रकार अधर्मद्रव्यको भी निष्क्रिय और जीव और पुद्गलोंकी स्थितिमें उदासीन कारणमात्र समझना चाहिये।

आकाशद्रव्य—जो जीव और पुद्गल आदि सम्पूर्ण पदार्थोंको युगपत् अवकाश वा स्थान देता है, उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। यह आकाशद्रव्य सर्वव्यापी अखण्ड और एक द्रव्य है। यद्यपि समस्त ही सूक्ष्मद्रव्य

परस्पर एक दूसरेको अवकाश देते हैं, किन्तु आकाश द्रव्य समस्त द्रव्योंको युगपत् (एकसाथ) अवकाश देता है ; इसलिए इस लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष नहीं आता। आकाशद्रव्य यद्यपि निश्चय नयकी अपेक्षासे अखण्डित एक द्रव्य है, तथापि व्यवहार-नयकी अपेक्षासे इसके दो भेद हैं। यथा - एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। सर्वव्यापी अनन्त आकाशके बीचके कुछ भागमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य हैं। जितने आकाशमें ये पांच द्रव्य हैं उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं और बाकीके आकाशको अलोकाकाश। अलोकाकाश लोकाकाशके बाहर समस्त दिशाओंमें व्याप्त है। वहां आकाशद्रव्यके सिवा अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है और इसलिए उसके विषयमें विशेष कुछ वक्तव्य भी नहीं है। लोकाकाशका विशेष विवरण "लोक-रचना" शीर्षकमें किया गया है।

कालद्रव्य—जो जीवादि द्रव्योंके परिणमन (परिवर्तन)-में सहकारी हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं। इसके दो भेद हैं, निश्चयकाल और व्यवहारकाल। द्रव्योंके परिणमन करानेमें निष्क्रियारूप सहायक लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशमें रत्न-राशिवत् कालके जो भिन्न भिन्न अणु हैं, उसे निश्चयकाल कहते हैं। निश्चयकालके अणु अमूर्तिक हैं। द्रव्योंकी पर्यायों (अवस्थाओं)के परिवर्तनमें कारण रूप जो घटिका, दिन, सप्ताह, मास, वर्ष आदि हैं, वह व्यवहारकाल कहलाता है।

(३) आस्रवतत्त्व—काय, वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं, अर्थात् शरीर वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना ही योग है। यह तीन प्रकारका है, १ काययोग, २ वाग्योग और ३ मनोयोग। यह योग ही कर्मोंके आगमनका द्वाररूप आस्रव है। जिस प्रकार सरोवरमें जल आनेके द्वार (मोखे) जलके आनेमें कारण होते हैं, उसी प्रकार आत्माके भी मनवचनकायरूप योगोंके द्वारा जो शुभाशुभ कर्म आते हैं, उनके आनेमें योग कारण है। यहां कारणमें कार्यकी सम्भावना करके योगोंको ही आस्रव कहा गया है। शुभ परिणामोंसे उत्पन्न हुआ योग पुण्य-प्रकृतियोंका आस्रव करता है और अशुभ भावोंसे उत्पन्न हुआ योग पापप्रकृतियों (पापकर्मों)-का आस्रव करता है। प्राणियोंका घात करना, असत्य बोलना, चोरी करना, ईर्षा भाव रखना इत्यादि अशुभयोग हैं और इनसे पाप कर्मोंका आस्रव (आगमन) होता है। जीवोंकी रक्षा करना, उपकार करना, सत्य बोलना, पञ्चपरमेष्ठीकी भक्तिपूजादि करना आदि शुभयोग हैं ; इनसे पुण्य कर्मोंका आस्रव होता है। आस्रवके दो भेद हैं – एक साम्परायिक आस्रव और दूसरा ईर्यापथ आस्रव। कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) सहित जीवोंके साम्परायिक आस्रव, और कषाय-रहित जीवोंके ईर्यापथ आस्रव होता है। अथवा यों समझिये कि संसार (जन्म-मरण)-के कारण रूप आस्रवोंको साम्परायिक आस्रव कहते हैं और स्थितिरहित कर्मोंके आस्रव होनेको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। ईर्यापथ आस्रव मोक्षका कारण है।

साम्परायिक आस्रव—पांच इन्द्रियें, चार कषाय, पांच अव्रत और पच्चीस क्रियाएं ये सब साम्परायिक आस्रवके भेद हैं ; अर्थात् इनके निमित्तसे साम्परायिक आस्रव होता है। पांच इन्द्रियें—१ स्पर्शन, २ रसना, ३ घ्राण, ४ चक्षु और ५ कर्ण। चार कषाय—१ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ। पांच अव्रत—१ हिंसा, २ अनृत (झूठ), ३ चौर्य (चोरी), ४ अब्रह्म (कुशील) और ५ परिग्रह (जड़-पदार्थोंसे ममत्व)। पच्चीस क्रियाएं-१ सम्यक्त्वक्रिया (देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति-पूजादि करना), २ मिथ्यात्वक्रिया (अन्य कुदेव, कुश्रुत और कुगुरुकी भक्ति-श्रद्धा करना), ३ प्रयोगक्रिया (शरीर, वचन और मनसे गमनागमनादि रूप प्रवर्तन करना), ४ समादान क्रिया (संयमीका अविरतिके सम्मुख होना), ५ ईर्यापथ-क्रिया (गमनके लिए क्रिया करना), ६ प्रादोषिकी क्रिया (क्रोधके आवेशसे की गई क्रिया), ७ कायिकी क्रिया (दुष्टताके लिए उद्यम करना), ८ आधिकरणिकी क्रिया (हिंसाके उपकरण शस्त्रादिका ग्रहण करना), ९ पारितापिकी क्रिया (अपने वा परके दुःखोत्पत्तिमें कारणरूप क्रिया), १० प्राणातिपातिकी क्रिया (आयु, इन्द्रिय, बल और श्वासोच्छ्वास इन प्राणोंका वियोग करना); ११ दर्शनक्रिया (रागकी अधिकताके कारण प्रमाद-

युक्त हो कर रमणीय रूपका अवलोकन करना), १२ स्पर्शनक्रिया (प्रमादवश वस्तुके स्पर्शनके लिए प्रवर्तन करना), १३ प्रात्ययिकी क्रिया (विषयभोगके नये नये कारण एकत्र करना), १४ समन्तानुपातक्रिया (स्त्रीपुरुषों वा पशुओंके बैठने सोनेके स्थानमें मलमूत्रादि क्षेपण करना), १५ अनाभोगक्रिया (बिना देखी वा शोधी भूमि पर बैठना वा सोना), १६ स्वहस्तक्रिया (दूसरेके द्वारा होनेवाली क्रियाको स्वयं करना), १७ निसर्गक्रिया (पापोत्पादक प्रवृत्तियोंको उत्तम समझना वा उसके लिए आज्ञा देना), १८ विदारणक्रिया आलस्यसे उत्कृष्ट क्रिया न करना वा दूसरेके किये हुए पापाचरणको प्रकाश करना), १९ आज्ञाव्यापादिकी क्रिया (चारित्रमोहके उदयसे परमागम वा सर्वज्ञकथित शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार चलनेमें असमर्थ हो कर अन्यथा प्रवर्तन करना), २० अनाकांक्षाक्रिया (प्रमादसे वा अज्ञानतासे परमागम वा सर्वज्ञ-कथित विधिका अनादर करना), २१ प्रारम्भक्रिया (छेदन, भेदन ताड़न आदि क्रियामें तत्पर होना और अन्यके द्वारा उक्त क्रियाओंके किए जाने पर हर्षित होना), २२ पारिग्राहिकी क्रिया (परिग्रहकी रक्षाके लिए प्रवृत्ति रखना), २३ मायाक्रिया (ज्ञान, दर्शन आदिमें कपटता-युक्त उपाय करना), २४ मिथ्यादर्शनक्रिया (कोई मिथ्यात्व वा सर्वज्ञकथित विधानके विरुद्ध कार्य करना वा करनेवालेको उस कार्यमें दृढ़ कर देना) और २५ अप्रत्याख्यानक्रिया (संयमका घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे संयमरूप प्रवर्तन नहीं करना)। ये पचीसों क्रियाएं साम्परायिक-आस्रव होनेमें कारण हैं। इस आस्रवमें तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्यकी विशेषतासे न्यूनाधिक्य भी होता है।

बाह्य और आभ्यन्तर कारणोंसे बढ़े हुये क्रोधादिसे जो तीव्ररूप परिणाम होते हैं, उनको तीव्रभाव कहते हैं। इसी प्रकार मन्दरूप भावोंको मन्दभाव, जीवोंके घातमें ज्ञानपूर्वक प्रवृत्तिको ज्ञातभाव और मद्यपानादिसे वा इन्द्रियोंको मोहित करनेवाले मदसे असावधानतापूर्वक प्रवृत्तिको अज्ञातभाव कहते हैं। जिसके आधार पुरुषोंका प्रयोजन हो, उसे अधिकरण और द्रव्यकी शक्तिके विशेषत्वको वीर्य कहते हैं। इनकी न्यूनाधिकता होनेसे आस्रवमें भी न्यूनाधिक्य होता है।

आस्रवके अधिकरण जीव और अजीव दोनों हैं। जीवाधिकरणके मुख्यतः १०८ भेद हैं, यथा—संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ इन तीनोंका मन वचन-कायरूप तीनों योगोंसे गुणा करनेसे ९, इनको कृत, कारित और अनुमोदना इन तीनोंसे गुणा करनेसे २७, इनको क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंसे गुणा करनेसे १०८*। हिंसा आदि करनेके लिए उद्यमरूप भावोंका होना संरम्भ कहलाता है। हिंसादि साधनोंका अभ्यास करना और उनकी सामग्री मिलाना, समारम्भ है तथा हिंसादिमें प्रवृत्त हो जाना, आरम्भ कहलाता है। स्वयं करनेको कृत, दूसरेसे करानेको कारित और दूसरेके किये हुए कार्यकी प्रशंसा करनेको अनुमोदना कहते हैं। इनको भी प्रत्येक कषायके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन चार भेदोंसे गुणा किया जाय तो ४३२ भेद होते हैं। इस प्रकार जीवोंके परिणामों वा हृदयगत भावोंके भेदसे आस्रवोंके भी भेद हुआ करते हैं। अजीवाधिकरण—इसके भी चार भेद हैं, १ निर्वर्त्तनाधिकरण, २ निक्षेपाधिकरण, ३ संयोगाधिकरण और ४ निसर्गाधिकरण। रचना करने वा उत्पन्न करनेको निर्वर्तनाधिकरण कहते हैं। यह दो प्रकारका है—१ देहदुःप्रयुक्तनिर्वर्तनाधिकरण (शरीरसे कुचेष्टा करना) और २ उपकरणनिर्वर्तनाधिकरण (हिंसाके उपकरण शस्त्रादिकी रचना करना)। अथवा इस प्रकार भी दो भेद हैं—१ मूलगुणनिर्वर्त्तना (शरीर, मन, वचन और श्वासोच्छ्वासोंका उत्पन्न करना, और २ उत्तरगुणनिर्वर्तना। काष्ठ, मृत्तिका पाषाणादिसे मूर्ति आदिकी रचना करना वा चित्रपटादि बनाना)। निक्षेप रखनेको कहते हैं; इसके चार भेद है—१ सहसानिक्षेपाधिकरण (भय आदिसे अथवा दूसरा कार्य करनेके लिए शीघ्रतासे किसी भी चीजको सहसा पटक देना), २ अनाभोगनिक्षेपाधिकरण (शीघ्रता न होने पर भी वहां 'कीटादि जीव हैं या

* जप मालमें जो १०८ मणियां होती हैं, वे इन्हीं १०८ आरम्भ-जनित पापास्रवोंको दूर करनेके लिए जपी जाती हैं।

नहीं' इस बातका बिना विचार किये किसी चीजको रखना या डालना अथवा ठीक जगह न रख कर यत्र तत्र बिना देखे भाले ही पटक देना), ३ दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण (बिना यत्नाचारके वा दुष्टतासे किसी चीजको रखना वा डालना) और ४ अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण (बिना देखे ही चीजको पटक या फेंक देना)। जोड़ने वा मिलानेको संयोग कहते हैं। यह दो प्रकारका है—१ उपकरणसंयोजना (शीतस्पर्श-युक्त वस्तुको उष्ण वस्तुसे पोंछना वा शोधना) और भक्तपानसंयोजना (पान-भोजनको अन्य किसी पान-भोजनमें मिलाना आदि)। निसर्गाधिकरण तीन प्रकारका है—१ मनोनिसर्गाधिकरण (दुष्ट प्रकारसे मनका प्रवर्तन करना), २ वाग्निसर्गाधिकरण (दुष्ट प्रकारसे वचनकी प्रवृत्ति करना) और ३ कायनिसर्गाधिकरण।

उपर्युक्त १०८ (अथवा ४३२) प्रकारके जीवाधिकरण और ११ प्रकारके अजीवाधिकरणोंके आश्रयसे कर्मोंका आगमन वा आस्रव होता है। ऊपर सामान्य आस्रवके भेद कहे गये हैं; अब ज्ञानावरण आदि विशेष आस्रवोंके कारण कहे जाते हैं।

आत्माके ज्ञान और दर्शनको आच्छादन करनेमें अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्मके आस्रव होनेमें ये छह कारण हैं, यथा—१ प्रदोष, २ निह्नव, ३ मात्सर्य, ४ अन्तराय, ५ आसादन और ६ उपघात। कोई व्यक्ति मोक्षके कारणभूत तत्त्वज्ञानकी प्रशंसायोग्य चर्चा कर रहा हो, परन्तु उसे सुन कर ईर्षाभावसे उसकी प्रशंसा न करना या मौन धारण करनेके भावको प्रदोष कहते हैं। जो स्वयं शास्त्रोंका ज्ञाता विद्वान् हो कर भी तत्त्वके विषयमें किसीके कुछ पूछने पर उसे न बतावे अर्थात् शास्त्रज्ञानको छिपावे, ऐसे भावको निह्नवभाव कहते हैं। इस अभिप्रायसे किसीको शास्त्रादि न पढ़ाना कि, वह पढ़ कर पण्डित हो जायगा और मेरी बराबरी करेगा, ऐसे भावको मात्सर्य कहते हैं। किसीके ज्ञानाभ्यासमें विघ्न डालना अथवा पुस्तक, पाठक, पाठशाला आदिका विच्छेद कर देना, इत्यादि भावोंको अन्तराय कहते हैं। अन्यके द्वारा प्रकाशित ज्ञानको रोक देना कि, अभी इस विषयको मत कहो इत्यादि भावोंको आसादन और प्रशंसनीय ज्ञानमें दोष लगानेको उपघात कहते हैं। इनमेंसे ज्ञानके विषयमें होनेसे ज्ञानावरणीय और दर्शनके विषयमें होनेसे दर्शनावरणीय कर्मोंका आस्रव होता है।

दुःख, शोक, ताप (पश्चात्ताप), आक्रन्दन (रुदन) वध (प्राण-घात) और परिदेवन (करुणा-जनक विलाप), इन्हें स्वयं करनेसे, अन्यको करानेसे तथा दोनोंको एक साथ होनेसे असातावेदनीयकर्मका आस्रव होता है। इनसे विपरीत भूतप्रत्यनुकम्पा (चारों गतियोंके जीवों और व्रतियोंके दुःखको देख कर उन्हें दूर करनेके भाव), दान (परोपकारके लिए धन, औषध, आहारादि देना), सरागसंयम (पांच इन्द्रिय और मनको वश करने और दुष्ट कर्मोंके विनाश करनेके लिए राग सहित संयम धारण करना), योग (अनिन्द्य आचरण), क्षमा और शौच (लोभका त्याग) पालन करनेसे सातावेदनीयकर्मका आस्रव होता है। इसी प्रकार केवलीका अवर्णवाद (केवलज्ञानयुक्त सर्वज्ञके दोष लगाना), शास्त्रका अवर्णवाद (शास्त्रमें मद्य मांस-मधु आदिके सेवनका उपदेश है, वेदनासे पीड़ितके लिए मैथुन सेवन आदि कहा है, इत्यादि दोष लगाना), सङ्घका अवर्णवाद (शरीरसे ममत्व न रखनेवाले वीतराग मुनीश्वरोंके सङ्घकी निंदा करना), धर्मका अवर्णवाद (अहिंसामय जैनधर्मकी निन्दा करना) और देवोंका अवर्णवाद (देवोंको मांसभक्षी सुरापायी, भोजन करनेवाले तथा मानुषीसे कामसेवनादि करनेवाले कहना) करनेसे दर्शनमोहनीय-कर्मका आस्रव होता है। आत्मज्ञानी तपस्वियोंकी निन्दा करना, धर्मको नष्ट करना, किसीके धर्मसाधनमें विघ्न डालना ब्रह्मचारियोंको ब्रह्मचर्यसे डिगाना, मद्य-मांस-मधुके त्यागीको भ्रम पैदा करना इत्यादि असद् कार्योंसे चारित्रमोहनीय-कर्मका आस्रव होता है।

बहुत आरम्भ (हिंसा-जनक कार्य) करने और बहुत परिग्रह रखनेसे नरकायुका आस्रव होता है अर्थात् मरनेके पश्चात् नरकमें जन्म लेना पड़ता है। कुटिलस्वभाव अर्थात् मायाचारी (मनमें कुछ विचारना, वचनसे कुछ कहना और शरीरसे और ही प्रवृत्ति करना) करनेसे

तिर्यग्योनिको आयुका आस्रव होता है ; अर्थात् ज्यादा कपट करनेवाले जीव मर कर पशु आदि (तिर्यञ्च) होते हैं। अल्प (थोड़ा) आरम्भ और कम परिग्रह (तृष्णा) रखनेसे मनुष्यायुका आस्रव होता है। स्वाभाविक कोमलता भी मनुष्यायुके आस्रवका कारण है। दिग्व्रत, देशव्रत आदि सप्त शील और अहिंसा, सत्य आदि पञ्च व्रतोंको धारण नहीं करनेसे चारों गतियों अर्थात् चारों प्रकारके आयुकर्मका आस्रव हो सकता है। सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप* करनेसे देवायुकर्मका आस्रव होता है। सर्वज्ञ कथित धर्ममें श्रद्धा करनेसे भी देवायुकर्मका आस्रव होता है।

मन, वचन और कायके योगोंको वक्रता वा कुटिलता तथा अन्यथा प्रवृत्ति, ये सब अशुभ नामकर्मके आस्रवके कारण हैं। इनसे विपरीत तीनों योगोंकी सरलता और यथोचित (विसंवाद रहित) प्रवृत्तिसे शुभनामकर्मका आस्रव होता है। पचीस† दोष रहित निर्मल सम्यक्त्व (यथार्थज्ञान), दर्शन ज्ञानचारित्रमें और उनके धारकोंमें तथा देव, शास्त्र, गुरु और धर्ममें प्रत्यक्ष परोक्ष विनय, अहिंसादि व्रतोंमें और उनके प्रतिपालन करनेवाले क्रोध वर्जन आदि शीलोंमें निरतिचार प्रवृत्ति, निरन्तर तत्त्वाभ्यास, कायक्लेशादि तप, मुनियोंके कष्टोंका निवारण, रोगी साधु वा मुनियोंकी सेवा, अरहन्त भगवान्‌की भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत वा उपाध्यायोंकी भक्ति, प्रवचन वा शास्त्रोंकी भक्ति, सामायिकादि षट् आवश्यकीय क्रियाओंमें तत्परता, स्याद्वाद विद्याध्ययनपूर्वक परमतके अज्ञान अन्धकारको दूर करके जैनधर्मका प्रभाव बढ़ाने और सहधर्मी जीवोंके साथ प्रीति रखनेसे तीर्थङ्कर-प्रकृतिका आस्रव होता है। अर्थात् उपर्युक्त षोड़श भावनाओंका भली भांति पालन करनेसे जीव जन्मान्तरमें तीर्थङ्कर-रूपमें जन्मग्रहण करनेका पुण्य (कर्म) उपार्जन कर सकता है।

दूसरेकी निन्दा, अपनी प्रशंसा और दूसरेके विद्यमान गुणोंको दबाने (प्रगट न करने)-से तथा अपने अविद्यमान गुणोंको प्रगट करनेसे नीचगोत्रकर्मका आस्रव होता है। किन्तु इसके विपरीत आचरण (अर्थात् अपनी निन्दा अन्यकी प्रशंसा आदि) करनेसे उच्चगोत्रकर्मका आस्रव होता है। दूसरेके दानादि शुभ कार्यमें विघ्न डालनेसे अन्तरायकर्मका आस्रव होता है। ये सब आस्रवोंके प्रधान प्रधान कारण कहे गये हैं, इनके सिवा गौण वा साधारण कारण असंख्य हैं।

(४) बन्धतत्त्व—ऊपर कहे हुए आस्रवके बाद उन कर्मोंका आत्माके साथ संबद्ध होना अर्थात् आत्माके प्रदेशोंमें कर्मोंका प्रवेश हो जाना (सम्बन्ध होना) ही बन्ध है। बन्धन अथवा बांधनेको बन्ध कहते हैं। कर्म-बन्ध भी आत्माको बांधे हुए हैं अर्थात् वह इसको मुक्त नहीं होने देता इसलिए उसके बन्धनको बन्ध कहा गया है। इसके भेद-प्रभेद आदिका वर्णन कर्म-सिद्धान्त शीर्षकमें आगे किया गया है।

(५) संवरतत्त्व—कर्मोंके आस्रव (आगमन)-का रुक जाना संवर है। अर्थात् कर्मोंके आनेके निमित्त-रूप मानसिक, वाचनिक और कायिक योगों तथा मिथ्यात्व और कषाय आदिके निरोध होने (वा रुक जाने) से जो अनेक सुख दुःखोंके कारण रूप कर्मोंके आनेका अभाव हो जाता है, उसे संवर कहते हैं। संवरके दो भेद हैं—एक द्रव्यसंवर और दूसरा भावसंवर। पुद्गलमय कर्मोंके आस्रवका रुकना द्रव्यसंवर कहलाता है और द्रव्यमय आस्रवोंके रोकनेमें कारणरूप आत्माके भावोंका होना भावसंवर है। यह संवर तीन गुप्ति और पांच समितियोंके पालनेसे, बारह अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवनसे, बाईस परीषहोंको जीतनेसे एवं पांच प्रकारके चारित्रका पालन करनेसे होता है। गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा आदिका वर्णन मुनियोंके आचारका वर्णन करते समय कहेंगे ; यहां सिर्फ संवरका लक्षण कहा गया है।

* संयमासंयम त्रस हिंसाका त्यागरूप संयम और स्थावर-हिंसाका अत्यागरूप असंयम। अकामनिर्जरा = पराधीनतासे क्षुधा, तृषादिकी पीड़ा एवं मारन, ताड़न आदि सहना तथा परितापादि दुःख भोगनेमें मन्द-कषायरूप भाव होना। बालतप-आत्मज्ञानरहित तप।

† शंका, अकांक्षा आदि ८ दोष, ८ मद, ६ अनायतन और ३ मूढ़ता ये २५ दोष हैं।

(६) निर्जरातत्त्व—आत्मासे कर्मोंके एकदेश (किञ्चित्) पृथक् होने वा क्षय होनेको निर्जरा कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं १ द्रव्यनिर्जरा और २ भावनिर्जरा। यथाकाल कर्मोंकी स्थिति पूरी होने पर जिस भाव (तप)से फल दे कर अथवा विना फल दिये ही कर्म झर (पृथक्) जाते हैं, उसे भावनिर्जरा कहते हैं तथा उन कर्मपुद्गलोंके पृथक् होनेको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं। इसके सिवा दो भेद इस प्रकार भी हैं—१ सविपाकनिर्जरा और २ अविपाकनिर्जरा। कर्मोंका उदयकाल आने पर रस दे कर अपने आप आत्मासे पृथक् हो जाना, सविपाकनिर्जरा कहलाती है। यह सविपाकनिर्जरा चारों गतियोंमें रहनेवाले समस्त संसारी जीवोंके हुआ करती है। कर्मोंको उदयकालके आये विना ही तपश्चरणादि द्वारा (अनुदय अवस्थामें ही) आत्मासे पृथक् कर देनेको अविपाकनिर्जरा कहते हैं।

निर्जराके भेद-प्रभेद तथा वह किस समय, कैसे और क्यों होती है, इत्यादि बातोंका वर्णन आगे चल कर "मुनि-आचार" शीर्षकमें करेंगे।

(७) मोक्षतत्त्व—आत्मासे अष्ट कर्मोंका सर्वथा पृथक् हो जाना ही मोक्ष है। मोक्षका अर्थ है मुक्ति। आत्मा कर्मबन्धनसे पराधीन है, उसका उससे मुक्त होना ही मोक्ष है। मोक्ष आत्माका अन्तिम ध्येय है। यह मोक्ष केवलज्ञानपूर्वक ही होता है, इसलिये यहां केवलज्ञानकी उत्पत्तिके विषयमें कुछ कहा जाता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मोंके सर्वथा नष्ट होते जाने पर केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है। तब आत्मा सर्वज्ञताको प्राप्त कर परमात्मापद पर अधिष्ठित होती है। उसके बाद आयुकर्मकी अवधि पूर्ण होनेके साथ वेदनीय, नाम और गोत्र इन अघातिया कर्मोंका सर्वथा नाश होने पर आत्मा कर्मबन्धनसे मुक्त होती है। आत्माकी उस मुक्त अवस्थाका नाम मोक्ष है। मोक्ष-प्राप्त आत्मा पुनः संसारमें नहीं आती अर्थात् वह जन्म, जरा मरणादि दुःखोंसे सर्वथा मुक्त हो जाती है। मुक्त आत्मा सिद्ध कहलाती है। सिद्ध-आत्मा वा परमात्माके केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलसिद्धत्व इन चार भावोंके सिवा अन्य भावोंका अभाव हो जाता है। सम्पूर्ण कर्मके नष्ट होने पर वह मुक्त आत्मा ऊर्द्धगमन करती है और लोकाकाशकी अवधिपर्यन्त जा कर वहीं स्थित रहती है। कारण उसके आगे अलोकाकाश होनेसे धर्मद्रव्यका अभाव है और इसीलिए जीवका गमन भी असम्भव है। मुक्त होते समय शरीरका जैसा आसन होगा वा जितने प्रदेशमें स्थित होगा मुक्त आत्मा भी सिद्ध-लोकमें जा कर उतने ही प्रदेशमें व्याप्त रहेगी।

कर्म-सिद्धांत—हिन्दूधर्ममें जैसा पाप पुण्य और उसका फलाफल माना है, उसी प्रकार जैनधर्ममें कर्म माना है। कर्म साधारणतः दो प्रकारके होते हैं, एक शुभ और दूसरे अशुभ। पुण्यको शुभ कर्म कह सकते हैं और पापको अशुभकर्म। शुभकर्मसे सांसारिक सुख मिलता है और अशुभकर्मसे दुःख प्राप्त होता है। किन्तु ये दोनों ही प्रकारके कर्म आत्माको संसारमें परिभ्रमण वा जन्म मरण करानेवाले हैं। इसलिए जैनसिद्धान्तमें पाप पुण्य वा शुभ अशुभ दोनों ही कर्मोंको आत्माका अहितकारी माना है। क्योंकि जब तक आत्मा कर्मरहित नहीं होती, तब तक उसको मोक्षकी (जो कि आत्माका ध्येय है) प्राप्ति नहीं होती। जैनसिद्धान्तमें कर्मका लक्षण इस प्रकार किया है—जीव वा आत्माके राग द्वेष आदि परिणामों (भावों)-के निमित्तसे कार्माण वर्गणा रूप जो पुद्गल-स्कन्ध जीवके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं, उनको कर्म कहते हैं। अब कर्मोंका आत्माके साथ सम्बन्ध कैसे होता है, इस विषयको लिखते हैं।

जीव कषाय (क्रोध मान माया-लोभरूप आत्माके विभाव) सहित होनेके कारण जो कर्मोंके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है, उसको बन्ध कहते हैं। समस्त लोक (त्रिभुवन)में पुद्गलोंके परमाणु भरे हुए हैं। और उनमें अनन्तानन्त परमाणु ऐसे भी हैं जो कर्म होनेकी योग्यता रखते हैं। ऐसे परमाणुओंका नाम कार्माणवर्गणा है। कार्माणवर्गणा लोकमें सर्वत्र व्याप्त हैं; जहां आत्माके प्रदेश हैं, वहां भी इनका अस्तित्व है। जब आत्मा योग (मन-वचन-काय इन तीनोंकी क्रिया)के कारण सकम्प होती है, तब चारों ओरसे आत्माके प्रदेशोंमें कार्माणवर्गणाओंका सम्बन्ध होता है। इस प्रकार

कार्माणवर्गणाओंका आत्माके साथ विभाग रहित एकत्वको प्राप्त होना ही कर्म-बन्ध है। यह बन्ध चार प्रकारके है—प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। (१)

प्रकृति स्वभावको कहते हैं। जैसे—नीमका स्वभाव कड़ुआ और चीनीका स्वभाव मीठा। कर्मोंमें आठ प्रकारके स्वभावोंका या रसोंका पड़ना प्रकृतिबन्ध है। कर्म आठ हैं—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय। इनमेंसे ज्ञानावरणकी प्रकृति (स्वभाव) आत्माके ज्ञानको आच्छादित करती है। दर्शनावरणकी प्रकृति आत्माके दर्शन अर्थात् ज्ञानके सामान्य अवलोकनरूप अंशको आच्छादित करती है। वेदनीयकी प्रकृति आत्मामें सुखदुःख उत्पन्न करती है। मोहनीय कर्मकी प्रकृति मद्य आदिकी भांति मोह उत्पन्न करती है। आयुकर्मकी प्रकृति आत्माको किसी भी शरीरमें नियत समय तक रोक रखती है। नामकर्मकी प्रकृति आत्माके लिए नाना प्रकारके शरीर और अङ्गोपाङ्गादिकी रचना करती है। गोत्रकर्मकी प्रकृति आत्माको उच्च नीच कुलमें उत्पन्न करती है। और अन्तराय कर्म आत्माके वीर्य, दान, लाभ, भोग और उपभोगोंमें विघ्न डालनेवाली प्रकृति रखता है। कर्मोंमें इस प्रकारके स्वभाव होनेको प्रकृतिबन्ध कहते हैं।

स्थितिबन्ध—उक्त आठ प्रकारकी कर्म-प्रकृतियां जितने काल तक आत्माके प्रदेशोंके साथ संश्लिष्ट रहेंगी अर्थात् जितने समय तक अपने स्वभावको नहीं छोड़ेंगी, उतने कालकी मर्यादा जिसमें पड़ती है, उसे स्थितिबन्ध कहते हैं। अनुभागबन्ध—जिस प्रकार बकरी, गाय, भैंस आदिके दूधमें थोड़ा और बहुत रस होता है, उसी प्रकार कर्मोंमें भी तीव्र, मध्य और मन्दरूप रस (फल) देनेकी शक्ति होती है और उस शक्तिका नाम अनुभागबन्ध वा अनुभवबन्ध है। प्रदेशबंध-उक्त आठ प्रकारके कर्मोंका आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध कहलाता है। अर्थात् कर्मरूपमें परिणत पुद्गल-स्कन्धके परमाणुओंके परिमाणके निश्चयको प्रदेश कहते हैं और उन प्रदेशोंका जीवके साथ मिल जाना ही प्रदेशबन्ध है।

इनमेंसे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योगोंके निमित्तसे तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ)के निमित्तसे होता है। इन योग और कषायोंकी हीनाधिकताके अनुसार बन्धमें भी तारतम्य होता है। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि, कर्म जड़-पदार्थ है और आत्मा चेतन; फिर जड़ पदार्थ आत्मा पर अपना प्रभाव कैसे डालता है? किन्तु इसका समाधान हम पहले कर चुके हैं कि, औषधादिकी तरह कर्मोंमें भी अपूर्व शक्ति भरी हुई है और उस शक्तिके द्वारा वे आत्माको सुख दुःख दिया करते हैं।

उपर्युक्त आठ प्रकृतियां मूल-प्रकृति कहलाती हैं। उनमेंसे प्रथम ज्ञानावरण प्रकृतिके पांच भेद हैं—(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मनःपर्ययज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण। आवरण परदे या आड़को कहते हैं। जिस प्रकार किसी मूर्ति पर कपड़ेका परदा डाल देनेसे उसका आकार नहीं दीखता, उसी प्रकार आत्मामें जो शक्ति है वह ज्ञानावरणकर्मके परदेसे ढकी रहनेके कारण प्रकट नहीं हो सकती है। यद्यपि मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणकर्मके किञ्चित् क्षयोपशमसे सभी जीवोंमें थोड़ा बहुत ज्ञान रहता है, किन्तु बाकीके सब ज्ञानोंको उक्त पांचों प्रकारके कर्म न्यूनाधिकरूपसे ढांके रहते हैं। जो कर्म मतिज्ञानको आच्छादित रखता है, उसे मतिज्ञानावरणकर्म कहते हैं। जिस कर्मके द्वारा श्रुतज्ञान आच्छादित रहता है, उसका नाम श्रुतज्ञानावरण है। अवधिज्ञानको आच्छादित रखनेवाले कर्मको अवधिज्ञानावरण कहते हैं। जो कर्म मनःपर्ययज्ञानको आच्छादन करे उसका नाम मनःपर्ययज्ञानावरण और जिस कर्मके द्वारा केवलज्ञान प्रगट नहीं होता, उसे केवलज्ञानावरण कर्म कहते हैं। (मति, श्रुत, अवधि आदि पांच ज्ञानोंका वर्णन हम आगे "प्रमाण और नय" शीर्षकमें करेंगे।

इसी प्रकार दर्शनावरण प्रकृतिके ९ भेद हैं—

(१) प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः॥ ३॥

(तत्त्वार्थसू० अ० ८)

(१) चक्षुदर्शनावरण, (२) अचक्षुदर्शनावरण, (३) अवधिदर्शनावरण, (४) केवलदर्शनावरण, (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचलाप्रचला और (९) स्त्यानगृद्धि। चक्षुदर्शनावरण—जिसके उदयसे आत्मा चक्षु आदि इन्द्रियरहित एकेन्द्रिय वा विकलेन्द्रिय हो अथवा चतुरिन्द्रियसहित पंचेन्द्रिय होने पर भी उसके नेत्रोंमें देखनेकी शक्ति न हो अर्थात् अन्धा, काना वा न्यूनदृष्टि हो, उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। अचक्षुदर्शनावरण—जिसके उदयसे चक्षुके अतिरिक्त अन्य इन्द्रियोंसे दर्शन (सामान्य अवलोकन) न हो उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं। अवधिदर्शनावरण—अवधिदर्शन (बिना इन्द्रियोंकी सहायताके जो दर्शन हो)-से होनेवाले सामान्य अवलोकनको आच्छादित करता है, उसे अवधिदर्शनावरण कहते हैं। केवलदर्शनावरण—जो केवलदर्शन द्वारा समस्त दर्शन नहीं होने देता, वह केवलदर्शनावरण है। निद्रादर्शनावरण—मद खेद और ग्लानि दूर करनेके लिए जो नींद ली जाती है उसे निद्रादर्शनावरण कहते हैं। इसके उदय होने पर फिर कोई भी जग नहीं सकता। निद्रानिद्रादर्शनावरण—निद्रा पर निद्रा आना वा जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आना कि जीव आंखोंको उघाड़ हो न सके, उसे निद्रानिद्रादर्शनावरण कहते हैं। प्रचलादर्शनावरण—जिसके शोक, खेद, मदादिके कारण बैठे बैठे ही शरीरमें विकार उत्पन्न हो कर पांचों इन्द्रियोंके व्यापारका अभाव हो जाय उसे प्रचलादर्शनावरण कहते हैं। इसके उदयसे जीव नेत्रोंको कुछ उघाड़े हुए ही सो जाता है, अर्थात् सोता हुआ भी कुछ जागता है, बार बार मन्द मन्द निद्रा लेता है, बैठा बैठा झूमने लगता है, नेत्र और गात्र चलाया करता है। प्रचलाप्रचलादर्शनावरण—जिसके उदयसे मुखसे लार बहने लग जाय, अङ्गोपाङ्ग चलायमान हों और सुई आदिके चुभाने पर भी चेत न हो, उसे प्रचलाप्रचलादर्शनावरण कहते हैं। स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण—जिस निद्राके आने पर मनुष्य चैतन्य सा हो कर अनेक रौद्रकर्म कर लेता है और फिर बेहोश हो जाता है तथा नींद छूटने पर उसे मालूम नहीं रहता कि उसने क्या क्या काम कर डाले? ऐसी कर्मप्रकृतिका नाम स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण है।

३य कर्म-प्रकृतिका नाम है वेदनीय। यह सत् और असत्के भेदसे दो प्रकारकी है। सत्को सातावेदनीय और असत्को असातावेदनीय कहते हैं। सातावेदनीय—जिसके उदयसे शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार सुखरूप सामग्रियोंकी प्राप्ति हो, उसे सातावेदनीय कहते हैं। असातावेदनीय—जिसके उदयसे दुःखदायक सामग्रियोंका समागम हो उसे असातावेदनीय कहते हैं। अर्थात् सातावेदनीयकर्म जीवको सांसारिक सुख देता है और असातावेदनीय दुःख।

४र्थ कर्म प्रकृतिका नाम है मोहनीय। इसके मुख्यतः दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। इनमेंसे दर्शनमोहनीयके १ सम्यक्त्व, २ मिथ्यात्व और ३ सम्यग्मिथ्यात्व (अर्थात् मिश्रमोहनीय) ये तीन तथा चारित्र मोहनीयके १ अकषायवेदनीय और २ कषायवेदनीय ये दो भेद हैं। अकषायवेदनीय* ९ प्रकार है—१ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ भय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद और ९ नपुंसकवेद। कषायवेदनीय १६ प्रकारका है—१ अनन्तानुबन्धी क्रोध, २ अप्रत्याख्यानक्रोध, ३ प्रत्याख्यानक्रोध, ४ संज्वलनक्रोध, ५ अनन्तानुबन्धीमान, ६ अप्रत्याख्यानमान, ७ प्रत्याख्यानमान, ८ संज्वलनमान, ९ अनन्तानुबन्धी माया, १० अप्रत्याख्यान माया, ११ प्रत्याख्यान माया, १२ संज्वलन माया, १३ अनन्तानुबन्धी लोभ, १४ अप्रत्याख्यानलोभ, १५ प्रत्याख्यान लोभ और १६ संज्वलन लोभ। इस प्रकार तीन नौ और सोलह कुल मिला कर मोहनीय प्रकृतिके २८ भेद होते हैं।

दर्शनमोहनीय—(१) मिथ्यात्व—जिसके उदयसे सर्वज्ञभाषित मार्गसे पराङ्मुख और तत्त्वार्थके श्रद्धानमें निरुत्सुकता वा निरुद्यमता एवं हिताहितकी परीक्षामें असमर्थता होती है, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। (२) सम्यक्त्व—जब शुभ परिणाम (भाव)के प्रभावसे मिथ्यात्वका रस हीन हो जाता है और वह (शक्तिके घट जानेसे) असमर्थ हो कर आत्माके श्रद्धानको नहीं रोक सकता अर्थात् सम्यक्त्वको बिगाड़ नहीं सकता, तब जिसका उदय होता

* किंचित् कषायको नोकषाय वा अकषाय कहते हैं। यहां अकषायका अर्थ कषायरहित नहीं है, किन्तु किंचित् कषाय है। जो आत्माको कलुषित करे, उसे कषाय कहते हैं।

है, उसको सम्यक्त्व कहते हैं। (२) सम्यग्मिथ्यात्व—जिसके उदयसे तत्त्वोंके श्रद्धान रूप और अश्रद्धान-रूप दोनों प्रकारके भाव—दही गुड़के मिले हुये स्वादके समान-मिले हुए होते हैं, उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। ये तीनों प्रकृतियां आत्म के सम्यक्त्व भावको घातक हैं।

चारित्रमोहनीय (अकषायवेदनीय)—(१) हास्य—जिसके उदयसे हंसी आवे उसको हास्य कहते हैं। (२) रति—जिसके उदयसे विषयोंके सेवन करनेमें उत्सुकता वा आसक्तता हो, वह रति कहलाती है। (३) अरति—रतिसे विपरीत वा उल्टी प्रकृतिका नाम अरति है। (४) शोक—जिसके उदयसे चिन्ता और शोकादि हो, उसे शोक कहते हैं। (५) भय—जिसके उदयसे उद्वेग हो, वह भय * है। (६) जुगुप्सा—जिसके उदयसे अपने दोषोंका आच्छादन और अन्यके कुल शीलादिमें दोष प्रकट करनेका भाव हो अथवा अवज्ञा, तिरस्कार वा ग्लानिरूप भाव उत्पन्न हों, उसे जुगुप्सा कहते हैं। (७) स्त्रीवेद—जिसके उदयसे पुरुषके साथ रमण करनेकी इच्छा हो, वह स्त्रीवेद है। (८) पुरुषवेद—जिसके उदयसे स्त्रीसे रमनेकी इच्छा हो, वह पुरुषवेद है। (९) नपुंसकवेद—जिसके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंसे रमनेको भाव हो, वह नपुंसकवेद है।

चारित्रमोहनीय (कषायवेदनीय)—कषायवेदनीयके १६ भेद हैं, जिनमें क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार मुख्य हैं। (१) क्रोधकषाय—जिसके उदयसे अपने और परके घात करनेके भाव (परिणाम) हों तथा परके उपकार करनेके अभावरूप भाव वा क्रूरभाव हों, उसे क्रोध कषाय कहते हैं। (२) मानकषाय—जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य, विद्या, रूप, तप और ज्ञान आदिके गर्वसे उद्धत-रूप तथा अन्यसे नम्रीभूत न होने-रूप परिणाम वा भावको मानकषाय कहते हैं। (३) मायाकषाय—अन्यको ठगनेकी इच्छासे जो कुटिलता की जाती है, वह मायाकषाय है। (४) लोभकषाय—अपने उपकारक द्रव्योंमें जो अभिलाषा होती है, उसे लोभकषाय कहते हैं। इन चारोंमेंसे प्रत्येकके शक्तिकी अपेक्षासे तीव्रतर, तीव्र, मन्द और मन्दतर—ऐसे चार चार भेद हैं। तीव्रतर भावोंको अनन्तानुबन्धी कहते हैं और तीव्रको अप्रत्याख्यान, मन्दको प्रत्याख्यान तथा मन्दतरको संज्वलन कहते हैं†। अनन्त संसार (जन्म मरण)-का कारण जो मिथ्यात्व है, उसके साथ ही रहनेवाले परिणामों (भावों)-को अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ कहते हैं। अनन्तानुबन्धी कषाय इतना तीव्र होता है कि, इसका दृष्टान्त पत्थरकी लकीरसे दिया जाता है अर्थात् जिस प्रकार पत्थर पर लकीर खींचनेसे वह सहजमें नहीं मिटती, उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषायके द्वारा बंधे हुए कर्म भी सहजमें (बिना अपना फल दिये) नष्ट नहीं होते। अप्रत्याख्यानका दरजा इससे कुछ नीचा है। अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़े त्यागको जो आवरण करें वा रोकें, उन परिणामों (भावों)-को अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ कहते हैं। इसी प्रकार प्रत्याख्यान अर्थात् सर्व त्यागको जो आवरण करें वा महाव्रत नहीं होने देवें, उन परिणामोंका नाम है प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया लोभ। और जो संयमके साथ ही प्रकाशमान रहें अर्थात् जिनके होने पर संयम प्रकाशमान् हुआ करे, ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभरूप परिणामोंको संज्वलन क्रोध-मान माया-लोभ कहते हैं। इस तरह ४।४ भेद होनेसे कषायवेदनीयकी १६ प्रकृतियां हुईं।

दर्शन मोहको तीन प्रकृतियां तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, और लोभ, ये ७ प्रकृतियां सम्यक्त्वका घात करती हैं; अर्थात् इनका उदय रहते हुए सम्यक्त्व नहीं होता है। और इसी प्रकार अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभके उदयसे श्रावकके व्रत नहीं होते, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभके उदयसे महाव्रत नहीं होते और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभके

* जैन मतानुसार भय सात प्रकारका है—
१ लोकभय, २ परलोकभय, ३ वेदनभय, ४ अरक्षाभय, ५ अगुप्तिभय, ६ मरणभय, ७ आकस्मिकभय, इन्हींमें समस्त प्रकारके भय गर्भित हैं।

† इन चार कषायोंके ४।४ दृष्टांत हैं। जैसे—(क्रोधके) १ पत्थरकी रेखा, २ पृथ्वीकी रेखा, ३ धूलिकी रेखा, ४ जलकी रेखा। इसी प्रकार मान, माया और लोभके भी पृथक् पृथक् ४।४ दृष्टांत हैं।

उदयसे यथाख्यातचारित्र (कषायोंके सर्वथा अभावसे प्रादुर्भूत आत्माकी शुद्धिविशेष) नहीं होता है।

५म कर्म-प्रकृतिका नाम है आयुः। जिसके सद्भावसे आत्माका जीवन और अभावसे मरण हो, उसे आयुःकर्म कहते हैं; यह जीवन धारण करनेमें कारण है। यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि, जीवनका कारण तो अन्नपानादि है, अन्नपानादिके सद्भावसे ही जीवन धारण किया जा सकता है और उसके अभावसे मरण होता है; फिर आयुः कर्म कैसे कारण बन गया? इसका उत्तर यह है कि, अन्नपानादि तो बाह्यकारण हैं। मूल उपादान कारण आयुःकर्म ही है। जैसे घटके होनेमें मूल कारण तो मृत्तिका है और बाह्यकारण चाक, कुम्भकार आदि उसी प्रकार जीवनधारणका मूलकारण आयुःकर्म है। यह तो प्रत्यक्ष बात है कि, जिसकी आयुः शेष हो गई हो, अन्नादि देने पर भी उसकी मृत्यु हो जाती है। इसके सिवा देव और नारकीगण अन्नादि बाह्य आहारके बिना ही जीवन धारण करते हैं। इसलिए यह प्रश्न असङ्गत है।

इस आयुःकर्मके चार भेद हैं—नरकायुः तिर्यञ्चायुः, मनुष्यायुः और देवायुः। (१) नरकायुः—जिसके सद्भावसे आत्मा नरक-गतिमें जीवन धारण करे, उसे नरकायुः कहते हैं। (२) तिर्यञ्चायुः—जिसके सद्भावसे आत्मा तिर्यञ्च-शरीरमें जीवे, वह तिर्यञ्चायुः है। (३) मनुष्यायुः—जिसके सद्भावसे आत्मा मनुष्यशरीरमें अवस्थान करे, वह मनुष्यायुः है। (४) देवायुः—जिसके सद्भावसे आत्मा देवगतिमें जीवन धारण करे, उसे देवायुः कहते हैं।

६ष्ठ कर्म-प्रकृतिका नाम है नाम-कर्म। इसके प्रधानतः ४२ भेद हैं। (१) गतिनामकर्म—जिसके उदयसे आत्मा भवान्तरके लिए गमन करे, उसे गतिनामकर्म कहते हैं। नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्य गति और देवगतिके भेदसे यह चार* प्रकारका है। जिसके उदयसे आत्मा नरकमें जावे, उसे नरकगति नामकर्म; जिसके उदयसे तिर्यञ्च योनिमें जावे, उसे तिर्यञ्चगति नामकर्म; जिसके उदयसे मनुष्य जन्मको पावे, उसे मनुष्यगति-नामकर्म और जिसके उदयसे देव-पर्याय पावे, उसे देवगति नामकर्म कहते हैं। (२) जातिनामकर्म—उक्त नरकादि गतियोंमें जो अविरोधी समान धर्मोंसे आत्माको एक रूप करता है; उसे जातिनाम कर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—१ एकेन्द्रिय जातिनामकर्म, २ द्वीन्द्रिय-जातिनामकर्म, ३ त्रीन्द्रिय-जातिनामकर्म, ४ चतुरीन्द्रिय जातिनामकर्म और ५ पञ्चेन्द्रिय जातिनामकर्म। जिसके उदयसे आत्माको एकेन्द्रिय जाति प्राप्त हो, उसे एकेन्द्रिय जातिनामकर्म; जिसके उदयसे द्वीन्द्रिय-शरीर प्राप्त हो, उसे द्वीन्द्रिय-जातिनामकर्म; जिसके उदयसे त्रीन्द्रिय-जाति प्राप्त हो, उसे त्रीन्द्रिय जातिनामकर्म; जिसके उदयसे चतुरिन्द्रिय जाति प्राप्त हो, उसे चतुरिन्द्रिय-जातिनामकर्म और जिसके उदयसे पञ्चेन्द्रिय शरीर प्राप्त हो, उसे पञ्चेन्द्रिय जातिनामकर्म कहते हैं।

(३) शरीर-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरकी रचना हो, वह शरीर-नामकर्म है। औदारिक शरीर, वैक्रियिक-शरीर, आहारक-शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीरके भेदसे शरीरनामकर्म भी पांच प्रकारका है*। जिसके उदयसे औदारिकशरीरकी रचना होती है, उसे औदारिकशरीर-नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य चार भेदोंके लक्षण समझने चाहिये।

(४) अङ्गोपाङ्ग-नामकर्म—जिसके उदयसे अङ्ग और उपाङ्गोंका भेद प्रकट हो, उसे अङ्गोपाङ्ग-नामकर्म कहते

* ये सब अवान्तर भेद हैं। आगे भी ऐसे अवांतर भेद आवेंगे; इन सबकी संख्या ५१ है। इनको मिलनेसे नामकर्मके कुल भेद ९३ होते है।

* १—जो शरीर इन्द्रियों द्वारा देखनेमें आवे तथा स्थूल हो उसे औदारिक शरीर कहते हैं। २—जिस शरीरमें अनेक प्रकारके स्थूल, सूक्ष्म, हलका, भारी रूप विकार होनेकी योग्यता हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। ३—सूक्ष्म पदार्थके निर्णयके लिए अथवा संयमके पालनेके छठमगुणस्थानवर्ती मुनिके जो शरीर प्रगट होता है उसे आहारक शरीर कहते हैं। ४—जिससे शरीरमें तेज, कांति होवे उसे तैजस शरीर कहते है। ५—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं। ये पांचों ही शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं।

हैं। मस्तक, हृदय, उदर, पीठ, बाहु, जङ्घा और पैर, ये अङ्ग कहलाते हैं तथा ललाट, नासिका, कर्ण आदि शरीरके अन्य भागोंको उपाङ्ग कहते हैं। अङ्गोपाङ्ग-नामकर्म तीन प्रकारका है—१ औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग-नामकर्म, २ वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्ग-नामकर्म और ३ आहारकशरीराङ्गोपाङ्ग-नामकर्म।

(५) निर्माण-नामकर्म—जिसके उदयसे अङ्ग और उपाङ्गोंकी उत्पत्ति हो, उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ स्थान-निर्माण और २ प्रमाण-निर्माण। जाति-नामकर्मके उदयसे जो नासिका, कर्ण आदिको यथास्थानमें निर्माण करता, उसे स्थाननिर्माण और जो उन्हें उपयुक्त लम्बाई चौड़ाई आदिका परिमाण लिए रचता है उसे प्रमाणनिर्माण कहते हैं। (६) बन्धन नामकर्म—जिसके उदयसे शरीर-नामकर्मके वशसे ग्रहण किए हुए आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्धोंके प्रदेशोंका मिलना हो, उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं। यह पांच प्रकारका है—१ औदारिक-बन्धननामकर्म, २ वैक्रियिक बन्धननामकर्म, ३ आहारकबन्धननामकर्म, ४ तैजस-बन्धननामकर्म और ५ कार्मणबन्धननामकर्म। जिसके उदयसे औदारिकबन्ध हो, उसे औदारिकबन्धननामकर्म, जिसके उदयसे वैक्रियिकबन्ध हो, उसे वैक्रियिकबन्धन-नामकर्म; जिसके उदयसे आहारकबन्ध हो, उसे आहारकबन्धननामकर्म; जिसके उदयसे तैजसबन्ध हो उसे तैजसबन्धननामकर्म और जिसके उदयसे कार्मणबन्ध हो, उसे कार्मणबन्धननामकर्म कहते हैं।

(७) सङ्घातनामकर्म—जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका छिद्ररहित अन्योऽन्यप्रदेशानुप्रदेश रूप एकता वा सङ्घटन हो, उसे सङ्घात नामकर्म कहते हैं। इसके भी औदारिक आदि पांच भेद हैं। जिसके उदयसे औदारिक शरीरमें छिद्र रहित सन्धियां (जोड़) हों, उसे औदारिक सङ्घात नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरमें सङ्घात हो, वह वैक्रियिकसङ्घात-नामकर्म कहलाता है। जिसके उदयसे आहारकशरीरमें सङ्घात हो, उसका नाम आहारक सङ्घात नामकर्म है। जिसके उदयसे तैजस शरीरमें सङ्घात हो, वह तैजस-संघात नामकर्म है; और जिसके उदयसे कार्मण शरीरमें सङ्घात हो उसे कार्मणसङ्घात नामकर्म कहते हैं।

(८) संस्थान-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरकी आकृति वा आकार उत्पन्न हो, उसे संस्थान-नामकर्म कहते हैं। इसके छः भेद हैं—१ समचतुरस्रसंस्थान-नामकर्म, २ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान नामकर्म, ३ स्वातिसंस्थान-नामकर्म, ४ कुब्जकसंस्थान नामकर्म, ५ वामनसंस्थान-नामकर्म और ६ हुण्डकसंस्थान नामकर्म। जिसके उदयसे ऊपर, नीचे और मध्यमें समान विभागसे शरीरकी आकृति उत्पन्न हो, उसे समचतुरस्र संस्थान-नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे शरीरस्थ नाभिके नीचेका भाग वटवृक्ष सदृश पतला हो और ऊपरका भाग मोटा है, उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान-नामकर्म कहते हैं। स्वातिसंस्थान नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे शरीरके नीचेका भाग स्थूल हो और ऊपरका भाग पतला। कुब्जकसंस्थान-नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदयसे पीठ पर बहुतसा मांस हो वा कुबड़ा शरीर हो। वामन नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे शरीर बहुत छोटा हो। और जिसके उदयसे शरीरके अङ्ग उपाङ्ग कहीं कहीं, छोटे बड़े वा संस्थान कम बढ़ हों, उसे हुण्डकसंस्थान नामकर्म कहते हैं।

(९) संहनन नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरके हाड़, पिञ्जर आदिके बंधनों विशेषता हो उसको संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके छः भेद हैं—१ वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म, २ वज्रनाराचसंहनन नामकर्म, ३ नाराचसंहनन-नामकर्म, ४ अर्द्धनाराचसंहनन-नामकर्म, ५ कीलकसंहनन-नामकर्म और ६ असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन-नामकर्म*। वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे शरीरस्थ वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (अस्थिपञ्जर) ये तीनों ही वज्रके समान अभेद्य हों। जिस कर्मके उदयसे नाराच और संहनन वज्रमय हों और वृषभ सामान्य हो, उसे वज्रनाराचसंहनन नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे हड्डियों और सन्धियोंमें कीलें तो

* नसोंसे हड्डियोंके बंधनेका नाम ऋषभ वा वृषभ है। नाराच कीलनेको कहते हैं और संहनन हाड़ोंके समूहको कहते हैं।

हों पर वे वज्रमय न हों और वज्रमय वेष्टन भी न हो, उस क्रम का नाम नाराचसंहनन है। अर्द्धनाराचसंहनन नामकर्म उसे कहते हैं, जिसके उदयसे हड्डियोंकी सन्धियां अर्द्धकीलित हों, अर्थात् एक तरफ कीले हों और दूसरी ओर न हों। जिसके उदयसे हड्डियां परस्पर कीलित हों वह कीलकसंहनन नामकर्म कहलाता है। और जिसके उदयसे हड्डियोंकी सन्धियां कीलित न हों पर नसों स्नायुओं और मांससे बंधी हों, उसको असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म कहते हैं।

विशेष—उपर्युक्त छहों संहननके धारक जीव मर कर साधारणतः अष्टम स्वर्ग पर्यन्त जा सकते हैं। असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननके सिवा अन्य पांचों संहननके धारक जीव मर कर बारहवें स्वर्ग तक जन्म ले सकते हैं। असम्प्राप्तासृपाटिका और कीलकसंहननके सिवा अन्य चार संहननवाले १६वें स्वर्ग तक जन्मग्रहण कर सकते हैं; नवग्रैवेयक* तक नाराच, वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराच इन तीन संहननवालोंका ही गमन हो सकता है। नव अनुदिश विमानोंमें वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराच इन दो ही संहननवालोंका गमन है। और पांच अनुत्तर विमानोंमें वज्रवृषभनाराच संहननवाले ही जन्म ले सकते हैं तथा मोक्ष भी एकमात्र इसी संहननसे हो सकती है। इसी तरह नरकोंमें भी छहों संहननवाले धम्मा, वंशा और मेघा इन तीनों नरकोंमें जन्म ले सकते हैं। किन्तु अञ्जना और अरिष्टा नामक ४र्थ और ५वें नरकमें असम्प्राप्तासृपाटिकाके सिवा अन्य पांच शरीरधारियोंका ही गमन है। छठे नरक (मघवी)में असम्प्राप्तासृपाटिका और कीलक संहननके सिवा अन्य चार संहननवालोंका गमन है। तथा सातवें माघवी नामक नरकमें वज्रवृषभनाराच संहननवाला ही जन्मग्रहण कर सकता है। देव, नारकी और एकेंद्रिय जीवोंके संहननका अभाव है अर्थात् इनका शरीर सप्तधातुमय नहीं है। दो, तीन और चार इन्द्रिययुक्त जीवोंके असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन होता है। कर्मभूमिकी स्त्रियोंके आदिके तीन संहननोंके सिवा अर्द्धनाराच, कीलक और असम्प्राप्तासृपाटिका ये तीन संहनन ही होते हैं। भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यञ्चोंके एक वज्रवृषभनाराच संहननके सिवा अन्य पांच संहनन होते हैं। कर्मभूमिके मनुष्य और तिर्यञ्चोंके छहों संहनन होते हैं। परन्तु इस पञ्चम कालमें मनुष्य और तिर्यञ्चोंके अन्तके तीन संहनन ही होते हैं।

(१०) स्पर्श-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्श-गुण प्रगट हो, उसका नाम है स्पर्श-नामकर्म। यह आठ प्रकारका है—१ कर्कशस्पर्श-नामकर्म, २ मृदुस्पर्श-नामकर्म, ३ गुरुस्पर्श नामकर्म, ४ लघुस्पर्श-नामकर्म, ५ स्निग्धस्पर्श-नामकर्म, ६ रूक्षस्पर्श-नामकर्म, ७ शीतस्पर्श-नामकर्म और ८ उष्णस्पर्श नामकर्म।

(११) रस-नामकर्म—जिसके उदयसे देहमें रस (स्वाद) उत्पन्न हो, उसे रस-नामकर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—१ तिक्तरस-नामकर्म, २ कटुरस-नामकर्म, ३ कषायरस-नामकर्म, ४ आम्लरस नामकर्म और ५ मधुररस-नामकर्म। (१२) गन्ध-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरमें गन्ध प्रगट हो, उसे गन्धनामकर्म कहते हैं। यह दो प्रकारका है—१ सुगन्ध-नामकर्म और २ दुर्गन्ध नामकर्म। (१३) वर्ण-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरमें वर्ण (रंग) प्रगट हो, उसे वर्णनामकर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—१ शुक्लवर्ण-नामकर्म, २ कृष्णवर्ण नामकर्म, ३ नीलवर्ण नामकर्म, ४ रक्तवर्ण-नामकर्म और पीतवर्ण-नामकर्म। (१४) आनुपूर्व्य नामकर्म—जिसके उदयसे पूर्वायुके उच्छेदके बाद पहलेके निर्माण नामकर्मकी निवृत्ति होने पर विग्रहगतिमें* मरणसे पूर्वके शरीरके आकारका विनाश नहीं हो, उसे आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। यह चार प्रकारका है—१ नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-नामकर्म, २ देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म, ३ तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-नामकर्म और ४ मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य-नामकर्म। जिस समय मनुष्य वा तिर्यञ्चकी आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीरसे पृथक् हो कर नरकमें जन्मग्रहण करनेके

---

* स्वर्गोंका विवरण हम आगे करेंगे जिसका शीर्षक "लोकरचना" होगा।

* आत्माके एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर ग्रहण करनेके लिए जानेको विग्रहगति कहते हैं।

लिए गमन करता हो, उस समय मार्गमें जिसके उदयसे आत्माके प्रदेश पहले शरीरके आकारके रहते हैं, उसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। इस कर्मका उदय विग्रह गतिमें ही होता है। इसी प्रकार अन्य तीनोंका अर्थ समझना चाहिये। इसका उदय एक समय, दो समय और ज्यादासे ज्यादा तीन समय तक रहता है।

(१५) अगुरुलघु नामकर्म—जिसके उदयसे जीवोंका शरीर लोहपिण्डके समान (भारीपनके कारण) नीचे नहीं पड़ जाता और आककी रुईके समान (हलकेपनसे) उड़ भी नहीं जाता, उसे अगुरुलघुनामकर्म कहते हैं। यहां पर शरीरसहित आत्माके सम्बन्धमें अगुरुलघुकर्म प्रकृति मानी है, तथा द्रव्यमें जो अगुरुलघुत्व है, वह स्वाभाविक गुण है। (१६) उपघात-नामकर्म—जिसके उदयसे अपने शरीरके अवयव ऐसे (बड़े सींग, बड़े स्तन, बड़ा उदर आदि) हों जिनके कारण अपना ही घात हो, वह उपघात-नामकर्म कहलाता है। (१७) परघात-नामकर्म—जिसके उदयसे तीक्ष्ण शृङ्ग, तीक्ष्ण नख वा डङ्क आदि परके घात करनेवाले अङ्ग हों उसको परघात-नामकर्म कहते हैं (१८) आताप-नामकर्म—जिसके उदयसे आतापकारी शरीर प्राप्त हो, उसे आताप-नामकर्म कहते हैं। इस कर्मका उदय सूर्यके विमानमें जो बादर-पर्याप्त* जीव पृथ्वीकायिक मणि-मय शरीरधारी होते हैं, सिर्फ उनके ही होता है। (१९) उद्योत-नामकर्म—जिसके उदयसे उद्योत रूप शरीर होता है, उसे उद्योतनामकर्म कहते हैं। इसका उदय चन्द्रमाके विमानमें रहनेवाले पृथ्वीकायिक जीवोंके तथा जुगनू आदि जीवोंके ही होता है। (२०) उच्छ्वास-नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरमें श्वासोच्छ्वास उत्पन्न हो, उसका नाम है उच्छ्वासनामकर्म।

(२१) विहायोगति-नामकर्म—जिसके उदयसे आकाशमें गमन हो, वह विहायोगतिनामकर्म है। इसके दो भेद हैं-१ प्रशस्तविहायोगति-नामकर्म और २ अप्रशस्तविहायोगति-नामकर्म। जो हस्ती आदिकी गतिके समान सुन्दर गमनका कारण है उसे प्रशस्तविहायोगति-नामकर्म और जो ऊंट गदंभादिके समान असुन्दर गमनका कारण है, उसे अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते हैं। मुक्त होने पर जीवको तथा चेतनारहित पुद्गलकी जो गति होती है, वह स्वाभाविक गति है अर्थात् उसमें कर्मजनित कोई कारण नहीं है। (२२) प्रत्येकशरीर नामकर्म—जिसके उदयसे एक शरीर एक आत्माके भोगनेका कारण हो, उसे प्रत्येकशरीरनामकर्म कहते हैं (२३) साधारणशरीर-नामकर्म-जिसके उदयसे एक शरीर बहुतसे जीवोंके उपभोग करनेका कारण हो, उसे साधारणशरीरनामकर्म कहते हैं। जिन अनन्त जीवोंके आहारादि चार पर्याप्ति, जन्म, मरण, श्वासोच्छ्वास, उपकार और अपकार एक ही समयमें होते हैं, उन्हें साधारण जीव कहते हैं। (२४) त्रस-नामकर्म—जिसके उदयसे आत्मा द्वीन्द्रिय आदि शरीर धारण करती है, उसे त्रसनामकर्म कहते हैं। (२५) स्थावरनामकर्म—जिसके उदयसे जीव पृथिवी, अप, तेज, वायु और वनस्पति कायमें उत्पन्न होता है, उसे स्थावरनामकर्म कहते हैं। (२६) सुभगनामकर्म-जिसके उदयसे अन्यको प्रीति हो (अर्थात् देखते ही दूसरोंके भाव प्रीतरूप हो जावें, उसे सुभगनामकर्म कहते हैं। (२७) दुर्भगनामकर्म-जिसके उदयसे रूपादि गुणोंसे युक्त होते हुए भी दूसरेको अप्रीति उत्पन्न हो, उसे दुर्भगनामकर्म कहते हैं। (२८) सुस्वर-नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे मनोज्ञ स्वर प्राप्त हो, वह सुस्वरनामकर्म है। (२९) दुःस्वरनामकर्म-जिसके उदयसे अमनोज्ञ स्वरकी प्राप्ति हो, उसे दुःस्वरनामकर्म कहते हैं। (३०) शुभनामकर्म-जिसके उदयसे मस्तक आदि अवयव सुन्दर और देखनेमें रमणीय हों, उसे शुभनामकर्म कहते हैं। (३१) अशुभ-नामकर्म-जिस कर्मके उदयसे मस्तक आदि अवयव असुन्दर और देखनेमें रमणीय न हों, वह अशुभनामकर्म है।

(३२) सूक्ष्मशरीर-नामकर्म-जिस कर्मके उदयसे ऐसा सूक्ष्म शरीर प्राप्त हो जो अन्य जीवोंके उपकार वा घात करनेमें कारण न हो और पृथिवी, जल, अग्नि, पवन आदिसे जिसका घात न हो तथा पहाड़ आदिमें प्रवेश करनेको भी जिसमें शक्ति मौजूद हो, उसको सूक्ष्मशरीर-स्थूलशरीर प्राप्त हो, उसे बादरशरीरनामकर्म कहते

* जिस एकेंद्रिय जीवका शरीर दूसरोंसे प्रतिहत हो सके उसे बादरपर्याप्त कहते हैं।

है। (३४) पर्याप्तिनामकर्म-जिसके उदयसे आहार नामकर्म कहते हैं। (३३) बादरशरीर-नामकर्म-जिसके उदयसे अन्यको रोकने योग्य वा अन्यसे रुकने योग्य आदि पर्याप्ति पूर्णतयाको प्राप्त होती है, उसे पर्याप्ति-नामकर्म कहते हैं। इसके छः भेद हैं—१ आहार-पर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति, ४ प्राणापानपर्याप्ति, ५ भाषापर्याप्ति और ६ मनःपर्याप्ति। (३५) अपर्याप्तिनामकर्म—जिसके उदयसे जीव इन्हीं पर्याप्तियोंमेंसे एकको भी पूर्ण नहीं कर सके, उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते हैं।

(३६) स्थिर-नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे रस आदि सात धातुएं * और सात उपधातुएं † अपने अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों, दुष्कर उपवास आदि तपश्चरणमें भी अङ्ग उपाङ्गमें स्थिरता बनी रहे अर्थात् रोग नहीं होवे, उसको स्थिरनामकर्म कहते हैं। (३७) अस्थिरनामकर्म—जिसके उदयसे किञ्चित् उपवासादि करने और किञ्चिन्मात्र सर्दी गर्मी लगनेसे अङ्गोपाङ्ग कृश हो जायं, धातु उपधातुओंको स्थिरता न रहे अर्थात् रोग हो जावें, उसको अस्थिर नामकर्म कहते हैं। (३८) आदेय नामकर्म- जिसके उदयसे प्रभासहित शरीर हो, उसे आदेयनामकर्म कहते हैं। (३९) अनादेयनामकर्म—जिस कर्मके उदयसे शरीर प्रभा-रहित हो, उसे अनादेय-नामकर्म कहते हैं। (४०) यशःकीर्ति नामकर्म - जिसके उदयसे पुण्यरूप गुणोंको ख्याति (प्रकटता) हो, उसे यशःकोर्ति नामकर्म कहते हैं। (४१) अयशःकीर्ति नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे पापरूप गुणोंको ख्याति हो, उसे अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं। (४२) तीर्थङ्करनामकर्म—जिस प्रकृतिके उदयसे अचिन्त्यविभूति संयुक्त तीर्थङ्कर पदको प्राप्ति हो, उसे तीर्थङ्करत्व नामकर्म कहते हैं। ४२ प्रकृतियोंके साथ ५१ अवान्तर भेदोंको जोड़नेसे नामकर्मको कुल ९३ प्रकृतियां होती हैं।

७म कर्म प्रकृतिको गोत्रकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र। जिसके उदयसे लोकपूज्य इक्ष्वाकु आदि उच्च कुलोंमें जन्म हो, उसे उच्चगोत्रकर्म और जिसके उदयसे निन्द्य, दरिद्र और अप्रसिद्ध कुलमें जन्म हो, उसे नीचगोत्रकर्म कहते हैं।

अष्टम वा अन्तिम कर्म-प्रकृतिका नाम है अन्तरायकर्म। अन्तरायकर्म पांच प्रकारका है। (१) दानान्तराय, जिस कर्मके उदयसे दान देनेकी इच्छा होते हुए भी दान न दे सके, उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं। (२) लाभान्तरायकर्म—जिसके उदयसे लाभ करनेकी अभिलाष होने पर भी लाभ न हो, उसका नाम लाभान्तरायकर्म है। (३) भोगान्तरायकर्म—जिसके उदयसे भोग ‡ करनेको आकांक्षा होते हुए भी भोग करनेमें असमर्थ हो, उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं। (४) उपभोगान्तरायकर्म—उपभोग करनेकी इच्छा रहते हुए भी जिसके उदयसे उपभोग करनेमें असमर्थ हो उसको उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं। (५) वीर्यान्तरायकर्म—जिसके उदयसे उत्साहरूप होनेकी इच्छा होने पर भी शरीरमें सामर्थ्यका अभाव हो, उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं।

उपर्युक्त आठ कर्म-प्रकृतियोंके मुख्यतः दो भेद हैं, १ घातिया और २ अघातिया। जो जीवके अनुजीवी गुणोंका घात करे, उसे घातियाकर्म और जीवके अनुजीवी गुणोंका घात न करे, उसे अघातियाकर्म कहते हैं। यह तो हुआ प्रकृतिबन्धका वर्णन, अब स्थितिबंधके विषयमें कुछ कहा जाता है।

स्थितिबन्धका स्वरूप पहले कह चुके हैं। स्थितिबन्ध दो प्रकारका है—एक उत्कृष्ट-स्थितिबन्ध और दूसरा जघन्य स्थितिबन्ध। (१) उत्कृष्ट-स्थितिबन्ध—उक्त अष्ट कर्मप्रकृतियोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मको उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर § परिमित है। संज्ञी पञ्चेंद्रिय पर्याप्तक जीवोंके

* रस, रुधिर, मांस, मेदा, हाड़, मज्जा और वीर्य ये सात धातुएं हैं।

† वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चर्म और जठराग्नि ये सात उपधातुएं हैं।

‡ भोग उसे कहते हैं जो एक ही बार भोगा जाता है, जैसे—गन्ध, अतर, पुष्प, ताम्बूल, भोजन, पान आदि। और जो बार बार भोगनेमें आता है, उसे उपभोग कहते हैं, जैसे—शय्या, स्त्री हाथी, घोड़ा आदि।

§ यह अलौकिक गणित है; इस विषयका वर्णन "त्रिलोकसार" और "गोम्मटसार" सटीक तथा पं॰ गोपालदासकृत "जैनसिद्धान्तदर्पण"से जानना चाहिए।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण वेदनीय और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। इनमें भी ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी नव, अन्तरायकी पांच और असातावेदनीयकी एक इन बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है। और सातावेदनीयकी एक प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह कोड़ाकोड़ी सागरकी है।

मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर परिमित है। इस उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेंद्रिय पर्याप्तक जीवोंके होता है। जीवोंके भेदसे इसमें तारतम्य होता है। यथा—एकेन्द्रिय पर्याप्तक के उत्कृष्ट स्थिति एक सागर द्वीन्द्रियके २५ सागर त्रीन्द्रियके ५० सागर और चतुरिन्द्रियके मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति १०० सागर परिमित होती है। असंज्ञी पर्याप्तक असंज्ञि-पञ्चेन्द्रियके मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति एक हजार सागरकी होती है।

नामकर्म और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर परिमित है। यह स्थिति संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके लिए है। एकेंद्रिय पर्याप्तक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरके $\frac{2}{7}$ भाग है। द्वींद्रिय आदिमें भी इसी प्रकारका पार्थक्य है। मोहनीयकर्मकी स्थिति सबसे अधिक और इसीसे अन्य कर्मोंकी उत्पत्ति होनेके कारण इस कर्मको राजा कहते हैं।

आयुःकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर परिमित है। संज्ञी पञ्चेंद्रिय पर्याप्तके आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरकी है। असंज्ञी पञ्चेंद्रियके लिए उत्कृष्ट स्थिति पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार एकेंद्रिय आदिमें तारतम्य है।

इसी प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय अंतराय और आयुः इन पांच कर्मोंकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त* है। वेदनीयकर्मकी जघन्यस्थिति बारह मुहूर्तकी† है। नामकर्म और गोत्रकर्मकी जघन्यस्थिति आठ मुहूर्त परिमित है।

* एक मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनटके भीतर भीतरके समयको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

† दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है।

अनुभागबन्ध—तीव्र और मन्द कषायरूप जिस प्रकारके भावोंसे कर्मोंका आस्रव हुआ है, उनके अनुसार कर्मोंकी फल-दायक शक्तिकी तीव्रता और मन्दता होनेको अनुभागबन्ध कहते हैं। कर्मप्रकृतियोंके नामानुसार ही उनका अनुभव होता है अर्थात् उनकी फलदायक शक्ति कर्म-प्रकृतियोंके नामानुसार होती है। अब हम बातका निर्णय करते हैं कि, जो कर्म उदयमें आ कर तीव्र वा मन्द रस देते हैं, उन कर्मोंका आवरण जीवके साथ लगा रहता है या सार रहित हो कर आत्मासे पृथक् हो जाता है?

अनुभागबन्धके पश्चात् निर्जरा ही होती है; अर्थात् जो कर्मबन्ध हुआ, वह उदयके समय आत्माको सुख-दुःख दे कर आत्मासे पृथक् हो जाता है। यह निर्जरा दो प्रकारकी है—१ सविपाक निर्जरा और २ अविपाक निर्जरा।

प्रदेशबन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंकी प्रकृतियोंके कारणभूत और समस्त भावोंमें (वा समयोंमें) मन वचन कायके क्रियारूप योगोंसे आत्माके समस्त प्रदेशोंमें सूक्ष्म तथा एक क्षेत्रावगाहरूप स्थित जो अनन्तानन्त कर्मपुद्गलोंके प्रदेश हैं, उनको प्रदेशबन्ध कहते हैं। एक आत्माके असंख्य प्रदेश हैं। उनमेंसे प्रत्येक प्रदेशमें अनन्तानन्त पुद्गल-स्कन्धोंका (एक एक समयमें) बन्ध होता रहता है, उस बन्धको प्रदेशबन्ध कहते हैं। वे पुद्गलस्कन्ध ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति एवं उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेमें कारण हैं और मन-वचन-कायके हलनचलन (वा योग)से उनका आगमन होता है।

उपर्युक्त कर्म-प्रकृतियां पुण्य और पापके भेदसे दो प्रकारकी हैं। सातावेदनीयकर्म, शुभआयुकर्म, शुभनामकर्म और शुभगोत्रकर्म ये चार प्रकृतियां पुण्यरूप हैं। आठ कर्मप्रकृतियोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार प्रकृतियां तो आत्माके अनुजीवी गुणोंकी घातक हैं; इसलिए पापरूप ही समझी जाती हैं। बाकीकी चार प्रकृतियोंमें दो भेद हैं, जैसा कि कह चुके हैं।

मोक्षमार्ग—संसारमें हर एक प्राणी सुखकी इच्छा रखता है। किन्तु उसे अनेक प्रयत्न करने पर भी दुःखकी

सिवा कुछ हाथ नहीं आता। धनवान्‌से धनवान् व्यक्ति भी संसारमें प्रकृत सुखका अनुभव नहीं करता, प्रत्युत नई नई आकांक्षाओंकी पूर्ति न होनेसे दुःखी ही होता है। जैनधर्मका सिद्धान्त है कि सुख निवृत्तिसे ही मिल सकता है, प्रवृत्तिसे नहीं। इसी लिए जैनाचार्योंने मुक्त आत्माको परम सुखी कहा है। किन्तु वह मोक्ष-सुख हर एकको प्राप्त नहीं हो सकता। संसारमें यदि कोई कठिन कार्य है, तो वह यही है कि, अपनी आत्माको कर्मों वा पाप पुण्यसे पृथक् कर मुक्त करना। यही कारण है कि, चारों पुरुषार्थोंमें मोक्ष पुरुषार्थको परम पुरुषार्थ माना है। उस मोक्षका कारण जैनाचार्योंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र इन तीनोंका होना ही मोक्षका मार्ग वा मोक्षकी प्राप्तिका उपाय कहा है।

सम्यग्दर्शन—जो पदार्थ यथार्थमें जैसा है, उसको वैसा ही मानना अर्थात् 'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है' इस प्रकार दृढ़ विश्वास (श्रद्धान)-रूप जीवके परिणाम (भाव)-विशेषको सम्यग्दर्शन कहते हैं। विपरीताभिनिवेशरहित जीवादि तत्त्वोंका श्रद्धान (दृढ़ विश्वास) ही सम्यग्दर्शन है। अभिनिवेश अभिप्रायको कहते हैं; जैसा तत्त्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है, वैसा अभिप्राय न हो कर अन्यथा अभिप्रायका होना विपरीताभिनिवेश कहलाता है। तत्त्वार्थश्रद्धानका मतलब सिर्फ इतना ही नहीं है कि उन तत्त्वोंका निश्चयमात्र कर लेना। उसका अभिप्राय इस प्रकार है—जीव और अजीवको भली भांति पहचान कर अपनेको और परको यथार्थ (ज्योंका त्यों) पहचान लेना, आस्रवको पहचान कर उसे हेय समझना, बन्धको जान कर उसे अहितकर मानना, संवरको पहचान कर उसे उपादेय समझना, निर्जराको पहचान कर उसे हितका कारण मानना और मोक्षका स्वरूप समझ उसे परम हितकर समझना। ऐसे अभिप्रायको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इससे विपरीत अभिप्रायको विपरीताभिनिवेश समझना चाहिये। सम्यग्दर्शन होनेके बाद विपरीताभिनिवेशका अभाव हो जाता है; इसीलिए तत्त्वार्थश्रद्धान वा सम्यग्दर्शनको विपरीताभिनिवेश-रहित कहा गया है।

जीव और अजीव आदिका नामादि मालूम हो चाहे न हो, उनके स्वरूपको यथार्थ पहचान कर श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन सामान्यतः तत्त्वोंका स्वरूप जान कर उनका श्रद्धान करनेसे भी होता है और विशेषरूपसे तत्त्वोंको पहचान कर उनका श्रद्धान करनेसे भी। जैसे तुच्छज्ञानी पशु भी सम्यग्दृष्टि हैं, किन्तु उन्हें जीवादि पदार्थोंके नाम नहीं मालूम; सामान्यतः स्वरूप पहचान कर श्रद्धान करते हैं अर्थात् वे अपनी आत्माको और शरीरादि जड़ पदार्थोंको भिन्न भिन्न समझते हैं और वही उनका सम्यग्दर्शन है। इसी प्रकार, जो बहुत विद्वान् है, समस्त आगमको जानता है और जीवादि पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जान कर उनमें श्रद्धा करता है, उसके भी सम्यग्दर्शन है। परन्तु जो समस्त शास्त्रादिमें पारङ्गत हो कर भी तत्त्व-स्वरूपको यथार्थरूपसे पहचान कर उनमें श्रद्धा नहीं करते, उनके सम्यग्दर्शन नहीं होता अर्थात् वे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

जिसको प्रकृत स्वपरका वा आत्माका श्रद्धान (विश्वास) होगा, उसको सप्ततत्त्वका भी श्रद्धान अवश्य होगा। इसी तरह जिसको यथार्थ रूपसे सप्ततत्त्वका श्रद्धान होगा, उसे स्वपर वा आत्माका भी श्रद्धान जरूर होगा। ऐसा परस्पर अविनाभावी सम्बन्ध होनेके कारण स्वपरके अथवा आत्माके यथार्थ श्रद्धानको भी सम्यग्दर्शन कह सकते हैं। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि, सामान्यतः आत्माका ज्ञान होनेसे ही सम्यग्दर्शन हो जायगा; प्रत्युत ऐसा समझना चाहिये कि, स्वपरका श्रद्धान होते ही आत्मासे भिन्न कर्मोंका ज्ञान होगा और कर्मोंके सम्बन्धसे उसके आनेके द्वारस्वरूप आस्रवादिका ज्ञान होगा एवं उसके बाद निर्जराका भी ज्ञान होगा और उसके सम्बन्धसे मोक्षका भी श्रद्धान होगा। इस तरह सातों तत्त्वोंका एक दूसरेके साथ सम्बन्ध है, इस लिए आत्माका यथार्थ श्रद्धान होनेसे सबका श्रद्धान हो जाता है।

सम्यग्दर्शनयुक्त व्यक्तिका श्रद्धान निम्न प्रकार होता है—

धर्म—जो जीवोंको संसारके दुःखोंसे मुक्त कर उत्तम अविनश्वर सुखको देता है, वही धर्म है। वह

धर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-रूप है। देव—रागद्वेषरहित वीतराग, सर्वज्ञ (भूत, भविष्य और वर्तमानका ज्ञाता) और आगमका ईश्वर (सबको हितका उपदेश देनेवाला) ही यथार्थ देव है वही आप्त है, वही ईश्वर है, वही परमात्मा है। देव वही है जिसके क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता मद, अरति, खेद, स्वेद, निद्रा और आश्चर्य न हो। देव वही है जो उत्कृष्ट ज्योतियुक्त (केवलज्ञानयुक्त) हो, रागरहित हो, कर्म-मल (चार घातिया-कर्म) रहित हो, कृतकृत्य हो, सर्वज्ञ हो, आदि-मध्य-अनन्त रहित हो और समस्त जीवोंका हितकारी हो। आगम वा शास्त्र—शास्त्र वही है जो सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी आप्तद्वारा कहा गया हो, प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणोंसे विरोध रहित हो, वस्तु स्वरूपका उपदेश करनेवाला हो, सब जीवोंका हितकारक हो, मिथ्यामार्गका खण्डन करनेवाला हो और वादी प्रतिवादी द्वारा जिसका कभी भी खण्डन न हो सके। गुरु—गुरु वही है जो विषयोंकी आशाके वशीभूत न हो, आरम्भ (हिंसाजनित कार्य)-रहित हो, चौबीस प्रकारके परिग्रहोंका त्यागी हो और ज्ञान, ध्यान एवं तपमें लीन हो।

इस सम्यग्दर्शनके आठ अङ्ग हैं—(१) निःशङ्कित्व, (२) निःकांक्षित्व, (३) निर्विचिकित्सित्व, (४) अमूढ़-दृष्टित्व, (५) उपबृंहण, (६) स्थितिकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। जिस प्रकार मनुष्यशरीरके हस्त पादादि अङ्ग हैं, उसी प्रकार ये सम्यग्दर्शनके अङ्ग हैं। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें किसी अङ्गका अभाव हो, तो भी वह मनुष्यशरीर ही कहलाता है, उसी प्रकार यदि किसी सम्यग्दर्शन-युक्त आत्माके सम्यक्त्वके किसी अङ्गकी कमी हो, तो भी वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है। किन्तु उस अङ्गके बिना वह शरीर असुन्दर और अप्रशंसनीय अवश्य होता है। इसी प्रकार सम्यक्त्वमें भी समझना चाहिये। इसलिए अष्टाङ्गविशिष्ट सम्यग्दर्शन ही प्रशस्त है और पूर्ण सम्यक्त्व कहलाता है अर्थात् आठ अङ्गोंके बिना सम्यग्दर्शन अपूर्ण होता है।

१म निःशङ्कित-अङ्ग—वस्तुका स्वरूप यही है, इस प्रकार ही है, अन्य प्रकार नहीं है, इस प्रकार जैन मार्गमें खड्गके पानी (तलवारकी आब)के समान निश्चल श्रद्धाको निःशङ्किताङ्ग कहते हैं। इस अङ्गके होनेसे सर्वज्ञकथित श्रुतमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता। जैनशास्त्रोंमें इस अङ्गको पूर्ण रीतिसे पालनेवाले अञ्जनचोरका नाम प्रसिद्ध है।

२य निःकांक्षित-अङ्ग—जो कर्मोंके वश है, अन्त सहित है, जिसका उदय दुःखोंसे युक्त है और जो पापका बीजभूत है, ऐसे सांसारिक सुखमें अनित्यरूप श्रद्धा रखना अर्थात् सांसारिक सुखकी वाञ्छा नहीं करना ही निःकांक्षित नामक अङ्ग है। जैनशास्त्रोंमें इस अङ्गको पूर्णतया पालनेवाली अनन्तमतीका उल्लेख मिलता है। ३य निर्विचिकित्सित-अङ्ग—धर्मात्माओंके स्वभावसे अपवित्र किन्तु रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र)-से पवित्र शरीरमें ग्लानि न कर उनके गुणोंमें प्रीति करनेको निर्विचिकित्सितअङ्ग कहते हैं। इस अङ्गका पालक उद्दायन राजा प्रसिद्ध हुआ है। ४र्थ अमूढ़-दृष्टिअङ्ग—दुःखोंके मार्गरूप कुमार्ग वा मिथ्यामतमें एवं उसके अनुयायी मिथ्यादृष्टियोंमें मनसे सम्मत नहीं होना, वचनसे उनकी प्रशंसा नहीं करना और शरीरसे उनकी सहायता नहीं करना, यह अमूढ़-दृष्टिअङ्गका कार्य है। इस अङ्गके पालनेमें रेवती रानीने प्रसिद्धि पाई है। ५म उपगूहन अङ्ग—जो अपने आप ही पवित्र है, ऐसे जैनधर्मकी अज्ञानी एवं असमर्थ व्यक्तियोंके आश्रयसे उत्पन्न हुई निन्दाको दूर करनेका नाम है उपगूहनाङ्ग। इस अङ्गके पालनेमें जिनेन्द्रभक्त सेठने प्रसिद्ध पाई है। ६ष्ठ स्थितिकरण अङ्ग—सम्यग्दर्शनसे वा सम्यक्चारित्रसे डिगते हुए व्यक्तिको धर्ममें स्थिर कर देना, स्थितिकरणअङ्ग कहलाता है। इसके पालनेमें श्रेणिकराजाके पुत्र वारिषेणने ख्याति लाभ की है। ७म वात्सल्य अङ्ग—अपने सहधर्मी व्यक्तियोंसे सद्भाव रखना, निष्कपटताका व्यवहार करना और यथायोग्य उनका आदरसत्कार करना, वात्सल्याङ्ग कहलाता है। इस अङ्गके पालक विष्णुकुमार मुनि प्रसिद्ध हुए हैं। ८म प्रभावना अङ्ग—संसारमें चारों ओर अज्ञान अन्धकार फैला हुआ है; लोग नहीं जानते कि सुमार्ग

कौनसा है और कुमार्ग कौनसा है; वस्तुके यथार्थ स्वरूपसे वे सर्वथा अपरिचित हैं। इस प्रकारका विचार करके जिस प्रकारसे बने उस प्रकारसे अज्ञानान्धको दूर करनेके अभिप्रायसे जिनमार्गका माहात्म्य वा प्रभाव समस्त मतावलम्बियोंमें प्रगट कर देना; इसको प्रभावनाङ्ग कहते हैं। इसके पालनेमें भी उपर्युक्त विष्णुकुमार मुनिने प्रसिद्धि लाभ की है।

जैसे अक्षरहीन मन्त्र विषकी वेदनाको नष्ट नहीं करता, उसी प्रकार अङ्गरहित सम्यग्दर्शन भी संसारके कर्मजनित दुःखोंको दूर नहीं कर सकता। इसलिए अङ्गयुक्त सम्यग्दर्शन ही प्रशस्त है।

जैनशास्त्रोंमें सम्यग्दर्शनयुक्त व्यक्तिको उपर्युक्त आठ अङ्गोंका पालन करते हुए निम्नलिखित तीन मूढ़ता और आठ मदोंका भी सर्वथा परित्याग कर देनेका विधान है। तीन मूढ़ता—१ लोक-मूढ़ता—धर्म समझ कर गङ्गा, यमुना आदि नदियोंमें तथा समुद्रमें स्नान करना, बालू और पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना और अग्निमें जलना (जैसे पतिके पीछे सती होना आदि), यह सब लोक-मूढ़ता है (१)। २ देवमूढ़ता—आशावान् हो कर वरकी इच्छासे रागद्वेषरूप मलसे मलिन देवताओंकी जो उपासना की जाती है, उसे देव-मूढ़ता कहते हैं। ३ पाखण्डि-मूढ़ता—परिग्रह, आरम्भ और हिंसायुक्त संसारचक्रमें भ्रमण करनेवाले पाखण्डी साधु वा तपस्वियोंका आदर-सत्कार और भक्ति पूजादि करना, पाखण्डि मूढ़ता वा गुरु-मूढ़ता कहलाती है।

आठ मद—१ विद्याका मद, २ प्रतिष्ठाका मद, ३ कुलका मद, ४ जातिका मद, ५ शक्तिका मद, ६ सम्पत्तिका मद, ७ तपका मद और शरीरका मद। सम्यग्दृष्टि इन आठ मदोंका परित्याग करता है। इसके सिवा जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे भय, आशा, प्रीति और लोभसे कुदेव, कुशास्त्र और कुलिङ्गियों (पाखण्डी साधुओं) को प्रणाम और विनय भी नहीं करते हैं (२)।

(१) "आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥" (र० श्रा०)

(२) "भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥" ३० ॥ (र० श्रा०)

इस सम्यग्दर्शनके बिना हुए सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होता। सम्यग्दर्शनके बिना जो ज्ञान होता है, वह मिथ्याज्ञान कहलाता है और व्रतादि कुचारित्र कहलाते हैं। जैनशास्त्रोंमें सम्यग्दर्शनकी बहुत प्रशंसा की गई है; किन्तु बाहुल्य भयसे हम यहां उल्लेख नहीं करते।

(२) सम्यग्ज्ञान—जो ज्ञान वस्तुके स्वरूपको न्यूनतारहित, अधिकतारहित और विपरीततारहित जैसाका तैसा सन्देहरहित जानता है, उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सम्यग्ज्ञानयुक्त व्यक्ति प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार प्रकारके श्रुतको भली भांति जानता है। यह सम्यग्दर्शन पूर्वक ही होता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक जैन-श्रुतका ज्ञान होना ही सम्यग्ज्ञान है। इसके भेद प्रभेद आदि पहले श्रुतके वर्णनमें कह चुके हैं। और भी आगे चल कर "प्रमाण और नय" शीर्षकमें कुछ कहा जायगा।

(३) सम्यक्चारित्र—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक जो हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांचों पापप्रणालियोंसे विरक्त होना, सम्यक्चारित्र कहलाता है। इसके साधारणतः दो भेद हैं, १ सकलचारित्र और २ विकलचारित्र। समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे विरक्त मुनियोंके चारित्रको सकलचारित्र और गृह आदि परिग्रह-सहित गृहस्थोंके अणुव्रतादि पालन करनेको विकलचारित्र कहते हैं। (जैनाचार देखो)

जैनन्याय।

प्रमाण, नय और निक्षेप।—जिससे पदार्थके सर्वदेश (सर्वांश)का ज्ञान हो अथवा जो ज्ञान सच्चा हो वह प्रमाण कहलाता है। जिससे पदार्थके एकदेश (एकांश)का ज्ञान हो, उसे नय कहते हैं और युक्तिसे संयुक्त मार्गके होते हुए कार्यके वशसे नाम, स्थापना, द्रव्य और भावमें पदार्थके स्थापनको निक्षेप कहते हैं। इनसे जीवादि पदार्थोंका ज्ञान होता है। अब यथाक्रमसे इनका वर्णन किया जाता है।

पदार्थोंका निर्णय एवं उनकी परीक्षा प्रमाण द्वारा की जाती है। जैन सिद्धांतानुसार प्रमाणकी व्यवस्था इस प्रकार है—

'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं' यथार्थ ज्ञानका नाम ही प्रमाण

है। वस्तुका निर्णय करनेवाला ज्ञान है, बिना ज्ञानके जगत्में किसी पदार्थका कभी किसी व्यक्ति द्वारा निर्णय नहीं किया जा सका कारण कि जड़ पदार्थोंमें तो स्वयं निर्णायक शक्ति नहीं है, वे सभी जानने योग्य हैं, वे दूसरोंका परिज्ञान करानेकी योग्यता नहीं रखते, इसी लिये वे ज्ञेय अथवा प्रकाश्य मात्र कहे जाते हैं, इसके विपरीत ज्ञानमें ज्ञायकता है अर्थात् वह पदार्थोंका बोध कराता है, ज्ञानका कार्य ही यही है कि वह ज्ञेय-पदार्थोंको जाने। एक बात यह भी है कि बिना वस्तुका स्वरूप समझे उससे कोई हानि लाभका बोध नहीं कर सका। बिना हानि लाभका बोध किये छोड़ने योग्य पदार्थोंको छोड़ा भी नहीं जा सका एवं ग्राह्य पदार्थोंको ग्रहण भी नहीं किया जा सका, पदार्थगत गुण दोषोंका परिज्ञान होने पर ही उसे ग्रहण किया जा सका है एवं छोड़ा जा सका है इसलिये पदार्थ एवं तद्गत गुणदोषोंका बोध करा कर उसमें हेय उपादेय रूप बुद्धि करानेवाला ज्ञान ही प्रमाण हो सका है। अन्य दर्शनकारोंने इंद्रिय एवं सन्निकर्ष आदिको ही प्रमाण माना है। जैन उन्हें प्रमाण माननेमें यह आपत्ति देते हैं कि सन्निकर्ष - इन्द्रिय पदार्थका सम्बन्ध ही यदि प्रमाण माना जायगा तो घट पटादि पदार्थ भी प्रमाणकोटिमें लाने चाहिये, जिस प्रकार घट पटादि जड होनेसे प्रमाण नहीं कहे जा सके, उसी प्रकार इन्द्रिय पदार्थ सम्बन्ध रूप सन्निकर्ष भी जड़ होनेसे प्रमाण नहीं कहा जा सका। क्योंकि सम्बन्ध स्वयं बोध रूप नहीं है किन्तु बोध संबंधका उत्तर कार्य है, इसलिए वही प्रमाण है। दूसरे इन्द्रिय पदार्थ सम्बन्ध होने पर भी सीपमें चांदीका भान तथा पीतलमें सोनेका भान आदि होता है, सन्निकर्ष तो वहां उपस्थित नहीं है इसलिये इन मिथ्या ज्ञानोंको भी प्रमाण मानना पड़ेगा। तीसरे ईश्वरके इन्द्रियोंका तो अभाव है इसलिये उसके सन्निकर्ष कैसे बनेगा बिना उसके हुए उसका ज्ञान प्रमाण रूप नहीं कहा जा सका, यदि वहां भी सन्निकर्ष माना जायगा तो ईश्वरीय बोध सर्वज्ञ न हो कर अल्पज्ञ ठहरेगा। इत्यादि अनेक कारणोंसे जैन मतानुसार ज्ञानको ही प्रमाण माना गया है।

ज्ञानको प्रमाण मानता हुआ भी जैन दर्शन सामान्य ज्ञानको प्रमाण नहीं मानता, किन्तु, सम्यग्ज्ञान सत्य-ज्ञानको ही प्रमाण मानता है, यदि ज्ञानमात्रको प्रमाण माना जाय तो संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन मिथ्या ज्ञानोंमें भी प्रमाणता आ सक्ती है। उपर्युक्त तीनों ही ज्ञान पदार्थोंका ठीक ठीक बोध नहीं कराते इसलिये इन्हें मिथ्याज्ञान कहा जाता है। संशयज्ञान वहां होता है जहां दो कोटियों समान ज्ञान उत्पन्न होता है, जैसे रात्रिमें न तो पुरुषके हाथ पैर नाक मुंह आदिका ही स्पष्ट ज्ञान होता है और न वृक्षकी शाखा गुच्छे आदिका ही होता है, वैसी अवस्थामें एक लम्बायमान स्थाणु वृक्षके ठूंठको देख कर किसी पथिकको यह बोध होना कि यह वृक्ष है या पुरुष है, संशय ज्ञान कहा जाता है। इस संशयज्ञानमें न तो पुरुषका ही निश्चय हो सका और न वृक्षका ही हुआ, दोनों ज्ञान समान रूपसे हुए हैं, इसलिये पदार्थोंका निर्णय न होनेसे यह संशयज्ञान मिथ्या है। विपर्यज्ञानमें एक विपरीत कोटिका निश्चय हो जाता है। जैसे सीपमें किसी पुरुषको चांदीका निश्चय हो जाना, सीपमें चांदीका निश्चय एक कोटि ज्ञान है परन्तु वह विपरीत है इसलिये वह भी मिथ्याज्ञान है। अनध्यवसायमें भी पदार्थका निर्णय नहीं होता; किन्तु अव्यक्त सदृश अनिश्चयात्मक बोध होता है। जैसे मार्गमें गमन करते हुए किसी पुरुषके किसी वस्तुका स्पर्श होने पर उसे उसका निर्णय नहीं होता किन्तु कुछ लगा है ऐसा मलिन बोध होता है, ये ही अनध्यवसाय ज्ञान कहा जाता है। यह भी पदार्थ निश्चायक न होनेसे मिथ्याज्ञान है। इन तीनों ज्ञानोंका समावेश प्रमाणज्ञानमें नहीं होता। इसीलिये प्रमाणज्ञान सम्यग्ज्ञान कहा गया है। ज्ञानमें बिना सम्यक् विशेषण दिये मिथ्याज्ञानोंका परिहार नहीं हो सका। कुछ लोग ज्ञानको पर निश्चायक मानते हैं उसे स्वनिश्चायक नहीं मानते हैं। परन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि जो स्वनिश्चायक नहीं होता है वह परनिश्चायक भी नहीं होता है। जैसे घट पटादिक अपना प्रकाश नहीं करते हैं इसलिये वे परका भी प्रकाश करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। सूर्य एवं दीपक अपना

प्रकाश करते हैं इसलिये वे परका भी प्रकाश करते हैं। इसी प्रकार ज्ञान भी अपना प्रकाश करता हुआ ही दूसरे पदार्थोंका प्रकाश करता है। इस प्रकार अपना और परका प्रकाश करनेवाला निश्चयात्मक ज्ञान ही प्रमाण है। इसीसे वस्तुओंका निर्णय एवं परीक्षा होती है, इसीसे हेयपदार्थका त्याग एवं उपादेयका ग्रहण होता है।

प्रमाण वस्तुको सर्वांश रूपसे जानता है। अर्थात् जितने धर्म अथवा गुण वस्तुमें पाये जाते हैं उन सबोंको एक साथ प्रमाणज्ञान जान लेता है, इसीलिए प्रमाणका दूसरा लक्षण गुणमुखनिरूपणकी दृष्टिसे इस प्रकार है—

"एक गुणमुखेनाशेषवस्तु प्रतिपादनं प्रमाणम्।" एक गुणके द्वारा समस्त वस्तुका निरूपण करना प्रमाणका विषय है। जैसे जीव कहनेसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, आदि समस्त गुणोंके अखण्ड-पिण्ड रूप जीवपदार्थका बोध हो जाता है। यद्यपि जीव कहनेसे केवल जीवन या जीवत्व गुणका ही बोध होना चाहिये। परन्तु जीव कहनेसे अनंतशक्तिशाली जीवात्माका पूर्ण बोध हो जाता है। इसका कारण यह है कि एक पदार्थके जितने भी गुण होते हैं वे सब तादात्म्य रूप संबंधसे अभिन्न रूप रहते हैं, जैसे एक घड़ेमें जहां रूप है वहां रस भी है गंध भी है, स्पर्श भी है तथा घड़ेमें सर्वत्र ही रूप रस गंध स्पर्श है, ऐसा नहीं हो सकता कि कभी घटका कोई रंग तो न हो और रस गंध स्पर्श उसमें पाया जाय, अथवा रंग गंध रस तो हो परन्तु स्पर्श उसमें न पाया जाय, इससे यह बात भली भांति सिद्ध है कि वस्तु अनंतगुणोंका अखंड पिंड है और वे गुण परस्पर सभी अभिन्न हैं। इसी अनंत गुणोंकी अभिन्नताको तादात्म्यसम्बन्ध कहा जाता है। तादात्म्य सम्बन्ध होनेसे जहां एक गुणका कथन अथवा ग्रहण होता है वहां उससे अविनाभावी समस्त गुणोंका ग्रहण वा कथन हो जाता है। इसीलिये जीवको जीव शब्दसे भी कहा जाता है, उसे दृष्टा शब्दसे, चेतन शब्दसे, ज्ञान शब्दसे आदि अनेक शब्दोंसे कहा जाता है, यद्यपि दृष्टा कहनेसे केवल दर्शनशक्ति विशिष्ट-का ही ग्रहण होना चाहिये, परन्तु दृष्टा कहनेसे समस्त गुणधारी जीवका ग्रहण हो जाता है। इस कथनसे सिद्ध होता है कि प्रमाणवस्तुके सर्वांशोंको विषय करता है।

प्रमाण दो कोटियोंमें बटा हुआ है (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष। अर्थात् वस्तुका परिज्ञान दो रीतिसे होता है एक तो प्रत्यक्ष प्रमाण—साक्षात् ज्ञान द्वारा, दूसरे परोक्ष-प्रमाण—दूसरेकी सहायता द्वारा।

जो ज्ञान बिना किसीकी सहायताके साक्षात् आत्मासे पदार्थोंको जानता है वह प्रत्यक्षज्ञान कहा जाता है। ऐसा ज्ञान एक तो केवलज्ञानी सर्वज्ञ भगवान्‌के होता है, जो कि समस्त आवरणकर्मोंके दूर हो जाने पर समस्त लोकालोकवर्ती पदार्थोंको एक साथ एक समयमें साक्षात् जाननेवाला होता है। यह ज्ञान केवलज्ञानके नामसे प्रख्यात है। दूसरा उन कषाय वासनाविरहित निष्परिग्रही (छठे गुणस्थानवर्ती) नग्न दिगम्बर मुनियोंके होता है जो कि दूसरेके मनमें ठहरी हुई बातको प्रत्यक्ष रूपसे साक्षात् जान लेते हैं। हम लोग दूसरेके मनकी बातको अनुमान अंदाजेसे किसी संकेतसे अथवा अभिप्राय विशेषके मालूम करनेसे जान जाते हैं, वह जानना उस बातका प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता, परन्तु मुनिगण उस सूक्ष्म बातका प्रत्यक्ष कर लेते हैं उसे मनःपर्यय-ज्ञानके नामसे कहा जाता है। तीसरा उसी प्रत्यक्षका भेद अवधिज्ञानके नामसे लोकमें प्रगट है, यह ज्ञान योगियोंके सिवा एक सम्यग्ज्ञानधारी पुरुष, देव, नारकी और तिर्यञ्चके भी होता है। तिर्यंच पुरुषोंमें सभीके नहीं होता किन्तु विशेष काल एवं विशेष क्षेत्र-वर्ती किन्हीं किन्हीं पुरुष तिर्यञ्चोंके होता है। यह ज्ञान पुद्गलके ही स्थूल सूक्ष्म भेदोंको योग्यतानुसार जानता है।

जो दूसरेकी सहायतासे ज्ञान होता है वह परोक्ष कहा जाता है; लोकमें इन्द्रियोंसे होनेवाले ज्ञानको प्रत्यक्ष रूपमें व्यवहृत किया जाता है। जैसे मैंने अपनी आंखोंसे साक्षात् देखा है, मैंने अपने कानोंसे साक्षात् सुना है, मैंने छू कर देखा है, आदि इन्द्रियोंसे साक्षात् देखनेको लोकमें प्रत्यक्ष माना जाता है इसी-लिये इसे व्यवहार दृष्टिसे संव्यवहार-प्रत्यक्षके नामसे शास्त्रकार बतलाते हैं। वास्तवमें इन्द्रियजनित ज्ञान

परोक्ष कोटिमें शास्त्रकारोंने गिनाया है। क्योंकि इन्द्रियां भी आत्माकी अपेक्षा पर वस्तु हैं। जिस प्रकार चक्षुकी सहायतासे होनेवाला ज्ञान तथा दीपक, सूर्य, और पुस्तकका प्रकाश आदिकी सहायतासे होनेवाला ज्ञान परोक्ष कहलाता है, वह साक्षात् सीधा न हो कर परकी सहायतासे होता है उसी प्रकार वह ज्ञान भी आत्माके साक्षात् न हो कर इन्द्रियोंकी सहायतासे होता है, दूसरे इन्द्रियजनित ज्ञान उतना निर्मल नहीं हो सकता जितना कि साक्षात्ज्ञान होता है। इसलिये भी उसे परोक्ष कहते हैं।

परोक्षज्ञानके पांच भेद हैं, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। इन्हीं पांच भेदोंमें जगत्में भिन्न भिन्न रूपसे कहे जानेवाले नाना ज्ञान अंतर्भूत हो जाते हैं।

किसी पहले देखी हुई परोक्ष वस्तुका निमित्त पाकर स्मरण करनेको स्मृतिज्ञान कहा जाता है, जैसे पहले जैनकोष देखा हो, पीछे विश्वकोषको देख कर जैनकोषका स्मरण करना कि वह भी इतना ही विस्तृत है।

प्रत्यभिज्ञानमें स्मृतिसे एक कोटि और आगे बढ़ जाते हैं, जो पदार्थ पहले देखा था, कुछ दिन पश्चात् फिर उसी वस्तुके देखने पर यह ज्ञान होना, कि यह वही वस्तु जिसे पहले देखा था, इस प्रकारका ज्ञान न तो प्रत्यक्षज्ञानमें समाला जा सकता है क्योंकि वह वर्तमानमात्रको विषय करता है, यहां पर वर्तमानके साथ भूतका स्मरण भी जुड़ा हुआ है, और न वह स्मरणमें ही समाला जा सका है, उसमें केवल परोक्ष पदार्थका ही ग्रहण है, यहां पर वर्तमानका प्रत्यक्ष भी है, इसलिये जो ज्ञान भूतका स्मरण और वर्तमानका दर्शन, इन दोनों अंशोंको एक साथ ग्रहण करे वह प्रत्यभिज्ञान कहा जाता है। "यह वही है जिसे पहले देखा था" यहां पर "यह वही है" इतना वर्तमान अंश है, "जिसे पहले देखा था" यह भूतका स्मरणांश है, दोनोंका मिश्रित ज्ञान होनेसे तीसरा ही प्रमाण सिद्ध होता है।

तीसरा तर्कज्ञान है। व्याप्तिज्ञानको तर्क कहते हैं, अर्थात् अविनाभाव संबंधका ज्ञान हो जाने को ही तर्क कहते हैं। जहां धूम होता है वहां अग्नि अवश्य होती है; इसलिये अग्निके साथ धूमका अविनाभाव संबंध है, इस अविनाभाव सम्बन्धको व्याप्ति कहते हैं, इस व्याप्तिका, अविनाभाव सम्बन्धका निश्चयात्मकबोध होनेको तर्क कहते हैं। यह तर्क प्रमाण स्वतंत्र प्रमाण है किसी अन्य प्रमाणमें गर्भित नहीं किया जा सकता।

कुछ लोग तर्कका अर्थ तर्क वितर्क अथवा वाद विवाद करना बतलाते हैं, जैसे कहा जाता है कि उसने अनेक तर्क वितर्क किये, यहां पर तर्क शब्दका अर्थ शंका या वितंडावाद होता है, ऐसा तर्क शब्दार्थ प्रमाण कोटिमें नहीं लिया जा सकता, वह अप्रमाण है। प्रमाण रूप जो तर्कज्ञान है वह यथार्थ वस्तुका निश्चयात्मक बोध है, अनुमान प्रमाणमें कारण भूत है। यदि कारणमें विपर्यास हो तो अनुमान रूप कार्य भी मिथ्या ठहरेगा इसलिये तर्क प्रमाण एक स्वतन्त्र प्रमाण है। वह इस तर्क वितर्क रूप लौकिक अर्थसे सर्वथा जुदा होता है।

चौथा परोक्षज्ञान अनुमान प्रमाण है। जगत्के अनेक बहुभाग पदार्थोंका निर्णय इस अनुमान प्रमाणसे ही किया जाता है, हमारे इन्द्रियज्ञानसे बहुत थोड़े पदार्थ जाने जा सकते हैं, बाकी सब परोक्ष हैं, कोई तो कालसे परोक्ष है, जैसे रामरावणादिक, कोई क्षेत्रसे परोक्ष हैं जैसे विदेहक्षेत्र, सुमेरु पर्वत, नन्दीश्वर द्वीप आदि, कोई सूक्ष्म होनेके कारण परोक्ष हैं, जैसे परमाणु, काल, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश, जीव आदि। इन सब परोक्ष पदार्थोंका ज्ञान दो प्रकार होता है। एक आगम प्रमाणसे दूसरे अनुमान प्रमाणसे। दोनों ही प्रमाण वस्तुनिर्णायक सत्यरूप हैं, आगम प्रमाणकी व्याख्या आगे कही जायगी। यहां अनुमान प्रमाणका विवेचन किया जाता है इसके बिना समझे परोक्ष वस्तुओंका निर्णय करना असम्भव ही है।

पहले यह प्रकट कर देना आवश्यक है कि लोकमें जो लोगोंकी कहावतोंमें अनुमान लिया जाता है, जैसे मेरा अनुमान है कि वह वहां होना चाहिये, मैं अनुमान करता हूं कि अमुक पुरुषने उसकी चोरी की आदि, वह अनुमान यहां प्रमाण कोटिमें नहीं लिया जाता, ऐसे लौकिक अनुमानको संभावना या [illegible]

विश्वास समझना चाहिये। दूसरे प्रचलित शब्दमें ऐसे अटकलोंको कयास भी कह देते हैं वह प्रमाण नहीं हो सकता, जिससे विश्वास झूठा भी हो सकता है और सच्चा भी हो सकता है; परन्तु वह सच्चा ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है, यहां पर जिस अनुमानका विवेचन किया जाता है वह शास्त्रीय है, प्रमाणभूत है, नियमसे वस्तुका सच्चा बोध कराता है उसमें कभी संदेह या विपरीतपन नहीं हो सकता।

जैनसिद्धान्तने जो अनुमानका लक्षण किया है वह बिना वस्तुको यथार्थ साक्षा बोध हुए घटित हो नहीं होता। वह लक्षण इस प्रकार है—

"साध्या विनाभाविनो निश्चितसाधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम्" अर्थात् जो साधन-हेतु साध्यका अविनाभावी है, साध्यको छोड़ कर जो रह नहीं सका, ऐसे साधनसे साध्यका निश्चय कर लेना, इसीका नाम अनुमानप्रमाण है। दृष्टान्तके लिये धूमको ही ले लीजिए—धूम हेतुसे अग्निरूप साध्यका निश्चय हो जाना इसी निश्चयात्मक ज्ञानका नाम अनुमान है। यहां पर विचारणीय एवं प्रकृत बात यह है कि जिस धूम हेतुसे अग्निका निश्चय किया जाता है वह हेतु अग्निका निश्चित अविनाभावी है, अग्निको छोड़ कर धूम अन्यत्र रह नहीं सका, ऐसे धूमको देख कर जो कोई अग्निका निश्चय करेगा वह अवश्य यथार्थ होगा, उसमें विपर्ययता, संदिग्धता एवं अनिश्चितता कभी आ नहीं सकती, कारण जिस अविनाभावी हेतुसे साध्यका निश्चय होता है वह साध्यको छोड़ कर कभी रह नहीं सकता इसलिये निर्दोष साध्यका यथार्थ ज्ञान कराता है। [illegible]

वह जैनमतानुसारी हेतु साध्यके उपस्थित रहने पर ही होगा यदि साध्य नहीं होगा तो [illegible] नहीं [illegible]। ऐसे हेतुको देख कर साध्यका निश्चय [illegible] उसमें कभी कोई दूषण नहीं आ सकता। [illegible]

हेतुका अविनाभाव दो प्रकार होता है, एक सहभावनियम दूसरा क्रमभावनियमरूप। जहां दो पदार्थोंमें व्याप्य व्यापक भाव होता है, तथा जहां सहचर भाव होता है वहां सहभावनियम अविनाभाव होता है। [illegible] और [illegible] दोनोंमें [illegible] व्याप्य [illegible] है,

वृक्षत्व व्यापक है, वह अधिक देशमें रहता है, आम्रत्व व्याप्य है वह न्यून देशमें रहता है, इन दोनोंमें सहभाव नियम है और रस तथा रूपका सहचर भाव है उसमें भी सहभाव नियम अविनाभाव है।

तथा जो आगे पीछे होनेवाले पदार्थ हैं उनमें तथा जिसमें परस्पर कार्यकारणभाव है उनमें क्रमभाव नियम अविनाभाव है। जैसे दिन पहले रात्रि पीछे होती है अथवा दिन पीछे रात्रि पहले होती है, इनमें क्रमभाव नियम अविनाभाव है तथा धूम कार्य है अग्नि कारण है, कारण पहले होता है पीछे कार्य होता है। इसलिये इनमें भी क्रमभाव नियम अविनाभावी है।

इस कथनका तात्पर्य यह न समझना चाहिये कि जब कि व्याप्य व्यापकमें सहचर पदार्थोंमें क्रमसे होनेवाले कार्य कारणमें और पूर्व उत्तर होनेवाले पदार्थोंमें परस्पर नियमसे अविनाभाव है, तब व्याप्य हेतुसे व्यापकको, कार्य हेतुसे कारणको पूर्व होनेवाले हेतुसे उत्तर पदार्थकी सत्ताका नियमसे निश्चयात्मक यथार्थ बोध हो जाता है, क्योंकि वे सभी साधन ऐसे हैं, जो बिना साध्यके कभी उत्पन्न ही नहीं हो सकते, इसलिये नियमसे साध्य सिद्धि कराते हैं, इस प्रकार निश्चित अविनाभावी हेतु ही जैनसिद्धान्तमें सद्धेतु कहा जाता है। और इस प्रकारके सद्धेतु द्वारा सिद्ध किया हुआ साध्य सदनुमान कहा जाता है।

इस साध्यके बिना नहीं होनेवाले एवं साध्यके सद्भावमें ही होनेवाले अविनाभावी हेतुके बिना जितने भी हेतु प्रयोग हैं वे चाहे पक्ष सपक्षमें रहनेवाले क्यों न हों और विपक्षसे व्यावृत्ति रखनेवाले क्यों न हों सभी हेत्वाभास हैं।

यद्यपि नैयायिक वैशेषिक एवं बौद्ध आदि दार्शनिक उसी हेतुको सद्धेतु कहते हैं जो पक्ष सपक्ष वृत्ति विपक्ष व्यावृत्ति रूप होता है, परन्तु ऐसा त्रिरूपात्मक हेतु भी ठीक साध्य साधक नहीं होनेसे सद्धेतु कहलाने योग्य नहीं है। देखिये—किसी मैत्र नामके पुरुषकी गर्भिणी स्त्रीको देख कर चैत्र नामक पुरुष यदि यह अनुमान करे कि "गर्भस्थो बाल श्यामो भवितु महति-[illegible] मैत्रतनयत्वात्।" अर्थात् गर्भमें

बैठा हुआ बालक श्यामवर्ण होना चाहिये क्योंकि वह मैत्रका पुत्र है, जो जो मैत्रपुत्र होते हैं वे सब श्यामवर्ण होते हैं जैसे कि उपस्थित ४ पुत्र, जो मैत्रपुत्र नहीं होते वे श्यामवर्ण भी नहीं होते जैसे रैवतकपुत्र। रैवतकपुत्र सभी गौरवर्ण देख कर और मैत्रपुत्र सभी श्यामवर्ण देख कर वैवने अन्वय व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा गर्भस्थ मैत्रपुत्रको श्यामवर्ण सिद्ध करनेके लिये मैत्रपुत्रत्व हेतुका प्रयोग किया है, यह मैत्रपुत्रत्वहेतु गर्भस्थ बालक रूप पक्षमें रहता ही है, सपक्ष जो परिदृष्ट मैत्रके बालक हैं उनमें भी मैत्रपुत्रत्व हेतु रहता है, विपक्ष रैवतिकके पुत्रोंमें मैत्रपुत्रत्व हेतु नहीं रहता है इसलिये यह हेतु पक्षवृत्ति सपक्षवृत्ति और विपक्षव्यावृत्ति स्वरूप होने पर भी सद्हेतु नहीं है, कारण कि गर्भस्थ बालक "श्यामवर्ण ही होगा" यह बात निश्चयपूर्वक सिद्ध नहीं की जा सकी, सम्भव है वह बालक गौर वर्ण होय, इसलिए सन्देहास्पद होनेसे अनैकान्तिक हेत्वाभास है। फिर भी इसे नैयायिक आदि सिद्धान्तकारोंने किस प्रकार सद्हेतु मान लिया है सो कुछ समझमें नहीं आता है।

एक बात यह भी स्मरण रखने योग्य है कि जैन दर्शनकार अनुमान हेतु द्वारा साध्यके निश्चयरूप ज्ञान ही जानेको कहते हैं इसके विपरीत अन्य दर्शनकार 'यह पर्वत अग्नि वाला होना चाहिए क्योंकि यहां धूम है' यह प्रतिज्ञारूप वाक्यप्रयोगको ही अनुमान बतलाते हैं, परन्तु वास्तवमें इस वाक्यप्रयोगको अनुमान प्रमाण मानना युक्तियुक्त नहीं सिद्ध होता, कारण कि प्रमाण ज्ञानरूप ही हो सक्ता है तभी उसके द्वारा वस्तु सिद्ध हो सकती है। वाक्यप्रयोग जड़ स्वरूप है उससे वस्तु सिद्धि नहीं हो सक्ती, हां! वाक्यप्रयोग ज्ञानरूप अनुमान प्रयोगमें साधक अवश्य है।

यह साध्यविज्ञानस्वरूपअनुमान दो कोटियोंमें विभक्त है- एक स्वार्थानुमान दूसरा परार्थानुमान। जहां स्वयं निश्चित अविनाभावी साधनसे साध्यका ज्ञान कर लिया जाता है वहां स्वार्थानुमान कहलाता है, और जहां दूसरे पुरुषको प्रतिज्ञा और हेतुका प्रयोग कर साधनसे साध्यका बोध कराया जाता है वहां परार्थानुमान कहलाता है। कारणहेतु, कार्यहेतु, पूर्वचरहेतु, उत्तरचरहेतु, सहचरहेतु आदि अविनाभावी हेतुओंके भेदसे अनुमानके अनेक भेद हैं। जो न्यायदीपिका, प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री आदि जैनग्रन्थोंसे विदित होते हैं।

जैनियोंके यहां पांचवां परोक्ष प्रमाण आगमप्रमाण है। आगमका लक्षण वे लोग इस प्रकार कहते हैं— "आप्तवचनादि निबन्धनमर्थज्ञानमागमः" ९९ (परीक्षामुख:) अर्थात् जिसमें आप्त वचन कारण हों ऐसा पदार्थ ज्ञान आगम कहा जाता है। जैनियोंने ज्ञानको आगम माना है- वचन और शास्त्रोंको जो आगमता है वह उनके यहां उपचरित है, वचन और शास्त्र उस समीचीनज्ञानमें कारण पड़ते हैं इसलिए उपचारसे उन्हें भी आगम कहा जाता है। वास्तवमें तो वचनजनित बोध होता है उसीका नाम आगम है। आगम प्रत्येक व्यक्तिके वचनसे होनेवाले ज्ञानको नहीं कहते हैं किन्तु सत्यवक्ताके वचनोंसे होनेवाले ज्ञानको ही आगम कहते हैं। क्योंकि आगमके लक्षणमें आप्त वचनको कारण माना गया है, आप्त सत्यवक्ताका नाम है। इसलिए सत्यवक्ताके वचनोंको सुन कर जो बोध होता है वही आगम है। सर्वश्रेष्ठ सत्यवक्ता जैनियोंके यहां अर्हन्त हैं, अर्हन्त उन्हें कहा जाता है जो आत्मासे—आत्मगुणोंको घात करनेवाले कर्मोंको सर्वथा नष्ट कर चुके हों, सर्वथा रागद्वेषका नाश कर वीतराग बन चुके हों, एवं जगत्के समस्त चर-अचर पदार्थोंको साक्षात् एक समयमें प्रत्यक्ष रूपसे देखते और जानते हों, ये अर्हन्त जैनियोंके यहां जीवन्मुक्त एवं सकल परमात्माके नामसे कहे जाते हैं, उनकी जो दिव्यवाणी खिरती है वह बिना इच्छाके जीवोंके पुण्योदयसे सुतरां खिरती है, अर्हन्त सर्वज्ञ हो चुके हैं, इसलिये उनके इच्छा भी नष्ट हो चुकी है, वह दिव्यवाणी सत्य इसलिये कही जाती है कि एक तो समस्त पदार्थोंके ज्ञानसे उत्पन्न होती है, दूसरे— उसमें रागद्वेष कारण नहीं है। रागद्वेष अल्पज्ञता ये दो ही कारण झूठ बोलनेमें हो सक्ते हैं, अर्हन्तके दोनों बातोंका अभाव है इसलिये उनका वचन सत्य रूप है उससे जो बोध होता है वही आगम है। पश्चात्

सर्वज्ञके वचनव्याख्यानुकूल जो गणधर आचार्य आदिके वचन हैं उनसे होनेवाला बोध भी आगममें परिगणित है। जैनाचार्योंके बनाये हुए शास्त्र भी आगम हैं, कारण कि उनमें भी उन्हीं अर्हन्तदेवका परम्परा उपदेश है।

जैनसिद्धांत आगमकी प्रमाणतामें यह हेतु देता है कि वह पूर्वापर अविरुद्ध है, उसके कथनमें आगे पीछे कहीं भी विरोध नहीं है। विरोध नहीं होनेका कारण भी यह है कि उसका वचन युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी है, कोई भी प्रबल युक्ति एवं प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण उस आगममें बाधित नहीं होते, बाधित न होनेका भी प्रमाण यह है, कि जो कुछ भी पदार्थ व्यवस्था जैनशास्त्र बतलाता है—जीव कर्म सम्बन्ध, जीवोंके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावोंका विवेचन, द्रव्यनिरूपण, स्याद्वादनिरूपण, पुद्गलद्रव्य आदि द्रव्योंका परिणाम, आदि सभी विवेचनाएं जैसी आगममें प्रतिपादित की गई हैं वे युक्तिसे प्रमाणसे, एवं स्वानुभावसे उसी प्रकार पायी जाती हैं। इसीलिए जैनागम प्रमाण है। जब जैनागममें प्रमाणता सिद्ध हो जाती है तब जैनागम कथित समस्त पदार्थोंमें भी प्रमाणता सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार परोक्ष प्रमाणके पांच भेद जो ऊपर निरूपण किये गये हैं, उन्हींमें उपमान, ऐतिह्य, पारिशेष्य, शब्द, प्रतिपत्ति, अभाव आदि प्रमाण गर्भित हो जाते हैं। उपमान प्रमाण जैनियोंके यहां प्रत्यभिज्ञानमें गर्भित है। ऐतिह्य स्मृतिमें गर्भित है, पारिशेष्य अनुमानमें गर्भित है, शब्द आगम और अनुमानमें गर्भित है, प्रतिपत्ति ज्ञानात्मक होनेसे प्रमाणमें सुतरां अंतर्भूत है। जैनियोंने अभाव प्रमाण इसलिये नहीं माना है कि वे किसी पदार्थका नाश नहीं मानते, पदार्थ सभी उनके मतसे नित्य हैं, केवल एक पर्याय अवस्थाको छोड़ कर दूसरी अवस्था धारण करते रहते हैं। उनके यहां पूर्व पर्यायका नाश उत्तर पर्याय स्वरूप है। जैसे घटका नाश कपालस्वरूप एवं लकड़ीका जलना अग्नि तथा भस्मस्वरूप है। इसलिये जैनसिद्धांतने अभावको स्वतंत्र प्रमाण स्वीकार नहीं किया है।

स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और स्वार्थानुमान ये चारों मतिज्ञानके अंतर्गत हैं, परार्थानुमान और आगम श्रुतज्ञानमें गर्भित हैं। इसीलिये मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण कहे जाते हैं, अवधि मनःपर्यय और केवल ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, इसलिए उपर्युक्त पांचों ही ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष इन दो भेदोंमें बटे हुए हैं एवं पांचों ही सम्यग्ज्ञान होनेसे प्रमाण हैं, अब इनके भेद प्रभेदोंका वर्णन किया जाता है—

प्रमाण—प्रमाणके साधारणतः दो भेद हैं, १ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष। आत्मा जिस ज्ञानके द्वारा इन्द्रिय आदि अन्य पदार्थोंकी सहायताके बिना ही पदार्थको अत्यन्त निर्मल (स्पष्ट) जान ले, उसे प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं। जो चक्षु आदि इन्द्रियों तथा शास्त्रादिसे पदार्थको एकदेश (एकांश) निर्मल जाने, उसे परोक्षप्रमाण* कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण भी सांव्यवहारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है। जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे पदार्थको एकदेश जाने, उसे सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष और जो बिना किसीकी सहायताके पदार्थको स्पष्ट जाने, उसे पारमार्थिकप्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिकप्रत्यक्षके दो भेद हैं, एक विकल पारमार्थिकप्रत्यक्ष और दूसरा सकलपारमार्थिकप्रत्यक्ष। जो रूपी पदार्थोंको बिना किसी इन्द्रियकी सहायताके स्पष्ट जाने, उसे विकलपारमार्थिकप्रत्यक्ष और जो भूत-भविष्य-वर्तमानके रूपी एवं अमूर्तिक लोकालोकके सम्पूर्ण पदार्थोंको स्पष्ट जाने, उसे सकलपारमार्थिकप्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रमाण पांच हैं, १ मति, २ श्रुत, ३ अवधि, मनःपर्यय और केवल। इनमेंसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको परोक्षप्रमाण, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानको विकलपारमार्थिक प्रत्यक्षप्रमाण और केवलज्ञानको सकलपारमार्थिकप्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं।

१म मतिज्ञान-जो ज्ञान पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे हो, उसे मतिज्ञान कहते हैं। १ स्मृति, प्रत्यभिज्ञान (संज्ञा), तर्क (चिन्ता) और अनुमान (अभिनिबोध) इसीके अन्तर्गत हैं, जैसा कि ऊपर कहा है। इसके चार भेद हैं। १ अवग्रह, २ ईहा, ३ अवाय, ४ धारणा। इन्द्रिय और पदार्थके योग्य स्थानमें (वर्तमान स्थानमें)

* इसीके एक भागको अनुमान प्रमाण भी कहते हैं।

होने पर सामान्य प्रतिभासरूप दर्शनके पीछे जो अवांतर सत्ता रहित विशेष वस्तुका ज्ञान होता है, उसे अवग्रह कहते हैं। अर्थात् किसी वस्तुकी सत्तामात्रको देखने या जाननेको दर्शन वा दर्शनोपयोग कहते हैं और दर्शनके पश्चात् जो श्वेतकृष्णादि रूप विशेष जाननेको अवग्रह-मतिज्ञान कहते हैं। इसके बाद अर्थात् अवग्रहमति-ज्ञानके पश्चात् 'यह श्वेत वा कृष्ण क्या पदार्थ है?' इसके विशेष जाननेकी इच्छा होनेको ईहामतिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान इतना कमजोर है कि किसी पदार्थमें ईहा हो कर छूट जाय, तो उसके विषयमें कालांतरमें भी संशय और विस्मरण हो जाता है। ईहासे जाने हुए पदार्थमें 'यह वही है, अन्य नहीं' ऐसे दृढ़ ज्ञानको अवायमतिज्ञान कहते हैं। अवायमें जाने हुए पदार्थमें संशय नहीं होता, किन्तु विस्मरण हो जाता है। और जिस ज्ञानसे जाने हुए पदार्थको काला-न्तरमें नहीं भूले अर्थात् कालांतरमें भी उस पदार्थमें संशय और विस्मरण न हो, उसे धारणामतिज्ञान कहते हैं।

मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंके दो भेद हैं व्यक्त और अव्यक्त। व्यक्त पदार्थको अवग्रहादि चारों हो ज्ञानसे जाना जा सकता है; किन्तु अव्यक्त पदार्थका सिर्फ अवग्रहसे ही बोध होता है। व्यक्त पदार्थोंके अवग्रहको अर्थावग्रह और अव्यक्त पदार्थोंके अवग्रहको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। अर्थावग्रह तो पांचों इन्द्रिय और मनसे होता है; किन्तु व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मनके सिवा अवशिष्ट चार इन्द्रियोंसे ही होता है। व्यक्त और अव्यक्त प्रत्येकके बारह बारह भेद हैं; यथा—बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिःसृत, उक्त, अनुक्त ध्रुव और अध्रुव। इन बारह प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह ईहादिरूप ग्रहण वा ज्ञान होता है। जैसे—एक साथ बहुत अवग्रहादिरूप ग्रहण होना, बहुग्रहण है इत्यादि।

२य श्रुतज्ञान—मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थसे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे—'घट' शब्द सुननेके बाद उत्पन्न हुआ कम्बुग्रीवादि रूप घटका ज्ञान। यह श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक अर्थात् मतिज्ञान होनेके बाद ही होता है; बिना मतिज्ञान हुए श्रुतज्ञान नहीं होता। इसके मुख्यतः दो भेद हैं, एक अङ्गबाह्य और दूसरा अङ्गप्रविष्ट। श्रुतका विशेष विवरण पहले "जैन शास्त्र वा श्रुत" शीर्षकमें लिखा जा चुका है, अतः यहां नहीं लिखा गया।

उपरोक्त मति और श्रुतज्ञान दोनों परोक्ष प्रमाण कहलाते हैं।

३य अवधिज्ञान—जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादाको लिए हुये रूपी पदार्थका बिना किसी इन्द्रियको सहायताके स्पष्ट जानता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इसके प्रधानतः दो भेद हैं—१ भवप्रत्यय अवधिज्ञान और २ क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान। भव (जन्म) ही है प्रत्यय अर्थात् कारण जिसमें, ऐसे अवधिज्ञानको भवप्रत्यय कहते हैं; भवप्रत्यय नामक अवधिज्ञान देव और नारकियोंके होता है। कारण उस भव (जन्म)-में यही प्रभाव है कि, वहां कोई भी जीव जनमे, उसे अवधिज्ञान नियमसे होगा। किन्तु दूसरा क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपशमसे होता है और वह क्षयो पशम व्रत, नियम, तपश्चरण आदिसे होता है। मुनिगण जब बहुत तपस्या आदि करते हैं, तब उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त होता है इसमें भी इतना भेद है कि सम्यग्दृष्टिके जो अवधिज्ञान होता है, उसे ही अवधिज्ञान कहते हैं और जो मिथ्यादृष्टियोंके होता है, उसे विभङ्गावधि कहते हैं। क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान मनुष्य और संज्ञी पञ्चे-न्द्रिय तिर्यञ्चोंके सिवा अन्य किसीको भी नहीं होता। इसमें भी सम्यग्दर्शनादिके निमित्तसे जो क्षयोपशमनिमि-त्तक अवधिज्ञान होता है, उसे गुणप्रत्यय कहते हैं। इस क्षयोपशमनिमित्तक गुणप्रत्यय अवधिज्ञानके छः भेद हैं। यथा—१ अनुगामी, २ अननुगामी, ३ वर्द्ध-मान, ४ हीयमान, ५ अवस्थित, और ६ अनवस्थित। अनुगामी—जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवके साथ गमन करे, उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं, १ क्षेत्रानुगामी, २ भवानुगामी और ३ उभयानु-गामी। जिस जीवको जिस क्षेत्रमें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ, उस जीवके अन्य क्षेत्रमें गमन करने पर भी जो (अवधि-

ज्ञान) साथ जाता है, उसे क्षेत्रानुगामी ; जो जीवके पर-भवको गमन करते समय (परलोक पर्यन्त) साथ जाता है, उसे भवानुगामी और जो अन्य क्षेत्र एवं अन्य भव, दोनोंमें साथ जाता है, उसे उभयानुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। अननुगामी—जो अवधिज्ञान अपने स्वामी (जीव)-के साथ गमन नहीं करता, उसे अननुगामी कहते हैं। इसके भी तीन भेद हैं, १ क्षेत्राननुगामी, २ भवाननुगामी और ३ उभयाननुगामी। इनका अर्थ अनुगामीके भेदोंसे उल्टा समझना चाहिये। वर्द्धमान—जो सम्यग्दर्शनादि गुणरूप विशुद्ध परिणामों (भावों)की वृद्धिके कारण दिनों दिन बढ़ता ही जाता है, उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं। हीयमान—जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी हीनतासे तथा संक्लेश परिणामों (अशुद्ध वा क्लेशित भावों)की वृद्धिसे घटता जाता है, उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं। अवस्थित—जो जितने परिमाणको लिये उत्पन्न हुआ है, बराबर उतना ही रहे अर्थात् न घटे और न बढ़े, उसे अवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं। अनवस्थित—अवस्थितसे विपरीत जो घटता बढ़ता है, उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं। इसमें प्रतिपाती और अप्रतिपाती ये दो भेद शामिल करनेसे इसके आठ भेद भी होते हैं।

इसके अतिरिक्त जैनशास्त्रोंमें अवधिज्ञानके और भी कई प्रकारसे भेद किये हैं। यथा—१ देशावधि, २ परमावधि और ३ सर्वावधि। इनमेंसे देशावधिके उपरोक्त छ वा आठ भेद हैं। परमावधि और सर्वावधि केवलज्ञान उत्पन्न होने पर्यन्त जीवका अनुगामी रहता है। इसके सिवा परमावधि और सर्वावधिज्ञानयुक्त पुरुष (वा मुनि) पुनः जन्मग्रहण न कर उसी जन्ममें केवलज्ञान पूर्वक मोक्ष प्राप्त करता है; इसलिए भवान्तर वा जन्मान्तरके अभावकी अपेक्षासे उक्त दोनों प्रकारके अवधिज्ञानोंको अननुगामी भी कहा जा सकता है। ये दोनों ज्ञान अप्रतिपाती ही हैं; क्योंकि केवलज्ञान उत्पन्न होने तक छूटते नहीं। परमावधि वर्द्धमानस्वरूप है, हीयमान नहीं। परमावधि और सर्वावधि ये दोनों ज्ञान चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी संयमी मुनियोंमें ही होता है, अन्य तीर्थङ्करादि गृहस्थ मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नारकियोंके* नहीं होता। देशावधिज्ञान गुणप्रत्यय और भवप्रत्यय दोनों प्रकार होता है।

(४) मनःपर्ययज्ञान—जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिये हुये दूसरेके मनमें अवस्थित रूपी पदार्थको स्पष्ट जान लेता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यह दो प्रकारका है-१ ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान और २ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान। ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान—जो ज्ञान मन-वचनकायकी सरलता लिए हुए दूसरेके मनमें स्थित रूपी पदार्थ अर्थात् हृदयगत भावोंको जानता है, उसका नाम है ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान। जिसकी मति ऋज्वी अर्थात् सरल है, वह ऋजुमति है। ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानके तीन भेद हैं, १ ऋजु-मनस्कृतार्थज्ञ (सरल मन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञापक), २ ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (सरल वचन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञापक) और ३ ऋजुकाय कृतार्थज्ञ (सरल काय द्वारा किये गये अर्थ का ज्ञापक)। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है--किसी मनुष्यने मनसे व्यक्तरूप पदार्थकी चिन्ता की, धार्मिक वा लौकिक वचनोंका भी भिन्न भिन्न रूपसे उच्चारण किया एवं कायकी भी अनेक चेष्टाएं की और थोड़े ही दिन बाद वह सब भूल गया; किन्तु ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान-युक्त मुनिसे पूछने पर वे सब वृत्तान्त खुलासा बता देंगे; इसीका नाम ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है। विपुलमति-मनःपर्ययज्ञान—जो ज्ञान दूसरेके मनमें स्थित मन-वचन-कायके द्वारा किये गये सरल और कुटिल (वक्र) दोनों प्रकारके रूपी पदार्थ (हृदयगत भावों वा विचारों) को जानता है, उसे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान कहते हैं। जिसकी मति विपुल अर्थात् सरल और कुटिल दोनों प्रकारकी है वह विपुलमति है। ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ, ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ, ऋजुकायकृतार्थज्ञ, वक्रमनस्कृतार्थज्ञ, (कुटिल वा वक्र मन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञापक), वक्रवाक्कृतार्थज्ञ (वक्र वचन द्वारा किये गये अर्थका ज्ञापक) और वक्रकायकृतार्थज्ञके भेदसे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान छ

* इनके देशावधिज्ञानकी ही योग्यता है अर्थात् गृहस्थ मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारकियोंका अवधिज्ञान देशावधि कहलाता है।

प्रकारका है। इस ज्ञानसे दूसरेके हृदयगत वक्र वा सरल सम्पूर्ण प्रकारके विचारोंका ज्ञान हो जाता है तथा अपने और परके जीवन, मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ आदिका भी ज्ञान होता है। इसके सिवा जिस पदार्थकी व्यक्त मन द्वारा वा अव्यक्त मन द्वारा चिन्ता की गई है अथवा भविष्यमें चिन्ता की जायगी इत्यादि समस्त विषय इस ज्ञानसे मालूम हो जाते हैं। यह द्रव्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके विषयका निरूपण किया गया है। कालकी अपेक्षा विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी जघन्यरूपसे ७। ८ भवों (जन्मों) के गमनागमनको जानता है और उत्कृष्ट रूपसे असंख्य भवोंके गमनागमनको जानता है तथा क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य रूपसे तीन योजनसे आठ योजन तकके पदार्थोंको जानता है और उत्कृष्ट रूपसे मनुषोत्तर पर्वत (जम्बू-द्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप तक) के भीतरके पदार्थोंको जानता है।

परिणामोंकी विशुद्धता एवं अप्रतिपात (केवलज्ञान उत्पन्न होने तक न छुटना)-के कारण इन दोनोंमें विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान श्रेष्ठ और पूज्य है। सर्वावधिज्ञानके सूक्ष्म विषय (एक परमाणु तकका प्रत्यक्षज्ञान)से भी अनन्तवें भाग सूक्ष्म द्रव्यको मनःपर्ययज्ञान जान सकता है।

(५) केवलज्ञान—जिस ज्ञानके द्वारा त्रिकालवर्त्ती सम्पूर्ण पदार्थों एवं उनकी अनन्त पर्यायोंका स्पष्ट ज्ञान हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं। अथवा यों समझिये कि सर्वज्ञ वा ईश्वरके ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। आत्माके ज्ञानका पूर्ण विकाश होना ही केवलज्ञान है; इससे बड़ा ज्ञान संसारमें और दूसरा नहीं है। यह ज्ञान विशुद्ध आत्मा वा परमात्माको ही प्राप्त होता है। इस ज्ञानके प्राप्त होने पर आत्मा सर्वज्ञ वा ईश्वर कहलाने लगता है। एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्त्ती अनन्त अवस्थायें हैं, सभी द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञानी युगपत् (एकसाथ) जानता है। इसके भेद प्रभेद कुछ भी नहीं है। इस ज्ञानके होने पर मति श्रुतादि ज्ञान नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् यह ज्ञान आत्मामें एकाकी ही रहता है।

एक आत्मामें एकसे लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं, पांच नहीं। एक होने पर केवलज्ञान होगा। दो होने पर मति और श्रुत, तीन होने पर मति श्रुत और अवधि तथा चार होने पर मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान होंगे।

उपर्युक्त पांच ज्ञानोंमेंसे मति, श्रुत और अवधिज्ञान ये तीन विपरीत भी होते हैं। ऊपर कहे हुए ज्ञान सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होते हैं, इसलिए शुभ हैं। इनसे विपरीत जो तीन ज्ञान हैं वे मिथ्यादर्शनपूर्वक होते हैं; उन्हें १ कुमति, २ कुश्रुत और ३ कुअवधिज्ञान कहते हैं। सत् और असत्रूप पदार्थोंके भेदका ज्ञान नहीं होनेसे स्वेच्छारूप यद्वा तद्वा जाननेके कारण उन्मत्तके ज्ञानके समान ये (कुमति, कुश्रुत और कुअवधि) तीनों ज्ञान मिथ्या हैं। मद्यसेवनसे उन्मत्त पुरुषका, भार्याको माता और माताको स्त्री कहना वा समझना, यह ज्ञान मिथ्या है। किसी समय यदि वह माताको माता और स्त्रीको स्त्री भी कहे, तो भी उसका ज्ञान सम्यक् नहीं हो सकता; क्योंकि उसे माता और भार्याके भेदाभेदका यथार्थ ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शनके उदयसे सत् और असत्का भेद नहीं समझनेके कारण कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ज्ञानयुक्त व्यक्तिका यथार्थ जानना भी मिथ्याज्ञान है। इस प्रकारसे ज्ञानके आठ भेद भी हैं।

नय—वस्तुके एकदेश (एकांश)को जाननेवाले ज्ञानका नाम 'नय' है। अर्थात् वस्तुमें अनेक धर्म (स्वभाव) होते हैं, उनमेंसे किसी एक धर्मको मुख्यता लेकर अविरोधरूप साध्य पदार्थको जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। प्रधानतः नयके दो भेद हैं, एक निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय। वस्तुके किसी यथार्थ अंशको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको निश्चयनय कहते हैं। जैसे, मिट्टीके घड़ेको मिट्टीका घड़ा कहना। और किसी निमित्तवशात् एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानका नाम व्यवहारनय है। जैसे मिट्टीके घड़ेको घी रहनेके कारण घीका घड़ा कहना। इनमेंसे निश्चयनयके भी दो भेद हैं, एक द्रव्यार्थिकनय और दूसरा पर्यायार्थिकनय। जो द्रव्य अर्थात् सामान्यको

ग्रहण करे, उसे द्रव्यार्थिकनय और जो विशेष (गुण वा पर्याय)को विषय करे, उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

निश्चयनयान्तर्भुक्त द्रव्यार्थिकनय नैगम, संग्रह और व्यवहारके भेदसे तीन प्रकारका है। नैगमनय - दो पदार्थोंमेंसे एकको गौण और दूसरेको प्रधान करके भेद अथवा अभेदको विषय करनेवाले एवं पदार्थके संकल्पको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको नैगमनय कहते हैं। संसारमें जितने भी द्रव्य हैं, वे सब अपनी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंमें अन्वयरूप (जोड़रूप) हैं अर्थात् खोय किसी भी पर्यायसे कोई द्रव्य भिन्न नहीं है। इसमें भूत और भविष्यको पर्यायों (अवस्थाओं)का वर्तमानकालमें सङ्कल्प करनेवाले ज्ञानका नाम नैगमनय है। जैसे कोई व्यक्ति रोटी बनानेकी सामग्री इकट्ठी कर रहा है; उससे किसीने पूछा कि "क्या कर रहे हो?" इसके उत्तरमें उसने कहा, "रोटी बना रहा हूं।" किन्तु वह अभी उसकी सामग्री ही इकट्ठी कर रहा था, रोटी नहीं बनाता था; तथापि नैगमनयसे उसका कहना ठीक है। क्योंकि उसने भविष्यको अवस्थाका वर्तमानमें संकल्प किया है। संग्रहनय—जो ज्ञान एक वस्तुको सम्पूर्ण जातिको एवं उसको पर्यायोंको संग्रहरूप करके एकस्वरूप ग्रहण करे, उसे संग्रहनय कहते हैं। जैसे, द्रव्य कहनेसे जोव अजीवादि तथा उनके भेद प्रभेद आदि सबको समझना अथवा मनुष्य कहनेसे स्त्री-पुरुष वृद्ध बालक आदि सभीका बोध होना। व्यवहारनय—जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधिपूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहरण अर्थात् भेदप्रभेद करता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं। जैसे, द्रव्यके भेद जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल तथा इनके भी पृथक् पृथक् भेद करना।

निश्चय नयका दूसरा भेद पर्यायार्थिकनय है। यह चार प्रकारका है, १ ऋजुसूत्रनय, २ शब्दनय, ३ समभिरूढ़नय और ४ एवम्भूतनय। ऋजुसूत्रनय—अतीत और अनागत दोनों अवस्थाको छोड़ कर जो वर्तमान अवस्थामात्रको ग्रहण करे, उसे ऋजुसूत्रनय कहते हैं। द्रव्यकी अवस्था समय समयमें पलटती रहती है। एकसमयवर्ती पर्याय (अवस्था)को अर्थपर्याय कहते हैं। यह अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्रकी पर्यायको ग्रहण करता है। शब्दनय—जो व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग, कारक, वचन, काल, उपसर्ग आदिके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करे, वह शब्दनय है। जैसे—दार, भार्या और कलत्र ये तीनों भिन्न भिन्न लिङ्गके शब्द एक ही स्त्री पदार्थके वाचक हैं; किन्तु शब्दनय स्त्री-पदार्थको तीन भेदरूप ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारकादिके भी दृष्टान्त समझने चाहिये। समभिरूढ़नय—अनेक अर्थोंको छोड़ कर जो एक ही अर्थमें रूढ़ वा प्रसिद्ध वस्तुको जाने वा कहे, उसे समभिरूढ़नय कहते हैं। जैसे—गो शब्दके गमन आदि अनेक अर्थ हैं, तथापि मुख्यतासे गो गाय वा बैलका ही ग्रहण किया जाता है; उसको चलते, बैठते, सोते सब अवस्थाओंमें गो कहना समभिरूढ़नय है। एवम्भूतनय—जो जिस समय जिस क्रियाको करता हो, उसको उस समय उस ही नामसे पुकारना वा जानना, एवम्भूतनय है। जैसे—देवोंके पति इन्द्रको उसी समय कहना जब वे अपने सिंहासन पर बैठे हों, पूजन अभिषेक आदि करते समय उन्हें इंद्र न कह कर पूजक (पूजारी) कहना, इत्यादि।

व्यवहारनय वा उपनयके तीन भेद हैं, १ सद्भूतव्यवहारनय, २ असद्भूतव्यवहारनय और ३ उपचरितव्यवहारनय अथवा उपचरितासद्भूतव्यवहारनय। सद्भूतव्यवहारनय—एक अखण्डद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे, जीवके केवलज्ञानादि वा मतिज्ञानादि गुण हैं। असद्भूतव्यवहारनय—उसे कहते हैं जो मिले हुए विभिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करता है। जैसे, सप्तधातुमय शरीरको जीवका शरीर कहना। उपचरितव्यवहारनय—उसे कहते हैं जो अत्यन्त भिन्न भिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करता है। जैसे, हाथी, घोड़ा, मकान आदिको अपना (जीवका) समझना वा कहना। नय देखो

निक्षेप।—निक्षेपका स्वरूप पहले कह चुके हैं। इसके सामान्यतः चार भेद हैं, १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप और ४ भावनिक्षेप। नामनिक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाको अपेक्षा बिना ही इच्छानुसार

लोकव्यवहारके लिए किसी पदार्थकी संज्ञा रखनेको नामनिक्षेप कहते हैं। जैसे किसीने अपने पुत्रका नाम हाथी, सिंह रक्खा, किन्तु उसमें हाथी और सिंह दोनोंके ही गुण नहीं हैं। इसी प्रकार संसारमें चतुर्भुज, धनपाल, कुबेरदत्त आदि नाम रक्खे जाते हैं, किन्तु ये नाम गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षासे नहीं, वरन् नामनिक्षेपकी अपेक्षासे रक्खे जाते हैं। स्थापना-निक्षेप—धातु, काष्ठ, पाषाण मिट्टी आदिकी मूर्ति वा चित्रादिमें तथा शतरंजकी गोटी आदिमें हाथी, घोड़ा, बादशाह प्रभृतिकी जो कल्पना की जाती है, उसे स्थापनानिक्षेप कहते हैं। तदाकार और अतदाकारके भेदसे स्थापनानिक्षेप दो प्रकारका है। जो पदार्थ जिस आकारका हो, उसकी वैसे ही आकारके पाषाण, काष्ठ वा मृत्तिका आदिमें स्थापना करनेको तदाकारस्थापना कहते हैं और प्रकृत पदार्थका आकार जिसमें न हो, ऐसे किसी भी पदार्थमें किसीकी कल्पना करना अतदाकार स्थापना है। जैसे, पार्श्वनाथ भगवान्‌की वीतराग रूप जैसीकी तैसी शान्तमुद्रायुक्त धातु वा पाषाणमय मूर्तिकी प्रतिष्ठा करना ; यह तदाकार स्थापना है और शतरंजकी गोटीको बादशाह मानना, यह अतदाकार स्थापना है। नामनिक्षेपमें पूज्यापूज्यबुद्धि नहीं होती, किन्तु स्थापनानिक्षेपमें होती है। द्रव्यनिक्षेप—जो पदार्थोंमें भूत वा भविष्यत् अवस्थाकी स्थापना करता है, उसे द्रव्यनिक्षेप कहते हैं। जैसे, युवराजको राजा कहना वा भूतपूर्व सचिवको वर्तमानमें सचिव कहना। भाव-निक्षेप—जिस पदार्थकी वर्तमानमें जैसी अवस्था हो, उसे उसीरूप कहना, भावनिक्षेप है। जैसे, काठको काठ अवस्थामें काठ कहना और जल कर कोयला होने पर कोयला कहना। ये निक्षेप ज्ञेय वा पदार्थके होते हैं। और इनसे सात तत्त्वों एवं सम्यग्दर्शनादिके न्यास अर्थात् लोकव्यवहार होता है।

लोक-रचना वा जगत्‌का स्वरूप—जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य हों अर्थात् त्रिभुवन-को लोक कहते हैं। लोकका आकार इस प्रकार है—

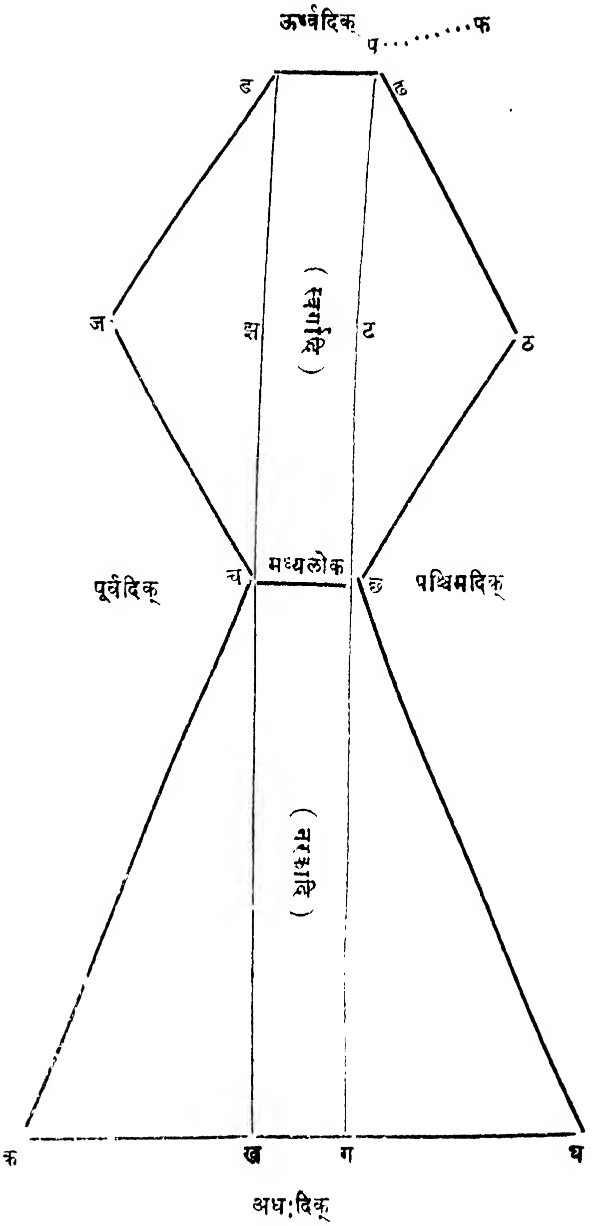

पूर्व-पश्चिमका परिमाण। यथा, क—ख = ३ राजू, ख—ग = १ रा०, ग—घ = ३ राजू, क—घ = ७ राजू, च—छ = १ रा०, ज—झ = २ रा०, झ—ट = १ रा०, ट—ठ = २ रा०, ज—ठ = ५ रा०, ड—ढ = १ रा०। उच्चताका परिमाण। यथा, ख—च वा ग—छ = ७ राजू, च—झ वा छ—ठ = ३॥ रा०, झ—ड वा ट—ढ = ३॥ रा०, ख—ड अथवा ग—ढ = १४ राजू। दक्षिण-उत्तरका परिमाण (अथवा मोटाई)। यथा, प—फ = ७ रा०। विशेष,—इसे ख और ग से ढ तक जो एक राजू चौड़ा और १४ राजू ऊँचा स्थान है, उसे 'त्रसनाडी' कहते हैं; इसीमें स्वर्ग, नरकादि हैं।

लोककी ऊंचाई चौदह राजू* है, मोटाई (उत्तर और दक्षिण दिशामें) सर्वत्र सात राजू है और चौड़ाई (पूर्व-पश्चिम)-का विस्तार विभिन्न प्रकार है जो ऊपर लिखा गया है। गणित करनेसे लोकका क्षेत्रफल ३४३ घन राजू होता है। यह लोक सब तरफसे तीन वात (वायु)-वलयों द्वारा इस प्रकार वेष्टित है जैसे वृक्ष अपनी छालसे अर्थात् लोक घनोदधिवातवलयसे, घनोदधिवातवलय घनवातवलयसे और घनवातवलय तनुवातवलयसे वेष्टित है। तनुवातवलय आकाशके आश्रय है आकाश अपने ही आश्रय है। आकाशको अन्य आश्रयकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि वह सर्वव्यापी है। इस लोकके बीचमें १ राजू चौड़ी १ राजू लम्बी और १४ राजू ऊंची 'त्रसनाड़ी' है। त्रसजीव इसी त्रसनाड़ीमें होते हैं, इसी लिए इसका नाम त्रसनाड़ी पड़ा है। त्रसनाड़ीके बाहर त्रसजीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती।

यह लोक तीन भागोंमें विभक्त है—(१) अधोलोक, (२) मध्यलोक और (३) ऊर्ध्वलोक। इसी लिए इसका नाम त्रिभुवन पड़ा है। नीचेसे ले कर ७ राजूकी ऊंचाई तक अधोलोक है, सुमेरु पर्वतकी ऊंचाईके समान (अर्थात् एक लाख चालीस योजन ऊंचा) मध्यलोक † है और सुमेरुपर्वतसे ऊपर अर्थात् १,००,०४० योजन कम ७ राजू प्रमाण ऊर्ध्वलोक है।

१। अधोलोक—इसका घनफल १९६ राजू है। इस लोकमें जीव पापके उदयसे उत्पन्न होते हैं। अधोलोकका वर्णन हम मध्यलोकके नीचेसे प्रारम्भ करेंगे। मध्यलोक (जिस पर हम लोग रहते हैं, उस एक हजार योजन ‡ मोटी चित्रा पृथ्वी)के नीचेसे अधोलोकका प्रारम्भ है। प्रथम ही मेरुपर्वतकी आधारभूत रत्नप्रभा पृथिवी है, जिसका पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण दिशाओंमें लोकके अन्त पर्यन्त विस्तार है। इसकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। इस रत्नप्रभाके 'अब्बहुल भाग'में त्रसनाड़ीके भीतर प्रथम नरक है, जिसका नाम धम्मा है। रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे पृथ्वीके आधारभूत घनोदधि, घन और तनु ये तीन वातवलय हैं। इन तीनों वातवलयोंकी मोटाई २० हजार योजन है। तनुवातवलयके नीचे कुछ दूर पर्यन्त केवल आकाश है और उसके नीचे ३२ हजार योजन मोटी और पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशाओंमें लोकके अन्त तक विस्तारयुक्त शर्कराप्रभा नामक दूसरी पृथिवी है। यहां त्रसनाड़ीके भीतर भीतर वंशा नामक दूसरा नरक है। इसके नीचे तीन वातवलय और आकाशके बाद तीसरी पृथिवी बालुकाप्रभा है। यहां (त्रसनाड़ीके मध्य) मेघा नामक ३रा नरक है। इस पृथिवीकी मोटाई २८ हजार योजन है। इसी क्रमके अनुसार चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं पृथिवी विन्यस्त है, जिनके क्रमवार नाम इस प्रकार हैं—पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा। इनमेंसे ४थी पृथिवी पङ्कप्रभाकी मोटाई २४००० योजन, ५वीं धूमप्रभाकी २०००० योजन, ६ठी तमःप्रभाकी १६००० योजन और महातमःप्रभा नामक ७वीं पृथिवीकी मोटाई ८००० योजन है। चित्रा पृथिवीके नीचेसे (मेरुकी जड़से) २य पृथिवी शर्कराप्रभाके अन्त पर्यन्त एक राजू पूरा हुआ है; इसमेंसे दोनों पृथिवियोंकी मोटाई दो लाख बारह हजार योजन घटा देनेसे दोनों पृथिवियोंका अन्तर निकल आता है। दूसरी पृथिवीके अन्तसे तीसरी पृथिवीके अन्त तक एक राजू पूरा होता है; इसी तरह तीसरीके अन्तसे चौथीके अन्त तक एक राजू, चौथीसे पांचवीं तक एक राजू, पांचवींसे छठी तक एक राजू और छठीके अन्तसे सातवीं पृथिवीके अन्त तक एक एक राजू पूरा होता है। सातवीं पृथिवीके नीचे एक राजू प्रमाण आकाश निगोद आदि जीवोंसे भरा हुआ है; वहां कोई पृथिवी नहीं है। तीसरी पृथिवी तकके नरकोंके नाम ऊपर कह चुके हैं। चौथी पृथिवी पर अञ्जना नामक चतुर्थ नरक है। पांचवीं पृथिवी पर

---

* परिमाणविशेष; इसका विवरण अन्तमें दिये हुए "अलौकिक गणित"में देखो।

† मध्यलोकका क्षेत्रफल ४ घनराजू है अर्थात् मध्यलोकका क्षेत्र चतुष्कोण है।

‡ जैनमतानुसार अकृत्रिम पदार्थोंका जहां वर्णन होता है, वहां योजन २००० कोशका माना जाता है। लोकके वर्णनमें भी २००० कोशका योजन समझें।

अरिष्टा नामक पांचवां नरक है। छठी पृथिवी पर मघवी नामक ६ठा नरक है और सातवीं पृथिवी पर माघवी नामक ७ वां (अन्तिम) नरक है। ये सब नरक त्रसनाड़ीके भीतर ही हैं; अर्थात् नारकी जीवोंकी उत्पत्ति और निवासस्थान त्रसनाड़ीके भीतर ही है। अब नरकोंका वर्णन किया जाता है।

रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भाग हैं, १ खरभाग २ पङ्कभाग और ३ अब्बहुलभाग। खरभागकी मोटाई १६००० योजन, पङ्कभागकी ८४००० योजन और अब्बहुलभागकी मोटाई ८०००० योजन है। इनमेंसे खरभागमें असुरकुमारके अतिरिक्त शेष नव प्रकारके भवनवासीदेव * तथा राक्षसभेदके सिवा शेष सात प्रकारके व्यन्तरदेव † निवास करते हैं। २ य पङ्कभागमें असुरकुमार और राक्षसोंका वास है। ३य अब्बहुलभागमें प्रथम नरक है।

उक्त सातों पृथिवियों पर त्रसनाड़ीके मध्य सात नरक हैं और उन सातों नरकोंमें नारकियोंके रहनेके स्थानस्वरूप तलघरोंकी भांति ४८ पटल हैं। प्रथम नरकमें १३ पटल हैं, दूसरेमें ११, तीसरेमें ८, चौथेमें ७, पांचवेंमें ५, छठेमें ३ और सातवेंमें १ पटल है। ये पटल उक्त भूमियोंके ऊपर-नीचेके एक एक हजार योजन छोड़ कर समान अन्तर पर स्थित हैं। प्रथम नरकके १ले पटलका नाम है सीमन्तक। इस सीमन्तक पटलमें १ लाख योजन व्यासयुक्त गोल इन्द्रक बिल (नरक) है। इस प्रकार प्रथम नरकमें ३० लाख बिल हैं; दूसरे नरकमें २५ लाख, तीसरे नरकमें १५ लाख, चौथे नरकमें १० लाख, पांचवें नरकमें ३ लाख, छठे नरकमें ५ कम १ लाख और सातवें नरकमें कुल पांच ही बिल (नरक) हैं। ये बिल गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि आकारके हैं। इनमें कई संख्यात और कई असंख्यात योजन विस्तृत हैं। सातों नरकोंके इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंकी संख्या ८४ लाख है। नारकी जीव इन्हींमें रहते हैं।

नारकी जीव सर्वदा अशुभतर लेश्या*-युक्त, अशुभतर परिणामयुक्त, अशुभतर शरीरके धारक, अशुभतर वेदनायुक्त और अशुभतर विक्रिया † करनेवाले होते हैं। निरन्तर अशुभ कर्मोंका उदय होते रहनेसे इनके हृदयगत भाव, विचार आदि सर्वदा अशुभ ही रहते हैं। ये परस्पर एक दूसरेको पीड़ा देते रहते हैं, अर्थात् कुत्ता बिल्लीकी तरह हमेश लड़ते-भिड़ते रहते हैं। तीसरे नरक तक असुरकुमारदेव जा कर वहांके नारकियोंको मेढ़ोंकी तरह लड़ाते और तमाशा देखते हैं। इसके बाद चौथेसे सातवें नरक पर्यन्त कोई भी भिड़ाता नहीं स्वयं ही लड़ा करते हैं। नारकियोंको कुअवधिज्ञानसे पहले जन्म-जन्मान्तरोंकी शत्रुता याद आती है और उसका बदला लेनेके लिए सर्वदा व्यस्त रहते हैं। इनमेंसे पहले नरकके पहले पटलमें उत्पन्न होनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई ३ हाथकी है। द्वितीय आदि पटलोंमें क्रमश: वृद्धि हो कर पहले नरकके १३वें पटलमें सात धनुष और सवा तीन हाथकी ऊंचाई है। पहले नरकमें जो उत्कृष्ट ऊंचाई है, उससे कुछ अधिक दूसरे नरकके नारकियोंकी जघन्य (कमसे कम) ऊंचाई है। द्वितीय तृतीय आदि नरकोंमें ऊंचाई क्रमशः दूनी दूनी होती गई है और अन्तिम (७म) नरकमें उत्कृष्ट ऊंचाई ५०० धनुषकी हो गई है।

पहले नरकमें नारकियोंकी उत्कृष्ट (अधिकसे अधिक) आयु १ सागरकी है, दूसरेमें ३ सागरकी, तीसरेमें ७ सागरकी, चौथेमें १० सागरकी, पांचवेंमें १७ सागरकी, छठेमें २२ सागरकी और सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयु ३३ सागरकी है।

ऊपर कहे हुये पहले चार नरकों तथा पाँचवें नरकके तृतीयांशमें उष्णताकी तीव्र वेदना है। इसके नीचे अर्थात् पांचवेंके कुछ अंशमें तथा ६ठे और ७वें नरकमें शीतकी तीव्र वेदना है। उष्णता इतनी अधिक होती है कि वहांके नारकी यदि लवणसमुद्रका जल पी लें तो भी उनकी प्यास नहीं बुझती और शीत भी इतनी ज्यादा होती है कि, सुमेरुके समान लोह भी गल जाय तो आश्चर्य नहीं। किन्तु नारकियोंका वैक्रियिक शरीर

* भवनवासियोंके दश भेद हैं, यथा— असुरकुमार, नागकुमार, विद्युतकुमार, सुवर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

† व्यन्तरोंके आठ भेद हैं, यथा—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, और पिशाच।

* कषायोंसे अनुरंजित योग प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

† जिसकी वजहसे शरीरके नाना तरहके रंग, रूप, आकार बन सकें।

होनेसे उसका बिना आयु पूर्ण हुए नाश नहीं होता और इसी लिए इतने कष्ट होते रहने पर भी उनकी अकालमृत्यु नहीं होती। कोई किसीको कोल्हूमें पेर रहा है, तो कोई किसीको गरम लोहेसे चुपटा रहा है और कोई किसीको प्रज्वलित अग्निमें डाल रहा है। इस प्रकार नरकोंमें घोर दुःख हैं। नारकी जीव मर कर नरक और देवगतिमें जन्मग्रहण नहीं करते, किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च गतिमें ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य और तिर्यञ्च ही मर कर नरकमें उत्पन्न होते हैं। देवगतिमें मरण करके कोई भी जीव नरकमें उत्पन्न नहीं होता। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव मर कर पहले नरक पर्यन्त ही जन्म ले सकता है; आगे नहीं। इसी प्रकार सरीसृप जातिके जीव दूसरे नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे नरक तक, सिंह पांचवें नरक तक, स्त्री छठे नरक तक और कर्मभूमिके मनुष्य तथा मत्स्य सातवें नरक तक जन्मग्रहण कर सकते हैं। यदि कोई जीव निरन्तर नरकमें उत्पन्न होता रहे, तो पहले नरकमें ८ बार तक, दूसरेमें ७ बार, तीसरेमें ६ बार, चौथेमें ५ बार, पांचवेंमें ४ बार, छठेमें ३ बार और सातवें नरकमें २ बार तक जन्म ले सकता है; इससे अधिक नहीं। किन्तु जो जीव सातवें नरकसे आया है उसको सातवें या किसी अन्य नरकमें जाना ही पड़ता है वा तिर्यञ्च गतिमें अव्रती उत्पन्न हो सकता है; देव वा मनुष्ययोनिमें जन्मग्रहण नहीं कर सकता। छठे नरकसे निकले हुए जीव मनुष्य हो कर मुनिका चारित्र धारण नहीं कर सकते; अर्थात् उनके भाव इतने उज्ज्वल नहीं होते। इसी प्रकार पांचवें नरकसे निकले हुए जीव मोक्ष नहीं जा सकते, चौथेसे निकले हुए तीर्थङ्कर नहीं हो सकते। १ले, २रे और ३रे नरकसे निकल कर जीव देवगतिमें जाता है और वहांसे फिर तीर्थङ्कररूपमें जन्मग्रहण कर सकता है। नरकसे निकले हुए जीव बलभद्र नारायण और प्रतिनारायण और चक्रवर्ती नहीं हो सकते।

२ मध्यलोक—यह लोकके ठीक मध्यस्थलमें है, इसलिए इसका नाम मध्यलोक पड़ा। अधोलोकसे ऊपर मध्यलोक है जो एक राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा और एक लाख चालीस योजन ऊंचा है। इस मध्यलोकके ठीक बीचमें गोलाकार एक लाख योजन व्यासयुक्त जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीपको खाईकी भांति घेरे हुए लवणसमुद्र है जिसकी चौड़ाई सर्वत्र दो लाख योजनकी है। इस लवणसमुद्रको घेरे हुए गोलाकार (चूड़ीकी भांति) धातुकीखण्डद्वीप है जिसकी चौड़ाई सर्वत्र ४ लाख योजन है। धातुकीखण्डको घेरे हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है और कालोदधि समुद्रको चारों तरफसे घेरे हुए सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। इस प्रकारसे क्रमशः दूने दूने विस्तारयुक्त परस्पर एक दूसरेको घेरे हुए असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। अन्तमें स्वयम्भूरमण समुद्र और उसके चारों कोनोंमें पृथिवी (भूमि) है। पुष्कर द्वीपके बीचमें (चूड़ीकी भांति) एक पर्वत है जिसका नाम है मनुषोत्तरपर्वत। इस पर्वतके रहनेसे पुष्करद्वीप दो भागोंमें विभक्त है। जम्बूद्वीप, धातुकीद्वीप और पुष्करद्वीपका भीतरी भाग, ये ढाई द्वीप कहलाते हैं और इसीके भीतर भीतर मनुष्योंकी उत्पत्ति होती है। मनुषोत्तरपर्वतके बाद मनुष्योंका अस्तित्व नहीं है, वहां सिर्फ तिर्यञ्चोंका ही वास है। जलचर जीव लवणोदधि, कालोदधि और अन्तके स्वयम्भूरमण समुद्रमें ही होते हैं अन्य समुद्रोंमें नहीं।

जम्बूद्वीपसे दूनी रचना धातुकीखण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीपमें है। जम्बूद्वीप (जैनमतानुसार) देखो। मनुष्यलोकके भीतर अर्थात् ढाई द्वीपमें पन्द्रह कर्मभूमि और तीस भोगभूमियां हैं।

इस जम्बूद्वीपके भरत और ऐरावतक्षेत्रमें काल-परिवर्तन हुआ करता है। उन्नतिरूप और अवनतिरूप इस तरह कालके दो विभाग हैं। उन्नतिरूप कालको उत्सर्पिणी और अवनतिरूप कालको अवसर्पिणी कहते हैं। किन्तु अन्य क्षेत्रोंमें काल-परिवर्तन नहीं होता। बीचके विदेहक्षेत्रमें सदा ४र्थ काल रहता है। इसके बीचमें अर्थात् सुमेरुके आसपास देवकुरु और उत्तरकुरु नामक क्षेत्रोंमें सर्वदा प्रथमकालकी रचना रहती है। दूसरे कालके आदिकी रचना हरि और रम्यक क्षेत्रमें रहती है। तीसरे कालके आदिकी रचना हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रमें अवस्थित है। अन्तके आधे स्वयम्भूरमणद्वीप और समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें तथा उसके

चारों कोनोंकी भूमिमें सदा पञ्चमकालके आदिकी रचना रहती है। इसके अतिरिक्त मनुषोत्तर पर्वतके बाहर समस्त द्वीपोंमें तथा कुभोगभूमियोंमें तीसरे कालके आदि जैसी जघन्य भोगभूमिकी रचना होती है। लवणसमुद्र और कालोदधिसमुद्रमें ९६ अन्तर्द्वीप हैं, जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। भोगभूमियोंके विषयमें तो पहले कुछ कह चुके हैं, अब कुभोगभूमियोंका वर्णन किया जाता है। इन कुभोगभूमियोंमें एक पल्य आयुके धारक कुमनुष्य निवास करते हैं, जिनकी आकृति नाना प्रकार है। किसीके केवल एक जङ्घा है, किसीके पूँछ है, किसीके सींग हैं, कोई गूँगे हैं, किसीके कान बहुत लम्बे हैं जो ओढ़नेके काममें आते हैं, किसीका मुँह सिंह जैसा, किसीका घोड़ा, कुत्ता, भैंसा, वा बन्दर आदिके समान है। ये कुमनुष्य वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें रहते हैं और वहांकी मीठी मिट्टी खाते हैं। ये भोगभूमियोंके मनुष्योंकी तरह मर कर नियमसे देव होते हैं।

इसी मध्यलोकमें ज्योतिष्क देवोंका भी निवास है; अतएव अब ज्योतिषचक्रका वर्णन करते हैं। ज्योतिष्क देवोंके पांच भेद हैं—(१) सूर्य, (२) चन्द्र, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारका। इस चित्रा पृथिवीसे ७९० योजन* ऊपर तारे हैं, तारोंसे १० योजन ऊपर सूर्य हैं, सूर्यसे ८० योजन ऊपर चन्द्र हैं और चन्द्रसे ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रोंसे ४ योजन ऊपर बुधग्रह हैं, बुधोंसे ३ योजन ऊपर शुक्र हैं, शुक्रोंसे ३ योजन ऊपर गुरु हैं, गुरुओंसे ३ योजन ऊपर मङ्गल हैं और मङ्गलोंसे ३ योजन ऊर्ध्वमें शनैश्चर हैं। बुधादि पाँच ग्रहोंके सिवा और भी तिरासी ग्रह हैं, जिनमेंसे राहुके विमानका ध्वजादण्ड चन्द्रके विमानसे और केतुके विमानका ध्वजादण्ड सूर्यके विमानसे चार प्रामाणाङ्गुल (परिमाणविशेष) नीचे है। अवशिष्ट ८१ ग्रहोंके रहनेकी नगरी बुध और शनिके बीचमें है। देवगतिके चार भेदोंमेंसे ज्योतिष्क जातिके देव इन विमानोंमें निवास करते हैं। इस ज्योतिष्क-पटलकी मोटाई ऊर्ध्व और अधः दिशामें ११० योजन है तथा विस्तार पूर्व पश्चिममें लोकके अन्त (घनोदधि वातवलय) पर्यन्त और उत्तर-दक्षिणमें १ राजू है। किन्तु सुमेरु पर्वतके चारों तरफ ११५१ योजन तक ज्योतिष्क विमानोंका सद्भाव नहीं है। मनुष्यलोक अर्थात् ढाई द्वीप तक ज्योतिष्क विमान सर्वदा सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। परन्तु जम्बूद्वीपमें ३६, लवणसमुद्रमें १३९, धातुकीखण्डमें १०१०, कालोदधिमें ४११२० और पुष्करार्द्धद्वीपमें ५३२३० ध्रुव-तारे हैं जो कभी चलते नहीं। मनुष्यलोकके बाहर समस्त ज्योतिष्क-विमान गतिशून्य हैं। किन्तु समस्त ज्योतिष्क-विमानोंका उपरिभाग आकाशकी एक ही सतहमें है। तारोंमें परस्परका अन्तर कमसे कम १/७ कोश है और ज्यादासे ज्यादा १००० योजन। इस समस्त ज्योतिष्कविमानोंका आकार आधे गोलेके समान अर्थात् ऐसा है। इन विमानोंके ऊपर ज्योतिष्कदेवोंके नगर अवस्थित हैं जो अत्यन्त रमणीय और जिन-मन्दिरोंसे शोभित हैं।

जैन शास्त्रोंमें चन्द्रको इन्द्र और सूर्यको प्रतीन्द्र माना है। प्रत्येक चन्द्रके साथ एक सूर्य अवश्य रहता है। जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। इसी प्रकार लवणसमुद्रमें ४, धातुकीखण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्द्धद्वीपमें ७२ चन्द्र हैं; साथ ही उतने सूर्य भी हैं। मनुष्यलोकमें चन्द्र और सूर्यके गमनका अनुक्रम इस प्रकार है—प्रत्येक द्वीप वा समुद्रके समान दो दो खण्डोंमें आधे आधे ज्योतिष्क विमान गमन करते हैं अर्थात् जम्बूद्वीपके प्रत्येक भागमें एक एक, लवणसमुद्रके प्रत्येक भागमें दो दो, धातुकी खण्डद्वीपके प्रत्येक खण्डमें छ छ, कालोदधिके प्रत्येक खण्डमें इक्कीस इक्कीस और पुष्करार्द्धद्वीपके प्रत्येक खण्डमें छत्तीस छत्तीस चन्द्र हैं तथा इतने ही सूर्य हैं। अब इसका खुलासा किया जाता है। जंबूद्वीपमें एक वलय (परिधि) है, लवणसमुद्रमें दो, धातुकीखण्डमें छ, कालोदधिमें इक्कीस और पुष्करार्द्धद्वीपमें छत्तीस वलय हैं। प्रत्येक वलयमें दो दो चन्द्रमा और दो दो सूर्य हैं। पुष्करार्द्धका उत्तरार्द्ध आठ लाख योजनका है, इसलिए उसमें आठ वलय हैं। पुष्करसमुद्र ३२ योजनका है, अतः उसमें ३२ वलय हैं।

* यहां भी योजन २००० कोशका समझना चाहिये, क्योंकि जैनशास्त्रोंमें अकृत्रिम वस्तुओंके परिमाणमें योजन २००० कोशका ही माना है।

इसीप्रकार उत्तरोत्तर द्वीप वा समुद्रमें वलयोंका परिमाण द्विगुण होता गया है। मनुष्यलोकसे बाहरके द्वीप वा समुद्र जितने लक्ष योजन चौड़े हैं, उनमें उतने ही वलय हैं। प्रत्येक वलयकी चौड़ाई चन्द्रमाके व्यासके समान ५६/६१ योजन है। पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धके प्रथम वलयमें १४४ चन्द्र हैं, द्वितीय, तृतीय आदि वलयोंमें चार चार अधिक हैं। पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धमें सब वलयोंके चन्द्रोंकी संख्या १२६४ है। पुष्कर समुद्रके प्रथम वलयमें २८८ चन्द्र हैं; अर्थात् पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धके वलयमें स्थित चन्द्रोंसे दूने हैं। सूर्योंकी भी संख्या उक्त प्रकार है। इसी प्रकार अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त पूर्व पूर्व द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चन्द्रोंके प्रमाणसे उत्तरोत्तर द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चन्द्रोंकी संख्या दूनी दूनी होती गई है और प्रथम प्रथम वलयोंके चन्द्रमाओंसे द्वितीयादि वलयस्थित चन्द्रमाओंकी संख्या सर्वत्र चार चार अधिक है। जैसे—पुष्करसमुद्रमें ३२ वलय हैं जिनके समस्त चन्द्रमाओंकी संख्या ११२०० है, इससे अगले द्वीपमें ६४ वलय हैं जिनके सम्पूर्ण चन्द्रमाओंकी संख्या ४४८२८ है, इत्यादि। सूर्योंकी संख्या भी इसी प्रकार समझनी चाहिये। किन्तु ग्रहोंकी संख्या चन्द्र वा सूर्यसे ८८ गुनी अधिक है। नक्षत्रोंकी संख्या २८ गुणित है और तारोंकी संख्या चंद्र वा सूर्योंकी संख्यासे ६६९७५ कोड़ाकोड़ी गुणित है।

अब सूर्य और चन्द्रके गमनके विषयमें कुछ कहा जाता है। चन्द्र और सूर्यके गमन करनेके मार्ग (गलियों)को चार-क्षेत्र कहते हैं। सम्पूर्ण गलियोंके समूहरूप इस चार-क्षेत्रकी चौड़ाई ५१०४८/६१ योजन है। जिस मार्गसे एक चन्द्र वा सूर्य गमन करता है, उसीमें ठीक उसीके सामने दूसरा चन्द्र वा सूर्य गमन करता है। इस चार-क्षेत्रकी ५१०४८/६१ योजन चौड़ाईमेंसे १८० योजन तो जम्बूद्वीपमें और ३३०४८/६१ योजन लवण समुद्रमें है। चन्द्रके गमनकी १५ और सूर्यके गमनकी १८४ गलियां हैं। इन सबमें समान अन्तर है। दो दो सूर्य वा चन्द्र प्रतिदिन एक एक गलीको छोड़ कर दूसरी दूसरी गलीमें गमन करते हैं। जिस दिन सूर्य भीतरी गलीमें गमन करता है, उस दिन १८ मुहूर्तका दिन और १२ मुहूर्तकी रात्रि होती है। क्रमशः घटते घटते जब बाहरी गलीमें गमन करता है, तब १२ मुहूर्तका दिन और १८ मुहूर्तकी रात्रि होती है। एक सूर्य ६० मुहूर्तमें मेरुकी प्रदक्षिणा पूरी करता है। कल्पना कीजिये, मेरुकी प्रदक्षिणारूप आकाशमय परिधिमें १,०९,८०० गमन खण्ड हैं। इन खण्डोंमें गमन ज्योतिष्कोंकी गति इस प्रकार है— चन्द्र एक मुहूर्तमें १७६८ खण्डोंमें गमन करता है। सूर्य एक मुहूर्तमें १८३० गमनखण्डोंको तय करता है और नक्षत्र एक मुहूर्तमें १८३५ गमन-खण्डोंको तय करते हैं। चन्द्रकी गति सबसे मन्द है, चन्द्रसे सूर्यकी गति तेज है। सूर्यसे ग्रहोंकी, ग्रहोंसे नक्षत्रोंकी और नक्षत्रोंसे तारोंकी गति कुछ तेज है।

विशेष जानना हो तो "त्रिलोकसार" नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

३। ऊर्द्ध्वलोक—मेरुसे ऊर्द्ध्व, लोकके अन्त तकका क्षेत्र ऊर्द्ध्वलोक कहलाता है। इस लोकके दो भेद हैं, एक कल्प और दूसरा कल्पातीत। जहां तक इन्द्र आदिकी कल्पना होती है, वहां तक कल्प कहलाता है; और जहां इन्द्रादिकी कल्पना नहीं है, उसे कल्पातीत कहते हैं। कल्पमें १६ स्वर्ग हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्म, (६) ब्रह्मोत्तर, (७) लान्तव, (८) कापिष्ट, (९) शुक्र, (१०) महाशुक्र, (११) सतार, (१२) सहस्रार, (१३) आनत, (१४) प्राणत, (१५) आरण और (१६) अच्युत। इन सोलह स्वर्गोंमेंसे दो दो स्वर्गोंमें संयुक्त राज्य है; अतएव सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र इत्यादि दो दो स्वर्गोंका एक एक पटल है। ये सोलह स्वर्ग इस प्रकार अवस्थित हैं—

सौ०——————१, २——————ई०
स०——————३, ४——————मा०
ब्र०——————५, ६——————ब्रह्मो०
ला०——————७, ८——————का०
शु०——————९, १०——————म०शु०
स०——————११, १२——————सह०
आ०——————१३, १४——————प्रा०
आर०——————१५, १६——————अच्यु०

इनमेंसे आदिके दो युगलों (चार स्वर्गों)-में चार इन्द्र, मध्यके चार युगलोंमें (५वेंसे १२वें स्वर्ग पर्यन्त) चार इन्द्र और अन्तके दो युगलोंमें (१३वेंसे १६वें स्वर्ग पर्यन्त) चार इन्द्र हैं। अर्थात् १६ स्वर्गोंमें कुल १२ इन्द्र हैं। इसलिए इन्द्रोंकी अपेक्षासे स्वर्गोंके बारह भेद भी हैं। इन सोलह स्वर्गोंके ऊपर कल्पातीतमें ९ ग्रैवेयक हैं—३ अधोग्रैवेयक, ३ मध्यग्रैवेयक और ३ ऊर्द्ध्व ग्रैवेयक। इनके ऊपर ९ अनुदिश विमान हैं, यथा—१ आदित्य, २ अर्चि, ३ अर्चिमालिन्, ४ वैर, ५ वैरोचन, ६ सोम, ७ सोमरूप, ८ अङ्क और ९ स्फटिक। इनमेंसे पहलेको इन्द्रक अनुदिश, २रे, ३रे, ४थे और ५वेंको श्रेणीबद्ध तथा अन्तके चार विमानोंको प्रकीर्णक अनुदिश कहते हैं। इनके ऊपर पांच अनुत्तर विमान हैं, यथा—१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त ४ अपराजित और ५ सर्वार्थसिद्धि। इनमेंसे पहलेके चार विमान श्रेणीबद्ध और अन्तका सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान है।

उपर्युक्त सोलह स्वर्गोंमें वास करनेवाले कल्पवासी या कल्पोपपन्नदेव कहलाते हैं। इनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दश भेद होते हैं। (१) इन्द्र—अन्य देवोंमें नहीं पाई जाय, ऐसी अणिमा महिमा आदि अनेक ऋद्धिप्राप्त और परम ऐश्वर्यशाली देवको इन्द्र कहते हैं। इन्द्रको देवोंका राजा समझना चाहिये। (२) सामानिक—जिनके स्थान, आयु, वीर्य, परिवार, भोगादि तो इन्द्रके समान हो, परन्तु आज्ञा और ऐश्वर्य इन्द्रके समान न हो तथा जिनको इन्द्र अपने पिता या उपाध्यायके समान बड़ा माने, उन्हें सामानिक कहते हैं। (३) त्रायस्त्रिंश—मन्त्री और पुरोहितके समान शिक्षा देनेवाले, पुत्रके समान प्रियपात्र और जिनसे वार्तालाप करके इन्द्र आनन्दित होते हैं, उनको त्रायस्त्रिंश कहते हैं। (४) पारिषद—इन्द्रकी बाह्य, आभ्यन्तर और मध्यम इन तीनों प्रकारकी सभामें बैठने योग्य सभासद पारिषद कहलाते हैं। (५) आत्मरक्ष—इन्द्रके अङ्गरक्षक। (६) लोकपाल—कोटपालके समान जिनका कार्य हो, उन्हें लोकपाल कहते हैं। (७) अनीक—जो पियादा, हाथी, घोड़े, गन्धर्व, नर्तकी आदि रूप धारण करते हैं, वे अनीक कहलाते हैं। (८) प्रकीर्णक—जनसाधारण या प्रजा। (९) आभियोग्य—जो सेवकोंके समान हाथी, घोड़ा, वाहन आदि बन कर इन्द्रकी सेवा करते हैं, उन्हें आभियोग्य कहते हैं। (१०) किल्विषिक—इन्द्रादि देवोंके सम्मानादिके अनधिकारी और उनसे दूर रहनेवाले देव, किल्विषिक कहलाते हैं। ये अन्यान्य सम्पूर्ण देवोंसे पृथक् रहते हैं अर्थात् उनमें मिलने-जुलने नहीं पाते।

सोलह स्वर्गोंके ऊपर जो ग्रैवेयक आदि विमान हैं, उनमें रहनेवाले देव कल्पातीत कहलाते हैं। इनमें इन्द्र, सामानिक आदिका भेदाभेद नहीं है। सभी इन्द्र हैं और इसीलिये वे 'अहमिन्द्र' कहलाते हैं।

मेरुकी चूलिका (शिखर)से एक केश-प्रमाण अन्तर पर ऋजुविमान है। यहींसे सौधर्म स्वर्गका प्रारम्भ है। मेरु-तलसे डेढ़ राजूकी ऊंचाई पर सौधर्म-ईशान युगलका अन्त हुआ है। उसके ऊपर डेढ़ राजूमें सनत्कुमार माहेन्द्र युगल है। इससे ऊपर ½—½ राजूमें छः युगल हैं। इस प्रकारसे छः राजूमें आठ युगल अवस्थित हैं। अवशिष्ट एक राजूमें ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर-विमान और सिद्धशिला है।

सौधर्मस्वर्गमें ३२ लाख विमान हैं। ईशानस्वर्गमें २८ लाख, सनत्कुमारमें १२ लाख, माहेन्द्रमें ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगलमें ४ लाख, लान्तव-कापिष्ट युगलमें ५० हजार, शुक्र-महाशुक्र युगलमें ४० हजार, सतार-सहस्रार युगलमें ६ हजार और आनत-प्राणत एवं आरण-अच्युत इन दो युगलमें ७०० विमान हैं। इसी प्रकार तीन अधोग्रैवेयकोंमें १११, तीन मध्यग्रैवेयकोंमें १०७ और तीन ऊर्द्ध्वग्रैवेयकोंमें ९१ विमान हैं। किन्तु ९ अनुदिश और ५ अनुत्तरोंमें विमानोंकी संख्या एक ही एक है अर्थात् अनुदिशोंमें ९ और अनुत्तरोंमें ५ ही विमान हैं।

ये समस्त विमान ६३ पटलोंमें अवस्थित हैं। जिन विमानोंका उपरिभाग समतलमें पाया जाता है अर्थात् एकसा होता है, वे सब एक पटलके विमान कहलाते हैं। प्रत्येक पटलके मध्यस्थित विमानको "इन्द्रक विमान" कहते हैं। चारों दिशाओंमें जो पंक्तिरूप विमान हैं,

वे "श्रेणीबद्ध" कहलाते हैं और श्रेणियोंके बीचमें जो फुटकर विमान होते हैं, इन्हें "प्रकीर्णक" कहते हैं। प्रथम युगलमें ३१ पटल हैं, दूसरे युगलमें ७, तीसरेमें ४, चौथेमें २, पांचवेंमें १, छठेमें १, ७वें और ८वेंमें ६, नव-ग्रैवेयकमें ९, नव-अनुदिशमें १ और पञ्चानुत्तरमें १ पटल है। इन पटलोंमें असंख्यात योजनका अन्तर है और ६३ पटलोंमें ६३ ही इन्द्रक-विमान हैं। नीचे पटलोंके नाम लिखे जाते हैं।

१म युगलके ३१ पटल, यथा—ऋजु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, कांचन, रोहित, चञ्चत्, मारुत, ऋद्धीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अङ्क, स्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र, हारिद्र, पद्म, लोहिताक्ष, वज्र, नन्दावर्त, प्रभङ्कर, पृष्टकर, गज, मित्र और प्रभ। २य युगलके ७ पटल, यथा—अञ्जन, वनमाल, नाग, गरुड़, लाङ्गल, बलभद्र और चक्र। ३य पटलके ४पटल, यथा—अरिष्ट, सुरस, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर। ४र्थ युगलके २ पटल, यथा—ब्रह्महृदय और लान्तव। ५म युगलका १ पटल यथा—शुक्र। ६ष्ठ युगलका १ पटल, यथा—सतार। ७म और ८म युगलमें ६ पटल, यथा—आनत, प्राणत, पुष्पक, सातक, आरण और अच्युत। अधो-ग्रैवेयकके ३ पटल, यथा—सुदर्शन, अमोघ और सुप्रबुद्ध। मध्य-ग्रैवेयकके ३ पटल, यथा—यशोधर, सुभद्र और विशाल। ऊर्द्ध्व-ग्रैवेयकके ३ पटल, यथा—सुमन, सौमन और प्रीतिङ्कर। ६ अनुदिश विमानोंका १ पटल, यथा—आदित्य। और ५ अनुत्तर विमानोंका १ पटल, यथा—सर्वार्थसिद्धि। सर्वार्थसिद्धि विमान लोक अन्तसे १२ योजन नीचा है।

ऋजुविमान प्रथम 'इन्द्रक विमान' है। उसकी चौड़ाई ४५ लाख योजन है। द्वितीय आदि इन्द्रकविमानोंकी चौड़ाई क्रमशः घटती हुई अन्तके सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक-विमानकी चौड़ाई १ लाख योजनकी रह गई है। प्रथम पटलकी प्रत्येक श्रेणीमें श्रेणीबद्ध विमानोंकी संख्या ६२ है। द्वितीय आदि पटलोंके श्रेणीबद्ध विमानोंकी संख्यामें क्रमसे एक एक घटती गई है। ६२वें अनुदिश पटलमें एक श्रेणीबद्ध विमान है और अन्तके अनुत्तर पटलमें भी एक श्रेणीबद्ध विमान है। समस्त विमानोंकी संख्यामेंसे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विमानोंकी संख्या निकाल देनेसे प्रकीर्णक विमानोंकी संख्या निकल आती है।

प्रथम युगलके प्रत्येक पटलमें उत्तर दिशाके श्रेणीबद्ध तथा वायव्य और ईशान दिशाके प्रकीर्णक विमानोंमें उत्तर-इन्द्र ईशानकी आज्ञा प्रवर्तित है। अवशिष्ट समस्त विमानोंमें दक्षिणेन्द्र सौधर्मकी आज्ञाका पालन होता है। जिन विमानोंमें सौधर्मेन्द्रकी आज्ञा जारी है, उनके समूहको सौधर्मस्वर्ग कहते हैं और जिनमें ईशानेन्द्रकी आज्ञा प्रवर्तित है, उनके समूहको ईशानस्वर्ग। इसी प्रकार दूसरे और अन्तके दो युगलोंमें समझना चाहिये। किन्तु मध्यके चार युगलोंमें एक एक इन्द्रकी ही आज्ञा चलती है। पटलके ऊर्द्ध्व अन्तरालमें तथा विमानोंके तिर्यक् अन्तरालमें आकाश है; नरकको तरह बीचमें पृथिवी नहीं है। समस्त इन्द्रक-विमान संख्यात योजन चौड़े हैं और श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन। किन्तु प्रकीर्णकोंमें कोई संख्यात और कोई असंख्यात योजन चौड़े हैं। प्रथम युगलके विमानोंकी मोटाई ११२१ योजन है। दूसरेकी १०२२ योजन, तीसरेकी ९२३, चौथेकी ८२४, पांचवेंकी ७२५, छठेकी ६२६, सातवें और आठवेंकी ५२७, तीन अधोग्रैवेयकोंकी ४२८, तीन मध्यमग्रैवेयकोंकी ३२९, तीन उपरिमग्रैवेयकोंकी २३० और नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानोंकी मोटाई १३१ योजन है।

प्रथम युगलके अन्तिम पटलमें उत्तर दिशाके अठारवें श्रेणीबद्ध विमानमें सौधर्मेन्द्र निवास करते हैं और दक्षिण दिशाके अठारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें ईशानेन्द्रका वास है। द्वितीय युगलके अन्तिम पटलमें दक्षिण दिशाके १६वें विमानमें सनत्कुमारेन्द्र और उत्तर दिशाके १६वें विमानमें माहेन्द्र निवास करते हैं। तृतीय युगलके अन्तिम पटलमें दक्षिणदिशाके १४वें विमानमें ब्रह्मेन्द्र, चतुर्थ युगलके अन्तिम पटलमें उत्तर दिशाके १२वें विमानमें लान्तवेन्द्र, पञ्चम युगलके अन्तिम पटलमें दक्षिणदिशाके १०वें श्रेणीबद्ध विमानमें शुक्रेन्द्र, षष्ठ युगलके अन्तिम पटलमें उत्तर दिशाके ८वें श्रेणीबद्ध विमानमें सतारेन्द्र तथा ७म और ८म युगलोंके अन्तिम पटलोंमें दक्षिण

दिशाके ६ठे विमानोंमें आनतेन्द्र और आरणेन्द्र एवं उत्तर दिशाके ६ठे श्रेणीबद्ध विमानोंमें प्राणत और अच्युत इन्द्र निवास करते हैं। (त्रैलोक्यसार)

देवोंके मुख्यत: चार भेद हैं—१ भवनवासी, २ व्यन्तर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक। इनमेंसे वैमानिकके सिवा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कदेव स्वर्गोंसे नीचे निवास करते हैं और उनमें ऊपर कहे हुए कल्पवासियों (१६ स्वर्गोंके देवों) की तरह इन्द्र, सामानिक आदि भेद हैं। किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते तथा भवनवासी और व्यन्तरदेवोंके प्रत्येक भेद (असुरकुमार, नागकुमार आदि और किन्नर, किम्पुरुष आदि)-में दो दो इन्द्र होते हैं। वैमानिक स्वर्गोंमें। वैमानिकके भी स्वर्गभेदसे दो भेद हैं—१ कल्पवासी और २ कल्पातीत।

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कदेवोंमें तथा सौधर्म और ईशान* इन दो स्वर्गोंमें शरीरसे मनुष्यवत् कामसेवन होता है। किन्तु शेष १४ स्वर्गोंमें ऐसा नहीं होता है। सनत्कुमार और महेन्द्र इन दो स्वर्गोंके देव और देवियोंकी कामेच्छा परस्पर स्पर्श करनेसे ही शान्त हो जाती है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ट इन चार स्वर्गोंके देवदेवियोंकी कामवासना स्वाभाविक सुन्दर और शृङ्गारयुक्त रूपको देखने मात्रसे ही दूर हो जाती है। शुक्र, महाशुक्र, सतार और सहस्रार इन चार स्वर्गोंके देवदेवियोंकी कामपीड़ा परस्पर गीत एवं प्रेमपूर्ण मधुर वचनोंके सुननेसे तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार स्वर्गोंके देवदेवियोंकी वासना एक दूसरेका मनमें स्मरण करनेसे ही तृप्त हो जाती है। इसके बाद (अर्थात् १६ स्वर्गोंके ऊपर) कल्पातीत देवोंके कामेच्छा होती ही नहीं; वहांके देव सदा धर्म-चर्चामें लीन रहते हैं और बड़े पुण्यात्मा होते हैं।

ऊपरके देवोंके प्रभाव, सुख, आयु, द्युति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय-विषय और अवधिज्ञानका विषय क्रमशः बढ़ता ही गया है। किन्तु शरीरकी ऊंचाई, परिग्रह, गमनेच्छा और अभिमान क्रमशः घटता गया है।

५वें ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें रहनेवाले लौकान्तिकदेव कहलाते हैं। ये ब्रह्मचारी होते हैं और तीर्थङ्करोंके वैराग्य होने पर उसकी अनुमोदना करनेके लिये मध्यलोकमें अवतरण करते हैं। लौकान्तिकदेव द्वादशाङ्गके ज्ञाता और एक ही भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। इनके आठ भेद हैं, यथा - १ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि ४ अरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध और ८ अरिष्ट। विजय, वैजयन्त और अपराजित इन चार विमानोंके देव २ भव (जन्म) धारणपूर्वक नियमसे मोक्ष प्राप्त होते हैं तथा सर्वार्थसिद्धि नामक विमानके देव चयन कर मनुष्य होते हैं और उसी शरीर द्वारा निर्वाणलाभ करते हैं।

अब इनकी आयुकी अवधि कही जाती है। भवनवासीदेवोंकी उत्कृष्ट आयु इस प्रकार है, - असुरकुमार १ सागर, नागकुमार ३ पल्य, सुपर्णकुमार २॥ पल्य, द्वीपकुमार २ पल्य और शेष छः कुमारोंकी १॥–१॥ पल्य। कल्पवासी सौधर्म और ईशानस्वर्गके देवोंकी २ सागरसे कुछ अधिक, सनत्कुमार और माहेन्द्रकी, ७ सागरसे कुछ अधिक, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें १० सागरसे कुछ अधिक, लान्तव कापिष्टमें १४ सागरसे कुछ अधिक, शुक्र महाशुक्रमें १६ सागरसे कुछ अधिक, सतार-सहस्रारमें १८ सागरसे कुछ अधिक, आनत-प्राणतमें २० सागर और आरण-अच्युतमें २२ सागरकी उत्कृष्ट आयु है। कल्पातीत —पहले ग्रैवेयकमें २३ सागर, दूसरेमें २४ सागर, तीसरेमें २५ सागर, चौथेमें २६ सागर, पांचवेंमें २७ सागर, छठेमें २८ सागर, सातवेंमें २९ सागर, आठवेंमें ३० सागर, नौवेंमें ३१ सागर, नौ अनुदिशोंमें ३२ सागर, और पांच अनुत्तरोंमें ३३ सागरकी उत्कृष्ट आयु है। पूर्वके युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है, वही अगले युगलोंकी जघन्य आयु समझनी चाहिए। किन्तु सर्वार्थसिद्धि विमानकी स्थिति ३३ सागरकी ही है, उसमें जघन्य स्थिति होती नहीं। प्रथम युगलकी जघन्य आयु १ पल्यकी है। किन्तु लौकान्तिकदेवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य आयु ८ सागरकी है।

आचार

जैनशास्त्रोंमें आचार दो प्रकारका माना है, एक श्रावकाचार और दूसरा मुनि-आचार। श्रो-

* देवांगनाओंकी उत्पत्ति भी इन्हीं दो स्वर्गोंमें होती है। ऊपरके स्वर्गोंके देव इन दोनों स्वर्गोंसे देवांगनाएं ले जाते हैं या वे स्वयं चली जाती हैं।

पुत्रादिके साथ घरमें रह कर अथवा सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग न करके जो धर्माचरण (अर्थात् अहिंसा आदि व्रतों का एकदेश पालन करना) किया जाता है, उसे श्रावकाचार कहते हैं। और सम्पूर्ण व्रतोंका पूर्णतया पालन करनेको अर्थात् सर्व प्रकारका परिग्रह त्याग कर वनमें तपश्चरण आदि करनेको मुनि आचार कहते हैं। पहले श्रावकाचारका वर्णन किया जाता है।

श्रावकाचार वा गृहस्थधर्म—श्रावकधर्म पालन करनेके अधिकारी दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो जैन वा श्रावकके घर जन्म लेनेके कारण जन्मसे ही श्रावकाचारका पालन करते हैं और दूसरे जो श्रावकके घर उत्पन्न तो नहीं हुये किन्तु जैनधर्म पर दृढ़ विश्वास होनेके कारण श्रावकाचारका पालन करते हैं। ऐसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको जैनधर्म सुननेका अधिकार है। शास्त्रोंमें कहा जाता है, "त्रयोवर्णा द्विजातयः, तीनों वर्ण द्विज हैं। किन्तु जिनके असन, वसन आदि उपकरण तथा आचरण शुद्ध है, ऐसा शूद्र भी जैनधर्मके सुननेके योग्य हो सकता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णवाले पुरुष काललब्धि आदि धर्म साधन करनेकी सामग्री मिलने पर ही श्रावकधर्म धारण कर सकते हैं, उसी प्रकार शूद्र भी आचरण आदिसे शुद्ध होने पर और काललब्धि आदि धर्मसाधन करनेकी सामग्री मिलने पर श्रावकधर्मका पालन कर सकता है। इससे यह भी समझ लेना चाहिये कि शूद्रोंको त्रिवर्णके समान केवल श्रावकधर्मके पालन करनेका तथा जैनधर्म श्रवण करनेका अधिकार दिया है। किन्तु ब्राह्मणादिके समान उनके संस्कार न होनेके कारण वे द्विजोंके साथ पंक्ति-भोजन और कन्यादान आदिका व्यवहार नहीं कर सकते। धर्म साधारणके लिये है, उसे प्रत्येक जीव धारण कर सकता है, चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे चाण्डाल और चाहे पशु-पक्षी हो। परन्तु कन्यादान, और पंक्ति-भोजन आदिका सम्बन्ध जातिके साथ है। इसलिए जिन जिन जातियोंके साथ पंक्ति-भोजन आदिका व्यवहार है, उन्हींके साथ हो सकता है, अन्यके साथ नहीं। क्योंकि वह धर्मकी तरह साधारण नहीं है और न उसके साथ धर्मका कोई सम्बन्ध है।

जैनेतरके लिए श्रावक होनेकी पात्रता—जिस व्यक्तिने श्रावकके घर जन्म न ले कर अन्यधर्मावलम्बीके घर जन्म लिया है, वह अजैन कहलाता है। अजैनको शुद्ध करनेको ४८ क्रियाएं हैं जो दीक्षान्वय क्रियाएं कहलाती हैं। यहां सम्पूर्ण क्रियाओंका वर्णन न कर आवश्यकीय क्रियाओंका वर्णन किया जाता है।

जैन महापुराणान्तर्गत आदिपुराणके ३९वें पर्वमें लिखा है—

> "तत्रावतारसंज्ञास्यादाद्यादीक्षान्वयक्रिया।
> मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥७॥
> स तु संसृत्य योगीन्द्रं युक्ताचारंमहाधियम्।
> गृहस्थाचार्यमथवा प्रच्छतीति विचक्षणः ॥८॥"

१ अवतार क्रिया—जो भव्य पहले अविधि अर्थात मिथ्यामार्गसे दूषित है, वह सन्मार्ग ग्रहण करनेको इच्छासे पहले किसी मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके पास जा कर प्रार्थना करे कि, "मुझे निर्दोषधर्मका स्वरूप कहिये ; क्योंकि संसारदुःखकी वृद्धि करनेवाले मार्ग मुझे दूषित मालूम पड़ते हैं।" इस पर आचार्य उसे देव,गुरु और धर्मका यथार्थ स्वरूप समझावें। आचार्यका उपदेश सुन कर वह भव्य दुर्मार्गसे बुद्धि हटा कर सच्चे मार्गमें अपना प्रेम प्रगट करे और आचार्यको धर्मरूप जन्मका दाता पिता समझे। यह 'अवतार क्रिया नामक पहली क्रिया है।

२ व्रतलाभक्रिया—पश्चात् वह शिष्य अपनी श्रद्धा व्रत ग्रहण करे। अर्थात् तीन मकार (यथा—मद्य, मांस और मधु), पांच उदुम्बर (पीपल, गूलर, पाकर, बड़ और कठूमर इन पांच वृक्षोंके फल) का एवं स्थूल रूपसे (अर्थात् जिसके करनेसे राज-दण्ड हो) हिंसा असत्य, चोरी, परस्त्री और परिग्रहका त्याग कर दे। इस अभ्यासके उपरान्त तीसरी क्रिया सम्पन्न करे।

३ स्थानलाभक्रिया—यह क्रिया किसी शुभ मुहूर्तमें की जाती है। जिस दिन यह क्रिया करनी हो, उससे एक दिन पहले उपवास करना चाहिए। पारणाके दिन गृहस्थाचार्यको उचित है कि श्रीजैन-मन्दिरमें खूब बारीक पीसे हुए चूनसे वा चन्दनादि सुगन्ध द्रव्योंसे अष्टदलयुक्त कमल और समवशरणका माण्डला बनावें एवं

विस्तारपूर्वक श्रीअरहन्त और सिद्ध भगवान्‌की पूजा करें। इसके अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठीका पाठ तथा समयानुकूल अन्य पाठ भी कर सकते हैं। पूजाके उपरान्त गृहस्थाचार्यको उचित है कि पञ्चमुष्टि विधान अथवा पञ्चगुरु मुद्रा विधान करें और शिष्यके मस्तक पर हाथ रख कर 'पूतोसि दीक्षया' यह मन्त्र कहें। अनन्तर उसके मस्तक पर अक्षत निक्षेप कर णमोकारमन्त्रका उपदेश करें और कहें "मन्त्रोऽयमखिलात् पापात् त्वां पुनीतात्।" पश्चात् शिष्यको पारणा करनेके लिए अपने घर भेज देना चाहिए। अनन्तर ४ थी क्रिया करें।

४ गणग्रहक्रिया- इस क्रियाका तात्पर्य यह है कि वह भव्य पहले जो मिथ्यात्व-अवस्थामें श्रीअरहन्तके सिवा अन्य देवताओंकी मूर्तियोंको पूजता था, उन्हें अपने घरसे ऐसे गुप्त स्थानको विदा कर दे जहां उनको बाधा न हो और न कोई उनकी पूजा कर सके। जिस समय उन मूर्तियोंको अपने घरसे उठावे, उस समय यह मन्त्र कहे—

'इयन्त कालमज्ञानात् पूजिता: स्वकृतादरम्।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत् समयदेवता: ॥
ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम् ॥"

अनन्तर यह कह कर शान्तिस्वरूप जिनेन्द्रकी पूजा करें—"विसृज्यार्चयत: शान्ता देवता: समयोचित:।" पश्चात् अन्य क्रियाएं करनी चाहिये।

५ पूजाराध्यक्रिया—अर्थात् भव्य भगवान्‌की पूजा करके द्वादशाङ्गका संक्षिप्त अर्थ सुने वा जिनवाणीको धारण करे।

६ पुण्ययज्ञक्रिया—अर्थात् भव्य साधर्मियोंके साथ १४ पूर्वका अर्थ सुने।

७ दृढ़चर्याक्रिया—अर्थात् भव्य अपने शास्त्रोंको जान कर अन्य शास्त्रोंको सुने वा पढ़े। ये सब क्रियाएं किसी शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें की जाती हैं।

८ उपयोगिताक्रिया—अर्थात् अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास करे और रात्रिको कायोत्सर्ग कर धर्मध्यानमें समय बितावे। ९ उपनीतिक्रिया—जब वह भव्य जिन-भक्ति क्रियाओंमें दृढ़ हो जाय और जैनागमके ज्ञानको प्राप्त कर ले, तब गृहस्थाचार्य उसे चिह्न धारण करावे। इस क्रियामें भव्यको वेष, वृत्त और समय इन तीनों बातोंको यथाविधि पालन करनेके लिए देवगुरुके समक्ष प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीतका धारण करना वेष कहलाता है। यज्ञोपवीतकी विधि आगे चल कर श्रावकोंके षोडशसंस्कारोंमें लिखी जायगी। आर्योंके योग्य जो षट्कर्म (असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या) करके जीविका निर्वाह करनेका नाम वृत्त है। जैनोपासककी दीक्षाका होना ही समय है। इस समयमें उसके गोत्र, नाम जाति आदिका निर्णय किया जाता है। इसके बाद कुछ दिनों तक उसे ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये। अनन्तर १०वीं क्रिया करे।

१० व्रतचर्याक्रिया—अर्थात् उपासकाध्ययन पढ़नेके लिए गुरु, मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके निकट ब्रह्मचारी हो कर रहे। ११ व्रतावतरणक्रिया—अर्थात् उपासकाध्ययन पढ़ चुकनेके बाद ब्रह्मचारीका वेष छोड़ कर अपने गृहमें आगमन करे। १२ विवाहक्रिया—अर्थात् जैनधर्म अङ्गीकार करनेके पहले जिस स्त्रीके साथ विवाह किया था, उसको गृहस्थाचार्यके निकट ले जा कर श्राविकाके व्रत दिलावे; फिर किसी शुभ दिनमें सिद्धयन्त्रकी पूजा करके उस स्त्रीको ग्रहण करे। इस प्रकारसे जैनेतर व्यक्तिमें भी श्रावककी पात्रता आ सकती है।

श्रावक-श्रेणीमें प्रवेशार्थ प्रारम्भिक श्रेणी—यज्ञोपवीत आदि* संस्कारोंसे संस्कृत गृहस्थ गृहमें रहता हुआ परम्परा मोक्षरूप सर्वोत्तम पुरुषार्थकी सिद्धिके लिए धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंका यथासंभव पालन करता है। मोक्षकी सिद्धि साक्षात् मुनिलिङ्गके धारण करनेसे हो हो सकती है, अन्यथा नहीं। इसलिये उस अवस्थाकी प्राप्तिकी इच्छासे गृहस्थ पहले उसके नीचेकी श्रेणियां अर्थात् श्रावकाचारका पालन करता है। श्रावककी श्रेणियाँ क्रमसे ग्यारह हैं; जो इन ग्यारह श्रेणियोंमें सफलता प्राप्त कर लेता है, वह मुनिधर्म सुगमतासे पाल सकता है।

पहली श्रेणीका नाम है—"दर्शनप्रतिमा।" इस प्रतिमा वा श्रेणीमें प्रविष्ट होनेके लिये तैयारी करनेवाले गृहस्थको पाक्षिक-श्रावक कहते हैं। वर्तमान समयमें

*षोडशसंस्कारोंका वर्णन आगे चल कर किया जायगा।

अधिकांश जैनी (श्रावक) पाक्षिक-श्रावककी कोटिमें सम्हाले जा सकते हैं।

पाक्षिक-श्रावक—जो सच्चे देव, गुरु, धर्म और शास्त्रकी दृढ़ श्रद्धा रखता है तथा सात तत्त्वोंका स्वरूप जान कर उसका श्रद्धान करता है, उसे पाक्षिक-श्रावक कहते हैं। यह पाक्षिकश्रावक व्यवहार सम्यक्त्वको पालता है, परन्तु सम्यक्त्वके २५ दोषोंको बिल्कुल बचा नहीं सकता। किन्तु प्रत्येक पाक्षिक श्रावकको "अष्ट मूलगुण" धारण करना ही चाहिए। मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलोंका त्याग करना (न खाना), अष्ट मूलगुण है। अथवा आठ मूलगुण इस प्रकार भी हैं,—हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्री और परिग्रह इन पांचों पापोंका स्थूलरीतिसे * अर्थात् एक देश त्याग करना तथा मांस, मद्य और मधुको न खाना ये आठ मूलगुण हैं। इनका पालन करना पाक्षिक-श्रावकका कर्तव्य-कर्म है। जो शक्तिके अनुसार अष्ट मूलगुणोंका पालन नहीं करते, वे श्रावक नहीं कहला सकते।

मद्य—मद्य वा शराबकी एक बुंदमें इतने सूक्ष्म जीव हैं कि यदि वे कुछ बड़े हो कर उड़ने लगें तो संसार भरमें फैल जाय। मद्य पीनेसे असंख्य जीवोंकी हिंसा होती है तथा मद्यपायी ज्ञानशून्य हो कर नाना तरहके पाप-कार्योंमें प्रवृत्त होता है। इसलिए श्रावकको मद्यका यावज्जीवन त्याग कर देना चाहिये। मांस—जो मांस प्राणियोंकी हिंसा करनेसे उत्पन्न होता है, उस मांसको स्पर्श करना भी महापाप है। मृत प्राणीके मांस खानेमें भी उतना ही पाप है, जितना जीवितको मार कर खानेमें। क्योंकि—

"आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानां॥" (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय)

बिना पके वा पकाये हुए तथा पकते हुए भी मांसमें उसी जातीके जीव निरन्तर उत्पन्न हुआ करते हैं। इस लिए मांस-सेवन सर्वथा परित्याज्य है।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि, जब गेहूं, जौ, उड़द आदि अनाज तथा ककड़ी, खीरा, आम आदि फल भी एकेन्द्रिय जीवोंके अङ्ग हैं और उन्हें सब खाते ही हैं, तब मांस जो पञ्चेन्द्रिय जीवोंका अङ्ग है, उसके खानेमें क्या दोष है ? इसका उत्तर यह है कि, मांस प्राणियोंका शरीर है, परन्तु सब प्राणियोंके शरीरमें मांस नहीं है। गेहूं, उड़द, आदि धान्य एवं आम आदि फल एकेन्द्रिय जीवोंके अङ्ग हैं, किन्तु उनमें रक्त, मज्जा आदि नहीं हैं; इसलिए एकेन्द्रिय जीवोंके शरीरको मांस नहीं कह सकते। जैसे गायके दूध और मांसके उत्पन्न होनेका घास, पानी आदि एक ही कारण है, तथापि मांस सर्वथा त्याज्य है और दूध पीने योग्य है; अथवा जैसे माता और सहधर्मिणी स्त्री इन दोनोंमें यद्यपि स्त्रीत्व समान है, तथापि पुरुषोंको सहधर्मिणी स्त्री ही भोगने योग्य होती है, न कि माता। अतएव गेहूं आदिमें मांसकी समानता नहीं हो सकती। मधु या शहद—मद्य और मांसकी भांति गृहस्थोंको मधु खाना भी सर्वथा त्याग देना चाहिये। कारण इसमें भी असंख्य जीवोंका अस्तित्व है और खानेसे उनका घात होता है। इन तीनोंको "तीन मकार" कहते हैं, जो सर्वथा त्याज्य हैं। शहदके समान मक्खनका भी त्याग करना चाहिये, क्योंकि उसमें भी क्षण क्षणमें जीवोंकी उत्पत्ति होती रहती है।

पञ्च उदुम्बरफल—पीपर, गूलर, पाकर, बड़ और कठूमर (अञ्जीर) इन पांचों वृक्षोंके फलोंमें सूक्ष्म जीव रहते हैं। अतएव इनके खानेवालोंको जीव हिंसाका पाप लगता है। इसलिए पाक्षिकश्रावकके लिए यह भी त्याज्य है। इसके सिवा श्रावकको "रात्रि भोजन" का भी त्याग करना चाहिये। क्योंकि रात्रिमें भोजन करनेसे दिनकी अपेक्षा विशेष राग (ममत्व) होता है और जलोदर आदि अनेक रोग हो जाते हैं।

रात्रि-भोजनके समान बिना छना जलका पीना भी दोष है। जलमें सूक्ष्म त्रस जीव भी रहते हैं जो मुंहमें जानेके साथ ही मर जाते हैं। इसी लिए श्रावकगण जल छान कर पीते हैं।

किसी किसी ग्रन्थकारने शिष्योंके अनुरोधसे अष्ट मूल

---

* स्थूलका अर्थ यह समझना चाहिये कि जिस कार्यमें राज्यदण्ड अथवा पंचायती दण्ड हो, उस कार्यको न करें। इसके सिवा इरादा करके किसी त्रस जीवको मारना (जैसे, खटमल मारना, मच्छर मारना आदि) भी स्थूलहिंसामें शामिल है, अतः ऐसा न करना चाहिए।

गुणोंको इस प्रकार भी कहा है—मद्यका त्याग, मांसका त्याग, मधुका त्याग, रात्रिभोजनका त्याग, पांचों उदुम्बर फलोंका त्याग, त्रिसन्ध्यामें देवपूजा वा देववन्दना, प्राणियों पर दया करना और पानी छान कर काममें लाना, श्रावकोंके लिए ये आठ मूलगुण भी पालनीय हैं।

इसके सिवा अन्य कई ग्रन्थकारोंने पाक्षिक-श्रावकके लिए आठ मूलगुणोंके धारण करनेके साथ साथ सप्त व्यसनोंके त्याग करनेका भी उपदेश दिया है। व्यसन शौक अथवा आदतको कहते हैं। जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार करना, चोरी करना, वेश्या-सेवन और परस्त्रीसेवन करना इन सात बातोंके शौक अथवा आदतका त्याग कर देना ही सप्त-व्यसन त्याग कहलाता है।

पाक्षिक-श्रावक उपर्युक्त विषयोंका त्याग तो करता है, पर वह अभ्यासरूपमें। वह उनके अतीचारोंको नहीं बचा सकता। हां, उसके लिए प्रयत्न अवश्य करता है। जीवदया पालन करनेके अभिप्रायसे पाक्षिक-श्रावक षट्कर्मका भी अभ्यास करता है। यथा—१ देवपूजा—श्रावकको प्रतिदिन मन्दिरमें जाकर अष्ट द्रव्यसे पूजा करनी चाहिये। वर्तमानमें श्रावकगण प्रति दिन मन्दिरमें जा कर भगवान्‌के दर्शन करते और स्तुति आदि पढ़ कर अक्षत वा फल चढ़ाते हैं, यह भी देवपूजामें शामिल है। २ गुरुपास्ति—निर्ग्रन्थ गुरु वा साधुओंकी सेवा करना और उनसे उपदेश सुनना चाहिये, किन्तु इस पञ्चमकालमें दिगम्बर गुरुकी प्राप्ति होना कठिन है, इसलिए उनके गुणोंका स्मरण करना चाहिये और उनके अभावोंमें सम्यग्दृष्टि ज्ञानवान् विद्वान् ऐलक, क्षुल्लक वा ब्रह्मचारी त्यागीकी विनय करना और उनके पास बैठ कर उपदेश सुनना चाहिये।

३ स्वाध्याय—शान्तिलाभ और अज्ञान दूर करनेके लिए जैनधर्म-सम्बन्धी शास्त्रोंका पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है। (४) संयम—मन तथा स्पर्शन, रसना, घ्राणचक्षु और कर्ण इन पांच इन्द्रियोंको वशीभूत करनेके लिए प्रतिदिन प्रातःकालमें नियम वा प्रतिज्ञा करनेको संयम कहते हैं। जैसे—आज मैं दो बार भोजन करूंगा, अमुकके घर या अमुककी गली तक जाऊंगा। आज पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करूंगा इत्यादि। ५ तप—क्रोध, मान, माया और लोभको दमन करनेके लिए भोग, लालसासे निवृत्त होनेके लिए, धर्ममें प्रवृत्ति बढ़ानेके लिए जो क्रिया की जाय, उसे तप कहते हैं। उस क्रियाका नाम है जप वा सामायिक। अर्थात् श्रावकको प्रति दिन 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' 'श्रीवीतरागाय नमः' 'अर्हन्तसिद्ध' 'णमो अरहंताणं' 'णमो सिद्धाणं' वा 'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं' इत्यादि मन्त्रोंका जप करना चाहिये। साथ ही अपने किये हुए पापोंकी आलोचना करनी चाहिए और अपने दोषोंके लिए संसारके जीवोंसे क्षमा मांगनी चाहिए। इससे आत्मा शुद्ध होती है अर्थात् आत्मा पर क्रोध, मान, माया आदिका प्रभाव कम पड़ता है। ६ दान—अभयदान, आहारदान, विद्यादान और औषधदान, ये चार प्रकारके दान हैं। मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। यदि इनकी प्राप्ति न हो सके, तो किसी धर्मनिष्ठ श्रावकको आदरपूर्वक (प्रत्युपकारकी आशा न रख कर) भोजन कराना चाहिये। गरीबोंको करुणा करके खानेको अन्न वा ओढ़नेको वस्त्र देना चाहिये। पशु-पक्षिओंको खिलाना चाहिये। इसी प्रकार रोगियोंको औषध देना और भयभीत व्यक्तियोंका भय दूर करना चाहिये। विद्यार्थियोंको शास्त्र देना वा पढ़ाना चाहिये। इन चार प्रकारके दानोंमेंसे कुछ न कुछ प्रति दिन दान करना श्रावकोंका दानकर्म है।

जैनग्रन्थोंमें पाक्षिक-श्रावकोंकी दिनचर्याके विषयमें इस प्रकार लिखा है:—

प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले उठे और शय्या पर ही बैठ कर नौ बार "णमोकार मन्त्र"का जाप करे। इसके बाद शौचादिसे निवृत्त हो पवित्र वस्त्र पहन कर जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शनके लिए मन्दिरमें जावे। मन्दिरमें प्रवेश करते समय "जय जय जय निःसहि निःसहि निःसहि" यह मन्त्र उच्चारण करना चाहिए। इस मन्त्रके उच्चारण करनेसे, यदि कोई देव आदि दर्शन करते हों तो वे सामनेसे हट जाते हैं। अनन्तर वीतराग श्रीजिनेन्द्र-

देवकी मूर्त्तिको, जो कि त्यागधर्मकी चरम सीमाका दृष्टान्त है, जी भरके देखे और अष्टाङ्ग नमस्कार करे। पश्चात् अक्षत, फल वा नैवेद्य अर्पण करे और साथ ही उसका मन्त्रोच्चारण करे। अनन्तर हाथ जोड़ कर भगवान्‌की वेदीके चारों तरफ तीन बार प्रदक्षिणा दे। इसके बाद भगवत्-मूर्त्तिके सामने खड़े हो कर संस्कृत वा हिन्दीका स्तवपाठ करे। अनन्तर नमस्कार करके मस्तक और नेत्रमें गन्धोदक (भगवान्‌का चरणामृत) लगावे। गन्धोदक लगानेका मन्त्र—

"निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापनाशनं।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकम्॥"

तदनन्तर मन्दिरके शास्त्र-भण्डारमें जा कर धर्मशास्त्रका मनन करे और फिर जपमाला ले कर 'णमोकार' आदि मन्त्रोंका जप करे। पश्चात् घरमें आ कर उन कपड़ोंको उतार देवे और गरीबोंको शक्तिके अनुसार कुछ भोजन देवे। अनन्तर पवित्रताका खयाल रखते हुए भोजनादि करके अपना कार्य (रोजगार) करे। फिर शामको (सूर्यास्तसे पहले) भोजन करके मन्दिर आवे और दर्शन, स्वाध्याय आरती आदि करे। इसके बाद अपने आवश्यकीय कार्योंको सम्पन्न करे और फिर पञ्च-परमेष्ठीका ध्यान करके शयन करे।

यद्यपि यह पाक्षिक-श्रावक बहु-आरम्भी होता है, तथापि अपने धर्मका पूरा पूरा पक्षपाती होता है और यही चाहता है कि "किसी तरह मेरे धार्मिक-चारित्रकी उन्नति होवे।" इसको अपने धर्मका पक्ष है, इसीलिये यह पाक्षिक-श्रावक कहलाता है।

श्रावकके प्रधानतः तीन भेद हैं—(१) पाक्षिक, (२) नैष्ठिक और (३) साधक। पाक्षिकश्रावकका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। नैष्ठिक-श्रावक ग्यारह श्रेणियोंमें विभक्त हैं, जिनका उल्लेख हम पहले कर आये हैं। अब उन्हीं श्रेणियोंका पृथक् पृथक् वर्णन किया जाता है।

१म दर्शन-प्रतिमा—यह नैष्ठिक-श्रावककी पहली श्रेणी है। पाक्षिक-श्रावक जब अपनी अभ्यास-अवस्थामें परिपक्व हो जाता है, तो अपने आचरणकी शुद्धताके प्रयोजनसे दर्शन-प्रतिमाके नियमोंको पालन करने लगता है और उसकी नैष्ठिक संज्ञा हो जाती है। इस श्रेणीमें उसे अपने श्रद्धानको निम्नलिखित २५ दोषोंसे बचाना चाहिए। (१) शङ्का—जैनधर्म और उसके तत्त्वादिमें शङ्का करना, (२) कांक्षा—सांसारिक सुखोंसे रुचि रखना, (३) विचिकित्सा—धर्मात्माओंके मलिन शरीरको देख कर ग्लानि करना, (४) मूढ़दृष्टि—सहसा किसी चमत्कारको देख कर कुदेव, कुगुरु और कुधर्ममें श्रद्धा करना, (५) अनुपगूहन—धर्मात्माओंके दोषोंको इस इच्छासे प्रगट कर दिखाना, जिससे उनकी निन्दा हो, (६) अस्थितिकरण-धर्म—मार्गसे गिरते हुएको स्थिर न करना, (७) अवात्सल्य—सहधर्मियोंसे प्रीति न करना, (८) अप्रभावना—धर्मकी प्रभावना न चाहना, (९) जातिमद—अपनी उच्च जातिका अभिमान करना, (१०) कुल-मद—अपनी कुलको उच्चताका घमण्ड करना, (११) ऐश्वर्य-मद, (१२) रूप-मद (१३) बल-मद, (१४) विद्या-मद, (१५) अधिकार-मद, (१६) तप-मद, (१७) देव-मूढ़ता—वीतराग देवके सिवा लोगोंकी देखादेखी अन्य रागद्वेषयुक्त देवोंका सम्मान करना, (१८) गुरु-मूढ़ता, (१९) लोक-मूढ़ता, (२०) कुदेव-अनायतन—जहां धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती, ऐसे देवोंके स्थानोंकी सङ्गति करना, (२१) कुगुरु-आयतन सङ्गति, (२२) कुधर्म-आयतन-सङ्गति, (२३) कुदेवपूजक-आयतन-सङ्गति, (२४) कुगुरुपूजक-आयतन-सङ्गति और (२५) कुधर्मपूजन-आयतन-सङ्गति। इन पच्चीस दोषोंसे बच कर संवेग आदि आठ गुणोंको धारण करना चाहिये और अपने सम्यक्त्वको दृढ़ रखना चाहिए। सम्यक्त्वका विवरण हम पहले लिख चुके हैं, अतः बाहुल्य भयसे यहां नहीं लिखा गया।

दर्शनिक (दर्शनप्रतिमाका धारक) श्रावकको चर्मके पात्रमें रक्खा हुआ घी, तेल, हींग अथवा ऐसी कोई चीज जिसमें चर्मकी दुर्गन्ध हो जाय, मक्खन, काञ्जीबड़ा, अचार, घुना घुना अनाज, कन्दमूल और शाक (पत्तियां) न खाना चाहिए। इसके सिवा दर्शनिक श्रावकको निम्नलिखित अतीचारोंसे सर्वथा बचना चाहिए अर्थात् अतीचाररहित आचरण करना चाहिए। (१)मांसत्यागके अतीचार—चर्मके पात्रमें रक्खी हुई कोई भी वस्तु न खाना। (२) मद्यत्यागके अतीचार—आठ पहरसे ज्यादा समयका अचार, मुरब्बा, दही, छाछ

खाना, शराब पीनेवालेके साथ खाना, रखी हुई चीज खाना। (३) मधुत्यागके अतीचार—जिन फूलोंसे त्रस-जीव पृथक् न हो सकें (जैसे गोभी) उनको खाना, सुरमा आदिमें मधु डालना। (४) उदुम्बरत्यागके अतीचार—बिना जाने हुए किसी फलको खाना, बिना फोड़े हुए (भीतर कोई जीव है या नहीं, इस बातको बिना जांच किये) फलादिका खाना, ऐसे फलोंको खाना जिनमें जीव होनेकी सम्भावना हो (५) द्यूतत्यागके अतीचार—जूआका खेल देखना, मनोविनोदके लिए ताश आदिके खेलमें हार-जीत मनाना। (६) वेश्यात्यागके अतीचार—वेश्याओंके गीत, नाच आदि सुनना वा देखना, उनके स्थानोंमें घूमना, वेश्यासक्तोंकी सङ्गति करना। (७) अचौर्यके अतीचार—किसीके न्यायसिद्ध भाग वा हिस्से-को छिपाना। (८) शिकारत्यागके अतीचार—शिकारियोंके साथ जाना वा उनकी सङ्गति करना। (९) परस्त्रीत्यागके अतीचार—अपनी इच्छासे किसी स्त्रीके साथ गन्धर्व-विवाह करना, कुमारी कन्याओंके साथ विषयसेवनकी इच्छा रखना। (१०) रात्रिभोजनत्याग-के अतीचार—रात्रिका बना हुआ भोजन दिनमें खाना, इत्यादि।

दर्शनिक श्रावकको पाक्षिक श्रावकके सम्पूर्ण आचरणोंका पालन तो करना ही पड़ता है; उसके सिवा निम्नलिखित आचरण भी उसके लिए पालनीय हैं। दर्शनिक श्रावकको मद्य, मांस, मधु और अचारका व्यवसाय न करना चाहिए। मद्य, मांस खानेवाले स्त्री-पुरुषोंके साथ शयन और भोजन न करना चाहिए। किसी तरहका नशा न करना चाहिए। अपने अधीन स्त्रीपुत्रोंको धर्म-मार्गमें दृढ़ करनेका पूर्ण उद्यम करना चाहिए।

ज्ञानानन्द श्रावकाचारमें लिखा है कि, दर्शनप्रतिमा-वालेको बाईस अभक्ष्य न खाना चाहिए।

२य व्रतप्रतिमा—जो माया, मिथ्या और निदान इन तीनों शल्योंको छोड़ कर पांच अणुव्रतोंका अतीचार-रहित पालन करता है तथा सात प्रकारके शीलव्रतोंको भी धारण करता है, वह 'व्रतप्रतिमा'का धारक 'व्रती' श्रावक कहलाता है। मनके कांटेको शल्य कहते हैं। शल्य तीन प्रकारकी है-१ मायाशल्य, २ मिथ्याशल्य और ३ निदानशल्य। मायाशल्य—अपने भावोंकी विशुद्धताके लिए व्रत धारण करके किसी अन्तरङ्ग लज्जा भावसे वा किसी सांसारिक प्रयोजनसे अथवा अपनी कीर्ति फैलानेके अभिप्रायसे व्रत धारण करनेको मायाशल्य कहते हैं। मिथ्याशल्य—व्रतोंका पालन करते हुए भी चित्तमें पूरा श्रद्धान न होना अर्थात् उन व्रतोंसे आत्माका कल्याण होगा या नहीं, ऐसी शङ्का रखना मिथ्याशल्य कहलाती है। निदानशल्य—इस प्रकारकी इच्छासे व्रतोंका पालन करना कि, 'परलोकमें नरक, निगोद और पशुगतिसे बच कर मेरा स्वर्ग आदिमें जन्म हो।' इन शल्योंको हृदयसे निकाल कर निम्नलिखित पांच अणुव्रतोंका पालन करना चाहिए।

(१) अहिंसाणुव्रत—अभिप्राय पूर्वक नियम करने-को व्रत कहते हैं। गृहस्थोंके समस्त पापोंका त्याग होना असम्भव है, इसलिए वे अणुव्रत अर्थात् स्थूलरूपसे व्रतोंका पालन करते हैं। समन्तभद्राचार्यने अहिंसाणु-व्रतका लक्षण इस प्रकार किया है—

"संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥"

अर्थात् सङ्कल्प (इरादा) करके मन-वचन-काय एवं कृत-कारित अनुमोदनासे त्रसजीवोंकी हिंसा (वध) नहीं करना, अहिंसाणुव्रत कहलाता है। इस व्रतमें भोजन वा औषधके उपचार एवं पूजाके लिए किसी भी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवका घात करनेका इरादा नहीं करना चाहिए और न हिंसक कार्योंकी प्रशंसा ही करनी चाहिए। स्थूल शब्दसे मतलब यहां निरपराधियोंकी सङ्कल्प करके हिंसा करनेसे है; क्योंकि पुराणोंमें लिखा है कि अपराध करने-वालोंको चक्रवर्ती आदि यथायोग्य दण्ड दिया करते थे जो अणुव्रतके धारक थे। इससे ज्ञात होता है कि दण्डादि देनेमें न्यायपूर्वक जो प्रवृत्ति होती है, उसका विरोध अणुव्रत धारकके लिए नहीं है। श्रीअमितगति-आचार्य अपने "सुभाषितरत्नसन्दोह"में लिखते हैं—

"भेषजातिथिमंत्रादिनिमित्तेनापि नांगिनः ।
प्रथमाणुव्रतासक्तैर्हिंसनीयाः कदाचन ॥" ७६७ ॥

अर्थात् प्रथम अहिंसाणुव्रतके पालन करनेवालेको उचित है कि, वह औषध, अतिथिसत्कार और मन्त्र आदिके लिए भी त्रस प्राणियोंका घात कभी न करे। सारांश यह है कि अहिंसाणुव्रतीके हृदयमें करुणा-बुद्धि ऐसी होना चाहिए कि वह स्थावर (एकेंद्रिय) और त्रस (द्वींद्रियादि) जीवोंकी रक्षा ही करना चाहे तथा प्रवृत्तिमें खान-पान आदि व्यवहारके लिए आवश्यकताके अनुसार ही स्थावरकायको विराधना (हिंसा) करे। जरूरतसे ज्यादा व्यर्थ पृथिवी जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीवोंकी हिंसा न करे। इस अहिंसाणुव्रतको निर्दोष पालनेके लिए इसके पांच अतीचारोंको भी त्याग देना चाहिए। अहिंसाणुव्रतके पांच अतीचार ये हैं—१ बन्ध, २ वध, ३ छेद, ४ अतिभारारोपण और ५ अन्नपाननिरोध। बन्ध—पशु आदि कोई भी जीव जो अपनी इच्छानुसार किसी स्थानको जाना चाहता हो, उसे रोकनेके लिए खूँटा, रस्सी, पींजरा आदि द्वारा आबद्ध रखना, बन्धातीचार कहलाता है। वध—लकड़ी, कोड़ा, बेत आदिसे जीवोंको मारना, वधातिचार है। छेदन—कान, नाक आदि अवयवोंको काटना, छेदातिचार है। अतिभारारोपण—बैल, घोड़ा आदि प्राणी अपनी शक्तिके अनुसार जितना बोझ ले जा सकें, उससे ज्यादा बोझ लादना, अतिभारारोपण कहलाता है। अन्नपाननिरोध—किसी भी कारणसे उन बैल, घोड़ा आदि जानवरोंको भूँखा वा प्यासा रखना, अन्नपाननिरोधातीचार है।

(२) सत्याणुव्रत—स्नेह मोह और द्वेषके उद्वेगसे असत्य भाषण किया जाता है, उस असत्यके त्याग करनेमें आदर रखने वा सत्य बोलनेको सत्याणुव्रत कहते हैं। तात्पर्य यह है कि गृहस्थको ऐसे हित मित वचन कहने चाहिये जिससे अपना और दूसरेका अहित न हो वा किसीको कष्ट न पहुंचे। इसके भी पांच अतीचार हैं। (१) मिथ्योपदेश—अभ्युदय और मोक्ष सिद्ध करनेवाली विशेष क्रियाओंमें किसी भी अन्य पुरुषको विपरीतरूप प्रवृत्ति कराना वा विपरीत अभिप्राय बतलाना, मिथ्योपदेश है। (२) रहोभ्याख्यान—स्त्री-पुरुषों द्वारा एकान्तमें की हुई विशेष क्रियाओंको प्रगट कर देना, रहोभ्याख्यान कहलाता है। (३) कूटलेखक्रिया—जो बात किसी दूसरेने नहीं कही हो, उसी बातको किसीकी प्रेरणासे 'उसने यह बात कही है वा उसने अमुक कार्य किया है' इस प्रकार ठगनेके लिए झूठे लेख लिखना, कूटलेखक्रिया है। (४) न्यासापहार—कोई व्यक्ति सोना, चांदी आदि द्रव्य किसीके पास धरोहर रख गया हो और फिर वह अपनी रक्खी हुई चीजोंकी संख्या भूल कर कम मांगने लगे, तो उस समय धरोहर रखनेवालेका ऐसा कहना कि 'अच्छा ठीक है, इतना ही ले जाओ' अथवा वह न माँगे वा मांगे भी तो न देना न्यासापहार है। (५) साकारमन्त्रभेद—किसी अर्थके प्रकरण अथवा अङ्गोंके विकारसे दूसरेका अभिप्राय जान कर ईर्ष्या और डाहके कारण उस अभिप्रायको प्रगट कर देना, साकारमन्त्रभेद अतीचार है। सत्याणुव्रतके पालकके लिए ये पांच अतीचार त्याज्य हैं। कारण उक्त पांच अतीचारोंके होनेसे सत्याणुव्रतका पूर्णतया पालन नहीं होता।

(३) अचौर्याणुव्रत—दूसरेकी गिरी हुई, पड़ी हुई रक्खी हुई वा भूली हुई वस्तु (धन आदि) स्वयं ग्रहण न कर वा दूसरेको उठा कर न देना अचौर्याणुव्रत है। इसके पांच अतीचार हैं, १ स्तेनप्रयोग (दूसरेको चोरीका उपाय बताना), २ तदाहृतादान (चोरीका माल खरीदना), ३ विरुद्धराज्यातिक्रम (राज्यकी आज्ञाके विरुद्ध लेन-देन करना), ४ हीनाधिक-मानोन्मान (नाप-तोलमें कमती देना वा बढ़ती लेना अथवा गज, कूट आदि कमती-बढ़ती रखना) और ५ प्रतिरूपकव्यवहार (अधिक मूल्यकी वस्तुमें अल्पमूल्यकी वस्तु मिला कर चला देना)। ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतीचार त्याग देने योग्य हैं। क्योंकि इनके बिना दूर हुए अचौर्याणुव्रतमें उत्तमता नहीं आती।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत—उपात्त (विवाहित) और अनुपात्त (अविवाहित) परस्त्रियों वा परपुरुषोंके समागममें विरक्त रहना, अर्थात् परस्त्री वा परपुरुषसे रमण न करके स्वस्त्री वा स्वपतिमें सन्तोष रखनेका नाम ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रतका अतीचार रहित पालन करना ही प्रशस्त है। ब्रह्मचर्याणुव्रतके पांच अतीचार हैं। (१) परविवाह-

करण—दूसरोंका विवाह कराना, (२) इत्वरिका-अपरिगृहीतागमन—जिसका कोई स्वामी नहीं है ऐसी वेश्या आदिके पास जाना, (३) इत्वरिका-परिगृहीता-गमन— जिसका कोई एक पुरुष पति हो, ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रीसे रति करना, (४) अनङ्गक्रीड़ा—काम सेवनके अङ्गके सिवा अन्य स्थानमें कामक्रीड़ा करना और (५) कामतीव्राभिनिवेश—काम सेवनसे तृप्त न होना, सर्वदा उसीमें लगे रहना। स्वदारसन्तोष-व्रतीको इन पांच अतीचारोंका स्मरण रखना चाहिये।

(५) परिग्रह परिमाण अणुव्रत—भूमि, यान, वाहन, धन, धान्य, गृह, भाजन, कुप्य, (वस्त्र, कार्पास, चन्दन आदि) शयनासन, चौपद, दुपद, इन दश प्रकारके परिग्रहोंके परिमाण करनेको परिग्रह-परिमाण अणुव्रत कहते हैं। बिना आवश्यकताके बहुतसी चीजें संग्रह करना, दूसरेका ऐश्वर्य देख कर आश्चर्य करना, अतिलोभ करना और पशुओं पर हदसे ज्यादा बोझ लादना ये पांच इस व्रतके अतीचार हैं।

व्रतप्रतिमा-धारक उपर्युक्त व्रतोंको अतीचाररहित पालता है। यदि कोई अतीचार लगे तो प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त करना चाहिए। उपर्युक्त पांच अणुव्रतोंके सिवा व्रती श्रावकको तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन सप्त शीलव्रतोंका भी पालन करना चाहिए। सप्त शीलव्रत, यथा— (१) दिग्विरति, (२) देशविरति, (३) अनर्थदण्डविरति, (४) सामायिकव्रत, (५) प्रोषधोपवास-व्रत (६) उपभोगपरिभोग-परिमाणव्रत और (७) अतिथि-संविभागव्रत।

(१) दिग्व्रत—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्द्ध, अध, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य इन दशों दिशाओंमें जानेका परिमाण करके उसके बाहर गमन न करनेको दिग्व्रत कहते हैं। यह व्रत मरण पर्यन्त त्यक्त क्षेत्रोंके बाहरके पापोंके छोड़नेके लिए अर्थात् सांसारिक, व्यापारिक और व्यवहारिक कार्य-जनित पापोंसे बचनेके लिए ग्रहण किया जाता है। किन्तु तीर्थयात्रा और धर्मसम्बन्धी कार्यके लिए मर्यादा नहीं होती; जैसा कि ज्ञानानन्द-श्रावकाचारमें लिखा है—"क्षेत्रका परिमाण सावद्य योग (पापकार्यों)के लिए किया जाता है, धर्मकार्यके लिए नहीं। धर्म-कार्यके लिए किसी प्रकारका त्याग नहीं है।" इस व्रतके पांच अतीचार हैं, यथा—(१) ऊर्द्धातिक्रम (परिमाणसे अधिक ऊंचाईके वृक्ष पर्वतादि पर चढ़ना), (२) अधोऽतिक्रम (परिमाणसे अधिक कूप, बावड़ी, खनि आदिमें नीचे उतरना), (३) तिर्यग्व्यतिक्रम (पर्वतादिकी गुफाओंमें तथा सुरङ्ग आदिमें टेढ़ा जाना), (४) क्षेत्रवृद्धि (परिमाण की हुई दिशाओंके क्षेत्रसे अधिक क्षेत्र बढ़ा लेना) और (५) स्मृत्यन्तराधान (दिशाओंकी की हुई मर्यादाको भूल जाना)। इन अतीचारों (दोषों)से बचना चाहिए।

(२) देशव्रत—यावज्जीवके लिये किये हुए दिग्व्रतोंमेंसे और भी सङ्कोच कर किसी ग्राम, नगर, गृह, मुहल्ला आदि पर्यन्त गमनागमनकी मर्यादा करके उससे आगे मास, पक्ष, दिन, दो दिन, चार दिन आदि कालकी मर्यादासे गमनागमन त्याग करनेका नाम देशव्रत है। इसे देशावकाशिक व्रत कहते हैं। किसी किसी ग्रन्थकारने इसे शिक्षाव्रतमें शामिल किया है और भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतको गुणव्रतमें मिला दिया है। इसके पांच अतीचार हैं, यथा १ आनयन (मर्यादासे बाहरकी वस्तुओंका मंगाना वा किसीको बुलाना), २ प्रेष्यप्रयोग (मर्यादासे बाहरके क्षेत्रमें स्वयं तो न जाना किन्तु सेवक आदिके द्वारा अपना काम निकाल लेना), ३ शब्दानुपात (मर्यादासे बाहरके क्षेत्रमें स्थित मनुष्यको खांसी आदिके शब्दसे अपना अभिप्राय समझा देना), ४ रूपानुपात (मर्यादासे बाहरके क्षेत्रमें स्थित मनुष्यको अपना रूप दिखा कर वा हाथके इशारोंसे समझा कर अपना काम करा लेना) और ५ पुद्गलक्षेप (मर्यादासे बाहर कङ्कड़, पत्थर आदि फेंक कर इशारा करना)। इन अतीचारों (दोषों)से व्रतकी रक्षा करनी चाहिए।

(३) अनर्थदण्डत्यागव्रत—बिना प्रयोजन हो जिन कार्योंके करनेसे पापारम्भ हो, उन कार्योंको त्याग देनेका नाम अनर्थदण्डत्यागव्रत है। जिनसे व्यर्थ ही पापबन्ध होता है, ऐसे अनर्थदण्डके पांच भेद हैं, यथा—१ पापोपदेश, २ हिंसादान, ३ अपध्यान, ४ दुःश्रुति और ५ प्रमादचर्या। (१) पापोपदेश अनर्थदण्ड—दूसरेको वनके दाह करनेका, पशुओंके वाणिज्यका, शास्त्रादिके व्यापार-

का, वृक्ष काटनेका, पृथिवी खोदने आदिका उपदेश देना पापोपदेश कहलाता है। (२) हिंसादान—तलवार, फरसा, कुदाली, बन्दूक, छुरा, विष आदि पदार्थोंका जिनसे अन्य प्राणियोंका वध हो सकता है, दान करना, हिंसादान है। इसलिए ऐसी चीजें किसीको भी नहीं देनी चाहिए। (३) अपध्यान—अन्य जीवोंके दोष ग्रहण करनेके भाव, अन्यके धन पानेकी इच्छा, अन्यकी स्त्रीको देखनेकी आकांक्षा, मनुष्य वा तिर्यञ्चोंके कलह देखनेकी इच्छा अन्यकी स्त्री, पुत्र, धन, आजीविका आदिके नष्ट करनेकी चिन्ता, परका अपवाद, अवज्ञा वा अपमान चाहना आदि भावोंका निरन्तर हृदयमें उदय होना अपध्यान कहलाता है। (४) दुःश्रुति अनर्थदण्ड—जिन कथाओं वा पुराणादि शास्त्रोंके सुनने वा पढ़नेसे मन कलुषित हो, ऐसे आरम्भपरिग्रह बढ़ानेवाले पापकर्मोंमें साहस देनेवाले, तथा मिथ्याभाव, राग द्वेष अभिमान अथवा कामको प्रगट करनेवाले शास्त्र एवं कथाओंका पढ़ना वा सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड कहलाता है। जैसे, कामोत्पादक उपन्यास, नाटक आदिका पढ़ना वा अश्लील किस्सोंका सुनना आदि। (५) प्रमादचर्या—बेमतलब पानी गिराना, जमीन खोदना आग जलाना, वृक्षादि छेदना आदि प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड है। इन पांच प्रकारके अनर्थदण्डोंके त्याग कर देनेका नाम अनर्थदण्डत्यागव्रत है। इसके पांच अतीचार हैं, यथा—१ कन्दर्प (नीचोंकी तरह हंसी व मसखरीमें अश्लीलतापूर्ण वचन बोलना), २ कौत्कुच्य (अश्लील वचन बोलनेके साथ साथ शरीरसे भी कुचेष्टा करना), ३ मौखर्य (निरर्थक बहुत प्रलाप वा बकवाद करना), ४ असमीक्ष्याधिकरण (बिना प्रयोजन बहुतसे मकानात, हाथी, घोड़ा, गाड़ी आदि एकत्र करना) और ५ भोगोपभोगानर्थक्य (भोग और उपभोगकी वस्तुओंको अधिक परिमाणमें ले कर पीछे उन्हें फेंक देना, जैसे थालीमें बहुतसा परसा कर पीछे उसे छोड़ देना वा फेंक देना इत्यादि) इन अतीचारोंका ख्याल रखते हुए अनर्थदण्डत्यागव्रतका पालन करना उचित है। अब चार शिक्षा व्रतोंका वर्णन किया जाता है—

(४) सामायिकव्रत—तीनों सन्ध्याओंके समय समस्त पापयोग क्रियाओंसे विरक्त हो सबसे राग-द्वेष छोड़ साम्यभाव धारण कर शुद्ध आत्मस्वरूपमें लीन होनेकी क्रियाको सामायिकव्रत कहते हैं। सामायिक नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छः प्रकार है। यथा, (१) नामसामायिक—सामायिकमें लीन आत्माके ध्यानमें अच्छे या बुरे नाम आ जाय तो उनसे राग-द्वेष न कर समभाव रखना वा निश्चयनयकी अपेक्षा उन्हें ज्ञेय समझना। (२) स्थापना-सामायिक—सुन्दर वा असुन्दर स्त्री पुरुष आदिकी मूर्ति वा चित्रका स्मरण होने पर उनसे राग-द्वेष न कर सबको पुद्गलमय समझना। (३) द्रव्य-सामायिक-इष्ट वा अनिष्ट, चेतन वा अचेतन आदि द्रव्योंमें राग-द्वेष न कर अपने स्वरूपमें उपयोग रखना। (४) क्षेत्रसामायिक—सुहावने वा असुहावने ग्राम, नगर, वन, मकान आदि किसी स्थानका स्मरण होने पर उसमें राग-द्वेष न कर, सब क्षेत्रोंको एकरूप जान कर स्वक्षेत्रमें तन्मय होना। (५) काल-सामायिक—अच्छी या बुरी ऋतु, कृष्ण वा शुक्लपक्ष, शुभ वा अशुभ दिन, नक्षत्र आदिका ख्याल आने पर किसीमें राग वा द्वेष न कर सर्वकालको एक व्यवहारकालरूप मान अपने स्वरूपमें स्थिर रहना। (६) भावसामायिक—विषय, कषाय आदि विभाव भावोंको पुद्गलकर्म-जनित विकार मान कर उनसे प्रीति वा द्वेष न करना और अपने भाव को निजानन्द-समतामें उपयुक्त रखना।

सामायिक करनेवालोंको सात प्रकारकी शुद्धि वा योग्यता रखनी चाहिए। यथा—(१) क्षेत्रशुद्धि—सामायिक करनेके लिए उपद्रव रहित वन, चैत्यालय, धर्मशाला वा अपने मकानके किसी निर्जन स्थानमें बैठना चाहिए। स्थान समतल और पवित्र होना चाहिए। (२) कालशुद्धि—सामायिक करनेके उपयुक्त काल तीन हैं, प्रातःकाल, सायंकाल और मध्याह्नकाल। ये तीन काल शुद्ध वा पवित्र हैं, इन कालोंमें सामायिक करना कालशुद्धि कहलाती है। (३) आसनशुद्धि—सामायिक करनेके लिए जहां बैठें वा खड़े होवें, वहां कोई दर्भासन वा चटाई अथवा पीला सफेद वा लाल आसन बिछा लेना चाहिए। उस पर कायोत्सर्ग, पद्मासन वा अर्धपद्मासनसे ध्यानपूर्वक सामायिक करना

चाहिये। (४) मनःशुद्धि—मनमें आर्तध्यान वा रौद्रध्यान न कर मुक्तिकी रुचिसे धर्मध्यानमें आसक्त रहना चाहिए। (५) वचनशुद्धि-सामायिक करते समय परम आवश्यकीय कार्य होने पर भी किसीसे वार्तालाप नहीं करना चाहिए; केवल पाठ पढ़ने और शुद्ध मन्त्रोच्चारण करनेमें ही वचनका उपयोग करना चाहिये। (६) कायशुद्धि—शरीरमें मलमूत्रकी बाधा न रखनी चाहिए और न स्त्री-संसर्ग किये हुए शरीरसे सामायिक ही करना चाहिए। (७) विनयशुद्धि—सामायिक करते समय देव, गुरु, धर्म और शास्त्रका विनय रख कर उनके गुणोंमें भक्ति करनी चाहिए; अपनेमें ध्यान और तप आदिका अहङ्कार न आने देना चाहिए।

जैनशास्त्रोंमें सामायिक करनेकी विधि इस प्रकार लिखी है- सामायिक करनेवाले श्रावकोंको उचित है कि, उपर्युक्त सातों शुद्धियोंका विचार रखते हुए सामायिक प्रारम्भ करनेके पहले कालका परिमाण और समयका नियम कर लें। अन्तर्मुहूर्त काल तक धर्मध्यान करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। सामायिकके कालकी मर्यादा करनेके बाद इस बातका भी प्रमाण कर लेना उचित है कि "इतने समय तक मैं इस स्थानके चारों ओर १ गज वा २ गज क्षेत्र तक जाऊंगा, अधिक नहीं अथवा मेरे साथ जो परिग्रह है, उसके सिवा मैंने इतने काल पर्यन्त सर्व परिग्रहका त्याग किया" इत्यादि, अनन्तर खड़े हो कर नौ नौ बार णमोकार-मन्त्र पढ़ते हुए चारों दिशाओंमें तीन आवर्त पूर्वक साष्टांग नमस्कार करें फिर सामायिक करनेके लिए बैठ जावें। सामायिक प्रातः, मध्याह्न सायाह्न तीनों संध्याओंमें करना चाहिए।

इस सामायिक-शिक्षाव्रतकी शुद्धताके लिए निम्नलिखित पांच अतीचारोंको दूर करना चाहिए। (१) मनःदुःप्रणिधान—मनको विषय कषाय आदि पापबन्धके कार्योंमें चञ्चल करना। (२) वाग्दुःप्रणिधान—वचनको चञ्चल करना अर्थात् सामायिक करते समय किसीसे वार्तालाप करना आदि। (३) कायदुःप्रणिधान—शरीरको हिलाना। (४) अनादर - उत्साहरहित अनादरसे सामायिक करना। (५) स्मृत्यनुपस्थान-सामायिकमें एकाग्रता धारण न कर चित्तकी व्यग्रताके कारण पाठ, क्रिया वा मन्त्रादि भूल जाना। इन अतीचारोंको न होने देना चाहिए।

(५) प्रोषधोपवासव्रत—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीके दिन समस्त आरम्भ (सांसारिक कार्य) एवं विषय कषाय और चार प्रकारके आहारोंका त्याग कर धर्म-कथा श्रवण करते हुए सोलह पहर व्यतीत करनेको प्रोषधोपवासव्रत कहते हैं। पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्याग कर सर्व इन्द्रियोंको उपवासमें स्थिर रखना चाहिए। उपवासके दिन चारों प्रकारका आहार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) तथा उबटन करना, सिर मल कर नहाना, गन्ध सूंघना, माला पहनना आदि त्याग देना चाहिए। केवल पूजाके लिए धारा स्नानमात्र किया जा सकता है। व्रती श्रावक इसे अभ्यासरूपसे पालते हैं; किन्तु ४थी प्रोषधोपवासप्रतिमाके धारक इसका नियमरूपसे पालन करते हैं। अतएव इसके अतीचार आदि प्रोषधोपवासप्रतिमाके विवरणमें लिखेंगे।

(६) भोगोपभोगपरिमाणव्रत—कुछ भोग उपभोगकी सामग्रीको रख कर बाकीका यमनियमरूप * त्याग कर देना भोगोपभोगपरिमाण कहलाता है। बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं, जिनसे लाभ तो थोड़ा होता है और पाप अधिक, उनको जन्म भरके लिए छोड़ देना चाहिए। इस व्रतके पालनेवालेको प्रतिदिन निम्नलिखित विषयोंका नियम करना उचित है। यथा—आज मैं इतनी बार भोजन करूंगा, आज मैं दूध, दही, घी, तेल, नमक और मीठा इन छः रसोंमेंसे अमुक रस छोड़ता हूं, आज भाजनके सिवा इतनी बार पानी पीऊंगा, आज ब्रह्मचर्य पालूंगा, आज नाटक न देखूंगा इत्यादि। इस व्रतके पांच अतीचार हैं, यथा—१ सचित्ताहार (जीवसहित पुष्पफलादिका आहार करना), २ सचित्तसम्बन्धाहार (सचित्त अर्थात् जीवसहित वस्तुसे स्पर्श किये हुए पदार्थोंको भक्षण करना), ३ सचित्तसंमिश्राहार (सचित्त पदार्थसे मिले हुए पदार्थोंका भोजन करना), ४ अभिषव (पुष्टिकर पदार्थोंका आहार

---

* यावज्जीव त्याग करनेको यम और किसी नियत समय तकके लिए त्याग करनेको नियम कहते हैं।

करना) और दु:पक्वाहार (भले प्रकार नहीं पके हुए पदार्थ या जो पदार्थ कष्टसे या देरसे हजम हों, ऐसे पदार्थोंका भोजन करना)। ये अतीचार सर्वथा त्याज्य हैं।

(७) अतिथिसंविभागव्रत - अतिथि पुरुषोंको अर्थात् जो मोक्षके लिए उद्यमी, संयमी और अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्गमें शुद्ध हैं, ऐसे व्रती पुरुषोंको शुद्ध मनसे आहार-औषध उपकरण तथा वसतिकाका दान करना, अतिथि-संविभाग कहलाता है। अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-के धारक गृहरहित तपस्वीको विधिके अनुसार धर्मके लिए अन्य प्रकारकी इच्छा न रख कर जो दान दिया जाता है, वह अतिथिसंविभाग वा वैयावृत्य है। इस पात्रदानके लिए (१) विधि, (२) द्रव्य, (३) दाता और (४) पात्र इन चार विषयोंका ज्ञान होना आवश्यक है। इन चारों विषयोंकी जितनी उत्तमता होगी, उतना ही फल होगा।

(१) विधिविशेष—अतिथिसंविभाग वा पात्र दान देनेवालेके लिए नव प्रकारकी विधि बतलाई गई है।

१म संग्रहविधि-पहले मुनिराजको 'पड़गाहना' करे। अर्थात् शुद्ध वस्त्र पहन कर एवं प्रासुक शुद्ध जलका कलश ले कर अपने द्वार पर णमोकार मन्त्र जपता हुआ पात्र (मुनि)-की बाटमें खड़ा रहे। उस समय घरमें भोजन तैयार रहना चाहिए और चक्की चलाना, उखली-में कूटना, बुहारी देना, चूल्हा जलाना आदि आरम्भ न करना चाहिए; क्योंकि आरंभ होते देख मुनि लौट जाते हैं। बाट देखते हुए जब मुनिके दर्शन हों, तब नमोस्तु कह कर उन्हें नमस्कार करे और कहे —"आहार जलं शुद्धं वर्तते, अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ।"

२री विधिका नाम है—उच्चस्थान। अर्थात् मुनिको घरके भीतर ले जा कर किसी ऊंचे स्थान पर वा काष्ठकी चौकी आदि पर विनयसहित विराजमान करना चाहिए।

३री पादोदक विधि है; इसमें शुद्ध प्रासुक जलसे पाद प्रक्षालन किया जाता है। ४थी विधि अर्चन करना है अर्थात् अष्ट द्रव्यसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए। परन्तु इस पूजनमें ५।७ मिनटसे अधिक समय न लगाना चाहिए; क्योंकि आहारका समय निकल जानेसे वे बिना भोजन किये ही वनको चल देते हैं। ५वीं विधि प्रणाम करना है अर्थात् भक्तिभावसे नमस्कार करना चाहिए। ६ठी विधिका नाम वाक्शुद्धि है। मुनिके पड़गाहे जानेके बादसे उनके गमन पर्यन्त स्वयं एवं घरके अन्य मनुष्योंको वैसे वचन कहने चाहिए जो अत्यन्त आवश्यकीय हों और जिनसे शान्ति-भङ्ग न हो। ७वीं विधि कायशुद्धि है। दान देनेवालेका शरीर शुद्ध होना चाहिए। मलमूत्रकी बाधा, किसी प्रकारकी व्याधि, फोड़ा, कुष्ठ आदि न होना चाहिए। हाथोंसे कमरसे नीचेका भाग न छूना चाहिए। अपने हाथ मुनिके हाथोंसे ऊंचे रखने चाहिए। यदि मुनिके हाथसे छू गये, तो वे आहार न लेंगे। अतएव खूब सावधानी रखना उचित है। घरके अन्य पुरुष, स्त्री वा बालकको मुनिके सामने शुद्ध वस्त्र पहन कर ही आना चाहिए। ८वीं विधिका नाम है मन:शुद्धि। पात्रदान देते समय मनमें क्रोध, कपट, लोभ, ईर्ष्या आदि न आने देना चाहिए। प्रत्युत शुभ विचारोंको स्थान देना उचित है। ९वीं विधि एषणाशुद्धि है अर्थात् भोजनकी पूर्ण शुद्धि रखनी चाहिए। कारण, पवित्र भोजन ही मुनियों-के लिए भक्ष्य है। एषणाशुद्धि चार प्रकारकी है। यथा—

(१) द्रव्यशुद्ध—जो अन्न, दूध, मीठा आदि रस और जल रसोईके काममें लिया जाय, वह शुद्ध मर्यादाका हो और लकड़ी घुन वा कीटरहित हो तथा जो रसोई बनावे उसका भी शरीर पवित्र होना आवश्यकीय है। (२) क्षेत्रशुद्धि—रसोई बनानेका स्थान शुद्ध होना चाहिए अर्थात् वह चौका कोमल झाड़ूसे साफ किया हुआ, शुद्ध पानीसे धोया हुआ और केवल मिट्टीसे पुता हुआ होना चाहिए; गोबर आदिसे नहीं। चौकेमें अशुद्ध वस्त्रादि पहने हुए वा बालकोंका प्रवेश न होना चाहिए तथा शुद्ध जलसे पैर धो कर उसमें प्रवेश करना चाहिए। श्रावकको अचित्त जल ही व्यवहार करना उचित है; क्योंकि मुनि सचित्तका व्यवहार देख कर भोजन नहीं करते। (३) कालशुद्धि - ठीक समय पर भोजन तैयार कर रखना और ठीक समय पर ही अर्थात् ११ बजेसे पहले ही मुनिको दान करना चाहिए।

(४) भावशुद्धि—दाताको खास मुनिके लिए रसोई न बनानी चाहिए ; बल्कि अपनी ही रसोईमेंसे दान करना उचित है। कारण मुनि उद्दिष्ट भोजनके त्यागी हैं, उन्हें यदि यह बात मालूम हो जाय तो वे भोजन नहीं करते।

(२) द्रव्यविशेष—भोजन ऐसा होना चाहिए जो मुनिके राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भय, रोग आदि उत्पन्न न करे और शीघ्र पचनेवाला हो। मुनिको प्रसन्न करके अभिप्रायसे व्यञ्जन, मिष्टान्न वा गरिष्ट भोजन दान करनेसे मुनिकी तपश्चर्यामें बाधा होती है। अतएव ऐसा भोजन उन्हें कदापि न देना चाहिए। इसमें पुण्य नहीं होता, बल्कि पापबन्ध होता है।

(३) दातृविशेष—दान देनेवाला बहुत विचारवान् होना चाहिए। छोटे बालक वा नादान स्त्री अथवा निर्बल रोगी मनुष्यको दानके लिए नहीं उठना चाहिए। ऐसे व्यक्तियोंको केवल दानको देख कर उसकी अनुमोदना करनी चाहिए, इसीसे उनको दानका फल मिलता है। दातामें मुख्यतः ७ गुण होने चाहिए। जैनाचार्य श्रीअमृतचन्द्रस्वामी कहते हैं—

"ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वम्।
अविषादित्वमुदित्वे निरहंकारित्वमिति हि दातृगुणाः ॥१६९॥"

(पुरुषार्थसिद्ध्युपायः)

१ ऐहिकफलानपेक्षा—दाता ऐहिक इसलोक सम्बन्धी फलकी इच्छा न करे। २ क्षान्तिः—क्षमाभाव धारण करे। ३ निष्कपटता-कपट वा छलभाव न करे और न छलसे अशुद्ध वस्तुका दान करे। ४ अनसूयत्व—दान करते हुए अन्य दाताओंसे ईर्ष्या न करे कि, 'मेरा दान अमुकसे उत्तम हो'। ५ अविषादित्व—दानके समय किसी प्रकारका दुःख वा शोक न करे। ६ मुदित्व—दानके समय हर्षचित्त रहे। ७ दाताको यह अभिमान न करना चाहिए कि, मैं दानी हूं, पात्रदान देता हूं अतः पुण्यात्मा हूं।' दाताको शास्त्रका ज्ञाता भी होना चाहिए।

४। पात्रविशेष—जो दान लेनेके उपयुक्त हों अर्थात् जो मोक्षप्राप्तिके साधन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुणोंसे विशिष्ट हों, उन्हें पात्र कहते हैं। पात्र तीन प्रकारके हैं, उत्तम, मध्यम और जघन्य। सर्वपरिग्रहके त्यागी महाव्रतधारक मुनि उत्तम-पात्र हैं, अणुव्रत-धारक सम्यग्दृष्टि श्रावक मध्यम-पात्र और व्रतरहित पर श्रद्धासहित जैन जघन्य-पात्र हैं।

इस वैयावृत्य शिक्षाव्रतमें श्रीअरहन्तदेवकी पूजा भी गर्भित है। अतः श्रावकको उचित है कि अष्टद्रव्यसे शुद्धमनसे नित्य भगवान्‌की पूजा करे। इसप्रकार इन द्वादश व्रतोंका व्रतप्रतिमा नामक नैष्ठिक श्रावकको २य श्रेणीमें पालन करना चाहिए। व्रती श्रावक १२ व्रतोंमें-से ५ अणुव्रतोंके अतीचारोंको नहीं होने देता, किन्तु ७ शीलव्रतोंके दोषोंको शक्तिके अनुसार ही बचाता है। यदि पांच अणुव्रतोंमें कोई दोष वा अतीचार लग जाय, तो उसका दण्ड वा प्रायश्चित्त लेना पड़ता है, किन्तु शीलव्रतोंके लिए ऐसा नियम नहीं।

सागरधर्मामृतकार पण्डित आशाधरजी लिखते हैं—अहिंसाव्रतकी रक्षा और मूलव्रतकी उज्ज्वलताके लिए धीरपुरुष रात्रिको चारों ही प्रकारका भोजन त्याग दे। व्रती श्रावकको उचित है कि, भोजन करते समय मुखसे कुछ न कहे और न किसी अङ्गसे कुछ इशारा ही करे क्योंकि इष्ट भोज्य वस्तुके मांगनेसे भोजनमें गृद्धता बढ़ती है। किन्तु यदि कोई थालीमें कुछ देता हो और उसकी आवश्यकता न हो, तो इशारेसे उसे मना कर सकते हैं। भोजन करते समय यदि गीला चमड़ा, गीली हड्डी, शराब, मांस, लोहू, पीब आदि दिखाई दे वा छू जाय, रजस्वला स्त्री, कुत्ता, बिल्ली, चाण्डाल आदिका स्पर्श हो जाय, कठोर (जैसे, अमुकको काट डालो, अमुकके घर आग जला गई इत्यादि) शब्द सुनाई पड़े तथा त्यक्त पदार्थ खानेमें आ जाय, थालीमें कोई कीट पतङ्गादि पड़ कर वह मर जाय, तो भोजन छोड़ देना चाहिए।

३य सामायिक प्रतिमा—व्रतप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास करके अधिक ध्यान करनेके अभिप्रायसे तीसरी श्रेणी (सामायिक प्रतिमा) में आ कर पूर्वोक्त * विधिके अनुसार दिनमें तीन बार सामायिककी क्रियाका पालन करना चाहिए। इस अभ्यासमें सामायिकका काल अन्तर्मुहूर्त (४८ मिनट) है, अर्थात् १ समयसे ले कर ४८

* विधि हम सामायिक व्रतके प्रकरणमें कह चुके हैं।

मिनट या २ घड़ी तक सामायिक कर सकते हैं। श्रीमद्-समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

"चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथाजातः।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी॥"

जो चारों दिशाओंमें तीन तीन बार आवर्त और चार चार बार प्रणाम करता है, जो कायोत्सर्गमें स्थित रहता है, जो अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परिग्रहकी चिन्तासे पृथक् है, जो खड्गासन और पद्मासन इन दो आसनोंमें-से किसी एक आसनको धारण करता और त्रिकाल वन्दना करता है, वह सामायिक प्रतिमाका धारक "सामायिकी श्रावक" है।

सामायिकव्रतका वर्णन ऊपर व्रतप्रतिमाके प्रकरणमें कर चुके हैं। व्रती श्रावक और सामायिकी श्रावक इन दोनोंके सामायिक-व्रतमें क्या अन्तर है, इस विषयमें ज्ञानानन्दश्रावकाचारका यह मत है—दूसरी प्रतिमावालेको अष्टमी और चतुर्दशीके दिन सामायिक करनी ही चाहिए; किन्तु अन्य दिनके लिए वह बाध्य नहीं है। परन्तु सामायिकी श्रावक प्रत्येक दिन त्रिकाल सामायिक करनेके लिए बाध्य है।

इसके अतीचार आदि व्रतप्रतिमा-प्रकरणके अन्तर्गत सामायिक व्रतके वर्णनमें देखने चाहिए।

४र्थ प्रोषधोपवासप्रतिमा—जो प्रत्येक मासके चार पर्वोंमें, अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशीमें अपनी शक्तिको न छिपा कर शुभ ध्यानमें तत्पर रहता हुआ प्रोषधके नियमका पालन करता है, वह प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारक "प्रोषधी श्रावक" कहलाता है।

प्रोषधोपवास करनेका नियम जैन शास्त्रोंमें इस प्रकार लिखा है—७मी और १३शीके दिन (दोपहर-को) एक समय भोजन करना चाहिए, फिर ८मी और १४शीको निर्जल उपवास करके ९मी और पूर्णिमा वा अमावस्याको एक समय जीमना चाहिए; अर्थात् ४८ घण्टा तक निराहार रहना प्रोषधोपवास है। किन्तु वह समय धर्मध्यानमें ही बिताना चाहिए। उपवासके दिन अन्य सांसारिक कार्य वा आरम्भ करनेसे उपवास-का फल नहीं होता। जो इस प्रकार प्रोषधोपवासका यावज्जीव पालन करता है, वही यथार्थमें "प्रोषधी श्रावक" है। अतीचार आदि पहले कह चुके हैं।

५म सचित्तत्याग प्रतिमा—जो कच्चे, अप्रासुक वा अपक्व फल, मूल, शाक, शाखा, गांठ, कन्द, फूल और बीज नहीं खाता, वह दयावान् "सचित्तत्यागी श्रावक" कहलाता है। इस श्रेणीका श्रावक सचित्त वा जीव-सहित कोई भी चीज मुखमें नहीं देता। कच्चा पानी नहीं पीता, फल आदिको एकाएक मुंहमें दे तोड़ता नहीं। प्रासुक वा अचित्त वस्तुओंका ही व्यवहार करता है। योनिभूत अन्न (जिसमें अंकुर उत्पन्न हो गये हों) चाहे वह सूखा भी हो, नहीं खाता। सचित्तत्यागी श्रावक पत्र पान, नीम, सरसों आदिके पत्ते), फल (खीरा, ककड़ी कुष्माण्ड, नीबू, अनार, कच्चे आम, कच्चे केले, आदि), छाल (वृक्षकी वल्कल), मूल (अदरख आदि तथा नीम आदि वृक्षोंकी जड़), किशलय (छोटे पत्ते), बीज (कच्चे और सजे चने, मूंग, तिल, बाजरा, मसूर, जीरा, गेहूं, जौ धान आदि) इन पदार्थोंको नहीं खाता।

जो वस्तु अग्निसे तप्त अर्थात् खूब गरम कर ली जाय, पक जाय, धूपमें या अग्निमें पक जाय, सूख जाय और जिसमें नमक आवला आदि कषाय पदार्थ मिला दिये जाय, वह वस्तु 'प्रासुक' हो जाती है। जैसे-जल गरम करनेसे वा लवङ्ग आदि द्वारा उसके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णको बदल देनेसे अन्न पकानेसे और फल सुखाने वा छिन्न भिन्न करनेसे प्रासुक होता है।

६ष्ठ दिनमैथुनत्याग प्रतिमा—अमितगति आचार्यका मत है कि जो मन्दरागी धर्मात्मा दिनमें स्त्री सेवन नहीं करता (वा उसका त्याग करता है); उस दिन मैथुनत्याग प्रतिमाके धारकको "दिनमैथुनत्यागी श्रावक" कहते हैं। किन्तु आचार्यप्रवर श्रीसमन्तभद्र-स्वामीने इस प्रतिमाका नाम "रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा" बतलाया है; जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

जो रात्रिको दयार्द्रचित्त हो अन्न (चावल, गेहूं आदि), पान (दूध, जल आदि), खाद्य (बरफी, पेड़ा आदि) और लेह्य (रबड़ी, चटनी आदि) इन चारों प्रकारके पदार्थोंको नहीं खाता, वह रात्रिभुक्ति-त्यागी श्रावक है।

७म ब्रह्मचर्यप्रतिमा—इससे पहले स्त्रीका त्याग

नहीं था, किन्तु इस श्रेणीके श्रावकको स्त्री भी त्याज्य है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें लिखा है—

"मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥१४३॥"

मलके बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले मलप्रवाही दुर्गन्धयुक्त और लज्जास्पद वा ग्लानियुक्त अङ्गको समझ कर जो कामसेवनसे सर्वथा विरक्त होता है, वह ब्रह्मचर्य नामक ७म प्रतिमाका धारक ब्रह्मचारीश्रावक है। श्रीकार्तिकेयस्वामी कहते हैं—जो ज्ञानी मन, वचन और कायसे समस्त स्त्रियोंकी अभिलाषाका त्याग कर देता है तथा जो कृत, कारित, अनुमोदना और मन, वचन, कायसे नव प्रकार मैथुनको छोड़ देता है एवं ब्रह्मचर्यकी दीक्षामें आरूढ़ होता है, वह ही ब्रह्मव्रती वा ब्रह्मचारी श्रावक है।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा नामक जैनग्रन्थकी संस्कृत टीकामें लिखा है—"अष्टादशसहस्रप्रकारेण शीलं पालयति।" अर्थात् ब्रह्मचारी श्रावक १८ हजार भेदों सहित शीलव्रतका पालन करता है। यहां शीलव्रतसे तात्पर्य ब्रह्मचर्यव्रतका है।

जैन-ग्रन्थोंमें शील वा ब्रह्मचर्यके अठारह हजार भेदोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—४ प्रकारकी स्त्रियां होती हैं जैसे देवी, मानुषी, तिरश्ची (पशु) और अचेतन (काष्ठचित्रादि निर्मित), इन चारों प्रकारकी स्त्रियोंका मन, वचन, कायसे गुणा करनेसे १२ भेद हुए। इनको कृत, कारित और अनुमोदना इन तीनोंसे गुणा करने पर ३६ भेद हुये। ३६को पांचों इन्द्रियोंसे गुणा करने पर १८० भेद हुए। इनको १० प्रकारके संस्कारोंसे गुणा करने पर १८०० भेद हुए। और १८००को १० प्रकारकी काम-चेष्टाओंसे गुणा करने पर १८००० भेद हुए। मैथुनके कारण पांचों इन्द्रियोंमें चञ्चलता होती है, इसलिए पांच इन्द्रिएं शामिल की गईं। शरीरसंस्कार, शृङ्गारसंस्कार, हास्यक्रीड़ा, संसर्गवाञ्छा, विषयसंकल्प, शरीर निरीक्षण, शरीरमण्डन (देहको आभूषणादिसे सुसज्जित करना) दान (स्नेहकी वृद्धिके लिये स्त्रीको प्रिय वस्तु देना), पूर्वरतानुस्मरण (पहलेके किये हुए कामसेवनको याद करना) और मनश्चिन्ता (मनमें मैथुनकी चिन्ता करना) ये दश संस्कार कामोत्पादक हैं; इसलिये इन्हें भी शामिल किया। इन सबके वशीभूत होनेके कारण कामोंको १० तरहकी चेष्टाएं हो जाती हैं। यथा—चिन्ता (स्त्रीकी फिकर), दर्शनेच्छा (स्त्रीके देखनेकी चाह), दीर्घोच्छ्वास (आह करना), शरीरपीड़ा, शरीरदाह, मन्दाग्नि, मूर्च्छा, मदोन्मत्तता, प्राणसंदेह और शुक्रमोचन।

ब्रह्मचर्यव्रतकी रक्षाके लिये निम्नलिखित ९ विषयोंको छोड़ देना चाहिये। यथा—१ स्त्रियोंके स्थानमें रहना, २ रुचि और प्रेमसे स्त्रियोंको देखना, ३ मीठे वचनोंसे परस्पर भाषण करना, ४ पूर्वभोगोंका चिंतवन करना, ५ गरिष्टभोजन जी भरके खाना, ६ शरीरको साफ-सुथरा रख कर शृङ्गार करना, ७ स्त्रीके पलङ्ग वा आसन पर सोना, ८ कामवासनाकी कथाएं कहना वा सुनना और ९ भर पेट भोजन करना। इन नौ बातोंको सर्वथा छोड़ देना ही उचित है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी श्रावकका यह भी कर्त्तव्य-कर्म है कि, वह उदासीनता-सूचक वस्त्र पहने। स्त्री-सहित अवस्थामें जिन कपड़ोंको पहनता था, उन्हें न पहने। जिन वस्त्रोंके पहननेसे अपनेको तथा दूसरोंको वैराग्य उत्पन्न हो, ऐसे सफेद वा गैरिक सूती वस्त्र पहने। सिर पर कनटोप वा छोटा दुपट्टा बांधे जिसको देखते ही अन्य लोग समझ जांय कि वह स्त्रीका त्यागी वा ब्रह्मचारी है। इसी प्रकार आभूषण आदि भी न पहने। यदि घरमें ही रहे तो किसी एकान्त कमरेमें अथवा मन्दिरके निकट धर्मशाला आदिमें शयन करे जहां स्त्रियोंकी पहुंच न हो। घरमें सिर्फ भोजन करने जावे और व्यापार करता हो तो व्यापार कर चुकनेके बाद अवशिष्ट समय धर्मस्थानमें बितावे। अपना कार्य पुत्रादिको सौंपता जावे और स्वयं निराकुल हो ब्रह्मचर्यका पालन करे।

ब्रह्मचारी श्रावक अपने निर्वाहके लिए प्रयोजनके अनुसार कुछ रुपये भी रख सकता है। स्वयं वा अन्यसे रसोई बनवा सकता है एवं किसीके आदरपूर्वक निमन्त्रण करने पर शुद्ध आहारको ग्रहण कर सकता है।

ब्रह्मचारीके लिये नित्य स्नान करनेका नियम नहीं है। यदि जिनेन्द्रकी पूजा करे तो स्नान अवश्य ही करना पड़ता है, अन्यथा उसकी इच्छा। परन्तु शरीरको मल मल कर स्नान नहीं कर सकता, थोड़े जलसे धारास्नान कर सकता है। धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें लिखा है—

'सुखासनं च ताम्बूलं सूक्ष्मवस्त्रमलंकृतं ।
मंजनं दन्तकाष्ठं च मोक्तव्यं ब्रह्मचारिणा ॥'' ३४ ॥

ब्रह्मचारी गद्दे आदि सुखमय आसनों पर, जिनसे शरीरको बहुत आराम और आलस्य आ जावे, न सोवे और न बैठे। कभी ताम्बूल न खावे, महीन कपड़े और गहने न पहने तथा शरीर-मज्जन और दन्तवन न करे।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक प्रवृत्तिमार्ग है, उसके बाद निवृत्तिमार्ग प्रारम्भ होता है। अतएव अच्छी तरह उद्योग करके यहां तक स्वपर कल्याण कर सकता है। किन्तु आगे कुछ परतन्त्रता है।

८म आरम्भत्याग-प्रतिमा—जब ब्रह्मचारी श्रावक यह निश्चय कर लेता है कि अब मैंने अपने पुत्रादिको सर्व व्यापार सौंप दिया है, वे मुझे हर्षपूर्वक भोजन दे दिया करेंगे अथवा सहधर्मी लोग मेरे भोजनपानके लिए सावधान रहेंगे तब वह आठवीं श्रेणीके नियमोंको धारण करता है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें लिखा है—

"सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥" १०४ ॥

जो श्रावक जीवोंके घातमें कारण सेवा, खेती, व्यापार आदि आरंभ-कार्योंसे विरक्त होता है, वह आरंभ-त्यागी श्रावक है। श्रीमदमितगति आचार्य कहते हैं—

"निरारम्भः स विज्ञेयो मुनीन्द्रैर्हतकल्मषैः ।
कृपालुः सर्वजीवानां नारम्भं विदधाति यः ॥" ८४० ॥

जो श्रावक सब जीवों पर करुणा कर आरम्भ नहीं करता, वह निरारम्भी है; ऐसा निर्दोष मुनीन्द्रोंका कहना है।

आरम्भ दो प्रकारका है—एक व्यापारका आरम्भ, जैसे रोजगारके लिए ऐसी क्रियाएं करना जिनसे बचाने पर भी हिंसा हो ही जाय, दूसरा घरके कामोंका आरम्भ; जैसे पानी भरना, चूल्हा जलाना, चक्की चलाना, उखली-में कूटना इत्यादि। इन दोनों प्रकारके आरम्भोंको जो नहीं करता, वह निराम्भ कहलाता है। किन्तु धर्म कार्योंके निमित्त जो आरम्भ किया जाता है वह आरम्भ-में शामिल नहीं है।

इस श्रेणीका श्रावक अपना व्यापार आदि पुत्र आदि पर सौंप देता है और अपने सर्व परिग्रहका विभाग कर देता है। जिसको जो देना होता है, दे देता है; अपने लिए सिर्फ वस्त्रादि थोड़ासा साधन रख लेता है। किन्तु उस धनको व्याज पर नहीं लगा सकता; समय समय पर धर्मकार्योंमें व्यय कर सकता है।

निरारम्भी श्रावक विशेष उदासीनताकी वृद्धिके लिए एकान्त स्थानमें रहता है, अपने पुत्रादि वा अन्य सहधर्मी यदि निमन्त्रण दे जाय तो वहां जा कर भोजन कर आता है। जिस चीजके खानेका त्याग हो, वह बतला देता है। यदि घरके लोग भोजनके सम्बन्धमें कुछ पूछे तो सिर्फ उन पदार्थोंके बारेमें मनाकर सकता है जो उसके लिए हानिकर हो। किन्तु अपनी रसना इन्द्रियके वशवर्ती हो किसी अभीष्ट पदार्थके बनानेके लिए आज्ञा नहीं दे सकता। थोड़े और प्रासुक जलसे आवश्यक काम करे। मलमूत्र आदि सूखी जमीन पर क्षेपण करे। सवारीका त्याग करे; बैल गाड़ी, घोड़ागाड़ी, पालकी आदि पर न चढ़े। रात्रिको प्रासुक भूमि पर धर्मकार्यके निमित्त ही चले। अपने हाथसे दीपक न जलावे, किन्तु शास्त्र पढ़नेके लिए जला सकता है। कपड़े न धोवे और न धोनेके लिए किसीसे कहे। अपने आप कोई धो दे तो उसे ग्रहण करे।

आरम्भत्यागी गृहस्थ घरको सर्वथा नहीं छोड़ता, केवल आरम्भका त्याग करता है। अतः घरमें रह कर भी धर्म साधन कर सकता है।

९म परिग्रहत्याग-प्रतिमा—इस प्रतिमाका लक्षण श्रीसमन्तभद्राचार्यने इस प्रकार कहा है—

"बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद् विरतः ॥" १४५ ॥

जो बाहरके दश प्रकार परिग्रहोंमें ममता नहीं करता और मोहरहित हो आत्मस्वरूपमें लीन रहता है—सन्तोषवृत्ति धारण करता है, वह परिचित्तपरिग्रहसे विरत 'परिग्रहत्यागी श्रावक' है।

परिग्रहत्यागी श्रावक शेष परिग्रहको विभाजित करके अपने पास सिर्फ पहनने ओढ़नेके कुछ कपड़े और खाने पीनेका पात्र रख कर और सर्व परिग्रहको त्याग देता है।

१०म अनुमतित्यागप्रतिमा—जो आरम्भ परिग्रह और इस लोक सम्बन्धी कार्योंमें अनुमति वा सम्मति न दे वह समबुद्धिका धारक 'अनुमतित्यागी श्रावक' है। १०वीं प्रतिमाका धारक सर्वथा ही पापकार्योंमें अपनी सम्मति नहीं देता। इस श्रेणीके श्रावकको उचित है कि, वह धन पैदा करने, घर वा बाजार आदि बनाने तथा अन्यान्य गृहस्थोंके कार्योंमें मन और वचनसे भी रुचि न करे एवं आहारादिके विषयमें भी कुछ सम्मति वा आज्ञा न दे। पहले तो निमंत्रण मिलने पर जाता था, किन्तु अब खास भोजनके समय जो ले जावे, उसीके घर भोजन करता है; पहलेसे निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता।

११श उद्दिष्टत्यागप्रतिमा—जो घरको हमेशाके लिए छोड़ कर वनमें मुनिमहाराजके पास जा व्रतोंको धारण करता है और भिक्षावृत्तिसे भोजन करता हुआ तप करता है, वह खण्ड वस्त्रका धारक उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है। जो अपने निमित्त किया हुआ, कराया हुआ वा अपनी अनुमतिसे बनाया हुआ, ऐसे तीन प्रकारके भोजनको ग्रहण नहीं करता, वह उद्दिष्टत्यागी श्रावक है। किसी पात्रके लिए जो भोजन बनाया जाता है, उसे उद्दिष्टआहार कहते हैं। उद्दिष्टत्यागी श्रावक किसी खास जगह भोजन नहीं करते। वे भोजनके समय गृहस्थके घर जाते हैं; उस समय जो उन्हें पड़गाह लेता है, उसीके घर वे आहार ग्रहण करते हैं। उत्कृष्ट श्रावक खास अपने लिए बनाए हुए भोजन शय्या, आसन, वस्त्रादिसे विरक्त रहता है। अन्न, पान, खाद्य और स्वाद्य चारों ही प्रकारका भोजन भिक्षारूपसे ग्रहण करता है। मन, वचन और काय द्वारा भोजन बनाता नहीं, बनवाता नहीं और न बने हुएका अनुमोदन ही करता है। यह श्रावक भोजनके लिए याचना नहीं करता, गृहस्थके बन्द द्वारको खोलता नहीं और न शब्द करके पुकारता ही है। तात्पर्य यह है कि उद्दिष्टत्यागी श्रावक मुनियोंके उपयुक्त आहार ग्रहण करता है।

उत्कृष्ट श्रावकके दो भेद हैं—एक क्षुल्लक और दूसरा ऐलक। क्षुल्लकसे ऐलकका दर्जा ऊंचा है। (१) क्षुल्लक—एक लंगोटी और एक खण्डवस्त्र (जिससे सर्व शरीर ढका न जा सके) धारण करते हैं। जलके लिए कमण्डलु और भोजनके लिए एक पात्र रखते हैं। जीवदयाके लिए एक पिच्छिका, जो मयूरपुच्छकी होती है, रखते हैं। इस पिच्छिकासे वे भूमिके प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। पार्श्वपुराणमें क्षुल्लकके लिए इस प्रकार लिखा है—भोजनके समय क्षुल्लक उदासीन भावसे निकले और उस समय ऐसी प्रतिज्ञा कर ले कि 'अमुक मुहल्लेमें भोजनार्थ जाऊंगा वा इतने घरमें प्रवेश करूंगा, उसमें जितना भोजन मिल जायगा, उतनेसे ही सन्तुष्ट होऊंगा।' ऐसा निश्चय कर गृहस्थके घर वहीं तक जावे, जहां तक सर्वसाधारणकी गति हो। यदि श्रावक देखते ही 'पड़गाहन' करे और आहार जलादि शुद्ध बतलावे तो क्षुल्लकको उचित है कि वह गृहस्थके साथ घरके भीतर चला जावे। यदि गृहस्थ सामने न मिले तो कायोत्सर्ग पूर्वक खड़ा हो कर "धर्मलाभ" शब्द उच्चारण करे। इतने पर भी यदि कोई 'पड़गाहन' न करे तो लौट जावे वा दूसरेके घर जावे। दूसरे घर जा कर भी उक्त विधिके अनुसार आचरण करे। यदि वह 'पड़गाहन' करे और पादप्रक्षालनपूर्वक भक्ति सहित चौकेमें ले जाय, तो क्षुल्लकको सन्तुष्टचित्तसे आहार कर लेना चाहिए और यदि एकही जगह भोजन करनेका निश्चय न किया हो तो श्रावक पात्रमें जो डाल दे उसे ले कर दूसरेके घर जावे। जब भोजनके योग्य आहार्यद्रव्य प्राप्त हो जावे, तब किसी श्रावकके यहां (केवल प्रासुक जल ले) बैठ कर भोजन कर ले और भोजनके उपरान्त पात्रको अपने हाथसे मांज कर धो डाले।

वर्तमानमें यह प्रथा प्रायः उठसी गई है। लोग एक ही घरमें जीमना वा जिमाना पसन्द करते हैं। क्षुल्लकको त्रिकाल सामायिक और प्रोषधोपवास अवश्य करना चाहिए तथा अधिक वैराग्य एवं आत्मज्ञानकी उत्कण्ठासे स्वाध्याय करनेमें त्रुटि न रखनी चाहिए।

(२) ऐलक—क्षुल्लकके समान ऐलक भी सामायिक और प्रोषधोपवास करे। रात्रिको मौन धारण पूर्वक

ध्यानमें लीन रहे। एक लंगोटीके सिवा दूसरा वस्त्र न रक्खे। एक पिच्छिका और एक कमण्डलु रक्खे भोजनके लिए निकलते समय मुहल्लों और घरोंकी प्रतिज्ञा कर ले कि, "आहारके लिए अमुक मुहल्लेमें और इतने घरमें जाऊंगा" पहुंचनेके साथ ही यदि कोई 'पड़गाहन' करे तो ठीक है; नहीं तो कायोत्सर्ग करके 'अक्षयदान' शब्द उच्चारण करे। इतनेमें वह श्रावक 'पड़गाहन' करे तो चल कर चौकेमें बैठ जावे वा खड़े खड़े हाथमें भोजन करे। ऐलकको उचित है कि अपने सिर डाढ़ी और मूंछके केशोंका आप ही लुञ्चन करे तथा अपने ध्यानको स्वाध्यायमें ही लीन रक्खे।

अन्तरायकर्मको परीक्षा करनेके लिए क्षुल्लक और ऐलककी इच्छानुसार वा शक्ति-अनुसार ऐसी प्रतिज्ञा भी करनी चाहिए कि, 'यदि आज श्रावक ऐसी परिस्थितिमें पड़गाहन करे तो आहार लूंगा अन्यथा नहीं।' जैसे—आज यदि श्रावक लाल वस्त्र पहन कर अथवा दुपट्टा ओढ़ कर पड़गाहन करे तो आहार लूंगा, अन्यथा नहीं' इत्यादि। इसको 'व्रतसंख्यानतप' कहते हैं जो मुख्यतः मुनियोंके लिए पालनीय है।

विशेष—यद्यपि उक्त ग्यारह प्रतिमाओंका नामकरण उसके प्रधान कर्तव्यके अनुसार हुआ है। तथापि यह नियम है कि, जो दूसरी प्रतिमाके नियमोंका पालन करता है, उसे पहली प्रतिमाके नियमोंका पालन करना ही पड़ता है। इसी प्रकार जो क्षुल्लक वा ऐलक हैं, उन्हें भी नीचेको समस्त प्रतिमाओंके नियम वा व्रताचरण पालने ही पड़ते हैं।

जैन गृहस्थोंके सोलह संस्कार—जैनोंमें यों तो संस्कार (वा क्रियाएं) त्रेपन हैं, किन्तु वर्तमानमें अर्थात् मनुष्यके एक भव वा एक जन्ममें १६ संस्कार ही होते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्य कृत जैन-महापुराणान्तर्गत आदिपुराणके ३८वें पर्वमें इन ५३ क्रियाओं वा संस्कारोंके विषयमें विस्तृत विवरण लिखा है। यहां हम उसीके आधारसे कुछ लिखते हैं।

सभी संस्कारोंमें होम किया जाता है वा करना आवश्यक है; इसलिए पहले जैन मतानुसार होमकी संक्षिप्त विधि लिखी जाती है।

होमविधि—संस्कारके मुहूर्तसे पहले घरके किसी उत्तम भागमें ८ हाथ लम्बी, ८ हाथ चौड़ी और १ हाथ ऊंची एक वेदी बनावें, जिसमें तीन कटनी हों। उस वेदीके ऊपर, पश्चिमकी ओर एक हाथ जगह छोड़ कर, और एक छोटीसी वेदी बनावें। यह वेदी १ हाथ लम्बी, १ हाथ चौड़ी, १ हाथ ऊंची और तीन कटनीदार होनी चाहिए। अनन्तर मुहूर्तके दिन उस वेदी पर १००८ जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा * स्थापन करें। प्रतिमाके सम्मुख ३ छत्र, ३ धर्मचक्र और एक स्वस्तिक तथा दाहिनी ओर यक्ष और यक्षीकी स्थापन करें। पश्चात् उक्त छोटी वेदीके सामने एक हाथ जगह छोड़ कर तीन कुण्ड बनावें।

इनमें प्रथम कुण्ड दक्षिणपार्श्वमें त्रिकोण, द्वितीय कुण्ड बीचमें चतुष्कोण और तृतीय कुण्ड वाम पार्श्वमें गोल होना चाहिये। १म त्रिकोण कुण्डकी गहराई एक अरत्नि (चार अङ्गुल कम एक हाथ), तीनों भुजाओंकी लम्बाई एक अरत्नि और उन भुजाओं पर तीन तीन मेखलाएं होनी चाहिये। बीचका चतुष्कोण कुण्ड १ अरत्नि गहरा, १ अरत्नि लम्बा और १ अरत्नि चौड़ा बनाना चाहिये तथा ऊपरके भागोंमें चारों ओर तीन तीन मेखलाएं होनी चाहिए। ३य गोल कुण्डका व्यास और गहराई १ अरत्नि होनी चाहिए और ऊपर तीन मेखलाएं बनानी चाहिए। प्रत्येक कुण्डमें एक एक अङ्गुलका अन्तर होना चाहिए।

उपर्युक्त तीनों मेखलाओंकी चौड़ाई और ऊंचाई क्रमशः ५ अङ्गुल, ४ अङ्गुल और ३ अंगुल होनी चाहिए। इन कुण्डोंके चारों तरफ आठों दिशाओंमें आठ दिक्पालोंके पीठ या स्थान बनाने चाहिए। जब सब बन चुके, तब चतुष्कोण, त्रिकोण और गोल कुण्डको जल चन्दन आदिसे चर्चित करें। अनन्तर पुरता हो चुकने पर सबकी पूजा करें।

बीचके चतुष्कोण कुण्डको तीर्थङ्करकुण्ड, त्रिकोणको गणधरकुण्ड और गोलको शेषकेवलीकुण्ड कहते हैं। तीर्थङ्करकुण्डकी अग्निका नाम है गार्हपत्य तथा गण-

* प्रतिमाके अभावमें यन्त्र अथवा शास्त्र स्थापन कर सकते हैं।

धरकुण्डकी अग्निकी संज्ञा आहवनीय और शेषवेदीकुण्डकी अग्निकी संज्ञा दक्षिणाग्नि है।

बड़ी वेदीके चारों कोनों पर चार खम्भ खड़े करके ऊपर चंदोवा बांधें तथा खम्भोंको इक्षु और कदली वृक्षोंसे सुशोभित कर दें। इसके सिवा चमर, दर्पण, धूप, घट, पंखा, ध्वजा, कलश आदि द्रव्य भी यथास्थान रक्खें।

यदि संक्षेपमें होम करना हो, तो तीन कुण्ड न बना कर सिर्फ एक चतुष्कोण (तीर्थङ्कर) कुण्ड बना लेनेसे ही काम चल सकता है। उसीमें सब आहुतियां दी जा सकती हैं।

जिस पात्रसे अग्निमें होम द्रव्य डालते हैं, उसे स्रुवा कहते हैं और जिससे घी डालते हैं उसे स्रुक्। स्रुवा चन्दनका बनाना चाहिए और स्रुक् क्षीरवृक्ष (बरगद) का। यदि चन्दन और क्षीरवृक्षकी लकड़ी न मिले, तो पीपलकी लकड़ी काममें लाई जा सकती है। स्रुवा नासिकाके समान चौड़े मुखका और स्रुक् गायकी पूंछकी भांति लम्बी मुंहका बनाना चाहिए। दोनोंकी लम्बाई एक एक अरत्नि होना चाहिए। होमकुण्डमें जलनेवाली लकड़ीका नाम समिधा है। शमी, पीपल, पलाश और बरगदकी लकड़ी समिधा बनानेके उपयुक्त है। समिधाकी प्रत्येक लकड़ी सीधी एवं १० वा १२ अङ्गुल लंबी होनी चाहिए।

होताको उचित है कि कुण्डोंके पूर्व, कुशासन पर पद्मासन लगा कर, प्रतिमाकी ओर (पश्चिमकी तरफ) मुख कर बैठे और होमकी समाप्ति पर्यन्त मौन धारण पूर्वक परमात्माका ध्यान करते हुए श्रीजिनेन्द्रदेवकी अर्घ्य एवं तर्पण* प्रदान कर बीचके तीर्थङ्करकुण्डमें सुगन्धिद्रव्यसे अग्निमण्डल अङ्कित करें। अग्निमण्डलका आकार इस प्रकार है—

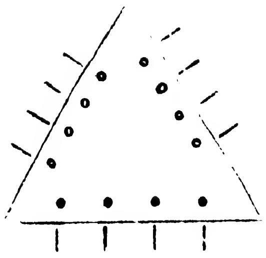

इसके बाद मन्त्र पढ़ते हुए एक दर्भ-पूलकमें जरासा लाल कपड़ा लपेट कर अग्नि जलावें और साथ ही घी डालता रहे। पश्चात् आचमन, प्राणायाम और स्तुति करके अग्निका आह्वान करें एवं अर्घ्य प्रदान करें। फिर तीर्थङ्करकुण्डमेंसे थोड़ीसी अग्नि ले कर गोलकुण्डमें तथा गोलकुण्डमेंसे थोड़ीसी अग्नि ले कर गणधरकुण्डमें अग्नि जलावें।

जैन गृहस्थगण जिन मन्दिर-प्रतिष्ठा, वेदी-प्रतिष्ठा, बिम्ब प्रतिष्ठा, नूतनगृहनिर्माण, ग्रहपीड़ा और महारोगादिके लिए तथा षोड़श संस्कारोंमें होम करते हैं।

होमके तीन भेद हैं—(१) जलहोम, (२) वायुका होम और (३) कुण्डहोम। जलहोम—इसके लिए मिट्टी या तांबेके गोल कुण्डकी—जो चन्दन, अक्षत, माला आदिसे शोभित उत्तम जलसे परिपूर्ण एवं धोये हुए तण्डुलोंके पुञ्ज पर स्थापित हो—आवश्यकता है। इस कुण्डमें तिल, धान्य और यव इन तीन धान्योंसे नवग्रहोंको तथा गेहूं, मूंग, चना, उड़द, तिल, धान्य और यव इन सब धान्योंसे दिक्पालोंको आहुति देनी चाहिए। अन्तमें नारिकेल द्वारा पूर्णाहुति देनी चाहिए।

होमके मन्त्रादि—होताको उचित है कि होमशालामें पहुंचते ही पहले "ओं ह्रीं क्ष्वीं भूः स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर भूमि पर पुष्प निक्षेप करे। अनन्तर "ओं ह्रीं अत्रस्थ क्षेत्रपालाय स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर क्षेत्रपालको नैवेद्य प्रदान करें। इसके बाद "ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशाय महीं पूतां कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा" यह कहते हुए दर्भपूल (कुशकी गड्डी) से भूमिको साफ करें। फिर दर्भपूलसे भूमि पर जल सेचन करें। मन्त्र इस प्रकार

* पुष्प, अक्षत (तंडुल), चन्दन और शुद्ध वा प्रासुक जलसे तर्पण किया जाता है।

है—"ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं तं पं स्वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा ।" अनन्तर "ओं ह्रीं अग्निकुमाराय ज्वल्ज्वल ज्वल तेजःपतये अमिततेजसे स्वाहा" यह मन्त्र उच्चारण कर भूमि पर शुष्क कुश जलावें। पश्चात् "ओं ह्रीं क्रौं षष्ठिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा" कह कर नागकुमारोंको अर्घ्य प्रदान करें। फिर "ओं ह्रीं भूमिदेवते इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा" इस मन्त्रको पढ़ कर भूमिको अर्घ्य चढ़ावें। अनन्तर होमकुण्डके पश्चिमी ओर एक सिंहासन स्थापन करें, मन्त्र—"ओं ह्रीं अर्हं क्ष्मं वं वं श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा ।" इसके बाद "ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर सिंहासनकी पूजा करें अर्थात् अर्घ्य चढ़ावें। फिर उस सिंहासन पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा (अथवा यन्त्र वा शास्त्र) स्थापन करें ; मन्त्र—"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं जगतां सर्वशान्तिं कुर्वन्तु श्रीपीठे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा ।"

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर प्रतिमाकी पूजा करें। मन्त्र—

"ओं ह्रीं अर्हं नमः परमेष्ठिभ्य स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा ओं ह्रीं अर्हं नमो नृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा । ओं ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा । ओं ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा । ओं ह्रीं अर्हं नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा ॥"

अनन्तर चक्रत्रयका पूजन करें ; मन्त्र—"ओं धर्मचक्रायाप्रतिहततेजसे स्वाहा ।" फिर छत्रत्रयको अर्घ्य प्रदान करें ; मन्त्र—"ओं ह्रीं श्वेतछत्रत्रयश्रियै स्वाहा ।' पश्चात् प्रतिमाके सम्मुख हो जलगन्धाक्षतादिसे जिनवाणी सरस्वतीकी पूजा करें ; मन्त्र—"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं ह्सौ क्ष्वीं सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वद वद वाग्वादिनि अवतर अवतर अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः सन्निहिता भव भव वषट् क्लू नमः सरस्वत्यै जलं गंधं अक्षतं पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं वस्त्रं आभरणं निर्वपामिति स्वाहा ।"

अनन्तर गुरुके लिये अर्घ्य प्रदान करें; मन्त्र—"ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपवित्रतरगात्रचतुरशीतिलक्षणगुणाष्टादशसहस्रशीलधरगणधरचरणाः आगच्छत आगच्छत संवौषट् अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः सन्निहिता भवत भवत वषट् नमो गणधरचरणेभ्यः जलं गन्धं अक्षतं पुष्पं नैवेद्यं दीपं धूपं फलं निर्वपामीति स्वाहा ।"

अनन्तर होम-कुण्डके पूर्व भागमें बैठनेकी भूमि शुद्ध करें मन्त्र—'ओं ह्रीं उपवेशनभूः शुद्ध्यतु स्वाहा ।" फिर "ओं ह्रीं परब्रह्मणे नमो नमः ब्रह्मासने अहमुपविशामि स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर होताको होमकुण्डके सामने पश्चिमकी ओर मुंह करके बैठ जाना चाहिये। इसके उपरान्त 'ओं ह्रीं स्वस्तये पुण्याहकलशं स्थापयामि स्वाहा' कहते हुए चावलोंके पुञ्ज पर पुण्याहकलश स्थापन करें। कलश पर नारिकेलफल अवश्य होना चाहिए। तदनन्तर उस घटके जलको जलसिञ्चन और मन्त्रद्वारा पवित्र करें। मन्त्र—

"ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते पद्मपद्मक्षमहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीकगंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णकूल्यरूप्यकूलारक्तारक्तोदा-पयोधिशुद्धजलसुवर्णघटप्रक्षालित व रत्नगन्धाक्षतपुष्पार्चितमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झौं झौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः ।"

अनन्तर "ओं ह्रीं नेत्राय संवौषट्" इस मन्त्र द्वारा कलशकी पूजा करें। पश्चात् होता वा गृहस्थाचार्य बायें हाथमें कलश धारण कर पुण्याहवाचन पढ़ते हुए दाहिने हाथसे भूमि सिञ्चन करें और पुण्याहवाचन पूरा हो जाने पर उस कलशको कुण्डके दक्षिण भागमें स्थापन कर दें। पुण्याहवाचनमन्त्र—

"ओं पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः सकलवीर्याः सकलसुखास्त्रिलोकेशास्त्रिलोकेश्वरपूजितास्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकप्रद्योतनकराः ओं वृषभाजितसम्भवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचंद्रप्रभः पुष्पदन्तशीतलश्रेयोवासुपूज्यविमलानन्तधर्मशान्तिकुंथुअरमल्लिमुनिसुव्रतनमिनेमिपार्श्वनाथश्रीवर्द्धमानशान्ताः शान्तिकराः सकलकर्मरिपुविजयकान्तारदुर्गविषमेषु रक्षन्तु नो जिनेन्द्राः सर्वविदश्च। श्री ह्रीं धृतिविजयकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यो मेधाविन्य: सेवाकृषिवाणिज्यवास्तव्यमन्त्रसाधनचूर्णिप्रयोगस्थानगमनसिद्धसाधनाया प्रतिहतशासनो भवन्तु नो विद्यादेवताः। नित्यमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधवश्च भगवन्तो नः प्रीयन्तां प्रीयन्तां प्रीयन्तां। आदित्यसोमांगारकबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहुकेतुग्रहाश्च नः प्रीयन्तां प्रीयन्तां प्रीय-

स्ताम् । तिथिकरणमुहूर्तलग्नदेवता इह चान्यग्रामादिष्वपि वासुदेवता: सर्वे गुरुभक्ता अक्षीण कोशकोष्ठागारा भवेयु: । ध्यानतपोवीर्यधर्मानुष्ठानादिमेवास्तु मातृपितृभ्रातृसुतदुहितृस्वजनसम्बन्धिबन्धुवर्गसहितानां धनधान्यैश्वर्यद्युतिबलयशो वृद्धिरस्तु सामोदप्रमोदोस्तु शान्तिर्भवतु कान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु सिद्धिर्भवतु काममांगल्योत्सवाः सन्तु शाम्यन्तु घोराणि पुण्यं वर्द्धतां कुलं गोत्रं चाभिवर्द्धतां स्वस्तिभद्रं चास्तु वः हतास्ते परिपन्थिन: शत्रुर्निधनं यातु नि: प्रतीपमस्तु शिवमतुलमस्तु सिद्धा सिद्धिं प्रयच्छन्तु न: स्वाहा ।'

अनन्तर "ओं ह्रीं स्वस्तये मंगल कुम्भं स्थापयामि स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण कर मङ्गल-कलश स्थापन करें और उसके निकट स्थालीपात्र*, प्रोक्षणपात्र† एवं पूजा और होमकी सामग्री रक्खें। फिर "ओं ह्रीं परमेष्ठिभ्यो: नमो नम:" कह कर परमात्माका ध्यान करें और "ओं ह्रीं णमो अरहन्ताणं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा" कह कर परमात्माको अर्घ्य प्रदान करें। पश्चात् "ओं ह्रीं नीरजसे नम:, ओं दर्पमथनाय नम:" इस मन्त्रको कुण्डमें लिखें और जल, दर्भ, गन्ध, अक्षत आदिसे कुण्डकी पूजा करें।

इसके बाद पूर्वकथित नियमानुसार कार्य करना चाहिये। यहां सिर्फ उनके मन्त्र लिखे जाते हैं। अग्नि स्थापन करनेका मन्त्र—"ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्निं स्थापयामि स्वाहा।" अग्नि जलानेका मन्त्र—"ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं दर्भं निक्षिप्य अग्नि सन्धुक्षणं करोमि स्वाहा।" आचमन करनेका मन्त्र—"ओं ह्रीं ह्रीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रां हं स: स्वाहा।" प्राणायाम करनेका मन्त्र—"ओं भूर्भुव: स्व: अ सि आ उ सा अर्हं प्राणायामं करोमि स्वाहा।" होमकुण्डके परिधिबन्धन‡ करनेका मन्त्र—"ओं नमोऽर्हते भगवते सत्यवचनसन्दर्भाय केवलज्ञानदर्शन प्रज्वलनाय पूर्वोत्तराग्रं दर्भपरिस्तरणमुदम्बरसमित्परिस्तरणं च करोमि स्वाहा।" अग्निकुमार देवको आह्वान करनेका मन्त्र—"ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्निकुमार देव आगच्छागच्छ।"

अनन्तर कुण्डकी प्रथम मेखला पर १५ तिथि देवताओंको आह्वान कर उनको अर्घ्य प्रदान करें। मन्त्र—'ओं ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिह्नसपरिवारा: पंचदशतिथिदेवता: आगच्छत आगच्छत इदं अर्घ्यं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा।' इसके बाद २य मेखला पर ग्रह देवताओंका आह्वान करें और अर्घ्य चढ़ावें। मन्त्र पूर्ववत् ही है, सिर्फ "पंचदशतिथिदेवता:"के स्थान पर "नवग्रहदेवता" पढ़ें। पश्चात् ऊपरको मेखला पर बत्तीस इन्द्रोंका आह्वान और पूजन करें। मन्त्र पूर्ववत् ही है, सिर्फ "नवग्रहदेवता"के स्थान पर "चतुर्णिकायेन्द्रदेवता" पढ़ें। तत्पश्चात् छोटी वेदी पर दश दिक्पालोंका आह्वान करें।

अनन्तर "ओं ह्रीं स्थालीपाकमुपहरामि स्वाहा" कह कर स्थालीपाकको फूल और तण्डुलसे भर कर अपने पास रक्खें। फिर 'ओं ह्रीं होमद्रव्यमाद्धापि स्वाहा" कह कर होम द्रव्य और "ओं ह्रीं आज्यपात्रमुपस्थापयामि स्वाहा" कह कर घृतपात्र अपने पास रक्खें। पश्चात् "ओं ह्रीं स्रुचमुपस्करोमि स्वाहा, स्रुवस्तापनं मार्जनं जलसेचनं पुनस्तापनमग्रे निधापनं च" यह मन्त्र पढ़ कर स्रुचाका संस्कार करें अर्थात् पहले उसे अग्निमें तपा कर धोवें और जलसिञ्चन कर फिर तपावें और अपने पास रक्खें। "ओं ह्रीं स्रुवमुपस्करोमि स्वाहा" कह कर स्रुवाको तरह स्रुवाका संस्कार करें। इसी प्रकार "ओं ह्रीं आज्यमुद्वासयामि स्वाहा" कह कर दर्भ-मूलकसे घीका उद्वासन करें, 'ओं ह्रीं पवित्रतरजलेन द्रव्यशुद्धिं करोमि स्वाहा" कह कर होम द्रव्यको पवित्र जलसे छींट कर शुद्ध करें, "ओं ह्रीं कुशमाददामि स्वाहा" कह कर दर्भमूलकसे होम-द्रव्यका स्पर्श करें, 'ओं ह्रीं परमपवित्राय स्वाहा" कह कर दहिने हाथकी अनामिकामें पवित्री (दाभकी अंगूठी) पहनें 'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राय स्वाहा" कह कर यज्ञोपवीत पहनें वा बदलें, "ओं ह्रीं अग्निकुमाराय परिषेचन करोमि स्वाहा" कह कर अग्निकुण्डके चारों ओर थोड़ा थोड़ा जल छिड़कें। तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर १८ बार घृतकी आहुति देवें। मन्त्र—

* पंचपात्र अर्थात् गन्ध, अक्षत, पुष्प, फल आदिसे सुशोभित तांबेके छोटे छोटे पांच गिलास।

† प्रोक्षण करनेके उपयुक्त रकाबी।

‡ पांच पांच दर्भ मिला कर तथा उनमें थोड़ी ऐंठ दे कर कुंडके चारों तरफ रखना चाहिये।

"ओं क्ष्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धकेवलिभ्यः स्वाहा । ओं क्ष्रीं पंचदशतिथिदेवेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं नवग्रहदेवेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं द्वात्रिंशदिन्द्रेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं दशलोकपालेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा।"

अनन्तर निम्नलिखित पांच मन्त्र पढ़ कर तर्पण करें। मन्त्र—"ओं क्ष्रीं अर्हत्परमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ओं क्ष्रीं सिद्धपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ओं क्ष्रीं आचार्यपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ओं क्ष्रीं उपाध्यायपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा। ओं क्ष्रः सर्वसाधुपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा।" फिर "ओं क्ष्रीं अग्निं परिषेचयामि स्वाहा" कह कर कुण्डके चारों ओर दुग्धकी धारा छोड़ें। फिर निम्नलिखित मन्त्र द्वारा १०८ बार समिधाकी आहुति देवें। मन्त्र—"ओं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रौं अ सि आ उ सा स्वाहा।" इसके बाद 'ओं क्ष्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धकेवलिभ्यः स्वाहा,......' इत्यादि उपर्युक्त छः मंत्र पढ़ कर घृताहुति देवें और फिर 'ओं क्ष्रां अर्हत्परमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा,......' इत्यादि पांच मंत्र पढ़ कर तर्पण करें। तर्पण कर चुकनेके बाद दुग्ध-धारा दे कर पर्युक्षण करें।

इसके बाद निम्नलिखित मंत्र द्वारा, लवङ्ग, गन्ध, अक्षत, गुग्गुल, तिल शालितण्डुलका पक्वान्न, केशर, कपूर, लाजा, अगुरु और मिश्री इन सबको एकत्र करके स्रुचासे उसकी आहुति देवें। मंत्र २७ हैं; चार चार पढ़ कर १०८ आहुति देनी चाहिए। यथा—"ओं क्ष्रीं अर्हद्भ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं सूरिभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं पाठकेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं जिनालयेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा। ओं क्ष्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा। ओं क्ष्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा। ओं क्ष्रीं जयाद्यष्टदेवताभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं षोड़शविद्यादेवताभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं चतुर्विंशतियक्षेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं चतुर्विंशतियक्षीभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं चतुर्दशभवनवासिभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं अष्टविधव्यन्तरेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं चतुर्विधज्योतिरिन्द्रेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं द्वादशविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं अष्टविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं दशदिक्पालेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं नवग्रहेभ्यः स्वाहा। ओं क्ष्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा। ओं स्वाहा। भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा।"

अनन्तर ऊपर कहे हुए घृताहुतिके छः मंत्र पढ़ कर घृताहुति देवें, तर्पणके पांच मंत्र पढ़ कर तर्पण करें और "ओं क्ष्रीं अग्निं परिषेचयामि स्वाहा।" मंत्र द्वारा कुण्डमें दुग्धकी धारा डाल कर पर्युक्षण करें। तत्पश्चात् निम्नलिखित ३६ पीठिकामंत्रोंमेंसे प्रत्येक मंत्रको तीन तीन बार पढ़ कर शालितण्डुलको पक्वान्न, दूध, घी, खीर, मेवा, मिश्री, केला आदि पदार्थोंको एकत्र मिला कर, स्रुचासे उसकी आहुति देवें। आहुतियोंकी संख्या १०८ है। पीठिका मंत्र—

"ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ अर्हज्जाताय नमः। ॐ परमजाताय नमः। ॐ अनुपमजाताय नमः। ॐ स्वप्रधानाय नमः। ॐ अचलाय नमः। ॐ अक्षताय नमः। ॐ अव्याबाधाय नमः। ॐ अनन्तज्ञानाय नमः। ॐ अनन्तदर्शनाय नमः। ॐ अनन्तवीर्याय नमः। ॐ अनन्तसुखाय नमः। ॐ नीरजसे नमः। ॐ निर्मलाय नमः। ॐ अच्छेद्याय नमः। ॐ अभेद्याय नमः। ॐ अजराय नमः। ॐ अमराय नमः। ॐ अप्रमेयाय नमः। ॐ अगर्भवासाय नमः। ॐ अक्षोभ्याय नमः। ॐ अविलीनाय नमः। ॐ परमघनाय नमः। ॐ परमकाष्टयोगरूपाय नमः। ॐ लोकाग्रवासिने नमः। ॐ परमसिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमोनमः। ॐ केवलिसिद्धेभ्यो नमः। ॐ अन्तःकृतसिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ परम्परासिद्धेभ्यो नमोनमः। ॐ अनादिपरम्परासिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः। ॐ सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्यनिर्वाणपूजार्ह अग्नीन्द्राय स्वाहा। सेवाफलं षट् परम स्थानं भवतु। अपमृत्युनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु।"

इसके बाद फिर मंत्रोच्चारणपूर्वक घीकी आहुति दें, तर्पण करें और दुग्ध-धारा छोड़ें। अनन्तर पूर्णाहुति देवें। पूर्णाहुतिमें मंत्रपाठके प्रारम्भसे अन्त तक कुण्डमें घृत-धारा देनी चाहिये और अन्तमें अष्ट द्रव्य और नारिकेल फल चढ़ना चाहिए। पूर्णाहुतिके मंत्र—"ॐ तिथिदेवाः पञ्चदशधा प्रमोदन्तु। नवग्रहदेवाः प्रत्यवायहरा भवन्तु। भावनादयो द्वात्रिंशद्देवा इन्द्रा प्रमोदन्तु। इन्द्रादयो विश्वे दिक्पाला पालयन्तु। अग्नीन्द्र-

मौत्य्, ज्वाप्यग्निदेवताः प्रसन्ना भवन्तु। शेषाः सर्वेपि देवा एते राजानं विराजयन्तु। दातारं तर्पयन्तु। सङ्घं श्लाघयन्तु। वृष्टिं वर्षयन्तु। विघ्नं विघातयन्तु। मारीं निवारयन्तु। ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते पूर्णज्वलित-ज्ञानाय सम्पूर्णफलार्घ्यां पूर्णाहुतिं विदध्महे।"

पूर्णाहुतिके बाद "ओं दर्पणोद्योत ज्ञानप्रज्वलितसर्व-लोकप्रकाशक भगवन्नर्हन् श्रद्धां मेधां प्रज्ञां बुद्धिं श्रियं बलं आयुष्यं तेजः आरोग्यं सर्वशान्तिं विधेहि स्वाहा।" यह मंत्र पढ़ कर भगवान्‌का स्तोत्र (प्रार्थना) पढ़ें। फिर शान्तिधारा * दे कर भगवान्‌के चरणारविन्दमें पुष्पाञ्जलि प्रदान करें एवं होमकुण्डकी भस्म अपने तथा उपस्थित व्यक्तियोंके मस्तकसे लगावें।

इस प्रकार होम समाप्त करके होमकी वेदी पर विराजमान जिन-प्रतिमा और सिद्ध-यंत्रको यथास्थान पहुंचा दें और देवोंको विसर्जन करें।

अनन्तर घरमें स्त्रियोंको सत्यदेवता (अर्हत् आदि पञ्च परमेष्ठी), क्रियादेवता (छत्र, चक्र, अग्नि), कुल देवता (चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि) और गृहदेवता (विश्वेश्वरी, धरणेन्द्र, श्रीदेवी, कुवेर)-की पूजा करनी चाहिए।

१म गर्भाधान संस्कार—विवाहके उपरान्त स्त्रीके ऋतुमती होने पर, चतुर्थ दिवसमें गर्भाधान-संस्कार सम्पन्न होता है। इसमें गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीनों अग्नियोंकी पूजा करनेके लिए होम किया जाता है। वेदी कुण्डादिके बन चुकने पर सौभाग्यवती वृद्ध स्त्रियां मिल कर स्नान किये हुए पति एवं स्त्रीको वस्त्राभूषणोंसे अलङ्कृत कर घरसे वेदीके समीप लावें। आते समय स्नाता स्त्रीके दोनों हाथोंमें अथवा मस्तक पर माला, वस्त्र, सूत्र, नारिकेल और पांच पल्लवोंसे सुशोभित एक मङ्गल-कलश रख देना चाहिए। वेदीके समीप आने पर गृहस्थाचार्यको उचित है कि बैठनेको दोनों वेदियों और कुण्डोंके बीचकी भूमि पर हल्दी और चावलोंसे स्वस्तिक बना कर, उस पर कलश रख दें। फिर बैठनेको वेदी पर स्त्रीको दाहिनी ओर और पुरुषको बाईं ओर बिठा देवें।

इसके बाद पूर्वविधिके अनुसार होम करना प्रारम्भ कर दें। होम समाप्त हो जाने पर गृहस्थाचार्य कलश-को हाथमें उठा लें और पूर्व-कथित पुण्याहवचन पढ़ते हुए उस कलशमेंसे जल ले कर दम्पती पर सेचन करें। अनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए दम्पती पर पुष्प (केशर-रञ्जित तण्डुल) निक्षेप करें। मन्त्र—"सज्जाति-भागी भव। सद्गृहभागी भव। मुनीन्द्रभागी भव। सुरेन्द्र-भागी भव। परमराज्यभागी भव। आर्हन्त्यभागी भव। परमनिर्वाणभागी भव।"

तदनन्तर स्त्री और पुरुष दोनों अग्निकी तीन प्रद-क्षिणा दे कर अपने अपने स्थान पर बैठ जांय और सौभाग्यवती स्त्रीयां कुंकुम निक्षेप कर दोनोंकी आरती करें और आशीर्वाद देवें। अनन्तर अपने जातीय स्त्री-पुरुषोंको भोजन, ताम्बूल आदि द्वारा सम्मान करें।

(महापुराणान्तर्गत जैन-आदिपुराण, ३८।७०-७६)

२य प्रीति-संस्कार—यह संस्कार गर्भाधानके दिनसे तीसरे महीनेमें किया जाता है। प्रथम ही गर्भिणी स्त्रीको तैल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे नहला कर वस्त्रा-भूषणोंसे अलङ्कृत करें और शरीर पर चन्दनादि लगावें। फिर गर्भाधान क्रियाके नियमानुसार दम्पतिको होमकुण्डके पास बिठावें और होम करना प्रारम्भ कर दें। होमके मन्त्रादि "होमविधि"में लिख चुके हैं। होम समाप्त होने पर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर आहुति देवें। अनन्तर पतिको पत्नी पर एवं पत्नीको पति पर पुष्प क्षेपण करना चाहिए। मन्त्र—"त्रैलोक्यनाथो भव। त्रैका-ल्यज्ञानी भव। त्रिरत्नस्वामी भव।" इसके बाद शान्तिपाठ पढ़ कर देवोंको विसर्जन करें। इसी समय "ओं कं ठं ह्रः पः अ सि आ उ सा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर पति अपनी गर्भिणी स्त्रीका उदर सेचन कर स्पर्श करे। पश्चात् स्त्री अपने पेट पर गन्धोदक लगावे और उदरस्थ शिशुकी रक्षाके लिए "कलिकुण्ड-यन्त्र" गले-में धारण करे। अनन्तर सौभाग्यवती स्त्रियोंको भोज-नादिसे सन्तुष्ट करना चाहिए।

इस उत्सवमें द्वार पर तोरण अवश्य लगाना चाहिए-

---

* शान्तिधाराका मन्त्र प्रसिद्ध है, इसलिए यहां नहीं लिखा गया। "नित्यनियमपूजा"से जान लेना चाहिए।

बाजे बजवाने चाहिए। इसका दूसरा नाम मोद वा प्रमोद क्रिया है। (जैन आदिपुराण, ३८।७७-७९)

३य सुप्रीति-संस्कार—प्रीतिक्रियाके २ महीने बाद सुप्रीति-संस्कार होता है। इसमें भी पूर्ववत् होम पूजनादि किया जाता है। होम सम्पन्न होनेके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर आहुति देवें और पुष्पक्षेपण करें। मन्त्र—"अवतार कल्याणभागी भव। मन्दरेन्द्राभिषेककल्याणभागी भव। निष्क्रान्तिकल्याणभागी भव। आर्हन्त्यकल्याणभागी भव। परमनिर्वाणकल्याणभागी भव।"

अनन्तर पति स्त्रीके हाथमें ताम्बूल (लगा हुआ पान) देवे तथा जौके अंकुरे, पुष्प, पत्ते और दाभसे बनी हुई माला पहनावें; मन्त्र—"ओं झं वं क्ष्वीं क्ष्वीं हं स: कान्तागले यवमालां क्षिपामि झ्रौं स्वाहा।"

अनन्तर मिट्टीके तीन छोटे छोटे घड़ोंमें खीर, दही, भात और हल्दीका पानी भर कर मन्त्र पाठपूर्वक उन्हें स्त्रीके सामने रख दें। मन्त्र—"ओं झं वं क्ष्व: प: ह: अ सि आ उ सा कान्तापुरत: पायसदध्योदनहरिद्राम्बुकलशान् स्थापयामि स्वाहा।" फिर किसी ना-समझ छोटी लड़कीसे उनमेंसे किसी एक कलशका स्पर्श करावें। लड़की यदि खीरका घट छूए तो समझना चाहिए कि पुत्र होगा। यदि दही-भातका कलश छूए तो कन्या और हल्दीवाला कलश छूए तो नपुंसक अल्पजीवी वा मृतकका अनुमान करना चाहिए। अनन्तर शान्तिपाठ और विसर्जन करके कार्य समाप्त करें।

(जैन-आदिपुराण, ३८।८०—८१)

४र्थ धृति-संस्कार—इसका द्वितीय नाम सीमन्तोन्नयन वा सीमन्तविधि है। यह संस्कार सातवें महीने शुभ दिन, शुभनक्षत्र और शुभयोग आदिमें करना चाहिए। इसके प्रारम्भिक कार्य प्रीति वा सुप्रीतिक्रियाके समान हैं। होम भी पूर्ववत् विधिके अनुसार करना चाहिए। होम समाप्तिके बाद स्वजातीय और स्वकुलकी वयोवृद्ध सौभाग्यवती (पुत्रकी माता) स्त्रियों द्वारा खैरकी लकड़ीकी सलाईसे गर्भिणीके केशोंमें तीन मांगें करानी चाहिए। सलाईको घी, तेल और सिन्दूरमें डुबो लेना आवश्यक है। इसके बाद पतिको चाहिये कि अपने हाथसे स्त्रीके उदर और मस्तक पर उदम्बरचूर्ण निक्षेप करे; मन्त्र—"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं अ सि आ उ सा उदम्बरकृत चूर्णं समस्तजठरे चेयं झ्वीं क्ष्वीं स्वाहा।" अनन्तर आचार्यको स्त्रीके गलेमें उदम्बरफलकी माला पहनानी चाहिए; मन्त्र—"ओं नमोऽर्हते भगवते उदम्बरफलाभरणेन बहुपुत्रा भवितुमर्हा स्वाहा।"

अन्तमें आचार्यको उचित है कि मङ्गलकलश हाथमें ले कर पूर्वोक्त पुण्याह वचनोंका पाठ करते हुए स्त्री पर जलके छींटे देवें तथा निम्नलिखित मन्त्रोच्चारणपूर्वक पुष्प (रञ्जित तण्डुल) निक्षिप्त करें। मंत्र—"सज्जातिदातृभागी भव। सद्गृहिदातृभागी भव। मुनीन्द्रदातृभागी भव। सुरेन्द्रदातृभागी भव। परमराज्यदातृभागी भव। आर्हन्त्यदातृभागी भव। परमनिर्वाणदातृभागी भव।" अनन्तर गृहस्वामीका कर्तव्य है कि समागत व्यक्तियोंको ताम्बूल आदिसे सत्कार कर विदा करें।

(जैन आदिपुराण ३८।८२—८३)

५म मोद-संस्कार—यह संस्कार प्राय: प्रीतिक्रियाके समान है। प्रभेद इतना ही है कि प्रतिसंस्कार तीसरे महीने होता है और यह नौवें महीने।

(जैन-आदिपुराण ३८।८३—८४)

६ष्ठ जातकर्म वा जन्म-संस्कार—यह संस्कार पुत्र वा पुत्रीके जन्मके दिन होता है। जन्मक्रिया देखो।

७म नामकरण-संस्कार—यह संस्कार पुत्रोत्पत्तिके १२वें, १६वें, २०वें अथवा ३२वें दिन किया जाता है। यदि कदाचित् इस अवधिके भीतर नामकरण न हो सके, तो जन्मदिनसे एक वर्ष तक किसी भी शुभ दिनमें किया जा सकता है। पूर्वोक्त विधिके अनुसार होमकुण्ड आदि निर्माण कर कुण्डोंके पूर्वकी तरफ पुत्रसहित दम्पतीको बिठाना चाहिए। यथाविधि होम समाप्त होनेके बाद घरमें तथा जिन-मन्दिरमें वाद्यध्वनि कराना चाहिए। इसी समय आचार्यको मङ्गलकलश हाथमें ले कर पुण्याहवचन उच्चारण करते हुए दम्पती और पुत्र पर सिञ्चन करना चाहिए। पश्चात् पिता एक थालीमें तण्डुल बिछा कर उस पर पहले अपना नाम, फिर पुत्रका नाम जो (रक्खा गया हो) लिखें। फिर घी और दूधमें रक्खे हुए आभूषणोंको निकाल कर बच्चेको पहनावे और उस घी-दूधको दाभसे बच्चेके मस्तक,

कण्ठ, वक्षस्थल और भुजाओंमें लगावे। इसके बाद एक हजार आठ नामोंसे युक्त श्रीजिनेन्द्रभगवान्‌से नाम-याचना करे और निम्नलिखित मंत्रोच्चारणपूर्वक उच्च-स्वरसे पुत्रका नाम प्रकट कर दे। मंत्र—"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं बालकस्य नामकरणं करोमि नाम्ना आयुरारोग्यै-श्वर्यवान् भव भव अष्टोत्तरसहस्राभिधानार्हो भव भव झ्रौं झ्रौं अ सि आ उ सा स्वाहा।" अनन्तर आचार्य बालकको आशीर्वाद कर कार्य समाप्त करें; मंत्र—"दिव्याष्ट सहस्रनामभागी भव। विजयनामाष्टसहस्रभागी भव। परम-नामाष्टसहस्रभागी भव।"

इसी दिन संध्याके समय कर्णवेध करना चाहिए: मंत्र—"ओं ह्रीं श्रीं अर्हं बालकस्य ह्रः कर्णवेधनं (बालिका हो तो 'कर्णनासावेधनं') करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।"

८म बहिर्यान संस्कार—यह संस्कार २य, ३य अथवा ४र्थ मासमें किया जाता है। यह संस्कार शुक्लपक्ष एवं शुभमुहूर्तमें ही किया जाता है। प्रथम ही बालकको स्नान करावें और पुण्याहवचन पढ़ कर सिंचन करें। फिर वस्त्राभूषणसे सुसज्जित कर, पिता वा माता उसे गोदमें ले कर गाजे बाजेके साथ जिन-मन्दिर जावें। वह वेदीकी तीन प्रदक्षिणा दे कर साष्टाङ्ग नमस्कार और पूजा आदि करें। अनन्तर "ओं नमोऽर्हते भगवते जिन-भास्कराय तव मुखं बालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा" इस मंत्रको पढ़ कर बालकको श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन करावें। इसके बाद आगत सज्जनोंका पूर्वोक्त प्रकारसे सत्कार कर कार्य समाप्त करें। (जैन आदिपु० ३८।९०-९२)

९म निषद्य संस्कार—यह संस्कार पांचवें महीनेमें होता है। इसमें बालकको उपवेशन (बैठना) कराया जाता है। होम पूजनादिके बाद वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान इन पांचकुमार तीर्थङ्करों की पूजा करें। फिर चावल, तिल, गेहूं, मूंग, उड़द और जवसे रङ्गावली बनावें और उस पर एक वस्त्र बिछा कर बालकको (पूर्वमुख) पद्मासनसे बिठा दें। बिठानेका मंत्र—"ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा बालकमुपवे-शयामि स्वाहा।" उपरान्त बालककी आरती उतारें और आशीर्वाद दे कर कार्य समाप्त करें।

(जैन-आदिपुराण ३८।९३—९४)

१०म अन्नप्राशनसंस्कार—यह संस्कार ७वें महीनेमें, अथवा ८वें वा ९वें महीनेमें भी हो सकता है। जिनेन्द्रकी पूजा और होम समाप्त होने पर बालकोंका पिता पुत्रको बाईं गोदमें ले कर पूर्वको ओर मुंह करके बैठे। बच्चे-का मुंह दक्षिणकी तरफ होना चाहिये। पश्चात् एक कटोरीमें दूध-भात-घी-मिश्री और दूसरीमें दही-भात ले कर, पहले दूध-भात बालकके मुंहमें देवे और फिर दही भात खिलावे। मन्त्र इस प्रकार है—"ओं नमोऽर्हते भग-वते भुक्तिशक्तिप्रदायकाय बालकं भोजयामि पुष्टिस्तुष्टिश्चारोग्यं भवतु भवतु झ्वीं क्ष्वीं स्वाहा।' अनन्तर आचार्य "दिव्या-मृतभागी भव। विजयामृतभागी भव।" कह कर बालकको आशीर्वाद देवें। इस दिन समागत बन्धुवर्गको भोजन कराना चाहिए। (जैन-आदिपु० प०३८)

११श व्युष्टि-संस्कार—जिस दिन बालक पूरा एक वर्षका होता है, उस दिन यह संस्कार किया जाता है। इसमें कोई विशेष क्रिया नहीं होती। केवल पूर्ववत् होम किया जाता है और मन्त्र पढ़ कर आशी-र्वाद दिया जाता है। मन्त्र—"उपनयनजन्मवर्षवर्द्धन भागी भव। वैवाहनिष्ठवर्षवर्द्धनभागी भव। मुनीन्द्रवर्षवर्द्धनभागी भव। सुरेन्द्रवर्षवर्द्धनभागी भव। मन्दराभिषेकवर्द्धनभागी भव। यौवराज्यवर्द्धनभागी भव। महाराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव। परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव। आर्हन्त्यराज्यवर्षव-र्द्धनभागी भव।" (जैन-आदि पुराण ३८।९६—९७)

१२श चौलकर्म वा केशवाय संस्कार—यह संस्कार १म, ३य, ५म अथवा ६ठ वर्षमें सम्पन्न होता है।

चौलक्रिया देखो।

१३श लिपिसंख्यान संस्कार—यह संस्कार ५वें वा ७वें वर्ष किया जाता है। इसमें शुभमुहूर्तका होना अत्यन्त आवश्यक है। मुहूर्तके दिन, पहले तो जिनेन्द्रकी पूजा करें, फिर गुरु और शास्त्रकी पूजा करके पूर्व-नियमानुसार होम करें। पश्चात् बालकको स्नानादि करा कर और वस्त्राभूषण पहना कर विद्यालय ले जावें। वहां बालकके द्वारा जयादि पञ्चदेवताओंको नमस्कार-पूर्वक अर्घ्य प्रदान करावें। अनन्तर बालक शिक्षक वा गुरु महाशयको वस्त्रालङ्कार आदि भेंट देकर प्रणाम करे। उपाध्याय वा गुरु महाशयको चाहिए कि एक

तख्ते पर अक्षतका तण्डुल बिछा कर उस पर "ओं नमः सिद्धेभ्यः" यह मन्त्र तथा अ आ आदि स्वर और क ख आदि व्यञ्जनवर्ण लिखें। अनन्तर बालकको हाथमें श्वेतपुष्प दे कर तख्तेके पास लावें। श्वेत-पुष्पोंको तख्ते पर रखवा कर उससे उसी तख्ते पर उपर्युक्त मन्त्र तथा अ से ह तक सम्पूर्ण स्वर और व्यञ्जनवर्ण लिखवावें। लिखवानेका मन्त्र—"ओं नमो ऽर्हते नमः सर्वज्ञाय सर्वभाषाभाषितसकलपदार्थाय बालकमक्षराभ्यासं कारयामि द्वादशांग श्रुतं भवतु भवतु ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा।" अनन्तर "शब्दपारगामी भव अर्थपारगामी भव। शब्दार्थसम्बन्धपारगामी भव।" इस मन्त्र द्वारा आशीर्वाद दे कर कार्य समाप्त करें। (जैनआदि पु०३८।१०२-१०३)

१४श यज्ञोपवीत वा उपनीतिसंस्कार—ब्राह्मणोंके लिए (गर्भसे) ८वें वर्ष क्षत्रियोंके लिए ११वें वर्ष और वैश्योंके लिए १२वें वर्ष उपनीति करनेका विधान है। यह संस्कार यथाक्रमसे ५वें, ६ठे और ८वें वर्ष अथवा १६वें २२वें और २४वें वर्ष भी हो सकता है। इसके बाद यज्ञोपवीत नहीं होता। यज्ञोपवीत-रहित पुरुष प्रतिष्ठादि करनेके लिए अनुपयुक्त है। यज्ञोपवीतके दिनसे दश, सात वा पांच दिन पहले नान्दीविधान* किया जाता है।

उपनयन संस्कारमें पहले बालकको स्नान करा कर मातापिताके साथ भोजन कराया जाता है। फिर मुण्डन (शिखाके अतिरिक्त) करके मस्तक पर हल्दी, घी, सिन्दूर, दूर्वा आदिका लेपन करें। कुछ विश्रामके बाद बालकको फिरसे नहला दें। फिर आचार्य पुण्याह-वाचन पाठ करके इस मंत्रको पढ़ कर सिंचन करें—"परमनिस्तारकलिंगभागी भव। परमर्षिलिंगभागी भव। परमेन्द्रलिंगभागी भव। परमराज्यलिंगभागी भव। परमार्हत लिंगभागी भव। परमनिर्वाणलिंगभागी भव।" अनन्तर बालकके शरीर पर सुगन्धिद्रव्यका लेप करके होम-पूजनादि प्रारम्भ करें। होम समाप्त होने पर यह-स्तोत्रका पाठ करके 'णमोकार' मंत्रका स्मरण करें और बालकको उत्तरमुख बिठा कर अग्र-शुद्धिके लिए पिताका मुख दर्शन करावें। फिर "ओं क्ष्रौं कटिप्रदेशे मौञ्जीबन्धं प्रकल्पयामि स्वाहा।" कह कर बालकके कमरसे कटिचिह्न (मूंजकी रस्सी) और कौपीन बांध दें एवं "ओं नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबन्धनं करोमि पुण्यबन्धो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा" इस मंत्रको पढ़ कर कटिचिह्न पर पुष्प और अक्षत निक्षेप करें। इसके बाद बालकके पिताको चाहिए कि रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र)-के चिह्न-स्वरूप † उपवीतको चन्दन और हलदीसे रंग कर बालकको पहना दें; इसका मंत्र—"ओं नमः परमशांताय शांतिकाय पवित्रीकृतायाऽहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि ममगात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।" अनन्तर "ओं नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रपरमेष्ठिने ललाटे शेखरं शिखायां पुष्पमाला ददामि मां परमेष्ठिनः समुद्धारन्तु ओं श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा" इस मंत्रको उच्चारण कर ललाट पर तिलक और शिखा पर पुष्पमाला दें। इसके बाद बालक नूतन वस्त्र (धोती और दुपट्टा) पहन कर आचमन, तर्पण और श्रीजिनेन्द्रदेवको अर्घ्य प्रदान करें। फिर आचार्यसे व्रत और मंत्रादि ग्रहण करे एवं भिक्षाके लिए माताके निकट जावे।

जैन-आदिपुराणके टीकाकार यज्ञोपवीतकी संख्याके विषयमें लिखते हैं कि विद्यार्थी एवं नियत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करनेवालोंको एक, गृहस्थोंको दो (जिसके पास उत्तरीय वस्त्र न हो उसे तीन), जिसे अधिक जीवित रहनेकी अभिलाषा हो उसे दो वा तीन और जिसे पुत्रकी वा अधिक धर्मनिष्ठ होनेकी आकांक्षा हो उसे पांच यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। जैन शास्त्रोंमें ब्राह्मणोंको सूतका, राजाओंको सुवर्णका और वैश्योंको रेशमका यज्ञोपवीत पहननेके लिए लिखा है।

(जैन-आदिपु० ३८।१०४-१०८)

१५श व्रतधारण संस्कार—यह संस्कार बालकके गुरुके निकट विद्याध्ययन कर चुकनेके बाद होता है। इसमें श्रावण मास और श्रवण नक्षत्रमें पूर्व-कथनानुसार होमादि क्रिया जाता है। पश्चात् बालक कटिलिङ्ग और

* गाजे बाजेके साथ जो पूजन किया जाता है उसे नान्दी विधान कहते हैं।

† जैनमतानुसार रत्नत्रयके चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीतमें तीन सूत और तीन ही ग्रन्थियां होनी चाहिए।

मोछोंका त्याग कर दे और गुरुकी साक्षी पूर्वक वस्त्र पहन कर ताम्बूल खावे और शय्या पर शयन करे। अनन्तर वैश्य होवे तो वाणिज्यकार्यमें लग जाय और क्षत्रिय होवे तो शस्त्र धारण करे।

१६म विवाह-संस्कार—यह संस्कार १६वें वर्षसे २५ वर्षकी उम्र तक किया जा सकता है; किन्तु कन्याके लिए १२वें वा १३वें वर्षका ही नियम है। साधारणत: विवाहके पांच अङ्ग हैं—वाग्दान, प्रदान, वरण, पाणिपीड़न और सप्तपदी। जैनविवाहविधि देखो।

जैन-आदिपुराण, क्रियाकोष, षोड़शसंस्कार, त्रिवर्णाचार आदि जैनग्रन्थोंमें उपर्युक्त सोलह संस्कारोंका वर्णन विशदरूपसे पाया जाता है। किन्तु वर्तमान जैनजातिमें उक्त संस्कारोंका अभाव नहीं तो शिथिलता अवश्य आ गई है। हां, दाक्षिणात्यके जैनोंमें अब भी प्राय: सब संस्कार प्रचलित हैं। यज्ञोपवीत संस्कार दाक्षिणात्यके सिवा अन्यान्य प्रदेशोंके जैनोंमें कम देखनेमें आता है। किन्तु फिलहाल जातीय सभा और सुशिक्षितोंके उद्योगसे संस्कार विषयकी उन्नति हो रही है।

शौचाशौच—जन्म वा मृत्यु होने पर वंश वा कुटुम्बके सभी लोगोंको अशौच होता है। जन्म-सम्बन्धी सूतक वा अशौच तीन प्रकारका है; यथा-स्राव-सम्बन्धी, पात-सम्बन्धी और जन्म-सम्बन्धी। गर्भस्रावका अशौच माताको—३रे मासमें हो तो तीन दिनका * और चौथे मासमें हो तो ४ दिनका होता है। पिता और कुनबाके लोग सिर्फ स्नानमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। इसी तरह गर्भपातका अशौच भी माताको ५ वा ६ दिनका होता है। पुत्र उत्पन्न होने पर कुटुम्बके लोगोंको १० दिनका अशौच होता है। इन दश दिनमें कोई प्रसूतिका मुख नहीं देखते। इसके बाद प्रसूतिको और भी २० दिनका अनधिकार-अशौच होता है, किन्तु कन्या होने पर यह अशौच ३० दिन तक रहता है। अनिरीक्षण अशौचमें यदि बालकका पिता प्रसूतिके निकट बैठे-उठे वा स्पर्श करे तो उसे १० दिनका अनिरीक्षण-अशौच पालन करना पड़ता है।

मृत्यु सम्बन्धी अशौच साधारणत: १० दिनका होता है। किन्तु छोटे बच्चोंके लिए यह नियम लागू नहीं है। नाल काटनेके बाद बालककी मृत्यु होने पर केवल १० दिनका जन्माशौच ही माना जाता है। बालकके दशवें दिन मरने पर मातापिताको दो दिनका अशौच होता है और ग्यारहवें दिन मरने पर तीन दिनका। दांत निकलनेके बाद बालककी मृत्यु होने पर मातापिता और भाइयोंको १० दिनका, प्रत्यासन्न (४ पीढ़ी तक) कुटुम्बियोंको एक दिनका अशौच होता है। एक अशौच होने पर दूसरा अशौच (एक ही स्रोणीका होनेसे) उसीमें गर्भित हो जाता है; किन्तु जन्मसम्बन्धी अशौच और मरण सम्बन्धी अशौचका भिन्न भिन्न पालन किया जाता है।

शवदाह—किसी व्यक्तिके मरने पर उसे विमानमें सुला कर ऊपरसे नया वस्त्र ढक दिया जाता है। अनन्तर शवका ग्रामकी तरफ मुंह करके स्वजातीय चार आदमी उसे श्मशानमें ले जाते हैं, शवदाहके लिए साथमें अग्नि भी ले ली जाती है। किन्तु ब्रह्मचारी वा व्रती पुरुषकी मृत्यु होने पर, उसके लिए होमकी अग्निकी आवश्यकता होती है। आधा मार्ग अतिक्रम करनेके बाद विमानको उतार कर शवका मस्तक पलट लिया जाता है। यहांसे जातिके लोग शवके आगे और अन्यान्य मनुष्य पीछे पीछे चलते हैं। अनन्तर श्मशानमें पहुंचनेके बाद "ओं ह्रीं ह्र: काष्ठसंचयं करोमि स्वाहा" यह मन्त्र उच्चारण पूर्वक चिता सजाई जाती है। पश्चात् "ओं ह्रीं ह्रौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा" कह कर शवको चिता पर रखते हैं। इसके बाद तीन प्रदक्षिणा दे कर अग्नि-संस्कार करते हैं। मंत्र "ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्नि संधुक्षण करोमि स्वाहा।" शवदाह हो चुकने पर जातिके लोग चिताकी प्रदक्षिणा दे कर गङ्गा अथवा किसी जलाशयके किनारे उपस्थित होते हैं और यथायोग्य सब क्षौरकर्म कराते हैं। जैनोंमें

* जहां ब्राह्मणोंके लिए ३ दिनके अशौचका विधान हो, वहां क्षत्रियोंके लिए ४ दिनका, वैश्योंके लिए ५ दिनका और शूद्रोंके लिए ८ दिनका समझना चाहिए, ऐसा भगवज्जिनसेनाचार्यका मत है। इसी तरह अन्य अशौचोंमें भी दिनोंका हिसाब लगा लेना उचित है।

साधारणतः माता, पिता, पितृव्य, मामा, ज्येष्ठभ्राता, श्वसुर, आचार्य, काकी, ताई, मामी, भावज, सासु, आचार्याणी, फूफी, मौसी, और बड़ी बहन इनके मरने पर क्षौरकर्म करनेकी प्रथा है। इनमेंसे यदि किसीका देशान्तरमें मरण हो तो संवाद पाते ही क्षौरकर्म कराया जाता है। किन्तु यदि एक मास बाद संवाद मिले तो क्षौरकर्म करानेकी आवश्यकता नहीं।

अनागारधर्म या जैन-मुनियोंका आचार जैन-मुनियोंका क्या आचार है—क्या धर्म है, इसका विवेचन करनेसे पहले धर्म शब्दकी दो शब्दोंमें व्याख्या कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

धर्म शब्दकी व्याख्या व्याकरणशास्त्रानुसार जैनाचार्योंने इस प्रकार की है,—जो संसारस्थ जीवोंको उससे निकाल कर उत्तम सुखमें—जहां कभी दुःखका लेश भी न हो—अर्थात् मोक्ष सुखमें ले जाय, उसे धर्म कहते हैं। यह धर्मशब्द 'धृञ्' (अर्थात् 'धारण करना') इस धातुसे बना है। यह तो धर्म शब्दका व्याख्या-व्युत्पत्ति-सिद्ध अर्थ है, इसका लक्षण एवं स्वरूप निरूपण यह है कि, जो वस्तुका स्वभाव हो वही धर्म कहलाता है। "वत्थुसहावो धम्मो" इस लक्षणसे प्रत्येक वस्तु धर्मवाली सिद्ध होती है, जिसका जो स्वभाव है वही उसका धर्म है। घटका घटत्व (जलधारण, जलानयन आदि) धर्म है, वस्त्रका वस्त्रत्व (शीतवारण पदार्थाच्छादन आदि) धर्म है, छत्रका छत्रत्व (आतपवारण, वर्षणानार्द्रत्व आदि) धर्म है, इसी प्रकार जीवका जानना, आचरण करना—तप, संयम, ध्यान आदि द्वारा आत्माको विशुद्ध चारित्रधारी बनाना—धर्म है। यहां प्रत्येक जड़-वस्तुके धर्मसे प्रयोजनसिद्धि नहीं है, इस लिये उसका कुछ भी निरूपण न करके जीवके धर्मका ही निरूपण किया जाता है—

जब वस्तु-स्वभाव ही धर्मका लक्षण है और जीवको शुभ एवं शुद्धाचरण द्वारा चरम उन्नत बनाना ही धर्मका व्याख्या-सिद्ध अर्थ है, तब जीवका वस्तुस्वभाव मुख्यतया चारित्र ही पड़ता है। कारण यह कि जीवको चारित्र ही संसार-दुःखोंसे विमुक्त कर मुक्त बनाना है। इसलिये ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व आदि अनेक धर्मोंके रहते हुए भी, धर्म विवेचनामें जो वक्ता धर्म चारित्र ही लिया गया है। जैसा कि जैनाचार्योंने प्रगट किया है—"चारित्तं खलु धम्मो"। यही धर्म शब्दकी व्याख्या एवं उसका लक्षण है।

चारित्र दो कोटियोंमें बटा हुआ है—(१) श्रावकोंका चारित्र, (२) मुनियोंका चारित्र। श्रावकोंके चारित्रको विकलचारित्र या एकदेश चारित्र भी कहते हैं और मुनियोंके चारित्रको सकलचारित्र या सर्वदेशचारित्र। जिस चारित्रके पालते हुए भी आत्मा केवल त्रस-हिंसासे ही अपनेको बचा सके (स्थावर-हिंसासे न बचा सके), वह चारित्र एकदेश-चारित्रकी कोटिमें आता है, और जिस चारित्रके पालते हुए जीव अपनेको त्रस तथा स्थावर दोनों प्रकारकी हिंसाओंसे सर्वथा बचा लेवे, वह चारित्र सकलचारित्र अथवा सर्वदेश-चारित्र कहलाता है। जब तक संसारी जीवके प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय रहता है, तब तक उसके सर्वदेश चारित्र नहीं हो पाता; अर्थात् उस चारित्रको धारण कर आत्मा कर्मका नाश कर सके ऐसी अवस्था भी उसे किसी तीव्र पुण्योदयसे ही मिलती है। यदि बिना तीव्र पुण्यके ही उत्तम अवस्था प्राप्त कर ली जाय, तो क्यों नहीं सर्वसाधारणको सन्मार्गकी ओर विचार, झुकाव, सामग्री, सहवास, साधन, योग्यता आदि कारण-कलाप मिलते; इसलिए आत्मा तभी कर्मोंके जीतनेमें समर्थ होती है जब कि वह कषायों पर बहुत अंशोंमें विजय पा लेती है—गृह, कुटुंब, स्त्री, पुत्र आदि सर्व सम्पत्तिसे विरक्त बन जाती है। बिना ऐसा हुए मुनिधर्मकी ओर आत्माकी प्रवृत्ति ही नहीं झुकती। प्रवृत्ति दूर रहो, वैसा स्वच्छ विचार भी नहीं उत्पन्न होता और न भिन्न पदार्थोंसे मोह ही छूटता है। इस प्रकारका मोह कराने वाला कषाय है। उसीके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण आदि नाम हैं, जिसका वर्णन हम 'कर्मसिद्धान्त' शीर्षकमें कर चुके हैं।

जिस समय आत्मा, सकलचारित्रके धारण करनेमें बाधा पहुंचानेवाले कषायोंका उपशम या क्षय करके उन पर विजय पा लेती है, तभी वह मुनिधर्ममें पदार्पण करती है, उससे पहले वह श्रावकाचार ही पलती है। श्रावकाचारमें भी आत्मा क्रमसे उन्नति करती है, सबसे

प्रथम मदिरा मांस, मधु, पांच उदुम्बर फल, रात्रिभोजन, बिना छना जल, आदि जीवघातक वस्तुओंका सेवन छोड़ देती है। इन सबके छोड़नेसे आत्मा अष्ट मूलगुण युक्त बन जाती है और आगे चल कर सप्तव्यसन महा पापोंको छोड़ देती है; फिर स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलसेवन और तृष्णाधिक्य वा परिग्रहाधिक्य इन सबको छोड़ती है; यहीं पर वह दिशाओंमें एवं देशोंमें गमनागमन करनेका नियम करती है। उसका उद्देश्य यही है कि जितनी मर्यादा की हो, उसीके भीतर आरंभ करना, बाहर नहीं। बाहर आरम्भ न होनेसे, वहां होनेवाली बहुत कुछ हिंसा एवं हिंसोत्पादक परिणाम रुक जाते हैं। इसी अवस्थामें बिना प्रयोजन (व्यर्थ) होनेवाली हिंसासे भी (जैसे रागद्वेषोत्पादक कथाओंका सुनना, बिना कारण पृथ्वीको खोदना, जलमें पत्थर फेंकना, वृक्षोंका तोड़ना, दूसरोंका बुरा विचारना आदि) छुटकारा मिल सकता है। इस अवस्थामें पहुंचनेवाला श्रावक कुछ काल, तीनों समय सामायिक भी करता है, अर्थात् पर पदार्थसे चित्तवृत्ति हटा कर स्वयं आत्मस्थ स्वरूपमें तल्लीन हो जाता है, पर्वोंमें उपवास भी करता है, अतिथियोंको आहार दान भी देता है तथा व्रती संयमियोंकी सेवा भी करता है।

परस्त्री-त्यागी तो पहले ही हो जाता है, मानवीं श्रेणीमें पहुंच कर स्वस्त्रीका भी त्यागी बन कर मन-वचन-कायसे कामवासनाका सर्वथा त्याग कर पक्का ब्रह्मचारी बन जाता है। उससे ऊपर यदि और भी चित्तवृत्ति वैराग्यकी टिमें झुकती है, तब वह आत्माको भी छोड़ देता है। पश्चात् शरीर सम्बन्धी वस्त्रके सिवा बाकी सब धन, धान्य मकान, आभूषण आदि सब प्रकारका बाह्य परिग्रह छोड़ देता है, इससे भी आगे बढ़ने पर किसीको संसारवर्धक व्यापार, गृह-प्रबन्ध आदि सांसारिक कार्योंमें सम्मति भी नहीं देता है, केवल पारमार्थिक विचार ही करता है। यहां तक श्रावकोंका होता है। इससे ऊपर त्याग करनेवालेके लिए एक कोटि अभी और है, वह यह कि घरसे निकल कर जङ्गलमें, किसी मठ या मन्दिरमें जा कर किसी विशेष ज्ञानी एवं तपस्वी गुरुके निकट क्षुल्लक अथवा ऐलकके व्रत धारण कर लेते हैं। क्षुल्लक अवस्थामें लंगोटीके सिवा एक खंडवस्त्र भी रक्खा जाता है; वह वस्त्र यदि शिरसे ओढ़ा जाय तो पैर खुल जाते हैं और पैरोंको ढका जाय तो शिर खुल जाता है, इसीलिए उसका नाम खण्डवस्त्र है। इस वस्त्रसे वह पूर्णतया शीतवारण आदि नहीं कर सकते और न पूर्णतया शीतवारण करने आदिकी उनके अभिलाषाएँ ही जाग्रत हैं। यदि ऐसा होता तो खण्डवस्त्र ही वह क्यों धारण करते; पूर्ण वस्त्र ले कर उससे पहले पदोंमें रह जाते। क्षुल्लक किसीके घर निमन्त्रण पूर्वक नहीं जीमते, किन्तु भिक्षावृत्तिसे किसीके घर शुद्ध एवं निरन्तराय भोजन मिलने पर जीम लेते हैं। जिस अवस्थामें खण्डवस्त्रका भी त्याग कर दिया जाता है—केवल एक लंगोटी मात्र रक्खी जाती है, वह ऐलकका पद है, इस पदमें रहनेवाले श्रावक खड़े हो कर आहार लेते हैं, मुनियोंके समान गमनागमन क्रियाएं करते हैं, परन्तु मुनिधर्मका बाधक प्रत्याख्यानावरण कषायके रहनेसे मुनिपद धारण करनेमें असमर्थ रहते हैं। अर्थात् वे अभी तक इतने प्रबल कषाय-विजयी नहीं बन पाये हैं कि नग्न रह कर बिना किसी प्रकारकी लज्जाके, नाना परीषहोंको सहते हुए बालकके समान निर्विकार बन सकें। बस, यहीं तक श्रावकोंका आचार है। श्रावकोंका अन्तिम दरजा मुनिके समान है, परन्तु लंगोटी मात्र परिग्रह विशेष है; बाकी पीछिका और कमण्डलु भी ऐलकके होता है। श्रावक-धर्ममें रह कर यहां तक उन्नति की जा सकती है। इसके आगे मुनिधर्म है। मुनिधर्मका श्रावकधर्मसे घनिष्ट संबन्ध है, श्रावकधर्म मुनिपदके लिये कारण है। बिना श्रावक पदकी चरम सीमाकी उन्नतिका अभ्यास किये, मुनिपदका धारण करना अशक्य है। क्योंकि जैसे यह बात निश्चित है कि जो पहले प्रवेशिका, पंडित एवं शास्त्रिपरीक्षा दे कर उत्तीर्ण हो जायगा अथवा उस जातिकी योग्यता अपनेमें बना लेगा, वही आचार्य परीक्षामें बैठ सकता है, अन्यथा जो प्रवेशिका तककी योग्यता रखता है, वह आचार्य तो दूर रहो, शास्त्रि परीक्षामें भी नहीं बैठ सकता, उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि श्रावकधर्मकी पूर्ण

तथा बिना पाले मुनिपद ग्रहण नहीं कर सकते अथवा न नियम का पालन नहीं हो सकता।

जैनशास्त्रोंमें परिग्रहके २४ भेद किये गये हैं उनमें १४ भेद आभ्यन्तर परिग्रहके हैं और दश भेद बाह्य परिग्रहके। आभ्यन्तर परिग्रहमें आत्माके जितने भी कर्मजनित वैकारिक भाव हैं, वे सभी ग्रहण किये जाते हैं; जैसे—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीकषाय, अप्रत्याख्यानावरणकषाय, प्रत्याख्यानावरणकषाय, संज्वलनकषाय, हास्यभाव, रतिभाव, अरतिभाव शोकपरिणाम, भयपरिणाम, घृणाभाव, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद। इन चौदहों अन्तरंग विकारभावोंको जीतते हुए मुनि अपने परिणामोंको रागद्वेषसे रहित—वीतराग बनाते हैं।

बाह्य-परिग्रहके १० भेद इस प्रकार हैं—खेत, मकान, सोना, चांदी, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र, और बरतन। इन दश भेदोंमें संसारभरका समस्त परिग्रह गर्भित हो जाता है। खेत-मकानमें समस्त जमीन, जमींदारीका परिग्रह आ जाता है। सोना-चांदीमें सब धातुएँ और रुपया, पैसा, जवाहरात आदि आ जाते हैं। धनमें गौ, भैंस आदि पशु और पक्षी आ जाते हैं। धान्यमें गेहूं चावल जौ आदि सभी धान्य आ जाते है। दासी-दासमें सब कर्मचारी, नौकर, स्त्री-पुत्रादि कुटुम्ब आ जाते है। वस्त्र और बरतनमें सब प्रकारके वस्त्र और पात्र आ जाते हैं। ऐसा कोई भी बाह्यपदार्थ नहीं बचता जो इन दश भेदोंमें गर्भित न होता हो। दासीदास और पशुपक्षी स्त्री पुत्र कुटुम्ब आदि परिग्रह सचित्त (सजीव) परिग्रहमें सम्हाला जाता है और निर्जीव परिग्रह अचित्त परिग्रहमें।

इन दश प्रकारके बाह्यपरिग्रहोंका सर्वथा त्याग करनेवाले महात्मा ही मुनिपद धारण करनेके पात्र हैं। जिनके इन परिग्रहोंमेंसे कोई भी एक परिग्रह अवशिष्ट रहता है, वे मुनि कहलानेके पात्र नहीं हो सकते। कारण मुनिपदमें वीतरागताकी मुख्यता है। वीतरागता, परिग्रहका त्याग बिना किये कभी आ नहीं सकती; जितने अंशोंमें परिग्रहका सम्बन्ध है, उतने ही अंशोंमें आत्मा मूर्छित या मोहित-परिणाम है। यदि मोहित-परिणामयुक्त नहीं है, तो परिग्रहका सम्बन्ध भी असम्भव है। क्योंकि 'यह मेरा है' यह ममत्वभाव किसी वस्तुसे, चाहे वह सजीव हो चाहे निर्जीव, तभी तक हो सकता है, जब उसके प्रति कुछ राग-भाव है। थोड़े रागभावके बिना किसी भी आत्म-भिन्न पदार्थमें आत्माका ममत्व भाव नहीं हो सकता। जहां तिल-तुषमात्र भी परिग्रह है, वहां रागप्रवृत्ति नियमसे माननी पड़ेगी। बिना रागभावके किसी वस्तुका रखना, अर्जन आदि कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिये मुनिधर्म वही वीरवृत्ति महापुरुष धारण करता है, जो समस्त बाह्य-परिग्रहसे सम्बन्ध एवं ममत्वभाव छोड़ देता है। समस्त बाह्यपरिग्रहका सर्वथा त्याग बिना किये मुनिधर्मका मार्ग ही नहीं प्राप्त हो सकता। एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि बाह्यपरिग्रहके त्यागसे इतना ही प्रयोजन नहीं है, कि केवल उसका सम्बन्ध न रक्खा जाय, किन्तु अन्तरंगमें उसकी वासना भी जाग्रत न रहे, वहां तक उसके त्यागसे प्रयोजन है। अन्यथा जो किसी कारण वश जङ्गलमें जा बसे हों, वहां नग्न रहते हों; किन्तु घरमें, सम्पत्तिमें, एवं कुटुम्बमें जिनकी वासना लग रही हो, ऐसे लोग भी मुनिकोटिमें सम्हाले जा सकते हैं और वैसी दशामें मोक्षमार्ग प्रत्येक साधारण पुरुषके लिये भी सुलभ हो जायगा अथवा नग्न रहनेवाला बालक भी मुनि समझा जा सकता है। परन्तु उसके रागद्वेष है, पदार्थोंमें मोह है; इसलिये वह मुनिकोटिमें किसी प्रकार भी नहीं सम्हाला जा सकता। अतएव मुनियोंकी पंक्तिमें वही सम्हालने योग्य हैं, जिनका परिग्रहसे सम्बन्ध छूटनेके साथ ही अन्तरंगमें उससे ममत्वभाव भी छूट चुका हो।

यदि मुनियोंके लंगोटी मात्र परिग्रह भी मान लिया जाय, तो उस लंगोटसे ममत्वभावका रहना, उसके लिए श्रावकोंसे याचना करना, एक लंगोटके अशुद्ध हो जाने पर उसे धो कर सुखानेके लिये दूसरे लंगोटका होना तथा उसकी चोरोंसे रक्षा करना, धोनेका आरम्भ करना आदि सब बातें मुनिधर्मके एवं वीतरागतापूर्ण निवृत्ति मार्गके सर्वथा प्रतिकूल हैं। इसलिए मुनिपद सर्वथा परिग्रह-रहित नग्न अवस्थामें ही होता है; अन्यथा मार्गोल्लङ्घन समझना चाहिये।

मुनियोंका स्थूल स्वरूप अट्ठाईस मूलगुणोंका धारण करना है। अट्ठाईस मूलगुण ही मुनियोंका स्थूल आचार है ; यथा - पांच समिति, पांच महाव्रत, पांच इन्द्रियनिरोध, छह आवश्यक, भूमिशयन, खड़े हो कर ही भोजन करना, एक बार भोजन करना, दन्तधावन नहीं करना, स्नान नहीं करना, केशलुञ्चन करना, नग्न ही रहना। ये मुनियोंके अट्ठाईस मूलगुण हैं। मूलगुण उसे कहते हैं, जिसके बिना वह पद ही न समझा जाय। अब उक्त अट्ठाईस मूलगुणोंका स्वरूप कहा जाता है।

१म ईर्यासमिति—चैत्यवन्दना, साधु आचार्य उपाध्यायके पास पठन पाठन, स्वाध्याय आदि तथा बाधा वारण एवं भिक्षावृत्तिके लिये गमन करते समय आगेकी चार चार हाथ प्रमाण पृथ्वीको भले प्रकार देख कर ही चलना, जिससे पृथ्वी पर रहनेवाले छोटे-बड़े जन्तुओंका किसी प्रकार व्याघात न हो। मुनिका गमन रात्रिमें सर्वथा वर्जित है। दिनमें भी किसी पृथ्वीस्थलको जन्तुबाधारहित देख कर वे बैठ जाते हैं। इस प्रकार निरीक्षणपूर्वक गमन करनेको ईर्यासमिति कहते हैं।

२य भाषासमिति—मुनि ऐसे वचन नहीं बोलते जिससे सुननेवालेकी आत्मामें आघात पहुंचे और न असत्य ही बोलते हैं। सन्तापकारी वचन (जैसे तू मूर्ख है, बैल है आदि) मर्मभेदनेवाले वचन (जैसे तू अनेक दोषोंसे भरा हुआ है, दुष्ट है आदि), उद्वेग उत्पन्न करनेवाले वचन (जैसे तू अधर्मी है, जातिहीन है आदि), निष्ठुर वचन (जैसे तुझे मार डालूंगा आदि), परकोपकारक वचन (जैसे तू निर्लज्ज है, तेरा तप हास्यजनक है आदि), छेद करनेवाले वचन (जैसे तू कायर है, पापी है आदि), अत्यन्त कठोर वचन (जो शरीरको सुखा डाले), अतिशय अहङ्कार प्रगट करनेवाले वचन (जिसमें दूसरेकी निन्दा वा अपनी प्रशंसा हो), परस्पर कलह पैदा करानेवाले वचन, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले वचन इन दश प्रकारके मिथ्या भाषणोंको मुनि कदापि नहीं बोलते। वे हितरूप, मितरूप, एवं सत्यरूप ही वचन बोलते हैं और ऐसे वचनोंको ही भाषा-समिति कहते हैं।

३य एषणा-समिति—इस समितिमें मुनियोंको समस्त आहारशुद्धि आ जाती है। मुनियोंको आहारकी लालसा नहीं होती; किन्तु यथाशक्ति अनेक उपवास करके जब देखते हैं कि बिना भोजनके अब शरीरमें तप एवं ध्यान साधनकी सामर्थ्य नहीं रही, तब वे प्रातःकालीन सामायिक, ध्यान, स्वाध्यायादिसे निवृत्त हो कर दिनके करीब १० बजे भोजनके लिये निकलते हैं। भिक्षावृत्तिके लिये गमन करनेसे पूर्व ही वे स्वगत प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि, आज पांच घर वा चार घर वा दो घरोंमेंसे किसी एक घरमें शुद्ध निरन्तराय भोजन मिलेगा तो ग्रहण करेंगे अन्यथा वनको लौट जायगे। यदि उनकी प्रतिज्ञानुसार किसी घरमें शुद्धभोजनकी निरन्तराय योग्यता मिल जाती है, तो वे भोजन कर आते हैं, अन्यथा बिना किसी प्रकारका खेद माने फिर जङ्गलमें आकर ध्यान लगाते हैं—अनेक उपवास करने पर भी, भोजनकी अप्राप्तिसे फिर उन्हें रञ्चमात्र भी खेद नहीं होता; किन्तु वे अपने विपक्ष कर्मोदयको बलवान् समझ कर उसे निर्जरित करनेके लिए विशेष ध्यान लगाते हैं। भोजनके लिए श्रावकोंके दरवाजे तक जाते हैं; वहां यदि भोजन देनेके लिये मुनियोंकी प्रतीक्षा करनेवाला दाता पड़गाहन* (प्रतिग्रहण) करने लगे, तब तो उसके पीछे पीछे वे घरके भीतर चले जाते हैं, वहां श्रावक उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दान देता है। नवधा भक्ति ये हैं—(१) प्रतिग्रहण वा पड़गाहन, (२) उच्चस्थान देना, (३) उनके चरणोंको धोना, (४) उनका अष्टद्रव्यसे पूजन करना, (५) उन्हें नमस्कार करना, (६) वचनशुद्धि, (७) कायशुद्धि, (८) मनशुद्धि, और (९) आहारशुद्धि रखना। इस प्रकार

* प्रतिग्रहण शब्दका अपभ्रंश पड़गाहन है; यही वर्तमानमें प्रचलित है। मुनियोंके भोजनार्थ आगमनका समय १० से ११ बजे तक है—उस समयमें शुद्धभोजन अपने लिये तयार करा कर उसीमेंसे कुछ अंश तपस्वियोंके तपःपोषणार्थ आहार दान करनेके लिये भक्तिपरायण दाता दरवाजे पर खड़ा हो कर मुनियोंकी प्रतीक्षा करता है। उनके आते ही वह कहता है "अन्न-जल शुद्ध है, पधारिये महाराज"। ऐसा कहने पर, कोई अंतरायविशेष दृष्टिगोचर न हो तो मुनि उस श्रावकके पीछे पीछे उसके घरके भीतर चले जाते हैं; इस क्रियाको प्रतिग्रहण अथवा पड़गाहन कहते हैं।

आहार लेनेके बाद वे जङ्गलमें या मठ आदि एकान्त स्थलमें जा कर ध्यान लगाते हैं। मुनि रुचिपूर्वक आहार नहीं करते किन्तु शरीरका धारणमात्रके लिए लक्ष्य रख कर ही भोजन करते हैं। यदि भोजनार्थ जाते समय मार्गमें हो कोई मांसादिक वा कोई हिंसक जीव सामने आ जाय अथवा छयालीस अन्तरायोंमेंसे कोई अन्तराय उपस्थित हो जाय, तो फिर वे तत्काल लौट जाते हैं। मुनि याचनावृत्ति नहीं करते, किन्तु श्रावकको अपना शरीर दिखाते हैं। यदि उसी समय उसने उन्हें प्रतिग्रहण किया तब तो ठीक है, अन्यथा वे आगे बढ़ जाते हैं। यदि भोजनको मनमें भी याचना रक्खें तो उसको गृद्धता वा भोजनमें तृष्णा समझी जायगी, जो मुनिमार्गसे बाहर है।

यदि मुनियोंको यह विदित हो जाय कि श्रावकने उन्होंके लिये भोजन बनाया है, तो वे उसे ग्रहण नहीं करेंगे, कारण वे उद्दिष्ट भोजनके त्यागी हैं। भोजन बनानेमें जो आरम्भजनित हिंसा होती है, उसके भागी मुनियोंको भी बनना पड़ेगा। यदि वे उद्दिष्ट-भोजन करें, तो यह सब भोजन-विधि एषणासमितिमें आ जाती है, जिसे मुनिगण बड़ी सावधानीसे नियमपूर्वक पालते हैं। खूब अच्छे अच्छे पदार्थ खाना, पुष्टिकर खाना, श्रावकोंके घरसे ला कर स्व-स्थानमें खाना ये सब बातें मुनिपदसे सर्वथा विरुद्ध हैं।

४र्थ आदाननिक्षेपण-समिति—मुनियोंके पास कोई परिग्रह तो होता ही नहीं, जन्तुओंकी रक्षा करनेके लिए एक मयूरके उपरिम कोमल पुच्छकी पिच्छिका होती है, उससे वे कीड़े-मकोड़ोंको धीरेसे झाड़कर बैठते हैं और झाड़ कर ही कमण्डलु एवं शास्त्र रखते हैं। मयूरपुच्छकी पिच्छिकासे जीवको किसी प्रकार बाधा नहीं पहुंचती, न सड़ती वा गलती ही है और न वह कीमती वस्तु है जिसे चोर ले जाय। यह मुनियोंका उपकरण श्रावकों-द्वारा दिया हुआ केवल जन्तुहिंसासे बचानेके लिए है; इसलिए संयमको सामग्रीमें शामिल है, परिग्रहमें नहीं। दूसरा संयमोपकरण काष्ठका कमण्डलु उनके पास रहता है, जिसमें भोजनके समय श्रावक गरम जल भर देते हैं, उस जलसे वे शौच-निवृत्ति आदि शुद्धि करते हैं। उस जलको वे पीनेके काममें तो ले ही नहीं सकते; कारण वे भोजन ग्रहण करते समय ही जल पीते हैं, बिना एषणाशुद्धिके—भोजनग्रहणविधिके वे कभी कोई खाद्य पदार्थ नहीं खाते। यह कमण्डलु भी संयमका ही उपकरण है, सिवा शुद्धिके अन्य कोई कार्य उससे नहीं लिया जाता; इसलिए उसे भी परिग्रहमें ग्रहण नहीं किया जाता। ज्ञानवृद्धिके लिए शास्त्र भी मुनिगण रखते हैं। इस प्रकार पोछी, कमण्डलु और शास्त्र ये तीन पदार्थ ही उनके पास रहते हैं, जो ज्ञान तथा संयमके कारण हैं। अन्य कोई परिग्रह उनके पास नहीं रहता। यदि अन्य कोई वस्तु—वस्त्र पात्र दण्ड आदि कुछ भी हो तो उन्हें मुनिपदसे च्युत समझना चाहिये।

उपर्युक्त तीनों वस्तुओंको रखते समय देख कर ही रखना, उठाते समय देख कर ही उठाना (जिससे किसी जीवका वध न हो जाय) इसीका नाम आदाननिक्षेपण-समिति है।

५म व्युत्सर्ग-समिति—जन्तुओंको देख कर, निर्जीव स्थानमें लघुशङ्का (पेशाब) वा दीर्घशंका—शौचनिवृत्ति करनेका नाम व्युत्सर्ग-समिति है। मुनियोंमें यत्नाचारकी मुख्यता है, उनके द्वारा प्रमादवश भी किसी जीवका वध नहीं होना चाहिये। यदि किसी प्रकार दृष्टिदोषसे वा प्रमादसे जीव वध हो जायगा, तो वे शास्त्रविहित प्रायश्चित्त ले कर शुद्धि करेंगे। इस प्रकार उपर्युक्त पञ्च समितियां मुनियोंके लिये आवश्यक वा पालनीय क्रियाएं हैं।

पञ्च महाव्रत—मुनि त्रस और स्थावर-हिंसाके सर्वथा त्यागी होते हैं, इसलिये उनके जो अहिंसाव्रत है, वह सर्वदेशरूप है, अर्थात् वे समस्त जीवोंकी पूर्णतया हिंसा नहीं करते, यही उनका अहिंसा महाव्रत है।

मुनि किसी प्रकार कभी झूठ नहीं बोलते, यही उनका सत्यमहाव्रत है।

वे कभी किसी प्रकारकी चोरीके भाव नहीं रखते, इसलिये उनके पूर्ण अचौर्यमहाव्रत है। शीलके जितने भी (१८०००) भेद हैं, उन्हें पूर्णरूपसे पालते हैं; इसलिये उनके पूर्ण ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

तृष्णा, मोह एवं बाह्यपरिग्रहसे उनका किञ्चिन्मात्र भी संसर्ग नहीं है, इसलिये वे परिग्रहत्याग-महाव्रती हैं। इन पांच महाव्रतोंको मुनि मन-वचन-कायसे निरतिचार पालते हैं।

पञ्च इन्द्रियनिरोध—स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्र इन्द्रिय इन पांचों इन्द्रियोंके जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द ये पांच विषय हैं, उनमें थोड़ा भी राग नहीं करना, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको सर्वथा छोड़ देना इसीका नाम पञ्च इन्द्रियनिरोध है। कानसे शास्त्रका सुनना, चक्षुसे श्री जिनेन्द्र-प्रतिमा या शास्त्रका देखना आदि शब्द एवं रूप आदिमें शामिल न होनेसे उन्हें इन्द्रियोंके विषयमें नहीं समझना चाहिये। विषय उसीका नाम है, जिससे सांसारिक वासना पुष्ट होती हो अथवा रति-अरतिरूप परिणाम होता हो। जहां निष्कषाय विरक्त-बुद्धिसे पदार्थ ग्रहण है, वहां विषय सेवन नहीं कहा जा सकता। मुनि पांचों इन्द्रियोंके सेवनसे सर्वथा विरक्त हो चुके हैं।

छह आवश्यक—(१) मुनि साम्यभाव धारण करते हैं अर्थात् किसी पदार्थमें रागद्वेष नहीं करते—तृण और कांचन, शत्रु और मित्रको समान समझते हैं; (२) शुद्धात्माको त्रिकाल वंदना करते हैं—निर्विकार निष्कषाय रागद्वेष-रहित वीतराग सर्वज्ञात्मा (परमात्मा)का त्रिकाल स्तवन करते हैं; (३) उनके गुणोंको (आत्मीय गुणोंको) ममता मान कर कर्मोंकी व्याधिको हटानेका प्रयत्न करते हैं; (४) प्रमादवश होनेवाले अपने दोषोंका पश्चात्ताप करते हैं—एवं उन्हें उच्चारण कर तज्जनित पापोंकी निवृत्ति चाहते हैं; (५) स्वाध्यायमें उपयोग लगाते हैं और (६) चित्तको सब पदार्थोंसे हटा कर ध्यानमें निमग्न होते हैं - ये छ आवश्यक कर्म हैं, जो प्रतिदिन मुनियों द्वारा पाले जाते हैं।

५ समिति, ५ महाव्रत, ५ इन्द्रियनिरोध और ६ आवश्यक इस प्रकार इक्कीस मूलगुण तो ये हैं। इनके सिवा मुनि पृथ्वीमें ही सोते हैं। भोजन भिक्षावृत्ति द्वारा खड़े हो कर ही करते हैं, दिनमें एकबार ही भोजन करते हैं। वे दांतौन नहीं करते; क्योंकि सात्विक पदार्थोंका स्वल्पाहार एवं उपवासादि करनेसे तथा तपोबलकी विशेष सामर्थ्य होनेसे उनके दांतोंमें किसी प्रकार मल संचय नहीं हो पाता। स्नान भी नहीं करते, स्नान करनेके लिये जलकी आवश्यकता होगी, उसके लिये श्रावकोंसे याचना करनी पड़ेगी। इसके सिवा स्नान करनेका प्रारम्भ करनेसे नाना जीवोंकी हिंसा होना निश्चित है। मुनियोंके हिंसाका सर्वथा परित्याग है, इसलिये वे स्नान नहीं करते। स्नान श्रावकोंके लिये ही आवश्यक है। उन्हींके शरीरमें गार्हस्थ्य जीवनमें अशुद्धताओंका समावेश होता रहता है, मलिन पदार्थोंका संसर्ग होता रहता है मुनियोंके न कोई अशुद्ध संसर्ग है और न मलिनता ही है, प्रत्युत उनका शरीर तपोबलसे कञ्चनवत् सुनरां तेजोमय एवं दिव्य बन जाता है। इसीलिये उनका स्नान न करना, मूलगुणमें शामिल है। केशलोच भी एक आवश्यक गुण है। चार मासमें एकबार वे अपने हाथोंसे शिरके तथा दाढ़ी-मूछके बाल झट झट उखाड़ डालते हैं, शरीरसे ममत्व छोड़ देनेके कारण वे उन केशोंके उखाड़नेसे किञ्चिन्मात्र भी पीड़ नहीं मानते। वास्तवमें यह बात अनुभवसिद्ध है कि शारीरिक पीड़ाका अनुभव तभी होता है, जब शरीरसे ममत्व होता है। यदि मुनिगण केशलोचमें स्वातन्त्र्य नहीं रक्खें और क्षुरिका आदिके लिये श्रावकोंसे याचना करें, तो उनका जीवन पराश्रित हो जाय। समस्त विभूतिको छोड़ कर जंगलमें ध्यान लगानेवाले महापुरुष किसी वस्तुके लिये भी परतन्त्र जीवन नहीं बनाना चाहते। इसके सिवा उस क्षुरिकाकी सम्हाल, रखवाली आदि करनेमें ममत्व-परिणामका प्रादुर्भाव अवश्य होगा। अतएव स्वावलम्बन-पूर्वक केशलुञ्चन गुण ही मुनिवृत्तिके सर्वथा उचित है। यदि क्षुरिकासे भी केशोंको नहीं काटें और हाथसे भी नहीं लोंचें, तो केशोंकी वृद्धि होगी, उनकी अधिक वृद्धिमें जीवोंका सञ्चार एवं मलका समावेश होगा; इसलिए केश-लुञ्चन गुण भी ग्राह्य है।

नग्नत्व भी मुनियोंका मुख्य गुण है। इस गुणके बिना तो उनको स्वरूप-प्राप्ति ही अशक्य है। इसी नग्नत्व गुणसे उनको बाह्य पहचान होती है जिसप्रकार छोटा बालक बिना किसी विकारभावके नंगा रहता

हुआ भी लज्जित नहीं होता, उसी प्रकार मुनि भी नग्न रहते हुए बिना किसी विकारके लज्जा रहित, स्वाभाविक जीवन प्राप्त कर लेते हैं। लज्जा तभी होती है, जब इन्द्रियोंमें विकार होता है। बालकके विकार भाव न होनेसे स्त्रियोंके बीचमें रहने पर भी, उसे लज्जाका भाव नहीं होता। इसी प्रकार श्रावक भी जब समस्त विकार भावों पर विजय पा चुकते हैं, तभी उस निर्ग्रन्थ लिङ्ग—नग्नत्व गुणको धारण करते हुए मुनिपद ग्रहण करते हैं। चित्त-रञ्जन करनेवाली स्त्रियोंमें हाव भाव विलास रहते हुए भी उन मुनियोंके चित्तमें किञ्चिन्मात्र विकार नहीं होता। यदि विकार हो तो उनका बाह्यलिङ्ग भी विकारी हो; ऐसी अवस्थामें उन्हें लोक-लज्जा भी होने लगे। इसलिए मुनिवृत्ति बहुत उन्नत है वीतरागी पुरुष ही उसे धारण करनेमें समर्थ हैं।

जो गरमीमें मकानके भीतर ठण्डकमें पंखा और खसके पास बैठे आराम करते हैं, जाड़ेमें शाल-दुशाला ओढ़ते हैं, सदैव उत्तमोत्तम पुष्ट एवं स्वाद्य पदार्थ सेवन करते हैं, वे क्या मुनि कहलानेके पात्र हैं? यही कारण है, जो आजकलके कष्टसाध्य समयमें भी ८।८ वर्षके बच्चे तक किसी किसी सम्प्रदायमें साधुपद ग्रहण किये हुए दीखते हैं; सब प्रकारकी आरामकी सामग्री है, सेवकगण खड़े हुए हैं, कष्टका नाम नहीं है, फिर भला साधु होनेमें क्या आपत्ति? परन्तु जहां इस प्रकारकी साधुता है वहां मोक्षमार्ग अति दुस्तर है। उपर्युक्त मूल गुणोंका पालन मुनिपदके लिए नियामक है, इनमेंसे यदि एक भी गुणकी कमी होगी, तो साधुपद नहीं रहेगा। इन मूलगुणोंके सिवा उनमें चौरासी लाख उत्तरगुण भी होते हैं, जो कि छोटे-छोटे सूक्ष्म दोषोंको टालनेसे एवं आठम व्रतोंकी पूर्ण रक्षासे मुनियों द्वारा पाले जाते हैं।

मुनिगण सदा बारह प्रकारका तप करते हैं; उनमें छः भेद बाह्यतपके हैं और छः आभ्यन्तर तपके। अनशन, अवमौदर्य, विविक्त-शय्यासन, रसत्याग, कायक्लेश और वृत्तिसंख्यान ये छः भेद बाह्यतपके हैं; प्रत्येकका स्वरूप इस प्रकार है—

अनशन—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय (इनमें खाने पीनेके सभी पदार्थ आ जाते हैं, कोई बाकी नहीं रहता) इन चार प्रकारके आहारोंका सर्वथा त्याग कर देना, अनशन-तप है।

अवमौदर्य अथवा ऊनोदर—अल्प आहार करना अर्थात् जितनी भूख है उससे एक ग्रास, दो ग्रास, तीन ग्रास आदि क्रमसे भोजनको घटा देना, घटाते घटाते एक ग्रासमात्र लेना; यह तप इच्छा-निरोधके लिए किया जाता है। लालसाएँ इस तपसे नष्ट हो जाती हैं।

विविक्त-शय्यासन—जो स्थान जीवोंकी बाधासे रहित है, एकान्त है, ऐसे वसतिका, खण्डहर, मठ, मन्दिर आदि स्थानोंमें शयन करना।

रस-परित्याग—जो खाद्य स्वाद्य पदार्थ रसनेन्द्रियको विशेष लालायित करानेवाले हों उन सब रसोंका तथा दूध, दही, घी, खांड़, तेल, हरित, नमक आदिका त्याग करना।

कायक्लेश—अनेक आसन लगा कर ध्यान करना, ग्रीष्मकालमें जब कि मनुष्य गरम पृथ्वी पर चलनेमें भी असमर्थ हो जाते हैं एवं ठण्डे मकानोंके भीतर बैठ कर खस पंखा आदिका उपचार करते हैं, तब जैन-मुनियोंका मध्याह्न-सूर्यके प्रखर उत्तापसे तपे हुए उन्नत पर्वतके शिखर पर निश्चल काययोगसे ध्यान लगाना, चातुर्मास—वर्षाकालमें वृक्षके नीचे (जहां कि देर तक बिन्दुओंका झड़ संसारी जीवोंको आकुलित करता रहता है अथवा नदियोंके किनारे खड़े हो कर (या बैठ कर) ध्यान करना, शीतकालमें सरोवर या झील के किनारे (जहां साधारण लोग ठण्डकी तीव्रतासे थर-थर कांपते हैं) शरीरसे ममत्व छोड़ तप करना काय-क्लेश तप है। इस प्रकार तीव्र तपके द्वारा जो शरीरको क्लेश दिया जाता है, वह कायक्लेश-तप कहलाता है*।

* यहां शंका की जा सकती है कि 'कायक्लेशसे तो आत्मामें कषाय-भाव पैदा होगा, ऐसी अवस्थामें कर्मबंध ही होगा; तपका फल कर्मोंकी निर्जरा होना बताया गया है, वह कायक्लेशसे कैसे सिद्ध होगा; प्रत्युतः विपरीत फल सिद्ध होगा, ऐसी अवस्थामें कायक्लेशको जैनियोंने तपमें क्यों ग्रहण किया?' इस शंकाके उत्तरमें, यह समझ लेना चाहिये कि यहां पर अप्रमत्त अधिकार चला आता है। इसका प्रयोजन यह है कि

वृत्तिपरिसंख्यान—भोजनमें मर्यादा करना, घरोंकी संख्याका नियम करना, जैसे—चार घर घूमने पर भी यदि निरन्तराय भोजन मिलनेकी योग्यता नहीं मिली तो फिर उस दिन भोजन नहीं करेंगे, अथवा मार्गमें यदि 'अमुक सूचक चिह्न होंगे तो भोजन लेंगे अन्यथा नहीं', इस प्रकार जो मुनिगण कठिन प्रतिज्ञा करते हैं वह वृत्तिपरिसंख्यान तप कहलाता है।

अन्तरङ्ग तपके छः भेद ये हैं—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

प्रायश्चित्त तप—किसी व्रतमें दूषण आने पर शास्त्रानुसार एवं आचार्य द्वारा दिये गये दण्ड विधानसे पुनः व्रतको शुद्ध कर लेनेका नाम प्रायश्चित्त है। जिस समय आत्मा कषायकी तीव्र परतन्त्रतावश किसी अनुपादेय मार्गका अनुसरण कर लेती है, उस समय फिर उसी पूर्व आर्षमार्ग पर नियोजित एवं दृढ़ करनेके लिये प्रायश्चित्त मूलसाधक है, बिना प्रायश्चित्तके आत्मामें होनेवाली भूलका मार्जन किसी प्रकार हो नहीं सकता। प्रायश्चित्तशास्त्रोंके ज्ञाता आचार्य शुद्ध एवं सरल परिणामोंसे—केवल धर्मरक्षाकी बुद्धिसे—प्रमादवश वा अज्ञानवश होनेवाले दोषोंके लिए मुनियोंको उनके दोषानुसार दण्ड देते हैं। दण्ड लेनेवाले मुनि भी अपनी भूल समझ लेते हैं और उस दण्डको सुधार मार्ग समझ कर सरल परिणामोंसे ग्रहण करते हैं। फिर पूर्ववत् विशुद्धता एवं समुन्नति प्राप्त कर लेते हैं।

किसी लघुदोषको आचार्यके समीप निवेदन करनेको आलोचन-प्रायश्चित्त करते हैं। गुरुकी आज्ञानुसार अपने दोषोंकी आलोचना करना अर्थात् मेरे सभी अपराध मिथ्या हो जाय, इस प्रकार अपने दोषोंका जो पश्चात्ताप किया जाता है वह प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त है। कोई दोष आलोचनसे दूर होता है, कोई प्रतिक्रमणसे दूर होता है और कोई दोनोंके करनेसे दूर होता है। जो दोनोंसे दूर होता है, उसे तदुभय-प्रायश्चित्त कहते हैं।

संसक्त अन्न पान एवं उपकरणोंके विभाग कर देनेको विवेक-प्रायश्चित्त कहते हैं।

शरीरसे ममत्व छोड़कर ध्यान करनेको कायोत्सर्ग और प्रायश्चित्तरूपसे ध्यान करनेको व्युत्सर्ग-प्रायश्चित्त कहते हैं। अनशनादि तपोंको धारण करना तप-प्रायश्चित्त है। कुछ नियत दिनोंके लिये दीक्षाका छेद करना छेद-प्रायश्चित्त है। दोष करनेवालेको कुछ कालके लिये संघसे बाहर कर देना परिहार-प्रायश्चित्त है। किसी बड़े दोष पर दीक्षाका सर्वथा छेद कर पुनः नवीनरूपसे दीक्षा देना उपस्थापना-प्रायश्चित्त है। जैसे जैसे दोष होते जाते हैं, उन्हींके अनुसार आचार्य मुनियोंको प्रायश्चित्त देते हैं। कषायोंकी तीव्रता एवं कभी कभी निमित्तकी प्रबलतासे मुनियों द्वारा भी उनके आचरित आचार एवं गमनक्रिया आदिमें, भावोंकी मलिनता आदिसे कभी कभी कुछ दोष होनेके कारण भावशुद्धिमें अंतर आ जाता है; उसीके परिहारार्थ यह प्रायश्चित्त-विधान है।

विनय तप—सम्यग्ज्ञानमें बड़े ऐसे गुरुओं, उपाध्यायों और विशेष तपस्वियोंकी विनय करना एवं सम्यग्दर्शनकी दृढ़ता रखते हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्रकी विशेष प्राप्तिके लिये उद्योगशील रहना विनयतप है।

वैयावृत्यतप—आचार्य, उपाध्याय एवं विशेष तपस्वी तथा वृद्ध मुनियोंकी सेवा-सुश्रूषा वा परिचर्या करना वैयावृत्यतप है।

जहां पर कषाय पूर्वक शरीरको पीड़ा पहुंचायी जाती है अथवा जहां शारीरिक पीड़ासे आत्मा पीड़ित एवं क्षुब्ध होती है, वहीं कर्मबंध होता है। वैसा शारीरिक क्लेश यहां सर्वथा वर्जित है। कारण शास्त्रकारोंने बतलाया है कि बिना शरीरसे ममत्व छोड़े एवं बिना कषायोंका दमन किये कर्मोंकी निर्जरा अशक्य है। पर्वत, नदीतट, वृक्षतल आदि स्थानोंमें जो तप किया जाता है वह आत्मशुद्धिके लिये ही किया जाता है। आत्मशुद्धि बिना तप किये होती नहीं, तपकी सिद्धि बिना शरीरसे ममत्व छोड़े वा कायक्लेश बिना किये नहीं होती, और जहां शरीरसे ममत्वका त्याग है एवं वीतराग निष्प्रमाद परिणाम हैं, वहां कषायभाव कभी जाग्रत नहीं होते, ऐसी स्थितिमें वह कायक्लेश विशुद्धिका ही कारण होता है। यदि मुनियोंका कायक्लेश दुःखकारण हो, तो बिना किसीकी प्रेरणाके एकांत जंगलमें रहनेवाले मुनि उसे करते ही क्यों? परंतु उनकी प्रवृत्ति केवल संसारमोचन वा शुद्धिप्राप्तिके लिये ही है। इस महान् उच्च उद्देश्यको रखनेवाले मुनि, उस क्लेशसे कभी खिन्न नहीं होते। इतना अवश्य है, कि जहां तक सामर्थ्य है, वहीं तक तप करते हैं।

स्वाध्याय तप—सम्यग्ज्ञानकी वृद्धि एवं संयमकी रक्षाके लिये जो शास्त्रोंका चिंतवन, मनन, पृच्छना, शुद्ध घोषण, धर्मोपदेश आदिमें प्रवृत्ति रखना स्वाध्याय-तप है।

व्युत्सर्ग तप—एकाग्रचित्तसे समस्त आरंभ और परिग्रहोंसे विरक्त हो अर्हन्त, सिद्ध अथवा शुद्ध निजात्मा-का ध्यान करना, व्युत्सर्ग तप कहलाता है।

ध्यान तप—मुनियोंके समस्त तपोंमें प्रधान तप ध्यान है। इसी तपसे वे कर्मोंके नष्ट करनेमें समर्थ होते हैं। मुनियोंका मुख्य कर्तव्य ध्यान ही है।

यह अन्तरङ्गतप मुनियों द्वारा पूर्णतया पालन किया जाता है। इस तपका केवल आत्मीयभावोंसे सम्बन्ध है। बाह्यतपमें बाह्यपदार्थ एवं शरीर-प्रवृत्ति प्रधान है; इसीलिये उसे बाह्यतपके नामसे कहा जाता है। दोनों प्रकारका तप आत्माको उसी प्रकार शुद्ध बनाता है, जिस प्रकार अग्नि सुवर्णको तपा कर शुद्ध बना देती है। इसीलिये तपको मोक्षका—कर्म निर्जराका प्रधान अंग कहा गया है।

इसके सिवा जैन-मुनि क्षुधा, पिपासा आदि बाईस परीषहोंको सहते हैं, जिसका विवरण नीचे लिखा जाता है—

जैन-मुनि कितने शांत एवं परम वीतराग होते हैं, इसकी परीक्षा उनके उपसर्ग सहनसे होती है। कितना ही कोई घोर उपसर्ग (प्राणोंके नाश तकका) क्यों न करे, पर मुनि तनिक भी खेद एवं क्रोध नहीं करते। उपसर्गके समय वे ध्यानस्थ एवं मौनी बन जाते हैं। उनका शरीर निश्चल अकम्प हो जाता है, साथ ही वे हृदयमें कष्ट पहुंचानेवालेके प्रति दुर्भाव नहीं लाते, किन्तु विचारते हैं कि 'यह सब काम पूर्व-संचित दुष्कर्मोंका फलस्वरूप है; यदि ऐसा न होता तो ऐसा निमित्त क्यों उपस्थित होता,—यह कष्ट पहुंचाने-वाला व्यक्ति हमारे कर्मभारको (फल दिला कर) हलका बना रहा है।' इसलिए वे उसे अपना मित्र ही समझते हैं। यह वृत्ति जैन-मुनियोंकी अवश्य ही मोक्ष-साधक है। उनके परम शान्त परिणामोंके प्रभावसे जङ्गलमें उनके पास आये हुए हिंसक जीव भी अपनी जन्मसिद्ध क्रूरताको छोड़ देते हैं और नकुल सर्प, सिंह हिरण आदि जीव सहचर भावसे बैठते हैं।

क्षुधा—जिस समय मुनि कई उपवास कर चुकते हैं, क्षुधा उनके शरीरकी स्थितिमें भी बाधा डालने लगती है, उस समय भी यदि कहीं आहारकी योग्य विधि न मिले तो भी वे उसे कर्मजनित प्राबल्य समझ शान्तिसे तपमें दत्तचित्त हो जाते हैं और क्षुधा-परीषहको बिना खेदके सहन करते हैं।

तृषा—इसी प्रकार ज्येष्ठमासके सूर्य-सन्तापसे जिस समय बिना जलके बड़े बड़े वृक्ष भी सूख जाते हैं, उस समय उपवासोंकी गरमी और पर्वतों पर मध्याह्नमें बैठ कर ध्यान लगानेकी गरमीसे मुनियोंके गले सूख जाते हैं; फिर भी आहारकी विधि न मिलनेसे उस प्यासकी तृषाको बिना खेदके सहन करते हैं और किंचिन्मात्र भी चित्तमें विकारभाव नहीं लाते।

शीत—शीतकालमें जब लोग ठंडी हवा और वर्षा होनेके कारण घरके भीतर अग्निसे तापते हैं, तब मुनिराज या तो तुषारयुक्त पर्वत या नदीके तट पर नग्न हो कर ध्यानमें निमग्न हो जाते हैं। शीतकी बाधा-का अनुभव तनिक भी नहीं करते।

उष्ण—ग्रीष्म ऋतुमें भी गरमीकी तीव्र बाधा सहन करते हैं, परन्तु परिणामोंमें किञ्चिन्मात्र भी खेद नहीं लाते।

दंशमशक—जङ्गलमें, ध्यानमें बैठे हुए मुनिराजके शरीर पर बड़े बड़े जहरीले मच्छर, डांस, बिच्छू, ततैया, कान-खजूरे, सर्प आदि जीव रेंगते एवं काटते हैं परन्तु ध्यानी मुनि उन्हें अपने हाथसे नहीं हटाते।

स्त्री—स्त्रियोंके हाव-भाव-विलासोंको देखते हुए भी, उनके कटाक्ष विक्षेपादिके होते हुए भी, मुनिराज किञ्चिन्-मात्र भी काय-विकार एवं लज्जाभावको प्राप्त नहीं होते, किन्तु निर्विकार स्वरूप—निजात्मामें लीन हो जाते हैं, इसलिए स्त्री-परीषहको जीतनेमें उन्हें कोई कष्ट नहीं होता।

चर्या—जो मुनि पहले राजपुत्र थे, पालकी, हाथी, रथ आदि सुखकारी सवारियोंमें गमन करते थे, बिना सवारीके जिन्होंने कभी गमन ही नहीं किया; वे ही अब

मुनि-अवस्थामें नंगे पैर ज्येष्ठकी गरमोसे उत्तप्त बालूमें चलते हैं। कंकड़ोंके चुभने पर जिनके पैरोंसे रक्त निकलता जाता है, फिर भी कोई प्रतीकारका उपाय न स्वयं करते हैं, न कराते हैं और न उस चरतिसे पीड़ा ही मानते हैं। इसीका नाम चर्या-परीषह है।

नग्न—वस्त्रोंमें हिंसा, रक्षण, याचन आदि दोष होनेसे उन्हें छोड़नेमें किसी प्रकार ग्लानि न माननेवाले, किसी प्रकार इन्द्रिय-विकार न लानेवाले मुनि नाग्न्य-परीषहमें विजयी होते हैं।

अरति—जो इन्द्रियोंको वश कर चुके हैं, स्त्रियोंके गायन आदि शब्दसे शून्य एकांत गुहा, खंडहर, मठ, जङ्गल, श्मशान आदिमें ध्यान लगाते हैं, पहले भोगे हुए भोगोंका कभी चित्तमें स्मरण भी नहीं करते और न कभी परिणामोंमें दुःख ही करते हैं; वे मुनि अरति-विजयी होते हैं।

निषद्या—प्रतिज्ञा करके जो एक दिन, दो दिन, चार दिन यथाशक्ति बैठ कर ध्यान लगाते हैं, जो नियत किये हुए आसनसे ही बैठे रहते हैं, कितनी ही पीड़ा या उद्वेग होने पर भी जो रंचमात्र भी शरीरसे सकम्प एवं चलायमान नहीं होते, वे मुनिराज निषद्या परीषह-विजयी कहलाते हैं।

शय्या—मुनि दिनमें सोते नहीं, रात्रिको आत्म-चिन्तन और ध्यानमें अर्धरात्रि बिताते हैं। जिस समय जगत् भोग-विलास एवं निद्रामें आसक्त रहता है, उस समय मुनि ध्यानद्वारा आत्मस्वरूपका साक्षात् अवलोकन करते हैं, वह उनके जागरणका समय है। रात्रिके तीसरे पहर केवल दो घंटेके लिये, एक ही करवट और एक ही आसनसे पथरीली एवं कँटीली जगहमें ही लेट जाते हैं, दो ही घंटेमें शरीरजनित प्रमादको वशङ्गत करके चौथे पहर पुनः सामायिकमें बैठ जाते हैं। ऐसे साधु शय्याविजयी कहलाते हैं।

आक्रोश—मार्गमें गमन करते देख अज्ञानीपुरुष उन्हें गालियां भी देते हैं, 'निर्लज्ज, तू नंगा क्यों फिरता है' आदि दुष्ट-वचन बोलते हैं, उनकी भर्त्सना करते हैं; कभी कभी महाक्रूर पापी लोग उन्हें मारते भी हैं, परन्तु शांतरसका स्वाद लेनेवाले वे यतीश्वर प्राणघातक निमित्त मिलने पर भी कभी क्रोध नहीं करते। उस समय वे यही सोचते हैं कि कटु शब्द मेरा क्या हानि करेगा, यदि मुझे कोई मारता है तो मेरे क्षणिक शरीर पर ही उसका कुछ प्रभाव भले ही पड़े, परन्तु मेरी नित्य आत्मा पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस प्रकारके तत्त्वविचारसे मुनिगण आक्रोश-परीषह विजय करते हैं।

बध—इसी प्रकारके विचारोंसे वे वधपरीषह भी जीतते हैं।

याचना—कितने ही उपवास क्यों न कर चुके हों, शरीर कितना ही शिथिल क्यों न हो गया हो, फिर भी यदि भोजनकी प्राप्ति निरन्तराय विधिमार्गसे नहीं हो सकी तो मुनि श्रावकके द्वार पर याचनावृत्ति अथवा भावोंद्वारा या शरीरद्वारा ऐसी क्रिया नहीं करते जिससे उनकी इच्छाएँ भोजनके लिये लालायित हों, वे सदैव याचना-विजयी रहते हैं।

अलाभ—इसी प्रकार बहुत दिन भिक्षाके लिए घूमने पर भी यदि भोजनकी सुविधा (निरन्तराय शुद्ध आहारकी योग्यता) नहीं हुई, तो वे उसे भोजनका अलाभ नहीं मानते और उसीमें कर्मोंका संवर समझते हैं।

रोग—यदि उन्हें पूर्वकर्मके उदयसे कोई रोग हो जाय, फोड़ा हो जाय या अन्य बाधा हो जाय तो उसके आराम करनेके लिये न तो भावना ही करते हैं, न किसीसे उसके प्रतीकारार्थ कुछ कराते हैं, और न स्वयं ही उसका कोई प्रतीकार करते हैं। किन्तु यही विचारते हैं कि 'पूर्व-सञ्चित कर्मका ही यह फल है; अच्छा है, कर्म-भार हलका हो रहा है।' यही रोग-परीषहका विजय है।

तृणस्पर्श—मार्गमें चलते हुए कांटे या कांच आदिसे चरण विद्ध एवं क्षत-विक्षत क्यों न हो जाय पर मुनि उसे भी वीतराग भावसे सहन करते हैं—उसको दूर करनेका कोई भी प्रतीकार नहीं करते।

मल—शरीर पर धूल उड़ कर पड़ जाती है, पानी बरस जाता है, फिर धूल पड़ जाती है, शरीर मल-सहित हो जाता है, परन्तु ब्रह्मचर्यमें परम तपस्वी मुनि उससे जरा भी ग्लानि नहीं करते किन्तु मलको शरीरका

धर्म समझ कर आत्मीय गुणोंके विशुद्ध बनानेमें प्रयत्नशील होते हैं।

सत्कार-पुरस्कार—यदि कोई उनका सत्कार नहीं करता तो वे यह नहीं विचारते कि 'मैं बहुत बड़ा तपस्वी हूं, फिर भी यह मुझे क्यों नहीं नमस्कार करता, वा क्यों नहीं मेरी पूजा करता' किन्तु विना किसी गर्वके वे सरल भावसे अपने आत्मीय उपयोगमें ही स्थिर रहते हैं।

प्रज्ञा—यदि तपके प्रभावसे उन्हें अक्षीण मानस आदि ऋद्धियां भी प्राप्त हो जांय एवं अवधिज्ञान, मन-पर्यय-ज्ञान आदि महान् ज्ञान भी प्राप्त हो जाय, तो भी वे कभी उस प्रज्ञाका घमण्ड नहीं करते, किन्तु आत्मीय गुणोंको अचिन्त्य समझ कर उन्हींके चिन्तवनमें मन लगाते हैं।

ज्ञान—इसी प्रकार यदि उन्हें बहुत तप करने पर भी ज्ञानका अधिक विकाश नहीं प्राप्त हो और न कोई ऋद्धि ही प्राप्त हुई हो, तो भी वे यह नहीं सोचते कि 'इतने दिन तप करने पर भी विशेष ज्ञान और ऋद्धि क्यों नहीं प्राप्त होती' किन्तु ज्ञानावरणकर्मकी प्रबलता समझ कर निष्कषाय परिणाम रहते हैं।

दर्शन—इसी प्रकार परम योगी मुनि यह नहीं सोचते 'कि महाव्रतियोंको तपके प्रभावसे देव भी सहायक होते हैं और भी चमत्कार उत्पन्न होते हैं परन्तु क्या वे बातें सब झूठी हैं अथवा हमें क्यों नहीं कोई देवकी सहायता प्राप्त होती'।

इस प्रकार बाईस परीषहोंको जीतते हुए ध्यानी मुनि किन्हीं विकारनिमित्तोंके पाने पर भी, विकारी एवं चलितवृत्ति नहीं होते। यदि मुनिगण भी संसारी जीवोंके समान व्यवहार वा कषाय-वासनाके वशङ्गत हो जांय तो फिर उनमें तथा संसारी जीवोंमें कोई विशेषता नहीं रहे।

सभी मुनियोंके यद्यपि वाह्य चारित्र समान रहता है, सभी नग्न होते हैं, भावोंमें भी सभीके छठा गुणस्थान हुए विना मुनिधर्म नहीं समझा जाता, तथापि चारित्र मोहनीयके निमित्तसे किन्हीं किन्हीं मुनियोंमें यत्किञ्चित् रूपमें राग प्रवृत्तिकी व्यक्ति पाई जाती है। वह भी वहीं तक पायी जाती है जहां तक उनके वाह्य चारित्र एवं भावोंकी कोटिमें मुनिधर्मकी वृत्ति च्युत नहीं होती। उसी रागप्रवृत्तिके कारण मुनियोंकी संख्या पांच भेदोंमें विभक्त हो जाती है—१ पुलाक, २ वकुश, ३ कुशील, ४ निर्ग्रन्थ और ५ स्नातक।

पुलाक मुनि वे कहलाते हैं जो मूलगुण तो सभी पालते हैं, पर उत्तरगुणोंके पालनेमें जिन्हें राग-प्रवृत्तिके कारण बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। वे बाधाएँ इस प्रकार हैं—निर्ग्रन्थ-लिङ्ग धारण करके भी कभी कभी शरीरसे अनुराग होना, शरीरकी सुन्दरतासे अनुराग की कुछ वासनाका होना, प्रभावनाके लिये स्व-यशकी आकांक्षाका रखना, कमण्डलु और पीछी यदि नवीन मिल जाय तो उनमें भी यत्किञ्चित् रागका रखना, यदि पुरानी हो तो नवीन मिल जानेकी कभी २ आकाङ्क्षा करना इत्यादि जो थोड़ा राग-भाव धारण कर उत्तरगुणोंमें विराधना कर डालते हैं, वे पुलाक-मुनि कहे जाते हैं। मूलगुणोंका पालन करनेसे वे मुनिवृत्तिसे च्युत नहीं होते और इसीलिए वे मुनियोंके पांच भेदोंमें सम्हाले जाते हैं। यदि उनका कोई आचरण मुनिधर्मको गिरानेवाला होता, वा उस पदकी अपेक्षा उनके भावोंमें हीनता होती तो वे मुनिकोटिमें न सम्हाले जाकर मार्ग पतित समझे जाते पुलाक-मुनि महाव्रतोंको पूर्णरूपसे धारण करते हैं। यह पुलाककी कक्षा समस्त मुनि-भेदोंमें जघन्य है। आगेके सब भेद उत्तरोत्तर विशेष चारित्र धारक एवं विशुद्धि-विशेष धारण करनेवाले होते गये हैं।

वकुश-मुनिका चारित्र यद्यपि पुलाक-मुनिकी अपेक्षा अधिक उन्नत एवं निर्मल होता है, तथापि उनके उत्तर-गुणोंमें भी कुछ (थोड़ीसी) विराधना हो जाती है। वह विराधना इसी जातिकी होती है। वे कभी कभी अपने गुरुओंसे यत्किञ्चित् राग करने लगते हैं। रागसे यहां इतना ही प्रयोजन है कि वे धार्मिक राग करते हैं, परन्तु मुनिधर्ममें वह भी वर्जित है।

कुशील-मुनिका चारित्र वकुश मुनियोंसे भी समधिक निर्मल एवं समुन्नत होता है। कुछ लोग कुशील नाम होनेसे उन्हें दूषित चारित्रधारी समझते होंगे, परन्तु ऐसा समझना अज्ञानता है। कुशील दुश्चरित्रको भी

कहते हैं, परन्तु कुशील शब्दका उक्त अर्थ यहां पर नहीं लिया जाता, और न वैसा अर्थ परम तपस्वी, परम वीतरागी आत्मनिष्ठ मुनियोंके प्रकरणमें लिया ही जा सकता है। यहां पर कुशील शब्द रूढ़ि सिद्ध है, रूढ़ि सिद्ध शब्दोंका अर्थ नियत वा पारिभाषिक ही लिया जाता है। प्रकृतमें कुशील शब्द मुनियोंके भेदोंमें नियत है इस लिये उसका अर्थ मुनिपद-निर्दिष्ट चारित्र-विशेष रूप लिया जाता है।

जो मुनि पूर्ण एवं अखण्ड महाव्रत धारण करते हों, समस्त मूलगुण धारण करते हों, अट्ठाईस मूल गुणोंमें कभी विराधना नहीं आने देते हों, ऐसे परम तपस्वी साधुओंकी कुशील संज्ञा है।

कुशील-मुनियोंके दो भेद हैं, एक प्रतिसेवना कुशील दूसरा कषायकुशील, जिन्होंने ममत्वभाव सर्वथा नहीं छोड़ा है, गुरु आदिसे ममत्व रखते हैं, संघ नहीं छोड़ना चाहते, जो मूलगुण और उत्तरगुण दोनोंको पालते हैं, परन्तु कभी कभी उत्तरगुणोंमें त्रुटि करते जाते हैं। वे प्रतिसेवना-कुशील-साधु कहलाते हैं। गर्मियोंमें अधिक गर्मीके संतापसे जो कभी कभी दिनमें पादप्रक्षालन कर डालते हैं, बस इतने मात्र ही उनके उत्तरगुणोंकी विराधना वा त्रुटि है।

कषायकुशील उन्हें कहते हैं, जो समस्त कषायोंका जीत चुके हों, केवल संज्वलन कषायको जीतनेमें असमर्थ हों।

जिस प्रकार पानीमें लकड़ीकी रेखा खींचते खींचते ही नष्ट हो जाती है; उसी प्रकार जिनके कर्मोंका उदय नहीं हुआ हो और एक मुहूर्त बाद जिनके केवलदर्शन और केवलज्ञान प्रगट होनेवाला हो, उन मुनियोंको निर्ग्रन्थ कहते हैं। यद्यपि निर्ग्रन्थ मुनि सभी परिग्रह-रहित मुनियोंको कहते हैं, ग्रन्थ नाम परिग्रहका है उससे रहित निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं, इसीलिये मुनिमात्र ही निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं, तथापि यहां पर पांच मुनियोंके भेदोंमें जो निर्ग्रन्थ भेद है वह सामान्य मुनियोंमें गृहीत नहीं होता उपशान्त-कषाय एवं क्षीण-कषाय गुणस्थानवर्ती ही निर्ग्रन्थ मुनि कहलाते हैं। उन्हींके अन्तर्मुहूर्त पीछे केवलज्ञान होनेकी योग्यता है।

जिन साधुओंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, और मोहनीय, ये चारों ही घाति-कर्म नष्ट हो चुके हों, जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख एवं अनन्तवीर्य इन शक्तियोंके पूर्ण विकाशको प्राप्त कर चुके हों, वे ही तेरहवें गुणस्थानवर्ती श्रीअर्हन्त केवली स्नातक कहलाते हैं। मुनियोंकी चरम-अवस्थामें प्राप्त होनेवाली चरम आत्मोन्नति को 'स्नातक' संज्ञा है।

यद्यपि पांचों मुनियोंके चारित्रमें कषायोंकी हीनाधिकता एवं अभावसे विचित्रता है, उनके चारित्र जघन्य, मध्यम, उत्तमभेदोंमें परिगणित किये जाते हैं, तथापि पांचों ही मुनि मुनिपदकी श्रेणीमें हैं। इतना चारित्र किसी पदमें नहीं गिरता अथवा इतनी कषायोंकी प्रबलता किसी पदमें नहीं है, जिससे वे मुनिपदकी श्रेणीसे पतित समझे जांय। इसलिये पांचों ही मुनि निर्ग्रन्थ-लिंगके धारक, अट्ठाईस मूलगुणोंके पालक, परम तपस्वी होते हैं। जिस प्रकार कोई सौ टंचका सोना होता है। कोई कुछ कम दर्जेका होता है परन्तु स्वर्णत्व सबमें रहनेसे सभी सोनेके भेदोंमें आ जाते हैं, उसी प्रकार यहां भी समझ लेना चाहिये। निर्ग्रन्थ-लिङ्ग, सम्यग्दर्शन, और वीतरागता सामान्य रूपसे सभी मुनियोंमें पायी जाती हैं।

उपर्युक्त पांचों प्रकारके मुनि सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात इन पांचों प्रकारके चारित्रका पालन करते हैं।

जिस चारित्रमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह इन पञ्चपापोंका त्याग क्रमसे नहीं किया जाता, किन्तु मुनियोंकी एकाग्र-ध्यानावस्थामें समस्त पापोंका स्वयमेव सर्वथा त्याग हो जाता है, तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग इन पांचों महाव्रतोंका पूर्णतः पालन भी स्वतः हो जाता है, उस चारित्रको 'सामायिक-चारित्र' कहते हैं।

जिस चारित्रमें, मुनियोंसे किसी प्रमादजनित अपराधके होने पर उन्हें प्रायश्चित्त प्रदान किया जाता है, वह 'छेदोपस्थापना-चारित्र' कहलाता है।

जिस चारित्रमें जीवोंकी रक्षाका पूर्ण प्रयत्न एवं शुद्धि-विशेष धारण की जाती है, वह 'परिहारविशुद्धि-चारित्र' कहलाता है।

यद्यपि स्थूल-सूक्ष्म समस्त जीवोंकी रक्षाका पूर्ण ध्यान समस्त मुनियोंको रहता है, जीवोंकी रक्षाका ध्यान रखना मुनि मार्गका प्रथम कर्तव्य है, तथापि 'परिहार-विशुद्धि-चारित्र'वाले मुनियोंका निवास केवली अथवा श्रुत-केवलीके पादमूलमें अधिकतर होता है—वहीं वे दीक्षा लेते हैं। उससे पहले तीस वर्ष घरमें ही निवृत्ति मार्गका सेवन करते हैं; इसलिये उनके भावोंमें प्रथमसे ही विशेष विशुद्धि रहती है।

सूक्ष्मसाम्पराय-चारित्रधारी मुनियोंके समस्त कषायें शान्त एवं नष्ट हो जाती हैं, केवल संज्वलन-कषायका अन्यतम भेद सूक्ष्मलोभ-कषाय अवशिष्ट उदित रहता है। यहां पर मुनियोंके दशवां गुणस्थान हो जाता है। इसी गुणस्थानका चारित्र 'सूक्ष्मसाम्पराय-चारित्र' कहलाता है।

जिस चारित्रमें कोई भी कषाय अवशिष्ट न रहे, समस्त कषायें सर्वथा उपशमित वा क्षीण हो जांय, उस चारित्रको 'यथाख्यात-चारित्र' कहते हैं। यह चारित्र ग्यारहवें गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है। कारण दशवें गुणस्थान तक तो कषायोंका सद्भाव है, उससे आगे नहीं। इसीलिये मुनियोंके ११वें गुणस्थानसे परमविशुद्ध वीतराग यथाख्यातचारित्र हो जाता है। यह चारित्र परम निर्मल होता है। यही चारित्र अयोगकेवली भगवान्‌के, योगोंके अभावमें परमावगाढ़ रूप धारण करता है, वहीं सम्यक्-चारित्रकी पूर्णता है और उसीके उत्तर क्षणमें आत्माका निर्वाण वा मोक्ष है। इस प्रकार पांचों प्रकारके मुनि उपर्युक्त पांच प्रकारका चारित्र यथाशक्ति क्रमसे धारण करते हैं। इस चारित्रके बलसे अनन्त कर्मोंकी निर्जरा एवं अनन्त गुण विशुद्धि बढ़ती जाती है।

उपर्युक्त कथनमें जैन मुनियोंके आचार, व्रत, उनकी चर्या आदिका वर्णन किया गया है। अब यहां पर संक्षेपमें उनके भावोंकी विशुद्धता एवं कर्मोंकी निर्जराका क्रमविधान जैन-शास्त्रीय दृष्टिसे कहा जाता है।

जैन मुनियोंके जैनशास्त्रानुसार छठा गुणस्थान माना गया है। गुणस्थान नाम उन परिणामों (भावों) का है जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय एवं क्षयोपशमसे जीवोंके भिन्न भिन्न रूपमें पाये जाते हैं। गुणस्थान १४ चौदह होते हैं, यद्यपि जीवोंके, कषाय-वासनाके मंद, मंदतर और तीव्र, तीव्रतर उदयसे अनन्त परिणाम होते रहते हैं। किन्तु उन सबका विवेचन अशक्य है, केवल सर्वदर्शी परमात्मा ही उनका साक्षात् प्रत्यक्ष करते हैं, उन भावोंको (सूक्ष्मताको छोड़ कर) स्थूलरूपमें १४ कोटियां हैं। स्थूलतासे जीवोंके समस्त प्रकारके परिणाम वा भाव इन चौदह कोटियोंमें विभक्त हो जाते हैं।

जो जीव मिथ्यात्व सेवन करते हैं, जिनके विचार विपरीत वा संशययुक्त हैं, अनध्यवसाय रूप हैं, जिनका आचरण धर्मविपरीत हैं, मुनिपद धारण करके भी जो तृष्णा एवं कषाय-वासनासे वासित हैं, अनेक परिग्रह रखते हैं, मुखसे पट्टी बांध लेते हैं, ओढ़ने-बिछानेके वस्त्र रखते हैं, सोने-चांदीके सिंहासनों पर बैठते हैं, चौमटा रखते हैं, शरीरसे भस्म लगाते हैं, घर घरसे रोटी मांग कर अपने स्थान पर खाते हैं वे मुनिपदसे विरुद्ध आचरण करते हैं। ये सब क्रियाएं मुनि-धर्मके विपरीत हैं, इसलिये ये भाव एवं क्रियाएं १ले मिथ्यात्व-गुणस्थानमें मानी गई हैं। वस्तुको एकान्त-रूपसे सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य एवं सर्वथा एक वा सर्वथा अनेकरूपमें मानना वीतराग सर्वज्ञके भी इच्छा एवं अकृतकृत्यता मानना, देवताओंके नामसे जीवोंका वध किया जाना ये समस्त भाव भी १ले मिथ्यात्व-गुणस्थानमें शामिल किये गये हैं। यह १ला गुणस्थान (अथवा जीवोंके मिथ्यात्वरूप परिणाम) मिथ्यात्व नामक कर्मके उदयसे होता है, जोकि जीवोंने ही स्वकर्तव्यसे पूर्वमें सञ्चित किया है।

जिस समय अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान माया-लोभमेंसे किसी एक कषायका उदय होता है, उस समय आत्मा अपने शुद्ध सम्यक्त्व-भावसे च्युत हो जाती है। उस समय जीवके जो परिणाम होते हैं, वे सासादन नामक २रे गुणस्थानमें शामिल किये गये हैं। इस गुणस्थानके भाव यहां तक तीव्र होते हैं, कि जो जीव उनसे संयुक्त होता है वह जन्म पर्यन्त वा कई जन्म तक दूसरे जीवसे वैर बांध लेता है, मरते समय तक वह उस कषायजनित वासनाको साथ ले जाता है और दुर्गतियोंमें

उसका प्रयोग करता फिरता है। इस प्रकारके परिणामों को द्वितीय सासादन गुणस्थानके नामसे कहते हैं। यह भाव जीवके अनन्तानुबन्धी कषाय-चतुष्टयके उदयसे होता है।

जीवका एक भाव ऐसा भी होता है, जिसमें न तो उसके समीचीन परिणाम ही रहते हैं, और न मिथ्यात्व रूप विपरीत ही; किन्तु मिश्र होते हैं। ऐसे परिणामों को धारणकरनेवाला जीव भी वस्तुके यथार्थ विचार एवं समीचीन क्रियाकाण्डसे विरत ही रहता है। जिस प्रकार दधि और गुड़के मिलनेसे न केवल दही का ही स्वाद आता है, और न केवल गुड़का ही; किन्तु खट्टा मीठा, मिल कर एक तीसरा ही 'खट्टा-मीठा' स्वाद आता है (जो शिखरिणीके नामसे प्रसिद्ध है.) उसी प्रकार सम्यक्-परिणाम तथा मिथ्या-परिणाम, दोनोंके संमिश्रणसे एक विचित्र (जीवका) परिणाम होता है। यह परिणाम मोहनीयकर्मके भेदस्वरूप सम्यक्मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होता है। यह ३य गुणस्थानका भाव है। यहां तकके जीव-भाव संसारके ही कारण हैं, क्योंकि कषायोंकी तीव्रता उनके विचारों को समीचीन नहीं होने देती, इसलिये उन्हें उलटा ही मार्ग अच्छा प्रतीत होता है।

जिस समय किसी तीव्र पुण्यका उदय एवं काल-लब्धिका निमित्त इस जीवको मिलता है, उस समय मोह कर्मका भार कुछ हलका होता है। उस अवस्थामें जीवकी छिपी हुई सम्यग्दर्शन नामा शक्ति प्रगट हो जाती है। यह शक्ति आत्माका प्रधानगुण है। जब तक मोहनीय कर्मकी प्रबलतासे यह शक्ति आच्छन्न रहती है, तब तक जीव मिथ्या भावोंमें उलझा हुआ स्वयं अपना अहित करता रहता है, दूसरोंको भी उसी मार्गमें ढकेलता है, परन्तु जब वह शक्ति प्रगट हो जाती है, तब जीवकी प्रतीति, उसका बोध समीचीन, यथार्थ एवं सन्मार्ग-प्रदर्शक बन जाता है—अंशोंसे यह जीव मोक्षमार्गके एक अंशको प्राप्त कर लेता है। जिस समय जीवके यह सम्यक्त्व गुण प्रगट होता है, उस समय आत्मा इन्द्रिय-विषयोंको सेवन करता हुआ भी, उन्हें हेय समझता है—सदा सांसारिक वासनाओंसे अरुचि रखता है—शरीर एवं जगत्से ममत्व नहीं करता। सिवा इसके जो आत्मीय निज-सुख गुण है, उसका अंश भी उसके उस सम्यक्त्व गुणके साथ प्रकट हो जाता है। यह सुख अलौकिक है, दिव्य है, अविनश्वर है, दुःखसे सर्वथा रहित है, एवं कर्मबन्ध-विहीन है। इसके विपरीत इन्द्रियजनित सुख दुःखपूर्ण है, नश्वर है, संसारवर्द्धक एवं कर्मबन्ध-कृत है; अतएव त्याज्य है। यह सम्यक्त्वगुणका विकाश ही चतुर्थ गुणस्थानके नामसे प्रख्यात है। जिस प्रकार ज्ञानका 'जानना' कार्य है उसी प्रकार इस गुणका कार्य आत्मामें तथा इतर पदार्थोंमें यथार्थ प्रतीति करना है। जिस जीवको एक बार भी सम्यक्त्व हो जाता है, वह जीव उसी भव (जन्म में अथवा २।४।६ वा संख्यात आदि अर्धपुद्गल-परावर्तन कालमें* (नियमित कालमें) नियमसे मोक्ष चला जाता है, अर्थात् सम्यक्त्व-गुणके प्रगट होने पर अनन्त संसारकी अवधि अतिनिकट हो जाती है। जिस गुणसे आत्माकी साक्षात् प्रतीति होने लगे एवं बाह्य जीव अजीव पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान हो जाय, उसीको सम्यक्त्व-गुण कहते हैं। इस गुणस्थानसे ही सम्यक्चारित्र प्रारम्भ होता है। इससे पहले जितना भी आचरण है वह सब मिथ्या-चारित्र है। चौथे गुणस्थानमें सम्यक्चारित्रका प्रारम्भ तो हो जाता है, पर कषायोंकी तीव्रतासे उसमें प्रवृत्ति नहीं हो पाती। इसका भी कारण यह है कि वहां अप्रत्याख्यानावरण कषाय जो चारित्रकी बाधक है, उदय में आ रही है। परन्तु प्रतीति-श्रद्धा इस गुणस्थानमें सम्यक् है। जिस समय उक्त कषाय उपशमित हो जाती है, उस समय जीव सम्यक्चारित्रके पालनेमें तत्पर हो जाता है।

५वें गुणस्थानमें कषायें कुछ तो शान्त हो जाती हैं जिससे जीव चारित्र पालनेमें प्रवृत्त हो जाता है, कुछ प्रबल भी रहती हैं जिससे वह मुनिधर्म धारण करनेमें असमर्थ बना रहता है। इस गुणस्थानमें रहने वाला जीव स्थूल हिंसा अर्थात् त्रसजीवोंकी संकल्पी हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल कुशील, और परिग्रह इनका परित्याग करता है। वह बिना किसी विरोध

---

* औदारिक वैक्रियक आहारक शरीर और छह पर्याप्तियोंके योग्य अनंतवार गृहीत अगृहीत तथा मिश्र पुद्गल परमाणु ग्रहण और निर्जीर्ण कर पहिले जैसे स्निग्ध रूक्षादि भावोंसे युक्त पुद्गल परमाणु ग्रहण किये थे वैसे ही ग्रहण करना अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है।

या आरंभ-उद्योगके त्रसजीवोंको (द्वीन्द्रियसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी तक) इरादा करके—'मैं इसे मार डालूं' इस दुरभिप्रायसे कभी नहीं मारता। इस प्रकारका घात बहुत पापप्रद है, किसी जीवको जान-बूझ कर मारना महान् अनर्थ है। पांचवें गुणस्थानमें रहनेवाला जीव इस प्रकारकी हिंसा नहीं करता है। हां, गृहस्थाश्रममें होनेवाले आरंभ, उद्योगजनित त्रस-हिंसा एवं स्थावर-हिंसासे वह बचभी नहीं सकता। परस्त्रीका त्याग कर देना और मात्र अपनी स्त्रीमें सन्तोष रखना, इसका नाम एकदेश ब्रह्मचर्य है। बहुपरिग्रह-जनित हिंसासे बचनेके लिये व्यर्थकी वस्तुओंको छोड़ देता है। जो परिग्रह ऐसा है कि जिसके विना कार्य ही नहीं चलता, उसे ही रखता है। इसी प्रकार जितने भी श्रावकके बारह व्रत कहे गये हैं, उन सबको यथाशक्ति न्यून वा पूर्णरूपसे पांचवें गुणस्थानवाला जीव धारण करता है। क्षुल्लक, ऐलकपदोंके अनुकूल आचरण भी यहीं पर धारण करता है। परन्तु प्रत्याख्यानावरण नामक कषायका उदय होनेसे महाव्रतोंके धारण करनेमें समर्थ नहीं होता। वास्तवमें जीव शुभकार्यके लिये पुरुषार्थ करनेमें भी किसी अपेक्षासे कर्मोदयके अधीन है। कर्माधीन होने पर भी वह किसी अवधि तक ही उसके अधीनस्थ रहता है। पुरुषार्थकी मुख्यता होने पर कर्मोंके अधीन न रह कर स्वावलम्बी बन जाता है और उसी स्वावलम्बनसे कर्मोंके विजय करनेमें समर्थ हो जाता है।

जिस समय जिस जीवका प्रत्याख्यानावरण कषाय भी उपशमित हो जाता है, उस समय वह महाव्रत धारण करता है। जहांसे महाव्रत धारण करना प्रारम्भ होता है वहींसे मुनिपदका प्रारम्भ है। यहांपर जो आत्माके भाव होते हैं, वे छठे गुणस्थानके नामसे कहे जाते हैं। विना प्रत्याख्यानावरण कषायके उपशम हुए इस जीवके छठा गुणस्थान नहीं होता, इस गुणस्थानमें केवल संज्वलन कषायका ही उदय रहता है क्योंकि और सब कषाय महाव्रत होनेमें पूर्ण बाधक हैं।

ऊपर जितना मुनियोंका आहारादि क्रिया-काण्ड लिखा गया है, वह इसी छठे गुणस्थानकी क्रिया है, यहां तक उनकी प्रमादावस्था रहती है। इसका यह अर्थ नहीं है, कि मुनिगण प्रमादी होते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ है कि जीवोंके जो क्रोध मान-माया-लोभ एवं आहारजनित प्रमाद, जो क्रमसे पांचवें, चौथे, तीसरे आदि नीचेके गुणस्थानोंमें अधिक अधिक पाया जाता है, वही घटते घटते छठे गुणस्थानमें अत्यन्त मन्द रूपसे पाया जाता है, कारण इसी गुणस्थानमें मुनियोंका समस्त क्रियाकाण्ड (आहारार्थ गमन, देशांतर पर्यटन, स्वाध्याय) इसी छठे गुणस्थानमें होता है। इससे आगे सातवें गुणस्थानमें कोई क्रिया नहीं है, केवल ध्यानावस्था एवं विशुद्ध परिणामोंकी सन्तति मात्र है। इसलिये सातवें गुणस्थानका नाम अप्रमत्त परिणाम है। इस गुणस्थानमें तृषा, आदि कोई भी विकार भाव नहीं रहता; केवल ध्यान एवं आत्म-चिन्तनरूप तत्त्व विचार रहता है। सातवें गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तकका समय भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है। एक प्रकारका भाव एक अन्तर्मुहूर्त ही रहता है; फिर एक तत्त्वसे छूट कर दूसरे तत्त्व पर चला जाता है, क्योंकि उत्कृष्ट ध्यान एक तत्त्वमें अधिकसे अधिक एक मुहूर्त तक ही रह सकता है, इसीलिए ध्यानपूर्ण गुणस्थानोंका समय एक एक अन्तर्मुहूर्त है। सातवें गुणस्थानमें मुनि ध्यानमें मग्न होकर कर्मोंके क्षय करने अथवा उन्हें उपशम करनेमें प्रवृत्त होते हैं*। इस गुणस्थानमें ध्यानस्थ मुनियोंके भावोंकी उज्ज्वलता इतनी बढ़ जाती है कि वे उपशमश्रेणी एवं क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो जाते हैं। जिन भावोंसे चारित्रमोहनीयकर्मका उपशम होता चला जाय, उसे उपशमश्रेणी कहते हैं। जिस प्रकार बरसातके मलिन जलमें फिटकरी आदि द्रव्योंके डालनेसे जल निर्मल हो जाता है और धूलि वा कीचड़ नीचे बैठ जाती है उसी प्रकार कर्मोंके उपशम होनेसे आत्मामें केवल शुद्ध भाव व्यक्त हो जाते हैं। यही उपशमकी भाव कथा है।

क्षपकश्रेणी—जिस प्रकार फिटकरी द्वारा स्वच्छ हुए जलको दूसरे पात्रमें धीरे धीरे ले लेनेसे जल सर्वथा शुद्ध हो जाता है, फिर किसी निमित्तके मिलने पर भी

* जैसे फिटकिरी आदि द्रव्यसे जलमें मिट्टी मैल नीचे—बैठ जाती है उसी प्रकार क्रोध मानादि भाव आत्मामें न होने देनेको उपशम कहते हैं।

वह मलिन नहीं होता उसी प्रकार जिन कर्मोंका आत्मासे सम्बन्ध है उनके सर्वथा छूट जानेसे फिर आत्मा कभी अशुद्ध नहीं होती. यही क्षपकश्रेणीको भाव कहा है। उपशम और क्षपक दोनों श्रेणियोंका प्रारम्भ ७वें गुणस्थानसे होता है। आठवें, नवमें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशमश्रेणीके परिणाम होते हैं, और आठवें, नववें, दशवें तथा बारहवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणीके परिणाम होते हैं।

आत्मा जितना कर्मबन्ध सातवें गुणस्थानमें करती है उससे बहुत कम आठवेंमें, उससे बहुत कम (क्रमसे) नौवेंमें, दशवेंमें करती है। इसका भी यही कारण है कि संज्वलन क्रोध-मान माया-लोभ कषाय उत्तरोत्तर अत्यन्त मन्द होते गये हैं। दशवें गुणस्थानमें केवल लोभ-कषाय है, वह भी इतना सूक्ष्म है कि जिसका मुनिगण अनुभव भी नहीं कर सकते, केवल कर्मोदय मात्र है। आठवें नववें और दशवें गुणस्थानोंमें उपशमश्रेणीवालोंके औपशमिक भाव और क्षपकश्रेणीवालोंके क्षायिक भाव समझे जाते हैं, परन्तु यह स्थूल दृष्टिसे कहा जा सकता है। वास्तवमें वहां क्षायोपशमिक भाव हैं। कारण वहां कुछ कर्मोंका उपशम अथवा क्षय होनेके साथ उदय भी रहता है। केवल औपशमिक भाव ग्यारहवें उपशान्त-कषाय गुणस्थानमें ही रहता है।

उपशमश्रेणी पर आरूढ़ मुनि जब दशवें गुणस्थानसे ऊपर जाते हैं, तब ग्यारहवेंमें पहुंचते हैं। ग्यारहवें गुणस्थानमें पहुंचनेवाले मुनिके परिणाम उस कोटिके एक अन्तर्मुहूर्त ही रह सकते हैं, पश्चात् नियमसे उन्हें दशवेंमें आना पड़ता है। किन्तु यह बात क्षायिक श्रेणी चढ़नेवालोंके नहीं होती। क्षपकश्रेणीके मुनिके भाव दशवेंसे ग्यारहवेंमें न जा कर सीधे बारहवेंमें पहुंचते हैं। वे दशवेंके अन्तमें सूक्ष्म लोभका सर्वथा नाश करते हैं बाकी समस्त कषायोंका नाश आठवें नौवेंमें कर चुकते हैं; इसलिये बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थानमें पहुंचने-वाले मुनियोंके कषायोंका सर्वथा नाश हो जाता है। अतएव वे वीतरागी बन जाते हैं।

वैसे तो मुनियोंके वीतरागता छठे गुणस्थानसे ही प्रारम्भ हो जाती है, परन्तु वहां कुछ कुछ कषायोदय रहनेसे पूर्ण वीतरागता नहीं कही जाती। पूर्ण वीतरागता बारहवें गुणस्थानमें होती है, फिर वह वीत-रागी आत्मा कभी किसी कर्मका बन्ध नहीं कर सकती, क्योंकि बन्ध करनेवाला कषाय है, वह जब सर्वथा नष्ट हो चुकता है, तब बन्धका कारण न रहनेसे बन्धका भी अभाव हो जाता है। हां, अभी योगके अवशिष्ट रहनेसे केवल वेदनीय कर्मका आस्रव होता है, किन्तु बिना कषायके वे आत्मामें ठहर नहीं सकते और बिना ठहरे कुछ फल भी नहीं दे सकते। इसलिये वीतराग आत्माओं-में योग-जनित जो कर्म आते हैं, वे बिना आत्मामें ठहरे एक समयमें ही निर्जरित हो जाते हैं।

यहां एकत्ववितर्क ध्यान होता है। इस ध्यानमें आरूढ़ होनेवाली आत्मा शुद्ध स्फटिक-तुल्य निर्मल परिणामी बन जाता है और उस ध्यानरूपी अग्निके द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इन घातिकर्मरूप रूपी काष्ठको तुरन्त भस्म कर देता है एवं जिस प्रकार बादलोंके छट जानेसे संसारको अपने अप्रतिम प्रकाशसे प्रकाशित करनेवाला सूर्य उदित होता है, उसी प्रकार ज्ञानको रोकनेवाले ज्ञानावरण, दर्शनको रोकनेवाले, दर्शनावरण और आत्मीय वीर्यशक्तिको रोकनेवाले अंत-राय कर्मको नष्ट कर आत्मा केवलज्ञान (सर्वज्ञता), अनंतदर्शन एवं अनंतवीर्य इन गुणोंके पूर्ण विकाश-से समस्त जगत्को एक ही क्षणमें साक्षात् प्रत्यक्ष जानने लगती है। इस अवस्थामें आत्मा-त्रयोदश गुणस्थानवर्ती श्रीअर्हत्-परमात्मा जीवन्मुक्त कहलाने लगते हैं और जगत्के जीवोंको बिना इच्छा ही धर्मोपदेश देते हैं।

इस गुणस्थानमें परमात्माकी स्थिति तब तक रहती है जब तक उनकी आयु: अवशिष्ट रहती है।

जब आयुमें केवल उच्चारण समान काल लघु अन्तमु-हूर्त प्रमाण काल अ इ उ ऋ लृ इन पञ्चाक्षरोंके अव-शिष्ट रहता है, तब श्री अर्हन्त भगवान्के चौदहवां गुणस्थान हो जाता है। योगोंके कारण जो कर्म उनकी आत्मामें आते थे, वे योगके निरोध होनेसे कारण रुक जाते हैं। उसी समय अयोग केवली श्री अर्हन्त भगवान् (अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यविशिष्ट शुद्धात्मा या पर-मात्मा) व्युपरतक्रिया-निवृत्ति नामक परमशुक्लध्यान

द्वारा बची हुई शेष अघातिकर्मप्रकृतियों और शरीरको भी छोड़ कर तत्काल स्वभावसिद्ध ऊर्द्धगमनक्रियासे सीधे ऊर्ध्वलोक (लोकशिखरके अन्तमें स्थित सिद्धलोकमें) चले जाते हैं। फिर उनको अर्हन्त संज्ञा छूट कर सिद्ध संज्ञा हो जाती है। इस अवस्थामें वे आत्मीय परम निराकुल अविनश्वर अनन्त सुखका अनुभव करते हुए लोक अलोकको देखते व जानते रहते हैं और वहांसे फिर वे कभी भी संसारमें लौट कर नहीं आते।

जैनमतानुसार सिद्ध और ईश्वरमें कोई अन्तर नहीं है। वे कहते हैं—सिद्धपरमात्माके न इच्छा है, न राग है, न द्वेष है, न शरीर है और न कोई परतन्त्रता है ऐसी अवस्थामें परमात्मा जगत्‌का निर्माण भी नहीं कर सकता है। जगत्‌के निर्माण करनेमें इच्छा, शरीर एवं रागद्वेष आदि सभी बातोंकी अनिवार्य आवश्यकता है। बिना उक्त कारणोंके कभी कोई किसी प्रकारकी रचना करनेमें समर्थ हुआ हो, ऐसा उदाहरण भी असम्भव है। यदि उक्त कारणोंका सद्भाव ईश्वरमें स्वीकार किया जाय तो फिर उसमें संसारियोंसे कोई विशेषता भी नहीं रह जाती। इसलिए जगत्‌का निर्माण परमात्मा नहीं कर सकता, जगत् अनादि निधन है; न उसे कोई बनाता है और न बिगाड़ता ही है। जो वस्तुओंकी रचनाएं देखी जाती हैं, वे अपने कारणोंसे होती रहती हैं। वह कारण चेतन ही होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, किन्तु जड़ कारणोंसे भी स्वयं प्रकृतिजन्य प्राकृतिक पदार्थोंकी रचना और विघटन होता रहता है। जैसे जङ्गलोंमें बांसोंकी रगड़से अग्निका उत्पन्न हो जाना इत्यादि। जैनसिद्धान्तानुसार परमात्मा वा ईश्वर सृष्टिके रचयिता नहीं हैं।

यहां अति संक्षेपसे यह जैनमुनियोंके आचारका दिग्दर्शन कराया गया है। विस्तृत स्वरूप जाननेके लिये मूलाचार, भगवती-आराधनासार, अनगारधर्मामृत आदि जैन ग्रन्थ देखने चाहिये।

ईश्वरतत्त्व—कुछ लोग जैनोंको नास्तिक भी कह दिया करते हैं, किन्तु वह उनका भ्रम है। वास्तवमें जैन नास्तिक नहीं हैं, वे ईश्वर स्वीकार करते हैं। हां, वे हिन्दुदार्शनिकोंकी तरह ईश्वरको सृष्टिकर्ता नहीं मानते और ईश्वरके जगत्‌कर्त्ता होनेमें इस प्रकार दोष दिखलाते हैं—

यदि तमाम जगत् परमात्मा वा ईश्वरका स्वरूप होता तो ज्ञानी, अज्ञानी, सुखी, दुःखी आदिका प्रभेद न होता—सम्पूर्ण जगत् एकरस, एकस्वभाव और अभेदभावको प्राप्त करता।

यदि यह कहा जाय कि ब्रह्म एक ही है और माया उससे भिन्न है वा ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है और जगदादि सर्व मायाजन्य है, तो इस कथनमें दोष आता है। माया और ब्रह्ममें प्रभेद क्या है? यदि जड़ बतलाते हो, तो फिर वह नित्य है या अनित्य? यदि अनित्य है, तो वह विनश्वर और कार्यरूप समझा जायगा। यदि कार्य बतलाते हो, तो उसका कारण भी जरूर होगा। सुतरां मायाका उपादानकारण क्या है? यदि कहो, कि माया ही उपादानकारण है, तो अनवस्थादोष घटता है। यदि ब्रह्मको उपादानकारण कहते हो, तो ब्रह्म ही स्वयं सब कार्य करते हैं यह कहना पड़ेगा। इसमें भी पूर्वोक्त दोष आता है। यदि मायाको नित्य और चैतन्य माना जाय, तो फिर अद्वैतवाद नहीं रहता। यदि कहो, कि ब्रह्म और माया एक ही है, तो फिर दोनोंके भिन्न नाम देनेकी आवश्यकता ही क्या है? एक ब्रह्मके कहनेसे ही प्रयोजन सिद्ध हो जाता।

वास्तवमें ईश्वर जगत्‌कर्त्ता नहीं है। सभी पदार्थोंमें अनन्तशक्ति मौजूद है, स्व-स्व शक्ति द्वारा ही पदार्थ अपना अपना कार्य करते हैं। जगत्‌में जो कुछ भी कार्य होते हैं, उन सबमें काल, स्वभाव, नियति, कर्म और उद्यम ये पांच निमित्त ही कारण हैं। इनके सिवा और निमित्त नहीं हैं। इन पांच निमित्तोंसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है, यह बात प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध हो सकती है। यथा—जब बीज बोया जाता है, तब कालका अनुकूल होना जरूरी है, अन्यथा बीजाङ्कुर उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके सिवा बीज, जल, पृथिवी आदिमें भी स्वभावका होना अनिवार्य है। जिस जिस पदार्थमें जो जो स्वभाव है, उसके परिणामको नियति कहा जा सकता है। यह भी एक कारण है। इसी प्रकार जीवका उद्यम वा पुरुषकार भी एक कारण है। इन पांचों

। वस्तुएं अनादि हैं इनको किसीने भी सृष्टि नहीं की। वस्तुओंके जितने भी स्वभाव हैं, वे सभी अनादिसे हैं। जिन वस्तुओंमें स्व-स्व स्वभाव नहीं है, उनकी सत्ता नहीं रह सकती। पृथिवी, आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ जो प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं, तद्द्वारा ही अनादिरूप सिद्ध होता है। पृथिवी पर जो कुछ भी रचना दीख रही है, वह सब पहलेसे ही (अनादिसे) प्रवाहक्रमसे इसी प्रकार चली आई है। जगत्‌के जो कुछ भी नियम हैं, वे उक्त पांच निमित्तोंके बिना सिद्ध नहीं हो सकते। इसी लिए कहा जाता है, कि सभी पदार्थ स्व-स्व नियमानुसार होते हैं, यदि द्रव्यकी शक्तिको ईश्वर कहते हो तो कोई आपत्ति नहीं। द्रव्यकी अनादि शक्तिको भी ईश्वर कहा जा सकता है। यदि कहो, कि जड़में कुछ भी शक्ति नहीं है, तो हम बातको हम स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि जगत्‌में बहुतसे जड़पदार्थ पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसे अपने आप मिला करते हैं। जैसे सूर्यकी किरण वर्षाके मेघ पर पड़ कर इन्द्रधनु उत्पन्न करती है, आकाशमें पवनकी सहायतासे जल और अग्नि उत्पन्न होती है, इसी तरह पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसे तृण, गुल्म, कीट, पतङ्गादि बहुतर प्राणी उत्पन्न हुआ करते हैं। द्रव्यार्थिक नयके अनुसार पृथिवी, आकाश, चन्द्र, सूर्य इत्यादि अनादि हैं और जो अनादि हैं, वे किसीके द्वारा सृष्ट नहीं हो सकते। वास्तवमें ईश्वर जगत्स्रष्टा नहीं हैं और न वे जीवोंके शुभाशुभका विधान ही करते हैं*। जीवोंका जो शुभाशुभ होता है, वह कर्मफल मात्र है। कर्मफल भोगनेमें जीव परवश है।

यदि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता नहीं, यदि ईश्वर जीवके शुभाशुभ कर्मविधायक नहीं, तो फिर उनका स्वरूप क्या है? प्रधान प्रधान जैनाचार्योंने निम्न श्लोक प्रकट कर ईश्वरका स्वरूप व्यक्त किया है--

* सृष्टिकर्तृत्वका खण्डन और जैनमतानुसार ईश्वरतत्त्वका विस्तृत स्वरूप जानना हो तो निम्नलिखित ग्रन्थ देखें—आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, आप्तमीमांसा, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, प्रमाणमीमांसा, प्रमाणसमुच्चय, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्त्तिकालंकार, गंधहस्तिमहाभाष्य आदि।

"त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥"

अर्थात्--हे भगवन्! तुम अव्यय (तुम्हारा कभी अपव्यय नहीं है) अर्थात् तीन कालमें एकस्वरूप हो, विभु अर्थात् समस्त पदार्थोंके ज्ञाता होनेसे ज्ञान द्वारा सर्वव्यापी हो, अचिन्त्य अर्थात् अध्यात्म-ज्ञानिगण भी तुम्हारी चिन्ता करनेमें समर्थ नहीं हैं, असंख्य अर्थात् तुम्हारे गुणोंकी कोई संख्या नहीं कर सकता; आद्य अर्थात् (यह आदिनाथ भगवान्‌की स्तुति है और वे प्रथम तीर्थङ्कर हैं) स्वतीर्थके आदिकारक हो, ब्रह्म अर्थात् अनन्त आनन्दस्वरूप हो, सर्वापेक्षा अधिक ऐश्वर्यशाली हो, अनन्तज्ञान दर्शनयोगमें भी तुम्हारा अन्त नहीं मिलता, अनङ्गकेतु अर्थात् औदारिक वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण इन पञ्चशरीररूपी चिह्न भी तुममें नहीं हैं। योगीश्वर अर्थात् चार ज्ञानके धारक योगियोंके भी ईश्वर हो, विदितयोग अर्थात् कर्मसंयोगको तुमने आत्मासे सम्पूर्ण पृथक् कर दिया है, अनेक अर्थात् गुणपर्यायकी अपेक्षा अनेक हो, एक अर्थात् अद्वितीय वा सर्वोत्कृष्ट हो, ज्ञानस्वरूप अर्थात् केवलज्ञान तुम्हारा स्वरूप है। अमल अर्थात् अष्टादश दोषरूप मल तुममें नहीं है।

जिनप्रतिष्ठाविधि--पहले वास्तुशास्त्रके अनुसार जिनमन्दिरका उत्तम स्थान निर्णीत करें, और फिर शुभदिनमें खोदी हुई नींवकी पूजा करके उसकी शुद्धि करें। जिनमन्दिरके निश्चित चारों द्वारोंके सामने पांच रंगके चूर्णसे चतुष्कोण मण्डल बनावें और अष्टदल कमलके आकार तांबेके पात्रमें लोकोत्तम शरणरूप जिन आदिकी (अनादि सिद्ध मन्त्र द्वारा) पूजा करें। अनन्तर चार दिशाओंके चार पत्रों पर जया आदि देवियोंकी, चार विदिशाओंके चार पत्रों पर जम्भा आदि देवियोंकी, तथा उसके बाहर चार लोकपालों और नवग्रहोंकी उन्हींके मन्त्रोंसे पूजा करनी चाहिए। फिर उत्कृष्ट सिंहासन पर जिनप्रतिमाको विराजमान कर उनकी पूजा करें। पीछे जल चन्दन अक्षतादि अष्टद्रव्य ले कर सब विघ्नोंकी शान्तिके

लिए विभिन्न मन्त्रोंसे पूजन करे। इस प्रकार नींवकी पूजा सम्पन्न करके मन्दिर निर्माण करावें।

अनन्तर बृहत्शान्ति नामक एक चतुष्कोण मण्डल बनाया जाता है, जिसकी विधि आशाधरकृत 'प्रतिष्ठासारोद्धार' वा एकसन्धिकृत 'जिनसंहिता'से जानना चाहिए। उक्त मण्डलके मध्यस्थित अष्टदल कमलके बीच पञ्चपरमेष्ठियोंकी स्थापन करके अनादिसिद्ध मन्त्र* द्वारा उनकी पूजा करें। फिर आठ कमलपत्रों पर स्थित जया, जन्मा, विजया, मोहा, अजिता, स्तम्भा, अपराजिता और स्तम्भिनी इन आठ देवियोंको अर्घ्य प्रदान करें। इसके बाद रोहिणी आदि १६ विद्यादेवियों और चक्रेश्वरी आदि २४ शासनदेवताओं तथा ३२ यक्षोंको साक्षीपूर्वक जिनप्रतिमाका अभिषेक और पूजन करें। इसके बाद प्रतिष्ठाशास्त्रानुसार छोटे छोटे अनुष्ठानोंको सम्पन्न करके वेदी निर्माण करावें।

उसके बाद जब मन्दिर बन कर तैयार हो गया हो या हो रहा हो, तब पूजानुष्ठान करके उत्तम प्रतिमा बनानेवाले शिल्पीको साथ ले (शुभभग्न एवं शुभशकुनमें) प्रतिमाके लिए शिला लेनेको जाना चाहिए। शिला पवित्रस्थानकी, मोटी बड़ी, चिकनी, शीतल, सुन्दर, सुदृढ़, सुगन्धित, ठोस, उत्कृष्ट वर्णविशिष्ट, अधिक चमकीली, तथा बिन्दु रेखा आदि दोषोंसे रहित होनी चाहिए। शिला मिलने पर 'ॐ फ्रं फट् स्वाहा' इस शास्त्र-मन्त्रको पढ़ कर उसे निकालना चाहिए और घर पर ला कर यथाविधि मन्त्रोच्चारणपूर्वक मूर्ति बनवानी प्रारम्भ करना चाहिए। धातुकी प्रतिमाके लिये भी ऐसा ही नियम है। सप्तधातुकी ही बनती है। मूर्ति शान्त, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्रस्थित अविकारी दृष्टिवाली, वीतरागताकी द्योतक, शुभ लक्षणोंसे युक्त, रौद्र आदि दोषोंसे रहित होनी चाहिये। मूर्ति प्रस्तुत हो जाने पर उसको विधि सहित सिंहासन पर स्थापित करें। उसके बाद तीन छत्र, दो चमर, अशोक वृक्ष, दुंदुभि बाजा, सिंहासन, भामण्डल, दिव्यभाषा, पुष्पवर्षा इन आठ प्रातिहार्योंसे शोभित करें। प्रतिमा जिस तीर्थंकरकी हो उनका चिह्न उसमें अवश्य अंकित करे। यह मूर्ति गृह चैत्यालयमें स्थापित करनी हो तब तो एक बिलस्त वा उससे छोटी होनी चाहिए और इससे अधिक जिन मन्दिरमें विराजमान करनी उचित है। इसके बाद प्रतिष्ठा शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार तीर्थंकर प्रभुने जैसे जीवितावस्थामें गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाणके समय पांच उत्सव हुये थे उनकी अवतारणा करनी चाहिये। अर्थात् जिनेन्द्र भगवान्‌के गर्भमें आनेके समय कुबेरकृत रत्नों की वर्षा, देवियोंकृत जिनमाताकी सेवा, श्री आदि छः कुमारिकाओंसे की गई कर्म शोधना स्वप्नोंके देखनेके बाद उनका पतिसे फल सुनना, होनेवाले तीर्थंकरका गर्भमें आना और इन्द्र द्वारा की गई जिन माता पिताकी पूजा इतनी विधि होती है, वह सब दिखानी चाहिये। जन्मके समय जगत्‌में आनंदका होना, तीर्थंकरका जन्म होना, निःस्वेदता आदि उनके दश अतिशय विजया आदि देवियोंकृत जिनमाताकी सेवा, जातकर्म संस्कार, देवोंका आना, इंद्राणी द्वारा भगवान् बालकको इंद्रकी गोदमें सौंपना, सुमेरु पर ले जाना, प्रभुकी स्तुति करना, नृत्य करना, नगरोंमें लाना, राजमहलमें उत्सव होना, इंद्रका नृत्य करना, और स्वर्ग जाना इतनी बातें होती हैं, उन सबको दिखाना चाहिये। दीक्षा लेते समय वैराग्यकी उत्पत्ति, लौकांतिक देवों द्वारा स्तुति, दीक्षा ग्रहण, केशलुंच करण, इंद्रकृत केशोंका क्षीरसमुद्रमें प्रवाहीकरण, भगवान्‌को मनःपर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति आदि होते हैं उनको दिखाना चाहिये। चौथे केवलज्ञानकी उत्पत्ति, समवशरण निर्माण, दिव्यध्वनिकी उत्पत्ति आदि विशेषतायें दिखलानी चाहिये। पांचवें निर्वाण होनेके समय आठ पत्रोंमें आठ गुणोंको लिख कर पूजना चाहिये।

इस प्रकार पांच क्रियायोंके हो जानेके बाद जिन प्रतिबिंब प्रतिष्ठित समझा जाता है और पूजने योग्य होता है।

जिन मूर्तिकी पूजा कई तरहसे होती है एक तो अभिषेक पूर्वक जल चंदन अक्षत (चावल) पुष्प, नैवेद्य (पक्वान्न) दीप, धूप और फल इन आठ द्रव्योंसे और

* "ओं ह्रां नमोऽर्हद्‌भ्यः स्वाहा, ओं ह्रीं नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा, ओं ह्रूं नमः सूरिभ्यः स्वाहा, ओं ह्रौं नमः पाठकेभ्यः स्वाहा, ओं ह्रः नमः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा।"

अभिषेक विना किये किसी एक द्रव्यसे। द्रव्यके अभावमें अपने आत्म-परिणामोंमें उक्त द्रव्योंकी कल्पना कर भी पूजन हो सक्ता है और इसे भावपूजन कहते हैं। इसको मुनिगण प्रायः करते हैं। चार वर्णोंमेंसे शूद्रके सिवा अन्य सभी अभिषेकपूर्वक पूजन कर सकते हैं। शूद्रोंमें स्पर्श्य शूद्र तो वेदिरहके सिवा अन्यत्र मन्दिरमें प्रवेश कर किसी एक वा अनेक द्रव्यको भेंटमें रख दर्शन कर सक्ते हैं और अस्पर्श्य शूद्र मन्दिरमें भीतर जा नहीं सकते इसलिए मंदिरकी शिखरमें चार दिशाओंमें जो चार जिनविंब रहते हैं उनका दर्शन करते हैं। इसके सिवा सूतक पातक और पतित अवस्थामें ब्राह्मणादि तीन वर्ण भी जिनविंबस्पर्शनके अधिकारी नहीं हैं और न उनको द्रव्य चढ़ा कर पूजन करनेका ही विधान है।

जैन लोग स्नानादिसे पवित्र हो प्रति दिन जिनदर्शन करना अपना कर्तव्य समझते हैं इसलिये समस्त स्त्री पुरुष और बालक जिनमन्दिर जा अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं। मन्दिरमें प्रवेश करते समय वे 'निःसहि' तीन बार उच्चारण कर गद्यपद्यमय स्तुति बोलते हैं; जिसमें जिनेन्द्र भगवान्‌के गुण और अपनी हीन अवस्थाका उल्लेख रहता है। नमस्कार, प्रदक्षिणा और स्तोत्र पाठ कर चुकनेके बाद शास्त्र पाठ करते हैं। जिनबिंबाभिषेकका जल अपने उत्तमांगमें लगाते हैं और फिर अपने घर वापिस आते हैं। जैन लोग अपने ईश्वरसे कोई धन धान्यादि संपत्तिकी याचना नहीं करते और न ईश्वरको उन वस्तुओंका दाता ही मानते हैं। जिनेन्द्रदेवने अपने उच्चरागसे कर्मबंधनको छोड़ कर शुद्ध परमोत्कृष्ट अवस्था पायी है इसलिये उनका आदर्श स्थापित कर उनके तुल्य हो जानेको ही भावना भाते हैं। जलचंदन आदि आठ द्रव्योंको चढ़ाते समय जो मन्त्र बोले जाते हैं उनका अभिप्राय भी यही है कि भक्त पुरुष मुक्ति प्राप्त करनेकी योग्यता प्राप्त करले। ऐहिक सुखकी लालसासे जिनपूजन करनेका जैन शास्त्र खुले तौरसे विरोध करते हैं। उनकी मूर्ति वीतराग सब प्रकारके परिग्रहसे रहित होती है उसका अभिप्राय यही है कि परिणामोंमें किसी भी तरहका रागभाव पैदा न हो और अपना आदर्श वीतरागता ही समझें। विशेष जाननेके लिये जैनपूजा ग्रंथ देखने चाहिये। जैनसंप्रदाय देखो।

जैनबद्री (जैनकाशी)—जैनोंका एक प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र। यह मन्द्राजके अन्तर्गत हासन जिलेके श्रवणबेलगोला ग्रामके सन्निकट है। यहां एक बड़ा तालाब है और उसके दोनों ओर दो छोटे छोटे पहाड़ हैं। इन पहाड़ोंको वहांके लोग विन्ध्यगिरि कहते हैं। पहाड़के नीचे रास्ताके किनारे एक जैन मन्दिर है। एक पहाड़के ऊपर कोट बना हुआ है, जिसके भीतर एक बहुत बड़ा और दो छोटे छोटे जैन-मन्दिर हैं तथा एक मानस्तम्भ (जिसको देख कर अभिमानियोंका मान दूर हो जाता है, उसे मानस्तम्भ कहते हैं)। एक कुण्ड है, जिसमें पानी भरा रहता है। पहाड़ पर चढ़नेके लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं। यहांसे कुछ ऊपर चढ़ने पर और एक कोट मिलता है। इसके पास दो देहली और मनोज्ञ जैन-मूर्ति विराजित हैं। इसके बाद और एक कोट है। यहां एक प्राचीन जैन-धर्मशाला, तीन जैनमन्दिर एक मानस्तम्भ और परिक्रमा बनी हुई है।

सबसे ऊपर चौथा कोट है। यहां ७२ फुट ऊंची श्रीबाहुबलि स्वामीकी एक खड्गासन प्राचीन जैनप्रतिमा है। इसके आस-पास और भी अनेक जैन-मूर्तियां अवस्थित हैं। यहां बाहुबलिस्वामीके दर्शनार्थ भारतवर्षके नाना प्रदेशोंसे यात्रिगण आया करते हैं।

श्रवणबेलगोला देखो।

जैनविवाहविधि—जैनशास्त्रोक्त विवाहकी पद्धति। विवाहसे, कमसे कम तीन दिन पहले कन्याका पिता अपने बन्धु बान्धव और ज्ञातिय लोगोंको निमन्त्रण दे कर बुला लेता है। फिर कन्याको वस्त्राभूषण और पुष्पमाला आदिसे सुशोभित कर सौभाग्यवती स्त्रियोंको साथ ले गाजे बाजेके साथ सब जिनमन्दिर पहुंचते हैं। मन्दिरमें आचार्य वा श्रुतधर (पण्डित)के मुखसे 'सहस्रनाम'का पाठ सुने और अष्टद्रव्यसे जिनेन्द्रकी पूजा करावें। पश्चात् अर्हन्त और सिद्धोंकी पूजा करके अनादि निधन "विनायकयन्त्र" वा "सिद्धयन्त्र"का अभिषेक* और पूजन§ करें तथा णमोकार मन्त्रका (सुवर्णमय

* मन्त्र—"ओं भूर्भुवः स्वरिह एतत् विघ्नैकवारकं यन्त्रं अहं परिषिञ्चयामि।"

† पूजाविधि और उसके मंत्रादि "जैनविवाहविधि" नामक पुस्तकसे जानना चाहिए।

पुष्पों वा लवङ्गोंकी मालासे) १०८ वार जप करे।

अनन्तर कन्या उस यन्त्रको गाजे-बाजेके साथ भक्तिपूर्वक अपने चैत्यालय वा घर ले आवे और उच्च एवं पवित्र स्थान पर विराजमान कर दे और जब तक विसर्जन हो, तब तक प्रतिदिन उसका अभिषेक करे। उस दिन कन्याको रात्रिजागरणपूर्वक पञ्चमङ्गल आदि का पाठ करना चाहिए।

इसी प्रकार वरको भी विनायकयन्त्रका अभिषेक पूजनादि करना चाहिए।

विवाहसे पांच दिन अथवा तीन दिन पहले कङ्कण बन्धनादिविधि सम्पन्न करना चाहिए। गृहस्थाचार्यको अपने हाथसे कङ्कण बांधना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है—

"जिनेन्द्रगुरुपूजनं श्रुतवचःसदाधारणं,
स्वशीलयमरक्षणं ददनसत्तपो वृंहणं।
इति प्रथितषट्क्रियानिरतिचारमास्तां तवे
त्यथ प्रथनकर्मणे विहितरक्षिकाबन्धनम् ॥"

इसके बाद शास्त्रानुसार छोटे छोटे विधानोंको सम्पन्न करके विवाह मंडप और वेदीकी रचना करनी चाहिए। मंडपके चार कोनोंमें चार काष्ठके स्तम्भ, लाल कपड़े और लाल सूत (कोली)से वेष्टित करे। इसकी ठीक मध्यभागमें चार हाथ लंबी चौड़ी एक वेदी (चौतरी) बनावे। उसके चार कोनोंमें चार केलेके छोटे छोटे पेड़ व इक्षुके पेड़ रोपण करे। उस वेदीके ऊपर कन्याके हाथसे एक एक हाथ ऊंची तीन कटनी पूर्व दिशाकी तरफ बनावे उस वेदीके पीछे ठीक मध्य भागमें बढ़ईके यहांसे आये हुये स्तम्भके ऊपर कलशमें १) रु० हल्दी सुपारी दूर्वा अक्षत आदि मङ्गलिक द्रव्य डाल कर एक लाल वस्त्रकी ध्वजा लगावे। इसके बाद गृहस्थाचार्य वा पण्डित सबसे ऊपर कटनी पर सिद्ध भगवान्‌का प्रतिबिंब स्थापन करे। यदि वह न हो तो विनायकयन्त्र स्थापित करे। उसके नीचेकी (बीचकी) कटनी पर आर्षश्रुत (जैन शास्त्रों)को विराजमान करे और नीचेकी तीसरी कटनी पर अष्टमंगल द्रव्योंकी स्थापना करे और गुरु पूजाके लिए उसी कटनी पर केसर लगी रकेबीमें अथवा कागजमें लिख कर चौसठ ऋद्धियें स्थापित करे। इसके आगे एक तीर्थंकर कुण्ड बनावे; उसके दक्षिण भागमें तो धर्मचक्रको और बाई तरफ तीन छत्र वा ,एक छत्र को स्थापन करे।

विवाहके समय कन्याका पिता, वरका पिता, कन्या और वरके मामा, दोनोंकी मातायें और एक गृहस्थाचार्य ये सात व्यक्ति अवश्य उपस्थित रहने चाहिए। विवाह मुहूर्त्तसे पहिले वर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर घोड़े आदिकी सवारी पर चढ़ कर श्वसुरके घर आवे। कन्याकी माता उसके पैर धोवे, आरती उतारे और मुद्रिका आदि आभूषण प्रदान करे। वरका पिता कन्याके लिये लाये हुये वस्त्र भूषणादि पहरनेके लिए दे। इसके बाद कन्याका मामा प्रीतिपूर्वक वरका हाथ पकड़ कर मंडपमें वेदीके दक्षिण तरफ पूर्व मुखसे खड़ा कर दे और कन्याको भी उसीके पास ले आवे। इस जगह सेहरा उठा कर कन्या और वर दोनोंको परस्पर मुख देखना चाहिये। इसके बाद कन्याके मामा और माता पितादि कुटुंबी जनोंको 'तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेके लिये यह कन्या देते हैं इसे स्वीकार करो' कह कर सम्मति प्रगटी करनी चाहिये। इसके अनन्तर वर भी सिद्ध यन्त्रको नमस्कार कर उसे स्वीकार करे। इसके बाद गृहस्थाचार्य जैनविवाहपद्धतिमें कही हुई विधिके अनुसार नित्य पूजादि कर एक सौ बारह आहुति हवन-कुण्डमें दे। अन्तमें सप्तपरमस्थानको प्राप्तिके लिए वेदीकी वर कन्याकी सात प्रदक्षिणा (फेरा) दिला कर पुण्याहवाचन पढ़े।

इस प्रकार विवाह समाप्त हो जाने पर अन्य बहुतसे आचार होते हैं उनके बाद वर वधूको साथमें ले अपने घर चला जाता है।

जैनवैद्य—एक उत्कृष्ट गद्यलेखक। इनका प्रकृत नाम जवाहर लाल होने पर भी ये जैनवैद्यके नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने कमल मोटनी भैरवसिंह (नाटक), व्याख्यान प्रबोधक और ज्ञानवर्णमाला आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। इसके सिवा इन्होंने 'उचितवक्ता' जैन आदि कई पत्रोंका सम्पादनकार्य भी किया था। जयपुरमें नागरीभवनकी स्थापना भी इन्हींके द्वारा हुई थी। संवत् १८६६में इनकी मृत्यु हुई।

जैनसम्प्रदाय-भारतका एक विख्यात और प्राचीन धर्मसम्प्रदाय। यह सम्प्रदाय मुख्यत: दो विभागोंमें विभक्त है, एक दिगंबर और दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बरोंका विवरण ईसाकी ५वीं शताब्दीसे मिलता है। दिगम्बर ईसासे ६०० वर्ष पहले भी विद्यमान थे। क्योंकि बौद्ध 'पालिपिटक'में निर्ग्रंथके नामसे इसका उल्लेख है। ये निर्ग्रंथ बुद्धदेवके समसामयिक थे। निर्ग्रन्थों (दिगम्बरों)का विवरण अशोककी शिलालिपिमें भी मिलता है (१) अन्तिम तीर्थंकर महावीरस्वामीके समयमें यह सम्प्रदायभेद न था, पीछे हुआ है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके 'प्रवचनपरोक्षा' नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"छव्वाससहस्सेहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
तो वोडियाण दिट्ठी रहवीरे समुप्पण्णा॥"

अर्थात्—वीर भगवान्के मुक्त होनेके ६०८ वर्ष बाद बोधिकों (दिगम्बरों)के प्रवर्तक रथवीपुरमें उत्पन्न हुए। इसके अनुसार वि० सं० १३८में दिगम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। किन्तु श्वेताम्बराचार्य* जिनेश्वर सूरिने अपने "प्रमाणलक्षण" नामक तर्कग्रन्थमें श्वेताम्बरोंको आधुनिक बतलानेवाले दिम्बराचार्यकी ओरसे उपस्थित की जानेवाली एक गाथाका उल्लेख किया है, जो उपर्युक्त गाथासे बिलकुल मिलती जुलती है। यथा—

"छव्वास सएहिं नउत्तरेहिं तइया सिद्धिंगयस्स वीरस्स।
कंबलिणं दिट्ठी वलहीपुरिए समुप्पण्णा॥"

अर्थात्—महावीरस्वामीके निर्वाणके ६०८ वर्ष बाद (विक्रम-सं० १३६ में) काम्बलिकों (श्वेताम्बरों)का मत उत्पन्न हुआ। दिगम्बरोंकी उत्पत्तिके विषयमें श्वेताम्बरोंके 'प्रवचनपरोक्षा'में एक कथा लिखी है— "रथवीपुरमें शिवभूति (वा सहस्रमल्ल) नामक एक राजभृत्य रहते थे, जिनकी स्त्री सासुके साथ लड़ा करती थी। एक दिन शिवभूति किसी कारणवश माता पर क्रुद्ध हो कर रातको घरसे निकल पड़े और एक साधुओंके उपाश्रयमें जा कर उनमें शामिल हो गये। कुछ समय बाद उन साधुओंका उसी नगरमें आना हुआ, जिसमें शिवभूति रहते थे। उस समय राजाने शिवभूतिको एक रत्नकम्बल उपहारमें दिया। किन्तु अन्य साधुओंने उसे यह कह कर कि साधुओंको कम्बल लेना उचित नहीं', छीन कर फेंक दिया। इससे शिवभूतिको बड़ा दुःख हुआ। किसी समय उस सङ्घके आचार्य जिनकल्प साधुओंके स्वरूपका व्याख्यान कर रहे थे, कि शिवभूतिने यह जाननेकी इच्छा प्रकट की कि 'जब जिनकल्प निष्परिग्रह होता है, तो आप लोगोंने यह आडम्बर क्यों स्वीकार किया है, वास्तविक मार्ग क्यों नहीं अङ्गीकार करते हैं?' उत्तरमें गुरु महाराजने कहा—'इस विषम कलिकालमें जिनकल्प कठिन होनेसे धारण नहीं किया जा सकता।' इस पर शिवभूतिने यह कह कर कि 'देखिये तो मैं इसे ही धारण करके बताता हूं' जिनकल्प धारण कर लिया।"

श्वेताम्बरोंके उपर्युक्त कथनसे यही प्रमाणित होता है कि पहले जिनकल्पी (दिगम्बरी) दीक्षाका ही विधान था; पीछे कलिकालमें वह कठिन होनेके कारण, लोग श्वेत-अम्बर धारण करने लगे।

सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिरने (जो कि महाराज विक्रमकी सभाके नवरत्नोंमेंसे एक थे,) बृहत्संहिता में एक जगह लिखा है—

"विष्णोर्भागवता मगाश्च सवितुर्विप्रा विदुर्ब्राह्मणा:।
मातृणामिति मातृमंडलविद: शम्भो: सभस्मा द्विजा:।
शाक्या: सर्वहिताय शान्तमनसो नग्ना जिनानां विदु:।
ये यं देवमुपाश्रिता: स्वविधिना ते तस्य कुर्यु: क्रियाम्॥"

वराहमिहिर राजा विक्रमादित्यके सामने ही मौजूद थे और उन्होंने नग्न वा दिगम्बरोंका उल्लेख किया है। ऐसी दशामें दिगम्बर मतकी उत्पत्ति विक्रम संवत् १३६में हुई है यह बात ऐतिहासिक दृष्टिसे विश्वासयोग्य नहीं।

श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्तिका विवरण देवसेन-

(१) Encyclopaedia Britannica, 11th Ed. Vol. XV. p 127

* जिनेश्वरसूरि ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए हैं।

† इस बातको दिगम्बराचार्य भी स्वीकार करते हैं, कि दिगम्बरी दीक्षा न पाल सकनेके कारण श्वेताम्बरी दीक्षाका प्रचलन हुआ। यथा—

"संयमो जिनकल्पस्य दुःसाध्योऽयं ततोऽधुना।
व्रतंस्थविरकल्पस्य तस्मादस्माभिराश्रितम्।"
दुर्द्धरो मूलमार्गोऽयं न धर्तुं शक्यते ततः।"

सुविज्ञात 'भावसंग्रह' * में इस प्रकार लिखा है,–"विक्रम राजाकी मृत्युके बाद सोरठ देशकी वलभी नगरीमें श्वेतांबर सङ्घ उत्पन्न हुआ। (१) उज्जयिनी नगरीमें भद्रबाहु नामके आचार्य थे, जो भविष्य-ज्ञानी थे, सङ्घको बुलाकर कहा कि यहां अब बारह वर्ष तक दुर्भिक्ष रहेगा, इसलिए सबको अपने अपने सङ्घसहित और और देशोंको चला जाना चाहिये। ऐसा ही हुआ। उनमें शान्ति नामके आचार्य भी थे, जो अनेक शिष्योंके साथ वलभीपुर पहुंचे। किन्तु वहां भी कुछ दिन बाद दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे लोगोंकी प्रवृत्ति बिगड़ गई। इस निमित्तको पाकर सर्वसाधुओंने कंबल, दण्ड, तूंबा, आवरण और श्वेतवस्त्र धारणकर लिए, ऋषियोंका आचरण छोड़ दिया और दीनवृत्तिसे बैठकर याचना और स्वेच्छाचार-पूर्वक बस्तीमें जाकर भोजन करना प्रारंभ कर दिया (२)। इसके कई वर्ष बाद जब सुभिक्ष हुआ, तब शान्त्याचार्यने सबको बुलाकर पूर्व-आचरण ग्रहण करनेके लिए कहा और अपनी निन्दा-गर्हा की। इस पर उनके एक प्रधान शिष्य बहुत उत्तेजित हुए और उस उत्तेजनामें पूर्व-मार्गको कठिन एवं पञ्चमकालमें उसका पालन असम्भव बतलाते हुए उन्होंने सग्रन्थ (परिग्रह) अवस्थामें निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है, ऐसा उपदेश देकर श्वेताम्बर मतका प्रचार किया (३)।

* यह ग्रन्थ सं० ९९० का रचा हुआ है, प्राचीन है, अतएव हमने उस परसे श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्तिकी इस कथाको उद्धृत करना उचित समझा है।

(१) "छत्तीसे वरिस सए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे उप्पणो सेवडसंघो हु वलहीए ॥ ५२ ॥

(२) तं लहिऊण णिमित्तं, गहियं सव्वेहिं कंबलीदण्डं।
दुद्धिय पत्तं च तहा, पावरणं सेयवत्थं च ॥
चत्तं रिसिआयरणं, गहिया भिक्खाय दीणवित्तीए।
उवविसिय जाइऊणं, भुत्तं वसहीसु इच्छाए ॥"
(भावसंग्रह, ५८—५९)

(३) "इयरो संघाहिवई, पवडिय पासंड सेवडो जाओ।
अक्खइ लोए धम्मं संगत्थे अत्थि णिव्वाणं ॥" (भावसंग्रह, ६९)

दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अन्तर—जैनधर्म माननेवाली दो प्रधान शाखाएं हैं, दिगम्बर और श्वेताम्बर। इन दोनोंका परस्पर अनेक बातोंमें प्रभेद है। दिगम्बर जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छः द्रव्य मानते हैं, परन्तु श्वेताम्बर काल द्रव्यको स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते; केवल घड़ी, घण्टा आदि व्यवहार कालको ही मानते हैं। दिगम्बर जैन कहते हैं—जिसके पास थोड़ासा भी परिग्रह है, वे न तो वास्तविक साधु हो हैं और न वे मुक्ति ही प्राप्त कर सके हैं; परन्तु श्वेताम्बर जैन गण वस्त्र, दण्ड आदि कई वस्तुओंको साधुके लिए आवश्यक समझते हैं; यद्यपि मुक्ति प्राप्त होना वे भी दिगंबर अवस्थासे ही मानते हैं। श्वेताम्बर कहते हैं—तीर्थंकर यद्यपि नग्न होते हैं, तथापि अतिशयवश वस्त्रालङ्कारादिसे भूषित दीख पड़ते हैं; और इसीलिये जब कि दिगम्बराम्नायी अपनी मूर्तियोंको बिलकुल सजावट आदिसे रहित विवसन स्थापित करते हैं तब ये वस्त्रभूषणादिसे खूब सजाते हैं।

इन दोनों सम्प्रदायोंको देवमूर्तियोंके दर्शनसे दोनों ही आपसमें ठीक विरोधी मालूम पड़ने लगते हैं; परन्तु वास्तवमें कुछ ही बातोंमें फर्क है। दिगंबर मतानुसार स्त्रीको स्त्री-जन्मसे मुक्ति प्राप्त नहीं होती। वे इसमें यह आपत्ति देते हैं—स्त्री प्रतिमास रजस्वला होती है, इसलिये उसकी शक्ति क्षीण होती रहती है; उसके वज्रवृषभनाराच आदि मुक्ति-प्राप्तिके उपयुक्त संहनन नहीं होते। स्त्रियोंमें माया अधिक रहती है, वे मनको सर्वथा वश नहीं कर सकतीं। परन्तु श्वेतांबर स्त्रीको मुक्ति होना मानते हैं। उनके मतसे श्रीमल्लिनाथ तीर्थङ्कर मल्लीबाई नामक स्त्री ही थे। परन्तु मन्दिरोंमें मूर्ति पुरुषाकार बनाते हैं और अतिशयवश पुरुष दीखते थे, ऐसा कहते हैं। श्वेतांबर लोग तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवल ज्ञानी (सर्वज्ञ)के भूख लगना मानते हैं और भोजन करते बतलाते हैं; परन्तु दिगम्बर कहते हैं, कि जिसने संसारकी समस्त व्याधियोंको नष्ट कर दिया है, जो रागद्वेषको सर्वथा जीतकर "जिन" हो गये हैं, उनके सबसे बड़ी व्याधि क्षुधा हो ही नहीं

सकती। जिनके ज्ञानमें त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ युगपत् दीख पड़ते हैं, उन्हें भूख लगे और वे भक्ष्य अभक्ष्य पदार्थोंको अपने ज्ञानगोचर होते हुये भी अन्तराय न मान खा डालें।

इसके सिवा कथाग्रन्थोंमें भी बहुत कुछ अन्तर है। जैसे—श्वेतांबर लोग कहते हैं, कि महावीरस्वामी पहिले एक ब्राह्मणीके गर्भमें आये और फिर इन्द्रने उन्हें राजा सिद्धार्थकी पत्नीके गर्भमें रख दिया इत्यादि। परन्तु दिगंबर इसका विरोध करते हैं और उनका अवतरण राजा सिद्धार्थकी महिषीके उदरमें ही मानते हैं।

प्राचीन दिगंबर और श्वेतांबर मूर्तियोंके देखनेसे मालूम होता है कि पहिले परस्पर बहुत कम अन्तर था। श्वेतांबर मूर्तियोंके सिर्फ लंगोटेका चिन्ह ही रहता था, परन्तु आजकल कुण्डल, केयूर, अङ्गद, मुकुट आदि सभी शृङ्गारकी सामग्रियां पहना दी जाती हैं। पहिले परस्पर इन दोनों शाखाओंमें अनैक्य भी अधिक न था। दोनों ही हिल-मिल कर अपना धर्म साधन करते थे।

दिगंबर साधु आजकल अतिविरल हैं,—परन्तु श्वेतांबर साधु बहुत दीख पड़ते हैं। इसका कारण दोनों सम्प्रदायोंके दुर्गम सुगम नियम हैं।

मूर्तिपूजामें भी परस्पर भेद है। दिगंबर पूजनेसे पहिले जलसे अभिषेक करते हैं और फिर जल चन्दन अक्षत आदि अष्ट द्रव्योंसे पूजन करते हैं। परन्तु श्वेतांबर पञ्चामृतसे अभिषेक कर पूजन करते हैं।

श्वेतांबर सम्प्रदायमें स्थानकवासी तेरहपंथी आदि अनेक भेद हैं, जिसमें स्थानकवासी मूर्तिको नहीं पूजते और इनके कुछ शास्त्र भी पृथक्-पृथक् रचे हुए हैं। श्वेताम्बरमतानुसार श्रीमहावीरस्वामीके पीछे जो आचार्य पट्ट पर बैठे, उनका विवरण निम्नलिखित तालिकासे जानना चाहिये। (तालिका आगेके पृष्ठमें देखो)

दिगंबर-सम्प्रदाय।

दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो मुख्य संप्रदाय हैं इन दोनों ही संप्रदायमें सङ्घ या गच्छभेद पाया जाता है। दिगम्बराचार्य अमितगतिने स्वरचित 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थमें चार सङ्घोंका उल्लेख किया है; यथा—१ मूल सङ्घ, २ काष्ठासङ्घ, ३ माथुर सङ्घ और ४ गोप्यसङ्घ इनमेंसे मूलसङ्घ पहलेसे ही था और द्राविड़सङ्घ, काष्ठा सङ्घ और माथुरसङ्घ आदि पीछेसे हुए। दर्शनसार नामक ग्रंथमें संग्रहकर्ता देवसेनसूरिने इनकी उत्पत्तिका जो समय और कारण लिखा है उसे यहां उद्धृत करना उचित समझते हैं।

द्राविड़संघ—श्रीपूज्यपाद अपर नाम देवनन्दि आचार्यके शिष्य वज्रनन्दि अप्रासुक अथवा सचित्त चनोंको खाना उचित समझते थे। अन्य आचार्योंने इस बातसे उन्हें रोका तो उन्होंने विपरीत प्रायश्चित्त शास्त्रोंकी रचनाकर अपनी बातकी पुष्टि की। उन्होंने लिखा है कि—बीजोंमें जीव नहीं है, मुनियोंको खड़े होकर भोजन न करना चाहिये, कोई वस्तु प्रासुक नहीं है आदि उस वज्रनन्दिने कछार खेत वसतिका और वाणिज्य आदि कराके जीवननिर्वाह और शीतल जलमें स्नान करने आदिमें मुनियोंको दोष नहीं बतलाया। विक्रम-संवत् ५२६ में दक्षिण मथुरा (मदुरा) नगरमें इस मतकी उत्पत्ति हुई और द्राविड़सङ्घ नाम पड़ा।*

काष्ठासङ्घ—नन्दीतट नगरमें विनयसेन मुनिसे दीक्षित कुमारसेन मुनि सन्यास मरणसे भ्रष्ट हो फिर दीक्षित नहीं हुये। उन्होंने मयूरपिच्छको त्यागकर चमरी गायके बालोंकी पिच्छी ग्रहणकर द्राविड़ देशमें उन्मार्गका प्रचार किया। उनके मतानुसार, क्षुल्लकोंको वीरचर्या करना, मुनियोंको कड़े बालोंकी पिच्छी रखना उचित है। इसी प्रकार अन्य शास्त्र पुराण और प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें भी कुछ मिलावट कर दी। विक्रम संवत् ७५३ में इस सङ्घकी उत्पत्ति हुई§।

---

* सिरि पुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो।
णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो ॥ ५४ ॥
पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥

§ सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
णंदियडे वरगामे कट्ठो-संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

बृहत् खरतरगच्छको (श्वेतांबरीय) पट्टावली।

पट्ट	नाम	जन्मस्थान	गोत्र	पिताका नाम	गृहवास	व्रतस्थ	युगप्रधान	स्वर्गप्राप्ति	आयुमान
१	सुधर्म	कोल्लाक	अग्निवैश्यायन	धम्मिल	५० वर्ष	४२ वर्ष	८ वर्ष	वीराब्द २०	१०० वर्ष
२	जम्बू	राजगृह	काश्यप	ऋषभदत्त	१६ ,,	२० ,,	४४ ,,	,, ६४	८० ,,
३	प्रभव	जयपुर	कात्यायन	विन्ध्य	३० ,,	४४ ,,	११ ,,	,, ७५	८५ वा १०५
४	शय्यम्भव (१)	राजगृह	वात्स्य	—	२८ ,,	११ ,,	२३ ,,	,, ९८	६२
५	यशोभद्र	—	तुङ्गीयायन	—	२२ ,,	१४ ,,	५० ,,	,, १४८	८६
६	सम्भूतिविजय	—	माठर	—	४२ ,,	४० ,,	८ ,,	,, १५६	९०
७	भद्रबाहु (२)	—	प्राचीन	—	४५ ,,	१७ ,,	१४ ,,	,, १७०	७६
८	स्थूलभद्र (३)	पटना	गौतम	शकटाल	३० ,,	२० ,,	४९ ,,	,, २१९	९९
९	महागिरि	—	एलापत्य	—	३० ,,	४० ,,	३० ,,	२४५ वा २४९	१००
१०	सुहस्ती (४)	—	वाशिष्ठ	—	३० ,,	२४ ,,	४६ ,,	,, २६५	१००
११	सुस्थित (५)	काकन्दी	व्याघ्रापत्य	—	३१ ,,	१७ ,,	४८ ,,	,, ३१३	९६
*१५	वज्र (६)	तुम्बवन	गौतम	धनगिरि	८ ,,	४४ ,,	३६ ,,	,, ५८४	८८
१६	वज्रसेन	—	उत्कोसिक	—	९ ,,	११६ ,,		,, ६२०	१२८
१७	चन्द्र (७)	—	—	—	६७ ,,	२३ ,,	७ ,,		६७
†२३	वीर	नागपुर							
‡३७	उद्योतन	मालव							
३८	वर्द्धमान	—	विद्यावंश					१०८८ संवत्	
३९	जिनेश्वर§			मरुदेव				१०८० " ?	
४०	जिनचन्द्र							संवेगरङ्गशालाके कर्त्ता	
४१	अभयदेव			धनदेव				टिप्रकारणादिके कर्त्ता।	

(१) दशवैकालिकसूत्रके रचयिता। (२) कल्पसूत्रादिके प्रणेता। (३) शेष चतुर्दशपूर्वी। (४) राजा सम्प्रति और अवन्तिके दीक्षा-गुरु। (५) कोटिकगच्छ मतके प्रवर्तक और सुप्रतिबुद्धके गुरुभ्राता।

* इनसे पहलेके १२वें इन्द्र, १३वें दिन्न और १४वें सिंहगिरि इन तीन पट्टधरोंका सिर्फ नाममात्र पाया जाता है।

(६) शेष दशपूर्वी और वज्रशाखाके प्रवर्तक।

(७) तपागच्छकी पट्टावलीके अनुसार चन्द्रगच्छके प्रवर्तक।

† इनसे पहले १८वें सामन्तभद्र १९वें वृद्धदेव २०वें प्रद्योतन, २१वे मानदेव (शान्तिस्तवप्रणेता) और २२वें मानतुंग (भक्तामर प्रणेता) इन पांच पट्टधरोंका नाम मात्र पाया जाता है। इसमें तपागच्छकी पट्टावलीके अनुसार मानदेव मालवेश्वरके वयर सिंहदेवके अमात्य थे।

‡ २४ जयदेव, २ देवानन्द, २६ विक्रम, २७ नरसिंह, २८ समुद्र, २९ मानदेव, ३० विबुधप्रभ, ३१ जयानन्द, ३२ रविप्रभ, ३३ यशोभद्र, ३४ विमलचन्द्र, ३५ देव (सुविहितगच्छ प्रवर्तक) ३६ नेमिचन्द्र इन लोगोंका सिर्फ नाम ही मिलता है। २९ पट्टधर मानदेवके समय (१००० वीराब्द) में सत्यमित्रके साथ शेषपूर्व लुप्त हुआ।

§ ९९३ वीराब्दमें कालकाचार्यने भाद्रशुक्ला पंचमीके बदले चतुर्थीको पर्युषणपर्व निश्चित किया। उनसे पहले कालकाचार्य नामके और भी दो व्यक्ति हो गये हैं, एकका नामान्तर श्याम था जो ३७६ वीराब्दमें विद्यमान थे। श्याम प्रज्ञापनाके रचयिता और निगदके वक्ता थे। दूसरे कालिकाचार्य ४५३ वीराब्दमें विद्यमान थे। इन्होंने गर्दभिल्लोंको परास्त किया था। तपागच्छ-पट्टावलीके अनुसार ८४५ वीराब्दमें वलभी भंग हुए।

पद	नाम	जन्मकाल	गोत्र	पिताका नाम	दीक्षाकाल	सूरिपदप्राप्ति	स्वर्गप्राप्ति	विशेष विवरण
४२	जिनवल्लभ					११७६ संवत्	११६८संवत्	पिण्डविशुद्धि
४३	जिनदत्त	११३२ सं०	हुम्बड़	वाछिगमन्त्री	११४१संवत्	११६९ ,,	१२११ ,,	सन्देहदोहावली कर्त्ता
४४	जिनचन्द्र*	११९७ ,,		साहरामल	१२०३ ,,	१२११ ,,	१२२३ ,,	दिल्लीसे स्वर्गप्राप्ति
४५	जिनपति	१२१० ,, चै० ८		यशोवर्द्धन	१२१८ ,,	फा०१२२३ ,,	१२७७ ,,	
४६	जिनेश्वर	१२४५ ,, अग्र० ११		नेमिचन्द्र	१२५५सं०	१२७८ ,,	१३३१ ,,	
४७	जिनप्रबोध	१२८५ ,,मं०		साहश्रीचन्द्र	१२९६ ,,	१३३१ ,,	१३४१ ,,	थिरापद्र नगरमें जन्म
४८	जिनचन्द्र	१३२६ ,	छाजहड़	देवराज	१३३२ ,,	१३४१ ,,	१३७६ ,,	कुसुमाग्रसे स्वर्गप्राप्ति
४९	जिनकुशल	१३३७ ,,	,,	जोल्लागर	१३४७ ,,	१३७७ ,,	१३८९ ,,	देराउरसे ,,
५०	जिनपद्म		,,				१४०० ,,	पाटन नगरसे ,,
५१	जिनलब्धि						१४०६ ,,	नागपुरसे ,,
५२	जिनचन्द्र						१४१५ ,,	स्तम्भतीर्थसे ,,
५३	जिनोदय	१३७५सं०		कन्दपाल		१४१५सं०	१४३२ ,,	पाटनसे ,,
५४	जिनराज					१४३२ ,,	१४६१ ,,	देवलवाड़ेसे ,,
५५	जिनभद्र (१)		भामगल्लिक				१५१४ ,,	कुम्भलमेरुसे ,,
५६	जिनचन्द्र	१४८७सं०	चम्म	बच्छराज	१४९२सं०	१५१४सं०	१५३० ,,	जयशलमेरसे ,,
५७	जिनसमुद्र	१५०६ ,,	पारख	देकोसाह	१५२१ ,,	१५३० ,,	१५५५ ,,	अहमदाबादसे ,,
५८	जिनहंस(२)	१५२४ ,,	चोपड़ा	मेघराज	१५२४ ,	१५५५ ,,	१५८२ ,,	पाटनसे ,,
५९	जिनमाणिक्य	१५४९ ,,	कुकड़चोपड़ा	जीवराज	१५६० ,,	१५८२ ,,	१६१२ ,,	
६०	जिनचन्द्र(३)	१५९५ ,,	रीहड़	श्रीवन्त	१५९५ ,,	१६१२ ,,	१६७० ,,	वेनातटसे ,,
६१	जिनसिंह	१६१५ ,,	गणधरचो०	चाम्पसी	१६२३ ,,	१६७० ,,	१६७४ ,,	मेड़तासे ,,
६२	जिनराज(४)	१६४७ ,,	बोहित्थिरा	धर्मसी	१६५६ ,,	१६९९ ,,	१६७४ ,,	पाटनसे ,,
६३	जिनरत्न(५)		लूणीय	तिलोकसी		१६९९ ,,	१७११ ,,	अकबराबादसे ,,
६४	जिनचन्द्र		गणधरचो०	आसकरण		१७११ ,,	१७६३ ,,	सूरतसे ,,
६५	जिनसौख्य	१७३९ ,,	लेचावुहरा	रूपसी	१७५१ ,,	१७६३ ,,	१७८० ,,	रिणीसे ,,
६६	जिनभक्ति	१७७० ,,	सेठ	हरिचन्द्र	१७७९ ,,	१७८० ,,	१८०४ ,,	कच्छमाण्डवीसे ,,
६७	जिनलाभ	१७८४ ,,	बोहित्थर	पचायणदास	१७९६ ,,	१८०४ ,,	१८३४ ,,	गूढ़ासे ,,
६८	जिनचन्द्र	१८०९ ,,	वच्छावजसंहता	रूपचन्द्र	१८२२ ,,	१८३४ ,,	१८५६ ,,	सूरतसे ,,
†६९	जिनहर्ष		मिवातियावहुरा	तिलोकचन्द्र	१८४१ ,,	१८५६ ,,		

* आञ्चलिकगच्छकी उत्पत्ति।

(१) जिनभद्रसे पहले सं० १४६१में जिनवर्द्धनको सूरिपद प्राप्त हुआ था, किन्तु ४थे व्रतके भंग हो जानेके कारण वे पदच्युत किये गये ; फिर इन्होंने सं०१४७४में पिप्पलक-खरतरगच्छशाखाकी स्थापना की थी।

(२) इनके समय (सं० १५६४)-में आचार्यीय खरतरशाखा प्रतिष्ठित हुई थी। (३) इन्होंने अकबर बादशाहको दीक्षित किया था। और १६२१संवत्में भावहर्षीय खरतरगच्छशाखा प्रतिष्ठित हुई थी। (४) सं० १६८६में लघ्वाचार्यीय खरतर-गच्छ-शाखा स्थापित हुई थी और शत्रुंजयमें ५० ऋषभ-मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तथा बहुतसे ग्रन्थ रचे गये थे। (५) १७०० संवत्में रंग विजय द्वारा रंगविजय-खरतरगच्छकी स्थापना हुई थी।

† जिनहर्षके बाद ७१वें जिनसौख्य (१८९२—१९१७ सं०) ७२वें जिनहंस (१९१७—१९३५ सं०) ७३वें जिनचन्द्र (१९३५—१९५५ सं०) और ७४वे जिनकीर्ति (१९५५—१९६७ सं०) हुए हैं। फिलहाल ७५वें पट्टधर जिनचन्द्र विद्यमान हैं।

माथुर सङ्घ—विक्रम-संवत् ८५३ में रामसेन मुनिने इस सङ्घकी नींव डाली। इनके मतसे मुनियोंको बिना पिच्छीके रहना उचित है ‡।

मूलसङ्घसे ही नन्दीसङ्घकी उत्पत्ति हुई थी। दिगंबरोंमें सरस्वती और हर्षपुरीय ये दो गच्छ ही प्रधान हैं, जिनमेंसे सरस्वतीगच्छकी पट्टावली इसी भागमें पृष्ठ ४४१-४४२में प्रकाशित है और हर्षपुरीयगच्छकी पट्टावली हमें प्राप्त नहीं हुई इसलिए प्रकट न कर सके।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय।

श्वेताम्बराचार्य धर्मसागर गणिने अपने 'प्रवचन-परीक्षा' नामक ग्रन्थमें तपागच्छके सिवा और भी दश मतोंका उल्लेख किया है। यथा—१ क्षपणक वा दिगम्बर, २ पौर्णमीयक, ३ खरतर वा औष्ट्रिक, ४ पलादिक वा आञ्चलिक, ५ सार्द्धपौर्णमीयक, ६ आगमिक वा त्रिस्तुतिक, ७ लुम्पक, ८ कटुक, ९ वन्ध्य वा वीजमत और १० पाशचन्द्र।

धर्मसागरका कहना है कि उक्त दश मतोंमें दिगम्बर, पौर्णमीयक, औष्ट्रिक और पाशचन्द्र ये चार मत आदि जैनसे ही निकले हैं। स्तनिक वा आञ्चलिक, सार्द्ध पौर्णमीयक और आगमिक ये तीन शाखाएँ पौर्णमीयक मतसे निकली हैं। लुम्पक, कटुक और वन्ध्य (यद्यपि वन्ध्यकी उत्पत्ति लुम्पकसे है) इन तीन शाखाओंने स्वाधीन भावसे अपना मत चलाया था। इनकी उत्पत्तिके विषयमें प्रवचन-परीक्षामें कुछ लिखा है। उसीके अनुसार कुछ लिखा जाता है।

दिगम्बरोंके विषयमें धर्मसागर गणिने जो लिखा है, उसकी आलोचना हम पहले ही कर चुके हैं, अतः यहां उसको दुहराना नहीं चाहते।

पौर्णमीयक वा पक्षोत्पत्ति—वीरनिर्वाणके १६२८ वर्ष बाद (अर्थात् ११५९ संवत्में) पौर्णमीयक शाखाकी उत्पत्ति हुई। इसका कारण उन्होंने इस प्रकार लिखा है,—राजश्रीकर्णवारक ग्राममें चन्द्रप्रभ, मुनिचन्द्र, मानदेव और शान्ति नामके चार सतीर्थ वास करते थे। ११४९ संवत्में श्रीधर नामक एक जैनने, जिनेन्द्र प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करनेके अभिप्रायसे चन्द्रप्रभके पास आ कर प्रार्थना की, कि 'आप अपने कनिष्ठ मुनिचन्द्रको प्रतिष्ठाव्रतमें व्रती कीजिए'। चन्द्रप्रभने ईर्ष्यावश यह उत्तर दिया, कि 'साधु इस कार्यमें शामिल नहीं हो सकते'। इस तरह श्रावक प्रतिष्ठाका नियम लङ्घित होनेसे कोई भी उनका अनुगामी नहीं हुआ। फिर ११५९ संवत्में एक दिन चन्द्रप्रभने शिष्योंके समक्ष यह प्रकट किया कि पद्मावती देवीने उनको स्वप्नमें दर्शन दिया हैं और कहा है, कि 'तुम अपने शिष्योंसे कहना, कि श्रावक प्रतिष्ठा और पूर्णिमा—पाक्षिक* सत्य है, अनन्तकालसे चला आ रहा है।" इस तरह पौर्णमीय शाखा निकली।

खरतरोत्पत्ति—उक्त धर्मसागरने प्रतिवाद करके लिखा है, साधारणत: खरतरगच्छकी पट्टावलीमें १०२४ सं०में वर्द्धमानके शिष्य जिनेश्वरसे खरतरकी उत्पत्ति कही जाती है, किन्तु वह यथार्थ नहीं है, सं० १२०४ में जिनदत्त सूरिसे ही खरतर नाम प्रवर्त्तित हुआ है। इस विषयमें उन्होंने जिनपतिके शिष्य सुमति गणिके गणधर सार्द्धशतककी वृहद्वृत्ति उद्धृत की है—'अभयदेवने स्वयं जिनवल्लभको पदस्थ नहीं किया। वे जानते थे, कि इसमें उनके अन्य शिष्य सहमत न होंगे। कारण जिनवल्लभ पहले एक चैत्यवासीके शिष्य रह चुके थे। उन्होंने अपने शिष्य वर्द्धमानको ही उत्तराधिकारी नियुक्त किया। परन्तु उन्होंने सुविधा देख कर जिनवल्लभको पदस्थ करनेके लिए प्रसन्नचन्द्रको आदेश किया। प्रसन्नचन्द्रने फिर देवचन्द्रसे कह कर वह कार्य सम्पन्न कराया।"

‡ ततो दुसएतीदे महुराए राहुमाण गुरुणाहो।
णामेण रामसेणो णिपिच्छं वण्णियं तेण ॥ ४० ॥

* पूर्णिमाके दिन जो पाक्षिक व्रतका पालन किया जाता है, उसे ही पूर्णिमापाक्षिक कहते हैं। परंतु उक्त शाखाके अनुयायी पूर्णिमा और अमावस्या दोनों ही तिथियोंमें जिस व्रतको पालते हैं, उसको पूर्णिम-पाक्षिक कहते हैं।

† चन्द्रप्रभके धर्मोपदेशके प्रचारार्थ मुनिचन्द्रने पाक्षिकसप्ततिकी रचना की थी।

धर्मसागरने यह भी कहा है, कि दुर्लभराजकी सभामें सं० १०२४को चैत्यवासीके पराजित होने पर जिनेश्वरने खरतर विरुद प्राप्त किया, जो यह कथा प्रचलित है, वह अमूलक है कारण, दुर्लभराज उसके बहुत समय पीछे, अर्थात् सं० १०६६को सिंहासन पर बैठे थे। विशेषतः १५८२ संवत्में लिखित श्लोकानुबन्धो खरतर गच्छकी पट्टावलीमें लिखा है, कि सं० १०२४ में जिनहंस सूरि पट्टधर थे; दर्शन सप्ततिकावृत्ति, अभयदेवकृत ऋषभचरित, और उनके शिष्य वर्द्धमानकृत प्राकृत गाथा एवं प्रभाविक चरित्रमें खरतरके विषयमें कुछ भी उल्लेख नहीं है। सुमतिगणिके ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होता है, कि जिनवल्लभने जिनदत्तको देखा ही नहीं था। धर्मसागरने अपने ग्रन्थमें जो पट्टावली उद्धृत की है, उससे भी यह मालूम नहीं होता कि जिनवल्लभ अभयदेवके शिष्य थे। धर्मसागरने लिखा है कि प्राचीन गाथाके अनुसार १२०४ संवत्में ही जिनदत्त सूरि द्वारा खरतर शाखा प्रवर्त्तित हुई थी। जिनदत्त अत्यन्त खरप्रकृतिके थे, इसीलिए साधारण लोग उन्हें खरतर कहा करते थे; जिनदत्तने भी आदरके साथ उस नामको ग्रहण किया था। इन्हीं जिनदत्तकी शिष्यपरम्परा खरतरगच्छ नामसे प्रसिद्ध हुई।

धर्मसागरके मतसे जिनशेखरसे रुद्रपल्लीका गच्छ प्रसिद्ध नहीं हुआ; उनके बाद ४र्थ पट्टधर अभयदेवसे ही रुद्रपल्लीय गच्छका सूत्रपात है।

आञ्चलिकोत्पत्ति—१२३ संवत्में आञ्चलिक शाखाकी उत्पत्ति हुई। पौर्णमीयक पक्षमें नरसिंह नामक एक व्यक्ति वास करते थे, जो एकाक्ष और बहुभाषी थे। पौर्णमीयकोंने उन्हें जातिच्युत कर दिया। विद्रना नामक एक ग्राममें वास करते समय एक नाधि नामकी अन्ध रमणी उनकी वन्दनाके लिए आई, पर वह अपनी मुखाच्छादनी लाना भूल गई। जैनशास्त्रमें किसी प्रकारका विधान न होने पर भी नरसिंहने उसे आंचलसे मुंह ढकनेके लिए कहा, जिससे यतियोंमें बड़ी अशान्ति फैल गई। नाधिके अर्थकी कमी नहीं थी, उस अर्थकी सहायतासे नरसिंहने आञ्चलिक पन्थका प्रचार किया। नाधिके अनुरोधसे नाटप्रदीप चैत्यवासीने नरसिंहको सूरिपद प्रदान किया। तबसे नरसिंहका नाम आर्यरक्षित पड़ गया। इन्होंने मुखाच्छादन और रजोहरण परित्याग कर साधारण जैनों द्वारा अनुष्ठित प्रतिक्रमण भी उठा दिया। इस शाखाके अनुयायीगण आञ्चलिक नामसे प्रसिद्ध हुए। आञ्चलिकगण आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम इन तीन प्रकारके आगमोंको स्वीकार करते हैं।

सार्द्धपौर्णमीकोत्पत्ति—सं १२३६ ई०में इस शाखाकी उत्पत्ति हुई। इसकी उत्पत्तिके विषयमें धर्मसागर गणि लिखते हैं,—

एक दिन राजा कुमारपालने प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रसे पौर्णमीयक मतके विषयमें पूछा। हेमचन्द्रके मुखसे विस्तृत विवरण सुन कर कुमारपालने अपने राज्यसे पौर्णमीयकोंको निकाल देनेका निश्चय किया। एक दिन उन्होंने पौर्णमीयके आचार्यसे पूछा—"आप लोगोंके मतका परिपोषक कोई आगम वा पूर्ववाद है या नहीं?" पौर्णमीयकने इसका अवज्ञासूचक उत्तर दिया; जिससे समस्त पौर्णमीयकोंको कुमारपालके अधिकार १८ जनपदोंसे निकल जाना पड़ा। कुमारपाल और हेमचन्द्रकी मृत्युके बाद आचार्य सुमतिसिंह नामक एक पौर्णमीयक छद्मवेशसे पत्तननगरमें आये। परिचय पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया "मैं सार्द्धपौर्णमीयक हूं।" सुमतिसिंहके कोई कोई शिष्य इस सम्प्रदायको 'साधुपौर्णमीयक' भी कहते हैं।

आगमिकोत्पत्ति—शीलगण और देवभद्र पौर्णमीयकके पक्षको छोड़ कर पहले तो आञ्चलिक हुए; पीछे शत्रुञ्जय तीर्थमें सात साधुओंके साथ मिल कर उन्होंने शास्त्रोक्त क्षेत्रदेवता की पूजाके परिहाररूप नवीन मतका प्रचार किया। यही मत आगमिक और त्रिस्तुतिक नामसे विख्यात हुआ। १२५० सं०में यह मत प्रचलित हुआ।

लुम्पकोत्पत्ति—गुजरातके अन्तर्गत अहमदाबाद नगरमें दशा श्रीमाल जातिके एक लङ्का वा लुम्पक नामके एक लेखक (प्रतिलिपिकर) रहते थे। ये ज्ञानयतिके उपाश्रयमें पोथी लिखनेका काम करते थे। पोथी

लिखते समय सिद्धान्तके बहुतसे आलापक और उद्देशक छोड़ जाते थे ; इस कारण एक दिन उपाश्रयके लोगोंने इन्हें मार पीट कर भगा दिया इससे लुम्पक अत्यन्त क्रुद्ध हुए और लिम्बड़ी नामक ग्राममें जाकर लक्ष्मीसिंह नामक एक वणिककी सहायतासे उन्होंने इस प्रकारका मत प्रचारित किया—"जिनप्रतिमा जब जीवित नहीं हैं, तब उनकी उपासना नहीं चल सकती। आवश्यक-सूत्रके बहुतसे स्थान भ्रष्ट हो गये हैं और व्यवहारसूत्र भी यथार्थ नहीं मालूम पड़ता।" धर्मसागरने प्रवचन-परीक्षाके अष्टम अध्यायमें विस्तृत रूपसे लुम्पक मतका प्रतिवाद किया है ; उनके मतसे सं० १५०८में इस मतकी उत्पत्ति हुई।

लुम्पककी एक शाखाका नाम है वेशधर। किसीके मतसे संवत् १५३१ और किसी किसीके मतसे १५३३ संवत्‌में इस शाखाकी उत्पत्ति हुई। प्राग्वाटज्ञाति और शिवपुरीके निकटवर्ती अरवट्टपाटकनिवासी भाणक नामके कोई व्यक्ति इस शाखाके प्रवर्तक हैं। धर्मसागरने लिखा है, कि भाणक नागपुरीय वेशधरोंमें प्रथम हैं ; किन्तु भाणकके अधस्तन षष्ठपुरुष ही गुजराती वेशधरोंमें प्रथम समझे जाते हैं*। रूपर्षि नागपुरमें आगमल द्वारा दीक्षित हुए थे।

कटुकोत्पत्ति—कटुक नामक एक विचक्षण जैनने किसी आगमिकके साथ साक्षात् होने पर उनसे प्रकृत धर्मतत्त्व पूछा। आगमिकने उत्तरमें कहा "इस जगत्‌में अब साधुका आविर्भाव नहीं होगा ; यदि आप प्रकृत तत्त्व जाननेकी इच्छा रखते हैं तो आगमिक मतका उपदेश ग्रहण करें।" तदनुसार कटुक दीक्षित हुए। १५६४ सं०में इन्हीं कटुकके द्वारा एक पृथक् शाखा प्रवर्तित हुई।

बीजमतोत्पत्ति—नूनक नामक एक लुम्पक वेशधरके बीज नामक एक मूर्ख शिष्य थे। ये मेदपाठ नामक स्थानमें जा कर गुरुतर तपमें निमग्न हो गये। मेदपाठमें पहले कभी भी जैनसाधुका समागम न हुआ था ; सुतरां बीजको देख कर सभी उनको विशेष भक्ति श्रद्धा करने लगे। बीज सबको पूर्णिमापाक्षिक, पञ्चमी, पर्युषण, और आगमिक मतानुसार धर्मोपदेश देने लगे। इस तरह सं० १५७०में बीजमत प्रवर्तित हुआ।

पार्श्वचन्द्रोत्पत्ति—नागपुरमें पार्श्वचन्द्र नामक एक तपागच्छीय उपाध्याय वास करते थे। गुरुके साथ विवाद हो जानेसे उन्होंने अपने नामसे एक अभिनव सम्प्रदाय प्रचलन करना चाहा। इन्होंने तपागच्छ और लुम्पक-मतसे कुछ धर्मोपदेश ग्रहण कर विधिवाद, चारित्रानुवाद और यथास्थितवाद नामक त्रिस्थानुबन्धी एक मत प्रचारित किया। वे नियुक्ति, भाष्य, चूर्णी और छेदग्रन्थकी प्रामाणिक नहीं मानते थे। सं० १५७२में यह मत प्रवर्तित हुआ। इस शाखाके लोग पार्श्वचन्द्रीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

इसके सिवा श्वेताम्बरोंमें और भी अनेक गच्छ हैं ; यथा—उकेश गच्छ, नागेन्द्रगच्छ, चन्द्रगच्छ, कृष्णराजर्षिगच्छ (सं० १३९१ में उत्पन्न हुआ), लघुखरतरगच्छ (सं० १३३१ में उत्पन्न हुआ), बृहत् खरतरगच्छ (इसकी पट्टावली पूर्व पृष्ठमें प्रकाशित है), वायड़गच्छ, बृहत्‌गच्छ, खन्देलगच्छ, धारापद्रगच्छ, विशवालगच्छ, इत्यादि। प्रत्येक गच्छके एक एक स्वतन्त्र पट्टधर और उनकी पट्टावली लिपिबद्ध है। यहां कुछ उद्धृत की जाती हैं,—

तपागच्छ

पट्ट	नाम	विवरण
३५	उद्योतन	...
३६	सर्वदेव (१म)	...
३७	देव	...
३८	सर्वदेव (२य)	...
३९	यशोभद्र और नेमिचन्द्र	...
४०	मुनिचन्द्र	(हेमचन्द्रके समसामयिक)
४१	अजितदेव	(संवत् ११३८–१२२०)
४२	विजयसिंह	(विवेकमञ्जरी-प्रणेता)
४३	सोमप्रभ और मणिरत्न	(विजयसिंहके शिष्य)
४४	जगच्चन्द्र	(सं० १२८५में विद्यमान थे)
४५	देवेन्द्रसूरि	(मृत्यु सं० १३२७)
४६	धर्मघोष	(मृ० सं० १३५७)

* धर्मसागरने नागपुरीय वेशधरोंका क्रम इस प्रकार लिखा है- १ भाणक, २य भादर, ३य भीम, ४र्थ लुन, ५म जगमाल और ६ष्ठ रूपर्षि।

पट्ट	नाम	विशेष विवरण
४७	सोमप्रभ (२य)	(सं० १३१०—१३७३)
४८	सोमतिलक	(सं० १३५५—१४२४)
४९	देवसुन्दर	(जन्म सं० १३९३)
५०	सोमसुन्दर	(सं० १४३०—१४९९)
५१	मुनिसुन्दर	(सं० १४३६—१५०३)
५२	रत्नशेखर	(सं० १४५७-१५१७)
५३	लक्ष्मीसागर	(जन्मसं० १४५४)
५४	सुमतिसाधु	...
५२	रत्नशेखर	(सं० १४५७—१५१७)
५३	लक्ष्मीसागर	(जन्मसं० १४५४)
५४	सुमतिसाधु	...
५५	हेमविमल	(इनके समयमें कडुआ पन्थ चला)
५६	आनन्दविमल	(सं० १५४३—१५९३)
५७	विजयदान	(सं० १५५३-१६२२)
५८	हीरविजय	(सं० १५८३-१६५२)
५९	विजयसेन	(सं० १६०४-१६७१)
६०	विजयदेव	(सं० १६३४-१६८१)
६१	विजयसिंह	(सं० १६४४-१७०८)
६२	विजयप्रभ	(सं० १६८५-१७४९)
		(इनके समयमें ढूंढियापन्थ चला)
६३	विजयरत्नसूरि	
६४	विजयक्षेमसूरि	
६५	विजयदयासूरि	
६६	विजयधर्मसूरि	
६७	विजयजिनेन्द्र सूरि	
६८	विजयदेवेन्द्र सूरि	
६९	विजयधर्म सूरि (२य)	

तपागच्छ—विजयशाखा ।

(१ से ५९ तक तपागच्छके समान ।)

६० विजयदेव सूरि

६१ विजयसिंह सूरि

६२ सत्यविजय सूरि

६३ कपूरविजय गणि

६४ क्षमाविजय

६५ जिन विजय

६६ उत्तम विजय

६७ पद्मविजय

६८ रूपविजय गणि

६९ कीर्ति विजय

७० कस्तूरविजय

७१ मणि विजय

७२ बुद्धिविजय

७४ कमल विजय

७३ आनन्दविजय सूरि आचार्य (वर्तमान)

अञ्चलगच्छ ।

१ आर्यरक्षित (संवत् १२०२—१२३६)

२ जयसिंह (सं० १२३६—१२५८)

३ धर्मघोष (सं० १२४८—१२६८)

४ महेन्द्रसिंह (सं० १२६८—१३०९)

५ सिंहप्रभु (सं० १३०९—१३१३)

६ अजितसिंह (सं० १३१४—१३३९)

७ देवेन्द्रसिंह (सं० १३३९—१३७१)

८ धर्मप्रभ (सं० १३७१—१३९३)

९ सिंहतिलक (सं० १३९३—१३९५)

१० महेन्द्र (सं० १३९५—१४४४)

११ मेरुतुङ्ग (सं० १४४६—१४७१)

१२ जयकीर्ति (सं० १४७३—१५००)

१३ जयकेशरी (सं० १५०१—१५४२)

१४ सिद्धान्तसागर (सं० १५४२—१५६०)

१५ भावसागर (सं० १५६०—१५८३)

१६ गुणनिधान (सं० १५८४—१६०२)

१७ धर्ममूर्ति (सं० १६०२—१६७३)

१८ कल्याणसागर (सं० १६७१—१७१८)

१९ अमरसागर (सं० १७१८—१७६२)

२० विद्यासागर (सं० १७६२—१७०५)

२१ उदयसागर (सं० १७९७—१८२६)

२२ कीर्तिसागर (सं० १८२६—१८४३)

२३ पुण्यसागर (सं० १८४३—१८६०)

२४ मुक्तिसागर (सं० १८६०—१८९३)

२५ राजेन्द्रसागर (सं० १८९२—१९१४)

२६ रत्नसागर (सं० १९१४—१९२८)

२७ विवेकसागर (सं० १९२८)

पार्श्वचन्द्रगच्छ ।

१ पार्श्वचन्द्र सूरि (सं० १५६५, मृत्यु १६१२)

२ समरचन्द्र (सं० १६२६)

३ रायचन्द्र (सं० १६६९)

४ विमलचन्द्र (सं० १६७४)

५ जयचन्द्र (सं० १६९८)

६ पद्मचन्द्र (सं० १७४४)
७ मुनिचन्द्र (सं० १७५०)
८ नेमिचन्द्र (सं० १७८७)
९ कनकचन्द्र (सं० १८१०)
१० शिवचन्द्र (सं० १८२३)
११ भानुचन्द्र (सं० १८३७)
१२ विवेकचन्द्र
१३ लब्धिचन्द्र
१४ हर्षचन्द्र
१५ हेमचन्द्र
१६ भारतीचन्द्र और देवचन्द्र

इसके सिवा और भी सैकड़ों गच्छों और शाखाओंकी उत्पत्ति हुई है।

जातिभेद—प्राचीन शास्त्रोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि जैनोंमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंका विधान है। श्रुतके वर्णनमें कहा जा चुका है कि १म तीर्थङ्कर आदिनाथके समयसे ही वर्णधर्मकी उत्पत्ति हुई है। वर्तमान जैनोंमें वैश्योंकी संख्या ही समधिक पायी जाती है। ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत कम है, उससे भी कम क्षत्रियोंकी, शूद्र तो और भी कम हैं। फिलहाल जैनब्राह्मणों और शूद्रोंका अस्तित्व दाक्षिणात्यमें ही पाया जाता है। अन्यत्र क्वचित् कदाचित् दृष्ट होते हैं।

जैनसम्प्रदायमें निम्नलिखित ८४ श्रेणियाँ पाई जाती हैं,—

१ खण्डेलवाल, २ पद्मावतीपुरवाल, ३ अग्रवाल, ४ जैसवाल, ५ पोरवाल, ६ वघेरवाल, ७ देशवाल, ८ सहेलवाल, ९ दिल्लीवाल, १० सेतवाल, ११ बड़ेलवाल, १२ पुष्पमाल, १३ श्रीमालि, १४ ओसवाल, १५ पल्लीवाल, १६ चूरूवाल १७ चौसखा, १८ टूँसरो, १९ पठसखा, २० गंगेरवाल, २१ बम्धुवाल, २२ तोरणवाल, २३ सोहिला, २४ करिन्दवाल, २५ पल्लीवाल, २६ मेढ़वाल, २७ खोहिला, २८ लबेंचू, २९ मगहर, ३० महेश्वरी, ३१ गोलालार, ३२ गोलापूर्व, ३३ गोलसिङ्गार, ३४ बन्धमौर, ३५ मागधी, ३६ विहारवाल, ३७ गूजरा, ३८ खण्डरा, ३९ गहोय, ४० जानराज, ४१ बूसरा, ४२ भुराल, ४३ मुराल, ४४ सोरठी, ४५ चितौरिया, ४६ कपोल, ४७ मराठवर्ग, ४८ हुमड़, ४९ नगौरिया, ५० श्रीगहोड़, ५१ भंडिया, ५२ कनौजिया, ५३ अजोधिया, ५४ मिवाड़, ५५ मालवान, ५६ जोधड़ा, ५७ ममोधिया, ५८ भटनेर, ५९ राइवल्ल, ६० नागरा, ६१ धाकरा, ६२ कम्बराह, ६३ जालुराह, ६४ बालमीक, ६५ भागर, ६६ पमार, ६७ लाड़, ६८ चोड़, ६९ कोड़, ७० गोड़, ७१ मोड़, ७२ संभर, ७३ खण्डिप्रात, ७४ श्रीखण्ड, ७५ चतुर्थ, ७६ पञ्चम, ७७ रत्नकार, ७८ भोगकार, ७९ नार, ८० सिंवपुरी, ८१ जम्बूवाल, ८२ पल्लीवाल, ८३ परवार और ८४ श्रीश्रीमाल।

जैनी (हिं० पु०) जैन मतावलम्बी, जैन।

जैनीसाधु—'सरधा अलखवारी' नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता। ये जैनधर्मावलंबी थे।

जैनेन्द्र—एक व्याकरणरचयिता और अष्टादश आदि शाब्दिकोंमेंसे एक।

जैनेन्द्रस्वामी—पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिकाके रचयिता दिगम्बर जैनाचार्य। उक्त पुस्तककी श्लोकसंख्या ३०००० है।

जैनेन्द्रकिशोर—हिन्दीके एक ग्रन्थकार। ये आराके जमींदार और अग्रवाल जैन थे। आप आराकी नागरी प्रचारणी-सभा और ग्रंथसमालोचक-सभाके उत्साही कार्यकर्त्ता थे। इनकी बनाई हुई कमलावती, खगोल-विज्ञान, मनोरमा, सोमा सती आदि पुस्तकें मुद्रित हो चुकी हैं। लगभग १९६४ संवत्में इनकी मृत्यु हुई।

जैनेन्द्रव्याकरण—एक प्राचीन व्याकरण। उसके रचयिताके विषयमें कुछ मतभेद पाया जाता है। कोई कोई कहते हैं कि पूज्यपाद स्वामीने इस ग्रंथकी रचना की है। डा० किलहर्न साहबका कहना है कि, प्रसिद्ध वैयाकरण देवनन्दि द्वारा यह पुस्तक रची गई है। कोई कोई कहते हैं कि, पूज्यपाद और देवनन्दि दोनों एक ही व्यक्ति हैं; परन्तु पण्डित फतेलालके मतसे दिगम्बर जैनाचार्य देवनन्दि और पूज्यपाद पृथक् पृथक् व्यक्ति है। पण्डित फतेलालका कहना है कि, दिगम्बर जैनगुरु पूज्यपाद द्वारा यह ग्रन्थ पढ़ा गया है।

कुछ भी हो, अब यह निर्णय हो गया है कि देव-

नन्दि और पूज्यपाद स्वामी दोनों एक ही व्यक्ति और दिगम्बर जैनाचार्य हैं तथा इन्होंने जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की है। विशेष प्रमाण यह है कि, इनके बनाये हुए सर्वार्थसिद्धि इष्टोपदेश, समाधिशतक आदि ग्रन्थ और भी प्राप्त हैं जो दिगम्बर सम्प्रदायके हैं।

१२०५ ई०में सोमदेवाचार्यने शब्दार्णवचन्द्रिका नामक एक भाष्य बनाया है। उन्होंने पहले ही तीर्थंकर और पूज्यपाद गुणनन्दिदेवको नमस्कार कर ग्रन्थसूचना लिखी है। जैनेन्द्र व्याकरणकी प्रक्रियाके कर्त्ता देवनन्दिके प्रशिष्य गुणनन्दि हैं इन्होंने अपनी प्रक्रियाका नाम जैनेन्द्रप्रक्रिया रक्खा है। यह ग्रन्थ वर्तमानके समस्त जैनविद्यालयोंमें पढ़ाया जाता है, तथा कलकत्ताके संस्कृत विश्वविद्यालयके परीक्षालयमें भी प्रविष्ट है।

जैनेन्द्रभूषण—चंद्रप्रभपुराण—छन्दोवद्धके रचयिता जैन कवि। २ एक जैन भट्टारक। वि० सं० १७३३में ये विद्यमान थे। इन्होंने जिनेन्द्रमाहात्म्य, सम्म्र दशिखरमाहात्म्य, करकण्डुचरित्र आदि (संस्कृत और प्राकृत भाषामें) ग्रन्थ लिखे हैं।

जैन्य (सं० त्रि०) जैन स्वार्थे यत्। जैनसम्बन्धीय।

जैपाल (सं० पु०) जयपाल पृषोदरादित्वात् साधुः। जयपालवृक्ष, जमालगोटाका पेड़। जयपालका बीज, जमालगोटाका बीज। जमालगोटा देखो।

जैपत्र (हिं० पु०) जयपत्र देखो।

जैमङ्गल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका वृक्ष। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मेज कुरसी इत्यादि बनानेके काममें आती है। २ वह हाथी जो सिर्फ राजाकी सवारीका हो।

जैमाल (हिं० स्त्री०) जयमाल देखो।

जैमिनि (सं० पु०) मुनिभेद। ये कृष्णद्वैपायनके शिष्य थे। इन्होंने व्यासदेवके पास सामवेद और महाभारत की शिक्षा पाई थी। इनकी बनाई हुई भारतसंहिता नामक पुस्तक जैमिनिभारतके नामसे प्रसिद्ध है। जैमिनिने एक दर्शनकी रचना की है जिसका नाम जैमिनिदर्शन वा पूर्वमीमांसा है। यह पूर्वमीमांसा षड्दर्शनमेंसे एक है। जैमिनिको व्यवहारकोंमें गिनती है।

इन्होंने द्रोणपुत्रोंसे मार्कण्डेयपुराण सुना था, इनके पुत्रका नाम सुमन्तु और पौत्रका नाम सुत्वान् है। इन तीनोंने वेदकी एक एक संहिता बनाई है। हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और अवन्त्य नामके तीन शिष्योंने उन संहिताओंका अध्ययन किया था।

जैमिनिदर्शन (सं० क्ली०) जैमिनिकृतं दर्शनं, कर्मधा०। मीमांसा वा पूर्वमीमांसा। यह बारह अध्यायोंमें विभक्त है, उसमें वेदकी मीमांसा और श्रुतिस्मृतिका विरोधभञ्जन है। यह शास्त्रज्ञानका द्वारस्वरूप है। इसमें न्यायशास्त्रका पथ अवलम्बन कर वेदके विषय और प्राधान्यकी मीमांसा की गई है। मीमांसा देखो।

जैमिनिभारत—महर्षि जैमिनिप्रसिद्ध भारतसंहिता। इसका सिर्फ अश्वमेध पर्व ही मिलता है। बहुतोंका कहना है कि, इसके अन्यान्य पर्व इस समय हैं नहीं। परन्तु थे या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अश्वमेध पर्व जो मिलता है, वह महाभारतीय अश्वमेधपर्वकी अपेक्षा विस्तृत है और उसमें अनेक नवीन घटनाओंका वर्णन मिलता है।

जैमिनीय (सं० त्रि०) १ जैमिनि सम्बन्धीय। (पु०) २ सामवेदकी एक शाखा।

जैमूत (सं० त्रि०) जीमूत सम्बन्धीय।

जैयट (सं० पु०) प्रसिद्ध महाभाष्यटीकाकार कैयटके पिता।

जैयद (अ० वि०) १ बहुत बड़ा, घोर, बड़ा भारी। २ बहुत धनी।

जैल (अ० पु०) १ दामन, अंगे, कोट, कुर्ते, इत्यादिका नीचेका भाग। २ निम्न भाग, नीचेका स्थान। ३ पंक्ति, समूह, सक। ४ इलाका, हलका।

जैलदार (अ० पु०) सरकारी कर्मचारी जिसके अधिकारमें कई गांवोंका प्रबन्ध हो।

जैव (सं० त्रि०) जीवस्येदं जीव-अण्। १ जीवन सम्बन्धीय। २ वृहस्पति सम्बन्धीय। (पु०) ३ वृहस्पतिके क्षेत्रमें धनु और मीन राशि। ४ पुष्यानक्षत्र। ५ पुष्यानक्षत्रपात।

"कृतादिचन्द्राः जैवस्य त्रिखाकाश भृगोस्तथा।" (सूर्य्यसि०)

जैवलायन (सं० पु० स्त्री०) जीवलस्य गोत्रापत्यं वा

फञ्। जीवन्त ऋषिके गोत्रापत्य, एक यजुर्वेद प्रचारक।

जैवन्तायनि (सं० त्रि०) जीवन्तस्यादूरदेशादि, कर्णादित्वात् चतुरर्थ्यां फिञ्। जीवन्तका अदूर देशादि।

जैवन्ति (सं० पु०) जीवन्तका अपत्य।

जैवलि (सं० पु०) जीवलस्य राज्ञोऽपत्यं, जीवल-इञ्। जीवलराजका अपत्य, जीवल राजाके वंशज, ये प्रवाहण नामसे प्रसिद्ध हैं।

"तं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्यसाम।"
(छान्दोग्य उ०)

जैवातृक (सं० पु०) जीवयति ओषधिप्रभृतीनि, जीव-णिच्-आतृक-कन्। आतृकन् वृद्धिश्च। उण् १।८१। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर। ३ पुत्र, बेटा। ४ औषध, दवा। ५ दर्भ, कुश। (त्रि०) ६ दीर्घायुष्क, दीर्घायु, बहुत दिनोंतक बचनेवाला। ७ कृश, दुबला।

जैवि (सं० त्रि०) जीवस्यादूर देशादि, सुतङ्गमादित्वात् चतुरर्थ्यां इञ्। जीवका अदूर देशादि।

जैवेय (सं० पु० स्त्री०) जीवस्य गुरोरपत्यं शुभ्रादित्वात् ढक्। १ बृहस्पतिके पुत्र कच। जीवाया मौर्व्या इदं, स्त्रीत्वात् ढक्। (त्रि०) २ ज्या सम्बन्धी।

जैष्णव (सं० त्रि०) विष्णु सम्बन्धी, अर्जुनसम्बन्धी।

जैस—युक्त प्रदेशस्थ रायबरेली जिलेकी सलोन तहसीलका शहर। यह अक्षा० २६° १६´ उ० और देशा० ८१° ३२´ पू० में अवध रुहेलखण्ड रेलवे पर पड़ता है। लखनऊसे सुलतानपुर जानेवाली रास्ता यहां ही करके निकली है। लोकसंख्या प्रायः १२६८८ है।

कहते हैं, यह प्रकृत रूपसे उदयनगर वा उजालिका नगर नामक भार दुर्ग था। सैयद सलारने उस पर आक्रमण किया और यह नाम रख दिया। जुम्मा मसजिदकी इमारत बहुत बड़ी है। किसी हिन्दू मन्दिरके मसालेसे वह बनी थी। इसकी दूसरी मनोहर अट्टालिकाएं खृष्टीय १७ वीं और १८ वीं शताब्दीमें निर्मित हुईं। यहां पद्मावती काव्य-प्रणेता मुहम्मद जैसीने जन्म लिया था। प्रायः १६ वीं शताब्दीमें वह जीवित थे। पहले यहां बहुत अच्छी मलमल तैयार होती थी।

जैसा (हिं० वि०) १ जिस आकृति वा गुणका, जिस प्रकारका। २ जिस परिमाणका, जितना। ३ समान, सदृश, बराबर। (क्रि०-वि०) जिस परिमाणमें, जिस मात्रामें, जितना।

जैसी (हिं० वि०) जैसाका स्त्रीलिङ्ग। जैसा देखो।

जैसे (हिं० क्रि०-वि०) जिस प्रकारसे, जिस ढंगसे।

जैह्माशिनि (सं० पु०) जिह्माशिनोऽपत्यं, शुभ्रादित्वात् ढक्, टाणिडना० नि० टिलोपः। जिह्माशिनका अपत्य।

जैह्म्य (सं० क्ली०) जिह्मस्य भावः जिह्म-ष्यञ्। जिह्मता, कुटिलता, टेढ़ापन। यह जातिभ्रंशकर महापातकमें गण्य है।

"जैह्मयस्य मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतं"। (मनु० ११।६८)

निषिद्ध द्रव्य भक्षण, मिथ्याकथन और जैह्म्य प्रभृति सुरापानके समान पापजनक है।

"निषिद्धभक्षणं जैह्मयमुत्कर्षेश्च वचोऽनृतम्।।"
रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानि तु।।" (याज्ञवल्क्य)

जैह्व (सं० त्रि०) जिह्वा सम्बन्धी, जो जीभमें स्थित हो।

जैह्व्य (सं० क्ली०) जिह्वा सम्बन्धीय।

"औपस्थ्यजैह्वं बहु मन्यमानः"। (भाग० ७।६।११)

जोंक (हिं० स्त्री०) १ एक प्रसिद्ध कीड़ा, जो पानीमें रहता और जीवोंके शरीर पर चिपक कर उनका रक्त चूसता है। इसके संस्कृत पर्याय—जलौका, रक्तपा, जलौकस्, जलूका, जलौका, जलोरगी, जलायुका, अलिका, जलासुका, जलजन्तुका, जलालोका, जलौकसी, रक्तपायिनी, रक्तसन्दंशिका, तीक्ष्णा, वमनी, जलजीवनी, रक्तपाता, वेधनी, जलसर्पिणी, जलसूची, जलाटनी, जलाका, जलपटालिका, जलिका, जलालुका, अम्बुसर्पिणी, पटालुका, वेणीवेधनी और जलालिका। सुश्रुतके मतसे, जल ही जिनकी आयु है अथवा जल ही जिनका वासस्थान है, उनको जलौका वा जोंक कहते हैं।

सुश्रुतके मतसे—जोंक बारह प्रकारकी होती है; जिनमें कृष्णा, अलगर्दी, इन्द्रायुधा, गोचन्दना, कर्बुरा और सामुद्रिक ये छः प्रकार तो विषयुक्त तथा कपिला, पिङ्गला, शङ्कुमुखी, मूषिका, पुण्डरीकमुखी और सावरिका ये छः प्रकार विषरहित हैं। कृष्णा स्याह काली होती है और इसकी शिरायें मोटी होती हैं।

अलगर्दा—अत्यन्त रोमयुक्त, वृहत् पार्श्वयुक्त और काले मुंहवाली होती है। इन्द्रायुधा-इन्द्रधनुषकी भांति ऊर्ध्व रोमराजि द्वारा विचित्र होती है। गोचन्दना—गोवृषके सींगोंकी तरह दो भागोंमें विभक्त और छोटे मस्तक वाली होती है। कर्बुरा—वाइन (१) मछलीकी तरह लम्बी, कुक्षिदेश छिन्न और उन्नत होता है। सामुद्रिक—कृष्ण और कुछ पीतवर्ण और विचित्र पुष्पाकृति होती है। मनुष्यके शरीर पर इन विषाक्त जोंकोंके काटनेसे दष्ट स्थान फूल जाता है, खुजली मचती है, मूर्च्छा, ज्वर, दाह, वमन, मनमें विकृति भाव और शरीरमें अवसन्नता आ जाती है।

क प्रकार निर्विष जोंकोंमें कपिलाके दोनों पार्श्वका वर्ण मनःशिलारञ्जित जैसा है, पीठ मूंग जैसे रंगकी और चिकनी होती है। पिङ्गलाका शरीर गोलाकार रंग कुछ ललाईको लिए पिङ्गल और गति शीघ्र होती है। शङ्कुमुखीका रंग यकृत जैसा और आकार दीर्घ है तथा मुंह तीक्ष्ण होनेके कारण बहुत जल्दी शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है और थोड़े समयमें बहुत ज्यादा खून पीता है। मूषिकाका आकार और रङ्ग चूहे जैसा तथा इसका शरीर दुर्गन्धिविशिष्ट होता है। पुण्डरीकमुखीका रंग मूंग जैसा और मुंह पद्मके समान है। सावरिकाका शरीर चिकना, रंग पद्मपत्रकी भांति और लम्बाई १८ अङ्गुल है।

सुश्रुतका कहना है कि, विषाक्त मत्स्य, कीट, भेक, मूत्र और पुरीषके सड़ने पर उस गन्दे पानीमें जोंक पैदा होती है, वह सविष है तथा जो पद्म, उत्पल, नलिन कुमुद, श्वेतपद्म, कुवलय, पुण्डरीक और शैवालके सड़ने पर उस निर्मल जलमें पैदा होती है, वह निर्विष है। इनमें जो बलवान् है, शीघ्र रक्त पान करती और अधिक भोजन करती हैं तथा शरीर भी जिनका बड़ा है, उन्हें निर्विष समझना चाहिये। यवन, पाण्ड्य, सह्य, पौण्ड्र आदि देश इनके वासस्थान हैं। ये मीठे और सुगन्धित जलमें विचरण किया करती हैं। सङ्कीर्ण स्थानमें चरती नहीं और न पङ्कमें सोती हैं। (सुश्रुत सूत्रस्थान)

इस भूमण्डल पर सभी देशोंमें जोंक देखनेमें आती है। भिन्न भिन्न देशोंमें इसके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। अरब देशमें इसको साधारणतः आलुक कहते हैं और पारस्य देशमें जेलू। इङ्गलैण्डमें इसे लिच (Leech) कहते हैं। जोंके नानाप्रकारकी हैं और इनमें आकृतिसम्बन्धी वैषम्य इतना अधिक है कि इनके सहसा देखनेसे यही निश्चय होता है कि ये भिन्न जातीय हैं, किन्तु प्रकृतिगत सादृश्यके कारण इनको एक जातिके अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। यूरोपीय प्राणितत्त्वविदोंने साधारणतः आनेलिडा (Annelida) नामसे इनका उल्लेख किया है। परन्तु बैरन कुवियर नामक किसी विद्वान्ने आनेलिडा और साधारण जोंकको विभिन्न श्रेणीका बतलाया है। आनेलिडा जातिकी पैदाइश अण्डेसे है, परन्तु साधारण जोंक किसी दूसरी जोंकके निकाले हुए त्वक्गत बीजकोषसे पैदा होती है। कुछ भी हो, 'आनेलिडा' नाना श्रेणियोंमें विभक्त है और उस जातिके अन्तर्भुक्त हिरुडिनाइडि (Hirudinidae) श्रेणीसे डेला (Bdella), हिमाडिप्सा (Haemadipsa), सांगुइसिउगा (Sanguisuga) आदि जोंकें उत्पन्न होती हैं, जो भिन्न भिन्न स्थानोंमें—कुछ साफ पानीमें, कुछ सुनखरे पानीमें और कुछ जल स्थल दोनों जगह वास करती हैं। वैद्य लोग विशेष विशेष व्याधियोंको शान्त करनेके लिए समय समय पर जिन जोंकोंका प्रयोग करते हैं, वे सब इसी हिरुडिनाइडि श्रेणीके अन्तर्गत हैं। इस जातिकी जोंक भारतवर्षके नाना स्थानोंमें रुद्ध-प्रवाह पङ्कपूर्ण जलाशयोंमें पायी जाती हैं।

चीनदेशमें सेभिगनि नामक एक प्रकारकी जोंक है जिसकी चमड़ी कई रंगोंसे रञ्जित है। चीनदेशके अन्तःपाती सानुटङ्ग प्रदेशमें एक प्रकारकी जोंक देखनेमें आती है, जिसकी लम्बाई १ फुट है। मलबार उपकूलमें समुद्रसे करीब ५००० फुट ऊंचे स्थान तक जोंकें दृष्टिगोचर होती हैं। वर्षाऋतुमें जोंकें ज्यादा दीख पड़ती हैं। इस समय किसी वन्यप्रदेशमें भ्रमण करनेसे जोंकोंके मारे नाकोदम आ जाती है। बहुत पहलेसे ही हिन्दूगण जोंक और उसके गुणोंसे परिचित थे। अरबी ग्रन्थोंमें भी जोंकका वर्णन देखनेमें आता है। कुछ जोंकें तो अत्यन्त जहरीली और कुछ मनुष्योंका उपकार पहुंचानेवाली हैं।

भारतवर्षके पश्चिमप्रान्तमें दो प्रकार विभिन्न श्रेणीकी जोंकें देखनेमें आती हैं। एक श्रेणीकी जोंकको लम्बाई एक इञ्च, वर्ण हरा और पीठ पर सात धारियां होती हैं, किन्तु असितवर्णकी कोई रेखा नहीं है। इनकी बारह आंखें हैं और वे चार रेखाओंमें विन्यस्त हैं। इस श्रेणीकी जलौका पानीमें रहती है; अन्य श्रेणीकी जोंक १ इञ्चके लम्बाईमें ½ अंशसे ज्यादा नहीं होती। रंग तांबेकी भांति रक्ताभ, पीठ पर एक बड़ी कालेरंगकी धारी और तमाम शरीर पर काली काली धारियां होती है। इनको दश आंखें हैं और वे अर्द्ध वृत्ताकारमें विन्यस्त हैं। इनके ओष्ठ चिकने होते हैं। इस जातिकी जोंकें जमीन पर रहती हैं। अन्तमें जिस श्रेणीकी जलौकाका वर्णन किया गया है, उस श्रेणीकी जोंक भारतवर्षके पश्चिम प्रान्तमें तथा सिंहलद्वीप और मादागास्करमें बहुतायतसे होती हैं। इनको मथिरान (Matheran) जोंक कहते हैं। इस जातिकी जोंकें इतनी रक्तपिपासु होती हैं कि यदि कोई इनके वासस्थानके पाससे निकले तो उसके शरीरसे इतना रक्त खींच लेती हैं कि, क्षतस्थान अन्तमें सड़ जाता है और पीब बहने लगता है।

इस श्रेणीकी जोंक भीगे हुए किन्तु उष्ण स्थानमें ज्यादा पायी जाती हैं। डा० हुकरने अपने 'सिकिमभ्रमणवृत्तान्त'में लिखा है कि कई समय स्थान अथवा पर्वतके ऊपर जहां उन्होंने भ्रमण किया है, वहीं इस श्रेणीकी जोंक बहुतायतसे देखनेमें आई हैं। उनके भ्रमणके समय सिरसे लगा कर पैर तक जोंकोंसे आच्छन्न हो गया था और इस कारण उनके शरीर पर जो क्षत हुए थे, उनके आरोग्य होनेमें पांच मास समय लगा था। वर्षाऋतुमें जोंकोंकी संख्या बढ़ती है और उनके उपद्रवोंसे रोगोंका भी आक्रमण होने लगता है। कभी कभी जोंक मनुष्य और पशु आदिके शरीरमें प्रविष्ट हो जाती हैं जिससे उन्हें मौतका मेहमान बनना पड़ता है। पानीके साथ भी यह पशु आदिके शरीरमें प्रविष्ट होती हैं। डा० हुकरका कहना है कि, पैरके तलवे पर भस्म अथवा तंबाकूका प्रयोग करनेसे जोंक पासमें नहीं आने पाती; नमक भी इस कामके लिए उपयोगी है। भैषज्यमें व्यवहारके लिए दाक्षिणात्यके पश्चिमप्रान्तमें एक श्रेणीके हिन्दू गरमियोंमें जोंक पालते हैं। मंद्राज और बङ्गालमें एक प्रकारकी जोंक देखनेमें आती है जो ज्यादा कीमतमें बिका करती है।

आगराके मध्यवर्ती शेखुआबादके आसपासके जलाशयोंमें एक तरहकी जोंक होती है जो 'शेखुआबादी जोंक'के नामसे प्रसिद्ध है। इस जोंकका रंग हरा होता है और इसके शरीर पर पीले रङ्गकी उजली धारियां होती हैं।

पञ्जाब प्रान्तमें पाटियालाके निकटवर्ती स्थानोंमें भी बहुत जोंकें दीख पड़ती हैं। इसके सिवा उबार नामकी और भी एक तरहकी जोंक होती है। यूरोपमें वायुप्रवेशार्थ सूक्ष्म आवरण-विशिष्ट जलपूर्ण पात्रमें तथा भारतवर्षमें आर्द्र कर्दमावृत मृत्पात्रमें जलौका रक्खी जाती हैं। भारतवर्षके दक्षिणप्रान्तमें प्रायः जो जलाशय गरमियोंमें सूखते नहीं और जिनका पानी नुनखरा नहीं, ऐसे जलाशयोंमें ही जोंक दीख पड़ती हैं।

साधारण जलाशयोंकी जोंकें समुद्रकी जोंकोंसे बिलकुल भिन्न आकृतिकी है। समुद्रकी जोंकोंका चमड़ा मजबूत होता है; यह साधारण जोंकोंकी तरह समुद्रमें शीघ्रतासे अथवा अच्छी तरह चल फिर नहीं सकती, किन्तु इच्छानुसार शरीर संकुचित वा वर्द्धित कर सकती है। विशेषतः अन्य जोंकोंसे इसकी आकृतिमें बहुत कुछ वैषम्य दृष्ट होता है। विज्ञान-शास्त्रमें सामुद्रिक जलौकाका अल्बियोन (Albion) नामसे उल्लेख है। और एक प्रकारकी सामुद्रिक जोंक है, जो ब्राङ्केलियन् (Banchellion) कहलाती है।

अल्बिओन् जोंकको देह कड़ी होती है, श्वासयन्त्र पृथक् नहीं होता, कारण यह चमड़ीके भीतरसे ही श्वासक्रिया सम्पन्न करती हैं। मछलीके जिस जगह रक्ताधार होता है, ब्राङ्केलियन उसी तरफसे चिपट कर रक्तशोषण करती है। सामुद्रिक जलौकाकी रक्तशोषप्रणाली एकसी नहीं है। अलबिओन् जोंकें प्रायः चर्म छेदन करती हैं, किन्तु शेषोक्त जोंकें चमड़ेको काट डालती हैं। ये दिनमें आलस्यमें पड़ी रहती हैं और रात्रि होते ही जिसके शरीरसे चिपट जातीं, उसीका रक्त शोषण करती हैं।

सामुद्रिक जोंक रक्तवर्ण और शोणितप्रिय हैं, इसलिए शम्बूक अथवा अन्य किसी प्राणी पर आक्रमण न कर सर्वदा मछलीका खून पीनेके लिए कोशिश करती रहती हैं। इन्हें जितना खून मिले, उतना ही पी सकती है। आश्चर्यकी बात है कि जोंकके काफी खून पीने पर भी मछलियां दुर्बल नहीं होतीं, सिर्फ भूख बढ़ जाती है और कभी कभी उससे मछलियां परिपुष्ट होती हैं। ये जोंकें मछलियोंके शारीरिक यन्त्रोंको छिन्न नहीं करतीं, इसलिए उनके जीवनमें कुछ क्षति नहीं पहुंचती।

अलबिओन् जोंकको पैदाइश अण्डेके बीजकोषमें है। एक एक जोंक एकदम लगातार पचास तक अण्डे देती है। इन अण्डोंके बीजकोष वर्तुलाकार होते हैं, जिनका व्यास एक इञ्चका पञ्चमांश होता है। इन वर्तुलोंका बहिरावरण अत्यन्त सूक्ष्म और अण्डेका रङ्ग सफेद होता है। अण्डेके फटनेका समय जितना ही नजदीक आता जाता है, उतना ही इसका वर्ण पिङ्गल होता जाता है। अन्य जलाशयोंकी जोंकोंके अण्डे पर किसी तरहका आवरण नहीं होता। सामुद्रिक जोंक अण्डेके ऊपरी हिस्सेको फाड़कर बाहर निकलती है, किन्तु अन्य प्रकारकी जोंकके निकलते समय अण्डेके दोनों अंश अपने आप फट जाते हैं।

मुसलमान लोग व्याधि निवारणार्थ ज्यादातर जोंकका प्रयोग करते हैं, उन लोगोंने इसका व्यवहार हिन्दुओंसे सीखा था।

किसी किसी जगह जलौकाको मधुके साथ उत्पन्न करके जिह्वामूलीय ग्रन्थोंमें प्रयुक्त किया जाता है तथा जलौकाको सुखाकर मुसब्बरके साथ उसका चूर्ण बनाकर व्यवहार करनेसे रक्तार्श (Hamosrhoids) शान्त होता है। जलौकाको उबालकर उसका चूर्ण मस्तक पर लगानेसे केश उत्पन्न हो सकते हैं।

आर्यचिकित्सकगण वातपित्त वा कफसे रक्त दूषित होने पर जोंक द्वारा रक्तमोक्षण ही हितकर बतलाते थे। इसलिए जलौकाकी जाति और रक्षणप्रणाली आदिका वृत्तान्त इस देशके लोगोंको बहुत पहलेसे ही मालूम था। यही कारण है कि सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें, कैसे जोंक पैदा की जाती है, कैसे उन्हें पाला जाता है आदि विषय वर्णित है।

सुश्रुतके मतसे—भीगे चमड़े वा अन्य किसी चीजसे जोंक पकड़ी जाती है। फिर सरोवर अथवा बहुत पुष्करणीके पानी और पङ्कसे एक नये घटको भरकर उसमें जोंक छोड़ दी जाती है। शैवाल, शुष्कमांस और जलज मूलको चूर्ण करके उन्हें खिलाना चाहिये। सोनेके लिए तृण वा जलजात पत्ते देने चाहिये। दो तीन दिन बाद जल और भक्ष्य द्रव्योंको बदल देना चाहिये। सप्ताह सप्ताह घटपरिवर्तन करना चाहिये।

जिन जोंकोंका मध्यभाग स्थूल हो, जो अति क्षीण अथवा स्थूलताके कारण धीरगामी, अल्पपायी, विषाक्त और शीघ्र पीड़ित स्थानको पकड़ती नहीं, ऐसी जोंकें रक्तमोक्षणके लिये प्रशस्त नहीं हैं। विषाक्त जोंकके काटने पर महागद नामकी औषध पीनी चाहिये।

सावरिका नामकी जोंक हाथी, घोड़ों आदिके रक्तमोक्षणके लिये प्रशस्त है। जो निर्विष जोंक शीघ्र रक्त शोषण कर सकती है, उसी जोंकके द्वारा मनुष्यादिका रक्तमोक्षण करना चाहिये।

रक्त मोक्षण करानेसे पहिले पीड़ित व्यक्तिको लिटना वा बैठ जाना चाहिये। पीड़ित स्थान यदि वेदनारहित हो, तो उस स्थानपर सूखा गोबर और मिट्टीका चूरा रगड़ देना चाहिये। बादमें जोंक लाकर सरसों और हलदीका शिलापिष्ट कल्क पानीमें मिलाकर उसके शरीर पर पोत देना चाहिये। अनन्तर क्षण भरके लिये उसे एक जलपात्रमें रखकर पीड़ित स्थान पर लगाना चाहिये। लगाते समय बारीक सफेद और भीगे, हुए उमदा कपड़े वा रूईसे उस जोंकको ढक रखना चाहिये और सिर्फ मुंहको खोल देना चाहिये। यदि जोंक चिपटे नहीं, तो उसे एक बिन्दु दुग्ध वा रक्त पिलाना चाहिये अथवा अस्त्रद्वारा छोड़ना चाहिये; इस पर भी यदि न चिपटे तो दूसरी जोंक लगानी चाहिये। घोड़ेके खुरके समान मुख और स्कन्ध ऊंचा करके भीतर मुख प्रविष्ट होनेपर समझना चाहिये कि उसने पकड़ लिया। जिस समय पकड़े रहे, उस समय भीगे कपड़ेसे उसको ढककर बीच बीचमें उसपर पानी छोड़ते रहना चाहिये। रक्त पीते समय दष्ट स्थानमें पीड़ा वा खुजली होनेपर समझें कि अब विशुद्ध रक्त पी

रही है ; उसी समय जोंकको शरीरसे अलग कर देना चाहिये। यदि न छोड़े, तो उसके मुंहपर सैन्धव लवण डालना चाहिये। बायें हाथके अंगुष्ठ और तर्जनी द्वारा पकड़कर दाहिने हाथके अंगुष्ठ और तर्जनी द्वारा धीरे धीरे पूंछसे लगाकर मुंहकी तरफ मूतकर वमन करना चाहिये। जबतक सब वमन न कर दे, तबतक ऐसा करते रहना चाहिये। अच्छी तरह वमन हो जानेपर पानीमें क्षुधातुर हो तड़फती रहती है, नहीं तो चुपचाप पड़ी रहती हैं। वमन न करानेसे जोंकको 'इन्द्रमद' नामक एक प्रकार असाध्य व्याधि हो जाती है। संपूर्ण वमन करने पर उसे पुन: उस घटमें छोड़ देना चाहिए।

दष्ट स्थानमें दूषित रक्त और भी है या नहीं, इसकी परीक्षा करके उस स्थान पर मधु लेपन और शीतल जल छिड़क देना चाहिये अथवा उस क्षतके ऊपर कषाय मधुर रस और घृतयुक्त शीतल आलेपनका प्रलेप बांध देना चाहिये।

२ चीनी साफ करनेका छनना जो सेवारसे बनाया जाता है। ३ वह आदमी जो बिना अपना काम निकले पिण्ड न छोड़े, वह जो अपना मतलब वा काम निकालनेके लिए बेतरह पीछे पड़ जाय।

जोंकी (हिं० स्त्री०) १ पशुओंके पेटको जलन। यह पानीके साथ जोंक उतर जानेके कारण होती है। २ दो तख्तोंको दृढ़तासे जोड़नेका लोहेका एक प्रकारका कांटा। ३ पानीमें रहनेवाला एक प्रकारका लाल कीड़ा। ४ जोंक देखो।

जोंदरो (हिं० स्त्री०) जोंधरी देखो।

जोंधरो (हिं० स्त्री०) १ छोटी ज्वार। २ बाजरा।

जोंधैया (हिं० स्त्री०) चन्द्रिका, चांदनी।

जो (हिं० सर्व०) १ एक सम्बन्ध वाचक सर्वनाम। इसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनामके वर्णनमें कुछ और वर्णनकी योजना की जाती है। (अव्य०) २ यदि, अगर।

जोक (हिं० स्त्री०) जोंक देखो।

जोखना (हिं० क्रि०) तौलना, वजन करना।

जोखा (हिं० पु०) लेखा, हिसाब।

जोखिम (हिं० स्त्री०) १ विपत्तिकी आशङ्का। २ वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति आनेकी सम्भावना हो।

जोगंधर (हिं० पु०) शत्रुके चलाए हुए अस्त्रसे अपना बचाव करनेकी एक युक्ति। श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रसे यह युक्ति सीखी थी।

जोग (हिं० पु०) योग देखो।

जोग—तिरहुतवासी मैथिल ब्राह्मणोंका तृतीय भेद, जो श्रोत्रियोंके साथ सम्बन्ध करके नीच श्रेणीसे उच्च श्रेणीको प्राप्त होते हैं, उन्हें जोग कहते हैं।

जोगड़ा (हिं० पु०) पाखण्डी, बना हुआ योगी।

जोगराय संन्यासी—हिन्दीके एक कवि। ये बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। १८२२ संवत्‌में इन्होंने जोगरामायण नामक एक हिन्दी ग्रन्थ रचा था।

जोगवना (हिं० क्रि०) १ रक्षित रखना, हिफाजतसे रखना। २ सञ्चित करना, एकत्र करना, बटोरना। ३ आदर करना, लिहाज़ रखना। ४ जाने देना, कुछ परवाह न करना। ५ पूर्ण करना, पूरा करना।

जोगसाधन (हिं० पु०) योगसाधन देखो।

जोगा (हिं० पु०) अफीमका गूदड़, अफीमका छाना हुआ मैल।

जोगानल (हिं० स्त्री०) योगानल, योगसे उत्पन्न आग।

जोगिन (हिं० स्त्री०) १ जोगीकी स्त्री। २ साधुनी, विरक्त औरत। ३ पिशाचिनी। ४ रणदेवी। यह लड़ाईमें कटे मरे मनुष्योंके रुण्ड मुंडको देख कर आनन्दित होती है और मुंडोंकी गेंद बना कर खेलती है। ५ नीले रङ्गका फूल देनेवाला एक प्रकारका झाड़ीदार पौधा। ६ योगिनी देखो।

जोगिनिया (हिं० स्त्री०) १ लाल रंगकी एक प्रकारकी ज्वार। २ आमका एक भेद। ३ अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल कई वर्षों ठहर सकता है।

जोगिनी (हिं० स्त्री०) १ योगिनी देखो।

जोगिया (हिं० वि०) १ जोगी संबन्धी, जोगीका। २ गैरिक, गेरूके रंगमें रंगा हुआ। ३ जो गेरूके रंगका हो।

जोगी (हिं॰ पु॰) १ योगी, वह जो योग करता हो। २ एक प्रकारके भिक्षुक। ये सारंगी ले कर भर्तृहरिके गीत गाते और भीख मांगते हैं। ये गेरुआ वस्त्र पहने रहते हैं।

जोगीगोफा—आसाम प्रान्तके ग्वालपाड़ा जिलाका एक गांव। यह अक्षा॰ २६° १४' उ॰ और देशा॰ ९०° ३४' पू॰में ब्रह्मपुत्रके उत्तर तटस्थ मानसके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ७३४ है। ग्वालपाड़ेसे जहाज आता जाता है। आसाम अंगरेजी राज्यभुक्त होनेसे पहले बङ्गाल सीमाकी यहां एक चौकी थी। बहुतसे युरोपियन भी रहते थे। जोगीगोफामें बिजनी राज्यकी एक तहसील है।

जोगीड़ा (हिं॰ पु॰) १ वसन्त ऋतुमें गाये जानेका एक प्रकारका चलता गाना। २ गायकोंका एक समाज। इसमें एक गानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं। गानेवाला लड़का योगीसा आकार बनाये रहता है। ३ इस समाजका कोई मनुष्य।

जोगीश्वर (हिं॰ पु॰) योगीश्वर देखो।

जोगू (सं॰ त्रि॰) स्तोता, स्तुति करनेवाला।

जोगीरू—दाक्षिणात्यवासी एक प्रकारके भिक्षुक। ये अपनेको योगी कहते हैं। इस श्रेणीके भिक्षुक धारावार जिलेमें प्राय: सर्वत्र देखनेमें आते हैं। बागलकोट, बलबुत्ति, बुड़बुगी आदि स्थानोंमें ही इनकी अधिकता है। ये बहुत प्राचीन अधिवासी हैं। बागलकोट आदि स्थानोंके जोगीरूओंमें साधारणत: पुरुषोंकी उपाधि नाथ है।

यह जोगीरू जाति दश कुलोंमें विभक्त है—बावनी, भण्डारी, चुनाड़ी, हिङ्गमरी, करफटरी, कांमार, मदरकर, पर्वलकर, साली और वतकर। इनके विवाह आदि उत्सवोंमें उक्त दश श्रेणीयोंमेंसे प्रत्येक श्रेणीके एक एक प्रतिनिधि उपस्थित होते हैं। इन दश श्रेणियोंके प्रत्येक व्यक्ति गोरखनाथके बारह शिष्य जिन्होंने बारह भागोंकी स्थापना की थी, उनमेंसे किसी एकके अन्तर्भुक्त हैं।

जोगीरूगण भैरव और सिद्धेश्वर इन दो गृहदेवताओंकी पूजा करते हैं; रत्नगिरिके पास भैरवमन्दिर विद्यमान है। ये प्रायः कनाड़ी और मराठी दोनों भाषाओंमें बात-चीत करते हैं। ये चार विभागोंमें विभक्त हैं—भैरवी योगी, किन्द्री योगी, गमन योगी, और तबर योगी। भैरवी वा भैर और केन्द्री-योगियोंमें परस्पर विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं। इन योगियोंकी आकृति बुड़बुड़कियोंके सदृश है। ये अपरिष्कृत और अपरिच्छन्न कुटीरोंमें रहते हैं तथा कुत्ते, भेड़, मुरगी, सांड़ आदि पालते हैं। ये खानेमें बड़े उस्ताद हैं, पर रांधना अच्छी तरह नहीं जानते। ज्वारकी रोटी और शाक भाजी वगैरह इनका साधारण खाद्य है। ये विशेष विशेष उत्सवोंमें गेंहुकी पिष्टक मोटी चीनी और शाक खाते हैं। शाक, मेष, कुक्कुट, मत्स्य, हरिण, शशक आदि भक्षण करते हैं, परन्तु गो अथवा शूकरका मांस नहीं खाते। कभी कभी ये शराब भी पीते हैं; पहननेके कपड़े किसीसे मांग लेते हैं। पुरुष एक जाकिट और धोती पहना करते हैं तथा सिर पर एक छोटा कपड़ा लपेट लेते हैं। स्त्रियां अंगिया पहनती हैं

जोगीरू लोग शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंमें कुण्डल अंगूठी, हार, कांचकी चूड़ी और पीतलकी माला पहनते हैं। भीख ही इनकी प्रधान उपजीविका है। ये जगह जगह घूमा-फिरा करते हैं और मौका पाते ही जो कुछ हाथ पड़ता है, चुरा कर भाग जाते हैं। बागलकोट आदि स्थानोंके योगी सुई और कंगी बेचनेके लिए नाना स्थानोंमें घूमते हैं और जोतिवाके साधकोंसे कपड़े आदि मांग लेते हैं। रत्नगिरिके जोतिवा इनके प्रधान देवता हैं। जब ये भीख मांगनेके लिए निकलते हैं, उस समय कानमें मुद्रा नामके चांदीके कुण्डल पहनते तथा जोतिवका त्रिशूल और अलाबुनिर्मित पात्र साथ रखते हैं।

ये छोटा ढोल और तुरई बजाते हैं। जहां जहां जोतिव हैं, वहां पहुंचने पर ये "बालसन्तोष" ये शब्द उच्चारण करते हैं। ये बिलकुल अशिक्षित हैं, पर बड़े शान्त हैं।

जोगीरू कहते हैं कि, वे जड़ी-बूटी आदि बहुत पहिचानते हैं, उनसे अनेक प्रकारके रोगोंको आराम कर सकते हैं। ये कभी कभी गङ्गाके पहाड़से पत्थर ले आते हैं और उससे पथरी आदि बना कर बेचा करते हैं।"

आश्विन मासमें दशहरा और कार्तिक मासमें दिवाली, ये दो ही इनके प्रधान उत्सव हैं।

ये ब्राह्मणोंको खूब मानते हैं। इनके विवाहादि कार्य ब्राह्मण द्वारा होते हैं और और्ध्वदैहिक कार्य स्वजातीय लोग करते हैं। किसी किसी जोगुरूका विवाह-कार्य ब्राह्मण द्वारा और अन्यान्य कार्य कानफट बैरागी द्वारा होते हैं। ये तीर्थ-भ्रमण नहीं करते; आश्विन-मासके प्रारम्भमें पांच दिन तक प्रत्येक परिवारका एक व्यक्ति उपवास करता है। इनकी प्रत्येक श्रेणीमें एक एक धर्मोपदेशक हैं, वे कभी भी विवाह नहीं करते। शिष्यगण उनके लिए आहार संग्रह करते हैं। यह व्यक्ति अपनी मृत्युसे पहले अपने किसी भी प्रिय शिष्यको अपने पद पर मनोनीत कर सकता है।

साधारण जोगिरुओंके गुरु धर्मोपदेष्टाका नाम है भैरवनाथ, ये रत्नगिरिके पास बड़गनाथ पहाड़ पर रहते हैं। ये दयमव और दुर्गव नामके ग्राम्यदेवताओंकी पूजते और जादूविद्या, डाकिनीविद्या इत्यादि पर विश्वास रखते हैं। किसी किसी श्रेणीके जोगीरु भविष्यत्कथनविद्या और फलित ज्योतिष पर विश्वास करते हैं; किन्तु डाकिनी विद्या पर विश्वास नहीं करते। श्मशान और अन्यान्य स्थानोंमें भूतोंके आवास स्थल हैं, ऐसा इनको दृढ़ विश्वास है। सन्तानप्रसूत होने पर ये प्रसूति और सन्तान दोनोंको नहला देते हैं। पांचवे दिन नवप्रसूत सन्तानकी आयुर्वृद्धिके लिए षष्ठीदेवीकी पूजा करते हैं और सातवें दिन बच्चेका नाम रखते हैं। बुलबुलि आदिके जोगीरु बच्चा होने पर १२ दिन तक प्रसूतिको घी और भात खिलाते हैं, पीछे प्रसूति घरका काम काज करने लग जाती है। बारहवें दिन अपने जातिके लोगोंको निमन्त्रित कर पांच प्रकारके खाद्य-द्रव्य खिलाते और बच्चेका नाम रखते हैं। थोड़ी उम्रमें लड़कियोंका विवाह कर दिया जाता है; किन्तु विवाहका कोई समय नियत नहीं है। विवाह-सम्बन्ध ठीक करनेके समय किसी तरहका उपहार नहीं दिया जाता; सिर्फ कन्याका पिता कुछ स्वजातियोंके सामने अपनी कन्याका विवाह प्रस्तावित वरके साथ करेगा, इतना मञ्जूर करता है। ४ दिन तक विवाहका उत्सव रहता है। पहले दिन वर कन्याके घर जाता है; वहां दोनों पर तेल चढ़ाया जाता है। दूसरे दिन वरका पिता सबको निमन्त्रित कर जिमाता है; तीसरे दिन कन्याका पिता निमन्त्रण देता है और इसी दिन विवाह-कार्य सम्पन्न होता है। वर-कन्या दोनों नये कपड़े पहन कर अनाजसे भरे हुये दो डलीमें आमने सामने मुंह कर खड़े होते हैं। दोनोंके बीचमें एक ब्राह्मण पुरोहित हल्दीसे रंगा हुआ एक कपड़ा पकड़े रहता है और विवाहका मन्त्र उच्चारण करता हुआ दम्पतीके मस्तक पर धान्य निःक्षेप करता है। इस समय चार सुहागिन स्त्रियां आकर वर-कन्याके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं। ये दाहिने हाथकी उंगलीसे एक डोरीको पांच फेर दे कर बांधती हैं और मन्त्र-पाठ समाप्त होने पर उसके दो टुकड़े कर एक टुकड़ा वरके हाथसे और दूसरा टुकड़ा कन्याके हाथसे बांध देती हैं। चौथे दिन वरवधू दोनों ग्रामस्थ मारुति-मन्दिरमें आ कर एक नारियल तोड़ते हैं; पीछे दोनों मिल कर वरके घर आते हैं। ये मृत व्यक्तिको गाड़ते हैं। पांचवें दिन उस मृत व्यक्तिके लिए भोजन बना कर दिया जाता है। बारहवें दिन बन्धु-बान्धव और आत्मीयोंको भोज दिया जाता है। प्रथम मासमें ये मृत व्यक्तिका आकार बना कर उसकी आत्माकी उपासना करते हैं और प्रति वर्ष एक भोज देते हैं।

इनमें विधवा-विवाह और पुरुषोंका बहु विवाह प्रचलित है।

जोगीरुओंमें जातीय एकता अत्यन्त प्रबल है। सामाजिक विवाद-विसम्वादोंका विचार समाजके प्रधान व्यक्ति करते हैं। जो उनके विचारानुसार नहीं चलते, उनको समाजसे निकाल दिया जाता है।

ये अपनी सन्तानको विद्यालयमें नहीं पढ़ाते और न उन्हें जीविकानिर्वाहके लिए कोई नया उपाय ही सिखाते हैं।

बङ्गालमें शायद यह सम्प्रदाय जोगी नामसे प्रसिद्ध था। योगी देखो।

जोगेश्वर (सं० पु०) योगेश्वर देखो।

जोगेश्वरी—बम्बई प्रान्तके थाना जिलेमें सालसेट तालुका की एक गुहा। यह अक्षा० १८° १३´ उ० और देशा०

७२' ५८ पू०में बम्बई-बड़ोदा-सेण्ट्रल-इण्डिया रेलवेके गोरे गांव ष्टेशनसे २॥ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यह भारतकी ब्राह्मण-गुहाओंमें तृतीय स्थानीय है। लम्बाई २४० फुट और चौड़ाई २०० फुट पड़ती है। गुहामन्दिर ई० ७वीं शताब्दीमें निर्मित हुआ। इसमें पत्थर काट करके राहें निकाली गयी हैं। बीचमें एक बड़ा दालान है।

जोङ्ग (सं० क्लो०) जुङ्गति वर्ज्जति, जुगि वर्जने कम णि-अप्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कालीयक गन्धद्रव्य भेद, किसी किस्मका खुशबूदार पीला मुसब्बर। २ अगुरु, अगर। ३ काकमाची।

जोङ्गक (सं० क्लो०) जुङ्गति त्यजति महत्त्वं जुगि-ण्वुल्, पृषोदरादित्वात् साधुः। अगुरुचन्दन, अगर।

जोङ्गट (सं० पु०) जुङ्गति शरीवकार्तं परित्यजत्यनेन बाहुलकात् जुङ्ग-अटन्। गर्भिणीकी अभिलाष।

जोटिङ्ग (सं० पु०) जुटेन इङ्गति प्रकाशते इति अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः वा जुट-इन् जोटिं गच्छति गम-ड खिच्च। १ महादेव। २ महाव्रती।

जोड़ (सं० पु०) जुड़ बन्धने घञ्। १ बन्धन। २ लौह-विशेष, एक प्रकारका लोहा। ३ युग्म। ४ मिथुन। ५ तुल्य, समधर्मी।

जोड़ (हिं० पु०) १ गणितमें कई संख्याओंका योग, जोड़नेकी क्रिया। २ योगफल, वह संख्या जो कई संख्याओंको जोड़नेसे निकले, मीजान, टोटल। ३ किसी चीजमें जोड़ देनेका टुकड़ा। ४ वह सन्धिस्थान जहां शरीरके दो अवयव आ कर मिले हों। ५ मेल, मिलन। ६ समानता, बराबरी। ७ एक ही तरहकी दो चीजें, जोड़ा। ८ समान धर्म या गुण आदिवाला। ९ पहन-नेके कुल कपड़े, पूरी पोशाक। १० जोड़नेकी क्रिया या भाव। ११ छल दांव। १२ वह स्थान जहां दो या उनसे अधिक टुकड़े जुड़े वा मिले हों। १३ दो वस्तुओंके एकमें मिलनेके कारण सन्धिस्थान पर पड़ा हुआ चिह्न। १४ किसी चीज या काममें प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यकीय सामग्री।

जोड़ती (हिं० स्त्री०) कई संख्याओंका योग, जोड़।

जोड़न (हिं० पु०) जामन, वह पदार्थ जो दही जमानेके लिए दूधमें डाला जाता है।

जोड़ना (हिं० क्रि०) १ दो चीजोंको दृढ़तासे एक करना। २ किसी टूटे हुए पदार्थके टुकड़ोंको मिला कर एक करना। ३ संबन्ध करना। ४ प्रज्वलित करना, जलाना। ५ वर्णन प्रस्तुत करना, वाक्यों या पदों आदिकी योजना करना। ६ कई संख्याओंका योगफल निकालना। ७ किसी सामग्री वा चीजको सिलसिलेवार रखना वा लगाना। ८ एकत्र करना, संग्रह करना, इकट्ठा करना। ९ सम्बन्ध स्थापित करना। जैसे नाता जोड़ना, दोस्ती जोड़ना।

जोड़वाई (हिं० पु०) १ जोड़वानेकी क्रिया। २ जोड़नेका भाव। ३ जोड़वानेकी मजदूरी।

जोड़वाना (हिं० क्रि०) दूसरेसे जोड़नेका काम कराना।

जोड़ा (हिं० पु०) १ एक ही तरहके दो पदार्थ। २ दोनों पैरोंके जूते। ३ पहननेकी कुल पोशाक। ४ स्त्री और पुरुष। ५ नर और मादा। ६ वह जो एक आकारका हो। ७ एक साथ पहने जानेवाले दो कपड़े। जैसे—धोती दुपट्टा वा कोट पतलूनका जोड़ा।

८ जोड़ देखो।

जोड़ाई (हिं० स्त्री०) १ दो वा दोसे अधिक वस्तुओंको जोड़नेको क्रिया। २ जोड़नेकी मजदूरी। ३ दीवार आदिके बनानेमें ईंटों या पत्थरोंके टुकड़ोंके जोड़नेकी क्रिया

जोड़ासन्देस हिं० पु०) छेनेसे बनाई जानेवाली एक प्रकारकी मिठाई।

जोड़ी (हिं० स्त्री०) १ एक ही तरहके दो पदार्थ। २ एक साथ पहननेकी समस्त पोशाक। ३ दम्पती, स्त्री और पुरुष। ४ नर और मादा। ५ वह गाड़ी जो दो घोड़े या दो बैलोंसे खींची जाती है। ६ मँजीरा ताल। ७ वह जो समान धर्मका वा समान गुणका हो, वह जो बराबरीका हो, जोड़। ८ दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं।

जोड़ीकी बैठक (हिं० स्त्री०) मुगदरोंकी जोड़ी पर हाथ टेक कर किये जानेकी कसरत।

जोड़ू (हिं० स्त्री०) जोरू देखो।

जोत (हिं० स्त्री०) १ घोड़े बैल आदि जोते जानेवाले जानवरोंके गलेकी रस्सी। इसका एक सिरा जानवरके

गलेमें और दूसरा उस चोजमें बन्धा रहता है जिसमें जानवर जोता जाता है। २ तराजूके पल्लेमें लगी हुई रस्सी। ३ उतनी भूमि जितनी एक असामीको जोतने बोने आदिके लिये मिली हो।

जोतगोपालि—बङ्गालके मालदह विभागमें कोतवाली परगनेका एक बड़ा ग्राम।

जोतघरिब—बङ्गालके मालदह विभागमें कोवाली परगनेका एक बड़ा ग्राम।

जोतदार—१ वह असामी जो जोत वा किसी विस्तृत खेती करनेकी जमीनके जोतनेका अधिकार रखता हो अथवा जिसे जोतने बोनेके लिए कुछ जमीन (जोत) मिली हो।

२ उड़ीष्याके अन्तर्गत कटकके दक्षिण पूर्व कोनमें बहनेवाली एक छोटी नदी, जो महानदीकी खाड़ीमें जा मिली है। यह अक्षा० २०° ११' उ० और देशा० ८६° ३४' पू० में समुद्रमें जा मिली है।

जोतनरसिंह—बङ्गालके मालदह विभागमें कोतवाली परगनेका एक बड़ा ग्राम।

जोतना (हिं० क्रि० १ रथ, गाड़ी इत्यादिको चलानेके लिये उसमें बैल घोड़े आदिको बांधना। २ हल चलाना, हल चला कर खेतीको मिट्टी खोदना। ३ किसीको जबरदस्ती किसी काममें लगाना। ४ गाड़ी आदिमें बैल वा घोड़ा आदि जोत कर उसे चलनेके लिए तैयार करना।

जोतप्रकाशलाल हिन्दीके एक ग्रन्थकर्त्ता। ये जातिके कायस्थ थे

जोताँत (हिं० स्त्री०) खेतकी मट्टीकी ऊपरी तह।

जोता (हिं० पु०) १ बैलोंकी गरदनमें फँसाई जानेकी जुआमें बँधी हुई पतली रस्सी। २ करघेको बौंकीसे बंधी हुई सूतकी डोरी। ३ एक ही पंक्तिमें लगी हुई कई खंभों पर रखी जानेको बहुत बड़ी धरन या शहतीर। ४ वह जो हल जोतता हो, खेती करनेवाला। ५ जुलाहोंकी परिभाषामें करघे पर फैलाए हुए तानेके आखिरी सिरे पर उसके सूतोंको ठीक रखनेवाली कमाँचोके दोनों सिरों पर बंधी हुई दो डोरियाँ।

जोताई (हिं० स्त्री०) १ जोतनेका काम। २ जोतनेका भाव। ३ जोतनेकी मजदूरी।

जोतात (हिं० स्त्री०) जोताँत देखो।

जोतान—बम्बईके अन्तर्गत मही्कांठा जिलेको एक छोटो रियासत।

जोति (हिं० स्त्री०) १ देवताओं आदिके सामने जलाये जानेका घोका दीया। २ ज्योति देखो।

जोतिब पर्वत (वाड़ी रत्नगिरि)—बंबईके कोल्हापुर राज्यका पर्वत। यह अक्षा० १६° ४८' उ० और देशा० ७४° १३' पू०में कोल्हापुर नगरसे कोई ८ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है समतल भूमिसे इसकी उचाई १००० फुट है। घनी जङ्गली चोटी पर जोतिबा पुरोहितोंका एक गांव बसा है। अति प्राचीन कालसे यह पर्वत तीर्थस्थान माना जाता है। गांवके बीचमें कई मन्दिर हैं। कहते हैं कि राक्षसोंसे सताये जाने पर कोल्हापुरको अम्बादेवी हिमालयके केदारनाथ पर पहुंचीं और वहां उनके विनाशार्थ इन्होंने कठोर तपश्चरण किया। उनकी भक्तिसे प्रसन्न हो केदारेश्वर यहां आये। प्रवाद है असली मन्दिर नावजी सय नामक व्यक्तिने बनाया था। इसी जगह १७३० ई०में रानोजी सेंधियाने वर्त्तमान मन्दिर बनाया था। १८०८ ई०में दौलतराव संधियाने केदारेश्वरका द्वितीय मन्दिर निर्माण किया। १८८० ई०में मालजी निलम पनहालकरने रामलिङ्गमन्दिर बनाया। केदारेश्वर मन्दिरके सामने एक छोटे मन्दिरमें काले पत्थरके २ नन्दी हैं। इन्हीं मन्दिरोंके निकट १७८० ई०में प्रीतिराव हिम्मत बहादुरने चोपदईका पवित्र मन्दिर निर्माण किया था। गांवसे कुछ गज दूर रानोजी संधियाका बनाया हुआ यमई मन्दिर है। इसीके सामने दो पवित्र कुण्ड हैं। इनमें एक कोई १७४३ ई०को जिजाबाई साहबने और दूसरा जामदग्न्यतीर्थ रानोजी संधियाने बनाया। मन्दिरोंका कारुकार्य हिन्दुओं द्वारा किया हुआ और बहुत अच्छा है। कई एक मूर्तियों पर ताम्र तथा रौप्य फलक चढ़े हैं। जोतिबा प्रधान देवता हैं। चैत्रशुक्ल पूर्णिमाको बड़ा मेला लगता है। छोटे मोटे मेले प्रत्येक रविवार पौर्णमासी और श्रावणशुक्ल षष्ठीको होते हैं। मेलेके दिन सिंहासनपर जोतिबकी मूर्त्तिका जलूस निकलता है।

जोतिलिङ्ग (हिं० पु०) ज्योतिर्लिङ्ग देखो।

जोती (हिं० स्त्री०) १ ज्योति, जोति। ज्योति देखो। २ घोड़की लगाम, घोड़ेकी रास। ३ तराजूकी जोत, तराजूके पल्लोंको रस्सी जो डोंडीसे बंधी रहती है।

जोदिया (जोधिया)—काठियावाड़के नवानगर राज्यका शहर और बड़ा बन्दर। यह अक्षा० ५२' ४०' उ० और देशा० ७०' २६' पू०में कच्छोपसागरके दक्षिणपूर्व उपकूलमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७३५१ है। नगर प्राचीर-वेष्टित है। भीतर एक छोटा किला बना हुआ है।

जोधन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी रस्सी जिसमें बैलके जुएको ऊपर नीचेको लकड़ियां बंधी रहती हैं।

जोधपुर—मारवाड़के राजपूतानेका सबसे बड़ा राज्य। यह अक्षा० २४' ३७ और २७' ४२' उ० तथा देशा ७०' ६' और ७५' २२' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३४८६३ वर्ग मील है। इसके उत्तरमें बीकानेर, उत्तर-पश्चिममें जैसलमेर, पश्चिममें सिन्धु दक्षिण पश्चिममें रान, दक्षिणमें पालनपुर तथा सिरोही, दक्षिण-पूर्वमें उदयपुर, पूर्वमें अजमेर तथा किसनगढ़ और उत्तर-पूर्वमें जयपुर अवस्थित है। यहांकी जमीन अनुर्वरा है, किन्तु आरवल्ला पहाड़के पूर्व तथा उत्तर-पूर्वकी जमीन कुछ कुछ उर्वरा है। इसके उत्तरमें थल नामक मरुभूमि बहुत दूर तक विस्तृत है। आरवल्ली पहाड़ राज्यके पूर्वमें पड़ता है। नदियोंमें लूनी बड़ी है। इसकी प्रधान शाखाएँ लिलरी रायपुर, लूनी, गुहिया, बाँदी, सुकरी, जवाई और जोजरी है। यहां साम्भर नामकी एक खारी झील है। पूर्वीय और दक्षिणीय भागका जङ्गल ३४५६ वर्गमील तक विस्तृत है। यहांके जङ्गलमें तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं जिनमें देवदारु, बबूल, महुआ तथा खैर प्रधान हैं। जङ्गली जानवरोंमें सिंह, काला भालू, चीता और काला हिरण अधिक मिलता है, बाघकी संख्या बहुत कम है। जलवायु शुष्क और स्वास्थ्याकर है और गर्मी बहुत पड़ती है।

इतिहास—जोधपुरके महाराज राठोर राजपूतोंके सरदार हैं। ये अपने वंशका उद्भव अयोध्याके राजा श्रीरामचन्द्रजीसे बतलाते हैं। इस वंशका प्राचीन नाम राष्ट्रका राष्ट्रिक है। अशोकके कुछ अनुशासनोंमें लिखा है कि राठोर दाक्षिणात्यमें राजत्व करते थे। पांचवीं या छठीं शताब्दीमें इस वंशके सबसे प्राचीन राजा अभिमन्यु सिंहासन पर बैठे थे। ९७३ ई० तक दाक्षिणात्यमें कोई १८ राष्ट्रकूट राजाओंने राज्य किया, किन्तु पीछे चालुक्योंने इन्हें वहांसे निकाल भगाया। बाद इन्होंने कन्नौज जा कर आश्रय लिया और ९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें वहां अपना उपनिवेश स्थापित किया। इस अवस्थामें पचीस वर्ष रहनेके बाद इन्होंने अपने ज्ञातिवर्गको निकाल बाहर किया और गहड़वाल नामक एक नया वंश स्थापित किया। इस वंशके सात राजाओंने राज्य किया जिनमेंसे प्रथम राजा यशोविग्रह थे और अन्तिम जयचंद। जयचन्द ११९४ ई०में इटावाकी लड़ाईमें मुहम्मद गोरीसे मार डाले गये। जयचन्दके भतीजे सिवाजीने अपनी जन्मभूमि परित्याग कर मलानीके अन्तर्गत खेर तथा गोहिल राजपूतोंके अधिकृत देशोंको जीतते हुए १२१० ई०में मारवाड़में भावी राठोर राज्य स्थापित किया इनके मरनेके बाद रावअस्थनजो राजसिंहासनके अधिकारी हुए। इन्होंने ईडर भील लोगोंसे जीत कर अपने भाई सोनिङ्गको अर्पण किया। सोनिङ्गके बाद राव चन्दजीने राठोर-शक्ति दृढ़ करनेके लिये १२८१ ई०में पड़िहारोंसे मन्दिर छीन लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया। बाद राव रिरमलजी राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। मारवाड़में जो तौल आजकल चल रही है, वह इन्हींको चलाई हुई है। इन्होंने अपने जीवनका अधिकांश मारवाड़ राज्योन्नतिमें बिताया। नाबालिग राना कुम्भको सिंहासन च्युत करनेके षड्यन्त्रमें ये मार डाले गये थे। बाद इनके बड़े लड़के राव जोधजी जोधपुरके सिंहासन पर बैठे। ये बड़े ओजस्वी और योग्य राजा निकले। प्राचीन राजधानीसे सन्तुष्ट न हो कर इन्होंने जोधपुरमें अपने नामानुसार एक नई राजधानी स्थापित की। १४८८ ई०में इनका देहान्त हुआ। इनके चौदह लड़के थे, जिनमेंसे छठेंबीका बिकानेर राज्यके स्थापयिता हुए। जयमल नामक इनके एक परपोतेने १५६७ ई०में अकबरके विरुद्ध चित्तौरकी रक्षा की थी। बाद थोड़े समयके लिये राव गङ्गाजो जोधपुरके तख्त

पर बैठे। इन्होंने १५२७ ई०में मेवारके राना सङ्गको बाबरके विरुद्ध सहायता पहुंचाई थी। इनके उत्तराधिकारी इनके लड़के राव मालदेवजी हुए। ये बड़े शूर वीर तथा प्रसिद्ध राजा थे। फिरस्ताने लिखा है, 'मालदेव भारतवर्षमें एक प्रभावशाली राजा थे।' इन्होंने कई एक प्रदेश अपने राज्यभुक्त किये थे। इनके समयमें मारवाड़ उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंचा हुआ था; स्वाधीनताकी जड़ भी मजबूत हो गई थी। शेरशाहसे सिंहासनच्युत किये जाने पर हुमायूंने मालदेवका आश्रय लेना चाहा था, किन्तु इन्होंने स्वीकार न किया। तिस पर भी १५४४ ई०में शेरशाहने ८०००० योद्धाओंके साथ इन पर धावा किया और विश्वासघातकतासे इन्हें युद्धमें परास्त किया। १५६१ ई०में अकबरने भी मारवाड़ पर आक्रमण किया था। इस युद्धमें रावके लड़के चन्द्रसेनने अपनी खूब वीरता दिखलाई थी। सत्रह वर्ष तक तो ये शत्रुको दूर भगाये रहे, किन्तु अन्तमें इन्हींकी हार हुई। १५७३ ई०में मालदेवके मरने पर चन्द्रसेन और उदयसिंह दोनों भाई तख्त पानेके लिए आपसमें लड़ने लगे। किन्तु अन्तमें जनसाधारणकी सलाहसे चन्द्रसेन ही राजा ठहराए गये। ये अधिक समय तक राज्यभोग कर न सके और १५८१ ई०में पुनः उदयसिंह राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। ये ही राठोरवंशके सबसे प्रथम राजा थे जिन्हें 'राजा' की उपाधि मिली थी।

इनके कई एक लड़के थे जिनमेंसे किशनसिंहने अपने नाम पर किशनगढ़ राज्य बसाया था। उदयसिंहके मरने पर इनके बड़े लड़के सूरसिंह राजा बने। पिताके जीतेजी इन्हें 'सवाईराजा'की उपाधि मिल चुकी थी। इन्होंने गुजरात और धुनदोकाके राजाओंको परास्त किया था। अकबरने इन्हें पांच जागीर गुजरातमें और एक दक्षिण प्रदेशमें दी थी। १६२० ई०में उनका देहान्त हुआ, बाद उनके बड़े लड़के गजसिंह राजा हुए। ये मुसलमानसम्राट्की ओरसे दक्षिण प्रदेशके राजप्रतिनिधि (Viceroy) नियत किये गये और इन्हें थोड़ी जागीर भी मिली थी। आगरामें इनकी मृत्यु हुई। उनके दो लड़के थे, अमरसिंह और यशोवन्त सिंह। अमरसिंहको पैतृक धन हाथ न लगा और छोटे लड़के ही राजा बनाये गये। यही मारवाड़के सबसे प्रथम राजा थे। जिन्हें 'महाराजा'की उपाधि मिली थी। उसी समयसे आज तक यह उपाधि चली आ रही है। ये अनेक अच्छे अच्छे काम कर गये हैं। १६५८ ई०में ये मालवाके राजप्रतिनिधि चुने गये। १६७८ ई०को जमरूदमें इनका देहान्त हुआ। इन्होंने अजितसिंहको गोद लिया था और मृत्युके बाद ये ही राज्याधिकारी ठहराये गये। इनकी नाबालगीमें औरङ्गजेबने मारवाड़ पर आक्रमण किया और समस्त जोधपुरको कंपा डाला तथा बहुतसे मन्दिर भी तहस नहस कर डाले। १७०७ ई०में औरङ्गजेबके मरने पर अजितसिंहने पुनः अपनी राजधानी लौटा ली। इन्होंने राज्य भरमें अपने नामका सिक्का चलाया था। १७२४ ई०में ये अपने लड़के बाखतसिंहसे मार डाले गये।

इनके पश्चात् अभयसिंह राजा हुए। इन्होंने १७२४ से १७५० ई० तक राज्य किया। ये गुजरात और अजमेरके राजप्रतिनिधि थे। अहमदाबाद पर अधिकार जमानेके लिये इन्होंने मुहम्मदशाहको खूब सहायता की थी। १७५० ई०में इनके मरने पर इनके लड़के रामसिंह जोधपुरके तख्त पर बैठे। इन्होंने दो वर्ष तक भी पूरा राज्य करने न पाया था कि इनके चाचा बाखतसिंह इन्हें उज्जैनको मार भगाया। कहते हैं कि बाखतसिंह भी एक वर्षके बाद ही विष खिलाकर मार डाले गये। पीछे उनके लड़के विजयसिंह राजा हुए। इन्होंने अमरकोट पर अपना दखल जमाया और मेवाड़के रानासे गोदवार छीन लिया। शराबके ये कट्टर द्वेषी थे, यहांतक कि उन्होंने अपने राज्यभरमें शराबका व्यवहार बिलकुल बन्द कर दिया था। मृत्युके पश्चात् इनके दूसरे लड़के भीमसिंह राजगद्दी पर बैठे। महाराष्ट्रोंको जो कर दिया जाता था उसे इन्होंने सदाके लिये बन्दकर दिया। इनके मरनेके बाद मानसिंह राजसिंहासन पर बिठाये गये। इनके समयमें जोधपुरमें बहुत हलचल मच गयी थी। ऐसी अवस्थामें अमीरखांने कई बार इसपर आक्रमण किया। १८१८ ई०में इन्होंने ब्रिटिश गवर्नमेंटसे इस शर्त पर सन्धि कर ली कि ये उन्हें प्रति

वर्ष १०८०००) रु० करस्वरूप दिया करेंगे और जब कभी प्रयोजन पड़ेगा, तब इन्हें १५०० सवार देने पड़ेंगे। १८४३ ई०में मानसिंहका देहान्त हुआ। बाद उनके पोष्यपुत्र तख्तसिंह जो अहमदनगरके प्रधान थे, जोधपुरके महाराज कायम किये गये। इन्होंने सिपाही विद्रोहके समय वृटिश गवर्नमेण्टको खूब सहायता की थी, बहुतसे यूरोपियोंको जोधपुरके किलेमें आश्रय देकर उनका प्राण बचाया था। १८७३ ई०में तख्तसिंह पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बाद उनके बड़े लड़के द्वितीय यशोवन्तसिंह राज्याधिकारी हुए। ये बड़े ओजस्वी राजा थे। डकैती आदि दुष्कर्मोंको इन्होंने निर्मूल कर डाला; चारों ओर शान्ति विराजने लगी। खालसा जमीनका प्रबन्ध इन्होंके समयमें हुआ। रेलवे खोली गई, स्कूल और कालेज निर्माण किये गये, अस्पताल खोला गया तथा और भी कई एक हितकर कार्य किये गये। १८७५ ई०में उन्हें जी० सी० एस० आई० की उपाधि दी गई तथा १८ सम्मान-सूचक तोपोंको बढ़ाकर २१ कर दी गई। १८८५ ई०में अपने सुयोग्य पुत्र सरदारसिंहके हाथ राज्यभार सौंप आप इस लोकसे चल बसे।

सरदारसिंहका जन्म १८२० ई० में हुआ था। जब तक ये नाबालिग रहे, तबतक इनके चाचा महाराज प्रतापसिंहने सुचारु रूपसे राजकार्य चलाया। राठोर वंशमें सबसे पहले ये ही विलायत जाकर सम्राट्को भेंट दे आये हैं। इनके समयमें रेलवे सिन्धसे हैदराबाद तक निकाली गई। भीषण दुर्भिक्ष भी १८०० ई०में इन्होंके समयमें पड़ा था। मृत्युके बाद इनके लड़के सुमेरसिंह जोधपुरके राज-सिंहासनपर सुशोभित हुए। फ्रांसकी लड़ाईमें इन्होंने अङ्गरेजोंकी ओरसे अपनी खूब वीरता दिखलाई थी। इसी कारण इन्हें के० बी० ई० की उपाधि मिली थी। इनके उत्तराधिकारी सर उमेदसिंहजी हुए और यही वर्त्तमान महाराज हैं। इनका जन्म १८०३ ई०में हुआ था। अपने भाई सुमेरसिंहके मरनेपर ये १८१८ ई०में राजगद्दी पर बैठे। अजमेरके मेयो कालेजमें इन्होंने विद्याध्ययन किया है। ये K. C. V. O. (Knight Commandar of the Royal Victorian order) उपाधिसे भूषित हैं।

जोधपुर-राजाओंकी तालिका।

१ राव शिवाजी १२१२ ई०
२ राव अस्थनजी
३ रा० दुहरजी
४ राव रायपालजी १२६६ ई०
५ राव कनपालजी
६ राव जलनसीजी
७ राव चन्दजी
८ राव थोड़जी १२८५ ई०
९ राव सलखाजी १३०७ ई०
१० राव विरामदेवजी १३७४ ई०
११ राव चोंदजी १३८५ ई०
१२ राव कन्हाजी १४०८ ई०
१३ सत्तजी १४१३ ई०
१४ राव रिरमलजी १४२० ई०
१५ राव जोधजी १४४९ ई०
१६ राव सतलजी १४८८ ई०
१७ राव सुजाजी १४९१ ई०
१८ राव गङ्गाजी १५६१ ई०
१९ राव मालदेवजी १५३२ ई०
२० राव चन्द्रसेनजी १५६२ ई०
२१ राव उदयसिंहजी १५८१ ई०
२२ सवाई राजा सुरसिंहजी १५९५ ई०
२३ सवाई राजा गजसिंहजी १६२० ई०
२४ महाराज यशोवन्त सिंहजी १६३८ ई०
२५ महाराज अजितसिंहजी १६७७ ई०

२६ महाराज अभयसिंहजी १७२४ ई०
|
२७ महाराज रामसिंहजी १७५० ई०
|
२८ महाराज बाखतसिंह १७५२ ई०
|
२९ महाराज विजयसिंहजी १७५३ ई०
|
३० महाराज भीमसिंहजी १७९३ ई०
|
३१ महाराज मानसिंहजी १८०३ ई०
|
३२ महाराज तखतसिंहजी १८४३ ई०
|
३३ महाराज यशोवन्तसिंहजी (द्वितीय) १८७३ ई०
|
३४ महाराज सरदार सिंहजी १८९५ ई०
|
३५ महाराज सुमेरसिंहजी १९११ ई०
|
३६ महाराज उमेदसिंहजी १९१८ ई०

(वर्तमान महाराज)

जोधपुर राज्यमें २६ शहर और ४०६७ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २०५७५५३ है। जाटोंकी संख्या अधिक है। यहांकी प्रधान उपज बाजरा, ज्वार तिल मकई और रूई है। यहांसे नमक, मवेशी, चमड़े, हड्डी, पशम रुई, तेलहन आदिकी रफ्तनी और दूसरे दूसरे देशोंसे गेहूं, बाजरा चना, चावल, तेल चीनी, अफीम, सूखे फल, धातु, तेल, तमाखू, देवदारु आदिकी आमदनी होती है। राजपुताना-मालवा रेलवे राज्यके दक्षिण-पूर्व होकर गई है। ४७ मील पक्की और १०८ माल कच्ची सड़क गई है। महाराज महकमा खासकी मददसे रियासतका इन्तजाम करते हैं। किन्तु उनके कहीं चले जानेपर रेसिडेंटराज्यको देखभाल रहती है। राज्यकी वार्षिक आय ५५।५६ लाख रुपया है—पहले यहां विजयशाही और इकतोसन्द रुपया चलता था। १८९९ ई०से अङ्गरेजी सिक्का चलने लगा है। पहले मालगुजारीमें खेतमें पैदा होनेवाली चीजें आती थीं। कहीं कहीं अब भी वही प्रथा प्रचलित है। १८८४ और १८८६ ई०से मालगुजारी रुपये पैसेमें वसूल की जाने लगी। राज्यकी रक्षाके लिए दो पलटन रहती है। इसकी संख्या साधारणतः १२१० है। इस फौजका दूसरा नाम सरदार रिसाला है। यों तो राज्यमें अनेक स्कूल हैं, मगर आर्ट (स्कूल), हाई स्कूल और संस्कृत स्कूल ही उल्लेखयोग्य हैं। स्कूलके अलावा २४ अस्पताल और ८ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २६°१८´ उ० और देशां० ७३° १´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७६१०९ है। १४५९ ई०में राव जोधाने अपने नाम पर यह नगर बसाया था। वर्त्तमान नगरसे दक्षिण-पश्चिममें पुरानी दीवार है जिसमें चार फाटक लगे हुए हैं। यहांजमीन सर्वत्र ढालू है। चट्टान पर किला खड़ा है। किलेके चारों ओर सम्भवतः १८वीं शताब्दीका बना हुआ २४६०० फुट लम्बा, ३से ९ फुट तक चौड़ा और ५से ३० फुट तक ऊँचा प्राचीर है। इसमें दरवाजे लगे हैं। दरवाजों पर लोहेके पैने किल्ले इसलिए जड़ दिये गये हैं, जिससे हाथी टक्कर मार कर उनको तोड़ न सकें। इन दरवाजोंमें पांच तो सामने सामने शहरके नामसे पुकारे जाते हैं अर्थात् जालोर मरेठा, नागौर सिवान तथा सोजत और कठेका नाम चांदपोल है; क्योंकि इसकी सम्मुखस्थ दिशामें चन्द्र दर्शन होता है। नागौर दरवाजेकी दीवारों और बुर्जों पर तोपके गोले लगनेका चिह्न है। १८०७ ई०में अमीर खाँ डाकूकी सहायतासे जयपुर तथा बिकानेर सैन्यने जोधपुरके किले पर आक्रमण किया था। किन्तु अमीर खाँके धौंकलसिंहको छोड़ महाराज मानसिंहका पक्ष ग्रहण करने पर विद्रोहियोंको बहुत क्षतिग्रस्त हो पीछे हटना पड़ा। ऐसा राजपूतानेमें दूसरा दुर्ग नहीं है यह शहरकी अच्छी तरह रक्षा करता और जमीनसे ४८० फुट ऊँचा पड़ता है लोग दूरसे इसका उच्च शिखर देख सकते हैं दीवार २०से १२० फुट ऊँची और १२से ७० फुट तक मोटी है। घेरेमें ५०० गज लम्बा और २५० गज चौड़ा स्थान है। दो दरवाजे शहरकी ओर लगे हैं। उत्तर-पूर्व कोणमें जयपोल और दक्षिण पश्चिममें फतेहपोल है। इनके बीच बहुतसे दूसरे फाटक और बचावके लिये भीतरी दीवारें हैं। १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें राजा सूरसिंहका बनाया हुआ मोतीमहल इमारतमें सबसे अच्छा है। इसके १०० वर्ष बाद

महाराज अजितसिंहने फतेह-महल निर्माण किया। यह जोधपुर नगरमें मुगलफौजके लौटनेका स्मारक है। इन इमारतोंमें उमदा कटावके किवाड़ें लगे हैं और सुख पत्थरके झांझरी दार पर्दे खिचे हुए हैं। शहरमें भी बहुत से अच्छे अच्छे घर हैं। इनमें १० राजप्रासाद ठाकुरोंके कुछ नगर, भवन और ११ देवमन्दिर देखने योग्य हैं। बालकिशनजीका मन्दिर यशोवन्त अस्पतालके समीप है। उसमें श्रीकृष्णकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। घनश्यामजीके मन्दिरमें भी श्रीकृष्णकी मूर्त्ति विद्यमान हैं। रामगङ्गाजीने इस मन्दिरको बनवाया था। कुछ कालतक मुसलमानोंने इसे मसजिदमें परिणत रखा, किन्तु जब महाराज अजितसिंहजो राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने मन्दिरका पुनरुद्धार किया। कुञ्जविहारीका मन्दिर सबसे अधिक कारुकार्यविशिष्ट है और ठीक बाजारमें पड़ता है। पासवन गुलाबरायने इसे अठारहवीं शताब्दीमें बनवाया था। महामन्दिर शहरके पूर्वमें अवस्थित है। महाराज मानसिंहजीने अपने गुरु देवनाथजीके रहनेके लिये १८१२ ई०में इस मन्दिरका निर्माण किया था। यह और सब मन्दिरोंसे कहीं सुन्दर है।

शहरमें चार तालाव हैं,—पहला राव गङ्गाकी रानी पद्मावतीका बनाया हुआ पद्मसागर; दूसरा, बैजीका तालाव जिसे महाराज श्रीमानसिंहकी लड़कीने बनाया, तीसरा गुलाबसागर जिसे गुलाबराय पासवनने १८४८ सम्वत्में बनाया और चौथा भीमसिंहजीका बनाया हुआ फतेहसागर। शहरके उत्तर महाराज सूरसिंहका बनाया हुआ सूरसागर है। इसके सिवा बालसमन्द नामक एक कृत्रिम ह्रद है जो शहर और मन्दोरके बीचमें पड़ता है।

जोधपुर नगर व्यवसायका केन्द्र है। यहां मोटा सूती और ऊनी कपड़ा बुना जाता है। सूती कपड़ेकी रङ्गाई और छपाई मशहूर है। पगड़ियां बहुत उम्दा तैयार होती हैं। लोह पीतलके बरतन, हाथी दांतकी चीजें, सङ्गमरमरके खिलौने और घोड़े तथा ऊंटकी सवारीका साज सामान भी अच्छे बनते हैं। बड़ी सड़कोंपर फर्शबन्दी है। ष्टेशनसे शहरतक बैलोंकी छोटी ट्राम चलती जो १८८६ ई०में तैयार हुई है। बैलों और भैंसोंकी ट्राम-गाड़ीमें कूड़ा ढोया जाता है। ट्रामवेको कुल लम्बाई १३ मील है। शहरमें एक आर्ट स्कूल, एक हाई स्कूल तथा और भी बहुतसे छोटे छोटे स्कूल हैं। संस्कृत शिक्षाका भी प्रबन्ध है। रायका बागमें महाराजका राजप्रासाद विद्यमान है। रतनाद महलमें बिजलीकी रोशनी होती है। बुन्दीके महाराव राजाकी लड़की रानी हदोजीके बनाये हुए रानीसागर और चिड़ियानाथजीके झरनेसे शहरमें जलका इन्तजाम है।

जोधराज—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने नीवागढ़के राजा चन्द्रभानुके आदेशानुसार हम्मीरकाव्य नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ रचा था। उक्त ग्रन्थके रचनाकालके विषयमें कुछ सन्देह पड़ गया है। कवि लिखते हैं—

"चन्द्र नागवसु पञ्चगिनि, संवत माधव मास
शुक्ल सु त्रितिया जीव जुत तादिन ग्रन्थ प्रकास॥"

इससे १८८५ संवत् निश्चित होता है किन्तु ऐतिहासिकोंका कहना है कि उक्त ग्रन्थ १७८५ संवत्में रचा गया है। हां, यदि नग शब्दसे सातका अर्थ लिया जाय तो १७८५ संवत् ही ठहरता है।

जोधराजने ग्रन्थके प्रारम्भमें अपनेको गौड़ ब्राह्मण और बालकृष्णका पुत्र बतलाया है। आपकी रचना कुछ कुछ चन्द बरदाईके ढंगकी है। इनके हम्मीरकाव्यमें कहीं कहीं गद्य भी है, जिसकी व्रजभाषा है। नीचे एक कविता उद्धृत की जाती है—

"पुण्डरीक सुत सुता तासु पदकमल मनाऊं।
बिसद बरन बर बसन बिसद भूषन हिय ध्याऊं॥
बिसद जंत्र सुर सुद्ध तंत्र तुम्बर जुत सोहै।
बिसद ताल इक भुजा दुतिय पुस्तक मन मोहै।
गतिराज हंस हंसह चढ़ी रटी सुरन कीरति बिमल।
जैमातु सदा बरदायिनी देहु सदा बरदान बल॥"

जोधराज गोदीका—सांगानेर निवासी एक दिगम्बर जैन कवि। इन्होंने वि० सं० १७२१में प्रीतङ्करचरित्र, १७२२में कथाकोश, १७२४ में सम्यक्त्वकौमुदी और १७२६में प्रवचनसार नामक जैन-ग्रन्थोंका हिन्दी-पद्य-

मय टीका लिखी है। भावदीपिका वचनिका और और ज्ञानसमुद्रकी रचना भी इन्हींके द्वारा हुई है।

जोधराव—जोधपुराधिपति राजा रणमल्ल (रिड़मल्ल) के पुत्र। ये कन्नौजके राजासे राठोर-कुलतिलक जयचन्द्रके पौत्र और शिवाजीके वंशधर थे। १४५८ ई०में (कोई कोई १४३२ ई० भी बतलाते हैं) इन्होंने जोधपुर नगरकी प्रतिष्ठा की थी और मन्दोरसे वहां राजपाट उठा ले गये थे। नगर स्थापन करनेके बाद इन्होंने तीस वर्ष राज्य किया था। इनके चौदह पुत्रोंने पिताके जीते जी अपने अपने भुजबलसे राज्य-विस्तार किया था। जोधाजी देखो।

जोधा (चारण)—मारवाड़के एक कवि।

जोधाजी—जोधपुर नगरके स्थापनकर्त्ता। इनका द्वितीय नाम जोधराव भी था। इनके पिता और पितामह मन्दोरके दुर्गमें रह कर राज्यशासन करते थे। पीछे किसी योगीके आदेशानुसार इन्होंने जोधपुर स्थापन किया। जिस समय चूड़ाजीने मन्दोर पर हमला किया था, उस समय ये जङ्गलमें जा छिपे थे। बादमें मौके पर इन्होंने पुनः मन्दोर पर कब्जा कर लिया। १४२७ ई०में, मेवाड़के अन्तर्गत धानला ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके चौदह पुत्र थे। जोधराव देखो।

जोधाबाई—१ जोधपुरके राजा मालदेवकी पुत्री और राजा उदयसिंहकी भगिनी। उदयसिंहने (१५६८ ई०में) मुगल-बादशाह अकबरशाहके साथ अपनी बहन जोधाबाईका विवाह कर अपनेको कृतार्थ समझा था। जोधाबाईके विवाहके बाद बादशाहके अनुग्रहसे राजा उदयसिंहका विशेष सम्मान हुआ था। इन्हीं जोधाबाईके गर्भसे सम्राट् जहांगीर (सलीम)का जन्म हुआ था। जोधाबाई अकबर बादशाहको हिन्दुओंके साथ अच्छा बर्त्ताव करनेका परामर्श दिया करती थीं।

२ जोधपुराधिपति राजा उदयसिंहकी कन्या और मालदेवकी पौत्री। उदयसिंहने मुगलसम्राट् अकबरकी कृपा पानेकी आशासे पुनः अपनी कन्या भोजी सलीम (जहांगीर)को व्याह दी। यह विवाह १५८५ ई०में हुआ था। इनका दूसरा नाम जगत् गुसांयिनी वा बालमती था। जोधपुरराजकी कन्या होनेके कारण मुगल सरकारमें इनका भी नाम जोधाबाई पड़ गया। इनके गर्भसे (१५९२ ई०में) सम्राट् शाहजहांका जन्म हुआ था। १६१८ ई०को आगरामें इनकी मृत्यु होने पर सुहागपुरके प्रासादके पासवाले समाधिमन्दिरमें ये समाधिस्थ हुई थीं। अब भी वह उक्त प्रासाद और समाधिमंदिरका ध्वंसावशेष पड़ा है।

३ मुगल सम्राट् जहांगीरकी राजपूत पत्नी। ये बीकानेरके राजा रायसिंहकी कन्या थीं। बेगम-महलमें इनका नाम जोधाबाई प्रसिद्ध था।

जोनराज—'राजतरङ्गिणी' वा काश्मीरके इतिहासके द्वितीय लेखक। इनकी बनाई हुई राजतरङ्गिणी दूसरी राजतरङ्गिणी कहलाती है। इनके २०० वर्ष पहले कल्हण पण्डितने राजतरङ्गिणी लिखना प्रारम्भ किया और उन्होंने जयसिंहके राजत्वकाल तकका इतिहास लिखा है। उनके परवर्तीकालसे जोनराजने अपने समय तकका इतिहास लिखा है। इनके पीछे और भी दो लेखकोंने राजतरङ्गिणी लिखी है।

जोनराजने पृथ्वीराजविजय नामक और एक काव्य तथा शक सं० १३७०में किरातार्जुनीय ग्रन्थकी टीकाकी रचनाकी थी। अनुमानतः १४१२ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

जोन्स (सर विलियम)—१७६४ ई०में २८ सेप्तम्बरको लण्डन नगरमें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम विलियम जोन्स था, उनकी गणितके विषयमें अच्छी व्युत्पत्ति थी। उन्होंने गणित सम्बन्धी कुछ पुस्तकें और दर्शन-सम्बन्धी कई एक निबन्ध लिखे हैं।

तीन वर्षकी उम्रमें जोन्सके पिताकी मृत्यु हुई, इनकी माता पर ही सब भार आ पड़ा। जोन्सकी शिक्षाका भार भी उनकी माताको ग्रहण करना पड़ा। जोन्सकी माता अत्यन्त बुद्धिमती और ज्ञानवती थीं। बाल्यकालसे ही जोन्स शिक्षाविषयमें असाधारण नैपुण्यका परिचय देने लगे। सात वर्षकी उम्रमें हारोके विद्यालयमें भरती हुए और जब नौ वर्षके हुए, तब यद्यपि किसी आकस्मिक अशुभ घटनासे एक वर्ष तक वे विद्यालयमें ग्रीक और लैटिन भाषा सीख न सके थे, तथापि वे अपने प्रायः समस्त सहपाठियोंकी अपेक्षा अधिकतर

शिक्षित थे और शीघ्र ही वे उक्त स्कूलके प्रधान शिक्षक डा० थ्याकरके अत्यन्त प्रियपात्र हुए थे। डा० थ्याकर प्राय: कहा करते थे कि, जोन्सको नग्न और निराश्रय अवस्थामें सलिसबेरीके क्षेत्रमें छोड़ देने पर भी वह अर्थ और यशके मार्गको पकड़ सकता है अर्थात् भविष्यमें वह अवश्य ही एक प्रधान यशस्वी और सङ्गतिशाली व्यक्ति होगा। जोन्सने धीरे धीरे शिक्षामें इतनी उन्नति की कि, परवर्तीकालमें थ्याकरके स्थानापन्न डा० समनार कहा करते थे कि, जोन्स ग्रीक भाषामें उनसे भी अधिक व्युत्पन्न हैं।

हारोमें रहते समय अन्तिम दो वर्षोंमें उन्होंने अरबी और हिब्रु भाषा सीखी थी। उस समय ये समय समय पर लाटिन, ग्रीक और अंग्रेजी भाषामें निबन्ध लिखा करते थे। लिमन नामक पुस्तकमें उनके कई एक निबन्ध उद्धृत किये गये थे। विद्यालयकी लम्बी छुट्टियोंमें ये फ्रान्सीसी और इटली भाषा सीखते थे।

१७६४ ई०में जोन्स अक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट हो विशेष उत्साह और परिश्रमके साथ विद्याचर्चा करने लगे। इन्होंने अरबी और फारसी भाषा सीखनेमें खूब मन लगाया। छुट्टीके समय ये इटली, स्पेन और पोर्तगलके प्रधान प्रधान ग्रन्थकारोंकी ग्रन्थावली पढ़ने लगे। १७६५ ई०में इन्होंने अक्सफोर्ड छोड़ दिया और आर्ल स्पेन्सर परिवारके साथ ये एकत्र रहने लगे। यहां रह कर ये लार्ड अलथर्पके शिक्षाका पर्यवेक्षण करते थे। वकालतका काम करनेके लिए १७६० ई में इन्होंने इस पदको छोड़ दिया। उक्त आर्ल-परिवारके साथ एकत्र रहते समय जोन्स अत्यन्त परिश्रमके साथ प्राच्य भाषाका अभ्यास करते थे, इस अदम्य उत्साहके फलसे शीघ्र ही वे प्राच्य भाषाके एक प्रधान विद्वान् समझे जाने लगे।

१७६८ ई०में डेनमार्कके राजाके अनुरोधसे इन्होंने "नादिरशाह"की जीवनीका फारसीसे फ्रान्सीसी भाषामें अनुवाद किया था। १७७० ई०में इस पुस्तकके साथ हाफिजकी कुछ कविताओंका फ्रान्सीसी अनुवाद छपा था। दूसरे वर्ष इन्होंने एक फारसी भाषाका व्याकरण प्रकाशित किया। २१ वर्षकी उम्रमें जोन्सने Commentaries on Asiatic Poetry नामक एक पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया। यह पुस्तक लाटिन भाषामें लिखी गई और १७७४ ई०में मुद्रित हुई। इस पुस्तकका नाम Poeseos Asiaticœ Commentariorum Libri Sex है, इस पुस्तकमें प्राच्य कविताके विषयमें साधारण मन्तव्य और हिब्रु, अरबी, फारसी तथा तुरकी भाषामें लिखित बहुतसी उत्तम उत्तम कविताओंका अनुवाद है। स्पेन्सरके साथ रहते समय इन्होंने फारसी भाषाका एक कोष लिखना प्रारम्भ किया था। प्रसिद्ध प्रसिद्ध फारसी ग्रन्थकारोंकी पुस्तकोंसे उद्धृत कर इस कोषको आवश्यकीय बातोंका प्रयोग प्रदर्शित हुआ है। इस समय आँकतइ दुपेरां (Anquetil du Perron) नामके किसी व्यक्तिने अक्सफार्ड-विश्वविद्यालय और उसके कुछ अध्यापकोंमें दोष दिखलाते हुए एक विस्तृत समालोचना प्रकाशित की थी। १७७१ ई०में जोन्सने अपना नाम छिपा कर फरासीसी भाषामें उक्त समालोचनाका प्रतिवाद किया। प्रतिवादकी भाषा इतनी ओजस्विनी और मधुर हुई थी कि लोगोंने उस प्रतिवादको पारिसके किसी विद्वान् द्वारा लिखा गया है ऐसा समझा था। १७७२ ई०में जोन्सने एशियाके भिन्न भिन्न देशोंकी भाषासे अनुवाद कर एक कविता-पुस्तक प्रकाशित की।

१७७४ ई०में जोन्स वकालत करने लगे। प्राच्य भाषा पर अत्यन्त अनुराग होते हुए भी ये आइनके सिवा और कुछ न पढ़ते थे। ये नियमितरूपसे अदालतको जाते थे। इस समय जोन्सने जिस प्रकारसे अध्ययन किया था, ब्लाकष्टोनके विषयकी उनकी स्तुति ही उसका यथेष्ट और स्पष्ट निदर्शन है।

१७८० ई०में जोन्सने अक्सफोर्ड विश्वविद्यालयकी तरफसे पार्लियामेण्टमें प्रवेश करनेके लिए कोशिशें कीं, किन्तु अमेरिकाके युद्धके विषयमें प्रतिकूल सम्मति देनेके कारण वे इतने अप्रिय हो गये कि, उनका पार्लियामेण्टमें प्रवेश करना असम्भव हो गया। इससे उन्होंने पार्लियामेण्टकी आशा छोड़ अन्य कार्योंमें मन लगाया। इनकी बनाई हुई कुछ पुस्तकोंसे * इनके

---

* पुस्तकोंके नाम ये हैं—

(१) Enquiry into the Legal mode of Suppressing Riots.

राजनैतिक सिद्धान्तका परिचय मिल सकता है।

कुछ वर्ष बाद जब इन्होंने अपने रोजगारमें अच्छा नाम पाया, तब फिर इन्होंने प्राच्यभाषा और साहित्य पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और (१७८०-८१ ई०में) जाड़े के दिनोंमें ये अरबी साहित्यका प्रसिद्ध प्राचीन कविता-ग्रन्थ मुआकतका अनुवाद करने लगे।

१७८३ ई०में लार्ड असबर्टन (Lord Ashburton) की चेष्टासे जोन्स भारतमें बङ्गदेशके सुप्रिमकोर्टके जज नियुक्त हुए और उन्हें नाइट उपाधि प्राप्त हुई।

इसके कुछ सप्ताह बाद सेन्ट आसफ (St. Asaph) के धर्मयाजककी कन्या मिस्रके साथ इनका विवाह हो गया।

इस वर्षके शेषभागमें जोन्स कलकत्ते आकर रहने लगे। इस समयसे उनके मृत्यु समय पर्यन्त ग्यारह वर्षोंमें ये जब फुरसत पाते थे, तभी प्राच्य साहित्यका अध्ययन करते थे। इनके कलकत्ते आनेके कुछ दिन बाद ही इन्होंने प्राच्यसाहित्य-सेवियोंको एकत्र कर एशियाके पुरातत्त्व, दर्शन, विज्ञान, शिल्प और इतिहास आदिके विषयमें खोज करनेके लिए एक समितिकी स्थापना की। सर विलियम इस सभाके सभापति चुने गये। इस समय वही सभा "एसियाटिक सोसाइटी"-के नामसे प्रसिद्ध है। इस सभासे भारतके साहित्य और पुरातत्त्वका इतना उपकार हुआ है कि, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अब भी इस सभा (Asiatic Society)के द्वारा प्रकाशित पुस्तकावलीको पढ़ कर यूरोपीय विद्वानोंको हिन्दुओंके साहित्य और पुरातत्त्व सम्बन्धी अनेक विषयका ज्ञान होता है। जोन्सने एशियाकी पुरातत्व-पुस्तकके प्रथम चार खण्डमें बहुतसे निबन्ध लिखे थे।

बङ्गालमें रहते समय जोन्स प्रथम चार वर्ष तक बराबर संस्कृत पढ़ते थे। इस भाषामें यथोचित व्युत्पत्ति लाभ कर इन्होंने हिन्दू और महम्मदीय आइनोंका सार-संग्रह करनेके लिए गवर्मेण्टके पास प्रस्ताव किया। इन्होंने खुद ही अनुवाद और कार्यपर्यवेक्षणका भार लेना स्वीकार किया।

गवर्मेण्टने इनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, इन्होंने मृत्युकाल पर्यन्त परिश्रम कर इस कार्यको प्रायः समाप्त कर लिया। इनकी मृत्युके बाद मि० कोलब्रुकने परिदर्शनका भार ग्रहण कर अवशिष्टांश समाप्त किया था।

१७९४ ई०में सर विलियम जोन्सने मनुसंहिताका अनुवाद प्रकाशित किया था। इस समय इन्होंने शकुन्तला और हितोपदेशका भी अनुवाद किया था। जोन्सने साहित्यसेवामें लगातार लगे रहने पर भी अपने कर्तव्य कार्य (विचारकार्य)-में उदासीनता नहीं की थी। लार्ड टेनमाउथ (Lord Teignmouth) लिखते हैं—

"जोन्सने ऐसी कठोर कर्त्तव्यपरायणताके साथ अपना कार्य सम्पादन किया है कि, जिससे वे कलकत्ताके रहनेवाले देशीय और यूरोपीय व्यक्तियोंके चिरस्मरणीय हो जायेंगे। कुछ दिन ज्वरमें पड़े रहनेके बाद १७९५ ई०में २७ अप्रेलको उन्होंने कलकत्तामें प्राणत्याग किया।"

सर विलियम जोन्सने विविध विद्यायें सीखी थीं और इनका ज्ञान भी असीम था। भाषा सीखनेका इनको विलक्षण मुहावरा था। लाटिन और ग्रीक भाषामें यद्यपि इनका ज्ञान विशेष प्रगाढ़ न था, परन्तु किसी भी यूरोपीयने आजतक इनके समान अरबी, फारसी और संस्कृत भाषामें व्युत्पत्ति लाभ नहीं कर पाई। ये थोड़ी बहुत तुर्की और हिब्रु भाषा भी जानते थे, चीनी भाषामें भी इनका दखल था। ये कनफुचिकी कविताओंका अनुवाद कर लेते थे। इन्होंने यूरोपमें प्रचलित सभी भाषाएं अच्छी तरह सीख ली थीं और अन्यान्य भाषाओंमें भी इनकी थोड़ी-बहुत गति थी। विज्ञानमें इनकी विशेष गति न थी, गणित कुछ जानते थे, रसायन भलीभांति सीख लिया था। जीवनके शेषभागमें विशेष परिश्रमके साथ ये उद्भिद्‌विद्याका अभ्यास करते थे।

यद्यपि जोन्सकी नाना विषयोंमें विस्तृत शिक्षा थी,

(२) Speech to the Assembled inhabitants of Middlesex &c. (३) Plan of a National defence. (४) Principles of Government.

तथापि इनमें मौलिकता कुछ भी न थी। इन्होंने किसी नवीन विषयका आविष्कार नहीं किया और न किसी पुरातन विषयमें नवीन शिक्षा ही दी है। इनमें विश्लेषण और आश्लेषणकी क्षमता न थी। भाषाके विषयमें इन्होंने किसी प्रकारकी वैज्ञानिक उन्नति नहीं की—सिर्फ दूसरोंके लिए उपादान संग्रह किया है। प्राच्य-साहित्यके विषयमें इन्होंने जितनी पुस्तकें लिखी हैं उनके पढ़नेसे मनोरञ्जनके साथ साथ अनेक विषयोंमें शिक्षा भी मिलती है; किन्तु उनमें उनकी वर्णनाक्षमता और विन्ताशक्तिकी मौलिकताका परिचय नहीं मिलता। इन्होंने विद्याविषयक जैसी उन्नति की थी, उससे ये अवश्य ही एक मान्य और गौरवके पात्र थे। इन्होंने अनेक विषयोंको सोखनेके लिए जैसा प्रयत्न और परिश्रम किया था, थोड़ा विषय सीखनेके लिए यदि वैसा करते, तो उनके ज्ञान और विद्याकी अधिकतर स्फूर्ति होती; सम्भव था कि उससे ये एक अद्वितीय पुरुष हो जाते।

जोन्सका चरित्र हमेशा सम्मान पाता रहेगा।

जोन्स किसी विषयको सीखनेके लिए हरएक तरहका परिश्रम उठानेको तयार रहते थे। पिता माता पर इनकी प्रगाढ़ भक्ति थी। इनके बन्धुगण सब समय इनका विश्वास कर निश्चिन्त रहते थे। विचारकालमें इनकी न्यायपरतासे सभी सन्तुष्ट होते थे।

पूर्वोल्लिखित पुस्तकोंके सिवा जोन्सने निम्न-लिखित पुस्तकें भी भाषान्तरित की थीं—(१) दो महम्मदीय आइन, (२) उत्तराधिकारके विषयमें तथा दानकर पत्र बिना मरे हुए व्यक्तियोंके उत्तराधिकारत्वको आइन, (३) निजामीकृत गल्प पुस्तक, (४) प्रकृतिके लिये दो स्तोत्र, (५) वेदका उद्धृतांश।

सर विलियम जोन्सकी कब्रके ऊपर निम्नलिखित भावार्थकी एक कविता लिखी है—

"एक मानवका देहांश इस स्थान पर निहित है, वे ईश्वरसे डरते थे—मृत्युको नहीं। इन्होंने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। ये अर्थ अन्वेषण नहीं करते थे। ये अधार्मिक और कुक्रियासक्त व्यक्तियोंके सिवा न तो किसीको अपनेसे नीचही समझते थे और न ज्ञानी और धार्मिकके सिवा किसीको अपनेसे उच्च ही मानते थे।"

जोबट—१ मध्यभारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यह अक्षा० २२° २१ से २२° ३०´ उ० और देशा० ७४° २८ से ७४° ५०´ पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १४० वर्गमील है। इसके उत्तरमें झाबुआ राज्य। दक्षिण और पश्चिममें अलीराजपुर तथा पूर्वमें ग्वालियर है। यहां भूमि पर्वतमय है और अधिकांश अधिवासी भील हैं। मालवमें महाराष्ट्रोंके उपद्रवके समय यह प्रदेश शान्त था। उत्तर सीमाकी विन्ध्यपर्वतश्रेणीके कई एक शाखा पर्वत इस राजामें प्रवेश हुए हैं इन्दोरसे धार और राजपुरसे (अलीराजपुर) गुजरात तक एक सड़क इस राज्यके उत्तर-पूर्व होकर गई है। जोबटके राना राठोरवंशके राजपूत हैं।

यहांकी लोकसंख्या लगभग ८४४२ है। यहांके भील खेती करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। यहां विशेष कर उड़द, बाजरा और ज्वार उत्पन्न होती है।

यह राज्य पांच थानामें विभक्त है, यथा—जोबट, गुड़, हीरापुर, अथन्नी और कुआरी। यहांकी वार्षिक आय २१०००) रु०; जङ्गल विभागसे और ४००० रु० है। कहते हैं, कि ई० १५ वीं शताब्दीमें यह राज्य केसरदेवके हाथ लगा। (अलीपुरके स्थापयिता आनन्ददेवके पौत्रके पुत्र) अङ्गरेजोंका आधिपत्य होनेके समय जोबटमें राना सबलसिंह राजत्व करते थे। इनके बाद राना रञ्जितसिंह राजगद्दी पर बैठे। और १८७४ ई०में इनका देहान्त हुआ। इन्होंने १८६४ ई०में अङ्गरेजोंको रेलवेके लिये काफी जमीन देनेको कहा। इसके बाद स्वरूपसिंह राजगद्दीपर बैठे और १८८७ ई०में इनका देहान्त हुआ। बाद इन्द्रजितसिंह राजगद्दी पर बैठे। नरेशका उपाधि राणा है।

२ मध्य भारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत जोबट राज्यका प्रधान शहर। यह अक्षा० २२° २७´ उ० और देशा० ७४° ३७´ पू०में पड़ता है। इस नगरके नामानुसार राज्यका नाम जोबट होने पर भी यह राजधानी

मन्त्री हैं राज्यके प्रधान मन्त्री तीन मोल दूरवर्ती घोरा ग्राममें रहते हैं। घोरा एक सामान्य ग्राम होने पर भी इसकी जलवायु जोबटसे अच्छी है। इसी कारण जोबटको उठाकर घोरामें स्थापन करनेका प्रस्ताव हुआ था। यह शहर तीन ओर जङ्गलमय पर्वत वेष्टित एक ऊँची पर्वत चड़ाके राजाके दुर्गके नीचे अवस्थित है। यहांके अधिवासीगण प्रायः ज्वर रोगसे पीड़ित रहते हैं। यहां कोषागार और एक जेल है। घोरामें राज्यका दातव्य चिकित्सालय है। लोकसंख्या प्रायः २८ है।

जोबन (हिं० पु०) १ यौवन, युवा होनेका भाव। २ सुन्दरता, रूप, खूबसूरती। ३ बहार, दिलखुश, रौनक। ४ स्तन, कुच, छाती। ५ एक प्रकारका फल।

जोम (अ० पु०) १ उत्साह, उमङ्ग। २ उद्वेग, आवेश। ३ अहङ्कार, अभिमान, घमण्ड।

जोयसी—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये १६३१ ई०में विद्यमान थे। इनकी एक कविता उपलब्ध है जो नीचे उद्धृत की जाती है—

"रुचि पांय सवांय दई मेंहदी तेहिको रंगु होत मनौ नगु है।
अब ऐसे में श्याम बुलावैं भट्ट कहु जांउं क्यों पंकु भयो मगु है॥
अधराति अंध्यारी न सूझें गली भनि जोयसी दूतिनको संगु है।
अब जाउँ तौ जात धुयो रंगुरी रंगु राखौं तौ जात सबै रंगु है॥"

जोर (फा० पु०) १ शक्ति, बल, ताकत। २ प्रबलता, तेजी, बढ़ती। ३ अधिकार, वश, इखतियार। ४ आवेश, वेग, झोंक। ५ भरोसा, आसरा। ६ परिश्रम, मेहनत।

जोरई (हिं० स्त्री०) एक साथ बँधे हुए लम्बे और मजबूत दो बाँस, जिनके अग्रभागमें मोटी रस्सीका एक फन्दा पड़ा रहता है और जो कोल्हूके धोते समय जाटको रोकने तथा उसे कोल्हूसे निकालते समय काममें आता है। जाटका ऊपरका हिस्सा, इसको फन्देमें फँसा देते हैं और फिर जाटका नीचेका हिस्सा दोनो बाँसोंके सहारे उठा कर कोल्हूके ऊपरी भाग पर रख देते हैं।

जोरई—एक तरहका कीड़ा जिसका रंग हरा होता है। यह फसलकी पत्तियाँ और डालियाँ खा जाता है। चने की फसलको इससे बड़ी हानि पहुंचती है।

जोरशोर (फा० पु०) प्रचण्डता, प्रबलता।

जोरदार (फा० वि०) जोरवाला, जिसमें बहुत जोर हो।

जोरहाट—१ पूर्वीय बङ्गाल और आसामके शिवसागर जिलेका उपविभाग। यह अक्षा० २६°२२´ से २७°११´ उ० और देशा० ८३° ५७´ से ८४° ३६´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८१८ वर्गमोल है। इस उपविभागका कुछ अंश ब्रह्मपुत्रकी मुख्य धारासे उत्तरमें पड़ता है, जिसे माजुली द्वीप कहते हैं। यहांकी लोकसंख्या प्रायः २१८३१७ है। इस उपविभागमें इसी नामका शहर और ६५१ ग्राम लगते हैं। इसके दक्षिण-पूर्व हो कर आसाम-बङ्गाल रेलवे गयी है। इस उपविभागकी वार्षिक मालगुजारी ५७८०००) है।

२ आसाम प्रदेशके शिवसागर जिलेका एक ग्राम और शहर। यह अक्षा० २६°४५´ उ० और देशा० ८४° १३´ पू० पर शिसाम नदीके दाहिने किनारे कोकिलामुखसे ६ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २८९९ है। १८वीं शताब्दीके अन्तमें यहां आहोम वंशके अन्तिम स्वाधीन राजा गौरीनाथकी राजधानी थी। चायके बहुतसे बगीचे रहनेके कारण यह शहर धीरे धीरे विख्यात होता गया है। जैन माड़वारी वा खण्डेलवाल जैनोंकी बहुत सी दूकानें हैं। दूसरे दूसरे देशोंसे यहां कपास, अन्न, नमक, तेल आदिकी आमदनी होती है और यहांसे सरसों, ईख तथा चमड़ेकी रफ्तनी होती है। यहां गवर्मेण्टके उच्च विद्यालय, दातव्य औषधालय आदि हैं। यहांकी चाय विलायतको भेजी जाती है।

जोरजि—यन्त्रराज-वर्णित एक जनपद। यन्त्रराजके मतसे यह अक्षा० २६° ४०´ में पड़ता है। इसीको शायद वर्त्तमान जर्जिया कहा जाता है।

जोरा—मध्यप्रदेशके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत तोंवरधार जिलेका सदर। यह अक्षा० २६°२०´ उ० और देशा० ७७° ४८´ पू०में ग्वालियर लाइट रेलवे पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २५५१ है। साधारणतः यह स्थान जोरा-अलापुर नामसे प्रसिद्ध है। अलापुर एक ग्राम है जो जोरासे एक मील उत्तरमें पड़ता है। यहां करौलीके प्रधानका बनाया हुआ बहुत प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष, जिला सम्बन्धीय कार्यालय, स्कूल, चिकित्सालय,

डाकघर, सराय, बङ्गला और पुलिस ष्टेशन है।

जोरावर मल—हिन्दीके एक कवि। ये नागपुरके रहने वाले और जातिके कायस्थ थे। १७३५ ई० में इनका जन्म हुआ था।

जोरावरसिंह—१ बीकानेरके एक राजा। सुजानसिंहकी मृत्युके उपरान्त १७३७ ई० में ये बीकानेरके सिंहासन पर बैठे थे। इनके शासनकालमें कुछ विशेष घटनाएँ हुई थीं। इन्होंने कुल १० वर्ष तक राजत्व किया था। किसी किसीका कहना है कि इन्होंने (सं० १७८२से १८०८के भीतर) 'रसिकप्रिया टीका' नामक एक ग्रन्थ रचना किया था।

२ काश्मीरके राजा गुलाबसिंहके एक सेनापति। इन्होंने लदाक् नामक स्थान काश्मीर राज्यमें लिया था। गुलाबसिंह देखो।

३ जयशलमेरके प्रधान सामन्त। आपके पिताका नाम अनूपसिंह था, जिन्होंने राजकुमार रायसिंहसे मिल कर जयशलमेरके राजा रावल मूलराजको बन्दी कराया था। बादमें जोरावरसिंहने माताके आदेशानुसार रावल मूलराजको कारागारसे मुक्त कर दिया। इस पर रावल मूलराजके मन्त्री सालिमसिंहने षड़यन्त्र रच कर इन्हें राज्यसे निकलवा दिया।

कुछ दिन बाद सालिमसिंहको रास्तेमें सामन्तोंने घेर लिया। उपायान्तर न देख, दुष्टहृदय सालिमने जोरावरसिंहके पैरों पर पगड़ी रख दी। वीरहृदय जोरावरने उसे क्षमा कर दिया। परन्तु पीछे उस दुष्ट-मन्त्रीने अपने प्राणरक्षक जोरावरसिंहको जहर दे कर मार डाला।

जोरावरी (फा० स्त्री०) १ जोरावर होनेका भाव। २ जबरदस्ती, धींगा धींगी।

जोरू (हिं० स्त्री०) स्त्री, भार्या, घरवाली।

जोलाहा (हिं० पु०) जुलाहा देखो।

जोवाई—१ आसामके खासी और जयन्ती पहाड़ जिलेका सब डिविजन। यह अक्षा० २४° ५८' एवं २६° ३' उ० और देशा० ९१° ५८' तथा ९° ५१' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल २०८६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ६७९२१ है। यह पहले जयन्तीराजके अधिकारमें था। १८३५ ई०को वृटिश गवर्मेण्टने उनसे जोवाई ले लिया। अधिकांश अधिवासी सिनतेङ्ग हैं। इसमें ६४० गांव बसे हैं।

२ आसामके अन्तर्गत खासी और जयन्ती पहाड़ उपविभागका सदर ग्राम। यह अक्षा० २५° २६' उ० और देशा० ९२° १२' पू०में समुद्रपृष्ठसे ४४' २२' फुट ऊँचे पर अवस्थित है। यहांसे कपास, रबर आदिकी रफतनी होती है और दूसरे दूसरे देशोंसे चावल, सूखी मछली और सूती कपड़ेकी आमदनी होती है। यहां वर्षा अधिक होती है। १८८१ ई० तक पहले पांच वर्षोंमें ३६२०६३ इञ्च वर्षा होती थी। १८६२में जो जातीय विद्रोह हुआ था, जोवाई उसका केन्द्रस्थल रहा।

जोवारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चमकीली मैना। यह कई तरहकी मीठी मीठी बोलियां बोलती है। भिन्न भिन्न ऋतुओंमें यह भिन्न भिन्न देशोंमें जा कर रहती है। यह फूलों और अनाजोंको हानिकारक है।

इसके अंडे बिना चित्तीके और नीले रङ्गके होते हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

जोश (फा० पु०) १ उफान, उबाल। २ मनोवेग, आवेश।

जोशन (फा० पु०) १ एक प्रकारका चांदी या सोनेका गहना जो भुजाओं पर पहना जाता है। इसमें छः या आठ पहलवाले लंबोतरे पोले दानोंकी पांच या छः जोड़ियां होती हैं। दोनों रेशम या सूत आदिके डोरेमें गुथे रहते हैं। दोनों बाहों पर दो जोशन पहने जाते हैं। २ कवच, जिरह बकतर।

जोशांदा (फा० पु०) वह जड़ या पत्तियां जो दवाके लिये पानीमें उबाली जाती हैं, क्वाथ, काढ़ा।

जोशी (हिं० पु०) जोषी देखो।

जोष (सं० पु०) जुष-घञ्। १ प्रीति, प्रेम। २ सेवन, सेवा। (क्ली०) सुख, आराम।

जोष—एक कवि। इनका कविता-सम्बन्धीय नाम अहमद हसन खाँ था। ये लखनऊके रहनेवाले थे और १८५३ ई०में विद्यमान रहे। इन्होंने 'उर्दू दीवान' नामक ग्रन्थ रचा है। इनके पिताका नाम नवाब मुकीमखां था, जो नवाब मुहब्बत खांके लड़के थे।

जोषक (सं० पु०) जुष-ण्वुल् । सेवक, टहल करनेवाला ।

जोषण (सं० पु०) १ जुष-ल्युट् । १ प्रीति, प्रेम । २ सेवा ।

जोषम् (अव्यय) जुष-अम् । १ नीरव, अवाक्, चुप, खामोश । २ सुख, स्वच्छन्द । ३ सम्पूर्ण रूपसे । ४ सम्यक्, अच्छी तरह । ५ लङ्घन । ६ प्रशंसा ।

जोषवाक् (सं० पु०) मिथ्या वाक्य, झूठा वचन, चापलूसी बात । अपने लिये अप्रीतिकर, किन्तु दूसरेको सन्तुष्ट करनेके लिये जो वाक्य प्रयोग किया जाय उसको जोषवाक् अर्थात् मिथ्यावाक्य, या चाटुवाक्य कहते हैं ।

जोषस् (अव्य) जुष-असु । १ तुष्णी, नीरव, चुप । २ सुख ।

जोषा (सं० स्त्री०) जुष्यते उपभुज्यते, जुष – घञ्, स्त्रियां टाप् । नारी, स्त्री ।

जोषिका (सं० स्त्री०) जुषति सेवते जुष-ण्वुल्, टाप् अत इत्वं । जालिका, तरोई । २ कलियोंका समूह ।

जोषित् (सं० स्त्री०) जुष्यते उपभुज्यते युष-इति । हसरुहिजुषिभ्य इतिः । उण् १।९९ । पृषोदरादित्वात् यस्य जः । स्त्रीमात्र, नारी ।

जोषिता (सं० स्त्री०) जोषित्-टाप् । स्त्री मात्र, नारी, औरत ।

जोषी (ज्योतिषी शब्दका अपभ्रंश) १ दक्षिण-पश्चिमभारतमें रहनेवाली एक गणकजाति । सतारा, पूना, बेलगांव आदि स्थानोंमें इनका वास है । इनका आहार व्यवहार, हाव-भाव और पहनावा मराठी-कुनबियोंके समान है । जन्मपत्री देखना वा लिखना, हाथ देखना ही इनकी उपजीविका है । लोगोंके हाथ देख कर शुभाशुभ बतलानेके लिए ये "हुड़ुक" डमरू बाजा ले कर द्वार द्वार पर भीख मांगा करते हैं । ये भी मराठा कुनबियोंकी तरह समस्त देव-देवियोंकी पूजा और उपवासादि किया करते हैं । इनमें भी पंचायत है, पर अवस्था बड़ी शोचनीय है ।

कुछ जोषी तो सामवेदके अनुयायी हैं और कुछ यजुर्वेदके जो सामवेदके अनुयायी हैं । उनके गोत्र भरद्वाज, पचरौलिया, सिकरौरिया, उधौरिया, ककरा, सिलाचर या सिलौत, छोबरी और पराशर हैं । ये लोग केवल शनिवार, राहु देवता और केतुके दान ग्रहण करते हैं । लड़केका विवाह ये लोग अपनेसे भिन्न गोत्रमें कर सकते हैं, लेकिन लड़की सदा उच्च गोत्रमें ही व्याही जाती है । मरदुमशुमारीसे पता चलता है, कि जोषी जाति ४५१ श्रेणियोंमें विभक्त है । विस्तृत हो जानेके भयसे सभीके विवरण नहीं दिये गये । एक श्रेणीका नाम मारवाड़ी जोषी है । ये पञ्च गौड़ हैं और आदिगौड़, जयपुरी गौड़, मालवी गौड़ तथा गूजर गौड़में विभक्त हैं । इनका वास बनारसमें अधिक है । कुमौन जोषीके विषयमें आटकिनसन (Atkinson) साहब लिखते हैं कि ये लोग ब्राह्मणके अन्तर्गत हैं और इनका आदान प्रदान पाँडे, तिवारी आदिके साथ हुआ करता है । जन्मपत्री देखना वा लिखना ही इनकी उपजीविका है । इनके कई गोत्र हैं, जैसे गार्ग्य, अङ्गिरा, कौशिक, उपमन्यु, भरद्वाज आदि ।

२ पहाड़ी ब्राह्मणोंकी एक जाति । ३ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी एक जाति । ४ गुजराती ब्राह्मणोंकी एक जाति ।

जोषीमठ—युक्त प्रदेशमें गढ़वाल जिलेका एक छोटा ग्राम (यह अक्षा० ३०° ३३´ उ० और देशा० ७९° ३५´ पू०में) समुद्रपृष्ठसे ६१०७ फुट ऊँचेमें अवस्थित है । लोकसंख्या प्रायः ४६८ है । इस ग्राममें बहुतसे प्राचीन मन्दिर हैं और विष्णुके मन्दिरोंमेंसे नरसिंहदेवका मन्दिर प्रधान है । प्रवाद है, कि इस भूमिका एक हाथ क्रमशः पतला होता जा रहा है और जब वह हाथ गिर पड़ेगा तब विष्णुप्रयागके निकट पर्वतके नीचे होकर बदरीनाथ जानेका रास्ता एक दम बन्द हो जायगा । कहा जाता है, विष्णुने स्वयं अगस्त्य मुनिके निकट बदरीनाथका पूर्वोक्त आख्यान प्रकाश किया है । बदरीनाथका मन्दिर बन्द हो जानेसे देवगण भविष्य बदरीको चले जायेंगे । भविष्य बदरीका मन्दिर जोषीमठके पूर्वकी ओर धौलीनदीके वामतटपर तपोवनमें अवस्थित है । बदरीनाथ मन्दिरके याजकोंने ही इस मन्दिरका आयोजन किया है ।

शीतकालमें जब बर्फ गिरने लगता है, तब रावल अर्थात् बदरीनाथ मन्दिरके प्रधान याजक मन्दिरके ऊपर

रह नहीं सकती, इसलिये वे जोषीमठमें आकर रह जाते हैं। जोषीमठके वासुदेव, गरुड़ और भगवतीके मन्दिर भी उल्लेखयोग्य है। जोषीमठका दूसरा नाम ज्योतिर्धाम (ज्योतिर्लिङ्गका वसतिस्थल) है।

जोषीष—एक मुसलमान कवि। इनका कविता सम्बन्धीय नाम मुहम्मद हसन वा मुहम्मद रोशन था। ये पटनाके रहनेवाले थे और सम्राट् शाहआलमके समयमें विद्यमान थे।

जोष्टृ (सं० त्रि०) जुष-तृच्। सेवक।

जोष्य—जुष्य देखो।

जोहड़ (हिं० पु०) कच्चा तालाव।

जोहार (हिं० पु०) अभिवादन, वन्दन, प्रणाम।

जोहिया—शतद्रु नदीके तटपर रहनेवाली राजपूत कुलोद्भव एक जाति। जोहिया दहिया और मङ्गलिया आदि जातियां बहुत दिनोंसे इस्लाम धर्मको मानने लगी हैं। इनकी संख्या कम है। किसी किसीके मतसे जोहिया लोग भारतवर्षीय ३६वें राजवंशके एकतम वंशोद्भव हैं, और कोई कोई यह कहते हैं कि ये यदुभाटवंशीय हैं। कर्नल टाड साहबका कहना है—ये जाट जातिके अन्तर्भुक्त हैं। यदुका डङ्ग पर्वत पर इनका वास था। मोरीवंशीय चितोराधिपतिके सहायतार्थ राजपूतोंके समावेश कालमें ये जङ्गलदेशाधिपति कहकर उल्लिखित हुए हैं। हरियाना, भाटनेर और नागर ये तीन प्रदेश जङ्गलदेश कहलाते थे; किन्तु अब उन प्रदेशोंमें यह जाति बहुत थोड़ी है। गोदरोंने बीकानेरके स्थापनकर्ता राठोरवंशीय पराक्रमी बीकाकी सहायतासे जोहियाओंको पराजित और विताड़ित कर उनके ११०० ग्राम अधिकार किये थे। ईसाकी १५ वीं शताब्दीमें यह घटना हुई थी, किन्तु इस समय तक ये पूरी तरहसे भगाये न गये थे। अकबरके राजत्वकालमें भी ये गिर्मा प्रदेशमें जमींदारी करते थे। कुछ भी हो, इस घटनाके बहुत पहलेसे ही ये नीचेके दुआबमें रहते थे। बहुतोंका अनुमान है कि बाबरद्वारा उल्लिखित जिञ्जूटा और यह जोहिया ये दोनों एकही जाति हैं।

जौहो—बम्बई प्रान्तके खाड़खाना जिलेका तालुका। यह अक्षा० २६° ७′ तथा २७° उ० और देशा० ६७° ११′ एवं ६७° ४७′ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ७६ं वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५२२१८ है। इसमें ८७ गांव हैं। जोही सदर है। मालगुजारी और सेस कोई १ लाख ७० हजार रुपया है। पश्चिम अञ्चलमें कोरथर पर्वत है।

जौंकना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध हो कर ऊंचे स्वरसे कुछ कहना।

जौंची (हिं० स्त्री०) गेहूं या जौकी फसलमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। इससे बाल काले हो जाते हैं और दाने निकलने नहीं पाते।

जौंराभौंरा (हिं० पु०) १ किले या महलोंके भीतरका वह गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है। २ दो बालकोंका जोड़ा।

जौ (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध अनाज और उसका पौधा। जिसका दूसरा नाम यव है। यव देखो।

२ पञ्जाबमें होनेवाला एक पौधा जिसकी लचीली टहनियोंसे वहां भाड़ू, टोकरे वगैरह बनाये जाते हैं। मध्य एशियाके प्राचीन ध्वंसावशेषोंमें इसकी टट्टियां मिली हैं, जो सम्भवतः परदोंके रूपमें व्यवहृत होती थीं। ३ एक तौलका नाम। यह ६ राईके बराबर होती है।

(क्रि० वि०) ४ जब। (अव्यय) ५ यदि अगर।

जौकेराई (हिं० स्त्री०) मटरमिश्रित जौ, जौका ढेर, जिसमें मटर मिला हुआ हो।

जौख (हिं० पु०) झुण्ड, जत्था, फौज।

जौगड़—मन्द्राज प्रान्तके गञ्जाम जिलेका टूटा फूटा जिला। यह अक्षा० १९° ३३′ उ० और देशा० ८४° ५०′ पू०में ऋषिकुल्या नदीके उत्तर तट पर अवस्थित है। पहले यहां प्राचीरवेष्टित विशाल नगर था। दुर्गके मध्य भागमें प्रस्तरफलक पर बौद्ध सम्राट् अशोकके १३ अनुशासन खोदित हैं। ऐसे अनुशासन मन्द्राज प्रान्तमें दूसरे स्थान पर देख नहीं पड़ते। किलेके दीवारोंके भीतर मट्टीके पुराने वर्तन और खपरे बहुत हैं। ई० १म शताब्दीकी बहुतसी मुद्राएं मिली हैं। मट्टीके नीचे दबा हुआ एक प्राचीन मन्दिर भी आवि-

ष्कृत हुआ है। गढ़के भीतर प्राचीन कालके दो सरोवर हैं, जिनमेंसे एकका घाट बंधा हुआ है और उसमें पहले एक मन्दिर था। इन दोनों सरोवरका पङ्क यदि बाहर निकाला जाय तो सम्भव है कि उसमें प्राचीन कालको मुद्रा, प्रतिमूर्ति और ताम्रफलकादि मिल सकते हैं। गढ़में दो छोटे छोटे पहाड़ हैं। एक पहाड़ पर किसी योगीने चारों ओरकी गिरी हुई ईंटें और खपरेसे एक कुटी बनाई है। अशोकका अनुशासन पहाड़के बगलमें खुदा हुआ है। उसको लिपि कई जगह खराब हो गई हैं। यहांके लोगोंका कथन है, कि किसी यूरोपीयने इस लिपिको नष्ट करनेके अभिप्रायसे पहाड़के ऊपर चनेका उबाला हुआ जल गिरा दिया था। यह गल्प सत्य प्रतीत नहीं होती। गढ़के नीचेकी मट्टी जौ अर्थात् 'लाह'सी है। अनुमान किया जाता है, कि इसीके अनुसार इसका नाम जौगढ़ पड़ा है।

प्रवाद है--कम्भकुलके रामाकेशरीने इस गढ़का निर्माण किया था। फिर कोई कहते हैं कि इसका प्राचीरादि जौ अर्थात् लाहसे बनाया गया था, इसीसे इसका नाम जौगढ़ पड़ा है। लाहसे बने रहनेके कारण शत्रुओंका गोला और तीर प्राचीरको छेद या तोड़ नहीं सकता। वरन वह उसीमें सट जाता था। इस कारण दुर्गवासी यहां निर्भय हो कर रहते थे। एक गल्प है कि यहांके राजाके साथ रावलपक्षीके राजाकी अनबन थी। एक दिन उस राजाने जौगढ़से अवरोध किया। दुर्गवासी जौ प्राचीरका गुण जानते थे, इसलिये वे तनिक भी भयभीत न हुए। शत्रुओंने प्राचीर तोड़नेकी बहुत कुछ कोशिश की; किन्तु जो शस्त्रादि फेंके जाते थे वे उसी प्राचीरमें सट कर उसे और मजबूत बना देते थे। इसी तरह कई दिन तक वे व्यर्थ वहां बैठे रहे। एक दिन एक ग्वालिन दूध ले कर शत्रुओंके शिबिरमें बेचनेको आई। दूध ले कर सैनिकोंने ग्वालिनको पैसा न दिये, इस पर वह कहने लगी, "तुम लोग निराश्रया अबलाके ऊपर अत्याचार कर अपना वीरत्व दिखा रहे हो, और यह दुर्ग जो आसानीसे अधिकृत किया जा सकता है, उसे भी तुम लोग ले नहीं सकते हो।" इस पर सैनिक उस ग्वालिनको पकड़ कर राजाके पास ले गये। ग्वालिनने इस रहस्यको खोल दिया कि यह प्राचीन लाहका बना हुआ है। सुतरां आग लगानेसे यह तुरन्त जल जायगा। उसी समय शत्रुओंने भातीसे दीवारमें आग लगा दी और थोड़े समयके बाद बिलकुल दीवार जल कर गिर गई। राजाने उस विश्वासघातिनी ग्वालिनको शाप दिया कि "तुम पत्थर होगी" इतना कह कर वे हाथमें तलवार ले कर युद्धक्षेत्रमें जा पड़े और उस युद्धमें खेत रहे।

राजाके शाप देने पर जब वह ग्वालिन दुर्गको लौटी आ रही थी, रास्तेमें ही वह पत्थर हो गई। आज भी वह पत्थर विद्यमान है। कोई कोई अनुमान करते हैं कि यह पत्थर एक सतीस्तम्भके सिवा और कुछ नहीं है। उसमें स्त्रीकी मूर्ति भी स्पष्ट खुदी हुई नहीं है। यह पत्थर अभी गढ़के दक्षिणको ओर पड़ा है। कुछ पहले किसी अंगरेज कर्मचारीने इसके नीचेका भाग खोद कर सोने चांदी और तांबेकी मुद्रा बाहर निकाली थी। इनमेंसे कुछ ताम्रमुद्रा सम्भवतः शक राजाओंके समयकी हैं। यदि यह सत्य हो, तो इस स्थानको प्राचीन कहनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जौगढ़वा (हिं० पु०) अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल बहुत वर्ष रखने पर भी खराब नहीं होता है।

जौगृह (सं० पु०) जतुगृह, लाहका घर।

जौचनी (हिं० स्त्री०) चना मिला हुआ जौ।

जौजा (अ० स्त्री०) भार्य्या, पत्नी, जोरू।

जौतुक (हिं० पु०) दहेज। यौतुक देखो।

जौधिक (सं० पु०) खड्गके ३२ हाथोंमेंसे एक।

जौनपुर—युक्तप्रदेशके बनारस विभागका एक जिला। यह छोटे लाटके अधीन है। यह अक्षा० २५° २४' से २६° १८' ३०" और देशा० ८२°७' से ८३°५' पू०में इलाहाबाद विभागके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। क्षेत्रफल १५५१ वर्गमील है। इसका आकार बहुत कुछ त्रिभुजसा है। इसके उत्तर और उत्तर-पश्चिममें अयोध्याके अन्तर्गत प्रतापगढ़ और सुलतानपुर जिला, उत्तर-पूर्वमें आजमगढ़, पूर्वमें गाजीपुर तथा दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें बनारस, मिरजापुर और इलाहाबाद है। इस जिलेका

एक खण्ड प्रतापगढ़ जिलेमें पड़ता है और फिर उसी खण्डके बराबर प्रतापगढ़का एक अंश जौनपुरके मछली-शहर और इसीलकी सीमामें आवद्ध है। जौनपुर शहर ही इस जिलेका सदर है।

इस जिलेकी जमीन गङ्गातीरवर्ती अन्यान्य जिलोंकी नाईं दलदल है, बहुतसी नदियोंके प्रवाहित होनेसे ऊंची नीची भी है। कहीं कहीं उपवनसे सुशोभित ऊंची भूमि नजर आती है। उस ऊंची भूमि पर बहुतसी प्राचीन जातियोंके नगर, मन्दिर और प्रतिमूर्ति आदिका ध्वंसावशेष है और जगह जगह राजपूत राजाओंके दुर्गादिका भग्नावशेष देखा जाता है। इस जिले-की भूमि उत्तर पश्चिमसे ले कर दक्षिण-पूर्व तक ढालू है, किन्तु यह उतार बहुत कम है। कमसे कम एक माइलमें ६ इंचसे अधिक नहीं है। इस जिलेकी मट्टी प्रायः सभी जगह उर्वरा है, किन्तु कहीं कहीं ऊषर भूमि भी देखी जाती है। इस ऊषर भूमिके सिवा और सब जगह अच्छी फसल लगती है। उत्तर और मध्य भागमें ग्रामके बहुतसे बगीचे हैं। इसके अलावा महुवा और इमलीके दरख्त भी देखे जाते हैं।

गोमती नदी इस जिलेके बीच ८० मील बह कर इसको असमान खण्डमें विभक्त करती है। जौनपुर नगर इसी गोमतीके किनारे अवस्थित है। जिलेके मध्य इस नदीको कभी पैदल पार नहीं कर सकते हैं। जौनपुर नगरके निकट इसके ऊपर मुसलमानोंका बनाया हुआ १६ गुंबजदार एक पुल है। उस पुलकी लम्बाई ७१२ फुट है। मुनिम खाँने १५६८-७२ ई०में उसे निर्माण किया था। इस पुलसे दो मील गोमती नदीके ऊपर वर्त्तमान रेलवेका पुल है। इसमें भी १६ गुम्बज लगे हुए हैं, किन्तु इसकी लम्बाई प्राचीन पुलसे प्रायः दूनी है। गोमती नदी बहुत गहरी है और इसके किनारे बहुतसे छोटे छोटे कंकड़ पत्थर भरे हैं; इसीसे इसका सोता परिवर्त्तित नहीं होता है। इस नदीमें कई बार अकस्मात् बाढ़ आ जाती है। नदीका जल प्रायः १५ फुटसे अधिक ऊपर नहीं उठता है। अन्यान्य नदियोंमेंसे, वरणा पिली और बासोही प्रधान हैं। ऋद (झील)-की संख्या बहुत है। विशेष कर उत्तर और दक्षिण भागमें ज्यादा है, मध्य स्थानमें कुछ कम है। बड़ीसे बड़ी झीलकी लम्बाई प्रायः ८ मील होगी।

पहले जिलेमें जगह जगह जंगल थे, किन्तु क्रमशः कृषिकार्यकी विस्तृति और प्रजाकी वृद्धि हो जानेसे सब जङ्गल काट डाले गये। अभी कड़ाकट तहसीलमें ६००० बीघेका एक धाव जङ्गल हो सबसे बड़ा है। पूर्वोक्त ऊषर भूमि छोड़ कर और दूसरी जगह कहीं परती जमीन नहीं है। ऊंची भूमिमें गोलाकार पत्थरके टुकड़े पाये जाते हैं जो सड़क बांधनेके काममें आते तथा उन्हें जला कर चूना भी तैयार किया जाता है।

जङ्गलके नहीं रहने तथा अधिवासियोंकी संख्या अधिक हो जानेसे जंगली जन्तु प्रायः नहीं देखे जाते। झील और दलदलमें बहुतसे जलचर पक्षी रहते हैं। शिकारी केवल उन्हींका शिकार करने जाते हैं। यहां विषैला गोखुरा सर्प बहुत पाया जाता है और कभी कभी गोमती और सै-तीरवर्त्ती गुफामें झुण्डका झुण्ड लकड़बग्घा देखा जाता है।

इतिहास—अत्यन्त प्राचीन कालमें जौनपुरमें भड़ (भर) सोइरियां नामक एक आदिम जातिका वास-स्थान था, किन्तु अभी उन लोगोंके दीर्घवासका अधिक परिचय नहीं पाया जाता है। वरणा प्रभृतिके किनारे बड़े बड़े नगरोंका ध्वंसावशेष देखा जाता है। बहुतोंका अनुमान है कि ८वीं शताब्दीकी हिन्दूधर्मके अभ्यु-दयमें उत्तर भारतसे बौद्ध धर्मका लोप होनेके समय ये सब नगर शायद अग्निसे जला दिये गये होंगे। गोमती-के किनारे बहुतसे अत्यन्त प्राचीन मन्दिरादि विद्य-मान थे।

हिन्दूकीर्त्तिलोपी और देवद्वेषी मुसलमान शासन-कर्त्ताने अधिकांश मन्दिर तोड़ फोड़ दिये और वहांके उपकरण ले कर मसजिद, दुर्ग आदि निर्माण किये हैं।

इसी तरह बहुतसे हिन्दू और बौद्ध-मन्दिरोंके उप-करण ले कर १३६० ई०में फिरोजगढ़ बनाया गया। पत्थरोंका भास्करकार्य देखनेसे ही मालूम पड़ता है कि यह मुसलमानोंका नहीं है। अनुमान किया जाता है कि बहुत पहले जौनपुर अयोध्या राज्यके अन्तर्गत था। फिर बहुत समयके बाद यह काशीश्वर जयचन्द्रके हाथ

लगा। अन्तमें उनके वंशधरोंको परास्त कर शाह बुद्दीन-के अधीन दुर्दान्त मुसलमान वीरोंने ११९४ ई०में जौनपुर पर अधिकार किया।

उसके बाद वर्त्तमान जौनपुर जिलेके अन्तर्गत समस्त भूभाग मुसलमान-सम्राट्के सामन्तस्वरूप कन्नौजाधिपतिके अधीनस्थ रहा। १३६० ई०में फिरोजशाह तुगलकके बङ्गालसे लौट आते समय, उन्होंने जौनपुर ग्राममें अपनी छावनी डाली और इस सुन्दर स्थानसे मोहित होकर एक नगर स्थापन करनेकी इच्छा की। फिरोजने प्राय: ६ मास तक यहां रह कर कई एक हिन्दू देवालयोंको तहस नहस कर डाला। बाद महाराज जयचन्द्र-प्रतिष्ठित मन्दिरको जब वे तोड़ने गये, तब अधिवासिगण पराक्रमसे मन्दिरको रक्षाके लिये यत्नवान् हुए। अत: फिरोज शाहको निराश हो कर लौट आना पड़ा। जो कुछ हो, अन्तमें जौनपुरके शासनकर्त्ता इब्राहिम मुसलमानसे वह मन्दिर भग्न किया गया और उसके उपकरणसे अटला मसजिद बनाई गई।

१३८८ ई०में दिल्लीश्वर महम्मद तुगलकने अपने मन्त्री ख्वाजा जहानको मालिक-उस-शरकको उपाधि देकर कन्नौजसे लेकर समस्त पूर्व विभागका शासन कर्त्ता नियुक्त किया। ख्वाजा जहान जौनपुरमें राजधानी स्थापन कर राज्य करने लगे। १३९४ ई०में तैमुरलङ्गके आक्रमण करने पर दिल्लीपतिको व्यतिव्यस्त देख इन्होंने इस सुअवसरमें स्वयं सुलतान उ-सूशरक अर्थात् पूर्वदिक्पतिको उपाधि धारण कर दिल्लीकी अधीनता अस्वीकार की। इनके उत्तराधिकारी स्वाधीन राजगण शर्किराज कह कर विख्यात हैं। उनके मरनेके बाद उनके दत्तक-पुत्र मुबारक शाह शर्कि राजसिंहासन पर बैठे। किन्तु शीघ्र ही दिल्लीसे एक सैन्यदल भेजा गया और उस युद्धमें वे मारे गये। मुबारककी मृत्युके बाद उनके छोटे भाई इब्राहिम सिंहासन पर बैठे और इन्होंने १४०० से १४४० ई० तक ४० वर्ष बहुत दक्षताके साथ प्रजाके प्रिय होकर राज्य किया। इन्हींके समयमें अटला-मस्जिद बनाई गई और जौनपुरमें विद्यानुशीलन की खूब उन्नति हुई। इन्होंने काल्पी और कन्नौज जीतनेके लिये कई बार युद्ध किया। इनके पुत्र महम्मूदने १४४२ ई०में काल्पी अधिकार कर दिल्लीको अवरोध किया, किन्तु अलसके सम्राट् अलाउद्दीनके प्रतिनिधि बहलोललोदीसे पराजित होकर लौट गये। बहलोलने महमूदके पुत्र शर्किवंशीयके अन्तिम राजा हुसेनको जौनपुरमें पराजय किया। किन्तु उन्हें फिर राज्यमें रख कर आप स्वदेशको लौट गये। इसी हुसेनने विख्यात जुम्मा मस्जिदका निर्माण किया। बहलोलकी ऐसी दया करने पर भी हुसेनने विद्रोही होकर प्राणत्याग किया। उक्त मुसलमान शर्किराजाओंके शासनकालमें बहुतसी मस्जिद और अट्टालिकादि बनाई गई थीं।

शर्किराजाके बाद जौनपुर लोदीके अधिकारभुक्त हुआ। इनके राजत्वकालमें यहां बराबर विद्रोह और शोणितपात हुआ करता था। लोदीवंशके अन्तिम सम्राट् इब्राहिमके १५२६ ई०को पानी पतकी लड़ाईमें बाबरसे पराजित होने पर जौनपुरके शासनकर्त्ता भी स्वाधीन हो गये थे, किन्तु बाबरने दिल्ली और आगरा अधिकार कर अपने पुत्र हुमायूंको जौनपुर और बिहार जीतनेके लिये भेजा। उसी समयसे जौनपुर मुगलसाम्राज्यभुक्त हुआ, बीच बीचमें शेरशाह और उनके वंशीय सम्राटोंके समयको छोड़कर यह बराबर मुगलोंके अधीन था। १५७५ ई०में अकबरने इलाहाबादमें राजधानी स्थापित की; तभीसे जौनपुर एक निजामसे शासित होने लगा। बाद १७२२ ई०में जौनपुर, बनारस, गाजीपुर और चुनार दिल्लीके शासनसे पृथक् कर अयोध्याके नबाब वजीरके शासनभुक्त किये गये। १७५० ई० में रोहिलाके सर्दार सैयद अहमद बङ्गशने वजीर शादत खांको पराजित कर अपने आत्मीय जमाखांको बनारस प्रदेशका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। जमाखां शीघ्रही काशीराज चेत्सिंह द्वारा जौनपुरसे भगा दिये गये। नबाब वजीरने उनके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अन्तमें १७७७ ई०को अङ्गरेजोंने यह दुर्ग पुन: चेत्सिंहको अर्पण किया।

१७६५ ई०में बकसरकी लड़ाईके बाद जौनपुर एक तरहसे अङ्गरेजोंके हाथ आ गया। १७७५ ई०को लखनऊ नगरकी सन्धिमें यह सम्पूर्णरूपसे अङ्गरेजोंको सौंप दिया गया। इसके बाद सिपाही-विद्रोहके समय तक

जौनपुरमें कोई विशेष घटना न हुई। १८५७ ई०के ५ जूनको जौनपुरके सिपाहियोंने बनारसमें विद्रोहका सम्वाद पाया और वे जो इण्ट मजिष्ट्रेटके साथ साथ अर्थसपक्षको विनाशकर लखनऊको ओर चल पड़े। इसके बाद यहां घोर अराजकता फैलने लगी। पीछे ८ सेप्टेम्बरको आजमगढ़से गोरखा सैन्यने आकर विद्रोह दमन किया। नवम्बर महीनेमें मेंहदी हुसैन नामक विद्रोही-दलपतिको कार्यदक्षतासे फिर कई स्थान अङ्गरेजोंके हाथसे जाते रहे। १८५८ ई०में विद्रोहीगण युक्त प्रदेशमें पराजित और छिन्न भिन्न हुए। अन्तमें विद्रोही अमरसिंहके पराजयके बाद विद्रोह एकदम शान्त हो गया। इसके बाद दो एक डकैतोंके उपद्रवके सिवा और किसी प्रकारकी गड़बड़ी न हुई।

जौनपुरके नगरके नामानुसार इस जिलेका नाम पड़ा है। जौनपुर जिलेके कृषिकार्यको विस्तृति चरम सीमा तक पहुंच गई है।

जौनपुर बहुत समय तक मुसलमान राज्यभुक्त तथा मुसलमान शासनकर्त्ताओंकी आवासभूमि होने पर भी यहां हिन्दू धर्म ही प्रबल है।

मुसलमान अधिवासियोंकी संख्या हिन्दुओंकी दशांश मात्र है। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ, बनिया, अहीर, चमार, कुर्मी आदि यहांके प्रधान अधिवासी हैं। मुसलमानोंमें सुन्नीकी अपेक्षा शिया सम्प्रदायकी संख्या अधिक है; क्योंकि लोदीवंशीय शियाराजगण बहुत समय तक यहां रहे थे। इनके अलावा ईसाई, युरोपीय आदि भी यहां रहते हैं। अधिवासियोंमें सैकड़े लगभग ७६ कृषिजीवी हैं। इस जिलेमें ७ जिला और ३१५२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या कोई १२०२९२० होगी। यह पांच तहसीलमें बंटा है, यथा—जौनपुर, मरियाहू, मछली शहर, खुटाहन और किराकट।

जौनपुर जिलेके जौनपुर मछली, शहर, वादशाहपुर और शाहगञ्ज इन चार नगरोंकी जन संख्या ५ हजारसे अधिक होगी। ये अधिकांश शस्यक्षेत्रवेष्टित छोटे छोटे ग्रामोंमें रहते हैं।

वणिक और धनी कृषकोंकी अवस्था अन्यान्य स्थानों से कम नहीं है। सामान्य कृषक, मजदूर और श्रमजीवियोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। ये अधिकांश कदर्य भोजन करते और फटे पुराने वस्त्र से जीवन बिताते हैं। कुर्मी और काछी गृहस्थोंकी अवस्था कुछ कुछ अच्छी है। ये पोस्ता, तमाकू और अन्यान्य तरह तरहकी साक सब्जी तथा फल मूलादि उपजाते हैं। प्रायः अन्यान्य कृषकोंकी अपेक्षा ये अधिकतर परिश्रमी और अध्यवसायी होते हैं तथा ये मालगुजारी भी अधिक देते हैं। इसीसे जमीन्दार कुर्मी और काछी प्रजाको बहुत प्यार करते हैं।

जौनपुर जिलेकी मट्टी कीचड़ और बालुकामय है। परित्यक्त नदीगर्भ और शुष्क जलाशयके गड्ढेमें कृष्णवर्ण पङ्कमय अत्यन्त उर्वरा मट्टी दीख पड़ती है। जिलेके समस्त स्थानमें अच्छी फसल होती है। यहां धान, बाजरा, जुन्हार, ज्वार, कपास, गेहूं, जौ, मटर, उर्द, सरसों आदि तरह तरहके अनाज उपजते हैं। खेती करनेका तरीका भी सहज है। पहले गृहस्थ खेतको हलसे जोत कर उसमें बीज बो देते हैं, बाद चौकी दे कर मट्टी बोरस की जाती है। जमीन सम्पूर्ण वर्ष परती नहीं रहती है, लेकिन जिस जमीनमें ईख रोपी जाती है, वह जमीन ६ मास या एक वर्ष तक जोत कर छोड़ दी जाती है। नगरके निकटवर्त्ती जमीनमें आमन और रब्बी ये ही दोनों होती है। ईखकी खेती सबसे लाभजनक है; किन्तु उसमें बहुत खादकी आवश्यकता पड़ती है। अंगरेज अधिकारमें आनेके बादसे यहां नीलकी खेती होती है। गवर्मेटके निरीक्षणमें कुर्मी पोस्ताकी खेती करते हैं। इसकी ढोंढ़ीसे जो अफीम निकलती है, उसे कृषकगण सरकारी कर्मचारीको देनेके लिये बाध्य हैं और वे प्रति सेर अफीमके पांच रुपये पाते हैं। कुर्मी और काछी पोस्ता, तमाकू, साक, सब्जी आदि उपजाते हैं; इसीसे उनकी अवस्था अन्यान्य कृषकोंसे अच्छी है।

समस्त जिलेका भूपरिमाण १५५१ वर्गमील है, जिसमेंसे १५१८ वर्गमील गवर्मेंटके तौजीभुक्त है। इसमेंसे ८९२ वर्गमीलमें खेती होती है और १०३ वर्गमील खेतीके योग्य है। शेष २५१ वर्गमील ऊसर है।

दैव-विडम्बना—इस जिलेकी गोमती नदीमें समय

[illegible] बाढ़ आ जानेसे दोनों कूल जलमग्न हो जाते [illegible] दूर तक आबादी कट जाती है। १७७४ ई० [illegible] इस जिलेको बहुत क्षति हुई थी। १८७१ ई०को बाढ़ सबसे भीषण थी, जिसमें नगरके प्रायः ४००० घर और अन्यान्य ग्रामोंके प्रायः ८००० घर जलमग्न हो गये थे। दूसरे दूसरे स्थानोंकी तुलनासे यहां अनावृष्टि अधिक नहीं होती है। १७७० ई०में जिस तरह इस जिलेके चारों ओर अनावृष्टि और अन्नकष्ट हुआ था, उसी तरह यहां भी था। किन्तु १७८३ और १८०३ ई०को अनावृष्टिसे यहां दुर्भिक्ष नहीं हुआ। १८३७-३८के भीषण दुर्भिक्षसे जौनपुर सभी स्थानोंसे हरा भरा था। १८६०-६१ ई०का दुर्भिक्ष दुर्विपाक जौनपुर तक पहुंचा न था। १८७४ ई०को बंगालमें जो भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था वह घर्घरा नदीके उस पारके प्रदेशमें भी व्याप्त था, किन्तु जौनपुर इस दुर्घटनासे अलग ही रहा। १८७७-७८ ई०में अनावृष्टिके कारण रब्बी इत्यादिके नहीं होनेसे यहां दुर्भिक्ष हुआ था और १८८६ तथा १८९४ ई०में इतनी वर्षा हुई कि सारी फसल वर्बाद हो गई।

दुर्भिक्षसे पीड़ित मनुष्योंकी सहायताके लिये गवर्मेण्टने रिलीफ वर्क (Relief-work) स्थापन किया था और इसके निकटस्थ आजमगढ़में सम्पूर्ण वर्ष वृष्टि होती रही। इसीसे कोई न कोई फसल उपज हो जाती थी जिससे वहांके लोगोंको अन्नका कष्ट भोगना न पड़ा।

वाणिज्यादि—जौनपुर कृषिप्रधान जिला है। यहांकी उपज ही प्रधान वाणिज्य द्रव्य है। यूरोपीयके निरीक्षणमें नील प्रस्तुत होता है। मरियाहू नगरमें आश्विन मासमें और करखूली नगरमें चैत्र मासमें मेला लगता है। इस मेलेमें प्रायः २०।२५ हजार मनुष्य एकत्र होते हैं।

अयोध्या रोहिलखण्ड रेलपथ इस जिलेमें ४५ मील तक गया है। जलालपुर, जौनपुर सदर, जौनपुर नगर, मेहरावस खेतसराय, शाहगंज, और बीलवाई ये सब स्टेशन इस जिलेमें पड़ते हैं। यहां १२८ मील पक्की और ४२८१ मील कच्ची सड़क है। [illegible] गोमती नदीमें बड़ी बड़ी नावें आती जाती हैं। इन सब नावोंमें अयोध्यासे अनाज आदि लाया जाता है।

जौनपुर जिला अंगरेजी शासनके समय अयोध्या गवर्मेण्टके अधीन बनारस प्रदेशके अन्तर्गत किया गया। १८६५ ई०में यह जिला इलाहाबाद विभागमें मिला लिया गया। यहां एक मजिष्ट्रेट और कलक्टर, एक जोइण्ट या असिष्टेण्ट मजिष्ट्रेट तथा और दूसरे दूसरे अधीनस्थ कर्मचारी रहते हैं। यहां २३ डाकघर हैं और प्रत्येक रेलवे स्टेशनमें तारघर है। इस जिलेमें विद्याकी उन्नति बहुत कम है। यहां देशी, अरबी और पारसी भाषा सिखानेके विद्यालय हैं। अंगरेजी भाषा बहुत जगह सिखाई जाती है। यह जिला पांच तहसील और १७ थानोंमें विभक्त है। केवल जौनपुर नगरमें ही म्युनिसिपालिटी है।

इस जिलेकी वायु वृष्टि होनेसे बारहो महीने ठण्ढी रहती है तथा ग्रीष्मादिका भी अधिक प्रकोप नहीं है। १८८१ ई० तक ३० वर्षका वार्षिक वृष्टिपात ४१.७१ इञ्च हुआ है। यहां आठ अस्पताल हैं।

२ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५°३७´ से २५°५४´ उ० और देशा० ८२°२४´ से ८२°५२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २६८१३१ है। इसमें ७११ ग्राम और दो शहर लगते हैं। तहसीलमें हवेली जौनपुर, बियालसी, रारी, जाफराबाद, करियात, दोस्त, खपरहा और तप्पा सरेमू नामके सात परगना हैं। अयोध्या रोहिलखण्ड रेलपथ इस तहसीलमें हो कर गया है। इसके सिवा सड़कोंकी बहुत सुविधा है। गोमती और सैनदी तथा और छोटी छोटी दूसरी नदियां इस तहसीलमें प्रवाहित हैं।

३ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेका सदर और प्रधान शहर। यह अक्षा० २५°४५´ उ० और देशा० ८२° ४१´ पू०में [illegible] और बङ्गाल नार्थ वेष्टर्न रेलपथ पर [illegible]

वीरचन्द्रने जिस स्थान पर मन्दिर बनाया, वहां ही वर्तमान दुर्ग खड़ा है। १३५८ ई०को फीरोजशाह तुगलकने इसकी नींव डाली फिर वहां सूबेदार रहने लगे। ख्वाजा जहान् नामक शासकने स्वाधीनताकी घोषणा करके विहारसे सम्भल और कोयल (अलीगढ़) तक राज्य बढ़ाया था। किन्तु अकबरने जब इलाहाबादको राजधानी बनाया तो जौनपुरने अपना राजनैतिक महत्त्व गंवाया। जौनपुर इल्मके लिहाजसे उस समय हिन्दुस्तानका मुकुट कहलाता था।

जौनपुर एक प्राचीन नगर है। यह १३८४ से १४८३ ई० अर्थात् १०० सौ वर्ष तक बदाऊँ और इटावासे विहार पर्य्यन्त एक विस्तीर्ण सुसमृद्ध स्वाधीन मुसलमान राज्यकी राजधानी था। असंख्य प्राचीन मन्दिर, अट्टालिकायें, मसजिदें और उनके भग्नावशेष अभी भी विद्यमान रहनेसे स्थपतिविद्याका यथेष्ट परिचय देते हैं। ये सब मन्दिर जौनपुरके स्वाधीन पठान शर्क्कि राजाओंके समयमें बनाये गये हैं। इन्होंने जिस तरह बहुतसी मसजिदें स्थापित की हैं उसी तरह इधर उधर प्राचीन हिन्दू और बौद्धोंके असंख्य मन्दिर भी नष्ट किये हैं। यह स्पष्ट है, कि उन सब हिन्दू और बौद्ध मन्दिरोंका भग्नावशेष लेकर ही उन्हींके ऊपर मसजिद आदि बनाई गई हैं।

इस नगरका प्राचीन नाम क्या है इसका पूरा पूरा पता नहीं चलता। जौनपुरवासी ब्राह्मणोंका कहना है, कि इसका प्रकृत नाम जमदग्निपुर है। अभी भी वहांके सभी हिन्दू इसे जौनपुर न कह कर जमनपुर ही कहते हैं। मुसलमानोंका कहना है, कि जब कि फिरोज शाह इस स्थानको देखने आये थे, तब इन्होंने अपने ज्ञातिभ्राता जुनान (महम्मद तुगलक) के सम्मानार्थ उन्हींके नाम पर इस स्थानका नाम जौनपुर रक्खा है। इस पर हिन्दू लोग कहते कि, इसका नाम जमनपुर था, बाद फिरोजको खुस करनेके लिए, इसी नामको परिवर्तन कर जौनपुर रक्खा गया। फिर किसी दूसरे सुचतुर व्यक्तिने कहा है कि [illegible] जौनपुर शब्दमें ७७२ संख्या मालूम पड़ती है। ठीक उसी संख्यक हिजरा शकमें (१३७० ई०में) फिरोज शाह जौनपुर आये हुए थे। जौनपुरका नाम भले ही जो कुछ हो परन्तु [illegible] शाहके बहुत पहलेसे विद्यमान था। फिरिश्ता [illegible] कि जौनपुर (जवनपुर) दिल्लीसे बङ्गाल [illegible] पर अवस्थित है। जुमा मसजिदके दक्षिण द्वार पर सातवीं शताब्दीके शिलालेखमें मोखरि वंशके ईश्वरवर्माका नाम लिखा है, उससे प्रमाणित होता है, कि मुसलमानोंके बहुत पहले यहां एक सुसमृद्ध नगर था।

नदीतटस्थ दुर्गके विषयमें प्रवाद है कि यहां करार नामक एक राक्षस रहता था। श्रीरामचन्द्रजीने उसका बध किया। अभी भी वहांके लोग इस दुर्गको करारका कहते और करार वीरको पूजा करते हैं। दुर्गके उत्तरमें करार वीरका एक मन्दिर है।

जौनपुरनगरमें शर्कि राजाओंसे निर्मित बहुतसी मसजिदें विद्यमान हैं। इनमेंसे हुसेन प्रतिष्ठित जुमा मसजिद सबसे बड़ी और मनोहर है। इसकी दीवार अन्यान्य मसजिदोंकी अपेक्षा बहुत ऊँची है। मसजिदोंका पत्थर देखनेसे मालूम पड़ता है कि यह किसी हिन्दु मन्दिरका अंश था। दूसरी दूसरी मसजिदोंमेंसे अटला मसजिद इब्राहीम शाहसे प्रतिष्ठित है। ८ शिलालेखों द्वारा मालूम हुआ है, कि फिरोजशाहने १३७६ ई०में अटला देवीके मन्दिरके ऊपर इस मसजिदका बनाना आरम्भ किया और १४०८ ई०में इब्राहीमने इसे पूरा किया था।

इब्राहीम-नायब-बारबककी मसजिद—यह वर्त्तमान सब मसजिदोंसे पुरानी है। शिलालेखसे जाना जाता है कि यह १३७७ ई०में फिरोजशाहके भाई इब्राहीम-नायब बारबकसे बनाई गई है। इसकी गठन प्रणाली प्राचीन बङ्गीय स्थापत्यके समान है।

मसजिद-खालिस मुखलिस—उसे दरीवा और चरंगुली भी कहते हैं। यह विजयचन्द्र और जयचन्द्रके मन्दिरके ऊपर बनाई गई है।

नगरसे उत्तर-पश्चिम कुछ दूर बेगमगञ्ज नामक स्थानमें बीबी राजीकी मसजिद या लाल दरवाजा-मसजिद है। महमूद शाहकी बीबी राजीने इसकी प्रतिष्ठा की है।

नगरसे कुछ दूर चाचकपुर नामक स्थानमें इब्रा-

[illegible]ष्ठित झांझरी मसजिदका कुछ अंश विद्यमान [illegible]

[illegible] सिवा जौनपुरमें और भी बहुत सी मसजिद तथा समाधिस्थान आदि विद्यमान हैं। जिनमेंसे हाकिम सुलतान महम्मदकी मसजिद, नवाब मशिन खांकी मसजिद, शाह कबीरकी मसजिद, जहांद खांकी मसजिद और सुलेमान शाहकी कब्र उल्लेखयोग्य है।

जौनपुरके निकट गोमतीके ऊपर एक प्रसिद्ध पत्थरका पुल है। वह ७१२ फुट लम्बा है और उसमें १६ गुम्बज लगे हुए हैं। मुगल राजाओंके समयमें जौनपुरके शासनकर्त्ता मुनीमखांने १५६८-७३ ई०में इस पुलको बनाया था। पुलको तैयार करनेमें लगभग ३० लाख रुपये खर्च हुए होंगे।

आज भी जौनपुर नगरमें अधिक वाणिज्य होता है। यहांके गुलाब, जुही आदिके फूलोंका अतर प्रसिद्ध है। पहले यहां कागज प्रस्तुत होता था, अभी कलके कागजकी प्रतिद्वन्द्विताके यह व्यवसाय लुप्त हो गया है। गोमती नदीके दाहिने किनारे पर अदालत है। यहां जज और मजिष्ट्रेट रहते हैं। गिर्जा, डाक बङ्गला, कारागार और पुलिसस्टेशन है। जौनपुरकी नदीके दोनों किनारे अयोध्या-रोहिलखण्ड रेलवेके दो स्टेशन हैं। जिसमेंसे एक अदालतके निकट और दूसरा शहरके निकट है। यहां म्युनिसिपैलटी भी है।

जौनसार बावर—युक्तप्रान्तके देहरादून जिलेकी चकराता तहशीलका परगना।

जौनाल (हिं० स्त्री०) रबीका खेत।

जौमर (सं० क्ली०) जुमरेण निर्वृत्तः जुमर-अण्। १ जुमरनन्दिकृत संक्षिप्तसार व्याकरण। (त्रि०) २ संक्षिप्तसार व्याकरणाध्यायी, जो संक्षिप्तसार व्याकरण पढ़ते हों।

जौरा (हिं० पु०) १ नाज बारी आदि शूद्रोंको उनके कामके बदलेमें दिये जानेका अनाज। २ बड़ा रस्सा।

जौलाई (हिं० स्त्री०) जुलाई देखो।

जौलाज (हिं० पु०) प्रति रुपया बारह पैसे, फी रुपया तीन आना।

जौलायनभक्त (सं० त्रि०) जुलस्य गोत्रापत्यं इञ्, इञन्तात् फञ्, ततो भक्तल्। १ जुलका गोत्रापत्यविशेष। २ वह जिला जहां जौलायन रहते हैं।

जौशन (फा० पु०) एक प्रकारका आभूषण, जो बाहु पर पहना जाता है।

जौहव (सं० त्रि०) जुहु अन्। अवदानयोग्य हृदयादि। हृदय, जिह्वा, क्रोड़, वक्ष, बाहु, सव्य सक्थि, दोनों पार्श्व प्रभृति अङ्ग समष्टिका नाम जौहव है।

जौहर (फा० पु०) १ रत्न, बहुमूल्य पत्थर। २ तत्त्व, सारांश, सार वस्तु। ३ सूक्ष्म चिह्न या धारियां जो तलवार या और किसी लोहेके धारदार हथियार पर रहती हैं। इससे लोहेकी उत्तमता जानी जाती है, हथियारकी ओप। ४ उत्कर्ष, तारीफकी बात। ५ आत्महत्या, प्राणत्याग। ६ दुर्गमें राजपूत स्त्रियोंके जलनेके लिए बनाई हुई चिता।

७ प्रबल शत्रुओं द्वारा आक्रान्त होने और पराजयकी सम्भावना देखने पर राजपूत प्रमुख जातिका आत्मोत्सर्ग। पहले यह प्रथा राजपूतानाके सर्वत्र प्रचलित थी। जब वे विजयकी कोई आशा नहीं देखते, तब स्त्री पुत्रादिसे विदा ले कर उन्हें प्रज्वलित अग्निकुण्डमें आत्मविसर्जन करनेको कहते थे। पीछे वे स्नान करते और अङ्ग पर चन्दन कुङ्कुमादि विलेपन, इष्टदेव स्मरण और आपसमें आलिङ्गनादिके द्वारा विदाग्रहण कर उन्मत्तकी भांति रणक्षेत्रमें प्रवेश कर युद्ध करते हुए प्राणविसर्जन करते थे। इस प्रकारके भीषण कार्योंसे बहुतसे नगर एक बारगी जनशून्य हो जाया करते थे। विजयियोंको युद्धके अन्तमें भस्मावशिष्ट नगरके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता था। कर्नल टाड साहबने अपने "राजस्थान"में जयसलमेर, मेवाड़ आदि स्थानोंके लोमहर्षणकारी भीषण जौहरका विषय लिखा है। जयसलमेर जब शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया, तब मूलराज और रत्नने अन्तःपुरमें जा कर धर्म और सम्भ्रमकी रक्षाके लिए रानियोंको शेष सुहाग ग्रहण करनेके लिए कहा। रानियां सहास्यमुखसे परस्पर आलिङ्गन करती हुई कहने लगीं—"आज मर्त्यलोकमें हम लोगोंकी आखरी मुलाकात है, कल फिर स्वर्गमें जा कर मिलेंगी।" दूसरे दिन सुबह ही भीषण चितानल प्रज्वलित हुआ। नगरकी तमाम स्त्रियां और बच्चे आदि प्रायः २४००० प्राणी अरासी देरमें संसारसे अन्तर्हित हुए। [illegible]ोंके

भी बदन पर भय वा अनिच्छाके लक्षण प्रगट नहीं हुए। चिताके धुएँसे गगनमण्डल ढक गया। उत्तप्त शोणित-स्रोतसे भूतल प्लावित हो गई। इसके साथ बहुमूल्य रत्नादि विलुप्त हो गये। वीरगण इस हृदयविदारक दृश्यको चुपचाप देखते रहे, उन्हें जीवन भार मालूम पड़ने लगा। पीछे स्नान करके पवित्र देहसे ईश्वरोपासनापूर्वक तुलसी और शालग्रामको कण्ठमें धारण कर और परस्पर आलिङ्गनपूर्वक क्रोधसे आरक्त हो ३८०० वीर पुरुष जीवनकी आशा पर जलाञ्जलि दे कर युद्धकी प्रतीक्षामें खड़े हुए। राजपूतानेके इतिहासमें ऐसी घटनाएँ विरल नहीं हैं। बहुत बार एक साथ एक एक जातिका लोप हुआ है, मेवाड़के इतिवृत्तमें इसके प्रमाण मिलते हैं।

विजेताके हाथ बन्दी होनेकी आशङ्का ही राजपूतोंकी ऐसी प्रवृत्तिका कारण है। उनकी रमणियां विजेताके हाथ लगेंगी, इस घृणाकर दुरपनेय कलङ्ककी अपेक्षा वे मृत्युको शतगुण सुखकर समझते थे। इसीलिए नगरकी पराजय होते ही राजपूत रमणियां मरनेके लिए तयार हो जाती थीं। उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार युद्धमें विजयलब्ध रमणियां विजेताकी न्यायसङ्गत सम्पत्ति होती थीं। विजेता उनके प्रति यथेच्छ व्यवहार कर सकते थे। उनका धर्माधर्म सब कुछ विजेताकी इच्छाधीन था। बन्दिनी रमणियोंके प्रति सौजन्य प्रकट न करनेसे कोई दूषणीय नहीं होती थी। अतएव विजित महाभिमानी राजपूत अपरिहार्य और निश्चित अपमानके भीषण आतङ्कसे इस प्रकारके उत्कट अध्यवसायमें प्रवृत्त हों, इसमें आश्चर्य नहीं। अपनी कुलबालाओंके सतीत्वकी रक्षाके लिए एतादृश यत्नपर और चिन्तान्वित होने पर भी सुसभ्य वीरप्रकृति उदारचेता राजपूत विजित शत्रु-महिलाओंके सम्मान और धर्मरक्षार्थ तादृश यत्नवान् नहीं थे। ऐसा नहीं था कि, जब यवन लोग नगर अधिकार करते थे, तभी जौहर प्रथा कायम की जाती हो, किन्तु राजपूतगण अन्तर्विद्रोहके कारण राजपूतों द्वारा पराजित होने पर भी जौहर कायम करते थे।

अलाउद्दीन आदि बहुतसे मुसलमान विजेताओंने चित्तौर प्रभृति नगरों पर जय प्राप्त कर केव[illegible]-शेष जनशून्य स्थान मात्र पाया था। चोनव[illegible]नारि और किसी किसी स्थानमें मुसलमान लोग भी इस भीषण प्रथाका अवलम्बन लेते हैं। १८३८ ई०में खिलात आक्रमणके समय शाहवासी नूरमहम्मद, शत्रुओं द्वारा नगर जीते जाने पर अपनी बेगमों तथा परिवारकी अन्यान्य स्त्रियोंको मार कर युद्धको निकले थे।

जौहर—बादशाह हुमायूंके एक पार्श्वचर। ये भृङ्गाके द्वारा बादशाह हुमायूंके हाथ धुलानेके लिए पानीका इन्तजाम करते थे। सर्वदा हुमायूंके पास रह कर ये हुमायूंको प्रत्येक कार्यावलीके विवरणों सहित एक जीवनी लिख गये हैं। परन्तु उसमें हुमायूंके गभीर राजनैतिक विषयोंका उल्लेख नहीं है।

जौहरी (फा० पु०) १ रत्न-व्यवसायी, जवाहरात बेचनेवाला। २ रत्न परखनेवाला, वह जो जवाहिरातकी पहचान रखता हो। ३ वह जो किसी वस्तुके गुणदोषकी पहचान करता हो। ४ गुणग्राहक, वह जो गुणका आदर करता हो, कदरदान।

जौहरीलाल शाह—सम्मेदशिखिरपूजा और पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका वचनिका नामक जैन ग्रन्थोंके रचयिता। रचनाकाल वि० संवत् १८१५ है।

जौहार—बम्बई प्रान्तके थाना जिलेका एक राज्य। यह अक्षा० १९° ४०´ एवं २०° ४´ उ० और देशा० ७३° २´ तथा ७३° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३१० वर्गमील है। बम्बई बरोदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे पश्चिम सीमासे लगी है। पहाड़ और जङ्गलकी कमी नहीं। १२० इञ्च तक वृष्टि होती है। जलवायु अच्छा नहीं।

१२९४ ई० तक वारली वंशका राज्य रहा। पहले कोली राजा जयबने चरसे भर जमीन मांगी और फिर वे उसी सूत्रसे कितने ही देशों पर अधिकार कर बैठे। १३४३ ई०को जयबके उत्तराधिकारी नीम शाहको दिल्लीसे "राजा" उपाधि मिलने पर जो संवत् चला, उसे आज भी सरकारी कागजोंमें लिखते हैं। जौहारके राजाने मुगल सेनापतियोंसे मिल करके पोर्तगीजोंको लूटा था। पीछेसे मराठोंने आक्रमण करके इसे करद

राज्य छीन लिया। १८८० ई०में अंगरेजोंने राजाको गोद लेनेकी सनद दी। यह राज्य गवर्नमेण्टको कोई कर नहीं देता। लोकसंख्या प्रायः ४७५३८ है। इसमें १०८ गांव बसते हैं। जौहार गांव अक्षा० १८° ५६´ उ० और देशा० ७१° १६´ पू०में है। इसीके नाम पर राज्यका यह नामकरण हुआ है। जौहार ग्रामको जनसंख्या प्रायः ३५६७ है। जलवायु अच्छा और ठण्ढा है। राज्यका आय १ लाख ७० हजार है। ५००००) रु० मालगुजारी आती है। फौज बिलकुल नहीं है।

ज्ञ (सं० पु०) जानातीति ज्ञा-क। इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। पा ३।१।१३५। १ ज्ञानी, जाननेवाला। २ ब्रह्मा। ३ बुध। ४ पण्डित। जो उत्तम अधम मध्यम प्रभृति किसी काममें नहीं झिझकते, कार्य समूह देख कर जो भय नहीं खाते, अर्थात् जिन पर कोई काम आक्रमण नहीं कर सकता, और जो कार्यातीत हैं वे ही ज्ञ हैं। "क्रियासु बाह्यान्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते यः।" (प्रश्नोत्तर-उप०) इस जगत्‌में ऐसी कोई वस्तु देखनेमें नहीं आती जिसका प्रयोजन न हो। प्रतिक्षण समस्त वस्तुओंका प्रयोजन पड़ता है। सर्वदा प्रयोजन होनेके कारण "गच्छतीति जगत्" जगत्‌का नाम गतिशील अर्थात् कार्यशील पड़ा है। एकमात्र पुरुष या आत्माका कार्य नहीं है। इसलिये वह निष्क्रिय और निर्विकार कहा जाता है। सांख्यके मतसे ज्ञ ही पुरुषके जैसा अभिहित हुआ है। 'व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्' (तत्त्वकौ०) व्यक्त जगत्। अव्यक्त प्रकृति और ज्ञ पुरुष है। पुरुष देखो। ज्ञको पुरुष जान लेने पर सब कोई दुःखसागरसे उत्तीर्ण हो जाते हैं। ५ बुधग्रह। "बुधे सूर्य्यज्ञशुक्रानां शक्ततुष्करदार्णवाः" (सूर्यसि०) ६ मङ्गलग्रह। इस शब्दका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं है; यह उपसर्ग या शब्दान्तरके साथ मिला रहता है। यथा—शास्त्रज्ञ, प्राज्ञ प्रभृति। ज्ञा-क्विप्। ७ ज्ञान। ज्ञान देखो। ८ ज और ञके संयोगसे बना हुआ संयुक्त अक्षर।

ज्ञक (सं० त्रि०) ज्ञ स्वार्थे कन्। ज्ञाता, जाननेवाला।

ज्ञता (सं० स्त्री०) ज्ञ-तल्-टाप्। ज्ञाता।

ज्ञपित (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच्-क्त। १ ज्ञापित, जाना हुआ। २ मारित, मारा हुआ। ३ तोषित, तुष्ट किया हुआ। ४ शाणित, तेज किया हुआ, चोखा किया हुआ। ५ निशामित, जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो। ६ आलोकित, देखा हुआ। मारण और तोषण प्रभृति अर्थमें ज्ञ धातुके विकल्पमें इट् होता है, इसीलिये इस अर्थमें ज्ञप्त भी हो सकता है। ज्ञप-क्त। ७ ज्ञान।

ज्ञप्त (सं० त्रि०) ज्ञप्यते इति ज्ञप-णिच्-क्त। ज्ञापित, जाना हुआ। ज्ञपित देखो।

ज्ञप्ति (सं० स्त्री०) ज्ञप-क्तिन्। १ बुद्धि। २ मारण। ३ तोषण, तुष्टि। ४ तीक्ष्णीकरण, तेज करनेकी क्रिया। ५ स्तुति। ६ विज्ञापन। ७ ज्ञा, जानकारी। ८ जलानेकी क्रिया।

ज्ञवार (सं० पु०) बुधवार, बुधका दिन।

ज्ञा (सं० स्त्री०) १ जानकारी। २ कविताको भाषा।

ज्ञात (सं० त्रि०) ज्ञायते इति ज्ञा कर्म्मणि क्त। १ विदित, जाना हुआ। इसके पर्याय—ज्ञप्तज्ञान, बुद्ध, बुधित, प्रमित, मत, प्रतीत, अवगत, मनित और अवसित है। भावे क्त। २ ज्ञान।

ज्ञातक (सं० त्रि०) ज्ञात स्वार्थे कन्। विदित, जाना हुआ।

ज्ञातनन्दन (सं० पु०) ज्ञातेन बोधेन नन्दयति प्रीणयति ज्ञात नन्द ल्यु। अर्हद्देव, जैनोंके अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामीका एक नाम।

ज्ञातपुत्र (सं० पु०) ज्ञातनन्दन देखो। मागधी भाषामें इनका नाम णायपुत्त है। किन्हीं किन्हीं जैनोंका मत है कि ज्ञातवंशमें जन्म होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। मज्झिमणिकाय नामक पालिग्रन्थके मतानुसार बुद्ध जब सामगामवासमें इनकी अपेक्षा कर रहे थे, उस समय पावा(पुर) नगरमें णातपुत्तकी मोक्ष हुई।

ज्ञातयौवना (सं० स्त्री०) मुग्धा नायिकाका एक भेद। इसके दो भेद हैं—नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा।

ज्ञातल (सं० त्रि०) ज्ञातं लाति ला-क। ज्ञानयुक्त, जिससे ज्ञान हो।

ज्ञातलेय (सं० पु०-स्त्री०) ज्ञातलस्यापत्यं ज्ञातल-ढक्। शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३। ज्ञातलापत्य, ज्ञातलके वंशज।

ज्ञातव्य (सं० त्रि०) ज्ञायते यत् तत्, ज्ञा-तव्य । ज्ञेय, वेद्य, अवगन्तव्य, बोधगम्य । जो जाना जा सके, जिसे जानना हो वा जिसको जानना उचित है, वही ज्ञातव्य है। श्रुति आदि सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विहित है कि—आत्मा ही एकमात्र ज्ञातव्य है। "आत्मा वा अरे ज्ञातव्यः ज्ञान-विषयीकर्तव्यः" अरि मात्रेयि ! आत्माको ज्ञानका विषय करो, जिससे आत्मा ही एकमात्र लक्ष्य हो। आत्माको जान लेनेसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान हो जायगा, क्योंकि जगत् आत्ममय है। एक वस्तुके जाननेसे जब समस्त वस्तुओंका ज्ञान होता है, तब उस एक वस्तुको छोड़ कर पृथक् पृथक् वस्तुओंको जाननेकी क्या आवश्यकता है ? वह एक वस्तु ही आत्मा है। अतएव आत्माके सिवा और कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है।

ज्ञातसिद्धान्त (सं० पु०) ज्ञातः विदितः सिद्धान्तो येन, बहुव्री०। शास्त्रतत्त्वज्ञ, वह जो शास्त्र अच्छी तरह जानता हो।

ज्ञातसार (सं० पु०) ज्ञातः सारः सारांशो येन, बहुव्री०। १ सारज्ञ, वह जो किसी विषयका तत्त्व (सार) जानता हो। २ ज्ञानगोचर, जानकारी।

ज्ञाता (सं०त्रि०) जाननेवाला, जानकार।

ज्ञातृधर्मकथा (सं० स्त्री०) जैनियोंके प्रधान अङ्गोंमेंसे एक। जैनधर्म देखो।

ज्ञाति (सं० पु०) जानाति छिद्रं दोषं कुलस्थितिञ्च ज्ञा-क्तिच्। पितृवंशीय, एक ही गोत्र या वंशका मनुष्य। भाई बन्धु, बान्धव, गोती, सपिण्डक, समानोदक आदि। इसके पर्याय—सगोत्र, बान्धव, बन्धु, स्व, स्वजन, अंशक, गन्ध, दायाद, सकुल्य और समानोदक है। ज्ञातिके चार भेद हैं—सपिण्ड, सकुल्य, समानोदक और सगोत्रज। सात पुरुष तक सपिण्ड, सातसे दश पुरुष तक सकुल्य, दशसे चौदह पुरुष तक समानोदक माना गया है। किसी किसीके मतसे पूर्वपुरुषके जन्मनामस्मरण तक भी समानोदक है। इसके बाद सगोत्रज है।

ज्ञातिहिंसा अत्यन्त पापजनक है।

"यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
ज्ञातिद्रोहस्य पापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं॥" (ब्रह्मवैवर्त)

ज्ञातिहिंसा करनेसे जो पाप होता है, ब्रह्महत्या, सुरापान प्रभृति महापाप भी उसके १६ भागोंमेंसे एक भाग भी नहीं है। इसीलिये शास्त्रमें ज्ञातिहिंसा विशेष रूपसे निषिद्ध माना गया है। जन्म और मरणमें ज्ञातिका अशौच ग्रहण करना पड़ता है। अशौच देखो। ज्ञातिके मध्य चचेरे भाई सहजशत्रु माने गये हैं। ज्ञायते विद्यतेऽस्मात् आपादाने ज्ञा-क्तिन्। २ पिता, बाप।

ज्ञातिकार्य (सं० पु०) ज्ञातीनां कार्यं, ६-तत्। ज्ञातियोंके कर्त्तव्य कर्म।

ज्ञातित्व (सं० क्ली०) ज्ञाति भावे त्व। ज्ञातिके धर्म कर्म वा व्यवहार, बन्धुबान्धवोंको अनिष्ट चेष्टा।

ज्ञातिपुत्र (सं० पु०) ज्ञातीनां पुत्रः, ६-तत्। १ ज्ञातिका पुत्र, गोत्रजका लड़का। २ जैनतीर्थङ्कर महावीर स्वामीका नाम।

ज्ञातिभव (सं० पु०) सम्बन्ध, रिश्ता।

ज्ञातिभेद (सं० पु०) ज्ञातीनां भेदः ६ तत्। ज्ञाति-विच्छेद, आपसकी फूट।

ज्ञातिमुख (सं० त्रि०) ज्ञातिः एव मुखं प्रधानं यस्य, बहुव्री०। १ ज्ञाति प्रधान। २ ज्ञातिके जैसा मुख या स्वभाव।

ज्ञातिविद् (सं० त्रि०) ज्ञातिं वेत्ति, ज्ञाति-विद्-क्विप्। ज्ञातिमन्त, जो नाता या रिश्ता जोड़ता है।

ज्ञातृ (सं० त्रि०) ज्ञा-तृच्। १ ज्ञानशील, जानकार। २ ज्ञानी, वेत्ता।

ज्ञातृत्व (सं० पु०) अभिज्ञाता, जानकारी।

ज्ञातेय (सं० क्ली०) ज्ञातेर्भावः, कर्मधा० ज्ञाति-ठक्। कपिज्ञात्योर्ढक्। पा ५।१।१२७। ज्ञातित्व, बांधवके धर्म, कर्म या व्यवहार।

ज्ञात्र (सं० क्ली०) ज्ञातेर्भावः ज्ञातृ-अण्। ज्ञातृत्व, अभिज्ञाता, जानकारी।

ज्ञान (सं० क्ली०) ज्ञा-भावे ल्युट्। १ बोध, प्रतीति, जानकारी। २ विशेष और सामान्य द्वारा अवरोध, जानना। ३ बुद्धिमात्र। वैशेषिक और न्यायदर्शनमें ज्ञानका विषय इस प्रकार लिखा है। बुद्धि शब्दसे ज्ञानका बोध होता है। ज्ञान दो प्रकारका है,—प्रमा और अप्रमा (भ्रम) जिसमें जो जो गुण और दोष हैं,

उसको उन उन गुण और दोषोंमें युक्त जाननेको यथार्थ ज्ञान वा प्रमा कहते हैं। जैसे—ज्ञानी व्यक्तिको पण्डित जानना, अन्धेको अन्धा मानना, इत्यादि। जिसमें जो गुण और जो दोष नहीं हैं। उसमें उन गुण और दोषोंका मानना; अयथार्थ ज्ञान वा अप्रमा है। जैसे मूर्खको विद्वान् मानना, रस्सीको सर्प समझना इत्यादि। अप्रमा वा भ्रमका एक अनुगत कोई कारण नहीं है। जैसे—पित्ताधिक्यरूप दोष हो जानेपर अत्यन्त शुभ्र शङ्ख भी पीला दीखता है, अतिदूरताके कारण बहुत बड़ा चन्द्रमण्डल भी छोटा दीखता है और मण्डूक को चर्बीमें बने हुए अञ्जनके लगानेसे बाँस भी सर्प मालूम होने लगता है। इस प्रकारके दोषों द्वारा जब अप्रमा वा भ्रम-ज्ञान हो जाता है, तब सहसा यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जबतक उक्त दोष दूर नहीं होते, तबतक भ्रम रहता है। (भाषापरिच्छेद १२७) देखो, शङ्ख अत्यन्त शुभ्र होता है, पीला नहीं होता, ऐसे हजारों उपदेशोंके सुनने पर भी अर्थात् शङ्ख श्वेत है ऐसा निश्चय ज्ञान होने पर भी जब पित्ताधिक्य होता है, तब किसी तरह भी शङ्ख पीलेके सिवा श्वेत नहीं जान पड़ता। निश्चय और संशयके भेदसे ज्ञानको दो विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है; जैसे—एक तो यह कि इस मकानमें मनुष्य है, और दूसरा यह कि इस मकानमें मनुष्य है या नहीं? इस प्रकारके ज्ञानोंको क्रमसे निश्चय और संशय कहा जा सकता है। संशय नाना कारणोंसे हो सकता है, कभी परस्पर विरुद्ध वाक्यरूप विप्रतिपत्ति वाक्यको सुनकर संशय होता है। जैसे—किसी समय घरमें आदमी है या नहीं, इसकी कोई निश्चयता नहीं उस समय यदि एक आदमी यह कहे कि "इस घरमें आदमी है" और एक कहे कि "नहीं इस घरमें आदमी नहीं हैं तो घरमें आदमी है या नहीं इसका कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। सिर्फ संशयारूढ़ ही होना पड़ता है। यह संशय कभी साधारण और कभी असाधारण धर्म दर्शन होने पर भी हुआ करता है। देखो, जब यह देखनेमें आता है कि, किसी गृहमें लेखनी और पुस्तक दोनों ही हैं, और किसी गृहमें सिर्फ लेखनी ही है, पुस्तक नहीं है तब यही स्पष्ट प्रतिपन्न होगा कि लेखनी रहने पर पुस्तक भी रहेगी, ऐसा कोई नियम नहीं है। लेखनी रहनेसे पुस्तक रहे तो रह सकती है, इसलिये लेखनी और पुस्तक तदभावको सहचररूप साधारण धर्म है। साधारण धर्मरूप लेखनीको देखकर कोई व्यक्ति निश्चय कर सकता है कि, इस घरमें पुस्तक है, वास्तवमें उस लेखनीके देखनेसे ऐसा संशय ही हुआ करता है कि, इस जगह पुस्तक है या नहीं? तथा सन्दिग्ध वस्तु और तदभावके साथ जिस वस्तुका सहावस्थान पहले नहीं देखा गया है, ऐसी अवस्थामें उस वस्तुके दर्शनको असाधारण धर्म दर्शन कहते हैं। जैसे-केवला रहनेसे सर्प रहता है या नहीं? जिस व्यक्तिको एकतरफकी निश्चयता नहीं वह व्यक्ति यदि केवला देखे, तो उसको सर्प वा तदभाव किसीका भी निश्चयज्ञान नहीं होता। सर्प है या नहीं, सिर्फ ऐसा संशय ही हुआ करता है। विशेष दर्शन होने पर संशयको निवृत्ति होती है। विशेष पदसे जिस वस्तुका संशय होता है, उसके व्याप्यका बोध होता है। जिस पदार्थके न रहनेसे जो पदार्थ नहीं रह सकता, उसका व्याप्य वही पदार्थ होता है। जैसे—वह्निके बिना धूम नहीं हो सकता, इसलिये वह्निका व्याप्य धूम है, सुतरां जबतक धूम न देखनेमें आवे, तबतक वह्निका संशय रहता है, किन्तु धूम दृष्टिगोचर होने पर वह्निका संशय मिट जाता है, फिर निश्चयात्मक ज्ञान होता है।

ज्ञानात्मिका बुद्धि अनुभव और स्मरणके भेदसे दो प्रकारकी है। सुख और दुःख यथाक्रमसे धर्म और अधर्म द्वारा उत्पन्न होते हैं। सुख समस्त प्राणियोंका अभिप्रेत है और दुःख अनभिप्रेत। आनन्द और चमत्कार आदिके भेदसे सुख, और क्लेश आदिके भेदसे दुःख नाना प्रकारके हैं। अभिलाषको ही इच्छा कहते हैं। सुखमें और दुःखाभावमें इच्छा उन उन पदार्थोंके ज्ञानसे ही उत्पन्न हुआ करती है। सुख और दुःखनिवृत्तिके साधनसे सुख-साधनता-ज्ञान और दुःखनिवर्त्तकता-ज्ञान होनेसे, अर्थात् इस वस्तुसे मुझे सुख होता है, और इस वस्तुसे मेरे दुःखों को निवृत्ति होगी, ऐसा ज्ञान होने पर यथाक्रमसे सुख और दुःखको निवृतिके लिए इच्छा होती है। देखो, जो

व्यक्ति यह जानता है कि स्रक्चन्दनादि मेरे लिए सुखजनक हैं और औषधपान मेरे दुःखका नाशक है, उसीको उन विषयोंमें इच्छा होती है और जिसको ऐसा ज्ञान नहीं है उसको उन विषयोंमें कभी भी इच्छा नहीं होती। इष्ट साधनता ज्ञानकी भाँति चिकीर्षाके और भी दो कारण हैं। जैसे—क्वतिसाध्यताज्ञान और बलवद निष्ट-साधनताज्ञानका अभाव। इस विषयको मैं कर सकता हूं, इस प्रकारके ज्ञानका नाम है क्वतिसाध्यताज्ञान और इस विषयको करनेसे मेरा बड़ा अनिष्ट होगा, इस प्रकारके ज्ञानके अभावको बलवदनिष्टसाधनता-ज्ञानका अभाव कहते हैं। देखो, योगाभ्यास करना हमारे लिए क्वतिसाध्य नहीं है, इस प्रकारका जिनको स्थिरनिश्चय हो चुका है वे कभी भी योगाभ्यासमें प्रवृत्त नहीं हो सकते। किन्तु योगाभ्यास सहजहीमें हो सकता है, योगियोंको ऐसा विश्वास होने पर ही वे योगसाधनमें रत हुआ करते हैं। जो व्यक्ति यह जानता है कि, यह फल सुमधुर अवश्य है, किन्तु सर्पदष्ट होनेसे महाविषाक्त हो गया है, इसलिए अब इसके खानेसे प्राणहानि होगी इसमें सन्देह नहीं' उस व्यक्तिको कभी भी उस फलके खानेमें प्रवृत्ति नहीं होती। परन्तु जिसको ऐसा ज्ञान नहीं है, उसको उसी समय उस फलके खानेसे प्रवृत्ति होती है। (न्यायदर्शन)

ज्ञायते अनेन, ज्ञा-करणे. ल्युट्। ३ वेद। ४ शास्त्रादि वह जिसके द्वारा जाना जा सके।

विशेष—आत्माका मनके साथ मनका इन्द्रियके साथ और इन्द्रियका विषयके साथ सम्बन्ध होने पर ज्ञान होता है। समझ लो कि, एक घट रक्खा है दर्शनेन्द्रियने घटको विषय किया अर्थात् देखा, देख कर मनसे कहा, मनने फिर आत्माको जतलाया। तब आत्माको ज्ञान हुआ, आत्माने स्थिर किया कि यह एक घट है।

ज्ञान सामान्यको स्वङ्मानसयोग ही एक मात्र कारण है, विषयके साथ इन्द्रियका, इन्द्रियके साथ मनका, मनके साथ आत्माका सम्बन्ध इतना जल्दी होता है कि, उसको कह कर खतम नहीं किया जा सकता। एक आघातसे सौ पत्तोंमें छिद्र करनेसे, जैसे प्रत्येक पत्तेका छिद्र सिलसिले वार हो जाते हैं, किन्तु समयकी सूक्ष्मताके कारण उसका अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार विषय, इन्द्रिय, मन और आत्माका सम्बन्ध क्रमसे होने पर भी उसका निर्णय नहीं किया जा सकता। मन अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिए उसमें दो विषयोंका धारण करनेकी शक्ति नहीं है। (मुक्तावली)

मनु + अणु अर्थात् अति सूक्ष्म है, इसलिए ज्ञानका अयौगपद्य है, अर्थात् युगपद् कोई ज्ञान नहीं होता, चक्षुःसंयोग होते ही ज्ञान होता हो ऐसा नहीं। कल्पना करो कि, मन एक विषयकी चिन्ता कर रहा है, किन्तु दर्शनेन्द्रिय (चक्षु) ने एक विषय देखा, देखते ही क्या उसका ज्ञान होगा? नहीं, ऐसा नहीं होगा। क्योंकि दर्शनेन्द्रियमें ऐसी कोई शक्ति नहीं कि, जिससे वह ज्ञान उत्पन्न कर सके। हां दर्शनेन्द्रिय जा कर मनको संवाद दे सकती है। मन फिर आत्मासे युक्त होता है, पीछे ज्ञान होता है। (भाषाप०)

इसके विषयमें एक लौकिक दृष्टान्त देना ही यथेष्ट है। कल्पना करो कि, एक आदमी दूसरे एक आदमीसे मिलने गया है, किन्तु उसके घर जा कर देखता है तो द्वार पर द्वारपाल निरन्तर द्वार-रक्षा कर रहे हैं, वह द्वार पर बैठ गया और द्वारपालके जरिये उसने भीतर अपने आनेका संवाद भिजवाया, द्वारपालने जा कर दीवानसे कहा, दीवानने खुद जा कर मालिकसे कहा, मालिकको तब मालूम हुआ कि फलाना आदमी मुझसे मिलने आया है, इसी तरह चक्षुने जा कर मनको और मनने आत्माको संवाद दिया, तब कहीं आत्माको ज्ञान हुआ। प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द इन चार प्रकारके प्रमाणोंसे सब तरहका ज्ञान होता है।

(भाषाप०)

चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा यथार्थ रूपसे वस्तुओंका जो ज्ञान होता है, उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। यह प्रत्यक्ष ज्ञान ६ प्रकारका है—घ्राणज, रासन, चाक्षुष, त्वाच, श्रावण और मानस। घ्राण, रसना, चक्षुः, त्वक् श्रोत्र और मन—इन छह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा यथाक्रमसे उपरोक्त छह प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। गन्ध और तद्गत सुरभित्वादि और असुरभित्वादि जातिका

घ्राणज प्रत्यक्षात्मक ज्ञान होता है। मधुर आदि रस और तद्गत मधुरत्वादि जातिसे रासन, नीलपीतादि रूप और उन रूपोंसे युक्त पदार्थोंकी नीलत्व पीतत्व आदि जाति तथा उन रूपविशिष्ट पदार्थोंकी क्रियासे चाक्षुष, शीत उष्णादि स्पर्श और तादृश स्पर्शविशिष्ट द्रव्यादिसे त्वाच, शब्द और तद्गत वर्णत्व ध्वनित्व आदि जातिसे श्रावण, तथा सुख और दुःखादि आत्मवृत्ति गुणसे आत्मा और सुखत्वादि जातिसे मानस प्रत्यक्षात्मक ज्ञान होता है।

व्याप्य पदार्थको देख कर व्यापक पदार्थका जो ज्ञान होता है, उसको अनुमितिज्ञान कहते हैं। जिस पदार्थके रहनेसे जिस पदार्थका अभाव नहीं रहता, उसको उसका व्यापक कहते हैं। जैसे—किसी जगह भी अग्निके बिना धुआं नहीं रह सकता, इसलिए धुआं अग्निका व्याप्य है और जिस जगह धुआं नहीं होता वहां अग्निका अभाव नहीं है, इसलिए अग्नि धूमका व्यापक है। अतएव लोगोंको पर्वत आदि पर धूम देख कर वह्निका अनुमानात्मक ज्ञान होता है। यह अनुमानात्मक ज्ञान तीन प्रकारका है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। कारणदर्शनसे कार्यके अनुमानको पूर्ववत् अर्थात् कारणलिङ्गक ज्ञान कहते हैं। जैसे—मेघकी उन्नतिको देख कर वृष्टिका अनुमानात्मक ज्ञान। कार्यको देख कर कारणके अनुमानको शेषवत् अर्थात् कार्यलिङ्गक ज्ञान कहते हैं। जैसे—नदीका अत्यन्त वृद्धिको देख कर वृष्टिका अनुमानात्मक ज्ञान। कारण और कार्यको छोड़ कर केवल व्याप्य वस्तुको देख कर जो अनुमानात्मक ज्ञान होता है, उसे सामान्यतोदृष्ट ज्ञान कहते हैं। जैसे—गगनमण्डलमें सम्पूर्ण चन्द्रको देख कर शुक्लपक्षका ज्ञान। क्रियाको कारण बना कर गुणका अनुमान, पृथिवीत्व जातिको हेतु बना कर द्रव्यत्वजातिका ज्ञान इत्यादि। किसी किसी शब्दके किसी किसी अर्थमें शक्तिपरिच्छेदको उपमितिज्ञान कहते हैं। जैसे—जिस व्यक्तिने पहले कभी गवय नहीं देखा, किन्तु सुना है कि गोसदृश गवय है (अर्थात् जिसकी आकृति गौके समान है उसको गवय कहते हैं) वह व्यक्ति उस समय इतना जानेगा कि, जो पशु गो-सदृश होगा, गवय शब्दसे उसीको समझना चाहिये। जिसको यह नहीं मालूम कि गवय शब्दसे गवय पशुका बोध होता है, किन्तु जब उसके दृष्टिपथमें गवय आता है, तब वह उसकी आकृतिको गो सदृश देख कर तथा पूर्वश्रुत गो-सदृश गवय है, इस वाक्यका स्मरण कर समझेगा कि, यही गवय है इस प्रकारके गवयशब्दके शक्तिपरिच्छेदको उपमिति-ज्ञान कहा जा सकता है।

शब्दसे जो ज्ञान होता है, उसको शब्दज्ञान कहते हैं। जैसे—गुरुके उपदेश वाक्यको सुनकर छात्रोंको उपदिष्ट अर्थका शाब्दज्ञान होता है। यह शाब्दज्ञान दो प्रकारका है एक दृष्टार्थक और दूसरा अदृष्टार्थक। जिस शब्दका अर्थ प्रत्यक्षसिद्ध है उसको दृष्टार्थक और जिसका अर्थ अदृश्य है, उसको अदृष्टार्थक कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—'तुम गोरे हो' 'तुम्हारी पुस्तक बहुत अच्छी है' इत्यादि प्रत्यक्षसिद्धज्ञानको दृष्टार्थक शाब्दज्ञान कहते हैं, और 'यज्ञ करनेसे स्वर्ग मिलता है' 'विष्णुपूजा करनेसे विष्णुकी प्रीति होती है' इत्यादि विधिवाक्य और वेदवाक्य आदिक अदृष्टार्थक शाब्दज्ञान हैं, वे सब इन ज्ञानोंके अन्तर्गत हैं। (न्यायदर्शन) प्रमाण देखो।

वेदान्तके मतसे ब्रह्म स्वयं ज्ञानस्वरूप है, यद्यपि घटज्ञानसे पटज्ञान भिन्न है और तुम्हारा ज्ञान मेरे ज्ञानसे भिन्न है, इस प्रकारके भेद व्यवहारको देखकर ज्ञानका नानात्व ही स्पष्ट प्रतिपन्न होता है और भी ज्ञानकी ब्रह्मस्वरूपता वा समस्त ज्ञानकी ऐक्यसाधक कोई युक्ति आपाततः दृष्टिगोचर नहीं होती, किन्तु तो भी विवेकबुद्धिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि विषयस्वरूप उपाधिके नानात्व कारण ही ज्ञानके नानात्वका भ्रम होता है। वास्तवमें ज्ञान नाना नहीं, एक ही है। जिस प्रकार एक ही मुख तेलमें प्रतिबिम्बित होने पर एक प्रकारका और जलमें प्रतिबिम्बित होने पर दूसरे प्रकारका देखने लगता है, पर वास्तवमें मुखमें कुछ भेद नहीं, जल और तेल ही पृथक् ज्ञानके प्रतिकारण हैं, उसी प्रकार उपाधिकी विभिन्नता होनेसे ज्ञानमें विभिन्नताकी प्रतीत होती है।

ज्ञान विभिन्न नहीं है। जब जिसकी अन्तःकरण-वृत्तिके द्वारा विषयका आवरणस्वरूप अज्ञान नष्ट होकर ज्ञानके द्वारा विषय प्रकाशमान होता है तब ही उसमें ज्ञान कहा जा सकता है, और जब ऐसा नहीं होता है, तब वह ज्ञान भी नहीं कहलाता। अतएव ज्ञान एक होने पर भी तुम्हारा ज्ञान 'मेरा ज्ञान' इत्यादि भेद व्यवहारमें बाधक क्या है? बल्कि ज्ञानके ऐक्यसाधक प्रमाण ही अधिक मिलते हैं। एक प्रमाण दिया जाता है। देखो, जिस वस्तुके साथ जिस वस्तुका वास्तविक भेद होता है, उसमें उपाधिके छूट जाने पर भी भेद-व्यवहार हुआ करता है। जैसे घट और पटमें वास्तविक भेद रहनेके कारण घट और पटकी उपाधि छूट जाने पर भी भेद-व्यवहारका बाध नहीं होता। अतएव यदि घटज्ञान और पटज्ञानमें पारस्परिक भेद होता, तो उस ज्ञानमें निःसन्देह यथाक्रमसे घट और पटरूप दोनों उपाधियोंके छूट जाने पर भी भेदव्यवहार होता। परन्तु जब घटज्ञान और पटज्ञानको घटपटरूप उपाधियोंको छोड़ कर "ज्ञान ज्ञानसे भिन्न है।" इस प्रकारके भेदव्यवहारको कोई भी नहीं मानता, तब उस प्रकारके ज्ञानके वास्तविक भेद कैसे हो सकते हैं? वरन उन उन ज्ञानोंकी घटपटरूप उपाधियोंसे ही सिद्ध होता है, जब कि ज्ञानका विषय घट है और पटज्ञानका विषय पट, तब घटज्ञानसे पटज्ञान भिन्न है, इस प्रकारका भेदज्ञान होता है, इसलिये वैसे ज्ञानका उपाधिक भेदमात्र है, यही सिद्ध होता है। यह भिन्नज्ञानका वास्तविक परस्पर भेदसाधक कोई प्रमाण वा युक्ति नहीं है। वरन ऐक्यप्रतिपादनके श्रुति और स्मृतिमें अनेक प्रमाण मिलते हैं और भी देखा जाता है कि, जब घटज्ञान भी ज्ञान है और पटज्ञान भी ज्ञान है, तब फिर ज्ञानमें विभिन्नताका होना किसी तरह भी सम्भव नहीं हो सकता। अतएव स्थिर हुआ कि, सर्वविषयक सर्व व्यक्तियोंका ज्ञान एक है, भिन्न नहीं। इस ज्ञानके नामान्तर चैतन्य और आत्मा हैं। (वेदान्त)

सांख्यमतके अनुसार बुद्धि जब अर्थाकारमें (अर्थात् वस्तुस्वरूपमें) परिणत हो कर आत्मामें प्रतिबिम्बित होती है, तब ज्ञान होता है। एक पदार्थ पर चक्षुका संयोग हुआ, पीछे दर्शनेन्द्रिय (चक्षुः) ने आलोचना करके उसे मनको दिया, मनने सङ्कल्प करके अहङ्कारको दिया, अहङ्कारने अभिमान करके बुद्धिको दिया, बुद्धि अध्यवसाय करके (अर्थात् तदाकारमें परिणत हो कर) प्रतिबिम्बरूपमें आत्माके पास उपस्थित हुई फिर कहीं आत्माको प्रतिबिम्बरूपमें ज्ञान हुआ।

इन्द्रियका आलोचन मनका सङ्कल्प, अहङ्कारका अभिमान, बुद्धिका अध्यवसाय ये चारों युगपत् वा एक मात्र होते हैं। (तत्त्वकौमुदी० ३०)

जीव और जीवतत्त्वके स्वरूपको जाननेको वास्तवमें ज्ञान कहा जा सकता है। इस ज्ञानके होने पर मनुष्य समस्त दुःखोंसे उत्तीर्ण हो जाता है। (सांख्यदर्शन)

गीतामें ज्ञानका विषय इस प्रकार लिखा है — अमानिता, अदम्भता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्योपासना, शौच, स्थैर्य, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, भोगवैराग्य, अनहङ्कार, इस संसारके जन्म, मृत्यु, ज्वर, व्याधि, दुःखादि दोषोंको देखना, पुत्र दारा, गृहादि विषयोंमें अनासक्ति, अनभिष्वङ्ग, इष्ट वा अनिष्ट घटनाके होने पर उसमें सर्वदा समज्ञान, जीवात्माको अभिन्नभावसे देख कर आत्मामें (ईश्वरमें) अटल भक्ति, निर्जन देशसेवा, जनतामें विरक्ति, नित्य अध्यात्मज्ञान सेवा, नित्यानित्य वस्तुविवेक, जीवात्मा-परमात्मामें अभेद ज्ञान—ये सब ही ज्ञान हैं, और जो इससे विपरीत है उसका नाम अज्ञान है। (गीता १३ अ० ६ १३)

यह ज्ञान तीन प्रकारका है -सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

जिस ज्ञानके द्वारा विभिन्नाकार प्रतीयमान निखिल जगत्को केवलमात्र एक अद्वितीय अविभक्त और परिवर्तनीय सत्ता वा चित्स्वरूप आत्मा ही परिलक्षित होती है, और कोई पदार्थ देखनेमें नहीं आता, वह ज्ञान ही सात्त्विक ज्ञान है। इस ज्ञानके होते ही मुक्ति होती है।

(गीता १८।२०)

जिस ज्ञानके द्वारा प्रत्येक देहमें विभिन्न गुण और विभिन्नधर्मविशिष्ट पृथक् पृथक् आत्मा देखनेमें आती है। उस ज्ञानको राजस ज्ञान कहा जा सकता है।

(गीता १८।२१)

इस राजसिक ज्ञानके रहते हुए मुक्ति नहीं हो सकती तथा असम्यक् ज्ञान होता है।

जो ज्ञान अनेक देहोंको लक्ष्य करता है, आत्मा, इन्द्रिय मन आदि समस्त अदृश्य पदार्थोंको देह या दैहिक वस्तु समझता है, जिस ज्ञानमें किसी प्रकारका हेतु वा युक्ति नहीं है, जो तत्त्वार्थका प्रकाशक नहीं है, जो अत्यन्त क्षुद्र अर्थात् किसी विषयके अभ्यन्तरप्रदेश तकको प्रकाशित न कर केवल बाहरके कुछ अंशोंको प्रकट करता है, उस ज्ञानको तामसिक कहते हैं।

(गीता १८।२२)

पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि, मानवका मन ज्ञान, चिन्ता और वासनामय है। कभी हम किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करते हैं, किसी समय मानसिक वृत्तिविशेष द्वारा परिचालित होते हैं और किसी समय हम किसी वस्तु व विषयको अभिलाषा करते हैं। किंतु मनकी ये तीन क्रियाएं विभिन्न होने पर भी इनमें परस्पर सम्बन्ध है। जिस विषयको हम जानते नहीं, उस विषयकी हम अभिलाषा नहीं कर सकते, अथवा उस विषयमें हम किसी तरहकी चिन्ता नहीं कर सकते। और जिस विषयमें हम किसी तरहकी चिन्ता नहीं करते, उस विषयमें हमें किसी तरह ज्ञानलाभ भी नहीं होता। इच्छा न होने पर हम किसी विषयकी चिन्ता भी नहीं करते और न हमें किसी विषयका ज्ञान प्राप्त ही होता है।

स्थूलतः इन तीन प्रक्रियाओंके समन्वयसे हम ज्ञान लाभ करते हैं। इनमें एक वैजिक अभिव्यक्ति है।

ज्ञानलाभकी प्रथम क्रिया किसी वस्तुके देखने वा उसके विषयकी चिन्ता करने पर इन्द्रियकी प्रक्रियाके कारण हमारे मानसिक भावान्तर उपस्थित होता है। इन्द्रियकी प्रक्रियाके कारण जो विविध अनुमिति उपस्थित होती हैं, उनमें कुछ विसदृश हैं। पहले हमने किसी वस्तु वा व्यक्तिके विषयमें जैसा ज्ञान प्राप्त किया है उस वस्तु वा व्यक्तिके साथ यदि वर्तमानमें सामञ्जस्य देखें, तो हमें ये दोनों एक हो हैं, ऐसा ज्ञान हो जाता है। एकके साथ यदि दूसरेका मेल न मिले, तो दोनोंको हम भिन्न समझते हैं। एक धर्मविशिष्ट इन्द्रियके बोध एक तरह ओतप्रोतभावसे सम्मिलित होते हैं। सामान्यतः मानसिक संयोग और वियोग प्रक्रियाके द्वारा हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। परन्तु केवलमात्र संयोग और वियोग प्रक्रिया वा आश्लेषण और विश्लेषण द्वारा ज्ञान लाभ नहीं होता। वास्तविक ज्ञानलाभके लिये स्मृति वा धारणाशक्तिकी आवश्यकता है। स्मृतिशक्तिके द्वारा हमारे पूर्व संस्कार मनमें जाग उठते हैं। बाह्येन्द्रियके द्वारा हम जिसका ज्ञान प्राप्त करते हैं, पीछे स्मृतिशक्ति द्वारा उसको मनमें देख सकते हैं। बहुत दिन बाद हम किसी परिचित व्यक्तिको देख कर उसे पहचान लेते हैं। यह ज्ञान हमें किस तरह प्राप्त होता है? पहले उस व्यक्तिको देख कर हमारे मनमें एक संस्कार जनमा था जो इतने दिनों तक अचेतन था। अब उस व्यक्तिको देख कर एक प्रकारका इन्द्रियबोध हुआ। स्मृतिशक्तिके द्वारा पूर्व संस्कार चेतन हो उठा। इन दोनों संस्कारोंमें सामञ्जस्य होनेसे हम पूर्वपरिचित व्यक्तिको पहचान सके। यह स्मृतिशक्ति तथा आश्लेषण-प्रक्रिया इनमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। ये सिर्फ ज्ञानलाभके उपाय हैं।

हमारी इन्द्रियां विभिन्न प्रकारसे परिचालित होती हैं, विभिन्न परिचालनाएं ऐन्द्रिक संयोगके द्वारा साम्य अवस्थाको प्राप्त होती हैं। इस समावस्थाके साथ ज्ञान का सम्बन्ध है। संयोगके बिना ज्ञान नहीं होता।

हमारे शरीरमें दो प्रकारको स्नायु हैं। ज्ञानोत्पादक स्नायुके द्वारा हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। ज्ञानोत्पादक स्नायुके बाह्य अंश जब किसी कारणवश उत्तेजित होते हैं, तब वह उत्तेजना मस्तिष्कमें प्रवाहित होती है और उससे हमें इन्द्रियज्ञान होता है। चक्षुपर आलोकके प्रतिफलित होनेसे चित्रपत्र उत्तेजित हो उठता है और उसी क्षणमें वह उत्तेजना मस्तिष्कमें परिचालित होकर एक प्रकारका इन्द्रियज्ञान उत्पन्न करता है। किन्तु हमें सब तरहके इन्द्रियज्ञानके लिए बाह्यशक्तिकी आवश्यकता नहीं होती। बाह्येन्द्रियजनित ज्ञानके लिए बाह्य शक्तिकी आवश्यकता है। क्षुधा, तृष्णा आदिका ज्ञान शरीरको आभ्यन्तर प्रक्रिया और परिवर्तनके कारण उत्पन्न होता है।

सब समय हमको परिस्फुट इन्द्रियज्ञान नहीं होता।

कोई कोई कहते हैं, कि स्नायुके वहिरांशका अच्छी तरह उत्तेजित न होना ही इसका कारण है। और किसी किसीका यह कहना है कि, आत्माके चेतनांशमें जो नहीं जाता, वह ज्ञानही अपरिस्फुट रहता है। किसी विषयमें जो हमको इन्द्रियबोध होता है, वह अपरिस्फुटभावसे हमारे मनमें कुछ दिनोंतक विद्यमान रहता है। ऐसा न होता तो अन्य इन्द्रियज्ञानके साथ उसकी तुलना कैसे कर सकते हैं?

ज्ञानलाभका प्रधान उपाय मनोनिवेश वा उपयोग है। कोई भी विषय क्यों न हो, जबतक हमारा मन संयत न होगा, तब तक हम किसी तरह भी उस विषयमें ज्ञान लाभ नहीं कर सकते। क्योंकि मनोयोगके बिना हमारी इन्द्रियोंकी प्रक्रियाएं आश्लिष्ट वा विश्लिष्ट नहीं हो सकतीं तथा आश्लेषण और विश्लेषणके बिना ज्ञान लाभ नहीं होता। मनोयोगके बिना शारीरिक वा मानसिक क्रियाओंका स्थायित्व नहीं होता, अतः उनकी धारणा न होनेके कारण हम उनकी प्रकृतिको नहीं जान सकते। एक ज्ञानमयी महाशक्ति निखिल ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त है। स्नायविक उत्तेजना और कम्पनके कारण जो अस्फुट इन्द्रियबोध होता है, उसके मानसिक संस्कारको साधारणतः मनोयोग कहते हैं। यह उत्तेजना बाह्य वस्तुके संश्रव वा मानसिक अनुध्यान दोनोंसे ही उत्पन्न हो सकती है। मनोनिवेशके द्वारा इन्द्रियगम्भीरताकी वृद्धि होती है; उन सबकी आलोचना करके हम विषय विशेषमें ज्ञानलाभ कर सकते हैं। हमारा ज्ञान परिणतशील है, हम क्रम क्रमसे कठिनसे कठिन विषयमें ज्ञानलाभ करते हैं। यह तीन प्रक्रियाओंके द्वारा संशोधित होता है—१ स्वाभाविक ऐन्द्रिकसंस्कार, २ मानसिक चित्र और ३ चिन्ता।

१) विविध इन्द्रिय प्रक्रियाओंके आश्लिष्ट और विश्लिष्ट होने पर मनमें एक प्रकारका भाव उत्पन्न होता है। वह ही प्रथम प्रक्रिया है। जिस लड़केने कभी दूध नहीं देखा, वह अकस्मात् दूधको देखकर पहचान नहीं सकता। जब वह उसका आस्वादन स्पर्शन और दर्शन करता है, तब उसके भिन्न भिन्न प्रक्रियाएं उत्पन्न होती हैं। इसमें सामञ्जस्य होनेपर वह दूधको जाननेमें समर्थ हो सकता है। यथार्थमें देखा जाय तो यही वास्तविक ज्ञानलाभकी प्रथमावस्था है।

२। इन्द्रिय-बोधके परिस्फुट होनेसे हम मनमें जो इन्द्रिय गोचरीभूत विषयकी प्रतिमूर्ति कल्पना करते हैं, उसको मानसिक चित्र कहते हैं। मनोनिवेशके द्वारा जब विविध इन्द्रिय-प्रक्रियाएं मनमें दृढ़तासे अङ्कित हो जाती हैं, तब मानसिक चित्र गठित हो सकता है; मानसिक चित्र और इन्द्रियज्ञान ये दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। मानसिक चित्रगठनमें स्मृतिशक्तिकी कार्यकारिता देखी जाती है। जिस लड़केने पहिले घंटेकी आवाज सुनी है, वह पीछे भी घंटाका शब्द सुन कर उसका अनुमान कर सकता है कि, यह घंटेका शब्द है।

३। चिन्ता। चिन्ताके द्वारा ही हम यथार्थ युक्तिसङ्गत ज्ञान लाभ करते हैं। हमारे विविध प्रकारके मानसिक चित्रोंकी तुलना करके हम इस अवस्थामें उपस्थित हो सकते हैं, इस जगह भी मनोनिवेशकी क्रिया अत्यन्त प्रबल है। विशेष मनोयोगके बिना हम एक चित्रके साथ दूसरे चित्रकी यथार्थ तुलना नहीं कर सकते और इसलिए यथार्थ ज्ञानलाभ भी नहीं कर सकते। केवलमात्र कुछ भिन्न भिन्न मानसिक चित्रोंका कल्पना करनेसे ही ज्ञानलाभ नहीं होता।

अतएव देखा जाता है कि, इन्द्रिय परिचालनाके कारण जो मानसिक भावान्तर उपस्थित होता है, वह ज्ञान नहीं है। इस भावान्तरोंका आश्लेषण और विश्लेषण होनेसे कुछ ज्ञान प्राप्त होता है; कारण यह है कि तब कोई वस्तु व्यक्ति वा भाव, यथार्थमें इन्द्रियगोचरीभूत होते हैं। इन्द्रियका उत्तेजना वा परिचालनाके कारण हमारे मनमें जो भावान्तर होता है अथवा मनमें हम जिन गुणों या भावोंका अनुमान करते हैं, उसी समय हम उन गुणों वा भावोंके अस्तित्वकी भी अन्य वस्तुमें कल्पना कर लेते हैं। हम किसी घंटेकी आवाज सुन कर मनमें उस शब्दका अनुमान करते हैं और यह समझते हैं कि, उसी समय वह शब्द घंटेसे उत्पन्न हो रहा है। इसी तरह हम उस शब्दको गोचरीभूत करते हैं। कोई कोई कहते हैं कि, वस्तुके साथ इन्द्रियबोध संबद्ध होने पर भी शीघ्र ज्ञान नहीं होता। यह वस्तु-

दर्शिता और शिक्षाका फल तो है ही, कुछ कुछ संस्कार-जात भी है। इस संस्कारके व्यक्तिगत बहुदर्शिताके द्वारा परिणत और व्याप्त होने पर हम ओतप्रोत भावसे ऐन्द्रियिक प्रक्रियाओंको इन्द्रियविषयीभूत कर सकते हैं।

व्यक्तिगत अभिज्ञताके सिवा कल्पना वा अनुमानकी सहायतासे भी हम अनेक विषयोंमें ज्ञान लाभ करते हैं। हम दूसरेकी बातको सुन कर एक प्रकारके मानसिक चित्रकी कल्पना करते हैं। विविध चित्रोंका समावेश होने पर उनको आश्लिष्ट और विश्लिष्ट कर हम एक प्रकारके नवीन चित्रकी कल्पना कर सकते हैं। इस तरहसे हम नवीन ज्ञानलाभ किया करते हैं। जिसमें उद्भावनी शक्ति जितनी अधिक है, उसका ज्ञान भी उतना ही अधिक है। उद्भावनी शक्तिके साथ चिन्ताशक्ति संसृष्ट है। यथार्थमें युक्तिसङ्गत चिन्ताशक्तिके न होनेसे परिष्कार ज्ञानलाभ नहीं होता। किन्तु उद्भावनी शक्ति यदि अत्यधिक प्रयोजित हो, तो वह यथार्थ ज्ञानलाभका उपाय नहीं होती, बल्कि ज्ञानका अन्तराय स्वरूप हो जाती है।

ज्ञानके साथ विश्वासका कुछ सम्बन्ध है, किन्तु ज्ञान अधिकतर निश्चित होता है। साधारण विश्वास न्यायसङ्गत विचारके द्वारा ज्ञानरूपमें परिणत होता है। मनुष्योंके मनके भाव वा मानसचित्र एकसे नहीं होते; सबके भावोंको प्रकृत और सूक्ष्मरूपसे तुलना कर हम ऐसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु ज्ञान जितना विस्तृत हो सकता है, विश्वास उतना व्यापक नहीं है। ज्ञान कहनेसे विश्वास और उसके साथ साथ और भी कुछ समझा जाता है; विश्वासकी अपेक्षा ज्ञान अधिकतर निश्चित है। जो विश्वास न्यायानुगत विचारके द्वारा बद्धमूल हुआ है उस विश्वासको ज्ञान कहा जा सकता है। यथार्थमें इन्द्रिय परिचालना और चिन्ता वा युक्तिके द्वारा ज्ञान लाभ होता है। प्रथम उपायलब्धज्ञान विशेष विशेष विषयोंका अस्तित्व वा नास्तित्व प्रकट करता है; २य उपायके द्वारा अपरिवर्त्तनीय कारणमूलक ज्ञान परिस्फुट होता है।

परन्तु इस तरहके ज्ञान लाभकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक मतभेद पाया जाता है। कोई कोई कहते हैं—जगदीश्वरने हमारे मनोंमें एक एक भाव निहित किये हैं; जन्म होते ही उन भावोंमें स्फुर्ति नहीं आती; हमारी अभिज्ञताके साथ वे स्फुट होते रहते हैं और उन्हींके जरिये हमें ज्ञान प्राप्त होता है। और कोई कोई यह कहते हैं कि, हम जन्मसे पैत्रिक संस्कार प्राप्त करते हैं वे ही संस्कार स्फुर्तिप्राप्त हो कर ज्ञान उत्पन्न करते हैं।

मि० काण्ट (Kant) कहते हैं कि, अविच्छिन्न इन्द्रियबोधके समवायके कारण अभिज्ञता उत्पन्न होती है। किसी इन्द्रियगोचरीभूत विषयका पुनः पुनः अनुधावन करनेसे हम उसको अच्छी तरह जान सकते हैं। इस अभिज्ञताके साथ हमारे सब तरहके ज्ञानोंका प्रारम्भ होता है, पर सभी ज्ञान अभिज्ञतामूलक नहीं है। पहले हमें जिसकी उपलब्धि नहीं हुई, उस विषयमें हमारा ज्ञान नहीं हो सकता, ऐसा नहीं। ऐन्द्रियज्ञान चिन्ताशक्तिके द्वारा अभिज्ञतामें परिणत होता है। अभिज्ञतासे हम किसी भी पदार्थकी वर्त्तमान अवस्थाको जान सकते हैं; किन्तु—कैसा होना चाहिये, कैसा न होना चाहिये इसका अभिज्ञतासे निर्णय नहीं होता। जो ज्ञान अभिज्ञताका सापेक्ष नहीं है, वह वस्तुका यथार्थ है, कारणमूलक है, यहां ज्ञान सत्यका प्रमाणसिद्ध गुणविशिष्ट है। डिकार्ट कहते हैं कि, यह ज्ञान औरोंकी अपेक्षा भ्रमप्रमादशून्य है।

हम किसी किसी विषयमें ओतप्रोतभावसे ज्ञानलाभ करते हैं। यह ज्ञान आश्लेषणमूलक और विश्लेषणमूलक विचारसिद्ध है। गणित, प्राकृतविज्ञान और मनोविज्ञानके विषयमें हम उक्त प्रकारसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। मि० काण्टका कहना है कि हमारा गणितसम्बन्धी ज्ञान विश्लेषणसिद्ध है; किन्तु गणितका किसी विषयका गुणसम्बन्धी ज्ञान हमें आश्लेषण द्वारा प्राप्त होता है।

वाह्य वस्तुका ज्ञान किस तरह उत्पन्न होता है? काण्ट कहते हैं कि किसी वस्तुओंको हम जिस तरह देखते हैं और जिसे आकारको हम मनमें धारणा करते हैं वह एक नहीं है तथा जैसा दीखता है, उसका

यथार्थ प्रकृतिका मंस्त्रव भी वैसा नहीं है। यदि हम प्रमातृभावका सङ्कुचित करके अस्फुट रखें, तो वस्तुकी स्थिति, और कालादिके विषयका ज्ञान सब कुछ दूर हो जाता है; हमारे मनके निरपेक्षभावोंमें किसी तरहका दृश्य नहीं रह सकता। कैसे भी धर्माक्रान्त पदार्थ क्यों न हो इन्द्रियविषयीभूत न होने पर हम सभी पदार्थोंसे अपरिचित रहते हैं। अतएव वाह्य वस्तु और और कुछ नहीं-हमारे ऐन्द्रियज्ञानसम्भूत मानसिक चित्र विशेष हैं हमारे ऐन्द्रियज्ञानके उत्पन्न होनेसे मानसिक सज्ञानता उपस्थित होती है; सज्ञानता वा चैतन्य ही ज्ञानका सब प्रकार मिश्रण वा एकीकरण है। इस चैतन्यके कारण ही हम पदार्थोंके चित्रकी कल्पना करने-समर्थ होते हैं हम ऐन्द्रियज्ञानके कारण मनमें जो भिन्न भिन्न भावोंका अनुभव करते हैं उनमें अपने आप सामञ्जस्य नहीं होता: हमारी बुद्धि या चिन्ताशक्तिकी सहायतासे उनका ऐक्य साधित होता है।

सेलिंग (Schelling) कहते हैं— हमारे मानसिक चित्र और वाह्य पदार्थ इनमें परस्पर अतिनिकट सम्बन्ध है, एक दूसरेको सूचना देते हैं। एकके कहनेसे दूसरेकी सत्ता उदित होती है। सब तरहका ज्ञान मानसिक चित्रके साथ वाह्य वस्तुके ऐक्यके कारण उत्पन्न होता है।

स्पिनोजाके मतसे इन्द्रियोंके द्वारा जबतक प्रत्यक्षसिद्ध नहीं होता, तब तक मन अपनेको नहीं जान सकता। यह प्रत्यक्षज्ञान प्रथमतः अस्फुट रहता है, मनकी आभ्यन्तरिक क्रियाके द्वारा वह स्पष्टीकृत होता है। किन्तु मनको कार्य करनेकी कोई स्वाधीनता नहीं है। पूर्ववर्ती कारणके द्वारा वह नियमित रूपसे होता रहता है। किसी एक नित्य नियमके जरिये सम्पूर्ण वस्तुओंका विकाश और परिणमन होता है।

स्पिनोजा कहते हैं कि, प्रथमतः इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध होती है। उसके बाद हमारे प्रत्यक्षका धारणा वा स्मरणशक्तिके द्वारा श्रेणी विभाग होता है, पीछे कल्पनाशक्तिके प्रभावसे वाक्य द्वारा उन श्रेणियोंका नामकरण होता है; फिर चिन्ता वा युक्ति द्वारा वे विचारित होते हैं। अन्तमें सहजज्ञानके द्वारा हमें वाह्यघटनाका स्वरूपज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानके प्रथम उपाय वा प्रत्यक्षके अस्पष्ट वा असम्पूर्णभावसे हमको भ्रम वा विपर्यय होता है। द्वितीय और तृतीय उपायसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही यथार्थ ज्ञान है।

सुप्रसिद्ध फरासीसी पण्डित कोमतके मतसे—सब विषयोंके ज्ञानके उन्नतिमार्गमें क्रमसे तीन सोपान हैं। पहला सोपान पौराणिक, आध्यात्मिक वा इच्छामूलक है, दूसरा दार्शनिक, काल्पनिक वा शक्तिमूलक है और तीसरा वैज्ञानिक, प्रामाणिक तथा नियममूलक है।

लोग वाह्य वस्तुको देख कर उसका एक सचेतन इच्छाविशिष्ट कर्ता अनुमान करते हैं। इसका कारण भी देखा जाता है। हमारे सभी कार्य सचेतन इच्छाविशिष्ट आत्मासे उत्पन्न होते हैं; इसीलिए किसी कार्यको देखते ही हम उसमें एक सचेतन इच्छाविशिष्ट कर्ताकी कल्पना करते हैं। धीरे धीरे ज्ञान जितना स्फूर्ति पाता है, उतनी ही लोगोंकी धारणा होती जाती है कि पहले जिसको सचेतन समझते थे, वास्तवमें उसमें चैतन्यका कोई लक्षण नहीं है। चैतन्यके बदले इसमें कोई अदृश्य कार्यसाधक शक्ति है। प्रथमावस्थामें लोग समझते हैं कि अग्नि इच्छापूर्वक वस्तुको दग्ध करती है; पीछे निश्चित होता है कि, अग्निमें किसी तरहकी निज इच्छा नहीं है, इसकी दाहिका शक्तिके प्रभावसे वस्तु दग्ध होती है। इस द्वितीय अवस्थाको दार्शनिक काल्पनिक वा शक्तिमूलक ज्ञान कहते हैं। पीछे हम बहुत कुछ देख भाल कर अभिज्ञताके फलसे जान सकते हैं कि, सब कार्योंका एक न एक नियम है, अर्थात् निर्दिष्ट पूर्वापरत्व और सादृश्य सम्बन्ध है। हम लोगोंमें नियमातिरिक्त और कुछ भी जाननेकी क्षमता नहीं है ऐसा समझ कर जब हम सब कार्योंके नियम खोजते हैं, तब हम उस विषयके वैज्ञानिक सोपान पर उपस्थित होते है।

हम सब विषयमें ज्ञानके वैज्ञानिक सोपानका लाभ नहीं कर सकते। किसी विषयमें हमारा ज्ञान प्रथम सोपान तक ही रह गया है और किसी किसी विषयमें हम द्वितीय तृतीय सोपान तक चढ गये हैं। कोमत् कहते हैं—जिसका विषय जितना सरल है, वह उतना ही शीघ्र वैज्ञानिक-सोपान पर उपस्थित होता है। विषय

की जटिलताके कारण कोई प्रथम और कोई द्वितीय सोपान पर रह गया है। कोमत्‌का कहना है कि आन्तरिक घटनाके पर्यवेक्षण करनेकी क्षमता हममें नहीं है (किन्तु इस मतको सत्य मानकर ग्रहण नहीं किया जा सकता; क्योंकि हम अपने सुख-दुःखोंका अनुभव प्रति क्षणमें करते रहते हैं।)

कोमत्‌के मतसे ज्ञानकी प्रथम भित्ति पर उपस्थित होनेके तीन उपाय हैं—पर्यवेक्षण, परीक्षा और उपमा। जो नैसर्गिक व्यापार स्वतः हमारे इन्द्रियगोचर होता है, उसकी पर्यालोचनाको पर्यवेक्षण कहते हैं। इच्छापूर्वक अवस्थाका परिवर्तन करके जो पर्यालोचना की जाती है उसको परीक्षा कहते हैं। अनुसन्धेय विषयको अच्छी तरह समझनेके लिए जो पर्यालोचना की जाती है, उसको उपमा कहते हैं। अतएव देखा जाता है कि ज्ञानके विषयमें अनेक मतभेद हैं।

जो हम जानते हैं, वही ज्ञान है; जो जाना है, वह किस तरह जाना है?

कुछ विषयोंको इन्द्रियके साक्षात् संयोगसे जान सकते हैं। इस ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं। भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न भिन्न प्रकारका प्रत्यक्ष हुआ करता है, यथा—दर्शन, स्पर्शन, घ्राण इत्यादि। जिस पदार्थका प्रत्यक्ष होता है, उसके विषयमें हम ज्ञान प्राप्त करते हैं और उसके अतिरिक्त विषयमें भी ज्ञान सूचित होता है। हम घरमें सो रहे हैं, इतनेमें पाससे घण्टेकी आवाज सुनी। इससे श्रवण प्रत्यक्ष हुआ। परन्तु वह प्रत्यक्ष शब्दका हुआ, न कि घण्टेका। इस ज्ञानको अनुमिति कहते हैं। किन्तु अनुमिति ज्ञान भी प्रत्यक्षमूलक है। कारण यह कि, हमने जिसका पहले कभी प्रत्यक्ष नहीं किया उस विषयमें अनुमिति ज्ञानका होना सम्भव नहीं।

ज्ञानके इस तात्त्विक सम्बन्धमें यूरोपीय दार्शनिकोंमें परस्पर घोरतर विवाद है। कोई कोई कहते हैं कि, हममें ऐसे बहुतसे ज्ञान हैं, जिनमें मूलप्रत्यक्ष नहीं मिलता। यथा—काल, आकाश इत्यादि।

इस विषयको लेकर काण्टने लौक और ह्यिउमके प्रत्यक्षवादका प्रतिवाद किया था। उन्होंने इसके अतिरिक्त ज्ञानका मूल इस प्रकार बतलाया है—जहां इन्द्रिय द्वारा बाह्य विषयका ज्ञान होता है वहां बाह्य विषयकी प्रकृतिके विषयमें किसी तत्त्वका नित्यत्व हमारे ज्ञानके अतीत होने पर भी हमारी इन्द्रियोंकी प्रकृतिका नित्यत्व हमारे अधिकारमें है; हमारी इन्द्रियोंकी प्रकृतिके अनुसार हम बहिर्विषयक कुछ निर्दिष्ट अवस्थाका ज्ञान लेते हैं। इन्द्रियोंकी प्रकृति सर्वत्र एकसी हैं, इसलिए बहिर्विषयकी वे अवस्थाएं भी हमारे लिए सर्वत्र एकसी हैं। इसी लिए हम अपने काल और आकाशादिके समवायका नित्यत्व जान सकते हैं। यह ज्ञान हम लोगोंमें ही है, इस कारण काण्टने इसको स्वतोलब्ध वा आभ्यन्तरिक ज्ञान कहा है।

ष्टुआर्ट मिल कहते हैं कि हमने प्रत्यक्षके द्वारा ऐसा एक संस्कार हासिल किया है कि, जहां कारण मौजूद है, वहां उसका कार्य मौजूद रहेगा। जहां पहले क देखा है, वहीं ख को देखा है। फिर यदि कहीं क को देखें तो वहां ख है ऐसा हम जान सकते हैं। यद्यपि पृथिवी पर जितनी समान्तराल रेखाएं खींची जाती हैं, वे सब मिलती हैं या नहीं, इस बातकी हम परीक्षा करके जांच नहीं सकते, तथापि जितनी देखी हैं, उनमें तो एक भी नहीं मिलती हैं। अतएव समान्तरालता संमिलन विरहका नियत पूर्ववर्ती है, समान्तरालता कारण है, संमिलनविरह उसका कार्य है। इस प्रकारसे हमें मालूम हुआ कि, जहां दो समान्तराल रेखाएं होंगी, वहीं उनका मिलाप नहीं होगा। अतएव यह ज्ञान भी प्रत्यक्षमूलक है।

कोई कोई कहते हैं साक्षात् इन्द्रियबोधसमूह जब प्रातिभासिक आकारमें परिणत होता है, तभी हमको वस्तुज्ञान उत्पन्न होता है और वस्तुज्ञानसमूह प्रातिभासिक आकार धारण कर सहज युक्तिकी पत्तनभूमि होती है।

मानव-समाजकी उन्नतिके साथ साथ जितनी जीवनके कार्यकलापोंकी बहुलता और विचित्रता साधित होती है तथा अभिज्ञता और बहुदर्शिताकी वृद्धि प्राप्त होती है, उतनी ही मनकी प्रातिभासिक शक्ति (Representativeness) का प्रसार होता है।

प्राचीन ग्रीसीय विद्वान्गण कहा करते थे कि, जो ज्ञान इन्द्रिय द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह ज्ञान विश्वासके योग्य नहीं; उनके मतसे—तत्त्वजिज्ञासु व्यक्तियोंको चाहिये कि सम्पूर्ण इन्द्रियद्वारोंको रोक कर केवल मन ही मन वस्तुकी प्रकृतिकी चिन्ता करें। इस प्रकारकी चिन्तासे जो ज्ञान होता है, वही यथार्थ ज्ञान है।

'राम' कहनेसे एक विशेष वस्तुका बोध होता है, किन्तु 'मनुष्य' यह शब्द कहनेसे साधारण एक वस्तुका बोध होता है। यह ज्ञान किस तरह उत्पन्न होता है? प्लेटोका कहना है कि, जगत्‌में सारी वस्तुएं साधारण वस्तु हैं। विशेष विशेष वस्तुएं साधारण वस्तुकी छायामात्र हैं। अन्ततः उनकी जो कुछ सारवत्ता है वह उनका आदर्श और साधारण गुणसे उत्पन्न है। वे कहते हैं-इहलोकमें जन्मग्रहण करनेसे पहले आत्मा उन वस्तुओंसे परिचित थी, किन्तु उस देहसे संलग्न होते ही पूर्वस्मृति भूल गई। साधारण वस्तुका प्रकृतिको जाननेके लिए हमको पूर्वस्मृति जगानी पड़ती है और उन वस्तुओंके जितने उत्कृष्ट विशेष दृष्टान्त मिलते हैं उनका पर्यवेक्षण करना ही उसका प्रधान उपाय है।

मायावाद (Idealism)के समर्थकोंका कहना है कि, भौतिक जगत् नामक भावपरम्परा हमारे मनमें उदित होती है, इन्द्रियातीत अज्ञासे प्रकृति अज्ञान जड़ पदार्थ ही इसका कारण है। यह ही जड़वादी दार्शनिकोंका मत है और नास्तिक मायावादी यह कहते हैं कि, कारण कहनेसे यदि नियतपूर्ववर्ती घटनाका बोध हो, तो यह भावपरम्परा परस्परका कारण है और यदि इन्द्रियातीत किसी वस्तुका बोध हो, तो उसके अस्तित्व निरूपण करनेका कोई उपाय नहीं है। आस्तिक मायावादी कहते हैं कि, कारण अव्यय प्रकृति हैं, अज्ञान जड़पदार्थ नहीं हो सकता. केवल ज्ञानमय आत्मामें कारणत्वका होना सम्भव है। इस भावपरम्पराका आदि कारण स्वयं परमात्मा हैं. वे ही सर्वदा हमारे पास रह कर हमारे मनमें यह भावपरम्परा उत्पन्न करते हैं। इनके मतसे जड़में किसी प्रकारके स्वतन्त्र ज्ञाननिरपेक्षका अस्तित्व नहीं है। मानवात्माके लिए जड़पदार्थका आविर्भाव और तिरोभाव अनित्य है। संक्षेपतः, इन्द्रियग्राह्य विषयसमूह हमारे ज्ञानसे निरपेक्ष है, मनवहिर्भूत वाह्य वस्तु नहीं, हमारे मानसोत्पन्न अवस्था परम्परामात्र है।

कोई कोई कहते हैं—ज्ञानसे शक्ति भिन्न नहीं है। हम कहते हैं, यह कहनेसे ज्ञान द्वारा होता है, ऐसा समझा जाता है। हमारे परोक्षमें जो कार्य होता है वह कभी हमारा कार्य नहीं हो सकता, अतएव ज्ञानसे शक्ति अभिन्न है। जड़जगत्‌में शक्ति है, यह कहनेसे जड़जगत्‌में ज्ञान है, ऐसा कहना होता है। कोई कोई मनोविज्ञानवित् कहते हैं कि, शरीरसञ्चालनके समय हमारी मांसपेशियोंमें जो इन्द्रियबोध होता है, उसीसे शक्तिमें ज्ञान उत्पन्न होता है। परन्तु इन्द्रियबोध (Sensation) और शक्तिबोध (Idea of Power) ये दोनों संपूर्ण भिन्न हैं।

मनुष्यका मन प्रथमतः किसी विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है, पीछे उस ज्ञानके कारण एक भाव वा आवेग उत्पन्न होता है। उस भाव वा आवेग द्वारा परिचालित होकर मनुष्यको तद्भावानुयायी कार्य करनेको इच्छा होती है। मानसिक शक्तिके तारतम्यानुसार विषयविशेषके ज्ञानसे उत्पन्न भाव वा आवेगका न्यूनाधिक्य हुआ करता है, तथा भावकी प्रकृतिगत गतिके अनुसार इच्छा ही मनुष्यको किसी न किसी कार्यमें परिचालित करके जीवनकी गति अवधारित करती है।

किसी किसीका कहना है कि क्या शरीर और क्या आत्मा दोनोंमें सर्वत्र ही कुछ स्वाभाविक लक्षण हैं, जिनको स्वतःसंस्कार (Instinct) कहते हैं। जैसे-मातृगर्भसे निकलते ही बालक मातृस्तन्य पीता है। कारणका निर्णय नहीं कर सकते, पर सुन्दर पदार्थ हमको अत्यन्त प्रिय लगता है। यह सहज ज्ञानका कार्य है। ज्ञानका बीज मानवात्मामें निहित है।

मि० बकल अपने "इङ्गलैण्डीय सभ्यताका इतिहास" नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—ज्ञानकी उन्नतिसे ही सभ्यताकी वास्तविक उन्नति है। जब सभ्यता क्रमशः परिवर्तित और उन्नत हो रही है, तब उसका कारण ऐसा कुछ नहीं हो सकता कि जो परिवर्तनशील वा उन्नतिशील नहीं हो।

धर्मनीति एक स्थिर कारण है, किन्तु ज्ञानके विषयमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। ज्ञान किसी एक निर्दिष्ट सीमा तक जाकर विश्राम नहीं करता, यह चिर उन्नतिशील है। मि० बक्ल यह भी कहते हैं कि, ज्ञान वा बुद्धिके द्वारा जो सब सत्य उपार्जित होता है, वह सब देशोंमें यत्नपूर्वक लिपिबद्ध किया जाता है; इसलिए वह मनुष्य जातिकी साधारण सम्पत्ति हो जाती है। परन्तु बक्ल साहब कुछ भी कहें, हमारी धर्मनीति वा नीति-ज्ञान कभी भी अचल नहीं है। हम चारों तरफ देख रहे हैं कि, नीति-ज्ञान क्रमोन्नतिशील है। नीतिकी अपेक्षा ज्ञानका फल अस्थायी है, यह बात भी मानी नहीं जा सकती। हाँ, ज्ञानका फल जैसा जाज्वल्यमान है, नीतिका फल वैसा नहीं है, वह परोक्षमें गूढ़भावसे मनुष्य समाजमें कार्य करता है।

ज्ञान और नीतिकी उन्नति एक दूसरेकी अपेक्षा रखती है। इन दोनोंकी समग्र उन्नतिके बिना वास्तविक सभ्यताका कभी भी विकाश नहीं होता। ज्ञान अर्जनशील है, वाहर अनेक सत्योंका आविष्कार कर मानसिक उन्नति और समाजपुष्टि करता है। ज्ञानकी गति स्वाधीनताकी तरफ है। ज्ञानका फल नीतिके द्वारा परिशोधित न होनेसे, स्वार्थपरता आदि हीन वृत्तिमें परिणत होता है; और फिर नीति-ज्ञानके द्वारा नियन्त्रित न होने पर उद्देश्य विफल होता है। दोनोंके लिए ही पृथक् साधनाकी आवश्यकता है। हाँ! ज्ञानकी जितनी उन्नति होगी, उतनी ही नीतिकी उन्नति होती है, ज्ञान और नीतिमें ऐसा कोई बाध्यबाधकताका सम्बन्ध नहीं है।

हम उत्कृष्ट वृत्ति द्वारा परिचालित होकर जिन कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, वे सुनीतिमूलक हैं। पीछे जब बुद्धिके द्वारा परीक्षा की जाती है कि, वे कार्य मानव-समाजके लिए हितकर हैं या नहीं? तब हम उनको सिर्फ ज्ञानके द्वारा दृढ़ कर लेते हैं।

जैनमतानुसार ज्ञानका स्वरूप जानना हो तो जैनधर्म शब्दमें जैनन्याय प्रकरण देखो।

परब्रह्म। (श्रुति) ६ विष्णु। (भारत)

ज्ञानकल्प—शङ्कराचार्यके एक शिष्यका नाम।

ज्ञानकाण्ड (सं० पु० क्ली०) वेदका अङ्गविशेष, वेदके तीन विभागोंमेंसे एक। इसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयोंका विचार है।

ज्ञानकीर्ति—१ एक दिगम्बर जैनाचार्य। ये वादिभूषणके शिष्य और १६०२ ई०में विद्यमान थे। इन्होंने यशोधरचरित नामक १४०० श्लोकोंका एक जैन ग्रन्थ रचा है। २ एक बौद्ध आचार्यका नाम।

ज्ञानकृत (सं० त्रि०) ज्ञानेन बुद्धिपूर्वकेन कृतं, ३ तत्। बुद्धिपूर्वक कृत, जो जान बूझकर किया गया हो। ज्ञानकृत पापोंका प्रायश्चित्त दूना लिखा गया है। ज्ञानकृत गोवधका विषय प्रायश्चित्ततत्त्वमें इस प्रकार लिखा हुआ है। "गोवधस्य बुद्धिपूर्वकत्वं तदा भवति, यदि गां ज्ञात्वा एनां हन्मीतीच्छया हन्ति, तदा कामनाद्वारैव ज्ञानस्य प्रवृत्त्यंगत्वात्।"

(प्रायश्चित्ततत्त्व)

यह गो है, इस तरह स्थिर कर इसको मारेंगे, ऐसी इच्छासे वध करने पर ज्ञानकृत गोवध होता है।

प्रायश्चित्त देखो।

ज्ञानकेतु (सं० पु०) ज्ञानका चिह्न।

ज्ञानकेतुध्वज (सं० पु०) देवर्षिभेद, एक ऋषिका नाम।

ज्ञानगम्य (सं० पु०) ज्ञानेन गम्यः, ६-तत्। ज्ञानका विषय, वह जो ज्ञानके द्वारा जाना जा सके, ज्ञानकी पहुंचके भीतर। "उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः" (विष्णुसं०) ज्ञानमात्रगम्य परमेश्वर हैं। परमेश्वरका ज्ञान केवल एकमात्र ज्ञानसे ही हो सकता है न कि कर्म प्रभृति द्वारा। श्रुतिने कहा है, "न कर्मणा न प्रजया न धनेन न त्यागेन नैके अमृतत्वमानशुः।" (श्रुति) कर्म, प्रजा, धन, त्याग प्रभृति द्वारा अमृतत्व लाभ नहीं किया जा सकता, ये केवल ज्ञानसे ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

ज्ञानगर्भ (सं० त्रि०) ज्ञानं गर्भे यस्य, बहुव्री०। ज्ञानयुक्त, जिनमें ज्ञान हो।

ज्ञानगिरि—आनन्दगिरिका दूसरा नाम।

ज्ञानगोचर (सं० त्रि०) ज्ञानगम्य, ज्ञानेन्द्रियोंसे जानने योग्य।

ज्ञानघन आचार्य—बोधनाचार्यके शिष्य, चतुर्वेदतात्पर्यदीपिका और वेदान्ततत्त्वपरिशुद्धिके प्रणेता।

ज्ञानचक्षु (सं० पु०) ज्ञानं ज्ञानसाधनं वेदादिशास्त्रं

चक्षुर्यस्य, बहुव्री०। १ वेदादि शास्त्रज्ञानरूप नयन। २ पण्डित, विद्वान्। समस्त वस्तुका जो अवलोकन ज्ञान चक्षु द्वारा करना चाहिए।

ज्ञानचन्द्र—एक जैन-ग्रन्थकार।

ज्ञानतः (अव्य०) ज्ञान-तस्। ज्ञानपूर्वक, जान बूझ कर।

ज्ञानतिलकगणि—एक जैन ग्रन्थकार और पद्मरागगणिके शिष्य। इन्होंने १६६० सम्वत्‌को गौतमकुलकवृत्ति नामक ग्रन्थ प्रणयन किया है।

ज्ञानतीर्थ—बौद्धोंका एक तीर्थस्थान। यह तीर्थ केशवती और पापनाशिनी नामक दो नदियोंके संयोगस्थलमें अवस्थित है। बौद्धोंके मतसे यहांके श्वेतशुभ्रनाग सब तीर्थयात्रियोंको सुख देते हैं।

ज्ञानद (सं० त्रि०) ज्ञानं ददाति ज्ञान-दा-क। ज्ञान दायक, ज्ञान देनेवाला।

ज्ञानदग्धदेह (सं० पु०) ज्ञानेनैव दग्धः भस्मीभूतः देहो यस्य, बहुव्री०। चतुर्थाश्रम वा भिक्षु, वह जिसने संन्यासआश्रम अवलम्बन किया है। चतुर्थाश्रमवासी भिक्षु ज्ञानके द्वारा जीवितावस्थामें देहको दग्ध करते रहते हैं, अर्थात् जिन्होंने देहादिके सुख-दुःख आदि धर्मको दग्ध कर दिया है, जो सुख-दुःखादिके अतीत हो गये हैं और जो अपनी इच्छानुसार इस देहको छोड़ सकते हैं, उनको ज्ञानदग्धदेह कहते हैं। इस लिए इनके मृत शरीरको दग्ध नहीं करते और पिण्डोदकक्रिया आदिको भी कोई जरूरत नहीं होती। (शौनक)

चतुर्थाश्रमवासी भिक्षुके शरीरको, गड्ढा खोद कर प्रणव मन्त्र उच्चारण करते हुए निक्षेप करो। इनकी मृत्यु नहीं होती। इच्छापूर्वक देहका परित्याग नहीं करनेसे देहावसान नहीं होता। ये चाहें तो युग-युगान्तर पर्यन्त देहको रक्षा कर सकते हैं।

ज्ञानदर्पण (सं० पु०) ज्ञानं दर्पण इव यस्य, बहुव्री०। पूर्वजिन, मञ्जुघोष।

ज्ञानदातृ (सं० त्रि०) ज्ञानस्य दाता, ६-तत्। ज्ञानदाता गुरु। ज्ञानदाता गुरु सबसे अधिक पूज्य है।

"पितुर्दश गुणा माता गौरवेणेति निश्चितम्।
मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभुः॥" (तन्त्र०)

पितासे दश गुनी माता, मातासे सौ गुना गुरु पूजनीय है। स्त्रियां ङीप्।

ज्ञानदास-१ एक बंगाली वैष्णव कवि। ये विद्यापति और चण्डिदासकी पदावलीके छन्द और भाषाका अनुकरण कर बहुतसी पदावलियोंकी रचना कर गये हैं। इनकी कविताएं बड़ी मनोहर और प्रसादगुणभूषित हैं। बंगालके अन्तर्गत वीरभूम जिलेके कांदड़ा नामक ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनको साधारण लोग गोस्वामी कहते थे।

२ एक कवि। इन्होंने शान्तिरस और शृङ्गाररसको बहुतसी कविताएं बनाई हैं, जिनमेंसे एक नीचे दी जाती है—

"मोहन मेरी मटकी फोरी सुनो यशोदा माई हो।
ऐसो लडको दधिको फडचो मांगत दूध मलाई हो॥
मटकी झटक पटक फेर सटको अब नहिं देत धराई हो।
ले कर लठिया यशोदा उठीकत तैने भूम मचाई हो॥
भोरही मोंको देत उलहना सब ग्वालन घर आई हो।
सुनरी माई बाबा दुहाई वाकी दधि नहीं खाई हो॥
सब ग्वालिनी नट खट हो हमकों घर पकर ले आई हो॥
तनक मुरलिया टेर दईरे सबकी मत बौराई हो।
ज्ञानदास बलिहारी छबिकी मोहनकी चतुराई हो॥"

ज्ञानदीप (सं० पु०) बुद्धिका समूह, बुद्धि, अकल।

ज्ञानदुर्बल (सं० त्रि०) जिसे ज्ञान कम हो, ज्ञानहीन, मूर्ख।

ज्ञानदेव—१ दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध शास्त्रवेत्ता और साधु। ये विट्ठलपन्थ नामक एक यजुर्वेदी ब्राह्मणके पुत्र थे। विट्ठलपन्थ भी एक महापुरुष थे। इन्होंने युवावस्थामें संन्यासआश्रम ग्रहण किया था; पर स्त्रीको अनुमतिके बिना इस आश्रमको ग्रहण किया था, इसलिए इनको पुनः गृहस्थाश्रम ग्रहण करना पड़ा था। संन्यासीके लिए पुनः गृहस्थी होना शास्त्रविरुद्ध है। इस कारण आलन्दीके ब्राह्मणोंने विट्ठलपन्थको समाजसे च्युत कर दिया। १२७३ ई०में विट्ठलपन्थके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रका नाम निवृत्ति रक्खा गया। इसके बाद १२७५ ई०में उनके और एक पुत्र पैदा हुआ। ये ज्ञानदेवके नामसे प्रसिद्ध हुए। तदनन्तर इनके एक पुत्र और फिर एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रका नाम सोपान और कन्याका नाम मुक्ता रक्खा गया। वयोवृद्धिके अनुसार

सभी पुत्रोंमें प्रतिभाके लक्षण दिखाई दिये। हां, ज्ञानदेवने इनमें शीर्ष स्थान पाया था।

ज्येष्ठपुत्र निवृत्तिको उम्र जब आठ वर्षकी हुई, तब विट्ठलने उसका उपनयन करना चाहा। किन्तु वे तो समाज-च्युत थे। किस तरह उपनयन-कार्य कर सकते हैं, इस विषयमें उन्होंने पड़ोसियोंसे सहायता मांगी पर वे कोई सदुपाय नहीं सोच सके। विट्ठल और उनकी स्त्री दोनों बड़े कष्टसे दिन बिताने लगे। पितामाताके इस दुःखको देख कर निवृत्तिको भी बड़ा कष्ट हुआ। कुछ दिन बीतने पर, उन्होंने अपने पितासे कहा—'किसी तीर्थस्थान पर जा कर एक दैवकार्य करनेसे उनका मङ्गल हो सकता है।' विट्ठलने निवृत्तिको बात मान ली। वे अपने स्त्री पुत्रोंको ले कर त्र्यम्बकको चल दिये। त्र्यम्बक अति पवित्रस्थान है। यहां त्र्यम्बकेश्वर नाम धारण कर महादेव विराज रहे हैं और पवित्रसलिला गोदावरी यहांके एक पहाड़से निकली है। विट्ठल एक ब्राह्मणके घर पर रहने लगे, वे यहां नित्य ब्रह्मगिरिकी प्रदक्षिणा करते थे। इसमें उनके तीन पुत्रोंने भी साथ दिया। इस तरह एक वर्ष बीतने पर एक दिन एक व्याघ्रने उनका पीछा किया विट्ठल ज्ञानदेव और सोपानको गोदमें ले कर भागे। निवृत्ति पीछे पीछे भागने लगे। कुछ दूर जा कर देखा तो निवृत्तिको नहीं पाया; निवृत्ति राह भूल कर अञ्जनी पर्वत पर चढ़ गये। यहां एक गुहा देख कर वे उसके भीतर घुस गये। भीतर जा कर देखा तो एक महापुरुषको आंख मीच कर तपस्यामें निमग्न पाया। निवृत्ति वहां बैठ गये। कुछ देर पीछे जब महापुरुषने आंखें खोलीं, तब निवृत्तिने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इन महापुरुषका नाम था गैनीनाथ। ये एक प्रसिद्ध योगी थे। गैनीनाथने बालकको देख कर समझ लिया कि, यह प्रतिभाशाली है। उन्होंने निवृत्तिको अपना वृत्तान्त और आनेका अभिप्राय पूछा। निवृत्तिने अपना परिचय दे कर कहा—"सदुपदेश दे कर मुझे कृतार्थ कीजिये, यही मेरी प्रार्थना है।" निवृत्तिका आग्रह देख कर गैनीनाथने उनको उपदेश दिया। उपदेशका सारांश यह है—जगत् मिथ्या है, केवल ईश्वर ही सत्य है और उसकी उपासना करना मनुष्यका कर्तव्य है। इसके बाद निवृत्ति गैनीनाथसे विदा ले कर अपने पितामाताके पास उपस्थित हुए। कुछ देर विश्राम करनेके बाद उन्होंने भाई बहन और पितामाताको सब वृत्तान्त तथा महापुरुषका उपदेश कह सुनाया। ब्रह्मज्ञान और उपासनापद्धतिको शिक्षा पा कर उन्होंने अपनेको कृतार्थ समझा। ज्ञानदेवने अपनी असाधारण प्रतिभाके बलसे समधिक उन्नति की। कुछ दिनों तक उपासना करनेके बाद वे योगसाधन करने लगे। कहा जाता है—छह मासमें उन्होंने अष्टसिद्धिको अपने अधीन कर लिया। विट्ठलपन्थको अपने पुत्रोंकी उन्नतिसे बड़ा आनन्द हुआ। परन्तु वे समाजसे च्युत हैं और इसी लिए निवृत्तिका उपनयन संस्कार नहीं हो सका है, इस चिन्तामें वे बड़े व्याकुल हो गये। पैठन विट्ठलके पूर्वपुरुषोंका वासस्थान था और दाक्षिणात्यमें वह शास्त्रचर्चाके लिए प्रसिद्ध था। विट्ठलने सोचा कि, वहांके पण्डितोंका व्यवस्थापत्र प्राप्त करनेसे ही कार्य सिद्ध हो जायगा। पीछे वे परिवार सहित वहां गये और अपने मामा कृष्णाजी पन्थके घर ठहरे। कृष्णाजी पन्थने सब वृत्तान्त सुन कर एक विराट् सभाका आयोजन किया, ब्राह्मणगण निमन्त्रित हो कर सभामें आये। विट्ठलपन्थको पुनः समाजमें ग्रहण करनेकी चर्चा छिड़ी। पण्डितोंने अनेक शास्त्र उलट डाले पर कहीं भी संन्यासीके गृही होनेके विषयमें कुछ विधि नहीं मिली। सभाके द्वारा सुफलका प्राप्त होना तो दूर रहा, उलटा फंसना पड़ा; विट्ठलको परिवार सहित घरमें रखनेके अपराधसे कृष्णाजीपन्थ भी समाजसे च्युत किये गये।

विट्ठलकी चिन्ताकी अब कोई सीमा नहीं रही। अब तक वे अपनी ही चिन्ता करते थे, पर अब उन पर मामाकी चिन्ता भी सवार हो गई। उनकी यह दशा देख कर निवृत्ति और ज्ञानदेव उन्हें सान्त्वना देने लगे। उन लोगोंने कहा—"उपवीत धारण करना वाह्य क्रिया मात्र है। इसके साथ आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं। शास्त्रमें कहा है, जो व्यक्ति ब्रह्मको जानता है, वही ब्राह्मण है।" पुत्रोंकी सान्त्वनासे विट्ठलको बहुत कुछ शान्ति हुई।

कुछ दिन बाद, कृष्णाजीपन्थके पिताके श्राद्धका दिन

आया। वे श्राद्धका आयोजन करने लगे। उन्होंने पांच ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया। कृष्णाजी समाज-च्युत हुए थे, इसलिए ब्राह्मणोंने उनका निमन्त्रण ग्रहण नहीं किया। इस पर कृष्णाजी अत्यन्त दुःखित हो कर श्राद्धका आयोजन बन्द करनेको उद्यत हुए। इस बातको जान कर ज्ञानदेवने उनको समझाया कि, "इस कार्यको स्थगित करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं खुद पुरोहितका कार्य करूंगा और जिससे पाँच ब्राह्मण भोजन करें, इसकी व्यवस्था करूंगा।" ज्ञानदेवको उक्त कम होने परभी कृष्णाजी उनको ज्ञानी और विवेचक समझते थे। उनके कहनेके मुआफिक कार्य जारी रहा। ज्ञानदेवने मन्त्रादिका पाठ किया। जिन पाँच ब्राह्मणोंने निमन्त्रण ग्रहण नहीं किया था, ज्ञानदेवने योगबलसे उनके परलोकगत पितृदेवोंको आह्वान किया। वे शरीर धारण पूर्वक उपस्थित हो कर अपने अपने आसन पर बैठ गये और मन्त्रोच्चारण करके भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। कृष्णाजीपन्थके पड़ोसियोंको यह मालूम होते ही कि, उनके घर ब्राह्मणभोजन हो रहा है उनमेंसे एक वास्तविक बातका पता लगानेके लिए भीतर चला गया। उक्त ब्राह्मणोंको देख कर उसके छक्के छूट गये, उसने उनके पुत्रोंको बुला कर दिखाया। इतनेमें परलोकगत व्यक्तिगण अन्तर्धान हो गये। इस घटनासे सभी विस्मयान्वित हुए। ज्ञानदेवकी असाधारण क्षमताका परिचय चारों ओर व्याप्त हो गया और सब उनको नारायणके अवतार समझने लगे।

किसी समय कुम्भयोगके उपलक्षमें गोदावरीतीरस्थ पैठनमें अनेक लोगोंका समागम हुआ था। इस समय विठ्ठल भी परिवार सहित वहां उपस्थित हुए। बहुतसे ब्राह्मण वहां इकट्ठे हुए थे। उन्होंने इनका परिचय पूछा। ज्ञानदेवका योगबल चारों ओर व्याप्त हो जानेसे ब्राह्मणगण उनसे सदालाप करने लगे। इतनेमें कोई व्यक्ति एक महिष ले कर वहां उपस्थित हुआ। महिषका नाम था "ज्ञाना"। उसने महिषको कहा कि "चल ज्ञाना" इस पर एक ब्राह्मण बोल उठे—विठ्ठलके मध्यम पुत्रका नाम ज्ञान है, और इस महिषका नाम भी ज्ञान है। परन्तु दोनोंमें कितना अन्तर है। यह सुन कर ज्ञानदेवने कहा—"मुझमें और महिषमें कुछ भी अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनोंहीमें ब्रह्म विद्यमान है।" इस बातको सुन कर एक ब्राह्मण बोल उठे—"आप और यह महिष दोनों समान हैं? महिषको मारनेसे क्या आपको चोट पहुंचती है?" ज्ञानदेवने उत्तर दिया—"अवश्य ही उसको मारनेसे मुझे लगती है।" इस पर वह ब्राह्मण महिषको बड़े जोरसे बेंत मारने लगा, इधर ज्ञानदेवके शरीर पर बेंतके दाग दिखाई दिये और कहीं कहींसे खून निकलने लगा। यह देख कर उस ब्राह्मणने महिषको मारना बंद कर दिया, यात्रियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु उनमेंसे एक आदमी बोल उठा—यह ज्ञानदेवका जादू है, योगका प्रभाव नहीं। यह सुन कर ज्ञानदेवने महिषको सम्बोधन करके कहा—"ज्ञाना तुम और हम सब समान हैं, इसलिए तुम इन ब्राह्मणोंको वेदवाक्य सुनाओ।" ज्ञानदेवके योगबलसे महिषदेहमें ज्ञानका प्रभाव सञ्चारित हुआ। महिष उसी समय वेद वाक्य उच्चारण करने लगा। इस घटनासे सब अवाक् हो गये। इसके बाद विठ्ठलपन्थ अपने मामाके घर लौट आये, पैठनके ब्राह्मणोंको ज्ञानदेवकी अद्भुत शक्तिका परिचय मिल चुका था। उन्होंने एक बातमें विठ्ठलको शुद्धिपत्र दे दिया और अपने समाजमें मिला लिया। विठ्ठलके आनन्दकी सीमा न रही। वे अपने तीनों पुत्रोंका उपनयन करानेके लिये आयोजन करने लगे। यह देख कर ज्ञानदेवने कहा—"संन्यासीके पुत्रोंको यज्ञोपवीत धारण करना उचित नहीं।" इस पर विठ्ठलने आयोजन स्थगित कर दिया। कुछ दिन बाद वे परिवार सहित आलन्दी पहुंच गये। इसी समय विठ्ठलके गुरुदेव रामानन्दस्वामी तीर्थदर्शनके लिए काशीधामसे निकल कर आलन्दीमें उपस्थित हुए। स्वामीजीके दर्शन पाकर विठ्ठलपन्थको बड़ा आनन्द हुआ। पीछे वे गुरुदेवके आदेशानुसार सस्त्रीक बदरिकाश्रम चले गये। रामानन्दस्वामी ज्ञानदेवको सञ्जीवनीमन्त्रसे दीक्षित कर स्थानान्तरको चल दिये। निवृत्ति आदि कुछ दिन आलन्दीमें रह कर तीर्थदर्शनके लिए निकल पड़े। ये लोग पहले नेवास नामक स्थानमें पहुंचे और वहां कुछ दिन रहे। यहां ज्ञानदेवने दो अद्भुत कार्य सम्पन्न किये और भगवद्गीता-

की एक टीका लिखी। इस टीकामें उन्होंने अपनी विद्या-बुद्धिका काफी परिचय दिया है। यह टीका दाक्षिणात्यमें "ज्ञानेश्वरीटीका" नामसे प्रसिद्ध है। * नेवाससे चल कर ये पूननाम्बे नामक स्थान पर पहुंचे। यह गोदावरी नदीके किनारे पर अवस्थित है, चाङ्गदेव नामक एक योगी यहां रहते थे, इसलिए इसने प्रसिद्धि पाई थी। कहा जाता है कि, नानास्थानोंसे लोग मृत-देह ले कर वहां उपस्थित होते थे। चाङ्गदेव समाधिसे उठ कर उनमें जीवन सञ्चार कर देते थे। इस स्थान पर मुक्ता-बाईने ज्ञानदेवसे मृतसञ्जीवनी मन्त्र ग्रहण कर कुछ मुर्दोंमें जीवनसञ्चार किया था। चाङ्गदेव समाधिस्थ थे, इसलिए निवृत्ति आदिका उनसे भेंट न हुई। पीछे वे उस स्थानसे चल कर अन्यान्य तीर्थोंके दर्शन करते हुए आलन्दी लौट आये।

चाङ्गदेवने समाधिसे उठ कर देखा तो किसी भी मृत-व्यक्तिको न पाया। इसका कारण पूछने पर शिष्योंसे उत्तर मिला कि, ज्ञानदेवके दिये हुए मन्त्रबलसे उन्हींकी भगिनी मुक्ताबाईने शवदेहमें जीवन दान दिया है। यह सुन कर चाङ्गदेवने एक पत्र लिख कर ज्ञानदेवके पास भेजा। ज्ञानदेवने इसके प्रत्युत्तरमें ६५ उपदेशपूर्ण अभङ्ग † लिख भेजा। अभङ्ग कठिन थे, इसलिये चाङ्ग-देव उनका तात्पर्य न समझ सके। ज्ञानदेवके साथ मिलनेका निश्चय कर वे आलन्दी चल दिये। ज्ञानदेवने उनकी आदरसे अभ्यर्थना की। चाङ्गदेव यहां परम आनन्दसे रहने लगे। वे नित्य ज्ञानदेवसे उपदेश ग्रहण करते थे।

ज्ञानदेव ग्रन्थरचना और साधारणको उपदेश देनेमें समय बिताने लगे। बीचमें कुछ दिन पण्ढरपुरमें रहे थे। इन्होंने क्रमसे "अमृतानुभव" (वेद और उप-निषद्का सारसंग्रह) "पवनविजय" 'योगवाशिष्ठकी टीका", पञ्चीकरण और "हरिपाठ" नामक कई एक ग्रन्थ रच डाले। इसके सिवा "श्रीविट्ठल-वर्णन" नामक एक अष्टक तथा बहुतसे अभङ्ग बनाये थे। ज्ञाने-श्वरी ग्रन्थ कठिन होने पर भी ज्ञानदेव इसका अर्थ साधारणको विशद रूपसे समझा दिया करते थे। गीता-की व्याख्या सुन कर और उनके अन्यान्य उपदेशोंको हृदयङ्गम कर बहुतसे लोग भगवद्भक्त हो गये तथा बहु-तोंने कुसङ्गत छोड़ दिया। इस विषयमें दो दृष्टान्त दिये जाते हैं—

त्र्यम्बक नामक एक ब्राह्मण आलन्दीमें रहते थे। इनकी स्त्री पार्वतीबाई नाना गुणोंसे भूषित थीं और बड़ी खुशीसे अपने पतिकी सेवा करती थीं। किन्तु उनके स्वामी त्र्यम्बक एक शूद्र-स्त्रीसे फंसे हुए थे, इस-लिए पार्वतीबाईको मानसिक कष्ट बहुत था। ज्ञान-देवने बहुतसे असच्चरित्रोंको सुधारा है. यह सुन कर पार्वतीबाई उनसे मिलनेको चली। उनके साथ धर्म सम्बन्धी आलोचना होने लगी। मौका पा कर उन्होंने ज्ञानदेवसे अपना दुखड़ा सुनाया। दूसरे दिन ज्ञान-देवने त्र्यम्बक और उनकी रक्षिताको बुलवा लिया, फिर उनसे अनुरोध किया कि, "प्रतिदिन दोनों हमारे पास आ कर ज्ञानेश्वरीकी व्याख्या सुना करें।" त्र्यम्बकने इनका अनुरोध न माना, पर शूद्ररमणी रोज धर्मकथा सुननेको आने लगी। उसके अनुरोधसे त्र्यम्बक भी आने लगे। एक दिन ज्ञानदेवने जीवकी अज्ञान-दशाके विषयमें उपदेश दिया और इस दशामें पड़ कर लोग नानाप्रकारके नीच कार्योंको करने लगते हैं, यह भी विशदरूपसे समझाया। इस उपदेशने दोनोंके अन्तःक-रणको छेद दिया, पिछले पापोंको याद कर दोनों ही अनुताप करने लगे। पीछे ज्ञानदेवके आदेशसे त्र्यम्बक-ने शूद्ररमणीको छोड़ दिया और वे सस्त्रीक धर्मालो-चना करने लगे। त्र्यम्बकका नवजीवन प्राप्त करना एक आश्चर्यका विषय था। इसके द्वारा ज्ञानदेव पर लोगोंकी भक्ति और अनुराग और भी बढ़ गया। लोग झुण्डके झुण्ड उनके उपदेश सुननेको आने लगे। अधिक लोगोंके समागमसे ज्ञानदेवका घर भरने लगा। लोगोंको बैठनेकी जगह मिलना भी दुश्वार हो गया। फिर ज्ञानदेव आलन्दीसे आध कोस दूर आम्बलपेट नामक ग्राममें रहने लगे और वहींसे साधारणको उपदेश देने लगे।

आम्बलपेटसे कुछ दूर चारोली नामक एक स्थान है।

* यह ग्रन्थ १२५० ई०में रचा गया है।

† मराठी भाषामें पद्यको अभंग कहते हैं।

वहां विमलानन्दस्वामी नामके एक संन्यासी रहते थे। साधारण लोग उनकी भक्ति करते थे, किन्तु ज्ञानदेवकी असाधारण प्रतिभाने उनको हीनप्रभ कर दिया। उनसे यह सहा नहीं गया, वे ज्ञानदेव जिससे लोगोंकी दृष्टिमें हेय समझे जांय, ऐसा प्रयत्न करने लगे। उन्होंने ज्ञानदेवकी निन्दा करनी शुरू कर दी, पर उसका कुछ भी असर न पड़ा ; ज्ञानदेवने लोगोंके हृदयमें वह स्थान पाया था, जो कभी छूट नहीं सकता। एकदिन किसी व्यक्तिने ज्ञानदेवकी निन्दा सुन कर कहा—'स्वामीजी! ज्ञानदेव देवतुल्य व्यक्ति हैं, उनकी निन्दा करना आपको उचित नहीं। ज्ञानदेव जैसे धार्मिक हैं, वैसे ही विद्वान् हैं। उनकी शास्त्रव्याख्या सुन सकते हैं।" यह सुन कर विमलानन्दस्वामी ज्ञानदेवके निकट गये। उस समय ज्ञानदेव भगवद्गीताकी व्याख्या कर रहे थे और असंख्य लोग उनके चारों तरफ बैठ कर उसे सुन रहे थे। स्वामीजी व्याख्याको सुन कर पुलकित हुए। ज्ञानदेवके प्रति उनका जो विद्वेषभाव था, वह दूर हो गया। व्याख्या समाप्त होने पर स्वामीजीने ज्ञानदेवसे साक्षात् किया और कुछ देर तक सदालाप करके फिर उससे विदा ग्रहण की।

कुछ दिन बाद ज्ञानदेव अपने दोनों भाई और बहन मुक्ताबाईके साथ तीर्थदर्शनके लिए निकले। इन लोगोंकी इच्छा थी कि, एक परमभक्त और सुगायकको साथ लेते चलें। नामदेव एक उत्तम अभङ्गरचयिता और सङ्गीतविद्यामें पारदर्शी थे। ज्ञानदेवके कहनेसे उन्हें ही साथ ले चलनेका निश्चय हुआ। नामदेव पण्ढरपुरमें रह कर विठोबादेवके* मन्दिरमें भजन और कीर्तन किया करते थे। ज्ञानदेव आदिने पण्ढरपुर जा कर नामदेवसे साक्षात् किया और उनसे अपना अभिप्राय प्रकट किया। नामदेवने पहले इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया था, किन्तु पीछे विठोबादेवका आदेश पा कर उन्होंने इन पर अपनी सम्मति दी थी, ऐसा कहा जाता है। इन लोगोंने तीन दिन पण्ढरपुर रह कर चौथे दिन नामदेवके साथ यात्रा की। ये नाना स्थानोंको अतिक्रम करते हुए प्रयाग और काशीधाममें उपस्थित हुए। यहाँ रामनन्दस्वामी और साधु कबीरसे इन लोगोंने विशेष सम्मान पाया। यहांसे ये गया दर्शन करनेको गये और वहांसे फिर काशी लौटे। यहां भजन और कीर्तनमें तथा संन्यासी और पण्डितोंके साथ सदालाप करनेसे कुछ दिन परम आनन्दसे बीत गये। काशीका प्रत्येक मनुष्य इनको पा कर यत्परोनास्ति आनन्दित हुआ था। काशीसे चल कर इन्होंने अयोध्या, गोकुल, वृन्दावन, द्वारका और जूनागढ़के दर्शन किये। उसके उपरान्त तैलङ्ग प्रदेशके नाना स्थान दर्शन करते पण्ढरपुर लौटे। यहां भी कुछ दिन रहे। भजन और कीर्तनमें इनका समय बीतने लगा। इनके भक्तिभावको देख कर बहुतसे लोग भगवद्भक्त हो गये।

पीछे ज्ञानदेव आदि आलन्दी आये। ज्ञानदेवने तीर्थदर्शनके उपलक्षमें बहुतोंका उपकार किया था। ये और इनके साथी जहां कहीं रहते थे, वहीं भजन, कीर्तन और उपदेश दे कर लोगोंको सत्पथमें लाते थे। कहीं कहीं इन लोगोंने बहुतसी अद्भुत घटनाएँ भी कर डाली थीं। भाषा सीखना ज्ञानदेवका एक विशेष कार्य था। ये जिस प्रदेशमें ज्यादा दिन रहते, उसी प्रदेशकी भाषा सीख लिया करते थे। इस प्रकारसे इन्होंने बहुतसी भाषाएँ सीख ली थीं, जिसमें तेलगू, कनाड़ी और हिन्दी भाषामें इनकी विलक्षण व्युत्पत्ति थी। इन तीन भाषाओंमें इन्होंने तीर्थ-दर्शन-सम्बन्धी बहुतसे अभङ्ग बनाये थे।

अनेक तीर्थोंकी यात्रा करके ज्ञानदेवने यथेष्ट अभिज्ञता प्राप्त की थी। स्वाभाविक सौन्दर्यको देख कर इनका मन ईश्वरकी ओर दौड़ता था। भिन्न भिन्न प्रदेशीय लोगोंके आचार-व्यवहारको देख कर इनका अन्तःकरण उदार भावोंसे भर गया था। ईश्वरका गुणकीर्तन और लोगोंका हित करनाही जीवनका वास्तविक उद्देश्य है, इस बातको ये भली भांति समझते थे। इस उद्देश्य साधनके लिए ये दृढ़व्रती हुए। दिनमें ये साधारणको उपदेश देते और रात्रिको भजन और कीर्तन करते थे। ज्ञानदेवके ग्रन्थोंको पढ़ कर तथा उनकी शास्त्रव्याख्या

---

* दाक्षिणात्यमें श्रीकृष्णको विठोबा देव कहते हैं।

और उपदेशोंको सुन कर अनेक मूढ़ व्यक्तियोंने भी ज्ञान लाभ किया। अनेक संशयवादी भगवद्भक्त हुए और बहुतसे कुमार्गगामियोंने सत्पथको अपनाया। ज्ञानदेवकी ख्याति चारों तरफ व्याप्त हो गई। दूर देशोंसे लोग उनके उपदेश सुननेको आने लगे। धीरे धीरे आलन्दी एक तीर्थरूपमें परिणत हो गया।

इस तरहसे कुछ वर्ष बीतने पर ज्ञानदेवने समाधि लेनेकी इच्छा प्रकट की और उसके लिये वे तयार भी होने लगे। इस संवादके चारों तरफ प्रचारित होने पर नाना स्थानोंसे साधुगण आने लगे। इस समय इन्होंने 'आलन्दी-माहात्म्य' नामक एक ग्रन्थ लिखा। कार्त्तिक मासकी एकादशी रात्रिको ज्ञानदेवने कीर्तन प्रारम्भ किया। द्वादशीको भी कीर्तन होने लगा। कीर्तन सुन कर सब मोहित हुए। त्रयोदशीको ज्ञानदेव समाधि लेनेके लिये तयार हुए। एक वृक्षके तले समाधि-स्थान निश्चित हुआ। वहां एक गुफा बनाई गई। गुफा दो भागोंमें विभक्त हुई। इस गुफामें प्रवेश करनेसे पहले ज्ञानदेवने आत्मीय-स्वजन और साधुओंसे सदालाप किया तथा सबको अभिवादन कर उनसे विदा ग्रहण की। सभीने उनके लिये दुःख प्रकट किया। किन्तु ईश्वरलाभ उनका उद्देश्य था, इसलिए किसीने भी उनके इस कार्यमें बाधा न पहुंचाई। पीछे ज्ञानदेवने सबकी अनुमति ले कर गुफामें प्रवेश किया। गुफामें कुशासन और मृगाजिन बिछाया गया। ज्ञानदेव उस पर पद्मासन लगा कर बैठ गये। उनके सामने ज्ञानेश्वरी, योगवाशिष्ठ आदि कई एक ग्रन्थ रक्खे गये। गुफाके भीतर चार दीप जलने लगे। बादमें ज्ञानदेव इन्द्रिय-द्वारोंको रोक कर ध्यानमें निमग्न हो गये। यह देख कर ज्ञानदेवके आत्मीयस्वजन गुफाके द्वार बन्द कर अपने अपने स्थानको लौट गये। गँवारसे लगा कर विद्वान् तक सब कोई "श्रीज्ञानदेवो जयति" कहने लगे।

ज्ञानदेवकी जीवनी शिक्षाप्रद है। हम इससे बहुत-से उपदेश ले सकते हैं। बहुदर्शिताके बिना केवल विद्याके द्वारा कुछ विशेष फल नहीं मिलता। ज्ञानदेवने बीच बीचमें तीर्थयात्रा और नाना स्थानोंमें रह कर बहुत कुछ अभिज्ञता प्राप्त की थी। भिन्न भिन्न स्थानोंके लोगों-के साथ सदालाप कर उनका हृदय उदार-रससे लबालब भर गया था। उन्होंने इस मौकेमें कितने ही प्रदेशोंकी भाषा सीख ली थी। इसके सिवा नये नये दृश्योंको देख कर उनका मन ईश्वरकी तरफ बढ़ता था। नाना स्थानोंके लोगोंके साथ सदालाप करनेसे उनके अन्तःकरण में महाप्रेम अङ्कित हो गया था और इसीलिए परो-पकारसाधन उनके जीवनका एक महाव्रत हो गया था। हमारे शास्त्रोंमें तीर्थदर्शनकी विधि है। उसके अनुसार कार्य करना सबका कर्त्तव्य है। इससे केवल धार्मिक उन्नति ही हो ऐसा नहीं, प्रत्युत पार्थिव विषय-का भी ज्ञान होता है। जीवनका कुछ अंश योग-साधनमें बिताना चाहिये, यह बात ज्ञानदेवकी जीवनी-से स्पष्ट प्रमाणित होती है। मनकी एकाग्रताके बिना कोई भी कार्य उत्तम रूपसे नहीं किया जा सकता और योगसाधन उसके लिये एक प्रकृष्ट उपाय है। योग-साधन कर ज्ञानदेवने अष्टसिद्धि प्राप्त की थी। इसके द्वारा वे अनेक अद्भुत कार्य करके लोगोंको चमत्कृत कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं; प्रत्युत जहां क्षमता प्रकट करना आवश्यक होता था, वहीं क्षमता प्रकट किया करते थे। बहुतसे योगी ऐसे हैं, जो अहङ्कार-से फूल कर लोगोंको अपनी कारस्तानी और जादूगरी दिखाया करते हैं। ऐसे योगी न तो स्वयं धर्मपथ पर अग्रसर हो सकते हैं और न उनसे दूसरोंका ही कुछ उपकार हो सकता है। धर्मशास्त्रकी व्याख्या करके लोगोंके मनमें धर्मभाव उद्दीपन करना और उप-देश द्वारा असच्चरित्र लोगोंको सुमार्ग पर लाना ज्ञानदेव-के जीवनका प्रधान उद्देश्य था, तथा इस उद्देश्यको संसाधन कर इन्होंने अपने शेष जीवनमें ईश्वरसे समा-धान किया।

ज्ञानदेव अब महाराष्ट्रियों द्वारा पूजे जाते हैं। आलन्दीमें इनका समाधिमन्दिर है और वहां इनके सम्मा-नार्थ प्रति वर्ष एक मेला लगा करता है। इसमें प्रायः ५० हजार आदमी एकत्र होते हैं। दक्षिण देशमें ज्ञानदेव और तुकारामने साधुओंमें शीर्षस्थान अधिकार किया है। ज्यादा क्या कहें, वहांके भिखारी जब भीख मांगने निकलते हैं, तब वे "ज्ञानोबा तुका-

राम" "तुकाराम ज्ञानोबा" ये शब्द मन्त्रकी भाँति उच्चरण करते हैं। तुकाराम देखो।

२ गायत्रार्थरहस्यके रचयिता। ३ वैद्यजीवन-टीकाके कर्त्ता, इनका दूसरा नाम दामोदर था।

४ शूद्र जातीय एक धार्मिक वणिक्। ये शूद्र हो कर वेदका पाठ करते थे इसलिए ग्रामके ब्राह्मणोंने रुष्ट हो कर इनको छेक दिया था। इस पर इन्होंने धर्म-शास्त्रके शास्त्रार्थमें उनको परास्त कर दिया था।

ज्ञाननिष्ठ (सं० त्रि०) ज्ञाने निष्ठा यस्य, बहुव्रो०। ज्ञान-साधनयुक्त, तत्त्व जाननेवाला।

ज्ञानपति (सं० पु०) ज्ञानस्य पतिः, ६-तत्। १ ज्ञानोपदेशकगुरु। २ परमेश्वर।

ज्ञानपावन (सं० क्ली०) ज्ञानवत् पावनं, उपमित-कर्मधा०। तीर्थभेद। ज्ञानपावनतीर्थ अत्यन्त पुण्यजनक है। इस ज्ञानपावनतीर्थमें ज्ञानदानादि करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है।

"ततो गच्छेत राजेन्द्र! ज्ञानपावनमुत्तमम्।
अग्निष्टोममवाप्नोति मुनिलोकञ्च गच्छति।" (भा० वन०४८७०)

ज्ञानप्रभ—एक बौद्ध तथागत। विशेषचेली नामक राजाने इनसे कामसंवर अर्थात् शरीरसंयमन-विद्याकी शिक्षा पाई थी।

ज्ञानभास्कर (सं० पु०) ज्ञानमेव भास्करः, रूपक-कर्मधा०। १ ज्ञानरूपसूर्य। २ भास्कराचार्य-प्रणीत ज्योतिषग्रन्थ। ३ षड्वर्गफल नामक ज्योतिषग्रन्थके प्रणेता।

ज्ञानभूषण—एक दिगम्बर जैनग्रन्थकार। इनकी भट्टारक उपाधि थी। ये वि० सं० १५७५में विद्यमान थे। इन्होंने तत्त्वज्ञानतरङ्गिणी, पञ्चास्तिकाय-टीका, नेमिनिर्वाणकाव्य-पञ्जिकाटीका, दशलक्षणोद्यापन, परमार्थोपदेश, भक्तामरोद्यापन आदि ग्रन्थोंकी रचना की है।

ज्ञानमद (सं० पु०) ज्ञानका अभिमान, ज्ञानी होनेका घमण्ड।

ज्ञानमय (सं० पु०) ज्ञानस्वरूपः ज्ञान-मयट्। परमेश्वर।
"निर्व्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः।" (सां०द० भाष्य)

ज्ञानमुद्रा (सं० स्त्री०) ज्ञानं नाम मुद्रा। तन्त्रसारोक्त रामपूजाङ्ग मुद्राभेद, तंत्रसारके अनुसार रामकी पूजाकी एक मुद्रा। इसमें दाहिने हाथकी तर्जनी और अंगूठे-को मिला कर पहले हृदयमें रखते हैं, पीछे बायें हाथ-को उँगलियोंकी कमल सम्पुटके आकारकी करके उस सिरसे ले कर बाएँ जांघे तक रखा करते हैं, इसीको ज्ञानमुद्रा कहते हैं। यह ज्ञानमुद्रा रामको अत्यन्त प्रिय है। "तर्जन्यंगुष्ठकौ सक्तावग्रतो विन्यसेत् हृदि।
वामहस्ताम्बुजं वामजानुमूर्द्धनि विन्यसेत्॥
ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य प्रेयसी।" (तन्त्रसा०)

ज्ञानयज्ञ (सं० पु०) ज्ञानं यज्ञ इव यस्य, बहुव्रो०। तत्त्वज्ञ, ब्रह्मज्ञान। कर्मयोगोमें अग्निसे यज्ञ किया करते हैं, किन्तु ज्ञानयोगी ब्रह्मरूप अग्निमें अपनी आत्माको ही यज्ञ करते हैं, अर्थात् ब्रह्मको अभेद जान कर तत्स्वरूप अवलोकन करते हैं। "सोऽहं ब्रह्म" मैं ही ब्रह्म हूं, सर्वदा यही देखते हैं। "ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।" कर्म-योगी इसका अनुष्ठान भी नहीं करते हैं वरं इसको घृणादृष्टिसे देखा करते हैं।

"महापापवतां नृणां ज्ञानयज्ञो न रोचते।" (शब्दार्थचि०)

ज्ञानयोग (सं० पु०) युज्यते ब्रह्मणानेन युज-कर्मणि घञ्, ज्ञानमेव योगः, रूपक-कर्मधा०। ब्रह्मप्राप्तिके लिए ज्ञानरूप निष्ठाविशेष, ब्रह्मप्राप्तिका उपाय। ज्ञानयोग ही एकमात्र भगवत्प्राप्तिका द्वार है। जीव प्रतिनियत अज्ञानताके कारण प्रकृतिकी मायाके वशीभूत हो कर निरन्तर दुःख-में डूबे रहते हैं। जीव दुःखाभिभूत हो कर जब दुःख निवृत्तिका उपाय जाननेको इच्छुक होंगे, तब पहले वस्तुतत्त्व जाननेके साथ साथ कौन कौनसी वस्तुएं दुःख-मय हैं, यह सहजमें ही समझ लेंगे। फिर सुख-दुःख आदि जिसके धर्म हैं, उससे मिलनेको इच्छा न होगी; अपने आप यथार्थ तत्त्वोंका ज्ञान हो जायगा। पीछे ज्ञानयोगके द्वारा अभीष्ट वस्तु आसानीसे प्राप्त कर सकेंगे।

संसारमें भगवत्प्राप्तिके दो उपाय हैं—एक ज्ञानयोग और दूसरा कर्मयोग। सांख्यमतावलम्बिगण ज्ञानयोग अवलम्बन कर मुक्ति पाते हैं और दूसरे कर्मयोग द्वारा मुक्त होते हैं। परन्तु कर्मयोगके विना ज्ञानयोग हो नहीं सकता। कर्म करते करते चित्तकी शुद्धि होती है, बाद-में निर्मलचित्तमें विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है। विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न होने पर ज्ञानयोगके द्वारा अनायास मुक्ति हो सकती है। योग देखो।

ज्ञानरङ्ग—एक कवि। इन्होंने उपदेशकी अनेक कविताएं रची हैं, जिनमें एक इस प्रकार है—

जाहि लागे चोट सोई जाणे।
इश्कदा लहरां रख्या हागिज ॥
किसी कूं न होवे ज्ञानरंग दीठ लगी जाणे ॥

ज्ञानराज—सिद्धान्तसुन्दर नामक ज्योतिष-ग्रन्थके प्रणेता। ये नागनाथके पुत्र और सूर्यदेवज्ञके पिता थे।

ज्ञानलक्षणा (सं० स्त्री०) ज्ञानं लक्षणं यस्याः, बहुव्री०। अलौकिक प्रत्यक्षसाधनसन्निकर्षभेद। न्याय-शास्त्रानुसार अलौकिक प्रत्यक्षका एक भेद। प्रत्यक्ष दो प्रकारका है-एक लौकिक और दूसरा अलौकिक। लौकिक प्रत्यक्ष घ्राणज आदिके भेदसे छह प्रकारका है। (भाषाप० ५२)

अलौकिक प्रत्यक्षके तीन भेद हैं—१ सामान्यलक्षण, २ ज्ञानलक्षण और ३ योगज। पहले पहल किसी वस्तुका प्रत्यक्ष करना हो, तो पहले हो उसका विशेष ज्ञान होना आवश्यक है, पीछे विशिष्ट ज्ञान होता है। घट जाननेके लिए घटत्वका ज्ञान होना आवश्यक है। घटत्वके बिना जाने घट जाना नहीं जा सकता। त्वग्मनःसंयोग ही ज्ञानका कारण है, मनके त्वक्के साथ मिलने और वस्तुके साथ उसका सम्बन्ध होने पर ही ज्ञान होता है; मान लो कि किसी व्यक्तिने कलकत्तेका घट देखा है, काशीका नहीं देखा; परन्तु काशीके घटपर त्वग्मनःसंयोग भी असम्भव है, ऐसा होनेसे उस व्यक्तिको काशीके घटका प्रत्यक्ष वा ज्ञान नहीं होगा, इसलिए अलौकिक सन्निकर्षको मानना आवश्यक है। इस अलौकिक सन्निकर्षसे चक्षुके अगोचर पदार्थोंका ज्ञान होता है।

एक घट देख कर घटत्वरूप सामान्य धर्मके द्वारा पृथिवीके तमाम घटोंका जो ज्ञान होता है वह सामान्यलक्षणाके अधीन और घटज्ञान द्वारा घट, पट, मठ आदिका जो समग्र ज्ञान होता है, वह ज्ञानलक्षणाके अधीन है। इस ज्ञानलक्षणाके घटज्ञानसे पृथिवीके सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान होगा। सामान्यलक्षणा देखो।

ज्ञानवत् (सं० त्रि०) ज्ञानं विद्यते यस्य अस्त्यर्थे ज्ञान-मतुप्। ज्ञानी, जिसे ज्ञान हो।

ज्ञानवापी (सं० स्त्री०) ज्ञानस्य ज्ञानरूपोदकस्य वापी दीर्घिकेव। काशीमें स्थित वापीरूप एक तीर्थ। इसकी उत्पत्ति आदिका विवरण स्कन्दपुराणीय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—अगस्त्यने एकदिन स्कन्दमुनिके पास जा कर कहा—'महात्मन्! देवगण भी ज्ञानवापीकी बहुत प्रशंसा किया करते हैं। आप कृपा कर इसकी उत्पत्ति आदिका विवरण कह कर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।' स्कन्दने उत्तर दिया—हे मुने! पहले सत्ययुगमें इस अनादिसिद्ध संसारमें जिस समय मेघोंसे पानी नहीं बरसता था, नदी आदि नहीं थीं और न लोगोंको स्नान पानादिके लिए जलकी अभिलाषा ही थी तथा जब क्षीर और लवणसमुद्रका पानी ही दिखलाई देता था और जब पृथिवीके किसी किसी स्थान पर मनुष्योंका सञ्चार था, उस समय पूर्व और उत्तर दिशाकी मध्यस्थित दिशाके अधिपति रुद्रोंमें अन्यतम ईशाण इतस्ततः भ्रमण करते हुए काशी पहुंचे। जो काशी निर्वाणलक्ष्मीका क्षेत्रस्वरूप और परमानन्द कानन है, जो महाश्मशान सर्वप्रकारके बीजसमूहके लिए ऊषर भूमि और परिश्रान्त जीवोंका विश्रामगण्डप है, जो सच्चिदानन्दका निलय, सुखसमूहका जनक और मोक्षप्रद है, उस काशीक्षेत्रमें, जटाधारी ईशानने हस्तस्थित त्रिशूलके विमल रश्मिजालसे व्याप्त हो कर प्रवेश किया और महालिङ्गके दर्शन किये। वह शिवलिङ्ग चारों ओरसे ज्योतिर्मयी मालासमूह द्वारा वेष्टित है, देवता, ऋषि, सिद्ध और योगी निरन्तर उनकी पूजा करते हैं, गन्धर्व उनके नामका गान करते हैं, चारण उनकी स्तुति करते हैं, अप्सराएं नृत्यद्वारा उनकी सेवा करती हैं, नागकन्याएं मणिमय प्रदीपों द्वारा उनकी आरती करती हैं, विद्याधरी और किन्नरियां उनके त्रिकालीन वेशको बनाती हैं और देवकन्याएं चामरसे उनको हवा करती हैं; यह सब देख कर ईशानको घटपूर्ण शीतल जलद्वारा उन महालिङ्गको स्नान करानेकी इच्छा हुई। इस पर इन्होंने त्रिशूलसे उस लिङ्गके दक्षिणकी भूमि खोद कर एक कुण्ड बनाया। उस कुण्डसे पृथिवीके परिमाणकी अपेक्षा दश गुना जल निकलने लगा और जलसे पृथिवी ढक गई। फिर रुद्रमूर्ति ईशानने उस जलसे सहस्रधार कलसको परिपूर्ण कर महादेवको स्नान कराया। महा-

देवने प्रसन्न हो कर उस रुद्ररूपी ईशानसे कहा- 'हे सुव्रत ईशान ! तुम्हारे इस कार्यसे हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, तुमसे पहले ऐसा उत्तम कार्य और किसीने भी न किया था। अब तुम वर मांगो, आज तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है।" ईशानने कहा—"भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो हुए हैं, तो यह वर दीजिये कि, जिससे यह अनुपम तीर्थ आपके नामसे प्रसिद्ध हो" यह सुन कर भगवान् विश्वेश्वरने कहा—"त्रिभुवनमें जितने भी तीर्थ हैं. उन सबमें यह ही परम शिवतीर्थ होगा। जो शिव शब्दके अर्थ पर विचार करते हैं, वे ही शिव शब्दका अर्थ ज्ञान बतलाते हैं। वह ज्ञान ही मेरी महिमासे इस स्थान पर जलरूपमें द्रवीभूत हुआ है. इसलिए मेरा यह तीर्थ ज्ञानवापीके नामसे प्रसिद्ध होगा। इसको स्पर्श करनेसे ही सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। ज्ञानोदकतीर्थके स्पर्श करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है और इसके जलमें आचमन करनेसे अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञका फल होता है। फल्गुतीर्थमें स्नान करके पितृलोकका तर्पण करनेसे जो फल होता है. इस ज्ञानतीर्थमें श्राद्ध करनेसे भी वही फल होता है। बृहस्पतिवारको पुष्यानक्षत्रयुक्त शुक्लाष्टमीमें यदि व्यतिपात योग हो. तो उस दिन इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे उसका गयाश्राद्धकी अपेक्षा कोटिगुना फल होता है। पुष्कर तीर्थमें पितृपुरुषोंका तर्पण करके जो पुण्य प्राप्त होता है, इस तीर्थमें तिलतर्पण करने पर उससे करोड़ गुने अधिक फलकी प्राप्ति होती है। काशी देखो।

ज्ञानविजय यति—महबमलयाचरित्र नामक ग्रन्थके प्रणेता।

ज्ञानविमलगणि—भानुमरुके शिष्यका नाम। इन्होंने १६५४ संवत्‌में शब्दप्रभेदप्रकाशटीकाकी रचना की है।

ज्ञानवृद्ध (सं० त्रि०) ज्ञानमें श्रेष्ठ, जिसकी जानकारी अधिक हो।

ज्ञानशास्त्र (सं० क्लो०) ज्ञानप्रदायकं शास्त्रं, कर्मधा०। मुक्तिशास्त्र।

ज्ञानसागर—१ श्वेतांबर-जैनसम्प्रदाय तपागच्छ भुक्त देवसुन्दरके पांच शिष्योंमेंसे एक। इन्होंने आवश्यक, ओघनिर्युक्ति, श्रीमुनिसुव्रतस्तव, घनौघनवखण्डपार्श्वनाथस्तव आदि पुस्तकोंकी अवचूर्णि लिखी है।

२ रत्नसिंहके शिष्य और लब्धिसागरके गुरु।

३ परमहंसपद्धतिके रचयिता।

ज्ञानसागर ब्रह्मचारी—षोड़शकारणोद्यापन और त्रैलोक्यसागरपूजाके रचयिता एक जैन ब्रह्मचारी।

ज्ञानसाधन (सं० क्लो०) ज्ञानस्य साधनं, ६-तत्। १ इन्द्रिय। २ तत्त्वज्ञानसाधन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि श्रवण मननादि ज्ञान द्वारा साधित होते हैं. इसीको ज्ञानसाधन कहते हैं।

ज्ञानसिन्धुयोगीन्द्र—विष्णुसहस्रनामभाष्यटीकाके प्रणेता।

ज्ञानहत (सं० त्रि०) ज्ञानं हतं यस्य, बहुव्री०। अज्ञान। जिसका ज्ञान भ्रष्ट हो गया हो।

ज्ञानाकर (सं० पु०) ज्ञानस्य आकरः, ६-तत्। ज्ञानका आकर, बुद्ध।

ज्ञानानन्द (सं० पु०) ज्ञानमेव आनन्दः, रूपककर्मधा०। ज्ञानरूप आनन्द। मुक्तपुरुष सर्वदा ही ज्ञानानन्द भोगते हैं। वे सर्वदा ज्ञानरूपमें स्थित रहते हैं।

ज्ञानानन्द—१ शिवगीताटीकाके प्रणेता और अप्याजी भट्टके गुरु। २ सिद्धान्तमुक्तावलीके रचयिता और प्रकाशानन्दके गुरु।

३ एक श्वेताम्बर जैन साधु। संवत् ११६६में ये विद्यमान थे। इन्होंने ज्ञानविलास, और समयतरङ्ग नामक दो हिन्दी पद्य-ग्रन्थ रचे थे। कहते हैं—ये अपने आपमें लीन रहते थे और लोगोंसे बहुत कम संबन्ध रखते थे।

४ ईशावास्योपनिषट्टीका, कौलार्णव, छान्दोग्योपनिषच्चन्द्रिका, जाबालोपनिषट्टीका, तत्त्वचन्द्रटीका, तत्त्वार्णवटीका, योगसूत्रटीका, रुद्रविधानपद्धति, वाक्यसुधाटीका, सिद्धान्तसुन्दर, सौभाग्योपनिषट्टीका इत्यादि ग्रन्थोंके रचयिता।

ज्ञानानन्द कलाधरसेन—अमरुशतकटीकाके प्रणेता।

ज्ञानानन्दनाथ—राजमातङ्गीपद्धतिके प्रणेता।

ज्ञानानन्द ब्रह्मचारी—एक त्यागी पुरुष और जैन-कवि। इनका जन्म मेरठ जिलेके अन्तर्गत सलावा ग्राममें सं० १९४४ के वैशाख मासमें हुआ था। इनके गुरुका नाम था गोपालदास बरैया और पिताका देवीसहाय। १४ वर्ष

की अवस्था तक ये ग्राममें प्राथमिक शिक्षा पाते रहे और १५वें वर्ष इनका विवाह हो गया। तीसरे वर्ष, द्विरागमनके नौ-दश महीने बाद ही प्लेगकी बीमारीमें इनकी पत्नीका देहान्त हो गया, जिससे इन्हें संसारसे विरक्ति हो गई। ये छुप कर काशी चले आये और वहां स्याद्वाद जैन महाविद्यालयमें रह कर विद्याध्ययन करने लगे।

अध्ययन समाप्त करनेके बाद ये अपनी प्रखर बुद्धिके प्रभावसे उसी विद्यालयके प्रधान अध्यापक और अधिष्ठाता हो गये। इसके कई वर्ष बाद इन्होंने बंबईके अन्तर्गत नासिक जिलेके पार्श्वस्थित गजपन्था क्षेत्रमें जा कर दीक्षाग्रहण (सप्तम-प्रतिमा धारण) कर ली।

अनन्तर इन्होंने काशीसे "अहिंसा" नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और हस्तिनापुर जा कर वहांके ब्रह्मचर्याश्रमके अधिष्ठाताका पद ग्रहण किया। वहांकी जलवायु अस्वास्थ्यकर होनेसे ये आश्रमको जयपुर ले गये, जो अब भी वर्तमान है। अन्तमें अजमेर जिलेके ब्यावर नामक स्थानमें इनका (सं० १९७९, ज्येष्ठ शुक्ला १३शीको) स्वर्गारोहण हो गया।

इन्होंने आप्तपरीक्षाटीका, शान्तिसोपान, भावनाभवन, जगता जागती ज्योति आदि कई गद्य एवं पद्य ग्रन्थोंकी रचना की है।

ज्ञानापन्न (सं० वि०) ज्ञानं आपन्नः, २-तत्। ज्ञानप्राप्त जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ हो, ज्ञानी, अक्लमन्द।

ज्ञानापोह (सं० पु०) ज्ञानस्य अपोहः, ६-तत्। ज्ञान लोप विस्मरण, भूलना, बिसरना।

ज्ञानाभ्यास (सं० पु०) ज्ञानस्य अभ्यासः, ६-तत्। ज्ञानका अभ्यास, ज्ञेय विषयका चिन्तन कथनप्रबोधन आदि। सर्वदा ईश्वरनामादिके कीर्तन करनेकी और आदि सर्गमें मैं उत्पन्न नहीं हुआ, यह दृश्य-जगत् कुछ भी नहीं है, यह जगत् मिथ्या है, मैं ही सत्यस्वरूप हूं, इस प्रकारके श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिको ज्ञानाभ्यास कहा जा सकता है।

ज्ञानामृत (सं० क्लो०) ज्ञानमेव अमृतं रूपककर्मधा०। ज्ञानरूप सुधा। योगिगण ज्ञानामृतका पान कर अमरत्वको प्राप्त होते हैं।

जगत्में भगवत्प्राप्तिके दो उपाय हैं—एक ज्ञानयोग और दूसरा कर्मयोग। सांख्यमतावलंबी ज्ञानयोगका अवलम्बन कर मुक्तिलाभ करते हैं और दूसरे कर्मयोग द्वारा मुक्त होते हैं। किन्तु कर्मयोग बिना किये ज्ञान योग हो नहीं सकता। क्योंकि कर्म करते करते चित्त-शुद्धि होती है, फिर चित्तसे रज और तम दूर होते हैं तथा विशुद्ध सत्वका आविर्भाव होता है. पीछे निर्मल चित्तमें वास्तविक ज्ञान उपस्थित होता है। इस प्रकारका ज्ञान होने पर सहजहीमें मुक्ति हो सकती है। ज्ञानयोगही मुक्तिका एकमात्र साधन है। कर्म देखो।

ज्ञानामृतयति—ऐतरेयोपनिषद्भाष्यटीका, तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्यटीका और सांख्यसूत्रटीका प्रभृतिके टीकाकार।

ज्ञानार्णव (सं० पु०) ज्ञानस्य अर्णवः, ६-तत्। १ ज्ञानसमुद्र। २ शुभचन्द्राचार्यकृत एक जैन ग्रन्थ। इसमें ध्यानका स्वरूप विस्तृत रूपसे वर्णित है।

ज्ञानावरण (सं० पु०) १ ज्ञानका परदा, वह जिससे ज्ञानमें बाधा पहुंचती हो। २ वह पापकर्म जिससे जीवको ज्ञानका यथार्थ लाभ नहीं होता। इसके पांच भेद हैं—१ मतिज्ञानावरण, २ श्रुत-ज्ञानावरण, ३ अवधि-ज्ञानावरण, ४ मनःपर्यायज्ञानावरण और ५ केवलज्ञानावरण। जैनधर्म शब्दमें कर्मसिद्धान्तका विषय देखो।

ज्ञानवरणीय (सं० वि०) जिससे ज्ञानमें बाधा पहुंचती हो। ज्ञानावरण देखो।

ज्ञानासन (सं० पु०) रुद्रयामलमें कहा गया एक आसन। इस आसनसे बैठ कर योग करनेसे शीघ्र योगाभ्यासी बना जा सकता है, यह आसन ज्ञानविद्याप्रकाशक है। इसलिए योगेच्छु व्यक्तियोंको इस आसनसे योग करना चाहिये। (रुद्रयामल) रुद्रयामलमें इस आसनके विषयमें इस प्रकार लिखा है—दक्षिणपादके ऊरुमूलमें वामपादतल तथा दक्षिणपार्श्वमें दक्षिणपादतल संयोजित करना चाहिये। इस आसनसे बराबर बैठते रहनेसे पादग्रन्थियां शिथिल हो जाती हैं।

ज्ञानी (सं० वि०) ज्ञानमस्त्यस्य ज्ञान-इनि। अतइनिठनौ। पा ५।२।११५। १ ज्ञानयुक्त, ब्रह्मसाक्षात्कारयुक्त, ब्रह्मज्ञानी, आत्मज्ञानी। "ज्ञानान्मुक्तिः" ज्ञान होनेसे ही मुक्ति होती है। मायाबन्धनरहित ज्ञानी पुरुष सर्वदा

ही भगवदुपासनामें प्रवृत्त रहते हैं। भगवान्ने कहा है—चार तरहके आदमी मेरी आराधना करते हैं। पीड़ित, तत्त्वज्ञानेच्छु, दरिद्र और ज्ञानी इनमेंसे ज्ञानी ही सबसे श्रेष्ठ और मेरा प्रिय है। (गीता ७ अ०) शुक नारद आदि ज्ञानी हैं, इनको किसी विषयकी कामना नहीं है फिर भी रात दिन हरिगुणानुकीर्तन किया करते हैं। ज्ञानी व्यक्तिको भी कर्म चयार्थ वर्णाश्रमधर्मोचित कार्य करना चाहिये। ज्ञानवान् व्यक्ति बहुत जन्मोंके उपरान्त भगवान्को पाते हैं। २ जिसे ज्ञात हो, बोधयुक्तमात्र, अर्थात् सामान्य ज्ञानमात्रका बोध होनेसे ही ज्ञानी होता है।

ज्ञानीराम—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने स्फुट कविता नामक ग्रन्थकी रचना की है।

ज्ञानेन्द्र सरस्वती—वामनेन्द्र सरस्वतीके शिष्य और तत्त्वबोधिनी, सिद्धान्तकौमुदी टीका तथा प्रश्नोपनिषद् भाष्यके प्रणेता।

ज्ञानेन्द्रस्वामी—ब्रह्मसूत्रार्थ प्रकाशिकाके प्रणेता।

ज्ञानोत्तम—गौड़ेश्वराचार्यकी एक उपाधि।

ज्ञानोत्तममिश्र—नैगम्यसिद्धिचन्द्रिका ग्रन्थके प्रणेता।

ज्ञानोपदेश—शङ्कराचार्य प्रणीत उपदेशग्रन्थ।

ज्ञानेन्द्रिय (सं० क्लो०) ज्ञायते बुध्यतेऽनेनेति ज्ञा-करणे ल्युट् वा ज्ञानप्रकाशकं ज्ञानसाधनं वा इन्द्रियं। ज्ञानसाधन इन्द्रिय, वे इन्द्रियां जिनसे जीवोंके विषयोंका ज्ञान होता है। ज्ञानेन्द्रियां पांच हैं श्रोत्रेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, दर्शनेन्द्रिय, रसना और घ्राणेन्द्रिय।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं। श्रोत्रका विषय शब्द, त्वक्का स्पर्श, चक्षुका रूप, जिह्वाका रस और नासिकाका विषय गन्ध है। इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंके पांच अधिष्ठाता देवता हैं, यथा—श्रोत्रके दिक्, त्वक्के वायु, चक्षुके सूर्य, जिह्वाके वरुण, नासिकाके अश्विनीकुमारद्वय। भागवत आदिमें मनको भी ज्ञानेन्द्रिय कहा है, किन्तु मन केवल ज्ञानेन्द्रिय नहीं है। इसको ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय उभयात्मक इन्द्रिय मानना ही सङ्गत है। दार्शनिकोंने "उभयात्मकं मनः" इत्यादि सूत्र द्वारा मनको उभयेन्द्रिय ही प्रमाणित किया है। इन्द्रिय देखो।

ज्ञानोत्पत्ति (सं० स्त्री०) ज्ञानस्य उत्पत्तिः, ६-तत्। ज्ञानका उदय, अक्लका होना।

ज्ञानोदतीर्थ (सं० क्लो०) ज्ञानोद इति नाम्ना विख्यातं तीर्थं, कर्मधा०। वाराणसीके अन्तर्गत एक तीर्थका नाम। यह तीर्थ ज्ञानवापी नाममें प्रसिद्ध है। ज्ञानवापी और काशी देखो।

ज्ञानोदय (सं० पु०) ज्ञानस्य उदयः, ६-तत्। ज्ञानकी उत्पत्ति, अक्लकी पैदाइश।

ज्ञानोल्का (सं० स्त्री०) समाधि भेद।

ज्ञापक (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच्-ण्वुल्। बोधक, जतानेवाला, जिससे किसी बातका पता चले।

ज्ञापन (सं० क्लो०) ज्ञा णिच्-ल्युट्-आवेदन, जताने वा बतानेका कार्य।

ज्ञापनीय (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच अनीय्। निवेदनीय, जो जताने या बतानेके योग्य हो।

ज्ञापयितृ (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच् तृच्। ज्ञापक; सूचित करनेवाला।

ज्ञापिकदेव—स्मृतिसारके प्रणेता।

ज्ञापित (सं० त्रि०) ज्ञा-णिच् क्त। सूचित, जताया हुआ, बताया हुआ।

ज्ञाप्ति (सं० स्त्री०) ज्ञा णिच् भावे क्तिन्। ज्ञापन, सूचित करनेका कार्य।

ज्ञाप्य (सं० त्रि०) ज्ञापनयोग्य, जानने योग्य।

ज्ञास (सं० पु०) ज्ञा-अवबोधने ज्ञा-असुन्। ज्ञाति, गोती, भाई बन्धु।

"ज्ञास उतवा सजातान्" (ऋक् १।१०९।११)

'ज्ञासः ज्ञातयोः' (सायण)

ज्ञीप्सा (सं० स्त्री०) ज्ञातुमिच्छा, ज्ञप-सन्-अ ततष्टाप्। जाननेकी इच्छा।

ज्ञीप्समान (सं० त्रि०) ज्ञप-सन् कर्मणि सानच्। जाननेका इच्छुक, जिसे कोई बात जाननेकी अभिलाषा हो।

ज्ञु (वै०) जानु घुटना।

ज्ञुबाध (सं० त्रि०) घुटने टेक कर।

ज्ञेय (सं० त्रि०) ज्ञायते इति ज्ञा-कर्मणि यत्। ज्ञानयोग्य,

ज्ञातव्य, जिसका जानना योग्य हो, जानने योग्य।

इस जगत्‌में एकमात्र ब्रह्मही ज्ञेय है। इस ज्ञेय पदार्थका विषय गीतामें इस प्रकार लिखा है—"हे अर्जुन! अब तुमसे ज्ञेय विषय कहता हूं, मन लगाकर सुनो ज्ञेय पदार्थको जान लेनेसे अमृतत्वलाभ (मोक्ष-लाभ) हुआ करता है। इसको जाननेसे सुख-दुःखादि-से अतीत हुआ जा सकता है। इसका स्वरूप इस प्रकार है। वह अनादि ब्रह्म और मैं निर्विशेष हूं, वे सत् वा असत् नहीं हैं। उनके हस्त, पद चक्षुः कर्ण और मुख सर्वत्र विद्यमान हैं तथा वे सर्वत्र व्याप्त हैं, वे सर्व प्रकारकी इन्द्रियोंमें विहीन हैं, किन्तु इन्द्रियां भी उनके विषयोंको प्रकाशक हैं। वे सङ्गरहित, पर सबके आधार-स्वरूप हैं। वे गुणहीन पर सकल गुणके भोक्ता हैं। वे साधारणतः समस्त भूतके अन्तरमें रहते हैं, वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं, इसलिये अविज्ञेय हैं। वे समस्त भूतोंमें अवि-भक्त रह कर भी कार्यभेदसे विभिन्नरूपमें अवस्थिति करते हैं। वे भूतोंके स्रष्टा, पाता और संहर्त्ता हैं। वे ज्योतिः पदार्थको ज्योति और ज्ञानके अतीत हैं।

(गीता १३।१३-१७)

जितने दिन ज्ञेय पदार्थका ज्ञान नहीं होता, उतने दिन उद्धारका कोई उपाय नहीं है। परन्तु यही ज्ञेय पदार्थ है और अत्यन्त दुर्विज्ञेय है।

जहां मन और वाक्य न पहुंच सकनेके कारण लौट आते हैं, वह ही ज्ञेय-पदार्थ है। आदि सर्गकालमें जिससे इन भूतोंको उत्पत्ति हुई है और जिसकी कृपासे जीवित रहते हैं तथा युगक्षयमें जिससे प्रलीन होते हैं, वह पदार्थ ही ज्ञेय है। ब्रह्म देखो।

ज्ञेयज्ञ (सं० त्रि०) ज्ञेयं जानाति ज्ञेय-ज्ञा-क। आत्म-ज्ञानी, ब्रह्मज्ञ, सिद्ध, साधु।

ज्ञेयता (सं० स्त्री०) ज्ञेयस्य भावः ज्ञेय-भावे तल्-टाप्। ज्ञेयत्व, बोध, जाननेका भाव।

ज्मन् (वै०) १ अन्तरीक्ष नाम। २ पृथिवी परकी वर्तमान जन्तु। "भूधर ज्मन्नते" (ऋक् ७।२१।६) 'ज्मना पृथिव्यां वर्त-मानजन्तून्' (सायण)

ज्मया (सं० त्रि०) पृथिवी पर जिसकी उत्पत्ति हो। "ज्मा अत्र वसवः" ऋक् ७।३९।३) 'पृथिव्यां भवाः' (सायण)

ज्य (सं० त्रि०) उत्पीड्य। बाधा देने योग्य, तकलीफ देने लायक।

ज्या (सं० स्त्री०) ज्या-ड ततष्टाप्। धनुर्गुण, धनुषकी डोरी। इसके पर्याय—मौर्वी, शिञ्जनी, गुण, शिञ्जा, जीवा, पतञ्जिका, गव्या, बाणासन और द्रुणा है। २ किसी चापके एक सिरेसे दूसरे सिरे तककी रेखा। ३ किसी चापके एक सिरेसे चापके दूसरे सिरे तक गये हुए व्यास पर गिरी हुई लम्ब रेखा। ४ पृथिवी। ५ माता। ६ त्रिकोणमितिमें केन्द्र परके कोणोंके विचारसे रक्त रेखा और त्रिज्याको निष्पत्ति।

ज्याका (सं० स्त्री०) कुत्सिता ज्या ज्याशब्दात् कुत्सायां कः। कुत्सित ज्या, खराब धनुषकी डोरी।

ज्याघातवारण (सं० क्ली०) ज्याया आघातं वारयत्यनेन करणे वारि-ल्युट्। धनुर्द्धरोंके हस्तविवद्धचर्मविशेष, वह चमड़ा जो धनुष चलानेवाले योद्धाओंके हाथमें बंधा रहता है।

ज्याघोष (सं० पु०) ज्यायाः घोषः, ६-तत्। ज्या शब्द, धनुषको टंकार।

ज्यादती (फा० स्त्री०) अधिकता, अधिकाई, बहुतायत।

ज्यादा (फा० क्रि० वि०) अधिक, बहुत।

ज्यान (सं० क्ली०) उत्पीड़न, नुकसान, हानि, घाटा।

ज्यानि (सं० स्त्री०) ज्या-नि। वीज्याज्वरिभ्यो निः। उण् ४।४८। १ वयोहानि, उम्रकी घटती। २ तटिनी, नदी। ३ जीर्ण, बुढ़ापा।

ज्यामिति (सं० स्त्री०) गणितशास्त्र कई एक भागोंमें विभक्त है। भिन्न भिन्न विभागसे हम लोग भिन्न भिन्न विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिसके द्वारा हम लोग भूमि-परिमाण-सम्बन्धीय विषय मालूम कर सकते, उसे साधारणतः ज्यामिति कहते हैं। ज्या=पृथिवी (भूमि) एवं मिति=परिमाण। इन दो शब्दोंसे ज्यामिति शब्द बना है। अंगरेजी भाषामें इसे Geometry कहते हैं। geo=earth एवं metron=measure इन दो शब्दोंसे Geometry की उत्पत्ति हुई है। ज्यामिति द्वारा विशेष विशेष स्थान या क्षेत्रके भिन्न भिन्न अंशोंका परस्पर सम्बन्ध जान जाता है। इनमें रेखा, कोण, सम-तल और घनपरिमाण आदिका विषय निरूपण किया

जाता है। ज्यामिति नाना भागोंमें विभक्त है, यथा—समतल और घन ज्यामिति, व्यवच्छेदक वा वैजिक ज्यामिति, चित्रज्यामिति (Descriptive Geometry) और उच्चतर ज्यामिति। समतल और घन ज्यामितिमें सरल रेखा, समतल क्षेत्र एवं उसीका घन परिमाण और वृत्तका विषय वर्णित है। उच्चतर ज्यामितिमें सूचीच्छेद, वक्ररेखा और उसीकी क्षेत्रावलीका विषय आलोचित है और चित्रज्यामितिमें परिलेखादिका नियम दिखलाया गया है। दो समतल क्षेत्रके ऊपर किसी घनक्षेत्रके तत्त्वादिका अनुशीलन करना ही ज्यामितिके एक विभागका उद्देश्य है। चित्रज्यामिति द्वारा अनेक कार्य बहुत आसानीसे सम्पन्न होता है। इसकी कार्यकारिता भी अनेक है। जब कोई समतलक्षेत्र किसी दूसरे क्षेत्रमें प्रविष्ट हो, तब दोनोंके परस्पर समतलसे द्विरावृत्त वक्ररेखा उत्पन्न होती है। गुम्बज बनानेके समय चित्रज्यामितिसे अधिक सहायता मिलती है। इसके द्वारा गुम्बजकी उपयोगी बना कर पत्थर आदि काटा जा सकता है।

वैजिक ज्यामिति डेकार्ट (Descarts)-से उद्भावित हुई है। वैजिक-ज्यामिति द्वारा ज्यामितिक क्षेत्रमें वीजगणित और सूक्ष्ममान गणितके नियमादि प्रयोग किये जाते हैं। वैजिक-ज्यामिति कभी कभी व्यवच्छेदक-ज्यामिति नामसे भी पुकारी जाती है। इसके द्वारा समतल और वक्रक्षेत्रका हाल मालूम हो जाता है।

ज्यामितिका युक्तिके साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। पहले केवल ज्यामिति-शिक्षासे प्रकृतरूपमें चिन्ता और युक्तिका अनुशीलन होता था।

ज्यामितिकी उत्पत्तिका निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है। जो कुछ हो, इस सम्बन्धमें हम लोग निम्नलिखित बातें जानते हैं।

हिरोडोटस (Herodotus) कहते हैं, कि १४१६-१३५७ खृ० पू०में सिसोसत्रिस (Sesostris)के शासनकालको मिस्र देशमें इस विद्याकी प्रथम उत्पत्ति हुई। मिस्रकी प्रजाके ऊपर कर लगानेके लिये सभीके अधिकृत भूपरिमाणका निश्चय करना आवश्यक जान पड़ा। उन लोगोंकी जमीन नापनेके लिये ज्यामितिका प्रथम सूत्रपात हुआ; किन्तु इजिप्त या काल्डीयवासियोंका इस सम्बन्धमें कोई लिखित वृत्तान्त नहीं है।

कोई कोई कहते हैं, नील नदीकी बाढ़से प्रति वर्ष इजिप्तवासियोंकी जमीनका सीमा-निदर्शन विलुप्त हो जाता था। उनकी अधिकृत जमीनकी सीमा अन्ततः जिससे उन्हें सदा याद रहे, उसके लिये भूमिकी सीमा-निर्णायक किसी विद्याके आविष्कार करनेमें वे बाध्य हुए थे। यही विद्या क्रमशः परिशोधित और परिस्फुट हो कर वर्त्तमान ज्यामितिमें परिणत हुई है।

दूसरे उपाख्यानसे हम लोगोंको पता लगता है कि भूमि निर्द्धारण करनेके लिये देवताओंने मनुष्योंको इस विद्याकी शिक्षा दी है।

प्रोक्लस (Proclus) इउक्लिडकी टीकामें लिखा है, कि प्रसिद्ध ज्यामितिविद् थेल्स (Thales)-ने मिस्रसे सीख कर ग्रीसमें इस विद्याका प्रचार किया। शीघ्रही ग्रीसमें इस विद्याका यथेष्ट आदर होने लगा। ग्रीकगण एकान्त आग्रहके साथ इसके अनुशीलनमें प्रवृत्त हुए। थेल्सके अनेक शिष्य हो गये थे। पिथागोरस (Pythagoras)ने सबसे अधिक उन्नति साधन की है। ये ही सबसे पहले ज्यामितिको युक्तिमूलक वैज्ञानिक सोपानमें लाये। पिथागोरसने ज्यामितिकी बहुतसी प्रतिज्ञा आविष्कार की हैं। इउक्लिडके प्रथम अध्यायकी ४७वीं प्रतिज्ञा इनके अनुशीलनका फल है। पिथागोरसके बाद बहुतसे पण्डितोंने इस कार्यमें हस्तक्षेप किया था, उनमेंसे क्लाजोमेनिके आनक्सगोरस (Anaxagoras of Clazomenea) ब्रिसो (Briso), आण्टिफो (Antipho), चियसके हिपोक्रेटिस (Hippocrates of Chios), जेनोडोरस (Zenodorus), डिमोक्रिटस (Democritus), साइरिनके थियोडोरस (Theodorus of Cyrene) तथा इनोपिडिस (Enopidis) प्रधान हैं। प्लेटो (Plato) कहते थे, कि ज्यामिति सब विज्ञानका प्रधान और उच्चतर विज्ञानमें प्रवेशका सोपानस्वरूप है। आथेन्स (Athens) नगरमें उनके विद्यालयके प्रवेश-द्वार पर निम्नलिखित उक्तीर्ण शिलालेख देदीप्यमान था—"ज्यामिति-अनभिज्ञ कोई व्यक्ति इसके अभ्यन्तर प्रवेश न करे" ये ज्यामितिकी विश्लेषण प्रणाली, ज्यामितिक अवस्थिति और सूचीच्छेदके आविष्कर्त्ता हैं। उस समय इसी सूचीच्छेदक-

को उन्नतर ज्यामिति मानते थे। प्लेटोके अनेक शिष्योंने ज्यामितिकी बहुत उन्नति की है—बहुतोंने ज्यामितिक पुस्तक लिखी हैं, किन्तु वे अभी नहीं मिलती हैं। इनके शिष्योंमेंसे दो बहुत प्रधान हैं—इउडोक्सस (Eudoxus) और अरिष्टटल (ristotle)। इउडोक्सस (Eudoxus)ने इउक्लिडके पञ्चम अध्यायमें वर्णित अनुपात-नियमके आविष्कारक अरिष्टटल और उनके दो शिष्य थियोफ्राष्टस (Theophrastus) एवं इउडेमसके (Eudemus) ज्यामिति सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है। इउडेमसके ग्रन्थसे ही प्रोक्लासने उनके अनेक तथ्य संग्रह किये हैं। अटोलिकस (Autolycus)ने गतिशील चक्र वा वृत्तके सम्बन्धमें एक पुस्तकको रचना की है। कहते हैं कि इउक्लिडके शिक्षक प्रसिद्ध अरिष्टियस (Aristæus)-ने सूचोच्छेदका विषय और ज्यामितिक घनक्षेत्रका अवस्थिति विषय पांच अध्यायोंमें लिखा था। इस पुस्तकका एक अंश भी अभी नहीं मिलता है।

इउक्लिडने ज्यामितिक जगत्‌में एक युगान्तर उपस्थित किया है। इउक्लिडके नाम और ज्यामितिमें परस्पर सम्बन्ध है—एकके कहनेसे दूसरा आपसे आप मनमें आ जाता है। फलतः इउक्लिड ही यूरोपीय ज्यामितिके स्थापन कर्त्ता हैं। उनके पूर्ववर्त्ती ग्रन्थकारगण अपनी पुस्तकमें अनियमित रूपसे जो समस्त तत्त्व आविष्कार कर गये हैं, इउक्लिडने उनका सार संग्रह कर सुशृङ्खलभावसे ज्यामितिका पत्तन किया है। इउक्लिडने जिस तरह सर्वाङ्गीन रूपमें ज्यामिति शास्त्रका प्रवर्त्तन किया है, आज तक किसीने उस तरहका नैपुण्य और गवेषणाका प्रदर्शन नहीं किया है। उनके पहले ग्रीस और इजिप्तमें जो सब ज्यामितिक प्रतिज्ञा आविष्कृत हुई थीं, इउक्लिडने उन्हें संग्रह कर आश्चर्य नैपुण्य और सुशृङ्खलाके साथ भिन्न भिन्न अध्यायमें विभक्त किया है।

इउक्लिडका जन्म कहां हुआ था, यह निश्चय नहीं है। ये अलेकजेन्ड्रियामें (lexandria) एक विद्यालय स्थापन कर बहुतसे लोगोंको गणितकी शिक्षा देते थे। इस समय अलेकजेन्ड्रियामें टलेमी सोटर (Ptolemy Soter, first) राज्य करते थे। इउक्लिडके अधिकांश शिष्य ग्रीसवासी हैं। ये २८४ ई०के पहले विद्यमान थे। कहा जाता है, कि जो गणित पढ़ते थे उन्हें इउक्लिड अत्यन्त स्नेह करते। इन्होंने कई एक पुस्तक लिखी हैं।

(१) ज्यामिति-सम्बन्धीय युक्ति सिखानेके लिये भ्रान्ततर्कके सम्बन्धका एक ग्रन्थ। यह पुस्तक अभी अप्राप्य है। (२) सूचोच्छेदके चार अध्याय। अपलोनियसने (Apollonius) इस पुस्तकको यथेष्ट उन्नति साधन कर और भी चार अध्याय संयोजित किये हैं। किन्तु इउक्लिडने इस पुस्तकको रचना की है वा नहीं इस सम्बन्धमें प्रोक्लसने कुछ भी उल्लेख नहीं किया है।

(३) विभाग सम्बन्धीय पुस्तक। इस पुस्तकमें भिन्न भिन्न प्रकारके समतलका विषय लिखा है।

(४) छेदितघनक्षेत्र (Porisms)। यह तीन अध्यायमें विभक्त है।

(५) Locorum and superficium.

(६) दृष्टिविज्ञान और प्रतिबिम्बदर्शनविद्या।

(७) ज्योतिर्विद्याविषयक दृष्टि। इसमें मण्डल-सम्बन्धीय ज्यामितिक-मत आलोचित हुआ है।

(८) क्रमविभाग एवं लयप्रवेश, दूसरी पुस्तकमें लिखे हुए मतका पहली पुस्तकमें ज्यामितिके नियमानुसार प्रतिवाद किया गया है। इसीसे कोई कोई कहते हैं, कि पहला पुस्तक इउक्लिडकी लिखी नहीं है।

(९) स्वीकृतविषयावली। ग्रीकके जितने ज्यामितिक विश्लेषणके ग्रन्थ हैं, उनमें यही प्रधान है। प्रोक्लसके शिष्य मेरिनस (Marinus)ने इस पुस्तकको भूमिकामें स्वीकृत और अस्वीकृत विषयका पार्थक्य निर्देश किया है।

(१०) उपक्रमणिका (ज्यामितिक)। यह ज्यामितिक उपक्रमणिका सर्वाङ्गसुन्दर नहीं है। इसमें कहीं कहीं कुछ दोष भी झलकता है। इस तरहके कई एक स्वयंसिद्ध हैं। उन्हें प्रकृतपक्षमें स्वयंसिद्ध नहीं कह सकते।

कई जगह जो प्रमाणसापेक्ष है तथा प्रमाण भी किया जा सकता है, वह स्वीकार कर लिया गया है;—जिस तरह संज्ञा निर्देशकालमें लिखा है कि वृत्तका व्यास उक्त क्षेत्रको समान दो भागोंमें विभक्त करता है।[।] यह स्वयंसिद्ध द्वारा प्रमाण किया जा सकता है। कहीं कहीं

बाहुल्य दोष भी देखा जाता है। प्रथम अध्यायकी छठी प्रतिज्ञा उस स्थान पर नहीं लिखने पर भी काम चल सकता था। यही प्रतिज्ञा फिर परोक्षभावमें १८ प्रतिज्ञा रूपमें प्रमाण की गई है। इउक्लिडने कोणकी जैसी संज्ञा और जिस तरह उसका व्यवहार किया है, उसमें तीसरे अध्यायकी २१ प्रतिज्ञा असम्पूर्ण रह गई हैं। किन्तु उनके निर्देशानुसार चलनेसे २१वीं प्रतिज्ञा २२वींकी सहायताके बिना प्रमाण नहीं की जा सकती। जो कुछ हो, इस पुस्तकमें शुद्धताका उच्च आदर्श दिखलाया गया है। यथार्थ एवं प्रयोजन-कल्पना सम्बन्धमें निश्चित एवं अल्प वर्णता, शृङ्खलाका स्वाभाविक नियम, भ्रान्तसिद्धान्तका पूर्ण अभाव तथा प्रथम शिक्षार्थियोंके उपयोगी युक्तिबद्ध प्रमाणादिके लिये यह पुस्तक सभीके निकट अत्यन्त आदरणीय हो गई है।

इउक्लिडने इस पुस्तकके १३ अध्याय लिपिबद्ध किये थे ; शेष दो अध्याय अलेकजेन्ड्रियाके हिपसिक्लिस (Hypsicles of Alexandria) ने संयोजित किये हैं। कोई कोई हिपसिक्लिसको २री शताब्दीमें और कोई ६ठी शताब्दीमें विद्यमान बतलाते हैं।

प्रथम अध्यायमें समतलक्षेत्रसम्बन्धीय ज्यामितिकी आवश्यक संज्ञा और स्वीकार्य विषय दिये गये हैं। अन्यान्य अध्यायमें भी बहुतसी संज्ञा हैं। जिस सरलरेखा और त्रिभुजके साथ वृत्त अथवा अनुपातका कोई संस्रव नहीं है, उसका विषय इस अध्यायमें लिखा है। पिथागोरसकी विख्यात प्रतिज्ञा इस अध्यायमें सन्निविष्ट है। इसके सिवा असीम सरलरेखा और निर्दिष्ट केन्द्रविशिष्ट और निर्दिष्ट स्थानव्यापक वृत्तके विषय लिखे हैं। इस अध्यायमें देखा जाता है कि, कम्पास और रूल (ruler) ज्यामितिका आनुषङ्गिक पदार्थ है।

इउक्लिडने दूसरे अध्यायमें विभक्त सरलरेखाके ऊपर अङ्कित समचतुर्भुज और आयतक्षेत्रका विषय वर्णन किया है। पाटीगणित और ज्यामितिका प्रयोग इस अध्यायमें दिखलाया गया है। असमकोण त्रिभुजके पक्षमें पिथागोरसकी प्रतिज्ञा किस तरह परिवर्त्तन होती है, वह भी इस अध्यायमें देखा जाता है। इस अध्यायसे बीजगणितके अनेक नियम सीखे जा सकते हैं।

३रे अध्यायमें पहले अध्यायके द्वारा अनुमेय त्रिभुजकी गुणावली वर्णन की गई है।

४र्थ अध्यायमें केवल वृत्तकी सहायतासे अङ्कित समस्त नियमित (समबाहु और समकोणविशिष्ट) पञ्चभुज, षड्भुज, पञ्चदश भुजविशिष्ट क्षेत्रका विषय वर्णित है।

५वें अध्यायमें आयतनका अनुपात लिखा है।

६ठे अध्यायमें इउक्लिडने ज्यामितिक क्षेत्रमें अनुपातका प्रयोग और सदृशक्षेत्रका विषय वर्णन किया है।

७वें अध्यायमें पाटीगणितकी संख्या आलोचित है तथा दो राशिका महत्तम समापवर्त्तक और लघुतम समापवर्त्य निकालनेकी प्रणाली और मूलराशिका तत्त्व प्रमाणित हुआ है।

८वें अध्यायमें ग्रन्थकारने दो अखण्ड राशियोंमें २ पूर्ण मध्य अनुपात स्थापनकी सम्भावना दिखला कर क्रमिक और मध्य अनुपातकी आलोचना की है।

९वें अध्यायमें वर्ग और घनसंख्या (plane and solid numbers) और दो या तीन पूरिताङ्कविशिष्ट संख्याका विषय वर्णित है। इस अध्यायमें क्रमिक, अनुपात और मूल राशिका उल्लेख देखा जाता है। इसमें मूल राशिकी असंख्यता और पूर्णसंख्या निकालनेकी प्रणाली दिखलाई गई है।

दशवें अध्यायमें ११७ प्रतिज्ञा देखी जाती हैं। इस अध्यायमें कई एक असम गुणनीयककी आलोचना की गई है। इसमें इउक्लिडने दिखलाया है, कि बीजगणित छोड़ कर ज्यामिति द्वारा भी अनेक कार्य हो सकते हैं। किन्तु बीजगणितमें व्युत्पन्न व्यक्तिके सिवा दूसरा कोई भी पढ़नेका अधिकारी नहीं है। यह अध्याय गणितके इतिहास रूपमें पढ़ने योग्य है।

११वें अध्यायमें उन्होंने घन (Solid) ज्यामिति अर्थात् भिन्न भिन्न सरलरैखिक और घनक्षेत्रविशिष्ट (Plane and solid figures) ज्यामितिकी संज्ञा निर्देश की है। इस अध्यायमें सरलरैखिक क्षेत्रके छेद और कुछ सामन्तरालिक क्षेत्रवेष्टित घनक्षेत्रका विषय आलोचित हुआ है।

१२वें अध्यायके छेदित घनक्षेत्र, शेपणी, गलाकृति और मोचाकृति क्षेत्रका विषय जाना जा सकता है।

इस अध्यायमें यह भी दिखलाया गया है, कि व्यासके ऊपर अङ्कित चतुर्भुजोंका जो अनुपात है, वृत्तोंका भी परस्पर वही अनुपात है तथा वर्त्तुल (Spheres) व्यासके ऊपर अङ्कित घनक्षेत्रका समानुपातविशिष्ट है। Method of exhaustion इसमें दिखलाया गया है।

तेरहवें अध्यायमें दशवें अध्यायके बहुतसे सिद्धान्त नियमित क्षेत्रमें प्रयुक्त हैं तथा ५ नियमित क्षेत्रका परस्पर अङ्कनका उपाय प्रदर्शित हुआ है।

१४वें और १५वें अध्यायमें ५ नियमित घनक्षेत्रके परस्परका अनुपात और एकमें दूसरेका अङ्कन आलोचित हुई।

इउक्लिडके बाद २३० ई०के पहले अपलोनियस परगियस (Apollonius Pergaeus)-ने ज्यामितिके विषयमें अधिक उन्नति-साधन किया था। इस समय आर्किमिडिस (Archimedes)ने पारावोला क्षेत्र और पूर्वोक्त अपलोनियस अतिक्षेत्र और दीर्घवृत्त आविष्कार किया।

इउक्लिडके बाद ग्रीसके अनेक पण्डितोंने उत्साहके साथ ज्यामिति अनुशीलन करनेका आरम्भ किया। जब ग्रीस देश रोमके अधीन हुआ, तब भी इस देशमें अनेक प्रसिद्ध ज्यामितिविद् विद्यमान थे। उनमेंसे टलेमी (७४ ई०में), पपास (३८५ ई०में), प्रोक्लस (५वीं शताब्दीमें) तथा इउटोसस (Eutocious) ६ठी शताब्दीमें प्रधान हैं।

इस समय रोमकगण पाश्चात्य जगत्‌में अत्यन्त प्रतापशाली गिने जाते थे, किन्तु गणितमें वे नितान्त अज्ञ थे। जो गणकता और दैवज्ञगीरी करते, उन्हींको रोमगण गणितविद् कहते थे। वस्तुतः रोमकोंके प्राधान्यकालमें ज्यामितिविद्याका किसी तरहका उत्कर्ष साधित न हुआ। केवल विथियस (Bœthius)-के सिवा और किसी रोमकने ज्यामितिकी आलोचना नहीं की। फिर विथियसने जो कुछ किया भी है, वह ग्रीकवालोंका अनुवादमात्र है।

रोम-साम्राज्य ध्वंसके बाद जब असभ्यगण प्रबल हो उठे तथा सातवीं शताब्दीमें जब मुसलमान लोग अत्यन्त सामर्थ्यवान् हो कर यूरोपके अनेक राज्य ध्वंस करने लगे थे तब ग्रीकवासियोंकी गणितविद्या भी शीघ्र ही विलुप्त होने लगी।

इस समय जो गणित और विज्ञानशास्त्रकी आलोचना करते, उन्हें सब कोई ऐन्द्रजालिक समझ कर घृणा और अनादर करते थे। सौभाग्यवश बहुत जल्द अरबदेशमें गणित-शास्त्रकी आलोचनाके लिये एक समिति सङ्गठित हुई। अरबियोंने पहले हिन्दुओंका विज्ञान सीखा था। इसी शिक्षाके लिये अभी उन्होंने ग्रीकवासियोंकी ज्योतिर्विद्या और गणितविद्याकी चर्चा आरम्भ की। ८वींसे १४वीं शताब्दी तक उनमें अनेक ज्योतिर्विद् और ज्यामितिविद् पण्डितोंने जन्मग्रहण किया। चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें यूरोपमें पुनः इस विद्याकी आलोचना आरम्भ हुई—स्पानियार्ड और इटालीयन ही सबसे पहले अरबवासियोंसे यह सीख कर उसके अनुशीलनमें प्रवृत्त हुए। पन्द्रहवीं शताब्दीके बीच मुद्राङ्कण प्रथाके आविष्कृत होनेके बाद अनेक स्थानोंमें ग्रीकोंकी ज्यामिति सिखाई जाने लगी। सोलहवीं शताब्दीमें सभी जगह इउक्लिडका सम्मान इतना बढ़ने लगा, कि किसीने भी अब इउक्लिडकी उपक्रमणिकाका उत्कर्षसाधन करनेकी चेष्टा न की। यों तो बहुतोंने उपक्रमणिकाकी टीका और अनुवाद किया है, किन्तु ज्यामितिकी प्रसारता वृद्धि करने वा उसका कोई कोई अंश उन्नत करनेमें कोई भी यत्नशील न हुए। बहुत समयके बाद केपलर (Kepler)ने सबसे पहले असीमत्वका नियम ज्यामितिमें प्रवर्तित किया है। बाद डेकार्टने सांकेतिक चिह्न व्यवहारके विषयमें भायेटा (Vieta)का आविष्कार देख कर बैजिकज्यामितिका आविष्कार किया। इसके बाद सूक्ष्मान ज्यामिति विचलित हुई है। यद्यपि अरबोंने भी ज्यामितिका यथेष्ट अनुशीलन किया था, तो भी वे इस विषयमें कोई विशेष उन्नति कर न सके। उन्होंने अनेक ग्रीक ग्रन्थकारोंकी पुस्तक तथा इउक्लिडकी पुस्तकका भी अनुवाद किया था। अरबी भाषामें अनूदित कई एक पुस्तक हैं, उनमेंसे दमकासके अथमानका (Othoman) अनुवादही सबसे उत्कृष्ट है।

११५० ई०में बाथ नगरके अदेलर्ड (Adelard) नामक

किसी ईसाई संन्यासीने इउक्लिडकी उपक्रमणिकाका पहले लैटिन भाषामें अनुवाद किया था। ग्रीकभाषामें इस उपक्रमणिकाकी अनेक हस्तलिपि हैं।

सिमसन प्लेफियर आदि पण्डितोंने प्रथम ६ अध्याय और ग्यारह तथा बारह अध्यायका अनुवाद किया है।

प्राचीन कालमें इउक्लिडके जितने अनुवाद हुए थे, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

१। समस्त इउक्लिडका संस्करण।

यह १५०५ ई०में भिनिस नगरमें बारथलमिउ ज्याम-वार्टिसे लैटिन भाषामें अनुवादित हुआ था। १७०३ ई०में डेभिड ग्रिगोरिने ओक्सफोर्ड यन्त्रमें जो पुस्तकें मुद्रित कीं वही सबसे उत्कृष्ट हैं।

२। ग्रीक संस्करण। (क) प्रोक्लसकी टीका सहित १५३३ ई०में, (ख) पारिस संस्करण (ग) बार्लिन संस्करण।

३। लैटिन संस्करण। (१) कम्पनासका संस्करण १४८२ ई०में। (२) द्वितीय संस्करण १४८१। (३) अरबी भाषासे अनुवाद, कम्पनास और ज्यामवार्टिका अनुवाद और टीकासहित। (४) लुकापकका संस्करण (भिनिस)। ४ यूरोपीय प्रचलित भाषाका अनुवाद।

(क) अंगरेजी संस्करण। १५७० ई० लण्डन नगर; पुनः १६६१ ई०। (ख) फ्रान्सीसी-पारिस १५६५, पुनः संस्करण १६२३। (ग) जर्मन १५६२।१५५५ ई०में ७से ८ अध्याय अनूदित हुआ था।

(घ) इतालीय १५४३। (ङ) ओलन्दाज १६०६ किंवा १६०८। (च) सुइस १७५३। (छ) स्पेनीय १६७३ ई०।

साधारणतः इउक्लिडका प्रथम छह अध्याय और ग्यारह अध्याय पढ़ाये जाते हैं। बहुत दिनोंसे यह नियम चला आ रहा है। शेष अंशका अध्ययन करना हो, तो विलियमनका अंग्रेजी अनुवाद और हर्सिलका लैटिन अनुवाद पढ़ना उचित है। बहुतोंने इउक्लिडका संस्करण निकाला है। पर यहां सभीका नाम लिखना अनावश्यक है।

आर्किमिडिस, अपलोनियस, थियन प्रभृति पण्डितोंने ज्यामितिका उत्कर्षसाधन किया है। आलेकजेन्ड्रिया नगरमें ही इस विद्याकी उत्पत्ति हुई है और इसी स्थानमें इसकी उन्नति भी है। ६४० ई०में जब सारासनों ने (Saracens) उक्त नगर अधिकार किया, उस समय तक भी वह नगर ज्यामितिके गौरवसे गौरवान्वित था। गोलमिति अर्थात् ज्यामितिका जो अंश ज्योतिर्विद्याके साथ संसृष्ट है, उसमें हिपरकस (Hipparchus), मेनेलस (Menelaus), थियोडासियस (Theodosius) तथा टलेमि (Ptolemy) पण्डितोंसे उत्कर्ष लाभ किया है।

नीचे ग्रीसके ज्यामितिकारोंके नाम और उनके जीवनके मध्यभागके समय दिये जाते हैं।

थेलस—६०० ई०से पहले अमिरिस्तास, पिथागोरस ५५०, अनाक्सोगोरस, इनोपाइडिस, हिपोक्रेतिस ४५०, थियोडोरस, अर्किटस लिवडेमस थिटेटस, अरिसटियस ३५० पार्सियस प्लेटो ३१०, मेनेकमस, डिनोसत्रस, इउडकसस, नियोक्लाइडिस, लियन, अमिक्लस थियूडियस, सिजिपिनस, हारमाटिमस, फिलिपस, इउक्लिड २८५, आर्किमिडस २४०, अपलोनियस २४०, इराटोसथनिस २४०, निकोमाउस १५०, हिपारकस १५०, हिपासिक्लिस १३०, गेमिनस १००, थियोडोसियस १००, मेनियस ई०, टलेमि १२५, पपास २८०, सिरिसन ३८०, डाइयोक्लिस, प्रोक्लस, ४४०, मेरिनस, हेसिडोरस, इउटोसियस ५४०।

सरल रेखा, वृत्त और सूचीच्छेदके पहले और दूसरे पर्य्यायमें बीजगणितका नियम प्रयुक्त हो सकता है तथा इस नियमसे सरलरेखा आदि विषयका तत्त्व बहुत आसानीसे आविष्कार किया जा सकता है। थोड़े समय तक उक्त नियमसे ही कार्यकलाप निर्वाहित होता था, किन्तु सब समय ज्यामितिकी कठिन युक्तिके प्रति वैसा लक्ष्य नहीं किया जाता था। पीछे मञ्ज (Monge,)ने चित्र ज्यामितिका आविष्कार किया। परिप्रेक्षित विद्या और ज्यामितिके किसी किसी विषयमें बीजगणित निरपेक्ष भावसे रेखा, कोण और क्षेत्रफल निर्णय करनेकी आवश्यकता हुई थी। चित्रज्यामितिने इस अभावको बहुत कुछ दूर कर दिया है। चित्रज्यामितिकी सहायतासे ऊपरके भागका चित्र और उच्चताके परिमाण द्वारा अट्टालिकाकी आकृति तथा परिसर स्थिर किया जा सकता है। समकोणविशिष्ट दो समतल क्षेत्रके ऊपर किसी विन्दुका परिलेख रहनेसे, उस विन्दुकी अवस्थिति भी जानी

जा सकती है। सुतरां दो समतल क्षेत्रके ऊपर किसी घनको पतित लम्ब मालूम रहनेसे किसी एक समतल क्षेत्रके ऊपर उस घनके किसी विभागके सदृश क्षेत्र अङ्कित किया जा सकता है। यदि वह विभाग वक्र हो तब क्रमागत बहुतसी विन्दुओंसे क्षेत्र अङ्कित किया जाता है। मसूको बनाई हुई चित्रज्यामितिमें यह विषय साफ तौरसे दिखलाया गया है।

चित्रज्यामितिके आविष्कृत होनेके बाद ज्यामितिविद् पण्डितगण परिप्रेक्षके उन्नति साधनके विषयमें यत्नशील हुए। वे चित्रविद्या और सूचीच्छेदके प्राथमिक नियमके विषयमें मनोयोगी हुए। मसूके समयसे ही चित्रज्यामिति क्रमशः उन्नतिलाभ कर रही है। विशुद्ध (Pure) ज्यामितिकी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

पूर्वसमयमें लोगोंकी धारणा थी, कि पाटीगणित और ज्यामिति ही गणितशास्त्रकी प्रधान दो शाखा हैं। जब उन्होंने स्थान और संख्याके विषयमें ज्ञानलाभ किया था, तब वे पाटीगणित और ज्यामिति उद्भावन करनेमें समर्थ हुए थे। पहले ही कहा जा चुका है कि ज्यामिति कई एक भागोंमें विभक्त है। विशुद्ध ज्यामितिमें केवल सरलरेखा और वृत्तका विषय लिखा गया है। इसमें समतलके ऊपर अङ्कित घनक्षेत्र, वृत्त, सूची और नलाकृति क्षेत्र तथा उनके वैखिकच्छेदका विषय भी आलोचित हुआ है।

इउक्लिडके जीवितकालसे आज तक बहुतसे पण्डित ज्यामिति प्रणयन कर रहे हैं, और बहुत टीका टिप्पणी, अनुशीलन आदि द्वारा इउक्लिडकी ज्यामितिको नूतन आकारमें बना रहे हैं। विलसन साहबने इउक्लिडको ही आधार बना कर एक नूतन आकारमें ज्यामिति प्रणयन की है। किन्तु इउक्लिडकी उपक्रमणिका जैसी प्राञ्जल और सुखबोध्य है, वैसी एक भी पुस्तक नजर नहीं आती।

इउक्लिडके बाद ही लेजेण्डर (Legendre's)-की ज्यामितिका नाम उल्लेखयोग्य है। लेजेण्डरकी ज्यामिति पढ़नेसे इउक्लिडकी उपक्रमणिकाकी अपेक्षा ऊँचे विषयमें ज्ञानलाभ होता है।

ज्यामिति ग्रन्थमें भिन्न भिन्न प्रकारके समतल, रेखा और घनक्षेत्रकी कल्पना की जा सकती है। किन्तु ज्यामितिकी उपक्रमणिकामें सरलरेखा, वृत्त, रैखिक क्षेत्र, घनक्षेत्र, नलाकृति, मोचाकृति और वर्तुलाकृति क्षेत्रका विषय वर्णित है। इसी कारण ज्यामिति दो भागोंमें विभक्त है, प्रथम भागमें समतलके ऊपर अङ्कित क्षेत्र, दूसरे भागमें घनक्षेत्र प्रभृति और उसकी भिन्न भिन्न शाखाका विषय लिखा है।

पृथिवीके किस देशमें किस जातिके लोगोंसे ज्यामिति शास्त्र आविष्कृत हुआ है, इसका निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है। जेसुइटगण जब धर्मप्रचार करनेके लिये चीनदेशमें पहले पहल आये हुए थे, तब उन्होंने चीनजातियोंका स्थान सम्बन्धीय ज्ञानका सम्यक् विकाश देखा था। समकोण त्रिभुजका विशेष धर्म एवं परिमितिका कुछ अंश उन्हें अवगत था। गबिल (Gaubil) कहते हैं कि ईसाके २०६ वर्ष पहले जितनी लिखी हुई पुस्तकें पाई जाती हैं, उनमेंसे केवल एक पुस्तकको ज्यामितिक पुस्तक कह सकते हैं।

इस विषयमें हिन्दुओंका उत्कर्ष देखा जाता है। जिस समय यजुर्वेदके क्रियाकाण्डका पूरा प्रादुर्भाव था, उस समय आर्यऋषियोंको परिमाणबद्ध यज्ञवेदीके निर्माणके लिये ज्यामितिका प्रयोजन पड़ा था। उस प्राचीन आर्य-ज्यामितिका मूल सूत्र हम लोग बौधायन प्रभृति ऋषियोंके बनाये हुए शुल्वसूत्र ग्रन्थमें पाते हैं। क्षेत्रव्यवहार और शुल्वसूत्र देखो।

विख्यात ज्योतिर्विद् शङ्करदीक्षितने शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मणका एक अंश उद्धृत कर प्रमाण किया है कि शतपथका वह अंश ईसाके प्रायः २००० वर्ष पहले रचा गया है। शतपथ ब्राह्मण, कात्यायनश्रौतसूत्र प्रभृति यजुर्वेदीय ग्रन्थोंमें वेदी निर्माणकी आवश्यकता लिपिबद्ध है। इस तरह ज्यामिति वा शुल्वसूत्रका मूल विषय जो प्राचीनकालमें ही आर्यऋषियोंके मनमें उदय हुआ था, उसमें कुछ भी नहीं है। परन्तु ग्रीसदेशमें पहले इस शास्त्रकी जैसी उन्नति हुई थी, भारतवर्षमें उस तरहकी आज तक नहीं हुई है।

ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्यके ग्रन्थोंमें परिमितिकी अच्छी आलोचना की गई है। तीन बाहुका परिमाण

मालूम रहनेसे त्रिभुजका क्षेत्रफल निकालनेका नियम पहले ग्रन्थमें पाया जाता है। परिधि और व्यासके सूक्ष्म अनुपातसे (३·१४१६:१) भास्कराचार्य जानकार थे। ब्रह्मगुप्तने ३·१६:१ अनुपातकी कल्पना की थी। यरोपमें प्रथमोक्त सूक्ष्म अनुपात बारहवीं शताब्दीके परवर्त्ति कालमें प्रचलित हुआ था। यह अनुपात मुसलमानोंने हिन्दुओंसे सीखा था। बाद यूरोपीयगण इस विषयसे अवगत हुए। फलतः भारतीय ग्रन्थोंमें बहुतसी मौलिकता देखी जाती है। यद्यपि भारतमें ज्यामितिके प्रथम अनुशीलनका निश्चित समय पता नहीं चलता है, तोभी बीजगणित और पाटीगणितका दशमिक अंश जैसा भारतवर्षमें आविष्कृत हुआ है, वैसाही भारतवासियोंने ज्यामिति भी आविष्कार की है। वैदिक शुल्वसूत्र पढ़नेसे एक तरहका निश्चय किया जाता है, कि भारतमें ही पाश्चात्य ज्यामितिका एक प्रकारका सूत्रपात हुआ था।

कोई कोई कहते हैं, कि सबसे पहले बाबिलिन देश तथा इजिप्तमें ज्यामितिकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु इस कल्पनाका कोई विश्वासयोग्य प्रमाण नहीं मिलता है। यहूदियोंके ग्रन्थमें भी ज्यामितिका कोई उल्लेख नहीं है। ग्रीकगणने इजिप्त, भारतवर्ष अथवा दूसरे देशसे ज्यामितिका ज्ञान प्राप्त किया था, यह निश्चितरूपसे कहा नहीं जाता। भास्कराचार्य प्रणीत 'रेखागणित' हिन्दुओंका एक ज्यामिति ग्रन्थ है। ज्यामितिका (quadrature of the circle) विषय चीनगण ईसवी कालके बहुत पहलेसे जानते थे। यूरोपवासियोंमेंसे आर्किडिमिस सबसे पहले इस विषयकी आलोचनामें प्रवृत्त हुए थे।

ज्यायस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः वृद्धो वा इति प्रशस्य वृद्ध-वा ईयसुन् ज्यादेशश्च। ज्यायादीयसः। पा ६।४।१२०। १ वृद्धतम, बुढ़ापा। इसके पर्याय—वर्षीयान्, दशमी, प्रशस्य, अतिवृद्ध और दशमास्थ है। २ जीर्ण, पुराना। ३ प्रशस्त, बढ़िया, उमदा।

ज्यायिष्ठ (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, बड़ा।

ज्यावाज (सं० पु०) बलवान् धनु, मजबूत धनुष।

ज्येष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन वृद्धः प्रशस्यो वा-वृद्ध-वा प्रशस्य इष्ठन् ततो ज्यादेशः। १ अतिवृद्ध, बड़ा बूढ़ा। २ प्रशस्त, उत्तम, बढ़िया। ३ अग्रज भ्राता, बड़ा जेठा। (पु०) ४ ज्येष्ठ मास, जेठका महीना। ५ परमेश्वर। "ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।" (विष्णुसं०) ६ प्राण। ७ ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त वर्ष, वह वर्ष जिसमें वृहस्पतिका उदय ज्येष्ठा नक्षत्रमें हो। यह वर्ष कंगनी और सावांके अतिरिक्त दूसरे अन्नोंके लिये हानिकारक माना गया है। इसमें राजा पुण्यात्मा होता है। (बृहत्सं०) ८ सामगानका एक भेद।

ज्येष्ठतम (सं० त्रि०) अतिशयेन ज्येष्ठः ज्येष्ठतमः। अत्यन्त ज्येष्ठ इन्द्र। "सतां ज्येष्ठतमा" (ऋक् २।१६।१) 'ज्येष्ठतमाय अतिशयेन ज्येष्ठाय इन्द्राय' (सायण)

ज्येष्ठता (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ भावे तल्। १ ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठता। २ ज्येष्ठ होनेका भाव, बड़ाई। गर्भमें यमज सन्तान होने पर जो पहले प्रसूत होगा, वही बड़ा कहलायगा। स्त्रियोंमें ज्येष्ठता नहीं है। "ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः" (मनु० ९।१२४)

ज्येष्ठतात (सं० पु०) तातस्य ज्येष्ठः, ६-तत्, राजदन्तादित्वात् पूर्व्वनिपातः। पिताके ज्येष्ठ भ्राता, बापके बड़े भाई।

ज्येष्ठताति (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, बड़ा।

ज्येष्ठतोयाम्ल (सं० क्ली०) काञ्जिक, काँजी।

ज्येष्ठत्व (सं० क्ली०) ज्येष्ठ भावे त्व। ज्येष्ठता, ज्येष्ठ होनेका भाव, बड़ाई।

ज्येष्ठपाल (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। (राजतरंगिणी ८।१४४९)

ज्येष्ठपुष्कर (सं० क्ली०) ज्येष्ठं प्रशस्यं पुष्करं, कर्मधा०। पुष्करतीर्थ।

"पुष्करं ज्येष्ठमागम्य विश्वामित्रं ददर्श ह।" (रामा० १।६२।२) पुष्कर देखो।

ज्येष्ठबला (सं० स्त्री०) ज्येष्ठाख्या बला, मध्यपदलोपि-कर्मधा०। सहदेवी लता।

ज्येष्ठराज—अत्यन्त श्रेष्ठ, सबसे उत्तम।

ज्येष्ठवर्ण (सं० पु०) वर्णानां ज्येष्ठः वर्णेषु ज्येष्ठो वा ६।७-तत्, राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। ब्राह्मण। सब वर्णोंमें ब्राह्मण ही एकमात्र श्रेष्ठ हैं।

भगवान् श्रीकृष्णजीने गीतामें कहा है, "वर्णानां ब्राह्मणश्चास्मि" वर्णोंमें मैं ही ब्राह्मण हूं।

ज्येष्ठवापी (सं० स्त्री०) ज्येष्ठा वापी, कर्मधा०। काशीस्थित ज्येष्ठवापीभेद, काशीकी ज्येष्ठवापीका एक भेद। ज्येष्ठस्थान देखो।

ज्येष्ठवृत्ति (सं० स्त्री०) ज्येष्ठस्य वृत्तिः व्यवहारः, ६-तत्। कनिष्ठ भाईयोंके प्रति उत्तम व्यवहार।

"यो ज्येष्ठो ज्येष्ठ वृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात् स संपूज्यस्तु बन्धुवत्॥" (मनु ९ ११०)

यदि ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठ भ्राताओंके ऊपर उत्तम व्यवहार करें तो वे माता और पिताके समान पूजनीय हैं तथा यदि वे ज्येष्ठ वृत्ति (उत्तम व्यवहार) न करें, तो मामा आदि बान्धवोंके जैसे पूजनीय हैं।

ज्येष्ठश्वश्रू (सं० स्त्री०) ज्येष्ठा मान्या श्वश्रूरिव संज्ञत्वात् पुंवद्भावः। पत्नीकी ज्येष्ठ भगिनी, स्त्रीकी बड़ी बहिन, बड़ी साली।

ज्येष्ठसामग (सं० पु०) आरण्यक सामका पढ़नेवाला।

ज्येष्ठसामा (सं० क्ली०) ज्येष्ठं साम, कर्मधा०। सामभेद, ज्येष्ठ सामवेदका पढ़नेवाला।

"वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरं।" (दानपारिजात)

ज्येष्ठस्थान (सं० क्ली०) ज्येष्ठं स्थानं, कर्मधा०। काशीस्थ तीर्थभेद। इसका विवरण काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—काशीधाममें ज्येष्ठ मासमें सोमवारको शुक्लाचतुर्दशी तिथियुक्त अनुराधा नक्षत्रमें महादेवने जैगीषव्यकी गुहामें प्रवेश किया था। इसलिए वह स्थान ज्येष्ठस्थानके नामसे प्रसिद्ध हो गया। उक्त पर्वके दिन सबको वहां जाना चाहिये। इस स्थानमें वह दिन सम्पूर्ण तीर्थोंसे ज्येष्ठ (प्रधान) होता है। इस स्थानमें ज्येष्ठेश्वरके नामसे शिव अपने आप ही प्रादुर्भूत हुए थे। इन ज्येष्ठेश्वर शिवको देखनेसे शतजन्मार्जित पापोंका नाश होता है। यदि मनुष्य ज्येष्ठवापीमें स्नान करके ज्येष्ठेश्वर शिवके दर्शन करें, तो उनको फिर जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता। इन ज्येष्ठेश्वर शिवके पास सर्वसिद्धिप्रदायिनी ज्येष्ठागौरी अपने आप आविर्भूत हुई थीं। ज्येष्ठमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें ज्येष्ठा गौरीके समीप महोत्सव करें और नाना प्रकार सम्पद्लाभके लिए समस्त रात्रि जागरण करें। अति दुर्भाग्यवती नार भी यदि ज्येष्ठवापीमें स्नान करके भक्तिभावसे इस स्थान पर ज्येष्ठा गौरीको प्रणाम करे, तो उसका सब तरहका दुर्भाग्य दूर हो जाता है। यदि कोई पहले पहल काशी जाय, तो उसको सबसे पहले ज्येष्ठेश्वरको पूजा करनी चाहिये। काशी देखो।

ज्येष्ठा (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ-टाप्। १ अश्विनी प्रभृति २७ नक्षत्रोंमेंसे अठारहवां नक्षत्र। इसकी आकृति वलयसदृश और यह शूकरदन्ताकृति तीन नक्षत्रोंसे घिरी है। इसके देवता चन्द्रमा और गुण मिश्र हैं। (दीपिका)

"सत्कीर्त्तिपुत्रैर्विविधैः समेतो वित्तान्वितो ऽत्यन्तलसत्प्रतापः।
श्रेष्ठप्रतिष्ठो विकलस्वभावो ज्येष्ठा भवेत् यस्य च जन्मकाले॥"

(कोष्ठीप्रदीप)

इस नक्षत्रमें मनुष्यका जन्म होनेसे वह यशस्वी, बहुपुत्रसम्पन्न, धनवान्, अतिप्रतापशाली, लब्धप्रतिष्ठ और विकलस्वभाव होता है। २ गृहगोधिका, छिपकली। ३ मध्यमाङ्गुली, मध्यमा उँगलि। ४ गङ्गा। ५ धीरादि नायिकाभेद, वह स्त्री जो औरोंकी अपेक्षा अपने पतिको अधिक प्यारी हो। ६ अलक्ष्मी। इसका उत्पत्ति-विवरण पद्मपुराणमें इस तरह लिखा है—समुद्रमथनके समय यह लक्ष्मीके पहले निकली थीं, इसी लिए इनका नाम ज्येष्ठा पड़ा है। जब देवताओंने क्षीरसागरका मथना आरम्भ किया तो ज्येष्ठा देवी रक्तमाला और रक्तवस्त्र पहनी हुई बाहर निकलीं, और देवताओंसे बोलीं कि हम कहां निवास करें और हमें कौनसा कार्य करना पड़ेगा तथा हमारे अवस्थानमें कौनसा मङ्गल साधित होगा यह हमें बतला कर अनुगृहीत करें। तब सब देवताओंने एक साथ कहा, 'हे शुभानने! जिसके घरमें सदा कलह होती हो, जिसका गृह कपाल, अस्थि, भस्म और केशादिसे चिह्नित हो, जो नित्य गन्दी या बुरी बातें बकता हो, जो सन्ध्या समय सोता हो और जो सदा अशुचि रहता हो, तुम उसीके घरमें जा कर वास करो एवं सदा उसे दुःख, क्लेश, रोग, शोक इत्यादि देती रहो। जो मूढ़ बिना पैर धोये मुख धो ले और जो घास, राख तथा बालूसे दतुवन करे तथा रात्रिमें तिलकुटा, तरबूज, सोहिंजन, गजरा, खुमी, पालतू सूअर, बेल

तरह कैला और तुम्बी खाता हो, तुम उसीके घरमें वास करो और उसे सदा दुःख पहुंचाती रहो। इस तरह तुम कलियुगकी वल्लभा हो कर सुखसे विचरण करो। इतना कह कर देवगण उन्हें विदा कर पुनः समुद्र मथने लगे। (पद्मपुराण उत्तरखंड)

लिङ्गपुराणमें लिखा है कि समुद्र मथनेके समय लक्ष्मीके पहले इनकी उत्पत्ति हुई, किन्तु जब देवासुरोंमेंसे किसीने इन्हें ग्रहण न किया तब दुःसह नामक किसी तेजस्वी ब्राह्मणने इनको अपना पत्नी बना लिया। ये भी अलक्ष्मी पर अनुरक्त थे।

दीपान्विता लक्ष्मीपूजाके दिन इनकी पूजा करनी पड़ती है। अलक्ष्मी देखो। ७ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।

ज्येष्ठामलक (सं० पु०) निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

ज्येष्ठाम्बु (सं० क्ली०) ज्येष्ठं सर्वरोगनाशित्वात् श्रेष्ठं अम्बु, कर्मधा०। चावलका धोया हुआ पानी इसकी प्रस्तुत-प्रणाली वैद्यक शास्त्रमें इस प्रकार लिखी है—एक पल चावलको चूर कर उसमें आठ गुना अधिक जल छोड़ दें, पीछे कुछ भावना दे कर उसे ग्रहण करना चाहिये, यह जल सब कार्यों में ग्रहणीय तथा विशेष उपकारी है।

ज्येष्ठामूलीय (सं० पु०) ज्येष्ठां मूलां वा नक्षत्रमर्हति पौर्णमास्यां इति छ। ज्यैष्ठ मास, जेठका महीना।

ज्येष्ठाश्रम (सं० पु०) ज्येष्ठ आश्रमो यस्य, बहुव्री०। गार्हस्थ्याश्रमी, द्वितीयाश्रमी, उत्तमाश्रम, गृहस्थ। गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है, इसीलिये इस आश्रमके अवलम्बी सभीसे उत्तम माने गये हैं।

ज्येष्ठाश्रमी (सं० पु०) आश्रमोऽस्त्यस्य आश्रम-इनि, ज्येष्ठः श्रेष्ठः आश्रमी, कर्मधा०। गृही, गृहस्थ।

"यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहं।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मात् ज्येष्ठाश्रमो गृही॥" (मनु ३।७८)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ और भिक्षु ये ही चार आश्रम गार्हस्थ्यमूलक है। जिस तरह वायुका अवलंबन कर सब जीव जन्तु प्राण धारण करते हैं, उसी तरह इस गार्हस्थ्याश्रमका अवलंबन करके अन्य सभी आश्रमोंका पालन किया जा सकता है।

ज्येष्ठी (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ गौरादित्वात् ङीष्। पल्लीगृह-गोधा, छिपकली। इसके संस्कृत पर्याय—मुशल, मुषली, कुड्यमत्स्या, गृहगोधिका, मुली, टक्टुकी, शकुनज्ञा और गृहालिका है। (शब्दरत्नावली) अङ्गविशेषमें इसका पतन-फल ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—ज्येष्ठी यदि मनुष्योंके दक्षिणाङ्ग पर गिरे, तो स्वजनों और धनका वियोग तथा वामभाग पर गिरनेसे लाभ होता है। वक्षस्थल, मस्तक, पृष्ठ और कण्ठदेश पर गिरनेसे राज्यलाभ तथा पद वा हृदय पर गिरनेसे सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति होती है। (ज्योतिष)

गमन करते समय यह यदि उर्द्धसे शब्द करे तो वित्तलाभ, पूर्वदिशासे करे तो कार्यसिद्धि, अग्निकोणसे भय, दक्षिणसे अग्निभय, नैऋतकोणसे श्रेष्ठवस्त्र और गन्धसलिल, उत्तरसे दिव्याङ्गना तथा ईशान कोणसे शब्द करे तो मरणका भय होता है। (तिथितत्त्व)

ज्यैष्ठ (सं० पु०) ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी ज्येष्ठ-अण् ङीप् च, सा अस्मिन् मासे इति पुनरण्। मासविशेष; वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें पूर्णिमाका चन्द्रमा उदय हो। इस मासमें यदि सूर्य वृषराशिमें रहे तो उसे सौरज्यैष्ठ कहते हैं। सूर्यके वृषराशिमें रहनेसे प्रतिपदसे ले कर अमावस्या तक चान्द्रज्यैष्ठ माना गया है। इसके पर्याय—शुक्र और ज्येष्ठ है।

"विदेशवृत्तिः पुरुषः सुतीव्रः क्षमान्वितः स्यात् खलु दीर्घसूत्रः।
विचित्रबुद्धिर्विदुषां वरिष्ठो ज्यैष्ठाभिधाने जननं हि यस्य॥"
(कोष्ठीप्रदीप)

इस मासमें मानवका जन्म होनेसे वह विदेशवासी, तीक्ष्णबुद्धिसम्पन्न, क्षमायुक्त, दीर्घसूत्री और श्रेष्ठ होता है। "ज्यैष्ठे मासि क्षितिसुतदिने जाह्नवी मर्त्यलोके।"
(तिथितत्त्व)

ज्यैष्ठ मासके मङ्गलवारको जाह्नवी मर्त्यलोक पर आती हैं।

ज्यैष्ठसाम (सं० पु०) ज्येष्ठं साम अधीते यः स इत्यण्। १ सामभेद। २ सामध्येता, सामवेदका पढ़नेवाला।

ज्यैष्ठिनेय (सं० पु० स्त्री०) ज्येष्ठायाः स्त्रियाः अपत्यं ठक्, इनङ् च। ज्येष्ठा स्त्रीका अपत्य, बड़ी स्त्रीकी सन्तान।

ज्यैष्ठी (सं० स्त्री०) ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासीत्यण् ङीप् च। १ ज्येष्ठ पूर्णिमा, जेठ महीनेकी पूर्णिमा। इस दिन मन्वन्तरा होती है। इस मन्वन्तरामें दानादि करनेसे अक्षय फल मिलता है। मन्वन्तरा देखो।

ज्येष्ठैव स्वार्थे अण् ङीष्। २ ज्यैष्ठी, छिपकली।

ज्यैष्ठ्य (सं० क्लो०) जेष्ठस्य भावः जेष्ठ ष्यञ्। श्रेष्ठत्व, वयोज्येष्ठत्व। ब्राह्मणोंमें जो अधिक ज्ञानी हैं, वे ही जेष्ठ हैं। क्षत्रियोंमें वीर्यके अनुसार, वैश्योंमें धनधान्यके अनुसार और शूद्रोंमें जन्मके अनुसार जेष्ठत्व होता है। (मनु० २।१५५)

ज्यों (हिं० क्रि०-वि०) १ जिस प्रकार, जैसे, जिसरूपसे। २ जिस क्षण, जैसे ही।

ज्योक् (सं० अव्य०) ज्यो-उकुन्। १ कालभूयस्त्व, दीर्घकाल। २ प्रश्न, सवाल। ३ शीघ्रार्थ, जल्दीके लिये। ४ संप्रत्यर्थ; अभीके लिये। ५ उज्ज्वलत्व।

ज्योति (हिं० स्त्री०) १ द्युति, प्रकाश, उजाला। २ अग्निशिखा, लौ, लपट। ३ अग्नि, आग। ४ सूर्य। ५ नक्षत्र। ६ आँखकी पुतलीका वह बिन्दु जो दर्शनका मुख्य साधन है। ७ मेथी। ८ दृष्टि। ९ अग्निष्टोमयज्ञकी एक संख्याका नाम। १० विष्णुका एक नाम। ज्योतिस् देखो।

ज्योतिक (सं० पु०) एक नागका नाम।

ज्योतिक (हिं० पु०) ज्योतिषी देखो।

ज्योतिरग्र (सं० वि०) ज्योतिः अग्रे यस्य, बहुव्री०। आदित्य प्रमुख। (ऋक् ७।३३।७)

ज्योतिरनीक (सं० वि०) ज्योतिः अनीके यस्य, बहुव्री०। ज्योतिर्मुख, अग्नि। (सायण)

ज्योतिरात्मा (सं० पु०) ज्योतिरात्मा यस्य, बहुव्री०। सूर्यादि। "यथाह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्।" (श्रुति)

ज्योतिरिङ्ग (सं० पु०) ज्योतिषा इङ्गति इगि-गतौ अच्। खद्योत, जुगनू।

ज्योतिरिङ्गण (सं० पु०) ज्योतिरिव इङ्गति इग-ल्यु। कीटविशेष, जुगनू। पर्याय—खद्योत, ध्वान्तोन्मेष, तमोमणि, दृष्टिबन्धु, तमोज्योतिः, ज्योतिरिङ्ग, निमेषक, ज्योतिर्वीज, निमेषरुक्।

ज्योतिरीश (सं० पु०) ज्योतिषां ईशः, ६-तत्। १ सूर्य। २ परमेश्वर।

ज्योतिरीश्वर—एक ग्रन्थकर्त्ता। इनका दूसरा नाम कविशेखर था। ये धीरेश्वरके पुत्र तथा रामेश्वरके पौत्र थे। इन्होंने पञ्चशायक और धूर्त्तसमागम नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की है। धूर्त्तसमागम ग्रन्थ कर्णाटके राजा नरसिंहके आदेशसे रचा गया था।

ज्योतिर्गणेश्वर (सं० पु०) ज्योतिर्गणानां ईश्वरः, ६-तत्। परमेश्वर। सब प्रकारकी ज्योतियोंमें वे ही एकमात्र प्रधान हैं। उनकी ज्योतिसे यह संसार प्रकाशित होता है।

ज्योतिर्ग्रन्थ (सं० पु०) ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां ग्रन्थः, ६-तत्। ज्योतिःशास्त्र।

ज्योतिर्ज्ञ (सं० त्रि०) ज्योतिः जानाति यः सः, ज्योतिः ज्ञा-क। ज्योतिर्विद्, ज्योतिष जाननेवाला।

ज्योतिर्भासमणि (सं० पु०) रत्नविशेष, एक तरहका जवाहर।

ज्योतिर्भासिन् (सं० त्रि०) प्रकाशमय, जगमगाता हुआ।

ज्योतिर्मय (सं० त्रि०) ज्योतिरात्मकः प्राचुर्य्ये वा मयट्। १ ज्योतिःस्वरूप, ज्योतिरात्मक। २ ज्योतिःपूर्ण, प्रकाशमय जगमगाता हुआ।

ज्योतिर्मल्ल—नेपालके एक राजा। ये जयस्थितिमल्लके पुत्र थे

ज्योतिर्मालिन् (सं० पु०) खद्योत, जुगनू।

ज्योतिर्मुख (सं० पु०) श्रीरामचन्द्रजीके एक अनुचरका नाम।

ज्योतिर्लता (सं० स्त्री०) ज्योतिष्मतीलता, मालकंगनी।

ज्योतिर्लिङ्ग (सं० क्लो०) ज्योतिर्मय लिङ्ग। १ महादेव, शिव।

प्रकृति और पुरुषके सृष्टिव्यापारमें प्रवृत्त होने पर पुरुष नारायण और प्रकृति नारायणीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। उस नारायणरूप पुरुषके नाभिपद्मसे उत्पन्न होनेके बाद ब्रह्मा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो नालमें परिभ्रमण करने लगे। पीछे नारायणरूप पुरुषने उठ कर कहा—"तुम जगत्की सृष्टिके लिए मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हो।" इससे ब्रह्माने क्रुद्ध हो कर कहा—"तुम कौन हो, तुम्हारा भी कोई एक कर्त्ता है।" इस प्रकार वार्त्तालाप करते हुए दोनोंमें युद्ध होने लगा। दोनोंका विवाद मिटानेके लिए

कालाग्निसदृश ज्योतिर्लिङ्गकी उत्पत्ति हुई। यह मूर्त्ति सहस्रों अग्निज्वालाओंसे व्याप्त है। इनका क्षय, वृद्धि, आदि, मध्य और अन्त नहीं है, यह अनौपम्य और अव्यक्त हैं। इस लिङ्गने नानास्थानोंमें उत्पन्न हो कर विविध आख्याएं प्राप्त की हैं। (शिवपु०)

वैद्यनाथ-माहात्म्यमें ज्योतिर्लिङ्गोंके जो नाम हैं, नीचे उनकी सूची दी जाती है।

१ सौराष्ट्रमें सोमनाथ। २ श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन। ३ उज्जयिनीमें महाकाल। ४ नर्मदातीरमें (अमरेश्वरमें) ओङ्कार। ५ हिमालयमें केदार। ६ डाकिनीमें भीमशङ्कर ७ बनारसमें विश्वेश्वर। ८ गौमतीतीरमें त्र्यम्बक। ९ चिताभूमिमें वैद्यनाथ। १० द्वारकामें नागेश। ११ सेतुबन्धमें रामेश। १२ शिवालयमें घृष्णेश्वर।

शेषोक्त लिङ्ग सम्भवतः इलोराके शिवलिङ्ग होंगे।

ज्योतिर्लोक (सं० पु०) ज्योतिषां लोकः, ६ तत्। १ कालचक्रप्रवर्तक ध्रुवलोक। २ उस लोकके अधिपति परमेश्वर वा विष्णु। ज्योतिर्लोककी स्थिति आदिके विषयमें भागवतमें इस प्रकार लिखा है—सप्तर्षिमण्डलसे तेरह लाख योजन दूरवर्ती जो स्थान है, उसीको भगवान् श्रीविष्णुका परमपद वा ज्योतिर्लोक कहा जा सकता है। उत्तानपादके पुत्र ध्रुव कल्पान्त जीवियोंके उपजीव्य हो कर अब तक इस स्थानमें वास कर रहे हैं। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, काश्यप और धर्म, उन्हें सम्मानपूर्वक दक्षिण-में रख कर उनको प्रदक्षिणा दे रहे हैं। भगवान् काल निमेष शून्य अस्फुटवेगसे जिन ग्रहनक्षत्र आदि ज्योतिर्गणको भ्रमण करा रहे हैं; ध्रुव, परमेश्वरके द्वारा उनके स्तम्भस्वरूपमें नियोजित हो कर निरन्तर प्रकाशमान हो रहे हैं। जिस तरह बैल आदि पशु कोल्हूमें जुत कर सवेरेसे शाम तक भ्रमण करते हैं, उसी तरह ज्योतिर्गण स्थानके अनुसार ध्रुवके चारों ओर (मण्डलाकार) भ्रमण करते हैं। इसी तरह नक्षत्र, ग्रह और कालचक्रके अनन्तर और वहिर्भागमें संलग्न हो, ध्रुवका ही अवलम्बन कर वायु द्वारा सञ्चालित हो कल्पान्त तक भ्रमण करते हैं। ज्योतिर्गणकी गति कार्य-विनिर्मित है, जैसे कर्मसहाय मेघ और श्येनादि पक्षी वायुके वशीभूत हो नभोमण्डल-में भ्रमण करते हैं। (गिरते नहीं), उसी प्रकार ज्योतिर्गण भी इस लोकमें परमपुरुषके अनुग्रहसे आकाश-मण्डलमें विचरण करते हैं—भूमि पर भ्रष्ट नहीं होते। भगवान् वासुदेवने योगधारणाके द्वारा इस लोकमें जिन ज्योतिर्गणोंको धारण किया है, कोई कोई उनका, शिशुमारके आकारमें कल्पना कर वैसा ही वर्णन करते हैं। वह शिशुमार कुण्डलीभूत और अधःशिराके आकारमें अवस्थिति करते हैं। उनके पुच्छाग्रमें ध्रुव, लाङ्गूलमें प्रजापति, इन्द्र और धर्म; लाङ्गूलके मूलमें धाता और विधाता तथा कटिदेशमें सप्तर्षि विराजित हैं। शिशुमारका शरीर दक्षिणावर्तमें कुण्डलीभूत हुआ है। उस शरीरके दक्षिण पार्श्वमें अभिजित्से ले कर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह तथा वामपार्श्वमें पुष्यासे उत्तराषाढ़ा तक चौदह नक्षत्र सन्निवेशित हैं; उन्होंके द्वारा कुण्डलाकार-में विस्तृत शिशुमारके दोनों पार्श्वकी अवयवसंख्या समान हुई हैं। उसके पृष्ठदेशमें अजवीथी तथा उदरमें आकाशगङ्गा प्रवाहित है।

पुनर्वसु और पुष्या यथाक्रमसे शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्ब पर आर्द्रा और अश्लेषा दक्षिण और वाम पादमें अभिजित् और उत्तराषाढ़ा दक्षिण और वाम नेत्रमें तथा धनिष्ठा और मूला, दक्षिण और वामकर्णमें यथाक्रमसे सन्निविष्ट हैं। मघासे ले कर अनुराधा पर्यन्त दक्षिणायण-सम्बन्धी आठ नक्षत्र उसके वामपार्श्वकी अस्थिमें तथा मृगशिरा आदि पूर्वभाद्रपद पर्यन्त उत्तरा-यण सम्बन्धी अष्टनक्षत्र उसके दक्षिण पार्श्वकी अस्थिमें संयुक्त हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा यथाक्रमसे दक्षिण और वाम स्कन्ध पर स्थापित हैं, उसके उत्तर हनु पर अगस्त्य, अधर हनु पर यम, मुखमें मङ्गल, उपस्थमें शनि, पृष्ठदेश पर वृहस्पति, वक्षःस्थल पर आदित्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्र, नाभिस्थलमें शुक्र, स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वाङ्ग-में केतु तथा रोमोंमें तारागण सन्निवेशित हुए हैं। यही भगवान् श्रीविष्णुका सर्वदेवमयरूप है। प्रतिदिन सन्ध्याके समय इस ज्योतिर्लोकका दर्शन कर संयतचित्त हो उपासना करनी चाहिए। मन्त्र यह है—

"नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनाय अनिमिषां पतये महापुरुषाय अभिधीमहीति।"

हे ज्योतिर्गणके आश्रयभूत ज्योतिर्लोक ! तू ही कालचक्ररूपी है, तू ही महापुरुष है, तुझे नमस्कार है।

(भाग० ५।२३ अ०)

ज्योतिर्विद् (सं० पु०) ज्योतिषां मर्यादीनां गत्यादिकं वेत्ति विद् क्विप्। ज्योतिःशास्त्रज्ञ, ज्योतिष जाननेवाला, ज्योतिषी (याज्ञ० १।३३३)

ज्योतिर्विद्या (सं० स्त्री०) ज्योतिषां सूर्यग्रहनक्षत्रादीनां गत्यादिज्ञानसाधनं विद्या, ६-तत्। ग्रह, नक्षत्र और धूमकेतु आदि ज्योतिःपदार्थोंका स्वरूप, सञ्चार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और शृंखलादि समस्त घटनाओंका निरूपक शास्त्र एवं ग्रहनक्षत्रादिकी गति, स्थिति और सञ्चारानुसार शुभाशुभ निरूपणविषयक शास्त्र।

ज्योतिर्वीज (सं० क्ली०) ज्योतिर्वीजमिवास्य ज्योतिषो वीजमिव। खद्योत जुगनू।

ज्योतिर्हस्ता (सं० स्त्री०) ज्योतीरूपं हस्तं शरीरं यस्याः, बहुव्री०। दुर्गादेवी।

"हस्तं शरीरमित्याहुर्हस्तश्च गमनं तथा।
ज्योतिश्च ग्रहनक्षत्रं ज्योतिर्हस्ता ततः स्मृता॥"

(देवीपुराण ४५ अ०)

हस्त, गमन, ज्योतिः, ग्रह और नक्षत्र जिनका शरीर माना गया है, वे ही ज्योतिर्हस्ता हैं।

ज्योतिश्चक्र (सं० क्ली०) ज्योतिर्मयं चक्रं ज्योतिर्भिः नक्षत्रैर्घटितं चक्रं वा। नभोमण्डलमें स्थित अश्विनी आदि नक्षत्रघटित मेषादि बारह राशियोंका एक मण्डल।

विष्णुपुराणमें ज्योतिश्चक्रके विषयमें इस प्रकार लिखा है—भूमिसे एक लाख योजन ऊंचाई पर सूर्यमण्डल है, उससे लाख योजन ऊपर चन्द्रमण्डल है और उससे लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है। नक्षत्रमण्डलसे २ लाख योजन ऊपर शुक्र, शुक्रसे २ लाख योजन ऊपर मङ्गल, मङ्गलसे २ लाख योजन ऊपर वृहस्पति, वृहस्पतिसे १ लाख योजन ऊपर शनि और शनिसे १ लाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल है। इसी तरह क्रमसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहगण अवस्थान कर रहे हैं। सप्तर्षिमण्डलसे एक लाख योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चक्रकी नाभिस्वरूप ध्रुवमण्डल अवस्थान कर रहा है। यहींसे सूर्यकी गमनादि क्रियाएं होती हैं और इसीलिये दिनरात और उसकी क्षयवृद्धि तथा सूर्यका उदयास्त होता है। सूर्यके जिस समय जहां रहनेसे मध्याह्न होता है, उस समय उससे विपरीत दिशामें समसूत्रपात स्थानोंमें अर्द्धरात्रि होगी और जहां रहनेसे मध्याह्न होता है, उसके दोनों पार्श्वस्थ स्थानोंमें उदय और अस्त होगा; यह उदय और अस्त सूर्यके समसूत्रपात स्थानमें हुआ करता है। निशावसानके समय जो पहले पहल सूर्य दिखलाई देता है, उसको उदय कहते हैं और जहां सूर्य अदृश्य होता है, उसको अस्त। परन्तु यथार्थमें सूर्यका उदय और अस्त नहीं होता. सूर्यका दर्शन और अदर्शन ही उदय और अस्त कहलाता है।

सूर्य मध्याह्नमें इन्द्रादि किसीके पुरमें रह कर उस पुरको, उसके सम्मुखवर्ती दो पुरों, तथा पार्श्वस्थ दो पुरोंको किरणोंसे स्पर्श करता है; अग्नि आदि किसी भी कोणोंमें रह कर उन कोणों तथा उसके सम्मुखस्थ दो कोणों और उसके मध्यवर्ती दो पुरोंका किरण द्वारा स्पर्श करता है। सूर्य उदित हो कर मध्याह्नपर्यन्त वर्द्धमान किरणोंका एवं उसके उपरान्त क्षीयमान किरणोंका विस्तार करता है। उदय और अस्तसे ही पूर्व और पश्चिम दिशाका निश्चय किया जाता है अर्थात् निशावसान होने पर जिस दिशामें सूर्य दिखलाई देता है, उसको पूर्व और जिस दिशामें सूर्य अदृश्य होता है, उसको पश्चिम कहते हैं। सूर्यास्त होने पर रात्रिको उसकी प्रभा अग्निमें प्रविष्ट होती है और दिनमें अग्निका चतुर्थांश सूर्यमें प्रवेश करता है; इसीलिए सूर्यसे अत्यन्त प्रखर किरणें निकलती है। सूर्य सुमेरुके दक्षिणमें गमन करे तो दिनमें और उत्तरमें गमन करे तो रात्रिको जलमें प्रवेश करता है। इसलिए जल दिनमें कुछ ताम्रवर्ण और रातमें शुक्लवर्ण दिखाई देता है। सूर्य जब पुष्करद्वीपमें पृथिवीके त्रिंशत्तम भागमें गमन करता है, तब उसकी मौहूर्तिकी गति प्रारम्भ होती है। इस प्रकारसे कुलालचक्रके प्रान्तस्थित जन्तुकी भांति भ्रमण करते करते पृथिवीके त्रिंशत् भागोंको छोड़ने पर दिन और रात्रि होती है अर्थात् एक एक मुहूर्तमें एक एक अंश करके त्रिंशत् भाग अतिक्रम करने पर एक अहोरात्र होता है। कर्कटसे

धनुराशि तक सूर्यकी स्थितिकाल दक्षिणायन और दक्षिणायनसे मिथुनराशि तक सूर्यका स्थितिकाल उत्तरायण कहलाता है। सूर्य इस उत्तरायणमें पहले मकरराशिमें, फिर कुम्भ और मीनराशिमें जाता है। इन तीन राशियोंमें स्थितिपूर्वक अहोरात्र समान कर विषुवगति अवलम्बन करता है। उस समय क्रमशः रात्रि लय और दिन वर्द्धित हुआ करता है। उसके बाद मिथुनराशि भोग कर उत्तरायणकी शेष सीमामें उपस्थित होता है। पीछे कर्कट राशिमें गमन करने पर दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। कुलालचक्रका प्रान्तवर्त्ती जन्तु जिस तरह तेजीसे चलता है, उसी तरह सूर्य भी दक्षिणायनमें तेजीसे चलता है। वायुके वेगसे अति द्रुत गमन करनेके कारण थोड़े ही समयमें एक स्थानसे दूसरे प्रकृष्टस्थानमें उपस्थित होता है। दक्षिणायनमें सूर्य दिनमें शीघ्रगामी हो कर बारह मुहूर्त्तमें ज्योतिश्चक्रके पूर्वार्धको और रात्रिमें मृदुगामी हो कर अठारह मुहूर्त्तमें उत्तरार्द्धको अतिक्रम कर जाता है। इसीलिये दक्षिणायनमें दिन छोटा और रात बड़ी होती है।

कुलालचक्रका मध्यस्थ जन्तु जैसे मन्द मन्द चलता है, उसी तरह सूर्य उत्तरायणमें दिनको मन्दगामी और रातको द्रुतगामी होता है। इस तरह बहुत समयमें थोड़ा स्थान और थोड़े समयमें बहुत स्थान अतिक्रम करनेके कारण दिन बड़ा और रात्रि छोटी हो जाती है। उत्तरायणके शेषभागमें ज्योतिश्चक्रके अर्द्धवृत्तको अतिक्रम करनेके लिए मन्दगामी सूर्यके जो अठारह मुहूर्त्त व्यतीत होते हैं, उससे दिन बड़ा होता है। सूर्य दिनमें जिस प्रकार अर्द्धवृत्त अर्थात् सार्द्धत्रयोदश नक्षत्र गमन करता है, उसी प्रकार रातको भी सार्द्धत्रयोदश (साढ़े तेरह) नक्षत्र गमन करता है। परन्तु यह गमन उत्तरायणमें रातको बारह मुहूर्त्तमें और दिनमें अठारह मुहूर्त्तमें हुआ करता है। दक्षिणायनमें इससे उलटा अर्थात् दिनमें बारह मुहूर्त्त और रातको अठारह मुहूर्त्तमें गमन करता है। ध्रुवमण्डल कुलालचक्रके मृत्पिण्डकी भांति एक स्थानमें रहते हुए ही परिभ्रमण करता है। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण दिशामें मण्डलसमूहके भ्रमण करते रहनेसे समयानुसार सूर्यकी दिन और रातमें शीघ्र और मन्दगति होती है। परन्तु दिन और रातमें समान पथ भ्रमण करके एक अहोरात्रमें वह सम्पूर्ण राशियोंको भोगता है। रातको छह राशियोंको और दिनमें अन्य छह राशियोंको भोगता है। इस तरह द्वादश राशिमय पथमेंसे आधे दिनको और आधा रातको अतिक्रम करनेके कारण दोनोंका गन्तव्य पथ समान हो गया। दिन और रात्रिकी जो ह्रासवृद्धि होती है, यह राशियोंके प्रमाणानुसार ही हुआ करती है। क्योंकि राशिके भोगसे ही दिवारात्रिकी ह्रासवृद्धि होती है।

उत्तरायणमें रातको सूर्यकी गति शीघ्र और दिनकी मन्द गति होती है। दक्षिणायनमें उससे विपरीत अर्थात् दिवसमें शीघ्र गति और रात्रिको मन्द गति होती है, क्योंकि उत्तरायणमें रात्रिभोग्य राशिका परिमाण थोड़ा और दिवसभोग्य राशिका परिमाण अधिक होता है; दक्षिणायनमें इससे उलटा है।

भागवतकार कहते हैं, कि सूर्य स्वर्गमण्डल और भूमण्डलके मध्यवर्त्ती आकाशमें अवस्थान कर स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें किरण फैलाता है। सूर्य अपने उत्तरायण दक्षिणायन और विषुवसंज्ञक मन्द, शीघ्र और समान गति द्वारा यथासमय आरोहण, अवरोहण और समान स्थानमें आरोहणादि प्राप्त हो मकरादि राशिमें अहोरात्रको छोटा, बड़ा और समान करता है; अर्थात् रात और दिन द्रुतगतिसे छोटे, मन्दगतिसे बड़े और समान गतिसे समान होते हैं। जब सूर्य मेष और तुलाराशिमें जाता है, तब अहोरात्र अत्यन्त वैषम्यभावसे प्रायः समान होते हैं। जब वृषादि पाँच राशियोंमें भ्रमण करता है, तब दिन बढ़ता है और मासमें एक एक घण्टा रात छोटी होती जाती है। और जब वृश्चिक आदि पांच राशियोंमें गमन करता है, तब अहोरात्रका विपर्यय होता है अर्थात् दिन छोटा और रात बड़ी होती है। वास्तवमें जब तक दक्षिणायन रहता है, तब तक दिन बड़ा होता है और उत्तरायण तक रात्रि बड़ी होती है।

विष्णुपुराणके मतसे—शरत् और वसन्त ऋतुमें सूर्यके तुला वा मेषराशिमें गमन करने पर यथाक्रमसे तुला और मेष नामक विषुव होते हैं, जो समरात्रिन्दिव

है अर्थात् तत्कालीन रात्रि और दिनका परिमाण (अयनांश विशेषमें पूर्वापर ५४ दिनोंमेंसे एक दिन) समान होता है। सूर्य मेष और तुलाके प्रथम दिन (प्रथम दिनका तात्पर्य अयनांशभेदसे उन उन मासोंके पूर्वके २७ दिन और उत्तरके २७ दिन, इन ५४ दिनोंमेंसे कोई एक दिन है) विषुव नामक शृङ्गमें अवस्थित रहता है, इसलिए अहोरात्र समान होते हैं। उसी समय रात्रि और दिन पञ्चदश मुहूर्तात्मक कहलाते हैं। सूर्य जिस समय कृत्तिकाके प्रथम भागमें अर्थात् मेषके अन्तमें रहता है, उस समय चन्द्र विशाखाके चतुर्थ भागके वृश्चिकारम्भमें अवश्य ही रहेगा तथा सूर्य जब विशाखाके तृतीय अंश अर्थात् तुलाके मध्य भागको भोगता है, तब चन्द्र कृत्तिकाके प्रथम पादमें, अर्थात् मेषान्तरभागमें रहता है।

भागवतमें लिखा है ज्योतिश्चक्रमें केवल सूर्य ही परिभ्रमण करता हुआ, अस्तमित और उदित होता हो, ऐसा नहीं है। सूर्यके साथ अन्यान्य ग्रह और नक्षत्र भी इस ज्योतिश्चक्रमें परिभ्रमण करते और उदित एवं अस्तमित होते हैं। भागवत और विष्णुपुराणमें ज्योतिश्चक्रके विषयमें जैसा लिखा है, अन्यान्य पुराणोंमें भी प्रायः वैसा ही समझना चाहिये।

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे सूर्य ही उदित और अस्तमित होता है। दक्षिणायन और उत्तरायणके भेदसे दिन-रातको ह्रासवृद्धिके विषयमें अन्यान्य पुराणोंके साथ इस पुराणका प्रायः एकमत पाया जाता है। हां, किसी किसी जगह अनैक्य भी है। सूर्य आकाशमें भ्रमण करता हुआ एक मुहूर्त्तमें पृथिवीका तीस भाग भ्रमण करता है। इस मुहूर्त्त कालमें अतिवाहित स्थानका परिमाण एक लाख इकतीस हजार योजन है। इसीको सूर्यको मौहूर्त्तिकी गति कहते हैं। इस प्रकारकी गतिसे माघ मासमें सूर्य दक्षिण काष्ठामें गमन करता है और माघ मासके अन्तमें काष्ठाकी शेष सीमामें पहुंच जाता है। इस तरह सूर्य ८१४५००० योजन परिभ्रमण करता है तथा अहोरात्र भ्रमण करते करते दक्षिणकाष्ठासे प्रतिनिवृत्त हो कर विषुवस्थ* होता है। इसके बाद वह क्षीरसमुद्रको उत्तर दिशामें गमन करता है।

श्रावण मासमें सूर्य उत्तरदिशामें गमन करके छठे शाकद्वीपको उत्तरवर्ती दिशाओंमें भ्रमण करता है। उत्तर-दिङ्मण्डलका परिमाण १८००००५८ योजन है। उत्तरभागका नाम नागवीथि और दक्षिणभागका नाम अजवीथि है। अजवीथिमें मूला, उत्तराषाढ़ा और पूर्वाषाढ़ाका तथा नागवीथिमें अभिजित्, पूर्वाषाढ़ा और स्वातिका उदय होता है।

दोनों काष्ठाओंमें १०३१६६ योजनका अन्तर है। दोनों काष्ठाओं और दोनों रेखाओंके दक्षिण और उत्तर विभागमें जितने स्थानका व्यवधान है, उसको योजन-संख्या ७१००१०७५ है। उक्त दोनों काष्ठाओंमें बाह्य और अभ्यन्तरके भेदसे दो रेखाएं हैं। उन रेखाओं पर उत्तरायणके समय अभ्यन्तरमें और दक्षिणायनके समय बाह्यभागमें १८० मण्डल परिभ्रमण करते हैं। इन मण्डलोंका परिमाण २१२२१ योजन है। इनका नाम है 'मण्डलका विष्कम्भ'। समय पर ये वक्र भी होते हैं। सूर्यदेव इनमें प्रतिदिन मण्डलके क्रमानुसार परिभ्रमण करते हैं। दोनों काष्ठाओंमें मण्डलभ्रमणके समय सूर्यको मन्द और द्रुत गतिके अनुसार रात और दिन हुआ करते हैं। उत्तरायणके समय दिनमें चन्द्रको मन्द गति और रात्रिको सूर्यको द्रुतगति होती है। इस प्रकारकी गतिके अनुसार सूर्यदेव दिन और रात्रिको विभक्त कर सम-विषम भावसे विचरण करते हैं। इसीसे दिन और रात्रिका परिमाण घटता बढ़ता रहता है।

ज्योतिष देखो।

ज्योतिःशास्त्र (सं० क्लो०) ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं। सूर्यादिग्रह और काल आदिका बोध करानेवाले वेदाङ्गशास्त्रका एक भेद। जिस शास्त्रके द्वारा सूर्य आदि ग्रहोंकी गति, स्थिति आदि तथा गणित, जातक होरा आदिका सम्यक्ज्ञान हो, उस शास्त्रको ज्योतिःशास्त्र कहते हैं। ज्योतिष देखो।

वेद यज्ञकर्मात्मक हैं। यज्ञ करनेके लिए कालज्ञान आवश्यक है और कालके विषयमें ज्योतिष ही प्रधान उपाय है। इसलिए ज्योतिष वेदाङ्ग है।

ज्योतिष (सं० क्लो०) ज्योतिः अस्ति यस्य ज्योतिः-अच्।

* विषुवमंडलका परिमाण १७१०००८१ योजन है।

१ वह विद्या वा शास्त्र जिससे आकाशमें स्थित ग्रह, नक्षत्र आदिकी गति, परिमाण, दूरी आदिका निश्चय किया जाता है। नभोमण्डलमें स्थित ज्योतिः-सम्बन्धी विविध विषयक विद्याको ज्योतिर्विद्या कहते हैं। और जिस शास्त्रमें उसका उपदेश वा वर्णन रहता है वह ज्योतिषशास्त्र कहलाता है। अन्यान्य शास्त्रोंकी तरह ज्योतिषशास्त्र भी मनुष्य जातिकी आदिम अवस्थामें अङ्कुरित और ज्ञानोन्नतिके साथ क्रमशः परिशोधित और परिवर्द्धित हो कर वर्त्तमान अवस्थाको प्राप्त हुआ है। सूर्य चन्द्र तथा अन्यान्य ज्योतिष्कोंकी प्रकृति ऐसी अद्भुत और विस्मयजनक है कि, उसकी ओर सचेतन प्राणी मात्रका मन आकर्षित होता है। मनुष्यकी आदिम अवस्थामें इसकी ओर सभी जातियोंकी दृष्टि गई थी और अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभी जातियोंको इस शास्त्रका थोड़ा बहुत ज्ञान भी था। अतएव इसमें आश्चर्य नहीं कि हिन्दू, काल्दीय, मिसर, चीन, गील, पेरुवीय, ग्रीक आदि सभी जातियां अपनेको ज्योतिषशास्त्रका प्रवर्त्तक समझती हैं।

भारतवर्षमें वैदिक ऋषि, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराह मिहिर मुञ्जाल, भट्टोत्पल, श्वेतोत्पल, शतानन्द, भोज राज, भास्कर, कल्याणचन्द्र आदि, ग्रीसदेशमें थेलस, ऐनेक्सिगोरस, मिटियन, प्लेटो, रोवक, आरिष्टटल, मिथिउस आदि; मेसिडनमें आरिष्टिलस, इउक्लिड, आर्किमेडिस, हिपार्कस, टलेमी आदि; अरबमें अलबर्ट गल, ईरनज़नियस, उलकवेग आदि तथा फिलहाल तमाम यूरोपमें पर्वाच्, केपलर, गालिलियो, हुक्स, कासिनी, न्यूटन, ब्राड्ली, सिबिली, लोली, फ्लार्मल, डिलाम्बर, डेनेम्बर्ट, इउलार, लाग्रेञ्ज, लाप्लास, इयं, टोण्डल आदि प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्गण इस शास्त्रकी महत् उन्नति कर गये हैं।

ज्योतिषशास्त्रको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—१ गणितज्योतिष—इसके द्वारा ग्रह, नक्षत्र आदिके आकार और संस्थापनादि सम्बन्धी यथार्थ तत्त्वोंका गणितान्तरको सहायतासे, विशिष्टरूपसे निर्णय किया जा सकता है। २ प्राकृतिक ज्योतिष—इसके द्वारा ग्रह, नक्षत्रादिकी प्रकृति अर्थात् उनकी गति, वेग तथा अन्यान्य ग्रहोंसे उनका परस्पर सम्बन्ध निर्णीत हो सकता है। ३ ध्रुव ज्योतिष—इसके द्वारा ध्रुव अर्थात् गतिहीन नक्षत्रादिका विवरण मालूम होता है। इसके अतिरिक्त व्यवहारज्योतिषके नामसे और भी एक विभाग किया जा सकता है, जिसके जरिये ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी नानाप्रकार यन्त्र, ज्योतिषिक नियम और गणना की प्रक्रिया मालूम हो सकती है। प्राकृतिक ज्योतिष बिना जाने ही इन नियमादिसे परिचित हो ज्योतिर्विद्की तरह कार्य किया जा सकता है।

भारतवर्षीय प्राचीन विद्वानोंने ज्योतिषको साधारणतः दो भागोंमें विभक्त किया है—कि एक फलित-ज्योतिष और दूसरा सिद्धान्त। जिसके द्वारा ग्रहनक्षत्रादिका सञ्चारादि देख कर पृथिवीके प्राणियोंकी भावी अवस्था और मङ्गलामङ्गलका निर्णय किया जाता है, उसका नाम है फलितज्योतिष तथा जिसके द्वारा स्पष्ट एवं अभ्रान्तरूपसे गणना करके ग्रहनक्षत्रादिकी गति और संस्थानादिके नियम, उनकी प्रकृति और तज्जन्य फलाफलोंका दृढ़रूपसे निरूपण किया जाता है, वह सिद्धान्त ज्योतिष कहलाता है। मालूम होता है, कि इसी तरह अंग्रेजोंका Astrology और Astronomy यथाक्रमसे फलित और सिद्धान्तज्योतिष है। सिद्धान्त ज्योतिषको भारतीय आर्यगण गणितज्योतिष भी कहते थे। सिद्धान्तशिरोमणिके गोलाध्यायमें लिखा है—"द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तरूपम्" अर्थात् गणित वा सिद्धान्त-ज्योतिष दो प्रकारका है, व्यक्त और अव्यक्त। जिसमें गणितकी सहायतासे ग्रहनक्षत्रादिका आकार, संस्थान सञ्चार, वेग, ग्रहान्तरके साथ परस्पर सम्बन्ध और तज्जन्य फलाफल विशेषरूपसे व्यक्त होता है उसे व्यक्त और तदन्यतरको अव्यक्त कहते हैं।

सिद्धान्त-ज्योतिर्विदोंने फलित-ज्योतिषकी निन्दा की है। सिद्धान्तशिरोमणिका मत है कि गणितशास्त्रका एकदेशमात्र जातकसंहिता है; सम्पूर्ण ज्ञान कर भी जो व्यक्ति अनन्तयुक्तियुक्त सिद्धान्त-ज्योतिष नहीं जानते हैं, वे चित्रमय राजा अथवा काष्ठमय सिंहके समान हैं। गणेशका मत है कि जन्मकालीन ग्रहनक्षत्रादिके अवस्थानको देख कर यह जानना कि अमुक समयमें

हमें सुख और अमुक समयमें दुःख होगा, कोई बड़ी बात नहीं उससे कुछ लाभ भी नहीं। वह विषय इतना अनावश्यकीय है कि उसके लिए हमें तनिक भी विचार करनेकी जरूरत नहीं। फलतः सुखदुःखके समय ज्ञानकी भी आवश्यकता नहीं।

ज्योतिष-सम्बन्धी साधारण ज्ञान—आकाशकी ओर दृष्टि डालनेसे चारों तरफ असंख्य नक्षत्रपुञ्ज दृष्टिगोचर होते हैं। ये नक्षत्रपुञ्ज घण्टे घण्टेमें अपने स्थानसे कुछ कुछ पश्चिमकी ओर हट जाते हैं, जिसके देखनेसे मालूम होता है, मानों ये नक्षत्रपुञ्ज किसी गोलयन्त्रमें अवस्थित हैं और उसके हट जानेसे वे क्रमशः पश्चिमकी ओर हट कर पीछे अदृश्य हो जाते हैं और उसके अपर पार्श्वमें स्थित नक्षत्रपुञ्ज क्रमशः दृश्यमान होते हैं। इस प्रकार देखते देखते हम अनायास ही जान सकते हैं कि एक दिनके भीतर ही उसका भ्रमण समाप्त होता है। यह भ्रमणकाल ठीक हमारे दिनके बराबर होता हो, ऐसा नहीं। कारण यह कि यद्यपि प्रतिदिन उदयकालमें वे नक्षत्रपुञ्ज प्रायः पूर्व पूर्व स्थानमें दीख पड़ते हैं, तथापि विशेषरूपसे निरीक्षण करनेसे मालूम होगा कि उनका उदय प्रतिदिन ठीक उन उन स्थानोंमें नहीं होता। प्रतिदिन प्रायः चार चार मिनटका अन्तर पड़ता है। अतएव हमारी दृष्टिसे प्रायः १५ दिनमें (उनके एक घण्टेमें) परिभ्रमण होता है और १ वर्षमें उनका भ्रमण पूर्ण हो जाता है। फिर वे पूर्वमें जिस समय जिस स्थानमें थे, उस समय वहीं दीखने लगते हैं; अर्थात् एक वर्ष बाद वे फिर अपने पूर्व स्थानोंमें आ जाते हैं।

उपर्युक्त वाक्यसे मालूम होता है, कि सूर्यके साथ ये समस्त भूपञ्जर अपने अपने कीलकमें रहते हुए सूर्यकी अपेक्षा प्रायः ४ मिनिट कम चौबीस घण्टेमें पृथिवीको परिवेष्टन कर भ्रमण करते हैं।

जिन नक्षत्रोंका अस्त नहीं होता, उन्हें ध्रुवनक्षत्र कहते हैं। ये नक्षत्र वस्तुतः भ्रमण न करते हों, ऐसा नहीं किन्तु उनका भ्रमणपथ जहांमें, पृथिवीके चक्रके समान्तरालमें और इतना दूरवर्ती है कि वहां उनके भ्रमण करने पर भी हमारी दृष्टिमें वे सतत एक स्थानमें स्थिर दीख पड़ते हैं। उक्त स्थान आकाशका उत्तरकेन्द्र कहलाता है। उस स्थानसे हमारी ओर जो सीधी रेखाकी कल्पना की जाती है, उस रेखाके परिवर्द्धनकी कल्पना करनेसे हमारे नीचे भी अवस्थानके ठीक विपरीत दिशामें जो स्थान है, उसे दक्षिणकेन्द्र कहा जा सकता है। ये दो स्थान उक्त कल्पित रेखाके सीमाविन्दु वा अक्ष हैं। नक्षत्रपञ्जर (Axis) प्रतिदिन उन सीमाविन्दुके अन्तर्गत नक्षत्रमण्डल परिभ्रमण करते हैं। उक्त दोनों सीमाविन्दु पृथिवीके केन्द्र और विषुवरेखा पर दो समकोणोंमें अवस्थित हैं और पृथिवीके प्रत्येक स्थानसे वे एक ही प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं; ग्रहादिके स्थानकी भांति इनका कुछ परिवर्तन नहीं होता।

आकाशके प्रायः उत्तरकेन्द्रमें जो उज्ज्वल नक्षत्र है, उसे भारतवर्षीय प्राचीन विद्वानोंने उत्तरध्रुव, ध्रुवतारा वा ध्रुवनक्षत्र कहा है। प्राचीन विद्वान्‌गण नक्षत्रोंके परिचयके लिए चित्र बनाते थे और पंक्तिवार दीखनेवाले नक्षत्रोंकी मूर्ति मत्स्याकृति दिखलाई देनेके कारण उस मूर्तिको ध्रुवमत्स्य कहते थे। युरोपीय विद्वान्‌गण उसे भालूकी आकृतिका समझ Bear कहते थे। नाईं ओरका नक्षत्र Little bear कहलाता था और दाहिनी ओरका Great bear। छोटे भालूकी पूँछके अग्रभागमें जो (एक) तारा दिखलाई देता है, वही ध्रुवतारा है। यह सहज ही पहचाना जा सकता है। सप्तर्षिमण्डल नामके जो प्रसिद्ध सात नक्षत्र हैं, उन्हींके द्वारा इनका विशेष परिचय मिला करता है। ये सात नक्षत्र कहीं भी क्यों न रहें; यदि उनमें 'क' और 'ख' चिह्नित नक्षत्रद्वयके मध्य एक रेखाकी कल्पना की जाय और उस रेखाकी परिवर्द्धित किया जाय तो वे ध्रुव नक्षत्रके अति निकटवर्ती हो जाते हैं। इसलिये उन दोनोंको प्रदर्शकनक्षत्र कहते हैं।

ये सात नक्षत्र ग्रेटब्रिटेनमें अस्तगत हो कर अदृश्य नहीं होते। कभी वे ध्रुव और कुचक्रके मध्य और कभी ध्रुवके पूर्व वा पश्चिम आकाशके उच्चतर भागमें, प्रायः शिरोविन्दु निकट दीख पड़ते हैं।

यदि उत्तरदिशाका ज्ञान हो तो ध्रुवनक्षत्र सहज ही पहचाना जा सकता जिस नक्षत्रको हम अपने देशसे

कुचक्रसे कुछ ऊपर सर्वदा स्थिर देखते हैं, वही ध्रुव-नक्षत्र है। दक्षिण केन्द्रको तरफ भी ऐसे ध्रुवनक्षत्र विद्यमान है।

जिस प्रकार पृथिवीके उत्तर-दक्षिणविन्दुको केन्द्र बना कर पृथिवीके समस्त स्थानोंका मानचित्र बनाया जाता है, उसी प्रकार उक्त दोनों केन्द्रोंको सौरजगत्‌का केन्द्र बना कर सम्पूर्ण सौरजगत्‌ और आकाशका मानचित्र बनाया जा सकता है :

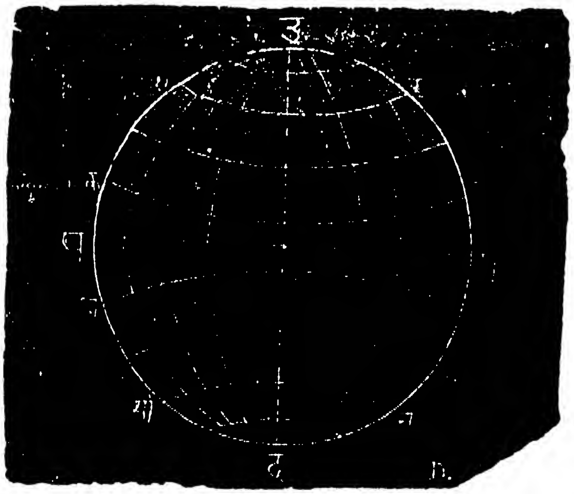

यह मानचित्र आकाशका है। इसके बीचमें पृथिवी है। पृथिवीकी उत्तरदिशा और इसकी उत्तरदिशा एक ही है; इसका चिह्न है 'उ'। इसी तरह पूर्वदिशाका 'पू' दक्षिणका 'द' और पश्चिमका 'प' चिह्न है। 'उ' और 'द' इसके दो केन्द्र हैं। इन दो केन्द्रोंसे समान दूरवर्ती जो आकाशके तले वृत्त है, उसे विषुवद्वृत्त और जिस कल्पित रेखाके द्वारा वह वृत्त होता है, उसे विषुवद्रेखा या विषुवरेखा कहते हैं। सूर्यके इस स्थानसे गमन करने पर वह आकाशके ठीक बीचमें अवस्थित रहता है। सुतरां उस समय पृथिवीके सर्वत्र ही दिन और रात्रि समान होती है। पृथिवीकी वार्षिक गतिके कारण वह रेखा सूर्यके वर्षमें दो बार (अंग्रेजी तारीख २० मार्च और २२ सेप्टम्बरको) ऊपर चढ़ती है।

खगोलस्थ जितनी भी कल्पित रेखाएं वा विषुवरेखा समान्तराल हैं, उन्हें अपम, सम वा अपमचक्र कहते हैं और जिस मण्डलाकार पथसे सूर्य परिभ्रमण करता है, उसे क्रान्तिकक्ष।

क्रान्तिकक्ष और विषुवरेखाके मिलनेसे जो कोण होता है वह २३½ अंश परिमित है। यहांसे सूर्य उत्तरायण-पथसे ६६½ अंश तक दूर चला जाता है। इसी तरह दक्षिणायन पथमें भी ६६ अंश तक गमन करता है। अतएव खगोलस्थ उत्तरकेन्द्रसे सूर्यकी गति ११३½ अंश दूर तक हुआ करती है।

२१ जूनको सूर्य उत्तरायणके सुदूर स्थानमें गमन करता है और फिर कर्कट राशिमें सममण्डलस्थ (Vertical) होता है। २१ दिसम्बरको जब सूर्य दक्षिणायनके सुदूर मार्गमें पहुंचता है, तब Capricorn सममण्डल होता है और जब विषुवरेखाके ऊपर आता है, तब विषुवरेखाके सममण्डलस्थ होती है।

क्रान्तिकक्षाके उत्तरांशमें जिस जगह जून मासमें सूर्योदय होता है, उससे कुछ दक्षिणमें एक उज्ज्वल नक्षत्र उदित होता है जिसे 'कपिल' कहते हैं। यह कपिल नक्षत्र बृहत् भल्लूकके पश्चिमांशमें, उत्तरकेन्द्रसे बहुत दूरी पर अवस्थित रहता है।

विषुवरेखासे आकाशस्थ नक्षत्रादिका दक्षिण वा उत्तर दिशामें जो दूरत्व है, उसे अपम कहा जा सकता है। उस समय सूर्य २१ जूनको २३½ अंश उत्तरपथ पर अवस्थित रहता है। अतएव आकाशमण्डलका अपम पृथिवीके अक्षांशके समान है।

जिन वृत्तोंको कल्पना खगोलस्थ दोनों केन्द्रोंके मध्य की गई है, उनको होराचक्र (celestial meredian) कहते हैं। समसण्डल अर्थात् प्रथम होराचक्रसे ज्योतिर्मण्डलके पूर्वभागके दूरत्वको विक्षेप (Right Acension) कहा जा सकता है; विशेष भूगोलके दीर्घांश (Longitude)-के समान है। किन्तु पृथिवीकी द्राघिमा जैसे पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओंसे गिनी जाती है, विक्षेपपातका निर्णय उस तरह नहीं होता। इसकी गणना पूर्वदिशा से शुरू कर पुनः शून्य स्थानके निकटवर्ती ३६० अंशमें समाप्त होती है। जिस स्थल पर सूर्य (२० मार्चको) विषुवरेखामें गमन करता है, जो स्थल मेषराशिका प्रथम गृह समझा जाता है और जिस स्थल पर सूर्यके आगमनसे (वसन्त ऋतुमें) दिनरात्रिका परिमाण समान होता है, उस स्थानसे जो होराचक्र जाता है, उसे प्रथम होराचक्र कहा जा सकता है। पूर्वप्रदर्शित मानचित्रमें 'प'

और 'पू' को यदि विषुवरेखा समझा जाय और क्रान्ति-वृत्तकी कल्पना की जाय, तो मानचित्रके ठीक मध्यस्थ स्थानको—जिस अंशमें उक्त दोनों वृत्तोंका सम्पात हुआ है—मेषराशिका प्रथम कक्ष वा वासन्तसम्पात अथवा महाविषुवसंक्रान्ति कह सकते हैं। उक्त स्थल पर सूर्य-का संक्रमण होने पर हो दिनरात्रिके परिमाणकी समता होती है। जो होराचक्र ऐसे स्थलको भेद कर गमन करता है 'उ' और 'ट' रेखाद्वारा जैसा दिख-लाया गया है, उसे प्रथम होराचक्र कहते हैं। यह प्रथम होराचक्र हो मेषराशिका प्रथम कक्ष और वर्षका पहला दिन है।

उक्त मानचित्रको गोलाईमें ३६० अंश है, जो २४ घण्टेमें एक बार घूमते हैं। इस हिसाबसे खगोलका प्रत्येक अंश घण्टेमें १५ अंश पश्चिमकी ओर जाता है। यही कारण है कि होराचक्रको अंश न कह कर कभी कभी होरा वा घण्टा कहते हैं। समयके साथ पृथिवी-को द्राघिमाका भी ऐसा ही सम्बन्ध है। दीर्घांचांशका प्रत्येक अंश घण्टेमें १५ अंश पूर्वको ओर हट जाता है।

क्रान्तिचक्र बारह समभागोंमें विभक्त है। प्रत्येक भाग ३० अंशके समान है। इन भागोंको राशिप्रकोष्ठ कहते हैं। मेषराशिके प्रथमांशसे इसकी गणना शुरू होती है। नीचे एक तालिका दी जाती है, जिससे सम्पूर्ण राशियोंके नाम और उनमें सूर्यके प्रवेशकालका परिज्ञान हो सकता है।

१। मेष-२० मार्च, महाविषुवासन्न संक्रान्ति, सर्वत्र दिवारात्र समान।

२। वृष—२० अप्रेल, विष्णुपदी।

३। मिथुन—२१ मई, षड़शीति।

४। कर्कट—२१ जून, ग्रीष्म-संक्रान्ति।

५। सिंह—२३ जुलाई, विष्णुपदी।

६। कन्या—२३ अगस्त, षड़शीति।

७। तुला—२३ सेप्टेम्बर, जलविषुव शारदसंक्रान्ति, सर्वत्र दिवारात्रि समान।

८। वृश्चिक—२३ अक्तूबर, विष्णुपदी।

९। धनु—२२ नवेम्बर, षड़शीति।

१०। मकर—२२ दिसेम्बर, उत्तरायण संक्रान्ति।

११। कुम्भ—२१ जनवरी, विष्णुपदी।

१२। मीन—१८ फरवरी, षड़शीति।

प्रथम होराचक्रके उत्तरकेन्द्रसे २३॥ अंश तक और क्रान्तिवृत्तके किसी भी स्थलसे ८० अंश तक स्थानके किसी निर्दिष्ट स्थानको क्रान्तिकेन्द्र (Pole of the ecliptic) कहते हैं। यह स्थान वृहत् भल्लूकके निकटवर्ती ड्रोको नामक ध्रुव नक्षत्रके बीचमें है।

आकाशमण्डलके उत्तरकेन्द्र इस तरह खिसकता रहता है कि २५८६८ वर्षमें क्रान्तिवृत्तको वेष्टित कर एक गोष्पद हो जाता है।—यह गति इतनी अलक्ष्य है कि कोई अपने जीवनमें उसका अनुभव नहीं कर सकता। परन्तु जब इसकी गति है, तो अवश्य ही वह उत्तरकेन्द्र वर्तमान केन्द्रतारा ध्रुवसे दूरवर्ती हो कर धीरे पुनः पूर्वस्थानमें आवेगा इसमें सन्देह नहीं।

भारतीय ज्योतिष—प्राचीन भारतमें सभ्यताके प्रथम युगमें ही ज्योतिषशास्त्रकी उत्पत्ति हुई थी। वेद आर्योंके आदिग्रन्थ हैं। वेदमन्त्रके मर्मार्थको जाननेके लिये प्राचीन ऋषियोंने कुछ ग्रन्थ रचे हैं, जो "ब्राह्मण" कहलाते हैं। वेद पढ़नेके लिए उच्चारण और छन्दो-ज्ञानको आवश्यकता है, वेदमन्त्र समझनेके लिए 'व्याकरण' और 'निरुक्ति'की आवश्यकता है तथा यज्ञके लिए वेदमन्त्रका व्यवहार करना हो तो 'ज्योतिष' और "कल्प" के ज्ञानकी आवश्यकता है। इनकः विषयोंमें-से प्रायः सभी नियम 'ब्राह्मणों" के मध्य विक्षिप्त थे, किन्तु परवर्ती कालमें व्यवहारके सुभीताके लिए उपर्युक्त प्रत्येक विषयके नियमोंका संग्रह कर उनका पृथक् पृथक् नामकरण हुआ। जैसे—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प। इन छहोंका वेदाङ्ग कहते हैं। इससे मालूम होता है कि ज्योतिष षड़्-वेदाङ्गोंका एक भेद है। इसमें सिर्फ उस समयके यज्ञ-काल निर्णयमें उपयोगी नियमोंका संग्रह किया गया है। जिस उद्देश्यसे यह रचा गया था, उसी उद्देश्यके उपयोगी सूत्रमात्र इसमें है। किन्तु इस ज्योतिष-वेदाङ्ग-से उस समयके ऋषियोंके ज्योतिष संबन्धीय ज्ञानके विषयमें किसी प्रकार सिद्धान्त करना हम अनुचित सम-

करते हैं। कारण परवर्ती "सिद्धान्तों"की भांति ज्योतिष-शास्त्रको शिक्षा देना ज्योतिष-वेदाङ्गका उद्देश्य न था।

ज्योतिष-वेदाङ्ग अत्यन्त संक्षिप्त ग्रन्थ है। ऋग्वेदीय ज्योतिष-वेदाङ्गके कुल तीन ही श्लोक हैं और यजुर्वेदीय ज्योतिष-वेदाङ्गके सिर्फ ४३ श्लोक मिले हैं। इन दोनोंके कुछ श्लोक साधारण हैं और कुछ पृथक्। दोनोंको मिलाने पर हमें सिर्फ ४८ पृथक श्लोक मिलते हैं। ये श्लोक अत्यन्त संक्षिप्त हैं और विषयानुक्रमसे संयोजित भी नहीं है। अधिकांश ही अनुष्टुप छन्दमें रचे गये हैं।

पाश्चात्य विद्वानोंमें सबसे पहले जोन्स (Collected Works, Vol. I) कोलब्रुक (Essays, vols II &III) बेण्टली (Hindu Astronomy, part I, sections I and II और डेभिसने (Asiatic Researches, vol.II) वेदाङ्ग-ज्योतिष अध्ययन किया था। किन्तु इनमेंसे समग्र वेदाङ्ग-ज्योतिषका अर्थ कोई भी न समझ सके थे। प्रायः अर्द्ध शताब्दीके बाद मेक्समूलर (Rigveda samhita, vol.4 Preface), ओयेबर (Veberden vedakalendar, Namen, Jyotisham) और हुइटनिने (The Lunar zodiac, Indian Antiquary, vol. 24, p. 365, etc.) इस विषयमें ध्यान दिया। ओयेबर साहबने (१८६२ ई०में) बहुतसी पाण्डुलिपि देख कर नाना प्रकार पाठान्तरोंके साथ दोनों शाखाओंके मूल श्लोक, जर्मन भाषाका अनुवाद यजुर्वेदीय वेदाङ्ग-ज्योतिषको (सोमकरको) टीका और उस टीकाके आधार पर (उनकी) टिप्पणी सहित ज्योतिष-वेदाङ्गका एक संस्करण प्रकाशित किया था। यद्यपि श्लोकोंका अर्थ ये सम्यक्रूपसे ग्रहण नहीं कर सके हैं, तथापि नाना प्रकार पाठान्तरोंके साथ ज्योतिष-वेदाङ्गके इस संस्करणके निकालनेसे भारतवासी उनके कृतज्ञ हैं। ओयेबरके बाद डा० थिवो (J.A.S.B. 1877), शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित, लाला छोटेलाल, पं० सुधाकर द्विवेदी आदिने इस विषयकी आलोचना की है।

बेण्टलि साहबने हिन्दुओंके ज्योतिषको आधुनिक प्रमाणित करना चाहा था, किन्तु अन्तमें उन्होंने अपने शेष-ग्रन्थमें स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्रायः ३३०० वर्ष पहले भी हिन्दुओंने चन्द्रके सप्तविंशति नक्षत्रभोगका निरूपण किया था। अरबियोंको पहले पहल भारतियोंसे ज्योतिषशास्त्र मिले थे। अरबी भाषामें, न्यूनाधिक ६५० वर्ष पहले "आयन्-उल-अम्बा फितल कातुल पतृबा" नामक ग्रन्थ रचा गया था। इसमें लिखा है, कि भारतवर्षीय विद्वानोंने अरबके अन्तःपाती बोगदादको राजसभामें जा कर ज्योतिष और चिकित्सादि शास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। कर्क नामक एक पण्डित ६८४।८५ शकमें बादशाह अल् मनसूरके दरबारमें गये थे। चिकित्सारसायन और ज्योतिर्विद्यामें इनकी अच्छी गति थी। इनके पास बहुतसी भारतीय पुस्तकें भी थीं, जिनमें एकका नाम "विहत् सिन हिन्द' लिखा गया था। यह वराहमिहिरकृत बृहत् संहिताका होना निश्चयत असम्भव नहीं।

अब ऋक् और यजुर्वेदके आधारसे यह दिखाया जाता है कि वैदिकयुगमें हिन्दुओंका ज्योतिषविषयक ज्ञान कैसा था।

"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्तु माघश्रावणयोः सदा॥" ६।२।७

अर्थात् सूर्य और चन्द्रके श्रविष्ठा नक्षत्रके आदि विन्दुमें आने पर उत्तरायणका तथा सर्प (अश्लेषा) नक्षत्रके मध्यविन्दुमें आने पर उनके दक्षिणायनका प्रारंभ होता है। सूर्य यथाक्रमसे माघ एवं श्रावण मासमें इन दो विन्दुओंमें आते हैं अर्थात् सूर्यका उत्तरायण और दक्षिणायण सर्वदा माघ और श्रावणमें ही होता है।

"धर्मवृद्धिरपांप्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणे तौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु॥" ७।२।८

उत्तरायणसे प्रतिदिन, जलके एक प्रस्थके बराबर, दिनकी वृद्धि और रात्रिका ह्रास हुआ करता है। एक अयनमें छ मुहूर्त मात्र।

"भांशाः स्युरष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि॥" २, १०।१५।

अर्थात् (युगके प्रारंभसे) पक्षसंख्या निर्णय करें। द्वादशपक्षमें ८ नक्षत्रांशका उद्गम होता है। कृष्णपक्षान्त होने पर प्रति पक्षमें चन्द्रके ११ नक्षत्रांशका उद्गम होता है, और चन्द्रपक्ष शुक्ल होने पर इसके साथ और भी अर्द्ध नक्षत्र योग करना पड़ता है।

तैत्तिरीयसंहिताके पढ़नेसे मालूम होता है कि, प्राचीन समयके वासन्त विषुवद्दिन (हरितालिका) कृत्तिकामें संक्रमित था। शतपथब्राह्मणमें (२।१।२।१३) लिखा है कि, हरितालिकाके साथ ही वैदिक वर्ष प्रारम्भ होता था। पीछे जब शारद विषुवद्दिनसे वर्ष गणना हुई, तब प्राचीन और नवीन दोनों प्रकारके वर्ष आस-पास लिखे जाते थे। जब वासन्त विषुवद्दिन कृत्तिकापुञ्ज में संक्रमित था, तब यह नक्षत्रपुञ्ज विषुवद्दिनसे वर्षारम्भ करता था, किन्तु अयन माघ मासमे गिना जाता था। यह तैत्तिरीयसंहिता और मीम सन्दर्भमें स्पष्टरूपसे लिखा गया है। साधारणतः यह समझ सकते हैं कि, अयनके माघमाससे प्रारम्भ होने पर विषुवद्दिन कृत्तिकामें संक्रमित होगा।

ऋग्वेदसंहिताके प्रचारके समय जब वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरा-पुञ्जमें संक्रमित हुआ था, इस बातको प्रमाणित करनेके लिए लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलकने निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं —

१। तैत्तिरीयसंहिता (७।४।८) में लिखा है कि, फाल्गुनी पूर्णिमा ही वर्षके प्रारम्भकी सूचना देती है। शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयब्राह्मण गोपथब्राह्मण आदि ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि, फाल्गुनी पूर्णचन्द्र जिस रात्रिमे उदित होता है, वह नवीन वर्षकी प्रथम रात्रि है। इससे मालूम होता है कि फाल्गुनी पूर्णचन्द्रके उदय-दिवसमें शीतकालीन अयन संघटित होता था।

२। यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि, शीतकालीन अयन फाल्गुनी पूर्णचन्द्रोदयके दिन संघटित होनेसे वासन्त विषुवद्दिन अवश्य ही मृगशिरापुञ्जमें संक्रमित होता है। अग्रहायणी शब्द मृगशिराके पर्यायवाची रूपसे व्यवहृत हो सकता है। पाणिनिमें भी इस शब्दका उल्लेख है। मृगशिरापुञ्जके द्वारा ही वर्षकी सूचना होती थी, इस बातको प्रमाणित करनेके लिए नीचे दो कारणोंका उल्लेख किया जाता है—

(क) चन्द्रद्वारा नववर्ष सूचित होता था, ऐसा अनुमान करने पर अग्रहायणी शब्द व्याकरणानुसार मृगशिरापुञ्जके पर्यायवाचीरूपमें व्यवहृत नहीं हो सकता।

(ख) चन्द्रद्वारा वर्ष सूचित होने पर, यह शीतकालीन अयन था अथवा वासन्त विषुवद्दिनसे प्रारम्भ होता था, ऐसी कल्पना करनी होगी। क्योंकि प्राचीन हिन्दू उक्त दो वर्षारम्भपद्धतिसे परिचित थे। अयनकालसे वर्षगणना प्रारम्भ होनेसे वासन्त विषुवद्दिन रेवतीसे २७° पीछे अवस्थापित होता है. किन्तु यथार्थ अवस्थिति वैसी नहीं है। इसलिए प्रथम कल्पना असिद्ध है, द्वितीय कल्पनाके अनुसार ज्योतिषिक अवस्थिति ई० से १८००० वर्ष पहले सम्भव हो सकती है, किन्तु अन्तर्वर्त्ति कालके घटनानिचयके प्रमाणाभावमें द्वितीय मतका समर्थन नहीं किया जा सकता।

३। यदि शीतायनमें फाल्गुनी पूर्णिमाके द्वारा ही वर्षगणना होती थी, तो ग्रीष्मायन भी भाद्रपदकी पूर्णिमामें संघटित होता था। वास्तवमें ऐसा ही होता था, इसका यथेष्ट प्रमाण है। ग्रीष्मायनको पितृअयन भी कहते हैं। इस अयनके पहले मास वा पक्षको पितृअयन वा पितृपक्ष अथवा प्रेतायन वा प्रेतपक्ष कहते हैं। हिन्दू लोग अब भी भाद्रपदके कृष्णपक्षको प्रेतपक्ष कहते हैं।

४। जब वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरामें संक्रमित था, तब यह नक्षत्रपुञ्ज और छायापथ स्वर्ग और नरकका सीमा स्वरूप था। वैदिकग्रन्थोंमें स्वर्ग, नरक, देवलोक और यमलोक शब्दसे निरक्षवृत्तका उत्तर और दक्षिण भागस्थ अर्द्धवृत्तका बोध होता है। आकाशगङ्गा, यमलोकमें कुक्कुरकी अवस्थिति, वृत्तका मृगाकार धारण इत्यादि प्रवाद जो वैदिककालसे प्रचलित हैं, उनका अनुधावन करनेसे मालूम होता है कि, वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरामें अवस्थित था। उस समय लोगोंको ऐसा विश्वास था और उस विश्वासके अनुसार ही उन लोगोंने इस तरहके रूपकाकार प्रवाद चलाये थे।

५। हिन्दू और ग्रीकोंके अनेक ज्योतिषिक प्रवादोंमें, और तो क्या अनेक नक्षत्रादिके नामोंमें परस्पर सादृश्य पाया जाता है। ग्रीकोंका Orion शब्द हिन्दुओंसे लिया गया है ऐसा जान पड़ता है। प्लुटार्क कहते हैं, ग्रीकोंने यह शब्द इजिप्तवासियोंसे नहीं लिया। Orion शब्द अग्रायन (अग्रहायण) शब्दका अपभ्रंश है, अथवा Oros=सीमा तथा Aion=काल वा वर्ष, इन दो शब्दोंसे

उत्पन्न है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। Orion शब्द प्राचीनकालमें नववर्षारम्भ ऐसा अर्थ प्रकट करता था। ग्रीकोंके Orion, Canis & Ursa शब्दके साथ वैदोक्त अग्रयण, श्वन् और ऋच शब्दका सादृश्य पाया जाता है।

६। ऋग्वेदमें स्पष्ट लिखा है कि, सूर्य मृगशिरामें संक्रमित होने पर उत्तरायण प्रारम्भ होता है।

(क) 'वर्ष शेष होने पर कुक्कुर सूर्यकिरण जागरित करेगा" (ऋग्वेद १।६३।१३) इसका सरल अर्थ यह है कि, प्रथम सूर्य निरक्षवृत्तके दक्षिणांशमें रहनेसे देवोंको रात्रि होती है। सूर्य निरक्षवृत्तके उत्तरांशमें आने से श्वन् उसको प्रबोधित करेगा; अर्थात् वासन्त विषुवद्दिनमें मृगशिरा वर्षको सूचना देता है।

(ख) ऋग्वेदमें (१०।८६।४-५) इन्द्र सूर्यको कहते हैं—हे चमताशील वृषाकपि! जब ऊर्द्धमें उदित हो कर तुम हमारे आलयमें आओगे, तब मृग कहां रहेगा? अर्थात् सूर्य मृगशिरामें संक्रमित होने पर उक्त नक्षत्रपुञ्ज अदृश्य हो जाता है और सूर्य जब इन्द्रालय में प्रवेश करता है (अर्थात् जब निरक्षवृत्तके उत्तरांशमें गमन करता है) तब ऐसी घटना होती है।

इसो प्रकार और भो बहुतसे वर्णन देखनेमें आते हैं; बाहुल्यके डरसे यहां उद्धृत नहीं करते।

ऊपर जो लिखा गया है,उसके द्वारा हो प्रमाणित किया जा सकता है कि ऋग्वेदके रचनाकालमें अयन फाल्गुनको पूर्णिमासे प्रारम्भ होता था तथा वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरापुञ्जमें संक्रमित था।

कोई कोई ऐसा समझते हैं कि, ई०से ४००० वर्ष पहले मृगशिरापुञ्ज और विषुवद्दिनको पूर्वोक्त अवस्था थी।

वैदिकग्रन्थमें कृत्तिका और मघा, मृगशिरा और फाल्गुन तथा पुनर्वसु और चैत्रको यथाक्रमसे विषुवद्वृत्त और अयन सम्बन्धीय वर्षसूचक कहा गया है।

१। पुनर्वसुपुञ्जके अधिष्ठाता-देवता अदितिको अर्चना कर यज्ञादि आरम्भ करना चाहिए। (तैत्ति० सं०)

२। सत्रके विषुवद्दिनसे चार दिन पहले अभिजित् दिन उपस्थित होता है। इससे यदि सूर्यका अभिजित् पुञ्जमें 'प्रवेश' इस अर्थका बोध हो, तो वासन्त विषुवद्दिन अवश्य हो पुनर्वसुमें संक्रमित होता है, यह अनुमान किया जा सकता है।

३। प्राचीनकालमें जब नक्षत्रादिका विषय आलोचित हुआ था, तब बृहस्पतिपुञ्ज निर्दिष्ट कुछ नक्षत्रोंसे सम्बन्ध में प्रयुक्त होता था।

उपर्युक्त तीन विषय और तैत्तिरीयसंहितामें वर्णित विषयावलोका अनुशीलन करनेसे मालूम होता है कि, वासन्त विषुवद्दिनके मृगशिरामें संक्रमित होनेसे बहुत पहले हिन्दूगण ज्योतिषिक आलोचना करते थे। इन्होंने प्रथमतः वासन्त विषुवद्दिनसे और पीछे गोलायन से नववर्षारम्भ माना है।

भारतीय साहित्यको आलोचना करनेसे मालूम होता है कि, हिन्दू अति प्राचीनकालसे बराबर अयन-चलन लिखते आये हैं। पुनर्वसुसे मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरासे रोहिणी (ऐतब्रा०), रोहिणीसे कृत्तिका (तैतिसं०), कृत्तिकासे भरणी (वेदांगज्योतिष) तथा भरणी से अश्विनी है। (सूर्यसिद्धांत इत्यादि)

ज्योतिषिक नियमानुसार मामूली तोरसे गणना करनेसे मालूम होता है कि, ई०से ६०० वर्ष पहले हिन्दूओंने ज्योतिषिक पञ्जिका लिखी थी। उस समय वा उससे कुछ समय बाद हरितालिका पुनर्वसुमें संक्रमित थी। ईसासे ४००१ वर्ष पहले यह मृगशिरामें संक्रमित हुआ था।

प्रोफेसर जेकोबी (Jacobi)का कहना है कि ऋग्वेदमें हमें पहले हो वर्षाकालका उल्लेख देखते हैं। ऋग्वेद जहांसे (पञ्जाब) प्रकाशित हुआ था, वह को ऋतु पर दृष्टि डालनेसे यह सहजमें हो समझ सकते हैं कि, उक्त वर्षारम्भ ग्रीष्मायनमें संघटित होता था।

भाद्रपदकी पूर्णिमा फाल्गुनोके ग्रीष्मायन संयुक्त है। इसलिए भाद्रपद हो वर्षाकालका प्रथम मास है कारण पहले हो कहा जा चुका है कि, ग्रीष्मायन वर्षाकालके साथ प्रारम्भ होता था। गृह्यसूत्रके पढ़नेसे भी इसका आभास पाया जाता है।

गोभिलसूत्रसे प्रोष्ठपदको पूर्णिमामें उपाकरण स्थिरीकृत हुआ है; किन्तु श्रावणको पूर्णिमासे विद्या-

शिराका आरम्भकाल गिना जाता था। ऋग्वेदमें लिखा है कि, अति प्राचीनकालमें प्रोष्ठपदसे विद्याशिक्षाकाल प्रारम्भ होता था। पीछे नक्षत्रादिकी गतिके द्वारा उनकी स्थितिमें कुछ परिवर्तन हो जानेसे ऋतु आदिमें भी भेद हो गया है। ऋग्वेदके परवर्ती वैदिक ग्रन्थमें नक्षत्र मण्डलीमेंसे कृत्तिकाका नाम पहले वर्णित है। किन्तु किसी किसी ग्रन्थोंमें वैलक्षण्य देखा जाता है। कौषीतकि-ब्राह्मणमें कहा गया है कि उत्तरफल्गु द्वारा वर्षका मुख और पूर्वफल्गु द्वारा पुच्छ बनती है। तैत्तिरीयब्राह्मण की टीकामें पूर्वफल्गुनी वर्षकी जघन्य रात्रि और उत्तरफल्गुनी प्रथम रात्रि कही गई है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि अति प्राचीनकालमें अयन उत्तरफल्गुनीको छेद कर सञ्चालित होता था।

वैदिक ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता, कि वर्षगणना करनेके लिए कालक्रमसे भिन्न भिन्न नाम व्यवहृत हुए थे। तैत्तिरीयसंहितामें हिमवर्षका उल्लेख मिलता है। यह वर्ष वर्षावर्षके ६ मास पहले शीतायनसे आरम्भ होता था। ऋग्वेदमें जगह जगह वर्ष शब्दके बदले शरद शब्दका उल्लेख पाया जाता है। यह शारदवर्ष शारद विषुवदिन अथवा पूर्णिमा कालसे ही गिना जाता था इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। ग्रीष्मायन उत्तरफल्गुनी और शीतायन पूर्वभाद्रपदमें संक्रमित होने पर शारद विषुवद्दिन मूलामें और वासन्त विषुवद्दिन मृगशिरामें अवस्थापित होता है। इस गणनाके अनुसार मूला प्रथम नक्षत्र है और इसके नामसे भी उक्त अर्थ व्यक्त होता है; ज्येष्ठा शेष नक्षत्र है, इसका प्राचीन नाम ज्येष्ठघ्नी (क्योंकि इन नक्षत्रसे वर्ष शेष होता) था।

शारदवर्षके प्रथम मासका नाम है अग्रहायण। यह मृगशिराका पर्यायवाची शब्द है, इसको पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्रमें होती है। उस समय मृगशिरा कहनेसे वासन्त विषुवद्दिनका बोध होता था, इसलिए यह निश्चित है कि शारद पूर्णिमा मसकल नक्षत्रमें होती थी तथा प्रथम मासका नाम मार्गशिरः था।

क्रमशः ऋतुका परिवर्तन हुआ था। ऋग्वेदमें जिस प्रकार वर्षविभाग देखनेमें आता है, पीछे वह सिर्फ ईश्वराराधनाके लिए व्यवहृत होता था। ऋग्वेदमें जैसा अयन अवधारित हुआ था, परवर्ती ग्रन्थकारोंने उसका संशोधन किया था। शेषोक्त लेखकगण कहते हैं कि, कृत्तिकासे वर्ष आरम्भ होता है। सम्भवतः परिशोधनके समय कृत्तिकाकी अवस्थिति उक्त प्रकारकी ही थी। प्रोफेसर जेकोबी कहते हैं कि, सूर्यसिद्धान्तानुसार मि० ह्विटनी (Mr. Whitney)की गणनासे मालूम होता है कि, ई०से २५०० वर्ष पहले वासन्त विषुवद्दिन कृत्तिका और ग्रीष्मायन मघा संक्रमित था।

ई०से १४।१५ शताब्दी पहलेके ज्योतिषग्रन्थोंमें अयन-निर्धारणके अनेक उल्लेख मिलते हैं। वैदिक ग्रन्थोंमें जिस प्रकारसे अयन अवधारित हुए हैं, सम्भवतः उस समय वैसे ही थे। नक्षत्रमालाके अनुसार गणना करनेसे मालूम होता है कि, ऋग्वेदमें जिस प्रकारके अयनोंका उल्लेख है वे ई०से ४५०० वर्ष पहले निर्णीत हुए थे।

हिन्दू-ज्योतिषका वैशिष्ट्य—हिन्दू-सभ्यताकी शैशव अवस्थामें हिन्दूसाधकगण प्रत्येक ज्योतिष्कको ऐहिक शक्ति विशिष्ट समझते थे। इसी विश्वास पर हिन्दू ज्योतिषकी भित्ति प्रतिष्ठित है। उनकी धारणा थी कि परब्रह्मने प्रत्येक ज्योतिष्कको ऐहिक गुणान्वित करके भेजा है, जिसके द्वारा वे विश्वके सभी कार्योंके नियन्ता बन बैठे हैं। इसलिए यदि ब्रह्मको सम्यक्‌रीतिसे समझना है, तो उनकी गतिका पर्यवेक्षण तथा समय और ऋतुके विभागोंकी गणना करना आवश्यक है। इस तरह प्रथम युगके हिन्दू-ज्योतिषियोंका प्रधान प्रयत्न हुआ—नभोमण्डलके वैचित्र्योंको एक सूत्र, व्याख्या और धर्मानुष्ठानका समय-निर्धारण करना। भारतीय ज्योतिष हिन्दुओंकी निजस्व सम्पत्ति है, किन्तु पाश्चात्यगण इस विद्याको उधार ली हुई बतलाते हैं। अतएव इस विषयमें यहां कुछ आलोचना की जाती है।

सूर्य-सिद्धान्तमें 'मय' नामका उल्लेख रहनेसे बहुतसे लेखकोंमें भ्रमसी फैल गई है।

वेबर साहबका कहना है कि हिन्दुओंका 'मय' ग्रीकोंके 'टलेमय'का (Ptolemæis) संस्कृत अनुवाद मात्र है। और इसीसे उन्होंने अनुमान किया है, कि हिन्दू-ज्योतिष ग्रीक-ज्योतिषका विशेष आभारी वा ऋणी है। हम इस जगह यह सिद्ध करेंगे कि यह धारणा

बिलकुल बेजड़ है। पुराणोंमें बहुत जगह प्रसिद्ध शिल्पी 'मय'का उल्लेख पाया जाता है एवं रामायण और महाभारतके शताधिक स्थानोंमें "मायावी" 'मय'का उल्लेख आया है। इस जगह 'मायावी' शब्दसे एक प्रसिद्ध ज्योतिषीका ही बोध होता है। रामायण और तत्परवर्ती महाभारतके रचनाकालमें टलेमिका आविर्भाव भी नहीं हुआ था। इन युक्तियोंको छोड़ कर यदि तर्कके लिहाजसे यह भी मान लें कि 'हिन्दुओंका, 'मय' ग्रीकों-के टलेमिका संस्कृत अनुवाद है, तो भी हिन्दू ज्योतिषके ऋण स्वीकार वा आभार माननेका कोई कारण नहीं दीखता सूर्यसिद्धान्तमें किसी भी जगह ज्योतिषके आचार्य रूपमें मयका वर्णन नहीं किया गया है, उन्होंने सिर्फ सूर्यसे उपदेशके बहाने ज्योतिषकी शिक्षा ली है। और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि सूर्य हिन्दुओंके देवता है। फलतः वेवर साहबकी बात यदि मान भी ली जाय तो भी हम बिलकुल विपरीत सिद्धान्तमें उपनीत होते हैं। सिवा इसके फिलहाल के (Kaye) साहबने एक निबन्ध लिखा है—(East and West, July 1919) सम्भवतः 'मय' शब्द पारसियोंके 'अहुर मजदा'का अपभ्रंश रूप है। इस विषयमें पूर्वोक्त युक्तिके सिवा यह भी कहा जा सकता है कि 'मय' और 'अहुरमजदा' इन दो शब्दोंमें धातुगत जरा भी मेल नहीं है। जिन्होंने फारसका ज्योतिष देखा है, वे इस बातको अवश्य ही मानेंगे कि, वह सूर्यसिद्धान्तके ज्योतिषभागकी तुलनामें बिलकुल ही ग्रहणयोग्य नहीं। वस्तुतः ऐसी धारणामें विषम भ्रान्तिमूलक मालूम पड़ती है।

हिन्दुओंके ज्योतिषिक सिद्धान्तोंमें ब्रह्म, सौर, सोम और बृहस्पति ये चार ही समधिक आदृत होते थे। अलावा इसके और भी दो सिद्धान्त रचे गये थे, जो रोमक और पौलिशके नामसे परिचित हैं। बहुतोंकी धारणा है कि ये दोनों ग्रीकोंके ज्योतिषशास्त्रका अनुवाद हैं और हिन्दू ज्योतिष पर उनकी छाप लग गई है। परन्तु यह तो रोमक सिद्धान्तके नामसे ही मालूम हो जाता है कि वह किसी ग्रीक वा रोमीय ज्योतिषका अनुवाद है। डा० भाऊदाजीने एक रोमकसिद्धान्तकी हस्तलिपि संग्रह की थी। उसमें स्पष्ट दीख पड़ता है कि रोमक सिद्धान्तकी विचार प्रक्रियाके साथ हिन्दुओंके सिद्धान्तों की विचार पद्धतिका कुछ भी सामञ्जस्य नहीं है; इसमें समय और दिन गणनाके लिये Alexandria को मध्याह्न ग्रहण किया है। संभवतः यह टलेमीके किसी ग्रन्थका सङ्कलन है और सम्पूर्ण रूपसे विदेशियोंसे ग्रहण किया गया है। हिन्दू-ज्योतिषमें इसकी विचार पद्धतिका व्यवहार होना तो दूर रहा, हिन्दुओंके सिद्धान्तोंमें उसका उल्लेख तक नहीं है। Dr Kern का कहना है, कि सम्भवतः षोड़श शताब्दीमें रोमक-सिद्धान्त रचा गया था, क्योंकि बीच बीचमें इसमें बराबर बादशाहका नामोल्लेख है। इसलिए हम निःसन्दिग्धरूपसे यह धारणा कर सकते हैं, कि रोमक सिद्धान्तका हिन्दू ज्योतिष-को उन्नतिसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। किन्तु पौलिश-सिद्धान्तके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। इसकी विचार-प्रक्रियाके साथ हिन्दुओंके प्रचलित ज्योतिष-सिद्धान्तका बहुत कुछ सामञ्जस्य है। परन्तु उसकी सौर और चन्द्रग्रहणगणना सूर्यसिद्धान्त वा भास्करके सिद्धान्त-शिरोमणिकी ग्रहण-गणनाकी तरह उतनी विशुद्ध और अभ्रान्त नहीं है। यूरोपीय विद्वानों की धारणा है कि पौलिश-सिद्धान्त ग्रीक ज्योतिषी पलाश अलेकसन्द्रिसके ग्रन्थसे सङ्कलित किया गया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन कालमें पुलिश नामके एक ज्योतिर्विद् ऋषि भारतवर्षमें विद्यमान थे। नामकी एकताके आधार पर एक साधारण सिद्धान्त कर लेना भी बड़ी भारी भूल है। डा० कार्नने बृहत्संहिताकी भूमिकामें लिखा है—"पलाश अलेकसन्द्रियस और पौलिश एकही व्यक्ति थे, यह अनुमान करनेका हमें कोई भी अधिकार नहीं है। जब कि नाम दोनों स्थलोंमें एक हैं, तब नामका ऐक्य किसी तरह भी युक्तिमें नहीं सम्हाला जा सकता।" अध्यापक योगेशचन्द्र रायने अपनी "भारतका ज्योतिष और ज्योतिषी" नामक पुस्तकमें लिखा है—"पौलिश सिद्धान्त गणित-ज्योतिषका ग्रन्थ है, किन्तु (Paulus Alexandrinus के ग्रन्थने फलित ज्योतिषके विषयमें समधिक आलोचना की है; इसलिये अब इस बातको प्रमाणित करनेके लिए प्रमाण-की जरूरत नहीं कि पौलिश ग्रन्थ भारतका निजस्व है,

किसी विदेशी ग्रन्थका अनुवाद नहीं है।"

हिन्दू-ज्योतिषके द्वितीय भागमें अर्थात् सिद्धान्तके युगमें गणित ज्योतिषकी विशेष उन्नति हुई थी। तत्कालीन ज्योतिषकी विचारपद्धति इतनी अभ्रान्त और विज्ञान-सम्मत है कि इस वैज्ञानिक युगके ज्योतिर्विद्गण भी रचयिता कह कर उनको आत्मपरिचय देनेमें गौरव समझते हैं। उस समयके सिद्धान्तोंमें ब्रह्मसिद्धान्त, सूर्यसिद्धान्त और सिद्धान्त शिरोमणि ये तीन सिद्धान्त ही आधुनिक हिन्दू-ज्योतिषियोंकी आदरकी वस्तु हैं। इनके रचनाकालके विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंमें मतभेद पाया जाता है।

ज्योतिष-संसारमें आर्यभटके आविर्भावसे हिन्दुओंके गणित ज्योतिषके एक नये युगकी सूचना हुई है। वस्तुतः ब्रह्मगुप्त और अन्यान्य परवर्ती लेखकोंने बहुत जगह अपने मतके परिपोषणके लिये आर्यभटकी रचना उद्धृत की है। ब्रह्मगुप्तकी रचनासे मालूम होता है कि भारतमें सबसे पहले आर्यभटने ही यह स्थिर किया था कि, पृथ्वीके परिभ्रमणके द्वारा नक्षत्र और ग्रहोंका उदयास्त होता है। ब्रह्मगुप्तके टीकाकार पृथूदक स्वामी द्वारा उद्धृत निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट मालूम होता है कि आर्यभटने पृथ्वीकी गति निरूपित की थी।

"भूपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम्॥"

नक्षत्रमण्डल स्थिर है, केवल पृथिवीकी आवृत्ति वा परिभ्रमण द्वारा ग्रहनक्षत्रका प्रात्यहिक उदयास्त होता है। पाश्चात्य भूमिखण्डमें कोपरनिकासने ही सबसे पहले पृथिवीकी गतिकी विषयमें स्पष्ट भाषामें प्रकट किया था—पिथागोरसने इसका सङ्केतमात्र किया था। कोपरनिकसका आविर्भाव १५वीं शताब्दीके शेषभागमें हुआ था। किन्तु आर्यभटके 'आर्यसिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें इसका उल्लेख है। ४७५ ई०में आर्यभट जीवित थे। वस्तुतः यही अनुमान सङ्गत प्रतीत होता है कि हिन्दुओंका यह सिद्धान्तप्रस्रवण ग्रीकदेशसे अन्तःसलिल-प्रवाहसे प्रवाहित हो कर यूरोपमें वेगवती स्रोतस्वतीरूपमें परिणत हुआ है।

आर्यभटके बाद ब्रह्मगुप्तका आविर्भाव ज्योतिषशास्त्रके इतिहासमें विशेष उल्लेखयोग्य घटना है। ईसाकी ६ठी शताब्दीमें ब्रह्मगुप्त मौजूद थे। पृथिवी किसी आधार पर क्यों नहीं है और क्यों वह गोलाकार हो कर भी पृथिवीवासियोंको समतल मालूम पड़ती है; इस बातका सबसे पहले आर्यभट और उनके बाद ब्रह्मगुप्तने युक्ति द्वारा समझानेका प्रयत्न किया था। परन्तु ग्रीक ज्योतिषमें इसका कुछ भी वर्णन नहीं है। ब्रह्मगुप्तका कहना है, कि "पृथिवी व्योममण्डलमें अपनी शक्तिके बलसे निराधार अवस्थित है। कारण, पृथिवीका यदि आधार होता, तो उस आधारका भी आधार होना जरूरी है; इस तरह केवल आधारके बाद आधार ही चलता रहेगा उसका अन्त नहीं हो सकता। आखिरको यदि स्वशक्ति-बलसे अवस्थित मान कर आधारके स्वभावकी ही कल्पना करनी है, तो पहलेसे ही क्यों न की जाय? क्यों न पृथिवीको निराधार माना जाय? पृथिवी अपनी आकर्षणशक्तिकी सहायतासे निकटवर्ती वस्तुस्तरमें अवस्थित गुरु द्रव्यको अपने केन्द्रकी ओर आकर्षित करती है और इस कारण वह गिरती हुई मालूम पड़ती है। किन्तु अनन्त व्योममण्डलके मध्य वह कहां जा कर गिरेगी? शून्यता सभी दिशाओंमें समान और अनन्त है। पृथिवी यदि गिरती ही रहती, तो पृथिवीसे ऊपरकी ओर फेंकी हुई वस्तु (पत्थर आदि) प्रवर्त्तक वेग (Projective force)-के समाप्त हो जाने पर, फिर पृथिवी पर नहीं गिरती। कारण, दोनों ही नीचेकी तरफ गिर रही हैं। इसमें यह नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तरखण्डकी गति अधिक होनेसे वह पृथिवी पर गिर पड़ता है; क्योंकि पृथिवीका गुरुत्व बहुत है और इसीलिए उसकी गति भी बहुत तेज है। आर्यभटने एक स्थान पर लिखा है—

'यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्त्वैः जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः॥"

आर्यभटने इस बातका भी निर्देश किया है कि पृथिवी क्यों समतल प्रतीत होती है। जैसे—

"समो यतः स्यात्परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरस्य तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा॥"

पृथिवी बहुत बड़ी है, और मनुष्य उसकी तुलनामें

अत्यन्त क्षुद्र है ; इसलिए पृथिवीका जितना अंश उसके दृष्टिगोचर होता है, वह सम्पूर्ण समतल मालूम होने लगता है।

वराहमिहिर ब्रह्मगुप्तके समसामयिक थे—ईसाकी छठी शताब्दीमें विद्यमान थे। इन्होंने मौलिक गवेषणा करके प्रतिपत्ति प्राप्त नहीं की थी, बल्कि पञ्चसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता आदि सङ्कलन ग्रन्थोंने ही उनके नामको चिरस्मरणीय बना रक्खा है। उक्त बृहत्संहिताके एक श्लोकका उल्लेख करते हुए Kaye आदि पाश्चात्य लेखकोंने स्थिर किया है, कि वराह भी इस बातको मानते थे कि हिन्दुओंने ग्रीकोंसे अनेक विषयोंमें ऋण किया था। Kaye साहबने उक्त श्लोकका इस तरह अनुवाद किया है—"ग्रीक लोग सचमुच ही विदेशी, किन्तु ज्योतिषशास्त्रमें विशेष व्युत्पन्न हैं, इसीलिये उनकी ऋषिके समान पूजा होती है।" वस्तुतः वराह-लिखित श्लोक इस प्रकार है—

"म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥"

यह श्लोक बृहत्संहिताके फलितज्योतिष-विभागमें है और उसका "दैवज्ञ" अर्थात् फलितज्योतिर्वेत्ता इस शब्दके साथ विशेष सम्पर्क है—इस बात पर पाश्चात्य विद्वानोंका बिलकुल ध्यान ही नहीं गया है। पण्डित सुधाकर द्विवेदी द्वारा सङ्कलित बृहत्संहिताको देखनेसे मालूम होता है, कि तमाम ग्रन्थमें सोलह बार यवन-(ग्रीक) का नाम लिखा गया है, एवं सर्वत्र ही लग्न-शुद्धि और वारशुद्धि गणनाकी परिपोषकस्वरूप हैं ; कहीं भी गणित-ज्योतिषकी परिपोषक रूपमें उनका वर्णन नहीं है। इन सब बातोंसे मालूम होता है कि तत्कालीन विदेशियोंका गणित ज्योतिष-विषयमें ज्ञान अल्प ही था, जिसका हिन्दू ज्योतिर्विदोंमें आदर न था।

हिन्दू-ज्योतिषकी और एक विशिष्टता यह है कि नीचोच्चवृत्तकी सहायतासे ग्रहणकी गति स्थिर करता है। Kaye आदि कुछ विद्वानोंकी धारणा है कि यह भी हिन्दुओंने ग्रीकोंसे लिया है। वस्तुतः सूर्यसिद्धान्तके प्रथम अध्यायमें ग्रह-गतिके सम्बन्धमें विशेष विवरण पाया जाता है ; एवं प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी रचनामें उसका उल्लेख रहनेके कारण यह अनुमान किया जाता है कि ग्रह गतिका निर्देश सूर्यसिद्धान्तके प्रथम संस्करणमें सन्निविष्ट था। साथ ही यह भी निश्चय किया जाता है कि उसकी रचना ग्रीक-संस्रवसे पहले ही हुई है, बादमें नहीं। उन श्लोकोंको हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"पश्चाद् व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैः सततं ग्रहाः।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः॥
प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः।
परिणाहवशाद् भिन्ना तद्वशाद् भानि भुञ्जते॥
शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन महताल्पगः।
तेषां तु परिवर्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः॥" (१।२५-२७)

अर्थात् ग्रहगण प्रवह-वायु द्वारा परिचालित हो कर, अपने अपने कक्षके ऊपर नक्षत्रोंके साथ पूर्वकी ओर निरन्तर समान वेगसे गमन करते समय गतिमें नक्षत्रोंसे पराजित हुआ करते हैं। तात्पर्य यह कि नक्षत्रोंकी पश्चिम-वाहिनी गति ग्रह-गतिकी अपेक्षा तेज है। इसीलिए ग्रहोंको पूर्वकी ओर हटते देखा जाता है। कक्षाकी न्यूनाधिकताके कारण ग्रहोंकी प्रात्यहिक गति समान नहीं होती। भगण द्वारा त्रैराशिक करनेसे उक्त गतिकी न्यूनाधिकता मालूम हो सकती है। शीघ्रगामी ग्रह अल्प समयमें और अल्पगामी ग्रह अधिक समयमें अपनी कक्षामें एक बार भ्रमण करते हैं। इस तरह ग्रह असमान गतिमें ही राशियोंका भोग किया करते हैं। ग्रहोंके उस परिक्रमणका नाम है भगण ; अर्थात् एक नक्षत्रके शेषसे ले कर पुनः उस नक्षत्रके शेष पर्यन्त एक बार भ्रमण करनेसे एक भगण होता है।

हिन्दू और ग्रीक दोनों सम्प्रदायके ज्योतिर्विदोंने ग्रह-गतिको नीचोच्चवृत्त द्वारा समझानेकी कोशिश की है। आर्यभटने स्थिर किया था, कि नीचोच्चवृत्तका आकार प्रायः वृत्ताभासके समान है। ग्रीकदेशमें पहले पहल Apollonius ने इस तत्त्वकी उद्भावना की थी। उन्होंने समझ लिया कि पृथिवीके केन्द्रको केन्द्र बना कर एक वृत्त अङ्कित किया जाता है। यह उस वृत्तकी परिधि पर स्थित एक विन्दुको केन्द्र बना कर परिभ्रमण करते समय और एक वृत्त अङ्कित करता है। परन्तु हिन्दुओंमें

ग्रह-गति निर्धारण करनेके दो नियम थे। एक नियम यद्यपि Apollonius के नीचोच्चवृत्तके समान था, तथापि प्रभेद भी बहुत था। दूसरा नियम सम्पूर्ण भिन्न प्रकृतिका था। पहले नियमकी विशिष्टता यह थी कि, हिन्दुओंने नीचोच्चवृत्तकी परिधिको परिवर्तनशील मान लिया था।

हिन्दू-ज्योतिषकी और एक विशिष्टता है—राशिचक्रका द्वादश राशियोंमें विभाग। Kaye साहबने इस जगह भी बिना किसी युक्तिका दिग्दर्शन कराये, एक बारगी यह सिद्धान्त कर लिया है कि "हिन्दू-ज्योतिर्विदोंने यह ग्रीकोंसे सीखा है।" ग्रहण-गणनामें क्रान्तिवृत्त (Ecliptic) वा सूर्यकक्षा और राशिचक्र-(Zodiac) के विभागकी विशेष आवश्यकता है। हिन्दुओंमें गणना करनेकी दो विभिन्न पद्धतियां थीं—एक चान्द्र-तिथिके द्वारा होती थी और दूसरी राशिकी सहायतासे। हाँ इतना अवश्य है कि पहली पद्धति दूसरीसे बहुत पहले आविष्कृत हुई थी। क्योंकि तारकापुञ्जमें चन्द्रके दैनिक अवस्थान वा गतिका, हम प्रत्यक्ष पर्यवेक्षणके द्वारा निर्णय कर सकते हैं। किन्तु दैनिक गतिके द्वारा होनेवाली सूर्यकी तारकापुञ्जमें नियमित अवस्थितिका निर्णय परोक्ष प्रमाण द्वारा ही हो सकता है। हेतु यह कि, सूर्यके प्रखर आलोकके कारण उसके निकटवर्ती तारकापुञ्ज भी दिखलाई नहीं दे सकते। किन्तु तो भी विविध बाह्य-शक्तिपुञ्जके आकर्षणसे चन्द्रकी गति सूर्यकी गतिकी तरह एक शृङ्खलाके अधीन नहीं है। परन्तु हमारी दैनिक अभिज्ञताके साथ, सूर्यकी गतिका निर्धारण करना बिलकुल संश्लिष्ट है। इसलिए वैज्ञानिक तथ्यके आविष्कारके लिए राशिचक्र द्वारा ज्योतिष गणना नितान्त अनिवार्य होने लगता है, तथा पूर्वोक्त तिथिविभाग क्रमशः प्राचीन पद्धतिमें परिगणित होने लगा। हिन्दू लोग चन्द्रकी दैनिक गतिका निर्देश करनेके लिए क्रान्तिवृत्तको पहले २८ भागोंमें, फिर २७ भागोंमें विभक्त करते हैं; एवं प्रत्येक विभागको सूचित करनेके लिए एक एक तारकापुञ्जका निर्णय करते हैं। उनका यह विभाग ही अधिकतर विज्ञान-सम्मत है; क्योंकि इसमें एक एक विभागका परिमाण चन्द्रकी दैनिक गतिके प्रायः समान है, तथा एक नाक्षत्रिक आवर्त्तनके समय (mean sidereal revolution). अर्थात् चन्द्रकी गति एक तारकापुञ्जसे लगा कर चन्द्रको उस तारकापुञ्जमें लौटनेमें २७⅓ दिन लगते हैं। यहाँ भग्नांशको बाद देनेसे २८ दिनकी जगह २७ दिन ही होते हैं। इन २७ चान्द्रविभागोंको सूचित करनेके लिए हिन्दुओंने २७ तारकापुञ्जोंका निर्णय किया था। प्रति पुञ्जके उज्ज्वलतम नक्षत्रको वे योगतारा कहते थे और समग्र विभागको नक्षत्र। वह योगतारा प्रति विभागके आदिप्रान्तकी सूचना करता था। इस तरह प्रत्येक विभाग, विभागीय नक्षत्रोंकी तरह निर्दिष्ट स्थानको अधिकार किये रहता था और उस निर्दिष्ट विभागोंकी सहायतासे चन्द्रकी दैनिक गतिका निर्णय किया जाता था। ह्वायट साहबका कहना है कि पहले चीनी ज्योतिषियोंने सिएन (Sien) के नामसे क्रान्तिवृत्तके विभाग आविष्कृत किये थे। पीछे उसकी सहायतासे हिन्दुओंके नक्षत्र और अरबियोंकी मञ्जिलेका आविष्कार हुआ है। परन्तु अध्यापक वेबर साहबने यह प्रमाणित कर दिया है, कि चीनवासियोंका सिएन और अरबियोंकी मञ्जिल हिन्दू ज्योतिषके परवर्ती कालके विभागोंसे गृहीत हुई हैं। इस विभागमें उपनीत होनेसे पहले हिन्दू-ज्योतिषको विविध स्तरोंका अतिक्रम करना पड़ता है। इससे उन्होंने कहा है, कि चन्द्रके गति-निर्णयके लिए तिथि-विभागका आविष्कार हिन्दुओंकी ही गवेषणाका फल है। बादमें अरबवासियोंने इसीके अनुकरण पर अपनी मञ्जिल आविष्कृत की है किन्तु इस विषयमें अध्यापक वेबरका यह कहना है, कि बेबिलनदेशके ज्योतिषियोंने पहले पहल इस विभाग प्रणालीका आविष्कार किया था। किन्तु यह सिद्धान्त विज्ञानसम्मत नहीं है; क्योंकि बेबिलनदेशके ज्योतिर्विद् सूर्यकी दैनिकगतिके साथ सम्बन्ध रख कर उसका विभाग करते हैं। परन्तु हिन्दुओंका प्रथम विभाग चन्द्रकी दैनिक गति पर निर्भर है, और इसके बाद हिन्दुओंके राशिचक्रका विभाग आविष्कृत हुआ था।

परवर्ती युगके ज्योतिर्विदोंकी रचनाओंसे हम जान सकते हैं, कि प्राचीन हिन्दू ज्योतिषियोंकी विषुव-बिन्दु-

इयको अयनगति मालूम थी और विज्ञानसम्मत रूपमें ही उनके अयनांशोंकी मीमांसा की गई थी। सूर्यका गतिमार्ग वृत्ताकार है और व्योममण्डलमें उसके तल-भागने निर्दिष्ट स्थान अधिकार कर लिया है; इसलिए व्योमके केन्द्रको भेद कर रविकक्षाके ऊपर जो लम्ब (Perpendicular) स्थित है, वह निश्चल है पृथिवीका अक्ष (axis) इस लम्ब-रेखाके चारों ओर आवर्त्तित होता है और २६००० वर्षमें एक आवर्तन पूरा होता है। इस दोलनको गणनाको अयनांश गणना कहते हैं। इस प्रकारका ध्रुवकक्ष (Polar axis) नभोमण्डल भेद कर जिस विन्दुमें जाता है, वह विन्दु क्रमशः व्योममें एक क्षुद्र वृत्त बना लेता है और उस वृत्त द्वारा चिह्नित पथमें जो जो तारे रहते हैं वे क्रमशः ध्रुव तारा नाम पाते हैं। जिस समय यह क्रिया होती है, उस समय निरक्षवृत्त और क्रान्तिवृत्तकी छेदक रेखा जो विषुवविन्दुमें अवस्थान करते समय सूर्यके केन्द्रको भेद कर जाती है, भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न नक्षत्रोंकी सूचना देती है। इसे ही यदि कुछ सरलतासे कहा जाय तो यह कहना पड़ेगा, कि भिन्न भिन्न आवर्त्तनमें सूर्य विषुव-विन्दुमें विभिन्न नक्षत्रोंको सूचना करता है। सूर्य-सिद्धान्तके तृतीय अध्यायमें इसकी आलोचना की गई है, यथा—

"त्रिंशत् कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद् भूरि नैर्भक्तात् द्युगणाद् ·दवाप्यते॥
तद्दोस्त्रिघ्नादशाप्तांशाः विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संस्कृताद् ग्रहात् क्रान्तिच्छा[illegible]चरदलादिकम्॥
स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेद् अयने विषुवद्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात् करणे गते॥
अन्तरांशैरथावृत्य पश्चाच्छेषैस्तमोधिके।"

अर्थात् जिस समय सूर्य दोनों विषुवविन्दुओं और अयनविन्दुमें रहता है, उस समय यदि सूर्यका निरीक्षण किया जाय तो इस नक्षत्रपुञ्जके अयनांशको गति दृष्टिगोचर हो सकती है। गणना द्वारा प्राप्त सूर्यका स्पष्ट स्थान छायागत अर्कस्थानसे जितने अंशोंमें न्यून होगा, नक्षत्रपुञ्ज उतना ही पूर्वको ओर होगा तथा जितने अंशोंमें अधिक होगा उतना ही पश्चिमको ओर होगा।

हिन्दू ज्योतिषकी और एक उल्लेखयोग्य विशिष्टता है—उसकी लम्बन-गणना (Calculation of parallax) Kaye आदि कुछ पाश्चात्य लेखकोंकी धारणा है, कि हिन्दू ज्योतिषियोंने ग्रीकोंसे उसकी शिक्षा पाई है। परन्तु यह तो मालूम ही है कि अति प्राचीनकालमें भी हिन्दुओंको ग्रहण-गणनाके सभी तथ्य ज्ञात थे तथा उन्होंने चन्द्र और सौरग्रहणका आरम्भ, मध्य एवं समाप्तिका समय निर्णीत करनेके लिए विविध उपाय आविष्कृत किये थे। अवश्य ही उनको इतनी विशुद्धिके लिए अक्षांश और भुजांशको लम्बन गणनाकी आवश्यकता होती थी। वस्तुतः इस बातका विश्वास होना स्वाभाविक है, कि वैदिक युगमें भी यागयज्ञके अनुष्ठानके लिए ग्रह गणनामें हिन्दू लोग सूर्यका लम्बन निर्द्धारण करते थे। भास्कराचार्यने अपने 'सिद्धान्तशिरोमणि' ग्रन्थमें लम्बन-गणनाके विषयमें प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी रचनामेंसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं; यथा—

"पर्वान्तेऽर्के नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्
भूमध्यस्थेन तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।
तादृक् सूत्राद्धिमरुचिरधोलम्बितोऽर्के ग्रहेऽतः।
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्॥
समफलकाले भूभा लगन्ति मृगांके यतस्तया।
म्लानं सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्नलम्बनावती॥"
(सिद्धान्तशिरो० ८।२-३)

सूर्य और चन्द्र दोनोंके ही वृत्ताकार अवयव हैं। सूर्यका आकार चन्द्रकी अपेक्षा बहुत बड़ा है। इसलिए जब सूर्य चन्द्रके अन्तरालमें आता है, तब अतिदूरवर्ती पृथिवीके केन्द्रस्थित दर्शकोंकी दृष्टिमें सूर्यग्रहण होने पर भी, पार्श्ववर्ती स्थानके दर्शकोंको ग्रहणका कुछ भी उद्देश नहीं मालूम पड़ता। इसका कारण यह है कि उस स्थानके दर्शकोंकी दृष्टिरेखा सूर्य और चन्द्रके केन्द्रको भेद कर नहीं जाती और इसीलिये सूर्यग्रहणमें अक्षांश और भुजांशके लम्बन गणनाकी आवश्यकता होती है। जब सूर्य और चन्द्र पड़भ्यन्तरमें रहता है, तब पृथिवीकी छाया चन्द्रको सम्पूर्णतया आवृत कर डालती और चन्द्रग्रहण पृथिवीके सभी स्थानोंसे समान दीख पड़ता है। इसी कारण चन्द्रग्रहणमें लम्बनगणनाकी आवश्यकता नहीं रहती।

ये ही हिन्दू ज्योतिषको विशेषताएँ हैं। हिन्दू-ज्योतिषको आलोचना करनेसे यह बिना स्वीकार किये रहा नहीं जा सकता कि, ज्योतिषशास्त्रमें हिन्दू-ज्योतिष विशेष उच्चस्थान प्राप्त करनेको स्पर्द्धा रखता है।

प्राचीन यवनियोंमें ग्रीक ही अन्य किसी शास्त्रका अंगभूत न कर के पृथक्‌रूपसे ज्योतिषशास्त्रका अनुशीलन करते थे। इनकी अनुसन्धित्सा और प्रत्यक्ष पर्यवेक्षणादिके द्वारा बहुतसे तत्त्वोंका आविष्कार हुआ है।

हिन्दू, चीन कालदीय और मिसरीय सभी अपनेको ज्योतिर्विद्याके आविष्कर्त्ता समझ गौरव अनुभव करते हैं। हर एकके पास अपने पक्ष-समर्थनके लिए बहुतसी युक्तियां मौजूद हैं। मक्षमूलर, हुइटनि आदि पाश्चात्य विद्वानोंने स्थिर किया है कि हिन्दू-ज्योतिष अति प्राचीन होने पर भी हिन्दुओंने ग्रीक यवनोंसे ज्योतिष-विषयक बहुत कुछ सहायता पा कर उन्नति कर पाई थी। इसी लिए हिन्दूज्योतिषमें आकोकेर, तावुरी आदि ग्रीक शब्द देखनेमें आते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् मि० वर्गेसका कहना है कि, सिर्फ शब्दोंको देख कर हिन्दू ज्योतिषको ग्रीकज्योतिषमूलक नहीं कहा जा सकता, सम्भव वे शब्द हिन्दू ज्योतिषशास्त्रोंसे ही ग्रीकज्योतिष-शास्त्रोंमें गृहीत हुए हों। आनुषङ्गिक प्रमाण द्वारा वल्कि यह कहा जा सकता है कि, भारतीय ज्योतिर्विद्‌गण शिक्षक थे और ग्रीकज्योतिर्विद्‌गण उनके छात्र। (Burgess Surya Siddhanta) कोई कोई ऐसा अनुमान करते हैं कि, हिन्दुओंने वाबिलनीयोंसे नक्षत्रमण्डलका विषय जाना था। इसके उत्तरमें प्रो० थिवो लिखते हैं कि, वाबिलनीय पहले सिर्फ २४ नक्षत्रोंका जानते थे, किन्तु भारतीय ज्योतिर्विद्‌गण बहुकालसे ही २७।२८ नक्षत्रोंका विषय जानते थे, इसके बहुत प्रमाण मिलते हैं। अतएव हिन्दुओंको नक्षत्रमण्डलका ज्ञान वाबिलनीयोंसे नहीं हुआ। हायनरत्नप्रणेता विख्यात ज्योतिर्विद् वल भद्रके मतसे—यवनज्योतिषसे, जो कि फारसी भाषामें लिखा हुआ है आर्यज्योतिषियोंने तातजादि कुछ विषय संग्रह किया था। हमारी समझसे हिन्दू ज्योतिष-शास्त्रोंमें जिन यवनोंके मत उद्धृत किये गये हैं, उनको ग्रीक ज्योतिर्विद् नहीं माना जा सकता। सभी पुराणोंमें भारतको पश्चिम सीमा पर यवनोंको लिखा है। पश्चिमप्रान्तवासी म्लेच्छ ग्रीक-अभ्युदयसे बहुत पहलेसे ही हिन्दुओं द्वारा यवन कहलाते थे; सम्भवतः पश्चिम-प्रान्तवासी किसी यवनके ग्रन्थसे ताजकादिके विषयमें हिन्दुओंने कुछ सहायता ली थी।

चीनोंका कहना है—उनकी ज्योतिर्विषयक घटनावलीको तालिका ईसासे २८५७ वर्ष पहलेकी है। किन्तु उस तालिकामें कब कब सूर्यग्रहण और धूमकेतुका उदय होगा, सिर्फ इतना ही वर्णन है; ग्रहणके दिनके सिवा सूक्ष्म-रूपसे समय निर्दिष्ट नहीं किया गया है। चीनके बाद शाह ग्रहण-गणनाके लिए दैवज्ञ नियुक्त रखते थे; ग्रहणका दिन नहीं बता सकनेसे उनको फांसीका हुक्म दिया जाता था। उनमें ऐसा विश्वास था कि एक दैत्य सूर्य और चंद्रमण्डलको ग्रास करता है, इससे ग्रहण पड़ता है; इस लिए दैत्यको भय दिखा कर सूर्य और चन्द्रके ग्रास करनेसे उसे विरत करनेके लिए चीन लोग ग्रहणके समय भयानक चीत्कार करते और ढोल, थाली आदि बजाते थे। चीनों द्वारा वर्णित उन ग्रहणोंमेंसे बहुतोंको आधुनिक ज्योतिर्विदोंने गणना कर मिलाया है; किन्तु टलेमिके पूर्ववर्ती सिर्फ एक ग्रहणके सिवा और कोई भी नहीं मिला है। कुछ भी हो, बहु पूर्वकालसे चीनोंको ग्रहणके १८ वर्षका कालावर्त मालूम था और ३६५ दिनका वे वर्ष मानते थे। ग्रीसमें ग्रहणके उक्त कालावर्तका प्रचार मि० मिटन (Meton) ने किया था; तबसे वह मिटनिक कालावर्त कहलाता है। कहा जाता है कि, ईसासे प्रायः ११ शताब्दी पहले वे शङ्कुच्छायाके द्वारा क्रान्तिपातका निरूपण करते थे। चीनोंका कहना है कि, ईसासे २२१ वर्ष पहले सम्राट् छिंछि हंटिने ज्योतिर्विषयक समस्त ग्रन्थोंको जला कर भस्म कर दिया जिससे प्राचीन पण्डितों द्वारा विरचित बहुतसे उत्कृष्ट ज्योतिषग्रन्थ और गणना-नियमादि विलुप्त हो गये। वे ईसाको ४र्थ शताब्दी तक अयनचलन (Precession of the equinoxes)-का विषय कुछ नहीं जानते थे; किन्तु बहुत पहलेसे ही ग्रहणको गतिका विषय जानते थे।

प्राचीन कालदीयगण प्रत्यक्ष देख कर ज्योतिर्विद्याकी आलोचना और पर्यवेक्षण करते थे तथा पूर्ववर्ती आचार्यों

द्वारा प्रणीत नियमावलीका अनुसरण कर ज्योतिष्कोंके उदयास्त और ग्रहणादिको गणना करते थे। ग्रीकोंके वाबिलन नगर अधिकार करने पर आरिष्टटल अलेकजन्दरके आदेशानुसार वहांसे १९०३ वर्षको प्रत्यक्षीकृत ग्रहणोंको एक तालिका ग्रीसको भेजी थो। किन्तु इस वर्णनाको बहुतसे लोग अत्युक्ति बताते हैं। टलेमीने इससे ६ ग्रहणोंका विषय लिया है। सबसे प्राचीन ई०से ७२० वर्ष पहलेका है। इन ग्रन्थोंमें ग्रहण समयके घण्टेमात्र निर्दिष्ट हैं और सूर्यादिके ग्रस्तांश के पद पर्यन्त स्थूलरूपसे उल्लिखित हैं। इन ग्रहणोंको देख कर हैलिने चन्द्रकी गतिको शीघ्रता प्रतिपादन की अर्थात् यह प्रमाणित किया कि, चन्द्र पहले जिस वेगसे पृथिवीके चारों तरफ आवर्तित होता था अब उससे और भी शीघ्रतासे भ्रमण करता है। काल्दीयोंके सूक्ष्म पर्यवेक्षणका और एक प्रमाण मिलता है। ये ६४८५¹⁄₃ दिनका एक कालावर्त मानते थे। उस समय २२७ चान्द्रमास हुए तथा ग्रहणको संख्या और ग्रस्तांशके परिमाणादि प्रायः अनुरूप हुए थे। ये जल घड़ीके द्वारा समय शङ्कुच्छाय द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा अर्द्धचन्द्राकृति सूर्य घड़ीके द्वारा गगनमण्डलमें सूर्यके अवस्थानका निर्णय करते थे। बहुतसे यूरोपीय विद्वानोंका विश्वास है कि, काल्दीयोंने हो सबसे पहले राशिचक्रका आविष्कार और दिनको बारह समान भागोंमें विभक्त किया है।

प्रवाद है कि, ग्रीकोंने मिसरोंसे ज्योतिर्विद्या सोखो थो। किन्तु प्राचीन मिसरीय ज्योतिष उच्च कोटिका था, ऐसा प्रमाणित नहीं होता। कहा जाता है कि बुध और शुक्र-ग्रह सूर्यके चारों तरफ घूमते हैं, इस बातको ये जानते थे। किन्तु उक्त वर्णनका कोई विश्वासयोग्य प्रमाण नहीं है।

इनके कई एक पिरामिड ऐसे सूक्ष्मभावसे उत्तर दक्षिणको तरफ बने हुए हैं, जिससे बहुतोंको अनुमान होता है कि, वे ज्योतिष्कमण्डलके पर्यवेक्षणके लिए हो बनाये गये थे। शङ्कु भी हो, किस तरह छाया माप कर पिरामिडको उच्चताका निर्णय किया जाता है, यह थेलस ने पहले इनको सिखाया था। मिसरीयगण इनको कहते हैं कि, सूर्य दो बार पश्चिमको तरफ उदित हुआ था। इससे प्रमाणित होता है कि, मिसरीय ज्योतिष अति अकर्मण्य और होनावस्थ था।

वास्तवमें ग्रोक हो पाश्चात्य ज्योतिर्विद्याका आविष्कर्ता है। ईसाके ६४० वर्ष पहले थेल्स (Thales)ने ग्रीकोंमें ज्योतिर्विद्याका प्रचार किया था इन्होंने ग्रीकोंमें सबसे पहले पृथिवीका गोलत्व प्रतिपादन किया था और ग्रोकनाविकोंको ध्रुवताराके निकटवर्ती क्षुद्र भल्लुक (Ursa Minor) नक्षत्रपुञ्ज देखा कर उत्तर दिशाका निर्णय करनेको शिक्षा दो थो। किन्तु थेलसके बहुतसे मत असङ्गत हैं, उनमेंसे एक यह है कि, इन्होंने पृथिवीको जगत्का केन्द्र और नक्षत्रोंको प्रज्वलित अग्नि बतलाया है।

थेलसके परवर्ती ज्योतिर्विदोंके कई एक मतोंका आधुनिक मतसे सादृश्य पाया जाता है।

अनेक्सिमण्डस (Anaximandis) अपने मेरुदण्डके ऊपर पृथिवीके आह्निक आवर्तनसे परिचित थे। चन्द्र सूर्यालोकसे दोप्त है यह भी उन्हें मालूम था। बहुतोंका कहना है कि, ये विराट् ब्रह्माण्डमें सैकड़ों पृथिवीका अस्तित्व मानते थे और उन्हें चन्द्रमण्डलमें नदी-पर्वत-गढ़ादि हैं, ऐसा विश्वास था। इनके परवर्ती ग्रीक-ज्योतिर्विदोंमेंसे पिथागोरास प्रधान थे। इन्होंने प्रमाणित किया था कि, सूर्यमण्डल सौरजगत्के केन्द्रमें अवस्थित है और पृथिवी तथा अन्यान्य ग्रहगण इसके चारों ओर परिभ्रमण करते हैं। इन्होंने सबसे पहले सबको यह समझाया था कि, सान्ध्यतारा और शुक्रतारा यथार्थमें एक ही ग्रह हैं। किन्तु परवर्ती ज्योतिर्विदोंने इनके मतको नहीं माना था। आखिर कोपार्निकास (Coparnicus)-ने उक्त मतका विशदरूपसे समर्थन किया था।

पिथागोरासके प्राय दो शताब्दी बाद अलेकजन्दरके समकालवर्ती ज्योतिर्विदोंने जन्मग्रहण किया। इस समयमें जितने ज्योतिर्विद् प्रादुर्भूत हुए थे, उनमेंसे मिटन (Meton)ने (ईसासे ४३२ वर्ष पहले) स्वनामख्यात कालावर्त्तका प्रचार, इउडोक्सने ग्रीसमें ३६५ दिनमें वर्ष-गणना प्रचलित तथा सिराक्यूज-निवासी निकेटास (Nicetas)ने मेरुदण्ड पर पृथिवीके आह्निक आवर्त्तन स्थिर किया था।

विद्योत्साही टलेमियोंकी वदान्यतासे अलेकजन्द्रिया नगरमें ज्योतिर्विद्याकी बहुत कुछ उन्नति हुई थी। आज तक ज्योतिर्विद्याविषयक तथ्य प्रखरबुद्धि व्यक्तियोंकी उच्चकल्पनासे उत्पन्न माना जाता था, आपातदृष्टिके विरुद्धभावापन्न होनेसे लोग सहजमें उन पर विश्वास न करते थे। अलेकजन्द्रियाके ज्योतिर्विदोंने बहुतर पर्यवेक्षण द्वारा सौरजगत्के विषयको जाननेके लिए चेष्टा की थी।

इसी समय स्थिर नक्षत्रोंका अवस्थान, ग्रहोंकी कक्षा तथा त्रिकोणमितिमूलक यन्त्र आदिकी सहायतासे तारा आदिका कौणिक दूरत्व अवधारण किया गया था। उक्त विद्वानोंने पृथिवीसे सूर्यमण्डलका दूरत्व और पृथिवीके परिमाण निर्णय करनेकी चेष्टा की थी।

इन ज्योतिर्विदोंमेंसे टिमोकारिस (Timocharis) और अरिष्टाइलस (Aristyllus) जो गणना कर गये हैं, उसको देख कर परवर्ति कालमें हिपार्कसने क्रान्तिपातगति (Precession of the equinoxes) का निर्णय किया था। ओटोलिकस् (Autolycus) प्रणीत ज्योतिर्विद्याविषयक ग्रन्थ ग्रीक भाषामें सबसे प्राचीन है।

इनके बाद पूर्वोक्त विद्वानोंसे भी श्रेष्ठ ज्योतिर्विद् हिपार्कस (Hipparchus) का जन्म हुआ (ईसासे १६०-१२५ वर्ष पहले) ये गणितमें व्युत्पन्न थे और युक्ति उद्भावन करते और स्वयं ज्योतिषिकी घटना देखते थे। इन्होंने प्रायः १०८१ तारोंको अवस्थान निर्देशक एक तालिका बनाई; वही तालिका प्राचीनतम और विश्वासयोग्य है। हिपार्कसने अयनचलन आविष्कार और पूर्वतन ज्योतिर्विदोंकी अपेक्षा सूक्ष्मरूपसे सूर्यकी गतिकी कुल ह्रास-वृद्धि तथा सौ वर्षका परिमाणका निरूपण किया था। इन्होंने चन्द्रको गतिको ह्रासवृद्धि और उसके उत्केन्द्रत्व, मन्दफल और चक्रकक्षाकी वक्रताका निर्णय किया है।

इनके बाद प्राय दो सौ वर्ष पीछे अलेकजन्द्रिया नगरमें टलेमीने जन्मग्रहण (ईसासे १३०-१५० वर्ष पहले) किया। ये एक ज्योतिर्वेत्ता, गायक, गणितज्ञ और भौगोलिक विद्वान् थे। इनके आविष्कारोंमें चन्द्रका परिलम्बन (Libration of the Moon) प्रधान है। आलोकका वक्रीभवन इनका आविष्कार है। इन्होंने तरह तरहके यान्त्रिक हेत्वाद द्वारा पृथिवीकी गतिको अस्वीकार किया है। ग्रहोंको गतिके सम्बन्धमें इनका कहना है कि, ग्रहगण चक्रपथमें पृथिवीके चारों ओर भ्रमण करते हैं समस्त नक्षत्र जगत् २४ घण्टेमें पृथिवीके चारों तरफ एक बार प्रदक्षिण करता है। इसके सिवा उनके और भी कई एक भ्रमात्मक मतों पर उनके परवर्ति कालमें साधारण लोग विश्वास करते थे। टलेमी देखो। हिपार्कसने जिन विषयोंका उल्लेख मात्र किया है इन्होंने उन विषयोंका विस्तृतरूपसे वर्णन किया है तथा बहुत जगह सूक्ष्मरूपसे फल निकाला है और हिपार्कसका मत बदल दिया है।

टलेमीके बाद ग्रीसमें ज्योतिर्विद्याकी उन्नतिका एक प्रकारसे अन्त हो गया। उनके परवर्ती ज्योतिषी फलित ज्योतिषकी आलोचना और पहलेके ज्योतिर्विदोंके सिद्धान्तोंको समालोचना और संशोधनादि करके ही शान्त हुए।

इनके बाद अरबियोंमें ही उल्लेखयोग्य ज्योतिर्विदोंने जन्मग्रहण किया था। ७६२ ई०में अरबियोंने ज्योतिषकी आलोचना करनी प्रारम्भ की। खलिफा अल्मनसूर तथा उनके उत्तराधिकारी हरुन-अल-रशीद और अल-मामूनने इस विद्याकी यथेष्ट उन्नति और आलोचना करनेमें काफी उत्साह दिया था। शेषोक्त दोनों सम्राटोंने स्वयं ज्योतिर्विद्याका अनुशीलन किया था। कुछ भी हो, अरबियोंने इस विद्यामें विशेष कुछ उन्नति न कर पाई। यद्यपि ये ग्रीक ज्योतिषको अत्यन्त भक्ति करते थे, तोभी इनकी गणना और ग्रह-पर्यवेक्षणादि ग्रीकोंकी अपेक्षा बहुत सूक्ष्म होता था। ये क्रान्तिपातकी पश्चिमगतिको और भी सूक्ष्मरूपसे तथा अयनान्त वर्षकी (Tropical year) प्राय सेकेण्ड तक शुद्धरूपसे गणना करते थे। अल्बाटानी (८८० ई०) अरबियोंके प्रधान ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने सूर्यकी मन्दोच्च गतिका आविष्कार, क्रान्तिवृत्तकी वक्रताका निर्णय और ग्रीकोंकी गणनामें बहुत कुछ संशोधनादि किया था।

हिपार्कस्के समयसे लगा कर कोपार्निकस्के समय

तक जितने वैदेशिक ज्योतिर्विद् हुए हैं, उनमें सर्व-प्रधान ज्योतिष्क-पर्यवेक्षक मल बाटानी ही थे।

इबन-युनिस (१००० ई०) नामक एक मिसरीय अङ्कशास्त्रविद् विद्वान् भी ज्योतिर्विद्के नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने वृहस्पति और शनि ग्रहको वक्रता और उत्क्रेन्द्रत्व-का निरूपण किया था। इन्होंने दिग्वलयसे किसी ताराकी उच्चताके परिमाण द्वारा ग्रहणके स्पर्श और मोक्षकालका निरूपण किया था। इसके सिवा इनको अनेक गणना आदि भी हैं। उनको देखनेसे मालूम होता है कि, उनके समयमें त्रिकोणमिति अङ्कशास्त्र उन्नत अवस्थामें था।

पारस्यके उत्तर भागमें जङ्गिसखाँके उत्तराधिकारि-योंने एक मान-मन्दिर बनवाया था। वहां नसीरउद् दीन-ने कुछ नक्षत्रोंको सूची बना गयो थो। समरकंदमें तैमूरके एक पौत्रने १४३३ ई०में ताराओंको एक तालिका बनाई थी, जो उस समयकी समस्त तालिकाओंको अपेक्षा विशुद्ध थी।

इसके बाद प्राच्यदेशमें ज्योतिर्विद्याको अवनति और पश्चिम यूरोपमें इसकी आलोचना बढ़ने लगी। १२३० ई०में जर्मनके २य फ्रेडरिकके आदेशसे आलमें-गेष्ट नामक अरबी ग्रन्थका अनुवाद हुआ। १२५२ ई०में काष्टाइलके १०म अलन्सोने अरबियों और यहूदियोंको सहायतासे यूरोपीय भाषामें सबसे पहले ज्योतिष्क-सम्बन्धी तालिका बना कर ज्योतिर्विद्याकी आलोचनामें लोगोंका उत्साह बढ़ाया। उक्त तालिका टलेमीकी तालिकासे मिलती जुलती है।

१२२० ई०में मि० होलि-उड (Holywood)-ने टले-मिके मतको संक्षेप कर ओन् दी स्फियार्स (On the spheres) नामक एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक उस समय बहुत प्रशंसित हुई। इसके बाद जिन व्यक्तियोंने ज्योतिर्विद्याकी आलोचना की थी, उनमेंसे किसीने भी उक्त विद्याकी विशेष कोई उन्नति नहीं की। हां, त्रिकोणमिति आदि गणितशास्त्रकी उन्नति जरूर हुई थी।

इसके उपरान्त प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् कोपार्निकास आविर्भूत हुए (जन्म सं० १४७३, मृत्यु सं० १५४३ ई०)। इन्होंने प्रचलित टलमीके मतका खण्डन कर, अप-म्पूर्ण होने पर भी एक विशुद्ध मतका उद्भावन किया। इस प्रकार प्रचलित मतका खण्डन करना बड़ा विपज्ज-नक है, इससे जनता विरोधी हो जाती है। कोपार्नि-कसने उसकी उपेक्षा कर अपना मत प्रचार किया। इनका मत कुछ अंशोंमें पिथागोरस द्वारा कथित मतके सदृश था। इनके मतसे सूर्यमण्डल ब्रह्माण्डके केन्द्रस्थलमें अचलभावसे अवस्थित है इसके चारों ओर ग्रहगण भिन्न भिन्न दूरत्व और अपनी अपनी कक्षामें परिभ्रमण करते हैं। तत्कालपरिचित सूर्यसे लगा कर यथ क्रमसे दूरवर्ती ग्रहोंके नाम इस प्रकार हैं -बुध, शुक्र पृथिवी मङ्गल, वृहस्पति और शनि। इस सौरजगत्‌के कल्पनातीत दूरत्व-में नक्षत्रमण्डल अवस्थित है। चन्द्र एक चन्द्रमा में पृथिवीके चारों तरफ घूमता है। वास्तवमें तारोंको गति पूर्वसे पश्चिमको नहीं है; कक्षाके ऊपर कुछ झुके हुए अपने मेरुदण्ड पर पृथिवीके आह्निक आवर्त्तनके कारण वैसा होता है। प्रवाद है कि, कोपर्निकसको इस मत-के प्रकट करनेका साहस न हुआ था, इसलिए उन्होंने उसको कल्पित कहा था। किन्तु हमबोल्ट (Humboldt) का कहना है कि, कोपर्निकसने अपनी तेजस्विनी भाषा-में प्राचीन भ्रान्तमतका खण्डन कर अपने मतका प्रचार और स्वरचित On the revolution of the heaven-ly bodies नामक पुस्तकको छपी हुई देख कर बहुत दिन बाद प्राणत्याग किया था साधारणका विश्वास है कि, छपी पुस्तक देखनेके कुछ देर पीछे उनको मृत्यु हुई थी।

कोपर्निकसके परवर्ती रेकर्डि (Recorde)-ने अंग्रेजी भाषामें पहले पहल ज्योतिर्विद्या और गोलक-तत्त्व सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थीं।

अरबियोंके समयसे ईसाकी १६वीं शताब्दीके अन्त तक जितने ज्योतिर्विद् हुए हैं उनमें टाइको ब्राहि (Tycho Brahe) सबसे अधिक परिश्रमी, अध्यवसायी और व्यवहारकुशल ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने १५४६ ई०में जन्मग्रहण किया था और १६०१ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

टाइको-ब्राहिको कोपर्निकसके मतका खण्डन करनेके

कारण अपयशका भागी होना पड़ा है। इनके मतसे—पृथिवी स्थिर है, सूर्य उसके चारों तरफ घूमता है तथा ग्रहगण सूर्यके चारों तरफ घूमते हुए पृथिवीके चारों ओर घूमा करते हैं। यह भ्रान्तयुक्ति कोपर्निकसके सरल मतके विरुद्ध होने पर भी अनेक शङ्काओंका समाधान करती है। टाइको ब्राहिने स्थिर नक्षत्रोंकी एक तालिका बनाई थी और चन्द्रके पश्चात्त संस्कारादिका निरूपण तथा आलोककी वक्रगति (Refraction)-का निर्णय किया था।

टाइको ब्राहिके अनुसन्धानादिके द्वारा शिक्षा पा कर केपलर (Kepler)-ने ज्योतिष्क-सम्बन्धी अनेक तथ्योंका आविष्कार किया है। (जन्म १५७१ ई० मृत्यु १६३० ई०) इनसे आविष्कृत नियमावली अब भी केपलरकी नियमावली (Kepler's Lanes)-के नामसे प्रसिद्ध है। इन्होंने कोपर्निकसके मतका बहुत कुछ संशोधन किया है। बहुतोंका कहना है कि, इन्हें माध्याकर्षणका विषय मालूम था।

गालीलियोने (Galileo का जन्म १५६४ ई०में और मृत्यु १६४२ ई०में हुई थी) सबसे पहले दूरवीक्षणकी सृष्टि कर उससे आकाशमण्डलका पर्यवेक्षण किया था।

दूरवीक्षण देखो।

गालीलियोने पहले दूरवीक्षणके द्वारा चन्द्रपृष्ठके बन्धुरत्वका आविष्कार किया था। इसके बाद वृहस्पतिके चार चन्द्र, शनिग्रहके वलय, सूर्यमण्डलके कलङ्क चिह्न और शुक्रग्रहकी कला आदिका बहुत जल्दी प्रकाश हो गया। इन नये मतोंके प्रवर्तनके कारण याजकगण गालीलियो पर अत्यन्त खफा हो गए और आखिरकार उनको मत परिवर्त्तन करनेके लिए बाध्य किया गया। किन्तु याजकगण कितना ही प्रतिकूल आचरण क्यों न करें और दार्शनिक कितनी विरुद्ध युक्तियां क्यों न दिखावें, पर अनन्त जगत्‌की प्राकृतिक नियमावली किसी तरह भी प्रतिहत नहीं हो सकती।

इसके उपरान्त इङ्गलैण्डमें ज्योतिर्विद्याका युगान्तर उपस्थित हुआ। निउटन (जन्म—१६४२, मृत्यु १७२७ ई०) आदि बड़े बड़े ज्योतिर्विदोंने जन्म ले कर इसकी अतिशय उन्नति की। निउटनके आविर्भावसे ज्योतिर्विद्याने नया जीवन पाया। इसी समय नेपियारके लोगारिथम् (Logarithm)-के द्वारा ज्योतिर्गणनामें बहुत सहायता और आलोककी गति, परिदोलक आदिके द्वारा ज्योतिष्क पर्यवेक्षणमें विशेष सुविधा हुई। कासिनी (Cassini)ने रश्मिचक्रके आलोक (Zodical light) और वृहस्पतिके चन्द्रचतुष्टयके ग्रहणको देख कर उनकी गति, शनिग्रहके दो वलय और चार चन्द्र आदि बहुतसे आविष्कार किये थे।

निउटनने माध्याकर्षण (Gravitation) और उसकी नियमावलीका आविष्कार किया था। साधारणका विश्वास है कि, वृक्षसे एक पके हुए सेवफलको गिरते देख निउटनने उक्त महान् आविष्कारमें मन लगाया था। संभवतः मानव-प्रतिभाका इसकी अपेक्षा महत्तर और अधिक गौरवान्वित आविष्कार और नहीं है *। इसके सिवा निउटनने मूचीच्छेदाकृति पथ द्वारा धूमकेतुओंकी गति, पृथिवी कुछ चपटा गोल आकार तथा चन्द्र और ज्वार भाटाके सम्बन्धका निर्णय किया था।

निउटनके समयमें फ्लामष्टिड (Flamsteed), हेली (Hally) आदि ज्योतिर्विदोंने ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, तारा आदिका पर्यवेक्षण कर ज्योतिर्विद्याकी बहुत उन्नति की थी।

इसके बाद इंगलैण्डमें ईसाकी १८वीं शताब्दीमें बहुतसे ज्योतिर्विदोंका आविर्भाव हुआ था। उस समय दूरवीक्षणयन्त्रका यथेष्ट उत्कर्ष हुआ था तथा बहुतसे यन्त्रोंकी सृष्टि और अङ्कशास्त्रकी उन्नतिके कारण ज्योतिर्विद्याकी महती उन्नति हुई थी।

१७८१ ई०में हर्शेलने युरेनस (Uranus) नामक एक नये ग्रहका आविष्कार किया था। धीरे धीरे उन्होंने अपने ४० फुट लम्बे दूरवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे छायापथको छटा कर तारकापुञ्ज देखा था। उन्होंने यूरेनसके दो चन्द्र, शनिग्रहके और भी दो चन्द्र आदिका विषय, नीहारिकाका रहस्य तथा द्वन्द्व (Double stars) और त्रितारका (Triple stars)-का

* निउटनसे बहुत पहले भास्कराचार्यने "आकृष्टिशक्ति"के नामसे माध्याकर्षणतत्त्व आविष्कार किया था। (गोलाध्याय ३।५)

आविष्कार किया था। इसी तरह और भी अनेकानेक ज्योतिर्विदोंके अध्यवसाय गुणसे और यन्त्रादिको सहायतासे अठारहवीं शताब्दीमें ज्योतिर्विद्याकी बहुत ज्यादा उन्नति हुई थी।

१८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही ४ क्षुद्र ग्रहोंका आविष्कार हुआ था। क्रमशः १८८५ ई० तक प्रायः शताधिक क्षुद्र ग्रहोंका आविष्कार हुआ है। नेपचुन (Neptune) ग्रहका आविष्कार १८वीं शताब्दीकी घटना है।

यूरेनस ग्रहको गतिकी विशृङ्खलता देख कर बहुतोंका अनुमान है कि, यह बृहस्पति और शनिके सिवा अन्य किसी अनिर्दिष्ट ग्रहके आकर्षणसे होता है। लेवारियर (Leverrier) नामक एक नवीन फरासीसी ज्योतिर्विद्ने इसको देख कर १८४६ ई०को ग्रीष्मऋतुमें चुपचाप उक्त ग्रहके आकार, परिमाण और आकाशमें अवस्थान तकका निश्चय कर एक निबन्ध प्रकाशित किया। यह महीना बीतने भी न पाया था कि, बार्लिन नगरमें मि० गेल (M. Galle)ने नेपचुन ग्रहका आविष्कार कर डाला। इसके प्राय १ वर्ष पहले केम्ब्रिज नगरमें मि० एडाम्स (M. Adams)ने और भी सूक्ष्मतर गणना द्वारा नेपचुनके अस्तित्व और अवस्थानका निश्चय कर चालिस (M. Challis) को कहा। इन्होंने दो बार उस ग्रहको पहिचाना था, पर सुविधानुसार उसको प्रकट न कर सके।

१८५८ ई०में एयरी (Airy)ने शून्यमार्गमें सौरजगत्‌की गतिका निरूपण किया था।

इस समय यूरोप और अमेरिकामें प्रत्येक प्रधान प्रधान नगरों और उपनिवेशोंमें मान-मन्दिर बन गये हैं। राजकीय सहायतासे उनमें पर्यवेक्षणादिका कार्य चल रहा है। प्रायः सभी सुसभ्य देशोंमें ज्योतिर्विद्याकी आलोचनाके लिए ज्योतिर्विदोंकी समितियां गठित हुई हैं। उन समितियोंसे प्रति वर्ष बहुत वैज्ञानिकतत्त्व निकलते और ज्योतिर्विद्या विषयक अनेक पत्रिकाओंमें मुद्रित हो सञ्चित होते हैं। इसके सिवा भिन्न भिन्न ज्योतिर्विदोंकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं; आकाशमण्डलमें ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, नक्षत्र आदिके प्रात्यहिक अवस्थानको सूक्ष्मरूपसे निर्देश कर उन गणनाओंको प्रकाशित किया जाता है। इससे बहुत वर्षोंकी घटनाओंको वर्त्तमानको भांति प्रत्यक्ष देख कर ज्योतिर्विद्‌गण अनेक तथ्य निकालते हैं। गगनमण्डलके सुन्दर चित्र बने हैं और उसमें भिन्न भिन्न कालमें ज्योतिष्कोंका अवस्थान, चन्द्र, सूर्य, ग्रहादिका दृश्यमान गतिपथ आदि अति विशदरूपसे दिखाये गये हैं। चन्द्र, सूर्य और तारा आदिके स्वच्छ चित्र बनानेके लिए फोटोग्राफ व्यवहृत हुआ करता है। कहना व्यर्थ है कि, इस समय यूरोपीय भाषामें ज्योतिःशास्त्रको इतनी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं कि, हर एक आदमी उन्हें पढ़ कर ज्ञानलाभ कर सकता है। उन्नतिके साथ यह विद्या सुशृङ्खल और सहजबोध्य हुई है।

ज्योतिषिक (सं० पु०) ज्योतिः ज्योतिःशास्त्रं अधीते उक्थादित्वात् ठक्। १ ज्योतिःशास्त्राध्ययनकारी, ज्योतिषशास्त्रका पढ़नेवाला। (त्रि०) २ ज्योतिष सम्बन्धी।

ज्योतिषिन् (सं० त्रि०) ज्योतिषं प्रयत्नेन अस्त्यस्य इनि। ज्योतिःशास्त्राभिज्ञ, जो ज्योतिष जानता हो, गणक।

ज्योतिषी (सं० स्त्री०) ज्योतिरस्त्यस्याः इति-अच्-ङीप्। तारा।

ज्योतिष्क (सं० पु०) ज्योतिरिव कायति कै-क। १ मेथिका बीज, मेथी। २ चित्रकवृक्ष, चीता। इसके बीजके तेलमें दूधके साथ सज्जीमट्टी और हींग घोट कर, मलनेके बाद यदि उसका सेवन किया जाय तो उदररोग जाता रहता है। (सुश्रुत चिकि० २४ अ०) ३ गणिकारिका वृक्ष, गनियारीका पेड़। ४ मेरुका शृङ्गभेद, मेरु पर्वतके एक शृङ्गका नाम। यह शृङ्ग शिवजीका अत्यन्त प्रिय है।

"तदीशभागे तस्याद्रेः शृंगमादित्यसन्निभम्।
यत्तत् ज्योतिष्कमित्याहुः सदा पशुपतेः प्रियं॥"

५ ग्रह तारा नक्षत्र प्रभृति, ग्रह, तारा, नक्षत्र आदिका समूह।

६ जैनमतानुसार भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक इन चार प्रकार (जाति)-के देवोंमेंसे एक। इनके पांच भेद हैं; यथा—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और

प्रकीर्णक तारे। ये निरन्तर सुमेरुके चारों ओर प्रदक्षिणा देते रहते हैं *।

ज्योतिष्का (सं० स्त्री०) ज्योतिष्क-टाप्। ज्योतिष्मतीलता, मालकँगनी।

ज्योतिष्कृत् (सं० त्रि०) ज्योतिः करोति ज्योतिः कृ क्विप्। आदित्य; सूर्य।

ज्योतिष्टोम (सं० पु०) ज्योतींषि स्तोमा यस्य, बहुव्री०। ज्योतिरायुषः स्तोमः। पा ८।३।८३। इति षत्वं। स्वनामख्यात यज्ञविशेष, एक प्रकारका यज्ञ। इस यज्ञमें वेद जाननेवाले १६ ब्राह्मणोंको आवश्यकता पड़ती है। इस यज्ञको समाप्तिके बाद १२सौ गौओंको दक्षिणा देनी पड़ती है। यज्ञ देखो।

ज्योतिष्पथ (सं० पु०) ज्योतिषां पन्था, ६-तत्। आकाश।

ज्योतिष्पुञ्ज (सं० पु०) नक्षत्रसमूह।

ज्योतिष्मत् (सं० त्रि०) ज्योतिरस्त्यस्य मतुप्। ज्योतिर्युक्त जिसमें प्रकाश हो जगमगाता हुआ। (पु०) २ सूर्य। ३ प्लक्षद्वीपस्थित पर्वतविशेष, प्लक्षद्वीपके एक पर्वतका नाम।

ज्योतिष्मती (सं० स्त्री०) ज्योतिष्मत्-ङीप्। (Cardiospermum halicacabum) १ लताविशेष, मालकँगनी। संस्कृत पर्याय—पारावतपदी, नगना, स्फुटवल्कली, पूतितैला, इङ्गुली, पारावतांघ्रि, कटभी, पिण्या, स्वर्णलता, अनलप्रभा, ज्योतिर्लता, सुपिङ्गला, दीप्ता, मेध्या, मतिदा, दुर्जरा, सरस्वती और अमृता। सूक्ष्म ज्योतिष्मतीके गुण—यह अतिशय तिक्त, किञ्चित् कटु, वात और कफनाशक है। स्थूल ज्योतिष्मतीके गुण—यह दाहप्रद, दीपन, मेधा और प्रज्ञावृद्धिकारक। (राजनि०) तीक्ष्ण व्रण और विस्फोटकनाशक। (राजव०) कटु, तिक्त, कफ और वायुनाशक, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, अग्निवर्द्धक और स्मृतिप्रद है। (भावप्र०)†

२ योगशास्त्रोक्त सत्त्वप्रधान एक चित्तवृत्ति। सत्त्व गुण प्रकाशवती विशोका (चित्तके रजः-तम परिणामरहित, इसलिए दुःखशून्य) प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर चित्तमें स्थिरता होती है; सात्त्विकता प्रकट होनेसे हो सर्वदा सुखका अनुभव होता रहता है। उस समय रजोगुणका परिणामस्वरूप शोकमोहादि कुछ भी नहीं रहता, उस समय प्रशान्ततरङ्ग क्षीरोदसागरके तुल्य विशुद्ध सत्त्वस्वरूपकी भावना करनेसे हो ज्ञानका आलोक वर्द्धित होता है तथा सब तरहका वृत्तियोंका क्षय होता रहता है, ऐसा होनेसे चित्तकी एकाग्रता होती है। उस समय उस चित्तवृत्तिको स्थितिनिबन्धन प्रवृत्ति वा ज्योतिष्मती कहते हैं। (पात०द०)

३ अग्निपुरी। अग्निलोक देखो। ४ रात्रि। (राजनि०) ५ एक नदीका नाम। (मत्स्यपु० ११२०।६५) ६ एक प्रकारका प्राचीन बाजा जो सारंगीकी भाँतिका होता है। ७ एक तरहका वैदिक छन्द।

ज्योतिस् (सं० पु०) द्योतते द्युत्यते वा द्युत-इसुन् दस्य जादेश वा ज्युत-इसुन्। १ सूर्य। २ अग्नि। ३ मेथिका वृक्ष, मेथी। ४ नेत्रकनीनिका मध्यस्थ दर्शनसाधन पदार्थ, आँखकी पुतलीके मध्यका वह विन्दु जो दर्शनका प्रधान साधन है। ५ नक्षत्र। ६ प्रकाश, उजाला। ७ सर्वावभासक चैतन्य। ८ अग्निष्टोम यज्ञका संख्याभेद, अग्निष्टोम यज्ञकी एक संख्याका नाम। ९ विष्णु। १० वेदान्तमें परमात्माका एक नाम। ११ तेजो द्रव्य मात्र, ज्योतिःसार, ज्योतिस्तत्त्व, ज्योतिःसिद्धान्त प्रभृति। १२ सङ्गीतमें अष्टतालका एक भेद।

ज्योतिस्तत्त्व (सं० क्ली०) ज्योतिषां तत्त्वं, ६-तत् वा तत्त्वं यत्र, बहुव्री०। रघुनन्दन कृत ज्योतिःसम्बन्धीय एक ग्रन्थका नाम। इस ग्रन्थमें ज्योतिषके प्रायः समस्त विषय संक्षेप रूपमें लिखे हैं, ज्योतिषका सार।

ज्योतिःसिद्धान्त (सं० पु०) ज्योतिषां सिद्धान्तः, ६-तत्। ज्योतिःग्रन्थ।

* "ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च। मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके॥" (तत्त्वार्थसूत्र ४।१२-१३)

† यह एक प्रकारकी तेजस्विनी लता है। इसकी आकृति वनकरेलाके पत्तेके समान है। इसका फल कोषाकार सूक्ष्म आवरण द्वारा आवृत और तीन धारियोंसे युक्त होता है; भीतर तीन तीन बीज होते हैं। वह फल प्रथमावस्थामें किञ्चित् अरुणवर्ण होता है। इस पर किसी तरह दाब पड़नेसे यहां 'फट' करके फट जाता है। इसलिए लड़के इससे खेला करते हैं। इसकी दो जाति हैं—हस्वजातीय ज्योतिष्मती बंगाल आदि देशोंमें और महाज्योतिष्मती काश्मीर आदि देशमें होती है।

ज्योतीरथ (सं० पु०) ज्योतिरिव रथोऽस्य, ज्योतिषः रथ इव वा। १ ध्रुवनक्षत्र. इसके आश्रित ज्योतिश्चक्र है इसलिए इसका नाम ज्योतीरथ पड़ा। २ निर्विष जातीय सर्प, एक तरहका सांप जिसके विष नहीं होता है।

ज्योतीरस (सं० पु०) ज्योतिश्च रसश्च. द्वन्द्व। एक प्रकारका रत्न। इसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण और वृहत्संहितामें किया गया है।

ज्योतीरूपस्वयम्भू (सं० पु०) ज्योतिः रूपं यस्य तादृशः यः स्वयम्भूः। ब्रह्मा, ब्रह्माका रूप ज्योतिर्मय है, इसी लिये इनका नाम ज्योतीरूपस्वयम्भू हुआ है।

ज्योत्स्ना (सं० स्त्री०) ज्योतिरस्त्यस्यां निपातनात् नप्रत्ययः उपधालोपश्च। ज्योत्स्नातमिस्रेति। पा ५।२।११४। १ कौमुदी. चन्द्रमाका प्रकाश, चांदनी। इसके पर्याय-चन्द्रिका, चान्द्री. कामवल्लभा, चन्द्रातप, चन्द्रकान्ता, शीता और अमृत तरङ्गिणी। २ ज्योत्स्नायुक्त रात्रि, चांदनी रात। ३ पटोलिका, सफेद फलकी तोरई। इसके गुण—त्रिदोषनाशक, कषाय, मधुर, दाह और रक्तपित्तनाशक है। ४ दुर्गा। "ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपायै सुखायै सततं नमः।" (चण्डी ५ अ०) ५ प्रभातकाल, सुबह। "ज्योत्स्ना समभवत् सापि प्राक् संध्याऽभिधीयते।" (विष्णुपु० १।५।३६) ६ सौंफ ७ रेणुक बीज। ८ कोषातकी, कड़ुई तरोई। ९ पटोलिका, सफेद फलकी तरोई।

ज्योत्स्नाकाली (सं० स्त्री०) सोमकी कन्या। ये वरुणके पुत्र पुष्करकी पत्नी थीं।

> "रूपवान् दर्शनीयश्च सोऽपुत्र प्रानः पतिः।
> ज्योत्स्नाकालीति यामाहुद्वितीयां रूपतः श्रियं॥"
> (भारत ५।९८ अ०)

ज्योत्स्नादि (सं० पु०) ज्योत्स्ना तमिस्रा, कुण्डल, कुतुप विसर्प और विपादिक ये कई एक ज्योत्स्नादिगण हैं।

ज्योत्स्नाप्रिय (सं० पु०) ज्योत्स्नाप्रिया यस्य, बहुव्री०। चकोर, चकवा।

ज्योत्स्नावत् (सं० त्रि०) ज्योत्स्ना अस्त्यस्य ज्योत्स्ना मतुप्। ज्योत्स्नायुक्त, जिसमें प्रकाश हो।

ज्योत्स्नावृक्ष (सं० पु०) ज्योत्स्नायाः वृक्षः इव, ६-तत्। दीपाधार, दीवट, फतीलसोज़।

ज्योत्स्निका (सं० स्त्री०) १ चाँदनी रात। २ पटोलिका, सफेद फूलकी तोरई।

ज्योत्स्नी (सं० स्त्री०) ज्योत्स्ना अस्त्यस्याः इत्यण्, ङीप च। संज्ञा पूर्वकस्य विधेरनित्यत्वात् न वृद्धिः। १ चन्द्रिकायुक्त रात्रि, चाँदनी रात। २ पटोल, तरोई। ३ रेणुका नामक गन्धद्रव्य।

ज्योत्स्नेश (सं० पु०) ज्योत्स्नाया ईशः, ६-तत्। ज्योत्स्नाके अधिपति सूर्य।

ज्योनार (हिं० स्त्री०) १ भोज, दावत। २ रसोई, पका हुआ भोजन।

ज्योरा (हिं० पु०) फसल तैयार होने पर गाँवके नाई, धोबी चमार आदि काम करनेवालोंको दिया जानेवाला अनाज।

ज्यों (हिं० अव्य०) यदि, जो। यह शब्द प्रायः कवितामेंही व्यवहृत होता है।

ज्यौतिष (सं० क्ली०) ज्योतिष इदं अण्। ज्योतिषसम्बन्धी।

ज्यौतिषिक (सं० पु०) ज्योतिषं अधीते वेद या उकथादि० ठक्। ज्योतिर्विद्, वह जो ज्योतिषशास्त्र जानता हो।

ज्यौत्स्न (सं० त्रि०) ज्योत्स्नाया अन्वितः इत्यण्। दीप्त, जगमगाता हुआ।

ज्यौत्स्निका (सं० स्त्री०) ज्योत्स्ना अस्ति यस्याः इति ठक् पूर्वबृद्धिष्टाप् च। ज्योत्स्नायुक्त रात्रि, चाँदनी रात।

ज्यौर —बम्बई प्रान्तके अहमदनगर जिले और तालुकका शहर। यह अक्षा० १९° १८' उ० और देशा० ७४° ४८' पू०में टोका सड़क पर पड़ता है। जनसंख्या प्रायः ५००५ है। नगरकी चारों ओर एक टूटा फूटा प्राचीर है। फाटक मजबूत लगा है। दरवाजे पर फरशबन्द है। पास ही एक ऊंचे पहाड़ पर ३ मन्दिर हैं। एक मन्दिरमें १७८१ ई०की शिलालिपि अङ्कित है।

ज्वर (सं० पु०) ज्वरति जीर्णोभवत्यनेन ज्वर-करणे घञ्। ज्वरण, स्वनामप्रसिद्ध रोगभेद, ताप, बुखार। संस्कृत पर्याय—जूर्ति, ज्वरि, आतङ्क, रोगपृष्ठ, महागद, तापक और सन्ताप।

प्राणियोंके प्रति दृष्टिपात करनेसे मालूम होता है

कि, प्रत्येक प्राणी किसी न किसी समय रोगाक्रान्त हुआ करता है। ज्यादातर मनुष्योंको ही अधिक रोगग्रस्त पाया जाता है किसीको बहुत और किसीको एक रोग से पीड़ित देखा जाता है। फलतः कोई भी मनुष्य सुस्थ-शरीर हो कर नहीं रहने पाता, इसीलिए प्राचीन पण्डितोंने कहा है—"शरीरं व्याधिमन्दिरम्।" व्याधिके दो भेद हैं—एक शारीरिक व्याधि और दूसरी मानसिक। शारीरिक व्याधि आग्नेय, सौम और वायव्य इन तीन भागोंमें तथा मानसिक व्याधि राजस और तामस इन दो भागोंमें विभक्त है। निदान, पूर्वरूप, लिङ्ग, उपशय और सम्प्राप्ति द्वारा व्याधिका ज्ञान होता है। साधारणतः रोगके तीन कारण समझे जाते हैं—इन्द्रियार्थ कर्म और काल। इनके अतियोग, अयोग और मिथ्यायोगसे रोगकी उत्पत्ति होती है किन्तु स्वभावसे व्यवहृत होनेसे शरीर सुस्थ (तन्दुरुस्त) रहता है। पूर्वोक्त शारीरिक और मानसिक रोगोंके सिवा और एक प्रकारका रोग है, जिसे आगन्तुक कहते हैं। शरीरदोषोंसे उत्पन्न रोगोंका नाम शारीरिक; भूत, विष, वायु, अग्नि और प्रहारादिजनित रोगका नाम आगन्तुज तथा प्रियवस्तुकी अप्राप्ति और अप्रिय वस्तुकी प्राप्तिसे उत्पन्न रोगका नाम मानसिक है।

मनुष्य ज्यादातर ज्वरसे पीड़ित होते हैं तथा अन्यान्य रोगोंसे पीड़ित होनेका भी मूल कारण ज्वर है। शरीर रोगमें पहले ज्वर होता है। ज्वर होनेके पश्चात् वह क्रमशः कठिन होता हुआ अन्यान्य रोग उत्पन्न करता है। यह शरीरमें विशेष विशेष पीड़ा उत्पन्न करता है, इसलिए इसका नाम ज्वर है। ज्वर जैसा दारुण, बहु पीड़ाजनक और दुश्चिकित्स्य है, और कोई भी रोग वैसा नहीं है। ज्वर प्राणियोंका प्राणनाशक; देह, इन्द्रिय और मनके लिए सन्तापोत्पादक; प्रज्ञा, बल, वर्ण और उत्साहको शिथिल करनेवाला है। ज्वरसे शरीरमें वेदना, क्लान्ति, अवसाद, श्रम, मोह और आहारमें अरुचि हो जाती है। प्राणीगण ज्वरके साथ ही उत्पन्न होते हैं और ज्वराभिभूत हो कर ही मरते हैं। सुश्रुतमें कहा गया है कि, ज्वर सब रोगोंका राजा, रुद्रकोपनलसम्भूत और सर्वलोकप्रतापक है। ज्वर वातिक, पैत्तिक आदि नामसे प्रसिद्ध है। यह प्रायः प्राणियोंके जन्म और मृत्युके समय शरीरमें प्रवेश करता है, इसलिए इसको रोगोंका राजा कहा जा सकता है। देवता और मनुष्यके सिवा इसका प्रभाव कोई भी सह नहीं सकता। मानवगण कर्मफल द्वारा देवत्व प्राप्त करते हैं और कर्मफलके क्षय हो जाने पर पुनः स्वर्गच्युत हो कर पृथिवी पर जन्म लेते हैं। देहमें देवभागके रहनेसे ही मनुष्य ज्वरके प्रतापको सह लेते हैं। अन्यान्य तिर्यक्‌योनिजात प्राणी ज्वरमें निरतिशय विपन्न हो जाते हैं।

हरिवंशमें ज्वरकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार लिखा है। महादेवने बाणराजाके लिए 'ज्वर' नामक एक योद्धाकी सृष्टि की थी। वासुदेव कृष्णके पौत्र अनिरुद्ध जब बाण द्वारा अवरुद्ध हुए तो श्रीकृष्णने बलराम और प्रद्युम्नके साथ उनके उद्धारार्थ गमन किया। इस पर दानवाधिपति बाणके साथ उनका भयङ्कर युद्ध हुआ। युद्धमें दैत्यसेनाने नितान्त निपीड़ित और व्यथित हो कर भागनेकी तैयारियां कीं कि, इतनेमें कालान्तक सदृश भीषणमूर्त्ति ज्वर भस्मास्त्र ले कर समरभूमिमें अवतीर्ण हुआ। ज्वरके तीन पैर, तीन मस्तक, छह भुजाएं और नौ आंखें थीं। इसका कण्ठस्वर सहस्र सहस्र घनगर्जितके सदृश था, यह जल्दी जल्दी दीर्घनिश्वास ले रहा था, बीच बीचमें मुखव्यादान कर जृम्भण कर रहा था, इसका शरीर निद्रा और आलस्यसे भरा हुआ था, इसकी आंखें मुखमण्डलको समाकुल कर रही थीं। इसकी देह रोमाञ्चित, आंखें मैली और चित्त खिन्नके समान था।* ज्वरने रणक्षेत्रमें प्रवेश कर बलरामको पराजित कर दिया और फिर वह कृष्णसे लड़ने लगा। श्रीकृष्णसे ज्वरका भयङ्कर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। बहुत देर तक युद्ध होते रहनेके बाद श्रीकृष्णने ज्वरको मरा जान ज्यों ही उठा कर जमीन पर मारना चाहा, त्यों ही वह अतर्कित अवस्थामें श्रीकृष्णके शरीरमें घुस गया। फिर श्रीकृष्णके शरीरमें ज्वरावेश होनेके कारण रोमाञ्च, जृम्भण, श्वासपतन, आलस्य और निद्रावेश होने लगा। श्रीकृष्णने जब

* ज्वरके रूपकी वर्णना नितान्त काल्पनिक नहीं है। ज्वर आनेसे रोगीके शरीरकी अवस्था प्रायः ऐसी ही हो जाती है।

समझ लिया कि उनके शरीरमें ज्वरावेश हुआ है, तब उन्होंने ज्वर विनाशके लिए दूसरे एक ज्वरकी सृष्टि की। उस नवसृष्ट वैष्णव ज्वरने श्रीकृष्णका आदेश पाते ही उनके शरीरमें प्रवेश किया और अपने बलसे पूर्वप्रविष्ट ज्वरको पकड़ कर कृष्णके हाथ पर रख दिया। कृष्णने उसको ग्रहण कर मारना चाहा तो वह जोरसे चिल्ला कर उनके पैरों पड़ गया। उस समय ज्वरको रक्षार्थ श्रीकृष्णके लिए एक आकाशवाणी हुई। श्रीकृष्णने ज्वरको छोड़ दिया।

ज्वरने कृष्णसे जीवन पा कर एक वर मांगा। ज्वरने कहा—"हे कृष्ण! हे देवेश! आप प्रसन्न हो कर मुझे यह वर प्रदान करें कि, जगत्‌में मेरे सिवा दूसरा कोई ज्वर न हो।"

कृष्णने उत्तर दिया—"वरप्रार्थियोंको वर देना मेरा कर्त्तव्य है, विशेषतः तुम शरणागत हो। तुम जैसी प्रार्थना करते हो, वैसा ही होगा। पहलेकी भांति तुम ही एकमात्र ज्वर रहोगे, द्वितीय ज्वर जो मेरे द्वारा सृष्ट हुआ है, वह मेरे शरीरमें लीन होवे।" श्रीकृष्णने ज्वरसे यह भी कहा कि, "इस जगत्‌में स्थावर, जङ्गम और सर्वजातियोंमें तुम किस तरह विचरण करोगे, वह कहते हैं सो सुनो। तुम अपनी आत्माको तीन भागोंमें विभक्त करके एक भागसे चतुष्पदप्राणी, दूसरे भागसे स्थावर और तीसरे भागसे मानवजातिकी भजना करना। तुम्हारे तृतीय भागका चतुर्थांश पक्षिकुलमें और अवशिष्टांश मनुष्योंमें ऐकाहिक, त्र्याहिक और चतुर्थक नामसे विचरण करेगा। वृक्षश्रेणोमें कीट, पत्तोंमें सङ्कोच अथवा पाण्डु, फलोंमें आतुर्य, पद्मिनीमें हिम, पृथिवीमें ऊषर, जलमें नीलिका, मयूरोंमें शिखोद्भेद, पर्वतमें गैरिक, गौमें अपस्मार और खोरक नामसे प्रसिद्ध हो कर विचरण करोगे। तुमको देखने वा छूनेसे प्राणीमात्र निधनको प्राप्त होंगे; देवता और मनुष्यके सिवा दूसरा कोई तुम्हारे प्रभावको सह न सकेगा।"

ज्वरकी उत्पत्तिके विषयमें और भी एक उपाख्यान है। पहले त्रेतायुगमें जब महादेवने एक हजार वर्षका अक्रोध व्रत अवलम्बन किया था, तब असुरोंने उपद्रव करना शुरू किया। इस समय महादेवने महात्मा महर्षियोंके तपमें विघ्न होते देख कर भी तथा उसके प्रतीकारमें समर्थ होते हुए भी उपेक्षा धारण की; क्योंकि क्रोध प्रकट करनेसे उनका व्रत भङ्ग हो जाता। इसके बाद दक्ष प्रजापतिने देवों द्वारा पुनः पुनः अनुरोध किये जाने पर भी महादेवके प्राप्य यज्ञभागको कल्पना न कर यज्ञके सिद्धिकारक वेदोक्त पाशुपत मन्त्र और शैव्य आहुतिका परित्याग करके यज्ञ समाप्त कर दिया था। तदनन्तर आत्मवित् प्रभु महादेवका व्रत समाप्त होने पर पूर्वोक्त प्रकारसे दक्ष द्वारा अपने अपमानकी बात मालूम पड़ गई, उन्होंने रौद्रभाव अवलम्बन पूर्वक ललाट पर नयन सृष्टि कर यज्ञविघ्नकारी उपर्युक्त असुरोंको दग्ध किया और क्रोधाग्नि सन्दीपित शत्रुनाशन एक बाण छोड़ा, जिससे दक्ष प्रजापतिका यज्ञ ध्वंस हो गया तथा देव और भूत सन्त्रस्त हो कर इतस्ततः भ्रमण करने लगे।

इसके उपरान्त देवोंने सप्तर्षियोंके साथ मिल कर नाना प्रकारसे महादेवका स्तव करना शुरू किया। महादेवने देवोंके स्तवसे सन्तुष्ट हो कर ज्योंही शैवभाव धारण किया त्योंही सर्वत्र मङ्गल होने लगा। जब उस क्रोधानलने महादेवको जीवोंके मङ्गलसाधनमें तत्पर पाया, तब वह हाथ जोड़ कर सामने आया और कहने लगा—"भगवन्! अब मैं आपका आदेश पालन करूंगा, आज्ञा दीजिये।" महादेवने उत्तर दिया—"तुम जीवोंके जन्म, मृत्यु और जीवित समयमें ज्वरस्वरूप होवोगे।"* इस तरह ज्वरको सृष्टि हुई।

सन्ताप, अरुचि, तृष्णा, अङ्गपीड़ा और हृदयमें वेदना ये ज्वरकी स्वाभाविक शक्तियाँ हैं।

समनस्क एकमात्र शरीर ही ज्वरका अधिष्ठान है। शारीरिक और मानसिक सन्ताप प्रत्येक ज्वरका प्रधान

* रुद्रके क्रोधसम्भूत निःश्वाससे उत्पन्न होनेके कारण ज्वर स्वभावतः पित्तात्मक है, क्योंकि क्रोधसे पित्त उत्पन्न होता है। अतएव सर्व प्रकारके ज्वरमें पित्तविनाशक क्रियाका प्रयोग करना उचित है। वाग्भटने भी कहा है कि, पित्तके बिना उष्म्य नहीं होता और उष्म्यके बिना ज्वर नहीं होता। इसलिए सब तरहके ज्वरमें पित्तके लिए जो चीजें अहितकर हैं, उनका परित्याग करना ही उचित है।

लक्षण है। ज्वर चढ़ने पर किसी तरहका कष्ट न होता हो, ऐसे प्राणी संसारमें नहीं हैं।

साधारणतः ज्वरोत्पत्तिका कारण दो प्रकारका है—एक सामान्य और दूसरा प्रधान। वातपित्त आदिके लिए प्रकोपजनक आहार-विहार आदि हो सामान्य कारण है तथा जल, वायु, देशकाल आदिका दूषण हो जाना प्रधान कारण है।

शारीरिक वातपित्तादि तथा मानसिक रज और तमः दोष ज्वरकी प्रकृति हैं। कैसा भी ज्वर क्यों न हो, दोषके संस्रवके बिना वह कभी भी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकता।

प्राचीन पण्डितोंने कहा है कि, यह ज्वर ही क्षय, पाप्मा और मृत्यु है तथा दुष्कृतिसे इसकी उत्पत्ति होती है।

सुश्रुतसंहितामें लिखा है कि, ज्वर आठ प्रकारका है जो विविध कारणोंसे उत्पन्न होता है। सब दोष अपने अपने समयमें और अपने अपने प्रकोपके कारण कुपित हो कर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो कर ज्वर उत्पन्न करते हैं। दोष अपने अपने हेतु द्वारा कुपित हो कर आमाशयमें जा कर अपनी गरमीके जरिये रसधातुमें आश्रय लेते हैं। उन कुपित दोषों और रसके द्वारा स्वेद और रसवाही शिराओंके मार्गके रुक जाने पर जठराग्नि मन्द हो जाती है। दोषोंके प्रकोपकालमें जब वह अग्नि पाकस्थलीसे बाहर निकल कर समस्त शरीरमें व्याप्त होती है, तब ज्वर आता है। ज्वर क्रमशः बढ़ता हो जाता है, जिससे त्वक्, मूत्र और पुरीष आदि दोषके अनुसार—विवर्ण हो जाते हैं।

मिथ्या आहार-विहार वा स्नेहादि क्रियाके द्वारा, अभिघात वा अन्य किसी रोगोत्पत्तिके कारण वा शरीरमें फोड़े पकने पर अथवा श्रम, क्षय, अजीर्णता वा किसी तरहके विषके द्वारा, अथवा अत्यन्त आहारादिके वा ऋतुके विपर्ययके कारण तथा औषध वा पुष्पगन्धके कारण, शोक, नक्षत्रपीड़ा, अभिचार वा अभिशाप अथवा काल्पनिक शङ्काके कारण तथा मृतवत्सा वा जीवितवत्सा स्त्रियोंके सन्ध्यावतरणके समय अहिताचरणके कारण धातु कुपित होती है, तथा उद्भ्रान्त विपथगामी वेगवान् दोषके द्वारा अभ्यन्तरस्थ जठराग्नि विक्षिप्त हो कर सारे शरीरमें व्याप्त हो जाती है। इससे पाकस्थलीमें स्थित रसके रुक जानेसे सारा शरीर गरम हो जाता है और सर्वाङ्गमें एक साथ पसीना छूटना बंद हो जाता है। पसीनेका रुकना, शरीर गरम हो जाना और तमाम शरीरमें जड़ता वा वेदना होना, ये सब एक समयमें हों, तो उसको ज्वर कहा जा सकता है। वायु, पित्त, श्लेष्मा इनमेंसे एक एक पृथक्भावसे अथवा दो या तीनके एक साथ दूषित होने पर तथा आगन्तुज कारणसे ज्वर उत्पन्न होता है। ज्वर आठ प्रकारका है, जैसे—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक, सान्निपातिक और आगन्तुक।

चरकसंहितामें लिखा है, आठ प्रकारके कारणोंसे मनुष्योंको ज्वर होता है, जैसे-वायु, पित्त, कफ, वातपित्त, पित्तश्लेष्मा, वातश्लेष्मा, वातपित्तश्लेष्मा और आगन्तुक।

रूक्षगुणविशिष्ट वस्तु, लघु वस्तु, शीतल वस्तु परिश्रम, वमन, विरेचन और आस्थापन (निरूहवस्ति) आदिके अत्यन्त उपयोगसे और मलमूत्रादिके वेगको रोकनेसे तथा उपवास, अभिघात, स्त्रीसंसर्ग, उद्वेग, शोक, शोणितस्राव, रात्रिजागरण, विपरीत भावसे शरीर क्षेपण, इनके आतिशय्यसे वायु प्रकुपित हो जाती है। पीछे उस प्रकुपित वायुके आमाशयमें प्रविष्ट होनेसे भुक्तद्रव्य (परिपाक होनेके कारण) मल और धातुको प्राप्त होता है, फिर वह वायु रस और स्वेदवह स्रोतःसमूहको आच्छादित एवं पाकाग्निको मन्द कर पक्वाशयसे उष्माको बाहर ले आती है और शरीरमें व्याप्त होती है। इस समय वातज्वरका आविर्भाव होता है।

वातज्वर होनेसे निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं। क्षण क्षणमें शारीरिक उष्णभावको तथा ज्वरवेग और मल निकलते समय विषमता होती है। प्रायः आहारको सम्पूर्ण जीर्णावस्थामें, दिवसके अन्तमें और अधिकांश रूपसे वर्षाऋतुमें इस ज्वरका आगमन अथवा अभिवृद्धि हुआ करती है। इसमें विशेष प्रकारसे नख, नयन, चेहरा, मूत्र, पुरीष और चर्ममें अत्यन्त कठोरता और अरुणवर्णता देखनेमें आती है।

शरीरमें नाना प्रकारके क्लिष्ट भाव तथा नाना प्रकार-

की चलाचल वेदना, पैरोंमें झनझनाहट, पिण्डिकोद्वेष्टन (अर्थात् मांस इंठ रहा है, ऐसा मालूम पड़ना), जानु और सन्धिस्थानका विश्लेषण, जरुमें अवसन्नता, कमर, बगल, पीठ, स्कन्ध, बाहु, अंस और वक्षस्थलमें क्रमसे भग्नवत्, रुग्नवत्, मृदित, मन्थनवत्, चटित, अवपीड़ित और अवतुन्नवत् वेदना होती है। हनुस्तम्भ और कानमें सनसनाहट, मस्तकमें निस्तोदनवत् पीड़ा, मुख कषायता और रसास्वादनमें अक्षम, मुख, तालू, और कण्ठशोष, पिपासा, हृदयमें वेदना, शुष्कच्छर्दि, शुष्क काश, छींक, उद्गारनिरोध, अम्लरसयुक्त निष्ठीवन, अरुचि, अपाक, मनकी विकलता, उबासी, विनाम (एक प्रकारकी वेदना), कम्प, विना परिश्रम किये परिश्रम मालूम पड़ना, भ्रम (सब चीजें घूमती हुई दीखें),प्रलाप, अनिद्रा द्रा, लोमहर्ष, दन्तहर्ष, उष्णवस्तु अभिलाषा, निदानोक्त वस्तु द्वारा अनुपशय और उससे विपरीत वस्तु द्वारा उपशय आदि वातज्वरके लक्षण है।

जो मनुष्य उष्ण, अम्ल लवण, क्षार, कटु और गरिष्ठ पदार्थ तथा अत्यन्त तीक्ष्णरसमंयुक्त पदार्थोंको अधिक खाते हैं, तथा जो अत्यन्त अग्निसन्तापसेवनकारी, परिश्रमी और क्रोधशील हैं, उनको साधारणतः पैत्तिक ज्वर होता है। उक्त प्रकारके व्यक्तियोंका शरीरस्थ पित्त जब प्रकुपित होता है, तब वह आमाशयसे उष्माको ग्रहण, रसधातुका आश्रय ले रस तथा स्वेदवहस्रोतसमूहका आच्छादन कर पित्तके द्रवत्वके कारण जठराग्निको मन्द और पक्वाशयसे अग्निको बाहर विक्षिप्त करता है इस प्रकारकी शारीरिक प्रक्रिया होने पर पित्तज्वरका आविर्भाव हुआ करता है। पित्तज्वर होनेसे एक समयमें ही ज्वरका आगमन और अभिवृद्धि होती है।

आहारके परिपाक समयमें, दोपहरको, आधीरातको तथा प्रायः शरत्‌ऋतुमें यह ज्वर होता है। इस ज्वरमें मुखका स्वाद कटु, रसयुक्त तथा नासिका, मुख, कण्ठ और तालूमें पक्वता मालूम पड़ती है; तृष्णा, भ्रम, मोह, मूर्छा, पित्तवमन, अतीसार, भोजनमें अप्रवृत्ति, पसीना, प्रलाप और शरीरमें एक प्रकारके कोठरोगकी उत्पत्ति होती है। नाखून, आँखें, चेहरा, मूत्र, पुरीष और शरीरका चमड़ा पीला हो जाता है। शरीरमें अत्यन्त उष्णता और दाह होता है। पित्त-ज्वराक्रान्त व्यक्ति शीतल स्थानमें रहने पर भी शीतल पदार्थ खानेकी अत्यन्त इच्छा प्रकट करता है। निदानोक्त पदार्थों द्वारा इसको अनुपशय और उससे विपरीत वस्तु द्वारा उपशय मालूम होता है।

जो स्निग्ध, मधुर, गुरु, शीतल, पिच्छिल, अम्ल और लवण आदि पदार्थ अधिक खाते हैं तथा जो दिवानिद्रा, हर्ष और व्यायाम आदि विषयमें अत्यन्त आसक्त होते हैं, उनका श्लेष्मा प्रकुपित हुआ करता है। ऐसा आदमी साधारणतः श्लैष्मिक अर्थात् कफज्वरसे पीड़ित होते देखे जाते हैं। इनका यह प्रकुपित श्लेष्मा आमाशयमें प्रवेश कर उष्माके साथ मिलता और खाये हुए पदार्थके परिपाकके लिए रसधातुको प्राप्त होता है। पीछे रस और स्वेदस्रोतको आच्छादपूर्वक पक्वाशयसे उष्माको बाहर निकाल कर समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाता है। इस प्रकारकी प्रक्रियाके कारण कफज्वरका आविर्भाव हुआ करता है।

एक ही समयमें कफ ज्वरका आगमन और प्रकोप होता है। भोजनमात्रमें, दिनके प्रथम भागमें, प्रथम रात्रिमें और प्रायशः वसन्तऋतुमें इस ज्वरका आविर्भाव होता है।

विशेषरीत्या शरीरमें भारीपन आहारमें अप्रवृत्ति, मुख और नासिकासे कफस्राव, मुखमें मधुरता, उपस्थित वमन हृदयस्थानमें उपलेपबोध शरीरमें स्तिमितभाव (भीगे कपड़ेसे शरीर ढका है ऐसा मालूम पड़ना), छर्दि, अग्निकी मृदुता, निद्राका आधिक्य हस्तपदादिकी स्तब्धता, तन्द्रा श्वास काश नख, नयन, चेहरा, मूत्र, पुरीष और चर्ममें अत्यन्त शीतलताका अनुभव तथा शरीरमें शीतलस्पर्श पीड़का (फुन्सी)का उद्गम होता है। कफज्वराक्रान्त व्यक्तिको प्रायः उष्णताको अभिलाषा होती है। निदानोक्त वस्तु द्वारा अनुपशयता और उससे विपरीत गुणयुक्त पदार्थोंसे उपशयता मालूम पड़ती है।

विषमाशन (अभ्याससे अधिक वा थोड़ा अथवा असमयमें भोजन करना), अनशन, ऋतुपरिवर्तन, ऋतु व्यापत्ति (ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि ऋतुओंमें ऋतुके अनुसार ग्रीष्मशीतादिका अभाव), अघ्राणीय गन्धादिका आघ्राण,

विषदूषित जलपान अथवा उसका संयोग, विषका उपयोग, पर्वतादिका उपश्लेष स्नेह, स्वेद, वमन, आस्थापन, अनुवासन और शिरोविरेचन आदिका अयथा प्रयोग, स्त्रियोंका विषमभावसे वा असमयमें प्रसव होनेसे तथा प्रसवके बाद अहिताचारादि और पूर्वोक्त वातपित्त-श्लेष्माके कारण सबका मिश्रभाव हो जाता है और इसलिए द्विदोष अथवा त्रिदोषके निदानगत वैषम्य द्वारा एक ही समयमें वायु-पित्त कफ तीनों प्रकुपित हुआ करते हैं।

इस प्रकारसे प्रकुपित दोषसमूह उपर्युक्त आनुपूर्विक ज्वर लाता है। इस ज्वरके लक्षणसमूहमें मिश्रभावविशेषका देख कर दो दोषके चिह्न देखें तो द्वन्द्वज और त्रिदोषके चिह्न देखें तो सान्निपातिक ज्वर समझना चाहिये।

अभिघात, अभिषङ्ग, अभिचार और अभिशापके कारण यथापूर्वक आगन्तुज ज्वर होता है।

आगन्तुज-ज्वर उत्पत्तिके समय स्वतन्त्र रह कर पीछे दोषों (वायु, पित्त, कफ) के साथ मिश्रित होता है। अभिघातजन्य ज्वरमें वायु शरीरगत दुष्ट शोणितका आश्रय ले कर रहती है। अभिषङ्गज ज्वर वायु और पित्तके द्वारा तथा अभिचार और अभिशापजन्य ज्वर त्रिदोषके साथ मिल जाता है।

आगन्तुक ज्वरयुक्त लिङ्गग्राही है; इसकी चिकित्सा और समुत्थानकी विधि अन्य ज्वरोंसे भिन्न है।

शुद्ध सन्तापके द्वारा अनुभूत ज्वरको किसी अभिप्रायसे दोषज और आगन्तुज भेदसे दो प्रकारका कह सकते हैं; उनमेंसे वातादि त्रिदोषके वैकल्यहेतु ज्वर दो प्रकारका, तीन प्रकारका, चार प्रकारका और सात तरहका कहा गया है।

विषभक्षणजन्य आगन्तुज ज्वरमें रोगीका मुख श्यामवर्ण हो जाता है, अतीसार, अन्नसे अरुचि, पिपासा, तोद (सुई छिदने जैसी वेदना) तथा मूर्छा होती है। किसी प्रकारकी तीक्ष्ण औषधके सूंघनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें मूर्छा, शिरोवेदना, छींक और कै होती है। कामजनित ज्वरमें अर्थात् अभिलाषानुरूप स्त्रीके न मिलने पर जो ज्वर होता है, उसमें मनोभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य और अन्नसे अरुचि हो जाती है; हृदयमें वेदना होती और शरीर सूख जाता है। कामज्वरमें भ्रम, अरुचि और दाह होता है तथा लज्जा निद्रा, बुद्धि और धारणाशक्तिका क्षय होता है। स्त्रियोंको कामज्वर होनेसे मूर्छा, शरीरमें दर्द, पिपासा, नेत्रचापल्य, स्तनों और चेहरे पर पसीना तथा हृदयमें दाह होता है।

कभी कभी भय और शोकजनित ज्वरमें प्रलाप तथा क्रोधजन्य ज्वरमें कम्प होता है।

भूताभिषङ्गज्वरमें उद्वेग, अनर्थक हास्य और रोदन तथा शरीर कांपता है। कभी कभी इस ज्वरमें वेगका तारतम्य हुआ करता है।

अभिचार और अभिशापजनित ज्वरमें मोह और पिपासा होती है। वाग्भट कहते हैं कि, इस ज्वरमें प्रधानतः मनस्ताप, फिर शारीरिक उष्णता, विस्फोट, पिपासा, भ्रम, दाह और मूर्छा होती है। यह ज्वर दिन दिन बढ़ता रहता है।

श्रान्ति, अरति (कार्यमें अप्रवृत्ति), विवर्णता, मुखवैरस्य, नयनप्लव (आंखोंमें पानी भर आना), शीत, वायु और धूपमें मुहुर्मुहु इच्छाका परिवर्तन, अङ्गमर्द, (शरीरमें ऐंठन) भारीपन, रोमाञ्च, अरुचि, तमोदृष्टि, अप्रसन्नता और शीतानुभव ये सब लक्षण ज्वर आनेसे दिखाई देते हैं। विशेषतः वायुजन्य ज्वरमें उबासी, पित्तजन्य ज्वरमें नेत्रदाह और कफजनित ज्वरमें अन्नसे अरुचि होती है। त्रिदोष ज्वरमें सब लक्षण तथा द्वन्द्वज ज्वरमें दो दोषोंके लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

निद्रानाश, भ्रम श्वास, तन्द्रा, अङ्गसुप्ति, अरुचि, तृष्णा मोह, मद, स्तम्भ, दाह, शीत हृदयमें वेदना, अधिक समयमें दोषका परिपाक, उन्माद, दन्तश्याववर्ण, दन्तको मलिनता, जिह्वाका खरस्पर्श और कृष्णवर्ण होना, सन्धिस्थलमें और मस्तकमें वेदना नेत्रोंका वक्र और मैला होना, कानमें वेदना और शब्दश्रवण, प्रलाप, मुख, नासिका आदि स्रोतपथका पाक, कूजन, अचेतनता; स्वेद, मूत्र और मलका देरीसे थोड़ा निकलना—ये सब लक्षण त्रिदोषजज्वरमें दिखलाई देते हैं।

चरकसंहितामें ज्वरके पूर्वलक्षणका वर्णन इस प्रकार लिखा है—मुखका वैरस्य, शरीरका गुरुत्व, अन्नभक्षणमें

अनिच्छा, आँखोंका डबडबाना और लाल होना, निद्राधिक्य अरति, जँभाई, विनाम, कम्प, श्रम, भ्रम, प्रलाप, जागरण, रोमाञ्च, दन्तहर्ष, शब्द, शीत, वात और आतप आदिमें कभी अभिलाष, कभी अनभिलाष, अरुचि, अपरिपाक, शरीरमें दुर्बलता, अङ्गमर्द, अङ्गोंमें अवसन्नताका आना, अल्पप्राणता (शारीरिक बलको अल्पता), दीर्घसूत्रता, आलस्य, उपस्थित कार्यको हानि, अपने कार्यको प्रतिकूलता, गुरुजनोंके वाक्यमें अभ्यसूया, बालकके प्रति विद्वेष प्रकाश, अपने धर्ममें चिन्ताराहित्य, माल्यधारण, चन्दनादि लेपन, भोजन, क्लेशन, मधुर भक्ष्य पदार्थसे द्वेष करना तथा अम्ल, लवण और कटु द्रव्यके भक्षण करनेमें अत्यन्त आसक्ति । ज्वरको प्रथम अवस्थामें सन्ताप, पीछे धीरे धीरे उक्त लक्षण प्रकट होते हैं ।

अनति-उष्ण वा अनतिशीतल शरीर, अल्पसंज्ञा, भ्रान्तदृष्टि, स्वरभङ्ग; जिह्वा खरखरी, कण्ठ शुष्क; पुरीष, मूत्र और स्वेदका राहित्य, हृदय सरक्त (रक्तनिष्ठीवन) और निस्तेज (मानो छाती टूटी जा रही है), अन्नसे अरुचि, शरीर प्रभाहीन तथा श्वास और प्रलाप ये लक्षण अभिन्यास अथवा हतौजा नामक सान्निपातिक ज्वरमें * प्रकट होते हैं ।

सान्निपातिक रोग अत्यन्त कष्टसाध्य और असाध्य है। अभिन्यास रोगमें निद्रा, क्षीणता, ओजोहानि और शरीर निष्पन्द होने पर संन्यास नामक सान्निपातिक रोग उत्पन्न होता है । पित्त और वायु-वृद्धिके लिए ओजः धातुका क्षय होने पर गात्रस्तम्भ और शीतके कारण रोगी अचेतन होता है, जाग्रत होने पर भी तन्द्रा और प्रलापविशिष्ट अङ्ग रोमाञ्चित, शिथिल, अल्पताप और वेदनायुक्त होता है । यह ओजः धातुके रुक जानेसे होता है, इस दशामें सातवें, दशवें अथवा बारहवें दिनमें रोग बढ़ जाता है । इस दशामें या तो रोगीको शीघ्र आराम हो जाता है या उसकी मृत्यु हो जाती है ।

दो दोषोंके वृद्धि होने पर ज्वर होता है, उसको द्वन्द्वज कहते हैं । द्वन्द्वज ज्वर तीन प्रकारका है—वातपित्त, वातश्लेष्मा और पित्तश्लेष्मा । जंभाई, पेट फूलना, मत्तता,कम्पन, सन्धिस्थानोंमें वेदना, शरीरमें क्षमता और अभिताप, तृष्णा और प्रलाप ये वातपैत्तिक ज्वरके लक्षण हैं ।

शूल, काश, कफ, वमन, शीत, कम्पन, पीनस, देहका भारीपन, अरुचि और विष्टम्भ—ये वातश्लेष्मा ज्वरके लक्षण हैं ।

शीत, दाह, अरुचि, स्तम्भ, स्वेद, मोह, मत्तता, भ्रम, काश, अङ्गोंमें अवसन्नता, वमनेच्छा, ये पित्तश्लेष्मा ज्वरके लक्षण हैं ।

ज्वरमुक्त, क्षश, मिथ्या आहारविहारी व्यक्तिके अल्प अवशिष्ट दोषोंके वायु द्वारा वृद्धि होने पर पाँच कफ-स्थानोंके दोषानुसार पाँच प्रकारका ज्वर उत्पन्न होता है । ये पांच प्रकारके ज्वर सर्वदा अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थक और प्रलेपक नामसे प्रसिद्ध हैं । †

* चरकके मतसे सान्निपातिक ज्वर १३ प्रकारका है । एक दोषके आधिक्यसे तीन प्रकारका होता है, जैसे-वातोल्वण, पित्तोल्वण और कफोल्वण । दो दोषोंके आधिक्यसे भी तीन प्रकारका होता है, जैसे—वातपित्तोल्वण, वातश्लेष्मोल्वण और पित्तश्लेष्मोल्वण । तीन दोषोंमें हीनता, मध्यता और अधिकताके भेदसे छह प्रकारका होता है, यथा—अधिकवात, मध्यपित्त, हीनकफ, अधिकवात हीनपित्त और मध्यकफ, इस तरह छह प्रकारका तथा तीन दोषोंके ही समभावमेंसे उल्वण एक भेद है । तेरह प्रकारके सान्निपातिक ज्वरोंके नाम ये हैं—विस्फारक, आशुकारी, कम्पन, बभ्रु, शीघ्रकारी, भल्लु कूटपाकल, संमोहक, पाकल, याम्य, क्रकच, कर्कटक और वैदारक । सान्निपातिक देखो ।

† आमाशय, हृदय, कण्ठ, नसें और सन्धियें ये पांच कफके स्थान हैं । दिवाभाग और रात्रिकाल ये दो ज्वरके प्रकोपके समय हैं । इनमेंसे एक प्रकोपके समयमें दोष हृदयमें लीन हो कर अन्य प्रकोपकालमें ज्वर प्रकट होता है । इसको अन्येद्युष्क ज्वर कहते हैं । यह ज्वर प्रत्येक दिन, दिनमें प्रकट हो कर अथवा रात्रिमें उत्पन्न हो कर दिनमें मग्न होता है ; फिर उस समय हृदयमें दोष लीन होते हैं । दोष हृदयस्थित होनेसे तीसरे दिन वह आमाशयको आच्छन्न कर ज्वर उत्पन्न करता है । इसको तृतीयक ज्वर कहते हैं । यह ज्वर एक दिन अन्तर आता है, इसको इकतरा भी कहते हैं । दोष शिरस्थित होनेसे वह दूसरे दिन कंठ, तीसरे दिन हृदय तथा चौथे दिन आमाशयको दूषित कर ज्वर उत्पन्न करता है । यह ज्वर दो दिन अन्तरसे आता है । इसको चातुर्थक ज्वर कहते हैं ।

दिवारात्रके भीतर दोषसमूह देहके एक स्थानसे अन्य स्थानमें गमनपूर्वक अन्तमें आमाशयमें आश्रय ले कर ज्वर प्रकट करते हैं, प्रलेपक ज्वरमें धातु शोषित होती है। दोषोंके दो, तीन वा चार कफस्थानोंको आश्रय करने पर विपर्यय नामका कष्टसाध्य विषमज्वर उत्पन्न होता है। *

कोई कोई कहते हैं कि, विषमज्वर स्वभावत: हुआ करता है। कुछ भी हो भय, शोक, क्रोध वा आघात आदि किसी प्रकारके वाह्य कारणसे सञ्चित दोषोंके कुपित होने पर विषमज्वरका प्रारम्भ होता है। तृतीयक और चातुर्थक ज्वर वायुकी अधिकतासे तथा उत्पातिक और मद्यसम्भूत ज्वर पित्तजन्य हुआ करता है।

श्लेष्मप्रधान वातश्लेष्मासे प्रलेपक ज्वर होता है। मूर्च्छाके अप्रधान होने पर जिस विषमज्वरका उदय होता है, वह प्राय: दो दोषोंसे उत्पन्न होता है।

किसी किसी ज्वरको प्रथम दशामें वायु और श्लेष्मा द्वारा शीत प्रकट होता है, उनकी शान्ति होनेसे ज्वरके अन्तमें पित्तके कारण दाह उत्पन्न होता है। किसी ज्वरमें पहले हो पित्त द्वारा दाह और अन्तमें वायु और श्लेष्माके वेगके कारण शीत होता है। ये दो प्रकारके ज्वर द्वन्द्वजके कारण उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे दाहपूर्वक ज्वर अत्यन्त कष्टसाध्य है।

दिन-रातके भीतर जो छह दोषोंका समय कहा गया है, उन दोषोंके समयमें जो ज्वर होता है, वह ज्वर सहजमें नहीं छूटता ; इस कारण इसको भी विषमज्वर कहते हैं। वेगकी शान्ति होने पर ज्वर छूट गया है—ऐसा मालूम पड़ता है, किन्तु उस समय उसके धात्वन्तरमें लीन रहनेके कारण सूक्ष्मताप्रयुक्त उपलब्धि नहीं होती। ज्वरमुक्त व्यक्तिके शरीरस्थ अल्पदोष अहिताचारद्वारा बढ़ कर किसी एक धातुका आश्रय ले विषमज्वर उत्पन्न करता है।

* चातुर्थक ज्वरमें एक दिन ज्वर हो कर दो दिन मग्न रहता है, विपर्ययमें एक दिन मग्न रह कर दो दिन ज्वर रहता है। सततक ज्वर दिवारात्रके भीतर दो बार प्रकट होता और दो बार मग्न होता है, किन्तु सततक विपर्ययमें दिनरात ज्वर रहता है।

गुरुदोष रसवाही स्रोतद्वारा सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो कर सन्ततज्वर उत्पन्न करते हैं। सन्तत ज्वर नवज्वरकी तरह दीर्घकालस्थायी और रक्तमांसगत होता है। अन्येद्युष्क ज्वर मांसगत, तृतीयक ज्वर मेदगत और चातुर्थक ज्वर मज्जा और अस्थिगत है। यह ज्वर अति भयानक है। भूताभिषङ्ग जन्य ज्वरको भी कोई कोई विषमज्वर कहते हैं। सात दिन, दश दिन वा बारह दिन तक जो ज्वर रहता है, उसको सन्ततज्वर कहते हैं। सततक ज्वर दिन रातमें दो बार चढ़ता है। अन्येद्युष्क प्रतिदिन एक बार, तृतीयकज्वर प्रति तृतीय दिनमें एक बार तथा चातुर्थक ज्वर प्रति चतुर्थ दिनमें प्रकट होता है। दोषवेगके उदयकालमें ज्वर प्रकट होता है और रोगकी निवृत्ति होने पर ज्वर देहमें शान्तभावसे स्थित रहता है। अथवा दोषोंका परिपाक हो जानेसे एकबारगी ज्वर छूट जाता है। शरीरमें आघात आदि वाह्य कारणसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसको अभिघातजन्य ज्वर कहते हैं। इसमें † प्राय: वातपित्तका प्राबल्य होता है। श्रम, क्षय और अभिघातके कारण वायु कुपित हो कर समस्त शरीरको आश्रय ले ज्वर उत्पन्न करती है। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि, किसी भी प्रकारका ज्वर क्यों न हो, उसमें वात, पित्त और श्लेष्मामेंसे एक वा दो दोषके लक्षण अवश्य प्रकट होंगे।

दोषोंके हीनमध्य वा अधिक होने पर ज्वरका वेग भी यथाक्रमसे तीन दिन, सात दिन वा बारह दिन तीव्रतासे रहता है। ये तीनों तरहके दोष उत्तरोत्तर कष्टसाध्य हैं।

ज्वर शारीर और मानसिक भेदसे, सौम्य और आग्नेयके भेदसे, अन्तर्वेग और वहिर्वेगके भेदसे तथा साध्य और असाध्यके भेदसे दो प्रकारका है। दोष और कालके बलाबलके अनुसार सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थक भेदसे पांच प्रकारका, रसरक्तादि धातुसमूहके आश्रय भेदसे सात प्रकारका तथा वातपित्तादि और आगन्तुज कारणभेदसे आठ प्रकारका है।

† अभिघात ज्वरमें शरीरमें व्यथा, सूजन और विवर्णता आ जाती है।

जो ज्वर पहले शरीरमें होता है, उसको शारीर और जो ज्वर पहले मनमें उत्पन्न होता है, उसको मानसज्वर कहते हैं। चित्तको विह्वलता, अरति और ग्लानिका होना मानसिक सन्तापका लक्षण है और इन्द्रियोंकी विकृति दैहिक सन्तापका लक्षण है।

वातपित्तात्मक ज्वरमें रोगीको शीतल, वातकफात्मक ज्वरमें उष्ण और उभयलक्षणाक्रान्त ज्वरमें शीत और उष्ण दोनों प्रकारको इच्छा होती है।

अत्यन्त अन्तर्दाह, अधिक पिपासा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान और हड्डियोंमें दर्द, पसीनेका रुकना तथा श्वास और मल निग्रह, ये सब अन्तर्वेग ज्वरके लक्षण हैं।

अत्यन्त वाह्यसन्ताप तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धि और अस्थिमें वेदना तथा मलनिग्रह आदिको अल्पता ये वहिर्वेग ज्वरके लक्षण हैं।

आमाशयसे हो ज्वरकी उत्पत्ति होती है। अतएव ज्वरके पूर्वलक्षणों अथवा लक्षणोंको देख कर शरीरके लिए हितकारक लघु आहारीय द्रव्य अथवा अपतर्पण द्वारा शरीरमें लघुता लानी चाहिये। तदनन्तर कषाय पान, अभ्यङ्ग, स्वेद, प्रदेह परिषेक, अनुलेपन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन, नस्यकर्म, धूम्रपान, अञ्जन और क्षीरभोजन आदि ज्वरके प्रकार भेदसे यथायोग्य विधेय है।

ज्वरके रसस्थ होने पर शरीरमें गुरुता, दीनभाव उद्वेग, अङ्गावसाद, वमन, अरुचि, शरीरके वहिर्भागमें उत्ताप, अङ्गवेदना और जँभाई आती हैं।

रक्तस्थ ज्वरमें रक्तानिःसरण पिड़का, तृष्णा, पुनः पुनः खूनसहित थूक, दाह, शरीरमें रक्तिमा, भ्रम, मत्तता और प्रलाप उपस्थित होता है।

मांसस्थ ज्वरमें अत्यन्त अन्तर्दाह तृष्णा, मोह, ग्लानि, अतीसार, शरीरमें दुर्गन्ध और अङ्गविक्षेप होता है।

ज्वर मेदस्थ होनेसे अत्यन्त पसेव, पिपासा, प्रलाप अरति, मुखमें दुर्गन्ध असहिष्णुता, ग्लानि और अरुचि होती है।

ज्वर अस्थिगत होने पर वमन, विरेचन, अस्थिभेद, कण्ठकूजन, अङ्गविक्षेप और श्वास उपस्थित होता है।

ज्वर मज्जागत होनेसे हिचकी, श्वास, काश, अन्धकार दर्शन, मर्माच्छेद, शरीरके वहिर्भागमें शैत्य और अन्तर्दाह होता है।

शुक्रस्थ ज्वरमें आत्मा शुक्रक्षरण और प्राणवायुका विनाश कर अग्नि और सोमधातुके साथ गमन करती है।

ज्वर रस और रक्ताश्रित होनेसे साध्य है ; मांस, मेद और अस्थिगत होने पर कृच्छ्रसाध्य तथा शुक्रगत होनेसे असाध्य हो जाता है।

दोष चाहे संसृष्ट हों चाहे सान्निपातिक, कुपित और रसके अनुगत हो कर स्वस्थानसे कोष्ठस्थ अग्निका निरास पूर्वक अग्निकी उष्माके द्वारा देहका बल बढ़ा कर स्रोतोंको रोक देते हैं ; पीछे तमाम देहमें व्याप्त और प्रबल हो कर अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न करते हैं। उस समय मनुष्यका सारा शरीर गरम हो जाता है।

नूतन ज्वरमें प्रायः अग्नि अपने स्थानसे स्थानान्तरित हो जाती है और उससे स्रोत बन्द हो जाते हैं। इसी लिए रोगीके शरीरसे पसीना नहीं निकलता।

अरुचि, अविपाक, उदरको गुरुता हृदयको अविशुद्धि, तन्द्रा, आलस्य, अविच्छेद भावसे सर्वदा कठिन ज्वरका भोग, दोषोंकी अप्रवृत्ति, लालास्राव हृल्लास (जी मतलाना), क्षुधानाश, मुखमें विस्वाद, शरीरमें स्तब्धता, सुप्तता, गुरुता, मूत्राधिक्य, मलमें अपरिपक्वता तथा शरीरमें अक्षीणता—ये सब आमज्वरके लक्षण हैं। क्षुधा, शरीरस्थ द्रव धातुओंकी शुष्कता, शरीरमें लघुता, ज्वरकी मृदुता, दोषप्रवृत्ति (मलमूत्रादिका उत्सर्ग) तथा अष्टाह भोग—ये निरामज्वरके लक्षण हैं।

नवज्वरमें दिवानिद्रा, स्नान, अभ्यङ्ग, गुरु और अधिक भोजन, मैथुन, क्रोध, प्रबल वायु वा पूर्व दिशाको वायुका सेवन, व्यायाम और कषाययुक्त पदार्थका सेवन करना छोड़ देना चाहिये।

क्षय, निरामवायु, भय, क्रोध, काम, शोक और परिश्रम—इनके सिवा अन्य किसी कारणसे ज्वर हो तो पहले उपवास करना चाहिये। उपवास फलदायक होने पर भी, जिससे शरीर अधिक दुर्बल न हो, ऐसा उपवास करना चाहिये ; क्योंकि शरीरमें बल न होनेसे चिकित्सासे किसी प्रकारका सुफल नहीं मिल सकता।

तरुण ज्वरमें उपवास, स्वेद क्रिया, यवागू आहार तथा जल और मण्डादिके साथ तिक्तरस पिलानेसे अपक्व रसका परिपाक होता है।

वातजनित, कफजनित तथा वात और कफ दोनोंसे उत्पन्न नवीन ज्वरमें प्यास लगनेसे गरम पानी देना चाहिये ; दूसरे पित्त और मद्यपानजनित रोगोंमें तिक्त पदार्थके साथ पानी खौला कर ठण्ढा होने पर देना चाहिये। पूर्वोक्त दोनों ही प्रकारका जल अग्निदीपक, आमपाचक, ज्वरघ्न, स्रोतःशोधक तथा रुचि और घर्मजनक है।

तरुणज्वरमें पिपासा और ज्वरकी शान्तिके लिए मोथा, क्षेत्रपर्पटी, उशीर (खस), लालचन्दन, वाला और सोंठ इनका काढ़ा पिलाना चाहिये।

यदि रोगीके आमाशयस्थ दोषोंमें कफकी अधिकता मालूम पड़े और ऐसा मालूम पड़े कि वमनका उद्वेग होनेसे वह दोष अपने आप निकल जायगा, तो वमनकारक औषध दे कर, ज्वरके मूल दोषको निकाल देना चाहिये। अन्यथा तरुणज्वरमें रोगीको यत्नपूर्वक वमन कराना उचित नहीं है। कारण, बलपूर्वक वमन करानेसे असह्य हृद्रोग, श्वास, आनाह और मोह उपस्थित हो सकता है।

चिकित्सा—ज्वरके पूर्वरूपके* प्रकट होने पर वायुजन्य होनेसे स्वच्छ घृतपान, पित्तजन्य होनेसे विरेचन और कफजन्य होनेसे मृदु-वमन कराना विधेय है। द्वि-दोषजन्य ज्वरमें स्निग्ध क्रिया या वमन विरेचन करानेकी जरूरत नहीं ; लङ्घन कराना चाहिये। ज्वरके लक्षण जब स्पष्ट प्रकट हों, तब लङ्घन कराना ही हितकर है। दोषोंकी आमाशयमें स्थिति होने और वमनकी इच्छा होने पर वमन कराना ही सबसे श्रेयः है। जब तक जरा भी दोष रहे, तब तक उपवास कराना चाहिये। वायुजन्य और भयजन्य मानसिक तथा हिक्रणीय ज्वरमें लङ्घन कराना उचित नहीं है। कभी सिर्फ वमन, कभी सिर्फ उपवास और कभी वमन और उपवास दोनोंके जरिये दोषोंका क्षय कर क्षुधाका उद्रेक होने पर विवेचनापूर्वक हलका आहार (पथ्य) देना विधेय है। प्रथमतः मण्ड, पीछे पेय, फिर विलेपी देना चाहिए। जब तक ज्वरका मृदुभाव न हो, अथवा जब तक ज्वरारम्भके दिनसे छह दिन बीत न जाय, तब तक यवागू आदि ही हितकर पथ्य हैं। मदात्यय रोगीका ज्वर, मद्यपायी व्यक्तिका ज्वर, मद्यपानजनित ज्वर, ग्रीष्मकालीन ज्वर, पित्तकफाधिक्य ज्वर और ऊर्ध्वग रक्तपित्तरोगीके ज्वरके लिए यवागू हानिकारक है।

मदात्यय रोगी आदिके ज्वरमें पहले किसमिस, दाड़िम आदि ज्वरघ्न फलोंके रसके साथ धानका लावा (पीस कर) तथा उपयुक्त मधु और शर्करा मिला कर खिलाना चाहिये। इस आहारका नाम है तर्पण। तर्पण जीर्ण होने पर सात्म्य और बलके अनुसार मूंगका पतला जूस अथवा मांसरसके साथ भोजन योग्यकालमें अन्न प्रदान करते हैं।

पीछे उसका रस रोगीके मुंहमें जैसा लगा रहे, उससे विपरीत रसयुक्त तथा मनोज्ञ-वृक्षकी शाखाके अग्रभागसे (दंतवनसे) दन्तमार्जन और धुल कर पुनः पुनः मुख प्रक्षालन (कुल्ला) करना चाहिये। इस प्रकारसे दाँतोंके धोनेसे मुखका वैरस्य दूर होता है तथा अन्न और पानकी अभिलाषा और रसकी अभिज्ञता उत्पन्न होती है। रोगीको सातवें दिन हलका भोजन करा कर उसके दूसरे दिन पाचन या शमन-कषाय पिलाना चाहिये। कारण तरुण ज्वरमें कषायरसके सेवन करनेसे दोष स्तब्ध हो जाते हैं तथा उन दोषोंका परिपाक न होनेके कारण वे बद्ध हो कर विषमज्वर उत्पन्न करते हैं। ज्वरमें कफकी मन्दता तथा वातपित्तकी अधिकता और दोषका परिपाक होनेसे घी पीना उचित है। किन्तु दस दिन हो जाने पर भी यदि कफकी अधिकता तथा लङ्घनका अच्छा फल न दीखे, तो घी नहीं पीना चाहिये। ऐसी दशामें कषायके द्वारा जब तक शरीरमें लघुता न दीखे, तब तक मांस-रसके साथ अन्न दिया जाता है। उष्णोदक

* वायुजन्य ज्वरका पूर्वरूप अतिशय जृम्भन, पित्तजन्य ज्वरमें नेत्रदाह और कफजन्य ज्वरमें अन्नसे अरुचि होती है।

† जिसके जरिये शरीर लघु (हलका) हो जाय, उसको लंघन कहते हैं। अतएव केवल उपवास करना ही लंघन नहीं है। उपवास, निर्वातस्थानमें वास, वमन, विरेचन आदि लंघनमें ही शामिल हैं। स्वेदसहित पुष्टिकर होनेसे लंघनमें शामिल है।

(गरम गरम पानी) दीपककर, कफविश्लेषक और वातपित्तके लिए अनुलोमकर है। कफवात-जन्य ज्वरमें उष्णोदक हितकर और पिपासाके लिए शान्तिकर है। इससे दोष और स्रोतपथ सरल होते हैं। इस ज्वरमें ठण्डा पानी पीनेसे शैत्यके कारण ज्वर बढ़ जाता है। पित्त, मद्य वा विषजन्य ज्वर हो, तो गाङ्गेय, नागर, उशीर, पर्पट और उदीच्य इनको रक्तचन्दनके साथ पानीमें उबाल कर ठण्डा हो जाने पर पीना चाहिये। आहारके समय पाचक द्रव्यके साथ पेया बना कर* पीना चाहिये। वायुजन्य ज्वरमें पञ्चमूलीका काढ़ा, पित्तजन्य ज्वरमें सोथा कटकी और इन्द्रयवका काढ़ा तथा कफजन्य ज्वरमें पिप्पल्यादिका काढ़ा दोषोंका परिपाक करता है। द्विदोष जन्य ज्वरमें द्विदोषनिवारक पाचन मिला कर पीलाना चाहिये। ज्वर मृदु, देह लघु और मल सरल होने पर दोषोंका परिपाक हुआ समझें, तथा इस अवस्थामें दोषके अनुसार ज्वरघ्न औषधका प्रयोग करें। ज्वरमें कोई ७ दिन पीछे और कोई १० दिन बाद औषध प्रयोग करना उचित बतलाते हैं। पित्तजन्य ज्वरमें थोड़े दिनोंमें औषधका प्रयोग किया जा सकता है तथा दोषके परिपाक होने पर भी कुछ दिन औषध दी जा सकती है। अपक्वदोषमें औषध प्रयोग करनेसे पुनः ज्वर प्रकट होता है, इस अवस्थामें शोधन और शमनीय प्रयोग करनेसे विषमज्वर हो सकता है। ज्वर-रोगीका मल निकलता रहे तो रोकना नहीं चाहिये; हां, ज्यादा निकलने पर अतिसारकी तरह प्रतीकार कराना चाहिये। स्रोतपथका रुका हुआ मल परिपाक हो कर कोष्ठस्थानमें आ जाने पर ज्वर थोड़े दिनका होने पर भी विरेचन (दस्त) कराना उचित है। रोगी बलवान् हो तो श्लेष्मा ज्वरमें क्रम क्रमसे वमन कराना चाहिये। पित्ताधिक्य ज्वरमें मलाशय शिथिल हो तो विरेचन, वायुजन्य यन्त्रणायुक्त और उदावर्तरोगयुक्त ज्वरमें निरूहवस्ति, तथा कटि और पृष्ठदेशमें वेदना होने पर दीप्ताग्निविशिष्ट रोगीके लिए अनुवासन विधेय है। कफाभिभूत होनेसे शिरोविरेचन कराना चाहिये, इससे मस्तकका भार और वेदना दूर होती है तथा इन्द्रियां प्रतिबोधित होती हैं। दुर्बल रोगीके उदरमें आध्मान हो कर यन्त्रणा होने पर देवदारु, वच, कुष्ठ, शोलुफा, हिङ्गु, और सैन्धवका प्रलेप दें तथा वायु ऊर्द्ध्वगति होने पर उन पदार्थोंको अम्लरसमें पीस कर ईषदुष्ण प्रयोग करें। ऊर्द्ध और अधोदेश संशोधित होने पर भी यदि ज्वर शान्त न हो और शरीर रूखा हो तो वह अवशिष्ट दोष घृत द्वारा समताको प्राप्त होता है, शरीर कृश होने पर अल्पदोषशमनी प्रयोग करना चाहिये, इससे साम्य लाभ होता है। जो रोगी ज्वरसे क्षीण हो गया हो उसको वमन वा विरेचन न कर यथेष्ट दूध पिलाना अथवा निरूह द्वारा मल निःसरण कराना चाहिये। दोषोंके परिपाक हो जानेके बाद निरूह प्रयोग करनेसे शीघ्र बल और अग्निकी वृद्धि, ज्वरनाश, हर्ष तथा रुचि उत्पन्न होती है। उपवास वा श्रमजन्य वाताधिक्य ज्वर होनेसे दीप्ताग्नि व्यक्तिके लिए मांसरस और अन्न विधेय है। कफजन्य ज्वरमें मूंगकी दालका पानी (जूस) और अन्न तथा पित्तजन्य ज्वरमें ठण्डा मूंगकी दालका जूस और अन्न शर्कराके साथ खाना चाहिये। वातपैत्तिक ज्वरमें दाड़िम वा आँवलेके साथ मूंगकी दालका जूस, वातश्लेष्मा ज्वरमें ह्रस्व-मूलकका जूस तथा पित्तश्लेष्माज्वरमें पटोल और निम्बजूस अन्नके साथ खिलाना चाहिये। कफजन्य अरुचि होने पर त्रिकटुके साथ मठा पीना विधेय है। क्षय, अम्लदोषविशिष्ट, क्षीण और जीर्णज्वरपीड़ित रोगीके लिए तथा वातपित्तज्वरमें दोषोंके बद्ध रहनेसे वा देह रूक्ष होनेसे तथा प्यास वा दाह होनेसे दूध पीना स्वास्थ्यकर है। तरुणज्वरमें दूध पीना बिल्कुल मना है, किन्तु क्षीण शरीरवालेको वातपित्तजन्य ज्वरमें तथा अग्नि तेज होने पर दूध दिया जा सकता है।

पुराने ज्वरमें कफपित्तकी क्षीणता होनेसे, जिसका मल रूक्ष और बद्ध हो तथा अग्नि तेज हो, उसको अनुवासन दिया जाता है। जीर्णज्वर होने पर मस्तकमें भारीपन, शूल तथा इन्द्रियस्रोत बंद होने पर शिरोविरेचनसे अरुचि और शान्ति होनेकी सम्भावना है। जिन समुदाय जीर्णज्वरमें चर्ममात्र अवशिष्ट है तथा आगन्तुक कारण अनुबन्ध होता है, धूप और अञ्जन प्रयोग करने-

* जिसका पेया बनाया जाता है, उसको चौदह गुने जलमें पाक करना चाहिये। अधिक द्रव अवस्थामें पाक ठीक होता है।

से उस समुदाय ज्वरकी शान्ति हो सकती है। क्षीण व्यक्ति अधिक काल तक सततक ज्वर वा विषम ज्वरमें आक्रान्त होने पर उसको बहुत और हलका भोजन देना चाहिये। ऐसी हालतमें दूध और मांसरस प्रशस्त पथ्य है। मूंग, मसूर, चना और कुलथी, इनका जूस ज्वररोगमें आहारार्थ व्यवहार किया जाता है। लाव, कपिञ्जल, एण, पृषत्, शरभ, कालपुच्छ, कुरङ्ग, मृगमातृक और शशक इनका मांस मांसाशी रोगियोंके लिए व्यवस्थेय है। ज्वरमें वायुका प्रकोप होनेसे इनका मांस उपयुक्त कालमें यथापरिमाण आहार करना प्रशस्त है। सबल न होने तक शरीर पर जलसेचन अवगाहन, स्नेहसेवन, व्यायाम, संशोधन, स्नान, अभ्यङ्ग, दिवानिद्रा, शीतलसेवन तथा स्त्रीसंसर्ग नहीं करना चाहिये। ज्वरके समय यदि किसी प्रकारके कार्यसे मनकी शान्ति नष्ट हो जाय, तो प्रमेह हो सकता है, इसलिए रोगीके मलमूत्रको सरल रखना और उसको नियमित आहार देना उचित है। ज्वर शान्त हो जाने पर भी यदि अरुचि, देहमें अवसाद, अङ्ग और मलमें विवर्णता हो, तो अनुबन्धकी आशङ्कासे शोधनी प्रयोग करनी चाहिये। सुश्रुतमें लिखा है कि, सब तरहके ज्वरकी हेतु विपर्यय द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। श्रम, क्षय और अभिघातजन्य ज्वरमें मूलव्याधिकी चिकित्सा करनी चाहिये। स्तन्य अवतरणके समय सूतवत्साओंको जो ज्वर होता है, उसकी दोषके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

ज्वररोगीके अन्नाभिलाषी होने पर उसको पुरातन षष्ठिकधान्य, यवागू आदि दाड़िमके रसमें अम्ल और सोंठका चूरा मिला कर पिलाना चाहिये। यदि रोगीको पित्तका आधिक्य हो और उसका मल निकलता हो, तो उस यवागूको ठण्डा कर मधुके साथ पीलाना चाहिये। यदि रोगीके पार्श्व, वस्ति और शिरःप्रदेशमें वेदना हो, तो गोखरू और कण्टकारीद्वारा रक्तशाली धान्यके चावलका मण्ड बना कर उसको खिलाना चाहिये। ज्वरातिसार व्यक्तिको पिठवन, बला (बिजबन्द), बेलगरी, सोंठ, नीलोत्पल और धनियासे बना हुआ रक्तशालीका पेया पिलाना चाहिये। श्वास, काश और हिचकी हो तो विदारी गन्धादिसिद्ध यवागू पिलाना उचित है। मल बद्ध रहनेसे पीपल और आँवलेके द्वारा बरका पेया बना कर घीके साथ पिलाना चाहिये। रोगीका कोठबद्ध और उदरमें वेदना हो तो किसमिस, पीपलामूल, चविका, चीता और सोंठका मण्ड बना कर उसको पिलाना चाहिये। मलद्वारमें परिकर्त्तिका (काटने जैसी पीड़ा) हो तो बेलगरी, बला, बेर, पीठवन और शालपर्णि इनके द्वारा उबाला हुआ यवागू पिलावें। जिस ज्वररोगीके लिए जूस हितकर जान पड़े, उसके लिए मूंग, मसूर, चना, कुलथीका जूस बनाना चाहिये। बुखारमें परवलकी पत्ती, परवल, कुलक, अकवन, ककरोल और करेला ये शाक प्रशस्त हैं। ज्वररोगीको आहारके बाद यदि प्यास लगे तो अनुपानके लिए गरम पानी तथा जो रोगी मद्यासक्त है, उनका दोष और बलके अनुसार मद्य देना चाहिये। नूतन बुखारमें दोषोंके परिपाकार्थ रोगीको गुरु, उष्ण, स्निग्ध और कषायले पदार्थ खाना छोड़ देना चाहिये।

कषायक्रम—ज्वरकी शान्तिके लिए मोथा और क्षेत्रपर्पटीका काढ़ा वा शीतलकषाय बना कर पिलाना चाहिये, अथवा सोंठ, क्षेत्रपर्पटी और दुरालभाका क्वाथ वा चिरायता, मोथा, गुलञ्च, सोंठ, अकवन, खसखसकी जड़ और बाला इनका क्वाथ पिलावें।

इन्द्रयव, अमलतास, अकवन, कचूर, कटकी, सूचिमुखी, आतुष, नीम-छाल, परवलकी पत्ती, दुरालभा, वच, मोथा, खसखसकी जड़, महुवेका फूल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और पिठवन इनका क्वाथ अथवा शीतकषाय पानेसे ज्वर शान्त होता है। महुवेका फूल, मोथा, किसमिस, गाम्भारीकी छाल, परुषफल, खसखस, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और कटकी इनका काढ़ा बासी करके पीनेसे बहुत जल्द ज्वर शान्त होता है। ज्वर-रोगीको मधु और घीके साथ त्रिवृत् (निशोत)का चूर्ण लेहन वा पहले मधु चाव कर घीके साथ त्रिफलाका रस वा दूधके साथ शोणालु वा किसमिसका रस पीना चाहिये, अथवा निशोत और अमलतासका चूर्ण दूधके साथ पीनेसे भी शीघ्र ही ज्वरसे छुटकारा मिलता है। किसमिसके साथ हड़का सेवन कर दुग्धानुपान वा पहले किसमिसका रस पी कर किसमिसके साथ हड़ खानेसे क्वाथ,

श्वास, शिरःशूल और पार्श्वशूल जाता रहता है। पञ्चमूलके द्वारा दुग्ध उबाल कर पीनेसे ज्वर उपशमित होता है।

मलद्वारमें परिकर्त्तिका (कतरने जैसी पीड़ा) हो तो ज्वर-रोगीको दुग्धके साथ एरण्डमूलका काढ़ा अथवा दूधके साथ बेलगरी उबाल कर उस दुग्धको पीना चाहिए। इससे परिकर्त्तिका ज्वरसे छुटकारा मिल सकता है। गोखरू, पिठवन, कण्टकारी, गुड़ और सोंठ इनको दुग्धके साथ उबाल कर पीनेसे मलमूत्रका विबन्ध, शोथ और ज्वर नष्ट होता है। सोंठ, किसमिस और पिण्डखजूरको दूधमें उबाल कर घी, मधु और चीनीके साथ पीनेसे पिपासा और ज्वर जाता रहता है।

वायुजन्य ज्वरमें पीपल, श्यामालता, द्राक्षा, शतपुष्पा (सोंय) और हरेणु, इनका क्वाथ गुड़के साथ पीना चाहिये; अथवा गुलञ्चका क्वाथ ठण्ढा होने पर पीना चाहिये। बला, कुश और गोखरूका क्वाथ चौथाई रह जाने पर चीनी और घीके साथ पीना चाहिये। शतपुष्पा, बच, कुड़, देवदारु हरेणु, धान्य, उशीर (खसखस) मोथा, इनका क्वाथ मधु और चीनीके साथ पीना चाहिये। द्राक्षा, गुलञ्च, गाम्भारी, त्रायमाणा और श्यामालता, इनका क्वाथ गुड़के साथ सेवनीय है। गुलञ्च और शतमूलीका रस गुड़के साथ सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है। अवस्थाविशेषमें घृतमर्द्दन, स्वेद और आलेपन प्रयोग किया जाता है। ज्वरकी आमावस्थाका परिपाक होने पर यदि वायुजन्य उपद्रव हो और अन्य किसी दोषका संस्रव न हो, सिर्फ वातजन्य ज्वर हो यदि जीर्णज्वर वायुजन्य हो अर्थात् ज्वर सुबहसे शुरू हो कर दोपहरको मग्न हो, तो घृतमर्द्दन विधेय है। यदि शामसे शुरू हो कर दो प्रहरके भीतर मग्न हो, तो गायका घी पिलाना चाहिये।

पित्तजन्य ज्वरमें श्रीपर्णी (गाम्भारी), रक्तचन्दन, खसको जड़, फालसा और मौलपुष्प इनका काढ़ा चीनीसे मीठा करके पीना चाहिये। अनन्तमूलका क्वाथ चीनी डाल कर पीनेसे विशेष लाभ होता है। यष्टिमधु, रक्तोत्पल, पद्मकाष्ठ और पद्म, इनका शीतल क्वाथ चीनीसे पीने योग्य है। गुलञ्च, पद्मकाष्ठ, लोध्र, श्यामालता और उत्पल, इनका ठण्ढा काढ़ा चीनी मिला कर पीवें। द्राक्षा, अमलतास और गाम्भारी, इनका काढ़ा चीनीके साथ पीवें। मधुर और तिक्त शीतल क्वाथ शक्करके साथ पीनेसे प्रबल दाह और तृष्णा शान्त होती है। शीतल जल मधुके साथ भर पेट पी कर वमन करनेसे तृष्णा शान्त होती है। यशडुम्बुर और चन्दनको दूधके साथ पकावें; इस क्वाथको ठण्ढा करके पीनेसे अन्तर्दाह शान्त होता है। जिह्वा, तालू, गलदेश और क्लोम शुष्क होने पर पद्मकाष्ठ, यष्टिमधु, द्राक्षा, उत्पल, रक्तोत्पल, भृष्टयव, उशीर, मञ्जिष्ठा और गाम्भारफल इनके कल्कका मस्तक पर लेप देना चाहिये। मुखमें विरसता होनेसे बिजौरा नीबूकी केशरको मधु और सैन्धव लवणके साथ अथवा चीनीके साथ दाड़िमका कल्क वा द्राक्षा और खजूरका कल्क अथवा इनका क्वाथ वा रसका गण्डूष मुखमें धारण करना पड़ता है।

कफजन्य ज्वरमें कुटजक, गुलञ्च, निम्ब, कट्फल इनका क्वाथ मधुके साथ अथवा त्रिकटु, नागकेशर, हल्दी, कटकी और इन्द्रयवका काढ़े अथवा हल्दी, चित्रक, निम्ब उशीर अतिविषा, वच, कुष्ठ, इन्द्रयव, मोथा और पटोलका क्वाथ मधु और मिर्चके साथ सेवन करना चाहिये। श्यामालता, अतिविषा, कुष्ठ, पुरा, दुरालभा, मोथा इनका काढ़ा अथवा मोथा, इन्द्रयव, त्रिफला इनका क्वाथ सेवनीय है।

वातश्लेष्मज्वरमें राजवृक्षादिवर्गका क्वाथ मधुके साथ उपयुक्त समय पर सेवन करना चाहिये; अथवा सोंठ, धान्यक, वरङ्गी, हड़, देवदारु, बच, शिग्रुबीज, मोथा, चिरायता और कटफलका क्वाथ मधु और हिङ्गुके साथ उपयुक्त समय पर सेवन करनेसे ज्वर शीघ्र आरोग्य होता है। श्वास, काश, श्लेष्मानिर्गम, गलग्रह, हिक्का, कण्ठशोथ, हृदिशूल और पार्श्वशूल ये सब उपद्रव उक्त क्वाथके पीनेसे जाते रहते हैं।

पित्तश्लेष्मा ज्वरमें इलायची, परवल, त्रिफला, यष्टिमधु, वृष और वासक, इनका क्वाथ मधुके साथ अथवा कटकी, विजया, द्राक्षा, मोथा और क्षेत्रपर्पटी, इनका क्वाथ अथवा काञ्जिका बच, पपटी, धनिया, हिङ्गु, हड़, मोथा, द्राक्षा और नागरमोथा, इनका काढ़ा मधुके

साथ सेवन करना चाहिये। दो तोले कटको और शक्कर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तश्लेष्माज्वर शान्त हो जाता है।

हर्र, बहेड़ा, आँवला, अमलतास, किसमिस और कटको, इनका क्वाथ पित्तश्लेष्मनाशक और अनुलोमजनक है।

वातपित्तजन्य ज्वरमें चिरायता, गुलञ्च, द्राक्षा, आँवला और शठी, इनका क्वाथ गुड़के साथ सेवन करें। रास्ना, वृषोत्थ, त्रिफला और अमलतास इनका कषाय सेवन करनेसे वातपित्त ज्वरकी शान्ति होती है।

त्रिदोषजन्य ज्वरमें प्रत्येक दोषकी शान्तिकर औषधियोंका एकत्र सेवन करना चाहिये। सभी ज्वरोंमें दोषके प्राधान्यके अनुसार चिकित्सा की जाती है। वृश्चिक, बिल्व, मोथा, दूध और जलको एकत्र उबाल कर दुग्ध शेष रहने पर पीनेसे सब तरहका ज्वर शान्त हो जाता है। तीन भाग जलमें एक भाग दुग्ध सहित शिरीष वृक्षका सार उबाल कर दुग्ध शेष रहने पर उसको पीनेसे सब तरहका ज्वर शान्त हो जाता है। नल और वेतसकी जड़, मूर्वामूल और देवदारु, इनका कषाय पीनेसे ज्वरकी शान्ति होती है। त्रिदोषजन्य ज्वरमें त्रिफलाका काढ़ा घीके साथ सेवन किया जाता है। अनन्तमूल, वाला, मोथा, सोंठ और कटकी, इनको एकत्र कर दो तोले गरम पानीके साथ सूर्योदयसे पहले सेवन करें। अग्निकर, विरेचक और ज्वरघ्न इन तीन तरहकी चीजोंमेंसे कोई एक वा दो चीजें औषधमें मिला दें। वृहती, कण्टकारी, इन्द्रयव, मोथा, देवदारु, सोंठ और चविका, इनका काढ़ा पीनेसे सान्निपातिक ज्वर जाता रहता है। शठी, कुड़, कण्टकारी, कर्कटशृङ्गी, दुरालभा, गुलञ्च, सोंठ, अकवन, चिरायता और कटकी इनका नाम है 'शठ्यादिवर्ग'। इस शठ्यादिवर्गके सेवन करनेसे सान्निपातिक ज्वर नष्ट हो जाता है। यह क्वाथ, हृद्रोग, पार्श्ववेदना, श्वास और तन्द्रा आदिके लिए भी अच्छा है। वृहती, कण्टकारी, कुड़, वरङ्गी, कचूर, काकड़ासींगी, दुरालभा, इन्द्रयव, परवलकी पत्ती और कटकी, इनका नाम है वृहत्यादिवर्ग। इसके सेवन करनेसे सान्निपातिक ज्वर दूर हो सकता है।

विषमज्वरमें वमन, विरेचनका प्रयोग करना चाहिये। प्लीहोदर रोगमें कहा गया घी अथवा त्रिफलाचूर्ण गुड़के साथ गाढ़ा करके पीना चाहिये। गुलञ्च, निम्ब, आंवला, इनका क्वाथ एकत्र मधुके साथ पीना चाहिये। प्रतिदिन प्रातःकाल घीके साथ लहसुन खानेकी भी व्यवस्था की जा सकती है। मधुक, पटोल कटको, मोथा और हर्र इन पांच चीजोंमेंसे दो या तीन वा पांचोंहीको एकत्र मिला कर उसका काढ़ा पीना चाहिये। घी, दूध दोनों मधु और पीपल एकत्र सेवन करनेसे भी विषमज्वरमें शान्ति पहुंचती है।

दशमूलीके काढ़ेके साथ पीपल सेवनीय है अथवा पीपल प्रतिदिन एक एक बढ़ा कर सेवनपूर्वक दुग्धान्न और मांसरस तथा अन्न भक्षण करें। उत्तम मद्यपान और कुक्कुट-मांस भक्षण अवस्थाविशेषमें विधेय है। कोल, गनियारी और त्रिफला इनका क्वाथ दहीके साथ घीमें पाक करके उसमें निलक-लोध प्रक्षेप करें। इस घीके सेवन करनेसे विषमज्वर शान्त होता है।

इन्द्रयव, पटोलको पत्ती और कटकी इनका काढ़ा सन्तत ज्वरमें; परवलकी पत्ती अनन्तमूल, अकवन और कटको, इनका क्वाथ सततक ज्वरमें, नीम छाल, परवलकी पत्ती, हर्र, बहेड़ा, आंवला, किसमिस, मोथा और इन्द्रयव इनका क्वाथ अन्येद्युष्क ज्वरमें, चिरायता, गुलञ्च, रक्तचन्दन और सोंठ, इनका काढ़ा तृतीयक ज्वरमें; तथा गुलञ्च, आंवला और मोथाका काढ़ा चातुर्थक बुखारमें देना चाहिये।

वासक, गुलञ्च, हरीतकी, बहेड़ा, आंवला, बलालता और दुरालभा इनका क्वाथ घी और घीसे दूने दूध तथा पीपल, मोथा, किसमिस, रक्तचन्दन, नीलोत्पल और सोंठ इनके कल्क द्वारा घृतपाक कर सेवन करनेसे जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

पीपल, अतिविषा, द्राक्षा, श्यामालता, बेल, रक्तचन्दन, कटकी (नागकेशर), इन्द्रयव, खसकी जड़, सिंघी, आंवला, मोथा, त्रायमाणा, स्थिरा, भूआंवला, सोंठ और चित्रक, इनको घीमें भून कर (पाक करके) सेवन करनेसे विषमाग्नि-जीर्णज्वर उपशान्त होता है।

दूधसे जीर्णज्वर मात्रका ही उपशम हुआ करता

है। अतएव जीर्णज्वरमें औषधके साथ उबाला हुआ दूध पीना चाहिये।*

गुलञ्च, त्रिफला, वासक, त्रायमाणा और यवास इनका क्काथ तथा द्राक्षा, पीपल, मोथा, सोंठ, कुड़ और चन्दन इनका कल्क घीमें पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वर जाता रहता है। कलशी, बृहती, द्राक्षा, त्रायन्ती, नीम, गोखरू, बला, पर्पटी, मोथा, शालपर्णी और यवास इनके क्काथमें तथा दूने दूधमें शठी, भू आंवला, काञ्जिका, मेद (अभावमें अश्वगन्धा) और कुड़ इनके कल्कमें घृत पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वर आराम हो जाता है। जीर्णज्वर शरीरको रसादि धातुका—दौर्वल्य-वशतः शीघ्र निवृत्त न हो कर क्रमशः भोग करता रहता है। अतएव ज्वररोगीकी बलकारक बृंहण द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। विषमज्वरमें ज्वररोगीके पीनेके लिए सुरा और सुरामण्ड तथा खानेके लिए कुक्कुट, तित्तर और मयूरका मांस दिया जाता है। कुछ पल घी, हर्र, त्रिफलाका क्वाथ अथवा गुलञ्चका रस सेवन करनेसे विषमज्वर उपशान्त हो सकता है।

विड़ङ्ग, त्रिफला, मोथा, मञ्जिष्ठा, दाड़िम, उत्पल, प्रियङ्गु, इलायची, एलवालुक, रक्तचन्दन, देवदारु, वर्हिष्ट, कुष्ठ, हरिद्रा, पर्णिनी, श्यामालता, अनन्तमूल, हरेणु, निसोथ, दन्ती, वच, तालीश, नागकेशर और मालतीपुष्प इनका क्काथ और घीसे दूना दूध इनके साथ घृत पाक करें। इसका नाम कल्याणघृत है। कल्याणघृत खानेसे विषमज्वर नष्ट होता है। विषमज्वर आनेके समय युक्तिपूर्वक स्नेह और स्वेद प्रदान करके नीलवृक्षा, निसोथ और कटकी इनका काढ़ा पीना चाहिए।

विषमज्वरमें खूब ज्यादा घी पी कर वमन करें तथा बुखार चढ़ते समय अन्नके साथ प्रचुर मद्य पी कर शयन, आस्थापन वा वमन करें। इस बुखारमें बिल्लीकी विष्ठा दूधके साथ पीवें अथवा वृषके गोमय दधिका मण्ड वा सुराके साथ सैन्धव लवण पीवें। इस बुखारमें पीपल, त्रिफला, दही, मठा, घी† और पञ्चगव्यका प्रयोग करना विधेय है। व्याघ्रकी वसा और हिङ्गु, दोनोंको बराबर बराबर ले कर सैन्धवके साथ मिला कर उससे अथवा सिंहको वसाको पुराने घीके साथ मिला कर सैन्धवके साथ नस्य ग्रहण करनेसे विषमज्वरमें फायदा पहुंचता है। सैन्धव, पीपलके दाने और मनसिलको तेलमें घोंट कर उसका अञ्जन आंखोंमें लगानेसे विषमज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है। गुग्गुल, नीमके पत्ते, वच, कुड़, हर्र, सफेद सरसों, यव और घी इन सबकी धूप देनेसे विषमज्वर जाता रहता है। विषमज्वरमें भोजनसे पहले तिलके तेलके साथ लहसुनके कल्कका सेवन और साफ उष्णवीर्य मांस भक्षण करते हैं।

भूतविद्या और वन्ध्याविश तथा ताड़ना द्वारा भूताभिषङ्ग ज्वर, विज्ञानादिके द्वारा मानसिक ज्वर तथा घृतमर्दन और रसौदन भोजन द्वारा श्रम और क्षीणताजन्य ज्वर शान्त होता है। अभिशाप वा अभिचारजन्य ज्वर होमादिके द्वारा तथा उत्पातिक वा ग्रहपीड़ाजन्य ज्वर दान, स्वस्त्ययन और आतिथ्यक्रिया द्वारा निवृत्त होता है।

चरकसंहितामें लिखा है कि, अभिशाप अभिचार और भूताभिषङ्गजनित ज्वरमें दैवव्यपाश्रय (वलि-मङ्गलादि) और युक्तिव्यपाश्रय (कषायादि) सब तरहकी औषधोंका प्रयोग किया जाता है।

अभिघातजन्य ज्वरमें उष्णक्रिया विधेय नहीं है। मधुर, स्निग्ध, कषाय अथवा दोषानुसार अन्य प्रकारकी औषधोंका प्रयोग करना ही उचित है।

घृतपान, घृताभ्यङ्ग, रक्तमोक्षण, मद्यपान और सात्म्य-मांसके साथ अन्नभोजनके द्वारा अभिघातजन्य ज्वर उपशम होता है।

किसी प्रकारको औषधकी गन्धसे वा विषजन्य ज्वर

* बला, गोखरू, व्याकुड़, अमलतास, कण्टकारी, शालपर्णी, नीम-छाल, क्षेत्रपर्पटी (क्षेतपापड़ा), मोथा, बलालता और दुरालभा, इनका काढ़ा तथा भूआंवला, शठी, किसमिस, कुड़, मेद और आंवला इनका कल्क और दूध इनके द्वारा घृत पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वरकी शान्ति होती है।

† पंचगव्य बराबर बराबर मिला कर उसमें त्रिफला, चित्रक, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मकुल, वच, वायविडंग, त्रिकटु, चव्य और देवदारु डालना चाहिये। इसके सेवन करनेसे विषमज्वर नष्ट हो जाता है। बला अथवा गुलञ्चके साथ पंचगव्यका पाक करके सेवन करनेसे जीर्णज्वर शान्त होता है।

होनेसे विष और पित्तकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें सर्वगन्धाका क्वाथ दिया जाता है। नीम और देवदारुका क्वाथ वा मालतीपुष्पका क्वाथ भी सेवनीय है।

मद्यपायी व्यक्तिको आनाहयुक्त ज्वर होनेसे मदिरा और मांस रसका सेवन तथा बुखार अथवा व्रणरोगीका बुखार, चतव्रण चिकित्सा द्वारा शान्त होता है।

आश्वास, अभिलषित वस्तुका लाभ, वायुका प्रशमन तथा हर्षके द्वारा काम, शोक और भयजनित ज्वर शान्त हो जाता है।

काम्य और मनोज्ञवस्तु, पित्तघ्न चिकित्सा और सद्वाक्य द्वारा शीघ्र ही क्रोधजनित ज्वरकी शान्ति होती है।

कामजनित ज्वर क्रोधके द्वारा और क्रोधजनित ज्वर कामके द्वारा तथा काम और क्रोध इन दोनोंके द्वारा भय और शोकजनित ज्वर नष्ट होता है।

जो व्यक्ति बुखारके समय और उसके वेगकी चिन्ता करते करते ज्वराक्रान्त होता है; उस व्यक्तिका बुखार अभिलषित और विचित्र विषय द्वारा उक्त काल और वेगविषयक स्मृतिके नष्ट होने पर निवृत्त हो जाता है।

उष्णाज्वरमें इच्छानुसार शीतल अभ्यङ्ग, प्रदेह और परिषेक; तथा शीतज्वरमें उष्ण अभ्यङ्ग, प्रदेह और परिषेकका प्रयोग किया जा सकता है। कफजन्य और वायुजन्य ज्वरमें रोगी यदि शीत द्वारा पीड़ित हो, तो उसके शरीर पर उष्णवर्गद्वारा लेप देना और उष्ण कार्य्य ही विधेय है। ईषदुष्ण काञ्जी, गोमूत्र और शुक्त दधिमण्ड सेवन करना चाहिये। अथवा पलाशके कल्कका लेपन वा रास्ना, तुलसी और सहिंजनके बीज इनका एकत्र कल्क और लेपन करना उचित है। शुक्तके साथ चार और तेल लगाना चाहिये। इस अवस्थामें आरग्वधादिगणका क्वाथ विशेष हितकर है। वातघ्न द्रव्यके ईषदुष्ण क्वाथमें अवगाहन करना चाहिये। इन सब प्रक्रियाओं द्वारा तथा सुखोष्ण जल सेचन द्वारा शीत निवारण और शरीर पर कृष्णागुरु लेपन करना चाहिये। पीछे रूपयौवनसम्पन्ना पीनस्तनी प्रमदा द्वारा गाढ़ आलिङ्गन कराना चाहिये। रोगीका शरीर हृष्ट होने पर उस स्त्रीको हटा देना चाहिये। वातश्लेष्मज्वर स्वेद, अन्न और पानीय आदि द्वारा शीतज्वर शीघ्र शान्त होता है। अगुर्वादि तैल लगानेसे शीतज्वरकी शीघ्र शान्ति होती है।

सहस्र-धौत-घृत अथवा चन्दनादि तैलके लगानेसे दाहयुक्त ज्वर शान्त होता है। मधु, काञ्जी, दूध, दही, घी और जल द्वारा सेकने तथा जलमें अवगाहन करनेसे दाहज्वर शीघ्र ही उपशमित होता है। अत्यन्त दाहाभिभूत होनेसे पुष्करपत्र, पद्मपत्र, नीलोत्पलपत्र कमलपत्र और निमलचीम (रेशमी) वस्त्रमें चन्दनोदकका प्रसेक कर उसमें, अथवा हिमजलसिक्त वा शीतलधारागृहमें सुखशयन, चन्दनोदक द्वारा सुशीतल सुवर्ण, शङ्ख, प्रवाल, मणि और मुक्ता इनका स्पर्श; मनोज्ञ सुगन्धि पुष्पमाल्य धारण, चन्दनोदकवर्षी शीतवातावह उत्पल, पद्म और तालवृन्त आदि द्वारा व्यजन करें। सरस, चन्दनचर्चित और मणिमुक्तादि उत्कृष्ट अलङ्कारोंसे अलङ्कृत प्रियकामिनीके स्पर्शसे भी दाहज्वर जाता रहता है।

मधु और फेनायुक्त निम्बपत्रका जल पिला कर वमन करानेसे दाह शान्त होता है। शतधौत घी चुपड़ कर कोल और आँवलेके साथ अथवा शूकधान्यकी कांजीके साथ यवशक्तु लेपन करनेसे अथवा पलाशके पत्तोंको अम्लमें पीस और फेंट कर वा बदरी-पल्लव और निम्बपत्रको फेंट कर अङ्ग पर प्रदेह प्रयोग वा लेपन करनेसे दाह, तृष्णा और मूर्च्छाकी शान्ति होती है। एक पाव यव, चार तोले मंजीठ और एक सो पल अम्ल इनको मिला कर एकप्रस्थ तेल पाक करें। यह तैल ज्वर दाहको शान्त करता है। न्यग्रोधादिगण वा काकोल्यादिगण अथवा उत्पलादिगणको पीस कर लेपन करना चाहिये। उक्त गणोंका क्वाथ और अम्लके साथ तैल पाक करके उसको मालिस करें वा क्वाथको ठण्डा करके उसमें दाहार्त्त रोगीको अवगाहन करावें।

ज्वर रसस्थ होने पर वमन और उपवास, रक्तस्थ होनेसे सेक, प्रलेप और संशमन औषध, मांस और मेदस्थ होनेसे विरेचन और उपवास एवं अस्थि और मज्जागत होनेसे निरूह और अनुवासन प्रदान करना उचित है।

बुखारकी शान्तिके लिए पीपल, इन्द्रयव अथवा

जेठीमधुके साथ मदनफल और गरम पानी पिला कर वमन कराना चाहिये। मधु और जल वा इक्षुरस अथवा लवणोदक किम्वा मद्य वा तर्पण द्वारा वमन कराना प्रशस्त है। किसमिस और आँवलेके रस द्वारा अथवा सिर्फ आँवलेका रस घीमें सम्मिलन करके वमनके लिए पिलाया जा सकता है।

परवलकी पत्ती, नीमकी पत्ती, उशीरमूल, अमलतास, गुलशकरी, गन्धतृण, कटकी, गोखरू, मैनफल, शालपर्णी और विल्ववन्द इनको आधे दूध और आधे पानीमें उबाल कर दूधके बराबर रह जाने पर उसे उतार लें, फिर उसमें घी, शहद, मदनफल, मोथा, पीपल, यष्टिमधु और इन्द्रयव इन सबका कल्क मिला कर वस्ति प्रदान करनेसे ज्वर नष्ट हो जाता है। अमलतास, खसकी जड़, मैनफल शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी और मुद्गपर्णी इनका क्वाथ बना कर उसमें प्रियङ्गु, मैनफल, मोथा, सोंया (शतपुष्पा) और यष्टिमधु इनका कल्क तथा घी, गुड़ और मधु मिश्रित वस्ति अत्यन्त ज्वरघ्न है। रक्तचन्दन, अगुरुकाष्ठ गाम्भारी, परवलकी पत्ती, यष्टिमधु और नीलोत्पल इनके द्वारा उबाला हुआ स्नेह बना कर उससे स्नेहवस्ति प्रदान करें। यह अत्यन्त ज्वरघ्न है।

वायुजन्य ज्वरमें वातघ्न मधुर पदार्थके साथ निरूह-वस्ति अथवा दोष और बलके अनुसार अनुवासन प्रयोज्य है। पित्तजन्य ज्वरमें उत्पलादिगण चन्दन और उशीरमूल प्रचुर शीत क्वाथ और शक्करके साथ मधुर करके वस्ति प्रयोग करना विधेय है। यातना हो, तो आम्रादिका त्वक्, शङ्ख चन्दन, उत्पल गैरिक अञ्जन, मञ्जिष्ठा, मृणाल और पद्म इनको भली भांति पीस कर दूध, शक्कर और मधुके साथ वस्ति प्रयोग करना उचित है। कफजन्य ज्वरमें आरग्वधादिका क्वाथ, पिप्पल्यादिगण और मधुके साथ वस्ति प्रयोग करना चाहिये। द्विदोषजन्य और सन्निपातज्वरमें दोषोंके अनुसार द्रव्य मिला कर वस्ति प्रयोग करें। पित्तजन्य ज्वरमें मधुर और तिक्त द्रव्य मिला कर वस्ति प्रयोग करें। श्लेष्मजन्य ज्वरमें कटु और तिक्त द्रव्यके साथ घृत पाक कर वस्ति कार्यमें प्रयोग किया जाता है। मस्तक कफपूर्ण मालूम पड़ने पर शिरोविरेचन प्रयोग करें।

जीवन्ती, यष्टिमधु, मेद, पीपल, मरिच, वच, ऋद्धि, रास्ना, गंगेरन, सोंठ, सोंया और शतमूली, इनका कल्क दूध और जलके द्वारा तेल तथा घृतपाक करके अनुवासिक स्नेह प्रस्तुत करें। यह स्नेह अत्यन्त ज्वरघ्न है। परवलकी पत्ती, नीम-छाल, गुलञ्च, जेठीमधु और मैनफल द्वारा उबाला हुआ स्नेह अत्यन्त उत्कृष्ट अनुवासन है।

लाक्षा, सोंठ, हल्दी, चूरनहार, मंजीठ, सज्जी और हर्रे इनके छह गुने क्वाथके साथ तैल पाक करें। इस तैलके सेवनसे ज्वर आरोग्य होता है।

गूलर, जीवकद्रुम नीम, जम्बू, सप्तच्छद, अर्जुन, शिरीष, खदिरकाष्ठ, मल्लिका, गुलञ्च, वासक, कटकी, श्वेतपर्पटी, खसकी जड़, वच, गजपिप्पली और मोथा इनके क्वाथमें तैलपाक करें, इससे ज्वर नष्ट होता है।

ज्वररोगीका मल बद्ध हो, तो पीपल और आंवलेसे यवकी पेया बना कर उसको पिलाना चाहिये। गोखरू, बला, कण्टकारी, गुड़ और सोंठ इनको दूधके साथ उबाल कर पीनेसे मलमूत्रका विबन्ध और ज्वर नष्ट होता है।

वातज, श्रमज और पुरातन वातज ज्वरमें लङ्घन हितकर नहीं है। संशमन औषध द्वारा इन ज्वरोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

आठवें दिन ज्वर निराम कहलाता है। जिस व्यक्तिके सब दोष उदीर्ण होते हैं वह प्रायः अल्पाग्नि हो जाया करता है। उस हालतमें विशेषरूपसे गुरुतर भोजन करनेसे या तो रोगी मर जाता है या बहुत दिनों तक कष्ट पाता रहता है। इसलिए वातिक ज्वरमें सहसा अत्यन्त गुरु वा अतिशय स्निग्ध भोजन करना उचित नहीं। परन्तु जिस वातिक ज्वरमें पित्त वा कफका अनुबन्ध न हो, उस वातिक ज्वरमें ज्वरोक्त चिकित्सा के क्रमकी अपेक्षा न कर अभ्यङ्ग (मालिस) आदि चिकित्सा और कषाय पान करा कर मांसरसयुक्त अन्न-भोजन कराना विधेय है।

जिनके शरीरमें वायुका भाग थोड़ा, श्लेष्माका भाग अधिक और उष्मा कम अथवा मृदु उष्मा है, उनको यदि कफप्रधान ज्वर हो, तो एक सप्ताहमें भी दोषोंका परि-

पाक नहीं होता। इस ज्वरमें दश दिन तक लङ्घन और अल्पाशन आदि क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करके पीछे कषायादिका प्रयोग किया जाता है।

दोषोंके क्रमकी अपेक्षा करके द्वन्द्वज ज्वरमें दो दोषोंमें एकका उत्कर्ष अथवा दोनोंकी समताके अनुसार तथा सन्निपात ज्वरमें तीन दोषोंमें एकका उत्कर्ष दो दोषोंकी समताके अनुसार वैद्यको चाहिये कि, विवेचनापूर्वक यथोक्त औषध द्वारा उनकी चिकित्सा करें। सन्निपात ज्वरावसानमें यदि कर्णके मूलप्रदेशमें निदारुण शोथ हो जाय, तो कभी कोई व्यक्ति उस ज्वरसे छुटकारा पाता है। जिस व्यक्तिका ज्वर रक्तस्थ हो जानेके कारण शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष आदिके द्वारा निवृत्त न हो, रक्तमोक्षण करनेसे वह ज्वर प्रशमित हो जाता है। जो ज्वर विसर्प, अभिघात और विस्फोटकके कारण होता है, उस ज्वरमें यदि कफपित्तका आधिक्य न हो, तो प्रथमतः घी पिलाना उचित है।

सुश्रुतमें लिखा है—जिस दिन ज्वरका उदय होगा उस दिन ज्वरसे पहले निर्विष सर्प द्वारा अथवा चौर्यापवाद द्वारा रोगीको भय दिखावें तथा भूखा रक्खें अथवा अत्यन्त अभिष्यन्दी वा गुरुतर द्रव्य खिला कर पुनः पुनः वमन करावें; अथवा तीक्ष्ण मद्य वा ज्वरनाशक घृत किम्बा काफी पुराना घी पिलावें; अथवा समधिक विरेचन वा पहले स्वेद प्रयोग करके निरूढ़ वस्ति प्रयोग करें।

ज्वरके छूटते समय मनुष्यको कण्ठकूजन, वमि, अङ्गसञ्चालन, श्वास, शरीरमें विवर्णता, घर्म, कम्प, अवसन्नता प्रलाप, सर्वाङ्गमें उष्णता, कभी कभी शीतलता, अज्ञानता और ज्वरके वेगकी अधिकता होती है तथा रोगी क्रुद्धकी भाँति दीखता है; उसका मल शब्द और अत्यन्त वेग सहित निकलता है। जो ज्वर दोषोंके कारण वेग पा कर क्रमशः निवृत्त होते हैं उन ज्वरोंके छूटते समय किसी तरहके दारुण लक्षण नहीं दिखाई देते।

ज्वर छूट जाने पर मनुष्यकी क्लान्ति, सन्ताप और व्यथाकी निवृत्ति, इन्द्रियोंकी निर्मलता और स्वाभाविक सत्व उपस्थित होता है।

ज्वरमुक्त व्यक्ति जब तक बलवान् न हो, तब तक उसको व्यायाम, स्त्री-संसर्ग, स्नान और भ्रमण न करना चाहिये। इन नियमोंका पालन न करनेसे उसको फिर बुखार आ जाता है।

असुचितरूपसे दोषोंके निकाले जानेके बाद जिस ज्वरकी निवृत्ति होती है, थोड़े ही अपचारसे वह बुखार फिर आ जाता है। जो व्यक्ति बहुत दिन तक ज्वरमें कष्ट भोग कर दुर्बल और हीनचेता हो जाता है, यदि उसका ज्वर एक बार छूट कर फिर आक्रमण करे, तो थोड़े ही दिनोंमें उसका प्राण विनाश होता है; अथवा दोषोंका क्रमशः धातुसमूहमें परिपाक हो कर ज्वर न होने पर भी हीनता, शोथ, ग्लानि, पाण्डुता, अरुचि, कण्डु, उत्कोठ, पिड़का और अग्निमान्द्य इनमेंसे कोई न कोई एक रोग उत्पन्न होता है।

पुनरावृत्त ज्वरमें अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, स्नान, धूप, अञ्जन और तिक्त घृत अत्यन्त हितकर है। सुश्रुतमें कहा गया है कि, छाग वा मेषके चर्मलोम, वच, कुड़, पलङ्कषा और निम्बपत्र मधुके साथ इनको धूप प्रयोग करनी चाहिये। कम्पन होनेसे उस धूपमें बिल्लीकी विष्ठा मिला दें।

पीपल, सैन्धव, सरसोंका तेल और नैपाली इनका अञ्जन बना कर आँखोंमें लगाना चाहिये। चिरायता, कटकी, मोथा, क्षेत्रपर्पटी और गुलञ्च इनका क्वाथ कुछ सेवन करनेसे पुनरावृत्त ज्वर शान्त हो जाता है।

नव ज्वराक्रान्त व्यक्तिको गुरु पर उष्णवस्त्र द्वारा आवृत रखना चाहिये। औषधके सिवा सिर्फ पथ्यके द्वारा भी समय समय पर रोगकी शान्ति हो सकती है; किन्तु पथ्य पर ध्यान न रखनेसे उपशमकी प्रत्याशा नहीं रहती। तरुण ज्वरमें परिषेक, प्रदेह, कषायपान, संशोधक-औषध, दिवानिद्रा, मैथुन, व्यायाम, तुषारजल, क्रोध, प्रवात और गुरुभोज्य द्रव्यका परित्याग करना उचित है।

ज्वरकी प्रथम अवस्थामें लङ्घन*, मध्यावस्थामें

* रोगी अधिक दुर्बल न होने पावे, इस प्रकारके लंघन करा कर चिकित्सा करनी चाहिये। जिसको वमन कराया गया है, उसको लंघन करना चाहिये; परन्तु लंघन करनेवाले व्यक्तिको वमन नहीं कराना चाहिये। गर्भवती स्त्री, बालक, वृद्ध, दुर्बल

पाचन, अन्तिम अवस्थामें ज्वरघ्न औषध तथा ज्वरमुक्त होने पर विरेचनका प्रयोग करना चाहिये। सब तरहके बुखारमें प्यास लगने पर भी पानी न पिलाना अनुचित है। तृष्णार्त्त होने पर प्राणधारणके लिए थोड़ा थोड़ा पानी पिलाते रहना चाहिए। किन्तु अवस्थाविशेषमें पिपासाको सह्य करके वायुसेवन करना चाहिए, कभी कभी धूप भी खेयी जा सकती है। नवज्वराक्रान्त व्यक्तिको शीतल जल पिलाना उचित नहीं। वातश्लैष्मिक तथा कफज्वरमें गरम पानी हितकर, तृप्तिजनक, अग्निदीपक, वायु और पित्तके लिए अनुलोमकारक तथा दोष और स्रोतःसमूहको मृदुताको बढ़ानेवाला है।

पण्डितगण ज्वरको प्रारम्भसे ले कर सप्तरात्रिपर्यन्त तरुण ज्वरमें, द्वादशरात्रि तक मध्यज्वर, द्वादशरात्रिके उपरान्त जीर्णज्वर कहते हैं।

वातजनित ज्वरमें सातवें दिन, पित्तज ज्वरमें दशवें दिन तथा श्लैष्मिकज्वरमें बारहवें दिन औषध प्रयोग करने की विधि भावप्रकाशमें लिखी है।

ममतावस्थापन्न रोगीको सात दिनमें औषध देवें; सात दिनके भीतर भी यदि निरामके लक्षण दीखें, तो शमन औषधके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। शार्ङ्गधरका कहना है कि, वातज्वरमें गुलञ्च, पिप्पलीमूल और सोंठ उबाल कर बनाया हुआ पाचन अथवा इन्द्रयवकृत पाचनका सात दिनमें प्रयोग करें। पाचन और औषध सेवनके समयके विषयमें सबका एक मत नहीं है।

रोगीको उम्र, बल अग्निदोष, देश और कालके अनुसार विवेचना करके चिकित्सकको रोगीको चिकित्सा करनी चाहिये।

आमज्वरमें दोषापहारक औषध नहीं देनी चाहिए। उपद्रवहीन आमज्वरमें पाचन देना विधेय है। सोंठ, देवदारु, रोहिष (न हो तो खसको जड़), बृहती और कण्टकारी द्वारा क्वाथ बना कर साधारणतः सब ज्वरोंमें उसका प्रयोग किया जा सकता है। श्वेतपुनर्णवा, रक्त पुनर्णवा, बेलमूलको छाल, दूध और जल एकत्र पाक करके दुग्धावशिष्ट रह जाने पर उतार कर उसका सेवन करनेसे सब तरहका ज्वर आरोग्य हो जाता है। शेषोक्त औषधको संशमनीय कषाय कहते हैं।

कृश और अल्प दोषसम्पन्न व्यक्तिको शमन औषध द्वारा चिकित्सा करें। आरग्वधादि पाचन वातज, पित्तज और कफज तीनों प्रकारके ज्वरके लिये हितकर है।

जिस व्यक्तिने जलपान वा आहार किया है, उसके लिये तथा क्षीण शरीर, उपोषित अजीर्ण रोगाक्रान्त और पिपासातुरके लिए संशोधन और संशमन औषध अप्रशस्त है। निम्बादिचूर्ण, हरितक्यादिगुटी, लाक्षादि और महालाक्षादि तैल ये सब तरहके ज्वरको नष्ट करते हैं।

उदकमञ्जरीरस सेवन करनेसे अति उग्रतर सद्योज्वर भी एक दिनमें आरोग्य होता है। पित्ताधिक्य ज्वरमें पीड़ित व्यक्तिको यह औषध दी जाय तो उसके मस्तक पर जल देते रहना चाहिये। अदरकके रसमें तीन दिन ज्वरधूमकेतु सेवन करनेसे नवज्वर; तथा दो रत्ती बराबर महाज्वरांकुश विजौरानीबूके बीज और अदरकके रसमें सेवन करनेसे सब तरहका ज्वर नष्ट हो जाता है। ज्वरघ्नीवटिका, नवज्वरहरवटी आदि औषधियां नवज्वरनाशक हैं। श्वासकुठाररस सबप्रकार ज्वरघ्न है। हुताशनरस और रविसुन्दररसके सेवन करनेसे सब तरहका बुखार जाता रहता है। विशेष विवेचनापूर्वक रसपर्पटीका प्रयोग किया जा सके तो बहुत कुछ फायदा पहुंच सकता है।

चरकसंहितामें लिखा है कि, रसदोष और मलका पाक हो कर क्षुधा उद्रिक्त होने पर रोगीको अन्न देना चाहिये।

रोगीको लघु आहार देना चाहिये। भूना हुआ जीरा सैन्धवके साथ पीस कर उससे जीभ, दांत और मुंहका बीचका हिस्सा माज कर कवल ग्रहण करनेसे रोगीके मुखका मल, दुर्गन्ध और विरसता नष्ट होती तथा मनमें प्रसन्नता और आहारमें रुचि होती है।

कल्पतरुरस और त्रिपुरभैरवरसका अदरकके रसके साथ सेवन करनेसे वात और कफजन्य ज्वर नष्ट हो

और भयशील ऐसे व्यक्तियोंको उपवास नहीं कराना चाहिये। इनको सामज्वरमें पाचन और निरामज्वरमें शमन औषध देनी चाहिये तथा अन्नमण्डादिका पथ्य देना चाहिये।

सकता है। वातश्लेष्मज्वरमें स्वेद प्रदान करनेसे स्रोत समूहमें मृदुता और अग्नि अपने आशयमें आती है। वातज्वरमें पार्श्ववेदना और शिरोवेदना होने पर गोखरू तथा कण्टकारीसाधित रक्तशालि तण्डुलकृत पेया पीना चाहिये। कास, श्वास वा हिचकी होने पर पञ्चमूली-साधित पेया पिलाना अच्छा है।

चतुर्भद्रिका और अष्टाङ्गावलेहके सेवनसे श्लैष्मिक ज्वर शान्त होता है।

पञ्चकोल, पिप्पल्यादिक्वाथ, चिरायतादिक्वाथ, दशमूली क्वाथ आदिके सेवन करनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर नष्ट होता है। इस ज्वरमें वालुकास्वेदका प्रयोग किया जा सकता है।

अमृताष्टक, कण्टकार्यादिक्वाथ, नागरादिक्वाथ, कटकी-कल्क आदि पित्तश्लेष्मज्वरनाशक है।

त्रिदोष-ज्वरमें प्रथमतः कफनाशक औषधादिका प्रयोग करें। श्लेष्मा प्रशमित होने पर स्रोतसमूह परि-ष्कृत हो जाता है, शरीर हलका होता और प्यास मिट जाती है। कोई कोई सन्निपात ज्वरमें पहले पित्त प्रशमित करनेकी व्यवस्था करते हैं। इस ज्वरमें लङ्घन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन (कफ निकलना), अवलेह और अञ्जनका प्रयोग किया जाता है।

सुश्रुतमें लिखा है कि, सातवें, दशवें, अथवा बारहवें दिनमें सन्निपात ज्वर पुनः वर्द्धित हो कर या तो उप-शान्त होता है या रोगीको मार डालता है।

सन्निपात ज्वरमें जिसको पिपासा, पार्श्ववेदना और तालु-शोष होता है, उसको किसी हालतमें भी अपक्व शीतल जल नहीं पिलाना चाहिये।

दशमूल, द्वादशाङ्ग, अष्टादशाङ्ग इत्यादि क्वाथ सेवन करनेसे सन्निपात ज्वर उपशमित हो सकता है। मृत-सञ्जीवनीवटिका, त्रिनेत्ररस, भस्मेश्वररस, अग्निकुमार-रस, अमृतादिवटिका आदि औषधें सन्निपात ज्वरको नष्ट करनेवाली हैं।

पर्पटादिक्वाथ, योगराजक्वाथ, शृङ्गादिक्वाथ आदिका अवस्थाविशेषमें प्रयोग किया जाता है।

पिप्पली, मरिच, वच, सैन्धव, करञ्जवीज, धस्तूर-वीज, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, सफेद सरसों, हिङ्गु और सोंठ इनको समान भागसे छागमूत्र द्वारा पीस कर आंखोंमें लगानेसे त्रिदोषज ज्वराक्रान्त व्यक्तिको भी चेतनता आ जाती है।

आगन्तुक ज्वरमें लङ्घन नहीं कराना चाहिये। घाव, बन्धन, श्रम, वृक्षादिसे गिर पड़ना आदि कारणोंसे होनेवाले ज्वरमें प्रथमतः दूध और मांसरसयुक्त अन्न द्वारा चिकित्सा करना विधेय है। पथपर्यटनके कारण बुखार होनेसे तेलकी मालिस और दिनको सोना चाहिये। औषधिगन्धज ज्वरको सर्वगन्धकृत क्वाथ द्वारा निवारण करना चाहिये। सहदेवाकी जड़ विधानानु-सार कण्ठमें धारण करनेसे चार दिनके भीतर भौतिक ज्वर नष्ट हो जाता है।

चरकने लिखा है कि, पांच प्रकारका विषमज्वर प्रायः सान्निपातिक होता है। पूर्वोल्लिखित सन्ततादि पांच प्रकारके विषमज्वरोंके सिवा अन्य चातुर्थकका विपर्याय 'चातुर्थकविपर्यय' नामक ज्वर भी विषम-ज्वरमें गिना जाता है। यह ज्वर अस्थि और मज्जागत दोषोंसे उत्पन्न होता है। यह ज्वर मध्यमें दो दिन होता है, आदि और अन्तिम दिनमें नहीं रहता। जो ज्वर मध्यमें एक दिन हो कर आद्य और शेष दिनमें विमुक्त होता है, उसको 'तृतीयकविपर्यय' कहते हैं।

विषमज्वरमें पित्त दूषित हो कर कोष्ठदेशमें तथा कफ दूषित हो कर हाथ पैरोंमें ठहरनेसे रोगीका शरीर गरम और हाथपैर ठण्डे हो जाते हैं। कफ कोष्ठदेशमें और पित्त हाथपैरोंमें रहे तो शरीर शीतल और हाथ पैर गरम हो जाते हैं।

जिस विषमज्वरमें शरीर भारी और पसीनेसे भरा हुआसा मालूम पड़े तथा सर्वदा थोड़े वेगके साथ ज्वर अवस्थिति करे और ठण्डा मालूम पड़े, उसको प्रलेपक विषमज्वर कहते हैं।

सभी तरहका विषमज्वर त्रिदोषके प्रकोपसे होता है। पर चिकित्सा उसी दोषकी करनी चाहिये जिसकी प्रधानता हो। विषमज्वरवालेको वमन विरे-चनादिके द्वारा शोधन करके स्निग्ध और उष्ण अन्न तथा पानीय सेवन करा कर ज्वरको समता करनी चाहिये।

सोंठका काढ़ा, दुर्जलजेतारस, पटोलादिक्वाथ, चिरा-

तादिचूर्ण आदिके सेवन करनेसे दुष्टजलजन्य (नाना देशोंके जलसे उत्पन्न) ज्वर प्रशान्त होता है।

जिस ज्वरमें रोगी सबल हो, दोषोंकी अल्पता हो और न अन्य किसी तरहका उपद्रव हो, वह ज्वर साध्य है।

ज्वरके उपद्रव १० हैं—श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, पिपासा, अतीसार, मलरुद्धता, हिचकी, काश और दाह।

व्याधि प्रशमित होने पर उपद्रव स्वतः ही विलुप्त हो जाते हैं; किन्तु उपद्रवोंमेंसे कोई अगर ऐसा मालूम पड़े कि जिससे शीघ्र ही जीवन नष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो सबसे पहले उसीको चिकित्सा करनी चाहिये।

वृहती, कण्टकारी, दुरालभा, ज्योत्स्ना, काकड़ासींगी, पद्मकाष्ठ, पुष्करमूल, कटकी, शटीका शाक और शैलमल्ली के बीज इनके क्वाथके सेवन करनेसे श्वास नष्ट होता है।

कच्छिका, नीम, मोथा, हर्र, गुलञ्च, चिरायता, वासक, अतिविषा, वला, उदुम्बर, कटकी, वच, त्रिकट, शोणाकी छाल, कुटज-छाल, रास्ना, दुरालभा, परवलकी पत्ती, शठी, गोजिह्वा (पाथरी) ग्वाल-ककड़ी, निसोथ, ब्राह्मीशाक, पुष्करमूल, कण्टकारी, हलदी, दारुहलदी, आंवला, बहेड़ा और देवदारु इनका काढ़ा सेवन करनेसे श्वास, काश, हिचकी आदि रोग जाते रहते हैं।

पीपल, जायफल और काकड़ासींगी, इनका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे अति उग्रतर श्वासरोगसे छुटकारा होता है। एक कटारीको कण्डोंकी आगमें गरम कर पञ्चरदेश दग्ध करनेसे श्वास निश्चयसे विलुप्त होता है।

अदरकके रसके द्वारा नस्य लेनेसे और लघु सैन्धव, मनसिल और मिर्च एकत्र पीस कर अञ्जन प्रयोग करनेसे मूर्च्छा निवृत्त होती है। आंखों पर ठण्ढ पानीके छींटे डालनेसे, सुगन्धित धूप देने और सुगन्धित पुष्पोंके सूंघनेसे कोमल ताड़पत्रसे वायुसेवन करने तथा कोमल कदली-पत्र छुवानेसे भी मूर्च्छा प्रशमित होती है।

अदरकका रस, अम्लरस और सैन्धव इनको एकत्र करके कवल करनेसे अरुचि नष्ट होती है। गुलञ्चका क्वाथ ठण्ढा करके मधु डाल कर पीनेसे अथवा काला नमक और स्वर्णमाक्षिक, रक्तचन्दन अथवा चीनीके साथ चाटनेसे वमन निश्चयसे प्रशान्त होता है।

जम्बीरी नीबू, बिजौरा नीबू, दाड़िम, बेर और पालङ्क इन सब चीजोंको मिला कर मुख पर लेपन करनेसे पिपासा और मुंहके भीतरके छाले नष्ट हो जाते हैं। मधुसंयुक्त शीतल दुग्ध कण्ठ तक पी कर उसी समय वमन करनेसे अथवा मधु-वटकी बरोह और खीलमें मिला कर मुंहमें रखनेसे प्यास मिट जाती है।

बलवान् व्यक्तियोंको अतीसार होने पर उपवास कराना चाहिये। गुलञ्च, कूटज छाल, मोथा, चिरायता, नीम, अतिविषा और सोंठ इनके सेवनसे अतीसार नष्ट होता है। सोंठ, गुलेचीन, कूटज और मोथा इनका क्वाथ बना कर सेवन करनेसे फायदा पहुंचता है। अक्कवन, गुलेचीन, क्षेत्रपर्पटी, मोथा, सोंठ, चिरायता और इन्द्रजव इनका क्वाथ सब तरहके अतीसारका नाशक है। हर्र, अमलतास, कटकी, निसोथ और आंवलेका काढ़ा पीनेसे मल-रुद्धताका नाश होता है।

सेंदा नमकको बहुत बारीक पीस कर जलके साथ नस्य लेनेसे हिचकी नष्ट होती है। पिसी हुई सोंठमें चीनी मिला कर नस्य लेनेसे अथवा हिङ्गुकी धूप देनेसे भी हिचकी जाती रहती है।

पीपल, पीपलमूल, बहेड़ा, क्षेत्रपर्पटी और सोंठ इनका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे अथवा वासक-पत्रका रस मधुके साथ सेवन करनेसे काश निवारित होता है। पुष्करमूल (नहीं हो तो कुड़), त्रिकटु, काकड़ासींगी, जायफल, दुरालभा और काला जीरा इनका चूर्ण बना कर मधुके साथ चाटनेसे काश प्रशान्त होता है।

दाहनिवारक प्रक्रिया पहिले ही लिखी जा चुकी है।

वहिर्वेगज्वर तथा प्राकृतज्वर (अर्थात् वर्षा, शरत् और वसन्त ऋतुमें यथाक्रमसे वातज, पित्तज और कफ-ज्वर होनेसे) सुखसाध्य है। प्राकृतज्वर विपरीत होने पर उसको वैकृत ज्वर कहते हैं।

वैकृत ज्वर कष्टसाध्य है। वातज्वर प्राकृत होने पर भी कष्टसाध्य होता है। अन्तर्वेगज्वर भी कष्टसाध्य है।

क्षीण और शोथाक्रान्त व्यक्तिका ज्वर तथा गम्भीर और दैर्घरात्रिक ज्वर असाध्य है। जिस बलवान् ज्वरकी

द्वारा रोगीके मस्तकमें सहसा सोमनसवत् मालूम होने लगता है वह ज्वर असाध्य है ।

जिस ज्वरमें रोगीको आभ्यन्तरिक दाह, पिपासा, काश, श्वास और अत्यन्त मलरुद्धता उत्पन्न होती है, उसको गम्भीर ज्वर कहते हैं ।

ज्वरके पहले, बीचमें अथवा अन्तमें कर्णमूलमें शोथ होनेसे ज्वर यथाक्रमसे असाध्य, कृच्छ्रसाध्य और सुखसाध्य हुआ करता है ।

जो ज्वर बहुत कारणोंसे उत्पन्न और बलवान् तथा बहु लक्षणाक्रान्त होता है, वह ज्वर रोगीका जीवन नष्ट करता है। जिस ज्वरकी उत्पत्ति मात्रसे ही रोगीको चक्षु आदि इन्द्रियोंकी शक्तियां नष्ट हो जाती हैं, वह ज्वर असाध्य होता है ।

जो व्यक्ति ज्वरमें हतज्ञान और विगतहर्षयुक्त होता है, उत्थानशक्ति न रहनेके कारण पतितकी भांति शय्या पर सोता रहता है तथा अभ्यन्तरमें दाह और बाह्य शीत द्वारा पीड़ित होता है, उसकी मृत्यु होती है ।

जिस बुखारमें रोगीका शरीर रोमाञ्चित चक्षु रक्तवर्ण, हृदयमें कठिन वेदना और मुखसे श्वास निकलता है, उसके जीनेकी आशा नहीं रहती है। जिस ज्वरमें रोगीको हिचकी, श्वास, पिपासा, मूर्च्छा, चक्षुका विभ्रम और क्षीणता होती है तथा सर्वदा श्वास निकलता रहता है, वह ज्वर रोगीका प्राणनाश करता है। जिस ज्वरसे रोगीकी प्रभा और इन्द्रियशक्तिकी हीनता, शरीरमें क्षीणता और अरुचि हो जाती है तथा ज्वर यदि अति दुःसह वेगसे हो, तो वह रोगी मर जाता है । शुक्रधातुप्राप्त ज्वरमें शिश्नकी स्तब्धता और अत्यन्त शुक्रक्षरण होता है। यह प्राणनाशक है ।

जिस व्यक्तिको प्रथम उत्पत्तिकालसे ही विषमज्वर अथवा दैर्घरात्रिक ज्वर होता है, उसका बुखार असाध्य है। क्षीणकाय और रूक्ष व्यक्ति गम्भीर ज्वरसे पीड़ित होनेसे उसका प्राणवियोग होता है ।

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम, श्वासयुक्त तथा तीक्ष्ण होता है, वह ज्वर सातवें, दशवें वा बारहवें दिन रोगीका प्राणनाश करता है ।

यूरोप और अमेरिकामें चिकित्सासम्बन्धी ऐलोपाथि, होमियोपाथि आदि भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं। ऐलोपाथिके मतमें ज्वरके निदान और चिकित्साका वर्णन निम्नलिखित प्रकार है—

ज्वर किसको कहते हैं, इसका स्थिर निश्चय अभी तक यूरोपियोंमें नहीं हुआ है। ग्रीसदेशीय विद्वान् गेलनने शारीरिक उत्ताप-वृद्धिको "ज्वर" कहा है। जर्मनदेशके प्रसिद्ध डाक्टर भिरकोने (Vircho) कहा है कि, स्नायुमण्डलीको क्रियाओंमें विलक्षण होनेसे शरीरकी झिल्लियां (Tissues) ध्वंस हो जाती हैं और उससे शारीरिक उत्ताप-वृद्धि होती है, किन्तु बहुतसे पूर्वोक्त दोनों कारणोंको नहीं मानते। कोई कोई कहते हैं कि, शारीरिक रक्त विषाक्त होने पर शरीरकी अवस्था परिवर्तन होती है और उससे ज्वर उत्पन्न होता है । किन्तु आधुनिक चिकित्सकोंमेंसे अधिकांश चिकित्सकोंका कहना है कि, शारीरिक झिल्लियोंके नष्ट हो जानेके कारण दैहिक उत्तापकी वृद्धि होती है और उसीसे ज्वरको उत्पत्ति होती है । संक्षेपतः शारीरिक सन्तापकी वृद्धिको ही ज्वरोत्पत्तिका लक्षण माना जा सकता है। ज्वर होनेसे शारीरिक सन्ताप बढ़नेके सिवा श्वास और नाड़ीके वेगको भी वृद्धि होती है तथा स्वेदनिर्गम और मूत्रादि रुक जाता है ।

अधुना मानवशरीरमें जितने प्रकारकी पीड़ाएं होती हैं उनमेंसे ज्वर रोगकी संख्या ही अधिक है। और नानाविध ज्वरभुक्त रोगीकी संख्या-समष्टिमें अधिकांश लोग मलेरिया-ज्वरसे पीड़ित हैं । मलेरिया क्या चीज है इसका अभी तक कोई भी कुछ निर्णय नहीं कर पाये हैं। मलेरियाकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक मतभेद पाया जाता है, उनमेंसे कुछ मत नीचे लिखे जाते हैं।

१। इटली-निवासी प्रसिद्ध चिकित्सक लेनसिसि (Lancisi) कहते हैं कि, उद्भिज्जाति सड़ कर मलेरिया उत्पन्न होता है ।

२। डाक्टर कटक्लिफ (Cutcliff)-ने निर्णय किया है कि, समतलभूमि, निम्नभूमि, उपत्यका आदि स्थानोंकी निम्नस्थ आर्द्रता यदि ऊपरको अधिक चढ़ कर पृथिवीके

उपरिभागसे पूर्णतया वाष्पोद्गमको रोके, तो उससे मलेरिया उत्पन्न होता है।

३। डा० स्मिथ (Dr. Smith) कहते हैं कि मिट्टी जितनी आर्द्र होगी तथा आर्द्रता जितनी ऊपरको चढ़ेगी मलेरिया-विषका उतना ही आधिक्य होगा।

४। डा० ओल्डहम (Oldham)-का कहना है कि, शीतलताका सहसा आविर्भाव ही मलेरियाका प्रधान कारण है। जिस जगह सहसा उत्तापका ह्रास होगा, वहां निश्चयसे मलेरिया उत्पन्न होगा।

५। डा० मूर (Dr. Moor)-ने स्थिर किया है कि, उद्भिद्विगलित जल पीनेके मलेरिया जनित पीड़ा उत्पन्न होती है।

"मलेरिया" एक इटलीका शब्द है; जिसका अर्थ है दूषित वायु। निम्नलिखित उपायोंका अवलम्बन करनेसे इस विषके हाथसे कुछ छुटकारा मिल सकता है।

(क) रहनेके मकानके चारों तरफको मोरियां साफ रखना और जिससे तालाबका पानी पत्तों आदिके सड़ते रहनेसे बिगड़ न जाय, उसका खयाल रखना चाहिये।

(ख) अग्नि और धुँएँके जरिये मलेरियाका जहर नष्ट होता है।

(ग) मकानके चारों ओर पेड़ रहनेसे उससे दूषित वायु परिशुद्ध होती है।

(घ) दिनकी अपेक्षा रातको मलेरियाका विष वायुके साथ ज्यादा मिलता है इस कारण रातको जहां तक बने कपड़ेसे नाक बन्द करके घरसे बाहर जाना चाहिये। शरदृऋतुमें तीक्ष्ण धूप और हेमन्तके दुष्ट शिशिर ज्वररोगीके लिए सर्वतोभावसे परित्याज्य हैं।

(ङ) सुबह कहीं जाना हो तो मुंह धोनेके उपरान्त कुछ खा कर जाना चाहिये।

(च) हमारे देशमें विशेषत: बङ्गालमें वर्षाके बादसे ले कर आधे अगहन तक इस रोगका अत्यन्त अधिक प्रादुर्भाव होता है। उक्त समयमें सबको सावधानीसे रहना चाहिये तथा चिरायता, गुलञ्च आदि तिक्त पदार्थोंको औषधकी भांति व्यवहार करना उचित है। हिलमोचिका, परवलकी पत्ती आदि तरकारीके साथ खानेसे विशेष उपकार होता है।

मलेरियासे उत्पन्न ज्वर साधारणत: दो भागोंमें विभक्त है—१ सविराम ज्वर (Intermittent fever) और २ स्वल्पविराम ज्वर (Remittent fever)

सविराम ज्वर—इसको पर्याय-ज्वर कहा जा सकता है। यह ज्वर सम्पूर्णत: विरत होता है; ज्वरकी विरामावस्थामें रोगी अपनेको सुस्थ समझता है। इस ज्वरका कारण दो प्रकारका है—एक पूर्ववर्ती और दूसरा उद्दीपक।

(क) अतिरिक्त परिश्रम, रात्रिजागरण, अधिक सुरापान, अत्यन्त स्त्रीसंसर्ग इत्यादि; (ख) रक्तकी अविशुद्धावस्था; (ग) अस्वाभाविकरूपसे शारीरिक उत्तापका ह्रास। ये ही इस पीड़ाके पूर्ववर्ती कारण हैं।

दुर्भिक्ष, अधिक अङ्गार (Carbon) वा अण्डलाल (Albumen) मिश्रित खाद्यादि भक्षण, उद्भिज्जादि विगलित जलका पीना, उत्तर पूर्व दिशाकी वायुका सेवन आदि इस ज्वरके उद्दीपक कारण हैं।

लक्षण—इस ज्वरकी तीन अवस्थाएं होती हैं, जैसे—शीतावस्था, उत्तापावस्था और घर्मावस्था। प्रथमत: पुन: पुन: जँभाई आ कर जाड़ा मालूम पड़ता है, पीछे त्वक् आकुञ्चित हो कर कम्प उपस्थित होता है। इस समय मस्तकमें वेदना, विवमिषा वा वमन होता रहता है तथा धमनीके आकुञ्चनके कारण नाड़ी वेगवती और सूत्रवत् क्षीण हो जाती है। यह अवस्था आध घण्टेसे तीन घण्टे तक रह कर द्वितीयावस्थामें उपनीत होती है। उस समय शारीरिक शीतलता विदूरित हो कर शरीरका चमड़ा उत्तप्त, शुष्क और उष्ण मालूम पड़ने लगता है। नाड़ी स्थूल और पूर्ण वेगवती हो जाती है। मस्तककी पीड़ा बढ़ कर आँखोंको लाल कर देती है और अत्यन्त पिपासा लगती तथा पेशाब थोड़ा होता है। तृतीयावस्थाके प्रारम्भ होनेसे पहले ज्वर मग्न हो जाता है; चक्षु, पदादि उष्ण और उन स्थानोंमें ज्वाला उत्पन्न होती है तथा श्वास-प्रश्वास शीघ्र शीघ्र होने लगता है। इस तरह क्रमश: रोगीका शरीर स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होता है। रोगी यदि पहलेसे ही दुर्बल हो अथवा प्राचीन हो, तो कभी कभी ज्वरके समय बेहोश हो जाता है। प्रलाप, उदरस्फीति आदि अवसादके लक्षण

भी उपस्थित होते हैं। किन्तु बुखार छूटने हो रोगी अपनेको स्वस्थ समझता है। इस पीड़ाको कुछ दिन भोगते रहनेसे प्लीहा और यकृत्का प्रदाह और कभी कभी बुखारके समय उदरामय होता है।

प्रकार भेद—सविराम ज्वर साधारणत: तीन प्रकारका होता है, जैसे—कोटिडियान (Quotidian), टार्शियान (Tertian) और कोयार्टन (Quartan.) जो ज्वर प्रतिदिन निर्दिष्ट समय पर आता है, उसको ऐकाहिक (Quotidian), जो दो दिन अन्तर अर्थात् तीसरे दिन निर्दिष्ट समय पर आता है उसको त्र्याहिक (Tertian) और जो ज्वर तीन दिन अन्तर अर्थात् चौथे दिन निर्द्धारित समय पर आवे, उसको चातुर्थक (Quartan) ज्वर कहते हैं। प्राय: देखा जाता है कि, उक्त तीन प्रकारके सविराम ज्वरोंमेंसे ऐकाहिक ज्वर सुबहको, त्र्याहिक दोपहरको और चातुर्थक शामको आता है। परन्तु नाना कारणोंसे इस नियमका कुछ व्यतिक्रम भी हो जाता है। ज्वर नियमित समयके बाद आवे तो उसको आरोग्यका लक्षण समझना चाहिये। कभी कभी दो पर्याय एक दिनमें देखे जाते हैं। सुबहको ज्वर आरम्भ हो कर शामको मग्न होता है तथा फिर शामके बाद आरम्भ हो कर शेषरात्रिमें मग्न होता है। इस प्रकारके ज्वरको डबल कोटिडियेन कहते हैं। इसी तरह डबल टार्शियेन और डबल कोयार्टन ज्वर भी देखनेमें आता है।

सविरामज्वरमें कभी कभी स्वल्पविरामज्वरका भ्रम हो सकता है। किन्तु तापमानयन्त्र व्यवहार करनेसे सविराम ज्वरका सहजमें निर्णय किया जा सकता है, इस ज्वरका सम्पूर्ण विराम होता है, किन्तु स्वल्पविराम ज्वरमें ऐसा नहीं होता। शारीरिक तापकी सहसा वृद्धि वा ह्रास होना ही इसका विशेष लक्षण है। सविराम ज्वरमें निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं—

१। इस ज्वरमें क्रमसे शैत्यावस्था, उत्तापावस्था और घर्मावस्था समभावसे उपस्थित होती हैं।

२। शैत्यावस्थामें रोगीको अत्यन्त शीत मालूम पड़ता है तथा काँप कर ज्वर आता है।

३। ऐकाहिकज्वर एक निर्दिष्ट समयमें आता और निर्दिष्ट समय पर मग्न होता है। ज्वर छूटते ही रोगी अपनेको सम्पूर्ण स्वस्थ समझता है।

४। इस ज्वरमें कभी कभी शारीरिक ताप इतना बढ़ जाता है कि, तापमानयन्त्रका पारा १०५ से १०८ तक चढ़ जाता है, किन्तु इस तापका सम्पूर्ण ह्रास हो जाता है और रोगीको फिर जाड़ा मालूम देता है।

स्वल्पविराम ज्वरके लक्षण नीचे लिखे जाते हैं—

१। इस ज्वरमें सविरामज्वरकी तीन अवस्थाएं क्रमसे और समभावसे कभी प्रकट नहीं होतीं।

२। शैत्यावस्थामें अति सामान्यरूप प्रकट होता है, कभी बिल्कुल ही प्रकट नहीं होता। शीत वा कम्प कभी नहीं होता।

३। शारीरिक उत्ताप ज्यादा देर तक रहता है, सहसा नहीं घटता। घर्मावस्था बिलकुल देखनेमें नहीं आती।

४। इस ज्वरमें जितने भी लक्षण प्रकट होते हैं, समय समय पर उनका कुछ ह्रास हुआ करता है। ज्वरको सम्पूर्ण विच्छेदावस्था कभी नहीं होती।

चिकित्सा—१। यदि रक्त दूषित हो जानेके कारण ज्वर हो, तो उसके संशोधनमें यत्नवान् होना चाहिये।

२। यदि किसी स्थानमें प्रदाह हो अथवा होनेकी सम्भावना हो, तो उसका प्रतीकार करना विधेय है।

३। झिल्लियों (Tissues)के ध्वंस होनेके कारण यदि मृत्यु निकटवर्ती जान पड़े, तो उत्तेजक औषध और बलकारक पथ्य देना आवश्यक है।

४। ज्वर उतर जानेके उपरान्त शारीरिक बल बढ़ानेके लिए कुछ दिन तक बलकारक औषध (Tonic) व्यवहार करना चाहिये।

सविराम ज्वरको तीन अवस्थाओंकी पृथक् पृथक् चिकित्सा करनी चाहिये।

१म—शीतलावस्था। जिससे शरीर शीघ्र उष्ण हो, उसकी व्यवस्था करनी चाहिए। सामान्य शीतलावस्थामें रोगीको रजाई, कम्बल आदि उढ़ा देना चाहिये और पीनेके लिए गरम पानी, गरम चाय, गरम कहवा, या कपूर मिले हुए पानीके साथ ब्रांडी देनी चाहिए। किन्तु शीतलावस्था अधिक समय तक रहनेसे रोगी

अवसन्न और बेहोश हो कर क्रमशः मुमुर्षु हो सकता है, ऐसी दशामें रोगीके दोनों बगल गरम पानीसे भरी हुई दो बोतलें रख कर हाथ पैरों और वक्षःस्थलमें स्वेद देनेको व्यवस्था करनी चाहिये। पैरोंकी पिण्डलीमें और हाथों पर दो दो राई सरसोंका पलस्ता देवें तथा निम्नलिखित मिश्र (मिक्श्चर) सेवन करावें।

टिंचर मस्क	...	१५ बूंद।
टिंचर सिनकोना कम	...	३० "
भा० गालिसाइ	...	३० "
स्पिरिट क्लोरोफर्म	...	१५ "

कपूरका पानी मिला कर सब समेत १ औन्सकी खुराक होनी चाहिये।

रोगीकी अवस्थाकी उन्नतिके अनुसार प्रत्येक खुराक १ घण्टे से २ घण्टे अन्तर देनी चाहिए। यदि रोगीके हाथ पैरोंमें पटकन पड़े तो उक्त स्थान पर अच्छी तरह सोंठके चूर्ण से मालिस करावें और निम्नलिखित औषध मर्दनार्थ देवें।

क्लोरोफर्म	...	...	२ ड्राम।
लि० सेप निम्	...	...	४ "

मर्दनके लिए एकत्र मिला लेनी चाहिए। बुखार आने पर कोई कोई रोगी बेहोश हो जाते हैं तथा उसकी बड़ी अस्थिरता हो जाती है। उस समय रोगीके मुंह और आंखों पर ठण्डा पानी सींचना चाहिये तथा मस्तक पर ठण्डे पानीकी पट्टी रखते रहना चाहिए। रोगीको होश आने पर और निगलनेकी शक्ति पुनः होने पर निम्नलिखित मिश्र (मिक्श्चर) दो घण्टे अन्तर पिलाना चाहिये।

पटाश ब्रोमाइड	...	१० ग्रेन।
टिं बेलेडोना	...	५ बूंद।

एकोया एनिसि मिला कर ४ ड्रामकी खुराक देनी चाहिये।

बालकोंके लिए—

टिंचर बेलेडोना	...	...	३ बूंद।
पटाश ब्रोमाइड	...	...	१ ग्रेन।
मस्क कोनाइ	...	...	३ बूंद।
सौंफका पानी	...	...	१ ड्राम।

एकत्र मिला कर एक मात्रा देनी चाहिये। उमरके अनुसार खुराक देनी चाहिये। कँपकंपी शुरू होने पर रोगीको १५।२० बूंद लडेनम (टिं ओपियाई) पिलानेसे कँपकँपी दूर हो जाती है तथा ज्वर ह्रास और कष्ट निवारित हो जाता है। बच्चोंके लिए निम्नलिखित दवा मेरुदण्ड पर मलनेसे उसी समय कंपकंपी और बुखार घट जाती है।

लि० सेपनिस	...	४ ड्राम।
टिंचर ओपियाई	...	" "

मर्दनार्थ एकत्र मिश्रित किया जाता है।

२य—उत्तापावस्था। ऐसी अवस्था अधिक समय तक रहनेसे यदि रोगीको अत्यन्त कष्ट हो, अथवा किसी यन्त्रमें रक्त जम जानेकी सम्भावना हो तो औषधका प्रयोग करना आवश्यक है, अन्यथा नहीं। पिपासा होने पर स्निग्ध पानीय देना चाहिये। लेमनेड भी पिलाया जा सकता है*। यदि अत्यन्त गात्रदाह उपस्थित हो अथवा शरीर अत्यन्त उष्ण रहे, तो ईषदुष्ण जलमें जरासा सिनिगर (सिर्का) मिला लें तथा उसमें अंगोछा भिगो कर रोगीको देह अच्छी तरह पोंछ कर गरम कपड़ेसे शरीर ढक दें। किन्तु दुर्बल व्यक्तिके लिए यह विधेय नहीं है।

यदि रोगी मस्तकको वेदनासे अत्यन्त कातर हो और आंखें उसकी लाल हों, तो मस्तक पर शीतल जलकी पट्टी रखनी चाहिये। इससे यदि उक्त लक्षणद्वय निवारित न हों, तो पूर्वकथित पटास् ब्रोमाइड और बेले-

* निम्नलिखित रीतिसे लेमनेड बनाना चाहिये—

कच्चे नारियलका पानी अथवा गुलाबजल			२ औन्स।
क्रिष्टाल सुगर	...	...	२ ड्राम।
सोडा बाईकार्ब	...	...	२ स्क्रु।
अयेल लेमनिस	...	...	१ बूंद।

इन चीजोंको एक पथरी वा मिट्टीके बर्तनमें घोल लेना चाहिये।

इसी तरह एक दूसरे पात्रमें २० ग्रेन टार्टारिक एसिड घोल लें, यदि न हो तो पाती या कागजी नीबूका रस थोड़ा ले लें। पीछे दोनों पात्रोंको रोगीके सामने ला कर दोनों पात्रोंकी दवा मिला कर रोगीको पिलानी चाहिये।

डोमाका मिक्श्चर २ घण्टा अन्तर पिलाना चाहिये। कोष्ठबद्ध रहनेसे निम्नलिखित औषध सेवन करनी चाहिये।

मगनेशिया सलफ	...	१ ड्राम।
नाइट्रिक इथर	...	१५ बूंद।
भाइनाम इपिकाक	...	५ "
लाई० एमोनिया एसिटेटिम्	...	२ ड्राम।
सीराप लिमन	...	२ "

कपूरका जल मिला कर कुल १ औन्सकी एक मात्रा २ घण्टा अन्तर पिलानी चाहिये।

रोगी यदि अत्यन्त दुर्बल हो अथवा ८।१० दिनसे ज्वर भोगता हो तो आवश्यक होने पर केवलमात्र ४।६ ड्राम Castor oil (रेंड़ीका तेल) ज्वर विच्छेद के समय पिलाना चाहिये। ज्वरका प्रकोप हो, ऐसी अवस्थामें विरेचक औषधके देनेसे रोगी पर विशेष विपत्ति आनेकी सम्भावना होती है।

पटास साइट्राम्	...	५ ग्रेन।
पटास एसिटास्	...	७ "
टिंचर सिनकोना कम	...	२० बून्द।
टिंचर कार्डेमम कम	...	१० "
लाइ० एमोनिया एसिटेटिस्	...	२ ड्राम।
कपूर-जल	...	१ औन्स।

एक खुराक। आवश्यक होने पर ३ घण्टा अन्तर सेवनीय है। यह औषध अथवा निम्नलिखित मिश्र पिलानेसे पसीव और प्रस्राव रूपमें रोगीका सञ्चित रस निकल जाता है।

सीराप रोजी	...	...	१ ड्राम।
पटास साइट्रास्	...	...	७ ग्रेन।
टिंचर हायासायमस्	...	...	१० बूंद।
नाइट्रिक इथर	...	...	२० ,,

डिककसन् सिनकोना मिला कर कुल १ औन्स, एक खुराक तीन तीन घण्टे पीछे सेवनीय है।

ज्वरके साथ शरीरमें वेदना हो तो उक्त औषधके सेवनसे जाती रहेगी।

शरीरमें दर्द न हो तो टिंचर हायासायमसको छोड़ कर अन्य औषधोंका मिक्श्चर पिलाना चाहिये।

यदि ज्वर और उदरामयकी पीड़ा एक साथ हो, तो निम्नलिखित मिश्र २।३।४ घण्टे अन्तर पिलाना चाहिये।

लाइ० एमोनिया एसिटेटिस	...	१ ड्राम।
भाइनाम् इपिकाक्	...	८ बूंद।
बिसमथ नाइट्रास	...	८ ग्रेन।
टिंचर कार्डेमम कम	...	३० बूंद।
,, काइनो	...	१० "
,, काटिकिउ	...	२० "
सौंफका पानी	...	१ औन्स

एक खुराक। बिसमथ, टिञ्चर काइनो, टिञ्चर काटिकिउ ये औषधियां उदरामयनिवारक हैं।

३य—घर्मावस्था। इस अवस्थामें ज्वरके पुनः आक्रमणको निवारण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। रोगीकी अवस्थाका विचार कर पानीके साबूदाने, दूधके साबूदाने वा आरारोटकी व्यवस्था करनी चाहिये तथा रोगीका शरीर पोंछ कर कुनैन खिलानी चाहिये। ज्वरकी ह्रासावस्था होते ही कुनैन खिलाई जा सकती है। इसके प्रयोगके विषयमें भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं। अवस्थाविशेषमें एक साथ २० ग्रेन दी जा सकती है। जिन ज्वरोंमें कोलाप्स (पतनावस्था) होनेकी सम्भावना हो, उस ज्वरमें अधिक कुनैन नहीं देनी चाहिये।

ऐसी अवस्थामें एक वा दो ग्रेन कुनैन, ब्राण्डी वा अन्य किसी उत्तेजक औषधके साथ खानी चाहिये। कोई कोई कुनैनके बदले ला० आर्सेनिकेलिसका व्यवहार करते हैं। पुराने बुखारमें कुनैनकी अपेक्षा आर्सेनिकके व्यवहारसे अधिक फल होता है। यह भोजनके अन्तमें सेवनीय है—मात्रा २से ८ बूंद तककी होती है। शरीरके चमड़ेका गरम और सूख जाना, जोरोंसे खूनका दौड़ना, जीभका उजली सफेद काँटोंसे ढक जाना, योजकत्वक्का लाल होना, अक्षिपुट पर भार मालूम पड़ना, पेटमें दर्द होना, विवमिषा, वमन, अग्निमान्द्य इत्यादि लक्षणोंके प्रकट होने पर आर्सेनिकका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

सपर्याय ज्वरमें विच्छेदके समय ५से २० ग्रेन तक सालिसिन अथवा ५से ६ ग्रेन तक सलफेट आफ बिवा-

दिन सेवन किया जा सकता है। डा० मार्गनियरो कहते हैं—देशीय नीबूका क्वाथ (Decoction of Lemon) कुनैनकी भाँति ज्वरघ्न है। यदि ज्वर आनेका ४ घंटे पहलेसे इसका सेवन कराया जाय, तो ज्वर नहीं आ सकता। जिस मलेरियाग्रस्त रोगीको कुनैनके खानेसे कुछ फायदा नहीं पहुंचा, उसको इसके सेवन करनेसे लाभ हुआ है। बुखार आनेके एक या आध घंटे पहले १५।२० अथवा ३० ग्रेन रिजर्सिन (Resorcin) खानेसे फिर ज्वर नहीं आ सकता। सविरामज्वरमें साधारणतः कुनैनकी व्यवस्था की जाती है। कुनैनको गोलीका सेवन करना हो तो उसके साथ साइट्रिक एसिड, एक्सट्राक्ट कलम्बा, चिरायता, टरेकसिकम कन्फेकसन् आफ रोज और अरबी गोंद इनमेंसे किसी भी एक औषधका २।१ ग्रेन मिला लेनेसे काम चल सकता है।

ज्वरकी विकृतावस्थामें चिकित्सा—ज्वर-विच्छेदमें रोगीका अङ्ग ठण्डा होने लगे, तो धर्मनिवारणार्थ जो ब्राण्डी और मृगनाभि मिश्रित औषध व्यवहृत होती है, उसके साथ ५।७ ग्रेन कुनैन डाइलिउट और सालफिउरिक एसिड मिला कर सेवन करावें। इस अवस्थामें पुनः ज्वर चढ़ने पर रोगीके जीनेकी आशा नहीं की जा सकती। ऐसी दशामें पथ्यके लिए मांसका क्वाथ, दूध, बेदाना, साबू, बार्ली इत्यादि व्यवस्थेय है। यदि ज्वरविच्छेदमें पाकाशयकी उत्तेजनासे कुनैन वा भुक्त सामग्रीका वमन हो जाय, तो उस उत्तेजनाको प्रशमित करनेके लिए लेमनेड, कच्चे नारियलका पानी, बरफ इत्यादिकी व्यवस्था करें। इससे भी यदि वमन निवारित न हो, तो नाभिके ऊपर वक्षस्थलसे नीचे एक राईका पलस्तर देवें और नीचेके मिक्श्चरका सेवन करावें।

बिसमथ नाइट्रास	...	७ ग्रेन।
एसिड हाइड्रोसियनिक डिल	...	२ बूंद।
स्पोट क्लोरोफर्म	...	१० ,,
सीराप लेमन	...	१ ड्राम।
गुलाब जल	...	१ "

टपकाया हुआ (Distilled) पानी मिला कर सब समेत ४ ड्रामकी एक खुराक बनावें। इस प्रकार एक एक खुराक वमनकी आतिशय्यानुसार १, २ या ३ घंटे अन्तर देनी चाहिये। इसके बाद साइट्रिक एसिडमें दो ग्रेन कुनैन मिला कर गोलियाँ बनावें और वह रोगीको सेवन करावें। यदि इससे भी औषध उठे, तो मलद्वारसे कुनैनको श्वेतसारमें मिला कर पिचकारी देनी चाहिये। अथवा त्वक् भेद कर 'हाइपोडार्मिक सिरिञ्ज' द्वारा निउटाल कुनैन शरीरके भीतर प्रविष्ट कराना चाहिये।

ज्वररोगीके मस्तिष्कविषयक दो प्रकारके लक्षण देखनेमें आते हैं। बहुत समय देखा जाता है कि, रोगी मृदु प्रलाप बक रहा है, उसकी आँखें मुंदी जा रही हैं, नाड़ी द्रुतगामिनी तथा हाथ और जीभ स्पन्दित हो रही है। ऐसी हालतमें समझना चाहिये कि, रोगीका स्नायुमण्डल दुर्बल हो गया है। मस्तिष्कावरणमें प्रदाह होने पर रोगी ऊँचे स्वरसे प्रलाप बकता है, उसकी आँखें घोर लाल तथा नाड़ी भरी हुई और वेगवती है, तथा हाथ और जीभ उग्रकार्य करनेका भाव धारण करती है। मस्तिष्कावरणके प्रदाहसे कभी कभी ऐसा भी होता है कि, स्वाभाविक दुर्बल रोगीको भी ३।४ आदमी नहीं थाम सकते हैं। मस्तिष्कावरणमें रक्ताधिक्य होनेसे ही द्वितीय प्रकारके लक्षण प्रकट होते हैं।

प्रथम प्रकारके लक्षणोंके प्रकाशित होने पर चैतन्यसम्पादनके लिए पहले जिस गालिसाइ और कुनैनका मिक्श्चरकी व्यवस्था की गई है, उसीका सेवन करावें तथा दूध, मांसका क्वाथ इत्यादि पथ्यकी व्यवस्था करें। पहले जिस ब्रोमाइड पटाश-संयुक्त औषधका विषय लिखा गया है, द्वितीय प्रकारका लक्षण प्रकट होने पर उसका सेवन कराना चाहिये, मस्तक मुण्डन करके शीतल जलकी पट्टी और लघु पथ्यकी व्यवस्था करनी चाहिये। इससे यदि विशेष फल न हो तो मस्तक पर राई (सरसों)-का पलस्तर देवें।

सविराम ज्वरमें, शैत्यावस्थामें रक्तसञ्चयके कारण प्लीहा और यकृत्की विवृद्धि और परिवर्तन होता है। मलेरिया ही यकृत्-विवृद्धिका मूल कारण है। प्लीहा और यकृत्से पीड़ित रोगी अत्यन्त कष्ट पाता और शीर्ण होता रहता है। प्लीहा और यकृत् शब्द देखो। सविराम ज्वरमें बहुत समय यकृत्की विशृङ्खलाके कारण पाण्डु, कामला (Jaundice) रोग उत्पन्न होता है। यकृत्के उपादानका ध्वंस

वा ह्रास, अत्यन्त मानसिक चिन्ता आदि कारणोंसे यह रोग होता है । पाण्डु शब्द देखना चाहिये ।

जिन सविरामज्वराक्रान्त व्यक्तियोंको कासरोग है, उनको चिकित्सा करनी हो तो उनके वक्षस्थल पर तारपीन तेलका स्वेद देना चाहिये ।

पुरातनज्वर (Chronic fever)—इस ज्वरमें समय समय पर प्लीहा और यकृत् दोनों हो बढते हैं, रोगीका रक्त क्रमशः अपकृष्ट हो जाता है—पुनः पुनः ज्वर भोगके कारण रक्त-कणिकाका ह्रास और श्वेतकणिकाकी वृद्धि होती । रोगीकी आँखें, ओष्ठ, मसूढ़े और अङ्गुलियोंके शेष भाग रक्तहीन हो कर सफेद पड़ जाते हैं । शिरोवेदना, घनश्वास, नाड़ीकी द्रुतगति, अजीर्णता, वमन, अनिद्रा, अरुचि, आम और रक्तातीसार, कास, हाथपैरोंमें सूजन, उदरी, मुख, दन्त और नासिकासे रक्तस्राव इत्यादि उपसर्ग उपस्थित होते हैं । यह व्याधि जटिल उपसर्गविशिष्ट हो कर क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होने पर दुश्चिकित्स्य हो जाती है ।

चिकित्सा—रोगी यदि ज्वर भोगता हो, तो निम्नलिखित मिक्श्चर विराम अथवा ह्रासावस्थामें रोज तीनबार पिलाना चाहिये । ज्वर बंद होने पर इस मिक्श्चरमें एक ग्रेन कुनैन और डाल देनी चाहिये ।

कुनैन	...	२½ ग्रेन ।
डा० नाइट्रिक एसिड	...	५ बूंद ।
पटाश क्लोरास	...	४ ग्रेन ।
भा० रुवरम	...	½ ड्राम ।
टिंचर नक्सभमिका	...	३ बूंद ।
टपकाया हुआ पानी (Distilled water)		४ डाम ।

एकत्र मिला कर एक मात्रा । यदि रोगीको देहमें रक्तहीनता दीख पड़े और रोगीको ज्वर हो, तो निम्न औषधको व्यवस्था करें । रोगीका कोष्ठ परिष्कार न हो तो उस औषधकी प्रति मात्रामें ५ ग्रेन कबावचोनी मिला लें—

कुनैन	...	२ ग्रेन ।
फेरि सल्फ	...	½ "
पल्भ कलम्बा	...	२ "
जिञ्जर	...	२ "

एकत्र मिला कर एक मात्रा । इस तरह तीन मात्रा प्रति दिन सेवनीय है । प्लोहा और यकृत्की वृद्धि होनेसे उस पर टिंचर आइओडिन लगावें । यदि नाक, मसूढ़े आदि किसी स्थानसे रक्तस्राव होता हो, तो ३०।४० बूंद टिंचर फेरिपारक्लोराइड एक औन्स पानीमें मिला कर उस जगह लगा देनेसे वह उसी समय बंद हो जायगा ।

मुंहमें क्षत होने पर निम्नलिखित औषध अथवा कण्डिस फ्लूइड (Condy's fluid) द्वारा धोना चाहिये ।

कार्वलिक एसिड	...	...	१ ड्राम ।
टपकाया हुआ पानी	...	...	॥ बोतल ।

एकत्र मिला कर व्यवहार करावें । इसका किसी तरह सेवन न किया जाय, इस पर पूरा ध्यान रखना चाहिये । ऐसी अवस्थामें अन्य औषधके द्वारा ज्वरका निवारण करना चाहिये । यदि उससे कोई फल न हो, तो बहुत थोड़ी कुनैनका व्यवहार करें ।

उदरामय हो तो १५ बूंद टिंचर ष्टोल और एक औन्स इनफिउसन कलम्बा एकत्र करके १ मात्रा, दिनमें २।३ बार सेवन करावें ।

ज्वरके समय साबूदाने, बार्लि, आरारोट आदि आहारार्थ देना चाहिये । बुखार छूट जाने पर, सुबह पतले पुराने चावलका भात, मूंगकी दाल, जूस आदि तथा रातको दूध-साबू व्यवस्थेय है । उदरामय होनेसे दूध नहीं दिया जाता । रोगीको किसी तरह भी गाढ़ा दूध पिलाना उचित नहीं । १०।१२ दिन बाद गरम पानीसे स्नान करावें । अधिक परिश्रम वा रात्रि-जागरण रोगीके लिए निषिद्ध है ।

स्वल्पविराम ज्वर (Remittent fever)—यह ज्वर मलेरियासे उत्पन्न होता है, उष्णप्रधान देशोंमें हो इसका अधिक प्रभाव है । सविराम ज्वरकी अपेक्षा यह ज्वर गुरुतर है, इसमें सन्देह नहीं । साधारणतः यह दो भागोंमें विभक्त है—सामान्य (Simple) और जटिल (Complicated) । जिस स्वल्पविराम ज्वरमें साधारण लक्षण दीखें, उसको सामान्य और जिसमें आभ्यन्तरिक यन्त्रादिको स्वाभाविक अवस्थाका परिवर्तन हो कर कठिन पोड़ा होती है, उसको जटिल कहते हैं ।

साधारणतः मलेरियाको हो इस प्रकारके ज्वरका

कारण बतलाया जाता है, किन्तु समय समय पर शारीरिक और मानसिक दुर्बलताके कारण इस ज्वरकी उत्पत्ति हुआ करती है। शरत्कालमें ही इस ज्वरका प्रादुर्भाव देखनेमें आता है। ग्रीष्म और वसन्तऋतुमें यह ज्वर बहुत कम होता है।

लक्षण—इस ज्वरमें जितने लक्षण प्रकाशित होते हैं, उनका वर्णन सविराम ज्वरके प्रकरणमें किया गया है। संक्षेपमें—इस ज्वरमें कभी भी सम्पूर्ण विराम (Remission) नहीं होता, अति अल्पमात्रासे कभी कभी इसका विराम होता है। साधारणतः स्वल्पविराम ज्वरका रेमिशन (विराम) प्रातःकालमें हो कर ऊर्द्ध संख्या ४।५ घण्टा तक स्थायी होता है। इसके बाद फिर ज्वर प्रकट होता है। इस ज्वरके भोगकालकी कोई स्थिरता नहीं, कभी कभी यह ज्वर २१।२२ दिन तक मौजूद रहता है। इस ज्वरमें जो समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं, उनमें प्रवल शिरःपीड़ा, रक्तिम मुखमण्डल, सामयिक प्रलाप, पाकाशय और यकृत्में वेदना, विवमिषा, कोष्ठकाठिन्य, स्वल्प प्रस्राव, अपरिष्कार जिह्वा, वेगवती नाड़ी, शुष्क और उष्ण चर्म, नानाविध यान्त्रिक प्रदाह और रक्तसञ्चय इत्यादि ही प्रधान है। यह पीड़ा गुरुतर होने पर इसका विरामकाल स्पष्ट नहीं समझा जा सकता, यत्सामान्य विराम हो कर थोड़ी देर तक स्थायी रहता है। यह ज्वर अतिशय प्रवल होने पर चर्म उष्ण, जिह्वा चुपकनी और अपरिष्कृत, मल दुर्गन्धयुक्त, वलका ह्रास, नाड़ी क्षीण, दाँतोंमें मैल, निद्रितावस्थामें स्वप्रदर्शन, तन्द्रा, ज्ञान-वैलक्षण्य और अन्तमें अचैतन्यका लक्षण उपस्थित होता है।

उपसर्ग और आनुषङ्गिक रोग—इस ज्वरमें नाना प्रकारके उपसर्ग और आनुषङ्गिक रोग लक्षित होते हैं। उनमेंसे जो प्रधान हैं, उनका वर्णन किया जाता है—

१। मस्तिष्कका उपसर्ग। यह दो तरहसे होता है—

(क) रक्ताधिक्य (Congestion of blood)—रक्तसञ्चालनकी अत्यधिक उत्तेजनाके कारण मस्तिष्काभ्यन्तरमें रक्त सञ्चित होता है। इसमें प्रवल प्रलाप होता है और रोगी ऊँचे स्वरसे बकता रहता है। इस अवस्थामें शिरःपीड़ा, रक्तिमचक्षु, सङ्कुचित कनीनिका, रक्तिम मुखमण्डल, द्रुतगामी नाड़ी, ग्रीवा और शङ्खदेशकी धमनियोंमें प्रवल स्पन्दन तथा चित्तभ्रम आदि उपसर्ग देखनेमें आते हैं।

(ख) रक्तमोक्षण (Depletion of blood) होनेसे स्नायविक दौर्बल्यके कारण रोगी अस्पष्ट और मृदु प्रलाप बकता है। इस समयमें नाड़ी क्षीण, जिह्वा कम्पित और शुष्क, तन्द्रा, अचैतन्य आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

२। मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis)—इस प्रदाहके उत्पन्न होनेसे रोगी पागलकी तरह शय्यासे उठ कर अन्य स्थानको जानेकी कोशिश करता है तथा हाथ पैरोंकी पेशियोंमें आक्षेप उपस्थित होता है। कभी कभी तन्द्रा और चित्तभ्रम भी होता है।

३। (क) वायुनली-प्रदाह।

(ख) फेफड़ेमें रक्तसञ्चय वा प्रदाह—इसमें वक्षस्थलमें वेदना, श्वासप्रश्वासमें कष्ट, काश आदि उपसर्ग होते हैं।

४। पाकस्थलीमें उत्तेजना—इसमें वमन, विवमिषा और हिचकी होती है।

५। यकृत्में रक्ताधिक्य वा पाण्डु।

६। प्लीहा विवृद्धि।

७। कर्णमूल प्रदाह—इसमें पारोटिड अर्थात् कर्णमूलके प्रदाहके कारण पूयोत्पत्ति होती है।

८। यकृत्, प्लीहा और पाकाशयमें रक्ताधिक्यके कारण कभी कभी एक प्रकारका उत्काश उपस्थित होता है।

९। वृक्क (Kidney) में रक्ताधिक्यके कारण आलबुमिनिउरिया होता है।

१०। स्त्रियोंकी जरायु और जननेन्द्रियमें पर्यायक्रमसे प्रदाह उपस्थित होता है।

११। रक्तकी अविशुद्धताके कारण कभी कभी वातरोग, मांसपेशियोंमें वाताश्रय और एक प्रकारकी स्नायवीय वेदना होती है।

१२। पाकाशय और यकृत्में रक्ताधिक्यके कारण उनके ऊपर वेदना होती है और गासट्रेलजिया (Gastralgia) उत्काश आदिके लक्षण प्रकट हो कर मुंहसे बहुत खून निकलता और दस्त होते हैं।

स्वल्पविरामज्वरका विरामकाल जितना स्पष्टरूपसे प्रकाशित होगा और उपसर्ग आदिका जितना ह्रास होगा, आरोग्यकाल उतना ही निकटवर्ती समझना चाहिये।

चिकित्सा—सविरामज्वरको आराम करनेके लिए, जिस ज्वरघ्न मिश्र (Fever-mixture)की व्यवस्था की गई है, स्वल्पविराम ज्वरमें भी प्रथमतः उसी मिश्रका सेवन कराना चाहिए। पिपासा होने पर शीतलजल, बरफ, लेमनेड अथवा निम्नलिखित पानीय देना चाहिये—

एसिड टार्ट्रेट आफ पटाश	...	१ ड्राम।
लेमन औइल	...	२ बूंद।
चीनी	...	१ औन्स।
जल	...	२४ "

एकत्र मिला कर थोड़ा थोड़ा पिलाना चाहिए। कोष्ठबद्ध होनेसे कम्पाउण्ड जलाप पाउडर (Compound jalap powder), अण्डीका तेल (Castor oil) इत्यादिकी व्यवस्था करनी चाहिये। यदि विवमिषा हो, तो ५।७।१० ग्रेन पल्भ इपिकाकके (Pulv. Ipecac) जरिये कै करावें, अथवा निम्नलिखित खुराक लगातार २ दिन तक दिनको दो बार मुंहमें पानी रख कर सेवन करावें।

कालोमेल (Calomel)	...	२ ग्रेन।
पल्भ इपिकाक	...	१ "

एकत्र एक पुड़िया। परन्तु रोगी यदि दुर्बल हो, तो वमनकारक वा विरेचक औषध कभी न देना चाहिये।

यदि रोगी सबल हो और उसके शरीरमें दाह हो तो घरके झरोखे आदि बंद करके गरम पानीमें अंगोछा भिगो कर उसकी देह पोंछ देवें, पीछे जल्दीसे गरम कपड़ोंसे उसका शरीर ढक देना चाहिये। इस प्रक्रियाके द्वारा काफी पसीना निकल कर शरीर शीतल होता है। वर्द्धित तापको घटानेके लिए कभी कभी टिंचर एकोनाइट (Tr. aconite) २ बूंद २।३ घंटा अन्तर सेवन करानेसे विशेष फायदा हो सकता है। अत्यन्त गात्रदाह हो, तो १ भाग भिनिगर (सिर्का) और ८ भाग ईषदुष्ण जल एकत्र मिला कर उससे शरीर धोना चाहिये। इसी तरह विरामावस्था उपस्थित होने पर कुनैनकी व्यवस्था करनी चाहिये। रोगी अत्यन्त दुर्बल हो, तो कुनैनके साथ पोर्ट, ब्राण्डी, टिंचर सिन्कोना कम्पाउण्ड (Tr. cinchona compound), क्लोरिक इथर (chloric ether) इत्यादि मिला कर पिलाना चाहिये। तन्द्रा उपस्थित होनेका लक्षण देखें, तो ग्रीवाके पश्चाद्भाग पर सरसोंकी पट्टी (mustard plaster) और मस्तक पर शीतल जल अथवा निम्नोक्त लोशनका प्रयोग करें।

एमन मिउरियस	...	१ औन्स।
रेक्टिफायेड स्पिट	...	२ "
गुलाब जल	...	८ "

एकत्र मिश्रित कर लें। इसमें सूक्ष्म वस्त्र भिगो कर मस्तक पर पट्टी रखें। यदि इससे फायदा न पहुंचे तो ग्रीवाके पश्चाद्भागमें ला० लिटि (Liquor Lytte) का ५।६ बार प्रयोग करें। यदि हिचकी या वमन होता रहे, तो कच्चे नारियलका पानी थोड़ा थोड़ा दें तथा निम्नलिखित औषधकी व्यवस्था करें।

विसमथ नाइट्रास्	...	५ ग्रेन।
हाइड्रोसियानिक एसिड डिल	...	२ बूंद।
स्प्रीट क्लोरोफारम्	...	१५ "
लाई० मर्फि हाइड्रो-क्लोरेटिस्	...	१५ "

पानी मिला कर कुल १ औन्स। एक खुराक १से ८ घण्टा अन्तर सेवनीय है।

इस पीड़ामें बहुत समय पेट फूल जाया करता है; ऐसी दशामें तारपीन तेलकी मालिस कर उष्ण जलकी स्वेद देनेसे उसकी निवृत्ति होती है। यदि इससे विशेष फायदा न हो, तो तारपीन तेल और हिङ्गु-का अरिष्ट (Tr. assafoetida) इनका पिचकारीके द्वारा मलद्वारमें प्रयोग करना चाहिए। उदरामय होनेसे नीचे लिखी हुई कोई भी दवा २।३।४ घण्टा अन्तर पिलानी चाहिये—

टिञ्चर काइनो	...	॥ ड्राम।
विसमथ नाइट्रास	...	१० ग्रेन।
मिष्चिउरा क्रिटि	...	४ ड्राम।

एकत्र मिला कर एक मात्रा, अथवा—

सोडि बाइकार्ब	...	२ ग्रेन।

पल्भ इपिकाक ... ॥ ग्रेन।
विसमथ नाइट्रास ... ५ "
मर्फिया ... ⅙) "

एकत्र मिला कर एक मात्रा।

रक्तामाशय होनेसे निम्नलिखित औषधकी व्यवस्था करनी चाहिये—

विसमथ नाइट्रास ... ५ ग्रेन।
कुनैन ... २ "
पल्भ इपिकाक ... । "
——ओपियाइ ... ।⅙) "

एकत्र एक पुड़िया, दिनमें २।३ देनी चाहिये।

ज्वरको क्षामावस्थामें रोगी क्रमशः दुर्बल हो कर यदि अवसन्न अवस्थाको प्राप्त हुआ हो, तो बलकारक औषधकी व्यवस्था करें। किन्तु रोगीके अङ्ग क्रमशः शीतल और बड़ा दुर्बल होवे, तो निम्नलिखित उत्तेजक मिश्रकी व्यवस्था करें।

स्पोट आमोनिएओमाटिकस् ... १५ बूंद।
——नाइट्रिक ईथार ... १५ "
भाइनम् गालिसाइ ... २ "
टिंचर मस्क ... १५ "

कपूरके जलके साथ मिला कर एक औन्सकी खुराक। रोगीकी अवस्था विचार कर ½ या १ वा २ घण्टा अन्तर सेवन करावें। प्लीहा बढ़ने पर उस पर गरम जलका स्वेद दे कर अथवा टिंचर वा लिनिमेण्ट आइओडाइन-का प्रलेप दे कर निम्नलिखित मिश्र (ज्वरके समय) सेवन करावें—

एमन् मिउरियस ... ५ ग्रेन।
पटास ब्रोमाइड ... ५ "
पटास क्लोरास ... ७ "
डि० सिनकोना ... १ औन्स

एक खुराक। दिनमें ३।४ खुराक खानी चाहिए। ज्वरका वेग मन्दीभूत होने पर निम्नलिखित मिश्र प्रतिदिन तीन बार पिलाना चाहिए—

कुनैन ... २ ग्रेन।
डा० सलफिउरिक एसिड ... १० बूंद।
फेरी सल्फ ... २ ग्रेन।
म्यागनेसिया सलफास् ... २ ग्रेन।
टिञ्चर सिनामन कम ... ½ ड्राम।
टपकाया हुआ पानी ... १ औन्स।

एकत्र एक मात्रा। उदरामय हो तो इस मिश्रमेंसे म्यागनेसिया सलफास् निकाल देनी चाहिए। Syrup of lactate of Iron, Phosphate of Iron अथवा Ferri iodide का सेवन करानेसे बहुत समय प्लीहा घट जाती है और शरीरमें रक्तका अंश बढ़ता है।

यकृत्‌की विवृद्धि होनेसे उस पर गरम पानीका स्वेद देना चाहिए; उससे फायदा न हो तो सरसोंका पलस्तर दें तथा निम्नलिखित मिश्र ३ बार पिलावें—

एमन मिउरियस् ... ५ ग्रेन।
लाः० टारेकसिकम ... २० बूंद।
डा० नाइट्रिक हाइड्रोक्लोरिक एसिड ... १० "
इन० चिरायता ... १ औन्स।

एकत्र एक मात्रा। इस ज्वरमें कासका प्रकोप हो तो भाइनाम् इपिकाककी ५।१० बूंद और टिञ्चार क्याम्फर कम्पाउण्ड ½ ड्राम, कुनैन मिला कर अथवा ज्वरघ्नमिश्रके साथ एकत्र कर सेवन करावें।

पूर्वलिखित औषधादि सेवन करके ज्वरमुक्त होनेके बाद भी कुछ दिनों तक बलकारक औषध सेवन करना चाहिए। क्योंकि सविरामज्वरमें रक्ताधिक्यके कारण आभ्यन्तरिक यन्त्रादि विकृत हो जाते हैं। ज्वर उपशमित होनेके साथ ही यन्त्रादि स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त नहीं होते। इस अवस्थामें औषधादि सेवनसे विरत रहनेसे, पुनः ज्वरकी उत्पत्ति हो सकती है। दूसरी बात यह है कि आरोग्यलाभके बाद कुछ दिनके लिए स्थान-परिवर्तन करना आवश्यक है, नहीं तो शरीर भलीभांति सबल नहीं होता। तीसरे कुनैन सेवन करनेसे ज्वर २।४ दिनके भीतर सम्पूर्णरूपसे दूर नहीं होता। ज्वरको पूर्णतया नष्ट करनेके लिए कुछ दिन बलकारक औषध-का सेवन करना उचित है; अन्यथा कुनैन द्वारा बद्ध ज्वरके पुनः प्रकट होनेकी सम्भावना रहती है। ज्वर बन्द होनेके बाद प्रतिदिन नियमानुसार एटकिन्स् सीराप सेवन करना चाहिये। निम्नलिखित मिश्रके (प्रतिदिन तीन बार) सेवन करनेसे भी रोगी शीघ्र ही

स्वास्थ्य लाभ कर सकता है; फिर ज्वर होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

कुनैन	...	१॥ ग्रेन।
डा० नाइट्रिक एसिड	...	१० बूंद।
टिंचर फेरीपारक्लोराइड	...	१० ,,
टिंचर नक्सभमिका	...	३ ,,
टिंचर कलम्बा	...	१५ ,,
इन० कोआसिया	...	४ ड्राम।

एकत्र एक माता।

अविरामज्वर (Continued fever)—यह ज्वर स्थूलतः चार भागोंमें विभक्त है—१ सामान्य अविराम ज्वर (Simple continued fever) २ मस्तिष्कज्वर (Typhus fever) और ३ आन्त्रिकज्वर (Typhoid fever) ४ पौनःपुनिक ज्वर (Relapsing fever)।

सामान्य अविराम ज्वर—शीतलता, आर्द्रता और अत्यन्त उत्तापके कारण यह ज्वर उत्पन्न होता है। मदिरा सेवन, अत्यधिक शारीरिक वा मानसिक परिश्रम इत्यादि कारणोंसे भी इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। यह ज्वर संक्रामक वा मारात्मक नहीं है, साधारणतः इसका वेग एक सप्ताहसे अधिक नहीं रहता।

निदान—ज्वर होनेसे पहले रोगी आलस्य, मस्तक और समस्त शरीरमें वेदना आदि शारीरिक असुस्थताका अनुभव करता है। पीछे शीत अथवा कँपकँपीके साथ ज्वर आता है। इस ज्वरमें रोगीको नाड़ी वेगवती, त्वक् उष्ण और मुखमण्डल लाल हो जाता है तथा रोगी अत्यन्त यन्त्रणा अनुभव करता है। ज्वर-प्रकाशके बाद अत्यन्त पिपासा, कोष्ठबद्ध, अग्निमान्द्य और जिह्वा श्वेतवर्ण हो जाती है। रातको रोगी कभी कभी भूल बकता रहता है।

शारीरिक उत्ताप १०२°से १०४° तक होते देखा गया है। इस ज्वरमें नासिकासे रक्तस्राव अथवा उदरामय होने वा अतिरिक्त पसेव निकलनेके बाद उत्तापका ह्रास हो कर ज्यादा प्रस्राव होनेसे रोगीको मृत्यु हो सकती है। बालकोंको दाँत जगनेके वक्त अथवा अन्त्रमें क्रमि होने पर यह ज्वर हो सकता है।

चिकित्सा—कोष्ठबद्ध होनेसे विरेचक औषध काम में लानी चाहिये। सलफेट् आफ् म्यागनेसिया (एपसम् सल्ट) ४ ड्राम, अथवा सिडलिज पाउडर व्यवस्थेय है। अन्त्र परिष्कार करनेके लिए नीचेकी दवा देनी चाहिये।

लाइकर एमोनि एसिटेटिस	...	२ ड्राम।
नाइट्रिक ईथर	...	॥ ड्राम।
भाइनम् इपिकाक	...	८ बूंद।
पटाश नाइट्रास	...	४ ग्रेन।

कपूरके जलके साथ मिला कर कुल एक औन्सकी एक खुराक २।३ घंटा अन्तर एक एक माता सेवनीय है।

बालकोंकी चिकित्सा करनी हो तो जिन जिन कारणोंसे इस व्याधिकी उत्पत्ति होती है, उनके प्रतीकारकी चेष्टा करनी चाहिये। दाँतजगनेकी सम्भावना देखें तो छुरीसे उसके मसूढ़े चीर देने चाहिये। अन्त्रमें क्रमि होने पर अवस्थाके अनुसार खुराकका निर्णय कर रातको थोड़ी चीनीके साथ साण्टोनाइनसे और सुबह अण्डीके तेलसे अन्त्र साफ करा दें। जब ज्वरका विराम हो, उसी समय कुनैन और साबूदाने, अराराट आदि हलके पदार्थका पथ्य देना चाहिये।

मस्तिष्क ज्वर (Typhus fever)—भारतवर्षमें पहले यह व्याधि बिलकुल हो न थी, किन्तु अब जगह जगह पर इसका प्रकोप नजर आता है। यह ज्वर आन्त्रिक ज्वरकी अपेक्षा अधिक संक्रामक होता है।

साधारणतः अधिक लोगोंका एकत्र वास, पहलेसे ही शीताद (Scurvy) पीड़ाका आक्रमण, अपुष्टिकर द्रव्यका भक्षण, सर्वदा दुर्गन्धका सूंघना आदि कारणोंसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। मस्तिष्क ज्वर इतना संक्रामक है कि, पीड़ित व्यक्तिके निश्वास और पसेवके जरिये व्याधिका विष निकटस्थ अन्य व्यक्तियोंके शरीरमें प्रविष्ट हो कर उनको पीड़ित करता है। यह ज्वर दो श्रेणियोंमें विभक्त है—१ Typhus abdominalis और २ Typhus exanthematicus। आखिरका ज्वर धीरे धीरे अन्तर्हित हो रहा है।

आहारमें अनिच्छा, कोष्ठबद्धता दौर्बल्य, अत्यन्त शिरोवेदना आलस्य, समस्त शरीरमें वेदना इत्यादि इस ज्वरके प्राथमिक लक्षण है। आन्त्रिक ज्वरकी अपेक्षा

इसका आक्रमण भयावह है। इस ज्वरसे आक्रान्त होने पर रोगीको दो तीन दिनमें ही खाट पर पड़ना पड़ता है। इसमें ७वें दिनसे लगा कर १४वें दिनके भीतर शरीरमें कुछ उद्भेद प्रकट होते हैं। ये प्रथमत: वक्ष:स्थल वा स्कन्धदेश पर, मणिबन्धके पीछे वा उदरके उपरि भागमें दीख पड़ते हैं, पीछे क्रमश: हाथ पैरोंमें फैलता है। उद्भेदोंको दाबनेसे अदृश्य हो जाते हैं, तथा एक बार अदृश्य होने पर फिर प्रकट नहीं होते। ये साधारणत: १५वें दिनसे ८वें दिन तक अधिक प्रस्फुट होते हैं। इनकी संख्याके अनुसार पीड़ाका गुरुत्व मालूम हो सकता है।

ये पहले लाल और पीछे क्रमश: काले हो जाते हैं। २।३ दिनके भीतर पिङ्गलवर्ण हो कर चमड़ेके साथ मिल जाते हैं। इसमें रोगीकी देह काली दीखती है और भयावह लक्षण प्रकट होते रहते हैं। नाड़ीकी द्रुतगति, दुर्बलता, प्रलाप, अचैतन्य, हाथपैरोंका कांपना, शय्यान्वेषण, पाटलवर्ण जिह्वा, पेटका फूलना, काश, हिचकी आदि लक्षण सम्पूर्ण उपस्थित होने पर रोगीकी मृत्यु निकटवर्ती समझनी चाहिये, किन्तु उक्त लक्षण यदि क्रमश: घटते रहें, तो रोगीके जीनेकी आशा की जा सकती है। मस्तिष्क ज्वर आन्त्रिक ज्वरकी तरह अधिक दिन तक नहीं ठहरता। साधारणत: रोगी १४ दिनसे लगा कर २१ दिनके भीतर भीतर आरोग्यलाभ करता है या मर जाता है।

मस्तिष्क-ज्वर मसूरिका और आरक्त ज्वर (Scarlet fever) की तरह विषाक्त पदार्थविशेषके द्वारा उत्पन्न और सञ्चारित होता है। किसी भी कारणसे इसकी उत्पत्ति क्यों न हो, इस रोगके प्रकट होते ही गृहस्थोंको स्वास्थ्योपयोगी नियमोंके प्रति विशेषदृष्टि रखनी चाहिये। जिससे रोगीके घरमें विशुद्ध वायु आ सके, शय्या परिष्कार रहे और घरमें लोगोंका जमाव न हो, उस विषयमें विशेष सतर्कता रखनी चाहिये। रोगीके घरमें किसी तरहकी दुर्गन्ध या अपरिष्कृत सामग्री न रखनी चाहिये। दुर्गन्ध दूर करनेके लिए हरितन (Chlorine) अथवा अन्य किसी तरहके संक्रमापह पदार्थका व्यवहार करें। रोगीके पास किसीका भी बैठना ठीक नहीं। रोगीकी शुश्रूषाके लिए विशेष नियमोंका पालन करते हुए औषध आदि सेवन करावें। रोगीके पथ्य पर विशेष दृष्टि रखना आवश्यक है। हलका और बलकारक पथ्य ही उत्तम है। अरारोट, मांस (अभावमें मत्स्यका क्वाथ) और दूध व्यवहार्य है। उदरामय होने पर दूध न देना चाहिये। रोगी अत्यन्त दुर्बल होनेसे साबूदाना, अरारोट वा क्वाथके साथ थोड़ी १ नं० Exshaw brandy मिला पिलाना चाहिये। एक साथ ज्यादा खिलाना अच्छा नहीं; थोड़ा थोड़ा करके पुन: पुन: पथ्य देना उचित है। किसी तरहका कठिन पदार्थ न खिलाना चाहिये; क्योंकि उससे अन्त्र फट जानेकी सम्भावना है। इस रोगीके बलकी रक्षा करते रहनेसे उसके जीवनकी भी आशा की जा सकती है; इसलिए रोगीको विशेषरूपसे पथ्य देना चाहिये। रोगी निद्रित होने पर भी उसको जगा कर पथ्य देवें।

मस्तिष्कज्वर बालकोंके लिए उतना सङ्कटजनक नहीं है। डा० अलीसन् (Dr. Alison)-ने इस रोगमें मृत्यु-संख्याकी तालिका निम्नलिखितरूप दी है—

उम्र	आक्रमण	मृत्यु
१५ वर्षसे कम	८७	२
१५—३०	१४८	११
३०—५०	८७	१७
५०से ऊपर	१७	७

उम्रकी अधिकताके अनुसार इस ज्वरका आक्रमण भी भीषणतर होता है। स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंके लिए इस रोगका आक्रमण अधिकतर साङ्घातिक है; किन्तु गर्भवती स्त्रियोंके इस रोगसे आक्रान्त होने पर प्राय: उनका गर्भस्राव हो जाया करता है।

मानसिक रोगाक्रान्त व्यक्ति इस रोगसे पीड़ित होने पर सहजमें मुक्त नहीं हो सकते। जो लोग सर्वदा प्रफुल्ल रहते, तमाखू पीते हैं, उनको प्राय: यह ज्वर नहीं होता। क्षयकाश रोगवालोंको भी इस बुखारसे पीड़ित नहीं होना पड़ता। जिसको एक बार यह रोग हुआ है, उसको फिर कभी नहीं होता।

मस्तिष्कज्वरकी विशेष सतर्कताके साथ चिकित्सा करनी चाहिये। औषध प्रयोगसे इस ज्वरका उतना उप-

श्रम नहीं होता। शरीरके आभ्यन्तरिक यन्त्र जिससे नष्ट न होने पावें, उसका ध्यान रखें। जो लोग इस रोगमें अधिक दिन तक हैरान हो कर मरते हैं, उनके हृत्पिण्ड, कोष्ठ और मस्तिष्कावरण-चर्ममें बहुत पतली रक्ताम्बु-स्रावी एक वस्तु अधिक जम जाती है। किसी किसी व्यक्तिके मस्तकावरणमें क्षत होता है। डा० हिलडेन-ब्रैण्ड कहते हैं, इस बुखारमें स्नायविक संन्यासके कारण रोगी प्राणत्याग करता है।

आन्त्रिकज्वर (Typhoid fever)—यह ज्वर किसीको भी सहसा आक्रमण नहीं करता। रोगीको पहले मस्तक-वेदना, हाथ पैरोंमें पटकन, अग्निमान्द्य और कुछ कुछ शीतका अनुभव होता है। इस पीड़ाकी प्रथमावस्थामें पेटकी पीड़ा होती है। धीरे धीरे रोगीकी नाड़ी क्षीण, शरीर उष्ण जिह्वा शुष्क और लाल हो जाती है। दो पहरकी ज्वरका प्रकोप और दूसरे दिन उसका कुछ ह्रास होते देखा जाता है। रोगी पहले रातको दो एक मृदु प्रलाप बकना शुरू करता है, धीरे धीरे वह दिन-रात प्रलाप बका करता है। जिह्वा क्रमशः उज्ज्वल रक्तवर्ण और फटीसी दीखती है तथा दाँतोंमें काई-सी जम जाती है; ओठ फट कर खून बहने लगता है। शरीरका अत्यन्त उत्ताप और अतीसार इस पीड़ाका प्रधान लक्षण है। ज्वरका वेग सन्ध्याके प्रारंभमें और रातको बढ़ता तथा प्रातःकालको घटता है। अतीसार होने पर सामान्य पीड़ामें भी ७।८ बार टट्टी होती है, किन्तु पीड़ा गुरु-तर होनेसे २५।३० बार भी दस्त हुआ करता है। रोगीका मल तरल और पीला होता है तथा कुछ देर तक किसी पात्रमें रखनेसे वह दो भागोंमें विभक्त हो जाता है—नीचे सार और ऊपर तरलांश।

आन्त्रिक ज्वरमें नाड़ीका वेग द्रुत, शरीरमें रक्ताभ उद्भेद, कर्कश श्वासशब्द प्रतिध्वनि, उदर-गह्वरमें स्पर्श-सहिष्णुता, अवसाद आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इस ज्वरमें मृत्यु होनेसे मध्यान्त्रत्वच ग्रन्थि और प्लीहाविवृद्धि, क्लिन्नतक्षत आदि देखनेमें आते हैं।

इस ज्वरमें जो उद्भेद होता है, उसका अग्रभाग सूक्ष्म अथवा समान नहीं होता, बल्कि गोल होता है। दाबनेसे उद्भेद अदृश्य हो जाते हैं, पर दाब उठाने पर पुनः वे दीखने लगते हैं। ये उद्भेद ३।४ दिन तक रहते हैं। प्रथम आरम्भ होनेके बाद प्रतिदिन अथवा दो दिन अन्तर नवीन उद्भेद होते हैं। साधारणतः उदर और वक्षःकोटरमें तथा पीठ पर उद्भेद देखा जाता है। रोगके सप्तम और चतुर्दश दिनके भीतर इनकी उत्पत्ति होती है। ३।४ सप्ताह तक इस ज्वरका वेग रहता है, साधारणतः ३० दिनमें इसका विराम होते देखा जाता है। आन्त्रिक ज्वरमें नाड़ीकी श्लैष्मिक झिल्ली और क्षुद्र ग्रन्थियोंमें पीड़ा होती है।

यह ज्वर साङ्घातिक होने पर अन्त्र और नासिकासे रक्तस्राव, अक्षिपुत्तलिका प्रसारित और शेषभागमें उदरसे भी रक्तस्राव होता है। आरोग्योन्मुख पीड़ामें द्वितीय सप्ताहके शेषभागमें ज्वर, उदरामय इत्यादिका ह्रास हो जाता है, जिह्वा परिष्कार, क्षुधावृद्धि, शारीरिक वेदनाका उपशम तथा रातको स्वाभाविक निद्रा आने लगती है। इस रोगके बढ़ने पर तापमानयन्त्र-का प्रयोग कर सर्वदा रोगीके शरीरके उत्तापकी परीक्षा करते रहना चाहिये। शारीरिक उत्ताप १०७° डिग्रीके ऊपर हो तो रोगीके जीनेकी आशा नहीं करनी चाहिये। सहसा उत्ताप बढ़नेसे फेंफड़ेमें रक्ताधिक्य हो सकता है, उसके निवारणके लिए औषधका प्रयोग करना विधेय है। इस ज्वरमें अधिक दस्त होनेके कारण कभी कभी चौथे सप्ताहमें अन्त्रोंके भीतर प्रदाह और क्षत होता है। ऐसा होने पर रोगी सान्निपातिक अवस्थामें पतित होता है; फिर उसके जीनेकी आशा नहीं की जा सकती। कभी कभी रोगीके मूत्राशय और जिह्वाकी कार्यकारिता नष्ट हो जाती है। ऐसी दशामें रोगीको पेशाब करने या बोलनेकी शक्ति नहीं रहती।

आन्त्रिक ज्वर संक्रामक होता है। ज्वर-रोगीके पुरीषमें संक्रामक बीज रहते हैं। अतएव रोगी जिस पात्रमें मलत्याग करे और जिस स्थानमें वह फेंका जाय, उस पात्र और स्थानका व्यवहार करना उचित नहीं।

इस रोगीको प्रथमावस्थामें अति मृदु-विरेचक औषध प्रयोग की जा सकती है। मस्तिष्क ज्वरमें जिस तरह लवण संयुक्त औषध व्यवहृत हुआ करती है, आन्त्रिक ज्वरमें उसका व्यवहार नहीं किया जा सकता।

रोगीके अवसन्न हो जाने पर आमोनिया (Ammonia) और मद्यकी व्यवस्था करें। इस रोगमें विशेष विशेष उपसर्गोंके निवारणार्थ योग्य औषधोंका प्रयोग करना उचित है।

इस ज्वरके आक्रमणसे पहिले निम्नलिखित उपायोंका अवलम्बन करनेसे कभी कभी इसके हाथसे छुटकारा मिल सकता है। पहले रोगीको धारा स्नान करावें, फिर उसकी देह अच्छी तरह रगड़ देवें, अथवा उसको वमन कारक वा अल्प विरेचक औषध सेवन वा गरम पानीमें स्नान करावें किंवा यथाक्रमसे उक्त सभी उपायोंका अवलम्बन करें। कभी कभी स्वेदजनक औषधके सेवन करनेसे भी फायदा होता है। ज्वरकी प्रथमावस्थामें कुछ कुछ गरम तरल पदार्थका प्रयोग किया जा सकता है। ज्यादा गरम पदार्थ हितकर नहीं है। वमनका उद्वेग हो तो किसी तरहकी भी गरम चीज काममें न लानी चाहिये। इस अवस्थामें किसी प्रकारकी यन्त्रणा हो तो वमनकारक औषधका प्रयोग करें। ज्वरकी प्रथमावस्थामें रोगी दुर्बल न हो तो किञ्चित् रक्तमोक्षणकी व्यवस्था की जा सकती है। कोई आभ्यन्तरिक यन्त्र प्रपीड़ित हो, तो जोंक लगा कर उस स्थानका रक्तमोक्षण करें। परन्तु १० दिन बीत जाने पर वा इस ज्वरमें कास्कृपिक मस्तिष्क वरके लक्षणोंका समावेश होने पर रक्तमोक्षण अपकार हो सकता है। वमनकारक और विरेचक औषधके प्रयोगसे उपकार होनेकी सम्भावना है। अष्टाहसे पहले कालमेल वा कबाबचोनी मिश्रित कालमेल व्यवस्थेय है। अवस्थाकी विचार कर इसलोंका प्रयोग किया जाय, तो फायदा हो सकता है। सहसा जिससे किसी प्रकारका परिवर्तन वा कोष्ठकाठिन्य न हो, उस विषयमें विशेष सावधानी रखनी चाहिए। कपूरके साथ थोड़ी शरीरके लिए उष्णतानिवारक औषध व्यवस्थेय है। निम्नलिखित औषध भी विशेष उपकारी है—

आमोनिया ऐसिटेटिस	...	२ औन्स।
आमनाइम मिउरियाटिस	...	४ ग्रेन।
सोराप लिमनिस	...	१ औन्स।

वायुमण्डलके प्रपीड़ित होने पर शारीरिक उत्तेजना बढ़ती है तथा त्वक् और अन्त्रकी क्रिया विशृङ्खल हो जाती है। इस अवस्थामें पलस्ता व्यवस्थेय है, किन्तु इससे पहले पलस्ता व्यवहार नहीं करें। ग्रीवाके पश्चाद्भागमें, दोनों कानोंके निम्नभागमें वा पैरकी पिण्डली पर पलस्ता लगावें।

इस समय कपूर मिश्रित औषध विशेष फलप्रद है। २४ घण्टेके भीतर १२से २४ ग्रेन तक सेवन करावें। इसको Arnica अथवा Angelica root के साथ मिला लेवें। उच्छ्वास होनेसे Hydrargyrum Cumereta और कबाबचोनी (Rhubarb) अथवा सामान्य लवणाक्त द्रव्यके साथ शेषोक्त औषध सेवन करावें। ८ १० दिन बीत जाने पर भी यदि कोई आशङ्काजनक उपसर्ग विद्यमान न रहे, तो लि० अमोनिया एसिटेटिसके साथ कपूरके मिश्रकी व्यवस्था की जा सकती है। Alkaline carbonates और citric acid कपूरमिश्रके साथ एकत्र सेवन करनेसे भी सुफल होता है। नाड़ीकी अवस्था विचार कर उत्तेजक और बलकारक औषधका प्रयोग करें। आमोनिया एसिटेट वा माइट्रिक एसिड, और कार्बनेटका साथ वा सिनकोनाके मिश्रका व्यवहार किया जा सकता है।

हृत्पिण्डकी अवस्थाका निर्णय करनेके लिए यन्त्रकी सहायतासे वक्षःस्थलकी परीक्षा करनी चाहिए। यदि श्वासकष्ट वा प्रदाहजनित अन्य कोई उपसर्ग अथवा आभ्यन्तरिक यन्त्रकी अपक्रिया जान पड़े तो, रक्तमोक्षण करनेसे फायदा पहुंच सकता है। वायुनलीके रक्तस्राव के कारण उपसर्ग उत्पन्न हो तो Mistura ammoniaci अथवा Decoctum polygalæ, कपूर, आमोनिया वा टिंचर काम्फरके साथ प्रयोग करना चाहिए। बलका ह्रास होनेसे लघु पथ्यके साथ मद्य व्यवस्थेय है। रोगोका शरीर फ्लानेलसे ढके रखना चाहिए। अवस्थाका विचार कर Ipecacuanha, कालमेल वा कपूरके साथ तथा अफीम या पोस्तका रस व्यवहार्य है। शरीर शीतल और पाण्डु, नाड़ी दुर्बल तथा आकृतिका संकोच होने पर Blygala, ammonia, camphor, stimulating tonics तथा मद्य व्यवस्थेय है। यदि उदर स्पर्श सहिष्णु और वायुगर्भ हो, तो हींग वा extract of

rue अथवा इसके साथ ज्यादासे ज्यादा ३ औंस तारपीन तैल मिला कर शरीरके मध्य प्रविष्ट करा दें। यदि इससे लाभ न पहुंचे, तो camphor और extract of poppies के साथ chlorate of lime व्यवस्था करें। यदि रक्तस्राव हो, तो superacetate of lead with opium अथवा acetate of morphine किंवा extract of poppy इसकी गोलियां देनी चाहिए।

यदि तालु अत्यन्त उष्ण वा मस्तकमें वेदना हो, किसी पेशीमें आक्षेप हो तथा चक्षु, मुख आदिको अस्वाभाविक अवस्थामें रक्त-सञ्चालनका व्यतिक्रम अनुमित हो, तो मस्तक जिससे ठण्डा हो उसकी व्यवस्था करें। यदि इन सब उपसर्गोंके साथ प्रलाप उपस्थित हो, तो ग्रीवाके पूर्वभागमें, कानके नीचे वा पैरको पिंडलीमें पलस्ता दें, इन सब उपसर्गोंके प्रावल्यकी आशङ्का हो, तो Nitric के साथ मिला कर थोड़ा कपूर देवें। यदि इस अवस्थामें बेहोशी, नाड़ी द्रुत और दुर्बल, अत्यन्त पसेव वा अवसाद उपस्थित हो तो अवस्थाविशेषमें २।३।४ घण्टा अन्तर १।३।४ ग्रेन कपूर नाइटरके साथ मिला कर सेवन करावें। जिससे पेशाब होवे, उस का खयाल रक्खें। तन्द्रा-लक्षण प्रकट होने पर पलस्ताका व्यवहार किया जा सकता है। शरीरके निम्नप्रदेशमें उष्ण जल ढाल देनेसे भी तन्द्रा उपशमित होती है। स्नायविक अवस्थामें musk, ether, cinchona आदि सेवन कराने देवें।

आन्त्रिक ज्वरमें अत्यन्त पिपासा और उसके साथ वमनका उद्वेग होने पर nitrate of potash किंवा muriate of ammonia व्यवस्थेय है। इसके साथ पेटके ऊपरी हिस्सेमें दर्द हो तो camphor-mixture, solution of the acetate of ammonia, nitrate of potash और spirits of ether एकत्र व्यवहार करें। उदरके प्रदाहमें acetate of morphine वा तारपीनके उष्ण द्रवका अवलेह प्रयोग करनेसे विशेष फल होता है। Camphor, ammonia, ethers, musk, valerian, और opium इनको विविध प्रकारसे मिश्रित करके प्रयोग करनेसे हिचकी जाती रहती है। ज्वरको प्रथमावस्थामें उदरामयनाशक औषधका प्रयोग करनेसे अन्त्रावरण प्रदाह उत्पन्न हो सकता है। बहुत दिन उदरामय और उदराध्मानका कष्ट भोग कर रोगी यदि उदरके किसी स्थानमें सहसा वेदनाका अनुभव करे तथा उससे यदि क्रमशः अवसन्न होता रहे, तो समझना चाहिये कि, उसके अन्त्रावरणमें प्रदाह हुआ है। इस अवस्थामें अफीम देनी चाहिये। रक्त अविशुद्ध होनेसे वमनकारक और विरेचक औषध सेवन कराना चाहिये। पीछे सिनकोनाका क्वाथ अथवा Chlorate of potash और Chloric ether मिश्रित valerian की व्यवस्था करनी चाहिये। Compound tincture nitrate of potash और subcarbonate of soda के साथ सिनकोनाका क्वाथ विशेष फलप्रद है। शरीरके बलकी अत्यन्त हीनता होने पर उक्त औषधके साथ २।३ ग्रेन कपूर-मिश्रित गोलियां सेवन करनी चाहिये। डा० ष्टिभेन्सका कहना है कि, Muriate of soda २० ग्रेन, subcarbonate of soda ३० ग्रेन और chlorate of potash ८ ग्रेन, पानीके साथ मिला कर २।३ घंटा अन्तर सेवन करनेसे यह ज्वर शीघ्र दूर हो सकता है।

मस्तिष्क-ज्वरके पहली और प्रथमावस्थामें आन्त्रिक ज्वरमें विहित औषधादिके द्वारा चिकित्सा करें। किन्तु मस्तिष्क-ज्वरमें विशेष आवश्यकता न हो तो रक्तमोक्षण किसी भी हालतमें न करें। एसिटेट आमोनिया और नाइटर मिश्रित कपूर व्यवस्थेय है। Arnica व्यवहार करनेसे तन्द्रा और प्रलाप प्रशान्त होता है। साधारणतः आन्त्रिक ज्वरमें जिन औषधोंका प्रयोग किया जाता है, इस ज्वरमें भी उनका व्यवहार किया जा सकता है। रोगीकी अवस्था सङ्कटापन्न होने पर उत्तेजक औषधकी व्यवस्था करें। Angelicaके सेवनसे उपकार हो सकता है। इस रोगमें पथ्यको विशेष सतर्कता रखनी चाहिये। प्रदाह होनेसे उसकी दवा देनी चाहिये। स्नायविक अवस्थामें प्रदाह मौजूद हो, तो प्रत्युत्तेजक औषध देवें। स्नायविक अवस्थामें यदि नाना प्रकारके उपसर्ग उपस्थित हों, तो cmphor, ammonia, ether, musk, cinchona, serpentaria, wine, opium मिला कर पिलाना चाहिये। कोई कोई कहते हैं कि, इस अव-

स्थामें phosphorus फायदेमन्द है। मस्तकमें उत्तेजना होनेसे चलस्त्रा तथा camphor और arnica का व्यवहार किया जा सकता है। किसी प्रकारका चत होने पर, जिससे पूयोत्पत्ति हो, वैसी पुल्टिश देवें; तथा किसी तरहका सड़ा चत हो तो chloride, kreosote, powdered bark, turpentine आदिका प्रयोग करना उचित है। मस्तकप्रदाह और प्रलापकालमें belladona का व्यवहार करनेसे उपकार होता है।

आन्त्रिक ज्वरकी प्रथमावस्थामें रोगीके घरकी वायु जिससे विशुद्ध और नातिशीतोष्ण होवे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। बार्लि, साबू वा भातके मांड़का पथ्य देना चाहिये। भुजनलीमें प्रदाह हो तो ईषत् घर्मोद्दीपक पानीय प्रदान करें। किन्तु घर्म उत्पन्न करनेके लिए उष्ण वस्त्र द्वारा शरीर ढक देना उचित नहीं। स्नायविक अवस्थामें घरके भीतर ठण्डी हवा न आने देवे; बिस्तरको गरम रखें, किन्तु जिससे वायु दूषित न होने पावे तथा घरमें अधिक आदमियोंका जमाव न होना चाहिये। रोगीका शरीर और बिस्तर विशेष परिष्कार तथा उसकी जिह्वा और मुखको अच्छी तरह धो देवें। कुछ कुछ गरम जल तथा अरारोट अथवा सूप आदि खाद्य मिला कर देवें। किसी प्रकारका फल खानेको न देना चाहिये। मस्तिष्क-ज्वरमें जिससे रोगीको शारीरिक और मानसिक शक्ति पूर्वावस्थाको प्राप्त हो ऐसी औषध देवें और कथोपकथन करें।

आन्त्रिक, मस्तिष्क और स्वल्पविराम ज्वरके लक्षणोंका निर्णय करनेके लिए नीचे एक तालिका दी जाती है—

आन्त्रिक-ज्वर—१. उद्भिज्ज और जान्तव वस्तु सड़ कर वायुको दूषित करती हैं, उस दूषित वायुके सेवनसे ये रोग उत्पन्न होते हैं। प्रश्वास वायु अथवा गात्र-चर्मसे इस पीड़ाका विष संक्रमण द्वारा अन्य व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट हो कर पीड़ा उत्पन्न नहीं करता।

२, मुखमण्डल उज्ज्वल, गण्डस्थल आरक्त, कणीनिका प्रसारित और प्रलाप वृद्धि होता है। पीड़ा दिनकी अपेक्षा रातको प्रबल होती है।

३, पीड़ाके प्रारम्भसे ले कर अन्त तक नाकसे खून गिरता है।

४, पीड़ाके प्रारम्भसे उदरामय उपस्थित हो कर आधे उबाले गये चावलोंकी तरह मल निकलता है। मलमें दुर्गन्ध नहीं होती, किन्तु इसके साथ साथ प्रायः रक्त निकला करता है। पीड़ित व्यक्तिके शरीर और श्वास प्रश्वासमें दुर्गन्ध नहीं पायी जाती।

५, इसके उद्भेद गोलाकार वा अण्डाकार हो कर चमड़ेसे कुछ ऊँचे उभर आते हैं। ये पहले थोड़े और बादमें बहुत उदित तथा वक्षस्थलमें प्रकाशित होते हैं। परन्तु हाथ पैरोंमें कभी नहीं होते।

६, उदराध्मान इसका एक विशेष लक्षण है। रोगीके पेटमें गुड़-गुड़ शब्द होता है।

७, स्थितिकालकी निश्चयता नहीं है।

८, इन रोगसे प्रायः युवकगण ही नहीं आक्रान्त होते।

मस्तिष्क ज्वर—१ अधिक लोगोंका एकत्र वास वा अवस्थिति तथा अपरिच्छन्नताके कारण इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। रोगीके श्वास प्रश्वास और पसेवसे इस रोगका संक्रामक विष अन्य व्यक्तिके शरीरमें प्रवेश कर पीड़ा उत्पन्न करता है।

२. मुखमण्डल गम्भीर होने पर भी विवेचनाशून्य, कणीनिका सङ्कुचित और प्रलाप अविरत, किन्तु मृदु लक्षित होता है।

३, पीड़ाके प्रारम्भमें नाकसे खून नहीं गिरता।

४, साधारणतः कोष्ठबद्धता, कृष्णवर्ण और दुर्गन्धयुक्त मल निकलता तथा रोगीके शरीरसे दुर्गन्ध छूटती है। मलके निकलते समय रक्तस्राव नहीं होता।

५, उद्भेदोंका रंग कालेपनको लिए लाल होता है। इनका कोई विशेष आकार नहीं होता और न ये चमड़ेसे ऊँचे हो होते हैं। मुखमण्डल, पृष्ठदेश तथा हस्तपदादिमें ये बहुत होते हैं।

६, उदराध्मान वा पेटमें गुड़ गुड़ शब्द नहीं होता।

७, स्थितिकाल तीन सप्ताह है।

स्वल्पविराम-ज्वर—१, मलेरियाके कारण यह व्याधि उत्पन्न होती है; पर यह संक्रामक नहीं होती।

२, पाण्डु होने पर रोगीका शरीर पीताभ दीखता है। विवमिषा और वमन इसका प्रधान लक्षण है।

३, कभी कभी उदराध्मान और उदरामय होता है। मलका वर्ण सफेद होता है। मल निकलते समय रक्त नहीं गिरता।

४. शरीरमें फुन्सियां नहीं निकलतीं।

पौन:पुनिक-ज्वर (Relapsing)—यह ज्वर स्वल्पकाल स्थायी होता है; कभी ५ दिन और कभी सात दिन तक रहता है। इसलिए अंग्रेजोमें इसको short fever, five or sevendays fever अथवा scinocha कहते हैं। यह ज्वर लगातार ५से ७ दिन तक रह कर सम्पूर्णरूपसे विच्छेद हो जाता है, किन्तु चौदवें दिन पुनः प्रकट होता है। पुनराक्रमणके उपरान्त तीसरे दिन ज्वरका विराम होता है, तबसे रोगी आरोग्यलाभ करता रहता है। कोई कोई कहते हैं, यह ज्वर बिल्कुल संक्रामक नहीं है, तथा कोई कोई ऐसा कहते हैं—यह ज्वर यहां तक संक्रामक है कि यह जनी कपड़ोंके द्वारा अन्य शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है। प्राय: देखा जाता है कि, जो लोग इस रोगीके वस्त्रादि धोते हैं, वे भी उक्त ज्वरसे पीड़ित होते हैं। बहुतोंका मत है कि, अभाव और दरिद्रताके कारण ही इस रोगकी उत्पत्ति होती है। पौनःपुनिकज्वर Typhus fever-की तरह संक्रामक है। इस ज्वरसे एक व्यक्ति बार बार आक्रान्त होता है। यह ज्वर शीघ्र ही देश भरमें फैल जाता है। थोड़ी उम्रवालोंको ही यह ज्वर होता है।

लक्षण—इस ज्वरकी पूर्वावस्थामें विशेष कोई लक्षण नहीं दीखते, सहसा एक घंटेके अन्दर रोगी बिल्कुल निश्चेष्ट हो जाता है। परन्तु कभी कभी ज्वर आनेके पहले शीत, कम्प, मस्तक और पीठमें दर्द, कानमें झनझनाहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। पौन:पुनिकज्वरमें मुखमण्डल लाल और शरीरका चमड़ा गरम हो जाता है। ज्वर होनेके बाद तीसरे दिन कभी कभी पाकाशयमें अस्वच्छन्दता अनुभूत हो वमन होता है, कोष्ठ प्राय: बद्ध रहता है, कभी कभी अतिरिक्त जलीय द्रव्य सेवन करनेसे भी उदरामय होता है। इस समय सारा शरीर पसीनेसे तर हो जाता है; किन्तु प्रबल लक्षणोंका ह्रास नहीं होता। चौथे दिन ज्वरकी वृद्धि होती है—शारीरिक उत्ताप १०६° डिग्री हो जाता है। पांचवें दिन नाड़ीका स्पन्दन १२०से १६० बार तक होता है। ज्वरके बढ़ते समय रोगी सिर्फ मस्तकमें वेदनाका अनुभव करता है। जिह्वा श्वेतमलावृत और उसके किनारे दांतके निशान दीखते हैं। बहुतोंका शरीर विशेषत: मुखमण्डल पीला हो जाता है और बहुत पसीना निकलता है। रक्तस्राव प्राय: नहीं होता। पांचवें या सातवें दिन सहसा ज्वर उपशान्त हो जाता है, किन्तु १४वें दिन उक्त लक्षणोंके साथ पुन: ज्वर आता है, तीन दिनसे ज्यादा नहीं ठहरता। २१वें दिन रोगी पुन: ज्वराक्रान्त होता है। मस्तिष्क वा आन्त्रिक ज्वरकी भांति इसमें भी किसी प्रकारका उद्भेद दृष्टिगोचर नहीं होता, सिर्फ शरीरका चमड़ा और पेशाब पीला हो जाता है। जिह्वा कृष्णवर्ण मलावृत और शुष्क होने पर पीड़ाकी गुरुता समझना चाहिये।

उपसर्ग—इस ज्वरमें अधिक उपसर्ग नहीं होते। कभी कभी निमोनिया, ब्रङ्काइटिस, प्लुरिसि आदि श्वासयन्त्र सम्बन्धी रोग उपसर्गरूपमें दिखाई देते हैं। इस रोगमें गर्भवती स्त्रियोंके गर्भपात होनेकी सम्भावना होती है। बहुतसी गर्भवती स्त्रियां इस ज्वरसे पीड़ित हो कर मृत सन्तान प्रसव करती हैं। ज्वर छूटने पर मूर्छा आती है तथा उस समय मरनेका विशेष भय रहता है।

इस ज्वरमें फीसदी पांच आदमी मर जाते हैं। रोगीका पेशाब पूरी तरहसे न होनेके कारण उसका यवक्षारांश (urea) रक्तके साथ मिश्रित होता है, जिससे रोगीको मूर्छा आ कर उसके प्राण ले लेती है। निमोनिया रोग उपसर्गरूपमें मौजूद रह कर कभी कभी मृत्युका कारण हो जाता है।

चिकित्सा—साधारणत: दरिद्रता और अभाव ही पौन:पुनिक ज्वरका कारण है, इसलिए सबसे पहले उसका निराकरण करना चाहिये। इस ज्वरमें औषध सेवनका विशेष प्रयोजन नहीं है। बहुत जरूरी हो तो औषध देनी चाहिये। शारीरिक सन्तापकी वृद्धि होना इस ज्वरका एक प्रधान लक्षण है। इसके निवारणार्थ मलेरिया ज्वरके लिए जिस औषधकी व्यवस्था की गई है, उसीका सेवन कराना चाहिये। ज्वर फिरसे न आने

पावे इसके लिए कुनैन खिलावें। मस्तक गरम होने पर शीतल जलकी पट्टी रखनी चाहिये। मूत्र स्वल्प विशृङ्खल होनेसे लाइम जूस सेवन करावें। दौर्बल्य इस रोगका साधारण धर्म है, अतएव पहलेसे हो सुपाच्य और बलकारक पथ्यकी व्यवस्था करते रहना चाहिये। रोगीके आरोग्य लाभ करने पर कुछ दिन तक लौह और कुनैन घटित बलकारक औषधका सेवन करावें।

वातिकज्वर (Ardent fever) यह किसी तरहके विषसे उत्पन्न नहीं होता, इसलिए यह कभी भी एक शरीरसे दूसरे शरीरमें संक्रमित नहीं होता। इस ज्वरकी उत्पत्ति इन इन कारणोंसे होती है-प्रखर धूपका सेवन, अनियमित वा अपरिमित भोजन और पान, अतिरिक्त परिश्रम, अतिरिक्त पथ भ्रमण इत्यादि। दो तीन दिन रोगी लगातार ज्वरभोग करके आरोग्य लाभ करता है। शरीरके अधिक उत्तप्त होने पर, प्रलाप वा तन्द्रा होनेसे, सन्ध्याके समय ज्वरकी वृद्धि और सुबह कुछ ह्रास होनेसे, रोग बढ़ गया है ऐसा समझना चाहिए। साधारणत: इस ज्वरमें हस्ताग्नि मस्तक और देहमें दर्द तथा कभी कभी कँपकँपी आ कर शरीरका चमड़ा सूख कर गरम हो जाता है। वातिक ज्वरमें डरनेका कोई कारण नहीं है।

चिकित्सा – रोगीको श्रमसे प्रतिनिवृत्त और मृदु विरेचक औषध देनी चाहिये। शिरःपीड़ा होने पर मस्तकमें शीतल जलका प्रयोग करनेसे तथा रोगीको खूब नींद आनेसे इस ज्वरकी शान्ति होती है। ज्वर छूटनेके बाद शरीर दुर्बल हो जाय तो ब्राण्डी और पुष्टिकर आहार देना चाहिये।

नासाज्वर (Nasal polypus)—नाकके भीतर दूषित रक्त सञ्चित हो कर इस ज्वरको उत्पन्न करता है। इस ज्वरमें समस्त अङ्गोंमें विशेषत: पीठ कमर और गर्दनमें अत्यन्त वेदना होती है यह वेदना इतनी तीक्ष्ण होती है कि, सामनेको शरीर तक नहीं झुकाया जाता। नासाज्वरमें अन्यान्य लक्षण भी प्रकट होते हैं।

नासिकाके भीतर जो रक्तवर्ण शोथ रहता है, उसको सुईके जरिये छेद कर दूषित रक्त निकाल देनेसे यह ज्वर जाता रहता है रक्तस्रावके बाद लवणसंयुक्त सर्षपतैल वा तुलसीपत्रके रसका नास लेनेसे फायदा पहुंचता है। दो एक दिन आहार और स्नान बन्द रखना चाहिये। जो लोग इस रोगसे पुनः पुन: पीड़ित होते हैं, वे यदि प्रतिदिन मुंह धोते समय मसूढ़ोंसे कुछ रक्त निकाल दें और नस्य लिया करें, तो इस पीड़ासे बारम्बार आक्रान्त होनेकी आशङ्का नहीं रहती।

औद्भेदिकज्वर (Eruptive fever) - शारीरिक रक्त विषाक्त होने तथा आभ्यन्तरिक यन्त्रमें किसी तरहका परिवर्तन होने पर यह रोग होता है। यह रोग अत्यन्त संक्रामक है। यह साधारणतः दो प्रकारका होता है — १ रोमान्ती (Measles) और २ मसूरिका। रोमान्ती और मसूरिका शब्द देखो।

पीतज्वर (Yellow fever)—अमेरिकाके पूर्व और पश्चिम उपकूलमें, अफरीकाके अनेकांशमें तथा स्पेनके दक्षिण उपकूलमें इस ज्वरका प्रकोप पाया जाता है। इस ज्वरसे बहुतसे लोग मर जाते हैं; विशेषत: सेना पर इसका आक्रमण अत्यन्त भयङ्कर है। इस ज्वरमें विविध लक्षण दिखाई देते हैं। डा० गिलक्रेष्ट (Dr. Gillkrest)का कहना है, "इस ज्वरमें शरीर आंशिक अथवा साधारणभावसे पीतवर्ण हो जाता है तथा अन्तमें रोगी कृष्णवर्ण तरल पदार्थ वमन करके प्राण त्याग देता है।" अन्यान्य ज्वरमें जो लक्षण प्रकट होते हैं, इस ज्वरमें भी उनका अधिकांश प्रकाशित होता है।

बहुतोंका अनुमान है कि, १७८३ ई०में सबसे पहले ग्रानाडा द्वीपमें यह रोग प्रकट हो कर सर्वत्र फैल गया है। किन्तु उक्त समयसे पहले ग्रानाडा द्वीपमें जो महामारी रोग फैलता था, वह भी पीतज्वरका ही प्रकारभेद है, इसमें सन्देह नहीं।

इस ज्वरके प्रकट होनेसे दो तीन दिन पहले मन नितान्त निस्तेज हो जाता है और कार्यसे अत्यन्त अरुचि हो जाती है। समय समय पर वमनका उद्वेग साथ ही शीत और मेरुदण्ड, पीठ, हाथ, पैर और मस्तकमें वेदना होती है। चक्षु आच्छन्न, घोर और जलभाराक्रान्त तथा दृष्टि अस्पष्ट और कभी दो प्रकारकी होती है। मानसिक विशृङ्खला, तन्द्रा अस्थिरता, क्षुधामान्द्य, अरुचि आदि लक्षण दिखाई देते हैं। शरीर सर्वदा

उष्ण अथवा अतिशय उष्णताके बाद कुछ पसीना निकलता है ; नाड़ी द्रुत, दुर्बल और अनियमित तथा कभी कभी रोगीको कंपकंपी आती है। प्रथमावस्थामें ही किसी किसी रोगीकी आंखें और शरीरकी चमड़ी पीली हो जाती है तथा रोगी पित्त वमन करता है।

साधारणतः यह ज्वर रातको ही आता है। कंपकंपीके बाद रोगीके शरीरमें अत्यन्त उद्दीपना होती है। मस्तक, चक्षुगोलक, पीठ आदि अङ्गप्रत्यङ्गोंमें वेदना और जङ्घास्थिडिम्बमें खींचन पड़ती है। रोगी चित्त सोना पसन्द करता है ; किन्तु उससे अपनेको सुस्थ नहीं समझता। मुख अत्यन्त लाल और स्फीत, चक्षु लाल, स्फीत और भाराक्रान्त तथा चक्षुके तारे मानो बाहर निकले आ रहे हैं—ऐसा मालूम पड़ता है। गात्रचर्म प्रायः उष्ण और शुष्क रहता है। नाड़ी द्रुत और संकुचित हो जाती है, शरीर अत्यधिक शीतल होनेसे नाड़ीकी गति नितान्त मृदु होती है। जिह्वा स्फीत और श्वेतवर्ण मल द्वारा आवृत होती है। इस समय वमन नहीं होता, किन्तु कोष्ठबद्धता होती है ; ज्ञानमें भी कुछ विलक्षणता हो जाती है। १२'१३ घंटे ऐसी अवस्था रहती है, बादमें द्वितीयावस्था प्रकट होती है। इस अवस्थामें शारीरिक उद्दीपना विषादमें परिणत हो जाती है ; मुख अत्यन्त चिन्ताग्रस्त-सा मालूम पड़ता है। आंखें कुछ पीली, क्रमशः नासिकाप्रदेश और मुखविवर पीला हो जाता है। रोग जितना बढ़ता है शरीर भी उतना ही पीला होता जाता है। शरीरके रङ्गके अनुसार रोगी भिन्न भिन्न वर्णविशिष्ट दीखता है। जिह्वाका उपरिभाग पीतवर्ण तथा अग्रभाग और पार्श्वदेश शुष्क लोहितवर्ण हो जाता है। पेटमें सन्ताप होती है, दबानेसे दर्द भी होता है। इस समय अत्यन्त दाह और सहसा वमन होता रहता है। पेशाब बहुत थोड़ा पीला होता है। रोगी प्रायः सर्वदा दीर्घश्वास छोड़ा करता है। रोगके कठिन होने पर रोगीके श्वाससे अम्लकी गन्ध निकलती है और ज्ञानकी अत्यन्त विशृङ्खला, तन्द्रा और प्रलाप प्रारम्भ होता है। कभी कभी सूक्ष्मरक्तचिह्न और प्रियङ्गुवत् रसगुटिका भी दिखाई देती हैं। यह अवस्था दो दिनसे, सात दिन तक रहती है। पीछे मुखश्री अत्यन्त संकुचित, चक्षुकी पूर्ण दृष्टि नष्ट, शरीरमें नील चिह्न, जिह्वा उज्ज्वल रक्तवर्ण, पिपासा अत्यन्त वर्द्धित और [illegible] वमन होता है। मृत्युसमय निकटवर्ती होने पर रोगी अत्यन्त अवसन्न हो जाता है, उसका निश्वास जल्दी जल्दी चलता है तथा श्वसप्रश्वासके समय एक प्रकारका शब्द होता है ; शरीर शीतल, चुपचाप और पसीनेसे लदबद हो जाता है। मृत्युकालमें किसी किसी रोगीको अत्यन्त वेदना और आक्षेप होता है, तथा कोई कोई रोगी अज्ञानावस्थामें मर जाता है।

इस रोगके सभी लक्षण सर्वदा प्रकट नहीं होते। साधारणतः पीतज्वर तीन प्रकारका होता है - १ प्रदाहिक, २ आवसादिक और ३ साङ्घातिक। बहुमेद व्यक्तियोंको प्रदाहिक (Inflamatory) तथा दुर्बल व्यक्तियोंको आवसादिक (Adynamic) पीतज्वर होता है। प्रदाहिकमें अत्यधिक उद्दीपना और रोग शीघ्र ही साङ्घातिक हो जाता है। आवसादिकमें नाड़ीकी गति धीर, शरीर शीतल और चुपचाप हो जाता है तथा रोगी ४।५ दिनमें अवसन्न हो जाता है। साङ्घातिकमें रोगी पहलेहीसे मृत्युग्रस्त-सा मालूम पड़ने लगता है। इस अवस्थामें रोगी प्रायः जीता नहीं बहुतसे तो २४ घंटेके अन्दर मर जाते हैं। पीतज्वरके रोगियोंमेंसे अधिकांश मर ही जाते हैं। यह रोग जब पहिले पहल शुरू होता है, तब जितने रोगी मरते हैं उतने कुछ दिन बाद ही नहीं मरते। इस रोगमें युवक और बलिष्ठ लोग ही अधिक मरते हैं। ४०° उ० और २०° दक्षिण अक्षांशके मध्यस्थित प्रदेश इस रोगका लीलाक्षेत्र है। नातिशीतोष्ण प्रदेश इस ज्वरके आक्रमणसे बचे नहीं हैं।

चिकित्सा—पीतज्वरकी चिकित्साके विषयमें सबका एक मत नहीं है। प्रधानतः प्रदाहनाशक और उत्तेजक इन दो उपायोंका अवलंबन किया जाता है। अवस्थाको विचार कर या तो प्रदाहनाशक या उत्तेजक औषधकी व्यवस्था करनी चाहिये।

प्रदाहनाशक औषधोंमें रक्तमोक्षणकी विधि पहिले प्रचलित थी। आजकल साधारणतः पारद व्यवहार किया जाता है। प्रदाहलक्षणका प्राबल्य होने पर

रक्तमोक्षण किया जाता है। इसके सिवा विरेचक, वमनकारक और शीतल औषधादिका प्रयोग करें। इस ज्वरमें स्वल्पविराम ज्वरके लक्षण दिखाई दें तो कुनैनकी व्यवस्था करें। यदि औषध निगला जा सके तो Saline medicine का प्रयोग करना चाहिये, इससे फायदा हो सकता है।

बहुतोंका कहना है कि जैविक और औद्भिदिक पदार्थोंके सड़नेसे जो विषाक्त वाष्प उत्पन्न होती है, वह मनुष्य शरीरमें प्रविष्ट हो पीतज्वर उत्पन्न करती है। यह ज्वर संक्रामक होता है। रोगीके शरीरसे विषाक्त वाष्प अन्य शरीरमें प्रविष्ट हो उसको पीड़ित करती है।

लोहित वा आरक्त ज्वर (Scarlet fever) – यह रोग चर्मपुष्पिका रोगके अन्तर्गत है। गलक्षत इस रोगका एक प्रधान लक्षण है। ज्वर प्रकट होनेके दूसरे दिन रोगीके शरीरमें लाल, पित्ती उछलती है, ६ठे वा ७वें दिन वाह्यत्वक् पृथक् हो जाता है। अधिकांश चिकित्सकोंने इस रोगको ३ श्रेणियोंमें विभक्त किया है, जैसे— १ सरल (S. simple) २ गलक्षत (S. anginasa) और ३साङ्घातिक (S. maligna)।

प्रथम प्रकारके ज्वरमें पित्त लक्षित होता है, किन्तु प्रायः गलक्षत नहीं होता ; द्वितीय प्रकारके ज्वरमें पित्त और गलक्षत दोनों ही विद्यमान रहते हैं तथा तीसरे प्रकारके ज्वरके आक्रमणसे समस्त यन्त्र अवसन्न हो जाते हैं, रोगीकी जीवनीशक्तिका ह्रास और दुर्बलता बढ़ जाता है। ज्वरके पूर्वलक्षणमें कंपकंपी आलस्य, सिर दर्द, नाड़ीकी गति तेज, मुंह लाल, तृष्णा क्षुधाकी हानि और जिह्वालेप लक्षित होता है। ज्वर प्रकट होते ही रोगी गलेमें प्रदाह अनुभव करता है तथा वह स्थान लाल और कुछ फूल जाता है। क्रमशः मुखका मध्यभाग और जिह्वा लाल हो जाती है। छोटी छोटी लाल पित्ती उछलने लगती है, शीघ्र ही उनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है, कि तमाम शरीर लाल दीखने लगता है। धीरे धीरे यह पित्ती तमाम देहमें फैल जाती है। यह बहुत चिकनी होती है, इसको दाबनेसे कुछ देरके लिये इसकी ललाई जाती रहती है। इस प्रकारकी पित्तीके चारों ओर मरहोरी (घमौरी) दीख पड़ती हैं। यह तीन चार दिन तक समान भावसे रह कर बादमें धीरे धीरे अदृश्य हो जाती है। ७ दिनके बाद एक भी नहीं दीखती। फिर वाह्यत्वक् केंचुलीकी तरह पृथक् हो जाता है ज्वर प्रकट होनेके बाद प्रायः दो सप्ताहके भीतर चर्मस्खलन कार्य समाप्त हो जाता है। पित्ती उछलनेके बाद ही ज्वरका ह्रास नहीं होता। संध्याके समय रोगकी वृद्धि होती है। इस समय रोगी प्रायः प्रलाप बकता रहता है, कभी कभी तन्द्राके लक्षण भी दिखाई देते हैं। चर्मस्खलनके बाद पेशाबमें अण्डलालांश दीख पड़ते हैं।

साङ्घातिक लोहित-ज्वरमें उद्भेद कुछ ज्यादा दिनोंमें दीखते हैं, कभी कभी तो बिल्कुल ही दिखाई नहीं देते। कभी कभी उद्भेद हो कर सहसा शरीरमें विलीन अथवा नीलाभ चिह्नके साथ मिल जाते हैं। नाड़ी दुर्बल, शरीर शीतल, बल क्षीण इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। इस प्रकारके लोहित-ज्वरमें बहुत थोड़े समयमें ही रोगीका प्राणनाश होता है। अन्य प्रकारका लोहित-ज्वर शीघ्र ही मस्तिष्क-ज्वरका रूप धारण करता है। नाड़ी द्रुत और दुर्बल, जिह्वा शुष्क, पिङ्गलवर्ण और कम्पान्वित, निश्वास लेनेमें कष्ट, गलदेशमें नीलाभ, स्फोत और सड़ा क्षत होता है। गलेद्वारमें सञ्चित श्लेष्माके कारण रोगीको निःश्वास-प्रश्वासमें अत्यन्त कष्ट होता है। इस प्रकारका ज्वर औषध सेवनसे बहुत कम ही आरोग्य होता है।

द्वितीय प्रकारका लोहित ज्वर भी (S. anginasa) आशङ्काजनक है। प्रदाह अथवा मस्तकमें रसप्रवेश वा गलक्षतके कारण यह रोग सांघातिक हो जाता है। आसन्न प्रसवाओंके लिए इस रोगका मृदु आक्रमण भी विशेष सङ्कटजनक है। जब ऐसा मालूम पड़े कि, रोग एक प्रकारसे आरोग्य हो गया है, तब भी रोगीको विपरीत फल हो सकता है। जो बालक एक बार आरक्तज्वरसे आक्रान्त होते हैं, उनका स्वास्थ्य हमेशाके लिए भग्न हो जाता है। उसको व्रण, गण्डमाला सम्बन्धी क्षत, शिरस्त्वक्‌रोग, कर्णक्षत, चक्षु-प्रदाह आदि कोई न कोई रोग होता ही रहता है। आरक्त-ज्वर-मुक्त रोगीको कभी उदररोग (Anasarca) होता है। आश्चर्यका

विषय है कि, इस लोहितज्वरका आक्रमण मृदु होने पर उदरीरोग प्रकट होता है और प्रबल होने पर उदरीरोग नहीं होता। इस ज्वरको शान्तिके उपरान्त जब नूतन वाह्यत्वक्‌का स्खलन शुरू होता है, तब रोगीको बाहर न जाने देना चाहिये। रोगीका शरीर ठण्डा न होने पावे, उस तरफ ख्याल रखना चाहिये।

लोहित-ज्वर अन्यान्य चर्मपुष्पिकारोगकी तरह बहुव्यापी हो कर प्रकाशित होता है। यह रोग कभी मृदु और कभी कठोर भाव धारण करता है। उपसर्गके प्रति दृष्टि रख कर इस रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये। सरल लोहित ज्वर (S. simplex) में रोगीको घरसे बाहर जाने देना, अथवा उसको किसी तरहका उत्तेजक पथ्य देना उचित नहीं। रोगीका कोष्ठबद्ध न होने पावे—इस बातका ध्यान रखना चाहिये। द्वितीय प्रकारके लोहित-ज्वरमें गात्रचर्म उष्ण हो तो शीतल अथवा उष्ण जलका प्रयोग किया जा सकता है। यदि ज्वरका वेग प्रबल हो और रोगी प्रलाप बकता रहे, तो कर्णदेशमें जोंक लगाना चाहिये, रोगी बलिष्ठ हो तो हाथसे रक्तमोचण करना चाहिये। मस्तकमें किसी तरहका भयावह उपसर्ग विद्यमान न हो तो citrate of ammonia और carbonate of ammonia एक साथ मिला कर रोगीको देवें तथा जिससे रोगीको रोज एक बार या दो बार दस्त आवे, उसके लिए मृदु विरेचक औषधकी व्यवस्था करें। सांघातिक-ज्वरमें, दो कारणोंसे विपद् हो सकती है। शरीर और स्नायविक झिल्लियोंमें संक्रामक विष प्रविष्ट हो कर उन प्रदेशोंको दूषित कर देता है। थोड़े से चर्म वा गलक्षतसे ही रोगी अवसन्न हो जाता है। इस अवस्थामें wine और brak अधिक खिलाना चाहिये। रोगीके गलोद्वारमें (fauxes)-में सड़ा क्षत हो कर धीरे धीरे तमाम शरीरको विषाक्त कर देता है। इस अवस्थामें विशेष सावधानीके साथ quinine अथवा wine सेवन करावें। chloride of soda के साथ nitrate of silver मिला कर अथवा कार्बलिकके संक्रामापह पदार्थ द्वारा रोगीको कुल्ला करावें। यदि रोगी कुल्ला करनेमें असमर्थ हो, तो पूर्वोक्त द्रव्यको नासारन्ध्र और गलोद्वारमें प्रविष्ट करा दें।

लोहित-ज्वरमें साधारणतः निम्नलिखित ३ औषधोंकी व्यवस्था की जाती है। १, आधे बोतल पानीमें एक ड्राम chlorate of potash मिला कर प्रति दिन आधा या पौन बोतल पानी रोगीको पिलाना चाहिये। २, थोड़ी-सी chlorine पानीके साथ मिला कर रोज आधी बोतल पिलावें। ३, Beef-tea, wine आदिके साथ ५ ग्रेन carbonate of ammonia मिला कर प्रतिदिन तीन बार सेवन करने देवें।

पित्ती उछरनेके बाद लोहित ज्वरके साथ रोमान्ती ज्वरका बहुत कुछ सौसादृश्य दृष्टिगोचर होता है। इस ज्वरके भावी फलका निर्णय करना बहुत कठिन है। इस रोगकी संक्रामक शक्ति किस अवस्थामें प्रकटित होती है, उसका आज तक भी भली भाँति निर्णय नहीं हो पाया है। रोगीके घरके सामान और वस्त्रादिसे लोहित ज्वरके विषका बहुत दिनों तक सम्बन्ध रहता है। डा० वाटसन् (Dr. Watson) कहते हैं, कि, एक वर्ष बाद एक फलानिलसे विषने संक्रामित हो कर किसी व्यक्तिको पीड़ित कर दिया था।

क्षयज्वर (Hectic fever) यह ज्वर अतर्कितभावसे प्रकट हो कर बहुत दिनों तक ठहरता है। नाड़ीकी गति तेज, दुपहर, शाम और भोजनके बाद ज्वरके वेगकी वृद्धि, हाथ पैरोंके तलवे बहुत गरम तथा अन्तमें घर्म और उदरामय प्रकट होता है। इस रोगमें रोगी क्रमशः क्षयको प्राप्त होता रहता है। बहुतसे चिकित्सकोंका ख्याल है कि, यह ज्वर दुर्बलता और प्रदाहजनित अवसादके कारण उत्पन्न होता है। कोई कोई कहते हैं कि, उदर, हृद्रोग और जटिल रोगके साथ क्षयज्वरका सम्बन्ध है। क्षय-कासरोगमें भी इसकी उत्पत्ति होती है। साधारणतः पूयसञ्चय, क्षत, बहुत दिनोंका प्रदाह, किसी क्षरणयन्त्रमें प्रदाह, शारीरिक झिल्लियोंमें किसी तरहका परिवर्तन आदि इस रोगके कारण हैं।

इस ज्वरकी प्रथमावस्थामें शरीर पाण्डु और क्षीण, दुपहर और शामको नाड़ी अति वेगवती, सामान्य परिश्रमसे नाड़ी अति द्रुत और गात्रचर्म अति उष्ण हो जाता है। ज्वरका वेग पहिले पहल बहुत कम बढ़ता है—फिर शामको बहुत बढ़ जाता है। रोगी ज्वरसे पहली

शीत और पीछे उष्णताका अनुभव करता है। गात्रचर्म पहले शुष्क और फिर घर्मसिक्त हो जाता है। सायंकालीन उपसर्ग, सुबह नहीं दीखते। प्रथमावस्थामें रोगीका कोष्ठबद्ध हो जाता है और उदरामय भी दिखाई देता है। मूत्र कभी पाण्डु, कभी अत्यन्तरञ्जित और कभी कभी मूत्रके नीचे चूर्णवत् पदार्थ दिखाई देता है। रोग जितना बढ़ता जाता है, गर्दन उतना ही लाल दीखने लगती है। नली और गलदेश लोहित, शुष्क और प्रदाहयुक्त, जिह्वा परिष्कार रक्तवर्ण, मसृण और कण्टकशून्य, अम्लको ओष्ठ और नलीदेशके चतसे रस निर्यास, चक्षु कोटरगत, किन्तु उज्ज्वल, समस्त अवयव क्षीण और क्षश, ललाट संकुचित इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। धीरे धीरे रोगीके बाल उड़ जाते हैं, गुल्फ और पैरोंमें सूजन होती है तथा नींद भी अच्छी तरह नहीं आती। रोगीका शरीर सर्वदा अवसन्न रहता है, पर उत्तेजनाका ह्रास नहीं होता। अन्तमें उदरामय प्रबल हो जाता है। रोगी जल्दी जल्दी सांस लेता रहता है और वह इतना दुर्बल हो जाता है कि, बैठने या बात करनेका प्रयत्न करते ही उसकी मृत्यु हो जाती है। यह रोगी शेष अवस्थामें कभी कभी प्रलाप बकने लगता है। श्वासयन्त्रकी विकृतिके कारण चयज्वर उत्पन्न होता है, इसमें श्वासकृच्छ्र, निष्ठीवन, कास आदि उपसर्ग विद्यमान रहते हैं।

बहुतसे वैद्योंने चयज्वरकी तीन अवस्थाओंका वर्णन किया है,—१ इस अवस्थामें क्षुधा और बल सम्पूर्ण रूपसे नष्ट नहीं होता तथा ज्वरका विरामकाल मालूम हो सकता है। २, इस अवस्थामें नाड़ी द्रुत, ज्वरवृद्धिके समय अत्यन्त द्रुत, रोगीके हाथ पैरोंके तलवे अत्यन्त उष्ण और अवसाद-उत्पादक घर्मोद्गम लक्षित होता है, रोगी बहुत जल्दी क्षश हो जाता है। ३, इस समय उदरामय, शरीरके निम्नांशमें शोथ, अत्यन्त क्षशता और बलकी हीनता होती है।

चयज्वर नाना भागोंमें विभक्त है—पाकस्थलीगत, २ वक्षःस्थलीगत, ३ जननेन्द्रियगत, ४ रक्तगत, ५ त्वक्सम्बन्धीय इत्यादि।

१, पाकस्थलीगत (Gastri-hectic) चयज्वरमें पिपासा, मुख शुष्कता, अग्निमान्द्य, उद्गार, छातीमें जलन, आदि विद्यमान रहते हैं। धीरे धीरे रोगी अत्यन्त क्षश हो जाता है, उसके शरीरका रंग पाण्डु और निःश्वासमें दुर्गन्ध आने लगती है। अन्तमें चयज्वरके समस्त लक्षण प्रकाशित होते हैं। बालकगण इस ज्वरसे पीड़ित होने पर उनको नकफूटन, श्लैष्मिक भेद और क्रिमिनिर्गम आदि रोग हो जाते हैं।

२, कण्ठनलीचत, कण्ठनली वा उपजिह्वामें प्रदाह, विभिन्न प्रकारका वायुनलीप्रदाह, फेंफड़ेमें किसी तरहकी विकृति अथवा वक्षःवरणके परिवर्तनके कारण वक्षःस्थलगत (pectoral) चयज्वर उत्पन्न होता है।

३, अतिरिक्त मैथुन वा हस्तमैथुन और मूत्रयन्त्रकी उत्तेजनाके कारण जननेन्द्रियगत (genital) चयज्वर उत्पन्न होता है। जननेन्द्रियकी उत्तेजना वा फेंफड़ेकी पीड़ाके कारण जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें हस्तमैथुनकी बलवती इच्छा होती है और इसी कारण यह ज्वर अत्यन्त दुःसाध्य है।

४, फेंफड़ा अथवा परिपाचक श्लैष्मिक झिल्लीसे रक्त निकलते रहनेसे रक्तस्रावयुक्त (haemorrhagic) चयज्वर प्रकाशित होता है।

५, जिन कारणोंसे पाकस्थलीगत ज्वर उत्पन्न होता है उसके साथ यदि शरीरमें उद्भेद हो, तो चिकित्सकगण उसको त्वकगत (Cutaneous) चयज्वर कहते हैं।

इनको सिवा और भी एक प्रकारका चयज्वर साधारणतः देखा जाता है, जो मानसिक चिन्ताके कारण हुआ करता है। किसी प्रधान अभिलषित वस्तुके लिए सर्वदा चिन्ता करनेसे दुःखके कारण सर्वदा चिन्तामें मग्न रहने अथवा प्रिय वस्तुके अभावके कारण सर्वदा दुःख प्रकट करते रहनेसे जीवनी-शक्ति क्रमशः चय होती रहती है। दुर्बल व्यक्तिके उक्त अवस्थाको प्राप्त होने पर उसको यकृत् और फेंफड़ा आदि यन्त्र विकृत हो कर कठिन चयज्वर उत्पन्न करते हैं। शारीरिक मलिनता और क्षशता, ज्वरकी विवृद्धि, अनिद्रा, दौर्बल्य, द्रुत निःश्वास, श्वासकृच्छ्र, काश, सुबह पसीना आना, फेंफड़े-

को विकृति आदि क्रमशः प्रकाशित हो कर रोग सङ्कट हो जाता है।

क्षयज्वर ज्यादा दिनों तक नहीं ठहरता है। जिस कारणसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है, उसका निवारण बिना किये रोगीका मृत्यु होती है। बहुत दिनोंके प्रदाहके कारण यदि किसी शारीरिक झिल्लीका कोई निम्नतम अंश विकृत अथवा किसी स्थानमें पूय सञ्चित वा जटिल रोगके कारण क्षयज्वर उत्पन्न हो, तो यह रोग सहजमें दूर नहीं होता। रोगी यदि वृद्ध न हो, तो आरोग्यलाभकी कोई आशा नहीं।

चिकित्सा—इस ज्वरकी प्रथम और द्वितीय अवस्थामें औषध सेवन करनेसे उपकार हो सकता है। किन्तु तृतीयावस्थामें प्रधान प्रधान उपसर्ग दूर करनेके लिए ही औषध दी जाती है। इस अवस्थामें औषध सेवनसे आरोग्य लाभकी आशा बहुत कम ही है। परिपाचक श्लैष्मिक झिल्लीकी किसी पीड़ाके साथ क्षयज्वर संसृष्ट होने पर रोगीको लघु आहार देवें, उसके घरको वायु शुद्ध रखें और थोड़ीसी ipecacuanha और anodynes मिश्रित बलकारक औषध पिलाते रहें। अथवा विवेचनापूर्वक acetate of ammonia वा थोड़ीसी nitrate of potash और spirit of nitre के साथ cinchona अथवा अन्य कोई औषधि प्रयोग करनी चाहिये। शारीरिक झिल्लीका परिवर्तन होने पर liquor potassic अथवा Brandish's alkaline solution और conium को व्यवस्था करनी चाहिये।

वक्षस्थलगतज्वरमें sulphate of zinc, sulphuric acid तथा विशेष विशेष मादक औषधियाँ प्रशस्त हैं।

मूत्राशयगत ज्वरके कारणोंको दूर करने पर उक्त रोग आराम होता है। इस अवस्थामें तड़केका उठना, शारीरिक और मानसिक व्यापृति, लघुद्रव्य भोजन, मादक वस्तुका खाना, भ्रमण और समुद्रयात्रा त्याग देनी चाहिये। क्षार और खनिज पदार्थ-मिश्रित जलके व्यवहार करनेसे विशेष उपकार हो सकता है।

शरीरके किसी दूषित अंशके शोषण अथवा प्रदाहके कारण क्षयज्वर उत्पन्न होने पर प्रदाह निवारण तथा जिससे शरीरके दूसरे अंश दूषित न होने पावें उसका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

Opium, morphine, hop, henbane, hemlock आदिके प्रयोगसे प्रथम उद्देश्यकी तथा बलकारक, लघु-पथ्य, विशुद्ध परिष्कार वायुसेवन, बलकारक औषध, पचननिवारक और संकोचक आदि औषधोंके सेवनसे द्वितीय उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती है। अवस्थाका विचार कर acetate of ammonia तथा acetate of morphine मिश्र, potash और chlorate निर्यास तथा मादकद्रव्योंके साथ कर्पूरका व्यवहार करें।

Acetate of ammonia और गुलाबजल मिला कर व्यवहार करनेसे गात्रोष्मा और अतिरिक्त घर्मोद्गम निवारित होता है। मृदु बलकारक और शैत्यकारक औषधके साथ prussic acid मिला कर प्रयोग करनेसे अस्थिरता जाती रहती है।

क्षयज्वरकी चिकित्सामें पथ्यकी तरफ विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। भिन्न भिन्न अवस्थामें पृथक् पृथक् आहारकी व्यवस्था करनी चाहिये। गधी, गाय और बकरीका दूध, मांड़, ताजा मक्खन, बहुत पुराना रम, मद्य मिश्रित दूध, बलकारक अन्यान्य खाद्य और अंगूर फल आदि देवें। पुरानी सेरी, पोर्ट अथवा हारमिटेज शराब पीनेसे फायदा होता है। इस ज्वरको विलेपी ज्वर भी कहा जाता है।

सूतिकाज्वर (Puerperal fever)—गर्भिणी स्त्री कभी कभी प्रसव करनेके बाद इस ज्वरसे पीड़ित होती है। साधारणतः प्रसवके तीन दिन बाद यह ज्वर प्रकट होता है। तथा भिन्न आकारोंमें दिखाई देता है। डा० गुच (Dr. Gooch) कहते हैं कि, सूतिकाज्वर दो श्रेणियोंमें विभक्त है—प्रदाहिक और आन्त्रिक। डा० ली (Dr. Robart Lee) और फर्गुसन (Dr. Farguson) के मतसे यह चार श्रेणियोंमें विभक्त है।

प्रदाहिक सूतिका ज्वर (Inflamatory)—अन्त्रावरण-प्रदाह और कभी कभी जरायु, अण्डाधार और मूत्राशय आदिको उत्तेजनाके कारण यह ज्वर उत्पन्न होता है। पहले शीत और कम्प, फिर उष्णता, पिपासा, मुखकी विवर्णता, नाड़ीकी द्रुतगति और द्रुत श्वासप्रश्वास आदि लक्षण प्रकट होते हैं। शरीरका स्वाभाविक ताप शीघ्र ही घट जाता है। पीछे विवमिषा,

वमन, योनिदेशसे लगा कर उदर तकमें वेदनाका अनु-भव होता है। धीरे धीरे नाड़ीका स्पन्दन उग्र, जिह्वा मैली तथा थोड़ा थोड़ा पेशाब होता है।

यह ज्वर १० ११ दिन तक रहता है, कभी कभी रोगी पहले ही दिन मर जाता है।

आन्त्रिक सूतिकाज्वर (Typhoid puerperal fever)--यह रोग अत्यन्त सांघातिक और विभिन्न प्रकारसे प्रकट होता है। इस ज्वरका सामान्य आन्त्रिक ज्वरसे सम्बन्ध है और आन्त्रिक ज्वरमें जो लक्षण प्रकट होते हैं, इसमें भी वे ही दिखाई देते हैं।

इस रोगमें औषध प्रयोगसे विशेष फल नहीं होता। रोगी कुछ घंटोंमें, तथा कभी कभी दो चार दिनके अन्दर प्राण त्याग देता है। सूतिकाज्वर देखो।

स्वेदज्वर (Sweating or miliary fever)—शारीरिक अवसादके बाद अतिरिक्त पसीना निकल कर यह ज्वर सहसा प्रकट होता है। इस ज्वरमें शरीरमें प्रियङ्गुवत् उद्भेद होते हैं। स्वेदज्वर देशव्यापक और संक्रामक है। इस ज्वरका प्रभाव सब पर एकसा नहीं पड़ता, ज्वरका आक्रमण मृदु होने पर रोगी अवसाद, क्षुधाहानि, चक्षुमें वेदना और अत्यन्त दाहका अनुभव करता है। मुंह सुपकना तथा जीभ कांटेदार और मैली हो जाती है। कोष्ठबद्धता, मूत्रकी अल्पता, श्वासकष्ट, शिरःपीड़ा, नाड़ी चञ्चल और अत्यन्त द्रुत उद्भेदोंका निकलना आदि उपसर्ग होते हैं। धीरे धीरे रोगीको पीठसे लगा कर तमाम देहमें उद्भेद निकलते हैं। सर्वदा पसीनेसे शरीर भीगा रहता है और उसमेंसे सड़ी घास जैसी बदबू निकलती है। उपसर्ग १४।१५ दिनसे ज्यादा नहीं ठहरते, साधारणतः ८।९ दिनमें ही विलीन हो जाते हैं। ज्वरका आक्रमण प्रबल होने पर, ज्वर आनेके कई घंटे पहलेसे रोगी अत्यन्त अवसाद और क्षुधाहानिका अनुभव करता है। शीत, रोमाञ्च, मस्तकघूर्णन, अत्यन्त मस्तकपीड़ा, विवमिषा, श्वासकृच्छ्र, मेरुदण्ड, प्रत्यङ्ग और उदरके उपरिभागमें वेदना, अत्यधिक पसेव आदि लक्षण प्रकट होते हैं। तन्द्रा, प्रलाप और आक्षेप उपस्थित होने पर रोगी मर जाता है। श्वास यन्त्रमें प्रदाह पेटमें रक्तरोध-जनित वेदना, छाती पर भार मालूम पड़ना, अत्यन्त चिन्ता, अन्त्र-प्रदाह कोष्ठबद्धता, गहरे रंगका पेशाब, पेशाबके समय यन्त्रणा इत्यादि लक्षण दिखलाई देते हैं। स्वेदज्वरका आक्रमण अत्यन्त प्रबल होने पर २४ घंटेसे लगा कर ४८ घंटे तक अथवा ३।४ दिनके अन्दर रोगी मर जाता है। ज्वर २।३ सप्ताह तक ठहरने पर रोगीके जीनेकी आशा की जा सकती है।

४३° से ६०° उत्तर अक्षांशके भीतर स्वेदज्वरका प्रताप देखा जाता है। आर्द्र और छायायुक्त स्थान, अत्यन्त उष्णता, अनिरिक्त सड़ विमिश्रित वायु आदिसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

चिकित्सा—भिन्न स्थानमें अवस्थान, सामयिक स्थान-परिवर्त्तन, स्वेदज्वराक्रान्त व्यक्तिका संस्रव परित्याग आदि उपायोंका अवलम्बन करना उचित है। इस ज्वरके मृदु आक्रमणमें औषधप्रयोग करनेकी कोई जरू-रत नहीं। आक्रमण प्रबल हो, तो जिससे आभ्यन्तरिक यन्त्र आदि विकृत हो कर नुकसान न पहुंचाने पावे—ऐसी औषध देनी चाहिये। रक्तमोक्षण करनेसे ज्वरवेग ह्रास हो सकता है। पलस्तर, सर्षपलेप, विरेचक औषध आदिका प्रयोग करना चाहिये। उद्भेद निकलनेके बाद रक्तमोक्षण करना विधेय नहीं। कोई कोई कहते हैं कि, प्रथमावस्थामें शीतल जलसिञ्चनसे लाभ हो सकता है। आर्द्रकारक पुल्टिस देनेसे तथा उपयुक्त किसी औषधकी पिचकारीसे उदरमें प्रविष्ट करानेसे उदरवेदना और मूत्रकृच्छ्र निवारित होता है। फेंफड़ेमें रक्ताधिक्य होने पर कोई कोई अधिक रक्तमोक्षण और वाष्पप्रलेप देनेकी व्यवस्था देते हैं। किन्तु एक बारगी अधिक रक्त-मोक्षण करानेसे रोगीका अंग संकुचित हो जाता है। अवस्थाविशेषमें camphor, ammonia, serpen-taria आदि देना चाहिये।

पथ्य—प्रथम ४।५ दिन तक रोगीको किसी प्रकारका बलकारक खाद्य न देवें; ईषदुष्ण जल और सामान्य तरल पदार्थकी व्यवस्था करें। ६ठे, ७वें वा ८वें दिन थोड़ासा मेमने वा कुक्कुटका जूस दिया जा सकता है। क्रमशः भोजनकी तौल बढ़ाते रहना चाहिये। अन्यान्य संक्रामक रोगोंकी तरह स्वेदज्वरमें भी पथ्यके प्रति विशेष दृष्टि रखनी चाहिये।

प्रदाहिक ज्वर (Inflamatory fever)—इस ज्वरमें मस्तक, पीठ और प्रत्यङ्गमें वेदना, शरीर अत्यन्त गरम, नाड़ी द्रुत, अत्यन्त तृष्णा, लाल और थोड़ा मूत्र, कोष्ठबद्धता, चाञ्चल्य, चिन्ता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। हृत्पिण्ड और धमनी वा शिरा अत्यधिक उत्तेजित होनेसे यह ज्वर उत्पन्न होता है। प्रौढ़, अधिकमेद-विशिष्ट, क्रोधी, अपरिमिताहारी और अत्यन्त व्यायाम-शील व्यक्तियोंको यह ज्वर होता है। अत्यन्त शीतल और अत्यन्त उष्णप्रदेशमें प्रदाहिक ज्वरका प्रकोप देखा जाता है।

यह ज्वर मलेरियासे भी उत्पन्न हो सकता है। मलेरिया संसृष्ट न होनेसे प्रदाहिक ज्वर शीघ्र ही उपशान्त हो जाया करता है।

साधारणत: शारीरिक किसी यन्त्रकी विकृति, कठिन वा वैसा ही कोई उत्पात न होने पर सरल प्रदाहिक ज्वर होता है; शीत और वसन्तऋतुमें यह ज्वर दिखाई देता है। सरल अवस्थामें यह ज्वर बिल्कुल भी संक्रामक वा देशव्यापक नहीं होता।

यह रोग जितना बढ़ता है, उपसर्ग भी उतने ही बढ़ते रहते हैं; जिह्वा लाल और सूख जाती है तथा नींद नहीं आती। इस रोगमें बालकोंको तन्द्रा तथा वृद्धोंको प्रलाप होता है। शामको उपसर्गोंका प्राबल्य होता है और सुबह पसीना हो कर उपसर्गोंकी निवृत्ति होती है। साधारणत: यह ज्वर १४ दिनसे ज्यादा नहीं ठहरता कठिन प्रदाहिक ज्वरमें रोगी प्राय: मर जाते हैं। यह ज्वर २से ६ दिन तक ठहरता है। अक्सर करके चौथे या पांचवें दिन रोगीके जीवनका अन्त हो जाता है।

चिकित्सा—सरल और कठिन दोनों ही प्रकारके प्रदाहिक ज्वरमें एक तरहकी दवा दी जाती है। प्रथमावस्थामें सुविधाके अनुसार शिरा और धमनीसे रक्तमोक्षणकी व्यवस्था की जा सकती है। बादमें विरेचक औषध व्यवस्थेय है। इस ज्वरमें, किसी भी हालतमें वमनकारी औषध न देनी चाहिये। Nitrate of potash, nitrate of soda और muriate of ammonia उत्तेजनाके समय व्यवस्थेय है; एक एक पल नाइटर और १२ ग्रेन सिडरियेट आफ् आमोनिया पानीमें मिला कर उसको दिनमें ३।४ बार सेवन कराना चाहिये। धमनीकी क्रिया मन्द होने पर पलस्ताका प्रयोग करें। अत्यन्त अवसाद वा तन्द्रा होने पर मस्तक पर पलस्ता दिया जा सकता है—दूसरे वक्त नहीं।

साधारणतः नूतन महाद्वीपके भिन्न भिन्न देशोंमें यह ज्वर देखा जाता है। इस ज्वरमें समुद्र जल औषध-रूपमें व्यवहृत होता है। कपूरके साथ nitrate of potash और muriate of ammonia का मिश्र अथवा citrate वा tartarate of potash के व्यवहारसे यथेष्ट लाभ पहुंच सकता है। कभी कभी यह ज्वर स्वल्पविराम ज्वरके समान हो जाता है। विरामावस्थामें sulphate of quinine व्यवहार करना चाहिये।

पित्तज्वर (Bilio-gastric fever) शीत, कम्प, परिपाचक श्लेष्मा और पित्तको विकृति ये सब इस ज्वरके निदान हैं। रोग कठिन होने पर रोगीका शरीर पीला हो जाता है। उष्ण दलदल भूमि और नातिशीतोष्ण प्रदेशमें ग्रीष्म और शरत्कालमें यह रोग देशव्यापक अथवा कभी कभी अत्यन्त वर्षण और बाढ़ आनेके बाद यह संक्रामक हो जाता है। पित्तप्रधान और मादकसेवी व्यक्तियोंको यह रोग होता है।

जान्तव और उद्भिज्ज पदार्थ सड़ कर विषाक्त द्रव्य शरीरमें प्रविष्ट होने पर तथा अत्यन्त धूप अथवा रातको शीतल वायुसेवन, अपरिमित आहार वा पान, अत्यन्त परिश्रम और क्रोध प्रकट करनेसे यह ज्वर होता है। ज्वर प्रकट होनेके पहिले अवसाद, विवमिषा, क्षुधाहानि, पीठ और प्रत्यङ्गमें वेदना, अग्निमान्द्य, नि:श्वास दुर्गन्धयुक्त, जिह्वा पीतवर्ण और श्लेष्मावृत, मुख चुपकना, अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। धीरे धीरे शिर:पीड़ा, वमन, दाह, अस्थिरता, अनिद्रा, उदरवेदना, चक्षु जलभाराक्रान्त, मुख रक्तवर्ण, श्वास लेनेमें कष्ट और नाड़ी द्रुत, अत्यन्त पिपासा, पित्तमय मलनिर्गम, मूत्र थोड़ा और काला, इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। इस ज्वरमें कभी कभी शरीरके अर्द्धांशमें पसेव किन्तु गात्रचर्म उष्ण रहता है।

३रे, ४थे अथवा ५वें दिन सुबहके वक्त ज्वरका

विराम होता है, किन्तु शामको उपसर्ग बढ़ने लगते हैं। ७वें और ८वें दिन तक रोगकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इस समय रोगी बहुत कष्ट पाता है। कभी कभी तन्द्रा प्रलाप और नाड़ीके स्पन्दनमें हीनता हो जाती है। इस अवस्थामें रोगी कभी कभी मर भी जाता है।

पहलेसे ही चिकित्सा करते रहनेसे यह ज्वर ७ दिनमें ही उपशान्त हो सकता है किन्तु प्रथमावस्थामें उदासीनता करनेसे इस रोगसे प्रायः रोगीको ८ दिनमें मृत्यु हो जाती है। यह रोग कभी यकृत् स्फोटक पीड़ा और कभी स्वल्पविराम ज्वर वा सविराम ज्वरमें परिणत हो जाता है।

चिकित्सा—ज्वर प्रकट होनेसे पहले वमनकारक औषध, गरम स्वेद, विरेचक औषध, citrate of potash, nitrate of potash और muriate of ammonia व्यवहार करनेसे विशेष फल हो सकता है। प्रदाहिक और स्वल्पविराम ज्वरमें जो औषधें व्यवस्थेय हैं, पैत्तिकज्वरमें भी प्रायः उन औषधोंका प्रयोग किया जाता है।

श्लैष्मिकज्वर (Mucus fever)—इस ज्वरमें शीत, श्लेष्माका निकलना, पीठ और प्रत्यङ्गोंमें वेदना तथा समय समय पर कुछ विराम मालूम पड़ता है। अतिरिक्त परिश्रम, अवसाद, शारीरिक दुर्बलता, अत्यधिक रात्रिजागरण, निम्न और आर्द्र स्थानमें वास धूप और आलोकका अभाव, अपरिच्छन्नता, खाद्यका अपचार, अपरिमित विरेचकादि सेवन, अल्पाहार आदि कारणोंसे इस ज्वरकी उत्पत्ति होती है। शीत और शरत्कालमें इसका प्रकोप देखा जाता है।

शरीरकी गुरुता और विषमता, क्षुधाहानि, वेदना, सुनिद्राका अभाव, अम्ल उद्गार, शीत आदि उपसर्ग ज्वर प्रकाशके पहले उत्पन्न होते हैं। धीरे धीरे अरुचि, कुछ पिपासा, वमन, उदरमें भारबोध, उदराध्मान, अन्त्रकी शिथिलता, जिह्वा श्लेष्मावृत, मुख विरस, निःश्वास दुर्गन्धयुक्त, इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। कभी श्लैष्मिक उदरामय, कभी कोष्ठबद्धता और कभी कभी क्रिमि निकलते देखा जाता है। सन्ध्याकालमें ज्वरके वेगकी वृद्धि और उसी समय शरीर अत्यन्त उष्ण हो जाता है। क्रमशः शिरःपीड़ा मानसिक विशृङ्खला, निद्राकर्षण, पर सोनेकी असमर्थता, विषाद, चाञ्चल्य सर्वाङ्गमें वेदना, कास, कानमें शब्द, बधिरता आदि उपसर्ग उपस्थित होते हैं।

यह ज्वर दो दिनसे एक सप्ताह तक ठहरता है। शरीर और नाड़ीकी परीक्षा करनेसे समय समय पर ईषत् विरामकी उपलब्धि होती है। किन्तु विराम जितना स्पष्ट होता है, रोग भी उतना ही ज्यादा दिन तक ठहरता है। आरोग्यकालमें पुनः आक्रान्त होनेकी आशङ्का रहती है। इस समय पथ्य पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये; रोगीको आर्द्र और शीतल स्थानमें तथा बाहर हवामें जाने देना उचित नहीं। श्लैष्मिक ज्वर पुनः प्रकट होने पर सविराम वा स्वल्पविराम ज्वरमें परिणत हो सकता है।

चिकित्सा—कोई कोई कहते हैं कि, पहले वमनकारक औषध, फिर अफीम और नाइटार, उसके बाद कर्पूर और हाइड्रागिराम (Hydrargyrum cumereta), तथा अन्तमें मृदु विरेचक, बलकारक औषध और खाद्यकी व्यवस्था करनी चाहिये। जब विराम हो तब सल्फेट आफ् कुनैन सेवन करावें।

कालाज्वर (Black fever)—साधारणतः मलेरियासे इस ज्वरकी उत्पत्ति है। इस ज्वरमें समस्त शरीरका रङ्ग प्रायः काला हो जाता है। आसाममें इस ज्वरका प्रादुर्भाव अधिक होता है। इस ज्वरमें अधिकांश रोगी मर जाते हैं।

डेङ्गूज्वर (Dengue fever) अर्थात् लाल बुखार—करीब पचास वर्ष हुए होंगे, यह ज्वर भारतमें प्रचारित हुआ था। यह अमेरिकासे आया था। इस ज्वरमें समस्त शरीरमें अत्यन्त वेदना, साथ ही खांसी और सर्दी होती है। यह ज्वर ५।६ दिन तक ठहरता है; इसके बाद या तो रोगी आरोग्यलाभ करता है या मर जाता है।

इनफ्लुएञ्जा (Influenza)—यह भी यूरोपीय ज्वर है। उष्णप्रधान देशोंमें इसका उतना प्रकोप नहीं देखनेमें आता, जितना कि शीतप्रधान देशमें देखा जाता है। पहले हिन्दुस्तानमें यह ज्वर बिलकुल ही न था।

करीब २५ वर्षसे यह ज्वर भारतमें भी होने लगा है। अब प्रायः हर साल जाड़ेके अन्तमें इस ज्वरका आविर्भाव देखा जाता है। इस ज्वरमें रोगी सर्वदा सर्वशरीरमें वेदना अनुभव करता है तथा सर्दी और खांसी भी होती है। यह ज्वर लाल-बुखारकी तरह भयावह नहीं होता। रोगी प्रायः आरोग्यलाभ करता है। तीन दिन तक ज्वर विद्यमान रहता है, फिर अदृश्य हो जाता है।

ऊपर जितने प्रकारके ज्वरोंका उल्लेख किया गया है उनमेंसे अधिकांश ज्वर ही पहले हमारे देशमें नहीं थे। कोई कोई कहते हैं कि, जलवायुके परिवर्तनसे भारतवर्षमें उक्त प्रकारके रोगका आविर्भाव तथा वृद्धि हो रही है। किन्तु यह बात असङ्गत मालूम होती है। शीतप्रधानदेशमें जिस तरहकी औषधियां दी जाती हैं, उनके (हमारे उष्णप्रधानदेशमें) सेवनसे तथा शीतप्रधान देशोपयोगी खाद्यादिके खाने और परिच्छदादिके पहननेसे हम लोगोंका स्वास्थ्य क्रमशः भग्न हो जाता है और नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। बहुतसे ज्वर संक्रामक होते हैं, इसलिए वे क्रमशः देशव्यापी हो कर भारतके सर्वत्र विचरण करते हैं।

होमिओपाथिक मतानुसार ज्वरकी जिस अवस्थामें जो औषधि दी जाती है, नीचे उनका वर्णन लिखा जाता है—

१। सविराम-ज्वर।

एकोनाइट—अत्यन्त शीत, मस्तक और मुख अत्यन्त उष्ण, ज्वरके समय खांसी, मानसिक और स्नायविक विशृङ्खला, वक्षस्थलमें आक्षेप, हृत्कम्प।

एण्टिमनि—पाकस्थलीगत व्याधि, जिह्वा श्वेतमलावृत, अत्यन्त विषाद, अत्यन्त शीत, चुपकना पसीना।

एपिसमेल—क्रमशः घर्म और शुष्कताप्रकाश, वामपार्श्वमें वेदना मलत्यागके समय पेटमें अत्यन्त कष्टानुभव।

आर्सेनिक—शिरःपीड़ा, भ्रमि, जंभाई आना, शरीर उष्ण किन्तु अभ्यन्तरमें अत्यन्त शीतानुभव, ज्वरके समय अत्यन्त यन्त्रणा, अस्थिरता और मृत्युभय, ज्वरवृद्धिके समय अवसाद और अत्यन्त तृष्णा।

बेलेडोना—अत्यन्त ज्वर किन्तु ईषत् शीत, अथवा अल्प ज्वरमें अत्यन्त शीत। शरीरका कुछ अंश शीतल और उष्ण, अत्यन्त शिरःपीड़ा, मुख रक्तवर्ण, ओष्ठ शुष्क और श्वासरोध अनुभव।

ब्राइओनिया—अत्यन्त शीत और पिपासा, अत्यन्त कास, छाती, पेट और यकृत्‌में आक्षेप, मल कठिन और शुष्क, रोगी अति क्रोधपरायण।

काल कार्ब—शीत, कभी दाह, कुछ बधिरता, पैर भीगे कपड़ेसे ढके हुए जान पड़ना, दुर्बलता, भ्रमि और श्वासकृच्छ्रता, उदरामय, श्वेताभ मल, अग्निमान्द्य।

कापसिकम्—शीत और तृष्णा, फिर दाह किन्तु तृष्णाभाव, पुनः शीत, उष्ण वस्तुकी अभिलाष, ज्वरके समय तन्द्रा और पसीना, पीठ और प्रत्यङ्गमें वेदना।

कार्बो भेजिटेब्लिस—दन्तशूल और प्रत्यङ्गमें वेदनानुभव, बादमें ज्वरका प्रकाश, शीत और उस समय पिपासा, भ्रमि, मुख रक्तवर्ण, वमनेच्छा। खाते और पीते समय ऐसा मालूम पड़ना, मानो पेट फटा जा रहा है।

सेड्रन—अत्यन्त शीत, अङ्गाकर्ष, शरीरका निम्नांश मानो कटा जा रहा है, ऐसा मालूम पड़ना, दाह, घर्म, हस्त पदादिमें स्पर्शज्ञानशून्यता।

कामोमिला—अल्पशीत, अत्यन्त दाह और स्वेद, दाहके समय अत्यन्त तृष्णा, मुख रक्तवर्ण अथवा कपोलके एक तरफ लालिमा और दूसरी ओर पाण्डुवर्ण, प्रस्राव।

चायना—वमन, शिरःपीड़ा, क्षुधा, यन्त्रणा और हृत्कम्प हो कर ज्वरकी वृद्धि तथा शरीरका शीतल और नीलवर्ण होना, कानमें झनझनाहट, भ्रमि, प्लीहा और यकृत्‌में वेदना, मलिन और पाण्डु देह, सड़ी या गली चीजों जैसी वायुका निकलना।

सिना—वमन, क्षुधा, पिपासा, ज्वरवृद्धिके समय मुखमें सूजन, सर्वदा नासिकामें खुजली, रातको चञ्चलता, कनीनिका प्रसारित, जिह्वा परिष्कार।

इउपेटोपर—शीतके पहलेसे ही पिपासाका प्रारम्भ, अङ्गुलियां कठिन, सुबह ७से ८ बजे तक ज्वरके वेगकी वृद्धि, शीतभोगके समय पीठ और प्रत्यङ्गमें अत्यन्त वेदना, पित्तवमन, घर्म।

फेरम्—शीत, पिपासा, सिरदर्द, त्वक्‌गत धमनीमें

स्फीति. आँखोंके चारों ओर स्फीति, खाते हो के हो कर निकल जाना. सामान्य चिन्ता वा परिश्रमसे मुखका रक्तवर्ण हो जाना, शारीरिक वलकी अत्यन्त हानि. पैरोंमें सूजन।

जेल-सिमियम—पहले शीत, फिर घर्म, दाह, स्नायविक चाञ्चल्य और मानसिक चिन्ता, भ्रमि, प्रकाश और शब्द असह्य।

इगनेसिया—सिर्फ शीतके समय पिपासा, वाह्य उत्ताप किन्तु अन्तरमें कँपकँपी बुखारके वक्त शरीर पर पीतपर्णिका।

इपिकाक—अत्यन्त शैत्य, अल्प उत्ताप वा अत्यन्त उत्ताप, अल्प शैत्य, उबासी आ कर ज्वरवृद्धि, मुंहमें ज्यादा लार जमना, विवमिषा और वमनप्रावल्य। ज्वरमें विस्फोटके समय पाकस्थलीगत परिवर्तन।

लाइकोपोडियम—दुपहरको ४ बजे ज्वरका ह्रास. पाकस्थली और उदरगह्वरमें सर्वदा भार मालूम पड़ना. कोष्ठबद्धता, मूत्र रक्तवर्ण।

नक्सभमिका—रातको या सुबह ज्वरकी वृद्धि, अधिक समय तक शीत, मुख शीतल और नीलाभ, हाथके नाखून नील, अत्यन्त उष्णता पित्तगत उपसर्ग, मेरुदण्डके नीचेकी हड्डीमें वेदना, ज्वरके समय शिरमें दर्द, भ्रमि, मुख रक्तवर्ण, वक्षस्थलमें वेदना और वमन।

ओपियम—तन्द्रा वा अतिरिक्त निन्द्रा, नासिकाध्वनि, मुंह फाड़ कर श्वासप्रश्वास लेना, निःश्वासप्रश्वासके समय नाकका बोलना, मस्तकमें रक्ताधिक्य, मुख रक्तवर्ण और स्फीत।

पलसाटिला—दुपहर और शामको ज्वरका अधिक आक्रमण, एक साथ शीत और दाह, श्लेष्मा वा पित्तवमन, जिह्वा मलावृत, प्रातःकालमें मुखकी विरसता, पेटमें जरासी पीड़ा होने पर ज्वरका पुनः आक्रमण, आँखोंमें आँसू, अग्निमान्द्य।

कुनैन-सल्फ—एक दिन बाद एक दिन शीत, तृष्णा, कंपकंपी और ओष्ठ, नाखून नीलाभ, मुख पाण्डु, अत्यन्त दाह, पिपासा।

रसटक्स—दिनके शेषांशमें ज्वरवृद्धि, प्रत्यङ्गादिमें आक्षेप, जंभाई, शरीरका कोई अंग शीतल और कोई उष्ण, दाहके समय पीतपर्णिकाका उद्भेद, अस्थिरता, अत्यन्त काश।

सिम्बुकस—अत्यन्त स्वेद, शीतके कारण शरीरमें गुलगुली होना, शुष्ककाश, हाथ पैर बरफ जैसे ठण्डे, मुख अत्यन्त गरम।

सिपिया—शीत, चक्षु और ललाटमें भार मालूम पड़ना, हाथ पैरोंमें शून्यता, भ्रमि पिपासाका अभाव, मूत्र पांशुवर्ण और दुर्गन्धयुक्त।

सलफर शामको या रातको पहले पिपासा और अवसाद, फिर ज्वरका आक्रमण शैत्य, पिपासा और हाथ पैरोंमें दाह मालूम होना, तालूमें अत्यन्त दाह, दुर्वलता, प्रातःकालमें उदरामय।

भेराट अल्व—अत्यन्त शैत्य किन्तु अन्तरमें दाह, घर्मावस्थामें अत्यन्त पिपासा, अत्यन्त वलकी हानि, वमन, उदरामय।

एक कम्बलको गरम पानीमें भिगो कर निचोड़ लें, फिर शैत्यावस्थामें रोगीको घुटनों तक उससे ढक दे और उसे गरम पानी पिलाते रहें।

दाहकालमें रोगीके शरीरमें गरम पानी सुखाते रहनेसे लाभ होता है। रातको रोगीके शरीरमें वायु प्रवेश न कर सके, इस बातका ध्यान रखना चाहिये।

२। स्वल्प-विरामज्वर।

एकोनाइट—शीत, अत्यन्त ज्वर, तृष्णा, मुख लाल, द्रुत निश्वास, जलके सिवा सब चीजोंसे अरुचि, पित्तवमन कुछ ललाईके लिये पेशाव, यकृत्प्रदेशमें आक्षेप, चिन्ता और चञ्चलता।

व्रायोनिया—मस्तकमें चक्कर आना, दुर्वलता, वमन, कपालमें भारबोध, सिरमें दर्द, ओष्ठ शुष्क, जिह्वा श्वेत अथवा पीतमलावृत, खाद्य और पानीयमें तिक्त आस्वाद, मलबद्धता, मल शुष्क और कठिन, प्रदाहसूचक भाव।

कामोमिला—रोगी अत्यन्त क्रोधी, जिह्वा सफेद वा पीले मैलेसे आवृत, अरुचि, वमन, उदरस्फीति, मल सब्ज और पनीला, कामला रोगीकी भाँति मुखकी आकृति।

चायना—शीत, तुरन्त ही ग्रीष्म, शरीरका घर्म शीतल और नीलवर्ण, कानोंमें शब्द, भ्रमि, यकृत् और प्लीहादेशमें वेदना, आकृति म्लान, पाण्डु।

कर्नास्—शिरमें दर्द, कणीनिकामें वेदना, क्रमशः दाह, शीतलताका उद्गम, क्षुधाहानि, पेटमें गुड़गुड़ शब्द, दुर्बलता, मल कृष्णवर्ण और पित्तयुक्त।

जेल्सिमियाम्—पलकोंमें भारोपन, यकृत्में रक्ताधिक्य, भ्रमि, अन्धकार दर्शन, पैरोंमें अत्यन्त वेदना। चञ्चल तथा स्नायविक और अपस्मार रोगसे आक्रान्त स्त्रोके लिये व्यवस्थेय है।

इपिकाक—तीव्र मस्तकवेदना, जिह्वा श्वेत वा पीत मलावृत, प्रातःकालमें विकृत आस्वाद, अनवरत विवमिषा, भुक्तद्रव्य और पित्त आदि वमन, उदरामय, मल उत्सन्न वा फेनायुक्त गुड़के समान।

लेप्टाण्ड्रिया—ललाटके सम्मुख भागमें सर्वदा शिरःपीड़ा जिह्वाका मध्यभाग पीतवर्ण, पित्तवमन, यकृत्में तीव्र यातना, कमलबाई, मल कृष्ण अथवा मृत्तिकावर्ण, कम्पबोध, पीठमें दर्द।

मारक्यिउरियस्—मुख पाण्डु, पीत अथवा मृत्तिका वर्ण, दुर्गन्धयुक्त निश्वास, ओष्ठ, कपोल और मसूढ़ोंमें स्फोटक; उदर स्पर्शासहिष्णु, यकृत्में यन्त्रणा, उदरामय, मल कठिन, सफेद अथवा गन्धकवत् पीला, मूत्र घोर रक्तवर्ण।

नक्सभमिका—रोगी क्रोधी और इकले रहनेका अभिलाषी, अनन्त शिरःपीड़ा, अरुचि, तीव्र उद्गार, भुक्तद्रव्य अथवा दुर्गन्धयुक्त श्लेष्मा वमन पेटमें सङ्कोचवत् वेदना कोष्ठबद्धता, रातको ३ बजे बाद रोगीका निद्रामें हीनता और सुबहको अवस्था अनन्त मन्द।

पोडोफाइलम्—मनकी प्रसन्नताका नाश, जीभ पर दांत चुभनेके दाग, तीव्र आस्वाद और अरुचि, पित्तवमन, मूत्र कृष्णवर्ण, गात्रचर्म पीतवर्ण, यकृत्में वेदना।

पलसाटिला—अतान्त विमर्ष, प्रत्येक द्रव्यमें विरक्ति, उठनेसे ही अन्धकार दर्शन और भ्रमि, आधे शिरमें दर्द, आँखें फेरते ही ऐसा मालूम पड़ना मानो शिर फटा जा रहा है। मुखमें दुर्गन्ध, विवमिषा, अरुचि, रात्रिको भेद, मल जलयुक्त अथवा पित्तकी तरह मल।

सलफार—नितान्त स्फूर्तिहीनता, क्रन्दनेच्छा, बैठते ही भ्रमि मालूम पड़ना, तालू सर्वदा गरम, अरुचि, क्षुधाहानि, कट्‌ उद्गार, यकृत्में शूल, प्रातःकालके समय उदरामय।

ज्वरके समय रोगीको थोड़ा आहार देवें। तृष्णा और वमन निवारणके लिए शीतल जल अथवा बरफ देवें। उपशमके समय भात, अरारूचूर्ण, मछ्ठ, ताजा मक्खन आदि सेवन करावें। क्रमशः जूस, चाय, शाकसब्जी और पके फल देना चाहिये। जिस घरमें भलीभांति वायु सञ्चालित होती हो रोगीको ऐसे घरमें रखना चाहिये। ईषद् उष्ण जलसे शरीरको पोंछ देना चाहिये।

३। आन्त्रिकज्वर।

एकोनाइट—शैत्य, एकज्वर, नाड़ी वेगवती, दाह, तीव्र पिपासा, मनमें अत्यन्त चिन्ता और भय, स्नायविक उत्तेजना, शिरमें दर्द (मानो शिर फटा जा रहा है ऐसा दर्द), भ्रमि।

बापटिसिया—मुख घोर रक्तवर्ण, चैतन्यनाशक मस्तकवेदना, जिह्वा मलावृत पांशुवर्ण और शुष्क, दन्तशर्करा, निःश्वासमें दुर्गन्ध, दूषित और दुर्बलकारक उदरामय, घर्म, मूत्र और मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त।

आआनिया—मुख रक्तवर्ण और स्फोत, ओठोंका फटना, सूखना और पांशुवर्ण हो जाना, श्वेत वा पीतवर्णका जिह्वालेप, अत्यन्त मस्तकवेदना, दिनरात प्रलाप, विविध मानसिक कल्पना, अनवरत सोनेको इच्छा तथा समय समय पर चौंकना और स्वप्न अथवा अनिद्रा, अस्थिरता, मुखमें शुष्कता, वमन, दुर्बलता, पेटमें असहनीय वेदना, कोष्ठकाठिन्य, मल शुष्क और कठिन।

बेलेडोना—मुख स्फोत और रक्तवर्ण, कणीनिका प्रसारित, मस्तकमें भड़कन और नालीमें स्पन्दनशीलता, शब्द, प्रकाश और गड़बड़ीसे अरुचि, प्रलाप, काटने, लड़ने, मारने इत्यादि विषयोंकी इच्छा होना, सोते कूदना या दौड़ना, सोनेकी इच्छा, किन्तु निद्रामें असमता, जिह्वा शुष्क, रक्तवर्ण, उदरगह्वरमें स्पर्शासहिष्णुता, शय्या असह्य मालूम पड़ना।

रसटक्स—अवसाद, मुख रक्तवर्ण और स्फोत, चक्षुप्रदेशमें नीले दाग, ओष्ठ शुष्क पांशु वा कृष्णवर्ण, जिह्वा शुष्क, रक्तवर्ण और मसृण अथवा अग्रभागमें त्रिभुजाकार रक्तवर्ण, प्रलाप, श्रवणशक्तिको हीनता, शुष्क और कष्टप्रद काश, प्रत्यङ्गमें वेदना, उदरामय, अनिच्छासे मलत्याग, अवसन्नता, रात्रिको अवस्था मन्द।

आर्सेनिक - मुख पाण्डु और मृतदेहवत् शीर्ण, कपाल पर शीतल घर्म, सर्वदा ओष्ठ चूसना, ओठोंका फटना और सूख जाना, जिह्वा शुष्क नीलाभ वा कृष्ण तथा उसके बढ़ानेका असामर्थ्य। अत्यन्त पिपासा, प्रायः सर्वदा थोड़ा थोड़ा पानी पीना, तन्द्रा, प्रलाप और प्रत्यङ्गका कांपना, अत्यन्त अवसाद और यन्त्रणा, मृत्युभय और चाञ्चल्य।

एपिससेल - अज्ञानावस्था, प्रलाप, जिह्वा निकलनेकी असमर्थता, जिह्वाक्षत, मुख और जिह्वामें शुष्कता, लीलनेमें कष्ट, पेटमें वेदना, कोष्ठकाठिन्य अथवा सर्वदा दुर्गन्धयुक्त, सरल श्लैष्मिक मल, वक्ष और उदरमें प्रियङ्गुवत् उद्भेद, अत्यन्त दुर्बलता।

आर्निका - उदासीनता, जिह्वा शुष्क और मध्यस्थलमें पांशु-चिह्न मानसिक विशृङ्खला, सर्वाङ्गमें वेदना और उसके लिए पुनः पुनः करवट लेना, शय्या कठिन मालूम पड़ना, अनिच्छासे प्रस्राव।

लाइकोपोडियम—मुखश्री पीत और मृत्तिकावत्, जिह्वा शुष्क, कृष्ण और श्लेष्मावृत; प्रलाप, तन्द्रा, मुंह फाड़ कर प्रश्वास त्याग, अवसाद, गालोंका बैठ जाना; कपोलमें वर्त्तुलाकार रक्तवर्ण; मानसिक विशृङ्खला, उदरमें गुड़ गुड़ शब्द और भारबोध, इकले रहना होगा ऐसा भय, मूत्रमें रक्तवर्ण वालुकावत् पदार्थ, बांये करवटसे सोनेकी अनिच्छा, सो कर उठनेके बाद अत्यन्त प्रदाह, शामको ४ बजेसे ८ बजे तक अवस्था मन्द।

मारकिउरियस—अत्यन्त दुर्बलता, दांतोंमें विकृत आस्वाद, मसूढ़ोंमें सूजन और क्षत, उदर और यकृतमें वेदना, घर्म, मल सरल और पीताभ; वर्षाकालमें तथा रातको उपसर्गोंकी वृद्धि।

फस एसिड—अत्यन्त उदासीनता, बोलनेकी अनिच्छा, प्रलाप, पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, जलवत् उदरामय, नाड़ी दुर्बल और समय समय पर स्पन्दनहीनता।

क्याल्क कार्ब—छातीमें भड़कन, नाड़ीमें कम्पन चिन्ता और चाञ्चल्य, नैराश्य, निद्रित होने पर कुचिन्ताके कारण जागरण, शुष्क कास, तीव्र उदरामय और मानसिक कष्ट।

कार्बो भेजिटेबलिस—मुख पाण्डु और सङ्कुचित; चक्षु कोटरगत, ज्योतिहीन और दर्शनशक्तिका ह्रास; जिह्वा शुष्क, कृष्णवर्ण और समय समय पर कम्प, जीवनी शक्तिका सङ्कोच उदरामय, अवसाद, दाह, शरीरका शेषभाग शीतल और घर्माक्त।

ओपियम्—मुख स्फीत, तन्द्रा, प्रलाप, चक्षु उन्मीलित, नाड़ी दुर्बल, अथवा शीघ्रगतिसम्पन्न : मूत्रहीन मलत्याग।

फसफरस—तन्द्रा, ओष्ठ तथा मुख शुष्क और कृष्णवर्ण, मानसिक वृत्तिका क्षीणभाव, अल्प प्रलाप, शीतल वस्तुकी अभिलाषा, पीत द्रव्य वमन, दुर्बलता पेट खाली मालूम पड़ना।

कक्कि उलास—स्नायविक दुर्बलता, मानसिक विशृङ्खला, अस्पष्ट कथन, भ्रमि, विवमि ा, मस्तक और मुख गरम।

कलचिकम—मुख सङ्कुचित, उदरमें वेदना, उदरामय, जिह्वा नीलवर्ण, शीतल निःश्वास।

जेलसिमियम—स्नायविक उपसर्ग, मस्तकमें अत्यन्त भारबोध, जिह्वा पीताभ, श्वेत वा पांशु स्नायविक शैत्य, दांतोंमें दर्द, पिपासाका अभाव।

हमेमेलिस—अत्यन्त रक्तस्राव, उदरगह्वर और उरुदेशमें वेदना, रक्तस्राव।

हाइओसियामस - मुख स्फीत और रक्ताभ, ओष्ठ जलेसे, अत्यन्त प्रलाप, वाक्शक्ति और ज्ञानका नाश, अत्यन्त चाञ्चल्य, शय्यासे कूदना और अन्यत्र जानेकी चेष्टा चक्षु रक्तवर्ण और कनीनिका घूर्णायमान, अङ्ग आक्षेप।

लाकेसिस जिह्वा शुष्क, रक्तवर्ण अथवा अग्रभाग कृष्णवर्ण, ओठ फटे और रक्ताभायुक्त अचैतन्य, प्रलाप, स्पर्शासहिष्णुता, निद्राके बाद उपसर्गका आधिक्य। रोगी समझता है कि—मैं मर गया हूं और अन्त्येष्टिक्रियाका उद्योग हो रहा है।

ष्ट्रामोनियम—ज्ञानहानि, अनवरत कथन, सर्वदा उपाधानसे मस्तक उठाना, प्रलाप और अतिरिक्त जलपान, शय्यासे अन्यत्र जानेकी इच्छा, दन्तघर्षण, ओष्ठमें क्षत, जलपानमें अनिच्छा, उदरामय, कृष्णवर्ण मल; दर्शन, श्रवण और वाक्शक्तिका ह्रास, बिना इच्छाके मूत्रत्याग।

पलसाटिला—पाकस्थलीगत विशृङ्खला, उष्णता और

शैताका संयोग, जिह्वा मलावृत, मुंहमें सड़े मांस जैसी दुर्गन्ध, विवमिषा, मानसिक भावका पुनः पुनः परिवर्तन, शीतल वायु सेवनकी इच्छा उत्तापहमें वा शामको अवस्था मन्द वा विषाद।

मिउरियाटिक एसिड—रोगी बेहोश और निहायत अवसन्न, शय्या पर चाञ्चल्य, मृदु प्रलाप, बिछौने नोंचना, सोते समय नाक बोलना, लार निकलना, विना इच्छाके प्रस्राव और मलत्याग, गुह्यदेशसे रक्तस्राव।

नाइट्रिक एसिड—तरल मलत्यागेच्छा, मलत्यागके समय वेदना, अन्त्रसे रक्तस्राव और उदरमें स्पर्शासहिष्णुता, प्रस्राव दुर्गन्धयुक्त, नाड़ीकी गति अनियमित।

टार्टर एम—श्वासकृच्छ्र, उत्काश, श्लेष्मनिर्गमका अभाव, श्वासरोधकी आशङ्का और फेंफड़ा स्फीत।

जिन्क—संज्ञानाश (इस समय रोगी किसीकी पहिचान नहीं पाता), प्रलाप, दृष्टिहानि, शय्यासे उठनेकी चेष्टा, सर्वदा हाथोंका कांपना, अङ्गप्रत्यङ्गोंके अग्रभागमें शीतलता, कभी कभी नाड़ीमें स्पन्दनहीनता, मस्तिष्कको आसन्न विकृति।

रोगीके घरमें विशुद्ध वायुका बन्दोवस्त और संक्रामापह द्रव्य द्वारा दुर्गन्ध आदि नष्ट करना उचित है। शय्याक्षत पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। सर्वदा साफ-सुथरे रहने तथा घरमें ज्यादा आदमी न जा सकें इसकी विशेष व्यवस्था करनी चाहिये।

ज्वरका वेग अधिक होने पर ८०।१०० डिग्री गरम पानीसे रोगीका शरीर धो कर उसको साफ कपड़े उढ़ा देने चाहिये। यदि मस्तक उष्ण वा यन्त्रणायुक्त हो, अथवा यदि प्रलाप हो, तो गरम पानीमें डुबोये हुए कपड़ेको निचोड़ कर उससे मस्तक ढक देना चाहिये। उदरगह्वरमें यन्त्रणा होने पर उष्ण जलका स्वेद अथवा पतली पुल्टिश देनेसे फायदा होता है।

पथ्य—थोड़ा विशुद्ध दूध पिलावें। ताजा मक्खन, शस्यचूर्ण, मण्ड आदि व्यवस्थेय हैं। रोगीके बलकी रक्षाके लिए जूस दिया जा सकता है। उदर अथवा अन्त्रमें किसी तरहकी पीड़ा होने पर गुरुपाक द्रव्यकी व्यवस्था करना उचित नहीं। जिससे दन्तमलमें सञ्चित न होने पावे उसके लिए रोगीका मुंह धो देना चाहिये तथा उसकी इच्छानुसार जल पिलाना चाहिये।

४। छर्दिज्वर।

एकोनाइट—शैत्य, मस्तक और मुख अत्यन्त उष्ण, शुष्क काश, भय चिन्ता और चाञ्चल्य।

अलियम सिपा—चक्षु और नासिकासे अत्यधिक जलस्राव, चक्षुप्रदेशमें वेदना, छींक।

एम कार्ब—चक्षुप्रदेशमें उष्णता और यंत्रणा, शुष्क छर्दि, नासिकारोध रात्रिको शुष्क काश।

आर्सेनिक—अतिरिक्त छींक, छर्दिनिर्गम, नासिकादेशमें उष्णता और यंत्रणा, पिपासा, चञ्चलता और अवसाद।

वाप्टिसिया—सन्धिदेशोंमें वेदना, गलदेशमें कण्डूयन और काशरोग, मस्तकके सम्मुखभागमें पीड़ा, नासिकासे गाढ़ श्लेष्मा निर्गम।

बेलेडोना—शिरमें दर्द, शुष्ककाश, तन्द्राधिक्य किन्तु सोनेकी असमर्थता, काशके समय शिशु-रोगीका क्रन्दन।

ब्राइयोनिया—ओष्ठ शुष्क, शिरमें दर्द, कोष्ठकाठिन्य, निस्तब्धताकी अभिलाषा।

कामोमिला—कफ निकलना, एक कपोल उष्ण और लाल तथा दूसरा शीतल और मलिन; रात्रिको अतिरिक्त काश, क्रोधभाव।

हिपार सल्फार—गलदेशमें शूल, शुष्क काश, श्लेष्मा कुछ तरल।

इपिकाक्—चक्षुप्रदेशमें अत्यन्त वेदना, वक्षःस्थलमें श्लेष्माका घर-घर शब्द, विवमिषा और श्लेष्मा वमन, श्वासकष्ट।

कालिन्नो—काश कठिन और कुपकना, श्लेष्मा निर्गम, प्राणशक्तिकी हानि।

लाकेसिस—गलदेशमें स्पर्शासहिष्णुता, दुपहर और निद्राके बाद उपसर्गोंकी वृद्धि।

मारकिउरियस—प्रायः अनवरत छींक और कफ-निर्गम, रातको पसीना, गरम घरमें आराम मालूम होना।

पलसाटिला—आस्वाद और घ्राणशक्तिकी हानि, दन्त और कर्णशूल, शीतल वायुकी अभिलाषा, उष्णस्थानमें भी शीत लगना, पीतवर्ण श्लेष्मा निर्गम, विषण्णभाव।

सिपिया—नासिका स्फीत और क्षतयुक्त, शुष्क छर्दि, प्रातःकालमें काशकी अधिकता और वमन-चेष्टा, पेट खाली मालूम पड़ना।

५। सूतिका ज्वर।

एकोनाइट्—गर्भाशयमें अत्यन्त वेदना, अत्यन्त पिपासा, स्पर्शज्ञानका आधिक्य, प्रश्वास क्रास, मृत्यु भय।

आर्सेनिक—अत्यन्त यंत्रणा, चाञ्चल्य और मृत्यु भय, शीतल पानीयकी अभिलाषा ; द्विप्रहर रात्रिके बाद ज्वर वृद्धि।

बेलेडोना—आकस्मिक वेदना ; उदर-गह्वरमें अत्यन्त उष्णता, कराहना, सोते समय कूदना, मस्तकमें रक्ताधिक्य, प्रलाप, आलोक और शब्दसे अरुचि।

ब्राइयोनिया—विवमिषा, अचैतन्य, कोष्ठकाठिन्य।

कामोमिला—जरायुमें प्रसववेदनावत् यंत्रणा, अस्थिरता, मूत्र अतिरिक्त तथा ईषत् रञ्जित, मस्तकमें उष्ण घर्म।

हायोसियामस्—प्रत्यङ्ग, मुख और नेत्रच्छद, चिड़चिड़ापन, बड़बड़ाना और बिछौने नोचना, उघाड़े रहनेकी इच्छा, सम्पूर्ण उदासीनता अथवा अतिरिक्त क्रोधन भाव।

इपिकाक—वामपार्श्वसे दक्षिणपार्श्वमें वेदनाका चलना फिरना, विवमिषा और वमन, जरायुसे गाढ़ा खून निकलना, सफ्त और सजल मल।

क्रियोसोट—पेड़ूमें दाह, कराहना, गर्भाशयकी विकृत अवस्था, जरायुधौत रक्त (पीब) का निकलना, उदरगह्वरमें शीत।

लाकेसिस—जरायुमें स्पर्शासहिष्णुता, निद्राके बाद उसकी वृद्धि, गात्रचर्म कभी शीतल कभी उष्ण।

मारक्यूरियस—पाकस्थली और उदरगह्वरमें स्पर्शासहिष्णुता, जिह्वा आर्द्र, अतिशय पिपासा और अतिरिक्त घर्म।

नक्सभोमिका—कोष्ठकाठिन्य, कानमें झनझनाहट शरीरमें भारीपन।

रस टक्स—अस्थिरता, प्रत्यङ्गोंमें बलशून्यता, जिह्वा शुष्क और अग्रभाग लाल।

भिराट अल्ब—वमन, उदरामय, शरीरका प्रान्तभाग शीतल, मुख मृतवत् पाण्डु, घर्मसिक्त, प्रलाप, अत्यन्त अवसाद।

रोगिणीको तोशकके ऊपर सुलाना चाहिये। यंत्रणाके स्थानमें पतली पुल्टिस अथवा उष्ण स्वेद प्रयोग करें। प्रतिदिन २।३ बार गर्भाशय और योनिप्रदेशको कार्बोलिक एसिडसे धोना चाहिये। उसको निस्तब्ध रखें और उसके घरको विशुद्ध वायुसे परिपूर्ण रखें। प्रदाहिक अवस्थामें लघु मण्ड और बार्लि ; फिर जूस, दूध, डिम्ब, फल इत्यादिकी व्यवस्था दें।

६। लोहित ज्वर।

एकोनाइट—गात्र उष्ण, नाड़ी द्रुत, अतिशय तृष्णा, अत्यन्त भय और मानसिक चिन्ता, विवमिषा और वमन।

अलानथस्—अत्यन्त मस्तकवेदना, प्रियंगुवत् उद्भेद, अतिरिक्त वमन, तन्द्रा और अस्थिरता।

एपिसमेल—तीक्ष्ण पित्त, जिह्वा अतिशय लाल और क्षतयुक्त नासिकासे दुर्गन्धित श्लेष्मा निर्गम, गलक्षत, उदरगह्वरमें स्पर्शासहिष्णुता।

आर्सेनिक—अत्यन्त अवसाद, अत्यन्त यन्त्रणा चाञ्चल्य और मृत्यु भय अत्यधिक पिपासा, निःश्वासकालमें घर घर शब्द, दुर्गन्धित उदरामय।

बाप्टिसिया—नीलो रक्तवर्ण, रोमान्तीवत् उद्भेद, निःश्वास दुर्गन्धयुक्त, जिह्वा फटी और क्षतयुक्त, ईषत् प्रलाप, दांत और ओठोंमें शर्करा।

बेलेडोना—उद्भेद मसृण और गाढ़ रक्तवर्ण, जिह्वा श्वेतवर्ण और कण्टकयुक्त, मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य और प्रलाप, निद्राकालमें चमकित भाव और कूदना।

कालकेरिया कार्ब—गलदेश स्फोत और कठिन, मुख पाण्डु और शोथयुक्त।

काम्फर—श्वासकालमें गलेमें घर घर शब्द और गरम निःश्वास ललाटमें उष्ण घर्म; उद्भेदोंका आकस्मिक विलीनभाव।

इपिकाक—विवमिषा, पित्तवमन, पेटमें अत्यन्त पीड़ा, गात्रकण्डूयन, अनिद्रा, नैराश्य।

लाइकोपोडियम—तालूमें क्षत, मूत्रमें रक्तवर्ण पदार्थ, नासारोध, गलामें घर घर शब्द।

मिउरियेटिक एसिड—बिस्तरे पर लोटना पोटना, नासिकासे पीब निकलना, शरीर पांशु और मुख रक्तवर्ण।

ओपियम्—अतिशय तन्द्रा, वमन, श्वासकष्ट, प्रलाप, चक्षु उन्मीलन।

रसटक्स—पित्त घोर रक्तवर्ण और अतिशय कण्डूयनयुक्त, तन्द्रा, प्रलाप, जिह्वाका अग्रभाग रक्तवर्ण, अत्यन्त ज्वरवेग और अस्थिरता, सन्धिस्थानोंमें वेदना, सर्वदा स्थानपरिवर्तन।

मलफार—समस्त शरीर उज्ज्वल रक्तवर्ण, अत्यन्त कण्डूयन, चीत्कार, उल्लम्फन। (अन्य औषधोंसे आराम न हो, तब यह औषध काममें लानी चाहिये)

जिन्क—मस्तिष्कमें आसन्न आक्षेप, बालक रोगीको बेहोशी, सर्वाङ्गमें फड़कन, दांत किड़किड़ाना, निद्राकालमें चीत्कार, नाड़ी द्रुत, चक्षु स्थिर, शरीर बरफ जैसा ठण्ढा।

लोहित ज्वरके प्रभावकालमें 'बेलेडोना' व्यवहार करनेसे इसके आक्रमणसे छुटकारा मिल सकता है। नाली और संक्रामापह द्रव्यका इन्तजाम करना चाहिये।

रोगीको पृथक् घरमें रखें। घरमें विशुद्ध वायु प्रवेश कर सके और रोगीकी शय्या साफ रहे—इसका इन्तजाम करना चाहिए।

खुजली मिटनेके लिए शरीर पर नारियलका तेल (Cocoa-butter) लगावें। समान जल और ग्लिसारिन् (Glycerine) सेवन करनेसे अथवा गलेमें गरम स्वेद वा पुल्टिश प्रयोग करनेसे गलेमें सञ्चित श्लेष्मा स्थानान्तरित होता है।

पथ्य—आक्रमणके प्रकोपके समय दूध, बरफ, मांड़, सन्तरेका रस इत्यादि। विशुद्ध जल पिलावें। सुरावीर्य सम्बन्धीय उत्तेजक पदार्थ त्याग देना चाहिये। सङ्कटकालके व्यतीत होने पर जूस, पके फल आदिकी व्यवस्था की जा सकती है।

७। पीतज्वर।

एकोनाइट—शरीर शुष्क और उष्ण, अत्यन्त पिपासा, और शिरःपीड़ा, भ्रमि, चक्षु कठोरगत, पित्त और श्लेष्मावमन।

बेलेडोना—शिरःपीड़ा, अत्यन्त प्रलाप, जिह्वा लाल और मैली, पीठ और मेरुदण्ड आदि स्थानोंमें सङ्कोच और वेदना, दृष्टिशक्तिका ह्रास, दुर्बलता।

ब्राइयोनिया—चक्षु जलभाराक्रान्त रक्तवर्ण वा मलिन, बैठते ही विवमिषा और अचैतन्य, निर्जनताकी अभिलाषा, अत्यन्त उत्तेजना।

क्याम्फर—शरीर अत्यन्त शीतल, मूत्रका अभाव, अवसाद।

कान्थारिस—लगातार पेशाब करनेकी इच्छा, अन्त्रसे रक्तस्राव, बेहोशी।

आरजेण्ट नाइट—दुर्गन्धयुक्त मल और पांशु वमन।

आर्सेनिक—चक्षु कोटरगत, नासिका सूक्ष्मायत, इच्छापूर्वक वमन, पांशु और कृष्णवर्ण पदार्थ वमन, उदरमें अत्यन्त दाह, अतिशय पिपासा, शीघ्र अवसाद, अत्यन्त चञ्चलता और मृत्युभय।

कार्बो भेजि—(शेषावस्था) मुख पाण्डु, रक्तस्राव, प्रबल शिरःपीड़ा, शरीरमें भारीपन, वायुकी इच्छा, निःसृत पदार्थमें अत्यन्त दुर्गन्ध।

क्रोटलास—चक्षु, नासिका, मुख, उदर और अन्त्रसे रक्तस्राव, जिह्वा आरक्त और स्फीत, दुर्गन्ध मलयुक्त।

इपिकाक—अविराम विवमिषा, उदरामय, फेनायुक्त मल।

मारक्युरियस—अत्यन्त घर्म, स्मृतिशक्तिकी हानि, भ्रमि, पित्त और श्लेष्मा वमन, उदरामय।

नक्सभोमिका—शरीर पीतवर्ण, क्रोधनभाव, अम्ल और पित्तमय द्रव्य वमन उदरमें सङ्कोच, जिह्वा शुष्क और रक्तवर्ण।

कुनैन—ज्वर-विच्छेदका समय प्रकट होने पर व्यवस्थेय है।

टार्ट एम—विवमिषा वा वमन, अवसाद, अतिरिक्त शीतल घर्म, नाड़ी दुर्बल और द्रुत, तन्द्रा, मलत्यागेच्छा।

भेराट् आल्ब—मुख पीताभ वा सजल, शीतल घर्म, पित्त वमन, उदरामय, पिपासा और शीतल पानीयकी अभिलाषा, अत्यन्त दुर्बलता, प्रत्यङ्ग-सङ्कोच, नाड़ीका स्पन्दन प्रायः अबोध्य। पथ्यके प्रति विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। प्रथमावस्थामें थोड़ा आहार देवें। पीनेके लिए विशुद्ध जल, चाय, सन्तरेका रस, चावलका पानी देवें। क्रमशः दूध, मक्खन, जूस आदि देवें।

८। चित्रज्वर (Spotted fever)—

एकोनाइट्- शैत्य, चाञ्चल्य, पिपासा, स्कन्धमें अत्यन्त वेदना, मृत्युभय।

आर्निका- प्रत्यङ्गमें दर्द (Soreness), शरीर पर काले दाग, ग्रीवाकी पेशीमें अत्यन्त दुर्बलता।

बेलेडोना—अत्यन्त मस्तक वेदना, प्रलाप, भयङ्कर पदार्थ दर्शन, कणीनिका प्रसारित, दृष्टिभ्रम।

चायना सल्फर—अवसादके कारण चक्षु निमीलन, अत्यन्त अवसाद, मेरुदण्डमें वेदना।

सिमिसिफिउगा—मस्तकमें अत्यन्त वेदना, तालू कट कर गिरा जा रहा है ऐसा मालूम पड़ना, जिह्वा स्फीत, क्षणिक सङ्कोचन।

क्रोटलास—प्रबल शिरःपीड़ा, मुख रक्तवर्ण, प्रलाप, शरीर पर सर्वत्र लाल दाग, हृदयकी द्रुत गति, आँखोंका थोड़ा खुलना।

जैलसिमियम—मस्तकके पीछेकी ओर वेदना, मत्तता मालूम होना, अक्षिपुटका सङ्कोचन, पेशिशक्तिका पूर्ण ह्रास, नाड़ी दुर्बल, श्वासकष्ट, विवमिषा, वमन।

लाइकोपोडियम—बेहोशी, प्रलाप, चैतन्यनाशक शिरःपीड़ा, नासारन्ध्रकी वीजनकी भाँति गति, नीचेके गाल सङ्कुचित, प्रत्यङ्ग अथवा सर्व शरीरमें खींचन।

ओपियम—चैतन्य विलोप, मृदु निःश्वास, मस्तकमें रक्ताधिक्य, करोटिकाके पश्चाद्भागमें अत्यन्त भारबोध, नाड़ी अति द्रुत वा अति धीर, लोटना पोटना, अङ्गसङ्कोच, घर्मकालमें अवस्था मन्दतर।

इस ज्वरकी प्रथमावस्थामें घर्माद्रेक कराने पर लाभ हो सकता है। रोगीको जलमें सुरासार मिला कर (जब तक रोगीको पसीना न आवे तब तक) आध घण्टा अन्तर थोड़ा थोड़ा सेवन कराना चाहिये। कोई कोई उष्ण जलसे धारास्नान और कम्बलसे शरीरको ढक कर घर्मोद्रेक करानेकी व्यवस्था देते हैं। Hypodermic injections of Pilocrapine (चौथाई ग्रेन) अथवा Fl Extra Tabarandi (१०से ३० बूंद तक) का प्रयोग करने पर भी घर्माद्रेक हो सकता है।

पथ्य—प्रथमावस्थामें लघु और बलकारक द्रव्य व्यवस्थेय है। पीछे धीरे धीरे जूस, दूध, डिम्ब आदिकी व्यवस्था करें।

८। वातरोगयुक्त ज्वर।

एकोनाइट्—एकज्वर, हृत्कम्प, वेदना, मानसिक चिन्ता।

आर्णिका—प्रत्यङ्गमें अत्यन्त वेदना, दूसरेसे मार खानेका भय, शरीरका पीड़ित अंश रक्तवर्ण, स्फीत और कठिन।

आर्सेनिक—दाह, तीव्रयन्त्रणा, घर्म, शैत्य, पिपासा।

बेलेडोना—अस्थिवेदना, सन्धिस्थानमें भड़कन और दर्द, तन्द्रा, अस्थिरता, चमकित भाव।

ब्राइओनिया—अरुचि, मुख शुष्क, पिपासा, कोष्ठ कठिन और पांशु।

कानलोफाइलाम—कब्जी और अङ्गुलिग्रन्थिमें वातिक वेदना, अत्यन्त ज्वर, स्नायविक चाञ्चल्य।

कामोमिला—यन्त्रणाके कारण अत्यन्त उत्तेजित और क्रोधभाव, गण्डस्थलके एक तरफ लाल और दूसरे तरफ पाण्डु, अविरत यन्त्रणा, रात्रिको उपसर्गका प्रभाव।

केलिडोनियम्—शरीर स्फीत और प्रस्तरवत् कठिन, कोष्ठ मेषपुरीषवत्।

कलचिकम्—अग्निके पास भी शीत भाव, मूत्र अल्प और कृष्णवर्ण, घर्म दुर्गन्ध।

मारक्युरियस—अतिरिक्त घर्म, मल, उदरामय, पीड़ित अंश पांशुवर्ण।

सिमेलिया—ईषत् सञ्चालनके कारण श्वासकृच्छ्र, हृत्कम्प, अत्यन्त चिन्ता।

सल्फर—तीव्र यन्त्रणा, तालुदेश अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त अवसाद।

वातज्वरयुक्त व्यक्तिके शरीर पर फ्लानेल व्यवहार करना चाहिये। ऐसा काम न करने देना चाहिये जिससे अधिक परिश्रम और सहसा घर्मरोध हो।

ज्वरकालमें रोगीको नरम शय्या और कम्बल पर सुलाना चाहिये, रुईसे शरीर ढक रखनेसे लाभ होता है। रोगीके घरमें जिससे अच्छी तरह वायु सञ्चालित हो सके, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये।

पथ्य—अनाजका श्वेतसार, साबू, उत्तम सुपक्व फल आदि लघुपाक द्रव्य। विशुद्ध जल, लेमनेड आदि पीनेको देना चाहिये। मादकद्रव्य निषिद्ध है।

हिन्दू ज्योतिषशास्त्रके मतसे तिथि और नक्षत्र आदिमें ज्वरोत्पत्तिका फल—अश्विनी नक्षत्रमें ज्वर होनेसे एक दिन, कृत्तिकामें दो दिन, रोहिणीमें तीन दिन, मृगशिरामें पांच दिन, पुनर्वसु, पुष्या और हस्तामें सात दिन, अश्लेषामें नौ दिन, मघामें एक मास, पूर्वफल्गुनी, स्वाती और श्रवणामें दो मास, उत्तरफल्गुनी, चित्रा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा और उत्तरभाद्रपदमें एक पक्ष, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और रेवतीमें बीस दिन, अनुराधा और शतभिषामें दश दिन भोग होता है। आर्द्रा, मूला और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें ज्वर होनेसे मृत्यु होती है।

यदि अश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, मूला, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें, रवि मङ्गल और शनिवारमें, चतुर्थी, नवमी और कृष्णाचतुर्दशीमें ज्वर हो, तथा चन्द्र और तारा शुद्धि न हो, तो उसकी निश्चयसे मृत्यु होती है।

रविवारमें ज्वर होनेसे ७ दिन, सोमवारमें ८ दिन, मङ्गलवारमें १० दिन, बुधवारमें ३ दिन, बृहस्पतिवारमें १२ दिन, शुक्रवारमें ३ वा ७ दिन और शनिवारमें १४ दिन भोग होता है।

नक्षत्र अथवा वारके दोषसे यदि ज्वर हो और उसमें यदि चन्द्र और तराशुद्ध हो, तो रोगी शीघ्र आरोग्य लाभ करता है। (मुहूर्तचि०)

शीघ्र ज्वरसे निष्कृति पानेके लिए शान्ति करना आवश्यक है।

नक्षत्रदोषमें स्वर्ण, वार दोषमें धान्य और तिथिदोषमें अरवा चावल उत्सर्ग करके ब्रह्मविप्रको दान करना चाहिये।

"आरोग्यं भास्करादिच्छेत्" भास्करसे आरोग्यलाभ करेंगे, इस वचनके अनुसार सूर्यपूजा, सूर्य स्तोत्र और सूर्यकवच आदि पाठ करें। भैषज्यरत्नावलीमें नक्षत्रदोषका विषय इस प्रकार लिखा है—कृत्तिका नक्षत्रमें ज्वर होनेसे ८ दिन, रोहिणीमें ३ दिन, मृगशिरामें ५ दिन, आर्द्रामें मृत्यु, पुनर्वसु और पुष्यामें ७ दिन, अश्लेषामें ८ दिन, मघामें मृत्यु, पूर्वफल्गुनीमें २ मास, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और उत्तरफल्गुनीमें १५ दिन, हस्तामें ७ दिन, चित्रामें १५ दिन, स्वातीमें २ मास, विशाखामें २० दिन, अनुराधामें १० दिन, ज्येष्ठामें १५ दिन, मूलामें मृत्यु, पूर्वाषाढ़ामें १५ दिन, उत्तराषाढ़ामें २० दिन, श्रवणामें २ मास, धनिष्ठामें १५ दिन, शतभिषामें १० दिन, पूर्वभाद्रपदमें १८ दिन, अश्विनीमें ३ पक्ष, रेवतीमें १० दिन, अश्विनीमें १ दिन और भरणी नक्षत्रमें मृत्यु होती है। (भैषज्यर० धृत गौरीकंचुलिका)

ज्वरसे शीघ्र छुटकारा पाना हो, तो ज्वरबलि देनी चाहिये। ज्वरबलि देखो।

आजकल एलोपाथी चिकित्साके अनुसार ज्वरमें Injection दिया जाता है।

ज्वरकालकेतुरस (सं० पु०) ज्वरस्य कालकेतुरिव यः रसः। ज्वरनाशक एक औषधका नाम। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—पारद, विष, गन्धक, ताम्र, नौसादर, मिलाव, हरिताल, इन सब चीजोंको बराबर मिला करके भिजके गोंदमें घोंट कर गजपुटमें पाक कर २ रत्तीकी गोलियां बनानी चाहिये। इसका अनुपान मधु है। इस दवासे आठ तरहका बुखार जाता रहता है। महादेवने खुद इस औषधिको भवानीके लिए बतलाया था। (भैषज्यर०)।

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस (सं० पु०) ज्वर एव कुञ्जरस्तस्य पारीन्द्रः सिंह इव। ज्वरको दूर करनेवाली एक औषध। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है—मूर्छितरस २ तोला, अभ्र १ तोला, रौप्य, स्वर्णमाक्षिक, रसाञ्जन, सोमा, ताम्र, मुक्ता, मूँगा, लौह, शिलाजात, गेरू, मनःशिला, गन्धक, हेमसार (पक्का सोना और किसी किसीके मतसे तूतिया) प्रत्येकका ४ तोला, इन सबको एकत्र घोंट कर चारिणी, तुलसी, पुनर्णवा, गनियारी, जमींआँवला, घोषालता, चिरायता, पद्म, गुलेचीन, कथियारी, लताफटको, शूर्पपर्णी और गन्धभेदाल इनमेंसे प्रत्येकके रसमें तीन दिन तक घोंटना और ४ रत्तीकी गोलियां बनानी चाहिये। पानका रस इसका अनुपान है। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक और विषमज्वरको उत्कृष्ट औषध है। इससे खांसी, श्वास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और क्षयसंयुक्त ज्वर भी शीघ्र प्रशमित होता है। (भैषज्यर०)

ज्वरकुटुम्ब (सं० पु०) वे उपद्रव जो ज्वरके साथ साथ होते हैं।

ज्वरकेशरी (सं० पु०) ज्वरस्य केशरी, ६-तत्। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसको प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है-पारद, विष, सोंठ, पीपल, मरिच, गन्धक, हरीतकी, आँवला, बहेड़ा और जायफल, इन सबको समान परिमाणमें ले कर भृङ्गराजके रसमें मर्दन करें। पीछे १ गुञ्जा प्रमाण वटिका बनावें। बालकोंके लिए सरसोंके बराबर गोली बनानी चाहिये। अनुपान—पित्तज्वरमें चीनी, सन्निपात ज्वरमें पीपल और जीरा।

ज्वरघ्न (सं० पु०) ज्वरं हन्ति हन-टक्। १ गुड़ुची, गुड़ुच। २ वास्तूक, बथुआ। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। (त्रि०) ४ ज्वरनाशक।

ज्वरधूमकेतुरस (सं० पु०) ज्वरस्य धूमकेतुरिव यः रसः। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली-पारद, समुद्रफेन, हिङ्गुल और गन्धक, इन चीजोंको समान भागसे अदरकके रसमें तीन दिन घोंट कर २ रत्तीको गोलियां बनावें। (भैषज्यर०)

ज्वरनागमयूरचूर्ण (सं० क्ली०) ज्वर एवः नाग तस्य मयूर इव यत् चूर्णं। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—लौह, अभ्र, सुहागा, ताम्र, हरताल, रांग, पारद, गन्धक, सहिंजनके बीज, हर्रे, आँवला, बहेड़ा, रक्तचन्दन, अतिविषा, वच, पाठा, हलदी, दारुहल्दी, उशीर, चीताकी जड़, देवदारु, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, कालाजीरा, तालीशपत्र, वंशलोचन, कण्टकारिका फल और मूल, शठी, तेजपत्र, सोंठ, पीपल, मरिच, गुलञ्च, धन्या, कटकी, क्षेत्रपर्पटी, मोथा, बला, बेलगरी और यष्टिमधु प्रत्येकका १ भाग; कृष्णजीरा चूर्ण ४ भाग, तालजटाक्षार ४ भाग, चिरायतेका चूर्ण ४ भाग, भाँगका चूर्ण ४ भाग, इन सब चूर्णोंको एकत्र कर लेना चाहिये। इसको १ मासासे लगा कर २ मासा तक सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे नाना प्रकारका विषमज्वर, दाहज्वर, शीतज्वर, कामला, पाण्डु, प्लीहा, शोथ, भ्रम, तृष्णा, काश, शूल, यकृत् आदि रोग प्रशमित होते हैं। इसको १ मासा वा २ मासा शीतल जलके साथ सेवन करनेसे असाध्य सन्ततादि ज्वर, द्वन्द्वज ज्वर, धातुस्थज्वर, कामज और शोकजज्वर, भूताविष्टज्वर अभिचारजज्वर, दाहज्वर, शीतज्वर, चातुर्थिकज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर, प्लीहाज्वर, उदरी, कामला, पाण्डु, शोथ, भ्रम, तृष्णा, काश, शूल, क्षय, यकृत्, गुल्मशूल, आमवात और पृष्ठ, कटी, जानु और पार्श्वस्थ वेदनाका विनाश होता है। (भैषज्यर०)

ज्वरनाशन (सं० पु०) पर्पटक, क्षेतपापड़ा।

ज्वरभैरवचूर्ण (सं० क्ली०) ज्वरस्य भैरव-इव नाशकत्वात् चूर्णं। ज्वरनाशक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—सोंठ, बला, उदुम्बर, भीमकाल, दुरालभा, हर्रे, मोथा, वच, देवदारु, कण्टकारी, काकड़ासींगी, शतमूली, क्षेत्रपर्पटी, पीपलमूल, ग्वालककड़ीकी जड़, कुड़, शठी, मूर्वामूल, पीपल, हलदी, दारुहल्दी, लोध, रक्तचन्दन, घण्टापारुलि, इन्द्रजव, कुटजछाल, यष्टिमधु, चीतामूल, सहिंजनके बीज, बला, अतिविषा, कटकी, ताम्रमूली, पद्मकाष्ठ, अजमायन, शालपर्णी, मरिच, गुलञ्च, बेलगरी, बाला, पङ्कपर्पटी, तेजपत्र, गुड़त्वक्, आँवला, पिठवन, पटोलपत्र, शोधित गन्धक, पारद, लौह, अभ्र और मनःशिला इन सबका चूर्ण समभाग, उसमें समुदाय चूर्णको समष्टिसे आधा चिरायतेका चूर्ण भलीभांति मिश्रित करना चाहिये। दोषके बलाबलका विचार कर १ मासासे ४ मासा तक सेवन किया जा सकता है। यह चूर्ण सब तरहके यकृत्, प्लीहा, अन्लवृद्धि, अग्निमान्द्य, अरोचक, रक्तपित्त आदि रोगोंमें शीघ्र आराम पहुंता है। यह विषमज्वरको अति उत्कृष्ट औषध तथा पाण्डु आदि विविध रोगनाशक है। (भैषज्यर०)

ज्वरभैरवरस (सं० पु०) ज्वर भैरव इव यः रसः। ज्वरनाशक एक औषध। इसको प्रस्तुत-प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, सुहागेका फूल, विष, गन्धक, पारद और जायफल इन सबको बराबर बराबर ले कर गूमेके रसमें एक दिन घोंट कर १ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। अनुपान—पानका रस। पथ्य—मूंगको दाल और द्राक्षा। इससे सान्निपातिकज्वर आदि रोग निवारित होते हैं।

(भैषज्यर०)

ज्वरमातङ्गकेशरिरस (सं० पु०) ज्वर एव मातङ्गः तत्र केशरीव। ज्वरको आराम करनेवाली एक दवा। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—पारद, गन्धक, हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, सोंठ, पीपल, मरिच, हर्रे, यवक्षार, सज्जी, सेंधा

नमक, निम्बबीज, कुचला और चीतेकी जड़ प्रत्येकका १ मासा ; जायफल २ मासा, विष २ मासा इत्यादि। इन सबको निर्गुण्डी (सँभालू)-के रसमें भावना दे कर १॥ रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान—गरम जल। इस औषधके सेवन करनेसे सब तरहका ज्वर, आम, अजीर्ण, कामला, पाण्डु और जठररोग नष्ट होता है ; यह औषधि भेदक है। (भैषज्यर०)

ज्वरमुरारिरस (सं० पु०) ज्वरः मुर इव तस्य अरि यः रसः। ज्वरनाशक एक औषधि। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—पारद, गन्धक, विष और हिंगुल, प्रत्येकका २ तोला ; लवङ्ग १ तोला, मरिच ८ तोला, धतूरेके बीज १६ तोला (किसी किसीके मतसे १६ तोला जायफल), त्रिवृत् २ तोला, इन सबका चूर्ण करके दन्तीके क्वाथमें ७ बार भावना दे कर १ रत्तीकी गोलियां बनावें। इसके सेवन करनेसे सब तरहका ज्वर, अजीर्ण, विष्टम्भ, आमवात, काश, श्वास, यकृत, प्लीहा इत्यादि नाना प्रकारके रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यर०)

ज्वरराज—वैद्यकोक्त ज्वरकी एक औषधि। प्रस्तुत-प्रणाली-१ भाग पारद अर्द्धभाग माक्षिक (नीलवर्ण मक्षिकाकृत तीक्ष्णवर्ण मधु), २ भाग मनःशिला, ३ भाग गन्धक, ८ भाग हरिताल ५ भाग ताम्र और ३ भाग भल्लातक, सबको एकत्र करके चूर्ण बनावें। फिर वज्रीक्षीर (सिजका गोंद)-के द्वारा मजबूत मिट्टीके बरतनमें १ दिन तक उबालें। इसके बाद ठण्डा होने पर ५ रत्तीकी गोलियां बनावें। पानके साथ इसका सेवन करनेसे आठ प्रकारका ज्वर नष्ट होता है। (चिकित्सासारसंग्रह)

ज्वरबलि—ज्वररोगकी शान्तिके लिए की जानेवाली एक प्रकारकी पूजा। तण्डुलचूर्ण द्वारा पुत्तलिका बना कर उस पर हलदीका लेप दें और उसको खसखसके आसन पर स्थापित करें। उसके चारों ओर चार पीतवर्णकी ध्वजाएं भूषित कर हरिद्रारसपूर्ण चार पूटिका (पीपरके पत्तेके दोने) चारों तरफ स्थापित करें ; पीछे संकल्प-पूर्वक ज्वरका ध्यान करके श्वेत नव कपर्दक और सुगन्ध पुष्पादि द्वारा पूजा कर सन्ध्याके समय रोगीकी आरती उतार कर मन्त्र पाठ करें। मन्त्र—ओं नमो भगवते गरुड़ासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्त्यस्तुस्तुतः स्वाहा, ओं कं टं पं सं वैनतेयाय नमः, ओं ह्रीं क्षः क्षेत्रपालाय नमः, ओं ठठ भोभो ज्वर शृणु शृणु हलहल गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थकं आर्द्धमासिकं नैमित्तिकं मौहूर्तिकं फट् फट् ह्रीं फट् फट् हल हल मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ स्वाहा।

इस तरह तीन दिन पूजा करके किसी वृक्ष, श्मशान वा चतुष्पथमें विसर्जन करें। यह पूजा रहनेके मकान-के दक्षिणकी तरफ किसी विशुद्ध स्थानमें करनी चाहिये। (भैषज्यर०)

ज्वरशूलहररस (सं० पु०) ज्वरस्य शूलं वेदनां हरति हृ-अच्। ज्वरघ्न औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—रस और गन्धकको बराबर बराबर ले कर कज्जली बनावें। इस कज्जलीको एक भाण्डमें रख कर, उस पर एक ताम्रपात्र ढक दें। बादमें सन्धिस्थलको लेप कर पाक करें। शीतल होने पर चूर्ण करके यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करें। मात्रा २।३ रत्ती। जीरा और सैन्धवलवण चबा कर पानके साथ सेवन करना चाहिये। इससे चातुर्थ-कादि ज्वर नष्ट होता है। (भैषज्यर०)

चिकित्सासारसंग्रहके मतसे ८ तोला पारद और ८ तोला गन्धक एक पात्रमें वा भिन्न भिन्न पात्रमें स्थापित कर ताम्रपात्रसे ढक दें। उस पात्रमें लवण दे कर पुनः आच्छादन करें। पीछे पारद और गन्धककी कज्जली बनावें। सुबह इसका सेवन किया जाता है।

ज्वरसिंहरस सं० पु०) ज्वरे ज्वररूपगजे सिंह इव यः रसः। ज्वरनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली-पारद, गन्धक, हरिताल और भिलावा इन चार चीजोंको बराबर बराबर ले कर सिजके गोंदमें अच्छी तर घोंटना चाहिये। बादमें उस घुटी हुई औषधिको एक हंडीमें रखें और उस पर सरवा ढक कर मिट्टी लेप दें; फिर उसको चूल्हे पर रख कर दो प्रहर तक उबालना चाहिये। शीतल होने पर भृङ्गराज, गन्धदूर्वा और चीताके रसमें क्रमशः भावना देवें। अनन्तर चूर्ण बना कर यत्नपूर्वक रख दें। इस औषधिका प्रयोग ज्वरोत्पत्तिके चौथे दिनके बाद किया जाता है। (भैषज्यर०)

ज्वरहन्तृ (सं० त्रि०) ज्वरं हन्ति हन-तृच्। १ ज्वरनाशक। (स्त्री०) २ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

ज्वरा (पु०) मृत्यु, मरण, मौत।

ज्वराग्नि (सं० पु०) ज्वरं अग्निरिव । ज्वररूप अग्नि । इसका पर्याय—आधिमन्थ ।

ज्वराङ्कुश (सं० पु०) कुशकी जातिकी एक घास जिसमें सुगन्ध होती है। यह घास उत्तर-भारतके कुमायूं गढ़वालमें ले कर पेशावर तक उत्पन्न होती है। यह चारेके काममें उतनी नहीं आती। इसकी जड़में नीबू जैसी सुगन्ध पाई जाती है। ज्वराङ्कुशकी जड़ और डंठल द्वारा एक प्रकारका सुगन्धित तेल बनता है। इसका तेल शरबत आदिमें पड़ता है। ज्वरांकुशरस देखो।

ज्वराङ्कुशरस (सं० पु०) ज्वरस्य अङ्कुश इव यः रसः। ज्वरनाशक एक औषध। प्रस्तुतप्रणाली—पारा, गन्धक और विष, प्रत्येकका २ मासे, धतूरेके बीज ६ मासे, त्रिकटु-चूर्ण २४ मासे, इन सबको एकत्र घोंट कर २।२ रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान—नीबूके बीजोंकी गरी और अदरकका रस। इससे सब तरहका ज्वर नष्ट होता है।

२य प्रकार—रस १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागेका फूला २ भाग विष १ भाग, दन्तीबीज ५ भाग इनका एकत्र चूर्ण करें। अनुपान—१ मासा चीनी। औषध सेवन करनेके बाद कुछ पानी पीना चाहिये। यह भेदिज्वराङ्कुश नामसे प्रसिद्ध है। यह ज्वराङ्कुश विदोष ज्वरनाशक है।

३य प्रकार—ताम्र १ भाग और हरिताल २ भाग इनको एकत्र बन-करेलाके रसमें घोंट कर भूधरयन्त्रमें पाक करें। फिर मिजके गांदमें घोंट कर भूधरयन्त्रमें पाक करके उसकी २।२ रत्तीकी गोलियां बना लें। अनुपान—अदरकका रस। इस औषधका सेवन करनेसे ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थक और शीतसंयुक्त विषमज्वर शीघ्र प्रशमित होता है।

४र्थ प्रकार—पारद २ तोला, गन्धक २ तोला, सोंठ, सुहागा, हरिताल और विष १।१ तोला, इनको एक साथ घोंट कर भृङ्गराजके रसमें तीन दिन तक भावना दें, चौथे दिन १।१ रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान—पीपलका चूर्ण और मधु। यह विषमज्वरका नाशक है।

५म प्रकार—मरिच, सुहागा, पारद, गन्धक और विष, इनको एकत्र घोंट कर १।१ रत्तीकी गोलियां बनावें। अनुपान—पानका रस। इससे आठों प्रकारका ज्वर नष्ट होता है।

६ष्ठ प्रकार—गन्धक, रोहितमत्स्य पित्त और विष प्रत्येकका १।१ तोला; त्रिगुण हरितालके द्वारा जारित ताम्र २ तोला; इन चीजोंको एकत्र घोंटें और बिजौरा नीबूमें २१ बार भावना दे कर उसकी १।१ रत्तीकी गोलियां बना लें। अनुपान—चीनी इससे भी आठ प्रकारका ज्वर नष्ट होता है। (भैषज्यर०)

ज्वराङ्गी (सं० स्त्री०) ज्वरं अङ्गति अङ्ग-अच गौरादित्वात् ङीष्। भद्रदन्तिका, अंडीकी जातिका एक पेड़।

ज्वरातङ्क (सं० पु०) ज्वररोग।

ज्वरातीसार (सं० पु०) ज्वरयुक्तो अतीसारः। ज्वरयुक्त एक प्रकारका अतीसार रोग। यदि पैत्तिक ज्वरमें पित्त-जन्य अतीसार अथवा अतीसाररोगमें ज्वर उपस्थित हो, तो दोष और दूष्यके साम्यभावके कारण उन मिलित रोगद्वयको ज्वरातीसार कहा जा सकता है। शुद्ध ज्वर और शुद्ध अतीसारके लिए जो औषधियां बतलाई गई हैं ज्वरातीसारमें उनकी व्यवस्था न देनी चाहिये, क्योंकि परस्परवर्द्धक हैं। ज्वरघ्न औषधियोंमेंसे प्रायः सभी भेदक हैं, अतीसारकी औषधियां धारक हैं, इसलिए ज्वरघ्न औषधके सेवनसे अतीसारकी वृद्धि और अतीसारकी औषधके सेवनसे ज्वरकी वृद्धि होती है। ज्वरातीसारोंके लिए पहले लङ्घन और पाचक औषधि व्यवस्थेय है, क्योंकि बिना रसके सम्बन्धके ज्वर वा अतीसारकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। लङ्घन और पाचन द्वारा रसका परिपाक हो कर रोगके बलका ह्रास हो जाता है।

(भैषज्यरत्नावली ज्वरातीसार) ज्वर देखो।

ज्वरान्तक (सं० पु०) ज्वरस्य अन्तक इव, ६-तत्। १ नेपालनिम्ब, चिरायता। २ आरग्वध, अमलतास।

ज्वरान्तकरस (सं० पु०) ज्वरस्य अन्तक इव यः रसः। ज्वरनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—ताम्र, गन्धक, पारद, सौराष्ट्रमृत्तिका, स्वर्णमाक्षिक, लौह, हिंगुल, अभ्र, रसाञ्जन और स्वर्ण, इन सबको बराबर बराबर ले कर चूर्ण करें; फिर भूनिम्बादिके क्वाथमें ३ दिन भावना दे कर २।२ रत्तीकी गोलियां बना लें। अनुपान—मधु। इससे नाना प्रकारका ज्वर नष्ट होता है। (भैषज्यर०)

ज्वरापह (सं० स्त्री०) ज्वरं अपहन्ति नाशयति अप-

घ्न-ड । १ बिल्वपत्री, बेलपत्रो । (त्रि०) २ ज्वरनाशक ।

ज्वरारिरस (सं० पु०) ज्वरस्य अरि यः रसः । ज्वरनाशक एक औषध । इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—हिङ्गुल, गन्धक, पारद, ताम्र, सीसा, अभ्र, सुहागा, काला नमक और मनःशिला, इन सबको समभागमें ले कर घोंटना चाहिये, फिर अमलतासके रसमें १० दिन भावना देवें । सूख जाने पर १।१ रत्तीकी गोलियां बनावें । अनुपान—अदरकका रस । इससे नाना प्रकारका ज्वर नष्ट होता है ।

(भैषज्यर०)

ज्वरार्त्त (सं० त्रि०) ज्वरपीड़ित ।

ज्वराभ्र (सं० पु०) ज्वरनाशक औषधविशेष । इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—अभ्र, ताम्र, रस, गन्धक और विष प्रत्येकका २ मासा, धतूरेके बीज ४ मासे, त्रिकटु १० मासा इनको पानीमें घोंट कर १।१ रत्तीकी गोलियां बनानी चाहिये। दोषों पर विचार कर अनुपानकी व्यवस्था करनी चाहिये । इसके सेवनसे ज्वर, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अग्निमान्द्य, शोथ, काश, श्वास, तृष्णा, कम्प, दाह, शीत, वमन आदि नष्ट होते हैं। (भैषज्यर०)

ज्वराशनिरस (सं० पु०) ज्वरस्य अशनिरिव यः रसः । ज्वरनाशक एक औषधि । इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—रस, गन्धक, सेंधा नमक, विष और ताम्र प्रत्येकको समान भागसे ले कर, इनके बराबर लौह और अभ्र लेना चाहिये । सबको लौहके खलदण्डमें अमलतासके रसके साथ घोंटें ; फिर उसमें समभाग पारद और मरिचचूर्ण मिला कर २।२ रत्तीकी गोलियां बना लें । अनुपान—पानका रस । इससे धातु, विषमज्वर, यकृत्, गुल्म उदर, प्लीहा, क्षयरोग आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । (भैषज्यर०)

ज्वरित (सं० त्रि०) ज्वरोऽस्य सञ्जातः ज्वर इतच् । तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् । पा ५।२।३६ । ज्वरयुक्त, जिसे ज्वर चढ़ा हो ।

ज्वरी (सं० त्रि०) ज्वरोऽस्त्यस्य ज्वर-इनि । ज्वरयुक्त, जिसे ज्वर हो ।

ज्वल (सं० पु०) ज्वल-अच् । १ ज्वाला, दीप्ति, प्रकाश । (त्रि०) २ दीप्तिविशेष ।

ज्वलका (सं० स्त्री०) ज्वल-ण्वुल् स्त्रियां टाप् । अग्नि-शिखा, आगको लपट, लौर ।

ज्वलत् (सं० पु०) ज्वल-शतृ । दीप्तिमत् या दीप्तियुक्त, वह जिसमें प्रकाश हो । इसके पर्याय—जमत्, कल्मलीकिन्, जञ्जनाभवन, मल्मलाभवन, अर्चिस्, शोचिस, तपस्, तेजस्, हर, हृणि और शुक्र है ।

ज्वलन (सं० त्रि०) ज्वल युच् । १ दीप्तिशील, जगमगाता हुआ । (पु०) २ अग्नि । ३ चित्रकवृक्ष, चीता । ४ ज्वाला, लपट । ५ जलनेका भाव, जलन, दाह ।

ज्वलनाभ्र बौद्धोंके मतसे दशसहस्र देवपुत्रोंके नायक । त्रयस्त्रिंश स्वर्गसे बौद्धमठमें आगमन करते हो इन्होंने बोधिज्ञान प्राप्त किया था ।

बोधिसत्व-समुच्चय नामक कुलदेवताने एक दिन बौद्धोंके प्रधान देवतासे पूछा—हे भगवान् ! ज्वलनाभ्र प्रमुख देवोंमेंसे किसीने भी संसार परित्याग नहीं किया और न उनमेंसे कोई ६ प्रकारकी पारमितामें हो पार दर्शी थे ; फिर किस तरह उन्हें बोधिज्ञान प्राप्त हुआ । प्रधान देवताने उत्तर दिया—'वे सभी सुवर्ण-प्रभासकी अर्चना करते थे और इसीलिए उन्होंने बोधिज्ञान प्राप्त किया था ।"

उन्होंने और भी कहा—'सुरेश्वरप्रभाके राजत्वकालमें सर्वप्रकार चिकित्साशास्त्रविशारद जतिन्धर नामक एक व्यक्ति जीवित था । राजाके अधर्मके कारण किसी समय राज्यमें नाना प्रकारकी व्याधियां फैलने लगीं किन्तु वार्द्धक्य और अन्धताके कारण जतिन्धर उनका निराकरण नहीं कर सके । उनके पुत्र जलवाहनने पिताके चिकित्साविद्याकी शिक्षा ले कर राज्यको रोगमुक्त कर दिया ।

जलवाहनके जलाम्बर और जलगर्भ नामके दो पुत्र हुए । एकदिन वे अपने दोनों पुत्रोंके साथ किसी सरोवरके किनारेसे जा रहे थे ; देखा तो सरोवर बिल्कुल सूखा पड़ा है । उस सरोवरमें दश हजार मछलियोंका वास था । जलवाहन एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे । इसलिए सरोवरकी अधिष्ठात्री देवीने अर्द्ध प्रकाशित हो कर उस सरोवरको मछलियोंकी रक्षार्थ इनसे सहायता मांगी । जलवाहनने आस पास कहीं भी पानी नहीं देखा । सूर्यकी प्रखर किरणोंसे तालाबका अवशिष्ट जल भी सूख जायगा-ऐसा विचार कर उन्होंने सरोवरमें कुछ वृक्षोंको

डालियां और पत्ते डाल दिये। इसके बाद बहुत दूर चलने पर उन्हें जलागम नामको एक नदी दिखाई दी। उन्होंने राजा सुरेश्वरप्रभसे २० हाथी मांगे और उनके जरिये नदीसे पानी ला कर सरोवरमें डाला तथा मछलियोंको खाद्य प्रदान किया। पीछे उन्होंने घुटने भर पानीमें खड़े हो कर परमेश्वरको यथा-विहित अर्चना की और ऐसा वर मांगा—"मृत्युके समय जो आपका नाम सुने, वह त्रयस्त्रिंश स्वर्गमें जन्म ले।" नमस्तस्मै भगवते रत्नशिखिने इत्यादि मन्त्र पढ़नेके बाद उन्होंने मछलियोंको बौद्धधर्मके कुछ गूढ़मतोंकी शिक्षा दी।

मछलियां उसी रातको मर कर पूर्वोक्त स्वर्गमें चली गईं। जलवाहनप्रमुख देवपुत्रगण सबसे पहले दश सहस्र मत्स्यरूपमें उक्त सरोवरमें वास कर रहे थे।

ज्वलनाश्मन् (सं० पु०) ज्वलनः अश्मा, नित्य-कर्मधा० सूर्यकान्तमणि।

ज्वलन्त (सं० त्रि०) १ देदीप्यमान्, दीप्त, प्रकाशमान, जलता हुआ। २ अत्यन्त स्पष्ट। जैसे—ज्वलन्त दृष्टान्त आदि।

ज्वलित (सं० त्रि०) ज्वल-क्त। १ दग्ध, जला हुआ। २ उज्ज्वल, दीप्तियुक्त, चमकता हुआ।

ज्वलिनी (सं० स्त्री०) ज्वल इनि-ङीप्। मूर्वालता, मुर्रा, मरोड़फली।

ज्वार (हिं० स्त्री०) भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदिमें उपजाई जानेवाली एक प्रकारकी घास। इसके बालके दाने मोटे अनाजोंमें गिने जाते हैं। सूखी जगह पर इसकी उपज अधिक है। (जुन्हरी देखो।)

ज्वारभाटा—प्रतिदिन समुद्रके जलकी उच्चता दो बार बढ़ती और घटती रहती है, इस प्रकारके चढ़ाव उतारको ज्वारभाटा कहते हैं। संस्कृत भाषामें ज्वारको वेला कहते हैं। समुद्रके तीरवर्ती अधिवासी प्रतिदिन इसको प्रत्यक्ष देखते हैं। बहुत प्राचीनकालसे हिन्दूगण समुद्र-जलकी ह्रासवृद्धिका पर्यवेक्षण करते आये हैं, उन्होंने इसका कारण चन्द्रका ही बतलाया है और तिथिविशेषमें जलकी न्यूनाधिकता भी देखी है। बहुतसे संस्कृतग्रन्थोंमें ज्वारका उल्लेख है और चन्द्रको ही उसकी उत्पत्तिका कारण कहा है। कालिदासने अपने रघुवंशमें लिखा है—

"महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनात् गुरुप्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि।"

अर्थात्—चन्द्रके देखनेसे जिस तरह समुद्रका जल अपनी मर्यादा छोड़नेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार पुत्रके मुखको देख कर दिलीपका आनन्द शरीररूपी मर्यादामें न समाया।

पञ्चतन्त्रमें लिखा है—"पूर्णिमादिने समुद्रवेला चटति।"

और भी रामायणमें है—

"निवृत्तवेलासमये प्रसन्न इव सागरः।"

कुछ भी हो, स्थूल विषयमें और साधारण व्यवहारमें प्रयोजनीय विषयके लिए प्राचीन हिन्दुओंका यह ज्ञान पर्याप्त होने पर भी ज्वारकी उत्पत्ति, गति और क्रिया आदिका सूक्ष्म तत्त्वविषय प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें सम्यक् रूपसे आलोचित नहीं हुआ है।

पाश्चात्य विद्वानोंके मतसे भी चन्द्र ही ज्वारभाटाका प्रधान कारण है। चन्द्रके आकर्षणसे पृथिवीस्थ समुद्रका जल उफनता है और उसीसे ज्वारकी उत्पत्ति होती है। परन्तु किस तरह चन्द्रका आकर्षण कार्यकारी होता है, इस विषयमें अभी मतभेद है।

ज्वारके विषयमें सम्यक् पर्यालोचना करनेके लिए कल्पना कीजिए कि पृथिवी गोलाकार और समगभीर एकस्तर जल द्वारा आच्छादित है। अब चन्द्र इसके किसी भी स्थानके ऊपरी भाग पर विद्यमान क्यों न हो, चन्द्रमण्डल पृथिवी-पिण्ड और उसके जलभागको युगपत् आकर्षित करेगा। परन्तु चन्द्रका आकर्षण दूरत्वके वर्गानुसार ह्रास होता है। इसलिए पृथिवीका जो अंश चन्द्रकी तरफ परिवर्तित है, उस अंशका जलभाग कठिन पृथिवीपिण्डकी अपेक्षा चन्द्रमण्डलके अधिकतर निकटवर्ती होनेके कारण पृथिवीपिण्डकी अपेक्षा अधिक बलसे चन्द्रकी तरफ आकर्षित होगा। चन्द्रके आकर्षणसे जब उस स्थानका जल ऊँचा होता है, तब पार्श्ववर्ती स्थानका जल उस स्थानकी ओर धावित होगा। फिर उस स्थानके विपरीत भागका पानी यदि पृथिवीपिण्डकी अपेक्षा दूरवर्ती हो, तो कठिन पिण्ड चन्द्रकी तरफ हट आवेगा और पानी पीछेकी तरफ गिर जायगा। इस कारण एक ही समयमें एकही आकर्षणसे पृथिवीके परस्पर दो विपरीत भागोंमें ज्वार होती है। किन्तु इन दोनों ज्वारोंकी उच्चता

एकसी नहीं है। चन्द्रके निकटवर्ती पृथिवीपृष्ठकी अपेक्षा उसके विपरीत भागमें चन्द्रका आकर्षण कम कार्यकारी है, अतएव उस प्रदेशमें ज्वारका प्राबल्य भी औरोंसे थोड़ा होता है। पार्श्ववर्ती गोलाकार स्थानका पानी कुछ कुछ उन दोनों प्रान्तोंकी ओर दौड़ता है, इस कारण उस वलयाकृति स्थानमें भाटाकी उत्पत्ति होती है। नीचेके चित्रमें कल्पना करो कि, च अर्थात् चन्द्र ग घ पृथिवीके पिण्डको क ख जलमय आवरणकी ओर आकर्षित कर रहा है।

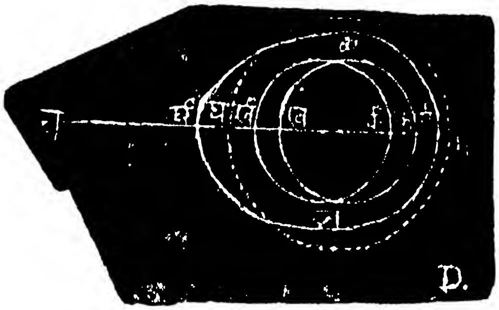

पूर्वोक्त नियमके अनुसार जलभाग क ख जैसा आकार धारण करेगा। इतनेमें कठिन पिण्ड ग घ के स्थान पर आवेगा। इसलिए एकही समयमें क और ख के स्थान पर जल पृथिवीकेन्द्रसे अधिक दूरवर्ती होगा। उन दो स्थानोंमें ज्वार तथा छ और ज-के स्थानमें भाटा होगा। दो स्थानोंमें जलकी उन्नति और उनके मध्यवर्ती वलयाकार स्थानमें जलकी अवनति होनेके कारण पृथिवी अण्डेका आकार धारण करती है। इन अण्डेके दोनों प्रान्त सर्वदा चन्द्रमण्डलके साथ समसूत्रपातसे तर-ऊपर स्थित हैं। पृथिवीकी आह्निकगतिके द्वारा विषुवरेखाके दोनों तरफका स्थान प्रायः २४ घंटा ५७ मिनटमें चन्द्रके नीचेसे लौट आता है। इसलिए उन स्थानोंमें ज्वारकी तरङ्गें १ घण्टेमें प्रायः १००० मील पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाकी ओर जाती हैं। एक एक घंटा पीछे इस ज्वार-तरङ्गका अवस्थान देख कर ज्वारका चित्र बनाया गया है। अब यदि विषुवमण्डलके किसी स्थान पर कोई द्वीप समुद्र-जलके ऊपर उछर आवे, तो वह स्थान क्रमसे क, छ ख और ज नामका स्थानसे प्रतिदिन घूम कर आवेगा। इस कारण उस द्वीपमें प्रतिदिन दो बार ज्वार और दो बार भाटा होता है; उसको आह्निकज्वार और ख चिह्नित स्थानमें आनेसे जो ज्वार होगी, उल्टी-ज्वार कह सकते हैं। एक आह्निक ज्वारके बाद फिर आह्निक ज्वार होनेमें प्रायः २४ घंटा ५७ मिनट समय लगता है और आह्निक ज्वारके बाद प्रायः १२ घंटा २८½ मिनट पीछे उल्टी-ज्वार होती है। केवल चन्द्रकी आकर्षण-शक्ति द्वारा समुद्रमें करीब ५ फुट ऊँची ज्वार हो सकती है। ऊपर कहे हुए तरीकेसे ज्वारकी गणना अति सहज मालूम पड़ने पर भी वह अत्यन्त जटिल है। सर्वदा बहुतसी आनुषङ्गिक शक्तियां चन्द्रके द्वारा अनुकूल और प्रतिकूल आचरण कर रही हैं। इनमें प्रत्येक शक्तियाँ अपनी अपनी प्रधान ज्वार-तरङ्गें उत्पन्न करती हैं। दीखनेवाला ज्वार-प्रवाह उन्हीं समस्त शक्तियोंका सङ्घातफल है। इन शक्तियोंमें सूर्यकी आकर्षण-शक्ति प्रधान है।

पृथिवीसे सूर्यका दूरत्व चन्द्रके दूरत्वसे प्रायः ४०० गुना अधिक होने पर भी सूर्यका वस्तुपरिमाण चन्द्रकी अपेक्षा प्रायः २,८४,००,००० (दो करोड़ चौरासी लाख) गुना बड़ा है। मध्याकर्षणके नियमानुसार तथा दूरत्वके वर्गानुसार आकर्षण घट जाता है। गणितकी सहायतासे प्रमाणित किया जा सकता है कि, दूरत्वके घनके अनुसार आकर्षणकी ज्वार-उत्पादकशक्ति घट जाती है। इस तरह पृथिवी पर सूर्य और चन्द्रकी ज्वार-उत्पादक-शक्तिका अनुपात ३५५ : ८०० मात्र है अर्थात् सूर्यकी शक्ति चन्द्रसे प्रायः ४/९ अंश है, सुतरां बहुत कम नहीं है। यह विराट् शक्ति बहुत समय चन्द्रकी प्रतिकूलतामें कार्यकारी है। अमावस्या और पूर्णिमाके समय यह परस्पर अनुकूल हो कर कार्य करती है अर्थात् दोनों ही पृथिवीके एक अंशमें ज्वार और एक अंशमें भाटा उत्पन्न करनेकी कोशिश करती हैं इसी लिए अमावस्या वा पूर्णिमाके दिन ज्वारकी उच्चता दूसरे दिनोंसे अधिक होती है। सप्तमी अष्टमीमें, चन्द्र और सूर्य परस्पर सम्पूर्ण प्रतिकूलतासे कार्य करते हैं, इसलिए थोड़ी ज्वार होती है। अष्टमीसे लगा कर अमावस्या वा पूर्णिमा तक ज्वार क्रमशः बढ़ती रहती है।

पहले कहा जा चुका है कि, चारों तरफसे समुद्रद्वारा परिवेष्टित पृथिवी चन्द्रके आकर्षणसे कुछ कुछ अंडेका

आकार धारण करती है। इसका एक शीर्ष सर्वदा चन्द्रकी तरफ और दूसरा उससे ठीक विपरीत दिशामें रहता है। इस अंडेका गुरुव्यास लघुव्यासको अपेक्षा प्रायः ५८ इंच अधिक है, इसलिए सूर्य शक्तिके द्वारा उत्पन्न अण्डाकारका गुरुव्यास लघुव्यासकी अपेक्षा प्रायः २५·७ इंच बृहत्तर होगा।

अमावस्या और पूर्णिमाके दिन उनका प्रायः योगफल द्वारा और अष्टमीके दिन वियोगफल द्वारा वास्तविक ज्वार उत्पन्न होती है, अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्याकी ज्वार केवल चन्द्रशक्ति द्वारा उत्पन्न ज्वारसे ⅞ गुनी तथा अष्टमीकी ज्वार चन्द्रद्वारा उत्पन्न ज्वारसे ⅓ गुनी होती है। इसलिए पूर्णिमा-ज्वार और अष्टमी ज्वारका अनुपात प्रायः १३:५ अर्थात् ढाई गुनेसे भी अधिक हुआ।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणों द्वारा मेरुप्रदेशद्वयमें ज्वार असम्भव है, क्योंकि मेरुसे लगातार जलराशि विषुवमण्डल पर ज्वारके स्थानमें धावित हो रही है और केन्द्रमें एवं बिन्दुकी अपेक्षा चन्द्रका आकर्षण अधिक कार्यकारी होनेके कारण आह्निक-ज्वार उलटी-ज्वारकी अपेक्षा प्रबल होगी। किन्तु नाना कारणोंसे वैसा देखनेमें नहीं आता। इसके कारण क्रमशः लिखे जाते हैं।

पूर्वोक्त द्वीप यदि विषुवरेखाके दोनों प्रान्तोंमें बहुत दूर तक विस्तृत हो, तो ज्वार-तरङ्ग द्वीपकूलमें प्रतिहत हो कर उत्तर और दक्षिण दिशामें मेरु-प्रदेशकी तरफ अग्रसर होती है तथा द्वीपके दोनों प्रान्तोंको घेर कर दूसरी तरफ यथाक्रमसे दक्षिण और उत्तरकी ओर विषुवरेखाकी तरफ समान गतिसे अग्रसर होता है। इस तरह विषुवरेखासे बहुदूरवर्ती सागर उपसागरादिमें भी महासागरकी ज्वार-तरङ्गें व्याप्त हो जाती हैं।

अमावस्या और पूर्णिमाके दिन चन्द्र और सूर्य मिल कर ज्वारकी उत्पत्तिमें सहायता देते हैं, इसलिए ज्वार अत्यन्त प्रबल होती है। किन्तु अष्टमीके दिन उनके परस्पर प्रतिकूल कार्य करनेसे ज्वार उतनी प्रबल नहीं होती। क्रमशः अमावस्या और पूर्णिमा जितनी निकटवर्ती होती जाती हैं, उतनाही ज्वारका परिमाण बढ़ता जाता है। और भी देखा जाता है कि, पृथिवी और चन्द्रका भ्रमणपथ सम्पूर्ण वृत्ताकार न होनेसे पृथिवीसे चन्द्र और सूर्यका दूरत्व सर्वदा समान नहीं रहता। चन्द्र और सूर्यके नीचे अर्थात् पृथिवीके निकटस्थ स्थानमें रहते समय अमावस्या वा पूर्णिमाकी जो ज्वार होती है, उसकी उच्चता औरोंसे अधिक होती है। परन्तु चन्द्र सूर्यके दूरतम स्थानमें रहनेसे ज्वार अल्प उच्च होती है।

विषुवरेखासे चन्द्र आदिका दूरत्व तथा चन्द्र-सूर्यकी अवनति होती है अर्थात् विषुवमण्डलसे दूरत्वके कारण भी ज्वारभाटामें कमी-बेशी हुआ करती है। ज्वार-तरङ्गद्वयके दो शीर्षस्थान परस्पर विपरीत दिशाओंमें रहते हैं। अब यदि किसी स्थानके अक्षान्तर और विषुवरेखासे चन्द्रका कौणिकदूरत्व समान और दोनों विषुवरेखाके एक पार्श्वस्थ हों, तो चन्द्रके किसी भी समय उस स्थानके मस्तकके ऊपर आनेसे उस स्थानमें ज्वारतरङ्गका एक शीर्ष होगा। यह पृथिवीको आह्निकगतिके द्वारा उस स्थानमें प्रायः १२ घंटे बाद चन्द्र जिस देशान्तरमें अवस्थित हो, उससे ठीक विपरीत देशान्तरमें उपस्थित होगा। किन्तु उस समय ज्वारतरङ्गका अन्य शीर्ष अन्य गोलार्द्धमें पूर्वोक्त स्थानसे उसके अक्षान्तरसे दूनी दूरी पर अवस्थित होगा। इसके लिए उलटी ज्वारकी ऊँचाई उस जगह बहुत कम होगी। इस तरह चन्द्र और वह स्थान जब विषुवरेखाके दोनों पार्श्वमें आ जायगा, तब आह्निक ज्वार बहुत कम और उलटी ज्वार बहुत ऊँची होगी। विषुवरेखाके किसी स्थानमें १२ घंटा १४ मिनट अन्तर प्रायः समानभावसे ज्वार होती है।

यूरोपीय विद्वान् अनेक तरहकी परीक्षाओं द्वारा भारत महासागर और आटलाण्टिक महासागरकी ज्वारसे भलीभांति परिचित हो गये हैं। इन दो महासागरोंमें भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न स्थानों पर सर्वोच्च ज्वारका काल पर्यवेक्षण द्वारा स्थिर होता है, ज्वार-तरङ्ग अष्ट्रेलिया-द्वीपके दक्षिणस्थ महासागरमें उत्पन्न हो कर क्रमसे पश्चिमको बङ्गोपसागर और पारस्य उपसागरकी तरफ धावित होती हैं। दाक्षिणात्यके मलबार और करमण्डल दोनों उपकूलोंमें ज्वार समानतासे अग्रसर होती रहती है। इस प्रकारकी ज्वार-तरङ्ग उत्पन्न होनेके प्रायः २०।३० घंटे बाद वह गङ्गा वा सिन्धु नदीके मुहानेमें

आ पहुंचती है। लोहितसागरके मुहानेसे उत्तमाशा अन्तरोप तक अफरीकाके समस्त पूर्व उपकूलमें प्रायः एक समयमें सिर्फ एक ही ज्वारतरङ्ग रहती है, इसलिए उन स्थानोंमें एकही समयमें ज्वार देखनेमें आतो है। उत्तमाशा अन्तरीपको पार कर ज्वारतरङ्गें आटलाण्टिक महासागरमें प्रवेश करतीं और अमेरिकाकी तरफ अग्रसर होती हैं। उत्तमाशा अन्तरीपमें उपस्थित होनेके प्रायः १३।१४ घंटे बाद ज्वारतरङ्ग इंलिश चानेलमें प्रवेश करती है। इस समय इसकी अन्य शाखा उत्तरभागमें जा कर दक्षिणकी तरफ लौटती है, इसलिए जर्मन सागरमें एक साथ दोनों दिशाओंसे दो ज्वार-तरङ्गें प्रवेश करती हैं। इस तरह ज्वार-तरङ्ग उत्पन्न होनेके प्रायः ५०।६० घंटे बाद इंग्लैण्डकी द्वीपपुञ्जमें उपस्थित होती है।

इस प्रकारसे ज्वार-प्रवाह नाना शाखाओंमें विभक्त हो कर एकही समयमें नाना देशान्तरोंकी भिन्न भिन्न गतिमें नाना दिशाओंमें अग्रसर होता है। इस कारण प्रायः एक बन्दरमें दो भिन्न दिशाओंसे दो ज्वार-प्रवाह एकही समयमें उपस्थित होते हैं। सुतरां उस जगह दोनोंके संघर्षसे प्रबल ज्वार उत्पन्न होती है। जर्मन सागरके किनारे पर स्थित बहुतसे बन्दरोंमें ऐसा होता है। फण्डी उपसागरके किनारेके आमनापोलिस बन्दरमें इस तरह ज्वार-जल १२० फुट ऊंचा होता। टङ्कुइनके बाटशम बन्दरमें एकही समयमें भारतमहासागर और चीनसागरसे एक ज्वार और एक भाटा होता है। इन दोनों प्रवाहोंके संमिश्रणके कारण वहां समुद्रका जल सर्वदा समान रहता है। इसलिए वहां ज्वार भी नहीं होती।

विस्तीर्ण समुद्रमें ज्वार-जलकी उन्नति कई एक फुटसे ज्यादा नहीं होती, और जो कुछ होती भी है वह इतने बड़े समुद्रमें मालूम नहीं पड़ती। परन्तु किसी किसी नदी और खाड़ी आदिके मुहाने पर ज्वार-जलकी उच्चता १०० फुटसे भी अधिक होती है। ब्रिष्टल चानेलका पानी १८ फुट और सोयाम्पसिका पानी ३० फुट ऊंचा होता है। चेपष्टोन नगरके पास पानी प्रायः ५० फुट ऊंचा होता है और अमेरिकाके नवस्कोसिया प्रदेशमें जलकी उच्चता प्रायः ७० होती है। यह उच्चता चन्द्र सूर्यके आकर्षणसे समुद्रकी स्फीतिके कारण नहीं होती। जिस समय ज्वार-तरङ्ग वेगसे प्रवाहित होती है, उस समय उपकूल द्वारा प्रतिहत होने पर पानी उछलने लगता है और पीछेकी तरङ्गोंके वेगसे और भी ऊंची हो कर बड़ी तेजीसे नदीकी तरफ धावित होती है। विस्तीर्ण ज्वार प्रवाह प्रबलवेगसे आते आते यदि क्रमशः कम चौड़े नदीके मुहाने वा खाड़ीमें प्रवेश करे, तो वह रुक जाता है और पानी ऊंचा हो जाता है। आमेजन नदीका पानी प्रायः १२० फुट ऊंचा हो जाता है।

ज्वारका समय साधारणतः निर्दिष्ट होने पर भी वह सर्वदा ठीक नहीं रहता। अकसर करके आह्निकज्वार २४ घंटा ५७ मिनट बाद होती है। किन्तु अमावस्याके दिन सूर्य यदि याम्योत्तररेखाको (Meridian) चन्द्रके पहले ही पार कर जाय तो निर्दिष्ट समयसे पहले ही ज्वार आती है और यदि पीछे पार करे, तो निर्दिष्ट समयसे पीछे आती है। पूर्णिमाके दिन भी सूर्य यदि विपरीत दिशाके देशान्तरका चन्द्रसे पहले पार कर जाय, तो ज्वार शीघ्र होती है और पीछे पार होनेसे निर्दिष्ट समयसे देरमें होती है।

अकसोर करके समुद्रकूलमें आह्निक-ज्वारके १२ घंटा २८ मिनट बाद फिर ज्वार होती है। सर्वोच्च ज्वार-जलका प्रायः ६ घंटा २४ मिनट बाद खूब ज्यादा भाटा होता है। दो भाटाका भी मध्यवर्त्ती काल १२ घंटा ५७ मिनट है। किन्तु नदीके ऊपरकी तरफ भाटाका समय औरोंकी अपेक्षा थोड़ा होता है, अर्थात् उन स्थलोंका पानी जितनी शीघ्रतासे ऊँचा हो कर ज्वार उत्पन्न करता है, उससे कहीं अधिक समय उसके धीरे धीरे घटनेमें लगता है।

इसीलिए बहुतसी नदियोंमें ज्वारका जल सहसा प्रवेश करता है और प्राचीरके समान ऊँचा हो कर तेजीसे स्रोतके प्रतिकूल धावित होता है। पूर्ववर्ती तरङ्गें आगे बढ़ने भी नहीं पातीं, उससे पहले ही पीछेकी तरङ्गें उनके ऊपरसे जा कर पड़ती हैं और ऊँची हो कर तट पर पछाड़ खाती हैं। इसको बाढ़ (वा बाढ़ आना) कहते हैं।

आमेजन नदीकी वन्या (बाढ़) इस तरह प्रायः

१२।१५ फुट ऊँचो हो कर बड़ो तेजोसे धावित होतो है। इस समय नदोके किनारे नौका आदिके रहने पर टूट जातो हैं, इसलिए मल्लाह उन्हें बोचमें ले जाते हैं।

नदो वा खाड़ो आदिका मुहाना पूर्व दिशामें न हो कर यदि पश्चिम वा अन्य किसी दिशामें हो, तो भी उसमें समान ज्वार उत्पन्न नहीं होतो। कहना फिजूल है कि, इस प्रकारको पश्चिमवाहिनो समुद्रमें मिलनेवालो नदियोंमें ज्वारके समय पश्चिमसे पूर्व अर्थात् ठीक विपरीत दिशामें ज्वार हो कर प्रवाहित होतो है।

किसी स्थानमें ज्वारप्रवाह चलते चलते पानो थम जाता है और उसके बाद हो फिर भाटासे स्रोतका पानो घटता रहता है। क्रमसे पानो फिरसे थम जाता है और फिर वहां ज्वार होने लगतो है। ये दो स्रोतहीन समय हो यथाक्रमसे उस स्थानके ज्वारभाटाको चरम उन्नति और अवनति हैं। समुद्रतटके बन्दरोंके लिए यह बात सत्य होने पर भी नदीके मुहानेके लिए प्रयुज्य नहीं है। इस स्थानमें जलराशिको चरम उन्नतिके बाद भी बहुत देर तक पानो नदीके मुंहमें प्रवेश करता है।

उपकूलसे दूरवर्ती समुद्रमें ज्वार होने पर उसकी जांच नहीं होतो। भूमध्यसागरमें सबसे ऊँचो ज्वारके समय भी पानो २ इंच मात्र ऊँचा होता है। इसका कारण ज्वार समझानेके लिए पृथिवीको जो अण्डाकृति कल्पना की गई है भूमध्यसागर उसका एक क्षुद्रांशमात्र है। सुतरां समपरिमाण एक सम्पूर्ण वर्तुलके अंशसे अधिक भिन्न नहीं है।

समुद्रको गभीरता और आकारके ऊपर तथा द्वीप, महाद्वीपादिके व्यवधानके कारण ज्वारमें बहुत कुछ वैषम्य देखनेमें आता है।

इंगलैण्डको नाविकपञ्जिकामें यूरोपके प्रायः सब बन्दरोंके ज्वारभाटाका समय और उच्चताका विषय लिखा हुआ है। नाविकोंके लिए इसका जानना बहुत जरूरी है। पोताश्रय (जेटी) आदि बनानेवालोंको भी जलको चरम उन्नति और चरम अवनति जानना जरूरी है। बहुतसो नदियोंके मुहानेमें रेतके टापू रहते हैं, ज्वारके समयको छोड़ कर अन्य समयमें वहांसे जहाज आदि नहीं जा सकते हैं। इसलिए ऐसी नदियोंमें जानेके लिए ज्वारका ज्ञान होना आवश्यक है। नदोके स्रोतको तरफ और प्रतिकूलमें जानेके लिए ज्वार बहुत सहायता पहुंचातो है। चन्द्र और सूर्यके आकर्षणके सिवा और भी अनेक कारण ज्वारके साथ संसृष्ट हैं। प्रत्यक्षमें जो ज्वार उत्पन्न होती हैं, वह प्रधानतः निम्नलिखित कारण-समूहके संघातसे हुआ करती हैं—

१। चन्द्र और सूर्यकी आह्निक ज्वार-तरङ्ग (Diurnal tide)

२। चन्द्र और सूर्यको उलटो ज्वार-तरङ्ग (Semi diurnal tide)

३। चन्द्रके पाक्षिक और सूर्यके षाण्मासिक अयन परिवर्तनजन्य ज्वार तरङ्ग (Semi-menstrual and semi annual)

इनके साथ और भी कुछ प्राकृतिक परिवर्तनके कारण ज्वारमें कमो-वेशो होतो है। यथा—

४। वायुराशिको दाबमें समय समय कमोवेशो होनेके कारण सागरजलको स्फोति और अवनति।

५। वायुको गतिका सहसा परिवर्तन।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे ज्वारके विषयमें थोड़ा बहुत ज्ञान हो सकता है। यह ज्वार-प्रवाह एक समयमें पृथिवीमें बहुत दूर तक व्याप्त होता है। इसके प्रभावसे गभोर समुद्र भी ऊपरसे नोचे तक आलोड़ित होता है। किन्तु बहुत जोर अंधड़के समय भी समुद्रका जल प्रचण्ड तरङ्गोंसे भरा हुआ और छिन्नविच्छिन्न होने पर भी कुछ फुट नोचे स्थिर रहता है।

चन्द्र हो ज्वारका प्रधान कारण है, यह पहले हो कहा जा चुका है। चन्द्र और पृथिवो दोनों परस्परके दृढ़ आकर्षणसे बद्ध हो कर एक साधारण भारकेन्द्रके चारों तरफ फिरते हुए सूर्यको प्रदक्षिणा देते हैं। समुद्रका पानी सर्वदा चन्द्रमाके नीचे और उसके ठीक विपरीत भागमें ऊँचा होता रहता है। इस प्रकार दो ज्वार-तरङ्गें सर्वदा चन्द्रके साथ समसूत्रपातसे स्थित हैं। पृथिवी आह्निक गतिके द्वारा उन ज्वारतरङ्गोंको भेद कर भ्रमण करती है। इस अविश्रान्त घर्षणके द्वारा पृथिवीकी घूर्णनशक्ति कुछ कुछ खर्च होती रहती है और उससे ताप उत्पन्न होती है। इस घर्षणके द्वारा प्रतिहित

हो कर पृथिवीकी आह्निकगति क्रमसे ह्रास होती है, इसलिए दिन क्रमशः बढ़ता है। जितने दिनों तक पृथिवी एक चान्द्रमासमें भी थोड़े समयमें अपने मेरुदण्ड पर एकबार आवर्त्तन करेगी, उतने दिनों तक इसी तरह पृथिवीका आवर्त्तनकाल ह्रास होता रहेगा।

इससे अनुमान होता है कि, किसी समयमें पृथिवीका एक दिन एक एक चान्द्रमासके समान होगा। उस समय पृथिवी और चन्द्र एक दूसरेकी ओर एक पृष्ठको अनवरत दिखला कर इठलाते वह कन्दुकद्वयकी भाँति परिवर्त्तन करते रहते हैं। फिर समुद्रजल पृथिवीके दो स्थानों पर ऊँचा हो कर स्थिर रहेगा, इसलिए ज्वार-भाटा भी न होगा। किन्तु उस समयके आनेमें अभी लाखों वर्षकी देरी है। इस विषयसे और एक प्रश्नका निराकरण होता है।

चन्द्रका एक पृष्ठ ही सर्वदा पृथिवीकी तरफ दीखता रहता है। इसका कारण बतलानेके लिए बहुतोंने पूर्ववत् अनुमान किया है। चन्द्रमा जिस समय सम्पूर्ण वा अन्ततः ऊपरी भाग पर द्रवावस्थामें था, तब पृथिवीके आकर्षणसे उसमें निःसन्देह प्रबल ज्वार उत्पन्न होती थी। इस प्रकाण्ड ज्वारके भीषण घर्षणसे चन्द्रको आवर्त्तनशक्ति ह्रास होती हुई इतनी घट गई है कि, अब एक चान्द्रमासमें एक बार आवर्त्तन होती है।

ज्वाल (सं० पु०-स्त्री०) ज्वल-ण। १ अग्निशिखा, लौ, लपट, आँच। (त्रि०) २ दीप्तियुक्त, जिसमें प्रकाश हो, चमकता हुआ। (स्त्री०) ३ दग्धान्न, रसोई। (पु०) भावे घञ्। ४ दीप्ति, प्रकाश।

ज्वालखरगद (सं० पु०) ज्वालखरनाम यो गदः। जालगर्द्दभ नामक एक प्रकारका क्षुद्ररोग। क्षुद्ररोग देखो।

ज्वालमाली (सं० पु०) सूर्य।

ज्वाला (सं० स्त्री०) ज्वाल-टाप्। १ दग्धान्न, रसोई। २ अग्निशिखा, लपट। ३ स्वनामख्याता ऋक्षकी पत्नी।

"ऋक्षः खलु तक्षकदुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम।"

(भारत १।९५।२५)

ऋक्षने तक्षककी लड़की ज्वालासे विवाह किया था, इसके गर्भसे मतिनार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ४ जलन, गरमी, ताप।

ज्वालाजिह्व (सं० पु०) ज्वाला शिखेव जिह्वा यस्य, बहुव्री०। १ अग्नि। २ चित्रकवृक्षभेद, एक प्रकारका चीता।

ज्वालादेवी (सं० स्त्री०) शारदापीठमें स्थित एक देवी। ये काँगड़े जिलेके अन्तर्गत देरा तहसीलमें विद्यमान हैं। तन्त्रमें लिखा है कि जब सतीके शवको ले कर शिवजी घूम रहे थे तब यहां पर सतीकी जीभ गिर पड़ी थी। यहांकी देवीका नाम अम्बिका और भैरवका नाम उन्मत्त है। यहां पहाड़के एक छेदसे भूगर्भस्थ अग्निके कारण एक प्रकारकी दीपकके समान जलानेवाली भाप निकला करती है। इसीको देवीका ज्वलन्त मुख कहते हैं।

ज्वालामालिनी (सं० स्त्री०) ज्वालानां माला अस्त्यस्य इनि ङीप्। देवीविशेष, तन्त्रके अनुसार एक देवीका नाम। इनका पूजादि विवरण तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है। "ओं नमः भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते हूं फट् स्वाहा" इस मन्त्रसे अङ्गन्यास करना पड़ता है। "ओं नमः हृदयं प्रोक्तं भगवतीति शिरः स्मृतं। ज्वालामालिनी च शिखा गृध्रगणपरिवृते। ततः वर्म्मस्वाहास्त्रमित्युक्तं जातियुक्तं न्यसेत् तनौ।" इस मन्त्र द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिए। ओं नमः हृदयाय नमः इत्यादि मन्त्र २३ दिन तक आठ हजार जप करनेसे जो विषय साधन किया जाता वह अवश्य सिद्ध हो जाता है और इस मन्त्रका स्मरण रखनेसे शत्रुका नाश होता है।

ज्वालामुखी (सं० स्त्री०) ज्वलेव मुखं प्रधानं यस्य, बहुव्री०। पीठभेद। यहांके भैरवका नाम उन्मत्त और भैरवीका नाम अम्बिका है। पीठ देखो।

पञ्जाब प्रदेशमें काङ्गड़ा जिलेके अन्तर्गत देरा तहसीलका एक प्राचीन नगर और हिन्दुतीर्थ। यह अक्षा० ३१° ५२´ उ० और देशा० ७६° २०´ पू०के मध्य नादौनसे १० मील उत्तर-पश्चिममें काङ्गड़ासे नादौन जानेके रास्ते पर विपाशा नदीके उत्तर सीमावर्ती चाङ्गा नामक दुरारोह पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है। पहले यह नगर विशेष समृद्धिशाली था। अभी भी इसकी पूर्व कीर्त्तिका ध्वंसावशेष देखा जाता है। तन्त्रादिके मतसे यह एक महापीठ है। सतीकी देह विष्णुसे छिन्न होने पर इसी स्थान पर सतीकी जिह्वा गिरी थी।

पर्वतके एक स्थानसे पत्थर छेद कर सोता और एक प्रकारकी दाह्य वाष्प हमेशा निकलती रहती है। दीपके संयोगसे वाष्प जलने लगती है। इस स्थानकी देवीका ज्वलन्तमुख कहते हैं; इसी कारण इस स्थानका नाम ज्वालामुखी पड़ा है। सोतेके ऊपर एक मन्दिर बनाया गया है। मन्दिरका विस्तार २० हाथ है और इसके बीचमें एक हौज़से जल और कुछ कुछ गरम वाष्प निकलती है। मन्दिरके याजकगण छतके संयोगसे बाष्पको अधिक देर तक प्रज्वलित रखते हैं। रणजित् सिंहने मन्दिरका अभ्यन्तर भाग सोनेसे जड़ दिया है। प्रतिदिन बहुतसे यात्री इस तीर्थमें आते हैं। आश्विन मासमें यहां पर्व होता है, जिसके उपलक्षमें बहुतसे यात्रियोंका समागम होता है।

प्रवाद है, कि पूर्व समयमें एकदिन देवीने दक्षिण-देशके एक ब्राह्मणकुमारको स्वप्नमें दर्शन दिया और उत्तर देशमें आ कर इस स्थानको बाहर निकालनेका आदेश किया। उन्हींके कथनानुसार ब्राह्मणकुमारने इस स्थानको बाहर कर वहां भगवतीकी पूजा की और एक मन्दिर निर्माण किया। वर्त्तमान मन्दिर पर्वतसे निकले हुए प्रस्रवणके ऊपर निर्मित है। इसकी चूड़ा और गुम्बज स्वर्णमण्डित है। खड्गसिंहसे प्रदत्त चाँदीके किवाड़ मन्दिरमें सबसे शिल्पनैपुण्यके परिचायक हैं। लार्ड हार्डिञ्ज इस किवाड़को देख कर इतना प्रसन्न हुए थे, कि उन्होंने इसका एक आदर्श बनवाया था। मन्दिरमें एकभी देवमूर्त्ति नहीं है।

मन्दिरका अभ्यन्तर छोड़ कर और भी कई स्थानोंमें जल और कुछ कुछ गरम वाष्प निकलती है। किसी किसीके मतसे यह अग्नि जलन्धर नामक दैत्यके मुखसे निकलती है। कहते हैं, कि महादेवने उस दुर्दान्त दैत्यको परास्त कर उसे एक पर्वतसे दबा रखा था। उस दैत्यके मुखसे आज भी अग्नि बाहर निकलती है। जालन्धर देखो। जो कुछ हो, वर्त्तमान मन्दिर भगवती और इसका मध्यस्थ कुण्ड देवीका उल्कामयी मुख कह कर सर्वत्र विख्यात है।

देवीके मन्दिरके चारों ओर बहुतसे छोटे देवालय, धर्मशाला, पान्थनिवास और पतियालाराज-निर्मित एक सराय है। दरिद्र तीर्थयात्री उक्त स्थानसे भोजनादि पाते हैं। वहां बहुतसे ब्राह्मण, संन्यासी, अतिथि, तीर्थयात्री और गाय आदि वास करते हैं। नगरकी अवस्था उतना परिष्कृत नहीं है, किन्तु इसका बाजार बहुत बड़ा है। वहां अनेक देवमूर्त्ति, जपमाला आदि उपासनाकी सामग्री देखी जाती हैं।

हिमालय पर्वत तथा इसके आसपासके समतल क्षेत्रोंका उत्पन्न द्रव्य इस नगरके उत्पन्न द्रव्यसे बदला जाता है। कुलु नामक स्थानसे अफीमकी रफतनी अधिक होती है। नगरमें छह जगह छह गरम सोते बहते हैं। इनके जलमें लवण और पटासियम आइओडाइड मिश्रित है, इसी कारण यहांका जल पीनेसे अनेक तरहके रोग जाते रहते हैं। इस नगरमें एक थाना, डाकघर और विद्यालय है। लोकसंख्या प्राय: १०२१ है।

ज्वालामुखीका प्रस्रवण और उष्णवाष्प कबसे निकली है, इसका निर्णय करना कठिन है। सम्भवत: ये दोनों ईसवी शताब्दीके बहुत पहले भी विद्यमान थे। चीनपरि-व्राजक युएनचुयाङ्गने भारतवर्षमें आ कर पञ्जाब प्रदेशके एक ही पर्वतसे शीतल और उष्ण प्रस्रवणको कथा उल्लेख की है। शायद वही उष्णप्रस्रवण ज्वालामुखीका अग्निकुण्ड होगा। हिन्दुओंमें प्रवाद है, कि दिल्लीश्वर फिरोजशाह तुगलकने ज्वालामुखी देवीका दर्शन और उनकी पूजा कर काङ्गड़ा देश जीता था। पर मुसलमान लोग इसे स्वीकार नहीं करते हैं। मालूम पड़ता है, कि फिरोजशाह बहुत कौतूहलवश ज्वालामुखीके इस आश्चर्य व्यापारको देखने आये थे।

ज्वालावक्त्र (सं० पु०) ज्वालेव वक्त्रमस्य, बहुव्री०। शिव, महादेव।

ज्वालाहलदी (हिं० स्त्री०) रंगनेकी एक हल्दी।

ज्वालिन् (सं० पु०) ज्वाल-णिनि। १ शिव, महादेव। २ दीप्ति, तेज, चमक। (त्रि०) ३ शिखायुक्त, लपट, आँच।

ज्वालेश्वर (सं० पु०) मत्स्यपुराणोक्त तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम जिसका उल्लेख मत्स्यपुराणमें किया गया है।

झ

झ—संस्कृत और हिन्दी व्यञ्जनवर्णका नवमवर्ण, चवर्गका चतुर्थ अक्षर। इनका उच्चारणकाल अर्द्धमात्रा परिमित समय और उच्चारणस्थान तालू है। उच्चारण करते समय आभ्यन्तरिक प्रयत्नमें जिह्वाके अग्रभाग द्वारा तालू स्पर्श होता है। इसके वाह्य प्रयत्न संवार, नाद और घोष हैं। यह महाप्राण वर्णोंमें परिगणित है। मातृकान्यासकालमें वामकराङ्गुलि मूलमें इसका न्यास किया जाता है। कलापके मतसे इसकी घोषवत् संज्ञा है। यह कुण्डली, मोक्षरूपिणी, विद्युल्लताकी भाँति रक्ताकार, उज्ज्वल तेजयुक्त, सर्वदा सत्व, रजः और तमः इन तीन गुणोंसे युक्त, पञ्चदेवमय, पञ्चप्राणमय, त्रिविन्दु और त्रिशक्तिसंयुक्त है। (कामधेनुतन्त्र)

इसका ध्यान—

"ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
सन्तप्तहेमवर्णाभां रक्ताम्बरविभूषिताम्॥
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गी रक्तमाल्यविभूषिताम्।
चतुर्दशभुजां देवीं रक्तहारोज्ज्वलां पराम्॥
ध्यात्वा ब्रह्मस्वरूपां तां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"

(वर्णोद्धारतन्त्र)

वर्णाभिधानतन्त्रके मतसे इसके वाचक शब्द—झङ्कार, गुह, मार्गी, झर्झर, वायु, सस्वन, अजेश, द्राविणी, नाद, पाशी, जिह्वा, जल, स्थिति, विराजेन्द्र धनुर्हस्त, कर्कश, नादज, कुण्ड, दीर्घबाहु, रस, रूप, आकम्पित, सुचञ्चल, दुर्मुख, नष्ट, आत्मावान्, विकटा, कुचमण्डल, कलहंसप्रिया, वामा, रामाङ्गुल, सुपर्वक, दक्षहास, अट्टहास, पुण्यात्मा और व्यञ्जनस्वर।

मात्रावृत्तमें इसके प्रथम विन्यासमें भय और मरण होता है। (वृत्तरत्ना॰ टी॰)

झ (सं॰ पु॰) झटति झट-ड। अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१। १ झञ्झावात, वर्षा मिली हुई तेज आँधी। २ नष्ट, बरबाद। ३ जलवर्षण, जलका गिरना। ४ झिण्टीश, एक प्रकारका शब्द। ५ देवगुरु, वृहस्पति। ६ ध्वनि, गुंजार शब्द। ७ उग्रवात, तीव्र वायु, तेज हवा। ८ दैत्यराज।

झउआ (हिं॰ पु॰) टोकरा, खाँचा।

झं (हिं॰ पु॰) १ धातुके खंडोंके परस्पर टकरानेसे निकला हुआ शब्द। २ हथियारोंका शब्द।

झंकना (हिं॰ क्रि॰) झीखना देखो।

झंकाड़ (हिं॰ पु॰) झंखाड़ देखो।

झंकारना (हिं॰ क्रि॰) झनझन शब्द उत्पन्न होना।

झंखना (हिं॰ क्रि॰) झीखना, पश्चात्ताप करना, गम खाना।

झंखाड़ (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका घना और काँटेदार पौधा। २ काँटेदार पौधोंका समूह। ३ निष्पत्रवृक्ष, वह पेड़ जिसके पत्ते झड़ गये हों। ४ बहुतसी खराब चीजका ढेर।

झंगरा (हिं॰ पु॰) बाँसका बना हुआ जालदार गोल झाँपा, बोरा।

झंगा (हिं॰ पु॰) झगा देखो।

झंगुआ (हिं॰ पु॰) कुहनीकी ओरसे तीसरी चूड़ी जो मठिया नामक गहनेमें लगी रहती है।

झंझट (हिं॰ स्त्री॰) प्रपंच, व्यर्थका झगड़ा, टंटा, बखेड़ा।

झंझनाना (हिं॰ क्रि॰) झंकारना, झनझन शब्द करना।

झंझर (हिं॰ पु॰) झंझरी देखो।

झंझरा (हिं० पु०) १ मिट्टीका जालीदार ढकना जो गरम दूधके बरतन पर रक्खा जाता है। (वि०) २ झीना, जिसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद हों।

झंझरी (हिं० स्त्री०) १ जाली, वह जिसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद हों। २ जालीदार खिड़की जो दीवारोंमें बनी हुई रहती है। ३ दम चूल्हेकी जाली या झरना जिसके छेदोंमेंसे जले हुए कोयलेकी राख नीचे गिरती है। ४ खिड़कियां या बरामदोंमें लगानेकी लोहे आदिकी कोई जालीदार चादर। ५ वह छिलनी जिससे आटा छाना जाता है। ६ आग उठानेका झरना। ७ दुपट्टे या धोती आदिके किनारेमें बनाया हुआ छोटा जाल जो सिर्फ सुन्दरता या शोभा बढ़ानेके लिये दिया जाता है।

झंझरीदार (हिं० वि०) जालीदार, जिसमें जाली हो।

झंझार (हिं० पु०) अग्निशिखा, आगकी लपट।

झंझी (हिं० स्त्री०) १ फूटी कौड़ी। २ दलालीका धन।

झंझोड़ना (हिं० क्रि०) १ झकझोरना, किसी चीजको तोड़ने या नष्ट करनेकी इच्छासे हिलाना। २ किसी जानवरका अपनेसे छोटे जानवरको मार डालनेके लिये दाँतोंसे पकड़ कर खूब झटका देना।

झंडा (हिं० पु०) १ कपड़ेका टुकड़ा जो तिकोने या चौकोरमें कटा रहता है। इसका सिरा लकड़ी आदिके डंडेमें लगा कर फहराया जाता है। इसका व्यवहार चिह्न प्रगट, संकेत करने, उत्सव आदि सूचित करने या किसी दूसरे उपलक्षमें किया जाता है। कपड़ेका रंग भिन्न भिन्न तरहका होता है। इस पर अनेक प्रकारकी रेखाएं, चिह्न आदि अंकित होते हैं।

विशेष ध्वज शब्दमें देखो।

झंडी (हिं० स्त्री०) संकेत आदि करनेके लिये छोटा झण्डा।

झण्डीदार (हिं० वि०) झण्डीवाला, जिसमें झण्डी लगी हो।

झंडूला (हिं० वि०) १ जिसका मुण्डन-संस्कार न हुआ हो, जिसके सिर पर गर्भके बाल हों। २ मुण्डन-संस्कारसे पहलेका। ३ सघन, जिसमें बहुतसी पत्तियां हों। (पु०) ४ वह लड़का जिसका मुण्डन-संस्कार न हुआ हो। ५ मुण्डन-संस्कारके पहलेका बाल। ६ सघन वृक्ष, घना पत्तियोंवाला वृक्ष।

झंपना (हिं० क्रि०) १ ढाँकना, छिपना। २ कूदना, उछलना। ३ आक्रमण करना, टूट पड़ना। ४ लज्जित होना, झेंपना।

झँपड़िया (हिं० स्त्री०) वह कपड़ा जिससे पालकी ढांकी जाती है, ओहार।

झँपान (हिं० पु०) दो लम्बे बांस बंधे हुए एक प्रकारकी खटोली। इन्हीं बांसोंको चार आदमी अपने कन्धे पर रख कर सवारी ले चलते हैं, झप्पान।

झंपोला (हिं० पु०) छाबड़ा, छोटा झांपा।

झंवराना (हिं० क्रि०) १ कुछ काला पड़ना। २ कुम्हलाना, फीका पड़ना।

झंवाना (हिं० क्रि०) १ कुछ काला पड़ जाना। २ अग्निका मन्द हो जाना। ३ न्यून होना, घट जाना। ४ कुम्हलाना, मुरझाना। ५ झांवेसे रगड़ा जाना।

झक (हिं० स्त्री०) १ धुन, सनक, लहर, मौज। २ सनक, काम करनेकी धुन। ३ (वि०) चमकीला, साफ।

झकझक (हिं० स्त्री०) व्यर्थकी बकवाद, फजूल झगड़ा, किचकिच।

झकझका (हिं० वि०) चमकीला, चमकदार।

झकझकाहट (हिं० स्त्री०) चमक, तेजी, जगमगाहट।

झकझेलना (हिं० क्रि०) झकझोरना।

झकझोर (हिं० पु०) १ झटका, झोंका। (वि०) २ तेज, जिसमें खूब झोंका हो।

झकझोरना (हिं० क्रि०) झोंका देना, झटका देना।

झकझोरा (हिं० पु०) धक्का, झोंका।

झकनौद—मध्यभारतमें भापावर एजेन्सीके अन्तर्गत झबुआ राज्यका एक नगर। यह सर्दारपुरसे १५ मीलकी दूरी पर, झबुआ नगरसे २४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक ठाकुर रहते हैं।

झकाझक (हिं० वि०) उज्ज्वल, चमकीला।

झकार (सं० पु०) झ-कार। झमाल वर्ण।

"झकारं परमेशानि!" (कामधेनुतन्त्र)

झकोरना (हिं० क्रि०) हवाका झोंका मारना।

झकोरा (हिं० पु०) वायुका वेग, हवाका झोंका।

झक्क (हिं० वि०) चमकीला, जगमगता हुआ।

झक्कड़ (हिं० पु०) तीव्र वायु, अन्धड़।

झक्का (हिं० पु०) १ वायुका तेज झोंका। २ झक्कड़।

झक्की (हिं० वि०) १ जो व्यर्थकी बकवाद करता हो। २ सनकी, जिसे झक सवार हो।

झख (हिं० स्त्री०) झीखनेका भाव।

झखकेतु (हिं० पु०) झषकेतु देखो।

झगझगायमान (सं० त्रि०) झगझग-क्यङ् शानच्। कर्तुः क्यङ् सलोपश्च। पा ३।१।११। देदीप्यमान, चमकीला।

झगड़ना (हिं० क्रि०) झगड़ा करना, लड़ना।

झगड़ा (हिं० पु०) लड़ाई, तकरार, टण्टा, बखेड़ा।

झगड़ालू (हिं० वि०) कलहप्रिय, जो बात बातमें झगड़ा करता हो।

झगति (अव्यय) झटिति पृषोदरादित्वात्। जल्द।

झगर (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

झगा (हिं० पु०) छोटे बच्चोंके पहननेका कुछ ढीला कुरता।

झङ्कार (सं० पु०) झं-घञ्-कारः झन् इत्यव्यक्तशब्दस्य कारः करणं यत्र। १ भ्रमर प्रभृतिका गुञ्जन, भौंरे, झिंगुर इत्यादिका शब्द। २ झन् झन् शब्द। ३ अव्यक्त-ध्वनि, झनकार।

झङ्कारिणी (सं० स्त्री०) झङ्कार अस्त्यर्थे इनि ङीप्। १ गङ्गा। २ झिण्टीश।

झङ्कारित (सं० त्रि०) झङ्कार-इतच्। झङ्कारयुक्त, जिससे झनझनका शब्द होता हो।

झङ्कृता (सं० त्रि०) तारादेवता।

"झर्झरी झंकृता झिल्ली झरी झर्झरिका तथा।" (तारासहस्रना०)

झङ्कृति (सं० स्त्री०) झं-क्ति कृतिः झम् इत्यव्यक्तशब्दस्य कृतिः करणं यत्र। कांस्यादिध्वनि, झञ्झनाहटका शब्द जो किसी धातुखण्डसे निकला हो।

झङ्ग—पञ्जाबके मुलतान विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३०° ३५′ से ३२° ४′ उ० और देशा० ७१° ३७′ से ७३° ३१′ पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ६६५२ वर्गमील है। इसके उत्तर-पश्चिममें शाहपुर जिला उत्तर-पूर्वमें शाहपुर और गुजरानवाला, दक्षिण-पूर्वमें मण्टगोमारी, दक्षिणमें मुलतान और मुजफ्फरनगर तथा पश्चिममें मियानवाली है।

इस जिलेका आकार बहुत कुछ त्रिभुज-सा है। इसका पूर्व भाग रेचना-दोआबका अन्तर्वर्ती पर्वतमय, उसके बादसे चन्द्रभागा और वितस्ता नदियोंके सङ्गम तक त्रिकोणभूमि, बाद उस संयुक्त दोनों नदियोंके किनारेसे ले कर सिन्धुसागर दोआब तक विस्तृत भूभाग है। इरावती नदी इसकी दक्षिणी सीमामें प्रवाहित है। इस जिलेकी भूमि बहुत ऊंची नीची है। पूर्वके भागमें ऊंचा पहाड़ और बालुकामय व्यवधान देखा जाता है। दक्षिण भागमें इरावती-कूलवर्ती भूभाग और वितस्ता नदीके साथ सङ्गमस्थानके ऊपर और नीचे दोनों ओर चन्द्रभागाके पश्चिम कूलवर्ती स्थानकी भूमि उर्वरा और बहुजनाकीर्ण है। चन्द्रभागा नदीसे ७ मील पूर्वकी उर्वरा निम्नभूमि सहसा जनशून्य अनुर्वरा उच्च भूमिमें परिणत हो गई है। वितस्ता और चन्द्रभागाका मध्यवर्ती भूभाग अनुर्वर है, सिर्फ नदीके किनारे खेती होती है। वितस्ताके दूसरे किनारे सिन्धुसागर खाड़ी नामक ऊंचे पहाड़ तककी भूमि अत्यन्त उर्वरा है। सम्पूर्ण जिलेके केवल ३८ अंशमात्र स्थानमें ग्राम बसे हैं और शेष भाग अनुर्वरा है। कई जगह जनप्राणी और तरु-लताशून्य भूभाग तथा उत्तर-पूर्वांशमें एक प्राचीन नदीका शुष्कगर्भ पड़ा है।

इस जिलेमें एक भी खान नहीं है। किन्तु चिनि-ओतके निकटवर्ती पर्वतके गह्वरसे पत्थर खोदा जाता है। इन पत्थरोंसे जांता, खरल, शिल, रोटी बेलनेका चकला, दीपक, सान आदि प्रस्तुत होते हैं। बहुतोंका विश्वास है कि किराण पर्वत पर लोहेकी खानें पाई जाती हैं, परन्तु अब तक कोई मिली नहीं है। दक्षिण सीमाके ललेरासे मछली ले जा कर मुलतानमें बेची जाती है। हिंसक जन्तुओंमें भेकड़ा, बनबिलाव प्रधान है। मृग, शूकर और शशकादि निर्जन अरण्यमें देखे जाते हैं। साजि नामक एक प्रकारके वृक्षके भस्मसे क्षार होता है। वह वृक्ष वितस्ता और चन्द्रभागाके मध्यवर्ती ऊंचे स्थान पर तथा रेचना-दोआबके दक्षिणभागमें बहुत उत्पन्न होता है।

इस जिलेका इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके अन्तर्वर्ती सङ्गलवालतीर नामक पहाड़ पर प्राचीन ध्वंसावशेष देख कर जनरल कनिङ्गहमने स्थिर किया है, कि

यही स्थान पुराणोक्त शाकल, बौद्धग्रन्थवर्णित सागल और ग्रीक ऐतिहासिकोंका सङ्गल है। यह पहाड़ गुजरानवालाकी सीमा पर अवस्थित है और उसके दोनों ओर दलदल भूमि है। पहले इस दलदलभूमिमें गहरी झील थी। महाभारतमें शाकल मद्रराजको राजधानी कह कर वर्णित है। आज भी इस प्रदेशको मद्रदेश कहते हैं। बौद्धोंका उपाख्यान पढ़नेसे जाना जाता है, कि सागल कुशराजकी राजधानी था। रानी प्रभावतीको अपहरण करनेके लिए सात राजाओंने आक्रमण किया था। महाराज कुशने हाथीकी पीठ पर चढ़ नगरके बाहरमें शत्रुओंका मुकाबिला किया था, और वहां उन्होंने ऐसी उत्कट हुङ्कारध्वनि की थी, कि स्वर्ग मर्त्य प्रतिध्वनित हो गया और आक्रमणकारी भय खा कर भाग चले। ग्रीक ऐतिहासिकोंका कथन है, कि अलेकसन्दरने सङ्गलराजाके आक्रमणसे तंग हो कर गङ्गाकुलवर्ती प्रदेशको जय करना न चाहा और उसी स्थान पर आक्रमण किया। उस समय सङ्गल अत्यन्त दुराक्रम्य था, इसके दो ओर गहरी झील और नगर ईंटेकी चहारदीवारीसे घिरा था। ग्रीकोंने बहुत कष्टसे इसका प्राचीर छिन्न भिन्न कर नगरको अधिकार किया। चीन-परिव्राजक युएनचुयाङ्ग ६३० ई०में शाकल आये थे, उस समय उसका भग्न प्राचीर वर्तमान था और प्राचीन नगरके स्तूपाकृति ध्वंसावशेष-समूहके मध्य एक छोटा शहर था। युएनचुयाङ्गका विवरण पढ़ कर ही कनिंहम साहब शाकलका अवस्थान निर्द्धारण करनेमें समर्थ हुए। अब भी यहाँ एक बौद्धमठमें प्रायः एक सौ बौद्ध संन्यासी रहते हैं। यहां दो स्तूप भी हैं जिनमेंसे एक महाराज अशोकका बनाया हुआ है। चन्द्रभागाका निम्न अववाहिकास्थित शेरकोट अलेकसन्दरसे अधिकृत मल्ली नगरसा अनुमान किया जाता है। बाद युएनचुयाङ्गने इस स्थानको एक प्रदेशको राजधानी कह कर वर्णन किया है।

इस जिलेका आधुनिक इतिहास शियाल-राजवंशके विवरणमें संश्लिष्ट है। ये शियालराजगण मुलतान और शाहपुरके मध्यवर्ती एक विस्तीर्ण प्रदेश पर राज्य करते थे। ये दिल्लीके सम्राट्की अधीनता कुछ कुछ स्वीकार करते थे। अन्तमें रणजित्सिंहने इन्हें पूर्ण रूपसे परास्त किया। झङ्गके शियालगण राजपूत कुलोद्भव हैं, लेकिन मुसलमान धर्मका अवलम्बन करते हैं। इन लोगोंके आदिपुरुष रायशङ्कर हैं। ये ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके प्रारम्भको जौनपुरमें रहते थे। इनके पुत्र शियाल उस नगरको छोड़ कर मुगल-प्रपीड़ित पञ्जाब देशको आये। एकदिन वे नगरस्थापनका उपयुक्त स्थान ढूंढ़ते ढूंढ़ते पाकपत्तनके विख्यात फकीर बाबा फरीदउद्-दीन शाकरगञ्जके सामने अकस्मात् आ गिरे। फकीरको वाक्पटुतासे मुग्ध हो कर शियाल मुसलमान धर्ममें दीक्षित हुए। ये कुछ काल तक शियालकोटमें रह कर अन्तमें शाहपुर जिलेके माहिवालमें चले गये और वहां विवाह कर रहने लगे। शियालके निम्न छठे पुरुष माणकने १३८० ई०में मानखेड़ नगर स्थापन किया और उनके प्रपौत्र मालखाँने १४६२ ई०में चन्द्रभागाके किनारे झङ्गशियाल निर्माण किया। इससे चार वर्षके बाद मालखाँ सम्राट्के आदेशानुसार लाहोर पहुंचे और उन्होंने सम्राट्को वार्षिक निर्दिष्ट कर दे कर झङ्ग प्रदेशको प्राप्त किया। उसी समयसे उनके वंशधर झङ्गमें राज्य करने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें सिखगण पराक्रान्त हो उठे। भङ्ग प्रदेशके करमसिंह दुलुने झङ्ग जिलेके चिनियोत दुर्ग पर अधिकार किया। १८०३ ई०में रणजित्सिंहने उस दुर्ग पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमाया। इसके बाद रणजित्सिंह जब झङ्ग पर आक्रमण करनेका उद्योग करने लगे, तब शियाल-वंशके अन्तिम राजा अहमदखाँने वार्षिक ७० हजार रुपये और एक घोड़ी देनेको प्रतिज्ञा कर छुटकारा पाया।

इससे तीन वर्ष बाद महाराज रणजित्सिंहने पुनः झङ्ग पर आक्रमण किया। अहमदखाँने भाग कर मुलतानमें आश्रय लिया। रणजित्सिंह सर्दार फतेहसिंहको झङ्गका सर्दार बना कर आप स्वस्थानको लौट गए। उनके जाने पर अहमदखाँ पुनः कर दे कर उनके राज्यका कई अंश दखल करने लगे। १८१० ई०में रणजित्सिंहने मुलतान अधिकार किया और उनके शत्रु मुजफ्फरखाँको अहमदखाँने सहायता दी थी, इसी अपराधमें रणजित्सिंहने उन्हें कैद कर लिया। लाहोरमें आ कर रख-

जित्सिंहने अहमदखांको एक जागीर दी थी। अहमदके बाद उनके पुत्र इनायतखाँ आधिपत्य करने लगे। उनकी मृत्युके बाद उनके भाई इस्माइलखाँ अधिकार पानेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु गुलाबसिंहकी प्रतिद्वन्द्वितासे सफलता प्राप्त कर न सके। १८४० ई०में पञ्जाब अंगरेजके अधिकारमें आ जाने पर झङ्ग जिला गवर्मेण्टके हाथ लग गया। १८४८ ई०में इस्माइलखाँ विद्रोही राजाओंको दमन कर गवर्मेण्टकी सहायता की थी तथा सिपाही विद्रोहके समय एक दल अश्वारोही सैन्यके साथ अङ्गरेजका पक्ष अवलम्बन किया था, इसीसे गवर्मेण्टने उन्हें आजीवन एक जागीर और खाँ बहादुरकी उपाधि प्रदान की है।

यहांकी जनसंख्या १००२६५६ के लगभग है। यह जिला ६ तहसीलोंमें विभक्त है,—झङ्ग, चिनिओत, शेरकोट, लालपुर, समुन्द्री और तोबा टेकसिंह।

अन्यान्य उल्लेखयोग्य शहरोंमें शेरकोट और अहमदपुर प्रधान है। चिनियोत तहसील भी कुछ कुछ उर्वरा है। अधिवासी अपने अपने कुएंके निकट अकेला रहनेको पसन्द करते हैं। कहीं कहीं लम्बरदार अर्थात् चौधरीके कुएँके चारों ओर उसके तथा दो चार प्रजाके घर और एक दुकान देखी जाती है। इस जिलेका भाषा पञ्जाबी और जाटकी (मुलतानी) है।

इस जिलेका केवल [illegible] कृषिकार्यके लिए उपयोगी है। बिना पानी पड़नेसे कहीं भी अच्छी तरह फसल नहीं होती है। नदीके किनारेसे कुछ दूर तककी जमीनमें ही अधिकांश फसल उपजती है और उससे कुछ दूरकी ऊँची भूमि अनुर्वर है। नदीके किनारे हमेशा पङ्क पड़ जानेसे अच्छी फसल होती है सही, किन्तु बाढ़के उपद्रवसे ग्राम और शस्यक्षेत्र डूब जाया करता है। यहां धानकी फसल नहीं होती। वसन्तकालमें गेहूँ, जौ, चना, मटर आदि तथा शरत् कालमें ज्वार, कपास, उर्द, तिल, जुन्हरी आदि उत्पन्न होती हैं।

बहुतसे मनुष्य केवल पशु चरा कर जीविका निर्वाह करते हैं। जिलेकी आधेसे अधिक भूमि चरानेकी उपयोगी है। पशु चुरानेके अपराधमें दण्डकी बातें यहां सदा सुनी जाती है। बहुत मनुष्य घोड़े और ऊँट पालनेको पसन्द करते हैं। झङ्गका घोड़ा सर्वत्र विख्यात है। विशेषतः यहांकी घोड़ी पञ्जाबके मध्य सबसे उत्कृष्ट और प्रशंसित है।

इस जिलेके अधिकांश कृषक चिरस्थायी बन्दोवस्तके अनुसार खेती करते हैं। बहुतसे अपनी इच्छाके अनुसार खेती करते, इच्छा होने पर वे जमीन छोड़ भी देते हैं। अधिकांश कृषक उत्पन्न शस्यसे ही मालगुजारी चुकाते हैं। सैकड़े एक मनुष्य रुपया दे कर राजस्व प्रदान करता है।

झङ्ग जिलेका वाणिज्य उतना अच्छा नहीं है। तरह तरहके द्रव्यजातका अन्तर्वाणिज्य ही प्रधान है। इरावतीके किनारे और गुजरानवाला जिलेके वजीराबादसे यहाँ अनाजकी आमदनी होती है। झङ्ग और मघियाना नगरमें मोटा कपड़ा तैयार होता है। उन कपड़ोंको काबुली वणिक्गण खरीद कर ले जाते हैं। यहां सोने और चाँदीका गोटा तथा चमड़ेके द्रव्यादि तैयार होते हैं।

मुलतानसे वजीराबाद तकका रास्ता इस जिलेके शेरकोट, झङ्ग, मघियाना और चिनियोत हो कर गया है। एक दूसरा रास्ता मण्टगोमारी जिलेके लाहोर-मुलतान रेलवेके चीचावतनी ष्टेशनसे चाहभरेरो होते हुए डेरा इस्माइलखाँ तक गया है। चीचावतनी डेरा-इस्माइलखाँ और वन्नू नगरमें प्रतिदिन एक डाकगाड़ी आती जाती है। सिन्धु-पञ्जाब और दिल्ली रेलवेकी लाहोर और मुलतान शाखा इसी जिलेके समीप हो कर गई है। वितस्ता और चन्द्रभागा नदीके सङ्गम स्थानसे कुछ नीचे एक नौसेतु प्रस्तुत हुआ है। जिलेके सब स्थानोंमें उन दो नदियों हो कर बड़ी बड़ी वाणिज्यकी नावें बारहो मास आती जाती है।

भूमिका राजस्व तथा अन्यान्य करके अलावा यहां चराने और खार प्रस्तुत करनेकी भूमिसे भी गवर्मेण्टको बहुत आमदनी होती है। एक डिपुटी कमिश्नर, तीन ऐकष्ट्रा असिस्टाण्ट कमिश्नर और अन्यान्य कर्मचारी तथा पुलिस द्वारा यहांका शासनकार्य चलाया जाता है। मघियाना नगरमें जिलेकी अदालत, कारागार और गवर्मेण्ट विद्यालय आदि हैं। शासनकार्य और राजस्व बसूल

करनेकी सुविधाके लिये यह जिला ३ तहसील और २५ थानोंमें विभक्त है। झङ्ग, मघियाना, चिनियोत, शेरकोट और अहमदपुरमें म्युनिसपालिटी है।

इस जिलेको जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। व्याधिमें ज्वर और वसन्त प्रधान है। झङ्ग, मघियाना, चिनियोत, शेरकोट, अहमदपुर और कोट इसाशाहनगरमें गवर्मेण्टके दातव्य औषधालय है।

२ पञ्जाब प्रदेशके पूर्वोक्त झङ्ग जिलेकी मध्यस्थ तहसील। यह अक्षा० ३१° ०´ से ३१° ४७´ उ० और देशा० ७१° ५८´ से ७२° ४१´ पू०में अवस्थित है। यहांका भूपरिमाण १४२१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १८४४५४ है। इसमें झङ्ग मघियाना नामक शहर और ४४८ ग्राम लगते हैं। यहांका राजस्व प्राय: २५६०००) रु० है। इसमें जिलेकी अदालत और पांच थाने हैं।

३ पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत झङ्ग जिलेका प्रधान नगर और म्युनिसपालिटी। यह अक्षा० ३१° १८´ उ० और देशा० ७२° २०´ पू० पर झङ्गसे दो मील दक्षिण जेच दोआब पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: २४३८२ है जिसमेंसे १२१८८ हिन्दू और ११६४८ मुसलमान है। झङ्ग और मघियाना म्युनिसपालिटीके अन्तर्गत है और दोनों एक नगरमें गिने जा सकते हैं। चन्द्रभागा नदीके वर्तमान गर्भसे ३ मील पूर्व और वितस्ताके साथ उसके सङ्गम-स्थानसे १० और १३ मील उत्तर-पश्चिममें ये दोनों नगर अवस्थित हैं। झङ्ग नगर निम्न-भूमि है और वाणिज्यस्थानसे कुछ दूरमें पड़ता है। सरकारी कार्यालय आदि जबसे मघियानेसे उठा लिये गये हैं, तबसे झङ्गको अवनति हो गई है। शहरमें केवल एक बड़ी सड़क है। जिसके दोनों बगल ईंटोंके बने हुए पथ हैं। वे पथ ईंटोंके छोटे छोटे टुकड़ोंसे बंधे हैं और पानीके निकासका अच्छा प्रबन्ध भी है। नगरके बाहर विद्यालय, झरना, औषधालय और थाना है। शियालवंशके मालखाँने १४६२ ई०में पुराना झङ्ग नगर निर्माण किया था। वह नगर बहुत समय तक झङ्गके मुसलमान राजाओंकी राजधानी था, बाद बहुत समय हुआ कि वह चन्द्रभागाके सोतेसे बह गया है। वर्तमान नगर १६वीं शताब्दीके प्रारम्भको औरङ्गजेब सम्राट्के शासनकालमें झङ्गके वर्तमान नाथसाहबके पूर्वपुरुष लालनाथसे स्थापित हुआ है। दूरसे नगरका एक पार्श्व देखने पर केवल उस अप्रीतिकर बालुकास्तूपके सिवा और कुछ देखनेमें नहीं आता है। किन्तु दूसरी ओरसे देखने पर सुन्दर उद्यान, सरोवर, कुञ्जवन अट्टालिका आदि मनोरम दृश्य देखनेमें आता है। यहांके अधिकांश अधिवासी शियाल और क्षत्रिय हैं। यहां मोटे कपड़ेका व्यवसाय अधिक होता है। काबुली सौदागर उसे खरीद कर अपने देशको ले जाते हैं। वजीराबाद और मियनवालिसे अनाजको आमदनी होती है।

झज्झर (हिं० पु०) एक प्रकारका पानीका बरतन। इसका मुंह चौड़ा होता है और यह पानी रखनेके काममें आता है। इसकी उपरी तह पर पानीको ठण्ढा करनेके लिये थोड़ासा बालू लगा दिया जाता है, और सुन्दरताके लिये तरह तरहकी नकाशियाँ भी की जाती है। इसका व्यवहार प्राय: गरमीके दिनोंमें होता है क्योंकि उस समय मनुष्योंको ठण्ढा पानी पीनेकी चाह रहती है।

झज्झर—पञ्जाब प्रदेशस्थ रोहतक जिलेकी दक्षिणकी तहसील, यह अक्षा० २८° २१´ से २८° ४१´ उ० और देशा० ७६° २०´ से ७६° ५६´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४६६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२३२२७ है। इस तहसीलका अधिकांश बालुकामय है। नजाफगढ़ नामक झीलके निकटस्थ स्थान जलमय है। यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य बाजरा, ज्वार, जौ, चना, गेहूं आदि है। एक सहकारी कमिश्नर, एक तहसीलदार और एक अनरेरी मजिष्ट्रेट विचार-कार्य सम्पादन करते हैं। इस तहसीलमें २ दीवानी, ३ फौजदारी और २ थाने हैं। रिवारी-फिरोजपुर रेलपथ इस तहसीलके प्रान्त हो कर गया है। इसमें झज्झर नामका एक शहर और १९८ ग्राम लगते हैं।

२ पञ्जाब प्रदेशस्थ रोहतक जिलेकी झज्झर तहसीलका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २८° ३६´ उ० और देशा० ७६° ४०´ पू० पर रोहतक जिलेसे २१

मील दक्षिण और दिल्लीसे २५ मील पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १२२२७ है। पहले यह शहर एक देशीय राज्यकी राजधानी था। अङ्गरेज गवर्मेण्टने इसी स्थान पर जिला स्थापन किया था। अभी यह उठ कर रोहतक नगरमें चला गया है। ११९३ ई०में दिल्ली नगर पहले पहल मुसलमानसे अधिकृत किये जानेके समय झज्झर नगर स्थापित हुआ था। १७८३ ई०के दुर्भिक्षसे यह नगर तहस नहस हो गया। उसके बादसे इसकी श्रीवृद्धि दिन दुनी और रात चौगुनी हो रही है। १७८६ ई०में सम्राट् शाह-आलमके सेनापति मूर्त्ताजाखाँके पुत्र निजामत अलीखाँ झज्झरके नवाब हुए। ये अपने दो भाईके साथ सिन्धियाके राज-सरकारमें काम करते थे और उन्हींसे इन्होंने प्रभूत वृत्ति तथा झज्झर, बहादुरगढ़ और पताप्रोद्धि (प्रतापवृद्धि) का नवाबीपद पाया था। अङ्गरेजके अधिकारमें आनेके बाद भी गवर्मेण्टने उक्त दान स्वीकार किया, किन्तु सिपाही विद्रोहके समय तात्कालिक नवाब अबदुल रहमन खाँ और बहादुरगढ़के नवाब विद्रोहमें सम्मिलित होनेके कारण दोनों पकड़े गये और झज्झरके नवाबको प्राणदण्ड दिया गया। बाद उनकी सारी सम्पत्ति गवर्मेण्टने जब्त कर ली। इस नतन प्रदेशमें एक जिला संगठित हुआ, किन्तु अन्तमें झज्झर जिला रोहतकके अन्तर्भुक्त किया गया। अभी इसके वाणिज्यकी हीन दशा है। शस्य तथा देशीय चीजोंका कुछ कुछ वाणिज्य होता है। यहां मट्टीके अच्छे अच्छे बरतन बनते हैं। यह जिला विशेष कर रङ्गको व्यवसायके लिये प्रसिद्ध है। यहां तहसील, थाना, डाकघर, डाक बंगला, विद्यालय और चिकित्सालय है। नगरके चारों ओर पुरातन पुष्करिणी और अनेक कब्र देखी जाती हैं।

झज्झी (हिं० स्त्री०) १ फूटी कौड़ी। २ दलालोंका धन।

झझक (हिं० स्त्री०) १ किसी प्रकारके भयकी आशंकासे रुकनेकी क्रिया, भड़क, चमक। २ कुछ क्रोधसे बोलना, झुँझलाहट। ३ किसी पदार्थकी खराब गन्ध। ४ ठहर ठहर कर होनेवाली सनक, हलका दौरा।

झझकना (हिं० क्रि०) १ डरसे रुकना, भड़कना, चमकना। २ कुछ क्रोधसे बोलना, झुंझलाना, खिजलाना। ३ चौंक पड़ना।

झझकाना (हिं० क्रि०) १ झुँझलाना, खिजलाना। २ चौंक पड़ना। ३ किसी प्रकारके भयकी आशङ्कासे सहसा किसी काममें रुक जाना, चमकना, अचानक डर कर ठिठकना।

झझकार (हिं० स्त्री०) झझकारनेकी क्रिया या भाव।

झझकारना (हिं० क्रि०) १ डपटना, डाँटना। २ दुर दुराना। ३ किसीको अपने आगे मंद बना देना।

झञ्झन (सं० क्ली०) १ धातुनिर्मित द्रव्यके आघातसे उत्पन्न झन् झन् शब्द, झंकार, झनझनाहट। २ अव्यक्त ध्वनि, निरर्थक शब्द।

झञ्झना (सं० स्त्री०) झञ्झन, झंकार।

झञ्झनी (सं० स्त्री०) अस्त्रका शब्द।

झञ्झा (सं० स्त्री०) झम् इत्यव्यक्तशब्दं कृत्वा झटिति वेगेन वहतीति झट्-ड बाहुलकात् टाप्। १ ध्वनि-विशेष, शब्द, आवाज। २ जलकणा वर्षण, छोटी छोटी बूंदोंकी वर्षा। ३ प्रचण्डानिल, तेज आँधी, अंधड़। ४ वह तेज आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो। ५ एक प्रकारका घनयन्त्र, झांझ। इसका आकार बड़ा, गोल और समतल होता है। इसके मध्यका भाग कुछ झुका हुआ और उसी जगह आघात किया जाता है। इसका व्यवहार पृथ्वीके प्रायः सभी देशोंमें होता है। यह देवता आदिके पूजनेके समय बजाई जाती है।

झञ्झानिल (सं० पु०) झञ्झाध्वनियुक्तः अनिलः, मध्यपदलो० कर्मधा०। १ वर्षाकालकी वायु, वह आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो। २ झञ्झावात, प्रचण्ड वायु, आँधी।

झञ्झामारुत (सं० पु०) झञ्झाध्वनियुक्तो मारुतः, मध्यपदलो० कर्मधा०। वेगवान् वायु, तेज हवा।

झञ्झारपुर—विहारके दरभङ्गा जिलेके अन्तर्गत मधुबनी उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २६° १६' उ० और देशा० ८६° १८' पू० पर मधुबनीसे १४ मील दक्षिण-पूर्व छोटबलानके पूर्व किनारेसे १ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहां प्रतापगञ्ज और श्रीगञ्ज नामक दो बाजार हैं। पहला प्रतापसिंह और दूसरा मधुसिंहकी सालीके

नाममे प्रसिद्ध है। लोकसंख्या प्रायः ५६३८ है। दरभङ्गाके महाराजको सन्तानोंने यहां जन्मग्रहण किया, इसीसे झञ्झारपुर विशेष प्रख्यात है। कहा जाता है, कि पहले दरभङ्गाके महाराजगण सभी निःसन्तान अवस्थामें प्राणत्याग करते थे। महाराज प्रतापसिंहने इससे अत्यन्त भयभीत हो कर निकटवर्त्ती सुरनम् ग्रामवासी शिव रतनगिरि नामक किसी एक साधुकी शरण ली। साधु झञ्झारपुरमें आ अपने सिरसे एक बाल गिरा कर बोले कि जो मनुष्य झञ्झारपुरमें वास करेगा उसके पुत्र अवश्य होगा। प्रतापने उसी समय उस स्थान पर एक घरकी नीवँ डाली, किन्तु घर तैयार हो जानेके पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। उनके भाई मधुसिंह मकान बनवा चुकने पर कुछ दिन वहीं रहे थे। दरभङ्गाकी महारानी गर्भवती होनेसे ही इस स्थानपर भेजी जाती हैं। पहले इस स्थान पर किसी राजपूत-वंशीयका अधिकार था, पीछे महाराज छत्रसिंहने उनसे यह ग्राम खरीदा था।

इस स्थानकी रत्नमालादेवीका मन्दिर विख्यात है। देवीकी अर्चना करनेके लिये बहुत दूरसे मनुष्य आते हैं। पीतलको चीज प्रस्तुत होनेके कारण भी यह स्थान मशहूर है। इस स्थानके पत्थरहट्टे और गङ्गाजली अत्यन्त सुन्दर होती हैं। बाजारमें अनाजके बड़े बड़े कारखाने हैं। झञ्झारपुरसे हियाघाट मधुवनी, नरारा आदि स्थानोंमें सड़कें हो जानेसे व्यवसाय दिनों दिन बढ़ रहा है। बाजारके पाससे दरभङ्गासे पुर्णिया तक एक बड़ी सड़क चली गई है।

इस ग्राममें हिन्दू और मुसलमान दोनोंका वास है। किन्तु हिन्दूकी संख्या कुछ अधिक है।

झञ्झावायु (सं० पु०) झञ्झाध्वनियुक्तो वायुः, मध्यपदलो०। १ झञ्झावात, वह आंधी जिसके साथ पानी भी बरसे। २ वेगवान् वायु, प्रचंड वायु।

झट (हिं० क्रि-वि०) तत्क्षण, उसी समय, तुरंत।

झटक (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्यज वर्णविशेष।

"उपासरण्ये झटकश्च कूपे द्रोणां जलं कोशविनिर्गतश्च।" (अत्रि)

झटकना (हिं० क्रि०) १ झटका देना, हलका धक्का देना। २ झटका देना, झोंका देना। ३ बलपूर्वक किसीकी चीज लेना, ऐंठना।

झटका (हिं० पु०) झटकनेकी क्रिया, झोंका। २ झटकनेका भाव। ३ पशु वधका एक प्रकार। इसमें वह अस्त्रके एकही आघातसे काट डाला जाता है। ४ आपत्ति। ५ कुश्तीका एक पेंच।

झटकारना (हिं० क्रि०) झटकना, किसी चीजके गिराने या नष्ट करनेकी इच्छासे हिलाना।

झटपट (हिं० अव्य०) अतिशीघ्र, फौरन, जल्दी।

झटा (सं० स्त्री०) झट-अच्-टाप्। १ शीघ्र। २ भूम्यामलकी, भू आँवला।

झटाका (हिं० वि०) झड़ाका देखो।

झटि (सं० पु०) झटति परस्परं संलग्नं भवतीति झट-औणादिक इन्। १ क्षुद्र वृक्ष, छोटा पेड़।

झटिति (अव्य०) झट्-क्विप् झट-इन क्तिन्। १ द्रुत, तेज। २ शीघ्र, जल्दी। इसके पर्याय—स्राक्, अञ्जसा, आह्नाय, सपदि, द्राक्, मंक्षु, सद्यः और तत्क्षण है।

"रथकत्वा गेहं झटिति यमुना मञ्जुकुञ्जं जगाम।"

(पदाङ्कदूत)

झड़ (हिं० स्त्री०) १ तालेके भीतरका खटका जो तालीकी चोटोंसे हटता बढ़ता है। २ झड़ी देखो।

झड़न (हिं० स्त्री०) १ झड़ी हुई चीज, जो कुछ झड़ कर गिरे। २ झड़नेकी क्रिया या भाव।

झड़ना (हिं० क्रि०) १ कण या बूंदके रूपमें गिरना। २ अधिक संख्यामें गिरना। ३ वीर्यका पतन होना। ४ परिष्कार करना, झाड़ा जाना।

झड़प (हिं० स्त्री०) १ लड़ाई, टंटा। २ क्रोध, गुस्सा। ३ आवेग, जोश। ४ अग्निशिखा, लौ, लपट। ५ झड़ाका देखो।

झड़पना (हिं० क्रि०) १ आक्रमण करना, हमला करना। २ छोप लेना। ३ लड़ना, झगड़ना। ४ बलपूर्वक किसीकी कोई चीज छीन लेना।

झड़पा झड़पी (हिं० स्त्री०) गुत्थमगुत्था, हाथा-पाई।

झड़बेरी (हिं० स्त्री०) १ जङ्गली बेर। २ जङ्गली बेरका पौधा।

झड़वाना (हिं० क्रि०) झाड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना।

झड़सातल—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत बल्लभगढ़ जागीरका

एक शहर। यह अक्षा० २८°१८' उ० और देशा० ७७° २१' पू० पर दिल्लीसे २८ मील दक्षिण मथुरा जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

झड़ाक (हिं० क्रि-वि०) झड़ाका देखो।

झड़ाका (हिं० पु०) १ दो जीवोंको परस्पर मुठभेड़। (क्रि-वि०) २ शीघ्रता पूर्वक, चटपट।

झड़ाझड़ (हिं० क्रि वि०) अविरल, लगातार, बराबर।

झड़िया (वा झरिया)—१ मध्यप्रदेशवासी प्राचीन जाति विशेष। शायद झाड़ अर्थात् गुल्म जङ्गलमें इनका नाम झड़िया या झरिया पड़ा होगा। इनका आचार व्यवहार खाना पीना नीच जातियोंसे मिलता जुलता है। ये अनेक अद्भुत देवताकी उपासना करते हैं।

२ गुजरातकी एक जाति। ये पहले जङ्गली हाथीको पकड़ा करते थे।

झड़ी (हिं० स्त्री०) १ बूंदके रूपमें बराबर गिरनेका कार्य। २ छोटी छोटी बुन्दोंकी वर्षा। ३ लगातार वर्षा, झड़ी। ४ तालेके भीतरका वह अंश जो चाभी देनेसे हटता बढ़ता है। ५ विना रुकावटके लगातार बहुतसी बातें कहते जाना या चीजें रखते वा निकलते जाना। जैसे—उन्होंने तो तारीफकी झड़ी बाँध दी।

झणझणा (सं० अव्य०) झणत्-डाच्। १ अव्यक्त शब्द विशेष। २ अव्यक्त शब्दयुक्त। झनझन शब्द।

झणाझणायमान (सं० त्रि०) झणझण-क्यङ्, शानच्। जो झणझण शब्दसे शब्दित होता हो, जो झनझन अवाज करता हो।

झणात्कार (सं० पु०) झनत् इत्यव्यक्तशब्दस्य कारः करणं यत्र। झन् झनका शब्द।

झपटी (सं० स्त्री०) कुन्दतृण, एक प्रकारको घास।

झगडासिंह—भङ्गी नामक सिखसम्प्रदायके एक नेता। इनके पिता हरिसिंह भङ्गी मिछिल अर्थात् सम्प्रदायके सर्दार थे। उनकी दो स्त्री थीं; एकके गर्भसे झगडासिंह और गण्डासिंह तथा दूसरीके गर्भसे चड़तसिंह, दीवानसिंह और वासूसिंह उत्पन्न हुए थे। हरिसिंहकी मृत्युके बाद झगडासिंह पितृपद पर अधिष्ठित हुए। इन्हींके समयमें भङ्गीसम्प्रदाय सबसे पराक्रान्त और प्रसिद्ध हुआ था। झगडासिंह और उनके भाइयोंने बहुतसे सम्भ्रान्त सिख-सर्दारोंसे मित्रता कर ली।

१८६६ ई०में झगडासिंहने मुलतान आक्रमण कर शतद्रुके किनारे मुसलमान-शासनकर्त्ता सुजाखां और दाउदके पुत्रोंको परास्त कर दिया। सन्धिके अनुसार पाकपत्तन दोनों राज्योंकी मध्य-सीमा निर्द्धारित हुआ।

इसके बाद झगडासिंहने कसूर आक्रमण कर वहांके पठान अधिपतिको पराजित किया। पीछे उन्होंने मुलतानके नवाबसे सन्धिभङ्ग करके १७७१ ई०में दुर्ग आक्रमण किया। परन्तु डेढ़ महीने अवरोध किये रहनेके बाद दाउदके पुत्र तथा जहानखां द्वारा परिचालित अफगान सेनाने सिखोंको विदूरित कर दिया।

दूसरे वर्ष झगडासिंहने बहुतसे सिख-सर्दार और प्रभृत सैन्य ले कर पुनः मुलतान पर आक्रमण किया। इस समय मुलतानमें अन्तर्विवाद चल रहा था। शरीफ बेग तखलू नामके एक शासनकर्त्ताने झगडासिंहसे सहायता मांगी। झगडासिंहने उसी समय अपनी फौजके जरिये सुजाखांको पराजित कर नगर अधिकार कर लिया और सिख-सेना द्वारा दुर्गको सुरक्षित किया। शरीफ बेग हताश हो कर खैरपुर भाग गये। वहां उनकी मृत्यु हो गई।

मुलतानसे लौटा कर झगडासिंहने बलूच प्रदेश जीता और लूट लिया, पीछे झङ्ग पर चढ़ाई कर मानखेड़ा और कालाबाघ अधिकार कर लिया। मुलतानके ध्वंसावशेषसे निर्मित सुजाआबाद पर भी इन्होंने आक्रमण किया था, पर कृतकार्य न हो सके।

इसके बाद उन्होंने अमृतसर जा कर वहां भङ्गी-किला नामका एक ईंटका दुर्ग बनाया। इस दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान है।

इसके बाद झगडासिंहने रामनगर पर आक्रमण और छत्त लोगोंको पराजित कर प्रसिद्ध भङ्गी-तोप जमजमा* पर पुनः अधिकार कर लिया। तदनन्तर वे जम्मु आक्रमण करके वहांके कन्हैया मिछिलके सर्दार जयसिंह और सूकरचकिया मिछिलके सर्दार चड़तसिंहके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए। बहुत

* १८४५ ई०में २१ दिसम्बरकी रातको सर हेनरी हार्डिञ्जने फिरोजसहरके युद्धमें उक्त तोप अधिकृत की थी अब यह तोप लाहोरके जादूघरके दरवाजे पर रक्खी है।

दिन तक दोनोंमें युद्ध चलता रहा, पर जयपराजयका निश्चय नहीं हुआ। आखिरकार एक दिन दैववश सर्दार चरतसिंहको बन्दूक फट गई, जिससे वे निहत हुए। इसके अनन्तर एक दिन कन्हिया पराजित होने ही वाले थे, किन्तु झण्डासिंहके एक अनुचरने उन्हें धोखा दिया. वे उसकी बन्दूककी चोटसे युद्ध करते करते मारे गये। वह दुष्ट जयसिंहसे घूस ले कर ऐसे काममें प्रवृत्त हुआ था। झण्डासिंहकी मृत्युके बाद कन्हियागण मरजल्लोमें विजयी हो गये। गण्डासिंह ज्येष्ठ भाईके पद पर अभिषिक्त हुए।

झन (हिं० स्त्री०) किसी धातु-खंड आदिका आघातसे उत्पन्न शब्द।

झनक (हिं० स्त्री०) धातु आदिके परस्परट करानेका शब्द।

झनकना (हिं० क्रि०) १ झनकारका शब्द करना। २ गुस्सेमें हाथ पैर पटकना। ३ चिड़चिड़ाना। ४ झीखना देखो।

झनकमनक (हिं० स्त्री०) आभूषणों आदिका शब्द।

झनकवात (हिं० स्त्री०) घोड़ोंका एक रोग। इसमें वे अपने पैरको कुछ झटका देते रहते हैं।

झनकार (हिं० स्त्री०) झंकार देखो।

झनझन (हिं० स्त्री०) झनझन शब्द, झनकार।

झनझना (हिं० पु०) १ तमाकूकी नसोंमें छेद करनेवाला एक प्रकारका कीड़ा। (वि०) २ जिसमेंसे झनझनका शब्द निकलता हो।

झनझना—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत मुजफ्फरनगर जिलेकी शामाली तहसीलका एक कृषिप्रधान शहर। यह शहर अक्षा० २८° ३०´ ५५´´ उ० और देशा० ७७° १५´ ३५´´ पू०में, मुजफ्फरनगरसे ३० मील पश्चिमकी ओर यमुना और नहरके मध्यवर्ती प्रदेशमें अवस्थित है। यहां पहले एक ईंटका बना हुआ किला है, जिसमें एक मसजिद तथा शाह अबदल रजाक और उनके चार पुत्रोंकी कब्र है। मसजिद और कब्रें सम्राट् जहांगीरके समयमें बनी थीं। इनकी गुम्बजोंमें नीले रंगके बहुतसे पुष्पादि बने हुए हैं, जो शिल्प-चातुर्यका परिचय दे रहे हैं। यहांकी दरगाह इमाम साहब नामकी अट्टालिका सबसे प्राचीन है। सहरके बगलमें एक नहर है, जिसके कारण बरसातमें बहुत दूर तक डूब जाता है। ज्वर, चेचक और हैजा ये यहांके साधारण रोग हैं। यहां एक थाना और एक डाकघर है।

झनझनाना (हिं० क्रि०) झनझन आवाज होना।

झनझनाहट (हिं० स्त्री०) १ झंकार, झनझन शब्द होनेका भाव। २ झुनझुनी।

झनझोरा (हिं० पु०) एक पेड़का नाम।

झननन (हिं० पु०) झंकार, झनझन शब्द।

झनम (हिं० पु०) चमड़ेसे मढ़ा हुआ एक प्रकारका प्राचीन कालका बाजा।

झनाझन (हिं० स्त्री०) झंकार, झनझन शब्द।

झन्दिपुर—युक्तप्रदेशके आगरा जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २७° २२´ उ० और देशा० ७७° ४८´ पू० पर आगरासे मथुरा जानेके रास्ते पर प्राय: २६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है।

झन्नाहट (हिं० स्त्री०) झनकारका शब्द।

झन्निवाल—अकबरके समयके एक ज्ञानी फकीर। आइन-ए-अकबरीमें इनकी २य श्रेणीमें अर्थात् अन्तर्दर्शी पण्डितोंमें गणना की गई है। इनका यथार्थ नाम दाउद था. लाहोरके निकटस्थ झन्निसे झन्निवाल नाम प्राप्त हुआ था। इनके पूर्वपुरुषगण अरबदेशसे आ कर मुलतानके अन्तर्गत सीतापुरमें रहने लगे थे, वहीं इनका जन्म हुआ था। ९८२ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

झप (हिं० क्रि० वि०) शीघ्रतासे, तुरंत, झट।

झपक (हिं० स्त्री०) १ बहुत थोड़ा समय। २ पलकोंका परस्पर मिलना, पलकका गिरना। ३ हलकी नींद, झपकी। ४ लज्जा, शर्म।

झपकना (हिं० क्रि०) १ भय खाना, डरना, सहम जाना। २ ढकेलना। ३ पलक गिराना। ४ तेजीसे आगे बढ़ना। ५ लज्जित होना, शरमिंदा होना। ६ ऊँघना, झपकी लेना।

झपका (हिं० पु०) वायुकी तेजी हवाका झोंका।

झपकाना (हिं० क्रि०) पलकोंको सदा बंद करना।

झपकी (हिं० स्त्री०) १ थोड़ी निद्रा, हलकी नींद। २ अनाज ओसानेका कपड़ा। ३ आंख झपकनेकी क्रिया।

झपट (हिं० स्त्री०) झपटनेकी क्रिया या भाव।

झपटना (हिं० क्रि०) १ आक्रमण करना, टूटना, धावा करना। २ बहुत शीघ्रता पूर्वक आगे बढ़ कर चीज लेना।

झपटाना (हिं० क्रि०) आक्रमण करना, हमला करना, उसकाना, बढ़ावा देना।

झपताल (हिं० पु०) सङ्गीतके अनुसार पाँच मात्राओंका एक ताल, इसमें चार पूर्ण और दो अर्द्ध होती हैं। इसका बोल इस प्रकार है—

        १   १
+   ।   ।   ।   ।   ।   ।   ।   ।   ।
धा गे धा गे टिन् ता के धा के टिन्
(संगीतशा०)

तबलेका बोल—धिम धा, धिम धिम धा, देत ता तिन तिन ता। धा।

झपना (हिं० क्रि०) १ पलकोंका बंद करना। २ झुकना। ३ लज्जित होना, शरमिंदा होना।

झपनी (हिं० स्त्री०) १ कोई चीज ढाँकनेकी वस्तु, ढकना। २ पिटारी।

झपवाना (हिं० क्रि०) झाँपनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

झपस (हिं० स्त्री०) १ गुंजान होनेकी क्रिया।

झपसना (हिं० क्रि०) लता या पेड़की शाखाओंका घना हो कर फैलना।

झपाका (हिं० पु०) १ शीघ्रता, जल्दी। (क्रि० वि०) २ शीघ्रतापूर्वक, जल्दीसे।

झपाटा (हिं० पु०) आक्रमण, चपेट।

झपाना (हिं० क्रि०) बन्द करना, मूंदना।

झपाव (हिं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र जिससे घास काटी जाती है।

झपित (हिं० वि०) १ ढका हुआ, मुंदा हुआ। २ लज्जित। ३ जिसमें नींद भरी हो, उनींदा, झपकौंहा।

झपिया (हिं० स्त्री०) १ हँसुलीके आकारका एक प्रकारका गहना जो गलेमें पहना जाता है। यह गहना प्रायः डोम जातिकी स्त्रियां पहनती हैं। २ पक्षी, पेटारी।

झपिट (हिं० स्त्री०) झपट देखो।

झपिटना (हिं० क्रि०) धावा करके ले लेना।

झपोला (हिं० पु०) झँपोला देखो।

झप्पड़ (हिं० पु०) थप्पड़, झापड़।

झप्पान (हिं० पु०) चार आदमीसे उठानेकी एक प्रकारकी पहाड़ी सवारी।

झप्पानी (हिं० पु०) वह कहार या मजदूर जो झप्पान उठाता है।

झबझबी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है।

झबड़ा (हिं० वि०) झबरा देखो।

झबधरी (हिं० स्त्री०) गेहूं फसलको हानि पहुंचानेवाली एक प्रकारकी घास।

झबरहेरा—युक्तप्रदेशमें शाहरानपुर जिलेकी रुड़की तहसीलका एक शहर। यह शाहरानपुरसे १ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां शाहरानपुर जिलेके पूर्ववर्त्ती एक शासनकर्त्ता नवाब हाकिम खाँकी बनाई हुई एक मस्जिद और एक कुआं है।

झबरा (हिं० वि०) जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हो।

झबरीला (हिं० वि०) झबरा देखो।

झबार (हिं० स्त्री०) झगड़ा, बखेड़ा, टंटा।

झब्बा (हिं० पु०) १ रेशम या सूत आदिके बहुतसे तारोंका गुच्छा जो एकहीमें बंधा रहता है। २ छोटी छोटी चीजें एकहीमें गंथी या बंधी होती हैं, गुच्छे।

झब्बाझाड़—युक्तप्रदेशमें फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत अयोध्या नगरके दक्षिणस्थ एक मट्टीका पहाड़। वहांके साधारण लोगोंका विश्वास है, कि रामकोट दुर्ग निर्माणके समय मजदूर अपनी अपनी टोकरीको इस स्थान पर झाड़ कर घर जाते थे, इसीसे यह पहाड़सा ऊंचा हो गया है। इसी कारण यह झब्बाझाड़के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

झब्बूबीबी— नवाब हुसेनखांकी पत्नी। इन्होंने महम्मद शाहके राजत्वकालमें (ई० स० १७२५में) मुजफ्फरनगरसे १५ मील पूर्व मोरना नामक स्थानमें एक बड़ी मसजिद बनवाई थी। इस मसजिदकी बनावट बहुत-ही उम्दा है।

झमक (हिं० स्त्री०) १ चमक, प्रकाश, उजेला। २ झमझम शब्द। ३ नखरेकी चाल।

झमकड़ा (हिं० पु०) झमक देखो।

झमकना (हिं० क्रि०) १ गहनोंका शब्द करते हुए नाचना। २ लड़ाईमें अस्त्रोंका चमकना। ३ प्रज्वलित होना, प्रकाश करना। ४ तेजी दिखाना। ५ झपकना, छाना। ६ झमझम शब्द करना।

झमका—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़का एक छोटा देशीय राज्य। लोकसंख्या लगभग ४००० है। जमींदारोंकी आय ४०००) रु० है जिनमेंसे १८५) रु० बरोदाके महाराजको कर देने पड़ते हैं।

झमकाना (हिं० क्रि०) १ युद्धमें अस्त्रों आदिका चमकाना। २ चलते समय गहनोंका बजाना और चमकाना।

झमकारा (हिं० वि०) जो झमाझम बरसता हो।

झमझम (हिं० स्त्री०) १ घुँघुरुओं आदिके बजानेका शब्द, छमछम। २ वर्षा होनेका शब्द। ३ चमक दमक। (वि०) ४ प्रकाशयुक्त, जिसमेंसे खूब आभा निकले, जगमगाता हुआ।

झमझमाना (हिं० क्रि०) १ झमझम शब्द होना। २ चमचमाना, जगमगाना।

झमझमाहट (हिं० स्त्री०) १ झमझम शब्द होनेकी क्रिया। २ चमकने या जगमगानेका भाव।

झमना (हिं० क्रि०) नम्र होना, झुकना, दबना।

झमाका (हिं० पु०) १ पानी बरसने या आभूषणों आदिके बजनेका शब्द। २ नखरा, ठसक, मटक।

झमाझम (हिं० स्त्री०) १ घुँघुरुओं आदिके बजनेका शब्द। (क्रि० वि०) २ जिसमें उज्ज्वल कान्ति हो। ३ झमझम शब्द सहित।

झमाट (हिं० पु०) एकहोमें मिले हुए बहुतसे झाड़, झुरमुट।

झमाना (हिं० क्रि०) झपकना, छाना, घिरना।

झमूरा (हिं० पु०) १ वह पशु जिसके घने बाल हों। २ बाजीगरके साथ रहनेवाला लड़का जो बाजीगरको बहुतसे खेलोंमें मदद देता है। ३ ढोले वस्त्र पहना हुआ लड़का। ४ कोई प्यारा बच्चा।

झमेल (हिं० स्त्रि०) झमेला देखो।

झमेला (हिं० पु०)१ झगड़ा, बखेड़ा, झंझट। २ मनुष्यका समूह, भीड़ भाड़।

झमेलिया (हिं० पु०) टंटा करनेवाला, झगड़ालू।

झमैया—बनियोंकी एक जाति। ये लोग अपनेको विष्णोईकी एक श्रेणी बतलाते हैं। झाम्बोना ऋषिसे इनका नामकरण हुआ है। बहुत पहलेकी बात है कि ये लोग मुर्देको जमीनमें गाड़ा करते थे, किन्तु अब वह प्रथा सदाके लिये जाती रही।

झम्प (सं० पु०) पृषोदरादित्वात् प्रयोगोयं साध्यः। १ लम्फ, उछाल, फलांग, कुदान, २ स्वेच्छासे सम्पात, पतन।

झम्प (हिं० पु०) एक प्रकारका भूषण जो घोड़ोंके गलेमें पहनाया जाता है।

झम्पाक (सं० पु०) झम्पेन आकायति गच्छतोति झम्प-आ-कै-क अथवा झम्पेन अकीत गच्छतीति झम्प-अक्-अण्। कपि, बन्दर।

झम्पारु (सं० पु०) झम्पं लम्फं आराति ददातीति झम्प-आ-रा-डु अथवा झम्पेन आच्छ्रति गच्छतोति झम्प आ-ऋ-उ। बानर, कपि।

झम्पाशी (सं० पु०) झम्पेन स्वेच्छया पतनेन अश्नाति भक्षयति इति झम्प-अश-णिनि। १ मत्स्यरङ्ग पक्षी। २ जलकाक, बगलेकी जातिका एक पक्षी।

झम्पी (सं० पु०) झम्पः अस्त्यस्य इति इनि। १ बन्दर। २ कपि, पूँछहीन बन्दर।

झम्मर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के झालावाड़ विभागकी एक छोटी जमींदारी। यह बधान नगरसे ८ मील उत्तर-पूर्व बम्बई-बरोदा तथा मध्यभारतीय रेलपथके लखतर ष्टेशनसे ३ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७१७ है। यहांके जमींदार झाला राजपूत हैं और बधानके जमींदारोंके सम्बन्धी है। जमींदारोंकी आय ४०१०) रु० की है जिनमेंसे ४६४) रु० करस्वरूप ब्रटिश गवर्मेण्टको देने पड़ते हैं।

झर (सं० पु०) झृ-अच्। १ निर्झर, पानी गिरनेका स्थान। २ पर्वतावतोर्ण जलप्रवाह, पहाड़से निकलता हुआ जलप्रवाह, झरना, सोता। ३ समूह, झुंड। ४ वेग, तेजी। ५ अविरल वृष्टि, लगातार झड़ी। ६ किसी वस्तुकी लगातार वर्षा। ७ अग्निशिखा, ज्वाला, लपट, लौ। ८ तालेकी भीतरकी कल।

झरकना (हिं॰ क्रि॰) १ झलकना देखो। २ झिड़कना देखो।

झरझर (हिं॰ स्त्री॰) १ वह शब्द जो जलके बहने, बरसने या हवाके चलने आदिसे होता हो। २ किसी प्रकारसे उत्पन्न झरझर शब्द।

झरझराना (हिं॰ क्रि॰) किसी पात्रमेंसे किसी वस्तुको झाड़ कर गिरा देना।

झरन (हिं॰ स्त्री॰) १ झरनेकी क्रिया। २ वह जो झरा हो।

झरना (हिं॰ पु॰) १ जलप्रवाह, सोता, चश्मा। २ एक प्रकारकी छलनी जो लोहे या पीतलकी बनी होती है। इसमें लम्बे लम्बे छेद होते हैं और इसमें रख कर समूचा अनाज छाना जाता है। ३ एक प्रकारकी करछी या चम्मच। इसका अगला भाग छोटे तवेकासा होता है। यह तली जानेवाली चीजोंको उलटाने, पलटाने, बाहर अथवा निकालनेके काममें आता है। ४ कई वर्षों तक रहनेवाली एक प्रकारकी घास जिसे पशु बड़े चावसे खाते हैं। (वि॰) ५ झरनेवाला, जो झरता हो।

झरप (हिं॰ स्त्री॰) १ झोंका, झकोर। २ वेग, तेजी। ३ वह सहारा या टेक जो किसी चीजको गिरनेसे बचाता है। ४ चिक, परदा।

झरमतिया—युक्तप्रदेशमें गोरखपुर जिलेका एक प्राचीन ध्वंसावशिष्ट नगर।

झरहराना (हिं॰ क्रि॰) १ हवाके झोंकसे पत्तोंका शब्द करना। २ झटकना, झाड़ना।

झरहिल (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चिड़िया।

झरा (सं॰ स्त्री॰) झर।

झरा (हिं॰ पु॰) जल भरे हुए खेतोंमें उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका धान।

झराझर (हिं॰ क्रि॰-वि॰) १ झरझर शब्द सहित। २ लगातार, बराबर। ३ तेजीसे।

झराबोर (हिं॰ पु॰) झलाबोर देखो।

झरि (हिं॰ स्त्री॰) झड़ी देखो।

झरित (सं॰ त्रि॰) झर अस्त्यर्थे इतच्। १ निर्झरविशिष्ट। २ गलित, गला हुआ।

झरिया—बङ्गालके मानभूम जिलेके अन्तर्गत एक परगना और जमींदारी। इसका रकबा २०० वर्ग मीलके करीब होगा। झरियाके राजा गवर्मेण्टको वार्षिक २५६५) रुपये कर देते हैं।

झरियाकी कोयलेकी खान प्रसिद्ध है। यह खान बङ्गालके अंदर सबसे ऊँचे पार्श्वनाथ पर्वतके दक्षिणकी ओर है। गोविन्दपुरके दक्षिणसे लगा कर पूर्व-पश्चिममें प्रायः १० मील तक विस्तृत है। इस खानमें जगह जगह कोयलोंकी दुहरी तह निकलती है। नीचेकी तहके कोयला बहुत उमदा होते हैं। परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है, कि उसमें भस्मका भाग फी-सदी २.५से ४ तक है। दामोदर तथा उसकी उपनदियाँ कटरी, कड़री, छोटी कड़री और हिजरी आदि नदियाँ इस कोयलेके क्षेत्र पर हो प्रवाहित हैं। इनमेंसे अधिकांश नदियोंके किनारे पर वहाँकी जमीनकी तह नीचेसे ऊपर तक स्पष्ट दिखलाई देती हैं।

झरी (सं॰ स्त्री॰) झर, पानीका झरना, स्रोत।

झरुआ (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास।

झरोखा (हिं॰ पु॰) झंझरीदार छोटी खिड़की या मोखा जो दीवारोंमें बनी रहती है। इससे हवा और प्रकाश आदि आनेके लिये बनाते हैं।

झर्झर (सं॰ पु॰) झर्झ इत्यव्यक्तशब्दं रातीति झर्झ-रा-क। अथवा झर्झ-अर। १ वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा। २ चर्मपुटाच्छादित काष्ठस्थान, वह काठका स्थान जो चमड़ेसे मढ़ा होता है। ३ डिण्डिम, डमरू। ४ पटह, बड़ा ढोल। झर्झ्यते विद्यते इति झर्झ भर्त्से अर। ५ कलियुग। झर्झरो झर्झ शब्द इवास्त्यस्य इति अच्। ६ नदविशेष, एक नदका नाम। ७ हिरण्याक्षके एक पुत्रका नाम।

"हिरण्याक्ष सुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबल।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च।" (हरिवंश)

८ वेत्रनिर्मित दण्डविशेष, बेतकी छड़ी।

"काञ्चनोष्णीषिणस्तत्र वेत्र झर्झरपाणयः।" (भारत भी॰ ९१ अ॰)

९ पाकसाधन लौहमय पदार्थविशेष, लोहे आदिका बना हुआ झरना जिससे कड़ाहीमें पकनेवाली चीज चलाते हैं। इसके पर्याय—झल्लकी, झल्ला, झल्लरी और झर्झरी है। १० झाँझ। ११ झाँझर नामका गहना जो पैरोंमें पहना जाता है।

झर्झरक (सं० पु०) झर्झर संज्ञायां कन्। कलियुग।

झर्झरा (सं० स्त्री०) झर्झति निन्दति इति झर्झ भर्त्स्ने झर्झ-अर् स्त्रियां टाप्। १ वेश्या, रण्डी। २ जल-शब्दविशेष, पानीको आवाज। ३ तारादेवी।

झर्झरावती (सं० स्त्री०) झर्झरा अस्त्यर्थे मतुप्। मस्य वः स्त्रियां ङीप्। १ गङ्गा। २ झगटो, काटसरैया।

झर्झरिका (सं० स्त्री०) १ तारिणी, तारादेवी। २ धमसो, पापड़।

झर्झरिन् (सं० पु०) झर्झर अस्त्यर्थे इनि। शिव, महादेव। "त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वांगी झर्झरी तथा" (भारत शा० २८६ अ०)

झर्झरी (सं० स्त्री०) झर्झर गौरादित्वात् ङीष्। झर्झर वाद्यविशेष, झांझ नामक बाजा।

"गोमुखाडम्बराणाञ्च भेरीनां मुरजः सह।
झर्झरी डिण्डिमानाञ्च व्यश्रूयन्त महस्वनाः॥" (हरिवंश)

झर्झरीक (सं० पु०) झर्झर-ईकन्। १ शरीर, देह। २ देश। ३ चित्र।

झर्रा (हिं० पु०) १ बया पक्षी। २ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया।

झर्रैया (हिं० पु०) बया नामकी चिड़िया।

झल (हिं० पु०) १ दाह, जलन। २ उग्रकामना, किसी विषयकी उत्कट इच्छा। ३ सम्भोगकी कामना, कामकी इच्छा। ४ क्रोध, गुस्सा। ५ झुण्ड समूह।

झलक (हिं० स्त्री०) १ द्युति, आभा, चमक, दमक। २ प्रतिविम्ब, आकृतिका आभास।

झलकदार (हिं० वि०) जिसमें चमक दमक हो, चमकीला।

झलकना (हिं० क्रि०) १ चमकना, दमकना। २ कुछ कुछ प्रकट होना।

झलका (हिं० पु०) शरीरका वह छाला जो चलने या रगड़ लगनेसे हो गया हो।

झलकाना (हिं० क्रि०) १ चमकाना, दमकाना। २ आभास देना, दिखलाना, दरसाना।

झलकी (हिं० स्त्री०) झलक देखो।

झलज्झला (सं० स्त्री०) झलज्झल इत्यव्यक्तशब्दः अस्त्यस्य इति झलज्झल-अच्। हस्तिकर्णास्फालनजात शब्दविशेष, वह आवाज जो हाथीके कानोंके फड़फड़ानेसे निकलती है।

झलझल (हिं० स्त्री०) चमक, दमक।

झलझलाना (हिं० क्रि०) चमकना, चमचमाना।

झलझलाहट (हिं० स्त्री०) चमक, दमक।

झलना (हिं० क्रि०) १ किसी दूसरी चीजसे हवा लगना। २ हवा वा प्यार करनेके लिए कोई चीज हिलाना।

झलमल (हिं० पु०) थोड़ा प्रकाश, झलकी रोशनी।

झलमला (हिं० वि०) चमकीला, चमकता हुआ।

झलमलाना (हिं० क्रि०) १ चमचमाना। २ निकलते हुए प्रकाशका हिलना डोलना, अस्थिर ज्योति निकलना।

झलरी (सं० स्त्री०) झल-रा-ड। १ हुडुक नामका बाजा। २ झर्झर वाद्यविशेष, बजानेकी झाँझ।

झलवां-बलूचिस्तानकी कलात रियासतका एक विभाग। यह अक्षा० २५° २८′ से २८° २१′ उ० और देशा० ६५° ११′ से ६७° २७′ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २११२८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें सरवां देश, दक्षिणमें लसवेला राज्य, पूर्वमें काछी और सिन्धु तथा पश्चिममें खारां और मकरां है। सिन्धु और झलवांकी सीमा १८५३-४ ई०में निर्द्धारित हुई और १८६१-२ ई०में बांधी गई। दूसरी जगह अब भी बिना निर्द्धारित सीमा है। इस प्रदेशका दक्षिणी भाग ढालू तथा बड़े बड़े पहाड़से घिरा है। इसके पश्चिममें गर्र पहाड़, दक्षिणमें मध्य ब्राहुई पहाड़ तथा मध्यमें कई एक छोटे छोटे पहाड़ हैं जिनमेंसे दीवानजिल, हग्रतिर, शाशन और ड्राखेल प्रधान हैं। यहां सबसे बड़ी नदी हिंगोल तथा इसकी सहायक नदियां मुश्काई, अर, मूल और हब प्रवाहित हैं।

१७वीं शताब्दीमें यह प्रदेश सिन्धुके रायवंशके हाथसे अरबोंके हाथ लगा। उस समय इसका नाम तुरां था और इसकी राजधानी खुजदारमें थी। फिर गजनवियों और गोरियोंने उसे अधिकार किया। इसके पीछे मुगलोंका राज्य हुआ। चङ्गेजखांकी चट्टान उसका स्मारक है। सिन्धुमें सूमर तथा सुम्म-वंशके अभ्युत्थानके समय जाटने इस प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया, किन्तु १५वीं शताब्दीके मध्य वे मिरवारीसे मार भगाये गये। इस-

के बाद यह प्रदेश कई वर्षों तक कलातके खाँके अधीन रहा किन्तु मीर खुदादादखाँके समयमें जो लड़ाई छिड़ी थी, उसमें झलवांके बड़े बड़े दल उलझे हुए थे। युद्धमें उनके प्रधान सेनापति ताज मुहम्मदको मृत्यु हुई थी। पीछे १८६८ ई०में लासबेलाके जाममीरखाँने झलवांके लोगोंको नूर-उद्दीन् मेङ्गलके अधीन फिर भी बागी होनेको उभाड़ा। किन्तु खुजदारकी लड़ाईमें उनकी पूरी हार हुई और सात बन्दूक भी खो गईं। १८८३ ई०में जेहरीके प्रधान गौहरखाँके अधीन पुनः राजविद्रोह आरम्भ हो गया और १८८५ ई० तक चलता रहा। अन्तमें गरमापकी लड़ाईमें कलात-राज्यकी सेनाने उन्हें अच्छी तरह परास्त किया। गौहरखाँ और उसके लड़के युद्धमें मारे गये।

इस देशमें एक भी बड़ा शहर नहीं है तथा इसमें कुल २८८ ग्राम लगते हैं। यहांके अधिवासी अधिकांश ब्राहुई हैं। ये खेती तथा पशु चरा कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। बहुतसे आदमी कम्बलोंके डेरों और चटाइयोंके झोपड़ोंमें रहते हैं। लोकसंख्या प्रायः २२४०७३ है। झलवांवासियोंके बड़े सर्दार जरकजाई होते हैं। ब्राहुई भाषाका व्यवहार अधिक है। कहीं कहीं सिन्धी भी चलती है। कृषिकर्म तथा पशुपालन मात्र उद्योग है। सितम्बर मासमें बहुतसे लोग कचलो तथा सिन्धुको जाते और फसलका काम करके लौट जाते हैं। खेती अच्छी नहीं। जमीनमें बालू मिली हुई है। गोचर भूमि अधिक है। बैल छोटे और मजबूत होते हैं। भेड़ों और बकरोंकी संख्या कम नहीं। पहले यहां जस्ता गलता था।

उपत्यका तथा नदीके किनारेके आसपासकी जमीनमें फसल उपजती है। यहांको प्रधान उपज गेहूँ, धान, बाजरा, ज्वार आदि है।

इस प्रदेशमें दरी, मोटा रस्सा, थैला तथा फर्श आदि प्रस्तुत होते हैं। यहांसे घी, ऊन, जीवित भेड़ तथा चटाई बुननेके सामान आदिकी रफतनी होती है और मोटे कपड़े, चीनी, सरसोंका तेल तथा ज्वार आदिकी आमदनी होती है।

इस प्रदेशमें एक भी पक्की सड़क नहीं है। ऊँटकी राहसे लोग आते जाते हैं। अनावृष्टिके कारण यहां दुर्भिक्ष सदा पड़ता रहता है। १८९७ ई०के भयानक दुर्भिक्षमें यहांके अधिवासीको यथेष्ट कष्ट भोगना पड़ा था। यहां तक कि वे अपनी लड़कीको सिन्धु ले जा कर बेचते और जो कुछ उन्हें मिल जाता था उसीसे अपना प्राण बचाते थे।

राजपूतानेकी नाई यहां भी शिशुहत्या प्रचलित थी। ८म शताब्दीके मध्य वागोयानाके निकटवर्त्ती गुहामें बहुतसी शुष्क शिशुदेह पाई गई थीं। यहांके अधिवासी भूत प्रेत पर अधिक विश्वास करते हैं। किसीके अस्वस्थ होने पर उन्हींकी पूजा आदि करते हैं।

१९०३ ई०मे पोलिटिकल एजेण्टकी देखभालमें कलातके खाँने खुजदारमें एक देशी सहकारी इन्तजामके लिये रख दिया है। वही जिरगाओंके साहाय्यसे मामला मुकदमा करते हैं। नशाबतमें नायब रहता है। जानशीन् उसका सहकारी है। मालगुजारीमें उत्पन्न द्रव्यका चतुर्थांश वा अष्टमांश लगता है। रसूम या लवाजमात लेनेकी भी चाल है इससे राज्यकी आमदनी बहुत बढ़ जाती है। सर्दार लोग घर पीछे सालमें एक भेड़ लेते हैं। विवाह, अन्यान्य उत्सव तथा मृत्युके समय भी भेड़ लिया करते हैं। आय प्रायः ३१०००) रु० है। शान्तिरक्षाके लिये कलातके खाँ और वृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे कई हजार रुपया मिलता है। कुछ सर्दार अपने लड़के पढ़ानेके लिये अफगान मुल्ला रखते हैं। अन्यथा शिक्षाका अभाव है। जङ्गली जड़ी बूटियोंका प्रयोग इन्हें खूब मालूम है। बुखार आने पर भेड़ या बकरेका ताजा चमड़ा लपेट दिया जाता है।

झलवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेसे झलनेका काम कराना।

झलहाया (हिं० पु०) १ ईर्ष्या करनेवाला मनुष्य, डाह करनेवाला आदमी।

झला (सं० स्त्री०) झरा पृषोदर०। १ कन्या, बेटी। २ आतपोर्मि, धूप, घाम। ३ झिल्लिका, झिल्ली, झींगुर।

झलाझल (हिं० वि०) जिसमें बहुत चमक दमक हो, खूब झलमलाता हुआ।

झलाझली (हिं० वि०) चमकीला, चमकदार।

झलाबोर (हिं० पु०) १ साड़ी आदिका चौड़ा अंचल जो कलाबतूनका बुना हुआ होता है। २ कारचोबी। ३ आतिशबाजीका एक भेद। ४ चमक, दमक। (वि०) ५ चमकीला, आबदार।

झलि (सं० स्त्री०) क्रमुक, सुपारी।

झलिदा (झालदा)—१ छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत मानभूमजिलेका एक परगना। इसका क्षेत्रफल १२८०३८ वर्गमील है।

२ छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत मानभूम जिलेके झलिदा परगनेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° २२' उ० और देशा० ८५°५८' पू०में अवस्थित है। पहले यहां बन्दूक तथा उत्कृष्ट अस्त्रादि प्रस्तुत होते थे। अभी अस्त्र-आइन हो जानेसे इसका पूर्व गौरव जाता रहा। यहां एक पत्थरकी गोमूर्ति है। प्रवाद है कि पहले एक कपिला गायने पञ्चकोट-राजवंशके आदिपुरुषको अरण्यमें पालन किया था, बाद वह उसी स्थानमें पत्थर हो गई। यहां लाह तथा छूरी चक्कू बनानेका व्यवसाय अधिक होता है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ४८७७ है।

झलु—युक्तप्रदेशके बिजनौर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २९° २०' १०" उ० और देशा० ७८° १५' ३" पू० पर बिजनौर नगरसे ६ मील पूर्वमें अवस्थित है। यह शहर कृषिजात द्रव्योंके वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है।

झलोनी—युक्तप्रदेशके ललितपुर जिलेकी ललितपुर तहसीलका एक ग्राम। यह चन्देरीसे प्रायः १६ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके निकट ग्वालियरके पथ पर एक पहाड़ है, जिसके ऊपर प्रायः १८ फुट लम्बे एक खण्ड और अर्थात् शिला-फलकमें १३५१ सम्वत् (१२८४)-का लिखा हुआ देवनागरी अक्षरमें एक शिलालेख है।

झल्ल (सं० पु०-स्त्री०) झर्च्छ क्विप्, तं लाति ला-क। १ व्रात्यक्षत्रियसे उत्पन्न वर्णसंकर जाति। झाला देखो।

"झल्लो मल्लश्च राजन्यात् व्रात्यात् निच्छिविरेव च।" (मनु)

मनुने इनकी शस्त्रवृत्ति निर्देश किया है।

"झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः॥"

२ विदूषक या भाँड़। ३ ज्वाला, लपट। ४ हुडुक या पटह नामका बाजा। (स्त्री०) ५ झल्ला होनेका भाव।

झल्लक (सं० क्ली०) झर्च्छ क्विप् तं लाति ला-क अथवा झल्ल स्वार्थे कन्। कांस्यनिर्मित करताल वाद्यविशेष, काँसेका बना करताल।

"शिवागारे झल्लकञ्च सूर्यागारे च शंखकम्।
दुर्गागारे वंशिवाद्यं मधुरीञ्च न वादयेत्।" (तिथितत्व)

झल्लकण्ठ (सं० पु०-स्त्री०) झल्लो लक्षणया तत्स्वर इव कण्ठः यस्य, बहुव्रो०। पारावत, परेवा।

झल्लरा (सं० स्त्री०) झर्च्छ अरन् पृषोदरादि०। १ झर्झर वाद्यविशेष, बजानेकी झाँझ। २ हुडुक, हुडुक नामका बाजा। ३ बालककेश, छोटे छोटे लड़कोंके बाल। ४ शुद्ध। ५ क्लेद, स्वेद, पसीना। ६ बालचक्र।

झल्लरी (सं० स्त्री०) झल्लर देखो।

झल्ला (हिं० पु०) १ बड़ा टोकरा, खाँचा। २ वृष्टि, वर्षा। ३ बौछार। ४ पके हुए तमाखूके पत्तों पर पड़े हुए दाने। (वि०) ५ जो गाढ़ा न हो, जिसमें पानी बहुत मिला हो।

झल्लाना (हिं० क्रि०) बहुत चिढ़ना, खिजलाना।

झल्लिका (सं० स्त्री०) झल्ली-कं-क पृषो०। १ उद्वर्त्तनवट बदन पोंछनेका कपड़ा, अंगोछा, तौलिया। २ दीप्ति, प्रकाश। ३ द्योत, धूप। ४ उद्वर्त्तनमल, शरीरको वह मैलसे जो किसी चीजसे मलने या पोंछनेसे निकले। ५ सूर्य रश्मिका तेज, सूर्यकी किरणोंका तेज।

झल्ली (सं० स्त्री०) झल्ल-ङीष्। झर्झर वाद्य, झाँझ।

झल्लीषक (सं० क्ली०) नृत्यभेद, एक प्रकारका नाच।

'झल्लीषकन्तु स्वयमेव कृष्णः सुवंशघोषं नरदेव पार्थ।'
(हरिवंश ९८ अ०)

झल्लेलि (सं० पु०) तर्कुलासक, टेकुएकी कील।

झल्लोल (सं० पु०) झर्च्छ क्विप्, तथा भूतः मन् लोलः पृषोदरा०। झल्लेलि देखो।

झष (सं० क्ली०) झष ग्रहे अच्। १ हुड़का। २ वन। (पु०-स्त्री०) झष कर्मणि घ। ३ मत्स्य, मीन, मछली। "वंशीकलेन वडिशेन झषीरिवास्मान्।" (आनन्द-वृन्दा०) ४ मकर, मगर। "झषाणां मकरश्चास्मि।" (गीता ५ मीनराशि। ६ ताप, गरमी। ७ ग्रीष्म। ८ जलचरभेद, एक प्रकारका जलचर।

झषकेतु (सं० पु०) झषः केतुः यस्य, बहुव्री०। मदन, कन्दर्प, कामदेव।

झषनिकेत (सं० पु०) १ जलाशय। २ समुद्र।

झषराज (सं० पु०) मकर, मगर।

झषलग्न (सं० पु०) मीनराशि, मीनलग्न।

झषलोचना (सं० स्त्री०) मत्स्य अक्षि, मछलीकी आँख।

झषा (सं० स्त्री०) झष-अच्-टाप्। नागवला, गुलसकरी।

झषाङ्क (सं० पु०) झषः अङ्के यस्य, बहुव्री०। कन्दर्प, कामदेव।

झषाशन (सं० पु०-स्त्री०) झष-अश्-ल्यु। शिशुमार, सूंस।

झषोदरी (सं० स्त्री०) झषस्य उदरं उत्पत्तिस्थानतया अस्त्यस्य। मत्स्यगन्धा नामकी व्यासमाता। (त्रिका०) उपरिचर नृपके शुक्र और ब्रह्माके शापसे मत्स्ययोनि प्राप्त अद्रिका नामकी किसी अप्सराके गर्भसे मत्स्यगन्धाका जन्म हुआ था। (भारत आ० ६३ अ०)

झहनाना (हिं० क्रि०) १ झनकार शब्द करना, झनकारना।

झहराना (हिं० क्रि०) १ शिथिल हो कर झनझन शब्दके साथ गिरना। २ हिलाना। ३ झल्लाना, किटकिटाना, खिजलाना।

झा—मैथिल ब्राह्मणोंमें कई एक उपाधियां हैं जिनमेंसे एक झा है। यह शब्द उपाध्याय शब्दका अपभ्रंश रूप है। ये लोग कहीं तो झा और कहीं ओझा कहलाते हैं। कहते हैं, कि ये लोग पूर्व समयमें भूत प्रेतादि डाकिनी शाकिनीका प्रयोग वा झाड़ फुंकी करते तथा सर्प आदिके काटनेके इलाज करनेमें बड़े सिद्धहस्त थे, इसी कारण ये ओझा वा झा कहलाये।

झाऊ—भारतवर्ष और बेलुचिस्तानके मध्यवर्ती एक उपत्यका। यहांकी लोकसंख्या बहुत कम है। अधिवासिगण—बिजाञ्जु, हलदा और मिरवारि (ब्राहुइ) जातिके हैं। ये अनेक गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊँट आदिको पाल कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इस प्रदेशमें बहुत लम्बा चौड़ा जङ्गल है। यहां कृषिकार्य नहीं होता है। इस उपत्यकामें नन्दार नामका केवल एक गांव लगता है।

यहां बहुतसे मट्टीके स्तूप हैं, जिनमें प्राचीन कालकी मुद्रादि पाई जाती है। इस प्रदेशमें पहले सुसभ्य जातियोंका वास था ऐसा अनुमान किया जाती है। बहुतोंका अनुमान है, कि अलेक्सन्दर इस प्रदेशमें भी एक नगर स्थापन कर गये हैं।

झाऊ (Tamaric Indica) एक प्रकारका वृक्ष। यह वृक्ष अनेक प्रकारका होता है। कोई कोई पेड़ तो ५०।६० हाथ ऊँचा होता है और किसी किसीकी ऊंचाई जो १० हाथसे ज्यादा नहीं होती। यह वृक्ष यूरोप, अफरीका, भारतवर्ष, अरब, फारस, अफगानिस्तान, सिंहल और पूर्व उपद्वीप आदि स्थानोंमें उत्पन्न होता है। भारतके उत्तरांशमें किसी किसी जगह झाऊके पेड़ोंका जङ्गल देखनेमें आता है। यह वृक्ष सरल और क्षुद्र क्षुद्र शाखाओंसे युक्त होता है, इसके पत्ते गांठदार बालों जैसे और प्रायः एक बित्ता लम्बे (सूत जैसे) होते हैं। जरासी हवा चलते ही इसमेंसे दूरस्थ वात्याकी भांति सांय सांय शब्द होता रहता है। इसके फल प्रायः एक इंच लम्बे और नीबू जैसे होते हैं, सूख जाने पर छिलका फट कर भीतरसे बीज निकलते हैं।

यह पेड़ सब तरहकी जमीनमें पैदा होता है; नुनखरी और कंकरीली जमीनमें भी यह अच्छी तरह बढ़ता है। तालाबके किनारे और बांध आदिको मजबूत करनेके लिए तथा सरोवरके घेरको रक्षार्थ यह वृक्ष गाड़ा जाता है। इसकी लकड़ी अत्यन्त कठिन, ऊपरका असारभाग श्वेतवर्ण और सारभाग आरक्त होता है। साधारणतः हल और अन्य मोटे कामोंमें झाऊकी लकड़ी काममें आती है। इससे खटिया तथा गाड़ीके पहिये भी बनते हैं। बहुत जगह इसकी लकड़ी सिर्फ जलानेके काममें ही आती है। इसकी छोटी छोटी टहनियोंसे डालियां बनाई जाती हैं। एक प्रकारका झाऊ मरुभूमिमें बिना पानीके भी उत्पन्न होता है। पार्श्ववर्ती लोग उसकी लकड़ी जलाया करते हैं। झाऊकी लकड़ीकी भस्म अत्यन्त क्षारगुणविशिष्ट है। इसकी डाली और बीज दोनोंसे वृक्ष उत्पन्न होता है।

एक तरहका छोटा झाऊका पेड़ होता है, जिसके पत्ते चपटे पंखेकी तरहके होते हैं। यह वृक्ष देखनेमें

बड़ा सुन्दर लगता है तथा सरोवरके किनारे और बगीचोंमें शोभार्थ लगाया जाता है। और भी एक प्रकारका झाउ होता है, जिसके पत्ते ईषत् आरक्तिम, अति क्षुद्र और गुच्छवद्ध होते हैं। इस तरहके झाउको लाल झाउ कहते हैं।

एक प्रकारके झाउके कच्चे पत्ते ईषत् लवणाक्त होते हैं। मुलतानके आसपासके दरिद्रगण नमकके बदले इसके पत्तोंके पानीसे रोटी बनाते हैं।

बहुतसे झाउ-वृक्षोंकी डालियोंमें एक प्रकारके कीड़े रह कर फलकी तरह गुटिका उत्पन्न करते हैं। ये गुटिकायें माजूफलके समान और तिक्तगुणसम्पन्न होती हैं। इस वृक्षकी छाल भी दोनों ही चीजें वस्त्रादि रंगने और चमड़ा साफ करनेके काममें आती हैं। सङ्कोचक और बलकारक औषधरूपमें इनका व्यवहार होता है। स्थानीय क्षतादि धोनेके लिए इसका पानी कभी कभी अत्यन्त लाभकारी होता है। समय समय पर इस कार्यके लिए पत्ते भी व्यवहृत होते हैं।

इसका गोंद किसी काममें नहीं आता। अरब देशके सिनाई पर्वत पर एक प्रकारका झाउ होता है, जिस पर कभी कभी सफेद कण लगते हैं। ये कण वृक्षस्थ प्रकोष्ठमें उत्पन्न होते हैं। सिन्धु आदि अनेक प्रदेशोंमें झाउ वृक्षके एक पदार्थसे एक प्रकारका मिष्टरस बना करता है।

झाँई (हिं० स्त्री०) १ प्रतिबिम्ब, छाया, परछाईं। २ छल, धोखा। ३ अँधेरा, अन्धकार। ४ प्रतिशब्द, लौटी हुई आवाज। ५ रक्तविकारसे मनुष्योंके मुख पर होनेवाले एक प्रकारके हलके काले धब्बे।

झाँई झाँई (हिं० स्त्री०) छोटे छोटे लड़कोंका एक खेल।

झाक (हिं० स्त्री०) ताकनेकी क्रिया या भाव।

झाँकना (हिं० क्रि०) १ आड़मेंसे मुँह निकाल कर देखना। २ इधर उधर झुक कर देखना।

झाँकर (हिं० पु०) झंखाड़ देखो।

झाँका (हिं० पु०) १ जालीदार खोचा। २ झरोखा।

झाँकी (हिं० स्त्री०) १ अवलोकन, दर्शन। २ दृश्य, वह जो देखा जाय। ३ झरोखा, खिड़की।

झाँख (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा जंगली हिरन।

झाँखना (हिं० क्रि०) झीखना देखो।

झाँखर (हिं० पु०) १ झंखाड़। २ अरहर फसल काटनेके बाद खेतमें लगी हुई खूँटी।

झाँगला (हिं० वि०) ढीलाढाला।

झाँजन (हिं० स्त्री०) झांझन देखो।

झाँजी—आसामकी एक नदी। यह नागा पर्वतके मोकोकचुङ्ग स्थानके निकट निकल शिवसागर जिलेके उत्तरमें बहती हुई ब्रह्मपुत्रमें जा गिरती है। इसकी पूरी लम्बाई ७१ मील है। शिवसागर और जोरहाट विभागोंकी झाँजी सीमा जैसी है। ग्रीष्म ऋतुमें यह सूख जाती है। उतारेके ४ घाट हैं। इस पर आसाम-बङ्गाल-रेलवेका पुल बंधा है।

झाँझ (हिं० स्त्री०) १ काँसेके ढले हुए दो तश्तरियोंके आकार टुकड़ोंका जोड़ा। यह टुकड़ा मजीरेकी तरहका होता है किन्तु आकारमें उससे बहुत बड़ा होता है। टुकड़ोंके बीचमें उभार होता है और इसी उभारमें डोरी पिरोनेके लिये एक छेद रहता है। यह पूजन आदिके समय घड़ियालों और शंखोंके साथ बजाया जाता है। २ क्रोध, गुस्सा। ३ पाजीपन, शरारत। ४ किसी दुष्ट मनोविकारका आवेग। ५ शुष्क सरोवर, सूखा तालाब। ६ विषयकी कामना, भोगकी इच्छा।

झाँझन (हिं० स्त्री०) स्त्रियों और बच्चोंका एक गहना। यह कड़ेकी तरह पैरोंमें पहना जाता है। यह खोखला होता है और झनझन आवाज हो, इस लिये इसमें कंकड़ियां भरी रहती हैं। कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदिको भी शोभा और झन्झन् शब्द होनेके लिये पीतल या ताँबेकी झाँझन पहनाते हैं, पैंजनी, पायल।

झाँझर (हिं० वि०) १ जर्जर, पुराना, छिन्नभिन्न, फटा टूटा। २ छिद्रयुक्त, छेदवाला।

झाँझरी (हिं० स्त्री०) १ झाँझ नामका बाजा, झाल। २ झाँझन नामक पैरका गहना।

झाँझा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कीड़ा। यह बढ़ी हुई फसलके पत्तोंको बीच बीचमेंसे खा कर फसलको बरबाद कर देता है। इसके कई भेद हैं। इस तरहका कीड़ा सदा तमाकू या मूंगफलीके पत्तों पर देखा जाता है। २ भांगकी फंकी जो घी और चीनीके साथ भूनी हो। ३ झंझट, बखेड़ा।

झाँझिया (हिं० पु०) वह मनुष्य जो झाँझ बजाता हो।

झाँट (हिं० स्त्री०) १ वह बाल जो पुरुष या स्त्रीके मूत्रेन्द्रिय पर होते हैं, पशम। २ क्षुद्रवस्तु, बहुत तुच्छ चीज।

झाँप (हिं० स्त्री०) १ कोई चीज ढाँकनेकी वस्तु। २ एक प्रकारकी लोहेकी बनी हुई काल जिससे पड़ी हुई चीजें निकाली जाती है। ३ नींद, झपकी। ४ पर्दा, चिक। (पु०) ५ लम्फन, उछल कूद।

झाँपना (हिं० क्रि०) १ आवरण डालना, ढाँकना। २ लज्जित करना, लजाना, शरमाना।

झाँपी (हिं० स्त्री०) १ खञ्जनपक्षी, धोबिन चिड़िया। २ पुंश्चली, छिनाल स्त्री।

झाँवना (हिं० क्रि०) झाँवेसे रगड़ कर धोना।

झाँवर (हिं० स्त्री०) १ गहरी जमीन जहां पानी ठहरा रहे, नीची भूमि, ऊबर। (वि०) २ मलिन, मैला। ३ कुम्हलाया हुआ, मुरझाया हुआ। ४ शिथिल, मन्द, सुस्त।

झाँवली (हिं० स्त्री०) १ झलक। २ आँखकी कनखी।

झाँवाँ (हिं० पु०) आगसे जल कर काली हो गई हुई ईंट। इससे रगड़ कर चीजोंकी मैल छुड़ाते हैं।

झाँसना (हिं० क्रि०) १ ठगना, धोखा देना। २ स्त्रीको व्यभिचारमें प्रवृत्त करना, औरतको फँसाना।

झाँसा (हिं० पु०) छल, धोखावाजी, दमबुत्ता।

झाँसिया (हिं० पु०) धोखेबाज, झाँसा देनेवाला।

झाँसी (हिं० पु०) दाल और तमाखूकी फसलको हानि पहुँचानेवाला एक प्रकारका गुबरैला।

झाँसी—१ युक्तप्रदेशके कमिश्नरके शासनाधीन एक विभाग। इस विभागमें झाँसी, जलाउं और ललितपुर ये तीनों जिले लगते हैं। यह अक्षा० २४° ११' से २६° २६' उ० और देशा० ७८° १४' से ७९° ५५' पू०में पड़ता है, इस विभागका एक विस्तीर्ण अंश बुन्देलखण्डके नामसे विख्यात है।

यहांका भूपरिमाण ४९८२०६ वर्गमील है, जिसमें सिर्फ २१४९ वर्गमीलमें खेती होती है, इसमें कुल १२ नगर हैं। इस विभागके अधिवासिगण प्रायः सभी हिन्दु हैं। चमार जातिकी संख्या सबसे अधिक है। अन्यान्य जातियोंमें काछी, लोधी अहीर, कोइरी, कुर्मी, बनिया, तेली और नाई हो हैं।

उक्त नगरोंमें माउ, कालपी और ललितपुर ये प्रधान हैं। इस विभागमें ३१ दीवानी और कलेक्टरी तथा ३२ फौजदारी अदालतें हैं।

२ युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागमें कमिश्नरके शासनाधीन एक जिला। यह अक्षा० २४° ११' से २५° ५०' उ० और देशा० ७८° १०' से ७९° २५' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३६८८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें ग्वालियर और सामठर राज्य तथा जलाउं जिला, पूर्वमें धसान नदी और नदीके उस पार हमीरपुर जिला, दक्षिणमें ललितपुर और ओरछा राज्य तथा पश्चिममें दतिया, ग्वालियर और खनियाधान राज्य है।

इधर एक ओर बहुतसे देशीयराज्य और जागीर हैं। उनमेंसे दो चार ग्राम जिलेमें पड़ गये हैं और फिर दूसरी ओर जिलेके अंगरेज शासनाधीन दो एक ग्राम देशीय राज्यके चारों ओर हैं। इसी कारण यहां बहुधा दुर्भिक्षके समय शासनकार्यमें बड़ी अड़चनें आ पड़ती हैं। प्राचीन झाँसी नगर अभी ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत है। प्राचीन झाँसीके निकट झाँसी नवाबाद नामक स्थानमें जिलेकी अदालत इत्यादि अवस्थित हैं। माउनगरमें सबसे अधिक मनुष्योंका वास है।

बुन्देलखण्डके पार्वत्य प्रदेशका एक अंश ले कर झाँसी जिला संगठित है। इसके दक्षिण भागमें विन्ध्यश्रेणीकी प्रान्तस्थित अनुच्च पर्वतश्रेणी है, जो उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिम तक फैली हुई है। उसकी उपत्यका हो कर बहुतसी नदियां द्रुतवेगसे उत्तरकी ओर यमुनामें जा गिरि हैं। पर्वतके शिखर पर एक भी बड़ा वृक्ष देखनेमें नहीं आता है। अधित्यका प्रदेश तृणादिसे परिपूर्ण है और उसके नीचे बड़े बड़े वृक्ष लगे हैं। करार दुर्ग सबसे ऊँचे पहाड़ पर अवस्थित है।

उत्तरभागकी भूमि प्रायः समतल है, कहीं कहीं पहाड़ और जलप्रवाह होनेसे ऊँची नीची हो गई है। जगह जगह गहरे गड्ढे दीख पड़ते हैं। इन छोटे छोटे पहाड़ोंके ऊपर बहुतसे बड़े बड़े सरोवर बने हैं, जिनके तीन ओर बहुत ऊँचे पहाड़ हैं और एक ओर पक्की

चुनाई है। इन सरोवरोंमेंसे अधिकांश ८०० वर्ष पहले महोवाके चन्देल राजाओंके शासनकालमें और कुछ १७वीं या १८वींमें बुन्देला राजाओं द्वारा बने हैं। झाँसीसे प्रायः १२ मील पूर्व अजर सरोवर और उससेभी ८ मील पूर्व कचनेया सरोवर है।

झाँसीके उत्तर भागकी भूमि समतल और कृष्णवर्ण है। यह भूमि मार नामसे मशहूर है और उसमें कपास अच्छी उपजती है। पाहुज, बेतवा (वेत्रवती) और धसान नामकी तीन नदियां झाँसीको प्रायः घेरी हुई हैं। वर्षाके समय उन नदियोंमें बाढ़ आ जानेसे झाँसीके अन्यान्य स्थानोंमें आना जाना बन्द हो जाता है। गवर्मेण्टसे रक्षित जङ्गलका परिमाण ७०००० बीघा है। झाँसी परगनेके दक्षिण भागमें वेत्रवती नदीके किनारे घने जङ्गलमें शीमवरगीके योग्य बड़े बड़े वृक्ष हैं, इसके सिवा खैर, पलाश आदिके वृक्षभी पाये जाते हैं। शीम वरगीके अतिरिक्त घास बेच कर भी गवर्मेण्टको यथेष्ट आमदनी होती है। जङ्गलमें बाघ, चीता, लकड़बग्घा, भिन्न भिन्न जातिके हिरन, जङ्गली कुत्ते आदि रहते हैं।

इतिहास—बहुतोंका अनुमान है कि परिहार राजपूतोंने ही सबसे पहले झाँसीमें राज्यस्थापन किया। उसके पहले यह आदिम असभ्य जातिका वासस्थान था। आज भी परिहारगण झाँसीके २४ ग्राम दखल किये हुए हैं। किन्तु उनका स्पष्ट विवरण कुछ भी मालूम नहीं है। चन्देलवंशीय राजाओंके राजत्वकालसे झाँसीका विवरण कुछ कुछ स्पष्ट है। चन्द्रात्रेय देखो। इनके राजत्वकालमें ही झाँसीके पर्वत पर वर्तमान बड़े सरोवर खोदे गये थे। चन्देलराजवंशके बाद उनके अधीनस्थ खाङ्गरोंने राज्य अधिकार किया। इन्होंने ही करारदुर्ग बनाया था। १४वीं शताब्दीमें बुन्देला नामक निम्नश्रेणीस्थ राजपूत जातिके एक दलने इस प्रदेश पर अधिकार कर माउनगरमें अपनी राजधानी स्थापित की। क्रमशः उन्होंने करार अधिकार कर अपने नाम पर अभिहित वर्तमान समग्र बुन्देलखण्डमें राज्य फैलाया। बुन्देलावीर रुद्रप्रतापने ओरछा नगर स्थापन कर वहां राजधानी कायम की। वर्तमान अधिकांश सम्भ्रान्त बुन्देला अपनेको रुद्रप्रतापके वंशधर बतलाते हैं। रुद्रप्रतापके परवर्त्ती राजगण समय समय पर दिल्ली सरकारको कर देने पर भी एक तरह स्वाधीनभावसे राज्य करते थे।

१७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ओरछाके राजा वीरसिंहने झाँसीका दुर्ग निर्माण किया। इन्होंने सलीमकी प्ररोचनासे सम्राट् अकबरके विश्वस्त मन्त्री और प्रसिद्ध ऐतिहासिक अबुलफजलका प्राणनाश किया, इसीसे वे अकबरके कोपानलमें आ पड़े।

१६०२ ई०में वीरसिंहको दमन करनेके लिये एकदल सैन्य भेजी गई। सैनिकोंने उस प्रदेशको तहस नहस कर डाला, वीरसिंह प्राण ले कर भाग चले। इसके बाद उनके प्रभु युवराज सलीम जहांगीरका नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे। उन्होंने पुनः अपना राज्य प्राप्त किया। १६२७ ई०में शाहजहांके सम्राट् होने पर वीरसिंह विद्रोही हुए, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। सम्राट्ने वीरसिंहको क्षमा कर, उन्हें फिर पूर्व पद पर स्थायी कर तो दिया, पर उनको पहलेकी तरह क्षमता और स्वाधीनता न दी। इसके बाद वहां भयानक विशृङ्खला उपस्थित हुई। ओरछा राज्य कभी तो मुसलमानोंके हाथ, कभी बुन्देला-सर्दार चम्परायके और कभी उसके पुत्र छत्रशालके हाथ लगता था। अन्तमें १७०७ ई०को बुन्देला महावीर छत्रशालको सम्राट् बहादुरशाहसे वर्तमान झाँसी तथा निजाधिकृत समस्त भूभाग दखल करनेकी अनुमति मिल गई। किन्तु तिस पर भी मुसलमान सुबादारोंने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करना न छोड़ा। आक्रमणसे बार बार तंग हो जाने पर छत्रशालने १७३२ ई०में पेशवा बाजीरावसे चालित महाराष्ट्रोंकी सहायता प्रार्थना की। इस समय महाराष्ट्रीयगण मध्यप्रदेश पर आक्रमण कर रहे थे। छत्रशालका प्रस्ताव सुन कर उसी समय उन्होंने बुन्देलखण्डकी यात्रा की। युद्धके समाप्त होने पर छत्रशालने पुरस्कार स्वरूप अपने राज्यका एक तृतीयांश महाराष्ट्रोंको प्रदान किया। १७४२ ई०में महाराष्ट्रोंने एक प्रपञ्च रचा, जिससे ओरछा राज्य पर आक्रमण कर उन्होंने अन्यान्य प्रदेशोंके साथ उसे भी अपने राज्यमें मिला लिया। उनके सेनापतिने झाँसी नगर स्थापन किया और ओरछासे अधिवासियोंको ला वहां बसा दिया।

इसके बाद प्राय: ३० वर्ष तक झाँसी प्रदेश महाराष्ट्र-पेशवाके अधीन रहा। इसके बाद सुबादारगण एक तरह स्वाधीन भावसे शासन करने लगे। सुबादार शिवरावके राजत्वकालमें अंगरेजोंने उनके साथ १८०४ ई०को एक सन्धि स्थापन कर साम्राज्य दान अङ्गीकार किया। १८१४ ई०में शिवरावकी मृत्युके बाद उनके पौत्र रामचंद राव सुबादार हुए। इस समय पेशवाने समस्त बुन्देलखण्डका अधिकार अंगरेजोंको अर्पण किया। अंगरेज गवर्मेण्टने रामचन्द्र रावका राज्य अचल रक्खा। १८३२ ई०में रामचन्द्र रावको सुबेदारकी जगह राजाकी उपाधि दी गई। किन्तु रामचन्द्र अपना पद अक्षुस रख न सके। उनका राजस्व घटने लगा और विपक्ष-सेना कई जगहमें लूट मार करने लगीं। १८३५ ई०में निःसन्तान रामचन्द्रकी मृत्युके बाद चार राजाओंने राज्य पानेका दावा किया। अंगरेज गवर्मेण्टने रामचन्द्रके चाचा और शिवरावके दूसरे पुत्र रघुनाथरावको राज्य सिंहासन पर आरूढ़ किया। इनके समयमें राजस्व और भी कम हो कर पूर्ववर्ती राजाके समयका ¼ एक चतुर्थांश रह गया। इन्होंने विलासिता और अमिताचारिताके दोषसे राज्यका अनेकांश ग्वालियर और ओरछा राजाके यहाँ बन्धक रक्खा। ये १८३८ ई०में बहुत ऋण रख कर परलोकको सिधारे।

रघुनाथके कोई प्रकृत उत्तराधिकारी न थे। चार मनुष्योंने राज्य पानेका दावा किया। अंगरेज गवर्मेण्टने कमिशन द्वारा शिवरावके एकमात्र वंशधर पूर्व राजाके भाई गङ्गाधररावको राज्य प्रदान किया। इसके पहले बुन्देलखण्डकी पोलिटिकल एजेन्सीने झाँसीका शासन-भार ग्रहण किया था। गङ्गाधररावके राजा होनेके बाद भी राजकार्यमें विशृङ्खला होनेके डरसे वृटिश एजेन्सी द्वारा वहाँका शासनकार्य चलने लगा और राजा निर्दिष्ट वृत्ति पाने लगे। अंगरेज शासनमें इसका राजस्व शीघ्रही दुगुना बढ़ गया। १८४८ ई०में गवर्मेण्टने गङ्गाधरको राज्यभार प्रदान किया था। गङ्गाधर बहुत दक्षतासे राजस्वादि वसूल कर तथा पहलेसे कुछ कर घटा कर राज्य-शासन करने लगे। वे प्रजाके प्रिय थे। १८५३ ई०में गङ्गाधरने निःसन्तान अवस्थामें प्राणत्याग किया। झाँसी प्रदेश अंगरेज राज्यभुक्त हुआ और जलाऊं तथा चंदेरी जिलेके साथ एक सुपरिण्टेण्डेण्ट द्वारा शासित होने लगा। मृत गङ्गाधरकी स्त्री झाँसीकी रानीको एक वृत्ति निर्दिष्ट कर दी गई। किन्तु रानी कई एक कारणोंसे अंगरेज पर नाखुश हो गईं। पहले उन्हें दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका अधिकार न मिला, दूसरे अपने राज्यमें गोहत्या होती देख वे क्रोधसे अधीर हो उठीं। उन्होंने गोहत्या और अन्यान्य धर्मविरुद्ध व्यापारोंकी चर्चा चारों ओर प्रचार कर हिन्दुओंको उत्तेजित किया।

१८५७ ई०के विद्रोहमें झाँसी जिला भी शामिल हो गया। ५ जूनको बारह पदातिक सैन्यदलोंमेंसे बहुतोंने सहसा विद्रोही हो कर गोली, बारूद और अर्थभाण्डारादि पर अधिकार जमाया। बहुतसे अङ्गरेज कर्मचारी मारे गये। प्रायः ६६ अङ्गरेजोंने एक दुर्गमें आश्रय लिया, किन्तु अन्तमें वे आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए। इन हतभाग्योंने सिपाहियोंका गङ्गाजल और कुरान स्पर्श कर शपथपूर्वक अभयदानमें जीवनकी आशा की थी, किन्तु वे सबके सब मार डाले गये। झाँसीकी रानीने विद्रोहियोंकी नेत्री होनेकी आकांक्षा की, किन्तु अन्यान्य विद्रोही सर्दारगण इसमें सहमत न हुए, अत: आपसमें विवाद शुरू हो गया। ओरछाके सर्दारोंने झाँसी पर आक्रमण कर उसे छिन्न भिन्न कर डाला। बहुतसे अधिवासियोंने अन्नके अभावसे निराश हो कर प्राणत्याग किया। इस समय विस्तीर्ण जनपद ऐसा विध्वंश हो गया था कि बहुत समयके बाद कुछ कुछ इसकी क्षति पूर्ति हुई थी। सर ह्यू रोज (Sir Hugh-Rose)ने १८५८ ई०के ५ अप्रेलको झाँसी अधिकार किया और कालपीको ओर यात्रा की। उनके जानेके बाद पुनः विद्रोह उपस्थित हुआ। अन्तमें ११ अगस्तको कर्नेल लीडेल (Colonel Liddel)-से परिचालित सैन्यने विद्रोहियोंको मार भगाया। इसके बाद और बहुतसी छोटी छोटी लड़ाइयाँ हुईं। अन्तमें नवम्बर मासको शान्ति स्थापित हो गई। इसी बीच झाँसीकी रानी तांतियातोपीके साथ भाग गई थीं। ग्वालियरके गिरिदुर्गके पास वे लड़ाईमें परास्त हुईं। झाँसीकी रानी देखो। तभीसे झाँसी जिला अङ्गरेजोंके अधीन था रहा है। दुर्भिक्ष या बाढ़ आदि

दैव दुर्घटनाके सिवा और किसी प्रकारका विप्लव नहीं हुआ है।

झाँसीमें दैवी और मानवी आपदका समान उपद्रव है। कभी दीर्घकालव्यापी अनावृष्टि, कभी मुषलधारकी वृष्टि देशको उत्पन्न कर रही है। इससे भी बढ़ कर इसके पूर्ववर्ती महाराष्ट्र और अन्यान्य राजगण ऐसी निष्ठुरताके साथ प्रजासे कर वसूल करते थे कि वे बहुत मुश्किलसे जीविका निर्वाह कर सकती थी और पुनः राष्ट्रविप्लवसे देश तहसनहस हो जाता था। १८५३ ई०में जब यह जिला अंगरेजके अधीन आया, तब यहाँके अधिकांश अधिवासी अत्यन्त दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त थे। सभी गृहस्थ महाजनोंके ऋणजालमें फँसे हुए थे। हिन्दुराजाओंके नियमानुसार पिताका ऋण पुत्रको देना पड़ता था, किन्तु ऋण अदा नहीं होने पर महाजन ऋणीकी भूसम्पत्ति नहीं ले सकते थे। अङ्गरेज शासनके साथ जमीन नीलामकी प्रथा प्रवर्तित होनेसे अधिवासियोंकी दुर्दशा और भी अधिक बढ़ गई। फिर उसके बाद ही १८५७-५८ ई०के विद्रोहमें दुर्दशा अन्तिम सीमा तक पहुंच गई थी। दुर्भिक्ष और बाढ़की घटना भी जारी ही थी। अन्तमें गवर्मेण्टने झाँसी जिलेको इस तरह नितान्त दरिद्र देख कर प्रजाके हितार्थ १८८२ ई०में वहाँ एक नया कानून प्रचलित किया। ऋणग्रस्त प्रजाको सर्वस्वान्तसे रक्षा करनाही इस कानूनका उद्देश्य था। अधिकांश गृहस्थ ऋण परिशोधमें असमर्थ हो गये थे। ऐसे समयमें उन लोगोंसे केवल मूलधनही ले लिया जाता अथवा सूद कमा दिया जाता अथवा बिना कुछ लिये ही उन्हें मुक्त कर देते थे। इस कामके लिये एक पृथक् जज नियुक्त हुए। इसके सिवा असहाय दिवालिया प्रजाको गवर्मेण्ट कम सूदमें रुपया कर्ज देने लगी। किन्तु जब पुनः ऋण शोधका कोई उपाय नहीं देखा जाता तब गवर्मेण्ट उस प्रजाकी सम्पत्ति खरीदने लगी। इस नियमसे प्रजाका बहुत उपकार होने लगा। इसके अतिरिक्त यहाँ गवर्मेण्टका प्राप्य राजस्व और दूसरे स्थानोंसे बहुत कम है।

सिर्फ ललितपुरको छोड़ कर इस झाँसी जिलेके समान अल्प अधिवासीयुक्त जिला युक्तप्रदेशमें दूसरा नहीं है। अङ्गरेज शासनके आरम्भसे यहाँकी जनसंख्या बढ़ रही थी, किन्तु कई एक दुर्भिक्षसे उनमेंसे अनेक परलोकको चल बसे। १८६५ ई०से ले कर १८७२ ई० तक इन आठ वर्षोंमें प्रायः ३८६१६ मनुष्य कम गये अर्थात् लोकसंख्या ३५७४४२ से ३१७८२६ हो गई। इसके बादसे लोकसंख्या क्रमशः बढ़ रही है। आजकल लोकसंख्या प्रायः ६१६७५८ है। पूर्व राजाओंके अधिक करके बोझसे, १८५७-५८ ई०के विद्रोही सिपाहियोंके उत्पीड़नसे तथा बाढ़ दुर्भिक्ष, देशव्यापी महामारी आदि विपदसे अधिकांश लोग प्राणत्याग करने लगे और जो कुछ बचे वे देश छोड़ने लगे थे। १८३२ ई०में झाँसीका क्षेत्रफल प्रायः २८२२ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २८६००० थी। १८८१ ई०में इसका क्षेत्रफल अधिक कम अर्थात् १५६७ वर्गमील होने पर भी लोकसंख्या पहलेसे बढ़ रही है। झाँसीके प्रायः सभी अधिवासी हिन्दू हैं। सैकड़े पीछे चार मुसलमान हैं। पशुहत्या अधिवासियोंके लिये बहुत ही विरक्तिकर है। जैन और सिक्खोंकी संख्या सबसे कम है। इसके सिवा पारसी और आर्यसमाजी दो चार वास करते हैं। समय समय पर बहुतसी ईसाई सैन्य तथा कर्मचारी आदि यहाँ आ कर रहते हैं। अधिवासी हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंकी संख्या चमार छोड़ कर और सब जातियोंसे अधिक है। इसके सिवा राजपूत, कायस्थ, बनिया, काछी, कुर्मी, अहीर, कोहरी, लोधी आदि जातियोंकी संख्या भी कम नहीं है। आदिम असभ्य जाति भी यहां रहती है। १०७ ग्रामोंमें अहीर, १०२में ब्राह्मण, ६६में राजपूत, ६८में लोधी, ४४में कुर्मी और ७ ग्राममें काछी रहते हैं। राजपूतोंमेंसे अधिकांश बुन्देला जातिके हैं। अनेक नीच और असभ्य जाति निम्नश्रेणीके शूद्र कहलाते हैं। झाँसी जिलेके माउ, रानीपुर, गुड़सराय, बड़वासागर और भाण्डेर प्रभृति पांच नगरोंमें पांच हजारसे अधिक वास है। झाँसी, नौआबाद नगरमें जिलेकी अदालत, सेनाकी छावनी और म्युनिसपालिटी रहने पर भी यहाँकी लोकसंख्या २०००से अधिक नहीं है।

कृषि—झाँसीकी भूमि स्वभावतः अनुर्वर है। वृष्टिके अभाव तथा खाड़ी द्वारा कृत्रिम उपायसे जल सींचनेकी असुविधा होनेसे यहाँ अच्छी फसल नहीं लगती है। जब कभी जलका अच्छा प्रबन्ध रहता है तभी

अनाज उपज जाता है। थोड़ीसी हानि होनेसे अधिवासियोंको अन्नका कष्ट होता है। प्रायः अधिक समय ही उन्हें अन्नकष्ट भोगना पड़ता है। रब्बीमें गेहूं, जौ, चना, उर्द और सरसों प्रधान है। शरत् कालमें ज्वार, बाजरा, तिल, कपास और कोदो उत्पन्न होता है। इसके सिवा लाल रंगको छींट बनानेके लिये आलकी पौधेकी जड़ बहुत होती है। यही जड़ यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है और यह सबसे अच्छी जमीनमें उपजती है। मऊरानीपुरका विख्यात खारुआँ इस आलसे रंगा जाता है। झाँसी और बुन्देलखण्डमें बहुत जगह किसान लोग इसी आलको बेच कर मालगुजारी देते हैं और बहुत जगह आलके बदलेमें अनाज खरीद कर अपनी जीविकानिर्वाह करते हैं। अनेक समय शस्यक्षेत्रमें घासके हो जानेसे अनाजमें बहुत नुकसान पहुँचता है। सम्प्रति बहुत कष्टसे वह घास निर्मूल कर दी गई है। झाँसीके उत्पन्न शस्यसे वहांका निर्वाह भलीभाँति नहीं होता है, तौभी सुवृष्टि होनेसे कभी कभी बहुत अनाजकी रफतनी यहांसे होती है।

यहाँ जलसिञ्चनका प्रबन्ध अच्छा नहीं है। पहले जिन बड़े बड़े सरोवरों या कृत्रिम ह्रदका विषय वर्णन हो चुका है, उनमेंसे अधिकांश संस्कारके अभावसे अकर्मण्य हो गया है तथा बहुत थोड़े स्थानोंमें उनका जल पहुँचता है। जो कुछ हो, आजकल गवर्मेण्टने उक्त सरोवरोंका संस्कार तथा झाड़ी इत्यादि खोदनेका अच्छा प्रबन्ध कर दिया है। यहाँके कृषक मात्र ही दरिद्र हैं, एक बार फसलके नहीं होनेसे ही उनका सर्वनाश हो जाता है। तब उन्हें महाजनसे ऋण लेनेके सिवा और कोई उपाय नहीं रहता है। बेतवा और धसान इन दो नदियोंके मध्यवर्ती प्रदेशमें प्रायः अनावृष्टि हुआ करती है, सुतरां वहाँके कृषकोंकी अवस्था शोचनीय है, ऋणके सिवा उन्हें दूसरा कोई उपाय नहीं रहता है। अंगरेजी शासनकर्त्तागण पहले पूर्ववर्ती राजाओंकी नाईं बड़ी निष्ठुरतासे कर वसूल करते थे, बाद प्रजाकी प्रकृत अवस्था देख कर गवर्मेण्ट अब उदार हो गई है। अभी यहांका राजस्व अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा बहुत कम है।

झाँसीमें दैवविड़म्बना अधिक है, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, बाढ़, महामारी आदिका प्रकोप कम नहीं है। दुर्भिक्ष प्रायः पाँच वर्षके बाद नहीं रहता है। सरकारके रिपोर्टसे मालूम होता है, कि अच्छे वर्षोंमें झाँसीमें जितना अनाज उत्पन्न होता है, उससे वहाँके अधिवासियोंका केवल दश मास तक खर्च चलता है।

१७८३, १८३३, १८३७, १८४७, १८६८ ई०में यहां भीषण दुर्भिक्ष हो गया है। गवर्मेण्ट दुर्भिक्षके समय साहाय्यदानार्थ कर्म (Relief-work) खोल कर तथा भिन्न भिन्न स्थानोंसे शस्यादि रफतनी कर प्रजाका दुःख दूर करती हैं। देशीय राज्यके शासनभुक्त अनेक ग्राम झाँसीकी सीमामें रहनेसे रिलिफ कार्यमें विशेष विशृङ्खला होती है।

वाणिज्य—झाँसीसे अनाजकी रफतनी नहीं होती वरन दूसरे दूसरे देशोंसे ही आमदनी होती है। उसके बदले झाँसीसे कपास और आल रंग दूसरे स्थानमें भेजा जाता है। शिल्पद्रव्यादि यहाँ नहींके बराबर है, केवल खारुआँ नामक लाल कपड़ा यहाँ बहुत तैयार होता है। झाँसीसे कालपी होते हुए कानपुर जानेकी पक्की सड़क है और नदी प्रभृतिके ऊपर पुल द्वारा सुगम पथ हैं। अन्यान्य राहें बाढ़के समय जानेके योग्य नहीं रहती हैं।

शासन—इण्डियन सिविल सर्भिसके सदस्य तथा एक सहकारी डिपुटी कलेक्टर द्वारा शासन-कार्य चलाया जाता है। इनके सिवा कलेक्टर, ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेट और तीन डिपुटी कलेक्टर भी हैं। वन विभागके जो कर्मचारी हैं उन्हींके हाथ बुन्देलखण्डके वनका भी इन्तजाम है। दीवानी अदालतमें दो डिष्ट्रिक्ट मुन्सिफ और एक सब-जज हैं। यहां १० फौजदारी और १० दीवानी अदालतें हैं। इसके सिवा पुलिस चौकीदार इत्यादिकी संख्या प्रायः १३०० है। जिलेके सदरमें एक जेल है और माऊ नगरमें एक हाजत है। अधिकांश कैदी चोरीके अपराधमें बन्दी हैं।

यहां विद्याशिक्षाकी सुव्यवस्था नहीं है। १८६० ई०के बाद उन्नतिके बदले इसका अवनति हो रहा रही है। बहुतसे विद्यालय उठ गये हैं।

यह जिला ६ तहसीलमें विभक्त है। इसमें दो म्युनिस-

पालिटी लगती हैं, एक मऊ-रानीपुरमें और दूसरी झाँसी-नयाबाद नगरमें।

जिलेका सदर झाँसीनयाबाद है जो प्राचीन झाँसी नगरके बहुत समीपमें अवस्थित है। यह प्राचीन नगर ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत है और झाँसीनयाबादसे प्राय: ११ गुना बड़ा है। इसी कारण नये नगरको बहुत असुविधा हुआ करती है। झाँसी जिलेके छिन्न विच्छिन्न तथा भिन्न भिन्न शासनाधिकृत प्रदेशोंको अदल बदल कर जिलेके अन्तर्गत एक टावमें लानेकी अनेक बार कल्पना हो चुकी है। किन्तु आज तक उसका कोई परिणाम नहीं निकला है।

अनावृष्टि, वृक्षलताशून्य पर्वत और मरु प्रदेशका ताप विकीरणके लिए झाँसी जिलेकी वायु साधारणत: उष्ण और शुष्क है। किन्तु इसकी अबहवा जहाँ तक स्वास्थ्य-कर हो मालूम पड़ती है। वर्षका तापांश फारेनहीटका ८०८° है।

१८८१ ई० तक गत २० वर्षका वार्षिक वृष्टिपात ३५.२४ इंच है। दूसरे वर्ष ५०.८५ इंच वृष्टिपात हुआ है। अधिवासीगण अन्नके अभावसे दुर्बल है, सुतरां सामान्य पीड़ा होनेसे ही कातर हो जाते और प्राणत्याग कर देते हैं। मऊ-रानीपुर और झाँस-नीयाबादमें दो दातव्य चिकित्सालय है।

२ युक्तप्रदेशान्तर्गत झाँसी जिलेके पश्चिम भागकी एक तहसील। यह अक्षा० २५°८' से २५°३७' उ० और देशा० ७८° १८' से ७८° ५३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४८८ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: १४५३७१ है। इसमें २१० ग्राम और झाँसी जिले और तहसीलका सदर तथा बरवा सागर नामके तीन शहर लगते हैं। इसके पर्वतमय भूभाग पर कहीं कहीं पार्श्ववर्ती राजाओंकी ग्रामावली विच्छिन्न और विशृङ्खला भावसे विराजित है। प्राय: १८६ वर्गमील भूमिमें शस्यादि उपजते हैं। इस तहसीलमें १ दीवानी अदालत और ११ थाने हैं।

झाँसीकी रानी (लक्ष्मीबाई)—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत झाँसी राज्यके परलोकगत गङ्गाधररावकी रानी। झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईके विषयमें अंग्रेज ऐतिहासिकगण भी खूब प्रशंसा कर गये हैं। मि० मालिसनने अपने सिपाही विद्रोहके इतिहासमें झाँसीकी रानीको "Soul of the conspirators" वा विद्रोहियोंकी प्रधान नायिका बतलाया है। सुतरां झाँसीकी रानीका इतिहास एक तरहसे सिपाही-विद्रोहका इतिहास है।

झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईका जन्म १८ नवेम्बर सन् १८३५को बनारसमें (मोरोपन्त ताम्बेके घर) हुआ था। ये बचपनमें अपने पिताके घर मनूबाईके नामसे परिचित थीं। उस समय मनूकी उमर ३।४ वर्षकी होगी, जब उनकी माता भागीरथीबाईका देहान्त हुआ। इसके बाद मनूके पिता विठूरमें आ कर रहने लगे। मनूने अपनी बाल्यावस्था पुरुषोंके साथ ही बिताई थी। यह बालिका पेशवाके दत्तकपुत्र नानासाहब और रावसाहबके साथ सर्वदा खेला करती थी। बालिका पर बाजीरावका बड़ा स्नेह था। बाजीराव उनकी सम्पूर्ण इच्छाओंकी पूर्ति करते थे। नानासाहब जब घोड़े पर सवार हो कर घूमा करते थे, उस समय मनू भी उनकी अनुसरण करती थी। नानासाहब जब तलवार फिराते थे, तब मनू भी उनकी देखा-देखी तलवार चलाना सीखने लगती थी। इसके सिवा पढ़ने-लिखनेमें भी ये खूब तेज थीं। कहा जाता है, कि भ्रातृ-द्वितीयाके दिन ये नानासाहबका टीका करती थीं। नियतिके अपरिवर्तनीय विधानके अनुसार संसार-क्षेत्रमें इन दोनोंका परिणाम प्रायः एकसा हुआ था।

१८४२ ई०के वैशाख मासमें झाँसीके महाराज गङ्गाधररावके साथ आठ वर्षकी लड़की मनूका विवाह हुआ। महाराजकी पहली स्त्रीका देहान्त हो गया था, इसलिए उनका यह दूसरा विवाह था। नववधूके राज-प्रासादमें प्रवेश करने पर महाराष्ट्रीय रीतिके अनुसार सुसरालमें वधूका नया नाम रक्खा गया—"लक्ष्मीबाई"।

कुछ दिन बाद लक्ष्मीबाईके एक पुत्र हुआ, पर तीन मास पूरे भी न हो पाये कि उसका देहान्त हो गया। इस पुत्रवियोगसे गङ्गाधरराव बड़े दुःखित हुए और अन्तमें वे मर गये। उनकी मृत्युके बाद झाँसी राज्य पर ब्रिटिश कम्पनीका अधिकार हो गया। इस विषयमें हम अंग्रेजी ऐतिहासिक मालिसनके विवरणका अनुवाद

किये देते हैं, उसीसे पता चल सकता है कि अंग्रेज गवर्मेण्टने उस समय कैसा अन्याय किया था। मालिसनने लिखा है—"१८१७ ई०में गवर्मेण्टने झाँसीके राजाको, उत्तराधिकारसूत्रसे राज्यका उत्तराधिकारी स्वीकार किया। परन्तु १८४७ ई०में लार्ड डालहौसीने फरमाया कि 'असली वंशके अभावसे झाँसीराज्य विधवाके द्वारा गोद रक्खे गये पुत्रको नहीं मिल सकता'। इस विचारसे रानी अत्यन्त दुःखित हुईं। पीछे गवर्मेण्टने उन्हें ६००० पौण्ड भत्ता देना कबूल किया। लक्ष्मीबाईने पहले तो उसे अस्वीकार किया, किन्तु बादमें उपायान्तर न देख कर भत्ता लेना ही पड़ा। इसके कुछ दिन बाद गवर्मेण्टने कहा कि 'उन्हीं रुपयोंमेंसे रानीको अपने पतिका कर्ज चुकाना पड़ेगा।' रानीने कहा, 'ब्रिटिश गवर्मेण्टने जब झाँसीका राज्य ही छीन लिया है, तब उसके कर्ज चुकानेके लिए वे बाध्य हैं।' परन्तु उनकी इस बात पर किसीने भी ध्यान नहीं दिया। उनकी वृत्तिसे रुपये काट लिये गये। इस तरह जुआ चोरी होनेके कारण रानी ब्रिटिश शक्तिसे और भी नाखुश हो गईं।"*

इसके बाद झाँसीमें गो हत्या की गई, जिससे रानीका क्रोध सीमा उल्लङ्घन कर गया। इस विषयमें प्रसिद्ध ऐतिहासिक के० साहब लिखते हैं कि "धीरे धीरे अन्यान्य विषयोंमें भी रानीका अंग्रेजों पर क्रोध बढ़ता गया, जिसमें गोहत्याका अनुष्ठान प्रधान है। धर्मप्राण हिन्दुओंके लिए यह विषय अत्यन्त धर्महानिजनक है। रानीने इसके प्रतीकारके लिए ब्रिटिश गवर्मेण्टको सेवामें आवेदन किया। झाँसीके अधिवासियोंने भी गवर्मेण्टसे इस विषयकी शिकायत की। परन्तु उसका उत्तर सन्तोषजनक न मिला। सरकार गोहत्या बन्द करनेके लिए तैयार न हुई और इससे रानीका क्रोध और भी बढ़ गया।" इसके बाद के० साहब फिर लिखते हैं कि "रानीके साथ जिस तरहका व्यवहार किया गया है, उसका परिणाम क्या होगा यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इस विषयमें सभी कार्य इतनी अनुदारतापूर्वक और न्यायवहिर्भूत किये गये हैं कि कर्नलविन साहब यदि उसके कुफलकी चिन्ता करते तो वे भी चमकित हो जाते। इस तरह गवर्मेण्ट पर रानीका विराग उत्तरोत्तर घनीभूत होने लगा। उनमें जिस प्रकार पुरुषोचित क्षमता थी, उसी प्रकार स्त्री-सुलभ हिंसा-प्रवृत्ति भी मौजूद थी। वे झटिका-सञ्चारकी प्रतीक्षा करने लगीं। रानी इस बातको भली भाँति समझ गई थीं कि उनका भी समय आनेवाला है। १८५७ ई०में उनकी उमर उनतीस या तीस वर्षकी थी (यथार्थमें उस समय लक्ष्मीबाईकी उम्र २२ वर्षकी थी)। इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, कर्तव्यपालनमें दृढ़ता तो इनके जीवनका व्रत था। वाक्-कौशल और उत्कृष्ट युक्तियाँ देनेमें ये बड़ी सिद्धहस्त थीं। ये कमिश्नर वा गवर्नरसे अपने विषयको विशदरूपसे कह सकती थीं और जब अंग्रेज राजपुरुषोंसे वार्तालाप करती थीं, तब अपने हृदयकी विरक्ति या क्रोधको दबाये रखती थीं। इनके विरुद्ध तरह तरहकी अफवाएं उड़ी थीं, पर अफवाहका उड़ना तो एक रीतिमें शामिल है। जब कोई राज्य अधिकृत होता है, तब राज्यभ्रष्ट भूपति अथवा उनके उत्तराधिकारीके विरुद्ध तरह तरहकी अफवाएं उड़ा ही करती हैं। कहा जाता है, कि रानी दूसरेकी क्षमता द्वारा वशीभूत और परिचालित बालिका मात्र थीं—वे अमिताचारमें आसक्त रहती थीं। परन्तु यह बात तो उनकी बातचीतोंसे ही जाहिर होती थी कि वे बालिका न थीं। और उनका अमिताचार दूसरे लोगोंकी कल्पनाके सिवा और कुछ भी न था।" †

गदरके शुरू होनेसे कुछ पहले झाँसीमें बारहवां देशीय पदातिकदलका एकांश, चौदहवां अनियमित अश्वारोहीदलका एकांश और कुछ गोलन्दाज सैनिक उपस्थित थे। कप्तान डनलप इन फौजोंके अधिनायक थे। झाँसीको जिस दिनसे ब्रिटिश राज्यमें शामिल किया गया था, उसी दिनसे कप्तान स्कीन कमिश्नरके पद पर अधिष्ठित थे। जिस समय मेरठमें गड़बड़ी फैली थी, उस समय भी कप्तान स्कीनको विश्वास नहीं हुआ था कि झाँसीकी फौज गवर्मेण्टके विरुद्ध खड़ी होगी अथवा बाहरके लोग सिपाहियोंको उत्तेजित करेंगे।

* Indian Mutiny Vol. I. p 181—183.

† Kaye, Sepoy war, Vol III. p. 562—563.

कमिश्नर साहबने भी जूनको निःसन्दिग्ध-चित्तसे सिपाहियोंको प्रभुभक्तिका विषय प्रकट किया था। इसके एक या दो दिन बाद दिनदहाड़े दो सेनानिवास जल गये। ५ तारीखको दुर्गकी तरफ बन्दूकोंकी आवाज होने लगी। अधिकारीवर्ग किसी तरफ भी दृष्टिपात न कर आत्मरक्षा और सम्पत्तिरक्षाके लिए उद्यत हुआ। युद्धमें असमर्थ यूरोपीयगण अपनी अपनी सम्पत्ति और परिवारवर्गको ले कर नगरके दुर्गमें जा छिपे। पीछे एक दिन सवेरे समग्र सैनिक दल गवर्मेण्टके विरुद्ध खड़े हुए और अपने अफसरों पर गोली चलाने लगे। प्रायः सभी यूरोपीय मारे गये। सिर्फ एक सेनापतिने किसी तरह भारी चोट खा कर भी अपनी जान बचा ली और घोड़े पर चढ़ दुर्गमें पहुंच गये। उत्तेजित सेनाने सेना-निवासमें खूनकी नदी बहा दी। इसके बाद उन लोगोंने जेलके कैदियोंको छुटकारा दे दिया और कचहरीमें आग लगा दी। अन्तमें उत्तेजित सैनिकों, कारामुक्त कैदियों और विश्वासघातक सिपाहियोंने मिल कर दुर्गको घेर लिया।

७वीं जूनको प्रातःकाल ही कप्तान स्कीनने, दुर्गसे बिना बाधाके अन्यत्र चले जानेका बन्दोबस्त करनेके लिए लक्ष्मीबाईके पास कुछ कर्मचारी भेजे। कहा जाता है, कि उन कर्मचारियोंको मार्गमें ही रोक कर रानीके पास पहुंचाया गया था। रानीने उनको उत्तेजित सैनिकोंके हाथ सौंप दिया। सैनिकोंके अस्त्राघातसे सब मारे गये। यह अंग्रेजोंका विवरण है, किन्तु दत्तात्रेय बलवन्त पारसनवीसके लिखे हुए लक्ष्मीबाईके जीवन-चरित्रमें इसका उल्लेख नहीं है। झाँसीके प्रधान सदर अमीन रानीके नौकरोंके हाथ मारे गये। स्कीन और गर्डन साहबने उस दिन बार बार पत्र लिखे थे। ८वीं जूनको अवरुद्ध अंग्रेजोंको वाध्य हो कर सन्धिसूचक श्वेत पताका फहरानी पड़ी।

श्वेत पताका उड़ती देख सिपाहियोंके अध्यक्षगण दुर्गद्वार पर उपस्थित हुए और कप्तान स्कीनका गम्भीर भावसे ग्रन्थ करते देख, शालेमहम्मद नामक एक डाक्टरके द्वारा कहलवाया कि 'यदि अंग्रेज लोग अस्त्र-परित्याग पूर्वक दुर्ग समर्पण करें, तो उनका केशाग्र भी स्पर्श नहीं किया जायगा'। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दुर्ग-वासियोंने अस्त्र छोड़ दिये। दुर्गसे यात्रा करनेका आयोजन होने लगा। पर अभागोंके लिए छुटकारा न बदा था। दुर्गद्वारसे निकलने भी न पाये थे कि इतनेमें सशस्त्र सैनिकोंने आ कर उन्हें बन्दी कर लिया। अब बाधा पहुंचाने वा आत्मरक्षा करनेका भी कोई उपाय न रहा। वे निरीह भेड़ोंकी तरह चुपचाप खड़े रहे। इसी समय कुछ सवारोंने आ कर कहा—"रिसलदारका हुक्म है कि कैदियोंको मार डालो।" फिर क्या था, स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका सबको, मार डाला गया। इनकी लासें तीन दिन तक रास्तेमें ही पड़ी रहीं। पीछे मामूली तौरसे एक तरफ पुरुषोंकी और दूसरी तरफ स्त्रियोंकी समाधि की गई। इस तरह ५०।६० ईसाइयोंके शोणितसे झाँसीके माथे पर कलङ्कका टीका लगाया गया।

उत्तेजित सिपाहियोंने अंग्रेजोंकी हत्या की। छावनी लूट ली। झाँसीके दुर्गमें—झाँसीके सेनानिवासमें उनका प्राधान्य हो गया। इसके बाद उनका राजप्रासाद पर लक्ष्य गया, प्रासाद घेर लिया। उनके दलपतिने रानीसे कहा—"हम लोग दिल्ली जा रहे हैं; इस समय हमें एक लाख रुपये न मिले तो राजप्रासाद तोपसे उड़ा दिया जायगा।" रानी बड़ी प्रत्युत्पन्नमति थीं। उन्होंने, इस विपत्तिसे न घबड़ा कर कहला भेजा कि "मेरा राज्य, मेरी सम्पत्ति सब कुछ परहस्तगत हो गई है। इस समय मैं दारिद्र्यसे पीड़ित हूं—दूसरोंकी मुंहताज हूं—अनाथा हूं। मुझ जैसी अनाथा पर अत्याचार करना आपके देशीय सिपाहियोंके लिए उचित नहीं है।" परन्तु सिपाहियोंने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इधर रानीके पिता सिपाहियोंको शान्त करनेके लिए उनके सर्दारके पास गये। किन्तु सिपाहियोंने उन्हें बांध लिया और कहा—'कुछ रुपये न मिलने पर हम लोग रानीके दामाद सदाशिवराव नारायणको राज-गद्दी पर बैठा सकते हैं। रानीको कुछ उपाय सूझा।' उन्होंने पिताको छोड़ देनेके लिए कहा और अपनी सम्पत्तिमेंसे एक लाख रुपयेके अलङ्कारादि दे कर सिपाहियोंको शान्त किया। सिपाही लोग अर्थलोभसे उत्फुल्ल हो कर "मुल्क खुदाका! मुल्क झाँसीकी रानी लक्ष्मी-

बाईका !!" यह घोषणा करते हुए दिल्लीकी तरफ चल दिये। रानीने यह सब हाल ब्रिटिश अधिकारियोंको लिख भेजा।

यह निश्चित है कि रानी लक्ष्मीबाईने गद्दी पानेके लिए सिपाहियोंका साथ नहीं दिया था। वे नितान्त निरावलम्ब थीं। उनके लिए रुपये देनेके सिवा उन उत्तेजित सिपाहियोंके हाथसे बचनेका और दूसरा कोई उपाय ही न था। यदि वे सिपाहियोंका साथ ही देतीं तो फिर उन्हें अपने अलङ्कारादि देने या अंग्रेज-अधिकारियोंके पास खबर भेजनेकी क्या आवश्यकता थी ? घटनाचक्रके अभावनीय आवर्तनने ही उन्हें इस प्रकारसे सिपाहियोंके सन्तोषसाधनमें प्रवृत्त किया था।

सिपाहियोंके चले जानेके बाद रानीने गवर्मेण्ट द्वारा नियोजित फौजदारी सिरिस्तादार गोपालराव आदि सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको बुलाया और कर्त्तव्य-निर्द्धारणके विषयमें परामर्श पूछा। उस समय सागर प्रदेशमें कुछ गड़बड़ी न थी। इसलिए वहांके कमिश्नरको सावधान करने और झाँसीके विषयमें उनका आदेश चाहनेके लिए पत्र लिखनेका निश्चय किया गया। तदनुसार गोपालरावने सम्पूर्ण घटना सागरके कमिश्नरको लिख भेजी। स्वयं रानीने भी नाना स्थानोंके राजपुरुषोंको सम्पूर्ण विवरण लिख कर आत्मसमर्पण कर दिया। झाँसीके कमिश्नर कप्तान पिङ्कने साहब लिख गये हैं—"विश्वस्तसूत्रसे मालूम हुआ है कि रानीने हमारे देशीय लोगोंके विनाशसे दुःखित हो कर जब्बलपुरके कमिश्नरको पत्र लिखा था। उसमें इस बातका उल्लेख था, कि इस विषयमें उनका कोई हाथ नहीं था। जब तक अंग्रेज गवर्मेण्ट झाँसीके पुनरधिकारका प्रबन्ध न करेगी, तब तक वे ही उस राज्यका शासन करेंगी। इस ढंगसे पत्र लिख कर उन्होंने अंग्रेजोंसे मित्रता बनाए रखनेकी कोशिश की थी।" इससे सिद्ध होता है कि रानीने ब्रिटिश गवर्मेण्टके प्रतिनिधि स्वरूपसे झाँसीको अपने अधिकारमें रक्खा था। उस समय झाँसीमें, गवर्मेण्टके यहांसे कोई पत्र आने पर, कर्मचारियोंकी अव्यवस्थाके कारण उसका बदस्तूर उत्तर नहीं दिया जाता था ; जिससे रानीका उद्देश्य प्रायः अंग्रेज-राजपुरुषोंके गोचर नहीं होता था। इस तरहकी गड़बड़ीमें भी रानीका पूर्वोक्त पत्र यथास्थान पहुंच गया था। मार्टिन साहबने एक पत्रमें लिखा है, कि "उन्होंने (रानीने) जब्बलपुरके कमिश्नर मेजर एर्स्किन और आगराके प्रधान कमिश्नर कर्नेल फ्रेजरके पास 'खरीता' भेजा था। मैंने यह पत्र अपने हाथोंसे आगराके प्रधान कमिश्नरको दिया था। रानीके पत्रका कमिश्नर साहब क्या उत्तर देंगे यह जाननेके लिए मुझे बड़ी उत्सुकता हुई। परन्तु झाँसीका नाम उनके लिए पहलेसे ही कलङ्कित हो गया था। कुछ भी सुनवाई न हुई— रानी अपराधिणी समझी गई।"

इस तरह अभागिनीका अदृष्टचक्र पुनः नीचेकी ओर घूम गया। उनके विश्वस्त कर्मचारियोंको हटा दिया गया। रानीके पिता मोरोपन्त राजनीतिमें उतने चतुर न थे। दीवान लक्ष्मणराव भी नये थे, इसलिए उनमें भी जितनी चाहिए उतनी कार्य-पटुता या अभिज्ञता न थी। देशकी अवस्थासे परिचित और अंग्रेजी भाषाके जानकार कोई भी उनको सत्परामर्श देने और सत्मार्ग दिखानेके लिए प्रस्तुत न थे। झाँसीके नये बन्दोबस्तके समय ओरछा आदि स्थानोंमें जो राज्यशासन आदि कार्यके लिए कर्मचारी नियुक्त हुए थे, उनसे भी रानीका तादृश सद्भाव न था। इस प्रकार रानी लक्ष्मीबाईका भविष्य चारों ओरसे गाढ़ तमोजालसे आच्छन्न था।

उत्तेजित सिपाहियोंके आक्रमणसे झाँसीमें अंग्रेजोंका प्राधान्य विलुप्त हो गया था। रानीने झाँसीके इस विप्लवका विवरण या सम्वाद अन्यान्य स्थानोंके अंग्रेज राजपुरुषोंको भी दिया था। अंग्रेजोंकी अनुपस्थितिमें उन्होंने झाँसीका शासनभार ग्रहण किया था। इसी मौके पर रानीके सम्पर्कीय सदाशिवराव नारायण झाँसीको अपने अधिकारमें लानेके लिए कोशिश कर रहे थे। सदाशिवने झाँसीसे ३० मीलकी दूरी पर करैरा नामक एक दुर्ग पर अपना कब्जा कर लिया और वहांके अंग्रेजोंको भगा दिया। इसके बाद सदाशिवने पार्श्ववर्ती ग्रामों पर अधिकार कर "झाँसीके महाराज" यह उपाधि ग्रहण की। इस पर लक्ष्मीबाईने उनके विरुद्ध सेना भेजी। सेनाने जा कर करैराका दुर्ग घेर लिया, जिससे सदाशिवको शिन्दे राज्यमें भाग जाना पड़ा। वहां जा कर वे झाँसी

आक्रमण करनेके अभिप्रायसे सेना इकट्ठी करने लगी। रानीने उनके विरुद्ध और एक सेना भेजी। अबकी बार सदाशिव बन्दी हुए और झाँसी लाये गये। इसके बाद रानीकी शासनदक्षताको देख कर दुर्द्धर्ष ठाकुर और बुंदेलोंने भी शान्तभाव धारण किया।

रानीने एक शत्रुको पराजित कर बन्दी कर लिया। इसके बाद दूसरे एक शत्रुने उनका सामना किया। झाँसीसे डेढ़ मीलकी दूरी पर ओरछा राज्य है। इस राज्यके दीवान नथेखाँ झाँसी आक्रमण करनेके लिए बीस हजार सेनाके साथ वेत्रवती नदीके किनारे पहुंचे। यह नदी झाँसीसे नजदीक ही है। इस समय रानीके पास अधिक सेना न थी। अंग्रेज गवर्मेण्टने झाँसी अधिकार कर सेनाकी संख्या घटा दी थी, तोप और बारूद आदि भी नष्ट कर दी थी। परन्तु रानी इससे भीत वा कर्तव्यविमुख न हुईं। उन्होंने नई सेना इकट्ठी कर युद्ध करना शुरू कर दिया। उनके आमन्त्रणसे झाँसीके सर्दार लोग सशस्त्र अनुचरोंको ले कर उपस्थित हुए। रानीने अपने बाहुबलसे झाँसीकी रक्षा की थी। पार्श्ववर्ती दतिया और टेहरी राज्यके कर्णधारोंने मौका देख, उक्त राज्य पर आक्रमण किया था, पर वे कृतकार्य न हो सके। दतिया और टेहरी दोनों राज्य ब्रिटिश गवर्मेण्टके अनुग्रहके पात्र हुए।

झाँसीराज्य जब अंग्रेजोंके हाथसे निकल गया था, तब लक्ष्मीबाईने नियमितरूपसे उसका दश मास तक शासनकार्य चलाया था। उनके समयमें सैनिकशृङ्खला, विचारकार्य, शान्तिस्थापन आदि प्रत्येक विषयमें असामान्य कर्मदक्षताके साथ काम लिया जाता था। जो युद्धकुशल साहसी सेनापति उनके विरुद्ध खड़े हुए थे, वे भी रानीकी क्षमता पर मुग्ध हो कर लिख गये हैं कि "रानीके वंशगौरव, सैनिक और अनुचरों पर उनकी असीम उदारता और सर्वप्रकार विघ्न-विपत्तियोंमें उनकी दृढ़ताने हमें उनका प्रभूत क्षमतापन्न और भयावह प्रतिद्वन्द्वी कर दिया था।"*

रानी प्रतिदिन दिनके तीन बजे, कभी पुरुषके भेषमें, और कभी स्त्रीके भेषमें दरबारमें उपस्थित होती थी। दीवानी और फौजदारी मामलोंके सिवा राज्यरक्षण और बाहरके शत्रुओंके आक्रमण निवारणके लिए अन्यान्य विषयोंमें भी उनकी विशेष लक्ष्य रहता था। उन्होंने इंग्लैण्डमें भी दूत भेजा था, क्योंकि उनकी ऐसी धारणा थी कि राजपुरुषोंको उनका अभिप्राय जान कर सन्तोष होगा। परन्तु उनकी धारणा फलवती न हुई। राजपुरुषोंको रानी पर सन्देह था, उस सन्देहने अब शत्रुताका रूप धारण कर लिया। अंग्रेज-सेनापति सर हिउरोज रानीके विरुद्ध झाँसीकी ओर चल पड़े।

अंग्रेजी सेनाके झाँसीके विरुद्ध अग्रसर होने पर दरबारमें गड़बड़ी फैल गई थी। झाँसीके ब्रिटिश गवर्मेण्टके अधिकारमें आ जानेसे बहुतसे पुराने कर्मचारियोंकी जीविका नष्ट हो गई थी। रानीने जब अपने अद्भुत साहसके बल पर अंग्रेजोंसे युद्ध करनेका निश्चय कर लिया, तब वहांकी वीर रमणियाँ भी युद्धके आयोजनमें उनकी सहायता करने लगी।

गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ् और बम्बईके गवर्नर लार्ड एल्‌फिन्‌ष्टोनने झाँसी अधिकार करना परम आवश्यकीय समझा था। २३ मार्चको अंग्रेजोंने झाँसीके विरुद्ध युद्ध करना शुरू किया था। पीछे ताँतिया टोपी बहुतसी सेना ले कर झाँसीकी सहायता करने आये थे। रणपारदर्शिनी रानी स्वयं दुर्गप्राकार पर खड़ी रह कर सेनाको उत्साहित और उत्तेजित कर रही थीं। परन्तु अंग्रेजोंने अपनी अधिकतर क्षमता और रण-नैपुण्यके कारण विजय प्राप्त की। अंग्रेजी सेनाके नगरमें प्रवेश करने पर लक्ष्मीबाई दुर्गके भीतर चली गईं। पहले अंग्रेजोंकी रसद वगैरह करीब करीब निबट चुकी थी, किन्तु ताँतिया टोपीके पराजित होने और उनकी रसद आदि पर अंग्रेजोंका अधिकार हो जानेसे अंग्रेजी सेना क्षमतापन्न हो उठी। और इसीलिए अंग्रेजोंके आक्रमणका प्रतीकार करना रानीके लिए असाध्य हो गया।

दूसरा कोई उपाय न देख, रानीने छिप कर भाग जानेका निश्चय किया। तदनुसार वे ४ अप्रैलकी रातको अपने अनुचरोंके साथ दुर्गके उत्तर द्वारसे निकल पड़ीं।

* Sir Hugh Rose's Despatch, April 30th, 1858.

रानीके चले जानेका संवाद पाते ही अंग्रेजोंने उन्हें पकड़ लानेके लिए लेफ्टनण्ट बेकारको सेना सहित भेज दिया। बेकर २१ मील तक गये, पर उनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ। रानीका तेज घोड़ा देखते देखते आखोंके ओझल हो गया। अंग्रेज सेनापति आहत हो कर लौट आये।

रानीके चले जाने पर झाँसीमें फिर "विजन"-का शुरू हो गया। कानपुर और दिल्लीको तरह झाँसीराज्य भी अंग्रेजी सेनाके लिए अत्यन्त उत्तेजनाका कारण हो गया। मार्टिन साहबका कहना है, कि अंग्रेजी सेनाने झाँसीके पाँच हजार अधिवासियोंको हत्या की थी *। ५वीं अप्रैलको झाँसीके दुर्ग पर अंग्रेजी सेनाका अधिकार हो गया।

रानी भाग कर कालपी पहुँचीं। वहाँ रावसाहब और ताँतिया टोपी ठहरे हुए थे। रानीके साथ सेना न थी। इसलिए उन्होंने रावसाहबसे सहायता मांगी। रावसाहबने सेनाका परिदर्शन कर सैनिकोंको युद्धके लिए उत्साहित किया। ताँतिया टोपी यह कह कर कि जब सारी सेना एक जगह इकट्ठी हो जायगी तब वे राव साहबके साथ सम्मिलित होंगे, संगृहीत सेनाको ले कर कालपीसे ४ मील दूर कूँच नामक स्थानको चल दिये। वहाँ सर हिउरोजके साथ उनका युद्ध हुआ, जिसमें ताँतियाकी ही पराजय हुई। रानी युद्धस्थलमें उपस्थित थीं। किन्तु ताँतियाने सैनिक-परिचालनके विषयमें उनसे परामर्श नहीं लिया। कुछ भी हो, पराजित होने पर भी ताँतिया टोपीकी सेना ऐसे कौशल और शृङ्खलाके साथ पीछे हटी थी कि जिसे देख कर अंग्रेजोंको चकित होना पड़ा था।

अनन्तर गलावली नामक स्थानमें युद्ध हुआ। यद्यपि रानीने इस युद्धमें सिर्फ ढाई सौ मात्र सेनाका परिचालन किया था, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उसीमें उन्होंने अद्भुत रणनैपुण्यका परिचय दिया था। परन्तु अन्तको रानीकी पराजय हुई। पराजय होने पर भी रानीकी तेजस्विता, अध्यवसाय वा बलवती प्रतिहिंसा तनिक भी न घटी। उन्होंने राव और टोपीको सलाह दी कि जब तक किसी दुर्गमें रह कर युद्ध न किया जायगा, तब तक शत्रुकी दमनाका आस नहीं हो सकता। सबके परामर्शानुसार रानी ३० मईको दल बल सहित ग्वालियर दुर्ग आक्रमण करनेके लिए रवाना हुईं। रानीने अपने अद्भुत कौशलसे ग्वालियर-दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद १८वीं जूनको फूलबागके राजप्रासादके निकटवर्ती पार्वत्य भूखण्डमें अंग्रेजसेनापति स्मिथके साथ रावसाहबका युद्ध हुआ। रानीने यह युद्ध भी पुरुष भेषमें किया था। किन्तु विजयलक्ष्मीने उनका साथ न दिया। अन्तको रानीने कुछ विश्वस्त परिचारिकाओं और अनुचरोंके साथ रणस्थलसे भाग गईं। किन्तु अनुसरण-परायण अंग्रेज सैनिकोंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। मार्गमें दोनोंमें सम्मुख युद्ध हुआ और झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईकी भव-लीला समाप्त हुई।

इस वीर रमणीके विषयमें मालिसन् साहब लिखते हैं—अंग्रेजोंकी दृष्टिमें रानीका दोष कैसा भी क्यों न हो, किन्तु उनके देशके लोग चिरकाल तक उनका स्मरण इसलिए करेंगे कि अंग्रेजोंके अविचारने उनको विद्रोहके लिए प्रवर्तित किया था; उन्होंने अपने देशके लिए प्राणधारण किया था और देशहीके लिए प्राण विसर्जन दिये थे। हो सकता है कि रानीने प्रतिहिंसाके आवेगमें आ कर अस्त्रधारण किया हो, किन्तु यह निश्चित है कि उन्होंने जिस शक्तिसे काम लिया था, उसके शत्रु वा चरित्रसमालोचक भी उस शक्तिका असम्मान नहीं कर सकते।

झाँसी नयाबाद—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत झाँसी जिलेका सदर। यह अक्षा० २५° २७´ उ० और देशा० ७८° ३५´ पू० पर झाँसी जिलेके पश्चिम प्रान्तमें प्राचीन झाँसी नगरके प्राचीरके समीप अवस्थित है। प्राचीन झाँसी नगर और झाँसी दुर्ग अभी ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत है। दुर्गके नीचे गवर्मेण्टकी अदालत, सैन्यनिवास और अन्यान्य गृहादि विद्यमान हैं। महाराष्ट्र-सेनापतिने इस दुर्गका निर्माण किया था। दुर्गके भीतरका राजभवन और प्रकाण्ड प्रस्तरनिर्मित गोलाकार प्रासादशिखर अत्यन्त विस्मयकर है। कहा जाता है, कि पहले इसमें ३०।४० तोपें रखी जाती थीं। १८६१ ई०में अयोध्याके नवाबसे इस

* Indian Empire, Vol. II. p. 485.

दुर्गको अधिकार किया और इसका अनेक अंश तोड़ फोड़ डाला। यहांके मार्ग, घाट और बाजार परिष्कार-परिच्छन्न है। प्राचीन झाँसीके पूर्व पार्वत्य प्रदेशमें झाँसी-नयाबाद अवस्थित है। ग्रीष्मकालमें यहाँ अधिक गरमी पड़ती है, उस समय अपराह्ल तक छायामें भी तापमान-यन्त्रसे १०८° ताप रहता है। वर्षाकालमें बेत्रवती नदीमें बाढ़ आ जानेसे चारों ओरका रास्ता बन्द हो जाता है। यहाँ जिलेकी प्रधान अदालत, तहसील, थाना, विद्यालय, औषधालय और डाकघर हैं। लोकसंख्या लगभग ५५७२४ है।

झाँसू (हिं० पु०) धोखेबाज, छल करनेवाला।

झाग (हिं० पु०) जल इत्यादिका फेन, गाज।

झागना (हिं० क्रि०) फेन उत्पन्न होना।

झाञ्झत (सं० क्ली०) झामित्यव्यक्तशब्दस्य कृतं करणं यत्र, बहुव्री०। १ चरणका अलंकारविशेष, पैरोंमें पहननेका एक प्रकारका गहना, पैंजनी। २ झन झन शब्द।

झाझर—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° १६´ उ० और देशा० ७७° ४२´ १५´´ पू० पर बुलन्दशहरसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। हुमायूंके मशहूर मुहम्मद खाँ नामक किसी बेलूचीने यह नगर स्थापन किया। बाद यह पलायित और समाजच्युत बदमाशका आश्रयस्थान हो गया। सिपाही विद्रोहके समय इस नगरने बहुतसे बेलूची अश्वारोहियोंको देकर अङ्गरेजोंकी सहायता की थी। अभी यह नगर अत्यन्त दरिद्र और हीनावस्थामें पड़ा है। यहां एक डाकघर, थाना और विद्यालय है। नगरके प्रत्येक घरके ऊपर स्थापित करसे चौकीदार पहरू आदिका खर्च चलता है।

झाट (सं० पु०) झट-घञ्। १ निकुञ्ज, लतागृह, ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओंसे घिरा हो। २ कान्तार, दुर्गमवन, दुर्भेद्य और घना जंगल। ३ क्षतस्थान प्रभृति परिष्कारकरण, घाव इत्यादिके साफ करनेकी क्रिया।

झाटकपट (हिं० पु०) राजपूतानेके राज-दरबारोंमें अधिक प्रतिष्ठित सरदारोंको मिलनेवाली एक प्रकारकी ताजीम।

झाटल (सं० पु०) झाटं लाति ला-क। घण्टापाटल वृक्ष, मोखा नामका पेड़। यह सफेद और काला होनेके कारण दो प्रकारका होता है। आकको तरह इस वृक्षमेंसे भी दूध निकलता है। इसमें बड़े बड़े पत्ते लगते हैं और फल घंटियोंकी तरह लटके रहते हैं।

झाटा (सं० स्त्री०) झट-णिच् अच् ततष्टाप्। १ भूम्यामलकी, भुइँ आँवला। २ यूथिका, जूही।

झाटामला (सं० स्त्री०) झाट-घञ्। आमला, आँवला।

झाटिका (सं० स्त्री०) झाट् स्वार्थे कन्, टाप् अत इत्वं। १ भूम्यामलकी, भुइँ आँवला। २ जातीपुष्प, जायपत्रीका पेड़।

झाड़ (हिं० पु०) १ पेड़ी रहित छोटा पेड़। इसकी डालियां जड़ या जमीनके बहुत पाससे निकल कर चारों ओर खूब फैली रहती हैं। २ रोशनी करनेका एक प्रकारका सामान। यह झाड़के आकारका होता है जो छतमें लटकाया या जमीन पर बैठकीकी तरह रखा जाता है। इसमें कई एक शीशेके गिलास लगे रहते हैं जिनमें मोमबत्ती, गैस या बिजली आदिका प्रकाश होता है। ३ झाड़के आकारमें दीख पड़नेवाली एक प्रकारकी आतिशबाजी। ४ एक प्रकारकी घास जो समुद्रमें उत्पन्न होती है। इसका दूसरा नाम जरस या जार भी है। ५ गुच्छा, लच्छा। (स्त्री०) ६ झाड़नेकी क्रिया। ७ डांटडपट कर कही हुई बात। ८ मन्त्रसे झाड़नेकी क्रिया।

झाड़खंड (हिं० पु०) जङ्गल, वन।

झाड़झंखाड़ (हिं० पु०) १ वे झाड़ियां जिसमें बहुत कांटे हों। २ अप्रयोजनीय वस्तुओंका समूह, व्यर्थको निकम्मी चीजोंका ढेर।

झाड़दार (हिं० वि०) १ सघन, घना। २ कँटीला, काँटेदार (पु०) ३ बड़े बड़े बेल बूटे बने हुए एक प्रकारका कसीदा। ४ बड़े बड़े बेल बूटे बने हुए एक प्रकारका गलीचा।

झाड़न (हिं० स्त्री०) १ झाड़ू देने पर निकली हुई वस्तु। २ गर्द इत्यादि दूर करनेका कपड़ा।

झाड़ना (हिं० क्रि०) १ धूल इत्यादिको साफ करना, झटकारना, फटकारना। २ किसी चीज पर पड़ी हुई मैलको दूसरी चीजसे हटा देना। ३ झाड़ू इत्यादिसे

पड़े हुए गर्दको परिष्कार करना। ४ बल या छल द्वारा किसी दूसरेसे धन लेना, झटकना। ५ मन्त्रोच्चारण करना, भूत प्रेतको दूर करनेके लिये मन्त्रसे फूंकना। ६ चिढ़ कर किसी पर कठोर शब्द प्रयोग करना, डाँटना।

झाड़फूंक (हिं० स्त्री०) मन्त्र आदि पढ़ कर भूत प्रेतोंको दूर करनेकी क्रिया।

झाड़बुहार (हिं० स्त्री०) परिष्कार, शुद्धता, सफाई।

झाड़ा (हिं० पु०) १ मन्त्र इत्यादिका उच्चारण। २ अनुसन्धान, तलाशी, खोज खबर। एकत्रित सितारके तारोंका बजना। ४ विष्ठा, मैला। ५ पाखाना, टट्टी।

झाड़ाकर-बम्बई प्रदेशके एक श्रेणीके मुसलमान। इनको धूलधोया भी कहते हैं। ये पहले हिन्दू-धर्मावलम्बी धूलधोया वा सुनार थे, औरङ्गजेबके जमानेमें इनको मुसलमान धर्म लेना पड़ा था। ये हानिफी श्रेणीके सुन्नि-मतावलम्बी हैं, पर धर्म पर इनकी आस्था नहीं है। विवाह और अन्त्येष्टिक्रियाके समय काजीके द्वारा कार्य कराने पर भी झाड़ाकर लोग अब भी गोमांस नहीं खाते, हिन्दू देवदेवियोंकी पूजा और हिन्दूके त्योहार आदि पालते हैं। सुनारोंकी दूकानको धूल धो कर उसमेंसे सोना-चाँदी निकालनाही इनकी उपजीविका है। बहुतसे लोग नौकरी भी करते हैं। पुरुषगण मध्यमाकृति, सुगठित और श्यामवर्ण होते हैं। ये मस्तक मुड़ाते और लम्बी दाढ़ी तथा हिन्दुओंकी भाँति चोटी रखाते हैं। स्त्रियां परिष्कार परिच्छन्न और खर्वाकृति हैं। यह जाति परिश्रमी और मितव्ययी होती हैं। ये ताड़ी बहुत पीते हैं। इनकी भाषा कर्णाटी अथवा कर्णाटी मिश्रित हिन्दी है।

झाड़ी (हिं० स्त्री०) १ छोटा झाड़, पौधा। २ बहुतसे छोटे छोटे पेड़ोंका समूह। ३ सूअरके बालोंकी कूँची, बलोछी

झाड़ीदार (हिं० वि०) १ जो देखनेमें छोटे झाड़-सा हो। २ काँटीला काँटेदार।

झाड़ू (हिं० स्त्री०) कूंचा, बोहारी, सोहनी, बढ़नी। २ केतु, पुच्छल तारा, दुमदार सितारा।

झाड़ूदुमा (हिं० पु०) झाड़ूकी तरह दुमवाला हाथी। इस तरहका हाथी ऐबी गिना जाता है।

झाड़ूबरदार (हिं० पु०) १ झाड़ू देनेवाला आदमी। २ चमार, भंगी, मेहतर।

झाड़ूवाला (हिं० पु०) झाड़ूबरदार देखो।

झापड़ (हिं० पु०) थप्पड़, तमाचा, लप्पड़।

झाबर (हिं० पु०) दलदली जमीन।

झाबा (हिं० पु०) १ टोकरा, खाँचा। २ वह टोंटीदार बरतन जिसमें घी तेल आदि रखा जाता है। ३ आटा छाननेका चमड़ेका बना हुआ गोल थाल। यह प्रायः पञ्जाबके लोगोंके काममें आता है। ४ लटकाये जानेका रोशनीका झाड़।

झाबी (हिं० स्त्री०) टोकरी, छोटा झाबा।

झाबुआ-१ मध्यभारतके अन्तर्गत भोपावर एजेन्सीका शासनाधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २२° २८´ से २३° १४´ उ० और देशा० ७४° २०´ से ७५° १८´ पू०में अवस्थित है। इसका भूपरिमाण १३३६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें खुशालगढ़, रतलम और शैलाना राज्य, पूर्वमें धार और अलीराजपुर, दक्षिणमें जोबट तथा पश्चिममें दोहद और पञ्चमहाल जिलेका जालोद उपविभाग है।

प्रवाद है, कि लगभग १६वीं शताब्दीमें यहां झब्बूनायक नामका एक विख्यात भील डकैत रहता था। उसीके नामानुसार इस प्रदेशका नाम झाबुआ पड़ा है। यहांके वर्तमान अधिपतिगण राठोर-वंशीय राजपूत हैं, जो अपनेको जोधपुरके प्रतिष्ठाता जोधाके पञ्चमपुत्र बोरसिंहके वंशधर बतलाते हैं। ये लोग दिल्लीश्वरके प्रियपात्र हो गये थे और १५८४ ई०में इन्हें मालवाके अन्तर्गत बदनावर जागीर मिली थी। कृष्णदास नामक इसी वंशके एक पुरुषने सम्राट् अलाउद्दीनको बङ्गाल जय करनेमें सहायता पहुँचाई थी और गुजरातके शासनकर्त्ताके हत्याकारी भीलदस्युको दमन किया था। सम्राट्ने खुश हो कर उन्हें इस प्रदेशका अधीश्वर बनाया था। तभीसे उनके वंशज झाबुआ राज्यका भोग करते आ रहे थे। १६०७ ई०में पुत्रके विष देनेसे कृष्णदासकी मृत्यु हो गई। इस समयसे कुछ दिनों तक गृह-विवाद रहा था। महाराष्ट्रोंके अभ्युत्थानके समय होलकरने इसका अधिकांश अधिकार कर राज्यका नाममात्र अवशिष्ट रखा। किन्तु उन्होंने झाबुआ-राजाके ऊपर चौथ वसूल करनेका भार सौंपा। अब भी होलकर झाबुआ राजासे राजस्व पाते हैं। सर जोन मालकौम द्वारा मालवा-संस्थापनके समय

यह राज्य इसी वंशको जमानत पर दे दिया गया। इस समय राजा गोपालसिंहको उमर यद्यपि सत्तरह वर्षको थी, तो भी सिपाही विद्रोहमें इन्होंने गवर्मेण्टको ओरसे जैसी वीरता दिखलाई थी, वह प्रशंसनीय है। इस कृतज्ञतामें गवर्मेण्टने उन्हें १२५००) रु०की खिलअत दी। इनके दत्तकपुत्र उदयसिंह वर्तमान सरदार १८८४ ई०में राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए थे। ये भी 'राजा' की उपाधिसे भूषित हैं। ११ तोपोंकी सलामी है।

पहले झाबुआ एक विस्तृत राज्य था। अभी यह बहुत सङ्कीर्ण हो गया है, राज्यका अधिकांशही पर्वताकीर्ण है। ये सब पहाड़ १से ६ मील दूर तक उत्तर-पश्चिमकी ओर विस्तृत है। उपत्यका प्रदेशमें मही, अनस और नर्मदा नदीकी उपनदियां प्रवाहित हैं। यहांकी जमीन बहुत कुछ उत्कृष्ट है। सब पर्वत जंगलसे घिरे हैं और उनमें लोहे इत्यादिकी खान हैं, किन्तु उपयुक्त परिश्रमके अभावसे वे किसी काममें लाये नहीं जाते हैं। अनाजकी फसल भी यहां अच्छी होती है। जुन्हरी, तण्डुल, मूंग, उर्द, बादली और मामली वर्षाकालमें उपजती है। गेहूं और चना रब्बीमें प्रधान है। कपास और अफीम भी कुछ कुछ उत्पन्न होती है। चना और गेहूंकी रफतनी विदेशको होती है। पिटलावर तथा अन्यान्य समतल प्रदेशमें ईख उपजती है। यहांके बगीचेमें अदरक, लहसुन, प्याज तथा सब प्रकारकी साग सब्जी पैदा होती है। शस्यक्षेत्र कहीं कहीं नदीके किनारे और अन्यान्य उर्वर-स्थानमें विच्छिन्न है। हर एक प्रजा कितनी जमीन आबाद करती है, उसका निर्द्धारण करना कठिन है। इसीसे जमीनका परिमाण न ले कर केवल गृहस्थके बैलके ही अनुसार मालगुजारी नियत की जाती है। भील पटेल अर्थात् मण्डलगण वंशपरम्पराक्रमसे राजस्व वसूल करते आ रहे हैं।

झाबुआ राज्यके अधिकांश अधिवासी भील और भीलाल जातिके हैं। ये बहुत परिश्रमी और कृषिनिपुण होते हैं। लोकसंख्या प्रायः ८०८८८ है।

झाबुआ राज्यमें झाबुआ, रानापुर, थान्दला और रम्भापुर नामके चार नगर लगते हैं। इन नगरोंमें विद्यालय है। जो कुछ हो यहां विद्याकी उतनी उन्नति नहीं है। यहांके राजा ५० अश्वारोही और २०० पदातिक सैन्य रखते हैं। इस राज्यमें तीन सड़कें गई हैं। आमदनी प्रायः १३००००) है।

शासन-कार्य यहांके राजा और दीवानसे चलाया जाता है। राजाके हाथमें केवल न्यायविचारकी क्षमता है। जब कभी भीलोंमें खून खराब होता है, तो राजा पोलिटिकल एजेण्टको सूचना देते हैं। खूनो मामला कभी कभी पञ्चायतसे भी तै हो जाता है। फौजदारी और दीवानी मामला राजा तथा दीवानके हाथ है।

२ मध्यभारतके भोपावर एजेन्सीके शासनाधीन झाबुआ राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२°४५´ उ० और देशा० ७४° ३८´ पू० पर झालोदसे माउ नगरके रास्ते पर अवस्थित है। नगरके चारों ओर मट्टीका बना हुआ एक प्राचीर है। इस नगरके पूर्वप्रान्तमें एक पर्वत और चारों ओर सरोवर हैं। सरोवरके उत्तर प्रान्तमें ऊँचा राजप्रासाद और उसके पश्चिममें नगर है। प्रासादके ऊपर वृक्षोंसे सुशोभित छोटे छोटे पहाड़ हैं। झाबुआ नगरकी सड़क कच्छपकी पीठकी नाईं असमान है। सरोवरके किनारे विद्युताहत झाबुआके राजाका एक स्मृतिचिह्न विद्यमान है। इस नगरको जलवायु अच्छी नहीं है। यहां विद्यालय, डाकघर और दातव्यचिकित्सालय है। लोकसंख्या प्रायः ३३५४ है।

झामक (सं० क्ली०) झम-खुल्। अत्यन्त पक्व इष्टक, जली हुई ईंट, झावाँ।

झामका—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठियावाड़को एक छोटी जमींदारी। यह कुण्डावाड़ नामक ष्टेशनसे १० मील दक्षिण भवनगर-गोण्डल-रेलपथके धोराजी शाखा-रेलपथ पर अवस्थित है।

झामती (झाँपती)—सिन्धुप्रदेशके मीरोंका राजकीय जहाज। ये सब जहाज वृहत् और प्रशस्त है। कोई कोई जहाज १२० फुट लम्बा और १८½ फुट चौड़ा होता है। इसमें ४ मस्तूल लगे रहते हैं। हर एक झामतीमें कमसे कम दो चौड़ी कोठरियाँ रहती हैं। यह केवल २½ फुट जलको चीरता हुआ जाता है। तीस माँझी ६ डांड खे कर झाँपतीको ले जाते हैं। कराची और मुगलभिनमें यह बनाया जाता है।

झामर (सं० पु०) झामं राति रा-क । १ तक्रशान, टेकुआ रगड़नेको सान, सिल्ली । २ एक प्रकारका आभूषण जिसे स्त्रियां पैरोंमें पैंजनकी तरह पहनती हैं ।

झाम्पोदार—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठिया-वाड़ विभागकी एक छोटी जमींदारी । यह लाखतासे १० मील दक्षिण, बधान स्टेशनसे १० मील पूर्व; बम्बई-बरोदा और सेन्ट्रल-इण्डिया रेलपथ पर अवस्थित है । यहाँके तालुकदार झालावंशीय राजपूत हैं ।

झायँझायँ (हिं० स्त्री०) १ झनकार, झन् झन् शब्द । २ सुनसान स्थानमें हवाका शब्द ।

झावँझावँ (अनु० स्त्री०) १ तकरार, हुज्जत । २ बक-वाद, बकबक ।

झार (हिं० वि०) १ एकमात्र, निपट, केवल, सिर्फ । २ संपूर्ण, कुल, सब । ३ समूह, झुंड । (स्त्री०) ४ ईर्ष्या, डाह । ५ अग्निशिखा, ज्वाला, लपट । ६ झाल, चर-परापन । (पु०) ७ झरना, पौना । ८ एक प्रकारका वृक्ष ।

झारखंड (हिं० पु०) वैद्यनाथसे जगन्नाथ पुरी तक विस्तृत एक जङ्गल ।

झारन (हिं० क्रि०) झाड़न देखो ।

झारना (हिं० क्रि०) १ बालको मैल निकालनेके लिये कंघी करना । २ पृथक् करना, अलग करना ।

झारफूँक (हिं० स्त्री०) झाड़फूँक ।

झारा (हिं० पु०) १ पतली छनी हुई भांग । २ अनाजको साफ करना, झारना ।

झारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका लम्बोदर पात्र । यह लुटियाकी तरह होती है और जल गिरानेके लिये इसमें एक ओर टोंटी लगी रहती है । इस टोंटीमेंसे धार बंध कर जल निकलता है ।

झारू (हिं० पु०) झाड़ देखो ।

झारोली—राजपूतानेके अन्तर्गत सिरोही राज्यका एक नगर । यह अक्षा० २४°५५´ उ० और देशा० ७३° ४´ पू० पर उदयपुरसे प्रायः ५१ मील उत्तर-पश्चिममें तथा सिरोहीसे १० मील पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित है ।

झार्झर (सं० पु०) झर्झरवादनं शिल्पमस्य झर्झर-अण् । झर्झरवाद्यकारी, वह जो झन् झन् शब्द करता हो ।

झार्झरिक (सं० पु०) झर्झर-ठक् । झार्झर देखो ।

झाल (हिं० पु०) १ कांसेका बना हुआ ताल देनेका वाद्य, झाँझ । २ खाँचा, टोकरी । (स्त्री०) ३ जाड़े ऋतुकी दो तीन दिनकी लगातार जल वृष्टि । ४ तीक्ष्णता, चरपराहट । ५ तरङ्ग, लहर । ६ कामेच्छा ।

झालकाटी (महाराजगञ्ज)—१ बङ्गालके बाखरगञ्ज जिले-का एक शहर । यह अक्षा० २२° ३८´ उ० और देशा० ९०° १३´ पू०में झालकाटी और नालचोटी दोनों नदियों-के सङ्गमस्थान पर अवस्थित है । पूर्व बङ्गालमें यह भी बोमबरगीका एक प्रधान बन्दर है । विशेषकर सुन्दरी काठ यहांसे विदेशको भेजा जाता है । दूर दूर देशोंसे यहाँ जितनी चीजें आती हैं, उनमें नमक प्रधान है । यहां प्रतिवर्ष कार्त्तिक मासमें दीवालीके समय एक मेला लगता है । यहाँ तेलका एक कारखाना है । लोकसंख्या प्रायः ५२३४ है ।

झालड़ (हिं० स्त्री०) पूजा आदिके समय बजाये जानेका घड़ियाल ।

झालना (हिं० क्रि०) धातुकी वस्तुओंमें टाँका दे कर जोड़ लगाना ।

झालर (हिं० स्त्री०) १ किसी चीजके किनारे पर लटकता हुआ हाशिया जो सिर्फ शोभाके लिये लगाया जाता है । झालरमें खूबसूरती बेलबूटे भी लगे रहते हैं । २ झालरके आकारकी कोई चीज । ३ किनारा, छोर । ४ झाँझ, झाला । ५ पूजा आदिके समय बजाये जानेका घड़ियाल ।

झालरदार (हिं० वि०) जिसमें झालर लगी हो ।

झालरापाटन—राजपूतानेके अन्तर्गत झालावाड़ राज्य-की पाटन तहसीलका एक शहर । यह अक्षा० २४° ३२´ उ० और देशा० ७६°१०´ पू० पर अग्निकोणसे वायुकोण तक विस्तृत एक पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है । लोकसंख्या प्रायः ७९५५ है । नगरके उत्तर-पश्चिम पर्वतकी अधित्यकासे निकले हुए जलको जमा रखनेके लिये एक सुदृढ़ प्रायः १ मील लम्बा एक बांध प्रस्तुत हुआ है । इस बाँधके ऊपर बहुतसे देवमन्दिर और सौधा-वली विद्यमान हैं । नगरसे ले कर पर्वतके निम्नस्थान तकके उद्यान इसी सरोवरके जलसे सींचे जाते हैं । सरो-

वरकी ओर छोड़ कर नगरकी शेष तीन दिशाओंमें ऊँची दीवार और खाई है। नगरके दक्षिण ४००।५०० सौ गज दूरमें चन्द्रभागा नदी पश्चिमकी ओर प्रवाहित है। नगरसे प्रायः १५० ऊपर गिरिशृङ्ग पर एक छोटा दुर्ग है।

प्राचीन झालरापाटन वर्तमान नगरसे कुछ दक्षिणमें चन्द्रभागाके किनारे अवस्थित था। इसकी नामकी उत्पत्तिके विषयमें बहुतोंका मतभेद है। टाड कहते हैं, कि यहां पहले बहुत देवालय थे, जिनमें बड़े बड़े घण्टे बजाये जाते थे। घण्टेके शब्दसेही इसका नाम झालरापाटन अर्थात् घण्टानगरी रखा गया था। इसी स्थानमें असंख्य देवमन्दिर और सौधमालासे सुशोभित प्राचीन चन्द्रावती नगरी अवस्थित थी। कहते हैं, कि प्राचीन शहर और इसके मन्दिर औरङ्गजेबके समयमें तहस नहस कर डाले गये थे। उनके सामान अब भी चन्द्रभागा नदीके उत्तरीय किनारे पर एकत्रित हैं। उक्त मन्दिरोंमें से शीतलेश्वर महादेवका लिङ्गम् नामका मन्दिर सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध था, जिसके विषयमें फरगुसन साहब यों कह गये हैं, "भारतवर्षमें जितने मन्दिर मैंने देखे हैं, सभीसे यह मन्दिर सुन्दर तथा कारुकार्यविशिष्ट है।" जनरल कनिंहम साहब भी इस मन्दिरकी खूब प्रशंसा कर गये हैं। उन लोगोंके मतानुसार मन्दिरका निर्माण ६०० ई०में हुआ है। इस चन्द्रावती नगरीका एक मन्दिर "सातसहेली" अर्थात् सात कन्या नूतन झालरापाटनके निकट आज भी विद्यमान है।

चन्द्रावती देखो।

फिर कोई अनुमान करते हैं, कि झाला राजपूतोंसेही झालरापाटन नाम रखा गया होगा। अर्णाटन कहते हैं, झालराका अर्थ प्रस्रवण, पाटनका अर्थ नगर अर्थात् निकटवर्ती पर्वतके जलसे इसका नामकरण हुआ है।

१७८६ ई०में जालिमसिंहने झालरा-पाटन तथा इससे ४ मील उत्तरमें छावनी नामके दोनों नगर स्थापित किये। जालिमसिंहने जयपुर नगरके आदर्शमें इसका निर्माण किया था। झालरा-पाटनके मध्यस्थलमें एकखण्ड शिलालेख पर उन्होंने यह आदेश खुदवा दिया था, कि जो कोई इस नगरमें आ कर वास करेगा, उसे किसी प्रकारका शुल्क नहीं देना पड़ेगा और किसी अपराधमें अभियुक्त होने पर भी उसे १।) सवा रुपयेसे अधिक अर्थदण्ड नहीं देना होगा। १८५० ई०में राजाका उक्त आदेश बन्द कर दिया गया। दोनों नगर पक्की सड़कसे संयोजित हैं। झालरापाटनमें प्रधान प्रधान वणिक् और अर्थसचिवोंका वास है। यहां राजकीय टकसाल और अन्यान्य कर्मस्थान हैं।

झालरापाटन छावनी—राजपूतानेके अन्तर्गत झालावाड़ राज्यका प्रधान शहर और राजकीय राजधानी। यह अक्षा० २४°३६´ उ० और देशा० ७६° १०´ पू० पर समुद्रपृष्ठसे १८०० फुट ऊपरमें अवस्थित है। यह १७९१ ई०में कोटाके अधिपति जालिमसिंहसे स्थापित हुआ है। पहले यहां उनकी एक साधारण छावनी थी। पीछे धीरे धीरे मनुष्योंका वास अधिक हो जानेसे यह छावनी एक बड़े नगरमें परिवर्त्तित हो गई। यहांकी लोकसंख्या प्रायः १४३१५ है, जिनमें फी-सदी ६६ हिन्दू, ४१ मुसलमान और थोड़े दूसरी दूसरी जाति है। यहांसे एक मील दक्षिण-पश्चिममें एक जलाशय है जिसके किनारे तरह तरहके फूलोंसे सुशोभित बहुतसे उद्यान लगे हैं। महाराज राणाका प्रासाद और राजकीय अदालत इत्यादि इसी नगरमें अवस्थित है। झालरापाटन और छावनी एक पक्की सड़कसे संयुक्त हैं। झालरापाटन नगर अपने परगनेका सदर और छावनी नगर समस्त राज्यका सदर है। छावनीका मध्यस्थ राजभवन एक चतुरस्र दृढ़ दुर्गके मध्य अवस्थित है। यहांका दुर्ग एक ऊँची पार्वत्यभूमि पर अवस्थित है तथा कोटा राज्यके गगाउन दुर्गसे २३ मील दूर पड़ता है।

झाला—गुजरात प्रदेशकी एक राजपूत जाति। ये लोग हलबुड़के अधिपतिको अपना नेता मानते हैं। टाड साहबका अनुमान है कि, ये लोग अनहिलवाड़-राजाओंके वंशधर होंगे। उक्त वंशीय राजाओंके ध्वंसके बाद झालाओंने विस्तीर्ण प्रदेश अधिकार कर लिया था। झालामुखवाहन नामकी एक सौराष्ट्रवासी शाखा अपनेको राजपूत बतलाती हैं। किन्तु वे सूर्य, चन्द्र वा अग्निकुल किसी भी वंशके नहीं हैं। हिन्दुस्तान वा राजपूतानेमें इस जातिके लोग वास करते हैं। मेवाड़-राजवंशके तु महामानी महावीर राणा प्रतापसिंहने झालाओंको राज-

पूतानेमें ला कर प्रभूत सम्मानसे भूषित किया था। जिस समय अकबर बादशाहकी शक्ति उक्त प्रातःस्मरणीय राजपूत वीरके विरुद्ध नियोजित थी, उस समय एक झाला वीरपुरुष अपने अनुचरों सहित प्रतापके अनुगामी हुए थे। प्रतापसिंहने कृतज्ञतास्वरूप उन्हें अपनी कन्या दे कर सम्मानकी पराकाष्ठा दिखाई थी तथा उन्हें अपने दक्षिण-पार्श्वमें स्थान दिया था। किन्तु वर्त्तमान राजगण झालाओंके साथ विवाह-सम्बन्ध करनेमें शरमाते हैं। इन झालाओंके नामानुसार गुजरातके एक विस्तीर्ण प्रदेशका नाम झालावाड़ हुआ है। इस विभागके नगरोंमेंसे वाँकानेर, हलवुड़ और द्राँद्रा प्रधान हैं। झालाओंके प्राचीन इतिहास बिलकुल नहीं मालूम है। कोटा के फौजदार और कोटा-राज्यके एकांशभूत झालावाड़के राजगण झालावंशीय हैं।

झालापति माना—झालाकुलोद्भव एक राजपूत वीर। इन्होंने चिरस्मरणीय हलदीघाटके युद्धमें भारत-नृपकुलगौरव सूर्यवंशीय महावीर राणा प्रतापसिंहकी सहायताके लिए प्राणत्याग कर अक्षयकीर्ति पाई है। युद्धके समय प्रताप जब नितान्त असहाय हो गये, उनके प्राणतम तथा उनके साथ महाव्रती राजपूत-वीरगण जब चारों तरफ पतित होने लगे और सहसा अगण्य मुगलसेनाने राणाके मस्तक पर राज-चिह्न देख कर जब उनको घेर लिया, उस समय वीरवर झालापति मानाने इन विपत्तियोंको उपस्थित देख अपने सिर्फ डेढ़ सौ अनुचरोंके साथ प्रतापका राज चिह्न अपने मस्तक पर धारण कर—रणसागरमें कूद पड़े। मुगलोंने कनक-तपनके समान उस वीरको राणा समझ कर घेर लिया, झालापति अतुल विक्रमके साथ युद्ध करके रणस्थलमें सदाके लिए सो गये। इधर राणा प्रताप राजपूतों द्वारा स्थानान्तरित कर दिये गये। इस स्वार्थत्याग और प्रभुपरायणताके कारण राजपूत-इतिहासमें झालापतिका नाम स्वर्णाक्षरोंमें चमक रहा है। झालाके वंशधर तभीसे मेवाड़के राणाका राजचिह्न वहन कर राणाके दक्षिणपार्श्वमें आसन पाते आये हैं।

झालावाड़—१ राजपूतानेके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २३°४५´ से २४°४१´ उ० और देशा० ७५° २८´ से ७६° १५´ पू०में अवस्थित है। यह राज्य हरवती और टङ्क एजेन्सीके निरीक्षणमें शासित होता है। तीन परस्पर विच्छिन्न प्रदेश ले कर झालावाड़ राज्य संगठित हुआ है। बड़े खण्डके उत्तरमें कोटाराज्य, पूर्वमें सिन्धिया राज्य और टङ्कराज्यका एकांश, दक्षिणमें राजगढ़ नामक क्षुद्रराज्य, सिन्धिया और होलकर राज्यका प्रदेश, देव राज्यका एकांश और जावरा राज्य एवं पश्चिममें सिन्धिया और होलकर राजका अधिकृत विच्छिन्न भूभाग है। इसी खण्डमें राजधानी झालरापाटन अवस्थित है। दूसरे खण्डके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें ग्वालियर राज्य एवं पश्चिममें कोटा राज्य है। इस खण्डका प्रधान नगर शाहाबाद है। कृपापुर नामक तीसरा खण्ड उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है और यह आयतनमें बहुत छोटा है। इसके उत्तरमें सिन्धिया राज्य, पूर्व, दक्षिण और पश्चिममें मेवाड़ (उदयपुर) राज्य है। समस्त राज्यका भूपरिमाण ८१० वर्गमील है। शहर और ग्रामोंकी संख्या प्राय: ४१० है।

झालावाड़ राज्यका बड़ा विभाग एक ऊँची मालभूमि है। इसका उत्तर भाग समुद्रपृष्ठसे प्राय: १००० फुट और दक्षिण भाग क्रमशः १५०० फुट ऊँचा है। इस खण्डका अधिकांश पर्वताकीर्ण है। उपत्यका प्रदेशमें नदी बहुत तेजीसे बहती है। समस्त पर्वत वृक्ष लतादिसे परिपूर्ण हैं। कहीं कहीं पर्वतके मध्य लम्बी चौड़ी झील शोभा दे रही है। अवशिष्ट भूमिमें प्रचुर शस्य और फलोंकी उपज होती है तथा उसमें कई एक बन्दर हैं। शाहाबाद विभाग भी एक ऊँची मालभूमि तथा जङ्गलपूर्ण है। राज्यकी भूमि प्रधानत: उर्वरा है तथा उसमें अफीम और अन्यान्य मूल्यवान् फसल उपजती है। यहांकी जमीन तीन भागोंमें विभक्त है—१ काली, २ माल, ३ बालि। इनमेंसे काली मट्टी ही सबसे उर्वरा है। दूसरे प्रकारकी जमीन कुछ कुछ पाण्डुवर्णकी है और उसमें फसल भी पहलीसी उपजती है। तीसरे प्रकारकी जमीन सबसे अनुर्वर है।

पारवान नदी इस राज्यके दक्षिण-पूर्वांशमें प्रवेश कर प्राय: ५० मील जानेके बाद कोटा राज्यमें प्रविष्ट होती है। रास्तेमें नेवाज नामकी एक दूसरी बड़ी नदी इसमें

आ कर मिल गई है। मनोहरथाना और भाचूर्णीके निकट पारवान नदीमें तथा भूरिलियाके निकट नेवाज नदीमें पार होनेको घाट है। कालीसिन्धु नदी इस राज्यके किनारे और भीतरसे करीब ३० मील तक पत्थर आदिके ऊपरसे चली गई है। खैरासी और भौंड़ासाके पास इस नदीमें एक पार उतारनेका घाट है। आज नदी इस राज्यके दक्षिण-पश्चिमभागमें प्रवेश कर ग्वालियर, टङ्क और कोटा राज्यकी सीमाप्रदेश होती हुई ६० मील तक जा कर अन्तमें कालीसिन्धु नदीमें गिरी है। इस नदीका गर्भ और तीर कालीसिन्धुकी तरह ऊँचा-नीचा नहीं है। कहीं कहीं तीरस्थ वृक्षराशिकी शाखा बढ़ कर नदीको स्पर्श करती है। सुकेत और भीलवारी नामक स्थानमें आज नदी पार होनेको घाट हैं। छोटी काली नामकी एक दूसरी नदी इस राज्यके कई अंशमें प्रवाहित है।

इतिहास—झालावाड़का राजवंश झाला नामक राजपूत वंशोद्भव है। इसी वंशके आदिपुरुषगण काठियावाड़के अन्तर्गत झालावाड़ प्रदेशमें हलवुड़ नामक स्थानके सर्दार थे। १७०८ ई०में भावसिंह नामक सर्दारके मध्यमपुत्र एक झालावीरने बहुतसे अनुचरको साथ ले स्वदेश परित्याग कर अपने भाग्यके परीक्षार्थ दिल्लीको यात्रा की। राहमें कोटा महाराजके निकट वे अपने पुत्र मधुसिंहको छोड़ गये। इसके बाद भावसिंहका और कोई विवरण मालूम नहीं हैं। मधुसिंह राजाके अत्यन्त प्रिय हो गये। महाराजने मधुसिंहकी बहिनके साथ अपने बड़े लड़केका विवाह करा दिया और मधुसिंहको नातना ग्राम दान दे कर फौजदारके पद पर प्रतिष्ठित किया। मधुसिंहके बाद उनके पुत्र मदनसिंह फौजदार हुए। यह पद क्रमश: उनका वंशानुक्रमिक हो गया। मदनसिंहके बाद हिम्मतसिंह तथा उनके बाद उनके भतीजे प्रसिद्ध आठारह वर्षके जालिमसिंह फौजदार हुए। तीन वर्षके बाद जालिमसिंहने कोटा सैन्य ले कर जयपुरके सैन्यदलको पराजित किया। किन्तु शीघ्रही रमणीप्रेम ले कर राजाके साथ जालिमका मनोविवाद आरम्भ हुआ। उन्होंने पदच्युत हो कर उदयपुरको प्रस्थान किया और वहां अनेक महत्कार्य द्वारा शीघ्रही प्रतिपत्ति लाभ की और महाराणासे राजराणाकी उपाधि मिली। मृत्युकालमें कोटाके राजाने पुन: जालिमको बुला कर अपने पुत्र उम्मेदसिंह तथा कोटा राज्यकी रक्षाका भार उन पर सौंपा। तभीसे जालिमसिंह ही एक प्रकार कोटाके अधिपति हुए। इनके सुशासनके गुणसे कोटा राज्यकी सुखसमृद्धि आशातीत बढ़ने लगी तथा क्या मुसलमान, क्या महाराष्ट्र, क्या राजपूत सभीसे इन्होंने ख्याति प्राप्त की। उन्हींके समयमें वृटिश गवर्मेण्टके साथ सन्धि स्थापन की गई। १८१७ ई०में सन्धिके अनुसार कोटाकी रक्षाके लिये वहां सेना रखी गई तथा १८१८ ई०में उसमें कुछ भाग और मिला दिये गये। राज-राणा जालिमसिंहके हाथ राज्यशासनका कुल भार सौंपा गया। जालिमकी मृत्यु १८२४ ई०में हुई। बाद उनके लड़के माधोसिंह राजकार्य चलाने लगे। यह अयोग्य शासक थे। प्रजा इनके कामोंसे प्रसन्न नहीं रहती थी। १८३४ ई०में इनके लड़के मदनसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए। १८३८ ई०में कोटा-राजकी सम्मतिके अनुसार जालिमसिंहके वंशधरोंके लिये झालावाड़ नामक राज्यका एकांश ले कर एक पृथक् राज्य स्थापनका बन्दोबस्त किया गया। उसीके अनुसार १८३८ ई०में वार्षिक १२ लाख रुपये आयका अर्थात् समग्र राज्यका ⅓ अंश ले कर एक झालावाड़ राज्य संगठित हुआ। इन्होंने कोटा-राजके ऋणका ⅓ अंश भी ग्रहण किया। बाद सन्धिके अनुसार ये अंगरेजोंके आश्रित राजाओंमें गिने जाने लगे। अंगरेज गवर्मेण्टको वार्षिक ८० हजार रुपये राजस्व तथा प्रयोजनके समय साध्यमत सैन्य द्वारा सहायता पहुँचानेके लिये भी ये दायी रहे। मदनसिंहको महाराजा-राणाकी उपाधि दी गई और १५ मान्य तोप दे कर अन्यान्य राजपूत राजाओंके समान मर्यादापन्न किये गये। मदनसिंहके बाद पृथ्वीसिंह झालावाड़के राजा हुए। १८५७-५८ ई०में सिपाही विद्रोहके समय ये बहुतसे यूरोपीय कर्मचारीको आश्रय दे कर तथा निरापदसे रक्षा करके गवर्मेण्टके विश्वस्त हुए। १८७६ ई०में उनके दत्तक पुत्र भक्तसिंह राजा हुए। ये नाबालिग अवस्थामें अजमीरके मेओ-कालेजमें पढ़ते थे। उतने दिनों तक किसी अंगरेज कर्मचारीसे राजकार्य चलता था। पीछे भक्त-

सिंहने वयःप्राप्त होने पर जालिमसिंह कौलिक नाम धारण कर १८८४ ई०में यथाविधि शासनभार ग्रहण किया। झालावाड़के राजाको १५ मान्य तोपें दी जाती थीं। ये २४७ गोलन्दाज सैन्य, ४२५ अश्वारोही, ३२६६ पदातिक सैन्य तथा २० बड़ी और ७५ छोटी तोपें रखते थे। किन्तु जब वे निर्द्धारित नियमोंसे राजकार्य न चला सके, तब १८८७ ई०में भारतसरकारने उनकी क्षमता छीन ली। १८९२ ई०में जालिमसिंहने राज्य-सुधारका कुल भार अपने सिर ले लिया। अतः भारत-सरकारने राजस्व-विभागके सिवा और सभी अधिकार उन्हींके हाथ सौंप दिये। राजस्व-विभाग काउन्सिलके अधीन रखा गया। किन्तु १८९४ ई०के सितम्बर मासमें जालिमसिंहको रही सही सभी क्षमता तो मिल गई, पर वे राजकार्य सुचारुरूपसे चला नहीं सकते थे। अतः वे १८९६ ई०में सिंहासनच्युत किये गये। बाद वे बनारस जा कर रहने लगे और वार्षिक ३०००० रुपयेकी वृत्ति उन्हें मिलने लगी। जालिमके कोई लड़के न थे। अतः भारत-सरकारने कोटाको वे सब प्रदेश लौटा दिये, जो १८३४ ई०में झालावाड़ राज्यके संगठनके लिये दिये गये थे। बाद उन्होंने शेष जिलोंको ले कर एक नया राज्य इस ख्यालसे स्थापित किया कि उसमें प्रथम राज-राणा जालिमसिंहके वंशज राज्य कर सकें। १८९७ ई०में फतेपुरके ठाकुर छत्रसालके लड़के कुँवर भवानीसिंह नये राज्यके प्रधान सरकारकी ओरसे ठहराये गये। ये कोटाके प्रथम झाला फौजदार माधोसिंहके वंशज थे। राज्यका सब अधिकार मिल जाने पर भवानीसिंहको राजराणाकी उपाधि और ११ सम्मानसूचक तोपें मिलीं। इन्हें ब्रटिश गवर्मेण्टको वार्षिक ३०००० रुपये करस्वरूप देने पड़ते हैं। राजराणाने मेयो कालेजमें शिक्षा प्राप्त की है। इनके समयमें जो कुछ घटना हुईं वे इस प्रकार हैं—१८९९-१९०० ई०में दुर्भिक्ष, १९०० ई०में इम्पीरियल पोस्टकी स्थापना, १९०१ ई०में ब्रटिश करेन्सी और तौलका प्रचार, १९०४ ई०में विलायत-यात्रा। इनका पूरा नाम यह है—महाराज राणा सर भवानीसिंहजी बाहादुर के० सी० एस० आई० एम० आर० ए० एस आदि।

इस राज्यमें प्रायः सभी प्रकारके अनाज उत्पन्न होते हैं। दक्षिण भागमें बहुत अफीम उपजती और वह बम्बई नगरमें रफतनी होती है। शाहाबादमें बाजरा तथा दूसरी जगहमें ज्वार, गेहूं और अफीम ही प्रधान उत्पन्न द्रव्य है। प्रायः कुएँसे जल सींचनेका काम होता है। इस राज्यमें थोड़ी ही गहराईमें पानी निकलता है। झालरापाटनमें एक बड़ा सरोवर है, उसीके जलसे विस्तीर्ण क्षेत्र सींचा जाता है।

१०० अश्वारोही और ४२० पदातिक सैन्य शान्ति स्थापनके काममें नियुक्त हैं। कारागारके कैदी सड़क बनाते तथा कम्बल बुनते हैं।

यहां विद्याशिक्षाको अच्छी व्यवस्था नहीं है; किन्तु धीरे धीरे उन्नति होती जाती है। देशीय भाषाकी पाठशालाके सिवा झालरापाटन और छावनी नगरमें दो विद्यालय हैं, उन्हींमें अङ्गरेजी, उर्दू और हिन्दी भाषा सिखलाई जाती है। राजराणा दीवानकी सहायतासे रियासतका इन्तजाम करते हैं। पांचों तहसीलमें पांच तहसीलदार हैं जिनके कामोंमें नायब तहसीलदार मदद देते हैं। ब्रटिश भारतके न्यायशास्त्रानुसार यहांका भी न्यायकार्य सम्पन्न होता है। निम्न अदालतमें तहसीलदार रहते हैं। वे दीवानी मामलेका विचार करते हैं। उन्हें एक महीनेसे अधिक कैद तथा तीस रुपयेसे अधिक दण्ड करनेका अधिकार नहीं है। इसके ऊपर दीवानी अदालत है जहां केवल ५०००) रुपये तकका मामला पेश किया जाता है। फौजदारी अदालत दो वर्ष कैद और ३००) रु० जुर्माना कर सकती है। इसके बाद अपील-कोर्ट है। यहां कानूनके अनुसार कितना ही दण्ड क्यों न हो, मिलता है। लेकिन बड़े बड़े मुकद्दमोंमें महकमा खाससे जिसमें राजराणा प्रधान हैं, सलाह लेनी पड़ती है।

राज्यकी वर्त्तमान आय लगभग चार लाख रुपयेकी है। जिनमेंसे ३००००) रु० ब्रटिश गवर्मेण्टको करमें देने पड़ते हैं।

पहले झालावाड़ राज्यमें निजका सिक्का जिसे मदनशाही कहते थे, चलता था। यह सिक्का मूल्यमें अङ्गरेजी सिक्केसे कभी बराबर और कभी ज्यादा होता था।

लेकिन १८९८ ई०में १२३) मदनशाही रुपये अङ्गरेजी १००) रुपयेमें बदले जाने लगे। अतः राजराणाने १९०१ ई०को पहली मार्चसे निजका सिक्का उठा कर अङ्गरेजी सिक्का कायम रक्खा।

पूर्व समयमें खेतकी उपज ही मालगुजारीमें दी जाती थी। लेकिन १८०५ ई०में जालिमसिंहने जमीनके अनुसार मालगुजारी स्थिर कर रुपये पैसेमें चुकानेकी प्रथा जारी की। राजकोषसे ५ दातव्य चिकित्सालयका बन्दोबस्त किया गया है।

अधिवासियोंमें सैकड़े पीछे ८६ हिन्दू और शेष मुसलमान हैं। यहां सिन्धिया (सन्ध्या) नामकी एक जाति रहती है। झालावाड़में इसकी संख्या प्रायः २२ हजार है। इस राज्यमें लगभग ८०१७५ लोग बसते हैं। ये न अत्यन्त गोरे हैं और न विशेष काले। सन्ध्यासमयके वर्ण-सा इनका वर्ण है। इन लोगोंका कहना है कि ये एक जातिके राजपूत तथा शार्दूलवदन नामक किसी राजाके वंशधर हैं। ये आलसी, व्यभिचारी तथा इनमेंसे अधिकांश चोर होते हैं। इनकी स्त्रियां अश्वारोहणमें निपुण होती हैं।

राज्यमें ६४½ मील तक पक्की सड़क गई है और बारहों मास उस पर बैलगाड़ी आदि आती जाती हैं। ८९½ मील तककी सड़क वर्षा भिन्न दूसरे समयके लिये सुगम नहीं है। झालरापाटनसे नीमच, आगरा, उज्जयिनी तथा कोटा तक सड़क गई है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्व स्थ सड़क द्वारा इन्दोरसे बम्बई नगरमें अफीम और बिलायती कपड़ेका अदला बदला होता है। भूपाल और हरवतीसे शस्य तथा आगरासे वस्त्रादिकी आमदनी होती है।

झालावाड़के सोने और चाँदीके बरतन, पीतलके बरतन तथा पालिशयुक्त असबाब प्रसिद्ध हैं।

जलवायु—झालावाड़का जलवायु मध्यभारतके जलवायुसे कुछ कुछ स्वास्थ्यकर है।

राजपूतानेके उत्तर भागकी नाईं यहां निदारुण ग्रीष्म नहीं पड़ता। ग्रीष्मकालमें दिनके समय छायामें तापका अंश फा० ८५° से ८८° तक होता है। वर्षाकालमें वायु स्निग्ध और मनोरम रहती और शीतकालमें प्रायः ओस पड़ती रहती है।

इस राज्यमें झालरापाटन, शाहाबाद, कैलवार, छिपाबुरोद बुकारिसुकेत, मन्दाहार, थाना, पांच पहाड़, डाग और गाड़्वार प्रधान प्रधान नगर लगते हैं।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठियावाड़का एक प्रान्त अर्थात् भूभाग। झाला नामक एक राजपूत जातिसे यह नाम पड़ा है। झालागण ही यहांके प्रधान अधिवासी हैं। यह विभाग गुजरात उप-द्वीपके उत्तर-पूर्व रन नामक लवणाक्त अनुप्रदेशके दक्षिणमें अवस्थित है। ध्रांध्रा, वांकेनेर, लिंबड़ी, बधवान तथा और कई एक छोटे छोटे राज्य इस विभागके अन्तर्गत हैं। ध्रांध्राके राजा ही झाला-समाजके नेता कह कर आहृत होते हैं। इसका भूपरिमाण ३९७८ वर्गमील है। इसमें ८ नगर और ७०२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ३०५१३८ है।

झालि (सं० स्त्री०) व्यञ्जनभेद, एक प्रकारकी कांजी। यह कच्चे आमको पीस कर उसमें राई, नमक और भूनी हींग मिला कर बनाई जाती है। इसका गुण जिह्वागत, कण्डुनाशक और कण्ठशोधक है।

"आम्रमामफलं पिष्टं राजिका लवणान्वितम्।
भृष्टं हिंगुयुतं पूतं घोलितं झालिरुच्यते॥" (भावप्रकाश)

झालू—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २९° २०′ उ० और देशा० ७८° १४′ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६४४४ है। अकबरके समय यह एक महाल या परगनेका सदर था। १८५६ ई०की २०वीं धाराके अनुसार इसका प्रबन्ध होता है।

झालोतार आजगांई—अयोध्याके अन्तर्गत उनाव जिलेकी मोहान तहसीलका एक परगना। यह मोहान औरासमे दक्षिण तथा हड़ाके उत्तरमें अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ८८ वर्गमील है, जिसमें ५५ मील खेती करनेके लायक है। अवध-रोहिलखण्ड रेलवे इसी परगनेसे गयी है। उसीका कुसुम्भि नामक एक ष्टेशन यहां है। यहां पांच हाट लगती हैं।

झालोद—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत पाँचमहाल जिलेके दोहद तालूकका एक छोटा अंश। यह अक्षा० २२° २५′ ५०″ से २३° २५′ उ० और देशा० ७४° ६′ से

७४°२३´२५´´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तर और पूर्वमें मध्य भारतके चेलकारी और कुशलगढ़ राज्य, दक्षिणमें दोहद तथा पश्चिममें रेवाकांठा है। अनस नदी इसके पूर्व-भागमें प्रवाहित है। यहां कम गहराईमें ही पानी निकलता है और कुएंके जलसे खेत सींचा जाता है। गुजरात और मालवका वाणिज्य-पथ इसी खण्डके मध्य-में अवस्थित है। भूपरिमाण २६७ वर्गमील है।

२ बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत पांचमहाल जिलेके दोहद थानाके उक्त झालोद खण्डका एक नगर। यह अक्षा० २३°६´ उ० और देशा० ७४°८´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५८१७ है। इसके अधिकांश अधिवासी कोल और भील हैं पहले यह एक विस्तीर्ण १६ नगरयुक्त परगनेका प्रधान स्थान था। अभी भी भिन्न भिन्न तरहके शस्य, कपास, धातुपात्रादि तथा हाथी दाँतसे रतलाम-वलय (चड़ो)-के जैसा लाहकी बनी हुई चूड़ी तरह तरहके खिलौने दूर दूर देशोंमें भेजे जाते हैं। मस्जिदें, देवालय तथा बड़ी बड़ी अट्टालिकाएँ नगरको शोभाको बढ़ाती हैं। नगरके समीप एक बड़ा सरोवर है, यह नगर नीमचसे बरोदा जानेके पथ पर अवस्थित है।

झाबु (सं० पु०) झा झा इति शब्दं कृत्वा वाति गच्छति वा-डु। वृक्षविशेष, झाऊ नामका पेड़।

झाबुक (सं० पु०) झाबुरेव स्वार्थे कन्। झाबु देखो।

झिंगन (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पेड़। इसके पत्तोंसे लाल रंग बनता है। २ सारस्वत ब्राह्मणोंकी एक जाति।

झिंगवा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी मछली। इसके मुंह और पूंछके पास दोनों तरफ बाल होते हैं।

झिंझिया (हिं० स्त्री०) एक तरहका घड़ा जिसमें बहुत-से छोटे छोटे छेद होते हैं। छोटी छोटी लड़कियां इसमें जलता हुआ दीया डाल कर कुआरके महीनेमें घुमाती हैं।

झिंझोटी (हिं० स्त्री०) शुद्ध स्वरयुक्त सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। यह दिनके चौथे पहरमें गाई जाती है।

झिंझोतिया—बुन्देलखण्डके ब्राह्मणोंका एक भेद। सुलतानपुर और चन्देरी आदि देशोंमें ये लोग अधिक संख्यामें रहते हैं। बुन्देलखण्डका प्राचीन नाम जिझोता है और वहांके ब्राह्मण जिझोतिया कहलाते हैं। कनौ-जिया ब्राह्मणके जैसा गोत्र होनेके कारण ये लोग उन्हींके अन्तर्गत माने जाते हैं।

झिकरगाछा बङ्गालके अन्तर्गत यशोर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २३°६´ उ० और देशा० ८९°८´ पू० पर अवस्थित है। यह यशोर नगरसे ८ मील दूर कालि-यादह नदीके पश्चिम तीरमें अवस्थित है। नदीके ऊपर एक झूला अर्थात् झूलता हुआ पुल है। यहां खजूरके गुड़ और चीनीका व्यवसाय अधिक होता है। नीलकर साहब मेकेञ्जीके नामानुसार निकटवर्त्ती हाटका नाम मेकेञ्जीहाट पड़ा है। यहांसे शान्तिपुर जानेका रास्ता सुगम होनेके कारण बहुतसे शान्तिपुरके व्यापारी इस शहरसे गुड़ खरिद कर चीनी प्रस्तुत करनेके लिये शान्तिपुर ले जाते हैं।

झिङ्गाक (सं० क्ली०) लिगि-आकन् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ फलविशेष, एक फलका नाम। इसके गुण—तिक्त, मधुर, आमवात और मन्दाग्निकारक है। २ कर्कटी, ककड़ी।

झिङ्गिनी (सं० स्त्री०) लिगि-णिनि, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ जिङ्गिनी वृक्ष, एक प्रकारका बहुत बड़ा जंगली पेड़। इसके पत्ते महुएके समान और शाखाओंमें दोनों ओर लगते हैं। इसके फल सफेद और फल बेरके समान होते हैं। २ उल्का, मशाल, दस्ती।

झिङ्गी (सं० स्त्री०) लिगि-अच्-ङीष् पृषोदरादित्वात् साधुः। झिङ्गिनी देखो।

झिझकार (हिं० स्त्री०) झझकार देखो।

झिझकारना (हिं० क्रि०) १ झझकारना देखो। २ झटकना देखो।

झिझिट सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। इसमें कोमल निखाद व्यवहृत होता है। यह आधुनिक राग है। इसे झिझोटी भी कहते हैं। यह सन्ध्याके समय गायी जाती है, किसी किसीके मतसे सब समय गायी जा सकती है। (संगीतरत्ना०)

झिम्झान युक्तप्रदेशके अन्तर्गत मुजफ्फरनगर जिलेकी शामली तहसीलका एक कृषिप्रधान शहर। यह अक्षा० २९°३१´ उ० और देशा० ७७°१३´ पू०के मध्य मुज-फ्फरनगरसे ३० मील पश्चिम यमुना नदी और काढ़ीके

मध्यवर्ती समप्रदेश पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५०८४ है। यहां पहले एक दुर्ग था। अभी भी इस दुर्गके मध्य एक मस्जिद तथा शाह अबदुल रजाक और उनके चार पुत्रोंकी कब्र विद्यमान हैं। ये सब कब्र और मस्जिद सम्राट् जहांगीरके समयमें बनाई गई थी। उनके गुम्बजमें नील वर्णके बहुशिल्प-कार्ययुक्त पुष्प चमक रहे हैं। दरगा इमाम साहब नामकी अट्टालिका सबसे प्राचीन है। शहरके निकट खाड़ीके रहनेसे वर्षाकालमें बहुत दूर तक जलमग्न हो जाता है। ज्वर, वसन्त आदि यहांका साधारण रोग है। यहाँ एक थाना और डाकघर है।

झिझिम (सं० पु०) झिम् इत्यव्यक्त शब्दं कृत्वा भ्रमति अग्नि वृक्षादीन् दहतीत्यर्थः भ्रम-अच् पृषोदरादित्वात् साधुः। दावानल, वनकी आग।

झिझिरा (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष, एक प्रकारकी झाड़ी।

झिझिरिष्ट (सं० स्त्री०) क्षुपविशेष, एक प्रकारका क्षुप। इसके संस्कृत पर्याय—फला, पीतपुष्पा, झिझिरा, रोमा-श्यफला और वृत्ता है। इसके गुण कटु, शीत, कषाय, रक्तातीसारनाशक वृष्य, सर्पदंशल्व, वल्य और महिषो-क्षीरवर्धक है।

झिझी (सं० स्त्री०) कीटविशेष, झिल्ली, झींगुर।

झिञ्झुवाड़ा—१ गुजरातके काठियावाड़के अन्तर्गत झालावाड़ उपविभागका एक छोटा राज्य। इसका भूपरि-माण १६५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११७३२ है। इसमें कुल १८ ग्राम लगते हैं यहांके अधिपति अंग्रेज गवर्मेण्टको ११०७३) रु० राजस्व देते हैं। यहां-के अधिकांश अधिवासी कोलि जातिके हैं। पहले इस राज्यमें नमकके तीन कारखाने थे। गवर्मेण्टने तालुक-दारोंको क्षतिपूर्ति स्वरूप कुछ दे कर कारखानेको उठा दिया है। राज्यके अनेक स्थानोंमें सोरा उत्पन्न होता है। निकटवर्ती रणका अधिकांश कई एक द्वीपके साथ इस राज्यके अन्तर्भुक्त है। झिलानन्द नामक बड़ा द्वीप प्रायः १० वर्गमील चौड़ा है। इस द्वीपमें कहुलके तालाब और भोटवा नामक एक जलस्रोत है। प्रवाद है, कि आनन्द नामक किसी नरपतिने इस कुण्डमें स्नान कर दुरारोग्य कुष्ठव्याधिसे मुक्ति पाई थी।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातके काठियावाड़में झालावाड़ उपविभागके उक्त झिञ्झुवाड़ा राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° २१´ उ० और देशा० ७१° ४२´ पू०में अवस्थित है। यह नगर बहुत प्राचीन है। अब भी यहां एक दुर्ग, पर्वत पर खुदा हुआ एक तालाब तथा प्राचीन भास्कर और स्थपतिनैपुण्यके परिचायक बहुतसे शिलालेख, भग्न वहिर्द्वार आदि विद्यमान हैं। यहां बहुतसे पत्थरोंमें 'महान् श्री उदाल' नाम खुदा हुआ है। प्रवाद है—कि उदाल अनहिल्लवाड़-पत्तनके अधिपति सिद्धराज जयसिंहके मन्त्री थे। इन्होंने अपनी जन्मभूमि झिञ्झुवाड़ामें उक्त दुर्ग और सरोवर निर्माण किया। अहमदाबादके सुलतानने झिञ्झुवाड़ा अधिकार कर अपने दुर्गमें मिला लिया, पीछे अक-बरने इसे जीत कर यहां मुगल साम्राज्यका एक थाना स्थापन किया। मुगलसाम्राज्यके अधःपतनके समय वर्तमान तालुकदारोंके पूर्वपुरुष काभोजीने इस दुर्गको अधिकार किया। यहांके तालुकदार द्वारा सम्प्रदायभुक्त झालावंशके हैं, किन्तु कोलियोंके साथ विवाह-सूत्रमें आबद्ध हो जानेसे पतित हो गये हैं। कहा जाता है, कि झुञ्जो नामक किसी रबारीने झिञ्झुवाड़ा स्थापन किया। यह नगर बम्बई-बरोदा और मध्यभारतीय रेलपथकी परिशाखाके खाड़ाघोड़ा स्टेशनसे १६ मील उत्तरमें अव-स्थित है। यहाँ डाकघर और विद्यालय है।

झिड़कना (हिं० क्रि०) १ तिरस्कार वा अवज्ञा-पूर्वक बिगड़ कर कोई बात कहना। २ झटकना, अलग फेंक देना।

झिड़की (हिं० स्त्री०) झिड़क कर कही हुई बात, डाँट, फटकार।

झिड़झिड़ाना (हिं० क्रि०) कटुवचन कहना, चिड़-चिड़ाना, भला बुरा कहना।

झिड़झिड़ाहट (हिं० स्त्री०) झिड़झिड़ानेकी क्रिया या भाव।

झिण्टिका (सं० स्त्री०) झिण्टी, कटसरैया, पियाबासा।

झिण्टी (सं० स्त्री०) झिमिति शब्दं रटतीति रट-अच् गौरादित्वात् ङीष् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कटसरैया क्षुप, पुष्प-

वृक्षविशेष, कटसरैया, पियाबासा। इसके पर्याय—सैरीयक, कण्टकुरण्ट, सैरेयक और झिण्टिका है। नीलझिण्टिकाके पर्याय—बाना, दासी, आर्त्तगल, वाण, आर्त्तगल, महचर और नीलकुरण्टक। अरुण-झिण्टिकाका पर्याय—कुरवक। पीतझिण्टिकाके पर्याय—कुरण्टक, सहचरी, सहचर महाचर, वीर, पीतपुष्प, दासी और कुरण्टक है। इसके गुण—कटु, तिक्त, दन्तामय, शूल, वात, कफ, शोथ, काश और त्वक् दोषनाशक है। २ कुन्दर तृण, कोई घास।

झिण्टीश (सं० पु०) १ झाण्टी कठसरैया। २ शिव, महादेव।

झिनवा (हिं० पु०) महीन चावलका धान।

झिनाई बङ्गालके मैमनसिंह जिलेकी एक नदी। यह जमालपुरके निकट ब्रह्मपुत्रसे निकल कर जाफरगाही होती हुई यमुनामें जा गिरी है। ग्रीष्मकालको इसमें अधिक जल नहीं रहता, किन्तु दूसरे समयमें नाव सदा आती जाती है।

झिनाईदह—१ बङ्गालके अन्तर्गत यशोर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २३° २२´ से २३° ४७ उ० और देशा० ८८° ५७´ से ८९° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ४७५ वर्गमील है। इसमें ग्राम और नगर मिला कर कुल ८६५ लगते हैं। पहले यह स्थान भूषणा उपविभागके अन्तर्गत था। १८६१ ई०के नीलकरके उपद्रवमें मागुराके कई अंश ले कर यहाँ एक स्वतन्त्र उपविभाग स्थापित हुआ। इस उपविभागमें १ दीवानी अदालत, १ मजिष्ट्रेट और कलेक्टरी अदालत, १ छोटी अदालत, २ रजिष्टरी आफिस और तीन थाने हैं। लोकसंख्या प्रायः ३०४८८८ है।

२ बङ्गालके अन्तर्गत यशोर जिलेके उपरोक्त झिनाईदह उपविभागका सदर और एक शहर। यह अक्षा० २३° ३३´ उ० और देशा० ८९° ११´ पू० पर यशोरसे २८ मील उत्तर नवगङ्गा नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँके बाजारमें चीनी, तण्डुल और लाल मिर्चका व्यवसाय अधिक होता है। नवगङ्गा नदीके द्वारा कई एक स्थानोंके साथ वाणिज्यका सम्बन्ध है, किन्तु उक्त नदीमें अधिक समय बहुत कम पानी रहता है। इष्टर्न-बङ्गाल स्टेट रेलवेसे झिनाईदह तक एक सड़क बनाई गई है। वारेन हेष्टिंसके समय इस शहरमें भूषणा थानाके अधीन एक चौकी स्थापित हुई। १७८६ ई०में यह मामूदशाही विभागकी कलेक्टरीका तथा पीछे १८६१ ई०में यह एक उपविभागका सदर हो गया।

प्रवाद है, कि पहले झिनाईदहके चारों ओर डकैत रहते थे। वे पथिकको मार कर उसका सर्वस्व ले लेते थे। शहरके समीप जो एक बड़े सरोवरमें वे पथिकको लूटते थे। आज भी उस सरोवरके 'चक्षुकोरा' या 'माड़ो धापा' इत्यादि नामसे चक्षुरुत्पाटन, दन्तभञ्जन प्रभृति नृशंस व्यापारका हो स्मरण आ जाता है। झिनाईदहके निकट बृहस्पति और रविवारको एक पाक्षिक हाट लगती है। हाटमें जितनी चीजें आती हैं उनमें हर एकसे स्थानीय कालीजीके लिए मुट्ठी वसूल की जाती है। झिनाईदहके निकटवर्ती चुयाडाङ्गा नामक एक ग्राममें पाँचु पाँचुई नामक एक ठाकुर हैं। बहुतसी वन्ध्या स्त्रियाँ सन्तानकी कामनासे उनकी पूजा करने को आती हैं। झिनाईदह यशोरसे बहुत ऊँचा तथा शुष्क और स्वास्थ्यकर है।

झिन्दन महाराणी—पञ्जाबकेशरी महाराज रणजित्सिंहकी प्रियतमा महिषी और महाराज दलीपसिंहकी माता। इनके भाई जवाहिरसिंह कुछ दिन शिखराज्यके वजीर थे तथा अन्तमें दुर्दान्त खालसा सैन्य द्वारा निहत हुए थे।

रणजित्सिंहकी विवाहिता स्त्रियोंमें झिन्दन सबसे अधिक प्रियतमा थीं, इसीलिए रणजित्सिंह उनको 'स्नेहसे माः बुवा' अर्थात् प्रियपतिकी प्रिया कहते थे। शाहसूजाको काबुलके सिंहासन पर पुनः स्थापित करनेके लिए जो झगड़ा चला था, उससे पहले महाराणी झिन्दनने दलीपसिंहको प्रसव किया था। महाराज रणजित्सिंह इस संवादको पा कर अत्यन्त आनन्दित हुए; उन्होंने इस खुशीमें दरिद्रोंको खूब धन दान दिया और १०१ तोप छुड़वा कर इस सुसंवादको घोषित किया।

महाराज रणजित्सिंहके परलोक गमनके बाद यथाक्रमसे खड्गसिंह, नवनिहालसिंह और शेरसिंह पञ्जाब-

के सिंहासन पर बैठे थे। शेरसिंहकी मृत्युके उपरान्त पञ्चवर्षीय बालक दलीपसिंह सिंहासन पर अधिष्ठित हुए और महाराणी झिन्दन उनकी अभिभावक बन कर राजकार्य चलाने लगीं। ध्यानसिंहके पुत्र हीरासिंह उस समय वजीरके पद पर नियुक्त हुए।

महाराणी झिन्दनका चरित्र बड़ा ही विचित्र है। इनमें पुरुषोचित अटलता, सहिष्णुता, निर्भीकता आदि अनेक गुण विद्यमान थे, ये अत्यन्त तेजस्विनी थीं। सोत्साह शक्तिसञ्चालन, सेनाका उत्साहवर्द्धन और अद्भुत मनस्वितामें बहुतसे लोग इनको इङ्गलैण्डेश्वरी एलिजाबेथके समान बतलाते हैं। परन्तु केवल एक दोषने इनको साम्राज्यदण्ड परिचालनके लिए अनुपयुक्त कर दिया था। ये अपने चरित्रको निष्कलङ्क न रख सकी थीं। कुछ भी हो, झिन्दन प्रतिदिन दरबारमें जा कर सरदार और पञ्चायत अर्थात् खालसा-सेनाके अधिनायकोंके साथ मन्त्रणा करके अत्यन्त दक्षताके साथ राजकार्यकी पर्यालोचना करने लगीं। किन्तु वीरहृदय खालसा-सैन्योंको राणीके चरित्रमें सन्देह होने लगा। राजा लालसिंह उस सन्देहके पात्र थे। महाराणीने लालसिंह पर निरतिशय अनुग्रह प्रकट कर अपने प्रासादमें उनको स्थान दिया था। इस विषयको ले कर एक दिन तेजस्वी हीरासिंहके उपदेष्टा और सहायक जल्लाने प्रकाश्य दरबारमें राणीका तिरष्कार किया। राणीके कोपसे उन्हें शीघ्र ही लाहोर छोड़ कर भागना पड़ा, किन्तु भागते समय खालसा-सेना द्वारा वे मारे गये। इसी तरह राणी अपने दोषसे वीरवर हीरासिंहका विनाश कर सिख-राज्यका अधःपतन करने लगीं।

इस समय महाराणीके भाई जवाहिरसिंहको और उनके अनुग्रहके पात्र लालसिंहको राज्यके समुच्च पद प्राप्त हुए। ये दोनोंही व्यक्ति विलासप्रिय, कायर और खालसा-सैन्योंको सुशासनसे रखनेमें सम्पूर्ण अयोग्य थे। पशोरासिंहको छिपो तौरसे हत्या करने पर खालसा-सैन्यने झिन्दन और दलीपके सामनेही जवाहिरसिंहको मार डाला। महाराणी भाईके शोकमें अत्यन्त अधीर हो कर बहुत दिनों तक विलाप करती रहीं। पीछे जवाहिरसिंहके निधनके प्रधान प्रधान उद्योगियोंके पदच्युत और निर्वासित होने पर रानी पुनः राजकार्य चलाने लगीं। तेजसिंह सेनापतिके पद पर नियुक्त हुए। प्रथम सिख-युद्धके बाद लालसिंह पञ्जाबके प्रधान सचिव नियुक्त हुए। इसके बाद महाराणी अंग्रेजोंके पराक्रमसे ईर्षान्वित हो कर षड़यन्त्रमें लिप्त हुईं। भइरवालकी सन्धिके अनुसार दलीपकी वयःप्राप्ति पर्यन्त पञ्जाबके राज्यशासनका भार अंग्रेज-गवर्मेण्टने अपने हाथ ले लिया। महारानीको वार्षिक डेढ़ लाख रुपयेकी वृत्ति दे राजकार्यसे हटा दिया गया। इससे पहले अंग्रेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्रमें शामिल रहनेके अपराधसे लालसिंहको मासिक सिर्फ दो हजारकी वृत्ति दे कर बनारसमें रक्खा गया। कुछ भी हो, महाराणी राजकार्यसे वञ्चित हो कर अत्यन्त क्षुब्ध हुईं और छिपो तौरसे सर्दारोंसे सलाह करने लगीं। राज्यके सभी अशान्त व्यक्ति उनके पास आश्रय पाने लगे। रेसिडेण्टने यह सब हाल गवर्नर जनरलको लिखा उन्होंने बालक महाराजको रानीसे अलग कर देनेका आदेश दिया। इसके अनुसार रेसिडेण्टने सर्दारोंकी सम्मति ले कर महाराणीको शेखोपुरके किलेमें भिजवा दिया। उनको अलङ्कारादि सब ले कर जानेकी अनुमति दी गई थी। जिस समय यह निदारुण सम्बाद दिया गया था, उस समय भी इस तेजस्विनी रमणीने प्रियतम पुत्रसे विच्छिन्न होना पड़ेगा यह सोच कर जरा भी कातरता नहीं दिखाई थीं।

शेखोपुरमें रहते समय महाराणीकी वृत्ति घटा कर मासिक ४०००) रुपये निर्द्धारित हुए। शेखोपुरमें ये प्रायः बन्दिनीकी तरह रहती थीं। ये अपनी एकमात्र परिचारिकाके सिवा अन्य किसीसे भी साक्षात् नहीं कर पाती थीं। धीरे धीरे उन्हें यह अवस्था अत्यन्त कठोर मालूम पड़ने लगीं। उन्होंने अपने वकीलके द्वारा अपनी दुरवस्थाका हाल गवर्मेण्टको लिखा, पर गवर्नर-जनरलने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसके बाद मुलतानमें कुछ सैनिकोंने महाराणीके नामसे विद्रोह उपस्थित किया। परन्तु थोड़े आयाससेही विद्रोहियोंके नेता पकड़े गये और उन्हें दण्ड दिया गया। रेसीडेण्टको यद्यपि यह मानना पड़ा था कि, इस विद्रोहमें महाराणी शामिल नहीं थीं, किन्तु तो भी उन्हें शेखो-

पुरसे स्थानान्तरित करनेका इन्तजाम किया गया। झिन्दनने आत्मरक्षाके लिए बारम्बार प्रार्थनाएं की, पर वे सब व्यर्थ हुईं। उन्हें मणि-रत्न-अलङ्कारादि समस्त सम्पत्ति सहित बनारस भेज दिया गया।

उनको यह भी कह दिया कि, उनको सम्मानरक्षा और आपत्तिकी जरा भी आशङ्का नहीं करना चाहिये, नये स्थानमें उनको विश्वस्त अंग्रेज-कर्मचारीके अधीन रक्खा जायगा। किन्तु अंग्रेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्र करने पर उन्हें चुनारमें कैद करके रक्खा जायगा और अवस्था इससे भी कष्टकर हो जायगी। इस समय महाराणीको वृत्ति और भी घटा दी गई, सिर्फ १ हजार रुपये मासिक दिये जाने लगे। इसके बाद झिन्दन पर और एक विपत्ति आ पड़ी। उनको विद्रोह और षड़यन्त्रमें लिप्त समझ कर गवर्मेण्टने उनके मणिमाणिक्य—अलङ्कारादि सब जब्त कर लिए, दो सम्भ्रान्त बिबियों द्वारा उनकी परिचारिकाओंके कपड़े तककी खोज कर विद्रोह सूचक पत्रादिका सन्धान लिया गया, पर कुछ भी न निकला। तो भी वे अपनी सम्पत्तिसे वञ्चित हो रहीं। इस समय उन्हें अपना खर्च चलाना भी भारी पड़ गया। उन्होंने निउमार्च साहबको वकील नियुक्त कर उनके जरिये अपनी दुरवस्थाका विषय गवर्मेण्टको ज्ञात कराया। गवर्मेण्टने उस पर कर्णपात भी नहीं किया। निउमार्चने विलायत जा कर भारतसभामें महाराणीको तरफसे आवेदन करनेके लिए ४०,०००) रुपये मांगे पर उस समय महाराणीके पास उतने रुपये थे नहीं, इसलिए उन्हें आत्मरक्षा विषयमें बिल्कुल हताश होना पड़ा।

इधर रणजित्‌सिंहकी महिषीके पञ्जाबसे निर्वासित किये जानेके कारण खालसा सेना अत्यन्त असन्तुष्ट हो गई। ये समस्त पञ्जाबवासियोंकी मातृस्थानीया थीं, इनके निर्वासित और प्रपीड़ित होनेका संवाद सुन कर पञ्जाबवासी भीत और क्रुद्ध हो गये। निरपेक्ष ऐतिहासिकोंने स्वीकार किया है कि, लार्ड डालहौसीके द्वारा किया गया महाराणी झिन्दनका निर्वासन ही २य सिख-युद्धका अन्यतम कारण है। इसके बाद २य सिखयुद्धमें चिलियानवालाक्षेत्रमें अंग्रेजोंके भलीभांति पराजित होने पर महाराणी झिन्दनने गवर्नर जनरलके पास एक प्रस्ताव भेजा कि, उनको कारावाससे मुक्त करके पञ्जाबमें भेज दिया जाय, ऐसा होने पर वे शीघ्र ही विद्रोह दमन करनेमें समर्थ होंगी। परन्तु यह प्रस्ताव अग्राह्य हुआ। गुजरातके युद्धमें सिख-सेना बिल्कुल परास्त हो गई, अवशिष्ट विद्रोही सेना और सेनापतियोंने अंग्रेजोंसे आश्रयकी प्रार्थना की। कुछ दिन बाद ही पञ्जाबराज्य अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया; शिशुमहाराज वृत्ति सहित फतेपुर भेज दिये गये। इसके कुछ दिन बाद विधवा रणजित् महिषी झिन्दन बनारससे चुनार भेजी गईं। वहाँ १८४८ ई०को ६ अप्रील को वे कौशलसे कारागारसे भाग कर नेपालकी तरफ चल दीं। बहुत कष्टसे अशेष दुर्गम पथको अतिक्रम कर वे किसी तरह नेपालके सीमान्तप्रदेशमें उपस्थित हुईं और राजासे आश्रयप्रार्थना की। प्रसिद्ध जङ्गबहादुरने महाराणीको उसी समय नेपालस्थ रेसीडेण्टके पास भेज दिया। गवर्मेण्टने इस बातको जान कर महाराणीकी अवशिष्ट सम्पत्ति भी जब्त कर ली और मासिक एक हजार रुपयेकी वृत्ति देना कबूल कर उसी स्थानमें रहनेका आदेश दिया।

कुछ दिन बाद महाराज दलीपसिंह इंगलैण्ड गये महाराणी नेपालमें ही रहने लगीं। किन्तु नाना कारणोंसे झिन्दिनको नेपालका रहना कष्टकर हो गया। जङ्गबहादुर इन पर नाराज थे; विशेषतः झिन्दनको नेपालसे २० हजार रुपये मिलते थे, यही जङ्गबहादुरको खटकता था।

१८६१ ई०में दलीपसिंह अपनी सम्पत्तिकी मीमांसा, व्याघ्र शिकार और माताके लिये कुछ बन्दोवस्त करनेके उद्देश्यसे भारतवर्षको लौटे। गवर्नर जनरलने झिन्दनको नेपालसे ले आनेकी अनुमति दे दी। महाराणीने बहुत दिन बाद पुत्रके मुख दर्शनसे महापुलकित हो कर कहा—"अब मैं पुत्रसे विच्छिन्न न होऊंगी।" इस समय महाराणीका पूर्व सौन्दर्य विलुप्त हो गया था। दुर्विषह चिन्ताके भारसे उनका शरीर क्षीण, मलिन और रुग्न हो गया था। इसके बाद, जिन अलङ्कारोंको वे चुनारके दुर्गमें छोड़ गई थीं, वे भी उन्हें मिल गये।

दलीपसिंहको शीघ्र ही विलायत लौट जानेकी आज्ञा मिली। महाराणी झिन्दन तथा बहुतसे अनुचर और अनुचरियाँ भी दलीपके साथ विलायत गईं। लन्दनमें लङ्कष्टार-गेटके पास एक बड़े भारी मकानमें इन लोगोंको ठहराया गया। वहां एक दिन ये देशीय परिच्छदके ऊपर पाश्चात्य रमणियोंकी पोशाक पहन कर दलीपकी शिक्षयित्रीसे मिलने गई थीं।

इससे पहले महाराज दलीपसिंह ईसाई धर्ममें दीक्षित हुए थे, अब झिन्दनके प्रभावसे उनके धर्मभावोंको शिथिल होते देख अंग्रेजोंने दलीपको झिन्दिनसे पृथक् रखना ही युक्तियुक्त समझा। महाराणीके लिए लन्दनमें एक दूसरा मकान किराये पर लिया गया।

१८६७ ई०के अगस्त मासमें महाराणी झिन्दनकी लन्दन नगरमें ही मृत्यु हुई। जब तक उनका मृतशरीर, सत्कारार्थ भारतवर्षमें नहीं आया था, तब तक वह केनसालके समाधिक्षेत्रमें रक्षित था। बहुतसे संभ्रान्त अंगरेजोंने समाधिके समय उपस्थित हो कर महाराणीके प्रति सम्मान दिखलाया था। १८६४ ई०में महाराज दलीपसिंह अपनी माताकी देह ले कर बंबई उपस्थित हुए और नर्मदाके किनारे सत्कार समाप्त कर उन्होंने पवित्र नर्मदाके जलमें भस्म निक्षिप्त की। इस प्रकारसे पञ्जाबकी असामान्य सौन्दर्य-प्रतिमा वीरकेशरी रणजित्‌सिंहकी पत्नीने सौभाग्यकी उन्नतम अवस्थासे भाग्यचक्रकी सभी अवस्थाओंमें पतित हो कर आखिरकी विदेशमें इस संसारसे सदाके लिये विदा ग्रहण की।

झिपना (हिं० क्रि०) झेंपना देखो।

झिमाना (हिं० क्रि०) लज्जित होना, शरमिन्दा होना।

झिम—बङ्गालके त्रिहुत जिलेकी एक नदी। इसमें हठात् बाढ़ आ जाती है, इसीसे नौकायात्रा निरापद नहीं है। वर्षामें केवल ५० मन बोझ लाद कर नाव सोमेश्वर तक जाती है।

झिर (हिं० स्त्री०) झिरी देखो।

झिरक—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सिन्धुप्रदेशके कराची जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ४′ से २५° २६′ उ० और देशा० ६७° ६′ १५″ से ६८° २२′ ३०″ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें सेहवान, कोहिस्तानके कई अंश और बरणा नदी, पूर्व और दक्षिणमें सिन्धु नद और उसकी शाखा तथा पश्चिममें समुद्र और कराची तालुक है। भूपरिमाण २८८७ वर्गमील है। यह उपविभाग ठट्टा, मीरपुरसक्रो और घोड़ाबाड़ी इन तीन तालुकोंमें विभक्त है और फिर ये तालुक भी २० तप्पोंमें बंटा है। इसमें ४ नगर और १४२ ग्राम लगते हैं।

इस उपविभागका उत्तरांश पर्वतमय और अनुर्वर मरुभूमि है, बीचबीचमें धँड़ नामक छोटी छोटी झील हैं। पूर्वमें सिन्धुतीरवर्ती भूभाग भी पर्वतमय और अनुर्वर है। इसी भागमें एक पहाड़के ऊपर झिरक नामका एक शहर बसा है। दक्षिणांशकी भूमि पल्वलमय और समतल है, बीच बीचमें खाड़ी और सिन्धुनदकी शाखा प्रवाहित हैं। इनकी कुछ प्रधान शाखाओंके नाम—पिति, जुन्म, रिछाल, हजामरो, कर्कवारि और खेदेवाड़ी हैं। घोड़ाबाड़ी भी इसी उपविभागमें अवस्थित है। १८४५ ई०में हजामरो बहुत छोटी नदी थी, बाद धीरे धीरे बढ़ कर अभी वह सिन्धु नदके बड़े मुहानेमें गिनी जाती है। इस मुहानेके पूर्वीय किनारे मल्लाहोंकी सुविधाके लिये ८५ फुट ऊँचा एक आलोकस्तम्भ है। यह स्तम्भ प्रायः २५ मील दूरसे दिखाई पड़ता है। यहां गवर्मेण्टकी ४८ खाड़ी हैं, जिनकी लम्बाई प्रायः ३६० मील होगी। इसके सिवा जमींदारोंकी छोटी छोटी प्रायः १३२१ खाड़ी हैं। बाघड़, कलरी और सियाम ये ही तीनों सबसे बड़ी है। इनमें बाढ़ आ जानेसे बहुतसे मवेशी, बकरे आदि नष्ट हो जाया करते हैं। कोटरीसे कराची तकका रेलपथ इस बाढ़से कई जगह कट जाता है। उपविभागके भिन्न भिन्न स्थानोंका जलवायु भिन्न भिन्न प्रकारका है। झिरक और उसका निकटवर्ती स्थान स्वास्थ्यकर है, किन्तु ठट्टा और उसके चारों ओरके स्थानोंमें ज्वर, उदरामय आदि रोगोंका प्रकोप अधिक है। वसन्त रोगभी प्रायः हुआ करता है। आजकल टीका देनेसे वसन्त रोगका प्रकोप कुछ शान्त हुआ है। वार्षिक वृष्टिपात ७.९ इञ्च है। समुद्रजात कुहेरा उपकूल भागमें बहुत दूर तक फैल जाता है, इसीसे यहां गेहूं नहीं उपजता।

यहांकी भूमिकी प्रकृति, जीव और उद्भिद् प्रायः

कराची जिलेके अन्यान्य स्थानोंकी नाईं है। पूर्व और उत्तर-पश्चिम भाग छोड़ कर और सब जगहकी जमीन दलदल है। जङ्गली जन्तुओंमें शृगाल, भेड़िया, खरहा, वनबिलाव और चीताबाघ आदि देखे जाते हैं। कृष्णसार मृग कभी कभी पर्वत पर नजर आता है। पक्षियोंमें तरह तरहके हंस, जङ्गली हंस, सारस, बगला, हड़गिल्ला, तीतर आदि हैं।

उक्त पक्षियोंके डैने बहुत सुन्दर होते हैं। यहां सांप और भालू भी बहुत पाये जाते हैं। सिन्धुप्रदेशके कुत्ते बड़े और ऐसे भयानक होते हैं, कि अपरिचित व्यक्ति पर टूट पड़ते हैं। हजामरोकी मधुमक्षिकाका मधु अत्यन्त उत्कृष्ट होता है। ये जलजात गुल्मादि पर छत बनाती हैं। यहां इन्दूरकी संख्या इतनी अधिक है, कि वे समय समय पर शस्यक्षेत्रमें बहुत हानि पहुंचाते हैं। ये मिट्टीके नीचे अनाज जमा कर रखते हैं। दुर्भिक्ष होने पर कृषक मिट्टी खोद कर अनाज बाहर निकाल लेते हैं। यहांके ऊँट अरब देशके ऊँटोंसे बहुत छोटे, किन्तु कर्मठ और शीघ्रगामी होते हैं।

अरण्यमें प्रधानतः बबूलके पेड़ हैं, जो १७८५से १८२८ ई०के मध्य तालपुरके मीरोंके प्रयत्नसे लगाये गये थे। मछली पकड़नेके यहां २० स्थान हैं, जो प्रतिवर्ष नीलाममें बेचे जाते हैं।

अधिवासियोंका आचार-व्यवहार और रीतिनीति कराची जिलेके दूसरे दूसरे स्थानोंके अधिवासियों सरीखा है। मुसलमानकी संख्या हिन्दूसे प्रायः ७।८ गुना अधिक है। सिखकी संख्या भी कम नहीं है। असभ्य जाति, ईसाई, यहूदी और पारसीकी संख्या बहुत कम है।

शासन और राजस्व विभागमें एक डिपुटी कलेक्टर और प्रथम श्रेणीके मजिष्ट्रेट, दूसरे श्रेणीके मजिष्ट्रेटके अलावा ३ मुखतियार, २ कोतवाल और २० तप्पादार या आबकारी कर्मचारी हैं।

१८८७ ई०को यहां ८ फौजदारी अदालत और २४ थाने थे।

झिरक, [illegible] और कोटि नगरमें दातव्य औषधालय और म्युनिसिपालिटी है।

धान और रब्बी के दो दो प्रकारके अनाज यहां उत्पन्न होते हैं। समस्त शस्यक्षेत्रके प्रायः ½ अंशमें धान रोपा जाता है। अवशिष्ट अंशमें समयानुसार दूसरे दूसरे अनाज उपजाये जाते हैं। सन और पटसन भी यहां कम नहीं उपजता। सिन्धुनदी तथा समस्त झीलोंमें मछली पकड़ी जाती है।

कोटि नगरसे कृषिजात द्रव्य विदेशको भेजा जाता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी रफतनीके मध्य कृषिजात और चर्म प्रधान है। वस्त्र, अनेक प्रकारके धातुद्रव्य, फल, चीनी, मसाले और अनाजकी आमदनी होती है। पहले ठट्टेकी छींट और मट्टीके बरतन मशहूर थे। अभी उसका आदर बिलकुल जाता रहा। उपविभागके कई स्थानोंमें प्रायः ४० मेले लगते हैं।

इस उपविभागमें लगभग ३६० मील तक लम्बी सड़क गई है। वृहत् सामरिक पथ कराची ठट्टासे कोटरी तक झिरक उपविभागके उत्तर हो कर गया है। यहां २० धर्मशाला और ३२ नदी पार होनेके घाट हैं। सिन्धुरेलपथ इस उपविभागके ६३ मील तक गया है। इसके छह स्टेशनके नाम ये हैं—रणपेथानी, जङ्गशाही, जोनाबाद, झिमपीर, मेटिं और बोलारी।

झिरक उपविभागमें प्रत्नतत्त्वविदोंको कौतूहल आकर्षक बहुतसी प्राचीन कीर्ति विद्यमान हैं। जिनमेंसे ७वीं शताब्दीके प्राचीन भाम्बोर नगरका ध्वंसावशेष, १४वीं शताब्दीका बनाया हुआ मारि-मन्दिर, १५वीं शताब्दीका कालानकोट तथा उसी स्थान पर अवस्थित प्राचीन दुर्ग प्रधान है। किन्तु ठट्टाके निकटवर्ती माकली पर्वतस्थ प्राचीन कब्रिस्तान सबसे कौतूहल और विस्मयजनक है। यह कब्रिस्तान पर्वत पृष्ठ पर प्रायः ६ वर्गमील स्थान तक फैला हुआ है और उसमें १२वीं शताब्दीसे ले कर आज तक दश लाखसे अधिक समाधि विद्यमान हैं। इसका अधिकांश तहस नहस हो गया है, और जो कुछ बच भी गई है, वह अधिक दिन तक ठहर नहीं सकती। आधुनिक कब्रोंमें १७४३ ई०में मृत एडवर्ड कुक नामक किसी अंगरेज रेशमव्यवसायीका समाधि मन्दिर प्रधान है।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सिन्धुविभागमें कराची जिलेके उक्त झिरक उपविभागका एक शहर। यह अक्षा०

२५´ ३´६´´ उ० और देशा० ६८´ १७´४४´´ पू०के मध्य सिन्धु किनारे नदोगर्भसे १५० फुट ऊंचो एक खण्ड भूमि पर अवस्थित है। यह शहर सिन्धुनदके पहरुएकी नाईं दण्डायमान है। यहांको आबहवा स्वास्थ्यकर है। अवस्थान भो इतना सुविधाजनक है, कि सर चार्लस नेपियरको जब मालूम था कि अंगरेजो सैन्यनिवास झिरकमें न हो कर हैदराबादमें हुआ है तब वे बहुत दुःखित हुए थे। झिरकसे उत्तर २४ मोल पर कोटरी, दक्षिण-पश्चिममें ३२ मोल पर ठट्टा और १३ मोल पर मोटिं स्टेशन तक पक्की सड़क गई है।

यहां पहले बहुत वाणिज्य होता था। पहाड़ी जाति भेड़ोंके बदले तण्डुल, शस्य खरोदती थी। अभी कोटरी-से कराची तक रेलके हो जानेसे यहांका वाणिज्य बहुत कुछ ह्रास हो गया है। वर्त्तमान शिल्पकार्यमें ऊँटको पोठके लिये एक तरहका सुन्दर पलान और सुसिन नामक एक प्रकारका मजबूत डोरिया कपड़ा बनता है। यहां झिरकके डेपुटी कलेक्टर रहते हैं। नदीसे ३५० फुट ऊँचे एक पहाड़ पर उनका वासस्थान है। वहांसे झिरक नगर सिन्धुनद और चारों ओर बहुत दूर तक भूभाग दिखाई पड़ता है। झिरकके उद्यान भी बहुत मनोहर और हरे भरे हैं। चारों ओर शस्यक्षेत्रमें धान, बाजरा, सन तमाकू और ईख उपजती हैं। यहां तोन धर्मशालाएं, एक गवर्मेण्ट विद्यालय, एक अधीनस्थ कारागार, एक बाजार और दातव्यचिकित्सालय है।

झिरझिर (हिं० क्रि०-वि०) १ मंद मंद, धीरे धीरे। २ झिरझिर शब्दके साथ।

झिरझिरा (हिं० वि०) बहुत पतला, झंझरा, झीना।

झिरना (हिं० क्रि०) १ झरना देखो। (पु०) २ छिद्र, छेद, सुराख।

झिरि (सं० स्त्री०) झिरित्यव्यक्त शब्दो ऽस्त्यस्याः इन्। झिल्ली, झींगुर।

झिरिका (सं० स्त्री०) झिरीति अव्यक्तशब्देन कायति शब्दायते, कै-क-टाप्। झिल्ली, झींगुर।

झिरी (सं० स्त्री०) झिर इत्यव्यक्तशब्दो ऽस्त्यस्याः अच् ङीष्। झिल्ली, झींगुर।

झिरी (हिं० स्त्री०) १ छोटा छेद, दरज शिगाफ। २ वह गड्ढा जिसमें पानी धीरे धीरे जमा होता हो। ३ वह छोटा सोता जो कुएँके बगलमेंसे निकला हो।

झिरी—१ आसामको एक नदी। यह बराइल पहाड़से निकल कर दक्षिणको ओर कछाड़ जिला और मणिपुर राज्य होती हुई बराक नदीमें जा गिरि है। दोनों ओर दुर्भेद्य गिरिमालाकी मध्यवर्ती सङ्कीर्ण उपत्यका हो कर यह नदी प्रवाहित है।

२ सिन्धिया राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २५´ ३३´ उ० और देशा० ७७´२८´ पू०के मध्य कोटासे कालपी जानेके पथ पर अवस्थित है।

झिर्री (हिं० स्त्री०) नालो आदिमें पानी रोकनेके लिये खोदा हुआ छोटा गड्ढा।

झिलँगा (हिं० पु०) १ टूटो हुई खाटका बाध। २ वह खाट जिसको बुनावट ढीली पड़ गई हो।

झिलना (हिं० क्रि०) १ बलपूर्वक प्रवेश करना, जबरदस्ती घुसना। २ तृप्त होना, अघा जाना। ३ मग्न होना, लगा रहना। ४ सहन होना, झेला जाना।

झिलम (हिं० स्त्री०) १ लड़ाईके समय मुख और सिर पर पहना जानेवाला लोहेका पहनावा। यह झँझरीदार होता था। २ पंजाबका एक नदी। झेलम् देखो।

झिलमटोप—झिलम देखो।

झिलमा (हिं० पु०) संयुक्तप्रान्तमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

झिलमिल (हिं० स्त्री०) १ झलमलाता हुआ प्रकाश, काँपती हुई रोशनी। २ प्रकाशको चंचलता, ठहर ठहर कर प्रकाशके घटने बढ़नेको क्रिया। ३ एक प्रकारका सुन्दर बारीक और मुलायम कपड़ा। यह मल मल या तनजेबको तरह होता है। (वि०) ४ जो ठहर ठहर कर चमकता हो, झलमलाता हुआ।

झिलमिला (हिं० वि०) १ जो गाढ़ा न हो। २ छिद्रयुक्त, जिसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद हों। ३ ठहर ठहर कर हिलता हुआ प्रकाश देनेवाला। ४ चमकता हुआ, झलझलाता हुआ। ५ जो बहुत स्पष्ट न हो।

झिलमिलाना (हिं० क्रि०) १ ठहर ठहर कर चमकना, जुगजुगाना। २ प्रकाशका हिलना, रोशनीका काँपना।

झिलमिलाहट (हिं० स्त्री०) झिलमिलानेको क्रिया।

झिलमिली (हिं॰ स्त्री॰) १ बहुतसी आड़ी पटरियोंका ढाँचा। पटरियां एक दूसरे पर तिरछी लगी रहती और पीछेकी ओर पतली लम्बी लकड़ी या छड़में जड़ी होती हैं। यह बाहरसे आनेवाले प्रकाश और धूल आदि रोकनेके लिये किवाड़ों और खिड़कियोंमें जड़ी रहती है। इसको खोलने या बंद करनेके लिये पटरियोंके पीछे पतली लम्बी लकड़ी लगी रहती है। २ चिक, चिलमन। ३ एक प्रकारका आभूषण जो कानमें पहना जाता है।

झिल्ल (सं॰ पु॰) एक प्रकारका पौधा जो नीलकी जातिका होता है। इसके पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं। इसकी छाल और फूल लाल रंगके होते हैं।

झिल्लड़ (हिं॰ क्रि॰) पतला और झंझरा।

झिल्लन (हिं॰ स्त्री॰) दरी बुननेके करघेकी बड़ी और मजबूत लकड़ी या शहतीर। इसमें बैंका बाँस लगा रहता है इसे गुरिया भी कहते हैं।

झिल्लि (सं॰ पु॰) वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा। देवता पूजाके समय पाँच प्रकारके बाजाओंका विधान है, झिल्ली उन पाँचोंमेंसे एक है—

'घण्टाशब्दस्तथाभेरी मृदंगो झिल्लिरेव च।
पञ्चानां पूज्यते वाद्यं देवताराधनेषु च॥"

(शब्दार्थचिन्ता॰)

झिल्लिका (सं॰ स्त्री॰) झिर इत्यव्यक्तशब्दं लिशति लिश-डि स्वार्थे कन्। १ झिल्ली, झींगुर।

"झिल्लिका विरुते दीर्घं रुदतीव समन्ततः।"

(रामा॰ २।९६।१२)

२ सूर्यरश्मि तेजविशेष, सूर्यकी किरणका तेज।

झिल्ली (सं॰ स्त्री॰) झिल्लि-ङीष्। कीटविशेष, झींगुर। इसके पर्याय—झिल्लिका, झिल्लीक, झिरिका, झीरुका, झिरी, चीलिका, चीरिका, चिल्ली, भृङ्गारी, चील्लीका, चीरी और चीरुका है।

"अदृश्य झिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा।"

(भागवत)

झिल्ली (हिं॰ स्त्री॰) १ किसी चीजकी पतली तह। २ बहुत बारीक छाल। ३ आँखका जाला। (वि॰) ४ बहुत पतला।

झिल्लीक (सं॰ पु॰) झिल्ली, झींगुर।

झिल्लीकण्ठ (सं॰ पु॰) झिल्लीवत् कण्ठः कण्ठशब्दो यस्य, बहुव्री॰। गृहकपोत, पालतू कबूतर।

झिल्लीका (सं॰ स्त्री॰) झिल्ली संज्ञायां कन् ततष्टाप्। झिल्ली झींगुर।

झिल्लीदार (हिं॰ वि॰) जिस पर झिल्ली हो, जिसके ऊपर बहुत पतली तह लगी हो।

झींक (हिं॰ पु॰) झींका देखो।

झींका (हिं॰ पु॰) चक्कीमें पीसनेके लिये एक दफामें दिये जानेका अनाजका परिमाण।

झींखना (हिं॰ क्रि॰) १ लगातार झड़ी होनेके कारण दुःखी हो कर पछताना और चिढ़ना। २ अपनी विपत्तिका हाल सुनाना। (पु॰) ३ खीजनेकी क्रिया या भाव। ४ दुःखका वर्णन, दुखड़ा।

झींगट (हिं॰ पु॰) कर्णधार, मल्लाह।

झींगा (हिं॰ पु॰) सारे भारतकी नदियों और जलाशयोंमें पाई जानेवाली एक प्रकारकी मछली। झिंगट देखो।

झींगुर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका छोटा कीड़ा। इसके कई भेद हैं, कोई सफेद कोई काले और कोई भूरे रङ्गका होता है। इसके छः पैर और दो बड़ी मूंछें होती हैं। यह अन्धेरे स्थानमें रहना बहुत पसन्द करता है। यह खेतों और मैदानोंमें भी पाया जाता है। इसकी आवाज बहुत तेज झींझीं होती है और प्रायः बरसातमें अधिक सुनाई देती है। इसका मांस नीच जातिके मनुष्योंके खानेके काममें आता है।

झींझा (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारकी प्रथा। इसमें छोटी छोटी कुमारी कन्याएं आश्विन शुक्लचतुर्दशीको मट्टीकी एक कच्ची हाँड़ीमें बहुतसे छेद करके उसके बीचमें एक दीया बाल कर रखती हैं और वे अपने सम्बन्धियोंके घर जा कर उस दीपकका तेल उनके मस्तक पर लगाती हैं। जो द्रव्य उनसे मिलता है उसीसे वे सामग्री मँगा कर पूर्णिमाके दिन पूजन करती और आपसमें प्रसाद बाँटती हैं। कहा जाता है कि उस दीपकके तेल लगानेसे सेंहुआ रोग जाता रहता है।

झींद—पञ्जाबके फुलकियान राज्यके अन्तर्गत शतद्रुनदीके पूर्व तीरवर्ती एक देशीय राज्य। यह राज्य तीन चार

पृथक् पृथक् खण्ड ले कर संगठित हुआ है। समस्त राज्यका परिमाणफल १३३२ वर्गमील है। यह राज्य फुलकियान राज्यके अन्तर्गत है। पतियाला देखो। १७६३ ई०में सिखोंने मुसलमानोंसे सरहिन्द प्रान्त जीत करके इसकी नींव डाली थी और १७६८ ई०में यह दिल्लीके सम्राट् द्वारा अनुमोदित हुआ है। झींदके राजा हमेशाके लिए अङ्गरेजोंके शुभचिन्तक थे। महाराष्ट्रोंके अधःपतनके बाद झींदके राजा बाघसिंहने अङ्गरेजोंकी यथेष्ट सहायता की थी। जब लार्ड लेक (Lord Lake) ने विपाशाके किनारे होलकरका पीछा किया, तब बाघसिंहसे उन्हें बहुत सहायता मिली थी। इस उपकारके प्रत्युपकार स्वरूप लार्ड लेकने राजाको सम्पत्ति दिल्लीके सम्राट् और सिन्धियासे प्राप्त भूमिका अधिकार दृढ़ कर दिया। फुलकिया राजाओंके पतियाला-राजाके बादही झींदके राजाका सम्भ्रम है। फुलकिया वंशके अधिष्ठाता चौधरीफुलके बड़े लड़के तिलकने झींद राज्य स्थापन किया। तिलकके पौत्र गजपतिसिंहने १७६३ ई०में सरहिन्दके अफगान-शासनकर्त्ता जेनखांको परास्त कर मार डाला। बाद उन्होंने पानीपथसे कर्नाल तक विस्तृत झींद और सफिदान प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। दिल्लीके सम्राट्को राजस्व प्रदान तथा उनकी अधीनता स्वीकार कर वे वहां राज्य करने लगे। एक समय राजस्व अदा नहीं होनेके कारण सम्राट्के वजीर नाजिरखां गजपतिसिंहको कैदी बना कर दिल्ली ले गये। सम्राट्ने वहां उन्हें तीन वर्ष तक कैद कर रखा। बादमें गजपति अपने पुत्र मेहरसिंहको जामिन रख कर, अपनी राजधानीको लौट आये। पीछे उन्होंने सम्राट्को ३१ लाख रुपये दे कर १७७२ ई०में अपने पुत्रको मुक्त और राजोपाधि प्राप्त की। इन्होंने स्वाधीनभावसे राज्य-शासन तथा अपने नामका सिक्का चलाया था। १७७४ ई०में नाभाके राजाके साथ लड़ाई हो जानेके कारण इन्होंने अमलोह, भादसन और सङ्गरूर पर चढ़ाई कर दी। ये सब जनपद नाभाके ही अन्तर्भुक्त थे। अन्तमें पतियालाके राजासे तङ्ग किये जाने पर इन्होंने और सब देश तो लौटा दिये, मगर सङ्गरूरको अपने ही दखलमें रखा। तभीसे यह देश झींदका एक भाग समझा जाता है। दूसरे वर्ष दिल्ली गवर्मेण्टने झींद पर अधिकार करनेको कोशिश की, किन्तु फुलकियान सरदारोंने उनके आक्रमणको रोक दिया। १७७५ ई०में गजपतिसिंहने यहां एक दुर्ग बनवाया। १७८० ई०में मीरट-आक्रमणके समय ये लोग मुसलमान जनरलसे परास्त हुए, गजपतिसिंह कैद कर लिये गये। पीछे अच्छी रकम दे कर उन्होंने छुटकारा पाया। १७८८ ई०में दो लड़के छोड़ कर आप इस लोकसे चल बसे। बड़े भागसिंह राजा कहलाये। इनके अधिकारमें झींद और सफिदन और छोटे भूपसिंहके अधिकारमें बदरूखां रहा।

राजा भागसिंह वृटिश गवर्मेण्टके बड़े खैरखाह थे। जसवन्तराव होलकरको खदेरनेमें इन्होंने लार्ड लेकको अच्छी सहायता पहुंचाई थी। इस कृतज्ञतामें इन्हें वृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे बवाना परगना मिला था। रणजितसिंहसे भी राजा भागसिंहको कुछ प्रदेश मिले थे जो अभी लुधियाना जिलेके अन्तर्गत है। छत्तीस वर्ष राज्य करनेके बाद १८१९ ई०में इनका शरीरान्त हुआ। बाद इनके लड़के फतहसिंह उत्तराधिकारी हुए। १८२२ ई०में इनके स्वर्गवास होने पर इनके लड़के सङ्गतसिंहने झींदका सिंहासन सुशोभित किया। इस समय ये चारों ओर आपदासे घिरे थे, तनिक भी चैन न थी। १८३४ ई०में निःसन्तान अवस्थामें आपने मानवलीला समाप्त की। अब उत्तराधिकारीके लिये प्रश्न उठा। बाद सभीकी सलाहसे सङ्गतसिंहके चचेरे भाई स्वरूपसिंह जो बाजीदपुरमें रहते थे, राजा बनाये गये।

१८४५-४६ ई०के सिखयुद्धके समय अंगरेज कर्मचारीने गजपतिसिंहके निम्न छठे पुरुष झींदके तात्कालिक राजा स्वरूपसिंहसे सरहिन्द विभागके लिए १५० ऊँट मांगे थे। इस पर राजा सहमत न हुए। बाद मेजर ब्रडफुटने राजा पर १० हजार रुपये जुरमाना किया। राजा इस अपवादको दूर करनेके लिये इस तरह आग्रह और अविचलित भावसे अंगरेजोंके उपकार साधनमें प्रवृत्त हुए कि शीघ्र ही उनका पूर्व अपराध माफ कर दिया गया और वे अंगरेजोंसे आहत

होने लगी। इसके बाद जब शेख इमाम उद्दीनने काश्मीर के गुलाबसिंहके विरुद्ध विद्रोह ठाना, तब झींद-राजने विद्रोह दमनमें अंगरेजोंकी सहायताके लिए अपना सैन्यदल भेजा था। इस व्यवहारसे पूर्वके १० हजार रुपयेकी अर्थदण्ड उन्हें लौटा दिया गया और साथ ही युद्ध समाप्त होने पर अंगरेजोंसे कृतज्ञता स्वरूप वार्षिक ३ हजार रुपये आयकी भूसम्पत्ति भी मिली। इसके सिवा अंगरेजोंने यह भी स्वीकार किया कि वे उनके उत्तराधिकारीसे किसी प्रकारका कर न लेंगे। झींद-राजने इसके बदले अपना सैन्यदल अंगरेजोंके व्यवहारमें रखा और राज्यमें सड़ककी मरम्मत करने, क्रीतदासप्रथा, सतीदाह और शिशुहत्या बन्द करनेकी प्रतिज्ञा भी की। इसके अलावा उन्होंने वाणिज्य द्रव्योंके ऊपर जो आमदनी और रफतनी शुल्क लगता था उसे भी उठा दिया। राजाके इस व्यवहारसे खुश हो कर गवर्मेण्टने उन्हें और भी वार्षिक १०००) रु० आयकी एक भूसम्पत्ति दी।

सिपाही-विद्रोहके समय झींदके राजा स्वरूपसिंह सबसे पहले विद्रोही-सैन्यको दमन करनेके लिये दिल्लीकी ओर अग्रसर हुए। वहां उनकी सेना प्रभूत पराक्रमके साथ युद्धक्षेत्रमें आगे लड़ कर वृटिश सेनापतिकी प्रशंसाभाजन हुई थी। बादलीसरायके युद्धमें झींदके एक सैन्यदलने ऐसी वीरता दिखलाई थी, कि रणस्थलमें ही अंगरेज सेनापति उन्हें धन्यवाद दिये बिना रह न सके। इस पुरस्कारमें सेनापतिने एक तोप उन्हें दी जो लूट कर लाई गई थी। फिर झींदकी दूसरी सेनाने दिल्लीसे २० मील उत्तर बाघपतका पुल विद्रोहियोंके हाथसे बचाया था। इसीसे मीरटसे अंगरेजी सेना यमुना पार कर बार्णाडके साथ मिल गई थी। झांसी, हीसार, रोहतक प्रभृति स्थानोंके बहुतसे विद्रोही झींदमें प्रवेश कर वहांके अधिवासियोंको उत्तेजित करते थे, किन्तु राजाने अत्यन्त दक्षतासे सभी विद्रोहियोंको दमन कर डाला।

अंगरेज गवर्मेण्टने राजाकी ऐसी प्रभूत सहायतासे अत्यन्त सन्तुष्ट हो प्रकाश्यरूपसे कृतज्ञता और धन्यवाद प्रकट किया। झींदसे २० मील दक्षिणस्थ दादरीके विद्रोही नवाबकी प्रायः वार्षिक १०३०००) रु० आयकी जमींदारी जब्त कर राजाको दी गई।

इसके अलावा राजाको सङ्गरूरके निकटवर्ती वार्षिक प्रायः १३८०००) रु० आयके १३ ग्राम दिये गये और उनके मान्यस्वरूप विद्रोही मिर्जा अकबरका दिल्लीस्थ वासभवन भी अर्पण किया गया। राजा फर्जन्द दिलबान्द रसिक-उल् इतिकाद् नामकी उपाधि राजा स्वरूपसिंह बहादुरको मिली। उनके मान्यके लिये तोपसंख्या भी बढ़ाई गई तथा उन्हें और भी कई एक अधिकार मिले। सङ्गरूरके सर्दार इनके अधीनस्थ सामन्तमें गिने जाने लगे और अपुत्रक अवस्था में राजाकी मृत्यु होने अथवा उत्तराधिकारी नाबालिग रहने पर उचित व्यवस्था करनेका निश्चय किया गया। १८६३ ई०में राजाको "नाइट ग्राण्ड कमाण्डर ष्टार अफ इण्डिया"की उपाधि मिली। १८६४ ई०के १६ जनवरीको राजाकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनके पुत्र वीरप्रकृति समरकुशल सुबुद्धि रघुबीरसिंह सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। गद्दी पर बैठनेके साथ ही इनका ध्यान दादरीकी ओर आकर्षित हुआ। वहांकी प्रजा नवीन राजस्व जो उन पर निर्द्धारित किया गया था, देनेको राजी न हुई। अन्तमें लगभग पचास गांवके लोग खुल्लमखुल्ला बागी हो गये। उन्हें दमन करनेके लिये रघुबीरसिंहने २००० योद्धाओंको एकत्र किया। विद्रोह ठण्ढा किया गया और पुनः पूर्ववत् शान्ति विराजने लगी। इन्होंने १८७८ ई०को अफगानयुद्धमें अंगरेजोंको खूब सहायता की थी। सङ्गरूर शहरका इन्होंने ही संस्कार किया। इनके समयमें झींद, दादरी और सफिदन उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। १८८७ ई०में ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बाद इनके आठ वर्षके पोते रणबीरसिंह राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके नाबालगी तक राजकार्य रेजेन्सी द्वारा चलाया गया। १८९८ ई०में राज्यका पूरा भार इन पर सुपुर्द हुआ, इनकी पूरा उपाधि इस प्रकार है—फरजन्द-इ-दिलबन्द, रसिक-उल-इतिकाद, दौलत-इ-इंगलिसिया, राज-इ-राजगान महाराज सर रणबीरसिंह राजेन्द्र बहादुर जी० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आइ०। इन्हें

११ मान्यसूचक तोपें मिलीं। १८७७ ई०के दिल्ली राजकीय दरबारमें ये भारतेश्वरीके सचिव नियुक्त हुए।

इस राज्यमें ४३८ ग्राम और ७ शहर लगते हैं। लोकसंख्या लगभग २८२००३ है। यह दो निजामतमें विभक्त है, एक सङ्गरूर और दूसरा झींद। यहां जितने शहर हैं उनमें सङ्गरूर ही प्रधान है। जिसकी पुरानी राजधानी झींद थी।

झींदकी चैती फसल ही प्रधान है। इस समय गेहूं, जौ, चना और सरसों उपजती है। रूई और ईख माघ फागुनकी फसल है। झींद तहसीलमें कहीं तो नकद से और कहीं उपजसे मालगुजारी चुकाई जाती है। नकदकी दर प्रति बीघे एकसे ले कर तीन रुपये तक है। यहांके जङ्गलका रकबा २६२३ एकर है और आमदनी २०००) रु०से कमकी नहीं है।

राज्यमें एक भी खान नहीं है। कहीं कहीं पत्थर, कंकड़ और शोराकी खान नजर आती है। यहां सोने, चाँदीके अच्छे अच्छे गहने बनते हैं। इसके सिवा चमड़े, काठ और सूती कपड़ा बुननेका भी कारबार है। यहांसे रूई, घी और तेलहनकी रफ्तनी तथा दूसरे दूसरे देशोंसे परिष्कृत चीनी और सूती कपड़ेकी आमदनी होती है। इस राज्यमें लुधियाना-धूरी जाखल रेलवे गई है। यहां ४२ मील तक पक्की सड़क और १८१ मील तक कच्ची सड़क गई है। पतियालाके जैसा यहां भी डाक और टेलिग्राफका प्रबन्ध है।

१७८३, १८०३, १८१२, १८२४ और १८३३ ई०में राज्यको घोर दुर्भिक्षका सामाना करना पड़ा था। शासनकार्य चार भागोंमें विभक्त है। पहला नन-विभाग, इसके कर्मचारीकी देखरेखमें शिक्षा-विभागका भी प्रबन्ध है। दूसरा दीवान इसके अधीन राजस्व और आबकारीका इन्तजाम,है; तीसरा जङ्गी लाठके अधीन बख्शीखां इसके अधीन पुलिस तथा फौजकी देखभाल है और दीवानी तथा फौजदारी मामलाके लिये चौथा भाग अदालत है। उक्त विभागोंके प्रधान जब एक साथ बैठते हैं, तो उसे स्टेट कौन्सिल या सदरआला कहते हैं। यह कौन्सिल राजाके अधीन रहती है। राजकार्यकी सुविधाके लिए यह राज्य दो निजामत और तीन तहसीलमें विभक्त है। राज्यकी कुल आमदनी १६ लाखें रुपयेसे अधिक है।

राजाके अधीन २२० अश्वारोही, ५६० पदातिक, ८० गोलन्दाज और १६ तोपें हैं।

२ पञ्जाबके अन्तर्गत झींन्द राज्यकी निजामत। यह अक्षा० २८° २४´ से २८°२८´ उ० और देशा० ७५° ५५´ से ७६° ४८´ पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १०८० वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: २१७३२२ है। इसमें झींन्द सदर, सफीदन, दादरी, कलियाना और झींद ये शहर तथा ३४४ ग्राम लगते हैं।

३ पञ्जाबके अन्तर्गत झींद राज्य और निजामतकी तहसील। यह अक्षा० ७८° २´ से ७८° २८´ उ० और देशा० ७६° १५´ से ७६° ४८´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४८८ वर्गमील और जनसंख्या प्राय: १२४८५४ है। इस तहसीलका आकार त्रिभुजसा है। इसके चारों ओर करनाल, दिल्ली, रोहतक और हिसार नामके वृटिश जिले हैं। इसके उत्तरमें पतियालेकी नरवान तहसील है। इस तहसीलमें झींद और सफीदन नामके दो शहर तथा १६३ ग्राम लगते हैं। यहांकी वार्षिक आय प्राय: २³ लाख रुपयेकी है।

४ पञ्जाबके अन्तर्गत झींद राज्यकी झींद निजामत और तहसीलका सदर। यह अक्षा० २८° २०´ उ० और देशा० ७६° १८´ पू० पर रोहतकसे २५ मील उत्तर-पश्चिम और संरूरसे ६० मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ८०४७ है। पहले यह झींद राज्यकी राजधानी था, इसीसे इसका नाम झींद पड़ा है। यह अब भी झींदके राजाओंका वासस्थान है। यह शहर पवित्र कुरुक्षेत्रके भूभाग पर अवस्थित है। कहा जाता है, कि पाण्डवने यहां जयन्त देवीका एक मन्दिर बनाया और धीरे धीरे जयन्तपुरी नामकी नगरी बस गई। इसी जयन्तपुरीका अपभ्रंश झींद है। मुसलमानी राज्यके समय १७५५ ई०में झींदके प्रथम राजा गजपतिसिंहने इस पर आक्रमण किया। १७७५ ई०में दिल्ली सरकारने रहिमदादखांको उसे दमन करनेके लिये भेजा, किन्तु वहाँ पर वह पराजित हुआ और मारा गया। सफीदनमें उसका स्मारक अब भी विद्यमान है। यहां

कई एक प्राचीन देवमन्दिर और जगह जगह कई तोप हैं। यहांके फतेहगढ़ नामक दुर्गको राजा गजपति सिंहने बनाया था। उस दुर्गका एक अंश अभी कारागारमें परिणत हो गया है।

झींसी (हिं० स्त्री०) छोटी छोटी बूंदोंकी वर्षा, फुहार।

झीखना (हिं० क्रि०) झींखना देखो।

झीत (हिं० पु०) जहाजके पालका बटन।

झीन (हिं० वि०) झीना देखो।

झीना (हिं० वि०) १ बहुत महीन, बारीक, पतला। २ छिद्रयुक्त, जिसमें बहुतसे छेद हों, झँझरा। ३ दुर्बल, दुबला। ४ मंद, सुस्त, धीमा।

झील (हिं० स्त्री०) चारों ओर जमीनसे घिरा हुआ एक बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय। हद देखो।

झीलम (हिं० स्त्री०) झिलम देखो।

झीली (हिं० स्त्री०) मलाई।

झीवर (हिं० पु०) कर्णधार, माँझी, मल्लाह।

झुँकवाई (हिं० स्त्री०) झोंकवाई देखो।

झुँकवाना (हिं० क्रि०) झोंकवाना।

झुँकाई (हिं० स्त्री०) झोंकाई देखो।

झुँगरा (हिं० पु०) साँवाँ नामका अनाज।

झुँझलाना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध हो कर बात करना, खिझलाना।

झुंड (हिं० पु०) प्राणियोंका समुदाय, वृन्द, गरोह, यूथ।

झुंडी (हिं० स्त्री०) १ पौधे काट लेने बाद बची हुई खूंटी। २ कुंदेमें लगा हुआ परदा लटकानेका कुलावा।

झुकझोरना (हिं० क्रि०) झकझोरना देखो।

झुकना (हिं० क्रि०) १ ऊपरी भागका नीचेकी ओर लटकाना, निहुरना, नवना। २ किसी पदार्थके एक या दोनों सिरोंका किसी ओर नवना। ३ किसी सीधे पदार्थका किसी ओर लटक जाना। ४ प्रवृत्त होना, रुजू होना, मुखातिब होना। ५ किसी चीजको लेनेके लिये अग्रसर होना। ६ नम्र होना, विनीत होना। ७ क्रुद्ध होना, रिसाना।

झुकमुक (हिं० पु०) ऐसा अंधेरा समय जब कोई चीज स्पष्ट दीख न पड़ती हो।

झुकरना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध होना, चिढ़ना, खिजलाना।

झुकराना (हिं० क्रि०) झोंका खाना।

झुकवाई (हिं० स्त्री०) १ झुकवानेकी क्रिया या भाव। २ झुकवानेकी मजदूरी।

झुकवाना (हिं० क्रि०) झुकानेका काम किसी दूसरेसे कराना।

झुकाई (हिं० स्त्री०) १ झुकानेकी क्रिया या भाव। २ झुकानेकी मजदूरी।

झुकाना (हिं० क्रि०) १ निहुराना, नवाना। २ किसी पदार्थके एक या दोनों सिरोंको किसी ओर नवाना। ३ प्रवृत्त करना, मुखातिब करना। ४ नम्र करना, विनीत बनाना।

झुकामुखी (हिं० स्त्री०) झुकमुक देखो।

झुकार (हिं० पु०) हवाका झोंका, झकोरा।

झुकाव (हिं० पु०) १ किसी ओर झुकनेकी क्रिया। २ झुकनेका भाव। ३ ढाल, उतार। ४ प्रवृत्ति, दिलका किसी ओर लगना।

झुकावट (हिं० स्त्री०) १ नम्र होनेकी क्रिया, झुकनेका भाव। २ प्रवृत्ति, चाह, झुकाव।

झुझारसिंह—एक बुन्देला राजा। इनके पिता वीरसिंहदेवने सलीमके कहनेमें आ कर प्रसिद्ध ऐतिहासिक अबुल फजलकी हत्या की थी। इनके पुत्रका नाम विक्रमजित था।

झुझुर—युक्तप्रदेशके झाँसी और मथुराके बीचमें स्थित एक नगर। यह अक्षा० २८° ३५´ उ० और देशा० ७६° ४३´ पू०में, दिल्लीसे ३५ मील पश्चिममें अवस्थित है। ईसाकी १८वीं शताब्दीके अन्तमें महाराष्ट्रोंने यह नगर जर्ज टमास नामक एक वीरको दे दिया था। तदनुसार यहां कुछ दिनों तक उनकी राजधानी थी। यहां एक नवाब रहते हैं।

झुटपुटा (हिं० पु०) ऐसा समय जब कुछ अन्धकार और कुछ प्रकाश हो।

झुटुंग (हिं० वि०) जटावाला, झोंटेवाला।

झुठकाना (हिं० क्रि०) झूठी बात द्वारा दूसरेको धोखा देना।

झुठलाना (हिं० क्रि०) १ झूठा ठहराना, झूठा बनाना। २ असत्य कह कर दगा देना, झुठकाना।

झुठाना (हिं० क्रि०) झूठा साबित करना, झुठलाना।

झूठामूठो (हिं० क्रि०) झूठमूठ देखो।

झुठालना (हिं० क्रि०) झुठलाना देखो।

झुण्ट (सं० पु०) लुण्ट-अच् पृषोदरादित्वात् साधु: । १ काण्डहीन वृक्ष, वह पेड़ जिसमें तना न हो, झाड़ी। २ स्तम्ब, खंभा। ३ गुल्म।

झुण्डिया—गौड़ ब्राह्मणोंका एक कुलनाम। इसे कहीं तो बड़ और कहीं अग्र कहते हैं।

झुन (हिं० स्त्री०) १ एक चिड़िया। २ झुनझुनी देखो।

झुनक (हिं० पु०) नूपुरका शब्द।

झुनकना (हिं० क्रि०) झुनझुन शब्द करना, झुनझुन बजना।

झुनझुन (हिं० पु०) नूपुर आदिके बजनेका झुनझुन शब्द।

झुनझुना (हिं० पु०) छोटे छोटे लड़कोंके खेलनेका एक खिलौना। यह धातु, काठ, ताड़के पत्तों या कागजका बना होता है। इसमें पकड़नेके लिये एक डंडी भी लगी रहती है। डंडीके एक या दोनों सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है। किसी किसी झुनझुनेमें आवाज होनेके लिये कंकड़ या किसी चीजके छोटे दाने दिये रहते हैं।

झुनझुनाना (हिं० क्रि०) घुंघुरूके समान आवाज करना।

झुनझुनियाँ (हिं० स्त्री०) १ सनईका पौधा। २ एक प्रकारका गहना जो पैरोंमें पहना जाता है और जिससे झुनझुनका शब्द होता है। ३ बेड़ी, निगड़।

झुनझुनी (हिं० स्त्री०) शरीरके किसी अंगमें उत्पन्न एक प्रकारकी सनसनाहट। यह हाथ या पैरके बहुत देर तक एक स्थितिमें मुड़े रहनेके कारण होती है।

झुनझुनु—राजपूतानेके अन्तर्गत जयपुरराज्यकी शेखावती जिलेका एक परगना और नगर। यह अक्षा० २८° ८' उ० और देशा० ७५° २३' पू० पर दिल्लीसे १२० मील दक्षिण-पश्चिम तथा बिकानेरसे ११० मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: १२२७८ है। एक पर्वतके पूर्व पाददेश पर यह नगर अवस्थित है। यह पर्वत बहुत दूरसे दीख पड़ता है। शेखावतीके राजाओंके शासनकालमें यहां पांच सर्दारोंका अलग अलग दुर्ग था। यहां काठके ऊपर अच्छे अच्छे चित्र खोदे जाते हैं।

झुपझुपी (हिं० पु०) १ झुबझुबी देखो।

झुप्पा (हिं० पु०) १ झब्बा देखो। २ झुण्ड देखो।

झुबझुबी (हिं० स्त्री०) कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना। इस तरहका गहना सिर्फ देहाती स्त्रियां व्यवहार करती हैं।

झुमका (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। यह छोटी गोल कटोरीके आकारका होता है। कटोरीकी पेंदीमें एक कुंदा लगा रहता और इसका मुँह नीचेकी ओर गिरा रहता है। कुंदेके सहारेसे कटोरी कानसे नीचेकी ओर लटकती रहती है। इसके किनारे पर सोनेके तारमें गुथे हुए मोतियोंका झालर लगी होती है। यह अकेला भी कानमें पहना जाता है। कोई कोई इसे कर्णफूलके नीचे लटका कर भी पहनती हैं। २ झुमकेके आकारमें फूल लगानेवाले एक प्रकारका पौधा। ३ इस पौधेका फूल।

झुमरा (हिं० पु०) लुहारोंका एक बड़ा हथौड़ा। यह खानमेंसे लोहा निकालनेके काममें आता है।

झुमरि (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, यह प्राय: शृङ्गार रसमें प्रयोज्य है।

झुमरी (हिं० स्त्री०) १ काठकी मुँगरी। २ एक प्रकारका यन्त्र जिससे गच पीटा जाता है।

झुमाऊ (हिं० वि०) झूमनेवाला, जो झूमता हो।

झुमाना (हिं० क्रि०) किसीको झूमनेमें लगाना।

झुमिया—मघ जातिकी एक शाखा। ये अपना आदिम वास पहाड़ी प्रदेशमें बतलाते हैं। ये लोग विशेष कर झूम नामक अनाज उपजाते हैं, इसीसे इनका नाम झुमिया पड़ा है।

झुमुर—वीरभूम, छोटा नागपुर और उसके आस पासके प्रदेशोंमें प्रचलित नीचजातियोंका एक प्रकार नृत्य-गीत। साधारणत: दो या उससे ज्यादा स्त्रियां ढोलके बाजेके साथ नानारूप अङ्गभङ्गी करती और गाती हुई नाचा करती हैं। झुमुर-नाच अनेकांशमें अश्लील होने पर भी इसके कुछ गीत अत्यन्त भावपूर्ण है।

झुर—राजपूतानेके अन्तर्गत योधपुर राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २६° ३२' उ० और देशा० ७३° १३' पू० पर योधपुरसे १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

झुरकुट (हिं० वि०) १ कुम्हलाया हुआ, सूखा हुआ। २ क्षम, पतला, दुबला।

झुरकुटिया (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका पक्का लोहा। इसका दूसरा नाम खेड़ी है। (वि॰) २ क्षय, दुबला, पतला।

झुरझुरी (हिं॰ स्त्री॰) १ जुड़ीके पहले आनेवाली कँपकँपी। २ कँपकँपी।

झुरना (हिं॰ क्रि॰) १ शुष्क होना, सूखना, खुश्क होना। २ बहुत अधिक पश्चात्ताप करना। ३ अनेक प्रकारकी चिन्ताओंके कारण दुर्बल होना।

झुरमुट (हिं॰ पु॰) १ एक होमें मिले हुए बहुतसे क्षुप, घनी झाड़ी। २ बहुतसे मनुष्योंका समूह, लोगोंकी भीड़। ३ चादर या ओढ़नेसे शरीरको चारों ओरसे ढक लेनेकी क्रिया।

झुरवन (हिं॰ स्त्री॰) किसी सूखे पदार्थसे निकला हुआ अंश।

झुरवाना (हिं॰ क्रि॰) किसी दूसरेको सुखानेके काममें लगाना।

झुरसना (हिं॰ क्रि॰) झुलसना देखो।

झुरसाना (हिं॰ क्रि॰) झुलसाना देखो।

झुरहुरी (हिं॰ स्त्री॰) झुरझुरी देखो।

झुराना (हिं॰ क्रि॰) १ शुष्क करना, सुखाना, खुश्क करना। २ चिन्तासे स्तब्ध हो जाना, दुःखसे व्याकुल हो जाना। ३ क्षीण होना, दुबला होना।

झुरावन (हिं॰ स्त्री॰) किसी चीजको सुखानेके कारण उसमेंसे निकला हुआ अंश।

झुर्री (हिं॰ स्त्री॰) वह चिह्न जो किसी चीजके सुखाने मुड़ने या पुरानी हो जानेके कारण पड़ जाता हो, सिकुड़न, सिलवट, शिकन।

झुलका (हिं॰ पु॰) झुनझुना देखो।

झुलना (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका ढीला ढीला कुरता जो प्रायः स्त्रियां पहनती हैं। (वि॰) २ झूलनेवाला, जो झूलता हो।

झुलनी (हिं॰ स्त्री॰) छोटे छोटे मोतियोंका गुच्छा जो सोने आदिके तारमें गुथा रहता है। इसे स्त्रियां शोभाके लिये नाकको नथमें लटका लेती हैं।

झुलनीबोर (हिं॰ पु॰) धानकी बाल।

झुलवा (हिं॰ पु॰) बहराइच, बलिया, गाजीपुर और गोंडे आदिमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास। यह जेठमें प्रस्तुत होती है, इसलिये कोई कोई इसे जेठवा भी कहता है।

झुलवाना (हिं॰ क्रि॰) किसी दूसरेको झुलानेके काममें लगाना।

झुलसना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी पदार्थके ऊपरी भागका आधा जल जाना। २ अधिक गरमी पड़नेके कारण किसी पदार्थके ऊपरका अंश शुष्क होकर कुछ काला पड़ जाना।

झुलसवाना (हिं॰ क्रि॰) झुलसनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

झुलाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसीको हिंडोलेमें बैठा कर हिलाना। २ अनिश्चित अवस्थामें रखना, कुछ निपटेरा न करना। ३ लगातार झोंका दे कर हिलाना।

झूँसा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास।

झूकटी (हिं॰ स्त्री॰) छोटी झाड़ी।

झूझना (हिं॰ क्रि॰) जूझना देखो।

झूट (हिं॰ पु॰) झूठ देखो।

झूठ (हिं॰ पु॰) असत्य बात, वह बात जो यथार्थ न हो।

झूठन (हिं॰ स्त्री॰) जूठन देखो।

झूठमूठ (हिं॰ क्रि-वि॰) व्यर्थ, निष्प्रयोजन, जो झूठ हो।

झूठा (हिं॰ वि॰) १ मिथ्या, असत्य, जो झूठ हो। २ असत्य बोलनेवाला, झूठ बोलनेवाला। ३ कृत्रिम, बनावटी, नकली। ४ जो अपने किसी अंगसे बिगड़ जानेके कारण ठीक ठीक काम न दे सके।

झूठों (हिं॰ क्रि-वि॰) १ व्यर्थ, योंही। २ नाम मात्रके लिये।

झूणि (सं॰ पु॰) १ क्रमुक, एक प्रकारकी सुपारी। २ एक प्रकारका अपशकुन।

झूनाराम—जयपुर राज्यके एक मन्त्री। महाराज जयसिंहको अकाल मृत्युके बाद भटियानी रानी राज्य शासन करती थी। रानीने गवर्मेण्टसे नियुक्त सुयोग्य प्रधान मन्त्री बैरिसालको निकाल इन्हींको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। रानीका चरित्र शुद्ध नहीं होनेके कारण झूनारामने उन पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया था।

इस समय जयपुर राज्यमें अराजकता चारों ओर फैल गई और मनमाने कार्य होने लगे। प्रजाके दुःखोंका पारावार न रहा। प्रवाद है, कि झूनाराममके ही षड़यन्त्रसे जयसिंहकी अकाल मृत्यु हुई थी। रानीके मरने पर ये राजमन्त्रीके पदसे च्युत कर चुनारके किलेमें आजीवन कैद कर लिये गये थे।

झूम (हिं० स्त्री०) १ झूमनेकी क्रिया। २ झपकी, ऊँघ।

झूमक (हिं० पु०) १ होलीके दिनोंमें गाये जानेका एक गीत। इसे देहातकी स्त्रियां झूम झूम कर एक घेरेमें नाचती हुई गाती हैं। झूमर। २ झूमर गीतके साथ होनेवाला नाच। ३ विवाहादि मङ्गल अवसरों पर गाये जानेका एक प्रकारका पूरबी गीत। ४ गुच्छा। ५ साड़ी या ओढ़नी आदिमें लगी हुई झूमकों या मोतियों आदिके गुच्छोंकी कतार।

झूमक साड़ी (हिं० स्त्री०) झूमके या सोने मोती आदिके गुच्छे लगी हुए एक प्रकारकी साड़ी। ये गुच्छे साड़ीके उस भागमें लगे रहते हैं जो मस्तकके ठीक ऊपर पड़ता है।

झूमका (हिं० पु०) १ झुमका देखो। २ झूमक देखो।

झूमड़ (हिं० पु०) झूमरख देखो।

झूमड़ झामड़ (हिं० पु०) निरर्थक विषय, झूठा प्रपंच।

झूमड़ा (हिं० पु०) झूमरा देखो।

झूमना (हिं० क्रि०) १ आधार पर स्थित किसी वस्तुका इधर उधर हिलना, बार बार झोंके खाना। जैसे—डालोंका झूमना। २ आधार पर स्थित किसी जीवका अपने सिर और धड़को बार बार आगे पीछे नीचे ऊपर हिलाना, लहराना। जैसे-हाथीका झूमना। विशेष कर मस्ती, अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे आदिमें इस क्रियाका प्रयोग होता है। ३ बैलोंका एक ऐब। इसमें वे खूंटे पर बँधे हुए चारों ओर सिर हिलाया करते हैं।

झूमर (हिं० पु०) १ एकप्रकारका गहना जो सिरमें पहना जाता है। इसमें भीतरसे पोली सीधी एक पटरी रहती है। पटरीकी चौड़ाई एक या डेढ़ अंगुल और लम्बाई चार पाँच अंगुलकी होती है। यह गहना प्रायः सोनेका ही होता है। इसमें घुँघरू या झब्बे लटकते रहते हैं जो छोटी जंजीरोंसे बंधे होते हैं। इसके पीछले भागके कुंडेमें चाँपके आकारके एक गोल टुकड़ेमें दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है। इसके दूसरे सिरेका कुंडा सिरकी चोटी या माँगके सामनेके बालों या मस्तकके ऊपरी भाग पर लटकता रहता है। संयुक्त प्रदेशमें सिर्फ सिर पर दाहिनी ओरमें एक ही झूमर पहना जाता है किन्तु पंजाबकी स्त्रियां झूमरोंकी जोड़ी पहनती हैं। २ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। कोई कोई इसे भुमका भी कहते हैं। ३ होलीमें गाये जानेका एक प्रकारका गीत। ४ इस गीतके साथ होनेवाला नाच। ५ विहारप्रान्तमें सब ऋतुओंमें गाये जानेका एक गीत। ६ एकही तरहके बहुतसी चीजोंका गोल घेरा, जमघट। ७ बहुतसी स्त्रियां या पुरुषोंका गोलाकारमें हो कर घूम घूम कर नाचना। ८ गाड़ीवानोंकी मोंगरी। ९ एक प्रकारका ताल जिसे झूमरा भी कहते हैं। १० छोटे छोटे लड़कोंके खेलनेका एक प्रकारका काठका खिलौना। इसमें एक गोल टुकड़ेमें चारों ओर छोटी छोटी गोलियां लटकती रहती हैं।

झूमरा (हिं० पु०) चौदह मात्राओंका एक प्रकारका ताल। इसमें तीन आघात और एक विराम होता है। धिं धिं तिरकिट, धिं धिं धा धा, तिता तिरकिट धिं धिं धा धा।

झूमरी (हिं० स्त्री०) मालव रागके पाँच भेदोंमेंसे एक।

झूर (हिं० स्त्री०) १ जलन, दाह। २ परिताप, दुःख।

झूरा (हिं० पु०) १ शुष्कस्थान, सूखी जगह। २ अवर्षण, पानीका अभाव, सूखा। ३ न्यूनता, कमी।

झूरि (हिं० स्त्री०) झूर देखो।

झूल (हिं० स्त्री०) १ चौपायोंकी पीठ पर डाले जानेका एक चौकोर कपड़ा। इस देशमें हाथियों और घोड़ों आदिकी पीठ पर शोभाके लिये अधिक दामोंकी झूल डाली जाती है। यहां तक कि बड़े बड़े राजाओंके हाथियोंकी झूलोंमें मोतियोंकी झालरें लगी रहती हैं। आजकल कुत्तोंकी पीठ पर भी झूल डाली जाने लगी है। २ वह कपड़ा जो पहना जाने पर भद्दा जान पड़े।

झूलडंड (सं० पु०) झूलदंड देखो।

झूलदंड (हिं० पु०) एक प्रकारकी कसरत। इसमें कसरत करनेवाले एक एक करके बैठक और तब झूलते हुए दंड करते हैं।

झूलन (हिं० पु०) १ वर्षा ऋतुमें श्रावण शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा तक होनेवाला एक उत्सव। इसमें श्रीकृष्ण या श्रीरामचन्द्र आदिको मूर्त्तियां झूले पर बैठा कर झुलाई जाती हैं। हिंदोल देखो। २ एक प्रकारका रंगोन गीत।

झूलना (हिं० क्रि०) १ किसी आधारके सहारेसे लटक कर कई बार इधर उधर हिलना। २ अनिर्णीत अवस्थामें रहना, किसीको आसरेमें रहना। (वि०) ३ झूलनेवाला। (पु०) ४ २६ मात्राओंका एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ७, ७, ७ और ५ विराम होते हैं और अंतमें गुरु लघु होते हैं। ५ इसी छन्दका एक दूसरा भेद। ६ हिंडोल, झूला।

झूलनी बगली (हिं० स्त्री०) बगलीकी तरह मुगदरकी एक कसरत। इस कसरतमें कलाई पर अधिक जोर पड़ता है।

झूलनी बैठक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बैठक, इसमें बैठक करके एक पैरको हाथीकी सूँड़की तरह झुलाता और तब उसे समेट कर बैठता है। इसके बाद फिर उठ कर दूसरे पैरको उसी प्रकार झुलाना पड़ता है।

झूलरि (हिं० स्त्री०) वह छोटा गुच्छा या झुमका जो हमेशा झूलता रहता हो।

झूला (हिं० पु०) १ हिंडोला। इसके कई भेद हैं। कई जगह वर्षा ऋतुमें लोग पेड़ोंको मजबूत डालोंमें मोटे रस्से बांध कर उसके निचले भागमें तख्ता या पटरी रखते हैं। इसी पटरी पर बैठ कर वे झूलते हैं। दक्षिण भारतमें झूलेका व्यवहार अधिक है। वहां प्रायः सभी घरोंके छतोंमें चार रस्सियां लटका कर उसको चौकीके चारों कोनेसे जकड़ कर बाँध देते हैं। झूलेका निचला भाग जमीनसे कुछ ऊपर हो रहता है, ताकि वह जमीनमें अटक न जाय। झूलेके आगे और पीछे जाने और आनेको पेंग कहते हैं। झूला दूसरेसे झुलाया जाता अथवा पैरको तीरछा करके जमीन पर आघात करनेसे आपसे आप झूला जाता है। २ एक प्रकारका पुल जो बड़े बड़े रस्सों जंजीरों या तारोंका बना होता है। इसके दोनों सिरे उस नदीके समीपवाले किसी बड़े खंभे वृक्षों या चट्टानोंमें मजबूतीसे बंधे होते हैं। इससे नीचेका भाग लटकता और झूलता रहता है। कोई कोई इसे लछमन-झूला नामसे भी पुकारते हैं। पूर्वकालमें पहाड़ी नदियों पर इसी तरहके पुल नदी पार होनेके लिये दिये रहते थे। आजकल भी उत्तर भारत और दक्षिण अमेरिकाके पहाड़ी नदियों पर इसी तरहके पुल देखनेमें आते हैं। पुरानी तरहका पुल दो तरहके होता है, पहला झूला एक बहुत मोटे और मजबूत रस्सेका होता है जो नदी या खाईके किनारे परके किसी मजबूत खंभे या वृक्षोंमें जकड़ कर बंधा रहता और उसके नीचे एक बड़ा टोंगा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है। दूसरा झूला मोटी मोटी मजबूत रस्सियोंसे बुना हुआ जालसा होता है और इसे रस्सोंमें लटका कर दोनों ओर रस्सियोंसे इस प्रकार बांध देते हैं कि नदीके ऊपर उन्हीं रस्सों और रस्सियोंको लटकती हुई एक गलीसी बन जाती है। इसीमेंसे हो कर आदमी नदी पार होते हैं। इसके दोनों सिरे भी पहलेके नाईं नदीके किनारे पर चट्टानोंसे बंधे होते हैं। आजकल भी अमेरिका आदिकी बड़ी बड़ी नदियों पर भी इस तरहके बहुतसे पुल बनाए जाते हैं। ३ वह झूल जो जाड़ेके मौसममें पशुओंकी पीठ पर डाला जाता है। ४ एक प्रकारका ढीला कुरता जिसे प्रायः देहाती स्त्रियां पहनती हैं। ५ झोंका, झटका।

झूला—पञ्जाब प्रदेशके इरावती और अन्यान्य पार्वतीय नदीके ऊपरका झूलता हुआ पुल। इन सेतुओंकी निर्माण-प्रणाली बहुत ही सहज है—दोनों ओरके पहाड़ोंमें एक या दो रस्से खूब मजबूतीसे बाँध कर उसमें एक बड़ी डाली लटका देते हैं, जिसमें एक रस्सी बंधी रहती है। उस डालियामें आरोहीके बैठने पर दूसरी पारसे एक आदमी उसकी रस्सी पकड़ कर खींच लेता है।

झूलि (सं० पु०) क्रमुकभेद, एक प्रकारकी सुपारी।

झूलि (हिं० पु०) झूली देखो।

झूली (हिं० स्त्री०) वह चद्दर जिससे हवा करके भूसा उड़ाते हैं।

झूसदुम—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरातका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५' उ० और देशा० ७१° १५' पू०के मध्य राजकोटसे ३० मील दूर पूर्व दक्षिणमें अवस्थित है।

झूसी—युक्तप्रदेशमें इलाहाबाद जिलेकी झूसीपुर तहसील-का एक शहर। यह अक्षा० २५° २६' उ० और देशा० ८१° ५४' पू०के मध्य गङ्गाके दूसरे किनारे अवस्थित है। लोक-संख्या प्रायः ३३४२ है। इलाहाबादके उपकण्ठस्थित दारागञ्ज और झूसीके बीचमें पार होनेका घाट है। ग्रीष्म कालमें नदीके सङ्कीर्ण हो जानेसे वहां सेतु प्रस्तुत होता है। यह नगर अत्यन्त प्राचीन है। हिन्दू पुराणादिवर्णित केशिनगर या प्रतिष्ठान इसी स्थान पर था। अकबरके समयमें इलाहाबाद, झूसी और जलाला-बाद ये तीन नगर इलाहाबाद सूबाके सदर थे। इस शहरमें सरकारी त्रिकोणमितिक जरीपका एक अड्डा तथा प्रथम श्रेणीका थाना और डाकघर है।

झेंपना (हिं० क्रि०) लज्जित होना, शरमाना, लजाना।

झेरा (हिं० पु०) प्रपंच, झंझट, बखेड़ा।

झेल (हिं० स्त्री०) १ वह क्रिया जो पानीमें तैरते समय पानी हटानेके लिये हाथ पैरसे की जाती है। २ हलका धक्का, हिलोरा। ३ झेलनेकी क्रिया या भाव।

झेलना (हिं० क्रि०) १ ऊपर लेना, बरदाश्त करना। २ पानीको हाथ पैरसे हिलाना। ३ ठेलना, तैरना। ४ पचाना, हजम कराना। ५ अग्रसर करना, आगे बढ़ाना, ठेलना, ढकेलना।

झेलनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जंजीर। यह कानके आभूषणका भार संभालनेके लिये बालोंमें अटकाई जाती है।

झेलम्—१ पञ्जाबके रावलपिण्डी विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३२° २७' से ३३° १५' उ० और देशा० ७२° ३२' से ७३° ४८' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८१३ वर्गमील है। यह जिला पश्चिमसे पूर्व तक ७५ मील लम्बा और ५५ मील चौड़ा है, पञ्जाबके ३२ जिलेके मध्य यह जिला परिमाणफलानुसार ८वें और अधिवासी-के संख्यानुसार १८वें स्थानमें है। पञ्जाब प्रदेशके सैकड़े प्रायः २·६७ अंश भूभाग और ३·१८ अंश अधि-वासी इस जिलेके अन्तर्गत है। इसके उत्तरमें रावल-पिण्डी जिला, पूर्वमें वितस्ता (झेलम) नदी, दक्षिणमें वितस्ता नदी और शाहपुर जिला तथा पश्चिममें बन्नू और शाहपुर जिला अवस्थित है। झेलम् नगर शासनकार्य और वाणिज्यादिका सदर है।

झेलम्की भूमि रावलपिण्डीकी नाईं पहाड़ी नहीं होने पर भी समतल नहीं है। लवणपर्वत हिमालयकी एक शाखा है, जो इसी प्रदेशमें अवस्थित है। यह शाखा दो भागोंमें विभक्त हो कर परस्पर समान्तर भावसे पूर्वसे पश्चिमकी ओर जिलेके मेरुदण्डकी नाईं विस्तृत है। पर्वतके नीचे वितस्तातीरवर्ती समतल भूमि अत्यन्त उर्वरा और अगणय वर्द्धिष्णु ग्राम द्वारा सुशोभित है। गैरिकवर्ण लवणगिरि इस स्थान पर दुरारोह है, तथा जगह जगह धूसरवर्ण गह्वरादि द्वारा परिव्याप्त है। इस पर्वत पर लवणका भाग अधिक पाया जाता है, इसीसे उसका नाम लवणपर्वत हुआ है। खिउरामें गव-मेंण्टके निरीक्षणमें इस पहाड़से लवण निकाला जाता है। श्यामल गुल्मोंसे आच्छादित घाटी हो कर बहते हुए सोतोंका जल पहले बहुत विशुद्ध रहता है, किन्तु लवणाक्त भूमिके ऊपर आते आते खारा हो जाता है। तब वह जल सींचनेका काममें नहीं आता। उपरोक्त दो पर्वत-श्रेणियोंमें एक सुन्दर मालभूमिके ऊपर चारों ओर अनुच्च पर्वतसे घिरा हुआ कल्लारकहार ह्रद अवस्थित है। इस ह्रद (झील)के दोनों प्रान्त सम्पूर्ण विपरीत भावापन्न हैं। एक ओरका दृश्य बहुत कुछ मरुसागरकी नाईं लवणमय कूल तृणगुल्म वा जलप्राणीविवर्जित है और दूसरा प्रान्त श्यामल सुन्दर उद्यानोंसे परि-वेष्टित है। जहां हंस आदि तरह तरहके जलपक्षी मधुर स्वरोंसे चहचहाते हैं। लवणपर्वतके उत्तरस्थ प्रदेश-में उच्च वन्धुर मालभूमि है तथा जगह जगह नदी पर्व-तादि द्वारा व्यवच्छिन्न हो कर अन्तमें यह प्रदेश अगणय पर्वतसमाकीर्ण रावलपिण्डीके निकट जा कर मिल गया है। लवणपर्वतके साथ समकोण कर इस जिलेको उत्तर-दक्षिणमें बांटनेसे उसके पश्चिम भागका जल सिन्धुमें और पूर्व भागका जल वितस्तामें आ गिरेगा। यह वितस्ता नदी जिलेके पूर्व और दक्षिणभागमें प्रायः १०० मील तक सीमारूपमें अवस्थित है। इस नदीमें नाव आदि झेलम् नगरसे कुछ दूर तक आ जा सकती है।

लवण पर्वत अनेक तरहके मूल्यवान् खनिज पदार्थोंसे परिपूर्ण है। अच्छे अच्छे मर्मर और अट्टालिका-बनाने योग्य पत्थरके सिवा यहां भिन्न भिन्न प्रकारके चूर्ण पत्थर

बहुत पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कई प्रकारके खनिज वर्ण द्रव्य, कोयला, गन्धक, मट्टीका तेल तथा सोना, ताँबा, सीसा, लोहा आदि धातु पर्वतसे निकलती हैं। किसी किसी जगह लोहेका भाग इतना अधिक है कि दिग्दर्शन यन्त्रका काँटा टेढ़ा हो जाता है। समस्त पञ्जाब प्रदेशमें जितना नमक खर्च होता है, उसका अधिकांश इसी जिलेसे निकाला जाता है। यथार्थमें लवण छोड़ कर अन्यान्य खनिज पदार्थोंसे जिलेका बहुत थोड़ा ही लाभ होता है। सम्प्रति रेलपथके हो जानेसे इसके खनिजको आय और भी अधिक हो गई है। खिउरा, मर्दों, मकराच काठा और जतानामें लवणको खान तथा मकराचपिड, दक्कोत और कुन्दालमें कोयलेकी खान है। यहाँका कोयला उतना उत्कृष्ट नहीं है।

इतिहास—इस जिलेका प्राचीन इतिहास अस्पष्ट है। हिन्दुओंमें प्रवाद है, इसके लवणपर्वत पर पाण्डवोंने कुछ काल तक अज्ञातवास किया था। वर्तमान पुरातत्त्वविद्ने स्थिर किया है, कि माकिदनवीर अलेकसन्दर इसी जिलेके किसी स्थानमें वितस्ता (हाइडसपेस)-के किनारे पुरुराजके साथ लड़े थे। जनरल कनिंहम अनुमान करते हैं, कि वर्तमान जलालाबादके समीप अलेकसन्दरने वितस्ता नदी पार कर जिस ओर गुजरात नगर अवस्थित है उसी ओर चिलियनवाला युद्धक्षेत्रके निकट मङ्ग नामक स्थानमें पुरुके साथ लड़ाई की थी। इसके बाद मुसलमान अधिकारके समय तक इसका विवरण मालूम नहीं है।

जञ्जुआ और जाठजाति इस जिलेके अधिकांश स्थानोंमें वास करती है। मालूम पड़ता है, ये बहुत पहलेसे यहाँ रहते आये हैं। इसके बाद गक्करगण पूर्वसे और आवानगण पश्चिमसे इस जिलेमें आये। मुसलमान आक्रमणके समय तथा उसके बाद भी बहुत समय तक गक्कर जाति रावलपिण्डी और झेलममें बहुत प्रबल पराक्रम तथा स्वाधीन भावसे राज्य करती थी। रावलपिण्डी देखो। मुगल साम्राज्यको उन्नतिके समय गक्कर भूपतिगण सम्राट्के सबसे विश्वस्त और सम्भ्रान्त सामन्तोंमें गिने जाते थे। मुगलराज्यके अधःपतनके बाद अन्यान्य समीपवर्ती स्थानकी नाईं झेलम् भी सिख राज्यभुक्त हुआ। १७६५ ई०में गुजरसिंहने गक्कर-राजाको परास्त कर लवण और माड़ी पर्वतवासी पहाड़ी जातिको वशीभूत किया। जब उनका पुत्र इस प्रदेशके राजा हुए, तब १८१० ई०में अजेय रणजित्सिंहने उस प्रदेशको जीत कर सिख राज्यमें मिला लिया। लाहोर-दरबार ऐसी कठोरतासे राजस्व अदा करने लगा, कि शीघ्रही इसके पूर्वतन जञ्जुआ, गक्कर और आवानके जमींदार अपनी भूसम्पत्ति छोड़नेको बाध्य हुए और उनके अधीनस्थ जाठगण नवीन जमींदार हो गये। अभी यहाँ एक भी बड़े जमींदार नहीं हैं। इसके पहले जमींदारोंके किसी वंशजने एकसे अधिक ग्राम दखल नहीं किया था।

१८४९ ई०में समस्त सिख राज्यके साथ साथ झेलम भी अंगरेजोंके हाथ लगा। रणजित्सिंहके प्रबल पराक्रमसे पहाड़ी जाति ऐसी दमित और शान्त हो गई थी, कि अंगरेजोंको वहाँ राजस्व और शासनके विषयमें सुशृङ्खला स्थापन करनेमें कुछ भी कष्ट उठाना न पड़ा।

आज भी इस प्रदेशमें कहीं कहीं प्राचीन कीर्त्तिका भग्नावशेष देखा जाता है। बौद्धके मतानुसार कतासका भग्नमन्दिर लगभग ८वीं या ९वीं शताब्दीका बना हुआ है। मालोत और शिवगङ्गामें भी कई एक देवमन्दिरका भग्नावशेष विद्यमान है। इसके सिवा लवणपर्वतके दुरारोह शृङ्गों पर अवस्थित रोहतक, गिरझक और कूशाक दुर्ग सामरिक इतिहासलेखकोंका कौतूहल और विस्मय प्रकाश करता है।

ग्रीकसे मुगलोंके समय तक कई बार विदेशियोंने इसी रास्तेसे जा कर भारतवर्ष पर आक्रमण किया और झेलम् जिलेको बहुतसे दुर्गादिसे सुरक्षित तथा अधिवासियोंको युद्धविशारद कर डाला था।

यहाँकी लोकसंख्या प्रायः ५०१४२४ है, जिसमें ४४३३६० अर्थात् सैकड़े ८८ मुसलमान, ४११६८३ हिन्दू और १३८५० सिख तथा कुछ जैन हैं। हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और अरोरा अर्थात् क्षत्रकजाति प्रधान तथा मुसलमानोंमें जाठ, आवान, जञ्जुआ, मट्टि, गुजर और गक्कर प्रधान हैं।

झेलम, पिण्डदादनखाँ, लवा, तलगङ्ग, चकवाल और भाउन इन छह प्रधान नगरोंमें पाँच हजारसे अधिक

मनुष्य रहते हैं। इनमें झेलम् और पिण्डदादन प्रधान वाणिज्यस्थान है।

छोटे छोटे गाँवके घर मट्टी अथवा कच्ची ईंटोंके बने हैं। कभी कभी बड़े बड़े पत्थर दीवारमें मट्टीके साथ दे दिये जाते हैं। धनी धनवान् मनुष्य कटे हुए चौरस पत्थरसे घर और मस्जिद बनाते हैं। सम्भ्रान्तोंके द्वार तरह तरहके चित्रोंसे चित्रित हैं तथा घरका भीतरी भाग सुसज्जित भी है। यहां सभी अपने घरकी अत्यन्त परिष्कार रखते हैं।

गेहूं और बाजरा यहाँके अधिवासियोंका खाद्य है। जुन्हरी, तण्डुल और जौ भी कभी कभी काममें लाया जाता है। यहाँके प्रायः सभी लोग मांस खाते हैं।

इस जिलेकी २८१३ वर्गमील जमीनमेंसे प्रायः ११७४ वर्गमीलमें खेती होती और १७८ वर्गमील खेतीके उपयुक्त है। अधिकांश खेतमें गेहूं या बाजरा उपजाया जाता है। शेष जमीनमें उपयोगितानुसार धान इत्यादि रोपा जाता है।

अमेरिकन युद्धके समय यहां कपास बहुत उपजायी जाती थी; किन्तु इसके बाद उसका मूल्य कम हो जानेके कारण कृषकोंने पूर्व-कृषि अवलम्बन की है। तोभी यहांसे कपासकी उपज बिलकुल नहीं गई है। भारतवर्षके तरह तरहके फल और साक-सब्जी अधिक उत्पन्न होती है।

शस्यक्षेत्रमें जल सींचनेका कोई विस्तृत उपाय नहीं है। कृषकगण नदीके किनारे अथवा उपत्यकामें कुआं खोद कर उसीसे अपनी अपनी जमीन सींचते हैं। एक कुएंके जलसे बहुत कम जमीन सींची जाती है। किन्तु खेतमें कृषक इतनी खाद देते और इतने यत्नसे जोतते हैं, कि वर्षभरमें कोई न कोई फसल अवश्य हो ही जाती है। उत्तर भागकी मालभूमिमें बहुतसे छोटे छोटे तड़ागको बंधा कर उनमें जल जमा किया जाता और उसीसे खेत सींचा जाता है। किन्तु ऐसा करनेमें बहुत खर्च पड़ता है। सुतरां सामान्य गृहस्थके लिये बहुत कठिन हो जाता है। बहुतसे अङ्गरेजी राज्यमें अपनी सम्पत्ति निरापद जान कर बांध तैयार करते हैं। इस कारण यहां खेतीका खूब सुविधा है। यहाँके कृषकोंकी अवस्था मन्द नहीं है, बहुतसे ऋणसे रहित हैं। एक विषय कई अंशोंमें बँट जानेसे ही अनेक दरिद्र हो गये हैं। बहुतसे संभ्रान्त व्यक्तियोंने सम्पत्ति अपने अपने विषयको अखण्ड रखनेके लिये एक उपाय सोच निकाला है। परस्पर लड़ाई करके अन्त तक जो उत्तराधिकारी जीतेगा, वही सब सम्पत्तिका अधिकारी होगा।

झेलम्का एक एक ग्राम अन्यान्य स्थानोंके ग्रामसे बहुत बड़ा है। बड़ासे बड़ा १००।१५० वर्गमील तक विस्तृत है। इन ग्रामोंके अधिपतिगण दूसरे दूसरे स्थानोंके अधिपतियोंसे अधिक क्षमतापन्न हैं। अधिकांश स्थानमें ही उत्पन्न फसलसे मालगुजारी दी जाती है। मालगुजारीका शरह स्थानभेदसे उत्पन्न शस्यके ¼ से ½ अंश तक है। ग्राममें मजदूर, नाई, धोबी, बढ़ई, कुम्हार आदिकी तनखाह अनाजसे ही चुकाई जाती है। प्रति वर्ष अनाज काटनेके समय काश्मीरसे बहुत मजदूर यहाँ आ कर काम करते हैं और काम समाप्त होने पर पुनः वे स्वदेशको लौट जाते हैं।

वाणिज्य।—झेलम् और पिण्डदादन नगर इसी जिलेके वाणिज्यके दो प्रधान केन्द्र हैं। दक्षिण प्रदेशका नमक मुलतान, सिन्धु और रावलपिण्डीमें गेहूं आदि अनाज, उत्तर और पश्चिमके पार्वत्य प्रदेशमें रेशम और सूतीका कपड़ा तथा इसके आसपासके चारों तरफमें पीतल और तांबेके बरतन भेजे जाते हैं। नदीके मुहानेसे मुलतान तक पत्थर लाया जाता है। पञ्जाब-नर्दारण स्टेट-रेलवे कम्पनीने तरकावालाकी पत्थरकी खान खरीद की है। इन्हीं पत्थरोंसे लाहोरका प्रधान गिरजा बनाया गया है। पहाड़के बड़े बड़े शीशमकी नाव, रेल और बैलगाड़ी द्वारा दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं। पैकार जिलेके भीतर घूम घूम कर चमड़ा संग्रह करते हैं। बढ़िया चमड़ा विदेशके लिये कलकत्तेमें और घटिया अमृतसरमें भेजा जाता है। आमदनीमें बिलायती कपड़ा, अमृतसर और मुलतानसे धातु, काश्मीरसे पश्मी कपड़ा और पेशावरसे मध्य एशियाका द्रव्यजात प्रधान है। काश्मीरके साथ और भी अनेक तरहकी चीज खरीदी और बेची जाती हैं।

जिलेकी मध्यस्थ पर्वतश्रेणीकी नमककी खान

गवर्मेण्टके निरीक्षणमें सुदक्ष इञ्जिनियरसे परिचालित होती है। इस खानसे गवर्मेण्टको वार्षिक ३० लाख रुपयेकी आमदनी होती है। जरूरत पड़ने पर खानसे वार्षिक ४० लाख मन नमक निकाला जा सकता है। एक तरहका पथरीला कोयला इसके कई स्थानोंमें देखा जाता है। अभी मकराचखानसे बढ़िया कोयला निकाल कर रेलवेके काममें लगाया जाता है।

शिल्पजात। झेलम् और पिण्डदादनमें नाव बनाई जाती है। सुलतानपुरके निकट गक्करोंने एक कांचका कारखाना खोला है। कई जगह तांबे और पीतलके बरतन तथा रेशम और सूती कपड़ा तैयार होता है। यहांका मट्टीका बरतन बहुत मजबूत होता है। इसके सिवा और भी यहाँ कई तरहके पदार्थ प्रस्तुत होते हैं। लवणपर्वतको निर्झरिणीसे स्वर्णरेणु निकाल कर बहुतसे लोग जीविका-निर्वाह करते हैं।

लाहोरसे पेशावर तकको पक्की सड़क इस जिलेके प्राय: ३० मील तक दक्षिणसे उत्तरको गई है। इसके अलावा और दूसरी पक्की सड़क नहीं है, किन्तु और भी ८८२ मील तक लगाड़ी जा सकती है। नर्दारण-ष्टेट-रेलवे जिलेके दक्षिण-पूर्वकी ओर प्राय: २८ मील तक गया है। जिलेके अन्तर्गत ष्टेशनोंके नाम—झेलम्, दीना, दामिली और मोहावा हैं। मियानी ष्टेशनसे खिउराकी नमककी खान तक शाखा-रेलपथ गया है। झेलम्के समीप वितस्ता नदीके ऊपर रेलवेका एक पुल है और उसके नीचे एक पृथक् अंश ही कर मनुष्यादिके आने जानेका रास्ता है। झेलम् जिलेके पूर्व वितस्ता नदीमें प्राय: १२७ मील तक नाव आती जाती है। रेलके किनारे और प्रधान पक्की सड़कके बगलमें तारके खम्भे गड़े हैं। चैत्र मासके शेष तीन दिन पर्यन्त यहां दो बड़ा मेला लगता जिनमेंसे एक कतास नगरमें हिन्दुओंके यत्नसे और दूसरा चोया सैदानशाह नगरमें मुसलमानोंके यत्नसे होता है। प्रत्येक मेलेमें कमसे कम ५०००० मनुष्य इकट्ठे होते हैं।

शासन-विभाग। १ डेपुटी कमिश्नर, २ सहकारी और १ अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर, ४ तहसीलदार और उनके अधीनस्थ कर्मचारी तथा ३ मुन्सिफ द्वारा शासन और राजस्वकार्य चलाया जाता है।

गत कई वर्षोंसे विद्याकी विशेष उन्नति हुई है। वेदि खेमसिंह नामक किसी देशीय सम्भ्रान्त व्यक्तिके यत्नसे प्राय: १८ बालिका-विद्यालय स्थापित हुए हैं। सरकारी विद्यालय छोड़ कर और भी कई एक देशीय पाठशालाएं हैं। मिशनरीने यहां बहुतसे बालक और बालिका-विद्यालय स्थापन किये हैं।

शासन और राजस्व वसूल करनेकी सुविधाके लिये यह जिला ४ तहसीलमें विभक्त है—झेलम्, पिण्डदादनखाँ, चकवाल और तलगङ्ग।

झेलम् जिलेकी आवहवा खराब नहीं हैं, किन्तु नमककी खानके कर्मचारी तरह तरहके कष्ट पाते हैं, और सचराचर दुर्बल रहते हैं। गलगण्डरोग भी यहां देखा जाता है। पिण्डदादनखाँके चारों ओर ज्वरका प्रकोप अधिक रहता है। वसन्त तथा प्लेग रोगसे भी बहुतोंकी मृत्यु होती है। वार्षिक वृष्टिपात प्राय: २४·११ इंच है।

२ पञ्जाब प्रदेशके झेलम् जिलेकी पूर्वीय तहसील। यह अक्षा० ३२° ३८´से ३३° १५´ उ० और देशा० ७३° ८´ से ७३° ४८´ पू०में अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ८८८ वर्गमील है। इसके पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें झेलम् नदी है। लोकसंख्या प्राय: १७०८७८ है। इसमें कुल ४३२ ग्राम और ४ थाने लगते हैं। इस तहसीलकी आय २ लाखसे अधिक रुपयेकी है। यहां जिलेकी सदर अदालत आदि अवस्थित है।

३ पञ्जाबके झेलम् जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० ३२° ५६´ उ० और देशा० ७३° ४७´ पू० पर वितस्ता (झेलम्) नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यह शहर रेल द्वारा कलकत्तेसे १३६७ मील, बम्बईसे १४०१ मील और कराचीसे ८४८ मील दूर पड़ता है। लोकसंख्या प्राय: १४८५१ है।

वर्तमान झेलम् नगर आधुनिक है। प्राचीन नगर वितस्ताके दाहिने किनारे अवस्थित था। सिख-शासन-कालके समय यह स्थान प्रसिद्ध न था। अंगरेजके राज्य-भुक्त होने पर यहां एक सेनाकी छावनी स्थापित हुई। कई वर्ष तक झेलम्में विभागके कमिश्नर रहते थे, पीछे १८५० ई०में कमिश्नरका आफिस रावलपिण्डीमें उठ कर चला गया। अंगरेज शासनमें तथा नमककी खानेके लिये

जाता है। ७ भारोंसे भारी चीजोंको ऊपर उठानेका रस्सियोंका एक फंदा। ८ राख, भस्म।

झौंझट (हिं० पु०) झंझट देखो।

झौंट (हिं० पु०) उदर, पेट।

झौंर (हिं० पु०) १ समूह, झुंड। २ कुंज, झाड़ियोंका समूह। ३ मोतियों या चाँदी सोनेके दानोंके गुच्छे लटके हुए एक प्रकारका गहना।

झौंरना (हिं० क्रि०) गुंजना, गुंजारना।

झौंरा (हिं० पु०) झौंर देखो।

झौंराना (हिं० क्रि०) १ काला पड़ जाना, बदरंग हो जाना। २ कुम्हलाना, मुरझाना।

झौंसना (हिं० क्रि०) झुलसना देखो।

झौर (हिं० पु०) १ प्रपंच, झंझट, बखेड़ा। २ डाँट, फटकार, जँचा नीचा।

झौरना (हिं० क्रि०) लपक कर पकड़ना, छोप लेना।

झौरा (हिं० पु०) प्रपंच, झंझट, बखेड़ा, तकरार।

झौरे (हिं० क्रि०) १ समीप, निकट, पास। २ सङ्ग, संग, साथ।

झौंहाना (हिं० क्रि०) १ गुर्राना। २ जोरसे चिड़चिड़ाना, कुढ़ना।

ञ

ञ—संस्कृत और हिन्दी व्यञ्जनवर्णका दशम अक्षर, द्वितीय वर्गका पञ्चम अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान तालु और अनुनासिक है। इसका उत्पत्तिस्थान नासिकानुगत तालु है। यह अक्षर अर्द्धमात्रा कालद्वारा उच्चारित होता है। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तरीण प्रयत्न जिह्वाके अग्रभाग द्वारा तालुके मध्यभागका स्पर्श है तथा वाह्यप्रयत्न है घोष, संवार और नाद। यह अल्पप्राण वर्णोंमें परिगणित है।

मातृकान्यासमें वामहस्तकी अङ्गुलिके अग्रभागमें न्यास किया जाता है। वर्णमालामें इसकी लिखनप्रणाली इस प्रकार है—"ञ"। इस अक्षरमें सूर्य, इन्दु और वरुण सर्वदा निवास करते हैं। तन्त्रके मतमे इसके पर्याय वा वाचक शब्द—ञकार, बोधनी, विश्वा, कुण्डली, मघद, वियत्, कौमारी, नागविज्ञानी, सव्याङ्गुलनख, वक्र, सर्वेश, चूर्णिता, बुद्धि, स्वर्गात्मा, घर्घरध्वनि, धर्मकपाद, सुमुख, विरजा, चन्द्रनेश्वरी, गायन, पुष्पधन्वा, रागात्मा और वराङ्गिणी। इसका ध्यान करनेसे साधक शीघ्र ही अभीष्ट लाभ कर सकता है।

ध्यानका मन्त्र—"चतुर्भुजां धूम्रवर्णां कृष्णाम्बरविभूषिताम्।
नानालङ्कारसंयुक्तां जटामुकुटराजिताम्॥
ईषद्धास्यमुखीं नित्यां वरदां भक्तवत्सलाम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

ब्रह्मरूपाका इस प्रकारसे ध्यान करके उनका मन्त्र दश बार जपना चाहिये।

कामधेनुतन्त्रके अनुसार ञकारका स्वरूप सदा ईश्वरसंयुक्त, रक्तविद्युल्लताकार, परमकुण्डली, पञ्चदेवमय, पञ्चप्राणात्मक, त्रिशक्तिसमन्वित और त्रिबिन्दुयुक्त है।

कार्यके प्रारम्भमें इस अक्षरका विन्यास करनेसे भय और मृत्यु होती है।

"भयमरणकरौ ञझौ।" (वृत्तर० टी०)

ञ (सं० पु०) १ गायन, गायक, गानेवाला। २ घर्घरध्वनि, घर घरका शब्द। ३ वलीवर्द, बैल। ४ धर्मच्युत, अधर्मी। ५ शुक्र। "ञकारो बोधनी विश्वा।" (वर्णाभिधान)

ञकार (सं० पु०) ञ स्वरूपे कारः। ञ स्वरूपवर्ण।

ञि (सं० पु०) १ प्रत्यय विशेष ; यह प्रत्यय प्रेरणार्थमें लगता और इसका इकार रहता है। २ धातुका अनुबन्धविशेष, यह अनुबंध वर्तमान क्त प्रत्ययबोधक है।

ञ्यन्त (सं० पु०) ञि प्रत्ययविशेषो अन्ते यस्य, बहुव्री०। ञि प्रत्ययान्त, यह प्रत्यय धातु और शब्दके उत्तरमें लगता है।

अष्टम भाग सम्पूर्ण।

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय

Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration, Library

मसूरी

MUSSOORIE.

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।

This book is to be returned on the date last stamped.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

118244

अवाप्ति संख्या
Acc No. 15

R
वर्ग संख्या 039.914
Class No. Enc

पुस्तक संख्या
Book No.

लेखक
Author

शीर्षक
Title हिंदी विश्व कोष

R
039.914
Enc
V.8

LIBRARY

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

MUSSOORIE

15

Accession No. 118244

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving